हिन्दी

विश्वकोष

(पञ्चदश भाग)

प्रेतशिला (सं० स्त्री०) प्रेतानां प्रेतेभ्यो वा या शिला। पिण्डदानार्थं गयास्थित प्रस्तरविशेष, गयाकी वह शिला जिस पर प्रेतोंके उद्देश्यसे पिण्डदान किया जाता है।

गरुड़पुराण-गयामाहात्म्यमें लिखा है, कि गयामें जो प्रेतशिला कहलाती है, वह तीन स्थानोंमें अवस्थित है,—प्रभासमें, प्रेतकुण्डमें और गयासुरके मस्तक पर। यह प्रेतशिला समस्त देवस्वरूपिणी और धर्म कर्तृक धारित है। पितृ प्रभृति और वान्धवादि यदि कोई प्रेतभावापन्न हो, तो गयासुरके मस्तक पर जो प्रेतशिला है, उस पर पिण्डदान करनेसे उनकी प्रेतयोनि नष्ट होती है। प्रेतत्व दूर करनेके लिये प्रेतशिला ही सर्वश्रेष्ठ है। इस प्रेतशिला पर जो कोई पिण्डदान करता है उसका प्रेतत्व दूर होता है और श्राद्धादि करनेसे उसे ब्रह्मलोककी प्राप्ति होती है। गयासुरका जो मुण्ड है, उसकी पीठ पर यह शिला अवस्थित है। इस शिला पर विष्णुपादपद्ममें पिण्डदान करना होता है। गया देखो। हिन्दूमात्रको ही गयाश्राद्ध अवश्य करना चाहिये। गयाक्षेत्रमें प्रेतशिला पर निम्नलिखित मन्त्रसे पिण्डदान करना होता है। मन्त्र यथा—

"स्नात्वा प्रेतशिलादौ तु चरणाम्बुस्रुतेन च।
पिण्डं दद्यादिमैर्मन्त्रैरावाह्य च पितृन् परान्॥
अस्मत्कुले मृता ये च गतिर्येषां न विद्यते।
तेषामावाहयिष्यामि दर्भपृष्ठे तिलोदकैः।
पितृवंशे मृता ये च मातृवंशे च ये मृताः।
तेषामुद्धरणार्थाय इमं पिण्डं ददाम्यहम्॥
मातामहकुले ये च गतिर्येषां न जायते।
तेषामुद्धरणार्थाय इमं पिण्डं ददाम्यहम्॥
अजातदन्ता ये केचित् ये च गर्भेषु पीड़िताः।
तेषामुद्धरणार्थाय इमं पिण्ड ददाम्यहम्॥
उद्बन्धनैर्मृता ये च विषशस्त्रहताश्च ये।
आत्मोपघातिनो ये च तेभ्यः पिण्डं ददाम्यहम्॥
वन्धुवर्गाश्च ये केचित् नामगोत्रविवर्जिताः।
स्वगोत्रे परगोत्रे वा गतिर्येषां न विद्यते।
तेषामुद्धरणार्थाय इमं पिण्डं ददाम्यहम्॥
अग्निदाहे मृता ये च सिंहव्याघ्रहताश्च ये।
दंष्ट्रीभिः शृङ्गिभिर्वापि तेषां पिण्डं ददाम्यहम्।
अग्निदग्धाश्च ये केचित् नाग्निदग्धास्तथा परे।
विद्युच्चौरहता ये च तेषां पिण्डं ददाम्यहम्॥
रौरवे चान्धतामिस्रे कालसूत्रे च ये गताः।
तेषामुद्धरणार्थाय इमं पिण्डं ददाम्यहम्॥
असिपत्रवने घोरे कुम्भीपाके च ये गताः।
तेषामुद्धरणार्थाय इमं पिण्डं ददाम्यहम्॥

अन्येषां यातनास्थानां प्रेतलोकनिवासिनाम्।
तेषामुद्धरणार्थाय इमं पिण्डं ददाम्यहम् ॥
पशुयोनिगता ये च पक्षिकीटसरीसृपाः।
अथवा वृक्षयोनिस्थास्तेभ्यः पिण्डं ददाम्यहम् ॥
असंख्ययातनासंस्था ये नीता यमशासने।
तेषामुद्धरणार्थाय इमं पिण्डं ददाम्यहम् ॥
जात्यन्तरसहस्राणि भ्रमन्तः स्वेन कर्मणा।
मानुष्यं दुर्लभं येषां तेभ्यः पिण्डं ददाम्यहम् ॥
ये बान्धवाबान्धवा वा येऽन्य जन्मनि बान्धवाः।
ते सर्वे तृप्तिमायान्तु पिण्डदानेन सर्वदा ॥
ये केचित् प्रेतरूपेण वर्त्तन्ते पितरो मम।
ते सर्वे तृप्तिमायान्तु पिण्डदानेन सर्वदा ॥
ये मे पितृकुले जाताः कुले मातुस्तथैव च।
गुरुः श्वशुरबन्धूनां ये चान्ये बान्धवा मृताः ॥
ये मे कुले लुप्तपिण्डाः पुत्रदारविवर्जिताः।
क्रियालोपगता ये च जात्यन्धाः पङ्गवस्तथा ॥
विरूपास्त्वामगर्भा ये ज्ञाताज्ञाताः कुले मम।
तेषां पिण्डं मया दत्तमक्षय्यमुपतिष्ठताम् ॥
साक्षिणः सन्तु मे देवाः ब्रह्मेशानादयस्तथा।
मया गयां समासाद्य पितॄणां निष्कृतिः कृता ॥
आगतोऽहं गयां देवपितृकार्ये गदाधर।
तन्मे साक्षी भवस्वाद्य अनृणोऽहमृणत्रयात् ॥"

(गयामा० ८६ अ०)

इस मन्त्रसे प्रेतशिला पर विष्णुपादपद्ममें पिण्डदान करे। इस प्रकार गयामें पिण्ड देनेसे सभी पाप और तीन प्रकारके ऋण अपनोदित होते हैं। जब तक पितादिके उद्देशसे प्रेतशिला पर पिण्डदान न किया जाय, तब तक पितृऋणसे मुक्तिलाभ नहीं हो सकता। इसीसे सबसे पहले पितादिके उद्देशसे प्रेतशिला पर श्राद्ध करना हर व्यक्तिका अवश्य कर्त्तव्य है।

प्रेतशौच (सं० क्ली०) प्रेते सति प्रेतस्य वा शौचं। मृत व्यक्तिके निमित्त अशौच, मरनेका अशौच। दो वर्षके लड़कोंकी मृत्यु होनेसे उसे मट्टीमें गाड़ देना होता है और इसके ऊपर होनेसे दाह कर्म करना होता है। इस प्रकार प्रेतसत्कार करके जिससे शुद्धि विधान हो उसका अनुष्ठान करनेका नाम प्रेतशौच है। ज्ञाति बन्धुओंके साथ श्मशानसे लौट कर स्नान कर ले, पीछे यमसूक्त जप और उसके उद्देशसे तर्पणादि करने होते हैं। संसार अनित्य है, एक न एक दिन सबोंकी मृत्यु होगी ही, ऐसा सोच कर मृत व्यक्तियोंके लिये रोना धोना उचित नहीं। अनन्तर घर जा कर दरवाजे पर रखे हुए नीमकी पत्तीको दांतसे काट कर जलसे हाथ धो डाले। पीछे आचमन और अग्निस्पर्श करके घरमें प्रवेश करे। घरको चारों ओर गोबरसे पोत देना आवश्यक है। घर जिससे पवित्र रहे उस पर विशेष ध्यान देना चाहिये।

"प्रेतशौचं प्रवक्ष्यामि तच्छृणुष्व यतव्रताः।
ऊणद्विवर्षं निखनेन्न कुर्यादुदकं ततः ॥" इत्यादि ॥

(गरुड़पु० १०६ अ०)

ज्ञाति भिन्न जो सब व्यक्ति प्रेतके अग्निकार्यके लिये श्मशान गये थे, उन्हें केवल एक दिन तक अशौच होता है। एक दिनके बाद उनकी शुद्धि होती है। जो ज्ञाति हैं, उन्हें पूरा अशौच मानना पड़ता है।

अशौचका विषय प्रेताशौचमें देखो।

प्रेतश्राद्ध (सं० क्ली०) प्रेताय प्रेतोद्देश्यकं वा श्राद्धं। प्रेतोद्देश्यक श्राद्ध, किसीके मरनेको विधिसे एक वर्षके अन्दर होनेवाले सोलह श्राद्ध जिनमें सपिण्डी, मासिक और षाण्मासिक आदि श्राद्ध सम्मिलित हैं।

"द्वादश प्रतिमास्यानि आद्यं षाण्मासिके तथा।
सपिण्डीकरणञ्चैव इत्येतत् श्राद्ध षोड़शम् ॥"

(श्राद्धतत्त्व)

आद्य प्रेतश्राद्धके दिन अर्थात् आद्यैकोद्दिष्ट श्राद्धके दिन प्रेतका प्रेतत्त्व दूर होने और उसके स्वर्गलोक जानेकी कामनासे वृषोत्सर्ग करना होता है। यदि किसी कारणवशतः आद्यैकोद्दिष्ट-श्राद्ध न किया जाय, तो कृष्णा एकादशीके दिन वह श्राद्ध करना होता है। धर्मशास्त्रकारोंका अभिप्राय यह है, कि कृष्णा एकादशी और अमावस्या दोनों ही दिन पतित श्राद्धका काल है। प्रेतश्राद्ध हो चाहे साम्वत्सरैकोद्दिष्ट श्राद्ध उक्त दोनों ही दिन किया जा सकता है। प्रेतके उद्देशसे नवश्राद्ध साग्निकोंका कर्त्तव्य है। यह श्राद्ध चतुर्थ, पञ्चम, नवम वा एकादश दिनमें करना होता है। यथा—

'चतुर्थे पञ्चमे चैव नवमैकादशे तथा ।
तदन्न दीयते जन्तोस्तन्नवश्राद्धमुच्यते ॥"
(श्राद्धविवेक-यम)

पहले जिन सोलह श्राद्धोंकी कथा लिखी गई हैं, वह साग्निक और निरग्निक दोनोंके ही कर्त्तव्य हैं। प्रेतके उद्देशसे अम्बुघट श्राद्धको भी प्रेतश्राद्ध कहते हैं। सम्वत्सर पर्यन्त प्रेतके उद्देशसे प्रतिदिन अन्न जलदानरूप श्राद्धका नाम अम्बुघटश्राद्ध है। (श्राद्धविवेक)

प्रेतहार (सं० पु०) मृत शरीरको उठा कर श्मशान आदि तक ले जानेवाला, मुरदा उठानेवाला।

प्रेता (सं० स्त्री०) १ स्त्री-प्रेत, पिशाची। २ भगवती कात्यायिनीका एक नाम।

प्रेताधिप (सं० पु०) प्रेतानां अधिपः। प्रेताधिपति, यमराज।

प्रेतान्न (सं० क्ली०) प्रेताय देयं अन्नं। प्रेतोद्देश्यक देय अन्न, वह अन्न जो प्रेतके उद्देशसे दिया जाय।

प्रेताशिनी (सं० स्त्री०) १ भगवतीका एक नाम। २ मृतकोंको खानेवाली।

प्रेताशौच (सं० क्ली०) प्रेते सति अशौचं। प्रेतनिमित्त अशौच। मृत्युके बाद जो अशौच होता है, उसका नाम प्रेताशौच वा मरणाशौच है। शुद्धितत्त्वमें लिखा है,—

सपिण्डकी मृत्यु होने पर मृत्यु दिनसे ले कर ब्राह्मणके १० दिन, क्षत्रियके १२ दिन, वैश्यके १५ दिन और शूद्रके ३० दिन अशौच होता है, यही पूर्णाशौच है। इससे न्यूनकालव्यापक अशौचको खण्डाशौच कहते हैं। जननाशौचमें ही खण्डाशौच होता है। दूरस्थ ज्ञातिके मरण पर तीन दिन और समानोदक ज्ञातिके मरण पर पक्षिणी अशौच होता है। वह पक्षिणी अशौच दिनको हो चाहे रातको, उस समयसे ले कर सूर्यास्तकाल पर्यन्त रहता है। पूर्वोक्त चतुर्वर्णके पूर्वपुरुषको जन्म नाम स्मरण पर्यन्त एक दिन अशौच होता है। उसके बाद सगोत्रके जनन वा मरणमें स्नानमात्रसे ही शुद्धि होती है।

पहले जिस समानोदकादिका उल्लेख किया गया है, उसका अर्थ यों है—सप्तमपुरुष पर्यन्त ज्ञाति सपिण्ड, दशमपुरुष पर्यन्त साकुल्य, पीछे चतुर्दशपुरुष समानोदक कहलाता है।

अविवाहिता कन्याके तीन पुरुष पर्यन्त सापिण्ड्य रहता है। अविवाहिता कन्याके त्रैपुरुषिक ज्ञातिके जनन वा मरणमें पूर्णाशौच होता है। उसके बाद साकुल्य पर्यन्त तीन दिन अशौच रहता है। ब्राह्मणादि चतुर्वर्ण यदि अपने अपने जात्युक्ताशौचकालके मध्य वह अशौच सुने, तो पूर्वोक्त दशाहादि अशौच होता है। किन्तु वह अशौचकाल बीत जाने पर यदि एक वर्षके भीतर सुननेमें आवे, तो सपिण्डज्ञातिके तीन दिन अशौच होता है। एक वर्षके बाद सुननेसे स्नानमात्रसे ही शुद्धि होती है। किन्तु महागुरुनिपातमें अर्थात् पुत्र यदि पितृमातृमरण और स्त्री स्वामिमरण एक वर्षके बाद सुने, तो एक दिन अशौच और यदि उसके बाद सुने, तो स्नानमात्रसे ही शुद्धि होती है। खण्डाशौचके बहुत समय बाद सुननेसे भी अशौच नहीं होता।

गर्भस्रावाशौच।—६ मासके भीतर गर्भस्राव होनेसे उस स्त्रीके माससमसंख्यक दिन अशौच होता है, अर्थात् एक मासका गर्भस्राव होनेसे एक दिन, दो मासका होनेसे दो दिन इसी प्रकार छः मास तक जानना चाहिये। किन्तु दैवकार्यमें द्वितीयमासावधि ब्राह्मणीके पक्षमें एक एक दिन अधिक होता है। अर्थात् द्वितीय मासमें तीन दिन, तृतीय मासमें चार दिन, चतुर्थ मासमें पांच दिन, पञ्चममासमें ६ दिन और षष्ठ मासमें ७ दिन अशौच होता है। क्षत्रियाके द्वितीय मासावधि पूर्वोक्तरूपसे दो दो दिन करके और वैश्याके तीन दिन करके और शूद्राके ६ दिन करके उस अशौचकी वृद्धि होगी। उस वर्द्धित शौचमें केवल दैव वा पैत्रकार्य करना निषिद्ध है, पर लौकिक सभी कार्य कर सकते हैं। किन्तु माससंख्यक दिनमें लौकिक वा दैविक किसी भी कार्यमें अधिकार नहीं है। सप्तम वा अष्टम मासमें गर्भस्राव होनेसे स्वजात्युक्त पूर्णाशौच तथा निर्गुण सपिण्डके एक दिन अशौच होता है। वह बालक जीवित प्रसूत हो कर यदि उसी दिन मर जाय, तो भी उसी प्रकारका अशौच होता है। द्वितीय दिनमें मरनेसे पितामाताके सिवा और किसीको अशौच नहीं होता है।

बालाद्यशौचव्यवस्था।—नवम और दशममासजात बालककी अशौचकालके मध्य मृत्यु होनेसे वह जनना-

शौच अङ्गास्पृशत्वयुक्त हो कर केवल पितामाताके रहेगा, दूसरेके नहीं। सभी वर्णोंके लिये इसमें एक-सी व्यवस्था दी गई है। ब्राह्मणके पक्षमें जात बालक यदि छः महीनेके भीतर, दन्तोद्गम न हुआ हो, मर जाय, तो पितामाता और निर्गुण सहोदरके एक दिन अशौच और सपिण्डके सद्यशौच होता है। छः मासके भीतर यदि दांत निकल आये हों, तो पितामाताके तीन दिन और सपिण्डके एक दिन अशौच होता है। छः माससे ले कर दो वर्षके भीतर यदि जातबालकको विना चूड़ाकरणके ही मृत्यु हो जाय, तो पितामाताके तीन दिन तथा सपिण्डके एक दिन और यदि चूड़ाकरण हो गया हो, तो सपिण्डोंके भी तीन दिन अशौच होगा। दो वर्षसे ले कर छः वर्ष तीन मासके मध्य मृत्यु होनेसे पित्रादि सपिण्डवर्गके तीन दिन और उसके बाद होनेसे पूर्णाशौच होता है। छः वर्ष और तीन मासके मध्य उपनीत हो कर मरनेसे सम्पूर्णाशौच होता है।

क्षत्रियजातिके जननाशौचकालके बाद ६ मासके भीतर जातबालककी मृत्यु होनेसे सद्यःशौच, उसके बाद दो वर्षके भीतर होनेसे तीन दिन, ६ वर्षके भीतर होनेसे छः दिन अशौच होता है। यदि छः वर्षके बाद उसकी मृत्यु हो, तो पूर्णाशौच होगा।

वैश्यजातिके जननाशौचकालके बाद छः मासके भीतर जातबालककी मृत्यु होनेसे सद्यःशौच, उसके बाद २ वर्षके मध्य होनेसे ५ दिन, दो वर्षके बाद छः वर्षके मध्य होनेसे पूर्णाशौच होता है।

शूद्रोंके जननाशौचके बाद ६ मासके मध्य अजातदन्त बालककी मृत्यु होनेसे पित्रादि सपिण्डवर्गके लिये तीन दिन अशौच और ६ मासके मध्य जातदन्त हो कर तथा ६ मासके बादसे ले कर २ वर्षके मध्य मरनेसे सपिण्ड-वर्गके लिये ५ दिन अशौच, दो वर्षके मध्य कृतचूड़ हो कर तथा दो वर्षके बादसे ले कर छः वर्षके मध्य मरनेसे पित्रादि सपिण्डके लिये १२ दिन अशौच होता है। ६ वर्षके मध्य विवाहित हो कर वा ६ वर्षके बाद मरनेसे सम्पूर्णशौच होता है।

सर्वजातीय स्त्र्यशौच-व्यवस्था।—जन्मकालसे ले कर दो वर्षके मध्य कन्याकी मृत्यु होनेसे पिता, माता और सपिण्डोंके सद्यःशौच, दो वर्षके बाद वाग्दान पर्यन्त एक दिन, वाग्दानके बाद विवाह पर्यन्त भर्तृकुलमें तथा पितृकुलमें तीन दिन अशौच होता है। विवाहके बाद भर्तृकुलमें पूर्णाशौच होता है, पितृकुलमें अशौच नहीं रहता। परन्तु यहां पर सहोदर-भाईके लिये विशेषता यही है, कि अजातदन्ता मरनेसे सद्यःशौच, जातदन्ता हो कर चूड़ा पर्यन्त मरनेसे एक दिन, चूड़ाके बाद विवाह पर्यन्त मरनेसे तीन दिन अशौच होता है। विवाहिता कन्या पिताके घरमें यदि सन्तान प्रसव करे, वा मरे, तो पिता माताके तीन दिन और सहोदर भ्रात्यादि बन्धुवर्गके एक दिन अशौच होता है। उस कन्याका यदि पिताके घर वा अन्यस्थलमें प्रसव वा मरण हो, तो सहोदर भ्राता और उसके पुत्रके पक्षिणी अशौच होता है। उस कन्याके श्राद्धाधिकारी यदि पितामाता हों, तो उस कन्याकी कहीं भी मृत्यु क्यों न हो, पितामाताके तीन दिन अशौच होता है।

असपिण्ड शौच-व्यवस्था।—गायत्रीदाता और मन्त्र-दाता, गुरु तथा मातामहके मरने पर तीन दिन अशौच होता है। भगिनी, मातुलानी, मातुल, पितृष्वसा, मातृ-ष्वसा, गुरुपत्नी, मातामही, मातृष्वस्रीय, पितृष्वस्रीय, पितामही, भगिनीपुत्र, पिताके मातुलपुत्र, पितामह-के भगिनीपुत्र, मातुलपुत्र, भागिनेय और दौहित्र इन सबकी मृत्यु होनेसे पक्षिणी अशौच होता है। श्वश्रू और श्वशुरके भिन्न ग्राममें मरनेसे तीन दिन अशौच रहेगा। आचार्य-पत्नी, आचार्यपुत्र, अध्यापक, माताके वैमात्रेय भाई, श्यालक, सहाध्यायी, शिष्य, मातामहीके भगिनीपुत्र, मातामहके भगिनीपुत्र, मातामहीके भ्रातृपुत्र और एक ग्रामवासी सगोत्रज व्यक्तिके मरनेसे एक दिन अशौच होता है। मातृष्वसा, पितृष्वसा, मातुल और भागिनेय, ये सब एक घरमें रह कर यदि मरें, तो तीन दिन अशौच माना जाता है। विवाहिता कन्याके पितृमरणमें तीन दिन और अशौच सम्बन्धि भिन्न कुलज अर्थात् मृता मातुलादिको दहन या वहन करनेसे तीन दिन अशौच होता है।

मृत्युविशेषशौच व्यवस्था—अवैध आत्मघातीका अशौच नहीं होता। शास्त्रीय अनशनादि द्वारा मृत्यु होनेसे

तथा जलमें मज्जन, उच्चस्थानसे पतन, शृङ्गी, दंष्ट्री और नखी द्वारा हत, सर्पदंशन, विषप्रयोग और चण्डाल वा चौर द्वारा हत तथा वज्राहत और अग्निमें पतित हो कर मरनेसे तीन दिन अशौच होता है। पक्षी, मत्स्य, मृग, व्याध, दंष्ट्री, शृङ्गी और नखी द्वारा हत होनेसे, उच्च-स्थानसे गिरनेसे, अनशन और प्रायोपवेशनसे, वज्र, अग्नि, विष, वन्धन और जलप्रवेशसे, क्षतव्यतिरिक्त शस्त्राघातसे यदि किसीकी तीन दिनके मध्य मृत्यु हो जाय, तो तीन दिन और यदि छः दिनके वाद हो, तो सम्पूर्णाशौच होता है। यदि किसी प्रकार क्षत द्वारा ७ दिनके मध्य मृत्यु हो, तो तीन दिन अशौच और यदि ७ दिनके वाद हो, तो पूर्णाशौच होता है। अकृतप्राय-श्चित्त महापातकी और अतिपातकीके मरनेसे अशौच नहीं होता।

दत्तकपुत्र सम्बन्धीय अशौचव्यवस्था—सपिण्डज्ञाति यदि दत्तकपुत्र हो और उसकी मृत्यु हो जाय, तो दत्तकग्रहण-कारी पित्रादि सपिण्डोंके पूर्णाशौच तथा सपिण्डके जनन-मरणमें भी उस दत्तकके पूर्णाशौच होता है। एत-द्भिन्न दत्तकके अर्थात् सपिण्ड ज्ञाति भिन्न दत्तकके मरने-से पित्रादि सपिण्डके तीन दिन और पित्रादि सपिण्डके भी मरनेसे उसे उतना ही दिन अशौच होता है। किन्तु दत्तकके पुत्र आदिके पूर्णाशौच होता है। दत्तककी स्त्रीके अशौच-सम्बन्धमें मतभेद दिखाई देता है। किसी मतसे दत्तककी स्त्रीका पूर्णाशौच होगा, फिर कोई कहते हैं, कि दत्तककी तरह उसका भी तीन दिन अशौच होता है।

अशौच-संकरकी व्यवस्था—तुल्य मरणाशौचके मध्य यदि अपर तुल्य मरणाशौच हो, तो पूर्वाशौचकालमें ही ज्ञातियोंकी शुद्धि होती है। किन्तु यदि पूर्वाशौचके शेष दिनमें अपर पूर्ण मरणाशौच हो, तो पूर्वाशौच फिर दो दिन बढ़ जाता है तथा उसे शेष दिनके सवेरे सूर्यो-दयसे ले कर दूसरे दिनके सूर्योदय तकके मध्य यदि पुनः पूर्ण समानाशौच हो जाय, तो पूर्वाशौच तीन दिन और बढ़ जाता है। उन वर्द्धित दो वा तीन दिनोंके मध्य अपर ज्ञाति, पिता, माता अथवा भर्त्ताकी मृत्यु होनेसे उस वर्द्धित पूर्णाशौचकाल द्वारा शुद्धि होती है, अब उसकी वृद्धि नहीं होती। परन्तु उस अशौचके शेष दिनमें वा पूर्वोक्त प्रभातमें यदि पिता, माता वा भर्त्ताकी मृत्यु हो जाय, तो तभीसे पूर्णाशौच होता है, दो वा तीन दिनकी वृद्धि नहीं होती। ज्ञाति-मरणाशौचके पूर्वार्द्धमें पिता, माता वा भर्त्ताकी मृत्यु होनेसे पूर्वाशौचकाल द्वारा ही शुद्धि होती है। अपरार्द्धमें मरनेसे पूर्णाशौच होता है।

स्वपुत्र-जननाशौचके शेष दिनमें वा पूर्वोक्त प्रभातमें ज्ञातिके जन्म लेनेसे तथा पिता माता वा भर्त्ताके मरणा-शौचके शेष दिनमें वा वह प्रभातमें ज्ञातिका मरण होनेसे पहलेकी तरह दो वा तीन दिन अशौच नहीं बढ़ता। किन्तु स्वपुत्र-जननाशौचके शेष दिनमें वा तत्प्रभातमें स्वपुत्रके जन्म लेनेसे पिताके तीन दिन अशौच और बढ़ जाता है तथा पितृमरणाशौचके शेष दिनमें वा पूर्वोक्त-प्रभातमें मातृमरण होनेसे अथवा मातृमरणाशौचके शेष दिनमें वा तत्प्रभातमें पितृमरण होनेसे पहलेकी तरह दो वा तीन दिन अशौच बढ़ जाता है।

जननाशौचके मध्य यदि अपर जननाशौच हो, और पूर्वजात वालक यदि अशौचकालके मध्य ही मर जाय, तो उस मृत वालकके पितामाताके सम्पूर्णशौच और सपिण्डियोंके सद्यःशौच होता है तथा उस सद्यःशौच द्वारा परजात वालकका अशौच भी निवृत्त होता है। केवल परजातके मातापिताके पूर्णाशौच रहता है और इसी प्रकार यदि परजात वालककी मृत्यु हो, तो वैसा नहीं होता। क्योंकि, अशौच पूर्वजात अशौचकाल तक रहता है। अतएव वहां पर सवोंको पूर्वजातका अशौच भोगना पड़ता है। यहां पर विशेषता इतनी ही है, कि वह परजात वालक यदि पूर्वजाताशौचके पूर्वार्द्धमें जन्म ले कर मर जाय, तो उसके मातापिताके उस पूर्वाशौचकाल तक अङ्गास्पृश्यत्वयुक्त अशौच रहता है। तुल्यकालव्यापक—सामान्य जननाशौच अथवा मरणाशौचके मिलनेसे मरणाशौचकाल द्वारा ही शुद्धि होती है।

एक दिनमें यदि दो ज्ञातिकी मृत्यु हो, तो सर्वगोत्र-के अशौचकालावधि अङ्गास्पृश्यत्व रहता है। सुतरां उस अशौचके शेष दिनमें वा तत्प्रभातमें यदि किसी अन्य ज्ञातिकी मृत्यु घटे, तो पूर्वोक्त दो वा तीन दिनकी वृद्धि नहीं होती, केवल महागुरुनिपातमें वृद्धि होती

है। दोनों प्रकारके अशौच मिलनेसे गुरु अशौच द्वारा ही शुद्धि होती है। विदेशमृत ज्ञातिके त्रिरात्राशौचकी अपेक्षा विदेशमृत मातापिता और भर्त्ताके त्रिरात्राशौच होता है। अतएव यहां पर गुरु अशौच ही बलवान् है। तुल्य त्रिरात्राशौच एक साथ होनेसे पूर्वाशौच द्वारा और जनन वा मरण त्रिरात्राशौच एक साथ होनेसे मरणाशौच द्वारा शुद्धि होती है। (शुद्धितत्त्व)

यही सब अशौच प्रेताशौच है। जब तक यह अशौच दूर नहीं होता, तब तक शरीरकी शुद्धि नहीं होती। शरीरको शुद्धि होनेसे ही दैव वा पैत्र कर्ममें अधिकार होता है। अशौचके रहनेसे शरीर अपवित्र रहता है, इसीसे अशौचयुक्त व्यक्तिके साथ एकत्र उपवेशन वा भोजन आदि निन्दनीय बतलाया गया है।

प्रेतास्थि (सं० क्ली०) मृतव्यक्तिकी अस्थि, मुर्देकी हड्डी।

प्रेतास्थिधारी (सं० पु०) १ मुर्दोंकी हड्डियोंकी माला पहननेवाला। २ रुद्रका एक नाम।

प्रेति (सं० पु०) प्रकर्षेण इतिर्गमनं देहोऽस्य। १ अन्न, अनाज। २ मरण, मरना। ३ प्रगमन, आगे बढ़ना।

प्रेतिक (सं० पु०) मृतव्यक्ति, प्रेत।

प्रेतिनी (हिं० स्त्री०) प्रेतकी स्त्री, पिशाचिनी।

प्रेतिवत् (सं० स्त्री०) प्रेति देखो।

प्रेती (हिं० पु०) प्रेतपूजक, प्रेतकी उपासना करनेवाला।

प्रेतीवाल (हिं० पु०) वह मनुष्य जो कभी खास अपने लिये और कभी अपने मालिकके लिये काम करे।

प्रेतीपणि (सं० स्त्री०) १ प्रासगमन। २ अग्निका एक नाम।

प्रेतेश (सं० पु०) प्रेतानामीशः ६-तत्। यमराज।

प्रेतोन्माद (सं० पु०) एक प्रकारका उन्माद या पागलपन। इसके विषयमें ऐसा लोगोंका ख्याल है, कि यह प्रेतोंके कोपसे होता है। इसमें रोगीका शरीर कांपता है और वह कुछ भी खाता पीता नहीं है। लम्बी लम्बी सांसें आती हैं। वह घरसे निकल कर भागनेकी चेष्टा करता है। लोगोंको गालियां देता है और बहुत चिल्लाता है।

प्रेत्य (सं० पु०) प्र-इ-ल्यप। लोकान्तर, परलोक।

प्रेत्यजाति (सं० स्त्री०) प्रेत्य मृत्वा जातिर्जन्म। पुनर्जन्म।

प्रेतभाज् (सं० त्रि०) मृत्युके बाद परलोकमें फलभागी।

प्रेत्यभाव (सं० पु०) प्रेत्य मृत्वा भावः। मरणोत्तर पुनर्जन्म। एक बार मृत्यु, फिर जन्म, इसीका नाम प्रेत्यभाव है। दर्शनशास्त्रमें इसका विषय बहुत बढ़ा चढ़ा कर लिखा है, पर विस्तार हो जानेके भयसे यहां पर उसका संक्षिप्त विवरण दिया जाता है। हम लोग जितने प्रकारके दुःखभोग करते हैं उनमेंसे जन्म मृत्यु ही प्रधान है। इस जन्ममृत्युके हाथसे पिण्ड छुटे, उसीके लिये मोक्षशास्त्रका उपदेश है। महर्षि गौतमने प्रेत्यभावका लक्षण इस प्रकार निर्दिष्ट किया है। प्रेत्यभाव शब्दसे जन्म हो कर मरण और मरण हो कर जन्म, इस प्रकार जीवका धारावाहिक जन्म-मरण समझा जाता है। जब तक जीवात्माकी मुक्ति नहीं होती, तब तक जीवात्माका धारावाहिक जन्म और मरण हुआ करता है। मुक्ति होनेसे जन्म और मरण कुछ भी नहीं होता। जन्म शब्दसे शरीरका आत्माके साथ प्रथम सम्बन्ध समझा जाता है। आत्माके साथ जब शरीरका प्रथम सम्बन्ध होता है, उस समय देवदत्त पैदा करता है, ऐसा व्यवहार हुआ करता है। मरण शब्दसे भी जिस सम्बन्धके होनेसे आत्मा शरीरी है, ऐसा व्यवहार हुआ है उस सम्बन्धका नाशक समझा जाता है। यही जन्म और मृत्यु जीवके अशेष दुःखभोगका मूलकारण है, इस मूल कारणका जब तक नाश नहीं होता, तब तक अशेष दुःखसे बचना बिलकुल असम्भव है। जब तक इसका मूल नहीं काटा जायगा, तब तक जन्म और मरण धारावाहिकरूपमें होता ही रहेगा, एक बार जन्म और फिर जन्मके बाद मृत्यु अवश्य होगी। जब जीवके आत्मतत्त्वज्ञानका सञ्चार होगा, तब यह जन्ममरण-धारा समूल नष्ट हो जायेगी। परन्तु विना आत्मतत्त्वज्ञानके जन्ममृत्यु अवश्यम्भावी है।

मरणके बाद जन्म, जन्मके बाद मरण, ऐसे जन्ममरणप्रवाहका नाम प्रेत्यभाव है। प्रेत्यभाव और जन्मान्तर दोनोंका एक ही अर्थ है। परन्तु शास्त्रमें कहा गया है, कि आत्मा अजर और अमर है; आत्माके जरा मृत्यु वा

जन्म कुछ भी नहीं है, तब जो यह जन्ममृत्यु होती है, सो किसकी? मनुष्य मरा, शरीर रह गया, अशरीर आत्मा रही वा चली गई, कहां गई? कहां रही? यह ले कर विवाद करना निष्प्रयोजन है। एकमात्र यही देखना चाहिये, कि शरीर-परिच्युत आत्मा आकाशकी तरह सुखदुःख-वर्जित हुई? या इहलोककी तरह अथवा इहलोककी अपेक्षा अधिकतर भोगभागी हुई? भोगभागी हुई, ऐसा कह ही नहीं सकते। चाहे इसमें तर्क भी क्यों नहीं लड़ाया जाय, तो भी यह प्रमाणित नहीं हो सकता। कारण, विना शरीरके सुखदुःखका भोग हो सकता है, यह विलकुल असम्भव है। शरीरोत्पत्ति नहीं होती अथच आत्माके अनन्त सुख और अनन्त उन्नति होती है, इसका कोई भी प्रमाण नहीं है। आत्मा अजर और अमर है, यदि इसे विश्वास करें, तो अमरताके अनुरूप सुखदुःख-भोगभागिता पर भी जरूर विश्वास करना पड़ेगा। रूप देखना चाहता हूं, अथच चक्षु देखना नहीं चाहता, ऐसा हो ही नहीं सकता।

सांख्यकारिकामें लिखा है—

"संसरति निरुपभोगं भावैरधिवासितं लिङ्गं॥"

भोगस्थान यदि स्थूलशरीर न हो, तो सूक्ष्मशरीरमें भी परिस्फुट भोग सम्भव नहीं। अतएव आत्मा लिङ्ग-शरीरविशिष्ट रह कर पुनः पुनः स्थूलशरीरको ग्रहण करती और पुनः पुनः उसे छोड़ देती है। यद्यपि सुख-दुःख आत्माके नहीं है, तो भी अमुक आत्माके सुख-दुःख-विहीन होनेकी सम्भावना नहीं। (किन्तु केवल नैयायिकोंके मतसे सुखदुःख जीवात्माके हैं।) इस कारण यह अवश्य स्वीकार करना पड़ेगा, कि आत्माके कभी तिर्यक्-शरीर, कभी मनुष्यशरीर, कभी देवशरीर और कभी पशु-शरीर हुआ करता है।

मनुष्य इस शरीरमें जिस प्रकारके कर्म और ज्ञानमें निमग्न रहता है, मरने पर तदनुसार वह देहधारण करता है। कर्म हीसे स्थावर शरीर, कर्म हीसे पश्वादि शरीर और कर्म हीसे देव-शरीरको प्राप्त होता है। इस विषयमें जन्मान्तर अस्वीकारवादी आस्तिक इन दोनों सम्प्रदायमें विशेष मतभेद देखा जाता है।

आत्मा अजर और अमर है। सुतरां इस आत्माने पहले इसी प्रकारका एक शरीर पाया था। यह यदि सत्य हो, तो उसका स्मरण क्यों नहीं होता? जब जन्मान्तरीय कोई भी विषय स्मरणमें नहीं आता, तब किस प्रकार विश्वास होगा, कि मैं था और मेरा पूर्वजन्म था? इसका उत्तर यही है, कि शैशवकालकी घटना जब युवावस्थामें याद नहीं आती, शैशवकी वात तो दूर रहे, कलकी कुल बातें आज याद नहीं आती, तब जन्मान्तरकी वात याद आयेगी, यह कहां तक सम्भव है। इस प्रकार स्मरण नहीं होनेके कई कारण दिखाई देते हैं। अनेक दिन उस विषय-को ख्याल नहीं करनेसे, भय, त्रास और यन्त्रणादि द्वारा अभिभूत होनेसे तथा रोगविशेषके आक्रमणसे मनुष्यके पूर्वाभ्यस्त ज्ञानका विलोप होते देखा जाता है। मनुष्य जब इसी शरीरमें सामान्य कारणोंसे पूर्वानुभूत विस्मृत होते हैं और अति अल्प यातनासे अभिभूत हो उपार्जित ज्ञानराशिको खो बैठते हैं, तब जो वह उत्कट मरण-यन्त्रणा, पीछे उस शरीरका परित्याग और तब एक नूतन शरीर-ग्रहण इत्यादि कारणोंसे पूर्वजन्मवृत्तान्त विस्मृत होगा, इसमें आश्चर्य ही क्या!

जीव इस देहमें यदि मरणकाल पर्यन्त कर्मज्ञानादिको समानरूपमें अटल और अव्याहत रख सकें, तो सभी कर्म और ज्ञान जन्मान्तरमें भी अनुवृत्त होते हैं, लोप नहीं होता। वैसा जीव जातिस्मर नामसे प्रसिद्ध है।

जन्मान्तरवादियोंमेंसे कोई कोई कहते हैं, कि मनुष्य मर कर अश्व हो सकता है, यह वात विश्वसनीय नहीं है। अश्वसे अश्व ही होता है, मनुष्य नहीं होता। मनुष्य हमेशा मनुष्य ही रहता है। इसके उत्तरमें यही कहना है, कि शरीरोत्पत्तिका वीज आत्मा नहीं है। शरीरोत्पत्तिका वीज कर्माशय है अर्थात् अनुष्ठित ज्ञान और कर्मका पुञ्जी-भूत संस्कार है। इस कारण मानवदेह पा कर जीव यदि निरन्तर अश्वध्यान करे अथवा अश्वशरीर पानेका अन्य-विध कारणकूट संग्रह करे, तो भावी जन्ममें उसके अश्व-शरीर क्यों नहीं होगा? इस पर कोई कोई इस प्रकार आपत्ति करते हैं,—मान लिया पूर्वजन्ममें वह मनुष्य था, कर्मवलसे इस जन्ममें अश्व हुआ है। परन्तु उसका पूर्वा-भ्यस्त मनुष्योचित ज्ञान कहां गया और अश्वशरीरोचित ज्ञान ही कहांसे आया! इसका उत्तर यह है,—

"कारणानुविधायित्वात् कार्याणां तत्स्वभावता।
नानायोन्याकृतीः सत्त्वो धत्तेऽतो द्रुतलोहवत् ॥"
(वेदान्तभा०)

जो जिससे उत्पन्न होता है वह उसीका स्वभाव ग्रहण करता है। इसी नियमके अनुगुणसे नाना योनिसे नाना आकारका जीव उत्पन्न होता है। गलाया हुआ लोहा सांचेका आकार धारण करता है, दूसरेका नहीं। जीव जब जिस योनिमें उत्पन्न होता है, तब उसी योनिके अनुरूप आकार वा स्वभावको प्राप्त होता है। प्राक्तन संस्कार अधिक परिमाणमें अभिभूत हुआ करता है। इसी कारण मानवीय ज्ञान लुप्त रहता है और घोड़ेके आकार तथा स्वभाव व्यतीत मानवका आकार और स्वभाव नहीं होता।

संसारी जीव स्वोपार्जित ज्ञान और कर्मके अनुसार कभी उत्पन्न होता है और कभी अवनत, कभी उत्कृष्ट देह पाता है और कभी निकृष्ट। जो कहते हैं, कि जन्मान्तर नहीं है, उनके लिये कोई सत्यपूर्ण सद्युक्ति नहीं है। वरन् जन्मान्तरके अस्तित्वके पक्षमें सद्युक्तियां देखनेमें आती हैं।

१। प्राणिमात्रके ही एक नित्य और नियमित अभिनिवेश है अर्थात् स्वाभाविक प्रार्थना है। जीवमात्र ही मरना नहीं चाहता, मरणके प्रति उनका विशेष विद्वेष देखा जाता है। जितने प्रकारके भय वा त्रास हैं, सर्वापेक्षा मरणत्रास अधिक बलवान् और अनिवार्य है। मरणत्रास सद्योजात शिशुमें भी देखा जाता है। जो कभी भी मरण यातनाका अनुभव नहीं करता, वैसे व्यक्तिके अन्तरमें भी मारक वस्तु देखनेसे त्रास उत्पन्न होता है। मरणमें यदि क्लेश रहे और उसका यदि कभी भी अनुभव होवे, तो उसी हालतमें मारक वस्तु देखनेसे त्रासकम्पादि उत्पन्न हो सकता है अन्यथा नहीं। सुतरां यह विश्वास करना उचित है, कि जन्मान्तरीय मरणदुःख भोग वा अनुभवका संस्कार उसकी अन्तरिन्द्रियमें छिपा था, आज उसने अज्ञात तौरसे उद्बुद्ध हो कर उसे भीत और कम्पित कर डाला है। विशेषतः सद्योजात बालकके मरणत्रासके साथ इहजन्मका सम्बन्ध नहीं देखा जाता। इससे भी जन्मान्तरका होना अनुमान किया जा सकता है। इस सम्बन्धमें त्रिकालदर्शी सभी ऋषि अनुभव करते हैं और कहते भी हैं, कि जीवके जीवस्वभावके अन्तर्गत मरणत्रास ही पूर्वजन्म रहनेका चिह्न है।

२। इच्छा एक आत्मगुण वा आत्मलग्न शक्तिविशेष है। थोड़ा गौर कर देखो, किसी प्रकार इसका उदय होता है। इच्छाका जनक सौन्दर्यज्ञान है। अच्छी तरह अनुभव नहीं होनेसे तथा यह मेरा अनुकूल वा उपकारक है, ऐसा ज्ञान नहीं होनेसे उस विषयमें किसी हालतसे इच्छाका उद्रेक नहीं होगा। इच्छाकी तरह भय, त्रास, प्रवृत्ति आदि समस्त अन्तःप्रवृत्तिके प्रति यही नियम चिरप्रतिष्ठित है। अतएव सद्यःप्रसूत शिशुकी इच्छा, प्रवृत्ति और त्रास आदिके साथ जब इहजन्मका वैसा कोई सम्बन्ध नहीं देखा जाता है, तब यह अवश्य कह सकते हैं, कि उन सबके साथ पूर्वजन्मका सम्बन्ध है। पूर्वजन्मार्जित वे सब संस्कार उसे उन सब विषयोंमें रुचि, इच्छा और प्रवृत्ति आदि उत्पन्न कर चरितार्थ होते हैं। अतएव सद्योजात शिशुकी स्तन्यपान प्रवृत्ति भी जन्मान्तर रहनेका दूसरा चिह्न है।

३। सौ वर्षका वृद्ध भी शरीरनिरपेक्षज्ञानसे अपना वृद्धत्व अनुभव नहीं करता। वह जब अपने शरीर और इन्द्रियके प्रति लक्ष्य करता है, तब ही वह समझता है, कि मैं वृद्ध हो गया हूं। यह नियम बालकमें भी विद्यमान है। आत्माके अजर अमर होनेसे ही ऐसी घटना हुआ करती है। आत्मा वृद्ध नहीं होती और न मरती ही है, तदाश्रित शरीर ही वृद्ध होता और मरता है। सुतरां आत्माके अमरत्व और देहके परिवर्त्तन द्वारा भी जन्मान्तरका रहना अनुमित होता है।

४। विद्याबुद्धि सर्वोंको समान नहीं होना भी जन्मान्तर रहनेका अन्यतम चिह्न है। ऐसे बहुतसे मनुष्य हैं जो थोड़ी उमरमें ही वेदवेदाङ्गपारग हो जाते हैं। फिर कुछ ऐसे भी हैं जो जीवन भर खर्च करके भी उसका कुछ भी हृदयङ्गम नहीं कर सकते।

५। आग्रह अर्थात् हठ। इसका दूसरा नाम प्रवृत्ति निर्बन्ध है। यह आग्रह भी जन्मान्तर साबित करनेका अनुमापक है। एक एक विषयमें एक एक मनुष्यका ऐसा एक अनिवार्य हठ रहता है, कि डंडेसे

मारने पर भी वह उससे निवृत्त नहीं होता। ऐसा आग्रह वा हठ पूर्वजन्मका संस्कार वा अभ्यास छोड़ कर और कुछ भी नहीं है।

६। जीवविशेषका स्वभाव और कर्मविशेष पूर्व-जन्मकी अवस्थिति साबित करता है। सद्यःप्रसूत शाखा-मृगकी शाखाका आक्रमण और सद्यःप्रसूत गण्डार-शिशु-का पलायन-वृत्तान्त अच्छी तरह जाननेसे मालूम पड़ेगा पूर्वजन्म है, इसमें कुछ सन्देह नहीं। इत्यादि।

जो कहते हैं, कि पूर्वजन्म नहीं है, उनका मत नितान्त अश्रद्धेय और युक्तिविगर्हित है।

जन्म, मरण और जीवन—आत्मा जब अजर अमर है, तब मरता कौन है? इस प्रश्नकी मीमांसा करनेमें एक साथ जन्म, मरण और जीवन तीनोंका ही वर्णन और मीमांसा आ जाती है। ऋषिसावकका कहना है, कि 'नायं हन्ति न हन्यते' आत्मा न किसीको मारती है और न स्वयं मरती ही है। कारण, मरण नामक कोई स्वतन्त्र पदार्थ नहीं है। जो घटना मरण कहलाती है उसके प्रति लक्ष्य करनेसे, सूक्ष्मातुसूक्ष्मरूप विवेकबुद्धिको परिचालना करनेसे समझमें आ जायगा, कि कौन मरता है। मरण क्या है, पहले यही जानना आवश्यक है। कुछ घास, लकड़ी और रस्सी ले कर एक अपयवी (गृहादि) बनाया। जल, वायु और मृत्तिका आहारण करके एक दूसरा अवयवी (घटादि) प्रस्तुत किया। क्षिति, जल और बीज एक साथ मिल गया, उससे अंकुर निकला, उससे शाखा-पल्लवादि उत्पन्न हुए। अब वह कहने लगा, कि वृक्ष उत्पन्न हुआ है। कुछ दिन बाद उन सबोंका वह पूर्व अवयव विश्लिष्ट हुआ अथवा यों कहिये, कि उन सब अवयवोंका संयोग विध्वस्त हुआ। अब उसने कहा, कि गृह भग्न हो गया, घट विध्वस्त हुआ और वृक्ष मर गया है। सोच कर देखो, किस प्रकार घटनाके ऊपर भग्न, ध्वस्त और मरण शब्दका व्यवहार हुआ है। अवयवका शैथिल्य, विकार अथवा संयोग ध्वंस इस अन्यतमके ऊपर ही मरणादि शब्द प्रयुक्त हुए थे। उसे निर्जीव पदार्थसे सजीव पदार्थमें उठा कर लानेसे समझमें आयेगा, कि जीवन्त पदार्थका मरण कौन है? जन्म मरण और कुछ भी नहीं है, अवयवका अपूर्व संयोगभाव जन्म और उसका वियोगभाव मरण है। 'मृत्युरत्यन्तविस्मृतिः' मरण और आत्यन्तिक विस्मरण दोनों एक ही बात है। जिस कारण कूटने जीवको देहपिञ्जरमें आवद्ध रखा था, उसी कारण कूट वा संयोगविशेषके विनष्ट होनेसे अत्यन्त विस्मरण वा महाविस्मरण नामक मरण होता है। मरण होनेसे देहादिमें अन्य प्रकारका विकार उपस्थित होता है। अतएव सभी अवयवोंके अपूर्व संयोगका नाम जन्म और वियोग विशेषका नाम मरण है। इसीसे सांख्याचार्यने कहा है—

"अपूर्वदेहेन्द्रियादिसंघातविशेषेण संयोगश्च वियोगश्च।"

(सांख्य)

इससे मालूम होता है, कि सावयव वस्तुका ही मरण होता है, निरवयव वस्तुका नहीं। आत्मा निरवयव है, इसीसे आत्माका मरण नहीं है। नितान्त सूक्ष्म और निरवयव इन्द्रियोंकी भी मृत्यु नहीं है। आत्मा नहीं मरती और न इन्द्रिय ही मरती है, यह सिद्धान्त यदि सत्य हो, तो अमुक मरा है, मैं मरूंगा, मैं मरा, ऐसा न कह कर देह मरी है, देह मरेगी ऐसा ही कहना उचित है, पर ऐसा जो कोई भी नहीं कहता है, उसका कारण क्या? कारण है। मनुष्य इस दृश्यमान संघातका अर्थात् देह, इन्द्रिय, प्राण, मन इनके सम्मिलन भावका विनाश देख कर ही 'मरण' शब्दका प्रयोग करते हैं। यथार्थमें प्राण संयोग-का ध्वंस ही उक्त शब्दका प्रधान लक्ष्य है। प्राणव्यापारके निवृत्त नहीं होनेसे दूसरेके सम्बन्ध-की निवृत्ति नहीं होती। 'जीवन' 'मरण' इन दो शब्द-के धातव अर्थोंका अन्वेषण करने पर भी कथित अर्थ प्रतीत होता है। जीव धातुसे जीवन और मृ-धातुसे मरण, जीव धातुका अर्थ प्राणधारण और मृ-धातुका अर्थ प्राणपरित्याग है। सुतरां यह मालूम होता है, कि प्राण जब तक देहेन्द्रिय संघातमें मिलित रहते हैं, तभी तक उसका जीवन है, विच्छेद होनेसे ही मरण होता है। अतः यह कहना होगा, कि मरणसे आत्माका विनाश नहीं होता, देहके साथ उसका केवल विच्छेद होता है। मैं मरा और अमुक मरा, इन सब शब्दोंका अर्थ औपचारिक है। आत्माका अध्यास रहनेसे ही देहादि-संघात अहं-

प्रत्ययगम्य होता है और इसी कारण उस प्रकारके औपचारिकका प्रयोग हुआ करता है। किन्तु प्राणसंयोगका ध्वंस ही यथार्थ मरण है।

तृणकाष्ठादिको संहत करके उसकी जो दृढ़ता और व्यवहारोपयोगिता सम्पादन की जाती है, उसका नाम गृहका जीवन है। उस दृढ़ता और व्यवहारोपयोगिताका जो अवस्थानकाल है, वह उसकी आयु है, जीवदेहका जीवन वा आयु उसीके अनुरूप है। श्वास प्रश्वास जिसका कार्य है, वह प्राण कहलाता है। यथार्थमें प्राण कौन-सा पदार्थ है, उसका निर्णय करनेमें दार्शनिकोंमें मतभेद पैदा हो गया है। कोई कहते हैं, कि वह वाह्यवायु है, कोई कहते हैं, कि वह इन्द्रियसमष्टिका व्यापारविशेष है और कोई इसे एक प्रकारका स्वतन्त्र पदार्थ बतलाते हैं। पहले मतका सिद्धान्त इस प्रकार है—शरीरमें जो तेज, उष्मा, जल वा आकाश है, निश्वास प्रश्वास उन तीनोंका सांयोगिक कार्य है। दैहिक उष्मा वा ताप रसरक्तादिरूप जलको उत्तेजित करता है। दोनोंकी संघर्षजनित क्रियाविशेष उदरकन्दरस्थ आकाशमें जा कर परिपुष्ट होती है। वह परिपुष्ट संयोगिक क्रिया फुसफुस् नामक संकोचविकाशशील यन्त्रको संकुचित और विकशित करती है। विकाश-क्रियासे वाह्यवायुका परिग्रह वा पूरण होता है, पीछे सङ्कोचक्रियासे उसका त्याग वा वहिर्गति उत्पन्न होती है। प्राणयन्त्रकी ऐसी क्रियासे भक्ष्यद्रव्य परिपक्व होता और रसरक्तादि सारे शरीरमें प्रेरित होता है। देहकी अवनति, वृद्धि, जन्म और मरणादि जो कुछ घटना हैं वे सभी उसी प्राणयन्त्रके अधीन हैं। इन्द्रियकी कार्यशक्ति प्राण द्वारा उत्पन्न और संरक्षित होती है। प्राण जब तक सतेज रहेंगे, तभी तक इन्द्रियां कार्य कर सकेंगी। प्राण ही उत्क्रान्तिका कारण है अर्थात् मनुष्य जब मरता है तब प्राण इन्द्रियको ले कर उत्क्रान्त अर्थात् शरीरसे निकल जाते हैं। विशेष विवरण प्राण शब्दमें देखो।

सूक्ष्म शरीर और परलोकगति—जो सर्वव्यापी वा पूर्ण है उसकी फिर गति ही क्या? पूर्णकी गति अर्थात् यातायात करनेका स्थान ही कहां है? जिसे यातायात करनेका स्थान रहता है, वह पूर्ण नहीं है। जो वस्तु पूर्णस्वभावयुक्त है, उसका गमनागमन असम्भव है। परिच्छिन्न वा खण्ड पदार्थका ही यातायात है, परिपूर्णपदार्थका नहीं। आत्मा पूर्णस्वभावयुक्त है, इस कारण गत्यागति नहीं है।

परन्तु यातायात जो करता है सो कौन? अथवा जन्ममरण-प्रवाहका ही कौन भोग करता है? स्थूलशरीर तो पड़ा रहता है, आत्मा न जाती है और न आती है, तब जाता है कौन? अथवा आता ही है कौन? इस प्रश्नके उत्तरमें सभी सांख्यवेदान्तादिने एक स्वरसे कहा है, दृश्यमान स्थूलके अभ्यन्तर सूक्ष्मशरीर है, वही सूक्ष्मशरीर वार वार जाता आता है। जब तक मुक्ति नहीं होती वा प्राकृतिक प्रलय उपस्थित होता, तब तक यह रहता है और इहलोकमें गमनागमन करता है।

"उपात्तमुपात्तं षाट्कौषिकं शरीरं हायहायञ्चोपादत्ते।"
(तत्त्वकौमुदी)

जीव जो वार वार षाट्कौषिक शरीरको ग्रहण और वार वार त्याग करता है, वही जीवका यातायात और इह-परलोक-सञ्चरण है। दृश्यमान् स्थूलशरीरका शास्त्रमें षाट्कौषिकशरीर नाम रखा है। त्वक्, रक्त, मांस, स्नायु, अस्थि और मज्जा ये छः कोष हैं अर्थात् आत्माके आवरण हैं, इसीसे षट्कोषात्मक स्थूल देहको षाट्कौषिक कहा गया है। यह षाट्कौषिक शरीर शुक्रशोणितके परिणामसे उत्पन्न होता है, परन्तु सूक्ष्मशरीर उस प्रकार नहीं होता। सूक्ष्म शरीर अन्तःकरण अर्थात् बुद्धीन्द्रियनिचयकी समष्टि वा तद्द्वारा रचित है। यह बहुत सूक्ष्म है, इसीसे अच्छेद्य, अभेद्य, अदाह्य, अक्लेद्य और अदृश्य है। जिसके मूर्त्ति नहीं है, अवयव नहीं है, केवल ज्ञानमय पदार्थ है, उसे कौन देख सकता है, कौन उसे छेद, भेद, वा दाह ही कर सकता है? सांख्यके मतसे आदि सृष्टिकालमें प्रकृतिसे प्रत्येक आत्माके निमित्त एक एक सूक्ष्म शरीर उत्पन्न हुआ था। प्रकृतिकी पुनः साम्यावस्था वा जीवकी मुक्ति नहीं होने तक वह सूक्ष्म शरीर रहेगा और वार वार षाट्कौषिक शरीर उत्पन्न होगा।

सूक्ष्मशरीरका दूसरा नाम लिङ्गशरीर है। किसीके मतसे इसके सत्तरह अवयव, किसीके मतसे सोलह और किसीके मतसे पन्द्रह हैं। सभीके मतसे यह सूक्ष्मशरीर

प्राण, मन, बुद्धि और इन्द्रिय द्वारा रचित है। वेदान्त चैतन्याधिष्ठित सूक्ष्मशरीरको ही जीव कहते हैं।

दृश्यमान देहके अभ्यन्तर एक सूक्ष्म देह है, उसका प्रमाण क्या? इस पर सांख्य कहते हैं, कि योगियोंका अनुभव और योगियोंका अद्भुत कार्यकलाप ही उसका प्रमाण है। कार्यकलाप किस प्रकार सूक्ष्मशरीरका अस्तित्व-साधक है, वह योगी हुए विना समझमें नहीं आ सकता। योगी योगसाधन करके सूक्ष्म शरीरको इस प्रकार उत्पन्न कर सकते है, कि मांसपिण्ड अस्थि-पिञ्जर दृश्य शरीरसे वहिर्गत हो कर वे स्वेच्छानुसार विचरण और परशरीरमें प्रवेश करते हैं। इस समय केवल युक्ति द्वारा सूक्ष्म शरीरसद्भाव वोधगम्य किया जाता है। शास्त्रमें इसकी युक्तिका विषय इस प्रकार लिखा है—धर्माधर्म, ज्ञानाज्ञान, वैराग्यावैराग्य, ऐश्वर्या-नैश्वर्य और लज्जा भय आदि जो सव गुण मानवीय आत्माको वस्त्रकुसुम (वस्त्रमें पुष्पका स्पर्श होनेसे जिस प्रकार वस्त्र सुवासित होता है, उसी प्रकार)-की तरह निरन्तर अधिवासित करते हैं, वे सभी बुद्धिपदार्थमें गिने जाते हैं। इसका कारण यह, कि बुद्धिको ही विशेष विशेष अवस्था धर्माधर्मादि विविध नामोंकी नामी हैं। बुद्धि ऐसी चीज नहीं जो निराश्रयमें रहे, अवश्य उसका आश्रय है। थोड़ा ध्यानपूर्वक विचार करनेसे प्रतीत होगा, कि बुद्धि मांसलिप्त अस्थिपिञ्जरमें अवस्थित नहीं है और न निरुपाधिक आत्मामें ही अवस्थित है। निरु-पाधिक आत्मा, निर्गुण, निष्क्रिय और निर्धर्मक है। सुतरां बुद्धिका पृथक् आश्रय कल्पनीय वा अनुमेय है। जो बुद्धिके आश्रय है, वही सूक्ष्मशरीर है। सूक्ष्मशरीरमें ही बुद्धिकी स्थिति और उत्पत्ति है।

सांख्यकार कहते हैं, कि चित्र जिस प्रकार विना आश्रयके स्थित नहीं रह सकता, छाया जिस प्रकार मूर्त्ति पदार्थके विना नहीं रह सकती, उसी प्रकार लिङ्ग अर्थात् नाना प्रभेदवती बुद्धि भी विना किसी एक उप-युक्त आश्रय वा आधारके नहीं रह सकती।

"चित्रं यथाश्रयमृते स्थाण्वादिभ्यो विना यथा छाया।
तद्वद्विना विशेषैर्न तिष्ठति निराश्रयं लिङ्गम्॥"
(सांख्यका० ४१)

इसी कारण मांसलिप्त अस्थिरचित दृश्यदेहके अन्त-रालमें सूक्ष्म इन्द्रियातीत शरीरका रहना अनुमित होता है। स्थूलशरीरावस्थामें सभी कर्मज्ञान उस शरीरकी सहायतासे उत्पन्न होता है और दोनोंका संस्कार उसीसे स्थितिलाभ करता है। जन्ममरणकी अन्तराल अवस्था-में अर्थात् स्थूलशरीर वियुक्त हुआ है, अथच अभिनव-स्थूल शरीर उत्पन्न नहीं हुआ। वैसी अवस्थामें भी धर्माधर्मादिका संस्कार उसमें आवद्ध रहता है। इह-जन्ममें जिन सव बुद्धिवृत्तियोंका आविर्भाव हुआ है, तत्ता-वत्का संस्कार लिङ्गशरीरमें आवद्ध होता है और रह जाता है। बुद्धिके आविर्भावप्रभावसे दृश्य देह केवल स्पन्दित होती है और उसके संस्कारके सिवा अन्य कोई संस्कार इसमें आवद्ध नहीं होता। यही कारण है, कि स्थूलदेहका ध्वंस होने पर धर्माधर्मादिका संस्कार विलुप्त नहीं होता। तथा इहजन्मकी कार्यरुचि पूर्वजन्म-के संस्कारानुरूप हुआ करती है।

"सूक्ष्मास्तेषां नियता माता पितृजा निवर्त्तन्ते।"
(सांख्यका० ३९)

मातापितृजात अर्थात् शुक्रशोणित द्वारा उत्पन्न यह षाट्कौषिक देह पड़ी रहती है, सड़ जाती है, मट्टी हो जाती है, भस्म वन जाती है, गीदड़ कुत्ते उसे खाते हैं, तथा यह विष्ठा भी हो जाती है। किन्तु 'सूक्ष्मास्तेषां नियताः' अर्थात् उसके मध्य सूक्ष्मशरीर नियतकालवर्त्ती है। वह मोक्ष अथवा प्रलय नहीं होने तक रहता है। सूक्ष्मशरीर वार वार षाट्कौषिक शरीरको ग्रहण करता है और वार वार उससे विमुक्त होता है। षाट्कौषिक शरीरके उत्पन्न होनेको जन्म और उससे विमुक्त होनेको ही मरण कहते हैं।

जन्ममरणका अन्तराल।—अन्तराल शब्दका अर्थ मध्यकाल है। मरण हुआ है, अथच शरीरोत्पत्ति नहीं हुई। इस मध्यवर्त्ती अवस्थाविषयमें वेदान्तादि शास्त्रों-में इस प्रकार लिखा है—

अभिनिवेश, ध्यान और अध्यान इन सवका फला-फल अनुसन्धान करनेसे अन्तरालमें अवस्थाका सुस्पष्ट-चित्र मालूम हो सकता है। किसी आदमीकी अन्तिम ६ दण्ड रातमें ही नींद टूट जाती है, उसने उसी प्रकार

अभ्यास किया है। अभ्यासके बलसे वह चाहे जिस समय बिछावन पर जाय, पर उसकी नींद ठीक उसी समय टूटती है। अथच वह व्यक्ति यदि चाहे, कि मैं कल ठीक ६ दण्ड रात रहते उठूंगा, तो यह निश्चय है, कि उसकी नींद ठीक उसी समय टूट जायगी। इससे जानना चाहिये, कि ध्यान वा अभिनिवेश अभ्यासको अतिक्रमण करके प्रभुत्व करनेमें समर्थ है। आहार, विहार, विसर्ग (मलमूत्रत्याग) और अन्यान्य दैहिकक्रिया सभी अभ्यास, ध्यान और अभिनिवेशके प्रभावसे हमेशा निर्वाहित होती है। शरीरके रहते जो सब ध्यान, अभिनिवेश और अभ्यास किया जाता है, शरीरपात होने पर वे सब ध्यान, अभिनिवेश और अभ्यास संस्कारीभावको प्राप्त हो कर जीवको अनुरूप नियमके अधीन रखते और परिवर्त्तित करते हैं। इस शरीरमें किसी एक विषयका निरन्तर ध्यान करके शरीर परित्याग करने पर भी वह कभी न कभी पुनरुदित होगा ही। उस उदयका बीज अनुष्ठित ज्ञानकर्मका संस्कार है। जो संस्कार सूक्ष्म शरीरमें रहता है, पीछे उसीके बलसे वह उद्बुद्ध होता है। स्थित संस्कारके उद्बुद्ध होनेसे स्मरण और प्रत्यभिज्ञा नामका ज्ञान उत्पन्न होता है। उसके साथ मनोभाव और अवस्था परिवर्त्तित होती है। इस जन्ममें जो जन्मान्तरीय संस्कार उद्बुद्ध होता है, वह उद्बोध इहलोकमें स्वभाव और प्रकृति इत्यादि नामोंसे परिचित है। मरणकालमें स्थूलदेह पतित रहता है, किन्तु उस देहका अर्जित संस्कार सूक्ष्मशरीरके अवलम्बन पर विद्यमान रहता है, वृथा नष्ट नहीं होता। यही कारण है, कि मरनेके बाद उस देहका अर्जितज्ञानकर्म अर्थात् धर्माधर्मादि उसकी अभिनव अवस्थाको उपस्थापित करता है। मृत्युयन्त्रणा उस देहकी परिचित सभी वस्तुओंको भुला देती है और भविष्यत देह तथा भविष्यत् देहका भोग्य एवं भोगसम्बन्धीय भावना-विज्ञानमें पर्यवसित करती है।

यातना चाहे जितने प्रकारकी क्यों न हो, मरणयातना सबसे उत्कट है; किसी प्रकारका उत्कट रोग होनेसे अथवा मूर्च्छादि दुरन्त अवस्थाका भोग होनेसे जिस प्रकार पूर्वसञ्चित ज्ञानकी अन्यथा होती है, पूर्वाभ्यस्त विषय भुला जाता है, उसी प्रकार मृत्युयन्त्रणा भी मुमूर्षुके विद्यमान सभी भावोंको विस्मृतिसागरमें निमग्न और अभिनव भावनाका उत्थापन करती है। जीवने जीवन भरमें जो सब कर्म ध्यान वा अभिनिवेश किया है, मृत्युकालमें उसीके अनुरूप एक नूतन-परिवर्त्तन अर्थात् एक नूतन भावना उपस्थित होती है। शास्त्रमें इसीको भावनामय शरीर बतलाया है। मृत्युकालमें भावनामय शरीर होता है, इसका अर्थ यह, कि भविष्यमें जो व्याघ्रयोनिमें जन्म लेगा, मरणकालमें उसे 'व्याघ्रोऽहं' ऐसी भावना उत्पन्न होती है। उत्कट मरणयन्त्रणा उसके स्थूलशरीरके समान ज्ञानको विलुप्त कर भावनामय विज्ञान उत्पन्न करती है। यह भावनाविज्ञान वा भावशरीर स्वप्नशरीरके अनुरूप है। हम लोग जिस प्रकार स्वप्न देखते हैं, उसी प्रकार स्थूलदेहच्युत भावदेही पहले अस्पष्ट परजन्मका स्फुरण सन्दर्शन करता है, पीछे यथाकालमें उसका पारलौकिक शरीर उत्पन्न होता है। शास्त्रमें जन्म और मरणको जो तृणजलौकाकी तरह बतलाया, वह भावनामय शरीर-विषयक अर्थात् जलौका जिस प्रकार एक तृणको छोड़ कर दूसरे तृणको पकड़ती है अथवा अन्य तृण बिना पकड़े गृहीत तृण नहीं छोड़ती है, उसी प्रकार जीव भी अन्य शरीरको बिना ग्रहण किये इस शरीरका त्याग नहीं करता। वह अन्य पारलौकिक शरीर नहीं है; परन्तु वह भावनामय शरीर है। पारलौकिक शरीरलाभ सबोंके भाग्यमें बदा नहीं रहता।

> "योनिमध्ये प्रपद्यन्ते शरीरत्वाय देहिनः।
> स्थाणुमन्येऽनुसंयन्ति यथाकर्म यथाश्रुतम्॥"
>
> (स्मृति)

भावनामय देहका दूसरा नाम आतिवाहिक देह है। आतिवाहिक देह थोड़े समय तक रहती है। पीछे पूर्वप्रज्ञाके अनुसार पारलौकिक भोगदेह उत्पन्न होती है।

कोई तो मानवदेह, कोई तिर्यक्‌देह, अथवा कोई देवदेह पाता है। पुण्याधिक्य रहनेसे पुण्यशरीर अर्थात् देवादि शरीर, पापाधिक्य रहनेसे तिर्यक्‌शरीर, पापपुण्यका बल समान रहनेसे मानवशरीर उत्पन्न होता है। जब तक स्थूलशरीर उत्पन्न नहीं होगा, तब तक भावना-

मयं शरीरमें अर्थात् आतिवाहिक भावदेहमें सुखदुःखका भोग करना होगा। वह भोग स्वप्नभोगकी तरह अस्पष्ट है। स्वप्न और भावनामय है। मृत्युकालमें जिस भावकी स्फूर्त्ति होगी, वह भाव प्रवल हो कर उसे तदनुरूप गति प्रदान करता है। जीवके मुमूर्षु होनेसे लोग उसके कानमें विष्णुका नाम इस लिये सुनाते हैं, कि इस समय भी उसके मनका भाव ईश्वरकी ओर जाय। परन्तु इससे कोई फल पानेकी सम्भावना नहीं। चैतन्य प्रतिविम्बित सूक्ष्मदेह कथित प्रकारसे पाट्कौपिक शरीरसे निकल कर पहले आतिवाहिक शरीरमें आकाशस्थित, आलम्वनहीन, वायुभूत और आश्रयशून्य अवस्थाको प्राप्त होती है। पीछे यथाकालमें जन्मग्रहण करती है। जो अत्यन्त पापाचारी हैं वे मरनेके बाद इस पृथ्वी पर आतिवाहिक शरीरमें कुछ दिन रह कर पीछे तमःप्रधान वृक्ष-लतादि जड़ सहित ग्रहण करते हैं। जो ऋषि, तपस्वी और ज्ञानी हैं, वे देवयानपथसे ऊद्‌र्ध्वलोकगामी हो कर धीरे धीरे ब्रह्मलोकमें जा उत्पन्न होते हैं। जो सत्कर्मनिष्ठ हैं वे पितृयानपथसे ऊद्‌र्ध्वगामी हो पितृलोकमें जा कर जन्म लेते हैं। अनन्तर सुखभोगके बाद वे पुनः पितृयानपथसे इहलोकमें उतरते और अपने कर्मानुसार मानवशरीर पाते हैं। जो मनुष्य पशुशरीर पाता है, उसे आकाशमें, पृथ्वी पर, पीछे पार्थिवरसके साथ शस्यादिके मध्य, उसके बाद खाद्यरूपमें मनुष्य वा अन्य किसी जीवके शरीरमें कुछ दिन रहना पड़ता है। पुंशरीरमें प्रवेश करनेसे रसरक्तादि क्रमसे शुक्रधातुमें और स्त्रीशरीरमें प्रवेश करनेसे आर्त्तवरक्तमें अवस्थान करता है। अनन्तर वह स्त्रीपुरुषसंयोगके उपलक्ष्यमें गर्भयन्त्रमें प्रविष्ट हो कर पाट्कौपिक देह पाता है।

जीव खाद्यके साथ जिस शरीरमें प्रवेश करता है, उस समय उसे उसी शरीरके अनुरूप संस्कार होता है। जो पहले मानवदेहमें था, कर्मकी प्रेरणासे वह यदि वानरयोनिमें उत्पन्न हुआ हो, तो वानरशरीरमें प्रवेश करते ही उसका मानवोचित संस्कार जाता रहता है और वानरोचित संस्कारका सञ्चार होता है।

पुंस्त्रीके संयोगसे जीव गर्भमें प्रविष्ट होता है। पीछे गर्भस्थ देही नवम या दशममासमें अङ्गप्रत्यङ्गादिका पुष्टि-भाव लाभ करके प्रवल प्रसववायु द्वारा धनुर्मुक्त वाणकी तरह योनिछिद्रसे वाहर निकल आता है।

योगशास्त्रमें लिखा है,—अष्टम मासमें जब मनका प्रादुर्भाव होता है, तभीसे ले कर जब तक भूमिष्ठ नहीं होता, तब तक जीव पूर्वजन्मका वृत्तान्त स्मरण और गर्भावासकी कठोर यन्त्रणाका अनुभव करके क्लेश पाता रहता है। वह वेचारा क्या करे, मुख जरायुसे आच्छन्न है, कण्ठ कफपूर्ण है, वायुका पथ निरुद्ध है, इत्यादि कारणोंसे वह रोदनादि नहीं कर सकता। सुतरां पूर्वानुभूत नाना जन्मकी नाना प्रकारकी यन्त्रणा याद करके अति उद्वेगके साथ उसे सह कर रह जाता है।

"जातः स वायुना स्पृष्टो न स्मरति।
पूर्वं जन्ममरणं कर्म च शुभाशुभम्॥"

ज्योंही वह भूमिष्ठ होता है, त्योंही सभी बातें भूल जाता है। वाह्यवायु ही उसकी पुरातन स्मृतिको विनाश कर डालती है। इसी नियमसे जन्म और मृत्यु हुआ करती है।

दर्शनशास्त्रमें जीवका जन्म और मृत्यु-विषय इस प्रकार निर्दिष्ट हुआ है। जन्म और जन्मके वाद मृत्यु, यह अवश्य होगी ही। इस प्रकारका जन्म और मृत्यु ही जीवका प्रेत्यभाव है। जब तक मुक्ति नहीं होगी, तब तक पूर्वोक्त प्रकारसे जन्म और मरण-क्लेशका भोग करना ही पड़ेगा। मुक्ति होनेसे फिर प्रेत्यभाव नहीं होगा। सभी दर्शनशास्त्रोंमें जिससे यह प्रेत्यभाव अर्थात् जन्ममृत्यु न हो, उसका विषय समझा गया है।

प्रेत्यभाविक (सं० त्रि०) प्रेत्यभाव सम्बन्धीय, इहलोकसम्बन्धी।

प्रेत्वन् (सं० पु०) प्र-इ-क्वनिप्। १ इन्द्र। २ वात, हवा।

प्रेप्सु (सं० त्रि०) प्राप्तुमिच्छुः प्र-आप्-सन्-उ। जो पानेमें इच्छुक हो, जो कोई चीज पानेकी ख्वाहिश करता हो।

प्रेम (सं० पु० क्ली०) प्रियस्य भावः प्रिय (पृथ्व्यादिभ्य इमनिज्वा। पा ५।१।१२२) इति इमनिच् (प्रियस्थिरेति। पा ६।४।१५७) इति प्रादेशः, वा प्री-तर्पणे-मणिन्। १ सौहार्द। पर्याय—प्रेमा, प्रियता, हार्द, स्नेह।

प्रेमके प्रियता, हार्द, स्नेह आदि कतिपय पर्याय

रहने पर भी इसका स्वरूप निर्णय करना असाध्य है। इसी कारण नारदीय-भक्तिसूत्रमें लिखा है—"अनिर्वचनीयं प्रेमस्वरूपम् ।"

अतएव प्रेम क्या पदार्थ है उसे वाक्य द्वारा व्यक्ति-विशेषको समझाया नहीं जा सकता है। इसका दृष्टान्त भी उसी नारदसूत्रमें लिखा है, "मूकास्वादनवत्" अर्थात् जिस प्रकार कोई मूक व्यक्ति किसी द्रव्यका आस्वादन करनेसे उसका कटु, तिक्त और कषाय गुण किसीके भी सामने व्यक्त नहीं कर सकता, केवल वही उसका आस्वादन अनुभव करता है, प्रेम भी उसी प्रकार है, प्रेमी व्यक्ति भिन्न अन्य कोई भी उसका स्वरूप नहीं जान सकता। इसी कारण उस सूत्रमें कहा गया है "यथा गोपिकाणाम्" गोपियोंका श्रीकृष्णके प्रति जो प्यार है, उसीको प्रेम कहते हैं। श्रीमद्भागवतके तृतीय स्कन्धमें लिखा है, कि पहले सत्पक्ष, पीछे तत्त्वज्ञान, उसके बाद भागवतकथामें प्रवृत्ति, बादमें श्रद्धा, पीछे रति अर्थात् भावभक्ति और सबके अन्तमें भक्ति अर्थात् प्रेम होता है।

भीष्म, प्रह्लाद, उद्धव, नारद आदिने अन्यमनस्क-रहित भगवान्‌में जो ममता है, उसीको प्रेम बतलाया है। यह प्रेम भावोत्थ और अतिप्रसादोत्थके भेदसे दो प्रकारका है। निरन्तर अन्तरङ्ग भक्त्यंगके सेवन द्वारा भाव जब परमोत्कर्षको प्राप्त होता है, तब उसे भावोत्थ प्रेम और हरिके स्वीय सङ्गदानादिको ही अतिप्रसादोत्थ प्रेम कहते हैं।

एक दिन श्रीकृष्णने उद्धवसे कहा था—

"तेनाधीतश्रुतिगणा नोपासितमहत्तमाः।
अव्रतातप्ततपसो मत्सङ्गान्मामुपागताः॥"
(भाग० ११ स्कन्ध)

उन गोपियोंने मुझे पानेके लिये वेदाध्यन नहीं किया, सत्सङ्ग भी नहीं किया और न कोई व्रत या तपस्या ही की; केवल मेरे सङ्गप्रभावसे ही उन्होंने मेरा प्रेमलाभ करके मुझे पा लिया है।

यह अतिप्रसादोत्थ प्रेमके भी फिर दो भेद हैं, माहात्म्य ज्ञानयुक्त और केवल (माधुर्य) ज्ञानयुक्त। विधि-मार्गसे भजनकारियोंके प्रेमको महात्म्यज्ञानयुक्त और रागानुगाश्रित भक्तमार्गके प्रेमको केवल (माधुर्य) ज्ञान-युक्त कहते हैं।

वैष्णवाचार्योंका कहना है—

"धन्यस्यायं नवः प्रेमा यस्योन्मीलति चेतसि।
अन्तर्वाणिभिरप्यस्य मुद्रासुष्ठु सुदुर्गमा॥"

जिस धनी व्यक्तिके चित्तमें इस नवीन प्रेमका उदय होता है, शास्त्रज्ञ होने पर भी वे सहसा प्रेमकी परिपाटी समझ नहीं सकते। यह प्रेम शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य और मधुरके भेदसे पांच प्रकारका है।

शान्त प्रेम।

शान्तरसका विषय आलम्बन चतुर्भुज विष्णुमूर्त्ति और आश्रयालम्बन सनकादि शान्तगण हैं।

महोपनिषद्का श्रवण, निर्जनस्थान-सेवन, शुद्धसत्त्व-मय भगवान्‌की स्फूर्त्ति, तत्त्वविचार, ज्ञानशक्तिका प्राधान्य, विश्वरूपदर्शन, ज्ञानिभक्तका संसर्ग और समविद्यगणके साथ उपनिषद्विचार शान्तरसके उद्दीपन हैं। नासाग्रमें दृष्टि, अवधूतकी तरह चेष्टा, चार हाथ स्थान देख कर पीछे पादनिक्षेप, ज्ञानमुद्राधारण, हरिद्वेषीके प्रति द्वेप-राहित्य, भगवान्‌के प्रियभक्तमें भक्तिकी अल्पता, संसार-क्षय और जीवन्मुक्तिके प्रति बहु आदर, निरपेक्ष, निर्ममता, निरहङ्कारिता और मौन इत्यादि अनुभाव हैं। स्तम्भ, स्वेद, रोमाञ्च, स्वरभेद, वेपथु, वैवर्ण्य और अश्रु ये सात सात्विक भाव हैं। निर्वेद, धैर्य, हर्ष, मति, स्मृति, उत्सुक, आवेग और वितर्क आदि इस शान्तरसमें सञ्चारीभाव हैं। शान्तिरति स्थायीभाव है।

दास्यप्रेम।

इसे शास्त्रकारोंने प्रीतभक्तिरस बतलाया है। इस रसमें द्विभुज और चतुर्भुज दोनों रूप ही विषयालम्बन और हरिदासगण आश्रयालम्बन हैं।

विषयालम्बन श्रीकृष्ण वृन्दावनका द्विभुज, अन्यत्र द्विभुज और चतुर्भुजभेदसे तीन प्रकारका है। आश्रया-लम्बन हरिदास भी प्रश्रित, आज्ञावर्त्ती, विश्वस्त और नम्रबुद्धिके भेदसे चार प्रकारका है। इन चार प्रकारके दासोंका नाम अधिकृत, आश्रित, पारिषद और अनुग है। ब्रह्मा, शिव, इन्द्रादि देवगण अधिकृत दास हैं। आश्रितदास शरणागत, ज्ञानी और सेवानिष्ठ भेदसे तीन प्रकारका है।

कालीयनाग और जरासन्ध कारावद्ध राजगण शरणागत हैं। जो मुक्तिकी इच्छाका परित्याग करके

केवल हरिको ही आश्रय किये हुए हैं, वे ही (शौनकादि ऋषि) ज्ञानी दास हैं। जो पहलेसे ही भजन-विषयमें आसक्त हैं उन्हें सेवानिष्ठ कहते हैं—चन्द्रध्वज, हरिहर, वहुलाश्व, इक्ष्वाकु, श्रुतदेव और पुण्डरीकादि ये ही सेवानिष्ठदास हैं।

उद्धव, दारुक, सात्यकि, श्रुतदेव, शत्रुजित्, नन्द, उपनन्द और भद्र आदि पारिषद हैं। इनके मन्त्रकार्य और सारथ्य कार्यमें नियुक्त रहने पर भी कभी कभी अवसर पा कर ये परिचर्यादि कार्यमें नियुक्त होते हैं।

कौरवोंके मध्य भीष्म, परीक्षित् और विदुरादिकी भी उन पार्षदोंमें गिनती होती है। पारिषदोंमें उद्धव ही श्रेष्ठ हैं।

अनुगदास—पुरस्थ और व्रजस्थके भेदसे अनुग दो प्रकारका है—सुचन्द्र, मण्डन, स्तम्ब और सुस्तम्वादिको पुरस्थ अनुग दास और रक्तक, पत्रक, पत्री, मधुव्रत, रसाल, सुविलास, प्रेमकन्द, मरन्दक, आनन्द, चन्द्रहास, पयोद, वकुल, रसद और शारदको व्रजस्थ अनुगदास कहते हैं।

इस रसमें श्रीकृष्णकी मुरलीध्वनि, शृङ्गरव, हास्ययुक्तावलोकन, गुणोत्कर्षश्रवण, पद्म, पदचिह्न, नूतन मेघ और अङ्गसौरभ उद्दीपन हैं।

सर्वतोभावमें भगवदाज्ञाका प्रतिपालन, भगवत् परिचर्यामें ईर्षाशून्यता, कृष्णदासके साथ मित्रता और प्रीतमात्र निष्ठता दास्य प्रेमरसका अनुभाव है।

स्तम्भ, स्वेद, रोमाञ्च, स्वरभेद, वेपथु, वैवर्ण, अश्रु और प्रलय ये आठ सात्त्विकभाव ही इसमें सात्त्विक हैं।

हर्ष, गर्व, धृति, निर्वेद, विषण्णता, दैन्य, चिन्ता, स्मृति, शङ्का, मति, औत्सुक्य, चपलता, वितर्क, आवेग, लज्जा, जड़ता, मोह, उन्माद, अवहित्थ्या, बोध, स्वप्न, व्याधि और मृति ये सब व्यभिचारी भाव हैं। सम्भ्रम प्रीतिको इसका स्थायीभाव कहते हैं। इस सम्भ्रम प्रीतिके वृद्धिप्राप्त होनेसे पहले प्रेम, पीछे स्नेह, उसके बाद राग पर्यन्त हुआ करता है। शान्तप्रेममें स्नेह और राग नहीं होनेके कारण शान्तसे दास्यप्रेम श्रेष्ठ है।

यह दास्यप्रेम पुनः अयोग और योगभेदसे दो प्रकारका है। हरिके सङ्गाभावको अयोग कहते हैं। इसमें हरिके प्रति मन समर्पण और उनके गुणादिका अनुसंधान किया जाता है। फिर इस अयोगके भी दो भेद हैं, उत्कण्ठता और वियोगता। अदृष्टपूर्व हरिकी दर्शनेच्छाको उत्कण्ठित कहते हैं। इसमें समस्त व्यभिचारी-सम्भावना होने पर भी औत्सुक्य, दैन्य, निर्वेद, चिन्ता, चपलता, जड़ता, उन्माद और मोह इन सब व्यभिचारीभावकी अधिकता होती है। औत्सुक्यका उदाहरण कर्णामृतमें इस प्रकार है—

"अमूल्यधन्यानि दिनान्तराणि हरे त्वदालोकनमंतरेण।
अनाथबंधो करुणैकसिंधो हा हंत हा हंत कथं नयामि॥"

विल्वमङ्गलने कहा है,—हाय! हाय! हे हरे! हे अनाथबंधो! हे करुणासिंधो! विना आपके दर्शनके किस प्रकार यह अधन्य दिन यापन करूंगा।

हरिके साथ सङ्गलाभ करके फिरसे उसके विच्छेद होनेको वियोग कहते हैं। इस वियोगके अङ्गमें ताप, कृशता, जागर्या, आलस्यशून्यता, अधैर्य, जड़ता, व्याधि, उन्माद, मूर्च्छा और मृति ये दश दशाएं होती हैं। इनमेंसे केवल एकका उदाहरण नीचे दिया जाता है—

"दनुजदमनयाते जीवने त्वय्यकस्मात्
प्रचुरविरहतापैर्ध्वस्तहृत्पङ्कजायां।
व्रजमभिपरितस्ते दासकासारपङ्क्तौ
न किल वसतिमार्त्ताः कर्त्तुमिच्छन्ति हंसाः॥"

हे कृष्ण! जीवनस्वरूप तुम जो वृन्दावनसे चले गये हो उससे व्रजभूमिके चतुर्दिक्स्थ तुम्हारे दासरूप सरोवर श्रेणीके अकस्मात् प्रबल विरहानल द्वारा हृत्-पद्म सूख गये हैं। प्राणरूपी हंस आर्त्त हो कर अब उसमें रहनेकी इच्छा नहीं करते।

कृष्णके साथ मिलनको योग कहते हैं। वह योग सिद्धि, तुष्टि और स्थितिके भेदसे तीन प्रकारका है। उत्कण्ठितावस्थामें कृष्णप्राप्तिको सिद्धि, विच्छेदके बाद श्रीकृष्णप्राप्तिको तुष्टि और श्रीकृष्णके साथ एकत्र वासको स्थिति कहते हैं।

गौरव-प्रीतिमें भी यही सब भाव हुआ करते हैं। गौरवप्रीतिका विषयालम्बन कृष्ण हैं, आश्रयालम्बन उनके लालनीय सारण, गद, प्रद्युम्न आदि कुमारगण हैं।

सम्भ्रम, प्रीति और गौरवप्रीतिशाली द्वारकाके दासों-

मेंसे जो निरन्तर आराध्य बुद्धिसे सेवन करते हैं, उन्हें ऐश्वर्यज्ञानकी प्रधानता है और जो लाल्य हैं उन्हें सर्वतोभावमें श्रीकृष्णके साथ स्वीय सम्बन्धस्फूर्त्ति होती है। व्रजस्थ इन दो दासभक्तोंके ऐश्वर्यज्ञान नहीं रहने पर भी गोपराज-नन्दन होनेके कारण वह ऐश्वर्यज्ञान है।

सख्य-प्रेम।

इस सख्यरसमें द्विभुजधारी श्रीकृष्ण विषयालम्बन और उनके वयस्यगण आश्रयालम्बन हैं। व्रजस्थ द्विभुज और अन्य स्थानस्थ द्विभुज कृष्णभेदसे आलम्बन दो प्रकारका है। फिर वयस्यगणके भी पुरसम्बन्धी और व्रजसम्बन्धीके भेदसे दो भेद हैं। अर्जुन, भीम, द्रौपदी, श्रीदामविप्र आदि पुरसम्बन्धि सखा है। इन सखाओंमें अर्जुन ही सर्वश्रेष्ठ हैं।

व्रजसम्बन्धि सखा—जो सर्वदा कृष्णके साथ विहार करते हैं, जिनका जीवन कृष्णगत है और क्षणमात्र भी विना कृष्णके नहीं रह सकते, वे ही व्रजस्थ सखा हैं। ये ही सभी सखाओंसे श्रेष्ठ हैं।

व्रजवयस्यगणका प्रेम,—

"इत्थं सतां ब्रह्मसुखानुभूत्या दास्यं गतानां परदैवतेन।
मायाश्रितानां नरदारकेण सार्द्धं विजह्रुः कृतपुण्यपुञ्जाः॥"
(भागवत १०म स्कन्ध)

शुकदेवने कहा,—भगवान् हरि विद्वज्जनके लिये स्वप्रकाश परम सुखस्वरूप, भक्तजनके लिये आत्मप्रद परम देवता और मायाश्रित जनके लिये नरबालकरूपमें प्रतीयमान होते हैं। उन भगवान्‌के साथ गोपबालकगण जब इस प्रकार विहार करने लगे, तब यह अवश्य मालूम होता है, कि उन सब बालकोंके पुण्यपुञ्ज था।

वयस्योंके प्रति श्रीकृष्णका प्रेम,—

"सहचरनिकुरम्बं भ्रातरार्य! प्रविष्टं
द्रुतमघजठरान्तं कोटरे प्रेक्षमाणः॥
स्खलदशिशिरवाष्प-क्षालितक्षामगण्डः
क्षणमहमवसीदन् शून्यचित्तस्तदासं॥"

श्रीकृष्णने बलरामसे कहा,—हे आर्य! हे भ्रातः! सहचरोंको अघासुरके जठरकोटरमें प्रविष्ट होते देख नयनस्खलित उष्ण अश्रुने मेरे गण्डदेश क्षालन करके क्षीण कर डाला था। इस कारण मैं क्षणकाल शून्यचित्त हो अवसन्न हो पड़ा था। इस गोकुलस्थ सखाके भी फिर चार भेद देखे जाते हैं। यथा—सुहृत्, सखा, प्रियसखा और प्रियनर्मसखा।

सुहृत् सखागण श्रीकृष्णसे उमरमें कुछ बड़े और वात्सल्यगन्धयुक्त थे। ये अस्त्रादि धारणपूर्वक श्रीकृष्णकी सर्वदा रक्षा करते थे। सुभद्र, मण्डलीभद्र, भद्रवर्द्धन, गोभट, यक्ष, इन्द्रभट, भद्राङ्ग, वीरभद्र, महागुण, विजय और बलभद्र आदि सुहृत् हैं। इनमेंसे मण्डलीभद्र और बलभद्र श्रेष्ठ हैं।

बलभद्रका प्रेम, यथा—

"जनितिथिरिति पुत्रप्रेमसम्वीतयाहं
स्नपयितुमिह सद्मन्यम्बया स्तम्भितोऽस्मि।
इति सुबल! गिरामे संदिशत्वं मुकुन्दं
फणिपतिह्रदकच्छे नाद्यगच्छेः कदापि॥"

बलरामने कहा,—सुबल! कृष्णसे जा कहो, कि 'आज उनकी जन्मतिथि है, इस कारण उनको जननीके साथ मैं उन्हें स्नान करानेके लिये घरमें ठहरा हूं, वे कभी भी आज कालियह्रदकी ओर न जांय।'

जो उमरमें कुछ कम, दास्यगन्धियुक्त, सख्य और प्रेमशाली हैं, वे ही सखा कहलाते हैं।

विशाल, वृषभ, ओजस्वी, देवप्रस्थ, वरूथप, मकरन्द, कुसुमापीड़, मणिबन्ध और करन्धम आदि श्रीकृष्णके सखा थे। इन सखाओंमें देवप्रस्थ ही श्रेष्ठ थे। देवप्रस्थका सख्य-प्रेम, यथा—

किसी सन्देश द्वारिकादूतीने श्रीराधासे कहा, 'सुन्दरि! श्रीकृष्ण पर्वतगुहामें श्रीदामकी लम्बीभुजा पर मस्तक और दाम नामक सखाकी बाईं भुजाको अपनी छाती पर रख कर सो रहे हैं तथा देवप्रस्थ नामक सखा प्रेमके साथ उनका पैर दबा कर उस प्रियतमको सुख पहुंचा रहे हैं।

तुल्यवयस और केवल सख्याश्रयी सखाओंको प्रियसखा कहते हैं। श्रीदाम, सुदाम, दाम, वसुदाम, किङ्किणी, स्तोककृष्ण, अंशु, भद्रसेन, विलासी, पुण्डरीक, विटङ्क और कलविङ्क आदि गोप-बालकगण श्रीकृष्णके प्रियसखा थे। इनमेंसे श्रीदाम ही श्रेष्ठ थे। श्रीदामका प्रेम, यथा—

श्रीदामने श्रीकृष्णसे कहा, 'रे कठोर! तू अकस्मात् हम लोगोंका परित्याग कर यमुनाके किनारे क्यों चला गया था? अदृष्टवशतः यदि फिरसे तुम्हारे दर्शन हुए, तो आओ, हमें दृढ़ आलिङ्गन करके सन्तुष्ट करो। सच कहता हूं, क्षण भरके लिये भी जब तुम अलग हो जाते हो, तो क्या धेनुगुण, क्या सखागुण, क्या गोष्ठ, क्या अभीष्ट थोड़े ही समयमें विपर्य्यस्त हो जाता है।

प्रिय-नर्मसख।—सुहृत्, सखा और प्रियसखासे जो श्रेष्ठ, विशेष भावशाली और अतिशय रहस्य कार्यमें नियुक्त हैं, उन्हें प्रिय-नर्मसखा कहते हैं। सुवल, अर्जुन, गन्धर्व, वसन्तक और उज्ज्वल नामक सखा प्रियनर्मसखा थे। इनमेंसे सुवल और उज्ज्वल ही सर्वप्रधान थे।

श्रीकृष्णका वयस्, रूप, शृङ्ग, वेणु, शङ्ख, विनोद, नर्म, विक्रम, गुण, प्रेष्ठजन और राजा, देवता तथा अवतारोंकी चेष्टाके अनुकरण प्रभृति सख्यरसके उद्दीपन हैं। वाहुयुग, कन्दुकक्रीड़ा, द्यूतक्रीड़ा, स्कन्ध पर आरोहण, स्कन्ध द्वारा वहन, परस्पर यष्टिक्रीड़ा, पर्यङ्क, आसन, एक साथ शयन और उपवेशन, परिहास और जलाशयमें विहारादि ये सब रसके अनुभाव हैं। स्तम्भ, स्वेद, रोमाञ्च, स्वरभेद, अश्रु आदि सात्त्विक भाव हैं। निर्वेद, विषाद, दैन्य, ग्लानि, श्रम, मद, गर्व, शङ्का, आवेग, उन्माद, अपस्मृति, व्याधि, मोह, मृति, जाड्य, व्रीड़ा, अवहित्था, स्मृति, वितर्क, चिन्ता, मति, धृति, हर्ष, औत्सुक्य, अमर्ष, असूया, चापल्य, निद्रा, सुप्ति और बोध ये तोस इस रसके व्यभिचारी भाव होते हैं। इनमेंसे मद, हर्ष, गर्व, निद्रा, और धृति अमिलनावस्थामें तथा मृति, क्लम, व्याधि, अपस्मृति और दैन्य मिलन अवस्थामें प्रकाश नहीं पाता। इस सख्यरसमें रति, प्रणय, प्रेम, स्नेह और राग तककी वृद्धि होती है।

वात्सल्य-प्रेम।

इस वात्सल्य-रसमें द्विभुज श्रीकृष्ण विषयावलम्बन और उनके गुरुगण आश्रयालम्बन हैं। श्रीकृष्णका रूप—

"नवकुवलयदामश्यामलं कोमलाङ्गं।
विचलदलकभृङ्ग-क्रान्तनेत्राम्बुजान्तं॥
व्रजभुवि विहरन्तं पुत्रमालोकयन्ती।
व्रजपतिदयितासीत् प्रस्नवोत्पीड़दिग्धा॥"

नूतन नील कमलसदृश श्यामवर्ण, कोमलाङ्ग, विचलित चूर्ण कुन्तलरूप भृङ्गद्वारा नयन-कमलके प्रान्तभाग आक्रान्त ऐसे श्रीकृष्णको व्रजभूमिमें विहार करते देख नन्दगेहिणी स्वयं-स्नुत दुग्ध द्वारा लिप्ताङ्गी हुई थीं। श्यामाङ्ग, रुचिर, सर्वसलक्षणयुक्त, मृदु, प्रियवाक्, सरल, बुद्धिमान्, विनयी, मान्यव्यक्तियोंके सम्बन्धमें मानद तथा दाता ये सब इसके विभाव हैं। यशोदा, नन्द, रोहिणी, जिनके पुत्रोंको ब्रह्माने हर लिया था, वे सब गोपियां, देवकी और उनकी सपत्नीगण, कुन्ती, वसुदेव, सान्दीपन मुनि और श्रीकृष्णकी पितृव्यपत्नी आदि आश्रयालम्बन-गुरुगण हैं। इनमेंसे यशोदा और नन्द श्रेष्ठ हैं।

मधुरप्रेम।

नायक-नायिका-सम्बन्धीय प्रेमको मधुर-प्रेम कहते हैं। श्रीकृष्ण और गोपियोंमें जो प्रेम था, वही प्रेम श्रेष्ठ है। साधारण नायक-नायिकाका जो प्रेम है, वह कामज मोहमात्र है। इस मधुर रसमें मुरलीध्वनि आदि उद्दीपन विभाव है। कटाक्ष और ईपद्धास्य प्रभृति अनुभाव है। स्तम्भ, स्वेद, रोमाञ्च, स्वरभेद, कम्प, वैवर्ण्य, अश्रु और प्रलय ये सब सात्त्विकभाव हैं।

२ स्त्री-जाति और पुरुषजातिके ऐसे जीवोंका पारस्परिक स्नेह जो बहुधा रूप, गुण, स्वभाव, सान्निध्य अथवा कामवासनाके कारण होता है। ३ माया और लोभ। ४ केशवके अनुसार एक अलङ्कार।

प्रेमकर्त्ता (सं० पु०) प्रीति करनेवाला, प्रेमी।

प्रेमकलह (सं० पु०) प्रेमके कारण हंसी दिल्लगी या झगड़ा करना।

प्रेमकिशोरदास—युक्तप्रदेशवासी एक कवि। आप भागवतपुराणके द्वादश स्कन्धका हिन्दी-भाषामें अनुवाद कर गये हैं।

प्रेमगर्विता (सं० स्त्री०) १ साहित्यमें वह नायिका जो अपने पतिके अनुरागका अहङ्कार रखती है। २ वह स्त्री जिसे इस बातका अभिमान हो, कि मेरा पति मुझे बहुत चाहता है।

प्रेमचाँद तर्कवागीश—वङ्गदेशके एक नानाशास्त्रवित् पण्डित और प्रसिद्ध कवि। ख्यातनामा ईश्वरचन्द्र-विद्यासागर आदि अनेक महानुभाव इनके छात्र थे।

वर्द्धमाननगरके शाकवाड़ा ग्राममें १७२१ शकको इनका जन्म हुआ था। वचपनसे ही इन्हें कविता लिखनेकी बड़ी चाव थी। फलतः आगे चल कर ये अति मधुर और सुललित कविता लिखने लगे। थोड़े ही दिनोंमें इन्होंने अलङ्कारशास्त्रमें व्युत्पत्तिलाभ कर अपने गुरुको चमत्कृत कर दिया था। १७४८ शकमें इन्होंने कलकत्ते आ कर संस्कृत कालेजमें प्रवेश किया। उपर्युक्त पण्डितोंकी अध्यापनाके गुणसे प्रेमचन्द्र साहित्य, अलङ्कार और न्यायशास्त्रमें सुपण्डित हो गये। १८३६ ई०में इनका अध्ययन शेष हुआ। इस समय इन्हें तर्कवागीशकी उपाधि प्राप्त हुई।

संस्कृत कालेजमें प्रवेश करनेके कुछ दिन वाद ही कविवर ईश्वरचन्द्रगुप्तके साथ इनकी मित्रता हुई। अव दोनोंको ही वङ्गभाषाकी उन्नतिमें यथेष्ट चेष्टा थी। इन्हींके यत्नसे 'संवादप्रभाकर' और 'संवादभास्कर' नामक संवादपत्र निकले थे।

१८६० ई०में प्रेमचाँदने संस्कृत कालेजके तत्कालीन अध्यापक इ-वि-कौवेल साहवके आदेशसे व्याख्या समेत अभिज्ञान शकुन्तलाका २य संस्करण प्रकाशित किया। इसके कुछ दिन वाद इन्होंने स्वरचित व्याख्याके साथ मुरारिमिश्रका अनर्घराघव नाटक, उत्तररामचरित और दण्डोका काव्यादर्श तथा नैषधचरितका पूर्वार्द्ध टीका समेत प्रकाशित किया। काव्यादर्शकी टीकामें आपने जो कवित्व और अलङ्कारशास्त्रमें पाण्डित्य दिखलाया है, वह अति प्रशंसनीय है। अलावा इसके शालिवाहनचरित, नानार्थसंग्रह नामक अभिधान और कुछ अलङ्कार ग्रन्थ भी लिखना आरम्भ कर दिया था, पर उन्हें वे पूरा न कर सके।

५७ वर्षकी अवस्थामें आप इस धराधामको छोड़ स्वर्गधामको सिधार गये। साधुसङ्ग भी आपको सौभाग्यसे प्राप्त हुआ था। कालेजसे विदाई ले कर आप १८६४ ई०में काशीवासी हुए थे। यहां आपने अपना समय ज्ञानानुशीलन, योगसाधन और विद्यादानमें विताया।

प्रेमजल (सं० पु०) १ प्रस्वेद, पसीना। २ प्रेमाश्रु, वह आंसू जो प्रेमके कारण आँखोंसे निकलते हैं।

प्रेमजा (सं० स्त्री०) मरीचि ऋषिकी पत्नीका नाम।

प्रेमटोली—वङ्गालके राजशाही जिलान्तर्गत एक बड़ा ग्राम यह अक्षा० २४° २५' उ० और देशा० ८८° २६' पू०के मध्य अवस्थित है। प्राचीनकालमें यह नगर दक्षिणवङ्गकी राजधानीरूपमें गिना जाता है। वैष्णवचूड़ामणि श्रीचैतन्य महाप्रभु जव गौड़नगर पधारे, तव इसी स्थानमें कुछ काल तक ठहरे थे। महाप्रभुके आगमनके उपलक्ष्में प्रति आश्विनमासमें महासमारोहसे एक धर्मोत्सव होता है।

प्रेमदास—एक मनःशिक्षाके रचयिता। मनःशिक्षामें कहीं कहीं इन्होंने प्रेमानन्द कह कर भी आत्मपरिचय दिया है।

२ स्वनामख्यात एक पदकर्त्ता। इन्होंने वंशीशिक्षा नामसे एक ग्रन्थ लिखा है जो वङ्गसाहित्यके आदरका धन है। चैतन्य-चन्द्रोदयमें ग्रन्थकारने लिखा है, कि जव उनकी अवस्था १६ वर्षकी थी, तव वे वृन्दावन गये। उस समय वृन्दावनके गोविन्दजीके मन्दिराधिकारी श्रीकृष्णचरण गोस्वामी थे। गोस्वामीने प्रेमदास पर वड़ी कृपा दर्शायी, उन्हें गोविन्दके पाककार्यमें नियुक्त किया। वहां ये कई वर्ष ठहरे। पीछे उनके वड़े भाई वृन्दावन गये और उन्हें घर ले आये। घर आते ही प्रेमदास शान्तिपुर चले गये और वहांसे फिर नवद्वीप पधारे। नवद्वीपमें रहते समय एक रातको इन्हें स्वप्नावस्थामें महाप्रभुके दर्शन हुए। उसी समय चैतन्यलीला-वर्णन करनेकी उनकी प्रवल इच्छा हुई। फलतः चैतन्य-चन्द्रोदयकी उत्पत्ति हुई।

यह वर्णन पढ़नेसे मालूम होता है, कि इसके पहले रचना कार्यमें इनकी इच्छा नहीं थी और इन्हें अवसर भी नहीं मिलता था। वे हमेशा सेवा-कार्यमें लगे रहते थे। चार वर्षके मध्य इन्होंने दो ग्रन्थ रचे।

प्रेमदेवी—एक हिन्दू-साम्राज्ञी। मुसलमानी अमलके पहले इन्होंने दिल्लीका सिंहासन उज्ज्वल किया था।

प्रेमधरशर्मा—एक प्रसिद्ध पण्डित। इन्होंने राक्षसकाव्यकी टीका लिखी है।

प्रेमनाथ—अयोध्या प्रदेशके खेरी जिलान्तर्गत कलुआ ग्रामवासी एक पण्डित। ये जातिके ब्राह्मण थे और अली अकवर खाँ महम्मदीकी सभामें १७७० ई०को विद्य-

मान थे। इन्होंने हिन्दी भाषामें ब्रह्मोत्तरखण्डका अनुवाद किया।

प्रेमनारायण (सं० पु०) कोचविहारके एक राजा। कोचविहार देखो।

प्रेमनिधि—आगरा-निवासी एक साधु। ये रात दिन कृष्णसेवामें मस्त रहते थे। मुसलमानी अमलमें जब आगरा शहर मुसमानोंके हाथ आया, तब ये मुसलमानस्पर्शसे जल नष्ट न हो जाय, इस भयसे प्रतिदिन दोपहर रातको जल लानेके लिये यमुना जाते थे। प्रवाद है, कि एक दिन रातको काली घनघटासे आकाश छा गया। रास्ता दिखाई नहीं पड़ने लगा। अब भक्त प्रेमनिधि बड़े सङ्कटमें पड़ गये। अन्तर्यामी श्रीभगवान् जलाभावसे भक्त कष्ट पावेगा, यह समझ मशालची हो कर उन्हें राह दिखाते गये थे।

आस पासके स्त्री-पुरुष प्रतिदिन सन्ध्या समय श्रीभागवत सुननेके लिये उनके घर जाया करते थे। किसी दुष्ट व्यक्तिने बादशाहसे चुगली खाई, कि प्रेमनिधि परस्त्रीको अपने घरमें बलात्कार करते हैं। यह सुनते ही सम्राट्ने उन्हें कैद कर रखा। पीछे स्वप्नमें उनके प्रति देवप्रभाव जान कर उन्हें कारामुक्त कर दिया।

(भक्तमाल)

प्रेमनिधिपन्थ—एक विख्यात तान्त्रिक पण्डित। इनके पिताका नाम उमापति था। इन्होंने अन्तर्यागरत्न, काम्यदीप-दानपद्धति, घृतदानपद्धति, सुदर्शना नामक तन्त्रराज टीका, दीपदानरत्न, प्रयोगरत्नाकर, प्रयोगरत्नक्रोड़, प्रयोगरत्न-संस्कार, वहिर्यागरत्न, भक्तव्रतसंतोषक, भक्तितरङ्गिणी, मल्लादर्श, लवणदानरत्न, शक्तिसङ्गमतन्त्रटीका, शब्दार्थचिन्तामणि नामक शारदातिलकटीका और १७५५ ई०में शब्दप्रकाश तथा उसकी टीका लिखी है।

प्रेमनिधिशर्मा—मिथिलाके एक प्रसिद्ध स्मार्त्त पण्डित, इन्द्रपतिके पुत्र। इन्होंने पृथ्वीप्रमोदय और १३५४ ई०में धर्माधर्मप्रबोधिनी नामक स्मार्त्तग्रंथ प्रणयन किये हैं।

प्रेमनीर (सं० पु०) प्रेमके कारण आंखोंसे निकलनेवाले आंसू, प्रेमाश्रु।

प्रेमपातन (सं० क्ली०) प्रेम्नः स्नेहस्य पातनं यस्मात्, प्रेम्ना पातनं यस्येति वा। १ रोदन, प्रेमके आवेगमें रोना। २ वह आंसू जो प्रेमके कारण आंखोंसे निकले।

प्रेमपात्र (सं० पु०) वह जिससे प्रेम किया जाय।

प्रेमपास (सं० स्त्री०) प्रेमका फंदा या जाल।

प्रेमपुत्तलिका (सं० स्त्री०) १ प्यारी स्त्री। २ पत्नी, भार्या।

प्रेमपुलक (सं० स्त्री०) वह रोमाञ्च जो प्रेमके कारण होता है।

प्रेमप्रत्यय (सं० पु०) वीणा आदिके शब्दोंसे जिनसे राग-रागिणी निकलती है, प्रेम करना।

प्रेमबन्ध (सं० पु०) प्रेमः बन्धः ६-तत्। गाढ़ानुराग, गहरा प्रेम।

प्रेमवत् (सं० त्रि०) प्रेम-अस्त्यर्थे मतुप्, मस्य व। प्रेमयुक्त।

प्रेमभक्ति (सं० स्त्री०) प्रेम्न भक्तिः। स्नेहयुक्त श्रीकृष्णसेवा, पुराणानुसार श्रीकृष्णकी वह भक्ति जो बहुत प्रेमके साथ की जाय।

प्रेमराज—गाथाकोषटीका और कर्पूरमञ्जरीटीकाके रचयिता।

प्रेमलक्षणाभक्ति (सं० स्त्री०) प्रेमपूर्वक श्रीकृष्णके चरणोंकी भक्ति करना।

प्रेमलेश्या (सं० स्त्री०) जैनियोंके अनुसार एक प्रकारकी वृत्ति। इसके अनुसार मनुष्य विद्वान्, दयालु, विवेकी होता और निस्वार्थभावसे प्रेम करता है।

प्रेमवारि (सं० पु०) वह आंसू जो प्रेमके कारण निकले, प्रेमाश्रु।

प्रेमा (सं० पु०) १ स्नेह। २ स्नेही। ३ वासव, इन्द्र। ४ वायु। ५ उपजातिवृत्तका ग्यारहवां भेद।

प्रेमामृत (सं० क्ली०) प्रेम एव अमृतं। प्रेमरूप सुधा।

प्रेमाक्षेप (सं० पु०) केशवके अनुसार आक्षेप अलङ्कारका एक भेद। इसमें प्रेमका वर्णन करनेमें ही उसमें बाधा पड़ती दिखाई जाती है। (कविप्रिया)

प्रेमामृत (सं० क्ली०) प्रेम एव अमृतं। प्रेमरूप सुधा।

प्रेमालाप (सं० पु०) वह बातचीत जो प्रेमपूर्वक हो।

प्रेमालिङ्गन (सं० पु०) १ प्रेमपूर्वक गले लगाना। २ कामशास्त्रके अनुसार नायक और नायिकाका एक विशेष प्रकारका आलिङ्गन।

प्रेमिक (सं० पु०) वह जो प्रेम करता हो, प्रेम करनेवाला।

प्रेमिन् (सं० त्रि०) प्रेम अस्यास्तीति इनि। प्रेमी देखो।

प्रेमी (सं० पु०) १ वह जो प्रेम करता हो, प्रेम करनेवाला। २ आशिक, आसक्त।

प्रेमीयमान—दिल्लीवासी एक मुसलमान-सन्तान। इन्होंने 'अनेकार्थ' और नाममाला नामक दो उत्कृष्ट अभिधान ग्रन्थ बनाये हैं। इनका जन्मकाल १७४१ ई० माना जाता है।

प्रेयःमार्ग (सं० पु०) वह मार्ग जो मनुष्यको सांसारिक विषयोंमें फँसाता है, अविद्यामार्ग।

प्रेय (सं० पु०) १ एक प्रकारका अलङ्कार। इसमें कोई भाव किसी दूसरे भाव अथवा स्थायीका अङ्ग होता है। (त्रि०) २ प्रिय, प्यारा।

प्रेयर (अं० स्त्री०) १ प्रार्थना, स्तुति। २ ईश्वरप्रार्थना।

प्रेयस् (सं० पु०) अयमनयोरतिशयेन प्रियः प्रिय ईयसुन्, प्रादेशः। १ पति, स्वामी। संस्कृत पर्याय—दयित, कान्त, प्राणेश, वल्लभ, प्रिय, हृदयेश। २ प्यारा व्यक्ति, प्रियतम। (त्रि०) ३ प्रिय, सबसे प्यारा।

प्रेयसी (सं० स्त्री०) प्रेयस्-स्त्रियां ङीप्। प्रियतमा, प्यारी स्त्री। पर्याय—दयिता, कान्ता, प्राणेशा, वल्लभा, हृदयेशा, प्राणसमा, प्रेष्ठा, प्रणयिनी।

प्रेयस्ता (सं० स्त्री०) प्रेयसो भावः तल् टाप्। प्रियता, प्रेयस्त्व।

प्रेयोपत्य (सं० पु०) क्रौंच पक्षी।

प्रेरक (सं० त्रि०) प्रेरणा करनेवाला, किसी काममें प्रवृत्त करनेवाला।

प्रेरण (सं० क्ली०) प्र-ईर-णिच्-ल्युट्। १ किसीको किसी काममें लगाना, कार्यमें प्रवृत्त करना। २ प्रेषण, भेजना।

प्रेरणा (सं० स्त्री०) प्र-ईर-णिच् (ण्यासश्रन्थो युच्। पा ३।३।१०७) इति युच्। १ उत्तेजना देना, दवाव डाल रया उत्साह दे कर काममें लगाना। २ फलभावना, विधि। ३ दवाव, जोर।

रणार्थक क्रिया (सं० स्त्री०) क्रियाका वह रूप जिससे क्रयाके व्यापारके सम्बन्धमें यह सूचित होता है कि वह की प्रेरणासे कर्त्ताके द्वारा हुआ है।

प्रेरणीय (सं० त्रि०) प्र-ईर-अनीयर्। १ प्रेषणीय, भजने योग्य। २ प्रेरणा करने योग्य। किसी कामके लिये प्रवृत्त या नियुक्त करने लायक।

प्रेरयिता (सं० पु०) १ प्रेरणा करनेवाला, उभाड़नेवाला। २ भेजनेवाला। ३ आज्ञा देनेवाला।

प्रेरित (सं० त्रि०) प्र-ईर-क्त। १ प्रेषित, भेजा हुआ। २ उत्तेजित, जो किसी कामके लिये उभाड़ा गया हो। ३ धक्का दिया हुआ, ढकेला हुआ।

प्रेरितृ (सं० त्रि०) प्र-ईर-तृच्। प्रेरक, प्रेरणकारी।

प्रेत्वन् (सं० पु०) प्रकर्षेण ईर्त्ते प्र-ईर गतौ (प्र-ईर-शदोस्त्वन्। उण् ४।११६) इति क्वनिप्, तुडागमश्च। समुद्र।

प्रेत्वरी (सं० स्त्री०) प्रेत्वन (वनोरच। पा ४।१।७) इति ङीप् रश्चान्तादेशः। नदी।

प्रेष (सं० पु०) प्र-ईष-घञ्। १ प्रेषण, भेजना। २ पीड़न, दुःख देना।

प्रेषक (सं० त्रि०) प्र-ईष-ण्वुल्। प्रेरक, भेजनेवाला।

प्रेषण (सं० क्ली०) प्रेष-भावे-ल्युट्। १ प्रेरण करना। २ भेजना, रवाना करना।

प्रेषयितृ (सं० त्रि०) प्रेष-णिच्-तृच्। प्रेषयक, भेजनेवाला।

प्रेषित (सं० त्रि०) प्रेष-क्त। १ प्रेरित, भेजा हुआ। २ प्रेरणा किया हुआ, उभाड़ा हुआ। (क्ली०) ३ स्वरसाधनकी एक प्रणाली। यह इस प्रकार है—सारे, रेग, गम, मप, पध, धनि, निसा। सानि, निध, धप, पम, मग, गरे, रेसा।

प्रेषितव्य (सं० त्रि०) प्रेष-तव्य। प्रेरणीय, भेजनेयोग्य।

प्रेष्ठ (सं० त्रि०) अयमेषामतिशयेन प्रिय इति इष्ठन् प्रादेशः। अतिशय प्रिय, बहुत प्यारा।

प्रेष्ठा (सं० स्त्री०) १ प्रेयसी, प्यारी स्त्री। २ जङ्घा, जांघ।

प्रेष्य (सं० त्रि०) प्र-ईष-कर्मणि-ण्यत्। १ प्रेरणीय, जो प्रेषण करने योग्य हो। (पु०) २ दास, सेवक। ३ दूत।

प्रेष्यकर (सं० त्रि०) प्रेष्यं करोति कृ-ट। नियोगकारक, नियोगकरनेवाला।

प्रेष्यता (सं० स्त्री०) १ दासत्व। २ दूतत्व।

प्रेस (अं० पु०) १ वह कल जिससे कोई चीज दवाई या कसी जाय, पेंच। २ छापनेकी कल। ३ छापाखाना। मुद्रायन्त्र देखो।

प्रेस-ऐक्ट (अं० पु०) वह कानून जिसके द्वारा छापेखानेवालोंके अधिकारों और स्वतन्त्रता आदिका नियन्त्रण होता है। जो छापेखाने ऐसे नियमोंका भंग करते हैं, उन्हें इसी कानूनके द्वारा दण्ड दिया जाता है।

प्रेसमैन (अं० पु०) वह जो प्रेस पर कागज छापता हो।

प्रेसिडेंट (अं० पु०) किसी सभा या समिति आदिका प्रधान, सभापति।

प्रेसिडेंसी (सं० स्त्री०) १ प्रेसिडेंटका पद या कार्य, सभापतिका ओहदा। २ वृटिश भारतमें शासनकी सुविधाके लिये कुछ निश्चित प्रदेशों या प्रांतोंका किया हुआ विभाग। यह विभाग एक गवर्नर या लाटकी अधीनतामें होता है। बङ्गाल प्रेसिडेंसी, मदरास प्रेसिडेंसी और बम्बई प्रेसिडेंसी, ये तीन प्रेसिडेंसियां इस समय भारतमें हैं।

प्रैय (सं० पु०) प्रियका भाव, स्नेह, प्रेम।

प्रैयव्रत (सं० पु०) वह जो प्रियव्रतके वंशमें हो।

प्रैष (सं० पु०) प्र-इष-घञ् (प्र दृढोढ ढैषैष्येषु। पा ६।१।८६) इत्यस्य वार्त्तिकोक्त्या वृद्धिः। १ क्लेश, दुःख। २ मर्दन। ३ उन्माद, पागलपन। ४ प्रेषण, भेजना। ५ वह शब्द या वाक्य जिसमें किसी प्रकारकी आज्ञा हो।

प्रैष्य (सं० पु०) १ दास, सेवक। २ दासत्व। ३ प्रेष्यका भाव, दासकर्म।

प्रोक्त (सं० त्रि०) प्रकर्षेण उच्यते स्मेति क्त। १ कथित, कहा हुआ। (क्ली०) २ कहा हुआ वचन कहना।

प्रोक्षण (सं० क्ली०) प्र-उक्ष-सेचने ल्युट्। १ यज्ञार्थ पशुहनन। यज्ञमें वधके पहले बलि पशु पर पानी छिड़क कर तब उसे वध करना होता है। २ श्राद्धादिमें उचित संस्कार, श्राद्ध आदिमें होनेवाला एक संस्कार। ३ वध, हिंसा। ४ सेचन, पानी छिड़कना। ५ पानीका छींटा। ६ विवाहकी परिछन नामक रीति।

प्रोक्षणी (सं० पु०) १ यज्ञका वह पात्र जिसमें पशु पर छिड़कनेवाला जल रहता है। २ कुशकी मुद्रिका जो होमादिके समय अनामिकामें पहनी जाती है।

प्रोक्षणीय (सं० त्रि०) प्र-उक्ष-अनीयर्। प्रोक्षणयोग्य।

प्रोक्षित (सं० त्रि०) प्र-उक्ष-क्त। १ निहत, मारा हुआ। २ सिक्त, सींचा हुआ। ३ जलका छींटा मारा हुआ। ४ बलिदान किया हुआ। (पु०) ५ वह मांस जो यज्ञके लिये संस्कृत किया गया हो। ऐसा मांस खानेमें किसी प्रकारका दोष नहीं माना जाता।

"भक्षयेत् प्रोक्षितं मांसं सकृत् ब्राह्मणकाम्यया।
दैवे नियुक्तः श्राद्धे वा नियमे तु विवर्जयेत् ॥"
(तिथितत्त्व)

आरण्यक मृगादिपशुका प्रोक्षण आवश्यक नहीं है अर्थात् वन्यपशु अयज्ञीय होने पर भी उसका मांस खाया जा सकता है।

"आरण्याः सर्वदैवत्याः प्रोक्षिताः सर्वशो मृगाः।
अगस्त्येन पुरा राजन् मृगया येन पूज्यते ॥"
(तिथितत्त्व)

प्रोक्षितव्य (सं० त्रि०) प्र-उक्ष-तव्य। प्रोक्षणयोग्य, जो प्रोक्षणके योग्य हो।

प्रोग्राम (अं० पु०) १ कार्यक्रम, होनेवाले कार्यों आदिका निश्चित क्रम। २ वह पत्र जिसमें इस प्रकारका कोई क्रम या सूची हो, कार्य-क्रम-सूचक पत्र।

प्रोच्चैस् (सं० अव्य०) अत्यन्त उच्च।

प्रोज्जासन (सं० क्ली०) प्र-उद्-जस-णिच्-ल्युट्। मारण।

प्रोज्झित (सं० त्रि०) प्र-उज्झ-कर्मणि-क्त। त्यक्त, छोड़ा हुआ।

प्रोज्झन (सं० क्ली०) प्र-उज्झ-ल्युट्। प्रवर्जन, लोपन, मार्जन।

प्रोटेस्टेण्ट (अं० पु०) ईसाइयोंका एक सम्प्रदाय। इसका आरम्भ यूरोपके १६वीं शताब्दीमें उस समय हुआ था जब लूथरने ईसाई धर्मका संस्कार शुरू किया था। इस सम्प्रदायके लोग रोमन केथोलिक सम्प्रदायवालोंका और साथ ही पोपके प्रबल अधिकारोंका विरोध और मूर्त्तिपूजा आदिका निषेध करते हैं। कुछ दिनों तक यह मत खूब बढ़ा चढ़ा था। अब भी ईसाई देशोंमें इस सम्प्रदायके लोगोंकी संख्या अधिक है।

प्रोढ़राज—काकतीय-वंशीय वरंगुलके एक अधिपति, सूर्यवंशीय वेत्मराज त्रिभुवनके पुत्र और रुद्रदेवके पिता। इन्होंने १११०से ११६२ ई० तक राज्य किया था। इनकी कीर्त्ति समूहके मध्य अपने नाम पर स्थापित जगति-केशरी-तटाक ही प्रसिद्ध है। इन्होंने पश्चिम चालुक्य-राज ३य तैलपका राज्य दखल कर १म तैल नाम धारण किया।

प्रोढ़ा (सं० स्त्री०) प्रौढ़ा देखो।

प्रोण्ठ (सं० पु०) प्रकर्षेण अण्ठते निष्ठीवनादिकं प्राप्नोतीति प्र-अठि-गतौ-अच्। पतद्ग्रह, पीकदान, उगालदान।

प्रोत (सं० क्ली०) प्र-वेञ्-सूतौ-क्त यजादित्वात् सम्प्रसारणं। १ वस्त्र, कपड़ा। (त्रि०) २ खचित, किसीमें अच्छी तरह मिला हुआ। ३ स्यूत, सीया हुआ। ४ गुम्फित, गूँथा हुआ। ५ ग्रथित, गांठ दिया हुआ। ६ अन्तर्विद्ध। ७ गर्भनिहित, छिपा हुआ।

प्रोतोत्सादन (सं० क्ली०) प्रोतेस्यूते सति प्रोतानां वस्त्राणां वा उत्सादनं उत्तोलनं उच्चालनं वा यत्र। १ वस्त्रकुट्टिम, तंबू, खेमा। २ छत्र, छाता।

प्रोत्कट (सं० त्रि०) १ प्रकृष्टरूपसे उत्कट, बहुत कठिन। (पु०) २ प्रिय वा श्रेष्ठ भृत्य।

प्रोत्कण्ठ (सं० पु०) १ उन्नतकण्ठ, मुक्तकण्ठ।

प्रोत्कर्ष (सं० क्ली०) श्रेष्ठता, उत्तमता।

प्रोत्क्रुष्ट (सं० क्ली०) उच्चैःस्वर, गरजना।

प्रोत्खात (सं० क्ली०) खोदा हुआ, गड्ढा किया हुआ।

प्रोत्तान (सं० त्रि०) प्रकृष्टरूपसे उत्तान, चितके भर लेटा हुआ।

प्रोत्तुङ्ग (सं० त्रि०) अत्युन्नत, बहुत ऊँचा।

प्रोत्तेजित (सं० त्रि०) अत्यन्त उत्तेजित किया हुआ, खूब भड़काया हुआ।

प्रोत्थित (सं० त्रि०) आधार पर रखा या टिका हुआ, ऊँचा किया हुआ।

प्रोत्फल (सं० पु०) प्रकर्षेण उत्फलतीति प्र-उत्-फल-अच्। वृक्षविशेष, ताड़की जातिका एक वृक्ष। पर्याय—सिंहलांगूल, छड़ी, छटा, पिञ्जा।

प्रोत्फुल्ल (सं० त्रि०) प्रकर्षेण उत्फुल्लं प्र-उत्-फुल्ल-विकाशे कर्त्तरि अच् वा। विकशित, अच्छी तरह खिला हुआ।

प्रोत्साह (सं० पु०) प्र-उत्-सह-घञ्। अतिशय उत्साह, बहुत अधिक उमंग।

प्रोत्साहक (सं० पु०) उत्साह बढ़ानेवाला, हिम्मत बाँधनेवाला।

प्रोत्साहन (सं० क्ली०) प्रकर्षेण उत्साहनं। १ कर्त्तव्य-कर्ममें अतिशय यत्न-सम्पादन, किसीके कर्त्तव्य कर्ममें हिम्मत बंधाना या उत्तेजित करना। २ नाट्यालङ्कारभेद।

प्रोत्साहित (सं० त्रि०) प्रोत्साह-तारकादित्वादितच्। १ उत्साहयुक्त, जिसका उत्साह खूब बढ़ाया गया हो। २ उत्तेजित, जो खूब उत्तेजित किया गया हो। ३ प्रवर्त्तित, ठाना हुआ, चलाया हुआ।

प्रोथ (सं० पु०) प्रोथते इति प्रोथ पर्याप्तौ (पुंसिसंज्ञायां घ प्रायेण। पा ३।३।११८) इति घ, वा पुङ् गतौ (तिथपृष्ठ-गूथयूथप्रोथाः। उण् २।१२) इति थक्, निपातनात् गुणः। १ कटी, कमर। २ स्त्रीगर्भ, स्त्रीका गर्भाशय। ३ गर्त्त, गड्ढा। ४ अश्वमुख, घोड़ेका मुंह। ५ अश्वघोणा, घोड़ेकी नाकके आगेका भाग। ६ पथिक, मुसाफिर। ७ शूकरका मुख, सूअरका थूथन। ८ शाटक, चिथड़ा। ९ हलका अग्रभाग। १० नाभिके नीचेका भाग, पेड़ू। (त्रि०) ११ स्थापित, रखा हुआ। १२ भीषण, भयानक। १३ विख्यात, मशहूर।

प्रोथथ (सं० पु०) प्रोथ-बाहुलकात् अथ। अश्वमुखनिर्गत हेया शब्द, घोड़ेका हिनहिनाना।

प्रोथित (सं० त्रि०) प्रोथ-क्त। भूगर्भनिहित, जमीनके अन्दर गाड़ा या छिपाया हुआ।

प्रोथिन् (सं० पु०) अश्व, घोड़ा।

प्रोद्गीर्ण (सं० पु०) प्रकृष्टरूपसे उद्गारित। उद्गमन, जो भीतरसे बाहर आया हो।

प्रोद्घोषणा (सं० स्त्री०) उच्चैःस्वरसे घोषणा।

प्रोद्दतूर—मन्द्राजप्रदेशके कड़ापा जिलान्तर्गत एक उपविभाग। भूपरिमाण ४७८ वर्गमील है। यहां प्रधानतः नील और रूईकी खेती होती है। पेन्नर और कुन्दर नदीके किनारे धान भी अच्छा लगता है।

२ उक्त उपविभागका एक प्रधान नगर। यह अक्षा० १४°४४´ उ० और देशा० ७८° ३३´ पू०के मध्य अवस्थित

है। जनसंख्या चौदह हजारसे ऊपर है। यहां जिला-मुंसिफकी अदालत और दो रूईके कारखाने हैं। अलावा इसके तीन प्राचीन मन्दिर भी देखे जाते हैं। नील ही यहांका प्रधान व्यवसाय है।

प्रपोज (अं० क्रि०) १ तजवीज करना। २ प्रस्ताव करना।

प्रोपोजल (अं० पु०) प्रस्ताव।

प्रोप्राइटर (अं० पु०) स्वामी, मालिक।

प्रोफेसर (अं० पु० १ किसी विषयका पूर्ण ज्ञाता, भारी पण्डित। २ किसी विश्वविद्यालय आदिका अध्यापक।

प्रोवेशन (अं० पु०) काम करनेकी योग्यताके सम्बन्धमें जांच।

प्रोवेशनरी (अं० वि०) १ योग्यताकी जांचसे सम्बन्ध रखनेवाला। २ जो इस शर्त पर रखा जाय, कि यदि संतोष-जनक कार्य करेगा, तो स्थायी रूपमें रख लिया जायगा।

प्रोम—निम्नब्रह्मके पेगू जिलान्तर्गत एक जिला। यह इरावती नदीकी विस्तीर्ण उपत्यकाभूमि पर अक्षा० १८° १८′से १९° ११′ उ० और देशा० ९४° ४१′ से ९५° ५३′ पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण २९१५ वर्गमील है। इसके उत्तरमें थयेत्-म्यो, पूर्वमें पेगुयोमा पर्वतमाला, दक्षिणमें हेनजादा और थरावती तथा पश्चिममें आराकन गिरिश्रेणी है।

इरावती नदीके उत्तरसे दक्षिणकी ओर वहनेके कारण जिला दो भागोंमें विभक्त हुआ है। दोनों ही भाग वन मालासे समाच्छन्न है और बीच बीचमें पर्वतमालानिःसृत छोटी छोटी स्रोतस्विनीके वहनेसे वहांकी शोभा देखते वन आती है। इन सब नदियोंमेंसे दक्षिण-पश्चिममें प्रवाहित ना-विन् नामक नदी ही सबसे बड़ी है।

प्राचीनकालमें प्रोमराज्य विशेष समृद्धिशाली था। ब्रह्म-ऐतिहासिकोंका कहना है, कि गौतम बुद्ध प्रोमराज्य देखने आये और अपना धर्ममत प्रचार कर गये। उन्होंने समुद्वक्ष पर गोमय देख कर कहा था, कि एक समय (१०१ वर्ष वाद) उस स्थान पर थ-रे-क्षेत्र (श्रीक्षेत्र) नगर वसाया जायगा और उस महानगरीमें बौद्धधर्म पूर्ण प्रतिष्ठालाभ करेगा।' आगे चल कर यथार्थमें ऐसा ही हुआ। वर्त्तमान प्रोम नगरसे ३ कोस पूर्व उस महासमृद्धिशाली नगरीके ध्वंसावशेषके निदर्शन पागोदा आदि आज भी धान्यक्षेत्र और दलदल स्थानोंमें दृष्टिगोचर होते हैं। ऐतिहासिकोंका कहना है, कि थ-रे-खेत्र नगरके चारों किनारे प्रायः २० कोस परिधियुक्त प्राचीर था जिसमें ३२ वड़े और २३ छोटे दरवाजे थे। २री शताब्दीमें वह नगर श्मशानमें परिणत हो गया।

फार्वेश साहव (Captain C. D. F. Forbes)ने लिखा है, कि ब्रह्मके इतिहासानुसार मालूम होता है, कि प्रोम-राजवंशने ४४४ खृ०पू०से १०७ ई० तक राज्य किया था। उन राजवंशके तृतीय राजाके शासनकालमें भारत-इतिहासमें भी दो प्रसिद्ध घटनाएं घटीं। एक ३२५ खृ०पू०में महावीर अलेकसन्दर कर्तृक भारत-आक्रमण और दूसरी सम्राट् अशोकके राज्याशासनके समय अर्हत् मोग्गलि-पुत्रकी अधिनायकतामें ३०८ खृ०पू०को तृतीय महाबौद्धसङ्घ।

इसके बाद ६०० खृ०पू०के निकटवर्त्ती समयसे ही विभिन्न देशोंकी ऐतिहासिक घटनावलीके साथ यहांका ऐतिहासिक युग निर्णीत होता है। उस समय सिंहलद्वीपमें बौद्धशास्त्र देश-भाषामें लिखे गये। तालपत्रमें लिखित ब्रह्मके इतिहासमें घटनाका ते-प राजाके १७वें वर्षमें संघटित होना लिखा है। वह राजा पहले बौद्ध-मठमें धर्मालोचना करते थे। पूर्ववर्त्ती राजाके कोई सन्तान न रहनेके कारण उन्होंने इस वालकको गोद लिया था। इस राजाका सिंहासनारोहणकाल १०० खृ०पू०के किसी समय होगा। ये ही श्रीक्षेत्र-राजवंशके ११वें राजा थे।

उस ते-प-राजवंशने प्रायः २०२ वर्ष तक थ-रे-खेत्रका शासन किया। इसके बाद गृहविवादसे राज्य उजाड़-सा हो गया था। इसी समय आराकनवासी कन-रन-लोगोंने उस पर अपना अधिकार जमा लिया। उस समय थु-प-न्य राजा थे।

वैदेशिकोंकी आगमनवार्त्ता सुनते ही राजाके भतीजे थ-मुन-द-वित् प्रोमके दक्षिण-पूर्व तौङ्ग-ग्नु नामक स्थानको भाग चले। किन्तु कनरनोंने उनका पीछा किया, तब वे इरावती नदी पार कर उत्तर मिन्दून नामक स्थानमें जा छिपे। कनरनोंने उन्हें वहांसे खदेड़ा। अब वे

लिये पगानमें राजधानी वसा कर रहने लगे। त-गौङ्ग-वंशीय किसी राजकुमारने विपद्में तथा राज्य वसानेमें काफी मदद पहुंचाई थी। इस प्रत्युपकारमें वे अपनी कन्या और सारा राज्य उन्हींको अर्पण कर गये।

१४वीं शताब्दीके मध्यभागसे ले कर १६वीं शताब्दी-के आरम्भ तक यहां षान् जातिका आधिपत्य रहा। पर पीछे १३६५ ई०में त-गौङ्ग राजवंशधरोंने स्वराज्यका पुनरुद्धार किया; किन्तु इस वार वे अधिक काल तक राज्य-सुखभोग न कर सके।

१४०४ ई०में पेगूके तलैङ्गराज रजा-दि-रित्ने ब्रह्म पर आक्रमण कर दिया जिससे प्रोमराज्य वहुत कुछ उजाड़-सा हो गया। १५३० ई०में पान-सरदार मिन् तारा-श्वेती तौङ्ग-ग्नूके सिंहासन पर वैठे। उन्होंने चारवर्षके वाद (१५३४ ई०में) उपर्युपरि दो वारके आक्रमणसे पेगू-राजको तंग तंग कर डाला और आखिर उन्हें सिंहासन-च्युत भी कर दिया। तलैङ्गराज प्रोमको भाग आये। यहां उन्होंने आवा और आराकनपतिसे मिल कर उसके विरुद्ध युद्ध ठान दिया। परन्तु १५४२ ई०में वे आत्म-समर्पण करनेको वाध्य हुए। मिन-तारा पुर्त्तगीज-दस्यु-के हाथसे १५५० ई०में मारे गये। वोस वर्षके भीतर वे एक सामान्य सरदारसे एक छत्राधिपति हो गये थे। पेगू, तेनसेरिम और पगान तक समस्त उत्तर ब्रह्म उनके अधिकारमें आ गया था। श्याम और ब्रह्मपति उन्हें कर दिया करते थे।

मिन-ताराके मरनेके वाद उनके सेनापति वुरिन् नौङ्ग-सोनव्य-स्य-सिन राज्याधिकारी हुए। अव वे अपना आधिपत्य और भी अधिक दूर तक फैलानेकी चेष्टा करने लगे। प्रोम, तौङ्ग-ग्नू आदि शासनकर्त्ता जव स्वाधीन होनेका षड़यन्त्र कर रहे थे, तव उन्होंने जा कर उनका वड़ी वुरी तरहसे दमन किया। पीछे अपने भाई और पुत्रको वहांके शासनकर्त्ता वना कर आप चल दिये। १५८१ ई०में वुरिन्की मृत्यु होनेके वाद राज्य भरमें अराजकता फैल गई। सवोंने अपनेको स्वाधीन वतला कर घोषणा कर दी। राजधानी तौङ्गग्नूमें उठा कर लाई गई। न्यौ-रण-मिन्-तारा नामक उनके एक पुत्रने आवा नगरीमें राज्य वसाया।

आवा नगरमें इस द्वितीय राजवंशने प्रायः पचास वर्ष तक राज्य किया। इसके वाद पेगूराजके वार वार आक्रमणसे वे सम्पूर्णरूपसे परास्त हुए। आवाराजकी तरफसे भेजे हुए कर्मचारियोंके अत्याचारसे उत्पीड़ित हो तलैङ्ग लोग विद्रोही हो गये। उन्होंने स्वाधीनताकी घोषणा करते हुए अपने द्वितीय राजा, ब्नि-ल्य-दलकी सहायतासे ब्रह्मराज्यको लूटा और आवा नगर जीत कर ले वहांके राजाको वन्दीभावमें पेगू नगर लाये। सभी सामन्तोंने तलैङ्गकी वश्यता स्वीकार तो की, पर मुत्-सो-वोके अधिपतिने पेगूराजके मातहत होना न चाहा। उन्होंने अपने शौर्य और वीर्यसे सभी ब्रह्मवासियोंको उभाड़ा और तलैङ्गोंको आवा नगर तथा समग्र उत्तरब्रह्म-से खदेड़ भगाया। इस समय वे अलोङ्ग-मिन-तारा-ग्यि वा अलोङ्ग पाया नाम धारण कर राज्यशासन करने लगे।

१७५३ ई०में पुनः तृतीयवंशकी प्रतिष्ठा हुई। १७५८ ई०में वे पेगूराज्यको जीत कर राजाको कैद कर लाये।

इस समयसे ले कर १८५३ ई०में इराज ब्रह्मयुद्धके वाद लार्ड डलहौसी कर्तृक पेगूके अधिकार पर्यन्त प्रोम ब्रह्मराज्यके अन्तर्भुक्त रहा।

जिलेमें ३५ शहर और १७६१ ग्राम हैं। जनसंख्या चार लाखके करीव है। जिलेके मध्य प्रोम नगरका श्वे-सन-द्व और उससे ७ कोस दक्षिण श्वे नाद्-द्व पागोदा ही सर्वोत्कृष्ट है। पहला पर्वतके ऊपर ११०२५ वर्गफुट तक फैला हुआ है। इसकी ऊंचाई प्रायः ८० फुट है। उस पागोदाके चारों ओर ८३ मन्दिर हैं। प्रत्येक मन्दिरमें एक एक गौतमबुद्धकी मूर्त्ति प्रतिष्ठित हैं। पूर्वापर राजा और शासनकर्त्ताओंके यत्नसे इस पागोदाका संस्कार हुआ है। श्वे-ना-पागोदा भीट् करीव करीव ऊंचाईमें उसीके समान है। उक्त दो मन्दिरोंके सामने प्रतिवर्ष एक एक मेला लगता है। यहां रेशम और चावलकी फसल अच्छी लगती है।

जिले भरमें १६ सेकण्ड्री, १३० प्राइमरी और ४३० एलिमेण्ट्री स्कूल हैं। प्रोम और पौङ्गदेमें जो स्कूल हैं वही सवसे वड़े और प्रसिद्ध हैं। स्कूलके अलावा यहां अस्पताल भी हैं जहां रोगीयोंकी अच्छा सेवा शुश्रूषा होती है।

२ पेगू विभागके प्रोम जिलेकी राजधानी और सदर। यह इरावती नदीके वाएं किनारे अक्षा० १८° ४´ उ० और देशा० ९५° १३´ पू०के मध्य अवस्थित है। थिन-सुके उत्तर विख्यात श्वे-सान्-द्व पागोदा है। प्रवाद है, कि सात थान सोनेके ऊपर एक मरकत वक्सके मध्य गौतम बुद्धके तीन वाल हैं, उसीके ऊपर यह मन्दिर वनाया गया है। १८६२ ई०में भीषण अग्निसे यह नगर विलकुल भस्मीभूत हो गया था।

ईसा जन्मके पहलेसे प्रोमनगर राजधानीरूपमें गण्य होता आ रहा है। थ-रै-खेत (श्रीक्षेत) नगरका ध्वंसावशेष आज भी अभ्यन्तर भागमें दृष्टिगोचर होता है। १ली शताब्दीके शेषभागमें थ-रै-खेतके परित्यक्त होनेके वाद प्रोम कुछ समयके लिये आवा और कुछ समयके लिये पेगूके शासनाधीन रहा। फिर कुछ समय तक यह स्वाधीन भी था। इसके वाद भारतके वड़े लाट डलहौसीने इसे भारत-राज्यकी सीमामें मिला लिया।

१८७४ ई०में यहां म्युनिसिपलिटी स्थापित हुई है। शहरमें एक म्युनिसिपल हाई स्कूल भी है। यहांका जो अस्पताल है उसका भी खर्च म्युनिसिपलिटी देती है।

प्रोमिसरीनोट—प्रामिसरीनोट देखो।

प्रोमोशन (अं० पु०) १ किसी पदाधिकारीका अपने पदसे ऊंचे पद पर नियुक्त किया जाना, तरक्की। २ विद्यार्थीका किसी कक्षामेंसे आगेकी कक्षामें भेजा जाना, दर्जा चढ़ना।

प्रोम्भण (सं० क्ली०) प्रकृष्टरूपसे पूरण।

प्रोर्णुनविषु (सं० त्रि०) प्र-उर्णु ञ् आच्छादने सन्-उ। आच्छादनाभिलाषी।

प्रोर्णुनाव (सं० पु०) सन्निपात ज्वरविशेष।

प्रोल्लाघित (सं० त्रि०) रोगमुक्त।

प्रोष (सं० पु०) प्र-उष-दाहे-भावे घञ्। सन्ताप, वहुत अधिक दुःख या कष्ट।

प्रोषक (सं० पु०) महाभारतके अनुसार एक देशका नाम।

प्रोषित (सं० त्रि०) वस-क्त, इट्, सम्प्रसारणं, प्रकृष्टदूरं उषितः। प्रवासगत, जो विदेश गया हो।

प्रोषितनायक (सं० पु०) वह जो विदेशमें अपनी पत्नीके वियोगसे विकल हो।

प्रोषितपतिका (सं० स्त्री०) पतिके विदेश जानेसे दुःखित स्त्री। प्रोषितभर्तृका देखो।

प्रोषितप्रेयसी (सं० स्त्री०) प्रोषितभर्तृका देखो।

प्रोषितभर्तृका (सं० स्त्री०) प्रोषितो विदेशगतो भर्त्ता यस्याः, समासान्तकप् प्रत्ययः। विदेशस्थ पतिका। जिस स्त्रीका स्वामी विदेशमें रहता है, उसे प्रोषितभर्तृका कहते हैं।

"नानाकार्यवशाद् यस्या दूरदेशं गतः पतिः।
सा मनोभवदुःखार्त्ता भवेत् प्रोषितभर्तृका॥"
(सा० ३।११८)

नाना प्रकार कार्यवशतः जिसका पति दूर देश गया हो, उस कन्दर्पपीड़िता नारीको प्रोषितभर्तृका कहते हैं। प्रोषितभर्तृका नारीके लिये हंसना, दूसरे घर जाना, समाजोत्सव देखना, क्रीड़ा और शरीरसंस्कार करना वर्जनीय है।

"हास्यं परगृहे यानं समाजोत्सवदर्शनम्।
क्रीड़ां शरीरसंस्कारं त्यजेत प्रोषितभर्तृका॥"
(चिन्तामणि)

जिस स्त्रीका पति परदेश गया हो, उसे परपुरुषके साथ आलाप, केशादिका संस्कार और सब प्रकारका प्रमोदजनक विषय परित्याग करना चाहिये।

रसमञ्जरीमें लिखा है, कि प्रोषितभर्तृका स्त्रियोंके दश प्रकारकी अनङ्ग दशा अर्थात् पतिविषयक चेष्टा होती है। यथा—१ पत्यभिलाष, २ पतिचिन्ता, ३ स्मृति, ४ गुणोत्कीर्त्तन, ५ उद्वेग, ६ विलाप, ७ उन्माद, ८ व्याधि, ९ जड़ता, १० मृत्यु। पतिके विदेश जाने पर पहले उस विषयमें अतिशय अभिलाष होता है, पीछे चिन्ता आदि उपस्थित हो जाती है। यहां तक, कि आखिरमें उसकी मृत्यु भी हो जाया करती है। रसमञ्जरीके मतसे यह प्रोषितभर्तृका नायिका दो प्रकारकी है, प्रोषितभर्तृका और प्रोष्यत्भर्तृका। जिस स्त्रीका पति विदेश गया हो उसे प्रोषितभर्तृका और जिसका पति जानेवाला हो, उसे प्रोष्यत्भर्तृका कहते हैं।

प्रोषितभार्यानायक (सं० पु०) प्रोषिता-भार्या यस्य प्रोषितभार्याः तादृशः नायकः कर्मधा०। नायकभेद। जिसकी पत्नी विदेशमें रहती हो, उसे प्रोषितभार्यानायक कहते हैं।

प्रोष्यत्पत्नीनायक (सं० पु०) नायकविशेष । जिसकी पत्नी विदेश जायगी, ऐसे नायकको प्रोष्यत्पत्नी-नायक कहते हैं।

प्रोष्ठ (सं० पु०) प्रकृष्ट ओष्ठोऽस्येति (ओत्वोष्ठयोः समासे वा । पा ६।१।६४) इत्यस्य वार्त्तिकोक्त्या साधुः । १ प्रोष्ठी-मत्स्य; सौरी नामकी मछली । २ गो, गाय । ३ महा-भारतके अनुसार एक प्राचीन देशका नाम जो दक्षिण-में था ।

प्रोष्ठपद (सं० पु०) प्रोष्ठो गौस्तस्येव पादौ यस्य सः (सुप्रातसुश्वसुदिवेति । पा ५।४।१२०) इति अच् प्रत्ययेन साधुः, प्रोष्ठपदो नक्षत्रविशेषस्तद्युक्ता पौर्णमासी यत्र मासे अण्, पक्षे न वृद्धिः । १ भाद्रमास, भादोंका महीना । २ नक्षत्रविशेष, पूर्वभाद्रपद और उत्तरभाद्रपद नक्षत्र । (त्रि०) ३ गोतुल्य पदयुक्त, गायके जैसा पांववाला ।

प्रोष्ठपदा (सं० स्त्री०) प्रोष्ठो गौस्तस्यैव पादा यासां ततो बहुव्रीहावच् पद्भावश्च निपातितः । पूर्वभाद्रपद नक्षत्र, उत्तरभाद्रपद नक्षत्र ।

प्रोष्ठपदी (सं० स्त्री०) प्रोष्ठपदाभिर्युक्ता पौर्णमासी अण्; स्त्रियां ङीप् । भाद्रमासकी पूर्णिमा ।

प्रोष्ठपाद (सं० त्रि०) १ प्रोष्ठपदामें जात, जो पूर्वभाद्रपद उत्तरभाद्रपद नक्षत्रमें उत्पन्न हुआ हो । २ मानचक्र । (पु०) ३ पूर्वभाद्रपद और उत्तरभाद्रपद नक्षत्र ।

प्रोष्ठिल—एक जैनाचार्य । आप जैनधर्मशास्त्रोक्त द्वादशाङ्ग-में पण्डित थे । महावीरकी मृत्युके १७२ वर्ष बाद आप १६ वर्ष तक आचार्यरूपमें परिचित रहे ।
(सरस्वतीगच्छपट्टावली)

प्रोष्ठी (सं० पु० स्त्री०) प्रोष्ठनासिकोदरोष्ठेति जातेरिति वा ङीप् । मत्स्यभेद, सौरी नामकी मछली । पर्याय—शफरी, शफर, श्वेतकोल । गुण—तिक्त, कटु, स्वादु, शुक्र-कारक, कफवातनाशक, स्निग्ध, मुख और कण्ठरोग-नाशक तथा श्रेष्ठ ।

प्रोष्ण (सं० त्रि०) अत्यन्त उष्ण, जो बहुत गरम हो ।

प्रोष्य (सं० अव्य०) प्र-वस-ल्यप् । विदेश जा कर ।

प्रोह (सं० पु०) प्रोह्यते वितर्क्यते विस्मयाकुलितैरिति प्र-ऊह-घञ् । १ हस्तिचरण, हाथके पैर । २ पर्व, सन्धिस्थान । ३ हस्तिचरणपर्व, हाथीके पैरके संधि-स्थान । ४ तर्क । (त्रि०) ५ निपुण, चतुर ।

प्रोहकटा (सं० त्रि०) प्रोहकटट इत्युच्यते यस्यां क्रियायां मयूरव्यं समासः । कटटसम्बोधनकं प्रकृष्ट ऊहार्थ निर्देशक्रिया ।

प्रोहकर्दमा (सं० स्त्री०) प्रोहः कर्दम इत्युच्यते यस्यां क्रियायां मयूरव्य० समासः । कर्दम सम्बोधनक ऊह-निर्देशक्रिया ।

प्रोहण (सं० क्ली०) प्र-ऊह-ल्युट् । प्रोह, तर्क ।

प्रोह्यपदि (सं० अव्य०) प्रोह्यौ पादौ यत्र प्रहरणे द्वित्-पद्यां समासः इच् ततः पद्भावः । दो पैरोंसे अच्छी तरह मारना ।

प्रौढ़ (सं० त्रि०) प्रोह्यते स्मेति, प्र-वह-क्त, सम्प्रसारणं ततो वृद्धिः । १ वर्द्धित, अच्छी तरह बढ़ा हुआ । २ प्रगल्भ, पुष्ट, मजबूत । ३ निपुण, चतुर, होशियार । ४ एकरूपसे ऊढ़, यथाविधि विवाहित । ५ जिसकी अवस्था अधिक हो चली हो, जिसकी युवावस्था समाप्ति पर हो । ६ युवा, जवान । ७ पुरातन, पुराना । ८ गम्भीर, गूढ़ । (पु०) ६ तान्त्रिकोंका चौबीस अक्षरोंका एक मन्त्र ।

प्रौढ़ता (सं० स्त्री०) प्रौढ़ होनेका भाव, प्रौढ़त्व ।

प्रौढ़त्व (सं० क्ली०) प्रौढ़स्य भावः त्व । प्रौढ़का भाव या धर्म, प्रौढ़ावस्था ।

प्रौढ़पाद (सं० पु०) प्रौढ़ः पादो यस्य । आसनारोपित पादतल, पैरके दोनों तलुए जमीन पर रख कर बैठना । शास्त्रोंमें इस प्रकार बैठ कर भोजन, स्नान, तर्पण, पूजन, अध्ययन आदि कार्य करना मना है ।

प्रौढ़ा (सं० स्त्री०) प्रौढ़-टाप् । नायिकाभेद । पर्याय—चिरिण्टी, सुवयाः, श्यामा, दृष्टरजाः । नायिका चार प्रकारकी है, बाला, तरुणी, प्रौढ़ा और वृद्धा । साधारण ३० वर्षसे ५० या ५५ वर्ष तककी स्त्री प्रौढ़ा मानी जाती है । भावप्रकाशके अनुसार ऐसी स्त्री केवल वर्षा और वसन्त ऋतुमें सम्भोग करने योग्य होती है और किसी समय नहीं । साहित्यमें इसके रतिप्रीता और आनन्द-सम्मोहिता ये दो भेद माने गये हैं । मानके भेदानुसार धीरा, अधीरा और धीराधीरा ये तीन भेद तथा स्वभावके अनुसार अन्यसुरतदुःखिता, वक्रोक्तिगर्विता और मान-वती ये तीन भेद माने जाते हैं । अलावा इसके स्वकीया,

परकीया और सामान्या ये तीन भेद इसमें लगते हैं। २ वह स्त्री जिसे जवान हुए बहुत दिन हो चुके हों।

प्रौढ़ा-अधीरा (सं० स्त्री०) वह प्रौढ़ा नायिका जो अपने नायकमें विलाससूचक चिह्न देखने पर प्रत्यक्ष कोप करे, अधीरा नायिकाका-लक्षणसम्पन्न प्रौढ़ा।

प्रौढ़ाधीरा (सं० स्त्री०) वह प्रौढ़ा नायिका जो नायकमें विलाससूचक चिह्न देखने पर प्रत्यक्ष कोप न करके व्यंग्यसे कोप प्रकट करे, ताना मार कर क्रोध प्रकट करनेवाली प्रौढ़ा।

प्रौढ़ाधीराधीरा (सं० स्त्री०) वह प्रौढ़ा जिसमें धीराधीराके गुण हों, वह नायिका जो अपने नायकमें पर-स्त्रीगमन-के चिह्न देखने पर कुछ प्रत्यक्ष और कुछ व्यंग्यपूर्वक कोप प्रकट करे।

प्रौढ़ि (सं० स्त्री०) प्र-वह-क्तिन्, सम्प्रसारणं प्रादूहेति वृद्धिः। १ सामर्थ्य, शक्ति। पर्याय—उत्साह, प्रगल्भता, अभियोग, उद्योग, उद्यम, कियदेतिका, अध्यवसाय, ऊर्ज। २ धृष्टता, ढिठाई। ३ प्रौढ़ता। ४ वादविवाद।

प्रौढ़ोक्ति (सं० स्त्री०) १ अलङ्कारविशेष। इसमें जिसके उत्कर्षका जो हेतु नहीं है, वह हेतु कल्पित किया जाता है। २ गूढ़रचना, किसी बातको खूब बढ़ा कर कहना।

प्रौण (सं० त्रि०) प्र-उण्-अपनयने अच्। १ निपुण। २ प्रकर्षरूपसे अपसारक।

प्रौष्ठ (सं० पु०) प्रकृष्ट ओष्ठोऽस्य वा बाहु० वृद्धिः। मत्स्यभेद, सौरी मछली।

प्रौष्ठपद (सं० पु०) प्रौष्ठो गौस्तस्येव पादा यासामिति प्रोष्ठपदा नक्षत्रविशेषाः, तद्युक्ता पौर्णमासी, प्रोष्ठपद (नक्षत्रेण युक्तः कालः। पा ४।२।३) इति अण् ङीप्। सोऽस्मिन् पौर्णमासीति। पा ४।२।२१) इति अण्। १ भाद्र मास। इस मासमें जो एकाहार रहते हैं, वे समस्त ऐश्वर्य लाभ करते हैं। २ कुबेरके निधिरक्षकोंमेंसे एकका नाम। (त्रि०) ३ प्रोष्ठपदामें अर्थात् उत्तरभाद्रपद तथा पूर्वभाद्र-पद नक्षत्रमें जात।

प्रौष्ठपदिक (सं० पु०) भाद्रपद, भादों।

प्रौष्ठपदी (सं० स्त्री०) भाद्रमासकी पूर्णिमा।

प्रौष्ठिक (सं० त्रि०) उत्तम ओष्ठयुक्त।

प्रौह (सं० पु०) प्र ऊह-क, प्रादूहेति वृद्धिः। प्रकर्षरूपसे ऊह, यथाविधि विवाह।

प्लक (सं० पु०) प्र-कै-क, रस्य ल। स्त्रियोंका अधोऽङ्ग-भेद, स्त्रियोंका कमरके नीचेका भाग।

प्लक्ष (सं० पु०) प्लक्ष्यते भक्ष्यते विहगादिभिरिति प्लक्ष-कर्मणि घञ्। १ वृक्षविशेष, पाकर नामका वृक्ष। इसे तैलङ्गमें गङ्गरुजुचि और तामिलमें पोरिशरावी कहते हैं। बृहत् प्लक्षका संस्कृत पर्याय—जटी, पर्कटी, पर्कटि, प्लक्षा, प्लीक्षा, जटि, कपोतन, क्षीरी, सुपार्श्व, कमण्डलु, शृङ्गी, अवरोहशाखी, गर्दभाण्ड, कपीतक, दृढ़प्ररोह, प्लवक, प्लवङ्ग, महावल। छोटे प्लक्षका पर्याय—सूक्ष्म, सुशीत, शीतवीर्यक, पुण्ड्र, महावरोह, ह्रस्वपर्ण, पिम्परि, भिदुर, मङ्गलच्छाय। गुण—कटु, कषाय, शिशिर, रक्तदोष, मूर्च्छा, भ्रम और प्रलापनाशक तथा भावप्रकाशके मतसे योनिदोष, दाह, पित्त, कफ, शोथ और रक्तपित्तनाशक। २ अश्वत्थवृक्ष, पीपल। ३ सात कल्पित द्वीपोंमेंसे एक द्वीपका नाम। भागवतमें लिखा है, कि यह जम्बूद्वीपके चारों ओर है और दो लाख योजन विस्तृत है। यहां एक प्रकाण्ड प्लक्षका वृक्ष है। यह वृक्ष जम्बूद्वीपमें जो जामून-का वृक्ष है उसीके समान उन्नत और विस्तृत है। इसी प्लक्षवृक्षसे इस द्वीपका नामकरण हुआ है। यह वृक्ष हिर-ण्यमय है और इस पर सप्तजिह्वअग्नि स्वयं अवस्थित हैं। प्रियव्रतके पुत्र इध्मजिह्व इस द्वीपके अधिपति माने जाते हैं। वे इस द्वीपको सात वर्षोंमें विभक्त कर सात वर्षोंके नाम पर जिनके नाम थे, उन्हें वे सात वर्ष समर्पण कर आप तपस्यामें लग गये। उक्त सात वर्षोंके नाम ये हैं—शिव, वयस, सुभद्र, शान्त, क्षेम, अमृत और अभय। उक्त सात वर्षोंमें मणिकूट, वज्रकूट, इन्द्रसोम, ज्योतिष्मान्, सुवर्ण, हिरण्यष्ठीव और मेघमाल नामके सात पर्वत और अरुणा, नृमला, आङ्गिरसी, सावित्री, सुप्रभाता, ऋत-म्भरा और सत्यम्भरा नामकी सात नदियां हैं। इन सब नदियोंका जल स्पर्श करनेसे रजःतमोगुण-रहित हो कर यथाक्रम ब्राह्मणादि चार वर्णोंके हंस, पतङ्ग, ऊर्द्धायन और सत्याङ्ग नामक चार व्यक्ति हजार वर्षकी परमायुलाभ करते हैं। ये लोग आत्मविद्यालाभ करके देवताके सदृश हो अवस्थान करते हैं। (भाग० ५।२० अ०)

विष्णुपुराणमें लिखा है,—जम्बूद्वीप जिस प्रकार लवणसमुद्र द्वारा परिवेष्टित है, उसी प्रकार प्लक्षद्वीप भी लवणसमुद्रको घेरे हुए है। जम्बूद्वीपका विस्तार लाख योजन है, पर इसका विस्तार उससे दूना है। प्लक्षद्वीपके अधिपति मेधातिथिके सात पुत्र हैं। इनके नाम यथाक्रम ये हैं—शान्तमय, शिशिर, सुखोदय, आनन्द, शिव, क्षेमक और ध्रुव। इन्हींके नाम पर क्रमशः शांतमय वर्ष, शिशिरवर्ष, सुखोदयवर्ष, आनन्दवर्ष, शिववर्ष, क्षेमकवर्ष और ध्रुववर्ष कहलाये। इस द्वीपमें जो ७ प्रधान पर्वत हैं उनके नाम ये हैं—गोमेद, चन्द्र, नारद, दुन्दुभि, सोमक, सुमना और वैभ्राज। इन सब रमणीय वर्षाचलों पर देव और गन्धर्वोंके साथ समस्त प्रजा सुखसे रहती है। इन सब पर्वतोंके ऊपर पवित्र जनपद बसे हुए हैं। यहांके मनुष्योंकी परमायु पांच हजार वर्ष है। यहां आधिव्याधिजनित दुःख नहीं है, निरवच्छिन्न केवल आनन्द है। इन सब वर्षोंमें समुद्रगामिनी ७ प्रधान नदियां बहती हैं। इन सब नदियोंके नाम हैं—अनुतप्ता, शिखी, विपाशा, त्रिदिवा क्रमु, अमृता और सुकृता। इन सब वर्षोंमें यों तो अनेक पर्वत और नदी हैं, पर अप्रधान रहनेके कारण यहां उनका उल्लेख नहीं किया गया। यहांके लोग उक्त नदियोंके जलका व्यवहार करके धन्य और पवित्र हो गये हैं। इन सात स्थानोंमें युगावस्था नहीं है, त्रेतायुग हमेशा समभावमें वर्त्तमान रहता है। यहां वर्णाश्रम विभागानुसार पांच प्रकारके धर्म हैं, यथा—ब्रह्मचर्य, अहिंसा, सत्य, अस्तेय और अपरिग्रह। इन सब वर्षोंमें चातुवर्ण्य-नियम प्रतिष्ठित हैं। वहांको जो आर्यक, कुरु, विविंश और भावी जाति हैं, वे ही मृत्यलोकमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र कहलाती हैं। जम्बूद्वीपमें जो जम्बूवृक्ष है उसीके जैसा यहां एक महान् प्लक्षवृक्ष है। उसी प्लक्षवृक्षसे इसका प्लक्षद्वीप नाम पड़ा है। इस वृक्ष पर जगत्स्रष्टा भगवान्‌विष्णु लोगोंसे पूजित होते हैं। (विष्णुपु० २।४ अ०)

कूर्मपुराणके भुवनकोषके ४६वें अध्यायमें इस प्लक्षद्वीपका विस्तृत विवरण लिखा है, विस्तार हो जानेके भयसे यहां नहीं लिखा गया। ४ बड़ी खिड़की या दरवाजा। ५ एक तीर्थका नाम।

प्लक्षकीय (सं० त्रि०) प्लक्षस्यादूरदेशादि नड़ादित्वात् छ। प्लक्षके निकटवर्त्ती, प्लक्षके समीप।

प्लक्षजाता (सं० स्त्री०) प्लक्षात् तत्समीपस्थप्रस्रवणात् जाता। सरस्वती नदीका एक नाम।

प्लक्षतीर्थ (सं० क्ली०) प्लक्षसमीपस्थं तीर्थं मध्यपदलोपि०। तीर्थभेद, हरिवंशके अनुसार एक तीर्थका नाम।

प्लक्षप्रस्रवण (सं० क्ली०) प्लक्षस्य समीपस्थं प्रस्रवणं। सरस्वती नदीका उत्पत्तिस्थान।

(भारत शल्यप० ५० अ०)

प्लक्षराज (सं० पु०) प्लक्षाणां राजा, टच्‌समासान्तः। १ सोमतीर्थस्थित प्लक्षवृक्ष। २ सरस्वतीका उत्पत्तिस्थान।

प्लक्षादि (सं० पु०) प्लक्ष आदि करके पाणिन्युक्त शब्दगण। यथा—प्लक्ष, न्यग्रोध, अश्वत्थ, इंगुदी, शिग्रु, रुरु, कक्षतु, बृहती।

प्लक्षादेवी (सं० स्त्री०) सरस्वती नदी।

प्लक्षावतरण (सं० क्ली०) अवतरत्यस्मात् अव-तृ-अपादाने ल्युट्। महाभारतके अनुसार एक स्थानका नाम जहांसे सरस्वती नदी निकलती है।

प्लुति (सं० पु०) ऋषिभेद, एक वैदिक ऋषिका नाम।

प्लव (सं० क्ली०) प्लवते इति-प्लु-अच्। १ कैवर्त्तीमुस्तक, केवटी मोथा। २ नागरमोथा। ३ गन्धतृण, एक प्रकारकी सुगन्धित घास। ४ प्लवन, बाढ़। ५ प्लुतग, प्लुतगतियुक्त। ६ बेड़ा। ७ भेक, मेंढ़क। ८ अवि, भेड़ा। ९ श्वपच, चण्डाल। १० कपि, बन्दर। ११ जलकाक, एक जलकौआ नामका पक्षी। १२ कुलक, मकरतेंदुआ नामका वृक्ष। १३ प्रवण, उतार, ढाल। १४ पर्कटीद्रुम, पाकर। १५ कारण्डव पक्षी। १६ शब्द, आवाज। १७ प्रतिगति, लौटना, वापस आना। १८ प्रेरण, भेजना। १९ शत्रु, दुश्मन। २० पलव, मछली पकड़नेका काठका टापा। २१ जलकुक्कुट, जलमुर्गा। २२ बकविशेष, एक प्रकारका बगला। २३ साठ संवत्सरोंमेंसे पैंतीसवां संवत्सर। २४ उछल कर या उड़ कर जानेवाले पक्षी। २५ स्नान, नहाना। २६ प्लवन, तैरना। २७ एक प्रकारका छन्द। २८ गज, हाथी। २९ गोपालकरञ्ज। ३० अन्न, अनाज। ३१ जलचर पक्षिमात्र, जलमें तैरनेवाली चिड़िया। भावप्रकाशके मतसे हंस, सारस,

कारण्डव, वक, क्रौञ्च, सरारिका, नन्दीमुखी, कादम्ब और बलाकादि जलचर पक्षियोंको प्लव कहते हैं। ये सब जलमें प्लवन अर्थात् तैरते हैं, इसीसे इनका प्लव नाम पड़ा है। इनके मांसका गुण—पित्तनाशक, स्निग्ध, मधुर, गुरु, शीतल, वातश्लेष्मनाशक, बल और शुक्रवर्द्धक।

सुश्रुतके मतसे हंस, सारस, क्रौञ्च, चक्रवाक, कुवर, कादम्ब, कारण्डव, जीवञ्जीवक, वक, वलाका, पुण्डरीक, प्लव, शरीरमुख, नन्दीमुख, मद्गु, उत्क्रोश, काचाक्ष, मल्लिकाक्ष, शुक्लाक्ष, पुष्करशायी, काकोनाल, काम्बु, कुक्कुटका, मेघराव और श्वेतचरण प्रभृति पक्षी प्लव कहलाते हैं। ये सब जलमें उछलते कूदते और तैरते हैं, इसीसे यह नाम पड़ा है। इस प्रकारके पक्षी संघात-चारी होते अर्थात् दल बांध कर चरने निकलते हैं। इनके मांसका गुण—रक्तपित्तनाशक, शीतल, स्निग्ध, वृष्य, वायुदमनकारी, मलमूत्रका वर्द्धक, रस और पाकमें मधुर माना गया है। (त्रि०) ३२ तैरता हुआ। ३३ झुकता हुआ। ३४ क्षणभंगुर।

प्लवक (सं० पु०) प्लवते इवेति प्लु-अच्, ततः स्वार्थे संज्ञायां वा कन्। १ खड्ग धारादि पर नर्त्तक, तलवारकी धार पर नाच करनेवाला पुरुष। संस्कृत पर्याय—केलक, केकल, नर्त्तु, केलिकोप, कलायन। २ चण्डाल। ३ संत-रणोपजीवी, वह जो तैर कर अपना गुजारा चलाता हो। ४ भेक, मेढ़क। ५ प्लक्ष, पाकर। (त्रि०) ६ तैरनेवाला, पैराक।

प्लवग (सं० पु०) प्लवेन प्लुतगत्या गच्छतीति गम-(अन्येष्वपि दृश्यते। पा ३।२।१०१) इति ड। १ वन्दर। २ भेक, मेंढ़क। ३ सूर्यसारथि। ४ प्लवपक्षी, जल-पक्षी। ५ शिरीषवृक्ष, सिरसका पेड़। ६ मृग, हरिण। (त्रि०) ७ कूदनेवाला, उछलनेवाला। ८ तैरनेवाला।

प्लवगति (सं० पु०) प्लवेन गतिर्यस्य। १ भेक, मेंढ़क। (स्त्री०) प्लवस्य भेकस्य गतिः। २ भेकादिकी गति, मेंढ़क आदिकी चाल। ३ प्लुतगति, कूद कूद कर जानेकी चाल।

प्लवङ्ग (सं० पु०) प्लवेन प्लुतगत्या गच्छतीति गम-(गमश्च। पा ३।२।४७) इति खच् 'खच्च डिद्वा वाच्यः' इति डित् डित्वात् टेलोपः मुमागमः। १ वानर, वन्दर। २ मृग, हिरन। ३ प्लक्ष, पाकर। ४ साठ संवत्सरोंमें इकतालीसवां संवत्सर।

प्लवङ्गम (सं० पु०) प्लवेन गच्छतीति गम (गमश्च। पा ३।२।४७) १ भेक, मेंढ़क। २ वानर, वन्दर। ३ एक छन्द। इसके प्रत्येक पादमें ८।१३के विराममें २१ मात्राएं होती हैं। आदिका वर्ण गुरु और अन्तमें १ जगण और १ गुरु होता है। (त्रि०) ४ प्लुतगतियुक्त, कूद कूद कर चलनेवाला।

प्लवन (सं० पु०) १ उछलना, कूदना। २ सन्तरण, तैरना। ३ प्रवण, उतार।

प्लवर्ग (सं० पु०) १ अग्नि, आग। २ जलपक्षी।

प्लववत् (सं० त्रि०) प्लव-मतुप्-मस्य व। प्लवयुक्त।

प्लविक (सं० पु०) प्लवेन तरति ठन्। प्लवद्वारा तरण-कारी, जो बेड़े के सहारे तैरता हो।

प्लविता (सं० त्रि०) प्लव-तृच्। प्लव द्वारा तरणकारी, बेड़े द्वारा तैरनेवाला, तैराक।

प्लांचेट (अं० पु०) मेस्मेरेज्म पर विश्वास रखनेवालोंके कामकी एक छोटी तख्ती। इसका आकार पान सा होता है। इसके विस्तृत भागके नीचे दो पाये मढ़े हुए होते हैं। इन पायोंके नीचे छोटे छोटे पहिए संलग्न होते हैं। उस छेदमें एक पेंसल लगा दी जाती है। कहते हैं, कि जब एक या दो मनुष्य उस तख्ती पर धीरे धीरे अपनी उंगलियां रखते हैं, तब वह खसकने लगती है और उसमें लगी हुई पेंसिलसे लकीरें, अक्षर, शब्द और वाक्य बनते हैं। उन्हीं प्रश्नोंसे लोग अपने प्रश्नोंका उत्तर निकाला करते हैं अथवा गुप्त भेदोंका पता लगाया करते हैं। यह १८५५ ई०में आविष्कृत हुआ था और इसके सम्बन्धमें कुछ दिनों तक लोगोंमें बहुतसे झूठे विश्वास थे।

प्लाक्ष (सं० क्ली०; प्लक्षस्य फलं (प्लक्षादिभ्योऽण्। पा ४।३।१६४) इत्यण्विधानसामर्थ्यात् तस्य फले न लुक्। १ प्लक्ष वृक्षका फल, पाकरका फल। २ प्लक्षका विकार। ३ प्लक्ष समूह। ४ प्लक्षका भाव। ५ प्लक्षका हितकर। (त्रि०) ६ प्लक्ष सम्बन्धी।

प्लाक्षकि (सं० पु०) प्लक्षभव, प्लक्षका गोलापत्य।

प्लाक्षायन (सं० पु०) प्लाक्षिके गोत्रमें उत्पन्न।

प्लाक्षि (सं० पु०) १ प्लक्षका गोत्रापत्य। (स्त्री०) २ प्लाक्षी।

प्लाट (अं० पु०) १ इमारत बनाने या खेती आदि करनेके लिये जमीनका टुकड़ा। २ षड़यन्त्र, साजिश। ३ उपन्यास, नाटक या काव्य आदिकी वस्तु या मुख्य कथा-भाग, वस्तु। ४ इमारत बनानेका नकशा। ५ कोई कार्य करनेका निश्चित किया हुआ ढंग, मनसूबा।

प्लाटफार्म (हिं० पु०) प्लेटफार्म देखो।

प्लायोगि (सं० पु०) प्रयोगनाम्नः राज्ञः पुत्रः इञ् वेदे रस्य लः। प्रयोग नामक राजाका पुत्र।

प्लाव (सं० पु०) १ परिपूर्णता। २ गोता, डुबकी।

प्लावगा (सं० पु०) मर्कट, बन्दर।

प्लावन (सं० क्लो०) प्लु-णिच्-ल्युट्। १ द्रवद्रव्यका ऊद्‌ध्वंप्रापण, तरल पदार्थको ऊपर फेंकना। २ मज्जन, खूब अच्छी तरह धोना, बोर। ३ वन्या, बाढ़। ४ सन्तरण, तैरना।

प्लावित (सं० पु०) प्लु-णिच्-क्त। जो जलमें डूब गया हो, पानीमें डूबा हुआ।

प्लाव्य (सं० त्रि०) प्लु-ण्यत्। जलमें डुबानेके योग्य, जो जलमें डुबाया जाय।

प्लाशि (सं० स्त्री०) प्रकर्षेण अश्नाति भुङ्क्तेऽनया प्र-अश् करणे इ, वेदे रस्य ल। शिश्नमूलस्थ नाड़ी, पुरुषके मूत्रेन्द्रियकी जड़के पासकी नाड़ी।

प्लाशुक (सं० त्रि०) प्रकर्षेण आशु कायति कै-क, वेदे रस्य-ल। प्रकर्षरूपसे आशु पच्यमान, जो शीघ्र पक जावे।

प्लाशुचित् (सं० अव्य०) शीघ्र, जल्दी।

प्लास्टर (अं० पु०) १ एक डाकृरी औषध। यह औषध शरीरके किसी रुग्न अङ्ग पर उसे अच्छा करनेके लिये लगाई जाती है। २ ईंटों आदिकी दीवारों पर लगानेके लिये सुर्खी चूने आदिका गाढ़ा लेप, पलस्तर।

प्लास्टर आफ पेरिस (अं० पु०) एक प्रकारकी ठोस और कड़ा अङ्गरेजी मसाला। यह धातु, चीनी, पत्थर और शीशे आदिके पदार्थोंको जोड़ने और मूर्त्तियां आदि बनानेके काममें आता है। जलमें मिला कर किसी स्थान पर लगाते ही यह दृढ़तापूर्वक बैठ जाता और फैल कर सन्धियों आदिको भरने लगता है।

प्लिनि—जगद्विख्यात रोमक पण्डित। इनका पूरा नाम था कायस प्लिनियस सिकण्डस (Caius Plinius Secundus)। इनका अभ्युदय होने पर प्लिनि वंशका मुख उज्ज्वल हुआ था। जनसाधारण इन्हें 'दि एल्डर' कहा करते थे।(१) यौवनकालमें इन्होंने युद्धविद्यामें पारदर्शिता प्राप्त की। इसके बाद शकुनशास्त्र पढ़नेके लिये ये विद्यालय (college of augurs)-में भर्त्ती हुए जर्मनयुद्धका इतिहास शेष कर इन्होंने धर्मशास्त्र (Jurisprudence)-का अभ्यास किया था। सम्राट् भेसपिसियनके आदेशसे ये स्पेन-राज्यके प्रतिनिधि नियुक्त हुए। वहां रहते समय ये दिनको तो राजकार्य चलाते और रातको पाठाभ्यास करते थे। उनका स्पेन-शासन साधुता और निरपेक्षतासे पूर्ण था। एक दिन नौसेनापति रूपमें ये नेपलस् उपसागरवर्त्ती मिसेनियम् नगरके सामने जहाज पर दलबल समेत ठहरे हुए थे। इसी समय भिसुभियस् पर्वतसे इन्होंने मेघवत् देखा। अब ये इसका कारण जाननेके लिये बड़े उत्सुक हुए और इसी उद्देश्यसे समुद्रकी राहसे उक्त पर्वत पर पहुंचे। यहां आते ही दग्ध गन्धककी गन्धसे इसकी सांस रुक गई। आखिर इसका कुल रहस्य इनको समझमें आ गया। इन्होंने जितनी पुस्तकें बनाई हैं उनमें 'जगतेतिहास' (Natural History) नामक ग्रन्थ प्राचीनतम ऐतिहासिकतत्त्वसे पूर्ण है। यह ग्रन्थ एक महाकोषके जैसा है और ३७ भागोंमें समाप्त हुआ है। इसका शेष छठा भाग मृत्युके दो वर्ष पहले

(१) अपने भतीजे प्लिनि दि-यंगरको अपने गोद लिया था। यह बालक भी पालक-पिताकी तरह प्रतिभाशाली निकला। उन्होंने तेरह वर्षकी अवस्थामें एक उत्कृष्ट नाटक ग्रीक-भाषामें लिखा। रोम-सम्राट् ट्राजनके राज्याभिषेक-कालमें उनकी कीर्त्तिवर्णना करते हुए जो वक्तृता दी थी, वह साहित्य-जगत्‌में 'Panegyric on Trajan' नामसे प्रसिद्ध है। राजाके अनुग्रहसे आप पण्टस और विथनियाके शासनकर्त्ता नियुक्त हुए। इनका जन्म ६२ ई० और मरण ११६ ई०में हुआ था।

सम्पादित हुआ था। उस पुस्तकमें आप ज्योतिष, जलवायुतत्त्व (Meteorology), पृथ्वीतत्त्व, भूगोल, उद्भिद्विद्या, जीवतत्त्व, कृषिविद्या, आयुर्वेद, धातुविद्या (Mineralogy), भास्करविद्या, चित्रविद्या आदि विषयोंमें गभीर आलोचना कर गये हैं। पेरिप्लसकी भौगोलिक वर्णनाके साथ इनका बहुत कुछ मिलता जुलता है। आपका जन्म २३ ई० और मृत्यु ७९ ई०में हुआ था।

प्लिहन् (सं० पु०) प्लेहति वृद्धिं गच्छतीति प्लिह-कनिन्। पोहरोग। प्लीहन् देखो।

प्लीडर (अं० पु०) १ वह जो वकालत करता हो, वकील। २ वह जो किसीका पक्ष ले कर वाद विवाद करता हो।

प्लीहघ्न (सं० पु०) प्लीहानं हन्तीति हन-टक्। वृक्षविशेष, रोहड़ावृक्ष। संस्कृत पर्याय—रोही, रोहितक, प्लीहशत्रु, दाड़िमपुष्पक, मांसदलन, यकृद्वैरी, चलच्छद, रौहितेय, रोहित, रोहीतक, रौही।

प्लीहन् (प्लीहा) (सं० पु०) प्लिहन् (श्वनुक्षन्पूषन्प्लीहन्निति। उण् ११५८) इति कनिन् प्रत्ययेन साधुः। कुक्षिवामपार्श्वस्थित मांसखण्ड, पेटकी तिल्ली। संस्कृत पर्याय—गुल्म, प्लिहन्।

प्लीहा शरीरका एक अवयव है। यह हृदयसे अधोदेशमें रक्तसे उत्पन्न होता है। रक्तवाही सभी शिराओंका प्लीहा ही मूल है। यह सभीके शरीरमें विद्यमान है। उसके बढ़नेसे रोगमें उसकी गिनती होती है। वैद्यकशास्त्रमें इस प्लीहरोगके लक्षण और चिकित्सादिका विषय इस प्रकार लिखा है—

प्लीहरोगका निदान।—विदाही द्रव्य अर्थात् कुलथी, कलाय और सरसोंका साग तथा अभिष्यन्दी (भैंसका दहि आदि) द्रव्य सेवन करनेसे रक्त और कफ अत्यन्त दूषित हो जाता है जिससे प्लीहा धीरे धीरे बढ़ने लगती है। प्लीहाकी वृद्धि होनेसे ही जानना चाहिये, कि उसे रोग हो गया है। प्लीहा उदरके वाम पार्श्वमें होती है। इस रोगमें रोगीका शरीर पाण्डुवर्ण, अवसन्न, अल्प ज्वर, अग्निमान्ध और बलका ह्रास होता है तथा श्लैष्मिक और पैत्तिक उपद्रव भी पहुंच जाते हैं। इसके चार भेद हैं रक्त, वात, पित्त और श्लेष्मज।

रक्तज प्लीहामें क्लान्ति, भ्रम, विदाह, विवर्णता, शरीरका गुरुत्व और उदरकी रक्तवर्णता होती है। पैत्तिक प्लीहामें ज्वर, पिपासा, दाह, मोह और दैहिक पीतवर्णता दिखाई देती है। श्लेष्मज प्लीहामें अतिशय वेदना, प्लीहा, स्थूलाकार, कठिन और गुरुतर होता तथा इसमें रोगीके अरुचि उत्पन्न होती है। वातज प्लीहारोगमें सर्वदा कोष्ठबद्धता और उदावर्त्त रोग तथा प्लीहामें सर्वदा वेदनाका अनुभव होता है। प्लीहा रोगमें ये सब लक्षण होनेसे उसे असाध्य समझना चाहिये।

ज्वर रोगके अधिक दिन तक शरीरमें रहनेसे, मलेरिया ज्वर होनेसे अथवा मलेरिया-दूषित स्थानमें वास करनेसे वा मधुरस्निग्धादि आहारजन्य रक्तके बढ़नेसे प्लीहाकी वृद्धि होती है। अलावा इसके अतिरिक्त भोजनके बाद किसी द्रुतयानादिसे गमन वा व्यायामादिमें परिश्रमजनक कार्य करनेसे भी प्लीहा स्वस्थानच्युत हो कर बढ़ती है। उदरके वामपार्श्वमें ऊपरकी ओर प्लीहाका स्थान है। अविकृत अवस्थामें हाथसे उसका पता नहीं लगाया जा सकता; किन्तु जब वह बढ़ती है, तब कुक्षिके वामपार्श्वमें हाथ द्वारा उसका पता लग जाता है। इस रोगमें हमेशा मृदुज्वर रहता है और प्रति दिन किसी न किसी समय वह ज्वर चढ़ आता है अथवा एक दिनके बाद कंपकंपी दे कर अधिक ज्वर प्रकाशित होता है। अलावा इसके प्लीहामें वेदना, ऐंठन वा ज्वाला, कोष्ठबद्धता, अल्पमूत्र वा रक्तवर्णमूत्र, श्वास, कास, अग्निमान्द्य, शरीरकी अवसन्नता, कृशता, दुर्बलता, पिपासा, वमन, मुखवैरस्य, चक्षु, हस्तांगुलि और ओष्ठ आदि स्थानोंकी रक्तहीनता, अन्धकारदर्शन और मूर्च्छा आदि लक्षण होते हैं।

कष्टसाध्य प्लीहाका लक्षण।—प्लीहाके अधिक बढ़ जानेसे जब रोग कष्टसाध्य हो जाता है, तब नासिका और दन्तमाड़ीसे रक्तस्राव अथवा रक्तवमन, रक्तभेद, उदरामय, दन्तमूलमें क्षत, दोनों पैर और दोनों चक्षु अथवा सर्वाङ्गमें शोथ तथा पाण्डु और कामला आदि लक्षण दिखाई देते हैं। ये सब लक्षण होनेसे आरोग्यकी सम्भावना बहुत थोड़ी रहती है। प्लीहा अत्यन्त वर्द्धित हो कर जब उदरकी वृद्धि होती है, तब उसे प्लीहोदर कहते हैं। यह केवल वामपार्श्वमें बढ़ता जाता है।

प्लीहरोगका दोष निरूपण।—प्लीहरोगमें मलबद्धता, वायुका ऊर्द्ध्वगमन और वेदना अधिक रहनेसे वायुकी अधिकता; प्लीहाके अतिशय कठिन, शरीरका गुरुत्व और अरुचि रहनेसे श्लेष्माकी अधिकता समझी जायगी। रक्तकी अधिकता रहनेसे पित्ताधिक्यके लक्षण और उससे भी बढ़ कर तृष्णा मालूम होती है। तीनों दोषकी अधिकता रहनेसे मिलित लक्षण दिखाई देते हैं।

इसकी चिकित्सा।—प्लीहारोगमें जिससे पहले रोगीका कोष्ठ परिष्कार हो, उसीका उपाय करना आवश्यक है। पुराना गुड़ और हरीतकीचूर्ण अथवा विट्लवण और हरीतकीचूर्ण समान भाग ले कर रोग और रोगीके अवस्थानुसार गरम जलके साथ सेवन करानेसे प्लीहा और यकृत् दोनों ही रोग थोड़े ही दिनोंके मध्य जाते रहते हैं। पीपल प्लीहारोगकी एक उत्तम औषध है। दो वा तीन पीपलको जलमें घिस कर पुराने गुड़के साथ उपयुक्त मात्रामें सेवन करनेसे भी प्लीहा प्रशमित होती है। हींग, सोंठ, पीपल, मिर्च, कुट, यवक्षार और सैन्धवलवण इनके समान समान भाग चूर्णको एकत्र कर नीबूके रसमें मिला कर दोसे चार आना मात्रामें सेवन करनेसे भारी उपकार होता है। अजवायन, चितामूल, यवक्षार, पिपरामूल, पीपर और दन्ती इनके समान भाग चूर्णको आध तोला मात्रामें उष्ण जल, दहीके पानी, वा आसवके साथ सेवन करनेसे यह रोग बहुत जल्द जाता रहता है। चितामूलको पीस कर एक रत्तीकी गोली बनावे। पीछे उस गोलीको तीन पक्के केलेमें भर कर सेवन करे। लहसुन, पिपरामूल और हरीतकी खाने तथा गोमूत्र पीनेसे भी प्लीहरोग प्रशमित होता है। चितामूल, हरिद्रा, पक्के अकवनका पत्ता अथवा धाइफूलका चूर्ण पुराने गुड़के साथ सेवन करनेसे विशेष उपकार होता है। शरपुङ्खवटिका आध तोला मात्रामें मट्ठेके साथ सेवन करनेसे प्लीहाका उपशम होता है। आध तोला शङ्खनाभिके चूर्णको बिजौरा नींबूके रसके साथ सेवन करानेसे अतिप्रकाण्ड प्लीहा दूर हो जाती है। समुद्रजात घोंघेकी भस्म प्लीहरोगनाशक है। देवदारु, सैन्धवलवण और गन्धकके समान भागको भस्म कर सेवन करनेसे प्लीहा और यकृतादि विनष्ट होते हैं। रोहित और हरीतकीके क्वाथमें दो आना भर पीपल-चूर्ण मिला कर सेवन करनेसे प्लीहरोग जाता रहता है। शालपाणि, पिठवन, वृहती, कण्टकारी, गोक्षुर, हरीतकी और रोहितक छालका क्वाथ प्लीहरोगमें विशेष उपकारी है।

उत्कृष्ट पक्के आमके रसको मधुके साथ पान करनेसे प्लीहा रोग अवश्य दूर होता है। सीवर पुष्पको सुसिद्ध कर एक दिन रख छोड़े, पीछे उसे सरसोंके चूर्णके साथ भक्षण करे। थोड़े ही दिनोंमें प्लीहा नष्ट होती है। यवायन, चिता, यवक्षार, पिपरामूल, दन्ती, पिप्पली इनका समान समान भाग चूर्ण ले कर गरम जल अथवा दधिके पानी वा मांसरस अथवा आसवके साथ यथामात्रामें सेवन करनेसे यह बहुत जल्द जाता रहता है।

(भावप्र० प्लीहरोगा०)

इसके अतिरिक्त यमानिकादि चूर्ण, माणकादिगुड़िका चित्रकादिलौह, अभयालवण, गुड़पिप्पलीघृत, पिप्पलीघृत, चित्रकघृत, रोहितकघृत, महारोहितकघृत, प्लीहारिरस, वासुकिभरणरस, विद्याधररस, रसराज, प्लीहान्तकरस, लोकनाथरस, वृहल्लोकनाथरस, रोहितकलौह, यकृतप्लीहारिलौह, यकृत्प्लीहोदरहरलौह, रोहितकाद्यचूर्ण, महाद्रावकरस, महाद्रावक, शङ्खद्रावक, शङ्खद्रावकरस, महाशङ्खद्रावक और रोहितकारिष्ट ये सब औषध प्लीहा और यकृत्रोगमें विशेष उपकारी हैं।

(भैषज्यरत्ना० प्लीहयकृताधि०)

चिकित्सक रोगीके बलाबल और धातुकी विवेचना कर उक्त औषधोंमेंसे किसी औषधका प्रयोग कर सकते हैं। प्लीहरोगके साथ ज्वरकी प्रबलता रहनेसे अथवा ज्वरके हठात् प्रबल वेगमें चढ़ आनेसे उक्त औषधोंमेंसे जो सब औषध ज्वरके उपकारक है उन औषधोंका तथा प्लीहा रोगकी औषधका मिलित भावमें प्रयोग करना होगा। जरूरत पड़ने पर प्लीहाकी औषध बन्द करके केवल ज्वरकी चिकित्सा की जा सकती है। ज्वरका प्रकोप कुछ घटनेसे पुनः प्लीहाकी औषधका सेवन कराना उचित है।

जीर्णप्लीहरोगमें विरेचक औषधका प्रयोग न करे। क्योंकि उससे यदि दैवात् उदरामय हो जाय, तो पीछे आरोग्य होना कठिन है। उदरामय होनेसे पुटपाककी

विषम ज्वरान्तकलौह आदि ग्राहक औषध विशेष उपकारक है। रक्तमाशय, शोथ, पाण्डु और कामला आदि पीड़ा इसके साथ रहनेसे उस रोगनाशक औषधकी मिश्रितभावमें व्यवस्था करे। प्लीहरोगीके ग्रहणी होनेसे उसका आरोग्य होना मुश्किल हो जाता है। प्लीहरोगीके मुंहमें यदि क्षत हो जाय, तो खदिरादिवटिकाको जलमें घोल कर क्षतस्थान पर लगावे और वकुलकी छाल, जामुनकी छाल, गालवकी छाल तथा अमरूदके पत्तेको सिद्ध कर उसमें थोड़ा फिटकरीका चूर्ण डाल दे। पीछे कुछ गरम रहते उससे कुल्ली करनेसे मुखक्षतका विशेष उपकार होता है।

प्लीहामें वेदना रहनेसे वन-अदरकको पीस कर उसका प्रलेप तथा गोमूत्रको गरम कर अथवा गरम जलका स्वेद दे। वहुत हल्केसे फ्लानलको उदरमें वांधनेसे भी उपकार होता है।

प्लीहरोगीका पथ्यापथ्य।—ज्वररोगमें जो सव द्रव्य निषिद्ध वतलाये गये हैं, प्लीहामें भी वे सव द्रव्य विशेष अनिष्टप्रद हैं। इसमें केवल दूध न पी कर उसके साथ ३।४ पीपल सिद्ध करके सेवन करनेसे प्लीहाका विशेष उपकार होता है। इस रोगमें सव प्रकारका वघारा हुआ पदार्थ, गुरुपाक द्रव्य और तीक्ष्णवीर्य द्रव्यभोजन तथा अधिक परिश्रम, रात्रिजागरण, दिवानिद्रा और मैथुनादि विलकुल निषिद्ध है।

डाक्टरी-मतसे प्लीहा शरीराभ्यन्तरस्थ यन्त्रविशेष (Spleen) है,—उदरगह्वरकी वामकुक्षिमें पाकाशयके प्रशस्त अंशके उत्तर अवस्थित है। इसकी आकृति पिष्टककी-सी और वर्ण घोर वैंगनी है। रक्तके न्यूनाधिक्यानुसार इसके भी आयतनकी ह्रासवृद्धि होती है। वृद्धावस्थामें इसका आयतन और भार घटता और सविराम तथा कम्पज्वरमें वढ़ जाता है।

साधारणतः मानवमात्रके प्लीहा होती है। कभी कभी छोटी अतिरिक्त प्लीहा भी देखी जाती है। इस प्लीहाका मूलभाग प्लीहाके नीचे संयुक्त रहता है। उसका आयतन मटरसे ले कर अखरोटके जैसा भी हो सकता है।

प्लीहाका प्रकृत कार्य क्या है, उसका आज तक भी ठीक ठीक पता नहीं लगा है। परन्तु इतना तो अवश्य कहा जा सकता है, कि भुक्तद्रव्यका अण्डलाल परिपाककालमें प्लीहाके मध्य सञ्चित होता है। उस समय प्लीहाका कलेवर वर्द्धित होते देखा जाता है। फिर कुछ समय वाद ही जव वह रस शोणितमें चूस लिया जाता है, तव प्लीहा पुनः पूर्वावस्थाको प्राप्त होती है अर्थात् छोटी हो जाती है। अलावा इसके प्लीहासे ही रक्तका श्वेत और लालकणिकाओंकी उत्पत्ति हुआ करती है।

पहले कहा जा चुका है, कि ज्वररोगमें साधारणतः इसकी वृद्धि होती है। इस समय रसमें रक्ताधिक्य, प्रदाह, स्फोटक और विवर्द्धनादि लक्षण देखे जाते हैं।

प्लीहाका रक्ताधिक्य (congestion) प्रवल और अप्रवलभेदसे दो प्रकारका है। मलेरिया और टाइफेड ज्वरमें प्लीहाका प्रवल रक्ताधिक्य होता है। कभी कभी टाइफस्, सूतिकावस्था, वसन्त, विसर्प और पाइमिया आदि रोगोंमें भी रक्ताधिक्य होते देखा जाता है। आघात आदि भी इसका दूसरा कारण है। यकृद्धमनोमें रक्तमें सञ्चालनकी अवरुद्धता और हृत्पिण्ड तथा फुसफुसीय पुरातनरोग ही अप्रवल रक्ताधिक्यका कारण समझा जाता है।

इस समय प्लीहा आयतनमें वड़ी, कृष्णाभ, आरक्त, स्वाभाविककी अपेक्षा भारी और उसका कैपस्यूल (Capsule) मसृण तथा विस्तृत होता है। पेशीके सभी विधान कोमल और कहीं कहीं तरल वा फलके गूदेके सदृश नरम मालूम होता है। काटनेसे उसमेंसे काफी लाल रक्त निकलता है। प्रदाह अधिक दिन रहनेसे प्लीहा वड़ी और कड़ी हो जाती है। प्लीहा-स्थानमें सामान्य वेदना, छूनेसे अधिक यन्त्रणा और रक्ताल्पताके लक्षणादि देखे जाते हैं। प्लीहा-स्थानमें गरमजलका सेक, व्लिष्टर वा माष्टर्ड-प्लष्टरका आवश्यकानुसार प्रयोग विधेय है। आभ्यन्तरिक लवणयुक्त मृदु विरेचक भी उपकारी है। यकृच्छिराकी अवरुद्धता रहनेसे उसीके अनुसार चिकित्सा करनी चाहिये।

पाइमिया, सेप्टसिमिया, आघात, मलेरियाके स्थानमें वास और शैत्य संलग्न हेतु इससे प्लीहा (Splenitis or Haemorrhagic Infarction) उत्पन्न होती है। रोग दिखाई देनेसे वहुत कुछ शारीरिक परिवर्त्तन होता है।

प्लीहामें हर समय आम्बेलाई आवद्ध रहती है और इसीसे उसके चारों तरफ हिमरैजिक इनफार्क दिखाई देती है। इनफार्क की आकृति कील-सी होती और उसका मध्य स्थान कृष्णवर्ण और पार्श्वदेशमें रक्ताधिक्य रहता है। आम्बेलाईके विपाक्त होनेसे प्रदाह उत्पन्न होता है। कभी वह आम्बेलाई चूर्णापकृष्टतामें परिणत होती है। इस प्रकार शोषित वा अपकृष्टतामें परिणत नहीं होनेसे उसकी उत्तेजनासे स्फोटक उत्पन्न हुआ करता है। निकटवर्ती पेरिटोनियममें प्रदाहका लक्षण दिखाई देता है। मलेरिया और शैत्यजनित प्रदाहमें प्लीहा वृहत् और कृष्णवर्ण तथा स्पर्शमें कोमल मालूम होती है। रक्ताधिक्यसे प्रदाहको पृथक् करना बहुत मुश्किल है। स्फोटक रहनेसे प्रदाह हुआ है, ऐसा मालूम होता है।

अम्बलाई द्वारा स्थानिक प्रदाह उपस्थित होनेसे सामान्य वेदनाका अनुभव होता है। स्फोटक होनेसे अत्यन्त वेदना, शीत, कम्पज्वर, वमन और दुर्वलता तथा स्फोटकके अभ्यन्तरमें विदीर्ण होनेसे मूर्च्छा और हिमाङ्ग आदि लक्षण उत्पन्न देखे जाते हैं। स्फोटक वाहरकी ओर भी प्रकाशित हो सकता है; किन्तु उस समय उसमें फ्लकच्वेसन मालूम होता है।

स्फोटक होनेसे पहले एस्पिरेटर द्वारा पीप निकाल ले। कुनाइन, सुरा और वलकारक आहार खानेको दें। स्फोटकमें रोगका भावी फल अशुभ जानना चाहिये, ऐसी अवस्थामें रोगका आरोग्य होना वहुत कठिन है।

प्लीहाकी विवृद्धि (Hypertrophy of the spleen) श्लैष्मिक कोषसमूह रक्तस्रोत द्वारा अपसारित न हो कर यदि प्लीहामें अवरुद्ध रहे, तो प्लीहाकी वृद्धि होती है। इस पीड़ामें विविध स्थान और यन्त्रका लिम्फाटिक सिष्टम वढ़ता जाता है तथा इससे श्वेतरक्तकणिका द्विगुण परिमाणमें उत्पन्न होती है। वे नियमितरूपसे लोहितकणिकामें परिवर्त्तित नहीं हो सकती। इनके द्वारा रक्तालपताके सभी लक्षण उपस्थित होते हैं।

प्लीहामें वहुकालव्यापी वा वार वार रक्ताधिक्य (Congestion) मलेरिया पूर्ण स्थानमें वास, पुनः पुनः सविराम ज्वर और यकृद्धमनीके रक्तस्रोतमें रक्ताधिक्य ही प्लीहा-विवृद्धिका प्रधानतम कारण है।

इस समय प्लीहा वृहदाकार और वजनमें प्रायः ८।६ पौंड तक भारी होती है। कभी कभी अग्रपार्श्व में छूनेसे खात सा मालूम होता है। प्लीहा प्रदेश लौष्ट्राकार और वीच वीचमें निकटवर्ती पैशिक विधानके साथ संयुक्त है। रक्त तरल और श्वेतरक्तकणिकायुक्त तथा रक्तमें जलका भाग वढ़ता है।

रोगी धीरे धीरे शीर्ण हो जाता है। मुखमण्डल, ओष्ठ और कञ्जनटाइभा रक्तशून्य; चर्म शुष्क और उत्तप्त, नाड़ी द्रुत और दुर्वल; मूत्र स्वल्प और लोहिताभ, क्षुधामान्द्य, कोष्ठवद्ध, प्लीहास्थानमें भार और वेदनादिलक्षण उपस्थित होते हैं। पीड़ाके तरुण होनेसे ज्वरका विराम नहीं देखा जाता। रोग कठिन होनेसे रोगीका वर्ण मृत्तिकावत् नासिका और दन्तमाड़ीसे रक्तस्राव, चमड़ेके नीचे सूक्ष्मरक्त चिह्नविगलित मुखौष (Cancrum Oris) अक्षिपल्लव और पदकी स्फीतता तथा समय समय पर सार्वाङ्गिक शोथ दृष्टिगोचर होता है। विवर्द्धित प्लीहामें चाप द्वारा श्वास, कृच्छ्र, कासि, फुसफुसका रक्ताधिक्य और वमन उपस्थित हो सकता है।

प्लीहाके वृहत् होनेसे उदरके वामपार्श्वस्थ दक्षिण दिक्से ले कर नाभि तकका स्थान ऊँचा दिखाई देता देता है; छूनेसे एक अग्रधार पतला और खातयुक्त अर्बुद-सा वोध होता है। कभी कभी उसमें फ्लकचुयेसन भी पाया जाता है। प्रातिघातिक शब्द मलगर्भ (Dull), उसके नीचे नाभि तथा ऊपर ५म पशुका पर्यन्त फैल सकता है। पार्श्वपरिवर्त्तनमें प्लीहा अपने स्थानसे कुछ हट जाता और दीर्घश्वासमें नीचेकी ओर चला जाता है। प्लीहास्थानमें कभी कभी एक मर्मरध्वनि सुनाई देती है जिसे स्प्लीनिक् मर्मर (Splenic murmur) कहते हैं।

नासिका और दन्तमाड़ीसे रक्तस्राव, पाण्डुरोग, उदरामय, आमाशय, शोथ और कैनक्रमोरिस् आदि इसके उपसर्ग हैं। रोग आराम नहीं होनेसे दुर्वलता, शोथ, आमाशय, रक्तस्राव और कभी कभी अचैतन्य हो कर मृत्यु हो जाती है।

निम्नलिखित कुछ पीड़ाके साथ इसका भ्रम हो सकता है;—पाकाशयके कार्डियेक छिद्रमें कर्कटरोग,

यकृत्के वामभाग वा वाममूत्रयन्त्रका विवर्द्धन, अन्त्रा-प्लावकमें कोई अर्बुद और रक्तमें श्वेतकणाधिक्य (Leucocythemia)। व्याधिके तरुण होनेसे आरोग्य होनेकी सम्भावना है, पर प्लीहाके अधिक बढ़ने और रोगके पुराने होनेसे आरोग्यता लाभ करनेकी कोई आशा नहीं।

वायुपरिवर्त्तन, किनाइन, आर्सेनिक और लौहघटित औषधोंका सेवन विधेय है। अन्यान्य औषधोंके मध्य आइओडिड्स, ब्रोहाइड्स और फ्लुराइड्स विशेष कार्य-कारी है। आहारार्थं लघुपाक और बलकारक द्रव्यादिसे प्लीहाके ऊपर ब्लिष्टर तथा टिंचर वा अङ्गयेण्टम् आइ-ओडिन्का लेपन आवश्यक है। पुरातन प्लीहाके ऊपर अङ्गयेण्टम् हाइड्राजिराई विनाईओडिम मालिश करनेसे प्लीहा छोटी हो सकती है, पर दो बारसे अधिक मालिश न करे। एलोपैथिक-मतसे स्प्लिनमिकश्चर—

R किनिसलफस	२ ग्रेन
एसिड सालफ्युरिक डिल	६ बुंद
फेरि सलफ्	१ ग्रेन
मेगनिसिया सलफस्	॥० ड्राम
टिं जिञ्जर	१० बुंद
जल	१ औंस

ज्वरके समय दिनमें एक मात्रा २।३ बार।

यकृत्का कञ्जेश्चन रहनेसे लीभरके ऊपर नाइट्रो-हाइड्रोक्लोरिक एसिड डिलका लेप देनेके बाद फोमेण्ट करे और निम्नलिखित औषधका सेवन करावे।

R क्विनि म्युरिएट	३ ग्रेन
एसिड हाइड्रोक्लोरिक डिल	६ बुंद
टिं न्युसिस् भ मिशि	५ बुंद
इं कलम्बा	१ औंस

दिनमें २।३ बार।

पुरातन प्लीहामें सामान्य ज्वर रहनेसे—

R पोटाशि ब्रोमाइड	५ ग्रेन
टिं सिनकोना कम्पा	२० बुंद
टिं जेनसिएन कम्पा	२० बुंद
टिं डिजिटेलिस्	२ बुंद
इनफ्युजन सार्पेण्टरि	१ औंस

एक मात्रा दिनमें ३ बार।

R लाइकर एमन फ्लुराइड	५ बुंद
एकोयामेन्थलिप्	१ औंस

खानेके बाद १ मात्रा दिनमें दो बार।

प्लीहामें एमिलयेड् अपकृष्टता, उपदंश, कर्कट, ट्युबा-र्कल और हाइमेटिम आदि रोग उत्पन्न होते हैं। उन सब रोगोंसे भी प्लीहाका विवर्द्धन और दुर्बलताका लक्षण दिखाई देता है। ऐसी अवस्थामें होमिओपाथी चिकित्सा विशेष उपकारी है।

प्लीहशत्रु (सं० पु०) प्लीहघ्न, रोहड़ा वृक्ष।

प्लीहा (हिं० स्त्री०) प्लीहन् देखो।

प्लीहाकर्ण (सं० क्ली०) कर्णदेशजात रोगविशेष, एक रोग जो कानके पास होता है।

प्लीहान्तकरस (सं० पु०) अन्तयतीति अन्तकः प्लीहायाः अन्तकः। प्लीहारोगोक्त एक औषध। प्रस्तुत प्रणाली—ताम्र, रौप्य, त्रिकटु, रास्ना, जयपालबीज, त्रिफला, कटकी, दन्तीमूल, घोषामूल, सैन्धव, निसोथ और यवक्षार इन सब द्रव्योंको रेंड़ीके तेलमें घोंट कर रत्ती भरकी गोली बनावे। इसका अनुपात रोगीका बलाबल देख कर स्थिर करना होता है। यह औषध पाण्डु और शोथ आदि रोगोंमें भी हितकर है। (भैषज्यरत्ना० प्लीहयकृदधि०)

प्लीहार्णवरस (सं० पु०) प्लीहरोगोक्त औषधविशेष। इंगुर, गन्धक, सोहागा, अभ्रक और विल्व आठ आठ तोले ले कर उसमें चार चार तोला मिर्च और पीपल मिला दे। पीछे छः छः रत्तीकी गोली बनावे। इसका अनुपान निर्गुंड़ीका रस और मधु है। इस औषधका सेवन करनेसे ज्वर, मन्दाग्नि, कास, श्वास, वमि, भ्रम और सब प्रकारकी प्लीहा दूर होती है। (रसेन्द्रसारसं० प्लीहारोगाधि०)

प्लीहारि (सं० पु०) प्लीहायाः अरिः शत्रुस्तन्नाशकत्वात्। १ अश्वत्थवृक्ष, पीपलका पेड़। २ प्लीहनाशकवटिकौ-षधविशेष। प्रस्तुत प्रणाली—हरिताल २ तोला, स्वर्ण अर्द्ध तोला, ताम्र ४ तोला, मृगचर्मभस्म और नीबू-का मूलचूर्ण प्रत्येक दो २ तोला, इन सब द्रव्योंको एकत्र कर ६ रत्ती भरकी गोली बनावे। इसका अनुपान मधु और चिताचूर्ण है। इस औषधका सेवन करनेसे असाध्य प्लीहा, यकृत्, पाण्डु, गुल्म और भगन्दररोग

जाता रहता है। यह औषध प्लीहारिरस नामसे प्रसिद्ध है।

इसके अलावा प्लीहारिरस एक और प्रकारका भी है जिसकी प्रस्तुत प्रणाली यों है—लौह ४ तोला, मृगचर्मभस्म ८ तोला, मीठा नीबूका मूल ८ तोला इन सब द्रव्योंको एकत्र कर ६ रत्ती भरकी गोली बनावे। इसके सेवनसे प्लीहा, यकृत् और गुल्म अति शीघ्र प्रशमित होते हैं। (रसेन्द्रसारसं०)

प्लीहाशत्रु (सं० पु०) प्लीहायाः शत्रुः। प्लीहशत्रु, प्लीहघ्नवृक्ष।

प्लीहाशार्दूलरस (सं० पु०) प्लीहायाः शार्दूलइव रसः। प्लीहारोगनाशक औषधविशेष। प्रस्तुत प्रणाली—पारद, गन्धक और त्रिकटु प्रत्येक बराबर बराबर भाग मिला कर जितना हो उतनी ही ताम्रभस्म, मनःशिला, कौड़ी, तूतिया, हींगा, लोहा, जयन्ती, रहेणा, यवक्षार, सोहागा, सैन्धव लवण, विट् लवण, चिता और जयपाल। प्रत्येक पारेके समान, इन सब द्रव्योंको एकत्र कर निसोथ, चिते, अदरक और धतूरेके रसमें भावना दे। पीछे रत्ती भरकी गोली बनावे। इसका अनुपान मधु और पीपल है। रोगभेद बलाबलके अनुसार सेवन करनेसे प्लीहा, अग्रमास, यकृत्, गुल्म, आमाशय, उदरी, शोथ, विद्रधि, अग्निमान्द्य और ज्वर आदि रोग थोड़े ही दिनोंके अन्दर जाते रहते हैं। (रसेन्द्रसारसं० प्लीहारोगा०)

प्लीहोदर (सं० क्ली०) उदररोगभेद, तिल्ली। जो विदाही और अभिष्यन्दजनक द्रव्य बहुत खाते हैं उनका रक्त और श्लेष्मा कुपित हो कर प्लीहाको वृद्धि करती है, इसीका नाम प्लीहोदर है। यह प्लीहा वाम पार्श्वमें बढ़ती है। इसमें रोगी अत्यन्त शीर्ण हो जाता है। (सुश्रुत नि० ७ अ०)

उदररोग और प्लीहन् शब्द देखो।

प्लीहोदरिन् (सं० त्रि०) प्लीहोदर अस्त्यर्थे इनि। प्लीहोदर रोगग्रस्त, जिसे प्लीहारोग हुआ हो।

प्लुक्षि (सं० पु०) प्लोषति दहतीति प्लुष दाहे (प्लुषि-कुषिशुषिभ्यः क्सि। उण् ३।१५५) इति क्सि। १ अग्नि, आग। २ स्नेह, प्रेम। ३ गृहदाह, घर जलाना।

प्लुत (सं० क्ली०) प्लु-क्त। १ अश्वगतिविशेष, घोड़ेकी एक चालका नाम जिसे पोई कहते हैं। २ तिर्यक् गति, टेढ़ी चाल। (पु०) प्लुतं प्लुतवद् गति रस्यास्तीति प्लुत-अच्। ३ त्रिमात्रवर्ण, स्वरका एक भेद जो दीर्घसे भी बड़ा और तीन मात्राका होता है।

"एक मात्रो भवे ह्रस्वो द्विमात्रो दीर्घ उच्यते।
त्रिवस्त्त प्लुतो ज्ञेयो व्यञ्जनञ्चार्द्धमात्रकम्॥"
(प्राचीनका०)

जिसकी मात्रा एक है, वह ह्रस्व, जिसकी दो, वह दीर्घ और जिसकी मात्रा तीन है, वही प्लुत कहलाता है। पाणिनिमें, किस स्थान पर कौन शब्द प्लुत होगा और कहां नहीं होगा, इसका विशेष विवरण लिखा है। मुग्धबोधटीकामें दुर्गादासने लिखा है, कि दूराह्वान, गान और रोदन इन सब स्थानोंमें प्लुतस्वर होगा। ४ वह लाल जो तीन मात्राओंका हो। (त्रि०) ५ कम्पगतियुक्त, जो कांपता हुआ चले। ६ प्लावित। ७ तारावोर। ८ जिसमें तीन मात्राएं हों।

प्लुतगति (सं० स्त्री०) प्लुता गतिः कर्मधा०। १ प्लुतगमन। (त्रि०) २ शशक, खरहा। प्लुता गतिर्यस्य। ३ प्लुतगमनयुक्त, जो कूद कूद कर चलता है।

प्लुतार्क—एक ग्रीक-जीवनी लेखक और नीतिशास्त्रज्ञ। ५० ई०में बियोसियाके अन्तर्गत शिरेनिया ग्राममें इनका जन्म हुआ था। इन्होंने डेल्फोके आमेनियस्-प्रतिष्ठित विश्वविद्यालयमें दर्शनशास्त्र पढ़ा था। इसके बादसे ये रोम महानगरीमें रहने लगे थे। यहां ग्रीकके सम्बन्धमें कई बार वक्तृताएं दी धीरे धीरे त्रूकन, यङ्गर, प्लिनि और मार्शल आदिके साथ इनकी मित्रता हो गई। वृद्धावस्थामें ये अपनी जन्मभूमि लौटे। इनके बनाये हुए ग्रन्थोंमें विद्वज्जीवनी (Lives of illustrious men) और नीति ग्रन्थ सर्वोत्कृष्ट हैं। उनका ग्रन्थ पढ़नेसे प्राचीनकालमें यूरोपमें नरबलि-प्रथा प्रचलित थी, इसके अनेक प्रमाण मिलते हैं। १२० ई०में इनकी जीवन लीला समाप्त हुई।

प्लुति (सं० स्त्री०) प्लु-भावे-क्तिन्। १ प्लवन, उछल कूदकी चाल। २ पोई। ३ वह वर्ण जो तीन मात्राओंसे बोला गया हो।

प्लुष (सं० पु०) १ दाह, जलना। २ पूर्त्ति। ३ स्नेह, प्रेम।

प्लुषि (सं० पु०) प्लुष बाहुलकात् कि। १ बकतुल्य-तुण्डयुक्त खगभेद, बगलेके जैसा एक प्रकारका पक्षी। २ दाहक सर्पभेद। ३ अल्प परिमाण पुत्तिकादि।

प्लुष्ट (सं० त्रि०) दग्ध, जला हुआ। सुश्रुतमें इसका लक्षण इस प्रकार लिखा है--

"यत्र यद्विवर्णं प्लुष्यतेऽतिमात्रं तत् प्लुष्टं।"

(सुश्रुत सू० ११ अ०)

पीड़ित स्थानमें क्षारका प्रयोग करनेसे जो विवर्णता होती है, उसे प्लुष्ट कहते हैं।

प्लेग (अं० पु०) भयङ्कर रूप धारण कर जाड़ेमें फैलनेवाला संक्रामक रोग। इसके फैलने पर बहुसंख्यक व्यक्तियोंकी मृत्यु होती है। इसमें रोगीको बहुत तेज ज्वर आता है और जांघ या बगलमें गिलटी निकल आती है। यह रोग प्रायः तीन चार दिनमें ही रोगीके प्राण हर लेता है। प्रवाद है, कि छठी शताब्दीमें यह रोग पहले पहल लेवांटसे यूरोपमें गया था और वहींसे अनेक देशोंमें फैला। १६०० ई०से भारतवर्षमें इसका विशेष प्रकोप था, पर अब कुछ कम हो गया है।

प्लेट (अं० पु०) १ किसी धातुका पत्तर या पतला पीटा हुआ टुकड़ा, चादर। २ धातुका बना हुआ वह चौड़ा पत्तर जिस पर कोई लेख आदि खुदा या बना हो। ३ छिछली थाली, तश्तरी। ४ सोने चांदी आदिका बना हुआ प्याला जैसे घुड़दौड़का प्लेट, क्रिकेटका प्लेट। ५ फोटो लेनेका वह शीशा जो प्रकाशमें पहुंचते ही उस छायाको स्थायी रूपसे ग्रहण करता है जो उस पर पड़ती है। पीछेसे इसी शीशेसे फोटो-चित्र छापे और तैयार किये जाते हैं।

प्लेटफार्म (अं० पु०) १ कोई चौकोर और समतल चबूतरा। यह किसी इमारत आदिमें इस उद्देशसे बनाया जाता है कि उस पर खड़े हो कर लोग वक्तृता या उपदेश दे सकें। २ रेलवे स्टेशनों पर बना हुआ वह ऊंचा और बहुत लम्बा चबूतरा जिसके सामने आ कर रेलगाड़ी खड़ी होती है और जिस परसे हो कर यात्री रेल पर चढ़ते या उससे उतरते हैं।

प्लेटो—ग्रीक देशीय एक विख्यात दार्शनिक। अरबोंके निकट ये 'इफ्लातुन' नामसे प्रसिद्ध थे। इनके पिताका नाम अरिष्टोन और माताका नाम पेरिक्तिउनि था। ४२६ ई०सन्के पहले मई मासमें आथेन्स नगरमें इन्होंने जन्म-ग्रहण किया। जब इनकी उमर बीस वर्षकी थी उस समयसे ले कर आठ वर्ष तक इन्होंने सक्रेटिस नामक प्रसिद्ध दार्शनिकके निकट पाठाध्ययन किया। सक्रेटिससे इन्हें जो कुछ उपदेश मिलता था, उन्हें वे लिपि-बद्ध करते जाते थे। पीछे मिश्र, इटली आदि स्थानोंमें कुछ काल ठहर कर ये पुनः आथेन्स लौटे। यहां इन्होंने परिषद् (Academy)-में पढ़ना आरम्भ कर दिया। नये डयुनिसियमने इन्हें अपनी सभामें बुलाया था। किन्तु ये खुशामदी टट्टू थे नहीं, कि जहां तहां बुलाने पर चले जांय। ये बड़े ही स्पष्टवक्ता थे। कठोर हृदयके डयुनिसियस इन पर हमेशा रंज रहा करते थे। इस कारण उन्होंने प्लैटोको कैद कर क्रतदासरूपमें किरिनी (Cyrene)-वासी आनिकेरसके यहां बेच डाला। आनिकेरसने इनके गुण पर मुग्ध हो इन्हें मुक्तिदान दिया। अनन्तर जन्मभूमि लौट कर ये अपने दर्शनतत्त्वके प्रचारमें लग गये। इनके उपदेश गुरुशिष्यके प्रश्नोत्तरके ढंग पर लिखे हुए हैं। उसमें गुरुसक्रेटिस हो वक्ता हैं। उन उपदेशोंमें बहुतसे वैदान्तिक भाव मिश्रित हैं। प्लेटोका आदि नाम आरिष्टोक्लिस था। किन्तु प्रशस्त ललाट रहनेके कारण इनका 'प्लेटो' नाम रखा गया। ८२ वर्षकी अवस्थामें ई०सन्के ३४८ वर्ष पहले इनका देहान्त हुआ। दार्शनिक आरिष्टटल इन्हींके छात्र थे।

प्लैटिनम (अं० पु०) चाँदीके रंगकी एक मशहूर कीमती धातु। यह धातु १८वीं शताब्दीके मध्य दक्षिण अमेरिकासे यूरोप गई थी। इस धातुमें कई धातुओंका कुछ न कुछ मेल अवश्य रहता है। जितनी धातु हैं, सबोंसे यह अधिक भारी होतो है और इसके पत्तर पीटे या तार खींचे जा सकते हैं। यह आगसे नहीं गल सकती। बिजली अथवा कुछ रासायनिक क्रियाओंकी सहायतासे गलाई जाती है। इसमें न तो मोरचा लगता और न तेजाबों आदिका कोई प्रभाव ही पड़ता है। यही कारण है, कि लोग बिजली तथा अनेक रासायनिक कार्योंमें इसका व्यवहार करते हैं। रूसमें कुछ दिनों तक इसके सिक्के भी चलते थे। यह केवल दक्षिण अमेरिकामें ही

नहीं, यूराल-पर्वत तथा वोर्नियो द्वीपमें भी पाई जाती है।
प्लोत (सं० क्ली०) प्र-वै-क्त, सम्प्रसारणं रस्य ल। १ सुश्रुतोक्त शस्त्रकर्मोपकरणभेद। शस्त्रकर्म देखो। २ पित्तविकारविशेष, पित्तका विकार जो मुंहसे गिरता है। ३ कर्पट, गूदड़, लत्ता। ४ पट्टी।
प्लोष (सं० पु०) प्लुष-भावे-घञ्। १ दाह। भावे ल्युट्। (क्ली०) २ प्लोषण, दाह।
प्सा (सं० स्त्री०) प्सा-भावे-अङ्। भक्षण, खाना।
प्सात (सं० लि०) प्सा कर्मणि-क्त। भक्षित, जो खाया गया हो।
प्सान (सं० क्ली०) प्सा-भावे-ल्युट्। भोजन।
प्सु (सं० पु०) प्सा-वाहुलकात् कु। रूप, चेहरा।
प्सुर (सं० त्रि०) प्सु-वाहु० अस्त्यर्थे र। रूपयुक्त, रूपवान्।

फ

फ—हिन्दी वर्णमालामें वाईसवां व्यञ्जन और पवर्गका दूसरा वर्ण। इसके उच्चारणका स्थान ओष्ठ है और इसके उच्चारणमें आभ्यन्तर प्रयत्न होता है। इसे उच्चारण करनेसे जीभका अगला भाग होठोंसे लगता है। इसलिये इसे स्पर्शवर्ण कहते हैं। इसके वाह्यप्रयत्न, विवार, श्वास और अघोष हैं। इसकी गिनती महाप्राणमें होती है।

फ-कार रक्तविद्युल्लतासदृश, चतुर्वर्गप्रद, पञ्चदेव-स्वरूप, पञ्चप्राणमय, त्रिगुण और आत्मादि तत्त्वसंयुक्त तथा त्रिगुण सहित है। इसकी कुण्डली ब्रह्मा, विष्णु और रुद्ररूपिणी है। इसके वाचक शब्द ये सब हैं—सखी, दुर्गिणी धूम्रा, वामपार्श्व, जनार्दन, जया, पाद, शिखा, रौद्री, फेत्कार, शाखिनीप्रिय, उमा, विहङ्गम, काल, कुब्जिनी, प्रियपावक, प्रलयाग्नि, नीलपाद, अक्षर, पशुपति, शशी, फुत्कार, यामिनी, व्यक्ता, पावन, मोहवर्द्धन, निष्फलवाक्, अहङ्कार, प्रयाग, ग्रामणी और फल।
(नाना तन्त्रशास्त्र)

"प्रलयाम्बुदवर्णाभां ललजिह्वां चतुर्भुजाम्।
भक्ताभयप्रदां नित्यां नानालङ्कारभूषिताम्॥
एवं ध्यात्वा फकारन्तु तन्मन्त्रं दशधा जपेत्॥"
(वर्णोद्धारतन्त्र)

इस प्रकार ध्यान करके फ-कारका दश वार जप करना होता है। मातृकान्यासमें इस वर्ण द्वारा वामपार्श्वमें न्यास किया जाता है। काव्यके आदिमें इस वर्णका प्रयोग नहीं करना चाहिये, करनेसे दुःखलाभ होता है।

फ (सं० क्ली०) फक असद्व्यवहारे क्त। १ रूक्षोक्ति, रूखा वचन। २ फुत्कृति, फुक्कार। ३ निष्फल भाषण। ४ यज्ञसाधन। ५ झंझावात, अंधड़। ६ जृम्भानिस्फार, जम्हाई। ७ वर्द्धक। ८ स्फान। ९ स्फुट। १० फललाभ। ११ मुग्धवोधोक्त संज्ञाविशेष।
फंक (हिं० स्त्री०) फांक देखो।
फंका (हिं० पु०) सूखे दाने या बुकनीकी मात्रा जितनी एक वार मुंहमें फांकी जा सके। २ खण्ड, टुकड़ा।
फंकी (सं० स्त्री०) १ सूखी फांकनेकी चूर्ण आदिकी पुड़िया, फांकनेकी दवा। उतनी दवा जितनी एक वारमें फांकी जाय।
फंग (हिं० पु०) १ वन्धन, फंदा। २ अनुराग, राग।
फंड (अं० पु०) वह धन वा संपत्ति जो किसी नियत काममें लगानेके लिये एकत्र की जाय।
फंद (हिं० पु०) १ बंध, बंधन। २ दुःख, कष्ट। ३ नथकी कांटी फंसानेका फंदा, गूंज। ४ रहस्य, मर्म। ५ छल, धोखा। ६ जाल, फांस।
फंदना (हिं० क्रि०) १ फंदमें पड़ना, फंसना। २ उल्लङ्घन करना, लांघना।
फंदरा (हिं० पु०) फंदा देखो।
फंदवार (हिं० वि०) फंदा लगानेवाला।
फंदा (हिं० पु०) १ रस्सी तागे आदिका घेरा जो किसीको फंसानेके लिये वनाया गया हो, फांद। २ पाश, जाल। ३ कष्ट, दुःख।
फंदाना (हिं० क्रि०) १ जालमें फंसाना, फंदेमें लाना। २ कुदाना, उछालना।
फंफाना (हिं० क्रि०) १ शब्द उच्चारणके समय जिह्वाका कांपना, हकलाना। २ आग पर खौलते दूधका फेन छोड़ कर ऊपर उठना।
फंसना (हिं० क्रि०) १ वंधनमें पड़ना, पकड़ा जाना। २ अटकना, उछलना।
फँसनी (हिं० स्त्री०) एक प्रकारकी हथौड़ी जिससे कसेरे लोटे, गगरे आदिका गला वनाते हैं।

फंसाना (हिं० क्रि०) १ वशीभूत करना, अपने जाल या वशमें लाना। २ फंदेमें लाना, बझाना। ३ अटकाना।

फँसिहारा (हिं० वि०) फंदवार, फँसानेवाला।

फक (हिं० वि०) स्वच्छ, सफेद। २ वदरंग। (स्त्री०) ३ दो मिली हुई चीजोंका अलग अलग होना, मोक्ष।

फकड़ी (हिं० स्त्री०) दुर्गति, दुर्दशा।

फकत (अ० वि०) १ पर्याप्त, अलम्, बस। २ केवल, सिर्फ।

फकीर (अ० पु०) १ भीख मांगनेवाला, भिखमंगा। २ साधु, संसारत्यागी। ३ निर्धन मनुष्य, वह मनुष्य जिसके पास कुछ न हो।

फकीर—मुसलमान भिक्षुक-सम्प्रदाय। भिक्षुकवृत्तिसे ही ये जीवनधारण करते हैं। फकीरोंके मध्य भिन्न भिन्न श्रेणियां हैं। भारतवर्षमें इस प्रकारकी केवल दश श्रेणी देखी जाती हैं। जलालउद्दीन मुलावी-सम्प्रदायके प्रतिष्ठाता थे। यूरोपीय तुरुष्कके मध्य फकीरकी प्रायः ६० विभिन्न श्रेणियां हैं। इनमेंसे कनस्तान्तिनोपलके वतासीगण निरीश्वरवादी हैं। वे महम्मदको नहीं मानते और न उनके बनाये कुरान शास्त्र पर ही विश्वास रखते हैं। सभी सुफी और अलीप्रवर्त्तित सिया-सम्प्रदायभुक्त हैं। वहांके रफाई दरवेशगण शारीरिक कष्टको ही मोक्षलाभका प्रधान उपाय समझते हैं। भारतवर्षमें एक श्रेणीके फकीर हैं जो हमेशा मुसलमान-तीर्थोंमें घुमा करते हैं। प्रायः सभी फकीर बहुत दूर पश्चिम हाङ्गेरि-राज्यमें जा कर तुर्कसंन्यासी गुलबाबाके पवित्र क्षेत्रका दर्शन करते हैं। पूर्व-दक्षिण सिंहल आदि स्थानोंमें भी दौड़ लगाते हैं। साधारणतः भारतवासी फकीर धर्म-प्रभावहीन और नीच समझे जाते हैं। वे सभी प्रायः 'बे-सेरा' हो गये हैं अर्थात् कोई भी महम्मदके उपदेशानु-सार कार्य नहीं करता। जो अब भी 'बासेरा' हैं अर्थात् धर्मका पालन करते आ रहे हैं उन्हें 'सालिक' कहते हैं।

फकीर साधारणतः कब्रिस्तान, आस्तानामें रहना पसन्द करते हैं, या यों कहिये, कि फकीरको जहां रात हो गई वहीं सराय है। कादिया वा बनावागण अपनेको बोग्दादवासी सैयद अवदुल कादेर-जिलानीके शिष्य बत-लाते हैं। चिस्तिगण वन्दनाराजको अपना धर्मगुरु मानते हैं। आज भी कुलवर्गामें उन महात्माका पवित्र-क्षेत्र विद्यमान है। वे सभी सिया-सम्प्रदायभुक्त हैं। सुतारियागण अवदुलसुतर-इ-नाकके शिष्य और तन्म-तावलम्बी हैं। तवकातिया वा मदारियागण अपनेको शाह-मदारके शिष्य बतलाते हैं। मलङ्गागण शाह-मदारके पादानुध्यात जामन यतिके और रफाई वा गुर्जमारगण सैयद अहमद फकीर रफाईके शिष्य हैं। इनका ईश्वर पर ऐसा विश्वास है, कि वे अपना हाथ काट कर पुनः उसे जोड़ सकते हैं। इसी विश्वासके बल ये स्वेच्छासे अपना अंग प्रत्यंग काट डालते हैं। जलालियोगण सैयद जलालउद्दीन बोखारोके शिष्य हैं। सोहागियागण मूसा सोहागके अनुचर बतलाते हैं। ये लोग सब समय स्त्रियोंकी तरह वेशभूषा पहनते तथा गीतवाद्य और नृत्यादि करते हैं। नक्सवन्दियागण नक्सवन्दीवासी बहा-उद्दीन्‌के शिष्य हैं। ये लोग रातको अपने हाथमें चिराग ले कर भीख मांगने निकलते हैं। वेओवा पियारी-गण साधारणतः श्वेत वस्त्र पहना करते हैं। जिस प्रकार हिन्दू लोग साधु संन्यासिका सम्मान करते हैं उसी प्रकार मुसलमान लोग फकीरका। कहावत है—फकीरको तीन चीजें चाहिये, फाकह, कनात और रियाज; अर्थात् फारसीमें फकीर हरफोंसे लिखा जाता है, फे-से फ़ाकह (व्रत), काफसे क़नात (सन्तोष) और रे-से रियाज़ (मेहनत)।

फकीर—एक धर्मसम्प्रदाय। कुछ दिन हुए, बङ्गालके गोआड़ी कृष्णनगरके अञ्चलमें फकीर नामक एक उपासक-सम्प्रदाय प्रवर्त्तित हुआ है। इस सम्प्रदायमें हिन्दू और मुसलमान दोनों ही जातिके लोग हैं। अधिकांश मुसलमान हैं, हिन्दूकी संख्या थोड़ी है। हिन्दूफकीर सभी गृहस्थ हैं, मुसलमानोंमें भी उदासीनकी संख्या बहुत थोड़ी है। ये लोग पीर पैगम्बर आदि कुछ भी नहीं मानते।

सेरिं साहबने भी एक श्रेणीके हिन्दू फकीरकी कथाका उल्लेख किया है।* ये लोग साधारण गोसांई-सम्प्रदाय-के हैं। इनमेंसे बहुतेरे मूर्ख हैं और देवताविशेषके उपा-सक हैं। जो विद्वान् हैं वे ब्रह्मचर्यका अवलम्बन करके मन्दिरमें पूजापाठमें अपना समय बिताते हैं। परन्तु सभी

* Mr. Sherrings Hindu Tribe and Casts.

फकीर तीर्थयात्रा करते और दर दर भीख मांगते हैं। पीत वस्त्र हो इनका पहनावा है। स्फटिकादिकी एक माला गलेमें और एक हाथमें पहन कर इधर उधर घूमते फिरते हैं। वे कपालमें, नाकमें, दोनों हाथोंमें और छाती-में तिलक लगाते हैं।

फकीर—विलग्रामवासी एक मुसलमान कवि, मीर नवाज़ीस अलीकी उपाधि। १७५४ ई०में उनकी मृत्यु हुई।

फकीर अलीवेग—बुलन्दशहरके शासनकर्त्ता। ये सम्राट् हुमायूंके शासनकालमें (१५३८ ई०में) वर्त्तमान थे।

फकीरगञ्ज—वङ्गालके दिनाजपुरके अन्तर्गत एक वाणिज्य-स्थान और गण्डग्राम। यहां चावल और पटसन आदिका बड़ा कारोबार है।

फकीर, मोर समसुद्दीन—दिल्लीनिवासी एक मुसलमान-कवि। ये 'मफ़तून' नामसे हो विशेष परिचित थे। १७६५ ई०में ये दिल्लीका त्याग कर लखनऊ शहरमें वस गये। यहीं पर १७६७ ई०में उनकी मृत्यु हुई। यों तो ये अनेक कविताएं लिख गये हैं, पर 'दीवान' और ताम्बूल-व्यवसायीके पुत्र रामचाँदके इतिहासके आधार पर लिखित 'तसवीरमुहव्वत नामक मसनवी ही प्रसिद्ध है।

फकीरहाट—वङ्गालके खुलना जिलेके अन्तर्गत एक थाना और गण्डग्राम। यहां चावल, सुपारी, नारियल और चीनोकी काफी आमदनी होती है। सुन्दरवनके मध्य यह स्थान सबसे ऊंचा है। यहां खजूरके रससे गुड़ और चीनी वनाई जाती है।

फकीराण—मुसलमान साधु वा फकीरोंके भरण पोषणार्थ दी हुई निष्कर भूमि आदि।

फकीरी (हिं० स्त्री०) १ भीखमंगापन। २ साधुता। ३ निर्धनता। ४ एक प्रकारका अंगूर।

फक्क—शूरसेनके एक राजा।

फक्किका (सं० स्त्री०) फक्क 'धात्वर्थनिर्देशे ण्वुल् वक्तव्यः' इति वार्त्तिकोक्त्या ण्वुल्, टापि अत इत्वं। १ असद्व्यवहार, अनुचित व्यवहार। २ धोखेवाजो। ३ वह जो शास्त्रार्थमें दूरूहस्थलको स्पष्ट करनेके लिये पूर्वपक्षरूपमें कहा जाय, कूट प्रश्न।

फखर (फा० पु०) गौरव, अभिमान।

फखरी—हीरटवासी एक मुसलमान ग्रन्थकार। ये मौलाना सुलतान महम्मद अमीरोके पुत्र थे। उन्होंने स्त्रीकवियों-की जीवनी पर 'जवाहिर उल् अजायव' नामक एक ग्रन्थ लिखा है। वे शाह तहमास्प तखानके शासनकालमें सिन्धु प्रदेश आये थे। तहफत्-उल-हवीव नामक उनका वनाया हुआ एक दूसरा गजलसंग्रह भी पाया जाता है। १५६० ई०में वे विद्यमान थे।

फखर उद्दोन आवू महम्मद-विन् अली आज्जैले—एक धार्मिक मुसलमान पण्डित। उन्होंने तराइन-उल् हकायक नामक 'कञ्जल् उद्‌कायक' नामक पुस्तकको एक टीका लिखी है। उसमें वे सुफी मतका खण्डन करके हनिफी मतकी पोषकता की है। यह पुस्तक भारतवासो मुसल-मानोंकी वड़ी ही रोचक है। १३४२ ई०में उनकी जीवन-लीला शेष हुई।

फखरउद्दीन जुनान—सुलतान गयासुद्दीन् तुगलक शाह-के वड़े लड़के। पिताके राज्यारोहणके वाद ये दिल्लीके युवराज पदपर प्रतिष्ठित हुए। १३२५ ई०में जव इनके पिता इस लोकसे चल वसे, तव इन्होंने महम्मदशाह तुगलक १म नाम धारण कर दिल्लीके सिंहासन पर अधि-कार किया। महम्मदशाह तुगलक देखो।

फखर उद्दीन् मालिक—वङ्गालके एक मुसलमान-राजा।

फखर उद्दीन मौलाना—दिल्लीवासी एक मुसलमान कवि, निज़ाम उल् हकके पुत्र। निज़ाम उल अकायद और विसाला मार्जिया नामक दो ग्रन्थोंके अलावा और भी कितने ग्रन्थ इनके वनाये हुए मिलते हैं। इनकी काव्यो-पाधि सैया उप सुआरा थो। १७८५ ई०को ७३ वर्षकी अवस्थामें उनकी मृत्यु हुई। दिल्लीके कुतुवुद्दीन वख्तियारकी दरगाहके द्वारदेश पर इनकी कब्र आज भी देखनेमें आती हैं। मुसलमान-समाजमें ये धार्मिक समझे जाते थे।

फखरउद्दीन सुलतान—वङ्गालके अन्तर्गत सुवर्णग्रामके मुसलमान अधिपति। ये १३५६ ई०में लक्ष्मणावतीके मुसलमानराज समसुद्दीनसे यमालय भेजे गये और उनका राज्य लक्ष्मणावतीके अन्तर्भुक्त कर लिया गया।

फखर उद्दौला—एक उन्नतमना मुसलमान शासनकर्त्ता। १७३५ ई०में दिल्लीश्वर महम्मदशाहके शासनकालमें इन्होंने पटनाका शासन-भार ग्रहण किया

फखरपुर—१ अयोध्या प्रदेशके वहराइच जिलान्तर्गत एक उपविभाग। यहां सरयू, भकोशा, घर्घरा आदि नदियां वहती हैं। भूपरिमाण ३८३ वर्गमील है। इस सम्पत्तिके वर्त्तमान सत्त्वाधिकारी कपूरथलाके महाराज हैं। लाहोर-राज रणजित्‌सिंहके ख्यातिनामा दो पौत्र सरदार फते-सिंह और जगज्योतिसिंहने चाहलारिराजको यह स्थान दान किया था। वूंदीराजके विद्रोही होने पर यह स्थान उनसे छीन कर कपूरथलाके राजाको दे दिया गया।

२ उक्त उपविभागका एक प्रधान ग्राम। यह अक्षा० २७° २५' उ० और देशा० ८१° ३१' पू०के मध्य अवस्थित है। पहले यह अहीरोंके अधिकारमें था। सम्राट् अकवरने इस स्थानको उक्त परगनेका सदर वनाया और यहां एक दुर्गका भी निर्माण किया। राजस्व संग्रहके लिये एक तहसील स्थापित हुई। १८१८ ई० तक वह दुर्ग और धनागार तहसीलदारके अधीन रहा। पीछे जवसे वह वूंदीराजके इलाकेमें आया तवसे उक्त दुर्ग जनहीन हो गया है। यहां शोरा तैयार होता है।

फगवाड़ा—१ पञ्जावके कपूरथला राज्यकी तहसील। यह अक्षा० ३१° ६' से २१° ३१' उ० और देशा० ७५° ४४' से ७५° ५६' पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ११८ वर्गमील है। इसमें १ शहर और ८८ ग्राम लगते हैं। राजस्व दो लाख रुपयेसे ऊपर है।

२ उक्त तहसीलका प्रधान शहर। यह अक्षा० ३१° १४' उ० और देशा० ७५° ४७' पू०के मध्य अवस्थित है। जनसंख्या पन्द्रह हजारके करीव है। यहाँ वाणिज्य-व्यव-साय जोरों चलता है, इस कारण जनसंख्या भी धीरे धीरे वढ़ती जा रही है। शहरमें एक हाई स्कूल और चिकित्सालय है।

फगु—पञ्जावके अन्तर्गत केउन्थल राज्यके अधिकृत एक स्थान। यह सिमला पर्वतसे ६ कोस पूर्व कोटगढ़ जाने-के रास्ते पर अक्षां० ६१° ६' उ० और देशा० ७७° २१' पू०के मध्य अवस्थित है। यह सुरम्य स्थान अङ्गरेजोंको अतिप्रिय है। समुद्रपृष्ठसे इसकी ऊंचाई ६ हजार फुट है। सिमलाके अङ्गरेज-अधिवासी और वैदेशिक भ्रमण-कारियोंके लिये वृटिश-सरकारने एक विश्राम-भवन वनवा रखा है। पर्वतके ढालूप्रदेशस्थ वनको जला कर लोग वहां आलूकी खेती करते हैं।

फगुआ (हिं० पु०) १ होलिकोत्सवका दिन। होली देखो। २ फागुनके महीनेमें लोगोंका वह आमोद प्रमोद जो वसन्तऋतुके आगमनके उपलक्षमें माना जाता है। इसमें लोग परस्पर एक दूसरे पर रंग कीच आदि डालते हैं और अनेक प्रकारके विशेषतः अश्लील गीत गाते हैं। होली देखो। ३ वह वस्तु जो किसीको फागके उपलक्षमें दी जाय। ४ फागुनके महीनेमें गाये जानेवाले गीत, विशेषतः अश्लील गीत।

फगुआना (हिं० क्रि०) किसीके ऊपर फागुनके महीनेमें रंग छोड़ना या उसे सुना कर अश्लील गीत गाना।

फगुन (सं० पु०) एक गोत्रप्रवर्त्तक ऋषिका नाम।

फगुनहट (हिं० स्त्री०) १ फागुनमें चलनेवाली तेज हवा। इस हवाके साथ वहुत-सी धूल और वृक्षोंकी पत्तियां आदि भी मिली रहती हैं। २ फागुनमें होनेवाली वर्षा।

फगुनियाँ (हिं० पु०) त्रिसन्धि नामक फूल।

फगुहरा (हिं० पु०) फगुहारा देखो।

फगुहारा (हिं० पु०) १ फगुआ गानेवाला पुरुष। २ वह जो फाग खेलनेके लिये होलीमें किसीके यहां जाय।

फजर (अ० स्त्री०) प्रातःकाल, सवेरा।

फजल (अ० पु०) अनुग्रह, मेहरवानी।

फजल उल्ला खाँ—१ महिसुरराज हैदरअलीका विख्यात सेनापति। इसने १७६४-६५ ई०के मध्य सदाशिवगढ़, धारवार आदि स्थानोंमें कई वार महाराष्ट्र-सेनाको विप-र्यस्त कर डाला था। महाराष्ट्र देखो।

२ सम्राट् वावरके सभास्थ एक अमीर। १५८६ ई०में वनाई हुई इनकी एक मसजिद आज भी विद्यमान है।

फजल हक—एक मुसलमान ग्रन्थकार। ये खैरावादवासी फजल इमामके पुत्र थे। अपने पिताके जैसे ये भी अनेक गद्य पद्यकी रचना कर गये हैं। १८५७ ई०के गदरमें आपने वन्दाके विद्रोही नवावके साथ मिल कर अङ्गरेजों-के विरुद्ध युद्ध किया था। १८५८ ई०के दिसम्वरमासमें

जेनरल पेपियरके विरुद्ध नरोद-युद्धमें आप मारे गये ।*

फजिर (हिं० स्त्री०) फजर देखो ।

फजिल (हिं० पु०) फजल देखो ।

फजीलत (अ० स्त्री०) उत्कृष्टता, श्रेष्ठता ।

फजीहत (अ० स्त्री०) दुर्दशा, दुर्गति ।

फजीहती (हिं० स्त्री०) फजीहत देखो ।

फजूल (अ० वि०) व्यर्थ, निरर्थक ।

फजूलखर्च (फा० वि०) अपव्ययी, बहुत खर्च करनेवाला ।

फजूलखर्ची (फा० स्त्री०) अपव्यय, व्यर्थ व्यय करना ।

फञ्जिका (सं० स्त्री०) भनक्ति रोगानिति भञ्ज आमर्दने ण्वुल्, पृषोदरादित्वात् भस्य फ, टापि अतइत्वं । १ ब्राह्मणयष्टिका, भारंगी नामका क्षुप । २ देवताड़ । ३ दुरालभा, जवासा । ४ दन्तिवृक्ष ।

फञ्जिपत्रिका (सं० स्त्री०) फञ्जिरोगहारकं पत्रं यस्याः कप्, टाप् अतो इत्वं । १ आखुपर्णी, मूसाकानी । २ वनस्पतिभेद ।

फञ्जी (सं० स्त्री०) भञ्ज-अच्, पृषोदरादित्वात् भस्य फ, गौरादित्वात् ङीप् । १ भार्गी, ब्रह्मनेष्टि नामक क्षुप । २ दन्तीवृक्ष । ३ वृद्धदारकवृक्ष । ४ योजनवल्ली ।

फञ्जीकर (सं० पु०) फञ्जी ।

फञ्ज्यादिपञ्चक (सं० पु०) फञ्जी आदि करके पांच प्रकारका साग, फञ्जी, जीवनी, पद्मा, तर्कारी और चुञ्चक यही पांच प्रकारके साग । इसका गुण वातहारक, ग्राहक, दीपन, रुचिकर, त्रिदोषनाशक, पथ्य, ग्राहक और बलकर माना गया है ।

फट् (सं० अव्य०) १ अनुकरणशब्द । २ अस्त्रवीज, तन्त्रोक्त अस्त्र नामक मन्त्रभेद । इस मन्त्रका शान्तिकुम्भक्षालन, अर्घ्यपात्रक्षालन, अर्घ्यजल द्वारा पूजोपकरणके अभ्युक्षण, अन्तरीक्षगत विघ्नोत्सारण, विकिरक्षेपण, गन्धपुष्प द्वारा करशोधन, अघमर्षण, पापपुरुषताड़न, कराङ्गन्यास, नैवेद्यप्रोक्षण, होमाग्निके क्रव्यादांशपरित्याग, होमाग्निके आवाहन, तदग्नि प्रोक्षण आदिमें प्रयोग होता है । (लि०) ३ विशीर्णादि ।

* दिल्लीगजटमें लिखा है, कि मिठोलीके सिंह वनच्युत राजा लोनीसिंह और मौलवी फजल हकको द्वीपान्तर दण्ड मिला था ।

फट (सं० पु० स्त्री०) स्फुट् विकसने पचाद्यच्, पृषोदरादित्वात् साधुः । १ फणा । २ दम्भ, पाखण्ड । ३ कितव, छल, धोखा ।

फट (हिं० स्त्री०) १ किसी फैले तलकी हलकी पतली चीजके हिलने या गिरने पड़नेका शब्द । २ फट् देखो ।

फटक (हिं० पु०) १ स्फटिक, बिल्लौर पत्थर । (वि०) २ तत्क्षण, झट ।

फटकन (हिं० स्त्री०) वह जो फटक कर निकाला जाय ।

फटकना (हिं० क्रि०) १ हिला कर फट फट शब्द करना । २ सूप पर अन्न आदिको हिला कर साफ करना । ३ रुई आदिको फटकेसे धुनना । ४ फेंकना, पटकना । ५ चलाना, मारना । ६ पहुंचना, जाना । ७ अलग होना, दूर होना । ८ श्रम करना, हाथ पैर हिलाना । ९ तड़फड़ाना, हाथ पैर पटकना ।

फटकरी (हिं० स्त्री०) फिटकरी देखो ।

फटका (हिं० पु०) १ रुई धुननेकी धुनियेकी धुनकी । २ तड़फड़ाहट । ३ रस और गुणसे हीन कविता, कोरी तुकबंदी । ४ वह लकड़ी जो फले हुए पेड़ोंमें इसलिये बांधी जाती है, कि रस्सीके हिलानेसे वह उठ कर गिरे और फटफटका शब्द हो जिससे चिड़ियां उड़ जायं अथवा पेड़के पास न आयं । ५ एक प्रकारकी बलुई भूमि । ऐसी भूमिमें पत्थरके टुकड़े भी होते हैं जिससे वह उपजाऊ नहीं होती ।

फटकाना (हिं० क्रि०) १ अलग करना, फेंकना । २ फटकनेका काम किसी दूसरेसे कराना ।

फटकार (हिं० स्त्री०) १ दुतकार, झिड़की । २ शाप । फिटकार देखो ।

फटकारना (हिं० क्रि०) १ शस्त्र आदि मारना, चलाना । २ झटका दे कर फेंकना । ३ अलग करना, दूर करना । ४ एकमें मिली हुई बहुत-सी चीजोंको एक साथ हिलना या झटका मारना जिसमें वे छितरा जांय । जैसे, दाढ़ी फटकारना । ५ लाभ उठाना, लेना । ६ कपड़ेको अच्छी तरह पटक पटक कर धोना । ७ खरी और कड़ी बात कह कर चुप करना ।

फटकिया (हिं० पु०) मीठा नामक एक प्रकारका विष ।

यह गोवरियासे कम विषैला होता है और उससे छोटा भी होता है।

फटकी (सं० स्त्री०) स्फटिकारी, फिटकरी।

फटकी (हिं० स्त्री०) १ एक प्रकारका पिंजड़ा जो टोकरीके आकारका होता है। इसमें चिड़ीमार चिड़ियोंको पकड़ कर रखते हैं। २ फटका देखो।

फटना (हिं० क्रि०) १ आघात लगनेके कारण अथवा यों ही किसी पोली चीजका इस प्रकार टूटना या खंडित होना अथवा उसमें दराज पड़ जाना जिसमें भीतरकी चीजें वाहर निकल पड़ें अथवा दिखाई देने लगे। २ किसी घने तरल पदार्थमें कोई ऐसा विकार उत्पन्न होना जिससे उसका पानी और सार भाग दोनों अलग अलग हो जायँ। ३ किसी वातका वहुत अधिक होना। ४ झटका लगनेके कारण वा और किसी प्रकार किसी वस्तुका कोई भाग अलग हो जाना। ५ किसी पदार्थका वीचसे फट कर छिन्न भिन्न हो जाना। ६ पृथक् हो जाना, अलग हो जाना। ७ असह्य वेदना होना, वहुत अधिक पीड़ा होना।

फटफट (हिं० स्त्री०) १ फटफट शब्द होना। २ व्यर्थकी वात, वकवाद। ३ जूते आदिके पटकनेका शब्द।

फटफटाना (हिं० क्रि०) १ व्यर्थ वकवाद करना। २ हिला कर फट फट शब्द करना। ३ टक्कर मारना, इधर उधर फिरना। ४ प्रयास करना, हाथ पैर मारना। ५ फट फट शब्द होना।

फटा (सं० स्त्री०) फट-स्त्रियां टाप्। १ फणा, सांपका फन।

"निर्विषेणापि सर्पेण कर्त्तव्या महती फटा।
विषं भवति मा वास्तु फटाटोपो भयङ्करः॥"
(पञ्चतन्त्र ३।८३)

२ दम्भ, घमंड, गरूर। ३ छल, धोखा।

फटा (हिं० पु०) छिद्र, छेद।

फटिक (पा० पु०) १ कांचकी तरह सफेद रंगका पारदर्शक पत्थर, विल्लौर। २ सङ्ग-मरमर, मरमर पत्थर।

फटिका (हिं० स्त्री०) एक प्रकारकी शराव। यह जौ आदिसे खमीरको उठा कर विना खींचे वनाई जाती है।

फटिकारी (सं० स्त्री०) स्वनामख्यात क्षारविशेष, फिटकरी (Altimen, Alum), भिन्न भिन्न देशमें यह भिन्न भिन्न नामसे प्रसिद्ध है,—तैलङ्ग—पटिकुरम, तामिल—पडिकारम, दाक्षिणात्य—फटकी, गुर्ज्जर—फकंरी, वम्बई—फटिकी, वङ्गाल—फटकिरी। इसका गुण—संग्राही, सङ्कोचक, अपूर्त्तिकर, वालविसूची, उदरामय और नासारक्तस्रावमें हितकर, तथा कटु, स्निग्ध और कषाय एवं प्रदररोग, मेहकृच्छ्र, वमन और शोषनाशक है।

विशेष विवरण फिटकरी शब्दमें देखो।

फट्टा (हिं० पु०) १ चीरी हुई वाँसकी छड़, फलटा। २ टाट।

फट्टी (हिं० स्त्री०) वांसकी चिरी हुई पतली छड़।

फड़ (हिं० स्त्री०) १ जूआ खेलनेकी एक रीति। एक चौखूंटी गोलीकी एक एक पीठ पर कुछ शून्य चिह्न देने होते हैं। एक ओर ५ और दूसरी ओर ७ आदि चिह्न रहते हैं। अव उस गोलीको किसी एक वरतनमें रख कर जमीन पर औंधे रख देते हैं। जुआरी उस गोटीके शून्यचिह्नके अनुसार ५, ७, ३, २ आदि जिसे जैसा सूझता है, उसीके अनुसार वाजी रखता है। वाजी रखनेके वाद उस वरतनको हाथसे अलग कर लेते हैं। अव उस जमीन पर पड़ी हुई गोटीके ऊपर जो चिह्न रहता है उसीके अनुसार हार जीत होती है, अर्थात् उस गोटीके ऊपरवाले चिह्न पर वाजी रखी है उसकी जीत और शेष सर्वोंकी हार मानी जाती है। पहले इस खेलका वहुत प्रचार था। पर अव आईनके अनुसार दण्डनीय हो गया है।

२ जूएका दाँव जिस पर जुआरी वाजी लगा कर जूआ खेलते हैं। ३ पक्ष, दल। ४ वह स्थान जहां जुआरी एकत्र हो कर जूआ खेलते हों, जूएका अड्डा। ५ वह स्थान जहां दूकानदार वैठ कर माल खरीदता या वेचता हो। ६ वह गाड़ी जिस पर तोप चढ़ाई जाती है, चरख। ७ गाड़ीका हरसा। ८ फर देखो।

फड़क (हिं० स्त्री०) फड़कनेकी क्रिया या भाव।

फड़कन (हिं० स्त्री०) १ फड़कनेकी क्रिया या भाव, फड़फड़ाहट। २ धड़कन। ३ उत्सुकता, लालसा। (वि०) ४ भड़कनेवाला। ५ तेज, चंचल।

फड़कना (हिं० स्त्री०) १ फड़ फड़ करना, फड़फड़ाना। २ गति होना, हिलना डोलना। ३ स्थिर रहना, तड़-

फड़ाना। ४ पक्षियोंका पर हिलना। ५ किसी अंगमें गति उत्पन्न होना।

फड़काना (हिं० क्रि०) १ दूसरेको फड़कनेमें प्रवृत्त करना। २ विचलित करना, हिलाना। ३ उत्सुक बनाना, उमंग दिलाना।

फड़कापेलन (हिं० पु०) एक प्रकारका बैल। इसका एक सींग तो सीधा ऊपरको होता है और दूसरा नीचेको झुका होता है।

फड़नवीस—महाराष्ट्र-राजकर्मचारीविशेषका पद। पहले यह पद केवल उन्हींका माना जाता था जो राजसभामें रह कर साधारण लेखकोंका काम करते थे। पर पीछे यह पद उन लोगोंका माना जाने लगा जो दीवानी या मालविभागके प्रधान कर्मचारी होते थे। ये लोग लगान वसूल करनेवालोंका हिसाव जांचा और लिया करते थे। बड़े बड़े इनाम और जागीर देनेकी व्यवस्था ये ही लोग किया करते थे।

महाराष्ट्रराज-सरकारमें बहुतोंने फड़नवीसपदका भोग किया है, पर उनमेंसे नानाफड़नवीसका नाम भारतके इतिहासमें विशेष प्रसिद्ध है। नाना फड़नवीस देखो।

फड़फड़ाना (हिं० क्रि०) १ फड़फड़ शब्द उत्पन्न करना, हिलाना। २ फड़फड़ शब्द होना। ३ घबराना। ४ तड़फड़ाना। ५ उत्सुक होना।

फड़िङ्गा (सं० स्त्री०) फड़िति शब्दं इङ्गति गच्छतीति इङ्ग गतौ अच् टाप्। १ झिल्लीकीट, झींगुर। २ पतङ्ग, पतिंगा।

फड़िया (हिं० पु०) १ सामान्य द्रव्यविक्रयी, वह बनिया जो फुट कर अन्न बेचता हो। २ वह पुरुष जो जूआ खेलानेका व्यापार करता हो, जूएके फंड़का मालिक।

फड़ी (हिं० स्त्री०) एक गज चौड़ी एक गज ऊंची और तीस गज लम्बी पत्थरों या ईंटों आदिकी ढेरी।

फड़ोलना (हिं० क्रि०) किसी चीजको उलटाना पलटाना, इधर उधर या ऊपर नीचे करना।

फण (सं० पु०) फणति विस्तृति गच्छतीति फण-अच्। १ सर्पका विस्तृत मस्तक, सांपका फन। पर्याय—फणा, फण, फटा, फट, स्फट, स्फटा, दर्वी, भोग, स्फुट, स्फुटा, दर्वी, फटी। इस शब्दके अन्तमें धर, कर, भृत्, वत् शब्द लगा कर बनाया हुआ समस्त पद सांपका बोधक बनाता है। २ घ्राणमार्गके दोनों ओर स्रोतोमार्गप्रतिबद्ध मर्मद्वय। मर्मन् देखो। ३ रस्सीका फंदा, मुद्धी। ४ नावमें ऊपरके तख्तेकी वह जगह जो सामने मुंहके पास होती है, नावका ऊपरी अगला भाग।

फणकर (सं० पु०) फणः कर इवास्येति, फणस्य करो वा। भुजङ्ग, सर्प।

फणधर (सं० पु०) धरतीति धृ-अच् फणस्य धरः। सर्प, सांप।

फणधरधर (सं० पु०) फणधरस्य सर्पस्य धरः। शिव, महादेव।

फणभृत् (सं० पु०) फणं बिभर्त्ति इति भृ-क्विप् तुक् च। सर्प।

फणवत् (सं० पु०) फणोऽस्यास्तीति फण-मतुप्, मस्य व। सर्प।

फणा (सं० स्त्री०) फणति प्रसारसङ्कोचं गच्छतीति फण-गतौ अच् टाप्। सर्पफणा, सांपका फन।

फणाकर (सं० पु०) करोतीति कृ-अच्, फणायाः करः। सर्प।

फणाधर (सं० पु०) धरतीति धृ-अच्, फणायाः धरः। सर्प।

फणाभर (सं० पु०) बिभर्त्ति धरतीति भृ-पचाद्यच्। सर्प।

फणावत् (सं० पु०) फणा अस्त्यर्थे मतुप्, मस्य व। सर्प।

फणि (सं० पु०) विष।

फणिक (हिं० पु०) नाग, सांप।

फणिका (सं० स्त्री०) कृष्णोदुम्बरिका, काले गूलरका पेड़।

फणिकार (सं० पु०) बृहत्संहितोक्त देशभेद, एक प्राचीन देशका नाम जो बृहत्संहिताके अनुसार दक्षिणमें था।

फणिकेशर (सं० क्ली०) फणीव केशरोऽस्य नागकेशर। नागकेसर।

फणिखेल (सं० पु०) फणिना सह खेलतीति खेल-अच्। भारतीपक्षी।

फणिचक्र (सं० क्ली०) फण्याकारं चक्रं। फलित ज्योतिषके अनुसार नाड़ीचक्रका नाम। यह एक सर्पाकार चक्र

होता है। इसमें भिन्न भिन्न स्थानों पर नक्षत्रोंके नाम लिखे रहते हैं। इन सब नक्षत्रोंका वेध देख कर विवाहका शुभाशुभ निर्णय किया जाता है। इस चक्रके पृष्ठमें १, ६, ७, १२, १३, १८, १९, २४, २५ नक्षत्र और मध्यमें २, ५, ८, ११, १४, १७, २०, २३ और २६ नक्षत्र तथा क्रोड़में ३, ४, ९ १०, १५, १६, २१, २२, २३ नक्षत्र संस्थित है। इस चक्रसे विवाहके समय वर और कन्याकी नाड़ीका मिलान किया जाता है। पर यदि वर और कन्या दोनों एक ही राशिके हों, तो इस चक्रका मिलान नहीं होता।

फणिचम्पक (सं० पु०) वनचम्पकवृक्ष, जंगली चम्पा।

फणिजा (सं० स्त्री०) फणीव जायते जन-ड। फणिमनसावृक्ष, एक प्रकारकी तुलसी जिसकी पत्तियां बहुत छोटी होती हैं।

फणिजिह्वा (सं० स्त्री०) फणिजिह्वेन आकृतिरस्त्यस्य इति अच्। १ महाशतावरी, बड़ी सतावर। २ महासमङ्गा, कंगहिया नामक ओषधि।

फणिजिह्विका (सं० स्त्री०) १ श्वेत शारिवा, कंगहिया नामक ओषधि। २ महाशतावरी, बड़ी सतावर।

फणिज्भक (सं० पु०) फणिनामुज्भकः, वहिष्कारक उत्पादक इति यावत् पृषोदरादित्वात् साधु, फणितुल्य वहुपत्रपुष्पवत्त्वात् यथात्वं। १ क्षुद्रपत्र तुलसी, छोटे पत्तेकी तुलसी। २ श्यामा तुलसी। ३ मधुर जम्बीर, मीठा नीबू। ४ पलाशवृक्ष।

फणित (सं० त्रि०) फण-गतौ-क्त। १ गत। २ निःस्नेहित।

फणितल्पग (सं० पु०) फणी शेष इव तल्पं फणितल्पं तस्मिन् गच्छतीति गम-ड। विष्णु। भगवान् विष्णु। कल्पान्तमें अनन्तशय्या पर सोते हैं, इसीसे इनका फणितल्पग नाम पड़ा है।

फणिन् (सं० पु०) फणास्त्यस्येति फणा (व्रीह्यादिभ्यश्च। पा ५।२।११६) इति इनि। १ सर्प, सांप। २ सर्पिणी नामक ओषधि। ३ केतु नामक ग्रह। ४ सीसक, सीसा। ५ मरुवक नामक ओषधि, मरुवा।

फणिपति (सं० पु०) फणीन्द्र देखो।

फणिप्रिय (सं० पु०) वायु, हवा।

फणिफेन (सं० पु०) फणिनां फेन-इव उग्रगुणत्वात्। अहिफेन, अफीम।

फणिमारिका (सं० स्त्री०) कृष्णोदुम्बरवृक्ष, काले गूलरका पेड़।

फणिभुज (सं० पु०) फणिमं भुङ्क्ते भुज-क्विप्। पन्नगासन, गरुड़।

फणिमुक्ता (सं० स्त्री०) मुक्ताभेद, सांपकी मणि। मुक्ता देखो।

फणिमुख (सं० क्ली०) फणिन इव मुखमस्य। प्राचीन कालका चोरोंका एक प्रकारका औजार जिससे वे सेंध लगानेके समय मट्टी खोद कर फेंकते थे।

फणिलता (सं० स्त्री०) नागवल्लीलता, पान।

फणिवल्ली (सं० स्त्री०) फणीव दीर्घा वल्ली। नागवल्ली।

फणिसम्भारा (सं० स्त्री०) कृष्ण उदुम्बर, काला गूलर।

फणिहन्त्री (सं० स्त्री०) फणिनो हन्तीति हन् तृच, ङीप्। गन्धनाकुली, नेउरकंद।

फणिहारी (सं० पु०) कपिकच्छु।

फणिहृत् (सं० स्त्री०) फणिनो हरति स्वगन्धेन अपसरायतीति हृ-क्विप् तुगागमश्च। क्षुद्र दुरालभा, जवासा।

फणी (सं० पु०) फणिन् देखो।

फणीन्द्र (सं० पु०) फणिनां इन्द्रः। १ शेष। २ वासुकि। ३ बड़ा सांप।

फणीयम् (सं० क्ली०) पद्मकाष्ठ।

फणीश (सं० पु०) फणिनामीशः। सर्पेश्वर। फणीन्द्र देखो।

फण्ड (सं० पु०) फणति फण-गतौ ड (नमन्ताद् ड। उण् १।११३) जठर।

फतनाराज—गुजरोंका एक प्रसिद्ध दलपति। सिपाही-विद्रोहके समय शाहरानपुर अञ्चलमें इन्होंने अङ्गरेजोंको तंग तंग कर डाला था। आखिर १८५७ ई०के जूनमासमें ये अङ्गरेजोंसे अच्छी तरह परास्त हुए।

फतवा (अ० पु०) मुसलमानोंके धर्मशास्त्रानुसार व्यवस्था जो उस धर्मके आचार्य वा मौलवी आदि किसी कर्मके अनुकूल वा प्रतिकूल होनेके विषयमें देते हैं।

फतवा—फतुआ देखो।

फतह (सं० स्त्री०) १ विजय, जीत। २ कृतकार्यता, सफलता।

फतहमंद (अ० वि०) जिसे फतह मिली हो, जिसकी जीत हुई हो।

फतहाबाद—फतेहाबाद देखो।

फतिंगा (हिं० पु०) एक प्रकारका उड़नेवाला कीड़ा। यह कीड़ा विशेषतः बरसातके दिनोंमें अग्नि या प्रकाशके आस पास मँड़राता हुआ अन्तमें उसीमें गिर पड़ता है, पतिंगा।

फतीलसोज़ (फा० पु०) १ पीतल या और किसी धातुकी दीवट। इसमें एक वा अनेक दीये ऊपर नीचे बने होते हैं। इसमें तेल भर कर वत्तियां जलाई जाती हैं। उन दीयोंमें किसीमें एक, किसीमें दो और किसीमें चार चार वत्तियां जलती हैं। इसे चौमुखी भी कहते हैं। २ कोई साधारण दीयट, चिरागदान।

फतीला (अ० पु०) १ जरदोजीका काम करनेवालोंकी लकड़ीकी तीली। इस पर वेलबूटा और फूलोंकी डालियां बनानेके लिये कारीगर तारको लपेटते हैं।

फतुआ—पटना जिलेका एक नगर और रेल-स्टेशन। यह अक्षा० २५° ३०´ उ० और देशा० ८५° २१´ पू० पटना शहरसे ८ मील दूर पुनपुन और गङ्गाके सङ्गम पर अवस्थित है। गङ्गा-सङ्गम पर बसे रहनेके कारण यह तीर्थस्थानरूपमें गिना जाता है। यहां वर्षमें ५ मेले लगते हैं। जिसमेंसे वारुणीद्वादशीको स्नानोपलक्षमें जो मेला लगता है, वह सबसे बड़ा है। इस समय लाखसे ऊपर मनुष्य एकत्र होते हैं।

फतूर (अ० पु०) १ दोष, विकार। २ उपद्रव, खुराफात। ३ विघ्न, वाधा। ४ हानि, नुकसान।

फतूरिया (अ० वि०) जो किसी प्रकारका फतूर या उत्पात करे, उपद्रवी।

फतूह (अ० स्त्री०) १ विजय, जीत। २ लूटका माल। ३ विजयमें प्राप्त धन आदि, वह धन जो लड़ाई जीतने पर मिला हो।

फतूही (अ० स्त्री०) १ एक प्रकारकी पहननेकी कुरती। यह सिर्फ कमर तक होती है और इसके सामने बटन या घुंडी लगाई जाती है। आस्तीन इसमें नहीं होती। २ वह कटी, सलूका। ३ विजय या लूटका धन, लड़ाई या लूटमें मिलाहुआ माल।

फतेअली—तलपुरमीरोंके एक सरदार। सिन्धुप्रदेशमें कल्होरायोंने कुछ दिन तक राज्य किया। पीछे फतेअलीने अपरापर वलूचियोंकी सहायतासे उन्हें भगा कर सिन्धु प्रदेश पर अधिकार जमाया। वे एकच्छत्र अधिपति होना चाहते थे। पर ऐसा नहीं हुआ। आत्मीयविच्छेद और रक्तपातका सूत्रपात हुआ। अब फतेअली मीरपुर आदि कुछ स्थानोंका परित्याग कर तीनों भाइयोंके साथ हैदराबादमें राज्य करने लगे।

सिन्धुप्रदेश देखो।

फते खाँ—निजामशाही राज्यके एक सर्वमय कर्त्ता, मालिक अम्बरके ज्येष्ठ पुत्र। मालिक अम्बरकी मृत्युके बाद १६२६ ई०में फते खाँ निजामशाही राज्यके अभिभावक हुए थे। पदलाभके बाद ही उन्होंने निजाम-उल-मुलककी सलाहसे मुगलोंके साथ युद्ध ठान दिया। इधर श्रेष्ठ क्षमता हाथमें आ जानेसे वे धीरे धीरे अत्याचारी हो गये। १६२६ ई०में मुर्त्तजा निजामशाह (२य) वालिग हुए। फते खाँके हाथ कुल अधिकार छीनना ही उनका पहला काम था। उनका उद्देश्य भी फलीभूत हुआ। तकरिब खाँकी सहायतासे उन्होंने फते खाँको कैद कर लिया। मूर्त्तजा भी उपयुक्त बुद्धिशक्तिके अभावसे सबोंके अप्रिय हो उठे। शाहजी भोंसलेने उनका पक्ष छोड़ कर मुगलोंका पक्ष लिया। दुर्भिक्ष और शत्रुके आक्रमणसे वे तंग तंग आ गये। इस समय मुगलसेनापति आजम खाँको उत्तेजनासे मूर्त्तजाने पुनः फते खाँको पूर्वाधिकार प्रदान किया। इस भलाईका फल उलटा ही निकला। फते खाँ अभी हाथमें सारी क्षमता पा कर मूर्त्तजा निजामके विरुद्ध खड़े हो गये। विजयपुरके राजाने मुगलोंके विरुद्ध लड़ाई ठान दी। फते खाँने उनका साथ दिया। इस युद्धमें वे कभी विजयपुरका और कभी मुगलोंका साथ देते थे इस कारण दोनोंकी ही निगाहमें वे विश्वासघातक ठहराये गये। आखिर १६३१ ई०में मुगलसेनापति महम्मदखाँने दौलताबादमें फते खाँको चारों ओरसे घेर लिया। निजामशाही राज्यका पतन अवश्यम्भावी समझ कर फते खाँ मुगल-

सेनापतिके निकट आत्मसमर्पण करनेको वाध्य हुए। इसके वादसे वे मुगलोंके अधीन काम करने लगे।

फतेगञ्ज (पूर्व)—युक्तप्रदेशके वरेली जिलान्तर्गत एक ग्राम। इसके दो विभाग हैं, पूर्व और पश्चिम। यह अक्षा० २८° ४′ उ० और देशा० ७९° ४२′ पू० वरेलीसे शाहजहानपुर जानेके रास्ते पर अवस्थित है। १७७४ ई०में यह स्थान अङ्गरेज-रोहिला-युद्धकी रङ्गभूमि हो गया था। इस युद्धमें रोहिला-सरदार हाफिज रहमत् खाँकी मृत्यु हुई। अयोध्याके नवाव वजीर सुजाउद्दौलाने अङ्गरेजोंको जय-घोषणाके लिये यहां वर्त्तमान ग्राम वसाया। इसके वाद ये सव स्थान उनके दखलमें आ गये।

फतेगञ्ज (पश्चिम)—उक्त वरेली जिलेका एक ग्राम। यहां भी १७९४ ई०के अक्तूवर मासमें अङ्गरेजों और रोहिलोंका युद्ध हुआ। इस वार भी रोहिलोंकी ही हार हुई थी। इस युद्धक्षेत्रमें दो रोहिल-सरदारोंकी कब्र और मृत-अङ्गरेजसेनाकी समाधिके ऊपर जो स्मृति-स्तम्भ स्थापित हुआ था वह आज भी देखनेमें आता है।

फतेगढ़—१ पञ्जावके पतियाला राज्यके अन्तर्गत अमरगढ़ निजामतकी एक तहसील। यह अक्षा० ३०° ३३′ से ३०° ५९′ उ० और देशा० ७६° १७′ से ७६° ४२′ पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण २४३ वर्गमील और जनसंख्या लाखसे उपर है। इसमें वसी और सरहिन्द नामके २ शहर और २४७ ग्राम लगते हैं।

फतेगढ़—युक्तप्रदेशके फर्रुखावाद जिलेका सदर। यह अक्षा० २७° २४′ उ० और देशा० ७९° ३५′ पू०के मध्य अवस्थित है। जनसंख्या सोलह हजारसे ऊपर है।

पहले यह स्थान अयोध्याके नवाव वजीरोंके अधिकारमें था। १८२० ई०में जव यह अङ्गरेजोंको सुपुर्द किया गया, तव यहां गवर्नर जेनरलके एजेण्ट साहवका सदर स्थापित हुआ। १८०४ ई०में होलकरराजने फतेपुर दुर्ग पर धावा वोल दिया। पीछे लार्ड लेकके आने पर वे हार खा कर भागे। अनन्तर १८५७ ई०में सिपाही-विद्रोहके समय यह स्थान अङ्गरेजोंके खूनसे तर हो गया था। अङ्गरेज लोग अवरोधके समय दुर्गकी रक्षा करके भी अपनेको न वचा सके। पलातकोंमेंसे कुछ तो नदीमें विद्रोहियोंके हाथ डुवोए गये और कुछ कानपुर भागते समय नाना साहव के शिकार वन गये थे। जो आश्रय पानेके लिये इधर उधर भटक रहे थे, वे भी धृत हो कर तीन मास कारागारमें रखे गये और पीछे यमराजके मेहमान वने। उन मृत देहको एक कूपमें डाल कर ऊपरसे एक स्मृति-स्तम्भ खड़ा कर दिया गया है।

आज भी यहां मीरटविभागका सेनावास है। १८१८ ई०में यहां वृटिश-गवर्मेण्टकी गन-कैरेज-फैक्टरी (Gun-Carriage Factory) स्थापित हुई। १८३० ई०में काशीपुर (कलकत्तेके उत्तर)-की सेण्ट्रल फैक्टरीके उठ जानेके वादसे सेनाविभागके कमानवाही यानादि यहां पर ही वनाये जाते हैं।

ईसाइयोंने यहां अनाथ वालक-वालिकाओंके लिए एक मकान वनवा दिया है। यहांके लोग कृषिकार्य द्वारा अपना गुजारा चलाते हैं। यहां गन-कैरेज फैक्टरीके अलावा एक मिडिल स्कूल, वहुतसे प्राइमरी स्कूल, एक वालिका स्कूल तथा एक ऐसा स्कूल है जिसमें केवल यूरोपियन तथा यूरोपियनके लड़के पढ़ते हैं।

२ पञ्जावके गुरुदासपुर जिलान्तर्गत फतेगढ़ तहसीलका एक नगर। यहां काश्मीरी शालका विस्तृत कारवार होता है।

फतेजङ्ग—१ पञ्जावके अन्तर्गत रावलपिण्डी जिलेकी एक तहसील। यह अक्षा० ३३° १′ से ३३° ४५′ उ० और देशा० ७२° २३′ से ७३° १′ पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ८६६ वर्गमील और जनसंख्या लाखसे ऊपर है।

२ उक्त उपविभागका एक प्रधान नगर। इसका प्राचीन हिन्दूनाम चास है। यहां अति प्राचीन और पूर्वतन ग्रीक राजाओंके समयकी मुद्रा पाई गई है। यहां जलाभाव होने पर भी नगरकी अवस्था खराव नहीं है। कालावाग और खुसालगढ़ तक दो वड़ी वड़ी सड़कें चली गई हैं जिससे वाणिज्य व्यवसायकी विशेष सुविधा है। नगरसे आध कोस दूर २२५ फुट लम्वा, १६० फुट चौड़ा और २६। फुट ऊंचा मट्टीका एक टीला है। इस स्तूप परके प्रस्तरादिका गठन देखनेसे मालूम होता है, कि हिन्दूप्रभावकालमें यहां एक वड़ा दुर्ग था। उसके

उत्तर एक सुवृहत् मन्दिरका भग्नावशेष नजर आता है। इस स्थानको वहांके लोग चासधेरी कहते हैं। इसके पूरबमें और भी कितने छोटे छोटे स्तूप देखे जाते हैं जिनका व्यास २० फुट है। प्रवाद है, कि चास नगरके इस वृहत् स्तूपमें प्रचुर रत्न गड़ा हुआ है। किस उपाय से उस स्तूपमेंसे वह अर्थ निकाला जा सकता है वह रावलपिण्डीके मुद्राव्यवसायियोंके पास एक पुस्तकमें लिखा है, किन्तु कोई भी इस ओर ध्यान नहीं देते।

फतेमहम्मद खाँ नायक—विख्यात महिसुरराज हैदरअली के पिता। हैदरअली देखो।

फते पञ्जाल—काश्मीर राज्यके अन्तर्गत एक गिरिमाला। इसके दक्षिण काश्मीरकी उपत्यका भूमि है। यह अक्षा० ३३° ३४′ उ० और देशा० ७४° ४० पू०के मध्य अवस्थित है। इसकी ऊंचाई १२ हजार फुट और लम्बाई ४० मील है।

फतेपुर—युक्तप्रदेशके इलाहाबाद विभागके अन्तर्गत एक जिला। यह अक्षा० २५° २६′ से २६° १६′ उ० और देशा० ८०° १४′ से ८१° २०′ पू०के मध्य अवस्थित है। इसके उत्तरमें गङ्गानदी, पश्चिममें कानपुर, दक्षिणमें यमुना और पूर्वमें इलाहाबाद जिला है। भूपरिमाण १६१८ वर्गमील है।

उत्तर और दक्षिणमें गङ्गा तथा यमुना नदीके वहनेसे यह जिला दोआबके अन्तर्भुक्त हुआ है। पहले बहुत-सी स्रोतस्वती हिमालय पर्वतसे निकल कर इस स्थान हो कर वहती थी। आज भी उनका निदर्शन पाया जाता है। एतद्भिन्न पाण्ड, रिन्द और नुन नदी प्रवाहित भूभागकी दृश्यावली अतीव मनोहर है। जिलेके मध्यभागमें कुछ झीलें भी हैं जिनसे कृषिकार्यमें विशेष सुविधा होती है। पश्चिममें पर्वतसंलग्न बबूलका वन है।

बहुत प्राचीनकालसे ही यहां भील नामक अनार्य जातिका वास है। रामायणमें लिखा है, कि रामचन्द्र यहां पर गुहकके अतिथि हुए थे। यह स्थान बहुत समय तक अर्गल-राजवंशके अधिकारमें रहा (१) इन सब राजाओंने कन्नोजराजके पक्षसे मुसलमानोंके विरुद्ध युद्ध किया था। कन्नोजराजकी पराजय होने पर भी सम्राट् अकबरशाहके राज्यकाल पर्यन्त इन्होंने स्वाधीनता अक्षुण्ण रखी थी। अकबरने सामान्य कारणोंसे अप्रसन्न हो कर अर्गलराज्यके विरुद्ध सेना भेजी। युद्धमें हिन्दूराज मारे गये और उनका दुर्ग तथा प्रासाद भूमिसात् कर डाला गया। इसके बाद मुगल-सम्राट्ने राजस्व वसूल करनेके लिये यह प्रदेश असोथरके ठाकुर रा ओंके हाथ सौंपा।

इसके समीप ही हसवा नगरका ध्वंसावशेष प्राचीनत्वका परिचायक है। राजा कुशध्वजने इसे बसाया था। विस्तृत विवरण हसवा शब्दमें देखो।

११९५ ई०में शाहबुद्दीन घोरीने इस स्थानको लूटा। तभीसे यह स्थान दिल्लीके शासनाधीन हुआ। १३७६ ई० में फतेपुर, कोरा और महोबा नामक स्थान मालिक-उलसार्क नामक किसी शासनकर्त्ताके अधीन था। उन्होंने अपने बाहुबलसे तैमुरके भीषण आक्रमणसे देशरक्षा की थी। उन्हींके सुशासनसे राज्य भर शान्ति विराजती थी। मुगलराजवंशके अधिष्ठानके पहले भी वह नष्ट नहीं हुआ। १५२६ ई०में बाबरने इस स्थानको दखल किया। उस समय भी यह स्थान पठानराजाओंका केन्द्रस्थल था। उन्होंने बड़े साहससे युद्ध करके मुगलोंके राज्यस्थापनकी आशा धूलमें मिला दी थी। हुमायुनके सिंहासन पर अधिरूढ़ होने पर भी शेरशाहने यहां बलसंग्रह करके उन्हें मार भगाया था। दिल्ली-राजवंशकी शासनप्रभा जब बुझने पर आई, तब फतेपुरका शासन-अयोध्याराजके हाथ सौंपा गया। कोराके जमींदार अयजूके बुलाने पर १७३६ ई०में मराठोंने इस प्रदेशको लूटा और १७५० ई० तक यह उन्हींके दखलमें रहा। पीछे फतेगढ़के पठानोंने यह स्थान मराठोंके हाथसे छीन लिया। इसके तीन वर्ष बाद अयोध्याके स्वाधीन वजीर सफदरजङ्गने उसे जीत कर निज राज्यभुक्त किया।

१७५६ ई०में अयोध्याके वजीर दिल्लीके अधीनता-पाशको तोड़ कर स्वाधीन हो गये। १७६५ ई०में अंगरेजराजने उन्हें स्वतन्त्र राजाके जैसा स्वीकार किया। उसी सालकी सन्धिके अनुसार फतेपुर सम्राट् शाहआलमके हस्तगत हुआ। परन्तु १७७४ ई०में उक्त सम्राट्के मराठोंके हाथ आत्म-समर्पण करने

(१) कन्नोजसे इलाहाबाद पर्यन्त इनका राज्य विस्तृत था।

पर उनके पूर्वदेशीय राज्य नवाव वजीरने ५० लाख रुपयेमें अंगरेजोंसे खरीद लिये। १७६८ ई०में यहांकी पूर्वसमृद्धिका ह्रास हुआ। वजीरके यहां राज-कर वाकी पड़ जानेके कारण १८०१ ई०में इलाहावाद और कोरा अंगरेजोंके हाथ लगा। इस समय फतेपुरका कुछ अंश इलाहावादमें और कुछ कानपुरमें मिला दिया गया तथा १८१४ ई०में गङ्गाके किनारे विठुर नगरमें नई राजधानी वसाई गई।

१८५७ ई०के जूनमासमें सिपाही-विद्रोहके समय इस स्थानके गृहादि जला दिये गये और अङ्गरेज-अधिवासियोंका यथासर्वस्व लूटा गया था। निराश्रय रमणियों और वालिकाओंमें हाहाकार मच गया था। विद्रोहीदल अङ्गरेजको देखते ही जानसे मार डालते थे। प्रायः एक मास तक फतेपुर सिपाहियोंके अधिकारमें रहा। ३०वीं जूनको जेनरल नीलने मेजर रेण्डको इलाहावादसे कानपुर भेजा। ११वीं जुलाईको जेनरल हेवलकने खागामें आ कर रेण्डका साथ दिया। १२वीं जुलाईको विद्रोहीदल अच्छी तरह परास्त हुए। इसके वाद अङ्गरेजोंकी गोलावृष्टिसे विद्रोहियोंको फतेपुरसे भागना पड़ा। १५वीं जुलाईको हेवलकने औङ्गकी और अग्रसर हो कर विद्रोहियोंको पाण्डुनदीके उस पार मार भगाया। इस नदीके किनारे दूसरी वार दोनों पक्षमें लड़ाई छिड़ी। पीछे सिपाही-दल कानपुरको भाग गये, लेकिन तो भी अङ्गरेजराज इस स्थानको अपने दखलमें न कर सके। जव तक लखनऊ नगरका पतन नहीं हुआ और लार्ड क्लाइवकी सेनाने ग्वालियरके विद्रोही सेनादलको मार न भगाया, तव तक सभी लोग अङ्गरेज शासनकी उपेक्षा करते रहे थे।

इस जिलेमें ५ शहर और १४०३ ग्राम लगते हैं। जनसंख्या सात लाखके करीव है। गङ्गातीरवर्त्ती शिवराजपुरका तीर्थक्षेत्र हिन्दूका एक पवित्र स्थान है। शस्यके अलावा यहां तमाकू और पीतलके वरतन तथा सोडेका विस्तृत कारवार है। शिवराजपुरमें कार्त्तिकमासमें एक मेला लगता है। इस समय नाना स्थानोंके पण्यद्रव्यके अलावा मवेशी, छागल, भेड़, घोड़े आदि भी विकने आते हैं। यहां १८३७ और १८६८ ई०में घोर अकाल पड़ा था।

विद्याशिक्षामें यह जिला वहुत पीछे पड़ा हुआ है। जिले भरमें १७७ सरकारी और १८० खानगी स्कूल हैं। स्कूलके अतिरिक्त यहां ६ अस्पताल हैं जहां रोगियोंकी अच्छी चिकित्सा की जाती है।

२ उक्त जिलेकी एक तहसील। यह अक्षा० २५° ४३´से २६° ४´ उ० और देशा० ८०° ३८´से ८१° ४´ पू०के मध्य अवस्थित है। क्षेत्रफल ३५६ वर्गमील और जनसंख्या दो लाखके करीव है। इसमें इसी नामका एक शहर और ३७४ ग्राम लगते हैं।

३ उक्त तहसीलका प्रधान नगर। यह अक्षा० २५° २६´ उ० और देशा० ८०° ५० पू०के मध्य अवस्थित है। जनसंख्या प्रायः १६२८१ है। वहुत प्राचीनकालसे यह नगर स्थापित है। सम्राट् वावरने अपने इतिवृत्तमें इसका उल्लेख कर गये हैं। औरङ्गजेवके शासनकालमें इसकी वहुत कुछ उन्नति हुई थी। अयोध्याके सचिव नवाव वाकरअली खाँका समाधिस्तम्भ और मसजिद तथा कोरावली हाकीम अवदुल हुसेनका धर्ममन्दिर ही उल्लेख योग्य है। यहां चमड़े, सावुन, चावुक और अनाजका विस्तृत कारवार है।

फतेपुर—१ अयोध्याके वारवांकी जिलेकी एक तहसील। यह अक्षा० २६° ५८´ से २७° २१´ उ० और देशा० ८०° ५६´ से ८१° ३५´ पू०के मध्य अवस्थित है। क्षेत्रफल ५२१ वर्गमील और जनसंख्या प्रायः ३३५४०७ है। इसमें २ शहर और ६७३ ग्राम लगते हैं। फतेपुर, कुर्सी, महम्मदपुर, विठोली, रामनगर और वादोसराय आदि परगने इसके अन्तर्गत हैं।

२ उक्त तहसीलका एक परगना। भूमिपरिमाण १५४ वर्गमील है। यह प्रसिद्ध खानजादावंशका आदि वासस्थान है। लखनऊके ख्यातनामा सेखजादागण फतेपुरके सेखजादा-वंशसम्भूत हैं।

३ उक्त वारवांकी जिलेका प्रधान नगर। यह अक्षा० २७° १०´ उ० देशा० ८१° १४´ पू०के मध्य अवस्थित है। जनसंख्या लगभग ८१८० है। मुगलसाम्राज्यकी उन्नतिके साथ साथ इस नगरकी श्रीवृद्धि हुई थी। आज भी उन सव मुसलमान-निर्मित अट्टालिकादिका ध्वंसावशेष देखनेमें आता है। नसिरउद्दीन् हैदरके कर्मचारी मौलवी

करमत् अलीका बनाया हुआ इमामवाड़ा ही यहांका प्रधान गृह है। सम्राट् अकबर शाहके समयकी बनी हुई एक मसजिद् आज भी विद्यमान है। उसके अधिकारीके निकट अकबरप्रदत्त सनद देखनेमें आती है। अलावा इसके यहां और भी कितने देवमन्दिर हैं। यहां सरकारी अदालत, अस्पताल और एक स्कूल हैं।

४ मध्यप्रदेशके होसेङ्गावाद जिलान्तर्गत एक ग्राम। यह अक्षा० २२° ३८′ उ० और देशा० ७८°३४′ पू०के मध्य अवस्थित है। मण्डलाके राजवंशके बाद यहां गोंड़-राजगण अर्द्ध स्वाधीन भावमें राज्य करते आ रहे हैं। १८५८ ई०में तांतियातोपी इसी स्थान हो कर सतपुरा पहाड़ पर भागे थे।

५ मध्यप्रदेशके दमोह जिलान्तर्गत एक गण्डग्राम।

६ राजपूतानेके जयपुर राज्यके अन्तर्गत शेखावटी जिलेका प्रधान नगर। यह अक्षा० २८° उ० और देशा० ७४° ५८′ पू० जयपुर शहरसे ६५ मील उत्तर-पश्चिममें अवस्थित है। जनसंख्या लगभग १६३६३ है। यहां १४ स्कूल और १ डाकघर है।

फतेपुर चौरासी—१अयोध्याके उनाव जिलेका एक परगना। यह फङ्करशके दक्षिण गङ्गाके किनारे अवस्थित है। यहां पहले ठठेरा नामक आदिमजातिका वास था। प्रायः तीन सौ वर्ष हुए, जानवार नामक राजपूत जातिने उन्हें भगा कर अपना वास स्थापन कर लिया है।

१८५७ ई०के गदरमें यहांके अन्तिम सरदार विद्रोही-दलमें मिल गये थे। फतेगढ़से पलातक अंगरेजोंको पकड़कर उन्होंने कानपुरमें नाना साहबके निकट भेज दिया। उनावके युद्धमें वे मारे गये। अंगरेज-सरकारने उनके एक लड़केको फांसी दी थी।

२ उक्त जिलेका एक प्रधान नगर। यह सफीपुरसे ३ कोस पश्चिममें अवस्थित है। यह स्थान क्रमानुसार ठठेरा, सैयद और जानवारोंके अधिकारमें रहा। सिपाहीयुद्धके बाद यह नगर वृटिश-शासनमें मिला लिया गया। प्रतिवर्षके दशहरा उत्सवमें यहां एक मेला लगता है।

फतेपुर सिकरी—युक्तप्रदेशके आगरा जिलेका एक विभाग। भूपरिमाण २७२ वर्गमील है। उत्तङ्गन और खारी नदी तथा आगराकी नहर इस विभागमें बहती है जिससे यहांके कृषकोंकी खेतीबारीमें बहुत सुविधा है। फसल भी अच्छी लगती है। मथुरा, आगरा आदि नगरोंमें जाने आनेके लिये लम्बी चौड़ी सड़क चली गई हैं।

२ उक्त जिलेका प्रधान नगर। यहां अक्षा० २७° ५′ उ० और देशा० ७७° ४०′ पू० आगरा शहरसे २३ मील अवस्थित है। जनसंख्या सात हजारसे ऊपर है। भारत-इतिहास-प्रसिद्ध सिकरीयुद्ध इस स्थानके पास ही हुआ था। पानीपत-युद्धके बाद जब बाबरने दिल्लीमें राज्यकी प्रतिष्ठा की, तब राणा संग्रामकी आँखें खुलीं। उनका ख्याल था, कि बाबर अपने पूर्वपुरुषोंकी तरह दिल्ली लूटकर स्वदेश जायंगे, पर ऐसा नहीं हुआ। वे रणजयके बाद दिल्लीमें चिरस्थायी बन्दोबस्त द्वारा मुगलराज्यकी जड़ मजबूत करनेकी कोशिश करने लगे। अब हिन्दू-राजत्वकी पुनः प्रतिष्ठा करनेकी राणाकी जो इच्छा थी, उस पर पानी फेर गया। तो भी राणा जरा भी विचलित न हुए। वे वीर पुरुष थे, अपने बाहुबलसे उन्होंने मुगलोंको भारतसे मार भगानेका संकल्प किया। इस उद्देश्यसे उन्होंने कुछ राजपूतों और पठान-राजकी सहायतासे बाबरके विरुद्ध युद्ध-घोषणा कर दी। १५२७ ई०में फतेपुर-सिकरीमें दोनों पक्षमें घोर युद्ध हुआ। इस युद्धमें राजपूत और पठान-सेना मुगलोंके हाथसे अच्छी तरह परास्त हुई और उत्तर-भारतमें बाबरके मुगल-साम्राज्यकी भित्ति दृढ़रूपसे प्रतिष्ठित हुई। इसी समय हिन्दूराजाकी भाग्यलक्ष्मी सदाके लिये विदा हो गई।

सम्राट् बाबरके प्रपौत्र अकबरने १५७० ई०में मुगल-दरबारकी स्थापनाके अभिप्रायसे उक्त प्रसिद्ध स्थानके पास ही इस नगरको बसाया। उनके तथा उनके पुत्र जहांगीरके समय यह स्थान अनेक सुरम्य अट्टालिकाओंसे सुशोभित था। परन्तु ५० वर्ष यहां रहनेके बाद मुगल-राजगण दिल्लीको चले गये। आज भी प्राचीरपरिवेष्टित पांच मील तक उस प्राचीन नगरका ध्वंसावशेष दृष्टिगोचर होता है। यहां सबसे बड़ा मुसलमान-मन्दिरका 'बुलन्द दरवाजा' नामक द्वारपथ देखने योग्य है। उस मन्दिरमें फकीरोंके रहनेके लिये बहुतसे घर बने हैं।

यहां मुसलमान-साधु शेख सलीम चिस्तीकी कब्र

आज भी विद्यमान है। इन्हींकी कृपासे अकबरने पुत्र-लाभ किया था, इस कारण उनके पुत्रका नाम सलीम रखा गया। दरगाहके उत्तर अबुल फज़ल और उनके भाई फैज़ीका आवासभवन है। अभी उस अट्टालिकामें स्कूल लगता है। पूर्वकी ओर अकबरकी प्रधान महिषीका प्रासाद है। सोपानसंयुक्त उच्च स्थानमें बीरबल और खृष्टान कुमारीका आवास-भवन है। प्रवाद है, कि अकबरने बीबी मरियम नाम्नी जिस पुर्त्तगीजकन्याका पाणिग्रहण किया था, उसके रहनेके लिये उन्होंने यह सुन्दर अट्टालिकादि बनवा दी थी। एतद्भिन्न दिवानी-खास और दीवान-इ-आम (विचारगृह और मन्त्रणागार) नामक अट्टालिका विशेष चित्तहारी है। हस्तिद्वारका हस्तिमुण्ड सम्राट् अकबरसे नष्ट हुआ था। हिरण-मिनार नामक स्मृतिस्तम्भ प्रायः ७० फुट ऊंचा है। अलावा इसके और भी कितनी प्राचीन अट्टालिकायें विद्यमान हैं।

आगरेसे आज भी बहुतेरे यह श्रीहीन सौन्दर्य देखने आया करते हैं। गत सौन्दर्यके साथ साथ यह स्थान जनहीन हो गया है। १८५७ ई०में नीमच और नसीराबादके विद्रोही दलने इस स्थानको अधिकार किया था। पीछे नवम्बरमासमें यह फिरसे अङ्गरेजोंके हाथ लगा।

वर्त्तमान फतेपुर नगर उक्त ध्वंसावशेषके दक्षिण-पश्चिम और सिकरी ग्रामके उत्तर-पूर्वमें अवस्थित है। किन्तु ये दोनों ही स्थान अकबरकी प्राचीर-सीमाके अन्तर्भुक्त है। १५९६ ई०में आईन-इ-अकबरीमें सिकरी ग्राम मुगल राज्यका एक प्रधान स्थानके जैसा उल्लिखित हुआ है। अकबरके समय यहां बाल, रेशम और पत्थरके तरह तरहके कारुकार्य सम्पादित होते थे। अभी सूती कालीन और चक्कीका पाट ही प्रधान व्यवसाय समझा जाता है। शहरमें केवल दो स्कूल हैं। जिनमें अङ्गरेजी और हिन्दी दोनों ही पढ़ाई जाती है।

फतेसिंह अहलूवालिया—पञ्जाबकी अहलूवालिया मिसलके एक सरदार। भागसिंहके बाद १८०१ ई०में ये ही दलपति पद पर नियुक्त हुए। इसके बाद इन्होंने सुकर्चिया दलके अधिपति ख्यातनामा रणजित्सिंहके साथ पवित्र ग्रन्थ छू कर मेल कर लिया और आपसमें पगड़ी बदल कर ली। अब दोनोंने ही मिल कर कसुरके पठानोंके विरुद्ध युद्ध यात्रा कर दी। किन्तु अकृतकार्य हो वे वितस्ता (Bias) पार कर पुनः अपने दलकी पुष्टि करने लगे।

१८०५ ई०में यशोवन्तराव होलकरने अङ्गरेजोंको मार भगानेके लिये पञ्जाब सरदारसे मेल करना चाहा; पर इसी बीच १८०६ ई०में अङ्गरेजोंके साथ फतेसिंह और रणजित्की सन्धि हो गई। उस सन्धिके बलसे लार्ड लेकने मराठा सरदारको वितस्ताके पार मार भगाया था।

फतेसिंहके साथ रणजित्की मित्रता दिनों दिन गहरी होती गई। १८०६ ई०में दोनों ही शतद्रु के दक्षिण और झङ्ग प्रदेश जीतनेके लिये अग्रसर हुए। १८०७ ई०में झङ्गके सियाल सरदार अहमद खाँ विताड़ित हुए और उनका दुर्ग अधिकृत किया गया। १८०८ ई०में अङ्गरेज-प्रतिनिधि सर चार्ल्स मेटकाफ जब पञ्जाब पधारे तब फतेसिंह दो हजार सेना ले कर मोखमचाँदके साथ उनके स्वागतमें आगे बढ़े। फतेसिंहकी धीर और विनय-नम्र प्रकृति देख कर मेटकाफने लिखा है, कि फतेसिंहमें यदि ऐसी उदारता न रहती, तो रणजित् कभी भी ऐसे उच्चमार्ग पर न पहुंच सकते थे। वे किसी भी अंशमें रणजित्से न्यून थे, मेटकाफ साहबने स्वीकार नहीं किया हैं।

अमृतसरमें राज्यसीमा ले कर अङ्गरेजबहादुर और महाराज रणजितसिंहमें जो सन्धि हुई थी, उस उपलक्षमें ये भी वहां उपस्थित थे। १८०६ ई०में उन दोनोंने काङ्गड़ाकी ओर युद्ध-यात्रा की। १८१० ई०में रणजित्के मूलतान जाने पर लाहोर और अमृतसरका रक्षाभार इन्हींके ऊपर सुपुर्द था। १८११ ई०में वे दोनों शाह-सुजाके भाई सुलतान महमूदसे मिलनेके लिये रावल-पिण्डी गये। उसी साल फतेसिंहने जलन्धरराज-सरदार बुधसिंहका राज्य जीत कर उनकी सारी सम्पत्ति छीन ली। काबुलके वजीर फते खाँके साथ उन्होंने १८१३ ई०की हरदै-युद्धमें जो वीरता दिखलाई थी, उससे काबुली-सेनापतिको जान ले कर भाग जाना पड़ा था। बहवलपुर, रजोरी, भीमबर आदि अभियानमें तथा १८१८ ई०के मूलतान अवरोधकालमें उन्होंने भीषण युद्ध किया

था। १८१६ ई०में काश्मीर-अभियानकालमें राजधानी-की रक्षाका कुल दारमदार इन्हींके हाथ था। १८२१ ई०में इन्होंने मनखेरा-दुर्ग फतह किया था।

बन्धुवर फतेसिंहकी वीरता पर रणजित्सिंह मन ही मन जलते थे। उनकी इच्छा थी, कि यदि वे किसी तरह फतेसिंहको इस संसारसे विदा कर सकें, तो उन्हें भविष्यमें कोई डर न रहेगा, रास्ता विलकुल साफ हो जायगा। इसी अभिप्रायसे उन्होंने लाहोरदरवारस्थित फतेसिंहके विश्वस्त कर्मचारी कादिर वक्सके साथ षड़-यन्त्र करके फकीर आजीज-उद्दीन और आनन्दराम पिण्डारीको अहलूवालिया राज्य जीतनेके लिये जलन्धर भेजा। यह संवाद पाते ही फतेसिंह जान ले कर भागे (१८२५ ई०में)। अव उन्होंने अंगरेजोंसे सहायता मांगी। किन्तु रणजित् अंगरेजराजके दोस्त थे, इस कारण उनके विरुद्ध कोई कार्रवाई करना अच्छा नहीं समझा। फलतः फतेसिंह निःसहाय हो राज्य खो बैठे। पीछे दोनोंमें मेल हो गया। नवनेहाल सिंह और देशसिंहने उन्हें खोया हुआ अधिकार वापस दिया। इसके वाद फते-सिंहने विश्वासघातक कादिरवक्सके लड़कोंको कैद कर उनसे कुछ रुपये वसूल किये।

अनन्तर फतेसिंह कपूरथला जा कर स्वच्छन्दसे रहने लगे। १८३७ ई०के अकवरमासमें उनकी मृत्यु हुई। पीछे उनके वड़े लड़के नेहालसिंह कपूरथलाके सिंहा-सन पर बैठे।

फतेसिंह आजीवन सदालापी और उदारहृदयके थे। मेटकाफसाहवने लिखा है, "वे नम्र, विनयी, सत्स्वभावा-पन्न, सरलप्रकृतियुक्त और असीम वीर्यवान् थे।"

फतेसिंह—वड़ोदाके गायकवाड़-राजभ्राता। जव वड़ौदाका सिंहासन ले कर नाना षड़यन्त्र चलने लगा, तव इन्होंने राजकार्य चलानेका भार ग्रहण किया। गङ्गाधर शास्त्री उनके मन्त्री थे। मराठोंके साथ उन्हें अनेक वार युद्ध करने पड़े थे। प्रत्येक वार उन्हींकी हार होती गई थी। आखिर उन्होंने १७८० ई०में अंगरेजोंकी सहायता ली। परन्तु १७८० ई०में दभोई-अधिकारके वाद उनकी वुद्धि विलकुल पलट गई। उन्होंने अंगरेजोंसे अहमदावाद नगरके लिये प्रार्थना की और उसके वदलेमें ३ हजार अश्वारोही सेनासे मदद पहुंचानेका वचन दिया। १८१३ ई०में भी अंगरेजोंने उनकी सहायता की थी, किन्तु अव भी मराठोंका क्रोध शान्त नहीं हुआ था। पेशवा उनसे ७ लाख रुपये आयकी सम्पत्ति मांगी। फतेसिंहने अपना सारा राज्य छोड़ देना चाहा। कारण, गङ्गाधर शास्त्री पहले ही पेशवाको खुश रखनेके लिये विवाह और राज्य-दानके सम्वन्धमें पत्र दे चुके थे। पत्र पा कर पेशवा विवाहोल्लाससे अग्रसर हुए। गङ्गाधर इस वार वड़ी मुश्किलमें पड़ गये। इस कारण उन्हें असली वात प्रकट करनी ही पड़ी। पेशवाने क्रोधसे अन्ध हो वड़ोदाकी यात्रा की और छलसे गङ्गाधरकी वड़ी निष्ठुरतासे हत्या कर पाशव चरित्रकी पराकाष्ठा दिखलाई। कहते हैं, कि इस हत्याकांडमें फतेसिंहके शेष दो भाइयोंकी भी सलाह थी।

फतेह (अ० स्त्री०) विजय, जीत।

फतेहावाद—पञ्जावप्रदेशके हिसार जिलेकी तहसील। यह अक्षा० २९° ३´ से २९° ४८´ उ० देशा० ७५° १३´ से ७६° ०´ पू० के मध्य अवस्थित है। क्षेत्रफल ११७८ वर्ग-मील और जनसंख्या दो लाखके करीव है इसमें १ शहर और २६१ ग्राम लगते हैं। घघरीसे एक नहर काट कर तहसीलके उत्तर हो कर निकल गई है।

२ उक्त तहसीलका सदर। यह अक्षा २९° ३१´ उ० और देशा० ७५° २७´ पू० हिसारसे ३० मील उत्तर-पश्चिममें अवस्थित है। जनसंख्या लगभग २७८६ है। १३५२ ई०में सम्राट् फिरोजशाह अपने लड़के फतेखांके नाम पर इस नगरको वसाया। १६वीं शताब्दीके प्रारम्भमें यह स्थान भट्टिसरदार खाँ वहादुरखाँके अधिकारमें था। घर्घरासे ले कर इस नगर पर्यन्त फिरोजशाहकी एक नहर दौड़ गई है। यहां देशी वस्त्र, घृत और चमड़ेका भारी कारवार है।

३ उक्त तहसीलका प्रधान नगर और विचार सदर। यह अक्षा० २१° १´ उ० और देशा० ७८° २०´ पू०-के मध्य अवस्थित है। पहले यह स्थान जाफरनगर नाम-से प्रसिद्ध था। औरङ्गजेवने दाराको परास्त कर इसका फतेहावाद नाम रखा। युद्धके वाद थकावट दूर करनेके लिये सम्राट्ने जहां विश्राम किया था वहां उन्होंने एक धर्ममन्दिर वनवा दिया जो आज भी विद्यमान है।

४ युक्तप्रदेशके आगरा जिलेकी तहसील। यह अक्षा० २६° ५६' से २७° ८' उ० और देशा० ७७° ५५' से ७८° २६' पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण २४१ वर्गमील और जनसंख्या लाखसे ऊपर है। इसमें १ शहर और १६१ ग्राम लगते हैं।

फथअली हुसेनी—एक मुसलमान जीवनी-लेखक। इन्होंने 'ताजकिरात्-उस-सुआरे हिन्दी' नामक ग्रन्थमें १०८ हिन्दी और दक्षिणदेशवासी कवियोंकी आख्यायिका लिखी है और उनकी रचना भी उद्धृत की है।

फथअली शाह—पारस्यके अधिपति। ये कछार जातिके अफगान थे, १७६७ ई०में मामाके सिंहासनके अधिकारी हुए। अफगानशत्रु जमानशाहका दमन करने और वोनापार्टीका भारतप्रवेश रोकनेके लिये कलकत्तेसे लार्ड वेलसलीने सर जान मैकमको दूत बना कर उक्त पारस्य राजसभामें भेज दिया।

फथउल्ला इमादशाह—वरारके शासनकर्त्ता। पहले ये दाक्षिणात्यके वाहमनी राज्यके सुलतान २य महमूदशाह-के अधीन काम करते थे। १४८४ ई०में इन्होंने दिल्लीका अधीनता-पाश तोड़ डाला और अपनेको स्वाधीन वतला कर तमाम घोषणा कर दी। १५१३ ई०में उनकी मृत्यु हुई।

फथ्-उल्ला सिराज़ी—सिराज़वासी एक पण्डित। ये दाक्षिणात्यमें बीजापुरके राजा सुलतान अली आदिलशाहकी राजसभामें काम करते थे। आदिलकी मृत्युके वाद वे दाक्षिणात्यका परित्याग कर १५८२ ई०में दिल्ली पहुंचे। सम्राट् अकवरशाहने उन्हें अपने साथ रखा और उच्च पद दे कर सम्मानित किया। १५८६ ई०में काश्मीरकी राजधानी श्रीनगरमें उनकी मृत्यु हुई। इस समय भी सम्राट् अकवरशाह उनके साथ थे।

फथखाँ (फतेखाँ)—अहमदनगरके आविसिनिया देशीय सेनापति मालिक अम्बरके पुत्र। १६२६ ई०में पिताकी मृत्युके वाद वे दाक्षिणात्यके निजामशाही राज्यके सर्वे-सर्वा हो गये। इस प्रकार असन्तुष्ट हो मुर्त्तजा निजाम-शाहने उन्हें वड़ी चातुरीसे खैवर दुर्गमें आवद्ध रखा। वहां-से किसी प्रकार भाग कर उन्होंने फिरसे राजाके विरुद्ध अस्त्रधारण किया। इस वार भी वन्दीभावमें वे दौलता-वाद भेज दिये गये। जो कुछ हो, कुछ समय वाद उन्हें मुक्ति मिली और निमेन्नी (निजाम शाहकी माता)-के आदेशसे सेनाध्यक्ष नियुक्त किये गये। परन्तु पीछे वे फिरसे पदच्युत न होवें, इस भयसे उन्होंने सुलतानको उन्मादग्रस्त वतला कर कैद कर रखा और उनके सहचर उमराव आदिको यमपुर भेज दिया। इस हत्याकाण्डके विषयमें इन्होंने सम्राट् शाहजहान्‌को सूचित किया कि, 'उमराव-दल दिल्लीसिंहासनकी अधीनता उच्छेद करनेकी कोशिश कर रहे थे, इस कारण मैंने उन्हें यमपुर भेज कर सम्राट्‌की गौरवरक्षा की है।'

सम्राट् फथखाँकी सहानुभूति पर वड़े प्रसन्न हुए और सुलतानकी भी हत्या करनेको उन्होंने हुक्म दे दिया। वस! फिर क्या था, फखखाँको यह चाहते ही थे, उन्होंने १६२७ ई०में वन्दीराजको मार कर उनके लड़के हुसेनको राजा वनाया। १६३४ ई०में फथ खाँ आत्मसमर्पण करनेको वाध्य हुए और हुसेन निजामशाह ग्वालियरके दुर्गमें कैद रखे गये। पीछे फथखां सम्राट्‌का अनुग्रह लाभ कर लाहोर चले गये और वहीं जीवनके शेष पर्यन्त उन्हें २० लाख रुपया मासिक मिलता रहा।

फथशाह—वङ्गालके शासनकर्त्ता। १४८२ ई०में युसुफ-शाहकी मृत्युके वाद वे सिंहासन पर वैठे। १४९१ ई०में खोजा सुलतान साहजादाके हाथ उनकी मृत्यु हुई।

फदकना (हिं क्रि०) १ फद फद शब्द करना, खवदवद करना। २ फुदकना देखो।

फदका (हिं० पु०) गुड़का वह पाग जो अधिक गाढ़ा न हो गया हो।

फदिया (हिं० स्त्री०) फरिया देखो।

फन (हिं० पु०) १ सांपका उस समयका सिर जव कि वह अपनी गर्दनके दोनों ओरकी नलियोंमें वायु भर कर उसे फैला कर छलके आकारका वना लेता है। २ वाल। ३ भटवांस। ४ फ़न देखो।

फ़न (फा० पु०) १ गुण, खूबी। २ विद्या। ३ दस्त-कारी। ४ छलनेका ढंग, मकर।

फनकना (हिं० क्रि०) हवामें सन सन करते हुए हिलना, डोलना या चलना, फनफनाना।

फनकार (हिं० स्त्री०) फनफन होनेका शब्द, वैसा शब्द

जैसा सांपके फूंकने या बैल आदिके सांस लेनेसे होता है।

फनगना (हिं० क्रि०) नये नये अंकुरोंका निकलना, कल्ला फूटना।

फनगा (हिं० पु०) १ नई और कोमल डाली, कल्ला। २ वांस आदिकी तीली। ३ फतिंगा।

फनना (हिं० क्रि०) कामका आरम्भ होना, काममें हाथ लगाया जाना।

फनफनाना (हिं० क्रि०) १ हवा छोड़ कर वा चीर कर फनफन शब्द उत्पन्न करना। २ चंचलताके कारण हिलना या इधर उधर करना।

फनस (हिं० पु०) कटहल।

फनिधर (हिं० पु०) सर्प, सांप।

फनिपति (हिं० पु०) फणिपति देखो।

फनियाला (हिं० पु०) १ गज डेढ़ गज लंबी करघेकी एक लकड़ी जिस पर तानी लपेटी जाती है। इसके दोनों सिरों पर दो चूलें और चार छेद होते हैं। २ नाग, सांप।

फनिराज (हिं० पु०) फणीन्द्र।

फन्नी (हिं० स्त्री) १ लकड़ी आदिका वह टुकड़ा जो किसी ढीली चीजकी जड़में उसे कसने या दृढ़ करनेके लिये ठोंका जाता है, पच्चर। २ जुलाहोंका एक औजार जो कंघीकी तरहका होता है और वांसकी तीलियोंका वना होता है। इससे दवा कर वुना हुआ वाना ठीक किया जाता है।

फफदना (हिं० क्रि०) १ किसी गीले पदार्थका वढ़ कर फैलना। २ फैलना, वढ़ना।

फफसा (हिं० पु०) १ फुसफुस, फेंफड़ा। (वि०) २ फूला हुआ पर भीतरमें खाली, पोला। ३ स्वादहीन, फीका।

फफूंदी (हिं० स्त्री०) काईकी तरहकी पर सफेद तह जो वरसातके दिनोंमें फल, लकड़ी आदि पर लग जाती है, भुकड़ी। यह यथार्थमें खुमी या कुकुरमुत्तेकी जातिके वहुत सूक्ष्म उद्भिद हैं। यह खास कर जन्तुओं या पेड़ पौधों, मृत या जीवित शरीर पर ही पल सकते हैं और उद्भिदोंके समान मट्टी आदि द्रव्योंको शरीरद्रव्यमें परिणत करनेकी शक्ति इनमें नहीं होती।

फफोर (हिं० पु०) एक प्रकारका जंगली प्याज। यह हिमालयमें छः हजार फुटकी ऊंचाई तक होता है और प्रायः प्याजकी जगह काममें आता है।

फफोला (हिं० पु०) आगमें जलनेसे चमड़े परका पोला उभार जिसके भीतर पानी भरा रहता है, छाला।

फवकना (हिं० क्रि०) १ मोटा होना। २ फफदना देखो।

फवती (हिं० स्त्री०) १ देशकालानुसार सूक्ति, वह वात जो समयके अनुकूल हो। २ हंसीकी वात जो किसी पर घटती हो, चुटकी।

फवन (हिं० स्त्री०) शोभा, छवि।

फवना (हिं० क्रि०) उचित स्थान पर रखना, ऐसी जगह लगाना या रखना जहां अच्छा जान पड़े।

फवीला (हिं० वि०) जो फवता या भला जान पड़ता हो, शोभा देनेवाला।

फम्फण (सं० पु०) सन्निपात।

फर (सं० क्ली०) फलतीति फल-अच्, लस्य र। फलक।

फरक (हिं० स्त्री०) १ फरकनेका भाव। २ फरकनेकी क्रिया। ३ फुरतीसे उछलने कूदनेकी चेष्टा।

फ़रक़ (अ० पु०) १ पार्थक्य, अलगाव। २ दो वस्तुओंके वीचका अन्तर, दूरी। ३ कमी, कसर। ४ अन्यता, परायापन। ५ भेद, अन्तर।

फरकन (हिं० पु०) १ फड़कनेका भाव। २ फरकनेकी क्रिया।

फरकना (हिं० क्रि०) १ फड़कना, उड़ना। २ स्फुरित होना, उभड़ना। ३ उड़ना।

फरका (हिं० पु०) १ छप्पर जो अलग छा कर वंडेर पर चढ़ाया जाता है। २ टट्टर जो द्वार पर लगाया जाता है। ३ वंडेरके एक ओरकी छाजन, पल्ला।

फरकाना (हिं० क्रि०) १ संचालित करना, हिलाना। २ फड़फड़ाना, वार वार हिलाना। ३ विलग करना, अलग करना।

फरंहा (हिं० पु०) गाड़ीका वह खूंटा जो हरसेके वाहर पटरीमें लगाया जाता है। इस पर लकड़ी, वांस या वल्ले रख कर रस्सियोंसे कस कर ढांचा वनाया जाता है।

फरंकी (हिं० स्त्री०) १ वांसकी पतली तीली। इसमें

लासा लगा कर चिड़ीमार चिड़ियां फंसाते हैं। २ वह बड़ा पत्थर जो दीवारोंकी चुनाईमें दूर दूर पर खड़े बलमें लगाया जाता है।

फरकीला (हिं० पु०) फरकिल्ला देखो।

फरजंद (फा० पु०) पुत्र, लड़का, बेटा।

फरजिंद (हिं० पु०) फरजंद देखो।

फ़रज़ी (फा० पु०) शतरंजका एक मोहरा जिसे रानी या वजीर भी कहते हैं। खेलमें जितने मोहरे हैं सबोंसे यह बड़ा उपयोगी माना जाता है। शतरंजके किसी किसी खेलमें यह टेढ़ा चलता है और शेषमें प्रायः यह सीधा और टेढ़ा दोनों प्रकारकी चाल आगे और पीछे दोनों ओर चलता है। (वि०) २ बनावटी, नकली।

फरजीबंद (फा० पु०) शतरंजके खेलमें एक योग। इसमें फरजी किसी प्यादेके बल पर बादशाहको ऐसी शह देता है जिससे विपक्षकी हार होती है।

फरद (अ० स्त्री०) १ लेखा वा वस्तुओंकी सूची आदि जो स्मरणार्थ किसी कागज पर अलग लिखी गई हो। २ एक प्रकारका लक्का कबूतर। इसके सिर पर टीका होता है। ३ बरफीले पहाड़ों पर होनेवाला एक प्रकारका पक्षी। इसके विषयमें वैसी ही बातें प्रसिद्ध हैं जैसी चकवा और चकईके विषयमें। ४ वह कविता जिसमें केवल दो पद रहते हैं। ५ रजाई या दुलाईका ऊपरी पल्ला। ६ एक ही तरहके, एक साथ बनानेवाले अथवा एक साथ काममें आनेवाले कपड़ोंके जोड़ेमेंसे एक कपड़ा, पल्ला। (वि०) ७ अनुपम, बेजोड़।

फरफंद (हिं० पु०) १ छल कपट, दाँव पेच। २ नखरा, चोचला।

फरफर (हिं० पु०) किसी पदार्थके उड़ने या फड़कनेसे उत्पन्न शब्द।

फरफराना (हिं० क्रि०) 'फरफर' शब्द उत्पन्न होना, फड़फड़ाना।

फरमाँबरदार (फा० वि०) आज्ञाकारी, हुक्म माननेवाला।

फरमा (अं० पु०) १ ढाँचा, डौल। ३ लकड़ी आदिका बना हुआ ढाँचा या साँचा जिस पर रख कर चमार जूता बनाते हैं, कालबूत। ३ कोई चीज ढालनेका साँचा। ४ कागजका पूरा तख्ता जो एक बारमें प्रेसमें छापा जाता है। फार्म देखो।

फरमाइश (फा० स्त्री०) आज्ञा, विशेषतः वह आज्ञा जो कोई चीज लाने या बनाने आदिके लिये दी जाय।

फरमाइशी (फा० वि० विशेषरूपसे आज्ञा दे कर मंगाया या तैयार कराया हुआ।

फरमान (फा० पु०) राजकीय आज्ञापत्र, अनुशासनपत्र।

फरमाना (फा० क्रि०) आज्ञा देना; हुकुम देना। इस शब्दका प्रयोग प्रायः बड़ोंके सम्बन्धमें उनके प्रति आदर सूचित करनेके लिये होता है।

फरयाद (हिं० स्त्री०) फरियाद देखो।

फरयारी (हिं० स्त्री०) हलके ज्यांघेमें लगी हुई वह लकड़ी जिसमें फाल लगा रहता है, खोंपी।

फरलांग (अं० पु०) भूमिकी लम्बाईकी एक अंगरेजी माप। यह एक मीलका आठवाँ भाग और चालीस राड या पोल लट्ठे)-के बराबर होता है।

फरलो (अं० स्त्री०) एक प्रकारकी छुट्टी जो सरकारी नौकरोंको आधे वेतन पर मिलती है।

फरवरी (अं० पु०) अंगरेजी सन्‌का दूसरा महीना। यह महीना प्रायः अट्ठाइस दिनका होता है, परन्तु जब लीपियर आता है अर्थात् जब सन् इसवी ४से पूरा पूरा विभक्त हो जाता है, उस वर्ष यह २६ दिनका होता है। जब सन्‌में एकाई और दहाई दोनों अंकोंके स्थानमें शून्य होता है, उस अवस्थामें यह तब तक २६ दिनका नहीं होता जब तक सैकड़े और हजारका अंक ४से पूरा पूरा विभाजित न हो।

फरवार (हिं० पु०) खलिहान।

फरवारी (हिं० स्त्री०) अन्नका वह भाग जो किसान अपने खलिहानमेंसे राशि उठानेके समय बढ़ई, धोबी ब्राह्मण, नाई आदिको निकाल कर देते हैं।

फरवी (हिं० स्त्री०) एक प्रकारका भूना हुआ चावल जो भुनने पर भीतरसे पोला हो जाता है, लाई। २ फरही देखो।

फ़रश (अं० पु०) १ बैठनेके लिये बिछानेका वस्त्र, बिछावन। २ घर या कोठरीके भीतरकी वह समतल भूमि जो पत्थर या ईंटे बिछा कर या चूने गारेसे बराबर की गई हो। ३ समतलभूमि, धरातल।

फ़रशबंद (फा० पु०) वह ऊंचा और समतल स्थान जहां फ़रश बना हो।

फ़रशी (फा० स्त्री०) १ फूल, पीतल आदिका बना हुआ बरतन। इसका मुंह पतला और संकरा होता है। इस पर लोग नैचा, सटक आदि लगा कर तमाकू पीते हैं। २ वह हुक्का जो उक्त बरतन पर नैचा आदि लगा कर बनाया गया हो।

फ़रसा (हिं० पु०) १ तेज और चौड़ी धारकी एक प्रकारकी कुल्हाड़ी। यह प्राचीनकालमें युद्धमें काम आती थी।

फरसी (हिं० स्त्री०) फरशी देखो।

फरहटा (हिं० पु०) चौड़ी और पतली पटरियां जो चरखी आदिके बीचकी नाभिसे बांध कर या गाड़ कर खड़े बलमें लगाई जाती हैं, फरेहा।

फरहत (अ० स्त्री०) १ आनन्द, प्रसन्नता। २ मनःशुद्धि।

फरहद (हिं० पु०) बङ्गालमें समुद्रके किनारे होनेवाला एक पेड़। यह पेड़ थोड़े दिनमें बढ़ कर तैयार हो जाता है और न बहुत बड़ा और न बहुत छोटा, मध्यम आकारका होता है। इसमें पहले कांटे निकलते हैं, पर जब यह बड़ा होता, तब उससे जो छिलके उतरते हैं उसीके साथ सभी कांटे जाते रहते हैं। अन्तमें स्कन्ध बिलकुल चिकना हो जाता है। परन्तु डालियोंके कांटे दूर नहीं होते, वे सब दिन रह जाते हैं। जिस प्रकार ढाक पेड़की एक नालमें तीन तीन पत्तियाँ होती हैं, उसी प्रकार इसमें भी। इसके फूल लाल और सुन्दर होते हैं। फूलोंके झड़ते ही फलियां लगती हैं। फूलों तथा छालसे लाल रंग निकाला जाता है। छालको कूट कर रस्सी भी बटी जाती है। इसको लकड़ी फटती वा चिटकती नहीं और नरम तथा साफ होती है। पुराणोंमें इसे पञ्च देवतरुमें माना है। पारिभद्र देखो।

फरहर (हिं० वि०) १ जो एकमें लिपटा या मिला हुआ न हो, अलग अलग हो। २ शुद्ध, निर्मल। ३ तेज, चालाक। ४ जो कुछ दूर दूर पर हो। ५ स्पष्ट, साफ। ६ प्रसन्न, हराभरा।

फरहरना (हिं० क्रि०) १ फरफराना, फरकना। २ फहराना, उड़ना।

फरहरा (हिं० पु०) १ पताका, झंडा। २ कपड़े आदिका वह तिकोना वा चौकोना टुकड़ा जिसे छड़के सिरे लगा कर झंडी बनाते हैं और जो हवाके झोंकेसे उड़ता रहता है। (वि०) ३ स्पष्ट, अलग अलग। ४ शुद्ध, निर्मल। ५ प्रसन्न, खिला हुआ।

फरहरी (हिं० स्त्री०) फल।

फरहा (हिं० पु०) धुनियोंको कमानका वह भाग जो चौड़ा होता है और जिस परसे हो कर तांत दूसरी छोर तक जाती है। इसका आकार बेने-सा होता है और धुनते समय आगे बढ़ता है।

फरही (हिं० स्त्री०) लकड़ीका वह चौड़ा टुकड़ा जिस पर ठटेरे बरतन रख कर रेतीसे रेतते हैं।

फरा—मथुराजिलेका एक नगर। यह अक्षा० २७° १९' उ० और देशा० ७७° ४९' पू० यमुना किनारेसे प्रायः १ मील दूर तथा मथुरासे १३ मील दक्षिणपूर्वमें अवस्थित है। पहले यहां तहसीलका सदर था।

फरा (हिं० पु०, एक प्रकारका व्यञ्जन। इसके बनानेके लिये पहले चावलके आटेको गरम पानीमें गूंध कर उसकी पतली पतली बत्तियां बटते हैं और फिर उन बत्तियोंको उबलते हुए पानीकी भापमें पकाते हैं।

फराकत (फा० वि०) १ विस्तृत, आयत। २ फरागत। फरागत देखो।

फराख (फा० वि०) विस्तृत, लंबा चौड़ा।

फराखी (फा० स्त्री०) १ विस्तार, चौड़ाई। २ आढ्यता, सम्पन्नता। ३ घोड़ेका तंग। यह उसकी पीठ पर कंबल गरदनी आदि डाल कर या यों ही उस पर लगाया जाता है। यह चौड़ा तसमा या फीता होता है और उसके दोनों सिरों पर कड़े लगे रहते हैं।

फरागत (अ० स्त्री०) १ मुक्ति, छुटकारा। २ निश्चिन्तता, बेफ़िक्री। ३ मलत्याग, पाखाना फिरना।

फ़राज़ (फा० वि०) ऊंचा।

फराजी—मुसलमानोंका धर्मसम्प्रदायविशेष। फरिदपुरके अन्तर्गत दौलतपुरनिवासी हाजी सरितुल्लाने इस नये मतका प्रवर्त्तन किया। महम्मदीय कुरान शास्त्रके प्रसिद्ध

टीकाकार अवूहनीफका मतानुसरण करके वे लोग जगत्-क्रिया और ईश्वरतत्त्व-सम्बन्धमें विशेष भक्ति प्रदर्शन करते हैं। सुन्नी सम्प्रदायके अन्तर्भुक्त होने पर भी वे पूर्वप्रचलित अशास्त्रीय कुलाचारको नहीं मानते। उन लोगोंका कहना है, कि कुरान शास्त्र ही मोक्ष-साधनका प्रधान अवलम्बन है।

फरीदपुर शब्दमें लिखा है, कि गङ्गा (पद्मा) और ब्रह्मपुत्र नदीके मध्यवर्त्ती जो डेल्टा अवस्थित है, वहांके प्रायः सभी मुसलमान उस देशके आदिम अधिवासी हैं। अफगान और मुगलोंके आक्रमणके समय डरके मारे उन्होंने इसलाम धर्म ग्रहण करने पर भी उनके हृदयसे अभ्यस्त हिन्दूभाव और आचार व्यवहार दूर नहीं हुआ, ज्योंके त्यों वना रहा। हाजी सरितुल्ला मुसलमान समाजकी अवनति देख कर वड़े दुःखित हुए। उन्होंने इस विषयमें असम्मति प्रकट कर जनसाधारणको देवपूजाके वदलेमें कुरान-वर्णित एकेश्वरोपासना और सरल तथा साधु आचारोंका अनुष्ठान करनेके लिये अनुयोग किया। उन्हों-ने विवाहमें जो फजूल खर्च होता था उसे वंद कर दिया और सवको सुन्नत करनेके लिये फरमाया। उनके आच-रित धर्ममतके कुछ प्रधान नियम ये हैं—१ धर्मयुद्ध (जिहाद)-की कर्त्तव्यता, २ विश्वासहन्ता, पापण्ड और नास्तिकोंका पाप, ३ ईश्वरपूजामें क्रियाकलापादिका अनुष्ठान और ४ सवोंको उस एक ईश्वरका अंशदान। फराजी लोग काछ नहीं देते, धोतीको कमरमें एक वार लपेट कर पेटके सामने खोंस लेते हैं, घुटनेको जमीनमें टेक कर नमाज पढ़ते हैं, इत्यादि कुछ वाहरी आचार देनेसे ही पता लग जाता है, कि ये फराजी हैं। प्रव-र्त्तक जव तक जीते रहे, तव तक इस मतका वहुत प्रचार था। प्रायः पचास वर्षके अन्दर सैकड़ों मुसलमान उन-के शिष्य हो गये। अभी पश्चिम वङ्ग और विहार आदि स्थानोंमें भी फराजी मतावलम्बी सैकड़ों मुसलमान देखनेमें आते हैं।

हाजीकी मृत्युके वाद उनके वड़े लड़के दादूमियां फराजीदलके धर्मगुरु वने; किन्तु स्वभावदोपसे वे मुसल-मान समाजके अप्रियभाजन हो गई। उनकी इस असत् प्रकृतिके लिये वृटिश-सरकारने उन्हें कई वार कैद किया।

१८६२ ई०में ढाका नगरमें उनकी मृत्यु हुई। उनके दो पुत्र आज भी फराजीदलकी धर्मनायकता करते हैं। अभी उनमें वैसा धर्मोन्माद नहीं है। वे अभी राजभक्त, निरीह और शान्तस्वभावके हो गये हैं।

मुसलमान-जातिकी धर्मोन्नति, धर्ममें उत्साह और प्रस्तावित नीति पालनके विपयमें उनका विशेष लक्ष्य है। वे अपने धर्ममें इतने कट्टर हैं, कि जव कभी कोई उनके धर्मकी निन्दा करता, तभी वे उस पर टूट पड़ते हैं।

फरामोश (फा० वि०) १ विस्मृत, भूला हुआ, चित्तसे गिरा हुआ। (पु०) २ लड़कोंका एक खेल। इसमें वे आपसमें कुछ समयके लिये यह वद लेते हैं, कि यदि एक दूसरेको कोई चीज दे, तो वह फौरन 'फरामोश' कह दे। यदि चीज पाने पर पानेवाला 'फरामोश' न कहे, तो वह हार जाता।

फरामृगिरि—आसामप्रदेशके गारो पहाड़के दक्षिण-पूर्वमें अवस्थित एक ग्राम। यह समुद्रपृष्ठसे ३६५२ फुट ऊँचा है।

फरार (अ० वि०) जो भाग गया हो, भाग हुआ।

फराल (हिं० स्त्री०) १ फैलाव, विस्तृत। २ तख्ता।

फरासडङ्गा—इसका देशीय नाम चन्द्रनगर वा चन्दर-नगर है। जवसे फरासीसियोंने यहां एक कोठी खोली, तभीसे यह फरासडङ्गा नामसे मशहूर हुआ है।

चन्दननगर और फरासीस देखो।

फरासी—फ्रान्सदेशके अधिवासी।

फ्रान्स और खृष्टान शब्दमें विस्तृत विवरण देखो।

१६वीं शताब्दीमें जो सव यूरोपीय शक्तियां वाणिज्य करनेकी इच्छासे भारतवर्ष आई थीं, उनमेंसे फरासीगण चतुर्थ थे। पुर्त्तगीज, ओलन्दाज और अङ्गरेजोंके वाद फरासी लोग भारतवर्ष आये हैं।

१५०३ ई०में फ्रान्सपति १२वें लुईके समय रौयन् नामक स्थानके वणिकोंने पूर्वसागरमें वाणिज्य करनेका पहले पहल आयोजन किया। १५३७ और १५४३ ई०में १२वें लुईके उत्तराधिकारी १म फ्रान्सिस्ने अपनी प्रजाको सुदूरदेशमें जा कर वाणिज्य करनेका हुक्म दिया। किन्तु नाना विघ्नोंसे उनका उद्देश्य सिद्ध न हो सका।

१६०१ ई०में सेण्टमालोसे दो जहाज लफ्टेनाण्ट वाद-

ल्यु-की अधिनायकतामें भारतकी ओर भेजे गये थे, किन्तु दुर्भाग्यक्रमसे वे दोनों ही जहाज मालद्वीपके समीप डुबो गये।

४र्थ हेनरीके शान्तिमय राज्यकालमें १६०४ ई०की १ली जूनको एक वार फिर चेष्टा की गई थी। किन्तु इस वार भी वह चेष्टा व्यर्थ निकली। आखिर १६१६ ई०में एक दूसरा दल राजाका अनुज्ञापत्र ले कर कार्यंहील-में उतरा। इस दलका नाम रखा गया 'फरासी इष्ट इण्डिया कम्पनी'। फरासी मन्त्री कोलवार्टने १६६४ ई०में उन्हें अव्याहतभावमें खास तौर पर वाणिज्य करनेके लिये ५० वर्षका समय दिया था।

१६६८ ई०में फरासी-वणिकोंने पहले पहल सूरत आ कर एक कोठी खोली। इसके बाद मसलीपत्तनमें दूसरी कोठी खोली गई। अनन्तर उन्होंने ओलन्दाजोंसे त्रिन-कमली नगर छीन लिया, किन्तु कुछ दिन बाद ही ओल-न्दाजोंने फिरसे इस पर अपना कब्जा किया। १६७२ ई०में फरासियोंने मन्द्राजके निकट सेण्टटोमे नामक स्थान ओलन्दाजोंसे जीता। १६७४ ई०में ओलन्दाजों-ने फरासियोंको वहांसे मार भगाया। अब वे पुंदिचेरी-में आ कर रहने लगे।

ओलन्दाजोंने वहांसे भी फरासियोंको खदेरा था। इसके बाद वे कुछ दिन तक सूरतमें रह कर वाणिज्य चलाने लगे। किन्तु यूरोपीय प्रतिद्वन्द्वियोंकी प्रतिबन्ध-तासे उनका मनोरथ सिद्ध न होने पाया। वे सूरतका परित्याग करनेको बाध्य किये गये। इसके बाद उन्होंने चन्दननगरमें कोठी खोली।

१६८८ ई०में बादशाह औरङ्गजेबने उन्हें चन्दननगर-का अधिकार प्रदान किया। बादमें फरासी कम्पनीने-माही पर आक्रमण करके उसे अपने दखलमें कर लिया। १७३० ई०में डुप्ले चन्दननगरके गवर्नर हुए। इसके बाद १७४२ और १७४६ ई०में उन्होंने पुंदीचेरीका शासन भार पाया। १७३९ ई०में फरासियोंने तञ्जोर-राजसे कारिकल खरीदा।

पहले तो केवल ओलन्दाजोंकी ही फरासियोंसे शत्रुता थी, अब वाणिज्यक्षेत्रमें अङ्गरेज लोग भी फरा-सियोंके शत्रु हो गये। नाना स्थानोंसे युद्ध विग्रहकी खबर आने लगी। १७५० ई०में फरासियोंने यानम् और मसलीपत्तन पर अधिकार किया था। १७५२ ई०में तञ्जोरराजको कुछ रुपये दे कर उक्त स्थानका पक्का कर लिया। अब वे अङ्गरेजोंके विरुद्ध अस्त्रधारण करनेके लिये देशीय राजाओंको उभाड़ने लगे।

१७३५से १७५४ ई०के मध्य डुप्ले और बूमसकी चेष्टासे भारतवर्षमें फरासियोंकी धाक बहुत कुछ जम गई थी। नागपत्तनमें अङ्गरेजोंके संगी जहाजको नष्ट भ्रष्ट करके उन्होंने मन्द्राज पर दखल किया। इसके बाद सदूसे मफ़ूजखाँ भी उनसे परास्त हुए। किन्तु कुडालूरमें जो युद्ध हुआ था, उसमें फरासियोंकी दो बार हार हुई थी। अङ्गरेजोंने फरासियोंको पुंदीचेरीमें अव-रोध किया, पर पीछे उन्हें ही पीठ दिखानी पड़ी थी। अम्बुरके युद्धमें भी उन्हींकी विजय हुई। इस युद्धमें अनवर-उद्दीन मारे गये। अनन्तर फरासियोंने मुरारि-रावके शिविर पर आक्रमण कर उन्हें चकित किया था। अनवर-उद्दीनके लड़के महम्मद अलीने भी फरासियोंका शासन करनेके लिये उनसे घोर युद्ध किया था, पर आखिर वे भी परास्त हुए। अनन्तर फरासियोंने गिञ्जी पर धावा बोल दिया। नासिर पराजित हुए, बोल-कण्डाक्षेत्रमें अङ्गरेज लोग भी पीठ दिखानेको बाध्य हुए थे। क्लाइवके कौशलसे त्रिचिनपल्लीमें फरासीगण अवरुद्ध हुए थे और दो बार उन्होंने क्लाइवसे पराजय भी स्वीकार की थी। अब फरासी वहांसे श्रीरङ्गक्षेत्रको चले आये। यहां भी वे अङ्गरेजोंके निकट आत्म-समर्पण करनेको बाध्य हुए। विक्रावाड़ी नामक स्थानमें फरासियोंने अङ्गरेजोंको परास्त किया, किन्तु बहार नामक स्थानमें जो युद्ध हुआ उसमें फरासियोंकी ही हार हुई।

बूसीकी अधिनायकतामें फरासीगण यथेष्ट प्रभाव-शाली हो उठे थे। उन्होंने महाराष्ट्रोंको कई बार परास्त किया और भारतके पूर्व उपकूलस्थ चार विस्तृत प्रदेश दखल किये। तिरुवाड़ी नामक स्थानमें अङ्गरेजोंने फरासीके हाथसे हदसे ज्यादा कष्ट भोगा था। किन्तु स्वर्णाचल और सर्कराचलमें फरासी लोग हार खा कर श्रीरङ्गको भाग गये थे। फिर त्रिचिनपल्लीमें दोनोंकी

मुठभेड़ हुई। यहां फरासियोंके भग्न-मनोरथ होने पर भी उन्होंने कांटापाड़ामें अङ्गरेजों पर आक्रमण कर दिया। इसके बाद दोनोंमें सन्धि स्थापित हुई। फरासियोंने अङ्गरेजोंके विरुद्ध सिराजुद्दौलाको सहायता देना नामंजूर किया। अनन्तर नागपत्तनमें फिरसे युद्ध छिड़ा। इस समय फरासियोंने कुद्दालूर और सेंटडेभियाके किले पर अधिकार किया। किन्तु शीघ्र ही वे उक्त स्थानको छोड़ कर तञ्जोरमें आश्रय लेनेको बाध्य हुए थे। त्रांकुइवर, कन्दूर, सेंटडेभेड और वन्दिवास इस सब स्थानोंमें जो युद्ध हुए थे उनमें फरासोका प्रभाव बहुत कुछ जाता रहा। यहां तक, कि वे अङ्गरेजोंको १७६१ ई०में पुंदिचेरी अर्पण करनेको बाध्य हुए। १७४६ ई०में डुप्लेके बुद्धिकौशलसे फरासीका जो प्रभाव एक समय इतना बढ़ा चढ़ा था, वह आज पुंदीचेरी-समर्पणके साथ साथ तिरोहित हुआ। १७६३ ई०में सन्धिके अनुसार अङ्गरेजोंने फरासियोंको पुंदिचेरी लौटा दिया। १७७८ ई०में सर हेक्टर मनरोने पुनः पुंदिचेरीको दखल किया, पर १७८३ ई०में सन्धि हुई, उसके अनुसार उक्त स्थान पुनः लौटा दिया गया। १७९३ ई०में वह फिर अङ्गरेजोंके हाथ लगा और १८०१ ई०में आमीनकी सन्धिके अनुसार प्रत्यर्पित हुआ। परन्तु १८०३ ई०में अङ्गरेजोंने उक्त स्थान पुनः छीन लिया था। आखिर १८१४ ई०में सदाके लिये फरासियोंको दे दिया गया। अभी चन्दननगर, करिकाल, पुंदिचेरी, फणम् और माही ये सब स्थान फरासीके अधिकारमें हैं।

एक समय सारे भारतवर्षमें फरासीप्रभाव फैल गया था। फरासियोंने ही सबसे पहले विपुल मुगल-साम्राज्य अङ्गरेजोंके अधीन करनेकी चेष्टा की थी। फरासियोंने पहले देशीलोगोंके साथ मिल कर उनकी सहायतासे भारत अधिकारमें प्रयास पाया था। फरासियोंने ही देशी राजाओंके सेनादलमें घुस कर देशी सेनाको यूरोपीय प्रथासे रणशिक्षा दी थी। यदि यह वैगुण्य न घटता, तो कह नहीं सकते, कि फरासी-अधिकार आज भारतमें कहां तक फैला होता। जो सब महावीर भारतवर्षमें फरासी-अधिकार फैलानेमें उद्योगी हुए थे, उनमेंसे डुप्ले, वूसी, काउण्ट लाली और लाबोर्दनेका नाम प्रधान है। इस पांचोंके साथ भारतमें फरासीका इतिहास अङ्कित है। डुप्ले, वूसी, लाली, लाबर्दैन और फ्रांस शब्दमें विस्तृत विवरण देखो।

फरासीस—फरासी देखो।

फरासीसी (हिं० वि०) १ फ्रांसका रहनेवाला। २ फ्रांसका बना हुआ। ३ फ्रांसदेशमें उत्पन्न, फ्रांसका।

फरासीसीवैद्य—एक ग्रन्थकार। इन्होंने अंङ्गुलिपुराण और इंजीलपुराणकी रचना की थी।

फरिया (हिं० स्त्री०) १ वह लहंगा जो सामनेकी ओर सिला नहीं रहता। यह कपड़ेका चौकोर टुकड़ा होता है जिसे एक किनारेकी ओर चुन लेते हैं। इसे लड़कियां वा स्त्रियां अपनी कमरमें बांध लेती हैं। (पु०) २ रहटके चरखे वा चक्करमें लगी हुई वे लकड़ियां जिन पर मट्टीकी हंडियोंकी माला लटकती रहती हैं। ३ मिट्टीकी नांद। यह नांद चीनीके कारखानोंमें इसलिये रखी जाती है, कि उसमें पाग छोड़ कर चीनी बनाई जाय, हौद।

फरियाद (फा० पु०) १ दुःखित वा पीड़ित प्राणियोंका अपने परित्राणके लिये चिल्लाना, शिकायत, नालिश। २ प्रार्थना, विनती।

फरियादी (फा० वि०) फरियाद करनेवाला, नालिश करनेवाला।

फरियाना (हिं० क्रि०) १ छांट कर अलग करना। २ पक्ष निर्णय करना, तै करना। ३ साफ करना, गोलमाल दूर करना। ४ निर्णय होना, निबटना। ५ सूझ पड़ना, साफ साफ दिखाई पड़ना।

फरिश्ता (फा० पु०) १ मुसलमानी धर्मग्रन्थोंके अनुसार ईश्वरका वह दूत जो उसकी आज्ञाके अनुसार कोई काम करता हो। २ देवता।

फरी (हिं० स्त्री०) १ फाल, कुशी। २ गाड़ीका हरसा, फड़। ३ एक प्रकारकी छोटी ढाल जो चमड़ेकी बनी होती है। इसे गतकेके साथ उसकी मारको रोकनेके लिये ले कर खेलते चलते हैं। ४ फली देखो।

फरीक (अ० पु०) १ प्रतिद्वन्द्वी, मुकाबला। २ पक्षका मनुष्य, तरफदार। ३ दो पक्षोंमेंसे किसी पक्षका मनुष्य।

फरीदकोट—पञ्जाबके शतद्रु के अन्तर्भुक्त एक सिख-राज्य।

यह अक्षा० ३०° १३ से ३०° ५०´ उ० और देशा० ७४° ३१ से ७५° ५´ पू० फिरोजपुर जिलेके दक्षिणमें अवस्थित है। भूपरिमाण ६४२ वर्गमील और जनसंख्या सवा लाखके करीब है। इसमें फरीदकोट और कोटकपुर नामके २ शहर और १६७ ग्राम लगते हैं। राज्य इसके उत्तर-पश्चिममें पड़ता है। राज्यका पश्चिमांश अनुर्वर है। पर पूर्वांशमें अच्छी फसल लगती है।

जलाभाव होनेसे खेती-वारीमें भारी नुकसान पहुंचता है। एकमात्र वृष्टि ही प्रजाका भरोसा है। किसी किसी वर्ष जब विलकुल पानी नहीं वरसता, तब प्रजाके कष्टकी सीमा नहीं रहती। इस कारण यहांका राजस्व समय पर वसूल नहीं होता. समयानुसार वह घटा बढ़ा भी दिया जाता है।

यहांके सरदार वराड़जाटवंशीय हैं। भल्लन नामक उस वंशके पूर्वतन कोई व्यक्ति सम्राट् अकवर शाहके शासनकालमें अपने कुल गौरवकी रक्षा कर गये हैं। उनके भतीजेने कोटकपुरा नामक दुर्ग वनवाया और स्वयं स्वाधीनभावमें राज्य करने लगे। १९वीं शताब्दीके प्रारम्भमें पञ्जाव-केशरी महाराज रणजित्सिंहने कोटकपुरा और पीछे फरीदकोट दखल कर लिया। उन्होंने १८०८ और १८०९ ई०के मध्य शतद्रुके वामकूलवर्त्ती सव विभागोंको दखल किया था, वृटिशगवर्मेण्टने उन्हें प्रत्यर्पण कर देनेके लिये प्रार्थना की। आखिर नितान्त अनिच्छा रहते हुए भी महाराज केवल फरीदकोट लौटा देनेको वाध्य हुए।

१८४५ ई०में सिख-युद्धके समय सरदार पहाड़सिंहने अङ्गरेजोंका पक्ष लिया था, इस प्रत्युपकारमें उन्हें राजाकी उपाधि मिली थी। इसी समय उन्होंने नाभा-अधिकृत राज्यका कुछ अंश तथा निज पैतृक सम्पत्ति कोटकपुर प्राप्त किया।

१८४९ ई०में द्वितीय सिखयुद्धके समय पहाड़सिंहके लड़के नजीरसिंहने अङ्गरेजोंको खासी मदद पहुंचाई थी। १८५७ ई०के गदरमें वे विद्रोहदमनमें भी अङ्गरेजोंके साथ थे। वहां तक, कि वे उन विद्रोहियोंके गांवके गांव जला देनेसे भी वाज न आये। उनके कार्यसे प्रसन्न हो कर वृटिश-गवमेंण्टने उन्हें यथेष्ट पारितोषिक दिया। १८७४ ई०में उनकी मृत्यु हुई। वाद उनके लड़के विक्रमसिंह राजा हुए। १८६३ ई०की सनदके अनुसार अधिकारियोंने इस राजसम्पत्तिका पुत्रपौत्रादिक्रमसे भोग करनेका अधिकार पाया है। उन्हें दत्तक लेनेका भी अधिकार है। राज्यमें जितने द्रव्य आते हैं, उन पर किसी प्रकारका कर निर्द्धारित नहीं है। वर्त्तमान राजाका नाम ब्रिजइन्द्रसिंह जी है। इन्हें सरकारकी ओरसे ११ सलामी तोपें मिलती हैं। इनके पास ४१ घुड़सवार, १२७ पदाति, २० गोलन्दाज और ६ कमान हैं। फरीदकोट शहरमें एक हाई-स्कूल और एक दातव्य चिकित्सालय है जिसका खर्च राज्यकी ओरसे दिया जाता है।

२ उक्त राज्यकी राजधानी, यह अक्षा० ३०° ४०´ उ० और देशा० ७४° ४९´ पू०, फिरोजपुरसे २० मील दक्षिणमें अवस्थित है। जनसंख्या प्रायः १०४०५ है। प्रायः सात सौ वर्ष हुए, वावा फरीदके समय मञ्ज राजपूतराज मोकलसीने अपने नाम पर यहां एक दुर्ग वनवाया था। इसी शहरमें फरीदकोटका राजप्रासाद अवस्थित है। यहां एक हाई स्कूल और दातव्य चिकित्सालय है।

फरीदनगर—मीरट जिलेकी गाजियावाद तहसीलका एक शहर। यह अक्षा० २८° ४६´ उ० और देशा० ७७° ४१´ पू० मीरट शहरसे १६ मील दक्षिण-पश्चिममें अवस्थित है। जनसंख्या ५६२० है। सम्राट् अकवरके समय फरीदउद्दीन् खांने इसे वसाया। यहां एक प्राइमरी स्कूल है।

फरीदपुर—वङ्गालके ढाका विभागान्तर्गत एक जिला। यह अक्षा० २२° ५१´ से २३° ५५´ उ० तथा देशा० ८९° १९´ से ९०° ३७´ पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण २२६१ वर्गमील है। इसके उत्तरमें पद्मानदी, पूर्वमें मेघना, पश्चिममें गड़ई नदी और दक्षिणमें वाखरगञ्ज है।

जिलेके उत्तरांशवर्त्ती स्थान अपेक्षाकृत ऊंचे हैं। फरीदपुर नगरसे यह क्रमशः ऊंचा होता आया है। वाखरगञ्जके निकटवर्त्ती स्थान प्रायः जलमग्न रहते हैं। यहां तक, कि नावके सिवा वहां आने जानेका कोई दूसरा उपाय नहीं है। वहांके लोग प्रायः नदी किनारे दलदलके निकटस्थ उच्चस्थान पर ही वासगृह वनाते हैं। प्रवल वर्षामें वह स्थान द्वीपके सदृश दिखाई

देता है। कभी कभी जलस्रोतमें नदीतीरवर्त्ती कितने ग्राम वह जाते हैं। स्थानीय प्रवाद हैं, कि गङ्गा नदीके पहले सलीमपुरके पास हो कर वहती थी। अभी वह कानाईपुरकी ओर गति पलट कर पूर्वकी ओर पद्मा नामसे वहती है।

नदीके पंकसे धीरे धीरे इस जिलेकी उत्पत्ति हुई है। क्रमशः प्रजावृन्दके आग्रहसे जवसे यहां विचार अदालत आदि स्थापित हुई, तवसे यह सम्पूर्ण स्वाधीन जिला-रूपमें गिना जाने लगा है। १५८२ ई०में मुगलसम्राट् अकवरशाहने जव वङ्गालका वंदोवस्त किया, उस समय यह स्थान महम्मदावाद सरकारके अन्तर्निविष्ट था। १२वीं शताव्दीमें यहां मघदस्युगण भारी उत्पात मचाने लगे और आसामवासियोंने इस स्थानमें लूटपाट आरम्भ कर दिया। अंगरेजी शासनके आरम्भमें १७६५ से १८११ ई० तक यह स्थान ढाकाविभागके अन्तर्भुक्त था और लोग इसे ढाका-जलालपुर कहा करते थे। उस समय ढाका नगर-में ही फरीदपुरका विचार सदर था जिससे लोगोंको उतनी दूर आने जानेमें वहुत कष्ट होता था १८११ ई०में इस अभावको दूर करनेके लिये यहां स्वतन्त्र विचार-गृहादि स्थापित हुए। तभीसे यह स्थान एक स्वतन्त्र जिलारूपमें गण्य होता आ रहा है।

इस जिलेमें २ शहर और ५२८३ ग्राम लगते हैं। जनसंख्या वीस लाखके करीव है। मुसलमान और चण्डालगण ही यहांके मुख्य अधिवासी हैं। इन्हींकी संख्या अन्यान्य जातियोंसे अधिक है। मुसलमान सिया और सुन्नी सम्प्रदायके हैं। उनमें अधिकांश मनुष्य खेती वारी करके अपना गुजारा चलाते हैं।

मुसलमानोंके फराजी-मतके प्रवर्त्तयिता हाजी सरि-तुल्लाने इसी जिलेके अन्तर्गत दौलतपुर ग्राममें जन्मग्रहण किया था। पचास वर्षके भीतर उनका मत क्रमशः सारे पूर्ववङ्गालमें फैल गया। फराजीगण सुन्नी हैं और आवू-हनीफा (१) के मतानुसार चलते हैं। यहांके जो चाण्डाल हैं उनमेंसे अनेक मुगल और अफगान-शासन-कालमें दीक्षित हुए थे। उनका कहना है, कि वे पहले हिन्दू समाजभुक्त थे। उनमें ब्राह्मणादि नाना वर्ण भी था। किसी ब्राह्मणके शापसे वे ढाकाका परित्याग कर यशोर, फरीदपुर और वाखरगञ्ज अञ्चलोंमें आ कर वस गये और इस प्रकार आचारभ्रष्ट हुए हैं। जो कुछ हो इनका अध्यवसाय, कष्टसहिष्णुता और स्वदेशप्रियता आश्चर्य-जनक है।

जिलेकी प्रधान उपज धान, पटसन, तेलहन, दलहन, गेहूं और वाजरा है। राजकार्यकी सुविधाके लिये यह फरीदपुर, राजवाड़ी और मदारीपुर नामक तीन उपवि-भागोंमें विभक्त है। यहांकी घर्घरा नदीके किनारे प्रति चैत्र संक्रान्तिमें गङ्गा और कालीपूजाके उपलक्षमें एक मेला लगता है। हिन्दू मुसलमान ईसाई आदि अपने अपने अभीष्टकी सिद्धिके लिये उक्त नदीमें स्नान और मानसिक पूजा दान करते हैं।

विद्याशिक्षाकी ओर लोगोंका उतना ध्यान नहीं है। सैकड़े पीछे छः मनुष्य पढ़े लिखे मिलते हैं। जिले भरमें अभी कुल १०५ सेकण्ड्री, १६५६ प्राइमरी और २०७ स्पे-सल स्कूल हैं। शिक्षाविभागमें कुल खर्च ढाई लाख रुपयेसे ज्यादा है। स्कूलके अलावा जिले भरमें १६ अस्पताल हैं।

२ फरीदपुर जिलेका एक उपविभाग। यह अक्षा० २३° ८' से २३° १२' उ० तथा देशा० ८९° ३०' से ९०° १२ पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ८६० वर्गमील और जनसंख्या सात लाखसे ऊपर है। इस विभागमें १ शहर और २२६६ ग्राम लगते हैं।

३ उक्त जिलेका एक प्रधान शहर। यह अक्षा० २३° ३७' उ० और देशा० ८९° ५१' पू० मरा-पद्माके किनारे अवस्थित है। जनसंख्या लगभग ११६४६ है। फकीर फरीदशाहके नाम पर इसका फरीदपुर नाम पड़ा है। नगरके दक्षिण ढोलसमुद्र है। इसका जल स्वच्छ, सुमिष्ट और स्वास्थ्यकर है। प्रति वर्षके जनवरीमें यहां एक कृषि-प्रदर्शनी मेला लगता है। उस मेलेकी प्रतिष्ठा पहले पहल १८६४ ई०में हुई। अभी उसी मेलेके प्रताप जन-साधारणमें शिल्पकी उन्नति देखी जाती है।

फरीदपुर—१ युक्तप्रदेशके वरेली जिलेकी एक तहसील। यह अक्षा० २८° १' से २८° २२' उ० तथा ७९° २३' और ७९° ४५' पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण २४६

(१) कुरानके प्रसिद्ध टीकाकार।

वर्ग मील और लोकसंख्या प्रायः १३०००० है। इसमें १ शहर और ३१४ ग्राम लगते हैं। जिले भरमें यह तहसील पर्वतमय और अनुर्वर है। केवल रामगङ्गा, वाघूल और कैलासनदीके किनारे सामान्यतः खेती वारी देखी जाती है। यहां अयोध्या-रोहिलखण्ड रेलपथके दो स्टेशन हैं।

२ उक्त तहसीलका प्रधान शहर। यह अक्षा० २८° १३´ उ० और देशा० ७९° ३३´ पू०के मध्य वरेलीसे शाहजहांनपुर जानेके रास्ते पर अवस्थित है। जनसंख्या सात हजारके करीव है। इसका प्राचीन नाम पुर था। राजद्रोही किसी कठोरिया राजपूतने इस नगरको बसाया। १७वीं शताब्दीके मध्यमें कठोरियागण वरेलीसे भगाये गये। किसीका मत है, कि मुसलमान-साधु शेख फरीदके नामानुसार इसका वर्त्तमान नाम पड़ा है। फिर किसीका कहना है, कि १७४८-७५ ई०के रोहिला-अधिकारकालमें जिस शासनकर्त्ताने यहां दुर्ग वनवाया था, उन्हींके नामानुसार फरीदपुर नाम रखा गया है। प्राचीन हिन्दूराजत्वके गौरवरूप यहां कितने मन्दिर विद्यमान हैं।

फरीदबूटी (अ० स्त्री०) एक वनस्पतिका नाम। इसकी पत्तियां वरियारके आकारकी छोटी छोटी होते हैं। इन पत्तियोंको जलमें डाल कर मलनेसे लवाव निकलता है। यह ठंढी होती है और गर्मीको शान्त करनेके लिये लोग इसे पीते हैं।

फरीदावाद—पञ्जावके दिल्ली जिलेकी वल्लभगढ़ तहसीलका एक नगर। यह अक्षा० २८° २५´ उ० तथा देशा० ७२° २०´ पू० दिल्लीसे १६ मीलकी दूरी पर अवस्थित है। जनसंख्या प्रायः ५३१० है। जहांगीरके खजानची शेख फरीदने १६०७ ई०में इस नगरको वसाया था। शहरमें विक्टोरिया एङ्गलो-वर्नाक्युलर मिडिल स्कूल, वर्नाक्युलर मिडिल स्कूल और मिडिल इङ्गलिश स्कूल है। अलावा इसके एक सरकारी अस्पताल भी है।

फरुखनगर—पञ्जावके गुरुगांव जिलान्तर्गत एक नगर। यह अक्षा० २८° २७´ उ० और देशा० ७६° ५०´ गुरुगांव शहरसे १४ मीलकी दूरी पर अवस्थित है। जनसंख्या लगभग छः हजार है। नगर अष्टकोण और प्राचीरपरिवेष्टित है। चारों ओर चार द्वार हैं। मध्य भागमें दो वाजार हैं। नगरकी शोभा देखनेसे यह सचमुच समृद्धिशाली प्रतीत होता है। पहले लवण प्रस्तुत और विक्रय करना यहांका प्रधान व्यवसाय था। अभी रेलपथके खुल जानेसे शम्भर लवणकी विशेष आमदनी होती है जिससे स्थानीय लवणका कारवार प्रायः वन्द-सा हो गया है। यहां जो कुछ उत्पन्न होता है, उसकी प्रायः अन्य स्थानोंमें रफ्तनी होती है दिल्ली-द्वार, सीसमहल नामक नवावका प्रासाद, मसजिद आदि प्रधान अट्टालिकायें देखने योग्य हैं।

१७१३ ई०में इस प्रदेशके शासनकर्त्ता वेलूचसरदार फौजदार खाँ (दलेल खाँ)-ने सम्राट् फरुखसियरके नाम पर इसका नाम रखा। १७५७ ई० तक वही वंश यहांके अधिकारी रहे। पीछे भरतपुरके जाटोंने उनसे छीन लिया। १२ वर्षके वाद फौजदारके पौत्रने पुनः पितृसिंहासन पर अधिकार जमाया। १८५७ ई० तक उन्होंने यहां राज्य किया था। सिपाहीविद्रोहके समय यहांके नवाव अहमद अली खाँने विद्रोहियोंका साथ दिया था जिससे वे अंगरेजोंके हाथसे यमपुरके मेहमान वने। तफुज्जुल हुसेन खाँ नामक एक मुसलमानने उक्त सम्पत्ति पारितोषिकमें पाई। सिपाही विद्रोहकालमें उसने अंगरेजोंको खासी मदद पहुंचाई थी। उनके वंशधर सुराज उद्दीन हैदर आज भी उस प्रदेशका शासन करते हैं। राजस्व छह हजार रुपयेसे अधिक है। शहरमें एक अस्पताल है।

फरुखसियर—एक मुसलमान वादशाह, आजिम उस्-शानके मध्यम पुत्र तथा सम्राट् वहादुरशाहके पौत्र। ये विशेषतः फरकसे और फेरोकशियर नामसे हो मशहूर थे। कुमार आजिम उस-शान् जव औरङ्गजेव वादशाहके आदेशसे वङ्गालका परित्याग कर दक्षिणप्रदेशको गये, उस समय उन्होंने अपने मध्यम पुत्र फरुखसियरको वङ्गालका नायव सूवेदार वनाया। जव तक दाक्षिणात्यसे लौट कर लाहोर न पहुंचे तव तक फरुखसियर वेरोकटोक वङ्गालकी सूवेदारी करते रहे। ११२२ ई० (१७१० ई०में) उनकी जगह पर आज्ज-उद्दौला खानखाना वङ्गालके सूवेदार वनाये गये और फरुखसियरको दिल्ली-सभामें लौट जानेको कहा गया।

फरुखसियर अजीमावाद (पटनामें) आ कर अर्था-

भाव और वर्षाका आगमन देख कर नगरके निकट अपेक्षा करने लगे। इसी समय उन्हें बहादुरशाहका मृत्यु-संवाद मिला। उन्होंने झटसे अपने पिताके नाम-पर खुतबापाठ और मुद्राका प्रचार कर दिया। उस् समय पटनाके सैयद हुसेन अलीखाँ बाड़ा आजिम-उस-शानके नायब थे। सैयदका साहस और प्रतिभा देख कर फरुखसियरने उन्हें अपने पक्षमें खींच लिया। फरुख-सियरकी माताने भी हुसेनअलीको पुत्र पक्षावलम्बन करनेके लिये विशेष अनुरोध किया था।

इसके बाद आजिम उस-शानकी मृत्यु और जहान-दार-शाहकी विजयवार्त्ता पटना पहुंची। अभी (११२३ हिजरी, रवि उल् अव्वल) फरुखसियरने अपने नाम पर मुद्रा प्रचार और खुतवा पाठ करनेका हुक्म दिया। हुसेन अलीके भाई सैयद अबदुल्ला खाँ उस समय इलाहा-बादके सूबादार थे। उन्होंने भी फरुखसियरका साथ दिया। इस समय बङ्गालका समस्त राजकोष फरुख-सियरने अपना लिया।

फरुखसियरने विश्वस्त सेनापति और २५००० अश्वा-रोहोके साथ दिल्लीकी ओर यात्रा कर दी। सैयद भाई उनकी यथेष्ट सहायता कर रहे थे। इलाहाबादमें बहु-संख्यक सेना इकट्ठी करके फरुखसियरने आगरेमें जहान-दारशाह पर एकाएक हमला कर दिया। इस भीषण युद्धमें हुसेनअली गुरुतररूपसे आहत हुए थे, किन्तु जहानदारको ही पराजय स्वीकार करनी पड़ी।

रात तो जहानदारने किसी तरह आगरेमें ही बिताई, सवेरे होते ही वे जुलफिकर खाँके साथ बड़े सतर्कसे दिल्ली आये। उनका भाग्य परिवर्त्तन हुआ जान आसदु-द्दौलाने उन्हें दुर्गमें कैद कर लिया।

सात दिन विश्रामके बाद फरुखसियरने दिल्लीकी ओर यात्रा की। ११२४ हिजरी (१७१२ ई०में) ११वीं महरमको वे दिल्लीमें आ धमके। जहान्दारशाह निहत हुए। २०वीं जेलहज्जको फरुखसियर दिल्लीके सिंहासन पर अधिरूढ़ हुए। सैयद अबदुल्लाखाँने 'कुतब-उल्-मुल्क'-की उपाधि और सात हजारी मनसब (दो अस्पस् और से अस्पस्) हुसेन अली खांने 'अमीर उल्-उमरा फिरोज-जङ्ग'की उपाधि और सात हजारी तथा इसीके साथ साथ मीर-बक्सीका पद प्राप्त किया।

फरुखसियरका कोई स्वाधीन मत नहीं था। उनका लालन पालन बङ्गालमें ही हुआ था। वहां दूसरेके इच्छानुसार ही उन्हें सभी कार्य करने होते थे, इस कारण उनको स्वाधीन प्रवृत्तिका आभास प्रकट होने नहीं पाता था। कच्ची उमरमें वे दिल्लीके सिंहासन पर अधिष्ठित हुए थे, राजकार्यमें उनकी उतनी दक्षता न थी। सैयद अबदुल्लाको वजीर बना कर उन्होंने राजकार्यका कुल दारमदार उसी पर सौंप दिया था। इस अवि-मृष्यकारिताका फल उन्हें पीछे अच्छी तरह भुगताना पड़ा।

मीरजुमला बादशाहके अतिप्रिय पात्र हो उठे थे। वे एक विचक्षण, कर्मदक्ष और उदारपुरुष थे। सैयद भाई आ कर एक प्रकारसे मुगल साम्राज्यको ग्रास कर रहे हैं, यह देख कर उन्हें भारी दुःख हुआ था। अब वे ही सैयद भाइयोंको जन साधारणके निकट हेय और अप-दस्थ करनेके लिये कौशलक्रमसे उन्हींके द्वारा दिल्लीके प्राचीन अमीर और उमराव लोगोंकी हत्या करने लगे। इस समय दुर्वृत्त सैयदोंके हाथसे अमीर उल उमरा जुलफिकर खाँ आदि सम्भ्रान्त व्यक्तिगण अति घृणित-भावसे मारे गये। अमीर उल-उमराके दीवान राजा शुभचाँदकी जीभ काट डाली गई, जहानदार शाहके पुत्र अजीजउद्दीन, आजिमशाहके पुत्र अली तवर और फरुख-सियरके कनिष्ठ हुमायुन वखत् उत्तप्त लौहशलाका द्वारा नेत्रहीन किये गये थे।

सैयद अबदुल्लाने रतनचाँद नामक एक शस्यविक्रेता-को दीवान बनाया। यह व्यक्ति तथा सैयद भाइयोंकी उदरपूर्त्ति किये बिना किसीका भी कोई काम नहीं करता था। फरुखसियर सैयदके आचरणसे अच्छी तरह जान-कार थे। उन्होंने मीरजुमलाको अपना प्रतिनिधि बनाया। सही मोहर आदि कुल बादशाही कामका भार उसी पर सौंपा गया इसीसे वजीरकी क्षमता बहुत कुछ ह्रास हो गई। अब सैयद बादशाह और मीरजुमलाके अनिष्ट-साधनमें लग गये। मीरजुमला सैयद भाइयोंको कैद करनेके लिये बादशाहसे बार बार अनुरोध करने लगे। बादशाहकी माता सैयद अबदुल्लाको बहुत चाहती थी। उन्होंने सैयदको किसी तरह इन सब बातोंसे सतर्क कर दिया।

इस समय अमीर उल उमरा हुसेन अलीने बादशाहसे दाक्षिणात्यकी सूबेदारी मांग ली। उनकी इच्छा थी, कि वे दाउद खाँ नामक एक व्यक्तिको प्रतिनिधि बना कर सूबेदारी चलावेंगे और आप दिल्लीके दरबारमें रहेंगे। इस सूबेदारीसे उन्हें अच्छा रकम मिलनेकी आशा थी। किन्तु मीरजुमलाके परामर्शसे बादशाहने हुसेनको कहला भेजा, कि दाक्षिणात्यकी सूबेदारी मिलेगी सही, पर दाक्षिणात्यमें रह कर कार्य-निर्वाह करना पड़ेगा। अमीर उल उमरा भाईको दरबारमें अकेला रख कर दाक्षिणात्य जानेको राजी न हुए। फलतः सैयदोंके साथ बादशाहका मनोमालिन्य होनेका सूत्रपात हुआ। सैयद भाइयोंने दरबारमें आना बंद कर दिया और अपने अपने मकानको सशस्त्र सैन्य द्वारा सुरक्षित कर रखा। फरुखसियरकी माता पहलेसे ही सैयदोंके पक्षमें थी। उन्होंने पुत्रको कह सुन कर सैयदोंको दरबारमें बुलाया और आपसमें मेल करा दिया। मीरजुमला पटनाका सूबेदार बन कर आये। फरुखसियरके अभिषेकके २रे वर्षमें यह घटना घटी।

३रे वर्ष, गुजरातके अहमदाबादमें मुसलमानोंके हिन्दूधर्ममें आक्षेप और गोहत्याका आयोजन करनेके कारण दोनोंमें घोरतर दंगा हुआ था। इस समय सूबेदार दाउद खाँ हिन्दूके पक्षमें थे।

जिस समय दिल्लीका सिंहासन ले कर भाई भाईमें युद्ध चल रहा था, नाना स्थानोंमें अराजकता फैलनेकी नौबत आ गई थी, उस समय पञ्जाबमें सिख लोग गुरु-बंदाकी अधिनायकतामें स्वाधीन होनेकी चेष्टा कर रहे थे। फरुखसियरके चौथे वर्षमें (१७१४ ई०में) अब्दुस्समद दिलेर जङ्ग लाहोरके सूबेदार हो कर गये। वहां उन्होंने सिखोंको परास्त कर उनके गुरुको बन्दी रूपमें भेज दिया। मीरजुमलाको पटनेकी सूबेदारी पसन्दमें न आई। उनकी सेनाने आपसमें सलाह कर वेतन-वृद्धिकी दरखास्त पेश की। यहां तक, कि उनकी उत्तेजनासे मीरजुमला पटनामें और अधिक दिन तक ठहर न सके। वे फौरन दिल्लीमें आ धमके। उनके ऐसे आचरणसे बादशाह बड़े विरक्त हुए। मीरजुमलाने आखिर बादशाहका अनुग्रह पानेकी आशासे सैयद भाइयोंका आश्रय लिया। किन्तु लोगोंने समझा, कि यह सैयदको बन्दी करनेका बहाना मात्र है। इस समय ७।८ हजार अश्वारोहीने बाकी तनख्वाह वसूल करनेके लिये महम्मद अमीन खाँ बक्सी, अमीर उल् उमराके प्रतिनिधि खाँ दौरान और मीरजुमलाके मकानमें उत्पात मचाना आरम्भ कर दिया। यहां तक, कि दिल्लीका पथ-विपज्जनक हो उठा। सैयद अली अबदुल्लाने बहुसंख्यक सशस्त्र अश्वारोही और सिपाही रख कर उन लोगोंका गतिरोध किया है।

बादशाहने मीर जुमलाके प्रति नितान्त असन्तुष्ट हो उन्हें पञ्जाब भेज दिया और उनकी जगह सर बुलन्द खाँ पटनाके सूबेदार बनाये गये। मीर जुमलाके पञ्जाब जाने पर सभी कानाफूसी करने लगे, कि यह राजाकी चालबाजी है, सैयद भाइयोंको बन्दी करनेका ही आयोजन हो रहा है। आखिर ऐसा हुआ, कि अबदुल्ला अपना वजीरी-काम भी खो बैठे। चारों ओर गोलमाल उपस्थित हो गया। बहुतेरे दूसरोंकी जागीर वा मनसब आत्मसात् करने लगे। इस समय हुसेन अली दाक्षिणात्यमें दाऊद खाँ और महाराष्ट्रोंकी क्षमता ह्रास करनेकी चेष्टा कर रहे थे, नाना स्थानोंमें युद्ध विग्रह चल रहा था। इस समय बालाजी विश्वनाथके प्रभावसे मुगल-सेनाने कई जगह हार खाई थी। हुसेन अलीने महाराष्ट्रपति शाहुके साथ सन्धि करनेकी सनद भेजी थी। किन्तु बादशाहने उनके प्रस्तावको ग्राह्य नहीं किया। पेशवा देखो।

दिल्लीके दरबारमें महम्मद मुराद नामक एक नीच वंशीय काश्मीरी बादशाहका प्रियपात्र हो सैयदोंके दमनकी चेष्टा कर रहा था।

योधपुरके राणा अजितसिंहकी कन्या अति रूपवती थीं। बादशाहने उससे विवाह करना चाहा। परन्तु वे एकाएक ऐसे बीमार पड़े, कि उनकी आशा पूरी न हो सकी। इस रोगमें यथासाध्य चिकित्सा चली रही थी। इसी समय अङ्गरेजवणिक् बेरोकटोक वाणिज्य करनेका फरमान लेनेकी आशासे कई लाख रुपये उपढौकनके साथ राजदरबारमें उपस्थित थे। उनमेंसे एकका नाम डाक्टर हामिल्टन था। हामिल्टनकी

कोशिशसे वादशाह रोगमुक्त हुए और शीघ्र ही महा समारोहसे राजपूतवालाके साथ उनका परिणयकार्य सम्पन्न हुआ। (१७१६ ई०में) अङ्गरेज-चिकित्सकके प्रार्थनानुसार अङ्गरेजवणिक्ने वादशाहसे वङ्गालमें वेरोक-टोक वाणिज्य करनेका फरमान और ३७ ग्राम खरीदनेकी अनुमति पाई थी। इधर सैयद भाइयोंके साथ उनका विरोध धीरे धीरे वढ़ता जा रहा था। अवदुल्ला हुसेन अलीको दिल्ली आनेके लिये वार वार पत्र लिखा करते थे। अजितसिंह आदि वड़े वड़े मनुष्य वादशाहके सहायक थे। यदि वे चाहते, तो कव उस कण्टकको दूर कर सकते थे। पर अपनी निर्वुद्धिता और अलसतासे उन्होंने ऐसा किया नहीं, जिससे पीछे उन्हें हाथ मल मल कर रहना पड़ा। हुसेन भाईके साथ आ मिले। दोनोंके कौशलसे अनुचरोंने राजान्तःपुरसे वादशाहको वाहर कर उनकी दोनों आंखें निकल लीं और पीछे उन्हें कारगारमें कैद कर रखा (१७१६ ई०की १८वीं फरवरी)। दोनों सैयद भाइयोंने तैमुरवंशीय एक वालकको वादशाह खड़ा कर ११३१ हिजरी, ६ रजव (१७१६ ई० १६वीं मई) को नृशंसरूपसे फरुखसियरके प्राण ले लिये। दिल्लीस्थ हुमायुनके समाधिमन्दिरमें उनकी कब्र हुई। सैयदोंने पहले जिस वालकको वादशाही दी थीं, उसका नाम था रफी उद् दर्जात।

फरुखावाद (फरक्कावाद)—युक्त प्रदेशके आगरा विभागका एक जिला। यह अक्षा० २६° ५६' से २७° ४३' उ० और देशा० ७९° ८' से ८०° १' पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण १६८५ वर्गमील है। इसके उत्तरमें शाहजहानपुर और वदाऊं, पूर्वमें हरदोई जिला, दक्षिणमें कानपुर और एतावा तथा पश्चिममें मैनपुरी और एटा है। फतेगढ़ नगर इसका विचार-विभागीय सदर है, किन्तु गङ्गाके पश्चिम कूलवर्ती फरुखावाद नगरमें ही लोगोंका वास अधिक है।

दोआवके मध्यभागमें यह जिला अवस्थित है। मध्यभाग और भागोंसे निम्न है। इस कारण प्रति वर्ष वाढ़से यह स्थान जलमग्न हो जाता है। गङ्गाके तीरवर्त्ती भूमि पर पंक पड़ जानेके कारण फसल अच्छी लगती है। शेष सभी स्थान जंगलसे पूर्ण हैं।

प्राचीन कन्नोजराज्य इस जिलेके अन्तर्भुक्त होनेके कारण यह स्थान प्रत्नतत्त्वविदोंका हृदयग्राही हुआ है। कान्यकुब्ज देखो। वर्त्तमान फरुखावाद नगर मुसलमान राजाओंके समय वसाया गया। नगरके भीतर और वाहर स्थपति-विद्या (भग्नावशेष अट्टालिकादिके)-के जो सव निदर्शन देखनेमें आते हैं, वे मुसलमानी ढंग पर वने हुए हैं। वर्त्तमानकालमें गङ्गासे २ कोस(१) दूर कालीनदीके वामकूल पर फरुखावादनगर वसा हुआ था। प्राचीन नगरके ध्वंसावशेषमें प्रायः ५ ग्राम विस्तृत हैं। चारों ओर ईंटोंकी दीवार पड़ी हुई हैं। यहांके लोग उस ध्वंसस्तूपमेंसे ईंट ले कर अपना घर द्वार वनाते हैं। प्राचीन नगरकी गौरव कीर्त्ति धीरे धीरे लोप होती जा रही है।

हिन्दूकीर्त्तियोंमें एक मात्र राजा अजयपालका पवित्र क्षेत्र देखने लायक है। आज भी वहुत सी मुसलमानकीर्त्तियां विद्यमान हैं।

गुप्तराजाओंने ३१६से ५७५ ई० तक इस स्थानका शासन किया था। उनकी प्रचलित मुद्रा और अपरापर कीर्त्तिस्तम्भ आज भी इस जिलेके मध्य इधर उधर पड़े दिखाई देते हैं। भारजाति ही यहांकी आदिम अधिवासी है। ठाकुरवंशधर उनका उच्छेदसाधन करके आर्य उपनिवेश वसा गये हैं। कन्नोजराज जयचांदके अधिकारकालमें कालीनदीका दक्षिणांश लोगोंसे परिपूर्ण हो गया। मुसलमान कर्त्तृक तुंवर राजाओंके पराजित होनेके वहुत वाद इसका उत्तरांश वर्त्तमान अधिवासियोंके हाथ लगा। १८वीं शताब्दीमें फरुखावादके नवाव ही यहांके सर्वमय कर्त्ता हुए। १७५१ ई०में रोहिलासरदार अली महम्मदकी मृत्यु हुई। सम्राट्ने हाफिजरहमत-खांको अलीका उत्तराधिकारी कवूल नहीं किया। सम्राट्के आदेशसे फरुखावादके नवाव दलवलके साथ हाफिजको दमन करनेके लिये अग्रसर हुए। युद्धमें नवाव साहव पराजित और निहत हुए। इसी समय अयोध्याके वजीर सफदर जङ्गने फरुखावादको लूटा, इस कारण फरक्कावादी रोहिला और वरेलीके दलमें एकत्र

(१) पहले गंगा नदी फरुखावादके निम्न हो कर वहती थी।

हो कर सफदरके हाथसे फरुखावाद छीन लिया और इलाहाबादमें घेरा डाला। विस्तृत विवरण रोहिलखण्ड और बरेली शब्दमें देखो।

रोहिलाओंको १७७४ ई०में परास्त करके सुजा-उद्दौलाने यह स्थान अपने अधिकारमें कर लिया। इसके बाद १८०१ ई०में यह अङ्गरेजोंके हाथ लगा। १८५७ ई०में यहां विद्रोहानल खूब जोरसे धधक उठा।

फतेगढ़में बहुतसे अङ्गरेज मारे गये। फतेगढ़ देखो। मईसे जनवरी मास तक यह जिला नवाब और बखत् खाँके अधीन रहा। १८५८ ई०में जब ब्रिगेडियाकी फौजने विद्रोहियोंको परास्त किया, तब नवाब और फिरोजशाह जान ले कर बरेलीको भाग गये। पीछे मई मासमें विद्रोहियोंने आ कर फिरसे कायमगञ्जको घेर लिया। किन्तु इस बार वे वहां अधिक दिन ठहर न सके।

इस जिलेमें फरुखावाद, फतेगढ़, कायमगञ्ज, शामसावाद, कन्नोज, छिवामौ, तिरवा और तेलोग्राम नामके ८ शहर और १६८० ग्राम लगते हैं। जनसंख्या दो लाखसे ऊपर है। सैकड़े पीछे ८८ हिन्दू और १२ मुसलमान हैं। अयोध्या, रोहिलखण्ड, कानपुर, कलकत्ते आदि स्थानोंमें यहांसे चावल, गेहूं, जौ, ज्वार, बाजरा, उड़द, नील आदि जात द्रव्योंकी रफ्तनी होती है। रेलपथके खुल जानेसे वाणिज्यकी विशेष सुविधा हो गई है। १८७०से १६०० ई० तकके अभ्यन्तर प्रायः दश बार दुर्भिक्ष पड़ा था।

विद्याशिक्षामें यह जिला बहुत गिरा हुआ है, सैकड़े पीछे चार मनुष्य पढ़े लिखे मिलते हैं। पर अब इस ओर लोगोंका ध्यान कुछ कुछ आकृष्ट होता जा रहा है। अभी जिले भरमें २५० ऐसे स्कूल हैं जिनमें सरकारसे कुछ कुछ सहायता मिलती है, ५० प्राइवेट स्कूल हैं गवरमेंण्टसे कुछ भी सहायता नहीं मिलती और ४ खास गवरमेंण्टके स्कूल हैं। स्कूलके अलावा अस्पताल भी है।

२ युक्तप्रदेशके फरुखावाद जिलेकी एक तहसील। यह अक्षा० २०°६'से २७°२८' उ० और देशा० ७१°६५'से ७६° ४४' पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ३३६ वर्गमील और जनसंख्या प्रायः २५०३५२ है। इसमें १ शहर और ३८७ ग्राम लगते हैं। बाजरा, आलू और तमाकू यहांकी प्रधान उपज है। यहां आम भी बहुतायतसे मिलता है। भोजपुर, महम्मदाबाद, पहाड़ा और शमसाबाद परगने ले कर यह तहसील गठित हुई है।

३ उक्त जिलेका प्रधान नगर। यह अक्षा० २७° २४' उ० और देशा० ७६° ३४' पू० गङ्गाके पश्चिम कूलसे प्रायः १॥ कोसकी दूरी पर अवस्थित है। जनसंख्या पचास हजारके करीब है। १७१४ ई०में नवाब महम्मद खांने सम्राट् फरुखसियरके नाम पर यह नगर बसाया। यहां एक किला है। कहते हैं, कि पहले उसीमें नवाबका प्रासाद था। यहांसे गङ्गागर्भका दृश्य अति मनोरम लगता है। पहले यह नगर युक्तप्रदेशका वाणिज्य केन्द्र था। इष्टइण्डिया और कानपुर-फरक्कावाद-लाइट रेलपथके खुल जानेसे नगरका वाणिज्य-गौरव घट गया है। भिन्न भिन्न मालोंकी रफ्तनी रेल द्वारा ही होती है। यहाँकी ऐतिहासिक घटना जिलेके साथ संश्लिष्ट रहनेके कारण उसी जगह वर्णित हुई है। शहर चारों ओर मट्टोकी दीवारसे घिरा हुआ है। शहरके बाहर नवाबका समाधि-मन्दिर है जो अभी भग्नावस्थामें पड़ा है। शहरमें एक हाईस्कूल, American Presbyteian mission स्कूल, एक मिडिल स्कूल तथा बहुतसे प्राइमरी स्कूल हैं। अलावा इसके एक चिकित्सालय और एक जनाना-अस्पताल है। हालमें एक मैदेका कारखाना भी खुला है।

फरुखि—खान्देशके मुसलमान राजवंश। १३७० ई०में मालकराज फरुखिने दिल्लीश्वरसे दक्षिण निमारका शासनभार ग्रहण किया। ताप्ती नदीकी उपत्यका तक वे राज्य फैला कर परलोक सिधारे, पीछे उनके लड़के नशिर खाँने अपनेको स्वाधीन राजा बतला कर तमाम घोषणा कर दी और १३६६ ई०को खान्देश राज्यमें फरुखि राजवंशकी प्रतिष्ठा की। उन्होंने अशीरगढ़ जीत कर पीछे ताप्तीके दूसरे किनारे बुर्हानपुर और जैनाबाद नगर बसाया। बुर्हानपुर नगरमें उनकी राजधानी थी। यहां खान्देश-राजवंशने १३६६से १६०० ई० तक शासन किया। किन्तु उनकी स्वाधीनता सदाके लिये अक्षुण्ण न रही। गुजरात और मालवराजके अधीन वे सामन्तरूपमें राज्य

करते थे। समय समय पर उन्होंने स्वाधीन होनेकी कोशिश भी की थी जिससे वे अधिराजके हाथ कई बार अच्छी तरह शासित हुए थे। विभिन्न आक्रमणकारियोंके हाथमें पड़ कर बुर्हानपुर तवाह हो गया था और फरुखिगणने अशीरगढ़ जा कर आश्रय ग्रहण किया। पञ्चम राजा आदिल खाँ (शाह इ-भरखन्द)-के राज्यकालमें इस वंशकी विशेष श्रीवृद्धि दिखाई दी थी। उन्होंने गर्हा-मण्डल तक राज्य जीत कर गोंड़ोंसे कर वसूल किया था। उनकी वनाई हुई जमा मसजिद् इदुगा आदि आज भी बुर्हानपुरमें देखनेमें आती है। १६०० ई०में सम्राट् अकवरशाहने फरुखिवंशके शेष राजा वहादुर खाँको अशीरगढके युद्धमें परास्त कर खान्देश अपने साम्राज्यमें मिला लिया था।

फरुवक (सं० क्ली०) पूगपात्र।

फरुहा (हिं० पु०) फावड़ा देखो।

फरुही (हिं० स्त्री०) १ छोटा फावड़ा। २ लकड़ीका एक प्रकारका औजार जो फावड़ेके आकारका होता है। यह घोड़ेकी लीद हटानेमें काम आती है। क्यारी वनानेके लिये गृहस्थ खेतकी मिट्टी हलसे हटाते हैं। ३ मथानी। ४ एक प्रकारका भूना हुआ चावल जो भुनने पर फूल कर भीतरसे खोखला हो जाता है, लाई।

फरुहरी (हिं० स्त्री०) फुरहरी देखो।

फरेंद (हिं० पु०) जामुनकी एक जातिका नाम। इसके फल वहुत वड़े वड़े और गूदेदार होते हैं। इसकी पत्तियाँ जामुनकी पत्तियोंसे अधिक चौड़ी और वड़ी होती है। फल आषाढ़में पकते हैं और मीठे होते हैं। जामुनके समान यह पाचक होता है। जामुन देखो।

फरेन्द्र (सं० पु०) जम्बू वृक्ष, जामुनका पेड़।

फरेव (फा० पु०) कपट, धोखा।

फरेरा (हिं० पु०) फरहरा देखो।

फरेरी (हिं० स्त्री०) जंगलके फल, जंगली मेवा।

फरैदा (फा० पु०) एक प्रकारका तोता।

फरो (फा० वि०) तिरोहित, दवा हुआ।

फरोख्त (फा० स्त्री०) विक्रय, विक्री।

फरोदस्त (फा० पु०) १ गौरी, कान्हड़ा और पूरवीके मेलसे वना हुआ एक प्रकारका संकर राग। कहते हैं, कि यह राग अमीर खुसरोने निकाला था। २१४ मात्राओंका एक ताल। इसमें ५ आघात और २ खाली होते हैं। इसके तवलेके वोल यों हैं:—१ धिने धिन, २ धाकेटे, ३ तागधिन् धा गगेंता, तेटेकता, गदिघेन। धा।

फर्क (हिं० पु०) फरक देखो।

फर्च (हिं० वि०) फरच देखो।

फर्चा (हिं० पु०) फरचा देखो।

फर्जंद (हिं० पु०) फरजंद देखो।

फर्ज (अ० पु०) १ मुसलमानो धर्मानुसार विधिविहित कर्म जिसके नहीं करने प्रायश्चित्त करना पड़ता है। २ कल्पना, मान लेना। ३ कर्त्तव्यकर्म। ४ उत्तरदायित्व।

फर्जी (फा० वि०) १ कल्पित, माना हुआ। २ सत्ताहीन, नाममात्रका। (पु०) ३ फरजी देखो।

फर्द (फा० स्त्री०) १ कागज वा कपड़े आदिका टुकड़ा जो किसीके साथ जुड़ा या लगा न हो। २ रजाई शाल आदिका ऊपरीपल्ला जो अलग वनता और विकता है। ३ कागजका टुकड़ा जिस पर किसी वस्तुका विवरण, सूची वा सूचना आदि लिखी गई हों या लिखी जांय। ४ परण। ५ वह पशु या पक्षी जो जोड़के साथ न रह कर अलग और अकेला रहता है। (वि०) फरद देखो।

फर्दूसी—फिर्दौसी देखो।

फर्फर (सं० त्रि०) स्फुर-अच् पृषोदरादित्वात् साधु। अत्यन्त चञ्चल।

फर्फरी (सं० स्त्री०) कराग्र, पंजा।

फर्फरीक (सं० पु०) स्फुरतीति स्फुरणे (फर्फरीकाद-यश्च। उण् ४।२०) इति ईकन्, धातो फर्फरादेशश्च। १ कराग्र, पंजा। २ उपानत्, जूता। ३ मार्दव, सरलता। ४ कोंपल।

फर्फरीका (सं० स्त्री०) फर्फरीक-टाप्। १ पादुका, जूता। २ मदन।

फर्माना (फा० क्रि०) फरमाना देखो।

फर्याद (फा० स्त्री०) फरियाद देखो।

फर्रा (हिं० पु०) गेहूं या धानकी फसलका एक रोग। यह रोग उस अवस्थामें उत्पन्न होता है जव फूलनेके समय तेज हवा वहती है। इसमें फूल गिर जानेसे वालोंमें दाने नहीं पड़ते।

फर्राटा (हिं० पु०) १ क्षिप्रता, तेजी। २ खर्राटा देखो।

फर्राश (अ० पु०) १ वह नौकर जिसका काम डेरा गाड़ना, सफाई करना, फर्श बिछाना, दीपक जलाना और इसी प्रकारके दूसरे काम करना होता है। २ नौकर, खिदमतगार।

फर्राशी (फा० वि०) फर्श या फर्राशके कामोंसे सम्बन्ध रखनेवाला। (स्त्री०) २ फर्राशका काम। ३ फर्राशका पद।

फर्लो (अं० स्त्री०) फरलो देखो।

फर्श (अ० स्त्री०) १ बिछावन, बिछानेका कपड़ा। २ फरश देखो।

फर्सि—युद्धास्त्रविशेष।

फर्हत खाँ—सम्राट् हुमायुनके एक क्रीतदास। इसने किसी युद्धमें बेगबावाके हाथसे हुमायुनको बचाया था। इस प्रत्युपकारमें सम्राट्ने सरहिन्द जानेके समय इसे लाहोरका शिकदार बना दिया। कुछ समय बाद यह अकबरशाहके साथ मिल गया। अकबरने सिंहासन पा कर इसे कोराके तुजलदका पद प्रदान किया। अहम्दाबादके समीप इसने महम्मद हुसेन मिर्जाको परास्त कर विशेष सुख्याति प्राप्त की। उक्त सम्राट्के शासनके १९वें वर्षमें यह पुनः युद्ध करनेके लिये विहार भेजा गया। इस बार भी इसने सफलता प्राप्त की जिससे सम्राट्ने प्रसन्न हो कर इसे जागीरदार बना दिया। पीछे राजा गजपतिके साथ जो इसका युद्ध हुआ उसीमें यह मारा गया।

फर्हो—युक्तप्रदेशके मैनपुर जिलेका एक नगर। यह मुरूतफाबादसे ४ कोस दूरमें अवस्थित है। यहां नील, रुई और शस्यादिका कारबार है।

फलंक (फा० पु०) अन्तरिक्ष, आकाश।

फल (सं० क्ली०) फलतीति फलनिष्पत्तौ ञि फला विशरणे वा अच्। १ लाभ। २ वनस्पतिमें होनेवाला वह बीज अथवा पोषक द्रव्य या गूदेसे परिपूर्ण बीज-कोश जो किसी विशिष्ट ऋतुमें फूलोंके आनेके बाद उत्पन्न होता है।

वैज्ञानिक दृष्टिसे बीज (दाने या अनाज आदि) और बीजकोश (साधारण बोलचालवाले अर्थमें फल) कोई विभेद नहीं माना जाता। परन्तु व्यवहारमें यह विभेद बहुत ही प्रत्यक्ष है। यद्यपि वैज्ञानिक दृष्टिसे गेहूं, चना, जौ, मटर, आम, कटहल, अंगूर, अनार, सेब, बादाम, किशमिश आदि सभी फल हैं, परन्तु व्यवहारमें लोग गेहूं, चने, जौ, मटर आदिकी गिनती बीज या अनाजमें और आम, कटहल, अनार, सेब आदिको गिनती फलोंमें करते हैं। फल प्रायः मनुष्यों और पशु-पक्षियोंके खानेके काममें आते हैं। इसके भेद भी अनेक होते हैं। कुछमें केवल एक ही बीज या गुठली रहती है, कुछमें अनेक। इसी प्रकार कुछके ऊपर बहुत ही मुलायम और हलका आवरण या छिलका और कुछके ऊपर बहुत कड़ा या कांटेदार रहता है।

३ गुण, प्रभाव। ४ प्रतिफल, बदला। ५ प्रयत्न वा क्रियाका परिणाम, नतीजा। ६ धर्म या परलोककी दृष्टिसे कर्मका परिणाम जो सुख और दुःख है, कर्मभोग। ७ शुभ कर्मोंके परिणाम जो संख्यामें चार माने जाते हैं। इन चारोंके नाम हैं—अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष। ८ हलकी फाल। ९ ढाल। १० फलक। ११ वाण, भाले, छुरी आदिका तेज अगला भाग। यह भाग लोहेका बना होता है और उससे आघात किया जाता है। १२ गणितकी किसी क्रियाका परिणाम। १३ पासे परकी बिंदी या चिह्न। १४ उद्देश्यकी सिद्धि। १५ त्रैराशिककी तीसरी राशि वा निष्पत्तिमें प्रथम निष्पत्तिका द्वितीय पद। १६ मूलका व्याज वा वृद्धि, सूद। १७ क्षेत्रफल। १८ फलित ज्योतिषमें ग्रहोंके योगका परिणाम जो सुख दुःख आदिके रूपमें होता है। १९ जातीफल, जायफल। २० प्रयोजन, दरकार। २१ त्रिफला। २२ कक्कोल, कंकोल। २३ कुटज वृक्ष, कोरैयाका पेड़। २४ दान। २५ मुष्क। २६ इन्द्रयव। २७ स्त्री-रज। २८ सर्वतोभद्ररस। २९ मदनफल। ३० वमन। ३१ महर्षि गौतमोक्त प्रमेयका भेद। महर्षि गौतमने स्वकृत सूत्रमें इसका लक्षण इस प्रकार बतलाया है—

प्रवृत्ति और दोषजनित जो अर्थ है वही फल पदार्थ है। इस विषयकी कुछ विशदरूपसे यहां आलोचना करनी चाहिये। मानवोंका गमन, भोजन वा मानसिक चिन्ता आदि चाहे जो कोई व्यापार क्यों न हो, उसके परिणामसे सुख अथवा दुःख भोग उत्पन्न होता है।

अर्थात् सुख या दुःखभोग व्यतीत कार्य मात्रका और कोई परिणाम फल ही नहीं है। सभी कार्यों के अन्तमें सुख अथवा दुःख हुआ करता है। इसीसे महर्षि गौतमादि ऋषियोंने सुख और दुःखको ही कार्यका फलस्वरूप स्वीकार किया है, सुख अथवा दुःख साक्षात्कारके बाद और कोई भी फल उत्पन्न नहीं होता, वही सुखदुःख भोगकार्यमात्रका चरमफल है। इस कारण सुख अथवा दुःखभोगको ही मुख्यफल कहना चाहिये। जीवके आहार विहार आदि व्यापारोंका मूल कारण प्रवृत्ति और दोष है। प्रवृत्ति शब्दसे यत्न और दोष शब्दसे राग, द्वेष तथा मोह ये तीनों ही समझे जाते हैं। रागका अर्थ इच्छा अर्थात् अनुराग और द्वेषका आत्मगुणविशेष है। द्वेष होनेसे अनिष्टाचरणमें प्रवृत्ति उत्पन्न होती है। मोहका अर्थ अयथार्थ-ज्ञान है अर्थात् दुःखकर कार्यमें सुखकर और कामिनी आदिमें मनोहरत्वादि बुद्धि है। ये तीनों प्रथमतः जीवात्माको आच्छन्न करते हैं। इसीसे उपार्जन प्रभृति व्यापार अति दुःखकर होने पर भी उसमें उस दोष-मोहित आत्माकी प्रवत्ति उत्पन्न होती है। उस प्रवृत्तिके होनेसे ही व्यापारधारा उत्पन्न हुआ करती है। वही व्यापारधारा आखिरमें सुख वा दुःख उत्पादन करती है। इसी कारण दोष और प्रवृत्ति इस सुख अथवा दुःखभोगका मूल कारण होती है। महर्षि गौतमने प्रवृत्ति और दोष द्वारा उत्पन्न पदार्थको हो फल बतलाया है। अतएव सुख अथवा दुःखभोग ही मुख्य फल है, इसमें जरा भी सन्देह नहीं। भोजनादि क्रिया भी शरीरादि इन्द्रियके सुख और दुःखभोग सम्पादन करती है, इस कारण वह गौणफल है। अतएव सुख और दुःख इन दोनोंके अन्यतरका साक्षात्कारत्व ही मुख्यफलका लक्षण है तथा सुखदुःख भिन्न वर्त्तमान जन्यत्व गौणफलका लक्षण और जन्यत्व ही सामान्य फलका लक्षण है। (न्यायदर्शन)

अनिष्ट, इष्ट और मिश्रके भेदसे कर्मके तीन फल होते हैं। चाहे जिस किसी कार्यका अनुष्ठान क्यों न किया जाय उसके उक्त तीन प्रकारके फलके सिवा और किसी प्रकारका फल नहीं होगा।

मानव इस जगत्में (गीता १८ अ०) या परलोकमें सुख दुःखादि वा स्वर्ग नरकादि जो कोई फलभोग करते हैं, वह कर्मजन्य है। शुभकर्मको फल सुख और अशुभ वा पाप कर्मका फल दुःख है। जीव बार बार कर्मफलका भोग करते हैं, किन्तु आत्मा निर्लिप्त है, उसके ये सब फल नहीं होते।

जब तक आत्माका मायिकबन्धन छिन्न नहीं होता, तब तक इस प्रकारका फल अवश्यम्भावी है।

कलिमें दान ही एकमात्र शुभफलप्रद है। ब्रह्मवैवर्त्त-पुराणमें प्रकृतिखण्डके ३४वें अध्यायमें तथा हेमाद्रिमें दानफलका विशेष विवरण लिखा है, विस्तार हो जाने के भयसे यहां नहीं लिखा गया।

फलक (सं० पु० क्ली०) फल-संज्ञायां कन्। १ चक्र, ढाल। २ अस्थिखण्ड। ३ नागकेशर। ४ काष्ठादि-फलक, तख्ता, पट्टी। ५ नितम्ब, चूतड़। ६ जलपात्र रखनेका आधारविशेष। ७ रजकपट, धोबीका पाट। ८ चादर। ९ पृष्ठ, वरक। १० हथेली। ११ फल। १२ चौकी, मेज। १३ खाटकी बुनन जिस पर लोग बैठते हैं।

फलक (अ० पु०) १ आकाश। २ स्वर्ग।

फलकक्ष (सं० पु०) महाभारतके अनुसार एक यक्षका नाम।

फलकण्टक (सं० पु०) फले कण्टकं यस्य। १ कण्टकि-फलवृक्ष। २ पनस, कटहल। ३ पर्पटक, खेतपापड़ा। ४ इन्दीवरा।

फलकण्टकी (सं० स्त्री०) इन्दीवरा।

फलकर्कशा (सं० स्त्री०) वनबदर वृक्ष, जंगली बेर।

फलकना (हिं० क्रि०) १ छलकना, उमगना। २ फड़कना देखो।

फलकपाणि (सं० पु०) फलकं पाणौ यस्य। चर्मी, हाथमें ढाल ले कर लड़नेवाला योद्धा।

फलकपुर (सं० क्ली०) भारतके पूर्ववर्त्ती पुरभेद। (पाणिनि ६।२।१०१)

फलकयन्त्र (सं० क्ली०) ज्योतिपोक्त यन्त्रभेद। इसके अनुसार ज्या आदिका निर्णय किया जाता है। सिद्धान्त-शिरोमणिमें इस यन्त्रकी प्रस्तुत प्रणाली आदिका विशेष विवरण लिखा है।

फलकर (हिं० पु०) वह कर जो वृक्षोंके फल पर लगाया जाता है।

फलकसक्थ (सं० त्रि०) फलकमिव सक्थि यस्य पच् समासान्तः। फलकतुल्य सक्थियुक्त। (क्ली०) फलकमिव सक्थि।

फलका (अ० पु०) १ नाव या जहाजकी पाटनमें वह दरवाजा जिसमेंसे हो कर नीचेसे लोग ऊपर आते और ऊपरसे नीचे उतरते हैं। २ फफोला, छाला।

फलकाम (सं० त्रि०) फलं कामयते इति कम-अण्। कर्म-फलकामी, जो कर्मके फलकी कामना करता हो। शास्त्रमें फलकामी हो कर कार्य करनेको विशेष निन्दित वतलाया है।

शास्त्रमें सभी जगह निष्काम कर्मका विधान देखनेमें आता है, इस कारण सबोंको फलकामनाशून्य हो कर कर्मानुष्ठान करना विधेय है। अज्ञानान्ध जीवोंका चित्त बहुत मलिन है, इस कारण वे हमेशा नाना प्रकारकी कामना द्वारा अभिभूत रहते हैं। जब तक उनका चित्त मलिन रहेगा, तब तक वे पुनः पुनः सकाम कर्मका अनुष्ठान करेंगे। किन्तु इस प्रकार कर्म करते करते जिस परिमाणमें चित्त-मलिनता दूर होगी उसी परिमाणमें चित्त भी कामशून्य होगा। भगवान् विष्णुकी प्रीतिकी कामना करके यदि किसी कर्मका अनुष्ठान किया जाय, वह दोष नहीं होता।

"कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।" (गीता)

भगवान् विष्णुने अर्जुनको निष्काम कर्म करनेका उपदेश दिया था। जीवदेह धारण करनेसे, इच्छापूर्वक हो चाहे अनिच्छापूर्वक, कर्म करना ही होगा। निष्कर्म हो कर कोई भी नहीं रह सकता। जब कर्म जीवका अवश्यम्भावी है, तब जिससे जीवगण फलकामनाशून्य हो कर कर्मका अनुष्ठान करें, उसीके लिये शास्त्रमें बार बार फलकामनात्यागका विषय वर्णित हुआ है। सकाम कर्मका फल बन्धन और निष्काम कर्मका फल मुक्ति है। यही सकाम और निष्काममें प्रभेद है।

फलकावन (सं० क्ली०) एक कल्पित वनका नाम जिसके सम्बन्धमें यह प्रसिद्ध है, कि यह सरस्वतीको बहुत प्रिय है।

फलकिन् (सं० पु०) फलकं फलकाकारोऽस्त्यस्येति फलक-इनि। १ मत्स्यभेद, चीतल नामकी मछली। (त्रि०) २ फलकान्वित। फला फञ्जिरिप्रवृक्ष एव स्वार्थे क, फलका ततः चतुरर्थ्यां प्रेक्षादित्वात् इनि। ३ तद्वृक्ष समीपादि।

फलकी (सं० स्त्री०) फलकिन् देखो।

फलकीवन (सं० क्ली०) महाभारतके अनुसार एक वनका नाम जो किसी समय तीर्थ माना जाता था।

फलकृच्छ्र (सं० पु०) एक प्रकारका कृच्छ्र व्रत। इसमें बेल आदि फलोंके क्राथको पी कर एक मास तक रहना पड़ता है।

फलकृष्ण (सं० पु०) फले फलावच्छेदे कृष्णः। १ पानीयामलक, जल-आँवला। २ करञ्जवृक्ष। (त्रि०) फलं कृष्णं यस्य। ३ कृष्णफलयुक्त।

फलकेशर (सं० पु०) फले केशरा इवाऽस्य। नारिकेलवृक्ष, नारिकेलका पेड़।

फलकोष (सं० पु०) फलस्य मुष्कस्य कोष इव। १ मुष्कावरक चर्मयुक्त अण्डकोष। २ पुरुषकी इन्द्रिय लिङ्ग।

फलकोषक (सं० पु०) फलं मुष्क एव कोषो यत्र, ततः कन्। मुष्क, अण्डकोष।

फलग्रहि (सं० त्रि०) फलं गृह्णातीति ग्रह-इन्। उपयुक्त समयमें फलित वृक्ष।

फलग्राही (सं० पु०) फलं गृह्णातीति ग्रह-णिनि। १ वृक्ष, पेड़। (त्रि०) २ फलग्रहणकर्त्ता, फल लेनेवाला।

फलघृत (सं० क्ली०) घृतौषधविशेष। इसकी प्रस्तुत प्रणाली—गव्यघृत ४ सेर, शतमूलीका रस ८ सेर, दुग्ध ८ सेर। कल्कार्थ—मञ्जिष्ठा, यष्टिमधु, कुड़, तिफला,चीनी, विजबन्दकी जड़, मेदा, क्षीरकङ्कोल, अश्वगन्धामूल, बनयमानी, हरिद्रा, दारुहरिद्रा, हिंगु, कटकी, रक्तोत्पल, कुमुद, द्राक्षा, कङ्कोल, क्षीरकङ्कोल, श्वेतचन्दन, रक्तचन्दन, लक्ष्मणामूल (अभावमें श्वेतकण्टिकारीका मूल) प्रत्येक दो तोला। इन सब द्रव्योंसे नियमपूर्वक घृत प्रस्तुत करना होता है। पुरुष यदि इस घृतका सेवन करे, तो उनकी रतिशक्ति बढ़ती है और स्त्रियोंके सब प्रकारके योनिदोष तथा गर्भदोष दूर हो कर आयु और बलशाली पुत्र उत्पन्न

होता है। यह स्त्रीरोगाधिकारमें एक उत्कृष्ट औषध है। स्वयं अश्विनीकुमारने इस घृतका उपदेश दिया है। इसे फलकल्याणघृत भी कहते हैं। (भैषज्यरत्ना० स्त्रीरोगाधि)

फलचमस (सं० पु०) दधिमिश्रित वटत्वक् चूर्ण, एक प्रकारका पुराना व्यञ्जन जो वड़की छालको कूट कर उसके चूर्णको दहीमें मिला कर वनाया जाता था।

फलचारक (सं० पु०) १ फलविभाजक, फलविभागकारी। २ बौद्धमतके अनुसार प्राचीनकालके एक कर्मचारीके पदका नाम।

फलचोरक (सं० पु०) फलं चोर इव यस्य कन्। चोरक नामक गन्ध द्रव्य।

फलच्छदन (सं० क्ली०) काष्ठनिर्मित गृह।

फलज्जलवासुदेव (सं० पु०) एक प्राचीन कवि।

फलज्ञाति सं० स्त्री०) जातीफलवृक्ष।

फलतः (सं० अव्य०) फलस्वरूप, इसलिये।

फलता—वङ्गालके २४ परगनेके अन्तर्गत एक ग्राम। यह अक्षा० २२° १८' उ० और देशा० ८८° १०' पू०, हुगली नदीके किनारे अवस्थित है। इसके ठीक दूसरे किनारे दामोदरनदी आ कर गङ्गामें मिल गई है। पहले यहां ओलन्दाजोंकी एक कोठी थी। नवाव सिराज-उद्दौलाने जव कलकत्ते पर आक्रमण किया, तव अङ्गरेज-रणतरी ले कर ड्रेक साहव यहीं पर रहते थे। यहां पहले एक छोटा दुर्ग था जो अभी छोड़ दिया गया है।

फलतान—दाक्षिणात्यके सातारा अधिकारभुक्त एक सामन्तराज्य। यह अक्षा० १७° ५६' से १८° ६' उ० और देशा० ७४° १६' से ७४° ४४' पू०के मध्य अवस्थित है। इसके उत्तर पूना जिला और तीन ओर सातारा-राज्य है। भूपरिमाण ३९७ वर्गमील है। उत्पन्न शस्यादिके अलावा यहां तेल, कपास और रेशमी वस्त्र वुनने तथा पत्थरकी मूर्त्ति वनानेका विस्तृत कारवार है।

यहांके सरदार राजपूत हैं। इस वंशके पदकला जगदेव नामक कोई व्यक्ति दिल्लीदरवारमें नौकरी करते थे। १३२० ई०के युद्धमें उनकी मृत्यु हुई। विश्वासी भृत्यकी मृत्युसे व्यथित हो सम्राट्ने उनके लड़के निम्वराजको नायककी उपाधि और जागीर दी। १३४९ ई०में निम्वराजका देहान्त हुआ। इसके वाद १८२५ ई०में सातारके राजाने इस पर अधिकार किया। १८२७ ई०में उन्होंने नजराना ले कर वालाजी नायकको पितृसिंहासन पर वैठनेकी अनुमति दी। १८२८से १८४१ ई० तक फलतान फिरसे साताराके शासनाधीन रहा। पीछे मृत राजाकी विधवा पत्नीने गोद लेनेका अधिकार पाया। ये हिन्दू और जातिके क्षत्रिय हैं। इन्हें दत्तक लेनेका अधिकार है। वड़े लड़के ही राज्यके उत्तराधिकारी होते हैं।

२ उक्त सामन्तराज्यका प्रधान नगर। यह अक्षा० १७° ५९' उ० और देशा० ७४° २८' पू० सातारासे ३७ मील उत्तर-पूर्वमें अवस्थित है। जनसंख्या दश हजारके लगभग है। १८वीं शताब्दीमें राजा निम्वराजने यह नगर वसाया। यहांकी सड़क परिष्कार, परिच्छन्न और वृक्षच्छायायुक्त है। १८६८ ई०में म्युनिसिपलिटी स्थापित हुई।

फलत्रय (सं० क्ली०) फलस्य त्रयं ६-तत्। १ द्राक्षा, परुष और काश्मर्य ये तीनों फल। २ हड़, वहेड़ा और आंवला इन तीनोंका समूह।

फलत्रिक (सं० क्ली०) फलस्य त्रिकम्। १ भावप्रकाशके अनुसार सोंठ, पीपल और काली मिर्च। २ त्रिफला, हड़, वहेड़ा और आंवला।

फलद (सं० पु०) फलं ददातीति दा-(आतोऽनुपसर्गे। पा ३।२।३) इति-क। वृक्ष, पेड़। (त्रि०) २ फलदाता, फल देनेवाला।

फलदान (हिं० पु०) १ हिन्दुओंकी एक रीति जो विवाह होनेके पहले उस समय होती है जव कोई व्यक्ति अपनी कन्याका विवाह किसीके लड़केके साथ करना निश्चित करता है। इसमें कन्याका पिता रुपये, मिठाई, अक्षत, फूल आदि लोक-प्रथाके अनुसार शुभ मुहूर्त्तमें वरके घर भेजता है। उस समय विवाह निश्चित मान लिया जाता है। इसका दूसरा नाम वररक्षा भी है। २ विवाह-सम्वन्धी टीकेकी रसम।

फलदार (हिं० वि०) १ फलवाला, जिसमें फल लगे हों। २ जो फले, जिसमें फल लगे।

फलदू (हिं० पु०) धौली नामका एक वृक्ष।

फलद्रुम (सं० पु०) फलितवृक्ष, फला हुआ पेड़।

फलना (हिं० क्रि०) १ फलसे युक्त होना, फल लाना।

२ परिणाम निकलना, लाभदायक होना। ३ शरीरके किसी भाग पर बहुतसे छोटे छोटे दानोंका एक साथ निकल आना जिससे पीड़ा होती है। ४ एक प्रकारकी छेनी। यह चितेरे संगतराश सादी पत्तियां बनानेमें काम आती है।

फलन्दि—राजपुतानेकी मरुभूमिमें अवस्थित एक नगर। इसके प्रधान पथ पर प्रस्तरनिर्मित अट्टालिका अच्छी तरह सजी हुई है। मध्यभागमें एक दृढ़ दुर्ग है और जिस प्राचीरसे दुर्ग घिरा हुआ है वह ४० फुट ऊंचा है। इस दुर्गमें उतने युद्धोपकरण नहीं हैं। इसके पास ही एका नामक पर्वत दण्डायमान है।

फलपञ्चाम्ल (सं० क्ली०) अम्ल फलपञ्चक।

फलपाक (सं० पु०) फलेषु पाकोऽस्य। १ करमर्दक, करौंदा। २ पानीय आमलक, जल-आंवला।

फलपाकान्ता (सं० स्त्री०) फलपाकेन अन्तो नाशो यस्याः। ओषधि, धान्य और कदली आदि।

फलपाकिन् (सं० पु०) फलपाकोऽस्त्यस्येति इनि। गर्द-भाण्डवृक्ष, गर्दभांड़का पेड़।

फलपादप (सं० पु०) फलवृक्ष।

फलपिप्पली (सं० पु०) फलवीज।

फलपुच्छ (सं० पु०) फलं पुच्छ इव यस्य। चरण्डालु, वह वनस्पति जिसकी जड़में गांठ पड़ती हों, जैसे प्याज, शलगम आदि।

फलपुर (सं० क्ली०) नगरभेद।

फलपुष्प (सं० पु०) वह वनस्पति जिसमें फल और पुष्प दोनों हों।

फलपुष्पा (सं० स्त्री०) फलानि पुष्पाणीव यस्याः। पिण्ड-खर्जूरीवृक्ष, पिण्डखजूर।

फलपुष्पी (सं० स्त्री०) पिण्डखर्जूरीवृक्ष, पिण्डखजूर।

फलपूर (सं० पु०) फलेन पूर्णः। १ दाड़िम्ब, अनार। २ मातुलुङ्गवृक्ष, बिजौरा नीबू।

फलपूरक (सं० पु०) फलपूर स्वार्थे कन्। बीजपूर।

फलप्रद (सं० त्रि०) फलं प्रददातीति प्र-दा (आतश्चोप-सर्गे। पा ३।१।१३६) इति क। फलदाता, फल देनेवाला।

फलप्रिय (सं० पु०) द्रोणकाक, डोम कौवा।

फलप्रिया (सं० स्त्री०) फलेन प्रीणातीति प्री-क-टाप्। प्रियंगु।

फलबन्धी (सं० त्रि०) फलबन्धनकारी, फल बढ़ेगा, इस ख्यालसे जो उसे कपड़े द्वारा बांध देता है।

फलबन्ध्य (सं० पु०) फले बन्ध्यः। फलशून्यवृक्ष, बांझ पेड़।

फलभाग (सं० पु०) फलका भाग, शस्यादिका अंश।

फलभागी (सं० त्रि०) फल-भज-णिनि। फलभोगकारी, फलका भोग करनेवाला।

फलभाज् (सं० त्रि०) फलं भजते (भजो ण्विः। पा ३।२।६२) इति भज-ण्वि। फलभागी, सुख दुःखका फल-भोक्ता।

शास्त्रमें जिन सब कर्मोंका विधान है, उसे जिस दिन करना होगा, उस दिन उस कर्मका तथा मास, तिथि और पक्षका उल्लेख कर कार्य करना होगा, नहीं तो उस कर्मका फलभोग नहीं होता।

फलभूमि (सं० स्त्री०) फलाय कर्मफलभोगाय भूमिः। कर्मफलभोगस्थान, वह स्थान जहां कर्मोंके फलका भोग करना पड़ता हो।

फलभोग (सं० पु०) फलस्य भोगः ६-तत्। कर्मफल सुखदुःखादिका भोग।

फलभृत् (सं० त्रि०) फलं बिभर्त्ति भृ-क्विप्। फलित-वृक्ष, फला हुआ पेड़।

फलम—१ ब्रह्मके चीन पहाड़का एक उपविभाग। इसके उत्तरमें टिड्डिम और दक्षिणमें हाका उपविभाग है। जन संख्या प्रायः ३६८५८ है। इसमें कुल १४३ ग्राम लगते हैं।

२ ब्रह्मके चीन पहाड़का सदर। यह अक्षा० २२° ५६' उ० तथा देशा० ९३° ४' पू० मणिपुर नदीके किनारे अवस्थित है। यहांकी आबहवा अच्छी नहीं है।

फलमत्स्या (सं० स्त्री०) घृतकुमारी, घीकुंआर।

फलमुख्या (सं० स्त्री०) फलेन मुख्या श्रेष्ठा। अजमोदा।

फलमुण्ड (सं० पु०) नारिकेलवृक्ष, नारियलका पेड़।

फलमुद्गरिका (सं० स्त्री०) फले फलावच्छेदे मुद्गरिका क्षुद्रमुद्गर इव। पिण्डखर्जूर, पिण्डखजूर।

फलमूलिन् (सं० त्रि०) फूल और मूलयुक्त।

फलयुग्मा (सं० स्त्री०) इन्दीवरा।

फलयोग (सं० पु०) नाटकमें वह स्थान जिसमें फलकी प्राप्ति या उसके नायकके उद्देश्यकी सिद्धि हो।

फलराज (सं० पु०) १ तरबूज। २ खरबूजा।

फललक्षणा (सं० स्त्री०) फलहेतुका लक्षणा। एक प्रकारकी लक्षणा। लक्षणा देखो।

फलवत् (सं० त्रि०) फलमस्यास्तीति फल-मतुप् मस्य व। फलयुक्त वृक्ष, फलदार पेड़।

फलवर्त्ति (सं० स्त्री०) आयुर्वेदोक्त वर्त्तिभेद, मोटी वत्ती जो घावमें रखी जाती है।

फलवर्त्तुल (सं० क्ली०) फलं वर्त्तुलं यस्य। १ कालिङ्ग, कुम्हड़ा। २ तरम्बुजवृक्ष, तरबूज।

फलवस्ति (सं० स्त्री०) एक प्रकारका वस्तिकर्म। इसमें अंगूठेके बराबर मोटी और बारह अंगुल लंबी पिचकारी गुदामें दी जाती है।

फलवान् (सं० त्रि०) फलित, जिसमें फल लगा हो।

फलविक्रयी (सं० त्रि०) फलविक्रयोऽस्या अस्तीति इनि। फलविक्रयकारी, फल बेचनेवाला।

फलविरेचन (सं० क्ली०) हरीतकी आदि।

फलविष (सं० क्ली०) फले विषं यस्य। वह वृक्ष जिसके फल विषैले होते हैं। सुश्रुतमें कुमुद्वती, रेणुका करम्भ, महाकरम्भ, कर्कोटक, रेणुक, खद्योतक, चर्मरी, इभगन्धा, सर्पघाती, नन्दन और सरपाकके फलविष कहे गये हैं। (सुश्रुत कल्पस्था० २ अ०)

फलवृक्ष (सं० पु०) फलका पेड़।

फलवृक्षक (सं० पु०) फलप्रधानो वृक्षः, संज्ञायां कन्। पनस, कटहल।

फलश (सं० त्रि०) फल तृणादित्वात् श। १ फलयुक्त, जिसमें फल लगे हों। (पु०) २ पनस, कटहल।

फलशाक (सं० क्ली०) फलमेव शाकम्। षड्विध शाकके अन्तर्गत फलरूप शाक, वह फल जिसकी तरकारी बना कर खाई जाती है।

फलशाड़व (सं० पु०) दाड़िम, अनार।

फलशाली (सं० त्रि०) फलेन शालते श्लाघते इति शाल्-णिनि। फलयुक्त, जिसमें फल लगे हों।

फलशैशिर (सं० पु०) शिशिरं प्रासमस्य अण्, शैशिरं फलं यस्य। वदरवृक्ष, बेरका पेड़।

फलश्रुति (सं० स्त्री०) फलस्य कर्मफलस्य श्रुतिः श्रवणम्। कर्मफलश्रवण, वैदिक कर्मके फलप्रतिपादनार्थ शास्त्र फलश्रवण। अमुक कर्म करनेसे स्वर्ग, अमुक करनेसे पुण्य होता है, इत्यादि फलश्रुति देख कर कार्यमें प्रवृत्त होवें। इसे प्रवर्त्तक वाक्य भी कहा जा सकता है। फलश्रुति अच्छे और बुरे दोनों ही स्थलमें होगी। सत्कार्य होनेसे गुणफलश्रुति और असत्कार्य होनेसे दोषफलश्रुति होती है। असत्कार्यकी फलश्रुति देख कर लोग उस ओर पांव नहीं बढ़ाते। सत्कार्यमें शुभफलश्रुति रहने पर भी फलकी आकांक्षा करके उसमें प्रवृत्त होना उचित नहीं। कारण, शास्त्रमें निष्काम कर्मको ही श्रेष्ठ बतलाया है।

फलश्रेष्ठ (सं० पु०) फलानां फलवृक्षाणां श्रेष्ठः। आम्रवृक्ष, आमका दरख्त।

फलसंवद्ध (सं० पु०) उदुम्बरवृक्ष, गूलर।

फलसंस्कार (सं० पु०) आकाशके किसी ग्रहके केन्द्रका समीकरण या मंद-फल-निरुपण (Equation of the Centre)

फलस (सं० पु०) पणसवृक्ष, कटहलका पेड़।

फलसम्मीरा (सं० स्त्री०) कृष्णोदुम्बरिका, कसूमर।

फलस्थान (सं० क्ली०) फल उपभोग करनेका समय।

फलस्थापन (सं० क्ली०) फलयोर्वौड़म्बरफलयोः स्थापनमत्र। सीमन्तोन्नयन संस्कार, दश प्रकारके संस्कारोंमें से तीसरा संस्कार।

फलस्नेह (सं० पु०) फले स्नेहो यस्य। आखोटवृक्ष, अखरोट।

फलहरी (हिं० स्त्री०) १ वनके वृक्षोंके फल, मेवा। २ फल, मेवा। (त्रि०) ३ फलहारी देखो।

फलहार (हिं० पु०) फलाहार देखो।

फलहारिन् (सं० त्रि०) फलं हरति हृ-णिनि। फलहारक, फल चुरानेवाला।

फलहारी (सं० स्त्री० फलानां हारो हरणं यस्मै गौरादित्वात् ङीप्। कालिकादेवी। ज्यैष्ठमासकी अमावस्या तिथिको नाना प्रकारके फलोपहार द्वारा इनकी पूजा करनी होती है।

फलहारी (हिं० वि०) जिसमें अन्न न पड़ा हो अथवा जो अन्नसे न बना हो।

फलाँ (फा० वि०) अमुक, कोई अनिश्चित।

फलांग (हिं० स्त्री०) १ एक स्थानसे उछल कर दूसरे स्थान पर जानेकी क्रिया या उसका भाव। २ मालखंभकी एक कसरत। यह एक प्रकारकी उड़ान है। इसमें दोनों हाथोंको जमीन पर टेक कर पैरोंको उठाते और चक्कर लगाते हुए दूसरी ओर भूमि पर गिरते हैं। ३ वह दूरी जो फलांगसे तै की जाय।

फलाँगना (हिं० क्रि०) एक स्थानसे उछल कर दूसरे स्थान पर जाया या गिरना।

फलांश (हिं० पु०) तात्पर्य, सारांश, असल मतलब।

फला (सं० स्त्री०) १ झिञ्झिरिष्टा क्षुप, झिंझिरीटा। २ शमी। ३ प्रियंगु। ४ इन्दीवर।

फलागम (सं० पु०) १ शरत्काल। २ फलके आनेका काल।

फलाढ्या (सं० स्त्री०) फलेन आढ्या सम्पन्ना। काष्ठकदली, कठकेला, जंगली केला।

फलात्मिका (सं० स्त्री०) कारवेल्ली, करैली।

फलादन (सं० पु०) फलानामदनः भक्षकः वा फलानां अदनं भक्षणं यस्य। १ शुकपक्षी, तोता। (त्रि०) २ फल-भक्षक, फल खानेवाला।

फलादेश (सं० पु०) १ किसी बातका फल या परिणाम बतलाना, फल कहना। २ जन्मकुण्डली आदि देख कर या और किसी प्रकार ग्रहों आदिका फल कहना।

फलाध्यक्ष (सं० क्ली०) फलानामध्यक्षमिव। १ राजा-दनवृक्ष, खिरनीका पेड़। २ फलदेनेवाला, ईश्वर। ३ वह जो फलोंका मालिक हो।

फलाना (अं० पु०) अमुक, कोई अनिश्चित।

फलानालु (सं० पु०) कन्दशाक।

फलानुबन्ध (सं० पु०) कर्मफलकी प्रणाली।

फलानेजीब (अं० पु०) जहाजका एक तिकोना पाल जो आगेकी ओर होता है।

फलान्त (सं० पु०) फलेषु सत्सु अन्तो नाशो यस्य। १ वंश, बांस। फलस्य अन्तः ६-तत्। २ फलका अन्त, शेष।

फलान्न (सं० क्ली०) फलोपकरण कृतान्न। यह रुचिकर, गुरु और फलतुल्य गुणयुक्त माना गया है। (वैद्यकनि०) २ वृक्षाम्ल।

फलाफल (सं० क्ली०) फल और अफल, अच्छा और बुरा।

फलाफलिका (सं० स्त्री०) फलसहितं अफलं तदस्ति अस्य ठन्, टाप, कापि अत इत्वं। फलसहित अफलयुता स्त्री।

फलावन्ध्य (सं० पु०) फलेन अवन्ध्यः। फलयोग्य वृक्ष।

फलाम्ल (सं० क्ली०) फलमम्लं यस्य। १ वृक्षाम्ल, खट्टा फल। २ अम्लवेतस, अम्लवेत। ३ विपावली, विपा-विल।

फलाम्लपञ्चक (सं० क्ली०) अम्ल-पञ्चक, वेर, अनार, विपा-विल, अम्लवेत और विजौरा ये पांच खट्टे फल।

फलाम्लिक (सं० पु०) एक प्रकारकी इमलीकी चटनी।

फलायोषित् (सं० स्त्री०) पतङ्ग स्त्री, मादा फतिंगा।

फलाराम (सं० पु०) फलका बगीचा।

फलारिष्ट (सं० पु०) अर्शोरोगाधिकारमें अरिष्ट औषध विशेष। एक प्रकारका अरिष्ट जो बवासीरके रोगीको दिया जाता है।

फलार्थिन् (सं० त्रि०) फलं अर्थयते इति अर्थ-णिनि। फलकामो, फलकी कामना करनेवाला।

फलालीन (अं० पु०) एक प्रकारका ऊनी वस्त्र जो बहुत कोमल और ढीली ढाली बुनावटका होता है।

फलालुम्—दार्जिलिङ्ग जिलेके अन्तर्गत हिमालय पर्वतकी सिंहलीला श्रेणीका एक शिखर। यह अक्षा० २७° १२' ३०" उ० और देशा० ८८° ३' पू०के मध्य समुद्रपृष्ठसे १२०४२ फुट ऊंचा है। दार्जिलिङ्गमें खड़ा हो कर देखनेसे इस चूड़ाका वर्फावृत दृश्य अतीव मनोहर लगता है।

फलाशन (सं० पु०) फलमश्नातीति अश-ल्यु। शुकपक्षी, तोता। (त्रि०) २ फलभक्षक, फलखानेवाला।

फलाशिन् (सं० त्रि०) फलमश्नाति अश-णिनि। फल-भोजी, फल खानेवाला।

फलासङ्ग (सं० पु०) फलेषु आसङ्गः। फलासक्ति, वह आसक्ति जो किसी कार्यके फल पर हो।

फलासव (सं० पु०) चरकके अनुसार दाख, खजूर आदि फलोंके आसव जो २६ प्रकारके होते हैं।

फलास्थि (सं० पु०) नारिकेल वृक्ष, नारियलका पेड़।

फलाहार (सं० पु०) फलानां आहारः। फलभोजन, केवल फल खाना।

फलाहारी (हिं० पु०) १ वह जो फल खा कर निर्वाह करता हो। (वि०) २ फलाहार सम्बन्धी, जो केवल फलोंसे बना हो।

फलि (सं० पु०) फल-इन्। मत्स्यविशेष, एक प्रकारकी मछली। इसका मांस भारी, चिकना, वलकारक और स्वादिष्ट होता है।

फलिका (सं० स्त्री०) फलमस्या अस्तीति फल-ठन्-टाप्। १ एक प्रकारकी निष्पावी जो हरे रंगकी होती है। २ शरादिका अग्रभाग, सरपत आदिके आगेका नुकीला भाग।

फलित (सं० त्रि०) फलमस्य जातं अस्त्यर्थे तारकादित्वादि तच्। १ फलवान्, फला हुआ। २ सम्पूर्ण, पूर्ण। (पु०) ३ वृक्ष, पेड़। ४ पत्थर-फूल, छरीला।

फलितव्य (सं० क्लो०) फल-तव्य। जो फलनेके योग्य हो, फलने लायक।

फलिन् (सं० त्रि०) फलमस्यास्तीति फल-इनि। फलयुक्त वृक्षादि, वह वृक्ष जिसमें फल लगते हों।

फलिन (सं० त्रि०) फलानि सन्त्यस्येति फल (बहु-मन्यत्रापि। उण् २।४८) इति इनच्। १ फलवान्, फला हुआ। (पु०) २ फलवान्वृक्ष, वह पेड़ जिसमें फल लगते हों। ३ पनस वृक्ष, कटहल। ४ श्योनाकवृक्ष। ५ रीठा।

फलिनी (सं० स्त्री०) फलिन् स्त्रियां ङीप्। १ प्रियंगुवृक्ष। २ अग्निशिखावृक्ष। ३ मुपली, मूसली। ४ लक्ष्मणाकन्द। ५ एलादि, इलायची। ६ द्राक्षासव, दाखका बना हुआ आसव। ७ नखकरञ्ज वृक्ष, मेंहदी। ८ लाङ्गलीवृक्ष, जल-पीपल। ९ त्रायमाणा लता। १० दुग्धिका, दूधी।

फली (सं० स्त्री०) फलमस्त्यस्या इति अर्श आदिभ्योऽच् स्त्रियां ङीप्। १ प्रियंगुवृक्ष। २ फलिमत्स्य। ३ मुपली, मूसली। ४ चमकषा, चमरखा। ५ आम्रातक वृक्ष। अमला। ६ फलयुक्त वृक्षादि, वह वृक्ष जिसमें फल लगते हों। ७ श्योनाक। ८ पनस, कटहल।

फली (हिं० स्त्री०) छोटे छोटे पौधोंमें लगनेवाले एक प्रकारके फल। ये लम्बे और चिपटे होते हैं। गूदा कुछ भी नहीं होता, बल्कि उसके स्थान पर एक पंक्तिमें कई छोटे छोटे बीज होते हैं। लोग इन्हें खाते नहीं; बच्चे ही तरकारी आदिके काममें लाते हैं। प्रायः सभी फलियां खानेमें पौष्टिक होती है और सूख जाने पर पशुओंके भी खानेके काममें आती हैं।

फलीकार (सं० पु०) फल-च्वि-कृ कर्मणि घञ्। फलेच्छा, फलकी कामना। वितुषीकरण। ३ अफलका फलसम्पादन।

फलीता (अ० पु०) १ वड़ आदिके वररोह या छाल आदिके रेशोंसे वटी हुई रस्सीका टुकड़ा। इसमें तोड़ेदार बन्दूक दागनेके लिये आग लगा कर रखी जाती है। २ वर्त्ति, वत्ती। ३ पत्ती डोर जो गोट लगाते समय सुन्दरताके लिये कपड़ेके भीतरका किनारा छोड़ कर ऊपरसे बखिया की जाती है।

फलीभूत (सं० त्रि०) फलदायक, लाभदायक।

फलीय (सं० त्रि०) फल-उत्करादित्वात् चतुरर्थ्यां छ। १ फलयुक्त, जिसमें फल लगा हो। २ फलसन्निकृष्टादि।

फलेंदा (हिं० पु०) एक प्रकारका जामुन। इसका फल बड़ा, गूदेदार और मीठा होता है। इसके पेड़ और पत्ते भी जामुनसे वड़े होते हैं।

फलेग्रहि (सं० पु०) फलं गृह्णातीति फल-ग्रह (फलेग्रहिरात्मम्भरिश्च। पा ३।२।२६) इति उपपदस्य एदन्तत्वं ग्रहेरिन् प्रत्ययश्च निपात्यते। यथासमयमें फलधरवृक्ष, वह वृक्ष जो उपयुक्त समयमें फलता है।

फलेग्राहि (सं० पु०) फले गृह्णातीति ग्रह-इन्, पृषोदरादित्वात् वृद्धिः निपातनात् सप्तम्या अलुक्।

फलेग्रहि देखो।

फलेच्छुक (सं० पु०) १ यक्षभेद। (त्रि०) २ फलकाम।

फलेन्द्र (सं० पु०) फलेन इन्द्रः ऐश्वर्यशालीव वृहत् फलत्वादेवास्य तथात्वं। वृहज्जम्बू, वड़ा जामुन। पर्याय—नन्द, राजजम्बू, महाफला, सुरभिपत्रा, महाजम्बू। गुण—स्वादु, विष्टम्भी, गुरु और रुचिकर।

फलेपाकी (सं० स्त्री०) गन्धमुस्त, गंधमुस्ता।

फलेपुष्पा (सं० स्त्री०) फले फलमुखे पुष्पं यस्याः, सप्तम्या अलुक्। क्षुद्र क्षुपविशेष, गूमा। पर्याय—गुरु, स्वादु, रुक्ष, उष्ण, वातपित्तकारक, क्षार, लवण, स्वादुपाक,

कटु, भेदक और कफ, आम, कामला, शोथ और श्वास-नाशक।

फलेरुहा (सं० स्त्री०) फले रोहतीति रुह-क सप्तम्या अलुक्। पाटलिवृक्ष, पाड़रका पेड़।

फलेलांकु (सं० पु०) जीवनवृक्ष।

फलेसक्त (सं० त्रि०) फले सक्तः आसक्तः। फलासक्त, फलकामी।

फलोत्तमा (सं० स्त्री) फलेषु उत्तमा। १ काकलीद्राक्षा, काकली दाख। २ दुग्धिका, दुधिया। ३ त्रिफला।

फलोत्पत्ति (सं० पु०) फलाय उत्पत्तिरस्य, प्रशस्त फलानां उत्पत्तिरत्र वा। आम्रवृक्ष, आमका पेड़।

फलोदक (सं० पु०) १ यक्षभेद। २ फलस्पृष्ट जल।

फलोदय (सं० पु०) फलस्य उदयो यत्र। १ लाभ। २ सुरालय, देवलोक। ३ हर्ष, आनन्द। फलस्य उदयः। ४ फलोत्पत्ति।

फलोद्भव (सं० त्रि०) जो फलसे उत्पन्न हुआ हो।

फलोपजीविन् (सं० त्रि०) फलेन उपजिवयति उप-जीव-णिनि। जो केवल फल खा कर जीविका निर्वाह करता हो।

फलौद—युक्तप्रदेशके मीरट जिलान्तर्गत एक नगर। तुयवंशीय फल्गु नामक किसी राजपूतने इस नगरकी प्रतिष्ठा की। मुसलमानोंके आक्रमण तक यह स्थान फल्गु वंशधरोंके हाथ रहा। फकीर कुतवशाहके अभि-सम्पातके बादसे प्रायः दो शताब्दी तक यह स्थान जन-शून्य हो गया। १८३६ ई०में वृटिशसरकारने इस स्थान-को इजारा देना चाहा, पर अभिशापके भयसे किसीने ग्रहण नहीं किया। आखिरकार जाटोंने उक्त स्थान ठेके पर ले लिया।

फल्क (सं० पु०) फल-निष्पत्तौ (कृदाधारार्चिकलिभ्यः कः। उण् ३।४०) इति क। विसारिताङ्ग।

फल्गु (सं० त्रि०) फल निष्पत्तौ (फलिपाटिनमिमनिजनामिति। उण् १।१६) इति उ, गुगागमश्च। १ असार, जिसमें कुछ सार न हो। २ निरर्थक, व्यर्थ। ३ सामान्य, साधारण। ४ क्षुद्र, छोटा। (स्त्री०) ५ गयास्थ नदीभेद। गयाक्षेत्रमें स्नान कर विष्णुपादपद्ममें पिण्डदान करना होता है। पृथ्वी पर जितने तीर्थ, समुद्र और सरोवर हैं वे सभी इस फल्गुनदीमें हैं अर्थात् सभी तीर्थादिमें स्नानदान करनेसे जो फल होता है, एक-मात्र इस फल्गुनदीमें स्नानदानसे वही फल प्राप्त होता है। गया तीर्थ इसी नदीके किनारे अवस्थित है, इस कारण वह फल्गुतीर्थ नामसे भी प्रसिद्ध है।

(गरुड़पु० ८३ अ०)

गरुड़पुराण और अग्निपुराणादिके मतसे गयाशिर ही फल्गुतीर्थ है। गया देखो। ६ काकडुम्बर। ७ रेणुभेद। ८ मिथ्यावाक्य। ९ वसन्त ऋतु।

फल्गुता (सं० स्त्री०) फल्गु- तल्-टाप्। अपदार्थता, अवस्तुता।

फल्गुदा (सं० स्त्री०) फल्गुरिति नाम ददाति धारयतीति दा-धारणे क। गयानदी। (वृहद्धर्मपु० ५८ अ०)

फल्गुन (सं० पु०) फलति कार्यादिकमस्मादिति फल-निष्पत्तौ (फलेगुँक् च। उण् ३।५६) इति उनन् गुगा-गमश्च ; फल्गुन्यां फल्गुनीनक्षत्रे जातः इति वा (श्रविष्ठा-फल्गुन्यनुराधेति। पा ४।३।३४) इति जातार्थप्रत्ययस्य लुक् (लुक् तद्धितलुकि। पा १।२।४९) इति स्त्रीप्रत्ययस्य च लुक्। १ अर्जुन। २ फाल्गुनमास। (त्रि०) ३ फाल्गुनीनक्षत्र-सम्बन्धी।

फल्गुनक (सं० पु०) जातिविशेष।

(मार्कण्डेयपुराण ५८।३८)

फल्गुनाल (सं० पु०) फल्गुनेन अलतीति अल-अच्। फाल्गुनमास।

फल्गुनी (सं० स्त्री०) फल्गुन गौरादित्वात् ङीप्। १ नक्षत्रविशेष, पूर्वफल्गुनी और उत्तरफल्गुनी नक्षत्र। २ काकोदुम्बरिका। ३ फल्गुनी नक्षत्रमें उत्पन्न।

फल्गुनीभव (सं० पु०) वृहस्पतिका एक नाम।

फल्गुफल (सं० क्ली०) काकोदुम्बरिकाफल।

फल्गुमूल (सं० क्ली०) काकोदुम्बरिकामूल।

फल्गुलुका (सं० पु०) वायुकोणस्थित नदीभेद।

(वृहत्सं० १४।२३)

फल्गुवाटिका (सं० स्त्री०) फल्गूनां वाटीव इवार्थे कन्। काकोदुम्बरिका, कठूमर।

फल्गुवृन्त (सं० पु०) १ पीतलोध्रवृक्ष। २ श्योनाक-विशेष।

फल्गुवृन्ताक (सं॰ पु॰) फल्गुना वृन्तेन आकायति शोभते इति आ-कै-क। श्योनाकभेद।

फल्गुहस्तिनी (सं॰ स्त्री॰) एक स्त्री-कवि।

फल्गूत्सव (सं॰ पु॰) फल्गू फलगूनामुत्सवः ६-तत्। फल्गुकरणक गोविन्दोत्सव, दोलयात्रा।

दोलयात्राके विधानानुसार श्रीकृष्णकी पूजा करके फल्गुचूर्ण भगवान्‌को चढ़ाया जाता और उसीसे उत्सव किया जाता है, इसीसे इसको फल्गूत्सव वा फाग-खेलना कहते हैं। यह उत्सव तीन वा पांच दिन करना होता है।

फल्य (सं॰ क्ली॰) फलाय हितमिति फल-यत्। कुसुम, फूल।

फल्लकिन् (सं॰ पु॰) फल्लकः फलकस्तदाकारोऽस्त्यस्येति इनि। मत्स्यविशेष, फलुई नामकी मछली।

फल्लफल (सं॰ पु॰) सूर्पवात, वह हवा जो सूपसे की जाती है।

फल्ला (हिं॰ पु॰) एक प्रकारका रेशम जो बङ्गालके राम-पुरहाट नामक स्थानसे आता है। इसका रंग पोला-पन लिये सफेद होता है।

फल्स पैएट—कटक जिलान्तर्गत एक अन्तरीप। यह महा-नदीके उत्तरमुख पर अवस्थित है। यहां जहाजादिके लंगर डालनेके लिये सुन्दर वन्दर और आलोक-गृह निर्मित है। वम्बईसे ले कर हुगलीनदीके मुहाने पर्यन्त ऐसा वन्दर और कहीं भी देखनेमें नहीं आता। इसके पास ही लङ् और डौडेसवेल द्वीप, भीतरमें ह्राउडन द्वीप नामक अनुच्च वनभूमि है। जव जहाज इस वन्दरमें प्रवेश करता है, तव तूफान आदिका कुछ भी भय नहीं रहता है। इच्छानुसार जहाज आ जा सकता है, कहीं भी जमीनमें नहीं अटकता। इस वन्दरके सामने हो कर जम्बू, धामरा, ब्राह्मणी और देवीनदी तथा महानदीकी वाफूवशाखा वह गई है। नाव द्वारा वाणिज्य द्रव्यकी रफ्‌नी और आमदनी होती है। सभी ऋतुओंमें इस वन्दरमें जहाज आ सकता है।

पचास वर्ष पहले कोई भी इस वन्दरकी उपयोगिता समझ न सके थे। एकमात्र मन्द्राजके देशीय वणिक-लोग ही यहांसे चावल आदि ले जाया करते थे। १८६० ई॰में इसे वन्दर कायम किया गया। कलकत्तेके रहने-वाले किसी एक फरासीसी वणिक्‌ने यहां आ कर रफ्‌नीका अड्डा खोला। पीछे इष्ट-इण्डिया-इरिगेशन-कम्पनी नाना द्रव्य ले कर यहां वेचनेको आई। १८६६ ई॰में उड़ीसामें घोर अकाल पड़ा। अङ्गरेज-गवर्मेण्ट उक्त प्रदेशके सभी स्थानोंमें इसी वन्दर हो कर चावल आदि भेजने लगी। जवसे केन्द्रापाड़ा नहर इस वन्दरमें मिला दी गई है, तवसे यह स्थान एक वाणिज्य-केन्द्ररूपमें गिना जाने लगा है। मिर्चे शहर, हेमरवोर्डो आदि फरासीसी वन्दरसे माल लेनेके लिये यहां जहाज आते हैं।

फसकड़ा (हिं॰ पु॰) पालथी, पलथी।

फसकना (हिं॰ क्रि॰) १ कपड़ेका मसकना। २ वैठना। धंसना। (वि॰) ३ जो जल्दी मसक या फट जाय। ४ जो जल्दी धंसे या वैठ जाय।

फसकाना (हिं॰ क्रि॰) १ कपड़ेको मसकाना या दवा कर कुछ फाड़ना। २ धंसाना, वैठाना।

फसल (अ॰ स्त्री॰) १ ऋतु, मौसम। २ समय, काल। ३ शस्य, खेतकी उपज। ४ वह अन्नकी उपज जो वर्षके प्रत्येक अयनमें होती है। अन्नके लिये वर्षके दो अयन माने गये हैं, खरीफ और रव्वी। सावनसे पूस तकमें उत्पन्न होनेवाले अन्नोंको खरीफ और माघसे आषाढ़ तकमें उपजनेवालेको रव्वी कहते हैं।

फसली (हिं॰ पु॰) १ एक प्रकारका संवत्। इसे दिल्ली-के सम्राट् अकवरने हिजरी संवत्‌को जिसका प्रचार मुसलमानोंमें था और जिसमें चान्द्रमासकी रीतिसे वर्ष-की गणना थी, वदल कर सौरमासमें परिवर्त्तन करके चलाया था। अव ईसवी संवत्‌से यह ५८३ वर्ष कम होता है। इसका प्रचार उत्तरीय-भारतमें फसल या खेती-वारी आदिके कामोंमें होता है। २ हैजा। (वि॰) ३ ऋतुसम्वन्धी, ऋतुका।

फसाद (अ॰ पु॰) १ विगाड़, विकार। २ विद्रोह, वलवा। ३ ऊधम, उपद्रव। ४ लड़ाई, झगड़ा। ५ विवाद।

फसादी (फा॰ वि॰) १ फसाद खड़ा करनेवाला, उपद्रवी। २ लड़ाका, झगड़ालू। ३ नटखट, पाजी।

फसिल (हिं॰ स्त्री॰) फसल देखो।

फस्त (अ॰ स्त्री) फस्द देखो।

फस्द (अ० स्त्री०) नसको छेद कर शरीरका दूषित रक्त निकलनेकी क्रिया।

फस्फोरस—फासफरस देखो।

फहम (अ० स्त्री०) ज्ञान, समझ, विवेक।

फहमाइस (फा० स्त्री०) १ शिक्षा, सीख। २ आज्ञा, हुकुम।

फहरना (हिं० क्रि०) फहरानाका अकर्मकरूप; वायुमें उड़ाना।

फहरान (हिं० स्त्री०) फहरानेका भाव या क्रिया।

फहराना (हिं० क्रि०) १ उड़ाना, कोई चीज इस प्रकार खुली छोड़ देना जिसमें वह हवामें हिलने और उड़ने लगे। २ वायुमें पसरना, हवामें रह रह कर हिलना या उड़ना।

फहरिस्त (हिं० स्त्री०) फेहरिस्त देखो।

फहश (अ० वि०) फूहड़, अश्लील।

फहीम कवि—एक भाषा-कवि। सम्वत् १५८०में इन्होंने जन्मग्रहण किया था। ये अकबर बादशाहके वजीर थे। इनके भाईका नाम अबुलफजल फैजी था। इनके किसी ग्रन्थका तो पता नहीं है परन्तु इनके कुछ मनोहर और शिक्षाप्रद दोहे पाये जाते हैं।

फांक (हिं० स्त्री०) १ खण्ड, टुकड़ा। २ किसी फलका एक सिरा, एक सिरेसे दूसरे सिरे तक काट कर अलग किया हुआ टुकड़ा। ३ किसी गोल या पिण्डाकार वस्तुका काटा या चीरा हुआ टुकड़ा, छूरी, आरी आदिसे अलग किया हुआ खण्ड। ४ लकीरें जिनसे कोई गोल या पिण्डाकार वस्तु सीधे टुकड़ोंमें बँटी दिखाई दे।

फाँकड़ा (हिं० वि०) १ तिरछा, बाँका। २ हृष्टपुष्ट, तगड़ा।

फाँकना (हिं० क्रि०) चूर, दाने या बुकनीके रूपकी वस्तुको दूरसे मुंहमें डालना।

फाँका (हिं० पु०) १ किसी वस्तुको दूरसे फेंक कर मुंहमें डालनेकी क्रिया या भाव। २ उतनी वस्तु जो एक बारमें फांकी जाय।

फाँकी (हिं० स्त्री०) फांका देखो।

फाँग (हिं० स्त्री०) एक प्रकारका साग।

फाँट (हिं० स्त्री०) १ यथाक्रम कई भागोंमें बांटनेकी क्रिया या भाव। २ दरया पड़ता जिसके अनुसार कोई वस्तु बांटी जाय। ३ क्रमसे बांटा हुआ भाग, अलग अलग किये हुए कई भागोंमेंसे एक भाग। ४ ओषधिको गरम पानीमें औटाना। ५ क्वाथ, काढ़ा आदिको पानीमें औटाना, काढ़ा करना।

फाँटना (हिं० क्रि०) १ किसी वस्तुको कई भागोंमें बांटना, विभाग करना। २ जड़ी बूटी आदिका पानीमें औटाना, काढ़ा करना।

फाँटबंदी (हिं० स्त्री०) वह कागज जिसमें किसी गांवमें नामुकम्मल पट्टीदारोंके हिस्सोंके अनुसार उस गांवकी आमदनी आदिकी बांट लिखी रहती है।

फाँटा (हिं० पु०) लोहे या लकड़ीका वह झुका हुआ खण्ड जो मिल कर कोण बनाती हुई दो वस्तुओंको परस्पर जकड़े रखनेके लिये जोड़ पर जड़ दिया जाता है, कोनिया।

फाँड़ (हिं० पु०) फांड़ा देखो।

फाँड़ा (हिं० पु०) दुपट्टे या धोतीका कमरमें बंधा हुआ हिस्सा।

फाँद (हिं० स्त्री०) १ उछाल, उछलनेका भाव। २ चिड़िया आदि फंसानेका फंदा या जाल। ३ रस्सी, बाल, सूत आदिका घेरा जिसमें पड़ कर कोई वस्तु बंध जाय। कवियोंने इस शब्दको प्रायः पुंलिंग ही माना है।

फाँदना (हिं० क्रि०) १ झोंकके साथ शरीरको ऊपर उठा कर एक स्थानसे दूसरे स्थान पर जा पड़ना, कूदना। २ नरपशुका मादा पर जोड़ खानेके लिये जाना। ३ उछल कर पार करना, कूद कर लांघना। ४ फंदेमें डालना, फसाना।

फाँदा (हिं० पु०) फंदा देखो।

फाँदी (हिं० स्त्री०) १ वह रस्सी जिससे कई वस्तुओंको एक साथ रख कर बांधते हैं, गट्ठा बांधनेकी रस्सी। २ गन्नोंका गट्ठा एकमें बंधे हुए बहुतसे गन्नोंका बोझ।

फांफी (हिं० स्त्री०) १ बहुत बारीक झिल्ली। २ दूधके ऊपर पड़ी हुई मलाईकी बहुत पतली तह। ३ पतली सफेद झिल्ली जो आंखकी पुतली पर पड़ जाती है, जाला।

फांस (हिं० स्त्री०) १ पाश, बंधन। २ वह रस्सी जिसका फंदा डाल कर शिकारी पशु पक्षी फाँसते हैं। ३ बांस या काठका कड़ा रेशा जिसकी नोक काँटेकी तरह हो जाती है, महीन कांटा। ४ बांस, बेंत आदिको चीर कर बनाई हुई पतली तीली, पतली कमाची।

फाँसना (हिं० क्रि०) १ बन्धनमें डालना, पकड़ना। २ किसी पर ऐसा प्रभाव डालना कि वह वशमें हो कर कुछ करनेके लिये प्रस्तुत हो जाय। ३ धोखेमें डालना, वशीभूत करना।

फाँसी (हिं० स्त्री०) १ पाश, फंसानेका फंदा। २ रेशम या रस्सीका फंदा जो ऊंचे खंभे गाड़ कर ऊपरसे लटकाया जाता है और जिसे गलेमें डाल कर अपराधियोंको प्राणदण्ड दिया जाता है। ३ पाश द्वारा प्राणदण्ड, मौतकी सजा जो गलेमें फंदा डाल कर दी जाय। ४ वह रस्सी या रेशमका फँदा जिसमें गला फँसानेसे घुट जाता है और फंसनेवाला मर जाता है।

फाइल (अं० स्त्री०) १ नत्थी, मिसिल। २ लोहेका तार जिसमें कागज या चिट्ठियां नत्थी की जाती हैं। ३ सामयिक पत्रों आदिके कुछ पूरे अंकोंका समूह।

फा (सं० पु०) १ सन्ताप। २ निष्फल भाषण।

फाका (अ० पु०) उपवास, निराहार रहना।

फाकामस्त (फा० वि०) जो खाने पीनेका कष्ट उठा कर भी कुछ चिन्ता न करता हो, जो पैसा पास न रख कर भी बेपरवाह रहता हो।

फाकेमस्त (फा० वि०) फाकामस्त देखो।

फ़ाख्तई (हिं० वि०) १ पण्डुकके रंगका, भूरापन लिये हुए लाल। (पु०) २ एक रंगका नाम। यह रंग ललाई लिये भूरे रंगका होता है। आठ माशे वायोलेटको आध सेर मजीठके काढ़ेमें मिला कर यह बनाया जाता है।

फाख्ता (अ० स्त्री०) पंडुक, धवँरखा।

फाग (हिं० पु०) १ एक उत्सव जो फागुनके महीनेमें होता है। इस उत्सवमें लोग एक दूसरे पर रंग या गुलाल डालते और वसन्त ऋतुके गीत गाते हैं। २ वह गीत जो फागके उत्सवमें गाया जाता है।

फागुन (हिं० पु०) शिशिर ऋतुका दूसरा महीना, माघके बादका महीना। यद्यपि इस महीनेकी गिनती पतझड़ या शिशिरमें है, पर वसन्तका आभास इसमें दिखाई देने लगता है। इस महीनेकी पूर्णिमाको होलिका-दहन होता है। यह आनन्दका महीना माना जाता है। इस महीनेमें जो गीत गाये जाते हैं उन्हें फाग कहते हैं।

फाल्गुन देखो।

फागुनी (हिं० वि०) फाल्गुन सम्बन्धी, फागुनका।

फाजिल (अ० वि०) १ आवश्यकतासे अधिक, जरूरतसे ज्यादा। २ विद्वान्।

फाजिलका—पञ्जाबके फिरोजाबाद जिलेकी तहसील। यह अक्षा० २९° ५५' से ३०° ३४' उ० और देशा० ७२° ५२' से ७४° ४३' पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण १३५५ वर्गमील और जनसंख्या दो लाखके करीब है। इसके उत्तर-पश्चिममें सतलज नदी पड़ती है। इसमें इसी नामका १ शहर और ३१९ ग्राम लगते हैं। राजस्व दो लाखसे ऊपर है।

२ उक्त तहसीलका एक नगर। यह अक्षा० ३०° ३३' उ० और देशा० ७४° ३' पू०के मध्य अवस्थित है। पहले यहां वर्चु सरदार फाजिलका वास था। १८४६ ई०में उन्हींके नामानुसार आलिभर (Mr. Oliver) साहबने इस स्थानका नाम फाजिलका रखा। उक्त महोदयके यत्न और अध्यवसायसे यह जनशून्य ग्राम बहुजनाकीर्ण हो गया। अभी यह नगर पञ्जाबका एक वाणिज्य केन्द्र हो गया है। यहां जो शस्यादि और पशम दूसरे देशोंसे आता है उसकी रफ्तनी कराची, भागलपुर, बीकानेर और मूलतान आदि देशोंमें होती है। शहरमें एक सरकारी अस्पताल और म्युनिसिपल एङ्गलो-वर्नेक्युलर मिडिल स्कूल है।

फाजिलनगर—युक्तप्रदेशके गोरखपुर जिलान्तर्गत एक प्राचीन ग्राम। अभी यह फ़ाज़िला नामसे मशहूर है। इधर उधर जो ईटोंकी राशि पड़ी हुई है वही इस जनपदकी पूर्वस्मृति दिलाती है।

फाटक (हिं० पु०) १ तोरण, बड़ा द्वार। २ दरवाजेपरकी बैठक। ३ फटकन, पछोड़ना।

फाटकी (सं० स्त्री०) फिटकरी।

फ़ाटना (हिं० क्रि०) फटना देखो।

फाड़न (हिं० पु०) १ कागज या कपड़े आदिका टुकड़ा जो

फाड़नेसे निकले। २ दहीके ताजे मक्खनकी छांछ जो आग पर तपानेसे निकले।

फाड़ना (हिं० क्रि०) १ किसी पैनी वा नुकीली चीजको किसी सतह पर इस प्रकार मारना या खींचना, कि सतहका कुछ भाग हट जाय या उसमें दरार पड़ जाय, चीरना। २ किसी गाढ़े द्रव पदार्थको इस प्रकार करना, कि पानी और सार पदार्थ अलग अलग हो जायं। ३ खण्ड करना, टुकड़े करना। ४ सन्धि या जोड़ फैला कर खोलना।

फाणि (सं० स्त्री०) गुड़।

फाणित (सं० क्ली०) फण-गतौ-णिच् क्त। १ अर्द्धावर्त्तित इक्षुरस, आंट पर औटा कर खूब गाढ़ा किया हुआ गन्नेका रस, राव। इसका गुण—गुरु, अभिष्यन्दी, बृंहण, कफ और पित्तकारक, वात, पित्त और श्रमनाशक एवं मूत्र और वस्ति शोधक माना गया है। सौभाग्यकामी व्यक्तिको पूर्वफल्गुनी नक्षत्रमें उपवास करके ब्राह्मणोंको भक्ष्यद्रव्य फाणित संयुक्त करके पान करना चाहिये। २ शीरा।

फाण्ट (सं० लि०) फण्यते स्मेति फण-गतौ क्षुब्ध स्वान्तध्वान्तेति। पा ७।२।१८) इति निपातनात् साधुः। १ अनायास कृत, जो सहजमें बनाया गया हो। (क्ली०) २ कषायभेद। इसकी प्रस्तुत प्रणाली—एक पल कुट्टितद्रव्यको ४ पल गरम जलमें डाल कर कुछ समय तक ढंक रखे। पीछे उसे मृदित और वस्त्र पूत कर ले। इसीका नाम फाण्ट है। (वैद्यकपरिभाषा)

फाण्टाहृत (सं० पु०) १ फाण्टा-हृतिका अपत्य। २ उनके छात्रादि।

फाण्टाहृतायन (सं० पु) फाण्टाहृतिका अपत्य।

फाण्ड (सं० क्ली०) गर्भ।

फाण्डिन् (सं० पु०) नागभेद।

फातहा-दुवाज-दहुम—सुन्नीसम्प्रदायका अनुष्ठित महोत्सवविशेष। इस समय वे लोग महम्मदके जन्म और मृत्युके उपलक्षमें मसजिद अथवा अपने अपने घरमें मौलूदशरीफका पाठ और भजन करते हैं।

फातिहा (अ० पु०) १ प्रार्थना। २ वह चढ़ावा जो मरे हुए लोगोंके नाम पर दिया जाय।

फानना (हिं० क्रि०) १ रूईको फटकना, धुनना। २ अनुष्ठान करना, कोई काम हाथमें लेना।

फानूस (फा० पु०) १ एक प्रकारका दीपाधार। इसके चारों ओर महीन कपड़े या कागजका मंडप-सा होता है। २ समुद्रके किनारेका वह उच्च स्थान जहां रातको इसलिये प्रकाश जलाया जाता है, कि जहाज उसे देख कर बंदर जान जाय। ३ शीशेकी मृदंगी, कमल वा गिलास आदि जिसमें वत्तियां जलाई जाती हैं। ४ ईंटों आदिकी भट्ठी। इसमें आग सुलगाई जाती है और उसके तापसे अनेक प्रकारके काम लिये जाते हैं।

फांसेफाड़ी—दाक्षिणात्यवासी एक नीच जाति। शोलापुर बीजापुर आदि अञ्चलोंमें इनका वास है। किन्तु कोई भी घेर बांध कर अथवा खेतीबारी करके स्थायी रूपसे नहीं रहता। फंदेसे पशुपक्षी पकड़ना ही इनका जातीय व्यवसाय है। ये लोग नीच प्रकृतिके होते हैं, कभी भी सिरके बाल या मूंछ दाढ़ी नहीं मुड़वाते हैं। इनकी भाषामें गुजराती, मराठी, कणाड़ी और हिन्दुस्तानी भाषा मिश्रित है।

गाँवके बाहर ये साधारणतः झोपड़ी बना कर रहते और गो, महिष, छाग तथा गर्दभ आदि पोसते हैं। ये स्वभावतः मद्यमांसप्रिय, क्रोधी और निष्ठुर हैं। छोटी बातोंमें उत्तेजित होते और बदला लिये विना उसका पिण्ड नहीं छोड़ते हैं। घोड़ेकी पूँछके रोएंसे ऐसा फंदा बनाते हैं, कि उससे सब प्रकारके पक्षी और छोटे छोटे पशु पकड़े जा सकते हैं।

ये लोग अम्बाभवानी, खण्डोवा, जरिमरि और नाना ग्राम्यदेवताकी पूजा करते हैं। 'सिंगा' और 'दशहरा' ही इनका प्रधान उत्सव है। विवाहमें कन्याकी मांगमें सिन्दूर और शरीरमें नई चोली पहनाते हैं। इस समय दलके सरदार (नायक)को उपस्थित रहना जरूरी है, क्योंकि, उसे भी कुछ मिलता है। सभी स्वजातीय विवाहके बाद खूब शराब पीते हैं। सम्बन्धनिर्णय या बात पक्की हो जाने पर विवाहके दिन वरकन्या एकत्र की जाती है। गाँवके ब्राह्मण आ कर 'गांठ' बांध देते और मन्त्रोच्चारण करते हैं। विवाह हो जाने पर ब्राह्मण दक्षिणा ले कर दम्पतीको आशीर्वाद दे चले जाते हैं। पीछे भोज शुरू

होता है। नायक सरदार ही इनके समाजके मालिक हैं। जब कोई व्यभिचार वा उसी प्रकारका अन्य जघन्य पापाचरण करता है, तब उत्तप्त तेलके कड़ाहमेंसे पैसा निकाल कर उसे पापका प्रायश्चित्त करना होता है। यदि हाथ न जले, तभी उसकी निष्कृति है। किन्तु यदि हाथ जले अथवा हाथ देनेसे इनकार करे तो उनकी जाति च्युति होती है। इनका कदर्य स्वभाव जान कर पुलिसकी इन पर कड़ी नजर रहती है।

बीजापुरमें ये लोग अड़विचिञ्चर चिम्रिवेत्कार नामसे पुकारे जाते हैं। धाँगड़, कवलिगार और राजपूत नामक इनके तीन स्वतन्त्र थाक हैं। किन्तु वे सब थाक बिलकुल स्वतन्त्र हैं। कोई भी दूसरेको पुत्र-कन्याका विवाह नहीं देता और एक साथ बैठ कर खाता ही है। धांगड़ोंमें हाउकङ्कन और उणिकङ्कन नामक दो विभाग हैं। वे लोग आपसमें खाते और आदान-प्रदान करते हैं। राजपूतगण भी अपने दलमें विवाह नहीं करते हैं।

पुलिसकी इन पर कड़ी नजर रहती है। यह पहले ही कहा जा चुका है। जब कभी उनके साथ विवाद होता है, तब ये अपने पुत्र वा कन्याकी हत्या कर पुलिसके विरुद्ध अदालतमें अभियोग लाते हैं। ब्राह्मणोंके प्रति इनकी भक्ति है। यल्लमा, तुलजा भवानी और वेङ्कटेश आदि देवदेवियोंकी मूर्त्तिको ये लोग कपड़ेमें लपेट रखते हैं। आश्विनमासकी शुक्ला नवमी (महानवमी)-को मूर्त्तिको बाहर निकाल कर पूजा करते हैं। प्रति वर्ष दीवाली उपलक्षमें वे नववस्त्र-परिहिता स्त्रियोंको सतीत्वकी परीक्षा करते हैं। इस समय रमणीकुलको निष्ठुर स्वामीके हाथमें पड़ कर उत्तप्त तैलमें उंगली डुबानी पड़ती है। इन लोगोंमें विधवा-विवाह प्रचलित है। जात बालककी कोई क्रिया नहीं है। लकड़ी मिलने पर शवको जलाते हैं, नहीं तो जमीनमें गाड़ देते हैं।

फाफर (हिं० पु०) कुल्टू, फूट्ट। कूट्ट देखो।

फाफा (हिं० स्त्री०) दांत गिर जानेसे 'फा फा' करके बोलनेवाली बुढ़िया, पोपली बुढ़िया।

फाफुण्ड—युक्त प्रदेशके इटावा जिलान्तर्गत एक तहसील। भूपरिमाण २२८ वर्गमील है। १८८३ ई०में यहां स्वतन्त्र विचार अदालत स्थापित हुई।

२ उक्त तहसीलका प्रधान नगर। यह अक्षा० २६° ३६' उ० और देशा० ७९° २८' पू० इटावा शहरसे ३६ मील दक्षिणपूर्वमें अवस्थित है। जनसंख्या आठ हजारके लगभग है। अंगरेजोंके अधिकारमें आनेके पहले यह स्थान विशेष समृद्धशाली था। ध्वंसावशिष्ट मन्दिर, जलाशयादि और मसजिद आदि जो इधर उधर पड़े हैं, इसके पूर्व गौरवके निदर्शन हैं। १८५७ ई०के गदरमें यह नगर दो बार लूटा और जलाया गया था। शाह बुखारी नामक मुसलमान फकीर (जिनकी मृत्यु १५४६ ई०में हुई) कब्रके पास प्रतिवर्ष मेला लगता है। यह एक स्कूल और अस्पताल है।

फायदा (अ० पु०) १ लाभ, नफा। २ अच्छा फल, भला परिणाम। ३ प्रयोजनसिद्धि, मतलब पूरा करना। ४ उत्तम प्रभाव, अच्छा असर।

फायदेमंद (फा० पु०) उपकारक, लाभदायक।

फायर (अं० पु०) १ आग। २ फैर देखो।

फायरमैन (अं० पु०) वह कर्मचारी जो इंजनमें कोयला झोंकनेका काम करता है।

फाया (हिं० पु०) फाहा देखो।

फारखती (अं० स्त्री०) वह कागज या लेख जो इस बातका प्रमाण दे, कि किसीके जिम्मे जो कुछ था, वह अदा हो गया, चुकती।

फारबिसगञ्ज—विहार और उड़ीसाके पूर्णिया जिलान्तर्गत अररिया उपविभागका एक ग्राम। यह अक्षा० २६° १९' उ० तथा देशा० ८७° १६' पू०के मध्य विस्तृत है। जनसंख्या दो हजारसे ऊपर है। यहां पाट, अनाज आदिका विस्तृत कारबार होता है। पाटकी दो कलें भी चलती हैं। यहां एक गुरुट्रेनिङ्ग स्कूल है।

फारम (अं० पु०) १ दरखास्त, वही खाते रसीद आदिके नमूने जिनमें यह दिखाया रहता है कि कहां कौन बात लिखनी चाहिये। २ छापनेके बैठाए हुए उतने अक्षर जितने एक तख्ता छापनेके लिये पूरे हों। ३ छपाईमें एक पूरा तख्ता जो एक बार एक साथ छापा जाता हो।

फारस—पारस देखो।

फारसी (फा० स्त्री०) फारसदेशकी भाषा।

फारा (हिं० पु०) १ फाल, कतरा। २ फाल देखो।

फाल (सं० क्ली०) फलाय शस्याय हितं फल-अण् वा फल्यते विदार्यते भूमिरनेनेति फल-घञ्। १ हलोपकरण। २ लोहेकी चौकोर लम्बी छड़ जिसका सिरा नुकीला और पैना होता है। यह हलकी अँकड़ीके नीचे लगा रहता है। जमीन इसीसे खुदती है। हिन्दीमें यह शब्द स्त्रीलिङ्ग माना गया है। संस्कृत पर्याय—कृषिक, कृषक, फल, कृषिका, कुशिक। ३ महादेव। ४ बलदेव। ५ कार्पासवस्त्र, सूती कपड़ा। ६ फावड़ा। ७ नौ प्रकारकी दैवीपरीक्षाओं या दिव्योंमेंसे एक। दिव्यतत्त्वमें लिखा है, कि जो चोरी करते हैं, उन्हें यह दिव्य करना होता है। बारह पल लोहेका एक फाल बना कर उसे अच्छी तरह तप्त कर ले। विचारक यथाविधान धर्म और अग्निकी पूजा करके चोरके मस्तक पर निम्नलिखित मन्त्रसे एक जयपट्ट लिख दे।

मन्त्र यथा—

"त्वमग्ने सर्वभूतानामन्तश्चरसि पावक।
साक्षिवत् पुण्यपापेभ्यो ब्रूहि सत्यं करे मम॥"

यह मन्त्रलिखित जयपट्ट उसके मस्तक पर दे कर विचारक उससे कहे, 'इस तप्त की हुई फालको जीभसे चाटो, यदि जीभ जल जायेगी तो तुम दोषी और यदि न जलेगी, तो निर्दोष समझे जाओगे।' अनन्तर उसके फलानुसार विचारक अपराधीको दण्ड देवे।

फाल (हिं० स्त्री०) १ किसी ठोस चीजका काटा या कतरा हुआ टुकड़ा जिसका दल पतला होता है। २ कटी सुपारी, छालिया। (पु०) ३ डग, फलांग। ४ कदम भरका फासला, पैंड़।

फालकाराव अनोबा—ग्वालियर-वासी एक महाराष्ट्र ब्राह्मण। इनका जन्म-संवत् १६०१में हुआ था। ये लछमीनारायणके मन्त्री थे तथा भाषाके अच्छे कवि थे। इन्होंने केशवदास विरचित कविप्रियाकी सुन्दर टीका लिखी थी।

फालकृष्ट (सं० त्रि०) फालेन कृष्टः ३-तत्। १ फाल द्वारा कृष्ट, हलसे जोता हुआ।

"न फालकृष्टे न जले न चित्यां न च पर्वते।
न जीर्णदेवायतने न वल्मीके कदाचन॥"

(मनु० ४।४६)

फालकृष्ट स्थान पर पेशाब नहीं करना चाहिये। २ कर्षितभूमिमें उत्पन्न, जो हलसे जोते हुए खेतमें उत्पन्न हो। बहुतसे व्रतोंमें फालकृष्ट पदार्थ नहीं खाये जाते।

फालखेला (सं० स्त्री०) भारती पक्षी।

फालगुप्त (सं० पु०) बलरामका एक नाम।

फालजुर—श्रीहट्टजिलेके अन्तर्गत एक गण्डग्राम और पीठस्थान।

श्रीहट्टजिलेके उत्तरपूर्वांशमें जयन्ती-राज्य है। यह राज्य १८ परगनोंमें विभक्त है। जिनमेंसे फालजुर एक परगना है। इसकी गिनती एक प्रधान पीठस्थानमें है। यहां देवीकी वामजङ्घा गिरी थी। इस कारण इसे वामजङ्घापीठ भी कहते हैं। वामजङ्घापीठका साधारण नाम फालजरकी कालीबाड़ी है। तन्त्रचूड़ामणिके मतसे,—

"जयन्त्यां वामजङ्घा च जयन्ती क्रमदीश्वरः।"

यहांकी देवीका नाम जयन्ती है। इन्हींके नामानुसार यह स्थान जयन्तिया नामसे प्रसिद्ध है। यहांके भैरवका नाम क्रमदीश्वर है। तन्त्र कहते हैं—

"कैलाशे दशलक्षणे जयन्त्यां पञ्चलक्षतः।"

अर्थात् पञ्चलक्षमात्र मन्त्रके जपसे ही यहां सिद्धि होती है।

श्रीहट्ट नगरसे उत्तर-पूर्व पर्वतके नीचे एक खण्ड समतलभूमि है जहां ईंटेकी एक प्रकाण्ड भित्तिके मध्यस्थित एक चतुष्कोण गर्त्त है, उसी गर्त्तमें यह महापीठ एक चतुष्कोण पत्थर पर अवस्थित है। भैरव भी प्रस्तररूपी हो कर देवीके साथ एकत्र अवस्थान करते हैं। १८३७ ई० तक इस मन्दिरके सामने सैकड़ों नरबलि हो गई हैं। वृटिश-गवर्मेण्टने यह नृशंस प्रथा उठा देनेके लिये जयन्ती राज्यको अपने दखलमें कर लिया है। तभीसे नरबलि बन्द हो गई है।

देवी मन्दिरके पूरब एक अति प्राचीन पुष्करिणी है। वर्षाके समय भी इसका जल परिष्कार और पतला सर्वत्र एक भावमें रहता है। कभी भी घटता बढ़ता नहीं देखनेसे चमत्कृत होना पड़ता है।

जयन्तीकी स्वाधीनताके समय राजोचित भावमें ही देवीकी सेवा होती थी। राजा कहते थे, "समस्त जयन्ती-राज्य देवीजीके हैं—उनके लिये फिर पृथक् ब्रह्मोत्तर

देनेकी जरूरत ही क्या ?" वस्तुतः इसी कारण कोई ब्रह्मोत्तर निर्दिष्ट नहीं है। जयन्तीके पतनके साथ ही साथ इस पीठकी भी दुरवस्था हो गई है। अभी देवी एक जीर्ण कुटीरमें विराजती हैं।

फालतू (हिं० वि०) १ आवश्यकतासे अधिक, जरूरतसे ज्यादा। २ जो किसी कामके लायक न हो, निकम्मा।

फालदती (सं० स्त्री०) कालकी तरह दन्तयुक्ता एक राक्षसी।

फालसई (फा० वि०) फालसेके रंगका, ललाई लिये हुए हलका ऊदा। इस रंगके लिये कपड़ेको तीन वोर देने पड़ते हैं। पहले तो कपड़ेको नील रंगमें रंगते हैं, फिर कुसुमके पहले उतारके रंगमें रँगते हैं जो जेठा रंग होता है। फिर फिटकरी या खटाई मिले पानीमें वोर कर निखार देनेसे रंग साफ निकल आता है।

फालसा (फा० पु०) एक छोटा पेड़। इसका धड़ ऊपर नहीं जाता और इसमें छड़ीके आकारकी सीधी सीधी डालियाँ चारों ओर निकलती हैं। डालियोंके दोनों तरफ सात आठ अङ्गुल लम्बे चौड़े गोल पत्ते लगते हैं। इन पत्तों पर महीन लोइयाँसी होती हैं। पत्तेके ऊपरी तलकी अपेक्षा पीछेके तलका रंग हलका होता है। डालियोंमें फूल लगते हैं। जब ये सब फूल झड़ जाते, तब मोतीके दानेके वरावर छोटे छोटे फल लगते हैं। पकने पर फलोंका रंग ललाई लिए ऊदा और स्वाद खटमीठा होता है। बीज एक या दो होते हैं। फालसेकी तासीर ठंडी है। इस कारण गरमीके दिनोंमें लोग इसका शरवत बना कर पीते हैं। परूषक देखो।

२ शिकारियोंकी वोलीमें वह जंगली जानवर जो जंगलसे निकल कर मैदानमें चरनेको आवे।

फाला (सं० पु०) फालयन्तीति फल-णिच्। जम्बीर वृक्ष, जंभीरी नीबूका पेड़।

फालाकाता—उत्तर वङ्गाल प्रदेशके जलपाईगुड़ी जिलेके अन्तर्गत अलीपुर उपविभागका एक ग्राम। यह अक्षा० २६°३१´ उ० तथा देशा० ८९°१३´ पू० भुजनैय नदीके पूर्वी किनारे पर अवस्थित है। जनसंख्या तीन सौके करीव है। यहां फरवरी मासमें एक महीना तक मेला लगता है।

फालिज (अ० पु०) पक्षाघात रोग। इसमें प्राणीका आधा अङ्ग सुन्न या वेकार हो जाता है। पक्षाघात देखो।

फालिया—पञ्जावके गुजरात जिलेकी तहसील। यह अक्षा० ३२°१०´ उ० तथा देशा० ७३°१७´ पू० के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ७२२ वर्गमील है। झेलम नदी इसके उत्तर-पश्चिम और चनाव दक्षिण-पूर्वमें वह गई है। जनसंख्या दो लाखके करीव है। इसमें फालिया नामका एक शहर और ३१० ग्राम लगते हैं। लार्ड गफ और सिखका चिलियनवालाका युद्ध इसी तहसीलमें हुआ था।

फालूदा (फा० पु०) पीनेके लिये वनाई हुई एक चीज। इसका व्यवहार प्रायः मुसलमान लोग करते हैं। गेहूँके सत्तूसे वने हुए नशास्तेको वारीक काट कर शरवतमें मिला कर रखते हैं और ठण्डा हो जाने पर पीते हैं। यह गरमीके दिनोंमें पिया जाता है।

फाल्गुन (सं० पु०) फलति निष्पादयतीति फल (फलेर्गुग् च। उण् ३।५६) इति उनन् ततो गुक् ततः प्रज्ञादित्वादण् वा फल्गुन्यां फल्गुनी। फल्गुनी नक्षत्रे जातः अण् १ अर्जुन। अर्जुनके दश नाम हैं जिनमें फाल्गुन एक है। अर्जुनने फल्गुनीनक्षत्रमें जन्म ग्रहण किया था, इस कारण उनका फाल्गुन नाम पड़ा है।

"उत्तराभ्याञ्च पूर्वाभ्यां फल्गुनीभ्यामहं दिवा।
जातो हिमवतः पृष्ठे तेन मां फाल्गुनं विदुः॥"
(भारत ४।४२।१६)

२ नदीजवृक्ष। ३ अर्जुनवृक्ष। ४ तपस्यमास। ५ वैशाखादि द्वादश मासके अन्तर्गत एकादश मास। इस मासकी पूर्णिमामें फल्गुनी नक्षत्र होता है, इसीसे इस मासका नाम फाल्गुन पड़ा है। यह तीन प्रकारका है। मुख्यचान्द्र, गौणचान्द्र और सौर अर्थात् मुख्यचान्द्र फाल्गुन, गौणचान्द्र फाल्गुन तथा सौर फाल्गुन। सूर्यके कुम्भराशिमें आनेसे शुक्ल प्रतिपदसे ले कर अमावस्या तक जो मास पड़ता है, उसे मुख्यचान्द्र फाल्गुन और कृष्णप्रतिपदसे ले कर मुख्यचान्द्र फाल्गुनमासीय पौर्णमासी पर्यन्तको गौणचान्द्र फाल्गुन तथा कुम्भराशिस्थ रविभोगोपलक्षित कालात्मक मासको ही सौर फाल्गुन कहते हैं। मासके मुख्यचान्द्र और गौणचान्द्रादि

विभाग द्वारा विहित कार्यका केवल एकाएक समय निर्द्धारित हुआ है अर्थात् कोई कार्य गौणचान्द्रमें करना होता है। (मलमासतत्त्व) कृत्यतत्त्वमें फाल्गुनकृत्यका विषय इस प्रकार लिखा है—फाल्गुनमासकी कृष्णाष्टमीमें कालशाक और वास्तूकशाक द्वारा पितरोंके उद्देश्यसे श्राद्ध करना होता है। गौणचान्द्र फाल्गुन मासकी कृष्णा चतुर्दशीमें शिवरात्रि व्रत करना हर एकका अवश्य कर्त्तव्य है। इसकी व्यवस्थादिका विषय शिवरात्रि शब्दमें देखो। मुख्यचान्द्र फाल्गुनमासकी शुक्लाद्वादशीके दिन गोविन्दद्वादशी होती है। इस द्वादशीके दिन महापातक नाशकी कामना करके गङ्गास्नान करना होता है। इस दिन गङ्गास्नान करके निम्न लिखित मन्त्र पढ़ना होता है। मन्त्र यथा—

"महापातक संज्ञानि यानि पापानि सन्ति मे।
गोविन्दद्वादशीं प्राप्य तानि मे हर जाह्नवी॥"

पीछे फाल्गुनमासकी पौर्णमासीको यथाविधान दोलयात्राका अनुष्ठान आवश्यक है। इस दिन भगवान् विष्णुको दोलागत देखनेसे अन्तकालमें विष्णुपुरको गति होती है। (कृत्यतत्त्व) फाल्गुनमासमें जन्म होनेसे प्रियम्वद, साधुजनका वल्लभ, परोपकारी, निर्मलाशय, दाता और प्रमोदाभिलाषी होता है। (कोष्ठीप्रदीप)

६ दूर्वाभेद, दूर्वा नामक सोमलता। शतपथ ब्राह्मणमें इसे दो प्रकारका लिखा है। ६ लोहितपुष्प। ७ एक तीर्थका नाम। ८ वृहस्पतिका एक वर्ष जिसमें उसका उदय फाल्गुनी नक्षत्रमें होता है।

फाल्गुनप्रिय (सं॰ पु॰) शङ्ख।

फाल्गुनानुज (सं॰ पु॰) फाल्गुना दनु पश्चात् जायते इति अनु-जन-ड। १ वसन्तकाल, चैत्रमास। २ अर्जुनके कनिष्ठ भ्राता।

फाल्गुनि (सं॰ पु॰) अर्जुन।

फाल्गुनिक (सं॰ पु॰) फाल्गुनी पौर्णमास्यस्मिन् मासे इति (विभाषा फाल्गुनी श्रवणेति। पा ४।२।२३) फाल्गुनमास।

फाल्गुनी (सं॰ स्त्री॰) फल्गुनीभियुक्ता पौर्णमासी (नक्षत्रेण युक्तः कालः। पा४।२।३) इति अण् ङीप्। १ फाल्गुनमासकी पूर्णिमा। २ पूर्वफाल्गुनी नक्षत्र। ३ उत्तरफाल्गुनी नक्षत्र।

फाल्गुनीभव (सं॰ पु॰) वृहस्पति नक्षत्रका नामभेद।

फावड़ा (हिं॰ पु॰) एक प्रकारका लोहेका औजार जो मट्टी खोदने और टालनेके काममें आता है। इसमें डंडेकी तरहका लम्बा बेंट लगा रहता है। इसे फरसा भी कहते हैं।

फावड़ी (हिं॰ स्त्री॰) १ छोटा फावड़ा। २ फावड़ेके आकारकी काठकी एक वस्तु। इससे घोड़ोंके वीचेकी घास, लीद तथा मैला आदि हटाया जाता है।

फाश (फा॰ वि॰) प्रकट, ज्ञात।

फास्फरस (*Phosphorus*)—दीपकपदार्थविशेष, एक अत्यन्त ज्वलनशील मूलद्रव्य। इसमें धातुका कोई गुण नहीं होता और यह अपने विशुद्धरूपमें कहीं नहीं मिलता—आक्सिजन, कलसियम और मगनेशियाके साथ मिला हुआ पाया जाता है। यह मिश्रित पदार्थ Apatite, phosphorite, coprolites आदि विभिन्न अवस्थाओंमें विभक्त है। प्रत्येक उद्भिद्की वीजशक्ति ही फास्फरस है। इसके नहीं रहनेसे वृक्षादि सतेज हो कर जीवनरक्षा नहीं कर सकता है। वीज वा फलमें फास्फरस रहनेके कारण ही भिषक्गण दुर्बल मस्तिष्क और दौर्बल्यग्रस्त व्यक्तिमात्रको हो सुपक्व फल खानेकी व्यवस्था देते हैं। फास्फरस जो मस्तिष्ककी चञ्चलताको दूर कर उसे स्वाभाविक अवस्थामें लाता है, वह किसीसे छिपा नहीं है।

जीवदेहमें इसकी व्याप्ति देखी जाती है। रक्तमें, मूत्रमें, रोमादिमें, अस्थिमें तथा स्नायविक विधानोंमें (Nervous tissues) फास्फेट आव लाइम अधिक परिमाणमें मिश्रित है। १६६९ ई॰में जर्मन पण्डित ब्राण्ड (*Brandt*)ने मूत्रसे प्रस्फुरक निकाला। किन्तु अभी अस्थिसे भी प्रचुर प्रस्फुरक निकलने लगा है। प्रस्तुत प्रणाली—अस्थिकी राख ३ भाग, २ भाग घन गन्धकाम्ल (Concentrated sulphuric acid) इन्हें २० भाग जलमें २ या ३ दिन तक रखे। पीछे उससे तरल अम्लांश छान कर बाहर निकाल ले। जितना अम्लद्रावक पाया जायगा, उसमें एसिड फास्फेट आव लाइम अवश्य है। बादमें उसमें कोयला (Charcoal) मिला कर शरबतकी तरह गाढ़ा करे। पीछे लोहेके वरतनमें उसे डाल कर आंच पर चढ़ावे, जब खौल कर खूब लाल हो जाय, तब उसे तांउर

ले। अनन्तर सूख जाने पर उस पिण्डको मट्टीके बने हुए वकयन्त्र (Retort)-में ढाल कर चुआवे। ऐसा करनेसे उत्तप्त हो कर एक मुखसे वाष्पांश उड़ जायगा और दूसरे मुखसे फास्फरस हलदी रंगकी बुंदमें टपक टपक कर एक जलपूर्ण पात्रमें जमा होगा। जल और अमोनियाके योगसे अथवा वाइ-क्रोमेट आव पटासयुक्त सलफ्युरिक एसिड द्रावकमें उसे जलानेसे शोषित होता है। वहुत थोड़ी गरमी या रगड़ पा कर यह जलता है। हवामें खुला रहनेसे यह धीरे धीरे जलता है। यही कारण है, कि रासायनिकगण उसे जलमें रख देते हैं। उसमें लहसुनकी-सी गन्ध निकलती है। अंधेरेमें देखनेसे उसमें सफेद लपट दिखाई पड़ती है। यदि गरमी अधिक न हो, तो यह मोमको तरह जमा रहता है और छूरीसे काटा या खुरचा जा सकता है। यदि कोइ भूलसे उसे कपड़ेमें रखे, तो कपड़ा सहजमें दग्ध हो सकता है।

इसका आपेक्षिक गुरुत्व (५०° डिग्री फारनहीटके उत्तापमें) १'८३ और आणविक गुरुत्व ३१ है। रसायन— शास्त्रमें 'पी' (p) नाम देखनेसे ही उसे फास्फरस जानना चाहिये। १११'५° डिग्री उत्तापसे यह जल जाता है। किसी आवद्ध पात्रमें ५५०° डिग्री उत्तापसे उसे चुआनेसे पुनः वह उसी अवस्थामें आ जाता है। जलमें यह नहीं घुलता, लेकिन इथर वा नैप्थामें वहुत कुछ घुल जाता है, वाइसलफाइड-आव-कार्वन वा क्लोराइड-आव सलफरसे यह विलकुल गल जाता है। हवामें खुला रखनेसे थोड़ा थोड़ा करके जलता और उसमें सफेद लपट दिखाई देती है। इस समय उससे लगातार धुआं निकलता रहता है।

प्रस्फुरक हाथमें लेनेके पहले विशेष सावधान रहना उचित है। कारण, शुष्कावस्थामें थोड़ी रगड़ लगनेसे ही वह जल सकता है और इससे शरीरमें छाला पड़नेकी सम्भावना है। जलमें रख कर इसे इच्छानुसार काट सकते और हाथमें भी ले सकते हैं, इससे शारीरिक कोई भी अनिष्ट नहीं होता। इसी कारण वैज्ञानिक लोग इसे जलमें काट कर व्यवहारके लिये वाहर निकालते हैं। प्रस्फुरक तरह तरहकी अवस्था (Allotropic forms)-में पलट सकता है। इनमेंसे *Amorphous* Phosphorus ही सर्वप्रधान है। भियेनादेशीय रसायनविद् स्कोटर (Professor Schrotter) इस प्रथाके उद्भावक हैं। उन्होंने कार्वनिक एसिडमें ३०।४० घंटे तक ४५०° वा ४६०° डिग्री तापमें साधारण फास्फरस खौला कर एमर्फस उत्पादन किया था। उत्तापके विभिन्नतानुसार इसका वर्ण कभी लाल, कभी उजला और कभी घना पाटल (Dark purple) होता है। पूर्वोक्त फास्फरसके साथ इसका प्रभेद इतना ही है, कि अधिक घिसनेसे भी यह जलता नहीं है, गन्धहीन है, वायु लगनेसे इसमें कोई परिवर्त्तन नहीं होता और न साधारण प्रस्फुरककी तरह द्रावकमें गलता ही है। किन्तु यदि क्लोरेट आव पटाश, पेरक्साइड आव लेड वा पेरक्साइड आव मङ्गानिसके साथ थोड़ा भी संघर्ष हो, तो यह शीघ्र ही जल जाता है। पीछे ४५०° वा ४६०° डिग्री उत्तापमें गरम करनेसे यह पुनः पूर्वावस्थाको प्राप्त होता है। इसे तेल या चरवीमें घोलने पर ऐसा तेल तैयार हो जाता है जो अंधेरेमें चमकता है, दिया सलाई वनानेमें इसका वहुत प्रयोग होता है। अलावा इसके और भी कई चीजें वनानेमें काम आता है। औषधके रूपमें भी यह वहुत दिया जाता है, क्योंकि डाक्टर लोग इसे वुद्धिका उद्दीपक और पुष्ट मानते हैं। तापके मात्राभेदसे फासफरसका गहरा रूपान्तर भी हो जाता है।

आक्सिजनके साथ प्रस्फुरक चार विभिन्न भागोंमें मिलाया जा सकता है। उससे अक्साइड आव प्रस्फुरक (Oxide of phosphorus), उपस्फुरद्रावक (Hypophosphorous acid), स्फुरद्रावक (Phosphorous acid) और स्फुरकद्रावक (*Phosphoric acid*) आदि उत्पन्न होते हैं। जलके तारतम्यानुसार *Phos*phoric acid तीन प्रकारका है। यथा—१ Orthophosphoric acid स्फुरकद्रावक, २ Metaphosphoric acid अभिस्फुरकद्रावक और Pyrophosphoric acid अधिस्फुरकद्रावक। हरिणस्फुरक (Chlorides of *Ph*osphorus) हरिण (Chlorine)-के योगसे प्रस्फुरकके टारक्लोराइ और पेण्टा क्लोराइड नामक दो अवस्थान्तर होते हैं। आयोडिनके योगसे भी इसके विनआयोडाइड और टार आयोडाइड नामक दो परिवर्त्तन होते हैं। गन्धकके साथ मिलानेसे कुछ यौगिक पदार्थकी

उत्पत्ति होती है। फस्फुरेटेड हाईड्रोजन (Phosphuretted Hydrogen) नामक एक पदार्थ प्रचलित है। दृढ़ (Solid), तरल और वाष्पीयके भेदसे उसकी तीन अवस्थाएं हैं।

कुछ पदार्थ ऐसे हैं जिनमें आलोक-विकिरणकी शक्ति है। दो खण्ड कोयार्टज पत्थरको आपसमें घिसनेसे आलोक उत्पन्न होता है। उस पत्थरमें फास्फरसकी अवस्थिति ही इसका कारण है। जुगनू और मछलीके छिलकेमें इसी प्रकार कभी कभी प्रस्फुरकालोक देखनेमें आता है।

फासला (अ० पु०) अनन्तर, दूरी।

फास्ट (अं० वि०) १ तेज। २ शीघ्र चलनेवाला, वेगवान्।

फाहा (हिं० पु०) १ फाया, साया। २ मरहमसे तर पट्टी जो घाव, फोड़े आदि पर रखी जाती है।

फाहियान—एक चीन-परिव्राजक। चीनोंमें वे ही सबसे पहले बौद्धधर्मतत्त्वकी खोजमें भारतवर्ष आये थे।

सान-सि प्रदेशके वु-यङ्ग नगरमें इनका जन्म हुआ था। बचपनमें ये कुङ्ग नामसे परिचित थे। चीनोंका बौद्धधर्ममें अनुराग रहनेके कारण वे थोड़ी ही उमरमें संसाराश्रम छोड़ देनेको वाध्य हुए। तीन ही वर्षकी उमरमें ये श्रमण हो गये थे। स्वदेशीय प्रथानुसार उन्होंने पूर्वनामका परित्याग कर धर्मनाम 'फा-हियान' और 'सिंह' (शाक्यपुत्र)-की उपाधि प्राप्त की। यतिधर्मका ग्रहण कर जब वे सि-गन्-फु प्रदेशकी राजधानी चाङ्ग-अन् नगरमें धर्मानुशीलनमें व्यापृत थे, उस समय 'विनयपिटक' ग्रन्थको अधूरा देख कर उन्हें भारी दुःख हुआ। इस कारण उन्होंने विनयशास्त्रके नियमादिका उद्धार करनेके लिये कुछ साथियोंके साथ भारतवर्ष आनेका संकल्प किया। जनसाधारणके निकट ये कुङ्गवंशके शाक्य नामसे प्रसिद्ध थे।

बौद्धधर्ममें विशेष अनुराग रहनेके कारण बौद्ध ग्रन्थ पढ़नेकी उनकी बड़ी इच्छा हुई। इस उद्देश्यको सिद्ध करनेके लिये वे ३९९ ई०में दलवलके साथ चाङ्ग अन नगरसे निकल पड़े। चीन राज्यका विख्यात प्राचीर पार कर वे क्रमागत पश्चिमकी ओर अग्रसर हुए। उस समय बौद्धप्रभाव प्रायः सारे उत्तर देशोंमें फैला हुआ था। राहमें उन्हें अनेकों बौद्धमठ मिलते जाते थे। उन्हीं मठोंमें वर्षा बिता कर वे खोटानमें उपस्थित हुए।* राजाके आदेशसे उन्हें यहांके गोमती-सङ्घाराम रहना पड़ा। यहां महायान मतावलम्बी बौद्ध सम्प्रदायका वास है। यहां रह कर ही उन्होंने बुद्धदेवकी रथयात्रा देखी थी। इसके बाद वे लोग छत्रभङ्ग हो गये। फाहियान थोड़ेसे साथी ले कर इयारकन्दकी ओर चल दिये। यहां भी उन्होंने महायान बौद्धमत फैला हुआ देखा था। अब वे यहांसे लौट कर कि-श (कासगर) राज्यमें पहुंचे।† यहांके राजाके 'पञ्चवर्षपरिषद्' था और सभी बौद्ध हीनयानमतावलम्बी थे। इसके बाद वे तुषारावृत त्सुङ्ग-लिङ्ग पर्वतमाला पार कर दरदराज्यके दारिल उपत्यकामें पहुंचे।¶ यहांसे क्रमागत दक्षिणपश्चिमको ओर पैदल चल कर वे सबके सब स्वातनदी पार हुए। यहां उद्यान-राज्यमें प्रवेश कर उन्होंने बौद्धधर्मका पूर्ण प्रभा देखा। इसके बाद वे भारतके उत्तर सीमावर्ती गन्धार, तक्षशिला, नगरहार, पुरुषपुर आदि जनपदोंमें भी बौद्धधर्म और कीर्त्तिसमूहका विस्तार देख कर प्रसन्न हुए थे।

भारतगमनकालमें उन्होंने जो जो जनपद देखे उन्हें स्वरचित 'फो-को-की' नामक ग्रन्थमें लिपिबद्ध कर गये हैं। उक्त प्राचीन ग्रन्थ और परवर्ती चीनपरिव्राजक यूएनचुवङ्गके लिखित भ्रमणवृत्तान्तका सामञ्जस्य करके

---

*उनके लिखित वर्णानुसार कोई कोई इस जनपदको आक्रिया राज्य अनुमान करते हैं। फाहियानने इस नगरसे कोस भर पश्चिम जिन नये संघारामका उल्लेख किया है, यूएनचुवंग उसीको वाह्लीक राज्यके अन्तर्मुक्त बतला गये हैं।

†यूएनचुवंगने इस किश नामसे कासगर जनपदका उल्लेख किया है। बहुतेरे इसे मनु लिखित खश वा विष्णुपुराणके खशाकोंका देश बतलाते हैं। सम्भवतः टलेमी लिखित कोसाइयो (Kossaioi) और बृहद्धर्मशास्त्रलिखित कुशाद्र-गण दोनों इसी जनपदके अधिवासी बतलाये गये हैं।

¶ सिन्धुनदीके पश्चिम कूलवर्ती उपत्यका भूमि। यहां दारिल नदी बहती है।

भारतके पूर्वतन इतिहास, भूगोल और बौद्धकीर्त्ति जनपदादिके स्थाननिर्णयमें वहुत कुछ सुविधा हुई है।

फाहियान पश्चिम भारतवर्षसे क्रमागत पूर्वकी ओर कपिलवस्तु, राजगृह और गयादि बौद्धक्षेत्रोंके दर्शन करते हुए चम्पाराजधानीमें उपस्थित हुए। पीछे वहांसे समुद्रकी ओर ताम्रलिप्ति नगरमें पहुँच कर उन्होंने सैकड़ों सूत्र-ग्रन्थादिकी नकल कर ली। इस स्थानसे जहाज पर चढ़ कर वे सिंहलद्वीप गये। यहां उन्होंने विनयपिटक, दीर्घागम और संयुक्तागम आदि संग्रह कर फिरसे समुद्रकी राहसे पूर्वकी ओर यात्रा की। कुछ दिन तूफानमें समुद्रकी राहसे विचरण कर कमण्डलुके साथ वे जलमें कूद पड़े। आखिर यवद्वीप (ये-पो-ति)-में उत्तीर्ण हो वहां उन्होंने ब्राह्मण्यधर्मका विस्तार देखा। पीछे वहांसे वे चीनदेशके कङ्ग-चाउ नगरमें पहुंचे।

चाङ्ग-अन राजधानीका परित्याग कर ५ वर्ष परिभ्रमण करनेके वाद वे मध्य भारतमें उपस्थित हुए। यहां प्रायः ६ वर्ष तक रह कर उन्होंने करीव ३० विभिन्न राज्योंमें परिभ्रमण किया था। चौदह वर्षके वाद वे स्वदेशके त्सिङ्ग-चाऊ नगरमें पहुचे। पीछे नांकिं शहरवासी भारतीय बौद्ध-श्रमण बुद्धभद्रकी सहायतासे उन्होंने अनेक धर्म ग्रन्थोंका अनुवाद और निज भ्रमण-विवरण प्रकाशित किया। ८६ वर्षकी उमरमें उनकी मृत्यु हुई।

फाहिशा (अ० वि०) पुंश्चली, छिनाल।

फिंकरना (हिं० क्रि०) फेंकरना देखो।

फिंकवाना (हिं० क्रि०) फेंकनेका प्रेरणार्थक रूप, फेंकनेका काम कराना।

फिंगा (हिं० पु०) एक प्रकारका पक्षी जो सिन्धुसे आसाम तकके वड़े वड़े मैदानोंमें पाया जाता है। इसके पर भूरे, चोंच पीली और पंजे लाल होते हैं। ये छोटे छोटे झुंडोंमें इधर उधर उड़ते हैं। विशेषतः ये हरियालीमें चरना पसन्द करते हैं। इसके झुण्डमेंसे जहां एक पक्षी उड़ता है वहां वाकी सव भी उसीका अनुसरण करते हैं। इसकी लम्वाई प्रायः डेढ़ वालिश्त होती है। वर्षाऋतुमें इसकी मादा एक साथ तीन अण्डे देती है।

फि (सं० पु०) १ पाप। २ निष्फल वाक्य। ३ कोप।

फिकई (हिं० स्त्री०) चेनेकी तरहका एक मोटा अन्न जो बुंदेलखण्डमें होता है।

फिकार (हिं० पु०) फिकई देखो।

फिक्र (अ० स्त्री०) १ चिन्ता, सोच। २ उपायकी उद्भावना, उपायका विचार। ३ ध्यान, विचार।

फिक्रमंद (फा० वि०) चिन्ताग्रस्त।

फिङ्गक (सं० पु०) फिङ्ग इति शब्देन कायति शब्दायते इति कै क। फिंगा नामक पक्षी। पर्याय—कुलिङ्ग, कलिङ्ग, धूम्याट, भृङ्ग।

फिङ्गेश्वर—मध्य प्रदेशके रायपुर जिलान्तर्गत एक सामन्त-राज्य। भूपरिमाण २०८ वर्गमील है। यहांके सरदार अपनेको राजगोंड़ वतलाते हैं। १५७६ ई०में दी हुई सनदके अनुसार ये राज्यसम्पद्का भोग करते आ रहे हैं। फिङ्गेश्वर ग्राम यहांका प्रधान स्थान है।

फिचकुर (हिं० पु०) वह फेन जो मूर्च्छा या वेहोशी आने पर मुंहसे निकलता है।

फिट (हिं० अव्य०) छिक्, छी।

फिटकरी (हिं० स्त्री०) फिटकिरी देखो।

फिटकार (हिं० पु०) १ धिक्कार, लानत। २ शाप, वद्दुआ। ३ हलकी मिलावट, भावना।

फिटकिरी—स्वनामख्यात खनिज पदार्थ विशेष जो सलफेट आफ पोटाश और सलफेट आफ अलमोनियमके पानीमें जमनेसे वनता है। भारतवर्षमें विहार, सिन्ध, कच्छ और पञ्जावमें फिटकिरी पाई जाती है। मैलके या अन्यान्य द्रव्योंके योगसे यह लाल पीली और काली भी होती है। भिन्न भिन्न देशोंमें यह भिन्न भिन्न नामोंसे प्रसिद्ध है, यथा वङ्गाल—फटकिरि, संस्कृत—स्फटिकारी, अरव—सिव्, ज़ाज; पारस्य—जाक, जाके-सफेद; महाराष्ट्र—फकटी, तुर्त्ति, पटकि, तामिल—पटिकारम, तेलगु—पटिकराम; मलयालम्—पटिक्कारम; ब्रह्म—किओखिन्।

पर्वतके मध्यस्थित किसी स्थानमें यह मिट्टीके साथ मिली देखी जाती है। उस समय इसका रंग कृष्णधूसर वर्णकी मछलीके छिलकेके जैसा रहता है। वैज्ञानिकोंने इसे अग्निप्रस्तरसम्बन्धीय निरूपण किया है। उसमें सवनाम्मुलिटिक (Sub-nummulitic group)-की जगह

सञ्चित फिटकिरीयुक्त कृत्रिम धातु (P-edo brecia) मिली रहती है।

इस प्रकारकी मिश्रित फिटकिरी-संयुक्त मट्टीको ला कर छिछले हौदोंमें बिछा देते और ऊपरसे पानी डाल देते हैं। अलमीनियम सलफेट पानीमें घुल कर नीचे बैठ जाता है जिसे फिटकिरीका बीज कहते हैं। इस बीज (अलमीनम् सलफेट)-को गरम पानीमें घोल कर ६ भाग सलफेट आफ पोटाश मिला देते हैं। फिर दोनोंको आग पर गरम करके गाढ़ा करते हैं। पांच छः दिनमें फिटकिरी जम जाती है।

सिन्धुनदके किनारे कालाबाग और छिछली घाटीके पास कोटकिल फिटकिरी निकलनेके प्रसिद्ध स्थान हैं। इङ्गलैएड वा चीनदेशजात फिटकिरीकी अपेक्षा कच्छ-देशोत्पन्न फिटकिरी ही उत्तम है। कालाबागकी फिट-किरीके क्षारांशमें सोडा पाया जाता है, परन्तु इङ्गलैएड-देशज फिटकिरीमें पटाश रहता है। मञ्जिष्ठा, हरिद्रा, नील आदि रंगोंको पक्का करनेके लिये उसमें फिटकिरी मिलाई जाती है।

आयुर्वेदके मतसे इसका गुण धारक, रक्तरोधक और पचननिवारक है। निस्तेज उदरामय, क्षयशील प्रदरादि, रक्तस्राव, वच्चोंकी विसूचिका, औदरिक छर्दि, जलवत् श्लेष्मास्राव, हिक्का आदि रोगोंमें इसका आभ्यन्तरिक प्रयोगमें व्यवहार किया जाता है। चक्षुरोग, श्वेतप्रदर (Leucorrhaea), प्रमेह (Gonorrhœa), असृग्दर (Menorhagia) गुदभ्रंश वा जरायुभ्रंश (*Prolapsus* of the uteri and rectum) तथा अन्यान्य क्षतरोगोंमें जलमिश्रित फिटकिरी विशेष उपकारजनक मानी गई है। कसावके कारण इसमें सङ्कोचनका गुण बहुत अधिक है। शरीरमें पड़ते ही यह तंतुओं और रक्तकी नलियों-को सिकोड़ देती है जिससे रक्तस्राव आदि कम या बंद हो जाता है। गरम पानीमें फिटकिरी डाल कर ४।५ दिन तक उससे मुंह धोनेसे जिह्वा और मुखविवरके फोड़े जाते रहते हैं। फिटकिरीके चूर और आइडोफरमको मिला कर विस्फोटकादि पर लगानेसे घाव सहजमें सूख जाता है।

फिटकिरीके पानीसे कुल्ली करनेसे दन्तक्षत और गल-क्षत दोषादि नष्ट होते हैं। फिटकिरीको जला कर उसके चूरकी नास लेनेसे नासास्राव निवारित होता है। बिच्छू-ने जहां डंक मारा हो, वहां पर इसके चूरका लेप देनेसे विष बातकी बातमें उतर आता है। प्रसूत शिशुकी नाभिरज्जु काटनेके बाद यदि नाभि पक जाय, तो जली हुई फिटकिरीका चूर देनेसे विशेष उपकार होता है। कपड़े की रँगाईमें तो यह बड़े कामकी चीज है। इससे कपड़े पर रंग अच्छी तरह चढ़ जाता है। इसीसे कपड़े-को रँगनेके पहले फिटकिरीके पानीमें बोर देते हैं। रँगने के पीछे भी कभी कभी रँग निखारने और बराबर करनेके लिये कपड़े फिटकिरीके पानीमें बोरे जाते हैं।

फिटकी (हिं० स्त्री०) १ छींटा। २ सूतके छोटे छोटे फुचरे जो कपड़े की बुनावटमें निकले रहते हैं।

फिटन (अं० स्त्री०) चार पहियेकी एक प्रकारकी खुली गाड़ी जिसे एक या दो घोड़े खींचते हैं।

फिट्टा (हिं० वि०) अपमानित, फटकार खाया हुआ।

फितना (अ० पु०) १ झगड़ा, दंगा फसाद। २ एक फूलका नाम। ३ एक प्रकारका इत्र।

फितरती (अ० वि०) १ चालाक, चतुर। २ मायावी, फितूरी।

फितूर (अ० पु०) १ न्यूनता, घाटा। २ विपर्यय, खराबी। ३ उपद्रव, झगड़ा।

फितूरी (हिं० वि०) १ झगड़ालू, लड़ाका। २ उपद्रवी, फसादी।

फिदवी (फा० वि०) १ स्वामिभक्त, आज्ञाकारी। (पु०) २ दास।

फिदा (फा० पु०) पिद्दा देखो।

फिनिकीय—फिनिस (*Phoenicia*) देशके प्राचीन अधिवासी (Phoenician)। ईसा जन्मके बहुत पहले-से ये लोग विदेशीय वाणिज्यकी उन्नति द्वारा जगतमें प्रतिष्ठालाभ कर गये हैं। ये लोग सेमितिक वा अरमियान जातिके थे। पहले ये लोहितसागर वा पारस्य उपसा-गरके किनारे रहते थे। (१) किस समय इन्होंने भूमध्य-सागरके सिरिया उपकूलमें उपनिवेश बसाया उसका

(१) Herod, vii. 8।

कोई प्रमाण नहीं मिलता। (२) जो कुछ हो, प्राचीन सिरीया राज्यके दक्षिण और पश्चिम तथा लिवएट उपसागरके पूर्वी किनारे आ कर ये लोग पश्चिम यूरोपके साथ व्यवसाय वाणिज्यमें लिप्त हुए थे। इस समय फिनिस राज्यकी लम्बाई २०० मील और चौड़ाई २० मील थी। सिदोन और टायर नगरमें उनकी राजधानी थी। वाइवल पढ़नेसे मालूम होता है, कि जलुआके राज्यकालमें यह सिदोन नगर महासमृद्धिशाली था।(३) सिरिया आ कर उन्होंने पश्चिममें ब्रिटेन तक अपना वाणिज्य फैला लिया था। वाणिज्योन्नतिके लिये उन्होंने अरव, वाविलोनिया, आफ्रिकाके उत्तरी उपकूल, स्पेन, सिसली, मल्टा आदि स्थानोंमें सैकड़ों उपनिवेश वसाये थे। इन सव देशोंमें वे पूर्व दिशासे माल लाते थे। अफ्रिका और सिसलीका उपनिवेश धीरे धीरे स्वतन्त्र राज्यमें परिणत हो गया। उन्होंने वहुत समय तक विशेष दक्षताके साथ रोमकोंका मुकावला किया था।

जगत्के वर्त्तमान इतिहासमें यही प्राचीन वणिक् जाति सवसे पहले वाणिज्य द्वारा उन्नतिकी चरमसीमा तक पहुंच गई थी। भिन्न भिन्न देशों और जातियोंके साथ इनका वाणिज्य होनेके कारण उन्होंने इनसे वर्णमाला ग्रहण की थी। सिन्धुनदके उत्तर ग्रीक अक्षर प्रचलित होनेके पहले ५वीं खृष्टपूर्वाब्दमें भारतवासी फिनिक-वर्णमालासे अवगत थे। भारतमें वणि नामसे प्रसिद्ध, प्राच्यभारतसे इन लोगोंने पाश्चात्य जगत्में सभ्यतालोक विस्तार किया था। (४) सलोमनके राज्यकालमें ये लोग जहाज पर चढ़ कर अरवदेशके दक्षिण अफिर नगरमें आये थे। यहांसे वे-रोकटोक भारतीय पण्य-द्रव्य ले कर वे वहुत दूर पश्चिम चले जाते थे।(५) ५८६ और ३३१ खृष्टपूर्वाब्दमें अलेकसन्दरके द्वारा दूसरी वार टायर नगर विध्वस्त होने पर भी उनके वाणिज्यमें जरा भी धक्का न पहुंचा था। ३४६ खृष्ट पूर्वाब्दमें कार्थजके अधःपतन पर भी उनका वाणिज्य ज्योंका त्यों वना रहा। किन्तु अक्टीयाम-जलयुद्धके वाद उनकी वाणिज्य आशा पर पानी फेर गया। अनन्तर अरवोंने फिनिकियोंका वाणिज्यक्षेत्र अपना लिया। दूसरे वर्ष पुर्त्तगीज-वणिकोंने जगत्का वाणिज्यभण्डार अपने हाथ कर लिया।

(२) कोई कोई अनुमान करते हैं, कि ३ हजारसे २५०० खृष्ट पूर्वाब्दके मध्य वे लोग पूर्व-वासका परित्याग कर लिवएटके किनारे वस गये थे, क्योंकि पारस्यके किनारेसे ले कर लोहितसागर तक उनका वाणिज्य फला हुआ था।

(३) Jor p xiv 28

(४) The Social History of *Kamarup* by N. Vasu, Vol. I

(५) Cherom VII. 17-18, *King* 127-28.

फिनिया (हिं० स्त्री०) कानमें पहननेका एक गहना।

फिनीज (हिं० स्त्री०) दो मस्तूलवाली एक छोटी नाव। यह दो डांड़ेसे चलाई जाती है।

फिरंग—फिरङ्ग देखो।

फिरंगवात (हिं० पु०) वातज फिरङ्ग। फिरङ्ग देखो।

फिरंगी (हिं० वि०) फिरङ्गी देखो।

फिरंट (हिं० वि०) १ विरुद्ध, खिलाफ। २ विरोध या लड़ाई पर उद्यत, विगड़ा हुआ।

फिर (हिं० क्रि० वि०) १ पुनः, दोवारा। २ अनन्तर, उपरान्त। ३ भविष्यमें किसी समय, और वक्त। ४ देशसम्वन्धमें आगे वढ़ कर, और चल कर। ५ उस हालतमें, उस अवस्थामें। ६ इसके अतिरिक्त, इसके सिवाय।

फिरक (हिं० स्त्री०) एक प्रकारकी छोटी गाड़ी। इस पर गांवके लोग चीजोंको लाद कर इधर उधर ले जाते हैं।

फिरकना (हिं० क्रि०) १ थिरकना, नाचना। २ किसी गोल वस्तुका एक ही स्थान पर घूमना।

फिरका (अ० पु०) १ जाति। २ जत्था। ३ सम्प्रदाय, पन्थ।

फिरकी (हिं० स्त्री०) १ लड़कोंके नचानेका एक खिलौना। २ मालखम्भकी एक कसरत। इसमें जिधरके हाथसे मालखंभ लपेटते हैं, उसी ओर गर्दन झुका कर फुरतीसे दूसरे हाथके कंधे पर मालखंभको लेते हुए उड़ान करते हैं। ३ लकड़ी, धातु या कद्दूके छिलके आदिका गोल टुकड़ा जो तागा वटनेके तकवेके नीचे लगा रहता है। ४ चकई नामका खिलौना। ५ कुश्तीका एक पेंच। जव जोड़के दोनों हाथ गर्दन पर हों अथवा एक हाथ गर्दन

पर और एक भुजदण्ड पर हो, तब एक हाथ जोड़की गर्दन पर रख कर दूसरे हाथसे उसके लंगोटको पकड़े और उसे सामने झोंका देते हुए वाहरी टांग मार कर गिरा दे। ६ चमड़े का गोल टुकड़ा जो तकवेमें लगा कर चरखेमें लगाया जाता है। चरखेमें जब सूत कातते हैं, तब उसके लच्छेको इसीके दूसरे पार लपेटते हैं। ७ वह गोल या चक्राकार पदार्थ जो बीचकी कीलीको एक स्थान पर हिला कर घूमता हो।

फिरङ्ग (सं० पु०) १ स्वनामख्यात यूरोपीयभेद। २ यूरोपका देश, गोरोंका मुल्क, फिरंगिस्तान।

फ्रान्क नामका जर्मन जातियोंका एक जत्था था। वह जत्था ईसाकी ३री शताब्दीमें तीन दलोंमें विभक्त हुआ। इनमेंसे एक दल दक्षिणकी ओर बढ़ा और गाल (फ्रान्सका पुराना नाम)-से रोमकराज्य उठा कर उसने वहां अपनी गोटी जमाई। तभीसे फ्रान्स नाम पड़ा। १०९६ और १२५० ई०के मध्य यूरोपके ईसाइयोंने ईसा-को जन्मभूमिको तुर्कोंके हाथसे निकालनेके लिये कई बार आक्रमण किये। फ्रान्क शब्दका परिचय तभीसे तुर्कोंको हुआ और वे यूरोपसे आनेवालोंको फिरङ्गी कहने लगे। क्रमशः यह शब्द अरब, फारस आदि होता हुआ भारतवर्षमें आया। भारतवर्षमें पहले पहल पुर्त्त-गाल आये, इससे इस शब्दका प्रयोग बहुत दिनों तक उन्हींके लिये होता रहा। फिर यूरोपियन मात्रको फिरङ्गी कहने लगे।

३ रोगविशेष, गरमी, आतशक। केवल भावप्रकाश में ही इस रोगका विवरण देखनेमें आता है। चरक, सुश्रुत, हारीत आदि प्राचीन किसी भी ग्रन्थमें इस रोगका उल्लेख नहीं है। अतः यह निःसन्देह कहा जा सकता है, कि पहले इस देशमें इस रोगका नाम निशान भी न था, पीछे फिरङ्गियोंके इस देशमें बस जानेसे फिरंग रोगकी सृष्टि हुई है। यह भी स्पष्ट कहा गया है, कि फिरङ्ग रोग फिरङ्गी स्त्रीके साथ संभोग करनेसे हो जाता है। इसका विवरण पुर्त्तगीज शब्दमें देखो। इस रोगकी नामनिरुक्ति-के स्थलमें लिखा है—

"फिरङ्गसंज्ञके देशे बाहुल्येनैव यद्भवेत्।
तस्मात् फिरङ्ग इत्युक्तो व्याधिर्व्याधिविशारदैः॥"
(भावप्र०)

फिरङ्गियोंके देशमें यह रोग बहुत होता है, इसीसे इस रोगको फिरङ्ग कहते हैं। इस रोगका दूसरा नाम गन्धरोग भी है।

फिरङ्गरोगग्रस्त व्यक्तिका गात्रस्पर्श करनेसे, विशे-षतः फिरङ्गरोगग्रस्ता फिरङ्गिनीके साथ संसर्ग करनेसे यह रोग उत्पन्न होता है। इस आगन्तुक रोगमें पश्चात् दोषादिके लक्षण दिखाई पड़ते हैं। अतएव वे सब दोष देख कर वात, पित्त और कफका विषय स्थिर करना होगा। दोषमें वायुका लक्षण रहनेसे वातज फिरङ्ग, इसी प्रकार पित्त और कफके सम्बन्धमें भी जानना चाहिये। फिरङ्गिणीका संसर्ग ही इस रोगका प्रधान कारण है। यह रोग तीन प्रकारका होता है—बाह्यफिरङ्ग, आभ्यन्तर फिरङ्ग और बहिरन्तर्भवफिरङ्ग।

बाह्यफिरंग विस्फोटकके समान शरीरमें फूट फूट कर निकलता है और घाव या व्रण हो जाते हैं। यह बाह्य-फिरङ्ग सुखसाध्य है अर्थात् अल्प आयाससे ही यह दूर हो जाता है। आभ्यन्तर फिरङ्गमें सन्धि स्थानोंमें आमवातके समान शोथ और वेदना होती है। यह कष्ट साध्य है। जो बाहर और भीतर दोनों ही जगह होता है उसे बहिरन्तर्भव फिरङ्ग कहते हैं। यह भी दुःख-साध्य है। इस रोगमें कृशता, बलक्षय, नाशाभङ्ग, अग्नि-मान्द्य, अस्थिशोष और अस्थिकी वक्रता आदि उपद्रव होते हैं।

बाह्यफिरङ्ग नवोत्थित और उपद्रवरहित होनेसे सुख-साध्य, आभ्यन्तर फिरङ्ग कष्टसाध्य और बहिरन्तर्भव फिरङ्ग उपद्रवयुक्त तथा अधिक दिनका होनेसे असाध्य होता है।

चिकित्सा।—रसकर्पूर फिरङ्गरोगकी एक उत्कृष्ट औषध है। इसके सेवनसे फिरङ्गरोग निश्चय ही आरोग्य होता है।

रसकर्पूरका निम्नलिखित प्रकारसे सेवन करना पड़ता है। विहित विधानसे यदि सेवन किया जाय, तो मुखशोथ नहीं होता।

पहले गोधूम चूर्ण द्वारा एक छोटी कूपिका प्रस्तुत कर उसमें ४ रत्ती शोधित पारा डाल दे। पीछे उस कूपिका द्वारा पारदके आवरक स्वरूप एक ऐसा गोल-

पिण्ड वनावे कि उसमें पारद जरा भी दिखाई न दे। अनन्तर लवङ्गचूर्ण उसके चारों तरफ लगावे। अब उस गोलीको जलके साथ निगल जावे, पर याद रहे, निगलते समय वह दाँतसे छू न जाय। इस प्रकार रस कपूरका सेवन करके पीछे पान चवाना उचित है। इस औषधका सेवन करनेके वाद शाक, अम्ल, लवण, परिश्रम, रौद्रसेवन, पथपर्यटन और स्त्रीसङ्ग बिलकुल निषिद्ध है। इन सब निषिद्ध द्रव्योंके सेवनसे रोग बढ़ जाता है।

पारद आध तोला, खदिर आध तोला, आकरकरा एक तोला इन सब द्रव्योंको एक साथ खलमें पीस कर सात गोली वनावे। प्रतिदिन सवेरे जलके साथ एक एक गोली सेवन करनेसे फिरङ्गरोगका आठवें दिनमें कहीं पता न रहेगा। इस औषधका सेवन करके अम्ल और लवणका विलकुल परित्याग करना पड़ता है। इस औषधका नाम सप्तसालिवटी है। इस रोगमें धूमप्रयोग भी हितकर वतलाया गया है। पारद २ तोला, गन्धक १ तोला और विडङ्ग २ तोला इन सब द्रव्योंकी एक साथ पीस कर कज्जली करे, पीछे उससे सात गोली वनावे। प्रतिदिन एक एक गोली द्वारा धूम प्रयोग करनेसे फिरङ्गरोग अवश्य दूर हो जाता है। अलावा इसके आध तोला पारदको वड़लाके रसमें घिसे, जब तक पारद दिखाई न दे, तब तक घिसते रहे। अनन्तर इसके द्वारा ७ दिन पाणिस्वेद देनेसे फिरङ्गरोग नष्ट हो जाता है। यह स्वेद देकर अम्ल और लवणका विलकुल व्यवहार न करे।

पतच्छिन्न नीमकी पत्तियोंका चूर्ण आठ तोला, हरीतकी चूर्ण एक तोला, आमलकी चूर्ण एक तोला और हरिद्रा चूर्ण आध तोला इन सबको एक साथ मिला कर जल वा मधुके साथ आध तोला तोवचीनीका चूर्ण खानेसे फिरङ्गरोग जाता रहता है। इस औषधके सेवनमें लवणका परित्याग करना पड़ता है। एकांत पक्षमें लवणका परित्याग नहीं कर सकनेसे सैन्धव-सेवन किया जा सकता है। पारद दो तोला, गन्धक दो तोला, और खदिरकाष्ठ दो तोला इन सबको एक साथ पीस कर कज्जली वनावे। पीछे हरिद्रा, नागकेशर, त्रिकटु, स्थूलजीरा, कृष्णजीरा यवानी, रक्तचन्दन, श्वेतचन्दन, पिप्पली, वंशलोचन, जटामांसी और तेजपत्र प्रत्येकका चूर्ण एक एक तोला, मधु एक पाव और घी एक पाव, सवको एकत्र पीस कर एक एक तोलेका इक्कीस खुराक वनावे। प्रतिदिन एक एक खुराक खानेसे सब प्रकारके फिरङ्ग रोग नष्ट होते हैं। इन इक्कीस दिनों तक नमकका बिलकुल व्यवहार न करे। फिरङ्गरोगमें जितने प्रकारकी औषधोंका व्यवहार वतलाया गया है, उनमेंसे पारद ही प्रधान है। (भावप्रकाश)

फिरङ्गरोटी (सं० स्त्री०) फिरङ्गप्रिया रोटी, फिरङ्गाणां रोटीति वा। रोटिकाविशेष, पांवरोटी। यह रोटी फिरङ्गियोंको अतिशय प्रिय है अथवा फिरङ्गदेशमें ही खास कर प्रस्तुत होती है, इसीसे इसको फिरङ्गरोटी कहते हैं। पाकराजेश्वरमें इसकी प्रस्तुत प्रणाली इस प्रकार लिखी है—गेहूंके चूरमें ताल या खजूरका रस और सौंफका पानी डाल कर उसे कुछ समय तक गूंधते हैं। पीछे मोटी मोटी लिट्टी वना कर तन्दूरपाकमें पकाते हैं। इस प्रकार जो रोटी वनती है, उसीका नाम फिरङ्गरोटी है।

फिरङ्गिणी (सं० स्त्री०) फिरङ्गदेशोजन्मस्थानत्वेनास्त्यस्या इति फिरङ्ग-इनि, ङीप्। फिरङ्गदेशोद्भव नारी, मेम।

"गन्धरोगः फिरङ्गोऽयं जायते देहिनां ध्रुवं।
फिरङ्गिणोऽतिसंसर्गात् फिरङ्गिण्याः प्रसङ्गतः॥"
(भावप्रकाश)

फिरङ्गी (हिं० वि०) १ फिरंगदेशमें उत्पन्न। २ फिरंग देशमें रहनेवाला, गोरा। ३ फिरंग देशका। (स्त्री०) ४ यूरोपदेशकी वनी तलवार, विलायती तलवार।

फिरङ्गीपुर—दाक्षिणात्यके कृष्णा जिलान्तर्गत एक प्राचीन नगर। यह गुण्टूरसे ६॥ कोस पश्चिममें अवस्थित है। निकटवर्त्ती कोण्डविड्ड पर्वतमाला पर एक प्राचीन दुर्ग देखनेमें आता है। रेड्डीसरदारगण उक्त दुर्गका निर्माण कर गये हैं। पर्वतके नीचे वहुतसे प्राचीन हिन्दू देवमन्दिर और मसजिद विद्यमान हैं।

फिरङ्गीवाजार—ढाका जिलेसे अन्तर्गत एक प्राचीन ग्राम। यह अक्षा० २३° ३३´ उ० तथा देशा० ९०° ३३´ पू०के मध्य इच्छामती नदीकी एक शाखा पर अवस्थित है। वङ्गेश्वर साईस्ता खाँके शासनकालमें १६६३ ई०को पुर्त्तगीजोंने

पहले पहल यहां उपनिवेश बसाया। वे लोग पहले आराकनके अधीन सैनिकवृत्ति करते थे। मुगल-सेनापति हुसेनबेगने जब आराकनराजधानी चट्टग्राममें घेरा डाला, तब वे लोग नौकरी छोड कर बङ्गाल भाग आये। फिरङ्गियोंके यहां बस जानेके कारण इस स्थानका फिरङ्गी-बाजार नाम पड़ा है। वाणिज्यकी उन्नतिके कारण एक समय यह नगर विशेष समृद्धिशाली हो उठा था। उस समय इसका आयतन भी छोटा नहीं था। ढाकाके वाणिज्यकी अवनतिके साथ साथ यह स्थान भी श्रीहीन हो गया है।

फिरता (हिं० पु०) १ वापसी। २ अस्वीकार। (वि०) ३ वापस, लौटाया हुआ।

फिरदौसी—एक प्रसिद्ध महाकवि। इनका प्रकृत नाम अबुलकासीम-हसन-बिन-शरफशाह था। गजनीके सुलतान महमूदके आदेशसे 'शाहनामा' नामक फारसी ग्रन्थ लिख कर ये जगद्विख्यात हो गये हैं। शाहनामाकी रचना किस प्रकार हुई और फिरदौसीने किस प्रकार प्रसिद्धि प्राप्त की, उसका विषय शाहनामाके मुखबंधमें इस प्रकार लिखा है—

पारस्यके शासनीय राजा यजदेजादने कैमूरवंशसे खुसरो-वंशीय राजाओंका विवरण संग्रह करके अपने उद्यम और तत्त्वावधानसे 'सियारउल् मुल्क' वा वास्तान-नामा नामक एक इतिहास सङ्कलन कराया था। महम्मद्के शिष्योंने जब पारस्य राज्यको विदलित करनेकी चेष्टा की, उस समय यजदेजादके पुस्तकागारमें वह ग्रन्थ पाया गया था। १०वीं शताब्दीमें शासनवंशीय किसी राजाने नूकीकी नामक एक कविको उक्त महाग्रन्थका उद्धार करनेका भार सौंपा। किन्तु १००० श्लोक लिखनेके बाद ही वे अपने कृतदासके हाथके शिकार बने। इसके बाद किसीने भी उक्त ग्रन्थके उद्धारकी चेष्टा न की। आखिर संयोगवशतः एक खण्ड वास्ताननामा गजनीपति सुलतान महमूदके हाथ लगा। गजनीपतिने उस ग्रन्थसे सात विषय ले कर सात कवियोंको एक एक कविता-ग्रन्थ लिखनेका हुक्म दिया। उन कवियोंमेंसे कौन प्रधान हैं, इसीकी परीक्षा करना ही सुलतानका उद्देश्य था। उनमेंसे कवि अनसारिंको पुरस्कार मिला। और वे ही पहले पहल उस बृहत् ग्रन्थको कवितामें ग्रथित करनेके लिये नियोजित हुए।

इस समय फिरदौसी अपनी जन्मभूमि तुष नगरमें कविताद्देवीकी सेवा करके जयश्री और यशोलाभ कर रहे थे। वे कवि दकीकीकी चेष्टासे अच्छी तरह जान कार थे। सुलतान महमूदका महदभिप्राय भी उन्होंने सुना था। अभी सौभाग्यक्रमसे उन्हें एक वास्ताननामा हाथ लगा। कठोर परिश्रम करके उन्होंने समस्त ग्रन्थ भली भांति समझ लिये। थोड़े ही दिनोंके अन्दर जुहाक और फरिदून-युद्धके आधार पर उन्होंने एक खण्डकाव्य निकाला जिसका आदर घर घर होने लगा।

उस खण्डकाव्यकी सुख्याति सुलतान महमूदके कानोंमें पहुंची। उन्होंने फिरदौसीको बुलवा भेजा। सुलतानका आज्ञापालन कर फिरदौसी गजनी पहुंचे। उनके आगमनसे सुलतानने अपनेको धन्य, कृतार्थ और उनके पादस्पर्शसे राजधानीको पवित्र हुआ समझा। कविकी सम्वर्द्धना किससे करेंगे, ऐसी उन्हें एक भी चीज न मिली। सुलतानने कविवरको वास्तान्-नामाके आधार पर अपने पूर्वपुरुषोंकी अनुपम कीर्त्ति कवितामें लिखनेका आदेश किया और प्रति हजार स्वर्णमुद्रा देनेका वचन दिया। कविने भी कहा था, कि जब तक वे ग्रन्थको शेष न कर लेंगे तब तक एक कौड़ी भी ग्रहण न करेंगे।

तीस वर्षके परिश्रमके बाद ६०००० श्लोकोंमें उनकी शाहनामा सम्पूर्ण हुई। किन्तु इस समय सुलतानका वह उत्साह, अनुराग और प्रतिज्ञा कहां गई! पुस्तक सम्पूर्ण तो हो गई, पर सुलतानने अपना वचन पूरा न किया, आशा दे कर चिर निराशामें कविवरको बहा दिया। कविने सुलतानके आचरण पर कटाक्ष करके मर्मभेदी आक्षेपमें ग्रन्थका उपसंहार लिखा। सुलतानने शाहनामामें अपने चरित्रकी समालोचना देख आखिर ६० हजार स्वर्णमुद्राके बदलेमें ६० हजार रौप्य-दिरहम भेज दिया। जिस समय उनका आदमी रुपयेकी गठरी बांध कर फिरदौसीके यहां पहुंचा, उस समय वे स्नानागारमें थे। उन्होंने उस मुद्राको स्वयं ग्रहण न किया, क्रोध और घृणासे अपने भृत्योंके बीच छिड़क दिया। वजीरके परामर्शसे सुलतानने ऐसा काम किया है, जब यह उन्हें मालूम हुआ,

तब वजीरके उद्देश्यसे उन्होंने एक विद्रूपात्मक ग्रन्थ लिख कर सुलतानके पास भेज दिया और आप माजन्दराण देशको भाग गये। जाते समय उन्होंने यह भी कहा था, कि जब कभी सुलतानका मन किसी राजकीय व्यापारसे निपीड़ित होवे तब वे उस ग्रन्थका अवश्य पाठ करें। पीछे वह ग्रन्थ पढ़नेसे महमूदको मालूम हुआ, कि उन्होंने सदाके लिये अपना सम्भ्रम खो दिया है। वजीर-को उन्होंने दरबारसे निकाल भगाया और फिरदौसीकी खोजमें आदमी भेजा। इधर फिरदौसी निरापद होनेके लिये बोगदादकी सभामें उपस्थित हुए। यहां आ कर उन्होंने शाहनामाके शेषमें खलीफाके प्रशस्तिमूलक १००० श्लोक और जोड़ दिये। खलीफाने प्रसन्न हो कर उन्हें साठ हजार स्वर्णमुद्रा प्रदान की। इधर सुल-तान महमूदने भी सम्मानसूचक परिच्छदके साथ प्रति-श्रुत ६० हजार स्वर्णमुद्रा भेज दीं। किन्तु वह कविके निकट पहुंचनेके पहले ही वे इहलोकसे चल बसे थे। जन्मभूमि तुप (वर्त्तमान मसद) नगरमें ही १०२० ई०को ८९ वर्षकी अवस्थामें उनकी मृत्यु हुई। शाहनामाके अलावा उन्होंने 'अचियात् फिरदौसी' नामक एक और भी काव्य लिखा था।

फिरना (हिं० क्रि०) १ विचरना, टहलना। २ चक्कर लगाना, बार बार फेरे खाना। ३ भ्रमण करना, इधर उधर चलना। ४ प्रत्यावर्त्तित होना, पलटना। ५ मरोड़ा जाना, ऐंठा जाना। ६ किसी ओर जाते हुए दूसरी ओर चल पड़ना, मुड़ना। ७ परिवर्त्तित होना, विपरीत होना। ८ लीप या पोत कर फैलाया जाना, चढ़ाया जाना। ९ यहांसे वहां तक स्पर्श करते हुए जाना, रखा जाना। १० वापस होना। ११ एक ही स्थान पर रह कर स्थिति बदलना, सामना दूसरी तरफ हो जाना। १२ विरुद्ध हो पड़ना, लड़ने या मुकाबला करनेके लिये तैयार हो जाना। १३ प्रतिज्ञा आदिसे विचलित होना, बात पर दृढ़ न रहना। १४ सीधी वस्तुका किसी ओर मुड़ना, झुकना। १५ घोषित होना, चारों ओर प्रचारित होना।

फिरवा (हिं० पु०) १ गलेमें पहननेका सोनेका एक आभू-षण। २ सोनेकी अंगूठी जो तारको कई फेरे लपेट कर बनाई गई हो।

फिरवाना (हिं० क्रि०) १ फेरनेका काम कराना। २ फिराने-का काम कराना।

फिराक (अ० पु०) १ वियोग, विछोह। २ चिन्ता, खटका। ३ खोज, टोह।

फिराना (हिं० क्रि०) १ इधर उधर चलाना, ऐसा चलाना कि कोई एक निश्चित दिशा न रहे। २ चक्कर देना, नचाना या परिक्रमण कराना। ३ एक ही स्थान पर रख कर स्थिति बदलना। ४ सैर कराना, टहलाना। ५ ऐंठन, मरोड़ना। ६ किसी ओर जाते हुएको दूसरी ओर चला देना, घुमाना। ७ लौटाना, पलटाना। ८ परिवर्त्तन करना, बदला देना। ९ विचलित करना, बात पर दृढ़ न रहने देना।

फिरार (अ० पु०) भागना, भाग जाना।

फिरारी (फा० वि०) १ भागनेवाला, भगोड़। २ वह अपराधी जो दण्ड पानेके भयसे भागता फिरता हो।

फिरङ्गी—चट्टग्रामके खृष्टान अधिवासी पुर्त्तगीजके वंश-धर। ये लोग पुर्त्तगीज-गौरवके समय धनशाली वणिक् समझे जाते थे। वाणिज्य और दस्युवृत्तिके लिये ये जहाज रखते थे। अभी चट्टग्राममें जो सब पुर्त्तगीज रहते हैं वे रोमन-कैथलिक हैं। बहुतेरे खेती बारी करके अपना गुजारा चलाते हैं। पुर्त्तगाल और चट्टग्राम देखो।

इन लोगोंकी प्रकृति अति जघन्य है। १६वीं शता-ब्दीके आरम्भमें ये क्रीतदासकन्या रखते थे। उन दास-कन्याओंको उपपत्नीरूपमें भाड़े पर दे कर अर्थ सञ्चय करते थे। वर्त्तमान फिरङ्गी ऐसी संस्कारोत्पत्तिसे बिलकुल वञ्चित हैं। परिच्छदके सिवा इनके और कोई पैतृक अवलम्बन नहीं है। वर्ण और आकृतिमें भी ये देशी लोगोंकेसे हैं। इनमें मग और मुसलमान-रक्त मिला हुआ है। पत्नी वा उपपत्नीजात दोनों ही प्रकारके पुत्रोंका पितृ नाम रखा जाता है। पहले इनका डाक नाम और पदवी पुर्त्तगीजोंसी थी। अभी बहुतोंने अंगरेजी डाकनामका अनुकरण करना सीख लिया है। उस देशके लोग इन्हें 'मेटेफिरिङ्गी' वा 'काला-फिरङ्गी' कह कर घृणा करते हैं। विद्याशिक्षाके अभावसे ये लोग अभी अति हीन हो रहे हैं। बहुत दिनों तक देशीय संस्रवमें रहने तथा मातृकुल मग वा मुसलमान होनेके कारण ये

तद्देशवासो हिन्दू-मुसलमान आदिके आचार व्यवहारका अनुकरण करने लग गये हैं। इनका विवाह घटककी तरह तृतीय व्यक्ति द्वारा निष्पन्न होता है। ये लोग साधारणतः स्त्रीके प्रति निष्ठुर व्यवहार करते हैं।

२ दक्षिण भारतमें पुत्तगीजोंका प्रचलित शास्त्रविशेष।

फिरिश्ता (फा० पु०) देवदूत।

फिरिश्ता—विख्यात मुसलमान ऐतिहासिक। इनका पूरा नाम था महम्मद कासिम हिन्दूशाह। फिरिश्ता इनकी उपाधि थी और इसी नामसे ये तमाम परिचित हैं। इनके पहले और कोई भो मुसलमान ऐसे विशदभावमें इतिहास सङ्कलन करनेमें समर्थ नहीं हुए हैं। कास्पियन सागरतीरवर्त्ती अष्ट्राबाद नगरमें इनका जन्म हुआ। इनके पिता गुलाम अली हिन्दूशाह एक विशेष शिक्षित व्यक्ति थे। किसी कारणसे वे अपने पुत्रको साथ ले जन्मभूमिका परित्याग कर भारतवर्ष आये। यहां अहमदनगरके अधिपति मुर्त्तजाने इन पर बड़ी कृपा दरसाई और इन्हें अपने पुत्र मीरन हुसेनको पारसी भाषा सिखानेके लिये नियुक्त किया। किन्तु उस राज-प्रसादका वे अधिक दिन भोग करने न पाये। अकाल ही वे कराल कालके गालमें पतित हुए।

फिरिश्ता अनाथ हो गये सही, पर स्वयं मुर्त्तजा निजाम उनके प्रतिपालक हुए। निजाम गुलामके सद्गुण भूले नहीं थे। उन्होंने एक दिन फिरिश्ताको राजसभा-में बुलाया और अति विश्वस्त (गुप्त) मन्त्रिपद पर नियुक्त किया। इसके बाद फिरिश्ता राजरक्षी सेनापति-दलके अधिनायक हो गये। इस समय पूर्व राजाके अमात्य-वर्ग विद्रोहियोंके हाथसे मारे गये, एक मात्र फिरि-श्ताने ही युवराज मीरन हुसेनकी आड़में अपनी प्राण-रक्षा की। पिताको राज्यच्युत करके मीरन स्वयं गद्दी पर बैठे, पर वे अधिक दिन तक राज्यभोग न कर सके। १५८८ ई०के राष्ट्रविप्लवमें वे भी निष्ठुरभावसे निहत हुए। इस समय यहां सुन्नियोंकी तूती बोलती थी। फिरिश्ता सिया थे, इस कारण उन्नतिकी कोई आशा न देख वे बीजापुरकी ओर अग्रसर हुए।

१५८६ ई० में बीजापुर पहुंचने पर राजमन्त्री दिला-वर खांने उनका यथेष्ट आदर किया और उन्हींके अनुग्रहसे ये बीजापुरराज इब्राहिम आदिलशाहके निकट परिचित हुए। १५६२ ई०में अहमदनगरके युद्धमें इन्होंने बीजापुर की ओरसे सैन्य-चालना की थी। उस युद्धमें ये जामल खाँसे आहत और बन्दी हुए। अखिर बीजापुर भाग कर उन्होंने आत्मरक्षा की। इसके बाद इब्राहिम शाहने इन्हें एक इतिहास लिखनेका अनु-रोध किया और अन्यान्य लेखकोंकी तरह उन्हें भी आरोपित अंश बाद दे कर प्रकृत घटनाका अवलम्बन करनेका हुकुम मिला। १५६४ ई०में ये बेगम सुलतानके विवाहमें उपस्थित थे और उन्हें साथ ले कर सुलताना बुर्हानपुर अपने स्वामीके घर आई। १५६६ ई०में उनका बीजापुर-राजइतिहास समाप्त हुआ। १६०५ ई० में सम्राट् अकबर शाहकी मृत्यु पर शोक प्रकाश करने और सान्त्वना देनेके लिये बीजापुरराजने उन्हें दिल्ली भेजा। १६०६ ई०को लाहोरमें जहाङ्गीरके साथ इनकी भेंट हुई। लौटते समय ये बदकशान, रोहतस आदि स्थानोंमें परिभ्रमण कर अपने इतिहासके उपकरण संग्रह कर लाये। उनकी मृत्यु कब हुई, ठीक ठीक मालूम नहीं। पहले उन्होंने उस पुस्तकका गुल-शन-इ-इब्राहिमी वा नौरसनामा नामसे प्रचार किया। जनसाधारणके निकट वह ग्रन्थ तारिख-इ-इब्राहिमी वा तारिख-इ-फिरिस्ता नामसे मशहूर है। पुस्तककी उपक्रमणिकामें उन्होंने हिन्दू और भारतमें मुसलमान-आगमन लिपिबद्ध किया है। पीछे पर्यायक्रमसे लाहोर, गजनी, दिल्ली और दाक्षिणात्यके मुसलमानराजवंश (कुलबर्गा, बीजापुर, अहमदनगर, तैलङ्ग, बेराहर, बिदार) गुजरात, मूलतान, मालव, खान्देश, वङ्गाल और बिहार, सिन्धु और काश्मीर राजवंशका इतिहास प्रकाशित किया तथा शेष दो खण्डोंमें उन्होंने मलबार और भारतीय साधुओंकी जीवनी लिखी है। उप-संहार-भागमें भारतवर्षका प्राकृतिक और भौगोलिक विवरण लिपिबद्ध किया गया है।

फिरिहरा (हिं० पु०) एक प्रकारका पक्षी। इसकी छाती लाल और पीठ काले रंगको होती है।

फिरिहरी (हिं० स्त्री०) बच्चोंका एक खिलौना जिसे फिरकी भी कहते हैं।

फिरोज—आगरा-वासी एक विख्यात सुफी पण्डित। इन्होंने

१६२६ ई०में 'अकासद सुफिया' नामक पारसी भाषामें ईश्वरतत्त्वके सम्बन्धमें एक पुस्तक लिखी है।

फिरोजपुर—पञ्जाव प्रदेशके आन्तर्गत जालन्धर विभागका एक जिला। यह अक्षा० २६° ५५' से ३१° ६' पू० और देशा० ७३° ५२' से ७५° २६' पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ४३०२ वर्गमील है। शतद्रु और वितस्ता नदी आपसमें मिल कर जिलेके मध्यसे वह गई है। इसके दक्षिण-पश्चिम और दक्षिणमें वहवलपुर तथा वीकानेर राज्य और पूर्वमें लुधियाना जिला है।

जिलेमें जगह जगह अनेक अट्टालिकाओं और कूपोंका भग्नावशेष देखनेमें आता है। इन सवसे प्रतीत होता है, कि एक समय इस जनहीन प्रदेशमें भी लोगोंका अधिक संख्यामें वास था। शुष्कप्राय खालके समीपवर्त्ती (अभी जिसे जनमानवशून्य मरुभूमि कहनेमें भी कोई अत्युक्ति नहीं) भूभागमें आज भी उस प्रकारके अनेक निदर्शन पाये जाते हैं। किस समय इस जनपदकी समृद्धिका ह्रास हुआ था, उसका कोई निश्चय नहीं है। किन्तु आईन-इ-अकवरी पढ़नेसे मालूम होता है, कि सम्राट् अकवरशाहके समय शतद्रु नदी फिरोजपुर नगरके पूर्व ओर वहती थी। नदीके गतिवर्त्तनसे जलाभाव होने तथा १६वीं शताब्दीके शेषमें घोरतर युद्धके कारण यह स्थान जनशून्य हो गया है। प्रायः दो शताब्दी तक यह स्थान मरुभूमि-सा पड़ा रहा। पीछे दोग्रो जातीय राजपूत लोग भट्टियोंको खदेर कर पाकपत्तनके निकट वस गये। धीरे धीरे शतद्रु उपत्यका पार कर उन्होंने १७४० ई०में फिरोजपुर नगरमें ही राजधानी वसाई। इस प्रदेशमें काफी आमदनी न रहनेके कारण मुगल-सम्राट्ने इस पर हस्तक्षेप नहीं किया। परन्तु शतद्रुके पश्चिमवर्त्ती कसुर नगरमें उनका एक फौजदार था जो लक्का जंगलकी देख रेख करता था।

१७६३ ई०में गुजर सिंहके अधीन भङ्गिमिसलोंके सिखोंने फिरोजपुर पर अधिकार किया। पीछे वह स्थान गुजरके भतीजे गुरुवक्स सिंहके हाथ लगा। इस नवीन सरदारने यहां एक दुर्ग वनवाया था। १७६२ ई०में उनके द्वितीय पुत्र धन्यसिंह यहांके शासनकर्त्ता हुए। १८१८ ई०में उनकी मृत्यु होनेसे उनकी पत्नी राज्यकी सर्वमयी कर्त्रीरूपमें राजकार्यकी पर्यालोचना करने लगी। रानीके परलोकगत होने पर वृटिश-सरकारने अपने हाथ कार्यभार ग्रहण किया और सर हेनरी लारेन्स यहां रहने लगे।

१८४५ ई०का प्रथम सिख-युद्ध (रुड़की, फिरोजशहर, अलिवाल और सोव्राउन नामक स्थानके कुछ युद्ध) इसी जिलेमें हुआ था। १८५७ ई०के गदरमें अंगरेजोंको यहां भी अनेक कष्ट भुगतने पड़े थे।

इस जिलेमें ८ शहर और १५०३ ग्राम लगते हैं। जनसंख्या दश लाखके करीव है जिनमेंसे सैकड़े पीछे ४७ मुसलमान, २६ हिन्दू और शेष २४ सिख हैं। यहांकी भाषा पंजावी है। गेहूं, चना, जुनहरी जिलेकी प्रधान उपज है। गेहूं तथा धान वहुत कम उपजता है। जो सव अनाज यहां उपजता है उसकी रफतनी लुधियाना, अमृतसर, वहवलपुर, लाहोर, जालन्धर, हिसार, होशियारपुर आदि स्थानोंमें होती है तथा आमदनोमें चीनी, रुई, शीशम, धातु, नील, तमाकू, नमक, धान और मसाला प्रधान है। फिरोजपुर शहर वाणिज्यका एक प्रधान केन्द्र है। १७५६-६० और १७८३-४ ई०में यहां घोर अकाल पड़ा था। उस समय गेहूं रुपयेमें सवा सेर मिलता था। अलावा इसके यहां और कई वार दुर्भिक्षका प्रकोप देखा गया है।

डिप्टी कलकूर छह सहकारी कमिश्नर द्वारा शासनकार्य चलाते हैं। इसकी सुविधाके लिये जिला पांच तहसीलोंमें विभक्त है यथा—फिरोजपुर, जीरा, मोगा, मुकासर और फाजिलका। एक एक तहसीलदार और नायव तहसीलदारके अधीन है। इस प्रदेशके अठाईस जिलोंमेंसे फिरोजपुर जिला विद्याशिक्षामें चौदहवां है। सैकड़े पीछे ४ मनुष्य लिख पढ़ सकते हैं। अभी जिले भरमें १० सेकण्ड्री, २०० प्राइमरी, १०० एलिमेण्ड्री स्कूल और एक एङ्गलो-वर्नाक्युलर हाई स्कूल है जिसका खर्च म्युनिसपलिटीकी ओरसे दिया जाता है। अलावा इसके दो और अप्राप्त साहाय्य हाई स्कूल हैं, एक हर भगवान् दास मेमोरियल हाई-स्कूल फिरोजपुर शहरमें और दूसरा 'देवधर्म हाई-स्कूल' मोगामें। स्कूलके अलावा यहां सरकारी अस्पताल भी है।

२ उक्त जिलेकी एक तहसील। यह अक्षा० ३०°४४´ से ३१° ७´ उ० और देशा० ७४° २५´ से ७४° ५७´ पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ४८६ वर्गमील और जनसंख्या प्रायः १६५८५१ है। इसके उत्तर-पश्चिममें शतद्रु नदी बहती है जो तहसीलके लाहोर जिलेसे पृथक् करती है, इसमें फिरोजपुर और मुदकी नामके २ शहर और ३२० ग्राम लगते हैं। आय दो लाखसे ऊपर है। युद्धस्थान फिरोजशाह इसी तहसीलके अन्तर्गत है।

३ उक्त तहसीलका एक प्रधान शहर। यह अक्षा० ३०° ५४´ उ० और देशा० ७४° ३७´ पू० शतद्रुके पुरातन किनारे अवस्थित है। यह रेलगाड़ीके द्वारा बम्बईसे १०८०, कराचीसे ७८८ और कलकत्तेसे ११६४ मील दूर पड़ता है। जनसंख्या पचास हजारके लगभग है। मुसलमान और हिन्दूकी संख्या करीब करीब बराबर है। लोगोंका विश्वास है, कि दिल्लीश्वर फिरोजशाहने (१३५१-१३५७) इस नगरको बसाया। सरदार लक्ष्मणकुंवरकी मृत्युके बाद वृटिश-गवर्मेण्टने इसे १३२५ ई०में अपने साम्राज्य-भुक्त किया। अंगरेजोंके हाथ आनेसे अर्थात् १८३५-५१ ई०के मध्य व्यवसाय-वाणिज्यमें यह शहर विशेष समृद्धिशाली हो उठा था। १८४५-४६ ई०में शतद्रु-युद्धमें जो अंगरेजी सेना मारी गई थी, उनकी स्मृतिमें एक गिरजा बनाया गया था जिसे गदरके समय उद्धत सिपाही-दलने तहस नहस कर डाला।

नगरसे एक कोस दक्षिण सेना-निवास है। इसके अर्सेनल वा अस्त्रागारमें प्रचुर युद्धोपकरण रखे हुए हैं। पंजाब भरमें ऐसा और कहीं भी नहीं है। १८६७ ई०में म्युनिस्पलिटी स्थापित हुई है। शहरमें दो ऐङ्गलो वर्नाक्युलर हाई-स्कूल, एक एङ्गलो-वर्नाक्युलर मिडिल स्कूल और एक सरकारी अस्पताल है।

फिरोजपुर—पञ्जावके गुरुगाँव जिलेकी एक तहसील। यह अक्षा० २७° २६´ से २०° १३´ उ० और देशा० ७६° ५३´ से ७७° २०´ पू०के मध्य अवस्थित है। जनसंख्या डेढ़ लाखके करीब है। इसमें १ शहर और २३० ग्राम लगते हैं। भूपरिमाण ३१७ वर्गमील है।

२ उक्त गुरुगाँव जिलेका प्रधान नगर और फिरोजपुर तहसीलका सदर। इसका दूसरा नाम फिरोजपुर-झिरका भी है। यह अक्षा० २७° ४६´ ३०´´ उ० और देशा० ७६° ५६´ ३०´´ पू०के मध्य अवस्थित है। सम्राट् फिरोजशाहने निकटवर्त्ती पार्वतीय जातिका दमन करनेके लिये इस नगरको दुर्गसे सुरक्षित कर दिया था। १८०३ ई०में अंगरेजराजने इस स्थानको हस्तगत कर अहमद-बक्स खाँको जागीर स्वरूप प्रदान किया। उनके पुत्र नवाब सामसुद्दीन खाँ दिल्लीके कमिश्नर फ्रेजर साहबकी हत्याके अपराधमें १८३६ ई०को अंगरेजोंसे मार डाले गये। तभीसे यह नगर उक्त तहसीलका सदर चला आ रहा है।

फिरोजमुल्ला—बम्बईवासी कदीमी पारसियोंका प्रधान धर्मयाजक। ये काउसके पुत्र थे। इन्होंने पुर्त्तगीज आगमनसे ले कर १८१७ ई०में अंगरेजी अधिकार पर्यन्त समस्त घटनाओंका उल्लेख कर 'जार्जनामा' नामक एक ग्रन्थकी रचना की।

फिरोजशाह—दिल्लीश्वर सलीमशाह सूरके एकलौते। पिताकी मृत्युके बाद बारह वर्षके बालक दिल्लीके सिंहासन पर बैठे। किन्तु तीन मास भी राज्य करने न पाया था, कि उनके मामा मुबारिक खाँने बड़ी निष्ठुरतासे उनकी हत्या (१५५४ ई०में) की और स्वयं मुहम्मदशाह आदिल नाम धारण कर दिल्लीकी मसनद पर बैठे।

फिरोजशाह—पञ्जाबके फिरोजाबाद तहसील और जिलेका एक प्रसिद्ध युद्धस्थल। सिख-युद्धके लिये यह स्थान बहुत मशहूर है। १८४५ ई०के दिसम्बर मासमें सर ह्यु गफ और हेनरी हार्डिञ्जने सिखसेनाओं पर आक्रमण किया। दो तीन भीषण युद्धके बाद सिख लोग भाग जानेको बाध्य हुए। युद्धके समय सिखोंने जो दुर्ग-खाई बनवाई थी, उसका बिलकुल लोप हो गया। केवल मृत सेनापतियोंकी स्मृतिके लिये जो स्तम्भ खड़ा किया गया था, वही विद्यमान है। इस स्थानका आदि नाम फरुखशहर है। ऐतिहासिक घटनाके लिये इसका फिरोजशाह नाम पड़ा है।

फिरोजशाह—दिल्लीके शेष मुगलसम्राट् २य बहादुरशाहके पुत्र। १८५७ ई०के गदरमें उन्होंने असीम उत्साहसे विद्रोहीदलका नेतृत्व किया था। युद्धके बाद अंगरेजोंके भयसे वे अरबदेश जान ले कर भागे। वहाँ

भिक्षावृत्ति द्वारा उन्होंने जीवनयापन किया था।

फिरोजशाह पूरवी—एक हवसी सरदार। इसका पहला नाम मालिक आन्दिल था। १४९१ ई०में खोजा सुलतान शाहजादाको मार कर ये फिरोज नामसे वङ्गालके सिंहासन पर बैठे। इन्होंने पुत्रकी तरह हिन्दू मुसलमान प्रजामात्रका ही पालन किया था। गौड़नगर (लक्ष्मणावती) का पुनः संस्कार उनकी एक गौरव कीर्त्ति है। १४१४ ई०में उनकी मृत्यु हुई।

फिरोजशाह वाह्मनी सुलतान—दाक्षिणात्यके एक मुसलमान राजा, सुलतान दाऊदके पुत्र। वाह्मनीराज सुलतान समसुद्दीनको राज्यच्युत और काराबद्ध करके ये १३६७ ई०में सुलतान फिरोजशाह रोज्अफज्जुन नाम धारण कर सिंहासन पर अधिरूढ़ हुए। इनके प्रभावसे वाह्मनीराजवंश उन्नतिकी चरम सीमा तक पहुंच गया था। सिंहासन पर बैठते ही इन्होंने अपने भाई अहमद खाँको (खानखाना) अमीर-उल उमरावके पद पर नियुक्त किया और निज उपदेश-दाता मीर फैजुल्लाको 'मालिक नायब' उपाधिसे भूषित कर वजीर-उस् सुलतानतका कार्यभार सौंपा। अपने भाई अहमदको वाह्मनी-सिंहासन देनेके १० दिन वाद ही १४२२ ई०में वे मृत्यु मुखमें पतित हुए।

फिरोजशाह तुगलक सुलतान—दिल्लीके पठानवंशीय अधिपति। सुलतान गयासुद्दीन तुगलकके भाई सिपासलारके औरस और दिवालपुरपति रणमल्लभट्टिकी कन्या (सुलताना वीवी कदवानू) के गर्भसे ७०६ हिजरीमें इनका जन्म हुआ था। ७ वर्षकी अवस्थामें इनके पिताकी मृत्यु हुई। अनाथा राजकन्याको अपने एकमात्र पुत्रको पढ़ानेकी वड़ी फिक्र हुई। तुगलकशाहको वालक पर वड़ा तरस आया और वे निज पुत्रवत् उसका लालन पालन करने लगे। तुगलककी कृपासे उन्होंने राजकीय सभी शिक्षा पा ली। १४ वर्षकी उमरमें वे उन्हींके अनुग्रहसे ४ वर्ष तक राज्यके समस्त स्थानोंमें परिभ्रमण करते रहे। जव वे १८ वर्षके हुए, तव महम्मदशाह दिल्लीके सिंहासन पर बैठे। दो राजाका राज्यशासन देख कर उन्हें वहुत कुछ ज्ञान हो गया था। महम्मदने उन्हें १२ हजार अश्वारोही सेनाका अध्यक्ष और नायव-इ-अमीर हाजिव (Deputy of the Lord chamberlain)-की उपाधि दी। फिरोज राजकार्यमें उन्हें हमेशा सलाह दिया करते थे। महम्मदने दिल्ली प्रदेशको चार भागोंमें विभक्त कर एक भागका शासन-भार फिरोजशाहके ऊपर सौंपा था। महम्मदशाहके अधीन राजकीय शिक्षामें इनमें ४५ वर्ष वीत गये।

१३५१ ई०को ठट्टनगरमें महम्मदकी मृत्यु हुई। राज-अमात्यों और कर्मचारियोंके अनुरोध तथा सम्मतिसे फिरोज ही राजा वनाये गये। किन्तु पीछे राजकीय-परिचालनमें कोई त्रुटी न हो जाय, इसकी उन्हें भारी चिन्ता हुई। ईश्वरमें उनकी अचला भक्ति थी। उसी धर्मके वलसे वे भविष्यमें दया और दाक्षिण्यके साथ प्रजापालन करनेमें समर्थ हुए थे। महम्मदकी मृत्युके लिये परिधृत शोक-परिच्छदके ऊपर ही उन्हें राज-परिच्छद धारण करना पड़ा, क्योंकि वे किसी हालतसे शोक-परिच्छद त्याग करनेमें राजी न हुए। हाथीकी पीठ पर सवार हो वे राजान्तःपुरमें गये और खोदावन्दजादा महम्मदकी वहन)-के सामने जा कर शोकाभिभूत हो पड़े। उस रमणीने उनके सरल स्वभाव पर मोहित हो अपने हाथसे सुलतान तुगलकका मुकुट उन्हें पहना दिया।

महम्मदके मृत्युकालमें मुगलोंने भारत पर आक्रमण किया और इसे लूटा भी था। विना राजाके राज्य-रक्षा करना दुरूह समझ कर उमरावोंने फिरोजशाहको राज-सिंहासन प्रदान किया। मुगल लोग फिरोजके हाथसे पराजित हो नौ दो ग्यारह हुए। इस समय दिल्लीमें झूठी खवर फैला, कि फिरोजशाह मुगलोंसे वन्दी और हत हुए। सुतरां दुःखसे अभिभूत हो खाजाजहान्ने महम्मदके पुत्रको राजसिंहासन पर विठाया। जव उन्होंने सुना, कि फिरोज जीवित हैं, तव वे इस विषम भ्रमकी चिन्ता करने लगे। उनका यह भ्रम दूसरा शायद ही समझेगा, यह सोच कर उन्होंने आत्मरक्षाके लिये २० हजार अश्वारोही संग्रह किया। फिरोज यह संवाद पाते ही दिल्लीको दौड़ पड़े। पीछे कुल रहस्य मालूम हो जाने पर एक दूसरेके गले मिले।

राजपद पर अधिष्ठित हो फिरोजशाहने वहुतसे नये नये कानून निकाले। इससे प्रजावर्गका दुःख वहुत कुछ

जाता रहा। पूर्ववर्त्ती राजाओंकी तरह वे अयथा कर वसूल नहीं करते थे। उन्होंने नियम चलाया, कि जो किसीसे अधिक कर वसूल करेगा उसे उचित दण्ड मिलेगा और राजाके आवश्यकीय सभी द्रव्य उपयुक्त मूल्यमें खरीदा जायगा।

उन्होंने दलवलके साथ लक्ष्मणावती, जाजनगर और नगरकोटको ओर अभियान किया। वङ्गपति शमसुद्दीन् उनसे पराजित हुए। पीछे लाखसे ऊपर वङ्गवासी इस युद्धमें खेत रहे। उन्होंने दो वार वङ्गमें और कई वार सिन्धु, गुजरात, कांगड़ा आदि प्रदेशोंमें युद्ध किया था।

१३८७ ई०में उन्होंने अपने पुत्र नासिरउद्दीन महम्मदको सिंहासन दे कर फुरसत पाई। किन्तु युवराजका राज-कार्यमें जरा भी ध्यान न था। रात दिन वे आमोद-प्रमोदमें मत्त रहते थे, इस कारण वे पुनः राज्य-परिचालन-भार ग्रहण करनेको वाध्य हुए। युवराजने विताड़ित हो कर शिरमूरके पार्वत्य प्रदेशमें जा आश्रय लिया।

फिरोजकी वनाई हुई अनेक अट्टालिकाएँ, नहरें और दुर्गादि आज भी देखनेमें आते हैं। वहुत दिन सुशासन से राज्य करके वे ७९० हिजरीमें (१३८८ ई०में) परलोक सिधार गये। पुरानी दिल्लीके समीप यमुनाके किनारे उनके वनाये हुए 'हौज खासमें' उनकी समाधि हुई। मृत्युके वाद पौत्र गयासुद्दीन् राज-सिंहासन पर वैठे। उनके समय लक्ष्मणावती, पाण्डुआ (फिरोजावाद), सोनारगाँव आदि स्थानोंमें टकसाल खोली गई। उन्होंने स्वयं जो सव युद्ध किये थे, उन्हें वे स्वरचित 'फतुहत फिरोजशाही' नामक ग्रन्थमें लिख गये हैं। (१)

फिरोजशाह सुलतान—खिलजी वंशीय प्रथम दिल्लीश्वर कायेम खाँके पुत्र। ये सुलतान मुइ-जुद्दीन कैकोवादकी हत्या कर ६८८ हिजरी (१२८२ ई० में) में दिल्लीके सिंहासन पर वैठे। इनका दूसरा नाम जलालउद्दीन था। इनके शासनकालके आठवें वर्ष इलाहावादके शासनकर्त्ता उनके भतीजे और जमाई अलाउद्दीन वागी हो गये। फिरोजने उन्हें शास्ति देनेके लिये कड़ा-माणिकपुरकी ओर यात्रा कर दी। अलाउद्दीन दलवल समेत गंगाके दूसरे किनारे भाग गये और वहीं छावनी डाली। फिरोजशाहके उपस्थित होने पर वे अपने अनुचरोंके साथ नदीके किनारे आये और चचाके पैरों पर गिर कर क्षमा-प्रार्थना की। फिरोजशाहको वड़ी दया आई, उन्होंने अपराध क्षमा कर उन्हें प्रेम-पूर्वक आलिङ्गन किया। इसी समय इशारा पा कर अलाउद्दीनके अनुचर जो कुछ दूर ही खड़े थे आये और दिल्लीश्वरके प्राण ले लिये। अलाउद्दीन चचाके छिन्न मुण्डको वरछेमें गांथ कर नगर ले गये। १७२६ ई०में यह घटना घटी। इसके वाद अलाउद्दीन दिल्ली गये और सिकन्दर-सनी नाम धारण कर सिंहासन पर अधिरूढ़ हुए। खिजिरावादसे ले कर सफिदून पर्यन्त एक विस्तृत नहर उन्हींके यत्नसे खोदवाई गई थी।

फिरोजावाद—१ युक्तप्रदेशके आगरा जिलेकी एक तहसील। यह अक्षा० २६°५१' से २७°२२' उ० और देशा० ७८°११' से ७८°३२' पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण २०३ वर्गमील और जनसंख्या लाखसे ऊपर है। इसमें फिरोजावाद नामका १ शहर और १८६ ग्राम लगते हैं। राजस्व तीन लाख रुपयेके लगभग है। तहसील यमुनाके उत्तर पड़ती है।

२ उक्त तहसीलका एक शहर। यह अक्षा० २७°६' उ० और देशा० ७८°२३' पू० आगरासे मैनपुर जानेके रास्ते पर अवस्थित है। जनसंख्या प्रायः १६८४६ है। यह शहर वहुत प्राचीन है। कहते हैं, कि यहांके अधिवासियोंने टोडरमलका भारी अपमान किया था। इस पर अकवर वड़े विगड़े और उन्होंने मालिक फिरोजको नगर-ध्वंस करनेका हुकुम दिया। अज्ञा पाते ही फिरोजने नगरको ऐसा उजाड़ डाला कि आज तक वह सुधरने नहीं पाया है। यहां वड़ी वड़ी अट्टालिकाओंका ध्वंसावशेष देखनेमें आता है। यही इसके पूर्व गौरवका निदर्शनस्वरूप है। चिकित्सालयके अलावा शहरमें एक पुरानी मसजिद और अनेक मन्दिर हैं।

फिरोजावाद—अयोध्याप्रदेशके खेरी जिलान्तर्गत एक परगना। यह चौका, कौरियाला और दहवार इन तीन नदियोंसे घिरा सम्राट् है। फिरोजशाह यहां प्रायः

(१) तारिख-इ-फिरोजशाही नामक इतिहास-ग्रन्थमें विस्तृत विवरण लिखा है।

शिकारमें आया करते थे। इसी कारण उन्हींके नाम पर इसका नामकरण हुआ है। पहले यह बिसेन जातिके अधिकारमें था। पीछे अंग्रेजगणने उपर्युपरि युद्धके बाद उन्हें मार भगाया। १७७६ ई०में अंग्रेजराजके पराजित और मृत होने पर उनका राज्य छीन लिया गया। १७६२- ई०में भरण पोषणके लिये उनके वंशधरने निष्कर ग्राम पाये। यही अभी ईशानगर सामन्त राज्य कहलाता है। इसके उत्तर राइकवाड़ सामान्तराज्य पड़ता है।

फिकौ (हिं० पु०) फिरवा देखो।

फिलौर—पञ्जाव प्रदेशके जालन्धर जिलेकी तहसील। यह अक्षा० ३०°५७' से ३१° १३' उ० और देशा० ७५° ३१' से ७५°५०' पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण २६१ वर्ग-मील और जनसंख्या दो लाखके करीब है। इसमें फिलौर, नूरमहल और जनदियाल नामके ३ शहर और २२२ ग्राम लगते हैं। शतद्रु नदी तहसीलकी उत्तरी सीमामें बहती है।

२ उक्त तहसीलका एक प्रधान शहर। यह अक्षा० ३१° १' उ० और देशा० ७५° ४८' पू० शतद्रु नदीके उत्तरी किनारे अवस्थित है। जनसंख्या प्रायः ६६८६ है। पहले यह नगर समृद्धिसम्पन्न था। आईन-इ-अकबरी पढनेसे मालूम होता है, कि वैराम खाँने इसके निकटवर्त्ती स्थानमें युद्ध किया था। इसके बाद यह नगर ध्वंसाव-शेषमें परिणत हुआ। सम्राट् शाहजहान्‌ने दिल्लीसे लाहोर जानेके समय यहांके ध्वंसावशेषसे एक विश्राम-भवन (सराय) बनाना चाहा। क्रमशः उन्हींके उद्यमसे नगरकी श्रीवृद्धि हुई थी। सिख-प्रभावकालमें यह नगर सुधासिंहके हाथ लगा। उन्होंने यहां राजधानी बसाई। १८०७ ई०में रणजित्‌ने इस स्थान पर अधिकार जमाया। उक्त महावीरने शतद्रु मुखकी रक्षा करनेके लिये उस सरायको दुर्गरूपमें परिवर्त्तित किया। अङ्गरेजोंके अधि-कारमें आनेसे यहां कमान, गोला, बारूद आदि रखी जाने लगीं। १८५७ ई०के गदरमें विद्रोहियोंने इस पर अधिकार किया था। १८६१ ई०में यहां एक किला बनाया गया जिसमें अभी पुलिस-ट्रेनिंग स्कूल लगता है। १८६७ ई०में म्युनिस्पलिटी स्थापित हुई। शहरमें एक म्युनिसिपल एङ्गलोवर्नाक्युलर मिडिल स्कूल और एक सरकारी अस्पताल है।

फिल्ली (हिं० स्त्री०) १ लोहेकी छड़का एक टुकड़ा जो जुलाहोंके करघेमें तूरमें लगाया जाता है। २ पिंडली देखो।

फिश् (हिं० अव्य०) घृणासूचक अव्यय, धिक्, फिट्।

फिस (हिं० वि०) कुछ नहीं। जब कोई आदमी बड़े ठाटबाटसे कोई काम करने चलता है और उससे नहीं हो सकता तब तिरस्कार रूपमें यह शब्द कहा जाता है।

फिसड्डी (हिं० वि०) १ जो काममें पीछे रहे, जो किसी बातमें बढ़ न सके। २ जो काम हाथमें ले कर उसे पूरा न कर सके, जिसका कुछ किया न हो।

फिसफिसाना (हिं० क्रि०) १ फिस होना। २ शिथिल होना, ढीला पड़ना।

फिसलन (हिं० स्त्री०) १ फिसलनेकी क्रिया या भाव, रपटन। २ चिकनी जगह जहां पड़नेसे कोई वस्तु न ठहरे, सरक जाय।

फिसलना (हिं० क्रि०) १ चिकनाहट और गीलेपनके कारण पैर आदिका न जमना। २ प्रवृत्त होना, झुकना।

फिसलाना (हिं० क्रि०) किसीको ऐसा करना कि वह फिसल जाय।

फिहरिश्त (फा० स्त्री०) सूची, बीजक।

फी (अ० अव्य०) प्रति एक, हर एक।

फीका (हिं० वि०) १ नीरस, स्वादहीन। २ जो चटकीला न हो, मलिन। ३ प्रभावहीन, व्यर्थ। ४ कान्तिहीन, विना तेजका।

फीता (हिं० पु०) १ नेवारकी पतली धज्जी, सूत आदि जो किसी वस्तुको लपेटने या बांधनेके काममें आता है। २ पतला किनारा या कोर।

फीफरी (हिं० स्त्री०) फेफरी देखो।

फीरनी (फा० स्त्री०) एक प्रकारकी खीर जो दूधमें चावल-का बारीक आटा पका कर बनाई जाती है। इसे मुसल-मान अधिक खाते हैं।

फीरोजा (फा० पु०) एक प्रकारका नग या बहुमूल्य पत्थर। यह हरापन लिए नीले रंगका होता है। इसमें अलमीनियम फासफेट और कुछ लोहे तथा तांबेका भाग रहता है। उत्कृष्ट फीरोजा फारसकी पहाड़ियोंमें पाया जाता है। वहांसे पहले यह रूम और तब यूरोप जाता है। अमेरिकासे भी फिरोजा बहुत आता है। उसकी

गिनती रत्नोंमें है। लोग इसे आभूषणोंमें जड़ते हैं। कम दामके पत्थर पच्चीकारीमें भी काम आते हैं। वैद्यलोग इसका व्यवहार औषधके रूपमें भी करते हैं। यह कसैला, मीठा और दीपन कहा गया है।

फीरोजी (फा० वि०) फीरोजेके रंगका, हरापन लिये नीला। इस रंगमें रंगाते समय पहले कपड़ेको तूतियेके पानीमें रंगते हैं, फिर तूतियेसे चौगुना चूना मिले पानीमें उसे बोर देते हैं और तब पानीमें निथारते हैं। इस प्रकार तीन बार करते हैं।

फील (फा० पु०) हाथी।

फीलखाना (फा० पु०) हस्तिशाला, हथिसार।

फीलपा (फा० पु०) एक प्रकारका रोग इसमें पैर फूल कर हाथीके पैरकी तरह हो जाता है। यह रोग शरीरके दूसरे अंगों पर भी आक्रमण करता है।

फीलपाया (फा० पु०) १ ईंटेका बना हुआ मोटा खंभा जिस पर छत ठहराई जाती है। २ फीलपा देखो।

फीलवान (फा० पु०) हाथीवान।

फीली (हिं० स्त्री०) घुटनेके नीचे एड़ी तकका भाग, पिंडली।

फील्ड (अं० पु०) १ मैदान, खेत। २ गेंद खेलनेका मैदान।

फीस (अं० स्त्री०) १ शुल्क, कर। २ मेहनताना, उजरत।

फुंकना (हिं० क्रि०) १ जलना, भस्म होना। २ मुंहकी हवा भर कर निकाला जाना। ३ नष्ट होना, बरबाद होना। (पु०) ४ बांस, पीतल आदिकी नली। इसमें मुंहकी हवा भर कर आग पर छोड़ते हैं, फुंकनी। ५ प्राणियोंके शरीरका मूत्र रहनेका अवयव। यह पेड़ूके पास होता है।

फुंकनी (हिं० स्त्री०) १ बांस, पीतल आदिकी नली। इसमें मुंहकी हवा भर कर आगको दहकानेके लिये उस पर छोड़ते हैं। २ भाथी।

फुंकरना (हिं० क्रि०) फूत्कार छोड़ना, मुंहसे हवा छोड़ना।

फुंकवाना (हिं० क्रि०) १ फूंकनेका काम किसी दूसरेसे कराना। २ मुंहसे हवाका झोंका निकलवाना। ३ भस्म करवाना, जलवाना।

फुंकाना (हिं० क्रि०) फूंकनेका काम कराना।

फुंकार (हिं० पु०) सांप बैल आदिके मुंह या नाकके नथनोंसे बलपूर्वक वायुके बाहर निकलनेसे उत्पन्न शब्द, फूत्कार।

फुंदना (हिं० पु०) १ फूलके आकारकी गांठ। बंद, इजारबंद चोटी बांधने या धोती कसनेकी डोरी, झालर आदिके छोर पर शोभाके लिये इसे बनाते हैं। इसे फुलरा और झब्बा भी कहते हैं। २ वह गांठ जो कोड़ेकी डोरीके छोर पर रहती है। ३ वह गांठ जो तराजूकी डंडीके बीचकी रस्सीमें दी जाती है।

फुंदी (हिं० स्त्री०) फंदा, गांठ।

फुंसी (हिं० स्त्री०) छोटी फोड़िया।

फुआरा (हिं० पु०) फुहारा देखो।

फु (सं० पु०) फल-कु। १ मन्त्रोच्चारणपूर्वक फुत्कार। २ तुच्छ वाक्य।

फुक (सं० पु०) फुना अस्पष्टवाक्येन कायति शब्दायते इति फु-कै-क। पक्षी।

फुकना (हिं० क्रि०) फुंकना देखो।

फुकाना (हिं० क्रि०) फुंकाना देखो।

फुक्री—चट्टग्रामके पार्वत्य जातिका पुरोहित। ये लोग प्रायः बालकोंको लिखाना पढ़ाना सीखलाते हैं।

फुचड़ा (हिं० पु०) वह सूत या रेशा जो कपड़े, दरी कालीन, चटाई आदि बुनी हुई वस्तुओंसे बाहर निकला रहता है।

फुट (सं० पु०) स्फुटतीति स्फुट-क, पृषोदरादित्वात् साधुः। सर्प-फणा, सांपका फन।

फुट (हिं वि०) १ अयुग्म, जिसका जोड़ा न हो। २ जिसका संबंध किसी काम या परम्परासे न हो पृथक्।

फुट (अं० पु०) आयत-विस्तारका एक अंगरेजी मान जो १२ इंच या ३६ जौके बराबर होता है।

फुटकर (हिं० वि०) १ अयुग्म, जिसका जोड़ा न हो। २ भिन्न, भिन्न, कई प्रकारका। ३ थोड़ा थोड़ा, इकट्ठा नहीं। ४ जिसका सम्बन्ध किसी काम या परम्पराके साथ न हो, जिसका कोई सिलसिला न हो।

फुटकल (हिं० वि०) फुटकर देखो।

फुटका (हिं० पु०) १ फफोला, आवला। २ धान, मकै, ज्वार आदिका लावा। ३ गन्नेका रस पकानेका लोहेका बड़ा कड़ाह।

फुटकी (हिं० स्त्री०) १ एक प्रकारकी छोटी चिड़िया, फुदकी। २ किसी वस्तुके छोटे लच्छे या जमे हुए कण जो पानी, दूध आदिमें अलग अलग दिखाई पड़ते हैं, वहुत छोटी अंठी। ३ खून, पीव आदिका छींटा जो किसी वस्तुमें दिखाई दे।

फुटनोट (अं० स्त्री०) वह टिप्पणी जो किसी लेख या पुस्तकके पृष्ठमें नीचेकी ओर दी जाती है।

फुटपाथ (अं० पु०) १ पगडंडी। २ शहरोंमें सड़ककी पटरी परका वह मार्ग जिस पर मनुष्य पैदल चलते हैं।

फुटबाल (अं० पु० वड़ा गेंद जिसे पैरकी ठोकरसे उछाल कर खेलते हैं।

फुटेहरा (हिं० पु०) १ मटर वा चनेका दाना जो भूननेसे ऐसा खिल गया हो, कि छिलका फट गया हो। २ चनेका भुना हुआ चवन।

फुटैल (हिं० वि०) फुट्टैल देखो।

फुट्ट (हिं० वि०) फुट देखो।

फुट्टक (सं० क्ली०) वस्त्रविशेष।

फुट्टैल (हिं० वि०) १ झुण्ड या समूहसे अलग, अकेला रहनेवाला। २ जिसका जोड़ न हो, जो जोड़ेसे अलग हो। ३ अभागा, फूटे भाग्यका।

फुत् (सं० अव्य) १ अनुकरण शब्द। २ तुच्छ भाषण।

फुत्कर (सं० पु०) फुदित्यव्यक्तशब्दं करोतीति कृ-ट। अग्नि।

फुत्कार (सं० पु०) कृ-भावे- घञ्, फुत् इत्यव्यक्तशब्दस्य करणं। मुंहसे हवा छोड़नेका शब्द, फूंक। होमाग्नि यदि बुझ जाय, तो उसे फुत्कार द्वारा वाल कर पुनः होम नहीं करना चाहिये। (तिथितत्त्व)

फुत्कृति (सं० स्त्री०) फुदित्यव्यक्तशब्दस्य कृतिः करणं। फुत्कार।

फुदकना (हिं० क्रि०) १ उछल उछल कर कूदना। २ उमंगमें आना, फुले न समाना।

फुदकी (हिं० स्त्री०) १ छोटी चिड़िया जो उछल उछल कर कूदती हुई चलती है।

फुनंग (हिं० स्त्री०) वृक्ष वा शाखाका अग्र भाग या अंकुर।

फुन (हिं० अव्य०) पुनः, फिर।

फुनगी (हिं० स्त्री०) वृक्ष और वृक्षकी शाखाओंका अग्रभाग, फुनंग।

फुनना (हिं० पु०) फुंदना देखो

फुप्फुस (सं० पु०) कोष्ठविशेष, फेफड़ा। हृदयके वामपार्श्वमें फुप्फुस अवस्थित है। इसका दूसरा नाम फुप्फुण्ड भी है। सुश्रुतमें लिखा है, कि शोणित और कफके मेलसे हृदय उत्पन्न होता है। उसी हृदयमें प्राणवाहिनी सभी धमनियां आश्रय की हुई हैं। हृदयके अधोभागमें वाईं ओर प्लीहा और फुप्फुस तथा दाहिनी ओर यकृत् और क्लोम है। (सुश्रुत शारीरस्था० ४ अ०) शार्ङ्गधरने लिखा है, कि फुप्फुस उदान वायुका आधार है और हृदयके वाईं ओर रहता है। (शार्ङ्गधर ५ अ०)

फुफंदी (हिं० स्त्री०) लहंगेके इजारबंद या स्त्रियोंको साड़ी कसनेकी डोरीकी गांठ यह गांठ कमर पर सामनेकी ओर रहती है और इसके खींचनेसे लहंगा या धोती खुल जाती है। इसे नीवी भी कहते हैं।

फुफकाना (हिं० क्रि०) फुफकारना।

फुफकार (हिं० पु०) फूत्कार, सांपके मुंहसे निकली हुई हवाका शब्द।

फुफकारना (हिं० क्रि०) साँपका मुंहसे फूंक निकालना, फूत्कार करना।

फुफुनी (हिं० स्त्री०) फुफूंदी देखो।

फुफेरा (हिं वि०) फूफासे उत्पन्न।

फुर (हिं० स्त्री०) १ उड़नेमें परोंका शब्द, पंख फड़फड़ानेकी आवाज। (वि०) २ सत्य, सच्चा।

फुरकना (हिं० क्रि०) जुलाहोंकी वोलीमें किसी वस्तुको मुंहमें चवा कर सांसके जोरसे थूकना।

फुरकाना (हिं० क्रि०) फड़काना देखो।

फुरती (हिं० स्त्री०) शीघ्रता, तेजी।

फुरतीला (हिं० वि०) जिसमें फुरती हो, जो सुस्त न हो।

फुरना (हिं० क्रि०) स्फुटित होना, उदय होना। २ फड़कना, हिलना। ३ उच्चरित होना, मुंहसे शब्द निकलना। ४ प्रकाशित होना, चमक उठना। ५ सफल होना, सोचा हुआ परिणाम उत्पन्न करना। ६ प्रभाव उत्पन्न करना, असर करना। ७ सत्य ठहरना, पूरा उतरना।

फुरफुर (हिं० स्त्री०) १ वह शब्द जो पर आदिकी रगड़से

उत्पन्न हो। २ उड़नेमें परोंकी फरफराहटसे उत्पन्न शब्द।

फुरफुराना (हिं० क्रि०) १ फुर फुर करना, उड़ कर परोंका शब्द करना। २ हलकी वस्तुका लहराना। ३ पर या और कोई हलकी वस्तु हिलना जिससे फुरफुर शब्द हो। ४ कानमें रुईकी फुरेरी फिराना।

फुरफराहट (हिं० स्त्री०) फुर फुर शब्द होनेका भाव। पंख फड़फड़ानेका भाव।

फुरफुरी (हिं० स्त्री०) फुरफुराहट देखो।

फुरमान (फा० पु०) १ राजाज्ञा, अनुशासनपत्र। २ आज्ञा, आदेश। ३ मानपत्र, सनद।

फुरसत (अ० स्त्री०) १ अवसर, समय। २ निवृत्ति, अवकाश। ३ बीमारीसे छुटकारा, आराम।

फुरहरी (हिं० स्त्री०) १ परको फुला कर फड़फड़ाना। कपड़े आदिके हवामें हिलनेकी क्रिया या शब्द, फरफराहट। ३ फड़कनेका भाव, फड़कना। ४ फुरेरी देखो। ५ कम्प और रोमाञ्च, कंपकंपी।

फुराना (हिं० क्रि०) १ सच्चा ठहराना। २ प्रमाणित करना।

फुरेरी (हिं० स्त्री०) १ रोमाञ्चयुक्त कम्प, सरदी, भय आदिके कारण थरथराहट होना और रोंगटे खड़े होना। २ सींक जिसके सिरे पर हलकी रुई लपेटी हो और जो तेल, इत्र, दवा आदिमें डुबा कर काममें लाई जाय।

फुर्ती (हिं० स्त्री०) फुरती देखो।

फुर्सत (अ० स्त्री०) फुरसत देखो।

फुलका (हिं० पु०) १ फफोला, छाला। २ एक छोटा कड़ाह जो चीनीके कारखानेमें काम आता है। ३ हलकी और पतली रोटियां, चपाती।

फुलकिया—एक सिख-मिसल वा दल। सिन्धुदेशवासी जाटवंशीय(१) फुल नामक एक सरदारसे यह दल प्रतिष्ठित हुआ। ये रूपचाँदके ३य पुत्र थे। १६१६ ई०में मेहराज ग्राममें उनका जन्म हुआ था। सम्राट् शाहजहान्‌के फरमान मुताविक वे पितृपद पर अधिष्ठित हुए। उन्होंने अपने नाम पर एक नगर वसाया।(२) अनन्तर हयत् खाँ और इसाखाँ नामक दो मुसलमान सरदारोंसे पराजित हो वे अपने मेहराज राज्यका परित्याग करनेको वाध्य हुए। क्रमशः निज दलपुष्टि करके उन्होंने इसाके पुत्र दौलत खाँ और भाटनके सरदार हयत् खाँको हराया और निज राज्यका पुनः उद्धार किया। अब वे प्रतापशाली सरदार हो दिल्लीकी अधीनताकी उपेक्षा करने लगे। जाग्रांवके शासनकर्त्ताको राजस्व न दे कर उल्टे उन्हें युद्धमें परास्त और अव रुद्ध किया था। किन्तु इसके सिवा उन्हें और किसी प्रकारका कष्ट नहीं दिया गया।

गुरु हरगोविन्दकी भविष्य वाणी सच निकली, वास्तविक ये प्रतापशाली हो उठे। उनके सात पुत्र पतियाला, झिन्द, नाभा, भदोर, मलोद, लान्दघरिया और जियान्दन वंशके प्रतिष्ठाता हो फुलकिया नामसे परिचित हुए।

१६५२ ई०को ७० वर्षकी उमरमें फुलकी मृत्यु हुई। कोई कहते हैं; कि वे योगाभ्यास करते थे। सरहिन्दके शासनकर्त्ताको जब समय पर कर नहीं मिला, तब उन्होंने फुलको अवरुद्ध किया। उस समय वे ईश्वरचिन्तामें योगमग्न हो गये और लोगोंने उसीको मृत्युको कल्पना कर ली। फिर किसीका कहना है, कि अवरोधके समय सरदी गरमीके मारे उनकी मृत्यु हुई थी।

मृत्युके वाद उनके द्वितीय पुत्र रामचाँद फुलकिया दलके सरदार बनाये गये। उन्होंने हसन खाँको परास्त कर भट्ट राज्यको लूट लिया। पीछे इसा खाँ और कोटका मुसलमानी राज्य जीत कर मोटी रकम इकट्ठी की। १७१४ ई०में ६५ वर्षकी उमरमें वे अपने सरदार चेतसिंहके पुत्रोंसे मारे गये। इसके वाद रामके तृतीय पुत्र आलासिंह सरदार वने। ये पतियालावंशके प्रतिष्ठाता थे। १६९५ ई०में उनका जन्म हुआ था। आलासिंहकी मृत्युके वाद १७६५ ई०में अमरसिंह राजा हुए। उन्होंने मुसलमानोंको परास्त कर मणिमाजरा और कोटफपुर पर अधिकार किया। १७८१ ई०में उनकी मृत्यु हुई। पीछे उनके लड़के साहेब सिंह और साहेबके वाद उनके

(१) यह व्यक्ति राजपूतानेके अन्तर्गत जयसलमीर-राजवंशके प्रतिष्ठाता जयशलराजसे १३ पीढ़ी नीचे थे।

(२) अभी यह नगर नाभा राज्यके अन्तर्भुक्त हो गया है।

लड़के करमसिंह राजा हुए । इस समय समरुकी वेगम और मराठोंने पतियाला पर चढ़ाई कर दी। प्रथम युद्धमें अमरकी वहन रानी राजेन्द्र, और द्वितीय युद्धमें साहेवकी वहन रानी साहेवकुमारीने विशेष वीरताका परिचय दे कर मुसलमानोंको परास्त किया था । करमसिंहकी मृत्युके वाद उनके लड़के नरेन्द्रसिंह पतियाला सिंहासन पर वैठे। इन्होंने गदरके समय अङ्गरेजोंका पक्ष लिया था, इस कारण इन्हें कुछ सम्पत्ति जागीर और 'फर्जान्द-खास दौलत्-इ-इंलिशिया मनसुरी जमान अमीर-उल-उमरा महाराजाधिराज राजेश्वर श्री महाराज इ-राजगण नरेन्द्रसिंह महन्दर वहादुर'की उपाधि मिली थी । राजा नरेन्द्रके वाद राजा महेन्द्र और पीछे महाराज राजेन्द्र राजा हुए। नाभा और झिन्दके फुलकिया राजवंशका विवरण अन्यत्र दिया गया है। अन्यान्य विवरण पतियाला, झिन्द और नाभा शब्दमें देखो ।

फुलचुही (हिं० स्त्री०) नीलापन लिये काले रंगकी एक चमकती चिड़िया। यह हमेशा फूलों पर उडती फिरती है। इसकी चोंच पतली और कुछ लम्बी होती है । इस चोंचसे वह फूलोंका रस चूसती है।

फुलचोरा—नेपालके अन्तर्गत एक पर्वत-शिखर। यहां लक्ष्मीमूर्त्ति प्रतिष्ठित है।

फुलझड़ी (हिं० स्त्री०) १ एक प्रकारकी आतशवाजी जिससे फूलकी-सी चिनगारियां निकलती हैं। २ आग लगानेवाली वात, ऐसी वातका कहना जिससे विवाद वा और कोई उपद्रव हो जाय।

फुलझरी—मध्यप्रदेशके सम्बलपुर जिलान्तर्गत एक सामन्त राज्य। यह पहाड़ी राज्य १८ गड़जातके अन्तर्भुक्त है । क्षेत्रफल ७८७ वर्गमील है । समूचा राज्य फुलचरगढ़, केलिन्दा, वीड़तरी, वासना, वलाद, वार्सरा, सिंवोरा और शङ्करा आदि विभागोंमें विभक्त है। यहांके सरदार राजगोंड़ हैं। तीन सौ वर्ष पहले यह सम्पत्ति पटनाके राजासे उन्हें मिली है।

फुलझर—पूर्व-वङ्गाल और आसाममें प्रवाहित एक नदी। यह वागरा जिलेके करतोया और हलहालिया नदीसे उत्पन्न हो कर यमुनामें गिरी है।

फुलझरी (हिं० स्त्री०) फुलझड़ी देखो।

फुलनी (हिं० स्त्री०) ऊसर भूमिमें होनेवाली एक वारह मासी घास।

फुलपुर—१ युक्तप्रदेशके इलाहावाद जिलेकी एक तहसील. यह अक्षा० २५°१८′से २५°१०′ पू० गङ्गाके दाहिने किनारे अवस्थित है। भूपरिमाण २८६ वर्गमील और जनसंख्या दो लाखके करीव है। इसमें १ शहर और ४८६ ग्राम लगते हैं।

२ उक्त तहसीलका शहर। यह अक्षा० २५° ३३′ उ० और देशा० ८२° ६′ पू०के मध्य अवस्थित है। जनसंख्या प्रायः ७६११ है। कहते हैं, कि यह शहर १७वीं शताब्दीमें वसाया गया है। यहां दीवानी और फौजदारी अदालतके अलावा एक अस्पताल, पुलिस स्टेशन, डाकघर, और एक स्कूल है। राजस्व १३०० रु०का है।

फुलमती (सं० स्त्री०) रागिणीविशेष।

फुलरा (हिं० पु०) फुंदना देखा।

फुलवर (हिं० पु०) एक कपड़ा जिस पर रेशमके वेल वूटे वुने या कढ़े होते हैं।

फुलवाड़िया—वाराणसी विभागके आजमगढ़ जिलान्तर्गत एक प्राचीन नगर। उसके भग्नावशेषके ऊपर आजम खाँ आजमगढ़ नगर वसा गये हैं।

फुलवाड़ी—वङ्गालके अन्तर्गत एक प्राचीन जनपद। यहां एक दुर्गका ध्वंसावशेष है।

फुलवाड़ी—पटना जिलेका एक शहर। यह अक्षा० २५° ३४′ उ० और देशा० ८५° ५′ पू०के मध्य अवस्थित है। जनसंख्या ३४१५के करीव है।

फुलवाड़ी (हिं० स्त्री०) फुलवारी देखो।

फुलवारी (हिं० स्त्री०) १ पुष्पवाटिका, उद्यान। २ कागजके वने हुए फूल और वृक्षादि जो ठाट पर लगा कर विवाहमें वरातके साथ निकाले जाते हैं।

फुलसरा (हिं० पु०) काले रंगकी एक चिड़िया। इसके सिर पर सफेद छींटे होते हैं।

फुलसुंघी (हिं० स्त्री०) एक चिड़िया, फुलचुही।

फुलहारा (हिं० पु०) माली।

फुलांग (हिं० पु०) एक प्रकारकी भांग।

फुलाई (हिं० स्त्री०) १ खुखंडी। २ पंजावमें सिन्धु और सतलज नदियोंके वीचकी पहाड़ियों पर होनेवाला

एक प्रकारका बबूल। इसके पेड़ मंझोले होते हैं और विशेष कर खेतोंकी बाड़ों पर लगाए जाते हैं। इसकी लकड़ी मजबूत और ठोस होती है। इसे लोग कोल्हूकी जाठ और गाड़ियोंके पहिये आदि बनानेके काममें लाते हैं। इसके पेड़से एक प्रकारका गोंद निकलता है जो औषधमें काम आता है। यह गोंद अमृतसरका गोंद नामसे प्रसिद्ध है। ३ सरफुलाई देखो।

फुलागुड़ी—आसाम प्रदेशके नौगाँव जिलान्तर्गत एक प्रसिद्ध स्थान। यहां प्रतिवर्षके चैतमासमें एक मेला लगता है।

फुलाना (हिं० क्रि०) १ किसी वस्तुके विस्तार या फैलावको उसके भीतर वायु आदिका दवाव पहुंचा कर बढ़ाना, भीतरके दवावसे वाहरकी ओर फैलाना। २ कुसुमित करना, फूलोंसे युक्त करना। ३ घमण्ड बढ़ाना, गर्वित करना। ४ किसीमें इतना आनन्द उत्पन्न करना कि वह आपेके वाहर हो जाय।

फुलाव (हिं० पु०) फूलनेकी क्रिया या भाव, फूलनेकी अवस्था।

फुलावट (हिं० स्त्री०) फूलनेकी क्रिया या भाव, उभार या सूजन।

फुलावा (हिं० पु०) स्त्रियोंके सिरके बालोंको गूंथनेकी डोरी जिसमें फूल वा फुँदने लगे रहते हैं।

फुलिंग (हिं० पु०) चिनगारी।

फुलिया (हिं० स्त्री०) १ कील या काँटा जिसका सिरा फूलकी तरह फैला हुआ, गोल और मोटा हो। २ किसी कील या छड़के आकारकी वस्तुका फूलकी तरह उभरा और फैला हुआ गोल सिरा। ३ कानमें पहननेका एक प्रकारका लौंग नामक गहना।

फुलिसकेप (अं० पु०) एक प्रकारका चिकना सफेद कागज जिसके भीतर हलकी लकीरें पड़ी रहती हैं। पहले इसके तख्तेमें मनुष्यके सिरका चित्र बना रहता था जिस पर नोकदार टोपी होती थी। इसी कारण इसे 'फूलसकेप' कहने लगे जिसका अर्थ बेवकूफकी टोपी होता है। अब इस कागजमें अनेक चिह्न बनाये जाते हैं।

फुलुरिया (हिं० स्त्री०) कपड़ेका एक टुकड़ा जो छोटे बच्चोंके चूतड़के नीचे इस लिये बिछाया वा रखा जाता है कि उनका मल दूसरी जगह न लगे, गँड़तरा।

फुलेरा (हिं० पु०) देवताओंके ऊपर लगानेकी फूलकी बनी हुई छतरी।

फुलेल (हिं० पु०) १ सुगन्धयुक्त तेल, फूलोंकी महकसे बना हुआ तेल जो सिरमें लगानेके काममें आता है। इसकी प्रस्तुत प्रणाली इस प्रकार है—पहले तिलको परिष्कार कर छिलका अलग कर देते हैं। उसके बाद ताजे फूलोंकी कलियोंको जमीन पर बिछा कर उनके ऊपर तिल छितरा देते हैं। तिलोंके ऊपर फिर फूलोंकी कलियाँ बिछाई जाती हैं। जब कलियां खिल जाती हैं, तब फूलोंकी महक तिलोंमें आ जाती है। इस प्रकार एक बार नहीं, कई बार तिलोंको फूलोंकी तह पर फैलाते हैं। जितना ही अधिक तिल फूलोंमें बासा जाता है, उतनी ही अधिक सुगन्ध उसके तेलमें होती है। अनन्तर उन सुवासित तिलोंको पेल कर कई प्रकारके तेल तैयार होते हैं।

२ हिमालय पर कुमाऊँसे ले कर दार्जिलिङ्ग तक होनेवाला एक पेड़। इसके फलकी गिरी खाई जाती है। इससे जो तेल निकलता है वह साबुन और मोमबत्ती बनानेके काममें आता है। लकड़ी हलके भूरे रंगकी होती है जिसकी मेज, कुरसी आदि बनती हैं।

फुलेली (हिं० स्त्री०) फुलेल रखनेका कांच आदिका बड़ा बरतन।

फुलेहरा (हिं० पु०) उत्सवोंमें द्वार पर लगानेके सूत, रेशम आदिके बने हुए झब्बेदार वन्दनवार।

फुलोच्छ—नेपाल राज्यकी प्राचीन राजधानी। यह ललितपाटनके समीप गोदावरीके किनारे अवस्थित है। सोमवंशी राजपूतोंके आक्रमणसे राज्यकी रक्षा करनेके लिये गस्तिराजने यहां एक दुर्ग बनवाया था।

फुलौरा (हिं० पु०) बड़ी फुलौरी, पकौड़ा।

फुलौरी (हिं० स्त्री०) चने या मटर आदिके वेसनकी बरी, वेसनकी पकौड़ी।

फुल्त (सं० त्रि०) फल-आरम्भे भावे क्त वा तवोर्नेट् अत इत्त्वं। फलनारम्भयुत, जो फलने पर हो।

फुल्ति (सं० स्त्री०) फल-क्तिन्, (ति च्। ७।४।८९) इति अत-उत्। फलन। (मुग्धबोधव्या०)

फुल्ल (सं० त्रि०) फुल्लतीति फुल्ल-अच्, वा फलतीति फल-क्त (आदितश्च। पा ७।२।१६) इति इड्भावः (ति च। पा ७।४।८९) इति उत्वं, अनुपसर्गात्। (फुल्ल-क्षीबेति। ८।२।५५) इति निष्ठा तस्य ल। १ विकसित, फूला हुआ। (पु०) २ पुष्प, फूल।

फुल्लकुल्लम—मानभूमके अन्तर्गत एक छोटी सम्पत्ति।

फुल्लग्राम—वीरभूमके अन्तर्गत एक प्राचीन ग्राम। यह सिउड़ीनगरसे ४ कोस अग्निकोणमें अवस्थित है। यहां फुल्लरादेवीका मन्दिर विद्यमान है।

फुल्लतुवरी (सं० स्त्री०) स्फटिकारिका।

फुल्लदाम (सं० पु०) फुल्लानां पुष्पाणां दाम-इव। उन्नीस वर्णकी एक वृत्ति। इसके प्रत्येक चरणमें ६, ७, ८, ९, १०, ११, और १७वां वर्ण लघु होता है।

फुल्लन (सं० त्रि०) वायुसे परिपूर्ण।

फुल्लपुर (सं० क्ली०) नगरभेद।

फुल्लफाल (सं० पु०) फुल्ल-फलतीति फल-अण्। सूर्पवात, वह हवा जो सूपसे की जाती है।

फुल्लरा—चण्डीकाव्योक्त कालकेतु व्याधकी स्त्री। द्विज जनार्दन, माधवाचार्य, वलराम कविकङ्कण आदि चण्डी-काव्यलेखकोंने फुल्लराचरित्रका जो रेखापात किया था, मुकुन्दरामने उसका सम्पूर्ण विकाश किया है। मुकुन्द-रामके हाथसे यह चरित्र अति सुन्दररूपसे चित्रित हुआ है। तद्वर्णित फुल्लराकी सहिष्णुता और पातिव्रत्य आदर्श-स्थानीय है।

फुल्लरीक (सं० पु०) फल (फर्फरीकादयश्च। उण् ४।२०) इति ईकन् प्रत्ययेन निपातनात् साधुः। १ देश। २ सर्प।

फुल्ललोचन (सं० पु०) फुल्ले विकसिते लोचने यस्य। १ मृगविशेष। (त्रि०) २ प्रफुल्ल नेत्रयुक्त।

फुल्लवत् (सं० त्रि०) प्रस्फुटनके योग्य।

फुल्ला—चन्द्रद्वीपके अन्तर्गत एक नदी।

फुल्लारण्य—दाक्षिणात्य प्रदेशमें रामेश्वरके निकटवर्त्ती एक पवित्र तीर्थ। यह समुद्रके किनारे वनके मध्य अवस्थित है। फुल्ल नामक किसी योगीके नाम पर इसका नामकरण हुआ है। यह क्षेत्र वैष्णवोंका प्रियतम है। फुल्लारण्य-माहात्म्यमें इसका विस्तृत विवरण लिखा है।

फुल्लारविन्द (सं० क्ली०) प्रस्फुटित पद्म, खिला हुआ कमल।

फुल्लि (सं० स्त्री०) विकाश।

फुल्ली (हिं० स्त्री०) १ फुलिया। २ फूलके आकारका कोई आभूषण या उसका कोई भाग।

फुवारा (हिं० पु०) फुहारा देखो।

फुस (हिं० स्त्री०) अतिशय मन्द स्वर, वहुत धीमी आवाज।

फुसड़ा (हिं० पु०) फुचड़ा देखो।

फुसफुसा (हिं० वि०) १ नरम, ढीला। २ कमजोर, फुससे दूर जानेवाला। ३ जो तीक्ष्ण न हो, मंदा।

फुसफुसाना (हिं० क्रि०) फुसफुस करना, इतना धीरे धीरे कहना, कि शब्द व्यक्त न हो।

फुसलाना (हिं० क्रि०) १ भुला कर शान्त और चुप रखना, वहलाना। २ मीठी मीठी वातें कह कर अनु-कूल करना, भुलावा दे कर अपने मतलव पर लाना। ३ सन्तुष्ट करनेके लिये प्रिय और विनीत वचन कहना। ४ किसी वातके पक्षमें या किसी ओर प्रवृत्त करनेके लिये इधर उधरकी वातें करना, चकमा देना।

फुहार (हिं० पु०) १ जलकण, पानीका महीन छींटा। २ महीन वूंदोंकी झड़ी, झींसी।

फुहारा (हिं० पु०) १ जलकी वह टोंटी जिसमेंसे दवावके कारण जलकी महीन धार या छींटे वेगसे ऊपरकी ओर उठ कर गिरा करते हैं। साधारणतः जो फुहारे देखनेमें आते हैं वे कृत्रिम हैं। मनुष्य हम लोगोंके लिये यह फुहारा वनाते हैं। जड़जगत्‌में भी हम लोग ऐसी जल-धारा उठती देखते हैं। किस प्रकार वह ऊद्ध्र्वगामी जल-स्रोत समान वेग और अविश्रान्त गतिसे शून्यमार्गमें उठता है वह नीचे देते हैं।

प्राकृतिक नियमवशसे भूगर्भके मध्य अन्तर्निहित जल-स्रोत थोड़ा थोड़ा करके एक जगह जमा होता है। पीछे वह गर्भ जव भर जाता है, तव जल आपे आप वेगवान् गतिसे अपना रास्ता निकाल लेता है। पहाड़ी प्रदेशकी कड़ी मट्टीको भेद कर वह अपनी राहसे नीचे जाता है। भूपृष्ठमें संलग्न होनेसे वह पृष्ठावरणको भेद कर ऊपरकी ओर उठता है।

कुछ ऐसे पत्थर (pervious) हैं जिसमेंसे जल निकल सकता है। वालुकामय मट्टीमें भी इस प्रकार जल-निर्गम हुआ करता है, किन्तु कड़ी मट्टी हो कर जल नहीं जासकता (impervious)।

भुपृष्ठ वा पर्वत पर वृष्टि पड़नेसे कुछ जल तो ढालवें भागसे गिर कर नदीमें मिल जाता है और कुछ मट्टीमें प्रवेश करता है। जो जल मट्टीमें प्रवेश करता है, वह जमीनके भीतर छेददार स्तरों (Pervious Strata)-से प्रवाहित हो कर एक जगह जा जमा होता है। पीछे उस स्थानके भर जानेसे वह जल दूसरी राहसे निकलनेकी कोशिश करता है। क्रमशः सछिद्र मृत्तिका-स्तरसे होता हुआ जब वह कठिन स्तरमें पहुंचता है तब फिरसे जलके समतारक्षणके लिये दूसरी ओर उठाता है। इस प्रकार उठते समय यदि उसे किसी पर्वत, उपत्यका वा निम्नभूमिमें छिद्र मिल जाय, तो वह उसी मुखसे निकलना शुरू करता है। पर्वतकी चूड़ा पर सञ्चित जलराशि क्रमशः नीचेकी ओर उतर कर निकासके रास्तेसे वह जाता है और वह जल धाराकारमें उत्थित हो कर पूर्वसञ्चित जलराशिकी समता-रक्षणमें समर्थ होता है। कभी वह निर्झरकी तरह पर्वत परसे झर झर करके नीचे गिरता है। इस प्राकृतिक जलोद्गमको प्रस्रवण (Springs) कहते हैं। प्रस्रवण साधारणतः दो प्रकारका है—शीतल जलवाही प्रस्रवण और उष्ण प्रस्रवण। जिन सब प्रस्रवणोंसे उष्ण जल निकलता है, उसे ही उष्ण प्रस्रवण कहते हैं।(१) भूगर्भ-मध्यस्थ जलनाली (Sub-terranian Channels) होकर प्रवाहित जलराशि प्रस्रवणाकारमें प्रकाशित हो कर नदी आदिके उत्पत्ति-स्थानमें परिणत हुआ है। जिन सब प्रस्रवणोंसे नदी, ह्रद वा नदीशाखा आदिकी उत्पत्ति होती है उनका जल कहीं बुंद बुंदमें बाहर होता है। पीछे वह एक स्थानमें सञ्चित हो कर क्रमशः नीचेकी ओर वह जाता है। राहमें वह जल जब किसी पर्वतखण्डसे रुक जाता है, तब उसे भेद कर वह प्रचण्ड वेगसे प्रपाताकारमें पतित होता है।(२)

पर्वत वा पार्वत्यभूमिसे ही अधिक प्रस्रवण निकलते देखे जाते हैं। कारण, वहांका जल बहुत ऊपरसे सछिद्र पथ हो कर नीचे आता है, जहां उसका अधिक भाग कठिन स्तरों पर ही (Impervious Stratum) जमा हो जाता है। वह जल वहां अधिक देर तक नहीं ठहरता, बहुत जल्द दूसरी राहसे निकल जाता है। कूपखननकालमें हम लोग कूपमें जलसञ्चय देखते हैं। यह जल कहांसे आया, स्वयं समझ सकते हैं।

प्रस्रवणका जल स्वभावतः ही सुस्वादु और बलकारक है। भूगर्भस्थ धातवपदार्थ (Minerals) मिले रहनेके कारण उसका औषधकी तरह पानीयरूपमें व्यवहार होता है। धातुदौर्बल्यादि रोगोंमें यह विशेष स्वास्थ्यप्रद है। इस कारण चिकित्सकगण मस्तिष्क, हृदय और औदरिक रोगग्रस्त व्यक्तिमात्रको ही स्वास्थ्य-परिवर्त्तनके लिये पार्वतीय प्रदेशमें जानेकी सलाह देते हैं। जिन सब प्रदेशोंका प्रस्रवण वा नदी-प्रवाहित जल धातवयोगसे बलकर है, वही सब स्थान स्वास्थ्यप्रद माने गये हैं। उष्ण प्रस्रवण जलमें स्नान सर्वतोभावमें विधेय है। कटेसियस् (Ktesius)-ने लिखा है, कि इथिओपिया राज्यमें एक प्रस्रवणसे लाल जल निकलता था जिसे पीनेसे ही मनुष्य उन्मादग्रस्त हो जाते थे। प्लिनिके इतिहासमें हम लोग आर्मेनिया-देशके एक प्रस्रवणका उल्लेख पाते हैं। उस प्रस्रवणमें जो मछली रहती है उसे खानेसे तत्क्षणात् मृत्यु हो जाती है।

स्वभावजात प्रस्रवणकी जलगति देख कर विज्ञान-विदोंने कृत्रिम उपायसे फुहारे (Fountain)-का आविष्कार किया है। जलमें एक ऐसा स्वभावसिद्ध गुण है, कि उसका ऊपरी तल हमेशा समतारक्षणशील रहता है। एक 'इउ' की तरह वक्राकृतिवाले नल (U tube)-के एक मुख हो कर जल ढालनेसे वह स्वभावतः ही

---

(१) मुंगेरका सीताकुण्ड और राजगृहके सप्तर्षि, सूर्य, गणेश आदि कुण्ड उष्ण प्रस्रवणके निदर्शन हैं।

(२) गंगोत्तरी, गोमुखी, नाएगरा आदि प्रपातोंकी इसी प्रकार उत्पत्ति हुई है।

दूसरे मुख हो कर वाहर गिर पड़ता है और प्रथम मुखकी ऊँचाईके साथ अपर मुखके जलके ऊपरी तलकी ऊँचाई समान पड़ती है। इस प्रणालीके आधार पर फुहारा सहज-में प्रस्तुत हो जाता है।

उद्यानमें साधारणतः इसी उपायसे कृत्रिम फुहारे वनाये जाते हैं। अट्टालिकाकी छत पर एक टैंक (जल रखनेका लोहेका चहवच्चा) रख कर उसमें जल भर दिया जाता है। पीछे उस टैंकसे एक नल (जलकी कलका पाइप) लगा कर नीचेकी ओर मट्टीमें उसे फैला देते हैं। उस संयोगस्थल पर जो एक टैप (चावी) रहता है, उसे घुमानेसे जल नलमुख हो कर वहने लगता है और जरूरत पड़ने पर उसे वन्द भी कर सकते हैं। अव उस नलको वरावर ला कर यथास्थान पर निर्मित एक उत्कृष्ट चहवच्चेके मध्यस्थ मनोहर दृश्य स्तम्भ वा पुत्तलीमें प्रवेश करावे। अव ऊपरवाला टैप खोल देनेसे फुहारेके मुखसे जल निकलने लगेगा।

स्वभावसिद्ध गुणसे जल नलके मुखसे निकल कर उपरिस्थित टैंकके जलतलके साथ समतारक्षणमें क्रियाशील देखा जाता है। इसी कारण स्वभावतः ही फुहारेका जल संकीर्ण मुखसे वड़ी तेजी और वेगके साथ निकलता है। किन्तु नलका मुख अपेक्षाकृत मोटा होनेसे जलका वेग कम होते देखा जाता है। चाप भी (Pressure) जलकी उन्मुखगतिका अन्यतम कारण है। उपरिस्थित जलकी चापसे नीचेका जल अधिक चापयुक्त हो वेगवान् गतिको प्राप्त होता है। इस चापके प्रभावसे नीचेका जल भी ऊपर उठता है। पम्प (*Pump*) नामक यन्त्रकी प्रक्रियाके वलसे जल चापयुक्त हो नलके मुखसे वाहर निकलता है। चापके वलसे जल स्वभावतः ही ३० फुट ऊपर उठता है। इस कारण ऊपरमें जल नहीं रखनेसे भी चाप द्वारा फुहारेका कार्य सम्पन्न हो सकता है।

आज कल वहुतसे शौकीन मनुष्य घरको सजानेके लिये अपने घरमें फुहारा वनाते हैं। जलनिर्गमके लिये नूतन नूतन मुख भी आविष्कृत हुआ है। वहुतसे लोगोंने धर्म कमानेकी कामनासे राहमें, घाटमें इस प्रकारके अनेक फुहारे वना दिये हैं। कलकत्ता, लीवरपुर, लण्डन आदि शहरोंमें सड़ककी वगलमें ऐसे अनेक फुहारे देखने में आते हैं। श्रीवृन्दावन, दिल्ली आदि नगरोंमें भी वहुत पुराने समयके वने हुए फुहारे दृष्टिगोचर होते हैं। कृत्रिम उपायसे नाना प्रकारके फुहारे वनाये जाते हैं।

प्रस्रवणका जो ऊपर उल्लेख किया गया है, वहुत प्राचीनकालसे उसे पवित्र मानते आ रहे हैं। सीताकुण्ड आदि तीर्थोंमें आज भी पूजा देनेको विधि है। यूरोपमें भी पहले प्रस्रवणके सामने वलि और पूजा होती थी। होरेसने 'फन्सव्लान्दुसी' नामक रोमनगरीके एक फुहारेकी पवित्रताका उल्लेख किया है। ग्रीक-राजधानियोंमें (विशेषतः करिन्थमें) हार्कुलेनियम और पम्पिके ध्वंसावशेषके मध्य वह निदर्शन पाया जाता है। रोम, ड्रेफो, पालिन, सानपिद्रो, पारी, भार्सल और सेल्टक्लभ नगर तथा इङ्गलैण्डके स्फटिक-प्रासादका अति अद्भुत शिल्पमय भास्करकीर्त्तिसंयुक्त फुहारे जगत्‌में अतुलनीय हैं।

२ जलका महीन छींटा।

फुही (हिं० स्त्री०) १ सूक्ष्म जलकण, पानीका महीन छींटा। २ महीन महीन वूंदोंकी झड़ी।

फूंक (हिं० स्त्री०) १ वह हवा जो ओठोंको चारों ओरसे दवा कर झोंकसे निकाली जाय। २ मन्त्र पढ़ कर मुंहसे छोड़ी हुई वायु जो उस मनुष्यकी ओर छोड़ी जाती है जिस पर मन्त्रका प्रभाव डालना होता है। ३ साँस, मुंहकी हवा।

फूंकना (हिं० क्रि०) १ ओठोंको चारों ओरसे दवा कर झोंकसे हवा छोड़ना। २ प्रकाशित कर देना, चारों ओर फैला देना। ३ दुःख देना, सताना। ४ नष्ट करना, व्यर्थ व्यय कर देना। ५ शंख, वांसुरी आदि मुंहसे वजाए जानेवाले वाजोंको फूंक कर वजाना। ६ मन्त्र आदि पढ़ कर किसी पर फूंक मारना। ७ फूंक कर प्रज्वलित करना। ८ भस्म करना, जलाना। ९ धातुओंको रसायनकी रीतिसे जड़ी वूटियोंकी सहायतासे भस्म करना।

फूंका (हिं० पु०) १ भाथी वा नलीसे आग पर फूंक मारना, फूंक मारनेकी क्रिया। २ फोड़ा फफोला। ३ वांस आदिकी नली जिससे फूंका मारा जाता है। ४ वाँसकी नलीमें जलन पैदा करनेवाली ओषधियां

भर कर और उन्हें स्तनमें लगा कर फूंकना। ऐसा करनेसे गायें स्तनमें दूध चुरा नहीं सकती, सारा दूध बाहर निकाल देती हैं।

फूंद (हिं० स्त्री०) फुलरा, झब्बा।

फूई (हिं० स्त्री०) १ घीका फूल या बुलबुलोंका समूह जो तपाते समय ऊपर आ जाता है। २ फफूंदी, भुकड़ी।

फूट (हिं० स्त्री०) फूटने की क्रिया या भाव। २ बैर, अनबन। ३ एक प्रकारकी बड़ी ककड़ी जो खेतमें होती है और पकने पर फट जाती है।

फूटन (हिं० स्त्री०) १ वह टुकड़ा जो फूट कर अलग हो गया हो। २ शरीरके जोड़में होनेवाली पीड़ा।

फूटना (हिं० क्रि०) १ भग्न होना, खरो वस्तुओंका खंड खंड होना। २ पक्ष छोड़ना, दूसरे पक्षमें हो जाना। ३ शाखाके रूपमें अलग हो कर किसी सीधमें जाना। ४ सङ्ग या समूहसे अलग होना, साथ छोड़ना। ५ विद्ध कर निकलना, भीतरसे झोंकके साथ बाहर आना। ६ व्यक्त होना, प्रकाशित होना। ७ बोलना, मुंहसे शब्द निकलना। ८ ऐसी वस्तुका फटना जिसके ऊपर छिलका हो और भीतर या तो पीला हो अथवा मुलायम या पतली चीज भरी हो। ९ नष्ट होना, बिगड़ना। १० शरीर पर दाने या घावके रूपमें प्रकट होना। ११ अवयव, जोड़ या वृद्धिके रूपमें प्रकट होना, अंकुर, शाखा आदिका निकलना। १२ अंकुरित होना, फट कर अंखुवा निकलना। १३ व्याप्त होना, फैलना। १४ संयुक्त न रहना, मिलापकी दशामें न रहना। १५ प्रस्फुटित होना, कलीका खिलना। १६ शब्दका मुंहसे निकलना। १७ जोड़ोंमें दर्द होना। १८ पानी या और किसी पतली चीजका रस कर इस पारसे उस पार निकल जाना। १९ गुह्य बातका प्रकट होना, किसी भेदका खुल जाना। २० पानीका इतना खौल जाना, कि उसमें छोटे छोटे बुलबुलोंके समूह दिखाई देने लगे, पानीका खदखदाने लगा। २१ रोक या परदेका दबावके कारण हट जाना।

फूटा (हिं० वि०) १ भग्न, फूटा हुआ। २ जोड़ोंका दर्द।

फूत्कार (सं० पु०) मुंहसे हवा छोड़नेका शब्द, फुफकार।

फूफा (हिं० पु०) बापका बहनोई, फूफीका पति।

फूफी (हिं० स्त्री०) बापकी बहन, बूआ।

फूफू (हिं० स्त्री०) १ फूफी देखो।

फूल (हिं० पु०) गर्भाधानवाले पौधोंमें वह ग्रन्थि जिसमें फल उत्पन्न करनेकी शक्ति होती है, पुष्प, कुसुम। बड़े फूलोंके पांच भाग होते हैं—कटोरी, हरापुट, दल (पखड़ी), गर्भकेशर और परागकेशर। नालके जिस चौड़े छोर पर फूलका सारा ढांचा रहता है उसे कटोरी कहते हैं। उस कटोरीके चारों ओर जो हरी पत्तियां-सी होती हैं उनके पुटके भीतर कलीकी दशामें फूल बंद रहता है। ये आवरण पल एकसे नहीं होते, भिन्न भिन्न पौधोंमें भिन्न भिन्न आकार प्रकारके होते हैं। घुंडीके आकारका जो मध्यभाग होता है उसके चारों ओर रंग बिरंगके दल निकले होते हैं। वे सब दल पखड़ी कहलाते हैं। फूलोंकी शोभा इन्हीं रंगीली पखड़ियोंके कारण होती है। परन्तु फूलमें प्रधान वस्तु बीचकी घुंडी ही है जिस पर परागकेशर और गर्भकेशर होता है। परागकेशरके सिरे पर एक छोटी टिकिया सी होती है इसी टिकियामें पराग या धूल रहती है। यह परागकेशर पुं जननेन्द्रिय है। गर्भकेशर ठीक मध्यमें होते हैं। उनका निचला भाग या आधार कोशके आकारका होता है जिसके अन्दर गर्भाण्ड बन्द रहते हैं और उपरका छोर कुछ चौड़ा-सा होता है। जब परागकेशरका पराग झड़ कर गर्भकेशरके इस मुंह पर पड़ता है तब भीतर ही भीतर वह गर्भकोशमें जा कर गर्भाण्डको गर्भित करता है जिससे धीरे धीरे वह बीजके रूपमें होता जाता है और फलकी उत्पत्ति होती है। पुष्प देखो।

२ श्वेत कुष्ठ, सफेद दाग। ३ वह मद्य जो पहली बारका उतारा हो, कड़ी देशी शराब। ४ स्त्रियोंका वह रक्त जो मासिक धर्ममें निकलता है। पुष्प देखो। ५ पीतल आदिकी गोल गांठ या घुंडी जिसे शोभाके लिये छड़ी, किवाड़के जोड़ आदि पर जड़ते हैं, फुलिया। ६ फुलके आकारके बेल बूटे या नक्काशी। ७ स्त्रियोंके पहननेका फूलके आकारका गहना। ८ चिरागकी जलती बत्ती पर पड़े हुए गोल दमकते दाने जो उभरे हुए मालूम होते हैं, गुल। ९ आगकी चिनगारी। १० आटे चीनी आदि का

उत्तम भेद। ११ सत्त, सार। १२ वह अस्थि जो शव जलानेके पीछे बच रहती है और जिसे हिन्दू किसी तीर्थ या गङ्गामें फेंकनेके लिये ले जाते हैं। १३ गर्भाशय। १४ घुटने या पैरकी गोल हड्डी, टिकीया। १५ वह पत्तर या वरफ जो किसी पतले या द्रव पदार्थको सुखा कर जमाया जाता है। १६ सूखे हुए साग या भांगकी पत्तियां। १७ तांबे और रांगेके मेलसे प्रस्तुत एक मिश्र या मिली जुली धातु। यह धातु चांदीकी तरह उज्ज्वल और स्वच्छ होती है। इसमें दही या और खट्टी चीजें रखनेसे वह विगड़ती नहीं। उत्कृष्ट फूलको वेधा कहते हैं। साधारण फूलमें चार भाग तांवा और एक भाग रांगा तथा वेधा फूलमें १०० भाग तांवा और २७ भाग रांगा होता है। वेधा फूलमें कुछ चांदी भी पड़ती है। यह धातु वहुत खरी होती है और आघात लगाने पर चट टूट जाती है। इससे लोटे, कटोरे, गिलास, आवखोरे आदि वनाये जाते हैं। यह धातु कांसेसे वहुत मिलती जुलती है। प्रभेद केवल इतना ही है, कि कांसेमें तांवेके साथ जस्तेका मेल रहता है और इसमें खट्टी चीजें रखनेसे विगड़ जाती हैं।

फूल (हिं० स्त्री०) १ प्रफुल्ल होनेका भाव, उत्साह। २ प्रसन्नता, आनन्द।

फूलकारी (हिं० स्त्री०) वेलवुटे वनानेका काम।

फूलगोभी (हिं० स्त्री०) गोभीकी एक जाति। इसमें मंजरियोंका वंधा हुआ ठोस पिण्ड होता है जो तरकारीके काममें आता है। इसके वीज आषाढ़से कुआर तक वोते हैं। पहले इसके वीजकी पनीरी तैयार करते हैं। जव पौधे कुछ वड़े होते हैं, तव उन्हें उखाड़ उखाड़ कर क्यारियोंमें लगाते हैं। कहीं कहीं कई वार एक स्थानसे उखाड़ दूसरे स्थानमें लगाए जाते हैं। दो ढाई महीने पीछे फूलोंको घुंड़ियां नजर आती हैं। उस समय कीड़ोंसे वचानेके लिये पौधों पर राख छितराई जाती है। कलियोंके फूट कर अलग होनेके पहले ही पौधोंको काट लेते हैं।

फूलडोल (हिं० पु०) चैत शुक्ल एकादशीके दिन होनेवाला एक उत्सव। इस दिन भगवान् कृष्णचन्द्रके उद्देश्यसे फूलोंका डोल वा झूला सजाया जाता है। यह उत्सव विशेषतः मथुरा और उसके आसपासके स्थानोंमें मनाया जाता है।

फूलढोंक (हिं० पु०) भारतके सभी प्रान्तोंमें मिलनेवाली एक जातिकी मछली। यह हाथ भर लम्बी होती है।

फूलदान (हिं० पु०) १ पीतल आदिका वना हुआ वरतन। इसमें फूल सजा कर देवताओंके सामने रखा जाता है। २ गुलदस्ता रखनेका एक वरतन। यह कांच, पीतल, चीनी मिट्टी आदिका गिलासके आकारका होता है।

फूलदार (हिं० वि०) जिस पर फूल पत्ते और वेलवूटे काढ़ कर या और प्रकारसे वनाये गये हों।

फूलना (हिं० क्रि०) १ पुष्पित होना, फूलोंसे युक्त होना। २ आस पासकी सतहसे उठा हुआ होना, सतहका उभरना। ३ विकसित होना, खिलना। ४ भीतर किसी वस्तुके भर जानेसे अधिक फैल या वढ़ जाना। जैसे हवा भरनेसे गेंद फूलना, गाल फूलना आदि। ५ आनन्दित होना, प्रफुल्ल होना। ६ मुंह फुलाना, रूठना। ७ शरीरके किसी भागका आस पासकी सतहसे उभरा हुआ होना, सूजना। ८ स्थूल होना, मोटा होना। ९ घमण्ड करना, गर्व करना।

फूलविरंज (हिं० पु०) कुआरके प्रारम्भमें होनेवाला एक प्रकारका धान। इसका चावल अच्छा होता है।

फूलमती (हिं० स्त्री०) एक देवीका नाम। यह शीतला रोगके एक भेदकी अधिष्ठात्री देवी मानी जाती है। कहते हैं, कि यह राजा वेणुकी कन्या है। नीच जातिके लोग इसकी उपासना करते हैं। २ एक प्रकारकी रागिणी।

फूलमाली—युक्तप्रदेशवासी माली जातिकी एक शाखा। फूल वेचने और फुलवाड़ीकी रक्षा करना इनका जातीय व्यवसाय है। तैलङ्ग देशके फूलमाली वचपनमें ही पुत्र-कन्याका विवाह करते हैं।

फूलवारा (हिं० पु०) चिउली नामका पेड़।

फूलसँपेल (हिं० वि०) जिस वैल या गायका एक सींग दहनी ओर और दूसरा वाईं ओरको गया हो।

फूलसिंह—एक विख्यात अकाली सरदार। मालव देशमें ये महावीर रणजित्के विरुद्ध खड़े हुए थे। पीछे १८१४ ई०में ये दीवान मोतीरामसे धृत हो लाहोर लाये गये। इन्होंने सिख-युद्धमें अच्छा नाम कमाया था। १८२३ ई०को नौ-शहरके युद्धमें ये मारे गये।

फूला (हिं० पु०) १ खीला, लावा। २ गन्नेका रस पकाने या उबालनेका एक बड़ा कड़ाह। ३ पक्षियोंका एक रोग। इससे उसका सारा शरीर सूज आता है और मुंहमें कांटे निकल आते हैं जिससे वह मर जाता है। ४ आंखका एक रोग। इसमें काली पुतली पर सफेद दाग या छींटा-सा पड़ जाता है, फूली।

फूली (हिं० स्त्री०) १ सफेद दाग जो आंखकी पुतली पर पड़ जाता है। इसमें मनुष्यकी आंखकी दृष्टि कुछ कम हो जाती है। यदि वह दाग सारी पुतली पर या उसके तिल पर हो, तो दृष्टि बिलकुल मारी जाती है। २ एक प्रकारकी सज्जी। ३ मथुराके आसपास होनेवाली एक प्रकारकी रुई।

फूस (हिं० पु०) १ छप्पर आदि छाननेकी सूखी हुई लम्बी घास। २ शुष्क तृण, खर, तिनका।

फूहड़ (हिं० वि०) १ जो किसी कार्यको सुचारुरूपसे न कर सके, जिसकी चाल ढाल बेढंगी हो। २ जो देखनेमें मनोहर न हो, भद्दा।

फूहर (हिं० वि०) फूहड़ देखो।

फूहा (हिं० पु०) रुईका गाला।

फूही (हिं० स्त्री०) १ पानीकी महीन बूंद। २ महीन बूंदोंकी झड़ी, झांसी।

फेंक (हिं० स्त्री०) फेंकनेकी क्रिया या भाव।

फेंकना (हिं० क्रि०) १ इस प्रकारकी गति देना कि दूर जा गिरे, अपनेसे दूर गिराना। २ एक स्थानसे ले जा कर और स्थान पर डालना। ३ कुश्ती आदिमें पटकना, दूर चित गिराना। ४ अपव्यय करना, फ़ज़ूल खर्च करना। ५ चलाना, ले कर घुमाना या हिलाना डुलाना। ६ उछालना। ७ परित्याग करना, छोड़ना। ८ जूए आदिके खेलमें कौड़ी, पाँसा, गोटी आदिका हाथमें ले कर इस लिये जमीन पर डालना कि उनकी स्थितिके अनुसार हार जीतका निर्णय हो। ९ गँवाना, खोना। १० असावधानीसे इधर उधर छोड़ना या रखना। ११ अपना पीछा छुड़ा कर दूसरे पर भार डाल देना।

फेंकाना (हिं० क्रि०) फेंकनेका काम कराना।

फेंगा (हिं० पु०) फिंगा देखो।

फेंट (हिं० स्त्री०) १ कटिका मण्डल, कमरका घेरा। २ कमरमें बाँधा हुआ कोई कपड़ा, कमरबंद। ३ फेटा, लपेट।

फेंटना (हिं० क्रि०) १ लेप या लेईकी तरह चीजको हाथ या उंगलीसे मथना। २ गड्डीके तासोंको उलट पलट कर अच्छी तरह मिलाना। ३ उंगलीसे हिला कर खूब मिलाना।

फेंटा (हिं० पु०) १ कमरका घेरा. २ कमरबंद, पटुका। ३ धोतीका वह भाग जो कमरमें लपेट कर बाँधा गया हो। ४ सूतकी बड़ी अंटी, अटेरन पर लपेटा हुआ सूत। ५ सिर पर लपेट कर बांधनेका वस्त्र, छोटी पगड़ी।

फेंटी (हिं० स्त्री०) अटेरन पर लपेटा हुआ सूत, सूतका पोला।

फेंसी (अं० वि०) फैंसी देखो।

फेकरना (हिं० क्रि०) आच्छादनरहित होना, नंगा होना।

फेकारना (हिं० क्रि०) खोलना, या नंगा करना।

फेण (सं० पु०) स्फायते वर्द्धते इति स्फाय (फेनमीनौ। उण् ३।३) इति नक्, फ शब्दादेशश्च मतान्तरे णत्वं। महीन महीन बुलबुलोंका वह गठा हुआ समूह जो पानी या और किसी द्रव पदार्थके खूब हिलने, यासड़ने खौलनेसे ऊपर दिखाई पड़ता है। फेन देखो।

फेत्कार (सं० पु०) अव्यक्त वायु शब्द या पशुध्वनि।

फेत्कारिणी (सं० स्त्री०) फेत्करोतीति कृ-णिनि, ङीप्। तन्त्रविशेष।

फेत्कारीय (सं० पु०) तन्त्रविशेष।

फेन (सं० पु०) स्फायते वर्द्धते इति स्फाय (फेनमीनौ च। उण् ३।३) इति नक् फेशब्दादेशश्च। १ जलके ऊपर उठा हुआ बुलबुला। फेण देखो। संस्कृत पर्याय—हिण्डिर, अब्धिकफ, हिण्डीर, समुद्रकफ, जलहास, फेनक। फेन शब्दका नकार दन्त्य होगा। कोई कोई मूर्द्धण्यका भी व्यवहार करते हैं।

वानीर, गगन, फेन और ऊन इनका नकार दन्त्य न होगा। किसीके मतसे केवल गगन शब्दमें मूर्द्धण्य ण होता है। २ नाकका मल, रेंट।

फेनक (सं० पु०) फेन स्वार्थे संज्ञायां वा कन्। १ फेन, झाग। २ पिष्टकविशेष, टिकियाके आकारका एक पकवान या मिठाई। ३ गात्रमार्जनादिवत् क्रियाविशेष, शरीर धोने या मलनेकी एक क्रिया।

फेनका (सं० स्त्री०) फेनेन कायतीति कै-क-टाप्। १ जलपक्व तण्डुलचूर्ण, पानीमें पका हुआ चावलका चूर। २ अरिष्टकवृक्ष, रीठेका पेड़।

फेनगिरि—सिन्धुनदीके मुहानावर्त्ती एक पर्वत।

फेनदुग्ध (सं० स्त्री०) फेन इव दुग्धं यस्याः। दुग्धफेनीक्षुप, दूधफेनी नामका पौधा जो दवाके काममें आता है। यह एक प्रकारकी दुधिया घास है।

फेनप (सं० पु०) १ स्वयं पतित फलादिजीवी मुनिविशेष। फेनं पिवतीति फेन-पा-क। (त्रि०) २ फेनपानकर्त्ता, फेन पीनेवाला।

फेनमेह (सं० पु०) प्रमेहभेद। इसमें वीर्य फेनकी तरह थोड़ा थोड़ा गिरता है। यह श्लेष्मज प्रमेह है।

प्रमेह देखो।

फेनमेहिन् (सं० त्रि०) फेनमेह-अस्त्यर्थे इनि। प्रमेहरोगयुक्त।

फेनल (सं० त्रि०) फेनोऽस्त्यस्येति फेन (फेनादि लच्च। पा ५।२।९९) इति चात्-लच्। फेनयुक्त, फेनिल।

फेनवत् (सं० त्रि०) फेनोऽस्त्यस्येति (फेनादिलच्च। पा ५।२।९९) इत्यत्र अन्यतरस्यामित्यनुवृत्तेः पक्षे मतुप् मस्य वः। फेनिल, फेनयुक्त।

फेनवाहिन् (सं० पु०) फेनवत् शुभ्रतां वहतीति वह-णिनि। वस्त्र, कपड़ा।

फेना (सं० स्त्री०) फेनोऽस्ति वाहुल्येनास्याः फेन-अच्-टाप्। १ सातलाक्षुप। २ शेहुण्डभेद।

फेनाग्र (सं० क्ली०) फेनस्याग्रं। बुद्‌बुद, बुलबुला।

फेनायमान (सं० त्रि०) फेनमुद्वमतीति फेन (फेनाच्चेति वाच्यं। पा ३।१।१६) इत्यस्य वार्त्तिकोक्त्या क्यङ् ततः शानच्। १ उत्थित फेन दुग्धादि। फेनइव आचरति क्यङ् शाणच्। २ फेनकी भांति आचरणयुक्त।

फेनाशनि (सं० पु०) फेन एव अशनिर्वज्रं यस्य। इन्द्र। इन्द्रने फेन द्वारा वृत्रासुरका वध किया था, इसीसे इनका यह नाम पड़ा है। देवीभागवतमें लिखा है, कि वृत्रासुरके साथ जब इन्द्रका घोर संग्राम छिड़ा, तब इन्द्र युद्धस्थलमें शत्रु-वध करनेका उपाय सोचने लगे। इसी समय इन्द्रको समुद्रमें पर्वतके समान ऊंची फेनराशि दिखाई दी। इन्द्रने अतिशय भक्तिपूर्वक उस फेनको ले कर परमाराध्या भगवतीका स्मरण किया। भगवतीने भी प्रसन्न हो कर उस फेनमें आत्मसंस्थापन किया। इधर वज्र भी उस फेनपिण्ड द्वारा आवृत हुआ। अब इन्द्रने उस फेनावृत वज्रको वृत्रके ऊपर फेंका जिससे वृत्र उसी समय धड़ामसे पृथ्वी पर गिरा और मर गया। इसी प्रकार फेनावृत अशनि द्वारा इन्द्रने वृत्रका संहार किया था। (देवीभाग० ६।६।५५-५६)

फेनिका (सं० स्त्री०) फेन इव आकृतिरस्त्यस्याः फेन-ठन्-टाप्। पक्वान्नविशेष, फेनी नामकी मिठाई। इसकी प्रस्तुत प्रणाली—ढोले गुंधे हुए मैदेको थालीमें रख कर घीके साथ चारों ओर गोल बढ़ावे। फिर उसे कई बार लपेट कर बढ़ावे। इस प्रकार बढ़ाता और लपेटता चला जाय। आखिर घीमें तल कर चाशनीमें पागते या यों ही काममें लाते हैं। यह मिठाई दूधमें भिगो कर खाई जाती है।

फेनिल (सं० क्ली०) फेनोऽस्त्यस्येति (फेनादिलच्च। पा ५।२।९९) १ कोलिफल, वेरका फल। २ मदनफल, मैनफल। ३ अरिष्टवृक्ष, रीठेका पेड़। ४ वदरीवृक्ष, वेरका पेड़। ५ जलब्राह्मी, हिलमोची। (त्रि०) ६ फेनयुक्त, फेनवाला।

फेनी—१ नोआखाली जिलान्तर्गत एक उपविभाग। भूपरिमाण ३४३ वर्गमील है।

२ पूर्ववङ्गमें प्रवाहित एक नदी। यह त्रिपुराके पहाड़ी प्रदेशसे निकल कर दक्षिण-पश्चिमकी ओर वह गई है। यह नदी चट्टग्राम और त्रिपुराके पार्श्वत्यप्रदेशके वीच हो कर वहती हुई वङ्गोपसागरमें मिल गई है।

फेनी (हिं० स्त्री०) लपेटे हुए सूतके लच्छेके आकारकी मिठाई। फेनिका देखो।

फेन्य (सं० त्रि०) फेन-यत्। फेनभव, जो फेनसे निकले।

फेफड़ा (हिं० पु०) शरीरके भीतर थैलीके आकारका वह अवयव जिसकी क्रियासे जीव सांस लेते हैं।

वक्षाशयके अभ्यन्तर वायुनालमें थोड़ी दूर नीचे दो कनखे इधर उधर फूटे रहते हैं। इन कनखोंसे संलग्न मांसका एक एक लोथड़ा दोनों ओर रहता है। ये थैलीके आकारके और छिद्रमय होते हैं। ये ही दोनों लोथड़े

दहिने और बाएं फेफड़े कहलाते हैं। दहिना फेफड़ा बाएं फेफड़े से चौड़ा और भारी होता है। फेफड़े की आकृति बीचसे फटी हुई नारंगीकी फांक-सी होती है। जिसका नुकीला शीर्ष भाग ऊपरकी ओर होता है। फेफड़ाका निचला चौड़ा भाग उदराशयको वक्षाशयसे अलग करनेवाले परदे पर रखा रहता है। दहिने फेफड़े में दो दरारें होती हैं। इन दरारों के कारण वह तीन भागों में विभक्त दिखाई पड़ता है। बाएं फेफड़े-में एक ही दरार होती है जिससे वह दो ही भागों में बंटा दिखाई देता है। फेफड़े चिकने और चमकीले होते हैं और उन पर कुछ चित्तियां-सी पड़ी रहती हैं। युवावस्थामें मनुष्यके फेफड़े का रंग कुछ नीलापन लिये भूरा होता है। गर्भस्थ शिशुके फेफड़े का रंग गहरा लाल होता है। जो जन्मके उपरान्त गुलाबी रहता है। दोनों फेफड़ोंका वजन सेर सवा सेरके लगभग होता है। स्वस्थ मनुष्यके फेफड़े वायुसे भरे रहनेके कारण जलसे हलके होते हैं और जलमें नहीं डूबते। परन्तु जिन्हें न्यूमोनिया, क्षय आदि रोग होते हैं उनके फेफड़े का रुग्ण भाग ठोस हो जाता है और जलमें डालनेसे डूब जाता है। गर्भ के अभ्यन्तर शिशु श्वास नहीं लेता, इस कारण उसका फेफड़ा जलमें डूब जायगा। परन्तु जो शिशु उत्पन्न हो कर कुछ भी जीवित रहा है, उसका फेफड़ा जलमें नहीं डूबता। प्राणी श्वास द्वारा जो वायु खींचते हैं वह श्वास नाल द्वारा फेफड़े में पहुंचती है। इस टेंटुवेके नीचे थोड़ी दूर जा कर श्वासनालके इधर उधर दो कनखे फूटे रहते हैं जिन्हें दहनी और बाईं वायुप्रणालियां कहते हैं। फेफड़े के भीतर प्रवेश करते ही ये वायुप्रणालियाँ उत्तरोत्तर बहुत-सी शाखाओंमें बंट जाती हैं। फेफड़े में जानेके पहले वायुप्रणाली लचीली हड्डीके छल्लोंके रूपमें रहती है, पर भीतर जा कर ज्यों ज्यों शाखाओंमें विभक्त होती जाती हैं त्यों त्यों शाखाएं पतली और सूतके रूपमें होती जाती हैं। यहां तक, कि ये शाखाएं फेफड़े के सब भागोंमें जालके सदृश फैली रहती हैं। इन्हींसे श्वास द्वारा आकर्षित वायु फेफड़े-के सब भागोंमें पहुंचती है। फेफड़े के बहुतसे छोटे छोटे विभाग होते हैं। जो वायु नासिका द्वारा भीतर जाती उसे श्वास और जो बाहर निकाली जाती है उसे प्रश्वास कहते हैं। जो वायु भीतर खींची जाती है उसमें कारबन, जलवाष्प और हानिकारक पदार्थ बहुत कम मात्रामें होते हैं, तथा आक्सिजन गैस जो प्राणियोंके लिये आवश्यक है अधिक मात्रामें होती है। परन्तु प्रश्वासमें कारबन या अङ्गारक वायु अधिक और आक्सिजन कम रहती है। शरीरके मध्य जो अनेक रासायनिक क्रियाएं होती रहती हैं उनके कारण जहरीली कारबन गैस बनती रहती है। इस गैसके सबबसे रक्तमें कुछ कालापन आ जाता है। यह काला रक्त शरीरके सब भागोंसे जमा हो कर दो महाशिराओंके द्वारा हृदयके दक्षिण कोष्ठमें पहुंचता है। हृदयसे यह दूषित रक्त फिर फुफ्फुसीय धमनी द्वारा दोनों फेफड़ोंमें आ जाता है। यहां रक्तकी बहुतसी-कारबन गैस बाहर निकल जाती है और उसके स्थानमें आक्सिजन आ जाता है, इस प्रकार फेफड़ों में आ कर रक्त शुद्ध हो जाता है।

फेफड़ी (हिं० स्त्री०) गरमी या खुश्कीसे ओठोंके ऊपर चमड़े की सूखी तह, प्यास या गरमीसे सूखे हुए ओठ-का चमड़ा।

फेफरी (हिं० स्त्री०) फेफड़ी देखो।

फेर (सं० पु०) फे इति शब्दं राति गृह्णातीति रा-ग्रहणे क। शृगाल, गीदड़।

फेर (हिं० पु०) १ चक्कर, घुमाव। २ परिवर्त्तन, उलट पुलट। ३ मोड़, झुकाव। ४ असमंजस, उलझन। ४ भ्रम, संशय। ६ षट्चक्र, चालबाज़ी। ७ बल, अन्तर। ८ प्रपंच, जंजाल। ६ हानि, टोटा। १० भूत प्रेतका प्रभाव। ११ युक्ति, उपाय। बदला बदला, एवज़।

फेरण्ड (सं० पु०) फे इत्यव्यक्तं शब्देन रण्डतीति रण्ड-अच्। शृगाल, गीदड़।

फेरना (हिं० क्रि०) १ भिन्न दिशामें प्रवृत्त करना, गति बदलना। २ मण्डलाकार गति होना, चक्कर देना। ३ लौटना, वापस करना। ४ ऐंठना, मरोड़ना। ५ यहांसे वहां तक स्पर्श कराना, किसी वस्तु पर धीरेसे रख कर इधर उधर ले जाना। ६ पीछे चलाना, जिधरसे आता हो, उसी ओर भेजना या चलाना। ७ जिसके पाससे आया हो उसीके पास पुनः भेजना। ८ घोड़े आदिको

ठीक चलनेकी शिक्षा देना, चाल चलाना। ९ सबके सामने ले जा कर रखना, घुमाना। १० प्रचारित करना, घोषित करना। ११ पलटना, बदलना। १२ पोतना, तह चढ़ाना। १३ पार्श्व परिवर्त्तन करना, एक ही स्थान पर स्थिति बदलना। १४ स्थान वा क्रम बदलना। १५ अभ्यस्त करना, वार वार दोहराना।

फेर-पलटा (हिं० पु०) द्विरागमन, गौना।

फेरफार (हिं० पु०) १ परिवर्त्तन, उलट फेर। २ चक्कर, घुमाव फिराव। ३ अन्तर, वीच। ४ टालमटूल, वहाना।

फेरव (सं० पु०) फे इति रवि यस्य। १ शृगाल, गीदड़। २ राक्षस। (त्रि०) ३ धूर्त्त, चालवाज। ४ हिंस्र, दुःख पहुंचानेवाला।

फेरवट (हिं० स्त्री०) १ फिरनेका भाव। २ लपेटनेमें एक एक वारका घुमाव। ३ घुमाव फिराव, पेच। ४ अन्तर, फर्क।

फेरवा (हिं० पु०, सोनेका वह छल्ला जो तारको दो तीन वार लपेट कर वनाया जाता है, लपेटुआ।

फेरा (हिं० पु०) १ परिक्रमण, चक्कर। २ लौट कर फिर आना, पलट कर आना। ३ इधर उधरसे आगमन। ४ लपेट, मोड़। ५ वार वार आना जाना।

फेराफेरी (हिं० स्त्री०) हेरा फेरी, इधरका उधर।

फेरी (हिं० स्त्री०) १ प्रदक्षिण, परिक्रमा। २ फेरा देखो। ३ फेर देखो। ४ वह चरखी जिस पर रस्सी पर ऐंठन चढ़ाई जाती है। ५ योगी या फकीरका किसी वस्तीमें भिक्षाके लिये वरावर आना। ६ कई वार आना जाना, चक्कर।

फेरीवाला (हिं० पु०) घूम घूम कर सौदा वेचनेवाला व्यापारी।

फेरु (सं० पु०) फे इति शब्देन रौतीति रु मितद्र्वादित्वात् डु। शृगाल, गीदड़।

फेरुआ (हिं० पु०) फेरवा देखो।

फेरोख—मन्द्राज प्रदेशके मलवार जिलेका एक नगर। यह अक्षा० २३°१' उ० तथा देशा० ९०°२५' पू०के मध्य अवस्थित है। जनसंख्या चार हजारके करीव है। १७८९ ई०में महिसुरराज टीपूसुलतान इस नगरको उक्त जिलेकी राजधानी कायम कर कलिकट-वासियोंको वहां ले गये थे। १६९० ई०में अङ्गरेजोंने इस नगरको अधिकार कर ध्वंस कर डाला। यहां खपड़ेका एक वड़ा कारखाना है।

फेरौरी (हिं० स्त्री०) टूटे फूटे खपरैलोंको छाजनसे निकाल कर उनके स्थानमें नये नये खपरैले रखनेकी क्रिया।

फेल (सं० क्ली०) फेल्यते दूरे निक्षिप्यते इति फेल-घञ्। भुक्त समुज्झित, उच्छिष्ट द्रव्य, जूठा।

फेल (अ० पु०) कार्य, काम।

फेल (अं० पु०) अकृतकार्य, जिसे काजमें सफलता न हुई हो।

फेलक (सं० पु०) फेल स्वार्थे संज्ञायां कन्। उच्छिष्ट, जूठा।

फेला (सं० स्त्री०) फेल्यते इति फेल (गुरोश्च हलः। ३।३।१०६) इति अ, टाप्। उच्छिष्ट वस्तु, जूठा पदार्थ।

फेलि (सं० स्त्री०) फल-इन्। उच्छिष्ट, जूठा।

फेलिका (सं० स्त्री०) फेलिरेव स्वार्थे कन् टाप्। उच्छिष्ट, जूठा।

फेली (सं० स्त्री०) फेलि-ङीप्। उच्छिष्ट, जूठा।

फेलो (अं० पु०) सभासद, सभ्य।

फेल्ट (अं० पु०) जमाया हुआ ऊन, नमदा।

फेस (अं० पु०) १ चेहरा, मुंह। २ सामना। ३ घड़ीका सामना भाग जिस पर सुई और अङ्क रहते हैं। ४ टाइपका वह ऊपरी भाग जो छपने पर उभरता है।

फेहरिस्त (हिं० स्त्री०) फिहरिस्त देखो।

फैंसी (अं० स्त्री०) १ देखनेमें सुन्दर, रूप रंगमें मनोहर। २ दिखाऊ, तड़क भड़क का।

फैकृरी (अं० स्त्री०) कारखाना।

फैज़ (अ० पु०) १ वृद्धि, लाभ। २ परिमाण फल।

फैज अली—१ दिल्लीवासी एक मुसलमान कवि। इनका नाम मीर फैजअली है। इनके पिता मीर महम्मद तकि भी एक विख्यात कवि थे। दोनों ही १७८५ ई०को दिल्लीनगरमें विद्यमान थे।

२ दीवान फैज नामक पारस्य-भाषाके संगीतग्रन्थ-रचयिता। ये लखनऊ-राज महम्मद अली शाहके समसामयिक थे।

फैजपुर—बम्बई प्रदेशके खान्देश जिलेका एक नगर। यह अक्षा० २१° १०' उ० और देशा० ७५° ५२' पू० धूलियासे ७२ मील उत्तर-पूर्वमें अवस्थित है। जनसंख्या दश हजारसे ऊपर है। सूती कपड़ेकी छींट तथा नील और लाल रंग प्रस्तुत होनेके कारण यह स्थान प्रसिद्ध है। प्रायः ३०० घर इसी कामसे अपना गुजारा चलाते हैं। नगरमें रुई और काठको भी अच्छी विक्री होती है। यहां कुल मिला कर पांच स्कूल हैं।

फैजावाद—१ युक्तप्रदेशके अयोध्या प्रदेशके अन्तर्गत एक विभाग। यह अक्षा० २५° ३४' से २८° २४' उ० और देशा० ८०° ५६' से ८३° ८' पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण १२११३ और जनसंख्या सात लाखके लगभग है। इसमें फैजावाद, गोण्डा और वहराइच नामक तीन जिले लगते हैं।

२ उक्त विभागका एक जिला। यह अक्षा० २६° ६' से २६° ५०' उ० और देशा० ८१° ४१' से ८३° ८' पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण १७४० वर्गमील है। इसके उत्तर-पूर्वमें गोगरा नदी, दक्षिण-पूर्वमें आजमगढ़ और सुलतानपुर तथा पश्चिममें वरवांकी है। जिलेकी प्रधान नदी गोगरा है जो उत्तरी सोमामें ६५ मील तक वह गई है। यहां पलाशवृक्षके घने जङ्गल नजर आते हैं जिनमें नीलगाय बहुतायतसे पाई जाती है। पलाशवृक्षके सिवा आम्रकानन भी अनेक हैं।

इस जिलेका पुरावृत्त अयोध्याके इतिहासके साथ मिला हुआ है। अयोध्या और श्रावस्ती देखो। रामचन्द्र और उनके वंशधरोंके शासनके वाद हम वौद्धधर्मका पूर्णप्रभाव और अवनति देखते हैं। उज्जयिनीराज विक्रमादित्यके समय ब्राह्मण्यधर्मका पुनः आविर्भाव देखा गया। पीछे दोनों मतावलम्बी राजाओंका संघर्ष हुआ और ८वीं शताब्दीमें हिन्दुधर्मका फिरसे प्रभाव जमा। किन्तु उक्त समयका कोई धारावाहिक इतिहास नहीं मिलता। ११वीं शताब्दीमें मुसलमानी आक्रमणसे ही यहांका प्रकृत इतिहास लिपिवद्ध किया जाता है। १०३० ई०में सुलतान महमूदके सेनानायक सैयदसलार मसाउदने अयोध्या आक्रमणकालमें फैजावादको लूटा था। उस युद्धमें सैयदसलार राजपूतोंके हाथसे पराजित और निहत हुए थे। कन्नौज-युद्धके वाद यहां मुसलमानी-शासन प्रतिष्ठित हुआ। १८वीं शताब्दीके प्रथम भागमें अयोध्यासे राजधानी उठा कर फैजावाद लाई गई। १७६६ ई०में अयोध्याके शासनकर्त्ता सुजाउद्दौलाने यहां चिरस्थायी वासका वन्दोवस्त किया। उनकी मृत्युके वाद (१७८० ई० में) राजधानी लखनऊ नगर लाई गई। अनन्तर १८५७ ई०का गदर ही यहांका प्रधानतम ऐतिहासिक घटना है। सिपाहीविद्रोह देखो।

इस जिलेमें ६ शहर और २६६१ ग्राम लगते हैं। जनसंख्या दश लाखसे ज्यादा है। सैकड़े पीछे ९० हिन्दू और १० मुसलमान हैं। फैजावाद, अकवरपुर, वीकापुर, और टण्डा नामकी इसमें चार तहसील लगती हैं। यहां धानकी अच्छी फसल लगती है और यही जिले भरका प्रधान खाद्य है। धानके अलावा चना, गेहूं, मटर, मसूर, जौ, अरहर, कोदों भी उपजता है। अनाज (खास कर चावल), चीनी, कपड़े, तेलहन, अफीम, चमड़े, और तमाकूकी रफतनी तथा थान, धातु और नमककी आमदनी होती है। वनारससे लखनऊ तक जानेवाली अवधरोहिलखण्ड रेलवेकी लूप लाईन इसी जिले हो कर गई है। इस जिलेको दुर्भिक्षसे कई वार मुकावला करना पड़ा था जिससे इसकी महती क्षति हुई थी। यों तो कई वार दुर्भिक्ष पड़े हैं, पर १८७८के दुर्भिक्षने भयङ्कर रूप धारण किया था। डिपटी कमिश्नर इण्डियन सिभिलसर्विसके एक या दो सदस्य और चार डिपटी कलेक्टरकी सहायतासे राजकार्य चलाते हैं।

इस जिलेके अधिकांश मनुष्य विद्याशिक्षासे वञ्चित हैं। सैकड़े पीछे ४ मनुष्य पढ़े लिखे मिलते हैं। फिलहाल यहां ३० प्राइमरी और सेकेण्ड्री स्कूल, ३ सरकारी तथा १०० म्युनिसिपल स्कूल हैं। स्कूलके अलावा ११ अस्पताल हैं। जिले भरमें दो म्युनिसिपलिटियां हैं, एक फैजावादमें और दूसरी टण्डामें। आवहवा वहुत अच्छी है।

२ उक्त जिलेकी एक तहसील। यह अक्षा० २६° ३२' से २६° ५०' और देशा० ८१° ४८' से ८२° २६' पू०के मध्य अवस्थित है। क्षेत्रफल ३७१ वर्गमील और जनसंख्या साढ़े तीन लाखके करीव है। इसमें ४ शहर और ४४६ ग्राम लगते हैं।

३ उक्त तहसीलका एक शहर। यह अक्षा० २६° ४७´ उ० और देशा० ८२° १०´ पू०के मध्य गोगरा नदीके किनारे अवस्थित है। जनसंख्या लगभग ७५०८५ है। इसके पश्चिममें वर्त्तमान अयोध्यानगर पड़ता है। ये दोनों ही नगर प्राचीन अयोध्या महानगरीके ऊपर वसे हैं। १७३२ ई०में मनसुर अली खाँ यहां आये थे। उनका अधिकांश समय इसी शहरमें व्यतीत होता था। किन्तु उनके वंशधर सुजाउद्दौलाने १७६० ई०में इस नगरको राजधानीमें परिणत किया था। १७७५ ई०में जब सुजाउद्दौलाकी मृत्यु हुई, तब आसफ उद्दौलाने १७८० ई०में राजधानीको लखनऊ उठा लाये। १७६८ ई०से वहू वेगम इस नगरका निष्करभोग कर रही थी। १८१६ ई०में उनकी मृत्युके वादसे यह नगर श्रीहीन हो गया है। उनका समाधिमन्दिर और तत्संलग्न 'दिल-खुस' प्रासाद अयोध्या प्रदेशके मध्य देखने लायक है। कहते हैं, कि इसके वनानेमें तीन लाख रुपये खर्च हुए थे। यहां रोहिलखण्ड रेलपथका स्टेशन है। शहरके उत्तर-पश्चिम गोगराके किनारे सेनानिवास है। यहां पुरुष और स्त्रीके लिये पृथक् पृथक् अस्पताल हैं।

फैजी सेख—अकवरशाहके प्रधान मन्त्री सेख अब्दुल-फजलके वड़े भाई और नागरवासी सेख मुवारिकके पुत्र। ६५४ हिजरीमें उनका जन्म हुआ। उनका प्रकृत नाम अब्दुल फैज था, पर फैजी नामसे ही जन साधारणमें परिचित थे। ये उक्त सम्राट्के राज्यारोहणके १२ वर्ष वाद राजसभामें पहुंचे और 'मालिक-उप-शुआरा' उपाधिसे भूषित हुए। इतिहास, दर्शन, आयुर्वेद तथा गद्य और पद्य रचनामें वे विशेष पारदर्शी थे। उस समय उनके मुकावलेमें दिल्ली भरमें और कोई न था। प्रथम रचनाओंमें उनका फैजी नाम मिलता है, पर पीछे उन्होंने फैयाजी नामसे अपनेको सम्मानित किया था। उन्होंने निजामी लिखित विख्यात पांच खामसा कविताके प्रतिद्वन्द्वी हो 'मर्कज-अदवर' 'सुलेमान और विलकाइज' 'नलदमन' 'हस्त किङ्कवर' और अकवरनामाकी रचना की। छद्मवेशमें एक ब्राह्मण पण्डितके घर रह कर उन्होंने हिन्दू-साहित्य और विज्ञानकी आलोचना की थी। संस्कृत काव्य और दर्शन छोड़ वे भास्कराचार्य-प्रणीत वीजगणित और लीलावतीका अनुवाद करके अपनी विद्यावुद्धिका परिचय दे गये हैं।

उन्होंने कुरान शास्त्रका भी एक अति वृहत् व्याख्या ग्रन्थ लिखा है। उस ग्रन्थमें उन्होंने २८ अक्षरोंके मध्य नुक्ता संयुक्त अक्षरोंको वाद दे कर केवलमात्र १३ अक्षरमें शब्दयोजना करते हुए उसे जनसाधारणके पाठयोग्य वनाया था। कुछ लोगोंका कहना है, कि अल्लोपनिषद इन्हींका वनाया हुआ है। भाषामें भी इन्होंने वहुतसे दोहे वनाये हैं।

एक वार अकवरने इनसे हिन्दुस्तानकी सभी भाषाएं सीखनेके लिये कहा। ये कई वर्षों तक भारतवर्षके सभी प्रान्तोंमें घूम घूम कर वहांकी भाषाएं सीखते रहे। जव घर लौटे और दरवारमें हाजिर हुए तव वादशाहने कहा, 'फैजी! किस प्रान्तमें कौनसी भाषा वोली जाती है, उदाहरण सहित कहो।' फैजी सव देशोंकी वोलियां वादशाहको सुनाने लगे। अन्तमें वे अपनी जेवसे एक शीशी जिसमें कुछ कंकड़ भरे हुए थे निकाल कर खड़खड़ाने लगे। अकवरने हँस कर पूछा, 'फैजी! यह किस मुल्ककी वोली है।' फैजीने उत्तर दिया, 'खुदावन्द! यह तैलङ्गी है और तैलङ्ग देशमें वोली जाती है।' यह सुन कर वादशाह और सव सभासद हँसने लगे। इस प्रकार ये दरवारमें प्रायः हँसाते ही रहते थे। इस कारण अकवरकी इन पर वड़ी कृपा रहती थी। १००४ हिजरी (१५६६ ई०)-में दमारोगसे इनकी मृत्यु हुई। यह एक एकेश्वरवादी थे। इस कारण इस्लाम्-धर्मावलम्विगण इन्हें विधर्मी समझ कर तिरस्कार करते थे। फैजी एक असाधारण धीशक्ति-सम्पन्न पण्डित थे। अरवी साहित्यमें, काव्यमें और हकीमी-विद्यामें इनकी विशेष पारदर्शिता थी। ये कुल मिला कर १०१ ग्रन्थ लिख गये हैं। इनकी ऐसी तीव्र वुद्धि थी, कि जो पुस्तक एक वार पढ़ लेते थे, वह इन्हें याद हो जाती थी। इनकी तनखाहका अधिक भाग पुस्तकें खरीदनेमें ही खर्च होता था। कहते हैं, कि ४६०० पुस्तकें इनके पुस्तकालयमें निकली थीं।

फैज-उल्ला-अंजूमीर—एक मुसलमान काजी। ये दाक्षिणात्यके वाह्मनीराज सुलतान महमूदके शासन-

कालमें (१३७८-१३८७० ई०में) न्यायाधीशका काम करते थे। आप एक सुकवि और विख्यात ख्वाजा हाफिजके समसामयिक थे।

फैजउल्ला खाँ—एक रोहिला सरदार और रामपुरके जागीरदार। ये रोहिला-सरदार अली महम्मद खाँके पुत्र थे।

१७७४ ई०को कटराकी लड़ाईमें हार खा कर ये कुमायुनके पहाड़ी प्रदेशमें भाग गये। पीछे अंगरेजोंसे सन्धि हो जाने पर इन्हें १३ लाखकी सम्पत्ति मिली। अब इन्होंने रामपुरमें राजप्रासाद और राजधानी बसाई। २० वर्ष तक सुचारुरूपसे राज्य करके ये १७९४ ई०में परलोकको सिधर गये।

फैजुलपुरिया—सिख-सम्प्रदायका एक मिसल या दल। ये लोग सिंहपुरिया नामसे भी प्रसिद्ध हैं। कपूरसिंह नामक एक जाट भूम्यधिकारी इस दलके नेता थे। जो खालसा सेना-दल फरुखसियरके राजत्वकालमें प्रतिष्ठित हुआ उसने इन्हीं कपूरसिंहकी अधिनायकतामें सिख बलका सर्वोच्च स्थान अधिकार किया। उन्होंने अपने बलवीर्यप्रभावसे सिख-जातिका भविष्योउन्नति-पथ परिष्कार कर दिया था। इस उन्नति-पथ पर आरूढ़ हो कर ही सिख लोग एक समय स्वाधीनभावमें राजत्व करनेमें समर्थ हुए थे।

उनके अधीनस्थ सिख-दलने उन्हें नवाबकी उपाधि दी। उन्होंने अपने बाहुबलसे सैकड़ों जाट, बढ़ई, तांती, क्षत्रिय आदिको गुरुगोविन्दका धर्ममत ग्रहण करनेको बाध्य किया। उस समय जनसाधारणके निकट ये धार्मिक समझे जाते थे। उनके हाथसे 'पाहल'-ग्रहण भी सब कोई सम्मानसूचक समझते थे। उनके अधीनस्थ ढाई हजार सिख बड़े ही दुर्द्धर्ष और धर्मोन्मत्त थे। इतनी ही सामान्य सेनाको ले कर उन्होंने दिल्लीकी सीमा तक धावा बोल दिया था।

१७५३ ई०को अमृतसरमें उनकी मृत्यु हुई। मरते समय वे अपना खालसा-दल अहलूवालिया सरदार यशसिंहके हाथ सौंप गये।

यशकी मृत्युके बाद खुशालसिंह सम्पत्तिके उत्तराधिकारी हुए। ये अपने चचाकी तरह वीर्यवान् और बुद्धिमान् थे। शतद्रुके किनारे तक उन्होंने अपना राज्य फैला लिया था। जालन्धर, नूरपुर, बहरमपुर, भरतगढ़, पट्टी और बनोर आदि स्थान उनके राज्यभुक्त हुए। ये भी बहुतोंको अपने मतमें लाये थे, यहां तक कि पतियाला-राज अलासिंहने भी उनके निकट गोविन्दका पाहल ग्रहण किया था। १७९५ ई०में उनकी मृत्यु हुई। पीछे उनके लड़के बुद्धसिंह राजा हुए। पञ्जावकेशरी रणजित्के समय यह दल विच्छिन्न हो गया और सरदार बुद्धसिंह अंगरेजी आश्रयमें रहनेको बाध्य हुए।

फैदम (अ० पु०) गहराईकी एक माप जो छः फुटकी होती है, पुरसा।

फ़ैर (अं० स्त्री०) बन्दूक तोप आदि हथियारोंका दगना।

फैल (हिं० स्त्री०) १ विस्तृत, लम्बा चौड़ा। २ फैला हुआ।

फैलना (हिं० क्रि०) १ लगातार स्थान घेरना, यहांसे वहां तक बराबर रहना। २ प्रचार पाना, बहुतायतसे मिलना। ३ पूरा तन कर किसी ओर बढ़ना, मुड़ा न रहना। ४ बिखरना, इकट्ठा न रहना। ५ वृद्धि होना, संख्या बढ़ना। ६ अधिक खुलना, किसी छेद या गड्ढेका और बड़ा हो जाना। ७ स्थूल होना, मोटाना। ८ आवृत करना, व्यापक होना। ९ विस्तृत होना पसरना। १० आग्रह करना, जिद करना। ११ प्रसिद्ध होना, बहुत दूर तक विदित होना। १२ इधर उधर दूर तक पहुंचना।

फैलसूफ (हिं० वि०) फजूल खर्च।

फैलसूफी (हिं स्त्री०) फजूलखर्ची।

फैलाना (हिं० क्रि०) १ लगातार स्थान घिराना। २ इधर उधर दूर तक पहुंचाना। ३ किसी छेद या गड्ढेको और बड़ा करना या बढ़ाना। ४ पूरा तान कर किसी ओर बढ़ाना, मुड़ा न रखना। ५ अलग अलग दूर तक कर देना, बिखेरना। ६ संकुचित न रखना, पसारना। ७ प्रचलित करना, किसी वस्तु या बातको इस स्थितिमें करना, कि वह जनताके बीच पाई जाय। ८ विस्तृत करना, पसारना। ९ व्यापक करना, भर देना। १० वृद्धि करना, बढ़ाना। ११ गुणा भागके ठीक होनेकी परीक्षा करना। १२ हिसाब किताब करना लेखा लगाना। १३ आयोजन करना, उपक्रम करना। १४ प्रसिद्ध करना, चारों ओर प्रकट करना। १५ गणितकी विद्याका प्रचार करना।

फैलाव (हिं० स्त्री०) १ विस्तार, प्रसार। २ प्रचार। ३ लम्बाई चौड़ाई।

फैशन (अं० पु०) १ चाल, ढंग। २ रीति, प्रथा।

फैसला (अं० पु०) १ दो पक्षोंमें किसकी बात ठीक है इसका निबटेरा। २ किसी मुकदमेमें अदालतकी आखिरी राय।

फोंक (हिं० पु०) १ तीरके पीछेकी नोक जिसके पास पर लगाए जाते हैं। इस नोक पर गड्ढा या खड्डी बनी रहती है जिसमें धनुषकी डोरी बैठ जाती है। (वि०) २ दलालोंकी बोलीमें 'चार'।

फोंकलाय (हिं० वि०) दलालोंकी बोलीमें 'चौदह'।

फोंका (हिं० पु०) १ लम्बा और पोला चोंगा। २ मटर आदि पोली डंठलवाले शस्योंकी फुनगी। ३ फूका देखो।

फोंकागोला (हिं० पु०) तोपका लम्बा गोला।

फोंफर (हिं० वि०) १ सावकाश, पोला। २ निःसार फोंक।

फोंफी (हिं० स्त्री०) १ गोल लम्बी नली, छोटा चोंगा। २ वह पोली कील जो नाकमें पहनी जाती है, छूंछी। ३ सोनार लोहार आदिकी आग धौंकनेकी नली जो बांसकी बनी होती है।

फोक (हिं० पु०) १ सार निकल जाने पर बचा हुआ अंश, सीठी। २ तुष, भूसी। ३ स्वादहीन वस्तु, फीकी या नीरस चीज। ४ सूक्ष्म पुष्पी, एक तृण जिसका साग बना कर लोग खाते हैं। यह साग मारवाड़की ओर होता है। वैद्यकमें इसे रक्त पित्त और कफनाशक तथा रेचक और ठंढा बतलाया है।

फोकट (हिं० वि०) तुच्छ, व्यर्थ।

फोकला (हिं० पु०) किसी फल आदिके ऊपरका छिलका।

फोकस (अं० पु०) १ वह बिन्दु जहां पर प्रकाशकी छितराई हुई किरनें एकत्र हों। २ फोटो लेनेके लिये लेंस द्वारा उस वस्तुकी छायाको जिसका छायाचित्र लेना है, नियत स्थान पर स्थित रूपसे लानेकी क्रिया।

फोग (सं० पु०) शाकविशेष।

फोट (हिं० पु०) स्फोट देखो।

फोटो (अं० पु०) फोटोग्राफीके यन्त्र द्वारा उतारा हुआ चित्र, छाया-चित्र।

फोटोग्राफ (अं० पु०) छायाचित्र, फोटो।

फोटोग्राफर (अं० पु०) फोटोग्राफीका काम करनेवाला।

फोटोग्राफी (*Photography*)-चित्रविद्याविशेष। आज कल इस चित्रविद्याके प्रभावसे हम लोग मनुष्यमात्रकी प्रतिकृति, पशुपक्षी आदि जीवमूर्त्ति और देव-मन्दिरादि बड़ी बड़ी अट्टालिकाओंकी प्रतिच्छवि बातकी बातमें अङ्कित कर ले सकते हैं। यह हस्तसाध्य चित्रशिल्पसे स्वतन्त्र है। चित्रविद्या देखो।

इस कला-विद्याकी सहायतासे जो चित्र उतारा जाता है, उसे 'फोटोग्राफ' कहते हैं। किस प्रकार प्रतिबिम्बित चित्रको देखते ही आधार पर वह प्रतिफलित होता है, उसको आलोचनासे ही इस विद्याका उद्भव हुआ है। सूर्यरश्मिकी शक्तिसे किसी किसी वस्तुमें रासायनिक विपर्यय हुआ करता है। सूर्यालोककी ऐसी परिवर्त्तनशील शक्ति (Actinic influence) रहनेसे तथा रासायनिक प्रक्रियासे प्रस्तुत आधारविशेषसे वह आलोकचालित प्रतिकृति प्रतिभात हो कर विकाश पाती है। इस तत्त्वका विशेष अनुशीलन ही फोटोग्राफीकी उन्नतिका प्रधानतम कारण है।

आलोककी सहायतासे चित्र उतारा वा लिखा जा सकता है, इसी कारण उसे कलाविद्याके अन्तर्निविष्ट किया गया है। जीवित वा मृत, खनिज, उद्भिद् और जीव प्रभृति जागतिक पदार्थोंमें आलोककी कार्यकारिताका लक्ष्य करके हम लोग अनुसन्धित्सु होते हैं, यही उक्त विद्याका वैज्ञानिक लक्षण है।

अभी फोटोग्राफी विद्याकी एक शौकीन कलामें गिनती की गई है। हमें मनस्तृप्तिकर चित्रोंकी आवश्यकता है इस कारण फोटोग्राफरको शरण लेनी पड़ती है। इस प्रकार आवश्यक समझ कर बहुतोंने वर्त्तमान समयमें इस विद्याको बड़े चावसे सीख लिया है। परन्तु प्राचीनकालमें सिले (Schelee), रीटर (Ritter), सीबेक (Seebeck), बरथोलेट (Berthollet), बेकारेल (Becquerel), उल्लस्टन (Wolla-ton), डेभी (Sir Humphrey-Davy), वेजउड (Thomas Wedgwood), इयं (T. Young) और हर्सल (Two Herchels) आदि महापुरुषगण बड़े परिश्रमसे इसकी वैज्ञानिक भित्तिको

मजबूत कर गये हैं। इस कलाविद्यामें अनुकूलद्रष्टिका विशेष कारण यह है, कि इसके अनुशीलन द्वारा रसायन-द्रष्टिविज्ञान और पदार्थविद्या (Physics)-के विषयमें बहुत कुछ उन्नति हुई है और हम लोगोंके शिल्पनैपुण्य-की उन्नतिके साथ ही साथ कार्यदक्षताका भी विकाश हुआ है। अभ्यस्त कार्यके परिपक्वतानुसार जब वह विकाश धीरे धीरे पराकाष्ठा पर पहुंच जाता है, तब उससे द्रष्टिविज्ञान और रसायनशास्त्रके अनेक सम्पाद्य विषय निर्द्धारित होते हैं और अन्तमें एक आनन्दका उपा-दान हो जाता है।

किस प्रकार विज्ञानविदोंके यत्न और उत्साहसे इस विद्याकी उत्पत्ति और उन्नति हुई है उसका संक्षिप्त विवरण नीचे लिखा जाता है।

पहले 'केमेरा अवसक्युरा' (Camera obscura) नामक चित्रप्रदर्शन-यन्त्रका आविष्कार हुआ। पदुआ-वासी वैप्तिस्ता पोर्टा (Baptista Porta) नामक कोई व्यक्ति (१५८६ ई०में) इसके गठनादिका निरूपण कर गये। सर हाम्फ्र डेभी, विजउड आदिने उत्साहसे अनुप्राणित हो 'Camera obscura' यन्त्रके द्वारा फिरसे इसकी परीक्षा करना आरम्भ कर दिया। उसके फलसे वह प्रतिफलित चित्र 'सेन्सेटिभ पेपर' के ऊपर अति क्षीणभावमें प्रतिविम्बित हो चित्ररूपमें प्रकाशित हुआ। पर्यायिक आलोचनासे वह यन्त्र बिल-कुल ठीक किया गया। सच पूछिये, तो वही फोटोग्राफीकी उत्पत्तिका मूलकारण बतलाया गया है। १६वीं शताब्दीके उत्तरार्द्धमें पोर्टाको वृक्षसे सघन पत्तोंमेंसे हो कर सूर्यकी किरणोंका प्रकाश छनते देख कर उत्सुकता हुई। उन्होंने अपने घरकी कोठरीको दीवारमें एक छोटासा छिद्र किया। फिर बाहरको ओर दीपक जला कर वे दूसरी ओर एक पर्दा टांग कर परीक्षा करने लगे। दीपशिखा उसे पर्दे पर उलटी लटकी दिखाई पड़ी। वे इस प्रकार दूसरे पदार्थों-की प्रतिकृतियां भी पर्देमें लानेका यत्न करने लगे। सुभीतेके लिये उन्होंने एक नतोदर शीशा (Lens) उस छेदमें लगा दिया। उनका कमरा नलाकार और अन्तर्भाग काला था। उस शीशेके द्वारा ही वे आलोकका अधि-श्रायण (Focus) ठीक कर लेते थे। उसी समय फ्रान्स देशके एक और वैज्ञानिकने परीक्षा करके नाइट्रेट आफ सिलवर (Nitrate of silver) नामक रासायनिक मिश्रण बनाया। यह मिश्रण यद्यपि सफेद होता है पर सूर्यकी किरण पड़ते ही धीरे धीरे काला होने लगता है। सन् १७२० ई०में स्विजरलैण्डके एक विद्वान् चार्ल्सने अंधेरी कोठरीमें नाइट्रेट आफ सिलवरके सहारेसे चित्र बनानेकी चेष्टा की। चित्र तो खिंच गया, पर स्थायी न हो सका। बहुतसे वैज्ञानिक चित्रको स्थायी करनेकी चेष्टा करते रहे। अन्तको सौ वर्ष पीछे, एमन्योपस नामक एक वैज्ञानिककी सहायतासे डगर साहबने पारेके रासायनिक मिश्रण द्वारा चित्रको स्थायी करनेमें सफलता प्राप्त की। १८५८ ई०में जान डोलण्डने वर्णविहीन शीशे (Achromatic lens)-का आविष्कार किया जिससे परिष्कार चित्र उतरने लगा। इसके बाद कमरेके यन्त्रादि और आकृतिक परिवर्त्तनसे डबल आब्जेक्टिभ लेन्सका व्यवहार करनेसे सूक्ष्म अधि-श्रयण ग्रहण आदि विषयोंमें बहुत उन्नति हुई है। इस प्रकार अनुशीलन बलसे ही चित्र ग्रहणके लिये बकस (Box Camera)-से बेलो (Bellows Camera) पीछे ष्टेरोस्कोपिक (Stereoscopic) और ओस-बर्णस् कपि कमरा तथा टेवल (Osborne's Copying Camera and Table) आदिका आविष्कार हुआ है। इसके बाद १७९८ ई०में काउण्ट रामफोर्ड (Count Rumford)) ताउको ही इन सब परि-वर्त्तनका कारण समझ कर प्रवन्ध लिखा।

१८०१ ई०में रीटरने कांच-प्रतिफलित विभिन्न वर्णों-के सौरप्रतिविम्ब पर आलोकमालाका अवस्थान प्रमा-णित करके क्लोराइड आफ सिलवरका वर्णान्तर निरूपण किया है। इसी अनुसन्धानसे एम् एम् वेराडं, सिवेक, वार्थोलेट, सर डवल्यू हर्सेल, सर एच्च एङ्गलफिल्ड, वाले-एन, डेभी आदिका चित्त आकृष्ट हुआ। वे लोग भी परीक्षा द्वारा जीवदेहके ऊपर आलोककी इस विशिष्ट शक्तिका प्रभाव स्थिर कर गये हैं।

प्राचीनकालमें फोटोग्राफी विद्याकी नींव डालनेमें अटूट परिश्रम किया गया था। प्रिष्टले, सेनिवायर, इङ्गेनहाउज, डि कण्डोले, ससार और रीटर आदि-

मनीषियोंने उद्भिदादिके ऊपर आलोकशक्तिके प्रभाव-निर्णयमें भी वैसी ही चेष्टा की थी।

रीटर और वालेष्टनके वाद १८०२ ई०में टोमस विज-उड और सर हाम्फ्रे डेभीने फोटोग्राफी विद्याकी उन्नतिके लिये अच्छी आलोचना की। रासायनिक प्रक्रियासे नाइ-ट्रेट आफ सिलवरके प्रलेप द्वारा प्रस्तुत कागज, चर्म, कांच वा पत्रादिके ऊपर (Sensitive surface) सूर्या-लोकसे आलोकित प्राकृतिक पदार्थोंका पूर्ण चित्र कमरा अवस्किउरा और सौर अणुवीक्षण (solar microscope) यन्त्रकी सहायतासे वे अङ्कित करनेमें समर्थ हुए थे। चित्र तो खिंच गया पर स्थायी न हो सका। डगरने चित्रको पहले पोटास ब्रोमाइडमें डुवा डुवा कर देखा, पर अन्तमें उन्हें हाइपो सल्फाइट सोडा द्वारा पूरी सफलता हुई। इसी समय एक अंगरेजने गैलिक एसिड और नाइट्रेट आफ सिलवरकी मददसे कागज पर चित्र छापने-का तरीका निकाला। क्रमशः वह विद्या उन्नति करती गई और सन् १८५० ई०में प्लेट पर चित्र लिये जाने लगे। १८७२ ई०में डा० मैडाक्सने जेलेटीनकी सहा-यतासे प्लेट बनानेकी प्रथा चलाई। वह प्रथा उत्तरोत्तर उन्नत हो कर अब तक प्रचलित है। अब आर्द्र प्लेटका बहुत कम व्यवहार होता है। प्रायः सब जगह शुष्क प्लेट काममें लाया जाता है।

कमरा सन्दूकके आकारका होता है। इसके आगे-की ओर वीचमें गोल लम्बा चोंगा सा निकला रहता है। उस चोंगेमें एक गोल उन्नतोदर शीशा लगा रहता है। इसी शीशेका नाम लेंस है। दूसरी ओर एक शीशा और एक किवाड़ होता है। वह किवाड़ खटकेसे खुलता और वंद होता है। कमरेके वीचका भाग भाथीकी तरह होता है जिसे इच्छानुसार घटा वड़ा सकते हैं। लेंसके सामने एक ढक्कन होता है जिससे चोंगा वंद किया जाता है। कमरेके भीतर अंधेरा रहता है और उसमें केवल लेंसकी ओरसे ही प्रकाश आता है। इसके सिवा प्रकाश आनेका और कोई रास्ता नहीं है। जिस वस्तु-की प्रतिकृति लेनी होती है वह सामने ऐसे स्थान पर होता है जहां उस पर सूर्यका प्रकाश अच्छी तरह पड़ता हो। उसके सम्मुख कुछ दूर पर कमरेका मुंह उसकी ओर करके रखा जाता है। इसके वाद लेंसका ढक्कन खोल फोटोग्राफर दूसरी ओरके द्वारको खोल सिर पर काला कपड़ा, जिसमें कहींसे प्रकाश न आवे, डाल कर देखता है कि उस वस्तुकी प्रतिकृति ठीक दिखाई देती है वा नहीं। इसे फोकस लेना कहते हैं। अनन्तर लेंसके सामनेका ढक्कन फिर वन्द कर दिया जाता है और दूसरी ओर लकड़ीके वंद चौकठेमें रक्खे हुए रासायनिक पदार्थ मिश्रित प्लेटको वड़ी होशियारीसे, जिसमें प्रकाश उसे स्पर्श न करने पाए, लगा देते हैं। फिर लेंसके मुंहको थोड़ी देर तकके लिये खोल देते हैं जिसमें प्लेट पर उस पदार्थकी छाया अंकित हो जाय। ढक्कन पुनः वंद कर दिया जाता है और अंकित प्लेटके वड़ी साव-धानीसे वंद चौखटेमें वंद करके रख देते हैं। इसके वाद उस प्लेटको अंधेरी कोठरीमें ले जा कर लाल लालटेनके प्रकाशमें रासायनिक मिश्रणोंमें कई वार डुवाते हैं। आखिर फिटकिरीके पानीमें डाल कर ठंढे पानी-को धार उस पर गिराते हैं। ऐसा करनेसे प्लेट काले रंगका हो जाता है और उस पर पदार्थ अङ्कित दिखाई पड़ने लगता है। अव उस पर रासायनिक पदार्थ लगे हुए कागजके टुकड़ोंको अंधेरी कोठरीके भीतर सटा कर प्रकाश दिखाते और रासायनिक मिश्रणोंमें धोते हैं। इस प्रकार कागज पर प्रतिकृति अंकित हो जाती है। इसीको फोटो कहते हैं।

फोड़ना (हि० क्रि०) १ भग्न करना, खरी वस्तुओंको खंड खंड करना। २ संगमें न रहने देना, साथ छुड़ाना। ३ शरीरमें ऐसा विकार या दोष उत्पन्न करना जिससे स्थान स्थान पर घाव या फोड़े हो जायं। ४ केवल आघात या दवावसे भेद न करना, धक्केसे दरार डाल कर उस पार निकल जाना। ५ पक्ष छुड़ाना, एक पक्षसे अलग करके दूसरे पक्षमें कर लेना। ६ ऐसी वस्तुओंको आघात और दवावसे विदीर्ण करना जिनके अभ्यन्तर या तो पोला हो अथवा मुलायम या पतली चीज भरी हो। ७ अवयव, जोड़ा या वृद्धिके रूपमें प्रकट करना, अंकुर, कनखे, शाखा आदिका निकालना। ८ शाखाके रूपमें अलग हो कर किसी सीधमें जाना। ९ गुप्त वात सहसा प्रकट कर देना, एकवारगी भेद खोलना।

१० मैत्रीसे अलग कर देना, फूट डाल कर अलग करना।

फोड़ा (हिं० पु०) एक प्रकारका शोथ या उभार। शरीरमें जहां पर कोई दोष सञ्चित रहता है वहां यह उत्पन्न होता है। इसमें जलन और पीड़ा होती है तथा रक्त सड़ कर पीवके रूपमें हो जाता है। विशेष विवरण स्फोटक शब्दमें देखो।

फोड़िया (हिं० पु०) छोटा फोड़ा, फुनसी।

फोण्डालु (सं० पु०) आलुकविशेष, आलूकन्द।

फोता (फा० पु०) १ पटुका, कमरबन्द। २ सिरबंद, पगड़ी। ३ जमीनका लगान, पोत। ४ कोष, थैली। ५ अण्डकोष।

फोतेदार (फा० पु०) १ कोषाध्यक्ष, खजांची। २ तहसीलदार, रोकड़िया।

फोनोग्राफ—१९वीं शताब्दीमें आविष्कृत वाद्ययन्त्रविशेष। अमेरिकाके युक्तराज्यके अन्तर्वर्त्ती न्युजार्सीवासी टामस ए एडिसन (Thomas A Edison) नामक एक वैज्ञानिकने १८७७ ई०में पहले पहल इस यन्त्रका आविष्कार किया। उन्होंने बेल (Mr. Graham Bell)-के टेलिफोन यन्त्रके गोलाकार पटहस्थान (Discs)-का शब्दग्रहण और विताड़न शक्तिका लक्ष्य करके स्थिर किया कि यदि किसी उपायसे वे उस स्थानमें सुरका कम्पन (Vibrations) रख सकें, तो उसकी सहायतासे एक नूतन यन्त्रकी सृष्टि हो सकती है।

इस यन्त्रमें पूर्वके गाए हुए राग, कही हुई बातें और बजाए हुए बाजोंके स्वर आदि चूड़ियोंमें भरे रहते हैं और ज्योंके त्यों सुनाई पड़ते हैं। इस यन्त्रके आकार सन्दूक सा होता है। इसके भीतर चक्कर लगे रहते हैं जो चाबी देनेसे आपसे आप घूमने लगते हैं। इसके मध्यभागमें एक खूँटी या धूरी होती है। उस धुरीकी एक नोक सन्दूकके ऊपर बीचमें निकली रहती है। यन्त्रके दूसरे ओर किनारे पर एक परदा होता है जिसके छोर पर सूई लगी रहती है। इस परदे पर बजाते समय एक चोंगा लगा दिया जाता है।

जिन चूड़ियों (*Recorad*) पर गीत राग आदि अङ्कित रहते हैं वे रोटीके आकारकी होती हैं। उन पर मध्यसे ले कर परिधि पर्य्यन्त गई हुई सूक्ष्म रेखाओंकी कुंडलियां होती हैं। चूड़ियोंमें गीन राग आदि इस प्रकार अंकित किये जाते या भरे जाते हैं—एक विशेष प्रकारका यन्त्र होता है। उस यन्त्रके एक सिरे पर चोंगा (Horn) और दूसरे पर सूई (*Pin*) लगी रहती है। गाने, बजाने या बोलनेवाला चोंगेकी ओर बैठ कर गाता, बजाता या बोलता है। उस शब्दसे हवामें लहरियां उत्पन्न हो कर चोंगेके दूसरे सिरे पर लगी हुई सूईको सञ्चालित करती हैं। इसी समय चूड़ी घूमाई जाती है और उस पर उच्चारित शब्द, गाए राग या बाजेकी ध्वनिके कम्पचिह्न सूई द्वारा अंकित होते जाते हैं। जब फिर उसी प्रकारका शब्द सुनना होता है, तब उसी चूड़ीको फोनोग्राफमें संदूकके बीच जो कील निकली रहती है उसीमें लगा देते हैं और किनारेके परदेमें लगी हुई सूई चूड़ीकी रेखा पर बैठा देते हैं। चाबी देनेसे भीतरके चक्कर घूमने लगते हैं। अब चूड़ी कीलके सहारे नाचती है और सूई रेखाओं पर घूमकर चोंगेमें उसी प्रकारके वायु तरंग उत्पन्न करती है, जिस प्रकारके चूड़ीमें अङ्कित हुए थे। ये ही वायु तरंग उस यन्त्रमें संयुक्त पुर्जोंको हिलाते हैं जिससे चोंगेमेंसे हो कर चूड़ीमें अङ्कित शब्दों या स्वरोंकी प्रतिध्वनि सुनाई देती है। यह ध्वनि कुछ धीमी होती है और धातुकी झनझनाहट तथा सूईकी खरखराहटके सबबसे कुछ खराब हो जाती है। परन्तु यन्त्रमें ऐसा गुण है, कि यदि कोई गीतादि ग्रहण कालमें उसे शब्दके परिमाणानुसार घूमा सके, तो नई चूड़ी वा नुकीली सूई रहनेसे यह निश्चय है, कि उसी शब्दके अनुरूप शब्द उच्चारित होंगे। यदि उस नलको तेजीसे घुमावे, तो स्वर ऊंचा और धीरे धीरे घुमानेसे वह नीचा होता है। फोनोग्राफमें स्वरोंका उच्चारण व्यञ्जनोंकी अपेक्षा अधिक स्पष्ट होता है। व्यञ्जनोंमें स और ज़का उच्चारण इतना अस्पष्ट होता है, कि उनमें कम प्रभेद जान पड़ता है।

फोनोटोग्राफ (अं० पु०) एक यन्त्र। इसके द्वारा बोलनेवालेके शब्दोंसे उत्पन्न वायुतरंगोंका अंकन होता है। इसका आकार एक पीपे-सा होता है। पीपेका एक मुंह तो बिलकुल खुला रहता है और दूसरी ओर कुछ यन्त्र लगे रहते हैं। यन्त्रमें एक पतला परदा होता है

जिस पर एक पतली सूई लगी रहती है। इसी सूईसे शब्द द्वारा उत्पन्न वायुतरंगें चूड़ी पर अंकित होती हैं। फोनोग्राफ देखो।

फोया (हिं० पु०) रूईके गालेका टुकड़ा, रूईका एक लच्छा।

फोरमैन (अं० पु०) कारखानोंमें कारीगरी और काम करनेवालोंका सरदार वा जमादार।

फोर्ट विलियम—कलकत्तेके किला मैदानमें अवस्थित प्रसिद्ध अङ्गरेजी दुर्ग। कलकत्ता देखो।

फोर्ट सेण्टजार्ज—मन्द्राजका प्रसिद्ध अङ्गरेजी दुर्ग। मन्द्राज देखो।

फोलियो (अं० पु०) कागजके तख्तेका आधा भाग।

फोहा (हिं० पु०) फाहा देखो।

फोहारा (हिं० पु०) फुहारा देखो।

फौआरा (हिं० पु०) फुहारा देखो।

फौकिना (हिं० क्रि०) डींग मारना, बढ़ बढ़ कर बातें करना।

फ़ौज (अ० स्त्री०) १ सेना, लशकर। २ झुण्ड, जत्था।

फौजदार (फा० पु०) सेनापति, सेनाका प्रधान।

फ़ौजदारी (फा० स्त्री०) १ लड़ाई झगड़ा, मार पीट। २ वह न्यायालय जहां ऐसे मुकदमोंका निर्णय होता हो जिनमें अपराधीको दण्ड मिलता है, कण्टकशोधन, दण्डनियम। कौटिल्यके अर्थशास्त्रमें न्यायशासनके दो विभाग दिखाई देते हैं—धर्मस्थीय और कण्टकशोधन। कण्टकशोधन अधिकरणमें आज कलके फौजदारीके मामलोंका विवरण है और धर्मस्थीयमें दीवानीके स्मृतियोंमें दण्ड और व्यवहार ये दो शब्द मिलते हैं।

फ़ौजी (फा० वि०) सैनिक, फौजसम्बन्धी।

फ़ौत (अ० वि०) नष्ट, मृत।

फ़ौरन (अ० क्रि० वि०) तत्काल, झटपट।

फ़ौलाद (फा० पु०) हथियार बनानेका एक प्रकारका कड़ा और अच्छा लोहा।

फ़ौलादी (फा० वि) १ फौलादका बना हुआ। २ दृढ़, कठिन, मजबूत। (स्त्री०) ३ बल्लमकी छड़, भालेकी लकड़ी।

फ़ौवारा (हिं० पु०) फुहारा देखो।

फ्याहुर (हिं० पु०) शृगाल, गीदड़।

फ्राक (अं० पु०) लम्बी आस्तीनका ढीला ढाला कुरता जिसे प्रायः बच्चोंको पहनाते हैं।

फ्रान्स—१ पश्चिम यूरोपमें फरासियोंको निवास-भूमि। यह एक प्राचीन समृद्धिशाली राज्य है। इसके उत्तर और पश्चिममें इंलिश चानेल और डोभर प्रणाली ; पूर्व-में बेलजियम, जर्मनी, स्विजर्लैंण्ड और इटली ; दक्षिणमें स्पेन राज्य और पश्चिममें विस्के उपसागर तथा अट-लाण्टिक महासागर है। उत्तर छोड़ कर यह पूर्वांशमें आल्पस्, भसजेस और जूरा पर्वतमाला तथा दक्षिणांश-में पिरिनिस पर्वतश्रेणी द्वारा विभक्त है। डेनमार्कसे ले कर पिरानिज तक उत्तर दक्षिणमें ६२० मील लम्बा पूर्व और पश्चिममें ५५० मोल चौड़ा है। उत्तर, पश्चिम और दक्षिणके समुद्रोपकूलका परिमाण १५८० मील है। पश्चिम उपकूलमें बहुतसे छोटे छोटे उपसागर हैं। दक्षिण-के लियन्स उपसागरोपकूलमें छोटे छोटे ह्रद देखे जाते हैं। उपकूलवर्त्ती द्वीप बहुत थोड़े हैं और वह भी कोई विशेष घटना समाश्रित नहीं।

पार्वत्यप्रदेश छोड़ कर वर्गण्डीका समतलक्षेत्र तथा लायर, सन और गारोंन आदि नदियोंका अववाहिका-देश समतल तथा पर्वतसानुदेशकी तरह उच्च और निम्न है। बृटिनी, आञ्जु और गास्कानी भूमि पर्वत भी बालुकासे पूर्ण है। जिससे वहां कोई फसल नहीं होती। किन्तु यहांके 'हिद' नामक मैदानमें घास खूब उगती है। लादो, गोरेंदे और आंदुर नामक भूमिविभाग घास तथा दलदलसे परिपूर्ण हैं, देखनेसे मरुभूमिके जैसा मालूम पड़ता है। किन्तु बीच बीचमें शस्यक्षेत्र और गोचारणभूमि है। आर्देने, फण्टेनेब्लों, काम्पेनी और ओर्लिन्स विभाग वनराजिसमाकीर्ण है। प्रायः समस्त फान्सराज्यका अष्टमांश जङ्गलसमाच्छादित और अर्द्धांश कृषिकार्यके उपयोगी है।

पर्वतमाला।—आल्पस् पर्वत साभय और निस् विभागमें अवस्थित है। माण्टब्लाक नामक आल्पस् शिखर यहीं पर है। यह स्थान यूरोपके मध्य सबसे ऊँचा है। फ्रान्स और स्पेनके बीचमें पिरिनिज पर्वत दण्डायमान है। इसकी सर्वोच्च चोटीका नाम नेथो

है जिसकी ऊँचाई ११,१६६ फुट है। अलावा इसके उस पर्वतके दश हजार फुट ऊँचे पर अनेक शिखर फ्रान्सके अन्तर्गत हैं। उत्तरपूर्ववर्त्ती सिभेनिस पर्वतमाला राइन और लायर नदी तक फैली है और उसकी ऊँचाई ६ हजार फुटसे अधिक बतलाई जाती है। जूरा और भरजेस गिरिश्रेणी फ्रान्सकी पूर्वी सीमामें विस्तृत है।

नदी।—सिभेनिस और भसजेस पर्वतमालासे सभी नदियां निकल कर फ्रान्सके विस्तीर्ण अववाहिका-देशको संगठन करती हैं। सिन, लायर, गारोन और रोन यहां-की सबसे बड़ी नदी हैं। सिन नदी इंग्लिश चानेलमें, गारोन और लायर अटलाण्टिक महासागरमें तथा रोन भूमध्यसागरमें गिरती हैं। म्यूस, मोसेल, सम्बर, स्केलड और लोज उत्तरसागरमें . सोमे, ऊज, अर्ने, मार्ने, आइने, योन और यूरे इंग्लिश चानेलमें; ब्लाभेट, भिलेन, अउज, मयने, लायर, जार्ले दोर्दोने, आरिएज, टार्न और लोत नामक नदी अटलाण्टिक महासागरमें तथा आड, अर्ने, हिराल्ट, मायो, दोव, इसारे और डुरन्स आदि नदियां भूमध्य-सागरमें गिरी हैं

ये सब नदियां खाल द्वारा आपसमें संयोजित हैं। समस्त फ्रान्सके मध्य २२० नदियां ऐसी हैं जिनमें नाव द्वारा आ जा सकते हैं। अलावा इसके ५,०० छोटी स्रोत-स्विनी फ्रान्स राज्यमें बहती हैं। इस प्रकार फ्रान्स भरमें नदी और खाल ले कर प्रायः ८५,०० मील जलपथसे नौका द्वारा माल पत्र ले जा सकते हैं। ग्राद और ल्यु नामक दोनों ह्रद सबसे बड़े हैं और परिमाणमें २१ वर्ग मील हैं।

जलवायु।—फ्रान्सका उत्तरांश प्रायः इङ्गलैण्डके जैसा है, हमेशा वृष्टि हुआ करती है। इस कारण वे सब स्थान गोचारणके विशेष उपयोगी हैं। मध्यभागकी वायु शुष्क है। दक्षिणके ताप प्रचण्ड और वृष्टिके अभावसे कभी कभी धानकी फसल नहीं होती, मर जाती हैं। पश्चिम उपकूल भागकी वायु जलसिक्त है। यहां सब समय वृष्टि होती है। फ्रान्स राज्यका प्रायः बारह आना स्थान सुरम्य और स्वास्थ्यप्रद है। उक्त प्रकारके जलसिक्त स्थानोंमें नाना प्रकारके उद्भिद उगते देखे जाते हैं। यूरोपमें और कहीं भी ऐसी मिश्रित फसल और फलादि उत्पन्न नहीं होते। जौ, गेहूं, जै, मटर, उड़द, आलू, बिट (इस बिटपालमसे चीनी बनती है), पटसन, गाँजा, तमाकू, रंगके पेड़ और औषध तथा बादाम, कमला नीबू, अंगुर, पिस्ता, अनार, डूमर शहतूत आदि सुखाद्य फल बहुतायतसे उत्पन्न होते हैं। बरगण्डो, बोर्दो और शाम्पिन नामक स्थानमें शराब बनानेके लिये दाखकी खेती होती है। वह शराब संसार भरमें आदरणीय और सर्वश्रेष्ठ मानी जाती है। जहाज बनाने तथा गृहसज्जादिके उपयोगी काष्ठ यहां बहुत मिलते हैं।

खनिज पदार्थ।—भूगर्भस्थ धातव पदार्थोंमेंसे लोहा, ताँबा, सीसा, चाँदी, रसाञ्जन, गन्धक, सोना, कोयला और नमक आदि मिलता है। किन्तु लोहा, नमक और कोयला सभी जगह विद्यमान है, इस कारण वे सब वाणिज्यके एक प्रधान उपकरण हैं। सोना सबसे कम पाया जाता है। मर्मर, श्लेट, अलबाष्टर, ग्रेनाइट, फ्रिष्टोन, लिथोग्राफिक ष्टोन, मिलष्टोन आदि कम मोलके तथा कुछ मूल्यवान पत्थर भी मिलते हैं। यहां कुल मिला कर प्रायः ५ हजार प्रस्रवण हैं। उनका धातव जल विशेष स्वास्थ्यकर है। पिरिनिज पर्वत पर चार सौ प्रस्रवण हैं जिनका जल पीनेके लिये बहुत दूर दूर देशोंके लोग आते हैं. जनसाधारणकी भलाईके लिये प्रस्रवणके निकट ६० वासस्थान निरूपित हुए हैं।

जीवजन्तु।—सिंह, बाघ और हाथी छोड़ कर यहां सब प्रकारके जंगली जन्तु मिलते हैं। तरह तरहके पक्षी भी देखनेमें आते हैं। मधु संग्रह करनेके लिये मधुमक्षिका पाली जाती है। समुद्रके किनारे भिन्न भिन्न प्रकारकी मछलियां पाई जाती हैं। भूमध्य-सागरके किनारे कार्मिस (Kermes) नामक एक प्रकारका कीड़ा उत्पन्न होता है जिससे सिन्दूर वर्णका रंग प्रस्तुत होता है।

यहांके अधिवासिगण फरासी कहलाते हैं। उनकी भाषा लाटिन मिश्रित है। यूरोपीय सभी भाषाओंसे फरासी भाषाही राजनीतिकी उपयोगी है।

समस्त फ्रान्सराज्यका भूपरिमाण २०१६०० वर्गमील और जनसंख्या ४ करोड़से ऊपर है। प्रसिद्ध फरासी-विप्लवके पहले यह वृहत् भूखण्ड भिन्न भिन्न प्रदेशोंमें विभक्त था। १७६० ई०के बाद कर्सिका, जेनिभा, सेभय

आदि ले कर फरासी राज्य १३१ विभागोंमें परिणत हुआ। विख्यात जर्मन-युद्धके बाद अन्तमें फरासी लोग राज्यके कुछ अंश खो बैठे। अनन्तर फरासी-राज्य ८६ विभागों-में ३६२ जिलोंमें (Arrondissements) और क्रमशः ३५६८६ उपविभागों (कमिउन) में विभक्त हुआ था। जो सब प्राचीन प्रदेश फरासी इतिहासमें वर्णित हुए हैं उनकी एक तालिका नीचे देते हैं।

प्रदेश।	डिपार्टमेण्टसंख्या।	प्रदेश।	डिपार्टमेण्टसंख्या।
आलसस, १८७१ ई०में जर्मनीके हाथ आया।	२।	गैसकनि	३।
		गिनि	६।
		इले-डि-फ्रान्स	५।
		लाङ्गोपेडक्	८।
आञ्जुमय और औनिस	२।	लिमोसे	२।
आञ्जु	१।	लोरेन १८७१ ई०में जर्मनीके हाथ आया।	४।
आर्टोई	१।		
आमिग्नो	१।		
आमार्णे	१।	ल्युने	२।
वार्णे और नाभारे	१।	मेन	२।
बेरी	२।	मार्कं	१।
वोर्वोने	१।	निभार्णे	१।
वार्गयने वा वरगण्डी	४।	नार्मण्डी	५।
ब्रिटिनी	५।	ओर्लिने	३।
स्याम्पेन	४।	पिकार्डी	१।
कोमूटेडिफई	१।	पोइटू	३।
डफ्ने	३।	प्रभेन्स	३।
फ्लण्डर	३।	रोसिलो	१।
फ्रान्सेकोप्टे	३।	सेण्टाङ्ग	१।

उक्त प्रदेशोंके मध्य राजधानी पारी (*Paris*) और लियन्स, मार्साएल, वोर्दो, लीले, टूलो, नाण्टे और रावेन आदि महानगरीमें लाखसे अधिक लोगोंका वास है।

शासनविधि।—फरासी राज्यमें अभी प्रजातन्त्र विद्यमान है। सबकी सम्मतिसे नियुक्त प्रेसिडेण्ट ही यहांके सर्वमय कर्त्ता हैं। राज्यशासनभार उन्हींके हाथ है, किन्तु सात वर्षसे अधिक वे आसन ग्रहण नहीं कर सकते। राजविधि-संस्कारके लिये यहां चेम्बर आव डेपुटिज और सेनेट नामक दो सभा स्थापित हैं। ये ही लोग राज्यके आईनका सङ्कलन और संस्कार कर सकते हैं। जनताकी सम्मतिके अनुसार इस सभाके सदस्य नियुक्त होते हैं। चेम्बर आव डिपुटीमें ५३२ सदस्य और सेनेटमें ३०० सदस्य निर्वाचित हुआ करते हैं। ३६२ जिलोंसे डिपुटी सभाके सदस्य और उपनिवेशी तथा डिपार्टमेण्टोंसे सेनेटके सभ्य निर्वाचित होते हैं। २५ वर्षके उमरवाले फरासी डिपुटी और ४२ वर्षवाले सेनेटर होनेके योग्य हैं। सेनेट और डिपुटी सभाके प्रेसिडेण्ट भोट द्वारा ही चुने जाते हैं। १८७२ ई०में राजकार्य चलानेके लिये एक और सभा (Conseil d' Etat) स्थापित हुई। जातीय महासमिति (The national Assembly) और प्रजातन्त्रके प्रतिनिधि द्वारा ही उसके सभ्य नियुक्त होते हैं। विचारविभागके प्रधान मन्त्री (मिनिष्टर आव जष्टिस (Garde des Sceaux) उस सभाके सभापतिका पद पानेके योग्य हैं। एतद्भिन्न प्रजातन्त्रके एक सहकारी सभापति (Vice *President*) और ३ विभागीय सभापति (Sectional *President*) हैं।

धर्म।—राजकीय निमानुसार सभी धर्म समान भावमें रक्षणीय और पालनीय है। किन्तु सिर्फ रोमन कैथलिक और प्रोटेष्टण्ट खृष्टान तथा यहूदीगण ही राजकीय वृत्ति पाते हैं। यहां सैकड़े पीछे ९८ रोमन कैथलिक और बाकी प्रोटेष्टण्ट खृष्टान हैं। कैथलिक धर्मके प्रतिष्ठाकालसे यहां ८६ प्रिलेट, १७ आर्कविशप और ६६ विशप नियुक्त हैं। लुथारण सम्प्रदायके कार्यको देख-रेख करनेके लिये (General Consistory) सभा और कैलभिनिष्टकी स्वतन्त्र सभा पारीनगरमें प्रतिष्ठित है।

विद्याविभाग। फ्रान्सकी शिक्षा-प्रणाली बिलकुल स्वतन्त्र है। गवर्मेण्ट ही शिक्षा-विषयमें विशेष पक्षपाती हैं। जिससे प्रजामण्डलीके मध्य शिक्षाका विस्तार हो, इसके लिये शिक्षाविभागके एक मन्त्री (Minister of Instruction) नियुक्त रहते हैं। यहां धर्मतत्त्व, व्यवहारशास्त्र, आयुर्वेद, विज्ञान, नौयुद्ध, युद्धविद्या और शिल्पविद्या पढ़नेके लिये स्वतन्त्र राजकीय विश्वविद्यालय प्रतिष्ठित हैं। राजकोषसे उनका खर्च दिया जाता है।

वाणिज्य।—घड़ी, जवाहरातके अलङ्कार, युद्धास्त्र, काष्ठका शिल्प, यान निर्माण, मट्टी, कांच और क्रिष्टलका बरतन, संगीतयन्त्र, पित्तलपुत्तली, रासायनिक द्रव्य,

तेल, साबुन, विट् चीनी, रंग, कागज, मुद्रायन्त्र, रेशम, पशम, कपास, लिनेन, कार्पेट, शाल और फीता प्रभृति द्रव्य वाणिज्यके लिये बहुतायतसे प्रस्तुत होते हैं। लियन्स, टूर, पारी, निसमे, अभिग्नो, आनोने, सेण्ट-एटिन आदि शहरोंमें रेशमका बढ़िया वस्त्र और फीता बनता है। रायेन, सेण्ट, कोण्नटिन, ट्रेय, लिले आदि शहरोंमें सूती कपड़ेका विस्तृत कारबार है। राइमस, लाभर, आमेन, पारी आदि नगरोंमें पशमीने, बनात और कार्पेट तथा स्याभर, लिमोगे और पारी आदि नगरोंमें कांच तथा पोसिलेनके बरतन तैयार होते हैं।

बोर्दो, मार्सेल, नैण्ट, हाभर दि ग्रेस, फैले, बौलो, सेण्टमालो, ला ओरियेण्ट, बयने, डनकार्क, दिपे, रोकेल आदि बन्दर ही प्रधान वाणिज्यस्थान हैं। शराब बनाना ही यहांका प्रधान व्यवसाय है। जगत्‌में सब जगह फरासी मद्यकी विशेष सुख्याति है।

उपनिवेश। आफ्रिका महादेशमें—अलजिरिया, सेनिगाल, रुमोद्वीपपुञ्ज, सेण्टमेरी, नोसी-बे और मयोटे। एशियामें—पूर्व भारतीय अधिकार और कोचीन चीन। अमेरिकामें—गायो, गोआडालोप मार्टिनिक, सेण्टपियारे और मिकुइलन। पलिनेशियामें—न्यु कालिडोनिया, मार्कोएसस और लएलटी द्वीपपुञ्ज हैं।

फरासियोंके जो सब वैदेशिक अधिकार हैं, उनका क्षेत्रफल प्रायः ४६३८२७ वर्गमील है। १८४८ ई०की २४वीं फरवरीको गवर्मेण्ट डिक्रीके अनुसार उपनिवेशोंसे दास-विक्रय-प्रथा उठ गई।

रेलपथ और टेलिग्राफ।—वाणिज्यकी सुविधाके लिये फ्रान्सराज्यमें प्रायः ३१ हजार मील रेलपथ और ३५ हजार मील टेलिग्रामको तार फैलाया गया है।

इतिहास।—रोमक अधिकारमें फरासी राज्य गाल (Gaul) नामसे प्रसिद्ध था। जगद्विख्यात रोमकसेनापति जुलियस सीजरने इस देशमें अपना शासन फैलाया था। किन्तु उस समय गाल राज्यमें कोई उन्नति न दिखाई दी। इङ्गलैण्डकी तरह यह भी एक तरहसे हीनप्रभ हो उठा। रोमक जातिका गौरव रवि जब अस्त हुआ, तब धीरे धीरे यूरोपके विभिन्न राजाओंने अपना अपना सिर उठाया। मेरोभिन्‌जियन राजवंशके प्रतिष्ठाता मेरेभीके पौत्र क्लोभिसके राज्यकालसे ही फ्रान्सका प्रकृत इतिहास लिपिबद्ध हुआ। ४८१ ई०में क्लोभिस राजगद्दी पर बैठे। इस समय भिसिगथ, बर्गण्डियन, रोमक और जर्मन आदि जातियां गालराज्यका अधिकार लेनेके लिये आपसमें झगड़ने लगीं। परस्परके विच्छेदसे शत्रुदल बलहीन हो रहा है, यह देख कर क्लोभिसने ४८६ ई०में सोइसोंके युद्धमें रोमकोंको परास्त किया। ४९६ ई०में टालबिया (Tolbia)के युद्धमें असीम वीरता दिखा कर उन्होंने जर्मनोंको वशीभूत कर लिया था। भौवली विजयके बाद उन्होंने भिसिगथजातिको सेप्टिमानिया प्रदेशमें अवरुद्ध रखा। इसके बाद उनके वीरत्व प्रभावसे बर्गण्डीवासी वीर्यहीन हो पड़े। आखिर ५३४ ई०में उन्हींके पुत्रसे पराजित हो वे लोग मोरामिनजियनवंशका आश्रय लेनेको बाध्य हुए। क्लोभिसकी मृत्युके बाद तदधिकृत राज्य थियरी, क्लोडोमीर, चाइल्डबार्ट और क्लोटेयर नामक उनके चार पुत्रोंमें बँटे गये। किन्तु ५५८ ई०में क्लोटेयरके उद्यमसे पैतृक राज्य एक साथ मिला दिये गये। पीछे आपसमें अन्तर्विवाद हो जानेसे उनके एक दलने अष्ट्रे लिया, न्युष्ट्रिया, बर्गण्डी और आकुइटनमें जा कर स्वतन्त्र राज्य बसाया। उक्त चार राज्योंमेंसे प्रथम दो विशेष बलशाली हो गये थे। ६८७ ई०में अष्ट्रेलियाने न्युष्ट्रियाका कर्तृत्व ग्रहण किया और दोनोंके मिल जानेसे एक स्वतन्त्र प्रजातन्त्रकी सृष्टि हुई। हरिएलगण ड्यूककी उपाधि धारण कर इन प्रदेशोंका शासन करते थे। धीरे धीरे वे ही लोग न्युष्ट्रियन राजवंशके सर्वमय कर्ता हो उठे। बर्गण्डी राज गण उनसे परास्त हुए थे। आकुइटेनराज्य मूर जातिसे लूट जानेके बाद ७३२ ई०में चार्लस् मर्टेल कर्तृक अधीनतापाशसे मुक्त हुआ। इसके २० वर्ष बाद मेरोभिनजियन राजवंशके शेष और कार्लोभिनजियन वंशके १म राजाने ३य चाइल्डरिकको राज्यच्युत करके पेपिन लि ब्रेफ राज्य पर अधिकार किया। पिपेने अपने बाहुबलसे ब्रिटिनी छोड़ कर और सारे फ्रान्स पर अपना आधिपत्य फैला लिया था। इटली तक उनका धाक जम गई थी। उन्होंने लम्बार्दराज आइस्टल्फको पोप ष्टिफेनकी प्रधानता स्वीकार करनेको बाध्य किया।

वे स्वयं पोपको एक छोटा राज्य दान कर गये थे।

पोपिनकी मृत्युके वाद उनके लड़के सार्लिमेन राजगद्दी पर बैठे। उन्होंने स्पेन, इटली, सैक्सनी, जर्मनी और वमेरिया आदि राज्योंको जीत कर ८०० ई०में यूरोप खण्डमें एक पश्चिम-साम्राज्य (Empire of the West) वसाया। इस साम्राज्यकी स्थिति सदा एक-सी न रही। ८४३ ई०में यह साम्राज्य परस्पर विरुद्धभावापन्न राजाओंके विप्लवसे फ्रान्स, जर्मनी और इटली राज्यमें विभक्त हो गया। राजमुकुट इटली और जर्मनीके कार्लोभिनजियन-राजवंशके ऊपर रखा गया। इसके वाद राज्यशासनका भार कुछ समय तक विभिन्न देशीय सामन्तराजाओंके साथ और पीछे जर्मनोंके शासनाधीन रहा।

८४३ ई०से ही फ्रान्सराज्यमें चार्लस मार्टेलवंशकी अवनतिका सूत्रपात हुआ। राज्यपरिचालनके लिये फरासी राज्य क्रमशः सामन्त राजाओंके मध्य विभक्त हुआ। ८८७ ई०में कार्लोभिनजियन राजाका प्रभाव नष्ट हो जानेसे युर्ड नामक किसी सरदारने राज्यसिंहासन पर अधिकार किया। ८९८ और ९३६ ई०में कार्लोभिनजियन राजवंशधरोंको फिरसे दो वार सिंहासन पर प्रतिष्ठित करना पड़ा। किन्तु वे लोग राजदण्डरक्षामें विलकुल असमर्थ थे। फलतः ९८७ ई०में कैपेट वंशीय राजाओंने फरासी सिंहासन पर गोटी जमाई। ये सव राजगण अपने दोर्दण्ड प्रतापसे वहुकाल तक सुश्रृङ्खलासे राज्यशासन करनेमें, मन्त्रिसभा और शासन-समितिके स्थापनमें तथा क्रुजेड नामक धर्मयुद्धमें सहायता आदि कार्योंमें, अपने प्रभावको अप्रतिहत रखनेमें तथा वंश-गौरवकी वृद्धि करनेमें समर्थ हुए थे।

कैपेट राजाओंके अधिकार-कालमें ११०८से १२२६ ई०के मध्य नार्मण्डी, अञ्ज, मेइन और पोंइटू आदि प्रदेशोंका अङ्गरेजोंके हाथसे पुनरुद्धार और डाची आव फ्रान्सका अन्तर्निविष्ट हुआ। राजा ९म लुईने पुत्रके तौर पर राज्यशासन किया था, इस कारण लोग उन्हें साधु (Saint) कहा करते थे। अपने राज्यकालमें (१२२६-१२७० ई०के मध्य) कोई राज्य फतह नहीं करने पर भी उन्होंने सैन्यसंख्या वढ़ा कर राजशक्तिका प्रभाव वहुत फैला लिया था। १२७०से १२८४ई० तक ३य फिलिपके शासनकालमें लाङ्गोपडक फरासीराजके अधीन था। उनके वंशधर ४र्थ फिलिपने ८४३ ई०में जर्मन-सम्राट् लोथेयरको प्रदत्त राज्योंका पुनरुद्धार करनेकी चेष्टा की। उन्होंने पोपकी क्षमता वहुत कुछ घटा दी थी। वे निज प्रतिष्ठित ष्टेटस्-जेनरल सभाके सभ्योंकी प्रतिप्रक्षता करके पार्लियामेण्ट महासभाकी स्थापना कर गये। उनके पुत्रोंके समय १३१४-१३२८ ई०के मध्य सामन्त-विद्रोह वह्नि धधक उठी। राजपुत्रोंने किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो उसमें साथ दिया। भलोई वंशने भी उनका पदानुसरण किया। इस विग्रह-तरङ्गमें उद्धत फरासियोंने १३३७ ई०में इङ्गलैण्डके साथ युद्ध घोषणा कर दी। यह युद्ध प्रायः सौ वर्ष (Hundred years' war) तक चलता रहा था।

१३४६ ई०में फिलिप डि-भलोई (Philip de Valois) कर्त्तृक क्रेसी-युद्धमें और २य जानके राजत्वमें पोइटियाके युद्धमें अङ्गरेज लोग परास्त हुए। १३६४-१३८०ई०के मध्य वालकराजने फ्रान्सका पूर्ववल वहुत कुछ पलटा लिया था। पीछे ५म चार्लसके राजत्व, ६ठें चार्लसके उन्मादरोग, स्वार्थान्वेषी राजपुत्रोंके आत्म-विच्छेद, वर्गण्डी और गास्कन राजवंशके परस्पर विरोधसे फ्रान्सराज्य चौपट हो गया। १४१५ ई०में एजिन-कोर्टके युद्धमें जयी हो कर अङ्गरेजोंने फ्रान्सके समुद्रोपकूलवर्त्ती प्रदेशों पर अधिकार किया। अव फरासीगण धीरे धीरे तेजोहीन होते आ रहे थे। इसी समय १४२९ ई०में आर्क-निवासी जोअन नामक एक फरासी-रमणीके असाधारण शौर्योन्मादसे उन्मत्त हो फरासियोंने अङ्गरेजोंको अच्छी तरह परास्त किया जिससे फरासी राज्यका मानचित्र एकदम वदल गया। राजा ७वें चार्लस राइम-नगरमें फरासी-सिंहासन पर अधिष्ठित हुए। फरासी सेनाके निकट उपर्युपरि कई एक लड़ाइयोंमें पराजित हो अङ्गरेज लोग १४५३ ई०में फ्रान्स छोड़ देनेको वाध्य हुए।

११ वें लुईने राज्यारोहण करके सामन्तकोंकी क्षमता ह्रास करनेमें सफलता प्राप्त की और १४६१-१४८३ ई०के

मध्य बहुतों राज्य जीत कर अपने अधिकारमें कर लिया। राजा ८ वें चार्ल्सकी अमलदारीमें फरासी-सेना इटलि-युद्धमें उलझी हुई थी। तत्परवर्त्ती राजा १२ वें लुई उक्त युद्धोंमें लिप्त थे, इस कारण फरासी-बल बहुत कुछ नष्ट हो गया था। १५१५ ई०को १म फ्रान्सिसने मरीग्नानोके युद्धमें सुईस जातिको परास्त किया। किन्तु वे १५२५ ई०में सम्राट् ५म चार्ल्स असंख्य सेनाके सामने ठहर न सके और पाभियाके युद्धमें पराजित तथा बन्दी हुए। २य हेनरीके शासनकालमें १५६२-१५८६ ई०को ह्युगेनट और कैथलिकोंका धर्मयुद्ध छिड़ा। इस युद्धमें फरासी राज्य ध्वंस और राजकोष बिलकुल खाली हो गया। १५८६ ई०में ३य हेनरीकी मृत्युके साथ साथ भलोई-वंशका लोप हुआ। इसके बाद बोर्बो वंशीय ४र्थ हेनरी सिंहासन पर बैठे। उन्हींके यत्नसे फ्रान्स और नाभारे राज्य एक साथ मिलाया गया। उन्होंने बड़े उद्यमसे गृहविवाद (Civil wars) दूर कर राज्यके एक महत् अभावको पूरा किया। इस आत्मविवादसे राज्यकी महती क्षति हुई थी, उसका संशोधन करनेके लिये उन्होंने विशेष कष्ट स्वीकार किया था। इस दारुण विप्लव और संघर्षके बाद फरासीसी राज्यमें तमाम पूर्ण शान्ति विराजने लगी। १३वें लुईके अधिकारमें (१६१०-१६४३ ई०) कार्डिनेल रिचेलु अवशिष्ट सामन्तकोंकी क्षमता खर्व करके फ्रान्समें पूर्ण राजतन्त्र (Absolute monarchy) स्थापन कर गये। ३० वर्षके युद्ध (The Thirty years, war) बाद १६४८ ई०में वेष्ट फालियर और पीछे १६५६ ई०में पिरिनिजकी सन्धिके बाद फ्रान्सने यूरोप महादेशमें ऊंचा स्थान पाया। उस समय उसका मुकाबला करनेकी एक भी शक्ति नजर नहीं आती थी। उसी साल निमेंगे और रायसोयिकमें जो सन्धि हुई उसमें फ्रान्सकी कोई विशेष स्वार्थहानी न हुई। किन्तु स्पेन देशके राज्यारोहणसंक्रान्त युद्ध (Wars of the Spanish Succession)के बाद इच्छा नहीं रहते हुए भी फरासीराजको १७१३ ई०में युट्रेकके सन्धि-पद पर हस्ताक्षर करना पड़ा था।

१५ वें लुईके शासनकालमें (१७१५-१७७४ ई०में) कर्सिका और लोरेन प्रदेश फ्रान्सके अधिकारभुक्त हुआ। किन्तु अष्ट्रीया-युद्धमें पराजित हो जानेसे फरासी-अधिकृत कुछ उपनिवेश उनके हाथसे जाते रहे। इस समय फरासी साहित्यकी विशेष उन्नति देखी गई। यूरोपकी समस्त अदालतोंमें फरासी भाषाका ही प्रचार हुआ। स्वाधीनता-प्रयासी अमेरिकन जब इङ्गलैण्डकी अधीनताको उच्छेद करने अग्रसर हुए, तब फरासीराज १६वें लुईने उनकी सहायतामें सेना भेजी थी। इस समय १७८६ ई०में फरासी अन्तर्विप्लव (The French Revolution) उपस्थित हुआ। प्रजावृन्दके साथ राजकीय दलके घोर संघर्षसे फरासी राज्य छार खार हो गया। राजहत्या, नरहत्या आदि वीभत्स व्यापार अंधाधुंध चलने लगे। यहां तक, कि असंख्य फरासी-रमणियां भी अस्त्र शस्त्रसे परिवृत हो राज-रानीकी हत्या करनेकी कामनासे भार्सायल नगरमें उतर पड़ीं और राजप्रासाद पर चढ़ाई कर दी। वहांके रक्षिदल उन रमणियोंके हाथसे यमपुर भेजे गये। राज-रानीको पूर्वाह्नमें इसकी खबर लगते ही प्राण ले कर भाग चले। यदि वे नहीं भागते, तो कभी भी उन ललनाओंके हाथसे निस्तार नहीं पा सकते थे। धीरे धीरे इस राष्ट्रविप्लवने भीषणसे भीषणतर मूर्त्ति धारण कर ली। १६ वें लुई तथा कितने राजपुत्र और राजपुरुष यमपुर भेजे गये थे, उसकी शुमार नहीं। इसी समय जर्मन और प्रुसियाराजकी मिलित सेनाने फ्रान्स पर आक्रमण कर दिया, किन्तु रणोन्मत्त फरासी सैनिकोंके सामने वे अधिक देर तक ठहर न सके। अनन्तर पूर्वतन राजतन्त्र और राजवंशका उच्छेद करके फरासी राज्यमें १७९२-१८०४ ई० तक प्रजातन्त्र स्थापित हुआ। इसी समय महावीर नेपोलियनका अभ्युदय देखा गया। इस बालक वीरकी वीरता देख कर प्रजाको पहलेसे ही उनके प्रति आस्था हो गई थी। राजा और राजपरिवारवर्गका चेष्टासे प्रजाका सत्त्व नष्ट होते देख उन्होंने सबके सामने दो एक ओजस्विनी वक्तृता दीं। इस राजद्रोहिताका फल उन्हें हाथों हाथ मिल गया था, पर प्रजातन्त्रके बाद वे फरासी-सम्राट् हो कर इस अपमानका बदला चुकानेमें बाज नहीं आये थे। १८०४ ई०में फरासी-सम्राट् हो कर नेपोलियन वीरदर्प और अमितविक्रमसे रूस, जर्मनी आदि राज्य जीत कर एक विस्तृत फरासी-साम्राज्य संस्थापन करनेमें समर्थ हुए थे। १८०५ ई०का अष्ट्रालिटज-भीषण

युद्ध उनके जीवनकी अद्भुत कीर्त्ति है। युद्धविग्रहमें लिप्त रह कर नेपोलियनने राजकोष खाली कर दिया था। इस कारण सेना-मण्डली और मन्त्रि-सभा क्रमशः उनके ऊपर वीतश्रद्ध हो रही थी। मन्त्रिदलके अनुरोधसे उन्होंने १८१४ ई०की १४वीं अप्रिलको सिंहासनका परित्याग कर एलवा द्वीपमें आश्रय लिया। इसी समय वोर्वोवंशीय १८वें लुईमें मन्त्रिसभाके अनुरोधसे राजसिंहासन पर बैठे। किन्तु इस समय भी नेपोलियनके हृदयसे फ्रान्सकी आशा दूर नहीं हुई थी। एक वर्षके भीतर ही वे पुनः फ्रान्स पर चढ़ आये। राजधानीकी ओर बढ़ते देख उद्ग्रीव सेनादलने उनका साथ दिया। सेना ले कर उन्होंने प्रूसियाराजके साथ लड़ाई ठान दी। लिग्नोके युद्धमें प्रूसियाराज १६वीं जूनको परास्त हुए। किन्तु वेलिङ्गटनप्रमुख विपक्ष सेनाने उन पर १६वीं जूनको वाटरलक्षेत्रमें चढ़ाई कर दी। शत्रुवाहिनीके सामने वे ठहर न सके और राजधानीकी ओर लौट जानेको वाध्य हुए। मन्त्रियोंके अनुरोधसे उन्होंने पुनः अपने पुत्रके लिये राज्यका परित्याग किया। इस वार भी निकृष्ट फरासी मन्त्रिसभा उनके साथ शठता करनेसे वाज नहीं आई। उनके पुत्रको राजसिंहासन न मिल कर पुनः वोर्वोवंशको ही मिला। शत्रुके हाथ मृत्यु वा अपमानित होनेके भयसे उन्होंने जीवनदान मांगा था, किन्तु नृशंस फरासी मन्त्रिदलने उनकी वात पर कुछ भी कान न दिया। धोखा दे कर उन्होंने जगत्के अद्वितीय वीर नेपोलियन वीरको शत्रु अंगरेजके हाथ समर्पण किया। अंगरेजराजने भी उन्हें सेण्टहेलेना द्वीपमें ले जा कर कैद रखा। जो नेपोलियन फरासी जातिकी उन्नतिके आदर्श थे, उनके प्रति ऐसा कठोर व्यवहार ही फरासी जातिके अधःपतनका कारण हुआ।

नेपोलियन देखो।

१८वें लुईकी मृत्युके वाद १८२४ ई०में १०म चार्ल्स राजा हुए। १८३० ई० तक राज्य करनेके वाद उसी वंशकी अन्यतम शाखाके वंशधर लुई फिलिपे फरासी जातिके सिंहासन पर बैठे। १८४८ ई०को २४वीं फरवरीको फरासीराज्यमें फिरसे राष्ट्रविप्लव खड़ा हुआ तथा इसके साथ साथ राजतन्त्रका अवसान और प्रजातन्त्रकी स्थापना हुई। १८५२ ई०में प्रजातन्त्रका विलय होनेसे फरासी साम्राज्य वोनापार्टी वंशके अधिकारमें आया। ३य नेपोलियन फरासीसिंहासन पर अधिरूढ़ हुए। १८७० ई०में होहेनजोलारण राजपुत्र ल्युपोल्डेके मस्तक पर जव स्पेनराजमुकुट पहनाया गया, तव प्रूसिया और फ्रान्सके मध्य विवाद खड़ा हुआ। उसी सालकी १६वीं जुलाईको सम्राट् नेपोलियनने युद्ध घोषणा कर दी। इस अविमृष्यकारिताके दोषसे फ्रान्सका अदृष्टाकाश क्रमशः मेघाच्छन्न हो गया। समग्र जर्मन शक्तिके समरमें एक एक करके फरासीसेनादल क्षय होने लगा। सेदान-युद्धमें नेपोलियन स्वयं वन्दी हुए और विख्यात सेनापति मार्शल वजैनेने प्रायः १ लाख ७३ हजार फरासी-सेना ले कर मेटजे नगरमें जर्मनके हाथ आत्मसमर्पण किया।

मार्सल मैकमहोन जनरल चिन्सी आदि वीरोंके प्राणपणसे युद्ध करने पर भी जयोद्दृप्त जर्मनसेनाने पारी नगरमें घेरा डाला। साम्राज्ञी युजिन इस समय राज्यकी सर्वमयी कर्त्ता थीं, जर्मनसेनाके आगमन पर वे भाग गईं। १८७१ ई०में फरासी गवर्मेण्ट और जर्मन सम्राट्के वीच सन्धि स्थापित हुई। उस सन्धिके अनुसार फरासीगण जर्मन सम्राट्को एलसस और लोरेन प्रदेश तथा युद्ध व्ययके क्षतिपूरणस्वरूप २० करोड़ पौंड मुद्रा देनेको वाध्य हुए। १८७१ ई०में ही फ्रान्समें तीसरी वार प्रजातन्त्रका सूत्रपात हुआ। जातीय समिति (National Assembly)-ने जगद्विख्यात ऐतिहासिक थियर्स (Thiers)-को तृतीय प्रजातन्त्रके प्रधान कर्मकर्त्ता (Chief of the Executive Power of French Republic) निर्वाचित किया। इस समय कोमडनों (Commune)-का विद्रोहानल धधक उठा। किन्तु थोड़े ही समयके अन्दर जातीय सैन्यदलने वड़ी वहादुरीसे उसे शान्त कर दिया। १८७१ ई०के अगस्त मासमें थियर्स प्रजातन्त्रके प्रसिडेण्ट वा सभापति वनाये गये। १८७३ ई०में ३य नेपोलियनकी मृत्यु हुई। इसी साल थियर्सने पदत्याग किया। पीछे मार्शल मैक महोन (Marshal Macmhon) प्रेसिडेण्ट हुए। उनके वाद जुले ग्रेडिने सभापतिका पद सुशोभित किया। इनके समयमें जिन्होंने प्रधान मन्त्रीका कार्य किया था उनमेंसे गैम्वेटा (Gambetta) एक थे।

आफ्रिकाके फासोदा रणक्षेत्रमें पराजित होनेसे फरासियोंकी विशेष क्षति हुई थी तथा चीनदेशके वक्सर विद्रोह और खृष्टान-हत्याका प्रतिशोध लेनेके लिये इन्होंने भी प्रधान नेतृत्व ग्रहण किया था।

१९१४ ई०के आगस्तमासमें जर्मन-महासमर आरम्भ हुआ। उस समय फरासी प्रजातन्त्रके सभापति थे मसियों पँयकारे (Poincare) उनके पूर्वतन राष्ट्रपति मसियों फैलियरके समयमें फ्रान्सके मध्य इस प्रकार एक महायुद्धका पूर्वाभास दिखाई दिया था। जर्मनी और अष्ट्रिया सम्मिलित शक्तिके विरुद्ध इङ्गलैण्ड, फ्रान्स और रूसियाने युद्ध घोषणा कर दी। इस युद्धमें जर्मन सेना द्वारा फ्रान्सकी विशेषतः पारिनगरकी महती क्षति हुई थी। १९१८ ई०को सन्धिसे मित्रशक्तिवर्गकी जय स्वीकृत हुई। भर्साई शक्तिकी शर्तके अनुसार जर्मनीने फ्रान्सको आलसेस लोरेन प्रदेश लौटा दिया। फ्रान्सने १९१९ ई०के जाति-सङ्घ (League of Nation)-में योगदान दिया है।

१९१९ ई०के अप्रिल मासमें फ्रान्समें प्रबल श्रमिक विद्रोह आरम्भ हुआ था। खाद्यद्रव्यकी मूल्यवृद्धि, श्रमिकोंकी दैनिक कार्य, कालवृद्धि, स्थलविशेषमें श्रमिकोंका वेतनह्रास और रूसियोंके साथ फ्रान्सकी युद्धघोषणाके सम्बन्धमें अमूलक जनरव-यही सब उक्त विद्रोहके प्रधान कारण थे।

१९१९-२० ई०के निर्वाचनमें मँसियो डेसनेल (M. Deschanel) प्रजातन्त्रके सभापति हुए और मिलेराँ (Millerand) उनके पूर्ववर्त्ती प्रधान मन्त्री क्लिमेनसो (Clemenceau) की जगह नियुक्त हुए। इसके कुछ समय बाद ही डेसनेल संयोगवशतः चलती गाड़ीसे गिर पड़े जिससे उन्हें गहरी चोट लगी थी। इस कारण वे पदत्याग करनेको वाध्य हुए। उनकी जगह पर मिलेराँ राष्ट्रपति बनाये गये।

पारी (पेरिस) नगर इस राज्यकी राजधानी है। जुलियस्‌सिजरने इस नगरका लुटेसिया नामसे उल्लेख किया है। उस समय यह नगर मट्टीके घरोंसे आवृत था। ४थी शताब्दीमें 'पारिसियाई' नामक केल्टिक जातिके वाससे इस स्थानका पारिसिया नाम पड़ा। छठीं शताब्दीके प्रारम्भमें यह नगर राजधानीमें परिणत हुआ। पीछे १०वीं शताब्दीमें ह्युकैपेटने यहां फरासी राजतन्त्रकी राजधानी वसाई थी। १५वीं शताब्दीमें युद्ध, दुर्भिक्ष, महामारी आदिसे यह नगर हतश्री हो गया। पीछे ४र्थ हेनरी, १३वें और १४वें लुईके शासनकालमें यह नगर नाना अट्टालिकाओंसे सुशोभित और आयतनमें बड़ा था। विख्यात वीर नेपोलियन वोनापार्टके अधिकारमें तथ लुईके यत्नसे इस राजधानीने अपूर्व श्री धारण की। जो कुछ बाकी बचा, ३य नेपोलियन और बेरन हसमैनने उसे पूरा किया। इस समय राजकीय अट्टालिका, उद्यान, सेतु, जल-प्रणाली और दुर्गके पुनर्निर्माणमें प्रायः करोड़ पौंड मुद्रा खर्च हुई थी। पारी नगरीने सम्पूर्ण नूतन भावमें सुगठित हो कर वर्त्तमान आकार धारण किया।

१८७० ई०में जर्मनी सेनाने राजधानीमें घेरा डाला और परवर्त्तीकालमें कमिउनोंके अत्याचारसे पारी नगरीकी महती क्षति हुई।

१८८० ई०में यहांके प्रजातन्त्र मन्दिरमें (Place de la Republique) एक ७० फुट ऊँचा अनुशासन स्थापित हुआ था। जगत्‌का सर्वश्रेष्ठ और सर्वापेक्षा वृहत् पुस्तकालय इस नगरमें विराजित है। पुस्तकालय देखो।

१९०० ई०में पारी राजधानीमें एक जगत् प्रसिद्ध प्रदर्शनी अनुष्ठित हुई। इसके पहले असाधारण परिश्रम और प्रचुर अर्थ व्यय करके ऐसी शिल्पप्रदर्शनी और किसी भी देशमें संघटित नहीं हुई। वर्त्तमान शताब्दीमें यह फरासी जातिकी गौरव-परिचायक है।

फ्रान्सीसी (वि०) १ फ्रान्स देशका, फ्रान्स देशमें उत्पन्न। २ फ्रांसदेशमें रहनेवाला, फ्रांसदेशवासी।

फ्रिस्केट (अं० स्त्री०) लोहेकी चद्दरका बना हुआ चौखटा। यह हाथसे चलाए जानेवाले प्रेसके डालेमें जड़ा रहता है। छापनेके समय कागजके तख्तेको डाले पर रख कर इसी चौखटेसे ऊपरसे बन्द कर देते हैं। पीछे डालेको गिरा कर प्रेसमें दवाया जाता है। कागजके तख्ते पर उन उन जगहों पर जो फ्रिस्केटके छेदसे खुली रहती हैं मैटर छप जाता है और शेष अंश ढके रहनेसे सादा रहता है।

फ्री (अं० वि०) १ स्वतन्त्र, जिस पर किसीकी दाव न हो। २ कर या महसूलसे मुक्त।

फ्रीट्रेड (अं० पु०) वह वाणिज्य जिसमें मालके आने जाने पर किसी प्रकारका कर या महसूल न लिया जाय।

फ्रीमेसन (अं० पु०) फ्रीमेसनरी नामके गुप्त संघोंका सभ्य।

फ्रीमेसनरी (अं० स्त्री०) एक प्रकारका गुप्त संघ या सभा। इसकी शाखा प्रशाखाएँ यूरोप, अमेरिका तथा उन सब स्थानोंमें हैं जहां यूरोपियन हैं। इस सभाका उद्देश्य है समाजकी रक्षा करनेवाले सत्य, दान, औदार्य, भ्रातृभाव आदिका प्रचार। फ्रीमेसनोंकी सभाएँ गुप्त हुआ करती हैं और उनके बीच कुछ ऐसे संकेत होते हैं जिनसे वे अपने संघके अनुयायियोंको पहचान लेते हैं। ये संकेत कोनिया, परकार आदि राजगीरोंके कुछ औजारके चिह्न हैं। पुराकालमें यूरोपमें उन कारीगरों या राजगीरोंकी इसी नामकी एक संस्था थी जो बड़े बड़े गिरजे बनाया करती थी। इन्हीं संकेतोंके कारण जो असली कारीगर होते थे वे ही भरती किये जाते थे। इसी आदर्श पर सन् १७१७ ई०में फ्रीमेसन संस्थाएँ स्थापित हुई जिनका उद्देश्य अधिक व्यापक रखा गया।

फ्रेंच (अं० वि०) फ्रांस देशका।

फ्रेंचपेपर (अं० पु०) एक प्रकारका कागज जो हलका पतला और चिकना होता है।

फ्रेम (अं० पु०) चौकठा।

फ्लाईव्वाय (अं० पु०) प्रेसमें काम करनेवाला एक लड़का। इसका काम है प्रेस परसे छपे हुए कागजको जल्दीसे झपट कर उतारना और उन पर आँख दौड़ा कर छपाईकी त्रुटिकी सूचना प्रेसमैनको देना।

फ्लूट (अं० पु०) फूँक कर बजानेका एक अंगरेजी बाजा जो बंसीकी तरह होता है।

ब

ब—हिन्दीका तेईसवाँ व्यञ्जन और पवर्गका तीसरा वर्ण। यह ओष्ठ्यवर्ण है और दोनों होठोंके मिलानेसे इसका उच्चारण होता है। इसलिये इसे स्पर्श वर्ण कहते हैं। यह अल्पप्राण है और इसके उच्चारणमें संवार, नाद और घोष नामक वाह्य प्रयत्न होते हैं। इस वर्णका लिखनेका प्रकार यों है,—पहले शून्यके आकारमें रेखा करनी होगी। पीछे उसमें मात्रा खींच देनेसे यह वर्ण बनता है। यह त्रिकोणरूपिणी रेखा ब्रह्मा, विष्णु और शिवस्वरूपिणी तथा परम माता शक्ति है।

वर्णोद्धारतन्त्रके मतसे इसका ध्यान—

"नीलवर्णां त्रिनयनां नीलाम्बरधरां पराम्।
नागहारोज्वलां देवीं द्विभुजां पद्मलोचनां॥"

इस मन्त्रसे ध्यान करके दश वार वकारका जप करना होता है।

यह वकार चतुर्वर्गप्रदायक, शरच्चन्द्रसदृश, पञ्चदेवमय, पञ्चप्राणात्मक और त्रिबिन्दुसहित है। यही वकारका स्वरूप है।

इसके वाचक शब्द ये सब हैं, वनी, भूधर, मार्ग, घर्घरी, लोचनप्रिया, प्रचेतस्, कलस, पक्षी, स्थलगण्ड, कपर्दिनी, पृष्ठवंश, शिखिवाह, युगन्धर, मुखविन्दु, वली, घण्टा, योद्धा, त्रिलोचनप्रिय, क्लेदिनी, तापिनी, भूमि, सुगन्धि, त्रिवलिप्रिय, सुरभि, मुखविष्णु, संहार, वसुधाधिप, पद्मापुर, चपेटा, मोदक, गगन, पति, पूर्वाषाढ़ा, मध्यलिङ्ग, शनि, कुम्भ, तृतीयक (नाना तन्त्रशास्त्र)

ब (सं० पु०) वल-ड। १ वरुण। २ सिन्धु। ३ भग। ४ तोय, जल। ५ गत। ६ गन्ध। ७ तन्तुसन्तान। ८ वपन। ९ कुम्भ। इसके साङ्केतिक नाम युगन्धर, सुरभि, मुखविष्णु, संहार, वसुधाधिप, भूधर, दशगण्ड हैं। (रुद्रयामलोक्त बीजाभि०)

बंक (हिं० वि०) १ टेढ़ा, तिरछा। २ पुरुषार्थी, विक्रमशाली। ३ दुर्गम, जिस तक पहुंच न हो सके। (पु०) ४ वह कार्यालय या संस्था जो लोगोंका रुपया सूद दे कर अपने यहां जमा करती अथवा सूद ले कर लोगोंको ऋण देती है, लोगोंकी हुंडियां लेती

और भेजती है तथा इसी प्रकारके महाजनीके कार्य करती है।

वंकट (हिं० पु०) वक्र, टेढ़ी।

वंकनाल (हिं० स्त्री०) सुनारोंकी एक नली। यह अति सूक्ष्म खण्डोंको संयोजित करनेके समय चिरागकी लौ फूंकनेके काम आती है।

वंकराज (हिं० पु०) एक प्रकारका साँप।

वंकवा (हिं० पु०) अगहनमें होनेवाला एक प्रकारका धान। इसका चावल सैकड़ों वर्ष तक रह सकता है।

वंकसाल (हिं० पु०) जहाजका बड़ा कमरा। इसमें मस्तूलों पर चढ़ानेवाली रस्सियां या जंजीरें आदि तैयार या ठीक करके रखी जाती हैं।

वंका (हिं० वि०) १ टेढ़ा, तिरछा। २ पराक्रमी, बलवान्। ३ बाँका। (पु०) ४ धानके पौधोंमें हानि पहुंचानेवाला एक प्रकारका कीड़ा जो हरे रंगका होता है।

वंकाई (हिं० स्त्री०) टेढ़ापन, तिरछापन।

वंकी (हिं० स्त्री०) बांक देखो।

वंकुर (हिं० पु०) वंक देखो।

वंग (हिं० पु०) वङ्ग देखो।

वंगई (हिं० स्त्री०) सिलहटमें होनेवाली एक प्रकारकी बढ़िया कपास।

वंगनापाली (हिं० स्त्री०) एक देशी मुसलमानी रियासत।

वंगला (हिं० वि०) १ वङ्गालदेशका, वंगाल सम्बन्धी। (पु०) २ एक खनका कच्चा मकान। इस पर फूस या खपड़ोंका छप्पर पड़ा रहता है। ३ छोटा हवादार कमरा जो प्रायः मकानोंकी सबसे ऊपरवाली छत पर बनाया जाता है। ४ वंगालदेशका पान। ५ वह छोटा हवादार और चारों ओरसे खुला हुआ एक खनका मकान जिसके चारों ओर बरामदे हों। पहले इस प्रकारके मकान वंगालमें अधिकतासे होते थे। उन्हींकी देखा देखी अङ्गरेज भी अपने रहनेके मकान बनाने और उन्हें वंगला कहने लगे थे। (स्त्री०) ६ वंगालदेशकी भाषा।

वंगलिया (हिं० पु०) १ एक प्रकारका धान। २ एक प्रकारका मटर।

वंगली (हिं० स्त्री०) १ चूड़ियोंके साथ पहननेका स्त्रियोंका एक आभूषण। (पु०) २ घोड़ा।

वंगसार (हिं० पु०) पुलकी तरह बना हुआ वह चबूतरा जो समुद्रमें दूर तक चला जाता है और जिस परसे लोग जहाज पर चढ़ते वा उससे उतरते हैं, बनसार।

वंगा (हिं० वि०) १ वक्र, टेढ़ा। २ मूर्ख, बेवकूफ। ३ उदण्ड, लड़ाई झगड़ा करनेवाला।

वंगारी (हिं० पु०) हरताल।

वंगाल (हिं० पु०) १ वङ्गदेश देखो। २ एक रागका नाम जिसे कुछ लोग मेघरागका और कुछ भैरवरागका पुत्र मानते हैं।

वंगालिका (हिं० पु०) एक रागिनी जिसे कुछ लोग मेघरागकी स्त्री मानते हैं।

बंगाली (हिं० पु०) १ वंगाल देशका निवासी। २ सम्पूर्ण जातिका एक राग। (स्त्री०) ३ वङ्गदेशकी भाषा, बँगला।

वँगुरी (हिं० स्त्री०) वंगली देखो।

वंगू (हिं० पु०) १ दक्षिण तथा वंगालकी नदियोंमें मिलनेवाली एक प्रकारकी मछली। २ भौंरा वा जंगी नामक खिलौना जिसे बालक नचाते हैं।

वंगोमा (हिं० पु०) गंगा और सिन्धुमें मिलनेवाला एक प्रकारका कछुआ। इसका मांस खाने योग्य होता है।

वंचक (हिं० पु०) १ धूर्त्त, पाखंडी। २ पहाड़ी देशोंमें पैदा होनेवाला एक प्रकारकी घासका दाना। यह जीरेके रूप रंग तथा आकार प्रकारका होता है।

वंचन (हिं० पु०) छल, ठगपना। वञ्चन देखो।

वंचनता (हिं० स्त्री०) ठगी, छल। वञ्चनता देखो।

वंचर (हिं० पु०) बनचर देखो।

वँचवाना (हिं० क्रि०) दूसरेको पढ़नेमें प्रवृत्त करना, पढ़वाना।

वंचित (हिं० पु०) वञ्चित देखो।

वंज (हिं० पु०) १ बनिज देखो। २ हिमालयप्रदेशमें होनेवाला एक प्रकारका बलूतका पेड़। इसकी लकड़ीका रंग खाकी होता है। इसका दूसरा नाम सिल और मारू भी है।

वंजर (हिं० पु०) वह भूमि जिसमें कुछ उत्पन्न न हो सके, ऊसर।

बंजारा (हिं० पु०) बनजारा देखो ।

बंजुल (हिं० पु०) वञ्जुल देखो ।

बंझा (हिं० वि०) १ जिसके संतान न हो, वाँझ। (स्त्री०) २ वह स्त्री जिसमें सन्तान उत्पन्न करनेकी ताकत न हो ।

बँटना (हिं० क्रि०) १ विभाग होना, अलग अलग हिस्सा होना। २ कई प्राणियोंके बीच सबको प्रदान किया जाना। (पु०) २ बटना देखो।

बँटवाई (हिं० स्त्री०) १ बाँटनेकी मजदूरी। २ पिसवानेका मेहनताना।

बँटवाना (हिं० क्रि०) १ वितरण कराना, सबको अलग अलग करके दिलवाना। २ पिसवाना।

बँटा (हिं० पु०) १ गोल या चौकोर कुछ छोटा डब्बा। (वि०) २ छोटे आकारवाला, छोटे कदका।

बँटाई (हिं० स्त्री०) १ वितरण करना, बाँटनेका काम। २ बाँटनेकी मजदूरी। ३ बाँटनेका भाव। ४ दूसरेको खेत देनेका एक प्रकार। इसमें खेत जोतनेवालेसे मालिक को लगानके रूपमें धन नहीं मिलता वल्कि उपजका कुछ अंश मिलता है।

बँटाना (हिं० क्रि०) १ अंश ले लेना, भाग करा लेना। २ किसी काममें हिस्सेदार होनेके लिये या दूसरेका बोझ हलका करनेके लिये शामिल करना।

बंटी (हिं० स्त्री०) हिरन आदि पशुओंको फँसानेका जाल या फंदा।

बँटैया (हिं० पु०) हिस्सा लेनेवाला, बंटानेवाला।

बंडल (अं० पु०) कागज या कपड़े आदिमें बँधी हुई छोटी गठरी, पुलिंदा।

बंडा (हिं० पु०) १ एक प्रकारका कच्चू। यह गोल गांठदार और लंबी होती है। २ अनाज रखनेका छोटी दीवारसे घिरा हुआ स्थान, बड़ी बखारी।

बंडी (हिं० स्त्री०) १ विना अस्तीनकी मिरजई, फतुही। २ बंगलबंदी नामक पहननेका वस्त्र।

बँडेरा (हिं० पु०) बंडेरी देखो।

बंडेरी (हिं० स्त्री०) वह लकड़ी जो खपरैलकी छाजनमें मंगरे पर लगती है। यह दो पलिया छाजनमें बीचो-बीच लम्बाईमें लगाई जाती है।

बंद (फा० पु०) १ कोई वस्तु बांधनेका पदार्थ। २ पानी रोकनेका धुस्स, पुश्त, मेड़। ३ शरीरके अंगोंका कोई जोड़। ४ बन्धन, कैद। ५ पांच या छः चरणोंका उर्दू कविताका टुकड़ा या पद। ६ अंगरखे, चोली आदिके पल्ले बांधनेका पतला सिला हुआ कपड़ेका फीता। ७ कागजका लम्बा और बहुत कम चौड़ा टुकड़ा।

(वि०) ८ जो चारों ओरसे घिरा हो, [illegible] ओरसे खुला न हो। ९ जिसका मुँह या आगेका मार्ग खुला न हो। १० जिसके मुंह अथवा मार्ग पर दरवाजा, ढकन या ताला आदि लगा हो। ११ जो इस प्रकार घिरा हो, कि उसके अंदर कोई जा न सके। १२ जो खुला न हो। १३ जो ऐसी स्थितिमें हो जिससे कोई वस्तु अंदरसे बाहर न जा सके और न बाहरकी चीज अंदर ही आ सके। १४ जो किसी तरहकी कैदमें हो। १५ जिसका प्रचार, प्रकाशन या कार्य आदि रुक गया हो, जो जारी न हो। १६ जिसका कार्य स्थगित या रुका हुआ हो। १७ जो गति या व्यापारयुक्त न हो, थमा हुआ।

बंदगी (फा० स्त्री०) १ भक्तिपूर्वक ईश्वरकी वंदना, ईश्वराराधन। २ सेवा, खिदमत। ३ प्रणाम, सलाम, आदाब।

बंदगोभी (हिं० स्त्री० १ करमकल्ला, पातगोभी। २ रोचन, रोली। ३ ईङ्गुर, सिन्दुर।

बंदन (हिं० पु०) वन्दन देखो।

बंदनता (हिं० स्त्री०) आदर या वन्दना किये जानेकी योग्यता।

बंदनवार (हिं० पु०) वन्दनमाला, फूल, पत्ते, दूब आदि की बनी हुई वह माला जो मंगल कार्योंके समय द्वार आदि पर लटकाई जाती है।

बंदना (हिं० स्त्री०) वन्दना देखो।

बंदनी (हिं० स्त्री०) स्त्रियोंका एक भूषण। इसे वे आगेकी ओर सिर पर पहनती हैं।

बंदनीमाला (हिं० स्त्री०) वह लंबी माला जो गलेसे पैरों तक लटकती हो।

बंदर (हिं० पु०) एक प्रसिद्ध स्तनपायी चौपाया। विशेष विवरण वानर शब्दमें देखो।

बंदर (फा० पु०) समुद्रके किनारेका वह स्थान जहां जहाज ठहरते हैं।

बंदरगाह (फा० पु०) समुद्रके किनारे जहाजोंके ठहरनेके लिये बना हुआ स्थान।

बंदरा (हिं० पु०) बनरा देखो।

बंदली (हिं० पु०) रुहेलखण्डमें पैदा होनेवाला एक प्रकारका धान। इसका दूसरा नाम रायमुनिया और तिलोकचन्दन भी है।

बंदवान (हिं० पु०) बंदीगृहका रक्षक, कैदखानेका अफसर।

बंदसाल (हिं० पु०) कैदी रखनेकी जगह, कैदखाना, जेल।

बंदा (फा० पु०) १ सेवक, दास। २ शिष्ट या विनीत भाषामें उत्तमपुरुष।

बंदानी (फा० पु०) १ गोलंदाज, तोप चलानेवाला। २ एक प्रकारका गुलाबी रंग। यह पियाजी रंगसे कुछ गहरा और असली गुलाबी रंगसे बहुत हलका होता है।

बंदारु (हिं० वि०) १ वन्दनीय, वन्दन करने योग्य। २ पूजनीय, आदरणीय। (पु०) ३ बंदाल देखो।

बंदाल (हिं० पु०) देवदाली, घघर बेल।

बंदि (हिं० स्त्री०) कारानिवास, कैद।

बंदिया (हिं० स्त्री०) बंदी नामक भूषण जो स्त्रियां सिर पर पहनती हैं।

बंदिश (फा० स्त्री०) १ बांधनेकी क्रिया या भाव। २ प्रबन्ध, योजना, रचना। ३ षड्यन्त्र।

बंदी (हिं० पु०) १ चारणोंकी एक जाति जो प्राचीनकालमें राजाओंका कीर्त्तिगान किया करती थी, भाट। बन्दी देखो। (स्त्री०) २ एक प्रकारका आभूषण जिसे स्त्रियां सिर पर पहनती हैं।

बंदी (फा० पु०) १ कैदी। (स्त्री०) २ दासी, चेरी।

बंदीखाना (फा० पु०) कैदखाना, जेलखाना।

बंदीघर (हिं० पु०) कैदखाना, जेलखाना।

बंदीवान (हिं० पु०) कैदी।

बंदूक (अ० स्त्री०) धातुका बना हुआ नलीके रूपका एक प्रसिद्ध अस्त्र। इसमें पीछेकी ओर थोड़ासा स्थान बना होता है जिसमें गोली रख कर बारूद या इसी प्रकारके किसी सहायतासे चलाई जाती है। जो गोली इसमेंसे निकलती है वह अपने निशाने पर जोरसे जा लगती है। इसका उपयोग मनुष्योंको तथा दूसरे जीवोंको मार डालने अथवा घायल करनेके लिये होता है। वर्त्तमानकालमें साधारणतः सैनिकोंको युद्धमें लड़नेके लिये यही दी जाती है। इसके कई भेद होते हैं।

बंदूकची (फा० पु०) वह सिपाही जो बंदूक चलाता है।

बंदूख (हिं० स्त्री०) बंदूक देखो।

बंदेरी (फा० स्त्री०) दासी, चेरी।

बंदोबस्त (फा० पु०) १ प्रबंध, इंतिजाम। २ वह महकमा या विभाग जिसके सुपुर्द खेतों आदिको नाप कर उनका कर निश्चित करनेका काम हो। ३ खेतीके लिये भूमिको नाप कर उसका राज्यकर निर्द्धारित करनेका काम।

बंधना (हिं० क्रि०) १ बंधनमें आना, बद्ध होना, बांधा जाना। २ रस्सी आदि द्वारा किसी वस्तुके साथ इस प्रकार संबंध होना कि कहीं जा न सके। ३ प्रेमपाशमें बद्ध होना, मुग्ध होना। ३ प्रतिज्ञा या वचन आदिसे बद्ध होना ४ स्वच्छन्द न रहना, फंसना, अटकना। ५ बंदी होना, कैद होना। ६ दुरुस्त होना, ठीक होना। ७ क्रमनिर्धारित होना, चला चलनेवाला कायदा ठहराना।

बंधना (हिं० पु०) १ कोई चीज बांधनेकी वस्तु, कपड़ा रस्सी आदि। २ वह थैली जिसमें स्त्रियां सीने पिरोनेका सामान रखती हैं।

बंधनि (हिं० स्त्री०) १ बन्धन, वह जिसमें कोई चीज बँधी हुई हो। २ वह जो किसी चीजको स्वतन्त्रता आदिमें बाधक हो, उलझाने या फंसानेवाली चीज।

बंधवाना (हिं० क्रि०) १ बांधनेका काम दूसरेसे कराना, २ कैद कराना। ३ तालाब, कूआं आदि बनवाना, तैयार कराना। ४ देना आदि नियत कराना, मुकर्रर कराना।

बंधान (हिं० पु०) १ किसी कार्यके होने अथवा किसी पदार्थके लेने देने आदिके सम्बन्धमें बहुत दिनोंसे चला आया हुआ निश्चित क्रम या नियम, लेन देन आदिके

सम्बन्धकी नियत परिपाटी। २ तालका सम। ३ पानी रोकनेका धुस्स, वाँध। ४ वह पदार्थ या धन जो इस परिपाटीके अनुसार दिया या लिया जाय।

वंधाना (हिं० क्रि०) १ वांधनेका काम दूसरेसे कराना। २ धारण कराना। ३ कैद कराना।

वंधाल (हिं० पु०) नाव या जहाजमें वह स्थान जिसमें रस कर वा छेदोंमेंसे आया हुआ पानी जमा होता है और जो पीछे उलीच कर वाहर फेंक दिया जाता है, गमतखाना।

वंध्रिका (हिं० स्त्री०) वह डोरी जिससे तानेकी साँथी वाँधी जाती है।

वंधित (हिं० पु०) वंध्या, वांझ।

वँधी (हिं० पु०) वह जो वँधा हुआ हो, वह जिसमें किसी प्रकारका वँधन हो।

वँधुआ (हिं० पु०) कैदी, वंदी।

वँधुवा (हिं० पु०) वंधुआ देखो।

वँधेज (हिं० पु०) १ नियत समय पर और नियत रूपसे मिलने या दिया जानेवाला पदार्थ या द्रव्य। २ प्रतिवन्ध, रुकावट। ३ वीर्यको जल्दी स्खलित न होने देनेकी क्रिया, वाजीकरण। ४ नियत समय पर या नियत रूपसे कुछ देनेकी क्रिया या भाव। ५ किसी वस्तुको रोकने या वांधनेको क्रिया या युक्ति।

वंपुलिस (हिं० स्त्री०) मलत्यागके लिये म्युनिसपैलिटी आदिका वनवाया हुआ वह स्थान जहां सर्वसाधारण विना रोक-टोक जा सकें।

वंव (हिं० स्त्री०) १ वं वं शब्द, वं, वं, शिव शिव, हर हर, इत्यादि शब्दोंकी ऊँची ध्वनि जो शैव लोग भक्तिकी उमंगमें आ कर किया करते हैं। २ युद्धारम्भके वीरोंका उत्साहवर्द्धक नाद, रणनाद, हल्ला। ३ दुन्दुभी, नगारा।

वंवा (हिं० पु०) १ जल-कल, पानीकी कल। २ स्रोत, सोत। ३ पानी वहानेकी नल।

वंवाना (हिं० क्रि०) गौ आदि पशुओंका वाँ वाँ शब्द करना, रँभाना।

वंवू (हिं० पु०) चंडू पीनेकी वाँसकी छोटी पतली नली।

वंस (हिं० पु०) वंश देखो।

वंसकार (हिं० पु०) वाँसुरी।

वंसरी (हिं० स्त्री०) वंसी देखो।

वंसलोचन (हिं० पु०) वांसका सार भाग जो उसके जल जानेके वाद सफेद रंगके छोटे छोटे टुकड़ोंके रूपमें पाया जाता है। वंशलोचन देखो।

वंसार (हिं० पु०) वंगसाल, भंडार।

वंसी (हिं० स्त्री०) १ एक प्रकारका वाजा जो वांसकी नलीका वना होता है। वंशी देखो। २ मछली फँसानेका एक औजार। इसमें एक लम्वी पतली छड़ीके एक सिरे पर डोरी वँधी होती है और दूसरे सिरे पर अंकुशके आकारकी लोहेकी एक कंटिया वंधी रहती है। इसी कंटियामें चारा लपेट कर डोरीको जलमें फेंकते हैं और छड़ीको शिकारी पकड़े रहता है। जव मछली वह चारा खाने लगती है, तव वह कंटिया उसके गलेमें फंस जाती है और वह खींच कर निकाली जाती है। २ मागधी मानमें ३० परमाणुकी तौल। ३ विष्णु, कृष्ण और रामजीके चरणोंका रेखाचिह्न। ४ धानके खेतोंमें होनेवाली एक प्रकारकी घास। इसको वाँसी भी कहते हैं। इसकी पत्तियाँ वांसकी पत्तियोंके आकारकी होती हैं। इससे धानको भारी नुकसान होता है। (पु०) ५ एक प्रकारका गेहूं।

वंसीधर (हिं० पु०) वंशीधर, श्रीकृष्ण।

वंहगी (हिं० स्त्री०) भार ढोनेका एक उपकरण। यह वाँसका वना होता है। इसके दोनों सिरों पर रस्सियोंके वड़े वड़े छींके लटका दिये जाते हैं। इन्हीं छीकोंमें वोझ रख देते हैं और लकड़ीको वीचमेंसे कँधे पर रख कर ले चलते हैं।

वंहिमन् (सं० पु०) अयमेषामतिशयेन वहुलः वहुल-इमन् (वहुल शब्दस्य वंहादेशः पा ६।४।१५७) अतिशय वहुल, वहुत ज्यादा।

वंहिष्ठ (सं० त्रि०) अतिशयेन वहुः वहु-इष्ठ, प्रियस्थिरेत्यादि इष्ट प्रत्ययः। अत्यधिक, वहुत ज्यादा।

"वंहिष्ठ-कीर्त्तिर्यशसा वरिष्ठं" (भट्टि २।४५)

वंहीयस् (सं० त्रि०) वहु-ईयसु, ततो वंहोदेशः। अतिशय वहुल।

वक (पु०) वंकते कुटिलीभवति वकि-अच् पृषोदरादित्वात् न लोपः। १ स्वनामख्यात पक्षिविशेष, वगुला।

यह दूधकी तरह सफेद है। इसका गला और दोनों पैर लम्बे, चोंच लंबी, चाल धीरी और पूंछ इतनी छोटी होती हैं, कि देखनेमें नहीं आती। गला इसका इतना कोमल होता है, कि उसकी तुलनाका अन्य कोई भी पदार्थ नहीं है। यह साधारणतः ही मूल्यवान है। कोई इसे अपने माथेका सुहाग समझते हैं।

वैज्ञानिक लोगोंने इस जातिके पक्षिको Ardea की श्रेणीमें शामिल किया है। आयुर्वेद शास्त्रकारोंके मतमें यह प्लव-जातिका है, क्योंकि यह तालावोंके किनारों पर ही सदा वैठा रहता है। इंगलैण्ड आदि यूरोपीय देशोंमें इस जातिके पक्षीको Heron (Ardea cinera) कहते हैं। किंतु इसके शरीरका आकार इस वगुलेसे वड़ा होता है। जव वह तालावके तट पर रहता है तव वहुत निस्पृह मालूम होता है और स्थिर हो गला नीचा कर मछलियोंकी वाट जोहता है। ज्यों ही छोटी मछली जल पर तैरती दिखाई देती हैं त्यों ही लंवी चोंचसे उसे पकड़ निगल जाता है। विलायती वगुले जलके चूहे, मेढ़क, सरी सृपादिके वच्चोंको पकड़ खाता है। पेट भरनेके लिये वगुला समस्त दिन नदीके तट पर चुपचाप वैठा रहता है और रात्रिको वृक्षोंकी डालियों पर सोता है। जव इसके अंडे देनेका समय आता है तव वह अन्य स्थानमें उड़ जाता है। आकाशमें यह इतना ऊपर उड़ता है, कि नीचेसे हमें वह वहुत छोटा श्वेतकाय दीखता है। वह एकान्तमें वृक्ष पर घोंसला वनाता है। यहां तक, कि किसी किसी वृक्ष पर इसके घोसलोंकी संख्या अस्सीसे अधिक देखी गई है। इसका घोंसला छोटी मोटी लकड़ियोंसे वड़ा और चिपटा वना होता है। मध्य भाग कोमल पशम, रेशम आदि अन्य द्रव्योंसे ढका रहता है। इसके ऊपर वह हरे नीले, ४-या ५ अंडे देता है।

अन्यान्य पक्षियोंकी तरह इसके अंडोंका खोल अधिक चमकता हुआ नहीं होता। अंडेके फूट जाने पर और वच्चेके वाहिर निकल आने पर वह प्रायः ६ सप्ताह तक घोंसलेके भीतर ही रहता है। इस समय वृद्ध पक्षी मछलीको पकड़ उसे खाने देते हैं। कभी कभी वृक्ष पर घोंसला वनाते समय द्रोण (कालेकौवे) और वगुलेमें विरोध हो उठता है। डाक्तर हेसमने (Der. Heysham) वेष्ट मोरलैंडमें इस प्रकार पक्षियोंका विवाद देखा है। पहिले युद्धमें एक वृक्ष नष्ट हुआ एवं दूसरे युद्धमें वगुलेने जय-लाभ पा कर द्रोण काकके अधिकृत स्थानमें अन्यान्य घोंसला वनाया। अन्तमें इस विरोधी दलके वीच संधि हो गई। यह स्वभावसे ही पोस मानता है, पालने पर वह इतना परच जाता है, कि पालकके पास-से कभी अलग नहीं होता। यह मत्स्यसे भिन्न अन्य द्रव्य भी खाता हुआ देखा गया है। यह हंसादिकी तरह स्पष्ट रूपसे तैर नहीं सक्ता, तौ भी जलके ऊपर पंख रख कर और पैरके वलसे उड़ता हुआ अभीष्ट स्थानमें चला जाता है। किसी किसी समय वह १० या १२ फीट तैर कर पार करता हुआ देखा गया है।

तीन वर्ष तक वच्चोंके माथे पर रोएं नहीं निकलते, इसके वाद मस्तकके ऊपरी भाग पर ही कितने रोएं निकलते दिखाई देते हैं। गलेके रोएं सफेद और अत्यन्त कोमल होते हैं। चोंच जन्मसे ही पीली होती है। पैरोंका रंग पक्का होता है, इस समय वच्चोंका शारीरिक गठन इतना सुन्दर नहीं होता, किंतु तीन वर्षके वाद ही उनका यौवन प्रारम्भ होने लगता है। नर और मादा स्वभावसे ही चिकने वालोंसे वेष्टित रहनेके कारण देखनेमें सुंदर लगती हैं। यूरोपमें पहिले वगुलेका शिकार संम्रान्त व्यक्तियोंकी क्रीड़ामें गिना जाता था। शिकार करते समय यदि किसी व्यक्तिसे अण्डा नष्ट हो जाता था, तव उसे एक पौंड अर्थ दंड देना पड़ता था।

वगुलेका मांस सुखाद्य आहार है। इंगलैंडमें ४र्थ एडवर्डके राज्यकालमें योर्कके आर्कविशप जार्ज नेभिलके अभिषेकके समय वहुतसे वगुले मारे गये थे। राजा ८म हेनरीके विवाहके समय वकमांसका प्रचार था। आजकल रुचिके परिवर्त्तनसे इंगलैंडमें वकमांसका प्रचार नहीं रहा।

२ स्वनामख्यात पुष्पवृक्ष, अगस्तफूल। पर्याय—शिववल्ली, पाशुपत, एकाष्ठीला, वुक, वसुक, वकपुष्प, शिवमल्ली, काकशीर्ष, स्थूलपुष्प, शिवप्रिय, काकनामा, वसहट्ट, खपूरक, रक्तपुष्प, मुनितरु, अगस्ति, वंगसेनक, अगस्त्य, शीघ्रपुष्प, मुनिद्रुम, व्रणारि, दीर्घफिलक, वक्र-पुष्प, सुरप्रिय (Sesbania grandiflora)

दक्षिण और पूर्वभारत, गङ्गाके किनारे, ब्रह्म, उत्तर आष्ट्रे लिया और मरिसस द्वीपमें यह वृक्ष उत्पन्न होता है। इसका पेड़ स्वभावतः २२ या ३० फुट तक ऊंचा होता है। इसको लकड़ी बहुत हलकी होती है जिससे थोड़े ही दिनोंमें पेड़ अपने आप मर जाता है। इसके फूल देखनेमें ढाकके फूलके समान, पर उससे बड़े और सफेद तथा कुछ ललाई लिये हुये सफेद होते हैं। इसका गोंद लाल, धूप और हवा लगनेसे बैंगनकी तरह काला हो जाता है। वह जल और मदिरामें गल जाता है। काठके सूखा और नीरस होनेके कारण छाल धूप लगनेसे उससे अलग हो जाती है, किंतु भीतर मछलीके छिलकेकी तरह जो पतली छाल होती है उससे उत्कृष्ट, मजबूत तन्तु प्रस्तुत होता है। छालमें धारकता-शक्ति है। चेचकके प्रारंभमें अथवा सस्फोटक ज्वरमें इसकी छाल पानीमें भिगो कर खानेको दी जाती है। कहीं कहीं फूल और पत्तोंका रस शिर-पीड़ा और नासिका रोगमें दिया जाता है। इस रसको अच्छी तरह नाकके द्वारा सूंघनेसे कफ पतला हो निकल आता है, जिससे माथेका दुखना और भारीपन दूर हो जाता है।

लाल रंगके बक फूलके रेशेको ठंढे जलमें बांट कर वातयुक्त स्फीत स्थानमें लेप देनेसे फ़ायदा देखा गया है। दुष्ट घाव वा शस्त्राघातमें अथवा दुष्ट स्थानमें पत्तोंकी पुलटिस बांधनेसे क्षत स्थान आरोग्य हो जाता है। फूलोंका रस आखोंमें डालनेसे झपनी दोष दूर होता है। हरे पत्ते और फूल रांध कर खानेमें अच्छे लगते हैं। इसकी गरो वरवटकी तरह व्यंजनादिमें खायी जाती है, किंतु खानेमें ज्यादा कसैली और अधिक खानेसे उदरमें रोगको पैदा करती है।

यह फूल शिवजीकी पूजामें पवित्र माना जाता है। प्रायः सभी पूजामें इसका व्यवहार होता है। यह सफेद, पीला, नीला और लालके भेदसे चार प्रकारका है। तन्त्र मतमें यह यन्त्रपुष्प माना जाता है। विशेषतः अन्यान्य फूलोंके पर्युषित होने पर उनके द्वारा पूजा नहीं की जाती, किंतु बकपुष्पके पर्युषित होने पर भी उससे पूजा की जाती है। वैद्यकके मतमें इसके गुण—मधुर, शिशिर, श्रम, कास, त्रिदोषनाशक एवं बलकारी है। (राजनि०) भावप्रकाशके मतसे यह शीत, नक्तान्ध्यनाशक, चातुर्थकनिवारक, तिक्त, कषाय, कटुपाक, पीनस, श्लेष्मा, पित्त और वातघ्न माना गया है।

३ कुबेर। ४ एक राक्षस जो भीमके हाथसे मारा गया था। (भारत १।१६५।७३) ५ असुरविशेष, बकासुर। भगवान् श्रीकृष्णके द्वारा यह असुर निहत हुआ था। भागवतमें इसका विषय यों लिखा है—

एक समय गोप बालकगण श्रीकृष्णजीके साथ वनमें गायें चराने गये। वहां श्रीकृष्ण गायोंको पानी पिलानेके लिये एक जलाशय पर पहुंचे। उसी समय बकका रूप धारण कर एक असुर आया और उसने श्रीकृष्णको निगल लिया। बलराम आदि यह देख भयसे विह्वल हो सबके सब रोने लगे। उस बगुलेकी चोंच बड़ी और तेज थी। भगवान श्रीकृष्ण बगुलेके मुखके बीचमें बैठ कर अग्निकी तरह उसके तालू भागको जलाने लगे। बगुला जब उस वेदनाको न सह सका, तब उसने श्रीकृष्णको उगल दिया। इसके बाद वह चोंचके द्वारा श्रीकृष्णको मारनेके लिये उनके सामने आया। भगवान् श्रीकृष्णने उस असुरको फिर आते हुए देख अपनी दोनों बाहुओंसे उसकी चोंच पकड़ कर उसी समय उसको यमपुर भेज दिया। (भागवत १०।११ अ०)

बकचंदन (हिं० पु०) एक प्रकारका वृक्ष। इसकी पत्तियां गोल और बड़ी होती हैं। इसका पेड़ ऊंचा और लकड़ी मजबूत होती है। फल इसका लम्बा और पतला होता है जिसमें छःसे आठ नौ अंगुल लंबे तीन चार दल होते हैं। यह ऊपर कुछ ललाई लिए भूरे रंगका होता है। फल सिरके दर्दमें पीस कर लगाए जाते हैं।

बकचन (हिं० पु०) बकचंदन देखो।

बकचा (हिं० पु०) बकुचा देखो।

बकचिञ्चिका (सं० स्त्री०) मत्स्यविशेष, एक प्रकारकी मछली। इस मछलीके मुंहकी जगह लम्बी चोंचसी होती है। इसे कौवा मछली भी कहते हैं।

बकची (हिं० स्त्री०) एक प्रकारकी मछली। २ बकुची देखो।

बकजित् (सं० पु०) बकं जितवान् इति जि-क्विप् तुक् च। १ भीमसेन। २ श्रीकृष्ण।

बकठाना (हिं० क्रि०) किसी बहुत कसैली चीज जैसे

कटहलके फूल या तेंदू आदिके फल खानेसे मुंहका सूख जाना, उसका स्वाद विगड़ जाना और जीभका सुकड़ जाना।

वकतर (फा० पु०) एक प्रकारकी जिरह या कवच। योद्धा इसे लड़ाईमें पहनते हैं। यह लोहेकी कड़ियोंका वना हुआ जाल होता है और इससे गोली तथा तलवारसे वक्षस्थलको रक्षा होती है।

वकतिया (हिं० स्त्री०) संयुक्त प्रान्त, वङ्गाल और आसामको नदियोंमें मिलनेवाली एक प्रकारकी छोटी मछली।

वकदर्शी (सं० पु०) पारावत, कबूतर।

वकधूना (सं० पु०) वकइव शुभ्रवर्ण-धूपः। वृकधूप।

वकध्यान (हिं० पु०) पाखण्डपूर्ण मुद्रा, ऐसी चेष्टा, मुद्रा या ढंग जो देखनेमें तो वहुत साधु और उत्तम जान पड़े, पर जिसका वास्तविक उद्देश्य वहुत ही दुष्ट और अनुचित हो। इस शब्दका प्रयोग ऐसे समय होता है जव कोई आदमी अपना बुरा उद्देश्य सिद्ध करनेके लिये अथवा झूठ मूठ लोगों पर अपनी साधुता प्रकट करनेके लिये वहुत सीधा-सादा वन जाता है।

वकध्यानी (हिं० वि०) जो देखनेमें सीधा सादा पर वास्तवमें दुष्ट और कपटी हो।

वकनख (हिं० पु०) महाभारतके अनुसार विश्वामित्रके एक पुत्रका नाम।

वकना (हिं० क्रि०) १ अयुक्त वात वोलना, ऊटपटांग वात कहना। २ प्रलाप करना, वड़वड़ाना।

वकनिसूदन (सं० पु०) निसूदयति हन्तीति सूदि-ल्यु-वकस्य निसूदनो घातकः। १ भीमसेन। २ श्रीकृष्ण।

वकपञ्चक (सं० क्ली०) वकोपलक्षिताः पञ्चतिथयो यत्र कप्, वकोऽपि तत्र नाश्नीयाद्दिति वचनादेव तथात्वं। कार्त्तिक महीनेके शुक्ल पक्षकी एकादशीसे पूर्णमासी तकका समय। इसमें मांस मछली आदि खाना विलकुल मना है। वकगण भी इन पांच दिनोंमें मछली नहीं खाते, इसी कारण इसका वकपञ्चक नाम पड़ा है। शास्त्रमें केवल पांच दिन नहीं वरन् सम्पूर्ण कार्त्तिक मासमें मत्स्यमांस भोजन निषिद्ध वतलाया है।

"एकादशीं समारभ्य यावत् पञ्चदशीभवेत्।
वकोऽपि तत्र नाश्नीयात् मीनं मांसञ्च किं नरः॥"
(तिथितत्त्व)

वकपुष्प (सं० पु०) वकइव वक्रं पुष्पं यस्य। १ वकवृक्ष। (क्ली०) वकस्य पुष्पं। २ अगस्ति कुसुम।

वकपुष्पा (सं० स्त्री०) शिवलिङ्गिनी।

वकम (हिं० पु०) वक्कम देखो।

वकमौन (हिं० पु०) १ अपना दुष्ट उद्देश्य सिद्ध करनेके लिये वगलेकी तरह सीधे वन कर चुपचाप रहनेको क्रिया या भाव। (वि०) २ चुपचाप अपना काम साधनेवाला।

वकयन्त्र (सं० पु०) वैद्यकमें एक यन्त्रका नाम। यह काँचकी एक शीशी होती है जिसका गला लम्बा और सामने वगलेके गलेकी तरह झुका होता है। इस यन्त्रसे काम करते समय शीशीको आग पर रख देते हैं और झुके हुए गलेके सिरे पर दूसरी शीशी अलग लगा देते हैं जिसमें तेल या अरक आदि जा कर गिरता है।

वकरकसाव (हिं० पु०) वह पुरुष जो वकरोंका मांस वेचता है।

वकरना (हिं० क्रि०) १ आपसे आप वकना, वड़वड़ाना। २ अपना दोष या करतूत आपसे आप कहना, कबूल करना।

वकरा (हिं० पु०) एक प्रसिद्ध चतुष्पाद पशु। इसके सींग तिकोने, गठीले और पेंठनदार तथा पीठकी ओर झुके हुए होते है, पूंछ छोटी होती है, शरीरसे एक प्रकारकी गन्ध आती है और खुर फटे होते हैं। यह जुगाली करके खाता है। कुछ वकरोंकी ठोड़ीके नीचे लम्बी दाढ़ी भी होती है। कुछ जातियोंके वकरे ऐसे भी हैं जो विना सींगके भी होते हैं। कुछ वकरोंके गलेमें जवड़ेके नीचे या दोनों ओर स्तनकी भांति चार चार अंगुल लम्बी और पतली थैली होती है जिसे गलस्तन या गलथन कहते हैं। आर्य जातिको वकरोंका ज्ञान वहुत प्राचीन कालसे है। विशेष विवरण अज शब्दमें देखो।

वकराना (हिं० क्रि०) दोष या करतूत कहलाना।

वकरीद—मुसलमानोंका पर्वविशेष। जिलहज्ज अथवा वकरीद नामक १२वें मासके ६वें दिन इस पर्वके उपलक्षमें एक वड़ा भारी भोज होता है। इस दिन दिन अथवा रात को पुलाव हलुआ और दाल रोटी आदि खानेकी चीजें वनती हैं। पहिले साधु दरिद्रोंको भोजन कराया जाता है। इसके वाद सुवे-वरातकी तरह महम्द और अम्यान्य

पितृ पुरुषोंको प्रसन्न करनेके लिये भोज्य द्रव्यका उत्सर्ग और कुरान पाठ होता है। इस दिन कोई कोई उपवास करते हैं। दशवें दिन सुवहको वे लोग मसजिदमें नमाज पढ़ने जाते हैं। इस समय वे तकवीका पाठ करते करते जाते हैं।(१) इन दिनोंमें प्रतिदिन धनी अथवा गृहस्थ खुदाके नाम पर वकरेकी कुर्वानी करते हैं (२) अथवा जो असमर्थ हैं वे स्त्री पुरुष वालक आदि सात जन मिल कर एक गाय अथवा ऊंटकी कूर्वानी कर सके हैं। कुरानमें लिखा है, कि जो खुदाके नाम पर पशुको कुर्वानी कर खुदाको संतुष्ट करता है, खुदा भी उस पशुको पा कर अवलीलाक्रमसे उसे पुल-सिरातसे पार कर देत हैं।(३)

नववें दिनसे ले कर प्रत्येक फजर नमाजमें और उस दिनकी उसर नमाज तक वे लोग एक वार करके तकवी-इ-तुषरीककी आवृत्ति करते हैं। नमाजके वाद वे लोग कवाव और रोटी वनाते हैं। पवित्र इब्राहीम और इसमाइलके नाम पर गृहस्थ लोग हर एकके लिये फतिहा पाठ करते हैं। पीछे कुछ आदमियोंको खिला कर तव आप भोजन करते हैं। कोई कोई खुतवा पर्यन्त उपवासी रहते हैं। फ़तिहा पाठके वाद पावरोटी खाते हैं। इस दिन वहुतसे मुसलमान सुमिष्ट व्यञ्जनादि तैयार कर सवको देते हैं। अवस्थाके अनुकूल कोई अपने कुटुम्ब, वंधुवांधवके पास मर्यादाके अनुसार एक दो या उससे ज्यादा हतावशिष्ट वकरेको भेज देते अथवा कोई कोई असमर्थ होनेके कारण मरे हुए जीवका अगला वा पिछला भाग वा थोड़ा मांस उनके पास भेजते हैं। हतजीव तीन भागोंमें वांटा जाता है। पहला भाग अधिकारीके लिये, दूसरा भाग अपने और दरिद्रोंके लिये, अवशिष्ट तीसरा भाग कुटुम्बियोंके लिये रखा जाता है। मुसलमानोंका ईद-उल-फतेर और ईद-उल-जोहा नामक ईदका उत्सव ही प्रधान समझा जाता है। इस समय मसजिदमें ज्ञानी और मूर्ख सभी एक साथ इकट्ठे होते हैं। सुवे-वरात्, आखरिचर, सुस्वा आदि इसके नामान्तर हैं।

वकरिपु (हिं० पु०) भीमसेनका एक पुत्र।

वकल (हिं० पु०) वकला देखो।

वकलस (अं० पु०) एक प्रकारकी चौकोर या लंवोतरी विलायती अंकुसी या चौकोर छल्ला। इसे किसी वंधनके दो छोरोंको मिलाए रखने या कसनेके काममें लाते हैं। यह लोहे, पीतल या जर्मन-सिलभर आदिका वनता है। इसे विलायती विस्तरवंद या वेष्टकोट आदि के पिछले भाग अथवा पतलूनकी गेलिस आदिमें लगाते हैं। कहीं कहीं यह केवल शोभाके लिये भी लगाया जाता है।

वकला (हिं० पु०) १ पेड़की छाल। २ फलके ऊपरका छिलका।

वकली (हिं० स्त्री०) १ एक प्रकारका लम्बा और सुन्दर वृक्ष। इसकी लकड़ी चमकीली और वहुत मजबूत होती है। यह वृक्ष वीजोंसे उगता है। इसकी लकड़ीसे आरायशी और खेतीके सामान वनाए जाते हैं तथा इसके लट्ठे रेलकी सड़क पर पटरीके नीचे विछाये जाते हैं। इसका कोयला भी अच्छा होता है और पत्तियां चमड़ा सिझानेके काममें आती हैं। पेड़से एक प्रकारका गोंद निकलता है जो कपड़े छापनेके काममें आता है। २ फल आदिका पतला छिलका।

वकवती (हिं० स्त्री०) एक नदीका प्राचीन नाम।

वकवाद (हिं० स्त्री०) साररहित वार्त्ता, व्यर्थकी वात।

वकवादी (हिं० वि०) वकवाद करनेवाला, वकवक करनेवाला।

(१) राजा, राजपुत्र, नवाव आदि सभी धनी व्यक्ति महा-समारोहसे तकवीका पाठ करते जाते हैं। ईद-इ-रमजान वा ईद-उल फतेके उत्सवमें भी इसी प्रकार तकवीकी पाठविधि प्रचलित है।

(२) इब्राहिमने खुदाको प्रसन्न करनेके लिये अपने पुत्र इसमाइलको वलि देनेका विचार किया था, परन्तु आर्चेञ्जल गेविलने उस पुत्रकी जान वचानेके लिये उसके वदलेमें छाग-वलि दी। मुसलमान लोग उसी घटनाका स्मरण करके इस महाभोजका आयोजन करते हैं।

(३) मुसलमानोंका विश्वास है, कि स्वर्ग जानेमें पहले पुल-सिरात पार करना पड़ता है। सुखमय स्वर्ग और नरकमय मर्त्यके वीचमें अनन्त अग्नि विद्यमान है। उस पुल-सिरातके जंतुगण मानवको अग्निके मध्य हो कर स्वर्गमें ले जाते हैं।

वकवाना (हिं० क्रि०) वकनेके लिये प्रेरणा करना, किसी से वकवाद कराना।

वकवास (हिं० स्त्री०) १ व्यर्थकी वातचीत, वकवाद। २ वकवाद मचानेका स्वभाव, वकवक करनेकी लत। ३ वकवाद करनेकी इच्छा।

वकवृत्ति (सं० पु०) वकस्येव स्वार्थसाधिका वृत्तिर्यस्य। वकतुल्य वर्त्तनविशिष्ट कपटाचारी, वह पुरुष जो नीचे ताकनेवाला, शठ और स्वार्थसाधनेमें तत्पर तथा कपटयुक्त हो।

वकवैरिन् (सं० पु०) वकस्य वैरी घातक त्वात्। १ भीमसेन। २ श्रीकृष्ण।

वकव्रती (सं० पु०) वकव्रतमस्यास्तीति इनि। मिथ्याविनीत, कपटी।

वकस (अ० पु०) १ कपड़े आदि रखनेके लिये वना हुआ चौकोर सन्दूक। २ घड़ी गहने आदि रखनेके लिये छोटा डिब्बा, खाना।

वकसा (हिं० पु०) पानीमें या जलाशयोंके किनारे होनेवाली एक प्रकारकी घास। मवेशी इसे वड़े चावसे खाते हैं।

वकसी (हिं० पु०) बख्शी देखो।

वकसीला (हिं० वि०) जिसके खानेमें मुहका स्वाद विगड़ जाय और जीभ ऐंठने लगे।

वकसीस (फा० स्त्री०) १ दान। २ पारितोषिक, इनाम।

वकसुआ (हिं० पु०) वकलस देखो।

वकाउर (हिं० स्त्री०) वकावली देखो।

वकाटी (सं० स्त्री०) वकचिञ्चिका मत्स्य।

वकाना (हिं० क्रि०) १ वकवक करने पर उद्यत करना, वकवक कराना। २ कहलाना, रटाना।

वकायन (हिं० पु०) समस्त भारतवर्षमें मिलनेवाला नीमकी जातिका एक पेड़। इसके पत्ते नीमके पत्तोंके जैसे पर उनसे कुछ वड़े होते हैं। इसका पेड़ भी नीमके पेड़से वड़ा होता है। फल नीमकी तरह पर नीलापन लिए होता है। इसकी लकड़ी हलकी और सफेद रंगकी होती है। इससे घरके संगहे और मेज कुरसी आदि वनाई जाती हैं और इस पर वारनिश तथा रंग अच्छा खिलता है। लकड़ी नीमकी तरह कड़ुई होती है, इस कारण उसमें दीमक घुन आदि नहीं लगते। इसका गुण कफ, पित्त और कृमिनाशक तथा वमन आदिको दूर करनेवाला और रक्तशोधक माना गया है। पत्ते औषधके काममें आते हैं। वीजोंका तेल मलहममें पड़ता है। इसका संस्कृत पर्याय—महानिम्व, द्रेका, कार्मुक कैटर्य, केशमुष्टिक, पवनेष्ट, रम्यकक्षीर, काकेड़, पार्वत और महातिक्त है।

वकाया (अ० पु०) १ शेष, वाकी। २ वचत।

वकाया—तैरभुक्तके अन्तर्गत एक नदी। (व्र० ख० ४६। ८५)।

वकारि (सं० पु०) वकस्य अरिः ६ तत्। १ श्रीकृष्ण। २ भीमसेन।

वकारी (हिं० स्त्री०) वह शब्द जो मुंहसे प्रस्फुरित हो, मुंहसे निकलनेवाला शब्द।

वकावली (हिं० स्त्री०) गुलवकावली देखो।

वकासुर (सं० पु०) एक दैत्यका नाम जिसे श्रीकृष्णने मारा था।

वकी (हिं० स्त्री०) वकासुरकी वहन पूतनाका एक नाम। यह अपने स्तनमें विप लगा कर कृष्णको मारनेके लिये गई थी। श्रीकृष्णने उसका दूध पीते समय ही उसे मार डाला था।

वकुचा (हिं० पु०) छोटी गठरी, वकचा।

वकुचाना (हिं० क्रि०) किसी वस्तुको वकुचेमें बांध कर कंधे पर लटकाना या पीछे पीठ पर बाँधना।

वकुची (हिं० स्त्री०) हाथ सवा हाथ ऊँचा एक प्रकारका पौधा। इसके पत्ते एक उंगली चौड़ी होते हैं और डालियां पृथ्वीसे अधिक ऊँची नहीं होतीं और इधर उधर दूर तक फैलती हैं। इसमें गुलाबी रंगके फूल लगते हैं। फूलोंके झड़ने पर छोटी छोटी फलियां झौंदमें लगती हैं जिनमें दो से चार तक गोल गोल चौड़े और कुछ लम्बाई लिये दाने निकलते हैं। दानोंका छिलका काले रंगका, मोटा और ऊपरसे खुरखुरा होता है। छिलकेके भीतर सफेद रंगकी दो दालें होती हैं जो वहुत कड़ी होती और वड़ी कठिनाईसे टूटती हैं। वीजसे एक प्रकारकी सुगंध आती है। यह औषधके काम आता है। इसका गुण ठंढा, रुचिकर, सारक, त्रिदोषघ्न और रसायन माना गया है। २ छोटी गठरी।

बकुचौहाँ (हिं० वि०) बकुचेकी भांति, बकुचेके समान।

बकुर (सं० पु०) भास्करः वा भयङ्करः पृषोदरादित्वात् साधुः। १ भास्कर, सूर्य। २ तुरही। ३ बिजली। (त्रि०) ४ भयङ्कर, डरावना।

बकुरना (हिं० स्त्री०) बकरना देखो।

बकुराना (हिं० क्रि०) स्वीकार कराना, मंजूर कराना।

बकुल (सं० पु०) बङ्कते इति वकि कौटिल्ये (मद्गुरोदयश्च। उण् १।४२) उरच्, प्रत्ययरेफस्य लत्वं बङ्केर्णलोपश्च। स्वनामख्यात पुष्पवृक्ष, मौलसिरी। (Mimusops Elengi) पर्याय—केसर, केशर, वकुल, सिंहकेसर, वकुल, वरलब्ध, सीधुगंध, मुकुल, मुकूल, स्त्रीमुखमधु, दोहल, मधुपुष्प, सुरभि, भ्रमरानंद, स्थिरकुसुम, शारदिक, करक, सीसंज्ञ, विशारद, गूढपंचक, धन्वी, मदन, मद्यामोद, चिरपुष्प। गुण—शीतल, हृद्य, विषदोषनाशक, मधुर, कषाय, मदाढ्य और हर्षदायक। इसके फूलोंका गुण—रुचिकर, क्षीराढ्य, सुरभि, शीतल, मधुर, स्निग्ध, कषाय और मलसंग्रहकारक। (राजनि०) इसके फलका गुण—मधुर, ग्राहक, दन्तस्थैर्यकर। (भावप्र०)

इसके फूलोंकी सुगंध बहुत मीठी और अधिक अच्छी होती है। अनेक लोग सुगंधि लेनेके लिये इसके फूलोंकी माला गूंथ कर गलेमें पहनते हैं। यह वृहदाकार वृक्ष भारतमें सब जगह उत्पन्न होता है। दक्षिण और मलयप्रायोद्वीपमें इसका वन देखा जाता है। कहीं कहीं आसनके साथ वकुलकी छाल मिला कर उससे चमड़ा परिष्कार किया जाता है। वकुल-छालमें सैकड़े पीछे ४ भाग टैनिक एसिड रहता है, इसका क्वाथ कुछ ललाई लिये सफेद होता है। इसके रसमें कुछ लाल रंग रहता है जिससे रेशम और सूतीके कपड़े रंगाये जाते हैं। वृक्षकी छालमेंसे जो दूध निकलता है वह भी कई कामोंमें आता है। फूलोंमें तैल होता है जो सहजमें निकला जाता है। इसीलिये इन फूलोंको चुआ कर गुलाब जलकी तरह सुगंध जल निकालते हैं। वकुलके वीजोंका तेल जलानेमें, औषधियोंमें और चित्रकारियोंके रंगको गीला करनेमें काम आता है।

चक्रदत्तने लिखा है—कच्चे फलका गुण धारक है। दांतोंके कमजोर होने पर इसका सेवन करनेसे दांत मजबूत और चर्वणशक्ति बढ़ जाती है। दांत अथवा दाढ़में किसी प्रकारका घाव होने पर इसको छालके काढ़ेकी कुल्ली करनेसे घाव जाता रहता है। मूत्रनाली अथवा गुदासे आम झरने पर काढ़ेके सेवनसे उपकार होता है। यह एक ज्वर हरनेवाली औषधिमें गिना जाता है। कोंकणप्रदेशमें यह घावोंके धोनेके काममें आता है। यह बैलके "आऊआ" रोग होनेपर उसको इसके सूखे फूलोंका चूर्ण सुंघा देनेसे रोग दूर हो जाता है। आऊआ रोगमें अधिक ज्वर एवं शिर, पैर, स्कन्धभाग और समस्त शरीरमें वेदना होती है। इसको सूंघनेसे नासिकाके द्वारा कफ निकलने लगता है। बादमें वेदना कुछ कम हो जाती है। पंजाबमें स्त्रियोंको पुत्रोत्पादिका शक्ति पैदा करनेके लिये इसकी छालका सेवन कराते हैं। कणाड़ामें वकुलके फूलोंसे निकाला जल उत्तेजक और पानीके काममें आता है। पुराना घी और इसके वीजके गूदेके चूर्णको अच्छी तरहसे पीसे। पीछे उसकी गोली बना कर थोड़ी अवस्थाके बालक और बालिकाके गुह्यस्थानमें रख देनेसे वायु निकलने लगती है एवं १५ मिनट बाद कठिन मल भी बाहर निकल आता है। बहुत दिनके आमाशयमें पके फलके खानेसे उपकार होता है। बांट कर माथे पर लेप देनेसे शिरपीड़ा दूर हो जाती है।

गर्मीमें इस पर फूल आते हैं। उस समय उसके चारों तरफ सुगंध ही सुगंध मालूम होने लगती है। किन्तु फूल अधिक समय तक पेड़ पर नहीं रहते। वर्षाकी तरह एकके बाद एक निरन्तर झड़ते रहते हैं एवं उसके साथ साथ फूलोंके डंठलमें फल लगने लगते हैं। ये फल पक जाने पर पीले दिखाई देते हैं। पके फल खानेमें बहुत अच्छे होते हैं। इसके फूलोंकी माला देवपूजाके काममें आती है। आम तौरसे इसकी माला आदरपूर्वक सभी लोग गलेमें पहनते हैं। इसके फूलोंसे इतर तैयार किया जाता है और लकड़ियां झरोखे दरवाजे आदि बनानेमें विशेष उपयोगी हैं।

इसकी उत्पत्तिके संबंधमें वामन पुराणके ६ अध्यायमें इस प्रकार लिखा है। एक दिन कामदेवने अपने सामने महादेवजीको विचरण करते देख अपना सम्मोहन पुष्पबाण छोड़ना चाहा। इसी समय क्रोधसे लाल आंखें

कर शिवजीने उसे देखा। कामदेवने महादेवजीके नयनानलसे अपनेको जलते हुये देख अपने हाथमेंका पुष्पबाण छोड़ा। धनुष पांच भागोंमें विभक्त हुआ जिससे चंपक, बकुल, पाटला, चमेली और मल्लिका इन पांच फूलोंको उत्पत्ति हुई। २ शिव। ३ एक प्राचीन देशका नाम।

बकुल टरर (हिं० पु०) सफेद रंगकी एक चिड़िया जो पानीमें रहती है और मनुष्यके बराबर ऊंची होती है।

बकुला (सं० स्त्री०) बकुल-टाप्। कटुका, कुटकी नामकी ओषधि।

बकुला (हिं० पु०) बगला देखो।

बकुली (सं० स्त्री०) बकुल गौरादित्वात् ङीप्। १ काकोली, एक प्रकारकी ओषधि। २ बकुल, मौलसिरी।

बकेन (हि० स्त्री०) वह गाय या भैंस जिसे बच्चा दिये साल भरसे अधिक हो गया हो और जो बरदाई न हो और दूध देती हो। ऐसी गाय या भैंसका दूध अधिक गाढ़ा और मीठा होता है।

बकेरुका (सं० स्त्री०) बकानां बकसमूहानां ईरूकं गतिर्यत्र। १ बलाका, बगली। २ वातवर्जित शाखा।

बकेल (हिं० स्त्री०) पलाशकी जड़ जिसे कूट कर रस्सी बनाते हैं।

बकैया (हिं० पु०) बच्चोंके चलनेका एक ढंग। इसमें वे पशुओंके समान अपने दोनों हाथ और दोनों पैर जमीन पर टेक कर चलते हैं।

बकोट (सं० पु०) बक, बगला।

बकोट (हिं० स्त्री०) १ पंजेकी वह स्थिति जो किसी वस्तुको ग्रहण करने या नोचने आदिके समय होती है। २ बकोटने या नोचनेकी क्रिया या भाव। ३ किसी पदार्थकी उतनी माता जो एक बार चंगुलमें पकड़ी जा सके।

बकोटना (हिं० क्रि०) बकोटसे किसीको नोचना, नाखूनोंसे नोचना।

बकोटी (हिं० स्त्री०) गुलबकावली देखो।

बकौंड़ा (हिं० पु०) १ पलाशकी कूटी हुई जड़ जिससे रस्सी बटी जाती है। २ बकौंरा देखो।

बकौंरा (हिं० पु०) बैलगाड़ीके दोनों ओर पहियेके ऊपर लगाई जानेवाली टेढ़ी लकड़ी। इसके बीचमें छिद्र करके धुरी लगाई जाती है और दोनों छोर पहियेके दोनों ओर की पटरीमें साले या बैठाए हुए होते हैं।

बक्कम (अ० पु०) भारतवर्षके मन्द्राज, मध्यप्रदेश और बर्मामें होनेवाला एक वृक्ष। इसका पेड़ छोटा और कँटीला होता है। लकड़ी काले रंगकी तथा दृढ़ और टिकाऊ होती है। यह मेज कुर्सी आदि बनानेके काम आती है। रंग और रौगनसे इस पर अच्छी चमक आती है। इसकी लकड़ी छिलके और फलोंसे लाल रंग निकलता है जिससे सूत और ऊनके कपड़े रंगे जाते हैं और जो छींटकी छपाईमें भी व्यवहृत होता है। इसके बीज बरसातमें बोए जाते हैं।

बक्कल (हिं० पु०) १ छिलका। २ छाल।

बक्का (हिं० पु०) सफेद या खाकी रंगके एक प्रकारके छोटे कीड़े। ये धानकी फसलमें लगते हैं और उसके पत्ते तथा बालोंको खा कर उसे निर्जीव कर देते हैं। ये कीड़े जहां चाटते हैं, वहां सफेद हो जाता है।

बक्काल (अ० पु०) आटा, दाल, चावल या और चीजें बेचनेवाला, बनिया।

बक्की (हिं० वि०) १ बकवाद करनेवाला, बहुत बोलने या बकबक करनेवाला। (स्त्री०) २ भादोंके महीनेके अन्तमें होनेवाला एक प्रकारका धान। इसके धानकी भूसी काले रंगकी होती है और चावल लाल होता है। यह मोटा धान माना जाता है।

बक्कुर (हिं० पु०) वचन, बोल।

बक्खर (हिं० पु०) १ बाखर देखो। २ वह खमीर जो कई प्रकारके पौधोंकी पत्तियों और जड़ों आदिको कूट कर तैयार किया जाता है। यह दूसरे पदार्थोंमें खमीर उठानेके लिये डाला जाता है।

बक्रोर—बुद्धगयाके पूरब फल्गू नदीके किनारे अवस्थित एक गण्ड ग्राम। यहां बहुत सी प्राचीन कीर्त्तियोंका ध्वंसावशेष देखनेमें आता है। यहांके कटनी नामक स्तूपका व्यास १५० फुट है। इनमें जो ईंटे लगी हैं उनका परिमाण १५॥×१०×१३॥ इञ्च है। अलावा इसके कितने भग्न स्तूप और बुद्धमूर्त्ति अंकित दृष्टिगोचर होती हैं। यूयन चुवंग भी इस स्थानका परिदर्शन कर गये

हैं। यहां मार्त्तण्ड पोखर वा सूर्यकुण्ड नामकी एक पुष्करिणी है। कोई कोई इस पुष्करिणीको वृद्धकुण्ड कहते हैं। प्रतिवर्ष सूर्यकुण्डके किनारे एक मेला लगता है। इस समय दूर दूर स्थानोंके यात्री यहां स्नान करने आते हैं। इसका प्राचीन नाम अजमपुर है।

महाभारतमें यह स्थान वेतकीयगृः नामसे उल्लिखित हुआ है। प्रवाद है, कि महावीर भीमने यहां वंक नामक असुरको मारा था।

वक्स (हिं० पु०) वकस देखो।

वक्सर—१ वङ्गालके शाहावाद जिलेका एक उपविभाग। यह अक्षा० १५ं१६´से २४ं४३´ उ० तथा देशा० ८३ं५६´से ८४ं२२´ पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ३६६ वर्गमील और जनसंख्या ४ लाखसे ऊपर है। यहां वक्सर और डुमरौन नामके २ शहर और ६३७ ग्राम लगते हैं।

२ उक्त जिलेका एक शहर। यह अक्षा० २५ं३४´ और देशा० ८३ं५८´ पू० गङ्गाके किनारे अवस्थित है। जनसंख्या प्रायः १३६४५ है। यहां इष्ट इण्डिया रेलपथका एक स्टेशन है। चीनी, रूई, सूती कपड़ा और लवण यहांका प्रधान व्यवसाय है। १७६४ ई०में मुर्शिदावादके अन्तिम नवाव मीरकासिम सर हेकूर मनरोसे इसी स्थान पर परास्त हुए थे। यहां गौरीशङ्करका मन्दिर और वक्सर नामकी एक पुष्करिणी है। कोई कोई उस पुष्करिणीको 'व्याघ्रसर' कहते हैं। शायद इसीसे वक्सर नाम पड़ा है। सिवाय इसके यहां रामेश्वर, विश्वामित्राश्रम और परशुराम आदि पवित्र तीर्थक्षेत्र हैं। प्रवाद है, कि वेदमन्त्रद्रष्टा अनेक ऋषि यहां वास करते थे।

वक्सर—अयोध्या प्रदेशके उनाव जिलान्तर्गत एक गण्डग्राम। यह गङ्गाके वाएं किनारे अवस्थित है। राजा उभय चाँदसे यह स्थान जीते जानेके वाद यहां वाई जातिका वास स्थापित हुआ। प्रवाद है, कि श्रीकृष्णने यहां वकासुरको मारा था, इस कारण इसका वक्सर नाम पड़ा है। वक्सरघाट पर नागेश्वर नामक एक शिवमन्दिर है जहां वर्षमें कई वार मेला लगता है। इनमेंसे कार्त्तिकी पूर्णिमामें गङ्गाके किनारे चण्डिका देवीके सामने जो मेला लगता है उसमें लाखसे ऊपर मनुष्य जुटते हैं। यहांका कार्त्तिकी पूर्णिमा और माघी अमावस्याका मेला ही प्रधान है। १८५७ ई०में कानपुर-हत्याकाण्डके समय इस स्थान पर अङ्गरेजोंकी दृष्टि पड़ी। मेजर डिः लाफोसे आदि कई पलातक अङ्गरेज सेनापतिने आ कर यहांके राजा दिग्विजयसिंहका आश्रय लिया था।

वक्सरखाल—शोण और गङ्गाकी संयोजक एक खाल वक्सरके निकट मिलनेके कारण इसका यह नाम पड़ा है। कृषिकार्य तथा वाणिज्यकी उन्नतिके लिये गवर्मेण्टसे यह नहर काटी गई है।

वक्सा—१ जलपाईगुड़ी जिलेके अन्तर्गत एक उपविभाग। अलीपुर इसका सदर है।

२ उक्त जिलेका अङ्गरेजी सेना-निवास। यह अक्षा० २६.४६´ उ० तथा देशा० ८६ं३६´ पू०के मध्य कोचविहार नगरसे १६ कोसके फासले पर अवस्थित है। जनसंख्या प्रायः ५८१ है। यहां आने जानेके लिये एक विस्तृत पथ भी है। १८६४-६५ ई०के भूटान-युद्धके समय यहां सेनाकी छावनी स्थापित हुई। दुआ प्रदेश जीतनेके वाद पर्वतकी उपत्यकाभूमि पर एक दुर्ग वनाया गया है।

वक्सीखाल—हुगली जिलेके अन्तर्गत रूपनारायण नदीकी एक शाखा। यह दामोदर और रूपनारायण नदीके मध्यभागमें वहती है।

वखत (हिं० पु०) १ वक्त देखो। २ वख्त देखो।

वखतगढ़—मध्यभारतके भील एजेन्सीके अन्तर्गत एक 'ठाकुरात' सम्पत्ति। १८६६ ई०में धार दरवारकी अनुमति ले कर विधवारानीने वर्त्तमान ठाकुरराज प्रतापसिंहको गोद लिया। १८८२ ई०में वालिग हो कर इन्होंने कुल अधिकार अपने हाथ किया। ये धार-राजको वार्षिक १६ हजार रुपये कर देते हैं।

वखतर (हिं० पु०) वकतर देखो।

वखर (हिं० पु०, १ वाखर देखो। २ वक्खर देखो।

वखरा (फा० पु०, १ भाग, हिस्सा। २ वाखर। ३ घोड़ेकी पीठ पर पलान आदिके नीचे रखनेके लिये फाल या सूखी घास आदिका दोहरा किया हुआ वह मुट्ठा जिस पर टाट आदि लपेटा जाता है। यह घोड़ेकी पीठ पर घाव होनेसे वचानेके लिये रखा जाता है।

बखरी (हिं० स्त्री०) एक कुटुम्बके रहने योग्य बना हुआ मिट्टी, ईंटों आदिका अच्छा मकान।

बखरैत (हिं० पु०) हिस्सेदार, साझीदार।

बखसीस (हिं० स्त्री०) बखशीश देखो।

बखान (हिं० पु०) १ वर्णन, कथन। २ प्रशंसा, गुण-कीर्त्तन, बड़ाई।

बखानना (हिं० क्रि०) १ वर्णन करना, कहना। २ बुरा भला कहना, गाली गलौज देना। ३ प्रशंसा करना।

बखार (हिं० पु०) दीवार या टट्टी आदिसे घेर कर बनाया हुआ वह गोल और विस्तृत घेरा जिसमें अनाज रखा जाता है।

बखारी (हिं० स्त्री०) छोटा बखार।

बखिया (फा० पु०) एक प्रकारकी महीन और मजबूत सिलाई। इसमें सूईको पहले कपड़ेमेंसे टाँका लगा कर आगेकी ओर टोंक मारते हैं जिससे सूई पहले स्थानसे आगे बढ़ कर निकलती है। इसी प्रकार बार बार सीते हैं। बखिया दो प्रकारका होता है—उस्तादाना या गाँठी और दौड़ या बया। गाँठीमें ऊपरकी लौट सिलाईके टांके एक दूसरेसे मिले हुए दानेदार होते हैं और बयामें दो चार दानेदार उस्तादी बखियाके बाद कुछ थोड़ा अव-काश रहता है।

बखियाना (हिं० क्रि०) किसी चीज पर बखियाकी सिलाई करना, बखिया करना।

बखीर (हिं० स्त्री०) एक प्रकारकी खीर। इसमें दूधकी जगह गुड़, चीनी या ईखका रस डाला जाता है।

बखील (अ० वि०) कृपण, कंजूस।

बखूबी (फा० क्रि० वि०) १ सम्यक् प्रकारसे, भलीभांति। २ पूर्णतया, पूर्णरूपसे।

बखेड़ा (हिं० पु०) १ उलझाव, झंझट। २ व्यर्थ विस्तार, आडम्बर। ३ कठिनता, मुश्किलें। ४ विवाद, झगड़ा।

बखेड़िया (हिं० वि०) झगड़ालू, बखेड़ा करनेवाला।

बखेरना (हिं० क्रि०) चीजोंको इधर उधर या दूर दूर रखना, फैलाना।

बखेरी (हिं० स्त्री०) एक प्रकारका कंटीला वृक्ष। यह छोटे कदका होता है। इसके फल रंगने और चमड़ा सिझानेके काममें आते हैं। यह वृक्ष पूर्वीय बङ्गाल, आसाम और बर्मा आदिमें होता है। इसका दूसरा नाम कुंती भी है।

बखोरना (हिं० क्रि०) टोकना, छेड़ना।

बख्त (फा० पु०) भाग्य, तकदीर।

बख्तर (फा० पु०) सन्नाह, बकतर।

बख्तारी—अरबदेशीय एक प्रसिद्ध कवि। खलीफा अली मुस्ताइन बिल्लहकी राजसभामें ये विद्यमान थे। कोई कोई इन्हें बिन् बख्तरी नामसे उल्लेख कर गये हैं। बोग-दाद नगरमें ६३ वर्षकी उमरमें इनकी मृत्यु हुई। कोई कोई कहते हैं, कि २०८ हिजरीमें इनका जन्म हुआ और कोई इसी समय इनकी मृत्यु बतलाते हैं।

बख्तावरखां—सम्राट् आलमगीरके अधीनस्थ एक अमीर। ये नाजिर बख्तियार खां नामसे प्रसिद्ध थे। दिल्लीके निकटवर्त्ती बख्तावर नगरमें जो सराय है उसे इन्होंने १६७१ ई०में बनवाई थी। उक्त सम्राट्से इन्होंने १० वर्ष राजत्व ले कर मिरत-इ-आलम नामक एक इतिहासकी रचना की। आगरा-नगरके सन्निकटस्थ फरिदाबादमें इन्होंने अपना शेष जीवन विद्यालोचनामें बिताया। १६८४ ई०में इनकी मृत्यु हुई।

बख्तियार खिलजी—एक मुसलमान सेनापति। इसने बङ्गे-श्वर लक्ष्मणसेनको पराजय कर बङ्गराज्य पर अधिकार किया था, इसीसे उसका नाम जनसाधारणमें प्रसिद्ध है। किन्तु यह विश्वास भ्रमात्मक प्रतीत होता है। जिस व्यक्तिने बङ्गाल पर चढ़ाई की थी, उसका नाम महम्मद-इ-बख्तियार था। वे बख्तियार खिलजीके पुत्र थे। विशेष विवरण बङ्ग और महम्मद-इ-बख्तियार शब्दमें देखो।

बख्तियारपुर—पटना जिलेके बाढ़ उपविभागका एक ग्राम। यह अक्षा० २५° २७' उ० तथा देशा० ८५° ३२' पू०के मध्य अवस्थित है। यहां इष्ट इण्डिया रेलवेका एक स्टेशन है। यह कलकत्तेसे ३१०मील और पटनासे २२ मील दूर पड़ता है। जरासन्धकी राजधानी राजगृह जानेमें इसी बख्तियारपुरसे जाना पड़ता है।

बखूरा—विहारराज्यका एक प्राचीन ग्राम। यह बैसाढ़ ग्रामसे १ कोस उत्तर पश्चिममें अवस्थित है। यह स्थान प्राचीन वैसाली राज्यके अन्तर्गत था। यहां जिस सिंह-स्तम्भका ध्वंसावशेष दिखाई देता है वह अशोक-प्रतिष्ठित

माना जाता है। चीनपरिव्राजक यूएनचवंग उस स्तम्भको देख गये हैं। उसके निकटवर्त्ती मर्कटह्रद और कूटागार आदि भग्नावशेषका निदर्शन आज भी देखनेमें आता है। उक्त सिंहस्तम्भके पास ही एक वृहत् बुद्धमूर्त्ति थी। स्थानीय जमींदारने १८५४ ई०में ध्वंसराशि खोदते समय उसे पाया था। पीछे उन्होंने निकटवर्त्ती बौद्धस्तूपके ऊपर मन्दिर वनवा कर उक्त मूर्त्तिकी प्रतिष्ठा की और उसकी वे रामचन्द्ररूपमें पूजा करने लगे। अलावा इसके एक और भी भग्नस्तूप है जिसे लोग राजा विशालका-मूर्च्छा (दुर्ग) वा भीमसेनका पलिया कहते हैं।

वख्शना (फा० क्रि०) १ प्रदान करना, देना। २ त्यागना, छोड़ना। ३ क्षमा करना, माफ करना।

वख्शवाना हिं० क्रि०) वख्शनेका प्रेरणार्थक रूप, किसीको वख्शनेमें प्रवृत्त करना।

वख्शिश (फा० स्त्री०) १ उदारता, दानशीलता। २ दान। ३ क्षमा।

वख्शीश (फा० स्त्री०) वख्शिश देखो।

वग (हिं० पु०) वगला।

वगई (हिं० स्त्री०) १ एक प्रकारकी घास। इसकी पत्तियां वहुत पतली और लम्वी होती है। पंसारी इसे सूखने पर पुड़ियाँ आदि वाँधनेके काममें लाते हैं। कहीं कहीं लोग इसे भांगके साथ पीस कर पीते भी हैं। इसके मेलसे भांगका नशा वहुत वढ़ जाता है। २ एक प्रकारकी मक्खी जो कुत्तों पर वहुत वैठती हैं, कुकुरमाछी।

वगछुट (हिं० क्रि० वि०) सरपट, वेतहाशा। इस शब्दका प्रयोग वहुधा घोड़ोंकी चालके संवंधमें ही होता है। परन्तु कभी भी हास्य या व्यंग्यमें लोग मनुष्योंके संवंधमें भी वोल देते हैं।

वगटुट (हिं० क्रि० वि०) वगछुट देखो।

वगदना (हिं० क्रि०) १ विगड़ना, खराव होना। २ वहकना, भूलना। २ च्युत होना, ठीक रास्तेसे हट जाना।

वगदर (हिं० पु०) मच्छर।

वगदवाना (हिं० क्रि०) १ खराव कराना, विगड़वाना। २ भ्रममें डालना, भुलवाना। ३ प्रतिज्ञा भंग कराना, अपने वचनसे हटाना। ४ गिरा देना, लुढ़काना।

वगदाद—तुरस्ककी राजधानी वोगदाद नगर।

तुरष्क देखो।

वगदाना (हिं० क्रि०) विगाड़ना, खराव करना। २ च्युत करना, ठीक रास्तेसे हटाना। ३ भुलाना, भटकाना।

वगदारु (सं० क्ली०) देशभेद।

वगदाह (सं० क्ली०) स्थानभेद।

वगनी (हिं० स्त्री०) एक प्रकारकी घास। वगई देखो।

वगमेल (हिं० पु०) १ वरावर वरावर चलना, पाँति वांध कर चलना। २ समानता, तुलना।

वगर (हिं० पु०) १ प्रासाद, महल। २ वड़ा मकान, घर। २ द्वारके सामनेका सहन, आंगन। ३ वह स्थान जहां गाएं वांधी जाती हैं, वाजार। ४ घर, कोठरी। ५ वड़ा मकान, घर। (स्त्री०) ६ वगल देखो।

वगरा (हिं० पु०) संयुक्तप्रान्त और वङ्गालमें मिलनेवाली एक प्रकारकी मछली। यह छः सात अंगुल लंवी होती है और जमीन पर उछलती या उड़ान भरती है। यह खानेमें स्वादिष्ट होती है।

वगराना (हिं० क्रि०) १ छितराना, फैलाना। २ फैलना, विखरना।

वगरिया (हिं० स्त्री०) कच्छ और काठियावाड़में उत्पन्न होनेवाली एक प्रकारकी कपास।

वगरी (हिं० पु०) १ भादोंके अन्तमें होनेवाला एक प्रकारका धान। इसका रंग काला और चावल लाल तथा मोटा होता है। इसे प्रस्तुत करनेमें विशेष परिश्रम नहीं करना पड़ता, केवल वीज विखेर कर छोड़ दिये जाते हैं। (स्त्री०) २ मकान, घर।

वगल (फा० स्त्री०) १ वाहु मूलके नीचेकी ओरका गड्ढा, कांख। २ समीपका स्थान, पासकी जगह। ३ कपड़ेका वह टुकड़ा जो अंगरखे या कुरते आदिकी आस्तीनमें कंधेके जोड़के नीचे लगाया जाता है। ४ पार्श्व, छातीके दोनों किनारेका भाग जो वांह गिराने पर उसके नीचे पड़ता है। ५ सामने और पीछेको छोड़ इधर उधरका भाग, किनारेका हिस्सा।

वगलगंध (हिं० पु०) १ वह फोड़ा जो वगलमें होता है, कँखवार। २ एक प्रकारका रोग। इसमें वगलसे वहुत दुर्गन्ध पसीना निकलता है।

वगलवंदी (हिं० स्त्री०) एक प्रकारकी मिरजई। इसके बंद वगलके नीचे लगते हैं।

वगला (हिं० पु०) १ सफेद रंगका एक प्रसिद्ध पक्षी। व देखो। एक झाड़ीदार पौधा। इसे गमलोंमें शोभा-के लिये लगाया जाता है।

वगलामुखी (हिं० स्त्री०) तान्त्रिकोंके अनुसार एक देवी। वगलामुखी देखो।

वगलियाना (हिं० क्रि०) १ वगलसे हो कर जाना, राह काट कर निकलना। २ पृथक् निकालना, अलग करना। ३ वगलमें लाना या करना।

वगली (हिं० वि०) १ वगलसे संबंध रखनेवाला, वगल-का। (स्त्री०) २ ऊँटोंका एक दोष। इसमें चलते समय उनकी जांघकी रग पेटमें लगती है। ३ मुग्दर हिलाने-का एक ढंग। इसमें पहले मुग्दरको ऊपर उठाते हैं और उसे कंधे पर इस प्रकार रखते हैं, कि हाथ मुठिया पकड़े नीचेको सीधा होता है और मुग्दरका दूसरा सिरा कंधे पर होता है। फिर एक हाथको ऊपर ले जा कर मुग्दर-को पीछे सरकाते जाते हैं, यहां तक कि वह पीठ पर लटक जाता है। इसी बीचमें दूसरे हाथके मुग्दरको पहले जैसा ऊपर ले जाते हैं इसके बाद पहले हाथके मुग्दरको हाथ नीचे ले जा कर कंधे पर इस प्रकार लाते हैं, कि उसका दूसरा सिरा फिर कंधे पर आ जाता है। इसी तरह बराबर करते रहते हैं। ४ वह सेंध जो किवाड़-की वगलमें सिटकिनीकी सीधमें चोर इसलिये खोदते है, कि उसमेंसे हाथ डाल कर सिटकिनी खसका कर किवाड़ खोल लें। ४ अंगे, कुरते आदिमें कपड़ेका टुकड़ा जो अस्तीनके साथ कंधेके नीचे लगाया जाता है। ५ वह थैली जिसमें दर्जी सूई तागा रखते हैं और जिसको वे चलते समय कंधे पर लटका लेते हैं। यह चौकोर कपड़ेकी होती है। इसके तीन पाट दोहर दोहर कर सी दिये जाते हैं और चौथेमें एक डोरी लगा दी जाती है जिसे थैली पर लपेट कर बाँधते हैं। यह थैली चौकोर होती है और इसके दो ओर एक फीता वा डोरीके दोनों सिरे टांके रहते है जिसे वगलमें लटकाते समय जनेऊकी तरह गलेमें पहन लेते हैं। ६ वह लकड़ी जिसमें हुक्केवाले गड़गड़ेको अटका कर उसमें छेद करते हैं। ७ स्त्री-वक, वगला नामक पक्षीकी मादा।

वगलीटांग (हिं० स्त्री०) कुश्तीका एक पेच। इसमें प्रतिपक्षीके सामने आते ही उसे अपनी वगलमें ला कर और उसकी टांग पर अपना पैर मार कर उसे गिरा देते हैं।

वगली वांह (हिं० स्त्री०) एक प्रकारकी कसरत। इसमें दो आदमी वरावर वरावर खड़े हो कर अपनी बाँहसे दूसरेकी बाँह पर धक्का देते हैं।

वगली लंगोट (हिं० पु०) कुश्तीका एक पेच।

वगार (हिं० पु०) गाय बांधनेका स्थान, घाटी।

वगारना (हिं० क्रि०) १ पसारना, फैलाना। वगराना देखो।

वगावत (अ० स्त्री०) १ वागी होनेका भाव। २ विद्रोह, बलवा। ३ राजद्रोह।

वगीचा (फा० पु०) उपवन, छोटा वाग।

वगुड़ा—पूर्वीय बङ्गाल और आसामके राजशाही विभागका जिला। यह अक्षा० २४°३२' से २५°१६' उ० तथा देशा० ८८°५२' से ८९°४१' पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण १३५९ वर्गमील है। यहां तिस्ता, ब्रह्मपुत्र, यमुना, नागर, करतोया, बंगाली और मानस नदी बहती हैं। १७८७ ई०की भीषण बाढ़के पहले करतोया नदी तिस्ताके जलको अपने साथ लेती हुई गङ्गामें मिलती थी, उस समय इसमें बड़े बड़े जहाज आते जाते थे। इसी कारण प्राचीनकालमें इस नदीका विशेष गौरव था। बाढ़के बादसे इसकी गति पलट गई है। यद्यपि आज भी वह प्राचीन गड्ढा देखा जाता है पर उसमें स्रोत विलकुल नहीं है।

राजशाहीके कुछ थानोंको ले कर १८२१ ई०में यह जिला संगठित हुआ है। उस समय यहां नील और रेशमकी अच्छी खेती होती था। उस समय डकैतोंका भी भारी उपद्रव था, पर वृटिश सरकारने उनका थोड़े ही दिनोंके अन्दर अच्छी तरह दमन किया। दूरवर्त्ती जिलेसे विचारकी सुविधा न होती देख यहां एक ज्वाइण्ट मजिस्ट्रेट नियुक्त हुए। वे ही राजस्व विभागका कुल काम करते थे। क्रमशः वगुड़ा जिलेकी उन्नति होती गई।

पीछे १८५६ ई०में यहां एक स्वतन्त्र मजिष्ट्रेट कलक्टर नियुक्त हुए।

इस जिलेके अन्तर्गत महास्थानगढ़ और शेरपुर नगर ऐतिहासिक तत्त्वसे पूर्ण है। महास्थानगढ़ अभी स्तूप मात्रमें परिणत हो गया है जिसके एक पार्श्वसे करतोया नदी बहती है। एक समय यहां हिन्दू-राजाओं-ने राज्य किया था। आज भी वहांके लोगोंके मुख से उन हिन्दूराजवंशकी बहुत-सी बातें सुनी जाती हैं। १६वीं शताब्दीमें शेरपुर नगर विशेष समृद्धशाली था। मुगल-इतिवृत्तमें तथा १६६२ ई०के ओलन्दाज शासन-कर्त्ता ब्रूक (Von den Broucke)-के मानचित्रमें यह नगर वाणिज्य-स्थान कह कर वर्णित हुआ है। ढाकामें मुसलमान-नवाबोंकी प्रतिष्ठा होनेके पहिले यह नगर मुसलमान-अधिकारस्थ सीमान्तदेशमें अवस्थित तथा भिन्न राज्यके साथ वाणिज्यके लिये बहुत कुछ विख्यात था। नीलकी खेती पहलेकी तरह नहीं होती, पर रेशम तथा वस्त्रादि बुननेका कार्य पहले सा चला आ रहा है। शेरपुर और नन्दपाड़ामें इष्ट इण्डिया कम्पनीकी दो रेशमकी कोठी थी १८३४ जो ई०में यहांसे उठा दी गई।

इस जिलेमें बगुड़ा और शेरपुर नामके २ शहर और ३८६५ ग्राम लगते हैं। जनसंख्या ६ लाखके करीब है। इनमेंसे सैकड़े पीछे १८ हिन्दू और शेष ८२ मुसलमान हैं। आवहवा कुल मिला कर अच्छी है, पर उक्त दोनों शहर करतोया नदीके किनारे अवस्थित होनेके कारण मलेरियाका अकसर प्रकोप देखा जाता है। धान, पटसन, सरसों, चीनी, चमड़ा, तमाकू और गाँजा यहां-का उत्पन्न द्रव्य है। यमुनातीरवर्त्ती हिल्ली, दमदमा, जमालगञ्ज, वालुभरा, नौगाँव और दुवलहाटी, करतोया तीरवर्त्ती गोविन्दगञ्ज, गुमाणीगंज, शिवगञ्ज, सुलतान-गंज और शेरपुर ये सब जिलेके प्रधान वाणिज्यस्थान समझे जाते हैं। विद्याशिक्षाकी ओर यह जिला बहुत पीछा पड़ा हुआ है। पर पहलेसे लोगोंका इस ओर कुछ विशेष ध्यान आकृष्ट हुआ है। अभी यहां कुल मिला कर ४६५ स्कूल हैं। स्कूलके अलावा जिलेमें ६ अस्पताल भी हैं।

२ उक्त जिलेका एक शहर। यह अक्षा० २४°५१´ उ० तथा देशा० ८६°२३´ के मध्य करतोया नदीके पश्चिम कुल पर अवस्थित है। जनसंख्या ७ हजार है। शहरमें १८७६ ई०को म्युनिसपलिटी स्थापित हुई है। कालीतला और मालथी नगरकी हाट यहांका प्रधान स्थान है।

बगुलपतोख (हिं० पु०) जलमें रहनेवाली एक प्रकारकी चिड़िया जो मुरगावीसे छोटी होती है। इसका रंग सफेद होता है और इसके पैर तथा चोंच काली होती है।

बगुला (हिं० पु०) बगला देखो।

बगुला—नदिया जिलान्तर्गत एक गण्ड ग्राम। यहां इ, बी, एस रेलवेका एक स्टेशन होनेके कारण गोआड़ी कृष्ण-नगर आदि स्थानोंमें जाने आने तथा वाणिज्यकी विशेष सुविधा हो गई है। इसके पास ही चूर्णी नामकी नदी बहती है।

बगूला (हिं० पु०) वह वायु जो गरमीके दिनोंमें कभी कभी एक स्थान पर भँवर सी घूमती हुई दिखाई देती है और जिससे गर्दका एक खंभा सा बन जाता है। वह वायु-स्तम्भ आगेको बढ़ता जाता है। इसका व्यास और ऊंचाई कभी कम और कभी अधिक होती है। कभी कभी बड़े व्यासवाले बगूलेमें पड़ कर बड़े बड़े पेड़ और मकान तक उखड़ कर उड़ जाते हैं। यह बगूला जब समुद्र या नदियोंमें होता है, तब उसे 'सूंड़ी' कहते हैं और इससे पानी नलकी भांति ऊपर खिंच जाता है, ववंडर।

बगेड़ी (हिं० स्त्री०) बगेरी देखो।

बगेरी (हिं० स्त्री०) खाकी रंगकी एक छोटी चिड़िया जो सारे भारतमें पाई जाती है। यह डील डौलमें गौरैयाके समान होती और मैदानोंमें जलाशयोंके पास पाई जाती है। यह जमीनके साथ इस प्रकार चिमट जाती है, कि सहजमें दिखाई नहीं देती। यह झुंडोंमें रहती हैं। इसे संस्कृतमें भरद्वाज कहते हैं।

बगैचा (हिं० पु०) बगीचा देखो।

बगौधा (हिं० पु०) बगेरी नामकी चिड़िया।

बग्गी (अं० स्त्री०) चार पहियेकी पाटनदार गाड़ी जिसे एक वा दो घोडे खींचते हैं।

बगड़ी—१ बङ्गालके अन्तर्गत एक विभाग। बागड़ी देखो।

२ मेदिनीपुरके उत्तर और हुगली तथा बांकुड़ाके

मध्यवर्ती स्थान। यह स्थान वस्त्र व्यवसायके लिये प्रसिद्ध है। यहां जो कपड़े तैयार होते हैं वे बगड़ी नामसे तमाम मशहूर हैं।

बघंबर (हिं० पुं०) १ वाघकी खाल जिस पर साधु लोग बैठ कर ध्यान लगाते हैं। २ वाघकी खालकी तरह बना हुआ कंबल।

बघनहां (हिं० पु०) १ एक प्रकारका हथियार। इसमें नाखूनके समान चिपटे टेढ़े कांटे रहते हैं। इसे उंगलियों में पहनते हैं और हाथापाई होने पर इससे शत्रुको नोच लेते हैं। २ एक आभूषण जिसमें वाघके नाखून चांदी या सोनेमें मढ़े होते हैं। इसे गलेमें तागेमें गूंथ कर पहनते हैं।

बघार (हिं० पु०) १ छौंक, तड़का। २ बघारनेकी महंक।

बघारना (हिं० क्रि०) १ कलछी या चमचमें घीको आग पर तपा कर और उसमें हींग, जीरा आदि सुगंधित मसाले छोड़ कर उसे दाल आदिके वरतनमें मुंह ढांक कर छोड़ना जिसमें वह दाल आदि भी सुगंधित हो जाय, छौंकना। २ अपनी योग्यतासे अधिक, विना मौके या आवश्यकतासे अधिक चर्चा करना।

बघेरा (हिं० पु०) लकड़बग्घा।

बघेलखण्ड—मध्यभारतके अन्तर्गत एक विस्तीर्ण एजेन्सी। यह अक्षा० २२° ४०' से २६° १०' उ० तथा देशा० ८०° २५' से ८२° ४५' पू०के मध्य अवस्थित है। यह देशीय राजाओंके अधीन है तथा वड़े लाटके मध्यभारतके एजेण्टसे शासित होता है। भूपरिमाण १४३२३ वर्ग-मील है जिनमेंसे १३००० वर्गमील रेवाराज्यके अधीन है और शेष भाग ११ छोटे छोटे राज्योंमें विभक्त है। इन ११ राज्योंके नाम हैं—वरौंदा, नागोद, मैहर, सोहावल, कोठी, जासो, पालदेव, पहरा, तरौन, भैसौंदा और कामत रजौल। इसके उत्तरमें मिर्जापुर, इलाहाबाद और वांदा जिला; दक्षिणमें विलासपुर, मण्डला और जब्बलपुर; पश्चिममें जब्बलपुर जिला और बुंदेलखण्ड एजेन्सी तथा पूरवमें छोटा-नागपुरका सामन्तराज्य है। जनसंख्या साढ़े पन्द्रह लाखके करीब है जिनमेंसे हिन्दू-को संख्या और वर्णोंसे अधिक है। इसमें रेवा, सतना, मैहर, उमरिया, गोविन्दगढ़ और उनचहर नामके ६ शहर तथा ६५५६ ग्राम लगते हैं। सतना यहांका प्रधान वाणिज्य-स्थान है। १८७१ ई० तक यह स्थान बुन्देल-खण्डके अधीन रहा। उसी सालसे यह वघेलखण्ड एजेन्सी कहलाने लगा है। वघेला नामक राजपूतोंके वाससे इसका बघेलखण्ड नाम पड़ा है। वघेला-राजपूत एक समय गुजरातमें राज्य करते थे। वघेला देखो।

वघेला—शिशोदीय वंशीय राजपूत जातिकी एक शाखा। ये लोग पहले गुजरात प्रदेशमें राज्य करते थे। तिहुण-पाल (त्रिभुवनपाल), दुर्लभ और वल्लभके शासनके बाद १३०२ सम्वत्‌में विशलदेव पटनाके सिंहासन पर बैठे। इनके १८ वर्ष राज्य करनेके बाद अर्जुनदेवने १३२० सम्वत्‌में राज्याधिकार प्राप्त किया। उसके बाद १३३३ सम्वत्‌में सारङ्गदेवका राज्यारोहण देखा जाता है। १३५३ सम्वत्‌से १३६० सम्वत् तक कर्णने राज्य किया। शेषोक्त संवत्‌में दिल्लीश्वर सुलतान अलाउद्दीनने दलवलके साथ आ कर हिन्दू-राजवंशको तहस नहस कर डाला। विचारश्रेणी तथा प्रवचनपरीक्षा नामक ग्रन्थमें इस राज-वंशके राज्यकाल-सम्बन्धमें बहुत सी बातें लिखी हैं।

रेवाकी वघेलराज-अख्यायिकासे मालूम होता है, कि अनहलवाड़के अधिपति सिद्धराज जयसिंह (११००-११५० ई०) के पुत्र व्याघ्रदेवने १२वीं शताब्दीमें यहां आ कर राज्य वसाया। व्याघ्रदेवके नामसे ही इनकी वघेला संज्ञा पड़ी है।

वघेली (हिं० स्त्री०) वरतन खरादनेवालोंका खूंटा। इसका ऊपरी सिरा आगेकी ओर कुछ बड़ा होता है। इस सिरेको घाई या नाक कहते हैं और इसी पर रख कर वरतन खरादा या कूना जाता है।

वघैरा (हिं० पु०) वगेरी देखो।

वङ्गनेर—ग्वालियर राज्यके अन्तर्गत एक प्रधान नगर। यह माननदीके किनारे अवस्थित है।

वङ्कापुर—वम्बई प्रदेशके धारवार जिलान्तर्गत एक उप-विभाग। यह अक्षा० १४° ५१' से १५° १०' उ० और देशा० ७५° ४' से ७५° २८' पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ३४४ वर्गमील और जनसंख्या नब्बे हजारसे ऊपर है। इसमें एक शहर और १४४ ग्राम लगते हैं। जलवायु स्वास्थ्यप्रद है।

२ वम्बईके धारवार जिलान्तर्गत एक शहर। यह

अक्षा० १४°५५´ उ० और देशा० ७५°१६´ पू०के मध्य अवस्थित है। जनसंख्या छः हजारसे ऊपर है। यहां एक भग्न दुर्ग और दो मन्दिर हैं। प्रति मंगलवारको हाट लगती है जिसमें मोटा कपड़ा, कम्बल, तेल आर वरतन विकनेके लिये आते हैं। १०७१ ई०में गङ्गवंशके उदयादित्य नामक व्यक्ति यहांका शासन करते थे। १४०६ ई०में वाहमनी सुलतान फिरोज शाहने शहरमें घेरा डाला। १७७६ ई०में यह हैदरअलीके हाथ लगा। १८०२ ई०में वसीनकी सन्धिके अनुसार पेशवाने इसे वृटिश गवर्मेण्टको समर्पण किया। यहां रङ्गस्वामीका एक सुन्दर जैन मन्दिर है जिसमें अनेक शिलालिपियां खोदित हैं। शहरमें चार स्कूल हैं जिनमेंसे दो वालिकाओंके लिये हैं।

वङ्किमचन्द्रचट्टोपाध्याय—अन्तस्थ 'व' देखो।

वङ्गस्—एक मुसलमान-वंश। ये लोग स्वभावतः ही निरीह होते हैं। फर्रुखावादके नवाव-वंश इसी वङ्गवंशके मुसलमान हैं।

वच (हिं० स्त्री०) एक प्रकारका पौधा। वचा देखो

वचकाना (हिं० वि०) १ वच्चोंके योग्य, वच्चोंके लायक। २ वच्चोंका सा, थोड़ी अवस्थाका।

वचत (हिं० स्त्री०) १ वचनेका भाव, वचाव। २ लाभ, मुनाफा। २ वह भाग जो व्यय होनेसे वच रहे, शेष।

वचनविदग्धा (सं० स्त्री०) वचनविदग्धा देखो।

वचना (हिं० क्रि०) १ कष्ट वा विपत्ति आदिसे अलग रहना, रक्षित रहना। २ पीछे या अलग होना, हटना। ३ दूर रहना, परहेज करना। ४ किसी वुरी वातसे अलग रहना। ५ खरचने या काममें आने पर शेष रह जाना, वाकी रहना। ६ किसीके अन्तर्गत न आना, छुट जाना। ७ कहना।

वचपन (हिं० पु०) १ वाल्यावस्था, लड़कपन। २ वच्चा होनेका भाव।

वचाना (हिं० क्रि०) १ रक्षा देना, आपत्ति या कष्ट आदिमें न पड़ने देना। २ पीछे करना, हटाना। ३ ऐसे रोगसे मुक्त करना जिसमें मरनेकी आशंका हो। ४ प्रभावित न होने देना, अलग रखना। ५ छिपाना, चुराना। ६ किसी वुरी वातसे अलग रखना, दूर रखना। ७ व्यय न होने देना।

वचाव (हिं० पु०) रक्षा, त्राण।

वचिया (हिं० स्त्री०) कसीदेके काममें छोटी छोटी वूटियां।

वचुआ (हिं० पु०) सिंध, उड़ीसा, वङ्गाल और आसामकी नदियोंमें मिलनेवाली एक प्रकारकी मछली। साधारणतः वह वालिश्त भर लंवी होती है, पर इस जातिकी कोई कोई वड़ी मछली हाथ डेढ़ हाथ तक भी लम्बी होती है।

वचून (हिं० पु०) भालूका वच्चा।

वचों (हिं० पु०) काश्मीर, सिंध और कावुलमें मिलनेवाली एक वारहमासी लता। इसको जड़से मजीठकी तरहका रंग निकलता है। यह लता वीज और जड़, दोनोंसे उत्पन्न होती है। तीन वर्षसे ले कर पांच वर्ष तकमें इसकी जड़ पक कर तैयार होती है। इसकी पत्तियां पशु और विशेषतः ऊंट वड़े चावसे खाते हैं।

वच्चा (फा० पु०) १ किसी प्राणीका नवजात और असहाय शिशु। २ वालक, लड़का।

वच्चाकश (फा० वि०) जो वहुत वच्चे जनती हो।

वच्चादान (फा० पु०) गर्भाशय, कोख।

वच्ची (हिं० स्त्री०) १ वह छोटी घोड़िया जो छत वा छाजनमें वड़ी घोड़ियाके नीचे लगाई जाती है। २ वह वाल जो होंठके नीचे वीचमें जमता है। ३ वच्चा देखो।

वच्छ (हिं० पु०) १ वच्चा, वेटा। २ गायका वच्चा, वछड़ा।

वच्छनाग (हिं० पु०) वछनाग देखो।

वच्छा (हिं० पु०) १ गायका वच्चा, वछड़ा। २ किसी जानवरका वच्चा।

वछड़ा (हिं० पु०) गायका वच्चा।

वछनाग (हिं० पु०) एक स्थावर विष। यह नेपालके पहाड़ोंमें होनेवाला पौधेकी जड़ है। वह देखनमें हिरनके सींगके आकारका होता है। विशेष विवरण वत्सनाभ शब्दमें देखो।

वछरा (हिं० पु०) वछड़ा देखो।

वछरावान—१ रायवरेली जिलेके अन्तर्गत एक परगना। भूपरिमाण ६४ वर्गमील है। १५वीं शताब्दीके प्रारम्भमें मुसलमान सेनापति सैयद सलार मसाउद और वाई

राजाओंके हाथसे यथाक्रम परास्त और विध्वस्त होने पर भी यह स्थान भार जातिके अधिकारमें रहा। उसी साल जौनपुर-राज सुलतान इब्राहिमने इस स्थान पर अधिकार जमाया। इब्राहिमने अपने कर्मचारी काजी सुलतानको यह सम्पत्ति दान कर दी। इसके बाद कुर्मी और वाईगणने पुनः उनके वंशधरोंके हाथसे छीन ली।

२ उक्त जिलेके दिग्विजयगंज तहसीलका प्रधान नगर और सदर। यहां पांच शिव मन्दिर हैं।

वछौंटा (हिं० पु०) वह चंदा जो हिस्सेके मुताबिक लगाया या लिया जाय।

वजंत्री (हिं० पु०) वाजा वजानेवाला, वजनियां।

वज (सं० पु०) ओषधिविशेष।

वजकंद (हिं० पु०) भारतके जंगलोंमें पैदा होनेवाली एक वड़ी लता। इसकी जड़ विषैली और मादक होती है परन्तु उवालनेसे खाने योग्य हो सकती है।

वजकना (हिं० क्रि०) किसी तरल पदार्थका सड़ कर या वहुत गंन्दा हो कर वुलवुले फेंकना, वजवजाना।

वजका (हिं० पु०) चनेकी दाल या वेसनकी वनी हुई वड़ी वड़ी पकौड़ियाँ जो पानीमें भिगो कर दहीमें डाली जाती हैं।

वजट (अं० स्त्री०) आगामी वर्ष या मास आदिके लिये भिन्न भिन्न विभागोंमें होनेवाले आय और व्ययका लेखा जो पहलेसे तैयार करके मंजूर कराया जाता है।

वजड़ना (हिं० क्रि०) १ टकराना। २ पहुंचना।

वजड़ा (हिं० पु०) बजरा देखो।

वजनक (हिं० पु०) पिस्तेका फूल जो रेशम रंगनेके काममें आता है।

वजना—वम्वईकी काठियावाड़ एजेन्सीका एक सामन्त-राज्य। यह अक्षा० २२° ५८´ से २३° १०´ उ० देशा० ७१° ४०´ से ७१° ५८´ पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण १८३ वर्गमील और जनसंख्या ४० हजारसे ऊपर है। सव तरहके शस्य और रुई यहांका प्रधान उत्पन्न द्रव्य है। कोई नद नदी न रहनेके कारण लोग कुएंके पानीसे अपना काम चलाते हैं। निकटवर्त्ती ढोलेरा नामक स्थानमें यहांका वाणिज्य होता है।

यहांके अधिवासी मुसलमान और जाट हैं। सरदार-वंश भी मुसलमान हैं। १८०७ ई०में अंगरेजोंके साथ इनकी मित्रता हुई। यहांका राजस्व ७१००० रु० है जिनमेंसे ८ हजार रु० वृटिश-गवर्मेण्टको कर-स्वरूप देना पड़ता है। सैन्य-संख्या २३२ है। राजाको गोद लेनेका अधिकार नहीं है।

वजना (हिं० क्रि०) १ किसी प्रकारके आघात या हवाके जोरसे वाजे आदिमेंसे शब्द उत्पन्न होना। २ प्रख्याति पाना, प्रसिद्ध होना, कहलाना। ३ अड़ना, हठ करना। ४ शस्त्रोंका चलना। ५ प्रहार होना, आघात पड़ना। (पु०) ६ वजनेवाला वाजा। ७ रुपया। (वि०) ८ वजनेवाला।

वजनियाँ (हिं० पु० स्त्री०) वह जो वाजा वजाता या वजाती हो।

वजनिहाँ (हिं० पु०) वजनियां देखो।

वजनी (हिं० वि०) वजनेवाला, जो वजता हो।

वजरंग (हिं० वि०) वज्रके समान दृढ़ शरीरवाला।

वजरंगवली (हिं० पु०) महावीर, हनुमान।

वजरंगीवैठक (हिं० स्त्री०) एक प्रकारकी वैठक।

वजरणगढ़—१ ग्वालियर राज्यके अन्तर्गत एक सुवाहत। सूवादार ही यहांके सरदार हैं। ये ग्वालियर-राजके अधीन हैं।

२ उक्त सूवाकी राजधानी। यह अक्षा० २४° ३४´ उ० और देशा० ७७° १८´ पू०के मध्य अवस्थित है। यहां कार्त्तिक मासमें १५ दिन तक मेला लगता है।

वजरवट्टू (हिं० पु०) एक वृक्षके फलका दाना या वीज जो काले रंगका होता है और जिसकी माला लोग वच्चोंको नजरसे वचनेके लिये पहनाते हैं। इसका पेड़ ताड़की जातिका है और मलावारमें समुद्रके किनारे तथा लंकामें उत्पन्न होता है। वङ्गाल और वर्मामें भी इसे लोग वोते और लगाते हैं। इसके पत्ते वहुत वडे और तीन साढ़े तीन हाथ व्यासके होते हैं। लोग इससे पंखे, चटाई, छाते आदि वनाते हैं। यूरोपमें इसके नरम और कोमल पत्तोंसे अनेक प्रकारके कटावदार फीते वनाये जाते हैं और इसके रेशेसे वुरुश वनाये और जाल वुने जाते हैं। इसकी रस्सियाँ भी वटी जा सकती हैं। इसके फल वहुत कड़े होते हैं और यूरोपमें उनसे वटन, मालाके

दाने तथा छोटे छोटे पाल वनाये जाते हैं। मलवारमें इसके पेड़ोंको लोग समुद्रके किनारे वागोंमें लगाते हैं। यह पेड़ चालीस वयालीस वर्ष तक रहता है और अन्तमें पुराना हो कर गिर पड़ता है।

वजरवोंग (हिं० पु०) १ अगहनमें होनेवाला एक प्रकार का धान। इसका चावल वहुत दिनों तक रह सकता है। २ वांसका मोटा और भारी डंडा।

वजर-हड्डी (हिं० स्त्री०) घोड़ेके पैरोंकी गाठोंमें होनेवाला एक फोड़ा जो पक कर फूट जाता है और तव वहां घाव हो जाता है। यह घाव वरावर वढ़ता जाता है और गांठकी हड्डी फूल आती है। इससे घोड़ा वेकाम हो जाता है। वह रोग असाध्य माना जाता है।

वजरा (हिं० पु०) १ एक प्रकारकी वड़ी और पटी हुई नाव। इसमें नीचेकी ओर एक छोटी कोठरी और एक वड़ा कमरा होता है तथा ऊपर खुली छत होती है। २ वाजरा देखो।

वजरी (हि० स्त्री०) १ कंकड़के छोटे छोटे टुकड़े जो गच-के ऊपर पीट कर वैठाए जाते हैं और जिस पर सुरकी और चूना डाल कर पलस्तर किया जाता है। २ छोटा नुमायशी कंगूरा। यह किले आदिकी दीवारोंके ऊपरी भागोंके वरावर थोड़े अन्तर पर वनाया जाता है और इसकी वगलमें गोलियां चलानेके लिये कुछ अवकाश रहता है। ३ ओला।

वजवाई (हिं० स्त्री०) वाजा वजानेकी मजदूरी।

वजवाना (हिं० क्रि०) वजानेके लिये किसीको प्रेरणा करना, किसीको वजानेमें प्रवृत्त करना।

वजवैया (हिं० वि०) वजानेवाला, जो वजाता हो।

वजा (फा० वि०) उचित, वाजिव।

वजाज (अ० पु०) कपड़ेका व्यापारी, कपड़ा वेचनेवाला।

वजाजा (फा० पु०) वजाजोंका वाजार, कपड़े विकनेका स्थान।

वजाजी (फा० स्त्री०) १ कपड़ा वेचनेका व्यापार, वजाजका काम। २ वजाजकी दूकानका सामान, विक्रीके लिये खरीदा हुआ कपड़ा।

वजाना (हिं० क्रि०) १ किसी वाजे आदि पर आघात पहुंचा कर अथवा हवाका जोर पहुंचा कर उससे शब्द उत्पन्न करना। २ आघात पहुंचाना। २ किसी चीजसे मारना। ३ चोट पहुंचा कर आवाज निकालना।

वजाय (फा० अव्य०) स्थान पर, जगह पर, वदलेमें।

वजारी (हिं० वि०) १ वाजारसे सम्वन्ध रखनेवाला, वाजारू। २ साधारण, सामान्य।

वजारू (हिं० वि०) वाजारू देखो।

वजुआ (हिं० पु०) वाजू देखो।

वजुल्ला (फा० पु०) वांह पर पहननेका विजायठ नामका आभूषण।

वजूखा (हिं० पु०) विजूखा देखो।

वज्जात (फा० वि०) दुष्ट, वदमाश, पाजी।

वज्जाती (फा० स्त्री०) दुष्टता, वदमाशी।

वज्मी—कर्खवासी एक मुसलमान-कवि। इनका असल नाम अवदुल सफर था। कुछ समय सिराज नगरमें रह कर ये सम्राट् जहांगीरके शासनकालमें गुजरात-राज्य आये। इन्होंने १६१६ ई०में पद्मावती नामक पारसी भाषा-में पद्मावती उपख्यान लिखा। सम्राट् शाहजहान्‌के राजत्वकालमें १६३४ ई०को ये जीवित थे।

वज्र (सं० पु०) वज्र देखो।

वझवट (हिं० स्त्री०) १ वन्ध्या स्त्री, वांझ औरत। २ २ वांझ गाय, भैंस या कोई मादा पशु। ३ अन्नके पौधोंके डंठल जिनसे वालें तोड़ ली गई हों।

वझान (हिं० स्त्री०) वझनेकी क्रिया या भाव, वझाव।

वझाना (हिं० क्रि०) वंधनमें लाना, उलझाना।

वझाव (हिं० पु०) १ वझनेका भाव, फँसनेकी क्रिया या भाव। २ उलझाव, अटकाव।

वझावट (हिं० स्त्री०) १ वझनेकी क्रिया या भाव। २ उल-झाव, अटकाव।

वट (हिं० पु०) १ वट देखो। २ वड़ा नामका पकवान, वरा। ३ रस्सीकी ऐंठन, वल। ४ वाट, वटखरा। ५ वट्टा, लोढ़िया। ६ गोल वस्तु, गोला। मार्ग, रास्ता।

वटई (हिं० स्त्री०) वटेर नामकी चिड़िया।

वटखर (हिं० पु०) वटखरा देखो।

वटखरा (हिं० पु०) तौलनेका मान, वाट।

वटन (हिं० स्त्री०) १ रस्सी आदि वटने या ऐंठनेकी क्रिया या भाव, ऐंठन। (पु०) २ एक प्रकारका वादलेका

तार। ३ चिपटे आकारकी बड़ी गोल घुंडी। यह घुंडी कोट, कुरते, अंगे आदिमें टँकी रहती है और इसे छेदमें डाल देनेसे खुली जगह बंद हो जाती है तथा कपड़ा बदनको पूरी तरहसे ढक लेता है।

वटना (हिं० क्रि०) १ कई तंतुओं तागों या तारोंको एक साथ मिला कर इस प्रकार ऐंठना या घुमाना कि वे सब मिल कर एक हो जायँ। २ सिल पर रख कर पीसा जाना, पिसना।

वटना (हिं० पु०) १ रस्सी वटनेका औजार। २ सरसों चिरौंजी आदिका लेप जो शरीरको मैल छुड़ानेके लिये मला जाता है, उबटन।

वटपार (हिं० पु०) बटमार देखो।

वटपारी (हिं० स्त्री०) वटमारका काम, डकैती, ठगी।

वटम (हिं० पु०) पत्थर गढनेवालोंका एक यन्त्र जिससे कोना साधते हैं, कोनिया।

वटमार (हिं० पु०) मार्गमें मार कर छीन लेनेवाला, डाकू, लुटेरा।

वटला (हिं० पु०) बड़ी वटलोई, देग, देगचा।

वटली (हिं० स्त्री०) वटलोई।

वटलोई (हिं० स्त्री०) दाल, चावल आदि पकानेका चौड़े मुंहका गोल वरतन, देगची।

वटवाना (हिं० क्रि०) बंटवाना देखो।

वटवायक (हिं० पु०) चौकीदार, रास्तेमें पहरा देनेवाला।

वटवार (हिं० पु०) १ राह वाटकी चौकसी रखनेवाला कर्मचारी, पहरेदार। २ रास्तेका कर उगाहनेवाला।

वटा (हिं० पु०) १ वर्त्तुलाकार वस्तु, गोला। २ पथिक, राही। ३ गेंद। ४ रोड़ा, ढेला।

वटाई (हिं० स्त्री०) १ वटने या ऐंठन डालनेका काम। २ वटनेकी मजदूरी। ३ वँटाई देखो।

वटाऊ (हिं० पु०) वाट चलनेवाला, वटोही, पथिक।

वटाना (हिं० क्रि०) बंद हो जाना, जारी न रहना।

वटाली (हिं० स्त्री०) वढइयोंका एक औजार, रुखानी।

वटिया (हिं० स्त्री०) १ गोल मटोल टुकड़ा, छोटा गोला। २ छोटा वट्टा, लोढ़िया।

वटी (हिं० स्त्री०) १ वड़ी नामका पकवान। २ गोली।

वटु (सं० पु०) ३दु देखो।

वटुआ (हिं० पु०) वटुवा देखो।

वटुक (सं० पु०) वटुक देखो।

वटुरना (हिं० क्रि०) १ सिमटना, फैला हुआ न रहना। २ एकत्र होना, इकट्ठा होना।

वटुरे (हिं० स्त्री०) एक कदन्न, खेसारी।

वटुला (हिं० पु०) बड़ी वटलोई।

वटुवा (हिं० पु०) १ एक प्रकारकी कपड़े या चमड़ेकी गोल थैली। इसके भीतर कई खाने होते हैं और मुंह पर डोरे पिरोए रहते हैं जिन्हें खींचनेसे मुंह खुलता और बंद होता है। लोग इसे सफरमें साथ रखते हैं, क्योंकि इसके भीतर वहुतसी फुटकर चीजें आ जाती हैं।

वटेर (हिं० स्त्री०) भारतवर्षसे लेकर अफगानिस्तान, फारस और अरव तकमें मिलनेवाली एक छोटी चिड़िया। यह तीतर या लवाकी तरह होती है। इसका रंग भी तीतरका-सा होता है, पर यह उससे छोटी होती है। लोग इसका शिकार करते हैं, क्योंकि इसका मांस वहुत पुष्ट समझा जाता है। लड़ानेके लिये शौकीन लोग इसे पालते भी हैं। ऋतुके अनुसार यह स्थान भी वदलती है और प्रायः झुंडमें पाई जाती है। यह धूपमें रहना पसन्द नहीं करती, छाया ढूंढती है।

वटेरवाज (हिं० पु०) वटेर पालने या लड़ानेवाला।

वटेरवाजी (हिं० स्त्री०) वटेर पालने या लड़ानेका काम।

वटेरा (हिं० पु०) कटोरा।

वटेश्वर—युक्तप्रदेशके आगरा जिलान्तर्गत एक नगर। यह अक्षा० २६°५६´ उ० और देशा० ७८°३३´ पू० आगरासे दक्षिण-पूर्वमें अवस्थित है। जनसंख्या दो हजारसे ऊपर है। यहां प्रतिवर्ष कार्त्तिक संक्रान्तिमें एक वड़ा भारी मेला लगता है। इस समय डेढ़ दो लाख मनुष्य जमा होते हैं। वटेश्वरक्षेत्रमें उस दिन गङ्गा-स्नान महापुण्यजनक माना गया है। अलावा इसके मेलेमें ७ हजार घोड़े, ३ हजार ऊंट और १० हजार गायें विकने आती हैं।

वटोई (हिं० पु०) वटोही देखो।

वटोर (हिं० पु०) १ वहुतसे आदमियोंका इकट्ठा होना, जमावड़ा। २ कूड़ेकरकटका ढेर। ३ वस्तुओंका ढेर

जो इधर उधरसे वटोर कर या इकट्ठा करके लगाया गया हो।

वटोरन (हिं० स्त्री०) १ वस्तुओंका ढेर जो इधर उधरसे झाड़ वटोर कर लगाया गया हो। २ खेतमें पड़ा हुआ अन्नका दाना जो वटोर कर इकट्ठा किया जाय। ३ कूड़े करकटका ढेर।

वटोरना (हिं० क्रि०) १ इकट्ठा करना, एकत्र करना। २ इधर उधर पड़ी चीजोंको विन विन कर इकट्ठा करना, चुन कर एकत्र करना। ३ समेटना, फैला न रहने देना। ४ फैली या विखरी हुई वस्तुओंको समेट कर एक स्थान पर करना।

वटोहिया (हिं० पु०) वटोही देखो।

वटोही (हिं० पु०) पथिक, राही।

वट्ट (हिं० पु०) १ गेंद। २ गोला, वटा। ३ वाट, वटखरा। ४ वल, शिकन।

वट्टा (हिं० पु०) १ दलाली, दस्तूरी, डिसकाउंट। २ हानि, नुकसान। ३ पत्थरका गोल टुकड़ा जो किसी वस्तुको कूटने या पीसनेके काममें आवे, कूटने या पीसनेका पत्थर, लोढ़ा। ४ पत्थर आदिका गोल टुकड़ा। ५ कटोरा या प्याला जिसे औंधा रख कर वाजीगर यह दिखलाते हैं, कि उसमें कोई वस्तु आ गई या उसमेंसे कोई वस्तु निकल गई। ६ एक प्रकारकी उवाली हुई सुपारी। ७ पान या जवाहिरात रखनेका गोल डिब्बा। ८ पूरे मूल्यमें वह कमी जो किसी सिक्के आदिको वदलने या तुड़ानेमें हो, वह अधिक द्रव्य जो सिक्का भुनाने या उसी सिक्केकी धातु लेनेमें देना पड़े। ९ खोटे सिक्के धातु आदिके वदलने या वेचनेमें वह कमी जो उसके पूरे मूल्यमें हो जाती है।

वट्टाखाता (हिं० पु०) वह वही या लेखा जिसमें नुकसान लिखा जाय, डूवी हुई रकमका लेखा या वही।

वट्टाढाल (हिं० वि०) इतना चौरस और चिकना कि उस पर कोई गोला लुढ़काया जाय, खूब समतल और चिकना।

वट्टी (हिं० स्त्री०) १ छोटा वट्टा, पत्थर आदिका गोल छोटा टुकड़ा। २ समडौल कटा हुआ टुकड़ा, वडी टिकिया। ३ कूटने पीसनेका पत्थर, लोढ़िया।

वट्टू (हिं० पु०) धारीदार चारखाना। २ वजरवट्ट, ताली। ३ वोड़ा, लोविया।

वट्टेवाज (हिं० वि०) नजरवंदका खेल करनेवाला, जादूगर। २ धूर्त, चालाक।

वठिया (हिं स्त्री०) उपलोंका ढेर, पाथे हुए सूखे कंडोंका ढेर।

वठूचना (हिं० क्रि०) वैठना।

वठूसना (हिं० क्रि०) वैठना।

वड़ंगा (हिं० पु०) लंवा वल्ला जो छाजनके वीचोवीच लंवाईके वल आधार रूपमें रहता है, वँडेरी।

वगड़ी (हिं० पु०) घोड़ा।

वड़ंगू (हिं० पु०) कोङ्कण, मलावार, त्रावङ्कोर आदिकी ओर होनेवाला एक जंगली पेड़। इसमेंसे एक प्रकारका तेल निकलता है।

वड़ (हिं० स्त्री०) १ प्रलाप, वकवाद। (पु०) २ वरगदका पेड़।

वड़का (हिं० वि०) वाडा देखो।

वड़कुइयां (हिं० पु०) कच्चा कुआं।

वड़कौला (हिं० पु०) वरगदका फल।

वडखोहिया—क्षुद्र जातिका हरिण। हरिण देखो।

वड़गञ्ज—चट्टग्रामके डेकनाफ पर्वतमालाके अन्तर्गत एक छोटा पहाड़।

वड़गल—मन्द्राजप्रदेशवासी वैष्णव सम्प्रदाय। ये लोग रामात्-सम्प्रदायके अन्तर्भुक्त हैं। कमसे कम छः सौ वर्ष पहले काञ्चीपुरनिवासी तेसिकर नामक एक वैदान्तिक ब्राह्मण इस सम्प्रदायका प्रवर्त्तन कर गये। उन्होंने यह प्रचार कर दिया था कि, "दाक्षिणात्यमें ब्राह्मणकुलके आचार व्यवहारका संशोधन और दक्षिणापथमें आर्यावर्त्तके सनातन शास्त्र और धर्मकी पुनः प्रतिष्ठा करनेके लिये मैं जगदीश्वरसे भेजा गया हूं।"

ये लोग साक्षात् विष्णुके उपासक हैं। विष्णुकी तरह विष्णु शक्तिका अस्तित्व और प्रभावशालित्व स्वीकार करते हैं। तिलकधारण इस सम्प्रदायका एक प्रधान अङ्ग है। ये लोग रामानन्दीकी तरह ऊर्द्ध्वपुण्ड्रके मध्यस्थलमें विन्दु न दे कर रक्तवर्ण श्री धारण करते हैं, किन्तु उन लोगोंकी तरह भौंके नीचे नाकके ऊपर सिंहासन अङ्कित नहीं करते। यही तिलक ले कर इन लोगोंके साथ वहांके तिङ्गलोंका महाविवाद हो गया था। आखिर

काञ्चीपुरकी अदालतसे इसका निवटेरा हुआ। इस सम्प्रदायके सभी वैष्णव विद्वान हैं। संस्कृत धर्मशास्त्रका अनुशीलन करना इन लोगोंका प्रधान काय है।

वड़गाँव—पटना जिलेके विहार उपविभागका एक ग्राम। यह अक्षा० २५° ८´ उ० तथा देशा० ८५° २६´ पू०के मध्य अवस्थित है। जनसंख्या प्रायः ५६७ है। यहांका तथा पार्श्ववर्त्ती स्थानोंका भग्नस्तूप देखनेसे अनुमान किया जाता है, कि एक समय यहां कोई विस्तृत राज्य अवस्थित था। (१)

फाहियानने लिखा है, कि नलोग्राम (नालन्दा गिरि एक पर्वत (जिसका नाम उन्हें मालूम नहीं)-से १ योजन और नूतनराजगृहसे प्रायः उतनी ही दूर होगा। यूएन-चुवंगके वर्णनसे हम लोगोंको मालूम होता है, कि वह राजगृहसे ५ मील उत्तर और बुद्धगयाके पवित्र वोधिद्रुमसे ७ योजनकी दूरी पर अवस्थित था। (२)

चीनपरिव्राजक फाहियान और यूएन-चुवंगके वर्णनका अनुसरण करनेसे वही स्थान प्राचीन वौद्धक्षेत्र नालन्दा समझा जाता है। नालन्दा एक समय बौद्धधर्म और शास्त्रालोचनाका प्रसिद्ध स्थान था। वहां अनेक संघाराम विहार, स्तूप और वौद्ध देवदेवियोंकी मूर्त्ति प्रतिष्ठित हुई थीं। नालन्दा देखो।

वड़ग्राममें जो उच्च और दूरविस्तृत इष्टकस्तूप पड़े हैं उन्हें कनिंहम भी यूएन-चुवंग-वर्णित वौद्धसङ्घाराम मानते हैं। (३) उन सब स्तूपोंमेंसे अनेक पत्थर और बुद्धमूर्त्ति ग्रामवासी अपने अपने घर उठा ले गये हैं। यहांके वटुकभैरव नामक स्थानके चत्वरमें बुद्धदेवकी सबसे वड़ी मूर्त्ति स्थापित है। सम्भवतः वही मूर्त्ति पहले वालादित्यविहारमें प्रतिष्ठित हुई थी। अभी वड़गाँवके मध्य अनेक वस्तु देखने लायक हैं, यथा :—१ वटुकभैरवके चतुष्पार्श्वस्थ भास्करशिल्प, २ सुवृहत् ध्यानी बुद्धमूर्त्ति, मूर्त्तिके चारों वगल आर्यसारिपुत्र, आर्यमौद्गलायन, आर्य मैत्रेय नाथ और आर्य वसुमित्र आदि अनुचरवर्ग। उन अनुचरोंके नाम प्रतिमूर्त्तिमें ही अङ्कित हैं। वह मूर्त्ति वौद्धभिक्षुणी परमोपासिका गङ्गा द्वारा प्रदत्त हुई है। ३ वज्रवाराही मन्दिर, वड़गाँवके राजप्रासाद और हिन्दू-मन्दिरादिमें रक्षित बुद्धमूर्त्ति तथा गरुड़वाही नारायण, वागीश्वरी आदि इधर उधर प्रतिष्ठित देखी जाती हैं। यहां बुद्धगयाके प्रसिद्ध मन्दिरकी नकल पर एक जैन मन्दिर स्थापित है। वह मन्दिर ९वीं शताब्दीका बना हुआ मालूम होता है। पीछे उस मन्दिरमें बौद्ध-मूर्त्तिके वदले १५०४ सम्वत्‌को जैनतीर्थङ्कर महावीरकी मूर्त्ति स्थापित हुई है। सूर्यकुण्डके किनारे बौद्धमूर्त्तिके साथ वराह अवतार, विष्णु, शिव पार्वती और सूर्यमूर्त्ति आदि दृष्टिगोचर होती हैं। अलावा इसके यहां बहुत सी बड़ी बड़ी पुष्करिणियां भी हैं।

(१) डा० बुकाननको विहारवासी किसी जैन पुरोहितसे मालूम हुआ, कि यहां राजा श्रेणिक और उनके वंशधरोंने राज्य किया था। यहांके ब्राह्मणोंका कहना है, कि यह कृष्णपत्नी रुक्मिणी देवीकी जन्मभूमि कुण्डननगरीका ध्वंसावशेष मात्र है।

(2) Beal's Fa-Hian xxviii & Julien's Hwen Thsang. 1. 143.

(३) शक्रादित्य, बुद्धगुप्त, तथागत, वालादित्य, वज्र और मध्यभारत राजप्रतिष्ठित संघ है। अलावा इसके अवलोकितेश्वर मूर्त्ति और विहार, वालादित्यविहार, ताराबोधिसत्त्वविहार, कपटयदेवीमन्दिर, बुद्धके केश और नखस्तूप ध्यानी बुद्धमूर्त्ति, भैरव, नानास्तूप और विहार निर्णयमें कनिंहम साहब सफलप्रयत्न हुए हैं।

वड़गूजर—राजपूतानावासी क्षत्रिय जाति। ये लोग अपने को श्रीरामचन्द्रके पुत्र लवके वंशधर वतलाते हैं। माचाड़ी राजवंश इसी शाखासे उत्पन्न हुए हैं। माचाड़ी देखो।

वड़गुला (हिं० पु०) एक प्रकारका वगला।

वड़चोटी—१ पञ्चकूट राज्यके अन्तर्गत एक ग्राम।

२ गया जिलेके अन्तगत एक प्रसिद्ध ग्राम और पुलिस-सदर। यह अक्षा० २४° ३०´ १०´´ उ० और देशा० ८५° ३´ १०´´ पू०के मध्य अवस्थित है।

वड़दुमा (हिं० पु०) वह हाथी जिसकी पूँछकी कँगनी पांव तक हो, लम्बी दुमका हाथी।

वड़नगर—मध्यप्रदेशके ग्वालियर राज्यके अन्तर्गत उज्जैन जिलेका एक शहर। यह अक्षा० २३° ४´ उ० और देशा० ७६° २३´ चामला नदीके किनारे अवस्थित है। जनसंख्या दश हजारसे ऊपर है। पहले यह राजपूत

बहराम लोधवंशके अधिकारमें था। पीछे १८वीं शताब्दीमें सिन्धियाके हाथ लगा। शहरमें एक डाकघर, अस्पताल, स्कूल और धर्मशाला है।

वड़पेटा—१ पूर्व बङ्गाल और आसामके कामरूप जिलेका एक उपविभाग। भूपरिमाण २०६ वर्गमील है।

२ उक्त उपविभागका एक प्रधान नगर। यह अक्षा० २६°१६' उ० और देशा० ९१°१' पू०के मध्य चौलखोआ नदीके किनारे अवस्थित है। जनसंख्या दश हजारके लगभग है। यहां नाव द्वारा चावल, रवर, रुई, तिलादिका विस्तृत वाणिज्य चलता है।

वड़प्पन (हिं० पु०). महत्व, गौरव, वड़ाई। वस्तुओंके विस्तारके सम्बन्धमें इस शब्दका प्रयोग नहीं होता, इससे केवल पद, मर्यादा, अवस्था आदिकी श्रेष्ठता समझी जाती है।

वड़फन्नी (हिं० स्त्री०) वहुत चौड़ी मठिया।

वड़फेणी—मेघना नदीकी एक शाखा।

वड़वट्टा (हिं० पु०) वरगदका फल।

वड़वड़ (हिं० स्त्री०) व्यर्थका वोलना, वकवाद।

वड़वड़ाना (हिं० क्रि०) १ प्रलाप करना, व्यर्थ वोलना। २ कोई वात वुरी लगने पर मुंहमें ही कुछ वोलना।

वड़वड़िया (हिं० त्रि०) वड़वड़ानेवाला, वकवादी।

वड़वुदुर—यवद्वीप स्थित एक प्राचीन स्थान। यहां जो बुद्धमन्दिर है उसीके लिये यह स्थान प्रसिद्ध है।

यवद्वीप देखो।

वड़वेल—१ कड़ापा जिलान्तर्गत एक भूसम्पत्ति। भूपरिमाण ७५५ वर्गमील है। वड़वेल, केदूरु पोरुमामिल्ल, पालगुरलपल्ली, केदूरु, सेनकावरम्, कावुलकुण्डला, मुन्नेली, चार्लोपल्ली और कटेरगण्डला इसके प्रधान नगर हैं।

२ उक्त तालुकका एक प्रधान नगर। यह अक्षा० १४°४५' उ० और देशा० ७९°६' पू०के मध्य अवस्थित है। यह स्थान वहुत प्राचीन और ऐतिहासिकोंका द्रष्टव्य स्थान है।

वड़वोल (हिं० वि०) वड़ी वड़ी वातें करनेवाला, लंवी चौड़ी हांकनेवाला।

वड़भाग (हिं० वि०) वड़भागी देखो।

वड़भागी (हिं० वि०) भाग्यवान्, वड़े भाग्यवाला।

वड़मूल—१ काश्मीरराज्यके अन्तर्गत एक पर्वत-कन्दर। इस स्थान हो कर झेलम नदी वहती है। वड़मूल नगर इस स्थानके दहिने किनारे वसा हुआ है।

२ काश्मीरराज्यका एक शहर। यह अक्षा० ३४°१२' उ० और देशा० ७४°२३' पू०के मध्य अवस्थित है। जनसंख्या छः हजारके करीव है। यहां भूकम्प अकसर हुआ करता है। १८८५ ई०में जो भूकम्प हुआ था, उससे शहरकी महती क्षति हुई थी।

वड़म्बा—उड़ीसाके अन्तर्गत एक सामन्त-राज्य। यह अक्षा० २०°२७' से २०°३१' उ० तथा देशा० ८५°१२' से ८५°३१' पू० के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण १३४ वर्गमील और जनसंख्या ४० हजारके करीव है। इसके उत्तरमें हिन्दोल, पूर्वमें तिघरिया, दक्षिणमें कटक और खण्डपाड़ा तथा पश्चिममें नरसिंहपुर सामन्त राज्य है। कणिकाशिखर ही यहांकी गिरिश्रेणीका सर्वोच्च स्थान है।

इस राज्यकी प्रतिष्ठाके सम्बन्धमें एक प्रवाद यों प्रचलित है,—किसी उड़ीसाके राजाने एक मशहूर कुश्तीवाजके कौशल पर प्रसन्न हो उसे दो ग्राम दान किये। उस ग्राममें कन्ध नामक असभ्य जातिका वास था। कन्धोंको भगा कर उसने वह ग्राम अपने दखलमें कर लिया। पीछे और वहुतसे स्थान जीत कर उसने अपना राज्य वढ़ाया। वर्त्तमान राजा विश्वम्भर वीरवर मङ्गराज महापात्र अपनेको क्षत्रिय वतलाते हैं। इनके अधीन ७०६ शिक्षित सेना और १८८ अस्त्रधारी प्रहरी नियुक्त हैं। ये अपने कोशसे विद्यालय और डाकघरका खर्च देते आ रहे हैं।

नीचे वड़म्बा सामन्त राजाओंके नाम और अधिकारकाल लिखे गये हैं—

हाटकेश्वर राउत	१३०५ से	१३२७ ई०
मालकेश्वर राउत	१३२७ ,,	१३४५ ,,
दुर्गेश्वर राउत	१३४५ ,,	१३७५ ,,
जम्बेश्वर राउत	१३७५ ,,	१४१६ ,,
भोलेश्वर राउत	१४१६ ,,	१४५९ ,,
कम्रू राउत	१४५९ ,,	१५१४ ,,
माधव राउत	१५१४ ,,	१५३७ ,,
नवान राउत	१५३७ ,,	१५६० ,,

वज्रधर राउत	१५६० से	१५८४ ई०
चन्द्रशेखर मङ्गराज	१५८४ „	१६१७ „
नारायण मङ्गराज	१६१७ „	१६३५ „
कृष्णचन्द्र मङ्गराज	१६३५ „	१६५० „
गोपीनाथ मङ्गराज	१६५० „	१६७६ „
वलभद्र मङ्गराज	१६७६ „	१७११ „
फकीर मङ्गराज	१७११ „	१७४३ „
सानुधर मङ्गराजमहापात्र	१७४३ „	१७४८ „
पद्मनाभ वीरवर मङ्गराज	१७४८ „	१७६३ „
पिण्डिक वीरवर मङ्गराजमहापात्र	१७६३ „	१८४१ „
गोपीनाथ वीरवरमङ्गराज महापात्र	१८४१ „	१८६६ „
दाशरथी वीरवरमङ्गराजमहापात्र	१८६६ „	१८८१ „
विश्वम्भर वीरवरमङ्गराजमहापात्र	१८८१ „	(वर्त्तमान राजा)

वड़रा (हिं वि०) वड़ा।

वडराना (हिं० क्रि०) बर्राना देखो।

वड़वा (सं० स्त्री०) वलं वातीति वल वा-क-टाप्, डलयोरैक्यात् लस्य डत्वं। १ घोटकी, घोड़ी। २ अश्विनी रूपधारिणी सूर्यपत्नी संज्ञा। ३ तृतीया सूर्य-पत्नी। ४ अश्विनीनक्षत्र। ५ नारीविशेष। ६ दासी। ७ वासुदेवकी एक परिचारिका। ८ नदीविशेष। ९ तीर्थ-भेद। १० वडवाग्नि, समुद्रके भीतरकी आग या ताप। इसका उत्पत्ति-विवरण कालिकापुराणमें इस प्रकार लिखा है—महादेवका कोपानल जब मदनको भस्म करके दर्शकवृन्दको भस्म करनेके लिये तैयार हुआ तब ब्रह्माने उसे वड़वा या घोड़ीके रूपमें कर दिया। देवगण उस अग्निको वड़वारूप धारण करते देख निश्चिन्त हुए। पीछे ब्रह्मा उस वड़वाको ले कर जगत्की भलाईके लिये समुद्रके किनारे गये। समुद्रने ब्रह्माको अपने किनारे उपस्थित देख उनकी पूजा की और आनेका कारण पूछा। ब्रह्माने कहा, "यह वड़वारूपधारी महा-देवके क्रोधानलसे उत्पन्न हुआ है, जब तक मैं इसे पुन-र्वार ग्रहण न करूं, तब तक तुम इसे अपने हवाले रखना। जिस समय मैं आ कर इसे छोड़ देने कहूंगा, उस समय तू इसे छोड़ देना। तुम्हारा केवल जल पी कर वड़वा यहां पर रहेगी। तुम इसे यत्नपूर्वक अपने पास रखना, कहीं भी जाने न देना।" ब्रह्माके इतना कहने पर समुद्रने इच्छा नहीं रहते हुए भी इसे स्वीकार कर लिया। इसके बाद वड़वामुख अग्नि समुद्रमें प्रवेश कर ज्वाला समूहसे प्रदीप्त हो समुद्रके जलको दग्ध करने लगी।

वड़वाकृत (सं० पु०) वड़वया दास्या कृतः। पन्द्रह प्रकारके दासोंमेंसे एक दास।

"भक्तदासश्च विज्ञेयस्तथैव वड़वाकृतः।"

(नारद)

'वड़वा दासी तल्लोभात् अङ्गीकृतदास्यः' (दायक्रमस०)

अर्थात् वड़वा दासीके लिये जिस व्यक्तिने दासत्व अङ्गीकार किया है। कहीं कहीं 'वड़वाभृत' और 'वड़वाहृत, ऐसा भी पाठ देखनेमें आता है।

वड़वाग्नि (सं० पु०) वड़वायाः समुद्रस्थितायाः घोटक्याः मुखस्थोऽग्निः। समुद्राग्नि। वडवा और वड़वानल देखो।

वड़वानल (सं० पु०) वड़वायाः अनलः। वड़वाग्नि। पर्याय—सलिलेन्धन, वड़वामुख, काकध्वज, वाणिज, स्कन्दाग्नि, तृणधुक्, काष्ठधुक्, और्व, वाड़व।

किसी समय महर्षि और्व अयोनिज पुत्रकी कामना-करके अपना वक्षःस्थल मथने लगे। इससे एक ज्वालामय पुरुष उत्पन्न हुआ। उस पुरुषने उत्पन्न हो कर पिता और्वसे प्रार्थना की, 'मैं भूखके मारे व्याकुल हो रहा हूं, अतः मुझे जगत्भक्षणकी आज्ञा दीजिये।' इसी समय ब्रह्मा और्वके समीप पहुंच गये और उनसे बोले, अपने पुत्रको संभालो, सारा संसार इससे कष्ट पा रहा है।' इस पर और्वने निवेदन किया, 'भगवन्! आप ही इस पुत्रकी वृत्ति स्थिर कर दीजिए।' ब्रह्माने कहा, 'समुद्रमें वड़वामुखमें इसका वासस्थान और समुद्रकी वारिरूप हवि ही इसकी खाद्य वस्तु होगी। इस जगत् में यह वड़वानल नामसे प्रसिद्ध होगा। जब जगत्का अन्तकाल आयेगा तब यह अनलदेवासुरोंको भक्षण करेगा।' इस प्रकार उसकी वृत्ति स्थिर करके ब्रह्म पिता-मह चल दिये। तभीसे यह ज्वालामय पुरुष समुद्रके वड़वामुखमें रहने लगा। (मत्स्यपु० २५० अ०)

वड़वा देखो।

२ लङ्काके दक्षिण पृथ्वीके चतुर्थ भागरूप स्थान-विशेष। (सिद्धान्त-शिरोमणि)

वड़वानलचूर्ण (सं० पु०) एक चूर्ण जिसके सेवनसे अजीर्णका नाश और क्षुधाकी वृद्धि होती है। (वैद्यक)

वड़वानलरस (सं० पु०) वटिकौषधविशेष। इसकी प्रस्तुत प्रणाली—पारा, गन्धक, पिपुल, विटलवण, उद्भिद-लवण, सौवर्चललवण, मिर्च, हरीतकी, आमलकी, वहेड़ा, यवक्षार, साचिक्षार और सोहागा इन सब द्रव्योंका समान भाग ले कर चूर्ण करे। पीछे सम्हालूकी पत्तियों-के रसमें एक दिन भावना दे कर दो वा तीन रत्तीकी गोली वनावे। रोगीके अवस्थानुसार अनुपान दें। इसके सेवनसे मंदाग्नि बहुत जल्द दूर हो जाती है। (रसेन्द्रसारसं० अजीर्णाधि०)

अन्यविध—पारा, गन्धक, माक्षिक, यवक्षार, ताम्र और अभ्र सम भाग ले कर चीते और अकवनके रसमें सौंद कर २ रत्तीकी गोली वनावे। अनुपान पानका रस है। इस औषधके सेवनके वाद हींग, सैन्धवलवण, सौवर्चल-लवण, अनार, विल्व, कुल मिला कर दो तोला, भृङ्गराज रसमें पीस कर सुराके साथ मिला कर सेवन करना होता है। इसके सेवनसे सव प्रकारके गुल्मशूल और परिणामशूल जाते रहते हैं। (रसेन्द्रसारसं० गुल्मचि०)

वड़वामुख (सं० पु०) वड़वाया घोटक्या मुखं आश्रय-त्वेनास्त्यस्य अर्श आदित्वादच्। १ वड़वानल। २ शिव-का मुख। ३ महादेवका नामभेद। ४ कूर्मके दक्षिण कुक्षिमें स्थित एक जनपद।

"कूर्मस्य दक्षिणे कुक्षौ वाह्य पादस्तथापरम्।
काम्बोजाः पह्लवाश्चैव तथैव वड़वामुखाः॥"
(मार्कपु० ५८।३०)

५ वटिकौषधविशेष। प्रस्तुत प्रणाली—पारा, ताम्र, अभ्र, सोहागा, कर्कचलवण यवक्षार, (जवाखार) साचिक्षार (सज्जीखार), सैन्धवलवण, सोंठ, अपामार्ग, पलाश और वरुणक्षार सम भाग ले कर और अम्लवर्गके रसमें भावना दे कर तथा फिर चीतेके रसमें वार वार सौंद कर लघुपुटपाक द्वारा तैयार करे। इसकी माला १ माशा है। इसके सेवनसे ज्वर और ग्रहणी रोग दूर होते हैं।

वड़वार (हिं० वि०) वड़ा देखो।

वड़वारी (हिं० स्त्री०) १ महत्व, वड़प्पन। २ प्रशंसा, वड़ाई।

वड़वाल (हिं० स्त्री०) हिमालयके उस पारकी तराईकी भेड़ोंकी एक जाति।

वड़वासुत (सं० पु०) वड़वायाः घोटकी रूपायाः सुतः। अश्विनीकुमार। इन दोनोंके नाम नासत्य और दस्र भी हैं। ये दोनों स्वर्गके चिकित्सक और परम रूपवान् हैं। सूर्यदेवकी वड़वापत्नीके गर्भसे इन्होंने जन्मग्रहण किया है। हरिवंशके ९ वें अध्यायमें इनकी उत्पत्तिका पूरा विवरण लिखा है। अश्विन् और अश्विनीकुमार देखो।

वड़वाहृत (सं० पु०) वड़वया दास्या हृतः। वड़वा-हृत, पन्द्रह प्रकारके दासोंमेंसे एक, वह जो दासीके साथ विवाह करके दास हुआ हो।

वड़हंस (हिं० पु०) मेघरागका पुत्र एक राग। कुछ लोग इसे संकर राग मानते हैं जो रुद्राणी, जयन्ती, मारू, दुर्गा और धनाश्रीके मेलसे वनता है। कहीं कहीं यह मधु-माधव, शुद्ध हम्मीर और नरनारायणके मेलसे वना कहा गया है।

वड़हंससारंग (हिं० पु०) सम्पूर्ण जातिका एक राग जिसमें सव शुद्ध स्वर लगते हैं।

वड़हंसिका (सं० स्त्री०) एक रागिनी जो हनुमत्के मतसे मेघरागकी स्त्री कही गई है।

वड़हर (हिं० पु०) वड़हल देखो।

वड़हल (हिं० पु०) संयुक्त प्रान्त, पश्चिमी घाट, पूर्व वङ्गाल और कमाऊंकी तराईमें होनेवाला एक वड़ा पेड़। इसकी पत्तियां छः सात अंगुल लम्बी और पांच छः अंगुल चौड़ी तथा कर्कश होती है। फूल वेसनकी पकौड़ीके समान पीले पीले गोल गोल होते हैं। उनमें पखड़ियां नहीं होतीं। फल पकने पर पीले और छोटे शरीफेके वरा-वर पर वड़े वेडौल होते हैं। इनका स्वाद खटमीठा होता है पर गूदेका रंग पीलापन लिये लाल होता है। लोग इसके फूल और कच्चे फलका अचार और तरकारी वनाते हैं। वड़हलके हीरकी लकड़ी कड़ी और पीली होती है। इससे नाव तथा सजावटके सामान वनाते हैं। आसाममें इसकी छाल दाँत परीष्कार करनेके काममें लाई जाती है। वैद्य लोग इसके फलको वादी मानते हैं।

वड़हार (हिं० पु०) विवाह हो जानेके पीछे वर और वरा-तियोंकी ज्योनार।

वड़े (हिं० वि०) १ अधिक विस्तृतका, खूब लम्बा चौड़ा। २ अवस्थामें अधिक, जिसकी उम्र ज्यादा हो। ३ गुण, प्रभाव आदिमें अधिक या उत्तम, जिसका असर या नतीजा ज्यादा हो, भारी। ४ किसी वातमें अधिक, वढ़कर। ५ गुरु श्रेष्ठ, वुजुर्ग। ६ परिमाण, विस्तार या अवस्थाका।

वड़ा (हिं० पु०) १ एक पकवान जो मसाला मिली हुई उर्द की पीठीकी गोल चक्राकार टिकियोंको घी या तेलमें तल कर वनता है। २ उत्तरीय भारतके पटपरोंमें होनेवाली एक वरसाती घास। इसे सुखा कर घोड़ी और चौपायोंकों खिलाते हैं।

वड़ाई (हिं० स्त्री०) १ परिमाण या विस्तारकी अधिकता। २ परिमाणका विस्तार। ३ महिमा, प्रशंसा, तारीफ। ४ पद, मान, मर्यादा, वयस, विद्या वुद्धि आदिकी अधिकता; इज्जत, दरजे, उम्र वगैरहकी ज्यादती।

वड़ाकुंवार (हिं० पु०) केवड़ेके आकारका एक पेड़। इसकी पत्तियां किरिचकी तरह वहुत लंवी लंवी निकली होती हैं।

वड़ाकुलंजन (हिं० पु०) वृहत्कुलंजन, मोथा कुलंजन।

वड़ादिन (हिं० पु०) १ वह दिन जिसका मान वड़ा हो। २ २५ दिसम्वरका दिन जो ईसाइयोंके त्योहारका दिन है। इस दिन ईसाके जन्मका उत्सव मनाया जाता है।

वड़ापीलू (हिं० पु०) एक प्रकारके रेशमका कीड़ा।

वड़ावोल (हिं० पु०) अहङ्कारका शब्द, घमण्ड।

वड़ासवरा (हिं० पु०) वह यन्त्र जिससे कसेरे टांका लगाते हैं, वरतनमें जोड़ लगानेका औजार।

वडिश (सं० क्ली०) वलिनो मत्स्यान् श्यति नाशयतीति शोक, लस्य डत्वं। मत्स्यधारणार्थं वक्रलौहकण्टकविशेष, मछली फंसानेका एक औजार, वंसी। पर्याय—मत्स्यवेधन, वलिश, वड़िशी, वलिशी, मत्स्यवेधनी, वलिसी, मत्स्यभेद।

"यस्ते कण्ठमनुप्रासो निगीर्णं वढिशं तथा।
दहेदङ्गारवत् पुत्र ! तं विद्यात् ब्राह्मणर्षभम्॥"
(भारत १।२८।१०)

वड़िशी (सं० स्त्री०) वड़िशगौरादित्वात् ङीप्। वड़िश, वंसी।

वड़ी (हिं० स्त्री०) १ आलू, पेठा आदि मिली हुई पीठी की छोटी छोटी सुखाई हुई टिकिया जिसे तल कर खाते हैं, कुम्हड़ौरी। २ मांसकी वोटी।

वड़ीइलायची (हिं० स्त्री०) इलायची देखो।

वड़ी कटाई (हिं० स्त्री०) वृहत् कण्टकारी, वड़ी जातिकी भटकटैया।

वड़ीगोटी (हिं० स्त्री०) चौपायोंकी एक वीमारी।

वड़ीदाख (हिं० स्त्री०) वड़ी जातिका अंगुर। इसमें वीज होते हैं और इसे सुखा कर मुनक्का वनाते हैं।

वड़ीमाता (हिं० स्त्री०) शीतला, चेचक।

वड़ीमैल (हिं० स्त्री०) खाकी रंगकी एक चिड़िया।

वड़ीमोसली (हिं० स्त्री०) थालीमें नक्काशी वनानेके लिये लोहेका एक ठप्पा जिससे तोसीके आगे नक्काशी वनाते हैं।

वड़ीराई (हिं० स्त्री०) लाल रंगकी एक प्रकारकी सरसों, लाही।

वड़ेमोतीका फूल (हिं० पु०) वड़ीमोधरा देखो।

वड़ेरर (हि० पु०) चक्रवात, ववंडर।

वड़ेरा (हिं० पु०) १ छाजनमें वीचकी लकड़ी जो लम्वाईके वल होती है और जिस पर सारा ठाट होता है। २ कुएं पर दो खंभोंके ऊपर ठहराई हुई वह लकड़ी जिसमें घिरनी लगी रहती है।

वड़ेलाट (हिं० पु०) भारतवर्षमें अङ्गरेजी साम्राज्यके प्रधान शासक।

वड़ौंखा (हिं० पु०) एक प्रकारका लंवा और नरम गन्ना।

वड़ौदा—वम्वईके गुजरात प्रदेशके अन्तर्गत एक प्रसिद्ध देशीयराज्य। यह अक्षा० २१° ५१' से २२° ४६' उ० तथा देशा० ७२° ५३' से ७३° ५५' पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ८१३५२ वर्गमील है। गायकवाड़ राजवंश द्वारा यह परिचालित होता है। वृटिश सरकारके सामन्त राज्यभुक्त नहीं होने पर भी इसकी राजकीय कार्यावली भारत सरकारके साथ संश्लिष्ट है।

वड़ोदा राज्य साधारणतः चार भागोंमें विभक्त है। १ला उत्तर वा कड़ी विभाग। इसमें पत्तन, कडी, वीजपुर, विपपुर, देहगांव, कलोल, वद्गावसिद्धपुर, खेरालू और मेसान आदि जिले हैं। २रेमें वड़ोदा विभाग है, यह वड़ोदा, चोरन्दा, जरौद, पेत्लाद, पद्रा, दभोई, सिनोर

और शङ्खेड़ा जिला ले कर संगठित है। ३रा दक्षिण वा नवसारी विभाग है। इसके अन्तर्गत नवसारो, गणदेवी, पलसान, कामवीज, वेलाछामोह, वेरो और तोनगढ़ जिले हैं। ४थे अमरेली विभागमें अमरेली, ओखमण्डल, कोरीनारधारी और दामनगर आदि जिले अवस्थित हैं। अलावा इसके वृटिश सरकारके अधिकृत स्थानोंके मध्य गायकवाड़ राज्यकी निज सम्पत्ति और सामान्त राज्य है।

इस जिलेके उत्तर जितने जिले पड़ते हैं, वे सभी समतल हैं। यहां नर्मदा, ताप्ती, माही नदियां वहती हैं। काठियावाड़के निकटवर्त्ती भूभागके तीन ओर समुद्र हैं। उत्तर छोड़ कर समस्त वड़ोदाराज्यमें सरस्वती, धाधर, किम, अम्बिका, वनास, रूपन, लून, जारो, विश्वामित्र, सूर्या, ओड़, वर्णा, अम्वा, करड़, जम्बुआ तथा तेम्भी आदि नदियाँ विद्यमान हैं। राज्यमें तरह तरहके अनाज, रूई, तमाकू, अफीम, ईख और तिलादिवीज उत्पन्न होते हैं। चावल, गेहूं और वाजरा यहांके अधिवासियोंका प्रधान भोजन है।

स्वाधीन राज्यकी तरह पहलेसे ही यहां टकसाल प्रतिष्ठित है। वड़ोदा राज्यकी नामाङ्कित मुद्रा वादशाही मुद्रा कहलाती है। राजस्व वसूल तथा राजकार्यकी देख रेख करनेके लिये यहां सरसुवा, नायर सुवा, वहिवतिदार, महलकार आदि विशिष्ट कर्मचारी नियुक्त हैं। विचारकार्यके लिये राज्यमें 'वरिष्ठ अदालत' (High court) नामक सर्वश्रेष्ठ विचारालय प्रतिष्ठित है। वर्त्तमान राजा सयाजी राव १८८१ ई०में राजगद्दी पर वैठे। इनका पूरा नाम है,—एच, एच, फरजंद-इ-खसी-दौलत-इ-इंगलिशिया महाराजा श्री सयाजी राव, गायकवाड़ सेना खास खेल शमशेर वहादुर, जि, सि, एस, आइ, जि, सि, आइ, जि, सि, आइ-इ। इन्हें वृटिश गवर्मेण्टसे २१ तोपोंकी सलामी मिलती है। वड़ोदा राज्यका विस्तृत इतिहास गायकवाड़ शब्दमें देखो।

राज्यकी जनसंख्या २० लाखके करीव है। इनकी भाषा गुजराती और मराठी है। १८७१ ई०में यहां पहले पांच स्कूल खोले गये जिनमेंसे दो में गुजराती, दो में मराठी और एकमें अङ्गरेजी पढ़ाई जाती थी। पीछे और भी कितने सेकेण्ड्रीस्कूल, प्राइमरी स्कूल खोले गये। इन सव स्कूलोंमें सभी वर्णके छात्र सव प्रकारके विद्याध्ययन करते हैं। वड़ोदा कालेज १८८१ ई०में स्थापित हुआ और उसी साल वम्बई विश्वविद्यालयसे स्वीकृत किया गया। स्कूलके अलावा राज्यमें वहुतसे अस्पताल भी हैं। जहां सव तरहकी ओषधियां मिलती हैं। १८९८ ई०में एक पागल-खाना (Lunatic asylum) खोला गया है। राज्यमें गोलन्दाज, घुड़सवार और पैदल तीनों प्रकारकी सेना हैं जिनकी संख्या ४७७५ है। जलवायु स्वास्थ्यप्रद है।

वड़ौदा—१ वड़ौदा राज्यका एक जिला। यह अक्षा० २१° ५० से २२°४५' उ० तथा देशा० ७२°३५' से ७३° पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण १८८७ वर्गमील और जनसंख्या साढ़े छः लाखके करीव है। इसके उत्तर वम्वईका कैरा जिला; पश्चिममें ब्रोच, काम्वे, दक्षिणमें ब्रोच और रेवाकान्था तथा पूर्वमें रेवाकात्था और पांचमहाल हैं। इसमें १५ शहर औह ९०४ ग्राम लगते हैं। जिलेके अधिकांश लोगोंकी भाषा गुजराती है। यहां सूती कपड़े तथा पीतल और तांवेके अच्छे अच्छे वरतन तैयार होते हैं।

शासन कार्य सुवा द्वारा परिचालित होता है। विद्या शिक्षामें यह जिला वहुत वढ़ा चढ़ा है। अभी यहां १ कालेज, १ हाई स्कूल, ६ एङ्गलो वर्नाक्युलर स्कूल और ४७६ वर्नाक्युलर स्कूल हैं। इसके अतिरिक्त १ सिविल अस्पताल, १ पागल-खाना और १० औषधालय हैं।

२ उक्त जिलेका एक तालुक। भूपरिमाण १९० वर्गमील और जनसंख्या ६० हजारसे ऊपर है। इसमें १ शहर और ११ ग्राम लगते हैं। माही, मैनी, रङ्गल, जाम्वा और विश्वामित्री नामकी पांच नदियां तालुकके मध्य वहती हैं।

३ वड़ोदा राज्यकी राजधानी और शहर। यह अक्षा० २२° १८' उ० तथा देशा० ७३°१५' पू० विश्वामित्री नदी के किनारे अवस्थित है। जनसंख्या प्रायः १०३७९० है। यह नगर विशेष समृद्धशाली है। गुजरात भरमें इसे यदि दूसरा और वम्वई प्रदेशमें तीसरा स्थान दे, तो

कोई अत्युक्ति नहीं। नगरसे सेना निवास जानेके लिये विश्वामित्र नदी और उसकी शाखाके ऊपर चार पुल बने हैं। नगर दो वृहत् पथसे चार भागोंमें विभक्त है। मध्यस्थलमें बाजारके पास मुगलोंका बनाया हुआ एक तीन गुम्बदका चौका दालान है। यही यहांका देखने योग्य स्थान है। अलावा इसके महाराष्ट्रोंके समयकी तथा फतेसिंहके दरबार आदिकी अट्टालिका भी अपूर्व शोभा दे रही हैं। गायकवाड़राज मलहार रावके शासन कालमें वड़ोदाकी अधिक श्रीवृद्धि हुई थी। उनके समयमें नजरबाद, मकरपुरा, लक्ष्मीविलास आदि प्रासाद यमुनाबाई अस्पताल, राजकीय पुस्तकागार और कर्मस्थान, जेलखाना, वड़ोदा-कालेज आदि अनेक सुरम्य अट्टालिकायें स्थापित हुई हैं।

यहांके धर्मप्राण अधिवासियोंके यत्नसे असंख्य देवमन्दिर निर्मित हुए हैं। गायकवाड राजाओंका प्रतिष्ठित विट्ठल-मन्दिर, नारायणस्वामीका मन्दिर, खण्डोवा, चारजी, भीमनाथ, सिद्धनाथ, कालिका, वलाई, रामनाथ, महाकाली, गणपति, वलदेवजी और काशी विश्वेश्वरका मन्दिर प्रधान है। यहां गायकवाड़ राजाओंको अतिथिशाला है जहां राजाखण्डेराव मुसलमान भिखारियोंको भिक्षा देनेकी अनुमति दे गये हैं। यहांके विभाग महाराष्ट्र और गायकवाड़ राजाओंके नाम पर आख्यात हैं।

४ पञ्जावके रोहतक जिलेके अन्तर्गत एक छोटा नगर। यह यमुना नहरकी बुताना शाखा पर अवस्थित है।

वड़गार—मन्द्राज प्रदेशके मलवार जिलान्तर्गत एक नगर। यह अक्षा० ११°३६' उ० तथा देशा० ७५°३७' पू०के मध्य अवस्थित है। यहांका दुर्ग पहले कोलत्तिरी (चिरक्कल) राजाओंके अधिकारमें था। पीछे १५६४ ई०में कदत्तनाड़ वंशधरोंने उनसे दुर्गाधिकार छीन लिया। टीपूसुलतानके हस्तगत होनेके वाद यह स्थान वाणिज्यद्रव्यके शुल्कसंग्रहस्थानरूपमें परिणत हुआ। १७६० ई०में टीपूके हाथसे उक्त दुर्ग छीन कर पुनः कदत्तनाड़वंशको दे दिया गया। किन्तु अभी यह स्थान तीर्थयात्रियोंके विश्रामस्थलमें परिणत हो गया है। नगरका वाणिज्यस्रोत अप्रतिहत है और विचार अदालत आदिके रहनेसे इसकी दिनों दिन उन्नति होती जा रही है।

वढ़ (हिं० वि०) अधिक, ज्यादा। इस शब्दका प्रयोग अकेले नहीं होता।

वढ़ई (हिं० पु०) सूत्रधार, काठको छील और गढ़ कर अनेक प्रकारके सामान बनानेवाला।

वढती (हिं० स्त्री०) १ मात्राका आधिक्य, मान या संख्यामें वृद्धि। विस्तारकी वृद्धिके लिये अधिकतर वाढ़ शब्दका प्रयोग होता है। २ धन धान्यकी वृद्धि, संपत्ति आदिका वढ़ना।

वढ़दार (हिं० स्त्री०) पत्थर काटनेका यन्त्र, टाँकी।

वढ़न (हिं० स्त्री०) वृद्धि, वाढ़।

वढ़ना (हिं० स्त्री०) १ वर्द्धित होना, वृद्धिको प्राप्त होना। २ उन्नति करना, तरक्की करना। ३ अग्रसर होना, किसी स्थानसे आगे जाना। ४ किसीसे किसी वातमें अधिक हो जाना। ५ चलनेमें किसीसे आगे निकल जाना। ६ अधिक व्यापक, प्रवल या तीव्र होना। ७ परिमाण या संख्यामें अधिक होना। ८ दीपकका निर्वाप्त होना, चिरागका वुझना। ९ दूकान आदिका समेटा जाना, वंद होना। १० भावका वढ़ना, खरीदनेमें ज्यादा मिलना। ११ लाभ होना, मुनाफेमें मिलना।

वढ़नी (हिं० स्त्री०) १ झाड़ू, वुहारी। २ पेशगी अनाज या रुपया जो खेती या और किसी कामके लिये दिया जाता है।

वढ़वारि (हिं० स्त्री०) वढ़ती देखो।

वढ़ाना (हिं० क्रि०) १ विस्तार या परिमाणमें अधिक करना, वर्द्धित करना। २ फैलाना लंबा करना। ३ पद, मर्यादा, अधिकार, विद्या, वुद्धि, सुख संपत्ति आदिमें अधिक करना। ४ अग्रसर करना, चलाना। ५ चलनेमें किसीसे आगे निकाल देना। ६ ऊंचा या उन्नत कर देना। ७ वल, प्रभाव, गुण आदिमें अधिक करना। ८ गिनती या नाप तोल आदिमें अधिक करना। ९ दीपक निर्वाप्त करना, चिराग वुझाना। १० नित्यका व्यवहार समाप्त करना, कार्यालय वन्द करना। ११ भाव अधिक कर देना, सस्ता वेचना। १२ फैलाना। १३ समाप्त होना, वाकी न रह जाना।

वढ़ाली (हिं० स्त्री०) कटारी, कटार।

वढ़ाव (हिं० पु०) १ वढ़नेकी क्रिया या भाव। २ आधिक्य, विस्तार। ३ वृद्धि, तरक्की।

वढ़ावन (हिं० स्त्री०) गोवरकी टिकिया जो बच्चोंकी नजर झाड़नेके काम आती है।

वढ़ावना (हिं० क्रि०) वढ़ाना देखो।

वढ़ावा (हिं० पु०) १ प्रोत्साहन, किसी कामकी ओर मन वढ़ानेवाली वात। २ साहस या हिम्मत दिखानेवाली वात, ऐसे शब्द जिनसे कोई कठिन काम करनेमें प्रवृत्त हो।

वढ़िया (हिं० वि०) १ उत्तम, अच्छा। (पु०) २ एक प्रकारका कोल्हू। ३ डेढ़ सेरकी एक तौल। ४ गन्ने, अनाज आदिकी फसलका एक रोग। इसके होनेसे कनखे नहीं निकलते और दाव वन्द हो जाती है। (स्त्री०) ५ एक प्रकारकी दाल।

वढ़ेल (हिं० स्त्री०) हिमालय परकी एक भेड़ जिससे ऊन निकलता है।

वढ़ेला (हिं० पु०) वन शूकर, जंगली सूअर।

वढ़ैया (हिं० वि०) १ उन्नति करनेवाला, वढ़ानेवाला। २ वढ़नेवाला।

वढ़ोतरी (हिं० स्त्री०) १ उत्तरोत्तर वृद्धि, वढ़ती। २ उन्नति।

वण (सं० पु०) वणनमिति वण-अप्। शब्द, आवाज।

वणिक् (सं० पु०) १ वाणिज्य करनेवाला, वनिया, सौदागर। २ विक्रेता, वेचनेवाला। ३ ज्योतिषमें छठा करण।

वणिक्पथ (सं० पु०) वणिजां पन्था अच् समासान्तः। १ हट्ट, हाट, वाजार। २ वाणिज्य व्यापारकी चीजोंकी आमदनी रपतनी।

वणिग्वन्धु (सं० पु०) वणिजः पण्याजीवस्य वन्धुर्भ्रनद्त्वात्। १ नीलीवृक्ष, नीलका पौधा। २ वणिकोंके वन्धु।

वणिग्भाव (सं० पु०) वणिजो भावः। वाणिज्य। पर्याय—सत्यानृत, वाणिज्य, वाणिज्या, वणिक्पथ, वणिज्य।

वणिग्वह (सं० पु०) वहतीति वह-अच्-वह, वाणिज्यं वाणिज्य द्रव्याणां वहः। उष्ट्र, ऊँट।

वणिज् (सं० पु०) पणते क्रयविक्रयादिना व्यवहारतीति पण (पणरादेशच वः। उण् २।७०) इति इजि पस्य च व। १ क्रयविक्रयकर्त्ता, वनिया। पर्याय—वैदेहक, सार्थवाह, नैगम, वणिज, पण्याजीव, आपणिक, क्रयविक्रयिक, वैदेह, वाणिज, वाणिजिक, क्रायिक, विक्रयिक, वाणिजक, वाणिज्यकार। २ करणान्तर। ३ वैश्य। ये लोग क्रय विक्रय करते हैं, इसीसे इन्हें वणिक् कहते हैं। वाणिज्य ही इनकी वृत्ति है। ४ करण विशेष। (स्त्री०) पण्यते व्यवह्रोयते इति पण-इजि, पस्य व, अभिधानात् स्त्रीत्वं। ५ वाणिज्य, व्यापारकी चीजोंकी आमदनी रपतनी।

वणिज (सं० पु०) वणिगेव वणिज-स्वार्थे अण्, अभिधानात् न वृद्धिः। १ वणिक्, वनिया। २ ज्योतिषोक्त वव और वालव आदि ग्यारह करणोंके अन्तर्गत छठा करण। जिस दिन यह करण होता है, उस दिन शुभ कार्यादि निषिद्ध है, किन्तु वाणिज्य कर्म इस करणमें प्रशस्त वतलाया गया है। इस करणमें जन्म लेनेसे जात वालक बुद्धिमान्, कृतज्ञ, विविध गुणशाली, गुणग्राही वणिकोंका प्रिय और वाणिज्यकर्ममें उन्नतिशील होता है।

"प्राज्ञः कृतज्ञो गुणवान् गुणज्ञो
वणिग्जन प्राप्तमनोरथः स्यात्।
यस्य प्रसूतौ वणिजाभिधानं
भाण्डप्रधानं द्रविणं हि तस्य ॥" (कोष्ठीप्रदीप)

३ शिव, महादेव।

वणिज्य (सं० क्ली०) वणिजो भावः कर्म वा वणिज (दूतवणिग्भ्यां च। पा ५।१।१२६) इत्यत्र काशिकोक्तेर्यः। वाणिज्य वणिकका भाव या कर्म।

वणिज्या (सं० स्त्री०) वणिज्य-टाप्, स्वभावात् स्त्रीलिङ्गेयं। वाणिज्य।

वत (हिं० स्त्री०) वात। इसका प्रयोग यौगिक शब्दोंमें ही होता है, जैसे वतकही, वतवढ़ाव।

वतक (हिं० स्त्री०) वतख देखो।

वतकहाव (हिं० पु०) वातचीत। २ विवाद वातोंका झगड़ा।

वतकही (हिं० स्त्री०) वार्त्तालाप, वातचीत।

वतख (हिं० स्त्री०) हंस जातिकी एक चिड़िया जो पानीमें तैरती है। इसका रंग सफेद, पंजे झिल्लीदार और चिपटी होती है। चोंच और पंजेका रंग पीलापन लिये लाल होता है। इसका डीलडौल भारी होता है,

इस कारण यह न तेज दौड़ सकती है न उड़ सकती है। तालों और जलाशयोंमें यह मछली आदि पकड़ कर खाती हैं।

बतचल (हिं० वि०) बकवादी, बक्की।

बतबढ़ाव (हिं० पु०) १ व्यर्थ बात बढ़ाना, झगड़ा बखेड़ा बढ़ाना।

बतरस (हिं० पु०) बातचीतका आनन्द, बातोंका मजा।

बतरान (हिं० स्त्री०) बातचीत।

बतराना (हिं० स्त्री०) बातचीत करना।

बतलाना (हिं० क्रि०) बताना देखो।

बतवन्हा (हिं० पु०) एक प्रकारकी नाव। इसमें लोहेके काँटे नहीं लगाए जाते। यह केवल बेंतसे बाँधी जाती है। इस प्रकारकी नाव चट्टग्रामकी ओर चलाई जाती है।

बताना (हिं० क्रि०) १ अभिज्ञ करना, जताना। २ निर्देश करना, दिखाना। ३ समझाना, बुझाना। ४ नाचने गानेमें हाथ उठा कर भाव प्रकट करना, भाव बताना। ५ किसी कार्यमें नियुक्त करना, कोई काम धंधा निकालना। ६ दण्ड दे कर ठीक रास्ते पर लाना, मार पीट कर दुरुस्त करना।

बताना (हिं० पु०) १ हाथका कड़ा। २ फटी पुरानी पगड़ी जो नीचे रहती है और जिसके ऊपर अच्छी पगड़ी बाँधी जाती है।

बताला—१ पञ्जाबके गुरुदासपुर जिलेकी तहसील। यह अक्षा० ३१° ३५´ से ३२° ४´ उ० तथा देशा० ७४° ५२´ से ७५° ३४´ पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ४७६ वर्गमील और जनसंख्या तीन लाखसे ऊपर है। इसमें श्रीगोविन्दपुर, डेरा नानक और बताला शहर तथा ४७८ ग्राम लगते हैं।

२ उक्त तहसीलका एक शहर। यह अक्षा० ३०° ४६´ उ० और देशा० ७५°१२´ पू० गुरुदासपुर शहरसे २० मीलकी दूरी पर अवस्थित है। जनसंख्या तीस हजार के करीब है। वहलोल लोदीके शासनकालमें लाहोरके शासनकर्त्ताने तातार खाँसे जो जमीन प्राप्त की, उसीके ऊपर भट्टिराजपूत रायरामदेवने १४६५ ई०में यह नगर बसाया। सम्राट् अकबरशाहने यह सम्पत्ति शमशेर खाँको जागीरस्वरूप दे दी। शमशेर खाँके यत्नसे इस नगरने नाना अट्टालिकाओंसे सुशोभित हो अपूर्वश्रीको धारण किया था। सिखलोगोंके अधिकारमें यह स्थान पहले रामगढ़िया और पीछे कनाइया मिसलके हाथ लगा। रणजित्के अभ्युदय तक यह रामगढ़ियोंके अधिकारमें था। पंजाबके अंगरेजी शासनमें आनेके बाद यह नगर कुछ समय तक उक्त जिलेका सदर रहा। पीछे वह उठ कर गुरुदासपुर नगर चला गया। शमशेर खाँका समाधि-मन्दिर और रणजित्के पुत्र शेरसिंह-निर्मित अनारकली नामका भवन देखने योग्य है। इसमें अभी 'वरिंग' हाई-स्कूल लगता है। शहरमें रेशम, ताम्र और चर्मनिर्मित द्रव्यादिका विस्तृत कारबार चलता है। पशमीने शाल भी प्रस्तुत होते हैं। उक्त हाई-स्कूलके सिवा, एक ऐङ्गलो वर्नाक्युलर हाई-स्कूल और दो ऐङ्गलो-वर्नाक्युलर मिडिल स्कूल हैं।

बताशा (हिं० पु०) बतासा देखो।

बतास (हिं० स्त्री०) १ गठिया, बातका रोग। २ वायु, हवा।

बतासफेनी (हिं० स्त्री०) टिकियाके आकारकी एक मिठाई।

बतासा (हिं० स्त्री०) १ एक प्रकारकी मिठाई। यह चीनीकी चाशनीको टपका कर बनाई जाती है। टपकने पर पानी बुलबुलेसे बनते जाते हैं जो जमने पर खोखले और हलके होते हैं तथा पानीमें बहुत जल्दी घुलते हैं। २ अनारकी तरह छूटनेवाली एक प्रकारकी आतशबाजी। इसमें बड़े बड़े फूलसे गिरते हैं। ३ बुलबुला, बुद्बुद।

बतिया (हिं० पु०) थोड़े दिनोंका लगा हुआ कच्चा छोटा फल।

बतियाना (हिं० क्रि०) बातचीत करना।

बतियार (हिं० स्त्री०) बातचीत।

बतू (हिं० पु०) कलाबत्तू देखो।

बतौतकुंती (हिं० स्त्री०) कानमें बातचीत करनेकी नकल जो बंदर करते हैं।

बतौर (अ० क्रि० वि०) १ रीतिसे, तरीके पर। २ सदृश, मानिंद।

वत्तक (हिं० स्त्री०) वताख देखो।

वत्तिस (हिं० वि०) वत्तीस देखो।

वत्ती (हिं० स्त्री०) १ सूत, रुई, कपड़े आदिकी पतली छड़, चिराग जलानेके लिये रुई या सूतका वटा हुआ लच्छा। २ प्रकाश, दीपक। ३ पगड़ी या चीरेका ऐंठा हुआ कपड़ा। ४ कपड़े के किनारेका वह भाग जो सोनेके लिये मरोड़ कर पकड़ा जाता है। ५ कपड़े की लंवी धज्जी जो घावमें मवाद साफ करनेके लिये भरते हैं। ६ फूसका पूला जिसे मोटी वत्तीके आकारमें वांध कर छाजनमें लगाते हैं, मूठा। ७ पलीता, फलीता। ८ वत्तोकी शकलकी कोई चीज, पतली छड़ या सलाईके आकारमें लाई हुई कोई वस्तु। ९ मोमवत्ती।

वत्तीस (हिं० वि०) १ तीससेदो अधिक, जो गिनतीमें तीससे दो ज्यादा हो। (पु०) २ तीससे दो अधिककी संख्या। ३ उक्त संख्याका अङ्क जो इस प्रकार लिखा जाता है—३२।

वत्तीसा (हिं० पु०) एक प्रकारका लड्डू जिसमें पुष्टईके वत्तीस मसाले पड़ते हैं।

वत्तीसी (हिं० स्त्री०) १ वत्तीसका समूह। २ मनुष्यके नीचे ऊपरके दांतोंकी पंक्ति जिनकी पूरी संख्या वत्तीस होती है।

वथान (हिं० पु०) गोगृह, गायोंके रहनेकी जगह।

वथुआ (हिं० पु०) जौ, गेहूं आदिके खेतोंमें होनेवाला एक छोटा पौधा। लोग इसका साग वना कर खाते हैं। इसकी पत्तियां छोटी छोटी और फूल घुंडीके आकारके होते हैं जिनमें काले दानेके वीज पड़ते हैं। वैद्यकमें वथुआ जठराग्निजनक, मधुर, पित्तनाशक, क्षार, अर्श और कृमिनाशक, नेत्रहितकारी, स्निग्ध, मलमूत्रशोधक और कफके रोगियोंको हितकारी माना गया है।

वद (फा० स्त्री०) १ गरमीकी वीमारीके कारण या यों ही सूजी हुई जांघ परकी गिलटी, वाघी। २ चौपायों-की एक छूतकी वीमारी। इसमें उनके मुंहसे लार वहती है, उनके खुर और मुहमें दाने पड़ जाते हैं। ३ वुरे आचरणका मनुष्य, दुष्ट, नीच। ३ पलटा, एवज। (वि०) ४ निकृष्ट, खराव।

वदअमली (हिं० स्त्री०) राज्यका कुप्रवन्ध, हलचल।

वदइंतजामी (फा० स्त्री०) अव्यवस्था, कुप्रवन्ध।

वदकशी—वदाकसानवासी अफगान-जाति। चित्तल, काफरिस्तान आदि स्थानवासियोंके साथ इनका आचार व्यवहार वहुत कुछ मिलता जुलता है। ये लोग कट्टर मुसलमान नहीं है, आकृतिगत सादृश्य देखनेसे आर्य-जातिके-से प्रतीत होते हैं। ये लोग हिन्दू और इराणी जातिके मध्यवर्त्ती हैं।

वदकारी (फा० स्त्री०) १ कुकर्म। २ व्यभिचार।

वदकिस्मत (फा० वि०) मन्दभाग्य, अभागा।

वदखत (फा० पु०) १ वुरे अक्षर, वुरा लेख। (वि०) २ वुरा लिखनेवाला, जिसका लिखनेमें हाथ न वैठा हो।

वदख्वाह (फा० वि०) अनिष्ट चाहनेवाला, वुरा चाहने-वाला।

वदगुमान (फा० वि०) संदेहकी दृष्टिसे देखनेवाला।

वदगुमानी (फा० स्त्री०) किसोके ऊपर मिथ्या संदेह, झूठा शुवहा।

वदगोई (फा० स्त्री०) १ निन्दा, शिकायत। २ चुगली।

वदचलन (फा० वि०) कुमार्गी, वुरे चालचलनका।

वदचलनी (फा० स्त्री०) १ दुश्चरित्रता, वदचलन होनेकी क्रिया या भाव। २ व्यभिचार।

वदजवान (फा० वि०) कटुभाषी, गाली गलौज करने-वाला।

वदजात (फा० वि०) नीच, ओछा।

वदतमीज (फा० वि०) जो शिष्टाचार न जानता हो, गवाँर, वेहूदा।

वदतर (फा० वि०) किसीकी अपेक्षा वुरा, और भी वुरा।

वददियानती (फा० स्त्री०) विश्वासघात, धोखेवाजी, वेईमानी।

वददुआ (फा० स्त्री०) अहित कामना जो शब्दों द्वारा प्रकट की जाय, शाप।

वदन (फा० पु०) शरीर, देह। वदन देखो।

वदनतौल (फा० स्त्री०) मलखम्भकी एक कसरत। इसमें हत्थी करते समय मलखम्भको एक हाथसे लपेट कर उसीके सहारे सारा वदन ठहराते या तौलते हैं। इसमें सिर नीचे और पैर ऊपरकी ओर रहते हैं।

वदनिकाल (फा० पु०) मलखम्भकी एक कसरत। इसमें मलखंभके पास खड़े हो कर दोनों हाथोंकी कैंची बांधते हैं। इसमें खेलाड़ीका मुंह नीचे, कमर मलखंभसे सटी हुई और पैर ऊपरको होते हैं।

वदनसिंह—भरतपुरके जाटवंशीय एक राजा, चूड़ामन सिंहके पुत्र। ये १७१२ ई०में जाटदलके सरदार बनाये गये। सहार नगरमें इनकी राजधानी थी। डिगका विख्यात दुर्ग इन्होंने ही बनवाया था। १७३६ ई०में नादिरशाहके आक्रमण-कालमें ये जीवित थे।

वदनसीब (फा० वि०) अभागा, जिसका भाग्य बुरा हो।

वदनसीबी (फा० स्त्री०) दुर्भाग्य।

वदना (हिं० क्रि०) १ वर्णन करना, कहना। २ नियत करना, ठहराना। ३ सफलता पर जीत और असफलता पर हार माननेकी शर्त पर कोई बात ठहराना, होड़ लगाना। ४ स्वीकार करना, मान लेना। ५ गिनतीमें लाना, कुछ समझना।

वदनाम (फा० वि०) जिसकी कुख्याति फैली हो, जिसकी निन्दा हो रही हो।

वदनामी (फा० स्त्री०) अपकीर्त्ति, लोकनिन्दा।

वदनीयत (फा० वि०) १ जिसकी नीयत बुरी हो, जिसका अभिप्राय दुष्ट हो। २ जिसके मनमें धोखा आदि देनेकी इच्छा हो, वेईमानी।

वदनीयती (फा० स्त्री०) वेईमानी, दगावाजी।

वदनुमा (फा० वि०) कुरूप, भद्दा।

वदनूर—मध्यप्रदेशके वेतूल तहसीलका एक सदर। यह अक्षा० २१° ५५' उ० और देशा० ७७° ५४' पू० मचना नदीके किनारे अवस्थित है। जनसंख्या छः हजारके करीब है। यहांसे चार मील दूर खेरला ग्राममें गोंड़-राजाओंका प्रासाद और भग्न दुर्ग विद्यमान है। शहरमें एक मिडिल इङ्गलिश स्कूल और एक अस्पताल है।

वदनेरा—वरारके अमरावती तालुक और जिलेका एक शहर। यह अक्षा० २०° ५२' उ० और देशा० ७७° ४६' पू०के मध्य अवस्थित है। जनसंख्या दश हजारसे ऊपर है। यहां ग्रेट इण्डियन पेनिनसुला-रेलवेका एक स्टेशन है। अमरावती और इलिचपुर जानेमें इसी स्टेशन पर उतरना पड़ता है। इस नगरसे अमरावती तक एक राजकीय रेलवे लाईन चली गई है। अहमदनगरकी राज-कन्याने इस नगरको यौतुकमें पाया था। इसीसे कोई कोई इसे वदनेरावीवी भी कहते हैं। प्राचीन नगर-भागमें मुगल-कर्मचारियोंका आवास था। वहांका मट्टीका दुर्ग आज भी नजर आता है। राजवंशधरगण अयथा कर संग्रह करते थे जिससे धीरे धीरे यह नगर जनशून्य होता गया। आखिर १८२२ ई०में राजा रामभुवाने इस नगरको अच्छी तरह लूटा और दुर्ग तथा प्राचीर को तहस नहस कर डाला। शहरमें सूती कपड़े बुननेकी एक कल है। वम्बई शहरमें रुईकी रफ्तनी होनेके कारण इस स्थानकी वाणिज्योन्नति दिनों दिन होती जा रही है।

वदनोर—राजपूतानेके वदनो राज्यका एक प्रधान शहर। यह अक्षा० २५° ५०' उ० और देशा० ७४° १६' पू०के मध्य अवस्थित है। जनसंख्या दो हजारसे ऊपर है। शहरमें एक डाकघर, वर्नाक्युलर स्कूल और उत्तरमें वैरातगढ़ नायकाका प्राचीन भग्न दुर्ग है। यहांके ठाकुर राठोरकी मरतिया शाखाके अन्तर्गत हैं और ये अपनेको राव योधके कनिष्ठ पुत्र दूदाके वंशधर वतलाते हैं।

वदपरहेज (फा० वि०) कुपथ्य करनेवाला, जो खाने पीने आदिका संयम न रखता हो।

वदपरहेजी (फा० स्त्री०) कुपथ्य, खाने पीने आदिमें असंयम।

वदबख्त (फा० वि०) अभागा, वदकिस्मत।

वदवाछा (फा० पु०) वह हिस्सा जो वेईमानी करनेसे मिला हो।

वदबू (फा० स्त्री०) दुर्गन्ध, बुरी वास।

वदबूदार (फा० वि०) दुर्गन्धयुक्त, जिसमें बुरी वास आती हो।

वदमजा (फा० वि०) १ दुःस्वाद, बुरे स्वादका, खराब जायकेका। २ आनन्दरहित।

वदमस्त (फा० वि०) १ अति उन्मत्त, नशेमें चूर। २ कामनोन्मत्त, लंपट।

वदमस्ती (फा० स्त्री०) १ उन्मत्तता, मतवालापन। २ कामोन्मत्तता, लंपटता।

वदमाश (फा० वि०) १ दुर्वृत्त, बुरे कर्मसे जीविका काटनेवाला। २ दुष्ट, खोटा। ३ दुराचारी, वदचलन।

वदमाशी (फा० स्त्री०) १ बुरी वृत्ति, खोटाई। २ नीचता, दुष्टता।

बदमिजाज (फा० वि०) दुःस्वभाव, बुरे स्वभावका, चिड़चिड़ा।

बदमिजाजी (फा० स्त्री०) बुरा स्वभाव, चिड़चिड़ापन।

बदरंग (फा० वि०) १ बुरे रंगका, जिसका रंग अच्छा न हो। २ विवर्ण, जिसका रंग विगड़ गया हो। (पु०) ३ चौसरके खेलमें एक एक खिलाड़ीकी दो गोटियोंमें वह गोटी जो रंग न हो। ४ ताशके खेलमें जो रंग दांव पर गिरना चाहिये उससे भिन्न रंग।

बदरंगी (फा० स्त्री०) रंगका फीकापन या भद्दापन।

बदर (सं० क्ली० वदति स्थिरीभवती छिन्नेऽपि पुनः प्ररोहतीति, वद-अरच्। १ कार्पास, कपास। २ कार्पासबीज, कपासका बीया, विनौला। ३ सेविफल। ४ शृगालकोलि। ५ वृहत् कोलिवृक्ष, बड़ा बेरका पेड़। ६ कोलिफल, बेरका फल। संस्कृत पर्याय—कर्कन्धु, बदरी, कोल, फेणिल, कुवल, घोण्टा, सौवीर, अजाप्रिया, कुहा, कोलिविषम, भयकण्टक, सौवीरक, गुड़फल, वालेष्ट, फलशैशिर, दृढ़बीज, वृत्तफल, कण्टकी, वक्रकण्टकी, वक्रकण्टक, सुरस, सुफल, स्वच्छ, कर्कन्धु, बदर, कोली, कुवली, स्वादुफला, गृध्रनखी, पिच्छिला, कुवल। गुण—मधुर, कषाय, अम्ल। परिपक्व फलका गुण—मधुराम्ल, उष्ण, कफकारक, पचन, अतिसार, रक्त और श्रमदोषनाशक तथा रुचिकर।

यह पेड़ प्रायः सारे भारतवर्षमें होता है। जंगली बेरको झरबेरी कहते हैं। जब कलम लगा कर इसे तैयार किया जाता है, तब वह पेवँदी (पैवंदी) कहलाता है। इसकी पत्तियां चारेके काममें और छाल चमड़ा सिझानेके काममें आती है। बङ्गालमें इस वृक्षकी पत्तियों पर रेशमके कीड़े भी पालते हैं। इसकी लकड़ी जो कड़ी और कुछ लाली लिये हुए होती है, प्रायः खेतीके औजार बनानेके और इमारतके काममें आती है। इसमें एक प्रकारके लंबोतरे फल लगते हैं जिनके अंदर बहुत कड़ी गुठली होती है। यह फल पकने पर पीले रंगका हो जाता है और मीठा होनेके कारण खूब खाया जाता है। कलम लगा कर इसके फलोंका आकार और स्वाद बहुत कुछ बढ़ाया जाता है।

६ देवसर्पवृक्ष। ७ द्विशाणमान, दो शाण या आठ माशेकी एक तौल।

बदर (फा० वि०) बाहर। जैसे, शहर बदर करना।

बदरकुण (सं० पु०) बेर पकनेका समय।

बदरगञ्ज—बङ्गालके रंगपुर जिलान्तर्गत एक गण्डग्राम और प्रधान वाणिज्यस्थान। यह अक्षा० २५°४०' उ० और देशा० ८९°६' पू०के मध्य अवस्थित है। यहां चावल, धान और सरसों आदि रखनेकी बड़ी बड़ी आढ़तें हैं।

बदरत्रय (सं० क्ली०) बदराणां त्रयं। तीन प्रकारका बदर, वृहद्बदर, क्षुद्रबदर और शृगालकोलि। (चरकसूत्र ४ अ०) भावप्रकाशके मतसे सौवीर, कोल और कर्कन्धु यही तीन प्रकारके बदर हैं।

बदरनवीसो (फा० स्त्री०) १ हिसाब कितावकी जाँच। २ हिसाबमें गड़बड़ रकम अलग करना।

बदरपाचन—तीर्थभेद। महाभारतमें लिखा है—महर्षि भरद्वाजकी कन्या श्रुवातीने देवराजकी पत्नी होनेको इच्छासे बहुत कठिन तपोनुष्ठान किया। भगवान् इन्द्र उसकी तपस्यासे बड़े प्रसन्न हुए और वशिष्ठदेवका रूप धारण कर वहां पहुंचे। श्रुवावतीने नाना प्रकारसे उनकी पूजा करनेके बाद अपना अभिप्राय प्रकट किया। इस पर वशिष्ठरूपधारी इन्द्रने कहा, 'तुम्हारी कठोर तपस्याका विषय मुझसे छिपा नहीं है। तुम्हारा मनोरथ अति शीघ्र पूरा होगा। अभी तुझे ये पांच बदर देता हूं, उनका अच्छी तरह पाक करो।' इतना कह इन्द्र वहांसे चल दिये और उसी आश्रमके समीप इन्द्रतीर्थ जा कर अग्निका तप इस उद्देशसे करने लगे जिससे श्रुवावती बदरपाक न कर सके। इधर ब्रह्मचारिणी श्रुवावतीने तनमनसे पवित्र हो बदर-पाक करना आरम्भ कर दिया। सारा दिन बीत गया, तो भी सभी बदर सुपक्व न हुए। इस प्रकार श्रुवावतीके अनेक दिन बीत गये। आखिर अपने उद्देश्यको फलीभूत न होते देख वह अपना शरीर दग्ध करनेको तुल गई। पहले उसने अपने दो पैर अग्निमें डाले, पर जरा भी क्लेश अनुभव न किया। धीरे धीरे उसका सम्पूर्ण शरीर भस्म होने लगा। इसी समय इन्द्रने वहां पहुंच कर श्रुवावतीसे कहा, 'ब्रह्मचारिणी! अब तुम्हें बदरपाक नहीं करना पड़ेगा। मैं तुम्हारी भक्तिकी परीक्षा करनेके लिये वशिष्ठका रूप धारण कर आया था। तुम्हारा अभिलाष परिपूर्ण होगा। यह देव

परित्याग करके तुम स्वर्गमें मेरे साथ एकत्र वास करोगी और यह स्थान वदरपाचन तीर्थ नामसे प्रसिद्ध होगा। इस तीर्थमें सर्वदा षड़ऋतु विराजमान रहेंगी।' (भारत शल्यपर्व ४८-४६ अ०)

वदरपुर—आसाम प्रदेशके श्रीहट्ट जिलान्तर्गत एक गण्ड-ग्राम। यह अक्षा० २४°५१' उ० और देशा० ९२°३३' पू०के मध्य अवस्थित है। १८२६ ई०में ब्रह्मसेनाने जब कछार पर आक्रमण किया, तब इसी स्थान पर अंगरेजोंके साथ उनका युद्ध हुआ था। यहां पर्वतके ऊपर एक दुर्ग है।

वदरपुर—पञ्जावके अन्तर्गत एक गण्ड ग्राम। यह शाल-वेरीसे २ कोस उत्तर-पूर्वमें अवस्थित है। यहां एक बहुत बड़ा बौद्ध-स्तूप है जो मनिकल और शाहपुरके स्तूपसे किसी अंशमें कम नहीं। ध्वंसावशेषमें परिणत हो जाने पर भी अभी इसकी ऊंचाई ४० फुट रह गई है। इस स्तूपके मध्य जेनरल मेंजुराने एक मृत मनुष्यकी हड्डी पाई थी।

वदरफली (सं० स्त्री०) वदरस्येव फलमस्य वदरफल-ङीप्। भूवदरी।

वदरवल्ली (सं० स्त्री०) भूवदरी।

वदरवीज (सं० क्ली०) वदरास्थि, वेरकी गुठली।

वदरा (सं० स्त्री०) १ आदित्यभक्ता, हुरहुर। २ कार्पासी, कपास। ३ वराहक्रान्ता, वाराही नामका पौधा। ४ एला-पर्णी। ५ वाराहीकन्द। ६ श्वेतविदारी। ७ विष्णुक्रान्ता।

वदरामलक (सं० क्ली०) पानीयामलक, पानी आमला। इसके पौधे जलाशयोंके पास होते हैं। पत्ते लंबे लंबे और फल लाल वेरके समान होते हैं। टहनियोंमें छोटे छोटे कांटे भी होते हैं।

वदरास्थि (सं० क्ली०) वदरवीज, वेरकी गुठली।

वदरास्थिमज्जा (सं० स्त्री०) वेरकी गुठलीका गूदा।

वदराह (फा० वि०) १ कुमार्गी, बुरी राह पर चलनेवाला। २ दुष्ट, बुरा।

वदरि (सं० स्त्री०) वद-वाहुलकादरि। कोलिवृक्ष, वेरका पौधा या फल।

वदरिका—हिमालय पर्वतस्थ प्रसिद्ध वैष्णव तीर्थ। यह विस्तीर्ण भूभाग कण्वाश्रम और नन्द पर्वतके बीच पड़ता है। इसका दूसरा नाम वदरीनाथक्षेत्र भी है। इस पुण्य क्षेत्रका व्यास प्रायः ३ योजन और दैर्घ्य १२ योजन है। गन्धमादन, वदरी, नरनारायण और कुवेर-शृङ्ग इसके अन्तर्गत हैं। यहां बहुतसे उष्ण प्रस्रवण भी हैं।

हिमालयतीर्थके मध्य केदारनाथ जिस प्रकार शैव गणको प्रियतर है, वैष्णवोंमें वदरिकाक्षेत्र भी उसी प्रकार परम स्थान समझा जाता है। (१) तीर्थयात्रिगण अलकनन्दा (गंगा)-की उपत्यका परके तीर्थोंके दर्शन करते करते ज्योतिर्धाम (२) पहुंचते हैं। ज्योतिर्धाम पार करके ही वे धौली और अलकनन्दाके सङ्गम तट पर गन्धमादन और वदरी-क्षेत्र देख पाते हैं। यहां ब्रह्मा, विष्णु, शिव, गणेश, भृगि, ऋषि, सूर्य दुर्गा, धनद और प्रह्लाद आदि कुण्ड हैं। यह स्थान विष्णुप्रयाग नामसे प्रसिद्ध है। इसीके उत्तर घटोद्भवाश्रम पड़ता है। इस आश्रमके पास ही मुनीश्वर शिव और घण्टाकर्ण-मन्दिर अवस्थित है। विष्णु प्रयागके उत्तर पाण्डुस्थान है। (३) वदरीनाथके समीप जो नदी वहती है उसके दाहिनी किनारे परके नरशिखर पर सैकड़ों लिङ्गतीर्थ और नारायण कुण्ड देखनेमें आते हैं। विन्दुमती नदीसे दो कोस उत्तर वैखानस नामक स्थान है। संन्यासिगण यहां होम याग किया करते हैं। इसके भी उत्तर चूड़ा कुवेर-पर्वत और योगेश्वर-भैरव नामक तीर्थ है। इसके वाद प्रवरा नामक सरिद्वरा और वदरिमन्दिरके सामने कर्मधारा नामक नदी है। इसके पास ही नारदीयशिला, वराहीशिला, नारसिंहशिला, मार्कण्डेय-शिला, गारुड़ीशिला और उन्हीं सब नामोंकी पुष्करिणियां भी हैं। उक्त पर्वत परिधिके मध्यस्थलमें विष्णु-

(१) इस स्थानका दूसरा नाम विशालपुर है। स्थानीय प्रवादसे जाना जाता है, कि वदरी वृक्षसे ही इस स्थानका नामकरण हुआ है।

(२) जोशीमठ—यहांके नरसिंह मन्दिरके समीप प्रह्लादने विष्णुकी आराधना की थी।

(३) पाण्डुकेश्वर—यहां पाण्डेश्वर शिवमन्दिर आज भी विद्यमान है।

मन्दिर प्रतिष्ठित है। इसीके समीप वह्नितीर्थ और ब्रह्म-कपाल, पश्चिमकी ओर १ कोसके मध्य ही उर्वशीतीर्थ तथा स्वर्णधारा नदी पर शेषतीर्थ है। वदरीनाथके वाम पार्श्वमें इन्द्रधारा, देवधारा, वसुधारा, धर्मशिला और सोम नामक नदी, सत्यपद, चक्र, द्वादशादित्य, सप्तर्षि, रुद्र, ब्रह्मा, नर-नारायण, व्यास, केशवप्रयाग और पाण्डवी नामक तीर्थ तथा मुचुकुन्द और मणिभद्र नामक ह्रद विद्यमान हैं।

इस अति प्राचीन तीर्थका माहात्म्य वहुतसे प्राचीन ग्रन्थोंमें पाया जाता है। महाभारतमें लिखा है, कि नर-नारायण अर्जुनने यहां घोरतर तपस्या की थी। श्रीकृष्ण वदरिकाश्रममें अर्जुनके साथ वहुत दिन ठहरे थे। फिर दूसरी जगह लिखा है, कि श्रीकृष्णने यहां पर सार्यगृह मुनिके साथ साक्षात् किया था। द्वारकाध्वंसके बाद पाण्डवोंने व्यासका आदेश पा कर हिमालयको महा-प्रस्थान किया था। पूर्वमें कर्माचल और पश्चिममें यमुनोत्तरी तथा दून नदी तक विस्तृत भूभागके अनेक स्थान आज भी पाण्डवोंके आगमनको गवाही देते हैं। केदारेश्वरके पांच शिवमन्दिर पाण्डवप्रतिष्ठित माने जाते हैं। पाण्डुकेश्वरमें उन्होंने तपस्या की थी। वामनावतारमें भगवान् विष्णु यहां पर तपस्या करके पूर्णता प्राप्त की थी, इसीसे यह पुण्यक्षेत्र सिद्धाश्रम नामसे भी प्रसिद्ध है। कहते हैं, कि राम और लक्ष्मणने रावणको मार ब्रह्मवधपापसे निष्कृति पानेके लिये हृषीकेश और तपोवनमें तपस्या की थी। वररुचिने यहां आ कर महादेवकी आराधना की और अन्तकालको वे पुष्पदन्त(४) की तरह स्वर्गधाम चले गये . कौशाम्वीराज राज्यकार्यसे उत्यक्त हो शेष जीवन देवसेवामें वितानेके लिये वदरिकाश्रम आये थे।

वदरिनाथप्रतिष्ठाके प्रसङ्गमें यहां एक अच्छी गल्प सुनी जाती है। वह इस प्रकार है,—नारदकुण्ड आ कर शङ्कराचार्यने वहुत-सी देवमूर्त्तियां जलमें देखीं। उसी समय आकाश-वाणी हुई जिसके अनुसार वे उन सब प्रतिमूर्त्तियोंको वदरि वृक्षके नीचे स्थापन कर गये। उस वृक्षने धीरे धीरे वढ़ कर जितना स्थान आक्रान्त किया, वह आदिवदरी कहलाया। गन्धमादन पर्वतके नीचे यह स्थान वैष्णवधर्म पुनस्थापनके लिये मनोनीत हुआ। इसी स्थान पर नरनारायणका आश्रम है। वैष्णव प्रभावकी वृद्धिके साथ साथ यहां नरनारायण और वदरीनाथके मन्दिरादि वनाये गये। एतद्भिन्न लक्ष्मी, मातृकामूर्त्ति, महादेव और अपरापर विष्णुमूर्त्तिके मन्दिर स्थापित हुए हैं। विष्णुके आदेशसे अग्निदेव प्रस्रवणमें अवस्थान करते हैं। क्रमशः यह वैष्णव क्षेत्र तप्तकुण्ड, नारदकुण्ड, ब्रह्मकपाली, कर्मधारा, गरुड़शिला, नारदशिला, मार्कण्डेयशिला, वराहशिला, नरसिंहशिला, वसुधारा तीर्थ, सत्यपथकुण्ड और त्रिकोणकुण्ड आदि १२ छोटे छोटे अंशोंमें विभक्त हो गया है। स्कन्दपुराणीय हिमवत्खण्डमें उन सव तीर्थोंका माहात्म्य वर्णित है।

वदरीनाथमें विष्णु नरसिंहरूपमें विराजित हैं। इनमें नरनारायण और नरसिंह, वराह, नारद, गरुड़ और अमाके आदि शक्तियोंका समन्वय हुआ है। वदरी नामक मन्दिरके पार्श्वमें और भी चार मन्दिर प्रतिष्ठित हैं। वे पांचों मन्दिर पञ्च-वदरी नामसे प्रसिद्ध हैं। (५) प्रवाद है कि शङ्खचक्रगदापद्मधारी विष्णु महाकुम्भके दिन यहांके नीलकण्ठ पर्वत-शिखर पर आविर्भूत होते हैं। इनके दर्शन साधक मात्र ही पा सकते हैं। पाण्डुकेश्वरमें योगवदरीका मन्दिर स्थापित है। यहां भगवान्‌की वासुदेवमूर्त्ति प्रतिष्ठित हैं। (६) ऊरगांव ध्यान-वदरी तथा वृद्धकेदार और कल्पेश्वर शिवमन्दिर, अणिमठमें वृद्धवदरी-मूर्त्ति स्थापित हैं। यहां हरिवंश

(४) पद्मपुराणमें वदरीको सब तीर्थोंकी अपेक्षा पुण्यतम वैष्णवतीर्थ वतलाया है। पुष्पदन्तने महादेवकी तपस्या करके सुशर्म्मराजकन्या जयाका पाणिग्रहण किया था। बुढापा आने पर वे दोनों वानप्रस्थ अवलम्बन कर वदरिका आये थे। पुष्पदन्तके भाई गुणाढ्यने भी यहां देवसेवामें अपना जीवन विताया था। वामनपुराणमें भी केदारनाथ और वदरीनाथ देवतीर्थकी पवित्रता वर्णित हुई है।

(५) योगवदरी, ध्यानवदरी, वृद्धवदरी और आदि-वदरी। पांडवप्रतिष्ठित पञ्चशिव-मन्दिर भी पञ्चकेदारके नामसे प्रसिद्ध हैं।

(६) किरातगण भी वासुदेवकी उपासना करते थे।

वर्णित अपण देवीमूर्त्ति हैं। जोपीमठमें भविष्यवदरी और वासुदेव, गरुड़ और भगवती मूर्त्ति प्रतिष्ठित है। कुछ शताब्दी पहलेसे दाक्षिणात्यके दण्डी परमहंसगण वदरीनाथके पूजारीका कार्य करते आ रहे थे। पीछे नम्बूरी ब्राह्मणोंने उक्त कार्यका भार ग्रहण किया। वैशाख से ले कर कार्त्तिकमास तक वे लोग वदरीनाथकी सेवा किया करते हैं। पीछे शीत पड़ने पर वे ज्योतिर्धाम चले जाते हैं। देवप्रयागके ब्राह्मण तप्तकुण्डमें, कोटियाल, हातोयाल और दण्डी ब्राह्मण ब्रह्मकपालीमें, डिम्री ब्राह्मण शिव और लक्ष्मी मन्दिरमें, खालिया ब्राह्मण तङ्गनीमें तथा पुरोहितानुचर योगवदरीमें, डिम्रीगण ध्यानवदरीमें और दक्षिणाब्राह्मण वृद्धवदरी और आदिवदरीमें याजकता करते हैं। पञ्चवदरी छोड़ कर नन्द प्रयाग और विष्णुप्रयागके विभिन्न मन्दिरोंमें अपरापर विभिन्न श्रेणीके ब्राह्मण पुजारीका काम करते हैं। नन्दप्रयागमें स्नान करनेसे गो और ब्राह्मणवधका पाप नाश होता है।

वदरिकाश्रम (सं० पु०-क्ली०) वदरिकाचिह्नितः आश्रमः। तीर्थविशेष। यह तीर्थ श्रीनगर (गढ़वाल)-के पास अलकनन्दा नदीके पच्छिमी किनारे पर अवस्थित है। यहां नरनारायण तथा व्यासका आश्रम है। कहते हैं, कि भृगुतुंग नामक शृङ्गके ऊपर एक वदरीवृक्षके कारण वदरिकाश्रम नाम पड़ा। महाभारतमें लिखा है, कि पहले यहां गंगाकी गरम और ठंढी दो धाराएं थीं और रेत सोनेकी थी। यहीं पर देवताओं और ऋषियोंने तप कर भगवान् विष्णुको प्राप्त किया था। गन्धमादन, वदरी, नरनारायण और कुवेरशृङ्ग इसी तीर्थके अन्तर्गत हैं। नरनारायण अर्जुनने यहां कठोर तपस्या की थी। पाण्डव महाप्रस्थानके लिये इसी स्थान पर गये थे। पद्मपुराणमें वैष्णवोंके सब तीर्थोंमें वदरिकाश्रम श्रेष्ठ कहा गया है।

"योऽवतीर्य्यात्मनोऽशेन दाक्षायण्यान्तु धर्मतः।
लोकानां स्वस्तयेऽध्यास्ते तपो वदरिकाश्रमे॥"
(भाग० ७।११।६)

भगवान् विष्णु ने अपने अंश द्वारा दाक्षायणीमें अवतीर्ण हो कर लोगोंकी भलाईके लिये वदरिकाश्रममें तपस्या की थी। वदरिका देखो।

वदरी (सं० स्त्री०) वदर गौरादित्वात् ङीष्। वा वदरि कृदिकारादिति पक्षे ङीष्। १ कोलिवृक्ष, वेरका पेड़ या फल। २ कार्पासी। ३ कपिकच्छु, कौंछ। ४ आश्रमविशेष, शम्याश्रम।

ब्रह्मनदी सरस्वतीके पश्चिमी किनारे ऋषियोंका यज्ञ वृद्धिकारक शम्याश्रम नामक पवित्र आश्रम है। यहां बहुतसे वदरी वृक्ष है इसी कारण इसका वदरी आश्रम नाम पड़ा है। यहां भगवान् वेदव्यासने ईश्वरकी चिन्तामें अपना तन मन लगा दिया था। पीछे भक्ति द्वारा जब चित्त निर्मल हुआ, तब पहले पुरुष और पीछे तदधीन माया उनके दर्शन-गोचर हुई। जो अपर मायामें संमोहित जीव स्वयं गुणातीत हो कर भी अपनेको त्रिगुणात्मक समझते और गुणकृत कर्तृत्वादिको प्राप्त होते हैं उन्हें भी वे देख पाये। वेदव्यासने इस प्रकार आत्मतत्त्वका अवलम्बन करके श्रीमद्भागवत संहिताकी रचना की। (भाग० १।७ अ०)

वदरी—महिसुर-राज्यके अन्तर्गत एक नदी। यह वावावुदन-गिरिमालासे निकल कर वेलूर नगर होती हुई हेमावतीमें जा गिरी है। वेरेङ्गी-हल्ला नामक एक और शाखानदीने इसके कलेवरकी वृद्धि की है।

वदरी—सह्याद्रिके अन्तर्गत एक तीर्थ। यहां त्रिलोचन शिवकी एक मूर्त्ति प्रतिष्ठित है। (स्कन्द० ३६।१८)

वदरीच्छद (सं० पु० क्ली०) नखीनामक गन्धद्रव्य।

वदरीच्छदा (सं० स्त्री०) वदर्याः छदा इव छदा यस्याः। १ हस्तिकोलिवृक्ष, एक प्रकारका वेर। २ शङ्खनदी, एक सुगन्ध द्रव्य जो शायद किसी समुद्री जंतुका सूखा मांस हो।

वदरीनाथ—युक्तप्रदेशके गढ़वाल जिलान्तर्गत एक हिमालय शिखर। यह समुद्रपृष्ठसे २३२१० फुट ऊंचा है। इसी शृङ्गभूमिसे अलकनन्दा नदी निकली है। उसके सानुदेशमें प्रायः १०५०० फुटकी ऊंचाई पर वदरीनाथ नामक प्रसिद्ध विष्णुमूर्त्ति स्थापित है। वह अक्षा० ३०° ४४´ १५´´ उ० तथा देशा० ८९° ३०´ ४०´´ पू०के मध्य पड़ता है। शङ्करस्वामी नामक किसी योगीने नदीगर्भसे वह मूर्त्ति निकाल कर स्थापित की। तीर्थमाहात्म्यमें इसकी विशेष ख्याति गाई है। भूमिकम्पसे मन्दिर नष्ट प्राय हो गया

था, अभी भक्त गणोंने उसका संस्कार करा दिया है। यहांके पुरोहित राचल कहलाते हैं। वे लोग दाक्षिणत्यवासी नम्बूरी ब्राह्मण हैं। प्रतिवर्ष ग्रीष्मके समय वे लोग यहां पहुंचते हैं और कार्त्तिकमासमें शीतके प्रारम्भ होते ही अपनी प्राप्त सम्पत्तिको जमीनमें गाड़ कर जोषीमठ चले जाते हैं। यहां और भी चार मन्दिर हैं। देवसेवाके लिये गढ़वाल और कुमाउन प्रदेशके कुछ ग्रामोंका राजस्व निर्दिष्ट है। यहां प्रतिवर्ष उत्सवके समय वहुतसे लोग समागम होते हैं। वदरिका देखो।

वदरीनारायण (सं० क्ली०) १ वदरीनाथ, नारायणकी मूर्त्ति जो वदरिकाश्रममें हैं। २ वदरिकाश्रमके प्रधान देवता।

वदरीपत्र (सं० पु०) वदर्याः पत्रमिव आकृतिर्यस्य। नखी नामक गन्धद्रव्य।

वदरीपत्रक (सं० क्ली०) वदरीपत्र-स्वार्थे कन्। नखी नामक गन्धद्रव्य।

वदरीपल्लव (सं० पु० क्ली०) कोलिकोमल पल्लव, वेरकी मुलायम पत्ती।

वदरीफला (सं० स्त्री०) नील शेफालिकाका पौधा।

वदरीपाचन (सं० क्ली०) वदरपाचन तीर्थ। वदरपाचन देखो।

वदरीवन—१ कावेरी नदीके दक्षिणवर्त्ती एक पुण्यस्थान। यहां कमलेश्वर शिवमूर्त्ति स्थापित हैं। शिवपुराणके अन्तर्गत वदरीवन माहात्म्यमें इसका विस्तृत विवरण लिखा है।

वदरीहाट—मुर्शिदावाद जिलेके लालवाघ उपविभागका एक प्राचीन स्थान। यह अक्षा० २४° १८´ उ० और देशा० ८८° १५´ पू० भागीरथीके दाहिने किनारे अवस्थित है। भागीरथी-वक्षसे वहुक्रोसव्यापी स्थानका ध्वंसावशेष देखनेसे इसकी पूर्वसमृद्धिका स्मरण आ जाता है। आज भी यहां राजप्रासाद और भग्नावशेष दुर्गका चिह्न दृष्टिगोचर होता है। वहुतसी स्वर्णमुद्रा और स्तम्भ-गात्रमें पालि अक्षरमें लिखी हुई लिपियाँ पाई गई हैं। मालूम होता है, कि बौद्धप्रभावके समय इस नगरकी श्रीवृद्धि हुई थी। गौड़के पठानराज गयासुद्दीनने अपने नाम पर इस नगरका गयासावाद नाम रखा था।

वदरीवन (सं० पु०) १ वेरका जङ्गल। २ वदरिकाश्रम।

वदरीशैल (सं० पु०) वदरीवहुलः शैलं पर्वतः। हिमालय पर्वतैकदेश, वदरिकाश्रम।

वदरून (हिं० पु०) पत्थरको जालीकी एक प्रकारकी नक्काशी जिसमें वहुतसे कोने होते हैं।

वदरौंह (फा० वि०) १ कुमार्गी, वदचलन। (पु०) २ वदलीका आभास।

वदल (अ० पु०) १ परिवर्त्तन, हेरफेर। २ प्रतिकार, पलटा।

वदलगाम (फा० वि०) जिसे भला वुरा मुंहसे निकालते संकोच न हो, मुंहजोर।

वदलना (हिं० क्रि०) १ औरका और होना, परिवर्त्तित होना। २ एक स्थानसे दूसरे स्थान पर नियुक्त होना। ३ एकके स्थान पर दूसरा हो जाना, जहां जो वस्तु रही हो वहां वह न रह कर दूसरी वस्तुका आ जाना। ४ औरका और करना, परिवर्त्तित करना। ५ एक वस्तु दे कर दूसरी वस्तु लेना या एक वस्तु ले कर दूसरी वस्तु देना। ६ एकके स्थान पर दूसरा करना, एक वस्तुके स्थानकी पूर्त्ति दूसरी वस्तुसे करना।

वदलवाना (हिं० क्रि०) वदलनेका काम कराना।

वदला (अ० पु०) १ विनिमय, परस्पर लेने और देनेका व्यवहार। २ किसी वस्तुके स्थानकी दूसरी वस्तुसे पूर्त्ति, एवज। ३ एककी वस्तुके स्थान पर दूसरा जो दूसरा वस्तु दे। ४ किसी कर्मका परिणाम जो भोगना पड़े, प्रतिफल। ५ प्रतीकार, पलटा।

वदलाना (हिं० क्रि०) वदलवाना देखो।

वदली (हिं० स्त्री०) १ घनविस्तार, फैल कर छाया हुआ वादल। २ एकके स्थान पर दूसरेकी उपस्थिति। ३ एक स्थानसे दूसरे स्थान पर नियुक्ति।

वदलौवल (हिं० स्त्री०) अदल वदल, हेरफेर।

वदशकल (फा० वि०) कुरूप, वेडौल।

वदसलूकी (फा० स्त्री०) १ अशिष्ट व्यवहार, वुरा व्यवहार। २ अपकार, वुराई।

वदसूरत (फा० वि०) कुरूप, भद्दी सूरतवाला।

वदस्तूर (फा० क्रि० वि०) मामूली तौर पर, जैसेका तैसा, ज्योंका त्यों।

वदहजमी (फा० स्त्री०) अजीर्ण, अपच।

वद्‌हवास (फा० वि०) १ बेहोश, अचेत। २ व्याकुल, विकल। ३ श्रान्त, शिथिल।

वदाऊँ—युक्तप्रदेशका छोटे लाटके अधीन एक जिला। यह अक्षा० २७° ४०´ से २८° २९´ उ० तथा देशा० ७८° १६´ से ७९° ३´ पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण १९८७ वर्गमील है। इसके उत्तरमें मुरादाबाद, उत्तरपूर्वमें रामपुर राज्य और वरेली जिला, दक्षिण पूर्वमें शाहजहान्‌पुर और दक्षिण-पश्चिममें गङ्गा है। गङ्गाके साथ इसकी प्राकृतिक सुन्दरतामें कोई विशेष पृथकता नहीं देखी जाती। वनविभागको छोड़ सब स्थान इसके मनोहर हैं। अन्यान्य स्थानविशेषकी भूमि खेतीके लिये उपयोगी है और अन्यान्य स्थान बालू कंटकमय हैं। इसके मध्यभागमें सोत नामकी नदी वहती है। इसी सोतनदीके किनारे वदाऊँ नगर वसा हुआ है। इसको छोड़ इसमें अरिल, अन्धेरी, छोइया और नकानदी प्रवाहित हैं।

इस जिलेका कोई प्राचीन इतिहास नहीं मिलता। स्थानीय ब्राह्मणोंके मतसे इसका पूर्वनाम 'वेदमाया' अथवा वेदमौ था। दिल्लीके तोमरवंशीय नरपति महीपालने यहां एक दुर्गका निर्माण किया था। दुर्गमें वर्तमान वदाऊँका पश्चिमांश वना हुआ है। प्राचीन स्मृतिका दृष्टान्त स्वरूप मिट्टीका स्तूप आज भी देखा जाता है। उक्त महीपालने 'हरमन्दिर' नामक एक मंदिर वनवाया था। मुसलमानोंने उस मन्दिरको नष्ट कर उसके स्थानमें जुम्मा मसजिद तैयार की थी। स्थानीय अधिवासियोंका कहना है, कि इस मसजिदमें प्राचीन मंदिरकी देवमूर्त्तियां गड़ी हुई हैं।

कोई कोई कहते हैं, कि बुद्ध नामके एक अहीर राजाने ९०५ ई०में इस नगरको वसाया था। इसके वंशधरोंने प्रायः एक सदी तक यहां राज्य किया था।(१) गजनीपति महम्मदके भानजे सैयद सलार मसाउद गाजीने १०२८ ई०में रोहिलखण्ड आक्रमण करते समय यहां आ कर वास किया था। किन्तु यहांके रहनेवाले हिन्दू राजाओं ने जब उसके विरुद्ध हथियार उठाया तब वह विशेष क्षतिग्रस्त हो वहांसे भाग गया। ११९६ ई०में गयासुद्दीनके प्रतिनिधि कुतुबुद्दीन ऐबकने वदाऊँ दुर्ग पर हमला कर लूटपाट मचा दी। संग्राममें कातिहरके राजपूत राजा काम आये और अहिच्छत्रापुरी पर मुसलमानोंका कब्जा हो गया। मुसलमानी अमलमें वदाऊँ 'विचार-सदर' वजने लगा। समसुद्दीन अलतमस् इस प्रदेशके वादशाह हुए। कुछ अर्सेके वाद १२१० ई०में वे दिल्लीके तख्त पर बैठनेको चले। सम्राट् हो कर भी वदाऊँसे उनको मुहब्बत जरा भी न हटी। ६२० हिजरीमें उत्कीर्ण जुम्मा मसजिदकी शिलालिपि ही इसका जीता जागता उदाहरण है। पांच साल गुजरने बाद उन्होंने अपने बड़े लड़के रुकन-उद्दीन फिरोजको(२) वदाऊँकी सलतनत सौंपी। यहांकी जुम्मा मसजिद शामसीको उन्होंने ही वनवाया था। दस्तकारीके लिये उन्होंने खूब खरचा उठाया था। १३वीं और १४वीं सदीमें इस प्रदेशमें केवल खून-खरावी होती रही थी। यह विद्रोहवह्नि मुगलशासनके पहले न बुझ न सकी।

१३१५ ई०में शासनकर्त्ता महावत् खांने वागी हो वादशाहके विरुद्ध तलवार उठाई। सम्राट् खिजिरखां उसको किसी प्रकारसे भी वशमें न ला सके। आखिर ग्यारह वर्षके वाद उनके पुत्र मुवारक शाह दुराचारी महावत् खांको कावू करनेमें समर्थ हुए थे। १४३५ ई०में वागी सूवेदार मालिक जुमनने सैयद राजाओंका अधीनता-पाश तोड़ डाला। १४४९ ई०में आलमशाह वदाऊँ नगरको देखने आये। इस समय उनके वजीर वहोल लोदीके साथ षड्‌यंत्र रच उसने वादशाहको तख्तसे उतार दिया। १४७९ ई० तक उन्होंने उस सम्पत्तिका मजा उड़ाया। अन्तमें मौतने उन्हें आ घेरा और वे दुनियांसे कूच कर गये। उनकी मृत्युके वाद दामाद हुसेन शाह शरकीने इस प्रदेश पर हुकूमत चलाना शुरू किया, किन्तु वहोल लोदीने उनको ज्यादा दिन तक टिकने न दिया। उन्होंने हुसेनको बुरी तरहसे

(१) अब भी इस जिलेमें अहीरोंका प्रभाव ज्यादा है। अहीरोंके रहनेके लिये वुधने वुधापन नगर वसानेकी बहुत लोग कल्पना करते हैं।

(२) १२३६ ई०में वे दिल्लीके वादशाह हुए।

परास्त कर इस प्रदेशको दिल्लीके राज्यमें मिला लिया। जब हिन्दुस्तानमें मुगल वादशाहत्की नींव पड़ी तो हिमायूनूने इस प्रदेशमें एक सर्दार तैनात कर दिया। अकवरकी सल्तनतमें वदाऊं एक स्वतंत्र महकमा माना गया और कासिम अली खाँ इसके जागीरदार वनाये गये। १५७१ ई०में वड़ा भीषण अग्निकाण्ड हुआ, सवका सव जल कर खाक हो गया। शाहजहांने विचार अदालत वदाऊँसे उठवा कर वरेलीमें पहुंचावा दी। रोहिलोंके अभ्युदय पर वदाऊं और भी श्रीहीन हो गया था। १७१६ ई०में फरुखावादके नवाव महम्मद खाँ वङ्गसने वदाऊँ नगर तक जिलेका दक्षिणांश अपने अधिकारमें कर लिया था। वाकीके भाग पर रोहिल-सरदार अली-महम्मदने अपना दखल जमाया। रोहिलाओंने फरुखा-वादमें नवावको हराया और सव महाल भी अपने कावूमें किये। १७७४ ई०में मिरासपुर कटरामें हाफेज रहमत जव हार गया तव यहांके शासनकर्त्ता दाऊदखाँने अयोध्याके वजीर शुजाउद्दौलासे संधि कर ली। किन्तु वजीरने थोड़े ही दिन वाद उनके ऊपर हमला कर उनको वुरी तरह शिकस्त दी और उनका राज्य छीन लिया।

१८०१ई०में यह स्थान ब्रिटिश राज्यमें आया। इस समयसे गदर तक यहां और कोई नवीन घटना न घटी। मीरटके गदरका समाचार सुन यहांके सभी सिपाही वागी हो गये। अवदुल रहीम खाँ उस समय इस प्रदेशमें राज्य करते थे। किन्तु हिंदू और मुसलमानोंमें इस गोलमालके समय आपसमें वैमनस्य वढ़ा। ठाकुर राजाओं और मुसलमानोंके वीच दो वड़े भयंकर युद्ध हुये। इस युद्धमें हिंदू हारे। मालागढ़के वालि-दाद दुर्गके पतनके वाद विद्रोही-सर्दार वदाऊंमें लौटे। किन्तु थोड़े ही दिनोंके वाद उन्होंने फतेगढकी तरफ प्रस्थान किया। गुनौरके पास मुसलमानोंसे अहीर परास्त हुए। १८५८ ई०में मियाज महमद, सर जहोप ग्राण्टके हाथ हार स्वीकार कर वदाऊं शहरमें छिपे थे। उसके दलवलको जव ब्रिटिश सैन्यने अच्छी तरह हरा दिया, तव मुसलमान जरा सी भी देर रणक्षेत्रमें न ठहर सके। इसके वाद यह प्रदेश अंग्रेजोंके अधिकारमें आया।

वदाऊं, साहसवन और विल्सी ये यहांके प्रधान व्यवसायके केन्द्र स्थान हैं। नील, चीनी, और पीतलके वासनोंकी यहां पर ज्यादा विक्री होती है। ककोरा नामके स्थानमें हर साल कार्त्तिक संक्रान्तिको वड़ा भारी मेला लगता है। इस मेलेमें लाखों मनुष्यकी भीड़ होती है। चावपुर, सुखेला, लक्ष्मणपुर, वाड़चियामें एक और मेला लगता है। यहां अयोध्या रुहेलखण्डका एक स्टेशन है।

२ वदाऊं जिलेकी एक तहसील। यह अक्षा० २७° ५०'से २८°१२' उ० तथा देशा० ७८°४८'से ७९°१६' पू०के मध्य गङ्गाके उत्तरी किनारे पर वसा हुआ है। भूपरिमाण ३८५ वर्गमील और जनसंख्या ढाई लाखके करीव है। इसमें २ शहर और ३७७ ग्राम लगते हैं।

३ जिलेका प्रधान नगर और विचार-सदर। यह अक्षा० २८°२' उ० और देशा० ७९°७' पू०के मध्य विस्तृत है। जनसंख्या प्रायः ३१०३१ है। प्राचीन वदाऊं नगरके पास ही नवीन वदाऊं वसा हुआ है। पुराने वदाऊंमें दुर्ग और सुरम्य मकानोंके खंडहर दीख पड़ते हैं। मुसलमानाधिकारमें प्रायः चार सौ वर्ष तक वदाऊं शहरमें कातिहरकी राजधानी थी। उस समय इसकी शोभा और सम्पत्ति खूव वढ़ी चढ़ी थी। वलवन जव वदाऊं शहरको देखने आये थे तव यहां मालिक फैज शिरवाणी शासनकर्त्ता थे। ये मादक वस्तुओंको खा कर ऐसे उन्मत्त हो जाते थे, कि एक दिन इन्होंने अपने भृत्यको मार डाला था। भृत्यकी विधवा पत्नीने यह दास्तान् सम्राट् वलवन्को सुनाई। सम्राट् वलवन् इस करुण-कहानीको सुन वहुत विगड़े और उन्होंने उसे शहरके सदर दरवाजे पर लटकवा कर मरवा डाला।

इस नगरमें वास करनेके कारण मौला अवदुल कादेका वदाऊं नाम पड़ा। १००४ ई०में यहां उनकी मृत्यु हुई। उन्होंने १५७१ ई०में वदाऊंका अग्निकाण्ड अपनी आंखोंसे देखा था। उसके वाद जहांगीरके भाई कुतवुद्दीन चिम्तीने यहां पर वास किया था। उन्होंने यहांकी जुम्मा मसजिदका जीर्णोद्धार कराया। अवुल फजलने लिखा है, कि यहां पर अनेक साधु फकीरोंकी कव्र थीं। वहुतसी कव्र न मालूम कहां चली गई हैं। केवल समशी इदगाके पास वदरुद्दीन शाह विलायतकी जियार

और थोड़ीसी कब्रें देखी जाती हैं ; किन्तु उन कब्रोंका कैसा भी इतिहास नहीं पाया जाता। समशी ईदगा और जुम्मा मस्जिद ही यहांकी प्राचीन कीर्त्तियां हैं। शम्सुद्दीन अल्तमशने उसका निर्माण कराया था। ऐसी प्राचीन मुसलमान-कीर्त्ति भारतमें और कहीं भी दिखाई नहीं देती। इनके अलावा आजकलके जमानेमें भी राज्यकार्य तथा विद्या-प्रचारके लिये ब्रिटिश सरकारने अनेक घर बनवा दिये हैं।

वदाक्सान—अफगान तुर्किस्तानके अन्तर्गत एक पार्वतीय राज्य। यह अक्षा० ३५° ५०' से ३८° ३०' उ० तथा देशा० ६६° ३०' से ७४° २०' पू०के मध्य अवस्थित है। हिन्दूकुश पर्वतमाला इसके पास ही दण्डायमान है। कोकचा जातिका उपत्यका-निवास भी इस राज्यके अन्तर्गत है। यह विस्तीर्ण राज्य १६ जिलोंमें विभक्त है जिनमेंसे फैजाबाद ही सर्व प्रधान है। यहां मूल्यवान् पत्थर, ताम्र, गन्धक और सीसक आदि धातव पदार्थ पाया जाता है। १०वीं शताब्दीमें अरबी भौगोलिकोंने इस स्थानके मणित्वादिका उल्लेख किया है। यहां धान्यादि नाना प्रकारके शस्य और नाना सुमिष्ट फल उत्पन्न होते हैं। वद्कशी जाति यहांकी अधिवासी है। आचार-व्यवहारमें ये लोग काफरिस्तान, सागनम् और रोशानोंके जैसे हैं।

इस राज्यके प्राचीन इतिहासके सम्बन्धमें कोई विश्वस्त प्रमाण नहीं मिलता। जनश्रुतिसे मालूम होता है, कि आलेकसन्दरके वंशज वदाकसानके पूर्व शासक थे। फिर कोई कोई कहते हैं, कि सम्राट् बाबरने अपने लड़के मिर्जा हिन्दल पर वदाकसानका राज्यभार सौंपा। हिन्दलके भारत आने पर सम्राट्के जेनरल मिर्जा सुलेमान राज्याधिकारी हुए। उनके मरने पर उनके लड़के राजगद्दी पर बैठे। १८४० ई०में कतघानके मीर मुराद् वेगने इस पर अपना दखल जमाया। कतघान और अफगान-युद्धके समय वदाक्सान काबुलका करद-राज्य हो गया।

वदान (हिं० स्त्री०) प्रतिज्ञा पूर्वक पहलेसे किसी बातका स्थिर किया जाना, किसी बातके होनेका पक्का।

वदावदी (हिं० स्त्री०) दो पक्षोंकी एक दूसरेके विरुद्ध प्रतिज्ञा या हठ, लाग डाट, होड़ा होड़ी।

वदाम (हिं० पु०) बादाम देखो।

वदामी (फा० वि०) १ बादामी देखो। २ कौड़ियालेकी जातिका एक पक्षी, एक प्रकारका किलकिला।

वदारिया—युक्त प्रदेशके एटा जिलान्तर्गत एक गण्डग्राम। यह बूढ़ी गङ्गाके किनारे अवस्थित है। इसके दूसरे किनारे सरोन नगर है। नदी पर लोहेका एक सुन्दर पुल बना हुआ है। म्युनिसपलिटीके अधीन रहनेके कारण यह स्थान भी नगरमें गिना जाता है।

वदिया-उल-जमानखाँ—वङ्गालके अन्तर्गत वीरभूमका मुसलमान शासनकर्त्ता। इनके पिताका नाम आसद-उल्ला था। पिताकी मृत्युके बाद ये सन् ११२५ सालमें राज सिंहासन पर बैठे। उसी समय इन्हें मुर्शिदाबादके नवाब मुर्शिदकुलीखाँसे सनद मिली। भास्कर पण्डितकी अधिनायकतामें मरहठोंने वङ्गालके पश्चिम भाग पर आक्रमण करनेके लिये केंदुआडंगाके निकट छावनी डाली थी। वदिया उल्जमान्ने वर्द्धमान-राज प्रभृतिकी सहायता पा कर मरहठोंको कटोआसे मेदिनीपुर तक खदेरा। वीरभूम देखो।

वदी (हिं० स्त्री०) १ कृष्ण पक्ष, अँधेरा पाख। (फा० स्त्री०) २ अपकार, बुराई।

वदे (हि० अव्य०) १ लिये, वास्ते। २ दलाली समेत दाम।

वदौनी—मुन्तखब-उल्-तवारिखके प्रणेता एक विख्यात मुसलमान ग्रन्थकार। इनका प्रकृत नाम था शेख अबदुल कादिर वदौनी। रणस्तम्भगढ़के निकट तोड़ग्राममें इनका जन्म हुआ था। पीछे वदाऊंमें आ कर बस जानेके कारण इनका वदौनी नाम पड़ा। इनके पिताका नाम मुलुकशाह था। नगरवासी शेख मुबारकसे इन्होंने लिखना पढ़ना सीखा था। सम्राट् अकबरशाहने इन्हें अपनी सभामें बुलाया और अरबी तथा संस्कृत भाषाके ग्रन्थादिका पारसी भाषामें अनुवाद करनेको कहा। इन्होंने दरबारमें रह कर मुआजम-उल-बुलन्दान, जमीउर-रशीदी और रामायणका अनुवाद किया। नीति और धर्म-शिक्षाके लिये इन्होंने नजात् उर-रशीदकी रचना की थी। अलावा इसके ये महाभारतके दो पर्वोंका अनुवाद और ६६६ हिजरीमें काश्मीरका संक्षिप्त इतिहास

प्रणयन कर गये हैं। बुढ़ापा आने पर ये सम्राट् से अनुमति ले कर बदाऊँ गये। वहां १००४ हिजरीमें मुन्तखब-उल-तवारिख की रचना कर इन्होंने अक्षय कीर्त्ति प्राप्त की। कविता रचनाके सववसे लोग इन्हें कादिरी कहा करते थे। इनका जन्म ९४७ और मरण १००४ हिजरीमें हुआ था।

वदेश्वर—राजपूतानेके उदयपुर राज्यान्तर्गत एक गण्ड-ग्राम। यह चित्तोरके दक्षिणपश्चिम पर्वतमालाके ऊपर अवस्थित है। इसके चारों ओर दीवार दौड़ गई है। इसकी रक्षाके लिये पर्वत पर एक दुर्ग भी वनाया हुआ है।

वदौलत (फा० क्रि० वि०) कृपासे, आसरेसे। २ कारणसे, सववसे।

वदौसा—युक्तप्रदेशके वँदा जिलेकी एक तहसील। यह अक्षा० २५°३' से २५° २७' उ० तथा देशा० ८०° ५२' पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ३३३ वर्गमील और जनसंख्या हजारसे ऊपर है। इसमें १३२ ग्राम लगते हैं, शहर एक भी नहीं है। वघैन नदी तहसीलके दक्षिण-पश्चिम दिशासे वह गई है।

वद्दल (हिं० पु०) वादल देखो।

वद्दू (हिं० पु०) १ अरवकी एक असभ्य जाति जो प्रायः लूटपाट किया करती है। (वि०) २ वदनाम।

वद्ध (सं० त्रि०) वध्यतेस्म इति वन्ध कर्मणि-क्त। १ वन्धनयुक्त, वँधा हुआ। पर्याय—सन्दानित, मूर्ण, उद्दित, सन्दित, सित, निगड़ित, नद्ध, कीलित, यन्त्रित, संयत। २ अज्ञानमें फँसा हुआ, संसारके वंधनमें पड़ा हुआ। ३ वैठा हुआ, जमा हुआ। ४ जुड़ा हुआ। ५ निर्द्धारित, निर्दिष्ट, ठहराया हुआ। ६ जिस पर किसी प्रकारका प्रतिवंध हो, जिसके लिये कोई रोक हो। ७ जिसकी गति, क्रिया, व्यवहार आदि परिमित और व्यवस्थित हो।

वद्धक (सं० पु०) वन्दी, कैदी।

वद्धकोष्ठ (सं० पु०) मल अच्छी तरह न निकलनेकी अवस्था या रोग, पेटका साफ न होना।

वद्धगुद (सं० क्ली०) वद्धं गुदं पायुर्येन। उदररोगविशेष। इसका लक्षण—जिसकी अन्त्रनाड़ी अन्न, शाक, शालुका द्वारा आच्छादित रहती है, उसका मल कुपित हो कर सम्मार्जनीक्षिप्त तृणादिकी तरह धीरे धीरे अन्त्रनाड़ीके भीतर संचित होता है। गुह्यद्वारमें मल रुक जाता है और यदि वहुत कष्टसे होता भी है, तो थोड़ा। इससे हृदय और नाभिके मध्यस्थलमें उदर परिवर्द्धित हो जाता है। (भावप्र०) सुश्रुतमें लिखा है, कि अन्न वा उपलेपी द्रव्य वा क्षुद्र अश्मखण्डका संयोग रहे वा न रहे, यदि अंतमें दूषित मल जमा रह कर सोपानश्रेणीकी तरह (अस्थि-मालाक्रमसे) नाड़ीमें अवस्थित रहे और उससे मलाधारमें पुरीष रुक कर वहुत कष्टसे थोड़ा थोड़ा निकले तथा हृदय और नाभिके मध्यका ऊपरी भाग वढ़ आवे और वमनमें विष्ठा-सी गन्ध हो, तो वद्धगुदरोग होता है। (सुश्रुतनि० ७ अ०)

वद्धगुदोदर (सं० पु०) पेटका एक रोग। इसमें हृदय और नाभिके वीच पेट कुछ वढ़ आता है और मल रुक रुक कर थोड़ा थोड़ा निकलता है। वद्धगुद देखो।

वद्धजिह्व (सं० त्रि०) जिन्हें जीभ हिलानेमें कष्ट मालूम होता है।

वद्धपरिकर (सं० वि०) कमर वाँधे हुए, तैयार।

वद्धपुरीष (सं० त्रि०) जिसका मल रुक गया हो।

वद्धपिण्ड (सं० क्ली०) वद्धपाणि, मुट्ठी।

वद्धफल (सं० पु०) वद्धानि फलानि यस्य। करञ्ज-वृक्ष।

वद्धमुष्टि (सं० त्रि०) वद्धा दृढ़ा दानान्निवृत्ता वा मुष्टि-र्यस्येति। १ दृढ़मुष्टि, जिसकी मुट्ठी वँधी हो। २ कृपण, कंजूस।

वद्धमूल (सं० त्रि०) वद्धं मूलं यस्येति। दृढ़मूल उत्पाटला-नई मूल, जिसने जड़ पकड़ ली हो।

वद्धयुक्ति (सं० स्त्री०) वंशी वजानेमें उसके छिद्रोंसे उँगली हटा कर उसे खोलनेकी क्रिया।

वद्धरसाल (सं० पु०) वद्धो रसेन आवृतः अतएव रसालः रसवान्। उत्तम जातिका एक प्रकारका आम। पर्याय—चक्रलाम्र, मध्वाम्र, सितजाम्रक, वनेज्य, मन्मथानन्द, मदनेच्छाफल। इसके कोमलफलका गुण कटु, अम्ल, पित्त और दाहवर्द्धक, स्वादु, मधुर पुष्टि, वीर्य और वलप्रद माना गया है। (राजनि०)

वद्धवर्चस (सं० त्रि०) मलरोधक।

बद्धविट्क (सं० लि०) बद्धपुरीष, जिसका मल रुक गया हो।

बद्धविन्मूत्र (सं० लि०) जिसका पुरीष और मूत्र रुक गया हो।

बद्धवीर (सं० लि०) जिसकी सेना आवद्ध हुई हो।

बद्धशिख (सं० लि०) बद्धा शिखा चूड़ा यस्येति। १ जिसकी शिखा या चोटी बँधी हो। विना शिखा बांधे जो कुछ धर्म कर्म किया जाता है वह निष्फल होता है।

"सदोपवीतिना भाव्यं सदा बद्धशिखेन तु।
विशिखो व्युपवीतश्च यत्करोति न तत्कृतम्॥"
(प्रायश्चि०)

(पु०) शिशु, बच्चा।

बद्धशिखा (सं० स्त्री०) बद्धा शिखा यस्याः। १ उच्चटा, भूम्यामलकी। बद्धा शिखा केशकलापो यस्याः। २ सम्बन्धकेशा, वह स्त्री जिसके केश बंधे हों। ३ लशुन।

बद्धसूतक (सं० पु०) रसेश्वर दर्शनके अनुसार बद्ध रस या पारा जो अक्षत, लघुद्रावी, तेजोविशिष्ट, निर्मल और गुरु कहा गया है। रसेश्वर दर्शनमें देहको स्थिर या अमर करने पर मुक्ति कही गई हैं। यह स्थिरता रस या पारेकी सिद्धि द्वारा प्राप्त होती है।

बद्धामयपति (सं० पु०) अपथक औषध।

बद्धी (हिं० स्त्री०) १ डोरी, रस्सी, तस्मा। २ माला या सिकड़ीके आकारका चार लड़ोंका एक गहना। उन चार लड़ोंमेंसे दो लड़ें तो गलेमें होती हैं और दो दोनों कंधों परसे जनेऊकी तरह होती हुई छाती और पीठ तक गई रहती हैं।

बद्धोदर (सं० पु०) बद्धगुद रोग। बद्धगुद देखो।

वध (सं० पु०) हन् घञ्, वधादेशः। प्राणवियोगसाधन-व्यापार, हत्या, हनन, मार डालना। जिससे प्राण विनष्ट हो, वही वध-पदवाच्य है। जो वधकार्यका अनुष्ठान करते हैं वे नरकगामी होते हैं। इसीसे शास्त्रमें वधको अत्यन्त निन्दित बतलाया गया है। केवल वध-कारी ही नरकगामी होता है सो नहीं, प्रयोजक, अनुमन्ता, अनुग्राहक और निमित्ती ये चार भी वधकारीके साथ निरयगामी होते हैं।

शास्त्रमें वध अर्थात् हिंसामात्रको ही निषिद्ध बतलाया है। फिर दूसरे शास्त्रमें यज्ञमें पशुवधका उल्लेख देखनेमें आता है। शास्त्रमें लिखा है, कि यज्ञमें यदि पशुवध किया जाय, तो कोई पाप नहीं होगा। सांख्यदर्शनमें इस विषयकी मीमांसा की गई है, वह इस प्रकार है:—श्रुतिमें हिंसामात्र ही निषिद्ध है अर्थात् कोई भी हिंसा न करे, ऐसा कहा गया है। फिर अन्य श्रुतिका मत है, कि यज्ञमें पशुवध करे। इस प्रकार पहले तो दोनों श्रुतियोंमें विरोध देखा जाता है, पर थोड़ा गौर कर यदि देखा जाय तो कुछ भी विरोध मालूम नहीं पड़ता। क्योंकि हिंसा वा पशुवध अनिष्टसम्पादक और यज्ञीय पशुवध यज्ञका उपकारक है। यज्ञमें जिस प्रकार दश कार्य करने होते हैं, पशुवध भी उसी प्रकार उनमेंसे एक है। यथाविहित यज्ञके समाप्त होने पर जिस प्रकार यज्ञके लिये स्वर्ग होता है, उसी प्रकार पशुवधके लिये नरक भी होता है। अतएव यज्ञमें इष्ट और अनिष्ट दोनों ही अवश्यम्भावी हैं। बहुत सुखभोग करनेके बाद यदि दुःख भोगना पड़े तो उसकी गिनती दुःखमें नहीं होती, इसीलिये वे लोग वधजन्य दुःखको दुःख नहीं मानते और इससे नरक होता है सो भी नहीं। अतएव दोनों श्रुतियां एक दूसरेके विरुद्ध नहीं हैं। किन्तु तिथितत्त्वमें वैध-हिंसाविचारकी जगह सांख्यका यह मत खण्डित हुआ है। धर्मशास्त्रका अभिप्राय यह है, कि वैधातिरिक्त वध ही पापका कारण है, वैधवध अर्थात् यज्ञार्थ पशु-हिंसामें पाप नहीं होगा, वरन् यज्ञकी सम्पूर्णताके लिये एक 'अपूर्व' होगा। वे कहते हैं—

"यज्ञार्थं पशवः सृष्टाः स्वयमेव स्वयम्भुवा।
अतस्त्वां घातयिष्यामि तस्माद्यज्ञे वधोऽवधः॥"
(तिथितत्त्व)

यज्ञके लिये स्वयं स्वयम्भूने पशुओंकी सृष्टि की है। अतएव यज्ञमें यह पशुवध अवध स्वरूप है अर्थात् वध-जन्य कोई पाप नहीं होगा।

तत्त्वकौमुदी और तिथितत्त्वकी विचारप्रणालीकी यदि विशदरूपसे पर्यालोचना की जाय, तो तिथितत्त्वकी यह उक्ति समीचीन प्रतीत नहीं होती। हिंसा विशेष विवरण हिंसा शब्दमें देखो।

वैधातिरिक्त हिंसामात्र ही अनिष्टसाधक है, इसमें जरा भी संशय नहीं और न इसमें किसीका मतभेद ही देखा जाता है। दश आदमी मिल कर यदि प्राणिवध करने जांय और उनमेंसे केवल एक आदमी वध कर डाले तो सभीको समान पाप होता है, वे सबके सब नरक जाते हैं। हन्ता अधिक पापभागी होगा, सो नहीं।

"बहूनामेककार्याणां सर्वेषां शस्त्रधारिणां।
यद्येको घातकस्तत्र सर्वे ते घातकाः स्मृताः॥"
(मनु)

यदि कहीं पर एक प्राणिवध करनेसे बहुतों प्राणीकी रक्षा होती हो तो वह वध पापमें गणनीय नहीं है।
(प्रायश्चित्तवि०)

इसके अतिरिक्त जो सुवर्ण चौर, सुरापायी, ब्रह्मघाती, गुरुपत्नीगामी और आत्मघाती हैं उनका वध भी पाप-जनक नहीं है।

आततायि-शत्रुका वध करनेसे पाप नहीं लगता। अग्निदाता, विषदाता, शस्त्रपाणि और धन, क्षेत्र तथा दारा इनके अपहरणकारीको आततायी कहते हैं।

वधक (सं० त्रि०) वध-क्कुन। १ वधकर्त्ता, वध करनेवाला। २ हिंस्र, हिंसा करनेवाला। (क्ली०) ३ व्याधि। ४ मृत्यु।

वधकृत (सं० त्रि०) वधं करोति कृ-क्किप् तुक्। वधकर्त्ता, वध करनेवाला।

वधगराड़ी (हिं० स्त्री०) रस्सी बटनेका औजार।

वधत्र (सं० क्ली०) वध करणे कत्रन्। अस्त्र, हथियार।

वधना (हिं० क्रि०) १ वध करना, हत्या करना। (पु०) २ मट्टी या धातुका टोंटीदार लोटा जिसका व्यवहार अधिकतर मुसलमान करते हैं। ३ चूड़ीवालोंका एक औजार।

वधभूमि (सं० स्त्री०) वह स्थान जहां अपराधियोंको प्राणदण्ड दिया जाता है।

वधस्थली (सं० स्त्री०) वधस्य स्थली ६तत्। श्मशान।

वधाई (हिं० स्त्री०) १ वृद्धि, बढ़ती। २ वह आनन्द मंगल जो पुत्रजन्म पर किया जाता है। ३ मंगलाचार, मंगल अवसरका गाना बजाना। ४ उपहार जो मंगल या शुभ अवसर पर दिया जाय। ५ इष्ट मित्रके शुभ, आनन्द या सफलताके अवसर पर आनंद प्रकट करनेवाला वचन या संदेसा, मुबारकबाद। ६ किसी सम्बन्धी, इष्ट मित्र आदिके यहां पुत्र होने पर आनन्द प्रकट करनेवाला वचन या संदेशा। ७ आनन्द मंगल, चहल पहल।

वधाङ्गक (सं० क्ली०) वधः अङ्गमत्र कप्। कारागार।

वधाना (हिं० क्रि०) वध करना, दूसरेसे मरवाना।

वधाया (हिं० पु०) वधाई।

वधावना (हिं० पु०) वधावा देखो।

वधावा (हिं० पु०) १ वधाई। २ उपहार जो संबंधियों या इष्टमित्रोंके यहांसे पुत्रजन्म, विवाह आदि मंगल अवसरों पर आता है। ३ मंगलाचार, आनंद मंगलके अवसरका गाना बजाना।

वधिक (हिं० पु०) १ वध करनेवाला, मारनेवाला। २ प्राणदण्ड पाये हुएका प्राण निकालनेवाला, जल्लाद। ३ व्याध, बहेलिया।

वधिया (हिं० पु०) १ वह बैल या और कोई पशु जो अंडकोश कुचल या निकाल कर षंड कर दिया गया हो, खस्सी, आख्ता। २ एक प्रकारका मीठा गन्ना।

वधियाना (हिं० क्रि०) वधिया करना, वधिया बनाना।

वधिर (सं० त्रि०) वध्नाति कर्णमिति वन्ध- (इषिमदि-मुदीति। उण् १।५२) इति किरच्। श्रवणेन्द्रियरहित, बहरा। संस्कृत पर्याय—एड़, कल्ल श्रवणापटु, उच्चैः-श्रवा। कुछ व्यक्ति जन्मसे ही वधिर होते हैं और कुछ अधिक दिन कर्णरोग भुगत कर। इसका लक्षण—

"यदा शब्दवहं वायुः श्रोत आवृत्य तिष्ठति।
शुद्धः श्लेष्मान्वितो वापि वाधिर्यं तेन जायते॥"
(माधवनि०)

जब वायु स्वयं अथवा कफके साथ मिल शब्दवह कर्णस्रोतको आवृत करके रोगीकी श्रवणशक्तिको नष्ट कर डालती है, तब वाधिर्य उत्पन्न होता है। बालक और वृद्ध व्यक्तिको यह रोग होनेसे असाध्य समझना चाहिये। यदि यह बहुत दिन तक बद्धमूल हो, तो सबोंके लिये असाध्य है। वाधिर्य देखो। जो जन्मसे ही वधिर है वह पितृ धनका अधिकारी नहीं हो सकता। "अनंशौ क्लीवपतितौ जात्यन्धौ बधिरौ तथा।" (मनु) जो क्लीव, पतित, जन्मान्ध और जन्मवधिर हैं वे अनंश हैं अर्थात् अंशभागी नहीं हो सकते। २ सुगन्धतृण।

वधिरता (सं० स्त्री०) वधिरस्य भावः तल्-टाप्। वाधिर्य, बहरापन।

वधिरान्ध (सं० त्रि०) १ वधिर और अन्ध, बहरा और अंधा। (पु०) २ कश्यपके पुत्र नागभेद।

वधिरिमन् (सं० पु०) वधिरस्य भावः (वर्णदृढादिभ्यः ष्यञ् च पा ५।१।१२३) वधिरता, बहरापन।

वधू (सं० स्त्री०) बध्नाति प्रेम्ना या वंध-ऊ-नलोपश्च अन्तःस्थवादी तु वहति संसारभारं उह्यते भर्त्रादिभिरिति वा वह-(वहधंश्च। उण् १।८५ इति ऊ धश्चान्तादेशः। १ नारी, औरत। २ नवोढा, नवविवाहिता स्त्री। ३ स्नुषा, पतोह। ४ पृक्का। ५ भार्या, पत्नी। ६ शठी, कचूर। ७ शारिवौषधि, अनन्तमूल।

वधूक (हिं० पु०) 'बंधूक' देखो।

वधूजन (सं० पु०) वधूरेव जनः। योषित्, नारी, स्त्री।

वधूटशयन (सं० क्ली०) वधूटीनां शयनमिव पृषोदरादित्वादिकारस्याकारः। गवाक्ष, झरोखा।

वधूटी (सं० स्त्री०) अल्पवयस्का वधूः अल्पार्थे टि, पक्षे ङीप्, यद्वा वधू (वयस्य चरम इति वाच्यं। पा ४।१।२०) इत्यस्य वार्त्तिकोक्त्या पक्षे ङीप्। १ पुत्रभार्या, पुत्रकी स्त्री, पतोह। २ सुवासिनी, सौभाग्यवती स्त्री। ३ नई आई हुई बहू।

वधूत्सव (सं० पु०) वध्वाः उत्सवः आर्त्तवं। स्त्रियोंके रजोदर्शन।

वधूत्सवप्रसव (सं० पु०) वध्वा उत्सव आर्त्तवः स इव प्रसवः पुष्पादिर्यस्य। रक्ताम्लान।

वधूरा (हिं० पु०) अंधड़, ववंडर।

वधोद्यत (सं० त्रि०) वधाय उद्यतः। मारणार्थ उपयुक्त, मारनेके लिये तैयार।

वध्य (सं० त्रि०) १ वधार्ह, मारनेके योग्य। वन्धकर्मणि-क्यप्। २ कारोरोद्धव्य। आधारे-क्यप्। ३ बन्धनस्थान।

वध्यपाल (सं० पु०) वध्यं कारागारं पालयति पालि-अण्, उपपदस०। कारागृहरक्षक।

वध्यभूमि (सं० स्त्री०) हन भावे यत्, वधादेशः, वध्यस्य भूमिः। श्मशान, फांसी देनेका स्थान।

वध्योग (सं० पु०) अभिषेव।

वध्र (सं० क्ली०) वध्नात्यनेनेति वन्ध (सर्वधातुभ्यष्ट्रन् उण् ४।१५८) इति ष्ट्रन्। सीसक, सीसा।

वध्री (सं० स्त्री०) वध्नात्यनया वन्ध-ष्ट्रन् पित्वात्। चर्मरज्जु, बद्धी।

वन (हिं० पु०) वन देखो।

वनआलू (हिं० पु०) पिण्डालू और जमीकन्द आदिकी जातिका एक प्रकारका पौधा। यह नेपाल, सिक्किम, बङ्गाल, वरमा और दक्षिण भारतमें होता है। यह प्रायः जंगली होता है और बोया नहीं जाता। इसकी जड़ प्रायः जंगली या देहाती लोग अकालके समय खाते हैं।

वनकंडा (हिं० पु०) वह कंडा जो वनमें पशुओंके मलके आपसे आप सूखनेसे तैयार होता है, अरना कंडा।

वनक (हिं० स्त्री०) वनकी उपज, जंगलकी पैदावार।

वनककड़ी (हिं० स्त्री०) वनककंटी, पापड़ेका पेड़। यह सिक्किमसे ले कर शिमले तक पाया जाता है। इस पौधेसे एक प्रकारका गोंद और एक प्रकारका रंग भी निकाला जाता है। गोंद दवाके काममें आता है।

वनकटी (हिं० स्त्री०) १ एक प्रकारका बांस। पहाड़ी लोग इसके टोकरे बनाते हैं। २ जंगल काट कर उसे आबाद करनेका स्वत्व या अधिकार जो जमींदार या मालिककी ओरसे किसानों आदिको मिलता है।

वनकर (हिं० पु०) १ एक प्रकारका अस्त्र संहार, शत्रुके चलाए हुए हथियारको निष्फल करनेकी एक युक्ति। २ जंगलमें होनेवाले पदार्थों अर्थात् लकड़ी घास आदिकी आमदनी। ३ सूर्य।

वनकल्ला (हिं० पु०) एक प्रकारका जंगली पेड़।

वनकस (हिं० पु०) एक प्रकारकी घास। इसे वनकुस, वंभनी, मोय और बाभर भी कहते हैं। इससे रस्सियां बनाई जाती हैं।

वनकोरा (हिं० पु०) लोनियाका साग, लोनी।

वनखंड (हिं० पु०) वनप्रदेश, जङ्गलका कोई भाग।

वनखंडी (हिं० स्त्री० १ वनका कोई भाग। २ छोटासा वन। (पु०) ३ वनमें रहनेवाला, जंगलमें रहनेवाला।

वनखरा (हिं० पु०) वह भूमि जिसमें पिछली फसलमें कपास बोई गई हो।

वनखेरी—मध्य प्रदेशके होसङ्गाबाद जिलान्तर्गत सोहाग-

पुर तहसीलका एक प्रधान नगर। यहां ग्रेट इण्डियन रेलपथका एक स्टेशन है।

वनखोर (हिं० पु०) कौंर नामका पेड़। कौंर देखो।

वनगणपल्ली—१ मन्द्राजप्रदेशके कर्नूल जिलान्तर्गत एक सामन्तराज्य। यह अक्षा० १५° २´ ३०´´ से १५° २८´ ५०´´ उ० तथा देशा० ७८° १´ ४४´´ से ७८° २५´ ३०´´ पू० के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण २५५ वर्गमील है। कुन्दर नदीके पश्चिम अववाहिका प्रदेश ले कर यह राज्य संगठित है। जरेरू नामक नदी इसके मध्यदेश हो कर वहती है। इसमें १ शहर और ६४ ग्राम लगते हैं। वनगणपल्ली नगर ही इसकी राजधानी है। चतुर्थांश जमीन इस राज्यकी परती रहती है। अवशिष्टांशमें नील, रुई और उड़द उत्पन्न होती है। सूती और रेशमी कपड़ेका भी विस्तृत कारवार है।

१७वीं शताब्दीमें मुगलसम्राट् औरङ्गजेवने अपने वजीरके लड़के महम्मद वेग खाँको यह स्थान समर्पण किया। तीन पीढ़ी तक वेग-वंशधरोंने यहां राज्य किया। अन्तिम राजा अपुत्रक थे, इस कारण निजामने १७६४ ई०में यह सम्पत्ति वर्त्तमान अधिकारियोंके पूर्वपुरुषको दान कर दी थी। १८०० ई०में निजामने इसका शासनभार अंगरेजोंके हाथ सौंपा। सरदारोंकी शासनविशृङ्खला देख कर १८२५-१८४८ ई० तक कड़ापाके राजस्व-संग्राहक (Collector)-ने इसका परिचालन-भार ग्रहण किया। पीछे मन्द्राजके गवर्नरने फिरसे यह सरदारोंके हाथ सौंपा। तभीसे दीवानी और फौजदारी शासनावली सरदारके द्वारा परिचालित होती आ रही है। १८७६ ई०में भारतके भूतपूर्व सम्राट् ७म एडवर्ड जव भारतवर्ष पधारे थे, उस समय उन्होंने यहांके सरदारको नवावकी उपाधि दी थी। राजाके वड़े लड़के ही राज्यके उत्तराधिकारी होते हैं। पुत्रके अभावमें सरदार किसी आत्मीयको सिंहासन पर विठा सकते हैं। राजस्वका अधिकांश नवावके आत्मीय १८ जागीरदारोंके भरण पोषणमें खर्च होता है। वची खुची आयसे वे अपना काम चलाते हैं।

२ उक्त सामन्तराज्यका प्रधान नगर और सदर। यह अक्षा० १५° १५´ उ० तथा देशा० ७८° २०´ पू०के मध्य अवस्थित है। यहां नवावका प्रासाद विद्यमान है। नगरसे थोड़ी दूर पर हीरेकी एक खान है। १८वीं शताब्दीमें उससे प्रचुर हीरा निकाला गया था। १८००-१८५० ई० तक यहां अति मूल्यवान् पत्थर पाये गये थे, किन्तु उसके वादसे वहुत कम मिलने लगे। अभी जितना पत्थर निकाला जाता है उससे केवल मजदूरोंका खर्च भर चलता है।

वनगाँव—१ वङ्गालके यशोर जिलेका उपविभाग। यह अक्षा० २३° २६´ उ० तथा देशा० ८८° ४०´ से ६६° २´ पू० के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ६४६ वर्गमील और जनसंख्या ३ लाखसे ऊपर है। इसमें १ शहर और ७६४ ग्राम लगते हैं।

२ उक्त उपविभागका एक नगर। यह अक्षा० २३° ३´ उ० तथा देशा० ८८° ५०´ पू०के मध्य अवस्थित है। जनसंख्या प्रायः ३६६० है। यहां वेङ्गल सेण्ट्रल रेल कम्पनीका कारखाना और ट्राफिक आफिस विद्यमान है।

वनगाव (हिं० पु०) १ एक प्रकारका वड़ा हिरन। इसे रोझ भी कहते हैं। २ एक प्रकारका तेंदू वृक्ष।

वनचर (हिं० पु०) १ जंगलमें रहनेवाला पशु, वन्य पशु। २ वनमें रहनेवाला मनुष्य, जंगली आदमी। ३ जलमें रहनेवाला जीव।

वनचरी (हिं० स्त्री०) १ एक प्रकारकी जंगली घास जिसकी पत्तियां ज्वारकी पत्तियोंकी तरह होती हैं। (पु०) २ जंगली पशु।

वनचारी (हिं० पु०) १ वनमें घूमनेवाला। २ वनमें रहनेवाला आदमी। ३ जङ्गली जानवर। ४ मछली, मगर, घड़ियाल, कछुवा आदि जलमें रहनेवाला जंतु

वनचौंर (हिं० स्त्री०) नेपालके पहाड़ोंमें रहनेवाली एक प्रकारकी जंगली गाय। इसकी पूंछकी चँवर वनाई जाती है, सुरा गाय।

वनज (हिं० पु०) १ कमल। २ शङ्ख, कमल, मछली आदि जलमें होनेवाला पदार्थ। ३ वाणिज्य, व्यवसाय।

वनजर (हिं० स्त्री०) वंजर देखो।

वनजात (हिं० पु०) कमल।

वनजारा (हिं० पु०) १ वह व्यक्ति जो बैलों पर अन्न लाद कर बेचनेके लिये एक देशसे दूसरे देशको जाते हैं, टाँडा लादनेवाला मनुष्य। विशेष विवरण वनजार शब्दमें देखो। २ व्यापारी, वनिया।

वनज्योत्स्ना (सं० स्त्री०) माधवी लता।

वनड़ा (हिं० पु०) विलावल रागका एक भेद। यह राग झूमड़ा ताल पर गाया जाता है।

वनड़ाजैत (हिं० पु०) एक शालक राग जो रूपक ताल पर वजता है।

वनड़ादेवगारी (हिं० पु०) एक शालक राग जो एक ताले पर वजाया जाता है।

वनत (हिं० स्त्री०) १ रचना, वनावट। २ अनुकूलता, सामञ्जस्य, मेल। ३ वह वेल जो मखमल वा किसी रेशमी कपड़े पर सलमें सितारेकी वनी होती है। इसके दोनों ओर हाशिया होता है। जिस वेलके एक ही ओर हाशिया होता है उसे चपरास कहते हैं।

वनतुरई (हिं० स्त्री०) वंदाल।

वनतुलसी (हिं० स्त्री०) ववई नामका पौधा। इसकी पत्ती और मंजरी तुलसीकी सी होती है।

वनदाम (हिं० स्त्री०) वनमाला।

वनदेवी (हिं० स्त्री०) किसी वनकी अधिष्ठात्री देवी।

वनधातु (सं० स्त्री०) गेरू या और कोई रंगीन मिट्टी।

वनना (हिं० क्रि०) १ रचा जाना, तैयार होना। २ किसी एक पदार्थका रूप परिवर्त्तित करके दूसरा पदार्थ हो जाना। ३ किसी दूसरे प्रकारका भाव या संबंध रखनेवाला हो जाना। ४ किसी पदार्थका ऐसे रूपमें आना जिसमें वह व्यवहारमें आ सके। ५ ठीक दशा या रूपमें आना। ६ संभव होना, हो सकना। ७ दुरुस्त होना, मरम्मत होना। ८ आविष्कार होना, निकलना। ९ प्राप्त होना, वसूल होना। १० अच्छी या उन्नत दशामें पहुंचना, धनी मानी हो जाना। ११ कोई विशेष पद, मर्यादा या अधिकार प्राप्त करना। १२ समाप्त होना, पूरा होना। १३ खूब सिंगार करना, सजना। १४ महत्वकी ऐसी मुद्रा धारण करना जो वास्तविक न हो। १५ उपहासास्पद होना, मूर्ख ठहरना। १६ स्वरूप धारण करना। १७ सुयोग मिलना, सुअवसर मिलना। १८ मित्रभाव होना, आपसमें निभना।

वननिधि (हिं० पु०) समुद्र।

वनपट (हिं० पु०) वृक्षोंकी छाल आदिसे वनाया हुआ कपड़ा।

वनपति (हिं० पु०) सिंह, शेर।

वनपथ (हिं० पु०) १ समुद्र। २ वह रास्ता जिसमें जल वहुत पड़ता हो। ३ वह रास्ता जिसमें जंगल वहुत पड़ता हो।

वनपाट (हिं० पु०) जंगली सन, जंगली पटुआ।

वनपाल (हिं० पु०) वन या वागका रक्षक, माली।

वनपाश—वर्द्धमान जिलेके वर्द्धमान उपविभागके अन्तर्गत एक गण्ड ग्राम। यहां वढ़िया पीतलका वरतन, घंटा, छुरी, कैंची आदि वनती हैं।

वनप्रिय (हिं० पु०) कोकिल, कोयल।

वनफल (हिं० पु०) जंगली मेवा।

वनफ्शई (फा० वि०) वनफ्शेके रंगका।

वनफ्शा (फा० पु०) नेपाल, काश्मीर और हिमालय पर्वतमें होनेवाली एक प्रकारकी वनस्पति जो ५००० फुट तककी ऊंचाई पर होती है। इसका पौधा वहुत छोटा होता है। इसमें पतली और छोटी शाखाएं निकलती हैं जिनके सिरे पर वैंगनी या नीले रंगके खुशवूदार फल होते हैं। इसके पत्ते अनारके पत्तोंसे वहुत कुछ मिलते जुलते हैं। इसकी जड़, फूल और पत्तियां तीनों ही दवाके काममें आते हैं। साधारणतः फूल और पत्तोंका व्यवहार जुकाम और ज्वर आदिमें होता है। जड़ दस्तावर दवाओंके साथ मिला कर दी जाती है। फूल और जड़का व्यवहार वमन करनेके लिये भी होता है और खाली फूल पेशाव लानेवाले माने जाते हैं।

वनवकरा (हिं० पु०) काश्मीर और भूटान आदि ठंढे देशोंमें मिलनेवाला एक प्रकारका पक्षी। यह भूरे रंगका और लगभग एक फुट लंवा होता है। यह घास और पत्तियोंसे जमीन पर नीची झाड़ियोंमें घोंसला वनाता है। अप्रिलसे जून तक इसके अंडे देनेका समय है। मादा एक वारमें तीन चार अंडे पारती है।

वनवास (हिं० पु०) १ वनमें वसनेकी क्रिया या अवस्था। २ प्राचीन कालका देशनिकालेका दण्ड।

वनवासी (हिं० पु०) १ वनमें रहनेवाला, वह जो वनमें वसे। २ जंगली।

वनवाहन (हिं० पु०) जलयान, नाव।

वनविलाव (हिं० पु०) विल्लीकी जातिका एक जंगली जंतु। यह उत्तर भारत, वङ्गाल और उड़ीसामें मिलता है। यह विल्लीसे कुछ वड़ा होता है और इसके हाथ पैर छोटे तथा दृढ़ होते हैं। इसका रंग मटमैला भूरा होता है और इसके शरीर पर काले लंबे दाग तथा पूँछ पर काले छल्ले होते हैं। यह प्रायः दलदलोंमें रहता है और वहीं मछली पकड़ कर खाता है। इसका रूप वहुत डरावना होता है। कभी कभी यह कुत्तों या वछड़ों पर भी आक्रमण कर वैठता है।

वनमानुस (हिं० पु०) १ वंदरोंसे कुछ ऊँचा और मनुष्यसे मिलता जुलता कोई जंगली जन्तु। विशेष विवरण मानुम शब्द में देखो। २ विलकुल जंगली आदमी।

वनमाला (हिं० स्त्री०) तुलसी, कुंद, मंदार, परजाता और कमल इन पांच चीजोंको वनी हुई माला। ऐसी मालाका वर्णन हमारे यहांके प्राचीन साहित्यमें विष्णु, कृष्ण, राम आदि देवताओंके सम्बन्धमें वहुत आता है। कहा जाता है, कि यह माला गलेसे पैरों तक लंवी होनी चाहिये।

वनमाली (हिं० पु०) १ वनमाला धारण करनेवाला। २ कृष्ण। ३ विष्णु, नारायण। ४ मेघ, वादल।

वनमुर्गा (हिं० पु०) जंगली मुरगा।

वनमुर्गिया (हिं० स्त्री०) एक प्रकारका पक्षी जो हिमालयकी तराईमें मिलता है। इसका गला और वक्षस्थल श्वेत, समस्त शरीर आसमानी रंगका और चोंच जंगाली रंगकी होती है। यह पक्षी भूमि पर भी चलता है और पानीमें भी तैर सकता है। इसका मांस खाया जाता है।

वनरखा (हिं० पु० १) वनका रक्षक, जंगलकी रखवाली करनेवाला। २ वहेलियों तथा जंगलमें रहनेवालोंकी एक जाति। इस जातिके लोग प्रायः राजा महाराजाओंको शिकारके सम्बन्धकी सूचनाएं देते हैं और शिकारके समय जंगली जानवरोंको घेर कर सामने लाते तथा उनका शिकार करते हैं।

वनरा (हिं० पु०) १ दूल्हा, वर। २ विवाह समयका एक प्रकारका मंगल गोत।

वनराज (हिं० पु०) १ वनका राजा, सिंह। २ वहुत वड़ा पेड़।

वनराय (हिं० पु०) वनराज देखो।

वनरी (हिं० स्त्री०) नववधू, नई व्याही हुई वधू।

वनरीठा (हिं० पु०) एक प्रकारका जंगली रीठा। इसकी फलियोंसे लोग सिरके वाल साफ करते हैं। इसका पेड़ काँटेदार होता है और सारे भारतमें पाया जाता है। इसके पत्ते खट्टे होते हैं। इसलिये कहीं कहीं लोग इसकी तरकारी वना कर भी खाते हैं।

वनरोहा (हिं० पु०) एक प्रकारकी घास। इसकी छालसे सुतली वा सूत वनाया जा सकता है। यह घास खसिया पहाड़ी पर वहुतायतसे होती है। इसे रीसा या वनकटरा भी कहते हैं।

वनरुह (हिं० पु०) १ वह पौधा जो जंगलमें आपसे आप होता है, जंगली पेड़। २ पद्म, कमल।

वनरुहिया (हिं० स्त्री०) एक प्रकारकी कपास।

वनवर (हिं० पु०) विनौला देखो।

वनवा (हिं० पु०) १ पनडुव्वी नामक जलपक्षी। २ एक प्रकारका वछनाग।

वनवाना (हिं० क्रि०) दूसरेको वनानेमें प्रवृत्त करना, वनानेका काम दूसरेसे कराना।

वनवारी (हिं० पु०) श्रीकृष्णका एक नाम।

वनवासी (हिं० पु०) वनका निवासी, जंगलमें रहनेवाला।

वनवैया (हिं० पु०) वनानेवाला।

वनसपती (हिं० स्त्री०) वनस्पति देखो।

वनसार (हिं० पु०) जहाज पर चढ़ने और उससे उतरनेका स्थान।

वनसी (हिं० स्त्री) वंशी देखो।

वनस्थली (हिं० स्त्री०) जंगलका कोई भाग, वनखंड।

वनस्पति (हिं० पु०) वनसति देखो।

वनस्पतिविद्या (हिं० स्त्री०) वनसति शास्त्र देखो।

वनहटी (हिं० स्त्री०) एक प्रकारकी छोटी नाव जो डांडसे खेई जाती है।

वनहरदी (हिं० स्त्री०) दारूहल्दी।

वना (हिं० पु०) १ वर, दूल्हा। २ एक छन्दका नाम। इसमें १०, ८ और १४के विश्रामसे ३२ मात्राएं

होती हैं। इसका दूसरा प्रसिद्ध नाम दण्डकला है।

वनाइ (हिं० क्रि० वि०) २ अत्यन्त, नितान्त। २ भलीभाँति, अच्छी तरह।

वनाउ (हिं० पु०) वनाव देखो।

वनाग्नि (हिं० स्त्री०) दावानल, दवारि।

वनाग्नि देखो।

वनात (हिं० स्त्री०) एक प्रकारका ऊनी कपड़ा जो कई रंगोंका होता है।

वनाती (हिं० वि०) १ वनात सम्बन्धी। २ वनातका वना हुआ।

वनाना (हिं० क्रि०) १ सृष्टि करना, प्रस्तुत करना, रचना। २ एक पदार्थके रूपको वदल कर दूसरा पदार्थ तैयार करना। ३ रूप परिवर्त्तन करके काममें आने लायक करना, ऐसे रूपमें पलटाना जिससे वह व्यवहारमें आ सके। ४ ठीक दशा या रूपमें लाना। ५ उपार्जित करना, वसूल करना,। ६ अच्छी या उन्नत दशामें पहुंचाना। ७ कोई विशेष पद, मर्यादा या शक्ति आदि प्रदान करना। ८ दूसरे प्रकारका भाव या सम्बन्ध रखनेवाला कर देना। ९ उपहास्यास्पद करना, मूर्ख ठहराना। १० दोष दूर करके ठीक करना। ११ आविष्कार करना, निकलना। १२ समाप्त करना, पूरा करना

वनाफर (हिं० पु०) क्षत्रियोंकी एक जाति। आल्हा ऊदल इसी जातिके क्षत्रिय थे।

वनावंत (हिं० पु०) विवाह करनेके विचारसे किसी लड़के और लड़कीकी जन्मपत्रियोंका मिलान।

वनाम (फा० अव्य०) किसीके प्रति, नाम पर, नामसे। इस शब्दका प्रयोग अकसर अदालती कार्रवाइयोंमें वादी और प्रतिवादीके नामोंके वीचमें होता है। यह वादीके नामके पीछे और प्रतिवादीके नामके पहले रखा जाता है।

वनाय (हिं० क्रि० वि०) १ विलकुल, पूर्णतया। २ अच्छी तरहसे।

वनार (हिं० पु०) १ खाकसू नामक ओषधिका वृक्ष। २ कासमर्द, काला कसौंदा। ३ एक प्राचीन राज्य, जो वर्त्तमान काशीकी उत्तरी सीमा पर था। कहते हैं कि वनारसका नाम इसी राज्यके नाम पर पड़ा है।

वनारस—वाराणसी देखो।

वनारसी (हिं० वि०) १ काशी सम्बन्धी, काशीका। २ काशीनिवासी।

वनारी (हिं० स्त्री०) एक वालिश्त लंवी और छः उंगली चौड़ी लकड़ी जो कोल्हूकी खुदी हुई कमरमें कुछ नीचे लगी रहती है और जिससे नीचे नांदमें रस गिरता है।

वनाल (हिं० पु०) वंदाल देखो।

वनाव (हिं० पु०) १ वनावट, रचना। १ शृङ्गार, सजावट। २ युक्ति, तरकीव, तदवीर।

वनावट (हिं० स्त्री०) १ वनने या वनानेका भाव, गढ़न। २ आडम्वर, ऊपरी दिखावा।

वनावटी (हिं० वि०) कृत्रिम, नकली।

वनावन (हिं० पु०) कंकड़ियां, मट्टी, छिलके और दूसरे फालतू पदार्थ जो अन्न आदिको साफ करने पर निकलें, विनन।

वनावनहारा (हिं० पु०) १ रचयिता, वनानेवाला। २ सुधारक, वह जो विगड़े हुए को वनाए।

वनावर—१ महिसुरराज्यके कदूर जिलान्तर्गत एक भूसम्पत्ति। भूपरिमाण ४६७ वर्गमील है। यहांके अधिवासी प्रायः सभी हिन्दू हैं।

२ उक्त सम्पत्तिका प्रधान नगर। जैनाधिकारमें यह स्थान राजधानीरूपमें गिना जाता था। किन्तु अभी एक ग्राममें परिणत हो गया है।

वनास—राजपूतानेके अन्तर्गत एक नदी। यह उदयपुरके प्राचीन कमलमेरु दुर्गके निकटवर्त्ती अरावली शिखरसे निकल कर दक्षिण गोगण्डाकी अधित्यका भूमि होती हुई वह गई है। समतलक्षेत्रमें इस नदीके ऊपर रथद्वार नामक वैष्णवतीर्थ है।

वनास—छोटानागपुर जिलेकी एक नदी। यह चङ्गभाकर और कोरिया सामान्त राज्यके मध्यवर्त्ती पर्वतमालासे निकल कर रेवाराज्यमें जा गिरी है। इस नदीके पार्वत्य गर्भमें अनेक प्रपात हैं।

वनास—शाहावाद जिलेके अन्तर्गत एक नदी, शोण नदी की एक शाखा। यह पूर्वकी ओर गङ्गामें आ मिली है।

आरा और विहियाके मध्य इसके ऊपर रेलपथका एक पुल है। इसका संस्कृत नाम पर्णाशा है। स्थानीय अवस्था देखनेसे मालूम होता है, कि एक समय शोण नदीका कुल जल इसी वनास नदीके खात हो कर बहता था। महाभारत सभापर्व-६वें अध्यायमें हम लोग देखते हैं, कि शोण महानद शोण और पर्णाशा महानदी नामसे प्रसिद्ध था।

वनासपती (हिं० स्त्री) १ जड़ी, वूटी, पत्र, पुष्प इत्यादि, फल फूल पत्ता आदि।

वनासा—१ युक्तप्रदेशके गढ़वाल राज्यान्तर्गत एक गण्ड-ग्राम। यह अक्षा० ३०°४६´ उ० और देशा० ७८°२७´ पू० यमुना और वनासाके संगम स्थल पर यमुनाके वाएं किनारे अवस्थित है। एक गण्डशैलके ऊपर अवस्थित रहनेके कारण इसका स्वाभाविक सौन्दर्य देखने लायक है। यहां वहुतसे उष्ण प्रस्रवण हैं। १८१६ ई०में पर्वतका कुछ भाग धंस जानेके कारण नगरका अर्द्धांश नष्ट हो गया है।

२ आसाम प्रदेशके अन्तर्गत एक नदी।

वनिक (हिं० पु०) वणिक देखो।

वनिज (हिं० पु०) १ व्यापार, वस्तुओंका क्रय विक्रय। २ धनी यात्री, मालदार मुसाफिर। ३ व्यापारकी वस्तु, सौदा।

वनिजारा (हिं० पु०) वनजारा देखो।

वनिजारिन (हिं० स्त्री०) वनजारा जातिकी स्त्री।

वनिता (हिं० स्त्री०) १ औरत, स्त्री। २ भार्या, पत्नी।

वनिया (हिं० पु०) १ व्यापार करनेवाला व्यक्ति, वैश्य। २ आटा, दाल, चावल आदि वेचनेवाला, मोदी।

वनियाइन (अं० स्त्री०) जुर्रावी वुनावटकी कुरती या वंडी जो शरीरसे चिपकी रहती है, गंजी।

वनियाचङ्ग—वङ्गालके श्रीहट्ट जिलेके हवीगञ्ज उप-विभागका एक ग्राम। यह अक्षा० २४°३१´ उ० और देशा० ९१°४१´ पू०के मध्य अवस्थित है। जनसंख्या तीस हजारके करीव है। अवदरेजा नामक किसी स्वधर्म-त्यागी हिन्दूराजाने १८ वीं शताब्दीके प्रथमभागमें इस नगरको वसाया। पहले इन लोगोंकी लौरमें राजधानी थी। उक्त व्यक्तिने मुगलकी अधीनता स्वीकार कर इस-लाम-धर्म ग्रहण किया था। यहां एक मसजिद है।

वनिस्वत (फा० अव्य०) अपेक्षा, मुकावलेमें।

वनिहार (हिं० पु०) वह आदमी जो कुछ वेतन अथवा उपजका अंश देनेके वादे पर जमीन जोतने, वोने, फसल आदि काटने और खेतकी रखवाली करनेके लिये रखा जाय।

वनिहाल—काश्मीर राज्यके अन्तर्गत एक हिमालय-गिरि-सङ्कट। यह अक्षा० ३३°२१´ उ० और देशा० ७५° २०´ पू० समुद्रपृष्ठसे प्रायः ७ हजार फुट ऊंचा है।

वनी (हिं० स्त्री०) १ वनस्थली, वनका एक टुकड़ा। २ वाटिका, वाग। ३ एक प्रकारकी कपास जो दक्षिण देशमें उत्पन्न होती है। (पु०) ३ वनिया।

वनीनी (हिं० स्त्री०) वैश्य जातिकी स्त्री, वनियेकी स्त्री।

वनेठी (हिं० स्त्री०) वह लंवी लाठी जिसके दोनों सिरों पर गोल लट्टू लगे रहते हैं। इसका व्यवहार पटेवाजीके अभ्यास और खेलों आदिमें होता है।

वनेला (हिं० पु०) एक प्रकारका रेशमका कीड़ा।

वनेलीराज—नेपाल प्रान्तवर्त्ती भागलपुर कमिश्नरीके पूर्णिया जिलेके अन्तर्गत चम्पानगरके एक प्रसिद्ध और प्राचीन राजवंश। इस वंशके राजा मैथिल ब्राह्मण हैं। १३वीं शताब्दीके अन्तमें गदाधर नामक एक धार्मिक विद्वान् मैथिल ब्राह्मण दरभङ्गा जिलेके वैंगनी नवादा ग्राममें रहते थे। उनकी विद्वता चारों ओर फैली हुई थी। उनके मुकावलेके कोई भी पण्डित उस समय नजर नहीं आते थे। उस समय वङ्गाल विहारके शासक थे वादशाह वलवनके छोटे लड़के सुलतान नासिरुद्दीन। सुलतान पण्डितजीकी अच्छी खातिर करते थे और उन्हींके यत्नसे पण्डितजीका आगे वल कर भाग्य चमका। कहते हैं, कि १३२४ ई०में जव गयासुद्दीन तुगलक तिरहुत पधारे, तव नासिरुद्दीनने ही पण्डितजीका उनके साथ परिचय करा दिया था। गयासुद्दीनने प्रसन्न हो पण्डितजीको प्रचुर सम्पत्ति दी जिससे उनके सितारे चमक उठे। पण्डित गदाधर झासे नवीं पीढ़ीमें देवनन्दन झाने जन्मग्रहण किया। देवनन्दनके दो सुपुत्र थे। परमानन्द झा और माणिक झा। परमानन्दका शुभ-जन्म १७२०

ई०में हुआ था। संस्कृत-उर्दू और अरबीके वे अच्छे कवि थे, केवल यही नहीं, मल्लक्रीड़ामें भी उन्होंने अच्छा नाम कमाया था। कुछ समय बाद अजीमाबाद-सरकारने उन्हें दरभङ्गाके फकराबाद परगनेका चौधरी-पद प्रदान किया।

इस समयसे परमानन्द झा परमानन्द चौधरी कहलाने लगे। आस पासके स्थानोंमें उनकी तूती बोलने लगी। किसी कारणवश अजीमाबाद सरकार उन पर बड़ी विगड़ी और उन्होंने ज'जीरमें पकड़ लानेके लिये सशस्त्र योद्धा भेजे। इस समय चौधरी जी पुष्कर-यज्ञ कर रहे थे। विश्वस्त सूत्रसे इसकी खबर लगते ही उन्होंने यज्ञानुष्ठान ब'द कर दिया और पैतृक सम्पत्ति बैंगनीका चार आना हिस्सा बेच कर कुछ रुपये हाथ कर लिये और वहांसे सपरिवार निकटवर्त्ती ज'गलमें चम्पत हुए। जन्मभूमि बैंगनी छोड़नेके पहले वे एक जलाशयके किनारे एक खिरनी-वृक्ष रोप गये थे। वह वृक्ष आज भी वहां देखनेमें आता है। कहते हैं, कि परमानन्द चौधरी जब शत्रुसे प्राण रक्षाके लिये इधर उधर भाग रहे थे, उसी समय उनके दो पुत्र उत्पन्न हुए, एकलाल सिंह चौधरी और दुलार सिंह चौधरी। इसी समय उनके छोटे भाई माणिक चौधरी भी हीरालाल सिंह नामक एक पुत्र-रत्न छोड़ परलोक सिधारे। परमानन्द बहुत दिनों तक एक स्थानसे दूसरेमें भागते रहे थे। शत्रु ने भी उनका पीछा नहीं छोड़ा था। आखिर उन्होंने पूर्णिया जिलेके अमौर ग्राम-वासी एक धनी कायस्थ भैरव मालिकके यहां आश्रयग्रहण किया। वे पूर्णियाके कानूनगो थे। दयापरवश हो उन्होंने परमानन्दजीको बहुत सी जमीन प्रदान की। इस समय दुलारसिंह भी जवानीमें कदम बढ़ा चुके थे, वे ही खेती-बारी किया करते थे। संयोगवशतः एक दिन बैसराके जमींदार राजा इन्द्रनारायण राय कुछ सिपाहियोंके साथ अमौर हो कर कहीं जा रहे थे। परमानन्द चौधरीने कुछ ही समय पहले एक बड़ी रोहू मछली पकड़ी थी, सो उन्होंने झट मछली ले राजाको भेंट दी। राजा बड़े प्रसन्न हुए और उन्हें तीस रुपये मासिक वेतन पर अपने ष्टेटके तहसीलदार-पद पर नियुक्त किया। कोई कोई कहते हैं, कि वे तहसीलदार नहीं, ष्टेटके मनेजर थे। कुल दारमदार इन्हींके हाथ था। इसी समय पूर्णियाके फौजदार-नवाब आखेटमें अमौर आये। वे दिन भर जंगलमें घूमते रहे, पर एक भी बाघ मारनेका उन्हें साहस न हुआ। परमानन्द चौधरीने एक बाघ मार कर उनके सामने हाजिर किया। नवाब इनकी वीरता पर इतने प्रसन्न हुए, कि उन्हें हजारी (१००० सेनाका मनसबदार)-की उपाधि प्रदान की। इस समयसे परमानन्द हजारी परमानन्द चौधरी नामसे प्रसिद्ध हुए।

इधर उनके पुत्र दुलारसिंहने कृषि तथा वाणिज्य व्यवसाय द्वारा प्रचुर सम्पत्ति उपार्जन कर ली। भाग्य-लक्ष्मी उनके अनुकूल हुई। क्रमशः वे पूर्णियाके सरकारी कानूनगो हुए। नेपाल-युद्धमें दुलारसिंहकी वीरता, राजभक्ति और सेवासे संतुष्ट हो उनके कृत कार्यके पुरस्कार स्वरूप वृटिश-सरकारने उन्हें 'राजा बहादुर'की उपाधिसे भूषित किया था। यथासमय उनके प्रथम स्त्रीसे सर्वानन्दसिंह और वेदानन्दसिंह तथा द्वितीय स्त्रीसे रुद्रानन्दसिंहने जन्मग्रहण किया। आगे चल कर रुद्रानन्द श्रीनगरके प्रतिष्ठापक हुए। बड़े सर्वानन्द सिंह बिना कोई सन्तान छोड़े अकाल ही कराल कालके गालमें फंसे। दुलार सिंहके स्वर्गवासी होने पर वेदानन्द सिंह बहादुर राजसिंहासन पर अधिरूढ़ हुए। इनका जन्म १७३६ ई०में हुआ था। नेपाल-युद्धमें इन्होंने भी वृटिश सरकारको खासी मदद पहुंचाई थी। इस प्रत्युपकारके पुरस्कार स्वरूप वे 'राजाबहादुर'की उपाधिसे भूषित हुए। कालचक्रसे फूट-देवीने राजप्रासादमें प्रवेश किया और राजा बहादुर अपने वैमात्र भाई रुद्रानन्दसिंहसे पृथक् हो गये। वेदानन्दसिंहके हिस्सेमें जो भाग पड़ा वह बनेलीराज कहलाया और रुद्रानन्दसिंह सौर नदी पार कर गये और उसके पश्चिमी किनारे अपने पुत्र कुमार श्रीनन्दन सिंहके नाम पर एक राज-प्रासाद बनवाया जो श्रीनगर-ष्टेट नामसे बजने लगा।

राजा वेदानन्दसिंह बहादुरने खड़गपुरके मुसलमान राजाओंकी विस्तीर्ण भूसम्पत्ति हस्तगत कर ली। अलावा इसके उन्होंने गोगरी और मधुवनी परगना भी खरीदा। ये भी पिताके जैसे मल्लयुद्ध-प्रिय और योग्य

शासक थे। वर्त्तमान वरारीके ठाकुर-वंशके आदिपुरुष मदनठाकुरने वहुत दिनों तक इनके यहां नौकरी की थी। कहते हैं, कि राजा वेदानन्दकी ही उदारता और अनुग्रहसे वावू मदन ठाकुरने प्रचुर सम्पत्ति इकट्ठी कर ली जिसका उपभोग आज भी उनके वंशधरगण करते आ रहे हैं। वरारी देखो। राजा वेदानन्दसिंह १८५१ ई०में इस धराधामको छोड़ सुरधामको सिधारे।

वेदानन्दकी मृत्युके वाद कुमार लीलानन्द सिंह राजसिंहासनके उत्तराधिकारी हुए। ये भी योग्य पिताके योग्य पुत्र थे। विद्वान् और कवि भी थे। १८५३ ई०में इन्हें भी वृटिश सरकारसे 'राजा-वहादुर' का खिताव मिला था। राजा लीलानन्दका जीवन उदारता, सदाशयता और समवेदना आदि सद्गुण-सम्पदका आधार था। चरित्र और व्यवहारके गुणसे वे उच्च नीच सभी श्रेणियोंके अति प्रियपात्र थे। उनके जैसे जनवत्सल सहृदय मनुष्य धनीकुलमें वहुत कम देखे जाते हैं। भागलपुरके सन्थाल परगनेके जनसाधारण सम्मान और श्रद्धाके साथ उनकी स्मृतिका पोषण करते हैं। लीलानन्दके प्रथम स्त्रीसे पद्मानन्दसिंह और द्वितीय सीतावतीसे कालानन्दसिंह और कृत्यानन्दसिंह नामक तीन सुपुत्र थे। १८८३ ई०की ३री जूनको राजा लीलानन्दसिंहने अपनी जीवनलीला शेष की।

राजा लीलानन्द सिंहकी मृत्युके वाद राजा परमानन्दसिंह राजसिंहासन पर अधिरूढ़ हुए। पिताके जीतेजी वे उनकी पदमर्यादाके अधिकारी हुए थे। कुछ समय वाद सारा राज्य नौ आने और सात आनेमें विभक्त हुआ। सात आनेके अधिकारी हुए राजा परमानन्दसिंह वहादुर और नौ आनेके ये दोनों भाई। राजा पद्मानन्द सिंहकी प्रथमा स्त्री पद्मावतीसे कुमार चन्द्रानन्दसिंहने जन्मग्रहण किया। १९०४ ई०में राजा पद्मानन्दसिंहने चौथा विवाह रानी पद्मासुन्दरीसे किया। ये आज भी जीती जागती हैं। १९०६ ई०के जनवरीमासमें पद्मासुन्दरीके एक पुत्र उत्पन्न हुआ जिनका नाम कुमार सूर्यानन्द रखा गया। कुमार चन्द्रानन्द सिंह अकाल ही कराल कालके गालमें पतित हुए। राजा पद्मानन्दका १९१२ ई०में देहान्त हुआ। कुमार सूर्यानन्दको भी इहलोकमें वहुत दिन ठहरना न था, वे भी चौदह वर्षकी अवस्थामें अर्थात् १९१९ ई०के सितम्वर मासमें इस धराधामको छोड़ सुरधामको सिधार गये। इस प्रकार राजा पद्मानन्दसिंहका चिराग सदाके लिये वुझ गया। पीछे रानी चन्द्रावतीने अपना सात आना हिस्सा वेच कर स्वामीका ऋण परिशोध करना चाहा, पर कृत्यानन्द सिंह वहादुर और रानी पद्मासुन्दरीने इसे रोका। कुछ समय तक आपसमें यह विषय ले कर विवाद चलता रहा। आखिर राजा कृत्यानन्दसिंह वहादुरके ही तत्त्वाधानमें सात आनेका हिस्सा रहा। वाद चन्द्रावतीकी मृत्युके वे ही इसके प्रकृत उत्तराधिकारी होंगे।

राज कालानन्दसिंहका १८८० ई०के सितम्वर मासमें जन्म हुआ था। आप अति धीर, शान्त, सच्चरित्र और विद्यानुरागी सज्जन पुरुष थे। सङ्गीतविद्या और मृगयामें भी अनुराग था। व्यहार-शिल्पके अनेक विषयोंमें आपका असाधारण अधिकार और व्युत्पत्ति देखी जाती थी। दोनों भाइयोंमें रामलक्ष्मण-सी प्रीति और सद्भाव था। आप छोटे भाईकी सलाह लिये विना किसी गुरुतर कार्यमें हाथ नहीं डालते थे। १९२३ ई०के मार्चमें आप रामानन्दसिंह और कृष्णानन्द सिंह दो सुपुत्र छोड़ परलोक सिधारे।

अनन्तर राजा कृत्यानन्द सिंह वहादुरने कुल राज्यभार अपने हाथ लिया। आपका जन्म १८७३ ई०की २३वीं दिसम्वरको हुआ था। पूर्णिया जिला स्कूलमें विद्यारम्भ करके आपने इलाहावाद मेयर सेण्ट्रल कालेज (Muir central college)-से तत्रत्य विश्वविद्यालयकी प्रवेशिका और वि, ए, परीक्षा पास की है। आप विहारके अभिजात्य-गौरवसे गौरवान्वित उच्च धनी-भूस्वामीके मध्य सर्व प्रथम वा एकमात्र ग्रैजुएट हैं। आप सव्यसाची सर्वविद्या पारदर्शी हैं। क्यां क्रीड़ा कौतुक, क्या लक्ष्यसाधन, क्या मृगया, क्या सङ्गीतचर्चा, क्या ग्रन्थरचना, क्या विज्ञान-सेवा, क्या शिल्प-नैपुण्य—सव प्रकारके शारीरिक और मानसिक शक्तिका परिचय प्रदान करनेमें आप अग्रणी हैं। सचमुच

यदि आपको चरित्रगुणमें भारतीय धनी पुत्रोंके मध्य आदर्श स्थान दिया जाय, तो कोई अत्युक्ति नहीं। आप बड़े मृगयालब्ध हैं। आज तक आपने ७७ व्याघ्रोंको मार कर अपनी वीरता और अदम्य साहसका परिचय दिया है। उनको सुरक्षित मृतदेह अभी चम्पानगरके राज-प्रासादका गौरव और सौन्दर्य प्रदान करती है। अलावा इसके आपके अव्यर्थ सन्धानसे कितने भ्रमीर, वन्यवराह, मृग और विहंगम-विहङ्गमा अपने नश्वर देहका त्याग कर परमधामको सिधारी हैं, उसकी शुमार नहीं।

आप केवल मृगयामें ही अपने बाहुबलका परिचय दे कर समय नहीं विताते, वरन् आप आत्मीय बन्धु-बान्धवोंका पोषण, ब्राह्मणोंका प्रतिपालन, दरिद्रोंका भरण और शिल्पसाहित्यको उत्साह प्रदान करते हैं। विद्वान और सज्जनका सङ्ग आपको अति प्रीतिकर है। आप अङ्गरेजी, बङ्गला हिन्दी और उर्दू भाषामें अनर्गल कथोपकथन कर सकते हैं। देशके किसी भी सत्कार्य-में, साधु अनुष्ठानमें और समासमितिमें सदालापी मिष्ट-भाषी आपको योगदान दिये देखते हैं। आप वर्त्तमान विहार व्यवस्थापक सभाके भी एक विशिष्ट सभ्य हैं। विहारमें उच्चशिक्षाकी उन्नति और प्रचारके उद्देश्यसे वनेली राजसे भागलपुरके तेजनारायण जुवली कालेजको प्रायः ६ लाख रुपयोंका दान किया गया है। पटना (बांकीपुर)-से प्रकाशित सर्व प्रथम अङ्गरेजी दैनिक पत्रिका 'विहारी' (The Beharee) वनेली राजकी पृष्ठ-पोषकतासे स्थापित हुई है। आपने हिन्दू विश्वविद्या-लय बनारसको लाख रुपये, प्रिंस आव वेल्स मेमोरियल मेडिकल कालेज पटनाको लाख रुपये और वृटिश गवर्मेण्टको युद्धके समय डेढ़ लाख रुपयेका साहाय्य प्रदान किया है। वायले (Bayley) पुस्तकालय पटनामें प्रचुर दान आपके विद्यानुरागका परिचय देता है। अलावा इसके आपके कृपा-फलसे कितने अस्पतालों और स्कूलोंसे लोग लाभ उठा रहे हैं। जो एक वार भी आपके साथ रह चुके हैं। वे सभी आपके चरित्र-माधुर्य पर मुग्ध हो आपको सम्मान और श्रद्धाकी दृष्टिसे देखनेमें बाध्य हुए हैं।

वनैला (हिं० वि०) वन्य, जंगली।

वनौटी (हिं० वि०) कपासी, कपासके फूलका-सा।

वनौरी (हिं० स्त्री०) हिमोपल, वर्षाके साथ गिरनेवाला ओला।

वनौवा (हिं० वि०) कृत्रिम, बनावटी।

वन्थर—अयोध्या प्रदेशके उनाव जिलेका एक नगर।

वन्थली—बम्बई प्रदेशके काठियावाड़ राज्यके अन्तर्गत एक नगर। यह नगर २१° २८' ३०" उ० और देशा० ७०° २२' १५" पू०के मध्य अवस्थित है। वनस्थली देखो।

वन्दयान—काश्मीर राज्यके मुजफ्फराबाद विभागके अन्त-र्गत हिमालय पर्वतश्रेणीका एक गिरिसङ्कट। यह अक्षा० ३१° २२' उ० और देशा० ७८° ४' पू०के मध्य अवस्थित है। समुद्रपृष्ठसे यह स्थान १४८५४ फुट ऊंचा और सब दिन तुषारसे आवृत रहता है।

वन्दर—बंदर देखो।

वन्दर—मन्द्राज प्रदेशके कृष्णा जिलान्तर्गत एक तालुक। यह अक्षा० १५° ४५' से १६° २६' उ० और देशा० ८०° ४८' से ८१° ३३' पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ७४०. वर्गमील और जनसंख्या दो लाखसे ऊपर है। इसमें २ शहर और १६१ ग्राम लगते हैं। वन्दर वा मसली-पत्तन इसका प्रधान नगर है। मसलीपत्तन देखो।

वन्दरलङ्का (वन्दमूरलङ्का)—मन्द्राजके गोदावरी जिलान्तर्गत कुमारोगिरि नगरका एक गण्ड ग्राम। यह अक्षा० १६° २७' उ० और देशा० ८१° ५८' पू०के मध्य अवस्थित है। १८वीं शताब्दीके पहले अंगरेजोंने गोदावरी नदीके किनारे एक कोठी खोली, पर कुछ दिन बाद वह छोड़ दी गई। आज भी यह स्थान समुद्रोपकूलवर्त्ती छोटे वन्दरमें गिना जाता है। गोदावरी नदीकी कौशिकी शाखाके ऊपर अभी यह बसा हुआ है।

वन्दा—गुरु गोविन्दका परवर्त्ती एक सिख-गुरु। सम्राट् १म बहादुर शाहके राजत्वकालमें उसने सिखसेना ले लाहोर पर आक्रमण कर दिया। सम्राट्के भ्राता कामवक्सने गुरुगोविंदके पुत्रको कैद कर मार डाला। इसका बदला लेनेके लिये वंदाने सिखसेना इकट्ठी कर सम्राट्की अनुपस्थितिमें दाक्षिणात्य पर चढ़ाई कर दी। इस समय इसने मुसलमानोंके प्रति बड़ा अत्याचार किया

था। बालक वा वृद्ध, वृद्धा वा युवती किसीका लक्ष्य न कर नादिरशाही चला दी। गर्भवती रमणियोंके उदर फाड़ कर नृशंस प्रवृत्तिकी पराकाष्ठा दिखला दी थी। सम्राट्‌ने इस जघन्य वृत्तिका बदला लेनेके लिये स्वयं इससे युद्ध किया। जंजीरमें पकड़े रहने पर भी बन्दा सम्राट्‌की आंखोंमें धूल डाल भग गया। सेना दल इकट्ठा कर वह सम्राट्‌का फिर विद्रोही बना। सम्राट् फरुखशियरने इसको दवानेके लिये काश्मीरके शासन-कर्त्ता आवदुस् समद खांको ससैन्य भेजा। कितनी वार घोरतर संघर्षके बाद बन्दाने किलेमें आश्रय लिया। समद खांने भी दलवलके साथ आ कर किलेको घेर लिया। रसद आदिके बंद होने पर बन्दा आहाराभावमें आत्मसमर्पण करनेको वाध्य हुआ। बन्दा और अपरापर सिख-कैदी दिल्ली भेजे गये। बंदा लौह पंजरमें आवद्ध हो हाथीकी पीठ पर दिल्ली पहुंचा। सिखोंने अवनत मस्तकसे यह अवमनना सह्य की, किंतु मनही मन इस्लामधर्म ग्रहण करनेकी अपेक्षा मृत्युको ही उन्होंने श्रेय समझा था। सम्राट्‌के उन्हें जीवन दान देनेमें प्रतिश्रुत होने पर भी वे लोग दान इस्लामधर्मके ग्रहणमें सम्मत नहीं हुये। फलतः सम्राट्‌की आज्ञासे प्रति दिन सैकड़ों सिख-वीर घातकके हाथसे यमपुर भेजे जाने लगे। आठवें दिन बन्दा मय पुत्रोंके मारा जायगा, यह घोषित कर दिया गया। जब वह मौतका दिन पहुंचा, तव घातकने बन्दा और इसके पुत्रको नगरके वहिर्देशमें ला बन्दा को पुत्रके मस्तकच्छेदनके लिये तलवार दी। बंदाने अपने पुत्रका शिरच्छेद करना मंजूर नहीं किया। इस पर घातकने अपने हाथसे वालकका हृदय विदीर्ण कर डाला और वलपूर्वक उस हृतपिण्ड-को बन्दाके मुखमें ठूंस दिया। अन्तमें उत्तप्त चीमटों-से उसके शरीरका मांस झुलसा दिया और घोर यंत्रणा दे कर सिख-गुरुके प्राण ले लिये। १७१५ ई०में इस पाशविक अत्याचारको अटलभावसे सह्य कर बन्दाने प्राणत्याग किया।

वन्दिपल्लम्—मन्द्राजप्रदेशके आर्काट जिलान्तर्गत एक पर्वत और उस पर प्रवाहित नदी। यह अक्षा० ११° ४३´ १५" उ० तथा देशा० ७९° ४८" पू०के मध्य अवस्थित है। १७५०-१७८० ई० तक यह स्थान अंगरेज-फरासी-युद्धका केन्द्रस्थल बना रहा था।

बन्देल—बङ्गालके हुगली जिलांतर्गत हुगली शहरका एक गण्ड ग्राम। यह अक्षा० २२° ५५´ उ० तथा देशा० ८८° २४´ पू० भागीरथी-नदीके किनारे अवस्थित है। यहां रोमन-कैथलिक खृष्टान सम्प्रदायका एक धर्ममन्दिर है। यह मन्दिर १५९९ ई०में बनाया गया है और बङ्गाल भरमें सर्वप्राचीन खृष्टधर्ममन्दिर समझा जाता है। १६२२ ई०में दिल्लीश्वरके आदेशसे मुगलोंने वह मन्दिर जला दिया और भीतरकी प्रतिमूर्त्ति तथा चित्रोंको नष्ट कर डाला। खृष्टधर्मयाजक जब बन्दीरूपमें आगरे लाया गया, तब उसके अनुरोध पर सम्राट्‌ने धर्ममन्दिरके खर्च वर्चके लिये ७७७ वीघा निष्कर जमीन दान की। उसी आयसे नया मन्दिर बनाया गया और उसमें १४९९ ई०की लिपि भी उत्कीर्ण हुई। पूर्ववर्त्ती किसी समय पुर्त्तगीजोंने इसकी रक्षाके लिये एक दुर्ग बना दिया था। १९वीं शताब्दीमें यहां येसुइट विद्यालय, वोर्डिंग स्कूल, खृष्टान सतियोंके आश्रम आदि निर्मित हुए। अभी पुर्त्तगीजों और फिरङ्गियोंकी अवनतिके साथ साथ यह स्थान भी श्रीहीन हो गया है। यहांके अधिवासी प्रायः बङ्गाली ही है, धर्मयाजक बहुत थोड़े हैं। यहां प्रतिवर्ष नवम्बर मासमें कैथलिकोंके नोभेना (Novena)-उत्सवमें बहुतसे खृष्टान जमा होते हैं।

बन्ध (सं० पु०) बन्ध हलश्चेति घञ्। १ बन्धन। २ शरीर। जब तक कर्मबन्धनका क्षय नहीं होता, तब तक देहके बाद अर्थात् मृत्युके बाद जन्म और जन्मके बाद मृत्यु अवश्यम्भावी है। इसी कारण शरीरको बन्ध कहते हैं। कर्मबन्धनके शेष हो जानेके बाद फिर शरीर-ग्रहण नहीं करना पड़ता। ३ ग्रन्थि, गांठ, गिरह। ४ कैद। ५ गृहादि वेष्टन अर्थात् घर बनानेमें पहले बन्ध ठीक कर लेना होता है। १५, १७, १९ वा २१ इन सब बंधोंमें गृहादि बनाने होते हैं अर्थात् अयुग्मबन्धमें गृहादि प्रशस्त हैं। युग्मबन्धमें गृहादि भूल कर भी न बनावे। घरकी लम्बाई और चौड़ाई मिला कर जितने हाथ होते हैं उसे बन्ध कहते हैं। (ज्योतिस्तत्त्व)

६ पानी रोकनेका धुस्स, बाँध। ७ कोकशास्त्रके रतिके

अनुसार मुख्य सोलह आसनोंमेंसे कोई आसन। मुख्य सोलह आसन ये हैं—१ पद्मासन, २ नागपाद, ३ लतावेष्ट, ४ अर्द्धसंपुट, ५ कुलिश, ६ सुन्दर, ७ केशर, ८ हिल्लोल, ९ नरसिंह, १० विपरीत, ११ क्षुब्ध, १२ धेनुक, १३ उत्कण्ठा, १४ सिंहासन, १५ रतिनाग, और १६ विद्या-धर।

इसके अतिरिक्त स्मरदीपिकामें अठारह प्रकारके रतिबंधोंका उल्लेख है, यथा—१ कामप्रद, २ विपरीत, ३ नागर, ४ रतिपाशक, ५ केयूर, ६ प्रियतोष, ७ समपद, ८ एकपद, ९ सम्पूट, १० उद्ध्र्वसम्पूट, ११ स्तनभव, १२ रति सुन्दर, १३ ऊरुपीड़, १४ स्मरचक्र, १५ ऊरुक्रम, १६ वेष्टक, १७ हंसकील और १८ लीलासन।

(स्मरदीपिका)

८ योगशास्त्रके अनुसार योगसाधनकी कोई मुद्रा। जैसे, उड्डियानबन्ध, मूलबंध, जालन्धरबंध, इत्यादि। ९ निबन्ध रचना। १० चित्रकाव्यमें छन्दकी ऐसी रचना जिससे किसी विशेष प्रकारकी आकृति या चित्र बन जाय। ११ लगाव, फँसाव। १२ मानसिक चिन्ता। १३ जिससे कोई चीज बांधी जाय।

बन्धक (क्ली०) बध्नातीति बंध ण्वुल। ऋणके लिये ऋणके बदलेमें धनीके पास रखी जानेवाली वस्तु, रेहन, गिरवी। ऋण लेते समय सुवर्ण वा भूमि आदि बंधक रखनी पड़ती है। बादमें सूद सहित ऋण चुकती होने पर बंधकी संपत्ति वापिस हो जाती है। याज्ञसंहितामें इस संबंधमें लिखा है,—गिरवी रख यदि कर्ज लिया जावे, तो कर्जके दूने होने पर भी ऋण चुकती न हो, तो गिरवी रखी हुई वस्तु महाजनकी हो जाती है। उस पर गिरवी रखनेवालेका कुछ अधिकार नहीं रहता। गिरवी छुड़ानेका समय निश्चित रहता है। निश्चित समयमें गिरवी वस्तुको नहीं छुड़ानेसे उस पर अधिकार धनीका होता है।

यदि महाजनको बंधकी द्रव्य पर सूद बराबर मिलता रहे अथवा अन्य लाभ हो, तो बंधकी द्रव्य ज्योंको त्यों बनी रहती है। गिरवी द्रव्यके गुप्त रूपसे भोगने अथवा कार्याक्षम कर देने पर सूद नहीं मिल सकता। गिरवी द्रव्यके खो जानेपर उसका मूल्य दे देना पड़ता है। दैवकृत या राजकृत उपद्रवमें गिरवी द्रव्यके नाश होनेसे उसका मूल्य नहीं देना पड़ता। गिरवी द्रव्य यदि यत्नपूर्वक सुरक्षित रखने पर भी नष्ट हो जाय तो उसके बदलेमें उसका यथोचित मूल्य देना पड़ेगा।

कर्जदार महाजनको सच्चरित्र जान कर यदि बहुमूल्य द्रव्य बंधक रख कर उससे अल्प धन ले, तो द्विगुण सूद समेत मूलधनके देने पर बंधकी द्रव्य वापिस लेता है। यदि कर्जदार यह शर्त करे, 'जब सूद दूना हो जायगा तब द्विगुण सूद दे कर गिरवी द्रव्य छुड़ा लूंगा' तो इस शर्तके अनुकूल ऋणी दूना सूद दे कर अपना द्रव्य ले सका है। ऋणी जब व्याज सहित मूलधन ले कर गिरवी द्रव्य छुड़ाने आवे तब धनीको वह चीज बिला उज्रुर दे देनी चाहिये।

धनी ऋणीको द्रव्य देनेमें आपत्ति करे, तो राजाके यहां उसे चोरके समान दंड मिलता है। धनीकी उपस्थिति नहीं रहने पर उसके विश्वस्त मनुष्यके पाससे मूलधन व्याज सहित देने पर बंधकी द्रव्य ले लिया जाता है।

गिरवीदारके पास गिरवी द्रव्यका लेनेवाला यदि कोई उपयुक्त मनुष्य न रहे, अथवा कर्जदार गिरवी द्रव्य बेच गिरवीदारकी अनुपस्थितीमें ऋण शोध्र करना चाहे, तो द्रव्यका जितना मूल्य हो उसे निर्धारित कर ले, और जब तक गिरवीदार न आवे तथा धन ले कर गिरवीनामा फाड़ न दे, तब तक चीज उसीके पास रहने दे। पर उस दिनसे उस पर व्याज नहीं चलेगी, यदि ऋण लेते समय यह शर्त हो जाय, कि मूलधनके दूने होने पर दूना ही लिया जायगा, तो कर्जदार उतना देनेको बाध्य है। यदि मूल धन बढ़ कर दूना हो जाय और कर्जदारके पास रुपया न रहे तो गिरवीदार साक्षी रख कर गिरवीद्रव्य बेच सका है। यदि बिना गिरवी द्रव्य रखे कर्ज बढ़ कर दूना हो जावे तो कर्जदार उसके बदलेमें जमीन गिरवीदारको दे दे। पीछे उस जमीनकी फसलसे अपना कुल पावना परिशोध कर महाजन कर्जदारको वह जमीन वापस दे दे।

मनुस्मृतिमें लिखा है कि यदि भोगके निमित्त कोई वस्तु या दास दासीको गिरवी रख कर महाजनसे रुपया उधार ले तो व्याज नहीं देनी पड़ती।

बलपूर्वक गिरवी द्रव्यका भोग नहीं हो सकता। यदि कर्ज देनेवाला उस द्रव्यको काममें लावे, तो ऋणका सूद छोड़ना होगा अथवा भोग करनेका कारण यदि उलटा हो, तो कर्जदारको निश्चित मूल्य दे कर संतुष्ट करना होगा। यदि न करे, तो कर्ज देनेवाला चोरकी तरह दंडनीय होगा। गिरवी द्रव्यको कर्जदार जिस समय चाहेगा उसी समय उसको देना होगा। गिरवी द्रव्य जितने दिन क्यों न रहे, उस पर कर्जदारका सदा हक बना रहेगा। महाजन जितना रुपया कर्जमें दे, वह कर्जदारके पासमें कितने ही दिन क्यों न रहे, उसके दूने से ज्यादा होने पर महाजनको फिर ब्याज नहीं मिलती। (मनुस्मृति ८ अ०)

(पु०) वन्ध स्वार्थे-कन्। २ विनिमय, बदला। ३ रतहिंडक, वह जो स्त्रियोंको चुराता हो। (त्रि०) ४ बंधन कर्त्ता, बांधनेवाला।

"न नारी न धनं गेहं न पुत्रो न सहोदराः।
वन्धनं प्राणिनां राजन्नहङ्कारस्तु वंधकः॥"
(भागवत ५।१।३६)

अहंकार ही जीवका बंधक अर्थात् बांधनेवाला है। जब तक 'मेरा' हम, हमारा, अर्थात् हमारी स्त्री, हमारा पुत्र हमारा सुख दुःख, यह ज्ञान रहेगा, तब तक वंधन अवश्य होगा, इसलिये अहंकार ही वंधक है।

वन्धकी (सं० स्त्री०) बध्नाति मानसमिति वन्ध-ण्वुल्, गौरादित्वात् ङीप्। १ व्यभिचारिणी स्त्री, बदचलन औरत। महाभारतमें लिखा है, कि जो पञ्चपुरुषगामिनी है, उसे वन्धकी कहते हैं। २ वेश्या, रंडी। ३ हस्तिनी, हथनी।

वन्धकर्त्तृ (सं० पु०) शिव, महादेव।

वन्धन (सं० क्ली०) वन्ध-भावे-ल्युट्। १ वन्धनक्रिया, बांधनेका काम। २ वह जिससे कोई चीज बांधी जाय। ३ वध, हत्या। ४ हिंसा। ५ रज्जु, रस्सी। ६ कारागृह, कैदखाना। ७ वन्धनस्थान। ८ शिव, महादेव। ९ शरीरका संधिस्थान, जोड़। (त्रि०) १० वन्धनकर्त्ता, बाँधनेवाला।

वन्धनग्रन्थि (सं० पु०) वन्धनस्य ग्रन्थिः। १ अस्थिवन्धनकी ग्रन्थि, शरीरमें वह हड्डी जो किसी जोड़ पर हो। २ बन्धनकी गांठ, गिरह।

वन्धनपालक (सं० पु०) कारागार रक्षक, वह जो कारागारकी रक्षा करता हो।

वन्धनवेश्म (सं० क्ली०) वन्धनाय वंधनस्य वा वेश्म गृहं। कारागार, कैदखाना।

वन्धनस्थ (सं० त्रि०) वंधने तिष्ठति स्था-क। वंधनस्थित, कारारुद्ध।

वन्धनस्थान (सं० क्ली०) वंधनस्य स्थानं। १ कारागार। २ पशु-वंधन स्थान, मवेशियोंके बांधनेका स्थान।

वन्धनागार (सं० पु०) वंधनस्य आगारः। कारागृह, कारागार।

वन्धनालय (सं० पु०) वंधनाय वंधनस्य वा आलयः। कारागार।

वन्धनी (सं० स्त्री०) १ भेदावरोधक सूत्रमय और स्थितिस्थापक गुणोपेत पदार्थ, शरीरके अन्दरकी वे मोटी नसें जो सन्धिस्थान पर होती हैं और जिनके कारण दो अवयव आपसमें जुड़े रहते हैं। २ वन्धनसाधन रज्जु, वह रस्सी जिससे कोई चीज बांधी जाय।

वन्धनीय (सं० त्रि०) वन्ध-अनीयर्। १ वन्धनयोग्य, बांधने लायक। (क्ली०) २ सेतु, पुल।

वन्धमोचनिका (सं० स्त्री०) १ वन्धसे मोचनकारी, वन्धसे रक्षा करनेवाला। २ योगिनीविशेष।

वन्धलगोती—अयोध्या-प्रदेशवासी क्षत्रिय जातिविशेष। सुलतानपुर-जिलेके अमेथी परगनेमें इस जातिके अनेक क्षत्रिय रहते हैं। दूसरी जगह कहीं भी इनका वास नहीं देखा जाता। कहते हैं, कि हसनपुर-राजभृत्यके औरस और घरांमी-रमणीके गर्भसे इनकी उत्पत्ति है। आज भी इनके किसी किसी क्रियाकर्ममें 'वङ्का' नामक अस्त्रकी पूजा होती है। उस अस्त्रसे उनके पूर्वपुरुषगण बांस फाड़ते थे, किन्तु वर्त्तमान वन्धलगोतिगण इस नीच उत्पत्तिकी कथा स्वीकार नहीं करते। इन लोगोंका कहना है, कि वे सूर्य वंशीय क्षत्रिय हैं, वर्त्तमान जयपुर राजवंशकी एक शाखासे उत्पन्न हुए हैं। प्रायः ६ सौ वर्ष पहले उस वंशके कोई व्यक्ति अयोध्या-तीर्थ दर्शनको आये थे और अपने अलौकिक शक्ति-प्रभावसे यहां एक नई शाखा स्थापन कर गये। धीरे धीरे दलपुष्ट हो कर उस दलके लोग यहांके सर्वेसर्वा हो उठे।

वन्धयितृ (सं० त्रि०) वन्ध-विच्-तृच् । वन्धनकारक, बांधनेवाला ।

वन्धव (सं० पु०) बान्धव देखो ।

वन्धस्तम्भ (सं० पु०) वन्धाय स्तम्भः । हस्तिवन्धन-स्तम्भ, हाथी बांधनेका खंभा वा खूंटा । पर्याय—आलान, शङ्कु, अक्षोड़ ।

वन्धित्र (सं० क्ली०) वन्ध-इत्र । १ कामदेव । २ चर्म-व्यजन, चमड़ेका पंखा ।

वन्धु (सं० पु०) वन्ध-वन्धने (शृस्वृस्निहित्र गीति । उण् १।११) इति-उ । १ वह जो सदा साथ रहे या सहायता करे । जो स्नेह द्वारा मनको वन्धन करते हैं, वे ही वन्धु हैं । पर्याय—सगोत्र, वान्धव, ज्ञाति, स्व, स्वजन, दयाल, गोत्र । वन्धु तीन प्रकारका है—आत्मवन्धु, मातृवन्धु और पितृवन्धु । यथा—मौसेरे भाई, फुफेरे भाई और ममेरे भाईको आत्मवंधु; पिताके मौसेरे भाई, फुफेरे भाई और ममेरे भाईको पितृवंधु तथा माताके फुफेरे भाई, मौसेरे भाई और ममेरे भाईको मातृवंधु कहते हैं । आत्म-वंधु और पितृवंधु ये लोग स्वाभाविक हितकारी हैं । इसी कारण शास्त्रमें इन्हें वंधु वतलाया है । पितृव्य प्रभृतिको भी वंधु कहते हैं ।

२ भ्राता, भाई । ३ पिता । ४ माता । ५ वंधुक पुष्प ।

वन्धुक (सं० पु०) वंध-उक यद्वा वंधवंधुकवृक्षएव स्वार्थे कन् । १ वृक्षभेद, दुपहरिया फूलका पौधा । २ दुप-हरियाका फूल जो लाल रंगका होता है ।

वन्धुकृत्य (सं० क्ली०) वंधूनां कृत्यं कार्यं । वंधुका कार्य ।

वन्धुक्षित् (सं० त्रि०) हविरादि द्वारा प्राप्तियुक्त । (ऋक् १।१३२।३)

वन्धुजन (सं० पु०) वंधुरेव जनः । वंधुलोक, आत्मीय कुटुम्ब ।

वन्धुजीव (सं० पु०) वंधुरिव जीवयति रसादिनेति वंधु-जीव-अच् । १ वंधूक वृक्ष, गुलदुपहरियाका पौधा । २ दुपहरियाका फूल ।

वन्धुजीवक (सं० पु०) वंधुवत् जीवयति रसादिना इति वंधु-जीव-ण्वुल् वा वंधुजीव एव स्वार्थे कन् । वंधूक वृक्ष । वन्धूक देखो ।

वन्धुता (सं० स्त्री०) वन्धोर्भावः वंधूनां समूहो वा (ग्रामजनवंधुभ्यस्तल् । पा ४।२।४३) इति तल् टाप् । १ वंधुसमूह । २ वंधु होनेका भाव । ३ भाईचारा ।

वन्धुत्व (सं० पु०) १ वंधुता, वंधु होनेका भाव । २ भाईचारा । ३ मित्रता, दोस्ती ।

वन्धुदत्त (सं० पु०) वंधुना दत्तम् । पितृ-मातृ कर्तृक प्रदत्त स्त्रीधन, वह धन जो कन्याको विवाहके समय माता पिता या भाइयोंसे मिलता है ।

वन्धुदा (सं० स्त्री०) १ वेश्या, रंडी । २ दुराचारिणी स्त्री, वदचलन औरत ।

वन्धुपति (सं० पु०) वंधूनां पतिः । वंधुश्रेष्ठ, वह जो आत्मीय कुटुम्बोंमें प्रधान हो ।

वन्धुपाल (सं० पु०) आत्मीय कुटुम्ब प्रतिपालक, वह जो अपने कुटुम्बका प्रतिपालन करता हो ।

वन्धुपृच्छ् (सं० त्रि०) वंधुका विषय पूंछनेवाला ।

वन्धुमत् (सं० त्रि०) वंधु-अस्त्यर्थे मतुप् । १ वन्धु-युक्त । २ कुटुम्वसमन्वित । ३ राजभेद । स्त्रियां टाप् । ४ नगरभेद ।

वन्धुर (सं० क्ली०) वन्ध (मदुर दयश्च । उण् १।४२) इति उरप्रत्ययेन निपातनात् साधुः । १ मुकुट, सिरताज । २ रथवंधन । ३ स्त्रीचिह्न । ४ तिलकल्क, तिलका चूर । ५ वंधुक, दुपहरियाका फूल । ६ वधिर, वहरा मनुष्य । ७ हंस । ८ विड़ङ्ग । ९ ऋषभौषध, लहसुनकी तरहकी एक औषधि । १० कर्कटाशृङ्गी, काकड़ासिंगी । ११ वक, वगला । १२ विहङ्ग, चिड़िया । (त्रि०) १३ रम्य, सुन्दर । १४ नम्र । १५ उन्नतानत, ऊंचा नीचा ।

वन्धुरा (सं० स्त्री०) वन्धुर-टाप् । पण्ययोषा, सत्तू ।

वन्धुल (सं० पु०) वंधून लाति स्नेहेन गृह्णातीति वंधु ला-क । १ असतीपुत्र, वदचलन औरतका लड़का । २ वेश्यापुत्र, रंडीका लड़का । (त्रि०) ३ सुन्दर, खूबसूरत । ४ नम्र ।

वन्धुवञ्चक (सं० पु०) वह जो वंधुओंको ठगता होता हो ।

वन्धूक (सं० पु०) वध्नाति सौन्दर्येण चित्तमिति वन्ध (उलूकादयश्च । उण् ४।४१) इति-ऊक । (*Pentepetes Phoenicea*) १ पुष्पविशेष, दुपहरियाका फूल । वह

फूल दो पहरमें खिलता है और शामको मुरझा जाता है। संस्कृत पर्याय—रक्तक, वन्धूजीवक, वन्धुक, वन्धु, वन्धुल, जीवक, वन्धुजीव, वन्धूलि, वन्धुर, रक्त, माध्याह्निक, ओष्ठ-पुष्प, अर्कवल्लभ, मध्यन्दिन, रक्तपुष्प, रागपुष्प, हरि-प्रिय।

यह पुष्प असित, सित, पीत और लोहितके भेदसे चार प्रकारका है। गुण—ज्वरनाशक, विविध अरिग्रह और पिशाचप्रशमनकारक है। २ पीतशालक। ३ खंधूप, वंदूक। ५ दोघक नामक वृत्तका एक नाम। (त्रि०) ५ लघु, छोटा।

वन्धूकपुष्प (सं० पु०) वन्धूकस्य पुष्पमिव पुष्पं यस्य। १ पीतशाल। २ वीजक।

वन्धूर (सं० पु०) वंध-बंधनं (मद्गुरादयश्च। उण् १।४२) इत्यत्र खर्जूरादित्वादूरप्रत्ययेन सिद्धं। १ विवर, विल। (त्रि०) २ रम्य, सुन्दर। ३ उन्नतानत, वह स्थान जो कहीं ऊंचा और कहीं नीचा हो।

वन्धूलि (सं० पु०) वन्धुक वृक्ष, दुपहरिया फूलका पौधा।

वन्ध्य (सं० त्रि०) वन्ध-यक्। १ ऋतुप्राप्तावधि फल-रहित वृक्षादि, वह पेड़ जिसमें उपयुक्त समयमें भी फल नहीं लगते। पर्याय—अफल, अवकेशी, विफल, निष्फल। २ ऐसा पुल जिसके नीचेसे पानी वहता हो, वाँध।

वन्ध्या (सं० स्त्री०) १ वह स्त्री जो सन्तान न पैदा कर सके, वांझ। मनुमें लिखा है, कि वन्ध्या स्त्री अष्टम वर्षमें अधिवेदनीय होती है। (मनु ९।८१)

वृपली स्त्रीको भी वन्ध्या कहते हैं। जिनके संतान नहीं होती या हो कर मर मर जाती है उसका नाम वृषली है। २ योनिरोगभेद। भावप्रकाशमें उदावर्त्ता, विप्लुता और वल्यादिभेदसे योनिरोग नाना प्रकारका वतलाया गया है। जिन सव स्त्रियोंका आर्त्तव विनष्ट होता है उन्हें वन्ध्या कहते हैं। स्त्रियोंके यह रोग होनेसे यथाविधाम चिकित्सा करना आवश्यक है।

इसकी चिकित्सा।—वन्ध्यानारी प्रतिदिन मछली, कांजी, तिल, उड़द, अर्द्धक जलयुक्त मट्ठा और दधिका सेवन करे। इससे उनका आर्त्तव निकल सकता है। तितलौकीका वीज, दन्ती, गुड़, मैनफल, सुरावीज और यवक्षार इनके समान भागको थूहरके दूधमें पीस कर मूर्त्ति वनावे। पीछे उस मूर्त्तिको योनिमें देनेसे आर्त्तव निकलता है। ज्योतिष्मतीकी पत्तियां, सज्जीखार, वच, और शाल इन्हें शीतल दूधके साथ पीस कर पान करे, तीन दिनके मध्य ही रज अवश्य ही निकलने लगेगा।

श्वेतवहेड़ा, यष्टिमधु, रक्त वहेड़ा, कर्कटश्रृङ्गी और नागकेशर इन सव द्रव्योंका मधु, दुग्ध और घृतके साथ पान करनेसे वंध्यानारी गर्भधारण करती है। असगंध-के काढ़ेके साथ दूध पाक करके कुछ दूध रहते उसे उतार ले। पीछे ऋतु स्नान करके उसका घृतके साथ सेवन करनेसे निश्चय गर्भ रह जाता है। पुष्यानक्षत्रमें लक्ष्मणामूल उखाड़ कर ऋतुस्नान करनेके वाद घृत-कुमारीका रस दूधके साथ सेवन करे। इससे वंध्या दोष दूर हो जाता है और नारी थोड़े ही दिनोंके अंदर गर्भधारण करती है। पीत झिण्टीका मूल, धाईका फूल, वटका अंकुर, और नीलोत्पल इन्हें दूधके साथ पीस कर पान करनेसे वंध्यादोष जाता रहता है। गजपिप्पली, जीरा, श्वेतपुष्प और शरपुङ्खा इनके समान भागको पीस कर पान करनेसे स्त्री गर्भवती होती है। एक पलाशपत्र को दूधमें पीस कर पान करनेसे वीर्यवान् पुत्र जन्म लेता है। मूकशिम्बीमूल, कपित्थकी मज्जा और लिङ्गिनी-वीज, इन्हें दूधके साथ पान करनेसे नारी पुत्रप्रस्रवणी होती है। पुत्रजीव वृक्षका मूल, विष्णुक्रान्ता और लिङ्गिनी इनके समान भागको पीस कर आठ दिन सेवन करनेसे स्त्री पुत्र प्रसव करती है। (भावप्र० योनिरोगाधि०)

वंध्या स्त्री यदि पूर्वोक्त औषधादिका यथाविधि सेवन करे, तो उनका वंध्या दूर होता है और वे पुत्रप्रस्रवणी होती हैं, इसमें सन्देह नहीं। फिर ऐसी भी ओषधि हैं जिनका सेवन यदि पुत्रप्रसविणी स्त्री करे, तो उन्हें गर्भ नहीं रहता।

वैद्यक चक्रपाणिसंग्रहमें लिखा है—

"पिप्पल्यः श्रृङ्गवेरञ्च मरिचं केशरन्तथा।
घृतेन सह पातव्यं वंध्यापि लभते सुतम्।"

पिप्पली, श्रृङ्गवेर, मिर्च और नागकेशर, इन्हें घृतके साथ पान करनेसे वंध्या पुत्रप्रसव करती है। वला, अतिवला, यष्टि और शर्कराका मधुके साथ पान करनेसे वंध्यादोष दूर होता है। (भैषज्यरत्ना०)

वन्ध्याकर्कोटकी (सं० स्त्री०) वंध्यायाः कर्कोटकी पुत्रदातृतया वंध्यायाः उपकारिणी अतोऽस्यास्तथात्वं। तिक्तकर्कोटकी, बांझ ककड़ी। पर्याय—वन्ध्या, देवी, नागाराति, नागहंत्री, मनोज्ञा, पथ्या, दिव्या, पुत्रदा, सकन्दा, श्रीकन्दा, कन्दवल्ली, ईश्वरी, सुगन्धा, सर्पदमनी, विषकण्टकिनी, परा, कुमारी, भूतहन्त्री। गुण—तिक्त, कटु, उष्ण, कफावह, स्थावरादि-विषनाशक और रसायन। (राजनि०) भावप्रकाशके मतसे इसका गुण—लघु, कफनाशक, व्रणशोधक, सर्पविषहर, तीक्ष्ण और विसर्प तथा विषहारक।

वन्ध्यातनय (सं० पु०) वन्ध्याया तनय इव। अलीक पदार्थ, कभी न होनेवाली चीज।

वन्ध्यात्व (सं० क्ली०) वंध्याया भावः त्व। वंध्याका भाव या धर्म।

वन्ध्यादुहितृ (सं० स्त्री०) मिथ्या पदार्थ या वस्तु।

वन्ध्यापुत्र (सं० पु०) अलीक पदार्थ, ठीक वैसा ही असम्भव भाव या पदार्थ जैसे वंध्याका पुत्र, कभी न होनेवाली चीज।

वन्ध्याश्व (सं० पु०) पुराणोक्त राजभेद।

वन्ध्यासुत (सं० पु०) मिथ्या पदार्थ।

वन्ध्यासूनु (सं० पु०) आकाशकुसुमवत् मिथ्या।

वन्ध्वेष (सं० पु०) वंधूनामेषः अन्वेषणं। अपने वंधुवर्गोका अन्वेषण।

वन्नी (हिं० स्त्री०) अन्नका तिहाई अथवा और कोई भाग जो खेतमें काम करनेके बदलेमें दिया जाता है।

वन्नू—देराजात विभागके अंतर्गत एक जिला। यह अक्षा० ३२°५' उ० तथा देशा० ७०° २३' से ७१° १६' पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण १६७० वर्गमील है। एडवर्ड्सावादमें इसका विचार-सदर स्थापित है। सिन्धुनदी जिलेके उत्तर दक्षिणमें बहती है। नदीका पश्चिम तीरवर्ती भूभाग कुछ दूर समतल है, बादमें लवण पर्वतकी क्रमोन्नत शाखा देखी जाती है। खटक नियाजै वा मैदानी पर्वतमालाका सुखाजियारात् शिखर समुद्रपृष्ठसे ४७५५ फुट ऊंचा है। इसीके उत्तर भागमें प्रकृत वन्नू उपत्यका है। यह स्थान डिम्बाकृति और उत्तर दक्षिण में ३० कोस लम्बा है। इसके चारों ओर प्राचीरके आकारमें गिरिमाला है। पश्चिममें वाजिरी जातिका वासस्थान वाजिरी पर्वत, पीरवल और शिविधर शिखर है। उत्तरमें कोहटका खटक पर्वत और सफेदको, पूर्वमें तकनियाजी और दक्षिणमें शेखबुदिन नामक पर्वत है। इस शेखबुदिन पर्वत पर वन्नू और देरा इसमाइल-खाँ-वासी-यूरोपियनोंके लिये स्वास्थ्यवास स्थापित है। कुरम और तोची नदी इस उपत्याकाभूमि हो कर बहती हुई सिंधुमें मिली है। इस जिलेके उत्तर कालावागके निकट सिंधनदी लवण पर्वतको भेद कर बह गई है। सिंधुनदके पूर्व यह सिंधुसागर-दोआब कहलाता है।

लवणपर्वत और मैदानी पर्वतमाला पर जगह जगह नमक पाया जाता है। कालावागके दूसरी ओर मारी नामक स्थानमें सैंधव नमक बहुतायतसे निकाला जाता है अलावा इसके इसाखेल नामक स्थानमें सोरा, कालावाग और कुटकीमें फिटकरी, दो प्रकारका कोयला, मट्टीका तेल और सिंधुजलमें बहुत कम मात्रामें सोना भी पाया जाता है।

कुछ सदी तक यहांके अधिवासियोंमेंसे अफगान जातिकी ही प्रधानता देखी जाती है। यहां प्राचीन कालमें हिन्दुओंका वास था और पञ्जावके यवन-वाह्लीक (Greco Bactrian)-अधिकारमें इस जिलेमें प्रतीच्य सभ्यताके क्षीणालोकने प्रवेश किया था। वन्नू उपत्यकाके आकराआदि स्थानोंमें आज भी अनेक इष्टकस्तूप, भग्न मूर्त्ति, हिंदूका परिहित अलङ्कार और सिक्के आदि देखनेमें आते हैं। १८६५ ई०में सिन्धुनदके स्रोतोवेगमें जो इसी प्रकारके एक प्राचीन समृद्धिशाली नगरका ध्वंसावशेष बह गया था, उसमें भी अनेक भग्नमूर्त्ति और स्तम्भ आदि दिखाई दिये थे।

इन सब ध्वंसावशेषसे जिस प्राचीन समृद्धिकी कल्पना की जाती है, गजनीराज महमूदके सर्व विलयकारी उपद्रवसे वह चौपट हो गई। स्थानीय प्रवाद है, कि महमूदने यहांके हिन्दू दुर्गादिको जड़से नष्ट कर डाला था। पीछे कुछ सदी तक यह प्रायः जनहीन सा पड़ा रहा। धीरे धीरे वन्नूची वा वन्नूवाल और नियाजै जाति यहां आ कर बस गई। सम्राट् अकबर

शाहके अमलमें मरवत् लोगोंने इस पर अधिकार जमाया और नि ाजैको खटक नियाजै पर्वत पर मार भगाया। इसके प्रायः डेढ़ सौ वर्ष बाद अहमदशाह दुरानीने जब गक्कर जातिका प्रभाव नष्ट कर डाला, तब सरहङ्ग लोगोंने यहां आ कर आश्रय ग्रहण किया था। मरवत् और वन्नूची आज भी इस प्रदेशमें वास करते हैं।

अकबरके परवर्त्ती दो सदी तक यहांके अधिवासियोंने नाममात्र दिल्लीकी अधीनता स्वीकार की थी। १७३८ ई०में नादिरशाहने यह स्थान जीत कर सारे प्रदेशको श्मशान-सा बना दिया। अहमदशाह दुरानीने इसी उपत्यका हो कर अपनी सैन्यपरिचालना की थी और जाते समय वे यथासाध्य कर वसूल करनेमें जरा भी बाज नहीं आये थे। किंतु दुर्द्धर्ष अधिवासियोंको वशमें ला कर वे शासनविधिकी स्थापना किसी हालतसे न कर सके। १८३८ ई०में यह स्थान सिखोंके अधिकारमें आया। रणजित्सिंहने रावलपिण्डीवासी गक्कर जातिको परास्त कर सिंधुके पूर्ववर्त्ती स्थानोंमें अपना शासन प्रभाव फैलाया। राज्य फैलानेकी इच्छासे वे धीरे धीरे सिन्धुके पश्चिम वन्नू उपत्यका तक बढ़ गये थे। अन्यान्य सभी स्थान उनके हाथ आने पर भी वे वन्नूवासियोंको काबूमें न ला सके। कई बार युद्धके बाद वे अपने पूर्वपुरुषोंकी प्रथाके अनुसार बाकी खजाना वसूल करनेके समय सैन्य प्रेरण द्वारा उन्हें उत्साहित करते थे।

रणजित्की मृत्युके बाद यह स्थान अङ्गरेजोंके अधिकारमें आया। १८४७-४८ ई०में सर हावर्ट एडवार्डिस सिखसेनाके साथ वन्नू उपत्यका देखने आये। इस समय वन्नूवासी स्वाधीन, परस्पर विरोधी और युद्धविग्रहमें लिप्त थे। प्रत्येक ग्राम एक दुर्गरूपमें परिणत हो गया था। सेनापति एडवार्डिसने अपने बुद्धिकौशलसे उन्हें वशमें ला कर राज्य भरमें शान्ति स्थापन की। उनके सभी दुर्ग तोड़ फोड़ दिये गये। वे सबके सब स्वेच्छासे राज कर देने लगे। मूलतान-युद्धके आरम्भमें एडवार्डिस यहांसे सैन्य संग्रह करके युद्धक्षेत्रमें उतरे। अभियानकालमें वन्नूवासियोंने विशेष राजभक्ति दिखलाई थी। एडवार्ड सावादकी सिखसेना विद्रोही हो कर मूलतानमें आ कर मिल गई। पञ्जाब अङ्गरेजोंके राज्यभुक्त होनेके बाद यहां अङ्गरेजोंका शासन अच्छी तरह जम गया। १८५७ ई०में सिपाही विद्रोहके समय यहां कोई विशेष घटना न घटी। पश्चिमके अधिवासियोंके आक्रमणसे बीच बीचमें शान्ति भङ्ग हुआ करती थी। सीमान्तदेशकी रक्षाके लिये यहां १० थाने हैं जिनमेंसे ८में गोरा और कुरम तथा टोची थानेमें देशीय सिपाही रहते हैं।

इस जिलेमें २ शहर और ३६२ ग्राम लगते हैं। जनसंख्या ढाई लाखके करीब है। यहांकी भाषा पुश्तू है। विद्याशिक्षामें यह जिला बहुत पीछा पड़ा हुआ है। सैकड़े पीछे ४ मनुष्य पढ़े लिखे मिलते हैं। सभी उच्चनीच श्रेणीके स्कूलोंकी संख्या कुल २०० हैं। स्कूलके अलावा एक सिभिल अस्पताल और एक चिकित्सालय है।

२ उक्त जिलेकी एक तहसील। यह अक्षा० ३२ं४४ से ३३ं५ उ० और देशा० ७०ं२२ से ७०ं५८ पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ४४३ वर्गमील और जनसंख्या प्रायः १३०४४४ है। इस उपविभागमें वन्नूची नामक अफगान जातिका वास है। इसमें इसी नामका एक शहर और २१७ ग्राम लगते हैं।

३ उक्त तहसीलका एक नगर। यह अक्षा० ३३ं०ं तथा देशा० ७०ं३६ पू० कुर्रम नदीसे एक मील दक्षिणमें अवस्थित है। जनसंख्या १५ हजारके लगभग है। १८४८ ई०में लेफ्टिनेण्ट एडवर्डने इस नगरको बसाया। यहां काश्मीरके महाराजाके स्मारकमें एक दुर्ग बनाया गया है जिसका नाम धुलीपगढ़ है। धूलीपनगर नामका एक बाजार भी उन्हींकी स्मृतिमें बसाया गया था। चर्च मिशनरी समितिने शहरमें एक गिरजा और १८६५ ई०में एक हाई-स्कूल खोला है। यहां ब्रिटिश सरकारका सीमान्तरक्षक सेनादल (१ दल अश्वारोही, २ दल पदातिक, १४७० सङ्गीनवाही सैन्य, ४६२ तलवारधारी और कामानवाही सैन्य) रहता है।

वन्नूची—वन्नू जिलावासी अफगानजाति।

वन्हि (सं० स्त्री०) वह्नि देखो।

वपमार (हिं० वि०) १ पिताका घातक, वह जो अपने पिताकी हत्या करे। २ सबके साथ धोखा और अन्याय करनेवाला।

वपतिस्मा (अं० पु०) ईसाई सम्प्रदायका एक मुख्य संस्कार। यह संस्कार किसी व्यक्तिको ईसाई बनानेके समय किया जाता है। इसमें पादरी हाथमें जल ले कर अभिमन्त्रित करता और ईसाई होनेवाले व्यक्ति पर छिड़कता है। जब विधर्मी ईसाई बनाया जाता है, उस समय भी यह संस्कार किया जाता है। इस समय संस्कृत होनेवालेका एक अलग नाम भी रखा जाता है जो उसके कुल-नामके साथ जोड़ दिया जाता है।

वपुरा (हिं० वि०) १ आशक्त, वेचारा।

वपौती (हिं० स्त्री०) पितासे मिली हुई सम्पत्ति, वापसे पाई हुई जायदाद।

वप्पा (हिं० पु०) पिता; वाप।

वफारा (हिं० पु०) १ औषधमिश्रित जलको औंटा कर उसकी भापसे शरीरके किसी रोगी अंगको सेकनेका काम। २ वह औषध जिसकी भापसे इस प्रकारका सेक किया जाय।

वफौरी (हिं० स्त्री०) वह वरी जो भापसे पकाई गई हो। इसकी प्रस्तुत प्रणाली—वटलोईमें अदहन चढा कर उसके मुंह पर वारीक कपड़ा वांध दे। जब पानी खूब उवलने लगे, तव कपड़े पर वेसन या उर्दकी पकौड़ी छोड़े जो भापसे ही पक जायगी। इन्हीं पकौड़ियोंको वफौरी कहते हैं।

वफ्फा—पञ्जाव प्रदेशके हजारा जिलान्तर्गत एक नगर। यह अक्षा० ३४° २६′ ३०″ उ० और देशा० ७३° १५′ १५″ पू० सिर्हन नदीके दाहिने किनारे अवस्थित है। उत्तर हजारा और स्वात् विभागका यह प्रधान वाणिज्यस्थान है। यहां नील, कार्पास-वस्त्र, ताम्र पात्र और शस्यादिकी आमदनी तथा रफ़्तनी होती है।

ववकना (हिं० क्रि०) उत्तेजित हो कर जोरसे वोलना, वमकना।

ववर (फा० पु०) १ ववरी देशका शेर, वड़ा शेर। २ एक प्रकारका मोटा कम्मल जिसमें शेरकी खालकी सी धारियाँ होती हैं।

ववा (हिं० पु०) वावा देखो।

ववुआ (हिं० पु०) १ वेटे या दामादके लिये प्यारका संवोधन शब्द। २ जमींदार, रईस।

ववुई (हिं० स्त्री०) १ कन्या, वेटी। २ किसी ठाकुर सरदार या वावूकी वेटी। ३ पतिकी छोटी वहन, छोटी ननद।

ववुर (हिं० पु०) ववूल देखो।

ववूल (हिं० पु०) भारतके प्रायः सभी स्थानोंमें मिलनेवाला एक प्रसिद्ध कांटेदार पेड़। यह मझोले कदका होता है और जंगली अवस्थामें अधिकतासे पाया जाता है। गरम देश और रेतीली जमीनमें यह पेड़ वहुत जल्द वढ़ता है। कहीं कहीं यह पेड़ सौ सौ वर्ष तक रहता है। इसमें छोटे छोटे पत्ते, सूईके वरावर कांटे और पीले रंगके छोटे छोटे फूल लगते हैं। इसके अनेक भेद हैं। कुछ जातियोंके ववूल तो वागोंमें केवल शोभाके लिये लगाये जाते हैं, पर अधिकांशसे इमारत और खेतीके कामोंके लिये वहुत अच्छी लकड़ी निकलती है। इसकी लकड़ी वहुत मजवूत और भारी होती है। यदि यह कुछ दिनों तक किसी खुले स्थानमें पड़ी रहे, तो प्रायः लोहेके समान हो जाती है। इसकी लकड़ी ऊपरसे सफेद और अंदरसे कुछ कालापन लिये लाल रंगकी होती है। इससे खेतीके सामान, नावें, गाड़ियों और एक्कोंके धुरे तथा पहिए आदि अधिकतासे वनाये जाते हैं। यह लकड़ी जलनेमें भी वड़े कामकी है, क्योंकि इसकी आंच वहुत तेज होती है। इसके कोयले भी वनाये जाते हैं। इसकी पतली टहनियां, इस देशमें, दातुनके काममें आती हैं। इसकी जड़, छाल, सूखे वीज और पत्तियां औषधमें भी व्यवहृत होती हैं। छालका उपयोग चमड़ा सिझाने और रंगनेमें भी होता है। पशु इसकी पत्तियां और कच्ची कलियां वड़े चावसे खाते हैं। सूखी टहनियोंसे लोग खेतों आदिमें वाढ़ लगाते हैं। सूखी कलियोंसे पक्की स्याही भी वनती है और फूलोंसे शहद निकलती है। इसमें गोंद भी होता है जो और गोंदोंसे वहुत अच्छा समझा जाता है। कुछ प्रान्तोंमें इस पर लाखके कीड़े रख कर लाख भी पैदा की जाती है। रामववल; खैर, कुलाई, करील, वनरीठा, सोनकीकर आदि इसीकी जातिके वृक्ष हैं।

ववूला (हिं० पु०) १ वगूला देखो। २ वुलवुला देखो।

३ पत्ती ववूल देखो। ४ हाथियोंके पांवमें होनेवाला एक प्रकारका फोड़ा।

वभनी (हिं० स्त्री०) १ एक प्रकारका कीड़ा। यह छिपकलीके समान, पर जोंक-सा पतला होता है। इसके शरीर पर लंवी सुन्दर धारियां होती हैं। जिनके कारण वह वहुत सुन्दर ज्ञान पड़ता है। २ कुशकी जातिका एक तृण जिसे वनकुस भी कहते हैं।

वभूत (हिं० स्त्री०) वभूत या विभूति देखो।

वभ्रूवी (सं० स्त्री०) वभ्रोः शिवस्येयं पत्नी, वभ्रु-अण् ङीप्, न वृद्धिः। दुर्गा।

वभ्रि (सं० पु०) वभृ-इन्। १ वज्र। (त्रि०) २ भरणकर्त्ता। ३ धारक।

वभ्रु (सं० पु०) विभर्त्ति भवति वा भृ (कुभ्रुश्च। उण् १।२३) इति कुर्द्धित्वञ्च। १ अग्नि, आग। २ शिव। ३ विष्णु। ४ नकुल। ५ मुनिविशेष। ६ देशभेद। ७ सितावरशाक। ८ खलति। ६ कपिलवर्ण। १० लोमपादसुत। (भाग० ६।२४।१) ११ देवोवृधसुत। १२ ययातिपुत्र द्रुह्युके पुत्र। १३ पञ्चगन्धर्वपतिमेंसे एक। १४ विश्वामित्रके पुत्रभेद। १५ विश्वगर्भके पुत्र। ये यादवोंके अन्यतम थे। इनकी स्त्रीको शिशुपालने हर लिया था। यादवकुल जव विनष्टप्राय हो गया, तव वभ्रु कृष्णके आदेशसे यादव पत्नियोंकी रक्षाके लिये गये थे। इसी समय कुछ डकैतोंने मिल कर इन्हें मार डाला। (भारत मो०पळप० ४ अ०) १६ कपिला गाय (त्रि०) १७ पिङ्गल वर्ण। १८ विशाल। १८ कपिलवर्णयुक्त।

वभ्रुक (सं० त्रि०) १ पिङ्गलवर्ण सम्बंधीय। (पु०) २ नकुल, नेवला। ३ कपिञ्जल, वंदर।

वभ्रुकर्ण (सं० त्रि०) पिङ्गलवर्ण कर्णयुक्त।

वभ्रुदेश (सं० पु०) जनपदभेद।

वभ्रुधातु (सं० पु०) वभ्रुः पिङ्गलो धातुः। १ स्वर्ण, सोना। २ गैरिक धातु, गेरू।

वभ्रुनीकाश (सं० त्रि०) कपिलवर्ण सदृश।

वभ्रुमालिन् (सं० पु०) १ पिङ्गलवर्ण मालाधारी। २ मुनिविशेष। (त्रि०) ३ नकुलकी तरह मुंहवाला।

वभ्रुवाह (सं० पु०) महोदयपति, अर्जुनका पुत्र। वभ्रुवाहन देखो।

वभ्रुवाहन (पु०) मणिपुरके एक प्रसिद्ध राजा। यह अर्जुनकी स्त्री चित्राङ्गदाके गर्भसे पैदा हुए थे।

महाराज युधिष्ठिर जिस समय अश्वमेधयज्ञ करते थे, उस समय अर्जुनको यज्ञके अश्वका रक्षक वनाया। यज्ञीय अश्व दौड़ता हुआ मणिपुर पहुंचा, उसके साथमें अर्जुन भी थे। अपने समीप विनीत भावसे वभ्रुवाहनको आते देख अर्जुनने इसका कुछ भी आदर नहीं किया वरन् तिरस्कारसे कहा, 'तुम क्षत्रिय तथा वीर पुरुष कैसे, जो मेरे सामने युद्धार्थी वन कर नहीं आये! यह तुमने क्षत्रियोचित कार्य न कर प्रत्युत क्षत्रियविगर्हित कार्य किया है। अतएव मैं तुझे स्त्रीसे भी अधम समझता हूं।' अर्जुनके इस प्रकार तिरस्कार करने पर उलूपी वहुत विगड़ी। उसने वभ्रुवाहनको अर्जुनके साथ लड़ाई करनेके लिये उसकाया। वभ्रुवाहनने यज्ञीय अश्व पकड़ रखा। इस पर दोनोंमें युद्ध ठना। वभ्रुवाहनने युद्धमें अर्जुनको धराशायी वना दिया। चित्राङ्गदाको जव यह समाचार मिला तव वह रणाङ्गणमें आई और उलूपी तथा वभ्रुवाहनको कोश कर रोने लगी। उसने स्वामीके साथ सती होनेका निश्चय कर लिया। पिता और माताके शोकसे वभ्रुवाहनने भी म्रियमाण हो प्रत्योपवेशन ठान दिया।

उलूपीने इन लोगोंको प्राणत्यागकी चेष्टा देख नागलोकस्थित सञ्जीवनीमणिका ध्यान किया। ध्यान करते ही वह मणि उलूपीके पास आ गई। नागकुमारी उलूपीने उस मणिको ले कर वभ्रुवाहनको पुकारा, 'वत्स! शोक छोड़ दे। तुम अर्जुनको पराजित नहीं कर सकते। इंद्रादि देव भी उन्हें पराजय न कर सके हैं। तुम्हारे और पिता अर्जुनके प्रेम देखनेके लिये मैंने यह मायाजाल रचा था। अर्जुन तुम्हारा पराक्रम जाननेके लिये ही यहां आये थे। मैंने भी इसीलिये तुम्हें युद्ध करनेके लिये उभाड़ा था। अतएव तुम्हें इस विषयके पापकी अणुमात्र आशंका न करनी चाहिये। मैंने यह दिव्य मणि ला दी है, इस मणिको ले जाओ और अर्जुनके वक्षस्थल पर रख दो। धनंजय मणिके रखने मात्रसे चट उठ खड़े होंगे। वभ्रुवाहनने वह मणि अर्जुनकी छाती पर रख दी। सुप्तोत्थितके समान अर्जुन उठ खड़े हुये। आकाशसे

पुष्पवर्षा होने लगी। वभ्रु वाहनने पिताको जीवित देख चरणोंमें प्रणाम किया। रणाङ्गणमें चित्रांगदा, उलूपी आदिको देख कर आश्चर्यसे अर्जुनने पूछा, 'रणभूमिमें तुम लोग क्यों आये हो? तुम्हारे यहां आनेका क्या काम था?' उलूपीने अर्जुनसे कहा, 'नाथ! मैंने आपके प्रेमसाधनके लिये वभ्रु वाहनको युद्धार्थी बनाया था, इसलिये मेरा इसमें आप कोई दोष न समझें। आपने भारतयुद्धमें अधर्ममार्गका सहारा ले कर महात्मा भीष्मदेवको धराशायी बना अत्यंत पापका संचय किया है। अभी उस पापकी निष्कृति वभ्रु वाहन हाथके द्वारा हार खानेसे हो गई। यदि आपकी मृत्यु इस पापकी शांतिके विना हो जाती, तो निश्चयसे नरक जाना पड़ता। पुत्रसे पराजित होने पर आपका यह पाप दूर हो गया, अब नरक नहीं जाना पड़ेगा। भगवती भागीरथी और वसुगणने आपके इस पापकी शांतिका उपाय पहले ही निर्देश कर रखा था।

भीष्मने जब प्राण छोड़े थे, उस समय देवता और वसुगणने गङ्गामें स्नान कर भागीरथीसे कहा, 'अर्जुनने भीष्मको अन्यायसे मारा है, आप सम्मति दीजिये, हम लोग अर्जुनको शाप दें।' गङ्गाने "तथास्तु" कह कर उन लोगोंको शाप देनेकी अनुमति दे दी। मैं भी उस समय उपस्थित थी। यह सुनते ही मैंने वहांसे चल कर सभी संवाद अपने पितासे कह सुनाया। पिता आपके कल्याण की इच्छासे वसुगणकी शरणमें गये। पितासे संतुष्ट हो वसुगणने भागीरथीकी सम्मति ले कर कहा, अर्जुनके पापका विनाश तभी होगा जब अर्जुन अपने पुत्र मणिपुरके अधिपति वभ्रु वाहनके हाथसे पराजित होंगे। पिताने मुझसे यही वृत्तान्त कहा था। इसलिये मैंने ही वभ्रु वाहनको युद्धके लिये उभाड़ा था। आप इस पराजयसे कुछ भी दुःखित न हों।' उलूपी के इन वचनोंसे अर्जुनका मानसिक क्लेश बिलकुल जाता रहा। अनन्तर वे यज्ञीय अश्वके पीछे वहांसे फिर रवाना हुए। इधर वभ्रु वाहन माता चित्रांगदा और उपमाता उलूपीके साथ युधिष्ठिरके अश्वमेध यज्ञमें पहुंचे। इस यज्ञमें युधिष्ठिरने वभ्रुवाहनका बड़ा आदर किया था। (भारत आश्वमेधिक० ७९—८९ अ०)

वभ्रुश (सं० त्रि०) कपिशवर्ण।

वभ्रु पुत (सं० त्रि०) वभ्रु कर्तृक अभिपुत सोम।

वभ्लुश (सं० त्रि०) कपिलवर्ण।

वम (अं० पु०) विस्फोटक पदार्थोंसे भरा हुआ लोहेका बना वह गोला जो शत्रुओंकी सेना अथवा किले आदि पर फेंकनेके लिये बनाया जाता है और जो गिरते ही फट कर आस पासके मनुष्यों और पदार्थोंको भारी हानि पहुंचाता है।

वम (हिं० पु०) १ शिवके उपासकोंका वह 'वम' 'वम' शब्द जिसके विषयमें यह माना जाता है, कि इसके उच्चारणसे शिवजी प्रसन्न होते हैं। कहते हैं, कि शिवने क्रुद्ध हो कर जब दक्षका शिरच्छेद किया, तब उसकी जगह छागका शिर जोड़ दिया जिससे वे बकरेकी तरह बोलने लगे। इससे जब लोग गाल बजाते हुए 'वम' 'वम' करते हैं, तब शिवजी प्रसन्न होते हैं।

२ शहनाईवालोंका वह छोटा नगाड़ा जो बजाते समय बाईं ओर रहता है, मादा नगाड़ा। ३ फिटन आदिमें आगेकी ओर लगा हुआ वह लंबा बांस जिसके दोनों ओर घोड़े जाते हैं, बग्गी। ४ एक्के, गाड़ियों आदिमें आगेकी ओर लगा हुआ लकड़ियोंका वह जोड़ा जिसके बीचमें घोड़ा खड़ा करके जोता जाता है।

वमचख (हिं० स्त्री०) १ शोर, गुल। २ विवाद, लड़ाई।

वमसारु—युक्तप्रदेशके गढ़वाल राज्यान्तर्गत एक गिरिसङ्कट। यह अक्षा० ३०° ५६´ उ० और देशा० ७८° ३६´ पू०के मध्य अवस्थित है। समुद्रपृष्ठसे इसकी ऊंचाई १५४४७ फुट है। इसका शृङ्ग हमेशा वर्फसे ढंका रहता है।

वमीठा (हिं० पु०) वल्मीक, वाँबी।

वमुकाबला (फा० क्रि० वि०) १ समक्ष, मुकाबलेमें। २ विरुद्ध, मुकाबले पर।

वमूजीव (फा० क्रि० वि०) अनुसार, मुताबिक।

वमेला (हिं० स्त्री०) एक प्रकारकी मछली।

वमोट (हिं० पु०) वमीठा देखो।

वम्मर (सं० पु०) भ्रमर, भौंरा।

वम्भराली (सं० स्त्री०) मक्षिका, भ्रमर।

बम्भारि (सं० पु०) विश्वपोषक, वह जो संसार भरका पालन पोषण करता हो।

बम्हनपियाव (हिं० पु०) ऊखको पहले पहल पेरनेके समय उसका कुछ रस ब्राह्मणों आदिको पिलाना जो आवश्यक और शुभ माना जाता है।

बम्हनरसियाव (हिं० पु०) बम्हनपियाव देखो।

बम्हनी (हिं० स्त्री०) १ छिपकिलीकी तरहका एक पतला कीड़ा। यह आकारमें छिपकिलीसे प्रायः आधा होता है। इसकी पीठ काली, दुम और मुंह लाल चमकीले रंगका होता है। पीठ पर चमकीली धारियां होती हैं। २ ऊखका एक रोग। ३ लाल रंगकी भूमि। ४ हाथी-का एक रोग। इसमें उसकी दुम सड़ कर गिर जाती है। ५ वह गाय जिसकी आँखकी विरनी झड़ गई हों। ६ आँखका एक रोग। इसमें पलक पर एक छोटी फुंसी निकल आती है।

वयंड (हिं० पु०) हाथी।

वय (हिं० स्त्री०) वय देखो।

वयना (हिं० क्रि०) १ वर्णन करना, कहना। (पु०) २ वैना देखो।

वयल (हिं० पु०) सूर्य।

वयस (हिं० स्त्री०) वय देखो।

वयसर (हिं० स्त्री०) कमखाव बुननेवालोंकी वह लकड़ी जो उनके करघेमें गुल्लेके ऊपर और नीचे लगती है।

वया (हिं० पु०) गौरैयाके आकार और रंगका एक प्रसिद्ध पक्षी। इसका माथा बहुत चमकदार पीला होता है। यह पोस मानता है और सिखानेसे संकेत करने पर, हलकी हलकी चीजें किसी स्थानसे ले आता है। यह अपना घोंसला सूखे तृणोंसे बहुत ही कारीगरीके साथ और इस प्रकारका बनाता है कि उसके तृण बुने हुए मालूम होते हैं। २ वह जो अनाज तौलनेका काम करता हो, अनाज तौलनेवाला।

वयाई (हिं० स्त्री०) अन्न आदि तौलनेकी मजदूरी, तौलाई।

वयाजिद अनसारी—अफगान-देशवासी एक मुसलमान, रोशानिया नामक सुफीधर्म-सम्प्रदायके प्रवर्त्तयिता। इन्होंने अपनेको ईश्वरप्रेरित दूत बतला कर तमाम घोषणा कर दी थी। इस कारण जनसाधारण इन्हें 'पीर-रोशन' कहा करते थे। उनके धर्मोन्मादसे मुग्ध हो पर्वतवासी असंख्य अफगान लोग उनके दलमें शामिल हुए। इस उन्मत्त सेनादलको ले कर उन्होंने तथा उनके वंशधरोंने मुगल-सम्राट् अकबरशाहके अप्रतिहत शासनको विच-लित कर डाला था।

वयाजिद सुलतान—खुरासानका अधिपति एक मुसलमान। बुस्ताम नगरमें इसका जन्म हुआ था। चट्टग्राम नगरमें इसका समाधिस्तम्भ है जो सुलतान वयाजिदका रौजा नामसे प्रसिद्ध है। प्रवाद है, उसने राजकार्यसे विरक्त हो राजपद त्यागा था और शान्तिलाभके लिये संन्यासधर्म धारण करनेके बाद अनुचरोंको साथ ले वह चट्टग्राममें आया। वहांके राजाने मुसलमानोंको नगरप्रवेश करनेसे निषेध किया। सुलतान वयाजिदने विनम्र वचनों द्वारा राजाको संतुष्ट कर रात्रिवासके लिये सामान्य भूमि मांगी और कहा, 'इस प्रदीपको जलाने पर जहां तक प्रकाश जायगा वहां तकका स्थान मुझे मिलना चाहिये।' राजाने अनुमति दे दी। कहते हैं, कि जब उसने योगप्रभाव से प्रदीप जलाया, तब ६० कोस दूरवर्त्ती तिक्नुक नामक स्थान तक आलोकित हुआ था।

मुसलमानोंकी धोखेबाजीसे क्रुद्ध हो राजपुरुषोंने उससे युद्ध ठान दिया। बार बार आक्रान्त होने पर भी सुलतानने समरक्षेत्रसे राजकर्मचारियोंको मार भगाया। घोरतर युद्धके समय जहां उसकी अंगूठी गिरी थी वहां रौजा बनाया गया जो आज भी मौजूद है। जिस नदीमें उसका कर्णफूल और शंख गिरा था वह भी कर्ण-फूली तथा शंखवती कहलाने लगी। सुलतान वयाजिदने 'गोरचेला' वन (योगमें समाधि ग्रहण कर) १२ वर्ष तक कठिन तप किया। पीछे रौजा समाधिमंदिरके बनवाने, तीर्थयात्री और अनुचरोंके व्ययके लिये भूमिदान दे वया-जिद सुलतान मकनपुर चल गया। इसका शिष्य शाह भी मोक्षलाभकी आशासे १२ वर्ष तक एक पैरसे दंडाय-मान हो आखिर पञ्चत्वको प्राप्त हुआ। पीछे वह समाधि-मंदिर वयाजिदके अन्यतम शिष्य पीरके अधीन हो गया।

इसके बाद मुसलमान-समाजमें इस स्थानका बहुत

आदर हुआ। दूर दूर देशोंसे मुसलमान तीर्थयात्री इस पवित्र क्षेत्रके दर्शन करने आते हैं। यह रौजा पर्वतके शिखर पर स्थापित है। उसके चारों ओर ३० फुट लंबी और १५ फुट ऊंची दीवार है। इसके चार कोनेमें चार स्तंभ तथा स्थान स्थानमें वाण फेंकनेके लिये प्राकार-छिद्र देखे जाते हैं। परिवेष्टित स्थानके ठीक मध्यमें समाधि-स्तम्भ है। किलेकी तरह इस प्राकार-परिवेष्टनीकी बनावट सम्राट् अकबरशाहके राजत्वमें निर्मित किले-सी है।

बयान (फा० पु०) १ वर्णन, जिक्र, चर्चा। २ विवरण, वृत्तान्त, हाल।

बयाना—राजपूतानेके अन्तर्गत इसी नामकी तहसीलका एक सदर। यह अक्षा० २६°५५´ उ० तथा देशा० ७७°१८´ पू० गम्भीर नदीके बायें किनारे अवस्थित है। जन-संख्या प्रायः ६८६१ है। आगरा महानगरीसे यह स्थान ४७ मील दूर पड़ता है। नगरसे ३ कोस पश्चिम एक पर्वतके शिखर पर विजयमन्दरगढ़ वा शान्तपुर नामक एक प्राचीन हिन्दू-दुर्ग अवस्थित है। जाट और मुसलमानी अमलदारीमें इस दुर्गका अनेक बार संस्कार हुआ था। विजयमन्दर देखो।

बयानानगर और विजयमंदर-दुर्गकी प्राचीनताके विषयमें स्थानीय लोगोंके मुखसे अनेक सत्य घटनायें सुनी जाती हैं। पर्वतके एक ही अङ्कमें स्थापित एवं एक ही ऐतिहासिक घटनापरम्परासे समाश्रित होने पर भी इन दो स्थानोंका ऐतिहासिक तत्त्व स्वतंत्र भावसे लिखा जाता है। वर्त्तमान हिंदू अधिवासीगण इस नगरको बैयाना या बयाना कहते हैं। मुसलमान-इतिहासमें यह बियाना नामसे उल्लिखित हुआ है।

इस स्थानका प्राचीन नाम बाणासुर है। कोई कोई कहते हैं, कि बलिराजाके पुत्र बाणासुरने इस नगरको बसाया। वहांके लोगोंका कहना है, कि यह बाणासुर चंद्रवंशीय थे और यदुवंशके साथ इनका संश्रव था। बाणासुरके अस्कन्ध नामक एक पुत्र और उषा नामकी एक कन्या थी। श्रीकृष्णके पौत्र अनिरुद्धने उषाका पाणिग्रहण किया। उषाके चरितमें लिखा है, कि राजा बाण शान्तिपुरमें राज्य करते थे। बयाना या बाणपुरीमें उषा नामसे अब भी एक भग्न मंदिर दृष्टि-गोचर होता है।

बयाना नगरके पास ही बाणगङ्गा बहती है। इस नदीकी उत्पत्तिके सम्बन्धमें ऐसा सुना जाता है, कि राजा विराटके यहाँ रहते समय अर्जुनने गङ्गाजल लानेके लिये एक बाण निक्षेप किया था। उस बाणविद्ध छिद्रसे उद्गारित जलराशिने नदीरूप धारण किया। किंतु यह प्रवाद सम्पूर्ण अप्रासङ्गिक ही प्रतीत होता है।

ऊपर जो ऊषामंदिरकी कथा लिखी गई है वह अनिरुद्धपत्नी उषादेवी कर्तृक प्रतिष्ठित है अथवा बाण-युद्ध और अनिरुद्ध सम्मिलनरूप लीलास्मरणार्थ उषा-मंदिर नामसे बनाया गया है। बयानाके पठानराजाओंने इस ध्वंसप्रायः मंदिरका कुछ अंश परिवर्त्तन कर मसजिदमें परिणत कर दिया है। इस प्राचीन उषा-मंदिरमें १०८४ शकमें उत्कीर्ण कुटिलाक्षरमें लिखित एक शिलालेख पाया गया है। इस मंदिर-द्वारके बाम भागमें एक मीनार है। मुसलमान उसके एक तलको भी सम्पन्न न कर सके हैं। यह प्रायः ३६॥ फुट उच्च, चारों तरफकी परिधि ६४॥ फुट एवं व्यास २८ फुट है। यहांके एक और प्राचीन मंदिरमें ११०० ई०में उत्कीर्ण एक शिलालिपि पाई गई है। उसमें विष्णुसूरि, महेश्वरसूरि और पद्मायनसूरि प्रभृति हिंदूराजाओंके नाम पाये जाते हैं। ये सूरि वंशीय राजगण बाण-वंशधर थे वा नहीं, यह निश्चय नहीं कह सकते। एतद्भिन्न यहाँ पर सतीस्तम्भ, मठ, मुसलमान-समाधि-चिह्न पाये जाते हैं।

मुसलमानाधिकारमें बयाना नगर भारत-साम्राज्यकी द्वितीय राजधानीमें परिणत हुआ था। इसकी समृद्धिके समय आगराके सामान्य परगनेमें गिनती थी। अबुल-फजलने लिखा है, कि पहले यहां ख्यातनामा मुसलमानोंकी कब्र होती थी। किन्तु दुर्भाग्यका विषय है, कि उनका निदर्शन मिलने पर भी उन पर किसीका नाम नहीं पाया जाता। सिर्फ एक कब्रके ऊपर आबूबकर कंधारी नाम लिखा है। भाटोंके मुखसे सुना जाता है, कि इस व्यक्तिने ११७३ सम्वत्‌में इस प्रदेश पर अधिकार जमाया। किंतु ऐतिहासिक तत्वानुसंधान द्वारा इस नामका कोई भी व्यक्ति नहीं पाया गया। ऐतिहासिकतत्वानुसंधानसे जाना जाता है, कि ११९५ ई०में कुतबुद्दीन

ऐबकने बयाना पर आक्रमण किया। १२५१ ई०में दिल्ली-श्वर नसिरुद्दीन महमूदने वजीर उलुघ खाँके साथ आ कर यहांके राजा चाहड़देवके साथ युद्ध किया था। किंतु इनके साथ आबूवकरका आगमन-संवाद नहीं पाया जाता।

विजयमन्दरगढ़के स्थापयिता यदुवंशीय राजा विजय-पाल सम्वत् ११००में विद्यमान थे। मुसलमानोंके आक्र-मणके समय यहां यदुवंशीयगण राज्य करते थे। मुहम्मद बिन साम और कुतबुद्दीन ऐबकके बयना आक्रमण करने पर राजा कुमरपाल तिहुनगढ़को भागे। मुसलमानोंने वहां भी उनका पीछा किया। बहाउद्दीन नामक एक मुसल-मान थानगढ़में रह इस स्थानका शासन करते थे। यह स्थान उनकी सेनाके लिये उपयुक्त न था। अतएव वे सुलतानकोट नगर स्थापित कर वहीं पर वास करने लगे। तभीसे यह नूतन नगर प्राचीन बयानासे युक्त हो बयाना-सुलतानकोट कहलाने लगा।

बहाउद्दीनके मरने पर यह स्थान फिर हिंदुओंके अधिकारमें आया। मिनहाज-इ-सिराजने लिखा है, कि समसुद्दीनने थानगढ़ पर अधिकार जमाया था। सम्राट् नसिरुद्दीन महमूदके समय कुत्लुग्र खां बयानाका शासन करते थे। बलबन अलाउद्दीन खिलजी, तुगलकशाह, महम्मद तुगलक और फिरोज तुगलकके समयमें यह प्रदेश मुसलमानी राज्यके अधिकार-में था। पीछे ७८०से ८७० हिजरी तक यह स्थान एक स्वतंत्र वंशके अधिकारमें रहा। शिलालिपिसे उनका इस प्रकार परिचय पाया जाता है।—सम्राट् फिरोज तुग-लकके समयमें यहां मुईन खां सादिकी शासनकर्त्ता थे। उनकी मृत्यु पर उनके जेष्ठ पुत्र शामस खां राजा हुए और ८०३ हिजरीमें सेनापति इकबलखांके आदेशसे मार डाले गये। तत्पश्चात् उनका भाई मालिक करीम उल्मु-ल्कने ८२० हिजरी तक राज्य किया। ८२७ हिजरीमें करीमके पुत्र अमीर खांको सैयद मुवारककी वश्यता स्वीकार करनी पड़ी। ८३० हिजरीमें उनके द्वितीय पुत्र महम्मद खां औदी बयानाके सिंहासन पर बैठे। पश्चात् सैयद मुवारक शाहके विरुद्ध युद्ध कर वे परा-जित हुए।

इसी समय मुकबिलखां, मालिक मुबारिज और मालिक महमूद आदिने दिल्लीसे आ कर यहांके शासनका भार ग्रहण किया। ८३५ और ८५० हिजरीमें उत्कीर्ण शिला-लिपिमें महम्मदका बयाना-शासन लिखा हुआ है। अतएव अनुमान किया जाता है, कि महम्मदने कभी स्वाधीन और कभी विद्रोही हो कर दिल्लीकी अधीनता स्वीकार की थी। उनकी मृत्युके बाद उनके पुत्र दाऊदखां ८५१ हिजरीमें राजसिंहासन पर बैठे। पीछे जौनपुरके सर्कि राजगणका अभ्युदय हुआ। ८७८ हिजरीमें बहलोल लोदीने सर्किगणको परास्त कर मालवपति महमूद खिलजीको यह प्रदेश दान कर दिया। इसके बाद अहमद खां जलवानी ८९७ हिजरीमें सिकन्दर लोदीके द्वारा पराजित हो कर खानखाना फर्मुलीको राजसिंहासन देनेको बाध्य हुए। ९०७ हिजरीमें उनके पुत्र ख्वाजा खां शासनकर्त्ता हुये थे। ९२६ हिजरीमें इब्राहिम लोदीने ख्वाजाको परास्त किया और निजाम खां शासनकर्त्ता बनाया गया। राणा सङ्ग-के आगमनकालमें उन्होंने बाबरके हाथ बयाना समर्पण किया। शेरशाहकी मृत्युके बाद इसलाम शाहने आदिल खांको यह प्रदेश दान किया। इस समय यहां शेख इलाही नामक एक महदी धर्मप्रवर्त्तकका आविर्भाव हुआ। ९५५ हिजरीमें विश्वासघातकताके कारण वे मारे गये। ख्वाजा खांके विद्रोहके पश्चात् गाजी खां सूरने बयाना पर राज्य किया। सिकंदरशाह सूरसे पराजित हो ९६२ हिजरीमें इब्राहिम शाह सूरने बयानामें आश्रय लिया। इसी समय सेनापति हीमूने बयानादुर्गमें घेरा डाला था। ९६३ हिजरीमें अकबरशाहके द्वारा यह प्रदेश दिल्लीके शासनमें मिला दिया गया। मुगल-साम्राज्यके बाद जाट राजपूतोंने इस पर अधिकार किया। आज भी यह राज्य भरतपुरके हिंदू राजाओंके अधिकारमें है। प्राचीन दुर्ग और विजयस्तंभ अभी विद्यमान होने पर भी उसका वह प्राचीन गौरव नष्ट हो गया है। जिस दुर्गमें शेरशाहके समय (९४५-हिजरी) ५०० बंदूकधारी सेना रहती थी अभी वहां एक किलेदार और दो तीन उसके नौकर रहते हैं।

बयाना (हिं० पु०) किसी कामके लिये दिए जानेवाले

पुरस्कारका कुछ अंश जो बातचीत पक्की करनेके लिये दिया जाय। बयाना देनेके बाद देने और लेनेवाले दोनोंके लिये यह आवश्यक हो जाता है, कि वे उस निश्चयको पाबंदी करें जिसके लिये बयाना दिया जाता है। बयानेको रकम पीछेसे दाम या पुरस्कार चुकाते समय काट ली जाती है।

वयावान (फा० पु०) १ जंगल। २ उजाड़।

बयार (हिं० स्त्री०) पवन, हवा।

बयारा (हिं० पु०) १ हवाका झोंका। २ तूफान।

बयारी (हिं० स्त्री०) वियारी देखो।

बयाला (हिं० पु०) १ दीवारमेंका वह छेद जिससे झांक कर बाहरकी ओरकी वस्तु देखी जा सके। २ आला, ताख। ३ कोटकी दीवारमें वह छोटा छेद या अवकाश जिसमेंसे तोपका गोला पार करके जाता है। ४ पटावके नीचेकी खाली जगह। ५ गढ़ोंमें वह स्थान जहां तोपें लगी रहती हैं।

बयालिस (हिं० पु०) १ चालीस और दोकी संख्या। २ इस संख्याका सूचक अंक जो इस प्रकार लिखा जाता है—४२। (वि०) ३ जो गिनतीमें चालीससे दो अधिक हो।

बयालीसवाँ (हिं० वि०) जो क्रममें बयालिसके स्थान पर हो, इकतालिसवेंके बादका।

बयासी (हिं० पु०) १ अस्सी और दोकी संख्या। २ इस संख्याका सूचक अंक जो इस प्रकार लिखा जाता है—८२। (वि०) ३ जो संख्यामें अस्सीसे दो अधिक हो।

वरंग (हिं० पु०) १ एक छोटे कदका पेड़ जो मध्यप्रदेशमें होता है। इसकी लकड़ी सफेद और मुलायम होती है। इमारत तथा खेतीके इससे अच्छे अच्छे सामान बनाये जाते हैं। इसकी छालके रेशोंसे रस्से भी बनाते हैं। २ बख्तर, कवच।

वरंगा (हिं० पु०) १ वे छोटी छोटी लकड़ियां जो छत पाटते समय धरनोंके बीचवाला अंतर पाटनेको लगाई जाती हैं। २ छत पाटनेकी पत्थरकी छोटी पटिया जो प्रायः डेढ़ हाथ लंबी और एक बिलस्त चौड़ी होती है।

वर (सं० क्री०) वर देखो।

वर (हिं० पु०) १ वह जिसका विवाह होता हो, दूल्हा। वर देखो। २ वह आशीर्वाद सूचक वचन जो किसीकी प्रार्थना पूरी करनेके लिये कहा जाय। ३ बल, शक्ति। ४ वटवृक्ष, बरगद। (वि०) ५ श्रेष्ठ, अच्छा।

वर (फा० अव्य०) १ ऊपर। (वि०) २ श्रेष्ठ, बढ़ा चढ़ा। ३ पूर्ण, पूरा। (पु०) ४ एक प्रकारका कीड़ा जिसे खानेसे पशु मर जाते हैं।

वरअंग (हिं० स्त्री०) योनि।

वरई—बिहार और बङ्गालवासी निम्नश्रेणीकी एक जाति। इस जातिके लोग वरई, वरजी, वारजीवी और लतावैद्य नामसे भी प्रसिद्ध हैं। पानकी खेती करना इनका जातीय व्यवसाय है। ये लोग पानकी खेती तो करते हैं, पर बाजारमें तमोलीके जैसा खुदरा नहीं बेचते। जातीय व्यवसाय एक होने पर भी बिहार और बङ्गालकी वरई जाति एक दूसरेसे बिलकुल पृथक् है। ये लोग आपसमें खान पान नहीं करते और न पुत्रकन्याका विवाह ही देते हैं।

वरई जातिकी उत्पत्तिके सम्बन्धमें अनेक प्रवाद प्रचलित हैं। इन लोगोंका कहना है, कि देवपूजोपकरणमें पानकी आवश्यकता देख कर पद्मयोनि ब्रह्माने उनकी सृष्टि की। जातिमालामें लिखा है, कि ग्वाले और ताँती रमणीके संयोगसे इनकी उत्पत्ति है। बृहद्धर्मपुराणमें ब्राह्मण और शूद्राणीके संयोगसे इनकी उत्पत्ति बतलाई गई है। किसी किसीके मतसे क्षत्रिय या कायस्थके औरस और शूद्राणीके गर्भसे यह जाति उत्पन्न हुई है।

साधारणतः ये लोग राढ़ी, वारेन्द्र, नाथान और कोटा इन चार भागोंमें विभक्त हैं। अलम्यान, वात्स्य, भरद्वाज, चन्द्रमहर्षि, गौतम, जैमिनी, कण्वमहर्षि, काश्यप, मधुकुल्य (मौद्गल्य), शाण्डिल्य, विष्णु, महर्षि और व्यास नामक इनके कई एक गोत्र हैं। ये सब उच्चश्रेणीके हिन्दुओंके अनुकरण मात्र हैं। इन लोगोंके मध्य सगोत्रमें भी विवाह चलता है, पर समानोदक होने पर नहीं चलता।

इन लोगोंमें बालिका-विवाह प्रचलित देखा जाता है। विधवा विवाह निषिद्ध है। स्त्रीके वन्ध्या होने पर पुरुष दूसरा विवाह कर सकता है। इनकी विवाह-प्रणाली ठीक ब्राह्मण कायस्थ की-सी है। किसी किसी

विवाहमें कुशण्डिका होती है और किसी किसीमें नहीं भी होती। विवाहके अङ्गाधीन समस्त कार्योंके बाद अग्निको साक्ष्य करके विवाहकार्य शेष किया जाता है।

धर्म कर्ममें ये लोग ब्राह्मणादि उच्चश्रेणीके हिन्दुओं-का अनुकरण करते हैं। इनमेंसे अधिकांश शाक्त हैं। वैष्णवकी संख्या बहुत थोड़ी है। ब्राह्मण इनके पुरोहित होते हैं।

पानकी खेती करना ही इनका जातीय व्यवसाय है। वायु और सूर्यके प्रकोपसे पर्णलताको बचानेके लिये बखारी आदि द्वारा बरेजा तैयार करते हैं। पानकी लताके नीचे पंक और खाद दी जाती है। लताकी डाल जितनी ही बार काटी जाय, उतनी ही उसकी वृद्धि है। फाल्गुन और आषाढ़ मासमें नये पत्ते निकलते हैं।

ये लोग स्नान करके शुचि हो लेते, तब बरेजेमें घुसते हैं। जो कृषक पर्णक्षेत्रमें काम करते, वे भी विना स्नान किये बरेजेमें घुस नहीं सकते।

विहार और वाराणसीवासी वरईके साथ वहांके तमोलीका कोई विशेष प्रभेद नहीं देखा जाता। यहां इस जातिकी उत्पत्तिके सम्बन्धमें अभिनव प्रवाद प्रचलित हैं। एक दिन दो धार्मिक ब्राह्मण भ्राता वनमें प्याससे व्याकुल हो इधर उधर जलकी तलाश कर रहे थे। बड़ेके कहनेसे छोटा भाई एक महुएके पेड़ पर चढ़ा और कोटरमें थोड़ा जल पाया। भाईसे चुरा कर वह कुल जल पी गया और तब वृक्ष परसे उतरा। उसने जो बड़ेके पास जा कर कहा, कि पानी नहीं मिला, इस झूठी बातके लिये परमेश्वरके आदेशसे छोटेके उपवीतसे पान-लता की सृष्टि हुई। तभीसे उस छोटेकी सन्तान पानका व्यवसाय करती आ रही है। कोई कोई कहते हैं, कि ब्रह्माने ब्राह्मणोंको पानकी खेतीसे विरत करनेके लिये इस जातिकी सृष्टि की है। फिर किसीका कहना है, कि वैश्य और शूद्राणीके संयोगसे तमोलीकी उत्पत्ति हुई है। गोरखपुरके वरईका कहना है, कि पर्णविक्रय-वृत्तिसे ही उनका यह नाम पड़ा है। आजमगढ़के अन्तर्गत वीरभानपुर उनका पैतृक वासस्थान है।

इन लोगोंमें प्रायः १४७ थाक हैं। वे सभी स्थान-वाचक हैं। जैसे—अहरवाड़, अयोध्यावासी, वृन्दावन-वासी, सरयूपुरी, चौरासिया, श्रीवास्तव, उत्तराह, पर्वत-गढ़ी, जैसवार, जौनपुरी इत्यादि। ये लोग कन्याका ८ वा ६ वर्षमें और बालकका १२ वा १३ वर्षमें विवाह देते हैं। दूसरा विवाह करते समय जातीय सभामें उसका कारण दिखलाना पड़ता है। किन्तु दोके अलावा तीसरा विवाह करनेका नियम नहीं है। इन लोगोंमें तीन प्रकारका विवाह प्रचलित है, धनीके लिये चारहौवा गरीवके लिये दोला और विधवा रमणीके लिये सगाई। उपरोक्त दो कुमारीविवाहमें सिन्दूरदान बतलाया गया है।

ये लोग साधारणतः किसी धर्मसम्प्रदायके नहीं हैं। महावीर, पांचपीर, भवानी, हरदिह देव, शेखवावा और नागवेली इनके प्रधान उपास्य देवता हैं। प्रधान प्रधान देवपूजामें तिवारी ब्राह्मण इनकी पुरोहिताई करते हैं; किन्तु ग्राम्यदेवताकी पूजा स्वयं गृहस्थ करते हैं। ये लोग मुर्देको जलाते हैं। कोई कोई गयामें जा कर पिण्डदान और श्राद्धादि भी करते हैं। ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्यके हाथका अन्न ग्रहण करते हैं। घाटिया ब्राह्मण और राजपूतगण इनके हाथकी पक्की रसोई खा सकते हैं। ये लोग शराब पीते और मांस मछली भी खाते हैं।

वरकंदाज (फा० पु०) १ वह सिपाही या चौकीदार जिसके पास बड़ी लाठी रहती हो। २ रक्षक, चौकीदार। ३ तोड़ेदार बंदूक रखनेवाला सिपाही।

वरकत (अ० स्त्री०) १ किसी पदार्थकी अधिकता, बढ़ती। इस शब्दका प्रयोग साधारणतः यह दिखलानेके लिये होता है, कि वस्तु आवश्यकतानुसार पूरी है और उसमें सहसा कमी नहीं हो सकती। २ लाभ, फायदा। ३ समाप्ति, अंत। ४ एककी संख्या। साधारणतः लोग गिनतीके आरम्भमें एकके स्थानमें शुभ या वृद्धि आदिकी कामनासे इस शब्दका व्यवहार करते हैं। ५ वह बचा हुआ पदार्थ या धन आदि जो इस विचारसे पीछे छोड़ दिया जाता है, कि इसमें और वृद्धि हो। ६ प्रसाद, कृपा। ७ धन, दौलत।

वरकती (अ० वि०) १ वरकतवाला, जिसमें वरकत हो। २ वरकत संबंधी, वरकतका।

वरकदम (फा० स्त्री०) एक प्रकारकी चटनी। इसकी प्रस्तुत प्रणाली—पहले कच्चे आमको भून कर उसका पना निकाल लेते हैं और तब उसमें चीनी, मिर्च, शीतल चीनी, केसर, इलायची आदि डालते हैं।

वरकना (हिं० क्रि०) १ निवारण होना, बचना। २ अलग रहना, हटना।

वरकरार (फा० वि०) १ स्थिर, कायम। २ उपस्थित, मौजूद।

वरकाज (हिं० पु०) १ व्याह, शादी।

वरकाना (हिं० क्रि०) १ पीछा छुड़ाना, फुसलाना। २ निवारण करना, बचाना।

वरखना (हिं० क्रि०) वर्षा होना, पानी वरसना।

वरखा (हिं० स्त्री०) १ मेह गिरना, वृष्टि। २ वर्षाऋतु, वरसातका मौसिम।

वरखास्त (फा० वि०) १ जो नौकरीसे हटा दिया गया हो, मौकूफ। २ जिसका विसर्जन कर दिया गया हो, जिसकी बैठक समाप्त हो गई हो।

वरखिलाफ (फा० क्रि० वि०) प्रतिकूल, उलटा।

वरगन्ध (हिं पु०) सुगन्धित मसाला।

वरग (फा० पु०) पत्र, पत्ता।

वरगद (हिं० पु०) वड़का पेड़। विशेष विवरण वट शब्दमें देखो।

वरगेल (हिं० पु०) एक प्रकारका लवा पक्षी जिसके पंजे कुछ छोटे होते हैं और जो पाला जाता है।

वरचर (हिं० पु०) एक प्रकारका देवदार वृक्ष जो हिमालयमें होता है। इसकी लकड़ी भूरे रंगकी होती है, थेसी।

वरचस (हिं० पु०) मल, विष्ठा।

वरछा (हिं० पु०) भाला नामक हथियार जिसे फेंक कर अथवा भोंक कर मारते हैं। इसमें प्रायः एक वित्ता लंबा लोहेका फल होता है और एक वड़ी लाठीके सिरे पर जड़ा होता है। यह प्रायः सिपाहियों या शिकारियोंके कामका होता है। इसे भाला भी कहते हैं।

वरछैत (हिं० पु०) भाला-वर्दार, वरछा चलानेवाला।

वरजवान (फा० वि०) मुखाग्र, कण्ठस्थ, जो जवानी याद हो।

वरजोर (हिं० वि०) १ प्रबल, जबरदस्त। २ अत्याचार अथवा अनुचित वलप्रयोग करनेवाला। (क्रि० वि०) ३ वलपूर्वक, जबरदस्ती। ४ बहुत जोरसे।

वरट (सं० पु०) शस्यविशेष, एक प्रकारका अनाज।

वरत (हिं० पु०) १ परमार्थ साधनके लिये किया हुआ उपवास। व्रत देखो। (स्त्री०) २ रस्सी। ३ नटकी रस्सी जिस पर चढ़ कर वह खेल करता है।

वरतन (हिं० पु०) १ मट्टी या धातु आदिकी इस प्रकार वनी वस्तु कि उसमें कोई वस्तु-विशेषतः खाने पीनेकी चीज रख सकें। २ व्यवहार, वरताव।

वरतना (हिं० क्रि०) १ किसीके साथ किसी प्रकारका व्यवहार करना, वरताव करना। २ व्यवहारमें लाना, इस्तेमाल करना।

वरतनी (हिं० स्त्री०) १ लकड़ी आदिकी वनी एक प्रकारकी कलम। इससे विद्यार्थी लोग मट्टी या गुलाल आदि विछा कर उस पर अक्षर लिखते हैं अथवा तान्त्रिक लोग यन्त्र आदि भरते हैं। २ लेख-प्रणाली, लिखनेका ढंग।

वरतर (फा० वि०) श्रेष्ठतर, अधिक अच्छा।

वरतरफ (फा० वि०) १ एक ओर, किनारे, अलग। २ किसी कार्य, पद, नौकरी आदिसे अलग, मौकूफ।

वरताना (हिं० क्रि०) वितरण करना, बाँटना।

वरताव (हिं० पु०) व्यवहार, वह कर्म जो किसीके प्रति, किसीके सम्बन्धमें किया जाय।

वरती (हिं० स्त्री०) १ एक प्रकारका पेड़। २ वत्ती (वि०) ३ जिसने व्रत रखा हो, जिसने उपवास किया हो।

वरतेला (हिं० स्त्री०) जुलाहोंकी वह खूंटी जो करघेकी दाहिनी ओर रहती है। इसमें तानेको कसा रखनेके लिये उसमें वंधी हुई अन्तिम रस्सी या जोतेका दूसरा सिरा 'पिंडा' या 'हथेला' पीछेसे घुमा कर लाया और बाँधा जाता है। यह खूंटी करघेकी दाहिनी ओर बुननेवालेके दाहिने हाथके पास इसलिये रहती है, कि जिसमें वह आवश्यकतानुसार जोतेको ढीला करता रहे और उसके कारण ताना आगे वढ़ता आवे।

वरतोर (हिं० पु०) वह फुंसी या फोड़ा जो वाल उखड़नेके कारण हो।

वरदना (हिं० क्रि०) वरदाना देखो।

बरदवान (हिं० पु०) १ कमखाब बुननेवालोंके करघेकी एक रस्सी जो पगियामें बंधी रहती है। २ तेज हवा।

बरदवाना (हिं० क्रि०) बरदानाका प्रेरणार्थक रूप, बर-दानेकाम दूसरेसे कराना।

बरदा (हिं० स्त्री०) १ दक्षिण भारतकी एक प्रकारकी रुई। (पु०) २ बरधा देखो।

बरदाना (हिं० क्रि०) १ गौ, भैंस बकरी आदि पशुओंका उनकी जातिके नर-पशुओंसे संतान उत्पन्न करानेके लिये संयोग कराना। २ जोड़ाखाना, जुफ्ती खिलाना।

बरदाफरोश (फा० पु०) गुलाम बेचनेवाला, दासोंको खरीदने और बेचनेवाला।

बरदाफरोशी (फा० स्त्री०) गुलाम बेचनेका काम।

बरदार (फा० वि०) १ वहन करनेवाला, ढोनेवाला। २ पालन करनेवाला, माननेवाला।

बरदाश्त (फा० स्त्री०) सहनेकी क्रिया या भाव, सहन।

बरदुआ (हिं० पु०) लोहा छेदनेका एक औजार जो बरमे-की तरहका होता है।

बरदेवल—यमुनातीरवर्त्ती एक प्राचीन शिवमन्दिर। यह इलाहाबादसे १२॥ कोस दक्षिण-पश्चिम तथा मौघाटसे ५॥ कोस पूर्व यमुनाकी उच्चभूमि पर अवस्थित है। यहांसे कलनिनादिनो यमुना नदी बहती देखी जाती है। अभी यह मन्दिर भग्नावस्थामें पड़ा है, पर नन्दी सभाका कुछ अंश आज भी देखने लायक है। मन्दिरस्थ शिव-मूर्त्ति कर्कोटक नाग नामसे प्रसिद्ध है।

बरदौर (हिं० पु०) गौओं और बैलोंके बांधनेका स्थान, मवेशीखाना।

बरधा (हिं० पु०) बैल।

बरधवाना (हिं० क्रि०) बरदवाना देखो।

बरधाना (हिं० क्रि०) बरदाना देखो।

बरधी (हिं० पु०) एक प्रकारका चमड़ा।

बरनर (अं० पु०) लम्पका ऊपरी भाग जिसमें बत्ती लगाई जाती है। बत्ती इसी भागमें जलता है और इसीके ऊपरसे हो कर प्रकाश बाहर निकलता और फैलता है।

बरना (हिं० क्रि०) वर या वधूके रूपमें ग्रहण करना, पति या पत्नीके रूपमें अङ्गीकार करना। २ दान देना। ३ नियुक्त करना, कोई काम करनेके लिये किसीको चुनना या ठीक करना।

बरनाल (हिं० पु०) जहाजमें वह परनाला या पानी निका-लनेका मार्ग जिसमेंसे उसका फालतू पानी निकल कर समुद्रमें गिरता है।

बरनाला (हिं० पु०) बरनाल देखो।

बरनेत (हिं० स्त्री०) विवाहमुहूर्त्तसे कुछ पहले होनेवाली एक रस्म। इसमें कन्या-पक्षके लोग वर-पक्षवालोंको अपने यहां बुलाते और विवाह मण्डपमें उन्हें बैठा कर उनसे गणेश आदिका पूजन कराते हैं।

बरपा (फा० वि०) खड़ा हुआ, उठा हुआ। इस शब्दका प्रयोग प्रायः झगड़ा, फसाद, आफत, आदि अशुभ बातोंके लिये ही होता है।

बरफ (हिं० स्त्री०) बर्फ देखो।

बरफी (फा० स्त्री०) एक प्रकारकी मशहूर मिठाई। इसकी प्रस्तुत प्रणाली—चीनीकी चाशनीमें गरी या पेठेके महीन महीन टुकड़े, पीसा हुआ बदाम, पिस्ता या मूंग आदि अथवा खोवा डाल कर पहले जमा लेते हैं और पीछेसे छोटे छोटे चौकोर टुकड़ोंके रूपमें काटते हैं। इसकी जमावट आदि प्रायः बरफकी तरह होती है, इसीसे इसका बरफी नाम पड़ा है।

बरफीदार कनारी (फा० पु०) कहारकी बोलीमें वह स्थान जहां सफेद रंगके कांटे अधिकतासे मार्गमें पड़ते हों।

बरफी संदेस (फा० पु०) एक प्रकारकी बंगला मिठाई जो बरफीको तरह होती है।

बरबत (अ० पु०) एक प्रकारका बाजा।

बरबर (हिं० स्त्री०) १ व्यर्थकी बातें। २ बर्बर देखो।

बरबरी (हिं० स्त्री०) १ बर्बर या बर्बरी नामक देश। २ एक प्रकारकी बकरी।

बरबस (हिं० क्रि०) १ बलपूर्वक, जबरदस्ती। २ व्यर्थ, फुजूल।

बरबाद (फा० वि०) १ नष्ट, चौपट। २ व्यर्थ खर्च किया हुआ।

बरबादी (फा० स्त्री०) नाश, खराबी, तबाही।

बरम (हिं० पु०) जिरह बक्तर, कवच।

बरमा (हिं० पु०) लोहेका एक औजार जिससे लकड़ी आदिमें छेद किया जाता है। इसमें लोहेका एक नुकीला छड़ होता है। वह छड़ पीछेकी ओर लकड़ीके दस्तेमें

इस प्रकार लगा होता है, कि सहजमें खूब अच्छी तरह घूम सके। जिस स्थान पर छेद करना होता है उस स्थान पर नुकीला कोना लगा कर और दस्तेके सहारे उसे दबा कर रस्सीकी गराड़ियोंकी सहायतासे अथवा और किसी प्रकार खूब जोर शोरसे घुमाते हैं जिससे वहां छेद हो जाता है।

बरमा—ब्रह्मदेश देखो।

बरमी (हिं० पु०) १ ब्रह्मवासी, बरमाका रहनेवाला। (स्त्री०) २ ब्रह्मदेशकी भाषा। (वि०) ३ ब्रह्मदेश सम्बन्धी, बरमा देशका। (स्त्री०) ४ गीली नामका पेड़।

बरम्हवोट (हिं० स्त्री०) एक प्रकारकी नाव जो प्रायः ४० हाथ लम्बी होती है। इस नावका पिछला भाग अपेक्षाकृत चौड़ा होता है और पीछेकी ओर ऐसा यंत्र बना होता जिसे बारह आदमी पैरसे चलाते हैं।

बरम्हा—ब्रह्मदेश देखो।

बररे (हिं० पु० स्त्री०) बर्रे देखो।

बरवट (हिं० स्त्री०) तिल्ली नामका रोग। तिल्ली देखो।

बरवल (हिं० पु०) भेड़की एक जाति जो हिमालय पर्वतके उत्तर जुमीलासे किरंट तक और कमाऊँसे सिकिम तक पाई जाती है। यह पहाड़ी भेड़ोंके पांच भेदोंमेंसे एक है। इसके नरके सिर पर मजबूत सींग होते हैं और वह लड़ाईमें खूब टक्कर लगाता है। इसका ऊन यद्यपि मैदानकी भेड़ोंसे अच्छा होता है तो भी मोटा होता है और कम्मल आदि बनानेके काममें ही आता है। इसका मांस खानेमें रूखा होता है।

बरवा (हिं० पु०) बरवै देखो।

बरवासागर—मध्यभारतके इन्दोर राज्यान्तर्गत निमार जिलेका एक शहर। यह अक्षा० २२ं १५' उ० और देशा० ७६ं ३' पू०के मध्य अवस्थित है। जनसंख्या छह हजारसे ऊपर है। कहते हैं, कि यह शहर १६७८ ई०में वर्त्तमान जमींदारके पूर्वज राणा सूर्यमलने वसाया था। शिवाजी राव होलकरको यह स्थान बड़ा प्रिय था, इस कारण उन्होंने अपने रहनेके लिये यहां एक सुन्दर राजप्रासाद बनवाया था। शहरमें एक सरकारी और स्टेटका डाकघर, एक स्कूल, चिकित्सालय, सराय और एक डाकबंगला है।

बरवासागर—युक्तप्रदेशके झांसी जिलेका एक नगर। यह अक्षा० २५ं २२' उ० और देशा० ७८ं ४४' पू०के मध्य अवस्थित है। जनसंख्या छः हजारसे ऊपर है। इसके पास ही एक बड़ा पर्वत है जिसके निम्नमें एक सुन्दर ह्रद है। उक्त पर्वतसे जो जल निकलता है वह इसी ह्रदमें जमा रहता है। १७०५, १७३७ ई०के मध्य ओर्छाराज उदित्‌सिंहने नगरकी शोभा बढ़ानेके लिये उक्त बांध और एक दुर्ग बनवाया था। ख्यातनामा झांसीकी रानी इस दुर्गकी शेष अधिकारिणी थीं। अङ्गरेजोंके अधिकारमें आनेसे वह दुर्ग पान्थनिवासमें परिणत हो गया है। यहांसे तीन मील पश्चिम एक प्राचीन चन्देल मन्दिर है जिसकी देवमूर्त्ति मुसलमानोंसे विध्वस्त हो गई है। शहरमें एक छोटा-सा स्कूल है।

बरवै (हिं० पु०) १९ मात्राओंका एक छन्द। इसमें १२ और ७ मात्राओं पर यति तथा अन्तमें जगण होता है। इसे ध्रुव और कुरंग भी कहते हैं।

बरषा (हिं० स्त्री०) १ वृष्टि, पानी बरसना। २ वर्षाकाल, बरसात।

बरषासन (हिं० पु०) एक वर्षकी भोजनसामग्री, उतना अनाज जितना एक मनुष्य अथवा एक परिवार एक वर्षमें खा सके।

बरस (हिं० पु०) बारह महीनों अथवा ३६५ दिनोंका समूह। वर्ष देखो।

बरसगांठ (हिं० स्त्री०) वह दिन जिसमें किसीका जन्म हुआ हो, जन्मदिन। आगरे आदि प्रांतोंमें प्रत्येक व्यक्तिके घरमें एक तागा रहता है। जिसके नामका वह तागा होता है उसके एक एक जन्मदिन पर एक एक गांठ देते जाते हैं। इसीसे जन्मदिनको वर्षगांठ कहते हैं। प्राचीन समयमें भी ऐसी ही प्रथा थी।

बरसना (हिं० क्रि०) १ आकाशसे जलकी बूंदोंका निरन्तर गिरना, मेह पड़ना। २ बहुत अधिक मान संख्या या मात्रामें चारों ओरसे आ कर गिरना, पहुंचना या प्राप्त होना। ३ वर्षाके जलकी तरह ऊपरसे गिरना। ४ ओसाया जाना, डाली होना। ५ खूब प्रकट होना, बहुत अच्छी तरह झलकना।

बरसाइत (हिं० स्त्री०) जेठ वदी अमावस जिस दिन स्त्रियां वट सावित्रीका पूजन करती हैं।

वरसाइन (हिं० स्त्री०) वह गौ जो हर साल वच्चा दे, प्रतिवर्ष वच्चा देनेवाली गाय।

वरसाऊ (हिं० वि०) वर्षा करनेवाला।

वरसात (हिं० स्त्री०) वर्षाऋतु, वर्षाकाल।

वरसाती (हिं० वि०) १ वर्षा सम्वन्धी, वरसातका। (पु०) २ वरसातमें होनेवाला घोड़ोंका स्थायी रोग। ३ एक प्रकारका ढीला कपड़ा जिसे पहन लेनेसे शरीर नहीं भीगता। ४ पैरमें होनेवाली एक प्रकारकी फुंसिया जो वरसातमें होती हैं। ५ चरस पक्षी, चीनी मोर।

वरसाना (हिं० क्रि०) १ वृष्टि करना, वर्षा करना। २ ओसाना, डाली देना। ३ वर्षाके जलकी तरह लगातार वहुत सा गिराना। ४ अधिक संख्या या मात्रामें चारों ओरसे प्राप्त कराना।

वरसायत (हिं० स्त्री०) १ शुभ घड़ी, शुभ मुहूर्त्त। २ वरसाइत।

वरसावना (हिं० पु०) वरसाना देखो।

वरसिंघा (हिं० पु०) वह वैल जिसका एक सींग खड़ा और दूसरा नीचेकी ओर झुका हो, मैंना।

वरसी (हिं० स्त्री०) वह श्राद्ध जो किसी मृतकके उद्देश्यसे उसके मरनेकी तिथिके ठीक एक वर्ष वाद होता है।

वरसू (हिं० पु०) एक प्रकारका वृक्ष।

वरसोदिया (हिं० पु०) पूरे साल भरके लिये रखा हुआ नौकर।

वरसौंड़ी (हिं० स्त्री०) वार्षिक कर, प्रति वर्ष लिया जानेवाला कर।

वरहंटा (हिं० पु०) वड़ी कटाई, कड़वा भंटा। संस्कृतमें इसे वार्ताकी, वृहती, महती, सिंहिका, राष्ट्रिका, स्थूलकंटा और क्षुद्रभण्टा कहते हैं।

वरह (हिं० पु०) वृक्ष आदिका पत्ता।

वरहना (फा० वि०) नग्न, नंगा।

वरहम (फा० वि०) १ क्रुद्ध, जिसे गुस्सा आ गया हो। २ उत्तेजित, भड़का हुआ।

वरहा (हिं० पु०) १ खेतोंमें सिंचाईके लिये वनी हुई छोटी नाली। २ मोटा रस्सा।

वरही (हिं० पु०) १ मयूर, मोर। २ मुरगा। ३ अग्नि, आग। ४ साही नामका जंगली जंतु। (स्त्री०) ५ प्रसूताका वह स्नान तथा अन्यान्य क्रियाएं जो सन्तान भूमिष्ठ होनेके वारहवें दिन होती हैं। ६ सन्तान भूमिष्ठ होनेके दिनसे वारहवां दिन। ७ पत्थर आदि भारी वोझ उठानेका मोटा रस्सा। ८ जलानेकी लकड़ीका भारी वोझ, ईन्धनका वोझ।

वरहैं (हिं० पु०) सन्तान भूमिष्ठ होनेके दिनसे वारहवां दिन। इसी दिन नामकरण होता है।

वरांडल (हिं० पु०) १ जहाजमें उन रस्सोंमेंसे कोई रस्सा जो मस्तूलको सीधा खड़ा रखनेके लिये उसके चारों ओर ऊपरी सिरेसे ले कर नीचे जहाजके भिन्न भिन्न भागों तक वांधे जाते हैं। २ जहाजमें इसी प्रकारके और कामोंमें आनेवाला कोई रस्सा।

वरांडा (हिं० पु०) वरामदा देखो।

वरांडल (हिं० पु०) वरांडल देखो।

वरांडी (अं० स्त्री०) एक प्रकारकी विलायती शराव, ब्रांडी।

वरा (हिं० पु०) १ एक प्रकारका पकवान जो उड़दकी पीसी हुई दालका वना होता है। इसका आकार टिकिया-सा होता है। इसे घी या तेलमें पका कर यों ही अथवा दही, इमलीके पानी आदिमें डाल कर खाते हैं। २ भुजदण्ड पर पहननेका एक आभूषण, टाँड़।

वराइच—अयोध्याप्रदेशके फैजावाद विभागान्तर्गत एक जिला। यह युक्तप्रदेशके छोटे लाटके शासनाधीन अक्षा० २७° ४' से २८° २४' उ० तथा देशा० ८१° ३' से ८२° १३' पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण २६४० वर्गमील है। यहां घर्घरा और राप्ती नदी वहती है। दोनों नदीके मध्यवर्त्ती भूभाग समतल क्षेत्रसे प्रायः ४० फुट ऊंचा और प्रायः १३ मील प्रशस्त है। पूर्वोक्त दो नदियोंके अलावा यहां कोरियाला, मोहन, गीर्वा, सरयू, भकला, सिंहिया आदि कई एक शाखा-नदियां विद्यमान हैं। जलका अभाव नहीं रहनेके कारण यहां सव तरहका अनाज उत्पन्न होता है। इन सव द्रव्योंकी नदी द्वारा दूर दूर देशोंमें रफ्तनी होती है। अलावा इसके चीनी, रुई, तमाकू, अफीम, नील आदि भी वहुतायतसे उपजती है। जिलेके उत्तर प्रायः २५७ वर्गमील वनभूमि

वृटिश-सरकारसे सुरक्षित है। इसमें ३ शहर और १८८१ ग्राम लगते हैं। जनसंख्या १० लाखसे ऊपर है। स्थानीय प्रवाद है, कि जगत्स्रष्टा ब्रह्माने पवित्रचेता ऋषियोंके ब्रह्माराधनाके लिये इसी स्थानको पसन्द किया था।(१) अयोध्यापति श्रीरामचन्द्रके शासनकालमें यह स्थान उत्तरकोशलके अन्तर्भुक्त था। श्रीरामचन्द्रके पुत्र लव राप्ती नदीके तीरवर्त्ती श्रावस्ती नगरीका शासन करते थे। शाक्यबुद्धके अभ्युदय पर उत्तरकोशलराज्य बौद्धधर्मकी क्रीड़ाभूमि हो गया था। स्वयं बुद्धदेवने इस जिलेके अन्तर्गत कपिलवस्तुमें जन्मग्रहण किया। वे श्रावस्तिमें १६वीं शताब्दीमें ठहरे थे। उनके नवधर्मके प्रभावसे यहां उस समय ब्राह्मण्यधर्मका लोप हो गया था। बुद्धदेव देखो। चीनपरिव्राजक फा-हियन यहांके बौद्ध-सङ्घारामादिका ध्वंसावशेष देख गये थे। ताण्डव नामक ग्राममें भी बहुत सी बौद्धकीर्त्तियोंका निदर्शन पाया जाता है। यहां बुद्धकी माता महामायाकी मूर्त्ति 'सीता-माई'के रूपमें पूजी जाती है।

राजपूत जातिके अत्याचारसे विताड़ित हो भरगण इस जिलेमें आ कर बस गये। धीरे धीरे उन्होंने अपना आधिपत्य फैला कर इस पर अपना दखल जमाया।

१०३३ ई०में सैयद सलार मसाउदने वराइच पर आक्रमण किया। युद्धमें वे राजपूतोंसे पराजित और निहत हुए; इनकी कब्र भी यहीं पर हुई। उनका समाधि-मन्दिर मुसलमानोंके निकट तीर्थक्षेत्र समझा जाता है। सुलतान समसुद्दीन अलतमसके पुत्र नासिरुद्दीनने १२४६ ई०में सम्राट् होनेके पहले इस जिलेका शासन करते थे। पीछे अनसारी मुसलमानोंने इसके कुछ अंश अधिकृत किये। सम्राट् गयासुद्दीनके अधिकारकालमें यहां सैयदवंशकी प्रतिष्ठा हुई और भरराजगण निकाल भगाये गये। सम्राट् फिरोजशाहके राजत्वकालमें यहां डकैतोंने भारी उपद्रव मचाया था। वरियाशाह नामक किसी मुसलमान सेनापतिने उनका दमन किया जिससे राज्यमें शान्ति स्थापन हुई। पारितोषिक स्वरूप सम्राट्ने इस प्रदेशका शासनभार उस पर अर्पण किया। इकौना नगरमें उसके वंशधरगण जमींदारके तौर पर गोण्डा और वराइचकी कुछ सम्पत्तिका भोग कर रहे हैं।

सूर्यवंशीय दो राजपूत भाइयोंने यहां आ कर वामनौतीके भरसरदारके अधीन नौकरी पकड़ी। काश्मीर प्रदेशके राइक (रैक) नामक स्थानसे आनेके कारण वे तथा उनके वंशधरगण राइकवाड़ कहलाने लगे। उनके सुशासनसे भर राज्य उन्नतिकी चरम सीमा तक पहुंच गया। पीछे भर-राजा वृटिश-सरकारसे कुछ सम्बन्ध तोड़ देनेके लिये तैयार हो गये। उन्होंने यह सुखभोग बहुत दिन करने भी न पाया था, कि भर लोगोंने उनकी हत्या कर अपना आधिपत्य फैलाया। यह घटना १४०६ ई०में घटी थी।

१५वीं शताब्दीके शेष भागमें इसका पूर्वभाग जनवारके (वरियाशाहके वंश), दक्षिण अनसारीके, पश्चिम-राइकवाड़ और उत्तरांश स्वाधीन पार्वतीय सरदारोंके अधिकारमें था। बहोल लोदीके भांजे कालापहाड़के शासनकालमें यह स्थान दिल्लीकी अधीनता स्वीकार करनेको वाध्य हुआ। अकबरशाहके राजत्वकालमें (१५५६-१६०५) यह स्थान सरकार वराइच कहलाता था। परवर्त्तीकालमें राइकवाड़ और जनवारोंने युद्ध-विग्रहादि द्वारा अपनी सम्पत्ति बढ़ानेकी कोशिश की। सम्राट् शाहजहान् अपने कर्मचारीको उत्तरका ननपाड़ा राज्य प्रदान किया। यह स्थान सारे अयोध्याप्रदेशमें श्रेष्ठ गिना जाता है।

१७२४ ई०में अयोध्याके नवाब वजीरगण दिल्लीका अधीनता-शृङ्खल तोड़ कर स्वाधीन भावसे राज्य करने लगे। ६ठें नवाब सयादत् खांने अर्थ द्वारा राजस्व संग्रह करके अपने राजकोषको बढ़ाया। १८०७-१८१६ ई०में बलाकीदास और उनके लड़के राय अमरसिंहके शासन कालमें वराइच राज्यकी बड़ी उन्नति हुई। पीछे हाली अली खांके कुशासनसे राज्य भरमें अशान्ति फैल गई। १८४६-४७ ई०में रघुवर दयालने राजस्व संग्रहका भार ग्रहण किया। उनके शासनसे वराइचमें घोर अत्याचार शुरू हो गया। १८५६ ई०में अयोध्याके अंगरेजी शासनमें

(१) प्रवाद है, कि ब्रह्माकी इच्छासे यह स्थान यागयज्ञके लिये निर्दिष्ट हुआ, इस कारण ब्रह्म-इच्छ वा ब्रह्म-इष्टि से इसका वराइच नाम पड़ा है।

आने पर यहांका दुःख जाता रहा। गदरके समय जिन्हों-ने इस महाविप्लवमें साथ दिया था, शान्ति स्थापित होनेके बाद उन लोगोंकी अधिकृत सम्पत्ति राजभक्त प्रजाको दे दी गई। जिले भरमें ११६ स्कूल और १४ अस्पताल हैं।

२ उक्त जिलेकी तहसील। यह अक्षा० २७° १६′ से २०° ५६′ उ० तथा देशा० ८१° २७′ से ८२° १३′ पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ६१८ वर्गमील और जन-संख्या प्रायः ३७७२८८ है।

३ उक्त उपविभागके अन्तर्गत एक परगना। भूपरि-माण ३२१ वर्गमील है। बराइच नगरके गोण्डा, इकौना, भिंगा और नानापाड़ा आदि स्थानोंमें गाड़ी जाने आने-का रास्ता गया है। कर्णेलगञ्ज ओर नवावगञ्ज यहांका प्रधान वाणिज्यस्थान है।

४ उक्त जिलेका प्रधान नगर और विचार-सदर। यह अक्षा० २७° ३४′ उ० तथा देशा० ८१° ३६′ पू०के मध्य बहरमघाटसे नेपालगञ्ज जानेके पथ पर अवस्थित है। जनसंख्या २७ हजारसे ऊपर है। म्युनिसपलिटी और पुलिसकी देखरेखमें रहनेके कारण राजपथादिमें रोशनी-का अच्छा प्रवन्ध है। जल निकसनेके लिये ड्रेन भी हैं। घघरा नदीके किनारे गवर्मेण्टकी अट्टालिका और अंगरेजोंका आवास है। यहांका देखनेयोग्य भवन मसाउदका समाधि-मन्दिर ही है। नवाव आसफ उद्दौलाका दौलतखाना १६२० ई०में स्थापित हुआ है। मूलतानवासी मुसलमान साधुका मन्दिर और मसाउद-के अनुचरोंकी कब्र उल्लेखयोग्य है। शहरमें कुल मिला कर ११ स्कूल हैं।

वराइल—आसाम प्रदेशके उत्तर कछाड़के अन्तर्गत एक पर्वतमाला। यह खासी, नागा और मणिपुर-पर्वतमाला के साथ संयोजित है। इसकी ऊंचाई कहीं २५०० फुट और कहीं ५००० फुट है। यह पर्वत वनमालासे समा-च्छादित है। इसकी एक शाखासे वराकनदी निकली है।

वराई (हिं० स्त्री०) बड़ाई देखो।

वराक (हिं० पु०) १ शिव। २ युद्ध, लड़ाई। (वि०) ३ शोचनीय, सोच करनेके योग्य। २ अधम, पापी। ४ वापुरा, वेचारा।

वराक (वारक) आसामकी उपत्यका-भूमिमें प्रवाहित एक नदी। कछाड़ पर्वतके अङ्गामी-नागाओंके अधिकृत कोहिमारके निकट इसका उद्गम-स्थान है। पीछे कछाड़ और श्रीहट्ट जिलेमें प्रवाहित हो यह मेघनामें मिलती है। तिपाईमुख ग्रामके निकट इसकी तिपाई-शाखा अवस्थित है। वङ्गा ग्रामके निकट यह दो शाखाओंमें विभक्त होती है। उत्तरमें सुरमा और दक्षिणमें कुशी-पारा नामसे वहती है। उत्तरकछाड़, खासिया, जयंती, लुशाई, तिपुरा पर्वतोंसे अनेक छोटी छोटी नदियां इसमें आ मिली हैं। उनमेंसे जिरी, चिरी, मधुरा, जातिङ्गा, लुवा, चेङ्गरखाल, पैन्दा, सोनाई काटाखाल लङ्गाई मनु और खोयाकी शाखा प्रधान हैं। वराक और उसकी शाखाओंमें सदा ही जल रहता है। पूर्व वङ्गीय वेलको और इण्डिया जेनरल स्टीमनभिगसन कम्पनीके दो ष्टीमर इस नदीकी कुशीयारा और सुरमा नामकी शाखाओंमें चलते हैं। राहमें शिलचर, शियालटेक, श्रीहट्ट, छातक, कौंचुयामुख, फेंचूगंज और वाल-गंज प्रभृति नगर पड़ते हैं। इस प्रदेशके द्रव्य इसी नदीसे मेघनातीरवर्ती भैरव-वाजारमें लाये जाते हैं।

वराकज़ई—प्रसिद्ध दुरानी नामक एक अफगान जातिकी शाखा। दुरानियोंमें यह वराकज़ई जाति एक समय कांधार नगरमें विशेष क्षमताशाली हो गयी थी। अह्मदशाह अवदाली और जमानशाहके राजत्वकालमें पायंदा खाँ वराकज़ई कांधार राजसिंहासनके प्रधान मन्त्री थे। जमानशाहकी रणजित्‌सिंहके साथ संधि होने पर पायंदा चिढ़ा और शुजा उल-मुल्कको राज-सिंहासन देनेके लिये षड्‌यंत्र रचने लगा। पश्चात् वह जमानतशाहके द्वारा मारा गया। उसके पुत्र फते खाँने जमानशाहको राज्यच्युत कर महमूदको कावुलके सिंहा-सन पर वैठाया। पीछे उन्होंने पेशावरकी सुजा लजाई नामकी जातिको परास्त किया। १८०६ ई०में नेपोलियन और रूसके राजा आलेकसन्दरके आक्रमणके भयसे अङ्गरेजोंने सुजाके साथ संधि कर ली। इसके पहले ही सुजा महमूदको वंदी कर चुके थे। फते खाँने फिरसे सुजाको परास्त कर महमूदको कावुलके सिंहासन पर विठाया और आप राजमंत्री हुए। वह

वराकजई जातिको संतुष्ट करनेके लिये विशेष वदान्यता दिखलाने लगा। अतएव उसका दल दिन दिन बढ़ने लगा। महमूद अपने भृत्यको इतना क्षमताशाली देख कर भी कुछ नहीं कर सके। वे फत्ते खाँके अधीन बिलकुल रहना नहीं चाहते थे। पारसराजके हीरट अधिकार करने पर १८१६ ई०में महमूदने उसे वहां भेजा। इस युद्ध में भी फत्ते खाँने विशेष दक्षतासे पारस्य सैन्यको परास्त किया। उसका प्रभाव देख महमूद और उसका पुत्र कामरान जलने लगे। १८१८ ई०में वृद्ध वजीरको छलसे बंदी कर उसकी आखोंमें अग्निशलाका घुसेड़ दी। इस निष्ठुर आचरणसे वराकजई जातिके सर्दारोंने विद्रोही हो, महमूद और कामरानका हीरट तक पीछा किया और वहीं मार डाला। गजनीके पास दोस्त महम्मदके साथ महमूदकी मुठभेड़ हुई थी। फत्ते खाँने हत्याका प्रतिशोध ले कर वराकजई सर्दार दोस्त महम्मदके साथ मिल १८२३ ई०में काबुल नगर पर अधिकार जमाया और उनके भाई शेर दिल वहांके राजा हुए। इस प्रकार दुरानी वंशकी सिदोजाई शाखाके अवसान होने पर वराकजई जातिने अफगान राज्य पर प्रतिष्ठा प्राप्त की। १८३४ ई०में पारससेनापति अब्बास मिर्जाके हीरट पर आक्रमणसे राज्यमें गड़बड़ी मची। यह सुयोग देख सुजाने काबुल पर आक्रमण कर दिया; किंतु दोस्त महम्मद और उनके भाई कुन्दिलसे पराजित हो उसने खेलात माशिर खाँका आश्रय लिया। कांधार युद्धमें विजयी होनेसे वराकजई जातिका प्रभाव और भी बढ़ गया। सर्दार दोस्त मुहम्मदने लार्ड आकलैण्डके सुशासनसे भीत हो १८३१ ई०में रूसराजसे मित्रता कर ली। इसी समय अलेकजेंडर बार्नेश दूतके रूपसे काबुल राजसभामें उपस्थित हुये। दोस्त महम्मदकी इच्छा रहने पर भी रूसदूत भिटकोभिककी प्ररोचनासे अङ्गरेजोंके साथ मित्रता न कर सके। इस पर अंग्रेजोंने अपनेको अपमानित समझ इस पर सुजा उल-मुल्कको अफगान-राज्यका यथायथ उत्तराधिकारी बना युद्धके लिये घोषणा कर दी। इसी अवसर पर सुजाने भी रणजित्सिंहको भूमिदानसे संतुष्ट कर १८३६ ई०में अंगरेजी सेनादल लेकर काबुलके सिंहासन पर अधिकार जमाया। दोस्त मुहम्मद अंगरेजोंके यहां वेतनभोगी नजरबन्दी हुए।

वराकर—१ बङ्गालकी एक नदी। यह छोटानागपुरके अधित्यका प्रदेशसे निकल कर हजारीबाग, मानभूमी होती हुई शङ्कतोरिया ग्रामके निकट दामोदरमें मिलती है।

२ उक्त नदीका मुहाना भी वराकर कहलाता है। यहां कोयलेकी एक खान है। इष्ट इण्डिया रेलवेका एक स्टेशन रहनेसे कोयलेके वाणिज्यमें बहुत सुभीता हो गया है। यहां राजा हरिश्चन्द्रका प्रतिष्ठित एक मंदिर है। इसके अलावा विष्णुके नाना अवतारोंकी मूर्तियोंसे शोभित और भी कितने मंदिर हैं। इसके ३ कोस उत्तर कल्याणेश्वरीका मन्दिर वा देवी स्थान है। उस मन्दिरमें कल्याणेश्वरी देवीमूर्त्ति प्रतिष्ठित है। यहांकी एक शिलालिपिमें पञ्चकोटके एक राजाका नाम पाया जाता है। कल्याणेश्वरी मंदिरके सामनेवाले शिलालेखमें "श्रीश्रीकल्याणेश्वरीचरणपरायण श्रीयुक्त देवनाथ देवशर्मा" ऐसा लिखा है। मूल मंदिरके पार्श्वदेशमें और भी कितने ही मंदिर देखे जाते हैं।

इस देवीमूर्त्तिके स्थापनके विषयमें अनेक प्रवाद प्रचलित हैं। एक समय किसी रोहिणीवासी ब्राह्मणने सम्मुख नालेमें एक रत्नालङ्कारविभूषित हाथ ऊपर उठा हुआ देखा। उसने पंचकोटके राजा कल्याणसिंहके पास जा कर इसकी खबर दी। देवीके स्वप्नादेशके अनुसार राजाने उस प्रस्तरको जलसे निकाल देवीमूर्त्ति स्थापन कर दी। और भी सुना जाता है, कि बङ्गराज-कन्या कल्याणदेवी अपने मैकेसे पितृकुल देवीको ले कर ससुराल आ रही थी। देवीने स्वप्नमें बालिकासे कह दिया था, 'यदि तुम मुझे कहीं एक बार जमीन पर रखोगी, तो मैं वहांसे कभी नहीं उठ सकती।' राहमें इसी नदीके किनारे वह बालिका आई और देवीमूर्त्तिको जमीन पर रख कर हाथ पांव धोने लगी। पीछे जब वह उठाने आई, तब मूर्त्ति टससे मस न हुई। यह देख कर कल्याणदेवीने उसी जगह एक मन्दिर बनवा दिया।

वराखति—रङ्गपुर जिलेके अन्तर्गत एक नगर।

वरागाई—छोटानागपुरके अन्तर्गत एक गण्डशैल। यह समुद्रपृष्ठसे ३४४५ फुट ऊंचा है।

वरागाँव—युक्तप्रदेशके बलिया जिलान्तर्गत एक नगर

यह अक्षा० २५°४५´ ४´´ उ० और देशा० ८४° २´ ३६´´ पू०के मध्य अवस्थित है। चितफिरोजपुर देखो।

बरागाँव—अयोध्याप्रदेशके सीतापुर जिलान्तर्गत एक नगर।

बराड़ी (हिं० स्त्री०) बरार और खानदेशकी रुई।

बरात (हिं० स्त्री०) १ वर पक्षके लोग जो विवाहके समय वरके साथ कन्यावालोंके यहां जाते हैं, जनेत। २ उन लोगोंका समूह जो मुरदेके एक साथ श्मशान तक जाते हैं। ३ कहीं एक साथ जानेवाले बहुतसे लोगोंका समूह।

बराती (हिं० पु०) १ विवाहमें वर पक्षकी ओरसे सम्मिलित होनेवाला। २ शवके साथ श्मशान तक जानेवाला।

बरातेही—बङ्गालके कटकजिलान्तर्गत असिया पर्वतमालाका सर्वोच्च शृङ्ग। इस पर्वतके निम्नदेशमें स्थानीय पूर्वतन किसी सामन्त राजधानीका ध्वंसावशेष इधर उधर पड़ा है।

बरानकोट (अं० पु०) १ वह कड़ा कोट या लवादा जो जाड़े या बरसातमें सिपाही लोग अपनी वर्दीके ऊपर पहनते हैं। २ ओवरकोट देखो।

बराना (हिं० क्रि०) १ प्रसङ्ग पड़ने पर भी कोई बात छोड़ कर और और बातें कहना। २ रक्षा करना, हिफाजत करना। ३ खेतोंमेंसे चूहों आदिको भगाना। ४ जान बूझ कर अलग करना, बचाना। ५ देख देख कर अलग करना, छांटना। ६ सिंचाईका पानी एक नालीसे दूसरी नालीमें ले जाना। ७ खेतोंमें पानी देना।

बराबर (फा० वि०) १ मान, मात्रा, संख्या, गुण, महत्त्व, मूल्य आदिके विचारसे समान, तुल्य, एक-सा। २ समान पद या मर्यादायुक्त। ३ जैसा चाहिये वैसा, ठीक। जिसकी सतह ऊँची नीची न हो। (क्रि० वि०) ५ सर्वदा, हमेशा। ६ साथ। ७ निरन्तर, लगातार। ८ एक पंक्तिमें, एक साथ।

बराबरी (हिं० स्त्री०) १ समानता, तुल्यता। २ सादृश्य, सदृशता। मुकाबला, सामना।

बरामद (फा० वि०) १ जो बाहर निकला हुआ हो, बाहर आया हुआ। २ खोई हुई, चोरी गई हुई या न मिलती हुई वस्तु जो कहींसे निकाली जाय। (स्त्री०) ३ वह जमीन जो नदीके हट जानेसे निकल आई हो। ४ निकासी, आमदनी।

बरामदा (फा० पु०) १ मकानोंमें वह छाया हुआ तंग और लंबा भाग जो मकानकी सीमाके कुछ बाहर निकला रहता है और जो खंभों, रेलिंग या घुड़िया आदिके आधार पर ठहरा हुआ होता है, बारजा। २ मकानके आगेका वह स्थान जो ऊपरसे छाया या पटा हो पर सामने या तीनों ओर खुला हो, दालान।

बरामीटर (हिं० पु०) बैरोमीटर देखो।

बराय (फा० अव्य०) निमित्त, वास्ते, लिये।

बरायन (हिं० पु०) वह लोहेका छल्ला जो ब्याहके समय दूल्हेके हाथमें पहनाया जाता है। इसमें रत्नोंकी जगह गुंजा लगे रहते हैं।

बरार—बेरार देखो।

बरार (हिं० पु०) १ एक प्रकारका जंगली जानवर। २ वह चंदा जो गाँवोंमें घर पीछे किया जाता हो।

बरारक (हिं० पु०) हीरा।

बरारी (हिं० पु०) सम्पूर्ण जातिकी एक रागिनी जो दो पहरके समय गाई जाती है। कोई कोई इसे भैरव रागकी रागिनी मानते हैं।

बरारी—भागलपुर जिलेके भागलपुर शहरसे ४ मील ईशान-कोणमें गङ्गाके दाहिने किनारे अवस्थित एक कसबा। यहांके जमींदार उच्च-कुलोद्भव मैथिल ब्राह्मण हैं जो ठाकुर कहलाते हैं।

विशेष विवरण बारारी शब्दमें देखो।

बरारी—सिन्धुप्रदेशके अहमदाबाद नगरके समीप एक प्राचीन ग्राम। यहां राजा चोवनाथकी राजधानी थी। आज भी उसका ध्वंसावशेष देखनेमें आता है।

बरारीश्याम (सं० पु०) सम्पूर्ण जातिका एक संकर राग जिसमें सब शुद्ध स्वर लगते हैं।

बराव (हिं० पु०) निवारण, बचाव।

बरावर—गया जिलेके अन्तर्गत एक शैलमाला। यह अक्षा० २५°१´ से २५° २´३´ उ० तथा देशा० ८५° ३´३०´´ से ८५° ७´ पू०के मध्य अवस्थित है। यहांका प्राचीन ध्वंसावशेष प्रत्नतत्त्वानुसन्धित्सु स्थपतिविद्यावित् पण्डितोंका

आदरका पदार्थ है। इसके पास ही पटना-गया रेलपथका बेला नामक स्टेशन है। इस पर्वतके सर्वोच्च शिखर पर सिद्धेश्वर नामक प्राचीन मन्दिर प्रतिष्ठित है। दिनाज-पुरके असुरराज बाराने यह मन्दिर बनवाया था। स्थानीय प्रवाद है, कि उस असुरराजने श्रीकृष्णके साथ युद्ध किया था। प्रति वर्षके भाद्रमासमें यहां एक मेला लगता है। पर्वतके दक्षिणतट पर नाना देवमूर्त्तियां सुशोभित देखी जाती हैं। यहांके एक पर्वतमें सात गुहाएं हैं जिन्हें लोग 'सातघर' कहते हैं। उस गुहाके निकट पालिभाषामें लिखी हुई जो शिलालिपि पाई गई है उससे जाना जाता है, कि उनमेंसे चार गुहाएं ३५७ ई०सन्के पहले बनाई गई थीं। शेष ३ गुहा नागार्जुन पर्वत पर अवस्थित हैं। इसके पास पातालगङ्गा नामक पवित्र प्रस्रवण है। काकदेश नामक शिखरके निम्नभागमें एक प्रकाण्ड बुद्धमूर्त्ति और इधर उधर पड़ी हुई देवमूर्त्तियां देखी जाती हैं। इस पर्वत पर बहुत पहलेसे बौद्धप्रभाव फैला हुआ था। आचार्य श्रीयोगानन्द, विदेशवासी वसु, योगिकर्ममार्ग भयङ्करनाथ आदि जैन भदन्तगण इस स्थानको देख गये हैं। कुछ जैन यतियोंके रहनेके लिये अशोक और उनके पोते दश-रथने यह स्थान निर्दिष्ट कर दिया था। उस समय इस स्थानको लोग 'खलतिक' कहते थे।

६ठीं शताब्दीमें राजा शार्दूल वर्मा और अनन्तवर्माके अधिकार-कालमें यहां ब्राह्मण्य धर्म फैलानेके लिये देव-माता कात्यायनी और महादेव आदि हिन्दू देवमूर्त्तियां प्रतिष्ठित हुईं। ७वीं शताब्दीमें यह स्थान ब्राह्मणके अधिकारमें रहनेके कारण चीनपरिव्राजक यूएनचुवंगने इस स्थानका कोई उल्लेख नहीं किया।

बरास (हिं० पु०) १ एक प्रकारका कपूर जो भीमसेनी कपूर भी कहलाता है। कपूर देखो। २ जहाजमें पालकी वह रस्सी जिसकी सहायतासे पालको घुमाते हैं।

बराह (हिं० पु०) वराह देखो।

बराह (फा० क्रि० वि०) १ के तौर पर। २ द्वारा, जरियेसे।

बराही (हिं० स्त्री०) एक प्रकारकी घटिया ऊख।

बरिआत (हिं० पु०) बरात देखो।

बरिच्छा (हिं० पु०) बरच्छा देखो।

बरिजानगढ़—पूर्णिया जिलेके कृष्णगञ्ज उपविभागान्तर्गत एक प्राचीन दुर्ग।

बरिदहाटी—२४ परगनेके बारुईपुर उपविभागके अन्तर्गत एक राजस्व-विभाग। विष्णुपुर, बनमालीपुर, जयनगर, मथुरापुर और मगराहाट आदि स्थान इसके अन्तर्गत हैं।

बरिदशाही—दाक्षिणात्यके मुसलमान-राजवंश। बाह्मनी राजवंशके अधःपतनके समय दक्षिणभारतमें पांच मुसलमान राजवंश प्रतिष्ठित हुए। बरिदशाही उनमेंसे एक है। इस वंशकी प्रतिष्ठा तुर्की-वंशीय नामक एक क्रीतदासने की थी। वे बाह्मनी-राज २य महमूदके प्रधान मन्त्री थे। १५०४ ई०में उनकी मृत्यु होने पर उनके लड़के अमीर बरिद मन्त्री-पद पर अभिषिक्त हुए। इन्होंने बालक बाह्मनीराज २य अहमदको अपने हाथका खिलौना बना लिया था। एक एक करके इन्होंने अला-उद्दीन वलि उल्ला और कलाम उल्ला आदि तीन व्यक्तियों-को राजतख्त पर बिठाया था। १५२७ ई०में कलाम राज्यच्युत हो कर अहमद नगरको भागा। इस समय अमीर बरिद बाह्मनी राजधानीमें ही अपनेको स्वाधीन राजा बतला कर घोषणा कर दी। इस्माइल आदिलशाहसे बिदार नगर पा कर उन्होंने वहां राजधानी बसाई। उनके लड़के अलीको बरिदशाह उपाधि थी। उसने अहमद-नगर-पति बुर्हानशाहके साथ लड़ कर अपनी सारी सम्पत्ति खो दी।

बिदार वा अहमदाबादके बरिदशाही-राजवंश।

कासिम बरिद	१४९२—१५०४ ई०
अमीर बरिद	१५०४—१५४९ „
अली बरिदशाह	१५४९—१५६२ „
इब्राहिम बरिदशाह	१५६२—१५६९ „
कासिम बरिदशाह	१५६९—१५७२ „
मीर्जाअली बरिदशाह	१५७२—१६०९ „
अमीर बरिदशाह (२य)	१६०९ „

बरियारा (हिं० पु०) हाथ सवा हाथ ऊंचा एक छोटा झाड़दार छतनारा पौधा। इसकी पत्तियां तुलसीकी सी पर कुछ बड़ी और खुलते रंगकी होती हैं। इसमें पीले पीले फूल लगते हैं। जब फूल झड़ जाते हैं

तब कोदोंकेसे बीज पड़ते हैं। पौधेकी जड़ दवाके काम में बहुत आती है। इसके पौधेकी छालसे बहुत अच्छा रेशा निकलता है जो अनेक कामोंमें आ सकता है। इसका गुण—कडुवा, मधुर, पित्तातिसार-नाशक, बलवीर्यवर्द्धक, पुष्टिकारक और कफरोधविशोधक माना गया है।

वरियाल (हिं० पु०) एक प्रकारका पतला बांस।

वरिल (हिं० पु०) पकौड़ी या बड़ेकी तरहका एक पकवान।

वरिल्ला (हिं० पु०) सज्जीखार।

वरिष्ठ (सं० पु०) वरिष्ठ देखो।

वरिस (हिं० पु०) वर्ष, साल।

वरी (हिं० स्त्री०) १ गोल टिकिया, वटी। २ वह मेवा या मिठाई जो दूल्हेकी ओरसे दुलहिनके यहां जाती है। ३ उर्द या मूंगकी पीठीके सुखाए हुए छोटे छोटे गोल टुकड़े जिनमें पेठे या आलूके कतरे भी पड़ते हैं। ये घीमें तल कर पकाए जाते हैं। ४ एक प्रकारकी घास या कदन्न। इसके दानोंको बाजरेमें मिला कर राजपूतानेकी ओर गरीब लोग खाते हैं। (फा० वि०) ५ मुक्त, छूटा हुआ।

वरुआ (हिं० पु०) १ ब्रह्मचारी, वटु। २ ब्राह्मणकुमार। ३ उपनयन-संस्कार। ४ मूंजके छिलकेकी बनी हुई बद्धी जिससे डलियां आदि बनाई जाती हैं।

वरुक (हिं० अव्य०) वरु देखो।

वरुना (हिं० पु०) भारतवर्षके प्रायः सभी प्रान्तोंमें मिलनेवाला एक सीधा सुन्दर पेड़। इसकी पत्तियां सालमें एक बार झड़ती हैं। कुसुम कालमें यह पेड़ फूलोंसे लद जाता है। फूल सफेद और सुगन्धित होते हैं। लकड़ी चिकनी और मजबूत होती है जिससे ढोल, कंघियाँ और लिखनेकी पट्टियां अच्छी बनती हैं। इसे वन्ना और वलासी भी कहते हैं।

वरुनी (हिं० स्त्री०) पलकके किनारे परके बाल।

वरुला (हिं० पु०) बल्ला देखो।

वरुवा (हिं० पु०) वरुआ देखो।

वरूथ (हिं० पु०) वरूथ देखो।

वरूथी—सई और गोमती नदीके बीचकी एक नदी।

वरेंड़ा (हिं० स्त्री०) १ लकड़ीका वह मोटा गोल लट्ठा जो खपरैल या छाजनकी लंबाईके बल एक पाखेसे दूसरे पाखे तक रहता है। इसीके आधार पर छप्पर या छाजनका टट्टर रहता है। २ छाजन या खपरैलके बीचोबीचका सबसे ऊंचा भाग।

वरेंड़ी (हिं० स्त्री०) वरेंडा देखो।

वरे (हिं० अव्य०) १ पलटेमें। २ निमित्त, वास्ते, खातिर।

वरेखी (हिं० स्त्री०) एक प्रकारका गहना जिसे स्त्रियां भुजा पर पहनती हैं।

वरेजा (हिं० पु०) पानका बगीचा, पानका भीटा।

वरेत (हिं० पु०) वरेता देखो।

वरेता (हिं० पु०) सनका मोटा रस्सा, नार।

वरेदी (हिं० पु०) ढोर चरानेवाला, चरवाहा।

वरेन्दा—पञ्जावप्रदेशके वसहर राज्यके अन्तर्गत एक हिमालय-गिरिसङ्कट। यह अक्षा० ३१° २३' उ० तथा देशा० ७८° १२' पू०के मध्य अवस्थित है। पवर नदी पार कर इस स्थान पर आना पड़ता है। यह समुद्र-पृष्ठसे १५०१५ फुट ऊंचा है।

वरेला—मध्यप्रदेशके मण्डला जिलान्तर्गत वनविभाग। यहां प्रायः १० वर्गमील स्थान शालवृक्षसे परिपूर्ण है।

वरेली—युक्तप्रदेशका एक जिला। बेरेली देखो।

वरेंड़ा (हिं० पु०) वरेंडा देखो।

वरो (हिं० स्त्री०) १ आलकी जड़का पतला रेशा। (पु०) २ एक घास जिससे बागोंको हानि पहुंचती है।

वरोक (हिं० पु०) वह द्रव्य जो कन्यापक्षसे वरपक्षको यह सूचित करनेके लिये दिया जाता है, कि सम्बन्धकी बातचीत पक्की हो गई। इसके द्वारा वर रोका जाता है अर्थात् उससे और किसी कन्याके साथ विवाहकी बातचीत नहीं हो सकती।

वरोठा (हिं० पु०) १ ड्योढ़ी, पौरी। २ बैठक, दीवानखाना।

वरोदमेर—मध्यभारतके ग्वालियर राज्यान्तर्गत एक नगर।

वरोदा—बड़ौदा देखो।

वरोधा (हिं० पु०) वह खेत या भूमि जिसमें पिछली फसल कपासकी रही हो।

वरोह (हिं० स्त्री०) वरगदकी जटा जो नीचेकी ओर बढ़ती हुई जमीन पर जा कर जड़ पकड़ लेती है।

वरौंछी (हिं० स्त्री०) सोनारोंकी वह कूंची जो सूअरके बालोंकी बनी होती है और जिससे वे गहना साफ करते हैं।

वरौंखा (हिं० पु०) एक प्रकारका गन्ना जो बहुत ऊँचा और लंबा होता है।

वरौंदा—१ बुन्देलखण्डके अन्तर्गत एक सामंतराज्य। इसका दूसरा नाम पाथरकछार भी है। भूपरिमाण २१८ वर्गमील है। यह राज्य बहुत प्राचीन कालसे चला आ रहा है। १८०७ ई०में अङ्गरेजोंने राजा मोहनसिंहको सनद दे कर राजसिंहासन पर प्रतिष्ठित किया। उनके कोई सन्तान न थी। मरते समय वे १८२७ ई०में अपने भतीजे सर्वतसिंहको उत्तराधिकारी बना गये। यद्यपि उस समय गोद लेनेका अधिकार न था, तो भी वृटिश सरकारने सर्वतसिंहको मंजूर कर लिया। १८६२ ई०में उन्हें गोद लेनेकी सनद मिली। उनके बाद रघुवरदयालसिंह राजसिंहासन पर बैठे। राजाबहादुर उनको उपाधि थी। सरकारसे ६ सलामी तोपें मिलती थीं। १८८५ ई०में रघुवरकी मृत्यु हुई। उनके कोई सन्तान न थी, और न उन्होंने किसीको गोद ही लिया था। अतः वृटिश सरकारने ठाकुर प्रसाद सिंहको राज्याधिकारी बनाया। ये ही वर्त्तमान राजा हैं। वृटिशसरकारसे इन्हें ६ सलामी तोपें मिलती हैं।

इस राज्यमें कुल ७० ग्राम लगते हैं। जनसंख्या साढ़े पन्द्रह हजारसे ऊपर है। यहांकी भाषा बघेलखण्डी है।

२ उक्त राज्यकी राजधानी। यह अक्षा० २५°३' उ० तथा देशा० ८०° ३८' पू० कालिञ्जरसे १० मील उत्तरमें अवस्थित है। जनसंख्या १३६५ है। यहां सिर्फ एक वर्नाक्युलर स्कूल है।

वरौठा (हिं० पु०) बरौठा देखो।

वरौनी (हिं० स्त्री०) बरुनी देखो।

वरौरी (हिं० स्त्री०) बड़ी या बरी नामका पकवान।

वर्क (अ० स्त्री०) १ विद्युत, बिजली। (वि०) २ चालाक, तेज। ३ पूर्णरूपसे अभ्यस्त, चट उपस्थित होनेवाला।

वर्कत (हिं० स्त्री०) बरकत देखो।

वर्कलुर—मंद्राज प्रदेशके कनाड़ा जिलेके अंतर्गत एक प्राचीन ग्राम। अभी यह स्थान ध्वंसावशेषमें परिणत हो गया है। १८८१-८४ ई०में पुर्त्तगीज-लेखक फेरिया-इ-सुजाने लिखा है, कि पहले इस नगरमें स्वाधीन वाणिज्य चलता था। जबसे पुर्त्तगीजोंने यहां दुर्ग बनाया तभीसे इस स्थानकी श्रीवृद्धिका ह्रास हुआ।

वैरड़ देखो।

वर्खास्त (हिं० वि०) बरखास्त देखो।

वर्खेरा—मध्यप्रदेशकी भील-एजेंसीके अंतर्गत एक ठाकुरात सम्पत्ति। यहांके भूमिया सरदार धार और सिन्धियाराजके सामंत समझे जाते हैं।

वर्गढ़—१ मध्यप्रदेशके सम्बलपुर जिलांतर्गत एक उपविभाग। यह अक्षा० २०°४५' से २१° ४४' उ० तथा देशा० ८२° ३८' से ८३° ५४' पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण २१२६ वर्गमील और जनसंख्या पांच लाखके करीब है। १८५७-५८ ई०के गदरमें विद्रोहियोंने यहां आश्रय-ग्रहण किया था। इसमें १ शहर और ११७२ ग्राम लगते हैं। देवीगढ़का गोंड़ दुर्ग यहांके बड़र पर्वत पर अवस्थित है। जिरा नामक महानदीकी एक शाखा तहसीलके मध्य बहती है।

२ उक्त उपविभागका प्रधान नगर। यह अक्षा० २१° २१' १५" उ० और देशा० ८३° ४३' १५" पू०के मध्य अवस्थित है। शहरमें एक प्रकारका मोटा कपड़ा तैयार होता है।

वर्गा—बसहर राज्यका एक हिमालयसङ्कट। यह अक्षा० ३१° १६' उ० तथा देशा० ७८° १६' पू०के मध्य अवस्थित है।

वर्गी—महाराष्ट्र-दस्यु गण बङ्गालमें वर्गी नामसे प्रसिद्ध थे। ये लोग हथियारबंद दलोंके साथ नगरमें घुसते और नगरवासियोंका सर्वस्व हरण कर लेते थे।

वर्छा (हिं० पु०) बरछा देखो।

वर्जना (हिं० क्रि०) बरजना देखो।

वर्जह (सं० पु०) दुग्धका उत्पत्तिस्थान।

वर्जहा (सं० क्ली०) स्तनका अग्रभाग।

वर्त्तन (हिं० पु०) बरतन देखो।

वर्त्तना (-हिं० क्रि०) १ व्यवहार करना, आचरण करना। २ व्यवहारमें लाना, काममें लाना।

वर्त्ताव (हिं० पु०) बरताव देखो।

वर्द (हिं० पु०) वृष, बैल।

वर्दाश्त (फा० स्त्री०) बरदाश्त देखो।

वर्द्धा—मध्यप्रदेशके नामो जिलेके अन्तर्गत एक नगर।

वर्फ (फा० स्त्री०) १ हिम, जमा हुआ जल। जल जम कर कठिन होनेके बाद जो दूसरी अवस्थामें पलट जाता है उसीको वर्फ कहते हैं। ३२° डिग्री फारन होट उत्तापसे जल जम कर कठिन हो जाता है। कठिनताप्राप्तिके साथ साथ जलमें दो प्रकारके प्राकृतिक परिवर्त्तन होते हैं। पहला श्वेत और कठिनाकार, दूसरा आयतनमें वृद्धि। जलके जमनेसे परिमाणमें वृद्धि होती है। शीतप्रधानदेशोंमें जल का पाइप अकसर फट जाते हैं। उत्तर और दक्षिण मेरुदेशमें ऐसे वर्फके अनेक पर्वत देखे जाते हैं। शीतके प्रादुर्भावसे इन स्थानोंकी तुषारराशि कठिन हो रूपान्तरमें प्राप्त होता है हिमालयादि पर्वतोंके हिमानीसिक्त उच्च शिखर पर वर्फ जमती है। कभी कभी वह लुढ़कती हुई नीचे गिर पड़ती है। कभी कभी उन वर्फ खंडोंके साथ साथ शिलाखण्ड भी गिरते देखे जाते हैं। पहिले यह स्वभावजातवर्फ मानवोंके उपकारार्थ व्यवहृत होती थी। आजकल कृत्रिम रूपसे बनायी जाती है जो सब कामोंमें आती है। मत्स्य, मांस जो सहज हीमें नष्ट हो सकता है उनको बचानेके लिये वर्फसे ढक कर रखा जाता है जिससे वे खराब नहीं होते। दूर देशोंसे मत्स्यादि लानेमें यह विशेष उपकारी है। यों तो लवणके योगसे भी ये सब चीजें लाई ज़ा सकती हैं पर उससे उनमें लवणका आस्वाद आ जाता है। वर्फसे ढक कर लानेसे कैसा भी फर्क नहीं पड़ता। ज्वरादि रोगोंमें मस्तिष्कमें दाहके उपस्थित होने पर इसका व्यवहार करनेसे बहुत कुछ शान्ति मिलती है। रक्तस्राव, हिक्कारोग, आहतस्थान और वेदनामें वर्फके सेवनसे बहुत कुछ फायदा देखा जाता है।

वर्फका व्यवहार करनेके लिये नाना द्रव्योंका आविष्कार हुआ है। जैसे—आइसब्रेकर, आइसबैग, गिलास इत्यादि। वर्फमें और भी एक गुण है कि उष्ण प्रधान स्थान में रखनेसे वह वायुको शीतल कर उस स्थानको भी शीतल करती है। इस सुखका उपभोग करनेके लिये बहुतसे लोग वर्फकी वाटिका और वर्फका शैल बनवाते हैं। वर्फके ऊपर आलोक गिरने पर उसकी आलोक शक्ति बढ़ जाती है। आइस लैण्ड द्वीपका ऊषालोक और उत्तर मेरुकी हिमज्योति (Aurora Boarese's) इसके प्रकृष्ट दृष्टान्त हैं।

२ मशीनों आदिकी सहायता अथवा और कृत्रिम उपायोंसे जमाया हुआ पानी। यह साधारणतः बाजारोंमें बिकता है और इससे लोग गर्मीके दिनोंमें पीनेके लिये जल आदि ठंढा करते हैं। ३ कृत्रिम उपायोंसे जमाया हुआ दूध या फलों आदिका रस। यह प्रायः गर्मीके दिनोंमें खानेके काममें आता है।

वर्फिस्तान (फा० पु०) वह स्थान जहां वर्फ ही वर्फ हो, वर्फका मैदान या पहाड़।

वर्फी (फा० स्त्री०) एक मिठाई जो चाशनीके साथ जमे हुए खोए आदिके कतरे काट काट कर बनाई जाती है। बरफी देखो।

वर्वट (सं० पु०) वर्व-अटन्। राजमाष, बोड़ा।

वर्वटी (सं० स्त्री०) वर्वट-गौरादित्वात् ङीप्। १ वेश्या, रंडी। २ व्रीहिभेद, एक प्रकारका धान।

वर्वर (सं० त्रि०) भ्रष्ट आचरण किया हुआ, हकलाता हुआ। १ घूंघरदार, वल खाया हुआ। २ असभ्य, जंगली। ४ अशिष्ट, उद्दण्ड। (पु०) ५ वर्णाश्रमविहीन, असभ्य मनुष्य, जंगली आदमी। ६ एक पौधा। ७ कीड़ा। ८ एक प्रकारकी मछली। ६ एक प्रकारका नृत्य। १० अस्त्रोंकी झनकार, हथियारकी आवाज।

वर्वरा (सं० स्त्री०) १ वर्वटी, वनतुलसी। २ एक प्रकारकी मक्खी। ३ एक नदीका नाम।

वर्वरी (सं० स्त्री०) १ वनतुलसी। २ इंगुर। ३ पीतचन्दन।

वर्रा (हिं० पु०) रस्सेकी खिंचाई जो कुआर सुदी चौदस को गाँवोंमें होती है। जो रस्सा खींच ले जाते हैं, यह समझा जाता है; कि वे साल भर कृतकार्य होंगे।

वर्राक (अ० वि०) १ चमकीला, जगमगाता हुआ। २ तेज, वेगवान्। ३ तीव्र। ४ चतुर, चालाक। ५ पूर्ण रूपसे अभ्यस्त, खूब मश्क किया हुआ। ६ धवला, सफेद।

वर्राना (हिं० क्रि०) १ व्यर्थ बोलना, फजूल बकना। २ स्वप्नकी अवस्थामें बोलना।

वर्रे (हिं० पु०) भिड़ नामका कीड़ा, तितैया।

वर्गे (हिं० पु०) एक पक्षीका नाम।

वर्वाकशाह—वङ्गाधिप नासिरशाहके पुत्र। इन्होंने १४५८ ई०में वङ्गसिंहासन पर बैठ कर १७ वर्ष तक राज्य किया। विलक्षण दक्षताके साथ राज्यशासन करके इन्होंने अच्छा नाम कमा लिया था। आठ हजार निग्रो और आविसिनिया-देशीय क्रीतदासोंको ला कर इन्होंने अपना सेनादल परिवर्द्धित और सुशिक्षित किया था। ८७६ हिजरी (१४१४ ई०)-में इनका देहान्त हुआ।

वर्वानी—१ मध्यभारतके भुपावर एजेन्सीके अन्तर्गत एक सामन्तराज्य। यह अक्षा० २१° ३६′ से २२° ७′ उ० तथा देशा० ७४° २८′ से ७५° १६′ पू०के मध्य नर्मदानदीके वायें किनारे अवस्थित है। भूपरिमाण ११७८ वर्गमील है। इसके उत्तर धारराज्य, उत्तर-पश्चिम अलीराजपुर, पूर्व इन्दोर राज्यका कुछ अंश और दक्षिण तथा पश्चिममें वम्बईका खांदेश जिला है। यहांके सरदार उदयपुरके शिशोदीय राजपूत वंशके हैं। १४वीं शताब्दीमें इन्होंने यहां आ कर राज्य बसाया। वर्त्तमानराजके ऊर्द्ध्वतन १५वीं पीठीके परशुरामने अपने भुजवलसे दिल्लीश्वरकी सेनाको मालवराज्यसे मार भगाया था। पीछे वे पकड़े गये और दिल्ली ला कर इसलाम धर्ममें दीक्षित हुए। इसके बाद वे अपने राज्यमें लौट आये सही, पर सिंहासन पर बैठे नहीं। अपने पुत्र भीमसिंहको सिंहासन पर बिठा कर लोकलज्जाके भयसे वे मौन हो कर दिन विताने लगे। उनका 'समाधि-स्तम्भ' अवसगढ़में आज भी देखनेमें आता है। इधर उधर पड़े हुए भग्नदुर्ग, श्रीहीन नगर और जलनालीसमूह इस राज्यकी प्राचीन समृद्धिका निदर्शन है। विगत शताब्दीमें महाराष्ट्रप्रवाहसे इस राज्यकी पूर्व-श्री नष्ट हो गई है। १८६० ई०में इस वंशके सरदार यशोवन्त सिंहकी अक्षमता देख व्रिटिश-सरकारने १८७३ ई० तक इस राज्यका शासनकार्य अपने तत्त्वाधानमें रखा। पीछे यशोवन्तने पुनः शासनभार ग्रहण कर १८८० ई० तक राज्य किया। उनके मरने पर १८८० ई०में उनके भाई इन्द्रजित्‌सिंह राजसिंहासन पर बैठे। इनका भी शासनकार्य सराहनीय न था। १८९४ ई०में उनकी मृत्यु हुई। पीछे उनके बड़े लड़के रणजित्‌सिंह सोलह वर्षकी अवस्थामें राजसिंहासन पर अधिरूढ़ हुए। ये ही वर्त्तमान राजा हैं और राणा इनकी उपाधि है। वृटिश सरकारसे इन्हें ९ सलामी तोपें मिलती हैं।

इस राज्यमें इसी नामका १ शहर और ३३३ ग्राम लगते हैं। जनसंख्या ८० हजारसे ऊपर है जिनमेंसे सैकड़े पीछे ५० हिन्दू हैं और शेषमें मुसलमान तथा ऐनिमिष्ट आदि हैं। यहांकी प्रधान उपज ज्वार, मकई, तिल, चना और गेहूं है। यह राज्य चार परगनोंमें विभक्त है। हर एक परगना कमासदारके अधिन है। राजस्व चार लाखसे ऊपर है। राजाको किसी दरबारमें कर नहीं देना पड़ता। इन्हें गांजा, भांग, अफीम बेचनेका अधिकार है। पहले पहल यहां १८६३ ई०में एक स्कूल खोला गया। पीछे १८९१ ई०में एक दूसरा स्कूल स्थापित हुआ जिसका विक्टोरिया-हाई-स्कूल नाम रखा गया। अभी कुल मिला कर १६ स्कूल और ६ चिकित्सालय हैं।

२ उक्त सामन्तराज्यकी राजधानी। यह अक्षा० २२°२′ उ० तथा देशा० ७४°५४′ पू० नर्मदाके वायें किनारे अवस्थित है। जनसंख्या छः हजारसे ऊपर है। कहते हैं, कि १६५० ई०में राणा चन्द्रसिंहने इस राज्यको स्थापन किया। नगरसे पांच मीलकी दूरी पर भवनगंज नामका एक पर्वत है जिस पर बहुतसे जैन-मन्दिर देखनेमें आते हैं। प्रतिवर्ष जनवरी मासमें मन्दिरके पर्वोपलक्षमें एक मेला लगता है। यहां स्टेट-अतिथि-भवन, अस्पताल, सरकारी डाकघर और टेलीग्राफ, एक कारागार तथा एक स्कूल है।

वर्वाला—१ पञ्जावप्रदेशके हिसार जिलेकी एक तहसील। भूपरिमाण ५८० वर्गमील है।

२ उक्त जिलेका एक नगर और तहसीलका सदर। इसके चारों ओर पड़ा हुआ भग्नावशेष इसकी पूर्व समृद्धिका परिचय देता है। आज भी यहां पहलेके जैसा वाणिज्यस्रोत बह रहा है। यहांके प्रधान अधिवासी सैयद हैं। ये ही लोग पार्श्ववर्त्ती भूभागके कर्त्ता हैं।

वर्मावर—पञ्जावके चम्वाराज्यके अन्तर्गत एक प्राचीन

नगर। यह वर्मपुरी नामसे प्रसिद्ध है और इरावती नदीकी बुध्रिल शाखाके वाएं किनारे अवस्थित है। यहां तीन अति प्राचीन मन्दिरोंका भग्नावशेष देखा जाता है। अभी वह मन्दिर वृक्षोंसे ढक गया है। सबसे बड़े मंदिरमें मणिमहेश नामक शिवमूर्त्ति, गणेश, दुर्गा आदि मूर्त्तियां प्रतिष्ठित हैं। शेषोक्त मन्दिर वालवर्म्मदेवके प्रपौत्र मेरुवर्म्मदेवने वनवाया था। इसके अलावा मेरुवर्म्म द्वारा प्रतिष्ठित एक और गणेशमन्दिर देखा जाता है।

वर्म्मायण—गाजीपुर जिलेके वलिया नगरसे तीन कोस उत्तरमें अवस्थित एक प्राचीन नगर। वर्म्मायणजीके मन्दिरके लिये यह स्थान वहुत कुछ विख्यात है। एक ब्राह्मणरमणी इस मन्दिरकी परिचारिका हैं। मन्दिरमें एक शिलालिपि भी है। डा० कनिंहमने शिलालिपिके समयसे ही उसका प्राचीनत्व स्वीकार किया है। इसके अलावा सैकड़ों वौद्ध-सङ्घारामादिका ध्वंसावशेष देखनेमें आता है।

वर्बु र (सं० क्ली०) वर्व-उरच्। १ उदक, जल। वर्बू-रक वृक्ष, ववूलका पेड़।

वर्स (सं० पु०) प्रान्तभाग, अगला हिस्सा।

वर्साना—युक्तप्रदेशके मथुरा जिलान्तर्गत छात तहसीलका एक शहर। यह अक्षा० २७°३६´ उ० तथा देशा० ७७° २३´ पू० मथुरा शहरसे ३१ मील उत्तर पश्चिममें अवस्थित है। जनसंख्या ३५४२ है। यहांके हिन्दुओंका विश्वास है, कि श्रीकृष्णकी स्त्री राधिकादेवीका यह प्रिय वास-भवन था। इसके पास ही ब्रह्मा नामका एक पहाड़ है जिसकी चार चोटी पर १८वीं और १९वीं शताब्दीके वने हुए चार भवन शोभा दे रहे हैं। उन चारमेंसे प्रधान भवनमें, कहते हैं, कि एक समय भरतपुर, ग्वालियर और इन्दौरराज-पुरोहित एक ब्राह्मण रहते थे। अभी यहां जयपुरके महाराजने एक सुन्दर मन्दिर वनवा दिया है। यहां वहुत सी पुण्य सलिला पुष्करिणी भी हैं जिनमें स्नान करनेके लिये दूर दूरके लोग आते हैं।

वर्सात (हिं० स्त्री०) वरसात देखो।

वर्स्व (सं० पु०) दन्तपीठ।

वर्ह (सं० क्ली०) वर्ह-अच्। १ मयूरपुच्छ, मोरका पंख। २ पत्र, पत्ता। ३ परिवार, कुटुम्ब।

वर्हकेतु (सं० पु०) वर्ह केतुश्चिह्न यस्य। नवम मनुके पुत्रभेद।

वर्हण (सं० लि०) वर्ह-ल्यु। पत्र, पत्ता।

वर्हणा (सं० त्रि०) शत्रु हिंसक, शत्रुका संहार करनेवाला।

वर्हणावत् (सं० त्रि०) वर्हणा मतुप्, मस्य व। हिंसायुक्त।

वर्हणाश्व (सं० पु०) राजा निकुम्भके एक पुत्रका नाम।

वर्हभार (सं० पु०) वर्हसमूह, मयूरकी पुच्छराशि।

वर्हस् (सं० क्ली०) वर्ह-स्तुतौ-असुन्। कुश-आस्तरण।

वर्हिस् (सं० पु०) वृंहयति वृहि वृद्धौ इसि, नलोपश्च। ग्रंथिपर्ण, गठिवनका पेड़।

वर्हिःपुष्प (सं० क्ली०) वर्हिर्दीप्तिस्तद्युक्तं पुष्पमस्य। ग्रंथिपर्ण, गठिवनका पेड़।

वर्हिकुसुम (सं० क्ली०) वर्हिवर्हयुक्तं कुसुमं यस्य। ग्रंथिपर्ण, गठिवन।

वर्हिण (सं० पु०) वर्हमस्त्यस्येति वर्ह 'फलवर्हाभ्यामिनच्' इति इनच् वा (वहुलमन्यत्रापि। उण् २।४९) इति इनच्। १ मयूर, मोर। (क्ली०) २ तगर।

वर्हिणवाहन (सं० पु०) वर्हिणो मयूरो वाहनं यस्य। कार्त्तिकेय।

वर्हिध्वजा (सं० स्त्री०) वर्ही ध्वजो वाहनं यस्याः। चण्डी।

वर्हिन् (सं० पु०) वर्ह-अस्त्यर्थे इनि। १ मयूर, मोर। २ प्राधापुत्र।

वर्हिपुष्प (सं० क्ली०) वर्हि वर्हशालि पुष्पं यस्य। ग्रन्थिपर्ण, गठिवन।

वर्हियान (सं० पु०) वर्ही मयूरः यानं यस्य। कार्त्तिकेय।

वर्हिज्योतिस् (सं० पु०) वर्हिषि यज्ञे ज्योतिरस्य। वह्नि, आग।

वर्हिर्मुख (सं० पु०) वर्हिरग्निर्मुखं यस्य। देवता। अग्नि देवताओंके मुखस्वरूप हैं, इसीसे अग्निमें होम करनेसे वह देवताओंको प्राप्त होता है।

वर्हिशुष्मन् (सं० पु०) वर्हिः कुशः बलमस्य । वहि, आग ।

वर्हिसद् (सं० पु० वर्हिषि अग्नौ, कुशासने वा सीदन्ति सद-क्विप् । पितृगणविशेष, पित्राधिष्ठातृ देवगण । पितृ मातृ आदिके उद्देश्यसे तर्पण करनेमें पहले इन्हींके उद्देश्यसे तर्पण करके पीछे पितरोंका तर्पण करना होता है । इन पितरोंके उद्देश्यसे किसी किसीने तीन वार और किसीने एक वार तर्पण करनेको वतलाया है ।

"अग्निस्वात्तांस्तथा सौम्यान् हविष्मन्तस्तोथमपान् ।
सुकालिनो वर्हिषद आज्यपांस्तर्पयेत्ततः ॥"

(आह्निकतत्त्व) तर्पण देखो ।

२ पृथुवंशज हविर्द्धानके पुत्रका नाम ।

वर्हिषद् (सं० पु०) वर्हिस् सद-क्विप पृषोदरादित्वात् साधुः । वर्हिषद् शब्दार्थ ।

वर्हिष्क (सं० त्रि०) १ वालक नामक गन्धद्रव्य । २ दर्भयुक्त ।

वर्हिष्केश (सं० पु०) अग्नि, आग ।

वर्हिष्ठ (सं० क्ली०) १ ह्रीवेर । (त्रि०) २ कुशस्थित । ३ वृद्धतम ।

वर्हिष्मन् (सं० त्रि०) १ कुशयुक्त । २ यज्ञयुक्त यजमान ।

वर्हिष्य (सं० त्रि०) वर्हिषि दत्तं वर्हिषि हितमिति वा यत् । वह पिण्ड जो कुश पर रखा जाता है ।

वर्हिःषद् (सं० पु०) वर्हिषद् ।

वर्हिःष्ठ (सं० त्रि०) वर्हिष्ठ ।

वर्हिस् (सं० क्ली०) १ कुश । २ दीप्ति । ३ अग्नि ।

वलंद ((फा० वि०) ऊंचा ।

वलंत्री (हिं० पु०) भारतके अनेक भागोंमें मिलनेवाला एक पेड़ । इसके फल खट्टे होते हैं और अचारके काममें आते हैं । फलोंके रसमें लोहे परके दाग भी साफ किये जाते हैं । इसकी लकड़ीसे खेतीके सामान बनाये जाते हैं ।

वल (सं० क्ली०) वलते विपक्षान् हन्तीति वल-पचाद्यच । १ सैन्य, सेना । २ स्थौल्य, मोटापन । ३ सामर्थ्य, ताकत । पर्याय—द्रविण, तर, सह, शौर्य, स्थामन्, शुष्म, शक्ति, पराक्रम, प्राण, महस्, शूष्मन्, उर्ज्जस् । वैदिक पर्याय—ओजस्, पाजस्, शव, तर, त्वक्ष, शर्द्ध, वाध, नृम्ण, तविषी, शुष्म, शुष्ण, शूष, दक्ष, वीडु, च्यौत्न, सह, यह, वध, वर्ग, वृजन, वृक्, मज्मना, पौंस्यानि, धर्णसि, द्रविण, स्यन्द्रास, शम्बर । (वेदनिघण्टु) गर्भमें बालकके ६ मासमें वल आ जाता है । ४ गन्धरस । ५ रूप । ६ शुक्र । धातुओंका जो मुख्य तेज है वही ओज वा वल कहलाता है । ७ वपु, शरीर । ८ पल्लव, कोंपल । ९ रक्त, खून, । १० काक, कौवा । ११ वलदेव, वलराम । १२ वरुणवृक्ष । सद्योवलकर और सद्योवलहर द्रव्य—

"सद्योवलकराण्त्रीणि वालाभ्यङ्गं सुभोजनम् ।
सद्योवलहराण्त्रीणि, अध्वानं मैथुनं ज्वरः ॥"

(वैद्यक)

वालास्त्रीसंभोग, तैलमर्दन और उत्तम भोजन ये सद्योवलकर तथा अधिक भ्रमण, मैथुन, ज्वर ये तीन सद्योवलहर हैं । पूर्वोक्त तीनोंके सेवनसे वल बढ़ता है और अन्तके तीनोंसे वलका क्षय होता है ।

विद्या, अभिजन, मित्र, वृद्धि, सत्त्व, धन, तप, सहाय, वीर्य और दैव ये १० वल हैं । जिसके ये सब होते हैं उसके दश प्रकारके वल होते हैं और वही व्यक्ति वलवान् कहलाता है । सुश्रुतमें वलके सम्बन्धमें यों लिखा है—

रससे ले कर वीर्य पर्यन्त सप्तधातुओंके जो उत्कृष्ट तेज हैं, आयुर्वेदके शास्त्रोंमें उसी तेज या ओजको वल वतलाया है । वलके होनेसे शरीर पुष्ट और मजबूत होता है, सव काम करनेमें उत्साह दिखाई देता है, शरीर प्रसन्न रहता है और वाह्य तथा अभ्यंतरकी इन्द्रियां बे-रोकटोक अपना काम करने लगती हैं । (सुश्रुत २५ अ०)

शरीरस्थ ओज अथवा वल सोमगुणविशिष्ट, स्निग्ध, श्वेतवर्ण, शीतल, स्थिर, सरस, मृदु और सुगंधित है । यह शरीरमें गुप्त रूपसे रहता है, और इससे प्राणकी रक्षा होती है । यह शरीरके सभी अवयवोंमें व्याप्त हो कर रहता है । इसके नहीं रहनेसे शरीर शीर्ण वन जाता है । सब धातुओंसे जो सार निकलता है, वही ओज अथवा वल है । मानसिक और शारीरिक क्लेश, क्रोध, शोक, एकाग्रचित्तता, श्रम और क्षुधा आदि कारणोंसे वलका नाश होता है । वलके नाशसे तेज भी जीवोंसे एक ओर किनारा कर जाता है ।

वलके विकार और क्षयसे संधिस्थानोंमें शिथिलता,

शरीरमें अवसन्नता आ जाती है तथा वात, पित्त और श्लेष्माका प्रकोप होने लगता है। शरीर किसी प्रकारकी क्रिया करनेमें लायक नहीं रहता। बलके विकारसे शरीरमें स्तब्धता, भारीपन, वायुजन्य सूजन, वर्णको विभिन्नता, ग्लानि, तंद्रा, निद्रा आदिके लक्षण दीखने लगते हैं। बल-क्षय होनेसे मूर्च्छा, मांसक्षय, मोह, प्रलाप और मृत्यु तक हो जाती है।

बलके तीन प्रकार दोष होते हैं—व्यापत्, विस्रंसा और क्षय। शरीरकी शिथिलता, अवसन्नता और श्रान्ति, वायु, पित्त, कफकी विकृति तथा स्वभावसे शरीरका इन्द्रिय कार्य जिस परिमाणमें होना चाहिये उस परिमाणमें नहीं होना, विस्रंसा होने पर ये सब लक्षण होते हैं। शरीरका भारीपन, स्तब्धता, ग्लानि, शारीरिक वर्णकी विभिन्नता, तन्द्रा, निद्रा और वायुजन्य शोफ आदि बलके व्यापन्न होने पर ये सब लक्षण होते हैं। बलके क्षय होने पर मूर्च्छा, मांसक्षय, मोह, प्रलाप और अज्ञान ये सब लक्षण अथवा मृत्यु तक हो जाती है। बलके विस्रंसा या व्यापद होने पर नाना प्रकारके अविरुद्ध प्रतिकारोंसे उसे स्वाभाविक अवस्थामें लावे। अविरुद्ध क्रियाका यहां पर तात्पर्य है, जिसके सेवनसे कैसा भी विकार उत्पन्न न हो।

भावप्रकाशके मतसे बलके लक्षण—रससे शुक्र पर्यन्त पुष्टिहेतु समस्त कार्योंमें पटुता होनेको बल कहते हैं।

बलक्षयके लक्षण—देहकी गुरुता, स्तब्धता, मुख-ग्लान, विवर्णता, तंद्रा, निद्राधिक्य तथा वातजन्य शोथ आदि लक्षणोंसे बलक्षय जानना चाहिये।

बलवृद्धिके हेतु—जिन द्रव्योंसे अग्नि और दोषोंकी समता हो धातु पुष्ट होता है उन्हीं द्रव्योंके सेवनसे बल-की वृद्धि होती है। दोष, धातु और मल इनमेंसे किसी एकका क्षय होने पर जिन द्रव्योंसे उसकी पूर्त्ति हो उसी भोजनकी अभिलाषा सबको होती है। क्षीण व्यक्तिको जिस द्रव्यके खानेकी इच्छा हो वही द्रव्य यदि उसे खानेको मिले तो शारीरिक क्षयप्राप्त अंशका पूरण होता है। उस समय अपने आप ही बलकी पूर्त्ति हो जाती है। रसोंके न्यूनाधिक्य होनेसे ही शरीर कृश और स्थूल होता है। स्थूलता या कृशता दोनों ही निन्दनीय हैं। ब्रह्मचर्य, व्यायाम, पुष्टिकर भोजन ही सदा विधेय है। पुष्टिकर और क्षीणकर दोनों प्रकारके द्रव्य खानेसे शरीरमें अन्नरस संचालित हो सर्व धातुओंकी समान भावसे पुष्टि होती है। शरीरमें यदि सब धातु समान भावसे हों, तो शरीर स्थूल और कृश न हो कर मध्यम भावमें रहता है, सब कार्योंमें समर्थ होता है तथा क्षुधा, पिपासा, शीत, गर्मी आदि सह सकता है। शरीरस्थ दोष, धातु आदिका कोई निरूपित परिमाण नहीं है। इस लिये शरीरमें ये समान भावसे हैं या नहीं उसका अन्य कारणोंसे निर्णय नहीं किया जा सकता। शरीर जब स्वस्थ हो तभी जानना चाहिये, कि तीनों समान हैं। शरीरकी इन्द्रियां यदि अप्रसन्न मालूम पड़े तो जानना चाहिये, कि बलका ह्रास हुआ है। शरीरमें बल, दोष धातुओंके समानभावमें रहनेसे अन्तःकरण और इन्द्रिय-प्रवृत्ति प्रसन्न रहती है। (भावप्र० और सुश्रु०)

मनुष्यमें जितना भी बल है उनमें दैवबल ही सबसे प्रधान है। मानव यदि दैवबलसे बलीयान् हो, तो वह कठिनसे कठिन काम भी कर सकता है। ब्रह्मवैवर्त्त-पुराणके गणेशखण्डमें लिखा है—

> अबलस्य बलं राजा बालस्य रुदितं बलम्।
> बलं मूर्खस्य मौनन्तु तस्करस्यानृतं बलम्॥
> (ब्रह्मवैवर्तपु० गणेशखं० ३५ अ०)

जो बलहीन हैं उनके राजा ही बल है। बालकका रोना, मूर्खका मौन तथा चोरका असत्य ही बल है।

इस प्रकार क्षत्रियका युद्ध, वैश्यका वाणिज्य, भिक्षुककी भिक्षा, शूद्रका विप्रसेवन, वैष्णवकी हरिभक्ति और हरिके प्रति दास्य, खलके प्रति हिंसा, तपस्वीकी तपस्या, वेश्याका भेष, स्त्रीका यौवन, साधुका सत्य और पण्डितकी विद्या ही एकमात्र बल है। इस प्रकार सभी मनुष्यके बलका विषय अभिहित है। विस्तार हो जानेके भयसे नहीं लिखा गया। बलदेव देखो।

१३ वायुकर्तृक प्रदत्त कार्त्तिकेयके एक अनुचरका नाम। १४ श्रीरामचन्द्रके पुत्र कुशके वंशमें उत्पन्न परियात्रके एक पुत्रका नाम। १५ दनायुके पुत्रका नाम। १६ मेघ,

वादल। १७ दैत्यविशेष। देवीपुराणमें इसके विषय-में ऐसा लिखा है—

पूर्वकालमें वल नामका एक महावलिष्ठ पराक्रमी दैत्य था। इन्द्र चन्द्र प्रभृति अमरगण और यक्ष गंधर्वगण उससे डरते थे। उस दैत्यने देवताओंको युद्धमें परास्त कर स्वर्गमें इन्द्रके सिंहासन पर अधिकार जमाया। पीछे उसने महाविषधर नागेन्द्रोंको वल पूर्वक अपने कावूमें किया और गरुड़को अपना भृत्य वना कर ब्रह्मा सहित समस्त स्वर्गवासी देवोंको स्वर्गसे पाताल मार भगाया। देवगण सौ वर्ष तक उसके भयसे पातालमें रहे। पीछे उन्होंने बृहस्पतिकी शरण ली। बृहस्पतिके परामर्शसे वे विष्णुके पास पहुंचे। विष्णुने उनसे कहा, "हे देवगण! महावलिष्ठ वल अतिशय नीति-परायण, धार्मिक और युद्धमें अजेय है उसे युद्धमें पराजय करना सहज नहीं" अनन्तर वे सवके सव महामायाकी शरणमें गये। महामायाकी मोहनीविद्यासे विष्णु वृद्धब्राह्मणका रूप धारण कर वेदपाठ करते-करते वलासुरके द्वार पर उपस्थित हुये। विष्णुमोहिनी मंत्रको जप वे वलासुरसे वोले, "मैं कश्यपपुत्र हूं, मुझे देवोंने भेजा है, ऋषियोंने देवोंके साथ यज्ञ आरम्भ किया है, मैं उसी यज्ञको निष्पादनके लिये आपके पास आया हूं। आप दान दीजिये जिससे यह यज्ञ सम्पन्न हो। वलासुरने यह सुन प्रतिज्ञा की, 'जो वस्तु तुम्हें यज्ञ करनेके लिये आवश्यक होगी वह मैं दूंगा, यहां तक, कि मैं अपना जीवन भी दे सकूंगा।' विष्णुरूपी वह द्विज उपयुक्त समय देख वोले, 'वह यज्ञ तुम्हारे शरीरसे ही सम्पन्न होगा। अतएव मैं तुम्हारे शरीरको मांगता हूं।' ऐसा कह उन्होंने उसका मस्तक सुदर्शनचक्रसे काट डाला। अव उस दानवने भौतिक देहका परित्याग कर दिव्य देह प्राप्त की; वलासुरके अङ्गप्रत्यङ्गोंसे हीरा मोती माणिक पन्ना वन गये और उसका शरीर सत्पात्रके दान करनेसे रत्नाकर हुआ। (देवीपुराण ५७ अ०)

१८ भार उठानेकी शक्ति, सह। १९ आश्रय, सहारा। २० आसरा, भरोसा। २१ पार्श्व, पहलू। (त्रि०) २२ वलयुक्त, ताकतवर।

वल (हिं० पु०) १ लपेट, फेरा। २ ऐंठन, मरोड़। ३ टेढ़ापन, कज। ४ अन्तर, फर्क। ५ अधपके जौकी वाल। ६ फेरा, लपेट। ७ लहरदार घुमाव, पेच। ८ सिकुड़न, गुलझट।

वलकना (हिं० क्रि०) १ उवलना, उफान खाना, खौलना। २ उमड़ना, जोशमें आना।

वलकन्द (सं० पु०) मालाकन्द।

वलकर (सं० त्रि०) करोतीति करः, वलस्य करः। १ वलजनक, जिससे वलकी वृद्धि हो। (क्ली०) २ अस्थि, हड्डी।

वलकल (सं० पु०) वल्कल देखो।

वलकाना (हिं० क्रि०) १ उवालना, खौलना २ उत्तेजित करना। उभारना।

वलकुआ (हिं० पु०) पूर्वीय भारतमें मिलनेवाला एक प्रकारका वाँस। यह चालीस पचास हाथ लंवा और दश वारह अंगुल मोटा होता है। गांठें इसकी लंवी होती हैं जिन पर गोल छल्ला पड़ा रहता है। यह वहुत दृढ़ होता है और पाइट वांधनेके कामके लिये वहुत अच्छा होता है। इसका दूसरा नाम भलुआ, वड़ा वाँस, सिलवरुआ भी है।

वलकृत (सं० त्रि०) वलं करोति-कृ-क्विप्, तुक् च। वलकारक।

वलक्ष (सं० पु०) वलतेः क्विप् वलं अक्षत्यस्मिन् घञ्, वलक्ष इति। १ श्वेतवर्ण। (त्रि०) २ वलयुक्त।

वलखिन् (सं० त्रि०) वाह्लीक-देशागत।

वलगुप्ता (सं० स्त्री०) वौद्ध रमणीभेद।

वलचक्र (सं० क्ली०) १ सैन्यव्यूह। २ राजदण्ड।

वलंचक्रवर्त्तिन (सं० पु०) सम्राट्, राजराजेश्वर।

वलज (सं० क्ली०) वलकृतसाहसयुद्धादिकात् जायते वल-जन-ड। १ क्षेत्र, खेत। २ पुरद्वार, नगरका द्वार। ३ शस्य, फसल। ४ धान्यराशि, धानका ढेर। ५ युद्ध, लड़ाई। ६ द्वार, दरवाजा। (त्रि०) ७ वलजन्य।

वलजा (सं० स्त्री०) वलज-टाप्। १ पृथ्वी। २ यूथिका, एक प्रकारकी जुही। ३ रज्जु, रस्सी।

वलद (सं० पु०) वलं ददातीति दा-क। १ जीवक नामका वृक्ष। २ होमाग्नि। होम करनेके समय कार्यविशेषमें

अग्निका भिन्न भिन्न नाम रखा गया है। पौष्टिक कर्ममें अग्निका नाम 'वल' है। इस वलद नामसे ही अग्निका होम करना होता है। "पौष्टिके वलदः स्मृतः (तिथितत्त्व) ३ वृषभ, साँढ़। ४ पर्पटक, पित्त पापड़ा। ५ अश्वगन्धा। ६ वलदाता, वल देनेवाला।

वलदण्ड (सं० पु०) कसरत करनेके लिये लकड़ीका बना हुआ एक ढांचा। इसमें एक काठके दोनों ओर कमानको तरह दो तिरछी लकड़ियां लगी होती हैं। इसे गट्ठेदण्ड भी कहते हैं।

वलदा (सं० स्त्री०) अश्वगन्धा।

वलदाऊ (हिं० पु०) १ वलदेव, वलराम।

वलदीनता (सं० स्त्री०) वलस्य दीनता। ग्लानि, लज्जा।

वलदेव (सं० पु०) वलेन दीव्यतीति दिव-अच्। वलराम। इन्होंने अनन्तदेवके अंशसे जन्म ग्रहण किया था, इसीसे वे शेषावतार समझे जाते हैं। (भारत १।६७।१५१)

विष्णुपुराणमें इस प्रकार लिखा है—गोकुलमें रोहिणी नामकी वसुदेवके एक और पत्नी थी। देवकीके जब सातवाँ गर्भ हुआ, तब महामायाने कंसके भयसे उस गर्भको रोहिणीके उदरमें रख दिया। इस प्रकार गर्भ-सङ्कर्षणके लिये उस गर्भसे जो पुत्र उत्पन्न हुआ, वह पीछे सङ्कर्षण कहलाया। इसीसे वलदेवका दूसरा नाम सङ्कर्षण भी है। (विष्णुपु० ५।२ अ०) ब्रह्मवैवर्त्तपुराणमें नामनिरुक्तिके विषयमें लिखा है, कि गर्भसङ्कर्षणके कारण सङ्कर्षण, वेदमें अन्त नहीं होनेके कारण अनन्त, वलोद्रेकके कारण वलदेव, हल धारणके कारण हली, नीलवास परिधान करनेके कारण शितिवास, मूषल अस्त्र होनेके कारण मूषली, रेवती पत्नी होनेके कारण रेवतीरमण और रोहिणी गर्भसम्भूत होनेके कारण इनका रौहिणेय नाम पड़ा था। (ब्रह्मवैवर्त्तपु० श्रीकृष्णजन्म० १३ अ०)

नन्दालयमें इन्होंने जन्मग्रहण किया। गोकुलमें आ कर महामुनि गर्ग द्वारा इनका नामकरण हुआ। नन्दालयमें श्रीकृष्णके साथ ये एकत्र पाले पोसे गये। पीछे अक्रूरके आने पर वलराम कृष्णके साथ मथुरा पधारे और कंसको मार कर वहां कुछ दिन ठहरे। अनन्तर सान्दीपन मुनिके निकट इन्होंने विद्याभ्यास किया। रेवतीके साथ इनका विवाह हुआ। यदुकुल ध्वंस होनेके समय जब ये योगासन पर बैठे, तब इनके शरीर-छिद्रसे रक्तवर्ण सहस्र मुखधारी एक वृहत् श्वेत सर्प निकल कर समुद्रमें चला गया। इस समय वलरामका शरीर प्राणशून्य हो गया था। कुरुकुलपति दुर्योधन इनके शिष्य थे। कृष्ण देखो।

वलदेवकी पूजा करनेमें इस प्रकार ध्यान करना होता है। यथा—

वलदेवं द्विवाहुञ्च शङ्खकुन्देन्दुसन्निभम्।
वामे हलायुधधरं मूषलं दक्षिणे करे।
हालालोलं नीलवस्त्रं हेलावन्तं स्मरेत् परम्॥"

२ वायु, हवा।

वलदेव—युक्तप्रदेशके मथुरा जिलेका एक शहर। यह अक्षा० २७° २४' उ० तथा देशा० ७७° ४६' पू०के मध्य अवस्थित है। जनसंख्या तीन हजारसे ऊपर है। इस नगरके ठीक मध्यस्थलमें एक मन्दिर और सामनेमें क्षीर समुद्र नामक एक पुण्यसलिला पुष्करिणी है। देव-मूर्त्तिदर्शन और दीर्घिकामें स्नान करनेके लिये अनेक तीर्थयात्री आते हैं। साल भरमें यहां दो मेले लगते हैं।

वलदेवक्षेत्र—उड़ीसाके अन्तर्गत एक तीर्थस्थान। इसे तुलसीक्षेत्र भी कहते हैं। यह पवित्र स्थान कटक जिलेके वर्त्तमान केन्द्रपाड़ाके अन्तर्भुक्त है। उड़ीसाके वैष्णव इसे पवित्र स्थान समझते हैं। तुलसीक्षेत्र माहात्म्यमें इस स्थानका देवमाहात्म्य वर्णित है।

वलदेवविद्याभूषण—वङ्गदेशीय एक विख्यात ब्राह्मण पण्डित। करीब तीन सौ वर्ष हुए ये जीवित थे। वैष्णव-दर्शनादिमें उस समय इनके मुकावलेका कोई भी न था। इनका प्रण था, कि वे उन्हींके शिष्य बनेंगे जो उन्हें तर्क-में पराजित कर देंगे। इसी उद्देशसे वे दिग्विजयको निकले। वङ्ग, मिथिला, काशी आदि प्रधान प्रधान स्थानों-के पण्डित इनसे परास्त हुए। आखिर ये भ्रमण करते करते वृन्दावन पहुंचे। वहां प्रसिद्ध टीकाकार विश्वनाथ चक्रवर्त्तीसे भक्तिशास्त्रके विचारमें परास्त हो इन्होंने उन्हींका शिष्यत्व ग्रहण किया। तीक्ष्ण प्रतिभावलसे थोड़े ही समयके अभ्यन्तर ये वैष्णवशास्त्रमें व्युत्पन्न

हो गये। इस समय जयपुरराज्यमें गोलमाल चल रहा था। जयपुरमें जो गोविन्दजीकी मूर्त्ति है, उनका सेवाधिकार गौड़ीय वैष्णवोंको मिला था। कुछ शाङ्कर संन्यासीने राजाको समझा कर कहा, कि शङ्करके शारीरिकभाष्यके अतिरिक्त रामानुज, मध्वाचार्य, विष्णुस्वामी और निम्बादित्य इन चारों सम्प्रदायमें वेदान्तदर्शनके चार भाष्य हैं। किन्तु चैतन्यदेवका मत इन भाष्योंके अन्तर्गत नहीं है और न उस मतका पृथक् भाष्य ही है। अतएव ये लोग असम्प्रदायी हैं। असम्प्रदायी वैष्णव गोविन्दके सेवाधिकारी नहीं हो सकते।

राजाने इसकी जांच करनेके लिये एक साधु-सभा बुलाई। बहुतसे पछाहीं, उदासीन पण्डित जमा हुए। वृन्दावनके गौड़ीय वैष्णव लोग भी गये। विचार आरम्भ हुआ। बंगालियोंकी तरफसे बलदेवने कहा, "कौन कहता है, कि हम लोगोंके भाष्य नहीं है? श्रीमद्भागवत ही वेदान्तके भाष्य स्वरूप हैं। 'गायत्री भाष्यरूपोऽसौभारतार्थविनिर्णयः' इत्यादि वाक्य उसके प्रमाण हैं; महाप्रभुने भी यही कहा है। महाप्रभुने सार्वभौमको जिस वैयासिक भाष्य द्वारा परास्त किया, वही यथार्थमें चैतन्यसम्मत भाष्य है। षट्सन्दर्भादिमें भी यही निबद्ध हुआ है।" इतना कह कर वे शाङ्करिक पण्डितोंके साथ विवादमें प्रवृत्त हो गये और आखिर उन्हें परास्त कर ही डाला। उन्हें निरस्त करनेके अभिप्रायसे जब शङ्कर पण्डितोंने पूछा, कि यह किस सम्प्रदायके अनुगत है, तब उन्होंने कहा, "यह श्रीचैतन्यभाष्यानुगत है।" यथार्थमें षट्सन्दर्भादि भिन्न महाप्रभुकृत पृथक् भाष्य नहीं था, यह उन्होंने पहले ही कह दिया है।

पछाहीं पण्डितोंने जब उस भाष्यको देखना चाहा, तब वे बोले, "अवश्य दिखलाऊंगा, लेकिन आज नहीं, कल।" इतना कह कर सभा दूसरे दिनके लिये उठ गई।

भाष्य तो था नहीं, वे देखावेंगे क्या! सो उन्होंने एक नया भाष्य बनानेका संकल्प किया। इस भीषण-सागरको पार करनेके लिये उन्होंने श्रीगोविन्दजीकी शरण ली। अनाहार मन्दिरके द्वार पर खड़े रहे। इस प्रकार एक दिन, दो दिन, तीन दिन बीत गये। चौथे दिन भाष्य रचना करनेका इन्हें देवतासे आदेश मिला। कहते हैं, कि बलदेवने मन्दिरमेंसे 'कुरु कुरु' ऐसा शब्द सुना था। प्रत्यादेश पा कर प्रसन्न चित्तसे इन्होंने भाष्यरचनामें हाथ लगा दिया और शीघ्र ही सफलता भी प्राप्त कर ली। गोविन्ददेवके आदेशसे रचित होनेके कारण इस भाष्यका "श्रीगोविन्दभाष्य" नाम रखा गया। गोविन्ददेवके आदेशकी बातें बलदेवने भाष्यके शेषमें इस प्रकार लिखी हैं—"विद्यारूपं भूषणं मे प्रदाय ख्यातिं निन्ये तेन यो मामुदारः श्रीगोविन्दः स्वप्ननिर्दिष्टभाष्यो राधाबन्धुर्बन्धुराङ्गः स जीयात्॥"

(गो० भा०)

यथासमय वह भाष्य प्रकाश्य सभामें दिखलाया गया। सभी अवाक् हो रहे। जयपुर और वृन्दावनमें गौड़ीय वैष्णवोंका आधिपत्य सदाके लिये जम गया। शारीरिक भाष्यकी तरह इस भाष्यमें सभी जगह श्रुतिप्रमाणकी प्रधानता देखी जाती है। अन्यान्य भाष्योंकी तरह पुराणके प्रमाणका भी अभाव नहीं है।

बलदेव निम्नलिखित दार्शनिक ग्रन्थ बना गये हैं—

१ गोविन्दभाष्य, २ सूक्ष्मभाष्य (गोविन्दभाष्यकी टीका), ३ सिद्धान्तरत्न वा भाष्यपीठक, ४ प्रमेयरत्नावली और कान्तिमालाटीका, ५ वेदान्तस्यमन्तक, ६ गीताभूषण भाष्य, ७ दशोपनिषद्भाष्य, ८ सहस्रनामभाष्य, ९ स्तवमालाभाष्य, १० सारङ्ग रङ्गदा। (लघुभागवतामृतकी टीका)।

इनका वृन्दावनमें ही शरीरान्त हुआ। वहां आज भी उनकी समाधि विद्यमान है।

बलदेवपत्तन (सं० क्ली०) वृहत्संहितोक्त समुद्रतीरवर्त्ती नगर।

बलदेवसिंह—भरतपुरके जाटवंशीय एक महाराज। ये राजा रणजितके पुत्र और राजा रणधीरके कनिष्ट थे। १८२४ ई०में इन्होंने अपने पुत्र बलवन्तको युवराज बनानेके लिये अङ्गरेजोंसे सहायता ली थी। १८२५ ई०में उनकी मृत्यु हुई। मथुराके निकटवर्त्ती गोवर्द्धन नामक स्थानमें इनके दोनों भाइयोंके समाधिस्तम्भ प्रतिष्ठित हैं।

बलदेवा (सं० पु०) त्रायमाण औषध।

बलनख (सं० पु०) व्याघ्रनख, बाघका नाखून।

वलना (हिं० क्रि०) जलना, दहकना।

वालनिग्रह (सं० पु०) वलस्य निग्रहः षष्ठीतत्। वलक्षय।

वलनेह (हिं० पु०) एक संकर राग। यह रामकली, श्याम, पूर्वी, सुन्दरी, गुणकली और गंधारसे मिल कर बना है।

वलन्द—छोटानागपुरवासी एक आदिम जाति। ये लोग अपनेको कृषिजीवी और हिन्दू बतलाते हैं। सम्भवतः ये भक्त-वलन्द नामक गोंड़ जातिकी अन्यतम शाखा हैं। इन लोगोंके मध्य हिन्दू क्रिया-कर्म व्यतीत कोई पार्वतीय देवदेवी-पूजाका परिचय नहीं मिलता। कोरिया-राजवंशका इतिहास पढ़नेसे मालूम पड़ता है, कि एक दिन वलन्द लोग विशेष पराक्रमशाली थे। गोंड़ और क्रोञ्च नामक कोल जातिके वार वार आक्रमणसे वलन्द-राजवंश अधःपतनको त हुआ।

वलन्धरा (सं स्त्री०) भीमसेनकी पत्नी।
(महाभारत० आदि०)

वलपति (सं० पु०) १ प्रधान सेनापति। २ इन्द्रका एक नाम।

वलपाण्डुकर (सं० पु०) कुन्द वृक्ष, कुंदका पौधा।

वलपुच्छक (सं० पु०) काक, कौआ।

वलपृष्ठक (सं० पु०) रोहित मत्स्य, रोहू मछली।

वलप्रद (सं० त्रि०) वलं प्रददाति दा-क। वलदायक, वलदेनेवाला।

वलप्रसू (सं० स्त्री०) प्रसूते इति प्रसूर्जननी वलस्य वलदेवस्य प्रसूर्जननी। रोहिणी, वलरामकी माता।

वलवलाना (हिं० क्रि०) १ ऊँटका बोलना। २ व्यर्थ बकना। ३ निरर्थक शब्द उच्चारण करना।

वलवलाहट (हिं० स्त्री०) १ ऊँटकी बोली। २ व्यर्थ बकवाद। ३ उमंग। ४ अहङ्कार, घमण्ड।

वलबीज (हिं० पु०) कंघी नामके पौधेका बीज।

वलवीर (हिं० पु०) वलरामके भाई श्रीकृष्ण।

वलभ (सं० पु०) विषधर कीट, एक विषैला कीड़ा।

वलभद्र (सं० पु०) वलं भद्रं श्रेष्ठमस्य वा वलमस्यास्तीति अर्शः आदित्वादच्, वलो वलवानपि भद्रः सौम्यः। १ अनन्त। २ लोध्र, लोधका पेड़। ३ गवय, नीलगाय। ४ विष्णुपूजनोक्त अष्टदल पद्मस्थ योगिविशेष। विष्णु प्रभृतिके पूजनमें अष्टदलपद्म बना कर योगियोंको पूजा करनी चाहिये। इस प्रकार पूजा नहीं करनेसे कोई फल नहीं होता। ५ पर्वतविशेष (भाग० ५।२०।२६) ६ क्षुद्रकदम्ब वृक्ष। (त्रि०) ७ वलशाली, ताकतवर।

वलभद्र—इस नामके कई ग्रन्थकारोंके नाम मिलते हैं। यथा—

१ अद्भुत तरङ्गिणीके प्रणेता। २ आह्निकके रचयिता। ३ कालीतत्त्वामृततन्त्रके प्रणयनकार। ४ चेतसिंहविलासके प्रणेता। ५ जातक चन्द्रिका, वृहज्जातककी नष्टजातकाध्यायटीका और होरारत्नके रचयिता। भट्टोत्पलने वृहत्संहिताटीकामें इनका उल्लेख किया है। ६ नवरत्नधातुविवादके प्रणेता। ७ महारुद्रन्यासपद्धतिके रचयिता। ८ योगशतकसङ्कलयिता। ९ रामगीतावृत्तिके प्रणेता। १० शक्तिवादटीकाके रचयिता। ११ महानाटकदीपिकाके प्रणेता। ये काशीनाथके पुत्र और कृष्णदत्तके पौत्र थे। १५६२ ई०में इन्होंने उक्त ग्रन्थ लिखा था। १२ हायनरत्न और १६५४ ई०में होरारत्नके रचयिता। ये दामोदरके पुत्र और हरिरामके भाई थे। मकरन्दटीका और भास्कराचार्यकृत बीजगणितकी टिप्पणी भी इन्होंने लिखी है। १३ पत्रप्रकाशके रचयिता। १४ महारुद्रपद्धतिके प्रणेता। १५ वालबोधिनी नामक भास्वतीटीकाके प्रणेता, वसन्तके पुत्र और विमलाकरके पौत्र। इन्होंने १५४४ ई०को उमानगरमें ग्रन्थ लिखा था। १६ वृन्दसंग्रहशेषके प्रणेता। १७ नित्यानुष्ठानपद्धतिके रचयिता। १८ अशौचसारके प्रणेता। १९ एक विख्यात ज्योतिर्विद्। अलबीरुनीने इसका उल्लेख किया है।

वलभद्र तर्कवागीश—दायभागसिद्धान्तके प्रणेता।

वलभद्रपुर—तैरभुक्तके अन्तर्गत एक जनपद।

वलभद्र भट्ट—तर्कभाषाप्रकाशिका, सप्तपदार्थीटीका और प्रमाणमञ्जरी-टीकाप्रणेता। इनके पिताका नाम विष्णुदास और माताका माधवी था।

वलभद्रशुक्ल—कुण्डतत्त्वप्रदीप और चातुर्मास्यकौमुदीके रचयिता। इन्होंने १६२४ ई०में यह ग्रन्थ जयसिंह दीक्षितके नाम पर उत्सर्ग किया। इनके पिताका नाम स्थविर था।

वलभद्रसिंह—१ एक गुर्खासरदार। १८१४ई०में नेपाल-युद्धके

समय इन्होंने अंगरेजोंके विरुद्ध घमसान युद्ध किया था।

२ अयोध्याके प्राचीन हिन्दू राजवंशके एक राजा। उनके अधीन प्रायः लाखसे ऊपर राजपूत सेना थी। १७८० ई०में उन्होंने लखनऊके नवाब वजीरकी अधीनता अस्वीकार की। दो वर्ष लगातार युद्धके बाद वे मुसलमानोंके हाथ परलोक सिधारे।

वलभद्रसूरि—प्रमाणमञ्जरीटीकाके प्रणेता।

वलभद्रसंज्ञक (सं० पु०) धूलीकदम्ब।

वलभद्रा (सं० स्त्री०) वलभद्र टाप्। १ कुमारी। २ त्रायमाण नामकी लता। ३ वनजाता गो, जंगली गाय। ४ नीलगाय।

वलभद्रिका (सं० स्त्री०) वलभद्रा-स्वार्थे कन् अत इत्वं। त्रायमाणा नामकी लता।

वलभी—१ मालव राज्यके उत्तर काठियावाड़का एक प्राचीन नगर। इसका वर्त्तमान नाम वाला है। चीनपरिव्राजक यूएनचुवंगने यह नगर देख कर लिखा है, कि यहां सैकड़ों संघाराम और देवमन्दिर थे। हीनयानसम्प्रदायी सम्मतीय शाखाके प्रायः ६ हजार श्रमण उस समय यहां धर्मचर्चा करते थे। उन्होंने यहांका अशोकस्तूप भी देखा था। उस समय मालवराज शिलादित्यवंशीय ध्रुवभट्ट नामक एक क्षत्रिय राजा यहांका शासन करते थे। राजधानीके पास ही एक सुवृहत् संघाराम था जिसमें गुणमति और स्थिरमति नामक दो बोधिसत्त्व रहते थे।

२ सह्याद्रि पर्वत पर अवस्थित एक नगरी।

वलभी (हिं० स्त्री०) वह कोठरी जो मकानके सबसे ऊपरवाली छत पर बनी हो, चौबारा।

वलभृत् (सं० त्रि०) वलं विभर्त्ति-भृ-क्विप् तुक् च। वलधारी।

वलमोटा (सं० स्त्री०) वृक्षविशेष, जयन्ती। इसका गुण कटु, तिक्त, शीत, कण्ठशोधक, लघु, कफनाशक, मदगन्धि, मूत्रकृच्छ्र विष और पित्तनाशक माना गया है।

वलम्बिद्—बम्बई प्रदेशके धारवार जिलेका एक गण्ड ग्राम। यहां विषपरिहरेश्वर और वासवका एक मन्दिर है। उसके गात्र संलग्न पांच शिलालिपियोंमेंसे सर्वप्राचीन शिलालिपि ६७६ सम्वत्में उत्कीर्ण हुई है।

वलर—पञ्जावके अन्तर्गत एक प्राचीन स्थान। एक प्राचीन स्तूपके लिये यह स्थान बहुत कुछ विख्यात है। स्तूपकी ऊँचाई प्रायः ५० फुट और व्यास ४४ फुट है। इसके पास ही १७० फुट स्थानके मध्य और भी कितने छोटे छोटे स्तूप तथा सङ्घारामादिके ध्वंसावशेष देखनेमें आते हैं। इससे अनुमान किया जाता है, कि बौद्धाधिकारमें यह स्थान धर्मालोचनाके लिये मशहूर था।

वलराम (सं० पु०) रम-भावे घञ्, वलेन रामो रमणं यस्य। श्रीकृष्णके बड़े भाई जो रोहिणीसे उत्पन्न हुए थे।

वलदेव देखो।

वलरामदास—श्रीचैतन्यचरितामृतके ११वें परिच्छेदमें लिखा है, कि वलरामदास नित्यानन्दप्रभुके भक्त थे। वैष्णव-वन्दनामें जो 'सङ्गीतकारक' हैं वह इन्हींका बनाया हुआ है। अतएव पदकर्त्ता वलरामदास नित्यानन्दके 'गण' हैं। वलरामने अपनी पदावलीमें अपने प्रभुके रूपगुणका अच्छी तरह वर्णन किया है।

प्रेमविलास एक प्राचीन ग्रन्थ है। ये ही उसके रचयिता हैं। उस ग्रन्थमें इनका जो आत्मपरिचय है उससे जाना जाता है, कि वलरामकी माताका नाम सौदामिनी और पिताका नाम आत्मारामदास था। ये जातिके वैश्य थे और श्रीखण्डमें इनका घर था। इनका गुरुदत्त नाम था नित्यानन्द दास। 'भेकधारी' वैरागी सम्प्रदायमें ये गुरुदत्त नामसे प्रसिद्ध हैं। किन्तु प्राचीन ग्रन्थादि देखनेसे मालूम होता है, कि पूर्व समयमें वैष्णवोंके दो नाम रहते थे। दृष्टान्त स्वरूप वीरहाम्विर और प्रेमदासका नामोल्लेख किया जा सकता है।

श्रीनित्यानन्द प्रभुके दो स्त्री थीं, वसुधा और जाह्नवा। जाह्नवादेवी शिष्यादि करती थीं। उपयुक्त स्त्री पुरुषको भी शिष्य बना सकती हैं, यह गुरुपरिवारमें सर्वत्र प्रचलित है। अतएव वलराम (जाह्नवा-शिष्य होनेके कारण ही) नित्यानन्द 'परिवार' के हैं, इसीसे चरितामृतमें नित्यानन्द-शाखा-वर्णन परिच्छेदमें इनका नाम देखनेमें आता है। कवि ज्ञानदास भी इसी प्रकार जाह्नवाशिष्य थे। ज्ञानदास शब्द देखो।

वलरामदेव—दाक्षिणात्यके जयपुर-राजवंशीय एक राजा। नन्दिपुरमें इनकी राजधानी थी।

वलरामवर्मा—दाक्षिणात्यके त्रिवाँकुड़ राज्यके एक राजा। १७९८-१८१० ई०तक इन्होंने राज्य किया। इनके शासन-कालमें राज्य भरमें अशान्ति फैल गई थी। राज्यका सुप्रवन्ध करनेके लिये इनके अधिकारमें अंगरेज प्रतिनिधि नियुक्त हुए।

वलरामकविकङ्कण—इन्होंने मुकुन्दरामके पहले चण्डीग्रन्थ-का अनुवाद किया। मेदिनीपुरके अञ्चलमें उस ग्रन्थका प्रचार था। मुकुन्दरामने इनका ग्रन्थ देख कर अपने काव्यकी रचना की थी, यह वात वे स्वयं स्वीकार कर गये हैं।

वलरामपञ्चानन—धातु-प्रकाश और उसकी टीका तथा प्रवोधप्रकाश नामक संस्कृत व्याकरणके प्रणेता।

वलरामपुर—१ अयोध्याप्रदेशके गोण्डा जिलान्तर्गत एक वड़ा तालुकदारी राज्य। वलराम दास नामक किसी हिन्दूने अपने नाम पर यह राज्य वसाया। उन्होंने धीरे धीरे कई स्थान जीत कर वहुत दूर तक अपनी राज्यसीमा वढ़ा ली थी। राजा नेहालसिंह १७७७ ई०में राजसिंहासन पर वैठे। उन्हींके भुजवलसे वलरामपुर-राजवंशने सुख्याति प्राप्त की थी। उन्होंने लखनऊके राजाओंसे कई वार युद्ध किया था। यद्यपि वे नवावकी सेनासे हार गये थे, तो भी अपने जीवन तक उन्होंने उनकी वश्यता स्वीकार न की। वरन् जो कुछ वे राजकर देते थे, उसीसे उन्हें सन्तुष्ट होकर रहना पड़ता था। पीछे उनके पौत्र महाराज दिग्विजयसिंह K C S I १८३६ ई०में पितृसिंहासन पर अधिरूढ़ हुए। राज्यशासनके आरम्भमें ही उन्हें उतरौला, इकौना और तुलसीपुर आदि सामन्तोंके साथ युद्ध करना पड़ा था। सिपाहीविद्रोहके समय उन्होंने अंगरेजोंको अपने दुर्गमें आश्रय दिया और आखिर उन्हें निरापदसे गोरखपुर भेज दिया था। दिग्विजयके ऐसे आचरणसे असन्तुष्ट हो लखनऊ-पतिने उनका राज्य वाँट लेनेके लिये तुलसीपुर, इकौना और उतरौलाके सरदारोंको फर्मान भेजा। किन्तु वह कार्यमें परिणत होनेके पहले ही उक्त सामन्तगण भिन्न भिन्न स्थानोंमें भेजे गये। घर्घरा नदीके दूसरे किनारे अंगरेज और विद्रोही-दलमें जो युद्ध हुआ उसमें इन्होंने अंगरेजोंका पक्ष लिया था। युद्धमें हार खा कर विद्रोही-दल नेपालको भाग गया। दिग्विजयकी राजभक्ति पर प्रसन्न हो वृटिश-सरकारने उन्हें तुलसीपुरका कुछ अंश और महाराजकी उपाधि दी तथा सैकड़े पीछे १० रुपया कर भी घटा दिया। १८८२ ई०में उनकी मृत्यु हुई। उनके कोई सन्तान न रहनेके कारण रानीने महाराज भगवतीप्रसादको गोद लिया। ये ही वर्त्तमान राजा हैं। इनकी उपाधि के, सी, आइ, इ, है। राजस्व २२ लाख रु० है जिनमेंसे ६ लाखसे ऊपर वृटिश सरकारको करमें देने पड़ते हैं।

२ गोण्डा जिलेकी उतरौला जिलेका शहर। यह अक्षा० २७° २६´ उ० तथा देशा० ८२° १४´ पू०के मध्य अवस्थित है। सम्राट् जहांगीरके शासनकालमें वलरामदासने इस नगरको वसाया। यहां महाराजके प्रासाद, ४० हिन्दू-मन्दिर और १६ मुसलमानोंकी मस्जिद विद्यमान हैं। इनमेंसे विजलेश्वरी देवीमन्दिर ही शिल्पनैपुण्यसे पूर्ण है। यहांके वाजारमें पार्श्ववर्त्ती स्थानके उत्पन्न शस्यादि, स्थानीय सूती कपड़े, कम्वल और छुरी आदिका विस्तृत व्यापार होता है। यहां छात्रनिवास-संलग्न एक हाई स्कूल, पांच सिकेन्ड्री और प्राइमरी स्कूल, चिकित्सालय, जनाना अस्पताल, मोहताजखाना और एक अनाथालय है।

वलरामपुर—१ कोचविहार राज्यके अन्तर्गत एक नगर। २ मेदनीपुर जिलेके अन्तर्गत एक विस्तृत परगना।

वलरामभजा—एक वैष्णव-सम्प्रदाय। वलराम हाड़ी नामक एक चौकीदार इस मतका प्रवर्त्तक था। ये लोग कर्त्ताभजा आदि वैष्णव धर्ममतका अनुसरण करते हैं। अभी नदिया, वर्द्धमान और पवना आदि स्थानोंमें इस सम्प्रदायके अनेक वैष्णव देखे जाते हैं।

वलल (सं० पु०) वलराम।

वलवत् (सं० त्रि०) १ वलविशिष्ट, ताकतवर। २ अतिशय, वहुत। (पु०) ३ शिव।

वलवत्ता (सं० स्त्री०) वलवत्त्व, वलवानका धर्म वा भाव।

वलवन गयास्-उद्दीन—दिल्लीके एक मुसलमान अधिपति। वचपनमें ये सुलतान अलतमसके यहां वेचे गये थे।

उन्हींकी कृपासे वलवन्ने उमरावका पद प्राप्त कर उनकी कन्यासे विवाह किया। अलतमसके लड़के नाशिर-उद्दीन जब दिल्लीके सिंहासन पर बैठे, तव वलवन् वजीर (प्रधान मन्त्री)-के पद पर अभिषिक्त हुए। १२६६ ई०में ये दिल्लीश्वरको राज्यच्युत और निहत करके सिंहासन पर अधिकार कर बैठे। १२७९ ई०में वङ्गालके शासनकर्त्ता अमीन खाँके नायव तुगरल खाँको जब मालूम हुआ, कि सम्राट् वलवन् रुग्नावस्थामें पड़े हैं, तव उन्होंने विद्रोही हो कर पहले सुलतान अमीन खाँको कैद कर लिया और पीछे सुलतान मगिस-उद्दीन नाम धारण कर अपनेको स्वाधीन राजा वतलाते हुए तमाम घोषणा कर दी। सम्राट्ने यह संवाद पाते ही दो दल सेना उसके विरुद्ध भेजी। किन्तु वङ्गेश्वरको परास्त करना उनके लिये टेढ़ी खीर था। आखिर सम्राट्ने उसका दमन करनेके लिये स्वयं वंगाल पर चढ़ाई कर दी। तुगरल खाँ त्रिपुराको भागा, पर रास्ते हीमें पकड़ा और मार डाला गया। यह घटना १२८२ ई०में घटी थी। इस अभियानकालमें सम्राट्को सुवर्णग्रामके हिन्दू-राजाओंसे सहायता मिली थी। लौटते समय वे अपना द्वितीय पुत्र नाशिर-उद्दीनको वङ्गालके शासनकर्त्तृ पद पर नियुक्त कर गये। वीस वर्ष राज्य करनेके वाद ये १२८६ ई०में परलोकको चल वसे। पीछे उनके नाती मोइज-उद्दीन कैकोवादने वङ्गालसे जा कर दिल्लीके सिंहासन पर अधिकार जमाया।

वलवनसिंह—काशीपति महाराज चैतसिंहके पुत्र। ग्वालियरमें इनका जन्म हुआ था। पिताकी मृत्युके वाद ये सपरिवार आगरेमें आ कर वस गये थे। उस समय इस राज-परिवारके भरणपोषणके लिये मासिक २ हजार रुपयेकी वृत्ति मिलती थी। ये उर्दू भाषामें एक दीवानकी रचना कर गये हैं।

वलवन्त (सं० त्रि०) वलवान्, वली।

वलवन्तसिंह—१ काशीके अधिपति, राजा मानसरामके पुत्र और ख्यातनामा चैतसिंहके पिता। १७४३ ई०में यह राजपद पर अधिष्ठित हुए। ३० वर्ष राज्य करनेके वाद इनका देहान्त हुआ।

२ भरतपुरके जाटवंशीय एक राजा। ये १८२४ ई०में पिता वलदेवसिंहके सिंहासन पर अधिष्ठित हुए। १८२५ ई०में इनके भाई विख्यात जाट-सरदार दुर्जनशालने इन्हें राज्यच्युत करके सिंहासन पर अधिकार जमाया। १८२५ ई०में भरतपुर-दुर्गके अवरोध और जयके वाद वृटिश सरकारने वलवन्तको फिरसे सिंहासन पर अधिष्ठित किया। १८५३ ई०को ३४ वर्षकी अवस्थामें इनकी मृत्यु हुई। पीछे उनके पुत्र यशोवन्त राजसिंहासन पर वैठे।

वलवर्द्धन (सं० पु०) १ सैन्यवृद्धि। २ धृतराष्ट्रके पुत्रका नाम।

वलवर्द्धिन् (सं० त्रि०) वलं वर्द्धयति वृध-णिनि। वलवृद्धिकारक, वल वढ़ानेवाला।

वलवर्मदेव—एक हिन्दू राजा। भुजङ्गिका नामक स्थानमें इनकी राजधानी थी। समुद्र गुप्तकी लिपिसे मालूम होता है, कि इनकी माता तथा स्त्री दोनोंका नाम दत्तदेवी था।

वलवर्मन् (सं० पु०) एक प्राचीन हिन्दू राजा। इन्हें समुद्रगुप्तने परास्त किया था।

वलवला (सं० स्त्री०) गन्धक।

वलवा (फा० पु०) १ विप्लव, दंगा। २ विद्रोह, वगावत।

वलवाई (फा० पु०) विद्रोही, वागी। २ उपद्रवी, फसादी।

वलवान् (सं० त्रि०) १ वलिष्ठ, ताकतवर। २ दृढ़, मजवूत। ३ सामर्थ्यवान, शक्तिमान्। (पु०) ४ आहार। ५ कफ। ६ शणवीज।

वलविकर्णिका (सं० स्त्री०) दुर्गाका एक नाम।

वलविन्यास (सं० पु०) वलानां सैन्यानां विशेषेण दुर्भेद्यत्वेन न्यासः स्थापनं। युद्धके लिये सैन्य व्यूह रचना। सेना इस प्रकार सजानी चाहिये जिससे शत्रुगण उसे भेद कर न आ सके। यह वलविन्यास मकरपद्मादिके भेदसे नाना प्रकारका है। मनुमें लिखा है—

यात्राकालमें यदि चारों ओरसे भयकी आशङ्का रहे, तो राजा दण्डव्यूह, पीछेकी ओर भय होनेसे शकटव्यूह, दो ओरसे आशङ्का होनेसे वराह और मकरव्यूह, आगे पीछेकी ओर भय होनेसे गरुड़व्यूह तथा केवल सामनेकी ओर भय होनेसे सूचीव्यूहकी रचना करके यात्रा कर दे। राजा जब जिस ओर विपद्की अधिक

आशङ्का देखे, तब उसी ओर आत्म सेनाको बढ़ावे तथा उन सब सेनाओंको पद्मव्यूहाकारमें सजा कर आप बीचमें छिप कर खड़े रहें। सैन्यसंख्या थोड़ी रहनेसे संहतभावमें और अधिक रहनेसे विस्तृत भावमें सन्निवेशित करना विधेय है। (मनु ७ अ०) व्यहरचना देखो।

वलविनाशन (सं० पु०) वलनाशक इन्द्र।

वलवीर (हिं० पु०) वलवीर देखो।

वलवीर्य (सं० पु० क्ली०) १ भरतका वंशधरभेद। २ वल और वीर्य।

वलव्यसन (सं० पु०) सेनाको हराना या तितर बितर करना।

वलव्यूह (सं० पु०) एक प्रकारकी समाधि।

वलशाली (सं० त्रि०) वलेन शालते शाल-णिनि। वलविशिष्ट, वली, ताकतवर।

वलशील (सं० त्रि०) शक्तिवाला, वली।

वलसन—पञ्जावके अन्तर्गत एक पार्वतीय राज्य। यह अक्षा० ३०° ५८' से ३१° ७' उ० तथा देशा० ७७° २४' से ७७° ३५' पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ५१ वर्गमील और जनसंख्या सात हजारके करीव है। यह सिमलासे ३० मील पूर्वमें पड़ता है। यहांके सामन्त राणा उपाधिधारी राजपूत हैं। राज्यका विचार-कार्य उन्हींके द्वारा होता है, पर किसी अपराधीको प्राणदण्ड देनेमें उन्हें पार्वतीय राज्यके परिचालक अंगरेज कर्मचारीसे अनुमति लेनी पड़ती है। राजस्व ६०००) रु०का है जिसमेंसे १०८० रु० वृटिशसरकारको देने पड़ते हैं। इस राज्यमें देवदारका एक लम्वा चौड़ा जंगल है।

वलसम्भव (सं० पु०) धान्यविशेष, साठी धान।

वलसाने—खान्देशजिलेके पिम्पलन-उपविभागके अन्तर्गत एक उपविभाग। भूपरिमाण २०८ वर्गमील है। यहां वहुत-सी गुहाएं और सुरक्षित तथा सुप्राचीन मन्दिर देखे जाते हैं।

वलसार—१ वम्वई प्रदेशके सूरत जिलान्तर्गत एक उपविभाग। भूपरिमाण २०८ वर्गमील है। यहांका तिथल नामक समुद्रोपकूलवर्त्ती स्थान वम्वई प्रदेशमें एक अच्छा स्वास्थ्य निवास समझा जाता है।

२ उक्त जिलेका एक नगर और वन्दर। यह अक्षा० २०° ३६' ३०" उ० तथा देशा० ७२° ५८' ४०" पू०के मध्य अवस्थित है। यहां शालकाष्ठका विस्तृत वाणिज्य चलता है।

वलसुम (हिं० वि०) वलुआ, जिसमें वालू हो।

वलसूदन (सं० पु०) वलं तन्नामा प्रसिद्धं असुरं सूदयतीति वल सूद-ल्यु। १ इन्द्र। इन्द्रने इस असुरको युद्धमें मारा था, इस कारण उनके वलसूदन, वलारि, वलविनाशन आदि नाम पड़े हैं। २ विष्णु।

वलसेना (सं० स्त्री०) सेनादल।

वलसोर—उड़ीसा प्रदेशका एक जिला। वालेश्वर देखो।

वलस्थ (सं० त्रि०) १ वलशाली, वलवान्। २ सैन्यदलभुक्त।

वलस्थिति (सं० स्त्री०) वलानां स्थितिरवस्थानं यत्र, अभिधानात् स्त्रीत्वं। शिविर, छावनी।

वलहन् (सं० पु०) वलं सामर्थ्यं हन्तीति वल हन-क्विप्। १ श्लेष्मा, कफ। वलं तन्नामानमसुरं हन्तीति। २ इन्द्र। (त्रि०) ३ वलविनाशक।

वलहर (सं० त्रि०) हरतीति हृ-अच् हरः, वलस्य हरः। वलनाशक।

वलहरा—एक हिन्दू राजा। ये जलन्धरके सीमान्तवर्त्ती कसर प्रदेशमें राज्य करते थे। यहांकी स्त्रियां अस्तानशाह' कहलाती थीं। जिस समय उमर अवदुल अजीज खलीफा-पद पर सुशोभित थे, उस समय भी ये दोर्दण्ड-प्रतापसे राज्यशासन करते थे। आखिर खलीफाके आदेशसे मुसाल्लमके पुत्र अलुने युद्ध करके उन्हें वशमें कर लिया था।

वलही - मध्यप्रदेशके भण्डारा जिलान्तर्गत एक शैलमाला। यह प्रायः ११ कोस तक फैली हुई है।

वलहीन (सं० त्रि०) वलेन हीनः। १ वलशून्य। (पु०) २ ग्लानि, वलहीनता।

वला (सं० स्त्री०) कार्यकारित्त्वेन वलमस्त्यस्याः वल-अर्श आदित्वादच्, ततष्टाप्। (Sida Cordifolia) स्वनामख्यात क्षुपविशेष, वरियारा नामक क्षुप। संस्कृत-पर्याय—वाट्यालक, समङ्गा, ओदनिका, भद्रा, भद्रौदनी, खरकाष्ठिका, कल्याणिनी, भद्रवला, मोटा, पाटी, वलाढ्या शीतपाकी, वाट्या, वाटी, विनया, वाट्याली, वाटिका। वला

महाबला, अतिबला और नागबलाके भेदसे चार प्रकारका है। इनमेंसे बलाको वाट्यालिका, वाट्या और वाट्यालक; महाबलाको पीतपुष्पा और सहदेवी; अतिबलाको ऋष्यप्रोक्ता और कङ्कतिका तथा नागबलाको गाङ्गेरुकी और ह्रस्वगवेधुका कहते हैं। ये चारों प्रकारकी बला शीतवीर्य, मधुर, बलवर्द्धक, कान्तिकारक, स्निग्ध, धारक और वायु, रक्तपित्त, रक्तदोष तथा क्षतविनाशक मानी गई हैं। बलामूलकी छालके चूर्णको दूध और चीनीके साथ मिला कर पान करनेसे मूत्रातिसार और प्रदर विनष्ट होता है। महाबलाके चूर्णको उक्त अनुपानके साथ पान करनेसे मूत्रकृच्छ्र दूर होता है तथा विपथगामी वायु स्वपथगामी होता है। अतिबला चूर्णको दूध और चीनीके साथ सेवन करनेसे प्रमेहरोग जाता रहता है। (भावप्र० पूर्वख०)

राजनिघण्टके मतसे यह अति तिक्त, मधुर, पित्तातिसारनाशक, बल और वीर्यवर्द्धक, पुष्टि और कफरोधविशोधन है। इसके बीजका गुण—कामोद्दीपक, मेहनाशक, विरेचक और वेदनाशक। इसके रेशे (मूलतंतु) धारक और बलकारक माने गये हैं।

अदरक और बलाके रेशेका काथ सविराम ज्वरमें विशेष उपकारक माना गया है। पक्षाघात रोगमें इसके रेशे हिंगु, सैन्धव और लवणके साथ दिये जाते हैं।

२ विद्याविशेष। यह विद्या ब्रह्मकन्या है। विश्वामित्रने रामचन्द्रको इस विद्याकी शिक्षा दी थी। इस विद्याके प्रभावसे युद्धके समय योद्धाको भूख और प्यास नहीं लगती। बला और अतिबला विद्या समस्त ज्ञानकी मातृस्वरूपिणी हैं। ३ नाट्यशास्त्रके अनुसार नाटकोंमें छोटी बहिनका संबोधन। ४ पृथिवी। ५ लक्ष्मी। ६ दक्षप्रजापतिकी एक कन्याका नाम। ७ जैनियोंके ग्रन्थानुसार एक देवी जो वर्त्तमान अवसर्पिणीमें सतहवें अर्हत उपदेशोंका प्रचार करती है। ८ व ग देखो।

बला (अ० स्त्री०) १ आपत्ति, आफत। २ कष्ट, दुःख। ३ भूत, प्रेत। ३ व्याधि, रोग।

बलाक (सं० पु०) बलेन अकतीति बल-अक-पचाद्यच्। १ बकजाति, बगला। २ एक राजाका नाम जो भागवतके अनुसार पुरुके पुत्र और जह्नुके पौत्र थे। ३ शाकपूणि ऋषिके एक शिष्यका नाम। ४ एक राक्षसका नाम। ५ जातुकर्ण मुनिके एक शिष्यका नाम। ६ स्व-नामख्यात व्याधविशेष।

बलाका (सं० स्त्री०) बलते इति बल सम्वरणे (बलाकादयश्च। उण् ४।१४) इति अक, बा बलेन अकतीति बल-अक कुटिलगती पचाद्यच्। १ बकजातिविशेष, एक प्रकारका बगला। पर्याय—विषकण्ठिका, विषकण्ठी, बलाकी, कारयिका, लिङ्गलिका, विषकण्ठी, शुष्काङ्गा, दीर्घकन्धरा, वर्माल्ला, कामुकी, श्येता, मेघानन्दा, जलाश्रया। इसके मांसका गुण—वायुनाशक, स्निग्ध, सृष्टमल, वृष्य, कफपित्तहर हिम। यह पक्षी जलमें तैरता है, इस कारण इसे प्लव जातिके अन्तर्गत माना है। (वक देखो।)

२ कामुकी स्त्री। ३ बकश्रेणी, बगलोंकी पंक्ति। ४ गतिके अनुसार नृत्यका एक भेद।

बलाकाकौशिक (सं० पु०) आचार्यभेद।

बलाकाश्व (सं० पु०) १ हरिवंशके अनुसार एक राजाका नाम जो अजकके पुत्र थे। २ जह्नुके वंशके एक राजा।

बलाकिका (सं० स्त्री०) क्षुद्रबलाकाभेद।

बलाकी (सं० त्रि०) बलाका व्रीह्यादित्वादिनि। १ बलाकायुक्त। (पु०) २ धृतराष्ट्रके एक पुत्रका नाम।

बलाग्र (सं० क्ली०) १ सेनापति। २ सेनाका अगला भाग। (त्रि०) ३ बलशाली, बली।

बलाङ्क (सं० पु०) वसन्तकाल, वसन्तऋतु।

बलाञ्चिता (सं० स्त्री०) बलेन अञ्चिता। रामवीणा।

बलाट (सं० पु०) बलेन अट्यते प्राप्यते इति अट्-घञ्। मुद्ग, मूंग।

बलाढ्य (सं० पु०) १ माष, उड़द। (त्रि०) २ बलवान्।

बलात् (सं० अव्य०) बलमलतीति बल-अत्-क्विप्। १ बलपूर्वक, जबरदस्तीसे। २ हठात्, हठसे।

बलात्कार (सं० पु०) बलात्करणं बलात् कृ-भावे-घञ्। १ किसीको इच्छाके विरुद्ध बलपूर्वक कोई काम करना। २ अत्याचार, अन्याय। ३ किसी स्त्रीके साथ उसकी इच्छाके विरुद्ध सम्भोग करना।

बलात्कारगण (सं० पु०) जैनसम्प्रदायभेद।

बलात्काराभिगम (सं० पु०) बलात्कारेण अभिगमः।

वलात्कार पूर्वक किसी स्त्रीके सतीत्वका नाश करना, जिनाविल्जब्र।

वलात्कारित (सं० त्रि०) जिससे वलात्कारसे कुछ कराया जाय, जिस पर वलात्कार करके कोई काम कराया जाय।

वलात्कृत (सं० त्रि०) १ वलपूर्वक आक्रान्त, जिसके साथ वलात्कार किया गया हो। २ हठात् धृत, जो सहसा पकड़ा गया हो।

वलात्मिका (सं० स्त्री०) वलमेव आत्मा स्वरूपं यस्याः। १ हस्तिशुण्डवृक्ष, हाथीसूंड़ नामका पौधा। २ राधापद्म।

वलादि (सं० पु० १ पाणिन्युक्त यप्रत्यय निमित्त शब्दगण। यथा—वल, चुल, नल, दल, वट, लकुल, उरल, पुल, मूल, उल, डुल, वन, कूल। २ अस्त्यर्थे मतुप् प्रत्ययनिमित्त शब्दगण। यथा—वल, उत्साह, उद्भास, उद्वास, उद्दास, शिखा, कुल, चूड़ा, सुल, कूल, आयाम, व्यायाम, आरोह, अवरोह, परिणाह, युद्ध।

वलाद्यघृत (सं० क्ली०) घृतौषधभेद। इसकी प्रस्तुतप्रणाली—गव्यघृत ४ सेर, क्वाथके लिये वला, गोरक्ष, अर्जुनकी छाल, कुल मिला कर ४ सेर। इन्हें ६४ सेर जलमें उवाले। जब जल १६ सेर वच रहे तब उसे नीचे उतार कर एक सेर यष्टिमधु डाल दे। इसका सेवन करनेसे हृद्रोग, शूल, क्षत, रक्तपित्त आदि रोग जाते रहते हैं। (भैषज्यरत्ना० हृद्रोगाधि०)

वलाद्या (सं० स्त्री०) वलाय आद्या श्रेष्ठा। वला।

वलाधिक (सं० पु०) वलश्रेष्ठ, वह जो अधिक वलशाली हो।

वलाधिकरण (सं० क्ली०) सेनादिका कार्य।

वलाधिष्ठान (सं० क्ली०) वलस्य अधिष्ठानं। वलाधान।

वलाध्यक्ष (सं० पु०) वलस्य अध्यक्षः। सेनापति।

वलान—तिरहुत जिलेमें प्रवाहित एक छोटी नदी।

वलानुज (सं० पु०) वलस्य वलरामस्य अनुजः कनिष्ठः। श्रीकृष्ण।

वलापञ्चक (सं० क्ली०) वला, अतिवला, नागवला, महावला और राजवला नामकी पांच ओषधियोंके समुदायका नाम। वला देखो।

वलावल (सं० क्ली०) वलञ्च अवलञ्च। वल और अवल।

वलावलाधिकरण (सं० क्ली०) वलञ्च अवलञ्च ते अधिक्रियते अस्मिन् अधि-कृ आधारे ल्युट्। आकाङ्क्षा और अनाकाङ्क्षारूप वलावलके निश्चायक जैमिनि-उक्त न्यायभेद। (वेदान्तपरि)

वलामोटा (सं० स्त्री०) वलमोट्यतीति वल-मुट-अच्-टाप्। १ नागदमनी नामकी ओषधि। इसका गुण कटु, तिक्त, लघु, पित्त और कफनाशक, मूत्रकृच्छ्र और व्रणनाशक माना गया है। २ जयन्ती।

वलाय (सं० पु०) अयतीति अयः, प्रापकः वलस्य अयः। वरुणवृक्ष, वन्ना।

वलाय (अ० पु०) १ आपत्ति, विपत्ति। २ अत्यन्त दुःखदायी मनुष्य, वहुत तंग करनेवाला आदमी। ३ दुःखदायक रोग जो पीछा न छोड़े। ४ भूत प्रेतकी वाधा। ५ दुःख, कष्ट। ६ एक प्रकारका रोग। इसमें रोगीकी उंगलीके छोर या गांठ पर फोड़ा हो जाता है। रोगीको वहुत कष्ट होता है और उंगली कट जाती या टेढ़ी हो जाती है।

वलाराति (सं० पु०) वलस्य तन्नाम्ना प्रसिद्धासुरस्य अरातिः। १ इन्द्र। २ विष्णु।

वलारिष्ट (सं० क्ली०) आयुर्वेदोक्त औषधविशेष। प्रस्तुत प्रणाली—वला १२॥ सेर और अश्वगन्धा १२॥ सेर इसे मिला कर २५६ सेर जलमें पाक करे। जब जल ६४ सेर वच रहे, तो नीचे उतार ले। पीछे ठंढा हो जाने प उसमें ३७॥ सेर गुड़, २ सेर धवका फूल, २ पल क्षीरककोली, २ पल एरण्डमूल और रास्ना, इलायची, लवङ्ग, खसखसकी जड़ और गोखुर प्रत्येक एक एक पल डाल दे। पीछे किसी चीजसे वरतनका मुंह ढक कर एक मास तक उसी अवस्थामें छोड़ दे। उसका सेवन करनेसे वलपुष्टि और अग्निवृद्धि होती तथा प्रवल वातरोग जाता रहता है। (भैषज्यरत्ना० वातरक्ताधि०)

वलालक (सं० पु०) वलाय अलति समर्थो भवतीति वल-अल-ण्वुल्। पानीयामलक, जलआंवला।

वलावलेप (सं० पु०) वलेन अवलेपः। गर्व, अहङ्कार, दर्प।

वलाश (सं० पु०) वलमश्नातीति वल-अश-अण्। १ श्लेष्मा, कफ। २ कण्ठगतरोगविशेष, गलेका एक रोग

जिसमें कफ और वायुके प्रकोपसे गले और फेफड़ेमें सूजन तथा पीड़ा होती है, सांस लेनेमें कष्ट होता है।

वलास (सं० पु०) वलमस्यति क्षिपति अस-अण्। १ कफधातु। २ कण्ठगत रोग। वलाश देखो।

वलास (हिं० पु०) वरुना नामका पौधा।

वलासक (सं० पु०) शुक्लगत नेत्ररोग।

वलासग्रथित (सं० क्ली०) चक्षु रोगभेद।

वलासम (सं० पु०) बुद्ध।

वलासिन् (सं० त्रि०) श्वासरोगयुक्त, जिसे श्वासरोग हुआ हो।

वलाहक (सं० पु०) १ मेघ, बादल। २ मुस्तक, मोथा। ३ शाल्मलीद्वीपस्थ पर्वतविशेष। ४ दैत्यविशेष। ५ नागविशेष। ६ सर्पविशेष। ७ कल्किदेवके रमागर्भजात पुत्रभेद। कल्किपत्नी रमाने वैशाखी शुक्लाद्वादशीके दिन जमदग्निके उद्देश्यसे व्रत करके महाबलिष्ठ दो पुत्र लाभ किये जिनका नाम मेघपाल और वलाहक था। ये दोनों सर्वदा देवताओंके उपकार, यज्ञ, दान और तपस्यामें लगे रहते थे। (कल्किपु० ३१ अ०) ८ श्रीकृष्णका रथाश्वविशेष, कृष्णचन्द्रके रथके एक घोड़ेका नाम। ६ जयद्रथके भ्रातृविशेष। १० नदविशेष। ११ कुशद्वीपस्थित पर्वतविशेष। १२ तारापीड़ राजाके स्वनामख्यात सेनापति।

वलाहकन्द (सं० पु०) वलमाह्वयतीति वलाहस्तादृशः कन्दः। गुलञ्चकन्द।

वलि (सं० पु०) वल्यते दीयते इति वल-दाने (सर्वधातुभ्यो इन्। उण् ४।१।१३) इतीन्। १ कर, भूमिको उपजका वह अंश जो भूस्वामी प्रति वर्ष राजाको देता है। हिन्दू-धर्मशास्त्रोंमें भूमिकी उपजका छठां भाग राजाका अंश ठहराया गया है। इसीको वलि वा कर कहते हैं। २ उपहार, भेंट। ३ पूजा-सामग्री, वह सामग्री जिससे देवताओंको पूजा जाता है। ४ चामरदण्ड, चंवरका दंडा। ५ वलिवैश्व नामक पञ्च यज्ञोंमें भूतयज्ञ। गृहस्थको प्रति दिन पांच यज्ञ करने पड़ते हैं। इससे प्रतिदिन पञ्चसूनाजनित पाप छूट जाता है। अतएव यह यज्ञ प्रत्येक गृहस्थका कर्त्तव्य बतलाया गया है। इन्हीं पांच यज्ञोंमें जो भूतयज्ञ नामका यज्ञ है उसे वलि कहते हैं।

"अध्यापनं ब्रह्मयज्ञः पितृयज्ञस्तु तर्पणम्।
होमो दैवो वलिर्भौतो नृयज्ञोऽतिथि पूजनम्॥
पञ्चैतान् यो महायज्ञान् न हापयति शक्तितः।
स गृहेऽपि वसन्नित्यं सूनादोषैर्न लिप्यते॥"

(मनु ३।७०-७१)

गृहस्थोंको चाहिये, कि वे प्रतिदिन वलियज्ञ करें। गृहस्थको सदा दृढ़चित्त और देवताकी पूजामें तत्पर हो कर होम करना चाहिये। होमके बाद पूर्वादि दिशाओंमें वलि देनी चाहिये। अन्न ले कर पहले पूर्व दिशामें 'इन्द्राय नमः' 'इन्द्रपुरुषेभ्यो नमः' दक्षिण दिशामें 'यमाय नमः' 'यमपुरुषेभ्यो नमः' पश्चिम दिशामें 'वरुणाय नमः' 'वरुणपुरुषेभ्यो नमः' उत्तर दिशामें 'सोमाय नमः' 'सोम पुरुषेभ्यो नमः', इस प्रकार चारों दिशाओंमें वलि देनी चाहिये। ऐसा करनेके बाद मण्डलके द्वारमें यों कहे 'मरुद्भ्यो नमः' जलमें 'अद्भ्यो नमः' मूसल वा ओखलीमें 'वनस्पतिभ्यो नमः' इस प्रकार बोल कर वलि देनी पड़ती है। वास्तु पुरुषके शिरःप्रदेशमें, उत्तर पूर्व दिशामें लक्ष्मीको 'श्रियै नमः' ऐसा कह कर, फिर उसके पाददेशमें 'भद्रकाल्य नमः' घरमें ब्रह्माको 'ब्रह्मणे नमः' वास्तु देवताको 'वास्तोस्पतये नमः' ऐसा कह कर वलि देनी होती है। 'विश्वेभ्यो देवेभ्यो नमः' 'दिवाचरेभ्यो भूतेभ्यो नमः' नक्तंचारिभ्यो नमः' ऐसा कह कर समस्त देवताओं तथा दिवाचर और रात्रिचर भूतोंके उद्देश्यसे ऊपर आकाशमें वलि फेंक दी जाती है। बाकी बची हुई वलिको अपने पृष्ठदेशमें 'सर्व्वात्मभूतये नमः' कह कर सब भूतोंको वलिप्रदान करना चाहिये। अन्तमें सम्पूर्ण वलि देनेके बाद जो अन्न बचे उसे दक्षिण दिशामें मुख कर और प्राचीनावीति हो पितरोंको 'स्वधा पितृभ्यः' बोल कर वलि देनी चाहिये। वलि देनेके बाद वह अन्न कुत्ते, पतित, कुत्तेसे आजीविका करनेवालेको, पापरोगियोंको, कौवा तथा कृमियोंको देना चाहिये। उस अन्नको भूमि पर इस प्रकार रक्खे जिससे उसमें धूलि न लगे। जो ब्राह्मण प्रतिदिन इस विधि द्वारा अन्नसे सम्पूर्ण भूतोंको वलि देते हैं वे मृत्युके बाद दिव्य शरीरको प्राप्त कर परलोक जाते हैं। इस प्रकार वलि देनेके बाद अतिथियोंको भोजन करा कर पीछे आप

स्वयं भोजन करे। (मनु ३ अ०) वैश्वदेववलि सान्निक ब्राह्मणको अवश्य कर्त्तव्य है।

काम्यवलिमें वलिके पश्चिम भागमें जलसे उत्तराग्र रेखा खींच कर इस मन्त्रसे वलि देनी चाहिये। यथा—

"ॐ देवा मनुष्याः पशवो वयांसि सिद्धाः सय-
क्षोरगदैत्य संघाः।
प्रेताः पिशाचास्तरवः समस्ता ये चान्नमिच्छन्ति
मया प्रदत्तम्॥
पिपीलिकाः कीटपतङ्गकाद्या बुभुक्षिताः कर्म-
निवंधदेहाः।
पयान्तु ते तृप्तिमिदं मयान्नं तेभ्यो विसृष्टं
सुखिनो भवन्तु॥
येषां न माता न पिता न वन्धुर्नैवान्नसिद्धिर्न
तथान्नमस्ति।
तत्तृप्तयेऽन्नं भुवि दत्तमेतत् प्रयान्तु तृप्तिं
मुदिता भवन्तु॥
ॐ भूतानि सर्वाणि तथान्नमेतदहञ्चविष्णुर्न
यतोऽन्य दस्ति।
तस्मादहं भूतनिकायभूतमन्नं प्रयच्छामि
भवाय तेषां॥
चतुर्दशो भूतगणो यएष तत्र स्थिता येऽखिल-
भूतसंघाः।
तृप्त्यर्थमन्नं हि मया विसृष्टं तेषामिदंते मुदिता
भवन्तु॥"

(आह्निकतत्त्व)

आह्निकतत्त्वमें इसका विवरण खुलासा तौरसे किया गया है। विस्तार हो जानेके भयसे यहां दो एक हीका वर्णन किया जाता है। वलि देनेका तात्पर्य यह है, कि कोई अपने उद्देश्यसे पका कर भोजन न करे। समस्त भूत, कीड़े, पतङ्ग आदिको अन्न देना ही वलि है एवं इसी प्रकार वलि दे कर भोजन करना चाहिये। शास्त्रमें लिखा है, कि जो अपने सुखके निमित्त भोजन पकाते हैं वे केवल पापका ही वोझा वांधते हैं।

नवग्रहके लिये जो वलि दी जाती है उसे नवग्रह वलि कहते हैं।

सूर्यको गुड़ोदन, चन्द्रमाको घी दूध, मंगलको यावक, बुधको क्षीरान्न, वृहस्पतिको दध्योदन, शुक्रको घृतौदन, शनिको खिचड़ी, राहुको वकरेका मांस एवं केतुको चित्रौदन वलिमें दिया जाता है। जिनकी जो वलि है उनको वही वलि देनेसे वे प्रसन्न होते हैं। देवताओंको जिन जिन उपायों द्वारा प्रसन्न एवं पूजन किया जाता है वह सव वलि कहे जाते हैं।

कालिकापुराणमें वलिका विषय, उसका क्रम एवं स्वरूप अर्थात् जिस प्रकार रुधिरादि द्वारा देवियां प्रसन्न होती हैं उसका वर्णन इस प्रकार किया है—साधकोंको चाहिये, कि वे वलिदानका क्रम जैसा वैष्णवी कल्पतंत्रमें कहा गया है वैसा ही ग्रहण करें। पक्षी, कच्छप, ग्राह,मत्स्य, नौ प्रकारका मृग, भैंसा, वकरा, भेंड़ा, गाय, वकरी, रुरु, सूअर, कृष्णसार, गोधिका, शरभ, सिंह, शार्दूल, मनुष्य और अपने शरीरका खून इन्हें चण्डिका और भैरवीको प्रसन करनेके लिये वलिमें देना चाहिये। इन वलियोंको देनेसे सम्पूर्ण इच्छाओंकी पूर्त्ति एवं मृत्युके वाद स्वर्गकी प्राप्ति होती है। महामाया दुर्गाजी मत्स्य और कच्छपके रुधिरकी वलिसे एक मास, ग्राहादिके रुधिरसे तीन मास, मृग और मनुष्योंके खूनसे आठ मास, गोधिकाके रुधिरसे एक साल, कृष्णसार और सूअरके खूनसे वारह वर्ष, अजा, भेंड़ और शार्दूलके रुधिरसे पचीस वर्ष, सिंह, शरभ, और अपने रक्तसे एक हजार वर्ष तक संतुष्ट होती हैं। इन सम्पूर्ण पशुओंकी वलिसे दुर्गाजी परिमितकाल तक संतुष्ट रहती हैं। कृष्णसार, गैंड़ा और वकरा देवीको वहुत प्यारे लगते हैं। वलियोंमें मनुष्यकी वलि सवसे उत्कृष्ट है। विधिके अनुसार एक नरवलि देनेसे देवी दुर्गा एक हजार वर्ष तक और तीन नरवलि देनेसे एक लाख वर्ष तक संतुष्ट रहती हैं। मंत्रसे पवित्र किया हुआ वलिका रक्त अमृत रूपमें परिणत हो जाता है। वलिका मस्तक एवं मांस देवताका वहुत अभीष्टप्रद है। इसी लिये पूजाके समय वलिका शिर और रक्त देवीको दान करना पड़ता है। साधकोंको चाहिये, कि वे भोज्यद्रव्यके सहित लोमशून्य अथवा पूजापकरणके सहित भा मांस ही दें। रक्तशून्य वलिका मस्तक अमृतके वरावर है।

कुष्माण्ड, इक्षुदण्ड, मद्य और आसव ये भी वलिमें गिने जाते हैं। जिस जगह पशुकी वलि नहीं दी जाती, उस जगह इक्षु और कुष्माण्ड-वलि ही विधेय है। जो वैष्णव हैं वे अपने घर पर जव शक्तिकी पूजा करते हैं तव पशु-वलिके वदले कुष्माण्ड और इक्षु वलि देते हैं इस वलिके देनेसे भी देवी कृष्णसार और वकरेके मांसकी तरह प्रसन्न होती हैं। वलिदानमें चन्द्रहास (खड्ग) वा कर्त्तीसे वलिको काटना प्रशस्त है। हंसिया, तलवार या सांकलसे वलिच्छेद करना मध्यम एवं उस्तरा और भालेसे वलिको काटना अधम है। शक्ति और वाणसे वलिको काटना विलकुल निषिद्ध है। जिन अस्त्रोंसे वलिच्छेद करना निषिद्ध वतलाया गया है उनसे यदि कोई करे, तो देवी ग्रहण न करतीं और वलिका देनेवाला शीघ्र ही मृत्यु-मुखमें पहुंचता है। वलि देनेके पहले पशुको स्नान करा कर विधिके अनुसार प्रोक्षण और खड्गकी पूजा करनी चाहिये। पीछे उसी खड्गसे पशुको उत्तर वा पूर्वाभिमुख कर वलि देनी चाहिये।

वलि देनेमें जो हिंसाका दोष लगता है उसको निवारण करनेके लिये मंत्रोंका पाठ किया जाता है। मंत्रोंका तात्पर्य इस प्रकार है—स्वयं ब्रह्माजीने यज्ञके लिये पशुओंकी सृष्टि की है। इसीलिये मैं यज्ञमें पशुकी वलि चढ़ाता हूं, वलि चढ़ानेमें जो हिंसा हुई है उसका दोष मुझे न हो। वलिके रक्तको पात्रमें रख कर देना चाहिये। वैभवके अनुसार सुवर्ण, कांसे, पीतल वा चांदीका पात्र वलिके लिये वनाना चाहिये। जो अत्यंत गरीव हैं वे यज्ञमें चढ़ाने लायक लकड़ीके पात्रमें भी वलिदानके रक्तको चढ़ा सकते हैं। जव वहुत-सी वलि चढ़ाई जाती हैं तव दो या तीनको सामने कर सवोंको एक साथ ही चढ़ाया जाता है। जिन पशुओंकी वलि दी जाती है वे वलि होनेके वाद दिव्यदेहको प्राप्त करते हैं और स्वर्गमें ऐश्वर्य आदि सम्पदायें भोगते हैं। वे सदाके लिये पशुयोनिको छोड़ देते हैं। भेंड़ा, भैंसा और वकरेकी वलि ही आज कल प्रचलित देखी जाती हैं। मेष और वकरे एक ही मन्त्रसे देवीके सामने चढ़ाने होते हैं; किन्तु जहां पर यह कहा जाता है, कि मैं कौन-सा पशु चढ़ाता हूं वहां पर उसका पृथक् नाम लेना पड़ता है। महिषकी वलि देनेका दूसरा मन्त्र है। (कालिकापुराण ६६ अ०)

वकरोंमें जिनकी अवस्था तीन वर्षसे कमती है उनको वलिमें चढ़ाना नहीं चाहिये। यदि ऐसा पशु कोई वलिमें चढ़ावे, तो आत्मा, पुत्र और धनका क्षय होता है।

"शिशूनां वलिदानेन चात्मपुत्र धनक्षयः।" (तथितत्त्व।

दुर्गोत्सवतत्त्वमें ऐसा लिखा है—

"पशुघातपूर्वकरक्तशोर्षयोर्व लित्व"

'शु मारनेके वाद मस्तक और रक्तका दान करना ही वलि है। इस पशुको तलवारसे मारना चाहिये। खड्गका परिमाण इस प्रकार वतलाया गया है—उसकी मूंठ वारह अंगुल, लम्बाई ३२ अंगुल और चौड़ाई ६ अंगुल, धार खूव तेज हो, ऐसी तलवारको उत्तर वा पूर्वकी तरफ कर वलि करनी चाहिये।

एक आघातमें ही वलिच्छेद करना चाहिये। यदि एक आघातसे वलिच्छेद न हो, तो उस साल वलि करानेवाले और करनेवालेको पद पद पर विघ्न होवेंगे, ऐसा जानना चाहिये। इसलिये वलि देनेमें विशेष सावधानीकी जरूरत है। वलिमें यदि विघ्न हो, तो उसकी शान्ति अवश्य करनी चाहिये।

वलिदानके समय जो पशु एक आघातसे नहीं कटता, उसको फिर काट कर उसी पशुके मांससे होम करना चाहिये। विधिके अनुसार उसके मांससे पूजा करनेसे शान्ति होती है। अथवा ऐसा न कर सके, तो सहस्रतारा नामके मंत्रको जप कर देवीके उद्देश्यसे उसके वदलेमें एक और वलि चढ़ानी चाहिये। जो पशु काटनेके समय वांधा जाता है उसका मांस अथवा रुधिर कुछ भी नहीं चढ़ाना चाहिये। उस पशुके मांससे सहस्र वार होम कर ब्राह्मणोंको सुवर्णका दान करना चाहिये। इस प्रकार शान्ति करनेसे उसका प्रतिकार होता है।

वकरे वा भेड़को चढ़ानेमें ही ऐसी शान्ति करनी होती है। यदि भैंसा वलिदानके समय एक आघातसे न कट जावे तो उसकी पृथक् रीतिसे शान्ति करनी होगी।

जिस पशुकी वलि देनी होती है वह पशु युवा, व्याधि रहित, सम्पूर्ण अङ्गोंसे परिपूर्ण और अच्छे लक्षणोंसे युक्त होना चाहिये। शिशु, वृद्ध, अङ्गहीन और खोटे लक्षणवाला पशु वलिदानमें निन्दनीय गिना जाता है।

इस प्रकारके पशुकी बलि देनेसे नाना प्रकारकी आपत्तियां आती हैं।

ब्रह्मवैवर्त्तमें लिखा है—दुर्गापूजामें सप्तमीके दिन पूजा कर बलि देनी चाहिये, अष्टमीके दिन बलि चढ़ाना निषिद्ध है। अष्टमी दिन चढ़ानेसे कोई न कोई विपत्ति अवश्य आती है। नवमीके दिन पूजा कर यदि विधिके अनुसार बलि दी जाय, तो बहुत पुण्यका लाभ होता है। बलि देनेसे देवी दुर्गा अवश्य प्रसन्न होती हैं; किन्तु इससे पशु-हिंसाजन्य पाप भी अवश्य लगता है। पशु-बलिमें जो बलि चढ़ाते हैं अर्थात् पुरोहित, बलिदाता, काटनेवाला, पोष्टा, रक्षक, आगे और पीछे रोकनेवाले ये सात मनुष्य बलिके पापभागी होते हैं। अतएव बलिसे पाप और पुण्य दोनों ही होते हैं।

ब्रह्मवैवर्त्त पुराणके प्रकृतिखण्डके ६१वें अध्यायमें लिखा है, कि बलिदान देना पाप है। इससे पाप और पुण्य दोनों ही होते हैं। रघुनंदनने तिथितत्त्वमें जहां दुर्गा-पूजाके बलिदानका वर्णन किया है वहां पर उन्होंने निश्चय किया है, कि बलिके लिये जो हिंसा की जाती है वह पापजनक नहीं है। अवैध-हिंसा ही पापजनक है। वैध-हिंसामें पाप न हो कर पुण्य होता है—"वधोऽवधः" इसका अर्थ यह है, कि पूजाके लिये जो वध किया जाता है, वह वध नहीं है। ऐसा कहनेका एक मात्र यही उद्देश्य है, कि बलि चढ़ानेमें किसी प्रकारका पाप नहीं होता। यदि पूजामें बलि न दी जावे, तो महा अनर्थ होगा। अतएव पूजा करनेमें बलि अवश्य ही देनी चाहिये।

सांख्यकारिकाकी टीकामें वाचस्पतिमिश्रने, बलिमें हिंसा होती है या नहीं, ऐसा वर्णन आने पर, स्थिर किया है; कि बलिमें दोनों होते हैं, पाप भी होता है और पुण्य भी। प्राणीको मारनेसे पाप और पूजा समाप्त होनेसे पुण्य भी होता है। उनके मतसे यह बात बिलकुल सिद्ध नहीं होती, कि बलि पुण्यजनक है, पापजनक एकदम नहीं है। वैधहिंसा और हिंसा शब्द देखो।

पशु-बलिके साथ साथ नर-बलिका भी विधान शास्त्रोंमें पाया जाता है। किस प्रकारका मनुष्य बलिके योग्य होता है, उसके विषयमें ऐसा लिखा है—माता पितासे हीन, युवक, विवाहित, दीक्षित, व्याधिशून्य, पर-स्त्रीरहित और निर्मल चरित्रवाले सच्छूद्रको उसके कुटम्बियोंके हाथसे मोटी रकम दे कर खरीद लेना चाहिये। तत्पश्चात् उसको स्नान करा कर एक वर्ष तक संसारका भ्रमण करावे। फिर उसको अष्टमी और नवमीकी सन्धिमें बलि दे। (दुर्गोत्सवतत्त्व)

जिस समय पशुका मस्तक काटा जाता है उस समय यदि दांतोंका कट् कट् शब्द हो तो बलि देनेवालेको रोग और काटनेके बाद उसकी आंखोंसे यदि मैल बाहिर हो, तो जानना चाहिये, कि राज्यका अमङ्गल होगा। महिषका शिर कटने तथा नीचे गिरने पर यदि उसके नेत्रोंसे खून निकले, तो जानना चाहिये, कि प्रतिद्वन्द्वी राजाकी मृत्यु होगी। दूसरे पशुके मस्तकसे पसीना निकलने पर भय होगा, ऐसा जानना चाहिये।

नर-बलिके समय यदि मनुष्यका शिर हंसे, तो जानना चाहिये, कि शत्रुका विनाश और बलि देनेवालेकी लक्ष्मी तथा आयुकी वृद्धि होगी। नर-बलिका कटा हुआ मस्तक जिन जिन वाक्योंका उच्चारण करे उनको अवश्य सफल मानना चाहिये। यदि वह हुंकार करे तो राज्यकी हानि और यदि देवताके नामका उच्चारण करे, तो बलि देनेवालेको अतुल ऐश्वर्यकी प्राप्ति होती है।

(कालिकापु० ६७ अ०)

ऐतिहासिक आलोचनासे जाना जाता है, कि पहले क्या तो भारतवासी, क्या यूरोपवासी सभीमें, चाहे सभ्य जाति हो या असभ्य, पशुबलि वा नरबलिकी प्रथा बे रोक टोक प्रचलित थी। वैदिकयुगमें पुरुषमेधकी कथा पहले ही लिखी जा चुकी है। इसके बाद आरण्यकादिसे पितृमेध, गोमेध और अश्वमेधादि यज्ञोंका वर्णन पाया जाता है। पौराणिक कालमें यद्यपि पुरुषमेध-यज्ञ निषिद्ध था, तो भी चामुण्डाके सामने बलि देनेकी प्रथा प्रचलित थी। कालिकापुराणके ५६वें अध्यायमें देवी पूजनेके समय बलि देना चाहिये, ऐसा लिखा हुआ है।

जब तक तांत्रिक मतका प्रभाव रहा तब तक यह रक्तकी बलि चलती रही। मानसिक प्रपञ्चकी सिद्धिके लिये पाशवप्रकृतिके कापालिक भैरवीदेवीको प्रसन्न करने, नरबलि अथवा शवसाधनाके अङ्गोंकी पूर्त्तिके लिये नर-

बलि देते थे। १७वीं शताब्दीसे १९वीं शताब्दी तक यह नृशंस पूजा-पद्धति समस्त भारतवर्षमें प्रचलित थी। अब भी वामाचारी सम्प्रदायके अनेक गृहस्थ परिवार जिनमें पहले नर-बलि दी जाती थी, जीवित मनुष्यके बदले उनकी प्रतिमूर्त्ति बना कर देवीकी तृप्तिके लिये बलि देते हैं। इस पुतलाके बनानेके बाद उसमें प्राणप्रतिष्ठा की जाती है। सुना जाता है, कि पहले बङ्गालकी स्त्रियां पुत्रकी प्राप्तिके लिये गङ्गाके पास जा कर प्रार्थना करती थीं, कि हमारे पुत्र होनेसे हम आपको ही दे जावेंगी। भाग्यसे यदि उस स्त्रीके कन्या या पुत्रका जन्म हुआ, तो वह खेद-चित्त होती हुई गङ्गामें उसको फेंक देती थीं। कोई कोई उस पुत्रको मल्लाहोंसे निकलवा कर खरीद लेते थे। बङ्गालमें और भी आत्मोत्सर्गका वर्णन पाया जाता है, वह सतीका सहमरण है। जो सती अपनी इच्छासे पतिके मार्गका अवलम्बन करती थीं उनका पवित्र आत्मोत्सर्ग परम श्लाघनीय है। किन्तु जो स्त्री जीवनके दुःखसे पीड़ित हुई, अनिच्छासे अपने कुटुम्बादिकी ताड़ना तथा लज्जा और भयसे चिताकी ज्वालामें प्रवेश करती थी उसको निष्ठुर बलि न कहा जाय तो क्या कहा जाय? यह बलि खड्गकी तीक्ष्ण धारसे नहीं, बांसोंके भीमप्रहारसे होती थी। (२)

शास्त्रमें गङ्गामें डूब कर प्राणत्याग करना महा-पुण्यजनक कहा गया है। (३) शास्त्रीय प्रमाणोंसे जाना जाता है, कि गङ्गाके जलमें प्राण त्याग करनेसे ब्रह्महत्याका पाप छूट जाता है और अन्तमें ब्रह्मपद एवं मोक्षकी प्राप्ति होती है। उस जीवका फिर कभी जन्म नहीं होता। इसी कारण हमारे देशमें ज्वरसे पीड़ित अस्सी वर्षसे अधिक वृद्धको गङ्गाकी यात्रा करायी जाती है। अन्त-र्जलिके समय नाभि तक गङ्गाके जलमें डुबाई जाती है। उस वृद्धके जब कण्ठ तक प्राण आ जाते हैं तब उसके शीतल जलमें डुबे रहनेसे उनकी अन्तर्वह्नि धीरे धीरे बुझ जाती है। प्रायश्चित्ततत्त्वोद्धृत अग्नि और स्कंद-पुराणके वचनानुसार यह जाना जाता है, कि उपवास कर आधी देह गङ्गाके जलमें डुबो कर प्राणत्याग करनेसे ब्रह्मसायुज्य होता है। (४)

कालिकापुराणमें जिस प्रकार नरबलिका वर्णन किया गया है उसी प्रकार बृहन्नीलतन्त्रमें शत्रुबलिका। (५) शास्त्रोल्लिखित बलिके सिवाय तालाब, मन्दिर, घर आदि बनानेके समय यदि कोई विघ्न उपस्थित हो, तो देवताओंको प्रसन्न करनेके लिये नर-बलि दी जाती थी। आजकल भी सुना जाता है, कि मनुष्यरक्तसे बहुतसी अट्टालिकाओंकी नींव डाली जाती है। ऐतिहासिक ह्विलर साहबने ऐसी ही कितनी घटनाओंका वर्णन किया है। हिन्दू राजाओंके समय उक्त कार्योंमें मनुष्यका रक्त काममें लाया जाता था। मुसलमानोंका जब अधिकार हुआ तब यह नृशंस बलि उठा दी गई। सम्राट् शाह-

(१) इसका प्रकृष्ट प्रमाण वार्ड साहबके ग्रंथमें लिखा हुआ है।

(२) सतियोंका विस्तृत इतिहास सती शब्दमें देखो।

(३) "गङ्गायां त्यजतः प्राणान् कथयामि वरानने !
कर्णे तत् परम ब्रह्म ददामि मामकं पदम् ॥"
(स्कन्दपुराण)

"संत्यज्य देहं गङ्गायां ब्रह्महापि च मुक्तये।"
(क्रियायोगसार)

(४) "अर्द्धोदके तु जाह्नव्यां म्रियतेऽनशनेन यः।
स याति न पुनर्जन्म ब्रह्मसायुज्यमेति च ॥"
(अग्निपुराण)

स्कंदपुराणमें भी ऐसा ही एक और श्लोक पाया जाता है—
"नाभ्यन्तं गततोयानां मृतानां क्वापि देहिनां।
तस्य तीर्थफलावाप्तिर्नात्रकार्या विचारणा ॥"
(स्कन्दपुराण)

पवित्र हृदयसे किसी संन्यासीको नाभी पर्यन्त जलमें डूबो कर प्राणत्याग करते हुए हमने देखा है, यही वास्तवमें आत्मोत्सर्ग है। किन्तु मृत्युके मुखमें पड़नेवाले नरनारियोंका आश्रय रहित डूबना, यज्ञीय बलिका छोटा रूप है।

(५) ततः शत्रुबलिं राजा दद्यात् क्षीरेण निर्मितम्।
स्वयं विन्यात् क्रोधदृष्ट्या प्रहारजनकेन च ॥
कोपेन वधकृद्देवि सत्यं सत्यं महेश्वरि !
प्राणप्रतिष्ठां कृत्वा वै शत्रुनाम्ना महेश्वरि।
शत्रुक्षयो महेशानि भवत्येव न संशयः ॥"
(बृहन्नीलतंत्र)

जहान्ने नगरकी नींव डालते समय लाख पशुओंका रक्त उसमें डाला था। (६)

आजकल भी बङ्गालियोंके घरमें देवी प्रसन्न करनेके लिये रक्तदानकी प्रथा प्रचलित है। स्वामी, पुत्र वा भाई आदिके मरणासन्न वीमार होने पर हिन्दू स्त्रियां उनकी आरोग्यताके लिये देवीको रक्तदान करनेका मनमें संकल्प करती हैं। दुर्गा या कालीपूजामें स्त्रियां अपनी छातीका मध्यभाग चीर कर मानसिक पूजा समाप्त करती हैं। जनसाधारणका विश्वास है, कि रक्तलोलुपा भैरवी मनुष्य-रक्तसे संतुष्ट होती हैं। अतएव स्त्रियां देवीको अपने शरीरका रक्त देकर संतुष्ट करनेका प्रयास करती हैं। सनातन हिंदूधर्ममें देवोद्देशसे आत्मोत्सर्ग करनेके और भी कितने ही उपाय वतलाये गये हैं। वहुतसे लोग यथाविधि कर्मानुष्ठान करनेके वाद महाप्रस्थान कर वा अग्निकुण्डमें प्रवेश कर देवताके संतुष्ट होनेकी आशामें अपने आपको वलि चढ़ा देते हैं।(७) ऐसा सुना जाता है, कि वहुतसे लोगोंने देवताको संतुष्ट रखने और उससे मोक्षप्राप्तिकी आशामें अपने आपको जगन्नाथजीके रथचक्रके नीचे उत्सर्ग कर दिया है।

जैसे प्राचीन भारत-इतिहासमें ऐसी नरवलियोंका अनेक जगह उल्लेख है वैसे ही प्राचीन यूरोपादि देशोंमें भी देवताओंको संतुष्ट करनेके लिये नरवलि दी जाती थी। फिनिकीय और कार्थेजि-वासी अपने वाल (Ba'al) और मोलक नामके देवताकी रक्त-पिपासा वुझानेके लिये मनुष्यको उपहारमें देते थे। स्कान्दिनेविया और ग्रेटवृटेनके रहनेवाले प्राचीन द्रुइद (Druid) पुजारी लोग मनुष्यको जला कर अपने देवात्माको तृप्त करते थे। आथेन्सवासी अपने स्वदेशवासियोंके पापोंको क्षालन करनेके लिये थार्गेलिया (Thargalia)में प्रतिवर्ष एक एक नरनारी युगलकी वलि देते थे। भारतीय हिन्दू राजाओंकी तरह ग्रीकवासी भी शत्रुवलि देनेमें हिचकते नहीं थे। होमरने लिखा है, कि ट्रोजान वंदियोंकी पेट्रोक्लिस (*Patrocles*)की समाधिके समय हत्या की गई थी। इजिप्तके रहनेवाले पवन-देवके निकट वलि देनेके लिये वालक 'मेनेलेयस्'को वंदी कर ले गये थे। (८) अगष्टसने अपने देवतुल्य चचा दिवास जूलियसके संतोषके लिये तीन सौ पेरुसिया वासियोंको यमपुर भेजा था। पुराणवर्णित राक्षसोंकी नरवलि और नरमांस भोजन युरिपिड्यस वर्णित साइक्लोप जातिके समान है।(६) युरिपिडस् फिलो प्ट्रेटस् और आरिष्टटलने लामी (L ma) और लेप्ट्रीगो (Lestriygons)नामकी जातियोंका उल्लेख किया है। इटली, सिसली, ग्रीस, पन्टास और लिविया नामके स्थानोंमें उनका वास था। समुद्रके किनारे कायेट (Caiete) नगरमें उनका सर्व प्रधान देवमन्दिर था। यहां हाम (Ham) देवताके समक्षमें सुकुमार वच्चोंकी वलि दी जाती थी। साइरेन (Syrens) स्त्रियां अपनी सुन्दरता और सुमधुर गानसे समुद्रके किनारे आनेवाले मल्लाहोंको लुभा कर कारपनिया कूलवर्त्ती मंदिरमें ले जाती थीं।

---

(६) History of India Vol. IV. p. 278,

(७) जिस समय तांत्रिकोंका प्रवाह जोरों वह रहा था उस समय देवीपूजाकी सामग्री नर-रक्तसे वनायी जाती थी।

(७) महाप्रस्थान—स्वेच्छासे समुद्रमें डूवकर प्राणोंका विसर्जन। श्रीक्षेत्रमें इन उपायोंसे अनेक साधु-संन्यासियोंने प्राणत्याग किया है ऐसा सुना जाता है। माकिदनवीर आलेकसन्दरके समय कलेनासने तुपानल किया था। हिंदूशास्त्रोंमें अनेक जगह तुपानलकी व्यवस्था है।

(८) Herodotus, Vol. II. p. 119

(६) होमरने आडेसी नामके ग्रन्थमें लिखा है, कि साइक्लोप सिल्लाने युलिसिसके अनुचरोंका मांस खाया था। युरिपिडिसने भी उनके नरमांस भोजनका उल्लेख किया है। इन प्रमाणोंसे अच्छी तरह जाना जाता है, कि भूमध्यसागरके किनारे अनेक स्थानोंमें पहले नरवलि प्रचलित थी। जव कभी मल्लाहका खोटा भाग्य उसे इस प्रकारकी राक्षसप्राय असभ्य जातिके स्थानमें पहुंचा देता था, तव वह अपने प्राणसे हाथ धो वैठता, उसे किसी न किसी देवताकी वलिमें जाना पड़ता था। (Homers Odessy & Euripides)

वहां पर उनकी वलि चढ़ाई जाती थी ।(१ क्रीटवासी दियोनिसियाका (Dionusiaca)में जीवित पशुओंका मांस दांतोंसे चीर कर दियोनिसाको संतुष्ट करने चढ़ाते थे ।(२) मिनाडिस् (Maenades), थियाडिस (Thyades) और वैकी (Bacchae) प्रभृति जातिओंकी रक्तलोलुपताका उपाख्यान पाया जाता है। प्रवाद है, कि आरफियासने (Orpheus) नरमांस भक्षणकी प्रथा उठा दी थी पर वे जीव-वलि वंद न कर सके थे।

वर्नार्ड स्मिड (Bernhard Schmidt) अपने ग्रंथमें (Griechische Saga Munchanas) आर्कडियाके लाइकियन (Mt, Lykaion) पर्वत पर वलिके विषयमें लिख गये हैं। हिरोद्रोतस साइप्रस द्वीपका उन्होंने वर्णन करते समय लिखा है, कि उस द्वीपके रहनेवाले मनुष्य कुमारी अर्तेमिस देवीकी पूजामें नरवलि चढ़ाते थे। कभी कभी लकड़ीके आघात या मंदिरके पास किसी पर्वतसे वह हतभाग्य मनुष्य नीचे गिरा दिया जाता था। वस उसी पतनसे विचारेकी जीवनलीला समाप्त हो जाती थी।(३) अर्तेमिस वहां पर काली देवीके समान पूजी जाती थीं।

आसरियामें नरवलिका प्रवल स्रोत प्रवाहित था। असुरोंका विश्वास था, कि ऐसे देवभोगके सिवाय और दूसरा कोई उपहार नहीं है। पहिले ही लिखा जा चुका है, कि इजिप्तदेशमें नरवलि प्रचलित थी। दिओदोरस् और प्लूतार्क प्रभृतिने ओसिरिसकी वेदी (Alter of Osiris)का और इडिथिया नगरमें राजकर्तृक प्रदत्त नरवलिका उल्लेख किया है। रोमक लोगोंके राज्यसे यूरोपखण्डमें सभ्यताका प्रचार हुआ, परन्तु वहां नरवलि वेरोकटोक प्रचलित रही। नियस, कर्णेलियस, लेंटुलस् और पि लिसिनियस् क्रसस‌के शासनकालमें सिनेटसंभाकी अनुमतिके अनुसार नरहत्या वन्द हुई (१)। मध्ययुगमें उच्च शिक्षा, सभ्यता और धर्मप्राणताके प्रचारके साथ नरवलिरूपी पापस्रोत पूर्व-भारत और पश्चिम रोमसाम्राज्यमें व्याप्त हुआ था। प्राचीन यहूदियोंमें भी नरवलि प्रधान देवोपहारमें गण्य थी। ईश्वरकी आज्ञासे अब्राहिम अपने पुत्रकी वलि देनेके लिये उद्यत हुए थे। जेफथाको पूजाका मनमें चितवन कर उन्होंने अपनी कन्याकी वलि दी थी। यहूदी मेलककी शान्तिके लिये शिशुवलि करनेकी शिक्षा देते थे। युद्धमें परास्त होनेकी अशङ्कासे मोयावपति (Moab)ने अपने पुत्रको जला कर मारा था (२)। ग्रीक और रोमक जातियोंके समान जर्मन, नर्समान् और फ्रेंच जातिमें नरवलिका स्रोत प्रवाहित था। वे किसी विपत्तिके आने पर अपने राजा, राजपुत्र या राजकन्याकी वलि चढ़ानेमें जरा भी नहीं अटकते थे।(३) उत्तर अमेरिकाके अजतेक (Aztecs), तोलतेक (Toltecs), तेजककान् (Tezcaucans) और इङ्क (Incas) जातियां परस्पर युद्ध कर शत्रुसेनाको वंदी कर लेती थीं। फिर उन असंख्य वंदियोंको वे लोग समय समय पर देवीके लिये वलि चढ़ाते थे।(४)

(१) *Bryants Ancient Mythology*. Vol II 20

(२) कियसद्वीपमें (Island of chios) दिओनिसासकी पूजामें नरवलि चढ़ाई जाती थी। *Porphyry* टेनोडो इओपलिपसके (Tenedo Euclpis) ऐसे ही एक कृत्यका उल्लेख कर गये हैं।

(३) डा० हेण्डली (Dr. Hendley) ने लिखा है, कि जोधपुरराजके राज्याधिरोहणके समय मेवारवासी भीलोंने देवीको पूजा कर वहुतसे वकरे पर्वत-शिखरसे नीचे गिराये थे। पहिले चित्तोरगढ़के प्राचीन देवीमन्दिरमें और अम्वर नगरकी अम्वादेवीके सामने नरवलि दी जाती थी, ऐसा सुना जाता है। चित्तोरके किसी राजाने इसी मंदिरमें सात राजपुत्रोंकी वलि दी थी। (Jour, As Soc p *XLIV* 350)

(१) *Pliny* XXX. e, 3 and *Wilkison's Ancient Egyptions*, Vol. 11. p, 286

(२) II Kings. III. 27.

(३) राजा ओग्नेनथरने अपने पुत्रोंकी वलि दी थी। स्वीडन वासियोंने दुर्भिक्षके समय अपने राजा दामोंडिककी देवप्रीतिके लिये वलि चढ़ाया था।

Grim's Tentonic *Mythology* 11. p 44 राजस्थानमें भी ऐसी एक घटनाका उल्लेख है। मेवाड़पति राणा लाक्षाने देवीकी रक्तपिपासा दूर करनेके लिये अपने नौ पुत्रोंको वलिमें चढ़ाया था।

(४) अमेरिकावासी विभिन्न जाति जयलब्ध धन, और वंदी नरनारियोंको महासमारोहसे देव-पूजामें भेंट

दक्षिण अमेरिकाके पेरुवासी वलिदानके विशेष पक्ष-पाती थे। इङ्कसर्दारोंके पीड़ित होने पर रुष्ट देवताकी तृप्तिके लिये उनके पुत्रोंकी वलि दी जाती थी। आरोकानियन-जातिके पुलोकन (Pruloucon)-उत्सवमें मृत-सैन्यकी प्रेतात्माको संतुष्ट करनेके लिये शत्रुसेनाके बंदियोंको वलि देनेकी प्रथा थी। एतद्भिन्न प्रशान्त महासागरस्थ द्वीपवासी, मुरिरुस्वाइट और वदोल प्रभृति आफ्रिक जाति, तातार, तुर्क, मुगल, भोट, यावा, सुमात्रा, अण्डमन, जापान और चीनवासियोंमें थोड़ा बहुत नर-नाश या नरमांस भोजनका इतिहास पाया जाता है। टेलर साहब स्वकीय ग्रन्थमें उल्लेख करते हैं, कि बहुतसे गण्यमान्य मनुष्य प्रेतात्माओंको सन्तुष्ट करने उनकी समाधि पर अपनी अपनी स्त्री और क्रीतदासोंको वलि दिया करते थे। असाण्टि और यूकेटन वासियोंके यहां किसी भी धर्मोत्सवके होने पर कारागारसे बंदियों-को ला उनकी वलि दी जाती थी। इङ्गलैण्डके इतिहास-में धर्मके लिये अनेक जीवनत्यागियों (*Myrters*)का उल्लेख पाया जाता है। वहां कोई तो राजानुज्ञाके द्वारा अस्त्राघातसे खण्ड खण्ड किया जाता था, कोई अग्निदग्ध हो कर मनुष्यजन्मकी लीलाको समाप्त करता था। वे या तो राजशत्रुकी तरफ या प्रचलित धर्मके विपक्ष जाने-से नरवलि रूपमें मारे जाते थे। यह देखा जाता है, कि आजकल शक्तिपूजामें मेष, महिष, छाग, कुष्माण्ड और इक्षुदण्डकी वलि दी जाती है। इन वलियोंमें छागवलि ही ज्यादा प्रचलित है। ४ दैत्यभेद, यह सावर्णि मन्व-न्तरमें इन्द्र हुआ था। (मार्कण्डेयपु० ८०।१०)

वलि (सं० पु०) कोई एक असुरराज। प्रह्लादके पुत्र विरोचनसे उसका जन्म हुआ था। वलिके एक सौ पुत्र थे जिनमेंसे बड़ेका नाम वाण था। (विष्णुपु० १।२१ अ०) वलिको बांधने स्वयं विष्णु भगवान् वामनरूप धारण कर भूमण्डल पर अवतीर्ण हुए थे।

वामन देखो।

वलिने अश्वमेध यज्ञ कर दान देना शुरू किया। विष्णु भगवान् वामनरूप धारण कर उसके सामने उपस्थित हुए। वलिने उस वामनकी अत्यन्त आदरसे पूजा कर उसके आनेका कारण पूछा। वामन रूपधारी विष्णुने उसकी खूब प्रशंसा की और अपने पैरोंसे तीन पैर प्रमाण भूमि मांगी। इस पर वलिने ब्राह्मणसे कहा, "तूने वृद्ध पुरुषोंकी तरह मेरी सुमिष्ट वाक्योंसे प्रशंसा कर मुझे संतोषित किया। अब अज्ञकी तरह यह सामान्य भूमि क्यों मांगते हो, प्रभूत भूमि और धन मांगो, मैं तुझे देता हूं। क्योंकि जो मेरे पास मांगने आता है उसे दूसरेके यहां जानेकी जरूरत नहीं रह जाती। अच्छा हो! यदि तुम मुझसे और कोई बहु-मूल्य वस्तु मांगो, मैं उसे दूंगा।' यह सुन कर वामन वोले, "महाराज! जो मुझे आवश्यक था उसे मैंने आप-से कह दिया। क्योंकि विद्वान् अपने प्रयोजनसे अति-रिक्त वस्तु ग्रहण नहीं करते।" वामनके ये उपयुक्त वचन सुन वलि उतनी ही जमीन देने राजी हुए। शुक्रा-चार्य विष्णुको पहचान गये और वलिका तिरस्कार कर वोले, 'ये साक्षात् सनातन विष्णु भगवान् हैं, कश्यपकी भार्या अदितिके गर्भसे वामन रूपमें इन्होंने जन्मग्रहण किया है। तुम विना विचारे भूमि देनेको राजी हुए हो। ये अपने एक पैरसे पृथ्वी लेंगे, दूसरेसे स्वर्ग। इनके विशाल शरीरसे गगनमण्डल व्याप्त हो जावेगा। तीसरे पैर रखनेका स्थान नहीं मिलेगा और नहीं देनेसे तुम्हें नरक जाना पड़ेगा। अतएव जिस दानसे विपत्ति उठानी पड़े, वह दान प्रशंसित नहीं होता। अतः अब तुम यदि अपनी भलाई चाहो, तो उसे दान मत दो। यही एक उपाय तुम्हारी रक्षाका है और नहीं है। इसमें एक लाभ यह भी है, कि तुमको इससे झूठका पाप भी नहीं लगेगा। क्योंकि परिहासवृत्ति-रक्षा वा प्राणसङ्कट-के समय झूठ वोलनेसे दोष नहीं लगता। इस समय

देती थी। १४८६ ई०में ह्विटजिल पोचलिके मन्दिरमें लक्षाधिक नरवलि हुई थी। अनावृष्टि होने पर वे जल-देवता त्लुलोकको तृप्त करने शिशुवलि और तेजकाटल-पोकाकी पूजामें भी सुन्दर सुन्दर सुकुमारका वलि देते थे। पश्चिम उड़िसावासी खोन्दगण तारिपेन्नू नामकी वसुमाताके उत्सवमें नरवलि अर्पण करते थे। विस्तृत विवरण (*Prescott's Conquest of Mexico Vol. 1. p. 22, 67-68 & 71-74 and Heaviside's American Antiquities*)

तुम्हारे प्राण पर सङ्कट है, इसलिये तुमको झूठ बोलनेसे पाप नहीं'।' वलिने शुक्राचार्यका यह उपदेश सुन कहा, 'गुरुदेव ! जो आपने कहा वह सत्य है उसमें जरा भी सन्देह नहीं। किन्तु मैं महात्मा प्रह्लादका पौत्र और विरोचनका पुत्र हूं। मैंने ब्राह्मणको वचन दे दिया है, सो अब किस प्रकार उन्हें धूर्त्तोंकी तरह धनलोभमें पड़ कर लौटा दूंगा। यह ब्राह्मण चाहे विष्णु हों या शत्रु, मैं तो उन्हें वह भूमि अवश्य दूंगा। मैं अनपराध हूं, यदि ये अधर्म कर मुझे बांधेंगे, तो भी मैं उनका वध नहीं करूंगा।' वलिकी यह बात सुन कर शुक्राचार्यने क्रोधित हो कहा, "तू मूर्ख पण्डिताभिमानी है! मेरी उपेक्षा कर मेरे शासनकी अवज्ञा करता है। अतएव तू सदाके लिये श्रीभ्रष्ट होवेगा।"

वलि गुरुकी शाप सुन कर भी सत्यसे विचलित न हुए। वलिने वामनकी पूजा की और उदकस्पर्शपूर्वक भूमिका दान दिया। अब विष्णु भगवान् वामनरूपसे आश्चर्यरूपमें बढ़ने लगे। वलिने देखा, कि विश्वमूर्त्ति हरिके पदतलमें रसातल, चरणद्वयमें पृथ्वी, दोनों जङ्घामें पर्वत, जानुदेशमें पक्षी, ऊरुद्वयमें मरुद्गण, वसनमें संध्या, गुह्यदेशमें प्रजापति, जघनमें समस्त असुर, नाभिस्थलमें आकाश, कुक्षिदेशमें सप्तसागर, उरुस्थलमें नक्षत्रश्रेणी, हृदयमें हर्म्म, स्तनद्वयमें ऋत और सत्य, मनमें चन्द्र, वक्षःस्थलमें कमला, कण्ठमें वेद और समस्त शब्द, चार वाहुओंमें इन्द्रादि देवगण, कर्णद्वयमें दिशा, मस्तकमें स्वर्ग, वालोंमें मेघ, नासिकामें अग्नि, चक्षुद्वयमें सूर्य प्रभृति तीनों लोक दिखाई देते हैं। वलि और समस्त असुरगण वामनके इस प्रकार शरीर देख कर वहुत भयभीत हुए।

तदनन्तर उनके एक पदसे वलिकी समस्त भूमि, शरीरसे आकाश, वाहुद्वयसे सम्पूर्ण दिशायें आक्रान्त हो गईं। दूसरे पदसे स्वर्ग व्याप्त हो गया और तीसरा पैर रखनेको कहीं पर ठौर न मिला। उनका यह कृत्य देख वलिके अनुचरोंने उन्हें मायावी समझा और उन्हें मार डालनेके लिये वे लोग अस्त्रोंका निक्षेप करने लगे; किन्तु उनका कोई कुछ भी नहीं विगाड़ सका। वहुतसे दानव विष्णुके अनुचरोंके हाथसे यमपुर सिधारे। वलि अपने अनुचरोंको युद्धसे निषेध करने लगे और बोले "अभी दैव हमारे प्रतिकूल हैं, जो तीन लोकके प्रभु और सर्वशक्तिमान् हैं उन्हें पुरुषकारसे जीतनेकी चेष्टा करना विलकुल असम्भव है। इसलिये तुम लोग वृथा ही लोगोंका क्षय मत करो।" वलिका इतना कहना ही था, कि वामनके अभिप्रायानुसार उसको गरुड़ने पाशमें बांध लिया। तव भगवान् वामनने वलिसे कहा, "राजा! तुमने मुझे तीन पद भूमी दान की है, मेरे दो पदसे सम्पूर्ण पृथ्वी आक्रान्त हो चुकी है। तीसरे पद रखनेकी और भूमी कहां है, सो दो। मेरे एक पैरसे समस्त भूलोक आक्रान्त हुआ, मेरे शरीरसे समस्त आकाश और दिशायें व्याप्त हो गयी हैं। इस प्रकार तुम्हारी समस्त भूमि आक्रान्त हो चुकी, सो तुम्हारे वचन पूर्ण नहीं हुये अतएव तुमको नरक जाना होगा। अतः कुलगुरु शुक्राचार्यकी अनुमती ले कर शीघ्र ही नरक जानेकी तैयारी करो।

विष्णु भगवान्‌के वचन सुन कर वलि बोले "भगवन्! मैं असत्य कभी नहीं बोलता। मेरे कहे हुये वचन मिथ्या नहीं हो सकते। आप ही कपटतापूर्वक वामनरूपसे भिक्षा मांग कर अव दूसरा रूप दिखलाते हैं। इस पर यदि आप मुझे मिथ्यावादी मानते हों तो मैं आपके अङ्गीकारको पूर्ण करता हूं। अपकीर्तिसे मुझे जितना भय है उतना नरक या पाशवंधनसे नहीं है। अतएव आप तृतीय चरणकमल मेरे मस्तक पर स्थापन कीजिये। भगवान् वामनने वलिके कहे अनुसार अपना तृतीय चरणकमल वलिके मस्तक पर रखा। उस समय वलि भगवान्‌का स्तव करने लगे। प्रह्लाद आदि भी उसी समय वहां पहुंचे और भगवान्‌को प्रणाम कर वोले, "वलिने अनेक सत्कार्य और सर्वस्व दानमें अर्पण कर दिया है, वह निग्रहयोग्य कदापि नहीं है, इसलिये इसका वंधन मोचन कर दीजिये।"

भगवान् विष्णुने कहा, "जिस पर मेरा अनुग्रह होता है उसका मैं पहिले धन अपहरण कर लेता हूं। क्योंकि अर्थमें ममता होती है और मुझमें अविश्वास करने लगता है। यह वलि दैत्योंका अग्रणी और कीर्त्तिवर्द्धन है। इस व्यक्तिने दुर्जय मायाको जीता है अतएव अवसन्न हो कर भी यह मुग्ध नहीं होता। यह निर्धन, स्थानच्युत, शत्रुकर्तृक वद्ध हो

कर भी सत्यसे विचलित नहीं हुआ और जातिवाले इसको परित्याग कर दुःख देते हैं। यहां तक, कि कुलगुरु शुक्राचार्यने भी शाप दिया है, फिर भी वलि सत्यसे जरा भी विचलित नहीं हुआ। अतएव मैं इसे देवताओंको दुष्प्राप्य स्थान देता हूं। मैं स्वयं इसके आश्रय हुआ। यह सावर्णिमन्वंतरमें इन्द्र होगा। जब तक वह मन्वन्तर नहीं आवेगा, तब तक यह विश्वकर्मा निर्मित सुतलमें जा कर रहेगा। यह स्थान सामान्य नहीं, आधि व्याधि, क्लांति, जरा और पराभवसे रहित है। उसी स्थानका प्रभु हो कर वलि! तू वहां अवस्थान कर। मैं कौमोदकी गदासे तुम्हारी रक्षा करूंगा।"

वलि भगवान्का आदेश पा पातालको चल दिये। इधर शुक्राचार्यने भगवान् विष्णुकी आज्ञासे यज्ञको पूर्ण किया। (भागवत ८।१८-२२ अ०) वामनपुराण आदिमें इसका विशेष विवरण मिलता है। वामन देखो।

५ ययाति-वंशोद्भव सुतपा-राजपुत्र। (स्त्री०) वलति संवृणोतीति वल-संवरणे इन्। ६ जरा द्वारा श्लथचर्म, बुढ़ापेके कारण चमड़े पर पड़ी हुई शिकन। पर्याय—चर्मतरङ्ग, त्वगूर्मि, त्वक् तरङ्ग। ७ जठरावयव। ८ गृहदारुभेद। (मेदिनी) ६ गुदांकुर। बवासीर होने पर यह निकलता है। सुश्रुतने लिखा है—

गुह्यदेशसे आध अंगुलकी कुछ अधिक दूरी पर प्रवाहणी, विसर्ज्जनी और सम्वरणी नामकी तीन वलि हैं। ये तीन वलि चार अंगुल चौड़ी, तिर्य्यग् भावसे स्थित और एक अंगुल ऊंची हैं। शङ्खावर्त्तकी तरह बलयाकार में जड़ित हो कर एक दूसरेके ऊपर संस्थित हैं। उनका वर्ण हस्तीके तालूके समान है।

गुह्यदेशजात रोमके अर्द्ध भागसे ले कर यवके अर्द्धभाग परिमित स्थान तकको गुदौष्ठ कहते हैं। प्रथम वलिका स्थान गुदौष्ठसे दो अंगुल नीचे है।

वलि होनेके पहिले अन्नमें अश्रद्धा, कष्टसे परिपाक, ऊरुद्वयका भारीपन, उदरमें शब्द, कृशता, अतिशय उद्गार, नेत्रोंका फूलना आदि लक्षण होते हैं। पांडु, ग्रहणी अथवा शोष रोगीको वलि रोगकी संभावना होने पर कास, श्वास, भ्रम, तंद्रा, निद्रा और इन्द्रियोंमें दुर्बलता आ जाती है। इन लक्षणोंके दिखाई देने पर जानना चाहिये, कि वलि रोग प्रगट होगा। यह वायु, पित्त और कफ इस प्रकार त्रिदोषज होती है।

वायुजवलि—वायुजनित वलि शुष्क, अरुणवर्ण, मध्यस्थलमें विषम, कदम्ब पुष्प, तुण्डिकेरी, नाड़ीमुख, या शुचीमुखकी आकृतिके समान होती है। यह वायुज वलि टन टन शब्द करती है। रोगी संहतभावसे अर्थात् जड़सड़ हो कर बैठता है। कटि, पृष्ठ, पार्श्व, मेढ़्र, गुह्य और नाभिमें वेदना होती है। नख, दन्त, चक्षु, मुख, मूत्र और पुरीष काले हो जाते हैं।

पित्तजवलि—पित्तजवलिका अग्रभाग नील और सूक्ष्म होता है। यह विसर्पी, ईषत् पीतवर्ण वा यकृत्के समान आभाविशिष्ट होती है। शुकपक्षीकी जिह्वाके समान संस्थित, यवके मध्यभागकी आकृतिसी और जोंकके मुखके समान सर्व्वदा क्लेदयुक्त होती है। पित्तजवलिसे दाहयुक्त रुधिर निकलता है। ज्वर, दाह, पिपासा और मूर्च्छा प्रभृति उपद्रव तथा नख, नयन, दशन, वदन, मूत्र और पुरीष पीतवर्ण हो जाते हैं।

श्लेष्मजवलि—श्लेष्मजन्य वलि श्वेतवर्ण, महामूलविशिष्ट, दृढ़, गोलाकार, स्निग्ध, पाण्डुवर्ण, करीर, पनसके आकारकी, कठिन, आस्रावहीन और अतिशय कण्डुविशिष्ट होती है। इसमें श्लेष्मायुक्त और अधिक परिमाणमें मांसके धोवनके समान मल निकलता है। त्वक्, नख, नयन, दशन, वदन, मूत्र और पुरीष श्वेतवर्णके होते हैं।

इसके सिवाय रक्तजन्य वलि भी होती है। रक्तजवलि वटके अंकुर वा विद्रुमके समान और पित्तजवलिके लक्षणोंसे विशिष्ट होती है। इसमें मल कठिन हो जानेसे दुष्ट शोणित अधिक परिमाणमें निकलता है। अतिशय शोणित निकलनेसे नाना प्रकारके उपद्रव होते हैं। वलिसान्निपातिक होनेसे उसमें सभी दोष और सब प्रकारके लक्षण होते हैं।

मलद्वारके वाह्यदेश तथा मध्य भागमें वलि होनेसे चिकित्सा करावे; किन्तु यदि अंतर्वलि होगी, तो प्रत्याख्यान करना ही विधेय है। (सुश्रुत सुनि० २ अ०) अर्श देखो।

भावप्रकाशमें लिखा है—वातजन्य अर्शरोग होने पर

जो वलि होती है वह अधिक-संख्यक, अथच परस्पर विभिन्नरूप हो कर निकलती है। ये वलियां शुष्क, वेदनायुक्त, अनुपचित, कठिन, अपिच्छिल, कर्कश और खरस्पर्श होती तथा वक्रभावसे उठती हैं। उनका अग्रभाग अतिसूक्ष्म और चौड़े मुंहका होता है। इन वलियोंका वर्ण धूम्र वा लोहित होता है। उनकी आकृति बेर, खजूर और ककड़ीके फलके समान, कहीं कदम्ब पुष्पके और कहीं राई-सरसोंके समान पीतवर्णकी होती है तथा वे सूक्ष्म पिड़कासे परिवेष्टित रहती हैं। इनसे रोगीका मस्तक, पार्श्वदेश, स्कंददेश, कटि, ऊरु और छाती आदि स्थानोंमें वेदना, उद्गार विष्टंभ हृद्रोग, अरुचि, कास, श्वास, विषमाग्नि, कानोंमें शब्द और भ्रम होता है। इनसे चर्म, नख, विष्ठा, मूत्र, चक्षु और मुख कृष्णवर्णके हो जाते हैं।

पित्तज ववासीरमें वलि नील, रक्त, पीत अथवा काली, उनका अग्रभाग नीलवर्ण, संख्यामें अल्प, कोमल और लम्बी होती हैं। उनकी आकृति शुकपक्षीकी जिह्वाके समान, यकृतखण्ड यवके सदृश और मध्य तथा अन्तर्भागमें सूक्ष्म होती हैं। इस प्रकार वलि होनेसे दाह, ज्वर, घर्म्म, पिपासा, मूर्च्छा और ग्लानि होती है। पीछे चर्म, नख, मलमूत्रादि हरिद्रावर्णके हो जाते हैं।

रक्तज अर्शमें वीलयां पित्तज अर्शके समान लक्षण दिखायी देते हैं। उनकी आकृति वटवृक्षके अंकुरके तथा गुंजा फलके समान होती है। मल कठिन होने पर भी वलि दूषित अथच उष्ण रक्त बड़े वेगसे निकलती है। इससे रोगीका शरीर मेढ़कके समान पीला पड़ जाता है और रक्तक्षय उत्पन्न जितने भी उपद्रव हैं सभी दिखाई देने लगते हैं। इसमें बल, वर्ण उत्साह, शक्तिका ह्रास और इन्द्रियां आकुल हो जाती हैं। (भावप्र०)

अर्शरोगमें वलियोंके ये लक्षण उपस्थित होने पर उसकी चिकित्सा करनी चाहिये। अर्श रोगकी चिकित्सा होने पर वलियां भी चली जाती हैं। वलि अनेक स्थलोंमें अस्त्रचिकित्सासे दूर की जाती है। (भावप्र०)

वलि (हिं० स्त्री०) १ बलि देखो। २ सखी।

वलिक (सं० पु०) एक नागका नाम।

वलिकर (सं० क्ली०) वलिका उपादान।

वलिकर्म (सं० क्ली०) वलिक्रिया, वलिदान।

वलिका (सं० स्त्री०) वलेः बलार्थे कन्, टापि अत इत्वं। अतिवला।

वलिदान (सं० क्ली०) १ एक देवताके उद्देश्यसे नैवेद्यादि पूजाकी सामग्री चढ़ाना। २ बकरे आदि पशु दुर्गादि देवताके उद्देश्यसे मारना। बलि देखो।

वलिध्वंसिन् (सं० पु०) विष्णु। बलि देखो।

वलिन् (सं० त्रि०) वल मत्वर्थे इनि (बलादिभ्योमतुबन्यतरस्यां। पा ५।२।१३५) १ बलवान्, बलवाला। (पु०) २ उष्ट्र, ऊंट। ३ महिष, भैंसा। ४ वृष, बैल। ५ शूकर, सूअर। ६ कुन्दवृक्ष। ७ कफ। ८ माष, उड़द। ९ बलराम।

वलिन (सं० त्रि०) वलि पामा-दित्वान् न। १ वलिभ, जरा द्वारा श्लथचर्मयुक्त, बुढ़ापा आने पर जिसका चमड़ा ढीला हो गया हो।

वलिनन्दन (सं० पु०) १ वलिके पुत्र वाणासुर। बाण देखो।

२ अङ्ग, वङ्ग और कलिङ्ग आदि वलिपुत्र। (विष्णुपु० ४।१८।१)

वलिनिसूदन (सं० पु०) वालं निसूदयति सूद-ल्यु। वलिध्वंसी, विष्णु।

वलिन्दम (सं० पु०) वलिं दमयति दम-खच्, मुम्। वलिका दमन करनेवाला, विष्णु।

वलिपशु (हिं० पु०) वह पशु जो किसी देवताके उद्देशसे मारा जाय।

वलिपुष्ट (सं० पु०) वैश्वदेवेन वलिना पुष्टः। काक, कौवा।

वलिपोदकी (सं० स्त्री०) वलेः पोदकी उपोदकी। एक प्रकारका साग।

वलिप्रदान (सं० पु०) वलिदान।

वलिप्रिय (सं० पु०) वलि उपहारं प्रीणातीति वलि-प्री-क। १ लोध्रवृक्ष, लोधका पेड़। वलिर्वैश्वदेववलिः प्रियो यस्य। २ काक, कौवा। ३ उपहारप्रिय।

वलिबन्धन (सं० पु०) वलिको बांधनेवाले विष्णु।

वलिविन्ध्य (सं० पु०) रैवतक मनुके एक पुत्रका नाम।

वलिभ (सं० त्रि०) वलिश्चर्मसंकोचोऽस्त्यस्येति वलि

(वुग्निदबलि वट उण्। पा ५।२।१३६) इति भ। १ वलिन, जरा द्वारा श्लथचर्मयुक्त, बुढ़ापा आने पर जिसका चमड़ा ढीला हो गया है। (पु०) २ वृद्ध पुरुष, बूढ़ा आदमी।

वलिभुक् (सं० पु०) कौवा।

वलिभुज (सं० पु०) वलिं भुज क्विप्। १ काक, कौवा। २ चटक, गौरैया। ३ वक, वगला।

वलिभृत् (सं० त्रि०) १ करदाता, कर देनेवाला। २ अधीन, मातहत।

वलिभोजन (सं० पु०) काक, कौवा।

वलिभोजी (सं० पु०) काक, कौवा।

वलिमत् (सं० त्रि०) १ वृद्ध, बूढ़ा। २ उपहारविशिष्ट।

वलिमन्दिर (सं० क्ली०) अधोलोक, पाताल।

वलियां—युक्तप्रदेशके अन्तर्गत एक जिला।
विशेष विवरण वलिया शब्दमें देखो।

वलिवर्द (सं० पु०) वृष, सांढ़।

वलिवेश्मन् (सं० क्ली०) वलिका आलय, पाताल।

वलिवैश्वदेव (सं० पु०) भूतयज्ञ नामक पांच महायज्ञोंमें चौथा महायज्ञ। इसमें गृहस्थ पाकशालामें पके अन्नसे एक एक ग्रास ले कर मन्त्रपूर्वक घरके भिन्न भिन्न स्थानोंमें मूसल आदि पर तथा काकादि प्राणियोंके लिये भूमि पर रखता है।

वलिश (सं० पु०) वंशी, कटिया।

वलिष्ठ (सं० पु०) अतिशयेन वलवान् इष्ठन् मतुपो लुक्, प्रशस्तभारवाहकत्वादस्य तथात्वं। १ उष्ट्र, ऊंट। २ धर्म-सावर्णिक मन्वन्तर्गत ऋषिभेद। (मार्कण्डेयपु० ९४।१६) (त्रि०) ३ अतिशय वलवान्। ये सव वलवान् हैं—वायु, विष्णु, गरुड़, हनूमान, यम, महावराह, शरभ, सत्यप्रतिज्ञा, गज, मृगराज, वलराम, वली, वलि, भीम, सती, शेष और पुराकृत। (वैद्यकलता)

वलिष्णु (सं० त्रि०) वल्यते वध्यते इति वल-इष्णुच्। अपमानित।

वलिसद्मन् (सं० क्ली०) रसातल।

वलिहन् (सं० पु०) विष्णु, वामनदेव।

वलिहारी (हिं० स्त्री०) प्रेम, भक्ति, श्रद्धा आदिके कारण अपनेको उत्सर्ग कर देना, निछावर।

वलिहृत् (सं० त्रि०) वलिं हरतीति क्विप्। १ वलिहरण-कारी, वलि लानेवाला। २ करप्रद, कर देनेवाला। (पु०) ३ राजा।

वली (सं० स्त्री०) वलि-पक्षे ङीप्। १ वलि, चमड़े परकी झुरी। कुष्ठौषधिको अच्छी तरह चूर कर घृत और माक्षिक-के साथ रातको सेवन करनेसे वलीपलित विनष्ट होता है। २ वह रेखा जो चमड़ेके मुड़ने या सुकड़नेसे पड़ती है। (त्रि०) ३ वलवान्, पराक्रमी।

वलीक (सं० क्ली०) पटलप्रान्त, ओलती।

वलीन (सं० पु०) १ वृश्चिक, विच्छू। २ असुरभेद।

वलीजा (हिं० स्त्री०) एक प्रकारकी ह्वेल मछली।

वलिवैठक (हिं० स्त्री०) एक प्रकारकी वैठक। इसमें ऊंचे पर भार दे कर उठना वैठना पड़ता है। इससे जाँघ शीघ्र भरती है।

वलीमुख (सं० पु०) वलीयुक्तं मुखं यस्य। वानर, वंदर।

वलीयस् (सं० त्रि०) अतिशय वलयुक्त, वलिष्ठ।

वलीयान् (सं० पु०) गर्दभ, गदहा।

वलीवर्द (सं० पु०) वली च ईवर्दश्च इति। वृष, वैल। वैल पर चढ़ कर यात्रा नहीं करनी चाहिये, जो अज्ञान-वशतः ऐसा करते हैं उन्हें नरक होता है और उनके पितृगण उनके हाथका जलग्रहण नहीं करते। वैल-गाड़ी पर चढ़ कर यात्रा करना भी निषिद्ध वतलाया गया है।

वलीवर्दिनेय (सं० पु०) वलीवर्दका अपत्य।

वलीशक (सं० पु०) आम्रातक वृक्ष, अमड़ेका पेड़।

वलीह (सं० पु०) वह्लीक, उस देशके लोग।

वलुआ (हिं० वि०) १ रेतीला, जिसमें वालू अधिक मिला हो। (पु०) २ वह मट्टी या जमीन जिसमें वालूका अंश अधिक हो।

वलूच—एक जाति जिसके नाम पर देशका नाम पड़ा।
वलूच देखो।

वलूचिस्तान—भारतवर्षके उत्तर पश्चिम दिग्वर्त्ती एक राज्य। अक्षा० २४°५४′ से ३२°४′ उ० और देशा० ६०° ५६′ से ७०°१५′ पू०के मध्य अवस्थित है। इसके उत्तरमें अफगान राज्य, पूर्वमें भारतीय सिंधुप्रदेश, दक्षिण-में आरव्योपसागर और पश्चिममें पारसराज्य है। सिंधु-प्रदेशके दक्षिण पश्चिम कोणस्थ मोंज नामक अन्तरीप-से ले कर पश्चिमाभिमुखमें दस्तनदीतीरवर्त्ती जूनि

अंतरीप पर्यन्त समुद्रोपकूलवर्ती स्थान कहीं वालुकामय और कहीं कहीं छोटे छोटे पर्वतोंसे परिपूर्ण है। समुद्रके किनारे पूर्वसे पश्चिम गुरावसिह, रास अरुवा, रासन्, जेनिन प्रभृति और भी कितने अंतरीप तथा सोन्मियानी और गोयादर उपसागर विद्यमान हैं। शेषोक्त उपसागरके तट पर होमरा नामका एक छोटा-सा गांव है जहां एक किला देखा जाता है। यही स्थान यहांका श्रेष्ठ वन्दर है।

इस राज्यका कोई भी प्राचीन इतिहास नहीं मिलता। प्राकृतिक सौंदर्यके ऊपर लक्ष्य करनेसे जाना जाता है, कि यहाँके पूर्वतन अधिवासी विभवहीन थे। किन्तु वे स्वभावसे दृढ़काय और वलिष्ट हैं इसीलिये वैदेशिक लोग वलूचिस्तानसे हो कर भारत आनेमें भय खाते हैं। आरियानोंके उल्लेखसे हम जान सकते हैं, कि अलेकजेंडरके भारताभियान-कालमें ग्रीक सेना इसी मार्गसे गुजरी थी। उस समय मत्स्य और खजूर यहांके अधिवासियोंका एकमात्र आहार था। ईसाकी ६वीं शताब्दीके प्रारंभमें खलीफाकी सेनाने यह प्रदेश विध्वस्त कर डाला था।

इस राज्यका भूपरिमाण १३१८५१ वर्गमील और जनसंख्या ८१०७४६ है। ब्रहुई और वलूचियोंकी संख्या सबसे अधिक है। दोनों जातियोंकी नाना शाखा और प्रशाखा अब भी इस देशके नाना स्थानोंमें देखी जाती है; किन्तु ये लोग कब और कहांसे आये इसकी स्थिरता नहीं है। यद्यपि वलूच जातिके नामसे इस प्रदेशका नाम पड़ा है तो भी यथार्थमें ब्रहुईगण यहांके प्रधान थे और वे ही सबके ऊपर अधिकार विस्तार करते थे। ब्रहुईगणकी सामाजिक उन्नति आज भी नाना आचार-व्यवहारमें झलकती है। यहां पर बहुतसे प्रवाद प्रचलित हैं, उनमेंसे एकसे जाना जाता है, कि एक समय यहां हिंदू राजाओंका प्रभाव विस्तृत था। इस वंशके शेष राजाने अफगान-सर्दारके अधीनस्थ सिंधु-दस्युगणके आक्रमणसे अपने राज्यकी रक्षा करनेके लिये पर्वतवासियोंको बुलाया था। पार्वतीय कुम्भ नामक राखाल-सर्दारने दलवलके साथ आ विदेशियोंको हराया और अपनेको अधिक बलशाली जान हिंदूराजाको सिंहासनच्युत किया तथा उसे राज्यसे निकाल भगाया उसके अधिष्ठानसे कुभराणी-वंशकी प्रतिष्ठा हुई। ये कुंभराणीगण ब्रहुई थे कि नहीं, ठीक ठीक नहीं कह सकते। पर हां, ब्रहुईगणके वाद वलूच जातिका आगमन हुआ था, इसमें संदेह नहीं।

वलूचियोंका कहना है, कि वे अरबदेशीय चाकुर नामक किसी सर्दारके अधीन हो आलेपानगरसे आये हैं। अब भी मड़ि और भुगति जातिकी वासभूमिके निकट गिरिपथमें उस चाकुरका नाम पाया जाता है। कैहेरि नामक और एक शेख जातिका मुसलमान 'चाकर-कोमड़ी' पर्वतके तट पर रहता है। वह कहता है, कि वलूचगण सिरिया राज्यसे जब यहां आये, ठीक उसी समय उसके पूर्व पुरुष भी यहां आये थे।(१) ब्रहुई और वलूची दोनों ही सुन्नी संप्रदायके मुसलमान हैं।

कुंभरके पूर्ववर्ती हिन्दू राज्यवंशका कोई इतिहास नहीं मिलता। कुंभरकी चौथी पीढ़ीमें अबदुल्ला खाँ राजा हुए। इस उद्धत युवकने राज्यप्रयासी हो कच्छन्दाव पर आक्रमण किया। युद्धमें जयी हो कुंभरानीगणने गंदाव राजधानी पर अधिकार जमाया। इसी समय पारस्यपति नादिरशाह भारत-आक्रमणके लिये अग्रसर हुए। उन्होंने कंधारमें वलूचिस्तान जीतनेकी इच्छासे स्वीय सैन्यदल भेजा।

अबदुल्ला उनसे अवनति स्वीकार कर अपने पद पर अधिष्ठित रह राज्यशासन करने लगे। किन्तु यह सुख-भोग उन्हें अधिक दिन तक बदा नहीं था। सिन्धु-नवाबोंके साथ युद्ध करनेसे उनका प्राणान्त हो गया। उनकी मृत्युके वाद ज्येष्ठ पुत्र हाजी महम्मद खाँ राजा

(१) इसके द्वारा अनुमान किया जाता है, कि अलेकसन्दरसे नादिरशाहके आक्रमण पर्यन्त यहां नाना जातियोंने आकर प्रवेश किया था। ग्रेसियरकी (Gedrosia of Gressia) शक जातिकी कथा अरियानने 'Oritae वा Gedrosi नामसे उल्लेख की है। इसके पश्चिम ब्रहुई जाति या और इराबन नामके स्थानमें सरपारा नामक जातिका वासस्थान है। प्लिनि भ मसतीरवती Sarparac जातिका उल्लेख कर गये हैं। अलेकसंदरके अभियान कालमें वे उनके दलमें हो इस प्रदेशमें आये थे।

हुए। नवराजाके लांपट्य और स्वेच्छाचारितासे प्रजा विशेष विरक्त हो गई थी। इसी समय उनके कनिष्ठ भ्राता नाशिर खाँ नादिरशाहको संतुष्ट कर खिलातमें लौट आये। पीछे प्रजावर्गके अनुरोधसे निज भ्राताकी हत्या कर उन्होंने राज्यपद प्राप्त किया। नादिरशाह इस संवादसे बड़े प्रसन्न हुए और उन्होंने १७३९ ई०-में फर्मानके द्वारा उसको वलूचिस्तानका 'वेगलार्वि' वना दिया।

नाशिर खाँ योद्धा और राजनैतिक थे। वीरोचित साहससे वे शासनकार्य सम्पन्न करने लगे। खिलात नगरमें राजदुर्ग वनाया गया और उन्हींके यत्नसे उक्त नगरी नाना शोभासे शोभित होने लगी। १७४१ ई०में नादिर शाहकी मृत्युके वाद उन्होंने कावुलराज अहमद-शाह अवदालीको राजा स्वीकार किया। किन्तु १७५८ ई०में नाशिर खांके अपनेको स्वाधीन नरपति घोषित करने पर अहमद शाहने खांके विरुद्ध सेना भेजी। दो तीन युद्धोंके वाद अफगानसेनाके पराजित होने पर उभय पक्षमें शान्ति स्थापित हो गयो और संधिकी शर्तके अनुसार कावुलपति खाँके भ्राताको कन्यादान करने और खाँ स्वयं अहमदशाहको सैन्यद्वारा साहाय्य करनेके लिये प्रतिज्ञावद्ध हुए। कावुलके कितने ही युद्धोंमें खाँने युद्धविद्याका अच्छा परिचय दिया था। वृद्धावस्थामें उन्होंने अपने भाई वहराम खाँके विद्रोहदमनसे अच्छी ख्याति पायी थी। १७९५ ई०में उनकी मृत्युके वाद उनके ज्येष्ठ पुत्र महमूदखाँ राजा हुये। उनके राजत्वकालमें राज्य-में ज्यादा गड़वड़ी मची। ११८३९ ई०में अंग्रेजीसेनाने जव वेलान गिरिसङ्कटसे अफगानराज्यमें कूच किया, तव वलूच सर्दार मेहराव खाँने अंग्रेजोंके साथ विश्वास-घातकता की। इसलिये अंग्रजी सेनाने वलूचिस्तानको आक्रमण करके खिलात नगर पर अधिकार जमाया। इस युद्धमें स्वयं मेहराव खाँ मारे गये। अंगरेज-राजने खिलात नगरमें अपना शासन फैलाया। १८४१ ई०में मेहरावके नवालिग पुत्र नाशिर खाँ अंग्रेजोंके अनुग्रहसे वलूचिस्तानके सिंहासन पर अभिषिक्त हुये।

१८४३ ई०में नेपियरके सिंधु-अभियानसे ले कर १८५४ ई०तक अंग्रेज और वलूच-सर्दारोंके वीच कोई भी मनोवाद घटना न घटी। शेषोक्त वर्षमें लार्ड डल-हौसीके शासनके समय खिलातराज्यके वलूच-अधीश्वर मीर नाशिर खाँके साथ अंग्रेज प्रतिनिधिकी एक संधि हुई। उसमें शर्त यह ठहरी, कि वे अंग्रेजोंकी सीमान्त-रक्षा, स्वराज्यमें अंग्रेजी सेनाका समावेश और वणिक प्रभृतिकी स्वार्थ-रक्षाके सम्वन्धमें विशेष यत्नवान् रहेंगे और अंग्रेज-राज भी उन्हें वार्षिक १५ हजार मुद्रा देंगे। १८५६ ई० पर्यन्त नाशिरने विशेष राजभक्तिके साथ यह शर्त पालन की थी। उनकी मृत्यु होने पर उनके भाई मीर खुदावाद खाँने शासनभार ग्रहण किया। इस समय वलूचसर्दारोंने विद्रोही हो कर उनके अन्यतम भ्राता शेर-दिलखांको सिंहासन पर विठानेकी चेष्टा की। किन्तु अंग्रेजोंकी सहायतासे वे कृतकार्य न हो सके।(१) पर राज्यमें जो अराजकता फैल गयी थी उसकी गतिको कोई भी नहीं रोक सका। १८७४ ई०में अङ्गरेजोंके वलूचिस्तानके साथ राजनैतिक सम्वन्धमें छेड़छाड़ करने पर राज्यमें और भी गड़वड़ी मच गई। अन्तमें वलूच-सर्दारके वुलानेसे वाध्य हो १८७६ ई०में अंग्रेजोंने सुशा-सनकी स्थापनाके लिये सेना भेजी। खिलातपति और उनके सामन्तोंमें एक तरहसे मेल हो गया और उन्होंने याकुवावादमें अंग्रेज प्रतिनिधि लार्ड लिटनके साथ जा मुलाकात की। १८७७ ई०में विक्टोरियाके 'भारतसाम्राज्ञी' उपाधि ग्रहणके उपलक्षमें वे दिल्लीदरवारमें आ शामिल हुए थे। खांके स्वराज्यमें लौटने पर अंगरेज एजेण्टने कोयटामें रहनेकी अनुमति पाई। परवर्त्ती अंग्रेजोंके अफगान-अभियानमें वलूच-सरदारोंने अंग्रेजोंको विशेष सहायता पहुंचायी थी।

अभी वलूचिस्तानके झलावन, सरावन, खिलात, मकाण, लुस, कच्छगदावा और कोहि आदि विभाग हो गये हैं। खिलात इसकी राजधानी है। मस्तङ्ग (सरा-वन) कोजदार (झलावन), वेला (वेला), केज

---

(१) १८६३ ई०में अंगरेजप्रतिनिधिके चले आने पर शेरदिल खांने सर्दारोंके आदेशानुसार खुदावादको आक्रमण कर सिंहासन पर अधिकार जमाया। किंतु दूसरे साल हीमें इनको मार खुदावाद राजा हुये।

(मकाण), वाघ, दादर और गन्दावा (कच्छगंदावा) आदि प्रधान नगर हैं। इनके अलावा तुस्फि, सरावन, पस्नी, देवा, सोणमियानि, कोयटो, सोहवर, शाहगोदर, चाहगे, दिज, तुम्प, सासि, खरान और जेहोघाट आदि और भी कितने ही नगर हैं।

वलूची—वलूचिस्तानमें रहनेवाली सुन्नी संप्रदायभुक्त मुसलमान जाति। इस जातिके लोग सुन्दर, कर्मठ और योद्धा होते हैं। चोरी करना, गौ आदि चराना इनका प्रधान कार्य है। चोरो डकेतीके समय ये लोग निष्ठुर अत्याचार दिखलाते हैं सही, पर अन्य समय अतिथि-सत्कार भी करते हैं इसमें सन्देह नहीं। कभी कभी ये लोग विदेशीय मनुष्यका अतिथि-सत्कार कर उसका धन लूट लेते हैं। ये स्वभावतः ही अलस हैं। परन्तु युद्धविग्रह वा गीतवाद्यादि प्रमोदमें आ कर भी कर्त्तव्यपरायणताका परिचय नहीं भूलते। विलासिताकी सामिग्री जितनी है उतनी इनके पास सदा रहती है, इसमें किसी प्रकारकी त्रुटि देखनेमें नहीं आती। जूआ खेलना, तमाकू पीना, गांजा और अफीम प्रभृति मादक चीजोंके भक्षणमें इनकी उदासीनता नहीं है। पर कोई कोई ऐसे भी हैं जो मद्य नहीं पीते। दूध तथा गर्दभादि ग्रामीण पशुओंका मांस इन्हें बहुत प्रिय है। ये सबके सब मांस खाना बहुत पसन्द करते हैं। कच्चा मांस ही लसुन प्याजके साथ खानेमें इनकी ज्यादा रुचि होती है। अपनी अवस्थाके अनुकूल क्रीतदास रखते हैं। सबोंमें वहु विवाह होता है। एक व्यक्ति ८ या १०से अधिक पत्नी रखता है। गवादि द्वारा ये कन्या खरीदते हैं। विवाहमें मौलवी इनकी पुरोहिताई करते हैं। विधवा विवाह भी इनमें प्रचलित है। भाईके मरने पर उसकी स्त्रीको दूसरा ग्रहण कर सकता है। किसी व्यक्तिके मर जाने पर बन्धु वान्धव आ कर तीन रात्रि मृतदेहकी चौकी देते हैं और उसी समय महाभोज भी करते हैं।

ये लोग सफेद और नील वस्त्रका जामा पहनते हैं। इनका पायजामा 'सूसि' वस्त्रका वनता है। कमरमें कमरबंद और माथेमें पगड़ी लपेटते हैं।

वलूत (अ० पु०) ठंढे देशोंमें होनेवाला माजूफलकी जातिका एक पेड़। यह यूरोपमें बहुत होता है। इसके अनेक भेद हैं जिनमेंसे कुछ हिमालय पर भी विशेषतः पूरबी भाग (सिक्कम आदि)-में होते हैं। जो वलूत भारतवर्षमें होता है उसे वंज, मारु या सीता-सुपारी कहते हैं। इस प्रकारके पेड़ हिमालयमें सिन्धुनदके किनारेसे ले कर नेपाल तक होते हैं। शिमले, नैनीताल, मसूरी आदिमें भी इनके पेड़ अधिक मिलते हैं। इसकी लकड़ी मजबूत नहीं होती, जल्दी टूट जाती है। खास कर यह ईंधन और कोयलेके काममें आती है। घरोंमें भी कुछ लगाई जाती है। दार्जिलिङ्ग और मनीपुरकी ओर जो वृक्ष होते हैं उनकी लकड़ी मजबूत होती है। यूरोपमें वलूतका आदर बहुत प्राचीनकालसे है। इङ्गलैण्डके साहित्यमें इस तरुराजका वही स्थान है जो भारतीय साहित्यमें वट या आमका है।

वलूल (सं० त्रि०) वल-सिध्मादित्वात् वाहु० लच्-ऊङ्। वलयुक्त।

वलेश्वर—वङ्गालमें प्रवाहित गङ्गाकी एक शाखा नदी। कुष्ठियरके निकट यह गङ्गाके कलेवरका त्याग कर गड़ई नामसे दक्षिणकी ओर वह गई है और फिर वहांसे मधुमती नाम धारण कर यशोर और फरिदपुर जिलेके मध्य हो कर वहती है। आखिर यह वाकरगञ्ज जिलेके उत्तर-पश्चिम गोपालगञ्जके निकट वलेश्वर नामसे सुन्दरवनके मध्य होती हुई वङ्गोपसागरमें मिली है। यहां यह नदी हरिणघाटा नामसे मशहूर है। इसका मुहाना प्रायः ६ मील प्रशस्त है। इस नदीमें वाढ़ कभी नहीं आती।

वलैया (अ० स्त्री०) वला, वलाय।

वलोत्कट (सं० त्रि०) वलेन उत्कटः। १ अतिशय वलयुक्त। स्त्रियां टाप्। २ स्कन्दनुचर मातृकाभेद।

वलोद—मध्यप्रदेशके विलासपुर जिलान्तर्गत एक प्रधान नगर।

वल्क—प्राचीन जनपदभेद।

वल्कल (सं० पु०) वल्कल देखो।

वल्कस (सं० पु०) वह तलछट या मैल जो आसव उतारनेमें नीचे बैठ जाती है।

वल्कि (फा० अव्य०) १ अन्यथा, इसके विरुद्ध। २ ऐसा न हो कर ऐसा हो तो और अच्छा, बेहतर।

वल्ख—एक प्राचीन राज्य। वह्लिक देखो।

वल्ति—हिमालयकी पार्वत्यप्रदेशवासी एक भोटजाति। हिन्दूकुशसे ले कर तिब्बतके नाना स्थानोंमें इनका वास है। इन लोगोंने बहुत कुछ मुसलमानोंका अनुकरण करना सीख लिया है।

वल्वज (सं० पु०) तृणभेद।

वल्य (सं० क्ली०) वलाय हितं वल (वुञ्च्छणकठजिलेति। पा ४।२।८०) इति य। १ प्रधान धातु, शुक्र। (पु०) २ बुद्धभिक्षुक। (त्रि०) ३ बलकर, ताकतवर।

वल्या (सं० स्त्री०) वल्या टाप्। १ अतिवला। २ अश्वगन्धा। ३ प्रसारिणी। ३ शिम्बीडी, चंगोनी।

वल्ल (सं० पु०) वल्ल देखो।

वल्लकी (सं० स्त्री०) वल्लकी देखो।

वल्लभ (सं० पु०) वल्लभ देखो।

वल्लम (हिं० पु०) १ छड़, वल्ला। २ डंडा, सोंटा। ३ वह सुनहरा या रूपहला डंडा जिसे प्रतिहार या चोवदार राजाओंके आगे आगे ले कर चलते हैं। ४ वरछा, भाला।

वल्लमटेर (अं० पु०) १ स्वेच्छापूर्वक सेनामें भर्त्ती होनेवाला। २ स्वेच्छा सेवक।

वल्लमवर्दार (हिं० पु०) वह नौकर जो राजाओंकी सवारी या वरातके साथ हाथमें वल्लम ले कर चलता है।

वल्लव (सं० पु०) १ जातिविशेष। २ पाचक, रसोइया। ३ भीमका वह नाम जो उन्होंने विराटके यहां रसोइयेके रूपमें अज्ञानवास करनेके समय धारण किया था। ४ गोपालक, चरवाहा।

वल्लवगढ़—१ पञ्जावके दिल्ली जिलेकी तहसील। यह अक्षा० २८° १२´से २८° ३६´ उ० तथा देशा० ७७° ७´से ७७° ३१´ पू० के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ३६ वगमील और जनसंख्या लाखसे ऊपर है। यमुना नदी तहसीलके पश्चिम हो कर वहती है। इसमें दो शहर और २४७ ग्राम लगते हैं।

२ उक्त तहसीलका एक शहर। यह अक्षा० २८° २०´ उ० तथा देशा० ७७° २०´ पू० दिल्लीसे २४ मील दक्षिणमें अवस्थित है। जनसंख्या प्रायः ४५०६ है। यह नाम वलराम शब्दका अपभ्रंश है। वलराम एक जाट सरदार थे जिन्होंने यहां पर अपने नाम पर एक दुर्ग और प्रासाद वनवाया था। १७७५ ई०में दिल्लीसम्राट्ने यह स्थान अजित् सिंहको समर्पण किया। पीछे उनके लड़के वहादुर राजगद्दी पर वैठे। अजित्के उत्तराधिकारीने गदरके समय विद्राहियोंका साथ दिया था, इस कारण पीछे वृटिश सरकारने उनका राज्य छीन लिया। तभीसे यह अंगरेजोंके दखलमें आ रहा है। शहरमें एक वर्नाक्युलर स्कूल और चिकित्सालय है।

वल्ला (हिं० पु०) १ लकड़ीकी लंवी, सीधी और मोटी छड़ या लट्ठा। २ मोटा डंडा, दंड। ३ गेंद मारनेका लकड़ीका डंडा जो आगेकी ओर चौड़ा और चिपटा होता है। ४ वांस या डंडा जिससे नाव खेते हैं। ५ गोवरकी सुखाई हुई पहियेके आकारकी गोल टिकिया जो होलिका जलनेके समय उसमें डाली जाती है।

वल्लापलि—मन्द्राजप्रदेशके कड़ापा जिलान्तर्गत एक वनविभाग। यहां तरह तरहके वहुमूल्य काष्ठ पाये जाते हैं।

वल्लारी (हिं० स्त्री०) सम्पूर्ण जातिकी एक रागिनी जिसमें केवल कोमल गांधार लगता है।

वल्लालदेव—दाक्षिणात्यके शिलाहार-वंशीय एक राजा। ये १०१० शकमें विद्यमान थे।

वल्लालवाड़ी—१ प्राचीन गौड़राज्यके अन्तर्गत एक स्थान यह अभी स्तूपाकारमें परिणत हो गया है। इसका घेरा एक मीलसे कम नहीं होगा। वहिर्भागमें जो विस्तृत वांध देखा जाता है, उसका निम्नभाग ५० फुट विस्तृत है। उस प्राचीरके वाहर और भीतर ७५ फुट प्रशस्त परिखा विद्यमान है।

२ विक्रमपुर जिलान्तर्गत एक स्थान। प्रवाद है, कि सेनवंशीय राजा वल्लालसेन यहां आ कर रहते थे। इस स्थानमें ७६० फुट चतुरस्र एक मृत्तिकानिर्मित किलेका ध्वंसावशेष दृष्टिगोचर होता है। उसके पास ही रामपाल नामक दिग्गी है।

वल्लालसेन और विक्रमपुर देखो।

वल्लालपुर—मध्यप्रदेशके चाँदा जिलेके अन्तर्गत एक प्राचीन नगर। यह अक्षा० १९° ५´४५´´ उ० तथा देशा० ७९° २३´१५´´ पू०के मध्य अवस्थित है। एक समय इस जनपदमें प्राचीन गोंड़राजवंशकी राजधानी थी। वह प्राचीन नगर जंगलमें परिणत हो जाने पर भी उसका

निदर्शन आज भी देखनेमें आता है। १८०० ई०में यहां पत्थरका एक दुर्ग बनाया गया था। इसके उत्तरमें पुष्करिणी और पूर्वमें गौंड़राजके समाधि-मन्दिरका भग्नावशेष पड़ा है। यहां वर्द्धानदीकी एक प्रशाखाके मध्य एक देवमन्दिर स्थापित है। नदीमें बाढ़ आनेसे वह मन्दिर कुछ समय तक जलमग्न रहता है। यहांकी समुच्च पर्वतमालाके मध्य हो कर वर्द्धानदी वह गई है और इधर उधर वनराजि विराजित रहनेके कारण इस स्थानका प्राकृतिक सौन्दर्य सर्वापेक्षा मनोरम है।

वल्लालराजवंश—दाक्षिणात्यके एक प्रसिद्ध राजवंश। यह वंश हयशाल वल्लाल नामसे प्रसिद्ध है। वर्त्तमान महिसुर-राज्यके समीपवर्त्ती स्थानोंमें इस वंशने १३वीं शताब्दी तक राज्य किया था। पहले ये लोग कलचूरी-वंशीय राजाओंके सामन्तरूपमें गिने जाते थे। आखिर उक्त राजवंशका अधःपतन होने पर उन्हीं लोगोंने इस प्रदेशका शासन-भार ग्रहण किया।

वल्लालराजगण यादववंशके थे। दाक्षिणात्यमें जब उन लोगोंका पूरा प्रभाव फैला हुआ था, उस समय उन्होंने यादव राजाओंकी प्राचीन राजधानी द्वारसमुद्रमें (वर्त्तमान नाम हलेवीड़) राज्य बसाया। शाल वा हय-शाल नामक कोई व्यक्ति इस वंशके प्रतिष्ठाता थे, ऐसा बहुतेरोंका विश्वास है।(१) किन्तु उसका कोई प्रमाण नहीं मिलता। शिलालिपिसे वल्लाल वंशीय राजाओंकी जो वंशतालिका पाई गई है, वह इस प्रकार है—

१०४७ ई०में उत्कीर्ण शिलालिपि(२)से मालूम होता है, कि राजा विनियादित्य त्रिभुवनमल्ल पश्चिम चालुक्य-राज छठे विक्रमादित्यके सामन्त थे। उनके पुत्रका नाम एड़गङ्ग था। एड़गङ्गके तीन पुत्र थे, वल्लाल, विष्णु-वर्द्धन और उदयादित्य। वल्लालने निज भुजबलसे शान्ताराराज जगद्देवको ११०३ ई०में परास्त किया था। उनके छोटे भाई राजा विष्णुवर्द्धनने।(३) गङ्गराजधानी तलगढ़ पर अधिकार जमाया। इन्हींके अधिकारकाल-में वल्लालराजवंशकी ख्याति चारों ओर फैल गई थी। जनसाधारणका विश्वास है, कि रामानुजाचार्यने उन्हें वैष्णवधर्ममें दीक्षित किया था। उनके लड़के १म नर-सिंहने ११४२-११६१ ई० तक राज्य किया। पीछे राजा २य वल्लाल सिंहासन पर बैठे। वे ११६२-१२११ ई० तक राजा रहे। उन्होंने कलचूरीराजको परास्त कर राज-मुकुट धारण किया। पीछे पाण्ड्य, चोड़ आदि दाक्षिणात्य राजाओंको जीत कर अपना प्रभाव फैलाया। १२२३ ई०में देवगिरि यादवराजसे २य नरसिंह परास्त हुए, यह हमें शिलालिपिसे मालूम होता है। उसके बाद राजा सोमेश्वरने चोड़राज्यके अन्तर्गत विक्रमपुर जा कर राजधानी बसाई। (१२२५ ई०में) राजा ३य नरसिंह द्वारसमुद्रमें राज्य करते थे।(४) राजा ३य वल्लाल वा वीर वल्लालदेवने दाक्षिणात्यमें मुसलमानी आक्रमण पर्यन्त (१३१० ई०) राज्य किया था। मालिक काफुर द्वारसमुद्रके यादवराजाओंको जीतनेके लिये दाक्षिणात्य गये थे। युद्ध में वल्लाल पकड़े गये और पराजित हुए। उनका राज-पाट मुसलमानोंके हाथ लगा, पर उन्हीं मुसलमानोंकी कृपासे वे १३२७ ई० तक राज्यशासन करते रहे थे। पीछे मुसलमानोंके बार बार आक्रमणसे वल्लालराजवंश छार-खार हो गया। १३३७ ई०में हम देखते हैं, कि दाक्षिणात्य के मुसलमान शासनकर्त्ताने तानुनगरके हयशालके यहां आश्रय ग्रहण किया था। १३४७ ई०में द्वारसमुद्रके हय-शालराज वल्लालदेवने अपरापर हिन्दूराजाओंके साथ मिल कर मुसमानोंको दाक्षिणात्यमें मस्तक उठानेका अवसर नहीं दिया और प्रायः दो सदी तक मुसलमान-लोग हिन्दूराजाओंके पदानत रहे थे।

वल्लालरायदुर्ग—महिसुरराज्यके कदूर जिलान्तर्गत पश्चिम-घाट पर्वतमालाका एक पर्वत। यह समुद्रपृष्ठसे ४६४६ फुट ऊंचा है। दाक्षिणात्यमें वल्लालवंशीय राजाओंके

(१) चेन्न-वसवन्न-कालज्ञान नामक पुस्तकमें हय शाल-का राज्यकाल ९८४से १०४३ ई० तक बतलाया गया है।

(२) Mr. Rice ने १०३६ ई०में उत्कीर्ण उक्त राज्यकी एक और शिलालिपिका उल्लेख किया है।

(३) विट्टिदेव, विट्टिग, त्रिभुवनमल्लदेव २य, भुजवल-गङ्ग, वीरगङ्ग, विक्रमगङ्ग कई एक विरुद (पदवी) देखे जाते हैं।

(४) इनके राज्यकालमें १२५४से १२८६ ई०के मध्य शिला-लिपि उत्कीर्ण देखी जाती हैं।

अधिकारकालमें यह पर्वत दूरविस्तृत दुर्गमालासे सुशोभित था ।

वल्लालसेन—गौड़देशके सेनवंशीय एक राजा। गौड़में जितने राजा हो चुके हैं उन सबमें सेनवंशीय वल्लालका नाम वङ्गालमें किसीसे छिपा नहीं है। वल्लालसेनके जन्म और जातिको ले कर अनेक लोग अनेक प्रकारकी बातें कहते हैं। आधुनिक वैद्य कुलजीके मतमें—

"आदिशूरका वंश ध्वंस सेनावंश ताजा ।
विष्वकसेनका क्षेत्रज पुत्र वल्लालसेन राजा ॥"

फिर विक्रमपुरमें यह प्रवाद इनके विषयमें सुना जाता है—वल्लालसेन वैद्य थे, ब्रह्मपुत्रनदके पुत्र थे, सेकशुभोदया नामक ग्रन्थमें भी इसी किंवदन्तीका उल्लेख मिलता है। आईन-इ-अकबरीके मतमें ये कायस्थ बतलाये गये हैं[१]। किन्तु वल्लालसेनके स्वरचित दानसागर और अद्भुत सागर, सेनराजाओंकी शिलालिपि, हरिमिश्रकी कारिका और आनंदभट्टरचित वल्लालचरितमें (२) वल्लालसेनको चन्द्रवंशीय ब्रह्मक्षत्रिय (३), विजयसेनके पुत्र, हेमन्तसेनके पौत्र और सामन्तसेनके प्रपौत्र बतलाया है।

लक्ष्मणसेन और उनके पुत्र विश्वरूपके ताम्रशासन तथा वल्लालके स्वरचित ग्रंथ और ताम्रशासनमें वल्लालसेन "निःशंक शंकर गौड़ेश्वर" और महावीर कह कर वर्णित हुये हैं। वल्लालचरित-लेखक आनन्दभट्टने लिखा है, 'वल्लालसेन राढ़, वरेन्द्र, वगड़ी, वङ्ग और मिथिला इन पांच गौड़के अधीश्वर थे। उनके समय भी मगधमें बौद्धाधिपत्य विलुप्त नहीं हुआ था। इस समय सुवर्णवणिकोंमें वल्लभानंद प्रधान थे; वे मगधाधिपतिके श्वशुर होते थे। वल्लालसेनने इनसे युद्धके लिये कुछ रुपये कर्ज मांगे थे, पर वल्लभानंदने नहीं दिये। इस कारण सुवर्णवणिकोंके ऊपर सेनवंशका अत्यन्त प्रकोप रहा।

वल्लालसेनने गौड़राजधानीमें एक बड़ा भारी यज्ञ किया। उस समय यज्ञसभामें विक्रमपुरसे ध्रुवसेन, सुखसेन, भीमसेन आदि इनके आत्मीय लोग उपस्थित हुए। भीमसेनके ऊपर आहारके बन्दोबस्त करनेका भार था। भोजन-स्थानमें ब्राह्मण, क्षत्रिय और शूद्र इन तीन वर्गोंका आसन निर्दिष्ट था। सभी जाति अपने अपने आसन पर बैठी। शूद्रोंके साथ सोनारोंका आसन दिया गया था। किन्तु कोई भी सोनार निर्दिष्ट आसन पर न बैठे और चले गये। भीमसेनने वल्लालसे कहा, "सोनारोंका नेता बड़ा अभिमानी हो गया है, वह मगधेश्वर पालराजका श्वसुर वन कर धराको मिट्टीके वर्तन समान समझने लगा है। वह दुर्वृत्त वृषल स्वजनवर्गके साथ आपकी अवज्ञाकर चला गया है।" इस पर वल्लालसेनने अत्यन्त क्रुद्ध हो तमाम ढिंढोरा पिटवा दिया, कि आजसे सभी सोनारोंकी शूद्रमें गिनती हुई। जो ब्राह्मण इनका याजन, अध्यापन और प्रतिग्रह करेंगे, वे निश्चय पतित होंगे। यह राजादेश सुन सुवर्णकार बड़ बिगड़े और उन्होंने दासव्यवसायियोंसे दूना, तिगुना मूल्य दे कर सभी दास खरीद लिये। दासाभावसे प्रजाको महा कष्ट होने लगा। इस समय कैवर्त्तलोग राजादेशसे दास्यकर्ममें नियुक्त हुए और वे जलाचरणीय भी समझे जाने लगे। कैवर्त्तोंका प्रधान महेश पहले महत्तर था, अभी वह महामाण्डलिक हो दक्षिणघाटमें

---

(१) वल्लालके कायस्थ होनेमें लोग यह कारण बतलाते हैं, कि इस वंशने कायस्थको कन्या दी थी। चंद्रद्वीप देखो।

(२) पहिले 'कुलीन' शब्दमें मुद्रित-वल्लालचरित पर निर्भर करके लिखा गया था, कि १३०० शकमें वल्लाल नामके एक स्वतंत्र वैद्यवंशीय राजा विक्रमपुर अंचलमें राज्य करते थे; किन्तु इस समयकी हस्तलिखित वल्लालचरितकी पोथीसे मालूम होता है, कि वल्लाल ब्रह्मक्षत्रिय थे और अङ्गाधिप कर्णके वंशमें इनका जन्म हुआ था।

(३) ब्रह्मक्षत्रियकी उत्पत्ति ले कर वल्लालचरितकी पोथीमें लिखा है—

"ब्रह्मक्षत्रस्य यो योनिर्वंशः क्षत्रियपूर्वजः।
सेनवंशस्ततो जातो यस्मिन् जातोऽसि पाण्डव ॥"

दाक्षिणात्य और सिन्धुप्रदेशमें आज भी क्षत्रिय रहते हैं। उनकी अवस्था कायस्थोंके समान है और किसी स्थानमें ये कायस्थ कहे जाते हैं। कुलीन देखो।

भेजा गया।(१) इस समयसे मालाकार, कुम्भकार और कर्मकार ये तीनों जातियां सच्छूद्रमें गिनी जाने लगीं।

दास व्यवसाय बंद कर देनेसे सभी प्रजा सुवर्ण-वणिकों पर विगड़ गई थी। अभी ब्राह्मणोंकी उत्तेजनासे वल्लालसेनने घोषणा कर दी, 'कोई भी वणिक् यज्ञसूत्र धारण नहीं कर सकता जिस किसीके गलेमें यज्ञसूत्र देखा जायगा उसे दंड मिलेगा और यज्ञसूत्र तोड़ दिया जायगा।' राजभयसे इस समय कितने वणिक् गौड़ छोड़ कर चले गये और जो रहे वे यज्ञोपवीत फेंक कर नीच शूद्रमें गिने जाने लगे। (वल्लालचरित)

वल्लालचरितसे जाना जाता है, कि इसी गौड़ाधिपने बंगालकी समस्त जातिकी यथायथ सामाजिक सम्मान-व्यवस्था कर दी थी। उनका प्रधान कार्य ब्राह्मण और कायस्थोंमेंसे महावंशसम्भूत और नवगुणयुक्त व्यक्तियोंको कौलीन्यमर्यादा प्रदान करना था। उनसे राढ़ी और वारेन्द्र ब्राह्मणोंने कौलीन्यमर्यादा प्राप्त की थी। वल्लालचरितकार आनन्दभट्टने लिखा है, कि वैदिक लोग वणिकोंके पक्षपाती थे, इसलिये वल्लालने उन्हें कौलीन्यमर्यादा प्रदान नहीं की थी।

कुलीन और कायस्थ शब्द देखो।

वल्लालके पिता विजयसेनसे सेनवंशका सौभाग्योदय होने पर भी वल्लालके समयमें ही गौड़देशमें ब्राह्मण्य-धर्मने प्रधानता पाई, बौद्ध धर्मका प्रभाव घटा और मिथिला पर्यन्त सेनराज्य विस्तृत हुआ। पालवंशीय शेष गोविन्दलाल ११६१ ई०में वल्लालसेनसे पराजित हुए थे। उनके प्रभावसे अधिकांश बौद्ध गौड़का परित्याग कर नेपाल भाग गये थे। बौद्ध प्लावित गौड़देशका उद्धार कर ब्राह्मणप्राधान्य स्थापन करनेके लिये ही वल्लालसेन समाज-संस्कारमें प्रवृत्त हुए थे। किसीका यह भी कहना है, कि वल्लालसेन अतिशय ब्राह्मणभक्त थे इसीलिये 'ब्रह्मक्षत्रिय' नामसे वे तमाम प्रसिद्ध हुए हैं।

समाजशासन करनेके लिये वल्लालसेनने उत्तर राढ़, दक्षिण राढ़, वारेंद्र और वंग इन पांच स्थानोंमें एक एक राजधानी बसाई थी। आज भी नवद्वीप, वर्द्धमान जिला, गौड़ और विक्रमपुरमें 'वल्लालवाड़ी', 'वल्लालदिग्गी' आदि उसके निदर्शन मौजूद हैं।

आईन-इ-अकबरीके मतसे वल्लालसेनने ५० वर्ष राज्य किया। फिर आनन्दभट्टके विचारमें ६५ वर्ष २ मासकी उम्रमें ४० वर्ष राज्य करनेके बाद १०२८ शकमें वल्लालसेनकी मृत्यु हुई। शेषोक्त मत समीचीन प्रतीत नहीं होता। वल्लालसेनके अद्भुतसागरमें लिखा है—

गौड़ेन्द्रगणरूपी कुञ्जर पुञ्जके बंधनस्तम्भस्वरूप भुजशाली महीपति वल्लालने १०६० शकमें अद्भुतसागर-की रचना आरम्भ की। ग्रंथकी रचना शेष न हो पाई थी, कि इतनेमें उनके पुत्रका राज्यारोहणकाल उपस्थित हुआ। इस महासमारोह कार्यमें व्यापृत होनेके कारण स्वरचित ग्रंथकी परिसमाप्ति व न कर सके और प्रभूत दान जलप्रवाहमें असमय गङ्गा और यमुनाका सङ्गम संपादन करते हुए पत्नी सहित अमरधामको सिधार गये। अनन्तर महामान्य भूपति लक्ष्मणसेनने बहुत तनमन

१—कैवर्त्तोंकी जलचारणीयताके सम्बन्धमें आनंदभट्टने १४११ शकमें लिखा है,—

एक दिन वल्लालसेन मृगया करने वनमें गये। वहां वे एक कर्मकार रमणीके रूप पर मुग्ध हो उसे घर ले आये और विवाह कर लिया। उस पद्माक्षीने लक्ष्मणसेनको अनिष्ट करनेके लिये एक दिन राजा वल्लालसेनसे कहा, कि लक्ष्मणसेनने उसके प्रति बुरी इच्छा प्रकट की है। इस पर वल्लालसेन बड़े क्रुद्ध हुए और लक्ष्मणसेनका शिरश्छेद करनेका हुकुम दे दिया। इसकी खबर लगते ही लक्ष्मणसेन राजधानीका परित्याग कर दूरवर्त्ती देशमें चला गया। पीछे वल्लालका क्रोध जब शांत हुआ तब एक दिन वल्लालसेनकी पुत्रवधूने विरहपूर्ण श्लोक लिख कर उनके पास भेज दिया। वल्लालसेनने विरहजनित श्लोक पढ़ लक्ष्मणसेनको तुरंत बुला लेनेके लिये आदमी भेजा। कैवर्त्तोंने १८ डाँड़वाली नावसे खे कर लक्ष्मणसेनको गौड़ेश्वरमें बहुत जल्द हाजिर कर दिया। वल्लाल उनके इस कामसे अति संतुष्ट हो उन्हें जलाचरणीय बना दिया। उसी समयसे जो जालिक कैवर्त्त लक्ष्मणसेनको लाये थे, वे कृषिकार्य द्वारा हालिक समझे जाने लगे।

(वल्लालचरित)

लगा कर राजा वल्लालसेनकृत अद्भुतसागरका अवशिष्टांश संकलन किया।

इस कथासे मालूम होता है, कि वल्लालसेनने १०६० शकमें अद्भुतसागरका लिखना आरम्भ किया था। इस ग्रन्थकी परिसमाप्तिके पहिले लक्ष्मणसेनको राज्यमें अभिषिक्त कर आप इस स्वर्गलोकसे चल बसे। वल्लालके दानसागरसे पता चलता है, कि १०९१ शकमें यह ग्रंथ सम्पूर्ण हुआ था। संभव है, इसी शकमें अथवा इसके पहिले वल्लाल स्वर्गारोहण कर गये हों।

सेनराजवंश देखो।

वल्लालकी मृत्युको ले कर वल्लालचरितमें एक गल्प इस प्रकार लिखी है,—एक बार वल्लाल वायादुम्ब नामक एक म्लेच्छके साथ युद्ध करने गये। युद्धयात्रामें वे अपने साथ दो कबूतर ले गये थे। जाते समय उन्होंने महिषियोंसे कह दिया था, 'ये कबूतर वापिस आ जांय, तो जानना, हमारी मृत्यु हो गई है, तुम लोग सभी चितारोहण कर लेना।' इधर वल्लालने महायुद्धमें वायादुम्बको निहत किया। युद्धके अवसान होने पर श्रान्ति दूर करनेके लिये वे ज्यों ही स्नान करने जलाशयमें घुसे, त्यों ही वे दोनों कबूतर उड़ कर घर पहुंचे। वल्लालकी महिषियोंने कबूतरको देख पतिकी मृत्युका निश्चय कर लिया और अपने सतीत्वका परिचय दिया। वल्लालसेनने घर आकर शोचनीय दृश्य देख, अग्निमें अपना काम तमाम किया। किन्तु इस गल्पकी सत्यता प्रतीत नहीं होती। गौड़ाधिप वल्लालसेनके दो सौ वर्ष बाद विक्रमपुरमें रामपासके निकट वल्लालसेन नामक एक वैद्य राजा प्रादुर्भूत हुए। वे ही मुसलमानोंके हाथसे मारे गये थे, ऐसा प्रवाद प्रचलित है।

वल्व (सं० क्ली०) ज्योतिषोक्त करणभेद।

वल्वजा (सं० स्त्री०) एक घासका नाम।

वल्वल (सं० पु०) इल्वल नामक दैत्यके पुत्रका नाम।

वल्हि (सं० पु०) वल्ह-इन्। १ क्षत्रियभेद। २ जनपदभेद।

ववंड़ना (हिं० क्रि०) व्यर्थ फिरना, इधर उधर घूमना।

ववंडर (हिं० पु०) १ चक्रवात, चक्रकी तरह घूमती हुई वायु। २ प्रचण्ड वायु, आँधी, तूफान।

वव (सं० पु०) ज्योतिषोक्त प्रथम करण। इस करणमें शुभाशुभ कर्मादि करनेसे कल्याण होता है। जो इस करणमें जन्म लेता, वह शूर, अतिशय धीरप्रकृतियुक्त, कृतकर्मा और पण्डित होता है तथा कमला उसके घरमें हमेशा वास करती है। (कोष्ठी प्र०)

ववघूरा (हिं० पु०) ववंडर, वगूला।

ववना (हिं० क्रि०) छिटकना, छितराना, बिखरना।

ववरना (हिं० क्रि०) बौरना देखो।

ववादा (हिं० स्त्री०) एक प्रकारकी जड़ी या ओषधि जो हल्दीकी तरहकी होती है।

ववासीर (अ० स्त्री०) एक प्रकारका रोग। इसमें गुदेन्द्रियमें मस्से या उभार उत्पन्न हो जाते हैं। इसमें रोगीको पीड़ा होती है और पखानेके समय मस्सोंसे रक्त भी गिरता है। अर्शरोग देखो।

वशिष्ट (सं० पु०) वशिष्ठ देखो।

वशीरी (अ० पु०) अमृतसरमें मिलनेवाला एक प्रकारका बारीक रेशमी कपड़ा।

वष्कय (सं० पु०) तरुण वत्स, एक वर्षका बछड़ा।

वष्कयणी (सं० स्त्री०) वष्कयस्तरुणवत्सः सोऽस्ति अस्याः वष्कयपामादित्वान्न, पक्षे इनि ततो णत्वं। चिरप्रसूता गाभि, वह गाय जिसको ब्याए हुए बहुत समय हो गया हो।

वसंत (हिं० पु०) वसन्त देखो।

वसंता (हिं० पु०) हरे रंगकी एक चिड़िया। इसका सिरसे ले कर कंठ तकका भाग लाल होता है।

वसंती (हिं० वि०) १ वसन्त ऋतु सम्बन्धी, वसन्तका। २ खुलते हुए पीले रंगका, सरसोंके फूलके रंगका। (पु०) ३ एक रंगका नाम जो तुनके फूलों आदिमें रंगनेसे आता है। यह हल्का पीला होता है पर गन्धकीसे अधिक तेज होता है। वसन्त ऋतुमें यह रंग लोगोंको अधिक प्रिय होता है। ४ पीला कपड़ा।

वसंदर (हिं० पु०) अग्नि, आग।

वस (फा० वि०) १ पर्याप्त, भरपूर। (अव्य०) २ पर्याप्त, काफी।

वसई (बेसिन)—१ बम्बई जिलेके थाना जिलान्तर्गत एक तालुक। यह अक्षा० १६° १६´ से १६° ३५´ उ० तथा देशा० ७२° ४४´ से ७३° १´ पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण २२३ वर्गमील है। इसमें वसाँई नामका एक शहर और ६० ग्राम लगते हैं। यहांकी जमीन बहुत उर्वरा है। धान, केला, ईख और पान बहुतायतसे उत्पन्न होता है। तुङ्गल और कामन नामक पर्वतमाला तालुककी शोभाको बढ़ाता है। कामन-दुर्ग समुद्रपृष्ठसे २१६० फुट ऊंचा है। जलवायु स्वास्थ्यकर है।

२ उक्त तालुकका एक शहर। यह अक्षा० १६° २०´ उ० तथा देशा० ७२° ४६´ पू० वसिन रोड स्टेशनसे ५ मीलकी दूरी पर अवस्थित है। जनसंख्या १०७०२ है। यहां वम्बई, वड़ौदा और मध्यभारतीय रेल-पथका एक स्टेशन है। पहले वसाँई द्वीप और भारतीय विभागके मध्य जलनाली बहनेके कारण पुर्त्तगीजोंने जहाजादि रखनेके लिये इस स्थानको उपयुक्त समझा। इस कारण उन्होंने गुजरातपति बहादुरशाहसे १५३४ ई०में इसका अधिकार ग्रहण किया और उसके दो वर्ष बाद यहां एक दुर्ग वनवाया। प्रायः दो शताब्दी तक यह स्थान पुर्त्तगीजोंके दखलमें रहा। उस समय शहरकी ऐसी श्रीवृद्धि हुई, कि यह Court of the North नामसे पुर्त्तगीजोंके मध्य प्रसिद्ध हो गया। उस समय यहां सैकड़ों वणिक् रहते थे। उनकी सुरम्य अट्टालिकासे नगरको शोभा निराली थी। हिदलगो नामक महाधनवान् व्यक्ति ही नगरमें अपना घर बना सकते थे, दूसरेको वसनेका हुकुम नहीं था। वे लोग शहरके बाहर घर बना कर रहते थे। १३वीं शताब्दीके शेष भागमें यहां महामारीका प्रकोप हुआ। १६९५ ई०में यहांके प्रायः आधेसे अधिक अधिवासी कराल कालके गालमें फंसे थे।

पुर्त्तगीजोंका प्रभाव खर्व होने पर भी १७२० ई० तक वसाँई नगरकी श्रीवृद्धि नष्ट नहीं हुई। उस समय पश्चिम भारतमें केवल यही एक ऐसा शहर था जो अभिमानके साथ अपना मस्तक उठाए हुए था। उधर महाराष्ट्रीयगण भी भविष्य पथ धीरे धीरे साफ कर रहे थे। अतएव एकके स्पर्द्धाशाली-अभ्युदय पर दूसरेकी क्षीणमुखज्योति और भी प्रभाशून्य हो रही थी। महाराष्ट्रसिंहके तर्जन गर्जनसे भीत पुर्त्तगीजदल अवसन्न होने लगा। १७३६ ई०में चिमनाजी अप्पाने दलबलके साथ वसाँईको घेर लिया। तीन मास तक तुमुल संग्राम होते रहनेके बाद पुर्त्तगीजोंने मराठा-सेनापतिके हाथ आत्मसमर्पण किया। वसाँई नगर और जिला पेशवाने अपने अधिकारमें कर लिया। महाराष्ट्र-अधिकारके समय यह स्थान वैतरणनदी और दमनके मध्यवर्त्ती भूभागका प्रधान वाणिज्यक्षेत्र बनाया गया। १७८० ई०में अङ्गरेजी सेनाने वसाँई पर अधिकार किया। १७८२ ई०में सलवाईकी सन्धिके अनुसार यह स्थान पुनः मराठोंको लौटा दिया गया। १८१८ ई०में अन्तिम पेशवाकी सिंहासनच्युतिके बाद यह अङ्गरेजी शासनाधीन हो कर थाना जिलेके अन्तर्भुक्त हुआ।

प्राचीन वसाँई नगरके प्राचीर और प्राकारादि आज भी विद्यमान हैं। उस प्राचीर परिवेष्टित स्थानके मध्य १५३७ ई०में प्रतिष्ठित सेण्ट एन्थोनी, सेण्टपाल और डोमिनिकन कनमेण्ट आदि खृष्ट धर्ममन्दिरके ध्वंसावशिष्ट निदर्शन आज भी देखनेमें आते हैं।

वसई (बेसिन)—अंगरेजाधिकृत ब्रह्मके पेगू विभागके अन्तर्गत एक जिला। यह अक्षा० १५° ५´ से १७° ३०´ उ० तथा देशा० ९४° ११´ से ९५° २८´ पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ४१२७ वर्गमील है। आराकन पर्वतमालाके मध्यदेशमें विलम्बित रहनेके कारण इसका पश्चिमार्द्ध गण्डशैलसे समाकीर्ण है और पूर्वार्द्ध इरावती नदीकी तीन प्रधान शाखा विस्तृत रहनेके कारण विशेष उर्वरा है।

इस जिलेके वङ्गोपसागरकूल पर नेग्रिस तथा पगोडा नामक दो अन्तरीप हैं। उपकूल भागमेंसे कुछ तो वनमालासमाच्छादित हैं और कुछ वालुकामय भूमि दृष्टिगोचर होती है। पैमल, पिन्थामू, रवेदायेभ्यू, वसाँई, थेक्कयथू आदि नदियाँ समुद्रगर्भमें आ कर मिल गई हैं।

इस जिलेका प्राचीन इतिहास नहीं मिलता। टलेमीने भारतीय नदीवर्णनस्थलमें गङ्गाके पूर्वदिग्वर्त्ती जिन सब नदियों और पर्वतोंका उल्लेख किया है, उनमेंसे वसाँई नदीका नाम भी पाया जाता है। तैलङ्ग राजइतिहासमें (६२६ ई०में वसाँईके ३२ नगरोंका नामोल्लेख है।

उस समय यह स्थान पेगूराज्यके अन्तर्भुक्त था। १२५० ई०में उम-मदन-दि नाम्नी किसी तैलङ्ग राजकन्याके राजत्वकालमें ब्रह्मवासियोंने वसांई पर अधिकार जमाया। राज-इतिहासके मतसे १२८६ ई०में यह प्रदेश पुनः पेगूके शासनाधीन हुआ। १३८३ ई०में तैलङ्गसम्राट् रज-धीरित् जब राजसिंहासन पर बैठे तब मौङ्गमेके शासनकर्त्ता लौक-ग्याने ब्रह्मराजकी सहायतासे पेगू पर चढ़ाई कर दी। कुछ समय तक दोनों दलमें घमसान युद्ध होता रहा था।

१६८६ ई०में मन्द्राजके गवर्नरने नेग्रिसमें एक अंगरेजी उपनिवेश वसाना चाहा। प्रथम अभियानमें विफल मनोरथ होने पर भी १६८७ ई०में नेग्रिस इष्ट इण्डिया कम्पनीके अधिकारभुक्त हुआ। किन्तु १७५३ ई० तक अंगरेज लोग यहां अपना पूरा अधिकार जमा न सके थे। उस समय पेगू और ब्रह्मवासियोंमें युद्ध छिड़ गया था। अंगरेज लोग ब्रह्मके और फरासी तैलङ्ग-राजाओंके पक्षमें थे। इस साहाय्य-दानमें फरासियोंको सिरियम नामक स्थान मिला था।

इसके वाद ब्रह्मराजने अंगरेज-वणिकोंकी कोठी देखनेके लिये एक दूत भेजा। अंगरेज सेनापति बेकारने उनका अच्छा सत्कार किया था। १७७५ ई०में वसाँई और नेग्रिसकी कोठी जो भूमिके ऊपर स्थापित थी, उसका दान-पत्र लेनेके लिये कुछ अङ्गरेज कर्मचारी ब्रह्मराजके समीप पहुँचे। किन्तु इस समय अंगरेज लोग रङ्गनके निकट तैलङ्गोंको विशेष सहायता कर रहे थे। इस पर ब्रह्मराज अङ्गरेजोंकी विश्वासघातकता देख कर बड़े विगड़े। आखिर उन्होंने १७५७ ई०में नेग्रिस और वसांईकी अंगरेजाधिकृत भूमि इस वणिक सम्प्रदायको सदाके लिये छोड़ दी। इसके लिये वे अंगरेजोंसे किसी प्रकारका कर नहीं लेते थे। १७५६ ई०में नेग्रिससे अंगरेजोंका वाणिज्य-अड्डा उठा दिया गया। बहुत थोड़ी सेना अंगरेजसम्पत्तिकी रक्षाके लिये वहां रहत थी। उसी साल ब्रह्मपतिने उन पर चढ़ाई कर निष्ठुरभावसे उन्हें मार डाला। १७६० ई० में अंगरेजोंने क्षतिपूरण करनेके लिये ब्रह्मराजसे प्रार्थना की। किन्तु ब्रह्मपतिने उनकी एक भी न सुनी और अंगरेजोंको नेग्रिसमें घुसनेसे मनाही कर दी।

इस समयसे ले कर प्रथम ब्रह्मयुद्ध पर्यन्त अङ्गरेजोंने उपनिवेश वसानेके विषयमें कोई हस्तक्षेप न किया। उक्त युद्धमें वसांई नगर अङ्गरेजोंके हाथ लगा। यन्दबूकी सन्धिके अनुसार ब्रह्मगणके पेगू परित्याग करनेके वाद वह पुनः लौटा दिया गया। द्वितीय ब्रह्मयुद्धके वादसे यह स्थान अंगरेजोंके अधिकारमें आया। जब पेगू अंगरेजोंके हाथ लगा, उस समय सारे बेसिन जिलेमें अराजकता फैल गई। पर्वतवासी दस्युदल ब्रह्मराजके सामन्त हो कर नाना स्थानोंमें लूटपाट करने लगे। केवल यही नहीं, कई स्थानोंमें उन्होंने अपना आधिपत्य भी फैला लिया। क्रमशः एक अन्तर्विप्लव उपस्थित हुआ। इरावती तीरवर्त्ती जो सव ग्रामवासी अंगरेजोंके ष्टीमर पर काम करते थे, उनके ग्राम दस्युगण द्वारा जला दिये गये। इस पर अंगरेज लोग बड़े विगड़े और उनका दमन करनेके लिये आगे बढ़े। १८५३ ई०में कप्तान फिचेने दक्षिण पूर्व दिशासे विद्रोहियोंको मार भगाया। १८५४ ई०में विद्रोही दस्युदलके उपद्रवसे पुनः यह प्रदेश विशृङ्खल हो पड़ा। इस समय वौद्ध-पुरोहितोंकी सहायतासे श्वे-तु और कै-जन्-ह्ना नामक दो व्यक्तिने दलवल संग्रह करके कई एक नगर जीत लिये; किन्तु अंगरेजीसेनाके हाथसे राजविद्रोहिगण वहुत ही जल्द दण्डित हुए। तभीसे यह स्थान अंगरेजोंके दखलमें चला आ रहा है।

इस जिलेमें २ शहर और २६७७ ग्राम लगते हैं। जनसंख्या ४ लाखके करीब है जिनमेंसे अधिकांश बौद्धधर्मावलम्बी हैं। यहां १६ सेकण्ड्री, २१७ प्राइमरी, ५ स्पेशल और २३० इलिमेण्ट्री स्कूल तथा २ अस्पताल हैं।

२ निम्नब्रह्मके वसाँई जिलेका उपविभाग। यह वसाँई नदीके किनारे अवस्थित है।

३ उक्त जिलेका प्रधान नगर और सदर। यह अक्षां० १६° ३५´ से १६° ५६´ उ० तथा देशा० ६४° ३०´ से ६५° ३´ पू० वसाँई नदीके किनारे अवस्थित है। यह नगर यहांका एक प्रधान वाणिज्य-वन्दर गिना जाता है।

नदीके बाएं किनारे नगरके लेन्चांङ्ग विभागमें श्वे-मूहत्व पागोडा और अंगरेजोंका दुर्ग, विचारगृह तथा धनागार आदि हैं।

अंगरेजोंके अधिकारमें यहांके वाणिज्यकी दिनों दिन उन्नति देखी जाती है। खैर, लाह, सीसक, चकोर-काष्ठ और धान्यादिकी विभिन्न देशोंमें रफ्तनी होती है। ष्टीमर द्वारा यहांका अधिकांश पण्य द्रव्य रंगून भेजा जाता है। ग्रीष्मके समय नदीका जल घट जानेसे ष्टीमरोंको जाने आनेमें बड़ी दिक्कतें होती हैं।

ब्रह्मराज अलौङ्गपायाके शासनकालमें यह नगर बिलकुल जनहीन था। इस कारण कोई विशेष घटना न घटी। सुना जाता है, कि तैलङ्ग-राजकन्या उमनूमदनीने १२४९ ई०में इस नगरकी प्रतिष्ठा की। राल्फफिच् आदि पाश्चात्य भ्रमणकारिगण इस स्थानका 'कस्मिन' नामसे उल्लेख कर गये हैं। इसका प्राचीन नाम कुशीम नगर था। १७वीं सदीके प्रारम्भमें भी यहां वाणिज्य व्यवसाय जोरों चलता था। प्रथम ब्रह्मयुद्धके समय यहांके शासनकर्त्ता नगरको अग्निदग्ध करके लेमेतको नामक स्थानमें भाग गये। युद्धके बाद नगरवासिगण फिरसे नगरमें लौटे और वास करने लगे। द्वितीय ब्रह्मयुद्धके बादसे अंगरेजोंने इस स्थानको बहुत उन्नत कर दिया। दरिद्र प्रजाकी भलाईके लिये अस्पताल खोले गये।

४ अंगरेजाधिकृत ब्रह्मराज्यके इरावतीविभागमें प्रवाहित एक नदी। दगा और पन्मावती इसकी दो शाखाएं हैं। अलावा इसके समुद्रमुखमें और भी कितनी छोटी छोटी नदियाँ आ मिली हैं। नेग्रिसद्वीप इस नदीके मुहाने पर अवस्थित है। उसका पश्चिम पार्श्व बन्दरके लायक है, पर पूर्व दिशामें पर्वत रहनेके कारण जहाज आदि नहीं आ जा सकते।

वसन (सं० पु०) वस्त्र देखो।

वसना (हिं० क्रि०) १ स्थायीरूपसे स्थित होना, रहना। २ जनपूर्ण होना। ३ अवस्थान करना, ठहरना। ४ सुगन्धसे पूर्ण हो जाना, वासा जाना। (पु०) ५ वह कपड़ा जिसमें कोई वस्तु लपेट कर रखी जाय, बेठन। ६ बरतन, भांड़ा। ७ थैली। ८ वह लम्बी जालीदार थैली जिसमें रुपया पैसा रखते हैं। ९ वह कोठी जिसमें रुपयेका लेन देन होता हो।

वसन्तपुर—मुजफ्फर जिलेके अन्तर्गत एक प्रसिद्ध ग्राम। यह लालगञ्जसे साहेबगञ्ज जानेके रास्ते पर अवस्थित है। यहां वाणिज्यकी यथेष्ट उन्नति देखी जाती है। इसके उत्तर केवलपुरकी नीलकोठी अवस्थित है।

वसन्तपुर—बिहारके पूर्णिया जिलान्तर्गत अररिया उपविभागका सदर। यह अक्षा० २६° १४' उ० तथा देशा० ८७° ३३' पू० पतार नदीके दाहिने किनारे पर अवस्थित है। जनसंख्या तीन हजारके करीब है।

वसन्तर—पञ्जाबके गुरुदासपुर जिलेमें प्रवाहित एक नदी। बहुतसे पार्वतीय स्रोतोंसे बर्द्धितकलेवर हो यह इरावती नदीमें मिली है।

वसन्तपुर—बङ्गालके खुलना जिलेके उत्तर एक प्रसिद्ध ग्राम। यह अक्षा० २२° २७' ३०" उ० तथा देशा० ८९° २' १५" पू०के मध्य अवस्थित है। यहां चावलका प्रचुर वाणिज्य होता है।

वसर (फा० पु०) कालक्षेप, गुजर।

वसव—दाक्षिणात्यवासी लिङ्गायत धर्मके प्रवर्त्तक। इन्होंने प्राचीन लिङ्गायत मतका संस्कार करके अपने मतकी प्रतिष्ठा की। ये हिङ्गुलेश्वरके आराध्य ब्राह्मणवंशमें उत्पन्न हुए थे (१)। इनके पिताका नाम मदेङ्ग मदमन्त्री और माताका मदल अरसुर था (२)। बचपनमें उपनयन-संस्कार होते समय इन्होंने जब देखा, कि गायत्री-मन्त्रके जपनेमें किसी दूसरेकी उपासना करनी पड़ती है, तब झट गलेसे जनेऊ निकाल कर तोड़ डाला और सबके सामने अपना अभिप्राय प्रकट किया, कि वे ईश्वर वा शिवके अतिरिक्त और किसी दूसरेको अपना

(१) ये लोग 'वीर शैव' ब्राह्मण नामसे भी परिचित हैं।

(२) उक्त दम्पती कायमनोवाक्यसे सदा शिवजीकी उपासना किया करते थे। इस प्रकार देवादिदेवने प्रसन्न हो कर अपने अनुचर नन्दीको उनके पुत्ररूपमें भेजा। कणाड़ी भाषामें वसवका अर्थ है, शिवका सांढ़। शिवदास होनेके कारण ही इस पुत्रका वसव नाम रखा गया।

गुरु नहीं मान सकते। पुत्रको इस प्रकार विद्रूश भावापन्न देख कर पिताने वहुत कुछ समझाया, पर इन्होंने एक भी न सुनी। इस अवाध्यताके कारण वे घरसे निकाल दिये गये। गुणवती वहन पद्मावती देवी भी इनके साथ हो ली। वे दोनों देश देशान्तरोंमें पर्यटन करते हुए ११५६ ई०में कल्याण नगर पहुंचे।(३)

इस राजधानीमें इनके मामा दण्डनायकके पद पर अधिष्ठित थे। उन्होंने भांजेको आश्रय दिया और राज-कार्यमें नियुक्त कर इनकी उन्नतिका पथ खोल दिया। धीरे धीरे वसवको लक्ष्मीवान् देख उनके मामाने अपनी कन्या गंगादेवीका इनसे विवाह कर दिया। अपने व्याहके वाद इन्हें अपनी वहन पद्मावतीकी शादी सूझी। यथासमय कल्याणके राजा जैन विज्जलके साथ वह व्याही गई। राजाने इन्हें अपना प्रधान सेनापति वना लिया। तवसे यही संपूर्ण राजकार्यांकी देखरेख करने लगे। इन्होंने पुराने कर्मचारी हटा दिये और उनकी जगह पर अपने संवंधी मनुष्य रख लिये। प्रजाको अपने अधीन करनेके लिये इन्होंने वहुत धनका व्यय करना शुरू कर दिया। उनके दानसे संतुष्ट हो सभी प्रजा इनके पक्षमें हो गई।

इस प्रकार राज्यभरमें अपना प्रभाव जमा कर इन्होंने जैन, स्मार्त, वैष्णवादि मतका खंडन किया और लिङ्गोपासना करना ही श्रेष्ठ है इसकी सर्वत्र घोषणा कर दी। इस धर्मके प्रचारसे ब्राह्मणोंमें विद्वेषकी अग्नि धधक उठी। इनके मतमें वालक और वालिकाका-विवाह करना अन्याय है एवं देवोपासनाके समय सभी पार्थिव क्रिया कांड निर्मूल और अपवित्र हैं। मद्यपान और मांसादि भोजन भी इनके मतमें निषिद्ध था सो वहुतसे जैन लोग उनके मतके अनुयायी हो गये। जैन-संप्रदायको उत्तेजित अथवा वसवके निन्दित आचरणको देख कर स्वयं राजा विज्जल उसको वंदी करनेके लिये अग्रसर हुए। राजाकी सेना वसवके शिष्योंसे पराजित हुई। राजा भी उनसे हार खा कर उन्हें फिर मंत्री पद पर रखनेको वाध्य हुए।

जैन आख्यायिकासे मालूम होता है, कि मंत्री होनेके वाद ही वसवने राजाको मारनेका संकल्प कर लिया था। कोल्हापुरके राजा शिलाहारको जीत कर जिस समय विज्जल और वसव अपनी राजधानी लौट रहे थे उस समय भीमानदीके किनारे विषके प्रयोगसे राजाकी मृत्यु हो गयी। पिताकी मृत्युका समाचार पा कर राजपुत्र मुरारी राय वदला लेनेके लिये तैयार हुये। उनके आनेका समाचार पा वसव उत्तर कर्नाटकके उली नगरको भागा और शत्रुसेनाके आनेके भयसे कुएंमें डूव कर प्राण त्याग किया।

लिङ्गायत उपाख्यानसे जाना जाता है कि, भिन्न सम्प्रदायवालोंका प्रभाव देख कर जैन-राजा विज्जलने वसवके प्यारे दो अनुचरोंकी आंखें निकलवा लीं। वसव राजाको अभिशाप दे कर संगमेश्वर तीथको चल दिये एवं राजाका काम तमाम करनेका भार जगद्देव पर सौंपा। जगद्देवने दो नौकरोंके साथ संन्यासीके भेषसे रणवासमें प्रवेश कर ११६८ ई०में राजाको मार डाला। राजाके वियोगसे राज्यमें वड़ी अशान्ति फैली जिससे कल्याणराजधानी धनहीन हो गयी। वसवने संगमेश्वरमें यह समाचार सुना। जीवोंके मर जानेसे उसे मर्मान्तिक पीड़ा हुई, जीना उसे वहुत दुःखदायी प्रतीत होने लगा। वसवकी प्रार्थना पर पार्वती देवी मुग्ध हो इन्हें स्वर्गमें ले गयीं।

दूसरे लिङ्गायत ग्रंथोंमें लिखा है, कि वसवने अलौकिक कार्य दिखा कर सवसाधारणको मुग्ध किया था। अत्यद्भुत क्षमता देख कर सभी उनकी तरफ आकृष्ट होने लगे थे। दानमें वे मुक्तहस्त थे। एक समय किसी मन्त्रीने राजासे निवेदन किया, कि एक वर्षके दानसे सम्पूर्ण राज्यकोष खाली हो गया है। राजाने वसवसे इसका कारण पूछा। इस पर इन्होंने वहुत सरल भावसे राज्यकोषकी चावी राजाको दे दी। राजा उनकी सहास्यमूर्त्ति देख अवाक् हो गये। फिर जव वे राज्यको देखने आये, तव उनको अद्भुत क्षमताका परिचय पा चमत्कृत हो गये।

वसवका धर्म इस प्रकार है—एकमात्र जगत्पति ही सम्पूर्ण जीवोंके रक्षक हैं। ईश्वरसे परिचित होने

(३) इस समय यहां कलचूरिवंशीय राजा राज्य करते थे।

अथवा ईश्वरके चरणोंमें स्थान पानेके लिये किसीको उपासना या यागयज्ञ, उपवास, तीर्थयात्रा आदि करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। लिङ्गधारी नर नारी दोनों ही बराबर हैं। पुरुषकी अपेक्षा स्त्रियोंकी शक्ति किसी प्रकार कम नहीं हो सकती। अतएव स्त्रियां विवाह-योग्य होने पर अपने आप स्वामीका निर्वाचन कर सकती हैं। लिङ्गधारी शिवके उपासक जब सब समान हैं, तब जातिभेदकी कोई आवश्यकता नहीं। लिङ्गधारी भक्त-गण किसी कामके करने पर कभी अशुद्ध नहीं हो सकते। जातकर्म, ऋतुधर्म, सूतक, पातक, उनको स्पर्श नहीं कर सकता। मृत्युके बाद शिव-भक्तोंकी स्वर्गगति होती है। वह पवित्र आत्मा फिर कभी नीचे नहीं आती, इसलिये उनको स्वर्गप्राप्तिके लिये कोई भी अंत्येष्टि क्रिया करनेकी जरूरत नहीं। शिव ही एकमात्र जगत्-के कर्त्ता हैं। वे ही सब प्रकारसे लिङ्गधारियोंकी रक्षा करते हैं। ज्योतिषशास्त्रोक्त ग्रहदोष और भूतोंका प्रभाव लिङ्गयतोंके ऊपर नहीं चलता।

बसवास (हिं० पु०) १ निवास, रहना। २ निवास योग्य परिस्थिति, रहनेका डौल या सुभीता। ३ स्थिति, रहने का ढंग।

बसवी—शिवोपासक रमणीमण्डली। दाक्षिणात्यके धार-वाड़ जिलेमें इस सम्प्रदायकी बहुसंख्यक रमणियां देखी जाती हैं। बसवन्न और मल्लिकार्जुन इनके प्रधान देवता हैं। धारवाड़ जिलेके प्रायः प्रत्येक ग्राममें उनकी पूजा होती है। ये लोग मद्यपायी वा मांसभोजी नहीं हैं। सभी निरामिष भोजन करते हैं। अलङ्कारादि पहननेमें कोई रोक टोक नहीं है। गलेमें चांदीका लिङ्गधारण और विभूतिमर्द्दन इन्हें अवश्य करना होता है। ये लोग सबके सब परिष्कार परिच्छन्न, विनयी और आतिथेयी हैं। जातीय सभा और विवाहादि कार्यमें ये गृहस्थ-रमणियोंके साथ मिल कर शास्त्रीय क्रिया सम्पन्न करती हैं। वर और कन्याके सामने ये लोग बत्ती जला कर आरती उतारती हैं। देवपूजाकी परिचर्या और लिङ्गा-यतरमणी-सभाकी रमणियोंकी अभ्यर्थना करना इनका प्रधान काय है। ये लोग विवाहादि करती हैं; किन्तु उपपति ग्रहणमें भी बाज नहीं आती। अपने अपने भरणपोषणके लिये उन्हें लिङ्गायत समितिसे तनखाह मिलती है। बसवी परिचारिका और जलवड़ी परि-चारक नहीं रहनेसे लिङ्गायत सम्प्रदाय अधूरा रह जाता है। उनके कोई सन्तान नहीं रहने पर वे गोद ले सकती हैं।

बसह (हिं० पु०) वृषभ, बैल।

बसहर—पञ्जाबप्रदेशके अन्तर्गत एक पार्वतीय राज्य। यह अक्षा० ३१° ६' से ३२° ५' उ० तथा देशा० ७७° ३२' से ७९° ४' पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ३८२० वर्गमील और जनसंख्या ८० हजारसे ऊपर है। इसमें ७० ग्राम लगते हैं। १८०३से १८१५ ई० तक यह राज्य गुरखा-सरदारके अधीन रहा। १८२५ ई०में अंगरेजोंके द्वारा गुरखा-प्रभाव क्षीण हो जाने पर यह स्थान पुनः पूर्वतन राजकर पर समर्पित किया गया। १८४७ ई०में अङ्गरेजोंने निर्दिष्ट राजस्व घटा दिया। राजा समशेर-सिंह बहादुर १८४९ ई०में राजसिंहासन पर अभिषिक्त हुए। ये राजपूतवंशीय हैं। युद्धके समय जरूरत पड़ने पर बसहरराजको अङ्गरेजोंकी सहायता करनी पड़ती है।

बसहरि—मध्यप्रदेशके सागरजिलान्तर्गत एक नगर।

बसा (सं० स्त्री०) वसा देखो।

बसा (हिं० स्त्री०) १ बर्रे, भिड़, बरटी।

बसात (हिं० पु०) बिसात देखो।

बसाना (हिं० क्रि०) १ बसने देना, रहनेको ठिकाना देना। २ स्थित करना, टिकाना, ठहराना। ३ जनपूर्ण करना, आबाद करना। ४ बिठाना। ५ रखना। ६ वास देना।

बसालतजङ्ग—दाक्षिणात्यके अदोनी प्रदेशके मुसलमान शासनकर्त्ता, सलाबतजङ्गके भाई। इन्होंने १७५९ ई०में वन्दिवासमें प्रथम युद्धके बाद फरासी-सेनापति बुसीके साथ मिल कर अङ्गरेजोंका प्रभाव खर्व कर डालनेकी चेष्टा की थी।

बसिऔरा (हिं० पु०) १ वर्षकी कुछ तिथियां जिनमें स्त्रियां बासी भोजन खाती और बासी पानी पीती हैं। २ बासी भोजन।

बसिया (हिं० वि०) बासी देखो।

बसियाना (हिं० क्रि०) बासी हो जाना, ताजा न रह जाना।

बसिष्ठ—वसिष्ठ देखो।

बसीकत (हिं० स्त्री०) १ बस्ती, आबादी। २ बसनेका भाव या क्रिया, रहन।

बसीकर (हिं० वि०) वशीकर, वशमें करनेवाला।

बसीठ (हिं० पु०) १ दूत, संदेसा ले जानेवाला।

बसीठी (हिं० स्त्री०) दौत्य, दूतका काम।

बसीत (अ० पु०) एक यन्त्रका नाम जो जहाज पर सूर्य-का अक्षांश देखनेके लिये रहता है, कमान।

बसु (सं० पु०) वसु देखो।

बसुकला (हिं० पु०) एक वर्णवृत्त जिसे तारक भी कहते हैं।

बसुदेव—वसुदेव देखो।

बसुधा—वसुधा देखो।

बसुन्धिया—यशोर जिलेके अन्तर्गत एक ग्राम। यह अक्षा० २३°८' उ० तथा देशा० ८९° २४' पू०के मध्य अव-स्थित है। यहां यशोरकी प्रधान हाट लगती है। नाव द्वारा चीनी, चावल आदि यशोर लाया जाता है।

बसुमती—वसुमती देखो।

बसुरहाट—१ बङ्गालके २४ परगनेके अन्तर्गत एक उप-विभाग। भूपरिमाण ३६३ वर्गमील है।

२ उक्त उपविभागका प्रधान नगर और विचार सदर। यह अक्षा० २०° ४०' उ० तथा देशा० ८८° ५३' ३५ पू०के मध्य अवस्थित है। यहां दीवानी और फौजदारी अदा-लत लगती है।

बसुला (हिं० पु०) बसूला देखो।

बसूला (हिं० पु०) लकड़ी छीलने और गढ़नेका बढ़ईका एक हथियार। यह बेंट लगा हुआ चार पांच अंगुल चौड़ा लोहेका टुकड़ा होता है जो धारके ऊपर बहुत भारी और मोटा होता है। यह ऊपरसे नीचेकी ओर चलाया जाता है।

बसूली (हिं० स्त्री०) छोटा बसूला।

बसेरा (हिं० वि०) १ बसनेवाला, रहनेवाला। (पु०) २ वह स्थान जहां रह कर यात्री रात बिताते हैं, टिकनेकी जगह। ३ वह स्थान जहां चिड़िया ठहर कर रात बिताती है। ४ टिकने या बसनेका भाव, बसना, आबाद होना।

बसेरी (हिं० वि०) निवासी, रहनेवाला।

बसोवास (हिं० पु०) निवासस्थान, रहनेकी जगह।

बसौंधी (हिं० स्त्री०) एक प्रकारकी रबड़ी जो सुगंधित और लच्छेदार होती है।

बस्ट (अ० पु०) चित्रकारीमें वह मूर्त्ति, चित्र वा प्रतिकृति जिसमें किसी व्यक्तिके मुख अथवा छातीके ऊपरके भाग मात्रकी आकृति बनाई गई हो।

बस्त (सं० पु०) वस्त्यते यज्ञार्थं वध्यते इति वस्त-घञ्। १ आदित्य, सूर्य। २ छाग, बकरा।

बस्तक (सं० क्ली०) शाकम्भर लवण।

बस्तकर्ण (सं० पु०) बस्तकर्ण अर्श आदित्वादच्। १ शालवृक्ष, शालका पेड़। २ अजकर्णक। ३ असनाका पेड़, पीतशाल वृक्ष।

बस्तगन्धक (सं० पु०) अरुणतुलसीवृक्ष।

बस्तगन्धा (सं० स्त्री०) बस्तस्य गन्ध इव गन्धो यस्याः। १ अजगन्धा, अजमोदा। २ क्षेत्रयमानी।

बस्तगन्धाकृति (सं० स्त्री०) पुत्रदात्री लता।

बस्तमोदा (सं० स्त्री०) बस्तं छागं मोदयतीति मुद्-णिच्-अण्। १ अजमोदा। २ वनयमानी।

बस्तर (हिं० पु०) वस्त्र देखो।

बस्तवासिन् (सं० त्रि०) बकरेकी तरह शब्द करनेवाला।

बस्तशृङ्गी (सं० पु०) मेषशृङ्गी, मेढासींगी।

बस्ता (फा० पु०) कपड़ेका चौकोर टुकड़ा जिसमें कागज-के मुट्ठे, बहीखाते और पुस्तकादि बांध कर रखते हैं।

बस्ताण्ड (सं० क्ली०) छागाण्ड।

बस्तान्त्री (सं० स्त्री०) बस्तस्येव अन्त्रमस्याः, गौरादि-त्वात् ङीष्। छागलान्त्रीक्षुप। पर्याय—वृषगन्धाख्या, मेषान्त्री, वृषपत्रिका, अजान्त्री, बकड़ी। इसका गुण कटु, कासरोगनाशक, बीजप्रद और गर्भजनक माना गया है।

बस्तार—मध्यप्रदेशके चांदा जिलान्तर्गत एक मित्रराज्य। यह अक्षा० १७° ४६' से २०° १४' उ० तथा देशा० ८०° २५' से ८२° १५' पू०के मध्य विस्तृत है। भूपरिमाण १३०६२ वर्गमील है। इसके उत्तरमें कानकर राज्य, दक्षिण-में मन्द्राजका गोदावरी जिला, पश्चिममें चांदा जिला, हैदराबाद राज्य और गोदावरी नदी तथा पूर्वमें जयपुर

राज्य है। इस सामन्त राज्यके प्रधान नगर जगदलपुरमें राजप्रासाद अवस्थित है।

इसके उत्तर, पश्चिम, मध्य और दक्षिण विभाग पर्वतमालासे समाच्छादित है। पूर्वभागकी अधित्यका-भूमि समुद्रपृष्ठसे २ हजार फुट ऊँची है। यहां सब तरहका अनाज उपजता है। बेलादीला नामक पर्वत-मालाके दो सर्वोच्च शिखरके नाम नन्दिराज और पितुर-राणी हैं। उक्त पर्वतमालासे असंख्य नदियां निकली हैं। उनमेंसे शबारी, इन्द्रवती और ताल नामक प्रधान नदियां गोदावरी नदीमें मिली हैं। जमीनमें पंक पड़ जानेसे धानकी फसल अच्छी लगती है। यहां लोहेकी एक खान है, पर स्थानवासी उसे काममें नहीं लाते।

इस राज्यमें २५२५ ग्राम लगते हैं। जनसंख्या तीन लाखसे ऊपर है जिनमेंसे गोंड जातिकी संख्या ही अधिक है। जगदलपुरमें कुछ ब्राह्मणोंके भी घर हैं। वे लोग मांस और मछली खाते तथा गाहिरा नामक ग्वालाजातिके हाथका पानी पीते हैं। यहां धाकर नामक ब्राह्मणज एक निकृष्ट जाति है। इस जातिके लोग भी यज्ञोपवीत पहनते हैं।

दन्तेश्वरी वा मौली (भवानी और काली) तथा मातादेवी यहांके अधिवासियोंके उपास्य देवता हैं। उच्च-वंशके हिन्दू अपरापर देवदेवियोंकी भी पूजा करते हैं। दन्तेश्वरी यहांके राजवंशकी कुलदेवी हैं। देवीके अनुग्रहसे इस राजवंशने हिन्दुस्तानसे वरंगुल जा कर राज्य बसाया। पीछे जब वे मुसलमानों द्वारा वहांसे भगा दिये गये, तब देवीके साथ दन्तिवाड़में आ कर बस गये। यहां देवीके रहनेके लिये मन्दिर बनवाया गया। पहले देवीकी लोलरसनाकी तृप्तिके लिये यहां नरबलि दी जाती थी। पीछे उसे रोकनेके लिये १८४२ ई०में उस मन्दिरमें एक स्वतन्त्ररक्षक नियुक्त हुआ तथा इसकी जवाबदेही राजाके सिर रही। वह देवीमूर्त्ति काले पत्थरकी बनी हुई है और उन्हें सर्वदा श्वेतवस्त्र पहनाया जाता है। जब किसी-को अपना अभीष्ट जानना होता है, तब वे देवीके मस्तक पर एक फूल चढ़ाते हैं। उस फूलके बायें या दाहिने गिरनेसे कार्यका इष्टानिष्ट समझा जाता है। यहां किसी प्रकारका वाणिज्यद्रव्य प्रस्तुत नहीं होता, सिवाय मोटे कपड़े के। आवश्यकीय द्रव्य नागपुर, रायपुर, निजामराज्य और छत्तीसगढ़से लाये जाते हैं।

यहांके राजा अपनेको राजपूत बतलाते हैं। मरहट्ठाके अभ्युदय तक यह राज्य बिलकुल स्वतन्त्र था। १८वीं शताब्दीमें नागपुर गवर्मेण्टने इस पर कर निर्द्धारित कर दिया। इसी समय जयपुर राज्यके साथ मन्द्राजमें लड़ाई छिड़ गई। कई वर्षों तक यहां अराजकता फैली रही। भूतपूर्व राजा भैरवरावका ६२ वर्षकी उमरमें १८९१ ई०-को देहान्त हुआ। पीछे उनके लड़के रुद्र प्रताप देव सिंहासन पर बैठे। उनकी नाबालिगी तक राज्य गवर्मेण्ट-की देखरेखमें रहा। ये ही वर्त्तमान राजा हैं। राजाको दत्तक लेनेका अधिकार नहीं है, एकमात्र ज्येष्ठपुत्र ही सिंहासनके अधिकारी हैं।

वस्तार (फा० पु०) एक बंधी हुई बहुत-सी वस्तुओंका समूह, मुट्ठा, पुलिंदा।

वस्ति (सं० पु०) बस्ति देखो।

वस्तिशेख—पञ्जाबप्रदेशके जलन्धर नगरके उपकण्ठवर्त्ती एक स्थान। १६२७ ई०में शेख दरवेश नामक किसी मुसलमानने इस छोटे नगरको बसाया।

बस्ती युक्तप्रदेशके गोरखपुर विभागका जिला। यह अक्षा० २६° २५´ से २७° ३०´ उ० तथा देशा० ८२° १३´ ८३° १४´ पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण २७९२ वर्गमील है। इसके उत्तरमें नेपाल राज्य, पूर्वमें गोरखपुर जिला, दक्षिणमें गोगरा और पश्चिममें गोण्डा है। जिलेका समग्र स्थान पर्वतमय है। तराई प्रदेशकी तरह कहीं उच्च और कहीं निम्न जलाभूमिमें परिणत है। मध्य भागमें राप्ती और कुयाना नदी बहती है जिससे जिला तीन स्वतन्त्र भागोंमें विभक्त हो गया है। इनमेंसे उत्तर विभाग पर्वतसमाकीर्ण तराई भूमि, मध्य भाग उर्वरा और शस्यशालिनी तथा घर्घरा और कुयानाका मध्यवर्त्ती निम्नभाग जलशून्य है। यहां कृत्रिम उपायसे जलसिञ्चन करके शस्यरक्षा की जाती है। राप्ती, बूढ़ी राप्ती, आरा, बाणगंज, मसदी, अमी, कुयाना, कुड़ा, कोटनाद्या और घर्घरा ही यहांकी प्रधान नदियां हैं। एकमात्र राप्ती और घर्घरामें ही वाणिज्यपोत आ जा सकते हैं। बखिरा बाव-दना, पाथरा चाउर और चण्डुताल नामक कई एक हृद हैं। उक्त जलाशयोंमें नाना प्रकारके पक्षी रहते हैं।

फाहियान इस स्थानको देख गये हैं। उस समय इसका उत्तरीय भाग जंगलमें परिणत हो गया था। कहते हैं, कि १३ वीं शताब्दीमें राजपूतवंशने भारस् और डोम-कटारको परास्त करके इस स्थान पर दखल जमाया। इसके वाद वहुतसे राजपूत राजा इस स्थानको ले कर आपसमें लड़ते रहे। अकवरके शासनकालमें मुसल-मानोंने गोरखपुर जीत कर इस ज़िलेमें प्रवेश किया और राजाको सिंहासनच्युत करके इसे अवध सूवामें मिला लिया। १६१० ई०में मुसलमानोंकी गोटी यहांसे उखड़ी, पर १६८० ई०में उन्होंने फिरसे इसको अपने दखलमें किया। इसके वादका इतिहास गोरखपुर जिलेके साथ संलग्न है। गोरखपुर देखो।

जिलेमें ४ शहर और ६६०३ ग्राम लगते हैं। जन-संख्या वोस लाखके करीव है। जिनमेंसे सैकड़े पीछे ८४ हिन्दू और शेष मुसलमान हैं। यद्यपि यह जिला वहुत लम्वा चौड़ा है, पर म्युनिसपलिटी एक भी नहीं है। जिलेमें कुल मिला कर ३०८ स्कूल हैं। इनमेंसे २ वृटिश गवर्मेण्टसे और १३५ डिष्ट्रिकृवोर्डसे परिचालित होते हैं। स्कूलके अलावा ८ अस्पताल भी हैं। सव मिला कर यहांकी आवहवा अच्छी है।

२ उक्त जिलेकी तहसील। यह अक्षा० २६° ३३´ से २७ ६´ उ० तथा देशा० ८२° ३७´ से ८२° ५६´ पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ५३६ वर्गमील और जनसंख्या चार लाखके करीव है।

३ उक्त तहसीलका सदर। यह अक्षा० २६° ४७´ उ० तथा देशा० ८२° ४३´ पू०के मध्य अवस्थित है। जनसंख्या प्रायः १४७६१ है। १७ वीं शताब्दीमें यहां राजप्रासाद था, पर अभी वह खंडहरमें पड़ा है। शहरमें प्राचीन हिन्दू-राजाका दुर्ग भी देखनेमें आता है। यहां तोन स्कूल हैं जिनमेंसे एक वालिकाके लिये है।

वस्ती (हिं० स्त्री०) १ निवास, आवादी। २ जनपद, वहुतसे घरोंका समूह जिनमें लोग वसते हैं।

वस्तु (सं० स्त्री०) वस्तु देखो।

वस्त्र (सं० पु०) वस्त्र देखो।

वस्य (सं० वि०) वश्य देखो।

वस्रि (सं० अव्य०) क्षिप्र, तेजीसे।

वहंगा (हिं० पु०) वड़ी वहंगी।

वहंगी (हिं० स्त्री०) वोझा ले चलनेके लिये तराजूके आकारका एक ढांचा, कांवर। लगभग चार हाथ लम्वी लचीली लकड़ी या वांसके दोनों छोरों पर रस्सीका छीका लटका कर नीचे काठका चौकठा-सा लगा देते हैं। इसी चौकठे पर वोझ रखा जाता है। वांसको वीचोवीच कंधे पर रख कर चलते हैं।

वहकना (हिं० क्रि०) १ मार्गभ्रष्ट होना, भटकना। २ किसीकी वात या भुलावेमें आ जाना, विना भला वुरा विचारे किसीके कहने या फुसलानेसे कोई काम कर वैठना। ३ ठीक लक्ष्य या स्थान पर न जा कर दूसरी ओर जा पड़ना, चूकना। ४ रस या मदमें चूर रहना, आपेमें न रहना। ५ किसी वातमें लग जानेके कारण शान्त होना।

वहकाना (हिं० क्रि०) १ ठीक रास्तेसे दूसरी ओर ले जाना या फेरना। २ शान्त करना, वहलाना। ३ कोई उपयुक्त कार्य करानेके लिये वातोंका प्रभाव डालना, भुलावा देना। ४ लक्ष्यभ्रष्ट करना, ठीक लक्ष्य या स्थान-से दूसरी ओर कर देना।

वहत्तर (हिं० वि०) १ सत्तर और दो, सत्तरसे दो ज्यादा। (पु०) २ सत्तरसे दो अधिककी संख्या और अंक जो इस प्रकार लिखा जाता है—७२।

वहत्तरवां (हिं० पु०) जिसका स्थान वहत्तर पर पड़े।

वहदुरा (हिं० पु०) एक कीड़ा। यह धान वा चनेमें लग कर उसके पत्ते काट कर गिरा देता है।

वहन (हिं० स्त्री०) वहिन देखो।

वहना (हिं० क्रि०) १ द्रवपदार्थोंका निम्नतलकी ओर आपसे आप गमन करना, पानी या पानीके रूपकी वस्तुओंका किसी ओर चलना। २ गया वीता होना, अधम या वुरा होना। ३ ठीक लक्ष्य या स्थानसे हट जाना, फिसल जाना। ४ स्रवित होना, लगातार वूंद या धारके रूपमें निकल कर चलना। ५ विना ठिकाने-का हो कर घूमना, मारा मारा फिरना। ६ सन्मार्गसे दूर हो जाना, आवारा होना। ७ गर्भपात होना, अड़ाना। ८ सस्ता मिलना, वहुतायतसे मिलना। ९ वायुका संचरित होना, हवाका चलना। १० हट जाना, दूर

होना। ११ पानीकी धारामें पड़ कर जाना। १२ खींच कर ले चलना। १३ वहन करना, ऊपर रख कर ले चलना। १४ जल्दी जल्दी अंडे देना। १५ व्यर्थ खर्च हो जाना, नष्ट जाना। १६ कनकौवेकी डोरका ढीला पड़ना। १७ उठना, चलना। १८ धारण करना, रखना।

वहनापा (हिं० पु०) भगिनीकी आत्मीयता, वहनका सम्बन्ध।

वहनी (हिं० स्त्री०) कोल्हूमेंसे रस ले कर रखनेवाली ठिलिया।

वहनोई (हिं० पु०) वहनका पति।

वहनौता (हिं० पु०) वहनका पुत्र।

वहनौरा (हिं० पु०) वहनकी ससुराल।

वहरम—'किससई सञ्जान' नामक पारसी इतिहासके प्रणेता। १५९९ ई०में उक्त ग्रन्थ रचा गया।

वहरमपुर (वरहमपुर)—१ वङ्गालके मुर्शिदावाद जिलेका उपविभाग। यह अक्षा० २३° ४८´ से २४° २२´ उ० तथा देशा० ८८° ११´ से ८८° ४४´ पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ७५२० वर्गमील है। यहांके वहुतसे स्थान ऐसे हैं जो वर्षाके समय डूव जाया करते हैं। जनसंख्या लगभग ४७१९६२ है। इसमें इसी नामका एक शहर और १०६० ग्राम लगते हैं।

२ उक्त उपविभागका एक नगर। यह अक्षा० २४° ८´ उ० तथा देशा० ८८° १६´ पू० भागीरथीके वाएं किनारे अवस्थित है। जनसंख्या २४ हजारसे ऊपर है। इसी शहरमें उक्त जिलेका विचारसदर और सेनानिवास प्रतिष्ठित है। विख्यात पलासी-युद्धके वाद ही मीरजाफरकी सनदके अनुसार प्राप्त भूमिके ऊपर १७६५ ई०में व्रिटिशसरकारने सेनानिवासके लिये वारिक वनवाई। १७'१० ई०में ही सेना स्थापनकी व्यवस्था हुई, पर कम्पनीके डिरेक्टरोंने इस ओर उतना ध्यान नहीं दिया। आखिर १७६७ ई०में वङ्गके नवाव मीरकासिमने जव विद्रोह ठान दिया, तव उन लोगोंकी आंखें खुलीं। इसके वाद पुनर्विद्रोहसे देशको वचानेके लिये प्रस्तावित वारिक स्थापित हुई थी। १८५७ ई०की २५वीं फरवरीको इसी स्थानमें पहले सवसे विद्रोहलक्षण दिखाई पड़ा था।

वहरमपुर—१ मन्द्राज प्रदेशके गञ्जाम जिलान्तर्गत एक उपविभाग।

२ उक्त उपविभागका एक तालुक। यह अक्षा० १८°५६´ से १९°३२´ उ० तथा देशा० ८४°२५´ से ८५°५´ पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ६८५ वर्गमील और जनसंख्या साढ़े तीन लाखके करीव है। इसमें वहरमपुर, इच्छापुर और गञ्जाम नामके ३ शहर और ५४१ ग्राम लगते हैं।

३ गञ्जाम जिलेका एक प्रसिद्ध शहर। यह अक्षा० १९°१८´ उ० तथा देशा० ४८°४८´ पू०के मध्य विस्तृत है। यह मन्द्राजसे ६५६ मील और कलकत्तेसे २७४ मील पड़ता है। जनसंख्या प्रायः २५७२९ है जिनमेंसे हिन्दूकी संख्या ज्यादा है। इसका प्राचीन नाम ब्रह्मपुर है। यहां दीवानी और फौजदारी अदालत है। मध्यम श्रेणीका यहां जो कालेज है उसमें कलिकोटके राजाने लाख रुपये दान किये हैं। कालेजके साथ विक्टोरिया मेमोरियल नामक छात्रावास भी संलग्न है। जुवली अस्पताल १८९३ ई०में खोला गया है। शहरमें तरह तरहके रेशमी और टसरके कपड़ोंका कारवार होता है।

वहरमशाह—गजनीके अधिपति, ३ य मसाउदके पुत्र। ये अपने चाचा सुलतान सञ्जायकी सहायतासे पितृ-सिंहासन पर १११४ ई०में अधिष्ठित हुए। इन्होंने प्रायः ३५ चान्द्र वर्ष तक प्रवल प्रतापसे शासनकार्य किया। पीछे ११५२ ई०में अलाउद्दीन हसनघोरोसे हार खा कर लाहोर राजधानीको भाग गये। वहीं उनकी मृत्यु हुई। वादमें उनके लड़के खुसरूने लाहोरका शासन-भार ग्रहण किया। कवि शेख सनोई और अवुल मजद विन आदम अलगजनाकीने उनकी सभामें प्रतिष्ठा प्राप्त की थी।

वहरमशाह, मइजउद्दीन—एक दिल्ली सम्राट्, सुलतान रुकन-उद्दीन फिरोजके पुत्र (१)। १२४० ई०में सुलतान रजियाकी हत्या करके ये राजा वन वैठे (२)। यह एक

(१) फिरिस्ताने वहरमको अलतमसका पुत्र वतलाया है।

(२ तवकत्-इ-नासिरी नामक मुसलमान इतिहासमें लिखा है, कि रजिया कारागारमें ठूस दी गई थी। कारामुक्त हो रजिया और अलतुनियाने फिरसे दिल्ली पर चढ़ाई करनेकी कोशिश की, पर वे दोनों रणमें परास्त हो हन्दूके हाथसे मारे गये। Elliot Vol. II. p. 337

निर्भीक योद्धा पुरुष थे। साथ साथ सद्गुणोंका भी उनमें अभाव नहीं था। राजाकी तरह वेशभूषा करनेमें वे लज्जा बोध करते थे।

उनके शासनकालमें जनसाधारणकी सलाह ले कर इखतियार उद्दीन ईतिगिन सहकारी रूपमें रक्षाकार्यकी पर्यालोचना करते थे। दो वर्ष राज्यशासनके वाद वे राजमन्त्री वजीर निजाम उलमुल्क मजहव उद्दीनके षड़-यन्त्रसे मारे गये। पीछे सुलतान अलतमसके पुत्र अलाद्दोन राजा हुए।

वहरमन्द खाँ—मिर्जावहरमके पुत्र सम्राट् आलमगीरके प्रधान अमात्य। रूह-उल्ला खाँकी मृत्युके वाद वे १६६२ ई०में सम्राट्से मीर वक्सीके पद पर अभिषिक्त हुए। १७०२ ई०को दाक्षिणात्यमें उनका देहान्त हुआ। उनके इच्छानुसार वहादुरगढ़में उनकी समाधि हुई था।

वहरा (हिं० पु०) जिसे श्रवणशक्ति न हो, जो कानसे न सुन सके।

वहराना (हिं० क्रि०) १ जिस वातसे जी ऊवा या दुखी हो उसकी ओरसे ध्यान हटा कर दूसरी ओर ले जाना। २ वहकाना, भुलाना।

वहराइच—वराइच देखो।

वहरामघोर—इराण-राज्यके एक अधिपति। राजसिंहा-सन पर वैठ कर ये पुत्र-रूपमें प्रजापालन करते थे। चारों ओर शान्ति विराजती थी, प्रजाको किसी प्रकार कष्ट न था। कुछ दिन राज्य करनेके वाद उन्हें भारतवर्ष जीतने-की धुन लगी। इस उद्देश्यसे उन्होंने राज्य-भार अपने भाई जसीर पर सौंपा और आप वणिकके वेशमें भारत-वर्षको चल दिये। इस समय सिन्धु-प्रदेशमें रायवंशोय-गण राज्य करते थे।

राजसभामें पहुंच इन्होंने इराणीय वणिक् वतला कर अपना परिचय दिया। यहां रह कर वे राजाके सैन्यसामन्तका पर्यवेक्षण करने लगे। एक दिन राज्य में मत्तमातङ्गका उपद्रव हुआ। वहरामने उसे मार डाला और इस प्रकार वे राजाके प्रीतिभाजन हुए। धीरे धीरे राजाके साथ इनकी गाढ़ी मित्रता हो गई। जव कभी कोई प्रवलपराक्रम शत्रु सिन्धु-राज्य पर चढ़ आता, तव वहराम उसे परास्त कर राज्यसे मार भगाते थे। एक दिन राजा और वहराम वोतल चढ़ा रहे थे इसी समय नशेकी हालतमें वहरामने अपना परिचय दे दिया। राजाने इनका परिचय पा कर वहुत अनुनय विनय किया। पीछे उन्होंने अपना अलोकसामान्या कन्या-रत्न दे कर मित्रताकी जड़ वहुत मजवूत कर ली। राज्य लौट कर वहरामने प्रजाको महोल्लाससे दिन वितानेका हुकुम दिया। किन्तु इससे राज्यका दिनों दिन अधः-पतन होने लगा। वहरामका आधा समय राजकार्यमें और आधा आमोद-प्रमोदमें वीतता था। पारस्यराज्य-की सोली नर्त्तकियोंको उन्होंने हिन्दुस्तानसे मंगा कर अपने राज्यमें वसा दिया था।

वहरिया (हिं० पु०) वल्लभ सम्प्रदायके मंदिरोंके छोटे कर्मचारी जो प्रायः मन्दिरके वाहर ही रहते हैं।

वहरियाना (हिं० क्रि०) १ वाहरकी ओर करना; निका-लना। २ अलग करना, जुदा करना। ३ नावको किनारेसे हटा कर मंझधारकी ओर ले जाना। ४ नाव-का किनारेसे हट कर मंझधारकी ओर जाना। ५ अलग होना, जुदा होना। ६ वाहरकी ओर होना।

वहरी (अ० स्त्री०) एक शिकारी चिड़िया। इसका रूप रंग और स्वभाव वाजका-सा होता है, पर आकार छोटा होता है।

वहरू (हिं० पु०) मझोले आकारका एक पेड़ जो मध्य-प्रदेश, वरार और मन्द्राजमें पाया जाता है। इसकी लकड़ी सुन्दर, चमकदार और मजवूत होती है। खेतीके सामान, गाड़ियां तथा तसवीरोंके चौकठे इस लकड़ीके वनते हैं।

वहरूप (हिं० पु०) गोरखपुर चम्पारन आदि पूरवी जिलोंमें रहनेवाली एक जाति जो वैलोंका व्यवसाय करती है।

वहल (सं० पु०) वह-वाहुलकादलच्। १ पोत, नाव। २ इक्षु, ईख। (त्रि०) ३ दृढ़, मजवूत। ४ वहुल, प्रचुर। ५ स्थूल, मोटा।

वहल (हिं० स्त्री०) एक प्रकारकी छतरीदार या मंडपदार गाड़ी जिसे वैल खींचते हैं, रव्वा।

वहलगन्ध (सं० क्ली०) वहलः प्रचुरो गन्धो यस्य। शम्वरचन्दन।

वहलगन्धकृत (सं० पु०) पक्षिराज शालिधान्य, पक्षिराज नामका धान।

वहलचक्षस् (सं० पु०) मेषशृङ्गी, मेढ़ासींगी।

वहलत्वच (सं० पु०) वहला दृढ़ा त्वक् वल्कलं यस्य। १ श्वेतलोध्र, सफेद लोध। २ भूर्जवृक्ष, भोजपत्रका वृक्ष।

वहलदल (सं० पु०) कृष्णशोभाञ्जन, काली सोहिंजना।

वहलना (हिं० क्रि०) १ दुःखकी बात भूलना और चित्तका दूसरी ओर लगना। २ मनोरञ्जन होना, चित्त प्रसन्न होना।

वहलवर्त्मन् (सं० क्ली०) नेत्रवर्त्मगत रोगभेद। वर्त्म-देशका जैसा रंग है उसी रंगकी पिड़का जब वर्त्मके चारों ओर हो जाती है, तब उसे वहलवर्त्म कहते हैं।

वहला (सं० स्त्री०) वहलानि प्रचुराणि पुष्पाणि सन्त्यस्याः, अर्श आदित्वादच्। १ शतपुष्पा। २ स्थूलैला, बड़ी इलायची।

वहलाङ्ग (सं० पु०) मेषशृङ्गी, मेढ़ासींगी।

वहलाना (हिं० क्रि०) १ झंझट या दुःखकी बात भुलवा कर चित्त दूसरी ओर ले जाना। २ मनोरञ्जन करना, चित्त प्रसन्न करना। ३ भुलावा देना, वातोंमें लगाना।

वहलाव (हिं० पु०) प्रसन्नता मनोरंजन।

वहलिया (हिं० पु०) वहेलिया देखो।

वहली (हिं० स्त्री०) एक प्रकारकी छतरीदार या परदेदार गाड़ी जिसे बैल खींचते हैं।

वहल्लो (हिं० पु०) कुश्तीका एक पेंच।

वहस (अ० स्त्री०) १ खण्डन मण्डनकी युक्ति, दलील। २ विवाद, झगड़ा। ३ होड़, वाज़ी।

वहसना (हिं० क्रि०) १ तर्क वितर्क करना, विवाद करना। २ शर्त वांधना, होड़ लगाना।

वहाउद्दीन नक्सवंद शेख—एक मुसलमान फकीर। इन्होंने सुफी सम्प्रदायकी नक्सवंदी शाखाका प्रवर्त्तन करके अच्छा नाम कमा लिया था। इन्होंने 'हैवतनामा' नामक एक नीतिमूलक और 'दलील-इ-अशिकिन' नामक एक स्वीय साम्प्रदायिक ग्रन्थकी रचना की थी। पारस्य-राज्यके हरफा नगरमें १४५३ ई०को उनका देहान्त हुआ।

वहाउद्दीन वलद मौलाना—एक मुसलमान साधु, वाह्लिक देशवासी ख्यातनामा जलाल-उद्दीन मौलवी रूमीके पिता। ख्वाजारिमके शासनकर्त्ता सुलतान महम्मद उद्दीनके शासनकालमें इन्होंने विशेष प्रतिपत्ति लाभ की। सुफी-साम्प्रदायिक मतमें उनकी एकान्त भक्ति रहनेके कारण उन्होंने अपने मतका प्रचार करनेकी इच्छासे उस धर्मतत्त्वकी विषद व्याख्या प्रकट की। उनकी यह वक्तृता सुननेके लिये पारस्यके नाना स्थानोंसे दल बांध बांध कर मुसलमान लोग आया करते थे। जीवनकी शेषा-वस्थामें वे मातृभूमिका परित्याग कर तुरुष्क राज्यके कोणिया नगरमें जा बसे। यहां १२३० वा १२३३ ई०में उनकी मृत्यु हुई। पीछे उनके पुत्रने इस सम्प्रदायके प्रधान गुरुका आसन प्राप्त किया।

वहाउद्दीन जकरिया शेख—मूलतानवासी एक मुसलमान फकीर, कुतुबुद्दीन महम्मदके पुत्र और कमाल उद्दीन कुरेशीके पौत्र। मूलतानके अन्तर्वर्त्ती कोटकरोड़ नगरमें ११७० ई०को उनका जन्म हुआ। पाठाध्ययन शेष करके ये वोगदाद नगर गये और वहां शेख सहावुद्दीन सुहरवारीके शिष्य बने। पीछे मूलतान लौटने पर फकीर-उद्दीन शकरगञ्जके साथ इनका परिचय हुआ। १२६७ ई०को मूलतान नगरमें इनकी मृत्यु हुई। भारतवर्षीय श्रेष्ठतम मुसलमान साधुओंमें ये एक थे। मरते समय ये अपने पुत्रादिको अतुल सम्पत्ति छोड़ गये।

वहाउद्दीन साम—घोर और गजनी राज्यके नरपति गया-सुद्दीन मह्मूदके पुत्र। १२१० ई०को १४ वर्षकी अवस्थामें ये पितृसिंहासन पर बैठे। तीन मास राज्य करनेके बाद ये अलाउद्दीन अत्सिजसे परास्त हुए और हीरटके शासनकर्त्तासे कैद किये गये। चेङ्गिस खांके आक्रमणकालमें इन्होंने वहावुद्दीनको ख्वारिजमके हाथ समर्पण किया जिसने इन्हें नदीमें डुवा मारा।

वहादरान—राजपूतानेके बीकानेर राज्यके अन्तर्गत एक जिला और उसका प्रधान नगर। बीकानेर देखो।

वहादुर (फा० पु०) १ उत्साही, साहसी। २ पराक्रमी, शूरवीर।

वहादुरी (फा० स्त्री०) वीरता, शूरता।

वहादुर खां—(वहादुरखांन्-इ-शेवानी) दिल्लीके वादशाह अकबरके प्रसिद्ध सचिव खान् जमानके छोटे भाई।

इनका असली नाम महम्मद सैयद था। हुमायूँ फारससे लौटते समय इन्हें दावरका शासन-भार सौंप गये थे। कुछ ही दिन वाद वहादुरने विद्रोही हो कर कान्धार पर दखल करना चाहा। खिलातके शाह महम्मद खां उस समय कान्धारके सेनापति थे। उन्होंने फारसके वादशाहसे सहायता मांगी। कुछ काजलवासोंने बहादुर खां पर हमला किया था, उस समय उन्होंने भाग कर अपनी रक्षा की थी।

वहादुर खांके आचरणसे दिल्लीके वादशाह उनसे वहुत ही नाराज थे। अकवरने अपने राजत्वके ३रे वर्षमें मानकोट अधिकार किया। इस समय वैरामखांके अनुरोधसे उन्होंने वहादुरको क्षमा कर दिया। वहादुर खांको मूलतानकी जागीर मिली थी। दूसरे वर्ष मालव-जयके समय इन्होंने वादशाहकी सेनाकी काफी सहायता की थी। वैरामखांके पतन होने पर माहुम-अनगाकी कोशिशसे वहादुरखां 'वकील' और इटावा सरकारके शासनकर्त्ता हुए थे। खान् जमानके विद्रोहके समय ये भी भाईके साथ जा मिले थे। इसी अपराध पर ये अकवरके आदेशसे कैद कर लिये गये और शाहवाज खां कम्बूके हाथसे मारे गये। भाईकी तरह ये भी एक विद्वान् पुरुष थे।

वहादुर खाँ—खानदेशके एक अधिपति, फरुखीवंशके राजा अली खाँके पुत्र। राजा अली खांने अकवरकी तरफसे दाक्षिणात्यके राजाओंसे घोरतर युद्ध किया था। उसीमें वे शत्रुओंके हाथ मारे गये। इस समय वहादुर खां असीरगढ़में कैद थे। ऊंचे खानदानमें उत्पन्न होने पर भी इनकी तकदीरमें सुख शान्ति न लिखी थी। यही कारण है, कि उन्होंने १० वष तक कारावासका कष्ट सहा था। पिताकी मृत्युके वाद १५९६ ई०में ये राजा तो हुए, पर सुशिक्षाके अभावसे और निवुद्धिताके कारण ये दिल्लीश्वरकी अधीनता स्वीकार न कर सके। आखिर दिल्लीसे वादशाहकी फौज चली आई और हमला कर असीरगढ़ पर कब्जा कर लिए। इस तरह वहादुर खांने अपना राज्य खो दिया।

वहादुर खां—औरङ्गजेवका एक प्रिय सेनापति। इन्होंने दाराशिकोहको पुत्र-सहित वन्दी करके औरङ्गजेवके सामने हाजिर किया।

वहादुर खां—विहारके एक शासनकर्त्ता। इन्होंने अपने पिताकी मृत्युके वाद अपनेको स्वाधीन राजा घोषित किया था। दिल्लीके वादशाह इब्राहिम लोदीके राजत्वकालमें (१५२५ ई०में) इन्होंने दिल्लीकी सेनाके साथ वड़ी तैयारीके साथ कई युद्ध किये थे, जिसमें ये विजयी हुए थे और शम्भलप्रदेश पर्यन्त स्थान अधिकार किया था।

वहादुर खां सिस्तानी—मालव-राज अवदुल्ला खां उजवेगका एक सहकारी सरदार। १५६६ ई०में सम्राट् अकवरने उजवेगके विरुद्ध युद्ध किया था, जिसमें मालवराजके सहकारी सरदारोंने अन्य कोई उपाय न देख मुगलवादशाहकी शरण ली थी। परन्तु वहादुर खांने अपनी फौजके साथ जमुना पार कर अन्तर्वेदीके वीच मुगलसेनापति मीर मैज-उलमुल्क पर धावा मारा। उसमें मुगलोंकी सेना परास्त हो कर कनौजकी तरफ भाग गई। उसके वाद खां जमानके विद्रोह-दमनके लिए अकवरशाह जव गाजीपुरकी तरफ वढ़े, तो वहादुर खांने मौका समझ जौनपुर दखल कर लिया। अकवर वहादुर खांकी क्षमताको खर्व करनेके अभिप्रायसे जौनपुर लौटे। सम्राट्के आगमनसे भयभीत हो कर वहादुर खां वनारस भाग गये। वहांसे वहादुरने सम्राट्की अधीनता स्वीकार कर क्षमा-प्रार्थना की थी।

वहादुर गिलानी—दाक्षिणात्यके वाह्मनी राजवंशके अधःपतनके समय (१४७३-१४८६ ई०में) जव वीजापुर जुन्नर आदि स्थानोंके शासनकर्त्ताओंने अपना अपना प्रभाव जमा कर स्वाधीनता प्राप्त और स्वतंत्र राजवंशकी प्रतिष्ठा की थी, उस समय कोङ्कण प्रदेशके शासनकर्त्ता वहादुर गिलानीने भी स्वाधीन होनेकी चेष्टा की थी। इन्होंने विद्रोही हो कर वेलगाम और गोआ अधिकार किया था। शङ्केश्वरमें अपना राजपाट स्थापन कर इन्होंने १४८६ ई०में मिराज और जामखण्डी जय किया था। उसके वाद कोङ्कण उपकूलमें नौ-सेना रखनेकी चेष्टा करने पर १४९३ ई०में सुलतान महमूदवेगके उद्योगसे और वीजापुरके राजा युसुफ आदिल खां महमूदशाहकी सहायता से वहादुर खां गिलानी मिराजमें पराजित हुए और मार डाले गये। जामखण्डी और शङ्केश्वर महमूदशाहके

हाथ लगा और वेलगाम आदि अन्य सम्पत्तियां जैन-उल-मुल्कको दे दी गई।

बहादुर खां नाहर—राजपूतानेके अन्तर्गत मेवाड़ प्रदेशके खांजादा राजवंशके प्रतिष्ठाता। तैमूरके दिल्ली आक्रमण-के पहले और बादमें इन्होंने दिल्लीराज-दरबारमें विशेष प्रतिष्ठा पाई थी। सम्राट् फिरोजशाहने इनकी वीरता देख कर इन्हें 'नाहर'की उपाधि दी थी। फिरोजाबादसे ३० कोस दक्षिणके पर्वतके नीचे बसे हुए कोटिला नगरमें इनकी राजधानी थी। इस नगरकी रक्षाके लिए इन्होंने पर्वतके ऊपर तीन दुर्ग बनवाये थे। १३८६ ई०में (हिजरी ७९१) इन्होंने फिरोज़ाबाद पर अपना कब्जा किया। पीछे राजपुत्र आबू बकरकी सहायतासे इन्होंने दिल्लीश्वर महम्मदशाहको सिंहासनसे उतार कर आबूको राजा बनाया था। परन्तु महम्मदने जब फिर दिल्ली-सिंहासन अधिकार किया, तब आबू बकरने पराजित हो कर मेवाड़में आ बहादुरकी शरण ली। ७९२ हि०में महम्मदशाहने मेवाड़ पर चढ़ाई कर बहादुरको परास्त और आबू बकरको कैद कर लिया था। बहादुर खांके क्षमा प्रार्थना करने पर सुलतानने राज-भूषा दे कर उनकी सम्मान-रक्षा की थी। ७९५ हि० (१३९३ ई०)में बहादुरने पुनः दिल्ली-द्वार तक लूट लिया। इससे महम्मदने क्रोधमें आ कर मेवाड़ पर चढ़ाई कर दी और कोटिला अधिकार कर लिया। (यह युद्ध-संवाद कोटिलाकी जुम्मा मसजिदके शिलालेखमें वर्णित है) बहादुर खाँ भाग कर फिरोजपुर भाग गये। सुलतान महम्मूद अला-उद्दीनके राज्यके समय ये दिल्लीके किलेकी रक्षामें नियुक्त थे। तबसे ले कर मृत्यु पर्यन्त ये राज्य सम्बन्धी अनेक विषयोंमें लिप्त रहे। यही कारण है, कि सर्व-साधारणमें इनकी विशेष प्रतिष्ठा हो गई थी।

प्रवाद है, कि बहादुर खाँ नाहर अपने हिन्दू-धर्मा-वलम्बी श्वशुर राणा जम्बूवास द्वारा मारे गये। उनके पुत्र अलाउद्दीन खांजादाने अपने नानाको मार कर पितृ हत्याका प्रतिशोध लिया था। कोटिलाकी जुम्मा मस-जिदमें अब भी बहादुर खांकी कब्र मौजूद है। इन्होंने अलवारसे ७ कोस उत्तर-पूर्वमें बहादुरपुर नामका नगर स्थापित किया था।

बहादुरगञ्ज—युक्तप्रदेशके गाजीपुर जिलेके अन्तर्गत एक नगर।

बहादुरखेल—पञ्जावप्रदेशके कोहट जिलान्तर्गत एक गण्ड ग्राम। यह अक्षा० ३०° १०' ३०" तथा देशा० ७०° ५१' १५" पू०के मध्य विस्तृत है। इसके दक्षिणमें जो पर्वत श्रेणी है उस पर सेंधा नमक पाया जाता है। उसी नमककी खानके लिये यह स्थान बहुत कुछ मशहूर है। काबुल, बलूचिस्तान, देराजात, सिन्धु और भारतवर्षके प्रायः प्रत्येक नगरमें इस नमककी रफ्तनी होती है।

बहादुरगढ़—पञ्जावप्रदेशके रोहतक जिलेके अन्तर्गत एक नगर। यह अक्षा० २८° ४१' उ० तथा देशा० ७६°५६' पू०-के मध्य विस्तृत है। पहले यह नगर सरफाबाद नामसे प्रसिद्ध था। १७५४ ई०में मुगल-सम्राट् २य आलमगीर-ने २५ ग्रामोंके साथ यह नगर बहादुर खाँ नामक किसी बलूच सरदारको दान कर दिया। उक्त सेनापतिने एक दुर्ग बना कर इस स्थानको अपने नामसे बसाया। १७९३ ई०में सिन्धियाके राजाने इस पर अपना कब्जा किया। १८०३ ई०में झज्जरके नवाब-भ्राता इस्माइल खांने लार्ड-लेकके अनुग्रहसे इस स्थानका शासन-भार ग्रहण किया। उक्त नवाबवंश १८५७ ई० तक यहांका शासन करते रहे। शेष नवाब बहादुरजङ्ग खाँ गदरके समय अङ्गरेजों-के विरुद्ध खड़े हुए थे। इस कारण उनका राज्य छीन कर ब्रिटिश साम्राज्यमें मिला दिया गया। पूर्वतन राजप्रासाद आज भी विद्यमान है।

बहादुर निजामशाह—दाक्षिणात्यके अहमद नगरस्थ निजाम शाही राजवंश (१०म)-के अन्तिम राजा। इन्होंने निजाम उल्-मुल्ककी, उपाधि धारण की थी। १५९५ ई०में इनके पिता इब्राहिम शाहकी मृत्यु होने पर अहमद-नगरके सिंहासन-सम्बन्धमें झगड़ा खड़ा हुआ। बहादुरने अकबरके पुत्र मुरादको अपनी सहायताके लिये बुला भेजा। मुरादके पहुंचने पर इन्होंने नगर-रक्षाका भार चांदबीबी और नासिर खां पर सौंप गोलकुण्डा और बीजापुरके राजासे सहायता मांगी। इधर सम्राट्-पुत्र मुरादने अहमदनगर अवरोध कर बैठे। इस अवसर पर वीरोचित साहस दिखा कर चांदबीबीने रमणी-कुलका मुखोज्ज्वल किया था। किसी तरह अवगुण्ठनवती

चांदबीबीको परास्त न कर सकने पर, तथा बीजापुर और गोलकुण्डाकी सेनाके युद्धक्षेत्रमें पहुंच जाने पर मुरादको सन्धि करनी पड़ी। इस सन्धिकी शर्तोंके अनुसार उन्हें चांदबीबीसे कुछ रुपये और बरारराज्य प्राप्त हुआ था। १५९६ ई०में सन्धिपत्रके अनुसार बहादुरशाह चावन्दके कारागारसे लाये गये और चांद बीबीने इच्छा नहीं होने पर भी उन्हें सिंहासन पर अभि- किया। परन्तु अपने प्रिय आमात्य महम्मद खांको मन्त्रि-पद पर नियुक्त कर सुलतानाने बड़ी बेवकूफीका काम किया था। महम्मद खांकी क्षमता-वृद्धिके साथ साथ चांदबीबीका प्रभुत्व घटता जाता था। उसी वर्ष महम्मद खांके दमनके लिये इब्राहिम आदिलशाहने चांदबीबीके प्रार्थनानुसार सोहल खांको सेनाके साथ भेज दिया। चार मास तक दुर्ग अवरोध करने पर महम्मद सुल-तानाका आश्रय ग्रहण करनेको बाध्य हुए। उस समय निहङ्ग खांने मंत्री बन कर राजकार्य चलाया था।

१६०० ई०में मुगलोंकी सेनाने अहमदनगर फ़तह कर बहादुरको परिवार सहित ग्वालियरके किलेमें बंद रखा और वहीं पर उनकी मृत्यु हुई। इसके बाद दो एक वंशधर नाममात्रको राजा हुए थे। चांदबीबी, अकबर और निजामशाही देखो।

बहादुरशाह—बङ्गालके एक अफगानी शासनकर्त्ता, महमूद शाहके पुत्र। ५ वर्ष स्वाधीनतासे राज्य करनेके बाद ये १५३९ ई०में सलीम शाह द्वारा राज्यच्युत हुए थे।

बहादुरशाह (सुलतान)—गुजरातके एक शासनकर्त्ता, २य मुजफ्फर शाहके द्वितीय पुत्र। पिताकी मृत्युके समय ये जौनपुरमें थे, अतः इनके छोटे भाई महमूदशाह अपने ज्येष्ठ सहोदर सिकन्दर शाहकी हत्या कर राजा बन बैठे। बहादुरको मालूम पड़ते ही उन्होंने अपने राज्यमें लौट कर महमूदको सिंहासनसे उतार दिया और १५२६ ई०में स्वयं पितृ-सिंहासन पर आरूढ़ हुए। १५३१ ई०में इन्होंने मालव जीत कर वहांके राजा सुलतान २य महमूदको बन्दी, फिर हत्या की थी। १५३६ ई०में सम्राट् हुमायूं द्वारा ये मालवमें पराजित हुए और सम्राट्को अपना राज्य समर्पण कर काम्बेकी तरफ भाग गये। वहां जा कर उन्होंने सुना, कि दीऊ द्वीपके पास ही एक यूरोपीय 'मीर बहरी' है। ये उनके नौ-सेनापतिकी हत्या करनेकी मनसासे सेना ले कर उधर अग्रसर हुए। वहां पोर्चुगीजोंके शस्त्राघातसे बेहोश हो कर समुद्रकी गोदमें, १५३७ ई०में सदाके लिए सो गये। बीस वर्षकी उम्रमें राज्याधिकारी हो कर इन्होंने ११ वर्ष राज्य किया था, इस प्रकार ३१ वर्षकी अवस्थामें इस युवककी मृत्यु हुई।

बहादुरशाह १म—(शाह-आलम बादशाह) मुगलसम्राट् १म आलमगीरके द्वितीय पुत्र। ये अमीर तैमूरसे बारह पीढ़ी नीचे थे। (१०५३ हि०) बरहनपुरमें इनका जन्म हुआ था। युवराज मुआजिम या कुतुब-उद्दीन शाह आलम नामसे इनकी प्रसिद्धि थी। १११४ हि०में, जब अहमदाबादमें पिताकी मृत्यु हुई थी, तब ये काबुलमें थे। इनके छोटे भाई आजमशाह मौका पा कर राजधानीमें अपनेको भारत साम्राज्यका अधीश्वर घोषित किया। उधर युवराज मुआजिमने भी काबुलमें रहते हुए ही, बाहादुरशाह नाम ग्रहण कर राजमुकुट धारण किया था।

राज्याधिकारको ले कर दोनों भाइयोंमें विवाद हुआ। दोनों पक्षोंमें युद्धकी तैयारियां होने लगीं। आगराके पास धौलपुरमें दोनों तरफकी सेनाए इकट्ठी हुई और (१११९ हि०में) बड़ा भारी युद्ध हुआ, जिसमें राजपुत्र आजम और उनके दो पुत्र बेदार बखत और बलाजा मारे गये। फिर इन्होंने राजदण्ड ग्रहण कर ५ वर्ष तक राज्य किया। वजीर मुनाइम खाँ आदिकी सहायतासे इन्होंने दिल्ली, आगरा, जोधपुर, उदयपुर आदि राज्य हस्तगत किये थे। "शाह आलम बहादुर शाह"के नामसे इन्होंने मुद्राङ्कन करा कर खुतबा पढ़वाया था। इनके राज्यके दूसरे वर्ष राजपुत्र महम्मद कामबक्स अपने अधिकारसे च्युत हुए जिससे जुलफिकर खाँकी प्रतिष्ठा बढ़ गई और इनके प्रयत्नसे महाराष्ट्रपतिने सरदेश-मुखी लेनेके लिए आवेदन किया था।

इनके राजत्वके ३रे वर्षमें (११२१ हि०में) गुरु गोविन्द सिंहकी मृत्युसे उत्तेजित हो सिख लोग बन्दाकी अधी-नतामें विद्रोही हो गये थे। किन्तु खान, खानाके प्रयत्न-

से पंजावमें शान्ति स्थापित हो गई थी। पांच वर्ष राज्य करनेके वाद ७१ वर्षकी उमरमें उनकी मृत्यु हुई। ख्वाजा कुतुवउद्दीनकी कब्रके पास इनका दफन किया गया, जो "खुलद् मंज़िल"-के नामसे प्रसिद्ध है। इनके चार पुत्रोंमें जहन्दार शाह पितृसिंहासनके अधिकारी हुए थे।

वहादुरशाह २य—दिल्लीके आखिरी मुगल वादशाह। इनका पूरा नाम—अवुल मुज़फ्फर सिराज उद्दीन महम्मद् वहादुरशाह है। २य अकवरशाहकी मृत्युके वाद १८३७ ई०में ये पितृ-सिंहासन पर वैठे थे। इनकी माताका नाम था लालवाई। १७७५ ई०में इनका जन्म हुआ था।

दाक्षिणात्यमें महाराष्ट्र-शक्तिके अभ्युत्थानसे मुगलोंका वल दिन पर दिन घट रहा था। वहादुरशाह महाराष्ट्रोंके हाथमें गुड्डा वने हुए थे। कवियोंमें कायरताका भाव रहता ही है। ये भी फारसीके एक अद्वितीय विद्वान् थे। उर्दू कविता लिखनेके कारण विद्वत्समाज द्वारा इन्हें 'जाफर'-की उपाधि मिली थी। इनके वनाये हुए "दीवन" वहुत मिलते हैं। कवित्वरसमें डूवे रहनेके कारण ये राजकीय प्रायः सभी कार्य भूल जाया करते थे। सन् ५७के गदरमें सहयोगिताके सिवा इनके जीवनमें विशेष कोई युद्ध-विग्रहका उल्लेख नहीं मिलता। १८५७ ई०के सिपाही-युद्धमें इन्होंने नेतृत्व ग्रहण किया था। १८५८ ई०में, जव कि गदर शान्त हो चुका था, ये कैद कर लाये गये। पश्चात् यहांसे मेगेरा (*H. M. S. Megera*) जहाजमें विठा कर सपरिवार रंगून पहुंचाये गये और वहां नज़रवंद रखे गये। अपने भरण-पोषणके लिये ये अंग्रेजोंसे मासिक १ लाख रुपये पाते थे। वस, यहींसे भारतमें तैमूर-वंशका राज्य लोप हुआ। इनके पुत्र मिर्जा मुगल और मिर्जा ख्वाजा सुलतान तथा पौत्र मिर्जा आवू वकर विद्रोहमें शामिल पाये जानेके कारण अङ्गरेजों द्वारा पकड़े और मारे गये। विद्रोहके वक्त वहादुरशाहने अपने नामसे सिक्के चलाये थे।

वहादुर सिंह राव—अन्तर्वेदीय गुर्जर-वंशीय एक राजपूत राजा। घसेरा और कोयल प्रदेश इनके अधिकारमें था। इन्होंने विना दोषके नवाव सफदर जङ्गका उच्छेद किया था, इस कारण सम्राट्ने इसके प्रतिविधानके लिये सूयमल्ल जाटको भेजा और साथ ही उनसे राज्य-सम्पत्ति छीन लेनेका आदेश दिया। १७५७ ई०में जाट-राजाने इन्हे युद्धमें परास्त कर मार डाला और राज्य छीन लिया। सुजनचरितकाव्यमें इसका विस्तृत विवरण लिखा है।

वहादुरशाह—अहमदावादके अन्तिम मुसलमान राजा। १६०७ ई०में इन्होंने मुगलोंसे सूरतको छीन लेनेका प्रयत्न किया था, परन्तु मुगल-सेनाने इन्हें परास्त कर दिया। इन्हींके अधिकारकालमें अङ्गरेजोंको अहमदावादमें वाणिज्य करनेकी आज्ञा दी गई थी।

वहाना (हिं० क्रि०) १ प्रवाहित करना, द्रव पदार्थोंको निम्नतलकी ओर छोड़ना। २ प्रवाहके साथ छोड़ना। ३ सस्ता वेचना। ४ फेंकना, डालना। ५ वायु संचालित करना, हवा चलाना। ६ व्यर्थ व्यय करना, खोना। ७ ढालना, लुढ़ाना।

वहाना (फा० पु०) १ किसी वातसे वचने या कोई मतलव निकालनेके लिये अपने संवंधमें कोई झूठ वात कहना, हीला। २ प्रसङ्ग, निमित्त। ३ वह वात जिसकी ओटमें असल वात छिपाई जाय।

वहार (फा० स्त्री०) १ वसन्त ऋतु, फूलोंके खिलनेका मौसिम। २ नारंगीका फूल। ३ एक रागिनी। ४ प्रफुल्लता, विकाश। ५ आनन्द, मौज। ६ शोभा, सौन्दर्य। ७ यौवनका विकास, जवानीका रंग।

वहारगुर्जरी (फा० स्त्री०) सम्पूर्ण जातिकी एक रागिनी जिसमें सव शुद्ध स्वर लगते हैं।

वहारनशाख (फा० पु०) मुकाम रागका पुत्र, एक राग।

वहारना (हिं० क्रि०) वुहारना देखो।

वहारागढ़—विहारके सिंहभूम जिलान्तर्गत एक प्रधान वाणिज्य स्थान। यह अक्षा० २२° १६' १६" उ० तथा देशा० ८६° ४५' ३०" पू०के मध्य अवस्थित है।

वहारी (हिं० स्त्री०) वुहारी देखो।

वहाल (फा० वि०) १ पूर्ववत् स्थित, ज्योंका त्यों। २ स्वस्थ, भला चंगा। ३ प्रसन्न, खुशहाल।

वहाली (फा० स्त्री०) १ पुनर्नियुक्ति, फिर उसी जगह पर मुकर्ररी। २ धोखा देनेवाली वात, झांसा पट्टी।

वहाव (हिं० पु०) १ वहनेका भाव। २ प्रवाह, वहनेकी क्रिया। ३ वहती हुई धारा, वहता हुआ जल आदि।
वहिः (सं० अव्य०) वाहर।
वहि (सं० पु०) पिशाचभेद।
वहिअर (हिं० स्त्री०) स्त्री।
वहिक्रम (हिं० पु०) अवस्था, उमर।
वहित्र (सं० पु०) वहित्र देखो।
वहिन (हिं० स्त्री०) भगिनी, माताकी कन्या।
वहिनापा (हिं० पु०) वहनापा देखो।
वहिरङ्ग (सं० क्ली०) वहिः प्रकृतेर्वाह्यमङ्गं यस्य। १ व्याकरणोक्त प्रत्ययादि निमित्तक प्रकृत्यवयवादि कार्य। (त्रि०) २ वाहरवाला, वाहरी। ३ जो गुट या मंडलीके भीतर न हो।
वहिरर्गल (सं० पु०) वहिर्भागका अर्गल।
वहिरर्थ (सं० त्रि०) वहिर्विषयमें अर्थयुक्त।
वहिराना (हिं० क्रि०) निकाल देना, वाहर कर देना।
वहिर्गत (सं० त्रि०) १ जो वाहर गया हो। ३ जो वाहर हो। ३ जो अन्तर्गत न हो, अलग, जुदा।
वहिर्गिरि (सं० पु०) जनपदभेद।
वहिर्जानु (सं० अव्य०) हाथोंको दोनों घुटनोंके वाहर किये हुए। श्राद्ध आदि कृत्योंमें इस प्रकार वैठनेका प्रयोजन पड़ता है।
वहिर्द्वार (सं० क्ली०) वहिःस्थं द्वारम्। तोरण, वाहरका दरवाजा।
वहिर्द्वारप्रकोष्ठक (सं० पु०) वहिर्द्वारस्य प्रकोष्ठकः। गृहद्वारका वहिःप्रकोष्ठ । पर्याय—प्रघाण, प्रघण, अलिन्द।
वहिर्ध्वजा (सं० स्त्री०) दुर्गा।
वहिर्निगमन (सं० स्त्री०) वाहर निर्गमन, वाहर जाना।
वहिर्भूत (सं० त्रि०) वहिस् भू-क्त। १ वहिर्गत, जो वाहर गया हो। २ अलग, जुदा। ३ जो वाहर हो।
वहिर्भूमि (सं० स्त्री०) १ वस्तीके वाहरवाली भूमि। २ झाड़े जंगल जानेकी भूमि।
वहिर्मुख (सं० त्रि०) वहिर्वाह्यविषये मुखं प्रवणता यस्य। विमुख, पराङ्मुख, विरुद्ध।
वहिर्मुद्रा (सं० स्त्री०) वह मुद्रा जो वाहरमें की जाय।
वहिर्यात्रा (सं० स्त्री०) वहिर्भागमें यात्रा।
वहिर्यान (सं० क्ली०) वहिर्गमन।
वहिर्रति (सं० स्त्री०) रतिके भेदोंमेंसे एक, वाहरी रति या समागम जिसके अन्तर्गत आलिङ्गन, चुम्बन, स्पर्श, मर्दन, नखदान, रददान, और अधरपान है।
वहिर्लम्ब (सं० त्रि०) वाहरकी ओर लंवायमान।
वहिर्लापिका (सं० स्त्री०) काव्य रचनामें एक प्रकारकी पहेली। इसमें उसके उत्तरका शब्द पहेलीके शब्दोंके वाहर रहता है भीतर नहीं।
वहिर्वासस् (सं० क्ली०) वहिर्वासः। वाहरका वस्त्र। वस्त्र दो प्रकारका होता है, अन्तर्वास और वहिर्वास। अन्तर्वासको कोपीन और कोपीनके ऊपर जो वस्त्र पहना जाता है उसे वहिर्वास कहते हैं। (भाग० ६।८।१६)
वहिर्विकार (सं० पु०) वाह्यविकार।
वहिर्वृत्ति (सं० स्त्री०) वाह्यवृत्ति।
वहिर्वेदि (सं० अव्य०) वेदीके वाहरमें।
वहिला (हिं० वि०) वन्ध्या, वांझ।
वहिश्चर (सं० पु०) वहिश्चरतीति चर-ट। १ वहि-र्विचरण। (त्रि०) २ वहिश्चरणशील।
वहिष्क (सं० त्रि०) वहिःस्थित, जो वाहरमें हो।
वहिष्करण (सं० क्ली०) १ वहिरिन्द्रिय। २ वाहर करना।
वहिष्कार (सं० पु०) १ निकालना, वाहर करना। २ दूर करना, हटाना।
वहिष्कार्य (सं० त्रि०) निकालने योग्य, वाहर करने लायक।
वहिष्कुटीचर (सं० पु०) वहिष्कुट्यां चरतीति चर-ट। कुलीर, केंकड़ा।
वहिष्कृत (सं० त्रि०) १ वाहर किया हुआ, निकाला हुआ। २ त्यागा हुआ, अलग किया हुआ।
वहिष्कृति (सं० स्त्री०) वाहर करनेकी क्रिया, निका-लना।
वहिष्क्रिय (सं० त्रि०) वाह्य क्रियाशाली, निकालने लायक।
वहिष्क्रिया (सं० स्त्री०) १ वाह्य क्रिया। २ वाहर करना, निकालना।
वहिष्टाज्जोतिस् (सं० त्रि०) त्रिष्टुभ्छन्दोभेद।

वहिष्पष्ट (सं० पु०) वहिरावरण ।
वहिष्पवित्र (सं० त्रि०) पवित्रताहीन ।
वहिष्पिण्ड (सं० त्रि०) वहिर्भागमें पिण्डयुक्त ।
वहिष्प्रज्ञ (सं० त्रि०) जिसकी प्रज्ञा वाह्य व्यापारमें नियुक्त हो ।
वहिष्प्राण (सं० त्रि०) १ जिसके प्राण वहिर्गत हो गये हों। २ वित्त ।
वहिस् (अं० अव्य०) वहिः देखो ।
वहिःसंस्थ (सं० त्रि०) वहिःस्थित ।
वहिःसद् (सं० त्रि०) वहिः सीदति सद्-क्विप् । वाहरमें उपवेशनकारी, वाहरमें वैठनेवाला ।
वही (हिं० स्त्री०) हिसाव किताव लिखनेकी पुस्तक ।
वहीखाता (हिं० स्त्री०) हिसाव किताबकी पुस्तक ।
वहीनर (सं० पु०) शतानीकके पौत्र ।
(भाग० ९।२२। ४२)
वहीर (हिं० स्त्री०) १ भीड़, जनसमूह । २ सेनाके साथ साथ चलनेवाली भीड़ जिसमें साईस, सेवक, दूकानदार आदि रहते हैं, फौजका लवाज ।
वहीरज्जु (सं० अव्य०) रज्जा वहिः । रज्जुके वहिर्भागमें, रस्सीके वाहरमें ।
वहीरा (हिं० पु०) वहेड़ा देखो ।
वहु (सं० त्रि०) वंहते इति वहि वृद्धौ (लंघवंह्योर्नलोपश्च । उण् १।३०) इति कुर्नलोपश्च । १ वहुत, एकसे अधिक । २ अधिक, ज्यादा ।
वहु (हिं० स्त्री०) वहू देखो ।
वहुक (सं० पु०) वहु-संज्ञायां कन् । १ ककट, केंकड़ा । २ अर्क, आक, । ३ जलखातक, छोटा तालाव । ४ चातक, पपीहा । ५ हरिणविशेष । (त्रि०) ६ वहु द्वारा क्रीत, जो अधिक मोलमें खरीदा गया हो ।
वहुकण्टक (सं० पु०) १ क्षुद्र गोक्षुर, गोखरू । २ यवास, धमासा । ३ हिन्ताल वृक्ष । ४ शिग्रुड़ी क्षुप, सहिंजनका पेड़ । ५ कुण्टकताल वृक्ष । ६ स्नुही वृक्ष । ७ पाटला वृक्ष । ७ खजूरी वृक्ष ।
वहुकण्टका (सं० स्त्री०) अग्निदमनीवृक्ष ।
वहुकण्टा (सं० स्त्री०) वहवः कण्टाः कण्टकानि यस्याः । कण्टकारी, भटकटैया ।
वहुकन्द (सं० पु०) वहवः कन्दा यस्य । शूरण, ओल ।
वहुकन्या (सं० स्त्री०) १ गृहकन्या, घृतकुमारी । २ अनेक कन्या ।
वहुकर (सं० पु०) वहु कार्यं करोतीति (दिवाविभानिशा-प्रभेति पा ३।२।२१) इति ट । १ उष्ट्र, ऊँट । (त्रि०) २ मार्जनकारी, झाड़ू देनेवाला । ३ वहुकार्यकर्त्ता, वहुत काम करनेवाला ।
वहुकरी (सं० स्त्री०) वहुकर-ङीप् । सम्मार्जनी, झाड़ ।
वहुकर्णिका (सं० स्त्री०) वहवः कर्णा इव पत्राणि यस्याः । आखुकर्णी, मूसाकानी ।
वहुकाम (सं० त्रि०) अनेक कामनायुक्त ।
वहुकार (सं० त्रि०) वहुकार्यकारक, वहुत काम करनेवाला ।
वहुकूर्च (सं० पु०) मधुनारिकेल वृक्ष ।
वहुकृत्य (सं० त्रि०) वहु करणीय, जिसे वहुतसे काम करनेको हों ।
वहुकेतु (सं० पु०) पर्वतभेद ।
वहुक्रम (सं० पु०) वैदिक शब्दका क्रमभेद ।
वहुक्षम (सं० त्रि०) १ अधिक सहिष्णु । (पु०) २ जैन साधुभेद । ३ बुद्धभेद ।
वहुगन्ध (सं० क्ली०) वहुर्गन्धो यस्मिन् । १ गुड़त्वच, दारचीनी । २ कुन्दरुक, कुंदुरु । ३ पीतचन्दन ।
वहुगन्धदा (सं० स्त्री०) वहुगन्धं ददाति या वहुगन्ध-दा-क । कस्तूरी ।
वहुगन्धा (सं० स्त्री०) १ चम्पककलि, चम्पा फूलकी कलि । २ यूथिका, जूही । ३ कृष्ण जीरक, स्याह जीरा ।
वहुगर्ह्यवाच (सं० त्रि०) वहुगर्ह्या वहुनिन्दिता वाग् यस्य । कुत्सित वहुवादी, अश्लील शब्द वोलनेवाला ।
वहुगव (सं० पु०) पुरुवंशीय राजा सुद्युके एक पुत्रका नाम ।
वहुगुड़ा (सं० स्त्री०) १ कण्टकारी, भटकटैया । २ भूम्यामलकी, भूआँवला ।
वहुगुण (सं० त्रि०) १ वहुसूत्रयुक्त । २ वहुसद्गुणशाली । (पु०) ३ अनेक गुण । ४ देवगन्धर्वभेद ।
वहुगुना (हिं० पु०) चौड़े मुँहका एक गहरा वरतन । इसके पेंदे और मुँहका घेरा वरावर होता है । इससे

थाँवा आदिमें कई काम ले सकते हैं। शायद इसीसे इसको वहुगुना कहते हैं।

वहुज्ञ (सं० त्रि०) वहु जानाति ज्ञा-क। १ वहुदर्शी, वहुत वातें जाननेवाला। २ वहुविद्, जानकार।

वहुग्रन्थि (सं० पु०) वहवो ग्रन्थयो यस्य। झावुक, झाऊका पेड़।

वहुचारिन् (सं० त्रि०) वहु स्थानमें भ्रमणकारी।

वहुचित्र (सं० त्रि०) विभिन्न प्रकार, अनेक तरहका।

वहुच्छद (सं० पु०) सप्तपर्ण वृक्ष।

वहुच्छिन्ना (सं० स्त्री०) वहु यथा स्यात्तथा छिद्यते स्मेति वहु-छिद-क्त। कन्दगुड़ची।

वहुजल्प (सं० त्रि०) वहुभाषी, वहुत वोलनेवाला।

वहुजात (सं० त्रि०) द्रुतगामी, तेजीसे चलनेवाला।

वहुटनी (हिं० स्त्री०) एक प्रकारका गहना जो वाँह पर पहना जाता है।

वहुत (हिं० वि०) १ अनेक, गिनतीमें ज्यादा। २ आवश्यकता भर या उससे अधिक। ३ जो मात्रामें अधिक हो, परिमाणमें ज्यादा।

वहुतन्त्रि (सं० त्रि०) वहुतन्त्रविशिष्ट।

वहुतन्त्री (सं० त्रि०) वहवस्तन्त्र्यो यस्मिन्। वहुतन्त्रविशिष्ट।

वहुतन्त्रीक (सं० त्रि०) वहुतन्त्री स्वार्थे कन्। वहुतन्त्रविशिष्ट। जैसे—वहुतन्त्रिका वीणा, वहुतन्त्रीकपट, वहुतन्त्रीकवस्त्र, इत्यादि।

वहुतर (सं० त्रि०) अनेक, प्रभूत।

वहुतरकणिश (सं० पु०) वहूतराणि कणिशानि धान्यशीर्षाणि यस्य। तृणधान्यविशेष, चेना नामका अन्न।

वहुतलवशा (सं० स्त्री०) लताभेद।

वहुताँ (हिं० वि०) १ वहुत। (स्त्री०) २ वनियोंकी वोलीमें तीसरी तौलका नाम। तीनकी संख्या अशुभ समझी जाती है। इससे तौलकी गिनतीमें जव वनिये तीन पर आते हैं; तव यह शब्द करते हैं।

वहुता (सं० स्त्री०) अधिकता, वहुत्व।

वहुताइत (हिं० स्त्री०) वहुतायत देखो।

वहुताई (हिं० स्त्री०) अधिकता, ज्यादती।

वहुतात (हिं० स्त्री०) वहुतायत देखो।

वहुतायत (हिं० स्त्री०) अधिकता, ज्यादती।

वहुतिक्ता (सं० स्त्री०) वहुस्तिक्तो रसो यस्याः। काकमाची।

वहुतिथ (सं० त्रि०) वहु (वहुपूगगणसंघस्य तिथुक्। पा ५।२।५२) वहुतका पूरण।

वहुतृण (सं० क्ली०) तृण-'तृणाद्वहुः' इति वहुप्रत्ययः। मुञ्जातृण, मूंज नामकी घास।

वहुतेरा (हिं० वि०) १ अधिक, वहुत-सा। (क्रि० वि०) २ वहुत परिमाणमें, वहुत प्रकारसे।

वहुतेरे (हिं० वि०) संख्यामें अधिक, वहुतसे।

वहुत्र (सं० अव्य०) वहु-(सप्तम्यास्त्रल्। पा ५।३।१०) इति त्रल्। वहुतोंमें, अनेक विषयोंमें।

वहुत्व (सं० पु०) आधिक्य, अधिकता।

वहुत्वक् (सं० पु०) सप्तपर्णवृक्ष।

वहुत्वक्क (सं० पु०) वहुत्वगेव वहुत्वच् स्वार्थे कन्। भूर्जवृक्ष, भोजपत्र।

वहुत्वच् (सं० पु०) वहवस्त्वचो यस्य। भूर्जवृक्ष, भोजपत्र।

वहुधा (सं० अव्य०) वहु प्रकारसे, नाना प्रकारसे।

वहुदण्डिक (सं० त्रि०) वहवो दण्डाः सन्त्यस्य वहुदण्ड-ठन्। वहुदण्डविशिष्ट।

वहुदर्शिता (सं० स्त्री०) वहुज्ञता, वहुतसी वातोंकी समझ।

वहुदर्शी (सं० पु०) जिसने वहुत कुछ देखा हो, जानकार।

वहुदल (सं० पु०) १ तृणधान्यविशेष, चेना नामका अन्न। २ चिञ्चोटक क्षुप, चेंच साग।

वहुदला (सं० स्त्री०) चञ्चु, चेंच नामका साग।

वहुदान (सं० पु० स्त्री०) पुरदान देखो।

वहुदामन (सं० स्त्री०) स्कन्दानुचर मातृभेद।

वहुदायिन् (सं० त्रि०) प्रभूतदानशील।

वहुदुग्ध (सं० पु०) वहूनि दुग्धानि अपक्वावस्थायां यस्य। १ गोधूम, गेहूं। स्त्रियां टाप्। २ वहुक्षीरा गाभि, वहुत दूध देनेवाली गाय। ३ स्नुही वृक्ष, थूहरका पेड़।

वहुदुग्धिका (सं० स्त्री०) वहुदुग्धा-स्वार्थे कन्-टाप् अत इत्वं। स्नुही वृक्ष, थूहरका पेड़।

बहुदेवत (सं० त्रि०) बहुदेव निमित्तक पाठ्य ।

बहुदेवत्य (सं० त्रि०) बहुदेव सम्बन्धीय ।

बहुदैवत (सं० त्रि०) बहुदेवता सम्बन्धीय।

बहुदैवत्य (सं० त्रि०) बहुदेवता सम्बन्धीय ।

बहुधन (सं० त्रि०) बहुधनशाली, धनी ।

बहुधनेश्वर (सं० पु०) १ धनी व्यक्ति । २ कुबेर ।

बहुधर (सं० पु०) शिव, महादेव ।

बहुधा (सं० अव्य०) बहु (विभाषाबहोर्धा विप्रकृष्टकाले । पा ५।४।२०) १ बहुप्रकारसे, अनेक ढंगसे । २ प्रायः, अकसर, अधिकतर अवसरों पर ।

बहुधात्मक (सं० स्त्री०) बहुधा आत्मा यस्य । स्वयम्भु ।

बहुधान्य (सं० त्रि०) १ बहुधान्ययुक्त । २ जिसके प्रचुर धान्य हो । (क्ली०) ३ राशि राशि धान्य । ४ साठ संवत्सरोंमेंसे वारहवां संवत्सर ।

बहुधार (सं० क्ली०) बह्वी धारा यस्य । वज्रहीरक, एक प्रकारका हीरा ।

बहुधूप (सं० पु०) सर्ज वृक्ष ।

बहुधेनुक (सं० क्ली०) बहुसंख्यक दोहनयोग्य गाभी ।

बहुधेय (सं० पु०) १ बहु नाम युक्त । २ सम्प्रदायभेद ।

बहुध्वज (सं० पु०) शूकर, सूअर ।

बहुनाड़िक (सं० त्रि०) बहुनाड़ि-कन् । काय, शरीर ।

बहुनाड़ीक (सं० त्रि०) बह्वो नाड्यो यस्मिन्, बहुनाड़ी-कप् । १ दिवस । २ स्तम्भ ।

बहुनाद (सं० पु०) बहुर्महान् नादः शब्दो यस्य । शङ्ख ।

बहुपटु (सं० त्रि०) बहुपु विषयेपु पटुः । १ बहुकार्यमें दक्ष, जो बहुत काम जानता हो ।

बहुपत्र (सं० पु०) बहूनि पत्राणि दलान्यस्य । १ अभ्रक, अवरक । २ पलाण्डु, प्याज । ३ वंशपत्र, हरिताल । ४ मुचुकुन्दवृक्ष । ५ पलाशवृक्ष । (त्रि०) ६ अनेक पत्रयुक्त, जिसमें बहुत-सी पत्तियां हों ।

बहुपत्रा (सं० स्त्री०) बहु-पत्रटाप् । १ तरुणी पुष्प-वृक्ष । २ शिवलिङ्गिनी लता । ३ जन्तुका, पहाड़ी नामकी लता । ४गोरक्षदुग्धी, दुधिया घास । ५ भूम्या-मलकी, भूआंवला । ६ घृतकुमारी, घीकुवार । ७ वृहती ।

बहुपत्रिका (सं० स्त्री०) बहुपत्रा संज्ञायां स्वार्थे वा कन्, टापि-अत इत्वं । १ भूम्यामलकी, भूआंवला । २ महा-शतावरी । ३ मेथिका, मेथी । ४ वच ।

बहुपत्री (सं० स्त्री०) बहुपत्र गौरादित्वात् ङीष् । १ लिङ्गिनी । २ गृहकन्या, घीकुवार । ३ तुलसीका पौधा । ४ जतुका । ५ वृहती । ६ गोरक्ष दुग्ध, दुधिया घास ।

बहुपत्नीक (सं० त्रि०) बह्वी पत्नीर्यस्य 'नद्यृतश्च' सर्वेरातैः कप्' इति कप् । बहुपत्नीयुक्त, जिसके अनेक स्त्रियां हों ।

बहुपद् (सं० त्रि०) १ बहुपादयुक्त, जिसके अनेक पैर हों । (पु०) २ वटवृक्ष, वरगदका पेड़ ।

बहुपन्नग (सं० पु०) मरुद्भेद ।

बहुपर्ण (सं० पु०) बहूनि पर्णानि पत्राणि यस्य । १ सप्तच्छदवृक्ष । (त्रि०) २ अनेक पत्रयुक्त ।

बहुपर्णिका (सं० स्त्री०) बहुपर्ण-संज्ञायां कन्, टापि अत-इत्वं । आखुपर्णी ।

बहुपर्णी (सं० स्त्री०) बहुपर्ण गौरादित्वात् ङीष् । मेथिका, मेथी ।

बहुपशु (सं० त्रि०) बहुपशुयुक्त, जिसके अनेक मवेशी हों ।

बहुपाक्य (सं० त्रि०) जिसके घरमें दरिद्रोंके लिये अनेक खाद्य वस्तु बनती हों ।

बहुपाद् (सं० पु०) वटवृक्ष, वरगदका पेड़ ।

बहुपाद (सं० पु०) बहुपद् देखो ।

बहुपाय्य (सं० त्रि०) बहुकर्तृक गन्तव्य या बहुकर्तृक रक्षितव्य ।

बहुपुत्र (सं० पु०) बहवः पुत्राः सन्तयो यस्य । १ सप्त-पर्ण । २ पांचवें प्रजापतिका नाम । (त्रि०) ३ अनेक पुत्रविशिष्ट, जिसके बहुतसे पुत्र हों ।

बहुपुत्रिका (सं० स्त्री०) स्कन्दकी अनुचरी, एक मातृका ।

बहुपुत्री (सं० स्त्री०) १ शतावरी । २ भूम्यामलकी । ३ वृहती ।

बहुपुष्प (सं० पु०) बहूनि पुष्पाणि यस्य । १ पारिभद्र-वृक्ष, फरहदका पेड़ । २ निम्बवृक्ष, नीमका पेड़ ।

बहुपुष्पिका (सं० स्त्री०) बहुपुष्प संज्ञायां कन्, अत इत्वं । धातकीवृक्ष, धायका पेड़ ।

वहुप्रकार (सं० त्रि०) नानाविध प्रकार, तरह तरहका।

वहुप्रकृति (सं० त्रि०) वहुप्रकृतियुक्त।

वहुप्रज (सं० त्रि०) वह्वः प्रजा यस्य। १ वहुसन्तति-विशिष्ट, जिसके वहुत संतान हों। (पु०) २ मुञ्जतृण, मूंजका पौधा। ३ शूकर, सूअर।

वहुप्रतिज्ञ (सं० त्रि०) वह्वाः प्रतिज्ञाः यस्मिन्। १ अनेक-पदसङ्कीर्ण पूर्वपक्षविशिष्ट व्यवहार, अनेक विषयक प्रतिज्ञा-युक्त व्यवहार। २ अनेक प्रतिज्ञायुक्त।

वहुप्रद (सं० त्रि०) प्रददातीति प्र-दा-क, वहूनां प्रदः। १ प्रचुरदाता, वहुत देनेवाला। (पु०) २ शिव, महादेव।

वहुप्रसू (सं० स्त्री०) वहून् प्रसूते इति वहु-प्र-क्विप्। वहु-सन्तान प्रसवकारिणी, वहुत वञ्चा जननेवाली।

वहुप्रिय (सं० पु०) यवतृण।

वहुप्रेयसी (सं० त्रि०) वहुप्रेयसीयुक्त।

वहुफल (सं० पु०) वहूनि फलानि यस्य। १ कदम्ब-वृक्ष। २ विंकङ्कत, कटाई, वनभंटा। ३ तेजःफलवृक्ष। ४ वंशधान्य। ५ वटवृक्ष। ६ कक्कोल। ७ प्लक्षवृक्ष।

वहुफला (सं० स्त्री०) वहुफल टाप्। १ क्षविका, एक प्रकारका वनभंटा। २ माषपर्णी, जंगली उड़द। ३ काकमाची। ४ त्रपुसी, खीरा। ५ शशाण्डुली। ६ क्षुद्रकारवेल्ली, छोटा करेला। ७ भूम्यामलकी, भूआंवला।

वहुफलिका (सं० स्त्री०) वहुफला संज्ञायां कन्, अत इत्वम्। भूवदरी, एक प्रकारका छोटा वेर।

वहुफली (सं० स्त्री०) एक प्रकारकी जंगली गाजर। इसका पौधा अजवाइनका-सा पर उससे छोटा होता है। पत्ते सौंफकी तरह होते हैं और धनियेके फूलोंकेसे पीले रंगके गुच्छे लगते हैं। उंगलीकी तरह या पतली गाजर-सी लंवी जड़ होती है। वीज भूरे हलके और हरसिंगार-के वीजोंके जैसे होते हैं।

वहुफेना (सं० स्त्री०) वहुः फेनोयस्याः। १ सातला, पीले दूधवाला थूहर। २ शंखहुली।

वहुवल (सं० पु०) वहु अतिशयं वलं यस्य। १ सिंह। (त्रि०) २ अतिशय वलयुक्त।

वहुवल्क (सं० पु०) पियासाल।

वहुवाहु (सं० पु०) रावण।

वहुवीज (सं० पु०) १ वीजपूरकवृक्ष, विजौरा नीवू। २ वीजवाला केला। ३ शरीफा।

वहुवेगम—लखनऊके नवाव आसफ उद्दौलाकी माता। इन्होंने १७९८से १८१५ ई० तक फैजावाद नगरका निष्कर भोग किया था। उनकी मृत्युके वाद उक्त नगर तहस नहस हो गया। उनका समाधि-मन्दिर आज भी विद्य-मान है जो अयोध्याप्रदेश भरमें एक श्रेष्ठ भवन समझा जाता है।

वहुभद्र (सं० पु०) जातिविशेष।

वहुभाषिन् (सं० त्रि०) वहु भाषते भाष-णिनि। वहुत वोलनेवाला, वकवादी।

वहुभाष्य (सं० क्ली०) वह भाषण।

वहुभुज् (सं० त्रि०) वहु-भुज-क्विप्। १ वहुभोजनकारी, वहुत खानेवाला।

वहुभुजक्षेत्र (सं० पु०) रेखागणितमें वह क्षेत्र जो चारसे अधिक रेखाओंसे घिरा हो।

वहुभुजा (सं० स्त्री०) वहवः भुजा यस्य। दश भुजा, दुर्गा।

वहुभोजन (सं० त्रि०) वहु भोजनं यस्य। १ अतिभोजन-युक्त। (क्ली०) २ अतिशय भोजन।

वहुमञ्जरी (सं० स्त्री०) वह्वो मञ्जर्यो यस्याः। तुलसी।

वहुमत (सं० पु०) १ अलग अलग वहुतसे मत, वहुतसे लोगोंकी अलग अलग राय। २ अधिकतर लोगोंका एक मत, वहुतसे लोगोंकी मिल कर एक राय।

वहुमत्स्य (सं० क्ली०) वहुमत्स्यशाली जलाशय, वह पोखरा जिसमें वहुतसी मछलियां हों।

वहुमन्तव्य (सं० त्रि०) वहु-मन-तव्य। वहु प्रकारसे मननीय।

वहुमल (सं० पु०) वहूनि मलानि-यस्य। १ सीसक, सीसा नामकी धातु। (त्रि०) २ अनेक मलयुक्त।

वहुमान (सं० त्रि०) वहु-मानं यस्य। १ वहुमानयुक्त, माननीय। (क्ली०) २ अधिक मान।

वहुमानिन् (सं० त्रि०) वहु-मन-णिनि। अतिशय सम्मा-नार्ह, अधिक आदरणीय।

वहुमान्य (सं० त्रि०) वहुभिर्मान्यः। १ अनेक लोक-कर्तृक माननीय, जिसका वहुतसे लोक आदर करते हों। २ अतिशय माननीय।

वहुमार्ग (सं० क्ली०) वहवो मार्गा यस्मिन्, चतुर्दिक्षु पथवत्त्वात् तथात्वं। १ चत्वर, चौरस्ता। (त्रि०) २ अनेक पथयुक्त।

वहुमुख (सं० पु०) अनेक मुख, वहुतसे मुंह।

वहुमूत्र (सं० पु०) १ रोगविशेष, एक रोग जिसमें रोगीको मूत्र वहुत उतरता है। (त्रि०) २ वहुमूत्ररोगी। प्रमेह देखो।

वहुमूत्रता (सं० स्त्री०) वहुमूत्ररोग।

वहुमूर्त्ति (सं० स्त्री०) वह्वी मूर्त्तिर्यस्याः। १ वनकार्पास, वनकपास। (पु०) २ विष्णु। (त्रि०) ३ वहुमूर्त्तिधर, वहुरूपिया।

वहुमूर्द्धन् (सं० पु०) वहवो मूर्द्धानो यस्य, 'सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्' इति श्रुतेस्तथात्वं। विष्णु।

वहुमूल (सं० पु०) वहूनि मूलानि यस्य। १ इक्कट, नरसल। २ शिग्रु, सैंजना। ३ स्थूलशर, रामशर, सरकंडा। (त्रि०) ४ अनेक मूलयुक्त।

वहुमूलक (सं० क्ली०) वहुमूल-कन्। १ उशीर, खस। २ वीरण, आदिकी जातिके तृण। ३ इक्कट, सरकंडा।

वहुमूला (सं० स्त्री०) वहुमूल-टाप्। १ शतावरी। २ आम्रातकवृक्ष, अमड़ेका पेड़। ३ माकन्दी, एक प्रकारका कंद।

वहुमूल्य (सं० त्रि०) वहूनि मूल्यानि यस्य। महार्घ वस्तु, अधिक मूल्यका, कीमती।

वहुयज्वन् (सं० त्रि०) वहुपूजाकारी।

वहुयाजिन् (सं० त्रि०) वहुयज्ञके कर्त्ता।

वहुयोजना (सं० स्त्री०) स्कन्दानुचर मातृकाभेद।

वहुरंगा (हिं० वि०) १ चित्रविचित्र, कई रंगका। २ वहुरूपधारी। ३ अस्थिर चित्तका, मनमौजी।

वहुरंगी (हिं० वि०) १ वहुरूपिया, अनेक प्रकारके रूप धारण करनेवाला। २ अनेक रंग दिखलानेवाला।

वहुरथ (सं० पु०) एक राजा।

वहुरद (सं० पु०) जातिविशेष, किसी किसीने इन्हें 'वाहुवाध' वतलाया है।

वहुरन्ध्रिका (सं० स्त्री०) वहूनि रन्ध्राणि यस्याः, वहुरन्ध्र-टाप्, संज्ञायां कन्-टापि अतइत्त्वं। मेदा।

वहुरना (हिं० क्रि०) १ लौटना, वापस आना। २ फिर हाथमें आना, फिर मिलना।

वहुरसा (सं० स्त्री०) वहूरसो यस्याः। महाज्योतिष्मती लता। २ रसवती स्त्री। (त्रि०) ३ वहुरसयुक्त।

वहुरामपुर—तैरभुक्तके अन्तर्गत एक प्राचीन नगर। (ब्रह्मख० ४७।१४४)

वहुराशिक (सं० पु०) गणितभेद। एक त्रैराशिक द्वारा दूसरे त्रैराशिककी निर्दिष्ट राशि जाननेको ही वहुराशिक कहते हैं। त्रैराशिक देखो।

वहुरिया (हिं० स्त्री०) नई वहू।

वहुरिवन्द—मध्यप्रदेशके अन्तर्गत एक प्राचीन नगर। यह जव्वलपुर नगरसे १६ कोस उत्तर कैमूर गिरिमालाकी अधित्यका भूमि पर अवस्थित है। इस पहाड़ीभूमिमें जल अटकानेके लिये ४५ वांध हैं। वे सव वांध यदि न होते, तो यह स्थान जलशून्य मरुभूमि हो जाता। पूर्वोक्त वांध द्वारा ३६ झील वन गई हैं। वे सव वांध निकटवर्त्ती ग्रामोंके नामसे ही पुकारे जाते हैं। मुनियाताल नामक वांध लक्ष्मणसिंह परिहारके भाई यमुनासिंहसे वनाया गया है। यहां अनेक प्राचीन कीर्त्तियोंका ध्वंसावशेष देखनेमें आता है।

वहुरी (हिं० स्त्री०) चर्वण, चवेना।

वहुरुहा (सं० स्त्री०) वहु यथातथा रोहतीति रुह-क-टाप्। कन्दगुड़ूची।

वहुरूप (सं० पु०) वहूनि-रूपाणि यस्य। १ सर्जरस। २ शिव। ३ विष्णु। ४ कामदेव। ५ सरट, गिरगिट। ६ ब्रह्मा। ७ केश। ८ रुद्र। ९ प्रियव्रतके पुत्र मेधातिथिके एक पुत्रका नाम। १० वर्षभेद। ११ बुद्धविशेष। १२ ताण्डव नृत्यका एक भेद जिसमें अनेक प्रकारके रूप धारण करके नाचते हैं। १३ शालनिर्यास, धूना। १४ नानारूपयुक्त, अनेक रूप धारण करनेवाला।

वहुरूपक (सं० पु०) वहुरूप-स्वार्थे कन्। जाहकजन्तु।

वहुरूपा (सं० स्त्री०) वहुरूपस्य शिवस्य स्त्री-टाप्। १ दुर्गा। २ अग्निकी सात जिह्वाओंमेंसे एक।

वहुरूपाष्टक (सं० क्ली०) तन्त्रविशेष। ब्राह्मी, माहेश्वरी,

कौमारी, वैष्णवी, वाराही, इन्द्राणी, चामुण्डा और शिवदूती ये आठ बहुरूपा विषयक तन्त्र हैं।

बहुरूपी (सं० त्रि०) १ अनेक-रूप धारण करनेवाला। (पु०) २ बहुरूपिया।

बहुरेखा (सं० स्त्री०) बह्वी बहुला रेखा करस्थादिचिह्नम्। प्रचुर दीर्घ चिह्न। सामुद्रिक मतसे जिनके हाथमें अनेक रेखाएं रहती हैं वे दुःखभागी होते हैं।

बहुरेणु (सं० पु०) श्वेतकिणिही वृक्ष।

बहुरेतस् (सं० पु०) बहु रेतो यस्य। ब्रह्मा।

बहुरोमा (सं० पु०) बहूनि रोमाणि यस्य। १ मेष, मेढ़ा। २ वानर, बंदर। (त्रि०) ३ लोमश, जिसके शरीरमें अधिक रोएं हों।

बहुल (सं० क्ली०) बंहते वृद्धिं गच्छतीति वहि वृद्ध कुलच्, नलोपश्च। १ आकाश। २ सितमरिच, सफेद मिर्च। ३ कृष्ण वर्ण। ४ अग्नि। ५ कृष्णपक्ष। (त्रि०) ६ प्रचुर, ज्यादा।

बहुलगन्धा (सं० स्त्री०) बहुलो गन्धो यस्याः। क्षुद्रैला, छोटी इलायची।

बहुलच्छद (सं० पु०) बहुलानि छदानि यस्य। १ रक्तशिग्रु, लाल सहिजन। २ शोभाञ्जन, काला सहिजन।

बहुलता (सं० स्त्री०) बहुलस्य भावः तल्-टाप्। बहुलत्व, अधिकता।

बहुलवण (सं० क्ली०) बहूनि लवणानि यस्मिन्। औषर लवण।

बहुल-वर्म (सं० त्रि०) उत्तम कवचयुक्त।

बहुल-वल्कल (सं० पु०) चार वृक्ष, पियाशालका पेड़।

बहुला (सं० स्त्री०) बहुल-टाप्। १ नीलिका, नीलका पौधा। २ एला, इलायची। ३ गो, गाय। ४ देवीविशेष। ५ नदीभेद। ५ स्वनामख्याता उत्तमराजपत्नी। ६ कृत्तिका नक्षत्र। ७ गाभिविशेष, एक गाय जिसके सत्यव्रतकी कथा पुराणोंमें आई है और जिसके नाम पर लोग भादों वदी चौथ और माघ वदी चौथको व्रत करते हैं।

बहुलाचौथ (सं० स्त्री०) भादों वदी चौथ। इस दिन बहुला गायके सत्यव्रतके स्मरणार्थ व्रत किया जाता है।

बहुलान्त (सं० पु०) सोम।

बहुलावन (सं० पु०) वृन्दावनके ८४ वनोंमेंसे एक वन। कहते हैं, कि इसी वनमें बहुला गायने व्याघ्रके साथ अपना सत्यव्रत निवाहा था।

बहुलाभिमान (सं० त्रि०) अतिशय अभिमानी, भूयिष्ठाभिमानी, इन्द्र।

बहुलालाप (सं० त्रि०) बहुतर वाक्यविन्यास।

बहुलाश्व (सं० पु०) मैथिल वंशीय नृपभेद।

बहुलारा—बांकुड़ा जिलान्तर्गत एक प्राचीन नगर। यह द्वारिकेश्वर वा दारुकेश्वर नदीके दक्षिण कोणमें बांकुड़ा नगरसे ६ कोस पूर्व अवस्थित है। यहांका शिवमन्दिर वङ्गालके अपरापर स्थानोंके मन्दिरोंसे श्रेष्ठ है। मन्दिरमें शिवकी लिङ्गमूर्त्ति, दुर्गा, गणेश, बुद्ध आदि मूर्त्तियां प्रतिष्ठित हैं।

बहुलिका (सं० स्त्री०) सप्तर्षि-मण्डल।

बहुली (हिं० स्त्री०) एला, इलायची।

बहुलीकरिष्णु (सं० त्रि०) अबहुलं बहुलं करिष्णुः बहुल अभूत तद्भावे च्वि, कृ-इष्णुच्। बाहुल्यकारक।

बहुलीकृत (सं० क्ली०) अबहुलं बहुलं कृतं अभूत तद्भावे च्वि। १ अपनीततुष धान्यादि, भूसी उड़ाया हुआ धान। (स्त्री०) २ विस्तृतीकृत।

बहुलेश्वर—बम्बईप्रदेशके खानदेश जिलान्तर्गत एक प्राचीन ग्राम। यहां बहुलेश्वर शिवका एक सुन्दर मन्दिर है।

बहुवचन (सं० पु०) व्याकरणकी एक परिभाषा जिससे एकसे अधिक वस्तुओंके होनेका बोध होता है।

बहुवत् (सं० अव्य०) बहुवचनके समान।

बहुवर्ण (सं० पु०) १ गौधेरक जातिभेद। २ अनेक वर्ण, अनेक जाति।

बहुवर्त्त (सं० क्ली०) जनपदभेद।

बहुवर्त्म (सं० पु०) आंखोंका एक रोग। इसमें पलकाके चारों ओर छोटी छोटी फुंसियां-सी फैल जाती हैं।

बहुवलिकवि—दाक्षिणात्यवासी एक कवि। इन्होंने नागकुमारचरित्र नामक एक ग्रन्थ लिखा है। उक्त ग्रन्थमें ये बाईसवें तीर्थङ्कर नेमिनाथके समसामयिक मथुराधिपति नागकुमारका चरित्र वर्णन कर गये हैं।

वहुवल्क (सं० पु०) वहूनि वल्कानि यस्य। प्रियाल, पियासालका पेड़।

वहुवल्ली (सं० स्त्री०) वृहतिका लता।

वहुवादी (सं० त्रि०) वहुं वदते वद-णिनि। वहुभाषी, वहुत बोलनेवाला।

वहुवाद्य—जम्बूखण्डके अन्तर्गत जनपदभेद।

(महाभारत भीष्म० ६।५५)

वहुवार (सं० पु०) वहूनि वारयतीति वहु-वृ-णिच्-अण्। १ वृक्षविशेष, लिसोड़ेका पेड़। संस्कृत पर्याय—शेलु, शीत, श्लेष्मात, श्लेष्मातक, उद्दाल, उद्दालक, सेलु। इसके फलका गुण—शीतल, श्लेष्मवर्द्धक, शुक्रकारक, गुरु, दुर्जर और मधुर। २ अनेक वार।

वहुवारक (सं० पु०) वहूनि वृक्षादीनि वारयतीति वृ-णिच् ण्वुल्। वृक्षविशेष, लिसोड़ेका पेड़।

वहुवार्षिक (सं० त्रि०) वहुवर्षभव, कई वर्षों तक होनेवाला।

वहुवि (सं० क्ली०) वहुतर पक्षियुक्त वृक्षादि, वह पेड़ जिस पर वहुतसे पक्षी रहते हों।

वहुविघ्न (सं० त्रि०) १ नाना प्रकार वाधायुक्त। (क्ली०) २ नाना प्रकारकी वाधायें।

वहुविद् (सं० त्रि०) वहु-वेत्ति-विद्-क्विप्। वहुज्ञ, अनेक विषयोंसे जानकार।

वहुविद्य (सं० त्रि०) वहुज्ञ, वहुतसे वातें जाननेवाला।

वहुविध (सं० त्रि०) वहवो विधा यस्य। नाना प्रकारका, तरह तरहका। पर्याय—विविध, नानारूप, पृथग्विध।

वहुविस्तीर्ण (सं० त्रि०) वहु यथा स्यात्तथा विस्तीर्णः। अनेक विस्तारयुक्त, खूब लम्बा चौड़ा।

वहुवीज (सं० क्ली०) वहूनि वीजानि यस्य। गण्डगात्र, सिताफल।

वहुवीर्य (सं० पु०) वहु वीर्यं तेजो यस्य। १ विभीतक, वहेड़ा। २ तण्डुलीयशाक। ३ शाल्मली वृक्ष, सेमरका पेड़। ४ मरुव, मरुवा।

वहुवीर्या (सं० स्त्री०) भूम्यामलकी, भूआँवला।

वहुवोल्लक (सं० त्रि०) अधिक वाक्यव्ययी, वहुत बोलनेवाला।

वहुव्ययी (सं० त्रि०) वहु-व्यय-अस्त्यर्थे इनि। अतिशय व्ययशील, वहुत खर्चीला।

वहुव्रीहि (सं० पु०) १ व्याकरणमें छः प्रकारके समासोंमेंसे एक। इसमें दो या अधिक पदोंके मिलनेसे जो समस्त पद वनता है वह एक अन्य पदका विशेषण होता है। (त्रि०) वहवो व्रीहयो यस्य। २ प्रचुर धान्ययुक्त।

वहुशक्ति (सं० त्रि०) वहुःशक्तिर्यस्य। अधिक शक्तिसम्पन्न, वहुत ताकतवर।

वहुशत्रु (सं० पु०) वहवः शत्रवो यस्य। १ चटक, गौरा पक्षी। (त्रि०) २ वहुशत्रुविशिष्ट, जिसके अनेक दुश्मन हों। तृतीया तिथिमें परोल खानेसे उसके अनेक दुश्मन होते हैं। (तिथितत्त्व)

वहुशल्य (सं० पु०) वहु शल्यं यस्य। १ रक्त खदिर, लाल खैर। (त्रि०) २ अनेक शल्ययुक्त।

वहुशस् (सं० अव्य०) वहूनि ददाति करोत्यादि वा वहु (वह्वल्पार्थादिति। पा ५।४।४२) इति शस्। वहु, अनेक।

वहुशाख (सं० पु०) १ स्नुही वृक्ष, थूहर। (त्रि०) २ वहुशाखायुक्त, जिसमें अनेक डालियां हों।

वहुशास्त्र (सं० क्ली०) वहुशास्त्रं कर्मधा०। वहुविध शास्त्र।

वहुशाल (सं० पु०) वहुभिः शालते इति वहु-शाल-अच्। स्नुही, थूहर।

वहुशिख (सं० त्रि०) वह्वी शिखा यस्य। १ अनेक शिखायुक्त। स्त्रियां टाप्। २ गजपिप्पली। ३ अनेक शिखा।

वहुशिरस् (सं० पु०) विष्णु।

वहुशृङ्ग (सं० पु०) विष्णु।

वहुश्रुत (सं० त्रि० वहु-श्रुतं यस्य। अनेक शास्त्रश्रुतियुक्त, जिसने अनेक प्रकारके विद्वानोंसे भिन्न भिन्न शास्त्रोंकी वातें सुनी हों।

वहुश्रुति (सं० स्त्री०) अनेक श्रुति, वहु वेदमन्त्र।

वहुश्रुतीय (सं० पु०) वौद्धसम्प्रदायभेद।

वहुश्रेयसी (सं० त्रि०) वहूनां श्रेयसी यस्य, ईयसन्तत्वात् नकप् न वा ह्रस्वः। अनेक श्रेयसीयुक्त।

बहुसंख्यक (सं० पु०) गिनतीमें बहुत।

बहुसदाचार (सं० लि०) बहु सदाचारसम्पन्न, अच्छा आचरणवाला।

बहुसन्तति (सं० लि०) बह्वी सन्ततिर्विस्तारोऽन्वयो वा यस्य। १ अनेक सन्तानयुक्त, जिसके बहुत वाल बच्चे हों। (पु०) २ ब्रह्मयष्टि, एक प्रकारका बांस।

बहुसम्पूट (सं० पु०) बहुः सम्पूटौ यस्य। विष्णुकन्द।

बहुसार (सं० पु०) बहुः सारः स्थिरांशो यस्य। खदिर, खैर।

बहुसिकथ (सं० लि०) बहुसरविशिष्ट।

बहुसुत (सं० लि०) बहवः सुता यस्य। अनेक पुत्र-युक्त, जिसके बहुत सन्तान हों।

बहुसुता (सं० स्त्री०) शतमूली।

बहुसुवर्णक (सं० लि०) १ बहुसुवर्णयुक्त। (पु०) २ ब्रह्मपुत्रभेद। ३ गङ्गातीरस्थ अग्रहारभेद।

बहुसू (सं० स्त्री०) बहून् सूते या बहु सू-क्किप्। १ शूकरी, मादा सूअर। (लि०) २ अतिशय प्रसवयुक्त।

बहुसूति (सं० स्त्री०) बहुः सूतिः प्रसवो यस्याः। १ बहु अपत्ययुक्ता गाभी, वह गाय जिसके अनेक वछड़े हों। २ बहुसन्तान प्रसविणी स्त्री।

बहुसूवन् (सं० लि०) बहु-सू-कनिप्। १ बहुप्रजाप्रसव-कारक। स्त्रियां ङीष् 'धनोरः' इति नस्य र। २ बहु सूवरी, वह प्रजा प्रसविनी।

बहुस्रव (सं० लि०) बहु यथा तथा स्रवति स्रु-अच्। अनेकधा क्षरणशील, अनेक क्षरणशील।

बहुस्रवा (सं० स्त्री०) शल्लकी-वृक्ष, सलई।

बहुस्वन (सं० पु०) बहुः प्रचण्डः स्वनः शब्दो यस्य। १ पेचक, उल्लू। २ शंख। (लि०) ३ अनेक शब्दयुक्त।

बहुस्वामिक (सं० लि०) जिसके अनेक प्रभु हों, जिस चीजके बहुतसे मालिक हों।

बहुहिरण्य (सं० लि०) १ बहु सुवर्णयुक्त। (पु०) २ बहु सुवर्ण। ३ वेदोक्त एकाहभेद।

बहूँटा (हिं० पु०) बाँह पर पहननेका एक गहना।

बहू (हिं० स्त्री०) १ पुत्रवधू, पतोहू। २ पत्नी, स्त्री। ३ कोई नवविवाहिता स्त्री, दुलहिन।

बहूदक (सं० पु०) बहूनि उदकानि शौचाङ्गतया यस्य। संन्यासिभेद। संसाराश्रमका परित्याग कर ये लोग संन्यास अवलम्बन करते हैं। सात घरोंमें जितनी भिक्षा मिलती है वही उनका आहार है। केवल एक गृहस्थके यहां भिक्षा नहीं मांगते, सात गृहस्थके घर जाना ही पड़ता है। यदि एक ही गृहस्थ उन्हें प्रचुर भिक्षा दे दे, तो वे उसे ग्रहण नहीं करते।

ये सब संन्यासी गो-पुच्छ लोमके द्वारा बद्ध तिदण्ड, शिक्य, जलपूतपात्र, कौपीन, कमण्डलु, गात्राच्छादन, कन्था, पादुका, छत्र, पवित्र, चर्म, सूची, पक्षिणी, रुद्राक्ष-माला, योगपट्ट, वहिर्वास, खनित्र और कृपाण अपने साथ लिये फिरते हैं। सर्वाङ्गमें भस्मलेपन, त्रिपुण्ड, शिखा और यज्ञोपवीत धारण इनका अवश्य कर्त्तव्य है। इन्हें वेदाध्ययन और देवताराधनामें रत तथा वृथा वाक्यका परित्याग कर सर्वदा इष्ट देवताके चिन्तनमें तत्पर रहना पड़ता है। शामको गायत्रीजप और स्वधर्मो-चित क्रियानुष्ठान करना होता है।

अतिभोजन और रिपुपरतन्त्र होनेसे योगाभ्यासमें मन दृढ़ नहीं रहता, इस कारण इन्हें परिमित आहार और काम, क्रोध, शोक, मोह, हर्ष, विषाद आदिका परित्याग करना चाहिये। इनके शास्त्रमें चातुर्मास्य व्रतानुष्ठान वतलाया गया है। ये लोग मोक्षाभिलाषी हैं। मोक्ष-लाभके लिये गायत्रीजप ही प्रधान कर्त्तव्य है। इन सब संन्यासियोंकी मृत्यु होनेसे मृतदेह जलाई नहीं जाती, जलमें बहा दी जाती है। इन्हें मृत शौचादि भी नहीं होता।

बहूदक—कुमारिकाकी महानदीके निकटवर्त्ती नदीभेद। (कुमारिका १५।१।१६)

बहूदन (सं० क्ली०) प्रचुर अन्न।

बहूपमा (सं० स्त्री०) एक प्रकारका अर्थालङ्कार। इसमें एक उपमेयके एक ही धर्मसे अनेक उपमान कहे जाते हैं।

बहेंगवा (हिं० पु०) १ एक पक्षी जिसे भुजंगा वा कर-चोटिया भी कहते हैं।

बहेंत (हिं० स्त्री०) वह काली मट्टी जो तालों या गड्ढोंमें बह कर जमा हो जाती है। इसी मट्टीके खपरे बनते हैं।

बहेगवा (हिं० पु०) चौपायोंकी गुदाके पास पूछके नीचेकी मांसग्रन्थि।

वहेचा (हिं० पु०) घड़े का ढांचा जो चाक परसे गढ़ कर उतारा जाता है। इसे जब थापी और पिटनेसे पीट कर बढ़ाते हैं, तब यह घड़े के रूपमें आता है।

वहेड़क (सं० पु०) विभीतक वृक्ष, वहेड़ा।

वहेड़ा (हिं० पु०) अर्जुनकी जातिका एक बड़ा और ऊंचा जंगली पेड़। यह पतझड़में पत्ते झड़ता है और सिंध तथा राजपूताने आदि सूखे स्थानोंको छोड़ भारतवर्ष के जंगलोंमें सर्वत्र होता है। इसके पत्ते महुएकेसे होते हैं। फूल बहुत छोटे छोटे लगते हैं। विभीतक देखो।

वहेड़ा—दरभङ्गा जिलेके अन्तर्गत एक प्रधान वाणिज्य-स्थान। यह अक्षा० २६° ४´ उ० तथा देशा० ८६° १०´ ८´´ पू०के मध्य अवस्थित है। पहले यह स्थान उपविभागका सदर था। पर आबहवा अच्छी न होनेके कारण दरभङ्गा-नगरमें वह उठा कर लाया गया।

वहेड़ी—युक्तप्रदेशके वरेली जिलेकी तहसील। यह अक्षा० २८° ३५´ से २८° ५४´ उ० तथा देशा० ७६° १६´ से ७६° ४१´ पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ३४५ वर्गमील और जनसंख्या २ लाखसे ऊपर है। इसमें २ छोटे छोटे शहर और ४१० ग्राम लगते हैं।

वहेतू (हिं० वि०) १ इधर उधर मारा मारा फिरनेवाला, जिसका कहीं ठौर ठिकाना न हो। २ व्यर्थ घूमनेवाला, निकम्मा।

वहेरा (हिं० पु०) वहेड़ा देखो।

वहेला (हिं० पु०) कुश्तीका एक पेच।

वहेलिया (हिं० पु०) पशु पक्षियोंको पकड़ने या मारनेका व्यवसाय करनेवाला शिकारी।

वहलोलपुर—पञ्जावके लुधियाना जिलेका एक ग्राम। यह अक्षा० ३०° ३५´ उ० तथा देशा० ७६° २२´ पू०के मध्य अवस्थित है। जनसंख्या दो हजारसे ऊपर है। सम्राट् अकवरके समय वहलोल खाँ और वहादुर खाँ नामक दो अफगानोंने इसे वसाया था।

वहोल लोदी, सुलतान—दिल्लीके एक मुसलमान वादशाह। ये मालिक कालाके पुत्र थे, इस कारण लोग इन्हें मालिक वहोल कहा करते थे। इनके चाचा सुलतान शाहलोदी (इसलाम खाँ) सरहिन्दके शासनकर्त्ता थे। वे वहोलको सुचतुर और बुद्धिमान् देख पुत्रकी तरह इनका लालन पालन करते थे और मरते समय अपना उत्तराधिकारी बना गये थे।

वादशाह बन वहोलने बुद्धिवैभवसे संसार भरमें अपना प्रभाव फैला लिया। किन्तु चचेरा भाई कुतुब खां इनके वशमें नहीं हो सका। उसने दिल्लीके सुलतान महम्मदसे उनकी चुगली खाई। सुलतान महम्मदने उसकी वातोंमें आ, हाजी हिसाम खांको सेना ले कर वहोलका दमन करने भेजा। खिजिरावादके काराग्रामके निकट दोनों दलमें मुठभेड़ हो गई। हाजी हिसाम खां हार खा कर दिल्लीको भागा।

उसके भाग जाने पर वहोलने उसके विरुद्ध सुलतान महम्मदके पास एक पत्र भेजा। पत्रमें लिखा था, कि इसके अन्याय शासनसे यहांका राज्य एकदम नष्ट हो गया है। दास आपके चरणोंकी सेवा करने सदा तैयार है। इनकी वातोंमें पड़ कर सुलतान महम्मदने हाजी हिसाम खांको मरवा डाला और हामिद खांको उसकी जगह पर वजीर बनाया। यह खबर जिस समय वहोलने सुनी, उसी समय बहुतसे लोदियोंको साथ ले वे सम्राट् महम्मदके अभिवादनार्थ दिल्ली आये। यहां आ कर इन्होंने अपनी जागीरका चिरस्थायी प्रवन्ध कर लिया।

अब सुलतानकी तरफ हो कर इन्होंने मालव राजाको हराया और भेंट स्वरूप खानखानाकी उपाधि पाई। इनकी पदोन्नतिसे राजदरवारमें लोदियोंकी खूब बन चली। इन लोगोंने विना सम्राट्की अनुमतिके लाहोर, दीपालपुर, सन्नाम, हिसार, फिरोजा आदि कितने ही जिलोंमें अपनी गोटी जमा ली।

सुलतान महम्मदने इनकी जड़ उखाड़नेकी बहुत चेष्टा की, पर सभी विफल हुई। अन्तमें इन लोगोंने विद्रोही हो दिल्ली पर चढ़ाई कर दी। बहुत दिनों तक दिल्लीमें घेरा डाले रहनेके वाद वे विफल मनोरथसे सरहिन्द लौट आये। मालिक वहोलका इसी समय सुलतान नाम पड़ा। किन्तु विना दिल्लीको वश किये उन्होंने अपने नाम पर खुतवा पाठ और सिक्केका प्रचार नहीं होने दिया।

महम्मदकी मृत्युके वाद उनका लड़का अलाउद्दीन दिल्लीके राजसिंहासन पर बैठा। इस समय यद्यपि

सिंधु (हिन्द) प्रदेश भिन्न भिन्न राजाओंके शासनाधिकारमें था, तो भी लोदी-वंशका स्थान सबसे ऊंचा ही था।

बहोलने फिरसे दलबलके साथ दिल्ली पर धावा बोल दिया। किन्तु इस बार भी भग्नमनोरथ हो इन्हें वापिस जाना पड़ा। अलाउद्दीन जब वजीर हामिद खांका काम तमाम करनेका षड़यन्त्र कर रहे थे, उस समय बहोल फिरसे दिल्ली पर चढ़ आये। इस बार हामिद खांकी सहायतासे बहोलने दिल्लीमें प्रवेश किया। हामिदके घर पर बहोलके प्रतिदिन जाने आनेसे दोनोंमें खासा प्रेम हो गया। किन्तु बहोलके मनसे राज्य-पिपासा और हामिदका उच्छेद-संकल्प कब दूर होनेवाला था! छलसे बहोलने हामिदको कैद कर लिया और दिल्लीके राजसिंहासन पर अपना दखल जमाया। अब ८५५ हि० (१४५१ ई०की १९वीं अप्रिल)को भारतके सिंहासन पर बैठ उन्होंने अपने नामसे खुतबापाठ और सिक्का चलानेका हुकुम दे दिया। वे पुत्रकी तरह प्रजा-पालन करते हुए तथा मन्त्री और सेनाओंको वश कर निष्कण्टक राज्य करने लगे।

राजा हो कर बहोलने दिल्लीके समीपवर्त्ती तथा अपने अधिकृत स्थानों और मुलतानमें अच्छा शासन कर अपनी कीर्त्ति कौमुदी फैलाई। इनके अच्छे शासनसे विरक्त हो कितने ही अल्लाउद्दीन-पक्षके अमीरोंने लोदी वंशका सत्ता मिटानेके लिये जौनपुरके शासनकर्त्ता सुलतान महमूदसे सहायता मांगी। तदनुसार महमूदने ६११ हिजरीमें दिल्ली पर चढ़ाई कर दी। बहोल अपने पुत्र ख्वाजा बयाजिदको अनेक अमीरोंके साथ किलेकी रक्षा पर नियुक्त किया और आप लड़नेको मुस्तैद हुए। संधिकी बहुत कोशिश करने पर जब कोई फल न निकला, तब उन्होंने लड़ाई ठान दी। दोनोंमें घमसान युद्ध हुआ। अन्तमें जौनपुरका सेनापति फते खाँ बा हिरवी बहोलकी सेनाके सामने न ठहर सका और कैद कर लिया गया। सुलतान महमूद पीठ दिखा कर भागे। इस समयसे बहोलकी राज्यपिपासा बलवती और भी हो गई। उन्होंने अपने बलसे पार्श्ववर्त्ती हिन्दू और मुसलमान राजाओंको हरा कर वहां अपनी धाक जमाई और उनकी सम्पत्तिका कुछ अंश अपना लिया। पीछे सुलतान अलाउद्दीनके आत्मीय मालिका जहानके उसकानेसे महमूद शर्कीने बहोल पर धावा बोल दिया। बचावका कोई रास्ता न देख बहोलको उनसे सन्धि करनी पड़ी। संधिकी शर्तोंके अनुसार बहोल केवल दिल्लीके अधिपति मुबारकशाहकी अधिकृत सम्पत्तिके सत्त्वाधिकारी हुए, पर बलपूर्वक छीनी हुई अन्य लोगोंकी सम्पत्ति उन्हें वापिस देनी पड़ी। कुछ दिनों बाद बहोलने शामसाबादके शासनकर्त्ता जूना खांको हराया और कर्णरायको वहांकी गद्दीका मालिक बनाया।

सुलतान बहोलके शासनसे विरक्त हो जौनपुरके राजा महमूदने उनके विरुद्ध युद्धयात्रा की। शमसाबादके निकट फिर दोनोंमें गहरी मुठभेड़ हुई। कुतुबखाँ लोदी कैद कर जौनपुर लाया गया। सुलतान महमूदके मरने बाद उनके लड़के महम्मदशाह राजा हुए और दोनोंके बीच सन्धि हो गई। लेकिन कुतुबखाँको वापिस आये न देख बहोलने फिर महम्मदसे लड़ाई ठान दी। इस युद्धमें महम्मदकी ही जीत हुई। उन्होंने कर्णरायको राजगद्दीसे उतार कर पुनः जूना खाँको शमसाबादकी राजगद्दी पर बिठाया

इस समय महम्मदकी आज्ञासे उसका छोटा भाई हसनखाँ मारा गया जिससे जौनपुरमें बड़ी हलचल मची। राजमाता बीबी राजीने छोटे पुत्रके वियोगसे दुःखित हो ज्येष्ठ महम्मदको दबानेके लिये कितने ही अमीर भेजे। उन लोगोंके हाथसे महम्मद यमपुरके मेहमान बने।

बीबी राजीकी आज्ञासे महम्मदका सबसे छोटा भाई हुसेन खाँ जौनपुरकी राजगद्दी पर बैठा। उसने बहोलके साथ मित्रता की। किंतु बहोलके शमसाबाद आक्रमण और जूना खाँकी राज्यच्युतिसे विरक्त हो उसने दिल्ली पर चढ़ायी कर दी। कुछ दिनों तक परस्परमें खूब युद्ध चलता रहा। व्यर्थ दोनों तरफकी सेनाका विनाश देख दोनोंने आपसमें मेल कर लिया और अपने अपने देशको लौटे। इसके बाद बहोलने जौनपुर राजाके प्रधान अहमद खाँ मेवातीको हरा कर अपने वश कर लिया।

इस समय बयानाके शासनकर्त्ता युसुफ खाँ थे। उन्होंने विद्रोही हो बहोलकी अधीनता छोड़ दी और

हुसेनके नामसे बयानामें खुत्वा पाठ और सिक्का चलाया। तीन वर्ष तक किसी प्रकारकी लड़ाई न हुई। बादमें हुसेनने बडी सेना ले कर बह्लोल पर कई बार चढ़ाई कर दी। सराई लस्करके युद्धके बाद दोनोंमें शान्ति स्थापित हो गई। ८९३ हिजरीमें फिर लड़ाई शुरू हुई। हुसेन खाँकी जीत देख कर कुतुब खाँने सन्धि करनेका प्रस्ताव किया। इसकी शर्तोंके अनुसार बह्लोल गंगाके उत्तर और हुसेन गंगाके दक्षिण भागके शासनाधिकारी हुए। अब युद्ध बंद हुआ। हुसेन जब अपने राज्यको लौट रहे थे इसी समय बह्लोलने पीछेसे उन पर आक्रमण कर धनरत्न छीन, उनके कितने ही प्रधान प्रधान व्यक्तियोंको कैद कर लिया। हुसेन हार कर भागा। उनके अधिकृत कंपिला, पटियाली, साकित, कोल और जलाली नामक स्थान बह्लोलके हाथ लगे। हुसेनखाँने फिरसे सेना इकट्ठी कर बह्लोलसे युद्ध छेड़ा। किंतु इस बार वे विशेष क्षतिग्रस्त हो जान ले कर रातीकी ओर भागे। इस समय भी बह्लोलको मोटी रकम हाथ लगी थी। रात्रिमें सुलतान हुसेनखाँको हरा कर उन्होंने इटावा पर आक्रमण किया। इस समय बक्सरके अधिपति थे राय तिलकचंद। उन्होंने बह्लोलका पराक्रम सुन उनकी आधीनता स्वीकार कर ली। सुलतानको खुश करनेकी इच्छासे जमुनाको पार कर राय तिलकचंदने सुलतान हुसेन खाँको पन्नाकी ओर मार भगाया। इसी अवसर पर बह्लोलने जोधपुरको जीतनेकी आशासे सेना इकट्ठी की। हुसेन खाँ अबकी बार अपनी रक्षा किसी प्रकार न कर सका और बराइचको भागा। वहां भी वह निश्चिन्त रूपसे नहीं रह सका। बह्लोलकी सेनाने उस पर वहां भी आक्रमण किया। रहब नदी (कालीनदी)के तट पर दोनोंमें खूब युद्ध चला। अन्तमें हुसेनकी हार हुई और जौनपुर राज्य बह्लोलके अधिकारमें आ गया। यहां वे मुबारक खाँको शासनकर्त्ता बना कर आप बदाऊँकी ओर चल दिये। अवसर पा हुसेनखाँने पुनः जौनपुरका उद्धार कर वहांसे लोदियोंको मार भगाया। पश्चात् बह्लोलके पुत्र बर्बाक और स्वयं सुलताननेउस पर आक्रमण कर दिया। इस बार सुलतान हुसेन खाँ हार कर बिहारको भागा।

बह्लोलने हल्दी नगरमें सुना, कि हमारा चचेरा भाई कुतुब खाँ मर गया है इसी समय वे वहांसे चल दिये और उसका दफन किया। पीछे उन्होंने उसको जौनपुरके राजसिंहासन पर अपने पुत्र बर्बाकको और कलमें ख्वाजा बयाजिदके पुत्र आजाम् हुमायूको अधिष्ठित किया। चंदवारके रास्तामें धौलपुर पड़ा और वहांके राजासे उन्होंने बहुमूल्य पदार्थोंकी भेंट ली। यहांसे चल कर वे इलाहपुर, ग्वालियर, बाड़ी आदि स्थानोंमें गये। वहांके राजाओंसे भी इन्हें प्रचुर धन प्राप्त हुआ। लौटते समय इन्होंने इटावाके अधिपति राय दानंदके पुत्र संगतसिंहको राजगद्दीसे उतार कर दिल्लीकी ओर प्रस्थान किया। दिन रात्रिके घोर परिश्रमसे एवं धूपमें निरंतर भ्रमणसे मार्गमें ही वे बीमार पड़े और ८९४ हिजरी (१४८८ ई०)में मलावी ग्राममें इनका प्राणान्त हुआ। उन्होंने प्रायः ३८ वर्ष ८ मास और आठ दिन बड़ी वीरतासे राज्य किया था। इनके मरने पर इनके पुत्र सिकेन्दर लोदी दिल्लीके सिंहासन पर बैठे।

सुलतान बह्लोल धार्मिक, वीर, साहसी और विद्वान् थे। इनमें दया, चतुरता और दानशीलताका भी अभाव नहीं था। वे साधुताके रक्षक थे। धार्मिक कर्मोंका करना और इसके नियमादि पालना इनका प्रधान कर्त्तव्य था। वे अपना अधिकांश समय साधु, सच्चरित्र और ज्ञानवान् पण्डितोंके साथ बीताते, दीन, दुःखियोंको सदा अपनी दृष्टमें रखते, आश्रितको कभी नहीं छोड़ते और दिनमें ५ बार नमाज पढ़ते थे।

बह्वक्षर (सं० त्रि०) बहु अक्षरं यत्र। बहु अक्षरयुक्त पद।

बह्वग्नि (सं० पु०) वेदोक्त विविध अग्नि।

बह्वध्याय (सं० त्रि०) बहु अध्याय-सम्पन्न।

बह्वन्न (सं० त्रि०) बहु अन्न द्वारा उपेत।

बह्वप् (सं० त्रि०) जलमय प्रदेशादि।

बह्वपत्य (सं० पु० स्त्री०) बहूनि अपत्यानि यस्य। १ शूकर, सूअर। २ मूषक, मूसा।

बह्वभिधान (सं० क्ली०) बहुवचन।

बह्वश्व (सं० पु०) १ मुद्गलका एक पुत्र। २ अनेक अश्व। (त्रि०) ३ बहु अश्वयुक्त।

बह्वदिन् (सं० त्रि०) बहु-अत्ति, अद-णिनि। बहुभोजक, बहुत खानेवाला।

वह्लादि (सं० पु०) वह्ल आदि करके पाणिन्युक्त शब्दगण। गण यथा—वह्ल, पद्धति, अञ्चति, अङ्कति, अंहति, शकटि, शक्ति, शारि, वारि, राति, राधि, अहि, कपि, यष्टि, मुनि, चण्ड, अराल, कृपण, कमल, विकट, विशाल, विसङ्कट, भरुज, ध्वज, चन्द्रभाग, कल्याण, उदार, पूराण, अहन्, क्रोड़, नख, खुर, शिखा, वाल, शफ, गुद, भग, गल और राग।

वह्लनशित्व (सं० क्ली०) १ वह्लाशिनो भावः त्व। वहु-भोजनकारीका कार्य वा भाव, वहुत भोजन।

वह्लाशिन् (सं० त्रि०) वहु अश्नातीति वहु-अश णिनि। वहु भोजनशील, वहुत खानेवाला।

वह्लाश्चर्य (सं० त्रि०) वहु-आश्चर्ययुक्त।

वह्लीश्वर (सं० क्ली०) नर्मदा तटस्थ एक पवित्र शैवक्षेत्र।

वह्लपुर—पञ्जावप्रदेशके अन्तर्गत एक सामन्तराज्य। यह अक्षा० २७°४२´से ३०°२५´ उ० तथा देशा० ६९° ३१´ से ७४° १´ पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण १५९१८ वर्गमीलके करीव है जिनमेंसे १८८० वर्गमील स्थान प्रदेश है। इसके उत्तर-पश्चिममें सिन्धु और शतद्रु नदी वहती है।

वह्ल नगरमें लुंगी, सूफी आदि रेशमी कपड़े वुननेका कारवार होता है। नील, रूई और धान्यादि शस्य ही यहांका प्रधान वाणिज्यद्रव्य है। स्थानीय खेती-वारीकी सुविधाके लिये नाना स्थानोंमें नहर काटी गई है। इण्डस मेली रेलवे लाइन इसी राज्य हो कर गई है।

दुरानी साम्राज्यकी उच्छृङ्खलता और शाहसुजाके कावुलसे भागने पर यहांके राजवंशके पूर्वपुरुष सिन्धुप्रदेशसे आ कर यहां स्वाधीनभावमें राज्य करने लगे। पञ्जावमें रणजित्‌सिंहके अभ्युदयसे डर कर यहांके नवाव वहवल खाँने अङ्गरेजोंसे आश्रय मांगा। परन्तु अङ्गरेज लोग उन्हें आश्रय देने राजी न हुए। १८०९ ई०में लाहोरमें जो सन्धि हुई उससे रणजितका शतद्रु के दक्षिण सीमान्त-गत स्थानों तक अधिकार कायम रहा। १८३३ ई०में वाणिज्य-व्यपदेशमें अङ्गरेजोंने नवावके साथ संधि कर ली। फिर १८३४ ई०में शाहसुजाको कावुल-तख्त पर विठानेके लिये वह्लपुर-राजके साथ अङ्गरेज गवर्मेण्टका राजकीय सम्बन्ध स्थापित हुआ। सन्धिपत्रमें शर्तें यों थी, "गवर्मेण्ट आपद विपदमें नवावको सहायता करेंगे और नवाव भी जरूरत पड़ने पर अङ्गरेजोंको शत्रु से लड़नेमें मदद पहुंचायंगे। नवाववंशधरगण यहांके एकमात्र अधिकारी रहेंगे। गवर्मेण्ट शासन विषयमें कुछ भी छेड़छाड़ नहीं करेगी।"

प्रथम अफगान-युद्धमें नवावने अङ्गरेजोंको खासी मदद पहुंचाई थी। १८४७ ई०के मूलतान-युद्धमें उन्होंने सेनापति सर हार्वर्ट एडवर्डिसके साथ मिल कर युद्ध किया था। इस कार्यके पारितोषिक स्वरूप उन्हें व्रिटिश सरकारकी ओरसे सव्जलकोट और भौङ्गप्रदेश तथा याजज्जीवन लाख रुपयेकी वृत्ति मिली थी। उनकी मृत्युके वाद उनके इच्छानुसार २य पुत्र राजा हुए; किन्तु उनके वड़े भाईने उन्हें राज्यच्युत करके सिंहासन पर कब्जा जमाया। अङ्गरेजोंका आश्रय पा कर ३य पुत्र वहवलपुरके राजस्वसे वृत्ति पाने लगे। अङ्गरेजोंके साथ जो शर्तें थीं उसे तोड़ देनेके कारण वे लाहोर दुर्गमें आवद्ध हुए। यहां १८६२ ई०में उनका प्राणान्त हुआ।

वड़ेके यथेच्छाचार और उत्पीड़नसे तंग आ कर प्रजा १८७३ और १८६६ ई०में वागी हो गई। नवावने वीरोचित साहससे दोनों ही दफा विद्रोहियोंको उपयुक्त शिक्षा दी थी। १८६६ ई०में षड़यन्त्रकारियोंने विषयोगसे उनके प्राण ले लिये। पीछे उनका चार वर्षका लड़का सादिक महमद खाँ (४र्थ) राजतख्त पर वैठा। वालक राजके शासनकालमें तथा पूर्वविद्रोहमें राज्यभर अशान्ति फैल गई थी। अङ्गरेज गवर्मेण्टने राज्यनाशकी आशङ्कासे वालकका राज्यकार्यभार अपने हाथ ले लिया। पीछे १८७९ ई०में वालिग होने पर राज्यभार उन्हें लौटा दिया गया। १८७८-८० ई०के अफगान-युद्धके समय नवावने धनजनसे अङ्गरेजोंको सहायता पहुंचाई थी। १८९९ ई०में उनकी मृत्यु हुई। पीछे महम्मद वहवल खाँ (५म) राजसिंहासन पर अधिरूढ़ हुए। राज्य-सुख इनके भाग्यमें वदा नहीं था। चार वर्ष समुद्रयात्रामें मक्काकी तीर्थयात्रा करते समय १९०७ ई०के फरवरी मासमें उनका प्राणान्त हुआ। पीछे उनके लड़के हाजी सादिक महम्मद खाँ अव्यासी राज-

तख्त पर बैठे। ये ही वर्त्तमान नवाब हैं। बृटिश-सरकारसे इन्हें १७ तोपोंकी सलामी मिलती है। इन्हें १२ कमान, १७० कमानवाही, ३०० अश्वारोही और प्रायः ४॥ हजार पदातिक रखनेका अधिकार है।

इस राज्यमें १० शहर और १००८ ग्राम लगते हैं। जनसंख्या साढ़े सात लाखके करीव है। सैकड़े पीछे ८३ मुसलमानोंकी संख्या है। विद्याशिक्षामें इस राज्यका जिलेमें ३१वां स्थान आता है। सैकड़े पीछे २ मनुष्य पढ़े लिखे मिलते हैं। यहां सादिक-इगरटन नामका १ कालेज, १ हाई स्कूल, ७ एङ्गलो-वर्नाक्युलर मिडिल स्कूल, ३ प्राइमरी स्कूल और १ चर्चमिशन-स्कूल है। स्कूलके अलावा २ अस्पताल और ६ चिकित्सालय हैं।

२ उक्त राज्यकी तहसील। यह अक्षा० २७° ५२' से २६° ३३' उ० तथा देशा० ७१° १६' से ७२° ३६' पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ३६१७ वर्गमील और जनसंख्या प्रायः ६१६५४ है। इसमें इसी नामका एक शहर और १०७ ग्राम लगते हैं।

३ उक्त तहसीलकी राजधानी। यह अक्षा० २६° २४' उ० तथा देशा० ७१° ४७' पू०के मध्य अवस्थित है। जनसंख्या २० हजारके करीव है। १७४८ ई०में नवाव वहवल खाँ १म ने इस नगरको वसाया। नगर चारों ओर मट्टीकी दीवारसे घिरा है। यहांका नवाव-प्रासाद ही देखने लायक है। राजप्रासादकी छत परसे वीकानेरका विस्तृत मरुदेश नजर आता है। १८७५ ई०में वना हुआ अतिथिशाला वा नूरमहल देखनेसे मन आकृष्ट हो जाता है। उसके वनवानेमें कहते हैं, कि १२ लाख रुपये लगे थे। कालेज और स्कूलके अलावा यहां अनाथालय भी है।

वह्वृच (सं० स्त्री०) १ ऋग्वेद। वह्व्य ऋचो यस्मिन्। (क्ली०) २ सूक्त। (पु०) ३ ऋग्वेदज्ञ ब्राह्मण।

वह्वृची (सं० स्त्री०) वह्वृचस्य पत्नी, वह्वृच-ङीप्। ऋग्वेदवेत्ताकी स्त्री। पहले स्त्रियोंको स्वाध्याय और अध्ययन करनेमें पूरा अधिकार था पर अभी नहीं है।

बाँ (हिं० पु०) १ गायके वोलनेका शब्द। २ बार, दफा।

बांक (हिं० पु०) १ भुजदण्ड पर पहननेका एक आभूषण, चन्द्राकार वना हुआ टांड़ जो वच्चोंकी वांहमें पहनाया जाता है। २ नदीका मोड़। ३ एक प्रकारकी कसरत। इसमें वांक चलानेका अभ्यास किया जाता है। यह कसरत बैठ या लेट कर होती है। ४ बांक नामक हथियार चलानेकी क्रिया। ५ पैरोंमें पहननेका एक प्रकारका चाँदीका गहना। ६ एक प्रकारकी पटरी या चौड़ी चूड़ी जो हाथमें पहनी जाती है। ७ लोहारोंका लोहेका वना हुआ शिकंजा जिसमें जकड़ कर किसी लोहेकी चीजको रेतते हैं। ८ गन्ना छिलनेका एक औजार जो सरौतेके आकारका होता है। ९ कमान, धनुष। १० एक प्रकारकी छोटी छुरी जो आकारमें कुछ टेढ़ी होती है। ११ वक्रता, टेढ़ापन। (त्रि०) १२ टेढ़ा, घुमावदार। १३ वांका, तिरछा। (पु०) १४ जहाजके ढांचेमें वह शहतीर जो खड़े वलमें लगाया जाता है। (स्त्री०) १५ एक प्रकारकी घास।

वांकड़ा (हिं० वि०) १ वीर, साहसी। (पु०) छकड़ेके आँककी वह लकड़ी जो धुरेके नीचे आड़े वलमें लगी होती है।

वांकड़ी (हिं० स्त्री०) वादल और कलावत्तूका वना हुआ एक प्रकारका सुनहला या रुपहला फीता। इसका एक सिरा कंगूरेदार होता है और इसे स्त्रियोंकी सांड़ी आदिमें शोभाके लिये टाँकते हैं।

बाँकडोरी (हिं० स्त्री० एक प्रकारका शस्त्र।

वाँकानल (हिं० पु०) सोनारोंका एक औजार। इसे फूंक मार कर वे टाँका लगाते हैं।

वाँकना (हिं० क्रि०) टेढ़ा करना।

बाँकपन (हिं० पु०) १ तिरछापन, टेढ़ापन। २ छैलापन, अलवेलापन। ३ वनावट, सजावट। ४ छवि, शोभा।

बाँका (हिं० वि०) १ टेढ़ा, तिरछा। २ वहादुर, वीर। ३ सुन्दर और वना ठना, छैला। (पु०) ४ लोहेका वना हुआ टेढ़ा एक प्रकारका हथियार। इससे बाँसफोड़ लोग वांस काटते और छांटते हैं। ५ धानकी फसलमें हानि पहुंचानेवाला एक प्रकारका कीड़ा। ६ वारात आदिमें अथवा किसी जुलूसमें वह वालक या युवक जो खूब सुन्दर वस्त्र और अलङ्कार आदिसे सजा कर तथा पालकी आदि पर बैठा कर शोभाके लिये निकाला जाता है।

बाँका—१ विहार और उड़ीसाके भागलपुर जिलेका दक्षिण-उपविभाग। यह अक्षा० २४° ३३´ से २५° ७´ उ० तथा देशा० ८६° १६´ से ८८° ११´ पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ११८२ वर्गमील और जनसंख्या चार लाखसे ऊपर है। इसमें बाँका नामका १ शहर और ६६३ ग्राम लगते हैं।

२ उक्त उपविभागका एक प्रधान शहर। यह अक्षा० २४° ५३´ उ० तथा देशा० ८६° ५६´ पू० चन्दन नदीके किनारे अवस्थित है। यहां तथा उपविभागके सभी स्थानों में दूवे भैरों नामक ब्रह्मदेवताकी पूजा होती है। भागलपुरवासियोंका विश्वास है, कि इन सब भूतयोनिके कुपित होनेसे जनसाधारणका अमंगल होता है। अमङ्गल दूर करनेके लिये वे लोग उपदेवताको नाना प्रकारके उपहार चढ़ाते हैं। दूवे भैरों गुप्तप्रदेशवासी एक ज्योतिःशास्त्र-विशारद ब्राह्मण थे। वे वीरमा नामक क्षेभौरी राजाके आश्रयमें मुङ्गेरके निकटवर्त्ती दद्रि नगरमें आ कर बस गये। राजाके उत्पीड़नसे उन्होंने आत्महत्या कर डाली जिससे उनका राज्य नष्ट भ्रष्ट हो गया। राजाने ब्रह्मकोपानलसे निस्तार नहीं पाया। पापसे मुक्त होनेके लिये वे बहुत दिनों तक देवघरमें रहे, पर वहां भी वैद्यनाथ वा पार्वतीदेवी राजाकी रक्षा न कर सकीं। आखिर तीनपहाड़के ऊपर वे एक दिन बैठे थे, कि एक पत्थरके गिरनेसे उनकी हड्डी चकना चूर हो गई और वे पञ्चत्वको प्राप्त हुए। भागलपुरवासी दूवे भैरवकी पूजा वैद्यनाथ-पूजाके बाद करते हैं। ब्राह्मण होनेके कारण उनकी पूजामें जीवबलि नहीं दी जाती।

शहरमें एक छोटी अदालत, कारागार और एक हाई-स्कूल है। यहांसे १० मीलकी दूरी पर बौंसी नामक प्रसिद्ध तीर्थक्षेत्र अवस्थित है। भागलपुर स्टेशनसे इ० आइ० आर रेलवेकी एक शाखा वहां तक दौड़ गई है।

बाँकाखाल—मेदिनीपुर जिलान्तर्गत रूपनारायण नदीकी एक खाल। यह रूपनारायण मुहानेसे हल्दी तक विस्तृत है।

बांकापहाड़ी—बुन्देलखण्ड एजेन्सीके अधीन मध्यप्रदेशका एक सनद राज्य। यह अक्षा० २५° २२´ उ० तथा देशा० ८०° १४´ पू०के मध्य अवस्थित है। इसमें केवल एक ग्राम लगता है। भूपरिमाण ४ वर्गमील और जनसंख्या हजारसे ऊपर है। इस राज्यके स्थापयिता थे झांसीके निकटवर्त्ती वड़गांवके रहनेवाले बदला राजपूत दीवान उमेदसिंह। इनके पिताका नाम दीवान रायसिंह था। पहले इसमें पांच ग्राम लगते थे, पर मरहठा आक्रमणके समय उनमेंसे चार हाथसे जाते रहे। वर्त्तमान अधिपतिका नाम है दीवान बांका मिहरवान सिंह। ये १८६० ई०में गद्दी पर बैठे। राजस्व चार हजार रुपयेका है।

बांकापुर—१ बम्बईके धारवार जिलेका पश्चिमी तालुक। यह अक्षा० १४° ५१´ से १५° १०´ उ० तथा देशा० ७५° ४´ से ७५° २८´ पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ३४४ वर्गमील है। इसमें इसी नामका १ शहर और १४४ ग्राम लगते हैं। जनसंख्या ६० हजारसे ऊपर है।

२ उक्त तालुकका एक शहर। यह अक्षा० १४° ५५´ उ० तथा देशा० ७५° १६´ पू०के मध्य अवस्थित है। जनसंख्या छः हजारसे ऊपर है। शहरमें दो भग्न दुर्ग और दो मन्दिर हैं। १०७१ ई०में गंगावंशके उदयादित्य यहांका शासन करते थे। १४०६ ई०में सवनूर-नवावके पूर्वपुरुष वाह मनो सुलतान फिरोजशाहने यहां घेरा डाला था। यहां रङ्गेश्वर स्वामीका एक जैन-मन्दिर है।

बांकिया (हिं० पु०) नरसिंहा नामका एक प्रकारका बाजा जो फूंक कर बजाया जाता है। यह लोहे या तांबेका होता तथा आकारमें कुछ टेढ़ा होता है।

बांकी—उड़ीसा प्रदेशके अन्तर्गत एक सामन्त राज्य। अभी यह अङ्गरेज गवर्मेण्टके अधीन है। भूपरिमाण ११६ वर्गमील है। इसके उत्तरमें महानदी, पूर्वमें कटक जिला, दक्षिणमें पुरी और पश्चिममें खण्डपारा राज्य है। १८००से १८४० ई० तक यह स्थान हिन्दू सामन्तराजके हाथ था। वे अङ्गरेज गवर्मेण्टको वार्षिक ४४३० रुपये कर दिया करते थे। १८४१ ई०में हत्यापराधमें दण्डित हो इन्हें सदाके लिये देशनिकाला हुआ और वृटिश सरकारने राज्य अपने अधिकारमें कर लिया। इसी समयसे इसकी श्रीवृद्धि देखी जाती है।

बांकीपुर—विहार और उड़ीसा प्रदेशके पटना जिलान्तर्गत एक उपविभाग। यह अक्षा० २५° १२´ से २५° ४०´ उ०

तथा देशा० ८४°१२ से ५°१७ पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ३३४ वर्गमील और जनसंख्या साढ़े तीन लाखके करीब है। इसके उत्तरमें गङ्गा बहती है। इसमें पटना और फुलवारी नामके २ शहर और ६७५ ग्राम लगते हैं।

२ उक्त विभागका एक प्रधान शहर। यह अक्षा० २५° ३७´ उ० तथा देशा० ८५° ८´ गङ्गाके दाहिने किनारे अवस्थित है। प्राचीन पटना राजधानीके पश्चिम उपकण्ठमें अवस्थित रहने और यूरोपीयगणके वासस्थान होनेके कारण यह स्थान विशेष समृद्धिशाली हो गया है। प्राचीन गंगा नदीके खातके ऊपर राजकीय अट्टालिका और अङ्गरेजोंके आवास-भवन अवस्थित हैं। इस नगरके मिठापुर नामक विभागमें इष्ट इण्डिया और पटना-गया-रेलवेका ष्टेशन है। वांकीपुरसे प्राचीन पटना राजधानीमें जाने आनेकी सुविधाके लिये हालमें एक और स्टेशन खोला गया है। यहांसे आध कोसकी दूरी पर गोला नामक स्थान है। यहांका गोलघर देखने लायक है। स्टेशनके पास ही कारागार है जहां करीब पांच सौ कैदी रखे जाते हैं। १८८३ ई०में स्थापित 'विहार नेशनल कालेज'में बी० ए० तककी पढ़ाई होती है। इसके अलावा यहां जनाना-हाई-स्कूल भी है जो पटना विश्वविद्यालयसे सम्बन्ध रखता है।

पटना देखो।

वांकीपुर—वारकपुरके उत्तर पलताके निकटवर्त्ती एक प्राचीन ग्राम। यह हुगली नदीके किनारे अवस्थित है। पहले यहां अष्टेण्ड कम्पनी (Ostend Compa y)-की वाणिज्य-कोठी थी। अष्ट्रियाराजने पूर्व भारतीय वाणिज्यका अंश लेनेकी आशासे १७२२-२३ ई०में यह वणिकसमिति संगठन की। इसके कर्मचारिगण अकसर अंगरेज और ओलन्दाज लोग होते थे। जर्मन सम्राट्के भारत-वाणिज्य लूटनेसे उक्त वणिक-समितिका अधःपतन हुआ। जर्मन-वणिकदलने भारतवर्षमें आ कर मन्द्राजके कोसेलङ्ग और वङ्गालके वाँकीपुरमें कोठी खोली। जर्मनोंके अभ्युदय पर अंगरेज, फरासी और ओलन्दाज वणिक्-सम्प्रदाय विचलित हो गये। १७२७ ई०में भियेना राजदरबारके बाधा डालने और धीरे धीरे अन्यान्य सम्प्रदायोंकी उन्नति तथा समुद्रपथके वाणिज्य-प्रभावसे इनका वाणिज्योद्यम बिलकुल जाता रहा। १७८४ ई०में अंगरेज, ओलन्दाज और जर्मनोंने मिल कर मुसलमान फौजदारके विरुद्ध अस्त्रधारण किया। मुसलमानी सेनाके वाँकीपुरमें घेरा डालने पर अष्टेण्ड कम्पनीके एजेण्टने गोला वर्षण द्वारा उन्हें आहत कर डाला जिससे वे सबके सब प्राण ले कर भागे। जर्मन-वणिकसम्प्रदायकी वाणिज्यरूपी आशा-लता जड़से उखाड़ दी गई। अवशिष्ट जर्मन कर्मचारिगण इस स्थानका परित्याग कर अपना बोरा बंधना ले यूरोप भागे।

बाँकुड़ा—वङ्गालके वर्द्धमान विभागान्तर्गत एक जिला। यह अक्षा० २२° ३८ से २३° ३८´ उ० तथा देशा० ८६° ३६´ से ८७° ४६´ पू०के मध्य अवस्थित है। इसके उत्तर और पूर्वमें दामोदर नदी, दक्षिणमें मेदिनीपुर और पश्चिममें मानभूम जिला है। भूपरिमाण १६२१ वर्गमील है।

इसका पूर्वांश प्रायः समतल है। जितना ही उत्तर और पश्चिम बढ़ते जायँ, उतना ही गण्डशैल और जङ्गलभूमि नजर आती है। यह विस्तीर्ण शैलश्रेणी समुद्रपृष्ठसे १४०० फुट ऊंची है। सुसुनिया नामक पहाड़ १४४२ फुट ऊँचा है। उस पहाड़के शिखर पर राजा चन्द्रवर्मदेवकी एक शिलालिपि पाई गई है। दामोदर और दलकिशोर वा द्वारकेश्वर यहांकी प्रधान नदी है। वर्षाऋतुमें इनके कलेवरकी वृद्धि होती है। इस समय पर्वत परका जल हठात् बाढ़की तरह आ कर आस पासके स्थानोंको बहा देता है। ऐसी बाढ़का आगमनकाल निश्चित नहीं रहता जिससे सैकड़ों आदमी प्राणसे हाथ धो बैठते हैं। विष्णुपुर नगरके समीप पूर्वतन राजाओंकी अक्षय कीर्त्ति देखनेमें आती है।

पहले यह स्थान वर्द्धमान चकलाके अन्तर्भुक्त था। १७६० ई०की २७ वीं सितम्बरको यह वृटिशगवर्मेण्टके हाथ लगा। अंगरेजोंके बंगालकी दीवानी पानेके बाद भी बाँकुड़ा (उस समय विष्णुपुर जमींदारी नामसे प्रसिद्ध था) वीरभूम जिलेके अन्तर्गत था।

विष्णुपुर राजवंशका इतिहास ले कर इस जिलेका विस्तृत इतिहास बना है। ११वीं शताब्दीमें यह स्थान विशेष समृद्धिशाली था। राजप्रासाद, नाट्यशाला, अश्व और हस्तिशाला, सेनावारिक, अस्त्रागार, धनागार,

देवमन्दिर और पुष्करिणी आदिसे नगरने अपूर्व शोभा धारण की थी। परवर्त्तीकालमें यहांके हिन्दूराजगण कभी तो शत्रुभावमें मुसलमान नवाबोंके प्रतिकूलाचरण करते थे और कभी मित्रभावमें उन्हें सहायता पहुंचाते थे। ये लोग कभी भी मुर्शिदाबादके राजदरवारमें हाजिर नहीं होते थे। १८वीं शताब्दीमें इस राजवंशकी अवनति हुई। मराठा-डकैतोंके आक्रमण, मुसलमान नवाबोंके अयथा करसंग्रह और १७७० ई०के महादुर्भिक्षसे विष्णुपुर जनहीन हो गया। विष्णुपुर राज्यका अधिकांश स्थान अरण्यमें परिणत हुआ। इस प्रकार धनहीन हो जानेसे राजाने अपनी मदनमोहन देवमूर्त्ति कलकतावासी गोकुलचन्द्र मित्रके यहां बंधक रखी। पीछे अर्थ संग्रह करके उक्त मूर्त्ति छुड़ानेके लिये उन्होंने मन्त्रीको कलकत्ता भेजा। गोकुलमित्रने रुपये ले कर भी देवमूर्त्ति लौटाना न चाहा। इस पर राजाने देवमूर्त्तिकी पुनःप्राप्तिके लिये कलकत्ते सुप्रिमकोर्टमें नालिश ठोंक दी। देवमूर्त्ति उन्हें वापस मिली। विस्तृत विवरण विष्णुपुर शब्दमें देखो।

अंगरेजोंके अधीन आने पर भी यहांकी दुर्गति दूर न हुई। महाराष्ट्रीय और मुसलमानोंके अयथा करसंग्रहसे अव्याहति पाने और प्रजाका कष्ट दूर होने पर भी १७७० ई०के दुर्भिक्षसे जो लोगोंको महता क्षति हुई थी उससे वे अपनी अवस्था जरा भी सुधार न सके। विष्णुपुरके ध्वंसावशिष्ट दुर्गमें एक प्राचीन कमान रखी हुई है जो १२॥ फुट लम्बी है। प्रवाद है, कि वह कमान देवतासे राजाको मिली थी।

इस जिलेमें ३ शहर और ३५६२ ग्राम लगते हैं। जनसंख्या ग्यारह लाखसे ऊपर है, जिनमेंसे हिन्दूकी संख्या अधिक है। इस जिलेमें कोढ़की शिकायत बहुत है। महामारीका भी अकसर प्रकोप देखा जाता है। यहांकी प्रधान उपज धान, ईख, गेहूं, मकई, लाह और रुई है। पहले यहां नीलकी अच्छी खेती होती थी, पर अब उसका बिलकुल ह्रास हो गया है। रेशमी, सूतीके कपड़े, पीतल और तांबेके अच्छे अच्छे बरतन तैयार होते हैं। बांकुड़ा शहरमें टसरका अच्छा कारबार होता है।

विद्या-शिक्षामें यह जिला बहुत बढ़ा चढ़ा है। अभी यहां कुल मिला कर १३८८ स्कूल हैं जिनमेंसे एक शिल्प-कालेज है। स्कूलके अलावा १० अस्पताल और कुष्ठाश्रम हैं।

२ उक्त जिलेका पश्चिम उपविभाग। यह अक्षा० २२° ३८' से २३° ३८' उ० तथा देशा० ८६° ३६' से ८७° २५' पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण १६२१ वर्गमील और जनसंख्या ७ लाखसे ऊपर है। इसमें बांकुड़ा नामका १ शहर और ४०६६ ग्राम लगते हैं।

३ उक्त उपविभागका एक शहर। यह अक्षा० २३° १४' उ० तथा देशा० ८७° ४' पू० धवलकिशोर नदीके उत्तरी किनारे पर अवस्थित है। जनसंख्या प्रायः २०७३७ है, हिन्दूकी संख्या ज्यादा है। कहते हैं, कि बांकूरायने इस नगरको बसाया था, इसीसे इसका बांकुड़ा नाम पड़ा है। उनके वंशधर आज भी इस शहरमें वास करते हैं। टसरके कपड़े का यहां अच्छा कारबार चलता है। १६०२ ई०में जो कुष्ठाश्रम खोला गया है उसमें ७२ रोगी रखे जाते हैं। जलवायु स्वास्थ्यप्रद है।

विष्णुपुर देखो।

वांकुड़ी (हिं० स्त्री०) बांकड़ी देखो।

वांग (फा० स्त्री०) १ शब्द, आवाज। २ चिल्लाहट, पुकार। ३ वह ऊंचा शब्द वा मन्त्रोच्चारण जो नमाजका समय सूचित करनेके लिये कोई मुल्ला मसजिदमें करता है, अजान। ४ प्रातःकालके समय मुरगेके बोलनेका शब्द।

वांगड़ू (हिं० वि०) मूर्ख, बेवकूफ।

वांगर (हिं० पु०) १ छकड़ा गाड़ीका वह बांस जो फड़के ऊपर लगा कर फड़के साथ बांध दिया जाता है। २ अवधमें पाये जानेवाले एक प्रकारके बैल। ३ खादरके विरुद्ध वह भूमि जो कुछ ऊंचे पर अवस्थित हो, वह भूमि जो नदी झील आदिके बढ़ने पर भी कभी पानीमें न डूबे।

वांगा (हिं० पु०) वह रुई जो ओटी न गई हो, कपास।

वांगुर (हिं० पु०) पशुओं या पक्षियोंके फंसानेका जाल, फंदा।

वांचना (हिं० क्रि०) १ पढ़ना। २ शेष रहना, वाकी रहना। ३ बचाना, छोड़ देना।

वांछना (हिं० क्रि०) १ अभिलाषा करना, चाहना, इच्छा

करना। २ अच्छी या बुरी चीजें चुनना, छांटना।

बांझ (हिं० स्त्री०) १ वन्ध्या, वह स्त्री जिसे सन्तान न होती हो। २ कोई मादा जिसे बच्चा न होता हो। ३ एक प्रकारका पहाड़ी वृक्ष। इसके फलोंकी गुठलियां बच्चोंके गलेमें, उनको रोग आदिसे बचानेके लिये बांधी जाती है।

बांझककोली (हिं० स्त्री०) वन परवल, खेखसा।

बांझापन (हि० पु०) वन्ध्यात्व, बांझ होनेका भाव।

बांट (हिं पु०) १ बांटनेकी क्रिया या भाव। २ भाग, हिस्सा। ३ घास या पयालका बना हुआ एक मोटा-सा रस्सा। गांवके लोग इसे कुवार सुदी १४ को बनाते हैं और दोनों ओरसे कुछ कुछ लोग इसे पकड़ कर तब तक खींचातानी करते हैं जब तक वह टूट नहीं जाता। ४ गौओं आदिके लिये एक विशेष प्रकारका भोजन। इसमें खरी, बिनौला आदि चीजें रहती हैं। इसके खानेसे उनका दूध बढ़ता है। ५ ढेड़र नामकी घास। यह धानके खेतोंमें उग कर उसकी फसलको हानि पहुंचाती है।

बांटचूंट (हिं० स्त्री०) १ भाग, हिस्सा। २ देन लेन, देना दिलाना।

बांटना (हिं० क्रि०) १ किसी चीजके कई भाग करके अलग अलग रखना। २ विभाग करना, हिस्सा लगाना। ३ वितरण करना, थोड़ा थोड़ा सबको देना।

बांटा (हिं० पु०) १ बांटनेकी क्रिया या भाव। २ भाग, हिस्सा। ३ गाने,बजानेवालों आदिका वह इनाम जो वे आपसमें बांट लेते हैं।

बांड़ (हिं० पु०) १ दो नदियोंके संगमके बीचकी भूमि। यह भूमि नदियोंकी बाढ़से डूब जाती है और फिर कुछ दिनोंमें निकल आती है। इस प्रकारको भूमि बड़ी उपजाऊ होती है। (वि०) २ बांड़ा देखो।

बांड़ा (हिं० पु०) १ वह पशु जिसकी पूंछ कट गई हो। २ परिवारहीन पुरुष, वह मर्द जिसके लड़केवाले न हों। ३ तोता। (वि०) १ पुच्छहीन, जिसके पूंछ न हो।

बाँड़ी (हिं० स्त्री०) १ पुच्छहीन गाभी, विना पूँछकी गाय। २ कोई मादा पशु जिसकी पूँछ न हो या कट कई हो। ३ छोटी लाठी, छड़ी।

बाँड़ीबाज (हिं० पु०) १ लाठीबाज, लकड़ीसे लड़नेवाला। २ उपद्रवी, शरारती।

बांद (फा० पु०) सेवक, दास।

बाँदर (हिं० पु०) बन्दर देखो।

बाँदा (हिं० पु०) १ एक प्रकारकी वनस्पति जो अन्य वृक्षोंकी शाखाओं पर उग कर पुष्ट होती है। २ किसी वृक्ष पर उगी हुई दूसरी वनस्पति।

बांदी (हिं० स्त्री०) दासी, लौंडी।

बांदू (हिं० पु०) १ कैदी, बंधुवा।

बाँध (हिं० पु०) नदी या जलाशय आदिके किनारे मिट्टी पत्थर आदिका बनाया हुआ धुस्स। यह पानीकी बाढ़ आदि रोकनेके लिये बनाया जाता है।

बाँधना (हिं० क्रि०) १ रस्सी, तागे, कपड़े आदिकी सहायतासे किसी पदार्थको बंधनमें करना। २ ऐसा प्रबंध या निश्चय कर देना जिससे किसीको किसी विशेष प्रकारसे व्यवहार करना पड़े, पाबंद करना। ३ कसने या जकड़नेके लिये रस्सी आदि लपेट कर उसमें गांठ लगाना। ४ पकड़ कर बंद करना, कैद करना। ५ चारों ओरसे बटोरे या लपेटे हुए कपड़े आदिके कोनोंको चारों ओरसे बटोर कर और गांठ दे कर मिलाना जिसमें संपुट-सा बन जाय। ७ मकान आदि बनाना। ८ प्रेम-पाशमें बद्ध करना। ६ रचनाके लिये सामग्री जोड़ना, उपक्रम करना। १० मन्त्र तन्त्रकी सहायतासे अथवा और किसी प्रकार प्रभाव, शक्ति वा जाति आदिको रोकना। ११ नियत करना, मुकर्रर करना। १२ पानीका बहाव रोकनेके लिये बांध आदि बाँधना। १३ चूर्ण आदिको हाथोंमें दवा कर पिण्डके रूपमें लाना। १४ किसी प्रकारका अस्त्र या शस्त्र आदि साथ रखना। १५ ठीक करना, दुरुस्त करना। १६ क्रम या अवस्था आदि ठीक करना।

बाँधनू (हिं० पु०) १ उपक्रम, मंसूबा। २ कपड़ेकी रंगाईमें वह बन्धन जो रंगरेज लोग चुनरी या लहरियादार रँगाई आदि रंगनेके पहले कपड़ेमें बांधते हैं। ३ चुनरी या और कोई ऐसा वस्त्र जो इस प्रकार बांध कर रंगा गया हो। ४ कोई बात होनेवाली मान कर पहलेसे ही उसके संबंधमें तरह तरहके विचार, ख्याली पुलाव। ५

मिथ्या अभियोग, झूठा दोष। ६ कल्पित बात, मनसे गढ़ी हुई बात।

बाँव (हिं० पु०) सांपके आकारकी एक प्रकारकी मछली।

बाँवी (हिं० स्त्री०) १ दीमकके रहनेका भीटा, बँबीठा।

बाँमी (हिं० स्त्री०) बाँबी देखो।

बाँबाँछोड़ो (हिं० स्त्री०) लहसुनियाकी जातिका एक प्रकारका रत्न।

बाँवांरथी (हिं० पु०) वामन, बौना।

बाँयाँ (हिं० स्त्री०) बायाँ देखो।

बाँस (हिं० पु०) १ तृण जातिकी एक प्रसिद्ध वनस्पति। इसके कांड़ोंमें थोड़ी थोड़ी दूर पर गांठें होती हैं और गांठोंके वीचका स्थान प्रायः कुछ पोला होता है। विशेष विवरण वंश शब्दमें देखो। २ भाला। ३ पीठके वीचकी हड्डी जो गर्दनसे कमर तक चली गई है, रीढ़। ४ नाव खेनेकी लग्गी। ५ सवा तीन गजकी एक माप, लाठा।

बाँसखाली—चट्टग्राम जिलेके अन्तर्गत एक प्रधान वाणिज्य-स्थान। यह अक्षा० २२° ५०′ १५″ उ० तथा देशा० ९१° ३१′ पू०के मध्य अवस्थित है। यहां चावलका वाणिज्य ज़ोरों चलता है।

बाँसगवा—१ युक्तप्रदेशके गोरखपुर जिलान्तर्गत पदरौना तहसीलका एक ग्राम। यह अक्षा० २६° ४८′ उ० तथा देशा० ८४° १२′ पू० गोरखपुर शहरसे ६४ मील पूर्वमें अवस्थित है। जनसंख्या पांच हजारसे ऊपर है।

बाँसगांव—१ युक्तप्रदेशके गोरखपुर जिलेकी एक तहसील। यह अक्षा २६° १४′ से २६° ४३′ उ० तथा देशा० ८३° ४′ से ८३° ४४′ पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ६१४ वर्गमील और जनसंख्या प्रायः ४३८३६४ है। इसमें ४ शहर और १६६७ ग्राम लगते हैं। इसके उत्तर अमी नदी, दक्षिण गोगरा और पूर्वमें राप्ती है।

२ उक्त उपविभागका एक शहर। यह अक्षा० २६° ३३′ उ० तथा देशा० ८३° २२′ पू० गोरखपुर शहरसे ११ मील दक्षिण पड़ता है। जनसंख्या पांच हजारसे ऊपर है। शहरमें दो स्कूल हैं।

बाँसदा—१ वम्बईके सूरत एजेन्सीके अन्तर्गत एक सामन्त राज्य। यह अक्षा० २०° ४२′ से २०° ५६′ उ० तथा देशा० ७३° १८′ से ७४° ३४′ पू० के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण २१५ वर्गमील है। इसके पश्चिममें सूरत जिला, उत्तरमें बड़ौदाराज्य, पूर्वमें दङ्ग राज्य और दक्षिणमें धरमपुर राज्य है। इस राज्यका अधिकांश स्थान पर्वत और जङ्गलमय है। कहीं कहीं समतल क्षेत्र भी देखा जाता है। धान, चना और उड़द यहांकी प्रधान उपज है। सूती फीता, चटाई, पंखा, पशमीना गलीचा भी प्रस्तुत होता है।

यहांके सरदार राजपूत वंशीय हैं। ये लोग अपनेको हिन्दू और सोलाङ्कि नामक राजपूतवंशसे उत्पन्न बतलाते हैं। बांसदा नगरके समीपस्थ दुर्भेद्य प्राचीर दुर्ग और सैकड़ों देवमन्दिरादिका ध्वंसावशेष इसकी पूर्व समृद्धिका परिचायक है। मुसलमानी अमलके पहले इनकी राज्य-सीमा समुद्रोपकूल तक फैली हुई थी। मुसलमानोंकी चलतीमें इन्होंने जङ्गल-प्रदेशमें आश्रय लिया। महाराष्ट्र लोग इनसे कर लिया करते थे। किन्तु १८०२ ई०में बसांई सन्धिके वाद पेशवा ने करसंग्रहका भार अंगरेजोंके ऊपर सौंप दिया। वर्त्तमान राजाका नाम महरूल श्रीइन्द्रसिंहजी प्रतापसिंहजी राजा साहब है। सरकारकी ओरसे इन्हें ९ सलामी तोपें मिलती हैं। इनके पास १५० सेना और १४ कमान है। मुकद्दमेका विचार राजा स्वयं करते हैं। किसीको फांसी देनेमें इन्हें पालिटिकल एजेण्टकी सलाह लेनी पड़ती है। राजाको दत्तक पुत्र ग्रहणका अधिकार है। बड़े लड़केही राजसिंहासनके अधिकारी होते हैं।

राज्यकी जनसंख्या ४० हजारसे ऊपर है जिनमेंसे हिंदूकी संख्या सबसे अधिक है यहांकी भाषा गुजराती है। राजस्व ७७४३४७ रु० है जिनमेंसे बृटिशसरकारको ७३५१ रु० कर और १५०० रु० चौथ स्वरूप देने पड़ते हैं। राज्य भरमें ४ बालक-स्कूल और १ बालिका-स्कूल है। जंगली असभ्य जातिके लड़कोंको मुफ्तमें शिक्षा दी जाती है। शिक्षाविभागमें राज्यका पांच हजारसे ज्यादा रुपया खर्च होता है। राज्यकी ओरसे एक अस्पताल भी खुला है।

२ उक्त राज्यका प्रधान नगर। यह अक्षा० २०° ४७′ उ० तथा देशा० ७३° २८′ पू०के मध्य अवस्थित है। जनसंख्या ४ हजारके करीब है। राजाके अनुग्रहसे यहां बालक और

बालिका-विद्यालय, औषधालय आदि प्रतिष्ठित हुए हैं।

बांसदिहा—१ युक्तप्रदेशके बलिया जिलेकी एक तहसील। यह अक्षा० २५°४७' से २६°७' उ० तथा देशा० ८३°५४' से ८४°३१' पू० के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ३७१ वर्गमील और जनसंख्या ३ लाखके करीब है इसमें ५ शहर और ५१५ ग्राम लगते हैं। बहुत-सी छोटी छोटी नदियां तहसीलके मध्य होती हुई घघरामें मिली हैं। प्रतिवर्ष वर्षाऋतुमें इसका अधिकांश स्थान घघराकी बाढ़से बह जाता है।

२ उक्त तहसीलका एक शहर। यह अक्षा० २५°५३' उ० और देशा० ८४°१४' पू० बलिया शहरसे १० मील उत्तर पड़ता है। जनसंख्या प्रायः १००२४ है। पहले यह स्थान नरौलिया राजपूतके अधिकारमें था। पीछे भूमिहारोंने इसे खरीद लिया। शहरमें अभी १ चिकित्सालय और १ स्कूल है।

बांसपूर (हिं० पु०) एक प्रकारका बारीक कपड़ा। कहते हैं, कि यह इतना महीन होता था, कि इसका एक थान बांसके चोंगेमें भरा जा सकता था।

बांसफल (हिं० पु०) संयुक्तप्रान्तमें पैदा होनेवाला एक प्रकारका धान।

बांसफोड़—युक्तप्रदेशमें रहनेवाली निकृष्ट जाति। यह डोम नामकी नीच जातिकी एक शाखा है। बांस फाड़ना या धरांमीका कार्य करना इनका जातीय व्यवसाय है, इसीसे यह नाम पड़ा है। मिर्जापुर-वासी बांसफोड़ोंका कहना है, कि वे रेवा नगरके उत्तर पश्चिमस्थ चौरसिंतपुर नामके स्थानसे यहां आये हैं। गोरखपुर-वासी अपनेको घरवाड़ी डोम बतलाते हैं। ये दूसरोंको अपनी जातिमें मिला सकते हैं। यदि कोई इस जातिकी रमणी पर आसक्त हो इनमें मिलना चाहे, तो उसे महाभोज देना पड़ता है। पीछे उस जातिके साथ एकत्र बैठ कर मद्य पान करनेसे उसको इस जातिका पूर्ण अधिकार प्राप्त हो जाता है।

ये लोग डोम जातिके अन्तर्भुक्त होने पर भी कभी कभी अपनेको धानुक बतलाते हैं। भागलपुर शहरमें जो बांसफोड़ हैं उनमें पङ्गत-विवाह प्रचलित है। किन्तु उस जिलेके बाहर कहीं भी पङ्गत-विवाह प्रचलित नहीं देखा जाता। नेपाल सीमान्तवासी बांसफोड़ वहांके ही विभिन्न थाकमें डीह-विवाह करते हैं। मिर्जापुरमें महाव्रती, चमकल, गौसल, समुद्र, लहर, कल्हे, मगरिह, सरैहा आदि अनेक थाक हैं। इनमें सपिण्ड विवाह भी चलता है। किन्तु ममेरी या फुफेरी बहनसे शादी नहीं होती। यहां तक कि जिस घरमें बांसफोड़ नातेदार कन्याका विवाह होता है उस घरमें बिना दो तीन पीढ़ी बीते दूसरा विवाह नहीं हो सकता। गोरखपुरके घरवाड़ी, बांसफोड, माङ्गता, डोम, धरकार, नाटक, तसिहा, हलालखोर, कूंच बांधिया प्रभृति विभिन्न थाकोंमें विवाहादि क्रिया होती है।

ये लोग अनेक विषयोंमें हिन्दूका अनुकरण करते हैं। समाजशासनके लिये इनमें एक नेता होता है जिसे सब कोई 'मोड़ल' कहते हैं। समाजमें जब अनीति अनाचार या विभ्राट् उपस्थित होता है, तब वह अनेक सदस्योंकी सम्मति ले न्याय करता है। यदि कोई नीचाशय व्यक्ति धोबिन या डोमिनके साथ आसक्त होता है, तो वह जन्म भरके लिये जातिच्युत किया जाता है। स्त्रियोंको भी इसी प्रकार दण्ड मिलता है। यदि कोई उच्च जातिकी स्त्रीके प्रेममें फंस जाय, तो वह एक जातीय भोज देने मात्रसे ही फिर समाजमें आ सकता है। इच्छानुसार एक दो या तीन व्याह तक ये करते हैं। कोई भी पुरुष उपपत्नी नहीं रख सकता और न स्त्री ही स्वामीके रहते दूसरा स्वामी कर सकती है। स्त्री यदि दूसरे पुरुषके प्रेममें फंसी हो, तो उसके स्वामी और पिताको एक बड़ा भोज देना पड़ता है। दोष साबित न हो, तो उनको सजा नहीं मिलती।

इन लोगोंमें बालिका-विवाह ज्यादा होता है। यदि व्याहके पहले कोई लड़की ऋतुमती होवे, तो उसकी पिता जातिच्युत किया जाता है। वरका मामा व्याह स्थिर करता है। सम्बन्ध स्थिर हो जाने पर कन्याके पहले ४।) रु० पहिले जमा करना पड़ता है। यदि कोई स्त्री स्वामीका तिरस्कार करे वा उच्छिष्ट भोजन खानेको दे, तो वह समाजकी अनुमति ले कर उसका त्याग कर सकता है और दूसरा विवाह भी कर सकता है। विधवायें सगाई या धरेला करती हैं और उनके पुत्र और कन्या

दोनों ही पितृसम्पत्तिके अधिकारी होते हैं। विधवा देवरके साथ भी ब्याह कर सकती है। उसका प्रथम जातपुत्र पिताकी सम्पत्तिसे वंचित नहीं होता। प्रत्येक व्यक्ति अपने भाई, बहन और नातीको गोद ले सकता है।

पुत्र होने पर १२ दिन तक वे अशुद्ध रहते हैं। सूतिका-गृहमें वासोरा जातिकी स्त्रियां इनकी सेवा करती हैं। बारह दिन तक मृत व्यक्तिके उद्देश्यसे सूअरकी बलि दी जाती है। उसके मांसको सभी मिल कर खाते हैं। स्त्रियां इस दिन कुएँकी पूजा करती हैं। ये जातवालकके कर्णवेध उपलक्षमें ब्राह्मण पंडितोंसे मिती सुदवाते हैं। कर्णवेधके बाद प्रत्येक बालक ही समाजमें शामिल गिना जाता है और तभीसे जातीय प्रथानुसार चलता है।

विवाहकी शुभलग्न सुदवानेके लिये ये ब्राह्मण पण्डितोंके पास जाते हैं। विवाहबंधनके दृढ़ करनेके लिये बालकका पिता कन्याके पिताके साथ मदिरा-पात्रको वदलता है और कन्याका भाई अपने पिताके मस्तक पर पगड़ी पहनाता है। इनकी विवाह-प्रक्रिया धरकार जातिके समान है; किन्तु विवाहके कुछ पहले वरपक्षकी तरफ होम होता है। मण्डपमें ये सीमर और गूलरकी डाल गाड़ते हैं। विवाहमें नख काटते और दोनों पैर लाल रंगसे रंगते हैं। विवाह शेष होने पर हिंदुओंके अनुसार ये गौरी और गणेशजीकी पूजा करते हैं। तत्पश्चात् कन्यादान, गंथबन्धन, सिन्दूरदान, आदि कार्य समाप्त करके वर-कन्याको आमोद प्रमोदसे सारी रात कोहवरमें बितानी पड़ती है।

ये लोग मृतव्यक्तिका दाह करते हैं। किन्तु अल्पवयस्क बच्चोंको अथवा संक्रामक रोगग्रस्त व्यक्तिको मिट्टीमें गाड़ या नदीमें फेंक देते हैं। दाहके बाद ये लोग भी नीमकी पत्तियां चवाते हैं। केवल दश दिन तक अशौच रहता है। दशवें दिन मृतका पुत्र, कन्या वा स्त्री अथवा छोटा भाई दूध तथा अन्नसे पांच पिण्ड देता है। फिर घर आ कर वे शूकरका मांस रांधते और आत्मीय जनोंको भोजन कराते हैं। इन कार्योंमें ब्राह्मणकी आवश्यकता नहीं पड़ती। पितृ पक्षमें वे १५ दिन तर्पणकी तरह भूत पुरुषोंको भूमि पर जल दान करते हैं। नवें दिन वे पूरी, खीर, शूकर मांस उनको देते हैं। १५वें दिन और भी समारोहसे पितृ पुरुषोंको भोग देते हैं।

विन्ध्याचलकी विन्ध्यावासिनीदेवी ही इनकी प्रधान देवता हैं। प्रति चैत्रमासकी ९वीं तारीखको वे देवीके नाम पर शूकर वलि देते हैं। गोरखपुरवासी कालिकादेवीकी तथा श्रावणसुदी ५को नागोंकी पूजा करते हैं। इसके सिवाय दीह नामके ग्राम्यदेवता और पीपलके पेड़ आदिको भी वे पूजते देखे जाते हैं। हरदोईवासी कालदेव तथा देवीकी पूजा करते हैं। होली, रामनवमी, करवाचौथ, गरुड़पूजा आदि उत्सवोंमें भी ये लोग खूब आमोद-प्रमोद करते हैं।

स्त्रियां आभूषण पहनती हैं। बालक और बालिकाओंके दो नाम रखे जाते हैं। जातवालकोंके शरीरको सबल और पुष्ट बनानेके लिये वे बोझा ढुलवाते हैं और उपदेवताकी कुदृष्टिसे बचानेकी चेष्टा करते रहते हैं। ये गोमांस नहीं खाते। डोम धोबी, छोटे भाईकी स्त्री, बड़े सालेकी स्त्री और भाँजेकी स्त्रीका स्पर्श नहीं करते। उनका स्पर्श करना वे लोग पाप समझते हैं। पंखा, टोकनी और बांसका बकस बनाना ही इनका दैनिक व्यवसाय है। कोई कोई मजूरी, झाड़ूबरदार और मेहतरका काम करके भी अपना गुजारा चलाते हैं।

बाँसली (हिं० स्त्री०) १ मुरली, बाँसुरी। २ रुपया पैसा रखनेकी एक प्रकारकी जालीदार लंबी पतली थैली। इस प्रकारकी थैली जो कमरमें बांधी जाती है। ३ वंशीके आकारका एक प्रकारका बाजा जो पीतल या लोहेका बना होता है।

बाँसलोई—भागीरथी नदीकी एक शाखा। यह संथाल परगनेसे निकल कर वीरभूम और मुर्शिदाबाद जिलेके मध्य होती हुई जङ्गीपुरके निकट गङ्गानदीमें मिली है।

बाँसवाड़िया—हुगली जिलेके अन्तर्गत एक नगर। यह अक्षा० २२°५८' उ० तथा देशा० ८८°२४' पू० हुगली नदीके किनारे अवस्थित है। जनसंख्या साढ़े छः हजारके करीब है। यहां हंसेश्वरीदेवीके १३ चुड़ामन्दिर हैं। लाखसे अधिक रुपये व्यय करके स्थानीय जमींदारपत्नी शङ्करी दासीकी अनुमतिसे यह मन्दिर बनाया गया है।

उक्त सौभाग्यवती रमणीने मराठोंके हाथसे इस मन्दिरकी रक्षाके लिये इसके चारों ओर परिखा और एक कामान तथा अस्त्रसम्वलित दुर्ग वनवा दिया था।

वाँसवाड़ा—१ राजपूतानेके अन्तर्गत एक राज्य। यह अक्षा० २३° ३' से २३° ५५' उ० तथा देशा० ७३° ५८' से ७४° ४७' पू०के मध्य अवस्थित है। जनसंख्या १६४६ है। इसके उत्तरमें प्रतापगढ़ और मेवाड़, पश्चिममें डूंगरपुर और सुन्थ, दक्षिणमें झालोद, झवुका और पूर्वमें सैलान, रतलाम और प्रतापगढ़ है। इस राज्यकी पर्वतमय वन्यभूमिमें भीलजातिका वास है। सरदार यहांके सिशोदिया राजपूत हैं। डूंगरपुरमें जो राजपूतवंश राज्य करते हैं वे इनकी एक शाखा हैं। १६वीं शताब्दीमें वांसवाड़ा और डूंगरपुर एक राजाके अधीन था। १५२८ ई०में सरदार उदयसिंहकी मृत्यु होने पर उनके दो पुत्रोंने पिताके आदेशानुसार उक्त दोनों सम्पत्ति आपसमें वांट ली। इसी समय दोनों सामन्तोंके वंशधर परस्पर स्वाधीन हो कर राज्य करने लगे। माही नदी ही उनकी राज्य सीमा निर्देश करती है। १८वीं शताब्दीके शेषमें वांसवाड़ाराज मरहठोंकी अधीनता स्वीकार कर धारके अधिपतिको कर देने लगे। १८१२ ई०में अंगरेजोंने महाराष्ट्रीय वन्धन काट कर उन्हें अपना मित्र वना लिया। १८१८ ई०की सन्धिके अनुसार राजा अंगरेजोंकी सहायता करनेमें प्रतिश्रुत हुए। भूतपूर्व सामन्त महारावल लक्ष्मणसिंहका ११०५ ई०में देहान्त हुआ। पीछे उनके बड़े लड़के शम्भूजी गद्दी पर वैठे। उनका जन्म १८६८ ई०में हुआ था। अभी पिरथीसिंह वाँसवाड़ा-राजसिंहासनको सुशोभित कर रहे हैं। इनका पूरा नाम है,—एच एच राय रायाँ महारावल साहिव श्री पिरथीसिंहजी वहादुर। इन्हें १५ तोपोंकी सलामी मिलती हैं। राजस्व नौ लाखके करीव है। राजाको गोद लेनेका अधिकार है। अभी इनके पास ५०० पदाति, ६० अश्वारोही और ३ कमान हैं। पहले यहां सलीमसाही सिक्का चलता था जो अंगरेजी सिक्केसे तिहाई कम होता था, पर १६०४ ई० से अंगरेजी सिक्का ही चलने लगा है।

राज्यमें १ शहर और १२८७ ग्राम लगते हैं। जनसंख्या पौने दो लाखके करीव हैं। अनाजमें मकई और चावल मुख्य पैदावार है। मूंग, उडद, तिल, सरसों गेहूं, चना, जौ भी अच्छी तरह होते हैं। खनिज पदार्थ अभी तक वहुत कम पाये गये हैं और जो पाये भी गये हैं वे वहुत थोड़ी-सी मात्रामें। यहांकी गाय भैंस अधिक दूध देनेवाली नहीं होतीं। इनके सींग और प्रान्तोंकी गाय भैंससे कुछ अधिक लम्वे होते हैं। यहांका जलवायु अप्रिलसे जून तक गर्म और खुश्क तथा वरसातमें तर और नम रहता है। शीतकाल सवसे अच्छा समझा जाता है। पर कहीं कहीं इस देशमें ऐसी ठंढ भी पड़ती है, कि जिससे उसके विषयमें यह कहावत प्रसिद्ध हो गई है—

> वांसवाड़ाको वायरो, आंतरीकी दाड़।
> इनसे भी जो ना मरे, तो छापी वारे फाड़॥

यहांकी राजप्रणाली राजतन्त्र शासन है। दरवारको अपने राज्यके आन्तरिक प्रवन्धमें पूर्ण शासनाधिकार है।

२ उक्त सामन्त राज्यकी राजधानी। यह अक्षा० २३° ३३' उ० और देशा० ७४° २७' पू०के मध्य अवस्थित है। जनसंख्या प्रायः ७०३८ है जिनमेंसे सैकड़े पीछे ६० हिन्दू और शेष मुसलमान हैं। १६वीं शताब्दीमें वाँसवाड़ाके प्रथम सरदार जगमलने इसे वसाया। कहते हैं, कि पहले यह स्थान भील सरदार वासनाके दखलमें था। उसीके नाम पर इसका नामकरण हुआ है। पीछे जगमालने उसे मार कर वांसवाड़ा पर अधिकार जमाया। इस नगरके चारों ओर प्राचीर है। दक्षिणस्थ उच्चभूमिके ऊपर राजप्रासाद अवस्थित है। शाहीविलास नामक प्रासादमें वर्त्तमान सरदार रहते हैं। इसके पूर्वमें वाईताल नामकी दिग्गी है। उस दिग्गीमें संलग्न जो उद्यान है उससे आध कोस दूर वांसवाड़ा राजकी छतरी अवस्थित है। वर्त्तमान नगरसे २ मील दक्षिण पर्वतके ऊपर दुर्गवासादिका खंडहर नयनगोचर होता है। यहां प्रतिवर्ष आश्विन मासमें १५ दिन तक मेला लगता है। शहरमें एक डाकघर, टेलिग्राफ आफिस, एक कारागार, एक एङ्गलो वर्नाक्युलर स्कूल और एक अस्पताल है।

वांसा—अयोध्या प्रदेशके हरदोई जिलान्तर्गत एक नगर।

वांसा (हिं० पु०) १ वांसका वना हुआ चोंगेके आकारका वह छोटा नल जो हलके साथ वंधा रहता है। इसीमें वोनेके

लिये अन्न भरा रहता है जो नीचेकी ओरसे गिर कर खेतमें पड़ता है। २ नाकके ऊपरका हड्डी जो दोनों नथनोंके ऊपर बीचोबीच रहती है। ३ एक प्रकारका छोटा पौधा। इसमें चंपई रंगके बहुत सुन्दर फूल लगते हैं। इसके बीज बहुत छोटे और काले रंगके होते हैं। इसकी लकड़ीके कोयलोंसे बारूद बनती है।

बांसागड़ा (हिं० पु०) कुश्तीका एक पेच।

बांसिनी (हिं० स्त्री०) एक प्रकारका बांस जिसे वरियाल, ऊना अथवा कुल्लुक भी कहते हैं।

बांसी—राजपूतानेके उदयपुरके अन्तर्गत बांसी सामन्त-राज्यकी राजधानी; यह अक्षा० २४°२०´ उ० तथा देशा० ७४°२४´ पू० उदयपुर शहरसे ४७ मील दक्षिण-पूर्वमें अवस्थित है। जनसंख्या १२६५ है। मेवाड़के उच्चकुलोद्भव एक सम्भ्रान्त व्यक्ति यहांका शासन करते हैं। 'रावत' उनकी उपाधि है। इस राज्यमें कुल ५१ ग्राम लगते हैं। राजस्व २४००० रु० हैं जिनमेंसे १६२ रु० वृटिश सरकारको देने पड़ते हैं।

बाँसी—१ युक्तप्रदेशके बस्ती जिलेकी एक तहसील। यह अक्षा० २७°से २७° २८´ उ० तथा देशा० ८२° ४६´ से ८३° १४´ पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ६२१ वर्गमील और जनसंख्या ४ लाखसे ऊपर है। इसमें 'उसका' नामक एक शहर और १३४३ ग्राम लगते हैं। यह तहसील उत्तर नेपाल सीमासे ले कर दक्षिण रासी नदी तक विस्तृत है।

२ युक्तप्रदेशके गोरखपुर जिलान्तर्गत एक नगर और बाँसी तहसीलका सदर। नदीके दूसरे किनारे नर्कथा नामक ग्राममें यहांके राजा रहते हैं। पहले बाँसी नगर में ही राजप्रासाद अवस्थित था। पूर्वतन राजदुर्गका ध्वंसावशेष आज भी विद्यमान है। इस नगरसे कई एक पथ नेपाल, बस्ती, डुमरियागंज, बड़ूला आदि स्थानों तक गये हैं। पहले इन सब स्थानोंमें शस्यादिका जोरों वाणिज्य चलता था, पर अभी उतना नहीं है।

बांसी (हिं० स्त्री०) १ एक प्रकारका मुलायम पतला बांस जिससे हुक्के के नैचे आदि बनते हैं। २ एक प्रकारका गेहूं जिसकी बाल कुछ काली होती है। ३ एक प्रकारका पत्थर। इसका रंग सफेदी लिए पीला होता है और बड़ी बड़ी सिलोंके रूपमें पाया जाता है। ४ एक प्रकारका धान। इसका चावल बहुत सुगंधित, मुलायम और स्वादिष्ट होता है। यह विशेषतः संयुक्तप्रान्तमें पाया जाता है। इसका दूसरा नाम बांसफल भी है। ५ एक प्रकारकी घास। इसके डंठल मोटे और कड़े होते हैं, इसीलिये पशु कम खाते हैं। ६ एक प्रकारका पक्षी।

बांसुरी (हिं० स्त्री०) मुंहसे फूंक कर बजानेका एक बाजा जो बांसका बना होता है। इसकी लम्बाई डेढ़ बालिश्त होती है और सिरा बांसकी गांठके कारण बंद रहता है। बंद सिरेकी ओर सात स्वरोंके लिये सात छेद होते हैं और दूसरी ओर एक विशेष प्रकारसे तैयार किया हुआ बजानेका छेद होता है। उसी छेदवाले सिरेको मुंहमें ले कर फूंकते हैं और स्वरोंवाले छेदों पर उंगलियां रख कर उसे बन्द कर देते हैं। जब जो स्वर निकालना होता है, तब उस स्वरवाले छेद परकी उंगलियां उठा लेते हैं। वंशी देखो।

बांसुली (हिं० स्त्री०) १ एक प्रकारकी घास जो फसलके लिये बड़ी ही हानिकारक होती है। २ बांसुरी देखो।

बांसुलीकन्द (हिं० पु०) एक प्रकारका जंगली सूरन या जमीकंद। यह गलेमें बहुत अधिक लगता है और प्रायः इसीके कारण खानेके योग्य नहीं होता।

बांह (हिं० स्त्री०) १ बाहु, भुजा। २ बल, शक्ति, भुजबल। ३ कुरते, कमीज, अंगे, कोट आदिमें लगा हुआ वह मोहरीदार टुकड़ा जिसमें बांह डाली जाती है, आस्तीन। ४ एक प्रकारकी कसरत जो दो आदमी मिल कर करते हैं। इसमें बारी बारीसे हर एक आदमी अपनी बांह दूसरेके कंधे पर रखता है इसमें बांहों पर जोर पड़ता है और उनमें बल आता है। ५ सहायक, मददगार। ६ शरण, सहारा, भरोसा।

बांहतोड़ (हिं० पु०) कुश्तीका एक पेच। इसमें जब गरदन पर जोड़के दोनों हाथ आते हैं तब उन हाथों परसे अपना एक हाथ उलट कर उसकी जांघमें अड़ा देते हैं और दूसरा हाथ उसकी बगलसे ले जा कर गरदन पर घुमाते हुए उसकी पीठ पर ले जाते हैं। फिर उसे टांगसे मार कर गिरा देते हैं।

बाँहमरोड़ (हिं० स्त्री०) कुश्तीका एक पेच। इसमें जब

जोड़का हाथ कंधे पर आता है, तब अपना हाथ उसकी बगलमें ले जा कर उसकी उंगलियां पकड़ कर मरोड़ देते हैं और दूसरे हाथसे उसकी कोहनी पकड़ कर टांगसे मारते हैं। ऐसा करनेसे जोड़ तुरत जमीन पर गिर जाता है। यह पेच उसी समय किया जाता है जब जोड़ शरीरसे सटा नहीं रहता, कुछ दूर पर रहता है।

बांही (हिं० स्त्री०) बांह देखो।

बा (हिं० पु०) जल, पानी।

बा (फा० पु०) बार, दफा, मरतबा।

बाइ (हिं० स्त्री०) बाई देखो

बाइविरंग (हिं० स्त्री०) विड़ंग।

बाइबिल—ईसाइयोंकी प्रधान धर्म पुस्तक। ईश्वर-अभिव्यक्त धर्मतत्त्वोंकी मूल वाक्यावली ग्रथित कर ईसाई लोग जिस पवित्र धर्मग्रन्थको मानते हैं उसी धर्मपुस्तकका ४थी शताब्दीमें महात्मा ख्रुसोष्टमने (Chrysostom) 'बाइबिल' नाम रखा। भाषा और अंतर्निहित विषयोंकी विभिन्नतासे यह ग्रंथ दो भागोंमें विभक्त हुआ। प्राचीन कथाओंकी ऐतिहासिकता पर्यवेक्षण कर उन्होंने प्रथमार्द्धको पूर्व भाग (Old Testament) एवं परार्द्धको उत्तर भाग (New Testament) नामसे प्रकट किया। पूर्वखण्डकी ऐतिहासिक घटनाओंके साथ उत्तरखण्डका घटना-निचय विशेषरूपसे संयुक्त है। प्रोटेष्टान्ट सम्प्रदायके ईसाई उक्त दोनों ग्रन्थोंकी संयोजक घटनावलिको एपोक्रिफा (Apocrypha) या अप्रामाणिक समझते हैं। ये समस्त ईश्वरप्रोक्त घटनाएं हैं, इस विषयमें वे लोग सन्देह करते हैं।

अभी हम लोग भी जिस बाइबिलको देखते हैं वह दो विभागोंमें विभक्त है, पहला 'ओल्डटेस्टमेण्ट' दूसरा 'न्यु टेस्टमेण्ट'। इस New Testament विभागमें पूर्वखण्डकी लिपिको धर्मशास्त्र या Scripture कह कर उल्लेख किया है। १८० ई०में ईश्वर-समाचार विषयक ग्रन्थ ही Holy-Scripture कहलाता था। ईरानियस् (Irenaeus) इस धर्मग्रन्थके पूर्व और उत्तरखण्डको मिला कर उसका Lord's Scripture नाम रख गये हैं। पूर्वखण्डके ग्रीक नाम 'Palaia diatheka' से महात्मा पालने "The Old Testment" नाम रखा। वर्त्तमान मुद्रित बाइबिल ग्रन्थके पूर्वखण्ड (Old Testment)में ३६ ग्रंथविभाग हैं। अति प्राचीनकालमें इसका कुछ अंश हिब्रू और कुछ काल्दीय भाषामें रचा गया था। उसके मध्य ईसासे दो सदी पहले संग्रथित हिब्रू-काल्दीय साहित्यकी अनेक घटनायें सन्निवेशित हुई हैं।

पूर्वखण्डके इतिहास, परमार्थतत्त्व, भविष्यद्वाणी और काव्यांशके पश्चात् उत्तरखण्डका ईश्वर-समाचार (Gospel), देव, मनुष्योंका संमिश्रण, ईसामसीहकी अलौकिकलीला और मृत्यु एवं ईसा प्रेरित दूतोंकी (Apostle's) भक्ति, देवानुरक्ति प्रभृति एकत्र ग्रथित हैं। यहूदियोंके पूर्वखण्डका विभाग वर्त्तमान प्रणालीसे बहुत भिन्न था। उन्होंने अपनी वर्णमालाके अनुसार उसे २२ भागोंमें विभक्त किया है। स्मृति (Law), ईश्वर-वाक्य और ईश्वर महिमाकीर्त्तन सूचक गान (Hagiographa) ये तीन नम्बरसे लिपिबद्ध हैं। पांच परिच्छेद (Book) तक मूसाकी स्मृति, जसुआ, जाजेस, सामुएल, किंग्स, ईसाया, जिरिमिया और ऐजिकाएल प्रभृति ईश्वर-नियोजित धर्मोपदेष्टाओंका धर्मतत्त्व और साम्स, प्रोभार्बस, इक्लिजियाष्टिस, जाब, सलोमाके गीत, रुथ, लैमेन्टेसन, एस्थर, दानिएल, एजरा, नेहेमिया आदिमें ईश्वरप्रेम, भजन और सच्चा गीतोंमें कीर्त्तित हुए हैं। दूसरे दूसरे ग्रन्थोंको ले कर यहूदी और ईसाइयोंमें घना मतभेद देखा जाता है।

यहूदियोंके अवरोधसे पूर्व इस ग्रंथका कोई भी उल्लेख नहीं मिलता। मोजेसके उपदेशसे जाना जाता है, कि यह धर्मग्रंथ जलप्लावन-कालीन पवित्र जहाजके पार्श्वमें रख दिया गया था। जेरुसालेमका मन्दिर तैयार होनेके बाद राजा सलोमनने इस ग्रन्थको मन्दिरमें रखनेकी अनुमति दी। परवर्त्ती ईश्वरप्रणोदित व्यक्ति जिससे सार्वजनिक उपकारके लिये भविष्यमें इस ग्रंथकी रक्षा कर सकें इसकी भी उन्होंने व्यवस्था कर दी थी। किन्तु नेबूकाडनेजर (Nebuchadnezzar)के द्वारा जेरुसलम ध्वंस होनेके बाद इस ग्रंथकी हस्तलिपि नष्ट हो गयी। इसके पहले यहूदी इसकी प्रतिलिपि बेबीलन नगरमें ले गये थे इसीसे वह ध्वंससे बच रही। उन लोगोंके अवरोधके

समय दानियाल (Daniel)-ने जेरेमियाकी भविष्यद्वाणी-का उल्लेख किया है। अवरोधसे मुक्त हो उन्होंने इस्रा-एलके प्रति ईश्वरप्रोक्त मोजेस गाथाके पुनरुद्धारके लिये एजरासे अनुरोध किया। एजरा बहुत परिश्रमसे इस पवित्र वाक्यावलीकी एक प्रतिलिपि संग्रह कर गये। यहूदियोंका उसकी पाठशुद्धिकी रक्षा करनेमें विशेष ध्यान था। जोसेफस (Josephus)-ने लिखा है, कि उनके समयसे ले कर आर्त्तजरक्षस (Artaxerxes)के राज्य-काल तक किसीने भी इस पवित्र ग्रंथका कलेवर बढ़ाने-की कोशिश न की।

ईसाकी २री सदीसे छठीं सदीके मध्य यहूदिओंका 'तालमुद्' नामका धर्मग्रंथ रचा गया। उसमें विभिन्न बाइबिलोंका शब्दविन्यास और पाठभेद उल्लिखित है। तालुमुदके समाप्त होने पर टिबेरियाके मसोराइट लोगोंने (Masorites of Tiberias) बहु परिश्रम स्वीकार कर ग्रंथशुद्धि करनेका संकल्प किया।(१)

हिब्र् धर्मशास्त्रके समारिटन पेन्टाटूक (२) (Samaritan Pentateuch) और सेप्टुआजिन्ट (Septuagint) नामक ग्रंथका ग्रीक अनुवाद ही सर्व प्राचीन है। आज कल जो समारिटन पेन्टटुक देखनेमें आता है वह प्राचीन हिब्र् समारिटन ग्रंथकी नकल मात्र है। ओरिगेन राजाके राजत्वके पहले समारिया वासियोंने इस ग्रंथको प्रस्तुत किया था। ७० धार्मिक महापुरुषोंने ग्रीक अनुवाद किया था इस कारण इसका नाम 'सेन्टुआजिंट पड़ा।(३)

आकुइला, थियोडोसियन और सिमाकस नामके तीन ग्रीक अनुवाद २री सदीमें रचित हो ओरिगेनके हेक्सा-प्लायमें रखे गये थे। तत्पश्चात् १ली शताब्दीमें सिरीयक, ३रीमें कोप्टिक, ४थीमें इथिओपिक, ५वींमें आर्मेनियनोंके सेप्टूआजिन्टके आधार पर पूर्व और उत्तर बाइबिल खण्ड रचा गया। इसके सिवाय १ली या २री शताब्दीमें इतालीय, ४थी शताब्दीमें उल्फिलसके गथिक अनु-वादकी असम्पूर्ण प्रति पाई गई है।

पहिले जिन सब ग्रन्थोंका उल्लेख किया है, वे मूल हिब्र् पुस्तकके अंशविशेषके अनुवाद मात्र हैं। प्रकृत संग्रहाकारमें ग्रथित इस पुस्तककी जो एक प्रति मुरा-टोनिओंके धर्मशास्त्रमें देखी जाती है वह १७० ई० में लिखी गयी थी। इसका प्रथम और शेष भाग नहीं मिलता। जो कुछ पुस्तकमें लिखा है उससे जाना जाता है, कि पवित्रात्मा मार्कके सुसमाचारसे इस ग्रंथका उद्बोधन हुआ है। किन्तु बीच बीचमें छूट भी है। सिरीय लोगोंका पेशिटो (the peshito) ग्रंथ अविकल अनुवादित तो हुआ है पर उसमें कोई कोई अंश छूट गया है।

युसिबियस् (Eusebius)को उत्तर खण्डकी जो प्रति मिली थी वही आजकल जनसाधारणकी आग्रहकी वस्तु हो रही है। वे इस ग्रंथके दो हिस्से कर गये थे। एक

(१) विभिन्न समालोचकोंका इस विषयमें विभिन्न मत है। कोई कोई कहते हैं, कि उन्होंने पाठशुद्धि कर ग्रन्थकी पवित्रताकी रक्षा की थी। दूसरे कहते हैं, कि इससे ग्रन्थकी पवित्रता नष्ट की गई है। क्योंकि, इसमें पूर्व पुरुषोंके मुखसे निकले हुये शब्द नहीं हैं; किन्तु इस विषयमें उनकी सद्विवेचना और परिश्रम सबको मान्य है।

(२) इस ग्रन्थकी मौलिकताको बहुत लोग स्वीकार नहीं करते।

(३) कोई कोई कहते हैं, कि यह ग्रन्थ यहूदियोंकी 'सानहेद्रिम' महासभामें ७७ सभ्योंके द्वारा अनुमोदित हुआ था। अन्य उपाख्यानोंसे पता चलता है, कि आलेक्संद्रियाके पुस्तकागारकी रक्षाके लिये टलेमी फिलाडलफस ने स्मृति-ग्रन्थके लिये जेरुसेलमके सर्वप्रधान पुरोहित एलियाजारको लिख भेजा था। तदनुसार उन्होंने बारह जातिमेंसे छः छः करके १२ व्यक्तियोंको अनुवादके लिये भेजा। जो कुछ भी हो, सेन्टुयाजिन्ट ग्रंथ जो विभिन्न व्यक्तियोंके द्वारा लिखा गया था उसके बहुत प्रमाण मिलते हैं। पेन्टाटुक ग्रन्थ भी इसी प्रकार टेलमीलेगस वा उसके पुत्र फिला डेलफसके राजत्वकालमें लिखा गया था, इसमें कुछ भी संदेह नहीं है। ईसाके जीवितकालमें यह पुस्तक यहूदिओंके आदरकी विशेष सामिग्री थी। उसके प्रमाण उत्तरखण्डमें कई जगह लिखे गये हैं। पश्चात् ईसाइयोंके ग्रंथालोचनामें प्रवृत्त होने पर उन्होंने इस ग्रंथका परित्याग कर दिया।

हिस्सेमें स्वीकृत वा प्रामाण्य विषय (Acknowledged Books) सन्निवेश किये गये हैं और दूसरेमें अप्रामाणिक वा मतभेदयुक्त ग्रन्थांशको स्थान दिया गया है । प्रथम श्रेणीमें उन्होंने केवल सुसमाचार (Gospel), आदर्श पुरुषोंकी क्रियावली (Acts of the Apostles) और पाल, जान पीटर प्रभृति महापुरुषोंके पत्रोंका उल्लेख किया है तथा द्वितीय श्रेणीमें कितने ही विषयोंको जनसाधारणसे अनुमोदित और कितनेको कृत्रिम तथा प्रक्षिप्त बतलाया है।

प्रोटेष्टाण्टोंके गृहीत वाइबिल पुस्तकका वर्त्तमान अंशसमावेश १५वीं ई०में मार्टिन लूथरके द्वारा सम्पादित हुआ था। पूर्वखण्डकी 'पेन्टाटुक' नामक पञ्च पत्रिकामें सृष्टिप्रकरण, अब्राहिम प्रवर्त्तित ऐश्वरिक विधि, उनके वंशधरोंका इजिप्ट-गमन, ईश्वरादेशसे उनका देशत्याग, सिनिया देशीय वनभ्रमण, कानन-जय, वहीं पर निवास स्थानका निर्माण और उस देशके रहनेवालोंके धर्मकर्ममें जीवनातिपातके लिये मोजसकी विधि प्रभृति लिपिबद्ध हुई हैं । जसूया और जाजस नामके ग्रंथोंमें ईस्रालराजवंशके स्थापनके पूर्व यहूदियोंका इतिहास वर्णित है। इसके बाद रुथका उपाख्यान और उसके साथ साथ डेभिडके इतिहासका वर्णन देखा जाता है। परवर्त्ती सामुयल नामक दो पुस्तकोंमें साधु सामुयल, राजा सल और डेभिडके वर्णन प्रसङ्गमें राजविधि, राज्यस्थापन और नाना धार्मिक कथा; किंस, क्रोनिकेलस् नामक चार पुस्तकोंमें इस्रायल और जूडाका राज्यविवरण, सलोमनका राज्यारोहण, यहूदियोंका अवरोध, आसिरीय, वाबिलोनीय आक्रमण और यहूदिओंका इधर उधर गमन आदि विषय उल्लिखित हैं । इसके परवर्त्ती इजरा और नेहेमिया नामक दो पुस्तकोंमें यहूदियोंको अवरोधमुक्ति और जेरुसलम नगरमें फिरसे राज्यपाट स्थापन, इस्थरमें यहूदियोंका अवरोधप्रसङ्ग, जाव(१) नामकी पुस्तकमें केवल धर्मप्रसङ्ग और इसके बाद सामस् वा गीतिग्रंथ है । इस शेष ग्रंथमें डेभिडसे ले कर यहूदिओंके अवरोध तक संगृहीत प्राथना भजनादि गीत वर्णित हैं। ये सब भजन जेरुसलेमके मन्दिरमें जोर जोरसे पढ़े जाते थे।(२)

'प्रभार्व' नामकी पुस्तकमें सलोमनका ज्ञानगर्भ और उपदेश सूत्र लिखे हुये हैं। इक्लिजियाष्टिस्में जगत्का असारत्व और सलोमनकी गीतिमालामें विश्वासियोंके प्रति ईसाका प्रेम, धर्मसहायतासे जीवात्माका परमात्माके साथ मिलन आदिका वर्णन है। कहीं भी उसमें अश्लील रूपसे वर्णन नहीं देखा जाता । तत्पश्चात् इसाया, जेरिमिया, एजिकायल, दानिएल, होसिया, जोएल, आमोस, ओवादिया, जोना, मिका, नाहुम, हवक्कुक, जेफानिया, हग्गे, जकारिया और मालाची प्रभृति धर्मवीरोंका पुस्तकोंमें प्रेम, ईश्वरका न्यायविचार, मूर्त्तिपूजाका प्रतिषेध और इदोम, निनिम प्रभृति विध्वस्त नगरोंका उल्लेख है।

उत्तरखण्डके आरम्भमें ही खृष्ट धर्मघोषक (Evang list) मेथु, मार्क, लूक और जान-लिखित पुस्तकमें ईसाकी महिमाका कीर्त्तन है। ईसाके दूतोंकी कार्यावली (Acts of apostles)में यहूदी और जेन्टाइलोंके मध्य खृष्टमहिमा प्रचार, ईसूको ही खृष्टरूपसे कथन और खृष्ट विश्वासी धर्मसम्प्रदाय आदिका प्रसङ्ग देखा जाता है। तत्पश्चात् पालकी १४, जेम्सकी १, पिटरकी २, जूडाकी १ धर्म-प्रचारिणी पत्रिका एवं जानका प्रत्यादेश सर्वशेष धर्मग्रंथ हैं।

ईसाइयोंका वाइबिल नामक अंश कब और किस भाषामें लिखा गया था, इस विषयकी आलोचनामें प्रवृत्त हो प्रत्नतत्त्वानुसन्धित्सु हिब्रु पण्डितगण एवं शब्दविद्गण शब्दशास्त्रके सामंजस्य द्वारा जिस सिद्धान्त पर पहुंचे हैं उसका एक पूर्वापर इतिहास यहां पर दिया गया है। पवित्र वाइबिल ग्रंथके पूर्वखण्डमें हिब्रू भाषाके तीन

(१) यह ग्रंथ बहुप्राचीन तथा मोजेसका लिखा हुआ है, ऐसा बहुतोंका विश्वास है।

(२) इस अंशमें धर्मका उच्छ्वास, ईश्वर-वियोजित आत्माकी कातरोक्ति, आत्मग्लानि, भगवत्मिलन प्रत्याशामें परमानंद, ईश्वरवाक्य, सदुपदेश, वाबिलनमें कातर यहूदियोंका क्रंदन, मंदिरके संमुख आर्कको देख पुरोहितोंकी आनंदध्वनि प्रभृति करुण-रसात्मक वार्ताका वर्णन है।

उन्नतिस्तर देखे जाते हैं। मोजसके समय जिस भाषामें यहूदी लोग बोलते थे उसी हिब्रू भाषामें पेन्टाटुक-विभाग और जसूआ लिपिवद्ध हुए थे। द्वितीय स्तरमें अर्थात् हिब्रू भाषा जब कुछ मार्जित हुई तब जाजेस, सामुएल, किंस, एनिकल्स साम्स, प्रभार्वस और ईसाया, हेसिरा, जोए, आमस, ओवदिआ, जोना, मिका नाहुम, हवक्कुक प्रभृति ग्रंथ प्रचलित हुए। इसके वाद अबरोधके समय हिब्रू के मध्य वाबीलोनीय रचनापद्धतिके संमिश्रित होने पर इस्थर, एजरा और नेहेमिया आदि ग्रंथोंकी रचना हुई। दानिएल और एजराका कुछ अंश काल्दी वा अरमियान भाषामें लिखे हुए हैं। उत्तरखण्ड The New Testament) हेलेनिष्टिक ग्रीक भाषामें रचा गया। ग्रीक औपनिवेशिक यहूदियोंने इस भाषाकी व्युत्पत्ति प्राप्त कर तत्सामयिक ग्रंथोंको अपनी अपनी भाषामें रच डाला। उसमें तद्देसवासियोंने अपनी भाषाके शब्द भी उसके अंदर शामिल कर दिये। इस प्रकार संशोधित ग्रीक भाषा हिब्र-ग्रीक कहलाने लगी। साधु ईसाके पालेस्तिन अवस्थानकालमें यह मिश्रभाषा वहां पर प्रचलित थी। फिर उसी भाषामें उत्तरखण्ड लिपीवद्ध हुआ। हिब्रू वाइबिलका सबसे पहला मुद्रणकार्य १४८८ ई०में सोनसिनो द्वारा सम्पादित हुआ था। कम्पूटेन्सियन पोलिग्लेटके लिये कार्डिनेल जिमेनिस (Cordinal Ximenes)-के व्ययसे वाइबिलका उत्तरखण्ड प्रकाशित हुआ। इसका मुद्रण १५०२ ई० से आरंभ हो १५१४ ई० में समाप्त हुआ था। किन्तु १५२२ ई० तक इसका जनसाधारणके निकट प्रचार न रहा। इसी समय इरासमस् (Erasmus)-ने उक्त ग्रंथको १५१६ ई०में मुद्रित कर प्रकाशित कर दिया। १७०७ ई०में डा० जान मिलके द्वारा वाइबिल मुद्रित हुई जिसमें तीस विभिन्न पाठोंका वर्णन है। १८३० ई० और १८३६ ई०में स्कोलज़ (Scholz)-ने जिन दो खण्डोंमें वाइबिल प्रकाशित की उनमें ६७४ पुस्तकोंका उल्लेख है। पीछे उन्होंने ३३१ ग्रंथोंका पाठ स्वयं मिला कर प्रकृतपाठ प्रकाशित किया था। रिंच (Rinch), लकमान (Lacimann)प्रभृति जर्मन पंडितोंके सटीक ग्रंथ ईसाइयोंके लिये आदरणीय वस्तु हैं। इङ्गलैण्डमें भी कई वार अनेक प्रकारकी वाइबिल मुद्रित हुई थी। इस पुस्तकको छपवानेका अधिकार एकमात्र राजाको ही है। यदि कोई इस अनुमोदित पाठको छपानेकी इच्छा करें, तो उन्हें वाइबिल बोर्डसे अनुमति लेनी पड़ती है। ईसाईधर्म और और उसके प्रवर्त्तक वाइबिल शास्त्रके प्रचारके लिये पृथ्वीकी सभ्यजातिमें ७० वाइबिल सोसाइटियां स्थापित हुई हैं। प्रायः २४३ विभिन्न भाषामें वाइबिल ग्रन्थ मुद्रित हो चुके हैं। कहीं कहीं एक भाषामें दो तीन तरहका अनुवाद देखा जाता है।

वाइलहोङ्गल—वम्बई प्रदेशके वेलगाम जिलान्तर्गत एक प्राचीन नगर। यह विस्तृत मैदानके मध्यस्थलमें अवस्थित है। सम्पगाँव और प्रसादगढ़के निकट रहनेके कारण यह वाणिज्य-केन्द्र हो गया है। शहरका वसवेश्वर नामक प्राचीन लिङ्गायत-मन्दिर देखने लायक है। मन्दिरकी वनावट देखनेसे मालूम होता है, कि एक समय उसमें जिन-मूर्त्ति प्रतिष्ठित थी। मन्दिर गात्रमें रट्ट-सरदारोंके १२वीं शताब्दीमें उत्कीर्ण दो शिलाफलक पाये जाते हैं। इनमेंसे १म फलकमें ७३ पंक्ति और २यमें ५१ पंक्ति हैं। पहला अस्पष्ट है और दूसरा रट्टराज कार्त्तवीर्यके शासनकाल (११४३-११६४ ई०)-के शेष वर्षमें लिखा गया है।

वाइस (फा० पु० पु० १ कारण, सवव। २ ? ईस देखो।

वाइसवाँ (हिं० कि०) वाईसवाँ देखो।

वाइसिकिल (अं० स्त्री०) एक प्रसिद्ध गाड़ी। इसमें आगे पीछे दो पहिये होते हैं। इसके वीचमें सिर्फ वैठने भरके लिये छोटा सा स्थान रहता है। आगेकी ओर दोनों हाथ टेकने और गाड़ीको घुमानेके लिये अङ्कुके आकारकी एक टेक होती है। इसमें नीचेकी ओर एक चक्कर लगा रहता है जो पैरके दवावसे घूमता है जिससे गाड़ी वहुत तेजीसे चलती है।

वाई (हिं० स्त्री०) १ त्रिदोषोंमेंसे वात दोष। इसके प्रकोपसे मनुष्य वेसुध या पागल हो जाता है। वात देखो। २ स्त्रियोंके लिये आदरसूचक शब्द। जैसे, अहल्यावाई, लक्ष्मीवाई। ३ एक शब्द जिसका प्रयोग उत्तरी प्रान्तोंमें प्रायः वेश्याओंके नामके साथ किया जाता है।

वाईस (हिं० पु०) १ वीस और दोकी संख्या वा अङ्क जो इस प्रकार लिखा जाता है—२२। वि०) २ वीससे दो अधिक, जो वीस और दो हो।

बाईसवाँ (हिं० वि०) जो क्रममें वाईसके स्थान पर हो, गिननेमें वाईसके स्थान पर पड़नेवाला ।

बाईसी (हिं० स्त्री०) १ वाईस वस्तुओंका समूह । २ वाईस पद्योंका समूह ।

बाउ (हिं० पु०) पवन, हवा ।

बाउर (हिं० वि०) १ बावला, पागल । २ भोला भाला, सोधा सादा । ३ मूर्ख, अज्ञान । ४ मूक, गूंगा ।

बाउरी (हिं० स्त्री०) १ एक प्रकारकी घास । २ बावली देखो ।

बाउरी—पश्चिम वङ्गवासी निकृष्ट जाति । कृषिकार्य, मृत्-पात्रनिर्माण और पालकी-वहन इनका प्रधान व्यवसाय है । आकृतिगत सदृशता देख कर मानवतत्त्वविद्ने इन्हें पार्वतीय जातिमें शामिल किया है ।

इनके मध्य नौ विभिन्न थाक हैं। यथा—१ मल्ल-भूमिया, २ शिकारिया और गोवरिया, ३ पञ्चकोटी, ४ मोला वा मूलो, ५ धूलिया वा धूलो, ६ मालुआ या मलुआ, ७ भाटिया वा भेटिया, ८ काठुरिया, ९ पाथुरिया । भिन्न स्थानोंमें वास वा जातोय व्यवसायके कारण इन लोगों-के मध्य वर्त्तमानकालमें वहुत कुछ स्वतन्त्रता आ गई है । किन्तु विवाहके सम्बन्धमें कोई गोलमाल नहीं है। ममेरा और चचेरा सम्बन्ध वाद दे कर ये सगोत्रमें भी विवाह करते हैं । अलावा इसके एक वंशके मध्य वरकी सात पीढ़ी और कन्याकी तीन पीढ़ी छोड़ कर भी विवाह चलता है। वहुविवाह उसी हालतमें होता है जब वह अपनेको उनके भरणपोषणमें समर्थ देखता है । विवाहके कोई मन्त्र तन्त्र नहीं है। वरकर्त्ता कन्याकर्त्ता-को सवा रुपये और उपस्थित व्यक्तियोंको एक भोज दे सकनेसे ही विवाह कार्य सिद्ध होता है। विधवाविवाह भी प्रचलित है। किन्तु अधिकांश जगह विधवा अपने देवरसे ही कर लेती है। काली, विश्वकर्मा इनके उपास्य देवता हैं। मरने पर शवदेह जलाई जाती है। किन्तु बांकुड़ा जिलेमें मृतको औंधे मुंह करके गाड़ देते है ।

बाउल—वैष्णव सम्प्रदायविशेष। श्री चैतन्य महाप्रभुको ही ये लोग अपने सम्प्रदायके प्रवर्त्तक वतलाते हैं। किन्तु यथार्थमें कौन व्यक्ति इस साम्प्रदायिक मतकी सृष्टि कर गये हैं, ठीक ठीक मालूम नहीं। ये लोग अपनी साधन प्रणाली किसीके भी सामने प्रकट नहीं करते। इनका विश्वास है, कि किसीके सामने अपना साम्प्रदायिक मत या भजन प्रणाली प्रकट करनेसे पाप लगता है। ये लोग कहते हैं, कि परमदेवता श्री राधाकृष्ण युगल रूपमें मानव हृदयमें विराजित हैं। सुतरां नरदेह त्याग करके उनकी तलाशमें दूसरी जगह जानेकी जरूरत नहीं।

अखिल ब्रह्माण्डके निखिल पदार्थमात्र ही मनुष्य शरीर-में विद्यमान हैं। इस कारण उनका मत देहतत्त्व नामसे भी प्रसिद्ध है। 'जो भाण्डमें है, वह ब्रह्माण्डमें है।' इस वातकी सार्थकता-सम्पादन करनेके लिये वे व्याख्या देते हैं, कि चन्द्र, सूर्य, अग्नि, ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर तथा गोलोक, वैकुण्ठ और वृन्दावन, ये सभी देहके मध्य वर्त्तमान हैं।

मानव देहमें विराजमान परमदेवताके प्रति प्रेमा-नुष्ठान इस सम्प्रदायका मुख्य साधन है। प्रकृति पुरुषके परस्पर प्रेमसे ही वह प्रेम पर्याप्त होता है। अतएव प्रकृति-साधन ही इन लोगोंकी साधनाका प्रधान अङ्ग है। ये लोग एक एक प्रकृति ले कर वास करते हैं और उसी प्रकृतिकी साधनामें आजीवन प्रवृत्त रहते हैं। वह साधन-पद्धति अति गुह्य व्यवहार है। दूसरेके जाननेका उपाय नहीं है, जाननेसे भी वह लेखनीय नहीं है। कामरिपु उपभोगके प्रकरण-विशेष द्वारा कालका शान्ति-साधन पूर्वक चरममें परम पवित्र प्रेममात्र अवलम्बन करना इस साधनका उद्देश्य है। इनका मत है, कि जब वह प्रेम परिपक्व हो जाता है, तब स्त्री पुरुष दोनों ही नितान्त आत्म-विस्मृत और वाह्यज्ञान शून्य हो कर अपनी लीला से केवल राधाकृष्ण-लीलाका अनुभव कर सकते हैं।

उस प्रकृति साधनके अन्तर्गत 'चारिचन्द्रभेद' नामक एक क्रिया है। मनुष्य उस क्रियाको अतिमात्र वीभत्स व्यापार समझ सकते हैं पर वाउल-सम्प्रदायी उस परम पवित्र पुरुषार्थको साधन मानते हैं। उनका कहना है, कि मनुष्य उक्त चार चन्द्र (अर्थात् देहसे निर्गत शोणित, शुक्र, मल और मूत्र ये चार पदार्थ)को पिताके औरस और माताके गर्भसे प्राप्त करते हैं। अतएव उन चारों पदार्थका परित्याग न करके पुनः शरीरके मध्य ग्रहण करना कर्त्तव्य है। घृणाप्रवृत्ति पराभवके लिये इनके

मध्य अन्यान्य लक्षण देखे जाते हैं। इस सम्प्रदायके लोग नर-वध तो नहीं करते, पर नर-देह पानेसे उसका मांस खाते हैं। शवका वस्त्र संग्रह करके उसे पहननेका प्रथा भी इन लोगोंमें प्रचलित है।

यद्यपि ये लोग अनेक विषयोंमें गुप्तरूपसे लोकविरुद्ध कार्य करते हैं, तो भी लोक-समाजमें डरके मारे कुछ कुछ लोकाचारके अनुसार भी चलते हैं।

ये लोग केवल लोगोंको दिखानेके लिये तिलक और माला धारण करते हैं। मालामें स्फटिक, प्रवाल, पद्म-वीज, रुद्राक्ष आदि अपरापर वस्तु भी गुंथी रहती हैं।

इनके मतसे विग्रह-सेवा वा उपवासादि आवश्यक नहीं है। कोई कोई अखाड़ाधारी वाउल विग्रहकी स्थापना तो करते हैं, पर वह वाउलके मतानुसार दुष्य और निन्दनीय है। इन लोगोंमें क्ष्यापा उपाधि भी देखी जाती है। फलतः वाउल और क्ष्यापा दोनों एक ही अर्थ वोधक है।

व्रजउपासनातत्त्व, नायिकासिद्धि, रागमयीकणा और तोषिणी आदि इनके कई एक साम्प्रदायिक ग्रन्थ हैं। उन ग्रन्थोंमें इस मतका विशेष वृत्तान्त वर्णित हुआ है।

वाएं (हिं० क्रि० वि०) वाईं ओर, वाईं तरफ।

वाकचाल (हिं० वि० मुंहजोर, वहुत अधिक वोलनेवाला।

वाकरी (हिं० स्त्री०) पांच महीनेकी व्याई गाय।

वाकला (अ० पु०) एक प्रकारकी वड़ी मटर जिसकी कलियोंकी तरकारी वनती है।

वाकली (हिं० स्त्री०) आसाम और मध्यप्रदेशमें वहुतायतसे मिलनेवाला एक प्रकारका वृक्ष। इसके पत्ते रेशमके कीड़ोंको खिलाये जाते हैं। यह वृक्ष वहुत ऊंचा होता है। इसकी लकड़ी भूरे रंगकी और वहुत मजवूत होती है। इससे खेतीके अच्छे अच्छे सामान वनते हैं। इसकी छालसे चमड़ा सिझाया जाता है।

वाकसी (हिं० क्रि०) जहाजके पालको एक ओरसे दूसरी ओर करनेका काम।

वाकी (अ० वि०) १ अवशिष्ट, जो वच रहा हो। (स्त्री०) २ गणितमें एक प्रकारकी रीति इसके अनुसार किसी एक संख्या या मानको किसी दूसरी संख्या या मानमेंसे घटाया जाता है। ३ घटानेके वाद वची हुई संख्या या मान।

वाकी (अ० अव्य०) १ परन्तु, लेकिन। (स्त्री०) २ एक प्रकारका धान।

वाकुंभा (हिं० पु०) कुंभीके फूलका सुखाया हुआ केसर। यह खांसी और सर्दीमें औषधकी तरह दिया जाता है।

वाकुची (हिं० स्त्री०) सोमराजी।

वाकुर—कटक जिलेके अन्तर्गत एक समुद्रकी खाड़ी। यह महानदीकी शाखाके मुंहसे संयोजित है। १८६६ ई०में उड़ीसा-दुर्भिक्षके समय अंगरेज गवर्मेण्टने इस खाड़ीके मुंह पर एक चावलकी आढ़त खोल दी थी।

वाकुर (सं० स्त्री०) भासमान, वहता हुआ।

वाखरगञ्ज—वङ्गाल और आसामके ढाका विभागका एक जिला। यह अक्षा० २१°४६' से २३°५' उ० तथा देशा० ८६°५२' से ९१°२' पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ४५४२ वर्गमील है। इसके उत्तरमें फरीदपुर, पूर्वमें मेघना और शाहवाज नदी, दक्षिणमें वङ्गालकी खाड़ी और पश्चिममें वलेश्वर नदी है। गङ्गा, मेघना और ब्रह्मपुत्र नामक प्रधान नदी तथा कुछ छोटी छोटी शाखाएं जिलेके मध्य हो कर वह गई हैं। पंकके जम जानेसे यहां धान काफी उपजता है। वाखरगञ्जका वालम चावल वंगालमें मशहूर है। अंगरेजोंने इसी स्थानको कलकत्तेका शस्यभंडार (Gran ry of Calcutta) वतला कर उल्लेख किया है। यहांकी प्रायः सभी नदियोंमें नावें आती जाती हैं। मेघना नदीमें जव वाढ़ उमड़ आती है, तव लोग दंग रह जाते हैं। इस नदीके मुहाने पर वहुतसे छोटे छोटे द्वीप उत्पन्न हुए हैं। इनमेंसे दक्षिण शाहवाजपुर, मानपुर, भादुरा और रावनावाद आदि द्वीप ही विशेष उल्लेखयोग्य हैं। सुन्दरी काष्ठ, चावल, सुपारी आदिकी दूर दूर देशोंमें वहुतायतसे रफ्तनी होती है।

अकवर-सेनापति टोडरमल्लने १५८२ ई०में इस स्थानको सोनारगाँव सरकारके अन्तर्भुक्त कर लिया था। १६५८ ई०में सुलतान सुजाके आदेशसे जव वाखरगञ्जमें पुनः जरीप-कार्य आरम्भ हुआ, तव सुन्दरवनका वाखरगञ्जविभाग मुरादखाना कहलाने लगा। १७२१ ई०में

सम्राट् महम्मदशाहके राजत्वकालमें वङ्गालके नवाब जाफर खाँ द्वारा जो जरीप कराई गई, उसमें वाखरगञ्ज और सुन्दरवन जहांगीरनगर बाकलाके अन्तर्भुक्त रहा। वङ्गाल इष्टइण्डिया कम्पनीके हाथ आनेके बाद १७६५-१८१७ ई० तक यह स्थान ढाकाके राजस्व-संग्राहकके अधीन था। किन्तु यहांके विचार-कार्यके लिये स्वतन्त्र जज और मजिष्ट्रेट नियुक्त थे। उस समय कृष्णकाटी और खीराबाद नदीके सङ्गमस्थल पर वाखरगञ्ज नगरमें ही इसकी अदालत प्रतिष्ठित थी।

१८०१ ई०में विचार-विभागके वरिशाल नगरमें उठ आनेसे वह स्थान जनशून्य और परित्यक्त हो गया। दूसरे वर्ष इस जिलेकी आकृति बहुत कुछ बदल गई।

इस जिलेमें ५ शहर और ४६१२ ग्राम लगते हैं। जनसंख्या २० लाखसे ऊपर है। मुसलमानोंकी संख्या सब कौमोंसे ज्यादा है।

वरिशाल, वाखरगञ्ज, वउफल, नलछिटी, झालकाटी और पिरोजपुर नगर यहांके प्रधान स्थान हैं। यहांके अधिवासी बड़े ही दुर्द्धर्ष हैं। डकैती, मारपीट और खूनी मुकदमेंको पेशी वरिशालमें बहुत देखी जाती है। लोगोंका अत्याचार जैसा क्षतिकर है, तूफान, बाढ़ आदि भी वैसा ही शस्यादिके लिये हानिकारक है।

विद्याशिक्षामें यह जिला बहुत उन्नति कर रहा है। अभी कुल मिला कर ३०७४ स्कूल हैं जिनमेंसे एक शिल्प-कालेज है। स्कूलके अलावा ४१ अस्पताल और चिकित्सालय हैं।

बाग (अ० पु०) १ वाटिका, उपवन, उद्यान। २ लगाम।

बागडोर (हिं० स्त्री०) १ वह रस्सी जो घोड़ेकी लगाममें बांधी जाती है और जिसे पकड़ कर साईस लोग उसे टहलाते हैं। २ लगाम।

बागना (हिं० क्रि०) चलना, फिरना।

बागवान (फा० पु०) वह जो बागकी रखवाली, प्रबंध और सजावट आदि करता हो, माली।

बागवान्—बम्बई प्रदेशकी धारवाड़ जिलावासी माली जाति-विशेष। आचार व्यवहार इन लोगोंका बहुत कुछ कुणबी जातिके समान है। औरङ्गजेब बादशाहकी अमलदारीमें लोग मुसलमानी धर्ममें दीक्षित हुए हैं। ये स्वभावसे ही सबल हृष्टकाय होते हैं। पुरुष माथेके बाल छटवाते हैं; किन्तु दाढ़ी रखते हैं। इनकी रमणियोंका वेश भूषा ठीक हिंदू-रमणी सरीखा है। बाजारमें फल, शाक सब्जी आदि बेचनेमें ये पुरुषोंकी सहायता करती हैं। ये लोग अपनी श्रेणिमें ही विवाहादि करते हैं। सामाजिक नियमके भंग करनेवालोंको चौधुरी दंड देते हैं। मुसलमान होने पर भी ये लोग गुप्तरूपसे हिंदू-देवदेवीको पूजते हैं तथा उत्सव करते हैं। विवाहादिमें काजीको बुलाते हैं। ये लोग हनफी संप्रदायभुक्त सुन्नी मुसलमान हैं। इनमें कोई भी कभी कलमा पाठ नहीं करता।

बागवानी (फा० स्त्री०) १ मालीका पद। २ मालीका काम।

बागर (हिं० पु०) १ नदी किनारेकी वह ऊंची भूमि जहां तक नदीका पानी कभी पहुंचता ही नहीं। २ बांगर देखो।

बागलकोट—बम्बईके बीजापुर जिलेका एक तालुक। यह अक्षा० १६° ४' से १६° २८' उ० तथा देशा० ७५° २६' से ७६° ३' पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ६८३ वर्गमील और जनसंख्या प्रायः १२३४५६ है। इसमें १ शहर और १६० ग्राम लगते हैं। जिले भरमें यहांका जलवायु बहुत अच्छा है।

२ उक्त तालुकका सदर। यह अक्षा० १६° ११' उ० तथा देशा० ७५° ४२' पू०के मध्य अवस्थित है। जनसंख्या उन्नीस हजारसे ऊपर है। यहां रेशमी और सूती कपड़ेका विस्तृत कारबार है। शहरसे ढाई कोस दूर मुलकन्दि नामक स्थानमें एक बड़ी पुष्करिणी है। उसके जलसे खेतीबारी होती है। शहरमें सब-जजकी अदालत, अस्पताल और एक म्युनिसिपल स्कूल है। कहते हैं, कि पहले यह स्थान सिंहलाधिपति रावणके गायकके अधिकारमें था। १६वीं शताब्दीमें विजयनगरके राजाने इस पर दखल जमाया। १६६४से १७५५ ई०तक यह सबनूरके नवाबके अधिकारमें रहा। पीछे पेशवाने उसे छीन कर अपने राज्यमें मिला लिया। १७७४ ई०में यह हैदरके हाथ लगा, पीछे पेशवाने उसका पुनरुद्धार किया। पेशवाके समय शहरमें एक टकसाल थी। जिसमें १८३५

ई० तक सुचारुरूपसे काम चलता रहा था। शहरमें पांच स्कूल हैं जिनमेंसे एक वालिकाके लिये है।

वागलपुर—मध्यप्रदेशके नरसिंहपुर जिलान्तर्गत एक नगर।

वागलान—१ वम्बईके नासिक जिलान्तगत एक प्राचीन राज्य। इसके पूर्वमें चन्दोर, पश्चिममें सूरत और समुद्र, उत्तरमें सुलतानपुर तथा दक्षिणमें नासिक और त्रिम्वक हैं। पहले यह राज्य ३४ परगनोंमें विभक्त था। यहांके नौ दुर्गोंमेंसे शालहीर और मूलहीर नामक दो पहाड़ी-दुर्ग दुर्भेद्य थे। दाक्षिणात्यकी चढ़ाई करते समय औरङ्ग-जेवने इस राज्य पर दांत गड़ाया था। तदनुसार उन्होंने १६३७ ई०में वहां एक दल सेना भेजी। मूलहीरपतिने आत्मरक्षाका कोई उपाय न देख दुर्गकी ताली मुगलोंके पास भेज दी। १८१४ ई०को ३री जुलाईको मूलहीर-किला अंगरेजोंके हाथ लगा और वागलान राज्य खांदेशमें मिला लिया गया। इसके वाद यह नासिक जिलेके अन्त-र्भुक्त हुआ।

२ वम्बईके नासिक जिलेका एक तालुक। यह अक्षा० २०° २६´से २०° ५३´ उ० तथा देशा० ७३° ५१´ से ७४°२४´ पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ६०१ वर्ग-मील और जनसंख्या ६० हजारसे ऊपर है। इसमें १५६ ग्राम लगते हैं, शहर एक भी नहीं है। वर्षाऋतुके वाद यहां मलेरियाका विशेष प्रकोप देखा जाता है।

वागवान (हिं० पु०) वागवान देखो।

वागवानी (हिं० स्त्री०) वागवानी देखो।

वागाँचड़ा—नदिया जिलेके अन्तर्गत एक ग्राम। यह शान्तिपुरसे ५ मील पश्चिम-उत्तरमें अवस्थित है। यह स्थान गंगाके चरसे निकल कर क्रमशः जङ्गलमें परिणत हो गया और वहां वहुतसे वाघ आदि वास करने लगे। इसी कारण 'वाघचर'-से इस स्थानका नामकरण हुआ है। प्रसिद्ध तान्त्रिक रघुनन्दनका यहीं पर वास था। जन-साधारणमें वे पूर्णानन्दगिरि परमहंस नामसे प्रसिद्ध थे। उनके वनाये हुए अनेक ग्रन्थ मिलते हैं, यथा—षट्चक्र-भेद, वामकेश्वरतन्त्र, श्यामारहस्यतन्त्र, शाक्तक्रमतन्त्र और तत्त्वचिन्तामणि। अन्तिम ग्रंथ १४९९ शकमें रचा गया था। यहां पर दूर दूर देशके लोग वाग्देवी ठाकुरानीको पूजा करने आते हैं। प्रति शनि और मङ्गलवारको यात्री समागम होते हैं। रघु-नन्दनके भागिनेय महादेव मुखोपाध्यायके वंशधर यहांके अधिकारी माने जाते हैं। वाग्देवी-प्रतिष्ठाके वाद चांद-राय नामक किसी धनी व्यक्तिने यहां एक शिवालय निर्माण किया। अभी चांदरायकी अट्टालिका जङ्गलमें परिणत हो गई है। जङ्गल भी चांदरायका जङ्गल नाम-से प्रसिद्ध है।

वागा (फा० पु०) अंगेकी तरहका पुराने समयका एक पहनावा जो घुटनों तक लम्बा होता है और जिसमें छाती पर तीन वंद लगते हैं, जामा।

वागाम्रा—१ वम्बईप्रदेशके काठियावाड़ राज्यके अन्तर्गत एक छोटा सामन्त राज्य। यहांके सामन्त गायकवाड़ और जनागढ़के नवावको राजकर दिया करते हैं।

२ काठियावाड़के अन्तर्गत एक नगर। यह अक्षा० २१° २९´ उ० तथा देशा० ७१° पू०के मध्य धुनकवावसे १५ मीलकी दूरी पर पड़ता है। जनसंख्या ६१७८ है। देवगाम देवलीके वलमन्च भायने इसे १५२५ ई०में जीता।

वागी (अ० पु०) वह जो प्रचलित शासन-प्रणाली अथवा राज्यके विरुद्ध विद्रोह करे, विद्रोही, राजद्रोही।

वागीचा (फा० पु०) उद्यान, उपवन।

वागुर (हिं० पु०) पक्षी या मृग आदि फँसानेका जाल। इसका दूसरा नाम वागौर भी है।

वागेपल्ली—महिसुरके कोलर जिलेका एक तालुक। यह अक्षा० १३° ३७´ से १३° ५८´ उ० तथा देशा० ७७° ३६´ से ७८° ८´ पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ४४७ वर्गमील और जनसंख्या ६५ हजारके करीव है। इसमें २ शहर और ३७२ ग्राम लगते हैं।

वागेवाड़—१ वम्वई प्रदेशके कालाद्गी जिलान्तर्गत एक उपविभाग। भूपरिमाण ७६४ वर्गमील है।

२ उक्त उपविभागका एक नगर और प्रधान वाणिज्य-स्थान।

वागेश्वर—युक्तप्रदेशके अलमोरा तहसीलका एक ग्राम। यह अक्षा० २९° ५१´ उ० तथा देशा० ७९° ४८´ पू०के मध्य सरयू और गोमती नदीके मध्यस्थल पर अवस्थित

है। यहां मध्य एशिया और भोट राज्यके साथ वाणिज्य चलता है। प्रति वर्ष जनवरीमासमें एक भोटिया मेला लगता है। इस समय पर्वतजात नाना द्रव्य विकनेके लिये आते हैं। प्रवाद है, कि मुगल-सरदार तैमुरने वागेश्वर उपत्यकामें एक उपनिवेश बसाया था, किन्तु उसका अभी चिह्नमात्र भी नहीं देखा जाता है।

वागेसरी (हिं० स्त्री०) १ सरस्वती। २ सम्पूर्ण जातिकी एक रागिनी जो किसीके मतसे मालकोश रागकी स्त्री और किसीके मतसे भैरव, केदार, गौरी और देवगिरी आदि कई रागों तथा रागिनियोंके मेलसे बनी हुई संकर रागिनी है।

वागोर—राजपूतानेके उदयपुर राज्यान्तर्गत इसी नामके परगनेका सदर। यह अक्षा० २५° २२' उ० तथा देशा० ७४° २३' पू० कोठारी नदीके बाएं किनारे अवस्थित है। जनसंख्या ढाई हजारसे ऊपर है।

वागड़ी—जलङ्गी और मेघना नदीके अन्तर्निहित एक प्राचीन जनपद। इसके दक्षिणमें समुद्र पड़ता है। यूएनचुवंगने इस स्थानको समतट नामसे उल्लेख किया है। विक्रमपुर नगरमें इस प्रदेशकी राजधानी थी।

वागडोगरा—वङ्गालके रङ्गपुर जिलान्तर्गत एक नगर।

वाग्दा—मेदिनीपुर जिलेमें अवस्थित एक नदी जो गोआ-खालीके समीप हुगली नदीमें गिरती है।

वाग्दी—मध्य और पश्चिम बंगवासी नीच जाति। दास-वृत्ति, कृषिकार्य और धीवरवृत्ति ही इस जातिकी प्रधान उपजीविका है। इस जातिके मध्य तेंतुलिया, दुलिया, ओझा, मछुया, (मेछुया वा मेछा) गुलमांझी, दण्डमांझी, कुशमेतिया, (कुशमातिया वा कुशपुत्र), कशोईकुलिया, मल्लमेतिया (मतिया वा मतियाल), बाजान्दरिया, दरातिया, लेट, नोदा, ये त्रयोदश आदि कितने स्वतंत्र थाक दृष्टिगोचर होते हैं। बाग, धारा, खां, मांझी, मसालची, मोदी, पालखाई, परमाणिक, फेरका, पुइला, राय, सान्त्रासर्दार आदि इनकी पदवी हैं। प्रत्येक श्रेणीके मध्य भिन्न भिन्न गोत्र हैं। यदि, वाघऋषि, कच्छप, कोशपक, पाकवसन्ता, पातऋषि, पोङ्कऋषि, शालऋषि, अलम्यान, काश्यप, वाम्रि, दास्य, गविभायत, काल राखी प्रभृति नाम गोत्ररूपमें व्यवहृत हैं।

अपने घर छोड़ कर दूसरे घरमें तथा सगोत्रमें विवाह निषिद्ध है। एक तेंतुलिया भिन्न अपर श्रेणीके वाग्दी' घरमें विवाह नहीं कर सकता। किन्तु कन्याके एक गोत्र होने पर विवाह भी नहीं होता है। सपिण्ड विवाह भी निषिद्ध है।

बांकुड़ा, मानभूम, और उड़ीसाके उत्तरांशमें वाग-दियोंके बीच बालविवाह प्रचलित देखा जाता है। कोई कोई जवानी आने पर पुत्र कन्याका ब्याह देते हैं। विवाह-के पहले यदि जवान कन्या पर पुरुष पर आसक्त हो जावे तो उसे ये लोग दोष नहीं मानते। २४ परगना, यशोर, नदिया आदि जिलाओंमें बालविवाह प्रचलित है। कोई कोई अवस्थानुसार एकाधिक विवाह भी करता है। इनकी विवाहपद्धति हिंदुओंके समान होने पर भी इसमें असभ्य प्रथाके कितने शेष मिश्रित हो गये हैं। वरयात्राके पहिले ये महुआ वृक्षके साथ विवाह करते हैं और उसे सिंदूर प्रदान कर, सूतसे बांध देते हैं। पीछे वह सूत, महुआके पत्तेके साथ वरके दाहिने हाथमें लपेटते हैं। जब बारात दरवाजे पर पहुंचती है, तब कन्या पक्षीय लोग उसे अपने घरमें प्रविष्ट नहीं होने देते। द्वंद्व-युद्धमें वर-पक्षके लोग जयलाभ कर वरको भीतर ले जाते हैं। शाल-पत्राच्छादित कुंजके मध्यस्थित पीढ़ीके ऊपर वर बैठता है। उसके चारों कोनेमें तेल मांड-शस्य और हल्दी रखी जाती हैं। मध्यस्थलमें गर्त्त खोदकर जल रख दिया जाता है। कन्या आ कर उस शालकुंजके चारों ओर सात बार घूमती है। बाद कुञ्जमध्यमें आ वरके सामने बैठ जाती है। वह जलपूर्ण गर्त्त दोनोंके सामने रहता है। ब्राह्मण द्वारा विवाहके मन्त्रादि पाठ हो जाने पर कन्यासंप्रदान शेष समझा जाता है। दक्षिणा देनेके बाद ब्राह्मणको गांठ बांधी जाती है। गोत्रान्तरके बाद सिन्दूर दान और माला बदल होने पर विवाह-कार्य शेष होता है। रात्रिमें उपस्थित कुटुम्बियोंको अवस्थानुसार भोजन कराया जाता है। दूसरे दिन वर कन्याको ले कर अपने घर चला जाता है। विवाहके बाद चार दिनमें गांठें खोली जाती हैं।

तेंतुलिया वाग्दीको छोड़ कर शेष सभी वाग्दी श्रेणी-में विधवाकी सगाई होती है। इस विवाहमें पहलेको

जैसा मंत्रादिका पाठ नहीं किया जाता। एक आसन पर दोनोंको विठा दोनोंके कपालमें वटी हल्दीका लेप होता है। दोनोंके मस्तक एक चादरसे ढक दिये जाते हैं। शुभ दृष्टि होने पर वर कन्याके हाथमें लोहेका कड़ा पहनाता है। विधवा अपने देवरके साथ भी विवाह कर सकती है। जिन सब वाग्दियोंने हिंदू-धर्म का आश्रय ग्रहण किया है, उनका आचार व्यवहार उच्च श्रेणीके हिन्दुओं-सा है। किन्तु स्त्रीके वन्ध्या, परपुरुषगामी अथवा अवाध्य होने पर जातीय सभाके मतानुसार उसका त्याग किया जा सकता है। उस स्त्रीको छः मासकी खुराक देनी पड़ती है। छः मास वाद वह रमणी फिर सगाई कर सकती है। तैंतुलिया छोड़ कर अपर वाग्दी वावरियोंके जैसा विवाह करनेके लिये किसी उच्च जातिको अपनेमें शामिल होने देते हैं।

ब्रह्मा, विष्णु, धर्मराज और दुर्गा आदि सभी शक्ति मूर्त्तिकी ये लोग उपासना करते हैं। पतित ब्राह्मण इन सब देवताओंकी पूजामें इनके यहाँ पुरोहिताई करते हैं। मनसादेवी ही इनकी कुलदेवता है। आषाढ़, श्रावण, भाद्र और आश्विन मासमें ५वीं या २०वीं को देवीके सामने महासमारोहसे ये लोग वकरे की वलि देते हैं। नागपंचमीके दिन देवीकी चतुर्भुजा मूर्त्ति गढ़ कर उसकी पूजा करते हैं। पूजाके वाद वह पुष्करिणी आदि जलाशयोंमें विसर्जित हो जाती हैं। वांकुड़ा और मानभूम अञ्चलमें भाद्र-संक्रान्तिके दिन ये लोग भादुदेवीकी प्रतिमूर्ति गढ़ कर महासमारोहसे नगर-में भ्रमण करते फिरते हैं। इस उत्सवमें खूब नृत्य-गीत होता है।

ये लोग शवको जलाते हैं। किन्तु वसन्त (माता) विसूचिका रोगमें किसीकी मृत्यु होने पर उसे मिट्टीमें गाड़ देते हैं। तीन वर्षके वालक और वालिका भी मिट्टी में गाड़ी जाती है। अशौचके वाद ये लोग मृतके उद्देश-से श्राद्ध करते हैं। अपरापर हिन्दुओंकी तरह इन लोगोंके भी संपत्ति विभाग होता है। ज्येष्ठ पुत्र ही अधिक अंश पाता है, क्योंकि परिवारकी समस्त वृद्धा स्त्रियोंका पालन उसीको करना पड़ता है।

घटवाली, चौकीदारी आदि दासवृत्ति इनके द्वारा सम्पादित होती हैं। ये लोग लाठी चलानेमें विशेष पटु हैं।

वम्बई प्रदेशके वेलगाम जिलेमें एक श्रेणीके वाग्दी देखे जाते हैं। इन लोगोंमें भी सगोत्र विवाह निषिद्ध है। पुरुष माथे पर शिखा रखते तथा मद्य और मांसके प्रिय होते हैं। स्त्रियां मांगमें सिंदूर देती हैं, मङ्गल-सूत्र और वलय पहनती हैं। परिष्कार परिच्छन्न नहीं होने पर भी ये लोग निरीह और शान्त हैं। देवता और ब्राह्मणमें इनकी विशेष भक्ति है। पुरोहितके न होने पर भी विवाह श्राद्ध आदिमें ब्राह्मण लोग इनको याजकता करते हैं। वारहवें दिन जातवालकका नाम-करण और जाति भोजन होता है। विवाहके प्रथम दिन वर कन्याके शरीरमें हल्दी और तेल लगाया जाता है; दूसरे दिन यथाविहित मंत्रपाठके वाद विवाह समाप्त होने पर वर और कन्याके शरीर पर चावल छींटते हैं। वहु-विवाह और विधवा-विवाह इनमें प्रचलित है। ये लोग मृतदेहको मिट्टीमें गाड़ देते हैं। तेरहवें दिन पातक मिट जाने पर स्वजातिवालोंका भोज होता है। सामाजिक विभ्राटका विचारमण्डल सम्पन्न करते हैं।

वाग्नी—वम्बईके सतारा जिलेका एक ग्राम। यह अक्षा० १६° ५५' उ० तथा देशा० ७४° २६' पू० अशतसे ४ मील दक्षिण-पश्चिममें अवस्थित है। जनसंख्या ५६४१ है। ग्रामके पश्चिम पुराने समयकी एक मसजिद है।

वागरू—राजपूतानेके जयपुर राज्यान्तर्गत एक नगर। यह अक्षा० २६° ४८' उ० तथा देशा० ७५° ३३' पू० आग्रा-अज-मेरके रास्ते पर अवस्थित है। यहां राज्यके प्रधान सामन्त ठाकुरका वास है। ये जयपुर दरवारको प्रयोजन पड़ने पर चौदह अश्वारोहीसे मदद पहुचाते हैं। ये किसी प्रकारका कर नहीं देते। यहां सूती कपड़ेकी छींट और रङ्गका विस्तृत कारवार है।

वाग्ली—१ मध्यभारतके इन्दोर एजेन्सीका एक छोटा सामन्त राज्य। भूपरिमाण ३०० वर्गमील है। यहांके सर-दार चम्पावत्-वंशीय राजपूत हैं। ठाकुर इनकी उपाधि है। वर्त्तमान ठाकुरराज सिन्दियाके अधीन हैं। सिन्दिया-राजको इन्हें कर देना पड़ता है।

२ उक्त राज्यका प्रधान नगर। यह अक्षा० २२° ३८'

उ० तथा देशा० ७६° २५′ पू०के मध्य अवस्थित है।

बाघंबर (हिं० पु०) १ बाघकी खाल जिसे लोग विशेषतः साधु, त्यागी और अमीर बिछाने आदिके काममें लाते हैं। २ एक प्रकारका रोएंदार कंबल जो दूरसे देखने पर बाघकी खालके समान जान पड़ता है।

बाघ (हिं० पु०) शेर नामका प्रसिद्ध हिंसक जन्तु। व्याघ्र देखो।

बाघ—मध्यप्रदेशके भण्डारा जिलेमें प्रवाहित एक नदी। यह किचगढ़के निकटवर्ती पर्वतमालासे निकल कर बालाघाट जिलेकी शोण और देव नामक शाखा-नदीमें मिलती है। वर्षाके समय इस नदीमें पण्य-द्रव्य ले कर गमनागमन किया जाता है।

बाघ—१ ग्वालियर राज्यके भोपावर ऐजन्सीके अधिकृत एक परगना। इसकी लम्बाई १४ मील और चौड़ाई १२ मील है। इस वनमय पार्वतीय स्थानमें भीषणकाय भील जातिका वास है। यहां लोहेकी एक खान है।

२ ग्वालियर राज्यके अन्तर्गत एक छोटा नगर। यह अक्षा० २२°२४′ उ० तथा देशा० ७४°४८′ ३०″ पू० गिरना और बग्नी नदीके सङ्गम-स्थल पर अवस्थित है। जनसंख्या दो हजारके करीब है। यहांका पञ्चपाण्डु नामक गुहामन्दिर बहुत कुछ प्रसिद्ध है। विन्ध्यगिरिमालाके दक्षिणस्थ पार्वत्य भूमिके ऊपर यह गुहामन्दिर स्थापित है। यहांके बौद्ध-विहार अजण्टाके गुहामन्दिरके जैसे हैं। ये सब ५वीं से ७वीं शताब्दीके मध्यके बने हुए हैं, ऐसा प्रत्नतत्त्वविदोंका विश्वास है।

बाघखाली—चट्टग्रामके अन्तर्गत एक छोटी नदी।

बाघजला—बङ्गालके २४ परगनेके अन्तर्गत एक नगर। यह अक्षा० २२° ४७′ ३८″ उ० तथा देशा० ८८° ४७′ १६″ पू०के मध्य अवस्थित है। दमदमाका सेना-वास भी इसी नगरकी सीमाके अन्तर्भुक्त है।

बाघडङ्गा—यशोर जिलेके अन्तर्गत एक छोटा ग्राम। यह अक्षा० २३° १३′ उ० तथा देशा० ८९° १२′ पू०के मध्य अवस्थित है। यहां मट्टीके अच्छे अच्छे बरतन तैयार होते हैं।

बाघपत—१ युक्तप्रदेशके मीरट जिलेकी तहसील। यह अक्षा० २८° ४७′ से २९° १८′ उ० तथा देशा० ७७° ७′ से ७७° २९′ पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ४०५ वर्गमील और जनसंख्या तीन लाखके लगभग है। इसमें ६ शहर और २१८ ग्राम लगते हैं। यह तहसील हिन्दन और यमुना नदीके मध्यस्थलमें पड़ती है।

२ उक्त जिलेका एक प्रधान शहर। यह अक्षा० २८° ५७′ उ० तथा देशा० ७७° १३′ पू० मीरट शहरसे ३० मील पश्चिममें अवस्थित है। जनसंख्या करीब ५६७२ है। महाभारतमें इस नगरका उल्लेख है। राजा युधिष्ठिर कुछ दिन यहां ठहरे थे। नगर दो भागोंमें विभक्त है, एक भागमें कसवा (गृहस्थ) और दूसरे भागमें मण्डि (वणिक्) रहते हैं। यमुना पार करनेके लिये नगरके बाहर एक पुल है। यहांके अधिवासिगण चौहान वंशीय राजपूत हैं। चीनीकी बिक्रीके लिये यह स्थान बहुत कुछ मशहूर है। अलावा इसके रुई, गेहूं, लाल मिर्च, सज्जीमट्टी पंजाब, राजपूताने तथा बुन्देलखण्डके नाना स्थानोंमें भेजी जाती हैं। शहरमें तीन स्कूल हैं।

बाघमती—उत्तर-विहारमें प्रवाहित एक नदी। यह नेपाल-राज्यके काठमण्डू नगरसे निकल कर मुजफ्फरपुर, चम्पारण और दरभंगा जिलेके मध्य होती हुई बूढ़ी गण्डकमें मिली है। पर्वतके ऊपर हो कर बहनेके कारण वर्षाकालमें उसका जलप्रवाह बहुत अधिक हो जाता है। कभी कभी इसमें ऐसी बाढ़ उमड़ आती है, कि आसपासके गांवोंकी बड़ी क्षति होती है। हैयाघाटके निकट इसकी करई नामक शाखा निकल कर तिलकेश्वरमें तीलयुगा नदीमें गिरी है। लालबाकय, धुरेङ्गो, लावनदई, छोटी बाघमती, धौस और किम नामक इसकी शाखाएं प्रधान हैं। मलाईसे बेलनपुर-घाट तक बाघमतीका पुराना गर्भ दृष्टिगोचर होता है। वर्षाकालमें बाघमतीका स्रोत बहनेके कारण उसके कलेवरकी वृद्धि होती है। परन्तु शीतकालमें उसमें सिर्फ २ फुट जल रह जाता है। पुरातन गर्भके पूर्वकूलमें बहुत-सी नीलकोठी देखनेमें आती हैं।

बाघमती (छोटी)—बाघमती नदीकी एक शाखा जो मुजफ्फरपुर जिलेमें बहती है। हैयाघाटसे ले कर दरभङ्गा तक इसमें वाणिज्य-पोत आ-जा सकते हैं। कमला, धौस और किम इसके कलेवरकी वृद्धि करती हैं।

वाघमारा—त्रिपुराराज्यके अन्तर्गत एक प्रधान वाणिज्य-स्थान।

वाघमारी—मयूरभञ्ज और सिंहभूम जिलेके मध्यवर्त्ती एक गिरिशृङ्ग।

वाघमुण्डी—विहारके मानभूम जिलेको एक अधित्यका। इसके सर्वोच्च शिखरका नाम गङ्गावाड़ी है। यह अक्षा० २३° १२´ उ० तथा देशा० ८६° ५´ ३०´´ पू०के मध्य पुरुलिया नगरसे १० कोस दक्षिण-पश्चिममें अवस्थित है।

वाघल—सिमला पर्वतके निकटवर्त्ती पञ्जावके अन्तर्गत एक पार्वतीय राज्य। यह अक्षा० ३१° ५´ से ३१° १६´ उ० तथा देशा० ७६° ५५´ से ७७° ५´ पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण १२४ वर्गमील और जनसंख्या २५ हजारके करीब है। इसकी राजधानी अर्की है जो सिमलासे २० मील उत्तर-पश्चिममें पड़ती है। यहांके राजगण पुयार-वंशीय राजपूत हैं। पहले इनकी उपाधि राणा थी। वर्त्तमान सरदारके पिता किशन सिंहने अङ्गरेजोंको खासी मदद पहुंचाई थी जिससे सरकारने प्रसन्न हो कर उन्हें राजाकी उपाधिसे भूषित किया। १५१५ ई०की सनदके अनुसार ये लोग इस राज्यका भोग करते आ रहे हैं। सभी कार्यका विचार राजा द्वारा ही परिचालित होता है। प्राणदण्ड देते समय इन्हें कमिश्नरकी अनुमति लेनी पड़ती है। यूरोपीय अतिथियोंके रहनेके लिये राजाने एक सुन्दर भवन बनवा दिया है जो सिमला पहाड़से १० कोस दूर पड़ता है। गौड़ और सारस्वत ब्राह्मण तथा कुनेति जाति द्वारा यहांका कृषिकार्य सम्पन्न होता है। गुर्खा-अधिकारमें अर्कीनगर राजधानी रूपमें गिना जाता था। वर्त्तमान राजाका नाम विक्रम सिंह है। ये १६०४ ई०में राजसिंहासन पर बैठे। इन्हें ५० सेना और १ कमान रखनेका अधिकार है। राजस्व ५०००० रु०मेंसे ३६०० रु० वृटिश-सरकारको करस्वरूप देने पड़ते हैं।

वाघनापाड़ा—वर्द्धमान जिलेके अन्तर्गत एक प्रसिद्ध वैष्णव-स्थान। यहां प्रति वर्ष एक मेला लगता है।

वाघवनपुर—पञ्जावप्रदेशके लाहोर जिलान्तर्गत एक गण्ड ग्राम। सलीमके उद्यानके लिये यह स्थान प्रसिद्ध है। जहांगीर वादशाहके भोलम उद्यानके ढंग पर सम्राट् शाहजहान्के प्रधान स्थपति अलीमर्द न खांने यह उद्यानवाटिका बनवाई थी। मुगल-सम्राट्की अवनतिके साथ साथ यह उद्यान भी लोप हो गया। पञ्जावकेशरी रणजित् सिंहने उसका जीर्णसंस्कार किया था।

वाघहाट—सिमला शैलके समीपवर्त्ती अङ्गरेज-रक्षित एक गिरि-राज्य। यह अम्बाला विभागके छोटे लाटके अधीन है। यह अक्ष० ३०° ५०´ से ३०° ५८´ उ० तथा देशा० ७७° २´ से ७७° १२´ पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ३६ वर्गमील और जनसंख्या १० हजारके लगभग है। यहांके राणा अपनेको दाक्षिणात्यके घरानगिरि वंशज राजपूत बतलाते हैं। १८०५ ई०में राणाने विलासपुर राज्यको मदद दी थी इस कारण गुरखाने उनका राज्याधिकार बहुत दिनों तक कायम रखा। पीछे १८१५ ई०में राज्यका कुछ भाग जब्त कर पतियालामें मिला लिया गया। १८३६ ई०में कोई राज्याधिकारी न रहनेके कारण राज्य जब्त कर लिया गया, पर १८४२ ई०में भूतपूर्व राणाके भाईके हाथ पांच वर्ष तकके लिये लौटा दिया गया। १८६२ ई०में राणा दलीप सिंह राजसिंहासन पर बैठे। इन्हें सि-आइ-इ-की उपाधि मिली थी। राज्यकी आय तीस हजार रुपये हैं। कसौली और सोलनके सेनानिवासके लिये राणासे कुछ स्थान ले कर वृटिश सरकारने राज-कर माफ कर दिया है।

वाघहाट—हैदरावाद राज्यके मेदक जिलेका तालुक। भूपरिमाण ४५१ वर्गमील और जनसंख्या ६० हजारके करीब है। इसमें मुशीरावाद नामका १ शहर और ११० ग्राम लगते हैं। राजस्व ७५००० रु० है।

वाघा (हिं० पु०) १ चौपायोंका एक रोग। इसमें पशुओंका पेट फूल जाता है और सांस रुकनेसे वे मर जाते हैं। २ कबूतरोंकी एक जातिका नाम।

वाघी (हिं० स्त्री०) एक प्रकारकी गिलटी। यह अधिकतर गरमीके रोगियोंके पैर और जांघकी सन्धिमें होती है। यह बहुत कष्टदायक होती है और जल्दी दबती नहीं। बहुधा यह पक जाती है और चीरनी पड़ती है।

वाघुल (हिं० स्त्री०) एक प्रकारकी छोटी मछली।

वाघेरहाट—१ बङ्गालके खुलना जिलेका उपविभाग। यह अक्षा० २२° ४४´ से २२° ५६´ उ० तथा देशा० ८६° ३२´से

८९°५८' पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ६७९ वर्गमील और जनसंख्या प्रायः ३६३०४१ है। इसमें १०४५ ग्राम लगते हैं, शहर एक भी नहीं है।

२ उक्त उपविभागका सदर। यह अक्षा० २२° ४०' उ० तथा देशा० ८९° ४७' पू० भैरव नदीके किनारे अवस्थित है। जनसंख्या हजारसे ऊपर है। नगरके पश्चिम खाँजहानका भग्न अट्टालिका-स्तूप दृष्टिगोचर होता है। खाँजहानकी सातगुम्बज नामक मसजिद और समाधि-मन्दिर देखने लायक है। समाधि-मन्दिरका ऊपरवाला गुम्बज ४७ फुट ऊँचा है। खाँ-जहान् सुन्दरवनको आवाद करनेके लिये यहां आये थे। उनकी उक्त समाधि देखनेके लिये दूर दूरके लोग आते हैं। यहांके अधिवासिगण प्राय मुसलमान हैं जो बड़े उपद्रवी मालूम पड़ते हैं। नगरकी वाणिज्योन्नति दिनों दिन होती जा रही है।

वाघेश्वर—कुमायुन जिलेका हिमालयपर्वतस्थ एक शैवतीर्थ। यह गोमती और सरयूसङ्गमके समीप सीरकोट नामक स्थानमें अवस्थित है। स्कन्दपुराणके मानसखण्डमें यह तीर्थमाहात्म्य कीर्त्तित हुआ है। इसी देवोपदेशसे वर्षमें यहां दो वार मेला लगता है। इस समय देवदर्शनकी कामनासे अनेक लोग समागम होते हैं।

वाघेश्वर—गोंड़ोके उपदेवताविशेष। गोंड़ लोग इसकी पूजा किया करते हैं।

वाघेरा—राजपूतानेके अन्तर्गत एक प्राचीन नगर। यह थोल नगरसे ६ कोस पश्चिम वराहनगरके दक्षिण कुल पर अवस्थित है। यहां विष्णुकी वराहमूर्त्ति, प्राचीन वराहमन्दिर और सागर नामक पुष्करिणी, 'श्रीमत् आदि वराह' नाम तथा वराहमूर्त्ति अङ्कित मुद्रा देखनेसे अनुमान होता है, कि एक समय यहां वराहमूर्त्तिपूजाका विशेष आदर था। आज भी यहां शूकर पवित्र समझे जाते हैं। वाघेरा-वासी यदि किसी शूकरकी हत्या करे, तो उसकी अवश्य मृत्यु होगी, ऐसा उन लोगोंका विश्वास है।

वाघेराका प्राचीन नाम वसन्तपुर है। पहले यह चम्पावती नगराधिप गन्धर्वसेनके राज्याभुक्त था। प्राचीन मन्दिरादिके ध्वंसावशेष होने पर भी अभी इस नगरमें ३ हजार मनुष्योंका वास है। अधिवासियोंमेंसे अधिकांश ब्राह्मण, राजपूत और वनिये हैं। ये सबके सब विष्णुके उपासक हैं। यहांके लोग हाथमें कुठार ले कर इधर उधर भ्रमण करते हैं।

वाचण्ड—वुन्देलखण्डके अन्तर्गत एक प्रसिद्ध ग्राम। यह किचान् नदीके वाएं किनारे पर्वत-तट पर अवस्थित है। एक समय यह स्थान महासमृद्धिशाली था। ध्वंसावशेषसे उसका यथेष्ट प्रमाण मिलता है। वामन-अवतार, हरगौरी, विष्णु, लिङ्गमूर्त्ति, वहुसंख्यक प्रस्तरस्तम्भ और शिलालिपि आदि उसके निदर्शन हैं। शिलालिपिमें यह नगर वच्छुनिस्थान नामसे लिखा गया है। यहां एक समय चन्देलराज भिल्लमदेव राज्य करते थे।

वाचा (हिं० स्त्री०) १ वोलनेकी शक्ति। २ वातचीत, वाक्य।

वाछ (हिं० पु०) गांवमें मालगुजारी, चंदे, कर आदिका प्रत्येक हिस्सेदारके हिस्सेके अनुसार परता, वेहरी।

वाछड़ा (हिं० पु०) वछड़ा देखो।

वाछल—राजपूत जातिकी एक शाखा। इस शाखाके लोग अपनेको विराटके पिता वेनराजके वंशधर कहलाते हैं। ११७१ ई०के पहले वाछल राजगण रोहिलखण्ड (पूर्व) देवल और देवहा (पिलिभीत नदी) नदीके अन्तर्वर्त्ती प्रदेशका शासन करते थे। कठेरियाओंके अभ्युदय पर वे लोग देवहाके पूर्व भाग गये। मुसलमानोंके उपर्युपरि आक्रमणसे तंग आ कर वे जङ्गलमें जा छिपे और गढ़गाजन तथा गढ़खेरा आदि स्थानोंमें दुर्गस्थापन करके राज्य करने लगे। निगोही नगरमें उनकी राजधानी थी। दिल्लीश्वरने इस नगरमें घेरा डाल कर राजा उद्धरनके १२ पुत्रोंको यमपुर भेज दिया था। आज भी निगोहीमें उनके १२ समाधिस्तम्भ विद्यमान हैं। उनके वंशधर तर्पण सिंह आज भी इस स्थानका जागीर रूपमें भोग करते हैं।

वाछल-राजपूतोंको गोलाचार्य शाखा अपनेको चन्द्रवंशीय वतलाती है। चौहान, राठोर और कच्छवाहोंको ये लोग अपनी कन्या देते हैं। मथुरा, वदाउन, शाहजहानपुर, रोहिलखण्ड और अलीगढ़के निकट आज भी वाछल जमींदारोंका अस्तित्व है। अबुल-फजल गुजरात-प्रदेशमें इस जातिके आधिपत्यकी कथा लिख गये हैं।

बाछा (हिं० पु०) १ गायका बच्चा, बछड़ा। २ लड़का, बच्चा।

बाज़ (अ० पु०) १ सारे संसारमें मिलनेवाला एक प्रसिद्ध शिकारी पक्षी। यह प्रायः चीलसे छोटा पर उससे अधिक भयंकर होता है। उसका रंग मटमैला, पीठ काली और आंखें लाल होती हैं। यह आकाशमें उड़ती हुई छोटी मोटी चिड़ियों या कबूतरों आदिको झपट कर पकड़ लेता है। प्रायः शौकीन लोग इसे दूसरे पक्षियोंका शिकार करनेके लिये पालते भी हैं। इसकी कई जातियां होती हैं। २ एक प्रकारका बगला। ३ तीरमें लगा हुआ पर। (फा०) ४ एक प्रत्यय जो शब्दोंके अन्तमें लगा कर रखने, खेलने, करने या शौक रखनेवाले आदिका अर्थ देता है। जैसे दगाबाज़, नशेबाज़ आदि। (फा० वि०) ५ वञ्चित, रहित। (क्रि० वि०)) ६ विना, वगैर।

बाज (हिं० पु०) १ घोटक, घोड़ा। २ बाद्य, बाजा। ३ सितारके पांच तारोंमेंसे पहला जो पक्के लोहेका होता है। ४ बजानेकी रीति। ५ तानेके सूतोंके बीचमें देनेकी लकड़ी।

बाजड़ा (हिं० पु०) बाजरा देखो।

बाज़दावा (फा० पु०) अपने अधिकारोंका त्याग, अपने दावे या स्वत्वसे बाज आना।

बाजना (हिं० क्रि०) १ बाजे आदिका बजाना। २ प्रसिद्ध होना, कहलाना। ३ लड़ना, भिड़ना। ४ सामने मौजूद हो जाना, जा पहुँचना।

बाजबहादुर—मालवके अधिपति। १५५४ ई०में ये पिता सुजा खांके सिंहासन पर अधिरूढ़ हुए। इनका पूरा नाम मालिक वैयाजिद था। ये मालवके चतुष्पार्श्ववर्त्ती नाना स्थानोंको जीत कर स्वाधीनभावमें राज्यशासन करते थे। सिंहासन पर बैठते समय इन्होंने सुलतान बाजबहादुरका नाम ग्रहण किया। ये रूपमती नामक किसी रमणीके प्रेममें फंस गये थे। यह बात पश्चिम-भारतमें तमाम गाई जाती है। १७ वर्ष राज्य करनेके बाद सम्राट् अकबरने १५७० ई०में उनका राज्य छीन कर अपने राज्यमें मिला लिया। पीछे बाजबहादुर दिल्लीमें अकबरशाहसे मेल कर दो हजार अश्वारोही सेनाके नायक हुए थे। मरने पर उज्जयिनीकी एक पुष्करिणीमें उन दोनोंकी कब्र बनाई गई।

बाजबहादुरचन्द्र—एक हिन्दूराजा, राजचन्द्रके पुत्र, त्रिमल्लचन्द्रके पौत्र और लक्ष्मणचन्द्रके प्रपौत्र। ये स्मृतिकौस्तुभके प्रणेता अनन्तदेवके प्रतिपालक थे।

बाजरा (हिं० पु०) एक प्रकारकी बड़ी घास जिसकी बालोंमें हरे रंगके छोटे छोटे दाने लगते हैं। सारे उत्तरी, पश्चिमी और दक्षिणी भारतमें लोग इसे खाते हैं। अनाज मोटा होता है और इसको खेती बहुत-सी बातोंमें ज्वारकी खेतीसे मिलती जुलती है। यह खरीफकी फसल है और प्रायः ज्वारके कुछ पीछे वर्षाऋतुमें बोई जाती है। जाड़े के आरम्भमें इसकी कटनी होती है। इसके खेतोंमें खाद देने या सिंचाई करनेकी विशेष आवश्यकता नहीं होती। पहले तीन चार बार जमीन जोती जाती है और तब बीज बो देते हैं। एकाध बार निराईकी जरूरत अवश्य पड़ती है। इसके लिये किसी बहुत अच्छी जमीनकी आवश्यकता नहीं होती और यह साधारणसे साधारण जमीनमें भी प्रायः अच्छी तरह होता है। यहां तक, कि राजपूतानेकी बलुई भूमिमें भी यह अधिकतासे होता है। बाजरेके दानोंका आटा पीस कर और उसकी रोटी बना कर खाई जाती है। इसकी रोटी बहुत ही बलपूर्वक और पुष्टिकारक मानी जाती है। कुछ लोग दानोंको यों ही उबाल कर और उसमें नमक मिर्च आदि डाल कर खाते हैं। कहीं कहीं लोग इसे पशुओंके चारेके लिये ही बोते हैं। इसमें बादी, गरम, रूखा, अग्निदीपक, पित्तवर्द्धक, कान्तिजनक, बल वर्द्धक और स्त्रियोंके कामको बढ़ानेवाला माना गया है।

बाजहर (हिं० पु०) जहरमोरा देखो।

बाजा (हिं० पु०) बजानेका यन्त्र, वाद्य। वाद्य देखो।

बाजाब्ता (फा० क्रि० वि०) १ नियमानुसार, जाब्तेके साथ। (वि०) २ जो नियमानुकूल हो, जो जाब्तेके साथ हो।

बाजार (फा० पु०) १ वह स्थान जहां सब तरहकी चीजोंकी अथवा किसी एक ही तरहकी चीजकी बहुत-सी दूकानें हों। २ वह स्थान जहां किसी निश्चित समय, वार, तिथि या अवसर आदि पर सब तरहकी दूकानें लगती हों, हाट, पैंठ।

बाजार—युक्तप्रदेशके सीमान्त प्रदेशके अन्तर्गत एक प्राचीन नगर। यह कालीपाणी नामक नदीके किनारे अवस्थित है। स्वात और सिन्धुनदके मध्यस्थलमें अवस्थित रहनेके कारण इस स्थानने प्राचीन भारतीय वाणिज्यका केन्द्रस्थान अधिकार किया था। काबुल, मध्य-एशिया आदि नाना स्थानोंसे माल यहांके बाजारमें जमा होता था, इसीसे इसका 'बाजार' नाम पड़ा। इसके सन्निहित दन्ताळोक पर्वत पर अनेक बौद्धगुहा-मन्दिरोंका ध्वंसावशेष देखनेमें आता है।

बाजारगांव—मध्यप्रदेशके नागपुर जिलान्तर्गत एक प्रसिद्ध ग्राम। पूर्व कालसे ही बेरार और बम्बई नगरके साथ यहांका विस्तृत वाणिज्य चला आ रहा है। आमदनी और रफ्तनी रेलगाड़ी द्वारा ही होती है। इसके दक्षिण भागके ध्वंस-प्राय दुर्गका नागपुरराज आनोजीके पांच हजारी सेनापति द्वारकोजी नायक शासन करते थे। प्रायः ८५ वर्ष पहले द्वारकोजीने यह दुर्ग बनवाया था।

बाजारी (फा० वि०) १ बाजार-सम्बन्धी, बाजारका। २ साधारण, मामूली। ३ अशिष्ट। ४ मर्यादारहित, बाजारमें इधर उधर फिरनेवाला।

बाजारू (हिं० वि०) बाजारी देखो।

बाजिघोरपड़े—एक महाराष्ट्रीय सामन्त, मुधोलके अधिपति। इन्होंने १६४६ ई०में बीजापुर-सरकारके पिताके प्रति निर्दय व्यवहार किया था। उस कृत पापके प्रायश्चित्तके लिये १६६१ ई०में शिवाजीने स्वयं उनके विरुद्ध यात्रा कर दी। घोर-पड़े पकड़े गये और निहत हुए। उनके आत्मीय और अनुचरवर्गने अपने मालिकका पदानुसरण किया। मुधोल नगर लूट जानेके बाद जला दिया गया।

बाजितपुर—मैमनसिंह जिलेके किशोरगञ्ज उपविभागका एक शहर। यह अक्षा० २४°१३' उ० तथा देशा० ९०°५७' पू०के मध्य अवस्थित है। जनसंख्या दश हजारसे ऊपर है। पहले यहां बहुत बढ़िया मसलिन तैयार होता था जिससे इसकी सुख्याति दूरों फैल गई थी। मसलिन संग्रह करनेके लिये इष्ट-इण्डिया कम्पनीकी यहां एक कोठी (Factory) भी थी।

बाजितपुर—तैरभुक्तके अन्तर्गत एक प्राचीन नगर।

(ब्रह्मख० ४७।१४८-१५५)

बाजिताग्राम—बङ्गालके वीरभूमके अन्तर्गत एक प्राचीन ग्राम। यह मयूराक्षीसे ४ कोस उत्तरमें अवस्थित है।

(देशा० ५३।२४)

बाजिप्रभु—एक महाराष्ट्र-सेनापति। १६६५ ई०में जब मुगलसेना शिवाजीका गर्व खर्व करनेके लिये आगे बढ़ी, उस समय ये मावली और हेटकारी मराठा-सेना ले कर पुरन्धर-दुर्गमें मौजूद थे। मुसलमान-सेनापति मिर्जा राजा जयसिंह और दिलेर खांके पुरन्धरकी ओर बढ़ने पर ये असीम साहससे उसके साथ युद्धमें प्रवृत्त हो गये। कई एक युद्धोंके बाद मुगलसेनाने दुर्गके निम्न देश पर अधिकार जमाया। किन्तु हेटकारी मराठासेना ऊपरसे गोली बरसाने लगी जिससे शत्रुगण भाग जानेको बाध्य हुए। इसी समय मावली-सेना भी मुगलसेना पर टूट पड़ी। अच्छी तरह परास्त हो जाने पर भी मुगल-सेनापतिने फिरसे लड़ाई ठान दी। इसी बीच शिवाजीने कौशलपूर्वक मुगलसेनापति जयसिंहसे सन्धि करके इस युद्धका अवसान किया। इस युद्धमें बाजिप्रभुने वीरोचित साहसका परिचय दिया था।

बाजी (फा० स्त्री०) १ शर्त, दांव, बदान। २ खेलमें प्रत्येक खिलाड़ीके खेलनेका समय जो एक दूसरेके बाद क्रमसे आता है, दांव।

बाजी (हिं० पु०) १ घोड़ा। २ बजनिया।

बाजीगर (फा० पु०) ऐन्द्रजालिक, जादूगर।

बाजीराव (१म)—एक महाराष्ट्र पेशवा, बालाजी राव विश्वनाथके पुत्र। १७४० ई०में इनकी मृत्यु हुई।

विस्तृत विवरण पेशवा शब्दमें देखो।

बाजीरावरघुनाथ (२य)—महाराष्ट्रके नवम पेशवा। १७९५ ई०में सप्तम पेशवा माधवराव नारायणकी अपघात मृत्युके बाद वे महाराष्ट्रपेशवा पद पर अभिषिक्त हुये। किन्तु महाराष्ट्र मन्त्रिसभाके कार्यविपर्ययसे कुछ समय तक उनके कनिष्ठ भ्राता 'चिमनाजी माधोराव'ने पेशवा हो कर महाराष्ट्रका शासन किया था।

चिमनाजी माधवराव देखो।

१७९६ ई०में मंत्रिदलकी प्रार्थनाके अनुसार जब

महाराष्ट्र राजसरकारमें होलकर और शिंदेराजका आधिपत्य विस्तृत हुआ, तब रघुनाथराव गुजरातकी तरफ भागे। इस समय वे अपनी गर्भवती पत्नी आनन्दीवाईको धारदुर्गमें छोड़ गये थे। इसके कुछ दिन बाद अन्तिम महाराष्ट्र पेशवा वाजीराव रघुनाथका जन्म हुआ। ज्यों ज्यों वे बढ़ते गये, त्यों त्यों उनकी समुज्ज्वल रूपज्योति खिलने लगी। जिस प्रकार रूपसे उसी प्रकार गुण मण्डलीसे भी वह बालक विभूषित होने लगा। विनयादि सद्गुणोंने उसके प्रति जनसाधारणको विशेष श्रद्धा उत्पन्न करा दी। जो उसके साथ जरा भी वचनालाप करता, वह उसकी प्रशंसा किये विना नहीं रहता। निविष्टचित्तसे विद्याभ्यासमें रत रहनेसे अल्प दिनों में ही नाना शास्त्रोंमें पारदर्शी हो गये। उनके जमानेमें कोई भी ऐसा ब्राह्मण न था जो शास्त्रविचारमें उनकी बराबरी कर सके। राजवंशोचित अस्त्रशस्त्रविद्यामें भी वे बहुत निपुण थे। उनके समान अश्वारोही और तीरन्दाज महाराष्ट्र देशमें विरला ही था।

बालककी ऐसी प्रतिभाशक्ति देख उसे भविष्यमें आशङ्काका कारण समझ कर महाराष्ट्रसचिव नाना फड़नवीसने उसे तथा उसके भाइयोंको १७९३ ई०में पूववास कोपर गाँवसे शिवनेरीके पार्वत्य दुर्गमें कैद रखा। पश्चात् १७९४ ई०में जूनारके किलेमें नजरबंद किया। रघुपंत घोरपड़े और बलवतराव नागनाथ उनकी अभिभावकतामें नियुक्त किये गये। इसके पहले नानाने निजप्रभावको अक्षुण्ण रखनेके लिये माधोरावको भी बंदी किया था। वाजीरावके अनुनय-विनयसे संतुष्ट हो बलवंतराव रक्षकने उनके पत्रको माधोरावके हाथमें समर्पण किया। एक दूसरेके प्रति आकृष्ट हुए। वाजीरावके प्रति माधोरावका अत्यन्त स्नेह देख नानाने उन दोनोंको अलग अलग कर दिया। वे बलवंत रावको भी शृङ्खलाबद्ध करनेमें बाज नहीं आये। दिनों दिन माधोरावके प्रति नानाफड़नवीसका अत्याचार बढ़ने लगा। हताश हो माधोरावने आत्महत्या की। यह संवाद पा नानाफड़नवीस परशुराम भाऊ, रघुजी भोंसले, दौलतराव शिंदे और तुकाजी होल्करको बुला उनसे परामर्श करने लगे। स्थिर हुआ, कि वाजीरावके सिंहासन पर बैठानेसे महाराष्ट्र राज्यमें अङ्गरेजोंका आधिपत्य बढ़ेगा। अतएव उसे राज्य न दे माधोरावकी विधवा पत्नी यशोदावाईको दत्तकपुत्र ग्रहण करा उसे ही राज्य देना चाहिये। वाजीरावने इस गूढ़ अभिप्रायको समझ सिंदियाको अपने हाथ कर लिया। नाना फड़नवीस और परशुरामके मोहमंत्रसे मुग्ध हो वाजीराव निश्चिन्त रहे। इधर शिंदेके मंत्री बल्लभभट्ट और शिंदेराज कार्यक्षेत्रमें उपस्थित हो कुछ अप्रतिभ और अपमानित हुये। पूनामें आ वाजीराव और सिंदियाका मिलन होने पर भी महामन्त्री बल्लभने उनके कृत दुष्कर्मके प्रायश्चित्त स्वरूप उनके कनिष्ठ भ्राता चिमनाजी माधोरावको १७९६ ई०की २६वीं मईको पूनामें बुला कर पेशवा पद पर अभिषिक्त किया। इसी समय परशुराम बल्लभकी सहायतासे नानाके उच्छेद साधनमें प्रयासी हुये। परशुराम और नानाफडनवीस देखो।

नाना दूसरा उपाय न देख पुनः वाजीरावको अपने दलमें लानेकी चेष्टा करने लगे। अब तक उन्होंने जो बहु परिश्रमसे धन संचित किया था उससे कितना ही अंश पेशवा और सिंदिया-सैन्यका अपनी तरफ मिलाया। पेशवा-सेनापति बाबा राव फड़के परशुरामके विरुद्ध अग्रसर हुए। तुकोजी होलकर और सखाराम घाटगेने उनकी सहायताके लिये वचन दिया। अन्तमें वाजीरावको हस्तगत कर उन्होंने शिंदेराजको राज्यका लोभ दिखा अपने वशीभूत किया। उसके साथ साथ निजाममन्त्री मासीर उलमुल्क और स्वयं निजामको खुर्दा-युद्धमें अधिकृत निजाम-राज्य छोड़नेको प्रतिज्ञाबद्ध हुये। वाजीराव और बाबाराव शिंदे-मंत्री बल्लभके आगमनसे संदेहचित्त हो सैन्यसंग्रह करने लगे। बल्लभ ससैन्य आ वाजीरावको सम्पूर्ण षड़यंत्रका मूल जान उन्हें चारों ओरसे घेर लिया और सखाराम घाटगेके तत्त्वावधानमें उत्तर-भारतकी तरफ चालान कर दिया। पथमें जाते जाते उन्होंने घाटगेको अर्थलोभसे वशीभूत कर लिया। वे कुछ दिन तक निकटमें ही रहे। इधर नानाकी कूटमंत्रणासे बल्लभ और परशुराम दोनों ही पकड़े गये। वाजीराव भी भीमातीरवर्ती कोरेगांव नगरमें रहने लगे।

नानाने वाजीरावके समीप उपस्थित हो उनसे एक प्रतिज्ञापत्र पर हस्ताक्षर करा लिये, कि ये पेशवा पद पर अधिष्ठित हो नाना-फड़नवीस पर किसी प्रकारका अत्याचार न करेंगे। ११९६ ई०की २५वीं नवम्बर-को सब लोगोंकी सम्मतिसे ये पेशवा पद पर अधिष्ठित हुये।

वाजीरावके सिंहासन पर बैठनेके बाद १७६७ ई०में फिरसे राज्यविप्लवके चिह्न दिखाई देने लगे। उसी साल पूना नगरमें पेशवाकी अरबो और देशी सिपाहियोंके बीच एक खंडयुद्ध छिड़ गया। उत्तरोत्तर अंतर्विप्लवसे राज्यमें घोर विश्रृङ्खलता उपस्थित हुई। वाजीरावके परामर्शानुसार घाटगेने नानाके घर और अनुचरवर्गोंको लूटा। नाना अपने परिवार सहित कैद कर लिये गये। वाजीरावने अपने सौतेले भाई अमृतरावको सचिव-पद तथा वालाजीपंत पटवर्धनको सेनापति पद दे शिंदेराजको मंत्रिपदसे हटानेका विचार किया; किन्तु शिंदेराजने उनके कहे मुताबिक दो करोड़ रुपये मांगे। राज्यकोषके खाली पड़ जानेसे वे यथासमय रुपये न दे सके। अतः उन्होंने घाटगेको पूना नगर लूट कर अर्थसंग्रह करनेका आदेश दिया। पहले राजगृहमें वंदी कर पूनाके आत्मीयवर्ग-को निर्यातन क्लेश उठाना पड़ा। फिर महाजन, धनी व्यक्तिमात्रको कठोर अत्याचार और दारुण यंत्रणा भोगनी पड़ी थी। इस कार्यके लिये वाजीरावने प्रकाश्य रूपसे शिंदेका तिरस्कार किया। १७६८ ई०में महादजी शिंदेकी विधवा-पत्नीको अमृतरावने आश्रय दिया। ऐसे ही समयमें आ कर घाटगेने अमृतरावकी छावनी पर आक्रमण कर दिया। क्रमशः दोनों पक्षमें घोर युद्ध होनेकी आशङ्का होने लगी।

शिंदेने वाजीरावको भय दिखानेके लिये नानाको अक्षय नगरके दुर्गसे मुक्त कर दिया। वाजीराव पहले हीसे नानाके षड़यन्त्रसे डरते थे। अब कारागारसे छुटकारा मिलने पर वे और दंग रह गये। अतः उन्होने सिंधियाके साथ मित्रता कर और जिससे नाना पक्षीय अंगरेजोंकी सेना फिर प्रवेश न कर सके उसके प्रतिविधानकी वे चेष्टा करने लगे। इधर ये गुप्तचर भेज नानाको स्वयं बुला उन्हें मित्र-पद पर अभिषिक्त कर निश्चिन्त हुये।

१७६८ ई०में घाटगेके हाथसे अमृतराव पराजित हुये। महादजीकी तीन पत्नियोंने कोल्हापुर-राज्यमें जा आश्रय लिया, वल्लभभट्ट प्रभृति ब्राह्मणोंने उनका पक्ष अवलम्बन किया। पेशवाने फिर शिंदेके साथ मिल कर १८०० ई०में कोल्हापुर पतिका दमन किया था। किन्तु पूनामें विभ्राट्के उपस्थित हो जानेसे वे कोल्हापुर राज्यको जय न कर सके। इसी समय नाना फड़नवीसकी मृत्यु हुई। वाजीराव सिंदियाके हाथमें कठपुतलीकी तरह रहने लगे। यशवंतराव होलकर मालवाके विजयसे उत्साहित हो क्रमशः अग्रसर होने लगे। उसका दमन करनेके लिये शिंदे पूनासे रवाना हुए। अवसर पा वाजीराव पूना-वासियों पर यथेच्छा व्यवहार करने लगे। घाटगेको प्रति-शोध देनेमें अपनेको असमर्थ जान उन्होंने जशोवंतके साथ मेल कर लिया। उनके हाथसे शिंदेसैन्य विध्वस्त होती जाती थी। उन्होंने जो पेशवाराज्यको लूटा था, उससे वाजीराव असंतुष्ट हो उनका दमन करने अग्रसर हुये। किन्तु १८०२ ई० में शिंदे और पेशवाकी मिलित सेना यशवंतसे अच्छी तरह परास्त हुई। पूनामें विजय-घोषणा कर यशोवंतने पेशवा परिवारके प्रति सदय व्यव-हार किया। विशेष चेष्टा करने पर भी वे फिर वाजीरावको लौटा न सके। आखिर वे अमृतरावको पेशवा पद देने राजी हुये। वाजीरावके अङ्गरेजोंके साथ मिलने पर विशेष इच्छा नहीं रहते हुए भी अमृतराव पेशवा-पद पर बैठे। १८०२ ई०में वसईको संधिके अनुसार अंगरेजी सेनापति वेलेस्लीने होलकर दस्युगणको परास्त कर १८०३ ई० की १३वीं मईको पेशवा पद पर अधिष्ठित किया।

शिंदे, होलकर और पिंडारियोंके पुनः पुनः लुण्ठन और १८०३ ई०की अनावृष्टिसे दक्षिणमें दारुण अकाल पड़ा। साथ साथ महामारी भी उपस्थित हुई। इसी समय वाजीराव शिंदे और रघुजी भोंसलेके साथ मिल अङ्ग-रेजोंका प्रभाव रोकनेके लिये कटिवद्ध हुये। १८०३ ई०में अहमदनगर दुर्ग और असै-युद्धमें विजय हो अंग्रेज दाक्षिणात्यके कर्त्ताधर्त्ता हो गये थे। इस समयसे ले कर वाजीरावके पुनः अभ्युत्थान पर्यंत महाराष्ट्र-राज्यमें और कोई नवीन घटना नहीं घटी, सिर्फ दस्यु-उपद्रव और

विद्रोही सेनादलका उपद्रवमात्र होता रहा था।

१८१२ ई० में एलफिंष्टनके अधिष्ठान समयसे वाजीरावने अपनी सेनाको अंग्रेजी प्रथानुसार शिक्षा देना आरम्भ कर दिया। १८१३ ई०में राजप्रतिनिधि खुशरूजीके कर्णाटकका सूवेदार होने पर सदाशिव माणिकेश्वर जलने लगे और उन्होंने मि० एलफिंष्टनके निकट उनकी चुगली खाई। अतः उनकी सलाहसे खुशरूजी फिर प्रतिनिधि वननेके लिये राजी हुये और त्रिम्वकजी-देङ्गलिया कर्णाटकके शासनकर्त्ता वन कर आये। त्रिम्वकजी अंगरेजोंकी चलती पर जल कर वाजीरावको उनके विरुद्ध उसकाने लगे, पर उससे कोई फल न निकला। इधर त्रिम्वकजीके अत्याचारसे राज्य चौपट लग गया। पूनाके अदालतमें जो ज्यादा घूस देता उसीकी जय होती थी।

१८१५ ई०में पेशवा, शिंदे, होलकर, भोंसले और पिंडारी सरदारोंके पास समाचार भेज उन्हें अंग्रेजोंके विरुद्ध लड़नेकी सलाह देने लगे। त्रिम्वकजीकी प्ररोचनासे उन्होंने अंग्रेज-कर्मचारी एलफिंष्टनको निजाम और गायकवाड़राजके प्रतिपत्ति-लाभकी कथा जताई। उस समय गायकवाड़के दूत गङ्गाधर शास्त्री पूनामें थे। उनको अपने पक्षमें लानेकी त्रिम्वकजी तथा वाजीरावने विशेष चेष्टा की। किन्तु कुछ भी फल न देख उन्होंने शठतासे गङ्गाधरको पण्ढरपुरके विठोवा मंदिरमें ले जा कर मार डाला। इसी सववसे अंग्रेजी राज्य और गोपालराव मैराल त्रिम्वकजो पर संदेह करने लगे। त्रिम्वकको अंगरेजोंके हाथ समर्पण करनेके लिये वाजीरावसे अनुरोध किया गया। वाजीरावने स्वयं त्रिम्वकको अवरुद्ध कर रखा। त्रिम्वकको अर्पित हुए न देख अङ्गरेजी-सेना पूनाकी तरफ अग्रसर हुई। वाजीरावने किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो कर त्रिम्वकजीको अङ्गरेजोंके हाथ सौंप दिया। गङ्गाधरकी हत्यामें वड़ोदाके राजमन्त्री सीतारामने सहायता दी थी, वे भी वाजीरावके पक्षमें आ कर सेनासंग्रह करते थे। उसी वर्ष त्रिम्वकजी थान दुर्गसे अहमद नगरके पर्वतप्रदेशको भाग गये।

त्रिम्वकजीके समर्पित होने पर सदाशिव भाऊ मानकेश्वर, मोरोदीक्षित और चिमनाजीनारायण वाजीरावके प्रधान परामर्शदाता थे। १८१६ ई०में उन्होंने ऊपरसे अङ्गरेजोंसे मित्रता दिखायी, पर भीतर ही भीतर वे शिंदे, होलकर, नागपुर और पिंडारियोंके साथ मिल अंग्रेजोंको परास्त करनेके लिये कोशिश करते थे। त्रिम्वकजीको अर्थसे सहायता कर उन्होंने भील, कोल रमसी और मङ्ग आदि पार्वत्य जातियोंको अङ्गरेजोंके विरुद्ध लड़नेके लिये उभाड़ा। एलफिंष्टनने यह समाचार पा पेशवासे कैफियत मांगी पेशवाने इसका उत्तर देनेके लिये अपनी सेना भेज दी। एलफिंष्टनने इससे सन्तुष्ट न हो पेशवासे कहा, 'आप त्रिम्वकको हमारे हाथ सौंप दें, जव तक नहीं सौंपेंगे तव तक सिंहगढ़, पुरंधर और रायगढ़ दुर्ग अंग्रेजोंके अधिकारमें रहेंगे। यदि आप उक्त तीनों दुर्ग वंधनस्वरूप रखनेको राजी न होंगे, तो अंग्रेजराज्य पूनाकी राजधानी पर हमला करनेको वाध्य होगा।' तीनों दुर्ग अंग्रेजोंके हाथ लगे सही परन्तु उनमें एक भी सेना न वच रही थी। १८१३ ई०में पूनाकी संधिके अनुसार पेशवा नर्मदाके उत्तर और तुङ्गभद्राके दक्षिणवर्त्ती भूभाग पर अधिकार छोड़ देनेको वाध्य हुये। पूनाको संधि समाप्त होने पर वे पूना नगरीका परित्याग कर पण्ढरपुरमें तीर्थयात्राके लिये चल दिये। उसी वर्ष किर्किरी-युद्धमें पराजित हो पेशवा सिताराकी तरफ भागे। किन्तु अङ्गरेज-सेनाने उनका पीछा किया जिससे उनको अनेक जगह पर्यटन करने पर ससैन्य पूनाकी तरफ वढ़ना पड़ा। १८१८ ई०की ४थीं जनवरीमें अंग्रेजोंसे फिर परास्त हो वे शोलापुरको नौ दो ग्यारह हुए। किन्तु आत्मरक्षामें असमर्थ हो उन्होंने आसीरगढ़के निकटवर्त्ती ढोलकोट नगरमें अंग्रेज सेनापति जनरल सर जनमेकके हाथ आत्मसमर्पण किया। उक्त वर्षकी ३री जूनको अंग्रेजोंने ८ लाख रुपये मासिक वेतन मुकर्रर कर कानपुरके पास विठुर नगरमें उनके रहनेके लिये स्थान निश्चित कर दिया। सिपाही विद्रोहके प्रधान नेता धुंधुपंत (नाना साहव) इन्हींके दत्तक पुत्र थे। १८५२ ई०में विठुर नगरमें वाजीरावकी मृत्यु हुई।

वाजु (फा० अव्य०) १ विना, वगैर। २ अतिरिक्त, सिवा।

वाजू (फा० पु०) १ भुजा, वाहु। २ एक प्रकारका गोदना

जो बांह पर गोदा जाता है। इसका आकार वाजूवंद-सा होता है। ३ वह जो हर काममें बराबर साथ रहे और सहायता दे। ४ वाजूवंद नामका गहना जो बांह पर पहना जाता है। ५ पक्षीका डैना। ६ सेनाका किसी ओरका एक पक्ष।

वाजूवंद (फा० पु०) एक प्रकारका गहना जो बांह पर पहना जाता है। यह कई तरहका होता है। इसमें बहुधा बीचमें एक बड़ा चौकोर नग वा पटरी होती है। इसके आगे पीछे छोटे छोटे और नग या पटरियां होती हैं जो सबकी सब तागे या रेशममें पिरोई रहती हैं।

वाझना (हिं० क्रि०) वझना देखो।

वाट (हिं० पु०) १ मार्ग, रास्ता। २ पत्थर आदिका वह टुकड़ा जो चीजें तौलनेके काममें आता है, बटखरा। ३ पत्थरका वह टुकड़ा जिससे सिल पर कोई चीज पीसी जाय। (स्त्री०) ४ वाटनेका भाव, वटन, वल।

वाटना (हिं० क्रि०) सिल पर वट्टे आदिसे पीसना, चूर्ण करना।

वाटली (हिं० स्त्री०) जहाजके पालमें उपरकी ओर लगा हुआ वह रस्सा जो मस्तूलके ऊपरसे हो कर फिर नीचेकी ओर आता है। इसीको खींच कर पाल ताना जाता है।

वाटिका (सं० स्त्री०) वाग, तुलसी। २ गद्यकाव्यका एक भेद।

वाटी (हिं० स्त्री०) १ गोली, पिंड। २ अंगारों या उपलों आदि पर सेंकी हुई एक प्रकारकी गोली या पेड़ेके आकारकी रोटी, लिट्टी।

वाड़—१ पटना जिलेके अन्तगत एक उपविभाग। भूपरिमाण ५२६ वर्गमील है। फतवा, वाड़ और मुकामा थाना इसके अन्तर्भुक्त हैं।

२ उक्त जिलेका एक नगर। यह अक्षा० २५°२६'१०" उ० तथा देशा० ८५° ४५' १२" पू० गङ्गाके किनारे अवस्थित है। यहां इष्ट-इण्डिया रेलपथका एक स्टेशन है।

वाड़—युक्तप्रदेशके इलाहाबाद जिलेकी तहसील। यह अक्षा० २५° २' से २५° २२' उ० तथा देशा० ८१° ३१' से ८१° ४६' पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण २५३ वर्गमील और जनसंख्या ५५ हजारसे ऊपर है। इसमें २३७ ग्राम लगते हैं, शहर एक भी नहीं है। यहांकी प्रधान उपज धान है।

वाड़—युक्तप्रदेशके गाजीपुर जिलान्तर्गत एक शहर। यह अक्षा० २५° ३१' उ० तथा देशा० ८३° ५२' पू० गाजीपुर शहरसे १८ मील दक्षिण-पूर्वमें अवस्थित है। जनसंख्या पांच हजारसे ऊपर है। इसके पास ही १५३६ ई०में हिमायूं और शेरशाहमें युद्ध हुआ था जिसमें हिमायूंकी हार हुई थी। शहरमें बहुतसे प्राचीन मन्दिर और दो स्कूल हैं।

वाड्किन (अं० पु०) १ एक प्रकारका सूआ जो छापेखानेमें काम आता है। इसमें पीछेकी ओर लकड़ीका दस्ता लगा रहता है। इससे कम्पोजीटर लोग कंपोज किये हुए मैटरमेंसे गलतीसे लगा हुआ अक्षर निकालते और उसकी जगह दूसरा अक्षर वैठाते हैं। २ दफ्तरीखानेमें काम आनेवाला एक प्रकारका सूआ। इसका पिछला सिरा बहुत मोटा होता है। यह किताबों आदिमें ठोंक कर छेद करनेके काममें आता है।

वाड़व (सं० क्ली०) वड़वानां समूहः वड़वा (खण्डिकादिभ्यश्च। पा ४।२।४५) इत्यञ्। १ वड़वा-समूह, घोड़ियोंका झुण्ड। २ ब्राह्मण। ३ वड़वानल, वड़वाग्नि। (त्रि०) वड़वया इदं वड़वा-अण्। ४ वड़वासम्बन्धी।

वाड़वाग्नि (सं० पु०) वड़वा समुद्रस्था घोटकी तत्सम्बन्ध्यग्निः। वड़वानल।

वाड़वाग्र्य (सं० पु०) वाड़वेषु ब्राह्मणेषु आग्र्यः श्रेष्ठः। ब्राह्मणश्रेष्ठ।

वाड़वेय (सं० पु०) वड़वाया घोटकरूपधारिण्याः सूर्यपत्न्या अपत्ये पुमांसौ वड़वा-ढक्। अश्विनीकुमारद्वय। यह शब्द द्विवचनान्त है।

वाड़व्य (सं० क्ली०) वाड़वानां ब्राह्मणानां समूहः वाड़व (ब्राह्मणमाणववाडवाद्यत्। पा ४।२।४२) इति यत्। ब्राह्मणसमूह।

वाड़स (सं० पु०) मत्स्य, मछली।

वाड़ा (हिं० पु०) १ चारों ओरसे घिरा हुआ कुछ विस्तृत खाली स्थान। २ वह स्थान जिसमें पशु रहते हैं, पशुशाला।

वाड़ा—मध्यप्रदेशके नरसिंहपुर जिलान्तर्गत एक नगर।

पिण्डारी-सरदार चीतूने इस स्थानका जागीर रूपमें भोग किया था। यहां ईखकी विस्तृत खेती होती है। सूती कपड़े बना कर बेचना और छिन्दवाड़ा राज्यकी वन्य-भूमिसे काष्ठ और रङ्गका वाणिज्य करना यहांके अधिवासियोंकी प्रधान उपजीविका है।

वाड़िस (अं० स्त्री०) स्त्रियोंके पहननेकी एक प्रकारकी अंगरेजी ढंगकी कुरती।

वाड़िङ्गन (सं० पु०) वाड़ प्लावनं तस्मै इङ्गते इति वाड़् इङ्ग-ल्यु। वार्त्ताकू।

वाड़ी—हजारीवाग जिलेके अन्तर्गत एक नगर। यह ग्राण्ड-ट्राङ्क रोड नामक पथके एक ओर अवस्थित है।

वाड़ी—अयोध्या प्रदेशके सीतापुर जिलेकी एक तहसील। भूपरिमाण १२५ वर्गमील है। पहले यहां कच्छ और अहीर जातिका वास था। १४वीं शताब्दी तक यह स्थान उन्हींके अधिकारमें रहा। पीछे मुसलमान धर्मावलम्बी प्रतापसिंह नामक किसी हिन्दूने दिल्लीके तुगलक सम्राट्के फरमानके अनुसार यह स्थान दखल किया। उनके वंशधरगण आज भी चौधरी कहलाते हैं। फिलहाल यहांके अनेक स्थान वैश नामक राजपूतोंके अधिकारमें हैं।

वाड़ी (हिं० स्त्री०) वाटिका, वारी, फुलवारी।

वाड़ीगार्ड (अं० पु०) १ किसी राजा या बहुत बड़े राजकर्मचारीके साथ रहनेवाले उन थोड़ेसे सैनिकोंका समूह जिनका काम उसके शरीरकी रक्षा करना होता है। २ इन सैनिकोंमेंसे कोई एक सैनिक।

वाड़ीर (सं० पु०) भृत्य, नौकर।

वाढ़ (सं० क्ली०) १ सत्य। २ प्रतिज्ञा। ३ अधिकता, वृद्धि।

वाढ़ (हिं० स्त्री०) १ बढ़नेकी क्रिया या भाव, बढ़ाव। २ अधिक वर्षा आदिके कारण नदी या जलाशयके जलका बहुत तेजीके साथ और बहुत अधिक मानमें बहना। ३ वन्दूक या तोप आदिका लगातार छूटना। ४ वह धन जो व्यापार आदिमें बढ़े, व्यापार आदिसे होनेवाला लाभ। ५ तलवार, छुरी आदि शस्त्रोंकी धार, सान।

वाढ़कढ़ (हिं स्त्री०) १ तलवार। २ खड्ग।

वाढ़सत्वन् (सं० त्रि०) निःशङ्कगामी, अशङ्कित गमन।

वाढ़ी (हिं० स्त्री०) १ वाढ़, वढ़ाव। २ अधिकता, वृद्धि। ३ वह व्याज जो किसीको अन्न उधार देने पर मिलता है। ४ लाभ, नफा।

वाढ़ीवान (हिं० पु०) वह जो छुरी, कैंची आदिकी धार तेज करता हो।

वाण (सं० पु०) वणनं वाणः शब्दस्तदस्यास्तीति वाण-अच्। १ अस्त्रविशेष, तीर, सायक। प्राचीनकालमें प्रायः सारे संसारमें इस अस्त्रका प्रयोग होता था और अब भी अनेक स्थानोंके जंगली तथा अशिक्षित लोग अपने शत्रुओंका संहार या आखेट आदि करनेमें इसीका व्यवहार करते हैं। यह प्रायः लकड़ी या नरसलकी डेढ़ हाथकी छड़ होती है जिसके सिरे पर पैना लोहा, हड्डी, चकमक आदि लगा रहता है जिसे फल या गांसी कहते हैं। यह फल कई प्रकारका होता है, कोई लम्बा, कोई अर्द्धचन्द्राकार और कोई गोल। लोहेका फल कभी कभी जहरमें बुझा भी लिया जाता है जिससे आहतकी मृत्यु प्रायः निश्चित हो जाती है। कहीं कहीं इसके पिछले भागमें पर आदि भी बांध देते हैं जिससे यह सीधा और तेजीके साथ जाता है। धनुर्वेद देखो।

२ गोस्तन, गायका थन। ३ केवल। ४ अग्नि, आग। ५ काण्डावयव, शरका अगला भाग। ६ नीलझिण्टी, नीली कटसरैया। ७ भद्रमुञ्ज तृण, सरपत, रामसर। ८ लक्ष्य, निशाना। ९ पांचकी संख्या। कामदेवके पांच वाण माने हैं इसीसे वाणसे ५ की संख्याका बोध होता है। १० इक्ष्वाकुवंशीय विकुक्षिके पुत्रका नाम। ११ कादम्बरी-प्रणेता एक प्रसिद्ध कवि। वाणभट्ट देखो। १२ राजा वलिके सौ पुत्रोंमेंसे सबसे बड़े पुत्रका नाम। भागवतमें इसका विषय यों है—

महाराज वलिके सौ पुत्र थे, जिनमेंसे बड़ेका नाम वाण था। वाण सर्वगुणसम्पन्न और सहस्रवाहु थे। इन्होंने हजारों वर्ष तपस्या कर शिवसे वरप्राप्त किया था। पातालस्थ शोणपुरीमें इनकी राजधानी थी। महादेवके अनुग्रहसे देवगण इनके किङ्कर सदृश थे। युद्धस्थलमें महादेव स्वयं आ कर इनकी रक्षा करते थे। वाणके ऊषा नाम्नी एक कन्या थी। ऊषा प्रति रातको एक कमनीयकान्ति पुरुष स्वप्नमें देखती थी। क्रमशः

स्वप्नदृष्ट पुरुषके लिये नितान्त व्याकुल हो उसने सखी चित्रलेखाके समीप अपना अभिप्राय प्रकट किया। चित्र-लेखा उस पुरुषको श्रीकृष्णका पौत्र जान कर योगबलसे आकाश मार्ग होती हुई द्वारका पहुँची और वहांसे अनिरुद्धको हरण कर ऊषाके निकट ले आई। अनिरुद्ध कुछ दिन तक गुप्तभावसे वहीं रहे। पीछे वाणको मालूम होने पर उन्होंने अनिरुद्धको कैद कर रखा।

इधर चार वर्ष तक जब अनिरुद्धका कहीं पता न चला, तब एक दिन नारद श्रीकृष्णके यहां गये और कुल बातें कह सुनाईं। 'अनिरुद्ध वाणके निकट आवद्ध है' नारदके मुखसे यह संवाद पा कर श्रीकृष्ण आगबबूले हो गये और उसी समय उन्होंने वाण-पुरीकी यात्रा कर दी। यहां पहुँच कर श्रीकृष्णने वाणके साथ युद्ध ठान दिया। इस युद्धमें महादेव स्वयं आ कर श्रीकृष्णसे लड़े थे। युद्धमें श्रीकृष्णने जब वाणकी सब भुजाएँ काट डालीं, तब शिवजी श्रीकृष्णका स्तव करने लगे। स्तवसे श्रीकृष्णने युद्ध बंद कर दिया। इस समय वाणकी केवल चार भुजाएँ बच रही थीं। वाणने ऊषा समेत अनिरुद्धको श्रीकृष्णके हाथ प्रत्यर्पण किया। श्रीकृष्ण बड़ी धूमधामसे पुत्र और पुत्रवधूको द्वारका ले आये। (भागवत ६२-६४ अ०) हरिवंशमें १७२वें अध्यायसे आरम्भ करके इसका विस्तृत विवरण लिखा है। विस्तार हो जानेके भयसे यहां उसका उल्लेख नहीं किया गया।

वाणगङ्गा (सं० स्त्री०) वाणेन प्रकटिता गङ्गा नदीविशेषः। हिमालयके सोमेश्वर गिरिसे निःसृत एक प्रसिद्ध नदी। कहते हैं, कि यह रावणके वाण चलानेसे निकली थी इसीसे इसका यह नाम पड़ा। इसमें स्नान करनेसे सभी पाप दूर होते हैं। यहां वाणेश्वर नामका एक लिङ्ग है जिनके दर्शन करनेसे भी अशेष पुण्यलाभ होता है।

वाणदण्ड (सं० पु०) वाणस्य दण्डः। बाधादण्ड। इसका पर्याय वेमा है।

वाणधि (सं० पु०) वाणा धीयन्तेऽस्मिन् धा-आधारे-कि। इषुधि, तूण, तरकश।

वाणनाशा (सं० स्त्री०) नदीभेद।

वाणपञ्चानन (सं० पु०) एक ग्रन्थकार।

वाणपति (सं० पु०) वाणासुरके स्वामी, महादेव।

वाणपत्र (सं० स्त्री०) कङ्कपक्षी।

वाणपथ (सं० पु०) शरमार्ग, उतनी दूर जहां तक वाण जा कर गिरे।

वाणपात (सं० पु०) शरनिक्षेप।

वाणपुङ्खा (सं० स्त्री०) वाणस्य पुङ्खा। शरपुङ्खा।

वाणपुर (सं० क्ली०) वाणस्य राज्ञः पुरम् नगरम्। वाण-राजनगर। पर्याय—देवीकोट, कोटीवर्ष, ऊषावन, शोणितपुर, आग्नेय, उमावन, कोट्टवीपुर।

वाणभट्ट—एक प्रसिद्ध कवि। ये कन्नौजके अधिपति श्रीहर्षवर्द्धनके सभापण्डित थे। इन्होंने अपने बनाये हुए 'हर्षचरित' नामक ग्रन्थमें अपने जीवनकी कुछ घटनाओंका उल्लेख किया है। ये शोणतीरवासी सारस्वतवंशी ब्राह्मण थे। बचपनमें ही पिता माताके वियोग होनेके कारण ये उच्छृङ्खल प्रकृतिके हो गये थे। नागरिकोंके साथ रहनेके कारण इनके आचारमें सन्देह किया जा सकता है जो नितान्त निर्मूल भी नहीं है। यद्यपि दुर्व्यसनोंमें फंस जानेके कारण इनका अध्ययन छूट गया, तथापि इस समयके नागरिकोंके समान ये भारतके नागरिक नहीं थे। वाणभट्ट यद्यपि उच्छृङ्खल प्रकृतिके हो गये थे तथापि उनका चरित्र नीच नहीं हुआ। वाणभट्टका मन जब अपने साथियोंसे ऊब गया, तब वे उनका परित्याग कर श्रीहर्षवर्द्धनकी सभामें उपस्थित हुए। विद्याव्यसनी राजाने इनको उचित आश्रय दिया।

इन्होंने 'हर्षचरित' 'कादम्बरीका पूर्वभाग' 'चण्डिकाशतक' और 'पार्वतीपरिणय' नामक ग्रन्थ बनाये हैं। अनेक विद्वानोंका मत है, कि पार्वती-परिणयके कर्त्ता ये वाणभट्ट नहीं हैं। हर्षचरित और कादम्बरी ये दोनों गद्यकाव्य हैं। चण्डिकाशतकमें सौ श्लोकोंसे भगवतीकी स्तुति की गई है। पार्वतीपरिणय नाटक है। कहते हैं, कि इन ग्रन्थोंके अतिरिक्त पद्य कादम्बरी भी वाणभट्टने बनाई थी परन्तु वह ग्रन्थ अभी तक न तो कहीं प्रकाशित हुआ है और न उसका कहीं पता ही लगा है।

ऊपर कहा गया है, कि वाणभट्ट हर्षदेवके सभा

पण्डित थे। काव्यप्रकाशके टीकाकार पण्डितोंने वाणभट्ट और हर्षदेवके सम्बन्धमें एक विलक्षण झमेला डाल दिया है। काव्यप्रकाशकी वृत्तिमें एक स्थान पर लिखा है "श्रीहर्षादेर्धावकादीनामिव धनम्" अर्थात् श्रीहर्षसे जिस प्रकार धावक आदिको धन प्राप्त हुआ था। काव्यप्रकाशके टीकाकार महेश्वर इसका अर्थ इस प्रकार करते हैं—"श्रीहर्षो राजा, धावकेन रत्नावलीं नाटिकां तन्नाम्ना कृत्वा वहुधनं लब्धम्" काव्यप्रकाशकी टीकामें वैद्यनाथने लिखा है—"श्रीहर्षाख्यस्य राज्ञो नाम्ना रत्नावली-नाटिकां कृत्वा धावकाख्यः कविर्वहुधनं लेभे' दूसरे टीकाकारोंने भी इसी प्रकारका अपना मत प्रकाशित किया है। काव्यप्रकाशके टीकाकार प्रसिद्ध विद्वानोंने जो लिखा है उसको माननेके पहिले कुछ विचार करना आवश्यक है। कालिदास-रचित मालविकाग्निमित्र नामक नाटककी प्रस्तावनामें लिखा है—"प्रथितयशसां धावकसौमिल्लक विपुत्रादीनां प्रवन्धानतिक्रम्य वर्त्तमानकवेः कालिदासस्य कृतौ किं कृतो वहुमानः।" अर्थात् प्रसिद्ध विद्वान धावक सौमिल्ल कविपुत्र आदिके वनाये नाटकोंके रहते हुए भी वर्त्तमान कवि कालिदासके नाटकका इतना आदर क्यों किया जाता है। इससे दो वातोंका पता लगता है, एक तो यह कि धावक एक प्रसिद्ध नाटक-लेखक थे और कालिदाससे प्राचीन थे। अतः ७वीं सदीके हर्षदेवके नामसे कालिदाससे भी प्राचीन धावक कविने रत्नावली नामकी नाटिका वनायी हो, यह किसी प्रकार युक्तिसंगत नहीं समझा जा सकता। इसकी मीमांसामें केवल दो ही उत्तर पर्याप्त हैं। एक तो यह, कि मालविकाग्निमित्रके रचयिता कालिदास रघुवंशके रचयिता कालिदाससे भिन्न हैं। क्योंकि रघुवंशप्रणेता कालिदास विनयी थे और मालविकाग्निमित्रप्रणेता कालिदास उद्धत।

वाणभट्ट ७वीं शताब्दीमें विद्यमान थे। कहा जाता है, कि युएनचुवंगके भारत आनेके समय वाणभट्ट वर्त्तमान थे। सूर्यशतककर्त्ता मयूरभट्ट वाणके जामाता और जैन पण्डित मानतुङ्गाचार्य इनके मित्र थे। ये तीनों ही हर्षवर्द्धनके सभा-पण्डित थे।

वाणयुद्ध (सं० क्ली०) वाणेन सह युद्धं। वाणराजके साथ श्रीकृष्णका संग्राम। वाण देखो।

वाणविद्या (सं० स्त्री०) वह विद्या जिससे वाण चलाना आवे, तीरंदाजी।

वाणलिङ्ग (सं० क्ली०) वाणार्चनाथ कृतं लिङ्गं। नर्मदादि नदीजात शिवलिङ्गविशेष।

नर्मदा नदीमें जो शिवलिङ्ग पाया जाता है वही वाणलिंग है। यह वाणलिंग सव लिङ्गोंकी अपेक्षा श्रेष्ठ है। शिवलिङ्ग-पूजनमें कोमललिङ्गके मध्य मृल्लिङ्ग और कठिन लिङ्गके मध्य वाणलिंग ही सर्वोत्कृष्ट है।

"कोमलेषु च लिङ्गेषु पार्थिवं श्रेष्ठमुच्यते।
कठिनेषु च पाषाणं पाषाणात् स्फाटिकं वरम्॥
हैरण्यं राजतात् श्रेष्ठं हैरण्याद्धीरकं वरम्।
हीरकात् पारदं श्रेष्ठं वाणलिङ्गं ततः परम्॥
(मेरुतन्त्र ६ अ०)

नर्मदा, देविका, गङ्गा और यमुना आदि नदियोंमें वाणलिङ्ग पाया जाता है। इस लिङ्गका पूजन करनेसे इहजन्मका समस्त अभीष्टलाभ और परजन्ममें मुक्ति होती है।

वाणलिङ्ग भिन्न भिन्न चिह्न द्वारा भिन्न भिन्न नामसे प्रसिद्ध है। यथा—जो लिङ्ग मधु और पिङ्गल वर्णाभ तथा कृष्ण कुण्डलिकायुत होता है उसे स्वयम्भु लिङ्ग; जो नाना वर्ण तथा जटा और शूलचिह्नयुक्त है उसे मृत्युञ्जय लिङ्ग; दीर्घाकार, शुभवर्ण और कृष्णविन्दु-चिह्नवालेको नीलकण्ठ; शुक्लाभ, शुक्लकेश और तीन नेत्र चिह्नयुक्तको महादेव; कृष्णवर्ण आभायुक्त और स्थूल-विग्रहको कालाग्निरुद्र तथा मधु और पिङ्गलवर्णाभ, श्वेत यज्ञोपवीतयुक्त, श्वेतपद्मासीन और चन्द्ररेखा भूषित लिङ्गको त्रिपुरारि लिङ्ग कहते हैं।

वाणलिङ्गमें महादेव सर्वदा अवस्थित रहते हैं। वाणलिङ्गकी पूजा करनेमें वेदिका वनाना आवश्यक है। क्योंकि, उस वेदिकाके ऊपर लिङ्गस्थापन करके पूजा करनी होती है। विना आधारके पूजा नहीं करनी चाहिये। वह वेदिका ताम्र, स्फाटिक, स्वर्ण, पाषाण और रौप्य इनमेंसे किसी एककी होनी चाहिये। प्रतिदिन इस प्रकार वेदिकाके ऊपर वाणलिङ्ग रख कर पूजा करनेसे मुक्ति-लाभ होता है।

"ताम्री वा स्फाटिको स्वार्णो पाषाणी राजती तथा।
वेदिका च प्रकर्त्तव्या तत्र संस्थाप्य पूजयेत्॥
प्रत्यहं योऽर्च्चयेल्लिङ्गं नार्मदं भक्तिभावतः।
ऐहिकं किं फलं तस्य मुक्तिस्तस्य करे स्थिता॥"
(सूतसंहिता)

वाणलिङ्ग नाना प्रकारके हैं जिनमेंसे कितने मोक्षार्थियोंके, कितने गृहस्थोंके और कितने संन्यासियोंके शुभजनक हैं।

निन्दनीय लिङ्ग—वाणलिङ्ग यदि कर्कश हो, तो उसकी पूजा नहीं करनी चाहिये, करनेसे स्त्री और पुत्रका नाश होता है। एक पार्श्वस्थित लिङ्ग, भग्नलिङ्ग, छिद्रलिङ्ग और जिस लिङ्गका अग्रभाग तीक्ष्ण हो वैसा लिङ्ग, शीर्षदेशवक्र, त्र्यस्र अर्थात् त्रिकोण लिङ्ग, अतिस्थूल और अति कृश लिङ्गपूजामें प्रशस्त नहीं है। कपिलवर्ण अथवा घनाभलिङ्ग मोक्षार्थियोंके लिये शुभजनक है। जिस लिङ्गका वर्ण भ्रमरके जैसा है, वैसा ही लिङ्ग गृहस्थोंके पक्षमें शुभकर माना गया है। इस लिङ्गका सपीठ और अपीठ दोनों ही अवस्थामें पूजन किया जा सकता है। वाणलिङ्गपूजामें आवाहन वा विसर्जन कुछ भी नहीं करना होता है। स्त्रीशूद्रको भी इस वाणलिङ्गके पूजनमें अधिकार है। शिवका जो ध्यान है उससे भी वाणलिङ्ग-पूजा की जा सकती है अथवा निम्नोक्त ध्यानसे भी पूजा कर सकते हैं। ध्यान यथा—

"ओं प्रमत्तं शक्तिसंयुक्तं वाणाख्यञ्च महाप्रभम्।
कामवाणान्वितं देवं संसारदहनक्षमम्॥
शृङ्गारादिरसोल्लासं वाणाख्यं परमेश्वरम्।
एवं ध्यात्वा वाणलिङ्गं यजेत्तं परमं शिवम्॥"

वाणलिङ्ग नाम पड़नेका कारण सूतसंहितामें इस प्रकार लिखा है—राजा वाण महादेवके अतिशय प्रिय थे और प्रतिदिन शिवलिङ्ग बना कर उनकी पूजा करते थे। इस प्रकार दिव्य परिमाण सौ वर्ष तक उन्होंने शिव-पूजा की थी। आखिर महादेवने प्रसन्न हो कर उन्हें इस प्रकार वर दिया था, "मैं तुझे चौदह करोड़ लिङ्ग प्रदान करता हूं, ये सब सिद्ध लिङ्ग हैं। ये लिङ्ग नर्मदादि पुण्यनदीमें रहेंगे" यथानियम इस वाणलिङ्गकी पूजा और पूजाके बाद स्तव करके पूजा समाप्त करनी होती है। स्तव यथा—

"वाणलिङ्गमहाभाग संसारात्त्राहि मां प्रभो।
नमस्ते चोग्ररूपाय नमस्ते व्यक्तयोनये॥
संसाराकारिणे तुभ्यं नमस्ते सूक्ष्मरूपधृक्।
प्रमत्ताय महेन्द्राय कालरूपाय वै नमः॥
दहनाय नमस्तुभ्यं नमस्ते योगकारिणे।
भोगिनां भोगकर्त्रे च मोक्षदात्रे नमोनमः॥"

इत्यादि।

योगसार, वाणलिंगस्तोत्र नर्मदांसम्भ देखो।

वाणवार (सं० पु०) वाणं परमुक्तशरं वारयतीति वृ-णिच्-अण्। भटादिका चोलाकृतिसन्नाह। पर्याय—वारवाण, वारण, चोलक।

वाणविद्या (सं० स्त्री०) वह विद्या जिससे वाण चलाना आवे, तीरंदाजी।

वाणसुता (सं० स्त्री०) वाणस्य वाणासुरस्य सुता। ऊषा।

वाणहन् (सं० पु०) वाणं वाणासुरं हन्तीति हन्-क्विप्। विष्णु।

वाणा (सं० स्त्री०) १ वाणमूल। २ नीलपुष्प झिण्टीक्षुप, नीली कटसरैया।

वाणारि (सं० पु०) वाणस्य वाणासुरस्य अरिः। विष्णु।

वाणाश्रय (सं० पु०) वाणस्य आश्रयः। धनुः।

वाणासन (सं० क्ली०) वाणस्य आसनं। धनुः।

वाणासुर (सं० पु०) राजा वलिके सौ पुत्रोंमेंसे सबसे बड़े पुत्रका नाम। वाण देखो।

वाणाह्वा (सं० स्त्री०) १ मुञ्ज तृण। २ नील कमल।

वाणिज (सं० पु०) वणिगेव, वणिज-अण्। १ वणिक्। २ वाड़वाग्नि।

वाणिजक (सं० पु०) वणिगेव वणिज्-ठञ्। १ वाड़वाग्नि। २ वणिक्। (त्रि०) ३ धूर्त्त।

वाणिज्य (सं० पु०) व्यापार, रोजगार।

वाणी (सं० स्त्री०) नीलझिण्टी, नीली कटसरैया।

वाणेश्वर (सं० पु०) १ शिवलिङ्गभेद। २ विवादार्णवसेतु नामक ग्रन्थके एक संग्रहकर्त्ता।

वाणेश्वरविद्यालङ्कार देखो।

वाणेश्वरविद्यालङ्कार—बङ्गालके एक विख्यात पण्डित। इनकी स्मरण शक्ति बड़ी तीव्र थी। इनके पिता जो सब

संस्कृत-स्तव पाठ करते थे उन्हें सुन कर ही ये मुखस्थ कर लेते थे। इनकी ऐसी असाधारण मेधाका परिचय पा कर एक दिन इनके पिताने कहा, 'भविष्यमें वाणू भी एक पण्डित होगा।' उनकी उक्ति मिथ्या न हुई। थोड़ी ही उमरमें ये सब शास्त्रोंमें पण्डित हो गये। इनकी बनाई हुई सुललित और पाण्डित्यपूर्ण अनेक कविताएं प्रचलित हैं। पहले ये नवद्वीपाधिपति महाराज कृष्णचन्द्रके सभा-पण्डित थे। पीछे कलकत्ते आ कर इन्होंने महाराज नवकृष्णकी सभा उज्ज्वल की। बड़े लाट वारेन हेष्टिंसने जिन सब पण्डितोंकी सहायतासे 'विवादार्णवसेतु' नामक वृहत् धर्मशास्त्रसंग्रह प्रकाशित किया था, उनमेंसे वाणेश्वर एक थे।

बात (हिं० स्त्री०) १ वाणी, वचन। २ प्रचलित प्रसंग, फैली हुई चर्चा। ३ प्रसङ्ग, चर्चा, जिक्र। ४ प्राप्त संयोग, घटित होनेवाली अवस्था। ५ परस्पर कथोपकथन, गप-शप। ६ संदेश, संदेसा। ७ व्यवस्था, हाल, माजरा। ८ झूठ या बनावटी कथन, मिस, बहाना। ९ कोई मामला तै करनेके लिये उसके सम्बन्धमें चर्चा, किसीके साथ कोई व्यवहार या संबंध स्थिर करनेके लिये परस्पर कथोपकथन। १० फँसाने या धोखा देनेके लिये कहे हुए शब्द या किए हुए व्यवहार। ११ अपनी हैसियत, योग्यता, गुण, सामर्थ्य इत्यादिके संबन्धमें कथन या वाक्य। १२ आदेश, उपदेश, सीख। १३ रहस्य, भेद, मर्म। १४ प्रतिज्ञा, कौल। १५ मानमर्यादा, प्रतिष्ठा। १६ विश्वास, प्रतीति। १७ कामना, इच्छा। १८ ढंग, तौर। १९ गुण या विशेषता, खूबी। २० प्रश्न, सवाल। २१ प्रशंसाका विषय, तारीफकी बात। २२ चमत्कारपूर्ण कथन, उक्ति। २३ गूढ़ रहस्य, अभिप्राय। २४ अभिप्राय, तात्पर्य। २५ कर्त्तव्य, उचित पंथ या उपाय। २६ दाम, मोल। २७ वस्तु, पदार्थ। २८ स्वभाव, गुण, प्रकृति। २९ सम्बन्ध, तअल्लुक। ३० आचरण, व्यवहार। ३१ तत्त्व, मर्म।

बातकंटक (हिं० पु०) एक वायु रोग।

बातचीत (हिं० स्त्री०) दो या कई मनुष्योंके बीच कथोपकथन, वार्त्तालाप।

बातड़ (हिं० वि०) वायुयुक्त, वायुवाला।

बातप (हिं० पु०) हिरन।

बातफरोश (हिं० पु०) १ बात बनानेवाला, बात गढ़नेवाला। २ झूठमूठ इधर उधरकी बात कहनेवाला।

बातर (हिं० पु०) पंजाबमें धान बोनेका एक ढंग।

बातलारोग (हिं० पु०) एक योनिरोग जिसमें सुई चुभनेकीसी पीड़ा होती है।

वातिङ्गन (सं० पु०) वार्त्ताकी, बगन।

बाती (हिं० स्त्री०) १ लम्बी सलाईके आकारमें बटी हुई रुई या कपड़ा। २ कपड़े या रुईको बट कर बनाई हुई सलाई जो तेलमें डुबा कर दिया जलानेके काममें आती है, बत्ती। ३ वह लकड़ी जो पानके खेतके ऊपर बिछा कर छप्पर छाते हैं।

बातुल (हिं० पु०) पागल, बौड़हा।

बातूनिया (हिं० वि०) बातूनी देखो।

बातूनी (हिं० वि०) बकवादी, बहुत बोलने या बात करनेवाला।

बाथू (हिं० पु०) बथुआ नामका साग।

बाद (हिं० पु०) १ तर्क, बहस। २ प्रतिज्ञा, शर्त्त। ३ नाना प्रकारके तर्क वितर्क द्वारा बातका विस्तार, झकझक। ४ विवाद, झगड़ा। (अव्य) ५ निष्प्रयोजन, फजूल।

बाद (फा० अव्य०) १ पश्चात्, पीछे। (वि०) २ अलग किया हुआ, छोड़ा हुआ। ३ दस्तूरी या कमीशन जो दाममेंसे काटा जाय। ४ अतिरिक्त, सिवाय। ५ असलसे अधिक दाम जो व्यापारी माल पर लिख देते और दाम बताते समय घटा देते हैं।

बाद (फा० पु०) बात, हवा।

वादकाकुल (सं० पु०) तालके मुख्य ६० भेदोंमेंसे एक भेद।

बादनुमा (फा० पु०) वायुकी दिशा सूचित करनेवाला यन्त्र, पवन-प्रकाश।

बादबान (फा० पु०) पाल।

बादर (सं० पु०) बदर-स्वार्थे-अण्। १ कार्पासवृक्ष, कपासका पौधा। २ कार्पास सूत, कपासका सूत। ३ कर्पूर, कपूर। ४ नैऋत्यकोणमें एक देश। (वृहत्संहिता) (त्रि०) ५ बेर नामक फलका, उससे उत्पन्न या उससे संबन्ध

रखनेवाला । ६ कपासका, रूईका बना हुआ । ७ मोटा या खद्दड़ ।

वादर (हिं० वि०) आनन्दित, प्रसन्न, आह्लादित ।

वादरङ्ग (सं० पु०) अश्वत्थ वृक्ष, पीपलका पेड़ ।

वादरा (सं० स्त्री०) १ बदरी या बेरका पेड़ । २ कपासका पौधा । ३ जल, पानी । ४ रेशम । ५ दक्षिणावर्त्त शंख ।

वादरायण (सं० पु०) बदर्य्यां भवः फक् । वेदव्यास ।

वादरायणि (सं० पु०) वादरायण-इञ् । वेदव्यास ।

वादल (हिं० पु०) १ पृथ्वी परके जलसे उठी हुई वह भाप जो बनी हो कर आकाशमें छा जाती है और फिर पानीकी बूंदोंके रूपमें गिरती है । मेघ देखो । २ एक प्रकारका पत्थर जो दुधिया रंगका होता है । इस पर बगनी रंगकी बादलकी सी धारियाँ पड़ी होती हैं । इस प्रकारका पत्थर राजपूतानेमें निकलता है ।

वादला (हिं० पु०) सोने या चाँदीका चिपटा चमकीला तार जो गोटे बुनने या कलाबत्तू बटनेके काममें आता है ।

वादशाह (फा० पु०) १ राजसिंहासन पर बैठनेवाला, राजा, शासक । २ स्वतन्त्र, मनमाना करनेवाला । ३ श्रेष्ठ पुरुष । ४ शतरंजका एक मुहरा जो किस्त लगनेके पहले केवल एक वार घोड़ेकी चाल चलता है और दौड़धूपसे बचा रहता है । ५ ताशका एक पत्ता जिस पर वादशाहकी तसवीर बनी रहती है ।

वादशाहजादा (फा० पु०) राजकुमार, कुमार ।

वादशाहजादी (फा० स्त्री०) राजकुमारी ।

वादशाहत (फा० स्त्री०) राज्य, शासन, हुकूमत ।

वादशाहपसन्द (फा० पु०) दिलबहार हलका आसमानी रंग, खशखाशी रंग ।

वादशाहपुर—पञ्जाब प्रदेशके गुरुगाँव और दिल्ली जिलेमें प्रवाहित एक पहाड़ी नदी । यह दिल्ली जिलेकी वल्लभगढ़ पर्वत मालासे निकली है । वादशाहपुर ग्रामके निकटवर्त्ती जलप्रपात भी इसी नामसे प्रसिद्ध है ।

वादशाही (फा० स्त्री०) १ राज्य, राज्याधिकार । २ शासन, हुकूमत । ३ व्यवहार, मनमाना । (वि०) ४ वादशाहका, राजाका ।

वादहवाई (फा० क्रि० वि०) व्यर्थ, निष्प्रयोजन, यों ही ।

वादा—२४ परगनेके अन्तर्गत लवणजलसिक्त भूभाग । यहां मछली बहुत पाई जाती है ।

वादाम—स्वनाम प्रसिद्ध वृक्षभेद । (Terminalia Catappa) इसके बीजका गूदा खानेमें बहुत बढ़िया लगता है । जामुन आदि वृक्षोंकी तरह यह ऊँचा और इसका तना मोटा होता है । वादामके साधारण दो भेद हैं, देशी अथवा पात और विलायती । भिन्न भिन्न देशमें यह भिन्न भिन्न नामसे प्रसिद्ध है । यथा—

हिन्दी—वादाम, वादामी ; बंगला—वादाम ; उड़ीसा—वादाम ; युक्तप्रदेश—देशी वादाम ; दाक्षिणात्य—हिन्दी वादाम, जङ्गली वादाम, वादाम-इ, हिन्दि ; बंबई—वादाम, जङ्गली वादाम, वङ्गाली वादाम, देशी वादाम ; महाराष्ट्र—वङ्गाली वादाम, नट वादाम, जङ्गली वादाम ; तामिल—नट वदम, कोट्टई, नट्टुवदोन, नये वदम; तैलङ्ग—वेदम, नये-वदम-विट्टुलु; कनाड़ी—नट वादामी, तरि, तरु ; मलय—नट्टु वादाम, कोट्टकुरु; सिङ्गापुर—कोट अम्वा ; संस्कृत—इङ्गुदी, हिंगुदी ; पारस्य—वादामे हिन्दि ; अंगरेजी—*Indian almond* ।

भारतमें प्रायः सब जगह यह वृक्ष देखा जाता है समुद्रपृष्ठसे प्रायः १ हजार फुट ऊँचे स्थान तक यह वृक्ष देखनेमें आता है । वृक्षकी छालसे एक प्रकार काला गोंद निकलता है जो जलमें घुल जाता है । इसके पत्ते और छिलकोंमें थोड़ा रस होता है । इसमें धारकता गुण है । स्याही, दन्तमंजन और मिस्सीके बनानेमें लवणाक्त लोहे(Iron Salts)के साथ इसे मिलाते हैं । रेशम, पशम और सूती कपड़ेको नाना वर्णोंमें रंगनेमें यह बहुत उपयोगी है । वृक्षकी छालके रेशेसे मद्रासमें एक प्रकारका वस्त्र बनता है ।

वादामके पीसनेसे तेल निकलता है । वह तेल सुगंधित और सुस्वादु होता है । वायुरोगग्रस्त उष्णमस्तिष्क व्यक्तिके शरीरमें इस तेल द्वारा मालिश करनेसे बहुत लाभ होता है । लोग खुजली, कुष्ठ आदि चर्म रोगोंमें इसके कच्चे पत्तोंका रस व्यवहार करते हैं ।

विलायती वादामका विज्ञानवादियोंने *Prunus Amygdalus* नाम रखा है । सिङ्गापुरमें इसे रतकोटम्बा और शेष सभी जगह वादाम वा वादामी कहते हैं । अफगानिस्तान, अलजिरिया, एशिया माइनर सिरिया और

पारस्य प्रभृति देशोंमें यह पैदा होता है। इसका गोंद यूरोपमें 'Hog-tragacanth' नामसे विकता है तथा असल ट्रागाकान्थके वदलेमें इसका व्यवहार होता है।

तिक्त वादाम विरेचक औषधिके रूपमें प्रयोग किया जा सकता है। कभी कभी स्नायवीय वेदनामें उसका प्रलेप करनेसे पीड़ा धीरे धीरे दूर हो जाती है। यह दृष्टिशक्तिवद्ध क है। पिपरमेण्टके साथ इसके दूधका सेवन करनेसे सर्दी दूर होती है। साधारणतः यह तेज, स्वास्थ्यकर, मूत्रकारक, अश्मद्रवकर, प्लीहा और यकृत दोषनाशक है। बांट कर माथेके वालोंमें लगानेसे जूँ मर जाती हैं। इसके रेशेका गुण—धातुपरिवर्द्धक और स्वास्थ्यकर है। अवस्था विशेषमें इसके रसका सेवन तथा प्रलेप किया जाता है। वादामके रसका चीनीके साथ सेवन करनेसे छींकें वंद होती हैं।

वादामा (फा० पु०) एक प्रकारका रेशमी कपड़ा।

वादामी (फा० वि०) १ वादामके छिलकेके रंगका, कुछ पीलापन लिये लाल रंगका। २ अण्डाकार, वादामके आकारका। (पु०) ३ एक प्रकारका धान। ४ वादामके आकारकी एक प्रकारकी छोटी डिविया जिसमें गहने आदि रहते हैं। ५ वह ख्वाजासरा जिसकी इन्द्रिय वहुत छोटा हो। ६ पानीके किनारे रहनेवाली एक प्रकारकी छोटी चिड़िया। इसका प्रधान खाद्य मछली है।

वादामी—१ वम्बईके वीजापुर जिलेका एक तालुक। यह अक्षा० १५°४९' से १६°१' उ० तथा देशा० ७५°१०' से ७६° ३२' पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ६१५ वर्गमील और जनसंख्या लाखसे ऊपर है। इसमें १ शहर और १६७ ग्राम लगते हैं। यहांकी आवहवा जिले भरमें खराव है।

२ उक्त तालुकका एक प्रधान शहर। यह अक्षा० १५°-५५' उ० तथा देशा० ७५° ४१' पू०के मध्य अवस्थित है। जनसंख्या लगभग ४४८२ है। यहां ६५० ई०में निर्मित एक जैन गुहामन्दिर और ५७९ ई०में उत्कीर्ण शिलालिगियुक्त तीन हिन्दू गुहामन्दिर वाहिर हुए हैं। वौद्धधर्मकी अवनतिके समय जव हिन्दुओंकी प्रधानता फिरसे स्थापित हुई, तव इन सव मन्दिरोंका निर्माणकार्य सम्पन्न हुआ था। यहांके एक मन्दिरमें पञ्चशीर्ष सर्पमूर्त्तिके ऊपर भगवान् विष्णु नरसिंहरूपमें स्थापित हैं। अलावा इसके यहां सैकड़ों हिन्दूमन्दिरके निदर्शन देखे जाते हैं। १७वीं शताब्दीमें यूएनचुवङ्ग यहां आये हुए थे। उस समय यह स्थान विजयनगरके राजाओंके अधिकारमें था। १८१८ ई०में जनरल मनरोने इसे अङ्गरेजी राज्यमें मिला लिया। १८४० ई०में निजामराज्यकी ओरसे १२५ अरवोंने नरसिंह नामक एक अन्ध ब्राह्मणकी अधिनायकतामें इस ग्राम पर दखल जमाया, अङ्गरेजी-खजाना लूटा और लूटका माल एक एक करके निजाम-राज्य पहुंचाया। किन्तु इसके सात दिनके वाद ही वे सवके सव पकड़े गये और जीवन भरके लिये कालापानी भेज दिये गये। शहरमें सिर्फ एक स्कूल है।

वादि (हिं० अव्य०) व्यर्थ, फजूल।

वादिन्—१ सिन्धुप्रदेशके हैदरावाद जिलान्तर्गत एक तालुक। यह अक्षा० २४° १३' से २४° ५८' उ० तथा देशा० ६८° ४३' से ६९° १६' पू०के मध्य अवस्थित है। जनसंख्या प्रायः ७३८२३ है। इसमें कुल १६५ ग्राम लगते हैं। यहांकी प्रधान फसल धान और ईख है।

२ उक्त तालुकका एक शहर। यह अक्षा० २४° ३८' उ० तथा देशा० ६८° ५४' पू० हैदरावाद शहरसे ६२ मीलकी दूरी पर अवस्थित है। जनसंख्या २ हजारसे ऊपर है। १७५० ई०में सवालो नामके किसी हिन्दू व्यक्तिने इस नगरको वसाया। विख्यात पठान-सरदार मदद उर्फ शाह नसिरुद्दिनने इसे तहस नहस कर डाला। यहां घी, चीनी, गुड़, दधि, तमाकू, चमड़े, रुई और लौह-पित्तलादि धातु-निर्मित द्रव्यका यथेष्ट वाणिज्य चलता है। प्रति वर्षके जूनमासमें एक वड़ा मेला लगता है। शहरमें सिर्फ एक अस्पताल है।

वादिपुरी—मन्द्राज प्रदेशके नेल्लूर जिलेके अन्तर्गत एक भूसम्पत्ति।

वादिया—पश्चिम वङ्गवासी जातिविशेष।

वादिया (हिं० पु०) लोहारोंका एक औजार जिससे पेच वनाया जाता है।

वादी (फा० वि०) १ वायु सम्वन्धी। २ वायुविकार-संवंधी। ३ वायुकुपित करनेवाला, विकार उत्पन्न करनेवाला। (स्त्री०) ४ शरीरस्थ वायु, वातविकार। (पु०)

५ किसीके विरुद्ध अभियोग करनेवाला, मुद्दई। ६ प्रतिद्वन्द्वी, शत्रु। ७ लुहारोंका सिकली करनेका औजार।

वादु—२४ परगनेके बारासत उपविभागके अन्तर्गत एक ब्राह्मण-प्रसिद्ध स्थान।

वादुड़िया—२४ परगनेके बसीरहाट उपविभागका एक शहर। यह अक्षा० २४°४५´ उ० तथा देशा० ८८°४८´ पू०के मध्य अवस्थित है। जनसंख्या प्रायः १२१२१ है। हिन्दूकी संख्या मुसलमानसे अधिक है।

वादुना (हिं० पु०) घेवर नामकी मिठाई बनानेका एक औजार। यह लोहे या पीतलका बना होता है। इसे भट्ठीके मुंह पर रख कर उसमें घी भरते और पतला मैदा डाल देते हैं। मैदा पक जाने पर उसे चीनीकी चाशनीमें पाग देते हैं।

वादुर—स्वनामप्रसिद्ध स्तन्यपायी पक्षिजातिविशेष, चमगादड़ (Bat)। पक्षीकी तरह पंख होने पर भी यह पशु आदिकी तरह स्तन पीता है। यह नाना आकारका और निशाचर होता है। बहुत दूरसे उड़ कर यह अन्य लोगोंको हानि पहुंचाता है। वादुरके दो भेद हैं। एक जो कीट पतङ्गादिसे अपना पेट भरता है और दूसरा जो सुपक्व फलादिका भक्षण करते हैं। इनकी आँखें छोटी होने पर भी दृष्टि तेज होती है। इनको जितने बड़े कान होते हैं,उतनी ही श्रवणशक्ति तीक्ष्ण होती है। घ्राणके द्वारा सुपक्व फलकी गंध जान उसका अनुसरण करते हुए वहां तक पहुंच जाते हैं। रात्रिमें इतस्ततः भोजनकी तलाशमें निकलते हैं तथा ये दिनमें वृक्ष-कोटरमें, वृक्षकी डालमें, गुहामें, भग्न अट्टालिकामें और छतके नीचेकी कड़ीमें औंधे मुँह लटक कर रहते हैं। मादा अंडे नहीं पारती, एक बारमें एक या दो बच्चे जनती है। बच्चे माताकी आकृतिकी तुलनामें बड़े होते हैं।

इनका मुख पतला, शङ्खास्थि (Temporal bone) और शब्दग्रहणके लिये श्रवणेन्द्रियस्थ शम्बुकाकार छिद्र बड़ा, पञ्जर और वुक्कास्थि बड़ी होती है।

इनके चबाने, काटनेके दांत होते हैं। पैरकी हड्डी अंगुलि पर्यंत चौड़ी होती है। पंखकी हड्डीसे दोनों पांव, सूक्ष्मचर्मसे ढके रहनेके कारण सहजमें उड़ सकते हैं। पैरके पीछेमें नाखून हैं। उन्हीं नाखून द्वारा ये झूलते हैं। वक्षस्थलमें दो स्तन होते हैं।

इनके अन्धान्त्र (Coecum) नहीं होता। लिङ्ग लोलमान और अस्थिसंयुक्त है। सन्तानोत्पत्तिके समय आने पर उनका अंडकोष बाहिर निकल आता है। गर्भाशयमें दो छोटे छोटे सींग रहते हैं। कितनी मादा वादुरके शावकपालके रहनेके लिये थैली रहती है। शीतकालमें उनके ढक देनेसे बच्चे गरम रहते हैं। बच्चे तरुण होने पर माताके पीछे पीछे चलते हैं। इनके शरीरमें लोम हैं। लोमके बीच Nycteribia नामका कीट पैदा होता है।

पृथिवीके चारों तरफ वादुर देखनेमें आते हैं। वैज्ञानिकोंने इस जातिके पक्षीको *Pteropodidae*, *Vampyridae Noctilionidae* और *Vespertilionidae* प्रभृति श्रेणीमें शामिल किया है। विशेष विवरण चमगादड़ शब्दमें देखो।

वादोसराय—१ अयोध्या प्रदेशके बारावाँकी जिलान्तर्गत एक परगना। भूपरिमाण ४८ वर्गमील है। इसका कुछ अंश प्राचीन घघराखाईकी उच्चभूमि पर और कुछ तराई प्रदेशकी निम्नभूमि पर अवस्थित है।

२ उक्त जिलेका एक नगर। यह बारावाँकी नगरसे १२॥. कोस उत्तर पूर्व रामनगरसे दरियाबाद जानेके रास्ते पर अवस्थित है। बादशाह नामक किसी फकीरने ५५० वर्ष पहले इस नगरको बसाया। यहांका मुसलमान-साधु मलामतशाहका समाधि-मन्दिर मुसलमानोंके निकट एक पवित्र तीर्थ समझा जाता है।

वाध (सं० पु० वाधनमिति वाध-भावे घञ्। १ प्रतिबन्धक, रुकावट। २ उपद्रव, उत्पात। ३ पीड़ा, कष्ट। ४ कठिनता, मुश्किल। ५ अर्थकी असंगति, मानीका ठीक न बैठना। ६ वह पक्ष जिसमें साध्यका अभाव सा हो। ७ मूँजकी रस्सी।

वाधक (सं० पु०) वाधनमिति वाध-भावे ण्वुल्। १ स्त्रीरोगविशेष। इसमें उन्हें संतति नहीं होती या संतति होनेमें बड़ी पीड़ा या कठिनता होती है। स्त्रियोंके ऋतुकालमें इस रोगका प्रकोप होता है। इस रोगके होनेसे सन्तानार्थिगण यदि यथाविधान षष्ठी आदिकी पूजा करे, तो यह रोग अवश्य दूर होता है। वैद्यकके अनुसार चार प्रकारके दोषोंसे वाधक रोग होता है—रक्तमाद्री, षष्ठी, अंकुर और जलकुमार।

रक्तमाद्रिमें—कटि, नाभि पेड़ू आदिमें वेदना होती है और ऋतु ठोक समय पर नहीं होता। इस प्रकारके ऋतुमें सन्तान नहीं होती।

षष्ठी वाधकमें—ऋतुकालमें आँखों, हथेलियों और योनिमें जलन होती है और रक्तस्राव लालायुक्त होता है तथा ऋतु महीनेमें दो वार होता है।

अंकुरवाधकमें—ऋतुकालमें उद्वेग रहता है। शरीर भारी रहता है, रक्तस्राव वहुत होता है, नाभिके नीचे शूल होता है, तीन तीन चार चार महीने पर ऋतु होता है, हाथ पैरमें जलन रहती है।

जलकुमारवाधक रोगमें—शरीर सूज जाता है, वहुत दिनों में ऋतु हुआ करता है सो भी वहुत थोड़ा। गर्भ न रहने पर गर्भ सा मालूम होता है। इन चारों वाधकों-से प्रायः गर्भ नहीं रहता। पीछे इसकी प्रतिषेधक औषधका सेवन करनेसे वह रोग जाता रहता है। सुश्रु-तादिमें इस रोगका कोई उल्लेख देखनेमें नहीं आता। (त्रि०) २ वाधाजनक, प्रतिवंधक।

वाधकता (सं० स्त्री०) वाधकस्य भावः तल-टाप्। वाधक-का भाव वा धर्म, वाधा।

वाधन (सं० क्ली०) वाध-ल्युट्। १ पीड़ा, कष्ट। २ प्रतिवन्धक, वाधा। (त्रि०) ३ पीड़ादाता, कष्ट देने-वाला। ४ प्रतिवन्धक, विघ्न डालनेवाला।

वाधना (हिं० क्रि०) १ वाधा डालना, रोकना। २ विघ्न करना, वाधा डालना।

वाधा (सं० स्त्री०) वाध-टाप्। १ पीड़ा, कष्ट। २ विघ्न, रुकावट, अड़चन। ३ भय, डर आशङ्का। ४ निषेध, मनाही।

वाधित (सं० त्रि०) वाध-क्त। १ वाधायुक्त, जो रोका गया हो। २ जिसके साधनमें रुकावट पड़ी हो। ३ जिसके सिद्ध या प्रमाणित होनेमें रुकावट हो। ४ प्रभाव-हीन, ग्रस्त।

वाधितृ (सं० त्रि०) वाधते इति वाध-तृण्। वाधक।

वाधिरिक (सं० पु०) वधिरिका शिवादित्वादण् (पा ४।१।११२)। वधिरिकाका अपत्य।

वाधिर्य (सं० क्ली०) वधिरस्य भावः वधिर-ष्यञ्। वधिरका भाव, वधिरता रोग, वहिरापन।

वाध्य (सं० त्रि०) वाध-ण्यत्। १ वाधनीय, वाधितव्य। २ निर्वर्त्य।

वाध्यता (सं० क्ली०) वाधस्य भावः वाध्य-तल्-टाप्। वाध्यत्व।

वाध्योग (सं० पु०) वध्योग-विदादित्वादण्। वध्योगका गोत्रापत्य।

वाध्योगायन (सं० पु०) वाध्योगस्य गोत्रापत्यं हरितादि-त्वात् फक्। वाध्योगका गोत्रापत्य।

वान (हिं० पु०) १ शालि वा जड़हनको रोपनेके समय उतनी पेड़ियां जो एक साथ ले कर एक स्थानमें रोपी जाती हैं। २ अफगानिस्तान तथा आसाममें होनेवाला एक पेड़। यह सात हजारसे नौ हजार फुटकी ऊँचाई तक होता है। पतझड़ नहीं होने पर भी वसन्तऋतुमें इसकी पत्तियां रंग वदलती हैं। इसकी लकड़ी भीतरसे ललाई लिये सफेद रंगकी होती है और वहुत मजवूत होती है। पत्तियां और छाल चमड़े सिझानेके काम आती हैं। ३ वाण, तीर। ४ एक प्रकारकी आतशवाजी जो तीरके आकारकी होती है। इसमें आग लगते ही यह आकाशकी ओर वड़े वेगसे छूट जाती है। ५ वह गुंवददार छोटा डंडा जिससे धुनकीकी ताँतको झटका दे कर रुई धुनते हैं। ६ समुद्र या नदीकी ऊँची लहर। (स्त्री०) ७ वेशविन्यास, वनावट। ८ अभ्यास, आदत। (पु०) ६ कान्ति, रंग।

वानइत (हिं० वि०) १ वाना चलाने या खेलनेवाला। २ वाण चलानेवाला, तीरंदाज। ३ वहादुर, योद्धा।

वानक (हिं० स्त्री०) १ वेष, भेस। २ एक प्रकारका रेशम जो पीला या सफेद होता है।

वानगी (हिं० स्त्री०) किसी मालका वह अंश जो ग्राहकको दिखानेके लिये निकाल कर दिया जाय।

वानर (हिं० पु०) वंदर।

वानवे (हिं० पु०) १ नव्वेसे दो अधिककी संख्या या अंक जो इस प्रकार लिखा जाता है—६२। (वि०) २ जो गिनतीमें नव्वेसे दो ज्यादा हो, दो ऊपर नव्वे।

वाना (हिं० पु०) १ वस्त्र, पोशाक। २ अङ्गीकार किया हुआ धर्म, रीति। ३ एक प्रकारका हथियार जो सांग या भालेके आकारका होता है। यह लोहेका होता है और

आगेकी ओर बराबर पतला होता चला जाता है। इसके सिरे पर कभी कभी झंडा भी बांध देते हैं और नोकके बल जमीनमें गाड़ भी देते हैं। ४ तीन साढ़े तीन हाथ लम्बा एक हथियार। यह सीधा और दुधारा तलवारके आकारका होता है। इसकी मूठके दोनों ओर दो लट्टू होते हैं जिनमें एक लट्टू कुछ आगे हट कर होता है। ५ बुनाई, बुनावट। ६ कपड़े की बुनावटमें वह तागा जो आड़े बल तानेमें भरा जाता है, भरनी। ७ कपड़े की बुनावट जो तानेमें की जाती है। ८ वह जुताई जो खेतमें एक बार या पहली बार की जाय। ६ एक प्रकारका महीन सूत जिससे पतंग उड़ाते हैं। (क्रि०) १० आकुञ्चित और प्रसारित होनेवाले छिद्रको विस्तृत करना, किसी सुकड़ने और फैलानेवाले छेदको फैलाना।

वानात (हिं० स्त्री०) एक प्रकारका मोटा चिकना ऊनी कपड़ा, बनात।

वानि (हिं० स्त्री०) १ बनावट, सज धज। २ आदत, अभ्यास। ३ कान्ति, चमक। ४ वाणी, वचन।

वानिक (हिं० स्त्री०) वेश, सिंगार।

वानिन (हिं० स्त्री०) वनियेकी स्त्री।

वानिया (हिं० स्त्री०) एक जाति जो व्यापार, दूकानदारी तथा लेनदेनका काम करती है।

वानी (हिं० स्त्री०) १ प्रतिज्ञा, मनौती। २ वचन, मुंहसे निकाला हुआ शब्द। ३ साधु महात्माका उपदेश। ४ सरस्वती। ५ आभा, दमक। ६ एक प्रकारकी पीली मट्टी जिससे मट्टीके बरतन पकानेके पहले रंगते हैं।

वानी (अ० पु०) १ आरम्भ करनेवाला, चलानेवाला। २ बुनियाद डालनेवाला, जड़ जमानेवाला।

वानैत (हिं० पु०) १ वाण चलानेवाला, तीरंदाज। २ वाना फेरनेवाला। ३ योद्धा, वीर।

वान्तवा—१ गुजरात प्रदेशके अन्तर्गत एक सामन्त राज्य। भूपरिमाण २२१ वर्गमील है। मादर और ओजहत नदी के इसके दक्षिण भागमें प्रवाहित होनेके कारण यह स्थान विशेष उर्वरा देखा जाता है।

यहांके सरदार मुसलमान हैं। जूनागढ़के नवाबवंशके किसी राजपुत्रने १७४० ई०में यह सम्पत्ति प्राप्त की। १८०७ ई०की सन्धिके अनुसार ये अंगरेज गवर्में एटके साथ मिल कर शान्त भावसे राजकार्य चलानेको बाध्य हुए। १८८५ ई०में यहांके जो सरदार थे वे बाबी नामसे ही तमाम परिचित थे। मानानदरमें इनका राजप्रासाद है। इस राज्यके एक दूसरे हिस्सेदार गीदरमें रहते हैं। उनकी भी उपाधि बाबी है। सरदारको १७१ सेना रखनेका अधिकार है।

२ उक्त राज्यका एक प्रधान नगर। यह अक्षा० २१° २८´ उ० तथा देशा० ७०° ७´ पू०के मध्य अवस्थित है। जनसंख्या प्रायः ८५६१ है। यह स्थान चारों ओरसे सुरक्षित है।

वान्तवाल—मन्द्राज प्रदेशके दक्षिण कणाडा जिलान्तर्गत एक नगर। यह अक्षा० १२° ५३´२०´´ उ० तथा देशा० ७५° ४´५०´´ पू० नेत्रवती नदीके किनारे अवस्थित है। उक्त नदीके गड्ढोंमें नाना प्रकारके सुन्दर सुन्दर पत्थर पाये जाते हैं। यहांका वाणिज्यादि सब दिनोंसे एक-सा चला आ रहा है। यहांके अनेक द्रव्य महिसुर-राज्य भेजे जाते हैं। टीपू-सुलतानके साथ युद्धके समय कुर्ग राजने इस नगरका कुछ अंश तहस नहस कर डाला था और प्रायः अर्द्धेक अधिवासी कैद कर लिये गये थे।

वान्दा—युक्तप्रदेशके इलाहाबाद विभागका जिला। यह अक्षा० २४° ५३´ से २५° ५५´ उ० तथा देशा० ७६° ५६´ से ८१° ३४´ पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ३६० वर्गमील है। इसके उत्तर और उत्तर-पूर्वमें यमुना नदी, पश्चिममें केन नदी और गौरीहर सामन्तराज्य, दक्षिण और दक्षिण-पूर्वमें पन्ना और चारखड़ी सामन्त राज्य तथा पूर्वमें इलाहाबाद जिला है।

इस जिलेका अधिकांश स्थान विन्ध्यपर्वतके प्रत्यन्तदेशमें अवस्थित है। इस मध्यभारतीय अधित्यकामें वनराजि सुशोभित है। बीच बीचमें पर्वतमालाकी उच्च चूड़ा भी नजर आती है। वर्षाकालमें बहुतसे जलस्रोत अधित्यकाभूमि होते हुए यमुना नदीमें मिलते हैं। केन और बागैन नामक दोनों शाखाओंका जल निदारुण ग्रीष्ममें भी नहीं सुखता। बहुत सी नदियोंके बहनेसे जमीन पर काफी पंक जम जाता है जिससे उसकी उर्वराशक्ति बहुत बढ़ जाती है। गेहूं, चना, ज्वार, बाजरा, कई, तिल, अरहर, मसूर, धान, पटसन और नाना तेलहन

बीज उत्पन्न होते हैं। वन्यविभागमें तरह तरहके उत्कृष्ट काष्ठ मिलते हैं। इसका अधिकांश स्थान वृटिश सरकारके अधीन है। विन्ध्यपर्वतके पादमूलमें लोहेकी एक खान है। कल्याणपुरवासी उसमेंसे लोहा निकाल कर नाना प्रकारके द्रव्य बनाते हैं।

वान्दा जिलेका कोई विशेष इतिहास नहीं मिलता। पहले यह स्थान बुन्देलखण्डके अन्तर्भुक्त था। इस कारण इसकी ऐतिहासिक घटनाएं उसीमें सन्निवद्ध हुई हैं। यहां वहु प्राचीन कालमें गोंड़जातिका वास था। कोई आर्यहिन्दू यहां आ कर वस गये, पर उसका कुछ भी प्रकृत इतिहास नहीं मिलता। इस स्थानकी पुराकाहिनी रामायणकी घटनाके साथ समाश्रित देखी जाती है। प्रवाद है, कि अयोध्याधिपति राजा रामचन्द्रके समसामयिक वामदेव नामक किसी योगीके नामानुसार इस स्थानका वान्दा नाम पड़ा है। शिलालिपि और मुद्रासे हम यहांके नाग-वंशीय राजाओंका उल्लेख पाते हैं। नागराजगण कन्नौज-राजके अधीन रह कर इस प्रदेशका शासन करते थे। नरवार नगरमें उनकी राजधानी थी। उसके बाद ६ठीं शताब्दी तक इस स्थानके राज्यशासन विषयमें कोई उल्लेख नहीं मिलता। ६ठीं से १४वीं शताब्दी तक यह स्थान चन्देलवंशीय राजाओंके दखलमें था। ११८३ ई०में दिल्लीके चौहान राजा पृथ्वीराज कुछ दिनोंके लिये यहांके अधिपति थे। उनके समयमें यह स्थान उन्नतिकी चरम सीमा पर पहुंच गया था। उस समय यहां अनेक दुर्ग और अट्टालिका बनाई गई थीं। उस ध्वंससमूहका निदर्शन आज भी देखा जाता है। कालञ्जरके अजयगढ़का दुर्भेद्य दुर्ग, खजुराहु और महोवा का प्रसिद्ध देवमन्दिर तथा हमीरपुरका कृत्रिम ह्रद चन्देलराजवंशकी अक्षयकीर्त्ति है। १०२३ ई०में गजनीपति महमूदसे तथा ११९६ ई०में कुतबुद्दीनसे आक्रान्त होने पर भी १४वीं शताब्दीके प्रारम्भ तक यहांके राजाओंने मुसलमानोंकी अधीनता स्वीकार नहीं की।

१३०० ई०में चन्देलाराजवंशकी अवनति होने पर भी बुन्देला राजपूतोंने यहां अपना आधिपत्य फैलाया। बुन्देला-सेनाके दुर्दम साहसके सामने कोई भी मुसलमान राजा ठहर न सके। सम्राट् अकवरशाहके अखण्ड प्रतापसे ये लोग परास्त हो गये थे। पर उन्होंने नाममात्रके लिये वश्यता स्वीकार की थी। मुगलराजवंशके सामन्तरूपमें रह कर भी वे दिल्लीश्वरके विरुद्ध कार्रवाई करनेसे बाज नहीं आये। राजा चम्पतरायके अधिकारकालमें बुन्देलोंने सम्राट् शाहजहान्का प्रभाव खर्व कर डाला था। औरङ्गजेबकी अमलदारीमें राजा छत्रपालके अधीन बुन्देलागण मुगलसम्राट्का प्रत्येक उद्यम विफल करके सम्पूर्णरूपसे स्वाधीन हो गये थे। राजा छत्रशालने मुगलके विपक्षमें महाराष्ट्र-सेनासे सहायता पाई थी। इस कारण १७३४ ई०में मरते समय छत्रशाल निज अधिकृत राज्यका एक तृतीयांश और ललितपुर तथा जलौन और झांसी जिला मराठोंको दान दे गये थे। १७३८ ई०में २य पेशवा बाजीरावने बुन्देलोंके ऊपर अपनी धाक जमाई। इस समयसे ले कर १८०३ ई० तक यह स्थान पूनाके महाराष्ट्रसरकारके अधीन रहा।

मराठी-डकैतोंके उपद्रवसे यह स्थान मरुभूमिमें परिणत हो गया था। चन्देल और बुन्देलराजाओंकी अपूर्व कीर्त्ति मराठोंके युद्धविप्लवसे मट्टीमें मिल गई। इसके ऊपर महाराष्ट्रराज-सरकारका अयथा कर, जिससे प्रजा तंग तंग आ गई। इसी मौके पर १८०२ ई०में वृटिश सरकारने इस प्रदेशका शासन-भार अपने हाथ लिया।

राजा हिम्मत बहादुर अङ्गरेजोंके पक्षमें थे। इस कारण उन्हें काफी सम्पत्ति मिली। किन्तु वान्दाके मराठा-नवाब शमर बहादुर और उनके सरदारगण सदासे अंगरेजोंके विरुद्ध आ रहे थे। अतः वे राज्यच्युत किये गये। १८०४ ई०में यहां पूर्णशान्ति विराजने लगी। उसी साल हिम्मतकी मृत्यु हुई। अङ्गरेजोंने दी हुई सम्पत्ति वापस कर ली और शमशेर बहादुरके परिवारवर्गको ४ लाख रुपयेकी वृत्ति निर्द्धारित कर दी, किन्तु उनकी 'नवाब' उपाधि कायम रखी।

जबसे यह जिला अङ्गरेजोंके हाथ आया तबसे यहां कोई विशेष उन्नति न हुई। महाराष्ट्रगण जिस प्रथासे जमीनका कर वसूल करते थे अङ्गरेजोंको प्रथा वैसी न रहने पर भी प्रजा अब तक पूर्वक्षति पूरी न कर सकी है। १८५७ ई०के गदरमें ये लोग कानपुर और इलाहाबादके राजविद्रोही दलमें शामिल थे। वान्दाके नवाब

स्वयं विद्रोही दलका नेता बन कर अनेक स्थान दखल कर लिये थे। किन्तु कालञ्जरका दुर्ग उनके हाथसे जाता रहा था। दूसरे वर्ष विद्रोह शान्तिके साथ जनरल ह्विटलाकने इस स्थान पर अधिकार जमाया।

इस जिलेमें ५ शहर और ११८८ ग्राम लगते हैं। जनसंख्या साढ़े छः लाखके करीब है। यहां कुल मिला कर १७२ स्कूल और दो अस्पताल हैं।

२ उक्त जिलेकी पश्चिमी तहसील। यह अक्षा० २५° २०′ से २५° ३८′ उ० तथा देशा० ७६° ५६′ ८०° ३२′ पू० के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ४२७ वर्गमील और जनसंख्या लाखके करीब है। इसमें बान्दा नामका १ शहर और ११३ ग्राम लगते हैं।

३ उक्त तहसीलका एक शहर। यह अक्षा० १५° २८′ उ० तथा देशा० ८० २०′ पू०के मध्य अवस्थित है। जनसंख्या प्रायः २१२६५ है। बान्दाके नवाबके राजप्रासाद रहनेसे इस नगरका बान्दा नाम पड़ा है। यहां रुईका विस्तृत कारवार है। १८५८ ई०में सिपाहीयुद्धके बाद जब बान्दाके नवाब यहांसे हटा दिये गये, तभीसे इस नगरकी शोभा जाती रही। बान्दाके इस विस्तृत रुईका कारवार अभी राजापुर नगरसे परिचालित होता है। इस नगरमें ६६ मसजिद, २६१ हिन्दू देवालय और ५ जैनमन्दिर विद्यमान हैं। नये प्रासादका कुछ अंश टूट फूट गया है। अजयगढ़-राजवंशका भग्नप्राय प्रासाद, जैतपुर-राज गुमानसिंहका समाधिमन्दिर और केन तीरवर्त्ती भूरागढ़ दुर्गका ध्वंसावशेष प्रत्नतत्त्वविदोंकी आदरणीय वस्तु हैं। शहरमें कुल ११ स्कूल हैं।

बान्दा—१ मध्यप्रदेशके सगौर जिलेकी एक तहसील। यह अक्षा० २३° ५३′ से ३४ ३७′ उ० तथा देशा० ७८° ४०′ से ७९° १३′ पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ७०४ वर्गमील और जनसंख्या प्रायः ७३८२६ है। इसमें बान्दा नामक १ शहर और २६६ ग्राम लगते हैं।

२ उक्त जिलेका एक नगर और तहसीलका सदर।

बान्देकर—बम्बई प्रदेशवासी जातिविशेष। इस जातिके लोग गोआसे लवण, नारियलका तेल, नारियल, खजूर आदि द्रव्य धारवाड़ आदि जिलोंमें बेचने ले जाते हैं। इनमेंसे कुछ हिन्दू और कुछ पुर्त्तगीज खृष्टान देखे जाते हैं।

बान्दोगढ़—मध्यप्रदेशके अन्तर्गत एक प्राचीन स्थान। पर्णाशा नदीकी एक शाखा इस नगरके उत्तरपूर्व शोण नदीमें जा मिली है। यहां चेदि राजाओंका विख्यात दुर्ग आज भी देखनेमें आता है।

बान्धकिनेय (सं० त्रि०) बन्धक्य अपत्यं पुमान् बन्धकी (कल्याण्यादीनामिनङ्। पा ४।१।१२६) इति ढक् इनङ्च। असतीसुत, जारज।

बान्धव (सं० पु०) बन्धुरेव बन्धु (प्रज्ञादिभ्यश्च। पा ५।४।३८) इति स्वार्थे-अण्। १ भाई बन्धु। २ नातेदार, रिश्तेदार। ३ मित्र, दोस्त।

बान्धवक (सं० त्रि०) बान्धव सम्बन्धीय।

बान्धव्य (सं० क्ली०) ज्ञातिसम्पर्क।

बान्धुक (सं० त्रि०) बन्धुलवृक्ष सम्बन्धीय।

बान्धुपत (सं० त्रि०) बन्धुपति सम्बन्धीय।

बाप (हिं० पु०) पिता, जनक।

बापा (हिं० पु०) बाप्पा देखो।

बापिका (सं० स्त्री०) वापिका देखो।

बापी (हिं० स्त्री०) वापी देखो।

बापुरा (हिं० वि०) १ तुच्छ, जिसकी कोई गिनती न हो। २ दीन, बेचारा।

बापुगांग्रिया—एक दस्युदलके नेता। यह एक महाराष्ट्रीय पुलिस जमादारका लड़का था। १८४४ ई०में इसने कालिदस्युगणका दलपति हो कर अंगरेजोंके विरुद्ध अस्त्रधारण किया था। क्रमशः इसके उत्पातसे पूना सतारा आदि जिलोंके प्रायः सभी अधिवासी तंग तंग आ गये थे।

बापुगोखले—एक महाराष्ट्र सेनापति। पेशवा बाजीनाथ रघुनाथके समय इन्होंने अच्छी प्रतिष्ठा लाभ की थी। इस समय महाराष्ट्र-राज्यमें घोर शासनविशृङ्खलता उपस्थित हुई। नाना फड़नवीस, परशुराम भाव आदिके प्रधानतालाभके लिये षड़यन्त्र और विभिन्न सरदारोंके विद्रोहसे महाराष्ट्रशासन चौपट हो गया था। पेशवा नाममात्रको अधिपति थे, राजकार्य परिचालनका भार कूटनीतिविशारद सचिवोंके ऊपर सुपुर्द था। १८०३ ई०में

बाजीराव द्वारा प्रतिनिधिके परास्त होने पर सेनापति बापुगोखलेने उन सब देशों से इतना कर संग्रह कर लिया था, कि थोडे ही दिनों के मध्य ये एक मान्यगण्य और महाराष्ट्र-सरदारो के मध्य अच्छे धनी हो गये थे।

१८०० ई०में वे अपने चाचा धुन्धुपन्तके साथ धुन्धियाका दमन करनेके लिये गये। इस समय शत्रुके अस्त्राघातसे उनकी एक आँख बरबाद हो गई। १८०३ ई०में वे जनरल वेलसलीके साथ नाना स्थानों में युद्ध करने गये थे। इस समय अप्पा देसाई मेपांकुरको छोड़ कर उनके मुकाबलेका कोई सेनापति न था। वेलसिलीके साथ रह कर उन्हों ने युद्धविद्यामें विशेष पारदर्शिता लाभ की थी। उसीके फलसे उनके चाचाने १८०५ ई०में अपनी सेनाका परिचालन-भार उन पर सौंपा।

अंगरेजों के साथ रहने पर भी उनके हृदयसे अंगरेजविद्वेष दूर नहीं हुआ। उन्होंने मन ही मन महाराष्ट्रजगत्से अंगरेजोंको मार भगानेका संकल्प किया। १८१७ ई०में उन्हींकी बातमें पड़ कर पेशवा अंगरेजोंके विरुद्ध खड़े हो गये। इस समय गोखले सेनाविभागके सरदार थे। पेशवाने उन्हें मिः एलफिन्सटनको आमन्त्रण करके मार डालनेकी सलाह दी, पर गोखले उस क्षुद्र हृदयहीनताका परिचय देनेको राजी न हुए। जो कुछ हो, बहुत तर्कवितर्कके बाद उन्होंने युद्धक्षेत्रमें उतरना ही अच्छा समझा। बापुगोखलेने महाराष्ट्रसेनाके नेता हो कर किर्कीके रणक्षेत्रमें अंगरेजोंका सामना किया। १८१८ ई०की पहली जनवरीको कोरीगाँवमें तुमुल संग्राम छिड़ गया। अन्तमें बाजीराव दलबल समेत कर्णाटक की ओर भाग चले। उसी सालकी १६ वीं फरवरीको बाजीरावके शोलापुरसे लौटते समय अंगरेज-सेनापति स्मिथने महाराष्ट्रदल पर चढ़ाई कर दी। इस युद्धमें गोखलेकी सहृदयताका परिचय उस समयके अंगरेज कर्मचारियों ने मुक्तकण्ठसे किया है।

बापुजी नायक—बारामतीवासी एक महाराष्ट्र ब्राह्मण। रघुजी भोंसलेने इन्हें बालाजी बाजीरावके बदलेमें पेशवापद पर अधिष्ठित करनेकी चेष्टा की थी।

बाप्पा—मेवाडके गुहिल(१) वंशीय एक राजा। टाड ने लिखा है—गुहसे नीचे ८वीं पीढ़ीमें राजा नागादित्यको भीलोंने मार कर ईडर राज्य पर अधिकार जमाया था। उस समय बाप्पा तीन वर्षके बालक थे। पुरोहित लोग राजवंश-लोपके भयसे उसे ले कर भाण्डिर दुर्गमें भागे। किंतु इस स्थानमें बालकको निरापद न जान वे लोग उसे त्रिकूटपाद मूलस्थ नागोद नगरीमें ले आये। यहां धर्मप्राण ब्राह्मणमंडलीके बीचमें रह बाप्पा बनराजिसमाच्छन्न उपत्यका भूमिमें स्वच्छंदसे विचरण करने लगे।

एक दिन शारदीय झूलन पर्वोपलक्षमें नागोदकी शोलाङ्किराज-दुहिता सहचरियोंके साथ उसी वनमें क्रीड़ा करने आई। दैववशात् बाप्पा पर उन लोगोंकी दृष्टि पड़ी। चञ्चलप्रकृति बाप्पाने हँसी खेलके बहाने उनसे पाणिग्रहण करनेका अभिप्राय प्रकट किया। हिताहितविवेकविहीना बालिकाओंकी सम्मतिसे शीघ्र ही राजकुमारीके साथ खेलमें बाप्पाका विवाह हो गया।

पीछे राजकुमारी जब ब्याहने योग्य हुई तब परिणय संबंध स्थिर किया गया। वरपक्षीय एक ब्राह्मणने सामुद्रिक-परीक्षा कर कहा, "यह बालिका पहिले ब्याही जा चुकी है" इस विस्मयकर वाक्यको सुनने पर राजपरिवार के बीच बड़ी उथल पुथल मची।

प्रकृत पात्र निर्णयमें समर्थ न हो राजपरिवारके लोग बड़े उद्विग्न हुए। राजकोषसे भयभीत हो बाप्पाने उस देशका परित्याग किया। पलायन करते समय उनके पीछे बालियो और देव नामक दो भील युवक चल दिये।

भागनेसे ही बाप्पाका अदृष्टाकाश परिष्कृत हुआ। भट्टकवियोंके वर्णनमें लिखा है, कि बाप्पा नागोद नगरकी उपत्यका देशमें ब्राह्मणोंकी गायें चराते थे। एक गायका

(१) वल्लभीपुरके विध्वस्त होने पर राजा शिलादित्यकी पत्नी पुष्पवतीने ससत्त्वावस्थामें स्वामीकी सहमृता न हो, गर्भस्थ शिशुकी मंगलकामनासे मलिया गिरिगह्वरमें जा आश्रय लिया। प्रवाद है, कि यहां ही उसके एक पुत्र पैदा हुआ। गुहामें जन्म होनेके कारण बालकका गुहिल नाम रखा गया। किन्तु उसका विशुद्ध नाम गुहादित्य था। यही कारण है, कि उनके वंशधर गहलोत कहलाये।

दूध प्रतिदिन कोई पी लेता था, वाप्पाको इसका कुछ भी पता नहीं चलता। एक दिन वे इसी ताकमें लगे और चुपकेसे गायके पीछे हो लिये। अनन्तर इन्होंने देखा—वह पयस्विनी संकीर्ण उपत्यका पथसे किसी एक वेंतके वनमें घुसी और वहां एक ध्यानी योगीके सामनेमें प्रतिष्ठित शिवलिङ्गके ऊपर अविरल अमृत पयोधारा बरसाने लगी। वाप्पाके वहां उपस्थित होने पर योगीका ध्यान टूट गया। इनके आलापसे संतुष्ट हो योगीश्रेष्ठने इन्हें आशीर्वाद दिया। उसी दिनसे वाप्पा विशेष भक्तिके साथ योगिवरकी सेवा करने लगे। योगिवर हारीतने नीतिशिक्षाका इन्हें उपदेश दिया। पीछे इन्हें शैवमंत्रमें दीक्षित कर 'एक लिङ्गका देवयान' ऐसी आख्या दी।

अकृत्रिम गुरुभक्ति और शिवोपासनासे वाप्पाने धर्मका विशेष संचय किया। सिद्धि समीपवर्त्ती हो गई और अनायास ही इन्हें दैवानुग्रह प्राप्त हुआ। उस काननालयका परित्याग कर आते समय चित्तौरके अदूरवर्त्ती नाहक मुगरागिरिप्रदेशमें प्रसिद्ध गोरक्ष नाथ ऋषिके साथ इनका साक्षात् हुआ। योगीश्वरने इन्हें मंत्रपूत एक खड्ग प्रदान किया। उसी खड्गके द्वारा वे आगे चल कर चित्तौर सिंहासनलाभमें कृतकार्य हुए थे।

उस समय प्रमार-वंशीय मोरि राजगण चित्तौरका राज्य करते थे। वाप्पाकी माता मोरिवंशीया थी। अतः वे मामाके नातेसे मोरिराजके समीप उपस्थित हुए। वहां राजाके अनुग्रहसे वे अनेक भू-संपत्ति प्राप्त कर सामन्त समझे जाने लगे। वाप्पाके प्रति राजाका समधिक सम्मान देख कर अन्यान्य सामन्तगण जलने लगे। आखिर ऐसी अधीनताको असह्य जान सामन्तोंने राजाका परित्याग किया। इस समय शत्रुसैन्यने चित्तौर पर आक्रमण कर दिया, पर वाप्पाके प्रवल पराक्रमसे वे सबके सब मारे गये। कहा जाता है, वाप्पा खराज्यापहारक सलीमको पराजित कर गजनीके सिंहासन पर अधिरूढ़ हुये थे। पीछे इन्होंने पितृवैरी सलीमकी कन्याका पाणिग्रहण किया।

चित्तौरसे लौटते समय इन्हें रोषतप्त राजपूत सामन्तोंने अपना अधिनायक बनाया। राज्यलिप्सा बलवती होनेके कारण इन्होंने विद्रोही सामन्तोंकी सहायतासे चित्तौर आक्रमण कर अधिकार किया। राज्यप्राप्तिके बाद ही वे मर (मुकुट), हिंदूसूर्य, राजगुरु, और सार्वभौम आदि उपाधिसे भूषित हुये थे। हिंदू और म्लेच्छ-महिलाओंके गर्भसे उनके अनेक सन्तान उत्पन्न हुई थी। मारवाड़के अन्तर्गत क्षीरराज्यवासी गुहिलगण वाप्पाकी ही संतान हैं।

दलवार सरदारोंसे जो प्राचीन इतिहास-ग्रंथ मिला है उससे जाना जाता है, कि वाप्पाने वृद्धावस्थामें मुनिवृत्तिका अवलम्बन कर मेरुशृङ्गके नीचे शेष जीवन विताया था। संन्यास-धर्मका अवलंबन करनेके पहिले उन्होंने काश्मीर, गांधार, इस्पाहन, इराक्, इरान्, तुराण और काफ्रिस्तान प्रभृति अनेक प्रतीच्य राजाओंको परास्त कर उनकी कुमारियोंका पाणिग्रहण किया था। उन सब रमणियोंके गर्भसे वाप्पाके जो सन्तान उत्पन्न हुई वह नौशिरा और पठान तथा हिन्दू महिला-गर्भजात पुत्र अग्नि उपासक सूर्यवंशी नामसे प्रसिद्ध हुए।

शिलालिपि और भट्टकवियोंके वर्णनकी सहायतासे महात्मा टाडने ७६९ विक्रम संवत्‌में वाप्पाका जन्मकाल स्थिर किया है। इससे मालूम पड़ता है, कि वाप्पा चित्तौरके राजसिंहासन पर ७८४ संवत्‌में अधिरूढ़ हुये थे। राजभवनकी कुलतालिकामें वाप्पावंशधरोंके जो नाम लिखे हैं उनके साथ आइतपुरके ध्वंसावशेषसे प्राप्त १०२४ सम्वत्‌में उत्कीर्ण शिलालिपि वर्णित राजाओंके नाम मिलते जुलते हैं।

वाफ (हिं० स्त्री०) भाप देखो।

वाफता (फा० पु०) एक प्रकारका रेशमी कपड़ा। इस पर कलाबत्तू और रेशमकी बूटियाँ होती हैं। यह दोरुखा भी होता है।

वाब (अ० पु०) १ पुस्तकका कोई विभाग, परिच्छेद। २ मुकदमा। ३ तरह। ४ विषय। ५ आशय, अभिप्राय।

वाबक—एक भण्ड (भांड़) मुसलमान। ८१६ ई०में इसने अपनेको पैगम्बर बतलाया था। इसका प्रवर्त्तित धर्ममत किसीको नहीं मालूम रहने पर भी एक समय इसने आजर-बइजान और इराकवासी सैकड़ों लोगोंको अपने मतमें खींच लिया था। अपना धर्ममत फैलानेके

लिये यह खलीफा आल् अतामूल और खलीफा आल-मुताशिमके विरुद्ध खड़ा हो गया था। कई वार युद्धमें जयी होनेके वाद आखिर यह हैदर-इवन्-काउसके हाथसे परास्त हुआ। इस युद्धमें इसके ६० हजार शिष्य मारे गये। लाखके ऊपर सेनाका निहत और कारारुद्ध होने पर यह गर्दियान पर्वतको भाग गया। ८३७ ई० तक यह निरापद रहा। पीछे खलीफा-सेनापति आकसिनके निकट आत्मसमर्पण करनेको वाध्य हुआ। एक दिन जव वावक खलीफासे मिलने गया, तव खलीफाने पहले उसके हाथ पांव और पीछे सिर काट कर अपना मतलव निकाल लिया। प्रायः वीस वर्ष तक खलीफाके साथ वावक लड़ता रहा था। इसको निवुर्द्धितासे प्रायः ढाई लाख नरनारी यमपुरको सिधारी थीं।

वावची (हिं० स्त्री०) बकुची देखो।

वावनपाड़—मन्द्राज प्रदेशके अन्तर्गत एक नगर और वन्दर। यह अक्षा० १८° ३६' उ० तथा देशा० ८४°२२' ३०" पू०के मध्य अवस्थित है। यहांके अधिवासिगण अधिकांश मत्स्यजीवी हैं। लवणवाणिज्यके लिये यह स्थान वहुत कुछ मशहूर है।

वावनाड़ी—वर्द्धमान जिलेके अन्तर्गत एक प्रसिद्ध ग्राम। यहां स्थानीय द्रव्योंका विस्तृत वाणिज्य होता है।

वावर—वावर देखो।

वावरची (हिं० पु०) वावरची देखो।

वावरी (हिं० स्त्री०) लंवे लंवे वाल जो लोग सिर पर रखते हैं, जुल्फ।

वावा (हिं० पु०) १ पिता, वाप। २ पितामह, दादा। ३ वूढ़ा पुरुष। ४ साधु संन्यासियोंके लिये आदर-सूचक शब्द। ५ एक सम्वोधन जिसका प्रयोग साधु फकीर करते हैं। वाद विवादमें जव कोई वहुत साधु या शान्त भाव प्रकट करना चाहता है और दूसरेसे न्यायपूर्वक विचार करने या शान्त होनेके लिये कहता है, तव वह प्रायः इसी शब्दसे संवोधन करता है।

वावा जगजीवनदास—सत्नामी धर्मसम्प्रदायके प्रवर्त्तयिता। अयोध्याप्रदेशके दरियावाद परगनेमें उनका जन्म हुआ था। सत्नामी देखो।

वावावूदन—महिसुर राज्यके कदूर जिलेमें अवस्थित एक गिरिमाला। यह समुद्रपृष्ठसे ६०० फुट ऊंची है। इसके मूलैना गिरि (६३१७ फुट), वावावूदन (६२१४) और कालहत्तीगिरि (६१५५) नामक तीन शिखर सवसे ऊंचे हैं। यह पर्वतमाला पश्चिमघाट पर्वतकी एक शाखा मात्र है। इस पर्वतके पूर्वमुखवाले देवीरम्मगढ़ नामक एक शिखर पर दीवाली-उत्सवके समय रोशनी की जाती है। पर्वत पर जो वन है उसमें शाल, चन्दन आदि मूल्यवान् वृक्ष पाये जाते हैं। यहां कहवेकी खेती वहुतायतसे होती है। वावा वूदन नामक किसी मुसलमान साधुने यहां कहवा ला कर वुन दिया था। उसी फकीरके नाम पर इस पर्वतका नामकरण हुआ है। दक्षिण ढालुदेशकी गुहामें इसकी समाधि स्थापित है। अतिगुण्डिवासी एक मुसलमान कलन्दर उस गुहा-मन्दिरके तत्त्वावधायक हैं। वावावूदनका समाधिमन्दिर हिन्दूके निकट दत्तात्रेयका सिंहासनके नामसे पूजनीय है। इस पर्वतमें कई जगह लोहेकी खान मिलती है। कालहत्ती नामक गिरिशृङ्ग पर अंगरेजोंका स्वास्थ्य-निवास है।

वावालालगुरु—मालववासी एक कवि। इन्होंने हिन्दी भाषामें कविता-पुस्तक लिखी थी। जहांगीरके शासनकालमें ये विद्यमान थे। सम्राट् इनकी अच्छी खातिर करते थे।

वाविल (हिं० पु०) एशियाखण्डका एक अत्यन्त प्राचीन नगर। यह पहले फारसके पश्चिम फरात नदीके किनारे अवस्थित था। ३००० वर्ष पूर्व यह एक अत्यन्त सभ्य और प्रतापी जातिकी राजधानी था और उस समय सवसे वड़ा नगर गिना जाता था।

वावुना (हिं० पु०) एक पक्षी जो पीले रंगका होता है। इसकी आंखके ऊपरका रंग सफेद, चोंच काली और आँख लाल होती हैं।

वावुल (हिं० पु०) १ वावू। २ वाविल देखो।

वावू (हिं० पु०) १ आदर-सूचक शब्द, भलामानस। २ राजाके नीचे उनके वंधु वांधवों या और क्षत्रिय जमींदारोंके लिये प्रयुक्त शब्द। ३ पिताका सम्वोधन।

वावूड़ा (हिं० पु०) वावूके लिये हास्य, व्यंग्य या घृणासूचक शब्द।

बाबूना (फा० पु०) यूरोप और फारसमें होनेवाला एक छोटा पौधा। यह पंजाबमें भी पाया जाता है। इसका सूखा फूल बाजारोंमें मिलता है और सफेद रंगका होता है। इसमें एक प्रकारकी गंध होती है और इसका स्वाद कड़वा होता है। इसके फूलको तेलमें डाल कर एक प्रकारका तेल निकाला जाता है जिसे 'बाबूनेका तेल' कहते हैं। यह पेटकी पीड़ा, शूल और निर्बलताको दूर करता है। इसका गरम काढ़ा वमन करानेके लिये दिया जाता है और स्त्रियोंके मासिक धर्म बंद होने पर भी उपकारी माना जाता है।

बाभन—भूमिहार देखो।

बाम (सं० त्रि०) वाम देखो।

बाम (फा० पु०) १ अटारी, कोठा। २ मकानके ऊपरकी छत, घरके ऊपरका सबसे ऊँचा भाग। ३ एक मान जो साढ़े तीन हाथका होता है, पुरसा।

बाम (हिं० स्त्री०) १ एक प्रकारकी मछली। यह देखनेमें सांपसी पतली गोल और लंबी होती है। इसकी पीठ पर कांटा होता है। यह खानेमें स्वादिष्ट होती और इसमें केवल एक ही कांटा होता है। २ स्त्रियोंका कानोंमें पहननेका एक गहना। बामा देखो।

बामड़ा—मध्यप्रदेशके सम्बलपुर जिलेका एक सामन्त राज्य। वामड़ा देखो।

बामदेव (सं० पु०) वामदेव देखो।

बामनघाटी—उड़िसा प्रदेशके मयूरभंज राज्यके उत्तरका एक विभाग। अंगरेजी अमलमें आनेके बादसे सिंहभूममें डिपुटी कमिश्नर द्वारा इस स्थानका शासनकार्य परिचालित होता है। पहलेके प्रजा-विद्रोहके बाद वृटिश सरकारने यहांका शासनभार छीन लिया था। पीछे १८७८ ई०में यह पुनः लौटा दिया गया।

बामनियाबास—राजपूतानेके जयपुर राज्यके अन्तर्गत एक नगर।

बामा (सं० स्त्री) वमा देखो।

बामानी—रंगपुर जिलान्तर्गत एक नगर और प्रधान वाणिज्य स्थान।

बामी (हिं० स्त्री०) बांबी देखो।

बायं (हिं० वि०) १ बायां। २ खाली, चूका हुआ।

बाय (हिं० स्त्री०) बाउली, बेहर।

बायक (हिं० पु०) १ कहनेवाला, बतलानेवाला। २ पढ़नेवाला। ३ दूत।

बायकाट (अं० पु०) १ वह व्यवस्थित बहिष्कार जो किसी व्यक्ति, दल या देश आदिको अपने अनुकूल बनाने या उससे कोई काम करानेके उद्देश्यसे उसके साथ उस समय तकके लिये किया जाय जब तक वह अनुकूल न हो जाय या मांग पूरी न करे। २ सम्बन्ध आदिका त्याग या बहिष्कार।

बायन (हिं० पु०) १ भेंट, उपहार। २ वह मिठाई या पकवान आदि जो लोग उत्सवादिके उपलक्षमें अपने इष्ट मित्रोंके यहाँ भेजते हैं। ३ मजदूरीका थोड़ा अंश जो किसीको कोई काम करनेकी आज्ञा देनेके साथ ही इस लिये दे दिया जाता है जिसमें वह समय पर काम करने आवे, और जगह न जाय। ४ मूल्यका कुछ अंश जो किसी चीजको मोल लेनेवाला उसे ले जाने या पूरा दाम चुकानेके पहले मालिकको दे देता है जिसमें बात पक्की रहे और वह दूसरेके हाथ न बेचे।

बायबरंग (हिं० स्त्री०) बायबिड़ंग देखो।

बायबिडंग (हिं० पु०) हिमालय पर्वत, लंका और बर्मामें होनेवाली एक लता। इसमें छोटे छोटे मटरके बराबर गोल गोल फल गुच्छोंमें लगते हैं। ये फल सूखने पर औषधके काममें आते हैं और देखनेमें कबाबचीनीकी तरह लगते हैं। वैद्यकमें इसका स्वाद चरपरा कड़वा लिखा है और इसे रूखा गरम और हलका माना है। यह कृमि-नाशक, कफ और वातको दूर करनेवाला, दीपक तथा उदर रोग प्लीहा आदिमें लाभकारी होता है।

बायबिल—बाइबिल देखो।

बायबी (हिं० वि०) १ अपरिचित, अजनबी। २ नया आया हुआ। इस देशमें जितनी विदेशीय जातियां आई वे सबकी सब प्रायः वायव्य कोण हीसे आई। अतः बायबी शब्द जो वायवीयका अपभ्रंश है गैर, अज्ञात, अजनबी आदि अर्थोंमें रूढ़ि हो गया है।

बायव्य (सं० पु०) वायव्य देखो।

बायरा (हिं० पु०) कुश्तीका एक पेच।

बायल (हिं० वि०) जो दांव खाली जाय, जो दांव किसीको न पड़े।

वायला (हिं० वि०) वायु उत्पन्न करनेवाला, वायुका विकार वढ़ानेवाला।

वायलर (अं० पु०) भापके इंजनमें लोहे आदि धातु निर्मित एक कोठा। इसमें भाप तैयार करनेके लिये जल भर कर गरम किया जाता है।

वायस (सं० पु०) वायस देखो।

वायस्कोप (अं० पु०) एक प्रकारका यन्त्र। इसके द्वारा पर्दे पर चलते फिरते हिलते डोलते चित्र दिखलाये जाते हैं। वायस्कोप देखो।

वायाँ (हिं० वि०) १ किसी मनुष्य या और प्राणीके शरीरके उस पार्श्वमें पड़नेवाला जो उसके पूर्वाभिमुख खड़े होने पर उत्तरकी ओर हो, दहनाका उलटा। २ प्रतिकूल, विरुद्ध। ३ उलटा। (पु०) ४ वह तवला जो वायें हाथसे वजाया जाता है। यह मट्टी या तांवे आदि धातुका होता है। इसे अकेला भी लोग तालके लिये वजाते हैं।

वायु (सं० स्त्री०) वायु देखो।

वायें (हिं० क्रि० वि०) १ वाई ओर। २ विपरीत, विरुद्ध।

वारंवार (हिं० क्रि० वि०) पुनः पुनः, लगातार।

वार (हिं० पु०) १ द्वार, दरवाजा। २ आश्रय-स्थान। ३ दरवार। (स्त्री०) ४ काल, समय। ५ अति काल, देर। ६ दफा, मरतवा। (पु०) ७ धार, वाढ़। ८ घेरा वा रोक जो किसी स्थानके चारों ओर हो। ६ नाव, थाली आदिकी अवँठ, किनारा। १० किनारा, छोर। (फा० पु०) ११ वोझा, भार। १२ वह माल जो नाव पर लादा जाय।

वारक (हिं० स्त्री०) छावनी आदिमें सैनिकोंके रहनेके लिये वना हुआ पक्का मकान।

वारककंत (हिं० पु०) एक पौधा जो सांपके काटनेकी औषध है। इसकी जड़ पीस कर उस स्थान पर लगाई जाती है जहां सांप काटता है।

वारकपुर—१ वङ्गालके २४ परगनेका एक उपविभाग। यह अक्षा० २२° ३५′ से २२° ५७′ उ० तथा देशा० ८८° ३१′ पू० हुगलीके वायें किनारे अवस्थित है। भूपरिमाण १६० वर्गमील और जनसंख्या दो लाखसे ऊपर है। इसमें १२ शहर और १६३ ग्राम लगते हैं।

२ उक्त जिलेका एक नगर। यह अक्षा० २२° ४६′ उ० तथा देशा० ८८° २१′ पू० हुगलीके पूर्वी किनारे अवस्थित है। जनसंख्या १२ हजारसे ऊपर है। यहां अंगरेजोंका सेना-निवास स्थापित है। १७७२ ई०से यहांके सेनावारिकमें सेना रहने लगी है। तभीसे इस वारिकके नामानुसार इस स्थानका वारकपुर नाम पड़ा है। विख्यात अङ्गरेज-वणिक् चर्णक (*Job Charnock*)-का यहां पर विश्राम भवन था। १६८६ ई०में उक्त अंगरेज महापुरुषने यहां एक वाजार वसाया। सेनानिवासके दक्षिण भागमें वारकपुर पार्क नामक राजकीय उद्यान है। भारतके अंगरेजराज-प्रतिनिधिगण (*Viceroys of India*) इस सुरम्य उद्यान-वाटिकामें रहते हैं, इस कारण इसकी छटा निराली है। लार्ड मिण्टोने यहां जो वासभवन वनवाया था, मार्किस आव हेष्टिंस उसका संस्कार कर गये हैं। यहां लेडी कैनिङ्गका समाधिस्तम्भ विद्यमान है।

यहां दो वार सिपाही-विद्रोह हुआ था। १८२४ ई०में ब्रह्मयुद्धके समय यहांके सिपाही समुद्र हो कर ब्रह्म जानेको इनकार चले गये। स्थलपथसे जानेमें भी उन्होंने दूनी मजदूरीके लिये प्रार्थना की। इस पर अंग-रेज सेनापति कार्टराइट साहवने उन्हें वहुत कुछ सम-झाया वुझाया, पर वे कव माननेवाले थे, सवके सव वागी हो गये। फिर नवम्वर मासमें उन्होंने गवर्मेण्टके विरुद्ध तलवार उठाई। अंगरेज सेनाध्यक्ष पेगेटने उन्हें शान्त करनेकी खूव चेष्टा की, पर कोई फल न निकला। आखिर उन्होंने सेनादलको युद्धक्षेत्रमें अग्रसर होनेका हुकुम देते हुए कहा कि यदि वे इस आज्ञाका उलङ्घन करेंगे, तो उन्हें अस्त्रत्याग करना कर्त्तव्य है। इस पर भी जव उन्होंने कान नहीं दिया, तव पेगेटके सहचर कमानवाही अंगरेजोंने उन पर गोली वरसाना शुरू कर दिया। वे अंगरेजोंकी तोपके सामने वहुत देर तक न ठहर सके और जान ले कर भागे। कुछ नै तो नदीमें कूद कर प्राणरक्षा की और कुछ अंगरेजोंके हाथसे वन्दी और निहत हुए।

१८५७ ई०में यहां फिरसे विद्रोहाग्नि धधक उठी। चर्वी मिला हुआ कारतूस छूनेसे जात जायगी, इस भयसे उन्होंने अंगरेजोंके विरुद्ध अस्त्रधारण किया। जेनरल द्वारा उन्हें हिताहितका ज्ञान कराने पर भी

उन्होंने एक भी न सुनी। वह विद्रोहाग्नि धीरे धीरे भयङ्कर रूप धारण करती गई। दिनों दिन सिपाही-दलकी आक्रोश-चिनगारियां वाहर निकलने लगीं। २०वीं मार्चको मङ्गल पांड़े नामक ३४वें देशीय पदाति-दलके किसी कर्मचारीने लेफ्टिनाएट वाफ और सर्जेण्ट मेजरको गोलीसे उड़ा दिया और दूसरे दूसरे सिपाहियों-को उनमें शामिल होनेके लिये उभाड़ा। जिस रक्षक-सिपाही दलने उपस्थित घटनाका लक्ष्य करके भी मङ्गल-पाण्डेको नहीं रोका था, वे भी भगा दिये गये। मङ्गल पांडेको पीछे अंगरेज सैनिकविचारसे फांसीकी सजा हुई। सिपाहीयुद्ध देखो।

वारकल—१ चट्टग्रामकी पहाड़ी जमीनमें विस्तृत एक गिरिमाला। इसकी ऊँची चोटीका नाम ढङ्ग है। यह अक्षा० २२°४५´उ० तथा देशा० ९२°२२´ पू०के मध्य अवस्थित है। यहांके जंगलमें सैकड़ों जंगली हाथी विचरण करते हैं।

२ उक्त गिरिमालास्थ एक जल-प्रपात। यह अक्षा० २३°४३´उ० तथा देशा० ९२°२६´ पू०के मध्य अवस्थित है।

वारकीर (सं० पु०) यूका, जोंक।

वारगह (हिं० स्त्री०) १ डेवढ़ी। २ डेरा, खेमा।

वारगीर (फा० पु०) वह जो घोड़े के लिये घास लाता और उसकी रक्षा आदिमें साईसको सहायता देता है।

वारग्राम—फीफरदेशके अन्तर्गत एक प्राचीन ग्राम। यह गङ्गा और कर्मनाशाके सङ्गमस्थल पर अवस्थित है।

वारजा (हिं० पु०) १ कोठा, अटारी। २ वरामदा। ३ कमरेके आगेका छोटा दालान। ४ मकानके सामनेके दरवाजोंके ऊपर पाट कर बढ़ाया हुआ वरामदा।

वारण (सं० पु०) वारण देखो।

वारतुंडी (सं० स्त्री०) आलका पेड़।

वारदाना (फा० पु०) १ व्यापारकी चीजोंके रखनेका बरतन। २ फौजके खाने पीनेका सामान, रसद। ३ खराव लोहे, लकड़ी आदिके टूटे फूटे सामान।

वारदिया—पश्चिम मालवके अन्तर्गत एक अंगरेज-रक्षित सामन्त राज्य। ठाकुर राजगण यहांका शासन करते हैं।

वारना (हिं० क्रि०) १ निवारण करना, मना करना। २ प्रज्वलित करना, जलाना।

वारनिश (अं० स्त्री०) फेरा हुआ रोगन या चमकीला रंग।

वारवंटाई (फा० स्त्री०) वह विभाग जो फसलको ढोनेके पहले किया जाय, वोभवंटाई।

वारवधूटी (हिं० स्त्री०) रंडी, वेश्या।

वारवरदार (फा० पु०) वोझा ढोनेवाला।

वारवरदारी (फा० स्त्री०) १ सामग्री आदि ढोनेकी क्रिया, सामान ढोनेका काम। २ सामान ढोनेकी मजदूरी।

वारभूँया*—वङ्गालके वारह भौमिक वा राजा उपाधिधारी जमींदार। आईन-इ-अकवरी, अकवरनामा आदि मुसलमान इतिहासमें इन सामन्तोंमेंसे किसी किसीका उल्लेख देखा जाता है। इन लोगोंमेंसे कुछ तो पहलेके और अनेक सम्राट् अकवर शाहके समसामयिक थे। सेनापति मानसिंह जव वंगाल पर चढ़ाई करते आये, उस समय किसी किसीके साथ उनकी मुलाकात हुई थी। मुसलमानी अमलमें भी उन वारहमेंसे आधा वङ्गालका शासन करते थे। सम्राट् अकवरशाह उनसे वङ्गालका राजस्व लेते थे और जरूरत पड़ने पर सैन्यसंग्रह करके उन्हें दिल्लीश्वरको सहायता भी करनी पड़ती थी।

एक समय १२ अधिपतियोंके द्वारा समूचा वङ्गाल-राज्य परिचालित होता था; इस कारण सभी लोग वङ्गदेशको 'वारभूँये वङ्गाल' कहते थे। उन वारह भौमिकोंका परिचय इस प्रकार है,—

नाम	जहांके राजा थे	जाति
राजा कन्दर्पनारायण राय	चन्द्रद्वीप	वसुवंशीय वङ्गज कायस्थ
प्रतापादित्य	यशोहर	गुहवंशीय „
लक्ष्मणमाणिक्य	भुलुया	शूरवंशीय „
मुकुन्दरामराय	भूषणा	देववंशीय।
चाँदराय और केदारराय	विक्रमपुर	घृतकौशिक गोत्रदेववंशीय
चांदगाजी	चांदप्रताप	मुसलमान

* भूमिहार शब्दका अपभ्रंश।

नाम	कहांके राजा थे	जाति
गणेशराय	दिनाजपुर	उत्तर-राढ़ीय कायस्थ।
हम्वीरमल्ल	विष्णुपुर	मल्लवंशीय।
कंसनारायण	ताहिरपुर	वारेन्द्र ब्राह्मण।
रामचन्द्र ठाकुर	पुंटियां	वारेन्द्र ब्राह्मण।
फजल गाजी	भौआल	मुसलमान।
ईशा खाँ मसनद अली	खिजिरपुर	मुसलमान।¶

उक्त वारह भौमिकोंमेंसे राजा कन्दर्पनारायण, प्रतापादित्य, लक्ष्मणमाणिक्य, मुकुन्दराय, चांदराय और केदारराय थे पांच वङ्गज कायस्थ थे। उनमेंसे प्रत्येकके द्वारा एक एक समाज संगठित हुआ।

वर्त्तमान फरिदपुर जिलेके अन्तर्गत भूषण ग्राममें राजामुकुन्दरामकी राजधानी थी। उनके वंशधर राजा सीताराम रायके अधःपतनके वाद नवावी अमलमें भूषण एक वडे चकलेमें परिणत हुआ। विस्तृत विवरण सीताराम और भूषणा शब्दमें देखो।

राजा कन्दर्पनारायण चन्द्रद्वीपके वसुवंशीय राजा थे। वे राजा मुकुन्दके समसायिक भौमिक थे। कन्दर्पके पिता राजा परमानन्दने वङ्गज कायस्थ कुलीनोंका ६म समीकरण किया। इस समय चाँदराय, केदारराय और मुकुन्दरामने कुलीनोंके पृष्ठपोषक हो उनके समीकरण-कार्यमें वाधा डाली। चन्द्रद्वीपके वसुवंशीय कायस्थ राजा कन्दर्पनारायणके समय यशोहर नगरमें प्रतापके चाचा राजा वसन्तरायने यशोहर समाज प्रतिष्ठित किया। प्रतापादित्यने अपने प्रतिभावलसे उस समाजको विशेष गौरवान्वित कर दिया था। इन सव राजाओंने जो एक समय अर्द्धस्वाधीन रह कर राजकार्यकी परिलोचना की थी उसका यथेष्ट विवरण मिलता है। उन लोगोंकी वीरत्व-कहानी और रणसज्जा किसीसे भी छिपी नहीं हैं।

¶ दिल्लीसे वंगालमें आ कर इन्होंने भौआलके राजा शिशुपालको परास्त किया और वहांके अधीश्वर वन वैठे। यह स्थान अभी ढाका जिलेके अन्तर्गत है।

वारमहल—मन्द्राज प्रदेशके अन्तर्गत एक भूमि-विभाग। उत्तर आरकट और सलेम जिलेका तिपातुर, कृष्णगिरि, धर्मपुर, ओसुर और देङ्कमकोट्टई तालुक ले कर यह विभाग संगठित हुआ है। यह अक्षा० १२° ५' से १२° ४५' उ० तथा देशा० ७८° ७०' से ७६° ३०' पू०के मध्य अवस्थित है। पूर्व समयमें इस विभागके कृष्णगिरि, जयरणगढ़, भूषणगढ़, कट्टिरगढ़ तिपातुर, वानियाम्वाड़ी, सथारसनगढ़ और थातुकल्लू आदि स्थानोंमें देशरक्षाके लिये दुर्ग वनाये गये थे। इसके पूर्व और पश्चिम सीमामें घाटपर्वतमाला है।

पहले यह नगर विजयराजवंशके अधिकारमें था और उसी राजवंशकी आनगुण्डी शाखाके राजगण इस प्रदेशका शासन करते थे। १६६८ ई०में यह महिसुरराज्यके अन्तभुक्त हुआ। १८वीं शताब्दीमें कर्पाके पठान नवावने इस पर अधिकार जमाया। प्रायः ५० वर्ष राज्य करनेके वाद हैदरअलीने उनसे यह स्थान छीन लिया।

अनन्तर महाराष्ट्रीयगण इस प्रदेशके सर्वमयकर्त्ता हुए। किन्तु पानीपतकी लड़ाईमें जव महाराष्ट्र शक्ति विपर्यस्त हो गई तव हैदर अलीने पुनः इस पर अपना कब्जा जमाया। १७६७ ई०में निजाम और हैदरअलीने मिल कर कृष्णगिरिमें अङ्गरेजोंको परास्त किया। इसके एक मास वाद अङ्गरेजोंने फिरसे वारमहल पर चढ़ाई की और एक एक करके सव दुर्ग अधिकार कर लिये। १७६० और १७६१ ई०में अङ्गरेजोंके लगातार आक्रमण करने पर भी कृष्णगिरिदुर्ग उनके हाथ न लगा। १७६२ ई०में वारमल अङ्गरेजोंके हाथ सुपुर्द किया गया।

वारमुखी (हिं० स्त्री०) रंडी, वेश्या।

वारमुआरा—गुजरात प्रदेशके महीकान्थाके अन्तर्गत एक करद राज्य। यहांके सरदार वड़ोदाराजको वार्षिक कर देते हैं।

वारमूला—१ उड़ीसाप्रदेशके दशपल्लाराज्यके अन्तर्गत एक गिरिकन्दर। यह गोआलदेवके गिरिशृङ्गके निकट अवस्थित है। उक्त राज्यकी उत्तरी सीमा हो कर महानदी वहती है। १८०३ ई०में महाराष्ट्रयुद्धके समय वार-

मूला-गिरिपथमें अङ्गरेजी सेना सन्निवेशित थी। इसी स्थान पर मराठोंने अङ्गरेजोंके विरुद्ध अंतिम वार अस्त्र-धारण किया था। इसी गिरिसङ्कटमें ४री नवम्बरको परास्त हो कर मराठोंने सदाके लिये अपनी स्वाधीनता खो दी।

२ काश्मीरराज्यके अन्तर्गत एक गिरिकन्दर। यह अक्षा० ३४° १०´ उ० तथा देशा० ७४° ३´ पू०के मध्य अवस्थित है। यहां विपाशा (झेलम) नदी वहती है। इस नदीमें एक वड़ा पुल है।

वारवई—१ मध्यभारतके इन्दोर राज्यान्तर्गत निमार जिले का एक परगना। यह भोपावर पेजेन्सीके शासनाधीन है।

२ उक्त जिलेका एक नगर। यह नर्मदा नदीसे १ मील उत्तर पड़ता है। यहां राजपूताना-मालव रेलपथका एक स्टेशन रहनेके कारण वाणिज्यकी विशेष सुविधा हो गई है। १८४७ ई०में धारगांव, खसड़ावाड, मण्डलेश्वर और वारवई होलकरराजको समर्पण किया गया।

वारावंकी—युक्तप्रदेशके फैजावाद विभागका जिला। यह अक्षा० २६° ३१´से २७° २१´ उ० तथा देशा० ८०° ५६´से ८१° ५२´ पू के मध्य विस्तृत है। भूपरिमाण १७५८ वर्गमील है। इसके उत्तर-पश्चिममे सीतापुर, उत्तर-पूर्वमें गोगरा, दक्षिणपूर्वमें फैजावाद और सुलतानपुर, दक्षिणमें रायवरेली तथा पश्चिममें लखनऊ है। यह जिला प्रायः समतल है, पर उत्तर-पश्चिमसे दक्षिण-पूर्वकी ओर ढालू होता आया है। गोमती, घघरा और चौका आदि शाखा-नदियां इस जिलेके मध्य हो कर वहती हैं जिससे यहांकी जमीन उर्वरा हो गई है। इसके मध्यभागमें कुछ झील और तालाव हैं। वर्षाकालमें कुल-तालाव भर जाते हैं और एकत्र हो कर एक खण्ड जलराशिकी तरह दीख पड़ते हैं। किन्तु वर्षाके वाद वे पूर्ववत् आकार धारण करते हैं।

इस जिलेके नाना स्थानोंमें जो सव प्राचीन निदर्शन देखे जाते हैं, प्रत्नतत्त्वविद्गण यदि उनका उद्धार कर सकें, तो एक अभिनव इतिहास तैयार हो सकता है। यहां नागपूजोपलक्षमें सैकड़ों मनुष्य जमा होते हैं। नागराजाओंके समयसे ही यहां नागपूजाको सृष्टि हुई है यह वात आज भी वहुतोंके मुखसे सुना जाता है। अहिच्छेत्रके नागहृदके निकट जहां बुद्धदेवने वक्तृता दी थी, वहां अशोकनिर्मित्त एक स्तूपका ध्वंसावशेष देखा जाता है। पहले यहां भर जातिका पूर्ण प्रभाव फैला हुआ था। उनके अभ्युदय पर अयोध्यामें जगह जगह दुर्ग, प्राकार, परिखा और जलाशयादि वनाये गये थे। आज भी ध्वंसावशेष समूह लुप्तकीर्त्तिकी गवाही देता है।

ब्राह्मण्यधर्मका पुनरभ्युदय होने पर वौद्ध लोग यहांसे भगाये गये और क्षत्रियोंको प्रधानता स्थापित हुई। मुसलमानी आक्रमणसे क्षत्रिय और भरराजाओंका प्रभाव जाता रहा। १०३० ई०में सैयद सलार मसाउद्ने इस स्थान पर आक्रमण किया। ११८९ ई०मे श्रीसरी सेखोंने शिहरियाको परास्त करके यहाँ उपनिवेश वसाया। १२३८ ई०में जोहेलपुरके निकट भर जातिको परास्त करके मुसलमान सेनापति अवदुल वाहिदने इस स्थानका जैदपुर नाम रखा। इस समय खेवलीके सैयदोंने भर लोगोंसे मिठौली तथा भादि नामक मुसलमानोंने वाइ- क्षत्रियगणसे ववौली और भर अधिकृत मवाई-महोलारा नामक स्थान छीन लिया। १३०० ई०में रधौली और १३३५ ई०में रसुलपुर भरशासनसे जाता रहा।

१५वीं शताब्दीमें यह स्थान दिल्लीके लोदी और जौनपुरके शर्कीवंशका युद्धस्थल हो गया था। इस समय फतेपुरके सूवेदार दरियाव खांने दरियावादमें और कामियर तथा कहन जातिकी वासभूमिमें (घाघरा नदीके उभय तीरवर्त्ती भूमि) अचलसिंहने एक सेनानिवेश स्थापित किया था। उक्त अचलसिंहके वंशधरगण आज भी छः भूसम्पत्तिके अधिकारी हैं तथा वीस हजार कलहन उन अचल सिंहको अपना पूर्व पुरुष समझ कर गौरव करते हैं। इस समय इस जिलेका इतस्ततः मुसलमान कर्तृक विक्षोभित होने पर भी हरहा नगर सूर्यवंशीके और सूर्यपुर सोमवंशी क्षत्रियोंके हाथ था। रामनगरके राइकवाड़ क्षत्रियगण किस समय यहां आ कर वस गये थे, उसका कोई प्रकृत इतिहास नहीं मिलता। वराइच देखो।

सम्राट् अकवर शाहके राजत्वकालमें राइकवाड़के सरदार हरिहरदेवने काश्मीर-युद्धमें खूव वीरता दिख-

लाई थी। पारितोषिक स्वरूप सम्राट्ने उन्हें इस जिलेका सइलाक परगना प्रदान किया। १७५१ ई०में राइकवाड़ोंने विद्रोही हो कर लखनऊ पर चढ़ाई कर दी। कल्याणी नदीके किनारे मुसलमानी सेनाके साथ उनकी गहरी मुठभेड़ हो गई। आखिर खाँजादागणने जयी हो कर उनकी कुल सम्पत्ति छीन ली। १८१४ ई०में सयादत् अली खाँकी मृत्युके वाद राइकवाड़गण अपने खोए हुए राज्यका पुनरुद्धार करनेमें समर्थ हुए थे। १८५२ ई०में अंगरेजशासनभुक्त होनेके पहले उन्होंने एक विस्तृत राज्य संगठन किया था। देशीय राजाके अधिकारमें यह स्थान अत्याचारका आदर्शस्थल हो गया। गोमती और कल्याणी तीरवर्ती जङ्गलमय पहाड़ प्रदेशमें सूर्यपुरके शैराज सिंहजीका, भवानीगढ़के महीपत सिंहका और काशुनगढ़के गङ्गावक्सके दस्युसेनादलका दुर्भेद्य दुर्ग स्थापित था।

१८५७-५८ ई०के गदरमें यहांके तालुकदारगण शामिल थे। नवावगञ्जके युद्धमें सीतापुर और वराइचके राइकवाड़ोंने राजपूतोचित वीरताका परिचय दिया था। उस समयके कोई अंगरेज-सेनापति इन लोगोंके रणोन्माद और भीषण साहसकी कथा लिपिवद्ध कर गये हैं। १८५८ ई०के जुलाई मासमें यहां पूरी शान्ति स्थापित हुई। दूसरे वर्ष दरियावादसे नवावगञ्ज जिलेमें सदर उठा कर लाया गया। इस जिलेके अन्तर्गत वारावंकी, फतेपुर, रामसनेही और हैदरगढ़ नामके चार उपविभाग पड़ते हैं।

इस जिलेमें १० शहर और २०५२ ग्राम लगते हैं। जनसंख्या ग्यारह लाखसे ऊपर है जिनमेंसे सैकड़े पीछे ८३ हिन्दू और १७ मुसलमान हैं। यह जिला विद्याशिक्षामें बहुत पीछा पड़ा हुआ है। अभी कुल मिला कर १७० स्कूल हैं। स्कूलके अलावा १२ अस्पताल और चिकित्सालय भी हैं।

२ उक्त जिलेका एक शहर। यह अक्षा० २६° ५६' उ० तथा देशा० ८१° १२' पू०के मध्य अवस्थित है। जनसंख्या प्रायः ३०२० है। नवावगञ्ज शहरसे यह एक मील उत्तर पड़ता है।

वारवा—वारवा राज्यका प्रधान नगर और बन्दर। यह अक्षा० १८° ६२' ४०" उ० तथा देशा० ८४° ३७' ३५" पू०के मध्य अवस्थित है। यहांसे नाना प्रकारके द्रव्योंकी भारतके विभिन्न देशोंमें रफ्तनी होती है।

वारवा (हिं० स्त्री०) एक रागिनी जिसे कुछ लोग श्रीरागकी पुत्रवधू मानते हैं।

वारवाटी—उड़ीसाकी राजधानी कटकके अन्तर्गत एक दुर्ग। यह अक्षा० २०° २९' उ० तथा देशा० ८५° ५६' पू० कटकके दूसरे किनारे महानदीके दाहिने किनारे अवस्थित है। किस समय यह दुर्ग वनाया गया था, ठीक ठीक मालूम नहीं। १४वीं शताब्दीमें हिन्दू राजाओंके अधिकारकालमें उसका गठनकार्य समाप्त हुआ, ऐसा जनसाधारणका विश्वास है। १७५० ई०में मुसलमान और महाराष्ट्र-अधिकारमें इसके कुछ अंशोंका संस्कार किया गया। अभी यह दुर्ग जंगलमें परिणत होने पर भी उसका पूर्व द्वार और फते खां रहीम-निर्मित मसजिद विद्यमान है। दुर्गकी सीमाके चारों कोने पर दो स्तवक प्रस्तरप्राचीर और वीचमें पताकास्तम्भ था। पूर्वद्वारके निकट और दोनों तरफ दो चतुरस्र गुम्वदका चिन्ह भी दृष्टिगोचर होता है। १७६७ ई०में भ्रमणकारी मोटे (M. la Motte) इसके गठनकार्यके साथ इङ्गलैण्डस्थ विण्डसर दुर्गकी तुलना कर गये हैं। १८०३ ई०में महाराष्ट्र अभियानके शेषमें यह दुर्ग अंग्रेजोंके हाथ लगा।

वारवाला—वम्बई प्रदेशके अहमदावाद जिलेके अन्तर्गत एक नगर। यह अक्षा० २२° ८' १५" उ० तथा देशा० ७१° ५७' ३०" पू० उतौली नदीके वायें किनारे अवस्थित है। यह नगर चारों ओर प्राचीरसे घिरा है।

वारवाला—१ पञ्जाव प्रदेशके हिसार जिलेके अन्तर्गत एक तहसील। भूपरिमाण ५८० वर्गमील है।

२ उक्त उपविभागका एक प्रधान नगर और विचार-सदर। यहांका ध्वंसावशेष इस स्थानकी प्राचीन समृद्धिका परिचय देता है। अधिकांश अधिवासिगण सैयद्-वंशीय मुसलमान हैं। ये लोग निकटवर्ती स्थानोंके अधिकारी हैं।

वारवसपुर—मध्यप्रदेशके रामपुर जिलान्तर्गत एक सामन्तराज्य। भूपरिमाण ४३ वर्गमील है।

वारवीघा—मुङ्गेर जिलेके अन्तर्गत एक नगर। यह अक्षा०

२५° १४' उ० तथा देशा० ८५° ४१' पू०के मध्य अवस्थित है।

वारसितकली—बेरारराज्यके अकोला जिलेके अन्तर्गत एक नगर।

वारह (हिं० पु०) १ वारहकी संख्या। २ वारहका अंक जो इस प्रकार लिखा जाता है—१२। (वि०) ३ जो संख्यामें दस और दो हो।

वारहखड़ी (हिं० स्त्री०) वर्णमालाका एक अंश। इसमें प्रत्येक व्यञ्जनमें अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ए, ऐ, ओ, औ, अं, और अः इन वारह स्वरोंको, मात्राके रूपमें, लगा कर बोलते या लिखते हैं।

वारहटनरहरदास— अवतारचरित नामक हिन्दी ग्रन्थके रचयिता।

वारहदरी (हिं० स्त्री०) चारों ओरसे खुला हवादार बैठक। इनमें वारह द्वार रहते हैं।

वारहपत्थर (हिं० पु०) १ वह पत्थर जो छावनीकी सरहद पर गाड़ा जाता है, सीमा। २ छावनी।

वारहवान (हिं० पु०) एक प्रकारका वढ़िया सोना।

वारहवाना (हिं० वि०) १ सूर्यके समान दमकवाला। २ चोखा, खरा।

वारहवानी (हिं० वि०) १ सूर्यके समान दमकवाला। २ निर्दोष, पापरहित। ३ पूर्ण, पूरा। ४ खरा, चोखा। (स्त्री०) ५ सूर्यकी-सी दमक, चोखी चमक।

वारहमासा (हिं० पु०) एक प्रकारका पद्य या गीत। इसमें वारह महीनोंकी प्राकृतिक विशेषताओंका वर्णन किसी विरही या विरहिनीके मुंहसे कराया गया हो।

वारहमासी (हिं० वि०) १ सव ऋतुओंमें फलने फूलनेवाला, सदावहार।

वारहवफात (अ० पु०) अरवी महीने रवी-उल-अव्वलकी वे वारह तिथियां जिनमें मुसलमानोंके विश्वासके अनुसार महम्मद साहव वीमार पड़ कर मरे थे।

वारहवाँ (हिं० वि०) जो स्थानमें ग्यारहवेंके वाद हो।

वारहसिंगा (हिं० पु०) हिरनकी जातिका एक पशु। यह तीन चार फुट ऊंचा और सात आठ फुट लम्वा होता है। नरके सींगोंमें कई शाखाएं निकलती हैं इसीसे इसका 'वारहसिंगा' नाम पड़ा। चौपायोंके सींगोंके समान इसके सींगों पर कड़ा आवरण नहीं होता, कोमल चमड़ा होता है। इसके सींगका आवरण हर साल फागुन चैतमें उतरता है। आवरणके उतरने पर सींगमेंसे एक नई शाखाका अंकुर दिखाई पड़ता है। इस प्रकार प्रति वर्ष एक नई शाखा निकलती है जो कुआर कातिक तक पूरी बढ़ जाती है। मादाके सींग नहीं होते, वे चैत वैशाखमें बच्चा देती हैं।

वारहाँ (हिं० वि०) वारहवां देखो।

वारहीं (हिं० स्त्री०) बच्चोंके जन्मसे वारहवां दिन। इस दिन उत्सव आदि किये जाते हैं।

वारहों (हिं० पु०) १ किसी मनुष्यके मरनेके दिनसे वारहवां दिन, द्वादशाह। २ कन्या या पुत्रके जन्मसे वारहवां दिन। इस दिन कुल-व्यवहारके अनुसार अनेक प्रकारकी पूजा होती है। वहुतोंके यहां इसी दिन नामकरण भी होता है, वरही।

वारा—पञ्जाव प्रदेशके पेशावर जिलेमें प्रवाहित एक नदी। यह वारा नामक उपत्यका भूमिसे निकल कर कावुल नदीकी शाहआलम शाखामें मिली है। वारा नामक दुर्गके सामने यह नदी तीन धाराओंमें विभक्त हो गई है। एक धारा पेशावर नगरमें और दूसरी खलील तथा मोहमन्द जाति अधिवासित प्रदेशमें वह गई है। कोहट और आटकमें द्रव्यादि ले जानेके लिये नदीमें दो पुल हैं। वारा नदीके किनारे धानकी अच्छी फसल लगती है। सिख-अधिकारमें यहांसे पेशावर चावल भेजा जाता था जिसमेंसे अधिकांशकी रणजित्सिंहके यहां खपत होती थी। यह पुण्यसलिला नदी वहांके हिन्दूकी निगाहमें पवित्र समझी जाती है।

वारा (हिं० वि०) १ जिसकी वाल्यावस्था हो, जो सयाना न हो। (पु०) २ लोहेकी कंगनी जो वेलनके सिरे पर लगाई जाती है और जिसके फिरनेसे वेलन फिरता है। ३ एक गीत जिसे कुएंसे मोट खींचते समय गाते हैं। ४ वह आदमी जो कुएं पर खड़ा हो कर भर कर निकले हुए चरसे या मोटका पानी उलट कर गिराता है। ५ अंतरेसे तार खींचनेका काम।

वारात (हिं० स्त्री०) १ वरयात्रा, किसीके विवाहमें उसके घरके लोगों, संवंधियों, इष्ट मित्रोंका मिल कर वधूके घर जाना। २ वह समाज जो वरके साथ उसे व्याहनेके लिये सज कर वधूके घर जाता है।

बारादरी (हिं० स्त्री०) बाग्हदरी देखो।

बारानी (फा० वि०) १ बरसाती। (स्त्री०) २ वह भूमि जिसमें केवल बरसातके पानीसे फसल उत्पन्न होती है और सींचनेकी आवश्यकता नहीं पड़ती है। ३ वह कपड़ा जो पानीसे बचनेके लिये बरसातमें पहना वा ओढ़ा जाता है। यह ऊनको जमा कर या सूती कपड़े पर मोम आदि लपेट कर बनाया जाता है। ४ वह फसल जो बरसातके पानीसे बिना सिंचाई किये उत्पन्न होती हो।

बारापोल—दाक्षिणात्यमें प्रवाहित एक नदी। यह मन्द्राज प्रदेशके कुर्ग राज्य और मलबार जिलेमें प्रवाहित हो कर अरबसागरमें गिरी है। कुर्गराज्यके ब्रह्मगिरि नामक पर्वतके जिस स्थानसे यह नदी निकली है वह लक्ष्मण-तीर्थ और पापनाशी नामसे प्रसिद्ध है। कुर्ग-सीमान्तमें इस नदीके २ सौ फुट ऊंचा एक प्रपात है। वनभाग और पर्वतकन्दरादिके मध्य हो कर बहनेके कारण तीरभूमिका दृश्य अतीव मनोहर है। कोन्ननूर जानेके रास्ते पर इस नदीके ऊपर एक सुन्दर पुल है।

बारामती—बम्बई प्रदेशके पूना जिलेके भीमथड़ी तालुकका एक शहर। यह अक्षा० १८°९' उ० तथा देशा० ७४°३४' पू० पूना शहरसे ५० मील पूर्वमें अवस्थित है। जनसंख्या ९ हजारसे ऊपर है। म्युनिसपलिटी १८६५ ई०में स्थापित हुई है। शहरमें सब-जजकी अदालत और दो अङ्गरेजी स्कूल हैं।

बारामीटर (अं० पु०) बैरोमीटर देखो।

बारारी—भागलपुर शहरसे ४ मील उत्तर-पूर्वमें अवस्थित एक कसबा। यह अक्षा० २५° १६' उ० तथा देशा० ८७° २' पू०के मध्य गङ्गाके दाहिने किनारे अवस्थित है। जनसंख्या ५ हजारके करीब है जिनमेंसे हिन्दूकी संख्या ज्यादा है। यहां केवल एक पक्की सड़क है जो भागलपुर शहर तक चली गई है। बी, एन, डबल्यू रेलवेका यहां एक स्टेशन भी है। यह स्थान आम्र-काननसे आच्छादित है। वर्षाऋतुमें यहांका दृश्य बहुत ही रमणीय और नेत्रोंको सुखद प्रतीत होता है। जिधर दृष्टि दौड़ाई जाय, उधर ही सब्ज मखमली फर्श बिछा मालूम होता है। कोई स्थान ऐसे हैं जो बड़े शान्त और सुरम्य दिखाई पड़ते हैं। जिनसे प्राचीन कालके ऋषि-आश्रमोंका स्मरण हो आता है, लेकिन अधिकतर यह मनोहर छवि थोड़े ही दिन तक रहती है। वर्षाऋतुके बाद दृश्य बिलकुल बदल जाता है, सारी भूमि नग्न, भूरे रंगकी और सूखी बनी रहती है। यहां पर गङ्गाके अतिरिक्त सदैव बहनेवाली नदियोंका अभाव है और न एक तालाब ही है। अधिवासी कलके पानीसे ही अपना कुल काम चलाते हैं। मकई, मूंग, उड़द, सरसों, गेहूं, चना, जौ आदि फसल प्रायः उसी जमीन पर लगती है जो पुण्य सलिला भागीरथीके अपनी पूर्व गतिका परित्याग करनेसे निकल आई है। अधिवासियोंमेंसे बहुत थोड़े कृषि द्वारा जीविका चलाते हैं, अधिकांशका गुजारा नौकरी पर ही निर्भर करता है।

यहांके जमींदार कुलीन वंशोद्भव मैथिल ब्राह्मण हैं। वास-भवन भी इसी कसबेमें है। 'ठाकुर' इनकी उपाधि है। इनका प्राचीन इतिहास हमें विस्तृत भावमें मालूम नहीं, जहां तक विश्वस्त सूत्रसे पता लगा है, वह यों है,—स्वर्गीय बाबू मदनमोहन ठाकुर इसके स्थापयिता थे। कहते हैं, कि पहले इनकी अवस्था उतनी अच्छी न थी। १९वीं शताब्दीके मध्य वे बनैली राज स्वर्गीय वेदानन्दसिंह बहादुरके यहां नौकरी करते थे। उक्त महाशयकी इन पर बड़ी कृपा रहती थी। अवस्था किसीकी सदा एक-सी नहीं रहती। जो आज राजतख्त पर हैं, उन्हें कल राहके भिखारी और राहके भिखारीको विपुल सम्पत्तिके अधिकारी देखते हैं। वेदानन्द बहादुरके यहां रह कर बाबू मदन ठाकुरका अदृष्टाकाश परिष्कृत हो गया, भाग्यलक्ष्मी सानुकूल हुई। धीरे धीरे वे अतुल वैभवके अधिकारी हो गये जिसका उपभोग आज भी उनके वंशधरगण करते आ रहे हैं। आप सादे मिजाजके थे, देशी फैशनकी पोशाक धारण करते थे। केवल उत्सवादि तथा अन्य राजकीय अवसरों पर राजेसी ठाठ पसन्द फरमाते थे। अन्त समयमें आप बृजमोहन ठाकुर, जगमोहन ठाकुर और कृष्णमोहन ठाकुर तीन पुत्ररत्न छोड़ इहधामका परित्याग कर सुरधामको सिधारे। ये तीनों भाई भी योग्य पिताके योग्य पुत्र थे। प्रायः सभी कामोंमें अपने पूज्यपाद पिताका अनुसरण करते थे।

कुछ समय बाद फूट-देवीने राजगृहमें प्रवेश किया और वे सबके सब पृथक् पृथक् हो गये। ब्रजमोहन ठाकुर-के चार सुपुत्र थे, हीरोमोहन ठाकुर, श्रीमोहन ठाकुर, चन्द्रमोहन ठाकुर और इन्द्रमोहन ठाकुर। द्वितीय पुत्र श्रीमोहन ठाकुर उच्चाभिलाषी प्रतिभाशाली व्यक्ति थे। आपका वर्ण गौर, शरीर हृष्ट पुष्ट, गठीला और कद ऊँचा था। आपका प्राकृतिक ज्ञान तथा मनुष्यकी पहचान बहुत अच्छी थी। प्रजाका पालन पुत्रवत् करते थे। आपकी उदारता बहुत प्रसिद्ध है। आप पुराने जमानेके रईस थे, जो कोई किस्मत आजमाईको यहां आते थे, उसकी आशाएं किसी न किसी रूपमें पूरी हो ही जाती थी। धार्मिक कार्योंमें आपकी पूर्ण श्रद्धा थी, इसी कारण आप अपने प्रासादसे उत्तर गङ्गाके किनारे राधाकृष्णकी मूर्त्ति प्रतिष्ठा, कर गये हैं। वृद्धावस्थामें एक पुत्ररत्न छोड़ आपने जीवनलीला सम्वरण की।

पुत्रका नाम श्री केशवमोहन ठाकुर है। आप स्टेटके ३ पट्टीदारोंमेंसे एक हैं। पिताकी मृत्युके समय आप बिलकुल नाबालिग थे। इस कारण आपका स्टेट कोर्ट आव वार्ड्स लग गया। आपके लालन पालनका भार आपकी पूजनीया माताके सिर रहा। 'लखनऊ काल-विन तालुकदार' Lucknow Colvin Talukdar) स्कूलमें आपने अन्यान्य भारतीय राजकुमारोंके साथ विद्याशिक्षा प्राप्त की। शिशुपनसे ही आपमें अलौकिक चिह्न अंकुरित थे। कहा भी है कि :—"होनहार विरवान-के होत चीकनेपात" अध्यापक आपकी तीव्र बुद्धि और स्मरणशक्तिको देख कर विस्मित होते थे। थोड़े ही दिन हुए (१९२७ ई०की ७वीं नवम्बरको) आपने बालिग हो कर राजकार्यका कुल भार अपने हाथ लिया। आप इस थोड़े से समयमें अपने उच्च गुणोंसे अपनी प्रजाके ही प्रेमपात्र नहीं किन्तु आस पासके सभी जो आपकी प्रजा नहीं हैं, उनके भी आदर और प्रेमके भाजन हो गये हैं। आपका स्वभाव बहुत हँसमुख है और प्रजाके दुःख सुखको सुननेके लिये सदैव तत्पर रहते हैं। जो एक बार भी आपके साथ रह चुके हैं, वे आपके चरित्रमाधुर्य पर मुग्ध हो आपको सम्मान और श्रद्धाकी दृष्टिसे देखनेको बाध्य हैं। आप साहित्यसेवी हैं। आपके उद्योगसे एक छोटा पुस्तकालय भी खोला गया है जिसमें प्रायः सब भाषाओंकी पुस्तकोंका संग्रह है। आप अङ्गरेजी, बङ्गला और हिन्दी भाषामें अनर्गल कथोप कथन कर सकते हैं। जिस प्रासादमें आप रहते हैं उसका नाम श्रीभवन है। यह भवन चारों ओर आम्र-काननसे समाच्छन्न है जिससे इसकी शोभा देखती ही बन आती है। इसके नैऋति कोणमें थोड़ी ही दूरके फासले पर भागलपुर-सेण्ट्रल जेल है। करीब दो वर्ष हुए आपके एक सुपुत्रने जन्मग्रहण किया है।

उधर जगमोहन ठाकुरके एक पुत्र थे। हरिमोहन ठाकुर उनका नाम था। आप बड़े साहसी सव्यसाची और साहित्यानुरागी थे। आपकी वीरता, राजभक्ति और सेवासे सन्तुष्ट हो कर आपके सत्कार्य के पुरस्कारस्वरूप वृटिश सरकारने आपको राय बहादुर-की उपाधिसे भूषित किया था। आप अपने नाम पर एक हाई-स्कूल भी खोल गये हैं जिसमें पहले शिक्षा निःशुल्क दी जाती थी। पर कुछ दिन हुए विद्यार्थियोंको आधी फीस देनी पड़ती है। आपने प्रजाहितके अनेक कार्य किये हैं। स्टेटकी सीमा आपके समयमें बहुत कुछ बढ़ गई। स्थानीय म्युनिसपलिटीको पहले पहल पानी-की कल खोलनेमें आपने बीस हजार रुपयेका दान किया था। बहुत दिनों तक राज्य-सुख भोग करके आप उग्रमोहन ठाकुर और प्राणमोहन ठाकुर दो पुत्ररत्न छोड़ परलोकको सिधारे। उग्रमोहन ठाकुरकी निःसन्तानावस्थामें मृत्यु हुई। उनका प्रसिद्ध भवन आनन्दगढ़ कारुकार्यविशिष्ट है। आसपासकी हरियाली इसकी शोभाको और भी बढ़ाती है।

बाबू प्राणमोहन ठाकुरका आचार-व्यवहार बहुत कुछ अपने पितासे मिलता जुलता था। इतिहासके पठन-पाठनसे बहुधा यह परिणाम निकलता है, कि राज्यकी स्थापना पाशविक तथा शारीरिक बलके द्वारा ही होती है। हां यह अवश्य है, कि उसकी स्थिरताके लिये उसके फलने फूलनेके लिये, उसके स्थायी जीवनके लिये आत्म तथा धर्म-बलकी ही आवश्यकता होती है। नवीन स्थापित राज्य न्यायसे सींचा जा कर सहानुभूतिसे

फलता फूलता है। "न्यायं-चिराज्य" न्याय ही राज्य है। न्यायसे पद-च्युत होने पर अधोगतिको प्राप्त होना पड़ता है। राज्य छोटा हो या बड़ा, धर्म ही राज्यकी दृढ़ और जबरदस्त ढाल है। कहनेका तात्पर्य यह कि बाबू प्राणमोहन ठाकुर धर्ममूर्त्ति थे। सहानुभूति और उदारताने आपमें अच्छा दखल जमाया था। प्रजाकी भलाईकी ओर आपका विशेष ध्यान था। लड़ाई झगड़े-से आप एक पुरसा दूर रहते थे। अपने प्रपितामह बाबू मदन ठाकुरके चलाये हुए सदावर्त्तको आपने अपने जीवन भर अच्छी तरह निभाया। दीन विद्यार्थियोंके लिये पठनपाठनकी सामग्री विना मूल्य देनेका आपने प्रबन्ध कर दिया था। पर दुःखका विषय है, कि अधिक दिन तक यह सुखभोग आपके भाग्यमें न बदा था। अकाल ही आप कराल कालके गालमें पतित हुए। पर इतना ही सन्तोष था आप तीन पुत्ररत्न छोड़ गये थे।

ज्येष्ठ पुत्र राजमोहन ठाकुरका भरी जवानीमें स्वर्ग-वास हो गया। आप आदर्श मूर्त्ति थे। आपकी मृत्यु पर प्रजाकी बात तो दूर रहे, विपक्षियोंने भी शोक प्रकट किया था। आपके कनिष्ठ दो भ्राता, श्री नरेशमोहन ठाकुर और श्री सूर्यमोहन ठाकुर अभी नाबालिग हैं।

आप दोनों भाई योग्य पिताके योग्य पुत्र निकले। आगे चल कर आपसे बहुत कुछ उन्नतिकी आशा की जाती है। संसारमें जो महान् आत्माएँ हुई हैं उनको सदैव अनेक प्रकारके कष्ट सहने पड़े हैं। वास्तवमें ये कष्ट ही आत्माको उच्च पद प्राप्त करनेमें सहायक होते हैं। आप क्रमशः ७-५ वर्षकी अवस्थामें पितृहीन तो हो ही चुके थे परन्तु कुटिल कालने आपको मातृहीन भी कर दिया। श्रीनरेशमोहन ठाकुरकी अभी चढ़ती जवानी है। आप धीर, शान्त, सच्चरित्र और विद्यानुरागी हैं। सङ्गीत विद्यामें आपका विशेष अनुराग है। व्यव-हार-शिल्पके अनेक विषयोंमें आपका आसाधारण अधिकार और व्युत्पत्ति देखी जाती है। राजनैतिक विषयोंमें आपकी अच्छी सूझ है। कभी कभी आपके मनेजर भी इस विषयमें आपसे परामर्श लेते हैं। बुद्धि आपकी सराहनीय है, इसमें सन्देह नहीं। आपका 'कञ्चनगढ़' नामक प्रासाद बहुत उच्च और सुरम्य है। अहातेमें जो फूलकी क्यारियां है उनमें तरह तरहके फूल लगते हैं जिससे इसकी शोभा और भी खिल जाती है। वर्ष भी पूरा नहीं हुआ है कि आपके एक पुत्ररत्नने जन्म-ग्रहण किया है। इस जन्मोत्सवमें आपने करीब बीस हजार रुपये खर्च किये थे। कहते हैं, कि जो भिखमंगा आता, चाहे उसकी मांग कितनी ही बड़ी क्यों न हो मुँहमांगी वस्तु पा कर निहाल हो घर जाता था। स्टेट भरमें जहां देखो, वहीं आनन्द, वहीं सुख, वहीं सौभाग्य सम्पद् दिखाई देती थी।

यहां 'देवी गङ्गावती ठाकुरानी' नामक १ दातव्य अस्पताल है जिसमें रोगी भी रखे जाते हैं। इलाज अच्छा होता है, दूर दूर ग्रामोंके लोग इलाज कराने यहां आते हैं। अलावा इसके तीन विशाल मन्दिर हैं जिनमें राधाकृष्ण, लक्ष्मीनारायण मुरलीधरकी मूर्त्ति प्रतिष्ठित हैं। प्रथम दो मन्दिर गङ्गाके किनारे अव-स्थित हैं जिससे इनकी प्राकृतिक शोभा अति मनोरम है। राधाकृष्णका मन्दिर गुम्बजदार है और उसमें जो सीढ़ियां लगी हैं वे गङ्गाके किनारे तक छू गई हैं। उक्त मन्दिरके चारों ओर करीब बीस गुम्बज हैं जिनमें नर-सिंह, चन्द्र, सूर्य आदि संगमर्मरकी मूर्त्तियाँ स्थापित हैं। राधाकृष्णकी मूर्त्ति अष्टधातुकी बनी हुई है और क्रमशः डेढ़-दो फुट ऊँची होंगी। यह अक्षय कीर्त्ति बाबू श्रीमोहन ठाकुरकी है। स्थापनकालसे ही मुंगेर जिले-के अन्तर्गत कसवा ग्रामवासी स्वर्गीय मुकुन्द झा उक्त युगल मूर्त्तिकी सेवा शुश्रूषा किया करते थे। दरबारमें उनकी अच्छी खातिर थी। ये कट्टर धार्मिक और श्री-मुरलीधरजीके परम भक्त थे। सन् १३२७ साल (१९२० ई०) भादोंकी अमावसमें उनकी मृत्यु हुई। कहते हैं, कि जिस दिन उनकी मृत्यु हुई, उसके ठीक एक घंटा पहले उन्हें ऐसा मालूम पड़ा, मानो कोई उनके कानमें जोरसे कह रहा हो, 'गङ्गाके किनारे चलो'। तदनुसार उन्होंने अपने ज्येष्ठ पुत्र श्रीनरसिंह झाको जो वहीं पर थे, बुलाया और गङ्गाके किनारे ले जानेको कहा। आश्चर्यका विषय है, कि ज्यों ही गङ्गाजीमें उन्हें प्रवेश करा कर मुखमें जल दिया गया त्यों ही उनके प्राणपखेरू उड़ गये।

ड्योढ़ीसे सटा हुआ 'राय हरिमोहनठाकुर बहादुर' नामका एक हाई-स्कूल है जो १८६८ ई०में स्थापित हुआ है। इसमें करीव ढाई सौ लड़के पढ़ते हैं। वावू सुरेन्द्रनाथ वसु वी, ए, प्रधानाध्यापक है। आप करीव पंद्रह वर्षोंसे इस स्कूलमें कार्य सम्पादन करते आ रहे हैं। स्थानीय स्कूलोंसे यहांकी पढ़ाई और तहज़ीव सराहनीय है। तारीफ तो यह है, कि जितने लड़के विश्वविद्यालयके लिये चुन कर भेजे जाते, वे सवके सव कामयाव निकलते हैं। इसके अलावा यहां एक म्युनिसिपल अपर प्राइमरी स्कूल है। १९१० ई०में Barari-co-operative नामका जो वैंक खुला है, उससे यहांके तथा आस पासके अधिवासी खासा लाभ उठा रहे हैं। स्टेटके उक्त तीनों पट्टीदारोंकी आय मिला कर ४ लाख रुपयेसे ज्यादा है।

वारासात—२४ परगनेके अन्तर्गत एक उपविभाग। यह अक्षा० २२° ३३ से २२° ५६' उ० तथा देशा० ८८° २५ से ८८° ४७' पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण २७५ वर्गमील और जनसंख्या ढाई लाखसे ऊपर है। इसमें वारासत और गोवरडंगा नामके दो शहर और ७२४ ग्राम लगते हैं।

२ उक्त उपविभागका एक नगर और विचारसदर। यह अक्षा० २२°४३' उ० तथा देशा० ८८°२६' पू० कलकत्तेसे १४ मील उत्तर-पूर्वमें अवस्थित है। जनसंख्या प्रायः ८६३४ है। १८३४ ई०में यशोर और नदिया जिलेसे कितने परगने निकाल कर इसके अन्तर्भुक्त किये गये जो वारासत जिला कहलाने लगा है। १८६१ ई० तक यहां एक ज्वाइंट मजिष्ट्रेट थे। यहां वी-सी रेलपथका एक स्टेशन है।

१८३१ ई०में सैयद अहमदके मतावलम्वी मुसलमान-दल तीतू मीयां नामक किसी मुसलमान फकीरकी वातोंमें पड़ कर हिन्दूके विरुद्ध खड़ा हो गया। इन उद्धत मुसलमानोंने देवमूर्त्तिको तोड़ डाला और ब्राह्मणोंके प्रति विशेष अत्याचार करना आरम्भ कर दिया। यहां तक, कि वे गांवोंको भी जलानेसे वाज नहीं आये। यहां उन्होंने एक वाँसका किला वनाया था। युद्धक्षेत्रमें वे अङ्गरेजोंकी सेनाके सामने ठहर न सके और दुर्गमें जा छिपे। पीछे उनमेंसे एक सौ मारे गये और ढाई सौ वन्दी हुए। जो थोड़े वच गये, उन्होंने फिरसे अङ्गरेजोंके विरुद्ध तलवार उठाई, पर हार खा कर निश्चिन्त हो वैठे। यही लड़ाई वंगालकी तीतूमीरकी लड़ाई नामसे मशहूर है। यहां सरकारी अदालत और एक छोटा कारागार है जिसमें सिर्फ १३० कैदी रखे जाते हैं। शहरके पास ही मुसलमान फकीर पीर एकदिल साहिवके उद्देश्यसे प्रतिवर्ष मेला लगता है। इस मेलेमें हिन्दू और मुसलमान दोनों कौमके लोग जमा होते हैं।

वारासिया—मधुमती नदीकी एक शाखा। यह फरिदपुर और यशोर जिलेके मध्य हो कर वहती है। यह खालगाड़ाके निकट मधुमतीका परित्याग कर पुनः लोहागङ्गामें जा मिली है। इस नदीमें सव समय पण्यद्रव्य ले कर नावें आती जाती हैं।

वारिक (अं० पु०) ऐसे वंगलों या मकानोंकी श्रेणी या समूह जिनमें फौजके सिपाही रहते हैं, छावनी।

वारिकपुर—वारकपुर देखो।

वारिक-मास्टर (अं० पु०) वह प्रधान कर्मचारी जो वारिककी देखभाल और प्रवंध करता है।

वारीद (सं० पु०) वारिद देखो।

वारिदोआव—पञ्जावप्रदेशके अन्तर्गत एक अन्तर्वेदी, इरावती और शतद्रु समेत विपाशा नदियोंके मध्यका स्थान। गुरुदासपुर, अमृतसर, लाहोर, मण्टगोमारी और मूलतान जिला इसके अन्तर्भुक्त हैं।

वारिदोआवखाल—उक्त अन्तर्वेदीके मध्य जलप्रवाहके लिये एक कृत्रिम खाल। यह गुरुदासपुर, अमृतसर और लाहोर तक विस्तृत है। सम्राट् शाहजहानके ख्यातनामा इञ्जिनियर अलीमर्दन खांने १६३३ ई०में जो हसली खाल कटवाया था, १८४६ ई०में उसके कलेवरकी वृद्धि करनेके लिये लार्ड नेपियरने उस कार्यमें हाथ लगाया। १८४९-५० ई०से ले कर १८५९-६० ई०के मध्य उस कार्यका शेष हुआ। मूलतान और शाखाखाल ले कर इसका परिमाण ३८८ वर्गमील है।

वारिधर (हिं० पु०) १ वादल, मेघ। २ एक वर्णवृत्त। इसके प्रत्येक चरणमें रगण नगण और दो भगण होते हैं।

वारिधि (सं० पु०) वारिधि देखो।
वारिवाह (हिं० पु०) बादल।
बारिश (फा० पु०) १ वृष्टि, वर्षा। २ वर्षाऋतु।
बारिस्टर (अं० पु०) वह वकील जिसने विलायतमें रह कर कानून-परीक्षा पास की हो। ये दीवानी फौजदारी और माल आदिकी सारी छोटी बड़ी अदालतोंमें वादी या प्रतिवादीकी ओरसे मामलों और मुकदमोंकी पैरवी, वहस तथा अन्य कार्रवाइयां कर सकते हैं। इन्हें वकालतनामे या मुख्तारनामेकी आवश्यकता नहीं पड़ती।
वारी (हिं० स्त्री०) १ किनारा, तट। २ धार, वाढ़। ३ वह स्थान जहां किसी वस्तुके विस्तारका अन्त हुआ हो, हाशिया। ४ वगीचे, खेत आदिके चारों ओर रोकके लिये बनाया हुआ घेरा, वाढ़। ५ किसी वरतनके मुंहका घेरा या छिछले वरतनके चारों ओर रोकके लिये उठा हुआ घेरा या किनारा। ६ वाटिका, वगीचा। ७ खिड़की, झरोखा। ८ घर, मकान। ९ रास्तेमें पड़े हुए झाड़ इत्यादि। १० मेड़ आदिसे घिरा स्थान, क्यारी। ११ जहाजोंके ठहरनेका स्थान, बंदरगाह। १२ पारी, ओसरी। १३ लड़की, कन्या। १४ नवयौवन, थोड़े वयसकी स्त्री। (पु०) १५ एक जाति जो पत्तल दोने बना कर ब्याह शादी आदिमें देती है और सेवा टहल करती है। पहले इस जातिके लोग वगीचा लगाने और उनकी रखवाली आदिका काम करते थे।
बारीक (फा० वि०) १ जो मोटाई या घेरेमें इतना कम हो, कि छूनेसे हाथमें कुछ मालूम न हो, महीन। २ जिसे समझनेके लिये सूक्ष्म बुद्धि आवश्यक हो, जो विना अच्छी तरह ध्यानसे सोचे समझमें न आए। ३ जिसकी रचनामें दृष्टिकी सूक्ष्मता और कलाकी निपुणता प्रकट हो। ४ सूक्ष्म, बहुत ही छोटा। ५ जिसके अणु अति सूक्ष्म हों।
बारीका (फा० पु०) वालोंकी वह महीन कलम जिससे चित्रकारीमें पतली पतली रेखाएं खींची जाती हैं।
बारीकी (फा० स्त्री०) १ सूक्ष्मता, पतलापन। २ साधारण दृष्टिसे न समझमें आनेवाला गुण या विशेषता।
बारीखाना (हिं० पु०) नीलके कारखानेमें वह स्थान जहां नीलकी वरी या टिकिया सुखाई जाती हैं।
वारुई—वरईदेखो।
वारुईपुर- वङ्गाके २४ परगनेके अन्तर्गत एक शहर। यह अक्षा० २२° २१' उ० तथा देशा० ८८° २७' पू०के मध्य अवस्थित है। जनसंख्या प्रायः ४२१७ है। यहां पानकी विस्तृत खेती होनेके कारण इसका वारुईपुर नाम पड़ा है। यहांके 'राय चौधरी' वंश प्राचीन जमींदार हैं और डायमण्ड हारवर नामक उपविभागका अधिकांश स्थान इनके अधिकारभुक्त हैं।
वारुणी (हिं० स्त्री०) वारुणी देखो।
वारूद (तु० स्त्री०) एक प्रकारका चूर्ण या बुकनी जो गन्धक, शोरे और कोयलेको एकमें पीस कर बनती है और आग पा कर भकसे उड़ जाती है। वम, रकेट आदि अग्निक्रीड़ाविषयक द्रव्य बनानेमें भी इसी मसालेकी जरूरत पड़ती है। ऐसा पता चलता है, कि इसका प्रयोग भारतवर्ष और चीनमें वन्दूक आदि आग्न्यस्त्र और तमाशेमें बहुत प्राचीनकालसे किया जाता था। अशोकके शिलालेखोंमें अग्गिखंध वा अग्निस्कन्ध शब्द तमाशे (आतशबाजी)के लिये आया है। परन्तु इस बातका पता आज तक विद्वानोंको नहीं लगा, कि सबसे पहले इसका आविष्कार कहां, कब और किसने किया है। इसका प्रचार यूरोपमें १४वीं शताब्दीमें मूर (अरब) लोगोंने किया और १६वीं शताब्दी तक इसका प्रयोग केवल वन्दूकोंको चलानेमें होता रहा। आजकल अनेक प्रकारकी बारूदें मोटी, महीन, सम विषम रवेकी बनती हैं। संयोजक द्रव्योंकी मात्रा निश्चित नहीं है। देश देशमें प्रयोजनानुसार अंतर रहता है पर साधारण रीतिसे वारूद बनानेमें प्रति सैकड़े ७५से ७८ अंश तक शोरा, १० वा १२ अंश गन्धक और ११से १२ तक कोयला पड़ता है। ये तीनों पदार्थ अच्छी तरह महीन पीस छान कर एकमें मिलाये जाते हैं। बादमें तारपीनका तेल या स्पिरिट डाल कर चूर्णको भलीभांति मलते हैं। अनन्तर उसे धूपमें सुखा लेते हैं। तमाशेकी वारूदमें कोयलेकी मात्रा अधिक डाली जाती है। कभी कभी लोहचुन भी इसलिये डालते हैं, जिससे फूल अच्छे निकले। भारतवर्षमें अब वारूद वन्दूकके कामकी कम बनती है; प्रायः तमाशेकी ही वारूद बनाई जाती हैं।
वारूदखाना (हिं० पु०) वह स्थान जहां गोला, वारूद आदि लड़ाईका सामान रहता है।

बारूदानी (हिं० स्त्री०) बारूदानी देखो।

बारूदपुर—मध्यभारतके अन्तर्गत एक सामन्तराज्य। ठाकुर नामक सरदारगण द्वारा यह परिचालित होता है। भरुदपुर देखो।

बारूल—वर्द्धमान जिलेके अन्तर्गत एक लौहक्षेत्र। यह अक्षा० २३° ४४' उ० तथा देशा० ८७° ६' पू०के मध्य अवस्थित है। इस विस्तीर्ण भूभागमें खनिज लौह प्रचुर परिमाणमें पाया जाता है। मिः डेभिड स्मिथने इस स्थानका परिदर्शन कर गवर्मेण्टको जो रिपोर्ट दी उससे जाना जाता है, कि प्रति वर्गमीलमें प्रायः ६०॥ लाख टन मिश्रित लोहा मिलता है। उसे गलानेसे कमसे कम १६ लाख टन शुद्ध लोहा उत्पन्न हो सकता है।

बारे (फा० क्रि० वि०) अन्तको।

बारेमें (फा० अव्य०) प्रसङ्गमें, विषयमें।

बारोमीटर (अं० पु०) वैरोमीटर देखो।

बारो—बुन्देलखण्डके अन्तर्गत ज्ञाननाथ पर्वतके पाद-मूलस्थ ह्रदके किनारे अवस्थित एक प्राचीन नगर। यह बारनगर नामसे मशहूर है। गोदारिया जाति द्वारा स्थापित गदरमर नामक देवमन्दिर तथा इधर उधर पड़े हुए प्रस्तर स्तम्भादि यहांकी पूर्वकीर्त्तिकी घोषणा करते हैं। उस मन्दिरके तथा निकटवर्त्ती गणेश-मन्दिरके गात्रमें अष्टशक्ति तथा नवग्रहादि मूर्त्ति खोदित देखी जाती है। पार्श्ववर्त्ती जैन-मन्दिरकी गठन देखनेसे मालूम होता है, कि उन प्राचीन प्रस्तरादिसे ये सब गठित या संस्कृत हुए हैं। यहां ६३३ सम्वत्में यदुकुलतिलक तोमरराजाओं-के समयमें उत्कीर्ण एक शिलालिपि पाई गई है। इससे अनुमान किया जाता है, कि मालवके यमराजाओंके पहले यहां तोमरवंशीय राजाओंका अभ्युदय हुआ था। उक्त ह्रदके उत्तरी किनारे एक वैष्णव-मन्दिर है जिसके सामने-वाले छत पर दश अवतार मूर्त्ति और उसके पार्श्वमें पोल-खाम्बि नामक चांदनी स्थापित है।

यहांसे १॥ कोस उत्तर पखेरी नामक ग्राम है जो एक समय इसीके अन्तर्भुक्त था। सम्राट् औरङ्गजेबके राज्यकालमें बुन्देला-सरदार छत्रशालको जब इस नगरकी समृद्धिका पता लगा तब उन्होंने दलबलके साथ आ कर इसे अच्छी तरह लूटा। लूटका माल ले कर लौटते समय ये बीणा नदीकी बाढ़ देख अधीर हो उठे। पीछे उन्होंने बीणाका इस प्रकार स्तव किया था।

"बीणा तुम परवीन हो सब नदियों सरदार।
सावनमें आवन् भयो हमें लगादो पार॥"

कहते हैं, कि उनकी इस स्तुतिसे बीणा प्रसन्न हुई थी। नदीकी बाढ़ घट जानेसे वे कुशलपूर्वक स्वराज्य लौटे।

वार्कएडमण्ड—(Edmond Burke)-कोई अंगरेज राज-नैतिक। इनके पिता एक सामान्य व्यवहारजीवी थे। डब-लिन विश्वविद्यालयमें रह कर इन्होंने विद्या उपार्जन की। १७५७ ई०में 'भिण्डिकेशन आव नेचरल सोसाइटी' तथा 'महत् और सुन्दर' नामक प्रबन्ध लिख कर ये जन-साधारणमें विशेष प्रसिद्ध हो गये हैं। लार्ड नार्थके काम छोड़ने पर १७८२ ई०में ये सेनाविभागके वेतन-दाता-पद पर अधिष्ठित हुए। इस समय प्रिभि-कौन्सिल सभामें भी इनको आसन दिया गया। दूसरे वर्ष लार्ड शेलवोर्णके राजकोष-कर्त्ता होने पर इन्होंने काम करना छोड़ दिया। भारतवर्षमें अंगरेज शासनकर्त्ता वारेन हेष्टिंसके अन्याय शासनसे क्रुद्ध हो इन्होंने स्वार्थ-शून्यहृदयसे जो राजनैतिक वक्तृता (Burke's impea-chment on warren Hastings) दी थी, उसीसे ये जगद्वासीकी श्रद्धाके पात्र हुए थे। विख्यात फरासी-विप्लवका दोष दिखा कर इन्होंने १७६० ई०में जो ज्ञानगर्भ प्रबन्ध लिखा है, (*Reflection on the French Revo-lution*) वह इनके ज्ञान वा बुद्धिका प्रकृत परिचय है। १७६४ ई०में इन्होंने पार्लियामेण्टका आसन त्याग किया। वृद्धावस्थामें सुशिक्षित पुत्रकी मृत्यु हो जानेसे इनका हृदय चूर चूर हो गया और इसीसे उनकी मृत्यु भी हुई। डाः जनसन, लार्ड मेकले आदि मनीषिगण इन-की वाग्मिता और शब्दसन्निवेशकी भूरि भूरि प्रशंसा कर गये हैं। १७३० ई०में डबलिन नगरमें उनका जन्म और १७६० ई०में बेकन्सफिल्ड नगरमें इनकी जीवनलीला शेष हुई।

बार्थलमिउ-सेण्ट—एक खृष्टान साधु। बहुतेरे इन्हें न्याथानेल समझते हैं। ये अरब, आर्मेनिया और प्रायः

१२२०ई०में भारतवर्षमें खृष्टान धर्मका प्रचार करनेके लिये आये थे।

वार्लैम—खृष्टानधर्मशास्त्र बाइविलके सेण्ट-जान विभाग-वर्णित एक साधु। पारस्य सीमान्तवासी भारतवासी तथा साधु जोसेफत नामसे उल्लिखित हुए हैं। पाश्चात्य पण्डितगण भारतराजपुत्र जोसेफत्को 'बोधिसत्त्व' मानते हैं।

वार्लो सर जार्ज—मन्द्राजके अंगरेज शासनकर्त्ता। इष्ट-इण्डिया कम्पनीके परिदर्शकरूपमें इन्होंने भारतवर्ष पर पदार्पण किया। इनके शासनकालमें १८०६ ई०को वेल्लूरमें सिपाही-विद्रोह उपस्थित हुआ। इस विद्रोहसे अंगरेजवणिकगण वहुत डर गये थे।

वार्वटीर (सं० पु०) १ त्रपु, रांगा। २ अंकुर, अंखुआ। ३ गणिका सुत, जारज।

वार्ह (सं० त्रि०) वर्हसम्वन्धीय।

वार्हत (सं० क्ली०) वृहत्याः फलं प्लक्षादित्वादण्। १ वृहतीफल। उत्सादित्वात् अञ्। (त्रि०) २ वृहति-भव।

वार्हतानुष्टुभ (सं० त्रि०) वृहती अनुष्टुभ छन्द सम्वन्धीय।

वार्हदग्न (सं० पु०) वृहदग्नेरपत्यं कण्वादित्वादण्। वृह-दग्नि ऋषिका गोत्रापत्य।

वार्हदीषव(सं० पु०) वृहदिषुवंशीय।

वार्हदुकथ (सं० त्रि०) वृहदुकथसम्वन्धीय। वृहदुकथ का गोत्रापत्य।

वार्हद्गिर (सं० त्रि०) वृहद् गिरिसम्वन्धीय।

वार्हदैवत (सं० क्ली०) शौनक-रचित वृहद्देवता सम्व-न्धीय।

वार्हद्वल (सं० क्ली०) १ वृहद्वल-सम्वन्धीय। २ वृहद्वलका गोत्रापत्य।

वार्हद्रथ (सं० पु० स्त्री०) वृहद्रथस्यापत्यं शैविकोऽण्। १ वृहद्रथ राजसुत। (त्रि०) २ वृहद्रथ सम्वन्धी।

वार्हद्रथि (सं० पु०) वृहद्रथका गोत्रापत्य।

वार्हवत (सं० त्रि०) वर्हवत शब्दयुक्त।

वार्हस्पत (सं० पु०) वृहस्पतेरिदं स वा देवताऽस्य अण्। १ वृहस्पति सम्वन्धी। २ वत्सरविशेष। ३ वृहस्पतिके उद्देशसे चरुप्रभृति।

वार्हस्पत्य (सं० पु०) वार्हस्पत्यं वृहस्पतिप्रोक्तं शास्त्रं अधीयमानत्वेनास्त्यस्येति, अर्श आदित्वादच्। १ नास्तिक। (क्ली०) २ नीतिशास्त्र। (त्रि०) ३ वृहस्पति सम्वन्धीय।

वार्हिण (सं० त्रि०) वर्हिणो विकारः तालादित्वात् अण्। वर्हिविकार।

वार्हिषद (सं० पु०) वर्हिषद्का गोत्रापत्य।

वाल (सं० पु० क्ली) वलतीति वल-ण। १ गन्धद्रव्य-विशेष, सुगन्धवाला नामक गन्धद्रव्य। पर्याय—ह्रीवेर वर्हिष्ठ, उदीच्य, केशनामक, अम्बुनामक, ह्रिवेर, वर्हिष्ठ, वालक, वारिद, वर, ह्रीवेरक, केश्य, वज्र, पिङ्ग, ललनाप्रिय, कुन्तलोशीर। गुण—शीतल, तिक्त, पित्त, वमन, तृषा, ज्वर, कुष्ठ, अतिसार, श्वास, और व्रणनाशक तथा केश-हितकर। २ अर्भक, वालक, लड़का। पर्याय—माणवक, वालक, माणव, किशोर, वटु, मुष्टिन्धय, वटुक, किशोरक, पाक, गर्भ, हितक, पृथुक, शिशु, शाव, अर्भ, डिम्भक, डिम्व।

मनुष्य जन्मकालसे ले कर प्रायः १६ वर्षकी अवस्था तक वाल या वालक कहा जाता है। स्त्री भी १६ वर्ष तक वाला कहलाती है।

"आषोड़शाद्भवेद्वालस्तरुणस्तत उच्यते।
वृद्धः स्यात् सप्ततेरूर्द्ध वर्षीयान् नवतेः परम्॥"
(भरत)

भावप्रकाशमें वालपरिचर्याविधि इस प्रकार लिखी है—

वालकके भूमिष्ठ होनेसे यथाविधि कुलाचार और स्त्री-आचार जो पूर्वापर प्रचलित है, उसका अनुष्ठान करना आवश्यक है।

वयःक्रमभेदसे यह वालक तीन प्रकारका है, दुग्धपायी, दुग्धान्नभोजी और अन्नभोजी। इनमेंसे एक वर्ष तकके वालकको दुग्धपायी, दो वर्ष तकको दुग्धान्नभोजी और तीन वर्षसे ले कर सोलह वर्ष तकके वालकको अन्न-भोजी कहते हैं।

वालकको उमर छः अथवा आठ मास होनेसे यथोक्त विधिके अनुसार उसे थोड़ा थोड़ा करके अन्न खिलावे। पीछे वयोवृद्धिके अनुसार उसकी मात्रा वढ़ाती जाय।

धर्मशास्त्रमें भी वालकका छठां या आठवां मास ही अन्नाशनका विहितकाल निर्दिष्ट हुआ है। वालकको गोदमें रख कर उसे शिप्रालापादि द्वारा सुखी करे, कभी भी तर्जनादि द्वारा अप्रसन्न न करे। निद्रित अवस्थामें सहसा न जगावे और जब तक स्वयं उठ कर बैठ न सके, तब तक बैठानेकी चेष्टा न करे। गोद पर विठाने अथवा सुलाने और औषधादि प्रयोग करनेके सिवा अन्य समयमें अनर्थक रोदन न करावे।

वालकके इच्छानुसार अर्थात् जिससे उसका मन हमेशा प्रसन्न रहे, उस विषयमें विशेष यत्न करना आवश्यक है। क्योंकि, मनके प्रफुल्ल रहनेसे ही शरीरकी दिनों दिन वृद्धि होती है। वायु, रौद्र, विद्युत, वृष्टि, धूम, अग्नि, जल, उच्च और निम्न स्थानसे हमेशा बचाये रहे।

तैलाभ्यङ्ग, उद्वर्त्तन, स्नान, नेत्राञ्जन, कोमल वस्त्र और मृदु अनुलेपन जन्मसे ही वालकके लिये हितकर है। वालकको आठ वर्षके वाद नस्यका प्रयोग करावे। सोलह वर्षके पहले विरेचन देना उचित नहीं। (भावप्र०) (सुश्रुत शारीरस्थान दशम अध्यायमें इसका विशेष विवरण लिखा है, विस्तार हो जानेके भयसे यहां नहीं लिखा गया।)

वालकके शरीरकी मेधा, वल और बुद्धि बढ़ानेके लिये निम्न लिखित चार प्रकारके योग निर्दिष्ट हुए हैं। इन सब योगोंका नाम प्राश है। वालकको इनमेंसे एक योगका सेवन कराना कर्त्तव्य है। प्रथमयोग सुवर्णचूर्ण, कुष्ठ, मधु, घृत और वच; द्वितीय सोमलता, शङ्खपुष्पी, मधु, घृत और सुवर्ण; तृतीय अर्कपुष्पी, मधु, घृत, सुवर्णचूर्ण और वच; चतुर्थ सुवर्णचूर्ण, कटफल, श्वेतवर्ण-भूमिकुष्माण्ड, दूर्वा, घृत और मधु। सुश्रुतशारीर १० अ०)

(पु०) वलति मस्तकं रक्षति संवृणोतीति वा-वल-ण। ४ शिरोभव आच्छादनविशेष, लोम, केश। पर्याय—चिकुर, कच, केश, कुन्तल, कुञ्चर, शिरोरुह, शिरज। ५ घोटक शिशु, घोड़ेका बच्चा, बछेड़ा। ६ अश्ववालधि घोड़ेकी दुम। ७ करिवालधि, हाथीकी दुम। ८ नारिकेल, नारियल। ९ पञ्चवर्षीय हस्ती, पांचवर्षका हाथी। १० पुच्छ, दुम। ११ मत्स्यविशेष, एक प्रकारकी मछली। १२ किसी पशुका बच्चा। १३ वह जिसको समझ नहीं हो, नासमझ आदमी। (त्रि०) १४ मूर्ख, नासमझ। १५ जो सयाना न हो, जो पूरी बाढ़को न पहुंचा हो। १६ जिसे उगे या निकले हुए थोड़ी ही देर हुई हो।

वाल (हिं० स्त्री०) १ कुछ अनाजोंके पौधोंके डंठलका वह अग्र भाग जिसके चारों ओर दाने गुछे रहते हैं। २ एक प्रकारकी मछली।

वाल (अं० पु०) अङ्गरेजी नाच।

वालक (सं० पु०) वाल-स्वार्थे-कन्। १ ह्रीवेर, सुगन्धवाला। २ अंगुलीयक, अंगूठा। ४ लड़का, पुत्र। ५ शिशु, थोड़ी उमरका बच्चा। ६ अबोध व्यक्ति, अनजान आदमी। ७ हाथीका बच्चा। ८ घोड़ेका बच्चा। ९ वलय, कंगन। १० केश, वाल। ११ हाथी तथा घोड़ेकी दुम।

वालकताई (हिं० स्त्री०) १ बाल्यावस्था। २ लड़कपन, नासमझी।

वालकपन (हिं० पु०) १ वालक होनेका भाव। २ लड़कपन, नासमझी।

वालकप्रिया (सं० स्त्री०) वालकानां प्रिया ६-तत्। १ इन्द्रवारुणी। २ कदली, केला। (त्रि०) ३ वालकप्रियमात्र।

वालकदास—सतनामी सम्प्रदायके एक गुरु, घासीदासके पुत्र। १८६० ई०में ये विद्वेषी हिन्दुओंके हाथसे मारे गये।

वालकराम—वैद्यमहोत्सव टीकाके प्रणेता।

वालककवि—कर्पूररसमञ्जरी नामक अलङ्कार शास्त्रके रचयिता।

वालकाण्ड (सं० पु०) रामायणका वह भाग जिसमें रामचन्द्रजीके जन्म तथा वाल-लीला आदिका वर्णन है।

वालकाल (सं० पु०) वाल्यावस्था, बचपन।

वालकी (हिं० स्त्री०) कन्या, पुत्री।

वालकुटजावलेह (सं० पु०) वालरोगाधिकारमें अवलेहभेद।

वालकृमि (सं० पु०) वालस्य केशस्य कृमिः ६-तत्। केशकीट, जूं।

वालकृष्ण—कई एक संस्कृत ग्रन्थकर्त्ताओंके नाम। यथा—
१ पञ्चश्लोकिताजिक-प्रणेता। २ मुदितराघवके रचयिता। ३ हरिभक्तभास्करोदयके प्रणेता। कोई कोई इन्हें वालचन्द्र भी कहते हैं। ४ होमविधानके रचयिता। ५ दत्तसिद्धान्तमञ्जरीके प्रणेता। ये जलहनीट करवंशीय देवभट्टके पुत्र थे। ६ पञ्चश्लोकी और उसकी टीकाके प्रणेता। ७ अलङ्कारसारके प्रणेता। ८ ऋग्वेददेवता-क्रमके रचयिता। ९ तर्कटीकान्यायवोधिनीकार। १० तैत्तिरीयसंहिता-भाष्यकार। ११ प्रयोगसारके प्रणेता। ये गोकुल ग्रामवासी थे। १२ प्रशस्ति-प्रकाशिका नामक ग्रन्थके रचयिता, ब्रह्मानन्दके शिष्य। १३ नन्द पण्डितकी तत्त्वमुक्तावली नामक टीकाके प्रणेता। १४ सप्तसंस्थ-प्रयोगके प्रणेता, महादेवके पुत्र। १५ शिवोत्कर्षप्रकाशके प्रणेता। १६ श्रौतस्मार्त्तविधिके रचयिता। १७ जम्बूसर-वासी यादवके पुत्र, रामकृष्णके पौत्र, नारायणके प्रपौत्र। इन्होंने जातककौस्तुभ, जैमिनिसूत्रभाष्य, ताजिककौस्तुभ, योगिनीदशाक्रम आदि ग्रन्थ और त्रिवेणीस्तोत्र, नाराण-स्तोत्र, महागणपतिस्तोत्र, यन्त्रोद्धार, शङ्करस्तोत्र, शिव-स्तोत्र और संक्रान्तिनिर्णय आदि कई एक पुस्तकें लिखी हैं। १८ कादम्बरीविषयपदविवृत्तिके प्रणेता। ये वेङ्कट रङ्गनाथदीक्षितके पुत्र थे। १९ न्यायसिद्धान्तमुक्तावली-प्रकाशके रचयिता। इन्होंने अपने पुत्र महादेवभट्ट दिन-करके लिये उक्त ग्रन्थकी रचना की।

वालकृष्ण (सं० पु०) उस समयके कृष्ण जिस समय वे छोटी अवस्थाके थे, वाल्यावस्थाके कृष्ण।

वालकृष्णत्रिपाठी -गुणमञ्जरीके प्रणेता, काशीरामके पुत्र।

वालकृष्णदास—शङ्कराचार्यप्रणीत ऐतरेयोपनिषद्भाष्य और तैत्तिरीयोपनिषद्भाष्यके टीकाकार।

वालकृष्णदीक्षित—१ सिद्धान्तमुक्तावलीयोजना और सेवा-फलवृत्ति टिप्पनी नामक ग्रन्थके प्रणेता। ये लालूभट्ट नामसे प्रसिद्ध थे। २ वल्लभाचार्यकृत सेवाकौमुदोकी निवन्धविवृत्तियोजना नामकी टीका, निर्णयार्णव और सुवोधिनी नामक भागवतके १०म स्कन्धकी टीकाके प्रणेता।

वालकृष्णपायगुस—उपाकृतितत्त्व चित्रमीमांसागूढ़ार्थप्रका-शिका और राक्षसकाव्य टीका 'काशिका' नामक तीन ग्रन्थके रचयिता। ये वालमभट्ट नामसे प्रसिद्ध थे।

वालकृष्णभट्ट—१ श्रौतप्रायश्चित्त नामक काव्यके प्रणेता। २ विद्वत्भूषण-काव्यके प्रणेता। ये अभिवंशके थे। इनका जीवनकाल १६१० ई० माना जाता है।

वालकृष्ण भारद्वाज—तिथिनिर्णय नामक ग्रन्थके रचयिता।

वालकृष्णमिश्र—मानवश्रौतसूत्रवृत्तिके प्रणेता, विद्यानाथके पुत्र।

वालकृष्णानन्द—द्राविड़वासी एक संस्कृतज्ञ पण्डित। इन्होंने श्रीधाराचार्य, स्वयम्प्रकाश, शिवराम, गोपाल, पुरुषोत्तम और पूर्णानन्द आदिसे शिक्षा प्राप्त की थी। ईशावास्योप-निषद्, काठकोपनिषद्, केनोपनिषद्, छान्दोग्योपनिषद् और प्रश्नोपनिषद् आदि भाष्य तथा प्रणवार्थनिर्णय भिक्षुसूत्र और भाष्यवार्त्तिक आदि ग्रन्थ इन्हींके वनाये हुए हैं।

वालकेलि (सं० स्त्री०) १ लड़कोंका खेल, खिलवाड़। २ वहुत ही साधारण या तुच्छ काम।

वालकेशी (सं० स्त्री०) तृणविशेष। एक प्रकारकी घास।

वालकोट—पञ्जावप्रदेशके हजारा-जिलान्तर्गत एक नगर। यह नयनसुख नदीके वायें किनारे अवस्थित है। नौशेरा वासीके साथ यहांके अधिवासियोंका विस्तृत व्यवसाय चलता है।

वालकोट—मध्यप्रदेशके दमोह जिलेके पार्वत्यभूभागस्थ एक नगर। यह प्राचीर और परिखादि परिवेष्टित तथा दुर्ग द्वारा सुरक्षित है। १८५७ ई०में यहांके लोदी अधि-वासियोंने विद्रोहमें साथ दिया था। उसी समय अंग-रेजीसेनाने यहांके प्राचीन दुर्गको तहस नहस कर डाला।

वालक्रिया (सं० स्त्री०) वालकके योग्य क्रिया।

वालक्रीड़न (सं० क्ली०) वालस्य क्रीड़नं, क्रीड़-भावे-ल्युट्। लड़कोंके खेल।

वालक्रीड़नक (सं० पु०) वालानां क्रीड़नकः क्रीड़नद्रव्यं। १ कपर्दक, कौड़ी। वालक कौड़ी ले कर खेलते हैं, इसीसे इसका नाम क्रीड़नक पड़ा है। २ वे सव द्रव्य जिनसे छोटे छोटे वच्चे खेला करते हैं।

वालक्रीड़ा (सं० स्त्री०) वालस्य क्रीड़ा। लड़कोंके खेल और काम।

वालखंडी (हिं० पु०) वह हाथी जिसमें कोई दोष हो।

वालखिल्य (सं० पु०) मुनिविशेष। ब्रह्माके रोमकूपसे इन लोगोंकी उत्पत्ति हुई है। ये सभी डीलडौलमें अंगूठेके बराबर हैं। इनकी संख्या साठ हजार है। (भागत विष्णुपु०) सबके सब बड़े भारी तपस्वी हैं। मार्कण्डेयपुराणमें लिखा है, कि क्रतुकी भार्या सन्ततिसे साठ हजार वालखिल्यगण उत्पन्न हुए जो सबके सब ऊर्द्ध्वरेता हैं।

वालगङ्गाधरतिलक—तिलक देखो।

वालगञ्ज—आसाम प्रदेशके श्रीहट्ट जिलान्तर्गत एक गण्ड ग्राम। यह अक्षा० २४°३०´ १५´´ उ० तथा देशा० ९२°५२´ १५´´ पू०के मध्य कुशियारा नदीके किनारे अवस्थित है। इस नदी द्वारा यहांके चावल, पटसन तेलहन बीज आदिको वङ्गालके भिन्न भिन्न स्थानोंमें रफ्तनी होती है।

वालगर्भिणी (सं० स्त्री०) प्रथमगर्भवती, वह स्त्री जिसने पहले पहल गर्भधारण किया हो।

वालगोपाल (सं० पु०) वालः शिशुमूर्त्ति धरो गोपालः। १ श्रीकृष्णकी वाल्यमूर्त्ति।

"तीरपयोनिधिवृक्षनिवासं हास्यकटाक्षजवंशिनिनादं।
श्यामलसुन्दरनृत्यविलापं तं प्रणमामि च वालगोपालम्॥"

२ परिवारके लड़के लड़कियां आदि, वाल बच्चे।

वालगोसाँई—कूचविहारके एक राजा, राजा नरनारायणके पुत्र। इन्होंने ९८६ हिजरीमें राज्य किया। उनके लड़के लक्ष्मीनारायणने राजा मानसिंहकी अभ्यर्थना की थी।

वालग्रह (सं० पु०) वालानां वालकानां ग्रहः। वालकहंतृ ग्रहविशेष।

"वालग्रहा अनाचारात् पीड़यन्ति शिशुं यतः।
तस्मात्तदुपसर्गेभ्यो रक्षेद्वालं प्रयत्नतः॥" (भावप्र०)

अनाचार करने पर वालग्रह वालकोंको सताता है इस लिये उनको इनसे रक्षा करनी चाहिये।

वालग्रह नौ हैं यथा—स्कंद, स्कंदापस्मार, शकुनी, रेवती, पूतना, अंधपूतना, शीतपूतना, मुखमुण्डिका और नैगमेय। इन नौ ग्रहोंमें कितनी स्त्रियां और पुरुष हैं।

(इनकी उत्पत्तिका विवरण नवग्रह शब्दमें देखो)

वालग्रहके आक्रमणका कारण—जिस वंशमें दैवयोग, पितृयाग देवता ब्राह्मण व अतिथि-सत्कार नहीं होता तथा जो शौचाचाररहित, कुत्सित व्यवहारमें निरत रहता है और जिसके घरमें फूटा कांसेका वरतन रहता है उस वंशमें ग्रहोंका उपद्रव होता है। ग्रह कर्तृक वालकोंकी अनिष्टाशङ्का होने पर ग्रहोंकी पूजा करनी पड़ती है। पूजासे ग्रहगण संतुष्ट होते हैं। जैसे वालकोंका प्रतिपालन करना चाहिये वैसा न कर अहिताचार वा अशौचाचार करने तथा मङ्गलाचार न करनेसे वालक भीत या पीड़ित होते हैं, तव ग्रहगण उसके शरीरमें प्रविष्ट हो जाते हैं। वालकको देहमें ग्रहोंके लक्षण विकाश होने पर सांत्वना वाक्यका प्रयोग करना चाहिये।

वालग्रहसे पीड़ितके सामान्य लक्षण—ग्रहपीड़ित वालक कभी उद्विग्न और कभी त्रासयुक्त हो रोता है। नख, दन्तद्वारा निज तथा धात्रीको विदारण करता है। सर्वदा ऊपर और नीचे दृष्टि, दन्तघर्षण, आर्त्तनाद और ओष्ठदंशन, आहारमें अनिच्छा, जृम्भा, वलह्रास, देहकी मलिनता, स्तनावरोध, हृदयकम्पन, पुनः पुनः उल्टी, नींद न आना, शोथ, स्वरभंग, अतीसार और शरीरमें मत्स्य और रक्तके समान गंध आती है।

वालग्रहपीड़ितके विशेष लक्षण—दोनों नेत्र स्फीत, देहमें शोणितगंध, स्तनोंमें द्वेष, मुख वक्र, नेत्रोंका एक पलक स्थिर, उद्विग्नता, चक्षुद्वयमें भारीपन, थोड़ा थोड़ा रोना, हाथोंकी मुष्टि वांधना, मलमें गाढ़ापन आदि लक्षण स्कन्दग्रहाक्रान्त होने पर होते हैं।

स्कन्दापस्मारके द्वारा पीड़ित होने पर कभी अचेतन, कभी सचेतन, हस्तपद कम्पन, मलमूत्र निःसरण, शब्दके साथ जंभाई आना, मुखमें फेनोद्गार आदि लक्षण होते हैं।

शकुनिग्रहसे पीड़ित होने पर अङ्गोंमें शिथिलता, भयसे चमकना, शरीरमें पक्षीकी तरह दुर्गन्धि, स्रावविशिष्ट व्रण और दाह पाकविशिष्ट स्फोटकके द्वारा सर्वाङ्गमें पीड़ा, आदि लक्षण होते हैं।

रेवतीग्रहसे पीड़ित होने पर मल हरिद्वर्ण, देह अतिशय पाण्डु वा श्यामवर्ण, ज्वर, मुखपाक, सर्वाङ्गमें वेदना और सर्वदा नाक और कानोंमें खुजलाहट आना आदि लक्षण होते हैं।

पूतनाग्रह पीड़ितके सर्वाङ्ग शिथिल, दिन और रात्रि-

में स्वच्छंद निद्रा न आना, पतला दस्त आना, देहमें काकके तुल्य गंध आना, वमन, लोमहर्षण तथा तृष्णा आदि लक्षण होते हैं।

अंधपूतनाग्रहाभिभूत होने पर स्तनोंमें द्वेष, अतोसार, कास, हिक्का, वमन, ज्वर, सतत विवर्ण और शोणित गंध आदि लक्षण होते हैं।

शीतपूतनाग्रहसे पीड़ित होने पर उद्विग्न, अतिशय कम्प, रोदन, अवसन्नभावसे निद्रा, अंतकूजन, अङ्गशैथिल्य-आदि लक्षण होते हैं। मुखगण्डिकाग्रहसे पीड़ितके अंग म्लान, हस्तपाद और वदन रक्तवर्ण, बहुभोजी, उदरशिराओंसे आवृत्त, उद्वेग और मूत्रकी सी गंध आदि लक्षण होते हैं। नैगमयग्रहसे पीड़ित होने पर फेनेका वमन, देहका मध्य भाग विनमित, उद्वेग विलाप, ऊर्द्ध दृष्टि, ज्वर, शरीरमें वर्वीकी-सी गंध आना आदि लक्षण होते हैं।

बालक स्तब्ध-भावापन्न, स्तनद्वेषी और बारबार मुह्यमान होने तथा रोगके सम्पूर्ण लक्षण प्रकट होने पर रोगी शीघ्र ही प्राण त्याग करता है। ऐसा न होने पर रोग साध्य है। रोगकी परवाह न करनेसे रोग आराम नहीं होता इसलिये उसकी प्रथमावस्थासे ही चिकित्सा करानी चाहिये। शिशुको पवित्र गृहमें रख पुराने घीका मर्द्दन करना तथा घरमें सरसों फैलाना चाहिये। रोगीके पास सर्वगंधा औषधिके बीज और गंधमाल्योंसे अग्निमें घृतका हवन करना चाहिये।

इन सम्पूर्ण ग्रहोंकी चिकित्सा यों लिखी है—स्कंदग्रहसे पीड़ित बच्चेको वातघ्न वृक्षका क्वाथ, या ऐसे वृक्षकी जड़का क्वाथके साथ पाक और सर्वगंधा, सुरामुण्ड और कैटर्य आदि द्रव्योंको डाल मर्द्दन करना प्रशस्त है। देवदारु, रास्ना, मधुरवृक्ष इनका क्वाथ और दूधके साथ घृत पाक करके पिलाना चाहिये। सरसों, सांपकी केंचुल और ऊंट, बकरी, गो आदिके रोमोंका धुआं देना चाहिये। सोमलता, इन्द्रवल्ली, शमी, बिल्वकंटक और मृगादनी आदिको ग्रथित कर अङ्गमें धारण करना चाहिये। निशाकालमें स्नान कर चत्वर पर स्कंदग्रहकी पूजा करनी चाहिये। रक्त माल्य, रक्तपताका, गंध, विविध प्रकार भक्ष्य, घण्टावाद्य, नूतनशाली, यव, कुक्कुट आदिकी बलि देनी चाहिये। मंत्र—"तपसां तेजसाञ्चैव यशसां वयसा तथा।

> निधानं योऽव्ययोदेवः स ते स्कंदः प्रसीदतु॥
> ग्रहसेनापतिर्देवो देवसेनापतिर्विभुः।
> देवसेनारिपुहरः पातु त्वां भगवान् गुहः।
> देवदेवस्य महतः पावकस्य च यः सुतः।
> गङ्गोमाकृत्तिकानाञ्च स ते शर्म प्रयच्छतु।
> रक्तमाल्याम्बरधरो रक्तचंदनभूषितः।
> रक्तदिव्यवपुर्देवः पातु त्वां क्रौंचसूदनः॥

स्कंदापस्मारकी चिकित्सा—बिल्व, शिरीष, गोलोमी और सुरसादिके क्वाथका परिषेचन, सर्वगंधाके साथ तिलतैलमर्द्दन, क्षीरवृक्ष और काकल्यादि गणका क्वाथ मिलाकर घृत वा दुग्धका पान कराना तथा वच और हिंगुका आलेपन करना चाहिये। गृध्र और उल्लूका पुरीष, केश, हाथीके नख, गायका घी और बालोंका धूपमें प्रयोग करना चाहिये। अनंता, बिम्बी, मर्कटी तथा कुक्कुटी आदि शरीरमें धारण करना चाहिये। चतुष्पथमें स्कंदापस्मार ग्रहकी पूजा कर पक्के वा कच्चे मांस, प्रसन्न रुधिर, दुग्ध और भूतान्नकी बलि देनी चाहिये। मंत्र—

> "स्कंदापस्मारसंज्ञो यः स्कंदस्य दयितः सखा।
> विशाखसंज्ञश्च शिशोः शिवोऽस्तु विकृताननः॥"

शकुनिग्रहकी चिकित्सा—शकुनि ग्रहजन्य रोगमें बेंत, आम, कपित्थ आदिका क्वाथ परिषेचन, कषाय और मधुर द्रव्यस्थको मिला कर गर्म तैलका मर्द्दन, यष्टिमधु, खसखसकी जड़, बाला, श्यामालता, उत्पल, पद्मकाष्ठ, लोध, प्रियंगु, मजीठ और शैलज आदिका प्रदेह प्रयोग करना चाहिये। व्रणरोगमें कहा हुआ चूर्ण और धूप, विविध प्रकारका पथ्य, आदि प्रयोज्य है। शतमूली, मृगादनी, पर्वारु नागदन्ती, निदिग्धका, लक्ष्मणा, सहदेवा, बृहती आदि शरीरमें धारण करना चाहिये। यथोक्त प्रकारसे इसकी पूजा अवश्य कर्त्तव्य है।

रेवतीग्रहकी चिकित्सा—अश्वगंधा, अजशृङ्गी, शारिवा, पुनर्नवा, मूगानि, मापानि, भूमिकुष्माण्ड, आदि क्वाथका परिषेचन, धव, अश्वकर्ण, अर्जुन, धातकी, तिन्दुक, कुष्ठ वा सर्ज्जरसके साथ पाक कर तैलका मर्द्दन,

काकोल्यादि गणके योगसे पक्व घृतका सेवन, कुलथी, शंखचूर्ण और सर्वगंधादिका प्रदेह करना चाहिये। गृध्र उल्लू, आदिके पुरीष और जौ आदिके धूपका शाम सवेरे प्रयोग करनेसे ग्रहप्रकोप शान्त होता है।

खील, दूध, शालिअन्न, दही आदिसे गोपालके घरमें निवेदनपूर्वक पूजा करे और नदीसङ्गम पर धात्री और बालकको स्नान करा कर इस ग्रहकी इस प्रकार स्तुति करे।

"नानावस्त्रधरा देवी चित्रमाल्यानुलेपना।
चलत्कुण्डलिनी श्यामा रेवती ते प्रसीदतु॥
लम्बाकराला विनता तथैव बहुपुत्रिका।
रेवती सततं माता सा ते देवी प्रसीद तु॥"

पूतनाग्रहकी चिकित्सा—कपोतवंका, अरलुक, वरुण, परिभद्रक, काष्ठमल्लिका आदि क्वाथका परिषेचन, वच, हरीतकी, गोलोम, हरिताल, मनःशिला, कुष्ठ आदिसे पक्व तैलमर्द्दन, तुगाक्षीर, मधुरक, कुष्ठ, तालिश, खदिर, चंदन आदिसे पाक किया हुआ घृत, वच, कुष्ठ, हिंगु, गिरिकदम्ब, इलायची और हरेनु आदिका धुवां देना चाहिये। गंधनाकुली, कुंभिका, कर्कटकी हड्डी और घृतका धूप प्रयोग करना चाहिये। काकादनी, चित्रफला, पिम्बी और गुंजा आदि शरीरमें धारण करना चाहिये।

मत्स्य, अन्न, कृशर और मांस इन सबको शरावेमें रख आच्छादन शून्य घरमें निवेदन कर यथाविधान पूजा करनी आवश्यक है। पश्चात् उच्छिष्ट जलसे बालकको स्नान कराना चाहिये। स्नानके बाद स्तुतिमंत्र—

"मलिनाम्बरसंवृता मलिना रूक्षमूर्द्धजा।
शून्यागाराश्रिता देवी दारकं पातु पूतना॥
दुर्दर्शना सुदुर्गंधा करालमेघकालिका।
भिन्नागाराश्रया देवी दारकं पातु पूतना॥"

अंधपूतना-ग्रहकी चिकित्सा—तिक्त वृक्षोंके पत्तोंका क्वाथसेक, सुरा, कांजी, कुष्ठ, हरिताल, मनःशिला और धूना द्रव्योंसे पकाया हुआ तैलका अभ्यङ्ग, पिप्पली-मूल, मधुरवर्ग, मधू, शालपानि और वृहती इन सब द्रव्योंसे पकाये हुये घृतका पान, अङ्गोंमें सब प्रकारका प्रदेह और चक्षुओंमें शीतल प्रदेह ही विधेय है। मुर्गेका पुरीष, केश, चर्म, सर्पनिर्मोक, और जीर्णवस्त्रोंका धूम्रमें प्रयोग करना चाहिये। कुक्कुटी, मर्कटी, शिम्बी, अनंता आदि द्रव्य शरीरमें धारण करना चाहिये। कच्चे तथा पक्के मांसका या शोणितको चतुष्पथमें निवेदन कर घरमें बच्चेको सर्वगंधादि जलमें स्नान करा यह स्तुति-मंत्र पढ़े—

"कराला पिङ्गला मुण्डा कषायाम्बरवासिनी।
देवी बालमिमं प्रीता संरक्षत्वंधपूतना॥"

शीतपूतनाग्रहकी चिकित्सा—कपित्थ, सुवहा, बिम्बीफल, बिम्ब, प्रचीवल, नंदी, भल्लातकोंका सेक, छाग मूत्र, गोमूत्र, मोथा, देवदारु, कुष्ठ और सर्वगंधादि इन सबसे तैलको पका कर उससे अभ्यंग करना चाहिये। इसके सिवाय रोहिणी, धूना, खदिर तथा पलाश और अर्जुनत्वक इन सबके क्वाथसे भी दूधके साथ तैलको गरम कर अभ्यंजन करना चाहिये। गृध्र और उल्लूका पुरीष, अजगंधा, सर्पनिर्मोक, निम्बपत्र और यष्टिमधु आदि धूमपानके लिये प्रयोज्य हैं। लम्बा, गुंजा और काकादनी अङ्गमें धारण करना विधेय है। मूद्गके साथ अन्न पाक कर उससे नदीके किनारे शीतपूतनाको तर्पण करना चाहिये। मद्य और रुधिरका देवोंको उपाहर दे जलाशयके किनारे बालकको यह मंत्र पढ़ स्नान करावे।

मंत्र—"मुद्गौदनाशनादेवी सुराशोणितपायिनी।
जलाशयालया देवी पातु त्वां शीतपूतना॥

मुखमण्डिकाकी चिकित्सा—कपित्थ, बिल्व, तर्कारी, बांसी, श्वेत एरण्डपत्र, कुबेराक्षी आदि द्रव्योंके क्वाथका सेक, भृङ्गराज, अजगंधा, हरिगंधा आदिके रसमें वच डाल तैल पका कर अभ्यंजन करे। सौंफ, दुग्ध, तुगाक्षीर, अञ्जना, मधुर और स्वल्पपंचमूल आदि द्रव्योंसे तैयार किये हुये घृतका पान करना चाहिये। वच, धूना, कुष्ठ और घीका धूप लेना चाहिये। चास, चीरल्ली और सर्प आदिकी जिह्वा अङ्गमें धारण करना, वर्णक, चूर्णक, माल्य, अंजन, पारद, मनःशिला, ये सब और पायस तथा पुरोडास, गोष्ठमें बलिप्रदान मंत्रपूत जलसे शिशुको स्नान करा यह मंत्र पढ़े—

"अलंकृता रूपवती सुभगा कामरूपिणी।
गोष्ठ मध्यालयरता पातु त्वां मुखमण्डिका॥"

नैगमेयग्रहकी चिकित्सा—विल्व, अग्निमंथ, छोटी करंज आदिका क्वाथ, सुरा, कांजी और धान्याम्लका सेक, प्रियंगु, सरल काष्ठ, अनंतमूल, सोंया गोमूत्र, दधिमण्ड और अम्लकांजी आदि द्रव्योंसे पके हुये तैलका अभ्यङ्ग, दशमूलका क्वाथ, दूध, मधुरगण, खर्जूर मस्तक आदिसे घीको पका पिलावे। हरीतकी, जटिला और वच, हिंगु, कुष्ठ, भल्लातक और अजमोदा आदिसे धूप वनावे। रात्रिमें जव लोग सो जावे तव उल्लू और गृध्रका पुरीष निर्मित धूप, तिल, तण्डुल और देवीकी पूजा करे वा वट वृक्ष मूलमें वालकको स्नान करा यह मंत्र पढ़े।

"अजाननश्चलाक्षिभ्रूः कामरूपी महायशाः।
वालं पालयिता देवो नैगमेयोऽभिरक्षतु॥"

(सुश्रुत उत्तरत० २७—३७ भावप्र० वालरोगाधि०)

रावणकृत वालतंत्रमें वालग्रहका विशेष विवरण लिखा हुआ है। विस्तार हो जानेके भयसे इसको नहीं लिखा गया। अति संक्षेपसे इसका वर्णन यहां किया गया है। ये ग्रह वालकोंको जन्मसे १२ वर्ष तक पीड़ित करते हैं। ऊपरकी अवस्थावालेको ग्रहोंकी शङ्का नहीं रहती।

प्रथम दिन, प्रथम मास, वा प्रथम सालमें जव नंदा नामक मातृका वालकों पर आक्रमण करती है तव ज्वर और आखें वंद हो जाती हैं, शरीर सदा दुःखित रहता है जिससे वालक शयन नहीं कर सकता। सदा रोता ही रहता है दूध अच्छा नहीं लगता और घुनट शब्द करता रहता है।

द्वितीय दिन, मास वा वर्षमें सुनंदा नामक मातृकाके वालक पर आक्रमण करनेसे ऊपरकी तरह लक्षण प्रकाश होते हैं।

तृतीय दिन, मास वा वर्षमें पूतना नामकी मातृकाके आक्रमण करनेसे ज्वर, चक्षुउन्मीलन, गात्रोद्वेजन, मुष्टिवद्ध, क्रंदन, ऊर्द्ध निरीक्षण आदि लक्षण होते हैं।

चतुर्थ दिन, मास वा वर्षमें मुखमण्डिका नामकी मातृका वालक पर आक्रमण करती है। जिससे प्रथम ज्वर, फिर चक्षुउन्मीलन, ग्रीवानमन और रोदन आदि लक्षण होते हैं। वच्चेको नींद नहीं आती और दूध नहीं पीता।

पंचम दिन, मास वा वर्षमें कटपूतना नामकी मातृका वच्चोंको ग्रहण करतो हैं उससे ज्वर होते हैं। छठे दिन, मास वा वर्षमें शकुनिका नामकी मातृका वच्चोंको पीड़ा देती है। उस समय वच्चोंके शरीरमें पीड़ा और ऊर्द्ध निरीक्षण आदि लक्षण होते हैं।

सप्तम दिन, मास व वर्षमें शुष्करेवती नामकी मातृका वालकोंको पीड़ित करती है तव ज्वर गात्रोद्वेजन एवं मुष्टिवद्धता आदि लक्षण प्रकट होते हैं।

अष्टम दिन, मास वा वर्षमें अर्यकामातृका और नवम मास, दिन वा वर्षमें स्वस्तिकामातृका, दशवें दिन, मास वा वर्षमें निर्ऋतामातृका, ग्यारहवें दिन, मास वा वर्षमें कामुकामातृका आक्रमण करती है। इन सव मातृकाओंके आक्रमण करनेसे इनकी पूजा या वलि देवे जिससे ये संतुष्ट हो वालकका परित्याग करे। ऐसा करनेसे वच्चा अपने आप ही अच्छा हो जावेगा।

रावणकृत वालतंत्र देखो

वालग्राम—शोणपाके पश्चिम दिग्वर्त्ती एक प्राचीन ग्राम।

वालगौरीतीर्थ (सं० क्ली०) एक तीर्थका नाम।

वालचन्द्र (सं० पु०) वालेन्दु।

वालचतुर्भद्रिका (सं० स्त्री०) औषधविशेष। प्रस्तुत प्रणाली—मोथा, पीपल, अतीस, कर्कटशृङ्गी आदिके चूर्णको मधुके साथ सेवन करानेसे छोटे छोटे वच्चोंका ज्वरातिसार, श्वास, काश और वमि दूर हो जाती है।

वालचरित (सं० क्ली०) वालकोंका खेल।

वालचर्य (सं० पु०) वालस्य वालकस्येव चर्या यस्य। १ कार्त्तिकेय। २ वालकोंका चरित्र।

वालचर्या (सं० पु०) वालकका कार्य।

वालचाङ्गेरीघृत—औषधविशेष। प्रस्तुत प्रणाली—घृत ४ सेर, आमरुलका रस ४ सेर, वकरीका दूध ४ सेर; चूर्णके लिये कैथ, त्रिकटु, सैन्धव, वराक्रान्ता, उत्पल, सुगन्धवाला, वेलसोंठ, धवफूल और मोचरस कुल मिला कर १ सेर। इस घृतका अच्छी तरह पाक कर सेवन करनेसे अतिसार और ग्रहणीरोग जाता रहता है।

वालचिकित्सा (सं० स्त्री०) वालस्य चिकित्सा। १ वालककी चिकित्सा। २ कौमारभृत्या, दायागरो।

वालछड़ (हिं० स्त्री०) जटामासी।

वालजीवन (सं० क्ली०) वालस्य जीवनं। दुग्ध। वालक-

सिर्फ दूध पी कर जीवनधारण करता है, इसीसे दूधका यह नाम रखा गया है।

बालटी (अं० स्त्री०) एक प्रकारकी डोलची। इसका पेंदा चिपटा और घेरा नीचेकी ओर संकरा तथा ऊपरकी ओर अधिक चौड़ा होता है। इसमें ऊपरकी ओर उठानेके लिये एक दस्ता भी लगा रहता है।

बालतनय (सं० पु०) बालानि नवोद्गतपत्राणि तनया इव यस्य। १ खदिर वृक्ष, खैरका पेड़। २ बालक पुत्र। (त्रि०) ३ बालतनययुक्त।

बालतन्त्र (सं० क्ली०) बालाय बालकरक्षार्थं तन्त्रमुपायः शास्त्रं वा। गर्भिणीचर्या, बालकोंके लालन पालन आदिकी विद्या, दायागरी। पर्याय—कुमारभृत्या, गर्भिण्यवेक्षण।

बालतृण (सं० क्ली०) बालं नवजातं तृणं। नवतृण, हरी घास

बालद (हिं० पु०) बैल।

बालत्व (सं० क्ली०) बालस्य भावः त्व। बालकता, बालकका भाव।

बालदलक (सं० पु०) बालानि दलानीव दलानि यस्य वा बाल इव क्षुद्रं दलं यस्य, ततः स्वार्थे कन्। खदिरवृक्ष, खैरका पेड़।

बालदियावाड़ी—पूर्णिया जिलेके अन्तर्गत एक नगर। यह अक्षा० २५ २१ उ० तथा देशा० ८७ ४१ पू०के मध्य अवस्थित है। यहां १७५६ ई०में वङ्गेश्वर सिराज-उद्दौलाके साथ पूर्णियाके नवाब सकत जङ्गका एक युद्ध हुआ था। युद्धमें पूर्णिया-राज पराजित और निहत हुए थे।

बालदीक्षित—अत्यग्निष्टोमप्रयोग, आग्रयणप्रयोग, उपाकर्मप्रमाण, बौधायनप्रयोग, बौधायनप्रवर्ग्य, बौधायनमहाग्निचयन, वाजपेयप्रयोग, श्रौतपरिभाषासंग्रहवृत्ति और सावित्रचयनप्रयोग आदि ग्रन्थोंके प्रणेता। ये १८वीं शताब्दीके मध्यभागमें जीवित थे।

बालदीक्षित पायगुप्त—भक्तितरङ्गिणी-टीकाके प्रणेता। ये वैद्यनाथ पायगुप्तके पुत्र थे।

बालधि (सं० पु०) बालाः केशाः धीयन्तेऽत्र, बाल-धा-कि। केशयुक्त लाङ्गूल, दुम।

बालधि (हिं० स्त्री०) दुम, पूंछ।

बालना (हिं० क्रि०) १ जलाना। २ प्रज्वलित करना, रोशन करना।

बालनाथ—पञ्जाब प्रदेशके झेलमसे जलालपुर जानेके रास्ते पर अवस्थित एक गण्ड शैल। इस पर्वतके शिखर पर बालनाथ नामक सूर्यमन्दिर प्रतिष्ठित था। अभी उसकी जगह गोरक्ष नाथ नामक शिवलिङ्ग स्थापित है।

बालपत्र (सं० पु०) बाल इव क्षुद्रं पत्रं यस्य। १ खदिरवृक्ष, खैरका पेड़। २ यवास, जवासा। (क्ली०) ३ नूतन पत्र, कोंपल। ४ दुरालभा।

बालपत्रक (सं० पु०) बालपत्र-स्वार्थे-कन्। खदिरवृक्ष, खैरका पेड़।

बालपन (हिं० पु०) १ बालक होनेका भाव। २ बालक होनेकी अवस्था, लड़कपन।

बालपर्णी (सं० स्त्री०) मेथिका, मेथी।

बालपाश्या (सं० स्त्री०) बालपाशे केशसमूहे साधुः यत्। १ सीमन्तिकास्थित स्वर्णादिरचित पट्टिका, सिरके बालोंमें पहननेका प्राचीन कालका एक प्रकारका आभूषण।

बालपुष्पिका (सं० स्त्री०) बालानि क्षुद्राणि पुष्पाणि यस्याः ततः स्वार्थे कन्, टापि अतइत्वं। यूथिका, जूही।

बालपुष्पी (सं० स्त्री०) यूथिका, जूही।

बालबच्चे (हिं० पु०) सन्तान, औलाद।

बालबुद्धि (सं० स्त्री०) १ बालकोंकी सी बुद्धि, थोड़ी अक्ल। (वि०) २ जिसकी बुद्धि बच्चोंकी सी हो, बहुत ही थोड़ी बुद्धिवाला।

बालबोध (सं० स्त्री०) देवनागरी लिपि।

बालबोधक (सं० स्त्री०) जो बालकोंकी समझमें आ जाय, बहुत सहज।

बालब्रह्मचारी (सं० पु०) वह जिसने बाल्यावस्थासे ही ब्रह्मचर्य व्रत धारण किया हो, बहुत ही छोटी उम्रसे ब्रह्मचर्य रखनेवाला।

बालभ (सं० पु०) सुदन्तगज, सुन्दर दाँतवाला हाथी।

बालभद्रक (सं० पु०) बालोऽपि भद्र इव, ततः स्वार्थे कन्। विषभेद, एक प्रकारका विष जिसे शाम्मव भी कहते हैं।

बालभारत (सं० क्ली०) १ अमरचन्द्ररचित संक्षिप्त भारत-कथा। २ राजशेखर-रचित एक नाटक।

वालभाव (सं० पु०) वालस्य भावः। वालकका भाव, लड़कपन।

वालभृत्य (सं० पु०) वाल्यकालसे दास।

वालभैषज्य (सं० क्लीं०) वालं भैषज्यं, वालस्य शिशोर्भैषज्यं। १ रसाञ्जन। २ वालककी औषध।

वालभोग (सं० पु०) १ वह नैवेद्य जो देवताओं, विशेषतः वालकृष्ण आदिकी मूर्त्तियोंके सामने प्रातःकाल रखा जाता है। २ जलपान, कलेवा।

वालभोज्य (सं० पु०) वालानां भोज्यः। चणक, चना।

वालम (हिं० पु०) १ पति, स्वामी। २ प्रणयी, प्रेमी।

वालमउ—१ अयोध्याप्रदेशके हरदोई जिलान्तर्गत एक परगना। सम्राट् अकवरशाहके राजत्वके शेषभागमें वलाई कुर्मी नामक कोई हिन्दू चन्देलराजाओंका अत्याचार सह न सका और माड़ीके कच्छवह क्षत्रियगणकी शरणमें पहुंचा। मुसलमानोंके आक्रमणसे उन्हें वचानेके कारण कच्छवह राजाओंने उसे यह वनविभाग पारितोषिकमें दिया। वलाईने जंगलको काट छांट कर इसे आवादी वना दिया। पीछे उसने वलाई खेरा नामका जो ग्राम वसाया वही वालमऊ नगर नामसे प्रसिद्ध हुआ। वालमऊ नगरसे इस परगनेका नामकरण हुआ है। चौदह ग्राम ले कर यह परगना संगठित है। यहांके ८ ग्रामोंमें कच्छवह क्षत्रिय, २में निकुम्भ, ३में सुकुल ब्राह्मण, १में कायस्थ और शेष १ ग्राममें कश्मीरी ब्राह्मणोंका वास है।

२ उक्त परगनेका एक नगर। वाणिज्य व्यापारमें यह नगर विशेष उन्नतिशील है।

वालमति (सं० स्त्री०) वालवुद्ध, लड़कोंकी-सी अक्ल।

वालमत्स्य (सं० पु०) मत्स्यविशेष, एक प्रकारकी छिलका रहित छोटी मछली। इसका मांस पथ्य और वलकारक माना जाता है।

वालमुकुन्द (सं० पु०) १ वाल्यावस्थाके श्रीकृष्णजी। २ श्रीकृष्णकी शिशुकालकी वह मूर्त्ति जिसमें वे घुटनोंके वल चलते हुए दिखाए जाते हैं।

वालमुकुन्द आचार्य—सीताचरणचामरके प्रणेता।

वलमूल (सं० क्लीं०) कच्ची मूली।

वालमूलक (सं० क्लीं०) अचिरजात कोमलमूलक, छोटी और कच्ची मूली। यह वैद्यकके अनुसार कटु, उष्ण, तिक्त, तीक्ष्ण तथा श्वास, अर्श, क्षय और नेत्ररोग आदिका नाशक, पाचक तथा बलवर्द्धक मानी जाती है।

वालमूलिका (सं० स्त्री०) आम्रातक वृक्ष, आमड़ेका पेड़।

वालमृग (सं० पु०) हरिणादि मृगवर्ग।

वालम्भट्ट—१ गोत्रनिर्णयके प्रणेता। २ सूर्यशतकटीकाके रचयिता। ३ आह्निकसारमञ्जरीके प्रणेता, विश्वनाथ भट्ट दातारके पुत्र।

वालयज्ञोपवीतक (सं० क्लीं०) वालं यज्ञोपवीतं ततः स्वार्थे कन्। उपवीतविशेष। पर्याय—उरङ्कट, पञ्चवट।

वालरस (सं० पु०) रसौषधविशेष। इसकी प्रस्तुत प्रणाली—पारा ८ तोला, गन्धक ८ तोला, स्वर्णमाक्षिक ४ तोला, इन्हें लोहेके वरतनमें घोट कर केशराज, भृङ्गराज, निसोथ प्रत्येकके रसमें सात वार भावन दे। पीछे सरसोंके समान गोली वनावे। इसका सेवन करनेसे वालकके त्रिदोष, जीर्णज्वर, कास और शूल आदि रोग जाते रहते हैं।

अन्यविध—पारद ८ तोला, गन्धक ८ तोला, स्वर्णमाक्षिक ४ तोला इन्हें लोहेके वरतनमें घोट कर केशराज, भृङ्गराज, निसोथ, पान, काकमोचिका, सूर्यावर्त्त, पुनर्णवा, मेकपर्णी और श्वेत अपराजिता प्रत्येकके रसमें सात वार भावन दे। पीछे उसमें ४ तोला मिर्चचूर्ण डाल कर सरसोंके समान गोली वनावे। अनुपान पानका रस रखा गया है। इसका सेवन करनेसे त्रिदोषसम्भूत सुदारुण ज्वर, काश आदि समस्त रोग प्रशमित होते हैं। (रसेन्द्रसारस० वालरोगाधि०)

वालराज (सं० क्लीं०) वालः स्वल्पोऽपि राजते इति राजपचाद्यच्। १ वैदूर्यमणि। (पु०) २ वालकश्रेष्ठ।

वालरूप—एक निवन्धकार। वाचस्पतिमिश्रने इनका उल्लेख किया है।

वालरोग (सं० पु०) वालस्य रोगः। वालककी व्याधि, वालककी पीड़ा। इसके विषयमें भावप्रकाशमें यों लिखा है—

वालरोगके निदान और लक्षण—गुरु भोजन, विषमाशन और आहार विहारसे धात्रीके शरीरमें वातादि दोष

कुपित हो दूधको दूषित करता है। उसी दूषित दुग्ध-पानसे बालक अनेक रोगोंसे आक्रान्त हो जाता है।

वात दूषित स्तन्यपानसे बच्चोंको वातरोग, स्वर-भंग, शरीर कृश तथा मल मूत्र और अधोवायु नहीं निकलते। पित्त दूषित स्तन्य पान करनेसे बच्चेको घर्माधिक्य, मलभेद, पिपासा और शरीरमें सूजन होती है एवं कमला आदि पित्तजरोग हो जाते हैं। कफ-दूषित स्तन्य पान करनेसे लालास्राव, निद्राधिक्य, जड़ता, शोथ और आंखें रक्तवर्णकी हो जाती हैं। नाना प्रकारके कफजरोग उसको अपना शिकार बना लेते हैं। दो दोषोंसे दूषित स्तन्य पानसे द्विदोषज लक्षण, तथा त्रिदोषज दूषित स्तन्यपानसे तीन तरहके लक्षण होते हैं।

वयःप्राप्त व्यक्तियोंको ज्वरादिमें जो लक्षण होते हैं बालकोंको भी वही रोग होता है।

जो सब रोग केवल बालकोंको ही उत्पन्न होते हैं, वयःप्राप्त मनुष्योंको नहीं होते उन्हींको बालरोग कहते हैं। इस प्रकार बालरोगका विवरण संक्षेपसे लिखा जाता है।

बच्चोंके तालुमांसमें कफ दूषित हो कर तालु कण्टक नामक रोग उत्पन्न करता है। यह रोग तालुमें मस्तकसे कुछ नीचे होता है। तालुपतनके कारण बच्चा स्तन्यपानसे विद्वेषी हो बड़ी मुश्किलसे पीता है। उसके मलभेद, पिपासा, वमि और तालु, कण्ठ तथा मुखमें वेदना होती है।

त्रिदोषके प्रकोपके कारण बालकोंके मस्तक वा वस्तिमें लोहित वर्ण अथच प्राणनाशक विसर्परोग उत्पन्न होता है। शिर पर होनेसे हृदय तक फैल जाता है। यदि वस्तिमें उत्पन्न हो, तो गुह्यसे मस्तक तक फैलता है। इसके ऐसे होनेको महापद्म कहते हैं।

दूषित स्तन्यपानके कारण बालकोंकी आँखोंके पलकोंमें कोथ नामका रोग पैदा होता है। इस रोगमें नेत्रोंमें वेदना और स्रावयुक्त खाज होती है। रोगीके मस्तक और नासिकामें खुजली मचती है। सूर्यके प्रकाशमें आखोंको खोल नहीं सकता है।

कुपित वायुसे नाभिदेशमें यदि यह रोग वेदनाके सहित हो तो उसको तुण्डी और यदि कुपित पित्तसे गुह्य प्रदेशमें पाक हो तो उसको गुदपाक कहते हैं।

मल, मूत्र वा घर्मयुक्त बालकोंका गुह्य द्वार न धोने पर उसमें कुपित कफ और रक्तसे खाज उत्पन्न होती है। बच्चेके शिरमें बड़े बड़े फोड़े हो पीप निकलने लगती है। ये थोड़े दिन बाद आपसमें मिल जाते हैं जिससे भयंकर रोग बालकोंको होता है। यही अहिपूतना कहा जाता है। कुपित कफ वायु द्वारा बच्चोंके शरीरमें मुद्राकृति, स्निग्ध, स्वाभाविक वर्णविशिष्ट, ग्रथित एवं वेदनाविहीन पीड़का उत्पन्न होती है। यह पीड़का अजगल्ली नामसे पुकारी जाती है। जो बालक गर्भिणी माताका स्तन्यपान करता है उसको प्रायः कास, अग्निमांद्य, वमि, तन्द्रा, कृशता, अरुचि और भ्रम या उसके उदरकी वृद्धि होती है। इसे पारिगर्भिक वा परिभवाख्यरोग कहा जाता है। इस रोगमें अग्निप्रदीपक औषधका प्रयोग करना होता है। बच्चोंके दन्तोद्भेद समस्त रोगोंका कारण जानना चाहिये। विशेषतः उन्हें ज्वर, मलभेद, कास, वमि, शिरोरोग, अभिष्यंद, पोथकी एवं विसर्परोग उत्पन्न होते हैं।

ज्वरादि रोगोंमें वयःप्राप्त व्यक्तियोंके लिये जो सब औषधियां कही गई हैं बच्चोंको भी उन रोगोंमें वे ही औषधियां देनी चाहिये। किन्तु दाहादि रोगोंमें वैसी औषधियां न देनी चाहिये। दाहादि शब्दसे यहां अग्निकर्म, वमन, विरेचन और शिरावेध आदि तीक्ष्ण कर्म समझना चाहिये। किन्तु अति कष्टकर रोगोंमें अगत्या वमनादिका प्रयोग भी करना होगा। यहां सुश्रुतका इतना ही अभिप्राय है, कि बिना कष्टकर रोगोंके वमन और विरेचनका व्यवहार नहीं करना चाहिये।

बालकोंको औषधिकी मात्रा बहुत थोड़ी देनी चाहिये। जिन रोगोंमें जो जो औषधियां कथित हैं उन्हीं औषधियोंको धात्री स्तनके ऊपर लगा कर उसे उसी स्तनका पान कराना ठीक है। जिन बालकोंको बोलना नहीं आवे उनका आभ्यंतरिक रोग ऐसे लक्षणोंसे मालूम पड़ जाता है। बालकके समस्त अङ्गों पर हाथ फेरे, जिस अङ्गमें पीड़ा होगी उस अङ्गमें वह हाथ नहीं लगाने देगा। मस्तक पर रोग होनेसे बच्चे आंखें मीच लेते और मस्तकको कष्टकर मालूम करते हैं। वस्तिमें रोग होने

पर बच्चेको मूत्रका रोध, क्षुधा और पिपासा आदि लक्षण होने लगते हैं। उनका पेट गुड़ गुड़ शब्द करने लगता है। इन रोगोंके होने पर वालकोंको वालरोगाधिकारोक्त औषधियोंका सेवन कराना चाहिये।

(भावप्रकाश वालरोगाधि०)

भैषज्यरत्नावलीके वालरोगाधिकारमें ऐसा लिखा है—

शिशुकी पीड़ा शांत होने तक धात्रीको लङ्घन कराना उचित है। बच्चे को उपवासादि नहीं करावे। अचिरजात शिशु यदि स्तनका पान न करे तो आमलकी, हरीतकी-के चूर्णको घी और मधुमें मिला वालककी जिह्वा पर घर्षण करे। कुट, वच, हरीतकी, ब्राह्मीशाक, धतूरामूल अत्यन्त अल्प परिमाणमें एकत्र चूर्ण कर घृत और मधुके साथ वालकको चटावे। उसके चटानेसे वालकोंके वर्ण और कान्तिकी वृद्धि होती है। स्तन्यके अभावमें बच्चों-को गौ या वकरीका दूध देना चाहिये। वह भी स्तन्यके समान गुणकारी है। कर्कट, वालचतुर्भद्रिका, धात-क्यादि, अश्वगंधाघृत, लाक्षादि रस आदि औषधियां बच्चोंके लिये कही गयी हैं।

वालरोगान्तकरस (सं० पु०) वालरोगाधिकारमें औषध-विशेष। इसकी प्रस्तुत प्रणाली—पारा और गन्धक प्रत्येक आध तोला, स्वर्णमाक्षिक २ माशा, इनकी अच्छी कज्जली वना कर केसरी, भृङ्गराज, निसोथ, मकोय, हुर-हुरं, शालिञ्च, इनके रसमें भावना दे। पीछे उसमें श्वेत अपराजिताका मूल २ माशा और मिर्च २ तोला डाल कर अच्छी तरह घोटे। अनन्तर धूपमें सुखा कर सरसों-के समान गोली वनावे। इसका सेवन करनेसे वालकका ज्वर और खाँसी आदि रोग जाते रहते हैं।

(भैषज्यरत्नाकर)

वाललीला (सं० स्त्री०) वालकोंकी क्रीड़ा, लड़कोंके खेल।

वालव (सं० पु०) फलित ज्योतिषके अनुसार दूसरा करण। इसमें शुभकर्म करना वर्जित नहीं है। कहते हैं, कि इस करणमें जिसका जन्म होता है वह वहुत कार्यकुशल, अपने परिवारके लोगोंका पालन करनेवाला, कुलशील-सम्पन्न, उदार तथा वलवान् होता है।

करण देखो।

वालवत्स्य (सं० पु०) कपोत, कबूतर।

वालवायज (सं० क्ली०) वालवाये वैदुर्यप्रभवे देशविशेषे जायते जन-ड। वैदूर्य।

वालवासस् (सं० क्ली०) वालानां लोम्नां वालैर्निर्मितं वा वासः। १ केशनिर्मित वस्त्र। २ वालकका वस्त्र।

वालवाह्य (सं० पु०) वालाः शिशवो वाह्या यस्य, एते खलु कस्मिंश्चित् उपस्थिते भये शिशून् पृष्ठे निधाय पलायन्ते इति प्रसिद्धे तथात्वं। १ वनछाग, जंगली वकरा। (त्रि०) २ वालकवहनीय, लड़कोंको ढोने लायक।

वालविधु (सं० पु०) अमावस्याके पीछेका नया चन्द्रमा, शुक्लपक्षकी द्वितीयाका चन्द्रमा।

वालव्यजन (सं० क्ली०) वालस्य चमरीपुच्छस्य वालेन वा निर्मितं व्यजनं। चामर, चँवर। पर्याय—रोमगुच्छ, प्रकीर्णक। २ वालकका व्यजन, लड़केका पंखा।

वालव्रत (सं० पु०) मञ्जुश्री वा मञ्जुघोषका नामान्तर।

वालशास्त्री कागलकर—प्रायश्चित्तप्रयोगके प्रणेता।

वालशास्त्री—वालवोधिनी और वालरञ्जिनी नामक व्याक-रणके प्रणेता।

वालशृङ्ग (सं० त्रि०) नवशृङ्गयुक्त, जिस पशुके सींग निकल रहे हों।

वालसखि (सं० पु०) वाल्यवन्धु।

वालसन्तोषो—वम्वई प्रदेशके शोलापुर जिलावासी जाति-विशेष। वालक-वालिकाओंको सन्तोष देना और उनकी मङ्गलकांक्षा करके दर दर घूमना ही इनकी उपजीविका है। इनका सामाजिक आचार व्यवहार कुणवियों सरीखा है। किसी गृहस्थके घरमें प्रवेश कर ये लोग वालक-वालिकाओंको भविष्यत् शुभाशुभ फल वतला देते हैं। साधारण मराठोंके जैसा ये लोग धर्मकर्म करते हैं। ग्रामयाजी ब्राह्मण इनके पुरोहित होते हैं।

वालसमन्द—पञ्जावप्रदेशके हिसार जिलान्तर्गत एक समृद्धिशाली ग्राम। यहां पहले शाम्भर लवणका विस्तृत वाणिज्य होता था। राजपूताना-रेलपथके खुलनेसे उस वाणिज्यकी वहुत अवनति हो गई है।

वालसन्ध्याभ (सं० पु०) वालसन्ध्या इव आभा यस्य। अरुणवर्ण, लाल रंग।

वालसरस्वती—वालसरस्वतीय काव्यरचयिता । इनका दूसरा नाम मदन भी था ।

वालसाँगड़ा (हिं० पु०) कुश्तीका एक पेंच ।

वालसात्म्य (सं० क्ली०) दुग्ध, दूध ।

वालसूरि—हेमाद्रिसर्वप्रायश्चित्तके प्रणेता ।

वालसूर्य (सं० क्ली०) वालः सूर्य इव । १ वैदूर्यमणि । २ प्रातःकालीन सूर्य, उदयकालके सूर्य ।

वालसूर्यक (सं० क्ली०) वालसूर्य एव स्वार्थे कन् । वैदूर्यमणि ।

वालस्थान (सं० क्ली०) १ वाल्यावस्था, लड़कपन । २ शिशुत्व ।

वालहस्त (सं० पु०) वाला हस्त इव मक्षिकादीनां निवारक त्वात् । १ वालधि, पूंछ । (त्रि०) वालानां केशानां हस्तः समूहः । २ केशसमूह ।

वाला (सं० स्त्री०) वालाः केशा इव पदार्थां विद्यन्ते यस्याः, वाल-'अर्शआदित्यादच्' ततष्टाप् । नारिकेल, नारियल । २ हरिद्रा, हलदी । ३ मल्लिकाभेद, वेलेका पौधा । ४ अलङ्कारभेद, एक प्रकारका कड़ा । ५ मेध्य, खैर । ६ त्रुटि, नुकसान । ७ घृतकुमारी, घी-कुआर । ८ ह्रीवेर । ९ अम्बष्ठा, ब्राह्मणीलता । १० नीलझिण्टी, नीली कटसरैया । ११ एक वर्षवयस्का गवी, एक वर्षकी अवस्थाका गाय । १२ षोड़शवर्षीया स्त्री, वारह-तेरह वर्षसे सोलह-सतरह वर्ष तककी अवस्थाकी स्त्री । यह स्त्री ग्रीष्म और शरत्कालमें प्रशंसनीया और हर्षदायिनी है । भावप्रकाशमें लिखा है, कि वालास्त्रीका सेवन करनेसे वलवृद्धि होती है ।

"नित्यं वाला सेव्यमाना नित्यं वर्द्धयते वलं ।"
(भावप्रकाश)

कन्यामालमें ही इस शब्दका प्रयोग देखा जाता है । पांच वर्षकी कन्याको भी वाला कहते हैं ।

"पञ्चवर्षा स्मृतावाला" (हारीत १।५)

दो वर्षसे कम उमरवालीको भी वाला कहते हैं । इनकी मृत्यु पर उदकक्रिया और अग्निसंस्कार नहीं होता । इनकी मृतदेह जमीनमें गाड़ी जाती है ।

"अजातदन्ता ये वाला ये च गर्भाद्विनिःसृताः ।
न तेषामग्निसंस्कारो न पिण्डं नोदकक्रिया ॥"
(गरुड़पु० १०७ अ०)

१३ पत्नी, भार्या । १४ स्त्री, औरत । १५ पुत्री, कन्या । १६ सुगन्धवाला । १७ सूक्ष्म-एला, छोटी इलायची । १८ चीनी ककड़ी । १९ दश महाविद्याओंमेंसे एक महाविद्याका नाम । २० गेहूंकी फसलको नष्ट करनेवाली एक प्रकारकी कीड़ी । २१ एक वर्णवृत्त । इसके प्रत्येक चरणमें तीन रगण और एक गुरु होता है ।

वाला (फा० पु०) ऊंचा, जो ऊपरकी ओर हो ।

वालाई (हिं० स्त्री०) मलाई देखो ।

वालाई (फा० वि०) १ ऊपरी, ऊपरका । २ निश्चत आयके सिवा ।

वालाकि (सं० पु०) वलाकाया अपत्यं वाह्वादित्वात् इञ् । (पा ४।१।९६) गार्ग्यऋषिभेद ।

वालाकुप्पी (फा० स्त्री०) प्राचीनकालका एक प्रकारका दण्ड जो अपराधियोंको शारीरिक कष्ट पहुंचानेके लिये दिया जाता था । इसमें अपराधीको एक छोटी पीढ़ी पर, जो ऊंचे खंभेसे लटकती होती थी, बैठा देते थे । फिर उस पीढ़ीको रस्सीके सहारे ऊपर खींच कर एक दमसे नीचे गिरा देते थे । इसमें आदमीके प्राण तो नहीं जाते थे, पर उसे वहुत अधिक शारीरिक कष्ट होता था ।

वालाक्षी (सं० स्त्री०) वालाः केशा इव अक्षिसदृशं पुष्पं यस्याः । केशपुष्पावृक्ष । पर्याय—मानसी, दुर्गपुष्पी, केशधारिणी ।

वालाखाना (फा० पु०) मकानके ऊपरका कमरा, कोठेके ऊपरकी बैठक ।

वालाघाट—दाक्षिणात्यके कर्णाटक प्रदेशके प्राचीन विजयनगर राज्यके अन्तर्गत एक जिला । जो जिला घाटपर्वतमालाके ऊपर अवस्थित था उसे वालाघाट और जो नीचे था उसे पयनघाट कहते थे । यह अक्षा० ८° १०'से ८° १६' उ० तथा देशा० ७७° २०'से ८° १०' पू०के मध्य विस्तृत था । स्थानीय अधिवासी वेलारी, कणूल और कड़ापा जिलेको आज भी वालाघाट कहते हैं ।

वालाघाट—मध्यप्रदेशके नागपुर विभागके अन्तर्गत एक जिला । यह अक्षा० २१° १९'से २२° २४' उ० तथा देशा० ७९° ३९'से ८१° ३' पू०के मध्य अवस्थित है । भूपरिमाण ३१३२ वर्गमील है । इसके उत्तरमें मण्डला जिला,

पूर्वमें विलासपुर और द्रुग जिला, दक्षिणमें भण्डार और पश्चिममें सिवनी है। बुहरनपुर इसका विचार सदर है।

यह जिला साधारणतः तीन भागोंमें विभक्त है। दक्षिण अर्थात् पहला भाग समतल और सबसे निम्न है। दूसरा मानतालुक नामक उपत्यका भूमि है और तीसरे भागमें रायगढ़वोछिया नामक अधित्यकाप्रदेश पड़ता है। पहले विभागमें वेणगङ्गा, वाघ, देव, घिसरी और शोण नदी वहती है। १ला और २रा भाग वनमालासे समाच्छन्न है। ३रे भागकी सर्वोच्च पर्वतभूमि समुद्रपृष्ठसे ३ हजार फुट ऊंचा है। इस पार्वत्यप्रदेशके स्थान-विशेषमें घना जंगल नजर आता है। देवनदीके किनारे कटङ्ग नामक एक प्रकारका वांस उत्पन्न होता है जिसकी ऊंचाई १०० फुटके करीव होगी। ऐसा सुन्दर वांसका जंगल और कहीं भी देखनेमें नहीं आता। इस वन्य विभागमें गोंड और वैगा जाति अधिक संख्यामें रहती है। किसी किसी झरनेमें सोना पाया जाता है। अलावा इसके लोहा, सूरमा, गेरूमट्टी और अवरक भी वहुतायतसे पाया जाता है।

महाराष्ट्र-आक्रमणके पहले इस स्थानके दक्षिण भागका कोई इतिहास नहीं मिलता; किन्तु उसके सौ वर्ष पहलेसे ही नागपुरके भोंसले सरदार इस प्रदेशका शासन करते आ रहे थे। मराठोंकी अमलदारीके पहले उत्तरी उच्चभूमि पर गड़ामण्डलके राजवंश प्रतिष्ठित थे। प्रस्तर-निर्मित वौद्धमन्दिरसे यहांकी पूर्वसमृद्धिकी कल्पना की जाती है। लक्ष्मण नामक किसी व्यक्तिके उद्योग और अध्यवसायसे १८१० ई०में नाना स्थानोंसे लोग आ कर यहां वस गये। परशवाड़ा और तन्निकटवर्त्ती ३० ग्राम अभी श्यामल शस्यक्षेत्रसे पूर्ण हो इस उपनिवेशकी श्रीवृद्धिका परिचय देते हैं।

इस जिलेमें वालाघाट नामक १ शहर और १०७५ ग्राम लगते हैं। जनसंख्या ३ लाखसे ऊपर है। विद्याशिक्षामें इस जिलेका स्थान वारहवां पड़ता है। अभी यहां १ मिडिल इङ्गलिश स्कूल, ३ वर्नाक्युलर मिडिल स्कूल और ६२ प्राइमरी स्कूल है। स्कूलके अलावा ६ अस्पताल भी हैं।

२ उक्त जिलेकी एक तहसील। यह अक्षा० २१° १६´ से २२° ५´ उ० तथा देशा० ७९° ३९´ से ८०° ४५´ पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण १६८७ वर्गमील और जनसंख्या प्रायः २४९६१० है। इसमें वालाघाट नामका १ शहर और ५८२ ग्राम लगते हैं। इस तहसीलमें वेनगङ्गाके दोनों किनारे धान खूव उपजता है।

३ वालाघाट तहसीलका एक शहर। यह अक्षा० २१° ४८´ उ० तथा देशा० ८०° १२´ पू०के मध्य अवस्थित है। जनसंख्या प्रायः ६२२३ है। शहरमें १ मिडिल इङ्गलिश स्कूल, १ वालिका स्कूल और १ अस्पताल है।

वालाघाट—वेरार राज्यके अन्तर्गत एक पहाड़ी भूमि। यह एजेण्टा पर्वतके ऊपर अवस्थित है। दाक्षिणात्य-अधित्यका भूमिकी यही सर्वोत्तर सीमा है।

वालाजी आवजी—महाराष्ट्रकेशरी छत्रपति शिवाजीकी शासन-सभामें नियुक्त एक प्रभु-कायस्थ 'चिटनीस' अर्थात् मन्त्री। आप हरि रामाजीके पौत्र और आवजी हरिके पुत्र थे। आपके पिता पुश्तैनीसे हवसीराज-सरकारमें दीवानका कार्य करते थे। आवजी हरि जव जैजुरीमें खण्डोवाकी पूजा करने गये थे, उसी समय हवसीराजकी मृत्यु हो गई। इससे उनके ज्ञाति शत्रुओंने अफवाह फैला दी, कि आवजी हरिकी पूजाके कारण ही राजाकी मृत्यु हुई है। इस पर राज्यकी तरफसे आवजी हरिको वंश सहित समुद्रमें डुवो देनेका आदेश हुआ। उनके तीनों पुत्र वालाजी आवजी, श्यामजी आवजी और चिमनाजी आवजी माताके साथ राजापुर-वन्दर पहुंचाये गये। वहां पर वालाजी आवजीके मामा विसजी शंकरने २५ होन मुद्रा दे कर चारोंको खरीद लिया। वालाजीकी माताने वड़े परिश्रमसे ५ होन मुद्रा परिशोध की। वादमें शिवाजीने वालक वालाजीके सुन्दर हस्ताक्षरों पर प्रसन्न हो कर अवशिष्ट २० होन मुद्रा दे कर इन्हें मोल ले लिया और १६४८ ई०में उन्हें अपने यहां चिटनीसी पद पर नियुक्त किया।

चिटनीस (Secretary)का पद प्राप्त होनेके वादसे ही वालाजीकी भाग्यलक्ष्मीने पलटा खाया। शिवाजीके कार्यमें इन्होंने अपना तन-मन न्योछावर कर दिया। उनके सभी गुप्त कार्य वालाजीके द्वारा होते थे। अफजल खाँकी हत्या, सम्भाजी और जीजीवाईकी मुक्ति, दिल्लीमें

शिवाजी और सम्भाजीके वन्दित्वमोचन तथा अंग-रेजोंके साथ राज-कारणके उपलक्षमें आप ही अपने मालिकके दाहिने हाथ बने थे। दिल्लीमें रहते हुए आप हीने मिठाईकी डलियामें रख कर शत्रुके हाथसे शिवाजी और शम्भाजीको रक्षा की थी।

उनकी सेवा, भक्ति और निष्ठा पर शिवाजी मुग्ध थे और इसी लिये उनका बालाजी पर विशेष स्नेह था। इनकी बिना सलाह लिये वे कोई भी काम न करते थे। इस तरह चटनीस आवजी धीरे धीरे सर्वाध्यक्ष हो गये। उधर मुख्य प्रधान मोरोपन्त पिंगले ईर्षावश इन्हें अप-दस्थ करनेके अभिप्रायसे इनके छिद्र ढूंढने लगे। चिट-नीस-पुत्र आवजी बालाके उपनयन-संस्कारके समय ब्राह्मण-प्रवर मोरोपन्तने गड़बड़ मचाई, कि कलिमें कोई क्षत्रिय नहीं है, इसलिये क्षत्रियोचित संस्कारमें कायस्थों-का अधिकार नहीं हो सकता। कुछ भी हो, बहुत वाद विवादके बाद बालाजीने पुत्रकी उपनयन-क्रिया स्थगित कर दी। शिवाजीको मालूम होते ही उन्होंने काशीके पंडितोंका अभिमत संग्रह करनेका आदेश दिया। उसके अनुसार बालाजीने काशीकी विद्वन्मण्डलीके सम्मतिपत्र संग्रह किये।

राज्याभिषेकके समय शिवाजीका भी उपनयनादि संस्कार नहीं हुए थे। बालाजी आवजीने विशेष उद्योग-के साथ पण्डितप्रवर गागाभट्टकी शास्त्रीय युक्तिके अनु-सार प्रौढ़ अवस्थामें शिवाजीका यज्ञोपवीत कराया और राज्याभिषिक्त किया। शिवाजीने प्रसन्न हो कर इन्हें पुश्तैनी 'चिटनीस' (Chif Secretary) पद प्रदान किया। शिवाजीके अभिषेकके बाद 'चिटनीस'-प्रवर बालाजीने अपने ज्येष्ठ पुत्र आवाजी बालाकी उपनयन-क्रिया सम्पन्न की। इस उत्सवमें गागाभट्ट आदि बहुत-से प्रसिद्ध पण्डित उपस्थित हुए थे और यथारीति कायस्थ-प्रभुके संस्कारादि कराये थे।

इसके बाद सम्भाजीके राज्याधिकारको ले कर महा-राष्ट्र राज्यमें फिर गड़बड़ी मची। उसमें, बालाजी आवजी अन्यान्य मंत्रियोंके साथ इस मामलेमें शामिल न होने पर भी सम्भाजीके आदेशसे १६०३ शकाब्द (१६८१ ई०)-में वे हाथीके पैरों-तले दबा कर मरवा दिये गये।

बालाजी लक्ष्मण—खानदेशके एक महाराष्ट्री शासनकर्त्ता। १८०४ ई०में इन्होंने कोपरगांवके सात हजार भीलोंको किसी बहानेमें डाल कर पकड़वाया था और उनमेंसे अधिकांशको दो कूओंमें ढलवाया था।

बालाजी बाजीराव—महाराष्ट्र-राज्यके तीसरे पेशवा। आप १म पेशवा बाजीरावके पुत्र थे। बालाराव पण्डित-प्रधानके नामसे ये जनसाधारणमें मशहूर थे। १७४० ई० में आप पिताके सिंहासन पर आरूढ़ हुए और १७६१ ई०में पानीपतकी लड़ाईमें मौजूद थे। इस युद्धमें इनके ज्येष्ठ पुत्र विश्वासराव मारे गये। आपके अन्य दो पुत्र मधुराव और नारायणरावको क्रमशः पेशवा पद प्राप्त हुआ। पेशवा देखो।

बालाजी विश्वनाथ—महाराष्ट्रराज्यमें पेशवा नामक ब्राह्मण वंशके प्रतिष्ठाता। पहले पहल आप कोङ्कणप्रदेशके एक ग्रामके पटवारी थे। वहांसे फिर यादववंशीय एक सरदार-के अधीन काम करने लगे। यहीं पर इनकी गुप्त प्रतिभा विकसित हुई। महाराष्ट्र-पति शम्भाजीके पुत्र शाहुके राज्यकालमें आप पेशवा-पद पर नियुक्त हुये। इस समय ये राज्यके सर्वेसर्वा थे। १७२० ई०में इनकी मृत्यु होने पर प्रथम पुत्र बाजीराव पेशवाने राज्यका शासन किया था। पेशवा देखो।

बालाण्डा – २४ परगनेके अन्तर्गत एक परगना। यह कल-कत्तेके पूर्व और सुन्दरवनके उत्तरमें अवस्थित है। हारुआ, गोसाँईपुर, हादीपुर, नायाबाद, माजियाण्टी, वेदारी, खाटरा जनार्दनपुर, चाँदपुर, हरिपुर, गोपालपुर आदि ग्राम यहांके प्रधान वाणिज्यस्थान हैं। हारुआ ग्राम-में पीर गोराचांदका प्रसिद्ध समाधिमन्दिर विद्यमान है।

बालादस्ती (फा० स्त्री०) १ अनुचित रूपसे हस्तगत करना, नामुनासिद तौरसे वसूल करना। २ बल-प्रयोग, जबर-दस्ती।

बालादित्य (सं० पु०) १ नवोदित सूर्य। २ काश्मीरके एक राजा। मगध और काश्मीर देखो।

बालापन (हिं० पु०) लड़कपन, बचपन।

बालापुर—१ बरारके अकोला जिलेका तालुक। यह अक्षा० २०° १७' से २०° ५५' उ० तथा देशा० ७६° ४१' ७७ पू० के मध्य अवस्थित है। जनसंख्या प्रायः १०१६७ है।

इसमें वालापुर, पातुर और वाडगांव नामके ३ शहर और १६२ ग्राम लगते हैं। यहांसे थोड़ी दूर पर अकवरके चौथे लड़के सुलतान मुरादका वनाया हुआ राजप्रासाद भग्नावस्थामें पड़ा है।

२ उक्त तालुकका एक शहर। यह अक्षा० २०°४०' उ० तथा देशा० ७६° ५०' पू० ग्रेट इण्डियन पेनिनसुला रेलवेके पारस स्टेशनसे ६ मील दूरमें अवस्थित है। मून नदी इसके वीच हो कर वह गई है। मुगलोंकी अमलदारीमें इलिचपुरके वाद इसी शहरमें सेनानिवास स्थापित हुआ था। वाला नामक देवीमन्दिरके सामने पहले यहां एक भारी मेला लगता था। यहां वालादेवीका मन्दिर रहनेके कारण ही इसका वालापुर नाम पड़ा है। आईन-ई अकवरी ग्रन्थमें इस परगनेकी समृद्धिकी कथा उल्लिखित है। सम्राट् औरङ्गजेवके पुत्र आजमशाह यहां पर रहते थे। १७२१ ई०में निजाम उलमुल्कने इस नगरके समीप मुगलसेनाको परास्त किया था। मेसघाट पहाड़ी दुर्गको छोड़ कर वालापुरका दुर्ग ही वेरारमें सवसे वड़ा है। शिलालिपिसे जाना जाता है, कि इलिचपुरके नवाव इस्माइल खांसे १७५७ ई०में यह दुर्ग वनाया गया था। १०३२ हिजरीमें निर्मित यहांकी जुमा मसजिद भग्नावस्थामें पड़ी है। नगरके दक्षिण नदी किनारे 'छतरी' नामक छत्राकृति अट्टालिका नगरकी शोभाको वढ़ा रही है। प्रवाद है, कि सम्राट् आलमगीरके अनुचर राजा सवाई जयसिंहने यह छतरी वनवाई थी।

वालावर (फा० पु०) एक प्रकारका अंगरखा। इसमें चार कलियां और छः वन्द होते हैं। अँगरखा देखो।

वालामय (सं० पु०) वालस्य आमयः। वालरोग। वालरोग देखो।

वालायनि (सं० पु०) वालाया अपत्यं तिकादित्वात् फिञ् (पा ४।१।१५४) वालाका अपत्य।

वालाराव—विख्यात नाना साहवके भाई, अयोध्याप्रदेशके सिपाही-विद्रोहके एक नेता। तुलसीपुर पर्वतके नीचे इनके साथ अंगरेजोंकी मुठभेड़ हुई थी। युद्धमें हार खा कर ये अपने भाई नानाकी तरह जंगलमें भाग गये। इनके भाग जानेसे ही अयोध्या प्रदेशमें विद्रोह शान्त हुआ और प्रायः डेढ़ लाख सशस्त्र विद्रोहीसेनाने अंगरेजोंकी वश्यता स्वीकार की।

वालारुण (सं० पु०) वालार्क, वालसूर्य।

वालारोग (हिं० पु०) नहरुआ रोग।

वालार्क (सं० पु०) वालः नवोदितोऽर्कः। १ प्रातःकालीन सूर्य। यह सूर्यताप शरीरमें लगनेसे शरीरका अनिष्ट होता है।

"शुष्कमांसं स्त्रियो वृद्धा वालार्कं स्तरुणं दधि।
प्रभाते मैथुनं निद्रा सद्यः प्राणहराणि षट्॥"
(चाणक्य)

वालाश्म (सं० क्ली०) वालुका, वालू।

वालासिनोर—गुजरात प्रदेशके रेवाकान्थके अन्तर्गत एक सामन्तराज्य। यह अक्षा० २२° ५३' से २३° १७' उ० तथा देशा० ७३° १७' से ७३° ४०' पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण १८६ वर्गमील है। इसके उत्तरमें महीकान्थ राज्य, पूर्वमें लूनावाद-राज्य, पश्चिम और दक्षिणमें कैरा जिला है। यहां माही नामकी नदी वहती है। कृषिकार्यमें कूपका जल काम आता है। यहांके सरदार मुसलमान हैं। 'वावी' या द्वाररक्षक (१) इनकी उपाधि है। अंगरेजराज-निर्दिष्ट राजनैतिक कर्मचारीकी सलाह ले कर ये हत्यापराधीको दण्ड देते हैं। राजस्व सवा लाख रुपया है जिनमेंसे १५५३२ रु० वृटिश सरकारको और ३०७८ रु० वड़ौदाके गायकवाड़को करमें देने पड़ते हैं। सैन्यसंख्या ११७ है जिनमेंसे १६ घुड़सवार हैं। नवावको सरकारकी ओरसे ६ सलामी तोपें मिलती हैं। सलावद् खांसे निम्न पांचवीं पीढ़ीमें शेरखां वावीने १६६४ ई०में दिल्ली दरवारसे वालासिनोर और वीजापुरका शासनभार ग्रहण किया। पीछे जूनागढ़ राज्य भी उनके हाथ लगा। मृत्युके वाद वड़े लड़के वालासिनोरमें और छोटे जूनागढ़में अधिष्ठित हुए। गुजरातमें महाराष्ट्र-प्रभाव जम जानेसे (१७६८ ई०में) यहांके सरदारने पेशवा और गायकवाड़राजकी अधीनता स्वीकार की। १८१८ ई०में पेशवा-अधिकृत यह स्थान अंगरेजराजके पालिटिकल-एजेण्टके शासनभुक्त हुआ।

(१) मुगल राजदरवारमें इस वंशके आदिपुरुष द्वाररक्षीका काम करते थे।

इस राज्यमें ६८ ग्राम लगते हैं। जनसंख्या साढ़े तीन हजारके करीब है। यहांकी जमीन बड़ी उपजाऊ है। ज्वार, धान, तेलहन और रुई काफी उपजती है। यहां १२ स्कूल और २ अस्पताल हैं।

२ उक्त राज्यकी राजधानी। यह अक्षा० २२ं५६´ उ० तथा देशा० ७३ं २५´ पू०के मध्य शेरी नदीके किनारे अवस्थित है। जनसंख्या प्रायः ८५३० है। पत्थरकी दीवार शहरके चारों ओर दौड़ गई है, उसमें चार फाटक लगे हुए हैं। शहरके उत्तर एक उच्च स्थान पर नवाबका प्रासाद अवस्थित है। शहरसे तीन मील दूर एक पहाड़ी पर डुंगरिया महादेवके उद्देश्यसे अगस्त मासमें वार्षिक मेला लगता है।

वालाहिसार—कावुलके सीमान्त देशवर्त्ती एक नगर। इसे 'कावुलका द्वार भी कह सकते हैं। १८४१ ई०में यहां अंगरेजी-सेनाने आश्रय ग्रहण किया था। यहां शाहसुजा-का राजप्रासाद और तोरणस्तम्भ है। जब पहले पहल अंगरेजोंने यहां सेनानिवास खोलना चाहा तब सुजाने आपत्ति की, पर आखिर वे सम्मति देनेको वाध्य हुए।

वालासन—दार्जिलिङ्ग जिलेमें प्रवाहित एक नदी। यह जगत्‌लेपछा नामक भूभागसे निकल कर तराईकी ओर आ दो भागोंमें विभक्त हो गई है। नूतन वालासन नामक साखा शिलिगुड़ीके दक्षिण महानदीमें मिली है और दूसरी पूर्णिया जिला होती हुई बह गई है। इस नदीतीरवर्त्ती पहाड़ी जंगलमय तराई प्रदेशमें नाना द्रव्यों-की खेती होती है।

वालासुर (सं० पु०) असुरभेद।

वालाहेरा—राजपूतानेके जयपुर राज्यके अन्तर्गत एक नगर। यह अक्षा० २६ं५७´ उ० तथा देशा० ७६ं ४७´ पू० आगरेसे अजमीर जानेके गिरिपथ पर अवस्थित है। यहांका पहाड़ीदुर्ग १८वीं शताब्दीके शेष भागमें शिन्दे सेनापति डि वायनीसे विध्वस्त हुआ था।

वालि (सं० पु०) वानरोंके अधिपति। पर्याय—ऐन्द्र, वाली।

रामायणमें लिखा है,—मेरु नामका एक श्रेष्ठ पर्वत है। इस पर्वतके किसी एक शिखर पर ब्रह्म-सभा प्रति-ष्ठित है। एक दिन कमल-योनि ब्रह्मा वहां योगाभ्यास कर रहे थे कि इतनेमें सहसा उनके नेत्रोंसे आँसूकी बूंद टपक पड़ी। बूंदके गिरनेके साथही उससे एक वानर पैदा हुआ, जिसका नाम ऋक्षराज था। ब्रह्माने उसे देख कर कहा, "हे वानर! तू इस अमरोंकी विहार-भूमि सुमेरु पर्वत पर आ कर नाना प्रकारके फल-मूल खाता हुआ हमेशा मेरे पास रह।"

एक दिन यह वानर पिपासासे अत्यन्त आतुर हो कर उत्तर-मेरु-शिखरकी तरफ चल दिया। वहां एक सरोवरके पानीमें अपनी मुंहकी छाया देख कर सोचने लगा, यह तो मेरे जैसा दीखता है, यह मेरा परम शत्रु है, इसलिये इसे शीघ्र ही मार डालना चाहिये। यह विचार कर वह पानीमें कूद पड़ा। पश्चात् वह वानर सरोवर-से निकला और एक मनोहर स्त्रीका रूप धारण किया। इतनेमें इन्द्र और सूर्य दोनों ही वहां आ पहुंचे और उस कामिनीको देख कर कामदेवके वशीभूत हो गये। क्रमशः उनका धैर्य च्युत हुआ। आखिर उस रमणीको न पा कर इन्द्र उसके मस्तक पर स्खलित वीर्य निक्षेप कर निवृत्त हुए। उधर दिवाकर भी मन्मथके वाणोंसे घायल थे, उन्होंने भी उसकी ग्रीवामें निषिक्त वीज निक्षेप किया। इस प्रकार इन्द्र और सूर्य दोनोंने मदन-व्यथासे छुटकारा पाया। वादमें उस कामिनीने इन्द्रके वीजको अमोघ जान कर उससे सर्वश्रेष्ठ वानरका जन्म दिया जिसका नाम हुआ वालि और ग्रीवामें पतित वीर्यसे सुग्रीव उत्पन्न हुए। इस तरह इन्द्रसे वालि और सूर्यसे सुग्रीव-की उत्पत्ति है।

उस दिनके बात जाने पर ऋक्षराजने फिर वानर-रूप प्राप्त किया और अपने दोनों पुत्रोंको ले कर ब्रह्माके पास पहुंचे। ब्रह्माने उन्हें किष्किन्धामें जा कर राज्य करने-को आज्ञा दी। विश्वामित्रने यहां मनोरम पुरी निर्माण की थी। वालि उसी नगरीमें आ कर वानरोंका राजा बन कर राज्य करने लगे। ये दोनों भाई अत्यंत वलशाली थे, तीनों लोकमें इनकी शानका कोई न था। वालिकी प्रधान महिषीका नाम तारा था और सुग्रीवकी स्त्रीका नाम रुमा।

एक दिन किसी मायावी दैत्यके उपद्रवके कारण, वालि अपने भाईको पातालके द्वार पर विठा कर स्वयं दैत्योंके विनाशके लिए पाताल चला गया। इधर अधिक

विलम्ब हो जानेसे सुग्रीवने निश्चय कर लिया, कि वालिकी मृत्यु हो गई। वह द्वार पर एक बड़ा भारी पत्थर रख कर किष्किन्धा लौटा और वहां जा कर वालिका मृत्यु-संवाद प्रचारित किया। वालिकी मृत्यु हुई जान कर मंत्रियोंने सुग्रीवको राजा बना दिया। पश्चात् सुग्रीव उनसे मिल कर सुखसे राज्य करने लगे। इस तरह कुछ दिन बाद वालि उन दैत्योंको मार कर उस गुफाके द्वार पर आया, तो देखा कि वहां पत्थर रखा हुआ है। वालिने उस पत्थरको पैरोंकी ठोकरसे तोड़ डाला और अपने भवनमें पहुंचा। सुग्रीवको राज्य और पत्नीका भोग करते देख वालि मारे क्रोधके अधीर हो उठे और सुग्रीवको मारनेके लिए उद्यत हुए। सुग्रीवने भाग कर मतङ्गका आश्रय लिया। वालि अपनी पत्नी तारा और भ्रातृ-वधू रुमाको ले कर सुखसे रहने लगे।

किसी समय रावण वालिको पराजित करनेके अभिप्रायसे किष्किन्धा पहुंचा उस समय वालि दक्षिणसागरमें सन्ध्या कर रहा था। रावणके वहां पहुंचने पर, वालिने अपनी बगलमें दबा और भी तीन सागरोंमें भ्रमण करके सन्ध्या समाप्त की। इस पर रावणके विशेषरूपसे पराजय स्वीकार करने पर वालिने उसे छोड़ दिया। उधर सुग्रीव वालि द्वारा निकाले जानेके कारण मतङ्गाश्रममें ही दिन बिता रहा था। रावणके द्वारा सीता हरी जाने पर जब राम और लक्ष्मण सीताकी खोजमें निकले, तो मतङ्गाश्रमवासी सुग्रीवसे उसकी मित्रता हो गई। सुग्रीवकी सहायता करनेको उन्होंने वचन दिया और तदनुसार रामने वालिका वध किया। वालिके मारे जाने पर सुग्रीव फिर किष्किन्धाका राजा हुआ और वालिका पुत्र अङ्गदको युवराज-पद मिला। लङ्काधिपति रावणके साथ युद्ध करते समय इसी वालि पुत्र अङ्गद तथा सुग्रीवने सेनापति हो कर कई लाख वानर-वाहिनी द्वारा श्रीरामचन्द्रकी सहायता की थी।

(रामा० कि० उ०काण्ड)

वानरवंशी राजा वालिके विषयमें जैन-पद्मपुराणमें इस प्रकार लिखा है—

विद्याधर क्षेत्रमें एक किष्किंधा नामकी नगरी है। उस नगरीमें सर्व लक्षणयुक्त सूर्यके समान प्रतापी सूर्यरज नामके राजा राज्य करते थे। उनके चन्द्रमालिनी नामकी रानी महामनोज्ञ अपनी सुंदरतासे चन्द्रमाको भी लज्जित करनेवाली थी। उन दोनोंका काल सुखसे व्यतीत होता था। एक दिन रानी चन्द्रमालिनीने रात्रिके समय शुभ स्वप्न देखे। उन स्वप्नोंके फलके अनुसार रानीने गर्भ धारण किया। नवें मास रानीने शुभनक्षत्रमें सर्वलक्षणयुक्त पुत्र प्रसव किया। वह बालक क्रमसे बड़ा हुआ। अवस्थाके अनुसार यथाविधि उसके यज्ञोपवीतादि संस्कार भी हुये। उसने बाल-अवस्थाका उलङ्घन कर यौवन अवस्थामें पदार्पण किया। उसके परिक्रमकी गुणगाथा समस्त संसारमें व्याप्त हो गई। उसके समान बलवान् तथा धैर्यवान उस समय कोई भी न था, अतएव सब लोग 'वाली' कह कर उसका सम्मान करने लगे।

एक दिन राजा सूर्यरथको संसारसे वैराग्य हो गया। वे द्वादश भावनाओंका चितवन करने लगे। यद्यपि वे संसारसे पहिले हीसे उदासीन थे; पर अब उनका मन संसारमें जरा भी न लगा। उन्होंने अपने प्रिय पुत्र वालिको राज्य सौंपा और आप तपोवनमें जा दिगम्बरी दीक्षासे भूषित हुये।

महापराक्रमी वालि किष्किन्धा नगरीके सिंहासन पर बैठ न्यायके अनुसार प्रजाका पालन करने लगे। वे धर्मात्माओंके शिरोमणि थे। प्रतिदिन ढाईद्वीपमें विद्यमान जिनचैत्यालयोंका दर्शन कर आते थे। इनके छोटे भाईका नाम सुग्रीव था।

राक्षसवंशीय दशाननका प्रबल प्रतापीरूपी सूर्य उस समय मध्याह्नमें तप्तायमान हो रहा था। वह लङ्काका राज करता था तथा अपने पराक्रमसे तीन खण्डोंको जीता था। भूमि गोचरी और विद्याधर समस्त राजा उसके चरणोंकी सेवा किया करते थे। जब वालि राज्यसिंहासन पर बैठे, तब उन्होंने रावणकी आज्ञा मानना अस्वीकार किया। रावणने उसको अपनी आज्ञासे विमुख हो जान शीघ्र ही उसके पास एक दूत भेजा। दूत बड़े अभिमानसे वालिके दरबारमें जा रावणकी प्रशंसा कर कहने लगा, 'हे वालि! तुम्हारे पिताको दशाननने इस किष्किन्धापुरीका राज्य दिया था। जब तक

तुम्हारे पिता रहे, उनका और हमारा आपसमें परम स्नेह रहा। अब तुम जो हमसे विमुख हुये हो सो ठीक नहीं है। क्योंकि, रावणके प्रतापके सामने कोई भी ठहर नहीं सकता। इस लिये तुम शीघ्र ही जा अपनी भगिनी सुप्रभाका रावणके साथ विवाह कर दो और उनके चरणोंमें अपना मस्तक झुकावो।' दूतके गर्वयुक्त ये वचन सुन उन्होंने कहा, कि जिस रावणकी प्रशंसाका तुम इतना बड़ा पुल बांध रहे हो उसे मैं अपने बायें हाथकी हथेलीसे चूर सकता हूं। मैं तुम्हारी सब शर्तें कबूल कर सकता हूं; किन्तु उसके चरणोंमें अपना मस्तक नहीं नमा सकता।

वालि इस प्रकार सोच ही रहे थे कि भावी समरकी आशङ्कासे उनका दिल संसारसे उचट गया। वे विचारने लगे, कि मैं अपने वास्ते कितने प्राणियोंको विध्वस्त करनेके लिये तैयार हो रहा हूं। एक उपाय मेरी समझमें आ रहा है कि मैं दिगम्बरी दीक्षा ले लूं और इस राज्यको सुग्रीवको दे दूं। इस उपायसे न तो जीवहिंसा ही होगी न मेरा अभिमान ही भंग होगा। ऐसा विचार कर उन्होंने अपनी दिक्षाका वृत्तान्त समस्त लोगोंमें प्रगट किया और सुग्रीवको राज्य दे आप तपोवनको चल दिये। वहां शिला पर बैठे हुए नग्न दिगम्बर मुनिके पास जा अवनत मस्तक हो उनकी स्तुति की और उनसे दीक्षा ले आप द्वादश तपको तपने लगे। यद्यपि वे राज्यकी समस्त विभूतियोंका त्याग कर चुके थे तो भी वे राजा ही प्रतीत होते थे। कारण, इनसे समस्त प्राणियोंकी रक्षा होती थी। वे मुनि सदा ध्यानमें तत्पर पूर्णरूपसे अहिंसाके प्रतिपालक थे। उन्होंने समस्त संसारकी माया ममताको छोड़ दिया था। चाहे उनकी स्तुति करो या निंदा, वे सदा मध्यस्थभाव रखते थे। शत्रु मित्र पर उनका सदा एक-सा भाव था। संसारमें यदि उनके कोई शत्रु था तो केवल अष्टकर्म और मित्र था तो एक धर्म ही।

एक दिन कैलाश पर्वत पर वालि मुनि कायोत्सर्गसे खड़े खड़े ध्यानमें तल्लीन हो वे अपनी आत्माका चिन्तवन कर रहे थे।

जब सुग्रीवने किष्किन्धाका राज्य पाया तो उसने अपनी सुप्रभा बहिनका रावणके साथ पाणिग्रहण कर दिया और आप उसका आज्ञाकारी सेवक बन वहांका शासन करने लगा। रावणने विद्याधर लोककी अनेक सुन्दर सुन्दर बालिकाओंके साथ विवाह किया था। नित्यालोक नगरमें राजा नित्यावलोककी रानी श्रीदेवीसे उत्पन्न रत्नावली नामकी पुत्री थी। उसे विवाह कर रावण लङ्काको आते थे। जब वे कैलाश पर्वत आये तो उनका पुष्पक विमान इस प्रकार अटक गया जिस प्रकार वायुमंडल सुमेरु पर्वत पर जा अटक जाता है। तब घण्टादिक शब्दसे वह विमान रहित हो गया, मानो वह विमान रूठ कर चुप हो गया हो। रावणने विमानको अटका देख मरीचि मंत्रीसे उसका कारण पूंछा। मरीचिने कहा, "देव! यह कैलाश पर्वत है। यहां पर कोई मुनि कायोत्सर्गसे शिला पर रत्नके स्तंभके समान सूर्यके सम्मुख आतापन योगको धारण कर बैठे होंगे। वे मुनि महा घोर तपको तप रहे होंगे या शीघ्र ही मुक्तिको जानेवाले होंगे। आप नीचे उतर उन पवित्र मुनिके दर्शन कर अपना जन्म कृतार्थ कीजिये।" मंत्री मरीचिके ये वचन सुन रावण विमानसे उतरा और कैलाश पर्वतकी तरफ गर्वयुक्त हो देखने लगा। इतने ही में उसने दिग्गजोंकी सूंड़के समान दोनों भुजाओंको बढ़ाया। जिनके शरीरसे सर्प लटक रहे थे, पाषाणस्तंभके समान जो आतपति शिला पर निश्चल खडे थे वैसे वालिमुनिको उसने देखा। रावणने जब वालिमुनिको देखा तब पापी पहिले वैरका स्मरण कर भृकुटि चढ़ा डसता हुआ कठोर शब्द वालिमुनिके प्रति कहने लगा,—

"अहो! कैसा तेरा तप है? जो अभिमान अभी तक नहीं छोड़ता। मेरा विमान चलतेसे क्यों रोका? क्या तू वीतराग धर्मको धारण करता है या अमृत और विषको एक करना चाहता है? पापी! तू कहां और तेरा वीतराग धर्म कहां! ठहर, अभी तेरे गर्वको चकना चूर किये देता हूं। मैं तुझे सहित इस कैलाश पर्वतको समुद्रमें डाल दूंगा।" इस प्रकार उस निर्दयीने विकराल रूप बनाया। जितनी विद्यायें उसने अभी तक साधी थीं वे चिन्तवन करनेसे ही उसके समीप आयीं। तब रावण विद्याके बलसे पातालमें बैठा। उसका नेत्र प्रचण्ड क्रोधसे लाल और हुंकार शब्दसे मुख वाचाल हो गया। अपनी भुजाओंसे कैलाश पर्वत उठानेका वह उद्योग करने लगा। सिंह,

हस्ति, सर्प, हिरण आदि पशुपक्षी भयंकर शब्द करने लगे। जलके झरने टूट कर भयंकर आवाज होनेसे वृक्षके समूह उखड़ गये। इस प्रकार कैलाश पर्वत चलायमान हुआ।

भगवान् वालि ध्यानमें मग्न थे। कैलाश पर्वतके चलायमान होनेसे कुछ देरके लिये उनका ध्यान भंग हुआ। जब भगवान् वालिने रावणका कर्त्तव्य जाना तो वे जरा भी खेद खिन्न न हुये और मनमें यों विचारा कि यह कैलाश पर्वत अत्यन्त रमणीक है, चक्रवर्त्ती भरतने इस पर जिन-चैत्यालय बनवाये हैं, वे कहीं भंग न हो जावें इस लिये उन्होंने अपने चरणोंका अंगूठा ढीला कर दबा दिया। इस पर रावण भाराक्रान्त हो दब गया, उसके नेत्रों से रक्त झरने लगा, मुकुट टूट गया और माथा पसीनेसे तर-बतर हो गया। उसके पैर, जङ्घायें छिल गयीं और वह रोने लगा। तभीसे वह पृथ्वीतलमें रावण नामसे प्रसिद्ध हुआ। रावणके अत्यन्त दीन शब्द सुन कर राणियां विलाप करने लगीं। पहिले तो सेनापति मंलिभुम युद्ध करनेके लिये तत्पर हुये, किन्तु जब उन्होंने ऋषिराजका प्रताप जाना तब चुप हो गये। देवता कायबल ऋद्धिका अतिशय जान दुंदुभि बाजा बजाने लगे। तब परमदयालु महामुनिने अपना अंगूठा ढीला कर दिया।

रावणने पर्वतके नीचेसे निकल कर योगीश्वरकी बारंबार स्तुति की और हाथ जोड़ उनके चरणोंमें मस्तक नमा क्षमा मांगी। योगीश्वर महाराज स्वयं क्षमाशील थे। वे क्षमाके आगार थे। शत्रु मित्रमें उनकी समानवृत्ति थी, अतएव उस कार्यसे न तो उनको क्षोभ ही हुआ, न हर्ष।

केवली हो भगवान वालिने इस भूतल पर विहार किया। अनेक अज्ञानी जीवोंको सम्बोधन तथा गृहस्थ और मुनि धर्मका यथायथ उपदेश दिया। उनकी शान्ति-मूर्त्ति देख कर सिंहादिक क्रूर जंतुओंने क्रूरता छोड़ दी। दुर्बलको सबल नहीं सताने लगे।

कुछ दिनों बाद शेष चार अघातिया कर्मोंको भी उन्होंने नष्ट कर डाला और आप सिद्धशिला पर जा विराजे।

बालि—१ हुगली जिलेके आरामबाग उपविभागका एक ग्राम। यह अक्षा० २२° ४६´ उ० तथा देशा० ८७° ४६´ पू० द्वारिकेश्वर नदीके किनारे अवस्थित है। जनसंख्या ७१२ है। रेशमी और सूती कपड़ेका यहां अच्छा व्यवसाय होता है। २ भागीरथी तीरवर्ती एक समृद्धिशाली ग्राम। यह अक्षा० २२° ३६´ उ० तथा देशा० ८८° २३´ पू०के मध्य अवस्थित है। यहां इष्ट इण्डिया रैलवेका एक स्टेशन है। इस ग्राममें ब्राह्मणोंकी संख्या अधिक है।

बालि—राजपूतानेके योधपुर राज्यके अन्तर्गत वालि जिलेका सदर। यह अक्षा० २५°१८´ उ० तथा देशा० ७३° १८´ पू०के मध्य अवस्थित है। राजपूताना-मालवा-रैलवेके फालना स्टेशनसे ५ मील दूर पड़ता है। जनसंख्या पांच हजारके करीब है। यहां प्राचीन कालका बना हुआ १ दुर्ग, डाकघर, १ वर्नाक्युलर स्कूल और एक अस्पताल है। यहांकी शिलालिपिसे जाना जाता है, कि १०वीं शताब्दीमें राठोर राजा यहांका शासन करते थे। १८वीं शताब्दीके शेष भागमें यह जोधपुर राजके हाथ लगा।

बालिका (सं० स्त्री०) बाला एव बाला स्वार्थे कन् टाप् अतइत्वं। कन्या, छोटी लड़की। २ पुत्री, बेटी। ३ एला, इलायची। ४ वालुका, बालू। ५ कर्णभूषण, कानमें पहननेकी बाली। ६ अम्बष्ठा। ७ मूसली।

बालिकुमार (सं० पु०) वालि नामक बंदरका लड़का अंगद जो रामचन्द्रजीकी सेवामें था।

बालिखिल्य (सं० पु०) पुलस्त्यकन्या सन्नतिसे उत्पन्न क्रतुके साठ हजार पुत्र या ऋषिविशेष। बालखिल्य देखो।

बालिग (अ० पु०) वह जो बाल्यावस्थाको पार कर चुका हो, जो अपनी पूरी अवस्थाको पहुंच चुका हो। कानूनके अनुसार कुछ बातोंके लिये १८ वर्ष या इससे अधिक अवस्थाका मनुष्य बालिग माना जाता है।

बालिगञ्ज—कलकत्तेके दक्षिण-पूर्वमें अवस्थित एक गण्ड-ग्राम। निर्जनताप्रिय अंगरेजोंका यहां वास होनेके कारण इस स्थानकी मर्यादा दिन पर दिन बढ़ती जा रही है। एतद्भिन्न भारतवर्षके बड़े लाटके शरीररक्षी सेना यहां रहती है। कलकत्ता जाने आनेकी सुविधाके लिये यहां पूर्ववङ्गीय रेलपथका एक स्टेशन है।

बालिघाटियम—मन्द्राज प्रदेशके विशाखपत्तन जिलान्तर्गत एक प्राचीन ग्राम। यह अक्षा० १७° ३६´ उ० तथा देशा०

८२° ३८' ३०" पू०के मध्य अवस्थित है। ब्रह्मेश्वरूदु नामक विख्यात शिवालय प्रतिष्ठित रहनेके कारण दूर दूर देशके लोग देवदर्शन करनेको आते हैं। जिस पर्वत पर यह मन्दिर स्थापित है वहांसे वराह नदी निकली है। इस नदीके उत्तर-वाहिनी होनेके कारण लोग इसका तीर्थ-माहात्म्य गाते हैं। इस नदीके किनारे एक गर्त्तमें भस्म के जैसा पदार्थ देखा जाता है। देवमन्दिरके पुरोहित उस भस्म राशिको वालिचक्रवर्त्ती नामक किसी व्यक्ति-कृत यज्ञका होमावशेष वतलाते हैं। यहांकी देवमूर्त्ति पश्चिममुखी है।

वालिद्वीप—भारत महासागरके अन्तर्गत एक छोटा-सा द्वोप। "वलि" अर्थात् वीर मनुष्य उस द्वीपमें रहते थे इसलिये 'वालिद्वीप' नाम पड़ा। अब तो वालि नामसे ही प्रसिद्ध है। किसी समय यहां ब्राह्मण और बौद्धधर्म-का प्रभाव वढ़ रहा था, ऐसा सभी स्वीकार करते हैं। नीचे इस द्वीपका विस्तृत इतिहास वर्णन किया जाता है।

यह छोटा सा द्वीप यवद्वीपसे पूर्व १॥ मील दूर अक्षा० ८° से ९° दक्षिण तथा देशा० ११४° २६' से १५०° ४०' पू०के मध्य अवस्थित है। दोनोंके वीचमें एक नाली वह गई है जिससे दोनोंमें व्यवधान पड़ जाता है। वालिद्वीप-कोयवद्वीपका हिस्सा वहुत लोग मानते हैं। पाश्चात्य भौगोलिकोंने इस स्थानका "वालि या छोटा यव" (Little Java) नामसे उल्लेख किया है। पूर्व और पश्चिममें यह ७० मील लम्वा तथा ३५ मील चौड़ा है। भूपरिमाण १६८५ भौगोलिक वर्गमील है।

इस टापूमें ज्यादातर पहाड़ है। वे कहीं चार हजार-से १० हजार फुट तक ऊंचे हैं। इसकी ऊंचाईमें कहीं कहीं जिनमें आग जला करती हैं ऐसी चोटियां हैं। गुनङ्ग अनङ्ग नामकी चोटी समुद्रकी तराईसे १२३७९ फुट ऊंची हैं। इन पहाड़ोंकी वेतूर नामकी चोटीसे (६१६८) हमेशा गीली धातुएं निकला करती हैं। १८०४ और १८१५ ई०में और दो दूसरी चोटियोंसे अग्नि निकलती हुई देखी गई थीं। यहांकी छोटी छोटी नदियोंमें जितनी दूर तक ज्वार भांटा आया करता है वस उतनी दूर तक ही देशी नाव इनमें चल सकती हैं। इनके सिवाय पहाड़के ऊपर वहुतसे तालाव और तलैया देखी जाती हैं। अत्यन्त गहरे तालावोंके जलसे यहांकी खेती खूब हरीभरी रहती है। धान, भुट्टा, कलाई, नारंगी और तरह तरहका चावल पैदा होता है।

यहांके वासिन्दोंकी देहकी वनावट यव और मलय-द्वीपके रहनेवालोंसे मिलती जुलती है। लेकिन पहनावा-में वहुत गहरा भेद पाया जाता है। चीन और शिलेविस-द्वीपके भद्र लोगोंके साथ ये वाणिज्य व्यवसाय करते हैं। सूती कपड़े, रूई, नारियल-तेल, पक्षियोंके घोंसले और चर्म आदि चीजोंके वदलेमें वालिद्वीपवासी उक्त वनियों-से अफीम, सुपारी, हाथीके दांत, सोना, चांदी मोल लेते हैं। पहले इस द्वीपमें दास-विक्रयकी प्रथा प्रचलित थी। कैदी, वैरी, ऋणी और चोरोंको वे लोग चीनोंके हाथ वेच देते थे।

समग्र वालिद्वीपके एकमात्र अधीश्वर वालि और लम्वककोंके सम्राट् कहे जाते हैं। ये क्लोङ्ग कोङ्गसिओ-साचोपेनन' नामसे मशहूर हैं। इस द्वीपसाम्राज्यमें आठ छोटे छोटे सामन्तोंके राज्य हैं। प्रत्येक भागमें एक एक राजा राज्य करनेको नियुक्त हैं। ये करीव आठ लाख आदमियों पर हुकूमत करते हैं। यहांके वासिन्दे यव-द्वीपकी अपेक्षा ज्यादा उन्नत हैं। सभ्यता और शास्त्रज्ञानमें उन्होंने दूसरे द्वीपोंसे अधिक श्रेष्ठता प्राप्त की है। किसी समय भी ये यवद्वीपके ओलंदाजोंके साथ शत्रुता करने वाज नहीं हुये। १८४९ ई०में ओलंदाजों और क्लोङ्ग-काङ्गोके राजाके वीच जो सुलह हुई उससे वालिराज उनके मित्र जरूर हुए पर उन्होंने ओलंदाजोंकी वश्यता स्वीकार नहीं की।

इतिहास।

वालिद्वीपका पुराना इतिहास नहीं मिलता है। लोगोंका विश्वास है, कि यहां पहिले राक्षस रहा करते थे। कुछ दिनोंके वाद 'मजपहित'से कुछ हिन्दुओंने आ कर यहां उपनिवेश वसाया। उन्हींके द्वारा वासुकी (नागराज वासुकी)के मंदिरसे यहांके हिंदू प्राधान्य-साम्राज्यका समय कल्पित किया जा सकता है। उशन-वालि नामके ग्रन्थमें लिखे हुये मय-राक्षस और उसके अनुचरोंके पराभव तथा देवताओंका आधिपत्य विस्तार-

सूचक उपाख्यानोंसे वहुतेरे स्वीकार करते हैं, कि इस द्वीप-में पहिले हिंदूधर्म फैला हुआ था।

उशन-यव नामके ग्रन्थसे जाना जाता है, कि मज-पहित-राज अगुङ्ग समुद्र पार कर वलिके शासनकर्त्ता को दमन करनेके लिये आये थे। वालिराजके हारनेके वाद मजपहित-राजके सदस्योंने वहां पर रहनेका अधि-कार पाया। कुछ दिनोंके वाद मुसलमानोंके अभ्युदयसे मजपहित (विल्वतिक्त) राजधानीका जव पतन हुआ तव उक्त राजवंशधरोंने भी वालिद्वीपमें आ कर आश्रय ग्रहण किया।

यव और वालिद्वीपके दोनों उशन ग्रंथमें इसी विषय-को स्पष्ट करनेवाली एक छोटी-सी पौराणिक आख्यायिका देखी जाती है। किसी समय मयराक्षस-वंशके प्रज-दानव नामक वालिके राक्षसराजने राज्यमें उपद्रव करना शुरू कर दिया था। इस पर 'मजपहितराज'ने आर्यडामर और पतिं गजमद् नामके दो सेनापतियोंके साथ आ कर उस राक्षसको पराजित किया था। उन्होंने 'गेलगेल' नामके स्थानमें राजधानी वसाई और वहीं राज्य करने लगे। उपाख्यानके मूलमें चाहे कुछ भी क्यों न हों, किन्तु वालिवासी सभी यह स्वीकार करते हैं, कि आर्यडामरने वालीको परास्त किया था और मजह-पहित राज्यके ध्वंसके वाद वहांके राज्यवंशधरोंने वालिद्वीपमें आ कर निवास किया था।

वालिद्वीपके 'गेलगेल' नगरमें देव अंगुङ्गने राज्य स्थापन कर सम्पूर्ण वालिराज्यको अपनी सेना और मंत्रियोंमें वांट दिया। आर्य डामरने प्रधान पति (सचिव) पद पर नियुक्त हो तवनान् प्रदेश पाया था। राजा देव अगुङ्ग आर्य डामरके विना परामर्श लिये कोई भी कार्य नहीं करते थे। पश्चात् डामर "आर्यकेञ्चेङ्ग" नामकी पदवीको धारण कर राजप्रतिनिधि हो राज्यकी देखरेख करने लगे।

आयडामरके भाई आर्य सेंटो, आर्य वेवेतेङ्ग, आर्य वरिङ्गीन, आर्य व्लोग, आर्य कगकिसन, आर्य विष्णु-लूकु आदिने भी राज्यानुग्रहसे कुछ प्रदेश पाये थे। इसके सिवा आर्य मंजूरी दवु नामके स्थानमें, तनकुवेर, तनकवुर (कुमार) तन मन्दर तीन प्रभावशाली वैश्योंने भी भिन्न भिन्न स्थानोंमें राजशासन प्राप्त किया था। पतिगजमद् भी मेंगुइ विभागके शासनकर्त्ता हुए थे।

इस प्रकार अनेक व्यक्तियोंपर वालिका राज्य अवल-म्वित था। १६३३ ई०में ओलंदाज राजदूतके वर्णनसे जाना जाता है, कि देव-अगुङ्गई समस्त वालिद्वीपके अधि-पति थे। दूसरे समस्त सामन्त उनकी अधीनता स्वीकार करते थे। पश्चात् 'गेलगेल' राजधानीके ध्वंसके वाद क्लोङ्ग कोङ्ग, वङ्गलि, गियान्यर और वोलेलेङ्ग प्रदेश देवअगुङ्ग-राजपरिवारके अधिकारमें रहे। पूर्वोक्त राजा जातिके क्षत्रिय थे। कुछ समयके वाद जव वैश्य जाति का प्रभाव वढ़ा तव वे निष्प्रभ हो गये।

सामन्तोंके वगावत करनेसे वालिद्वीपमें वहुत उथल-पुथल मची। मेङ्गुईराजकी प्रभाववृद्धिके साथ साथ करङ्ग-असेम आदि राज्यकी जय, डामर-राजवंशका वदेङ्ग पर आक्रमण और उन्हींकी गोष्ठीका वोनानमें स्वाधीन हो कर राज्यस्थापन करना आदि वहुत-सी भीतरी उलट पुलट हो गयी। इनके सिवाय क्लोङ्गकोङ्ग और करङ्ग असेम राज्यमें आपसी विद्वेषभावकी आग और भी धधक उठी। गेलगेलके राजदरवारमें रहते समय गजमद्-वंशीय किसी राजपुत्रकी देवअगुङ्गकी आज्ञासे हत्या की गयी। उस हत्याका वदला लेनेके लिये मेङ्गुई और करेङ्ग-असेम-वासियोंने उनके ऊपर क्रुद्ध हो तलवार उठाई। देवअगुङ्ग इस युद्धमें वुरी तरह हारे और उनका गेल-गेलमें सिंहासन नष्ट भ्रष्ट कर दिया गया। देवअगुङ्गका करङ्गअसेम-राजकन्याके साथ जव विवाह हो गया तव दोनों पक्षोंका झगड़ा निवट गया। इस रानीने वीरो-चित भावसे दोनों राज्योंका शासन किया। इसी समयसे देवअगुङ्ग वंशके राजाओंकी प्रभुताका ह्रास हुआ। यद्यपि यह वंश हार गया था तो भी विजेता-राज्योंमें यहां पूर्ववत् सम्मान पाता था। पर करङ्ग-असेम आदि राजा उनको कर नहीं देते थे। यह अवश्य था, कि वे उन्हें सर्वप्रधान राजा मानते थे। पश्चात् करेङ्गअसेम राजाओंने वोलेलेङ्ग और लम्वकको जीत कर अपना प्रभाव फैलाया था। दक्षिणमें तवनानके गोष्ठी-राजाओंने पश्चिम वेदाङ्ग और पूर्वका कुछ भाग भी अपना लिया। फिर देवअगुङ्ग वंशीय देवमङ्गीश नामके किसी 'पुङ्गकन्'ने गियान्यरको लूट कर वहां पर अपना

स्वतंत्र राज्य स्थापित किया। इस समय हम स्पष्ट-रीतिसे देखते हैं, कि क्लोङ्गकोङ्गकी प्राचीन क्षत्रिय जातिके सिवाय और सब ही पतित वा नीच जातिमें सम्मिलित हो गये थे। नीचे आठ सामन्त राज्योंका संक्षिप्त इतिहास दिया जाता है।

१ क्लोङ्गकोङ्ग—देव अगुङ्गवंशके द्वारा चलाया गया। इनके अधिकारमें प्रायः छः हज़ार मनुष्य रहते हैं। करङ्गअसेम और वोलेलेङ्ग सामन्त इनके साथ एक मत हो कर कार्य करते हैं। ये शूद्राणीसे पैदा हुए हैं। इनकी सौतेली मा करङ्गअसेम राजकन्याके गर्भसे एक कन्या जन्मी थी। राणियोंमें कोई भी पुत्रवती न थी, अतएव ये शूद्राणी (ज्येष्ठ) पुत्र ही राज्यपद पर अधिष्ठित हुये।

२ गियान्यर—१८४१ ई०में देवमङ्गोशकी मृत्युके बाद उनके पुत्र देवपहान राजा हुए। यद्यपि ये क्षत्रिय-वंशमें उत्पन्न हुये थे, तो भी उन्होंने शूद्र तथा पुङ्गकनकी पदवी प्राप्त की थी। इनके प्रपितामह ही इस वंशके स्थापनकर्त्ता थे। पहिले देवअगुङ्गके पूर्व पुरुषोंके अधीन वे उसी प्रदेश पर दो सौ सेनाके नायक थे। छलबलसे अपने स्वामीको उन्होंने अपने हाथमें कर लिया और मेङ्गुई राज्यके अन्तर्गत क्रमशः देश पर अपना अधिकार जमाया। ओलंदाजोंने जब वोलेलेङ्ग पर आक्रमण किया तब गियान्यरके पति देव-अगुङ्गकी आज्ञासे वे दलबलके साथ आगे बढ़े। वेदाङ्ग-राजाके साथ इनकी मित्रता विश्वासयोग्य नहीं थी। इस कारण वेदाङ्ग-सीमान्तमें राजा काशीमनने एक वास-स्थान बनवाया।

३ बंगली—देवजदे पुटङ्ग बाद १८७८ ई०में यहां राजा हुये थे। ये लोग भी अपनेको देवअगुङ्गके वंशज बतलाते हैं; किन्तु अगुङ्ग वंशकी अपेक्षा ये मर्यादामें हीन हैं। ये देव अगुङ्गकी अधीनतामें नहीं हैं। वदोङ्ग और तव-नानके सामन्तराजाओंके साथ इनको खूब प्रेम है। यहांके निवासी साहसी और वीर होते हैं। वङ्गली राजा एक समय देव अगुङ्गके सेनापति थे। १८४९ ई०में ओलंदाजोंके समय इन्होंने ओलंदाजगवर्मेण्टकी सहायता की थी। इस प्रत्युपकारके पुरस्कारस्वरूप इन्हें वोलेलेङ्ग प्रदेश मिला। ये बन्दूकोंसे युद्ध करते थे।

४ मेंगुई—पतिगजमद इस प्रदेशके अधिकारी नियुक्त हुये थे। इनके कोई पुत्र न था। वर्त्तमान राजा गण आयडामरकी प्रपौत्री कियशनके वंशधर हैं। इन्होंने किसी समय करङ्ग-असेम, वोलेलेङ्ग, लम्बक और वदोङ्ग आदि राज्योंमें भी अपना अधिकार फैलाया था। लम्बक, वोलेलेङ्ग और करङ्ग-असेम राजवंशके साथ मेंगुई-राजवंशका घनिष्ट संबन्ध है। १८७८ ई०में अनक-अगुङ्ग कटुट्-अगुङ्ग यहां राज्य करते थे।

५ करंग-असेम—यहांके अधिपति अपनेको गज-मदके वंशधर बतलाते हैं। किन्तु करंग राजपुत्रके साथ मेंगुई-राज कन्याका विवाह भी चलता है। पहले कहा जा चुका है, कि आर्य मंजूरी यहांके द्वत्प्रदेशके राज थे। मेंगुई राजाने करङ्ग-असेम जीता था और वोलेलेङ्ग अधिकारके बाद क्लोङ्गकोङ्ग वोलेलेङ्ग प्रदेश उनके हाथसे जाता रहा था। १८७८ ई०में नग्र राजदे यहां राज्य करते थे। युद्धमें इसी वंशने विजय पायी थी। इन्होंने गेलगेलका ध्वंस और लम्बक तथा सेम्बेवा पर आक्रमण किया था। करङ्ग और लम्बक-राजाओंकी आपसकी फूटने बहुत नुकसान किया। इसी बीचमें मतरमराजने आ कर दोनोंको परास्त किया। इस राजपरिवारकी कुल-ललना और बालिकायें सम्मानकी रक्षाके लिये अग्निमें प्रवेश करती हैं। ये स्त्रियां आपसमें दूसरोंको अनिष्ट करनेके लिये अपने प्राणों तककी आहुति देती हैं। बस यही वालिद्वीपवासियोंका 'वेला' उत्सव है। लम्बकके करङ्ग असेम-राजाओंकी अवनतिके बाद करंग-असेम-वालि-वोलेलेङ्ग और देवअगुंग वंशके राजा स्वाधीन हो कर राज्य करते रहे। करंग-असेमका राज्य पर्वतमय है। यहां पर धान्यकी खेती नहीं होती। यहांके रहनेवाले लकड़ीको बेच कर अपना निर्वाह करते हैं। लम्बक राजाका नग्र र कटुट् करङ्ग-असेम नाम है। 'सेलापरङ्ग' इनकी उपाधि है।

६ वोलेलेंग—यहांके राजा नेग्र र मदे करङ्ग असेम कहे जाते हैं। यहांके अधीश्वर गजमदवंशीय हैं। यहां पहिले देवअगुङ्गवंशके क्षत्रियोंने सात पीढ़ी तक राज्य किया था। उनके बाद वैश्यवंशीय राजाओंका प्रभाव बढ़ा। आर्य वेलेतेङ्ग-वंशीय नग्र र पंङ्गि इसी वंशके एक राजा थे।

पश्चात् करङ्ग असेमके राजाओंने इस प्रदेश पर अधिकार जमाया। किन्तु राजपुत्रोंके आपसी वैमनस्यके कारण राज्यमें बहुत हुल्लड़ मचा। अन्तमें जब करेङ्ग असेम, वोलेलेङ्ग प्रदेश दो राजकुमारोंको दे दिये गये तो उनका विवाद मिट गया। वर्त्तमान राजभ्राता गोष्ठी जेलन्देंग यहांके सर्वेसर्वा हैं।

७ तवानान्—ये राजवंशवाले अपनेको आर्यडामरकी संतान बतलाते हैं। राजाकी उपाधि रट्टू नग्रूर अगुङ्ग है। वास्तवमें ये किसीके साथ झगड़ेमें नहीं फंसते थे। मेंगुइ-राजके विरुद्ध युद्ध करने पर मार्गप्रदेश इनाममें इनको मिला। तवानन्के कोई 'पुङ्गव' मार्गके शासनकर्त्ता थे। ये वैश्य नहीं थे। वालिद्वीपमें इन शूद्रराजाओंको छोड़ और कोई भी शूद्र राजा नहीं हुए। इनके पुरखे पहले ताड़ी बेचते थे। मेंगुइ राजाकी दयासे ये "पुङ्गव" हो गये थे। मेंगुइ राजाके बाद यह स्थान तवानान राज्यमें आ गया। ये अपने पदकी रक्षा करनेमें समर्थ हुए थे।

८ वदोंग—(वन्दनपुर) पहिले यह प्रदेश मेंगुइ और आर्य वेलेतेङ्गके पिनतिःराज्यमें शामिल था। तवानान्राजगोष्ठीके किसी सर्दारने इस राज्यको स्थापन किया था। ये 'नग्रूर वोला, वा अनक अगुङ्ग रिङ्गवुयाहन भूमितवानान नामसे प्रसिद्ध थे। इस वंशके नग्रूर अदे पम्बुत्तने, मदे नग्रूर देन-पस्सर और नग्रूर अदे काशीमनने प्रदेशोंमें रह प्रवल पराक्रमसे अपने राज्यकी मर्यादा बढ़ायी थी। इनके परिश्रमसे पिनतिः गियान्यरसे तजङ्ग, गुनङ्गरद्, सनोर, तमन, इङ्गरन, सुंग, तोरंगनद्वीप, थ्रोवोकन, लोगियान, कुट्ट, तुवन, जेम्बरन और वालिद्वीपका दक्षिण भाग ये सब प्रदेश इस राज्यमें थे। उक्त नग्रूर वोलासे १०वीं पीढ़ीमें राजा काशीमनने इस प्रदेशका कर्तृत्व लाभ किया था। काशीमनके प्रपितामहसे ही इस राज्यका इतिहास पाया जाता है। ये ही सबसे पहिले तवानान् राज्यसे 'पकेन वदोंग' नामके वाणिज्यक्षेत्रमें जा बसे थे।

नग्रूर वोलाका पुत्र वा पौत्र अनक अगुंग कटुट मण्डेशने बुयाहनहसे गुनुंग वेटुर नामके आग्नेय-पर्वत पर जा कर देवीदनु या गंगाकी उपासना की थी। पश्चात् उन्होंने वदोंगके मकेल तिगि लोगोंकी सहायता पा बहुतोंको अपने दलमें मिलाया और अपने आपको मेंगुइके 'पुङ्गव' नामसे प्रसिद्ध किया। उनके तीन पुत्र गोष्ठी वयहनतगे, गोष्ठीन्योमन तगे और गोष्ठी कोटुट कदि नामके थे। इनमें द्वितीय पुत्र न्योमनने ही इस वंशके प्रभावको फैलाया और अपने वंशधरोंके लिये राज्यका सिंहासन सदाके लिये स्थापित किया। ये साहसी, चतुर और योद्धा थे। इन्होंने स्वयं प्रमिवंशीया स्त्रीके साथ विवाह किया था। उनकी एक सालीका विवाह क्रोङ्ग् कोङ्गके साथ हुआ था। यह स्त्री अपने पतिके साथ सती हुई थी। इनकी और दूसरी बहनोंका विवाह मेंगुइकी गोष्ठी अंगुके साथ किया गया था। इस प्रकार प्रतापशाली आत्मीय कुटुम्ब से व्याप्त हो द्वितीय न्योमन अपनी क्षमता फैलानेके लिये प्रयास करने लगे। कब उन्होंने मेंगुइ-राजको हराया इस विषयका अभी निश्चय नहीं हुआ है, तो भी उनके पुत्र और पौत्र उक्त राज्यके पुङ्गव थे इस बातका अनुमान किया जा सकता है। उनके बाद गोष्ठी नग्रूर जम्बेमिहिकने राज्य किया। इनके दो पुत्र थे। पहलेका नाम था अनक अगुङ्ग जदे गलोगोर और दूसरेका अनक अगुङ्ग त'ल रिङ्ग वतु क्रोटोक तगेल। उन्होंने गालागोरमें राज्य स्थापन किया। क्रोटोकके राजवंशधर पम्बुत्तन और देन-अपस्सरके पुङ्गव नामसे प्रसिद्ध हुये थे। क्रोटोकी पम्बुत्तन राजधानी किसी समय बलमें जरूर कमजोर थी। किन्तु उसके राजाओंने अन्तिम वदोङ्ग राज्यको एक छत्राधीन कर लिया था। क्रोटोकके पुत्र 'पुत्र' नामसे मशहूर थे। उनके ज्येष्ठ पुत्र अनक अगुङ्ग पम्बुत्तन वा नग्रूरके प्रभावसे पम्बुत्तन राज्य बहुत विस्तृत हो गया था। उन्होंने निकटवर्ती दूसरे राजाओंको पराजित कर स्वयं वदोङ्ग पर स्वाधीन राज्य स्थापित किया। उनके पांच सौ विवाहिता स्त्रियां थीं। उनमें यह पाटराणीका पद कितनी ही उच्च वंशीय राणियोंको मिला था।

उक्त नग्रूर-शक्तिके पुत्र नग्रूर जादे पम्बुत्तन राजवंशके प्रतिष्ठाता थे। इन्हींका केवल राज्याभिषेक होता है। द्वितीय नग्रूर मयुन और तृतीय वालेरन-देनपस्सर राजवंशके अधिष्ठाता थे। कलेरनके पुत्र नग्रूर मदे पम्बु-

सन नेमयुन-राजकन्याके साथ पाणिग्रहण किया था। इस विवाह-सूत्रमें आवद्ध हो दोनों राजवंशोंने काशीमन नामकी राजधानी वसाई थी। किन्तु इससे भी वे संतुष्ट न हुये। उन्होंने पकेन वदोङ्ग प्रदेशमें जम्वेराज पर आक्रमण कर उनको परास्त किया। वाद इसके उन्होंने देनपस्सरमें राजधानी स्थापित की और वहाँ पर अपना दरवार ले गये। काशीमनमें उनके दूसरे पुत्र राज्य करते थे। वे युद्ध हीमें सदा फँसे रहे, अतएव अपनी राज्य सीमा वढ़ा न सके।

देन पस्सर राजके तीन पुत्र थे। नग्र र मदे पञ्चुत्तन और नग्र र जम्वे देनपस्सर हीमें थे तथा द्वितीय नग्र र काशीमन काशीमन् प्रदेश पर राज्य करते थे। देनपस्सर-राजा लोग 'देवतादि क्षत्रिय' इस उपाधिसे भूषित होते थे। ये जव गियान्यर और तवानानके सामान्तोंके साथ मिल गये तो इन्होंने मार्ग, मंगुइ आदि राजाओंको अपना सामन्त वनाया। इस प्रकार दक्षिणस्थ चार सामन्त राज्यने एकत्र हो १८२६ ई० तक करङ्ग असेम और वोल-लेङ्ग राज्यके साथ विपक्षता की थी।

नग्र मदे पञ्चुत्तनके वाद देनपस्सर-राजवंशमें राजा काशीमन ही सवसे ज्यादा प्रतिभाशाली तथा पराक्रमी थे। उन्होंने अपनी भुजाओंके पराक्रमसे देनपस्सर और काशीमनमें एकछत्र राज्य किया था। उन्होंने नग्र रमदे पञ्चुत्तनके पुत्र नग्र रजदे ओकाको देनपस्सरके सिंहासनसे हटा कर तथा निर्वासित कर स्वयं राजदण्ड धारण किया था। जदेओका वदला लेनेके लिये वन वन घूमने लगे और मेंगुई आदि देशवासियोंको अपने पक्षमें करनेके लिये कोशिश करने लगे। अन्तमें इन्होंने वहुत वड़ी सेनाके साथ काशीमनकी इकलौती लड़कीको हर कर उसके साथ विवाह कर लिया। इस विवाहसे सव झगड़ा टंटा मिट गया सही, पर वृद्ध काशीमनने देनपस्सरमें अपनी प्रभुता अक्षुण्ण रखनेके लिये खूव प्रयास किया था।

पञ्चुत्तन नग्र र जदे देवतादि-उकिरणके वंशमें उनके पुत्र देवतादि और उनके वाद देवतादि-गदोङ्ग राज्य पर अभिषिक्त हुये। इन्होंने काशीमनके पिता और भाइयोंके विरुद्ध वहुत युद्ध किये थे। उनके भाई अनकअगुङ्ग-लनङ्गने राजसेना ले कर जेमव्रना प्रदेश पर आक्रमण किया और उसको जीता था। जदेराजवंशमें कोई सन्तान न थी, अतएव १८३० ई०में वे राजसिंहासन पर वैठे। उनकी 'गुंडिक' पत्नीके गर्भसे दो पुत्र थे। ये पिताके जीवितकालमें 'पराकन' (राजपरिचारक) नामसे पुकारे जाते थे।

ये दो राजपुत्र नीचवंशमें उत्पन्न हुये थे, अतएव उनका राजा होना किसीने भी स्वीकार न किया। इसी वीच देनपस्सरमें काशीमनराज अपने प्रभावको भी रखना चाहते थे। देन-पस्सर और दूसरे भाई भी नीचवंशसे पैदा हुये थे, इसी कारण अनेक पुङ्गवन उनकी अधीनता स्वीकार न की। किन्तु काशीमनके अभ्युदय होने पर पञ्चुत्तन-राजवंशमें उनका पूर्ण प्रभाव पड़ गया। वदोङ्गराजके देनपस्सर और पञ्चुत्तन-राजवंशके वे ही मुख्य अभिभावक समझे जाते थे। वर्त्तमान पञ्चुत्तन-राजका अभिषेक नहीं होता; किन्तु वे पिताकी मृतदेहके जलनेके वाद सम्पूर्ण विधि करनेके अधिकारी हैं। किन्तु देनपस्सरके राजा अव भी पितृदेहको जला नहीं सकते। वे समस्त आत्मीय मृतदेहको प्रासादमें रखते हैं। मृतकी अवस्था और मर्यादाके अनुसार उसकी अन्त्येष्टि क्रिया भी होती है। वालिद्वीपकी प्रधान पुङ्गवगणकी वंशावली नीचे उद्धृत की जाती है।

जदे पञ्चुत्तन देवतादि आकिरण नग्र रमयून नः कलेरण

नः पूट्ट (कन्या)—न मदे पञ्चुत्तन देवतादि-ओकीरण देनपस्सर (राजवंश)

नः जदे देवतादि मुञ्चुक अनक अगुङ्गलनङ्ग

नः जदे, देवतादि गदोंग — अनक अगुंग लनंग

चारकन्या
सगुङ्ग आदि, सगुङ्ग मदे, सगुंग ओक, सगुंग रक — नः जदेपञ्चु — नः मदे पञ्चु

नः पुट्ट

देन पस्सर-राजवंश।

नग्र र कलेरन

नः मदे पञ्चु० अनक अगुंगरहि गोष्ठी अलितपञ्चु गोष्ठीन कटुट्

इन्होंने नः पुंटुको (कलेरण कराण (कङ्गिमन राज-विवाहा था) और कूट्टके राजा) वंशके प्रतिष्ठता

देन पस्सरके पुङ्गव

नः मदे पञ्चु देवतादि क्षत्रिय — नः काशीमन् (वदोङ्गके शासनकर्त्ता इन्होंने अगुंग रकको विवाहा था) — न जम्बे — अनक अगुंग अलिट जदे

नः जदे पुत — नः जदे ओक — मदे नग्र र कटुट नः — नः कटूट

वर्ण वा जाति-विभाग।

वालिद्वीपके रहनेवाले ज्यादा हिंदू और कहीं कहीं वौद्ध भी हैं। यहां चारों वर्ण रहते हैं।—ब्राह्मण, सत्रिय (क्षत्रिय), वेश्य (वैश्य) और शूद्र इन चार वर्ण वा जाति-का छोड़ और कोई भी तरहके मनुष्य यहां पर नहीं रहते हैं।

ब्राह्मणोंकी 'इदा', क्षत्रियोंकी 'देव' और वैश्योंकी 'गुष्ठि' (गौष्ठी) पदवी है। शूद्रकी कोई भी पदवी अथवा सम्मानसूचक शब्द नहीं है। इसलिये विदेशी वा साधा-रण जाति 'कंडुल' वा दास कह कर प्रसिद्ध हैं।

भारतवर्षमें चार वर्णोंको छोड़ और भी अनेक मिश्र जातियोंका निवास है; किन्तु वालिके हिंदुओंमें वैसी मिश्र वा सङ्कर जाति नहीं पायी जाती। जैसे भारतमें अनु-लोम और प्रतिलोम सङ्कर जातिकी उत्पत्ति हुई है वैसे वालिद्वीपमें उनकी उत्पत्ति नहीं है।

भारतमें तीन जातियां द्विज कही जाती हैं। उनका यथाकालमें यज्ञोपवीत संस्कार भी होता है। ये जातियां अपनी अपनी जातिमें ही विवाहादि-सम्बन्ध करती हैं। इन तीन वर्णोंमें उच्चवर्णका कोई मनुष्य यदि अपनेसे नीचवर्णकी कन्याके साथ विवाह करे, तो उस कन्याके गर्भसे पैदा हुई संतान पितृजातिको प्राप्त करनेके अधि-कारी होती है। क्षत्रिय और वैश्योंमें ऐसे विवाह वहुत प्रचलित हैं। ऐसी वहुत-सी शूद्र जातिकी स्त्रियां धनियोंके घरमें दासी या भोग्या कह कर रक्खी जाती हैं और उनकी सन्तान शूद्र समझी जाती हैं। किन्तु जब इनका विवाह-सम्बन्ध होने लगता है, तो उन-की पितृजातिकी ही गिनती है। ये शूद्र-स्त्रीसे उत्पन्न सन्तान उच्चवर्णकी स्त्रीसे पैदा हुई सन्तानोंसे नीचा अवश्य गिनी जाती हैं। यदि कोई ब्राह्मण शूद्रसे विवाह कर ले तो उसको प्रायश्चित्त करना होगा और स्त्रीको संस्कार द्वारा शुद्ध कर घरमें ले जाना होगा। उस स्त्रीके साथ उसके पिताके कुलका कोई सम्बन्ध नहीं रहता। प्रतिलोम-विवाह विलकुल ही वर्जनीय है। यदि ऐसा कोई सम्बन्ध करे, तो उसको निर्वासन अथवा प्राणदण्ड भोगना पड़ेगा। कोई ब्राह्मणवंश दो तीन पीढ़ी तक शूद्रोंके साथ विवाहादि किया करे, तो वह भी शूद्र जातिमें गिना जायगा। यदि कोई ब्राह्मण हीन कर्म अथवा अपने धर्मका त्याग कर दे, तो उसे शूद्र जातिमें ही शुमार किया जायगा।

ब्राह्मण।

वालिद्वीपके ब्राह्मण भगवान् द्विजेन्द्र वहु रवु (नवा-हुत) पदण्डके वंशधर कहे जाते हैं। यवद्वीपके केदिरि नामक स्थानमें इस ब्राह्मणका वासस्थान था। उनके वंशधर वहांसे मजपहित चले गये, फिर मजहपहितसे वालिद्वीपमें आ कर वास करने लगे।

बहुतों का विश्वास है, कि पहिले ये ब्राह्मण भारतसे यवद्वीप गये थे। भगवान् द्विजेन्द्र उनमें श्रेष्ठ अथवा नेता थे। द्विजेन्द्रके बहुत सी स्त्रियां थीं। उनमेंसे पांच स्त्रियों के गर्भसे उत्पन्न सन्तान पांच विभागोंमें बट कर वालिद्वीपमें वास करने लगी। इन पांच शाखाओं के नाम—१ कमेनु, २ गेलगेल, ३ नुआंवा, ४ मांस और ५ कायशून्य।

गियांन्यरप्रदेशके कमेनु नामक स्थानमें जिनका वास है वे लोग कमेनु-ब्राह्मण हैं। ये ब्राह्मण-स्त्रियोंसे पैदा हुए हैं। गेलगेल नामक स्थानमें जिन ब्राह्मणों का वास था वे गेलगेल ब्राह्मण कहे जाने लगे। वे द्विजेन्द्रकी क्षत्रियपत्नियों से उत्पन्न हुये थे। द्विजेन्द्रके औरस और क्षत्रिय-बाल विधवासे नुआंवा-ब्राह्मणों की उत्पत्ति है। इसी तरह वैश्य कन्यासे मासब्राह्मणों की और शूद्र स्त्रीसे कायशून्य नामके ब्राह्मण पैदा हुये हैं।

जहां क्षत्रियोंका राज्य है वहां गेलगेल ब्राह्मणों की प्रधानता और जहां वैश्यों की प्रधानता है वहां मांस-ब्राह्मण सचराचर दान पूजा किया करते हैं। भिन्न वर्णकी संतानके सम्मानमें जरूर फर्क है। किन्तु उस विषयमें जनताका कुछ भी ध्यान नहीं है। इन पांच श्रेणीमें जो सच्चरित्र, साधुप्रकृति, धर्मशील, विद्वान्, शास्त्रज्ञ हैं वे पूज्य और प्रधान गिने जाते हैं।

वालिद्वीपमें ब्राह्मणोंकी ही संख्या ज्यादा है। सभी ब्राह्मण राजा और क्षत्रियोंके अधीन हैं। क्या तो युद्ध क्या दूत-कार्य सब समयमें ब्राह्मणोंको राजाकी आज्ञा माननी पड़ती है। राजाकी आज्ञा उलङ्घन करनेसे ब्राह्मणों को भी देशसे निकाल दिया जाता है। तौ भी ब्राह्मण राजाओं की अपेक्षा उच्चपदस्थ और सम्मानित हैं। वे राजकन्याके साथ विवाह कर सकते हैं, किन्तु राजा ब्राह्मण-कन्याका विवाह अपने साथ नहीं कर सकते।

वालिद्वीपमें ब्राह्मणोंकी ज्यादा संख्या है इसी लिये और जातियों का उतना प्रभाव नहीं है। बहुत-सी जातियां उसी कारणसे दरिद्र हीन हो गयी हैं और आजीविकाके लिये अपने हाथसे कृषिकर्म करती हैं। यहां तक कि मछली पकड़ने और शारीरिक परिश्रम द्वारा धन कमानेमें वे कुछ भी कसर नहीं रखते।

ब्राह्मणों में जो सम्पूर्ण शास्त्रों का रहस्य जानते हैं और समस्त ब्राह्मणोचित कार्यों में पारदर्शिता प्राप्त करते हैं वे गुरुके द्वारा दण्ड पा कर 'पण्डितदण्ड' या 'पदण्ड' उपाधि पाते हैं। गुरुके चरणों में अपने मस्तकको रख अविरत गुरुके पादोदकका पान, हर तरहसे गुरुकी आज्ञा-तत्पर रहने आदि कठोर कार्य में उत्तीर्ण होने पर भी इस उपाधिकी प्राप्ति होती है। जो ब्राह्मण-छात्र गुरु-गृहमें वास कर इस उपाधिको प्राप्त करनेकी कोशिश करते हैं राजा उनको यथेष्ट उत्साह दान आदिसे संतुष्ट करते रहते हैं।

"पदण्ड" उपाधिके पानेवाले ही राजाके दण्डाधिकारी और धर्माधिकारी होते हैं। वे समस्त अधर्म-चारियों को दण्ड देते हैं। इन्हीं पदण्डों में कोई पुरोहित होते हैं। इदा या साधारण ब्राह्मणों में जो विद्या, बुद्धि और सरलतामें पदण्ड हो सकते हैं उन्हीं-को राजा अपना पुरोहित बनाते हैं।

कुलपुरोहित ही राजगुरु होते हैं। राजा उनका शिष्य होता है और उनकी हर तरहसे सेवा किया करता है। वह समस्त राजनैतिक वा धर्मनैतिक कार्यों में पुरोहित से परामर्श लेना उचित समझता है। राज्य वा समस्त राजपरिवारकी मङ्गल कामनाके लिये पुरोहित सदा ही यागयज्ञ, शांतिपाठ, वेदपाठ आदि शुभकार्य में निरत रहते हैं।

वालिद्वीपमें भिन्न भिन्न श्रेणियों में एक एक पुरोहित हैं। केवल राजपुरोहित ही गुरु कहा जाता है और सब उसको पूजते हैं। समस्त सामन्त भी पदण्डों में एकको पुरोहित बनाते हैं और उसको गुरु कह कर पुकारते हैं। वर्त्तमान समयमें वालिद्वीपमें सात पुरोहित वा राजगुरु हैं—कोङ्गकोङ्गमें दो, गियान्यरमें एक, बदोंग या बन्दन-पुरमें दो, तबानानमें एक एवं मेंगुइमें एक ऐसे सात पुरोहित या राजगुरु वहां पर हैं। बालिके निवासी इनको देवों की तरह पूजते या सत्कार करते हैं। गुरु जब राजपथसे बाहिर निकलते हैं तब हजारों मनुष्य उनको साष्टाङ्ग नमस्कार करते देखे जाते हैं और बहुतसे लोग उनके पादोदक लेनेके लिये अत्यन्त व्यस्त रहते हैं।

ब्राह्मण समस्त वर्णोंसे एक या बहुत स्त्रियां ग्रहण करते हैं। वर्णसङ्कर होने पर भी वे ब्राह्मणवर्णमें ही गिनी जाती हैं। किन्तु सम्पत्तिके अधिकारमें हीनाधिक भाव जरूर रहता है। शूद्राका पुत्र जो ग्रहण कर सकता है उससे अधिक वेश्याका पुत्र, तथा उससे ज्यादा क्षत्रियाका, और सबसे ज्यादा ब्राह्मणीका पुत्र दायभागका अधिकारी है। ब्राह्मणोंसे शूद्राकी सन्तान होना यह विदित है। यदि तीन पीढ़ी ऐसा सबंध होता रहा तो वह शूद्रवर्णमें शुमार की जायगी। क्षत्रिय और वैश्योंके लिये भी ऐसा ही नियम है।

ब्राह्मणोंकी सवर्णा स्त्री जैसा सम्मान पाती हैं शूद्रा स्त्री उसका शतांश भी नहीं पाती। ऐसा भी देखा जाता है, कि वे सवर्णा स्त्रीकी मृत्युके बाद भरण-पोषणके लिये जायदाद दे जाते हैं; किन्तु शूद्रको कुछ भी नहीं दे सकते।

ब्राह्मणोंके साथ गमन करना ही निम्न जातीय स्त्रियोंके लिये गौरव तथा सम्मान है; किन्तु सवर्णाका सहगमन एकदम निषिद्ध है।

सवर्णा स्त्रियोंको वेद, होम, यागयज्ञादिमें पूर्ण अधिहोता है। वे स्त्रियांके सती होनेके समय वा दानादि कार्य वेलाका तर्पण आदि कार्य करती हैं या सहायता कर सकती हैं। जैसे ब्राह्मणोंमें पण्डित वा पदण्ड उपाधि होती है वैसे ही सुशीला ब्राह्मण कन्याओंको 'पदण्ड स्त्री' या 'पण्डित'की उपाधि मिलती है।

ब्राह्मणोंमें तीन ब्राह्मण हैं—शैव बौद्ध, और भुजङ्ग। शैव शिवके, बौद्ध बुद्धके और भुजङ्ग-ब्राह्मण नागोंके उपासक हैं। संख्यामें शैव-ब्रह्मण ज्यादा; भुजङ्ग बहुत थोड़े हैं।

क्षत्रिय।

भारतमें जैसे विशुद्ध सदाचारी क्षत्रियोंका अभाव है बालिद्वीपमें भी वैसे सदाचारी क्षत्रिय नहीं हैं। जिस समय भारतसे हिंदुओंने आ कर यवद्वीपमें उपनिवेश किया था, उस समय बहुत थोड़े क्षत्रिय आये थे। "उशनयव" ग्रंथसे मालूम होता है, कि कोरिपान, गगलङ्ग, केदिरि और जङ्गला इन चार प्रदेशोंमें क्षत्रियराज्य था। "रंगलव" ग्रंथमें लिखा है; कि यव अथवा केदिरि की राजसभामें क्षत्रिय और वैश्य जातिके सामन्त रहते थे। यवद्वीपमें केदिरि सबसे बड़ा राज्य गिना जाता था तथा क्षत्रिय इसमें अधिक नहीं थे। माहिपगण ही (महाजन) राज्य करते थे।

क्षत्रियोंमेंसे केवल देवअगुङ्ग और उनका वैमात्रेय भाई आर्य डामर तथा अपर छह मनुष्य बालिद्वीपमें पहिले आये थे। यवद्वीप देखो। आर्य डामर और अन्य छह लोगोंके वंशधर आचारभ्रष्ट हो वैश्य बन गये थे। केवल देवअगुङ्गको विशुद्ध सदाचारी क्षत्रिय समझ राजा लोग अब भी श्रेष्ठसम्मान देते हैं। बदोङ्ग, तवानान, मेंगुइ, करङ्ग-असेम आदि स्थानोंके रहनेवाले कितने लोग अपनेको अगुङ्गदेवके कुटुम्बी बतलाते हैं, लेकिन पंडित लोग उनको सदाचारी क्षत्रिय नहीं मानते। क्लोङ्ग कोङ्ग, बङ्गली और गियान्यरमें अब भी क्षत्रियवंशज राजत्व करते हैं। बोलेलेङ्गमें पहिले देव अगुङ्गके वंशका राजत्व था, इस समय इनके कुटुम्बी लोग बदोङ्गमें रहते हैं। देशक, प्रदेव और पुङ्गकत्न नामके कितने ही क्षत्रिय हैं जिनका शूद्रस्त्रीके साथ संबंध देखा जाता है।

वेश्य (वैश्य)।

बालिद्वीपमें क्षत्रियोंकी अपेक्षा वैश्योंकी संख्या ज्यादा है। करङ्ग असेम, बोलेलेंगुगमेङ्ग इ, तवानान, बदोङ्ग और लम्बक आदि स्थानोंमें अब भी वैश्य लोग राजत्व करते हैं। तवानान और बदोङ्गके राजगण क्षत्रिय आर्यडामरके वंशज होनेसे देव अंगुरके प्रभाव द्वारा वैश्य हो गये हैं। उनके पूर्वपुरुष वैश्योंकी तरह बालोंको बांधते थे, इसलिये वे वैश्य कहलाये जाते थे। वर्तमानकालमें केशोंके बीच क्षत्रिय और वैश्योंमें कुछ भेद देखनेमें नहीं आता।

दहा और मजपहितके क्षत्रिय वर्त्तमानमें "माहिप" (माहिष्य) वा "कावो", वैश्य "रवङ्ग" "पति" "देमाङ्ग" और तुमङ्गगुङ्ग नामोंसे प्रसिद्ध हैं। पतिश्रेणीके पूर्वपुरुष प्रथमदेव अगुङ्गके मंत्री थे, इसलिये इस वंशके कोई कोई लोग "मंत्री" कहलाते हैं। आर्यडामर और पति गजमद्के वंशधरोंको छोड़ और सभी शूद्र हो गये हैं।

कृषि, वाणिज्य और शिल्प वैश्योंकी मुख्य आजीविका होने पर भी वहांके प्रधान वेश्य इन सब कामोंको घृणित समझते हैं। वे लोग अफीम खाने और कुक्कट

युद्धके खर्च चलानेके लिये कुछ वाणिज्य करते हैं। अपर जातिके लोग भी वाणिज्य करने लगे हैं।

शूद्र।

शूद्रोंको धर्म कर्म करनेमें अधिकार नहीं है। द्विजातिकी सेवा करना ही शूद्रका मुख्य धर्म है। अपनी वस्तु पर शूद्रोंका कुछ भी अधिकार नहीं रहता। मुखिया या राजा जब चाहे तब शूद्रके घरसे प्रत्येक वस्तु ले सकता है उससे शूद्र किसी तरहका निषेध नहीं कर सकता। राजा किसी देशमें चला जावे तो उस देशके शूद्रोंको राजाके लिये हंस, वक्र कुक्कुटादि खाद्य-सामग्री इकट्ठी करनी पड़ती है। इस समय राजकर्मचारी अपनी इच्छाके अनुकूल शूद्रके घरसे जो चाहे ले सकता है, शूद्र किसी तरहकी आपत्ति नहीं कर सकता। राजकर्मचारी इच्छानुसार शूद्रोंके ऊपर अत्याचार करते थे पर वृद्ध काशीमनने यह प्रथा नष्ट कर दी। शूद्रोंकी सभी दशायें बड़ी शोचनीय हैं। पराकन, राजभृत्यगण और मुखिया राजकुमारकी तरह आलस्यसे और शूद्रोंके धन आदिकी लूटपाटसे अपना जीवन विताते हैं, तथा अफीम खाने और मुर्गे लड़ानेमें सदा व्यस्त रहते हैं।

मण्डिश (मण्डलेश्वर), प्रवकेन और अन्यान्य राजकीयपद पर शूद्र नियुक्त होते हैं। मण्डलेश्वर एक देश अथवा तहसीलका मालिक होता है। इनके पूर्व पुरुष देव अगुङ्गके द्वारा शूद्र बनाये गये थे। मजपहितसे जो समस्त वैश्य वालिद्वीपमें आये थे वे सब भी शूद्रोंमें शामिल किये जाते हैं।

यहांके पतित ब्राह्मण भी बहुत कुछ शूद्राचारी हैं। सङ्गुल नामकी एक श्रेणीके शूद्र हैं, जो स्मृतिपुराणको पढ़ते हैं और मन्त्रोंका पाठ करते हैं। इनके पूर्व वंशज ब्राह्मण थे। "दले मसुर" वा कालपूजा कर ये लोग ब्राह्मण धर्मसे पतित हो गये हैं। इनके बीच एक प्रवाद यों प्रचलित है,—एक प्रसिद्ध पदण्डाको पराक अथवा परिचारक था। वह गुप्तरूपसे अपने प्रभुका पूजाकर्म देखता और वेदपाठ सुनता था। इसी तरह उसने वेद सीख लिया। लेकिन वह शीघ्र ही पकड़ा गया। कोई उपाय न देख उसे पदण्डने शूद्रपनेसे छुड़ा दिया तथा उसे और उसके वंशजोंको वैदिककर्म करनेका अधिकार दिया।

वालिद्वीपके चारों वर्ण ही प्रायः विश्वासी, नम्रप्रकृति, साहसी और कर्मठ हैं।

भाषा और साहित्य।

यवद्वीपसे यहांकी भाषामें बहुत अंतर है। यवद्वीपकी वर्णमालामें २० अक्षर हैं, किन्तु वालि आदि पलिनेशिय दीपपुंजकी वर्णमालामें १८ अक्षर देखे जाते हैं। भाषाके पंडितोंने वालिद्वीपके साथ सुन्द, मलय प्रभृति पलिनेशिय द्वीपपुञ्जकी भाषागत एकता स्थिर की है। सुन्द और वालिद्वीपके त, द और ध में विशेष भेद नहीं है। संस्कृत तालव्यके उच्चारणके अनुकूल इनका व्यवहार होता है। सुन्द और वालिद्वीपकी भाषामें आकारका स्पष्ट उच्चारण किया जाता है; किन्तु यवद्वीपमें 'अ' के स्थानमें 'ओ' का प्रयोग होता है। इ, और ए का विशेष भेद रहने पर भी इनका उच्चारण कभी कभी अनुनासिक योगसे होता है। "भ" के स्थानमें व तथा कभी कभी थ के स्थान क्का व्यवहार भी देखा जाता है। इनके अन्त्यस्थ "व" नहीं होते।

यवद्वीपकी तरह यहांकी भाषा दो प्रकारकी है। उच्चश्रेणीके लोग परिमार्जित भाषा बोलते हैं। परिमार्जित भाषा ही यहांकी सभ्य भाषा है। अन्य जनधारण जो भाषा बोलते हैं वह निम्न श्रेणीकी भाषा मानी जाती है। वर्त्तमान यवद्वीपके रहनेवाले जिस परिमार्जित और श्रेष्ठतर भाषा बोलते हैं, उससे वालिद्वीपके उच्चश्रेणीके लोगोंक भाषा बहुत भिन्न है। यवद्वीपकी निम्नश्रेणीकी भाषाकी बहुत कथायें वालिद्वीपकी उत्तम भाषासे मिलती जुलती हैं। किंतु यवद्वीपकी भाषामें मार्जित शब्दोंका प्रयोग नहीं देखा जाता। यवद्वीपके रहनेवाले सहजमें वालिद्वीपकी भाषाका अर्थ संग्रह कर सकते हैं; किंतु साफ शुद्ध वचन नहीं बोल सकते। इन लोगोंकी निम्न श्रेणीकी भाषामें मलय और सुन्दर द्वीपवासियोंकी भाषाका मेल बहुत रहता है।

यह भाषा यवद्वीप निवासियोंके लिये सरल हो गई है। यवद्वीपके रहनेवाले और वालि उपनिवेशके स्थापनके पहिले यहांके अधिवासी यही भाषा बोलते थे। निम्नश्रेणीकी भाषा यद्यपि रूपान्तरित और परिमार्जित हो गई है तो भी पलिनेशिय भाषाकी स्मृति आज-

ल्यमान वनी हुई है। भाषाके विद्वान् यह भी कहते हैं, कि चार सौ वर्ष पहिले वालि, मलय और सुन्द प्रभृति द्वीप अर्द्ध सभ्य थे। सुतरां वहांकी प्रचलित भाषा भी उसी तरह विकृत रही होगी, इसमें आश्चर्य ही क्या? सुमात्रासे वालि और उससे पूर्वदिक् वर्त्ती द्वीपोंकी भाषाका निकट संबंध देख कर भाषाके पंडितोंने यह सिद्धान्त किया है, कि वालिद्वीपमें मलय और सुन्द निवासियोंका उपनिवेश ही इस भाषा-सामञ्जस्यका कारण है। जब विजयी यवनिवासियोंने आ कर वालिद्वीपके वहु संख्यक लोगोंको इसी एक भाषामें बोलते देखा तब भाषाके परिवर्त्तन करनेमें उन्होंने किसी प्रकारकी चेष्टा न की। उस समय यवद्वीपनिवासी यही भाषा बोलते थे, इसलिये वह वालिद्वीपकी राष्ट्र भाषा बन गई तथा पलिनेशिय-मिश्रित भाषा ही वालिद्वीपकी निम्न श्रेणीकी भाषा हो गई।

पूर्वतन यवभाषाके सहित वालिदीपकी भाषाका जो निकट सम्बन्ध है वह कवि भाषामें मिले हुए तगल और मलय शब्दके अस्तित्वसे ही जाना जाता है। क्योंकि, कविभाषाकी उत्पत्तिके समयमें यवभाषा परिमार्जित नहीं हुई थी। कविभाषामें जो मलय शब्दका अस्तित्व है उस-यवभाषाका पलिनेशीय भाषाके साथ संबंध मालूम पड़ता है। किन्तु वर्त्तमान यवद्वीप भाषामें मलयदेशीय शब्दका प्रयोग नहीं देखा जाता। वालिद्वीपमें यवनिवासियोंके आगमन और जातिविभागके स्थापित होनेसे यहांकी भाषामें भी भेद दिखाई देता है अर्थात् कुलीन ब्राह्मण और क्षत्रिय परिमार्जित उत्तम भाषा तथा निकृष्ट शूद्र लोग जघन्य भाषा बोलते हैं। वालिद्वीपके निकट-वर्त्ती स्थानोंमें हिन्दू सभ्यताका विस्तार है, तो भी उन लोगोंकी आदि और पैतृक भाषामें कोई विशेष भेद नहीं है। कथित भाषाको छोड़ वालिद्वीपमें लिखित भाषा भी है। वर्त्तमान ग्रन्थोंके अतिरिक्त प्राचीन काव्यग्रंथ कवितामें तथा ब्राह्मणोंका धर्मशास्त्र संस्कृत भाषामें लिपिवद्ध होते थे। जो ब्राह्मण यवद्वीपमें आये वे अपने धर्मशास्त्रग्रंथोंको साथमें लाये थे, ऐसा सभी स्वीकार करते हैं। वे लोग उच्च श्रेणीके संस्कृतविद्वान् थे; किंतु प्राकृत भाषामें भी उनकी विशेष व्युत्पत्ति थी तथा वे प्राकृतिक भाषा अच्छी तरह बोल सकते थे, ऐसा वहुतोंका विश्वास है। यदि ईसा जन्मके ५०० वर्ष वाद भारतवासिका इस द्वीपमें आगमन मान लिया जाय तो कवि भाषाकी उत्पत्तिके प्रारंभमें कोई न कोई अवश्य ही कारण होगा। क्योंकि, भारतीय प्राकृतकी विकृतिकासमावेश उसका एकदम नहीं हुआ है। भारतके वहुतसे हिंदू और बौद्ध लोग अपने धर्मके प्रचारके लिये यवद्वीपमें आये थे। वे यद्यपि पाली और प्रकृत भाषाके खूब जानकार थे तो भी उनको अपने धर्ममें यहांके लोगोंको दीक्षित करनेके लिये यहांकी भाषा सीखनी पड़ी थी। बौद्धलोगोंके साथ ब्रह्मोपासक हिंदू भी यव, वालि आदि द्वीपोंकी भाषा सीखनेमें रत हुये थे। वालिवासियोंको अपने धर्ममें दीक्षित करने तथा अपने शास्त्रोंमें कथित पूजाओंमें विश्वास उत्पन्न कराने और भक्ति उनके हृदयमें जगानेके लिये वालिभाषा-का ही उन्होंने आश्रयग्रहण किया था। क्योंकि, वे जानते थे, कि दूसरे देशमें अपना धर्म फैलानेके लिये वहांकी भाषाका सीखना नितान्त आवश्यक है। प्रम्बनन और वुड़ोवुदोरके खंडहरोंसे जाना जाता है, कि यवद्वीपमें बौद्ध और ब्राह्मण वे-रोकटोक एक ही स्थानमें रहते थे। उनकी पूजापद्धति भिन्न अवश्य थी परन्तु आपसके मूल-मंत्रोंमें कहीं भी भेद नहीं पाया जाता था। कवि भाषा-में रचित ग्रंथोंका कुछ भाग शैव ब्राह्मणोंके द्वारा वनाया गया है तो दूसरा भाग बौद्धोंके द्वारा। दोनों ही प्रकारके ग्रंथोंको वालिवासी आदरकी दृष्टिसे देखते हैं और उन-का पाठ करते हैं।

विदेशियोंके समानभाव होनेसे ही कविभाषाकी उत्पत्ति होती है। भारतसमागत बौद्धोंने यवद्वीप-निवासियोंकी संख्या अधिक देख कर नई भाषाका प्रचार करनेमें साहस नहीं किया। बौद्धलोगोंने विज्ञान और धर्मशास्त्रोंके भावोंको तद्देशनिवासियोंके सरल रूपसे समझानेके लिये वहांकी भाषामें संस्कृतका प्रचार किया। यवद्वीप निवासियोंकी भाषामें ऐसा अर्थबोधक कोई शब्द न रहनेके कारण भारतीय धर्मोपदेष्टाने उनकी शिक्षाके लिये अगणित संस्कृत शब्द भाषामें विशिष्ट किये। उसी मिश्र भाषासे ग्रन्थ लिखे गये और धर्म शिक्षाका कार्य संपन्न होने लगा।

ये सब शब्द संस्कृत धातुओंके हैं, तोभी प्रकृति-प्रत्यय आदिका व्यवहार इनमें हुआ है। क्योंकि, संस्कृत व्याकरणको नहीं जाननेवाले यवनिवासियोंके लिये ये शब्द पढ़नेमें अत्यंत कठिन होते। यव और वालिद्वीपकी भाषामें जिन संस्कृत शब्दोंका प्रयोग है, वह भारतीय व्याकरणसिद्ध शब्दोंमें बहुत अपभ्रंश है। अनेक जगह 'व' स्थानमें ओ अथवा थो स्थानमें व, य स्थानमें ए, उ स्थानमें ऊ, ई स्थानमें ए, र स्थानमें द्वित्व र, प्र उपसर्गके स्थानमें पर तथा शब्दके आदिस्थ आकारका लोप आदि रूपान्तर देखा जाता है। जैसे अनुग्रह स्थानमें नुग्रहका प्रयोग देखनेमें आता है, वैसे कवि भाषा गठित होने पर भी वालिद्वीपके पवित्र वेद और पुराणादि संस्कृत भाषामें लिखे गये हैं तथा एकमात्र पुरोहित लोग ही इन ग्रन्थोंको पढ़ाते हैं।

धर्म और पुराणी कथायें जनसाधारणमें विस्तृतिके लिये कविभाषामें लिखी गई हैं। संस्कृत भाषामें अक्षर मूर्द्धा होनेसे वे पवित्र ग्रंथ समझे जाते हैं। वालिवासी उनका आदर सत्कार विशेष रीतिसे करते हैं। कविभाषा और श्लोक लिखनेकी भाषा बिलकुल भिन्न भिन्न हैं। वालिद्वीपके धर्मविषयक गुह्यमंत्र और वेदमंत्र भारतीय श्लोकोंकी भाषामें लिखे गये हैं। यह मात्रावृत्त श्लोकभाषा यहां 'संकेत' (संस्कृत) नामसे प्रसिद्ध है। प्रत्येक इसका पाठी नहीं हो सकता अतएव इसका 'रहस्य' नाम भी रखा गया है।

कविभाषाका गठन भिन्न भिन्न समयोंमें हुआ है—

१—आय लङ्गियरके राज्यकालमें कविभाषामें जो ग्रंथ रचित हुये, शैवब्राह्मणोंके मतसे वही भाषा सबसे पुरानी और सुन्दर है। उक्त राजा जयवयके पूर्वपुरुष केदिरिमें राज्य करते थे। इन्हींके समय वालिद्वीपमें शिवपूजाका खूब प्रचार हुआ था।

२—राजा जयवयके राज्यकालमें 'वारतयुद' (भारत-युद्ध)। इसकी रचनाप्रणाली 'विवाह' या और दूसरे बौद्ध ग्रंथोंके अलावा उज्वल है और आम तौरसे आदरणीय है। वालिवासियोंके मतसे जयवय भारतवर्षमें राज्य करते थे। महाभारतीय युद्धके बाद यवद्वीप भारतसे अलग हो गया। जयवयके राज्यकालमें और भी अनेकों ग्रंथोंकी रचना हुई थी।

३—मजपहितके राज्यकालमें रचित ग्रंथावलीमें संस्कृतके साथ ग्राम्यभाषा भी मिली हुई देखी जाती है।

४—परवर्त्ती समयमें पुरोहित और क्षत्रियों द्वारा रचित ग्रंथ।

भाषाके वेत्ताओंने वालि साहित्यके इस प्रकार श्रेणीका विभाग किया है—१म वालिभाषामें लिखे टीका-सहित संस्कृत ग्रन्थ। वेद, ब्रह्माण्डपुराण, तुतुरसमूह (तंत्र), २य कविग्रंथावली। यथा—(क) पवित्र पौराणिक ग्रंथ—रामायण, उत्तरकाण्ड और पर्वसमूह। (ख) निम्न कवितायें—विवाह, वारतयुद, आदि। ३य यव और वालिद्वीपकी भाषाकी मिश्र रचना। कितने ही स्थानीय किदुङ्ग मालामें लिखे हुये मिश्रग्रंथ, कितने ही ग्रंथ साहित्यमें रचित ऐतिहासिक उपाख्यानें यथा—केनङ्ग ङ्गोक, रङ्ग लवे, उशन, पमेन्दङ्ग आदि।

इसके अलावा पुरोहितोंके द्वारा रक्षित व्यवहार शास्त्र और श्रोयस्त्रन नामक सङ्गीत शास्त्र ग्रंथ संस्कृत मिश्र, तीव्र भाषामें लिखे हुये हैं।

कोई शिलालेख या ताम्रपत्र न मिलनेसे प्राचीन अक्षर माला निरुपित नहीं की जा सकती।

वालिद्वीपमें १ रेगवेद (ऋग्वेद), २ यजुरवेद (यजुर्वेद), ३ सामवेद और ४ अत्तर्ववेद (अथर्ववेद) नामके चारों वेदोंका प्रचलन देखा जाता है। भगवान् ब्यास (भारतीय व्यास) उक्त वेदचतुष्टयके संग्रहकर्ता माने जाते हैं। पण्डितलोग पूजा, जप आदि कर्म, वेदमंत्र, स्तुति, मन्त्र, देवताओंकी आरति आदि धार्मिक काम करते हैं। यहां ब्राह्मणोंके अतिरिक्त अन्य किसी जातिको वेद पढ़नेका अधिकार नहीं है। पण्डित लोग अपेक्षाकृत सुकुमार-मति ब्राह्मणबालकोंको ही मंत्रादिकी शिक्षा देते हैं। चारों वेदोंकी अक्षरलिपि यहांकी भाषामें संस्कृतश्लोकाकारमें लिखी हुई हैं। उक्त चारों वेदके अर्थ जाननेके लिये कविभाषामें टिप्पणी उल्लिखित हैं। पुरोहित लोग मूल श्लोकोंका अर्थ स्मरण रखनेके लिये इस टीकाका पाठ समय समय पर करते रहते हैं।

इन समस्त शास्त्रोंसे प्राचीनकालमें वालिद्वीपमें

हिंदूधर्मको कितना विस्तार था यह स्पष्ट रूपसे जाना जाता है। किन्तु किस समय भारतीय विद्वान् पुण्य-मय धर्मशास्त्रोंको अपने साथ ले कर यव अथवा वालि-द्वीपमें आये थे, यह निश्चित नहीं होता। "सूर्यसेवन" नामका एक ग्रंथ है, जिसमें सूर्योपासनाके उपयोगी वेद-मंत्र लिखे हुये हैं। सूर्योपासना ही पुरोहितोंका धर्म है। पहिले वैदिक आर्य हिंदू सूर्योपासक प्रसिद्ध थे, यहांके पुरोहित भी उनका अनुकरण करते हैं। वेदको छोड़ ब्रह्माण्ड नामक एक पुराण ग्रंथ पाया जाता है। इसकी भाषा संस्कृत है तथा श्लोकाकारमें लिखी हुई है। यह भारतीय १८ पुराणोंके अन्तर्गत है। वालिवासी शैवनामसे यहां ब्रह्माण्डपुराणका आदर करते हैं। इसकी व्याख्या वालिभाषामें लिखी हुई है। यहांके ब्रह्माण्ड-पुराणमें सृष्टि प्रकरण, विभिन्न मनुओंसे प्रजासृष्टि, जगद्वर्णन, पौराणिक उपाख्यान और प्राचीन राजाओंका इतिहास लिखा हुआ है। भगवान् व्यास इसके रच-यिता हैं। पुराण शब्दमें ब्रह्माण्डपुराणका विवरण देखो। यहांके पुरोहितोंको अपर १७ पुराणोंकी स्मृति भी नहीं है। वे लोग केवल व्यासको पुराण और वेदका तथा वाल्मीकिको रामायणका कर्त्ता मानते हैं।

पौराणिक काव्य।

यहांकी रामायण भी वाल्मीकिप्रणीत है। कवि-भाषामें लिखी जाने पर भी इसमें संस्कृतके शब्दोंका अधिकतर प्रयोग देखा जाता है। इसमें भारतीय रामायण के प्रथम छह कांड २५ सर्गोंमें लिखे गये हैं। सातवां उत्तरकांड यद्यपि वाल्मीकिका बनाया हुआ है तोभी वह अन्य ग्रंथ समझा जाता है। इससे अनुमान होता है, कि उत्तरकांड छह काण्डके बाद किसी समयमें भारतसे लाया गया था। इस उत्तरकाण्डमें विशेषता यही है, कि रामचंद्रकी मृत्युके बाद उनके वंशजोंका चरित्र इसमें लिखा गया है। इसको छोड़ यहांकी रामा-यणके वालकाण्डमें रामजन्म और वशिष्ठसंवाद आदि विषय नहीं हैं, किन्तु अन्यान्य विषयकी सुंदर रचना है।

उक्त २५ सर्ग रामायणके प्रथम सर्गमें जहां पर अयोध्याके राजा दशरथके घरमें विष्णुकी अवतारकथाका प्रसंग आया है वहां पर कौशल्याके गर्भमें रामचंद्रके रूपमें भगवान्, केकयीके गर्भमें भरत और सुमित्राके गर्भमें लक्ष्मणके जन्मका वर्णन है। मुनि वशिष्ठने रामचंद्रजीको धनुर्वेद और शास्त्रोंकी शिक्षा दी थी। राजर्षि विश्वामित्र राक्षसके उपद्रवसे अपने आश्रमकी रक्षा करनेके लिये भगवान् रामचंद्रजीको साथमें ले गये; उसके बादमें राक्षस वध, परशुरामका धनुर्भंग, सीताका विवाह, भरतकी राजगद्दी, केकयीकी वर-प्रार्थना, राम, लक्ष्मण और सीताका दंडकवनमें जाना, लक्ष्मण द्वारा सूर्पणखाकी नाकका छेदना, वानरोंका क्रोध, सीताहरण, सुग्रीवको मिलना, हनुमानका लंकामें जाना, सीताका देखना, श्रीरामचंद्रजी द्वारा भेजी गई वानरोंकी सेना, उसके द्वारा लंका पर चढ़ाई, रामचंद्र और सुग्रीवादिका सीता-को लानेके लिये विचार करना, विभीषणका सम्मिलन, रावणवध, सीताकी अग्निपरीक्षा, पातालमें प्रवेश, राम-चंद्रका अयोध्याके राजसिंहासन पर सुशोभित होना और वृद्ध अवस्थामें वानप्रस्थ ग्रहण करना आदि विषयों-का वर्णन है। वेदादि धर्मशास्त्रोंमें जिस प्रकार ब्राह्मणोंका अधिकार है, रामायण और पर्व्वग्रन्थ आदि-में उसी प्रकार राजाओंका अधिकार है। राजा लोग काव्य ग्रन्थवर्णित राजचरित्रकी शिक्षा द्वारा अपना चरित्र संगठन करते हैं। केवल राजचरित्र नहीं; इन्द्र, यम, सूर्य, चन्द्र, अनिल, कुवेर, वरुण और अग्निके चरित्रसे ज्ञानलाभ करते हैं। उत्तरकाण्डमें लव-कुशके वंशके वर्णनके अलावा अन्य भाइयोंके वंशका उल्लेख किया गया है।

रामायणके जिस तरह कांड विभाग हैं उसी तरह महाभारत भी अठारह पर्वोंमें विभक्त हैं। वालिवासी इस महाग्रंथको पर्व कहते हैं, इसके महाभारत नामको वे लोग नहीं जानते १८ पर्वके नाम पर जानते हैं। इसमें १ लाख श्लोक हैं जिनमेंसे २० हजार श्लोकोंमें कुरुपांडवों-के युद्धका वर्णन है। भगवान् व्यास इसके बनानेवाले हैं। इसकी भाषा भी कवितामय हैं। पर्वोंके नाम भारतके उपाख्यानसे भिन्न है—१ कपिपर्व्व-सुग्रीव, हनु-मान आदि कपिवंशका इतिहास है। २ केतक अथवा चन्डक नामके पर्वमें कविदासीरचित अभिधान है। ३ अगस्ति पर्व (अङ्गास्ति) प्रभृति स्वतन्त्र ग्रंथ भी हैं।

मनुप्रणीत मानवधर्मशास्त्रके नहीं होने पर भी ये लोग मनुको ही (मनु) धर्मशास्त्रके प्रणेता मानते हैं। पूर्वाधिगम अथवा शिवशासन नामक ग्रन्थ भी मनुके बनाये हैं। इनकी भाषा कविता और श्लोकोंसे शून्य है।

साधारण कविसाहित्यके बीच भारत युद्ध नामके ग्रंथका उल्लेख किया जा सका है। किसी समयमें यही महाभारतका अनुवाद कह कर प्रसिद्ध था; किन्तु महाभारतकी पोथी मिल जानेसे जो भ्रम लोगोंके बीच फैल रहा था वह मिट गया। भीष्म, द्रोण, कर्ण और शल्य पर्व्वको ले कर भारतयुद्ध तैयार किया गया है। केदिरिराज श्रीपादुकावतार जयवयकी आज्ञासे हेपुसदने इस ग्रंथका निर्माण किया था।

४ विवाह—म' पुकण्व-प्रणीत कविताका एक अपूर्व ग्रंथ। ५ स्मरदहन—रामायण-प्रणेता कवि राजा कुसुमके पुत्र मपुधर्मज द्वारा रचित। ६ सुमनाशान्तक—रघुवंश विषयक ग्रंथ। ७ बोम (भौम) काव्य—जिसमें विष्णुके औरस और पृथ्वीके गर्भसे भौम दानवकी उत्पत्ति और कृष्णजीके हाथ उसका मरण-विषय उल्लिखित हैं। म'पुप्रद्ध-बोध नामक बौद्धरचित एक शास्त्र है। ८ अर्जुनविजय—रावणकार्त्तवीर्य और अर्जुनके युद्धका वर्णन इसमें है। यह म'पु तन्तुलर बोध नामके बौद्ध द्वारा प्रणीत है।

९ सुतसोम—इसमें केतकपर्व का उपाख्यान लिखा गया है। १० हरिवंश—महाभारतका परिशिष्ट खंड। मपुपेनुलु बोध नामके एक बौधने इसको कविभाषामें लिखा है। पूर्वोक्त कितने ग्रंथ उल्लेखनीय हैं।

बवद अथवा ऐतिहासिक वीरग्रंथमें १ केनूहन् ग्रोक—केदिरि, मजपहित और वालिराज-वंशके आदि पुरुष ब्रह्मपुत्र केनूहनग्रोकसे लेकर अख्यायिकाका आरंभ किया है। २ रङ्गलवे—जिसमें केदिरिराज-मंत्री रङ्गगलवे द्वारा शिवबुद्धकी पराजय और केदिरिराज-वंशका चरित वर्णित है। ३ उशनयव और ४ उशनवालि—इनमें उक्त दो द्वीपके राजाओंके चरितका उल्लेख है। ५ पेमेंदङ्ग—इसमें वालिराज्यका वर्त्तमान इतिहास है।

तुतुर अथवा धर्मविषयक और तान्त्रिक ग्रंथ असंख्य हैं। वे अधिकांश श्लोकोंमें लिखे गये हैं। उनमें १ भुवनसंक्षेप, २ भुवनकोष, ३ वृहस्पतितत्त्व, ४ सारसमुच्चय, ५ तत्त्वज्ञान, ६ कन्दम्पत्, ७ सजोत्क्रांति, ८ तुतुर कामोक्ष (कामाख्यातंत्र ?), ९ राजनीति, १० नीतिप्राय वा नीतिशास्त्र, कामंदकनीति, १२ नरलीतीय, १३ रणयज्ञ और १४ तिथिदशगुणित ये कितने ग्रंथ मुख्य हैं।

पहिले ही धर्मशास्त्रके विषयका उल्लेख किया जा चुका है। यहां पर १ आगम, २ अधिगम, ३ देवागम, ४ सारसमुच्चय, ५ दुष्टकालभय, ६ स्वयंभू वा स्वजम्बू, ७ देवदंड और ८ यक्षसंघ आदि कितने ग्रंथ मिलते हैं। मेनव-शास्त्र नामका एक स्मृतिग्रंथ है जिसमें भारतीय धर्मशास्त्रके अनुसार एक स्मृतिग्रन्थ है। लेकिन इसका प्रचार अधिक नहीं है। पूर्वाधिगम नामके स्मृतिशास्त्रकी उपक्रमणिकामें जो कुछ लिखा है वह समस्त उद्धृत ज्योंका त्यों किया गया है; केवल संस्कृत शब्दका वालि रूपान्तर नहीं हुआ है। इस नमूनेसे सब कोई जान सकते हैं, कि वहांकी शास्त्रीयभाषामें कितने संस्कृत शब्दोंका मिलाव है:—

"अभिज्ञान मंत्र। लिहन् पूर्व्वाधिगमशासन शास्त्रसारोद्धृत पूर्व्वारंभ सङ्ग् तलस वृद्धाचार्य राजपुरोहित सर्व्व गुणज्ञ भानुरश्मि-सदृश-सर्व्वजन-हृदय-तमिस्रहरण-सकला-प्रचूडामणि-शिरसि प्रतिष्ठित तकप् सहन पराचार्य शिवकवे:, कनिष्ठ मध्योत्तम न' दन शिव परमादि गुरु महा भगवानतङ्ग् गेणीर शिर प'गुदारणभस्माङ्गारलीरसकरि अवनङ्ग नीर पणदहन भस्म तकप् निङ्ग् सन्तान प्रतिसन्तान सङ्ग् भस्मङ्गकुर शिर अतः प्रमाणकेन पगे: निङ्ग् रक्षनिङ्ग् शासनाधिगम शास्त्रसारोद्धृत रि पर पङ्गकु मकवेहन शहन शङ्ग् गुम् गे शिवागम, किमुत सहन सङ्ग् बुद्धङ्ग् शिव पिणाक स्थविर रिह् नगर शङ्ग् (सम्पन्न ?) कृत्य स'गुनि वे: सङ्ग् महारेप रिङ्ग् नगर लावण रिङ्ग् प्रदेशतलस करुहण सङ्ग् वतिक प्रजीवक व्यवहारविच्छेद सङ्ग् अव नङ्ग् मम गतकेन विवादनिङ्ग् सर्व्वजनरिङ्ग् सभामध्य मुअङ्ग् रिङ्ग् प्रदेश न त लु इरनीर, यखन सङ्ग् ह्यङ्ग् अधिगमशास्त्रसारोद्धृत युग पमकिङ्ग् शासनकमंनीरटीकाकवे:।"

तत्त्व वा तुतुरकामोक्ष नामके ग्रंथमें जन्मसे मृत्यु पर्यन्त करणीय धर्मक्रियाओंका वर्णन है। पदण्डलोग

इसी स्मृतिके द्वारा वर्णित धर्मका अवलंब ले अपना जीवन बिताते हैं। राजा अथवा ब्राह्मणको इस धर्मनीति-के अनुकूल कार्य करने पर "राजर्षि" उपाधि दी जाती है तथा शास्त्रलिखित आचरणके नहीं करनेसे राजाओंकी अभिषेकक्रिया नहीं होती।

मलेत् ग्रन्थमें पञ्जीकी वीरकहानीका जिक्र है। उसके छंद किदुङ्ग कविसे बिलकुल अलहदे हैं। गम्बुः नामक नाट्यशालामें इस ग्रंथके स्थल विशेषका अभिनय होता है। किंतु यहां पर कालिदासादि विद्वानोंके बनाये गये नाटकोंका आभास मात्र नहीं है। भारतीय नाटकके आदर नहीं होनेमें दो कारण कहे जा सके हैं। संभव है कि, भारतीय ब्राह्मणोंके यवद्वीप आनेके बाद कालि-दासादि पण्डितोंके महासूल्य नाटक बने हों, अथवा धर्मप्रचारक ब्राह्मणोंने धर्मशास्त्रसे भिन्न जान नाटकों-की आलोचना करनेमें ध्यान नहीं दिया हो।

धर्मशास्त्र, पौराणिक काव्य और इतिहासके अति-रिक्त इनके यहां काल जाननेके लिये ज्योतिषशास्त्र भी हैं। कालके निर्णय करनेमें इन लोगोंके दो मत हैं। एक भारतीय दूसरा बालीय अथवा पलिनेशिय। भृगुगर्ग नामक पुस्तकसे मालूम पड़ता है, कि वे लोग शालिवाहनराज-प्रतिष्ठित शक सम्वत् (७८ ई०)-से कालका निर्णय करते हैं तथा कसङ्ग अथवा चैत्र-माससे वर्षके आरंभका समय मानते हैं। मुसलमानों-के प्रभावसे यवद्वीपकी काल गणनामें हेर फेर अवश्य हुई, पर यहांकी गणनामें चन्द्रमासकी जगह सौर मासके अतिरिक्त और कुछ भी परिवर्तन नहीं हुआ। जेष्ठ और आषाढ़के अतिरिक्त महीनोंके नाम संस्कृत और बालिदेशकी भाषामें हैं। यथा—श्रावण (कस), वाद्र वा, वाद्रवद (भाद्रपद) अथवा करो, असुजि (आश्वयुज वा आश्विन), कतिग (कार्त्तिक) अथवा कपत, मार्ग-शिर, मार्गशीर्ष (अग्रहायन) वा कालिम, कनम वा पोष्य (पौष), कपित वा माग (माघ), कलुलु वा फाल्गुन (फाल्गुन) कसङ्ग अथवा मधुमास (चैत्र), वादस वा वेशक (वैसाख) एवं जेष्ठ (ज्यैष्ठ) और आषाढ़। प्राचीन रोमक आदिके मतके अनुसार बालिद्वीपमें पहिले १० मास प्रचलित थ, उनमें ज्येष्ठ और आषाढ़के दो मास नहीं थे तथा वे पहिले ३५ दिनका मास मानते थे। दिनोंके नाम पलिनेशिय और हिंदी भाषामें मिले हुए हैं। यथा—रदिति सोम, अङ्ग गर, बुङ्ग, वृहस्पति, शुक्र और शनैश्चर (हिंदी) एवं पहिङ्ग, पुअन, वगि, कालिवना और मेनिश (पलिनेशिय)। इसके अलावा उन लोगों-के ग्रह नक्षत्र आदिके विषयका तथा इनके द्वारा होने-वाले मनुष्योंके शुभ अशुभ फलोंका भी ज्ञान है। उनका चन्द्रमास शुक्ल (तङ्गाल) और कृष्णपक्ष (पुङ्गलुअङ्ग) ले कर माना जाता है।

उक्त ३५ दिनमें ३५ नक्षत्रोंके फलाफलको छोड़ कर भी वे जात बालकके शुभाशुभ जाननेके लिये सप्ताहके प्रति दिन १ देवता, २ नरमूर्त्ति, ३ वृक्ष, ४ पक्षी, ५ भूत और ६ सत्वके अस्तित्वको कल्पना करते हैं तथा उनके प्रभावोंके अनुसार मानव चरित्रकी कल्पना करते हैं।

अमृत, शून्य, काल, पति, और लिन्योक दिनके ये पांच लक्षण हैं। अमृत क्षणमें उत्पन्न होनेसे सौभाग्यशाली शून्यमें दरिद्र, कालमें रिपुवश, पति क्षणमें मृत्यु और लिन्योकमें पैदा होनेसे मनुष्य असच्चरित्र और चोर होता है। इसके सिवाय उनका दिन आठ घटिकोंमें विभक्त है। इसीको जाननेके लिये वे जलयंत्रका व्यवहार करते हैं। पानीकी घड़ी अपने देशमें भी प्रसिद्ध है। प्रत्येक राज-महलमें ऐसी एक घड़ी होती है। पानी भरने पर उसके पानी फेंकनेके लिये एक मनुष्य नियुक्त रहता है। जब घड़ी पूरी हो जाती है तब वह जनताको जतानेके लिये नगारेमें चोव देता है।

पंजिकाकी गणनामें भृगुगर्गके सिवाय वे सुन्दरी क्रम और सुंदरी भुज्क नामकी पुस्तककी सहायता लेते हैं। ज्योतिषचक्रमें राशियोंकी गणना करते हैं। वृश्चिक के स्थानमें मृचिक, कर्कटके स्थानमें रकत, मीनके घरमें कुंभ और मेषके घरमें मकर आदि देखी जाती हैं। प्राचीन ग्रीक लोगोंकी तरह ये तुलाराशि नहीं मानते। तुलाके घरमें वृश्चिकका अधिकार पाया जाता है।

भारतवासियोंकी तरह इनका भी विश्वास है, कि राहु ग्राससे सूर्य और चन्द्रमाका ग्रहण होता है। सूर्य-ग्रहणका नाम 'ग्रह' और चन्द्रग्रहका नाम 'राहु' है। ग्रहण-के समय वे यंत्रों और चित्कार द्वारा विकट शब्द करते

हैं। विश्वास है, कि इन शब्दोंसे भयभीत हो शीघ्र ही दस्यु चन्द्रमाको छोड़ देते हैं। हमारे देशमें आज कल भी ग्रहणके समय घण्टाध्वनि और आनन्दोन्मादसे कोलाहल करते हुए गङ्गास्नान करते हैं।

यह विषय पहिले ही कहा जा चुका है, कि ब्राह्मण इस द्वीपमें कब आये थे, उनके समयका निश्चय करना अत्यन्त कठिन है। जब बौद्ध धर्मका प्रभाव बढ़ा तब बौद्ध साधुओंने अपने धर्मके प्रचारके लिये नाना देशोंमें पर्यटन किया। शालिवाहनकी कगणशना और प्राचीन संस्कृतके सिवाय दूसरी भाषाके ग्रंथका अभाव देखनेसे अनुमान किया जाता है, कि प्रथम या द्वितीय शताब्दीके बीचमें यहां ब्राह्मणोंका आगमन हुआ होगा। पूर्वाञ्चलस्थ द्वीप वासियोंके मध्य ऐसा प्रचार है, कि क्लिङ्ग (कलिङ्ग) देशसे उनके देशमें सभ्यता धर्म और व्यवस्थाका प्रचार हुआ है। पहिले यवद्वीपमें, पीछे वहांसे समस्त स्थानोंमें व्याप्त हो गया। यहां पर शस्यकी प्रचुरता देख भारतवासियोंने उपनिवेशकोंको बसाना चाहा। सबसे पहिले १म शताब्दीमें त्रितुष्टि नामक किसी ब्राह्मणने बहुतसे लोगोंके साथ आ दक्षिण उपकूल पार किया और वे सबके सब मेरु पर्वतके पादमूलमें बस गये। यवद्वीपमें जो सम्वत् चलता है उसको त्रितुष्टि नामके एक प्राचीन राजाने चलाया था। इसीलिये यह सम्वत् आजिशक (आदिशक) नामसे प्रसिद्ध है।

यवद्वीपके एक उपाख्यानसे जाना जाता है, कि पहिले बहुतसे हिन्दू मिल कर यहां आये थे। उनके साथमें स्त्री पुत्र थे, यह भी सहजमें निश्चय किया जा सकता है। महामना त्रितुष्टि भी अपने स्त्री-पुत्र सहित आये थे। उनकी सहधर्मिणीका नाम ब्राह्मण-कालि और दो पुत्रोंका मनुमानस और मनुमादेव था। ये बौद्ध थे, या हिंदू इसका प्रमाण नहीं मिलता। इन्होंने और इनके वंशजोंने यहां कुछसमय तक राज्य किया था।

३५० संवत् तक इस देशमें बहुत औपनिवेशिक आये थे। उनमेंसे कुछ प्रसिद्ध व्यक्तियोंके नाम ये हैं—

शैलप्रवात—१०० शकमें, घोटक—२०० शकमें, सुविल—३१० शकमें, हुतम—३३१ शकमें तथा त्रिसुदि और उनके पुत्र दशबाहु ३५० शकमें यहां आये थे। ४८० शकमें बहुतसे शैव पंडित यवद्वीपमें पधारे; किन्तु उनके मतके साथ यवद्वीप वासियोंका मत नहीं मिलता था, इस कारण वे लोग भगा दिये गये। इन्होंने वहांके राजा शुतुदामकी शरण ली। राजा शुतुदाम उन लोगोंके मतावलम्बी हो गये। यवद्वीपवासियोंके मुसलमान होनेके कुछ समय पहिले कितने शैवोंने मजपहित नामक स्थानके शेष राजा ब्रविजयके यहां आश्रय लिया था। मजपहित राज्यके नष्ट भ्रष्ट हो जाने पर ये लोग वालिद्वीपको भाग गये। उनके अधिपतिका नाम वाहुराहु था।

वालिद्वीपमें इस समय जो शक चल रहा है, वह यवद्वीपकी अपेक्षा ५ वर्ष कम है। इन पांच वर्षोंकी कमी क्यों हुई; वालिवासी पंडित लोग इसका कोई कारण बतला नहीं सके हैं। मालूम पड़ता है, कि चान्द्रमास गणनाके स्थानमें सौर गणनाका परिवर्त्तन, पलिनेशीय गणनाका संमिश्रण आदि दोषोंसे ऐसा विभ्राट हुआ है। पहले १० मासका १ वर्ष, पीछे १२ मासका माना गया। यदि मलमासकी गणना न की जाय तो भी इनके साथ हिंदू पंजिकाकी विभिन्नता देखी जाती है। उन लोगोंको शुभाशुभ घटना और समय निरूपणके लिये पंजिकाकी आवश्यकता नहीं होती। वे लोग विशेष ऋतु द्वारा पार्वतीय फूलोंका प्रस्फुटन, समुद्रका सामयिक गति-परिवर्त्तन अथवा रूपान्तर ग्रहण, अन्य प्राकृतिक निदर्शन आदि घटनाओंको देख कर समयका निरूपण कर लेते हैं।

धर्ममत, देवतत्त्व और विश्वास।

भारतकी दो हिंदू धर्मशाखाओंने वालिद्वीपमें प्रवेश किया था। पहिले लिखा गया है, कि बौद्ध धर्मप्रचारकोंके साथ साथ शैव ब्राह्मणोंने पूर्वाञ्चलस्थ द्वीपमें उपनिवेश बसाये; किन्तु ब्राह्मणधर्मके अधिक प्रचारसे बौद्ध लोगोंका प्रभाव बहुत कुछ जाता रहा। बौद्ध सब प्रकारके पशुओंके मांसको खाते हैं, किन्तु शैव संप्रदायके लोग गाय, कुत्ते आदि अस्पृश्य जीवोंका मांस नहीं खाते।

वालिद्वीपके पंडितके मुखसे सुना जाता है, कि बुद्ध शिवके कनिष्ठ भ्राता थे। दोनों संप्रदाय परस्परमें अविरोधी हैं तो भी कोई किसीके देवकी पूजा नहीं करते, किन्तु पूजा-पद्धतिमें भी परस्पर समानता देखी जाती है।

पञ्चावलिक्रम नामके उत्सवमें शैव पंडित वौद्ध पुरोहितको बुला कर उत्सर्ग किया करते हैं। राजा अथवा राजपुत्रों-की अन्त्येष्टि क्रियाके समय शैव पुरोहित शिवपूजाके और वौद्ध पुरोहित वुद्ध पूजाके जलका मृतदेहके मस्तक पर सिंचन करते हैं। इसके अलावा कविग्रंथमें वौद्ध और शैवके परस्पर सुहृद्भावोंको ले कर अनेक कथायें लिखी गई हैं।

प्राचीन ब्राह्मण धर्ममें इन लोगोंकी प्रगाढ़ भक्ति थी, तो भी ये लोग शिवोपासक कहे जाते थे। इन लोगों-का धर्मशास्त्र दो भागोंमें विभक्त है, पुरोहितोंको स्वगृह-में गुप्तपूजा और जनसाधारणकी पूजा।

वैदिकयुगके ब्राह्मणोंके सूर्य और अग्नि उपासना-की तरह ये लोग अपने गृहमें सूर्यकी पूजा करते हैं। इसी सूर्यको ये लोग शिव मानते हैं, क्योंकि शिवके तीन नेत्र ही सूर्यके रूपान्तर हैं।

हर एक पंडित प्रति पूर्णिमा और अमावस्याके दिन प्रातःकालमें ६ से ले कर १० घड़ी तक अभुक्त रह घरमें सूर्यकी उपासना करते हैं।

पंडित लोग तीन दिनके अतिरिक्त कालिवनमें (पलि-नेशिय सप्ताहके ५वें दिन) देवको भक्तिसे उत्सर्ग करते हैं। अलिङ्ग, कलिङ्ग आदि उच्च श्रेणीके याजकलोग प्रतिदिन देव-सेवा करते हैं; किन्तु अमावस्या और पूर्णिमा-को छोड़ अन्य किसी दिन देवपूजाका विशेष उत्सव नहीं होता। घरके सामने पूर्व दिशामें मुख कर सूर्यकी पूजाके लिये ये लोग वैठते हैं। नैवेद्य, अक्षत आदि उप-करण, फूल, जल, घंटा आदि सभी पूजाकी सामिग्री सज्जित रहती है। विधिपूर्वक वेद मंत्रका उच्चारण करके पूजा साङ्ग करनेसे देवावेश होता है। इस समय भक्तिपूर्वक नृत्य होता है। वे देहस्थित देवकी फूलोंसे पूजा करते हैं। पूजा करते समय उन लोगोंके पुत्र पिताके सम्मुख कुछ समय तक खड़े रहते हैं, वादमें हट जाते हैं। उनके प्रसादको राजा आदि सभी ग्रहण करते हैं। वे उसको अमृतके समान मानते हैं। पूजाके समय जिस जलको पंडित लोग काममें लाते हैं वह 'तोयतीर्थ' कहा जाता है। यह भी वहुत पवित्र होता है। जनसाधारण इस-को पंडित लोगोंसे खरीद कर अपनी देहमें या मृतककी देहमें पवित्रताके लिये लगाते हैं। गृहस्थियोंकी पूजा अथवा श्राद्धादिक अत्येष्टि क्रियाओंमें ये लोग उप-स्थित हो कर सम्पूर्ण क्रियाओंको विधिवत् कर-वाते हैं।

अपने गृहोंमें ये वेद, ब्रह्माण्डपुराण और कविग्रंथोंकी आलोचना करते रहते हैं। अपने पुत्रों तथा क्षत्रिय-वालकोंको उच्चशिक्षा देते हैं। जो लोग शुभाशुभ उनसे पूछने आते हैं उनको शुभाशुभ ज्योतिषगणनाके अनु-सार वतलाते हैं। ये वालिद्वीपकी पंञ्जिका या पंचाङ्गको वनाते हैं। यदि कोई नवीन अस्त्रको तैयार करे, तो विना मंत्रोंके पवित्र किए हुये वह अस्त्र ठीक तरहसे नहीं चलता।

जनताकी मङ्गल-कामनाके लिये ये मन्दिरोंमें पूजा किया करते हैं। उस पूजामें सव श्रेणीके लोग आते हैं। गुनुङ्ग अनुङ्ग पर्वतके पादमूलमें वासुकीका मंदिर ही सर्वश्रेष्ठ है। यहांकी देवमूर्त्तिका नाम 'सङ्गपूर्णजय' है। इसके सिवाय तवाननके वतुकहु मंदिरमें, 'सह जयनिङ्गात्' वदोङ्गके उलु-वतु मंदिरमें 'देवीदनुर', प्रहुमें 'सुङ्ग माणिक कुमारङ्ग,' गिया न्यरके जरुक मंदिरमें 'सङ्गपुल जय', क्लोङ्कोङ्गके गिवलव-मंदिरमें 'सङ्गीङ्गजय' और तवानानके पकेन वुङ्गन मंदिर में 'सङ्ग माणिक कलेव' नामक देव मूर्त्तियां है। महादेवकी समस्त मूर्त्तियोंके हाथमें तलवार, धनुष और वर्छा आदि अच्छी तरह सजे हैं। इन प्रधान प्रधान मंदिरोंमें राजा लोग प्रजाकी मंङ्गल कामनाके लिये पूजा करवाते हैं। उलुवतुके मंदिरमें वालि वर्षके इक्कीसवें दिन और वासुकीके मंदिरमें कार्तिककी पूर्णिमाको वड़ा भारी महोत्सव होता है। इनके सिवाय और भी वहुतसे प्रधान मंदिर हैं जिन्हें सभी मनुष्य भक्तिकी निगाहसे देखते हैं।

१—सेरङ्गन द्वीपस्थ सकनन मंदिरमें सङ्गह्यङ्ग इन्द्र-नामक वज्रधारी इन्द्रमूर्त्ति है। नूतन सालके ११ वें दिन उस मंदिरमें महोत्सव होता है।

२—वङ्गलीके जेमपुल मंदिरमें भी इन्द्रमूर्त्ति है। इनके सिवाय जेमब्रोना, ३ रम्वोत्सवि, ४ समेतिग और गियान्यरके, ५ किन्तेलगुमि मंदिरके देवताका ऐसी शक्तिकी कथायें प्रचारित हैं।

पनतरणमें दुर्गा, काल और भूतोंकी तृप्तिके लिये सब लोग उनको पूजते हैं। पुरी नामके मन्दिरमें उच्च जातिके मनुष्य और 'पङ्गुस्तनन' मन्दिरमें शिवजीकी सभी लोग पूजा किया करते हैं। 'परार्यङ्गन' नामक मन्दिरोंमें देव और पितृगणकी पूजा हुआ करती है। कहाङ्गन, खड़क-हाङ्गन सङ्गर और मेरु आदि छोटे छोटे मन्दिर महादेवकी पूजाके लिये निर्दिष्ट हैं। इन मन्दिरोंमें शिवजी पद्मासन लगा कर बैठे हैं। उन्हींके तृप्ति-साधक माल्य और चन्दनादि गंध द्रव्य चढ़ाये जाते हैं। प्रत्येक मन्दिरमें लिंगकी मूर्त्ति स्थापित है। समुद्रके किनारे बहुतसे वरुणदेवके मन्दिर हैं। राहमें सतियोंके अनेक मन्दिर दृष्टिगोचर होते हैं।

वालिद्वीपमें वैष्णवधर्मका प्रचार नहीं है, तो भी ब्राह्मण शिवपूजाके समय विष्णु भगवानकी पूजा करते हैं। ये ही बहुत कुछ हम लोगोंकी हरिहरमूर्त्तिके एकात्म-सूचक हैं। वे मेरु, कैलाश और गुनुंग अगुंङ्गको स्वर्ग या इन्द्रलोक, विष्णुलोक या ब्रह्मलोक और शिवलोक कह कर कल्पना करते हैं और उन तीन लोकोंमें शिवजी सर्वमय रूपमें विराजमान हैं। पदण्ड लोग शिवजीके सिवाय और किसी भी देवताके चार हाथ नहीं मानते।

शिवजीके प्रधान अंगआभूषण ये सब हैं—अक्षमाला, चामर, त्रिशूल और पान। कितनी सशस्त्र शिवमूर्त्तियोंका पहिले ही उल्लेख हो चुका है। शिव और काल एक होने पर भी मंगलमय शिवमूर्त्ति तुषारधवल और महासंहारक कालमूर्त्ति घोर तामस हैं। पनतरणमें काल और उनकी पत्नी दुर्गा तथा अनुचर भूतोंकी पूजा होती है। शिव पत्नी उमा, पार्व्वती, गिरिपुत्री, देवीगङ्गा और देवीदनु नामोंसे पूजित होती हैं। शस्याधिष्ठात्री लक्ष्मीदेवी यहां पर शिवपत्नीके रूपमें महादेवजीके साथ पूजी जाती हैं।

विष्णुकी तरह यहां ब्रह्माजीका कोई मंदिर नहीं है। किसी महोत्सवमें विष्णु और ब्रह्ममूर्त्तिके साथमें अस्थायी मंदिर बनता है। उत्सवके बाद वह पुनः तोड़ दिया जाता है। यहां ब्रह्मा-पद्मयोनि, प्रजापति और चतुर्मुख नाम-से विख्यात हैं। दण्ड ही ब्रह्माकी प्रधान भूषा है। जो ब्राह्मण पण्डित उस दण्डका धारण करते हैं, वे ही पदण्ड कहलाते हैं।

ब्रह्माकी पत्नी सरस्वती देवी यहां विद्या नामसे पूजित हैं। उनकी पूजाका कोई दूसरा भिन्न मंदिर नहीं है। वतु गुनोङ्ग सप्ताहमें शनैश्चरके दिन वालि-वासी नाना पोथियोंको इकट्ठा कर गृहस्थित देवालयमें सरस्वतीकी पूजा करते हैं।

वालिवासी यद्यपि विष्णुका विशेषरूपसे पूजन नहीं करते, तो भी वे विष्णुके मत्स्य, वराह, कूर्म्म, वामन, परशु-राम प्रभृति अवतार स्वीकार करते हैं। शंख, चक्र, गदा और दण्ड विष्णुके प्रधान चिह्न हैं।

वे लोग श्री या लक्ष्मीको विष्णुकी पत्नी मानते हैं। जब विष्णु, ब्रह्मा और शिव (स्रष्टा रक्षक और संहर्त्ता) ये तीनों शक्तियां एक हैं, तब लक्ष्मी सरस्वती प्रभृतिको शिव-की पत्नी माननेमें कोई दोष नहीं है। वे लोग अभ्यास-वशसे विष्णुमूर्त्तिके माथे पर तिलक लगाते हैं। शिवके जिस तरह तीन नेत्र हैं, उसी तरह कपालस्थ तिलकको वे लोग शिवके त्रि-नेत्र जैसा व्यक्त करते हैं। वैष्णवी मूर्त्ति लक्ष्मी और सरस्वतीके माथे पर 'पेरमशन' या ग्रन्थितिलक देते हैं। प्राचीन कविग्रंथोंमें कहे हुये अनेक देवताओं-की मूर्त्तियां भी खुदी हुई हैं। ये हिंदू देवताओंका तित्व स्वीकार करते हैं, तो भी उनके यहां ब्रह्माण्ड पुराणोक्त अपरापर देवताओंका उल्लेख मिलता है। इन्द्र, यम, सूर्य, चन्द्र, अनिल, कुवेर, वरुण, अग्नि आदि आठ देवताओं-को ये लोकपाल कहते हैं। इन्द्रके बाद यम और वरुण-का ये आदर सत्कार करते हैं। देवराज इन्द्र स्वर्गपुरी-में अप्सरा, विद्याधरी और ऋषियोंसे परिवृत हो रहते हैं।

'विवाह' नामके ग्रंथमें रावणके द्वारा किया गया इंद्र-का पराभव वर्णित है। वालिवासियोंका विश्वास है, कि इन्द्रलोकवासी मनुष्य देहको धारण कर सकते हैं। इन्द्रलोकको पार कर जीव विष्णुलोकको जाता है। पश्चात् शिवलोक जाने पर आत्माको अनन्त सुखकी प्राप्ति होती है। शिवलोककी प्राप्ति ही सबोंका मुख्य उद्देश्य है, तो भी एकमात्र पदण्ड लोगको ही सायुज्यकी प्राप्ति होती है। वे अनेक परिश्रम करने पर भी शिवलोक नहीं पा सकते। वेला-उत्सवमें सहमृता सतीके और राज्यकी रक्षाके लिये रणक्षेत्रमें आत्मजीवनकी न्योछावर करनेसे राजाको स्वर्ग-

प्राप्ति होती है। किन्तु यदि इस आत्मोत्सर्गके समय पुरोहित उपस्थित न हों या शास्त्रविहितकर्म द्वारा स्वर्गगमनका पथ परिष्कार न किया गया हो, तो उनको कभी भी स्वर्गलाभ न होगा। वे मेढ़क और सर्प हो कर पृथ्वी पर वहुत काल तक विचरण करेंगे। स्वर्ग पहुंचने पर भी यम उनके पुण्यपापका यथोचित रीतिसे विचार करते हैं। इसी विश्वासके वशीभूत हो वे शवका कभी कभी दो माससे २० वर्ष तक दाह नहीं करते।

दूसरे लोकपालोंमेंसे किसीकी पूजा नहीं की जाती। अनिल और वायुसे सम्पूर्ण जीवोंकी रक्षा होती है, अतएव उनका भी वे यथासाध्य आदर सत्कार करते हैं। पदण्ड और वैद्य लोग समय समयमें पवित्र वायु या फुत्कार द्वारा रोगोंकी चिकित्सा करते हैं। अनशनव्रतमें वायुमात्रका वे सेवन करते हैं।

कार्त्तिकेय और गणेशजीकी पूजा कहीं भी देख नहीं पड़ती। प्रत्येक प्रवेशद्वारमें एक विघ्नविनाशन गणपतिजीकी मूर्त्ति प्रतिष्ठित हैं या कहीं कहीं उनका चित्रमात्र ही लगा हुआ है। गणपतिजीके हस्तिमुण्ड होनेके कारण वालिवासियोंकी धारणा है, कि यह पशु मनुष्यके मङ्गलप्रद नहीं है। वोलेलेङ्गराज हाथीकी पीठ पर बैठ कर घूमते हैं। उनको देख सबके सब समझते हैं कि वे या तो राज्यसे भ्रष्ट या पाप पङ्कमें मग्न हो गये हैं। व्याघ्रसे तो वे महा घृणा करते हैं। यदि राज्यमें व्याघ्रका उत्पात हो जाय, तो सब लोग विश्वास करने लग जाते हैं, कि शीघ्र ही राज्यमें उपद्रव होगा या उसका उपद्रव होना ही राज्यके अधःपतनका कारण है। किन्तु गैंड़ाको देखने पर, चाहे इस जन्ममें हो या पर जन्ममें, वह अवश्य ही सम्मानको प्राप्त करेगा, ऐसी उन लोगोंकी धारणा है। किसी किसी महायज्ञमें वे गैंड़ाकी वलि देते हैं। इसका रक्त, मांस, चर्वी उन लोगोंके व्यवहारमें आती है। वहुतसे मनुष्य कामदेवकी भी पूजा करते हैं। इनके प्राचीन काव्योंमें वासुकी, अनंत, तक्षक नागकी कथा, जनमेजयका सर्पयज्ञ, भगवान् वशिष्ठका राक्षस-यज्ञ और किन्नर, किंपुरुष, उरग, दैत्य, दानव, गंधर्व, पिशाच आदि पुराणोल्लिखित कथाएं पायी जाती हैं।

सृष्टितत्त्व।

वालिके हिंदूलोग सृष्टितत्त्वके विषयमें ब्राह्मण पुराणका मत स्वीकार नहीं करते। वे अण्डसे जगत्‌की उत्पत्ति मानते हैं। पहिले सनन्द और सनत्कुमारादि चार जन ही पैदा हुये थे। बादमें ब्रह्माने क्रमसे स्वर्ग, नद, नदी, पर्वत और उद्भिज आदि तथा मरीचि, भृगु अङ्गिरा प्रभृति देव, ऋषि गणकी सृष्टि की।

सर्वलोक पितामह ब्रह्मा ही परमेश्वर शिवके स्रष्टा हैं। फिर शिव ही ब्रह्माके पितामह माने जाते हैं तथा उनके भव, सर्व आदि नाम भी उल्लिखित हैं। शारीरिक उपादान भेद उनके ये हैं—१ आदित्यशरीर, २ अपशरीर, ३ वायुशरीर, ४ अग्निशरीर, ५ आकाश, ६ महापण्डित, ७ चन्द्र और ८ अवतारगुरु आदि। यही कारण है, कि वे अष्टतनु नामसे भी प्रसिद्ध हैं। ब्रह्माने अपने कल्प और धर्म नामक दो पुत्रोंकी सृष्टिके बाद यथाक्रम देव, असुर, पितृ, मानव, यक्ष, पिशाच, उरग, गंधर्व, गण, किन्नर, राक्षस और सबके अन्तमें पशु आदिकी सृष्टि की। पीछे उन्होंने ब्राह्मण आदि चार वर्णोंको रचा। अनन्तर स्वायंभुवादि मनु, शतरूपा, वारह यम, लक्ष्मी, नील लोहित (शिव)से सहस्र रुद्र, अग्नि और मेघोंकी उत्पत्तिकथा तथा धर्म और अहिंसा, श्री और विष्णु, सरस्वती और पूर्णमासके विवाहादि प्रसंग लिखे हैं। स्वायम्भुव आदि मन्वन्तरमें और भी एकादश रुद्र, द्वादश आदित्य, अष्ट वसु, दश विश्वदेव, द्वादश भार्गव आदि विद्यमान थे।

वालिवासी भी पृथ्वीको सात द्वीप मानते हैं। उनके ब्रह्माण्ड पुराणमें भी पृथिवीका वर्ष विभाग तथा अग्निध्रादि स्वायंभुव मनुके पौत्रोंकी शासनकथा कही गई है। कृत, त्रेता, द्वापर और कलि आदि चार युग ही वे लोग स्वीकार करते हैं। क्रमः क्रमसे मनुष्यकी संख्या घटती है। यह भी वे लोग मानते हैं।

शास्त्रोंमें ब्राह्मणसन्तानके आचरणीय अनुष्ठानादिका विषय इस तरह लिपिवद्ध है,—१ वाल अवस्थामें ब्रह्मचर्यपूर्वक गुरुके घर पर विद्याध्ययन, २ विद्यावंधनमें आवद्ध हो गृहस्थ धर्मका प्रतिपालन, ३ वैखानस (वानप्रस्थ) अवलम्बन, ४ अन्तमें छह शत्रुओंको जीत कर

यतिधर्मका ग्रहण । यहां पर यतिशब्दसे साधक अथवा पदण्डका ही बोध होता है। पाठ्यावस्थामें जो 'सत्य-ब्रह्मचारी' होते हैं, उन लोगोंको तप, मौन, यज्ञ, दया, क्षमा, अलोभ, दम, शमता, जितात्मता (जितेन्द्रियता), दान, अनमः, अक्षेप, अराग, सर्वविषयोंमें विरागत्याग तथा भेदज्ञाननिर्णयकुशलता आदि विषयोंकी शिक्षा देनी पड़ती है। इसीको वे लोग धर्म प्रत्यङ्ग लक्षण कहते हैं। अन्यान्य बहुत विषयोंमें ये लोग ब्रह्माण्ड पुराणके अनुवर्ती हो कर चलते हैं।

प्रत्येक पण्डित प्रतिदिन वेद मंत्रोंका पाठ करते हैं। स्त्रियां पूजाके उपकरण नैवेद्य और आदि तैयार कर देवताके सामने उपस्थित करती हैं। केवल मात्र देवादिष्ट चन्द्रकिन् पुरुष महोत्सवके उपकरणोंका आयोजन करते हैं। काल, दुर्गा और भूत आदि देवोंके सामने वे लोग कुक्कुट, हंस, शूकर तथा महापूजामें महिष, बकरे, हरिण, कुत्ते आदि पशुओंको बलि देते हैं। कुत्ते आदि घृण्यपशुओंका मांस कोई भी नहीं खाता।

गुनुङ्ग अगुङ्ग पर्वतके नीचे वासुकिके समीप तोयसिन्धु और तपोवनमें गङ्गा नामकी छोटी नदी बहती है। पुरोहित लोग इसके जलको इतना पवित्र नहीं मानते। उनका कहना है, कि पवित्र जलवाली सिंधुनदी क्लिङ्ग (कलिङ्ग अर्थात् भारतवर्ष) देशमें बहती है। उसका जल यहां नहीं मिलनेके कारण वे लोग जलशुद्धिके लिये यमुना, कावेरी, सिन्धु, गङ्गा, सरयू आदिका नाम उच्चारण करते हैं। ककुद्युक्त सफेद गायको छोड़ अन्य किसीके दूधसे वे लोग देवोपहारके लिये घी तैयार नहीं करते। वे गोधनको यद्यपि पवित्र नहीं मानते, तो भी कभी गोहत्या नहीं करते हैं।

साधारण रूपसे देवपूजामें पदण्डोंको वस्त्र और दक्षिणा दी जाती है। प्रसाद उपकरण आदि गृहस्थ ही लेते हैं। राजयज्ञ और अन्त्येष्टिक्रियामें पदण्डोंको बहुत लाभ होता है। पूजाके अन्तमें इनको दक्षिणा मिलती है। देवके शरीरमें शोभावृद्धिके लिये नाना तरहके आभूषण पहराते हैं।

शिवजीके अलङ्कार ये सब हैं--(मस्तकमें) ग्लुङ्गचण्डि, पपुदुकन, पट्टिश, मङ्गलविजय, चूड़ामणि। (कर्णमें) कुण्डल, सकर तजि, रोण; (गलेमें) अपुस कूपक; (ऊपर हाथमें) ग्लङ्कन; (नीचेके हाथमें) ग्लंग और (पैरमें) ग्लंगवटि। इनके सिवाय नागवङ्ग शूल प्रभृति बहुतसे अलङ्कार सम्पूर्ण अंगोंकी शोभा बढ़ाते हैं। श्री उमा प्रभृति शिवजाया और विष्णु मूर्त्तियोंके भी तरह तरहके आभूषण हैं।

प्रत्येक मन्दिरमें मंकु (माणवक) नामका एक तत्त्वावधायक आचार्य रहता है। मन्दिर संस्कार और उपहारके उत्सर्ग करनेके समय वेदपाठ प्रभृति विषयोंमें उसकी आवश्यकता होती है। पुरुष या स्त्री दोनों ही मंकु हो सकते हैं। शूद्रको छोड़ और सभी वर्णके मनुष्य इस पदके अधिकारी होते हैं। किंतु ब्राह्मणकी विवाहिता सवर्णा स्त्रीको छोड़ और कोई भी ब्राह्मण-स्त्री इस पदको नहीं पा सकती। मंकुसे पदण्ड पद श्रेष्ठ है और पदण्डोंसे भी पंडित लोगोंने ज्ञान और धर्मकर्म कार्यमें श्रेष्ठता प्राप्त की है। बवलेन लोग ईश्वरानभिज्ञ होने पर भी कार्यकालमें वे मंकु लोगोंके समान मन्त्रपाठ करा सकते हैं। बवलेन पंडितोंके समान रोग चिकित्सा भी करते हैं। रोगको झाड़नेके समय वे मन्त्रपाठ करते करते रोगीके शरीरमें अपनी निश्वास वायुको प्रवेश करा देते हैं।

राजाओंके महोत्सवमें, उच्चपदस्थ मनुष्योंको अन्त्येष्टि क्रियामें और पूर्णिमा तथा अमावस्याकी पूजामें पदण्ड (पंडा) श्वेत वस्त्र पहनते, माथे पर जटा रखते और जटाओंके बांधनेके लिये माथे पर केशाभरण बांधते हैं। वह मुकुटके समान स्वर्ण मंडित, स्थान स्थानमें सूर्यकान्तमणि शोभित होता है। उस केशाभरणके ठीक बीचमें मस्तकके ऊपर स्फटिक निर्मित लिंग लगा रहता है। कुण्डलके सिवाय उनके अन्य कर्णाभरण भी होता है। अलावा इसके वे आत्माभरण, वायुभरण, हस्ताभरण नामके अनेक आभरण और अंगूठी पहनते हैं। इनमें जो त्रिदण्डी ब्राह्मणबन्ध (यज्ञोपवीत) धारण करते हैं उसके ग्रन्थिस्थलमें तीन लिंगमूर्त्ति, नीचे त्रिमूर्त्ति-सूचक भिन्न भिन्न वर्णके तीन पत्थर रहते हैं। यज्ञोपवीताकारमें घुमा कर वे उत्तरीय वस्त्रको वामस्कंधसे दक्षिण हाथके नीचे डालते हैं। पदण्डोंको छोड़

क्षत्रिय ब्रह्मवंधको धारण नहीं कर सकते। युद्धयात्राके समय पदंडके आदेशसे क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र सभी ब्रह्मवंध डाल सकते हैं। उस समय यही उनका सम्पात् वा कवच स्वरूप हो जाता है। देवता और पितरोंकी तृप्तिके लिये ये लोग पशु वलि देते हैं। उस समय उनको एक महाभोज देना पड़ता है। दुर्गा, काल, भूतोंका उल्लेख पहिले ही किया जा चुका है। राजाकी विजयमें, अभिषेकमें, मातारोग फैलनेके समय, भयकाल और पंचवलिक्रम नामकी पूजाके समय महाभोजकी आयोजना की जाती है। राजा या राजपुरुष इस उत्सवका अनुष्ठान करते हैं। 'ओङ्क' शब्द ही त्रिशक्तिका बीज है। भारतवर्षमें जिस प्रकार अ उ म (ओम्) त्रिशक्तिका आधार कल्पित हुआ है, उसी प्रकार वालिद्वीप-वासियोंने उस वर्णसङ्कको अङ्ग उङ्ग और मङ्ग अर्थात् सदाशिव, परमशिव, महाशिव वा ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वरका त्रित्व प्रतिपन्न किया है। ब्रह्मा और ब्रह्माके साहचर्यसे शिवका महत्त्व वा महाशक्ति उत्पन्न हुई है।

यद्यपि अन्त्येष्टि क्रिया सामाजिक आचारके अन्दर गिनी जाती है तो भी उनके यहां धर्मसंगत क्रिया कलापका बाहुल्य देखा जाता है। यहां तक, कि वे उसीको एक धर्मका प्रधान अंग मानते हैं। इन लोगोंका विश्वास है, कि देहके जलाने मात्रसे हो उसको स्वर्ग नहीं मिलता। स्वर्गलोकसे विष्णु और वहांसे शिवलोकमें सायुज्य मुक्ति पानेके लिये तथा स्वर्गगमन पथ परिष्कार करनेके लिये वे नाना तरहके क्रियानुष्ठान करते हैं। ये आत्माको देहान्तर प्राप्ति स्वीकार करते हैं।

इन लोगोंका विश्वास—दाहके पूर्व और वाद मृतककी स्वर्गकामनाके लिये जो उपहार दिया जाता है उससे वह प्रेतात्मा निर्विकार हो पितृरूपसे देवलोकमें अवस्थान कर सकती है। उनके पुत्र और बंधुबांधव पितृ पुरुषोंको अवस्थान्तर या भिन्न योनि प्राप्त न हो, इस आशासे ऐसी पूजा और उपहारादि देनेके लिये वाध्य होते हैं। मृतकी मोक्ष कामनासे शास्त्र विहित दाह करनेमें अवश्य ही प्रचुर धनकी जरूरत है। इस कारण बहुतसे निर्धन लोग ऐसा क्रियानुष्ठान नहीं कर सकते। असमर्थोंके लिये शव देहका दाह न करने पर उसे गाड़ देनेका नियम है। कुछ लोग बांसकी फट्टियोंका टट्टर बना उस पर शवको सुला देते और ऊपरसे एक अच्छा कपड़ा ढक देते हैं। फिर गान करते करते वे शवदेहको समाधि स्थान पर ले जाते और टट्टर समेत शवको गाड़ देते हैं। सामर्थ्यके अनुसार उसी समय कब्रके भीतर मृतकको भविष्यमें खानेके लिये कुछ रुपये रखने पड़ते हैं। पश्चात् उस कब्रके ऊपर एक बांसके दण्डसे तख्ता तैयार कर भूतोंकी तृप्तिके लिये उस पर खानेकी चीजें रखते हैं। ऐसी क्रियाहीन अवस्थासे जो मरते हैं उनको कभी भी स्वर्गकी प्राप्ति नहीं होती। इनका कहना है, कि वालिद्वीपमें जितने वर्णोंके कुत्ते दिखाई पड़ते हैं वे पूर्वजन्ममें शूद्रको छोड़ और कोई भी नहीं था। इनमें यह विधि है, कि यदि एक वंशमें दो तीन पीढ़ीके बाद कोई धनवान पैदा हो, तो वह कब्रमेंसे अपने पूर्वजोंकी अस्थि निकलवा कर उसकी अंत्येष्टि क्रिया कर सकता है। अतएव बहुत पुरुषोंके आत्मीय स्वजनोंकी अस्थिका समाधिसे निकलवा कर धनवान् पुरुष उनको अपने अपने वकसमें रखते और उनकी मुक्ति कामनासे अन्त्येष्टि क्रिया करते हैं। महामारी या संक्रामक रोगसे मरने पर राजा और प्रजा एक ही साथ गाड़े जाते हैं। उस समय किसीको पृथ्वी पर रख कर जलानेका नियम नहीं है। क्योंकि, उसमें जानना होगा, कि कुग्रहोंका प्रभाव निश्चय हो बढ़ गया है। अन्त्येष्टि आदि किसी कार्यके द्वारा देवकोप-प्रशमन वा उससे प्रेतात्माकी मुक्ति नहीं हो सकती। इस समय गलुंगुन उत्सव भी नहीं हो सकता।

यह पहले ही कहा जा चुका है, कि ये लोग शवका दाह या दफन न करके उससे बहुत काल तक अपने घर हीमें रखते हैं। शूद्रको घरमें मृत देह रखनेसे मासाधिक अशौच, ब्राह्मणको आठ दिन और क्षत्रिय तथा वैश्यको भी करीब करीब उतने ही दिन अशौच होता है। मृत्युके दिन वा एक मास या एक सप्ताहमें मृतककी अंत्येष्टि क्रिया करनी ही होगी, ऐसा कोई नियम नहीं है।

अंत्येष्टि क्रिया करनेके पहिले कुछ उपक्रिया करनी पड़ती हैं। मृत्युके बाद शवदेहको स्नान करा स्वजन बंधु लोग चंदन, कस्तूरी, इलायची आदि सुगंधि लेपनके द्वारा शव शरीरकी रक्षा करते हैं। राजाकी मृत्यु होने

पर समन्त आ कर सुगंधि द्रव्योंका लेपन करते हैं और प्रत्येक अंगमें एक एक मुद्रा रख कर शव देहको वस्त्र, चटाई आदिसे ढक देते हैं। उन द्रव्योंसे शरीरमेंसे रस निकलने लगता है। वह रस नीचे रखे हुये बालि नामके पात्रमें जमा होता रहता है, अन्तमें वह फेंक दिया जाता है।

छह मासमें देहका दाह नहीं होनेसे देह सूख जाती है। यदि छह मासमें भी वह रस न सूखे, तो तोयतीर्थ यथा पवित्र जल और नाना तरहके उपहार मृतके सम्मुख दिये जाते हैं। पश्चात् शव शरीरमें भूतयोनि प्रविष्ट होती है। इसी भयसे वे उसके मुखमें एक सोनेकी अंगुठी रख देते हैं।

दाहके तीन दिन पूर्व शवका आवरण हटा दिया जाता है और आत्मीयगण उससे अन्तिम विदा लेनेके लिये आते हैं। इस समय पूर्वोक्त अङ्गराग जलसे धो कर फिर उसे ढक दिया जाता है। बादमें सोनेकी अंगूठीके बदले पांच धातुपात्रोंमें ओम् शब्दके साथ स, ब, त, ऽ, ये पांच बीजाक्षर लिख कर शवके मुखमें रख दिये जाते हैं। बीजोंमें कहे हुये पञ्च देव ही उस शवकी रक्षा करते हैं। पश्चात् देवपाठ और शवके ऊपर शान्तिवारिका सिञ्चन किया जाता है।

जिस गृहमें शव रक्खा जाता वह अशुद्ध हो जाता है। दाह तक उस घरमें उसका कोई वंशधर वास नहीं करता। किन्तु भूतोंका अड्डा हो जानेके भयसे उसके अन्दर कोई न कोई आता जाता ही रहता है। बदोङ्ग और देनपस्सर राजाओंके शवकी रक्षाके लिये स्वतंत्र महल बना हुआ है। शवरक्षाका खर्च थोड़ा है; किन्तु दाहकी प्रक्रिया अत्यंत गुरुतर और बहुत खर्चेकी है। शववहनके लिये प्रासादसे 'वदे' (चिता-चूड़) तक ले जानेके लिये एक बांसका सेतु बांधना पड़ता है। यह सेतु बढ़िया तौरसे सजाया जाता है। उसके ऊपर मेरुके मानिंद एक चूड़ाकार मंदिर बनाया जाता है। इस मंदिरकी शोभा भी अकथनीय है। अवस्थाके भेदसे चूड़ा तीन तल वा ग्यारह तल तकका होता है। उसके भीतरके घर भी अच्छी तरहसे सजाये जाते हैं। राजाओंका शव ला कर उसे सबसे ऊपर-वाले तलमें सफेद वस्त्रसे ढक कर रक्खा जाता है। यह शवयात्रा भी महासमारोहसे की जाती है। शवको ले जाते समय उसके व्यवहार करनेके सब द्रव्य उसके साथ रक्खे जाते हैं। इन लोगोंकी शवयात्रा इस तरह निक-लती है—पहिले वाहक, पीछे चन्दनादि काष्ठभार वाद्य, अस्त्र-शस्त्र परिवृत सेनापुरुष, राजउपभोग द्रव्यादि, रम-णियोंके सिर पर भूतोंकी तृप्तिके लिये उपहार, वर्छाधारी सेना, राजव्यवहार्य्य सेना, राजाके वस्त्रच्छत्रादि, प्रिय अश्व पर चढ़ा हुआ राजपुत्र वा पौत्र और सबके बाद सेनादल तथा वादकश्रेणी रहती है।

द्वितीय स्तवकमें सौसे अधिक स्त्रियोंके सिर पर तोय-तीर्थके जलपूर्ण कुंभ रहते हैं। तृतीय स्तवकमें भूतों (बन्तेन दगन)-के फलमूल और मांसादि आहार करने योग्य चीजें रहती हैं। उसके बाद पालको, पदण्ड और उनके पीछे बदेसंयुक्त एक बड़े आकारका कृत्रिम सांप रहता है। उस सांपको मार कर ये शवके साथमें जला देते हैं। बदेके ऊपर रक्खी हुई शवके पीछे सह-मृताकांक्षिणी बेला और अन्यान्य आत्मीय रहते हैं। इस महायात्राके समय कविभाषामें गान होता है। सो भी शोक सूचक नहीं, रामायण अथवा भारतयुद्धका सुललित उद्धृत अंश।

गियान्यरमें पर्वतके ऊपर एक स्वतंत्र दाहस्थान है। इसके चारों तरफ ईंटोंके स्तम्भ और प्राचीरसे परि-वेष्टित हैं। बीचमें वलि नामका स्थान है। इसके पास ही चार लाल स्तम्भोंके ऊपर छत या गृह है। यहीं पर शवका दाह होता है। जहां राजाओंके शरीर जलाये जाते हैं वहां पर एक सिंह स्थापित है; किन्तु दूसरे मनुष्यों-के लिये श्वेत या कृष्ण गोचिह्न होता है। सहमरणाभि-लाषिणी रमणियोंके दाहके लिये राज दाहस्थानके वाम भागमें तीन बेलास्थान बने हुये हैं। साधारण लोगोंके लिये ऐसे चूड़ागृह नहीं बन सकते। उनको लकड़ीके बक्समें ही रख कर भस्म करना पड़ता है। इन संदूकों का आकार कोई कोई पशुओंके आकारका बनाते हैं। उन बक्सोंमें शवको ढक कर रख दिया जाता है।

दाहकी पूर्ववर्त्ती क्रिया सम्पन्न करा पंडितगण शव-देहको चितास्थानमें दाहके लिये ले जानेकी अनुमति देते हैं। क्षत्रियोंकी चिंताके सामने करीब १२० हाथका

सांप तैयार करते हैं जिसे वे लोग नागवन्ध कहते हैं। पंडित इस कृत्रिम सांपको मार कर मृत देहके साथ जला देते हैं।

शवके दाहस्थानमें पहुंचने पर पहले उसे अरथी पर-से नीचे उतारते हैं। वादमें कपड़ा ढक कर उसे सिंह या गोमूर्त्तिके वक्समें रख देते हैं। इस समय उप-स्थित लोग उसके वस्त्रोंको लूट लेते हैं और कुछ घरको लौटा ले जाते हैं। पीछे उपस्थित पण्डित एक घंटा कुछ मंत्र पढ़ कर और शवका पवित्र देहसे सिंचन कर चले जाते हैं। पुरोहितका कार्य जव पूर्ण हो जाता है तव वालिदल वक्सके नीचे चिता वना उसमें आग लगा देते हैं। देहके जल जाने पर उपस्थित आत्मीय लोग अस्थियोंको निकाल उनको अच्छी तरह उपकरणोंसे सजा समुद्रमें फेंक देते हैं। इस समय पदण्डोंको मंत्रपाठ करना पड़ता है। इन कार्योंके लिये उनको ५०० रु० और तरह तरहके वस्त्र, पकवान मिलते हैं। इस प्रधान अन्त्येष्टि क्रियाके वाद एक वर्ष तक प्रत्येक पक्षमें इसी तरह समारोहसे दाह स्थानमें जाना पड़ता है। इस प्रकार कई वार शवके वदलेमें अरथीके ऊपर पुष्पस्तूप सजा कर श्मशान ले जाते और उसे क्षण भंगुरकी तरह प्रति वार समुद्रमें फेंक देते हैं। इस प्रकार एक वर्षके भीतर मृत आत्माके लिये वहुत उपहार दिया जाता है, जो मासिक श्राद्धके समान होता है। दाहकर्मके एक वर्ष वाद जव वार्षिक श्राद्ध हो जाता है तव वे मृतात्माका स्वर्गलाभ मानते है।

यहां भी सहमरणप्रथा प्रचलित थी। वहु विवाह प्रचलित रहनेके कारण एकसे अधिक स्त्रीग्रहण करते थे। राजा नग्रुर शक्तिका ५ सौ रमणिका पाणिग्रहण उसका अन्यतम दृष्टान्त है। एक स्वामीकी मृत्यु होने पर उसके पीछे वहुत स्त्रियोंको अग्निज्वालामें देहत्याग करना पड़ता था। महाभारतादि पवित्र शास्त्रग्रन्थ-वर्णित सतीके चरित्रसे यहांकी स्त्रियां इतनी उत्तेजित होती हैं, कि वे सुयशलाभकी प्रत्याशासे सहजमें स्वामीके पीछे मरनेको तैयार हो जाती हैं। एक पतिके पीछे वहुत स्त्रियोंका आत्मोत्सर्ग सचमुच विस्मयकर है।

वालिद्वीपमें एकमात्र क्षत्रिय तथा वैश्य (देव और गोष्ठीके) राजाओंमें सहमरण प्रथा प्रचलित है। शूद्रोंमे सहमरण नहीं है। क्योंकि, वे स्वभावसे ही दरिद्र हैं। निर्धन अवस्थामें ऐसी ठाटवाटके साथ अंत्येष्टि क्रिया और वेला उत्सवका करना उनके लिये नितान्त असंभव है। इनको निम्नश्रेणीका समझ पुरोहित इनके ऊपर धर्मप्रभावका विस्तार करना नहीं चाहते तथा ये लोग भी पुरोहितोंको काफी दक्षिणा नहीं देते हैं। यहां पर ब्राह्मणोंमें भी कभी कभी सहमरण देखा जाता है, स्वामीके वियोगसे दुःखित ब्राह्मणरमणी स्वामीके विच्छेदको नहीं सहनेके कारण स्वामीके साथ चितामें प्राण त्याग कर देती हैं वे ही यथार्थमें सतीकी योग्य हैं; किन्तु यश चाहने वाली ललनाओंमें भी कोई कोई पतिभक्तिकी वशवर्त्तिनी वन सती नामके सार्थक गनती हैं। यदि ब्राह्मण रमणी सहमृता नहीं भी हो तो कोई दोष नहीं गिना जाता। लेकिन क्षत्रियरमणी और वैश्यस्त्रियोंमें यदि कोई स्त्री अनुमृता न हो तो वड़ी निंदा होती है।

यहांकी स्त्रियोंका सहमरण दो प्रकारसे होता है। जो स्वामीकी चिता पर मंचके ऊपरसे कूद कर आत्मा-विसर्जन करती हैं वे स्त्री 'सतियां' हैं। विवाहिता या रक्षिता स्त्री अपनी इच्छाके अनुसार अग्निकुण्डमें कूदती हैं। दूसरे पक्षमें स्त्रियोंको स्वामीसे भिन्न चितामें अग्नि जला कर जीवन त्यागना पड़ता है। कभी कभी पटराणी-को वेला प्रथाके अनुसार प्राण विसर्जन करते देखा गया है। पहले इस प्रकार सहमरणके लिये क्रीत दासियोंको जवर्दस्ती अग्निमें झोंक दिया जाता था। राजा सहधर्मिणी-को छोड़ जो स्त्रियां रखते हैं वे शूद्राणी होने पर भी खरीदी जाती हैं। सती या वेला होना इनकी इच्छाके ऊपर निर्भर है; किन्तु क्रीतदासीकी हत्या अवैध नरवलिमात्र है। जिस समय ये सहमरणकी इच्छा प्रकट करती हैं, तभीसे लोग उनका पितृ लोगोंकी तरह सम्मान करते हैं। उसी समय मनुष्य उनकी प्रीतिके लिये तरह तरहके वढ़िया भोजन उसके सामने ला कर रख देते हैं। रमणियोंके अन्तःकरणमें धर्मभाव उद्दीपित करनेके लिये और स्वर्गधामकी चिरशान्ति सुखकी कथाओंको समझानेके लिये एक विदुषी पंण्डित स्त्री सदा उसके साथ घूमती रहती है। कभी कभी उसको धोखेसे वा

अफीमके प्रयोगसे उन्मत्त करा कर उसको चिताकी वह्नि में झोंक दिया जाता है।

राजा सामन्त वा अमात्यवर्गकी मृत्युके आठवें दिन उनकी स्त्रियोंसे मरणके लिये अनुरोध किया जाता है। जो सहमरणके लिये अपनी सम्मति प्रकट करती हैं वे जब तक उनके पतिकी अंत्येष्टिक्रिया नहीं होती तब तक वे खूब सम्मान पाती हैं और सम्पूर्ण सुखको भोग सकती हैं। फ्रेडरिक आदि कितने ही यूरोपवासी १८४१ ई०में गियान्यरराजदेवमङ्गीशकी अंत्येष्टिक्रियामें उपस्थित थे। यथाविधि शवयात्रामें शवदेहकी तरह अन्य तीन अर्थीके ऊपर उनकी तीन स्त्रियोंको भी बैठा कर मंच स्थानमें लाया गया था। श्मशान पहुंच कर सती स्नान करनेके बाद श्वेत वस्त्र पहनती है तथा वेशविन्यास आदि करके सतीकी तरह हंसमुख हो स्वर्गमें स्वामीके साथ गमन करनेके लिये उद्यत होती हैं। इस समय उनके शरीर पर आभूषण नहीं होते। अग्निमें कूदनेके पहिले उनके कबरीबंधन खोल दिये जाते हैं और उनके बाल खुले रहते हैं।

वालिन् (सं० पु०) वालः केशः उत्पत्तिस्थानत्त्वेन विद्यते यस्य, वाल इनि। वानरराज वालि।

"अमोघरेतसस्तस्य वासवस्य महात्मनः।
वालेषु पतितं वीजं वालीनाम बभूव सः॥
(रामा० उत्तरा० ३७ अ०)

इन्द्रका अमोघ तेज वाल अर्थात् केशसे पतित हुआ था, इसी कारण वालि नाम पड़ा है। वालि देखो।

वालिनी (सं० स्त्री०) अश्विनीनक्षत्र।

वालिया—(वलिया) १ युक्तप्रदेशके वनारस विभागका एक जिला। यह अक्षा० २५°३३´ से २६°११´ उ० तथा देशा० ८६°३८´से ८४°३६´ पू०के मध्य अवस्थित है। भू-परिमाण १२४५ वर्गमील है। इसके उत्तर-पूर्वमें गोगरा, दक्षिणमें गङ्गा और पश्चिममें आजमगढ़ तथा गाजीपुर है। गङ्गा और घघरा नदीके सङ्गमस्थल परका समतल क्षेत्र ले कर १८७९ ई०में यह जिला संगठित हुआ है। गङ्गाके किनारे जितने स्थान पड़ते हैं, वे घघराके वालुकामय स्थानसे विशेष उर्वरा हैं। उक्त दो नदियोंके अलावा यहां सरयूनदी भी बहती है। आम्रकाननके सिवा यहां दूसरा वनभाग नहीं देखा जाता। रेह नामक विभाग और घघरा नदीतीरवर्त्ती तृणाच्छन्न निम्नभूमि छोड़ कर शेष सभी उच्च भूमि पर थोड़ा बहुत फल मिलता है। नदी-किनारे जो जंगल है उसमें नीलगाय और जंगली सूअर पाये जाते हैं। यहांका जलवायु गाजीपुर और आजमगढ़के जैसा है।

गाजीपुर और आजमगढ़ जिलेका कुछ अंश ले कर इस जिलेकी उत्पत्ति हुई है। इस कारण इसका प्राचीन इतिहास उन्हीं दो जिलोंमें वर्णित हुआ है। यहां वर्त्तमान किसी अट्टालिकाका अस्तित्त्व नहीं रहने पर भी बहुतसे बौद्ध सङ्घारामादिका ध्वंसावशेष देखनेमें आता है। कुण्डलधारी बौद्धयतियोंका वास होनेके कारण ही इस स्थानका वलिया नाम पड़ा है। बौद्ध वालि या वलि शब्दसे कर्णकुण्डलका बोध होता है। यहां जो एक भग्न दुर्ग देखा जाता है उसे स्थानीय लोग भरनामक अधिवासियों द्वारा निर्मित बतलाते हैं। भर लोगोंके अधःपतनके बाद यहां राजपूत जातिका अभ्युदय हुआ। सेनगार, कर्च्चौलिया, कंसिक, बिसेन, बीरवर, नरौनी, कुन्नवार, नैकुम्भ, बाहे, वरहिया, लोहतुमिया, हरिहोवन शाखाएं इस जिलेमें वास करती हैं।

इस जिलेमें १३ शहर और १७८४ ग्राम लगते हैं। जनसंख्या १० लाखके करीब है। सैकड़े पीछे ९३ हिन्दू हैं और शेषमें मुसलमान तथा दूसरी दूसरी जातियां हैं। यहांकी प्रधान उपज धान, चना, मकई और गेहूं हैं। ईख बहुतायतसे उपजाई जाती है।

विद्याशिक्षामें यह जिला बढ़ा चढ़ा है। अभी कुल मिलाकर यहां १७५ स्कूल हैं। स्कूलके अलावा ५ अस्पताल हैं।

२ उक्त जिलेकी एक तहसील। यह अक्षा० २५°३३´ से २५°५६´ उ० तथा देशा० ८३°५५´ से ८४°३६´ पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ४४१ वर्गमील और जनसंख्या प्रायः ४०५६२३ है। इसमें ६ शहर और ५७२ ग्राम लगते हैं। यहांकी जमीन खूब उपजाऊ है।

३ उक्त तहसीलका एक प्रधान शहर और विचार-सदर। यह अक्षा० २५°४४´ उ० तथा देशा० ८४°१०´ पू० के मध्य गङ्गाके उत्तरी किनारे अवस्थित है। जनसंख्या

प्रायः १५२७८ है। कहते हैं, कि रामायण-रचयिताके आदि कवि वाल्मीकि मुनिके नाम पर इस स्थानका नामकरण हुआ है, पर उसका कोई इतिहास नहीं मिलता। प्राचीन नगरका परित्याग कर १८७३-७५ ई०में नया शहर बसाया गया। यहां प्रतिवर्ष कार्त्तिकी पूर्णिमामें गङ्गा-सङ्गम पर दद्रि नामका एक मेला लगता है। इस मेलेमें ४ लाखसे अधिक मनुष्य जमा होते हैं। मेलेमें मवेशी अधिक संख्यामें विकने आते हैं। इष्ट इण्डिया रेलवेके डुमरांव स्टेशनमें उतर कर यहां आना पड़ता है। इस शहरमें सरकारी दफ्तर, अस्पताल और बहुतसे स्कूल हैं।

वालियाघाटा—१ वङ्गालकी राजधानी कलकत्ता महानगरीसे पूर्व उपकण्ठवर्त्ती एक प्रसिद्ध ग्राम। यह अक्षा० २०° ३३' ४५" उ० तथा देशा० ८८° २७' पू०के मध्य अवस्थित है। यहां वाखरगञ्जके चावल और सुन्दरवनके काष्ठकी आढ़त है। पूर्ववंगीय रेलपथकी दक्षिण शाखाके विस्तृत तथा वालियाघाटा खालके रहनेसे वाणिज्यकी विशेष सुविधा हो गई है। अलावा इसके यहां चूनेका कारवार होता है।

२ कलकत्तेके श्यामवाजारसे जो नई खाल काटी गई है, उसीको वेलेघाटा या वालियाघाटा खाल कहते हैं। यह कलकत्तेके दक्षिण वादाभूमि पार कर लवणह्रदमें मिलती है। आज भी इस खालसे ढाका, यशोर आदि स्थानोंमें नावें जाती आती हैं।

वालियातोटक—मल्लभूमिके अन्तर्गत एक प्राचीन ग्राम। यह देवीवाखुलीसे ४ कोस उत्तरमें अवस्थित है। यहां राजा गोपालसिंहके मन्त्री राजिवका वासभवन विद्यमान है।

वालियासाहेवगंज—भागलपुर जिलान्तर्गत एक प्रसिद्ध ग्राम।

वालिरङ्गन—मन्द्राज प्रदेशके कोयम्वतुर ज़िलेकी एक गिरिमाला। यह महिसुरसे हुस्सनूर-सङ्कट तक विस्तृत है। इस पर्वतकी एक शाखा जो उत्तर दक्षिणको चली गई है उसके पूर्वांशका सर्वोच्च शृङ्ग ५३०० फुट ऊँचा है। इसका उपत्यकादेश वनसमाच्छन्न और हस्तिसङ्कुल है। गुण्डल और होन्नुलोले नदी इस पर्वतसे निकली है।

वालिश (सं० क्ली०) वालाः सन्ति यस्य इति वाली मस्तकं-स्तेन शेते यत्र आधारे ड। १ उपाधान, तकिया। २ शिशु, वालक। ३ मूर्ख, अवोध व्यक्ति। (त्रि०) ४ अवोध, अज्ञान।

वालिश (फा० स्त्री०) तकिया।

वालिश्त (फा० पु०) एक प्रकारकी माप। यह प्रायः वारह अंगुलसे कुछ ऊपर और लगभग आध फुटके होती है, वीता।

वालिश्य (सं० पु०) मूर्खता, अज्ञानता, नासमझी।

वालिस-ट्रेन (अं० स्त्री०) वह रेलगाड़ी जिस पर सड़क वनानेके सामान लाद कर भेजे जाते हैं।

वालिसना—वड़ौदा राज्यके खाड़ी विभागन्तर्गत एक नगर।

वालिहन्ता (सं० पु०) वालेर्वालिनो वा वानरा राजस्य हन्ता। १ रामचन्द्र। वालि देखो। २ उड्रदेशके अन्तर्गत ग्रामविशेष।

वालिही—मध्यप्रदेशके जव्वलपुर जिलान्तर्गत एक अति प्राचीन नगर। यह अक्षा० २३° ४७' ४" उ० तथा देशा० ८०° १६' पू०के मध्य अवस्थित है। पहले इस स्थानका नाम 'वावासत्' वा पापावत था। यहां वालिराजके परास्त होनेसे इसका वालिहरी नाम पड़ा। पहले यह नगरी प्रायः १२ कोस विस्तृत थी और यहां सैकड़ों देवालय शोभा दे रहे थे। उस समय झुंडके झुंड जैनतीर्थयात्री आया करते थे। १७८१ ई०में यह स्थान मराठोंके हाथ लगा। १७९६ ई०में यह नागपुरराजके हाथ सौंपा गया। १८१७ ई०में भोंसलेने यह स्थान वृटिश गवर्मेण्टको दे दिया। सिपाहीविद्रोहके समय रघुनाथसिंह बुन्देला यहांके दुर्ग पर अधिकार कर वैठे, पर अङ्गरेजोंने शीघ्र ही उसे मार भगाया और दुर्गको पुनः अपने कब्जेमें कर लिया। वर्त्तमान नगरके चारों ओर आम्रवन और नतोन्नत गिरिराजिवेष्टित, नयनमनोहर सुवृहत् सरोवर, सुनिर्मित तड़ाग और प्राचीन जैन तथा हिन्दू-कीर्त्तिका ध्वंसावशेष नाना स्थानों में नजर आता है।

वाली (हिं० स्त्री०) १ कानमें पहननेका एक प्रसिद्ध आभूषण। यह सोने या चाँदीके पतले तारका गोलाकार वना होता है। इसमें शोभाके लिये मोती आदि भी

पिरोए जाते हैं। २ जौ गेहूं ज्वार आदिके पौधोंका वह ऊपरी भाग या सींका जिसमें अन्नके दाने लगते हैं। ३ हथौड़े के आकारका कसेरोंका एक औजार जिससे वे लोग वरतनोंकी कोर उठाते हैं।

वालीश (सं० पु०) मूत्रकृच्छ्ररोग।

वालीसवरा (हिं० पु०) वह सवरा जिससे कसेरे थाली या परातकी कोर उभारते हैं।

वालु (सं० स्त्री०) १ एलवालुक, एलुवा। २ वालू। ३ कर्पूर। ४ चिर्भटिका।

वालुक (सं० क्ली०) वालुरेव स्वार्थे कन्। १ एलवालुक, एलुवा। २ पनिवालू।

वालुका (सं० स्त्री०) वालुक-टाप्। १ रेणुविशेष, रेत। पर्याय—सिकता, सिक्का, शीतला सूक्ष्मशर्करा, प्रवाही, महासूक्ष्मा, सूक्ष्मा, पानीयचर्णिका। इसका गुण—मधुर, शीत, सन्ताप और श्रमनाशक। वालू देखो। २ कर्कटी, ककड़ी। ३ कर्पूर, कपूर। ४ यन्त्रविशेष।

वालुकागड़ (सं० पु०) मत्स्यविशेष, एक प्रकारकी मछली। इसका दूसरा नाम सिताङ्क भी है।

वालुकात्मिका (सं० स्त्री०) १ शर्करा, सक्कड़। (त्रि०) २ वालुकामय।

वालुकाप्रभा (सं० स्त्री०) नरकविशेष।

वालुकामय (सं० त्रि०) वालुका-मयट्। सिकतामय।

वालुकायन्त्र (सं० क्ली०) वालुकाया यन्त्रं। औषधको फूंकनेका वह यन्त्र जिसमें औषधको वालू भरी हांड़ीमें रख कर आग पर रखते या आगसे चारों ओरसे ढंकते हैं।

वालुकास्वेद (सं० पु०) वालुकाभिर्विहितः स्वेदः। तप्त-वालुका द्वारा ताप, भावप्रकाशके अनुसार पसीना करानेके लिये गरम वालूकी गरमी पहुंचानेकी क्रिया।

वालुकिन् (सं० क्ली०) हिंगुल।

वालुकी (सं० स्त्री०) वलति वालयति वा वल-प्रापणे उक्, स्त्रियां ङीप्। कर्कटीभेद, एक प्रकारकी ककड़ी। पर्याय—वहुफला, स्निग्धफला, क्षेत्रकर्कटी, क्षेत्ररुहा, कान्तिका, मूत्रला।

वालुकेश्वर—सह्याद्रि पर्वतके अन्तर्गत एक शैवतीर्थ। यहां श्रीरामचन्द्रने वालूकी शिवमूर्त्ति वना कर उनकी पूजा की थी। वालुकेश्वर माहात्म्यमें विस्तृत विवरण देखो।

वालुङ्की (सं० स्त्री०) कर्कटी, ककड़ी।

वालुङ्गिका (सं० पु०) कर्कटी, ककड़ी।

वालुङ्गी (सं० स्त्री०) कर्कटी, ककड़ी।

वालुघर—वारेन्द्रभूमिके अन्तर्गत एक प्राचीन स्थान। यह कासिमपुरके उत्तरमें अवस्थित है।

वालुचर—मुर्शिदावाद जिलेके अन्तर्गत एक गण्ड-ग्राम।

वालुया—भागलपुर जिलेके अन्तर्गत एक वाणिज्यस्थान। यह अक्षा० २६° २५' ४०" तथा देशा० ८७° ३' १" पू०के मध्य कोसी नदीके किनारे अवस्थित है। यहांसे नाना प्रकारके द्रव्योंकी नेपाल, तिरहुत और कलकत्तेमें रफ्तनी होती है।

वालुर—वम्बई प्रदेशके धारवार जिलेका एक प्राचीन ग्राम।

वालू (हिं० पु०) पत्थर या चट्टानों आदिका वह वहुत ही महीन चूर्ण या कण जो वर्षाके जल आदिके साथ पहाड़ों परसे वह आता और नदियोंके किनारों आदि पर अथवा ऊसर जमीन या रेगिस्तानोंमें वहुत अधिक पाया जाता है। यह वालू साधारणतः विशेष हितकर है। घरकी ईंट वनानेमें इसका वहुत काम आता है। वालुकामय स्थानका जल वहुत ठंढा होता है। वालू और सोडा मिलनेसे कांच वनते देखा गया है। पहले वालुकायन्त्र द्वारा समय निरूपित होता था।

अलावा इसके वालू और भी मनुष्योंके कितने ही कामोंमें उपकारी है। रोगीकी अवस्था देख कर कभी कभी उसे गरम वालू पर वैठाया जाता है जिसे "Sand bath" कहते हैं। किन्तु अधिकांश समय रसायन गृहमें ही कड़ाहमें रखे हुए उत्तप्त वालूके मध्य किसी दूसरे द्रव्यके उत्तप्त करनेमें इसका व्यवहार देखा जाता है। सिरीस नामका कागज (Sand paper) वालूसे ही वनाया जाता है। इसके घिसनेसे किसी चीज पर लगा हुआ मोरचा दूर हो जाता है। अभी एमरी नामक एक प्रकारका कागज तैयार हुआ है, उसमें भी वालू सटा रहता है। इससे उत्कृष्ट इस्पातनिर्मित अस्त्रादि परिष्कार किये जाते हैं।

आइल आव वाइट (Isla of wight) और एलम (Alum bay) उपसागरके किनारे नाना प्रकारके रंगीन

वालू पाये जाते हैं जिनसे सुन्दर सुन्दर चित्र वनते हैं।
२ दक्षिण भारत और लंकाके जलाशयोंमें मिलनेवाली एक प्रकारकी मछली।

वालूक (सं० पु०) वलते प्राणान् हन्ति यः, वल-वधे-ऊक। विषभेद, एक प्रकारका विष।

वालूचर (हिं० पु०) वङ्गालके वालूचर नामक स्थानका गांजा जो वहुत अच्छा समझा जाता है। अव यह गांजा और स्थानोंमें भी होने लगा है।

वालूचरा (हिं० पु०) वह भूमि जिस पर वहुत उथला या छिछला पानी भरा हो, चर।

वालूदानी (हिं० स्त्री०) एक प्रकारकी झंझरीदार डिविया जिसमें लोग वालू रखते हैं। इस वालूसे स्याही सुखाई जाती है। साधारणतः वही खाता लिखनेवाले लोग, जो सोख्तेका व्यवहार नहीं करते, इसी वालदानीसे तुरन्तके लिखे हुए लेखों पर वालू छिड़कते हैं और फिर उस वालूको उसी डिवियाकी झंझरी पर उलट कर उसे डिवियामें भर लेते हैं। प्राचीनकालमें इसी प्रकार लेखोंकी स्याही सुखाई जाती थी।

वालूवुर्द (हिं० वि०) १ वालू द्वारा नष्ट किया हुआ। (पु०) २ वह भूमि जिसकी उर्वरा शक्ति वालू पड़नेके कारण नष्ट हो गई हो।

वालूसाही (हिं० स्त्री०) एक प्रकारकी मिठाई। इसकी प्रस्तुत प्रणाली—पहले मैदेकी छोटी टिकिया वना लेते हैं। पीछे उनको घीमें तल कर दो तारके शीरेमें डुवा कर निकाल लेते हैं। यह खानेमें वालू-सी खसखसी होती है।

वालेन्दु (सं० पु०) नवोदित चन्द्र।

वालेय (सं० पु०) वलये उपकरणाय साधुः। वलि-(छदिरुपधिवलेर्ढञ्। पा ५।१।१३) इति ढञ्। २ रासभ, गदहा। २ दैत्यविशेष। ३ जनमेजय-वंशोद्भव सुतपा राजाके एक प्रपौत्रका नाम। इनके पिताका नाम वलि था। (हरिवंश ३१।३०-३३) ४ अङ्गारवलरी। ५ चाणक्य-मूलक। ६ तण्डुल, चावल। (त्रि०) वालाय हितः वाल-ढञ्। ७ मृदु, कोमल। ८ वालहित, जो वालकों-के लिये लाभदायक हो। ९ जो वलि देनेके योग्य हो, वलिदान करने लायक।

(स्त्री०) १० वितुम्वक नामक वृक्षकी छाल।

वालेयशाक (सं० पु०) भार्गी, वरंगी।

वालेष्ट (सं० पु०) १ वदर, वेर। (त्रि०) २ वालकके अभिलषित।

वालेश्वर—१ उड़ीसाविभागके अन्तर्गत एक जिला। यह अक्षा० २०° ४′ से २१° ५७′ उ० तथा देशा० ८६° २६′ से ८७° ३१′ पू०के मध्य अवस्थित है। भू-परिमाण २०८५ वर्गमील है। इसके उत्तरमें मेदिनीपुर और मयूर-भञ्जराज्य, पूर्वमें वङ्गोपसागर, दक्षिणमें वैतरणी नदी और पश्चिममें केउञ्झर, नीलगिरि और मयूरभञ्जका सामन्तराज्य है। सम्भवतः वालेश्वर शिवलिङ्गके नाम-से इसका नामकरण हुआ है।

इस जिलेका पूर्वांश जिस प्रकार वालुकामय पलि-समावृत है, पश्चिमांश भी उसी प्रकार पर्वत और वन-समाकीर्ण है। इस अंशमें विस्तृत शालवन देखा जाता है। समुद्रोपकूलवर्त्ती स्थान लवणमय है। यहां एक प्रकारका देशीय लवण तैयार होता है। वीच वीच-में धानको खेती तो होती है, पर सारे जिलेमें कहीं भी विस्तृत धान्यक्षेत्र नयनगोचर नहीं होता। पर्वतभागसे अनेक छोटी छोटी नदियां निकल कर वनकी शोभा वढ़ाती है। अलावा इसके सुवर्णरेखा, पांचपाड़ा, वुड़वलङ्ग, कांसवांस और वैतरणी नदी तथा जमीरा, वांस, भैरंगी, धामड़ा, शालनदी और मताई शाखा ही प्रधान है। उक्त नदियोंमें भी वाणिज्यकी उपयोगी नहीं है। समय समय वाढ़ और अनावृष्टिसे यहांके शस्यादिकी विशेष क्षति हुआ करती है।

इस जिलेमें समुद्रके किनारे सुवर्णरेखा, सोराटा, छानुआ, वाणेश्वर, लैछनपुर, चूड़ामन और धामड़ा आदि कई एक वन्दर हैं। सुवर्णरेखा नदीके मुहाने पर जो पुर्त्तगीजोंकी पिप्पली-कोठी थी, उसे तहस नहस करके १६३४ ई०में अंगरेज-वणिकोंने इसी सुवर्णरेखामें आ कर कोठी खोली थी। नदीके मुख पर चर पड़ जानेसे सुवर्णरेखाकी वाणिज्योन्नति जव घट गई, तव १८०६ ई०में चूड़ामन वाणिज्यकेन्द्र वनाया गया। समुद्रके किनारे हो कर नहर काटी जानेसे नदियोंका मुंह वंद हो गया जिससे मुहाने परके वन्दरोंमें स्थानीय वाणिज्यकी

विशेष असुविधा हो गई। अंतः ग्रामड़ा, चाँदवाली और वालेश्वर वाणिज्यक्षेत्र कायम हुआ। आज भी उन सब स्थानोंमें मन्द्राज और कलकत्तेसे ष्टीमर द्वारा वाणिज्य चलता है।

१८०३ ई०में समस्त उड़ीसाराज्य अंगरेजोंके दखल में आया। वालेश्वर भी इसी समय अधिकृत हुआ, पर यहां पहलेसे ही अंगरेजोंका संस्रव था। १६३६ ई०में डा० गेब्रिल ब्राउटनने दिल्लीश्वरकी कन्याको और १६४० ई०में बङ्गेश्वरकी पत्नीको रोगमुक्त किया था। इस उपकारमें उन्हें इष्ट इण्डिया कम्पनीके लिये हुगली और वालेश्वरमें वाणिज्य करनेकी सनद मिली। पिप्पलीमें वाणिज्यको असुविधा होनेसे वालेश्वरमें कोठी उठा कर लाई गई और उस स्थानकी सुरक्षाके लिये दुर्गादि बनाये गये। अफगान और मुगलके दीर्घकालव्यापी युद्धके समय तथा पीछे उड़ीसामें आधिपत्य फैलानेके लिये जब मुगलों और मराठोंके बीच युद्धविग्रह चल रहा था, उस समय भी अंगरेज लोग दृढ़तासे आत्मरक्षा करनेमें समर्थ हुए थे। अंगरेजोंकी वाणिज्योन्नतिके समय यहां नाना जातीय वणिक् और वस्त्रव्यवसायियोंका उपनिवेश स्थापित हुआ था।

इस जिलेमें २ शहर और ३३५८ ग्राम लगते हैं। जनसंख्या प्रायः १०७११६७ है। हिन्दूकी संख्या सब कौमोंसे ज्यादा है। यहां ३४ सेकण्ड्री, १५३५ प्राइमरी और १०२ स्पेसल स्कूल हैं। स्कूलके अलावा ११ अस्पताल है जिनमेंसे तीनमें रोगी रखे जाते हैं।

२ उक्त जिलेका एक उपविभाग। यह अक्षा० २१° ४०´ से २१° ५७´ उ० तथा देशा० ८६° २१´से ८७° ३१´ पू०के मध्य अवस्थित है। भू-परिमाण ११५५ वर्गमील और जनसंख्या ६ लाखके करीब है। इसमें वालेश्वर नामका १ शहर और २११२ ग्राम लगते हैं।

३ उक्त विभागका एक नगर। यह अक्षा० २१° ३०´ उ० तथा देशा० ८६° ५६´ पू०के मध्य विस्तृत है। जनसंख्या प्रायः २०८८० है जिनमेंसे हिन्दूकी संख्या अधिक है। बंगालमें सबसे पहिले अङ्गरेजोंने इसी स्थान पर अधिकार जमाया था। यहां सरकारी दफ्तर, कारागार, अस्पताल दातव्य चिकित्सालय और १ सरकारी स्कूल है।

वालेश्वर—मलवार जिलेके पश्चिमघाट पर्वतका एक गिरिशृङ्ग। यह समुद्रपृष्ठसे ६७६२ फुट ऊंचा है। इस पर्वतके नीचे मापिलागण कहवेकी खेती करते हैं। शेष सभी स्थान जङ्गलावृत है।

वालेहल्ली—धारवाड़ जिलान्तर्गत एक प्राचीन नगर। यहांके मैलारदेव और मल्लिकार्जुन-मन्दिरमें १०४६ शककी उत्कीर्ण शिलालिपि देखी जाती है। अलावा इसके और भी ११ शिलालिपियां इधर उधर पड़ी हैं।

वालोत्रा—राजपूतानेके योधपुर राज्यान्तर्गत एक नगर। यह अक्षा० २५° ५०´ उ० तथा देशा० ७२° १५´ पू०के मध्य नूनीनदीके किनारे अवस्थित है। जनसंख्या पांच हजारसे ऊपर है। योधपुर हो कर द्वारका-यात्रिगण इसी नगरसे जाते हैं। यहां उन लोगोंके रहनेके लिये एक उत्कृष्ट बाजार और १२४ कूप हैं। शहरमें डाक और टेलीग्राफ घर और एङ्गलो वर्नाक्युलर स्कूल है। प्रतिवर्ष चैत मासमें यहां मेला लगता है।

वालोद—मध्यप्रदेशके विलासपुर जिलान्तर्गत एक प्राचीन नगर। यहां एक भग्न दुर्ग, असंख्य प्राचीन मन्दिर और २ री शताब्दीके अक्षरोंमें उत्कीर्ण शिलालिपि नजर आती है। उस समय यहां शैवधर्मका अच्छा प्रभाव था और सतीकी प्रथा भी प्रचलित थी।

वालोपचरण (सं० क्ली०) वालककी उपयोगी चिकित्सा।

वालोपचार (सं० पु०) वालोपचरण।

वालोपवीत (सं० क्ली०) वालानां वालकानां उपवीतं। वालक परिधान वस्त्र। पर्याय—पञ्चावट, उरस्कट। २ द्विजवालकका यज्ञसूत्र।

वाल्ख—१ मध्यएशियाके तुर्किस्तानके अन्तर्गत अफगान-अधिकृत एक राज्य। यह अक्षा० ३६° ४६´ उ० तथा देशा० ६६° ५२´के मध्य अवस्थित है। प्राचीन वाह्लिकगण इस देशके अधिवासी हैं।

विस्तृत विवरण वाह्लीक शब्दमें देखो।

२ उक्त राज्यका प्रधान नगर। भारतकी सीमाके वहिर्भूत होने पर भी वाह्लीकोंके साथ बहुत पहलेसे भारतवासीका इतना निकट सम्पर्क चला आ रहा है, कि उसका उल्लेख किये विना नहीं रह सकते।

प्राचीन वाल्ख नगर ध्वंसावशेषमें परिणत हो गया

है। उस ध्वंसावशेषमें प्राचीन हिन्दू-प्रभावका कोई निदर्शन नहीं मिलता। जो कुछ मिलता भी है, वह मुसलमानी अमलमें ही स्थापित हुआ था। उसका परिमाण प्रायः २० मील है। प्राचीन वाल्ख नगरके पास ही नूतन नगर वसाया गया है। नगरके तोरण द्वारसे ले कर प्राचीन नगरकी उत्तरी सीमा तक प्रायः एक घण्टेका रास्ता है। जब किसीको नूतन नगरमें मकान वनाने होते हैं तव वे पुरातन भग्नावशेषसे ईंट आदि खरीदते हैं। नूतन नगरमें आज भी कितने हिन्दू-मन्दिर देखे जाते हैं। आज उनमें एशियाके वणिक लोग रहते हैं। यहांके शासनकर्त्ता प्रत्येक हिन्दू और यहूदियोंसे जजिया-कर वसूल करते हैं। प्रत्येक हिन्दूको कपालमें तिलक-चिह्न लगाना पड़ता है। मध्यएशियाके लोग प्राचीन वाल्ख नगरीको 'अम्मुद वलाद' कहते हैं।

नादिरशाहकी मृत्युके वाद अहमदशाह दुराणीने इस प्रदेशका शासनभार हाजी खाँ नामक किसी सेनापतिके हाथ सौंपा। उनके पुत्रके शासनकालमें वोखारा जातिके उत्साहसे वहांके प्रायः सभी अधिवासी विद्रोही हो गये। किन्तु तैमुरशाह दुराणीने दलवलके साथ जा कर उनका दमन किया। तैमुरकी मृत्युके वाद १७९३ ई०में वोखारापति शाह मुरादने इस नगरमें घेरा डाला, पर वे कृतकार्य न हुए। १७९३ से १८२६ ई० तक वाल्खराज्य अफगानोंके अधिकारमें रहा। पीछे दो वर्ष तक कुन्दूजके अधिपति मुरादवेगने इसका शासन किया। पीछे वोखाराके अमीरने उसे छीन लिया। १८४१ ई० तक यह वोखारापतिके हाथ रहा। अनन्तर शाहसुजाके हाथसे खुरमवासी मीरवालीके हाथ आया। इस समयसे ले कर १८५० ई० तक यह स्थान किसके अधिकारमें था, मालूम नहीं। जिस साल महम्मद आकाम खाँ वरकजैने इस राज्य पर आक्रमण किया उसी समयसे यह अफगान-शासनभुक्त चला आ रहा है।

वाल्टी (हिं० स्त्री०) वालटी देखो।

वाल्य (सं० क्ली०) वालस्य भावः कर्मधा० वाल-(पत्यन्त पुरोहितादिभ्यो यक्। पा ५।१।१२८) इति यक्। १ वालकका भाव, लड़कपन। २ वालक होनेकी अवस्था। (वि०) ३ वालक सम्बन्धी, वालकका। ४ वालककी अवस्थासे संवंध रखनेवाला, वचपनका।

वाल्यावस्था (सं० स्त्री०) प्रायः सोलह सत्रह वर्ष तककी अवस्था, लड़कपन।

वाल्वङ्गिरा (सं० स्त्री०) इर्वारुलता, ककड़ीकी लता।

वाल्वज (सं० त्रि०) वल्वज तृणसम्वन्धीय।

वाल्वजभारिक (सं० त्रि०) उलपतृण-भारवाहक।

वाल्वजिक (सं० त्रि०) भारभूत वाल्वजहारक।

वाल्हक (सं० क्ली०) वल्हिदेशे भवः वाहु वुञ। कुङ्कुम, केसर।

वाल्हायन (सं० त्रि०, वल्हे जातकं फक्। १ वल्हिदेशोद्भव। (क्ली०) २ हिंगु।

वाल्हि (सं० क्ली०) वाल्खदेश।

वाल्हिक (सं० क्ली०) वल्हि स्वार्थे ठञ्। १ कुंकुम, केसर। २ हिंगु। ३ देशभेद। ४ उस देशके अधिवासी। ५ उस देशके राजा। ६ प्रतीपपुत्रभेद।

वाल्हीक (सं० पु०) १ गन्धर्वभेद। २ वसुदेवकी पत्नी रोहिणीके पिता। ३ जनमेजयके एक पुत्र। ४ प्रतीपपुत्रभेद। ५ वाल्हिक देशके लोग।

वाव (सं० पु०) १ वायु, हवा। २ अपान वायु, पाद। ३ वाई।

वाव (फा० पु०) जमींदारोंका एक हक जो उनको असामीकी कन्याके विवाहके समय मिलता है, भुरस।

वावड़ी (हिं० स्त्री०) १ वह चौड़ा और वड़ा कुंआ जिसमें उतरनेके लिये सीढ़ियां होती हैं, वावली। २ छोटा तालाव।

वावन (सं० पु०) १ वामन देखो। २ पचास और दोकी संख्या या उसका सूचक अंक। (वि०) २ पचास और दो, छब्बीसका दूना।

वावना (हिं० वि०) वौना देखो।

वावभक (हिं० स्त्री०) पागलपन, भक।

वावर (फा० पु०) विश्वास, यकीन।

वावर (जहिरुद्दीन महम्मद)—दिल्लीके मुगल-साम्राज्यके प्रतिष्ठाता। इनके पिताका नाम उमर शेख मिर्जा, पितामहका आवू सैयद मिर्जा, प्रपितामहका महम्मद मिर्जा, वृद्धप्रपितामहका मिराणशाह और अतिवृद्ध-प्रपितामहका

नाम अमीर तैमूर था। वावरका मातृकुल भी सामान्य नहीं था। उनकी माता कुतलग् खाँ खानम् मुगलिस्तानके अधिपति मुनाम खाँकी कन्या और प्रसिद्ध चङ्गेज खांके वंशधर महमूद खाँकी वहन थी।

१४८३ ई०की १५ फरवरी (६ मुहर्रम, ८८८ हिजरी)-को वावरका जन्म हुआ और १४६४ ई०के जून मास (रमजान, ८६६ हिजरी)में पिताकी मृत्युके वाद वे फरगन राजसिंहासन पर बैठे। अन्नान नामक स्थानमें उनकी राजधानी थी।

उन्होंने ग्यारह वर्ष तक तातार और उजवेकोंके साथ नाना स्थानोंमें घमसान युद्ध किया था। किन्तु आखिर वे अपना राज्य छोड़ कर कावुलकी ओर भाग जानेको वाध्य हुए थे। जो कुछ हो, थोड़े ही दिनोंके वाद उन्होंने कावुल, कंधार और वदाकसान पर अपनी गोटी जमा ली थी और २२ वर्ष तक वे वहांका शासन करते रहे थे। अनन्तर उन्होंने भारतवर्षमें कदम बढ़ाया। उनके सौभाग्यका पथ खुल गया।

इस समय पठान-अधिपति इब्राहिम हुसेन लोदी दिल्ली पर आधिपत्य करते थे। उन्होंने दलवलके साथ पतकी लड़ाईमें वावरका सामना किया। १५२६ ई०की २०वीं अप्रिलको वावरने उक्त लड़ाईमें विजय प्राप्त की और उसके साथ साथ भारतवर्षमें मुगल-साम्राज्यकी प्रतिष्टाका सूत्रपात हुआ।

वावर केवल वीर ही नहीं थे, विद्वान और विचक्षण भी थे। वे अति सुललित तुर्की-भाषामें सत्यपूर्ण आत्मजीवनी लिख गये हैं। वह अपूर्व ग्रन्थ 'तुज़क वावरी' नामसे तमाम मशहूर और सहारणीय है। अकवरके राजत्वकालमें अवदुल रहीम खानखानाने उक्त ग्रंथका पारसी भाषामें अनुवाद किया। इस ग्रन्थमें वावरकी सविस्तार जीवनी और अनेक ऐतिहासिक विवरण मिलते हैं।*

वावरका राजत्वकाल कुल मिला कर ३८ वर्ष होता है जिनमेंसे उन्होंने अन्नानमें ११ वर्ष, कावुलमें २२ वर्ष और भारतमें ५ वर्ष राज्य किया। १५३० ई०की २६वीं दिसम्बरको आगरेमें उनकी मृत्यु हुई। पहले यमुनाके किनारे रामवाग उद्यानमें उनकी कब्र हुई थी, पर छः मासके वाद वहांसे कावुल उठा कर लाई गई। यहां उनके परपोतेके लड़के शाहजहानने एक अच्छी मसजिद वनवा दी है, जिसे एक वार देखनेसे ही मन आकृष्ट हो जाता है। उनकी कब्रके ऊपर 'वहिस्त-रोजीवाद' अर्थात् स्वर्ग ही उनका भाग्य है, पेसा लिखा हुआ है।

मृत्युके वाद वावरको 'फर्दौसी-मकानी'की उपाधि दी गई थी। पीछे उनके वड़े लड़के हुमायूं राजतख्त पर वैठे। वावरके तीन पुत्र थे,—मिर्जा कामरान, मिर्जा अस्करी और मिर्जा हन्दाल।

फिरिस्ताने लिखा है, कि वावर अतिशय सुरापायी और रमणीमें आसक्त थे। आमोद प्रमोद करनेके समय वे कावुलके निकटस्थ अपने प्रमोद काननमें एक चहवच्चेको शरावसे भर देते थे और युवती रमणियोंके साथ क्रीड़ा करते थे। मुगल और हुमायुन देखो।

वावरची (फा० पु०) भोजन पकानेवाला, रसोइया।

वावरचीखाना (फा० पु०) पाकशाला, रसोईघर।

वावरा (हिं० वि०) वावला देखो।

वावरी (हिं० वि०) वावली देखो।

वावल (हिं० पु०) आंधी, अंधड़।

वावला (हिं० वि०) विक्षिप्त, पागल।

वावलापन (हिं० पु०) पागलपन, झक।

वावली (हिं० स्त्री०) १ चौड़े मुंहका कुंआ जिसमें पानी तक पहुंचनेके लिये सीढ़ियां वनी हों। २ सीढ़ियां लगी हुई छोटा गहरा तालाव। ३ हजामतका एक प्रकार। इसमें माथेसे ले कर चोटीके पास तकके वाल चार पांच अंगुल चौड़ाईमें मूंड़ दिये जाते हैं जिससे सिरके ऊपर चूल्हेकासा आकार वन जाता है।

वावली पिण्ड—पञ्जाव प्रदेशके अन्तर्गत एक स्थान। यह नागपर्वतसे पांच मील दक्षिण-पूर्व दो पर्वतके मध्यवर्ती कन्दराके समीप अवस्थित है। नगरके ध्वंसावशेषमें परिणत होने पर भी यहां तथा निकटवर्ती कन्दरमें अशोक-स्तूप आदि असंख्य वौद्धकीर्त्तियां देखनेमें आती हैं। परिव्राजक यूएनचुवंगने इस स्थानको देखा था। वावली

* Translated into English by J Leyden and Wm Erskine.

नालाके किनारे प्राचीन ध्वंसराशिके ऊपर यह ग्राम बसा हुआ है। हसन अवदलसे हरिपुर (हजारा जिला) जानेके रास्ते पर यह स्थान पड़ता है। हसन अवदल और बावतीपिण्डके मध्यवर्त्ती लङ्कनकोट या श्रीकोट नामक स्थान बहुत प्राचीन है। प्रवाद है, कि श्रीकोटदुर्ग रसालूके चिरशत्रु राजा शिरकपके अधिकारमें था।

बावादेव—अर्पणमीमांसा नामक संस्कृतग्रन्थके रचयिता।

बावाशास्त्री—स्वरोदय-विवरणके रचयिता।

बाशिंदा (फा० पु०) निवासी, रहनेवाला।

बाष्कल (सं० पु०) १ एक दैत्यका नाम। २ वीर, योद्धा। ३ एक उपनिषद्का नाम। ४ एक ऋषिका नाम। ५ रौप्य, चांदी।

बाष्कलक (सं० लि०) बाष्कल सम्बन्धीय।

बाष्कलि (सं० पु०) १ वैदिक आचार्यभेद। २ बाष्कल का अपत्य।

बाष्किह (सं० पु०) वष्किह अपत्यार्थे अण्। वष्किहका अपत्य।

बाष्प (हिं० पु०) १ भाप। बाष्प देखो। २ लोहा। ३ अश्रु, आंसू। ४ एक प्रकारकी जड़ी। ५ गौतमबुद्धके एक शिष्यका नाम।

बाष्पी (सं० स्त्री०) हिंगु पत्नी।

बास (हिं० पु०) १ रहनेकी क्रिया या भाव, निवास। २ निवासस्थान, रहनेका स्थान। ३ एक छन्दका नाम। ४ वस्त्र, कपड़ा। (स्त्री०) ५ गन्ध, महक, बू। ६ इच्छा, वासना। ७ अग्नि, आग। ८ एक प्रकारका अस्त्र। ९ तेज धारवाली छुरी, चाकू, कैंची इत्यादि छोटे छोटे शस्त्र जो रणमें तोपोंमें भर कर फेंके जाते हैं।

(पु०) १० एक बहुत ऊँचा वृक्ष। इसकी लकड़ी रंगमें लाली लिए काली और इतनी मजबूत होती है, कि साधारण कुल्हाड़ियोंसे नहीं कट सकती। इस लकड़ीसे पलंगके पाये और दूसरे सजावटी सामान बनाये जाते हैं। इसमें बहुत ही सुगंधित फूल लगते हैं। इसका गोंद कई कामोंमें आता है। पहाड़ोंमें यह पेड़ ३००० फुटकी ऊँचाई तक होता है।

बासकर्णी (सं० स्त्री०) यज्ञशाला।

बासकसज्जा (सं० स्त्री०) वह नायिका जो अपने पति या प्रियतमके आनेके समय केलि-सामग्री सज्जित करे।

बासखारी—अयोध्या प्रदेशके फैजाबाद जिलान्तर्गत एक नगर। प्रसिद्ध मुसलमान साधु मखदुम असरफने १३८८ ई०में इसे बसाया। उनके वंशधर इस नगरके सत्त्वाधिकारी हैं।

बासठ (हिं० वि०) १ साठ और दो, इकतीसका दूना। (पु०) २ साठ और दोकी संख्या जो इस प्रकार लिखी जाती है—६२।

बासठवां (हिं० वि०) जो क्रममें बासठके स्थान पर हो, गिनतीमें बासठके स्थान पर पड़नेवाला।

बासड़ा—२४ परगनेके सुन्दरवन विभागका एक गण्डग्राम। यह अक्षा० २२° २२' उ० तथा देशा० ८८° ३७' पू० विद्याधरी नदीके किनारे अवस्थित है। फकीर मुबारक गाजीके समाधिमंदिरके लिये यह स्थान बहुत मशहूर है। प्रति वर्ष यहां एक मेला लगता है जो 'गाजीसाहबका मेला' कहलाता है। प्रवाद है, कि गाजी साहबने जङ्गली पशुओंको स्तम्भित कर दिया था। यहां तक कि बाघ उनका वाहन बन गया था। आज भी लकड़हारे गाजीसाहबकी पूजा दिये विना लकड़ी काटनेके लिये जङ्गल नहीं घुसते। निकटवर्त्ती प्रायः सभी ग्रामोंमें गाजीसाहबकी वेदी देखी जाती है। उस वेदीके सामने लकड़हारे गाजी साहबके वंशधर फकीर द्वारा नैवेद्य चढ़ाते हैं।

बासदेव (हिं० पु०) १ अग्नि, आग। २ वासुदेव देखो।

बासन (हिं० पु०) बरतन, भाँड़।

बासना (हिं० स्त्री०) १ इच्छा, चाह। २ गन्ध, महक। (क्रि०) ३ सुगन्धित करना, महकाना।

बासफूल (हिं० पु०) १ एक प्रकारका धान। २ इस धानका चावल।

बासमती (हिं० पु०) १ एक प्रकारका धान। २ इस धानका चावल। यह पकने पर अच्छी सुगंध देता है।

बासर (हिं० पु०) १ दिन। २ प्रातःकाल, सबेरा। ३ सबेरे गानेका एक राग।

बासव (सं० पु०) इन्द्र।

बासवी (हिं० पु०) अर्जुन।

बासवीदिशा (सं० पु०) पूर्व दिशा, यह इन्द्रकी दिशा मानी जाती है।

वाससी (सं० पु०) वस्त्र, कपड़ा।

वासा (हिं० पु०) १ एक प्रकारका पक्षी। २ अड़ूसा। ३ एक प्रकारकी घास। यह आकारमें बांसके पत्तोंके समान होती है और पशुओंको खिलाई जाती है।

वासि—पञ्जावप्रदेशके कलसिया राज्यका एक नगर। यह अक्षा० ३०° ३५' उ० तथा देशा० ७६° ५४' पू०के मध्य अवस्थित है। यहां एक वर्नाक्युलर मिडिल स्कूल और एक चिकित्सालय है।

वासि—पञ्जावके पतियाला राज्यका एक नगर। यह अक्षा० ३०° ४२' उ० तथा देशा० ७६° २८' पू०के मध्य अवस्थित है। जनसंख्या लगभग १३७३८ है। यहां सूती कपड़ेका व्यवसाय जोरों चलता है। शहरमें एक वर्नाक्युलर मिडिल स्कूल और एक पुलिस-स्टेशन है।

वासित (हिं० वि०) सुगन्धित किया हुआ।

वासितङ्ग—चट्टग्राम पहाड़ी प्रदेशकी एक गिरिश्रेणी और उसका सर्वोच्च शृङ्ग। यह अक्षा० २१° ३१' उ० तथा देशा० ९२° २९' पू०के मध्य अवस्थित है।

वासिनकोण्डा—मन्द्राज प्रदेशके कड़ापा जिलान्तर्गत एक पर्वत। यह समुद्रपृष्ठसे २८०० फुट ऊँचा है। इसके उच्च शिखर पर वेङ्कटेश स्वामीका मन्दिर विद्यमान है।

वासिन्दा (फा० वि०) अधिवासी, रहनेवाला।

वासिम—वेरार राज्यके अन्तर्गत एक जिला। यह अक्षा० १९° २५' से २०° २८' उ० तथा देशा० ७६° ४०' से ७७° १४' पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण २६४९ वर्ग मील है। इसके उत्तरमें अकोला और अमरौती जिला, पूर्वमें ऊन जिला, दक्षिणमें पैनगंगा नदी और हैदराबाद-राज्य तथा पश्चिममें बुलदाना जिला है। सारा जिला पर्वतमय है। पूसा, वेनगङ्गा, काटापूरण, अदन, कुच, अदोल और चन्द्रभागा नदी इस जिलेमें बहती हैं।

श्रीपुर और पुपादका बौद्ध तथा जैनमन्दिरादिकी आलोचनाके सिवा इस स्थानका प्राचीन इतिहास जाननेका कोई उपाय नहीं है। १२९४ ई०में अलाउद्दीनके इलिचपुर-विजयकालमें यहां जैन-प्रभाव खूब बढ़ा चढ़ा था। पीछे प्रायः १६वीं शताब्दी तक यह स्थान एक तरहसे स्वाधीन रहा। १५९६ ई०में चाँद सुलतानने अकबरके पुत्र मुराद-के हाथ यह स्थान सौंपा। १५९९ ई०में स्वयं अकबर शाह इस स्थानको देखने आये और इसे अपने शासनभुक्त कर गये।

वेनगङ्गाके उत्तर पर्वत पर हेटकरी जातिका वास है। १६०० ई०में इन्होंने वासिमके चारों ओरके स्थान दखल किये। अंगरेजोंके अधिकारकाल तक ये लोग पार्श्ववर्त्ती स्थानोंमें लूट मार मचाते रहे थे। १६७० ई०में मुगलोंका बल तेजहीन देख मराठोंने नाना स्थान लूट लिये। १६७१ ई०में शिवाजीके सेनापति प्रतापरावने इस स्थान पर आक्रमण करके 'चौथ' वसूल किया। औरङ्गजेबकी मृत्युके बाद १७१७ ई०में फरुखशियरसे मराठोंने चौथ और सरदेशमुखी वसूल किया था। १७२४ ई०में चिंगलिच खाँ (निजाम-उल-मुल्क) ने मुगलोंको परास्त कर मराठोंकी सहायतासे इस प्रदेशका राजस्व बांट लिया। १८०४ ई०की सन्धिके अनुसार निजामने वासिम-का कुछ अंश खरीदा। १८०९ ई०में पिण्डारियोंने इस जिलेको अच्छी तरह लूटा। १८१९ ई०में यहांके नायक नौसाजी मुस्कीने विद्रोही हो कर निजामके विरुद्ध उमारखेड़में लड़ाई ठान दी थी। वहांसे वितांड़ित हो कर उन्होंने अपने नये दुर्गमें आश्रय ग्रहण किया। किन्तु आत्मरक्षामें असमर्थ हो वे बंदी हो हैदराबाद भेजे गये। वहीं पर उनकी मृत्यु हुई।

१८२२ ई०की सन्धिके अनुसार निजामको पेशवाधि-कृत उमारखेड़ परगना मिला। अङ्गरेज सरकारने निजाम राजको रुपयेसे सहायता पहुंचाई थी, इस कारण १८५३ ई०में उन्हें यह स्थान पारितोषिक स्वरूप दिया गया। १८५९ ई०में यहां अङ्गरेजोंके साथ रोहिलाका युद्ध हुआ। पीछे १८६०-६१ ई०की दूसरी सन्धिके अनुसार यह स्थान पुनः अङ्गरेजोंके हाथ लगा।

इस जिलेमें ३३ शहर और ८२४ ग्राम लगते हैं। जन-संख्या साढ़े तीन लाखसे ऊपर है। हिन्दूकी संख्या सैकड़े पीछे ९२ है। यहांकी भाषा मराठी है। विद्या-शिक्षामें यह जिला वेरारके छः जिलोंमें पांचवां पड़ता है। अभी कुल मिला कर १२० स्कूल हैं। स्कूलके अलावा एक अस्पताल और पांच चिकित्सालय हैं।

२ वेरारके अकोला जिलेका उपविभाग। इसमें वासिम और मङ्गसल तालुक लगते हैं।

३ उक्त उपविभागका एक तालुक। यह अक्षा० १९° ५२′ से २०° २५′ उ० तथा देशा० ७५° ४०′ से ७७° २८′ पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण १०४६ वर्गमील और जनसंख्या १७७२५० है। इस तालुकमें वासिम नामक एक शहर और ३२४ ग्राम लगते हैं। यहांकी जमीन बहुत उपजाऊ है।

४ उक्त तालुकका एक शहर। यह अक्षां० २०° ७′ उ० तथा देशा० ७७° ११′ पू०के मध्य अवस्थित है। बहु प्राचीन कालमें वत्स नामक किसी ऋषिने इस नगरको बसाया। उन्हींके नामानुसार यह स्थान वच्छगुलिन नामसे प्रसिद्ध था। पीछे लोग उसके अपभ्रंशमें वासिम कहने लगे। नगरके बाहर पद्मातीर्थ नामक एक पुण्यसलिला पुष्करिणी है। प्रवाद है, कि वासुकि नामक कोई राजा इस पुष्करिणीमें स्नान कर कुष्ठरोगसे मुक्त हुए थे। उसी माहात्म्यके लिये आज भी सैकड़ों कुष्ठरोगी इसमें स्नान करने आते हैं। १७वीं शताब्दीमें वासिमके देशमुखोंने मुगल सम्राट्से काफी जमीन और रत्न पाया था। नागपुरके भोंसलेके बाद यहां निजाम राजाने सेनानिवास और टकसाल खोली थी। भोंसलेके सेनापति भवानी काल्लू- प्रतिष्ठित बालाजीका मन्दिर और पुष्करिणी देखने लायक है।

वासिष्ठी (हिं० स्त्री०) बन्नास नदीका एक नाम। कहते हैं, कि वसिष्ठजीके तप-प्रभावसे ही वह नदी प्रकट हुई थी।

वासी (हिं० वि०) १ जो ताजा न हो, देरका बना हुआ। २ जो सूखा या कुम्हलाया हुआ हो, जो हरा भरा न हो। ३ जिस पेड़से अलग हुए ज्यादा देर हो गई हो। ४ जो कुछ समय तक रखा रहा हो। ५ बसनेवाला, रहनेवाला।

वासोदा—मध्यभारतके भोपाल एजेन्सीके अन्तर्गत एक सामन्तराज्य। भूपरिमाण ४० वर्गमील और जनसंख्या पांच हजारके करीब है। यहांके सामन्तगण पठानवंशीय और नवाव-उपाधिधारी हैं। १७वीं शताब्दीमें ओर्छाके राजा वीरसिंहदेवने वासोदा नगरको बसाया था। यह राज्य नवाव-बसोदा नामसे मशहूर है। इस राज्यके पश्चिममें टोङ्क राज्यका सिरञ्जों जिला और ग्वालियरका कुछ अंश; उत्तरमें मध्यप्रदेशका सौगर जिला, पठारी राज्य और महम्मदगढ़; पूर्वमें सौगर जिला और भोपाल तथा दक्षिणमें भी भोपाल है।

१८वीं शताब्दीमें कोरवैवंशके महम्मद दिलेर खाँ नामक एक वारकजै फिरोज खेल-अफगानने इस राज्यको स्थापित किया। उनकी मृत्युके बाद यह राज्य उनके दो लड़कोंमें विभक्त हुआ। बड़े लड़केके हिस्सेमें कोरवै पड़ा। छोटे लड़के अहसन-उल्ला खां पहले ग्वालियरराज्यके राख और पीछे बहादुरगढ़में बस गये। किन्तु मराठोंसे तंग आ कर वे १७५३ ई०में अपनी राजधानीको वासोदामें उठा लाये। १८१७ ई०में यह राज्य सिन्धियाके हाथ लगा, पर अंगरेजोंके दबावसे १८२२ ई०में फिर लौटा दिया गया।

अहसन उल्लाकी १७८६ ई०में मृत्यु हुई। पीछे नवाब वकाउल्ला खां और आसद अली खां राज्याधिकारी हुए। वर्त्तमान सरदारका नाम हैदर अली खाँ है। ये १८६७ ई०में राजगद्दी पर बैठे। इनकी भी उपाधि नवाब है। इस राज्यमें कुल २३ ग्राम लगते हैं। राजस्व १६००० रु० है। यहांकी जमीन खूब उपजाऊ है।

२ उक्त राज्यकी एक राजधानी। यह अक्षा० २३° ५१′ उ० तथा देशा० ७७° ५६′ पू०के मध्य अवस्थित है। जनसंख्या १८५० है। यहां एक सरकारी डाकघर, कारागार, एक स्कूल और एक चिकित्सालय है।

वासोली—काश्मीर राज्यके अन्तर्गत एक भूभाग और उस देशका एक नगर। यह अक्षा० ३२° ३३′ उ० तथा देशा० ७५° २८′ पू०के मध्य हिमालयके दक्षिण इरावती नदीके किनारे अवस्थित है। १७२५ ई०में यह स्थान सिखोंके अधिकारमें आया।

वासौंधी (हिं० स्त्री०) बसौंधी देखो।

वास्त (सं० त्रि०) वस्त वा छागसम्बन्धीय।

वास्तायन (सं० पु०) वस्तका गोत्रापत्य।

वाह (सं० पु०) बाहु, बाँह।

वाह (हिं० पु०) खेतको जोतनेकी क्रिया, खेतकी जोताई।

वाहट—एक ग्रन्थकार। मल्लिनाथने रघुवंशटीकामें इनका नामोल्लेख किया है।

वाहड़ी (हिं० स्त्री०) वह खिचड़ी जो मसाला और कुम्हड़ौरी डाल कर पकाई गई हो।

वाहन (हिं० पु०) १ एक वहुत लंवा पेड़। जाड़ेके दिनोंमें इसके पत्ते झड़ जाते हैं। इसके हीरकी लकड़ी वहुत ही लाल और भारी होती है। लोग खराद और इमारतके काममें इसे लाते हैं। २ जल्दी वढ़नेवाला एक ऊंचा पेड़। यह काश्मीर और पंजावके इलाकोंमें अधिकतासे पाया जाता है। इसकी लकड़ी प्रायः आरायशी सामान वनानेके काममें आती है, सुफेदा।

वाहना (हिं० क्रि०) १ ढोना, लादना वा चढ़ा कर ले आना या ले जाना। २ चलाना, फेंकना। ३ धारण करना, पकड़ना। ४ प्रवाहित होना, वहना। ५ खेतमें हल चलाना। ६ गौ, भैंस आदिको गाभिन कराना। ७ गाड़ी घोड़े आदिको हाँकना।

वाहवली (हिं० पु०) कुश्तीका एक पेंच।

वाहम (फा० क्रि० वि०) परस्पर, आपसमें।

वाहर (हिं० क्रि० वि०) १ स्थान, पद, अवस्था या संवंध आदिके विचारसे किसी निश्चित अथवा कल्पित सीमासे हट कर, अलग या निकला हुआ। २ वगैर, सिवा। ३ प्रभाव, अधिकार या संवन्ध आदिसे अलग। ४ किसी दूसरे स्थान पर, किसी दूसरी जगह।

वाहर (हिं० पु०) वह आदमी जो कुंएंकी जगत पर मोटका पानी उलटता है।

वाहरदेव—रणस्तम्भगढ़के प्रवलपराक्रान्त एक हिन्दू-राजा। १२५३ ई०में उलघखाँके विरुद्ध इन्होंने कई वार युद्ध किया था।

वाहरी (हिं० पु०) १ वाहरवाला, वाहरका। २ जो घरका न हो, पराया। ३ जो केवल वाहरसे देखने भरको हो, ऊपरी। ४ जो आपसका न हो, अजनवी।

वाहरोटांग (हिं० स्त्री०) कुश्तीका एक पेंच। इसमें प्रतिद्वन्द्वीके सामने आते ही उसे खींच कर अपनी वगलमें कर लेते हैं और उसके घुटनोंके पीछेकी ओर अपने पैरसे आघात करके उसे पीठकी ओर ढकेलते हुए गिरा देते हैं।

वाहव (सं० पु० क्ली०) वाहु, वांह।

वाहली—पञ्जाव प्रदेशके वसहर राज्यके अन्तर्गत एक गिरिश्रेणी। यह अक्षा० ३१° २२´ उ० तथा देशा० ७७° ४२´ पू०के मध्य अवस्थित है। इस पर्वतके ऊपर एक दुर्ग है तथा वाहली नगरमें रामपुर और वसहरराजका ग्रीष्मावास है। नौपड़िखोला नदी इसके पादमूल हो कर वहती है।

वाहवि (सं० पु०) वाहुका गोत्रापत्य।

वाहस (हिं० पु०) अजगर।

वाहांजोरी (हिं० क्रि० वि०) भुजासे भुजा मिला कर, हाथसे हाथ मिला कर।

वाहा (सं० स्त्री०) वाहु-टाप्। वाहु, वांह।

वाहा (हिं० पु०) वह रस्सी जिससे नावका डांड़ वंधा रहता है।

वाहिक—इरावती नदीकी आपगाशाखाप्रवाहित प्रदेशवासी प्राचीन जातिविशेष। महाभारतमें लिखा है, कि वाहिक नामक दस्युका वासस्थान वितस्ता तीरभूमि वाहिक नामसे प्रसिद्ध था।

वाहिज्ञ (हिं० पु०) ऊपरसे, वाहरसे।

वाहिनी (हिं० स्त्री०) १ वह सेना जिसमें तीन गण अर्थात् ८१ हाथी, ८१ रथ, २४३ सवार और ४०५ पैदल हों। २ सेना, फौज। ३ नदी। ४ यान, सवारी।

वाहिर (हिं० क्रि० वि०) वाहर देखो।

वाही (हिं० स्त्री०) वाँह देखो।

वाहीक (सं० त्रि०) १ वहिस्। २ वाह्य। ३ पञ्चनदके लोकसम्वन्धीय।

वाहु (सं० पु० स्त्री०) वाधते शत्रूनिति वाध (अर्जिदृशिकम्यमिपंसिवाधामृजिपशितुक्धुक् दीर्घहकारश्च। उण् १।२८) इति कुप्रत्ययोऽन्तस्य हकारादेशश्च। भुजा, हाथ। पर्याय—भुज, प्रवेष्ट, दोष, वाहु, दोष। वैदिक पर्याय—आयती, च्यवना, अभीशू, अप्नवाना, विनंगृसौ, गभस्ती, कवस्नौ, वाहू, भूरिजौ, क्षिपस्ती, शक्करी, भरित्रे। २ कपूरका अधोभाग, केहुनीका निचला हिस्सा।

वाहुक (सं० पु०) १ राजा नलका उस समयका नाम जव वे अयोध्याके राजाके सारथी वने थे। २ नकुलका नाम। ३ एक नागका नाम।

वाहुकर (सं० त्रि०) हस्त द्वारा कर्मकारी, हाथसे काम करनेवाला।

वाहुकण्ठ (सं० त्रि०) वाहौ वाह्वोर्वावयवयोः कुण्ठः। कुण्ठितं वाहुयुक्त। पर्याय—कुम्प, दोर्गड़े।

वाहुकुन्थ (सं॰पुं॰) वाहुरिव कुन्थति आचरतीति वाहु कुन्थ पचाद्यच्। पक्ष, पंख।

वाहुकुलेयक (सं॰ त्रि॰) वहुकुले जातः (अपूर्वपदादन्यतरस्यां यत् ढकञौ। पा ४।१।१४०) इति ढकञ्। वहुकुलजात।

वाहुक्षद (सं॰ त्रि॰) वाहु द्वारा खण्डकारी।

वाहुगुण्य (सं॰ क्ली॰) १ वहुगुणशालिता। २ वाहुल्य।

वाहुच्युत् (सं॰ त्रि॰) वाहुता।

वाहुच्युत (सं॰ त्रि॰) वाहु द्वारा प्रच्युत।

वाहुज (सं॰ पुं॰) ब्रह्मणो वाहुभ्यां जायते यः, वाहु-जन-ड। क्षत्रिय, जिनकी उत्पत्ति ब्रह्माके हाथसे मानी जाती है।

"ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत् बाहूराजन्यः स्मृतः।
ऊरुस्तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रोऽभ्यजायत।" (श्रुति)

२ कीर, सुग्गा। ३ स्वयं जाततिल, वह तिल जो आपे आप उगा हो। ४ वाहुजात, वह जो वाँहसे उत्पन्न हुआ हो।

वाहुजन्य (सं॰ त्रि॰) वाहुज, वांहसे उत्पन्न।

वाहुजूत (सं॰ त्रि॰) वाहु द्वारा शत्रुप्रेरक।

वाहुज्या (सं॰ स्त्री॰) भुजज्या Cord of an arc, Sine।

वाहुता (सं॰ अव्य॰) वाहुमूलमें।

वाहुत्राण (सं॰ क्ली॰) त्रै-भावे-ल्युट्, वाह्वोस्त्राणं यस्मात्। अस्त्राघात निवारणार्थ लौहादि, चमड़े या लोहे आदिका वह दस्ताना जो युद्धमें हाथोंकी रक्षाके लिये पहना जाता है। इसका पर्याय वाहुल है।

वाहुदन्तक (सं॰ पुं॰) वहवश्चत्वारो दन्ताऽस्य कप्, ऐरावतः उपचारात् इन्द्रः, तेन प्रोक्तमण्। पुरन्दरप्रोक्त पञ्चसहस्रात्मक नीतिशास्त्रभेद।

वाहुदन्तिन् (सं॰ पुं॰) वहवो दन्ता यस्य, स वहुदन्त ऐरावतः स एव वाहदन्तः, स्वार्थे अण्, वाहुदन्तोऽस्यास्तीति इनि। इन्द्र।

वाहुदन्तेय (सं॰ पु॰) वहुदन्तश्चतुर्दन्त ऐरावतस्तम इति ततो ढ। इन्द्र।

वाहुदा (सं॰ स्त्री॰) एक नदी। महाभारतमें इसकी नामनिरुक्तिके विषयमें यों लिखा है,—वाहुदा नदीके पास शङ्ख और लिखित नामके दो भाई अलग-अलग रहते थे। एक दिन महर्षि लिखित वड़े भाई शङ्खके आश्रममें गये। तपोधन शङ्ख उस समय आश्रममें नहीं थे। वड़े भाईको आश्रममें न देख लिखित वृक्षसे सभी सुपक्व फल तोड़ कर खाने लगे। इसी समय शङ्ख भी पहुंचे और छोटे भाईको फल खाते देख वोले,' तुम्हें ये सव फल कहां मिले?' 'आपके इस सामनेवाले वृक्षसे।' लिखितने जवाव दिया। इस पर शंख वहुत विगड़े और लिखितसे वोले, 'तूने मेरी अनुपस्थितिमें फल तोड़ कर चोरका काम किया है। इसलिये राजाके निकट आत्मदोष वतला कर समुचित दण्डका भोग करो।' लिखित वड़े भाईके आदेशानुसार उसी समय सुदम्न राजाके निकट चल दिये। वहां जा कर उन्होंने राजासे कहा, 'महाराज! मैंने अपने वड़े भाईकी अनुपस्थितिमें उनके वृक्षसे फल तोड़ कर खाया है, सो मैंने एक चोरका काम किया। अतः आप मुझे इसका उपयुक्त दण्ड दीजिए।' सुदम्नने कहा, "राजा जिस प्रकार अपराधीको दण्ड देते हैं, उसी प्रकार उसका दोष भी माफ कर सकते हैं। आप व्रतपरायण और सच्चरित्र हैं, अतएव मैंने आपका दोष माफ कर दिया।"

सुदम्नके इस वचन पर लिखित सन्तुष्ट न हुए, वार वार दण्डके लिये प्रार्थना करने लगे। इस पर सुदम्नने लिखितकी दोनों वाहुको छेद कर समुचित दण्डप्रदान किया। लिखित इस प्रकार दण्डित हो वड़े भाई शङ्खके समीप गये और उनसे वोले, 'राजाने मुझे यही दण्ड दिया है, अव आप मुझे क्षमा करें।' शङ्खने कहा, 'मैं तुम पर क्रुद्ध नहीं हूं; धर्मका अतिक्रम करते देख मैंने तुम्हें पापका प्रायश्चित्त कराया ; अभी तुम इस नदीमें स्नान कर देवता और पितरोंका तर्पण करो।' लिखितने उनके आदेशानुसार नदीमें स्नान किया और तर्पण करनेके लिये वे ज्यों ही आगे वढ़े त्यों ही उनके दोनों हाथ फिर निकल आये। इस नदीमें स्नान कर शङ्खके तपःप्रभावसे लिखितके हाथ फिर निकल आये थे इसी कारण इसका वाहुदा नाम पड़ा।

अनन्तर लिखितने आश्चर्यान्वित हो वड़े भाईसे जा कर कहा, 'आपके तपःप्रभावसे मैंने पुनः हाथ पा लिये, परन्तु राजाके समीप न भेज कर आपने स्वयं ही मुझे पवित्र क्यों नहीं किया? इस पर शङ्खने कहा, 'तुमने

शाप किया था, इस कारण राजाके समीप भेजा। राजा ही दोषीको दण्ड देते हैं, मुझे दण्ड देनेका कोई भी अधिकार नहीं है। अभी तुम और राजा दोनों ही पवित्र हो गये हो। (भारत शान्तिपर्व २३,२४ अ०)

यह नदी हिमालयसे निकली है। हरिवंशमें लिखा है,—प्रसेनजित राजाके गौरी नामकी एक स्त्री थी। स्वामीने क्रुद्ध हो कर उन्हें शाप दिया था जिससे वे 'वाहुदा' नदीमें परिणत हुई।

लेभे प्रसेनजिद्‌भार्यां गौरीं नाम पतिव्रतां।
अभिशप्ता तु सा भर्त्रा नदी वै वाहुदा कृता ॥"
(हरिवंश १२।५)

२ पुरुवंशीय परीक्षित् राजाकी पत्नी (त्रि०) ३ वहुदात्री, वहुत दानकरनेवाली।

वाहुपाश (सं० पु०) १ वाहु द्वारा युद्धकौशल भेद। २ वाहुशृङ्खल।

वाहुप्रलम्ब (सं० त्रि०) अजानुवाहु, जिसकी वाहें वहुत लम्बी हों। ऐसा व्यक्ति वहुत वीर माना जाता है।

वाहुवल (सं० क्ली०) वाह्वोः वलं। हस्तवल, पराक्रम, वहादुरी।

वाहुवलि (सं० पु०) गिरिभेद।

वाहुवलिन् (सं० त्रि०) वाहुवलशाली, पराक्रमी।

वाहुवाध (सं० पु०) जनपदभेद।

वाहुभाष्य (सं० क्ली०) वहुभाषणशीलता, वहुत वोलनेवाला।

वाहुभूषा (सं० क्ली०) वाह्वोर्भुजयोर्भूषा भूषणं। १ केयूर, वहूंटा। २ वाहुभूषणमात्र।

वाहुभेदिन् (सं० पु०) वाहुं भिनत्तीति वाहु० भिद णिनि। विष्णु। (त्रि०) २ वाहुभेदक।

वाहुमत् (सं० त्रि०) वाहुयुक्त।

वाहुमात्र (सं० त्रि०) वाहुः प्रमाणमस्य वाहु-मात्रच्। वाहुपरिमाण।

वाहुमित्रायण (सं० पु०) वहुमित्रका गोत्रापत्य।

वाहुमूल (सं० क्ली०) वाह्वोर्मूलं। कक्ष, कंधे और वाहुका जोड़।

वाहुयुद्ध (सं० क्ली०) वाह्वोर्भुजाभ्यां वा युद्धं। भुज द्वारा संग्राम, मल्लयुद्ध, कुश्ती। पर्याय—नियुद्ध। वाहुयुद्धके अनेक भेद हैं, यथा—सङ्कट, कङ्कट, करग्रर्पणज और किण। महाभारतके विराटपर्व १२ अध्यायमें इसका विवरण लिखा है। मल्लयुद्ध देखो।

वाहुयोध (सं० पु०) मल्ल, पहलवान।

वाहुल (सं० क्ली०) वहुल- अण्। १ वहुलभाव, वहुतायत, ज्यादती। २ वाहुत्राण, युद्धके समय हाथमें पहननेकी एक वस्तु जिससे हाथकी रक्षा होती थी। २ अग्नि, आग। ३ कार्त्तिक मास।

वाहुलक (सं० क्ली०) वहुलेन वहुलग्रहणेन निर्वृत्तं सङ्कलादित्वात् अण् संज्ञायां कन्। व्याकरणोक्त सर्वोपाधिरहित विधानादि।

कहीं कहीं विधिका विधानविविध देख कर वाहुलक विधि चार प्रकारकी वतलाई गई है, यथा—कहीं प्रवृत्ति, कहीं अप्रवृत्ति, कहीं विभाषा और कहीं इसकी अन्यथा।

वाहुलग्रीव (सं० पु०) मयूर, मोर।

वाहुलता (सं० स्त्री०) वाहुरेव लता, रूपक कर्मधा०। वाहु रूप लता।

वाहुलतिका (सं० स्त्री०) वाहुरेव लतिका। वाहुलता।

वाहुलेय (सं० पु०) वहुलानां कृत्तिकादीनामपत्यं पुमान् वहुला ढक्। कार्त्तिकेय।

वाहुल्य (सं० क्ली०) वहुल-ष्यण्। आधिक्य, अधिकता।

वाहुविस्फोट (सं० पु०) ताल ठोंकना।

वाहुवीर्य (सं० क्ली०) वाह्वोः वीर्यं। वाहुवल, भुजवल, पराक्रम।

वाहुव्यायाम (सं० पु०) वाहु द्वारा नाना कौशल।

वाहुशर्द्धिन् (सं० त्रि०) वाहुभ्यां शर्द्धयति अभिभवतीति (सुप्यजातौ णिनिस्ताच्छील्ये। पा ३।२।७८) इति णिनि। वाहुवलयुक्त।

वाहुशाल (सं० पु०) वृक्षभेद। वहुशाल देखो।

वाहुशालिन् (सं० त्रि०) वाहुभ्यां शालते तद्विक्रमाधिक्येन श्लाघते शाल-इनि। १ वाहुवीर्याधिक्ययुक्त, पराक्रमी। स्त्रियां ङीप्। (पु०) २ शिव। ३ भीम। ४ धृतराष्ट्र पुत्रभेद। ५ दानवभेद। ६ राजपुत्रभेद।

वाहुशिखर (सं० पु०) स्कन्ध, कंधा।

वाहुशोष (सं० पु०) वांहमें होनेवाला एक प्रकारका वायु रोग जिसमें वहुत पीड़ा होती है।

वाहुश्रुत्य (सं० पु०) वाहुश्रुत होनेका भाव, वहुत-सी वातोंको, सुन कर, प्राप्त की हुई जानकारी।

वाहुसम्भव (सं० पु०) वाहू ब्रह्मवाहू सम्भवोऽस्य। क्षत्रिय, जिनकी उत्पत्ति ब्रह्माकी वांहसे मानी जाती है।

वाहुसहस्रभृत् (सं० पु०) वाहूनां सहस्रं विभर्त्तीति क्विप् (ह्रस्वस्य पितिकिति तुक्। पा ६।१।६१) इति तुक् च। कार्त्तवीर्यार्जुन। परशुरामने परशु द्वारा इनकी हजार भुजाएं काट डाली थीं। सवेरे इनका नाम लेनेसे सब प्रकारकी दुर्गति और महापातक विनाश होता है।

"कार्त्तवीर्यार्जुनो नाम राजा वाहुसहस्रभृत्।
योऽस्य संकीर्त्तयेन्नाम कल्यमुत्थाय मानवः।
न तस्य वित्तनाशः स्यात् नष्टञ्च लभते पुनः॥"

(आह्निकतत्त्व) कार्त्तवीर्यार्जुन देखो।

वाहू (सं० स्त्री) वाहु देखो।

वाहूवाहवि (सं० अव्य०) वाहूभिर्वाहु भिर्यत् युद्धं वृत्तं। वाहु द्वारा जो युद्ध होता है, कुश्ती।

वाहेर (हिं० क्रि०वि०) पवित्र, निकृष्ट।

वाह्मणगांव—मध्यप्रदेशके वालाघाट जिलान्तर्गत एक भूसम्पत्ति। भूपरिमाण ८ वर्गमील है।

वाह्मण (हिं० पु०) ब्राह्मण देखो।

वाह्मनीवंश—दाक्षिणात्यका एक मुसलमान राज-वंश। १३४४ ई०में वरंगुल, विजयनगर और द्वारसमुद्रमें हिन्दू राजाओंने मिल कर दिल्लीकी अधीनता त्याग दी थी। यह देख दौलतावादके मुसलमान शासनकर्त्ता अन्यान्य मुसलमान अमात्योंकी सहायतासे एक साथ १३४१ ई०में दिल्लीश्वर मुहम्मद तुगलकके अधीनता-पाश छेद कर स्वाधीनताकी ध्वजा उड़ानेमें समर्थ हुए थे। कुलवर्ग (आशनावाद)-में उन्होंने अपना राजपाट स्थापित किया था। उक्त दौलतावादके राज-प्रतिनिधि हसन वाल्यावस्थासे ही अति दरिद्र थे। गङ्गू नामक किसी ब्राह्मणकी सहायतासे इन्होंने राजसरकारमें प्रतिष्ठा प्राप्त की और पीछे पदोन्नति हुई। ब्राह्मणके प्रति, कृतोपकारके लिये कृतज्ञता प्रदर्शनार्थ ये अपना नाम हसन गङ्गू वाह्मनी रख कर राजसिंहासन पर बैठे। इन्हींके द्वारा प्रतिष्ठित राजवंश, उस ब्राह्मणके स्मरणार्थ वाह्मनी नामसे प्रसिद्ध हुआ।
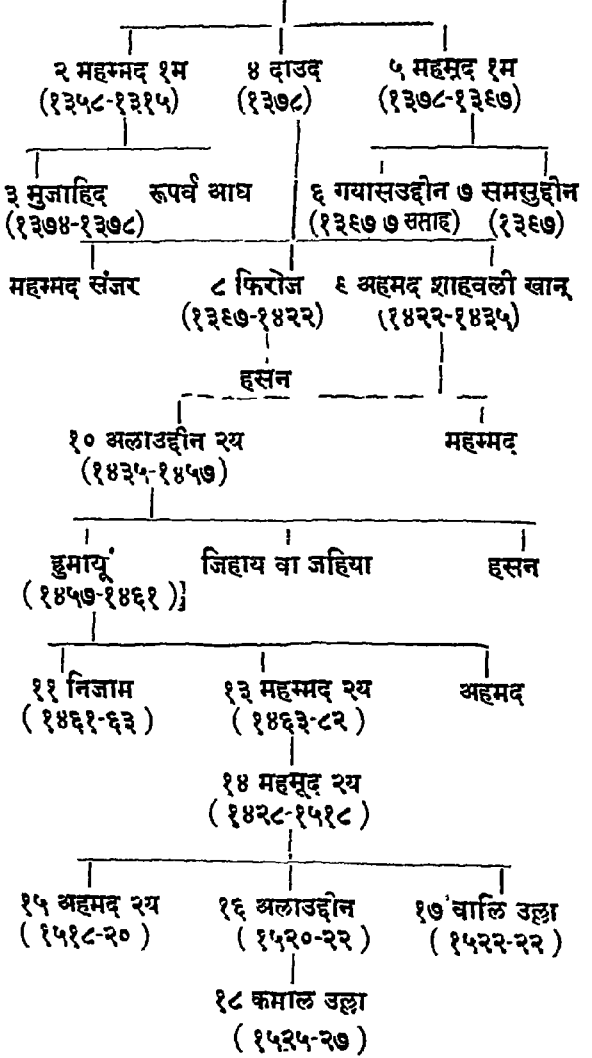
उपर्युल्लिखित अठारह राजाओंने करीव दो सौ वर्ष तक दाक्षिणात्यके कुलवर्गा-राजसिंहासन पर वैठ कर राजकार्य चलाया था। अनन्तर वरिदशाही, आदिलशाही, इमादशाही और कुतुवशाही राजाओंने दक्षिण-भारतमें शासनदण्ड विस्तार किया था।

अलाउद्दीन अपना राज्य चार भागोंमें विभक्त कर १३५८ ई०में परलोक सिधारे। उनके पुत्र महम्मदशाहने गणपति-राज्य लूट कर वरङ्गल राज्य पर हमला किया। युद्धमें वरङ्गल राजपुत्र नागदेव मारे गये, जिससे गोलकुण्डा आदि राज्य महम्मदशाहके हस्तगत हुए।

१३६१-६६ ई०में इन्होंने विजयनगरके राजाके विरुद्ध युद्ध कर हद दर्जेकी निष्ठुरताका परिचय दिया। इस युद्धमें विजयी होने पर भी दोनों पक्षोंमें शान्ति स्थापित न हो पायी थी। १३७५ ई०में इनकी मृत्यु होने पर इनके पुत्र मजाहिदने राजासन पर बैठ कर लगातार कई मरतबा विजयनगर पर चढ़ाई की थी। इन युद्धोंमें उनके अत्याचारोंकी सीमा न थी। अन्तिम आक्रमणमें विफल-मनोरथ हो कर लौट रहे थे, कि रास्तेमें उनके चाचा दाऊदने (१३७८ ई०में) इन्हें मार डाला। दाऊद भी राजसिंहासन पर बैठनेके बाद मजाहिदकी बहनके षड़यन्त्रसे मारे गये। उसके बाद अलाउद्दीनके कनिष्ठ पुत्र महमूद राजा हुए। करीब १९ वर्ष तक निष्कंटक राज्य करके १३९७ ई०में वे परलोक सिधारे। उनकी मृत्युके बाद उनके दोनों पुत्र गयासउद्दीन और समसुद्दीनने क्रमशः कुछ दिनों तक राज्य किया। बादमें एक क्रीतदासने गयासउद्दीनके आंखे उपाट कर उन्हें कैद किया था और समसुद्दीनको दाऊदके पुत्र फिरोजने राज्यच्युत किया था।

फिरोजने २५ वर्ष तक राज्य किया था। उन्होंने १३७८, १४०१ और १४१७ ई०में लगातार तीन वार विजयनगर पर आक्रमण किया था। प्रथम दो युद्धोंमें विजयनगरके राजा पराजित हुए, परन्तु तृतीय युद्धमें फिरोजको परास्त और विशेष क्षतिग्रस्त हो कर अपने राज्यमें लौट आना पड़ा। द्वितीय युद्धकी विजयमें उपलब्ध धनस्वरूप फिरोजने विजयनगरकी राजकन्याका पाणिग्रहण किया था १४१२ ई०में उनकी मृत्यु होनेके बाद उनके भाई अहमद शाहने निरीह भतीजोंको भगा कर स्वयं राज्य पर अधिकार जमा लिया। राज्याधिकारके बाद ही इन्होंने विजयनगरके राजाको युद्धमें परास्त कर लेना प्रारंभ कर दिया। पश्चात् वरङ्गल-पतिके इनके साथ युद्धमें मारे जानेके कारण उक्त राज्य नष्ट हो गया। ये भी विदरनगर स्थापन कर १४३५ ई०में संसारसे चल बसे। उनके पुत्र २य अलाउद्दीनके राजसिंहासन पर आरोहण करने पर कनिष्ठ महम्मद विजयनगर-नरेशके साथ मिल कर भाईके विरोधी बन गये और एक विप्लव खड़ा कर दिया। पर महम्मद परास्त हो कर सहज ही में भाईके वशीभूत हो गये। अलाउद्दीनके विजयनगर-राजधानी उठा लाने पर, १४३७ ई०में विजयनगरके देवराजने लगातार कई वार वाह्मनीराज्य पर आक्रमण किये। आखिर दोनों पक्षोंमें संधि हो गई। १४५७में २य अलाउद्दीनकी मृत्यु होने पर उनके निष्ठुर पुत्र हुमायूंने ४ वर्ष राज्य किया। राजकर्मचारियोंके षड़यन्त्रसे १४६१ ई०में हुमायूंके मारे जाने पर उनके ज्येष्ठपुत्र निज़ामको राज्य मिला। निज़ाम ८ वर्षके बालक होने पर भी उनकी बुद्धिमती माता और महामन्त्री महमूद गवान्ने अच्छी तरह राज-कार्य चलाया था। उस समय उड़िष्या, तैलिङ्ग और मालवाकी सेनाने आ कर वाह्मनीराज्य पर आक्रमण किया था, परन्तु सभी उल्टे पांव लौट गये। इनकी मृत्युके बाद १४६३ ई०में २य महम्मद ८० वर्षकी उम्रमें सिंहासन पर बैठे। १४६८ ई०में ये महमूद गवानको प्रधान मंत्री नियुक्त कर राज्यकी सीमा वृद्धि करनेके लिये अग्रसर हुए। १४६९ ई०में ये कोङ्कण अधिकार करने, उड़िष्या राजको सहायता देने और तैलङ्ग आक्रमण तथा कोण्डपल्ली एवं राजमहेन्द्र विजय करने आदिमें व्यस्त थे। १४७७ ई०में ये पुनः मछलीपत्तन लौटे थे। वहांसे फिर समुद्रोपकूल हो कर काञ्चनपुर तकके स्थान पर आक्रमण किया और लूट-मार की। १४८१में इन्होंने अपने दुर्भाग्यवश ही निज़ाम उलमुल्क भैरीकी सलाहसे महमूद गवानको पदच्युत किया और मार डाला। महमूद गवानकी ज्ञानगर्भ सुप्रणाली और राज्य-परिचालनकी सुव्यवस्था खो कर इन्होंने सचमुच हो अपने पैरोंमें कुल्हाड़ी मार ली थी। इस घटनाके बादसे ही ब्राह्मनी-राज्यके अधःपतनका सूत्रपात हो गया। महमूद गवानकी मृत्युके बाद राज्यके प्रधान प्रधान सामन्तगण राज्यको उपेक्षादृष्टिसे देखने लगे और राज-दरबारमें कम जाने लगे। वे प्रायः अपने दलबलके साथ अपने अपने राज्यमें घूमा करते थे। १४९२ ई०में महमूद गवानके दत्तकपुत्र युसुफ आदिल खांको गोआ नगरकी रक्षार्थ भेजनेके बाद महम्मदकी मृत्यु हो गई। उनके पुत्र २य महमूदने राजा होनेके साथ ही निज़ाम उलमुल्क भैरीको अपना मंत्री नियुक्त किया। युसुफ आदिलके राजधानीमें लौटने पर उनकी हत्याके लिए षड़यन्त्र होने लगा। युसुफको खबर लगते ही वे अपने राज्य वाजापुरको भाग गये।

अनन्तर महमूदके तेलिङ्गना आक्रमणके लिए चले जाने पर निजाम उल्मुल्क मार डाले गये। इसी मौके पर मालिक अहमद जुनारमें स्वाधीन हो गये। वेरारके शासनकर्त्ता ईमाद उल्मुल्क विद्रोही हो कर राज्यके विरुद्ध खड़े हुए। मन्त्री कासिम वारिदकी मृत्युके बाद १५०४ ई०में ब्राह्मनीराज एक तरहसे अमीर वरिदके अधीन हो गया। १५१२ ई०में तैलङ्गके शासनकर्त्ता कुतव उल्मुल्कने गोलकुण्डाके राजा बन कर वाह्मनी-शासनकी अवज्ञा की थी। इसके सिवा वाह्मनी राज-सेनाके साथ बीजापुर और वेरार-सेनाका कई बार युद्ध होनेसे वाह्मनी-राजशक्ति क्रमशः क्षीण हो चली। १५१८ ई०में महमूदकी मृत्युके बाद उनके पुत्र २य अहमद राजा तो हुए, परन्तु राज्यकी समस्त क्षमता अमीर वरिदके हाथ रही। १५२० ई०में उनकी मृत्यु हुई और कनिष्ठ भ्राता अलाउद्दीन राजा हुए। इन्होंने राज-मंत्रियोंके कवलसे छुटकारा पानेकी कोशिश की, जिससे वे १५२२ ई०में राजगद्दीसे उतारे और मार डाले गये। पश्चात् उनके छोटे भाई वाली दो वर्षके लिए राजा रहे; १५२४ ई०में विष दे कर उनका भी काम तमाम किया गया और अमीर वारिदने उनकी विधवा स्त्रीसे अपना सम्बन्ध किया। उसके बाद कलाम उल्लाको सिंहासन पर बिठाया गया, पर वे १५२७ ई०में प्राणोंके डरसे अहमदनगर भाग गये और इधर अमीर वरिदने भी बहाना छोड़ कर नगरमें नवीन राजवंशकी प्रतिष्ठा की। वरिदशाही देखो।

वाह्य (सं० क्ली०) वाह्यते चाल्यते इति वाहि-ण्यत्। १ यान, सवारी। २ भार ढोनेवाला पशु, जैसे—बैल, गधा, ऊंट आदि। ३ बहिस, बाहर। (त्रि०) ४ बहिर्भव, बाहरमें होनेवाला। ५ वहनीय, ढोनेवाला। ६ बाहरी, बाहरका।

वाह्यकरण (सं० क्ली०) वाह्यक्रिया।

वाह्यकर्ण (सं० पु०) महाभारतके अनुसार एक नागका नाम।

वाह्यकुण्ड (सं० पु०) नागभेद, एक नागका नाम।

वाह्यतपश्चर्य्या (सं० स्त्री०) जैनियोंके अनुसार तपस्याका एक भेद। यह छः प्रकारकी होती है—अनशन, औनोदर्य, वृत्तिसंक्षेप, रसत्याग, कायक्लेश और लीनता।

वाह्यतस (सं० अव्य०) वहिर्भागमें, बाहरमें।

वाह्यता (सं० स्त्री०) वहिर्विषयता।

वाह्यद्रुति (सं० पु०) पारेका एक संस्कार।

वाह्यपटी (सं० स्त्री०) जवनिका, नाटकका परदा।

वाह्यभ्यन्तर (सं० पु०) प्राणायामका एक भेद। इसमें आते और जाते हुए श्वासको कुछ कुछ रोकते रहते हैं।

वाह्यभ्यन्तराक्षेपी (सं० पु०) प्राणायामका एक भेद। जब प्राण भीतरसे बाहर निकलने लगे, तब उसे निकलने न दे कर उलटे लौटाना, और जब भीतर जाने लगे तब उसको बाहर रोकना।

वाह्यविद्रधि (सं० पु०) एक प्रकारका रोग। इसमें शरीरके किसी स्थानमें सूजन और फोड़ेकी-सी पीड़ा होती है। इस रोगमें रोगीके मुंह अथवा गुदासे मवाद निकलता है। यदि मवाद गुदासे निकले तब तो रोगी साध्य माना जाता है, पर यदि मवाद मुंहसे निकले तो वह असाध्य समझा जाता है।

वाह्यविषय (सं० पु०) प्राणको बाहर अधिक रोकना।

वाह्यवृत्ति (सं० स्त्री०) प्राणायामका एक भेद। इसमें भीतरसे निकलते हुए श्वासको धीरे धीरे रोकते हैं।

वाह्याचरण (सं० पु०) आडम्बर, ढकोसला।

वाह्यायाम (सं० पु०) वायु सम्बन्धी एक रोग। इसमें रोगीको पीठकी नसें खिंचने लगती हैं और उसका शरीर पीछेकी ओरको झुकने लगता है।

वाह्यालय (सं० पु०) वहिर्वाटी, बाहरका घर।

वाह्लक—वाह्लीक देखो।

वाह्लीक (सं० पु०) काम्बोजके उत्तरप्रदेशका प्राचीन नाम जहां आज कल बलख है। यह स्थान काबुलके उत्तरकी ओर पड़ता है। इसका प्राचीन पारसी नाम वक्तर है। इसी वक्तर शब्दसे यूनानी शब्द बैक्ट्रिया बना है।

वाह्वङ्ग (सं० क्ली०) वाहु।

वाह्वादि (सं० पु०) वाहु आदि करके इञ् प्रत्ययनिमित्त शब्दगण। गण यथा—वाहु, उपवाहु, उपवाकु, निवाकु, शिवाकु, बटाकु, उपबिन्दु, वृषली, वकला, चूड़ा, बलाका, मूषिका, कुशला, छगला, ध्रुवका, धूवका, सुमित्रा, दुर्मित्रा, पुष्करसद्, अनुहरत्, देवशर्मन्, अग्निशर्मन्, भद्र-

वर्मन, सुशर्मन् कुनामन, सुनामन, पञ्चन, सप्तन, अष्टन, अमितौजस, सुधावत्, उदञ्चु, शिरस्, माप, शराविन, मरीची, क्षेमवृद्धिन्, शृङ्खलतोदिन्, खरनादिन्, नगरमर्दिन् प्राकारमर्दिन, लोमन, अजीगर्त्त, कृष्ण, युधिष्ठिर, अर्जुन, साम्ब, गद, प्रद्युम्न, राम, उदङ्क, उदक। (पाणिनि)

विंदा (हिं० स्त्री०) १ एक गोपीका नाम। २ माथे परका गोल और बड़ा टीका। ३ इस आकारका कोई चिह्न।

विंदी (हिं० स्त्री०) १ शून्य, सुन्ना। २ माथे पर लगानेका गोल छोटा टीका। ३ इस आकारका कोई चिह्न।

विंदुका (हिं० पु०) १ विंदी, गोल टीका। २ इस आकारका कोई चिह्न।

विंदुरी (हिं० स्त्री०) १ माथे परका गोल टीका, टिकुली। २ इस प्रकारका कोई चिह्न।

विंदुली (हिं० स्त्री०) विंदी, टिकुली।

विंद्रावन (हिं० पु०) वृन्दावन देखो।

विंध (हिं० पु०) विन्ध्याचल देखो।

विंधाना (हिं० क्रि०) १ वींधनाका अकर्मकरूप, छेदा जाना। २ फंसना, उलझना।

विंधिया (हिं० पु०) वह जो मोती वींधनेका काम करता हो, मोतीमें छेद करनेवाला।

विंव (सं० पु०) विम्ब देखो।

विआना (हिं० क्रि०) बच्चा देना, जनना।

विआपी (हिं० वि०) व्यापी देखो।

विओग (हिं० पु०) वियोग देखो।

विओगी (हिं० वि०) वियोगी देखो।

विकट (सं० लि०) विकट देखो।

विकना (हिं० क्रि०) किसी पदार्थका द्रव्य ले कर दिया जाना, मूल्य ले कर दिया जाना, विक्री होना।

विकराल (सं० लि०) विकराल देखो।

विकल (सं० लि०) विकल देखो।

विकलाई (हिं० स्त्री०) व्याकुलता, वेचैनी।

विकलाना (हिं० क्रि०) घबराना, व्याकुल होना।

विकवाना (हिं० क्रि०) वेचनेका काम दूसरेसे कराना, किसीसे विक्री कराना।

विकसना (हिं० क्रि०) १ प्रस्फुटित होना, खिलना, फूलना। २ प्रफुल्लित होना, बहुत प्रसन्न होना।

विकसाना (हिं० क्रि०) १ विकसना देखो। २ विकसित करना, खिलाना। ३ प्रफुल्लित करना, प्रसन्न करना।

विकाऊ (हिं० वि०) जो विकनेके लिये हो, विकनेवाला।

विकाना (हिं० क्रि०) विकना देखो।

विकार—विकार देखो।

विकारी (हिं० वि०) १ विकृत रूपवाला। २ अहितकर, हानिकारक। (स्त्री०) १ एक प्रकारकी टेढ़ी पाई जो अंकों आदिके आगे संख्या या मान आदि सूचित करनेके लिये लगाई जाती है।

विक्री (हिं० स्त्री०) १ किसी पदार्थके बेचे जानेकी क्रिया या भाव। २ वह धन जो बेचनेसे प्राप्त हो, बेचनेसे मिलनेवाला धन।

विक्रू (हिं० वि०) वेचने लायक, विकाऊ।

विख (हिं० पु०) विष, जहर।

विखम (हिं० वि०) गरल, विष।

विखरना (हिं० क्रि०) खंडो या कणों आदिका इधर उधर गिरना या फैल जाना, छितराना।

विखराना (हिं० क्रि०) खंडों या कणोंको इधर उधर फैलाना, छितराना।

विखाद (हिं० पु०) विषाद देखो।

विखेरना (हिं० क्रि०) खंडों या कणोंको इधर उधर फैलाना, तितर वितर करना।

विखोंड़ा (हिं० पु०) एक प्रकारकी बड़ी घास जो सारे भारतवर्षमें पाई जाती है। यह ज्वार जातिकी होती है और बारहों महीने हरी रहती है। जब यह अच्छी तरह बढ़ जाती है, तब चारेके बहुत उपयोगी होती है, पर आरम्भिक अवस्थामें इसका प्रभाव खानेवाले पशुओं पर बहुत बुरा और प्रायः विषके समान होता है। इसमेंसे एक प्रकारके दाने भी निकलते हैं जिन्हें गरीब लोग यों ही, पीस कर अथवा बाजरे आदिके आटेके साथ मिला कर खाते हैं। इसकी कहीं खेती नहीं होती, यह खेतोंकी मेड़ों पर अथवा जलाशयोंके आस पास आपसे आप उगती है।

विगड़ना (हिं० क्रि०) १ किसी पदार्थके गुण या रूप आदिमें ऐसा विकार होना जिससे उसकी उपयोगिता छट जाय या नष्ट हो जाय, असली रूप या गुणका नष्ट

हो जाना, खराब जाना। २ परस्पर विरोध या वैमनस्य होना, लड़ाई झगड़ा होना। ३ व्यर्थ व्यय होना, वेफायदा खर्च होना। ४ किसी पदार्थके बनते या गढ़े जाते समय उसमें कोई ऐसा विकार होना जिससे वह ठीक या पूरा न उतरे। ५ दुरवस्थाको प्राप्त होना, अच्छा न रह जाना। ६ नीतिपथसे भ्रष्ट होना, बद-चलन होना। ७ क्रुद्ध होना, गुस्सेमें आ कर डांट डपट करना, अप्रसन्नता प्रकट करना। ८ विरोधी होना, विद्रोह करना। ९ पशुओं आदिका अपने स्वामी या रक्षककी आज्ञा या अधिकारसे बाहर हो जाना।

बिगड़ दिल (हिं० पु०) १ हर बातमें लड़ने झगड़नेवाला, वह जो बात बातमें बिगड़ खड़ा हो। २ कुमार्ग पर चलनेवाला, वह जो बिगड़ा हुआ हो।

बिगर (हिं० क्रि० वि०) रहित, बिना।

बिगरना (हिं० क्रि०) बिगड़ना देखो।

बिगहा (हिं० पु०) बीघा देखो।

बिगही (हिं० स्त्री०) क्यारी, बरही।

बिगाड़ (हिं० पु०) १ बिगड़नेकी क्रिया या भाव। २ दोष, बुराई। ३ वैमनस्य, झगड़ा, लड़ाई।

बिगाड़ना (हिं० क्रि०) १ किसी वस्तुके स्वाभाविक गुण या रूपको नष्ट कर देना। २ नीति-पथसे भ्रष्ट करना, कुमार्गमें लगाना। ३ किसी पदार्थको बनाते समय या कोई काम करते समय उसमें कोई ऐसा विकार उत्पन्न कर देना जिससे वह ठीक या पूरा न उतरे। ४ दुरवस्थाको प्राप्त करना, बुरी दशामें लाना। ५ व्यर्थ व्यय करना। ६ स्त्रीका सतीत्व नष्ट करना, पातिव्रत्य भंग करना। ७ बुरी आदत लगाना, स्वभाव खराब करना। ८ बहकाना।

बिगाना (फा० वि०) १ जो अपना न हो, जिससे आपसदारीका कोई सम्बन्ध न हो, पराया। २ अजनबी, अनजान।

बिगार (हिं० पु०) बिगाड़ देखो।

बिगारी (हिं० स्त्री०) बेगारी देखो।

बिगाहा (हिं० पु०) बिग्गाहा देखो।

बिगुल (अं० पु०) अंगरेजी ढंगकी एक प्रकारकी तुरही जो प्रायः सैनिकोंको एकत्र करने अथवा इसी प्रकारका कोई और काम करनेके लिये संकेत रूपमें बजाई जाती है।

बिगूचन (हिं० स्त्री०) १ वह अवस्था जिसमें मनुष्य किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो जाता है, असमंजस। २ कठिनता, दिक्कत।

बिगूचना (हिं० क्रि०) १ संकोचमें पड़ना, दिक्कतमें पड़ना। २ दबाया जाना, पकड़ा जाना। ३ दबोचना, धर दबाना।

बिगूतना (हिं० क्रि०) बिगूचना देखो।

बिगोना (हिं० क्रि०) १ नष्ट करना, विनाश करना। २ भ्रममें डालना, बहकाना। ३ छिपाना, चुराना। ४ तंग करना, दिक करना।

बिग्गाहा (हिं० पु०) आर्य्या छंदका एक भेद। इसे 'उद्गीति' भी कहते हैं। इसके प्रथम पादमें १२५, द्वितीयमें १५, तृतीयमें १२ और चतुर्थमें १८ मात्राएँ होती हैं।

बिग्रह (सं० पु०) विग्रह देखो।

बिघटना (हिं० क्रि०) विनाश करना, बिगाड़ना।

बिचकाना (हिं० क्रि०) १ किसीको चिढ़ानेके लिये मुंह टेढ़ा करना, मुंह चिढ़ाना। २ मुंहको टेढ़ा करना, मुंह बनाना।

बिचरना (हिं० क्रि०) १ इधर उधर घूमना, चलना फिरना। २ पर्यटन करना, यात्रा करना, सफर करना।

बिचलना (हिं० क्रि०) १ विचलित होना, इधर उधर हटना। २ हिम्मत हारना। ३ कह कर इनकार कर जाना, मुकरना।

बिचला (हिं० वि०) जो बीचमें हो, बीचवाला।

बिचवाना (हिं० पु०) बीचमें पड़नेवाला, बीच-बचाव करनेवाला।

बिचारा (हिं० वि०) बेचारा देखो।

बिच्छित्ति (सं० स्त्री०) श्रृङ्गाररसके ११ हावोंमेंसे एक। इसमें किञ्चित् श्रृङ्गारसे ही पुरुषको मोहित कर लिया जाना वर्णन किया जाता है।

बिच्छू (हिं० पु०) १ एक प्रसिद्ध छोटा जहरीला जानवर। वृश्चिक देखो। २ एक प्रकारकी घास। इस घासके छू जानेसे बिच्छूके काटनेकी-सी जलन होती है। ३ काकतुंडिका पौधा या उसका फल।

बिछना (हिं० क्रि०) १ बिछानाका अकर्मक रूप, फैलाया

जाना। २ किसी पदार्थका जमीन पर विखेरा जाना, छितराया जाना। ३ जमीन पर लिटाया या गिराया जाना।

विछवना (हिं० क्रि०) फिसलना देखो।

विछलाना (हिं० क्रि०) फिसलना देखो।

विछवाना (हिं० क्रि०) विछानेका काम दूसरेसे कराना, दूसरेको विछानेमें प्रवृत्त करना।

विछाना (हिं० क्रि०) १ जमीन पर उतनी दूर तक फैलाना जितनी दूर तक फैल सके। २ जमीन पर गिरा या लेटा देना। ३ किसी चीजको जमीन पर कुछ दूर तक फैला देना।

विछावन (हिं० पु०) विछौना देखो।

विछावना (हिं० क्रि०) विछाना देखो।

विछिया (हिं० स्त्री०) पैरकी उंगलियोंमें पहननेका एक प्रकारका छल्ला।

विछुआ (हिं० पु०) १ एक प्रकारका गहना जो पैरमें पहना जाता है। २ एक छोटा-सा शस्त्र, एक प्रकारकी छोटी टेढ़ी छुरी। ३ अगिया या भावर नामका पौधा। ४ सनकी मूली।

विछुड़न (हिं० स्त्री०) १ विछुड़ने या अलग होनेका भाव। २ वियोग, जुदाई।

विछुड़ना (हिं० पु०) १ साथ रहनेवाले दो व्यक्तियोंका एक दूसरेसे अलग होना, जुदा होना। २ प्रेमियोंका एक दूसरेसे अलग होना, वियोग होना।

विछुरना (हिं० क्रि०) विछुड़ना देखो।

विछुरनि (हिं० स्त्री०) विछुड़न देखो।

विछुवा (हिं० पु०) विछुआ देखो।

विछोई (हिं० पु०) १ वह जो विछुड़ा हुआ हो, जिसका वियोग हुआ हो। २ जो विरहका दुःख सह रहा हो, विरही।

विछोड़ा (हिं० पु०) १ विछुड़नेकी क्रिया या भाव, अलग होना। २ विरह होना, प्रेमियोंका वियोग होना।

विछोह (हिं० पु०) वियोग, जुदाई

विछौना (हिं० पु०) १ वह कपड़ा जो सोनेके कामके लिये विछाया जाता हो, विछावन, विस्तर। २ वह फालतू सामान और काठ कवाड़ आदि जो जहाजोंके पेंदेमें बहुमूल्य पदार्थोंको सीड़ आदिसे बचानेके लिये उनके नीचे अथवा उनको टक्कर आदिसे बचाने और उन्हें कसा रखनेके लिये उनके बीचमें विछाया जाता है।

विजड़ (हिं० स्त्री०) खड्ग, तलवार।

विजनी (हिं० स्त्री०) हिमालयकी एक जंगली जाति। इस जातिके लोग उस प्रदेशमें रहते हैं जहां ब्रह्मपुत्र नद हिमालयको काट कर तिब्बतसे भारतमें आता है।

विजनौर—युक्तप्रदेशके वरेली उपविभागका उत्तरीय जिला। यह अक्षा० २९° १' से २९° ५८' उ० तथा देशा० ७८° से ७८° ५७' पू०के मध्य विस्तृत है। भूपरिमाण १७६१ वर्गमील है। हिमालय पर्वतके निम्न देशसे जो सड़क उत्तर-पूर्वकी ओर चली गई है, वह इस जिलेको गढ़वाल जिलेसे पृथक् करती है। इसके दक्षिण-पूर्व और दक्षिणमें नैनीताल तथा मुरादाबाद है। गङ्गा नदी जिलेके पश्चिम हो कर वह गई है। गङ्गाके तीरवर्त्ती स्थान छोड़ कर और प्रायः सभी स्थान पर्वतमण्डित है। हिमालय, गढ़वाल और चण्डी नामक पर्वतमालाका अधित्यका देश ले कर यह जिला संगठित है। गङ्गातीरवर्त्ती स्थानोंमें खेती वारी होती है।

जिलेका कोई प्रकृत इतिहास नहीं मिलता। अयोध्याके वजीर द्वारा विध्वस्त किये जानेके बाद यहां रोहिलोंका अधिकार रहा। ७वीं शताब्दीमें चीन-परिव्राजक यूएनचुवंगने विजनौरसे ४ कोस दूरवर्त्ती मन्दावर नगरकी समृद्धिका उल्लेख किया है। १११४ ई०में मुरारीसे अग्रवाल वनियेंने आ कर मंदावर नगरका संस्कार किया और वे लोग वहीं वस गये। १४३० ई०में तैमुरने लालधङ्गके निकट यहांके अधिवासियोंको परास्त किया। युद्ध-जयके बाद मुगलसेनाने यहां नादिरशाही जारी कर दी थी, जिससे नगर विलकुल जनहीन हो गया था।

सम्राट् अकवरशाहके राजत्वकालमें विजनौर शम्भल सरकारके अधीन हुआ। मुगलशक्तिके अधःपतन पर रोहिलोंने आ कर उपनिवेश वसाया। रोहिला-सरदार अली महम्मदने जबसे निकटवर्त्ती स्थानों पर अधिकार जमाया तभीसे यह स्थान रोहिलखण्डके नामसे वजने लगा। अली महम्मदके दौरात्म्यसे उत्पीड़ित हो अयोध्याके सूबेदारने महम्मद शाहको उनके

विरुद्ध उसकाया। रोहिला-सरदारके सम्राट्की अधीनता स्वीकार करने पर १६४८ ई०में उन्हें अपना राज्य वापस मिला। उनकी मृत्युके वाद रोहिलावीर हाफिज रहमत् खाँने राजकार्यका भार अपने हाथ लिया। १७७१ ई०में महाराष्ट्रीयदलने सम्राट् शाहआलमको दिल्लीके सिंहासन पर विठा कर रोहिलखण्ड पर आक्रमण कर दिया। रोहिलोंने इस असमयमें अयोध्याके वजीरसे सहायता मांगी। वजीर सहायता तो क्या देंगे, उल्टे १७७२ ई०में उन्हें बुरी तरह परास्त किया। युद्धमें हार खा कर रोहिलोंने सारा रोहिलखण्ड-राज्य वजीरको समर्पण किया। केवल १७७४ ई०की सन्धिके अनुसार अलीके पुत्र फैजउल्ला खांके लिये रामपुर राज्य रख छोड़ा।

रोहिला-पठानोंके समय यह पार्वत्यप्रदेश नाना नगरादिसे सुशोभित था। १८०१ ई०में यह स्थान अङ्गरेजोंके दखलमें आया। १८५७ ई०के गदरके अलावा १८३३ ई०में अफजल गढ़के निकट टोङ्कपति अमीर खांका पराभव यहांकी उल्लेखयोग्य घटना है। १८१७ ई० तक यह स्थान मुरादावाद जिलेके अन्तर्भुक्त रहा। वादमें वह स्वतन्त्र जिलाभुक्त हो गया। पहले लगीना नगरमें और पीछे १८२४ ई०को विजनौर नगरमें विचार-सदर स्थापित हुआ।

मीरट नगरका विद्रोहस्रोत विजनौर नगर भी पहुंचा था। इस समय रुरकीके सेनादलने विजनौरका साथ दिया। नजीवावादके नवाव अपनी पठान-सेना ले कर कार्यक्षेत्रमें उतरे। कुछ समय उक्त नवाव यहांके राजा रहे। पीछे जव हिन्दू-मुसलमानमें विवाद छिड़ा, तव हिन्दुओंने मुसलमानोंको भगा कर अपना आधिपत्य फैलाया। सिपाहीविद्रोहके वाद १८५८ ई०के अप्रिल-मासमें यह स्थान फिरसे अंगरेजोंके शासनाधीन हुआ।

इस जिलेमें १६ शहर और २१३२ ग्राम लगते हैं। जनसंख्या साढ़े सात लाखसे ऊपर है। हिन्दूकी संख्या सैकड़े पीछे ६४ और ३५ मुसलमान तथा शेषमें आर्य-लोग हैं। यहांकी प्रधान उपज गेहूं, जै, वाजरा, चना और ईख है। रुई और तेलहनकी फसल भी अच्छी लगती है। विद्याशिक्षामें यह जिला भी युक्तप्रदेशके अन्यान्य जिलोंके जैसा वहुत पीछा पड़ा हुआ है। सैकड़े पीछे २ मनुष्य पढ़े लिखे मिलते हैं। अभी कुल मिला कर २२५ स्कूल हैं जिनमेंसे ३ गवर्मेण्टसे और शेष जिला तथा म्युनिसिपल वोर्डसे परिचालित होते हैं। स्कूलके अलावा १० अस्पताल और चिकित्सालय हैं। कुल मिल कर इस जिलेकी आवहवा अच्छी है।

२ उक्त जिलेकी एक तहसील। यह अक्षा० २९° १' से २९° ३८' उ० तथा देशा० ७८° ०' से ७९° २५' पू०के मध्य अवस्थित है। भू-परिमाण ४८३ वर्गमील और जनसंख्या दो लाखसे ऊपर है। इसमें ५७२ ग्राम और ६ शहर लगते हैं। विजनौर शहर ही सवसे वड़ा है। तहसीलके पश्चिम गङ्गा नदी वह गई है।

३ उक्त तहसीलका एक प्रधान शहर। यह अक्षा० २९° २२' उ० तथा देशा० ७८° ८' पू०के मध्य अवस्थित है। जनसंख्या प्रायः १७५८३ है। कहते हैं, कि राजा वेणने इस नगरको वसाया था। सम्राट् अकवरके पहलेका इस नगरका कोई इतिहास नहीं मिलता। यहां सूती कपड़े, छुरी और जनेऊ तैयार होते हैं। शहरमें एक मिडिल-स्कूल और एक वालिका स्कूल है।

विजयखार (हिं० पु०) विजयसार देखो।

विजयघंट (हिं० पु०) मन्दिरोंमें लटकाये जानेका वड़ा घंटा।

विजयसार (हिं० पु०) एक प्रकारका वहुत वड़ा जंगली पेड़। इसके पत्ते पीपलके पत्तोंसे कुछ छोटे होते हैं। इसमें आँवलेके समान एक प्रकारके पीले फल भी लगते हैं। इसके फूल कड़वे, पर पाचक और वादी उत्पन्न करनेवाले होते हैं। इसकी लकड़ी कुछ कालापन लिये लाल रंगकी और वहुत मजवूत होती है। यह ढोल, तवले आदि वनानेके काममें आती है। इससे अनेक प्रकारकी स्याहियां और रंग भी वनते हैं। इसका गुण कुष्ठ, विसर्प, प्रमेह, गुदाके रोग, कृमि, कफ, रक्त और पित्तका नाशक माना गया है।

विजली (हिं० स्त्री०) १ एक प्रसिद्ध शक्ति जिसके कारण वस्तुओंमें आकर्षण होता है और जिससे कभी कभी ताप और प्रकाश भी उत्पन्न होता है। विद्युत देखो। २

आमकी गुठलीके अन्दरकी गिरी। ३ एक प्रकारका आभूषण जो कानमें पहना जाता है। ४ एक प्रकारका आभूषण जो गलेमें पहना जाता है। (वि०) ५ बहुत अधिक चंचल या तेज। ६ बहुत अधिक चमकनेवाला, चमकीला।

विजलीमार (हिं० पु०) आसाम और दारजिलिङ्गके आस पासकी तराइयोंमें अधिकतासे होनेवाला एक प्रकारका वड़ा वृक्ष। यह बहुत सुन्दर और छायादार होता है। इसके होरकी लकड़ी बहुत कड़ी होती है और प्रायः सिरिसकी लकड़ोकी तरह काममें आती है। आसामवाले इस वृक्ष पर एक प्रकारकी लाख भी उत्पन्न करते हैं।

विजहन (हिं० वि०) जिसकी रोपण शक्ति नष्ट हो गई हो, जिसका वीज नष्ट हो गया हो।

विजाती हिं० वि०) १ दूसरी जातिका, और जाति या तरह-का। २ जो जातिसे वहिष्कृत कर दिया गया हो, जाति से निकाला हुआ, अजाती।

विजायठ (हिं० पु०) वांह पर पहननेका वाजूबंद गहना।

विजावर—वीदावर देखो।

विजिपुर—मन्द्राज प्रदेशके विजागपत्तन जिलान्तर्गत एक 'मूत्ता' भूमि। पहले यहां नरवलि प्रचलित थी।

विजेपुर—१ राजपूतानेके उदयपुर राज्यके अन्तर्गत एक नगर। यह चित्तोर नगरके पूर्ववर्त्ती उपत्यका देशमें अवस्थित है। नगरके चारों ओर एक लंवा चौड़ा बांध है। यहांके सरदार ८१ ग्रामका शासन करते हैं।

विजेवाघेगढ़—मध्यप्रदेशके जव्वलपुर जिलान्तर्गत एक भूमिभाग। भूपरिमाण ७५० वर्गमील है। पहले राज-वंशी सरदार इस प्रदेशका शासन करते थे। १८५७ ई०में सरदारके असद्व्यवहार पर असन्तुष्ट हो वृटिश-सरकारने उनका अधिकार छीन लिया। यहां लोहेकी एक खान है।

२ उक्त भूभागका प्रधान ग्राम। यहां सरदारका आवास-भवन और दुर्ग है।

विजैसार (हिं० स्त्री०) विजयसार देखो।

विजोरा (हिं० पु०) १ विजौरा देखो। (वि०) २ अशक्त, कमजोर।

विजोलिया—राजपूतानेके उदयपुर राज्यका एक प्रधान शहर। यह अक्षा० २६° १०´ उ० तथा देशा० ७५° २०´ पू०के मध्य अवस्थित है। इसमें ८३ ग्राम लगते हैं। यहांके सरदार मेवारके एक सम्भ्रान्त व्यक्ति हैं। इनकी उपाधि राव सवाई है। राजस्व ५७६००) रु० है जिस-मेंसे २८६० रु० दरवारमें कर स्वरूप दिये जाते हैं। कहते हैं, कि वर्त्तमान सरदारके पूर्वपुरुष १६ वीं शताब्दीमें वयानासे मेवार आये थे। ये लोग पोनवर राजपूत हैं। इस शहरका प्राचीन नाम विन्ध्यवल्ली था। यहां तीन सिवैत मन्दिर और पांच जैन मन्दिर हैं।

विजोहा (हिं० पु०) केशवके अनुसार एक छन्दका नाम। विज्जूहा देखो।

विजौरा (हिं० पु०) नीवूकी जातिका एक वृक्ष। इसके पत्ते नीवूके पत्तेके समान, पर उससे बहुत अधिक वड़े होते हैं। इसके फूलोंका रंग सफेद होता है और फल वड़ी नारंगीके वरावर होते हैं। यह दो प्रकारका होता है, एक खट्टे फलवाला और दूसरा मीठे फलवाला। फलोंका छिलका बहुत मोटा होता है। इसका गुण खट्टा, गरम, कण्ठशोधक, तीक्ष्ण, हलका, दीपक, रुचिकारक, स्वादिष्ट और त्रिदोष, तृषा, खांसी, हिचकी आदिको दूर करनेवाला माना गया है। इस वृक्षको जड़, इसके फल और फलोंके वीज तीनों औषधके काममें आते हैं।

विजौरी (हिं० स्त्री०) उड़दकी पीठी और पेठेके मेलसे वनी हुई वड़ी, कुम्हड़ौरी।

विज्जू (हिं० पु०) विल्लीके आकार-प्रकारका एक जंगली जानवर। यह दो हाथ लंवा होता है और प्रायः जंगलों-में विल खोद कर अपनी मादाके साथ उसीमें रहता है। दिनको यह वाहर निकल कर चूहों, मुरगियों आदिका शिकार करता और उनको खा जाता है। कभी कभी यह कब्रोंको खोद उनमेंसे मृत शरीरोंको निकाल कर भी खा जाता है।

विज्जूहा (हिं० पु०) एक वर्णिक वृत्त। इसके प्रत्येक चरणमें दो रगण होते हैं।

विजना—१ बुन्देलखण्ड एजेन्सीके अष्टभाई जागीरोंमेंसे एक छोटी जागीर। इसका भूपरिमाण २७ वर्गमील और जनसंख्या डेढ़ हजारसे ऊपर है। इसके पूर्व और

छोड़ कर और तीनों ओर युक्तप्रदेशका झाँसी जिला पड़ता है। पहले यह स्थान तेहरी और उच्छा राजाओंके अधिकारमें था। इसका अष्टभाई नाम पड़नेका कारण यह है, कि दीवान रायसिंहने वड़गांव जागीरको अपने आठ पुत्रोंमें बाँट दिया था। उनके द्वितीय पुत्र दीवान सानवन्तसिंहके भागमें विज्ना जागीर पड़ी। सानवन्तके मरने पर जागीर उनके तीन पुत्रोंके बीच बांट दी गई। वृटिश अमलदारोमें दीवान सुजानको १८२३ ई०में जागीरकी सनद मिली। उनकी मृत्युके बाद उनके लड़के दीवान मुकुन्दसिंह गद्दी पर बैठे। ये ही वर्त्तमान जागीरदार हैं। ये लोग बुन्देलावंशीय राजपूत हैं। इस जागीरमें केवल चार ग्राम लगते हैं। राजस्व १००००) रु० है। जागीरदारको १५ कमान, ५० अश्वारोही और ५३० पदाति सेना रखनेका अधिकार है।

२ उक्त जागीरका प्रधान शहर। यह अक्षा० २५° २७´ उ० तथा देशा० ७९° ०´ पू० झांसीके नवगङ्ग जाने के रास्ते पर अवस्थित है। जनसंख्या प्रायः १०६२ है।

विज्नी—१ आसाम प्रदेशके ग्वालपाड़ा जिलेका एक राज्य। यह अक्षा० २५° ५३´ से २६° ३२ उ० तथा देशा० ९०° ८५´ से ९१° ८५´ पू०के मध्य अवस्थित है। इसका अधिकांश स्थान जङ्गलावृत है। यहांके राजा अपनेको कोचविहार राजवंशावतंस बतलाते हैं।

२ उक्त राज्यका प्रधान नगर। यह० अक्षा २६° ३०´ उ० तथा देशा० ९०° ४७´ ४०´´ पू०के मध्य अवस्थित है।

विज्ली—मध्यभारतके भण्डार जिलान्तर्गत एक भू-सम्पत्ति। भूपरिमाण १२९ वर्गमील है। इसका अधिकांश स्थान पर्वत और जङ्गलसे आवृत है। यहांके दरेकशा गिरिपथके निकट कछगढ़ नामक एक गुहा है। कुआरदास और वञ्जारा नदीतीरवर्त्ती स्थान मनोहर दृश्योंसे पूर्ण है।

विझवारी (हिं० स्त्री०) छत्तीसगढ़में बोली जानेवाली एक प्रकारकी भाषा।

विझरा (हिं० पु०) एकमें मिला हुआ मटर, चना, गेहूं और जौ।

विझुकाना (हिं० क्रि०) १ भड़कना। २ डरना, भयभीत होना। ३ टेढ़ा होना, तनना।

विट (हिं० पु०) १ साहित्यमें नायकका वह सखा जो सब कलाओंमें निपुण हो। २ पक्षियोंकी विष्ठा, बीट।

विटक (सं० पु०) पिटक।

विटरना (हिं० क्रि०) १ घंघोला जाना। २ गंदा होना।

विटरना (हिं० क्रि०) १ घंघोलना। २ घंघोल कर गंदा करना।

विट्ठल (हिं० पु०) १ विष्णुका एक नाम। २ वम्बई प्रान्तमें शोलापुरके अन्तर्गत पण्ढरपुर नगरकी एक प्रधान देवमूर्त्ति। यह मूर्त्ति देखनेमें बुद्धकी मूर्त्ति जान पड़ती है। जैन लोग इसे अपने तीर्थङ्करकी मूर्त्ति और हिन्दू लोग विष्णु भगवान्‌की मूर्त्ति बतलाते हैं। विट्ठल देखो।

विठलाना (हिं० क्रि०) बैठाना देखो।

विठाना (हिं० क्रि०) बैठाना देखो।

विडम्व (सं० पु०) विडम्ब देखो।

विड (हिं० पु०) १ विष्ठा। २ एक प्रकारका नमक। विट् देखो।

विडर (हिं० वि०) छितराया हुआ, दूर दूर।

विडरना (हिं० क्रि०) १ इधर उधर होना, तितर वितर होना। २ पशुओंका भयभीत होना, बिचकना।

विडारना (हिं० क्रि०) १ इधर उधर करना, तितर वितर करना। २ भगाना।

विड़ायते (हिं० वि०) ज्यादा, अधिक।

विडारना (हिं० क्रि०) भयभीत करके भगाना।

विडाल (सं० पु०) १ विल्ली, विलाव। विड़ाल देखो। २ विड़ालाक्ष नामक दैत्य जिसे दुर्गाने मारा था। ३ दोहेके बीसवें भेदका नाम। इसमें ३ अक्षर गुरु और ४२ अक्षर लघु होते हैं। ४ आंखके रोगोंकी एक प्रकारकी ओषधि।

विड़ालक (सं० पु०) विड़ालक देखो।

विड़ालपाद (सं० पु०) एक तौल जो एक कर्षके बराबर होती है। कर्ष देखो।

विड़ालवृत्तिक (सं० त्रि०) विल्लीके समान स्वभाववाला, लोभी, कपटी, दंभी, हिंसक, सबको धोखा देनेवाला और सबसे टेढ़ा रहनेवाला।

विड़ालाक्ष (सं० त्रि०) जिसकी आंखें विल्लीकी आंखोंके समान हों।

विड़ालाक्षी (सं० स्त्री०) एक राक्षसीका नाम।

विड़ालिका (सं० स्त्री०) १ बिल्ली। २ हरताल।

विड़ाली (सं० स्त्री०) १ बिल्ली। २ एक प्रकारका आंखका रोग। ३ एक प्रकारका पौधा।

विड़िक (सं० स्त्री०) पानका बीड़ा, गिलौरी।

विड़ौजा (सं० पु०) इन्द्रका एक नाम।

वितताना (हिं० क्रि०) व्याकुल होना, बिलखाना।

वितना (हिं० पु०) बित्ता देखो।

विता (हिं० पु०) बित्ता देखो।

विताना (हिं० क्रि०) समय आदि व्यतीत करना, गुजारना, काटना।

विताल (हिं० पु०) वैताल देखो।

वितीतना (हिं० क्रि०) व्यतीत होना, गुजरना।

वित्त (सं० पु०) वित्त देखो।

वित्ता (हिं० पु०) हाथकी सब उंगलियां फैलाने पर अंगूठे के सिरेसे कनिष्ठिकाके सिरे तककी दूरी, बालिश्त।

विथकना (हिं० क्रि०) १ चकित होना, हैरान होना। २ थकना।

विथरना (हिं० क्रि०) १ छितराना, इधर उधर होना। २ अलग अलग होना, खिल जाना।

विथारना (हिं० क्रि०) छिटकाना, बिखेरना।

विदकना (हिं० क्रि०) १ फटना, चिरना। २ घायल होना, जख्मी होन। ३ भड़कना।

विदकाना (हिं० क्रि०) १ विदीर्ण करना, फाड़ना। २ घायल करना, जख्मी करना।

विदरी (हिं० स्त्री०) १ जस्ते और तांबेके मेलसे बरतन आदि बनानेका काम। इसमें बीच बीचमें सोने चाँदीके तारोंसे नक्काशी की हुई होती है। २ विदरकी धातुका बना हुआ सामान।

विदरीसाज (हिं० पु०) विदरकी धातुसे बरतन आदि बनानेवाला।

विदल (सं० क्ली०) विगद्धितं दलं यस्य। १ द्विधाकृत कलायादि, दाल। २ स्वर्णादिका अवयव। ३ दाड़िम कल्क, अनारका दाना। ४ वंशादिकृत पात्र-विशेष, बांसका बना हुआ दौरा या कोई पात्र। ५ रक्ता-ञ्जन, लाल सोना। ६ पिष्टक, पीठी। विदल देखो।

विदलकारी (सं० स्त्री०) वंशविदारिणी, वंशपत्रकारिणी।

विदलसंहित (सं० त्रि०) अर्द्धांश युक्त।

विदल (सं० स्त्री०) विगद्धितानि दलानि यस्याः। १ त्रिवृत्, निसोथ। (त्रि०) २ पत्रशून्या, जिसमें पत्ते न हों।

विदहना (हिं० क्रि०) धान या ककुनी आदिकी फसल पर आरम्भमें पाटा या हेंगा चलाना। जिस समय फसल एक बालिश्तकी हो जाती है और वर्षा होती है, तब मिट्टी गीली हो जाने पर उस पर हेंगा या पाटा चला देते हैं। इससे फसल लेट जाती है और फिर जब उठती है, तब जोरोंसे बढ़ती है।

विदहनी (हिं० स्त्री०) विदहनेकी क्रिया या भाव।

विदा (अ० स्त्री०) १ प्रस्थान, गमन, रवानगी। २ जानेकी आज्ञा। ३ द्विरागमन, गौना।

विदाई (अ० स्त्री०) १ विदा होनेकी क्रिया या भाव। २ विदा होनेकी आज्ञा। ३ वह धन जो किसीको विदा होनेके समय उसका सत्कार करनेके लिये दिया जाय।

विदामी (हिं० वि०) बादामी देखो।

विदारना (हिं० क्रि०) १ चीरना, फाड़ना। २ नष्ट करना, बिगाड़ना।

विदारी (हिं० पु०) विदारी देखो।

विदारीकंद (हिं० पु०) एक प्रकारका कंद। इसकी बेलके पत्ते अरुईके पत्तोंके समान होते हैं। यह कंद बेलकी जड़में होता है। इसका रंग कुछ कुछ लाल होता है और इसके ऊपर एक प्रकारके छोटे छोटे रोएं होते हैं। इसका गुण—मधुर, शीतल, भारी, स्निग्ध, रक्तपित्तनाशक, कफकारक, वीर्यवर्द्धक, करमवर्द्धक और रुधिरविकार, दाह तथा वमननाशक है।

विदेस (हिं० पु०) परदेश, अपने देशके अतिरिक्त और कोई देश।

विद्दत (अ० स्त्री०) १ पुरानी अच्छी बातको बिगाड़ने-वाली नई खराब बात। २ कष्ट, तकलीफ। ३ विपत्ति, आफत। ४ अत्याचार, जुल्म। ५ दोष, बुराई। ६ दुर्दशा।

विध (हिं० पु०) १ हाथियोंका चारा। २ प्रकार, तरह, ३ ब्रह्मा। ४ जमाखर्चका हिसाब, आय व्ययका लेखा।

विधना (हिं० पु०) ब्रह्मा, कर्त्तार।

विधवंदी (हिं० स्त्री०) भूमिकर देनेकी एक रीति। इसमें

बीघे आदिके हिसाबसे कोई कर नियत नहीं होता, बल्कि कुल जमीनके लिये यों ही अन्दाजसे कुछ रकम दे दी जाती है।

विधवपन (हिं० पु०) वैधव्य, रँड़ापा।

विधवा—विधवा देखो।

विधवाना (हिं० क्रि०) बिँधवाना देखो।

विधाई (हिं० पु०) विधायक, वह जो विधान करता हो।

विधाना (हिं० क्रि०) बिँधाना देखो।

विधिना (हिं० स्त्री०) विधना देखो।

विधुली (हिं० पु०) हिमालयकी तराईमें होनेवाला एक प्रकारका वांस। इसे नल-वांस और देव-वांस भी कहते हैं। देववाँस देखो।

विनता (हिं० पु०) पिंडकी नामकी चिड़िया।

विनती (हिं० स्त्री०) प्रार्थना, निवेदन।

विनन (हिं० स्त्री०) १ विनने या चुननेकी क्रिया या भाव। २ वुननेकी क्रिया या भाव, वुनावट। ३ वह कूड़ा कर्कट आदि जो किसी चीजमेंसे चुन कर निकाला जाय, चुनन।

विनना (हिं० क्रि०) १ छोटी छोटी वस्तुओंको एक एक करके उठाना, चुनना। २ इच्छानुसार संग्रह करना, छांट छांट कर अलग करना। ३ डंकवाले जीवका डंक मारना, काटना।

विनरी (हिं० स्त्री०) बरनी देखो।

विनसाना (हिं० क्रि०) १ विनाश करना, नष्ट कर डालना। २ विनष्ट होना।

विना (हिं० अव्य०) छोड़ कर, वगैर।

विनाई (हिं० स्त्री०) १ वीनने या चुननेकी क्रिया भाव। २ वीनने या चुननेकी मजदूरी। ३ वुननेकी क्रिया या भाव, वुनावट। ४ वुननेकी मजदूरी।

विनाती (हिं० स्त्री०) विनती देखो।

विनाना (हिं० क्रि०) वुनवाना देखो।

विनानी (हिं० वि०) १ अज्ञानी, अनजान। (स्त्री०) २ विशेष विचार, गौर।

विनावट (हिं० स्त्री०) वुनावट देखो।

विनासना (हिं० क्रि०) विनष्ट करना, संहार करना।

विनैका (हिं० पु०) पकवान बनाते समयका वह पकवान जो पहले घानमेंसे निकाल कर गणेशके निमित्त अलग रख देते हैं। यह भाग पकवान बनानेवालेको मिलता है।

विनौरिया (हिं० स्त्री०) खरीफके खेतोंमें होनेवाली एक प्रकारकी घास। इसमें छोटे पीले फूल निकलते हैं। यह घास प्रायः चारेके काममें आती है।

विनौला (हिं० पु०) कपासका वीज। यह पशुओंके लिये पुष्टिकारक होता है। इससे एक प्रकारका तेल भी निकाला जाता है, वनौर।

विन्दवी (सं० पु०) विदि अवयवे वाहु अवि। विन्दु, अंश।

विन्दवीय (सं० त्रि०) विन्दवि गर्हादित्वात् छ। (पा ४।२।१८८)। विन्दुसम्बन्धीय, अंशसम्बन्धीय।

विन्दु (सं० पु०) विन्दु देखो।

विन्दुक (सं० पु०) चिह्न, गोल टीका।

विन्दुकित (सं० त्रि०) विन्दु द्वारा आवृत।

विन्दुघृत (सं० क्ली०) घृतौषधविशेष।

विन्दुचित (सं० पु०) रोहिष मृगविशेष।

विन्दुचित्रक (सं० पु०) विन्दुरूपं चित्रमस्य कप्। मृग-भेद।

विन्दुजाल (सं० क्ली०) विन्दुनां जालं। १ विन्दुसमूह। २ हस्तिशुण्डो परिस्थित विन्दुसमूह, वह विन्दु जो हाथीकी सूँड़ पर होते हैं। ३ हाथियोंका पद्मक नामक रोग।

विन्दुतन्त्र (सं० पु०) १ शारीफलक, चौपड़ आदिकी विसात। २ तुरङ्गक।

विन्दुतीर्थ (सं० क्ली०) काशीके प्रसिद्ध पञ्चनद तीर्थका नामान्तर जहां विन्दुमाधवका मन्दिर है।

विन्दुदेव (सं० पु०) वौद्धदेवता भेद।

विन्दुनाथ (सं० पु०) हठयोगविद्या प्रवर्त्तक आचार्यभेद।

विन्दुपत्र (सं० पु०) विन्दुः पत्रे यस्य। भूर्जवृक्ष, भोज-पत्र।

विन्दुफल (सं० क्ली०) मुक्ताविशेष।

विन्दुमत् (सं० त्रि०) १ विन्दुयुक्त। २ विन्दुकी तरह जिसका आकार हो। (स्त्री०) ३ शार्ङ्गधर पद्धति-लिखित कुछ चरण। ४ मरीचिपत्नी विन्दुमतकी माता। ५ राज-शशिकी कन्या, मान्धाताकी स्त्री।

विन्दुमाधव (सं० पु०) १ विष्णुका नामान्तर । २ काशी-स्थित वेणीमाधव । विन्दुमाधव देखो ।

विन्दुरक (सं० पु०) वृक्षविशेष ।

विन्दुरेखक (स० पु०) विन्दुशिविशिष्टा रेखा यत्र, कन् । पक्षि-भेद ।

विन्दुरेखा (सं० स्त्री०) १ विन्दुसम्वलित रेखा । (Dotline) २ राजा चण्डविक्रमकी कन्या ।

विन्दुवासर (सं० पु०) विन्दुपातस्य वासरः । गर्भमें सन्तानोत्पत्तिकारक शुक्रपातदिन, वह दिन जब प्रथम गर्भसञ्चार हो ।

विन्दुसरस् (सं० पु०) विन्दुनामकं सरः । एक सरोवर । यह अति पवित्र और पापनाशक है । महाभारतमें लिखा है—कैलासके उत्तरमें मैनाक पर्वतके समीप हिरण्यशृङ्ग नामका एक मणिमय पर्वत है, उसी पर यह रमणीय विन्दुसरोवर है । इसके किनारे भगीरथने गंगादर्शनके लिये बहुत काल तक तपस्या की थी । इन्द्रने भी यहां सौ अश्वमेध यज्ञ सम्पन्न कर सिद्धि प्राप्त की थी । मयदानवने जब युधिष्ठिरकी सभा निर्माण की थी, तब वे यहींसे रत्नादि ले गये थे । (भारत सभापर्व)

विन्दुसार (सं० पु०) चन्द्रगुप्तके एक पुत्रका नाम ।

विन्दुसेन (सं० पु०) राजा क्षत्रौजसके पुत्र ।

विन्दुह्रद (सं० पु०) विन्दुसरोवर ।

विपत्ति (सं० स्त्री०) विपत्ति देखो ।

विवस (हिं० वि०) १ विवश, मजबूर । २ परतन्त्र, पराधीन । (क्रि० वि०) ३ विवश हो कर, लाचारीसे ।

विवाई (हिं० स्त्री०) पैरका एक प्रकारका रोग । इसमें पैरोंके तलुएका चमड़ा फट जाता है और वहां जख्म हो जाता है । इस कारण चलने फिरनेमें बहुत दर्द होता है । यह रोग प्रायः जाड़े के दिनोंमें और वृद्ध व्यक्तियों-को हुआ करता है ।

विवाकी (अ० स्त्री०) १ बेबाक होनेका भाव, हिसाव आदिका साफ होना । २ समाप्ति, अन्त ।

विवि (हिं० वि०) दो ।

विभित्सा (सं० स्त्री०) भेद करनेकी वलवती इच्छा ।

विभित्सु (सं० त्रि०) ध्वंस वा नाश करनेमें इच्छुक ।

विभक्षयिषु (सं० त्रि०) भोजनेच्छु, खानेमें पटु ।

विभ्रक्षु (सं० त्रि०) दग्ध करनेमें इच्छुक ।

विमन (हिं० वि०) १ जिसे बहुत दुःख हो । २ चिन्तित, उदास । (क्रि० वि०) ३ विना चित्त लगाए, अनमना हो कर ।

विमोहना (हिं० क्रि०) मोहित करना, लुभाना ।

विमौरा (हिं० पु०) वाल्मीक, वामी ।

विम्ब (सं० क्ली०) वी गत्यादिषु (उल्वादयश्च । उण् ४।९५) इति वन् प्रत्ययेन निपातनात् साधुः । १ प्रतिविम्ब, छाया, अकस । २ कमण्डलु । ३ मूर्त्ति । ४ विम्बिका फल, कुंदरु नामक फल । पर्याय—तुन्दिकेरी, रक्तफला, विम्बिका, पीलुपर्णी, ओष्ठी, विम्बी, विम्बा, विम्बक, विम्बजा । गुण—पित्त, कफ, छर्दि, व्रण, ह्रास और कुष्ठनाशक । भावप्रकाशके मतसे इसका गुण—शीतल, गुरु, पित्त, अस्र और वातनाशक, रुचिकर तथा आध्मान-कारक । (क्ली०) ५ सूर्यचन्द्र-मण्डल । ६ मण्डलमात्र । ७ कृकलास, गिरगिट । ८ सूर्य । ९ आभास, झलक । १० छन्दविशेष ।

विम्बक (सं० क्ली०) विम्ब-स्वार्थे-कन् । १ चन्द्रसूर्य-मण्डल । २ विम्बिका फल, कुन्दरू । ३ सञ्चक, साँचा ।

विम्बकि (सं० पु०) राजपुत्रभेद ।

विम्बजा (सं० स्त्री०) विम्बं फलं जायतेऽस्यामिति जन-ड । विम्बिका ।

विम्बट (सं० पु०) सर्षप, सरसों ।

विम्बर (सं० पु०) उच्च संख्या ।

विम्बसार (सं० पु०) विम्बिसार नरपति । विम्बिसार देखो ।

विम्बा (सं० स्त्री०) विम्बं फलमस्त्यस्यामिति विम्ब-अच् टाप् । विम्बिका देखो ।

विम्बिका (सं० स्त्री०) १ विम्ब, छाया । २ चन्द्रसूर्य-मण्डल ।

विम्बित (सं० त्रि०) विम्ब-तारकादित्वादितच् । प्रति-विम्बयुक्त ।

विम्बिन् (सं० त्रि०) विम्ब सम्बन्धीय ।

विम्बिसार (सं० पु०) एक प्राचीन राजाका नाम । ये अजातशत्रुके पिता और गौतमबुद्धके समकालीन थे ।

कहते हैं, कि ये पहले शाक्त थे, पर पीछे बुद्धके उपदेशसे बौद्ध हो गये।

बिम्बी (सं० स्त्री०) बिम्ब-गौरादित्वात् ङीष्। बिम्बिका।

बिम्बु (सं० स्त्री०) गुवाक, सुपारी।

बिम्बौष्ठ (सं० त्रि०) बिम्बि-ओष्ठ 'ओत्वोष्ठयोः समासे वा' इति पाक्षिकोऽकारलोपः, बिम्बे इव ओष्ठौ यस्य। जिसके होंठ बिम्बफलके समान हों।

बियर (अ० स्त्री०) एक प्रकारकी हलकी अंगरेजी शराब जो जौकी बनी होती है और जिसे प्रायः स्त्रियां पीती हैं।

बियरसा (हिं० पु०) एक प्रकारका बहुत ऊँचा वृक्ष जो पहाड़ोंमें ३००० फुटकी ऊँचाई तक होता है। इसकी लकड़ी कुछ लाली लिए काले रंगकी, बहुत मजबूत और कड़ी होती है। लकड़ी प्रायः इमारत और मेज-कुरसा आदि बनानेके काममें आती है। इसमें एक प्रकारके सुगन्धित फूल लगते हैं और गोंद भी होती है जो कई कामोंमें आती है।

बियाड़ (हिं० पु०) वह खेत जिसमें पहले बीज़ बोए जाते हैं और छोटे छोटे पौधे हो जाने पर जहांसे उखाड़ कर दूसरे खेतमें रोपे जाते हैं।

बियान (हिं० पु०) प्रसव, बच्चा देनेकी क्रिया। २ बच्चा देनेका भाव। यह शब्द विशेषतः पशुओंके लिये प्रयुक्त होता है।

बियाना (हिं० क्रि०) बच्चा देना, जनना।

बियाबान (फा० पु०) ऐसा उजाड़ स्थान या जंगल जहां कोसों तक पानी न मिले

बियो (हिं० पु०) बेटेका बेटा, पोता।

बिरंग (हिं० पु०) १ कई रंगोंका, जिसमें एकसे अधिक रंग हों। २ विना रंगका, जिसमें कोई रंग न हो।

बिरंज (फा० पु०) १ चावल। २ पका हुआ चावल, भात।

बिरंजो (फा० स्त्री०) लोहेकी छोटी कील, छोटा कांटा।

बिरगिड (अं० स्त्री०) १ सेनाका एक विभाग जिसमें कई रेजिमेंटें या पलटने होती हैं। २ काम करनेवालोंका कोई ऐसा दल जो एक ही तरहकी वर्दी पहनता हो और एक ही अधिकारीकी अधीनतामें काम करता हो।

बिरतिया (हिं० पु०) हज्जाम या बारी आदिकी जातिका वह व्यक्ति जो विवाह संबंध ठीक करनेके लिये वर-पक्षकी ओरसे कन्यावालोंके यहां अथवा कन्या-पक्षसे वर-पक्षकी योग्यता, मर्यादा, अवस्था आदि देखनेके लिये जाता है।

बिरथा (हिं० वि०) १ व्यर्थ, निरर्थक। २ विना किसी कारणके।

बिरद (हिं० पु०) १ बड़ाई, यश। २ विरद देखो।

बिरदैत (हिं० पु०) १ बहुत अधिक प्रसिद्ध वीर या योद्धा। (वि०) २ प्रसिद्ध, नामी।

बिरध (हिं० वि०) वृद्ध देखो।

बिरधाई (हिं० स्त्री०) वृद्धावस्था, बुढ़ापा।

बिरधापन (हिं० पु०) १ वृद्ध होनेका भाव, बुढ़ापा। २ वृद्ध होनेकी अवस्था, वृद्धावस्था।

बिरमना (हिं० क्रि०) १ आराम करना, सुस्ताना। २ ठहरना, रुकना। ३ मोहित हो कर फंस रहना।

बिरमाना (हिं० क्रि०) १ व्यतीत करना, बिताना। २ रोक रखना, ठहराना। २ मोहित करके फंसा रखना।

बिरला (हिं० वि०) कोई कोई, इक्का दुक्का।

बिरवा (हिं० पु०) १ वृक्ष। २ पौधा। ३ चना, बूट।

बिरवाही (हिं० स्त्री०) १ वह स्थान जहां छोटे छोटे पौधे उगाये गये हों। २ छोटे पौधोंका कुंज या बाग।

बिरषभ (हिं० पु०) वृषभ देखो।

बिरसन (हिं० पु०) विष, जहर।

बिरही (हिं० पु०) वियोगसे पोड़ित पुरुष, वह पुरुष जो अपनी प्रेमिकाके विरहसे दुःखित हो।

बिराजना (हिं० क्रि०) १ शोभित होना, शोभा देना। २ बैठना।

बिरादर (फा० पु०) भ्राता, भाई।

बिरादरी (फा० स्त्री०) १ बन्धुत्व, भाईचारा। २ जातीय समाज, एक ही जातिके लोगोंका समूह।

बिराना (हिं० क्रि०) मुंह चिढ़ाना।

बिरियां (हिं० स्त्री०) १ समय, वक्त। २ बार, दफा।

बिरिया (हिं० स्त्री०) १ चांदी या सोनेका बना हुआ कानमें पहननेका एक गहना। यह कटोरीके आकारकी होती है। २ चर्खेके बेलनमेंकी कपड़े या लकड़ीकी वह

टिकिया जो इसलिये लगाई जाती है कि चर्खेकी मूंड़ी खूंटेसे रगड़ न खाय।
विरुआ (हिं० पु०) एक प्रकारका राजहंस।
विरुझना (हिं० क्रि०) उलझना, झगड़ना।
विरोजा (हिं० पु०) गन्धविरोजा देखो।
विरोधना (हिं० क्रि०) विरोध करना, वैर करना।
विलंगी (हिं० स्त्री०) अलगनी, अरगनी।
विलंद (फा० पु०) १ ऊंचा। २ बड़ा। ३ जो विफल हो गया हो।
विल (सं० क्ली०) १ छिद्र, सुराख। २ गुहा, कंदरा। (पु०) ३ उच्चैःश्रवा अश्व। ४ वेतस, बेंत।
विल (हिं० पु०) १ जमीनके अंदर खोद कर बनाया हुआ कुछ जंगली जीवोंके रहनेका स्थान। (अं० पु०) २ पावनेके हिसाबका पर्चा, पुरजा, विलमें प्रायः बेची या दी हुई चीजोंके तिथि सहित नाम और दाम, किसीके लिये व्यय किये हुए धनका विवरण अथवा किसीके लिये किये हुए कार्य वा सेवा आदिका विवरण और उसके पुरस्कारकी रकमका उल्लेख होता है। इसके उपस्थित करने पर वाजिब पावना चुकाया जाता है। ३ किसी कानून आदिका वह मसौदा जो कानून बनानेवाली सभामें उपस्थित किया जाय।
विलकारिन् (सं० पु०) विलं करोतीति-कृ-णिनि। १ मूषक, चूहा। (त्रि०) २ गर्त्तकारक, विवर बनानेवाला।
विलकुल (अ० क्रि० वि०) १ पूरा पूरा, सब। २ सिरसे पैर तक, आदिसे अन्त तक।
विलखना (हिं० क्रि०) १ विलाप करना, रोना। २ दुःखी होना।
विलखाना (हिं० क्रि०) १ रुलाना। २ दुःखी करना।
विलग (हिं० वि०) १ पृथक्, अलग। (पु०) पार्थक्य, अलग होनेका भाव। ३ द्वेष या और कोई बुरा भाव, रंज।
विलगाना (हिं० क्रि०) १ पृथक् होना, अलग होना। २ पृथक् करना, अलग करना।
विलगी (हिं० पु०) एक प्रकारका संकर राग।
विलच्छन (हिं० वि०) विलक्षण देखो।
विलछना (हिं० क्रि०) लक्ष करना, ताड़ना।
विलटी (अं० स्त्री०) रेलके द्वारा भेजे जानेवाले मालकी वह रसीद जो रेलवे कम्पनीसे मिलती है। जहांसे माल भेजा जाता है, रसीद वहीं पर मिलती है। पीछेसे माल पानेवालेके पास वह रसीद भेज दी जाती है।
विलधावन (सं० त्रि०) योनिकपाट-प्रक्षालन।
विलनी (हिं० स्त्री०) काली भौंरी। यह अपने रहनेके लिये दीवारों या किवाड़ों पर मट्टीकी बांबी बनाती है। यह वही भृङ्गी है जिसके विषयमें यह प्रसिद्ध है, कि वह किसी कीड़ेको पकड़ कर भृङ्गी ही बना डालती है। २ आँखकी पलक पर होनेवाली एक छोटी फुंसी, गुहांजनी।
विलफेल (अ० क्रि० वि०) सम्प्रति, अभी।
विलविलाना (हिं० क्रि०) १ छोटे कीड़ेका इधर उधर रेंगना। २ असम्बद्ध प्रलाप करना। ३ व्याकुल हो बकना। ३ भूखसे बेचैन हो उठना। ४ कष्टके कारण व्याकुल हो कर रोना, चिल्लाना।
विलमना (हिं० क्रि०) १ विलंब करना, देर करना। ३ ठहर जाना, रुकना।
विलमाना (हिं० क्रि०) १ अटका रखना, रोक रखना।
विललाना (हिं० क्रि०) १ विलाप करना, विलख कर रोना। २ व्याकुल हो कर असम्बद्ध बातें कहना।
विलवाना (हिं० क्रि०) १ नष्ट करना, बरबाद करना। २ किसी वस्तुको दूसरेके द्वारा नष्ट कराना, बरबाद कराना। ऐसे स्थानमें रखवाना या रखना जहां कोई देख न सके, छिपाना अथवा छिपानेके काममें दूसरेको प्रवृत्त करना।
विलवास (सं० पु०) विले वासोऽस्य। लाहक जन्तु।
विलवासिन् (सं० पु०) विले वसति वस-णिनि। १ सर्प, सांप। (त्रि०) २ गर्त्तवासी, विलमें रहनेवाला।
विलशय (सं० पु०) विले शेते इति शी-अच्। १ सर्प, सांप। (त्रि०) २ विलवासी, विलमें रहनेवाला।
विलशयिन् (सं० पु०) विल-शी-णिनि। विलशय।
विलस्त (हिं० पु०) वालिश्त देखो।
विलहरा (हिं० पु०) बांसकी तीलियों या खस आदिका बना हुआ एक प्रकारका संपुट। इसमें पानके लगे हुए बीड़े रखे जाते हैं।
विला (अ० अव्य०) विना, बगैर।
विलाई (हिं० स्त्री०) १ विल्ली, विलारी। २ लोहे या

लकड़ीकी एक सिटकनी जो किवाड़ोंमें उनको बंद करनेके लिये लगाई जाती है। ३ कुएँ में गिरा हुआ वरतन या रस्सी आदि निकालनेका कांटा। यह लोहेका बना होता है। इसके अगले भागमें वहुत-सी अंकुसियां लगी रहती हैं। उन्हीं अंकुसियोंमें चीज फंस कर निकल आती है।

विलाईकन्द (हिं० पु०) विदारीकन्द देखो।

विलाना (हिं० क्रि०) १ नष्ट होना, विलीन होना। २ छिप जाना, अदृश्य हो जाना।

विलार (हिं० पु०) मार्जार, विल्ला।

विलारी (हिं० स्त्री०) मंजारी, विल्ली।

विलारीकंद (हिं० पु०) एक प्रकारका कन्द।

विलाव (हिं० पु०) विलार देखो।

विलावर (हिं० पु०) विल्लौर देखो।

विलावल (सं० पु०) केदारा और कल्याणके योगसे उत्पन्न एक राग। यह दीपक रागका पुत्र माना जाता है। इसके गानेका समय प्रातःकाल है।

विलासना (हिं० क्रि०) भोग करना, भोगना।

विलिंवी (हिं० स्त्री०) एक प्रकारकी कमरखका फल या उसका पेड़।

विलियर्ड (अं० पु०) एक अंगरेजी खेल। यह गोल अंटों और लंवी लंवी छड़ियों द्वारा वड़ी मेज पर खेला जाता है।

विलिया (हिं० स्त्री०) १ कटोरी। २ गाय वैलके गलेकी एक वीमारी।

विलूर (हिं० पु०) विल्लौर देखो।

विलेशय---एक योगाचार्य। हठ प्रदीपिकामें इनका उल्लेख देखनेमें आता है।

विलेशय (सं० पु० स्त्री०) विले शेते शी-अच्, अलुक् समासः। १ सर्प, सांप। २ मूषिक, मूसा। ३ गोधा, नेवला। ४ शश, खरहा। शल्लकी, साही नामक जंतु।

विलेश्वर (सं० पु०) तीर्थभेद। यहां विलेश्वर शिवलिङ्ग विद्यमान है।

विलैया (हिं० स्त्री०) १ विल्ली। २ कद्दू, मूली आदिके महीन महीन डोरेसे लच्छे काटनेका एक औजार। यह वास्तवमें लोहेका एक चौकी-सी होती है। इस पर उभरे हुए छेद वने होते हैं। उन उभारोंसे रगड़ खा कर कटे हुए कतरे छेदोंके नीचे गिरते जाते हैं।

विलोन (हिं० वि०) विना लावण्यका, कुरूप।

विलोना (हिं० क्रि०) १ मथना, खूव हिलाना। २ ढालना, गिराना।

विलोलना (हिं० क्रि०) डोलना, हिलना।

विलौकस् (सं० त्रि०) विलं ओकः स्थानं यस्य। विलवासी, विलमें रहनेवाला।

विलौर (हिं० पु०) विल्लौर देखो।

विल्कुल (हिं० क्रि० वि०) विलकुल देखो।

विल्म (सं० क्ली०) विल-वाहु० मन्। १ भासन, चमक। २ शिरस्त्राण, टोपी, पगड़ी।

विल्मिन् (सं० त्रि०) विल-मिन्। १ विलयुक्त। (पु०) २ रुद्रभेद।

विल्मुक्ता (अ० वि०) १ जो घट वढ़ न सके। (पु०) २ वह लगान जो घटाया वढ़ाया न जा सके। ३ वह पट्टा जिसकी शर्तोंके अनुसार लगान घटाया-वढ़ाया न जा सके।

विल्ल (सं० क्ली०) विलं लाति-लाक। १ आलवाल, थाला। २ हिंगु।

विल्लमूला (सं० स्त्री०) विल्लमिव मूलं यस्याः। वाराहीकन्द।

विल्लसू (सं० स्त्री०) प्रसूतदशपुत्रा, वह स्त्री जिसने दश पुत्र प्रसव किये हों।

विल्ला (हिं० पु०) १ मार्जार। विड़ाल देखो। २ चपरासकी तरहकी पीतलकी पतली पट्टी। इसे पहचानके लिये विशेष विशेष प्रकारके काम करनेवाले वाँह पर या गलेमें पहने रहते हैं।

विल्ली (हिं० स्त्री०) १ विड़ाल देखो। २ उत्तरीय भारत और वरमाकी नदियोंमें मिलनेवाली एक प्रकारकी मछली। पकड़े जाने पर यह मछली काटती है जिससे विष सा चढ़ जाता है।

विल्लीलोटन (हिं० स्त्री०) एक प्रकारकी वूटी। इसके विषयमें प्रसिद्ध है, कि उसकी गंधसे विल्ली मस्त हो कर लोटने लगती है। यह दवाके काममें आती है। यूनानी हकीमने इसका 'वादर जवोया' नाम रखा है।

विल्लूर (हिं० पु०) विल्लौर देखो।

विल्लौर (हिं० पु०) १ एक प्रकारका स्वच्छ पत्थर। यह

शीशेके समान पारदर्शक होता है। २ बहुत स्वच्छ शीशा जिसके भीतर मैल आदि न हो।

विल्लौरी (हिं० वि०) १ विल्लौरका बना हुआ, विल्लौर पत्थरका। २ विल्लौरके समान स्वच्छ।

विल्व (सं० पु०) विल-भेदने उल्वादयश्चेति साधुः। फलवृक्षविशेष, एक प्रकार फलका पेड़, बेलका पेड़। पर्याय—शाण्डिल्य, शैलूष, मालूर, श्रीफल, महाकपित्थ, गोहरीतकी, पूतिवात, अतिमङ्गल्य, महाफल, शल्य, हृदयगंध, शालाटु, कर्कटाह्व, शैलपत्र, शिवेष्ट, पत्रश्रेष्ठ, त्रिपत्र, गंधपत्र, लक्ष्मीफल, दुरारुह, त्रिशाखपत्र, त्रिशिख, शिवद्रुम, सदाफल, सत्यफल, सुभूतिक, समीरसार। इसके फलके गुण—मधुर, हृद्य, कषाय, गुरु, पित्त, कफ, ज्वर, और अतिसार-नाशक। मूलके गुण—त्रिदोष-नाशक, मधुर, लघु और वमन-निवारक। इसके कोमल फलके गुण—स्निग्ध, गुरु, संग्राहक और दीपन। पके फलके गुण—मधुर, गुरु, कटु, तिक्त, कषाय, उष्ण, संग्राहक और त्रिदोषनाशक। (राजनि०)

भावप्रकाशके अनुसार बालविल्वको विल्वकर्कटी और विल्वपेशिका कहते हैं। यह धारक और कफ, वायु, आमदोष तथा शूल-नाशक है। मतान्तरमें यह धारक, अग्निप्रदीपक, पाचक, कटुकषाय, तिक्तरस, उष्णवीर्य, लघु, स्निग्ध तथा वायु और कफनाशक माना गया है। पका फल—गुरु, त्रिदोषजनक, दुष्पाच्य, वाह्यवायु-सुगन्धिकर, विदाही, विष्टम्भकारक, मधुररस, और मन्दाग्निकारक हैं। फलोंमें सुपक्व फल ही विशिष्ट गुणदायक है; परन्तु इसके लिये यह नियम नहीं, इसका कच्चा फल ही विशिष्ट गुणदायक होता है। द्राक्षा, विल्व और हरितकी आदि फलोंमें सूखने पर ही गुणाधिक्य होता है। (भावप्र०)

विल्ववृक्षकी उत्पत्तिके सम्बन्धमें वृहद्धर्मपुराणमें लिखा है, कि कमला प्रतिदिन सहस्र पद्मों द्वारा महादेवकी पूजा करती थी। एक दिन वे हजार पुष्पोंको २।३ बार गिन कर पूजाके लिये बैठीं, तो क्या देखती हैं, कि २ पद्म कमती होते हैं। तब लक्ष्मीने मन ही मन विचार किया, कि भगवान् विष्णु मेरे स्तनोंको पद्म कह कर उल्लेख किया करते हैं, अतः अपने दोनों स्तनोंको काट कर उन्हींसे पूजा समाप्त करूं। पश्चात् उन्होंने खड्गसे बायें स्तन छेद कर महादेवके मस्तक पर चढ़ाया। जब वे दाहिना स्तन काटनेको उद्यत हुईं तो महादेवने स्वयं-लिङ्गमेंसे निकल कर कहा, "दूसरा स्तन छेदनेकी आवश्यकता नहीं। मैं तुम्हारी भक्तिसे बहुत ही प्रसन्न हुआ हूं। तुम्हारा जो छिन्न स्तन मेरी पूजामें चढ़ाया गया है वह पृथिवी पर 'श्रीफल'के नामसे पुण्यप्रद वृक्षके रूपमें समुत्पन्न होवे। श्रीफल-वृक्ष ही तुम्हारी मूर्त्तिमती भक्ति समझी जावे। जब तक सूर्य और चन्द्र रहेंगे, तब तक तुम्हारी यह कीर्त्ति रहेगी। यह वृक्ष मेरा अत्यन्त प्रिय होगा। इस वृक्षके पत्रके विना मेरी पूजा कभी भी न हो सकेगी" यह सुन कर लक्ष्मी अत्यन्त आह्लादित हुईं।

वैशाख मासकी शुक्ला-तृतीयाके दिन विल्ववृक्षका आविर्भाव हुआ। श्रीफलवृक्षके उत्पन्न होते ही ब्रह्मा, नारायण, इन्द्रादि देवगण और देवपत्नियां, सभी वहां समागत हुए। तब सबोंने देखा, कि यह वृक्ष स्निग्ध, शिवस्वरूप और अपने तेजसे देदीप्यमान है। यह वृक्ष त्रिपत्रोंसे सुशोभित है।

भगवान् विष्णुने कहा, 'इस वृक्षके इक्कीस नाम रखे जाते हैं—विल्व, मालूर, श्रीफल, शाण्डिल्य, शैलूष, शिव, पुण्य, शिवप्रद, देवावास, तीर्थपद, पापघ्न, कोमलच्छद, जय, विजय, विष्णु, त्रिनयन, वर, धूम्राक्ष, शुक्लवर्ण, संयमी, और श्राद्धदेवक। इस वृक्षका जड़से ले कर सौ धनु तक स्थान परमतीर्थ-स्वरूप है। इस वृक्षके तीन पत्र तीन तीर्थोंके समान हैं। ऊर्द्ध्व पत्र शिव, वामपत्र ब्रह्मा और दक्षिणपत्र साक्षात् विष्णु हैं। विल्ववृक्षकी छाया या पत्रका लङ्घन करना अथवा पैरोंसे छूना निषिद्ध है। इस वृक्षके लङ्घन करनेसे आयु घटती और पैरोंसे छूनेसे श्री-हरण होता है। सहस्र पद्मों द्वारा पूजा करनेसे जितना फल होता है, उतना ही फल एक विल्वपत्र द्वारा पूजा करनेसे प्राप्त होता है। तुलसीपत्रकी तरह विल्वपत्र तोड़ते समय भी मन्त्रोच्चारण करना पड़ता है।

"पुण्यवृक्ष महाभाग मालूर श्रीफलप्रभो।
महेशपूजनार्थाय त्वत्पत्राणि चिनोम्यहं॥"

इस मन्त्र द्वारा विल्वपत्र तोड़ कर पीछे निम्नलिखित मन्त्रोच्चारण-पूर्वक वृक्षको प्रणाम करना चाहिये।

मन्त्र—"ओं नमो विल्वतरवे सदा शङ्कररूपिणे।
सफलानि समांगानि कुरुष्व शिवहर्षद ॥"

सुवह उठनेके बाद वृक्षके नोचे चारों तरफ दश हाथ परिमित स्थान गोवर पानीसे लीपना चाहिये। पश्चात् अर्थात् अमावस्या, पूर्णिमा, द्वादशी, सायंकाल और मध्याह्नकाल, इन समयोंमें विल्वपत्र नहीं चुनना चाहिये। शाखा तोड़ना और वृक्ष पर चढ़ना उचित नहीं। वृक्ष पर चढ़ कर पत्र चुन ले, पर शाखा कदापि न तोड़े। रमणीय, अखण्डित वा खंडित सभी प्रकारके पत्रसे शिवकी अर्चना हो सकती है। ६ मासके वाद विल्वपत्र पर्युषित होता है। सूर्य और गणेशके अतिरिक्त सभो देवताओंकी पूजा विल्वपत्र द्वारा की जाती सकतो है। जिस स्थानमें विल्ववृक्षोंका कानन है। वह स्थान काशोके समान पवित्र है। मकानके ईशान कोनमें विल्ववृक्ष लगानेसे विपदकी सम्भावना नहीं रहती। पूर्वदिशामें रहनेसे सुख, दक्षिणमें रहनेसे मरणभयका नाश और पश्चिममें रहनेसे प्रजालाभ हुआ करता है। श्मशान, नदोतीर, प्रान्तर और वनमें विल्ववृक्ष होनेसे वह स्थान पीठस्थल कहलाता है।

घरके आंगनके वोचमें विल्ववृक्ष नहीं लगाना चाहिये। यदि दैवात् ऐसे स्थानमें उत्पन्न हो जाय, तो शिव समझ कर उसकी अर्चना करनी चाहिए। विल्ववृक्ष छेदन वा उसका काष्ठ दहन करना निषिद्ध है। ब्राह्मणोंके यज्ञके सिवा अन्य किसी भी कारणसे विल्ववृक्ष वेचनेसे उसे पतित होना पड़ता है। विल्वकाष्ठ-घर्षित चन्दन मस्तक पर लगानेसे नरक-भय दूर होता है। चैत्र, वैशाख ज्येष्ठ और आषाढ़, इन चार महीनोंमें विल्ववृक्षमें जलसिंचन करना विधेय है। (वृहद्धर्मपु० ६।११ अ०)

वह्निपुराणमें लिखा है, कि—गोरूप-धारिणी लक्ष्मीके पृथ्वी पर अवतीर्ण होने पर उनके गोमयसे विल्ववृक्षको उत्पत्ति हुई।

"भूगोलदमीश्च या धेनु गोरूपा सा गता महीम्।
तद्गोमयभवो विल्वः श्रीश्च तस्मादजायत ॥"
(वह्निपु०)

इस वृक्षमें सर्वदा लक्ष्मीका वास रहता है इसी लिये इसका नाम श्रीवृक्ष है।

तन्त्रके अनुसार इसकी उत्पत्ति इस प्रकार है:—विष्णु-पत्नी लक्ष्मी पृथ्वी पर विल्ववृक्ष रूपमें उत्पन्न हुई। कारण विष्णु सरस्वतीको वहुत ही प्यार करते थे। इस लिये लक्ष्मीने महादेवके लिए वहुत वर्ष तक घोर तर तपस्या की थी। इतने पर भी महादेवको प्रीति न हुई। तव वे विल्ववृक्ष-रूपमें परिणत हुईं; वादमें वही विल्व वृक्षके नामसे प्रसिद्ध हुआ। महादेव सर्वदा इस वृक्षमें वास करते हैं। (योगिनीतन्त्र पूर्वखण्ड ५ प०)

विल्ववृक्षके नोचे प्राणत्याग करनेसे मोक्ष लाभ होता है।

"विल्ववृक्षस्तथा देवी भगवान् शङ्करः स्वयं।
विल्ववृक्षतले स्थित्वा यदि प्राणांस्त्यजेत् सुधीः॥
तत्क्षणात् मोक्षमाप्नोति किं तस्य तीर्थकोटिभिः।"
(पुरश्चरणोल्लास १० पटल)

देवपूजामें विल्वपत्र चढ़ाते समय अधोमुख रहना चाहिए। विल्वपत्रके विना शक्तिपूजादि नहीं होती।
श्रीफल और विल्ववृक्ष देखो।

विल्वक (सं० क्ली०) १ तीर्थभेद। २ नागभेद। ३ पीठस्थानभेद।

विल्वकादि (सं० पु०) पाणिन्युक्त शब्दगणभेद। यथा—विल्व, वेणु, वेत्र, वेतस, इक्षु, काष्ठ, कपोत, तृण, क्रुञ्चा, तक्षन्।

विल्वकीय (सं० त्रि०) विल्वाः सन्ति यस्यां नड़ादित्वात् छ कुक् च। विल्वयुक्त भूमि।

विल्वज (सं० त्रि०) विल्वात् जायते जन-ड। विल्वजातमात्र।

विल्वजा (सं० त्रि०) शालिधान्य विशेष।

विल्वतेजस् (सं० पु०) नागभेद।

विल्वतैल (सं० क्ली० कर्णरोगोक्त तैलौषधभेद। प्रस्तुत प्रणाली—तिलतैल ४ सेर, छागदुग्ध १६ सेर और वेलसोंठ १ सेर इसे गोमूत्रमें पीस कर कल्क दे। वाधिर्यरोग में यह तेल कानमें देनेसे वधिरता जाती रहती है।

अन्यविध—तिलतैल १ सेर, वकरीका दूध ४ सेर, कल्क वेलशोंठ २ पल। पीछे यथानियम इस तेलका पाक करे। वात-श्लैष्मिक वधिरतामें यह तेल कानमें देनेसे वधिरता प्रशमित होती है।
(भैषज्यरत्ना० कर्णरोगाधि०)

विल्वनाथ (सं० पु०) एक हठयोगाचार्य ।

विल्वपत्र (सं० क्ली०) विल्वस्य पत्रं । वेलकी पत्तियां ।

विल्वपत्रिका (सं० स्त्री०) विल्वकस्थिता दांक्षायणी मूर्त्तिभेद ।

विल्वपान्तर (सं० पु०) नागभेद ।

विल्वपेषिका (सं० स्त्री०) विल्वस्य पेषिका । शुष्क-विल्वखण्ड, बेलसोंठ ।

विल्वमंगल ठाकुर—दक्षिणमें रहनेवाले एक ब्राह्मण कुमार । कृष्णवेण्वानदी तीरवर्त्ती किसी गांवमें ये रहते थे । बाल्यावस्थामें पिताके वियोग हो जानेसे ये अतुल संपत्तिके उत्तराधिकारी और लंपट हो गये । इस नदीके दूसरे पार में चिन्तामणि नामकी एक वेश्या रहती थी । ये दिनरात उसमें आसक्त रह कर प्रेम करते थे । वही प्रेम उनको एक दिन श्रीकृष्णजीके दर्शन कराने ले गया था ।

एक दिन किसी प्रकार उस वेश्याको मालूम हुआ, कि कल विल्वमंगल मृताह तिथिमें पिताका श्राद्ध करेंगे । वेश्याने उस दिन उनका नदीपार होना असंगत जान रात्रिमें नदी पार होनेसे उन्हें निषेध कर दिया । गृहकर्म करने पर विल्वमंगल फिर स्थिर न रह सके, चिन्तामणिकी दर्शनलालसामें उद्विग्नचित्त हो आधी रातमें घरसे चल दिये । रास्तेमें जाते जाते काली घटायें उठीं, उसके साथ साथ झञ्झावात, वज्राघात और वृष्टिपात होने लगा । इस प्रकारके बाधा विघ्नको अतिक्रम कर ये नदी किनारे नाव ढूंढनेके लिये खड़े हो गये । वात्याविताड़ित जलराशिने भीषणाकार धारण किया था । चारों ओर उत्ताल तरङ्गें उठ कर नदीको विभीषिकामयी बना रही थी । प्रेमोन्मत्त विल्वमंगल ऐसे असमयमें भी स्थिर न रह सके और जलमें कूद पड़े । जलमें कभी डूबते, कभी तैरते चले जा थे । अन्तमें काष्ठभ्रमसे उनके हाथ एक गला हुआ मुर्दा लगा । उसीके आश्रयसे नदी पार कर वेश्याके घरके सामने विल्वमंगल उपस्थित हो गये । रात्रि अधिक हो गई थी, द्वार बंद देख कर वे गृह प्रवेशकी चेष्टामें घर के चारों ओर घूमने लगे । प्राचीरकी दरारमें सांपकी पूंछ लटकती देख उन्होंने उसे रस्सी जान पकड़ लिया । उसीके सहारे वे प्राचीर पर चढ़े और भीतरके आंगनमें कूद पड़े । कूदनेकी शब्द सुनते ही चिन्तामणि आदि वेश्यायें दीपक ले कर आयीं और पड़े हुए विल्वमंगलको उठा कर ले गयीं । किन्तु देहसे शवकी पूतिगंध निकलती देख उन्हें स्नान कराया और प्रकृत कारण पूछा । विल्वमंगल चिन्तामणिके प्रेममें बे होश थे, शरीरकी जरा भी सुधि न थी ।

उस समय वह वेश्या तमोमदमें उन्मत्त इनको जान तिरस्कार भरे वचनोंसे कहने लगी, मैं वेश्या नीच अस्पृश्य और निंदित हूं । तुम ब्राह्मण-पुत्र हो, यह प्रेम मुझे न कर यदि तुम इस प्रेमके सौ भागोंका एक भाग भी श्री कृष्णके चरणकमलमें समर्पण करते; तो निश्चय ही तुम्हें चौगुणा फल मिलता ।

चिन्तामणिके इस भर्त्सनावाक्यसे विल्वमंगलके हृदयमें सख्यभाव उपस्थित हुआ, साथ साथ विवेक और वैराग्य दिखाई दिया । उस रात्रिको कृष्णलीलाके गानमें विताया, प्रभात होते ही वे दूसरी जगह चले गये । रास्तेमें सोमगिरि नामक एक साधुके साथ उनका साक्षात् हुआ । विल्वमंगल उनके निकट कृष्णमंत्रमें दीक्षित हुये । एक वर्ष गुरु सेवाके बाद प्रेमवैरागी बन उन्होंने विशुद्ध प्रेमधन प्राप्त किया । इसके अनन्तर उनको कृष्णदर्शनकी अभिलाषा उत्पन्न हुई । वृन्दावन-गमनके अभिलाषी हो वे मार्ग मार्गमें विचरण करने लगे ।

कुछ दिन बाद एक गांवमें जा कर वे सरोवरतीरस्थ एक वृक्षके नीचे बैठ गये और कृष्णके ध्यानमें दिन बिताने लगे । दैवसे एक बनियेकी स्त्री उस सरोवरमें स्नान करने आयी । विल्वमंगलकी निगाह उस पड़ी और पूर्वाभ्यासके वशसे कामावेशमें उनका मन कुछ चलायमान हुआ । वे उस रूपवती रमणीके पीछे चल दिये । रमणी तो अपने घरमें चली गई और साधु विल्वमङ्गल घरके दरवाजे पर बैठ रहे । बनियेने साधुको देख नाना मिष्ट वचनोंसे उन्हें सन्तुष्ट किया । साधुने उसकी स्त्रीके दर्शनकी प्रार्थना उससे की । वैष्णवप्रीतिके लिये बनियेने स्वयं घरमें जा उस सुन्दरीको सुन्दर वस्त्र और आभूषणोंसे सजा एकान्तमें साधुके सामने उपस्थित कर दिया । उस समय साधुने स्त्रीके रूपको नखसे सिर तक निहार चक्षुका खूब तिरस्कार किया ।

इसके अनन्तर उन्होंने उस रमणीसे दो सूई ले कर अपनी आखें फोड़ डालीं और वे कृष्ण प्रेमके अनुरागमें अन्धेकी तरह धीरे धीरे वृन्दावनकी ओर चल दिये। राधाकृष्णके प्रेममें मतवाले बन उन्होंने जिस अमृतगीतसे त्रिभुवनको पुलकित कर दिया था; वही गीत श्रीकृष्णकर्णामृत नामसे प्रसिद्ध है। प्रवाद है, कि गोपवेशमें श्रीकृष्ण उसको खिलाते थे। एक दिन उन्होंने गोपबालकवेशी श्रीकृष्णके हाथको जोरसे दबा लिया। बालकने, हाथमें व्यथा होती है ऐसा कह कर अपना हाथ उनसे छुड़ा लिया। इस पर विल्वमङ्गलने कहा था—

"हस्तमुत्क्षिप्य यातोऽसि बलात्कृष्ण किमद्भुतम्।
हृदयाद् यदि निर्य्यासि पौरुषं गणयामि ते ॥
(श्रीकृष्णकर्णामृत ३।९६)

भक्तप्रेमसे राधाकृष्ण विल्वमङ्गलको अब बहुत दिन तक क्लेश न दे सके। उन्होंने निज पद्महस्तके द्वारा उनके ज्ञान-चक्षु खोल दिये। अब अन्धेके नयन खुल गये, उन्होंने त्रिभङ्गभङ्गिम मुरलीवदन श्याममूर्त्तिके दर्शन किये; पासमें प्रेममयी राधा—ऐसा युगल रूप देख कर वे प्रेमावेशमें ढल गये। (भक्तमाल)

विल्वमङ्गलठाकुरका दूसरा नाम लीलाशुक था। श्रीकृष्णप्रेममें संन्यासी बन उन्होंने तत्त्वज्ञान लाभ किया था। कृष्णकर्णामृत, कृष्णबालचरित, कृष्णाह्निककौमुदी, गोविन्दस्तोत्र, बालकृष्णक्रीड़ाकाव्य, विल्वमङ्गलस्तोत्र और गोविंददामोदरस्तव नामक ग्रंथ उनके बनाये हुए मिलते हैं।

विल्ववन (सं० क्ली०) विल्वस्य वनं। बेलका जंगल।

विल्ववन—दाक्षिणात्यके मदुरा नगरके निकटवर्त्ती एक तीर्थ। यह बेगवती नदीके किनारे अवस्थित है। स्कन्द-पुराणान्तर्गत विल्वारण्य माहात्म्य और शिवपुराणके विल्ववन माहात्म्यमें इसका विस्तृत विवरण लिखा है।

विल्ववृक्ष (सं० पु०) बेलका पेड़। (Ægle marmelos) विभिन्न भाषाओंमें इसके नाम—हिन्दी—बेल, श्रीफल, श्रीफल; संस्कृत—विल्व, श्रीफल, मालूर, विल्वफल, विल्व; मराठी—बेल; गुजराती—बिल; बंगला—बेल, विल्व; आसामी—बेल; सिन्ध—बिल, कटोरी; अरबी—सफरजले, हिन्दि, सूल; कोल—लोहगसो; मग्र—औरतपंग; तामिल—विल्वफलम्; तैलङ्ग—मरेदु, मालुरमु, विल्वपण्डु, पतिर; गोंड़—मह्का, महका; मलयालम्—कुवलप्पज्रम्; कनाड़ी—बिलपत्री वा बेलपत्री; ब्रह्म—ओक्षिन्, उषित्वन्; सिंगापुर—बेल्ली। भारतमें प्रायः सर्वत्र ही यह वृक्ष होता है। हिमालय पर्वतके वनविभागमें और दक्षिण भारत तथा ब्रह्मदेशमें बेलके पेड़ स्वभावतः उत्पन्न होते हैं।

इस वृक्षकी छाल अलग कर लेनेसे उसमेंसे एक प्रकार का गोंद-सा निकलता है। फलके अन्दर श्रेणीबद्ध बीज होते हैं। प्रत्येक बेलमें बीजोंके रहनेके लिए १० से ले कर १५ तक गह्वर होते हैं। इन कोषोंमें बीज गोंदके साथ लिपटे हुए रहते हैं। यह गोंद आस्वाद-हीन और द्रव्यादि जोड़नेके काममें आता है। बेलके गोंदमें चूना मिला कर उससे कांचके बासन आदि जोड़े जा सकते हैं।

कच्चे बेलके छिलकेसे एक प्रकारका जरद रंग निकलता है जो हर्रोंके साथ मिलानेसे केलिका नामक वस्त्र रंगनेके काममें आता है।

विल्ववृक्षमें भेषज गुण भी बहुत हैं। कच्चे और पक्के फल, जड़, पत्ते, छिलका आदि सबमें अलग अलग गुण पाये जाते हैं।

१ कच्चा फल—कच्चे फलोंको खण्ड खण्ड कर लोग सुखा लिया करते हैं, जो बेलगरीके नामसे बाजारमें बिकता है। इसमें धारकता गुण है। लड़कोंको अजीर्ण रोग होने पर इसका काढ़ा बना कर दिया जाता है। यह पाकाशयके लिए अत्यंत उपयोगी है और सहज ही परिपाक होता है। कभी कभी संग्रहणी रोगमें भी इसका पथ्य दिया जाता है। आमाशय (पेचिस) आदि औदरिक रोगोंमें कच्चा बेल भून कर गुड़ या चीनीके साथ खानेसे उपकार होता है।

२ पक्का फल—सुमिष्ट, सुगन्धियुक्त और शीतल होता है। गरमियोंमें इमली या दहीके साथ इसका मठा सरबत बना कर पीनेसे बड़ा स्वादिष्ट मालूम पड़ता है और पेट ठंढा रहता है। यह सरबत हृद्य, बलकारक और सारक होता है। सुबहमें बरफके साथ सरबत पीनेसे उदरामय रोग जाता रहता है। पक्का बेल थोड़ी-सी चीनी मिला कर खानेसे पेट बंध जाता है। दीर्घजीर्ण वा आमाशयजनित दौर्बल्यमें यूरोपीय लोग बेलमार्मलेड (Bel-marmalade) बना कर सुबहके वक्त उसका सेवन करते हैं।

३ बेलकी जड़—इसकी छालका काढ़ा बना कर सविराम ज्वरमें प्रयुक्त किया जा सकता है। दीर्घकाल स्थायी कोष्ठबद्धता रोगमें जड़की छाल १ आउन्स १० आउन्स गरम जलमें उबाल कर, उसमेंसे १ या २ आउन्स सेवन करनेसे यथेष्ट उपकार मिलता है। चित्तोन्मादता (Hypochondriasis) और हृद्रोग (Palpitation of the heart)में यह फायदेमन्द है। वैद्यक दशमूल पाचनमें बेलकी जड़ रहती है। बेलकी जड़ सर्पके मस्तक पर लगानेसे उसका फन नत जाता है। सर्पके काटे हुए स्थान पर बेलकी जड़ लगानेसे विष भी नष्ट होता है।

४ पत्र—बेलपत्तेका रस अल्पज्वरमें देनेसे सामान्य दस्त होता है और ज्वर घट जाता है। चक्षु रोगमें अथवा गात्र-क्षतमें कभी कभी बेलपत्तेको बँट कर, उस स्थान पर कभी पुल्टिस रखी जाती है, जिससे दर्द घट जाता है। सामान्य ज्वरमें बेलपत्तेका काढ़ा सेवन कराया जाता है। बेलपत्तोंसे शिव और शक्तिकी पूजा होती है, यह बात बिल्व शब्दमें कही जा चुकी है।

५ बेलका छिलका—यह भी समय समय पर औषधके काममें आता है।

६ फूल—इससे अच्छी सुगन्धि प्राप्त होती है।

यूरोपीय चिकित्सकोंने बेलसे तीन औषधियां बनाई हैं—(१) *Extract of Bel*, (२) Liquid Extract of Bel, और (३) *Powder of the Pulp*। ये तीनों दवाइयां उदर और ज्वर रोगमें अवस्थानुसार सेवन की जाती हैं।

बिल्वा (सं॰ स्त्री॰) बिल्व-टाप्। हिंगुपत्री।

बिल्वाश्रमक (सं॰ क्ली॰) रेवातीर-स्थित एक तीर्थ स्थान।

बिल्वेश्वर (सं॰ क्ली॰) शिवलिङ्गभेद।

बिल्वोदकेश्वर (सं॰ पु॰) शिवमूर्त्तिभेद। हरिवंशके १३६ अध्यायमें इसके आविर्भावका विषय लिखा है।

बिल्हण (सं॰ पु॰) चालुक्यराज विक्रमाङ्ककी सभाके एक कवि। इन्होंने विक्रमाङ्क-चरित काव्य लिखा है। इस ग्रंथमें उस समयकी अनेक ऐतिहासिक कथाओंका वर्णन है। इन्हें लोग 'चोर कवि' भी कहा करते थे।

बिवरना (हिं॰ क्रि॰) १ सुलझना, एकमें गुथी हुई वस्तुओंको अलग अलग करना। २ बंधे या गुथे हुए बालोंको हाथ, कंघी आदिसे अलग अलग करके साफ करना, बाल सुलझाना।

बिवराना (हिं॰ क्रि॰) १ बालोंको खुलवा कर सुलझवाना। २ बाल सुलझाना।

बिशप (अं॰ पु॰) ईसाई मतका बड़ा पादरी।

बिशाखपत्तन—विशाखपत्तन देखो।

बिशालकवि—विशालकवि देखो।

बिश्वनाथ सिंह—विश्वनाथ सिंह देखो।

बिषान (हिं॰ पु॰) विषाण देखो।

बिष्णुप्रसाद कुवंरि—विष्णुप्रसाद कुवंरि देखो।

बिसंभार (हिं॰ वि॰) असावधान, गाफिल।

बिस (हिं॰ वि॰) विष देखो।

बिसकण्ठिका (सं॰ स्त्री॰) विषमिव कण्ठोऽस्याः कप्। बलाका, बगलोंकी पंक्ति।

बिसकण्ठिन् (सं॰ पु॰) बिसमिव कण्ठोऽस्त्यस्य इनि। बक, बगला।

बिसकुसुम (सं॰ क्ली॰) बिसस्य कुसुमं। कमल।

बिसखपरा (हिं॰ पु॰) १ गोहकी जातिका एक विषैला सरीसृप जन्तु। यह हाथ सवा हाथ लंबा होता है। इसका काटा हुआ जीव तुरन्त मर जाता है। इसकी जीभ रंगीन होती है जिसे यह थोड़ी थोड़ी देर पर निकाला करता है। देखनेमें यह बड़ी भारी छिपकली सा होता है। २ पुनर्नवा, पथरचटा। ३ एक प्रकारकी जंगली बूटी। इसकी पत्तियां बनगोभीकी-सी, पर कुछ अधिक हरी और लंबी होती हैं। यह औषधमें काम आती है। इसका दूसरा नाम बिससपरी भी है।

बिसखा (सं॰ त्रि॰) बिसं मृणालं खनति खन-विट्-डा। मृणाल खननकर्त्ता।

बिसखादिका (सं॰ स्त्री॰) १ मृणाल-खननकादि २ वात्स्यायनका कामसूत्र-वर्णित नाटकभेद।

बिसखापर (हिं॰ पु॰) बिसखपरा देखो।

बिसग्रन्थि—बिसस्य ग्रन्थिः। मृणाल ग्रन्थि, कमलकंद। इसे जलमें देनेसे जलकी मलिनता दूर होती है।

बिसज (सं॰ क्ली॰) बिसाज्जायते जन-ड। पद्म, कमल।

बिसटी (हिं॰ स्त्री॰) बेगार।

बिसनाभि (सं॰ पु॰) बिसं नाभिरुत्पत्तिस्थानं यस्य।

१ पद्मिनी, कमल। २ पद्मसमूह, कमलोंका ढेर।
बिसनालिका (सं० स्त्री०) बिसस्य नालिकेव । मृणाल।
बिसनासिका (सं० स्त्री०) वकभेद।
बिसनी (हिं० वि०) १ जिसे किसी बातका व्यसन या शौक हो। २ वेश्यागामी, रंडीबाज। ३ जो व्यवहारकी साधारण वस्तु सामने आने पर नाक भौं सिकोड़े, जिसे चीजें जल्दी पसन्द न आएं। ४ जिसे सफाई सजावट या बनाव सिंगार बहुत पसन्द हो, चिकनिया।
बिसप्रसून (सं० क्ली०) पद्म, कमल।
बिसमव (हिं० पु०) विस्मय देखो।
बिसमिल (फा० वि०) आहत, घायल।
बिसमिल्लाह (अ० पु०) श्रीगणेश, आरम्भ।
बिसरना (हिं० क्रि०) विस्मृत होना, भूल जाना।
बिसराना (हिं० क्रि०) विस्मृत करना, ध्यानमें न रखना।
बिसल (सं० क्ली०) बिसं लातीति ला-क। पल्लव, कोंपल।
बिसवत् (सं० त्रि०) बिस-चतुर्थादित्वात् मतुप् मस्य व। मृणाल-युक्तादि।
बिसवर्त्मन (सं० पु० क्ली०) बिसाख्य नेत्रवर्त्मगत रोगभेद।
बिसवार (हिं० पु०) हज्जामोंकी वह पेटी जिसमें वे हजामत बनानेके औजार रखते हैं, किसवत।
बिसवासिनी (हिं० वि०) १ विश्वास करनेवाली। २ जिस पर विश्वास हो।
बिसवासी (हिं० वि०) १ जो विश्वास करे। २ जिस पर विश्वास हो। ३ जिस पर विश्वास न किया जा सके, बेएतबार। ४ जिसका कुछ ठीक न हो, कि कब क्या करे करावेगा।
बिससना (हिं० क्रि०) १ वध करना, घात करना। २ शरीर काटना, चीरना फाड़ना।
बिसहर (सं० पु०) सर्प, सांप।
बिसहरू (हिं० पु०) मोल लेनेवाला, खरीददार।
बिसहिनी (हिं० स्त्री०) एक प्रकारकी चिड़िया।
बिसांयंध (हिं० वि०) १ सड़ी मछलीकी-सी गन्धवाला, जिससे सड़ी मछलीकी-सी गंध आती हो। (स्त्री०) २ मछलीकी-सी गंध, सड़े मांसकी-सी गंध।
बिसाख (हिं० स्त्री०) विशाखा देखो।
बिसात (अ० स्त्री०) १ धनसम्पत्तिका विस्तार, हैसियत। सामर्थ्य, हकीकत। ३ शतरंज या चापड़ आदि खेलनेका कपड़ा या बिछौना जिस पर खाने बने होते हैं। ४ जमा, पूंजी।
बिसाती (अ० पु०) १ बिस्तर बिछा कर उस पर सौदा रख कर बेचनेवाला। २ छोटी चीजोंका दूकानदार।
बिसाना (हिं० क्रि०) १ वश चलना, काबू चलना। २ विषका प्रभाव करना, जहरका असर करना।
बिसारद (हिं० पु०) विशारद देखो।
बिसारना (हिं० क्रि०) स्मरण न रखना, भुला देना।
बिसारा (हिं० वि०) विषाक्त, विष भरा।
बिसासिनी (हिं० स्त्री०) विश्वासघातिनी, जिस पर विश्वास न किया जा सके।
बिसाह (हिं० पु०) क्रय, खरीद।
बिसाहना (हिं० क्रि०) १ क्रय करना, खरीदना। २ जान बूझ कर अपने पीछे लगाना, अपने साथ करना। (पु०) ३ मोल लेनेकी वस्तु, कामकी चीज। ४ मोल लेनेकी क्रिया, खरीद।
बिसाहनी (हिं० क्रि०) सौदा, जो वस्तु मोल ली जाय।
बिसाहा (हिं० पु०) सौदा, खरीदी हुई वस्तु।
बिसिनी (सं० स्त्री०) बिस पुष्करादित्वात् इनि। १ पद्मिनी, २ मृणालादियुक्त देश। ३ तत्समुदाय।
बिसिल (सं० त्रि०) बिस-काश्यादित्वादिल। जो मृणालके समीप हो।
बिसुनना (हिं० क्रि०) कोई वस्तु खाते समय उसका कुछ अंश नाककी ओर चढ़ जाना।
बिसुनी (हिं० पु०) अमरबेल।
बिसुवा (हिं० पु०) बिस्वा देखो।
बिसूरना (हिं० क्रि०) १ चिन्ता करना, सोच करना। (स्त्री०) २ चिन्ता, फिक्र।
बिसेन (हिं० पु०) क्षत्रियोंकी एक शाखा, किसी समय इसका राज्य वर्त्तमान गोरखपुरके आस पासके प्रदेशसे ले कर नेपाल तक था।
बिस्कुट (अं० पु०) खमीरी आटेकी तंदूर पर पकी हुई एक प्रकारकी टिकिया। यह बहुत हलकी होती है और

दूधमें डालनेसे फूल आती है। बिस्कुट नमकीन और मीठा दोनों प्रकारका होता है। इसे यूरोप और बंगालके लोग बहुत खाते हैं।

बिस्तर (हिं० पु०) १ बिछौना, बिछावन। २ विस्तार, बढ़ाव।

बिस्तरना (हिं० क्रि०) १ फैलाना, अधिक करना। २ बढ़ा चढ़ा कर वर्णन करना, बिस्तारसे कहना।

बिस्तरा (हि० पु०) बिस्तर देखो।

बिस्तारना (हिं० क्रि०) विस्तृत करना, फैलाना।

बिस्तुइया (हिं० स्त्री०) गृहगोधा, छिपकली।

बिस्वा (हिं० पु०) एक बीघेका बीसवां भाग।

बिस्वदार (हिं० पु०) १ पट्टीदार, हिस्सेदार। २ किसी बड़े राजा या तअल्लुकेदारके अधीन जमींदार।

बिस्वास (हिं० पु०) बिश्वास देखो।

बिहंग (हिं० पु०) बिहंग देखो।

बिहंड़ना (हिं० क्रि०) १ खण्ड खण्ड कर डालना, तोड़ना। २ नष्ट कर देना। ३ काटना।

बिहँसना (हि० क्रि०) मुस्कराना, मंदमंद हंसना।

बिहंसाना (हिं० क्रि०) १ बिहंसना देखो। २ प्रफुल्लित होना, खिलना।

बिहतर (फा० वि०) बहुत अच्छा।

बिहतरी (फा० स्त्री०) कुशल, भलाई।

बिहवल (हिं०वि०) व्याकुल देखो।

बिहरना (हिं० क्रि०) घूमना, फिरना, सैर करना।

बिहरो (हिं० स्त्री०) चंदा, बरार।

बिहाग (हिं० पु०) एक राग जो आधी रातके बाद लगभग २ बजेके गाया जाता है। यह राग हिंडोलराजका पुत्र माना जाता है।

बिहागड़ा (हिं० पु०) सम्पूर्ण जातिका एक राग। इसमें सब शुद्ध स्वर लगते हैं। इसके गानेका समय रातको १६ दण्डसे २० दण्ड तक है। कोई इसे हिंडोल रागकी रागिनी और कोई सरस्वती, केदारा और मारवाके योगसे उत्पन्न मानते हैं।

बिहान (हिं० पु०) १ प्रातःकाल, सवेरा। (क्रि० वि०) २ कल्ह, कल।

बिहार—पटना जिलेका उपविभाग। अन्तस्थ 'व'में देखो।

बिहारना (हिं० क्रि०) विहार करना, केलि या क्रीड़ा करना।

बिहारीमल्ल—विहारीमल्ल देखो।

बिहारी लाल—विहारीलाल देखो।

बिहाल (फा० वि०) व्याकुल, बेचैन।

बिहिश्त (फा० स्त्री०) स्वर्ग, वैकुण्ठ।

बिही (फा० स्त्री०) १ पेशावर और काबुलकी ओर मिलनेवाला एक पेड़। इसके फल अमरूदसे मिलते जुलते हैं। २ उक्त पेड़का फल जिसकी गिनती मेवोंमें आई है। ३ अमरूद।

बिहीदाना (फा० पु०) बिही नामक फलका बीज जो दवाके काममें आता है। इन बीजोंको भिगो देनेसे लुआब निकलता है जो शर्बतकी तरह पिया जाता है।

बिहीन (हिं० वि०) रहित, बिना।

बिहून (हिं० वि०) रहित, बिना।

बिहोरना (हिं० क्रि०) बिछुड़ना।

बींड़ (हिं० पु०) बींड़ा देखो।

बींड़ा (हिं० पु०) १ मंडरेके आकारका लम्बा नाल जो पेड़की पतली टहनियोंसे बुन कर बनाया जाता है। यह कच्चे कुएं या चौंडमें इसलिये दिया जाता है, कि उसका भगाड़ न गिरे। २ पिंडी, पिंड। ३ जलानेकी लकड़ी या बांस आदिका बांध कर बनाया हुआ बोझ। ४ धानके पयालका बनाया हुआ एक प्रकारका गोल आसन। इस पर गाँवके लोग आगके किनारे बैठ कर तापते हैं। ५ घास आदिको लपेट कर बनाई हुई गेंडुरी जिस पर घड़े रखे जाते हैं। ६ वह गेंडुरी जिसे सिर पर रख कर घड़े, टोकरे आदिका भार उठाते हैं। ७ बड़ी बाड़ी, लुंडी।

बींड़िया (हिं० पु०) वह बैल जो तीन बैलोंकी गाड़ीमें सबसे आगे रहता है और जिसके गलेके नीचे बींड़ी रहती है।

बींड़ी (हिं० स्त्री०) १ रस्सी या सूतकी वह पिंडी जो लकड़ी या किसी और चीजके ऊपर लपेट कर बनाई जाय। २ वह मोटी और कपड़े आदिमें लपेटी हुई रस्सी जो उस बैलके आगे गलेके सामने छाती पर रहती है जो तीन बैलोंकी गाड़ीमें सबसे आगे रहता है। ३ केंडुला। ४ वह लकड़ी जिस पर

सूत आदिको लपेट कर बीड़ी बनाई जाती है। ५ वह गेंडुरी जिसे सिर पर रख कर घड़ा टोकरा या और कोई बोझ उठाते हैं।

बींधना (हिं० क्रि०) विद्ध करना, छेदना।

बी (फा० स्त्री०) बीबो देखो।

बीका (हिं० वि०) वक्र, टेढ़ा।

बीकाजी—अन्तस्थ 'व'-में देखो।

बीकानेर—बीकानेर देखो।

बीख (हिं० पु०) पद, कदम, डग।

बीग (हिं० पु०) भेड़िया।

बीगहाटी (हिं० स्त्री०) वह लगान जो बीघेके हिसाबसे लिया जाय।

बीघा (हिं० पु०) खेत नापनेका एक वर्ग मान जो बीस बिस्वेका होता है। एक जरीव लंबी और एक जरीव चौड़ी भूमि क्षेत्रफलमें एक बीघा होती है। भिन्न भिन्न प्रान्तोंमें भिन्न भिन्न मानकी जरीवका प्रचार है। अतः प्रान्तिक बीघेका मान जिसे देहो वा देहाती बीघा कहते हैं, सब जगह समान नहीं है। पक्का बीघा जिसे सरकारी बीघा भी कहते हैं, ३०२५ वर्गगजका होता है जो एक एकड़का ⅝वां भाग होता है। अब सब जगह प्रायः इसी बीघेका प्रयोग होता है।

बीच (हिं० पु०) १ किसी परिधि, सीमा या मर्यादाका केन्द्र अथवा उस केन्द्रके आस पासका कोई ऐसा स्थान जहांसे चारों ओरकी सीमा प्रायः समान अन्तर पर हो, किसी पदार्थका मध्यभाग। २ दो वस्तुओं या खंडोंके बीचका अन्तर, अवकाश। ३ अवसर, मौका। ४ भेद, फरक। (स्त्री०) ५ लहर, तरंग।

बीचोबीच (हिं० क्रि० वि०) ठीक मध्यमें, बिलकुल बीचमें।

बिछू (हिं० पु०) बिच्छू देखो।

बीज (सं० क्ली०) विशेषेण कार्यरूपेण अपत्यतया च जायते 'उपसर्गे च संज्ञायां' इति जन ड 'अन्येषामपीति' उपसर्गस्य दीर्घः वा विशेषण ईजते कुक्षिं गच्छति शरीरं वा ईज-गतिकुत्सनयोः पचाद्यच्। १ कारण। "बीजं मां सर्वभूतानां विद्धि पार्थ सनातनं।" (गीता ७।१०) २ शुक्र।

'बीजं शुक्र' (मेधातिथि) ३ शक्तिरूप। (मनु १०।१२) ४ अंकुर। ५ तत्त्वाधान। (मेदनी) ६ मज्जा। (राजनि०) ७ गणित-विशेष, बीजगणित। ८ वृक्षादिका अंकुराधार।

९ देवताओंके मूलमन्त्र, बीजमंत्र। तन्त्रमें प्रत्येक देवताके भिन्न भिन्न बीजमन्त्र लिखे हैं। बहुत ही संक्षेपमें इस विषय पर प्रकाश डाला जाता है।

अन्नपूर्णाबीज—'ह्रीं नमो भगवति महेश्वरि अन्नपूर्णे स्वाहा।' त्रिपुटा बीज—'श्रीं ह्रीं क्लीं।' त्वरिताबीज—'ओं ह्रीं हुं खे च छे क्ष स्त्री हूं क्षे ह्रीं फट्।' नित्याबीज—ऐं क्लीं नित्यक्लिन्ने मदद्रवे स्वाहा।' दुर्गाबीज—'ओं ह्रीं दुं दुर्गायै नमः।' महिष-मर्दिनीबीज—'ओं महिषमर्दिनि स्वाहा।' जयदुर्गाबीज—'ओं दुर्गे दुर्गे रक्षणि स्वाहा।'

शूलिनीबीज—'ज्वल ज्वल शूलिनि दुष्टग्रह हुं फट् स्वाहा।' वागीश्वरीबीज—'वद वद वाग्वादिनी स्वाहा।' पारिजात सरस्वती बीज—'ओं ह्रीं ह्सौं ओं ह्रीं सरस्वत्यै नमः। गणेशबीज—'गं'। हेरम्बबीज—'ओं गूं नमः।' हरिद्रागणेशबीज—'ग्लं'। लक्ष्मीबीज—'श्रीं'। महालक्ष्मीबीज—'ओं ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं ह्सौं जगत्प्रसूत्यै नमः।' सूर्यबीज—'ओं घृणि सूर्य आदित्य।' श्रीरामबीज—'रां' रामाय नमः जानकीवल्लभाय हुं स्वाहा।' विष्णुबीज—'ओं नमो नारायणाय।' श्रीकृष्णबीज—'गोपीजनवल्लभाय स्वाहा।' वासुदेवबीज—'ओं नमो भगवते वासुदेवाय।' बालगोपालबीज—'ओं क्लीं कृष्णाय।' लक्ष्मीवासुदेवबीज—'ओं ह्रीं ह्रीं लक्ष्मीवासुदेवाय नमः।' दधिवामनबीज—'ओं नमो विष्णवे सुरपतये महाबलाय स्वाहा।'

हयग्रीवका बीज—'ओं उद्गिरत्प्रणवोद्गीथसर्ववागीश्वरेश्वर। सर्वदेवमयाचिन्त्य सर्वंबोधय बोधय॥

नृसिंहबीज—'उग्रं वीरं महाविष्णुं ज्वलन्तं सर्वतोमुखं। नृसिंहं भीषणं भद्रं मृत्युमृत्युं नमाम्यहम्॥"

नरहरिबीज—'आं ह्रीं क्ष्रौं हुं फट्।' हरिहरबीज—'ओं ह्रीं ह्रौं शङ्करनारायणाय नमः ह्रौं ह्रीं ओं।' वराहबीज—'ओं नमो भगवते वराहरूपाय भूर्भुवस्वःपतये भूपतित्वं मे देहि ददापय स्वाहा।' शिवबीज—'ह्रौं।'

मृत्युञ्जयबीज—'ओं जुं सः।' दक्षिणामूर्त्तिबीज—'ओं नमो भगवते दक्षिणामूर्त्तये मह्यं मेधां प्रयच्छ स्वाहा। चिन्तामणिबीज—र क्ष म र य औं ऊं।' नीलकण्ठबीज—'प्रों न्रीं ठः नमः शिवाय।' चण्डबीज—'रूध्व फट्।' क्षेत्रपालबीज—'ओं क्षौं क्षेत्रपालाय नमः।' बटुकभैरव बीज—'ओं ह्रीं बटुकाय आपदुद्धारणाय कुरु कुरु बटुकाय ह्रीं।' त्रिपुराबीज—'हसरैं' 'हसकलरीं' 'हसरौंः'। सम्पत्प्रदाभैरवीबीज—'हसरैं सहकलरीं हसरौं।' भयविध्वंसिनी भैरवीबीज—'हसैं, हसकलरीं, हसरौं।' कौलेशभैरवीबीज—'सहरैं, सहकलरीं, सहरौं।' सकलसिद्धिदाभैरवीबीज—'सहैं, सहकलरीं, सहौं।' चैतन्यभैरवीबीज—'सहैं, सकलह्रीं, सहरौः।' कामेश्वरीभैरवीबीज—'सहैं, सकलह्रीं, नित्यक्लिन्ने मदद्रवे सहरौः।' षट्कूटाभैरवीबीज—'ड र ल कसहैं, ड, र ल क स हीं ड र ल क स हीं।' नित्याभैरवीबीज—'ह स क ल र डैं, ह स क ल र डीं, हस कलरडौं।' रुद्रभैरवी बीज—'हसखफरैं, हसकलरीं हसौः।' भुवनेश्वरीभैरवीबीज—'हसैंः, हसकलह्रीं, हसौः।' सकलेश्वरीबीज—'सहैं, सहकलह्रीं, सहौं।' त्रिपुराबालाबीज—'ऐं क्लीं सौः। नवकूटाबालाबीज—'ऐं क्लीं सौः हसैं, हसकलरीं, हसौः, हसरैं, हसकलरीं हसरौः। अन्नपूर्णाभैरवीबीज—ओं ह्रीं श्रीं क्लीं नमो भगवति माहेश्वरि अन्नपूर्णे स्वाहा।'

श्रीविद्याबीज—क ए ई ल ह्रीं। हस क ह ल ह्रीं सकलह्रीं। छिन्नमस्ताबीज—श्रीं क्लीं हूं वज्रवैरोचनीये हूं हूं फट् स्वाहा। श्यामाबीज—क्रीं क्रीं क्रीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं दक्षिणेकालिके क्रीं क्रीं क्रीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं स्वाहा। गुह्यकालिबीज—क्रीं क्रीं क्रीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं गुह्ये कालिके क्रीं क्रीं क्रीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं स्वाहा। भद्रकालीबीज—क्रीं क्रीं क्रीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं भद्रकाल्यै क्रीं क्रीं क्रीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं स्वाहा।

श्मशानकालिकाबीज—क्रीं क्रीं क्रीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं श्मशानकालि क्रीं क्रीं हूं हूं स्वाहा। महाकालीबीज—क्रीं क्रीं क्रीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं महाकाली क्रीं क्रीं क्रीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं स्वाहा। ताराबीज—ह्रीं स्त्रीं हूं फट्। चण्डोग्रशूलपाणिबीज—ओं ह्रीं हूं शिवाय फट्। मातङ्गिनी बीज—ओं ह्रीं क्लीं हूं मातङ्गिन्यै फट् स्वाहा।

उच्छिष्टचाण्डालिनी बीज—सुमुखीदेवी, महापिशाचिनी ह्रीं ठः ठः ठः। धूमावती बीज—धूं धूं स्वाहा।

भद्रकालीबीज—ह्रौं कालि महाकालि किलि किलि फट् स्वाहा। उच्छिष्टगणेशबीज—ओं हस्तिपिशाचि लिखे स्वाहा। धनदाबीज—धं ह्रीं श्रीं देवि रतिप्रिये स्वाहा। श्मशानकालिका बीज—ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं कालिके ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं।

बगलाबीज—ओं ह्रीं बगलामुखि सर्वदुष्टानां वाचं मुखं स्तम्भय जिह्वां कीलय कीलय बुद्धिं नाशय ह्रीं ओं स्वाहा।

कर्णपिशाचीबीज—ओं कर्णपिशाचि वदातीतानागतशब्दं ह्रीं स्वाहा। मञ्जुघोषबीज—क्रौं ह्रीं श्रीं।

तारिणीबीज—क्रीं क्लीं कृष्णदेवि ह्रीं क्रीं ऐं। सारस्वत बीज—ऐं। कात्यायनीबीज—ऐं ह्रीं श्रीं चौं चण्डिकाय नमः। दुर्गाबीज—दूं। विशालाक्षीबीज—ओं ह्रीं विशालाक्ष्यै नमः। गौरीबीज—ह्रीं गौरि रुद्रदयिते योगेश्वरि हूं फट् स्वाहा।

ब्रह्मश्रीबीज—ह्रीं नमो ब्रह्मश्रीराजितेराजपूजिते जये विजये गौरि गान्धारि त्रिभुवनशङ्करि सर्वलोकशङ्करि सर्वस्त्रीपुरुषवशङ्करि सुदुद्रदुर्घरराव ह्रीं स्वाहा।

इन्द्रबीज—इं इन्द्राय नमः। गरुड़बीज—क्षिप ओं स्वाहा। विषहराग्निबीज—खं खः। वृश्चिकविषहरबीज—ओं सरह स्फुः। ओं हिलि हिमि चिलि हस्फुः। ओं हिलि हिलि चिलि चिलि स्फुः। ब्रह्मणे फुः। सर्वेभ्यो देवेभ्यस्फुः।

मूषिकविषहरबीज—ओं गें अं ठं। ओं गं गां ठः। मूषिकनाशबीज—ओं सरणे फुः असरणे फुः विसरणे फुः। लूता विषहरबीज—ओं ह्रां ह्रीं हूं लक्षद् ओं स्वाहा गरुड़ हूं फट्। सर्वकीटविषहर बीज—ओं नमो भगवते विष्णवे सर सर हन हन हुं फट् स्वाहा।

सुखप्रसवबीज (मन्त्र)—ओं मन्मथ मन्मथ वाहि वाहि लम्बोदर मुञ्च मुञ्च स्वाहा। ॐ मुक्ताः पाशा! विपाशाश्च मुक्ताः सूर्येण रश्मयः। मुक्तः सर्वभयाद्गर्भ एह्येहि मारीच मारीच स्वाहा।'

इन दोनों मन्त्रोंमेंसे कोई भी मन्त्र पानी पर आठ बार जप कर उस पानीको आसन्नप्रसवाको पिलानेसे अनायास प्रसव हो जाता है।

आर्द्र पटीवीज—ॐ नमो भगवति चामुण्डे रक्तवासले अप्रतिहतरूपपराक्रमे अमुकवधाय विचेतसे स्वाहा। भीगा हुआ लाल वस्त्र पहन कर समुद्रगामिनी नदी अथवा ऊसर भूमिमें दक्षिण मुख बैठ कर यदि यह मन्त्र ऊर्द्ध्ववाहु हो कर जपा जाय, तो वस्त्र सूखनेके साथ साथ शत्रुके प्राण भी सूखते जाते हैं।

हनूमद्वीज—हं हनूमते रुद्रात्मकाय हुं फट्। वीरसाधनवीज—'हं पवननन्दनाय स्वाहा।' श्मशानभैरवीवीज—श्मशानभैरवि नररुधिरास्थिवसाभक्षणिसिद्धिमे देहि मम मनोरथान् पूरय हुं फट् स्वाहा। ज्वालामालिनीवीज—ॐ नमो भगवति ज्वालामालिनी गृध्रगणपरिवृत्ते हूं फट् स्वाहा। महाकालीवीज—फ्रें फ्रें क्रों क्रों पशून् गृहाण हूं फट् स्वाहा।

निगड़वन्धनमोक्षणवीज (मंत्र)—ॐ नम ऋते निर्ऋते तिग्मतेजो यन्मयं विव्रेता वन्धमेतं यमेन दत्तं तस्या संविदा नोत्तमे नाके अधोवोऽवैरं।

त्र्यम्बकवीज—ॐ त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्द्धनं। उर्वारुकमिव वन्धनान्मृत्योर्मुक्षीयमामृतात्।

मृतसञ्जीवनीवीज—ह्रौं ॐ जूं सः ओं भूर्भुवः स्वः। त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिपुष्टिवर्द्धनं। उर्वारुकमिव वन्धनान् मृत्योर्मुक्षीयमामृतात्।

ओं भूर्भुवः स्वः। इत्यादि (तन्त्रसार) आकर्षणादि जो सव वीज हैं, वे यहां वाहुल्यके भयसे नहीं दिये जा सके।

"वीजसङ्केतवोधार्थमुद्धृत्य तन्त्रशास्त्रतः।
वीजनामानि कानिचित् वक्ष्यामि विदुषां मुदे॥
माया लज्जा परा संवित् त्रिगुणा भुवनेश्वरी।
हल्लेखा शम्भुवनिता शक्तिदेवीश्वरी शिवा॥"

(प्राणतोषिणी)

प्राणतोषिणीमें लिखा है—परमेश्वरीका वीज ह्रीं है। इसी तरह लक्ष्मीका वीज श्रीं, सरस्वती वीज ऐं, ताराका वीज हुं, कालीका वीज क्रीं, गुप्तकालीका वीज क्रौं, शिवका वीज ह्रौं और अस्त्रका वीज फट् है। (प्रा० तो०)

काली तारा आदि प्रत्येकके वीज मन्त्र पृथक् पृथक् हैं। विशेष विवरण उन उन शब्दोंमें देखो।

वीजक (सं० पु०) १ सूची, फेहरिस्त। २ वह सूची जिसमें मालका व्योरा, दर और मूल्य आदि लिखा हो। ३ वीज। ४ वह सूची जो किसी गड़े हुए धनकी उसके साथ रहती है। ५ असनाका वृक्ष। ६ विजौरा नीवू। ७ कवीरदासके पदोंके तीन संग्रहोंमेंसे एक। ८ जनमके समय वच्चेकी वह अवस्था जव उसका सिर दोनों भुजाओंके वीचमें हो कर योनिके द्वार पर आ जाय।

वीजकर्त्तृ (सं० पु०) शिव, महादेव।

वीजकृत (सं० क्ली०) वीज वीर्यं करोति वर्द्धयति कृक्विप् तुक् च। वाजीकरण।

वीजकोश (सं० पु०) वीजानां कोष आधार इव। पद्मवीजाधार चक्रिका। पर्याय—वराटक, कर्णिका, वारिकुब्ज, शृङ्गाटक।

वीजक्रिया (सं० स्त्री०) वीजगणितके नियमानुसार गणितके किसी प्रश्नकी क्रिया।

वीजखाद (हिं० पु०) वह रकम जो जमींदारों या महाजनों आदिकी ओरसे किसानोंको वीज और खाद आदिके लिये पेशगी दी जाती है।

वीजगणित (सं० क्ली०) गणितका वह भेद जिसमें अक्षरोंको संख्याओंका द्योतक मान कर कुछ साङ्केतिक चिह्नों और निश्चित युक्तियोंके द्वारा गणना की जाती है और विशेषतः अज्ञात संख्याएं आदि जानी जाती हैं। वीजगणित देखो।

वीजगर्भ (सं० पु०) वीजानि गर्भे अभ्यन्तरे यस्य। पटोल, परवल।

वीजगुप्ति (सं० स्त्री०) वीजानां गुप्तिर्यत्र। १ शिम्वी, सेम। २ तुष, धानकी भूसी। ३ फली।

वीजत्व (सं० क्ली०) वीजस्य भावः त्व। वीजका भाव या धर्म, वीजपन।

वीजदर्शक (सं० पु०) अभिनय-परिदर्शक, वह व्यक्ति जो नाटकके अभिनयकी व्यवस्था करता हो।

वीजधानी (सं० स्त्री०) नदीभेद।

वीजधान्य (सं० क्ली०) वीजप्रधानं धान्यं। धान्यक, धनियां।

वीजनौर—१ अयोध्याप्रदेशके लखनऊ जिलान्तर्गत एक परगना। भूपरिमाण १४८ वर्गमील है।

२ उक्त जिलेका एक प्रधान नगर। यह अक्षा० २६° ५६' उ० तथा देशा० ८०° ८४' पू०के मध्य लखनऊ शहरसे ४ कोस दक्षिणमें अवस्थित है।

पासीवंशीय विजलीराजने इस नगरको बसाया। उन्होंने यहांसे आध कोस उत्तर नाथवन नामक एक दुर्ग भी बनवाया था। प्रथम मुसलमान-आक्रमणसे ही राजवंशकी लक्ष्मी विदा हो गई। मुसलमानी अमलमें यह स्थान उक्त परगनेके सदररूपमें गिना जाता था। यहां आज भी अनेक समाधिमन्दिर विद्यमान हैं।

बीजपादप (सं० पु०) बीजप्रधानः पादपः। १ भल्लातक, भिलावाँ। २ बीजोत्पन्न।

बीजपुष्प (सं० क्ली०) बीजप्रधानं पुष्पं यस्य। मरुवक, मरुआ। २ मदनवृक्ष।

बीजपुष्पिका (सं० स्त्री०) वृक्षभेद। (Andropogon Saccharatus)

बीजपुर (सं० पु०) बीजानां पूरः समूहो यत्र। १ विजौरा नीबू। संस्कृत पर्याय—बीजपूर्ण, पूर्णबीज, सुकेशर, बीजक, केशराम्ल, मातुलुङ्ग, सुपूरक, रुचक, बीजफलक, जन्तुघ्न, दन्तुरच्छद, पूरक, रोचनफल। इसके फलका गुण—अम्ल, कटु, उष्ण, श्वास, कास और वायुनाशक, कण्ठशोधनकर, लघु, हृद्य, दीपन, रुचिकारक, पाचन, आध्मान, गुल्म, हृद्रोग, प्लीहा और उदावर्त्तनाशक, विबन्ध, हिक्का, शूल और शर्शमें प्रशस्त माना गया है। २ मधुकर्कटी, चकोतरा।

बीजपूर्ण (सं० पु०) बीजेन पूर्णः। १ विजौरा नीबू। २ चकोतरा

बीजपेशिका (सं० स्त्री०) बीजस्य शुक्रस्य पेशिकेव। अण्डकोष।

बीजप्ररोहिन् (सं० त्रि०) बीजसे उद्गमनशील, बीजसे उगनेवाला।

बीजफलक (सं० पु०) बीजप्रधानं फलं यस्य कन्। बीजपूर, विजौरा नीबू।

बीजबन्द (हिं० पु०) वरियारीके बीज, खिरैंटीके बीज।

बीजमति (सं० स्त्री०) बीज स्थिर करनेमें समर्थ मन।

बीजमन्त्र (सं० क्ली०) विभिन्न देवताके उद्देश्यसे निर्दिष्ट मूलमन्त्र।

बीजमातृका (सं० स्त्री०) कमलगट्टा।

बीजमार्ग (सं० क्ली०) १ बीज या वंशरक्षाकी उपयोगिता। २ ऋग्वेदका ६म मण्डल।

बीजमार्ग (सं० पु०) वाममार्गका एक भेद।

बीजमार्गी (हिं० पु०) बीजमार्ग पंथके अनुयायी।

बीजरत्न (सं० पु०) बीजं रत्नमिव यस्य। उड़दकी दाल।

बीजरुह (सं० त्रि०) बीजात् रोहन्तीति रुह इगुपधात् क शालि प्रभृति।

बीजरेचन (सं० क्ली०) बीजं रेचनं रेचकं यस्य। जयपाल, जमालगोटा।

बीजल (सं० त्रि०) बीज (सिध्मादिभ्यश्च। पा ५।२।९७) इति मत्वर्थे लच्। बीजयुक्त, जिसमें बीज हो।

बीजल (हिं० स्त्री०) तलवार।

बीजवपन (सं० क्ली०) बीजानां वपनं। क्षेत्रमें बीजक्षेपण, खेतमें बीज बोना। पहले पहल खेतमें बीज बोनेमें उत्तम दिनका विचार करना होता है। ज्योतिषमें लिखा है—पूर्वफल्गुनी, पूर्वाषाढ़ा, पूर्वभाद्रपद, कृत्तिका, भरणी, अश्लेषा और आर्द्रा भिन्न नक्षत्रोंमें रिक्ता, अष्टमी और अमावस्या भिन्न तिथियोंमें शुभग्रहके केन्द्रस्थ होने पर स्थिरलग्नमें जन्मलग्न तथा मिथुन, तुला, कन्या, कुम्भ और धनुर्लग्नके पूर्वभागमें बीजवपन प्रशस्त बतलाया गया है।

"हलप्रवाहवद्बीजवपनस्य विधिः स्मृतः।
त्रिनाप्राक्ष शुभे केन्द्रे स्थिरत्वमनुजोदये॥"
(ज्योतिस्तत्त्व)

बीजवपनके दिन सवेरे नाना प्रकारके मंगलकार्य करके पूर्वमुख हो निम्नोक्त मन्त्रसे बीजवपन करे। मन्त्र यथा—

"त्वं वै वसुन्धरे सीते बहुपुष्पफलप्रदे।
नमस्ते मे शुभं नित्यं कृषिं मेधां शुभं कुरु॥
रोहन्तु सर्वशस्यानि काले देवः प्रवर्षतु।
कर्षकास्तु भवगुणा धान्येन च धनेन च स्वाहा॥"

इस मन्त्रसे प्राजापत्यतीर्थ द्वारा बीजवपन करे। इस दिन बन्धु बान्धवोंके साथ एकत्र भोजन करना होता है। बीजवपन विषयमें वैशाखमास श्रेष्ठ, ज्येष्ठ मध्यम और शेष मास अधम माने गये हैं।

"वैशाखे वपनं श्रेष्ठं मध्यमं रोहिणी रवौ।
अतःपरस्मिन्नधमं न जातु श्रावणे शुभम्॥"
(ज्योतिस्तत्त्व)

वीजवर (सं० पु०) कलायभेद, एक प्रकारका उड़द।

वीजवाप (सं० पु०) वीजस्य वापः। वीजवपन, वीज बोना।

वीजवापिन् (सं० पु०) वीजवपनकारी, वह जो वीज बोता हो।

वीजवाहन (सं० पु०) महादेव, शिव।

वीजवृक्ष (सं० पु०) वीजादेव वृक्षो यस्य, वीज प्रधानो वृक्ष वा। असन वृक्ष, असनाका पेड़।

वीजसञ्चय (सं० पु०) वीजानां सञ्चयः। वीजसंग्रह, बोनेके लिये धान आदिका संग्रह। माघ वा फाल्गुन मासमें बीज संग्रह करे।

"माघे वा फाल्गुने वापि सर्व्ववीजानि संगृहेत्।
शोषयेत् तापयेद्रौद्रे रात्रौ चोपनिधापयेत्॥"
(ज्योतिस्तत्त्व)

वीजको धूपमें अच्छी तरह सुखा कर रखना होता है। हस्ता, चित्रा, अदिति, स्वाति, रेवती और श्रवणाद्वय इन सब नक्षत्रोंमें, स्थिर लग्नमें वृहस्पति, शुक्र और बुद्धवार को वीजसञ्चय करे। वीजसञ्चयके वाद किसी पत्रमें मन्त्र लिख कर उसमें रख दे। ऐसा करनेसे चूहे आदि का भय नहीं रहता। मन्त्र—

"धनदाय सर्वलोकहिताय देहि मे धान्यं स्वाहा।
नमः ईहायै ईहा देवी सर्वलोकविवर्द्धिनी काम-
रूपिणि धान्यं देहि स्वाहा॥" (ज्योतिस्तत्त्व)

वीजसू (सं० स्त्री०) वीजानि सूते इति सू-क्विप्। पृथ्वी।

वीजस्थापन (सं० क्ली०) वीजानां स्थापनं। धान्यादि-स्थापन।

वीजहरा (सं० स्त्री०) एक डाकिनीका नाम।

वीजहारिणी (सं० स्त्री०) वीजहरा देखो।

वीजा (हिं० वि०) दूसरा।

वीजा—सिमला पर्वतके निकटवर्त्ती एक सामन्तराज्य। यह अक्षा० ३०° ५३' से ३०° ५५' उ० तथा देशा० ७६° ५९' से ७७° १' पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ४ वर्गमील और जनसंख्या ११३१ है। यहांके सरदार पूरनचांद राजपूतवंशीय हैं। ठाकुर इनकी उपाधि है। राजस्व ५००) रु० है जिनमेंसे १२४ रुपये करमें देने पड़ते हैं।

वीजाकृत (सं० त्रि०) वीजेन सहकृतं कृष्टमिति (कृञो द्वितीय तृतीयशम्ववीजात् कृषौ। पा ५।४।५८) इति डाच्। वीजवपनपूर्वक कृष्टक्षेत्र, वह खेत जो वीज बोनेके वाद जोता गया हो।

वीजाक्षर (सं० क्ली०) किसी वीजमन्त्रका पहला अक्षर।

वीजाख्य (सं० पु०) १ जैपालवृक्ष, जमालगोटा। (क्ली०) २ जैपालका वीज, जमालगोटेका वीया।

वीजागढ़—प्राचीन निमार प्रदेशकी राजधानी। अभी यह स्थान श्रीहीन हो गया है। सतपुरा पर्वतके ऊपर भग्नावशेष वीजागढ़ दुर्ग अवस्थित है। दक्षिण निमार-का अधिकांश स्थान ले कर उक्त दुर्गके नाम पर होल-कर राज्यका वीजागढ़ सरकार और जिला गठित है।

वीजाङ्कुर (सं० पु०) १ वीजोद्गत प्रथम अंकुर, अँखुआ। २ वीज और अङ्कुर।

वीजाङ्कुर न्याय (सं० पु०) एक प्रकारका न्याय। इस-का व्यवहार दो संवद्ध वस्तुओंके नित्य प्रवाहका दृष्टान्त देनेके लिये होता है। वीजसे अंकुर और अंकुरसे वीज होता है। इन दोनोंका प्रवाह अनादिकालसे चला आता है। दो वस्तुओंमें इसी प्रकारका प्रवाह या सम्बन्ध दिखलानेके लिये इसका उपयोग होता है।

वीजाढ्य (सं० क्ली०) १ वीजयुक्त, वीजवाला। (पु०) २ वीजपूर, विजौरा नेवू।

वीजाध्यक्ष (सं० पु०) शिव।

वीजापुर—वम्बईके दक्षिणी महाराष्ट्र देशकी एक एजेन्सी। यह वीजापुर जिलेके कलक्टरकी देखरेखमें है। यह अक्षा० १६° ५०' से १७° १८' उ० तथा देशा० ७५° १' से ७५° ३१' पू०के मध्य विस्तृत है। भूपरिमाण ६८० वर्गमील है। जलवायु वीजापुर जिलेके जैसा है। जाटकी सतारा-जागीर और दफलापुर राज्य ले कर यह संगठित है। यहांके सरदार अपनेको दफलापुर ग्रामके प्रधान लखमाजीके वंशधर वतलाते हैं। १६८० ई०में उनके लड़के सतवाजी राव जाट, करजगी, वरदोल और वनद उपविभागके देशमुख नियुक्त हुए। वीजापुर-पतन-के वाद उन्होंने सम्राट् औरङ्गजेवको आत्मसमर्पण किया। १८२० ई०में वृटिश सरकारने जाटके वर्त्तमान सरदारके वंशधरोंकी कार्रवाईमें हाथ वँटाया। १८२७ ई०में सताराके

राजाने सरदारका ऋण चुकानेके लिये जाट-राज्यको अपने हाथ कर लिया। १८४१ ई०में वह फिर लौटा दिया गया। १८४६ ई०में जाट और दफलापुर सतारा जागीरके जैसा वृटिश सरकारका करदराज्य हो गया। जाट-सरदार उच्च कुलोद्भव महाराष्ट्रीय हैं। गोद लेनेका इन्हें अधिकार है। जनसंख्या ७० हजारके करीब है। इसमें जाट और दफलापुर नामके २ शहर और ११७ ग्राम लगते हैं। राजस्व साढ़े तीन लाख रुपये हैं जिनमेंसे ६४०० रु० वृटिश सरकारको करमें देने पड़ते हैं।

बीजापुर - वम्बईके दक्षिणी विभागका एक जिला। यह अक्षा० १५°४६´से १७° २६´ उ० तथा देशा० ७५° १६´से ७६° ३२´ पू०के मध्य अवस्थित हैं। भूपरिमाण ५६-६६ वर्गमील है। इसके उत्तरमें भीम नदी जो इसको शोलापुर और अकल कोटसे पृथक करती है ; पूर्व और दक्षिण-पूर्वमें निजाम-राज्य ; दक्षिणमें मलप्रभा नदी जो जिलेको धारवाड़ और रामराज्यसे अलग करती है; पश्चिममें मुधोल, यमखण्डी और जाटराज्य है। पहिले इस जिलेका नाम कलादगी था, १८८५ ई०में बीजापुर रखा गया है। उसी समय सदर कलादगीसे उठा कर बीजापुरमें लाया गया। यहांकी प्रधान नदी ये सब हैं--भीमा, दोन, कृष्णा, घाटप्रभा और मालप्रभा। दोन नदीका जल बिलकुल खारा है।

पूर्व समयमें यह स्थान चालुक्य-वंशके अधिकारमें था। १२६४ ई०में जलाल-उद्दीन खिलजीके भतीजे अलाउद्दीनने दलवलके साथ आ कर इस स्थानको कंपा डाला और राजारामचन्द्रको दिल्ली सम्राट्की अधीनता स्वीकार करनेको वाध्य किया। १५वीं शताब्दीमें युसुफ आदिलशाहने एक स्वतन्त्र मुसलमान-राज्य वसाया। बीजापुरमें उसकी राजधानी कायम हुई। इस समयसे जिलेका इतिहास बीजापुर शहरके साथ मिला हुआ है। १७वीं शताब्दीमें चीनपरिव्राजक युएनचुवंग वादामी देखने आये थे। उस समय वहां चालुक्यवंशका शासन था।

इस जिलेमें ८ शहर और १११३ ग्राम लगते हैं। जनसंख्या साढ़े सात लाखके करीब है जिनमेंसे हिन्दूकी संख्या सैकड़े पीछे ८८ है। विद्याशिक्षामें प्रेसीडेन्सीके चौवीस जिलोंके मध्य यह जिला सोलहवां पड़ता है। सैकड़े पीछे चार मनुष्य शिक्षित हैं। अभी २ हाई-स्कूल, ३०६ प्राइमरी स्कूल, १०० मिडिल तथा बालिका स्कूल हैं। स्कूलके अलावा बीजापुर शहरमें दो अस्पताल हैं जिनमेंसे एकमें स्त्रियोंकी चिकित्सा होती है।

२ बीजापुर जिलेका एक तालुक। यह अक्षा० १६° २५´से १७° ५´ उ० तथा देशा० ७५° २६´ से ७६° २´ पू० के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ८६६ वर्गमील और जनसंख्या लाखसे ऊपर है। इसमें बीजापुर नामके १ शहर और ८४ ग्राम लगते हैं। थोड़ा उपत्यकाको छोड़ कर और प्रायः सभी स्थान अनुर्वर हैं। इस पार्वतीय विभागमें वृक्षादि नहीं रहने पर भी स्थानीय जलवायु स्वास्थ्यकर है।

३ उक्त जिलेका एक प्रसिद्ध शहर। यह अक्षा० १६° ४६´ उ० तथा देशा० ७५° ४३´ पू०के मध्य विस्तृत है। जनसंख्या २५ हजारके लगभग है जिनमेंसे हिन्दूकी संख्या सबसे ज्यादा है। नगरके प्राचीन इतिहासके सम्बन्धमें फिरिस्ताने इस प्रकार लिखा है,--२य मुरादके पुत्र ख्यातनामा ओसमानली सुलतानने बीजापुरमें पहले पहल मुसलमानी राज्य स्थापन किया। उनके वंशधर २य महम्मद जब तख्त पर बैठे, तब उन्होंने अपने सब भाइयोंका काम तमाम करनेका हुकुम दे दिया। इस समय उनकी माताने बड़े कौशलसे युसुफ नामक अपने एक पुत्रकी जान बचाई। नाना स्थानोंमें भटकते हुए युसुफने अहमदाबाद विदारराजके अधीन नौकरी की। राजाकी मृत्युके बाद वे अहमदाबाद राज्यका परित्याग कर बीजापुर आये और जनसाधारणकी सलाहसे उन्होंने अपनेको राजा बतला कर तमाम घोषित कर दिया। युसुफने अपने बाहु-बलसे समुद्रतीर पर्यन्त राज्यसीमा बढ़ा ली। उन्होंने पुर्त्तगीजोंसे गोआ नगर भी छीन लिया। बहुत धन खर्च करके बीजापुरमें एक विस्तृत दुर्गवाटिका बनाई गई। १५१० ई०में उनकी मृत्यु होने पर उनके लड़के इस्माइल खाँने दोर्दण्ड प्रतापसे १५३४ ई० तक राज्य किया। पीछे मुलु आदिलशाह छः मास राज्य करनेके बाद राजतख्तसे उतार दिये गये। बाद उनके छोटे भाई इब्राहिम राज-

सिंहासन पर बैठे। उन्होंने १५५७ ई० तक राज्य किया। उनके मरने पर उनके लड़के अली आदिलशाह राज्याधिकारी हुए। उन्होंने अपने शासनकालमें बीजापुर नगरको चारों ओर दीवारसे घेर लिया और जुम्मा मसजिद तथा बहुत सी जलप्रणालियां बनाई जो आज भी विद्यमान हैं। इन्होंने अहमदनगर और गोलकुण्डाराजके साथ मिल कर विजयनगराधिप राजा रामके विरुद्ध अस्त्रधारण किया। उस समय दिल्लीको छोड़ और कोई भी राजा भारतमें उनके समान शक्तिशाली न थे। कालिकटके युद्धमें १५६४ ई०को रामराजा मुसलमानोंके हाथसे परास्त और वन्दी हुए। वीजयनगर लूटनेके बाद यवनराजके आदेशसे वे मार डाले गये। १५७६ ई०में उनका देहान्त हुआ। पीछे उनके भतीजे २य इब्राहिम आदिल कच्ची उमरमें राजतख्त पर बैठे और राजकार्यका कुल भार मृतराजकी पत्नी विख्यात चांद बीबीने अपने हाथ लिया। अभीसे ले कर मृत्यु पर्यन्त इब्राहिमने बड़ी दक्षतासे राजकार्य चलाया। १६२६ ई०में उनकी मृत्युके बाद महम्मद अली-शाह राजा हुए। इन्हींके शासनकालमें महाराष्ट्रकेशरी शिवाजीका आविर्भाव हुआ था। शिवाजीके पिता शाहजी बीजापुर-राजके अधीन नौकरी करते थे। इसी सुअवसरमें शिवाजीने उक्त राजभण्डारके व्ययसे तथा वहांके सेनादलकी सहायतासे १६४६-४८ ई०के मध्य राजाधिकृत अनेक दुर्ग अधिकार कर लिये। इधर शिवाजीके अत्याचारसे, उधर औरङ्गजेब परिचालित मुगलवाहिनीके लगातार आक्रमणसे महम्मद तंग तंग आ गये। इस समय किसी कारणवशतः औरङ्गजेबको आगरा नगर लौटना पड़ा था जिससे शिवाजीका प्रभाव दाक्षिणात्यमें भी फैल गया। महम्मद शत्रुके प्रतापसे धीरे धीरे कमजोर होते गये। १६६० ई०में चिन्ताके मारे वे इस लोकसे चल बसे। पीछे आदिलशाह राजा तो हुए, पर बीजापुर-राजवंशका अधःपतन रोक न सके। १६७२ ई०में उनकी मृत्युके बाद उनके छोटे लड़के सिकन्दर आदिलशाह राजगद्दी पर बैठे। वे ही इस वंशके अन्तिम राजा थे।

१६८६ ई०में औरङ्गजेबने बीजापुर दखल किया। इतने दिनोंके बाद बीजापुर-राजवंशकी स्वाधीनता जाती रही। दिल्लीके मुगल राजवंशके अधःपतनसे बीजापुरका विस्तृत ध्वंसावशेष महाराष्ट्रग्रासमें पतित हुआ। १८१८ ई०में अन्तिम पेशवाकी पदच्युतिके बाद बीजापुर और सताराराज्य वृटिशसरकारके अधिकारभुक्त हुआ। सतारा राजका बीजापुरकी मुसलमानकीर्त्तिकी रक्षाकी ओर विशेष ध्यान था। १८४८ ई०में सताराराज इस धराधाम को छोड़ सुरधाम सिधारे। उनके एक भी सन्तान न थी इस कारण वृटिश सरकारने शासनभार अपने हाथ ले लिया। यहांकी जुम्मा मसजिद, इब्राहिमका रोजा, महमूदका समाधिमन्दिर, असुर मुबारकप्रासाद, मेहतुरी महल और वक्तागार नामक अट्टालिकाका शिल्पचातुर्य और गठनप्रणाली देखने लायक है।

बीजाम्ल (सं० क्ली०) बीजे अम्लोऽम्लरसो यस्य। वृक्षाम्ल।

बीजार्णवतन्त्र (सं० क्ली०) बीजमन्त्रनिर्देशक एक तन्त्र।

बीजावर—मध्यभारतके बुन्देलखण्डके अन्तर्गत एक सामन्तराज्य। यह अक्षा० २४° २' से २४° ५७' उ० तथा देशा० ७९°०' से ८०° ३६' पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ९७३ वर्गमील है। पहले यह स्थान गढ़ मण्डला गोंडके अधिकारमें था। पीछे १८वीं सदीमें पन्नाके स्थापयिता छत्रसालने इस पर दखल जमाया। उनको मृत्युके बाद सारा राज्य उनके पुत्रोंके मध्य बँट गया। विजावर जगत्राजके हिस्सेमें पड़ा। १७६९ ई०में जगद्राजके गुमानसिंहने, जो उस समय अजयगढ़के शासक थे, विजनौर-राज्य जगत्‌के जारज पुत्र वीरसिंह देवको दे दिया। वीरसिंहने अपने बाहुबलसे राज्यसीमा बहुत दूर तक फैला ली थी। पीछे १७९३ ई०में वे अली बहादुर और हिम्मत बहादुरसे युद्धमें निहत हुए। अनन्तर १८०२ ई०में हिम्मत बहादुरने वीरसिंहके लड़के केशरीसिंहको सनदके साथ राजसिंहासन लौटा दिया। कुछ समय तक उनकी सनद जब्त कर ली गई थी। पीछे १८१० ई०में उनकी मृत्युके बाद उनके लड़के रतनसिंहको सनद लौटा दी गई। उन्होंने अपने शासनकालमें सिक्का चलाया था। १८६१ ई०में उनके मरने पर प्रान

प्रतापसिंह राजसिंहासन पर अधिरूढ़ हुए। गदरके समय उन्होंने वृटिश-सरकारको खासी मदद पहुंचाई थी जिससे उन्हें खिलअत और ११ सलामी तोपें मिलीं। १८६२ ई०में उन्हें गोद लेनेका अधिकार और १८६६ ई०में महाराजाकी उपाधि मिली थी। उनके कुशासनसे राज्य-भरमें अशान्ति फैल गई, आप खुद कर्जके बोझसे किंकर्त्तव्य विमूढ़ हो गये। १८६६ ई०में उनकी मृत्यु हुई। कोई सन्तान न रहने कारण उन्होंने ओर्च्छाके वर्त्तमान महाराजके द्वितीय पुत्र सामवन्त सिंहको गोद लिया था। ये ही अभी यहांके सामन्त हैं। वृटिशसरकारसे इन्हें भी ११ तोपोंकी सलामी मिलती है। इनकी सैन्यसंख्या इस प्रकार है—१०० अश्वारोही, ८०० पदाति और ४ कमान। १८६६ ई०की शासननीतिके बलसे यहांके सरदार सब प्रकारके फौजदारी मामले पर विचार करते हैं।

इस राज्यमें इसी नामका १ शहर और ३४३ ग्राम लगते हैं। जनसंख्या सवा लाखके करीब है जिनमेंसे सैकड़े पीछे ६६ हिन्दू हैं।

२ उक्त राज्यका सदर। यह अक्षा० २४° ३६´ उ० तथा देशा० ७६° ३०´ पू०के मध्य अवस्थित है। जनसंख्या ५२२० है। १७वीं सदीमें गोंड़-सरदार विजयसिंहने इसे बसाया था। पीछे पन्नाके छत्रसालने इस पर अधिकार जमाया। शहरमें १ कारागार, १ स्कूल, १ अस्पताल और १ धर्मशाला है।

वीजिक (सं० त्रि०) वीजयुक्त, वोजवाला।

वीजित (सं० त्रि०) जिसमें वीज वोया जा चुका हो, वोया हुआ।

वीजिन् (सं० पु०) वीजमस्त्यस्येति वीज-इनि। १ पिता। (त्रि०) २ वीजविशिष्ट, वीजवाला। ३ वीजसम्बन्धी।

वीजी (हिं० वि०) १ वीजिन् देखो। (स्त्री०) २ गिरी, मींगी। ३ गुठली।

वीजु (हिं० स्त्री०) विजुली।

वोजुपात (हिं० पु०) वज्रपात देखो।

वीजुरी (हिं० स्त्री०) विजली देखो।

वीजू (हिं० वि०) वीजसे उत्पन्न, जो वीज वोनेसे उत्पन्न हुआ हो, कलमका उलटा।

वीजोदक (सं० क्ली०) वीजमिव कठिनमुदकं, तस्य कठिनत्वात् तथात्वं। करका, ओला।

वीजोप्तिचक्र (सं० क्ली०) वीजानामुप्तये शुभाशुभ सूचकं चक्रं। वीज वोनेके लिये शुभाशुभ ज्ञानार्थ सर्पाकार चक्र। वीज वोनेमें शुभ होगा या अशुभ, वह इसी चक्र द्वारा जाना जाता है।*

वीज्य (सं० त्रि०) विशेषेण इज्यः, अथवा वीजाय हितः। (उगवादिभ्यो यत्। पा ५।१।२) इति यत्। जो अच्छे कुलमें उत्पन्न हुआ हो, कुलीन।

वीट (हिं० स्त्री०) १ पक्षियोंकी विष्ठा, चिड़ियोंका गुह। २ गुह, मल।

वीठल (हिं० पु०) विट्ठल देखो।

वीड़ (हिं० स्त्री०) एकके ऊपर एक रखे हुए रुपये जो साधारणतः गुल्लीका आकार धारण कर लेते हैं।

वीड़ा (हिं० पु०) १ सादी गिलौरी जो पानमें चूना, कत्था, सुपारी आदि डाल कर और उसे लपेट कर बनाई जाती है। २ वह डोरी जो तलवारको म्यानमें मुंहके पास बंधी रहती है। म्यानमें तलवार डाल कर वह डोरी तलवारके दस्तेकी खूंटीमें वांध दी जाती है जिससे वह म्यानसे निकल नहीं सकती।

वीड़िया (हिं० वि०) वीड़ा उठानेवाला, अगुआ।

वीड़ी (हिं० स्त्री०) १ पत्तेमें लपेटा हुआ सुरतीका चूर जिसे लोग सिगरेट या चुरुट आदिके स्थानमें सुलगा कर पीते हैं। २ मिस्सी जिसे स्त्रियाँ दाँत रंगनेके लिये मुंहमें मलती हैं। ३ गड्डी। ४ वीड़ा देखो। ५ एक प्रकारका नाव।

वीतना (हिं० क्रि०) १ समयका विगत होना, गुजरना। २ संघटित होना, घटना। ३ निवृत्त होना, दूर होना।

---

* "सूर्यभादुरगः स्थाप्यस्त्रिनाड्यं कान्तरक्रमात्।
मुखे त्रीणि गले त्रीणि भानिद्वादशनूदरे॥
पुच्छे चतुर्वहिः पञ्च दिनभाच्च फलं वदेत्।
वदनं चाचकं विद्यात् गलकेऽङ्गारकस्तथा॥
उदरे धान्यवृद्धिः स्यात् पुच्छे धान्यक्षयो भवेत्।
इति रोगभयं राज्य चक्रे वीजोप्तिसम्भवं॥"
(ज्योतिस्तत्त्व)

वीता (हिं० पु०) विता देखो।

वीघा (हिं० पु०) मालगुजारी, निश्चित करना।

वीन (हिं० स्त्री०) एक प्रसिद्ध वाजा। यह सितारकी तरह-का पर उससे वड़ा होता है। इसमें दोनों ओर वहुत वड़े वड़े तूंवे होते हैं जो वीचके एक लम्बे डाँड़से मिले होते हैं। इसमें एक सिरेसे दूसरे सिरे तक साधारणतः ५ या ७ तार लगे होते हैं। इन तारोंमेंसे प्रत्येकसे आवश्यकतानुसार भिन्न भिन्न प्रकारके स्वर निकाले जाते हैं। यह वाजा वहुत उच्च कोटिका माना जाता है और प्रायः वहुत वड़े वड़े गवैयोंके कामका होता है। विशेष विवरण वीणा शब्दमें देखो।

वीनना (हिं० क्रि०) १ छोटी छोटी चोजोंको उठाना, चुनना। २ छाँट कर अलग करना, छाँटना।

वीफै (हिं० पु०) वृहस्पतिवार, गुरुवार।

वीवो (फा० स्त्री०) १ कुलीन स्त्री, कुलवधू। २ अविवा-हिता लड़की, कन्या। ३ स्त्रियोंके लिये आदरार्थक शब्द। ४ पत्नी, स्त्री।

विवेरेना (हिं० पु०) दक्षिण भारतके पश्चिमी घाटोंमें मिलनेवाला एक प्रकारका वृक्ष। इसकी लकड़ीका रंग पीला होता है और यह इमारत तथा नावें वनानेके काममें आता है। इस लकड़ीमें जल्दी घुन या कीड़ा आदि नहीं लगता।

वीभत्स (सं० पु०) वीभत्स्यतेऽत्र अनेन वध-सन्-करणे घञ्। १ अर्जुन। २ काव्यके नौ रसोंके अन्तर्गत सातवां रस। इसमें रक्त मांस आदि ऐसी वातोंका वर्णन होता है, जिनसे अरुचि और घृणा तथा इन्द्रियोंमें सङ्कोच पैदा होता है। इसका वर्ण नील और देवता महाकाल हैं। जुगुप्सा इसका स्थायी भाव है; पीव, मेद, मज्जा, रक्त, मांस या उनकी दुर्गन्धि आदि विभाव हैं; कम्प, रोमाञ्च, आलस्य, सङ्कोच आदि अनुभाव हैं और मोह, मरण, आवेग, व्याधि आदि व्यभिचारी भाव हैं। (त्रि०) ३ घृणित, जिसे देख कर घृणा उत्पन्न हो। ४ क्रूर। ५ पापी।

विभत्सित (सं० त्रि०) घृणित, निन्दित।

वीभत्सु (सं० पु०) वीभत्सतीति वध-सन्-उ। १ अर्जुन-के दश नामोंमेंसे एक नाम। ये युद्धमें शत्रुका न्याय पूर्वक संहार करते थे, कभी भी वीभत्स कर्म नहीं करते, इसीसे इनका वीभत्सु नाम पड़ा।

"न कुर्यां कर्म बीभत्सं युध्यमानः कथञ्चन।
तेन देवमनुष्येषु वीभत्सुरिति विश्रुतः॥"
(भारत ४।४२।१८)

वीम (अं० पु०) १ जहाजके पार्श्वमें लंवाईके वल लगा हुआ वड़ा शहतीर, आड़ा। २ जहाजका मस्तूल।

वीमा (फा० पु०) १ किसी प्रकारकी विशेषतः आर्थिक हानि पूरी करनेकी जिम्मेदारी जो कुछ निश्चित धन ले कर उसके वदलेमें की जाती है। आजकल वीमेकी गिनती एक प्रकारके व्यापारके अन्तर्गत होती है और इसके लिये अनेक प्रकारकी कंपनियां स्थापित हैं। उसमें वीमा करने-वाला कुछ निश्चित नियमोंके अनुसार, समय समय पर एक ही साथ कुछ निश्चित धन ले कर अपने ऊपर इस वातका जिम्मा लेता है, कि यदि वीमा करनेवालेकी अमुक कार्य या व्यापार आदिमें अमुक प्रकारकी हानि या दुर्घटना आदि होगी तो उसके वदलेमें हम वीमा करने-वालेको इतना धन देंगे। आजकल मकानों वा गोदामों आदिके दग्ध होने, समुद्रमें जहाज आदिके डूवने, प्रेषित मालका ठीक हालतमें निर्दिष्ट स्थान तक पहुंचनेका अथवा दुर्घटना आदिके सववसे हाथ पैर टूटने या शरीर निकम्मा-जन हो जानेका वीमा होता है। जानवीमा नामका एक और प्रकारका वीमा होता है। इसमें वीमा कराने-वालेको हर एक महीना, हर एक वर्ष अथवा एक ही साथ कुछ निश्चित धन देना पड़ता है और उसके किसी निश्चित अवस्था तक पहुंचने पर उसे वीमेकी रकम मिल जाती है। यदि उसे निश्चित अवस्था तक पहुंचनेके पहले ही उसकी मृत्यु हो जाय तो उसके परिवारोंको वह रकम मिल जाती है। फिलहाल वालकोंके विवाह और विद्याशिक्षाके व्ययके संवंधमें भी वीमा होने लगा है। डाकद्वारा पत्र या माल आदि भेजनेका भी डाक-विभागके द्वारा वीमा होता है। २ वह पत्र या पारसल आदि जिसका इस प्रकार वीमा हुआ हो।

वीमार (फा० पु०) रोगग्रस्त, रोगी।

वीमारदार (फा० वि०) जो रोगियोंकी सेवा करता हो।

बीमारदारी (फा० स्त्री०) रोगियोंकी शुश्रूषा ।

बीमारी (फा० स्त्री०) १ व्याधि, रोग । २ झंझट । ३ बुरी आदत ।

बीया (हिं० पु०) बीज, दाना ।

बीर (हिं० वि०) १ वीर देखो । (पु०) २ भ्राता, भाई । (स्त्री०) ३ सखी, सहेली । ४ चरागाहमें पशुओंको चरानेका वह महसूल जो पशुओंकी संख्याके अनुसार लिया जाता है । ५ कानमें पहननेका स्त्रियोंका एक आभूषण । यह गोल चक्र-सा होता है और इसका ऊपरी भाग ढालुआं और उठा हुआ होता है तथा इसके दूसरी ओर खूंटी होती है जो कानके छेदमें डाल कर पहनी जाती है । इसमें ढाई तीन अंगुल लंबी कंगनीदार पूंछ-सी निकली रहती है जिसमें प्रायः स्त्रियां रेशम आदिका झब्बा लगवाती हैं । यह झब्बा पहनते समय सामने कानकी ओर रहता है । ६ एक प्रकारका गहना जो कलाईमें पहना जाता है । ७ पशुओंके चरनेका स्थान, चरागाह ।

बीरन (हिं० पु०) भ्राता, भाई ।

बीरनि (हिं० स्त्री०) एक प्रकारका गहना जो कानमें पहना जाता है । इसे बीरी भी कहते हैं ।

बीरबहूटी (हिं० स्त्री०) एक छोटा रेंगनेवाला कीड़ा । यह किलनीकी जातिका होता है और प्रायः बरसात शुरू होनेके समय जमीन पर इधर उधर रेंगता हुआ दिखाई पड़ता है । इसका रंग गहरा लाल होता है और मखमल की तरह इस पर छोटे छोटे कोमल रोएं होते हैं । इन्द्रवधू देखो ।

बीरिट (सं० पु०) गण ।

बीरी (हिं० स्त्री०) १ एक प्रकारका गहना जो कानमें पहना जाता है । इसे तरना भी कहते हैं । २ ढरकीके बीचमें लम्बाईके बल वह छेद जिसमेंसे नरी भर कर तागा निकाला जाता है । ३ लोहेका वह छेददार टुकड़ा जिस पर कोई दूसरा लोहा रख कर लोहार छेद करते हैं ।

बील (हिं० वि०) १ पोला, भीतरसे खाली । (पु०) २ वह जमीन जो नीची हो और जहां पानी भरा रहता हो । ३ बेल । ४ एक ओषधिका नाम ।

बीवर (अं० पु०) उत्तरीय अमेरिका और एशियाके उत्तरीय किनारे मिलनेवाला एक प्रकारका जन्तु । यह जलके किनारे झुंड बांध कर रहता है । इसके मुंहमें बड़े बड़े और मजबूत कटीले दांत होते हैं । ऊपर नीचे चार डाढ़ें होते हैं जो ऊपरकी ओर चिपटी और कठिन होती है । इसके प्रत्येक पांवमें पांच पांच उंगलियां होती हैं और पिछले पैरोंकी उंगलियां जुड़ी रहती हैं । इसकी पूंछ भारी, नीचे ऊपरसे चिपटी और छिलकोंसे ढंकी होती है । इसकी नाक और कानकी बनावट ऐसी होती है, कि पानीमें गोता लगानेसे आपे आप उनके छिद्र बंद हो जाते हैं । इसका चमड़ा जो समूर कहलाता है, कोमल और बड़े दामोंमें बिकता है । इसका मांस स्वादिष्ट होता है, पर लोग इसका शिकार विशेषतः चमड़ेके लिये ही करते हैं ।

बीवी (हिं० स्त्री०) बीबी देखो ।

बीस (हिं० वि०) १ जो संख्यामें दसका दूना हो । २ श्रेष्ठ, अच्छा । (स्त्री०) ३ बीसकी संख्या । ४ बीसकी संख्याका द्योतक चिह्न ।

बीसना (हिं० क्रि०) शतरंज या चौसर आदि खेलनेके लिये बिसात बिछाना, खेलके लिये बिसात फैलाना ।

बीसवां (हिं० वि०) बीसके स्थान पर पड़नेवाला ।

बीसी (हिं० स्त्री०) १ बीस चीजोंका समूह, कोरी । २ भूमिकी एक प्रकारकी नाप जो एक एकड़से कुछ कम होती है । ३ ज्योतिष शास्त्रके अनुसार साठ संवत्सरोंके तीन विभागोंमेंसे कोई विभाग । इनमेंसे पहली बीसी ब्रह्मबीसी, दूसरी विष्णुबीसी और तीसरी रुद्र या शिवबीसी कहलाती है । (पु०) ४ तौलनेका कांटा, तुला । (स्त्री०) ५ प्रति बीघे दो बिस्वेकी उपज जो जमींदारको दी जाती है ।

बीहड़ (हिं० पु०) १ विषम, ऊंचा नीचा । २ जो ठीक न हो, जो सरल या समान हो । ३ पृथक्, जुदा ।

बुंद (हिं० स्त्री०) १ बूंद, ठोप । २ वीर्य । (पु०) ३ तीर । (वि०) ४ थोड़ा-सा, जरा-सा ।

बुंदकी (हिं० स्त्री०) १ छोटी गोल बिंदी । २ किसी चीज पर बना या पड़ा हुआ छोटा गोल दाग या धब्बा ।

बुंदकीदार (हिं० वि०) जिस पर बुंदकियां पड़ी या बनी हों, जिस पर बुंदोंकेसे चिह्न हों।

बुंदकयारो (हिं० स्त्री०) वह दंड जो बदमाशोंसे जमींदार लेता है।

बुंदवान (हिं० पु०) छोटी छोटी बूंदोंकी वर्षा।

बुंदा (हिं० पु०) १ कानमें पहननेका एक प्रकारका आभूषण जो बुलाकके आकारका होता है। इसे लोलक भी कहते हैं। २ माथे पर लगानेकी बड़ी टिकली जो पन्नी या कांच आदिकी बनती और बड़ी बिन्दीके आकारकी होती है। ३ बड़ी टिकलीके आकारका गोदना। यह माथे पर गोदा जाता है। इसमें बहुतसे छोटे छोटे दाने या गोदनेके चिह्न होते हैं।

बुंदिया (हिं० स्त्री०) बूंदी देखो।

बुंदीदार (हिं० वि०) जिसमें छोटी छोटी बिंदियां बनी या लगी हों।

बुंलपटी (हिं० पु०) जहाजमें पिछला पाल।

बुआ (हिं० स्त्री०) बूआ देखो।

बुक (सं० त्रि०) बुक-अच् पृषोदरादित्वात् उपधालोपः। १ भीषण शब्द करनेवाला। (पु०) २ एरण्ड वृक्ष, रेंडीका पेड़। ३ ईश्वरमल्लिका।

बुक (अं० स्त्री०) १ एक प्रकारका कलफ किया हुआ महीन, पर बहुत करारा कपड़ा। यह बच्चोंकी टोपियोंमें अस्तर देने या अंगिया, कुरती, जनानी चादरें आदि बनानेके काममें आता है। यह साधारण बकरमसे बहुत पतला, पर प्रायः वैसा ही करारा या कड़ा होता है। २ एक प्रकारकी महीन पन्नी।

बुक (अं० स्त्री०) पुस्तक, किताब।

बुकचा (हिं० पु०) १ वह गठरी जिसमें कपड़े बंधे हुए हों। २ गठरी।

बुकची (हिं० स्त्री०) १ छोटी गठरी विशेषतः कपड़ोंकी गठरी। २ दर्जियोंकी थैली। इसमें वे सुई, डोरा, कैंची आदि सीनेके सामान रखते हैं।

बुकनी (हिं० स्त्री०) १ किसी चीजका महीन पीसा हुआ चूर्ण। २ वह चूर्ण जिसे पानीमें घोलनेसे कोई रंग बनता है।

बुकवा (हिं० पु०) १ उबटन, बटना। २ बुक देखो।

बुकस (हिं० पु०) भंगी, मेहतर।

बुका (हिं० पु०) बुक्का देखो।

बुकार (हिं० पु०) वह बालू जो बरसातके बाद नदी अपने तट पर छोड़ जाती है और जिसमें कुछ अन्न आदि बोया जा सकता हो।

बुकुन (हिं० पु०) १ बुकनी। २ किसी प्रकारका पाचक, चूर्ण।

बुकेफल—झेलमनदी तीरवर्त्ती एक प्राचीन नगर। माकिदनवीर अलेकसन्दरका प्रिय युद्धाश्व बुकेफलस (Bucephalus) जिस स्थान पर मारा गया था, वीरवरने वहां अपने अश्ववरके स्मरणार्थ यह नगर बसाया। आज भी इस नगरका ध्वंसावशेष वर्त्तमान जलालपुर नगरके निकट पड़ा है।

बुकेरा—सिन्धुप्रदेशके हैदराबाद जिलान्तर्गत एक तालुक। यहां चार मुसलमान समाधिमन्दिर हैं जिनमेंसे शेख बनपोता और पीर फजलशाहकी समाधी ही सर्वप्राचीन और मुसलमान समाजमें विशेष आदरणीय है। इस समाधिमन्दिरके सामने वर्ष भरमें दो बार मेला लगता है जिसमें सैकड़ों आदमी जमा होते हैं।

बुक्क (सं० पु०) बुक्कयति·शब्दायते इति बुक्क-अच्। १ छाग, बकरा। २ हृदयस्थ मांसपिण्ड। ३ अग्रमांस। ४ हृदय, कलेजा। ५ समय। ६ शोणित।

बुक्कचेरला—मन्द्राज प्रदेशके अनन्तपुर जिलान्तर्गत एक गण्ड ग्राम। यहांका बांध देखने लायक है।

बुक्कन (सं० क्ली०) बुक्क-भावे-ल्युट्। भाषण, कुत्तेका भौंकना।

बुक्कपत्तन—मन्द्राज प्रदेशके अनन्तपुर जिलान्तर्गत एक नगर। १७४० ई०में रायदुर्गके पलिगारोंने इस स्थानमें घेरा डाला था। वेलेरीके पलिगारोंके आने पर घेरा उठा लिया गया और दोनोंने बन्धुरूपमें दुर्गके मध्य प्रवेश किया। आखिर यह नगर वेलेरीके पलिगारोंके ही हाथ लगा। यहांका चित्रावतीका जल-बांध ४०० वर्ष पहलेका बना हुआ है।

बुक्कराय—विजयनगरके महापराक्रान्त नरपति। ये सायणाचार्य और माधवाचार्यके प्रतिपालक थे।

विजयनगर देखो।

बुक्करायसमुद्र—मन्द्राजप्रदेशके अनन्तपुर जिलान्तर्गत एक गण्ड ग्राम। इसके सामनेवाले बांधके दूसरे किनारे अनन्तसागर अवस्थित है।

बुक्कस (सं० पु० स्त्री०) पुक्कस पृषोदरादित्वात् साधुः। चण्डाल।

बुक्का (सं० स्त्री०) बुक्क-टाप्। १ हृदय, कलेजा। २ अग्रमांस, गुरदेका मांस। ३ रक्त, लहू। ४ छाग, बकरी। ५ प्राचीन कालका एक प्रकारका बाजा जो मुंहसे फूंक कर बजाया जाता था।

बुक्का (हिं० पु०) १ कूटे हुए अभ्रकका चूर्ण। यह प्रायः होलीमें गुलालके साथ मिलाया जाता या इसी प्रकारके और कामोंमें आता है। २ बहुत छोटे छोटे सच्चे मोतियोंके दाने जो पीस कर ओषधके काममें आते हैं अथवा पिरो कर आभूषणों आदि पर लपेटे जाते हैं।

बुक्काग्रमांस (सं० क्ली०) बुक्कस्य अग्रमांस। १ हृदय, कलेजा। २ हृदयस्थ मांस-पिण्डाकार अग्रमांस।

बुक्कार (सं० पु०) बुक्क कि श्वादि शब्दे भावे घञ्, बुक्क निनादस्तस्य कारः करणं। सिंहध्वनि, सिंहका गर्जन।

बुक्की (सं० स्त्री०) बुक्क-गौरादित्वात् ङीप्। बुक्क, हृदय।

बुक्कुर (बखर)—बम्बईके शिकारपुर जिलेके मध्यस्थित सिन्धुनदीके किनारेका दुर्गसुरक्षित एक द्वीप। यह अक्षा० २७° ४३' उ० तथा देशा० ६८° ५६' पू०के मध्य अवस्थित है। नदीगर्भस्थित यह पर्वतखण्ड ८ सौ फुट लम्बा और ३ फुट चौड़ा है। सक्कर नगरकी बगल हो कर नदीको एक शाखा वह गई है। १३२७ ई०में यह स्थान सम्राट् महम्मद तुगलककी अमलदारीमें किसी शासनकर्त्ता द्वारा परिचालित होता था। सम्भावंशीय राजाओंके अधिकारकालमें यह दुर्ग भिन्न भिन्न राजोंसे अधिकृत हुआ था। राजा शाहबेग आर्घुनने अलोराका दुर्ग तोड़ फोड़ कर बुक्कुर दुर्गका संस्कार किया। १५७४ ई०में सम्राट् अकबरशाहने अपने नौकर केशुखांको यह दुर्ग सौंपा। १७३६ ई०में कल्होराके राजाने इस पर दखल जमाया। उसके बाद यह अफगानोंके शासनधीन हुआ। खैरपुराधिपति मीररुस्तम खांने अफगानोंके हाथसे यह स्थान छीन लिया।

१८३६ ई०में प्रथम अफगान-युद्धके समय खैरपुरके मीरोंने यह स्थान अंगरेजोंको सुपुर्द किया। सिन्धु और अफगानकी चढ़ाईके समय यहां अंगरेजोंका अस्त्रागार स्थापित हुआ था। १८७६ ई०में यहां एक कारागार खोला गया।

बुखार (अ० पु०) १ ज्वर, ताप। २ वाष्प, भाप। ३ हृदयका उद्वेग, शोक, क्रोध दुःख आदिका आवेग।

बुखारचा (फा० पु०) १ कोठरीके भीतर नक्लों आदिकी बनी हुई छोटी कोठरी। २ खिड़कीके आगेका छोटा बरामदा।

बुग (हिं० पु०) १ मच्छर। २ बुक देखो।

बुगचा (हिं० पु०) बुकचा देखो।

बुगदर (हिं० पु०) मच्छर।

बुगदा (फा० पु०) कसाइयोंका छुरा जिससे वे पशुओंकी हत्या करते हैं।

बुगिअल (हिं० पु०) पशुओंके चरनेका स्थान, चरागाह।

बुगुल (हिं० पु०) बिगुल देखो।

बुग्याना—हिमालय पर्वतवासी ब्राह्मण जातिविशेष। ये लोग अपनेको वाराणसीवासी गौड़ ब्राह्मणके वंशधर बतलाते हैं। कोई कोई नैठान ब्राह्मणसे इनकी उत्पत्ति बतलाते हैं। इनका आचार व्यवहार सरोला और गङ्गारी ब्राह्मणों-सा मिलता जुलता है। ये लोग साधारणतः विद्वान्, बुद्धिमान और कर्मदक्ष हैं।

बुचका (हिं० पु०) बुकचा देखो।

बुज़कस्साब (फा० पु०) वह जो पशुओंकी हत्या करता अथवा उनका मांस आदि बेचता हो, बकर-कसाब।

बुज़दिल (फा० वि०) भीरु, डरपोक।

बुजनी (हिं० स्त्री०) कानमें पहननेका एक प्रकारका गहना। यह करनफूलके आकारकी होती है। इसके बीच झुमका भी लटकाया जाता है। इसे प्रायः ब्याही स्त्रियां पहनती हैं।

बुजियाला (फा० पु०) १ वह बकरीका बच्चा जिसे कलंदर लोग तमाशा करना सिखलाते हैं। २ वह बंदर जिसे कलंदर तमाशा करना सिखाते हैं।

बुज़ुर्ग (फा० वि०) १ जिसकी अवस्था अधिक हो, बड़ा। २ वृद्ध, पाजी। (पु०) ३ पूर्वज, बाप-दादा।

बुज़ुर्गी (फा० स्त्री०) बुज़ुर्ग होनेका भाव, बड़ापन।

बुज्जर (हिं० पु०) एक प्रकारकी चिड़िया।

बुज्जी (फा० वि०) बकरी।

बुझा (हिं० स्त्री०) एक प्रकारकी चिड़िया।

बुझना (हिं० क्रि०) १ अग्नि शिखाका शान्त होना, जलने का अंत होना। २ चित्तका आवेग या उत्साह आदि मंद पड़ना। ३ पानी आदिकी सहायतासे किसी प्रकार-का ताप शान्त होना। ४ पानीका किसी गरम या तपाई हुई चीजसे छौंका जाना। ५ तपी हुई या गरम चीज-का पानीमें पड़ कर ठंढा होना।

बुझाई (हिं०स्त्री०) १ बुझानेकी क्रिया। २ बुझानेका भाव।

बुझाना (हिं० क्रि०) १ जलते हुए पदार्थोंको ठंढा करना, अग्नि शान्त करना। २ तप्त पदार्थको जलमें डाल कर ठंढा करना। ३ चित्तका आवेग या उत्साह आदि शान्त करना। ४ ठंढे पानीमें इसलिये किसी चीजको तपा कर डालना जिसमें उस चीजका कुछ गुण या प्रभाव उस पानीमें आ जाय; पानीको छौंकना। ५ पानी डाल कर ठंढा करना। ६ सन्तोष देना, जी भरना। ७ किसीको बूझनेमें प्रवृत्त करना।

बुझारत (हिं० स्त्री०) किसी गांवके जमींदारोंके वार्षिक आय-व्यय आदिका लेखा।

बुड़की (हिं० स्त्री०) डुबकी, गोता।

बुड़ना (हिं० क्रि०) बूड़ना देखो।

बुड़बुड़ाना (हिं० क्रि०) मन ही मन कुढ़ कर या क्रोधमें आ कर अस्पष्ट रूपसे कुछ बोलना, बड़ बड़ करना।

बुड़ाव (हिं० पु०) डुबाव देखो।

बुड्ढा (हिं० वि०) जिसकी अवस्था अधिक हो गई हो, ५०-६० वर्षसे अधिक अवस्थावाला।

बुढ़ना (हिं० पु०) पत्थर फूल, छड़ीला।

बुढ़ाई (हिं० स्त्री०) वृद्धत्व, बुढ़ापा।

बुढ़ाना (हिं० क्रि०) वृद्धावस्थाको प्राप्त होना, बुड्ढा होना।

बुढ़ापा (हिं० पु०) १ वृद्धावस्था, बुड्ढे होनेकी अवस्था। २ बुड्ढे होनेका भाव, बुड्ढा-पन।

बुढ़िया-बैठक (हिं० स्त्री०) एक प्रकारकी बैठक। इसमें दीवार, खम्भे आदिका सहारा ले कर बार बार उठते बैठते हैं।

बुढ़ौती (हिं० स्त्री०) वृद्धावस्था, बुढ़ापा।

बुत (फा० पु०) १ प्रतिमा, मूर्त्ति। २ प्रियतम, वह जिसके साथ प्रेम किया जाय। ३ सेसरखुत नामक खेलमें वह दांव जिसमें खिलाड़ीके हाथमें केवल तस्वीरें ही हों अथवा तीनों ताशोंकी बुंदियोंका जोड़ १०,२० या ३० हों। सेसरखुत देखो।

बुतना (हिं० क्रि०) बुझना देखो।

बुतपरस्त (फा० पु०) १ मूर्त्तिपूजक, वह जो मूर्त्तियोंकी पूजा करता हो। २ वह जो सौंदर्यका उपासक हो, रसिक।

बुतपरस्ती (फा० स्त्री०) मूर्त्तिपूजा।

बुतशिकन (फा० पु०) वह जो मूर्त्तिपूजाका घोर विरोधी हो, वह जो प्रतिमाओंको तोड़ता या नष्ट करता हो।

बुताना (हिं० क्रि०) बुझाना देखो।

बुत्त (हिं० वि०) बुत देखो।

बुद (हिं० वि०) दलालकी बोलीमें 'पांच'।

बुदबुद (सं० पु०) पानीका बुलबुला, बुल्ला।

बुदबुदा (हिं० पु०) पानीका बुलबुला, बुल्ला।

बुदलाय (हिं० वि०) दलालकी बोलीमें 'पन्द्रह'।

बुद्ध (सं० पु०) बुध्यते स्म इति बुध-क्त, यद्वा भावे क्त, बुद्धं ज्ञानमस्यास्तीति अर्श आदित्वादच्। भगवान्‌का अवतारविशेष। पर्याय—सर्वज्ञ, सुगत, धर्मराज, तथागत, भगवान्, मारजित्, लोकजित्, जिन, षड्-भिज्ञ, दशबल, अद्वयवादी, विनायक, मुनीन्द्र, श्रीघन, शास्ता, मुनि, धर्म, त्रिकालज्ञ, धातु, बोधिसत्त्व, महा-बोधि, आर्य, पञ्चज्ञान, दशार्ह, दशभूमिग, चतुस्त्रिंशज्जा-तकज्ञ, दशपारमिताधर, द्वादशकक्ष, त्रिकाय, संगुप्त, दयाकूर्च, खजित, विज्ञानमातृक, महामैत्र, धर्मचक्र, महा-मुनि, असम, खसम, मैत्री, बल, गुणाकर, अकनिष्ठ, त्रिशरण, बुध, वक्री, वागाशनि, जितारि, अर्हण, अर्हन्, महासुख, महाबल। बुद्धदेव देखो।

(त्रि०) २ जागरित, जो जागा हुआ हो। ३ ज्ञान-वान्, ज्ञानी। ४ पण्डित, विद्वान्।

बुद्धकल्प (सं० पु०) बुद्धका कल्प, वर्त्तमान युग।

बुद्धक्षेत्र (सं० क्ली०) बुद्धकी लीलाभूमि, वह स्थान जहां एक एक बुद्धका आविर्भाव हुआ है।

बुद्धगया (सं० स्त्री०) कीकटस्थ बुद्धका गयाभेद।

बोधगया देखो।

बुद्धगुप्त (सं० पु०) गुप्तवंशीय एक राजा।

गुप्तराजवंश देखो।

बुद्धगुरु (सं० पु०) एक बौद्धाचार्य।

बुद्धघोष (सं० पु०) एक प्रसिद्ध बौद्धाचार्य। ५वीं शताब्दीमें ये विद्यमान थे।

बुद्धचर्य (सं० क्ली०) बुद्धका कार्य या जीवन।

बुद्धज्ञानश्री (सं० पु०) एक प्रसिद्ध बौद्धाचार्य।

बुद्धत्व (सं० क्ली०) बुद्धस्य भावः त्व। बुद्धका भाव या धर्म।

बुद्धदत्त (सं० पु०) १ चण्ड महासेनका मन्त्री। (त्रि०) बुद्धेन दत्तः। २ बुद्ध कर्त्तृक दत्त, जो बुद्धदेवसे दिया गया हो।

बुद्धदिश् (सं० पु०) राजभेद।

बुद्धदेव—बौद्धधर्मके प्रवर्त्तक महाज्ञानी पुरुष, हिन्दू-शास्त्रोक्त भगवान्‌के दश अवतारोंमेंसे नवां अवतार।

दशावतार देखो।

हिन्दूमत।

साहित्यदर्पणकारोंने बुद्धावतारके विषयमें जो श्लोक उद्धृत किया है, उसका भावार्थ इस प्रकार है—

"बुद्धावतारमें जिनके ध्यानके मध्य सारा संसार विलीन हुआ था, कल्की अवतारमें जो अधार्मिक मनुष्योंका खड्ग द्वारा नाश करेंगे, उनको हम प्रणाम करते हैं।"

जयदेवने दशावतार-स्तोत्रमें बुद्धावतारके सम्बन्धमें लिखा है—हे केशव! आपने बुद्ध-शरीर धारण कर दयार्द्र चित्तसे पशुहिंसाकी अपकारिता दिखलाते हुए यज्ञविषयक मन्त्रोंकी निन्दा की है। हे जगदीश हरे! आपका जय हो। (१)

श्रीमद्भागवतके प्रथम स्कन्धके तीसरे अध्यायमें लिखा है, कि भगवान्‌ने इक्कीस बार अवतार लिये थे। इस कलियुगमें वे गयाप्रदेशमें अञ्जनके पुत्र बुद्धनामसे अवतीर्ण होंगे। बाद कलियुगके शेषकालमें वे विष्णु-यशा नामक ब्राह्मणका पुत्र बन कर कल्किरूपमें जन्मग्रहण करेंगे।

विष्णुपुराणमें तृतीय अंशके १७वें और १८वें अध्यायमें बुद्ध मायामोह नामसे प्रसिद्ध हैं। उक्त पुराण-में लिखा है, कि भगवान्‌ने अपने शरीरसे मायामोहको उत्पादन कर देवताओंसे कहा—'यह मायामोह सभी दैत्योंको मोहित करेंगे। दैत्योंके वेदमार्गविहीन होनेसे तुम लोग अनायास उन सबोंका वध कर सकोगे।' अनन्तर मायामोह नर्मदा नदीके किनारे जा कर बोले, 'हे दैत्यपतिगण! तुम लोग क्यों तपस्या करते हो? यदि तुम्हें ऐहिक और पारत्रिकफलकी इच्छा हो, तो मेरे कथनानुसार कर्म करो। मैं जो धर्मोपदेश दूंगा, वही मुक्तिका उपयोगी होगा। उससे श्रेष्ठ धर्म और दूसरा नहीं है। उस धर्मके ग्रहण करनेसे स्वर्ग या मुक्ति जो चाहो, मिलेगा।"

मायामोहकी प्ररोचनासे दैत्यगण वेदमार्गसे बहिष्कृत हुए। यह धर्म है, वह अधर्म, यह सत् है वह असत्, इससे मुक्ति होती है, उससे नहीं, यह परमार्थ है, वह अलीक, यह दिगम्बरोंका धर्म है, वह बहुवस्त्र मनुष्योंका, इस प्रकार नाना सन्देहयुक्त वाक्य कह कर माया-मोहने दैत्योंको स्वधर्मत्याग कराया और कहा, 'हे दैत्य-गण! तुम लोग मेरे कहे हुए धर्मका 'अर्हत' अर्थात् मान्य करो।' यही कारण है, कि मायामोहके चलाये हुए धर्मको माननेवाले 'आर्हत' कहलाते हैं। मायामोहका धर्म क्रमशः बहुत दूर तक फैल गया। अनन्तर इन्होंने असुरोंसे कहा, 'यदि तुम लोग निर्वाणलाभ अथवा स्वर्गकी कामना करते हो, तो पशुहिंसा प्रभृति बुरे धर्मोंका परित्याग करो। इस जगत्प्रवाहको विज्ञानमय समझो और यह निश्चय जानो, कि इस संसारके कोई आधार नहीं है; इत्यादि।

इसी प्रकार अग्निपुराण, वायुपुराण, स्कन्दके हिम-वत्खण्ड आदि पौराणिक ग्रन्थोंमें बुद्धावतारका थोड़ा बहुत विषय लिखा हुआ है।

वल्लभाचार्यने वेदान्तसूत्रके द्वितीय पादस्थ इन्हीं सूत्रकी व्याख्यामें निम्नलिखित आख्यायिका उद्धृत का है—

(१) "निन्दसि यज्ञविधेरहह श्रुतिजातं सदय हृदयदर्शितपशुघातम्।
केशव धृतबुद्धशरीर जय जगदीश हरे॥" (जयदेव)

'अभाव पदार्थसे भाव पदार्थकी उत्पत्ति होती है' इस प्रकार खण्डन कर व्यासने वेदोंका प्रामाण्य संस्थापन किया है। इसके बाद भगवान् बुद्ध दैत्योंको विमूढ़ करनेमें प्रवृत्त हुए। बुद्धदेव रुद्ररूपी महादेवसे बोले, (१) 'हे महाबाहो रुद्र! हे महाभुज! आप मोहशास्त्रोंकी रचना कर अतथ्य और वितथ्यको दिखाइये तथा कई एक कल्पित शास्त्रोंकी सृष्टि कर ऐसा उपाय कीजिये जिससे सभी मनुष्य मेरे प्रति विमुख हो जायं।' बुद्धदेवके कथनानुसार महादेव प्रभृतिने भी अपने अपने अंशोंमें अवतार लिया और वैदिक धर्ममें प्रवेश कर मनुष्योंको विश्वास दिलानेके लिये वेदोंकी यथार्थ व्याख्या की। अनन्तर उन्होंने अस्ति और नास्तिके सिवा अविद्या नामक पदार्थको जगत्प्रवाहका कारण बतलाया और उस अविद्याकी निवृत्तिसे ही निर्वाण लाभ होता है, ऐसा बतला कर कितने ही जातिभ्रष्ट संन्यासियों और पाषण्डोंकी सृष्टि की। यह देख कर व्यास उन पर बड़े ही प्रसन्न हुए।

बौद्धमत।

उधर बौद्धग्रन्थकारोंने बुद्धदेवकी भूरि भूरि प्रशंसा की है। अमरसिंहने अपने अमरकोषके प्रथम अध्यायमें ब्रह्मा, विष्णु प्रभृति देवताओंके नामके पहले बुद्धका नामकीर्त्तन किया है:—

"सर्वज्ञः सुगतो बुद्धो धर्मराजस्तथागतः।
समन्तभद्रो भगवान् मारजित् लोकजित् जिनः॥
षड़भिज्ञो दशबलोऽद्वयवादी विनायकः।
मुनीन्द्रः श्रीघनः शास्ता मुनिः शाक्यमुनिस्तु यः॥
स शाक्यसिंहः सर्वार्थसिद्धः शौद्धोदनिश्च सः।
गौतमश्चार्कबन्धुश्च मायादेवीसुतश्च सः॥

वङ्गदेशीय प्राचीन बौद्ध कवि रामचन्द्रने कविभारती भक्तिशतक ग्रन्थमें लिखा है,—

"ब्रह्माऽविद्यामिभूतोदुरधिगममहामाययालिङ्गितोऽसौ।
विष्णुरागातिरेकात् निजवपुषि धृता पार्वती शङ्करेण॥
वीतविद्यो विमायो जगति स भगवान् वीतरागो मुनीन्द्रः।
कः सेव्यो बुद्धिमद्भिर्वदतवदत मे भ्रातरस्तेषुसूक्त्ये॥"

ब्रह्मा अविद्या द्वारा अभिभूत थे; विष्णु महामायाके आलिङ्गनमें विमुग्ध थे और शङ्करने आसक्तिवशतः पार्वतीको अपने शरीरमें धारण किया था। किन्तु मुनिपुङ्गव बुद्ध अविद्या, माया तथा आसक्ति इन सबोंसे बिलकुल अलग थे।

विदेह नामक कविने समन्तकूटवन्नना नामक पालिग्रन्थमें लिखा है,—

"सततविततकित्तिं ध्वस्तकन्दप्पदप्पं।
विभवहितविधानं सव्वलोकेककेतुम्।
अमितमतिमनग्घं सत्तिदं मेरुसारं।
सुगतमहमुधारं रूपसारं नमामि॥"

काश्मीरके प्रसिद्ध बौद्ध कवि क्षेमेन्द्रने अवदानकल्पलतामें बुद्धजन्म नामक परिच्छेदके प्रारम्भमें लिखा है:—

"हसति सकललोकालोकसर्गाय भानुः
परमममृतवृष्ट्यै पूर्णतामेति चन्द्रः।
इयति जगति पूज्यं जन्मगृह्णाति कश्चित्
विपुलकुशलसेतुः सत्त्वसन्तारणाय॥"

अवदानकल्पलतामें महाकाश्यपावदान नामक ६३वें पल्लवके प्रारम्भमें क्षेमेन्द्रने लिखा है,—

"शक्रवायुवरुणादयः पुराः विक्रियां मुनिवराश्च यत्कृते।
यान्ति तत् सुरसुखं तृणायते यस्य कस्य न स विसयास्पदम्॥"

बुद्धचरितकाव्यके प्रारम्भमें अश्वघोषने बुद्धको नमस्कार करते हुए लिखा है:—

"श्रियं परार्द्ध्यां विदधत् विधातृजित् तमो निरस्यन्नभिभूतभानुभृत्।
नुदन्निदाघं जितचारुचन्द्रमा सम्वद्र्यते ऽर्हन् इह हन्तनोपमा॥"

एशिया महादेशके प्रायः सभी प्रदेशोंमें बुद्धदेवका जीवनचरित पाया जाता है। ललित विस्तरसूत्र, बुद्धचरितकाव्य, लङ्कावतारसूत्र, अवदानकल्पलता आदि संस्कृत ग्रन्थ, महावंश, महापरिनिर्वाणसूत्र, महावग्ग, जातक प्रभृति पालिग्रन्थ, कोपान्-भि चि-चि इत्यादि चीनग्रन्थ; शाकजित्सुरोकु आदि जापानी, मललंगरवत्तु प्रभृति ब्रह्मदेशीय ग्रन्थ; गच्छका रोल्प (कैङ्गुरुके सूत्रपिटकका ख अध्याय) नामक तिब्बतीय ग्रन्थ इत्यादि बौद्ध

(१) "त्वञ्च रुद्र महाबाहो मोहशास्त्राणि कारय।
अतथ्यानि वितथ्यानि दर्शयस्व महाभुज॥
सागमैः कल्पितैस्त्वञ्च जनान् मद्विमुखान् कुरु॥"

ग्रन्थका मत अवलम्बन कर वर्त्तमान प्रबन्ध लिखा जाता है।

बुद्धका पूर्वजन्म।

इस घोर तमावृत संसारमें असंख्य युगके बाद एक एक बुद्ध आविर्भूत होते आये हैं। शाक्यसिंहसे पहले भी इस पृथ्वी पर अनेक बुद्धोंने जन्म लिया था किन्तु उनका धारावाहिक इतिहास नहीं मिलता। वर्त्तमान समय बौद्धशास्त्रानुसार महाभद्रकल्प कहलाता है। इसी कल्पमें क्रकुच्छन्द, कनकमुनि, काश्यप और शाक्यसिंहने यथाक्रम ३१०१, २०६०, १०१४ और ६२३ ईस्वी सन्के पहले जन्मग्रहण किया था। इन सबोंके पहले और १२० मनुष्य क्रमानुसार प्रादुर्भूत हुए थे। उनके पूर्व अस्सी कोटि बुद्धोंने जन्म लिया था। बौद्धोंका विश्वास है, कि इस अनादि संसारमें कुल कितने बुद्धोंने जन्मग्रहण किया, उसकी शुमार नहीं।

यहां पर अन्यान्य बुद्धोंका चरित न लिख कर केवल गौतमबुद्ध या शाक्यसिंहके पूर्व जन्मका वृतान्त लिखा जाता है।

शाक्यबुद्धका पूर्वजन्म।

एक समय जब ब्रह्माने देखा, कि ब्रह्मलोकके अधिवासियोंकी संख्या बहुत थोड़ी बच गई है, तब वे बड़े ही चिन्तित हुए। इसका कारण ढूंढने पर उन्हें मालूम हुआ, कि पृथिवी पर असंख्य कल्पके मध्य किसी भी बुद्धने जन्म नहीं लिया है, इसीलिये सभी जीव अज्ञानाच्छन्न हैं। अनेक वर्षोंके भीतर पृथिवी पर पुण्यवान् मनुष्योंके जन्म नहीं लेनेके कारण कोई भी मरनेके बाद ब्रह्मलोक नहीं आ सकता; अतएव ब्रह्मलोक जनशून्य हो गया है।

तब ब्रह्मा चारों ओर देख कर सोचने लगे, कि पृथिवी पर क्या कोई ऐसा है, जो कालक्रमसे बुद्धत्व लाभ कर सकता है? बादमें ध्यानयोगसे उन्हें मालूम हुआ, कि कमल जिस प्रकार खिलनेकी आशासे सूर्योदयकी प्रतीक्षा करता है, उसी प्रकार तमसाच्छन्न पृथिवी पर एक ज्ञानवान् मनुष्य बुद्धत्वलाभकी प्रत्याशामें कालयापन कर रहा है। उन्हें यह भी मालूम हुआ, कि बुद्धत्वलाभके लिए जो सब प्रार्थी पृथिवी पर विद्यमान हैं, उनमेंसे एक ही सर्वश्रेष्ठ हैं। इस पर ब्रह्माने उन्हींको चून लिया और वे ही गौतमबुद्ध या शाक्यसिंहके नामसे प्रसिद्ध हुए।

जिस समय ब्रह्माने उन्हें चुन लिया था उस समय वे ही पृथिवी पर सबोंकी अपेक्षा गरीब थे। उनके एक मात्र बूढ़ी तथा विधवा माता थी। गौतम वाणिज्यव्यवसायका अवलम्बन कर बड़े कष्टसे अपना और विधवा माताका आहार संग्रह करते थे। एक दिन वे सौभाग्यवृद्धिकी आशासे सुवर्णभूमि नामक देश जानेके लिए समुद्रके किनारे पहुंचे और नाविकोंको पुरस्कार स्वरूप कुछ चांदीके टुकड़े दे कर बोले,—हे नाविकगण! तुम मुझे और मेरी बूढ़ी माताको नाव पर चढ़ा कर सुवर्णभूमि पहुंचा दो। तुम्हारी अनुकम्पाके सिवा समुद्र पार कर जानेका हमें और कोई दूसरा उपाय नहीं है।' इस पर नाविकोंने उन दोनोंको नाव पर चढ़ाया; किन्तु अभाग्यवश थोड़ी दूर जाते ही वह नाव डूब गई। उत्ताल तरङ्गमें गौतम अपने जीवनकी माया छोड़ कर माताकी जीवन-रक्षामें लग गए। हिंस्र जलजन्तुओंके प्रति लक्ष्य न कर उन्होंने माताको अपनी पीठ पर बिठा लिया और आप तैरने लगे। गौतमको ऐसा दृढ़प्रतिज्ञ देख ब्रह्माने कहा,—यही एक मनुष्य बुद्धत्वप्राप्तिका यथार्थ अधिकारी है। अनन्तर ब्रह्माकी सहायतासे गौतम माताके साथ समुद्र पार कर गए। तब ब्रह्माने विचारा, कि बुद्धत्व लाभ करनेमें जिन सब गुणोंका रहना आवश्यक है, गौतममें वे सभी मौजूद हैं। उस समय गौतमने भी बुद्धत्वलाभ करनेका दृढ़ संकल्प किया। कुछ दिन बाद उनकी मृत्यु हुई और उन्होंने ब्रह्मलोकमें पुनर्जन्म ग्रहण किया। जिस दिन गौतमके मनमें बुद्धत्वप्राप्तिकी इच्छा उत्पन्न हुई थी उस दिनसे असंख्य वर्षोंके भीतर इस संसारमें एक लाख पचीस हजार बुद्धोंने अवतार लिया था; किन्तु गौतम तब तक भी संबोधि लाभ न कर सके थे।

सर्वभद्रकल्पमें गौतम अन्यदेशीय सम्राट्के पुत्ररूपमें आविर्भूत हुए और इसी कल्पमें उन्हें वाक्प्रणिधान उत्पन्न हुआ उनका कहना था, "मैं बुद्ध होऊंगा और बुद्धत्वलाभ करना ही मेरा अभीष्ट है।"

सारमन्दकल्पमें गौतमने पुष्पवती नगरीमें राजा सुनन्दके

पुत्ररूपमें जन्मग्रहण किया। इस कल्पमें उन्होंने तृष्णाङ्कर बुद्धसे अनियत विवरण (अनिश्चित आश्वास) और दीपङ्कर बुद्धसे नियत विवरण (निश्चित आश्वास) प्राप्त किया। तृष्णाङ्कर बुद्धने कहा था, कि गौतम कालक्रमसे बुद्धत्व लाभ कर सकते हैं। किन्तु दीपङ्करका कहना था, कि गौतम अवश्य ही बुद्धत्व लाभ करेंगे।

गौतम सारमन्दकल्पमें यथाक्रम सुरुचि ब्राह्मण, अतुल नागराज, अतिदेव ब्राह्मण तथा सुजात ब्राह्मणके नामसे परिचित थे। वरकल्पमें वे क्रमशः यक्षसिंह और संन्यासिरूपमें प्रादुर्भूत तथा मन्दकल्पमें राजचक्रवर्त्तित्वको प्राप्त हुए। बाद असंख्य कल्प तक संसार घोर अज्ञानान्धकारमें निमग्न रहा।

इस समय गौतम देव, मनुष्य आदि नाना योनियोंमें परिभ्रमण करते रहे। 'पञ्चशत पञ्चास जातक' नामक पालिग्रंथमें इनके ५५० जन्मोंका विवरण लिखा है। इनमेंसे वे ८३ वार संन्यासी, ५८ वार महाराज, ४३ वार वृक्षदेवता, २६ वार धर्मोपदेशक, २४ वार राजामात्य, २४ वार पुरोहित ब्राह्मण, २४ वार युवराज, २३ वार भद्रलोक, २२ वार पण्डित, २० वार, इन्द्र, १८ वार मर्कट, १३ वार वणिक, १२ वार धनी, १० वार मृग, १० वार सिंह, ८ वार हंस, ६ वार हस्ती, १२ वार कुक्कुट, ५ वार भृत्य, ५ वार सौपर्ण गरुड़, ४ वार अश्व, ४ वार वृक्ष, ३ वार कुम्भकार, ३ वार अन्त्यज जाति, २ वार मत्स्य, २ वार हस्तिपक, २ वार इन्दूर, १ वार कुक्कुर, १ वार सर्पचिकित्सक, १ वार सूत्रधार, १ वार कर्मकार, १ वार मेढ़क, १ वार शशक इत्यादिरूपमें पृथिवी पर अवतीर्ण हुए थे।

ऊपर जो तालिका दी गई है, वह पूरी नहीं है। गौतमबुद्धने असंख्य जन्मग्रहण किया था, जिसका आमूल वृत्तान्त संग्रह करना नितान्त दुरूह है। उन्होंने एक एक जन्ममें एक एक प्रकारके सत्कर्मका अनुष्ठान किया था। किसी जन्ममें दास्य, किसीमें शीलता, किसीमें नैष्क्रम, किसीमें प्रज्ञा और समयानुसार वीर्य, क्षान्ति, सत्य, अधिष्ठान, मैत्री और उपेक्षा आदि सद्गुणोंकी पराकाष्ठा भी दिखाई थी। उल्लिखित दश गुण दश पारमिता कहलाते हैं। गौतम साधारणतः उक्त पारमिताओंका अनुष्ठान करते थे।

गौतमबुद्धने खदिराङ्गार-जन्ममें अपना मस्तक, नेत्र, मांस, सन्तान, स्त्री तथा सर्वस्व वितरण कर दानपारमिताका (१) अनुष्ठान किया था। भूमिदत्त जन्ममें उन्होंने तीन प्रकारकी शीलपारमिता (२) सम्पन्न की थी। छुद्र सुत्त सोममें काञ्चन, मणि, माणिक्य, दास तथा दासी इत्यादिका त्याग कर संन्यासधर्म ग्रहण किया था और इसी जन्ममें उनकी निष्क्रम पारमिता (३) अनुष्ठित हुई। शकुभंक जन्ममें वे प्रज्ञा पारमिता (४) तथा महजनक जन्ममें वीर्य पारमिताकी (५) चरम सीमा पर पहुंचे थे। क्षान्तिवाद जन्ममें उन्होंने मनुष्यके अन्याय तथा निष्ठुर व्यवहारको अम्लान चित्तसे सह्य कर क्षान्ति पारमिताका (६) उज्ज्वल दृष्टान्त दिखाया था। महासुत्त सोमजन्ममें बुद्धने सत्यपारमिता (७), तेमिजन्ममें दृढ़ प्रतिज्ञ हो श्रेष्ठ धर्मका अनुष्ठान कर अधिष्ठान पारमिता तथा नरजन्ममें शत्रु और मित्र, उपकारी और अपकारी, ज्ञाति और अपरिचित प्रभृति सर्वोंके साथ समभाव दिखा कर उन्होंने मैत्री (९) एवम् चित्तके अविषम भाव या उपेक्षा पारमिताका (१०) परिचय दिया था।

उपर्युक्त पारमिताओंमेंसे प्रत्येकका पूर्णरूपसे अनुष्ठान करनेके कारण ही बुद्धका नाम 'दशभूमीश्वर' पड़ा।

कर्मके विचित्र परिणामसे गौतमबुद्धने नाना जन्मग्रहण किया सही, पर वे कभी भी असत् कर्ममें प्रवृत्त न हुए। तिर्यग्योनिमें जन्म लेकर भी उन्होंने बुद्धोचित कार्यका अनुष्ठान किया था। बुद्धदेवके कई एक जन्म ग्रहणका विषय जो नीचे लिखा गया है, उसे पढ़नेसे सभी समझ सकते हैं कि बौद्धचरिताख्यायकोंका ऐसा विश्वास था, कि गौतमबुद्ध पशु आदि योनिमें जन्म ले कर भी सत्य, क्षान्ति इत्यादि धर्मसे विचलित न हुए।

मर्कटजन्म—प्रज्ञापारमिता।

एक समय गौतम वन्दर रूपमें जन्म ले कर ८००० वन्दरोंके अधिपति हुए थे। हिमालयके तराई प्रदेशके जंगलमें उनका राज्य था। उसके समीप किसी छोटे गांवमें एक वहुत बड़ा इमलीका पेड़ था। वन्दरोंके इमली खोनेकी इच्छा प्रकट करने पर गौतमने

उनसे कहा "हे प्रजागण ! तुम लोग शिष्टता मत छोड़ो। इस इमलीके पेड़को ग्रामवासियोंने बड़ी मेहनतसे लगाया है और वे हमेशा इसकी चौकसीमें लगे रहते हैं, ताकि यह पेड़ शीघ्र बरबाद न हो जाय।

वन्दरोंने उनकी बात पर कुछ भी उत्तर न दिया। अन्तमें रातको लगभग ५०० वन्दर मिल कर चुपचाप इमली खानेको चले। उन्होंने सोचा, कि उन्हें कोई देख न सकेगा, किन्तु वे इमली खाते समय अपने आपको बिलकुल भूल गए और अपनी बोलीमें अपने अपने मनका आनन्द प्रकाश करने लगे। बाद गांववाले वन्दरोंकी आवाज सुन कर एक एक लाठी ले उस पेड़के नीचे आये। उन लोगोंने विचारा, "हम लोग सुबह तक यहां ठहरेंगे और वन्दरोंको पेड़ परसे उतरते ही मारेंगे। धीरे धीरे यह खबर मर्कटराज गौतमको मिली। उन्होंने कहा, 'मेरे मना करने पर भी वन्दर इमली खानेका लालच न छोड़ सके। उन सबोंके जीवन अभी बड़े सङ्कटमें पड़े हैं; जो हो प्रजाकी रक्षा करना राजाका परम कर्त्तव्य है। अतएव मुझे किसी उपायका अवलम्बन कर उनकी रक्षा अवश्य करनी चाहिए।

बाद गौतमने गांवमें जा कर देखा, कि बच्चे, बूढ़े, स्त्री सबके सब सोये हुए थे और गांवके वयस्क मनुष्य लाठी ले कर इमलीके पेड़के नीचे खड़े थे। गांवमें बिलकुल सन्नाटा छा रहा था, सिर्फ एक घरमें एक बूढ़ी औरत खाँसती थी। उसे नींद नहीं आती, वह कभी उठती, कभी बैठती और कभी बिछावन पर लेट जाती थी। अब गौतमने उसी बूढ़ीके घरमे आग लगा दी। घर जलने लगा और बूढ़ी चिल्लाती हुई घरके बाहर आई। आग बुझानेका कोई उपाय उसे दीख न पड़ा। बाद जो सब मनुष्य इमलीके पेड़के नीचे खड़े थे, उन्होंने बूढ़ीकी आवाज सुन अपनी अपनी लाठी फेंक दी और सब गांव जा कर आग बुझानेमें लग गए। सुअवसर पा कर वन्दर अपने घर चले आये। इसी जन्ममें गौतमने प्रज्ञा-पारमिता सम्पन्न की थी।

ऊदविलाव-जन्म-वीर्यपारमिता।

किसी समय गौतमने ऊदविलावरूपमें जन्म लिया था। यह ऊदविलाव किसी नदीके किनारे एक पेड़ पर रहता और बड़े यत्नसे अपने बच्चोंका पालन-पोषण करता था। एक दिन तीव्र तूफानसे यह पेड़ उखड़ कर नदीमें गिर पड़ा जिससे उस परके सभी बच्चे डूब गए। उस समय गौतमने प्रतिज्ञा की, "समुद्र सुखा कर बच्चोंका उद्धार करूंगा।' बाद वे अपनी पूँछ नदीमें डुबा डुबा कर किनारे पर झाड़ने लगे। सात दिन तक वे इसी प्रकार करते रहे। तब देवराजने आ कर उनसे पूछा, "हे साधु ऊदविलाव! तुम्हें जरा भी समझ नहीं, इस प्रकार पूँछ डुबो कर पानी छिड़कनेसे कितने दिनोंमें तुम समुद्र सुखा सकोगे? समुद्र ८४ हजार योजन गहरा है। तुम जैसे लाखों प्राणीकी ऐसी चेष्टा करने पर भी समुद्र नहीं सूख सकता।"

इतने पर ऊदविलावरूपी गौतमने देवराजसे कहा, 'हे वीरपुरुष! यदि सभी मनुष्य आप-जैसे साहसी होते, तो आपका कहना सार्थक होता। आपमें कहां तक विक्रम है, वह आपके वचनसे ही मालूम पड़ता है। जो कुछ हो, आप सरीखे भीरु, कापुरुष तथा निर्बोधके साथ बातचीत करनेसे कोई फल नहीं। आपका जहां जी चाहे, चले जांय, मेरे कार्यमें बाधा न डालें। मैंने जो आरम्भ किया है, उसे विना समाप्त किये न छोड़ूंगा।" देवराज उस ऊदविलावका अदम्य उत्साह देख कर चकित हो रहे। बाद देवताओंकी सहायतासे उसने सभी बच्चोंको समुद्रसे बाहर निकाला। गौतमने इस जन्ममें वीर्यपारमिता दिखलाई थी।

सिंहजन्म—सत्यपारमिता।

एक समय गौतम सिंहकुलमें जन्म ले कर किसी पहाड़ पर रहते थे। उसके समीप ही कीचड़से भरी हुई एक झील थी जहां हरिण आदि जन्तु चरा करते थे। एक दिन सिंहरूपी गौतमने भूखसे व्याकुल हो कर एक हरिणका पीछा किया; किन्तु उक्त झीलके कीचड़में वे फंस गए। उससे निकलनेका कोई उपाय न देख उन्होंने एक गीदड़से कहा, 'हे भद्र! मैं बड़ी तकलीफमें आ गिरा हूं। मेरे दोनों पैर कीचड़में इस प्रकार फंस गये हैं, कि उन्हें बाहर निकालनेकी मुझमें सामर्थ्य नहीं। हे भाई! तुम कृपा कर इससे निकाल दो।' गीदड़ बोला, 'आप बलवान् तथा विक्रमशाली जन्तु हैं।

अभी आप ऐसे भूखे हैं, कि आपके समीप जानेका मुझे साहस नहीं होता। शायद आपकी रक्षा करनेमें मुझे अपने जीवनसे हाथ धोना पड़े। इस पर सिंह उसे नाना प्रकारसे अभयदान दे बारम्बार प्रार्थना करने लगे। तदनुसार गीदड़ने निकटवर्त्ती ह्रदसे सिंहके पैर तक एक नाला बनाया। ह्रदका जल उस नालेके द्वारा सिंहके पैर तक पहुंचते ही वह कीचड़ जलके समान तरल हो गया। बाद सिंह अनायास कीचड़से निकल कर उस गीदड़को धन्यवाद देने लगा। उसी दिनसे सिंह और गीदड़ चिरकाल तक एक ही गुफामें सपरिवार रहने लगे। सिंहने कभी भी उसे मारनेकी चेष्टा न की। इस जन्ममें गौतमने सत्यपारमिताको रक्षा की थी।

वेश्मान्तरजातक-दानपारमिता।

जम्बूद्वीपकी जयातुरा नगरीमें मञ्ज नामक एक राजा रहते थे। उनकी प्रधान महिषीका नाम था स्पृशती। उनके वेश्मान्तर नामका एक पुत्र उत्पन्न हुआ। चैत्यराजकन्या माद्रीदेवीके साथ वेश्मान्तरकी शादी हुई। उसी समय कलिङ्गदेशमें भारी अकाल पड़ा। कलिङ्गराजको मालूम हुआ, कि वेश्मान्तरके जो श्वेत हस्ती है वह पानी बरसा सकता है। प्रवाद है, कि उक्त हस्तीके एक आस्तरणका मूल्य २४ लाख रुपये था। कुछ दिन बाद कलिङ्गराजने आठ ब्राह्मणको जयातुरा नगरी भेजा। उपोषथ दिनमें वेश्मान्तर दरिद्र और भिक्षुकको अन्नवस्त्र इत्यादि दान दे रहे थे, उसी समय उक्त आठों ब्राह्मण वहां जा कर बोले, "महाराज कुमार! आपके जो श्वेत हस्ती है, उसे ही पानेकी आशासे हम लोग आपके पास आये हैं।" वेश्मान्तरने कहा, 'हे ब्राह्मणगण! इस हाथीकी बात तो दूर रहे, आप लोग मेरे नेत्र हृतपिण्ड इत्यादि जो कुछ चाहें, उसे भी मैं सहर्ष प्रदान करूंगा।' 'हम लोगोंका और कुछ भी प्रार्थनीय नहीं है' ऐसा कह कर वे लोग उक्त हस्तीको ले कलिङ्ग देश लौट गए। नगरवासिगण यह खबर सुन कर बड़े ही दुःखित हुए और सबोंने राजप्रासादमें जा कर राजासे निवेदन किया, 'महाराज! हम लोग श्वेतहस्तीसे अनेक उपकार पाते थे। आपके पुत्रने उक्त हस्ती ब्राह्मणोंको दे कर बड़ा अनिष्ट किया है।' इस पर महाराजने अपने पुत्रको दण्ड देनेकी इच्छा प्रकट की। बाद नगरवासी बोले, 'महाराज! पुत्रको और कोई दण्ड देनेका प्रयोजन नहीं उन्हें राज्यसे बाहर निकाल देना ही समुचित दण्ड होगा।' तदनुसार वेश्मान्तर वङ्क नामक पहाड़ पर भेज दिये गए। हजारों मनाही करने पर भी उनकी स्त्री माद्रीने उनका साथ नहीं छोड़ा। इधर महारानी स्पृशती पुत्रको निर्वासन-वार्त्ता सुन हतचेतन हो पड़ी। बाद महाराजने उन्हें सान्त्वना दे कर कहा, 'मैं कुछ दिनके बाद ही पुत्रको पुनः घर ले आऊंगा।"

जिस समय वेश्मान्तर और माद्रीदेवीने घर छोड़ा, उसी समय उन्होंने अपनी सम्पत्ति अथवा वस्त्रालङ्कारादि दरिद्रोंको दे दिये। वेश्मान्तर सर्वस्व त्याग कर केवल अपनी स्त्री, पुत्र तथा कन्याके साथ एक रथ पर चढ़ वङ्कगिरिकी ओर चले। उनकी माताने उन्हें जो कुछ दिया था, उन्होंने उसे भी दरिद्रोंको बांट दिया। अन्तमें रास्तेमें दो ब्राह्मण सामने आ वेश्मान्तरसे बोले, 'महाशय! यदि रथ खींचनेवाले ये दोनों घोड़े मिल जाते, तो हम लोग बड़े ही उपकृत होते। थोड़ी दूर आगे बढ़ने पर फिर एक ब्राह्मणने आकर कहा, 'प्रभो! आपका रथ पानेसे ही मेरी दरिद्रताकी कुछ कमी हो जाती।' उक्त ब्राह्मणोंके प्रार्थनानुसार वेश्मान्तरने अपना रथ तथा दोनों घोड़े दे दिये। बाद माद्रीदेवी कन्याको और वेश्मान्तर पुत्रको अपनी गोदमें ले कर पैदल ही चलने लगे। चैत्यदेशके राजाने उन लोगोंको बुलाया; किन्तु वेश्मान्तर उनके यहां नहीं गए।

अनन्तर वे लोग वङ्कगिरि पहुचे। वहां विश्वकर्माने उन लोगोंके लिए दो छोटे छोटे घर बनाये। वेश्मान्तर और माद्रीदेवी उन्हीं दोनों घरमें संयत भावसे रहने लगीं। संतान माताकी अनुपस्थितिमें पिताके साथ रहती थी। इसी तरह सात महीने बीत गए। एक दिन यूजक नामक एक बूढ़े ब्राह्मणने वेश्मान्तरके निकट आ कर कहा, 'महाशय! मैंने बड़े कष्टसे एक सौ रुपये उपार्जन कर एक ब्राह्मणके पास रखे थे, किंतु उसने कुल रुपये खर्च कर दिये वह बड़ा गरीब था, सुतरां रुपये न लौटा सकनेके कारण उसने मुझे अमित्रतपा नामकी कन्या प्रदान की है। मेरी उक्त पत्नी (अमित्रतपा)

घरके सभी कामोंको अकेली नहीं कर सकती। मैंने सुना है, कि आपके जालीय नामका एक पुत्र तथा कृष्णाजिना नामकी एक कन्या है। मैं इन दोनोंको लेनेकी इच्छा करता हूं। ये मेरी पत्नीके दास और दासी हो कर घरके सभी काम करेंगे और तभी मुझे घरकी चिंतासे फुरसत मिलेगी।' ब्राह्मणकी बात सुन कर वेश्मान्तर बोले, 'महात्मन्! मेरी दोनों सन्तान द्वारा यदि आपका प्रयोजन सिद्ध हो, तो मैं खुशीसे इन्हें आपके हाथ सौंप देता हूं।' इतना सुनते ही जालीय तथा कृष्णाजिना जङ्गलकी ओर भाग गई। उनकी माता उस समय फलमूलादिकी तलाशमें बाहर गई हुई थी। वेश्मान्तर दोनों सन्तानको जोरसे पुकारने लगे। जालीय आ कर पिताके पैरों पर गिर पड़ा और बोला, 'हे पिता! हमारी माता अभी वनके मध्य फल तथा काष्ठकी खोजमें गई हैं; वे जब तक लौट न आवें, तब तक हमें मत छोड़िये।'

इस पर भिक्षु ब्राह्मण आगबबूला हो उठे और बोले, 'ऐसा झूठा मनुष्य मैंने अब लों नहीं देखा था। आप संसारमें दयाशील कहलाते हैं, किन्तु मेरी समझमें नहीं आता, कि इन दोनों सन्तानको दे कर भी आप इन्हें नहीं छोड़ते।'

भिक्षुककी बात सुन कर वेश्मान्तरने पत्नीकी अनुपस्थितिमें ही उन बच्चोंको दे दिया। पर्वतके ऊपर रास्तेमें उन दोनोंको जो तकलीफ झेलनी पड़ी थी, उसे वेश्मान्तरने अपनी आंखों देखा था। माद्रादेवीने जंगलसे आ कर जब यह बात सुनी, तब वह फूट फूट कर रोने लगी। इस पर वेश्मान्तरने सान्त्वना देते हुए कहा, 'बुद्धत्व लाभ करना सहज नहीं है। मैं पुत्र तथा कन्याको दान कर यदि दानपारमिता सम्पादन कर सकूं, तो निःसन्देह मुझे सर्वस्व लाभ हुआ। इस तुच्छ दानको देख कर तुम्हें विस्मित नहीं होना चाहिए।'

अनन्तर देवराजने देखा, कि वेश्मान्तर ऐसे दानी हैं, कि वे अपनी स्त्रीको भी वितरण कर सकते हैं। अच्छा मैं इसकी परीक्षा तो लूं। अतएव उन्होंने ब्राह्मणका रूप धारण कर वेश्मान्तरसे कहा, 'महाशय! मैं बूढ़ा और रोगी हो गया हूं—मेरी सेवा शुश्रूषा करनेवाला कोई नहीं है। आपकी पत्नी दासी हो कर यदि मेरी सेवा करती, तो मुझे बड़ा सुख मिलता।'

ब्राह्मणकी बात सुन कर वेश्मान्तरने माद्रीदेवीकी ओर देखा। माद्री देवीने स्वामीका अभिप्राय जान कर कहा, 'यदि मुझे दान कर आप बुद्धत्व प्राप्त कर सकें', तो यह मेरे सौभाग्यकी बात है।'

बाद वेश्मान्तरने उक्त ब्राह्मणसे कहा, 'महाराज! मेरी पत्नी ग्रहण कीजिए; यह सामान्य दान मेरे बुद्धत्वलाभका सहायक हो।' इस पर ब्राह्मणरूपी देवराज बोले, 'हे वेश्मान्तर! मैंने आनन्दके साथ माद्रीदेवीको ग्रहण किया, अब इन पर आपका कोई अधिकार न रहा। मैं इन्हें आपके पास कुछ दिनोंके लिए गच्छित रख जाता हूं। ऐसा कह कर भिक्षुरूपी देवराज अन्तर्धान हो गए।

उधर यूजक नामक ब्राह्मण जालीय और कृष्णाजिनाको लेकर जयातुरा नगरी पहुंचे। सञ्ज अपने पौत्र तथा पौत्रीको पा कर बड़े ही प्रसन्न हुए और उस ब्राह्मणको इतना खिलाया, कि जिससे वह कराल कालके गालमें पतित हुआ। सञ्जने बड़ी धूमधामसे उसकी अन्त्येष्टिक्रिया की। कुछ दिनके बाद बहुत-से मनुष्योंको साथ ले सञ्ज वङ्कगिरि पर जा वेश्मान्तर और माद्रिदेवीको घर ले आये। पूर्वोक्त श्वेतहस्तीके प्रभावसे कलिङ्ग देशमें पूरी उपज हुई। बाद उक्त देशवासियोंने उस हाथीको लौटा दिया। वेश्मान्तर, माद्रीदेवी, महाराज सञ्ज, महारानी स्पृशती, जालीय तथा कृष्णाजिना सबके सब फिर एक साथ मिले। वेश्मान्तरने शरीर त्याग कर तुषित नामक स्वर्गमें पुनर्जन्म ग्रहण किया। इसी जन्ममें गौतमने दान पारमिता प्राप्त की थी।

बौद्धग्रन्थमें इसी प्रकार अपरापर पारमिता-साधनके सम्बन्धमें अलौकिक गल्प वर्णित हैं। विस्तार हो जानेके भयसे यहां कुलका वर्णन नहीं किया गया। बौद्धगण किस भावमें बुद्धदेवके पूर्वजन्मकी लीला ग्रहण करते हैं, उसे दिखानेके लिए ही ऊपर कई एक कहानी दी गई, अन्यथा इन सब गल्पोंके साथ शाक्यबुद्धके जीवनेतिहासका कोई सम्पर्क है ऐसा प्रतीत नहीं होता।

बुद्धदेवके पूर्वपुरुष।

महावस्तु नामक ग्रन्थमें कोलिय-राजवंशके उत्पत्ति

वर्णन अध्यायमें बुद्धदेवके पूर्वपुरुषके विषयमें निम्न-लिखित वृत्तान्त लिखा है,—

सम्मत नामके कोई एक प्रसिद्ध राजा थे। उनके पुत्रका नाम था कल्यान। कल्यानके पुत्र रव, इनके पुत्र उपोषध और उपोषधके पुत्र मान्धाता हुए। राजा मान्धाताके वंशने पुत्रपौत्रादिक्रमसे हजारों वर्ष तक राज्य किया था। पश्चिम साकेत नगरमें सुजात नामक इक्ष्वाकुवंशीय राजा राज्य करते थे। उनके ओपुर, निपुर, करकण्डक, उल्कामुख तथा हस्तिकशीप नामक पांच पुत्र एवं शुद्धा, विमला, विजिता, जला और जली नाम की पांच कन्या थीं।

राजा सुजात जेन्ती (जयन्ती) नामक किसी विला सिनीके प्रेममें फंस गए। उसके गर्भसे जेन्त (जयन्त) नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ। एक दिन राजाने खुश हो कर जेन्तीसे कहा, 'मैं तुम्हें मुंहमांगा वर प्रदान करूंगा। अतः तुम्हारी जो इच्छा हो, वही वर मांगो।' इस पर जेन्तीने कहा, 'महाराज! पहलेमें अपने मातापितासे पूछ लूं, वे जो कुछ कहेंगे, वही मेरा अभीष्ट होगा।' बाद जेन्ती अपने मातापिता प्रभृति स्वजनोंके पास जा कर बोली, 'राजाने मुझे मुंहमांगा वर प्रदान करनेको प्रतिज्ञा की है अब आप सबोंकी जो आज्ञा हो वही वर मैं मांगू।' उस समय जिसका जो अभिमत हुआ, उसने वही कहा। कोई बोला, 'जेन्ती! तुम एक उत्कृष्ट ग्रामका आधिपत्य मांग लो, इत्यादि। बाद पण्डिता निपुणा तथा मेधाविनी किसी रमणीने कहा, 'जेन्ती! तुम राजाकी विलासिनी स्त्री हो। राजाने तुम्हें वर मांगनेको कहा है, जो तुम्हारे सौभाग्यकी बात है। वे बड़े ही सत्यवादी हैं, उनकी प्रतिज्ञा कभी अन्यथा नहीं होती। तुम उनसे यही वर मांगो, कि 'महा-राज! आप अपनी क्षत्रिया स्त्रीके गर्भजात पांच कुमारों-को राज्यसे निर्वासित कर मेरे गर्भसम्भूत जेन्त (जयन्ता) नामक पुत्रको यौवराज्य पर अभिषिक्त करें। मेरी आपसे यही एकान्त प्रार्थना है, कि आपके मरने पर जिससे मेरा पुत्र साकेत महानगरका राजा हो सके, उसीका विधान कीजिए।' जेन्तीने यही वर मांगा। राजा सुजात जेन्तीकी इस प्रार्थनाको सुन कर बड़े दुःखित हुए। वे अपने पांचों पुत्रोंको बहुत प्यार करते थे। 'अतएव उन्हें किस प्रकार राज्यसे निकाल दूंगा' इसका निश्चय नहीं कर सके। इधर जेन्तीको प्रार्थित वर प्रदान नहीं करनेसे उनकी प्रतिश्रुति भङ्ग होती थी। बाद राजाने जेन्तीसे कहा, 'मैं तो तुम्हें वही वर देता हूं; किन्तु नगर तथा देशकी प्रजाओंको यह बात मालूम हो गई है, कि मैं अपने पांचों पुत्रको निर्वासित कर तुम्हारे पुत्रको युव-राज बनाऊंगा। अतः उन लोगोंने भी उन्हींके साथ वन जानेको प्रतिज्ञा की है।' राजाने भी प्रजाको ऐसा करनेसे नहीं रोका। प्रजागण भी बाल बच्चोंको साथ ले सचमुच उक्त पांच कुमारोंके साथ चल चली। वे सबके सब साकेत नगरसे बाहर जा कर उत्तरकी ओर बढ़े। कुछ दिन बाद कोशिकोशलके राजा उन सबोंको अपने राज्यमें ले गए। वे लोग कुछ दिन तक वहीं ठहरे। अनंतर कोशिकोशलके राजाने देखा, कि ये सब मनुष्य इन पांच कुमारोंके प्रति बड़े ही अनुरक्त हैं। यदि ये लोग यहां ज्यादा दिन तक रह जांय, तो हो सकता है, कि मुझे मार कर इन्हीं कुमारोंको राजा बनावें। इस प्रकार ईर्षाके वशीभूत हो कर राजाने पञ्च-कुमारके साथ उस झुण्डको कोशिकोशल राज्यसे विदा किया।

अनन्तर वे लोग हिमालय पर्वतके प्रत्यन्त-प्रदेशमें शाखोटवनखण्डस्थित ऋषि कपिलके आश्रममें पहुंचे और वहीं रहने लगे। वहां उन्होंने अपनी बहन, भांजी इत्यादिके साथ एक दूसरेका विवाह किया। जब राजा सुजातने वणिकोंसे यह सुना, कि उनके पुत्र अनुहिमवत् प्रदेशके शाखोटवनखण्डस्थित ऋषि कपिलके आश्रममें रहते हैं और उन लोगोंने वहीं पर परिणय कार्य सम्पन्न किया है, तब उन्होंने अपने पुरोहित और मन्त्रीसे पूछा, 'कुमारोंने जिस रीतिके अनुसार विवाह किया है, वह शक्य अर्थात् धर्म सङ्गत है या नहीं?' इस पर पुरोहित ब्राह्मणपण्डितोंने कहा, 'महाराज! कुमारगण अभी जिस अवस्थामें रहते हैं, उसमें उक्त अनुरूप विवा-हादि शक्य अर्थात् सङ्गत है।' ब्राह्मणोंने उस कार्यको शक्य बतलाया था, इसीलिए कुमारगण 'शाक्य' कह-लाने और उसी समयसे वे शाक्य नामसे प्रसिद्ध हुए।

तदनंतर उक्त शाक्य कुमारोंने ऋषि कपिलकी अनुमति ले कर एक महानगर बसाया। कपिलऋषिने उन्हें वासस्थान प्रदान किया था; इसी कारण वह नगर कपिलवस्तु नामसे प्रसिद्ध हुआ। कुमारोंमेंसे ओपुर सबसे बड़े थे, वे ही वहांके राजा हुए। राजा ओपुरके पुत्र निपुर, निपुरके पुत्र करकण्डक, करकण्डकके पुत्र उल्कामुख, उल्कामुखके पुत्र हस्तिकशीर्ष तथा हस्तिकशीर्षके पुत्र सिंहहनु थे। सिंहहनुके शुद्धोदन, धौतोदन, शुक्लोदन और अमृतोदन नामके चार पुत्र तथा अमिता नामकी एक कन्या हुई।

अमिता बड़ी खूबसूरत थी; किंतु कुछ दिनके बाद वह कोढ़िन हो गई। चिकित्सकोंने आलेपन, वमन, विरेचन इत्यादि अनेक प्रकारके प्रतीकारकी व्यवस्था की, पर रोग जैसेका तैसा ही बना रहा। धीरे धीरे अमिताके समूचे शरीरमें फोड़ा निकल आया और सभी मनुष्य उससे घृणा करने लगे। बाद उसके भाई उसे रथ पर बिठा कर हिमालयके उत्सङ्ग पर्वतकी गुफामें ले गए। वहां उन्होंने एक बड़ा गड़हा खोद कर अमिताको उसमें बिठा दिया। अनन्तर गड्ढेमें प्रभूत खाद्य, उदक, उपास्तरण, प्रावरण इत्यादि रख पत्थरोंसे दरवाजा बन्द कर वे सब लौट आये। चारों ओर बन्द रहनेके कारण गड़हेमें बड़ी गर्मी पड़ने लगी। उस आवृत स्थानका वास तथा वहांकी उष्णताका सेवन कर अमिता कुष्ठव्याधिसे विमुक्त हो गई। उसके शरीरमें एक भी फोड़ा न रह गया। उसने अमानुषिक सौन्दर्य प्राप्त किया। मनुष्यकी गंध पा कर एक बाघ वहां आया और अपने पैरोंसे दरवाजे परके पत्थरोंको हटाने लगा।

उसके समीप ही कोल नामक एक राजर्षि रहते थे। उन्होंने पांच प्रकारकी अभिज्ञा तथा चार प्रकारके ध्यान प्राप्त किये थे। उनका आश्रमपद फल, मूल, पत्र, पुष्प और जलसे समृद्ध तथा विभूषित था। उस ऋषिको आश्रमके चारों ओर घूमते हुए देख कर बाघ डरके मारे भाग गया। ऋषिने गड्ढेके पास जा कर उसका दरवाजा खोल दिया। वहां उस परम रमणीया शाक्यकन्याको देख कर उन्होंने पूछा, 'तुम कौन हो?' इस पर अमिताने सारा हाल कह सुनाया। परम सौन्दर्यशालिनी अमिताको देख कर ऋषिके अंतःकरणमें उत्कट अनुराग उत्पन्न हुआ। उन्होंने सोचा* 'क्या संसारमें ऐसा कोई है जो चिर-ब्रह्मचारी हो तथा जिसके हृदयमें आसक्ति छू तक भी न गई हो! काठमें जिस प्रकार आग छिपी रहती है, उसी प्रकार ब्रह्मचारियोंके हृदयमें अनुरागवह्नि प्रच्छन्नभावमें विद्यमान है और मौका मिलते ही वह अनुरागरूप आशीविष प्रकुपित हो जाता है।

बाद वह राजर्षि शाक्यकन्याके सहवाससे ध्यान तथा अभिज्ञासे भ्रष्ट हुए। वे उस कन्याको अपने आश्रममें ले गए। उक्त कोल ऋषिके औरस और शाक्यकन्या अमिताके गर्भसे बत्तीस पुत्र उत्पन्न हुए। वे सभी देखनेमें बड़े ही सुन्दर और अजिनजटा धारण किये हुए थे। अनन्तर अमिताने अपने पुत्रोंसे कहा, 'तुम लोगोंके मातामह कपिलवस्तु नगरके राजा हैं, अतएव तुम लोग वहीं जावो।' मातापिताकी अनुमति ले कर कुमारोंने कपिलवस्तु नगरकी ओर यात्रा कर दी। वहांके शाक्योंने ऋषिकुमारोंसे पूछा, 'आप लोग कौन हैं और कहांसे आये हैं?' इस पर वे लोग बोले, 'अनुहिमवतप्रदेशमें कोल नामक जो राजर्षि रहते हैं हम लोग उन्हींके पुत्र तथा शाक्यराज सिंहहनुके दौहित्र हैं। हमारी माता सिंहहनुकी लड़की है।' शाक्यगण यह सुन कर बड़े प्रसन्न हुए। जब उन्होंने सुना, कि जिस कुष्ठरोगग्रस्ता अमिताको निर्वासन किया था, वह रोगसे निर्मुक्त हो गई और उसीके गर्भसे इन ऋषिकुमारोंकी उत्पत्ति हुई है, तब उनके आनंदकी सीमा न रही। उन्होंने कुमारोंको प्रचुर दान दिया। शाक्यकन्याओंके साथ उनका विवाह हुआ। कोल नामक ऋषिके औरससे उनका जन्म हुआ था इसीलिए वे लोग कोलियवंश नामसे प्रसिद्ध हुए।

शाक्योंके† देवदह नामक एक जनपद था। वहां सुभूति नामक एक समृद्धिशाली शाक्यराजा रहते थे।

---

* "किं चापि तावचिरब्रह्मचारी न चास्य रागानुशयासमूहतः।
पुनोऽपि सो रागविषा प्रकुप्यति तिष्ठ यथा काष्ठगतं अनुहतम्॥"

† अवदानकल्पलता, महावंश, जातक, महावग्ग, बुद्धचरित-काव्य इत्यादि ग्रंथोंमें भी ऐसी ही आख्यायिका वर्णित है।

पूर्वोक्त कोलियवंशकी किसी कन्याके साथ उनका विवाह हुआ। सुभूतिके माया, महामाया, अतिमाया, अनन्तमाया, चूलीया, कोलीसोवा तथा महा प्रजावती नामकी सात कन्या उत्पन्न हुईं। पहले ही कहा जा चुका है, कि सिंहहनु कपिलवस्तुके सिंहासन पर अधिष्ठित थे। उनके शुद्धोदन, शुक्लोदन, धौतोदन और अमृतोदन नामक चार पुत्र तथा अमिता नामकी एक कन्या थी। सिंहहनुके मरने पर शुद्धोदन कपिलवस्तुके सिंहासन पर बैठे। पूर्वोक्त देवदहके राजा सुभूतिके जो पांच कन्याएं थीं उनमेंसे माया और महाप्रजावतीको शुद्धोदनने व्याहा।

शाक्यबुद्धकी जीवनी।

वैशाख मासकी पूर्णिमा तिथिको * मायादेवीके गर्भका सञ्चार हुआ। तदनंतर दश महीनेके बाद मायादेवीने कपिलवस्तु नगरके समीप लुम्बिनी नामक परम रमणीय उद्यानमें एक पुत्र प्रसव किया। पुत्रक उत्पन्न होते ही शुद्धोदन सर्वार्थ संसिद्ध हुए थे, इसीलिए उन्होंने उसका नाम सर्वार्थसिद्ध वा सिद्धार्थ रखा। सिद्धार्थके जन्म लेनेके सात दिन बाद ही मायादेवी इस लोकसे सिधार गईं। कुमारके पालन पोषणका भार उसकी मासी महाप्रजावती गौतमीके हाथ सौंपा गया।

बाल्यजीवन।

हिमालय पर्वतके पास ही असित नामक एक महर्षि वास करते थे। इस समय वे अपने भांजे नरदत्तके साथ कपिलवस्तु नगर पधारे। सिद्धार्थमें बारह प्रकारके महापुरुष लक्षण और अस्सी प्रकारके अनुव्यंजन देख कर उन्होंने शुद्धोदनसे कहा, 'यह बालक संसाराश्रममें अवस्थान करे, तो राजचक्रवर्त्ती अथवा यदि गृहत्यागी हो, तो सम्यक सम्बोधि प्राप्त करेगा।' बाद ऋषि असित अपने आश्रमको चल दिये।

कुछ दिन बाद सिद्धार्थ गुरुके निकट भेजे गए। उन्हें विश्वामित्र नामक उपाध्यायसे नानादेशीय लिपि-शिक्षा मिली। गुरुके यहां जानेके पहले ही उन्होंने निम्न लिखित चौंसठ प्रकारकी लिपि सीखी थी। यथा—ब्राह्मी, खरोष्ट्री, अङ्गलिपि, पुष्करसारी वङ्गलिपि, मगधलिपि माङ्गल्यलिपि, मनुष्यलिपि, अंगुलीयलिपि, शकारिलिपि, ब्रह्मलिपि, द्राविड़लिपि, किनारीलिपि, दक्षिणलिपि, उग्रलिपि, संख्यालिपि, अनुलोमलिपि, अर्द्धधनुर्लिपि, दरदलिपि, खास्यलिपि, चीनलिपि, हूनलिपि, मध्यक्षरविस्तरलिपि, पुष्पलिपि, देवलिपि, नागलिपि, किन्नरलिपि, महोरगलिपि, असुरलिपि, गरुड़लिपि, मृगचक्रलिपि, चक्रलिपि, वायुमरुलिपि, भौमदेवलिपि, अन्तरीक्षदेवलिपि, उत्तरकुरुद्वीपलिपि, अपरगौड़लिपि, पूर्वविदेहलिपि, उत्क्षेपलिपि, निक्षेपलिपि, विक्षेपलिपि, प्रक्षेपलिपि, सागरलिपि, वज्रलिपि, लेखप्रतिलेखलिपि, अनुद्रुतलिपि, शास्त्रावर्त्तलिपि, गणनावर्त्तलिपि, उत्क्षेपावर्त्तलिपि, अध्याहारिणीलिपि, सर्वरुतसंहारिणीलिपि, विद्यानुलोमालिपि, विमिश्रितलिपि, ऋषितपस्तप्ता, रोचमाना, धरणीप्रेक्षणलिपि, सर्वौषधिनिष्यन्दालिपि, सर्वसारसंग्रहणी और सर्वभूतरुतग्रहणी।

धीरे धीरे उन्होंने नाना प्रकारकी विद्या सीख ली और वेद तथा उपनिषदमें विशेष पाण्डित्य लाभ किया। कुछ दिन बाद सिद्धार्थका लिखना पढ़ना समाप्त हुआ और वे राजधानी कपिलवस्तु लौटे। शुद्धोदनने दण्डपाणि शाक्यकी कन्या गोपके साथ उनका विवाह कर दिया। सिद्धार्थने विवाहके समय वेद, व्याकरण, निरुक्त, छन्दः, शिक्षा, गणित, सांख्य, योग, वैशेषिक इत्यादि शास्त्रोंमें विशेष पारदर्शिता दिखाई थी।

बचपनसे ही सिद्धार्थको संसारसे वैराग्य उत्पन्न हुआ था। जिस समय वे वर्णमाला सीखते थे उसी समय आकार उच्चारित करते ही 'अनित्यः सर्वसंसारः' ऐसा वाक्य उन्हें सुनाई पड़ा था। एक दिन वे कृषिग्राम देखने गए और वहीं पर एक वृक्षके नीचे अकेले बैठ कर ध्यानमग्न हुए।

संसारवैराग्यका कारण।

अनन्तर एक दिन उन्होंने उद्यान देखनेकी इच्छा प्रकट करते हुए अपने सारथिसे रथ तैयार करनेको कहा। सारथिने भी वैसा ही किया। रास्तेमें एक जराजीर्ण वृद्ध

---

* यह वृत्तांत ललितविस्तर, बुद्धचरितकाव्य, सर्कोजांक्षुरिचु, ग्यसोई रोलप इत्यादि ग्रंथके अवलम्ब पर लिखा गया है।

मनुष्यको देख कर सिद्धार्थने सारथिसे पूछा, 'सारथे! क्यों यह मनुष्य लाठीके बल झुक कर इतनी तकलीफ-से चलता फिरता है? उसका शरीर दुर्बल और स्थैर्य-विहीन तथा मांस, रुधिर और त्वक् सभी सूख गए हैं। देहकी शिराएं भी दिखाई पड़ती हैं। इसका सिर उजला, दांत विरल और अङ्ग-प्रत्यङ्ग अत्यन्त कृश हो गए हैं, इसका क्या कारण है?

इस पर सारथिने कहा, 'हे देव! यह मनुष्य बुढ़ापेके द्वारा अभिभूत, दुःखित और बलवीर्य हो गया है। इस-को सभी इन्द्रियां क्षीण हो गई हैं। आत्मीयगण द्वारा परित्यक्त हो यह व्यक्ति अभी निःसहाय हो गया है। वनमें जिस प्रकार सूखी लकड़ी व्यर्थ पड़ी रहती है यह मनुष्य भी उसी प्रकार अकर्मण्य हो काल-यापना करता है।'

सिद्धार्थने फिर भी सारथिसे पूछा,---जराग्रस्त होना क्या इस मनुष्यका कुलधर्म है अथवा संसारके सभी मनु-ष्योंकी ऐसी ही अवस्था होती है। जल्दी यथार्थ उत्तर दो, मैं इसका कारण खोज निकालूंगा।

तब सारथिने कहा, 'देव! यह इस मनुष्यका कुल-धर्म या राष्ट्रधर्म नहीं है, संसारके सभी मनुष्य यौवन और जरा द्वारा अभिभूत होते हैं। आप तथा आपके पिता, माता, भाई और कुटुम्ब परिवार आदि कोई भी बुढ़ापेके हाथसे छुटकारा नहीं पा सकते। मनुष्यकी यही एक गति है।

इस पर सिद्धार्थ बोले, 'हे सारथे! सभी मनुष्य निर्बोध हैं, उनकी बुद्धिको धिक्कार है, क्योंकि वे जवानी-के मदसे उन्मत्त हो कर बुढ़ापे पर ध्यान नहीं देते। तुम रथ लौटाओ; मैं उसी जराग्रस्त व्यक्तिको पुनः देखूंगा। मुझे भी एक दिन इसका शिकार बनना पड़ेगा। अतएव इस क्रीड़ासुखसे क्या प्रयोजन?'

एक समय सिद्धार्थ नगरके दक्षिण द्वार हो कर उद्यान घुसे। उसी समय उन्होंने एक रोगग्रस्त मनुष्यको देख कर सारथिसे पूछा, 'हे सारथे! क्यों यह मनुष्य अपने कुत्सित् मलमूत्रमें पड़ा हुआ है? इसका शरीर पीला पड़ गया है, सभी इन्द्रियां विकल हो गई हैं तथा सर्वाङ्ग सूख गया है; यह बड़ी तेजीसे सांस लेता और छोड़ता है और बड़े कष्टसे समय व्यतीत करता है, इसका क्या कारण?'

सारथिने जवाब दिया,—प्रभो! यह मनुष्य रोग-ग्रस्त हो कर अत्यन्त दुःखित है। इसकी मृत्यु निकट आ गई है। इसके आरोग्यलाभकी कोई सम्भावना नहीं। इसकी ताकत बिलकुल जाती रही। रक्षा पानेकी कोई आशा न देख कर यह मनुष्य निरावलम्ब हो गया है।'

तब सिद्धार्थने कहा, 'आरोग्य स्वप्नक्रीड़ाकी तरह अलीक है, व्याधिसमूह अत्यन्त भयङ्कर हैं। क्या कोई विज्ञ पुरुष ऐसी अवस्था देख आमोद प्रमोदमें मत्त हो कर सांसारिक सुखका अनुभव कर सकता है?'

एक समय जब सिद्धार्थ नगरके पश्चिम द्वार हो कर उद्यानकी ओर जा रहे थे, तब एक मृतकको देख कर उन्होंने सारथिसे पूछा,—'हे सारथे! क्यों इस मनुष्यको लोग चारपाई पर ले जा रहे हैं। इसके बाल चारों ओर बिखरे हुए हैं तथा सभी मनुष्य सिर पर धूल फेंकते हैं और छाती पीट पीट कर विलाप करते हैं, इसका क्या कारण है?

सारथिने उत्तर दिया, 'हे देव! जम्बूद्वीपमें इसकी मृत्यु हुई है। यह मनुष्य फिर भी अपने पिता, माता, पुत्र और पत्नी प्रभृतिको नहीं देख सकता। घर, पिता, माता, मित्र तथा बन्धु आदिको छोड़ कर यह परलोक जाता है।'

तब सिद्धार्थने कहा, 'यौवनको धिक्कार है, क्योंकि, जरा इसके पीछे ही लगी रहती है। आरोग्यको धिक्कार है, कारण, विविध व्याधि अवश्यम्भावी है। जीवनको धिक्कार है, क्योंकि मनुष्य चिरस्थायी नहीं हैं। विज्ञ पुरुषको धिक्कार है, कारण वे अलीक आमोद प्रमोदमें मत्त हैं। यदि जरा, व्याधि तथा मृत्यु न होती, तो मनुष्यको पञ्चस्कन्ध धारण कर इस महा दुःखका भोग नहीं करना पड़ता। उन तीनोंके नित्य सहचर हो कर हम लोगोंको जो तकलीफ उठानी पड़ती है, उससे आश्चर्यकी बात और क्या है? अतएव मैं घर लौट कर दुःखसे छुटकारा पानेका उपाय करूंगा।'

किसी समय सिद्धार्थ नगरके उत्तर द्वार हो कर उद्यानकी ओर जा रहे थे कि इतनेमें उन्होंने एक शान्त-

दान्त संयत तथा ब्रह्मचारी भिक्षुकको देख कर सारथिसे पूछा, 'हे सारथे! यह मनुष्य कौन है?' ये शान्तिशील तथा प्रसान्तचित्त हैं, इनकी आंखें स्थिर हैं और गेरुआ वस्त्र पहने हुए हैं। ये न तो उद्धत हैं और न अवनत। ये भिक्षा पात्र ले कर शान्तभावसे विचरण करते हुए अन्तकालकी प्रतीक्षा करते हैं। इनका पूरा हाल मुझे कहो।'

इस पर सारथि बोला, 'हे देव! यह मनुष्य भिक्षु हैं। इन्होंने कामसुखका परित्याग कर विनीत आचरण अवलम्बन किया है। प्रव्रज्या ग्रहण कर ये आत्माकी शान्तिके अन्वेषणमें लगे हैं तथा आसक्तिहीन और विद्वेषविहीन हो कर सामान्य आहार संग्रह करते हैं।'

तब बोधिसत्त्व बोले,—तुमने जो कुछ कहा, वह अक्षरशः सत्य है। ज्ञानी मनुष्य हमेशा प्रव्रज्याश्रमकी प्रशंसा करते आए हैं। इसी आश्रमका अवलम्बन कर अपनी भलाईके साथ साथ दूसरे जीवोंकी भी भलाई की जा सकती है और तभी मनुष्य सुखसे जीवन व्यतीत कर सकता है। सुमधुर अमृत अर्थात् मुक्ति इसी आश्रमका फल है।

अभिनिष्क्रमण।

अपने पुत्रको इस प्रकार विषय-वैराग्यानुरक्त देख शुद्धोदनने उन्हें गृहस्थाश्रममें रखनेकी अनेक चेष्टा की; किंतु सब व्यर्थ। सिद्धार्थने गृहस्थाश्रमका परित्याग करनेका संकल्प कर लिया। उन्होंने दो पहर रातको पिताके शयनागारमें जा कर उनसे कहा, 'हे पिता! आज मैं घर छोड़ चला जाऊंगा।'

सिद्धार्थका चित्त उस समय चार प्रकारके प्रणिधानमें निमग्न था। यथा—संसारका महाचारक बन्धन तोड़ कर मनुष्यको उन्मुक्त करना, संसारके महान्धकार-गहनसे निवारण करनेके लिए उनके प्रज्ञाचक्षुका उत्पादन करना, अहंकार ममकाराभिनिविष्ट मनुष्योंको आर्यमार्गोपदेश प्रदान करना और जो जीव धर्माधर्मके वशीभूत हो कर इस लोकसे परलोक जाते तथा परलोकसे इस लोकमें आते हैं, उन्हें प्रत्यावर्त्तन क्लेशसे बचाना।

एक दिन नगरसे बाहर जानेके लिये सिद्धार्थने छन्दक नामक अपने सारथिको रथ सज्जित करनेका आदेश दिया। इस पर छन्दक बोला, 'हे प्रभो! अभी आपके एक पुण्यलक्षण पुत्र उत्पन्न हुआ है। वह चारों द्वीपका अधिपति होगा। आप विपुल सम्पत्तिके मालिक हैं। कपिलवस्तु राज्य सुसमृद्ध तथा रमणीय है। हे देव! मुनिगण दूसरे जन्ममें ऐसी सम्पत्तिका भोग करने-कठोर तपस्या किया करते हैं। आप सम्पत्तिलाभ करके भी उसका परित्याग क्यों करने चले हैं? और भी आपकी पत्नी अत्यन्त रमणीया, विकशित पद्मकी तरह लोचनविशिष्टा, विचित्र हारशोभिता, मणिरत्नभूषिता तथा मेघनिर्मुक्त आकाशमें समुदित विद्युतकी जैसी प्रभाशालिनी, मनोहरा एवं शयनगता हैं—ऐसी पत्नीकी उपेक्षा न करें।'

इस पर सिद्धार्थ बोले,—हे छन्दक! मैंने रूप, रस, गन्ध, स्पर्श और शब्द इत्यादि अनेक प्रकारकी काम्य वस्तुका इस लोक तथा देवलोकमें अनन्त कल्प तक भोग किया है; किन्तु मुझे किसीसे भी तृप्ति न मिली। मैंने घर छोड़ देनेकी प्रतिज्ञा की है। वज्र, कुठार, शर, प्रस्तर, विद्युत्प्रभाकी तरह प्रज्वलित लोह, आग्नेय गिरिशिखर इत्यादि मेरे सिर पर क्यों न गिर जायं, पर तो भी गृहस्थाश्रममें पुनः मेरी अनुरक्ति नहीं करा सकते हो।

सिद्धार्थको दृढ़प्रतिज्ञ देख कर छन्दकने रथ सजाया। दोपहर रातको पुष्यनक्षत्रके योगमें सिद्धार्थ घर छोड़ कर चल दिये।

वे यथाक्रम शाक्य, कोष्य, मल्ल और मैत्रेय प्रभृति देश पार कर गए। छः योजन जानेके बाद सुबह हुई। बादमें उन्होंने अपने शरीर परके आभरण उतार कर छन्दक को घर लौट जानेकी आज्ञा दी। छन्दक जहांसे लौटा था, वहां एक चैत्य संस्थापित हुआ जो आज तक भी छन्दकनिवर्त्तन नामसे प्रसिद्ध है।

मस्तक-मुण्डन।

तदनन्तर उन्होंने अपना मस्तक मुंड़वा लिया। जहां पर उनकी चूड़ा फेंकी गई थी, वहां एक चैत्य संस्थापित हुआ जो आज भी चूड़ाप्रतिग्रहण नामसे विख्यात है। बाद उन्होंने कषाय वस्त्र पहने हुए एक व्याधको देखा और उसके वस्त्रसे अपना कौषिक पट्ट-

वस्त्र बदल लिया। जिस स्थान पर उन्होंने काषायवस्त्र धारण किया था, वहां पर भी एक चैत्य स्थापित हुआ जो आज भी काषायग्रहण नामसे मशहूर है।

छन्दक सिद्धार्थका आभरण ले कर राजधानी कपिलवस्तु पहुंचा। उससे सारा हाल सुन कर शुद्धोदन, महाप्रजावती प्रभृति सभी गभीर शोकसागरमें डूब गए। सिद्धार्थके पुनः घर लौटनेकी सम्भावना न देख उन्होंने उनके सभी आभरण पुष्करिणीमें फेंक दिये। वह पुष्करिणी आज भी आभरण नामसे विख्यात है।

गोपाने प्रातःकाल उठ कर जब सुना, कि उनके स्वामीने संसाराश्रमका त्याग किया है, तब वह पृथिवी पर गिर पड़ी और अपना केश काट कर शरीर परके सभी अलङ्कार उतार दिये। वे कहने लगीं,—हाय! मेरे परिणायक मुझे छोड़ कर चले गए, मैं जीवनकी सभी प्रकारकी प्रिय वस्तुसे आज हो वियुक्त हुई।

दीक्षा-ग्रहण।

बोधिसत्त्व छन्दकको लौटा कर यथाक्रम शाक्या और पद्मा नामकी दो ब्राह्मणीके आश्रममें अतिथि हुए। बाद वे रैवत नामक ब्रह्मर्षिके आश्रममें पहुंचे और अन्तमें वैशाली महानगरी गए। वहां आराड-कलाम नामक किसी उपाध्यायसे उनकी भेंट हुई। उक्त उपाध्यायके तीन सौ चेले थे। बोधिसत्त्वने भी उनका शिष्यत्व ग्रहण कर कुछ दिन तक ब्रह्मचर्यका अनुष्ठान किया। आराड-कलाम अपने शिष्योंको आकिञ्चनायतन-धर्मकी शिक्षा देते थे। उनका कहना था, कि इस प्रकार विषयवासनासे विरहित हो कर सर्वत्यागी होना ही परम मुक्ति है; किंतु बोधिसत्त्व इस शिक्षासे विशेष तृप्तिलाभ न कर सके।

अनन्तर वे मगधके अंतर्गत पाण्डव-पर्वतराजके समीप विहार करने और राजगृह नगरमें भिक्षा मांग कर अपना गुजरा चलाने लगे। राजगृहके सभी मनुष्य उन्हें देख कर बड़े ही विस्मित हुए। उन्होंने वहांके राजा बिम्बिसारके पास जा कर कहा,—महाराज! स्वयं ब्रह्मा, देवराज इन्द्र अथवा सूर्य आपके नगरमें भिक्षा मांगते हैं। इस पर बिम्बिसार बहुतसे मनुष्योंको साथ ले पाण्डव-पर्वतराजके समीप गए।

मगधराजने बोधिसत्त्वसे कहा, 'आपके दर्शन पा कर मैं कृतकृत्य हो गया। कृपया आप मेरे सहायक हों, मैं आपको सारा राज्य दान करता हूं—आप यथेष्ट काम्यवस्तुका भोग करें।

उपकारी तथा दयार्द्रचित्त बोधिसत्त्व मधुर, अकुटिल और प्रेमपूर्ण वाक्यमें बोले, हे धरणीपाल! आपका सर्वदा मङ्गल हो; मैं किसी भी कामसुखका प्रार्थी नहीं। कामना विषतुल्य और अनंत दोषका आकर है। कामके वशीभूत हो कर मनुष्य नरक, प्रेत, तिर्यग् इत्यादि योनिमें जन्म लेते हैं। ज्ञानियोंने कामनाकी सब जगह निन्दा की है। मैंने उसे श्लेष्मपित्त-जैसा जान छोड़ दिया है।'

इस पर बिम्बिसारने पूछा,—हे भिक्षो! आप किस देशसे आये हैं? आपका जन्म कहां हुआ और आपके माता पिता कहां रहते हैं?

बोधिसत्त्वने उत्तर दिया,—हे राजन्! शाक्योंका सुसमृद्धिशाली कपिलवस्तु एक नगर है। वहींके राजा शुद्धोदन मेरे पिता हैं। बुद्धत्वलाभकी आशासे मैंने प्रव्रज्या ग्रहण की है।

तब बिम्बिसार बोले,—आपके दर्शनसे हमें बड़ा आनन्द हुआ। हम लोग आपके ही पिताके शिष्य हैं। हे स्वामिन्! यदि आप बुद्धत्व प्राप्त करें, तो मैं आपके ही धर्मका आश्रय लूं। यह कह कर बिम्बिसार बोधिसत्त्वके चरणोंकी वन्दना कर राजगृहको लौट आये।

उस समय रुद्रक नामक कोई उपाध्याय राजगृहमें अध्यापना करते और अपने शिष्योंको 'नैव संज्ञानासंज्ञायतन समापत्तिके उपाय' की व्याख्या देते थे। उनका कहना था, कि श्रद्धा, वीर्य, स्मृति, समाधि और प्रज्ञा इन पांचोंका अवलम्बन कर मोक्षमार्गका पथिक होना उचित है। मुक्तिलाभ होनेसे ज्ञान और अज्ञान दोनोंका अतिक्रम किया जा सकता है। बोधिसत्त्वने कुछ समय तक रुद्रकसे धर्मशिक्षा प्राप्त की। इसके बाद वे मगधके गयाशीर्ष नामक पर्वत पर गए और वहीं तीन प्रकारकी आध्यात्मिक उपमा उनके मनमें उदित हुई। इन्होंने कहा, कि जिसके काम्य वस्तु विष-

यक राग, तृष्णा या पिपासाकी निवृत्ति नहीं हुई है, वह कभी भी आन्तरिक तथा शारीरिक दुःखसे निर्मुक्त नहीं हो सकता। यदि कोई मनुष्य आग जलानेकी इच्छासे भींगी लकड़ीको पानीमें डुबो रखे और फिर उसी लकड़ीको भींगी अरणीसे रगड़े, तो वह उससे कभी भी आग नहीं निकाल सकता। उसी प्रकार जिसका चित्त रागादि द्वारा अभिभूत है, वह कदापि ज्ञानज्योतिः लाभ नहीं कर सकता। यही उपमा वोधिसत्त्वके मनमें पहले पहल उदित हुई। बाद उन्होंने सोचा, कि जो भींगी लकड़ीको जमीन पर रख कर भींगी अरणीसे उसे रगड़ता है, वह भी जिस प्रकार अग्नि उत्पादन करनेमें समर्थ नहीं होता : उसी प्रकार जिसका हृदय रागादिद्वारा अभिषिक्त है, उसे भी ज्ञानज्योति नहीं मिलती ; यही दूसरी उपमा हुई। अनन्तर उनके मनमें यह उत्पन्न हुआ, कि जो सूखी लकड़ीको जमीन पर रख कर सूखी अरणीसे रगड़ता है, वह उससे अनायास आग जला सकता है ; इसी तरह जिसके चित्तसे रागादि विलकुल चला गया है, वही सिर्फ ज्ञानाग्नि लाभ करनेमें समर्थ होता है। यही तीसरी उपमा कहलाई।

इसके बाद उन्हें गया प्रदेशमें उरुविल्वा ग्रामके समीप नैरञ्जना नामकी एक नदी मिली। उस रमणीय नदीके किनारे बैठ कर वे सोचने लगे, कि वर्त्तमान युगमें जम्बूद्वीप पांच प्रकारके पापोंका कलुषित है। अभी मैं जम्बूद्वीपके मनुष्योंको किस प्रकार धर्मकार्यमें अभिनिविष्ट करूं, यही मेरा चिन्तनीय विषय है। इस प्रकार सोचते हुए वोधिसत्त्व छः वर्षवाली तपस्यामें प्रवृत्त हुए। सबसे पहले उन्होंने आस्फानक ध्यानका अनुष्ठान किया। जिस प्रकार बलवान् मनुष्य दुर्बलके ऊपर अनायास ही शासन कर सकता है, उसी प्रकार वे चित्त तथा देहको संयत करने लगे। जिस समय वोधिसत्त्व उक्त ध्यानमें निमग्न थे, उस समय उनके मुंह और नाकसे सांसका आना जाना तो विलकुल वन्द था, परंतु उनके कर्णछिद्रसे बड़ी आवाज निकलने लगी थी। धीरे धीरे वह छिद्र भी वन्द हो गया। मुंह, नाक और कानके छेदोंका वन्द होना ही था, कि सांस ऊपरकी ओर चली और मस्तक भेद कर वाहर निकल गई। बाद उन्होंने आहारका नियम कर दिया और अन्तमें प्रतिदिन वे एक चावल खाने लगे। धीरे धीरे उनका शरीर क्षीण होने लगा। कुछ दिन बाद वे यथाविहित आसन पर बैठ कर ललितव्यूह नामक समाधिमें निमग्न हुए। वोधिसत्त्व जिस समय नैरञ्जना नदीके किनारे वोधिवृक्षके नीचे योगासन पर आसीन हुए उस समय उन्होंने कहा था, 'इस आसन पर मेरा शरीर शुष्कता लाभ क्यों न करे और मेरा त्वक्, अस्थि तथा मांस यहीं पर विलीन क्यों न हो जाय, किंतु जब तक सुदुर्लभ बुद्धत्व लाभ न कर सकूंगा तब तक मैं कदापि इस आसन परसे न डिगूंगा। (ललितविस्तर)

बुद्धचरितकाव्यके १३वें सर्गमें लिखा है,—राजर्षिवंशोद्भव महर्षि वोधिसत्त्व जब परमज्ञान लाभ करनेके लिए दृढ़प्रतिज्ञ हो वोधिवृक्षके नीचे बैठे, तब संसारके सभी मनुष्योंके आनन्दकी सीमा न रही, किंतु सद्धर्मका शत्रु मार डर गया। मनुष्य जिसे कामदेव, चित्रायुध और पुष्पशर कहते हैं, पण्डितोंने उसेही कामराज्यका अधिपति मुक्तिका विद्वेषी मार बतलाया है। विलास, हर्ष और दर्प नामके तीन पुत्र तथा रति, प्रीति और तृष्णा नामकी तीन कन्याने मारसे पूछा, 'हे पितः! आज आप इतने उदास क्यों हैं?' इस पर मारने कहा, 'शाक्य मुनि दृढ़प्रतिज्ञारूप धर्म, सत्त्वरूप आयुध तथा बुद्धिरूप वाण धारण कर मेरा सारा राज्य जीतनेके लिए वोधिवृक्षके नीचे बैठे हैं ; इसी हेतु मेरा मन विचलित हो गया है। यदि वे मुझे पराजित कर संसारमें मोक्ष धर्मका प्रचार करेंगे, तो मैं राज्यसे च्युत हो जाऊंगा तथा कन्दर्पकी वृत्तिका भी लोप हो जायगा। अतएव जब तक वे दिव्यचक्षु प्राप्त न करें और मेरे ही राज्यमें रहें, तब तक मैं उनको उच्छिन्न कर डालूंगा। जिस प्रकार नदीका वेग बढ़ कर पुल तोड़ देता है, मैं भी उसी प्रकार उनका भेद करूंगा।' बाद मनुष्यहृदयका अस्वास्थ्यकारी मार पुष्पमय धनुष् और मोहोत्पादक पांच वाण ले कर अपने पुत्र तथा कन्याके साथ उक्त वृक्षके नीचे उपस्थित हुए। अनंतर मार धनुषके अग्रभाग पर वायां हाथ रख प्रशांतचित्तसे योगासन पर बैठा और भवसागरके पार-

गमनेच्छु वोधिसत्त्वसे वातें करने लगा। दोनोंमें पहले वाग्युद्ध हुआ। अनंतर मारने अपने पुत्र, कन्या और असंख्य सेनाओंके साथ विविध उपायसे वोधिसत्त्व पर आक्रमण कर दिया, किंतु वे उससे मस न हुए।

मार सम्मुख संग्राममें पराजित हो कर अत्यंत विषण्ण चित्तसे अपना घर लौटा। वादमें रति, तृष्णा और आरति नामक तीन कन्याओंने मारको सांत्वना दे कर कहा, 'हे पिता! आप चिंता न करें; हम लोग कौशलपूर्वक वोधिसत्त्वको आपके अधीन कर देंगी।' अनंतर वे युवतीका रूप धारण कर उनके निकट गईं।

इन्दुवदना तथा मोहरूप अलङ्कारसे विभूषिता रति संसारके नाना प्रकारके सुखकी कथा सुना कर वोधिसत्त्वको रिझाने लगी। वह बोली,—हे वोधिसत्त्व! तुम साम्राज्य सुखका परित्याग कर क्यों दीन भावसे समय विताते हो? सम्पत्ति त्याग करनेसे ही मुक्ति मिलती है, यह तुमने किससे सुना है? तुम मेरे आश्रयमें आओ; पर हां, यदि तुम विपथगामी न हो तव। निद्राग्रसित मनुष्य जिस प्रकार किसीकी भी वात नहीं सुनता, ध्यानमग्न वोधिसत्त्व उसी प्रकार रतिकी वात सुन न सके।

रतिका कहना खतम होते ही तृष्णा और आरति आ कर वोधिसत्त्वको नाना प्रलोभन दिखाने तथा वृद्धाका रूप धारण कर नाना उपदेश वाक्य कहने लगीं।

एक वार रति, तृष्णा और आरतिने उनके समीप जा हाथ जोड़ कर कहा था,—भगवन्! हम लोग आपकी शरणमें आई हैं। आप हमें प्रव्रज्याधर्म प्रदान करें। आपकी कथा सुन हम सव गार्हस्थ्य धर्मका परित्याग कर सुवर्णपुरसे यहां आई हैं। हम कन्दर्पकी लड़की तथा हमारे पांच सौ भाई हैं। वे सव भी सद्धर्म ग्रहण करनेको उत्सुक हैं। आपने वैराग्यका अवलम्बन किया है, अतएव हम सव आज ही विधवा हो जावेंगी।

निर्लज्ज मारने भी अन्तमें यथासाध्य चेष्टा की, पर उसकी एक भी न चली। वोधिसत्त्व कन्दर्पको जीत कर महाप्रीत्याहारव्यूह नामक समाधिमें लग गए।

वोधिसत्त्वने इस प्रकार मार-सेनाको हरा कर परम शान्ति प्राप्त की। उनका चित्त सुप्रसन्न हुआ। वे पहले सुवितर्क, दूसरे अवितर्क, तीसरे निष्प्रीतिक और चौथे अदुःखादुःख ध्यानमें विहार करने लगे। चित्तकी सत् तथा असत् वृत्तियां ही मङ्गलदायक हैं, ऐसा सोच कर उन्होंने सवितर्कध्यानमें परमानन्द लाभ किया था। फिर चित्तकी सत् तथा असत्वृत्तियोंका परस्पर विरोध मिट जानेसे ही उन्हें अवितर्क समाधिलाभ हुआ। जव प्रीति और अप्रीति इन दोनोंके प्रति उनकी उपेक्षा उत्पन्न हुई, तव निष्प्रीतिक ध्यान प्राप्त हुआ। सुख और दुःख सम्पूर्णरूपसे तिरोहित होनेसे उनका चित्त धीरे धीरे सुनिमल हो गया और तभी उन्होंने अदुःखासुख ध्यान लाभ किया।

अनन्तर रात्रिके प्रथम याममें वोधिसत्त्वके दिव्य-चक्षु उत्पन्न हुए। उन्होंने तत्त्वज्ञानका साक्षात्कार प्राप्त किया। रात्रिके मध्यम याममें उन्हें पूर्वतन विषयोंकी याद आई और अन्तमें वे संसारके दुःखका कारण ढूंढने लगे। तदन्तर वाह्य और आभ्यन्तर जगत्के क्रिया-प्रवाहके मध्य किस प्रकार अविच्छिन्न कार्यकारण-भाव विद्यमान है इसका निर्णय करनेमें वे प्रवृत्त हुए। उक्त भावके अखण्ड नियमके वशाभूत हो कर इस अनादिसंसारकी वाह्य वस्तु उत्पत्ति, स्थिति और विनाशको प्राप्त होती है। आध्यात्मिक संसारमें भी कुशल और अकुशल चैतसिक वृत्तियोंने अविद्याकी वशवर्त्ती हो कर उत्पत्ति तथा निरोध लाभ किया है। संसारमें किस प्रकार दुःखकी उत्पत्ति होती है इसका निर्णय करते हुए वोधिसत्त्वने कहा, कि अविद्यासे संस्कार, संस्कारसे विज्ञान, विज्ञानसे नामरूप, नामरूपसे षड़ायतन, षड़ायतनसे स्पर्श, स्पर्शसे वेदना, वेदनासे तृष्णा, तृष्णासे उपादान, उपादानसे भव, भवसे जाति और जातिसे जरामरण, शोक परिदेव, दुःख, दौर्मनस्य, उपायास इत्यादिकी उत्पत्ति होती है।

अविद्या अथवा अज्ञान ही दुःखका कारण है। वाद वोधिसत्त्व रात्रिके शेष याममें यह सोचने लगे, कि किस प्रकार अविद्याकी निवृत्ति हो जाय, ताकि सभी मनुष्य दुःखसे चिरमुक्ति लाभ कर सकें। अनन्तर उन्होंने दुःख-निवृत्तिका एक उपाय ढूंढ़ निकाला।

वोधिसत्त्वने जिस मुहूर्त्तमें संसारके दुःखसमूहकी उत्पत्ति तथा निरोधका कारण वतलाया था, उसी मुहूर्तसे वे 'बुद्ध' नामसे प्रसिद्ध हुए।

बुद्धत्व लाभ करनेके बाद भी सात दिन तक वे बोधि-वृक्षके नीचे बैठे थे। पांचवें सप्ताहमें उन्होंने मुचिलिन्द नागराज भवनमें और छठेंमें अजपालके न्योग्रोधमूल-में वास तथा सातवें सप्ताहमें तारायणमूलमें विहार किया था। उसी समय तपुप और मल्लिक नामक दो सहोदर वणिक् बहुतसे मनुष्योंके साथ दक्षिणसे उत्तरको ओर जाते थे। उन्होंने बड़ी श्रद्धा भक्तिसे बुद्धको आहार प्रदान किया था।

तदन्तर धर्मचक्र प्रवर्त्तन करनेके लिये बुद्ध वाराणसी महानगरीमें मृगदाव नामक स्थानको ओर चल दिये। रास्तेमें आजीवक नामके किसी दार्शनिकसे उनकी भेंट हो गई। दोनोंमें नाना आध्यात्मिक विषयका कथोपकथन हुआ। अन्तमें आजीवकने पूछा, 'हे गौतम! तुम कहां जाओगे?' इस पर बुद्ध बोले,—'मैं पहले वाराणसी और बाद काशिकापुरी जा कर संसारमें अप्रतिहत धर्मचक्रका प्रवर्त्तन करूंगा।' तब आजीवकने ताना मार कर कहा,—'हे गौतम! मैं जाता हूं। तुम्हारा गन्तव्यपथ अभी बहुत दूर है।'

अनन्तर गया प्रदेशके सुदर्शन नामक नागराजने बुद्ध-को न्योता दिया। कुछ दिन बाद वे गङ्गा नदी पार कर वाराणसी पहुंचे। वहां उन्होंने महाकाश्यप, अश्वजित्, महानाम तथा कौण्डिल्य प्रभृति पांच शिष्योंके निकट निर्वाण धर्मकी व्याख्या को। इसी प्रसङ्गमें बुद्धदेवने कहा था,—दुःख, दुःखकी उत्पत्ति, दुःखका निरोध और दुःख-निरोधका उपाय इन्हीं चारोंको आर्यसत्य कहते हैं। जन्म, जरा, व्याधि, मरण, अप्रियसंयोग और प्रियवियोग इत्यादि सभी दुःख शब्दवाच्य हैं। संक्षेपतः तृष्णा ही दुःखो-त्पत्तिका कारण है और इसकी निवृत्तिसे ही दुःख निवृत्त होता है। सम्यग् दृष्टि, सम्यग् संकल्प, सम्यक् वाक्, सम्यक् कर्मान्त, सम्यगाजीव, सम्यक् व्यायाम, सम्यक् स्मृति और सम्यक् समाधि ये आठ आर्याष्टाङ्गिक मार्ग कहलाते हैं और इन्हीं आठोंका अवलम्बन करनेसे दुःख निवृत्त होता है।

कुछ दिन बाद ५४ युवराज और एक हजार तीर्थिकने बुद्धदेवका धर्म ग्रहण किया। ये तीर्थक पहले अग्निकी उपासना करते थे। मगधाधिपति महाराज विम्बिसार भी उसी समय बौद्धधर्ममें दीक्षित हुए। सारिपुत्र और मौद्गल्यायन ये दोनों बुद्धदेवके सर्वप्रधान शिष्य थे। अतएव ये लोग अग्रश्रावक कहलाये।

अनन्तर बुद्धदेव कपिलवस्तु नगर बुलाये गए। उनके पिता शुद्धोदन उन्हें देख कर बड़े ही विस्मित हुए। उस समय बुद्धके पुत्र राहुल और सौतेला भाई नन्द दोनोंने बौद्धधर्म ग्रहण किया। कुछ दिन बाद बुद्धके चचेरे भाई अनिरुद्ध और आनन्द तथा साला देवदत्त बुद्धप्रव-र्त्तित धर्ममें दीक्षित हुए। बुद्धदेवने आनन्दको प्रधान उपस्थायकका पद दिया। बाद वे वैशाली नगर गए। वहां उन्होंने अपने शिष्योंको संसारकी अनित्यता पर उपदेश किया। अनन्तर वे राजगृहके समीप एक स्थानमें पधारे। वहां वे रोगग्रस्त हुए और जीवक नामके सुप्रसिद्ध चिकित्सकने उन्हें दवा दी। रोगमुक्त हो कर बुद्धदेवने अनेक अलौकिक घटना दिखाई। यह देख कर कूटदन्त और शौल नामक ब्राह्मणने भी बौद्ध-धर्म ग्रहण किया। कोशलराज प्रसेनजित् भी इसी धर्मके अनुयायी हुए।

उसी समय देवदत्तने मगधराज अजातशत्रु के साथ मिल कर बुद्धदेवको मारनेकी चेष्टा की। अंतमें देवदत्त विफल मनोरथ हुए और अजातशत्रुने बौद्धधर्म तथा सङ्घका आश्रय लिया। देवदत्त सानुष्ठित पापका फल भोगनेके लिये नरकगामी हुए।

बुद्धदेव पहले स्त्रियोंको अपने धर्ममें दीक्षित नहीं करते थे। अपनी मौसी महाप्रजावतीके विशेष अनुरोध तथा प्रार्थना करने पर बुद्धदेवने पहले उन्हें ही दीक्षित किया। कुछ दिन बाद उनकी पत्नी यशोधरा भी बौद्ध-धर्ममें प्रविष्ट हुईं। धीरे धीरे पांच सौ स्त्रियोंने बौद्ध-धर्म ग्रहण किया। और इसी प्रकार बौद्ध भिक्षुणी-सम्प्रदायका दल गठित हुआ। राजा बिम्बिसारकी पत्नीने उक्त धर्ममें दीक्षित हो कर बहुत-सी स्त्रियोंको इस ओर आकृष्ट किया। विशाखा नामकी वणिक्कन्याने बौद्धसम्प्रदायकी यथेष्ट उन्नति की थी।

श्रावस्तीके अनाथपिण्डिक नामक एक वणिक्ने बुद्ध-धर्मका अवलम्बन कर उन्हें जेतवन विहार प्रदान किया था। बुद्धदेव उसी विहारमें वास कर धर्मोपदेश दिया करते थे।

कुछ दिन बाद बुद्धदेवके दो शिष्य सारिपुत्र तथा मौद्गल्यायनने निर्वाण लाभ किया। बाद आनन्द ही उनके सेवक बने। आनन्द बुद्धके साथ घूम घूम कर धर्म-प्रचार करते थे।

किसी समय बुद्धदेवके आदेशानुसार आनन्दने असंख्य भिक्षुकको राजगृह नगरकी उपस्थानशालामें बुलाया। वहां बुद्धदेवने कहा,—हे भिक्षुकगण! मैं तुम लोगोंको सात अपरिहानीय धर्मका उपदेश देता हूं, ध्यानसे सुनो—

जब तक तुम लोग कम, भस्म, निद्रा और आमोद इन सबोंमें रत न रहोगे, तब तक तुम लोगोंकी पापेच्छा प्रबल न होगी और जब तक तुम लोग पापमित्रका आश्रय न लोगे तथा हमेशा निर्वाणलाभके उपायमें लगे रहोगे तब तक तुम लोगोंका अधःपतन न होगा।

हे भिक्षुकगण! और भी सुनो—जब तक तुम लोग श्रद्धावान्, ह्रीमान्, विनयी, शास्त्रज्ञ, वीर्यशाली, स्मृतिमान् और प्रज्ञावान् बने रहोगे तब तक तुम लोगोंका क्षय नहीं होगा।

अन्य सात अपरिहानीय ये हैं—जब तक तुम स्मृति, पुण्य, वीर्य, प्रीति, प्रश्रब्धि, समाधि और उपेक्षा इन सात प्रकारके ज्ञानाङ्गकी भावना करोगे, तब तक तुम्हारा अधःपतन नहीं।

और भी सात अपरिहानीय धर्मका विषय वर्णन करता हूं; सुनो। जब तक तुम लोग अनित्य, अनात्म, अशुभ, आदीनव, प्रहाण, विराग और निरोध इन सात प्रकारकी संज्ञाओंकी चिन्ता करोगे, तब तक तुम लोग विचारोगे, कि संसारकी सभी वस्तु अनित्य और अलीक हैं; सबोंका परिणाम अशुभ तथा सभी पापमय हैं। इस प्रकार चिंता कर अर्जित पुण्यका संरक्षण, अलब्ध पुण्यका लाभ, उत्पन्न पापका परित्याग और अन्य पापकी अनुत्पत्ति इन चार विषयोंमें तुम लोग सम्यक् रूपसे चेष्टावान् होगे। अनन्तर संसाराशक्तिका त्याग कर वासनाओंका नाश कर सकोगे।

दूसरे छः अपरिहानीय धर्म ये हैं—जब तक भिक्षुगण कायमनोवाक्यसे ब्रह्मचारियोंके प्रति मित्रका-सा व्यवहार करेंगे, जब तक वे भिक्षालब्ध द्रव्यसमूहका सिर्फ अपने ही भोग न कर शीलवान् ब्रह्मचारियोंको भी कुछ बांट देंगे और जब तक वे अपने सदाचारकी रक्षा कर सद्धर्मकी ओर दृष्टि रखेंगे, तब तक उनका क्षय नहीं होगा।

अनंतर बुद्धदेव राजगृह छोड़ कर आनन्दके साथ अबलम्बिका नामक स्थानमें पहुंचे जहां बहुत-से भिक्षु इकट्ठे हुए थे। वहां उन्होंने शीलसमाधि और प्रज्ञाविषयमें नाना धर्मोपदेश करते हुए कहा था, कि शीलपरिशुद्ध समाधि, समाधिपरिशुद्ध प्रज्ञा और प्रज्ञापरिशुद्धचित्त बहुत फलदायक होता है।

कुछ दिन बाद वे नालन्दा गए। वहां सारिपुत्र नामक शिष्यके साथ उनकी भेंट हुई। नालन्दाके प्रावारिकाम्रवनमें वे विहार करते थे, कि इतने हीमें सारिपुत्रने वहां आ कर प्रणाम करते हुए कहा, 'भगवन! आपके प्रति मेरी अटूट भक्ति है, क्योंकि इस पृथिवी पर आज तक किसी ऐसे श्रमण वा ब्राह्मणने जन्म नहीं लिया है, जो आपकी अपेक्षा अधिकतर ज्ञानी हों।' इस पर बुद्धदेव बोले—हे सारिपुत्र! पूर्वकालमें जिन सब ज्ञानी मनुष्योंने जन्मग्रहण किया था, तुम उनके चित्तके साथ अपने चित्तकी तुलना कर क्या जान सकते हो—वे कैसे शीलसम्पन्न, धर्मपरायण तथा प्रज्ञावान् थे? और भी क्या तुम बता सकते हो, कि भविष्यकालमें जो सब ज्ञानी मनुष्य आविर्भूत होंगे उनका चित्त, धर्म और प्रज्ञा कैसी होगी? हे सारिपुत्र! तुमने यदि मेरे चित्तके साथ अपने चित्तकी तुलना की है, तो यह बताओ, कि मेरे शील, धर्म और प्रज्ञा कैसी है?

इस पर सारिपुत्रने जवाब दिया, 'भगवन्! मैं भूत, भविष्यत् और वर्त्तमान ज्ञानियोंके चित्तके साथमें अपने चित्तको तुलना करनेमें समर्थ नहीं। मैं सिर्फ प्रवर्त्तित धर्मकी प्रणालीसे जानकार हूं। राजा बड़ी अट्टालिका बनवा कर उसे मजबूत दीवारसे घेर देते हैं। उसमें सिर्फ एक ही दरवाजा रखा जाता है जिस पर एक दरबान हमेशा खड़ा रहता और परिचित आदमीको भीतर जाने देता है। अट्टालिकाके भीतर जानेका न तो कोई दूसरा रास्ता ही रहता और न दीवारमें कोई ऐसा छेद बना होता है, जिस हो कर एक छोटी बिल्ली

भी आ जा सके। हे भगवन्! भूत, भविष्यत् और वर्त्त-मान कालके ज्ञानी मनुष्योंने धर्मका ठीक वैसा ही एक दरवाजा खोल रखा है। उन लोगोंका कहना है, कि पहले काम, हिंसा, आलस्य, विचिकित्सा और मोह इन पांच प्रकारके प्रतिबन्धकका निवारण करना चाहिये। अन-न्तर क्रोध, उपनाह, प्रक्षदान, ईर्षा, मात्सर्य, शाठ्य, माया, मद, निर्हिसा, अह्री, अनपत्रपा, स्त्यान, औद्धत्य, अश्राद्धय, कौपीत्य, प्रमाद, मूपितस्मृतिता, विक्षेप, असं-प्रजन्य, कौकृत्य, सिद्ध, वितर्क तथा विचार ये चौबीस प्रकारके उपक्लेश अर्थात् चित्तका दुखितभाव परिवर्जन करना कर्त्तव्य है। इसके बाद यह हमेशा याद रखनी चाहिये, कि शरीर अपवित्र है, वेदना दुःखमयी है, चित्त चञ्चल है और सभी पदार्थ मिथ्या हैं। फिर स्मृति, पुण्य, वीर्य, प्रीति, प्रश्रब्धि, समाधि और उपेक्षा इस सम्बोधि-अंग अर्थात् परम ज्ञानके विषयमें सोचना उचित है। और इसी प्रकार सोचते सोचते सम्बोधि अर्थात् परम ज्ञान लाभ किया जा सकता है। भूतकाल-के ज्ञानियोंने इसी प्रणालीका अवलम्बन कर सम्बोधि प्राप्त की थी। भविष्यत्कालके ज्ञानी मनुष्य भी इस पथका अनुसरण कर सम्बोधि लाभ करेंगे। हे भगवन्! आपने भी उक्त प्रणालीका अवलम्बन कर सम्बोधिलाभ किया है।

अनन्तर बुद्धदेव पाटली ग्राम गए। वहांके उपासकों-ने उनकी खूब खातिर की। बाद बुद्धदेव बोले,—हे उपासकगण! अधार्मिक और दुःशील गृहस्थोंकी पांच प्रकारसे हानी होती है,—(१) वे बड़े दरिद्र होते हैं, (२) उनका चारों ओर दुर्नाम फैल जाता है, (३) मनुष्य उनका विश्वास नहीं करते, (४) देहावसानके समय भी उनके चित्तका उद्वेग निवृत्त नहीं होता और (५) मरनेके बाद वे निरयगामी होते हैं। किंतु सुशील मनुष्य पांचो प्रकारके लाभ उठाते हैं—(१) वे महा-सुखका भोग करते हैं, (२) उनका सुनाम चारों ओर फैलता है, (३) उनका अन्तःकरण प्रसन्न रहता है, (४) देहावसानके समय उनके चित्तमें किसी प्रकारका उद्वेग नहीं रह जाता और (५) मरनेके बाद उन्हें स्वर्ग-प्राप्त होता है।

अनन्तर बुद्धदेव आनन्द और भिक्षुओंके साथ कोटि नामक गांव गये। वहां उन्होंने भिक्षुओंको सम्बोधन कर कहा,—हे भिक्षुगण! चार प्रकारके सत्यका प्रकृत तत्त्व न जाननेके कारण ही मनुष्य बारम्बार इस लोक तथा परलोक जाते आते हैं। दुःख, इसकी उत्पत्ति, इसका ध्वंस और इसके ध्वंसका उपाय इन चार महा-सत्यको अच्छी तरह जान लेनेसे ही भवतृष्णाकी निवृत्ति तथा पुनर्जन्मका उच्छेद होता है।

इसके बाद बुद्धदेव नाड़िका नामक स्थानमें पहुंचे और वहीं उन्होंने भिक्षुओंको धर्मादर्श नामका धर्मोपदेश दिया जिसका सार यह था—जिस मनुष्यका बुद्धधर्म और सङ्घ पर दृढ़ विश्वास है, उसे नरक या प्रेतयोनिमें जन्म नहीं लेना पड़ेगा।

कुछ दिन बाद बुद्धदेवने वैशाली नगरी जा कर आम्र पाली गणिकाके घर भोजन किया था। उक्त गणिकाने विनीतभावसे कहा, "भगवन्! मैं अपना आम्रवन भिक्षु-संघको प्रदान करती हूं, कृपया इसे ग्रहण कीजिये।" अनंतर बुद्धदेव उसे नाना प्रकारके धर्मोपदेशसे उत्सा-हित कर वहांसे चल दिये।

बुद्धदेवने वहांसे विदा हो कर विल्वग्राममें वर्षा-काल बिताया। उस समय उन्हें अस्वस्थ देख भिक्षु गण व्याकुल हो गए। इस पर उन्होंने आनन्दसे कहा, 'हे आनन्द! भिक्षु गण मुझसे और क्या चाहते हैं? मैंने तुम लोगोंके निमित्त प्रकाश्य-धर्मका प्रचार किया है—इसमें कुछ भी गुह्य नहीं है। तुम लोग इसका आश्रय ग्रहण कर धर्मरूप दीपक जलाओ और दूसरे किसी धर्म-का आश्रय मत लो, अपनेमें ही अपना आश्रय लो। हे आनन्द! मेरे निर्वाणके बाद जो यह धर्मदीप प्रज्वलित कर मुक्ति लाभके निमित्त अपने ही ऊपर निर्भर करेगा, दूसरेका आश्रय नहीं लेगा, वही भिक्षुओंके मध्य अग्र-गण्य होगा।'

अनंतर बुद्धदेव वैशालीनगरीके चापलचैत्यमें कुछ दिन तक ठहरे। उसी समय पापात्मा मारने आ कर उनसे कहा, 'हे भगवन्! आप परिनिर्वाण लाभ करें—आपका अंतिम समय आ गया है।' इस पर बुद्धदेव बोले, 'जब तक भिक्षु, भिक्षुणी, उपासक और उपासिका-समूह विनीत, विशारद, धर्मधर तथा धर्मानुधर्मचारी

न हो लेंगे, जब तक मनुष्य-समाजमें ब्रह्मचर्य सुप्रचारित नहीं होगा, तब तक हे मार! मैं परिनिर्वृत्त न होऊंगा। तुम इसकी चिंता न करो; आजसे तीन महीने बाद मैं परिनिर्वाण लाभ करूंगा।'

इसके बाद उन्होंने आनन्दसे कहा,—हे आनंद! मोक्षके आठ सोपान हैं,—१ला, जिनके मनमें रूपका भाव विद्यमान है, वे ही वाह्यजगत्में रूप देखते हैं। २रा, मनमें रूपका भाव तो नहीं, किंतु वहिर्जगत्में वह दीख पड़ना। ३रा, मनके भीतर रूपका भाव मौजूद है, किंतु वहिर्जगत्में मालूम नहीं होना। ४था, रूप जगत्का अतिक्रम कर 'आकाश अनंत है' ऐसी भावना करते करते आकाशानंत्यायतनमें विहार करना। ५वां, आकाशानंत्यायतनका अतिक्रम कर 'ज्ञान अनंत है' इस प्रकार सोचते सोचते विज्ञानानंत्यायतनमें विहार करना। ६ठा, विज्ञानानंत्यायतनको पार कर 'कुछ नहीं है' ऐसी चिंता करते करते आकिञ्चन्यायतनमें विहार करना। ७वां, इसका अतिक्रम कर 'ज्ञान भी नहीं है' ऐसा सोचते सोचते नैव-संज्ञानासंज्ञायतनमें विहार करना और ८वां नैव्य-संज्ञानासंज्ञायतनका अतिक्रम कर ज्ञान और ज्ञाता दोनोंका निरोध साधन कर संज्ञावेदयितृनिरोधकी उपलब्धि होना।

अनंतर बुद्धदेव वैशाली-महावनकी कूटागारशालामें गए। उनके आदेशानुसार आनंदने सब भिक्षुओंको बुलाया। बाद बुद्धदेवने उन लोगोंसे कहा,—हे भिक्षुगण! मैंने जो धर्मोपदेश किया है, तुम लोग अच्छी तरह उसकी पर्यालोचना कर मनुष्यकी भलाई और सुखके निमित्त संसारमें ब्रह्मचर्य स्थापित करना। और हे भिक्षु गण! मेरे कहे हुए धर्मोमेंसे सैंतीस विषय भलीभांति याद रखना जो ये हैं—चार स्मृत्युपस्थान, चार सम्यक् प्रहाण, चार ऋद्धिपाद, पांच इन्द्रिय, पांच बल, सात बोध्यङ्गक और आठ मार्ग। शरीर अपवित्र है, वेदना दुःखमयी है, चित्त चञ्चल है तथा सभी पदार्थ अलीक हैं; ऐसी भावनाका नाम चतुःस्मृत्युपस्थान है। अर्जित पुण्यकी रक्षा, अलब्ध पुण्यका उपार्जन, पूर्वसञ्चित पापका परित्याग और नूतन पापकी अनुत्पत्ति, इन चार प्रकारकी चेष्टाका नाम चतुःसम्यक्-प्रहाण है। असामान्य क्षमताप्राप्तिके निमित्त अभिलाषा, चिन्ता, उत्साह और अन्वेषणको चार ऋद्धिपाद कहते हैं। श्रद्धा, समाधि, वीर्य, स्मृति और प्रज्ञा इन पांचोंका नाम इन्द्रिय है और यही पांच फिर पञ्चबल भी कहलाते हैं। स्मृति, धर्म, परिश्रय, वीर्य, प्रीति, प्रश्रब्धि, समाधि और उपेक्षा इन सातोंको सम-बोध्यङ्ग कहते हैं। सम्यक् दृष्टि, सम्यक् संकल्प, सम्यक् वाक्, सम्यक् कर्मान्त, सम्यगाजीव, सम्यग् व्यायाम, सम्यक् स्मृति और सम्यक् समाधि इन आठोंका नाम अष्ट आर्यमार्ग है।

उक्त सैंतीस पदार्थ लेकर मैंने धर्मकी व्यवस्था की है। तुम लोग भलीभांति आलोचना कर जनसमाजमें इसका प्रचार करो। मैं तीन महीने बाद निर्वाण लाभ करूंगा, अतएव तुम लोग सावधान हो जावो। उन्होंने और भी कहा था,—मेरा जीवन अब शेष होनेको आ चला है, सबोंको छोड़ कर मैं चला जाऊंगा। हे भिक्षु गण! अप्रमत्त समाहित तथा सुशील बनो और स्थिरसंकल्प हो कर अपने आपको देखो। जो प्रमादका परित्याग कर इस धर्ममें विहार करेंगे वे ही जन्म और संसारका उच्छेद कर सदाके लिये दुःखसे मुक्त होंगे।

अनंतर बुद्धदेव भिक्षुओंके साथ भण्ड नामक ग्राममें गए। वहां उन्होंने कहा था, हे भिक्षु गण! शील, समाधि, प्रज्ञा और विमुक्ति इन्हीं चार प्रकारके अनुशीलनसे मनुष्य संसारपथमें बहुत दिन तक चक्कर लगाते हैं।

बाद वे यथाक्रम हस्तिग्राम, आम्रग्राम, जम्बूग्राम और भोगनगर पधारे। उन्होंने भोगनगरके आनन्द-चैत्यमें विहार करते समय कहा था,—हे भिक्षु गण यदि कोई भिक्षु आ कर तुम लोगोंसे कहे, कि उन्होंने अमुक वाक्य भगवान् बुद्धदेवसे सुना है, भिक्षु संघसे उसका उपदेश पाया है, किसी आवासमें कई एक स्थविर भिक्षु ने मिल कर उन्हें उक्त वाक्य कहा है, तो तुम लोग उनकी बात पर पहले विश्वास या अविश्वास न करना। उनके कहे हुए वाक्यको सूत्रपिटक या विनयपिटकके साथ मिला कर देखना, यदि सूत्र अथवा विनयमें तदनुरूप वाक्य रहे तो समझना, कि उक्त भिक्षुने अमुक वाक्य भलीभांति ग्रहण किया है और अब तुम लोग भी

उनकी बात पर अभिनन्दन प्रकट करना; किंतु यदि सूत्र या विषयमें वैसा वाक्य न मिले, तो उस पर विश्वास करना उचित नहीं।"

अनन्तर बुद्धदेव पावा नामक स्थानमें जा कर चुन्द नामक शिष्यके आम्रवनमें विहार करने लगे। चुन्दने उनके पास जा कर अभिवादनपूर्वक निवेदन किया, 'भगवन्! भिक्षु संघके साथ मिल कर आप कल मेरे यहां कृपया भोजन करेंगे।' बुद्धदेवने उनका निमंत्रण स्वीकार कर लिया। चुन्दने घर जा कर अनेक प्रकारके खाद्य और बहुत-सा शूकरमांस प्रस्तुत किया। दूसरे दिन बुद्धदेव उनके यहां गए और बोले, 'हे चुन्द! तुम सूअरका मांस सिर्फ मुझे ही देना—वह भिक्षुदलमें न परसना। क्योंकि मनुष्यलोक, देवलोक और ब्रह्मलोकमें मेरे सिवा और कोई भी ऐसा नहीं है जो उस मांसको पचा सके। मुझे परस देनेके बाद यदि और बच रहे तो उसे गड्ढेमें फेंक देना।' चुन्दने भी वैसा ही किया।

चुन्दके यहां भोजन कर चुकनेके बाद ही बुद्धदेव लोहित प्रस्कन्दिका नामक व्याधि अर्थात् रक्तामाशय-रोगसे ग्रसित हुए और उसी समय वे कुशीनगरकी ओर चल दिये। रास्तेमें उन्होंने आनन्दसे कहा, 'हे आनन्द! मैं बहुत थक गया हूं। तुम एक कपड़ेको चार तह करके उस वृक्षके नीचे बिछा दो। मुझे प्यास लगी है, अतएव थोड़ा पानी भी लाओ। अनंतर बुद्धदेवने पानी पी कर कुछ विश्राम किया।

उसी समय पुक्कस नामक आलाड़कलामके कोई शिष्य पावाकी ओर जा रहे थे। बुद्धदेवको वहां देख कर उन्होंने कहा, 'अहा! प्रव्रज्याका क्या ही असामान्य प्रभाव है। एक समय आलाड़-कलाम किसी वृक्षके नीचे बैठ कर तपस्या कर रहे थे उसी समय ५०० गाड़ी उनके शरीर पर हो कर चली गई; किन्तु उन्होंने न तो उन्हें देखा और न उनका शब्द ही सुन पाया।' पुक्कसकी बात सुन कर बुद्धदेव बोले 'हे पुक्कस! मैं एक समय आत्मा नामक स्थानके भूपागारमें तपस्या कर रहा था, उस समय अविरत मेघगर्जन, वृष्टिपात और विद्युत निःसरण होती थी। उस दुर्घटनामें भूपागारके दो किसान और चार बैल मर गये। जिस जगह वे किसान और चारों बैल विनष्ट हुए थे, वहां बहुतसे मनुष्य आ कर इकट्ठे हुए। बाद उनमेंसे एकने मुझे पूछा, 'महाशय! यहां क्या हुआ है?' इस पर मैं ने कहा—मुझे कुछ मालूम नहीं। फिर वह बोला, 'महाशय! देववर्षण, मेघगर्जन, विद्युत-स्फुरण आदिका क्या आपको कुछ भी खबर नहीं है? क्या आपने कोई शब्द न सुना? क्या आप सोये हुए थे?" मैंने कहा, 'नहीं'. मैं तो जाग्रत था।' इस पर फिर वह मनुष्य बोला, 'बड़े आश्चर्यकी बात है, कि आप जाग्रत थे; तो भी कुछ जान न सके।' बुद्धकी बात सुन कर पुक्कस बड़े ही आश्चर्यान्वित हुए और उसी दिनसे उन्होंने बुद्ध-धर्म तथा संघका आश्रय ग्रहण किया।

कुछ दिन बाद पुक्कसने बुद्धको एक सुनहला वस्त्र प्रदान किया जिससे आनन्दने उनका शरीर ढंक दिया। अनन्तर बुद्ध भिक्षुओंके साथ ककुत्था नदीके किनारे गए और वहीं स्नान कर चुन्दके आम्रवनमें ठहरे। चुन्दने एक बिछावन बिछा दिया और बुद्धदेवने उस पर बैठ कर कुछ समय तक विश्राम किया। अनन्तर उन्होंने एकान्तमें आनन्दसे कहा, 'हे आनन्द! चुन्दके मनमें यदि किसी प्रकारका परिताप उपस्थित हो तो तुम उसे दूर करना। उसके यहां भोजन करनेसे ही मुझे कठिन रोग हुआ है, ऐसा सोच कर वह दुःखित न होने पावे। तुम उसे कहना, कि बुद्ध और भिक्षुसंघको खिला कर जो सद्धर्म आपने सञ्चय किया है, उससे आपको स्वर्ग-लाभ होगा। चुन्दके लिये यह बड़े ही सौभाग्यकी बात थी, कि बुद्धने उनके यहां भोजन किया था। जो खाद्य खा कर उन्होंने समृद्धि तथा परिनिर्वाण लाभ किया था, वह महाफलदायक है।'

अनन्तर बुद्धदेवने कहा—दानशील व्यक्तिके पुण्य-प्रवर्द्धित होता है। संयतके वैर उत्पन्न नहीं होता, धार्मिक अमङ्गलका वर्जन कर सकते हैं और राग, द्वेष तथा मोहका क्षय होनेसे निर्वाणलाभ होता है।

बाद बुद्धदेव हिरण्वती नदी पार कर शालवन गए। वहां वे उत्तरकी ओर सिरहना कर एक चारपाई पर लेट रहे और बोले,—'हे आनन्द! चार स्थान सबोंके लिये श्रद्धास्पद हैं, जहां बुद्धका जन्म हुआ था, जहां उन्हें सम्यक् संबोधि लाभ हुई थी, जहां उन्होंने धर्मचक्र प्रव-

र्त्तित किया था और जहां उनका परिनिर्वाण हुआ था।

उसी समय आनन्दने पूछा, 'भगवन्! स्त्रीजातिके प्रति कैसा व्यवहार करना होगा?' इस पर बुद्धदेवने उत्तर दिया, 'अदर्शन अर्थात् उनकी भेंट न करना।' फिर आनन्दने पूछा, 'हे भगवन्! यदि उनसे भेंट हो जाय, तो क्या करना चाहिये?' बुद्ध बोले, 'हे आनन्द! अनालाप अर्थात् उनके साथ बातचीत न करनी चाहिये।' 'भगवन्! यदि वे बोलचाल करें, तो क्या करना उचित है?' 'हे आनन्द! उपस्थापन अर्थात् उनकी देवताकी तरह पूजा और उपासना करोगे।'

अनन्तर आनन्दने बुद्धदेवसे कहा, 'हे भगवन्! कुशीनगर एक जङ्गलपूर्ण छोटा नगर है, आप वहां परिनिवृत न होंगे। चम्पा, राजगृह, श्रावस्ती, साकेत कौशाम्बी, वाराणसी आदि अनेक महानगर हैं: वहांके ब्राह्मण और क्षत्रिय आपके प्रति भक्तिसम्पन्न हैं। वे आपके शरीरकी पूजा भी करेंगे।' इस पर बुद्धदेवने उत्तर दिया, 'हे आनन्द! तुम ऐसा न कहो। प्राचीनकालमें महासुदर्शन नामक एक धार्मिक और चतुरन्तविजयी राजाने जन्म ग्रहण किया था। कुशीनगर या कुशवतीमें उनकी राजधानी थी। यह नगर धन और जनसे भरा हुआ था। यह पूर्व-पश्चिम बारह योजन लम्बा और उत्तर-दक्षिण सात योजन चौड़ा है। हे आनन्द! तुम यहांके मल्लोंसे कहो, कि आज रात्रिके शेष याममें बुद्ध यहीं पर परिनिर्वाणलाभ करेंगे।' बाद कुशीनगरके मल्लोंने वहां आ कर बुद्धदेवकी वन्दना और पूजा की।

इतनेमें सुभद्र नामक परिव्राजक वहां पधारे। उसी दिन रात्रिके शेष याममें गौतमबुद्ध परिनिर्वाण लाभ करेंगे, ऐसा जान कर वे बोले, 'मैंने सुना है, कि संसारमें शायद ही बौद्धोंको गति मिलेगी। गौतमबुद्ध आज इस लोकको छोड़ जायंगे। मैं उनका उपदेश सुन कर धर्मविषयक कई एक सन्देह दूर करूंगा।' अनन्तर सुभद्र बुद्धके समीप जानेको उद्यत हुए। इस पर आनन्दने कहा, 'महाशय! भगवान् क्लान्त हो गये हैं, आप उन्हें अभी विरक्त न करें।' इतनी बातें सुन कर बुद्धदेवने आनन्दसे कहा, 'हे आनन्द! सुभद्रको मत रोको—उन्हें मेरे पास आने दो।' बाद सुभद्रने उनके समीप जा कर पूछा, 'हे गौतम! पूरण-काश्यप, मस्करी गोशाल, अजित केशकम्बली, ककुदकात्यायन, सञ्जयपुत्र वैरत्ति तथा निर्ग्रन्थ ज्ञातिपुत्र आदि जो सब धर्मोपदेशक तीर्थंकर विद्यमान हैं, उनके उपदेश श्रेयस्कर हैं या नहीं और वे सब शास्त्रोंसे अभिज्ञ हैं अथवा नहीं?' इस पर बुद्धदेवने उत्तर दिया,—हे सुभद्र! इन सब तीर्थङ्करकी अभिज्ञाता कैसी है उसका विचार करनेसे कोई फल नहीं मिलता? मैं आपको जिस धर्मका उपदेश देता हूं, उसे ध्यान दे कर सुनिये। जिस धर्ममें सम्यक् दृष्टि, सम्यक् संकल्प, सम्यक् वाक, सम्यक् कर्मान्त, सम्यगाजीव, सम्यक् व्यायाम, सम्यक् स्मृति और सम्यक् समाधि इन आठ आर्यमार्गोंका उपदेश नहीं है, ऐसे धर्मावलम्बियोंमें किसी प्रकारका श्रमण उत्पन्न नहीं हो सकता। किंतु जिस धर्ममें उक्त आठ आर्यमार्गका उपदेश है उसमें श्रमण भी मौजूद है। श्रमण भिन्न दूसरे व्यक्तिका वाक्य शून्य अर्थात् निरर्थक है। हे सुभद्र! मैंने अपने उनतीसवें वर्षसे ही प्रव्रज्याको ग्रहण किया है और धर्मके अन्वेषणमें इक्यावन वर्ष तक प्रज्ञा तथा समाधिका अनुष्ठान किया है। जो मेरे आचरित न्याय और धर्मानुवर्त्ती नहीं हैं उनमें श्रमण भी नहीं है।'

अनन्तर सुभद्रने बुद्धके समीप प्रव्रज्या ग्रहण की और बाद ब्रह्मचर्यका सम्यक् अनुष्ठान कर अर्हत् पद प्राप्त किया। ये ही बुद्धके अन्तिम शिष्य थे।

अनन्तर बुद्धने आनन्दसे कहा, 'हे आनन्द! मेरे मरनेके बाद मेरा प्रवर्त्तित धर्म ही तुम लोगोंका परिचालक होगा। तदन्तर वयोज्येष्ठ भिक्षुगण नव्य भिक्षुओंका नाम वा गोत्रोच्चारण करें। हे बन्धो! इसी भावसे सम्बोधन करेंगे। फिर नवीन भिक्षुगण प्राचीनको माननीय या पूजनीय समझ कर उनकी अभ्यर्थना करेंगे।'

बाद भिक्षुओंको बुद्धने कहा,—हे भिक्षुगण! यदि तुम लोगोंमेंसे किसीको मेरे प्रवर्त्तित धर्ममें कोई सन्देह या मतभेद रहे, तो हमसे पूछ कर दूर कर लो। कुछ देर बाद आनन्द बोले,—भगवन्! आपके प्रवर्त्तित धर्मके किसी विषय पर हम लोगोंमेंसे किसीको भी मतद्वैध नहीं है।

अनन्तर बुद्धने भिक्षुओंसे कहा, हे भिक्षुगण! संयोगोत्पन्न पदार्थका क्षय अवश्यम्भावी है। तुम लोग सावधान हो कर अपना अपना कार्य करोगे, बस यही मेरा अन्तिम वाक्य है।
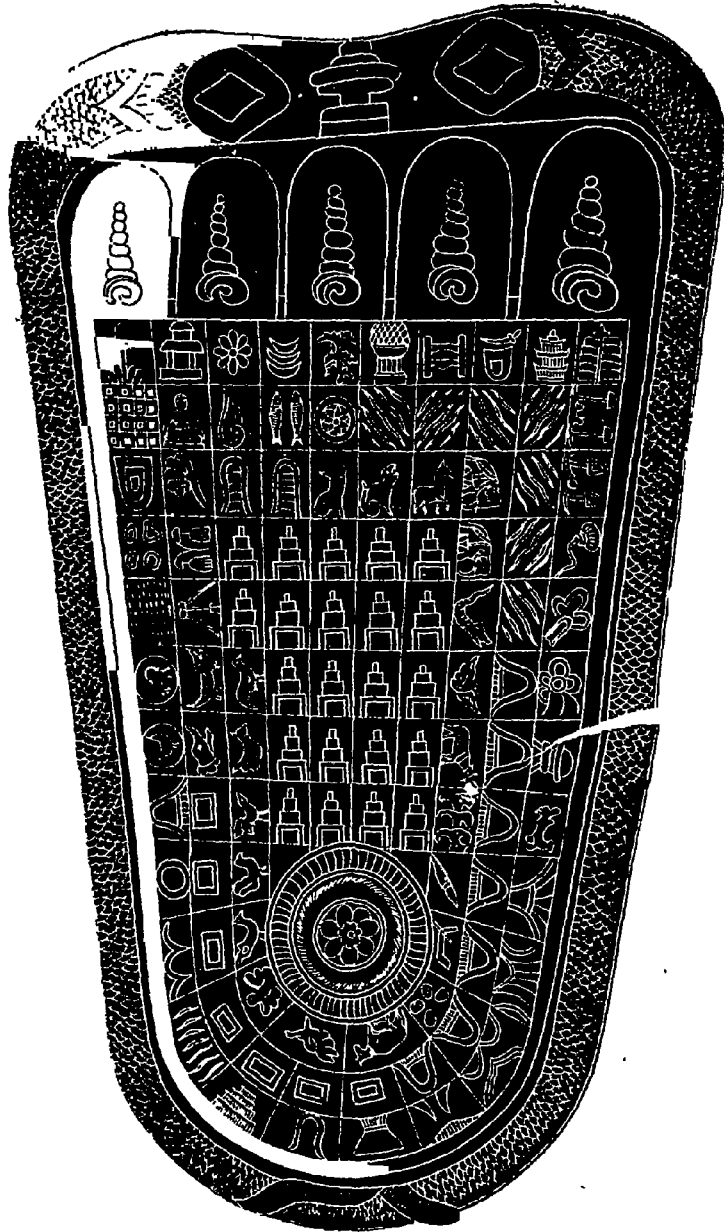
बौद्धोंके उपास्य बुद्धपद।

तदनन्तर बुद्धदेव प्रथम, द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ ध्यानमें यथाक्रम विहार करने लगे। फिर उन्होंने आकाशानन्त्यायतन, विज्ञानानन्त्यायतन, आकिञ्चन्यायतन, नैवसंज्ञा या संज्ञायतन और संज्ञा वेदयितृ निरोध इन सब

योगमें विहार किया। आकाश असीम है, ज्ञान अनन्त, संसार अकिञ्चन, संज्ञा और असंज्ञा दोनों ही अलीक हैं इस प्रकार सोचते हुए ज्ञाता तथा ज्ञेय दोनोंका ध्वंस होनेसे बुद्धने परिनिर्वाणलाभ किया। उसी समय संसारके मध्य एक सर्वप्रधान ज्ञानी तिरोहित हुए।

बुद्धके परिनिर्वाण लाभ करते ही भिक्षुगण पृथ्वी पर गिर कर रोने लगे। अनन्तर अनिरुद्धने आनन्दसे कहा, 'हे बन्धो! कुशी नगर जा कर मल्लोंसे कह दो, कि भगवान्‌ने परिनिर्वाण लाभ किया है।' तदनुसार आनन्द वहां गए। उनके मुखसे बुद्धके परिनिर्वाण-लाभका संवाद सुन कर मल्लपुत्र, मल्लस्नुषा और मल्लगृहस्थ छाती पीट पीट कर विलाप करने लगे। बाद उन्होंने शालवनमें जा कर नृत्य, गीत, वाद्य, पुष्पमाला, गन्ध प्रभृतिसे सात दिन तक बुद्धदेहकी पूजा की। सातवें दिन वे उनका मृत-शरीर मुकुटबन्धन नामक चैत्यमें ले गए और एक शुद्ध-वस्त्र द्वारा उसे ढंक दिया। इस प्रकार उनका शरीर पांच सौ वस्त्र और कार्पास द्वारा आच्छादित हुआ तथा तैलपूर्ण लौहपात्रमें रखा गया। बाद वे सर्वगन्धमय चिता प्रस्तुत कर उसे जलाने लगे। उन्होंने चौरास्ते पर एक वृहत् स्तूप निर्माण कर कहा,—जो गृहस्थ यहां आ कर माल्य और गन्ध अर्पण करेंगे अथवा इस स्थान पर आ आनन्दित होंगे, वे बहुत दिन तक सुखसे रहेंगे।

उसी समय महाकाश्यप ५०० भिक्षुओंके साथ पावा-से कुशीनगर आये। उन्होंने मुकुटबन्धनचैत्यमें जा कर तीन बार बुद्धचिताकी प्रदक्षिणा और सिर नवा कर बुद्धपादकी वन्दना की। अनन्तर चिता जल उठी और धीरे धीरे बुद्धका चर्म, मांस, स्नायु प्रभृति सभी जल गए,—सिर्फ हड्डी बच रही।

जब मगधराज अजातशत्रुने सुना, कि बुद्धदेवने कुशी-नगरमें निर्वाणलाभ किया है, तब उन्होंने दूत द्वारा कहला भेजा, 'भगवान् क्षत्रिय थे और मैं भी क्षत्रिय हूं। अतः मुझे उनके शरीरका एक अंश अवश्य मिलना चाहिये, क्योंकि मैं उस अंशके ऊपर महास्तूप निर्माण करूंगा।' वैशालीनगरके लिच्छवियोंने भी यही संवाद दूत द्वारा कहला भेजा। इसी प्रकार शक्यगण, अल्पकल्पके बुलय-गण, रामग्रामके कोलियगण और पावाके मल्लगण सबों-ने बुद्धके शरीरांशकी प्रार्थना की। वेठद्वीपके ब्राह्मणों-ने भी उनके शरीरका एक अंश पानेकी आशा की। इस पर कुशीनगरके मल्लोंने कहा, 'भगवान् बुद्धने हम लोगों-के ग्रामक्षेत्रमें परिनिर्वाणलाभ किया है, हम लोग किसी-को भी उनके शरीरका अंश प्रदान न करेंगे।' तब द्रोण नामक ब्राह्मणने सबोंसे कहा, 'हे महाशय! मेरी एक बात सुन लें। बुद्ध शान्तिवादी थे। उन साधु पुरुषके देहभागके लिये हमें न लड़ना चाहिये। आप सभी लोग इकट्ठे हों, हम इनका शरीर आठ भागोंमें बांट देते हैं। सब ओर स्तूप बनवाये जांय तथा सभी मनुष्य उन्हें देख कर प्रसन्नतालाभ करें।"

इस पर सभी राजी हुए और द्रोण ब्राह्मणने बुद्धकी हड्डी आठ भागोंमें बांट दी। अनन्तर वे बोले, 'हे महा-शयगण! जिस कुम्भमें रख कर बुद्धका शरीर बांधा गया है, वह मुझे दिया जाय। मैं उसके ऊपर एक स्तूप बनवाऊंगा।

अनन्तर पिप्पलिवनीयोंने मौर्य-दूत द्वारा कहला भेजा, "भगवान् क्षत्रिय थे और मैं भी क्षत्रिय हूं; अतएव मुझे उनके शरीरका कुछ अंश मिलना चाहिये।" किन्तु दूतने आ कर देखा, कि बुद्धके शरीरका पहले ही आठ हिस्सा हो गया है। बाद वह उनकी चिताकी भस्म ले कर लौट गया। पिप्पलिवनीय मौर्योंने उस भस्मके ऊपर महास्तूप निर्माण किया। इस प्रकार आठ महा-स्तूप, एक कुम्भस्तूप और एक अङ्गारस्तूप कुल दश स्तूप बनाये गये।

एक समय बुद्धदेवका प्रवर्त्तित धर्म सारे संसारमें प्रचारित हुआ था। सम्प्रति भी मानव जातिके लग-भग तृतीयांश मनुष्य बुद्धके अनुगामी तथा भक्त हैं।

बौद्ध-धर्ममें अन्यान्य विवरण देखो।

बुद्धद्वादशीव्रत (सं० क्ली०) बुद्धके उद्देशसे अनुष्ठेय व्रतभेद, वह व्रत जो बुद्धके उद्देश्यसे किया जाता है।

बुद्धद्रव्य (सं० क्ली०) बुद्धं स्तूपाकारतो ज्ञातं द्रव्यं। स्तौपिक, वह वस्तु जो स्तूपमें पाई जाय।

बुद्धधर्म (सं० पु०) बुद्धानां धर्मः। बुद्धदेव द्वारा प्रचा-रित अहिंसादि धर्म। बुद्ध और बौद्ध देखो।

बुद्धधर्मसङ्घ (सं० पु०) बौद्धधर्मके तीन प्रधान अङ्ग अर्थात् बुद्ध, उनका चलाया हुआ धर्म और उनकी अनुयायी श्रवणसम्प्रदाय।

बुद्धनन्दि (सं० पु०) अष्टम बौद्ध स्थविर। उत्तर भारतमें इनका वास था।

बुद्धनाथ—एक कणफटयोगी। कणफट् शब्द देखो।

बुद्धनिर्माण—इन्द्रजालविद्या द्वारा बुद्धका मूर्त्तिगठन।

बुद्धनीलकण्ठ—नेपालमें अवस्थित एक छोटा ह्रद। इसके उत्तर-पूर्व कोनके प्रस्रवणसे जलधारा निकलती देखी जाती है। कहते हैं, कि शङ्खधारी तीन प्रस्तरकी जो मूर्त्ति हैं उन्हींके हाथमेंके शंखसे वह जल ह्रदमें गिरता है। वह स्रोतस्विनी रुद्रमती नामसे प्रसिद्ध है। ह्रदके मध्यभागमें जलशयन नामक विष्णु-मूर्त्ति प्रतिष्ठित है। सूर्यवंशीय राजा हरिदत्तवर्म उक्त मन्दिरकी प्रतिष्ठा कर गये हैं।

बुद्धपालित (सं० पु०) नागार्जुनका शिष्यभेद। इन्होंने आर्यदेव विरचित ग्रन्थादिकी टीका लिखी है।

बुद्धपिण्डी—बुद्धका स्तूप।

बुद्धपुर—कसाई नदी तीरवर्त्ती एक प्राचीन ग्राम। यह मधुयार्दिके दूसरे किनारे अवस्थित है। यहां एक गण्ड शैलके ऊपर बहुतसे ध्वंसावशिष्ट मन्दिर दृष्टिगोचर होते हैं। यहांकी लिङ्ग-मूर्त्ति बुद्धेश्वर नामसे प्रसिद्ध है। स्थानीय लोग गयापुरीके गदाधरकी तरह बुद्धपुरीके बुद्धेश्वरका माहात्म्य गाते हैं।

बुद्धपुराण (सं० क्ली०) १ बुद्धाविर्भावादि ज्ञापक पुराण-भेद। २ लघु ललितविस्तरका नामान्तर।

बुद्धभद्र (सं० पु०) एक ख्यातनामा बौद्ध। इन्होंने अपने माता पिताको प्रसन्न करनेके लिये सुगतावास निर्माण किया।

बुद्धभूमि (सं० स्त्री०) बौद्धोंका सूत्रग्रंथभेद।

बुद्धमन्त्र (सं० क्ली०) १ धारणी। २ बुद्धका मंत्र।

बुद्धमार्ग (सं० पु०) १ बुद्धका अवलम्बित पंथ, बौद्ध-धर्म। २ एक बौद्धभिक्षु। ये महाराज कुमारगुप्तके राज्यकालमें विद्यमान थे।

बुद्धमित्र (सं० पु०) वसुबन्धुके शिष्य नवम बौद्ध स्थविर।

बुद्धमिहिर—सिंहके पुत्र एक प्रसिद्ध बौद्ध। १४० शकमें उत्कीर्ण उनकी शिलालिपि पाई जाती है।

बुद्धरक्षित (सं० पु०) बुद्धेन रक्षितः। १ बुद्ध द्वारा रक्षित। २ बौद्धभिक्षुभेद।

बुद्धराज (सं० पु०) राजभेद।

बुद्धलोकनाथ—प्रसिद्ध बौद्ध-यति।

बुद्धवचन (सं० क्ली०) १ बौद्धसूत्र। २ बुद्धके वाक्य।

बुद्धवन (सं० क्ली०) बुद्धेन नामक पर्वतभेद। यहां बाँसका एक बड़ा वन है।

बुद्धवर्म—चालुक्यवंशीय एक राजा। चालुक्यराजवंश देखो।

बुद्धविषय (सं० पु०) बुद्धक्षेत्र।

बुद्धसंगीति (सं० स्त्री०) १ बौद्ध ग्रंथभेद। २ बुद्धके सद्धर्मकी रक्षाके लिये तीन बौद्ध महासभा। बौद्ध देखो।

बुद्धसिंह (सं० पु०) असङ्ग बोधिसत्त्वके एक शिष्य।

बुद्धसेन (सं० पु०) राजकुमारभेद।

बुद्धस्थान—राजपूतानेके अन्तर्गत एक प्राचीन जनपद। यह जयपुरसे वैराट जानेके रास्ते पर अवस्थित है। यहां बुद्धपद आदि पाये जाते हैं।

बुद्धागम (सं० पु०) बौद्धशास्त्र।

बुद्धानुस्मृति (सं० स्त्री०) बौद्ध सूत्रभेद।

बुद्धान्त (सं० पु०) बुद्ध-भावे-क्त, तस्य अन्तः परिच्छेदः। जीवकी अवस्थाभेद, जाग्रदवस्था।

बुद्धावतारस्थान—फल्गूनदी तीरवर्त्ती बोधगया। यहां शाक्यसिंह बुद्ध हुए थे।

बुद्धि (सं० स्त्री०) बुध्यतेऽनयेति बुद्ध-क्तिन्। १ निश्चयात्मिका अन्तःकरणवृत्ति, वह शक्ति जिसके अनुसार मनुष्य किसी उपस्थित विषयके सम्बन्धमें ठीक ठीक विचार या निर्णय करता है। पर्याय—मनीषा, धिषणा, धी, प्रज्ञा, शेमुषी, मति, प्रेक्षा, उपलब्धि, चित्, सम्वित्, प्रतिपद्, ज्ञप्ति, चेतना, धारणा, प्रतिपत्ति, मेधा, मनन, मनस्, ज्ञान, बोध, हृल्लेख, संख्या, प्रतिभा, आत्मजा, पण्डा, विज्ञान। (राजनि० शब्दरत्ना०)

भगवद्गीतामें सात्त्विक, राजसिक और तामसिक इन तीन प्रकारकी बुद्धिका उल्लेख है।

सात्त्विकी बुद्धि—"प्रवृत्तिञ्च निवृत्तिञ्च कार्याकार्ये भयाभये।
बन्धं मोक्षञ्च या वेत्ति बुद्धिः सा पार्थ सात्त्विकी।

राजसी—"यथाधर्ममधर्मञ्च कार्यञ्चाकार्यमेव च।
अयथावत् प्रजानाति बुद्धिः सा पार्थ राजसी॥
तामसीबुद्धि—अधर्मं धर्ममिति या मन्यते तमसावृता।
सर्वार्थान् विपरीतांश्च बुद्धिः सा पार्थ तामसी॥"
(गीता १८।३०-३२)

जिसके द्वारा प्रवृत्ति, निवृत्ति, कर्त्तव्य, अकर्त्तव्य, भय, अभय, बन्धन और मोक्षादि जाना जा सके, उसे सात्त्विकी बुद्धि; जिसके द्वारा धर्म, अधर्म, कार्याकार्यादिको भलीभांति बिना जाने सुने अन्यथा ज्ञान उत्पन्न हो, उसे राजसी बुद्धि और जिसके द्वारा अधर्मको धर्म और अकर्त्तव्यको कर्त्तव्य समझा जाय, ऐसे विपरीत भावप्रकाशक ज्ञानको तामसी बुद्धि कहते हैं।

इष्टानिष्ट विपत्ति अर्थात् निद्रावृत्ति, व्यवसाय, समाधिता अर्थात् चित्तस्थैर्य, संशय और प्रतिपत्ति ये पांच बुद्धिके गुण हैं।

"शुश्रूषा श्रवणञ्चैव ग्रहणं धारणं तथा।
ऊहापोहोऽर्थविज्ञानं तत्त्व ज्ञानञ्च धीगुणाः॥" (हेम)

शुश्रूषा, श्रवण, ग्रहण, धारण, ऊह, उपोह और अर्थविज्ञान ये सात बुद्धिके गुण हैं। इसकी वृत्ति पांच हैं, यथा—प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, निद्रा और स्मृति। नैयायिकोंने इस बुद्धिके दो भेद बतलाये हैं। अनुभूति और स्मृति।

"विभुबुद्ध्यादि गुणवान् बुद्धिस्तु द्विविधा मता।
अनुभूतिः स्मृतिश्च स्यादनुभूतिश्चतुर्विधा।
प्रत्यक्षमप्यनुमितिस्तथोपमिति शब्दजे॥" (भाषापरिच्छेद)

बुद्धि दो प्रकारकी है, नित्या और अनित्या। इनमेंसे नित्या बुद्धि परमात्माकी और वह प्रत्यक्षप्रमात्मिका है। अनित्या बुद्धि जीवकी है। स्मृति और अनुभवके भेदसे इसके दो प्रकार हैं। फिर उनके भी दो प्रकार हैं, यथार्थ और अयथार्थ। अनुभवके चार भेद हैं, प्रत्यक्ष, अनुमिति, उपमिति और शब्दज। (न्यायद०) सांख्यके मतसे त्रिगुणात्मिका प्रकृतिका प्रथम विकार है। इसे महत्तत्त्व भी कहते हैं।

प्रकृतिका प्रथम विकाश बुद्धितत्त्व है। आदिसर्गकालमें असंसारी और अशरीरी आत्माके सन्निधिवशतः प्रकृतिके मध्य पहले पहल प्रस्फुरित होती हैं। सत्त्वगुण सबसे पहले बुद्धितत्त्वरूपमें प्रादुर्भूत हुआ था। बहुत निर्मल होनेके कारण इसे महत्तत्त्व कहते हैं। इसे हृदयङ्गम करनेके लिये वर्त्तमान प्राणिनिचयकी बुद्धिका बीजस्थान कहां है, यह विचारना होगा। इससे देखा जायगा, कि समस्त विशेष विशेष बुद्धिका विकाशस्थान अन्तःकरण है। प्रत्येक अन्तःकरण हरिहरमूर्त्तिकी तरह द्विमूर्त्तिमें विद्यमान है। उसकी एक मूर्त्ति वा परिमाणका नाम मनन और अध्यवसाय तथा द्वितीयका नाम अभिमान वा अहं है। 'मैं' 'मैं हूं' 'वस्तु' 'वस्तु है' 'मेरा' 'मुझसे करने योग्य हैं', इत्यादि प्रकारके निश्चयात्मक विकाशको अध्यवसाय और ज्ञानशक्ति कहते हैं। यह ज्ञानशक्ति सहजातरूपमें जीवनके अन्तरात्मामें निरन्तर संलग्न रहती है। ज्ञानशक्तिकी समष्टि ही महान् है। महान् और पूर्णज्ञान दोनों एक चीज है।

सांख्यमें जिसे महत्तत्त्व और बुद्धितत्त्व बतलाया है, वही पूर्णज्ञानशक्ति है। जो महान् पुरुष महान बुद्धितत्त्वसे अच्छी तरह प्रतिबिम्बित होते हैं वह महापुरुष सांख्योक्त सृष्टिकर्त्ता और पुराणादि शास्त्रके हिरण्यगर्भ, ब्रह्मा, कार्यब्रह्म और ईश्वर हैं।

भूलोक, द्यु लोक, अन्तरीक्षलोक, चन्द्रलोक, सूर्यलोक, ग्रहलोक, नक्षत्रलोक और ब्रह्मलोक आदि समस्त पदार्थ इन महान् पुरुषोंके अधीन हैं। यह महत्तत्त्वनामक व्यापक बुद्धि मेरा, तुम्हारा, उसका, चन्द्रलोकस्थ मनुष्यका, सूर्यलोकस्थ मनुष्यका, पशु पक्षीका ज्ञान है, इत्यादि क्रमसे उस उस देहमें परिच्छिन्न हो कर विराज करती है। हम लोग जिस प्रकार हस्तपदादिविशिष्ट देहके ऊपर 'मैं' और 'मेरा' यह अभिमान निक्षेप किये हुए हैं, उसी प्रकार हिरण्यगर्भ वा ईश्वर सम्पूर्ण बुद्धितत्त्वकी अन्तःकरण समष्टिके ऊपर 'मैं' और 'मेरा' आदि अभिमान निक्षेप किये हुए हैं।

हम लोगोंके जिस प्रकार नींद टूटने पर आंख खुलते न खुलते सहसा अज्ञानतमका अस्त और ज्ञानका उदय होता है, उसी प्रकार नितान्त दुर्लक्ष्य प्रलयरूप जगत् जब अपनी सुषुप्तावस्थासे उठा था, उसी समय प्रकृतिगर्भसे सूक्ष्म जगत्का अभिव्यञ्जक (अंकुरस्वरूप), तमोभङ्गकारक, सृष्टिसामर्थ्ययुक्त भगवान् स्वयम्भू हिरण्यगर्भ

वा महत्तत्त्वका आविर्भाव हुआ था। ज्यों ही जगत्‌की निद्रा टूटी, त्यों ही महान् वा बुद्धिका विकाश हुआ। उस समय जगत् अलक्ष्य रूपमें उसके गात्रमें अङ्कित हो गया। महत्तत्त्व वा बुद्धितत्त्वसे अहंतत्त्वका अविर्भाव होता है। अतः यही बुद्धितत्व जगत्‌का मूल है।

प्रकृति, महत् और सांख्यदर्शन देखो।

कालिकापुराणमें बुद्धिक्षय और बुद्धिका कारण इस प्रकार लिखा है—

"शोकः क्रोधश्च लोभश्च कामोमोहः परासुता।
ईर्षामानो विचिकित्सा कृपासूया जुगुप्सता॥
द्वादशैते बुद्धिनाशहेतवो मानसा मलाः॥"

(कालिकापु० १८ अ०)

शोक, क्रोध, लोभ, काम, मोह, ईर्षा, मान, विचिकित्सा, कृपा, असूया और जुगुप्सता ये १२ बुद्धिनाशके कारण और मानस-मल हैं।

२ एक प्रकारका छन्द। इसके चारों पादोंमें क्रमसे १६, १४, १४, १३ मात्राएं होती हैं। इसका दूसरा नाम लक्ष्मी भी है। ३ छप्पयका ४२वां भेद। ४ उपजाति वृत्त-का १४वां भेद। इसका दूसरा नाम सिद्धि भी है।

बुद्धिक (सं० पु०) नागराजभेद, एक नागका नाम।

बुद्धिकर शुक्ल—द्विविध जलाशयोत्सर्ग प्रमाणदर्शनके प्रणेता।

बुद्धिकामा (सं० स्त्री०) कुमारानुचर मातृभेद, कार्त्तिकेयकी एक मातृकाका नाम।

बुद्धिचक्षु (सं० पु०) प्रज्ञाचक्षु, धृतराष्ट्र।

बुद्धिचिन्तक (सं० त्रि०) बुद्धिपूर्वक चिन्ताकारी।

बुद्धिजीविन् (सं० त्रि०) बुद्ध्या जीवति जीव-णिनि। वह जो बुद्धिके द्वारा अपनी जीविकाका निर्वाह करता हो।

"भूतानां प्राणिनः श्रेष्ठाः प्राणिनां बुद्धिजीविनः।
बुद्धिमत्सु नराः श्रेष्ठा नरेषु ब्राह्मणाः स्मृताः॥"

(मनु १।९६)

बुद्धितत्त्व (सं० क्ली०) सांख्योक्त प्रकृतिका प्रथम विकार महत्तत्त्व। बुद्धि और प्रकृति शब्द देखो।

बुद्धिपर (सं० त्रि०) जो बुद्धिसे परे हो, जिस तक बुद्धि न पहुंच सके।

बुद्धिपुर (सं० क्ली०) १ बुद्धिस्थान। २ तञ्जोरके पश्चिममें अवस्थित एक शिवतीर्थ। इसका वर्त्तमान नाम पोड़-लूर है। ब्रह्माण्डपुराणके अन्तर्गत बुद्धिपुर माहात्म्यमें इसका माहात्म्य विस्तारसे लिखा है।

बुद्धिपूर्व (सं० त्रि०) इच्छाकृत, जो जान बूझ कर किया गया हो।

बुद्धिप्रकाश—एक संस्कृत ग्रन्थकार। सारमञ्जरीमें वनमालीने इनका उल्लेख किया है।

बुद्धिमत्ता (सं० स्त्री०) बुद्धिमान होनेका भाव, समझदारी।

बुद्धिमान् (सं० त्रि०) जिसकी बुद्धि बहुत प्रखर हो, जो बहुत समझदार हो।

बुद्धिमानी (हिं० स्त्री०) बुद्धिमत्ता देखो।

बुद्धिराज—वाञ्छाकल्पलतोपस्थानप्रयोगके प्रणेता। ब्रह्मराजके पुत्र।

बुद्धिलगोविन्द—तिथिनिर्णयसंग्रहके रचयिता।

बुद्धिलिङ्ग—सारस्वतगच्छके एक जैनाचार्य। ये नवम दशपूर्वी थे। पट्टावलीमें लिखा है, कि महावीर-निर्वाणके २९५ वर्षके बाद इन्होंने आचार्यपद ग्रहण किया था।

बुद्धिवंत (हिं० वि०) बुद्धिमान्, अक्लमंद।

बुद्धिवसवप्प नायक—चेदनूर-राजवंशके एक राजा। इन्होंने १७४० से १७५३ ई० तक राज्य किया था।

बुद्धिवर (सं० पु०) विक्रमादित्यके एक मन्त्री।

बुद्धिवृद्धि (सं० स्त्री०) १ ज्ञानवृद्धि। (पु०) २ शङ्कराचार्यके एक शिष्यका नाम।

बुद्धिशक्ति (सं० स्त्री०) मेधाशक्ति।

बुद्धिशाली (सं० त्रि०) बुद्धिमान्, समझदार।

बुद्धिशील (सं० त्रि०) बुद्धिमान्, बुद्धिशाली।

बुद्धिशुद्ध (सं० त्रि०) सद्‌बुद्धियुक्त, अच्छी समझवाला।

बुद्धिश्रीगर्भ (सं० पु०) बोधिसत्त्वभेद।

बुद्धिसहाय (सं० पु०) बुद्धौ बुद्ध्याकृते कार्ये सहायः। मन्त्री, वजीर।

बुद्धिसागर (सं० त्रि०) १ अगाधबुद्धियुक्त। (पु०) २ एक कोपकार।

बुद्धिसागर—एक जैनसूरि, वर्द्धमानसूरिके शिष्य। यह शायद १०८८ संवत्‌में विद्यमान थे। इनका बनाया हुआ श्रीबुद्धिसागर नामक एक व्याकरण मिलता है।

बुद्धिस्थ (सं० त्रि०) बुद्धिस्थित।
बुद्धिहत (सं० त्रि०) बुद्धिहीन, जिसमें बुद्धि न हो।
बुद्धिहा (सं० स्त्री०) बुद्धिको नष्ट करनेवाली, शराव।
बुद्धिहीन (सं० त्रि०) जिसे बुद्धि न हो, मूर्ख।
बुद्धीन्द्रिय (सं० क्ली०) बुद्ध्यात्मकं वा इन्द्रियं। ज्ञानेन्द्रिय।

"मनः कर्णौ तथा नेत्रे रसना त्वक् च नासिके।
बुद्धीन्द्रियमिति प्राहुः शब्दकोशविचक्षणाः॥"
(शब्दरत्ना०)

चक्षु, कर्ण, नासिका, जिह्वा, त्वक् और मन यही बुद्धीन्द्रिय है। इन्द्रिय ग्यारह हैं जिनमेंसे पांच ज्ञानेन्द्रिय और पांच कर्मेन्द्रिय तथा मन उभय-इन्द्रिय है। पञ्चज्ञानेन्द्रिय ही बुद्धीन्द्रिय हैं।

बुद्धैड़क (सं० पु०) चैत्य, वह स्थान जहां बुद्धदेवके अवयव और व्यवहार्य द्रव्यादि रखे हुए हैं।
बुद्बुद (सं० पु०) १ वर्त्तलाकार जलविकार, बुलबुला। २ गर्भस्थ अवयवविशेष।
बुध (सं० पु०) बुध्यते यः, बुध (इगुपधज्ञाप्रीकिरः कः। पा ३।१।१३५) पंडित। पर्याय—विद्वत्, विपश्चित्, दोषज्ञ, सत्, सुधी, कोविद, धीर, मनीषी, ज्ञ, प्राज्ञ, संख्यावत्, पंडित, कवि, धीमत्, सूरि, कृतिन्, कृष्टि, लब्धवर्ण, विचक्षण, दूरदर्शिन्, दीर्घदर्शिन्, विदग्ध, दूरदृश्, सूरिन्, वेदिन्, वृद्ध, बुद्ध, विधानग, प्रज्ञिल, व्यक्त, प्राप्तरूप, सुरूप, अभिरूप, बुधान, कवितावेदिन्, वप्तृ, विदित, कवि।
(अमर, शब्दर०, जटाधर)

"अत्युग्रं स्तुतिभिर्गुरुं प्रणतिभिर्मूर्खं कथाभिर्बुधम्।
विद्याभी रसिकं रसेन सकलं शीलेन कुर्याद्वशम्॥
(नवरत्न)

२ नवग्रहके अन्तगत चतुर्थग्रह। बृहस्पतिको भार्या ताराके गर्भसे चंद्रके द्वारा इसकी उत्पत्ति हुई है। विष्णुपुराणमें लिखा है—चंद्रने देवगुरु बृहस्पतिकी पत्नी ताराको हरण किया। अनन्तर बृहस्पतिकी प्रार्थनासे भगवान् ब्रह्माने चंद्रको बहु वार रोका, तथा समस्त देवर्षियोंने भी चंद्रसे याञ्चा की; किन्तु चंद्रने ताराका परित्याग नहीं किया। बृहस्पतिके प्रति द्वेषनिबंधन शुक्र भी उसके सहायक हो गये। इधर अङ्गिरासे विद्यालाभ कर भगवान् रुद्र भी बृहस्पतिकी सहायता करने लगे। शुक्र चंद्रके पक्षमें थे इस कारण प्रधान प्रधान दानव बुधके पक्षमें हो गये। बृहस्पति और चंद्रमें तुमुल संग्राम बंधा। इंद्र देवताओंके साथ बृहस्पतिकी सहायता करने लगे। उस समय भगवान् ब्रह्माने असुर और देवताओंको युद्धसे निवृत्त कर बृहस्पतिको तारा दिलवा दी। उस समय बृहस्पति ताराको गर्भिणी देख कहने लगे, 'हमारे क्षेत्रमें अन्य व्यक्तिके वीर्यसे उत्पन्न पुत्रका धारण करना तुम्हारे लिये उचित नहीं है।'

बृहस्पतिके यह वचन सुन ताराने ईषिकास्तम्भ (मूंजके तिनकोंका गुच्छा)में वह गर्भ गिरा दिया। निक्षेपमात्रसे संमुत्पन्न पुत्र अपने तेज द्वारा देवताओंको अभिभव करने लगा। इसको देख कर देवताओंने तारासे पूछा, 'तुम सत्य कहो, कि यह संतान किसकी है।' ताराने लज्जासे कुछ भी जवाब न दिया। उस समय इस कुमारने माताको शाप देनेमें उद्यत हो कहा, 'क्यों नहीं हमारे पिताका नाम कहती हो, मैं तुम्हें यही शाप देता हूं कि अन्य कोई भी तुम्हारे जैसो मन्थर-भाषिणी नहीं हो सकती।' उस समय तारा लज्जित हो बोली, 'यह पुत्र चंद्रका है।' चंद्रने यह वचन सुन पुत्रका आलिङ्गन किया और उससे कहा, कि तू अतिप्राज्ञ है इसलिये तेरा नाम बुध हुआ। (विष्णुपु० ४।७ अ०)

काशीखण्डमें लिखा है—बुधने पूर्वोक्त रूपसे जन्मधारण कर चंद्रकी अनुमतिसे काशीमें बुधेश्वर नामसे शिवलिङ्गकी प्रतिष्ठा की तथा बहुत वर्षों तक कठोर तपका अनुष्ठान किया। महादेवने उसकी तपस्यासे प्रसन्न हो उसे यह वर प्रदान किया, 'नक्षत्रलोकके ऊपर तुम्हारा लोक होगा तथा समस्त ग्रहमण्डलके बीचमें तुम श्रेष्ठरूपसे सम्मानित होगे। तुम्हारा प्रतिष्ठित शिवलिङ्ग आराधित हो कर सबको बुद्धि प्रदान करेंगे तथा अन्तमें बुद्धलोकमें उनकी गति होगी।
(काशीखंड १५ अ०)

मत्स्यपुराणमें एक विशेष बात देखनेमें आती है, कि बृहस्पतिके घरमें ताराने १ वर्ष बाद सन्तान पैदा की तथा वहां ही उसके संस्कारादि कार्य हुए।
(मत्स्यपुराण २४ अ०)

सभी पुराणोंमें ही बुद्धके जन्मका वृत्तान्त पूर्वोक्त-रूपसे लिखा है।

ग्रहोंके बीच बुध चौथा है। खगोल और इला देखो। इसका वर्ण काली दूबके समान, यह उत्तर दिग्बली, नपुंसक, शूद्रजाति, अथर्व वेदाभिज्ञ, रजोगुण-विशिष्ट, मिश्रितरस, मिथुनराशि, मरकत मणिप्रिय और मगधदेशका अधिपति है। इसके मित्र रवि और शुक्र तथा शत्रु चन्द्र हैं। बुधग्रहके एक एक राशिभोगका समय २८ दिन है। कालपुरुषका वाक्य बुध है। बुध बाल-स्वभाव तथा सकल शास्त्राभिज्ञ है। इसकी आकृति धनुषके समान है। ये ग्रामचर और पशुजातिका है। बुध-ग्रहके अवस्थानके अनुसार उत्पन्न बालकके शुभा-शुभादिका निर्णय किया जाता है।

बुधके नवांशमें उत्पन्न मनुष्य स्थूल शरीर, घोर-प्रकृति, रक्तलोचन, कालीदूबके समान श्यामवर्ण, सदय-हृदय, राजसेवानुरक्त, हृष्ट, दक्ष, स्वकुलतिलक और नाना वेशकारी होता है।

बुधके बारहवें अंशमें उत्पन्न मनुष्य शुचि, सम्यक्-रूप शास्त्रार्थवेत्ता, सुखी, दीर्घायु, प्रभु मित्रवर्गका आश्रय और प्राज्ञ होता है। जिस मनुष्यका जन्म बुद्धके तेरहवें राशिमें होता है, वह उत्कृष्ट विभव और सुखसम्पन्न, नाना प्रकार रत्नसमन्वित तथा दिन पर दिन उसके खजानेकी वृद्धि होती है।

मेषादि द्वादश राशिमें बुधके रहने पर निम्नलिखित फल होता है। मेषराशिमें बुधके रहनेसे विग्रहप्रिय, अस्त्रवेत्ता, अतिचतुर, प्रतारक, सर्वदा चिन्तान्वित, अतिकृश, सङ्गीत और नृत्यकर्मरत असत्यवादी, रति-प्रिय, लिपिवेत्ता, मिथ्यासाक्ष्यदाता, बहुभोजनशील, बहु-श्रमोत्पन्न धनधान्य विनाशकर, अनेक बन्धनभागी, रणमें अस्थिर और वंचक; वृषमें इसके दक्ष, दाम्भिक, दाता, ज्ञानापन्न, विज्ञानशास्त्र और वेदज्ञ, आराम, वस्त्रभूषण, और माल्यविधिवेत्ता, स्थिरप्रकृति, स्फीततायुक्त, स्त्री-धनयुक्त, प्रियवर्ण कथनशील, गांधर्व हास्यलीला और रतिशील; मिथुनमें रहनेसे शुभवेशधर, प्रियभाषी, विख्यात,मतिमान्, श्लाघान्वित, मानी, प्रसिद्ध घोड़ेकी तरह क्रीड़नशील, स्त्रीपुत्रविवादरत, श्रतिकाव्य और कलावेत्ता, कवि, स्वाधीन, प्रियतर, प्रमाणरत, अनेक कर्म-कर्त्ता, बहुपुत्रवान् और बहुमित्रसंपन्न; कर्कट राशिमें रहने पर प्राज्ञ, विदेशनिरत, स्त्रीरति और घरमें अतिशय आसक्तचित्त, चपल, बहुत प्रलापी, अपने बंधुओंका विद्वेषी और वादी, द्वेष्टा, चौरधनयुक्त, कुत्सितस्वभावी, सत्कवि तथा अपने वंशकी कीर्त्ति द्वारा प्रसिद्ध होता है।

सिंह राशिमें बुद्धिके रहने पर—ज्ञान तथा कलाहीन, लोकविख्यात, असत्यवादी, अल्प श्रवणशील, धनवान्, सत्वहीन, सहजहन्ता, स्त्री दुर्भाग्यहीन, पराधीन, जघन्य-कर्मकारी, स्त्रीकी तरह आकृतिवाला, सन्ततिहीन, अपने कुलके विरुद्ध काम करनेवाला तथा लोकप्रिय होता है।

तुला राशिमें बुधके रहने पर—सर्वदा शिल्पकर्म और विवादमें अभिरत, वाक्चातुर्य-सम्पन्न, अतिशय व्ययी, नाना दिशाओंमें वाणिज्य व्यवसायी, विद्वान्, अतिथि और गुरुभक्त, कृत्रिम व्यवहारकुशल, सम्मानित, देव और विप्रभक्त, शठतापरायण, बलहीन, शीघ्रकोप और परि-तोषयुक्त होता है।

वृश्चिक राशिमें बुधके रहने पर—श्रमशोक और अनर्थपरायण, अत्यन्त धर्म तथा लज्जाशील, मूर्ख, साधु-शीलहीन, लोभी, दुष्टाङ्गनारतिशील, निष्ठुर और दम्भ-निरत, अस्थिरकर्मकर, लोकविशिष्ट, अतिशय विरुद्ध-धर्मा, ऋणी और नीचान्नप्रिय होता है।

धनूराशिमें बुधके रहने पर—दाता, शास्त्र, श्रुत और वीर्यसंपन्न, मंत्रणाकुशल अथवा पुरोहित, कुलप्रधान, महाविभवसंपन्न, यज्ञ और अध्यापनारत, मेधावी, वाक्पटु, लिपि, लेखक और शब्दकुशल होता है।

मकरराशिमें बुधके रहने पर—नीच, मूर्ख, षण्डप्रकृति, परकर्मकर्त्ता, कलादिगुणहीन, नानादुखयुक्त, शीघ्र-विहारी, अतिशय शीलसंपन्न, खल, असत्य चेष्टाविशिष्ट, बंधुवियुक्त, असंयतात्मा, मलिन मूर्त्ति, भयचकित और निष्ठाहीन होता है।

कुम्भराशिमें बुधके रहने पर—वाक्य और बुद्धिकृत-कर्महीन, धर्मशून्य, लज्जारहित, आशाहीन शत्रुपरा-भूत, अशुचि, शीलतावर्जित, अज्ञ, अतिशय दुष्टा स्त्री-

युक्त, शत्रुयुक्त, भोगत्यक्त, सर्वदा विभागवेत्ता और क्लीवतुल्य होता है।

मीनराशिमें बुधके रहने पर—आचार और शौचनिरत, देवतानुरक्त, संततिविहीन, दरिद्र, सुन्दरीपत्नीयुक्त, साधुओंका प्रियपात्र, परिहासरत, शूच्यादि कर्मकुशल, परधनसंचयशील, रक्षाकर्ता और विख्यात होता है।

बुधके द्वादश राशिमें रहने पर ऊपर कहे हुए फल प्राप्त होते हैं। इसको छोड़ शत्रु वा मित्रके घरमें अवस्थान करने तथा उनके देखने पर भिन्न-रूप फल होता है। बुध यदि मङ्गलके घरमें रहे और रवि इसको देखे, तो सत्यवादी; सुखी, राजसत्कृत तथा बंधुओंका प्रीतिपात्र होता है। इस बुधको यदि चंद्र देखे तो युवतियोंके चित्तको हरनेवाला, अतिशय सेवक, अत्यन्त मलिन देह और गीतशील होता है।

यदि बुधको मङ्गल देखे, तो मिथ्याप्रिय, सुन्दर-काव्य और कलहयुक्त, पण्डित, प्रचुर धनवान्, भूमि-प्रिय और शूर होता है। वृहस्पतिके देखनेसे तो सुखो, केशसमूह अति सुंदर, प्रभूत धनवान्, आज्ञापक और पापात्मा होता है।

शुक्र यदि बुधको देखे, तो नृपकार्यकारी, सुभग, दुःखी और चातुर्ययुक्त तथाशनिश्चर यदि देखे तो अतिशय दुःखयुक्त, उग्रप्रकृतिसंपन्न, हिंसारत और नित्यकुलजन-विहीन होता है।

इस प्रकार मङ्गल, बुध, वृहस्पति आदि जिस ग्रहके अधिपति हैं बुध उनके ग्रहमें रह कर रवि आदि ग्रहके दृष्टियुक्त होने पर विभिन्न फल होता है। विस्तार होनेके भयसे यहां पर सभी लिखा नहीं गया।

यदि बुधग्रह पापग्रहके सहित होवे, तो पाप और शुभग्रहके साथ होवे तो शुभफल होता है। यदि किसीके साथ नहीं रहे, तो गृहस्वामी और दृष्टि संवन्ध द्वारा शुभाशुभ निर्णय करना होता है; किंतु बुध रविके साथ रहे तो दोष नहीं होता; उससे बुधादित्ययोग हुआ करता है। इस योगस्थलमें इसके नीचे रविका रहना आवश्यक है अर्थात् ये जिस नक्षत्रमें रहें, रवि उसी नक्षत्रके न्यून नक्षत्रमें रहेगा। बुधके ऊपरी भागमें रवि रहे, तो यह योग नहीं होगा। इस योगमें जन्म होनेसे चारुचक्षु विचक्षण, ज्ञानवान्, धन-वान् तथा राजमण्डलमें पूजित होता है। रविके दीप्तांशमें जो कोई ग्रह क्यों न रहे, वह ग्रह अस्तमित होगा। जो ग्रह अस्तमित होगा उसका फल अशुभ है। इसमें विशेषता यही है, कि बुधके अस्तमित होनेसे भी उतना अशुभ नहीं होता।

बुध—ज्योतिर्विद्या, मातुल, गणित, वैद्य, सौंदर्य और शिल्प विद्याकारक है। इसके अवस्थानको देख कर इन सबका निर्णय किया जाता है। इसके कन्याराशिके १५वें अंशमें रहनेसे उच्च तथा मीनके १५ अंशमें रहनेसे नीच स्थान होता है। उच्च स्थानमें ग्रहोंका वल अधिक और नीचस्थानमें हीनवल होता है। इसकी चक्रगतिका काल २१ दिन है।

बुधारिष्ट—जातवालककी कर्कटराशिमें यदि यह अव-स्थित करे और वह लग्नके ६ठें किंवा ८वें स्थानमें हो तथा चंद्र इसे देखे, तो जातवालककी चार वर्षमें मृत्यु होती है।

बुध यदि केन्द्रमें स्थित हो, तो बुद्धिमान्, विद्वान, माननीय, गुरुजनोंके प्रति भक्तिपरायण तथा सुशीला रमणीका पति होता है। इसके तुङ्गफलस्थलमें खनाके वचन इस प्रकार लिखे हैं—

"कन्याराशिका बुध यदि भाग्यसे मिले तो सौ वर्षकी आयु होती है। राजा उसे सम्मानपूर्वक बुलाता और कुटुम्ब उसके घर आ कर पूजा करता है। मातापिता श्रेष्ठ होते हैं। वह धर्म करनेवाला तीर्थगामी वन नाना सुखों-को भोगता है तथा स्थान स्थानमें सम्मान पाता है। (खना)

बुधका स्वरूप—ये शूद्र, श्यामवर्ण, शिरायुक्त शरीर, वस्त्रालाकार, नृत्यगीत आदिमें निपुण, कौतुहल-संपन्न, कोमलवाक्यविशिष्ट, त्रिदोषसंपन्न, रजोगुणा-वलम्वी, मध्यमाकृति, दाता, कभी शुष्कता कभी आर्द्रता करनेवाला, ग्राम, इष्टकगृह और श्मशानभूमि-चारी तथा पद्मपलाशलोचन हैं।

हस्ता, चित्रा, स्वाति और विशाखा इन चार नक्षत्रों-में जन्म होनेसे इसकी दशा होती है। इसकी दशाका भोगकाल १५ वर्ष है। इस दशामें मनुष्य उत्तमस्त्रीका

संभोग करता है तथा सव समय आमोद प्रमोदरत रहता है, नित्यधनागम और समस्त कामनायें सिद्ध होती हैं। अन्तर्दशा और प्रत्यन्तर्दशा आदिका फल विचार कर स्थिर करना होता है। ग्रहोंके अवस्थान-भेदसे स्थूलफलकी पृथकता होती है।

विंशोत्तरीय मतमें भी वुधकी दशा १७ वर्ष है। ६, १८, २७ नक्षत्रमें जन्म होने पर वुधकी दशा होती है। इस मतसे प्रत्यन्तर्दशा स्थिर कर फलका निर्णय किया जाता है। वुधकी पीड़ा—घूर्ण रोग, क्षिप्तता, शिरःपीड़ा, मृगिरोग, अस्फुटवाक्य, स्मृति और वाक्शक्तिहीनता, वाक्‌रोग, अजीर्ण, सर्दी और जिह्वारोग वुधके विरुद्ध होनेसे होता है।

गोचरमें निम्नलिखितके अनुसार शुभाशुभ जाना जाता है। वुध जन्ममें स्थित हो, तो वंधन, द्वितीयमें धनलाभ, तृतीयमें वध और शत्रुभय, चतुर्थमें अर्थलाभ, पंचममें असुख, षष्ठमें स्थानलाभ, सप्तममें वहु प्रकार शरीरपीड़ा, अष्टममें धनलाभ, नवममें पीड़ा, दशममें सुख, एकादशमें अर्थलाभ और द्वादशमें वित्तनाश होता है। ग्रहके विरुद्ध होने पर—उसका दान, जप, होम, मंत्र और कवच धारण करना उचित है।

वुधका दान—नील वस्त्र, स्वर्ण, कांसा, उरद, पीला फूल, अंगुर, हाथी दांत ये सव दक्षिणाके साथ दान करनेसे शुभ होता है।

ये मौलसरी पुष्प द्वारा पूजित होनेसे प्रसन्न होते हैं। इनका होम करनेमें अपामार्गका समिध करना होता है। इनकी दक्षिणा सोना है। मूलिकाधारणमें वरगद वृक्षकी जड़ धारण करनी चाहिये। रत्नधारणके स्थानमें पद्मरागमणि धारण करना विधेय है। इनका स्तोत्र—

"प्रियङ्गुकलिकाश्यामं रूपेणाप्रतिमं बुधं।
सौम्यं सर्व्वगुणोपेतं नमामि शशिनः सुतम्॥"

(नवग्रहस्तोत्र)

ग्रहयज्ञतत्त्वमें लिखा है—वुध मगधदेशोद्भव, अत्रि-शजात, द्व्यङ्गुलदीर्घ, पीतवर्ण, वैश्यजाति, चतुर्भुज, वामोर्द्ध क्रममें चक्र, वर, खड्ग, और गदाधारी, सूर्यास्य, सिंहवाहन और पीतवस्त्र, इसके अधिदेवता नारायण, प्रत्यधिदेवता विष्णु, धनिष्ठा नक्षत्रयुक्त द्वादशीमें उत्पन्न, ग्रामचारी, शुभग्रह, नीलवर्ण, सुवर्णद्रव्यस्वामी, वर्त्तुलाकृति, शिशु, इष्टकगृहसंचारी, वातपित्तकफात्मक, स्त्रीग्रह, प्रातःकालमें प्रवल, पक्षिस्वामी, सकल रसप्रिय है। (ग्रहयज्ञतत्त्व)

मतान्तरमें—सोम (चन्द्र) वुधका पिता और रोहिणी माता है। पुराणमें लिखा है—किसी समय चंद्र वृहस्पति पत्नी तारादेवीको हर कर ले गये। इस कारण एक माया युद्ध हुआ। चंद्रके पक्षसे दैत्य दानव तथा वृहस्पतिके पक्षसे इन्द्रादि देव लड़े। पृथ्वीकी प्रार्थनासे ब्रह्माने मध्यस्थ हो वुधसे तारादेवीके प्रत्यपर्णके लिये अनुरोध किया। इस समय तारादेवी गर्भवती थी। यह पुत्र किसका होगा, इसे जाननेके लिये ब्रह्माने तारासे पूछा। तारादेवीने उसको चन्द्रका पुत्र वतलाया। फिर किसीका मत है, कि वुधने वैवस्वत मनुकन्या इलादेवीके साथ विवाह किया था। इलादेवीके गर्भसे पुरूरवाका जन्म हुआ। वुधने ऋग्वेदके मंत्र प्रकाशित किये थे। ये सौम्य, रौहिणेय, प्रहसन, रोधन, तुङ्ग और श्यामाङ्ग आदि नामोंसे ये प्रसिद्ध हैं।

यह ग्रह (Mercury) सूर्यके अति सन्निकटमें अवस्थित है। इसका कक्षपथ पृथ्वी कक्षके मध्यभागमें सन्निवेशित होनेके कारण प्रति संध्यामें यह मानवको दृष्टिगोचर होता है। पृथ्वीकी अपेक्षा इसका आयतन छोटा है। व्यास प्रायः ३१४० मील है। सूर्यकी तुलनामें इसका परिमाण नियुतके दो अंशमात्र है। पृथ्वीकी अपेक्षा इसका उत्ताप और आलोक ७ गुणा अधिक है। स्वीय कक्षपक्षमें भ्रमण करते करते यह ग्रह कभी कभी सूर्यगोलोकके मध्यभागमें आ जाता है। इस समय सूर्यवक्षमें एक गोलाकार दाग देखा जाता है जिसे अंगरेजोमें *Transit of mercury* कहते हैं। १८६१, १८६८ १८७८, १८८१, १८९१ और १८९४ ई०में पृथ्वी-वासियोंने सूर्यवक्ष पर इस प्रकार गोल विंदु देखा था।

२ सूर्यवंशीय राजविशेष। ३ कल्पयुक्तिके प्रणेता एक कवि। ४ वेगवान् राजाका पुत्र। (भाग० ९।२।३०) ५ मगधके एक राजा। ये ३६०० कलिसंवतमें विद्यमान थे। (कुमारिकाखण्ड) वुधगुप्त देखो।

बुधकौशिक—रामरक्षास्तोत्रके प्रणेता।

बुधगुप्त—गुप्तवंशीय एक राजा। १६५ सम्वत्में उत्कीर्ण इनकी स्तम्भलिपि पाई गई है।

बुधचक्र (सं० क्ली०) बुधस्य ग्रहविशेषस्य चक्रं। बुध-ग्रहके अपनी राशिसे अन्यराशिमें सञ्चारके समय सत्ताईस नक्षत्रोंका शुभाशुभ ज्ञापकचक्र।

बुधचार (सं० पु०) बुधस्य बुधग्रहस्य चारः संचारः। बुधग्रहका शुभाशुभ ज्ञापक संचार। बृहत्संहितामें लिखा है—चन्द्रपुत्र बुध उत्पातशून्य हो कभी भी उदित नहीं होते। इनके उदयमें धान्यादि मूल्यके ह्रास वा वृद्धिके कारण अकसर जल, अग्नि अथवा तूफान हुआ करता है। श्रवणा, धनिष्ठा, रोहिणी, मृगशिरा अथवा उत्तराषाढ़ा नक्षत्रोंको मर्दित कर यदि बुध विचरण करे, तो रोगभय तथा अनावृष्टि होती है। यह ग्रह आर्द्रासे लगायत मघा पर्यन्त जिस किसी नक्षत्रका आश्रय करे, उसीसे शस्त्रपात, क्षुधा, भय, रोग, अनावृष्टि तथा संताप द्वारा प्रजा अन्नपीड़ित होगी। हस्तासे ज्येष्ठा पर्यंत ६ नक्षत्रोंमें इसके विचरण करने पर गोपीड़ा, तैलादि रसोंकी मूल्यवृद्धि और नाना प्रकारके खाद्यद्रव्योंसे पृथिवी पूर्ण हो जाती है। उत्तर फाल्गुनी, कृत्तिका, उत्तर भाद्रपद तथा भरणी नक्षत्रमें इस ग्रहके विचरण करने पर प्राणियोंका धातुक्षय होने लगता है। यह यदि अश्विनी, शतभिषा, मूला, तथा रेवती नक्षत्रोंको अभिमर्दित कर विचरें, तो पण्य, वैद्य, नौकाजीवी, जलपदार्थ, तथा अश्वका उपाघात होता है। पूर्वफल्गुनी, पूर्वाषाढ़ा और पूर्व भाद्रपद इन तीन नक्षत्रोंमें किसी नक्षत्रको अभिमर्दित कर विचरण करनेसे क्षुधा, शस्त्र, तस्कर, रोग तथा भय उपस्थित होता है।

पराशरने पहिले बुधकी सात प्रकारकी गति निर्दिष्ट की है। यथा—१ प्राकृत, २ विमिश्र, ३ संक्षिप्त, ४ तीक्ष्ण, ५ योगान्त, ६ घोर, ७ पाप।

स्वाती, भरणी, रोहिणी तथा कृत्तिका नक्षत्रमें इस नक्षत्रके रहनेसे प्राकृतगति होती है। मृगशिरा, आर्द्रा, मघा और अश्लेषा नक्षत्रस्थ बुधकी गतिका नाम मिश्र; पुष्या, पुनर्वसु, पूर्वफल्गुनी और उत्तर फल्गुनीकी गतिका नाम संक्षिप्त पूर्वभाद्रपद, उत्तरभाद्रपद, ज्येष्ठा, अश्विनी और रेवतीकी गतिका नाम तीक्ष्ण है। मूला, पूर्वाषाढ़ा और उत्तराषाढ़ा नक्षत्रमें जो इसकी गति होती है, वह योगान्तिक है। श्रवणा, चित्रा, धनिष्ठा और शतभिषा नक्षत्रमें जो गति होती है उसे घोर तथा हस्ता, अनुराधा अथवा ज्येष्ठा नक्षत्रकी गतिको पाप कहते हैं। यही ७ प्रकार बुधकी गति है। पराशरने उदयास्त दिवस द्वारा इसका गतिलक्षण भी निरूपित किया है। इसकी प्राकृत गति ४० दिन, मिश्र ३० दिन, संक्षिप्त २२ दिन, तीक्ष्ण १८ दिन, योगान्त ६ दिन और पापगति ११ दिन होती है।

जिस समय इसकी प्राकृत गति होती है, उस समय आरोग्य, वृष्टि, शस्यवृद्धि तथा मंगल होता है। संक्षिप्त तथा मिश्रगतिसे मिश्रफल होता और अन्य गतियोंसे विपरीत फल होता है।

देवलके मतमें बुधकी गति चार प्रकार है—ऋजु, अतिवक्र, वक्र और विकल। इन चार गतिके विद्यमानका काल—३० दिन, २४ दिन, १२ दिन तथा ६ दिनमात्र है। ऋजुगतिसे प्रजाका हित होता है, अतिवक्रगतिसे अर्थनाश, वक्रगतिसे शत्रुभय तथा विकलगतिसे भय और रोग होता है। पौष, आषाढ़, श्रावण, वैशाख अथवा माघ मासमें यदि ये दीखें, तो जगत्में भय किन्तु अस्तमित हो, तो जगत्में शुभ होता है। इसका कार्त्तिक अथवा आश्विन मासमें दृष्टिगोचर होनेसे शस्त्र, चोर, अग्नि, रोग तथा जलका भय होता है। बुधचारज्ञ पण्डितोंका कहना है, कि इसके अस्त समयमें सब नगर रुद्ध तथा उदयकालमें फिर वही नगर मुक्त हो जाते हैं। कोई कोई कहते हैं, कि यदि पश्चिम दिशामें इनका उदय हो, तो उन सब नगरोंमें शुभ होता है। इनका वर्ण सोने या सुग्गे अथवा शस्यकमणिके समान और स्निग्ध होता है तथा स्वयं बृहत्काय होते हैं, उस समय सबोंका मंगल अन्यथा अशुभ ही होता है।

(बृहत्संहिता बुधचार ७ अ०)

रवि प्रभृति ६ ग्रहोंमें नियमानुसार एक एक ग्रह वर्षपति होते हैं। इनमें इसके वर्षपति होने पर माया, इन्द्रजाल, गांधर्व, लेख्य, गणित और अस्त्रजाननेवालोंकी वृद्धि होती है। राजा लोग प्रजाकी भलाईके लिये

माङ्गलिक कार्योंका अनुष्ठान करते हैं। जगत्में वार्त्ता और त्रयी शास्त्र अविकल रहते हैं। मनुकी न्यायदण्ड-नीति अच्छी तरह विराजित होती है। बुध अपने वर्ष अथवा मासमें पृथ्वी पर हास्यज्ञ, दूत, कवि, वालक, नपुंसक, युक्तिज्ञ, सेतु, जल और पर्वतनिवासियोंको तृप्ति तथा पृथ्वीको औषधियोंसे भरपूर कर देते हैं।

(बृहत्सं० १९।१०-१२)

बुधजामी (हिं० पु०) चन्द्रमा, बुधके पिता।

बुधतात (सं० पु०) बुधस्य ग्रहविशेषस्य तातः पिता। चन्द्रमा।

बुधदिन (सं० क्ली०) बुधवार देखो।

बुधदैवज्ञ—वर्षप्रदीपके प्रणेता, कृष्णके पुत्र।

बुधपुर—मानभूम जिलेके अन्तर्गत एक प्राचीन ग्राम। यह अक्षा० २१° ५८' १५" उ० और देशा० ८६° ४४' पू०के मध्य कसाई नदीके किनारे अवस्थित है। यहाँ तथा यहांसे २ कोस उत्तर पाकबीड़ा ग्राममें अनेक जैन-मन्दिरों और तीर्थङ्करादियोंकी प्रतिमूर्त्तियां भग्नावस्थामें इधर उधर पड़ी नजर आती हैं। बुद्धपुर देखो।

बुधरत्न (सं० क्ली०) बुधप्रियं रत्नं शाकपार्थिवादित्वात् समासः। मरकतमणि।

बुधवार (सं० पु०) बुधस्य वारः। बुधग्रहका दिन, सात वारोंमेंसे एक वार। इस वारमें शुभ कार्यादि किये जाते हैं। इस दिन उत्तर और दक्षिणकी ओर यात्रा नहीं करनी चाहिये। इस वारमें जन्म लेनेसे जात वालक गुणी, क्रियाकुशल, मतिमान्, विनीत, मृदुस्वभाव और कमनीयमूर्त्तिका होता है।

"गुणी गुणज्ञः कुशलः क्रियादौ विलासशीलो मतिमान विनीतः।
मृदुस्वभावः कमनीयमूर्त्ति बुधस्य वारे प्रभवो मनुष्यः॥"

(कोष्ठिप्र०)

बुधसानु (सं० पु०) १ पर्ण। २ यज्ञपुरुष।

बुधसिंहशर्मा—मूलतानवासी एक ज्योतिर्विद। १७६६ ई० में इन्होंने ग्रहणदर्श और प्रबोधिनी नामक उसकी टीका लिखी। वे यशोवन्तके पुत्र और गोपालके पौत्र थे।

बुधसुत (सं० पु०) बुधस्य सुतः पुत्रः। १ पुरूरवा। बुधस्य बुद्धस्य पुत्रः। २ बुद्धके पुत्र राहुल।

बुधहाटा—खुलना जिलेका एक प्रसिद्ध ग्राम। यह अक्षा० २२° ३२' उ० तथा देशा० ८९° १२' पू०के मध्य अवस्थित है। यहां सब प्रकारके द्रव्योंका वाणिज्य होता है। यहांके भग्नप्राय १२ शिवालय बहुत प्रसिद्ध हैं। प्रतिवर्ष रासयात्रा, दुर्गा और कालीपूजाके उपलक्षमें यहां बड़ा मेला लगता है।

बुधा (सं० स्त्री०) बोधयति रोगिणं वा बुध (इगुपधेति। पा। ३।१।१३५) इति कस्ततष्टाप्। जटामांसी।

बुधान (सं० पु०) बोधयति बुध्यते वा बुध बोधने (युधिबुधि दृशः किच्च। उण् २।९०) इति आनच् किच्च। १ गुरु। २ विज्ञ। ३ ब्रह्मवादी। ४ प्रियवादी। ५ कवि।

बुधाना—१ युक्तप्रदेशके मुजफ्फरनगर जिलेकी तहसील। यह अक्षा० २९° १२' से २९° २६' उ० तथा देशा० ७७° ६' से ७७° ४२' पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण २८७ वर्गमील और जनसंख्या दो लाखके करीब है। इसमें कन्धला और बुधाना नामके २ शहर तथा १४६ ग्राम लगते हैं।

२ उक्त तहसीलका एक नगर। यह अक्षा० २९° १७' उ० और देशा० ७७° २९' पू० मुजफ्फर नगरसे १६ मील दक्षिण-पश्चिममें अवस्थित है। जनसंख्या प्रायः ६६६४ है। १८५७ ई०के गदरमें विद्रोहियोंने इस पर अधिकार जमाया, पर पीछे अङ्गरेजोंने उनका दमन कर इसे पुनरुद्धार किया।

बुधाष्टमी (सं० स्त्री०) बुधवारयुता अष्टमी, शाक पार्थिवादित्वात्समासः। व्रतविशेष, बुधवारमें अष्टमी होने पर यह व्रत किया जाता है। चैत्र, पौष तथा हरिशयन-कालको छोड़ अन्य मासोंमें इस व्रतको करना चाहिये। निंदितकालमें यदि बुधाष्टमी की जाय, तो पुराकृत पुण्यका विनाश होता है।

"पतङ्गे मकरे याते देवे जाग्रति माधवे।
बुधाष्टमीं प्रकुर्वीत वर्जयित्वा तु चैत्रकम्॥
प्रसुप्ते तु जगन्नाथे सन्ध्याकाले मधौ तथा।
बुधाष्टमीं न कुर्वीत कृत्वा हन्ति पुराकृतम्॥"

(व्रतकालविवेक)

कालशुद्धिमें शुक्ल वा कृष्णपक्षकी अष्टमीमें बुधवार

हो, तो इस व्रतका अनुष्ठान करना चाहिये। इस व्रतके करनेसे दुःख नहीं होता।

हेमाद्रिके व्रतखंड भविष्योत्तरमें लिखा है—सत्ययुगमें इल नामक एक राजा थे। वे मंत्री आदिके साथ महादेवके शापसे हिमालय पर गये। जिस समय उन्होंने वहांकी भूमि पर पैर रखा उसी समय उनका स्त्रीरूप हो गया। बादमें घूमते घूमते वे उमाके वनमें पहुंचे, वहां बुध इनको देख अपने घर ले आये। यह दिन अष्टमीयुक्त बुधवार था। इस कारण बुधवारयुक्त अष्टमी श्रेष्ठ मानी गई है। अतएव इस दिनका नाम बुधाष्टमी पड़ा। बुधके इस स्त्रीसे एक पुत्र हुआ जिसका नाम पुरूरवा रखा गया। ये ही चंद्रवंशके आदि पुरुष हैं। बुधाष्टमीके दिन व्रत करनेसे सब प्रकारके अभीष्ट सिद्ध होते हैं। बुधवारमें अष्टमी सम्पूर्ण होनेसे यह व्रत होता है, खण्डा तिथिमें नहीं होता।

इस व्रतको आरम्भ करके आठवें वर्षमें प्रतिष्ठा करनी होती है। गरुड़पुराणमें लिखा है, कि जलाशयमें बुधकी यथाशक्ति पूजा कर ब्राह्मणको दक्षिणा देनी चाहिये। बादमें बुधाष्टमी व्रतकी कथा सुन पारण करना होता है।

कथाका तात्पर्य यह है,—पुराकालमें पाटलीपुत्रमें वीर नामके एक श्रेष्ठ ब्राह्मण रहते थे। उनकी पत्नीका नाम रम्भा, पुत्रका कौशिक और कन्याका नाम विजया था तथा उनके धनपाल नामक एक बैल था। एक दिन ब्राह्मण इनके साथ गङ्गा किनारे गये। वहां एक गोपालकने बैलको चुरा लिया। गङ्गासे निकल जब ब्राह्मणने वृषको नहीं देखा, तब वे बड़े दुःखित हुए और बैल ढूंढनेके लिये वनमें घूमने लगे। विजया पिपासातुर हो माताके साथ सरोवर किनारे गयी। वहां दिव्य स्त्रियां इस बुधाष्टमीव्रतका आचरण कर रही थीं। उनको इस व्रतका आचरण करते देख इन्होंने भी व्रतका अनुष्ठान कर दिया। व्रतके फलसे विजयाका यमके साथ विवाह हुआ और कौशिक अयोध्या नगरके राजा हुये।

हेमाद्रिके व्रतखण्ड और व्रतपद्धतिमें इस व्रतका विशेष विवरण लिखा है। विस्तार हो जानेके भयसे यहां पर सविस्तार नहीं लिखा गया।

बुधिकोट—महिसुरके कोलर जिलान्तर्गत एक ग्राम। यह अक्षा० १२° ५४´ तथा देशा० ७८° ८´ पू०के मध्य विस्तृत है। जनसंख्या प्रायः १४६० है। यहां १७२२ ई०में दाक्षिणात्य-विजयी हैदर अली खांका जन्म हुआ था। उस समय उनके पिता फते महम्मद खाँ शिराके नवाबके अधीन फौजदारका काम करते थे।

बुधित (सं० त्रि०) बुध्यते स्म सेट् बुध-क्त। १ बुद्ध। २ ज्ञात।

बुधियाल—१ महिसुरराज्यके चित्तल दुर्ग जिलान्तर्गत एक भूसम्पत्ति। भूपरिमाण ३६६ वर्गमील है।

२ उक्त तालुकका विचार-सदर। यह अक्षा० १३° ३६´ उ० तथा देशा० ७६° २५´ पू० होसदुर्ग शहरसे १६ मील दक्षिण-पूर्वमें अवस्थित है। जनसंख्या प्रायः ११९८ है। १५वीं शताब्दीमें विजयनगरके राजकर्मचारियों द्वारा निर्मित यहांके दुर्गमें १६वीं सदीकी बहुत-सी शिलालिपियां देखी जाती हैं। मुसलमान और मराठोंके विप्लवसे यह दुर्ग तहस नहस हो गया है। १८३० ई०के गदरमें राजविद्रोहियोंने इस दुर्गमें आश्रय लिया था।

बुधिल (सं० त्रि०) बुध्यते यः बुध-किलच्। विद्वान्।

बुध्न (सं० पु०) बुध्नातीति बन्ध बन्धने (बन्धेर्ब्रधिबुधी च। उण् ३।५) इति नक् बुधादेशश्च। १ वृक्षमूल। २ मूलदेश ३ अग्रभाग।

बुध्नवत् (सं० त्रि०) बुध्न-मतुप् मस्य वः। मूलयुक्त।

बुध्निय (सं० त्रि०) गार्हपत्य अग्नि, बुध्न्य।

बुध्न्य (सं० पु०) बुध्ने मूले भवः यत्। १ गार्हपत्य अग्नि। २ अन्तरिक्षभव। ३ रुद्रभेद।

बुनना (हिं० क्रि०) १ जुलाहोंकी वह क्रिया जिससे वे सूतों या तारोंकी सहायतासे कपड़ा तैयार करते हैं। विशेष विवरण 'वयन-विद्या' शब्दमें देखो। २ बहुतसे तारों आदिकी सहायतासे उक्त क्रियासे अथवा उससे मिलती जुलती किसी और क्रियासे कोई चीज तैयार करना। ३ बहुतसे सीधे और बड़े सूतोंको मिला कर उनको कुछके ऊपर और कुछके नीचेसे निकाल कर अथवा उसमें गोंद आदि दे कर कोई चीज तैयार करना।

बुना—पूर्व और मध्य बङ्गवासी एक जातिका नाम। इस जातिकी गिनती धांगड़में की गई है।

बुनाई (हिं० स्त्री०) १ बुननेकी क्रिया या भाव, बुनावट। २ बुननेकी मजदूरी।

बुनावट (हिं० स्त्री०) बुननेमें सूतोंकी मिलावटका ढंग, सूतोंके संयोगका प्रकार।

बुनियाद (फा० स्त्री०) १ मूल, जड़। २ वास्तविकता, असलियत।

बुनियाददासी—वैष्णव सम्प्रदायविशेष। ये लोग निर्गुण उपासक हैं। इस कारण अपने भजनालयमें किसी देव प्रतिमूर्त्तिको रख कर उसकी अर्चना नहीं करते। रामात् निमात् आदि साम्प्रदायिक वैष्णव पाषण्ड बतला कर इनकी घृणा करते हैं। यहां तक कि, इनका अङ्गस्पर्श करनेसे ये लोग अपनेको अशुचि और पापग्रस्त समझते हैं।

बुनेरा—राजपूतानेके उदयपुर राज्यान्तर्गत एक नगर। यह अक्षा० २५° ३०´ उ० तथा देशा० ७४° ४१´ पू० उदयपुर शहरसे ६० मील उत्तर-पूर्वमें अवस्थित है। जनसंख्या ४२५१ है। यहांके सामन्तराज उदयपुरराजके प्रधान सहाय हैं। नगर प्राचीर-वेष्टित और दुर्ग द्वारा सुरक्षित है। इस राज्यमें १ शहर और १११ ग्राम लगते हैं। राजस्व ८८०००) रु० है जिनमेंसे ४६००) दरबारमें करस्वरूप देना पड़ता है। १५६७ ई०को यह अकबरके अधिकारमें था। १७वीं शताब्दीमें उदयपुरके राणा राजसिंह १मके छोटे लड़के भीमसिंह औरङ्गजेबके दरबारमें गये और उन्हें हर हालतसे प्रसन्न कर बनेरा नगर जागीर स्वरूप प्राप्त किया। औरङ्गजेबने उन्हें राजाकी उपाधि भी दी। तभीसे यह उपाधि उनके वंशधरोंमें आज तक चली आ रही है। यहां १७२६ ई०में एक दुर्ग बनाया गया था जिसे तोस वर्षके बाद ही शाहपुरके राजाने अपने अधीन कर लिया। परन्तु कुछ समय बाद ही २य राणा-राजसिंहने इसके यथार्थ अधिकारीको लौटा दिया।

बुन्द—पञ्जाब प्रदेशके भिन्द राज्यके अन्तर्गत एक नगर।

बुन्दी—राजपूतानेके अन्तर्गत एक सामन्त राज्य। बूँदी देखो।

बुन्दारै—मन्द्राज प्रदेशके वीजागापाटम जिलेका एक प्रसिद्ध ग्राम। यह कन्ध जातिकी आवासभूमि है। पहले यहां नरबलि बे-रोक-टोक प्रचलित थी। उस उपलक्ष्यमें जो उत्सव होता था, उसे मेरिया वा जुम्मा उत्सव कहते थे। १८४६ ई०के पहले यह पाप अभिनय बड़ी धूमधामसे किया जाता था। ग्रामके पूर्व, पश्चिम और मध्यस्थलमें एक एक नरदेह सूर्यके उद्देश्यसे चढ़ाई जाती थी। इनके उपास्य देवताका नाम माणिकसोरा था।

बुन्दाला—पञ्जाब प्रदेशके अमृतसर जिलान्तर्गत एक नगर। यह नगर अक्षा० ३१° ३२´ उ० तथा देशा० ७४° ५´ पू० अमृतसरसे ११ मील दक्षिण-पूर्वमें अवस्थित है। जनसंख्या ४५०० है। यहां सिख जातिकी संख्या ही अधिक है।

बुन्देलखण्ड—आर्यावर्त्तके अन्तर्गत एक देशविभाग। यह अक्षा० २३° ५२´ से २६° २६´ उ० तथा देशा० ७७° ५२´ से ८१° ३६´ पू०के मध्य विस्तृत है। इसके उत्तरमें यमुना नदी, पश्चिम और उत्तरमें चम्बल नदी, दक्षिणमें जब्बलपुर नदी और सागरविभाग, दक्षिण तथा पूर्वमें बघेलखण्ड (रेवा) तथा मिर्जापुर पर्वतमाला है। हमीरपुर, जलौन, झांसी, ललितपुर और बान्दा नामक अङ्गरेजाधिकृत जिला, ओर्च्छा, दतिया, समथर, अजयगढ़, अलीपुर और धुरवाई, विजनातोरी, फतेपुर, पहाड़ी, बाङ्का आदि अष्टभाया जागीर; बरौंधा, रावणी, बेरी, विहट, विजावर, चरखारी और कालिञ्जरका चौबीराज्य—पालदेव, पहरा, तरावन, भाईसौंदा, कम्भा, रजौला, छत्तरपुर, गड़ौली, गौरीहर, जासो, जिग्नी, खनियाधाना, लुघासी, नैगवान, रिवाई, पन्ना, बिलहरी और सरिला आदि सामन्तराज्य इसके अन्तर्भुक्त हैं।

यह राज्यखण्ड विन्ध्याचल, पन्ना और बन्देरकी पर्वतमालासे समाच्छन्न है। इसी कारण इसका अधिकांश स्थान अधित्यकामय है। यहाँकी प्रधान नदियां सिन्धु, पहुज, वेतवा, धासन, वीरमा, केन, बागई, पायस्वुनी और तोन्स हैं जो यमुना नदीमें गिरती हैं। यहां हीरे, लोहे, कोयले और तांबेकी खान जहां तहां दिखाई देती हैं।

स्थानीय प्रवाद है, कि गोंड लोगोंने सबसे पहले यहां आ कर उपनिवेश बसाया। पीछे चन्देलवंशीय राजपूतोंने गोंड़ राजाओंको परास्त कर अपनी प्रतिष्ठा जमाई। चन्देलराजाओंके अधिकारके समय यहां सैकड़ों शिल्पकार्ययुक्त देवमन्दिर और जलाशय आदि बनाये गये

थे। अभी उनका केवल भग्नावशेष मात्र इधर उधर विक्षिप्त देखा जाता है। अलावा इसके हमीरपुर जिलेको जलप्रणाली, कालिञ्जर और अजयगढ़का विख्यात दुर्ग तथा खजुराहु और महोवाका प्रसिद्ध मन्दिर आज भी उनकी प्राचीन कीर्त्तिकी घोषणा करती है।

फिरिस्ताके वर्णनसे मालूम होता है, कि १०२१ ई०में गजनीपति महमूदके आक्रमणके समय चन्देल राजाने ३६ हजार अश्वारोही, ४५ हजार पदाति और ६४० हाथी ले कर उनका मुकाबला किया था। चन्देल-वंशके प्रतिष्ठाता राजा चन्द्रवर्मासे निम्न २०वीं पीढ़ीमें राजा परमालदेव ११८३ ई०में दिल्लीके चौहानपति पृथ्वीराजसे परास्त हुए थे। परमालदेवके अधःपतनके बाद राज्यमें अराजकता फैल गई और मुसलमानोंके बार बार आक्रमणसे यह स्थान श्रीभ्रष्ट हो गया। आखिर १४वीं शताब्दीमें गड़वारवंशीय राजपूत जातिकी चन्देलशाखा इस प्रदेशमें आ कर यमुनाके किनारे वस गई। उन्होंने धीरे धीरे कालिञ्जर और कालपी नगर अधिकार किया और महोनीमें राजधानी बसाई।

१५३१ ई०में राजा रुद्रप्रतापने ओर्च्छा नगर स्थापन किया। इनके शासनकालमें बुन्देलाराज्यकी सीमा बहुत दूर तक फैल गई थी। पीछे बुन्देला-प्रभाव यमुनाके पश्चिम प्रदेशमें भी फैला। तभीसे वह स्थान बुन्देलखण्ड कहलाने लगा।

इसके कुछ दिन बाद ही ओर्च्छाराज रुद्रप्रतापके प्रपौत्र राजा वीरसिंहदेवने मुसलमानी आक्रमणसे भय खा कर मुगल-बादशाहकी अधीनता स्वीकार की। किंतु चम्पतराय नामक एक चन्देला-सरदारने वेतवा-तीरवर्त्ती पार्वत्यप्रदेशमें रह कर मुसलमानी सेनाको नाकोदम लाया था।

ख्यातनामा बुन्देलाराज छत्रशाल उक्त महापुरुषके सुपुत्र थे। उन्होंने पितृपदका अनुसरण करके अपने जीवनको सार्थक बनाया था। उन्होंने बुन्देलागणसे प्रधान सरदार और सेनापति नियुक्त होनेके बाद अपने दलबलके साथ पन्नाकी यात्रा की और वहांके पहाड़ी दुर्गों पर अधिकार जमाया। इस प्रदेशमें जहां जहां उनके शत्रु रहते थे उन सब स्थानोंको उन्होंने अग्निसे जला दिया। आखिर कालिञ्जरका दुर्ग जीत कर उन्होंने वहां अपना राज्य बसाया। १७३४ ई०में फरुखावादके पठान नवाब अहमद खाँ बङ्गसने उन पर धावा बोल दिया। इस बार शत्रुके हाथसे विशेष कष्ट पा कर वे मराठोंकी सहायता लेनेको वाध्य हुए। महाराष्ट्र-पेशवा बाजीराव सुयोग पा कर बुन्देलखण्डमें अपनी गोटी जमानेके लिये दलवलके साथ आये और अहमद खाँको परास्त कर बुन्देलाराजको विपद्से उद्धार किया। इस कार्यके पारितोषिक स्वरूप पेशवाको बुन्देलखण्डके पूर्व-भागका कुछ अंश और एक दुर्ग मिला। पीछे उन्होंने काशीके एक ब्राह्मण पण्डितको वह स्थान दान कर दिया। अंगरेजोंके दखलमें आनेके पहले तक वह स्थान उन्हीं काशीपण्डित ब्राह्मणके वंशधरोंके शासनाधीन था।

इसके बाद पेशवाने ओर्च्छाराजसे झांसी छीन लिया। उन्होंने जिस सूबेदारके हाथ इस स्थानका कार्यभार सौंपा था, उन्हींके वंशधरोंने कुछ समय तक यहांका राज्यकार्य चलाया था। राजा छत्रशालके वंशधरगण सामान्य सम्पत्तिके उत्तराधिकारी हो कर भी भिन्न भिन्न भागोंमें इस स्थानका शासन करते थे। किन्तु इस अधःपतनशील राजवंशके राजकर्मचारियोंके विद्रोहसे महा विशृङ्खलता उपस्थित हुई।

इस अराजकता और अन्तर्विप्लवजनित छोटी मोटी लड़ाइयोंसे बुन्देलाराज्यको चौपट लगते देख बाजीरावके पौत्र अली बाहादुरने (१) तलवार उठाई और घमसान युद्धके बाद इस प्रदेशका कुछ अंश अधिकार कर लिया। १८०२ ई०में कालिञ्जर-दुर्गमें घेरा डालनेके समय अलीकी मृत्यु हुई। पीछे पूना राजदरबारकी अनुमतिसे अलीके पुत्र समशेर बहादुरकी तरफसे हिम्मत् बहादुर राजकार्यकी देखरेख करने लगे।

इधर महाराष्ट्रीय सामन्त राजाओंके विद्रोह और वसाईके सन्धिपत्रके गोलमालसे अंगरेजराज बुन्देलखण्डके कुछ अंशों पर अधिकार कर बैठे। इस पर असन्तुष्ट हो सिन्दिया, होलकर और वेरारपति तथा समशेर

(१) ये पेशवा बाजीरावकी मुसलमान रमणीसे उत्पन्न हुए थे।

द्वारा परिचालित महाराष्ट्र-सैन्यने अंगरेजोंके विरुद्ध अस्त्रधारण किया। राजा हिम्मत वहादुरने भविष्यमें अपनी स्वार्थहानि देख अंगरेजोंका पक्ष लिया और इस प्रदेशका कुछ अंश फिरसे उन्हें सपुर्द किया। इस समयके वन्दोवस्तके अनुसार अंगरेज लोग राजा हिम्मतको सैन्यरक्षाके लिये २० लाख रुपयेकी सम्पत्ति और सहायताके लिये जागीर देनेको राजी हुए। अंगरेजी सेना बुन्देलखण्डमें घुसी और मौका पा कर समशेरको परास्त किया। हिम्मतकी मृत्युके वाद उनकी सम्पत्ति अंगरेजराजने छीन ली। अव उनके वंशधरगण केवलमात्र जागीर और वार्षिक वृत्तिका भोग करने लगे। समशेर वहादुरने अंगरेजराजसे दी गई ४ लाख रुपयेकी वृत्तिसे संतुष्ट हो वन्दामें रहनेकी अनुमति पाई थी। १८२३ ई०में यहां उनकी मृत्युके वाद उनके भाई जुलफिकर अली उनकी सम्पत्तिके अधिकारी हुए।

जुलफिकरके वाद अली वहादुरने उस सम्पत्तिका भोग किया। परन्तु १८५७ ई०के गदरमें उन्हें शामिल पाये जानेके कारण उनकी सम्पत्ति छीन ली गई और वे इन्दौर राजधानीमें नजर वंद किये गये। १८७३ ई०में उनकी मृत्यु होने पर उनके वंशधरोंको अंगरेज-राजसे १२०० रुपयेकी वृत्ति मिली।

अंगरेजोंने पहले पहल इस प्रदेशमें हिम्मत वहादुर और पेशवा-प्रदत्त कुछ भूमि प्राप्त की। १८१८ ई०में पेशवाके अधःपतनके वाद समूचा बुन्देलखण्ड अंगरेजोंके दखलमें आया। इसके वाद जलौन, झांसी, जैतपुर, खद्दी, चिरगाँव, पूर्वा, विजयाघवगढ़ तिरोहा, शाहगढ़ और वाणपुर आदि सामन्त राज्योंके शासनकर्त्ताओंके व्यवहारसे असन्तुष्ट हो वृटिश सरकारने उनकी सम्पत्ति अपने हाथ कर ली।

बुन्देला—बुन्देलखण्ड निवासी गाहरवाड़ शाखासे उत्पन्न राजपूत जाति। देवी विन्ध्यवासिनी भवानीके वरदानसे वे लोग बुन्देला कहलाये और उनका प्रदेश बुन्देलखण्ड नामसे प्रसिद्ध हुआ। इतिहास पढ़नेसे मालूम होता है, कि यह गाहरवाड़ जाति भिन्न देशसे यमुना पार में आ कर वहां वस गई थी। (१)

बुन्देलखण्डके राजइतिहासमें लिखा है, कि यह जाति अयोध्याधिपति सूर्यवंशीय राजा रामचंद्रके वंशमें उत्पन्न हुई है। राज इतिहासमें इसकी वंशतालिका इस प्रकार है—

रामचंद्रके पुत्र कुश, कुशके पुत्र हरिब्रह्म (महीपाल), हरिब्रह्मके पुत्र उदिम, उदिमके अलम्यान; अलम्यानके विमलचंद, विमलके पुत्र छत्रशाल, छत्रशालके पुत्र योधपाल, और योधपालके पुत्र विहङ्गराज (विहङ्गेश) थे। इन सातोंने ही अयोध्यामें राज्य किया था।

विहङ्गके पुत्र काशराजने वनारसमें आ कर राजपाट स्थापित किया; ये ही पहले पहल काशीश्वर नामसे प्रसिद्ध हुये। काशीराजके पुत्र गुहिलदेव, गुहिलके विमलचंद, विमलचंदके गोपचंद, गोपके गोविन्दचंद, गोविन्दके तुहिनपाल, तुहिनके विन्ध्यराज, विन्ध्यके लुनिकदेव, लुनिकके विद्दलदेव, विद्दलके अर्जुनब्रह्म और अर्जुनके पुत्र वीरभद्र थे। इन्होंने यथाक्रम काशीके सिंहासन पर बैठ कर प्रवल प्रतापके साथ राज्यशासन किया। राजा वीरभद्रके चार पुत्र थे जिनमेंसे कुमार पंचमको राजा अधिक चाहते थे। पिताकी मृत्युके वाद पञ्चम राजगद्दी पर बैठे। उनके अन्य भाइयोंने विद्रोही वन इनको राज्यसे निकाल दिया। उदासीन हो पंचमने विन्ध्याचल आ कर विन्ध्यावासिनी देवीकी आराधना की। कठोर तपसे भी देवी प्रसन्न न हुई, यह देख कर उन्होंने आत्मोत्सर्ग करना चाहा। जव वे अपनी तलवारसे मस्तक छेदनेमें उद्यत

(१) मिर्जापुरमें प्रवाद है, कि गाहरवाड़ वंशीय कोई राजपूत परिवार विन्ध्याचलके निकट गौड़ ग्राममें आ वस गया। इस वंशके कोई पूर्व पुरुष पन्नाराजके अधीन काम करते थे। निःसंतान पन्नाराजकी मृत्युके वाद उक्त गाहरवाड़ राजकर्मचारीने उनके दुर्ग पर अधिकार जमाया। किंतु वे स्वयं पुत्र रहित थे अतएव यह नूतन राजपाट उनको भी अच्छा नहीं लगता था। वे संसारमें उदासीन हो विन्ध्याचलकी विन्ध्यावासिनी देवीके निकट चले गये। वहां देवीके प्रसाद पानेके लिये अपना मस्तक दान करनेको उद्यत हो गये। उनके शरीरस्थ रक्त विंदुओंसे एक वालक उत्पन्न हुआ। विंदु (वूंद)से उत्पन्न होनेके कारण उस वालकका बुंदेला नाम पड़ा। उनके वंशधर भी बुंदेला नामसे प्रसिद्ध हुये।

हुये तब देवी पंचमके सामने स्वशरीरमें आविर्भूत हुईं तथा बड़े प्रसन्न हो उनसे बोलीं, 'वत्स ! हमारे वरदानसे तुम राज्यमें लौट जाओ और बहुत राज्योंको जीत कर एक सुदूरव्यापी जनपद बसाओ तथा सुखसे जीवनयात्रा निर्वाह करो। वत्स ! तुमने हमारे सामने अपने जीवन उत्सर्गमें जो रक्तविन्दु गिराया था उससे तुम्हारे जैसा यह पुत्र उत्पन्न हुआ। यह पुत्र विपत्तिमें और युद्धविग्रहमें तुम्हें सहायता पहुंचायेगा तथा तुम्हारे ये वंशज बुन्देला नामसे प्रसिद्ध होंगे।

पंचम राज्यमें लौट आये और काशीश्वरकी उपाधि ग्रहण कर राज्यशासन करने लगे। पीछे ये अपने पुत्र वीरसिंहको अयोध्याका शासनभार सौंप आप निश्चिन्त रहे। राजा वीरसिंहने अपने भुजवलसे पूर्व दिशाके प्रदेशोंको जीत अफगानके राजा सत्तर खाँ को हराया। बादमें जय प्रणोदित हो उन्होंने कालिञ्जर दुर्ग जीतनेकी इच्छासे दक्षिणकी ओर प्रस्थान किया। कालिञ्जर और काल्पि विना प्रयासके उनके हाथ लगा। इसके अनन्तर उन्होंने महोनीतमें आ राज्य बसाया। अपनी वीरताके कारण ये लौहधार नामसे विख्यात हुये थे।

वीरसिंहके पुत्र राजा वलवन्तने भी पिताकी तरह राज्यशासन किया। उनके पुत्र अर्जुनपालने कुटहरा गढ़ पर अधिकार और जेत्रपुरमें राज्यस्थापन किया। अर्जुनके पुत्र सुहिनपाल, सुहिनके सहजेन्द्र, सहजेन्द्रके लुनिर्गदेव, लुनिर्गदेवके पृथ्वीराज, पृथ्वीराजके रामचन्द्र, रामचन्द्रके मेदनीमल, मेदनीमलके अर्जुनदेव, अर्जुनदेवके पुत्र मालिक हुए और मालिकके पुत्र उर्च्छाधिपति ख्यातनामा रुद्र प्रतापने सिंहासन पर बैठ पुत्रकी तरह प्रजापालन किया था। उनके भर्तृचन्द्र मधुकर (मधुकर शाह), उदयादित्य, कीर्त्तिशाह, भगतदास, उमादास, चन्द्रदास, घनश्याम दास, प्रयाग दास, भैरवदास, और खण्डेराव आदि १२ पुत्र दया, माया और युद्ध आदि विषयोंमें पारदर्शी थे।

राजा रुद्रप्रतापकी मृत्युके बाद भर्तृचन्द राजा हुए। उनके बाद मधुकर शाह राजसिंहासन पर बैठे। अन्य सब भाइयोंने इनकी अधीनता स्वीकार की; किन्तु उदयादित्यने अपने भुजवल और बुद्धिमत्ताके साथ दलवल संग्रह कर महोवेमें राज्य स्थापित किया। उनके पुत्र प्रेमचन्दने बहुतसे युद्धोंमें सैयद और अफगान-सेनाको हराया। उनके तीन पुत्र थे जिनमेंसे विख्यात वीर भगवंत राव महोवेके सिंहासन पर, मानसिंह शाहपुरमें और किन्नरसिंह सिमरोहमें रह राज्यशासन करते थे। भगवन्तके पुत्र कुलनन्द बड़े धार्मिक थे। उनके खड्गराय, चन्द्रराय, शोभनराय, और चम्पतराय नामके चार पुत्र थे। राजा चम्पतराय मुगलसम्राट् शाहजहांके प्रभावकी उपेक्षा कर उन्हें राजकर देनेसे इनकार चले गये। इस लिये सेनापति बकि खाँ उन्हें उचित दण्ड देनेके लिये आया। इस युद्धमें मुगल-सेना पराभूत हो लौट जानेको वाध्य हुई।

राजा चम्पतरायके पांच पुत्र थे—सर्वेहल, अङ्गदराय, रतनशाह, छत्रशाल और गोपाल। इनमेंसे छत्रशाल ही बुंदेला जातिकी गौरव वृद्धि करनेमें समर्थ हुए थे।

छत्रशाल देखो।

राजा छत्रशालके यत्नसे सैकड़ों बुंदेला सर्दारोंने एकत्र हो मुसलमानोंसे युद्ध किया था। छत्रपुरमें छत्रशालकी मृत्यु हुई। इस नगरमें उनका विख्यात समाधिमंदिर आज भी विद्यमान है। हृदयशाह, जगत्राय, पद्मसिंह, भर्तृचंद्र प्रभृति चार पुत्र उनकी प्रथम पत्नीसे और दूसरी स्त्रीसे उनके १२ पुत्र हुए थे।

राजा छत्रशाल मृत्युके समय अपनी सारी सम्पत्ति दो भागोंमें बांट गये थे। हृदयसिंहने पन्नाराज्य पाया और जगत्राय जैतपुरके सिंहासन पर अधिष्ठित हुये।

पन्ना शब्दमें पन्नाराजवंशका विवरण देखो।

जैतपुर-राज्यमें जगत्राय अधिष्ठित रह राज्यशासन करते थे। उनके राज्यकालमें महम्मद खाँ बङ्गसेरके आदेशानुसार उनके सेनापति दलिल खाँ दलवलके साथ अग्रसर हुए। नदपुरिया नामक स्थानमें दोनों दलोंमें घोर सङ्घर्ष हुआ। इस युद्धमें बुंदेलाराव रामसिंहको निहत देख प्रत्यावर्त्तन करते थे. ऐसे ही समयमें शत्रु, हाथसे आहत हो जगत्राय अश्वपृष्ठसे गिर पड़े। छावनीमें लौट कर उनकी पत्नी रानी अमरकुमारी पतिको न देख भीत और चकित हो गई। फिर दृढ़चित्त हो स्वामीदर्शनकी प्रत्याशासे रणभूमिमें कूद पड़ी। ससैन्य

अग्रसर हो उन्होंने पहिले दलिलके शिविर पर आक्रमण कर दिया। अतर्कित अवस्थामें आक्रमण करनेसे मुसलमानी-सेना भी आत्मरक्षामें समर्थ न हुये। युद्धमें उनकी हार हुई। जयलाभके बाद उल्लसित सैन्यमण्डली मशाल जला कर राजाकी भूपतित देहकी तलाश करने लगी। शेषमें शिविर लानेके बाद रानीके यत्नसे राजा होशमें आये।

दलिल खाँकी मृत्यु और पराभवसे निरुद्यम न हो महम्मदने फिरसे बुंदेलखण्ड पर आक्रमण कर दिया। इस बार निरुपाय देख जगत्राय पेशवा बाजीरावसे सहायताके लिये प्रार्थना की। बाजीरावने कृतकार्यके पारितोषिक स्वरूप बुंदेलखण्डके कितने ही प्रदेश पाये थे। इस स्थानसे चौथकर संग्रहपूर्वक वे मस्तानी नामकी एक मुसलमान बालिकाको अपने साथ ले गये। इसी रमणीके गर्भसे समशेर बहादुरका जन्म हुआ था।

१८१५ सम्वत्में (१७५८ ई०में) जगत्रायका माउनगरमें देहान्त हुआ। उनकी मृत्युके पहले उनके पुत्र कीर्त्तिसिंहकी मृत्यु हो गयी थी और कीर्त्तिके प्रार्थनानुसार उन्होंने अपने पौत्र कीर्त्तिके पुत्र गुमानसिंहको 'दीवान सिरोही' पद पर अभिषिक्त किया।

राजा जगत्रायकी मृतदेह ले उनके पुत्र पहाड़सिंह जैतपुरमें चले आये। पहले उन्होंने घोषणा कर दी, कि राजा मृत्युरोगसे शायित हो रहे हैं, उनकी मुक्तिका और कोई उपाय नहीं है। इस शवदेहको वे अपने घरमें रख स्वयं सिंहासन लाभकी आशामें षड़यन्त्र रचने लगे। गुमानसिंहके बदलेमें उन्हींको सिंहासन पर अभिषिक्त करनेके लिये वे सेनापतियोंको घूस भी देने लगे। कुमार कड़िसिंह, सेनापत् और वीरसिंह देव आदि उनकी ओरसे गुमानके विरुद्ध युद्ध करनेके लिये राजी हुये।

पहाड़सिंहका सिंहासनाधिकार और राजा जगत्रायका मृत्युसंवाद पा गुमानसिंहने दूत भेज अपना प्राप्य जैतपुरका सिंहासन पानेके लिये अनुरोध किया किंतु पहाड़सिंहने इसे सुनी अनसुनी कर कहला भेजा, कि अपने पिताके सिंहासन पानेके वे ही एक मात्र अधिकारी हैं। पुत्रके रहते पौत्रका कोई भी अधिकार सिंहासन पर नहीं हो सकता।

गुमान सिंह इस पर बड़े बिगड़े और उन्होंने जैतपुर राज्यको नष्टभ्रष्ट करनेका दृढ़ संकल्प किया। १७६१ ई०में कुन्देलाके समीप दोनों सेनामें घोरतर युद्ध हुआ। इस युद्धमें गुमान सिंह स्वीय मित्र नवाब नजफ खांके साथ परास्त हुये। १७६५ ई०में मृत्युशय्या पर शायित हो पहाड़सिंहने गुमानसिंहको कहला भेजा, "मैं संसारका परित्याग कर चला जा रहा हूं, यदि तुम्हारी इच्छा हो, तो ससैन्य हमारे ऊपर आक्रमण करो।" पहाड़सिंह कुलपहाड़में रह निज संम्पत्तिका विभाग कर रहे थे। इसी समय वहां गुमान और उनके भाई खुमानसिंह उपस्थित हुये। उन्होंने गुमानको बांदा और खुमानको चारखाड़ीका राजपद प्रदान किया।

इसके बाद बुन्देला राजाओंकी विशेष प्रतिपत्तिकी कथा मालूम नहीं। महाराष्ट्रके अभ्युदय कालमें वे सहकारी रूपके युद्धकार्यमें व्यापृत थे। हिम्मत खांका विद्रोह और अंग्रेज-समागम तथा महाराष्ट्र युद्धादिका विषय बुन्देलखण्डमें विवृत हुआ है।

बुबुकना (हि० क्रि०) जोर जोरसे रोना, डाढ़ मारना।

बुबुकारी (हि० क्रि०) उच्च स्वरसे क्रन्दन करना।

बुबुधान (सं० पु०) १ आचार्य। २ देव। ३ पण्डित।

बुबुर (सं० स्त्री०) उदक, जल।

बुभुक्षा (सं० स्त्री०) भोक्तुमिच्छा भुज-इच्छार्थे सन्, बुभुक्ष धातु (अः प्रत्ययात्। पा ३।३।१०२) इति अस्ततष्टाप्। क्षुधा, खानेकी इच्छा।

बुभुक्षित (सं० लि०) बुभुक्षा भोजनेच्छा सञ्जाताऽस्य (तदस्य संजातं तारकादिभ्य इतच्। पा ५।२।३६) क्षुधित, जिसे भूख लगी हो। (मनु १०।१०५)

बुभुक्षु (सं० लि०) भोक्तुः मिच्छु भुज सन-उ। भोजन करनेमें इच्छुक।

बुभूर्ष (सं० लि०) बिभर्त्तु मिच्छुः सन-उ। भरण करनेमें इच्छुक।

बुभूषक (सं० लि०) बुभूष-कन्। यशकी इच्छा रखनेवाला।

बुभूषा (सं० स्त्री०) भवितुमिच्छा भू-सन्, अ, टाप्। यशकी इच्छा रखना।

बुयाम (अं० पु०) चीनी मट्टीका बना हुआ एक प्रकारका गोल और ऊँचा बड़ा पात्र। यह साधारणतः नेजाव और अचार आदि रखनेके काममें आता है, जार।

बुरकना (हिं० क्रि०) १ किसी पिसी हुई या महीन चीजको हाथसे धीरे धीरे किसी दूसरी चीज पर छिड़कना, भुरभुराना। (पु०) २ बच्चोंकी वह दावात जिसमें वे पटिया आदि पर लिखनेके लिये खरिया मट्टी घोल कर रखते हैं।

बुरका (अ० पु०) १ मुसलमान स्त्रियोंका एक प्रकारका पहनावा। यह प्रायः थैलेके आकारका होता है। दूसरे दूसरे वस्त्र पहन चुकनेके बाद यह सिर परसे डाल लिया जाता है और इससे सिरसे पैर तक सभी अंग ढके रहते हैं। जो भाग आँखोंके सामने पड़ता है उसमें जाली लगी रहती है जिसमें चलते समय सामनेकी चीजें दिखाई पड़ें। २ वह झिल्ली जिसमें जन्मके समय बच्चा लिपटा रहता है, खेड़ी।

बुरकाना (हिं० क्रि०) बुरकनेका काम दूसरेसे कराना, दूसरेको बुरकनेमें प्रवृत्त करना।

बुरदू (अं० पु०) १ पार्श्व, बगल। २ ओर, तरफ। ३ जहाजका वह भाग जो हवा या तूफानके रुख पर न पडता हो, बल्कि पीछेकी ओर हो। ४ जहाजका बगलवाला भाग।

बुरा (हिं० वि०) निकृष्ट, मंदा।

बुराई (हिं० स्त्री०) १ नीचता, खोटापन। २ बुरे होनेका भाव, बुरापन। ३ किसीके संबंधमें कही हुई कोई बुरी बात, शिकायत, निन्दा। ४ अवगुण, दोष।

बुरादा (फा० पु०) १ वह चूर्ण जो लकड़ीको आरेसे चीरने पर उसमेंसे निकलता है, लकड़ीका चूरा। २ चूर्ण, चूरा।

बुरुड़—दाक्षिणात्यवासी अन्त्यजजातिविशेष। बांसकी डाली आदि तैयार करना ही इन लोगोंका जातीय व्यवसाय है। इनकी उत्पत्तिका विवरण यों है--पहले ये लोग मराठा थे। ज्येष्ठकी पूर्णिमामें पार्वती देवीकी वटवृक्षपूजाके लिये इन्होंने फलपुष्पवहनोपयोगी डाली बनाई थी इसीसे ये जातिच्युत हुये।

इनके मध्य आट, कणाड़ी, लिंगायत, मराठा, पवारी और तैलंग आदि श्रेणीविभाग हैं। ये एक दूसरेके साथ न तो आदानप्रदान करते और न एक साथ बैठ कर खाते ही हैं। प्रायः सभी लोग मद्य तथा मांसप्रिय होते और पूजादिमें उपवास करते हैं। इन लोगोंका पहनावा बहुत कुछ मराठियोंसे मिलता जुलता है।

महादेव इनके प्रधान उपास्य देवता हैं। ब्राह्मण और जङ्गमोंमें इनकी अटल भक्ति है। विवाह और श्राद्धादिमें ब्राह्मणोंको बुलाते हैं।

जातबालकके पांचवें दिन ये षष्ठी देवीकी पूजा करते हैं। तीन महीनेके बादसे ले कर दो वर्ष तकके बालकोंका मुण्डन होता है। मृत्युके बाद ये लोग शवको जलाते और गाड़ते भी हैं। दशवें दिन पिण्डदान करते हैं। इन लोगोंमें विधवा-विवाह प्रचलित है।

बुरापन (हिं० पु०) बुराई देखो।

बुरुश (अं० पु०) अंगरेजी ढंग पर बनी हुई किसी प्रकारकी कूँची। यह कूँची चीजोंको रंगने, साफ करने या पालिश आदि करनेके काममें आती है। बुरुश प्रायः कूटी हुई मूंज या कुछ विशेष पशुओंके बालोंसे बनाए जाते हैं और भिन्न भिन्न कार्योंके लिये भिन्न भिंन्न आकार प्रकारके होते हैं। रंग आदि भरनेके लिये जो बुरुश तैयार किये जाते हैं उनमें प्रायः काठके एक चौड़े टुकड़ेमें छोटे छोटे बहुतसे छेद करके उनमें एक विशेष क्रिया और प्रकारसे मूंज या बालोंके टुकड़ोंमें एक दस्ता भी लगा दिया जाता है। यह प्रायः मूंज या नारियल, बेंत आदिके रेशोंसे अथवा घोड़े, गिलहरी, ऊँट, सूअर, भालू, बकरी आदि पशुओंके बालोंसे बनाये जाते हैं।

बुरूल (हिं० पु०) एक प्रकारका बहुत बड़ा वृक्ष। यह हिमालयमें १३००० फुटकी ऊँचाई तक होता है। इसका छिलका बहुत साफ और चमकीला होता है जिससे पहाड़ी लोग झोंपड़े बनाते हैं। इसकी लकड़ी छत पाटने और पत्ते चारेके काममें आते हैं।

बुर्ज (अ० पु०) १ किले आदिकी दीवारोंमें, कोनों पर आगेकी ओर निकला अथवा आस पासकी इमारतके ऊपरकी ओर उठा हुआ गोल या पहलदार भाग। इनके

बीचमें बैठने आदिके लिये थोड़ी सी जगह होती है। प्राचीनकालमें प्रायः इस पर रख कर तोपें चलाई जाती थीं। २ गुंबद। ३ गुब्वारा। ४ राशिचक्र। ५ मीनार-का ऊपरी भाग अथवा उसके आकारका इमारत या कोई अंग।

बुर्द (फा० स्त्री०) १ ऊपरी लाभ, ऊपरी आमदनी। २ शर्त, बाजी। ३ शतरंजके खेलकी वह अवस्था जब सब मोहरे मर जाते हैं और केवल बादशाह रह जाता है। उस समय बाजी 'बुर्द' कहलाती और आधी मात समझी जाती है।

बुर्दू—मध्यभारतके ग्वालियर राज्यके अन्तर्गत एक नगर।

बुर्री (हिं० स्त्री०) बीज बोनेका एक ढंग। इसमें बीज हलकी जोतमें डाल दिये जाते हैं और उसमेंसे आपे आप गिरते चलते हैं।

बुर्श (अं० पु०) ब्रुश देखो।

बुर्हान निजामशाह २य—निजामशाही वंशके ७म राजा। इन्होंने १५९० से १५९४ ई० तक राज्य किया। ये बुर्हाना-बाद नामक एक नगर बसा गये हैं।

निजामशाही देखो।

बुर्हान इमादशाह—इमादशाही वंशके ४ थ राजा। इन्होंने १५६० से १५६४ ई० तक राज्य किया। ये तफज्जुल खाँसे पराजित और बन्दी हुए थे। उनको राज्यच्युतिके बाद तफज्जुलने कुछ दिनों तक राज्यशासन किया था।

बुर्हानपुर—१ मध्यप्रदेशके निमार जिलेकी एक तहसील। यह अक्षा० २१°५´से २१° ३७´ उ० तथा देशा० ७५° ५७´ से ७६° ४८´ पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ११३८ वर्गमील और जनसंख्या ८० हजारसे ऊपर है। इसमें बुर्हानपुर नामका १ शहर और १६४ ग्राम यगते हैं। असीरगढ़ नामका यहां एक प्राचीन किला भी है।

२ उक्त तहसीलका एक शहर। यह अक्षा० २१° १८´ उ० तथा देशा० ७६° १४´ पू०के मध्य अवस्थित है। जनसंख्या ३३३४१के लगभग है। हिन्दूकी संख्या सबसे ज्यादा है। १४०० ई०में खानदेशके फरुखिवंशीय राजा नसिर खाँने इस नगरको दौलताबादके विख्यात मुसल-मान शेख बुर्हानउद्दीनके नाम पर बसाया। दाक्षिणात्य-के अन्यान्य मुसलमान राजाओं द्वारा यह नगर बार बार आक्रमण और लूटे जाने पर भी फरुखि-वंशके ११वें राजाने यहां राज्य किया था। १६०० ई०में सम्राट् अकबरशाहने इसे अपने शासनभुक्त कर लिया।

बादशाह किलेके दो शिखरको छोड़ कर प्राचीन फरुखि राजाओंकी और कोई कीर्त्ति नहीं देखी जाती। उक्त वंशके बारहवें राजा अली खाँ यहां पर जुमा मस-जिद् आदि अनेक सुन्दर अट्टालिका बना गये हैं। अक-बर और उनके वंशधरोंके उद्यमसे यह नगर सौधमालासे भूषित हो गया था। १६३५ ई० तक दिल्लीके अधीनस्थ राज-पुरुषगण यहां रह कर राजकार्य चलाते थे। पीछे वहांसे औरङ्गाबादमें राजधानी उठा कर लाई गई थी। उसके बादसे बुर्हानपुर खानदेश सूबाके प्रधान नगररूप-में परिणत हुआ।

१६१४ ई०में अङ्गरेजी दूत सर टामस रो बुर्हानपुर आ कर यहांकी अवस्था वर्णन कर गये हैं। उसके ४४ वर्ष बाद टावर्नियरने इस नगरकी विशेष समृद्धिकी कथाका उल्लेख किया है। मुगल-प्रभावके समय इस नगरसे नाना द्रव्योंकी रफ्तनी पारस्य, तुरुष्क, मास्को-भियो, पोलएड, अरब और इजिप्त आदि प्रदेशोंमें होती थी।

सम्राट् औरङ्गजेबके राजत्वकालमें बुर्हानपुर दाक्षि-णात्ययुद्धका केन्द्रस्थल बन गया था। १६८५ ई०में औरङ्गजेबके दलबल समेत बुर्हानपुरका परित्याग करनेके बाद ही मराठोंने इस नगरको लूटा। उसके ३४ वर्ष बाद मराठा लोग लगातार युद्धके बाद यहांसे चौथ संग्रह करनेमें समर्थ हुये थे। १७२० ई०में आसफजाह निजाम उलमुल्कने दाक्षिणात्यको फतह कर इस नगरमें राज-पाट स्थापन किया। १७४८ ई०में यहीं पर उनकी मृत्यु हुई।

१७३१ ई०में नगरके चारों ओर प्राचीर और बुर्ज तथा ९ सिंहद्वार स्थापित हुए १७६० ई०में उदयगिरि युद्धके बाद निजामने बुर्हानपुरराज्य पेशवाके हाथ सौंपा। इसके १८ वर्ष पीछे सिन्धियाराजको उक्त सम्पत्ति हाथ लगी। १८०३ ई०में सेनापति वेलेस्ली-ने नगर पर अधिकार जमाया। किन्तु १८६० ई०से ही

वह सम्यकरूपसे अङ्गरेजोंके दखलमें आया। १८४६ ई०में यहां हिन्दू और मुसलमानके बीच झगड़ा खड़ा हो गया था जिसमें दोनों तरफके बहुतसे लोग मरे थे। वर्त्तमान अट्टालिकाके मध्य अकवरशाहका लालकिला और औरङ्गजेवको जुम्मा मसजिद ही प्रधान है। टवर्नियरके समयसे ले कर वर्त्तमानकाल तक यहां रेशम मसलिन आदि वस्त्रोंका विस्तृत कारवार होता चला आ रहा है। शहरमें एक मिडिल इङ्गलिश स्कूल, एक वालिका स्कूल और एक अस्पताल है।

बुर्हानावाद—दाक्षिणात्यके अहमदावाद जिलान्तर्गत एक नगर। मुगलसेनापति शाहवाज खां इस नगरको लूट और विध्वस्त कर गये हैं।

बुर्हेला—राजपूत जातिकी एक शाखा। ये लोग रघुवंशी और वाई सम्प्रदायकी कन्यासे विवाह करते और अमेठियाओंको अपनी कन्या देते हैं।

बुलंद (फा० वि०) १ उत्तुङ्ग, भारी। २ जिसकी ऊँचाई अधिक हो, वहुत ऊँचा।

बुलंदी (फा० स्त्री०) १ बुलंद होनेका भाव। २ ऊँचाई।

बुलडाग (अं० पु०) मझोले आकारका एक प्रकारका विलायती कुत्ता। वह वहुत वलवान्, पुष्ट और देखनेमें भयङ्कर होता है।

बुलदाना—पश्चिम वरार विभागका एक जिला। यह अक्षा० १९° १' से २१° १' उ० तथा देशा० ७५° ५९' से ७६° ५२' पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण २८०६ वर्गमील है। चिखली, मालकापुर और मेहकर नामक तीन तालुकमें यह जिला विभक्त है।

यह जिला वेरार वालाघाट पर्वतके अधित्यका देशमें अवस्थित है। इसकी उपत्यकाभूमिमें बहुत-सी पवित्र सलिला नदियोंके वहनेसे यह स्थान कृषिकार्यके उपयोगी हो गया है। वेणगङ्गा, नलगङ्गा, विश्वगङ्गा, घन, पूर्णा और काटापूर्णा आदि यहांकी प्रधान नदियां हैं। जिलेके दक्षिण भागमें लोनर नामक ह्रद है। उस ह्रदके किनारे उत्कृष्ट कारुकार्ययुक्त एक प्राचीन हिन्दूमन्दिर स्थापित है। हिन्दूमात्र ही उस मन्दिरको पवित्र समझते हैं।

देवलघाट नामक स्थानमें वेणगङ्गाके किनारे, मेहकर, सिन्धखेर और पिम्पल गाँव नामक स्थानमें हेमाड़पन्थियोंके प्राचीन मन्दिर देखे जाते हैं। जव पूर्णाकी उपत्यकाभूमि मुसलमानोंके हाथ लगी, उस समय जैन राजाओंने यहां आधिपत्य फैलाया था। १२९४ ई०में दिल्लीके शासनकर्त्ता अलाउद्दीनने इस प्रदेश पर अधिकार किया और इलिचपुर आदि स्थानोंमें अपनी प्रतिष्ठा जमाई। धीरे धीरे उनके वंशधरोंके यत्नसे दक्षिणदिग्वर्त्ती भूभाग मुसलमानोंके शासनभुक्त हुए। १३१८ ई०में समस्त वेरार प्रदेश पर मुसलमानोंका अधिकार फैल गया था। १४३७ ई०में अहमदशाह वाह्मनीके लड़के अलाउद्दीनने रोहन-खेर नामक स्थानमें खान्देश और गुजरातराजाकी सेनाको परास्त किया। वाह्मनी राजवंशके वाद इमादशाही राजाओंने यहां आधिपत्य फैलाया। पीछे अहमदनगर राजवंशका अभ्युदय हुआ। १५९६ ई०में चाँदवीवीने वेरार राज्य सम्राट् अकवरशाहके हाथ सौंपा। सम्राट्के लड़के मुराद और दानियाल वारी वारीसे यहांके राजप्रतिनिधि रहे। १६०५ ई०में अकवरकी मृत्युके वाद आविसिनिके सरदार मालिक अम्बरने वेरार जीत कर १६२८ ई० तक शासन किया। पीछे सिन्धखेरके देशमुख लाकजी यादवराजकी सहायतासे सम्राट शाहजहानने इस राज्यका पुनरुद्धार किया। उक्त यादवराव मालिक अम्बरके १० हजार अश्वारोहीके सेनानायक थे। उन्होंने ही शाहजहानका पक्ष ले कर अपने पूर्वस्वामीके अदृष्टाकाशको घनान्धकारसे समाच्छन्न कर दिया था। इसी लाकजी यादवकी एक वीरप्रसू कन्या महाराष्ट्रकेशरी शिवाजीकी माता थी। औरङ्गजेवके राजत्वकालमें १६७१ ई०को शिवाजीके सेनापति प्रतापरावने यहांसे चौथ वसूल किया था। पश्चात् १७१७ ई०में सम्राट् फरुखशियरके समय मराठोंने यहांसे चौथ और सरदेशमुखी वसूल करनेकी सनद प्राप्त की। १७२४ ई०में चिन् खिलीच खाँ (निजाम उल्‌मुल्क)-ने सखर-खेदलर (फतेखेड़ला)-के निकट मुगलसेनाको परास्त किया। किन्तु वे मरहठोंको कर संग्रहसे निवारण न कर सके। १७६० ई०में मेहकर पेशवाके हाथ सपुर्द किया गया। १७६९ ई०में निजामने भी पूनाराजकी अधीनता स्वीकार की। अंगरेज-युद्धमें महाराष्ट्र पराभवके वाद १८०४ ई०को निजामने अंगरेजोंके अनुग्रह-

से सारा बेरार राज्य प्राप्त किया। १८१३ ई०में महाराष्ट्रदलने फिरसे फतेखेदला पर अधिकार किया। पिण्डारी युद्धके बाद १८२२ ई०की सन्धिके अनुसार यह प्रदेश सम्पूर्णरूपसे निजामके हस्तगत हुआ। इसके बाद महाराष्ट्रोंको फिर अपना सिर उठानेका साहस न हुआ। किन्तु स्थानीय जमींदार, तालुकदार, राजपूत और मुसलमानोंके उपद्रवसे राज्य भरमें विशेष उच्छृङ्खलता उपस्थित हुई। इस विप्लवके फलसे १८४९ ई०में मालकापुर लूटा गया था। १८५१ ई०में यादववंशधरोंकी अधिनायकतामें शेष पेशवा बाजीरावकी अरबीसेनाने निजाम सेनाको परास्त किया। इस कार्यसे असन्तुष्ट हो अंगरेजोंने बाजीरावकी पूर्व सम्पत्ति छीन ली और उन्हें विठुर नगरमें नजर बंद रखा।

इस जिलेमें ६ शहर और ८७० ग्राम लगते हैं। जनसंख्या साढ़े चार लाखके करीब है। विद्याशिक्षामें यह जिला बेरारके छः जिलोंमें छठा पड़ता है। सैकड़े पीछे ४ मनुष्य पढ़े लिखे मिलते हैं। अभी कुल मिला कर २०० स्कूल हैं। स्कूलके अलावा १ अस्पताल और ७ चिकित्सालय हैं।

२ उक्त जिलेका एक शहर। यह अक्षा० २०° ३२' उ० तथा देशा० ७६° १४' पू० समुद्रपृष्ठसे २१६०० फुट ऊँचा है। जनसंख्या ४१३७ है। १८९३ ई०में यहां म्युनिसपलिटी स्थापित हुई है।

बुलन्दशहर—युक्तप्रदेशके मीरट विभागमें अवस्थित एक जिला। यह अक्षा० २८° ४' से २८° ४३' उ० तथा देशा० ७७° १८' से ७८° २८' पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण १८९९ वर्गमील है। इसके उत्तरमें मीरट जिला, पश्चिममें यमुना नदी, दक्षिणमें अलीगढ़ और पूर्वमें गङ्गा नदी है।

गङ्गा और यमुना नदीके अन्तर्वेदीके मध्य अवस्थित रहनेके कारण यह स्थान बहुत उर्वरा है। समूचा जिला अधित्यकाकी तरह समुद्रपृष्ठसे प्रायः ६५० फुट ऊंचा है। गङ्गा और यमुनाके अलावा जिलेमें काली नदी (कालिन्दी), हिन्दन, करोन, पटवाई और छोइया नामक कई एक छोटी छोटी नदियां बहती हैं।

स्थानीय प्रवादसे जाना जाता है, कि अति प्राचीनकालमें यह स्थान पाण्डवराजधानी हस्तिनापुरके अधिकारमें था। उक्त नगर गङ्गामें बह जानेके बाद कोई शासनकर्त्ता आहर नगरमें रह कर यहांका राजकार्य चलाते थे। शिलालिपिसे मालूम होता है, कि एक समय यहां गौड़ ब्राह्मणोंका वास था और गुप्तराजगण यहांका शासन करते थे। १०१८ ई०में जब गजनीपति महमूद बरण (बुलन्दशहरका चलित नाम) नगरमें पहुंचे, उस समय हरदत्त नामक एक हिन्दूराजा यहां राज्य करते थे। मुसलमान ऐतिहासिकोंने लिखा है, कि उस दुर्द्धर्ष मुसलमानराजाके डरसे हिन्दूराजाने दलबल समेत इसलामधर्म ग्रहण कर लिया और इस प्रकार उसके हाथसे निष्कृति पाई। उस समयसे उस अन्तर्वेदीमें नाना वर्णोंके लोग आ कर बस गये। आज भी उन सब जातियोंका इस जिलेके किसी किसी स्थान पर अधिकार देखा जाता है।

११९३ ई०में जब कुतबुद्दीनने बरणकी ओर कदम बढ़ाया, तब वहांके अधिपति दोरवंशीय राजा चन्द्रसेनने दलबल ले कर उनका मुकाबला किया था। आखिर उनके आत्मीय जयपालके षड़यन्त्रसे मुसलमानराजने उक्त नगर पर अधिकार जमा लिया। जयपालके इस्लामधर्म ग्रहण करनेके बाद मुसलमानराजाने प्रसन्न हो उन्हें उक्त नगरका चौधरी पद प्रदान किया। उनके वंशधरगण आज भी इस जिलेकी कुछ सम्पत्तिका भोग कर रहे हैं।

१४वीं शताब्दीसे यहां राजपूत जातिका अभ्युदय देखा जाता है। उन राजपूतोंने यहांके पूर्वतन अधिवासियोंको भगा कर उनके ग्रामादि दखल कर लिये। पीछे मुगल-आक्रमणके समय इस प्रदेशकी दुरवस्था और भी बढ़ गई थी। पीछे सम्राट् अकबरके सुशासनसे तमाम शान्ति विराजने लगी। परन्तु औरङ्गजेब यहांके इस्लाम धर्मावलम्बी हिन्दू अधिवासियोंके ऊपर अत्याचारकी पराकाष्ठा दिखानेसे बाज नहीं आये। बहादुरशाहके समयसे (१७०७ ई०) मुगलशक्तिका अधःपतन शुरू हुआ। इस अवसर पर गुजर और जाटसरदारोंने बागी हो कर छोटे छोटे स्वतन्त्र राज्य स्थापन किये थे।

१८वीं शताब्दीमें कोइल-नगरमें रह कर महाराष्ट्र

शासनकर्त्ता राजकार्य चलाते थे। वरण नगर उस समय कोइलके अधीन था। १८०३ ई०में अंगरेजी सेनाने कोइल और अलीगढ़ दुर्ग पर दखल जमाया। १८२३ ई०में अलीगढ़ और मीरटका कुछ अंश ले कर बुलन्दशहर एक स्वतन्त्र जिलारूपमें गिना जाने लगा। उसके बादसे ले कर १८५७ ई०के गदर तक यहां और कोई उल्लेखयोग्य घटना न घटी।

सिपाहीविद्रोहके समय गुजरों, ६म पदातिक सेनादल, मालगढ़के शासनकर्त्ता वालिदाद खाँ और इस्लाम धर्मावलम्बी राजपूतोंने अंगरेजोंसे घमसान युद्ध किया था। सिपाहीविद्रोह देखो।

इस जिलेमें २३ शहर और १५०६ ग्राम लगते हैं। जनसंख्या १० लाखसे ऊपर है। सैकड़े पीछे ७६ हिन्दू, १६ मुसलमान और शेषमें आर्य तथा ईसाई लोग हैं। यहांकी प्रधान उपज गेहूँ, चना, मकई, ज्वार और बाजरा है। विद्याशिक्षामें यह जिला बहुत पीछा पड़ा हुआ है। सैकड़े पीछे ३ मनुष्य शिक्षित मिलते हैं। अभी कुल मिला कर २०० स्कूल हैं। स्कूलके सिवाय यहां ६ अस्पताल और चिकित्सालय हैं।

२ उक्त जिलेकी एक तहसील। यह अक्षा० २८° १४´ से २८° ४३´ उ० तथा देशा० ७७° ४३´ से ७८° १३´ पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ४७७ वर्गमील और जनसंख्या साढ़े तीन लाखके करीब है। इसमें बुलन्दशहर, शिकारपुर, सियाना और औरङ्गावाद नामक ३ शहर तथा ३७६ ग्राम लगते हैं। जिले भरमें यह सबसे अच्छी तहसील है। काली नदी तहसीलके उत्तरसे दक्षिणको बह गई है।

३ उक्त तहसीलका एक सदर। यह अक्षा० २८°१५´ उ० तथा देशा० ७७°५२´ पू०के मध्य अवस्थित है। जनसंख्या १८६५६के लगभग है। यहां इष्ट इण्डिया रेलवेका एक स्टेशन है। यह नगर समुद्रपृष्ठसे ७४१ फुट ऊँचा है। इसका प्राचीन अंश एक गण्डशैलके शिखर पर और नूतन नगर निकटवर्त्ती समतल क्षेत्र पर बसा हुआ है।

प्रसिद्ध माकिदनवीर महात्मा अलेकसन्दर तथा उत्तर भारतके हिन्दूवाह्लिक राजाओंकी नामाङ्कित मुद्रा आज भी वरण नगरके नाना स्थानोंमें पाई जाती है। मुसलमान और वाह्लिक राजाओंके समय उनके देशोंके लोग यहां आ कर बस गये थे, इसमें जरा भी सन्देह नहीं। दोरवंशीय राजा हरदत्तने इसलाम धर्ममें दीक्षित हो कर तथा तरह तरहका उपढौकन भेज कर गजनीपति महमूदको संतुष्ट किया था। यहांके शेष हिन्दूराजा चन्द्रसेनने महम्मदघोरीके युद्धमें अपने जीवनको न्योछावर कर दिया था। युद्धमें मुसलमान सेनापति ख्वाजा लालवरणी भी खेत रहे थे। आज भी उनकी कब्रके आस पासका स्थान उन्हींके नामसे पुकारा जाता है।

प्राचीन हिन्दू प्रधानताके निदर्शन स्वरूप यहां और कोई अट्टालिका वा देवमन्दिरका ध्वंसावशेष नजर नहीं आता। पर हां, निकटवर्त्ती स्थानकी मट्टी खोदनेसे जहां तहां खोदित स्तम्भ वा अट्टालिकादिका खण्डित अंश देखा जाता है। उसका गठनकार्य देखनेसे वह प्राचीन हिन्दूगठन-सा प्रतीत होता है, इसमें कोई उज्र नहीं। प्राचीन भग्न अट्टालिकाके मध्य सम्राट् अकबर शाहके प्रधान सेनापति बहलोल खाँका समाधिमन्दिर ही सर्वप्राचीन है। अलावा इसके प्राचीन-नगरके बीचमें जुम्मा मसजिद दृष्टिगोचर होती है। अंगरेजोंके दखलमें आनेसे इसकी कोई विशेष श्रीवृद्धि नहीं हुई है। शहरमें एक हाई स्कूल, एक तहसीली स्कूल और चार प्राइमरी स्कूल हैं।

बुलबुल (अ० फा० स्त्री०) एक प्रसिद्ध गानेवाली छोटी चिड़िया। इसे अंगरेजीमें नाइटइङ्गल (Nightingale वा Pellorreum ru'eceps) और पारसी भाषामें "बुलबुलबोस्ता" अथवा "बुलबुल हजार दस्तान" कहते हैं। उर्दूवाले इस शब्दको पुंल्लिंग मानते हैं। जान पड़ता है, कि बहुतोंने इस प्रसिद्ध गानेवाले पक्षीको देखा है। इसकी सुंदरता साधारण है। किंतु इसका स्वर बहुत सुललित है। जिस किसी व्यक्तिने एक बार भी ध्यान लगा कर इसके गानको सुना है उसने मुक्त कंठसे इसको गानेवाले पक्षियोंमें सबसे श्रेष्ठ माना है और इसको चित्तोन्मादक स्वरकी भूरि भूरि प्रशंसा की है। यह पक्षी १०० रूपयेसे १५० रुपये तक बिकता है।

प्राणी तत्त्वविदोंका कहना है, कि बुलबुलका गानोप-

योगी सिर और मांसपेशी अत्यन्त सवल हैं; अन्य गायक पक्षियोंकी मांसपेशी उतनी परिपुष्ट नहीं होती। यही कारण है, कि इसका स्वर इतना बुलंद है तथा यह बहुत समय तक नाना स्वरमें गाना गा सकी है।

बुलबुल दो तरहकी देखी जाती हैं। उनमेंसे एक श्रेणीके पक्षी समतल भूमिके जङ्गलमें रहते हैं। इनका शरीर पांच इञ्च लम्बा, पूंछ ढाई इञ्च और चोंच एक इञ्चसे कुछ कम होती है। चोंचका अग्रभाग सूक्ष्म और सीधा होता है। चोंच और मुखका भीतरी भाग पीला होता है। इनकी पीठ आदिके ऊपरी भागका रङ्ग प्रायः नस्यके समान, तलभाग कुछ सफेद और दोनों पैर कुछ ललाई लिये हुये सफेद होते हैं। दूसरी श्रेणीके पक्षी पर्वतों पर रहते हैं। कभी कभी पर्वतके निम्नभागमें स्थित अरण्य आदि स्थानोंमें भी देखे जाते हैं। पर्वतमें नहीं रहनेवाले पक्षियोंकी अपेक्षा इस श्रेणीके पक्षियोंकी देहका परिमाण प्रायः दो इंच अधिक तथा कान भी कुछ बड़े होते हैं। प्रथम श्रेणीके पक्षीकी अपेक्षा द्वितीय श्रेणीके पक्षियोंकी कंठध्वनि बहुत ऊंची होती है। विशेषतः द्वितीय श्रेणीकी बुलबुल ही रजनी-गायक कहलाती है। बुलबुल प्रौढ़ावस्थासे ही अधिक गाती है।

इस पक्षीका नर ही अधिक गाता है। ये सब बाल्य अवस्थामें ही प्रायः दो तीन मास तक गाते हैं तथा दल बांध कर तीन चार मास एक स्थानमें रहते हैं। इस समयमें वे दो वार अण्डप्रसव, शावकोत्पादन और उनका पालन करते हैं। शावक अवस्थामें ही नर मादाका भेद अच्छी तरह मालूम पड़ता है। जिन बच्चोंके वक्ष और पंखका अग्रभाग कुछ पीला और गला सफेद होता है, वे नर और जिनका गला सफेद, पंखका अग्रभाग बिलकुल पीला नहीं होता वे मादा समझे जाते हैं।

यह पक्षी सममण्डलवासी है। यूरोप और एशियाके बहुतसे प्रदेशोंमें तथा अफ्रिकाके केवल नील-नदके तीरवर्ती देशमें यह पक्षी मिलता है। मादा एक बारमें ५ या ६ हरे कपासी रंगके छोटे छोटे अंडे देती हैं। पंद्रह दिन अंडे सेनेके बाद बच्चे बाहर निकल आते हैं। इनका घोंसला जमीनसे कुछ ऊपर तथा लम्बे तिनकोंसे ढकी मिट्टीमें रहता है। इनको शावक अवस्थामें ही ला कर पालना चाहिये। इस समय लानेसे ये पालनेवालेके अत्यन्त वशीभूत हो जाते हैं तथा प्रौढ़ अवस्थामें निर्भय चित्तसे गाने लगते हैं। ये पोषक-के इतने वशीभूत, प्रिय और भक्त होते हैं, कि कभी कभी पोषकके विरहमें अपना जीवन पर्यन्त विसर्जन कर देते हैं। इनमेंसे अधिकांश कीट और पतङ्गभोजी तथा वन्य फलादि भी खाते हैं।

यूरोपके किसी किसी प्रदेशमें बुलबुलको पकड़नेका विशेष नियम है। यदि कोई प्रौढ़ावस्थामें पक्षीको पकड़े तो उसको राजदरबारमें दंड दिया जाता है। वहां बुलबुलके बच्चोंको पकड़ कर बेचना ही साधारण नियम है।

पालतू पक्षी पिंजरोंमें ही रहता है। ऐसी अवस्थामें कोई जोड़ा जोड़ा तथा कोई एक एक पक्षीको एक एक पिंजरेमें रखते हैं। पिंजरा लंबाईमें १२ इञ्च तथा ऊंचाईमें १ फुट होता है। बेष्टिन (Mr. Bastin) साहबका कहना है, कि पिंजरेको हरे रङ्गसे रंगाना और ऊपरसे हरे कपड़े द्वारा उसे ढंक देना उचित है। यदि कोई उनके कहे अनुसार बुलबुलके पिंजरेको हरे रङ्गमें रंगे, तो उनको चाहिये कि पक्षीको पिंजड़ेमें रखनेसे पहिले उसको अच्छी तरह शुष्क और दुर्गन्धि रहित कर ले। उन्हें पिंजरेमें तीन खन तैयार करना चाहिये उनमें दो पिंजरेके तलके निकट और तीसरा उससे कुछ ऊपर रहे। पक्षियोंके कोमल पैर निरापद रखनेके लिये तीनों खनको हरिद्वर्णके कपड़े (मखमल आदि)-से मंडित कर देना चाहिये। पिंजड़ेमें एक जलपात्र इस तरह रखना चाहिये, कि पक्षी इच्छानुसार उससे उतर कर पात्रमें स्नान कर सके। पिंजड़ेके नीचेका भाग एकदम पानीसे न भींग जावे इसलिये उसकी तह पर एक ब्लोटिङ्ग पेपर या आयल क्लोथ बिछा देना चाहिये। उसे फिर परिवर्त्तन कर पिंजड़ेकी बीटको बाहर निकाल देना उचित है।

परीक्षाके द्वारा जाना गया है, कि जो बुलबुल पक्षी यत्न पूर्वक साफ पिंजड़ेमें रखे जाते हैं वे अच्छा मधुर गान गाते हैं। निर्जन वा विरक्तिजनक स्थान इन-को बिलकुल पसंद नहीं है। ऐसे स्थानोंमें रखनेसे उतने

प्रफुल्ल चित्तसे गान नहीं करते। गान करनेके लिये कभी कभी छायाविशिष्ट और कभी रौद्रमय स्थान निर्वाचन कर वहां कुछ समयके लिये पिंजरेको रख दे। इस पक्षीका सावधानी तथा मृदुतासे पालन करना कर्त्तव्य है।

इनको बढ़िया बाग, सुन्दर सुन्दर स्थान बहुत पसन्द हैं। पुष्पोंकी सुगंधि इनको बहुत भाती हैं तथा इनका स्वभाव अत्यन्त कोमल होता है। ये शरद् ऋतुके अन्तिम भागसे ले कर वसंतऋतु तक उच्च कण्ठसे सुललित गान गाते हैं। जब शीत ज्यादे पड़ने लगता है, तो इनका गाना कुछ कमती हो जाता है। यह पक्षी सदा अपनेमें ही मदोन्मत्त और अपने स्वरमें सदा मस्त देखा जाता है। गाते समय ये दिनकी अपेक्षा रात्रिमें अविश्रान्त नाना तरहकी स्वरलहरीसे कर्णको सुख पहुंचाता है और हृदयको तो मानो स्वर्गसे दूसरे स्वर्गके रत्न सिंहासन पर ही बैठा देता है। इसी गुणसे इस पक्षीका नाम अङ्गरेजीमें Nightingale अर्थात् रातमें गानेवाली चिड़िया रखा है। यदि आपका हृदय वालुकामय भूमिकी तरह केवल नीरस वा पाशवभाव पूर्ण न हो, तो आप संसारी हों या संसारविरागी योगी हों, आपके हृदयको सदा ही बुलबुलके सुललित मनोहर स्वरसे अवश्य ही आकृष्ट और मोहित होना पड़ेगा। जब ये उत्तेजित होते हैं, तो रातमें एक मुहूर्त्तके लिये भी इनका मनोहर गान बंद नहीं होता। इस अवस्थामें ये किस वक्त सोते हैं इसका निर्णय नहीं किया जा सकता। इस गम्भीर निशीथके समय इनकी सुदूर-व्यापिनी स्वरलहरी सुननेसे किसका चित्त मुग्ध नहीं होता? ये एक विश्वासमें बहुत देर तक गान कर सकता है।

यह पक्षी उद्यान तथा फलोंका अत्यन्त प्रिय है। इस कारण सुवासित उद्यानमें पिंजरेके आवरणको हटा कर रखना चाहिये अथवा कभी कभी इसके पिंजरेमें सुगंधियुक्त गुलाबादि फूलोंको रख देना उचित है। सवेरे और शाम इसे दूसरे मनोहर गानेवाले पक्षियोंका गान श्रवण करावे। उसे सुन यह पक्षी बहुत प्रसन्न होता है और बढ़िया तौरसे गाने लगता है।

बुलबुलको फतिंगे, घोड़ेकी लीदमें उत्पन्न कीड़े, चींटियोंके अण्डे, भुने चनेके सत्तू गरम घीमें भूंज कर खानेके लिये देना चाहिये। कभी कभी उन सत्तुओंके साथ मुर्गी या हंसके अंडोंका रस मिला कर देना उचित है।

यह पक्षी पिंजड़ेमें आवद्ध रहनेसे कभी कभी बीमार भी पड़ता है। उस समय इसकी चिकित्सा करनी चाहिये। अतएव जो पीड़ा इसको ज्यादा हुआ करती है उसके कुछ औषधोंका विषय नीचे लिखा जाता है।

आहार ठीक समय न मिलने, पिंजड़ेमें रहनेसे उचित व्यायामका अभाव आदि कारणोंसे इनको मदाग्नि हो जाती है। इस समय इनको एक दिनके अंतर पर तीन या चार मकड़ी खिलाना उचित है। इससे भी यदि वह दुर्बल ही दीख पड़े और उसकी पीड़ा बढ़ती ही चली जावे, तो जलमें लौहसिङ्घान (मोरचा लगा हुआ लोहा) को तीन चार दिन तक डुबो कर रखे और वह जल उसे पीनेको दे। इससे मंदाग्नि या दुर्बलता दूर हो जाती है।

प्रथम वर्षमें गानेके समय इस पक्षीके नाकके छेदके ऊपर कुछ छोटे छोटे फोड़े निकल आते हैं। इस समय उन फोड़े पर मक्खन चुपड़ देना उचित है। यदि इससे लाभ न दीखे, तो फिटकिरीको शहदके साथ फोड़ पर लगाना चाहिये। यदि इन दवाइयोंसे फोड़ा आराम न जाय तो छुरीको अग्निमें गरम कर उससे उन फोड़ोंको जला देवे तथा काले साबुनके जलसे उस घावको बार बार धो डाले। ऐसा करनेसे जखम अवश्य आरोग्य होगा। इस समय पीने जलके बदले तीन चार दिन तक विटपालङ्कका रस देना उचित है। इसको प्रतिदिन नया बना कर देना चाहिये।

पक्षपरिवर्त्तन काल पालतू पक्षीमात्रके लिये विपत्तिजनक है, फिर बुलबुलके लिये भी उतना ही विपदावह है। इस समय ये प्रायः दुर्बल हो जाते हैं। इसलिये इनका शारीरिक बल संरक्षणार्थ पक्षपरिवर्त्तन कालके कुछ पहिले अर्थात् वैशाख मासके अन्तसे ज्येष्ठ मास तक इनको मुर्गीके अंडे और जाफरान (कुंकुम) मिश्रित सत्त देना उचित है। पक्षपरिवर्त्तनके आरंभ होनेसे इनको आहारके लिये यथेष्ट कीट और पतङ्ग देना होगा तथा बीच बीचमें मकड़ा खानेको देना चाहिये। इस समय इनको स्नान और पीनेके जलमें कुंकुम देना नितान्त आवश्यक

है। इस समय इनको शीतल वायु और सब प्रकार-की विरक्तिसे रक्षा करना उचित है। पक्षपरिवर्त्तनकालमें किसी किसी पक्षीका नासारन्ध्र बंद हो जाता है। ऐसी हालतमें एक या दो दिन पर्यन्त मक्खन, गोलमिर्चका चूर्ण और लहसुनका रस मिला कर नासारन्ध्रमें देना चाहिये। इससे भी यदि आरोग्य न हो, तो इस पक्षीके निक्षिप्त एक पंखको मक्खनमें भिगो कर उसे नाकके एक छेदसे प्रवेश करा दूसरे छेदसे हो कर वाहिर निकाल ले। यदि एक बारमें इसके द्वारा नासारन्ध्रमें मक्खन न लगे, तो फिर इसी पंखको दूसरी बार मक्खनसे लपेट कर उल्लिखित नियमसे नासारन्ध्रमें प्रवेश कराना आवश्यक है। अर्थात् नासारन्ध्रमें जिससे अच्छी तरह मक्खन लगे वही उपाय करना चाहिये। फिर दो दिन पर्यन्त नये बादामका सारांश जलके साथ घिसनेसे जो दूधकी तरह हो जाता है, उसे पानीके वदलेमें व्यवहार करावे। इससे रुका हुआ नासारन्ध्र खुल जाता है। नासारन्ध्रके रुक जानेसे कभी कभी इनका पक्षपरिवर्त्तन बंद हो जाता है। इसलिये नासारन्ध्रको खोल कर पक्ष-परिवर्त्तनार्थ इस पक्षीको आमिष जलमें (मछलीके धुए जलमें) स्नान करावे और पीनेके जलको कुंकुमसे आरक्त करके देवे। इस पक्षपरिवर्त्तनकालमें कभी कभी बुलबुल वातरोगसे पीड़ित हो जाती है। किन्तु यथार्थमें वह वातरोग नहीं है। वह बहुधा पैरकी हड्डीको आच्छादित करनेवाले मांसकी वृद्धिके कारण होता है। पालतू पक्षीके ढाई वर्ष होने पर जङ्घा और अंगुलिका अस्थि-आच्छादक चर्म बढ़ कर मोटा हो जाता है। वातरोग-की तरह पीड़ा मालूम होवे, तो पहिले आध घंटा बुल-बुलके दोनों पैरको जलमें डुबो कर रखना उचित है। इससे आरोग्य हो जानेकी बहुत कुछ संभावना है। यदि आरोग्य न हो तो उष्ण जल अथवा तैल द्वारा पैर-के आच्छादक चर्मको नोंच कर फेंक देना चाहिये। अस्थि-आच्छादक चर्मको उठा देनेमें तैल अथवा थोड़े गर्म जलमें पहिले १०।१५ मिनट पक्षीके दोनों पैर भिगो देवे पीछे सावधानीसे अस्थि-आच्छादक चर्मको हटा कर इसके स्थानमें तैल मल देना उचित है। इस समय कभी कभी इनके मलके साथ ऐसा रक्तस्राव निक-लता है कि, उसको केवल रक्त ही कहना चाहिये तथा इससे पक्षी दुर्बल हो कभी कभी जीवन तक विसर्जन कर देता है। इस तरह शोणितस्राव देखने पर पहिले पीनेके जलके वदलेमें इनको पका हुआ बकरीका दूध खाने देना चाहिये। इससे भी यदि रक्त निकलना बंद न हो, तो बकरी दूधके साथ मेष मज्जाको पका कर इसे पीने जलके वदलेमें तीन चार दिन देना उचित है। इससे इनका शोणितस्राव बंद हो जायगा।

पक्षपरिवर्त्तनके बाद कभी कभी बुलबुलके मृगीरोग होता है। मूर्च्छित होने पर इस पक्षीको बलपूर्वक शीतल जलमें डुबा कर स्नान कराना चाहिये। इससे आरोग्य न हो, तो पांवकी एक उंगलीका कुछ अंश काट कर रक्त अधिक मात्रामें निकाल देना चाहिये। ऐसा करनेसे मृगीरोग नष्ट हो जाता है।

यदि पक्षी विषादयुक्त हो, जंभाई लेने लगे और पंखों-को भी उठाये रखे तो समझना चाहिये, कि इसके पेटमें दर्द होता है। इस अवस्थामें जलके साथ कुंकुम विशेष उपकारी है।

बुलबुलको कभी खांस रोग भी होता है। इस रोगमें सिरकाको शहदके साथ मिला कर खिलानेसे फायदा होता है।

कोई कोई कहते हैं, कि चींटियां बुलबुलकी भयानक शत्रु हैं। बहुत लोग सुन कर आश्चर्य करेंगे कि चींटि-योंको खानेसे बुलबुल मर जाता है। इस वास्ते इसके रक्षकको चाहिये कि चींटी न खाने दें अन्यथा यह सुमधुर मनोहर गीत गानेवाली चिड़ियाको सदाके लिये अपने हाथसे खो बैठेंगे। चाहे यह प्रवाद ही हो तो भी प्रति-पालकको इनसे सावधान जरूर रहना चाहिये।

बुलबुलका अच्छी तरह पालन करनेसे २४ २५ वर्ष तक वह जिन्दा रह सकती है। एक वर्षमें आठ नौ मास तक सुललित मनोहर कण्ठसे गाती है। मुसलमान बादशाहोंके जमानेमें इस पक्षीका बहुत आदर था इसी-लिये पारसी भाषामें इसकी प्रशंसा ज्यादा की गयी है। फारसी और उर्दूके कवि इसे फूलोंकी प्रेमी नायकके स्थानमें मानते हैं।

बुलबुलचश्म (फा० स्त्री०) एक प्रकारकी चिड़िया।
बुलबुलबाज (फा० पु०) वह जो बुलबुल पालता या लड़ाता हो, बुलबुलका खिलाड़ी या शौकीन।
बुलबुलबाजी (फा० स्त्री०) बुलबुल पालने या लड़ानेका काम।
बुलबुलबोस्ता (फा० पु०) बुलबुल देखो।
बुलबुला (हिं० पु०) बुदबुदा, पानीका बुल्ला।
बुलवाना (हिं० क्रि०) बुलानेका काम दूसरेसे कराना, दूसरेको बुलानेमें प्रवृत्त करना।
बुलाक (हिं० पु०) वह लंबोतरा या सुराहीदार मोती जिसे स्त्रियां प्रायः नथमें या दोनों नथनोंके बीचके परदेमें पहनती हैं।
बुलाकी (हिं० पु०) घोड़ेकी एक जाति।
बुलाना (हिं० क्रि०) १ आवाज देना पुकारना। २ किसी-को बोलनेमें प्रवृत्त करना, बोलनेमें दूसरेको लगाना।
बुलावा (हिं० पु०) निमन्त्रण, बुलानेकी क्रिया या भाव।
बुलाह (हिं० पु०) वह घोड़ा जिसकी गरदन और पूंछके बाल पीले हों।
बुलि (सं० स्त्री०) बुल-इन्-किच्। १ स्त्रीचिह्न, भग।
बुलिन (अं० स्त्री०) चौकोर पालके लगेमें बांधनेका एक विशेष प्रकारका रस्सा।
बुलेली (हिं० पु०) महिसुर और पूर्वी घाटमें अधिकतासे मिलनेवाला मंझोले आकारका एक पेड़। इसकी लकड़ी सफेद और चिकनी होती है जिससे तस्वीरोंके चौखटे, मेज, कुरसियां आदि बनाई जाती हैं। इसके बीजोंसे एक प्रकारका तेल निकलता है जो मशीनों आदिके पुरजोंमें डाला जाता है।
बुलौवा (हिं० पु०) बुलावा देखो।
बुल्लन (हिं० पु०) १ मुंह, चेहरा। २ पानीका बुलबुला। ३ गिरईकी तरहकी पर भूरे रंगकी एक मछली। इस मछलीके मूंछें नहीं होतीं।
बुल्व (सं० त्रि०) बुल-व-उल्वादित्वात् निपातनात् साधुः। तिरश्चीन, तिरछा।
बुल्सार—बम्बई प्रदेशके सूरत जिलेका उत्तरीय तालुक। यह अक्षा० २०° ४६ उ० तथा देशा० ७२° ५२ से ७३° ८ पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण २०८ वर्गमील और जनसंख्या प्रायः ८७८८६ है। इसमें इसी नामका १ शहर और ६५ ग्राम लगते हैं। समुद्रके किनारे वसा होनेके कारण यहांकी आबहवा अच्छी है। बम्बई नगरसे अनेक मनुष्य स्वास्थ्यपरिवर्त्तनके लिये यहां आते हैं।

२ उक्त तालुकका एक शहर। यह अक्षा० २०° ३७ उ० तथा देशा० ७२° ५६ पू०के मध्य अवस्थित है। जनसंख्या १२८५७ है। यहां जलपथ और स्थलपथसे नाना प्रकारके द्रव्योंका वाणिज्य होता है। शहरमें एक सबजजकी अदालत, अस्पताल, एक हाई स्कूल और एक मिडिल इङ्गलिश स्कूल तथा ६ वर्नाक्युलर स्कूल हैं।
बुष (सं० क्ली०) बुस्यते उत्सृज्यते यत्, इगुपधेति क, पृषोदरादित्वात् षत्वं। बुस, अनाज आदिके ऊपरका छिलका।
बुस (सं० क्ली०) बुस्यते तुच्छत्वादुत्सृज्यते इति (इगुपधज्ञा प्रीकिरः कः। पा ३।१।१३५) तुष, भूसी। पर्याय- कडङ्गर, बुष। २ उदक, जल।
बुस्त (सं० क्ली०) बुस्त्यते नाद्रियते बुस्त-घञ्। पन-सादि फलका त्यज्य अंश, कटहल आदिका वह हिस्सा जो खाने लायक नहीं है। २ मांसपिष्टकभेद, मांसकी पीठी।
बुहरी (हिं० स्त्री०) बहुरी देखो।
बुहारना (हिं० क्रि०) झाड़ूसे जगह साफ करना, झाड़ू देना।
बुहारा (हिं० पु०) वह बड़ा झाड़ू जो ताड़की सींकोंसे बनाया जाता है।
बुहारी (हिं० स्त्री०) झाड़ू, सोहनी।
बूंच (हिं० स्त्री०) एक प्रकारकी मछली। गूंछ देखो।
बूंद (हिं० स्त्री०) १ जल या और किसी तरल पदार्थका वह बहुत ही थोड़ा अंश जो गिरने आदिके समय प्रायः छोटी सी गोली या दाने आदिका रूप धारण कर लेता है। २ एक प्रकारका रंगीन देशी कपड़ा। इसमें बूंदोंके आकारकी छोटी छोटी बूटियां बनी होती हैं। ३ वीर्य। (वि०) ४ बहुत अच्छा या तेज। इस अर्थमें इसका व्यवहार केवल तलवार, कटार आदि काटनेवाले हाथियारों और शराबके संबंधमें होता है।

बूंदा (हिं० पु०) १ बड़ी टिकुली। २ सुराहीदार मणि या मोती जो कान या नथमें पहना जाता है।

बूंदाबांदी (हिं० स्त्री०) अल्प वृष्टि, हलकी या थोड़ी वर्षा।

बूंदी—दक्षिण पूर्वी राजपूतानेका एक स्वतन्त्र राज्य। यह अक्षा० २५'से २६' उ० तथा देशा० ७५'१५'से ७६'१६' पू०-के मध्य विस्तृत है। इस राज्यके उत्तरमें जयपुर और टोंक-का राज्य, पश्चिममें उदयपुर अर्थात् मेवाड़का राज्य, दक्षिणमें कोटा और मेवाड़का राज्य और पूर्वमें कोटा राज्य है। भूपरिमाण २२२० मीलसे कुछ अधिक है। जनसंख्या दो लाखके लगभग और आय १२ लाखके अन्दाज है। इस राज्यमें माहेश्वरके पुराण प्रसिद्ध राजा रन्तदेव(१)का बसाया हुआ चंबल नदीके तट पर पाटन नगर एक प्रसिद्ध तीर्थस्थान है। यहां पर केशवराय जीका प्रसिद्ध प्राचीन मंदिर है जिसका जीर्णोद्धार संवत् १६९८ वि०में बूंदीके इतिहासप्रसिद्ध वीर नरेशराव राजा छत्रसालजीने कराया था। कार्त्तिक सुदि १३से मंगशिर वदि दोज तक ५ दिन यहां बड़ा मेला जुड़ता है। दूसरा तीर्थस्थान बूंदीसे डेढ़ कोस पर बानगङ्गाके किनारे केदारनाथ है।

बूंदीके नरेश हाड़ा चौहान हैं जो साम्हरके चौहान राजा माणिकराज (संवत् ७४१)-की संतानमें अस्थि-पालजीके वंशज होनेसे हाड़ा संज्ञाको प्राप्त हुए हैं।

क्योंकि हाड़ा वंश चौहानवंशकी एक शाखा है। इस-लिये पहले चौहान वंशके विषयमें परिचय देना बहुत आवश्यक है। टाड साहबने चौहानवंशकी अग्निकुण्डसे उत्पत्ति लिख कर भी इनका सामवेद सोमवंश माधुनी शाखा और वाचा गोत्र लिखा है जो बिलकुल एक दूसरेके विरुद्ध है। सामवेदकी कौथुनी शाखा है माधुनी शाखा नहीं है माद्यन्दिनी शाखा तो यजुर्वेदकी है। और अग्नि-कुण्डसे उत्पन्न होनेके कारण सोमवंश भी नहीं हो सकता, अग्निवंश कहला सकता है। केवल संवत् १३७७ के रावलुंभाके शिलालेखमें वत्सके ध्यान और चन्द्रके योगसे चाहमानजीका चन्द्रलोकसे आना लिखा है उससे चन्द्रवंशी होना इस लिये नहीं माना जा सकता, कि उस लेखसे पहले संवत् १२००के आसपासके शिलालेखोंमें कई जगह इनको सूर्यवंशी लिखा मिलता है। १३वीं शताब्दीके आरम्भके लिखे "पृथ्वीराज विजय" काव्यमें जगह जगह चौहानोंको सूर्यवंशी लिखा है। उसमें लिखा है, कि ब्रह्माजीको प्रार्थनासे विष्णुने सूर्यकी ओर देखा तो सूर्यमण्डलसे एक पुरुष आया, वही चौहान (चाहमान) कहलाया, पर वहां ही उसके भाई धनंजयका भी वर्णन है जिसकी उत्पत्तिका कुछ भी पता नहीं, कि वह कहांसे आ गया। परन्तु दूसरे स्थल पर इनको (चाहमान)-राम इक्ष्वाकु और रघुके वंशमें लिखा है (१)। हमीर महाकाव्यमें लिखा है, कि पुष्करमें ब्रह्माजीके यज्ञकी रक्षा-के लिये ब्रह्माके ध्यानसे सूर्यमण्डलसे एक दिव्य पुरुष उतर कर आया और उसने यज्ञकी रक्षा कर ब्रह्माजीको संतुष्ट किया, उसी पुरुषका नाम चाह-मान हुआ। पृथ्वीराजरासौ नामक महाकाव्य में वशिष्ठजीके यज्ञकी रक्षाके लिये आबू पर्वत पर ४ क्षत्रियोंको अग्निकुण्डसे उत्पत्ति लिखी है। उसीमें चाहमान (चतुर्भुज) जीकी उत्पत्तिका भी वर्णन है। और भी कई ग्रन्थोंमें सूर्य और अग्नि वंशी लिखा है।

सूर्यवंश वर्णन करनेवालोंमें ब्रह्माजीके यज्ञकी रक्षाके लिये चाहमानजीका सूर्यमण्डलसे आना लिखा है और अग्निवंश वर्णन करनेमें ब्रह्माके पुत्र वशिष्ठके यज्ञकी रक्षा-के लिये यज्ञकुण्डसे उत्पन्न होनेका विधान है। भेद कुछ नहीं है, यज्ञकी रक्षा और विष्णुका संबन्ध दोनोंमें है और दोनोंके यज्ञमें देवताओंका आह्वान होना भी स्वाभाविक बात है। सूर्यका नाम भी विष्णु है। अग्निको मृत्यु लोकमें अग्नि, अंतरिक्षमें विद्युत और द्युलोक-में सूर्य कहते हैं। अतः सूर्यका नाम भी अग्नि सिद्ध है तब चौहानोंका सूर्यवंशी या अग्निवंशी होनेका भेद कुछ नहीं है। आज कल चौहान अपनेको अग्निवंशी ही मानते हैं।

(१) नगदा मथुरा रेलवेके सवाई माधोपुर स्टेशनसे ६ कोस पर रणथंभोरका प्रसिद्ध प्राचीन किला है जो संभव है इसी रन्त-देवका बनवाया हुआ हो।

(१) "काकुत्स्थमिक्ष्वाकु रघू च यद्दधत्पुराभवत्त्रिप्रवरं रघोःकुलम्। कलावपि प्राप्य स चाहमानतां प्ररूढ तुर्य प्रवरं बभूव तत्॥"
(पृथ्वीराज विजयद्वि० सर्ग ७-१)

जिस प्रकार चौहान वंशके विषयमें मतभेद है उसी प्रकार हाड़ावंश कहलानेके विषयमें भी लोगोंके पृथक् मत पाये जाते हैं। संवत् १७१४से संवत् १७२६ वि० तकके लेखोंमें जोधपुर राज्यके प्रधान मन्त्री मूतानैणसी-ने नाडौलके ७वें चौहान राजा आसराजके छोटे पुत्र माणिकराजके छठें वंशधर विजयपालके पुत्र हरराजसे हाड़ाओंकी उत्पत्ति लिखी है, इसीका अनुकरण राय बहादुर पण्डित गौरी शङ्कर हीराचंदजी ओझाने भी किया है, लेकिन मूतानैणसी दूसरे स्थल पर सौनगराओं की वंशावलीमें नाडौलके प्रथम नरेश राव लाखणसीके ज्येष्ठ पुत्र बीसलके वंशमें हाड़ौतीके हाड़ाओंको लिखता है जो एक दूसरेके विरुद्ध पड़ते हैं। टाड साहबने अपने भ्रमण-वृतान्तमें मैनालके संवत् १४४६ के शिलालेख-के आधार पर बंबावदेके हाड़ाओंकी जो वंशावली दी है उसमें भी बंगदेवके पिताका नाम हरराज नहीं है जो मूता नैणसीके लिखनेके करीब ३०० वर्ष पहलेके शिलालेखसे ली गई है। उसमें देवराजके पुत्रका नाम तो हरराज दिया है जो वंगदेवका पोता और विजयपालका परपोता हो सकता है। वह पठार प्रान्त-का राजा हुआ था, बूंदीका नहीं। बूंदीवंश-परंपरामें हरराजका नाम नहीं है। देवसिंह (देवराज)-के छोटे पुत्र समरसीका नाम आता है जो बूंदीराज्यके संस्थापक थे और उन्हींके एक बड़े भाई हरराज थे जिनको देव-सिंहजीने अपना वपौती बंबावदा (पठार प्रान्त)-का राज्य दिया था। हरराजसे उसके वंशजोंका नाम भी हाड़ा नहीं बन सकता। राजपूतानेकी प्रचलित प्रणालीके अनुसार हरराजके वंशज हरराज पोता अथवा हरराजोत कहला सकते हैं। यदि उनके लिखनेके अनुसार हरराज-का नाम हाड़ा भी मान लिया जाय जैसा कि मूतानैणसी-ने लिखा है, तो उसके वंशज हाड़ावत या हाड़ापोता कहला सकते हैं, न कि हाड़ा ही। तिस पर भी बूंदीके नरेश तो हरराजके वंशज नहीं हैं उसके छोटे भाई सम-रसीके वंशज हैं। अतः हाड़ा शब्द समरसीजीसे दीर्घ-काल पहलेका होना चाहिये। जो वंश-परम्परागतमें अस्थिपालजीसे ही माना जा सकता है जिसका वर्णन छत्रसाल चरित्र, वंश प्रकाश, वंश भास्कर और मिसिक साहब तथा टाड साहबके लेखोंमें भी आया है।

अस्थिपालजीके वंशमें राव हमीर और गंभीर हुए जिन्होंने भारतके सम्राट् पृथ्वीराज चौहानके साथ रह कर कन्नौजके राजा जयचंद राठौरकी सेनासे घोर संग्राम किया और भारतवर्षकी स्वतन्त्रताके लिये शाह-बुद्दीन महम्मद गोरीसे अंतिम युद्धमें लड़ कर अमर पद पाया। इनके वंशमें रामचंद्रने मांडलगढ़ परसे मुसल-मानोंको मार कर मीणोंके पठार प्रान्त पर अपना स्वतन्त्र अधिकार जमाया। इनकी सन्तानमें राव कोल्हनजी बड़े श्रद्धावान भक्त हुए थे जिन्होंने अपनी रानियोंसे डंडौती देते हुए श्री केदारनाथजीकी यात्रा की। ६ मासमें त्रिय्यागाटीके पास बानगंगा पर पहुंचे, जहां केदार-नाथजीने स्वयं प्रकट हो दर्शन दे कर उनकी यात्रा सफल की। इनके पौत्र राव वंगदेवजीके पुत्र कुंवर देवसिंहजीने कुंवर पदमें ही अपने बाहुबलसे मीणोंको विजय कर संवत् १३००के लगभग बांदूनालकी घाटी छीन ली और बूंदी नगर बसाया। फिर खटकड़ लाखेरी, नैनवा आदि कई परगनोंको विजय कर अपना वपौती पठार प्रान्तका राज्य तो अपने बड़े पुत्र हरराजको दे दिया और नया जीता हुआ राज्य अपने छोटे पुत्र समरसिंहको दे कर पृथक् पृथक् दो स्वतन्त्र राज्य बना दिये। कुछ पीढ़ी पीछे बंबावदा (पठार प्रान्त—भैंसरोर गढ़ आदि)-का राज्य तो नष्ट हो कर मेवाड़के अधिकारमें चला गया; परन्तु बूंदीका राज्य सदैव स्वतन्त्र बना रहा। कई बार मेवाड़वालोंने बूंदीको भी अधीन करनेकी चेष्टा की, परन्तु उनको सदैव हानि ही उठानी पड़ी। समरसिंह-जीने भीलोंको मार कर चंबल पारके देशोंको विजय कर लिया और कोटरियो भीलको मार कर कोटा बसाया। इस समय जितने देशों पर बूंदी नरेशोंने अधि-कार जमाया था वह समस्त देश उनके नामसे हाड़ौती (हाड़ीवाटी) देश कहलाया।

समर सिंहजीके पुत्र नरपालजीकी असावधानीसे बूंदीराज्यका कुछ भूभाग दूसरे पड़ोसी राज्य दबा बैठे थे। परन्तु इनके पुत्र राव हमीरजी (हामूजी)ने अपने पौरुषसे उन्हें परास्त कर अपने राज्यका दबा हुआ भूभाग उनसे छीन लिया। इनके समयमें मेवाड़के राणा हमीरजीने मांडलगढ़के लिये पठार प्रान्त पर चढ़ाई की,

तब राव हमीरजीने दोनों राज्योंके बीचमें पड़ कर और मांडलगढ़ राणाजीको दिला कर संधि करा दी। राणा हमीरजीके पुत्र राणा खेतसीजीके साथ राव हमीरजीके छोटे पुत्र खटकड़के जागीरदार लालासिंहजीकी पुत्रीका संबन्ध हुआ था। एक चारणके उसकानेसे राणा खेतसीजीने लालसिंहजी पर चढ़ाई कर दी। लालसिंहजीके बड़े भाई बूंदीके राव वरसिंहजीने बीचमें पड़ कर राणाजीको समझा कर आपसमें मेल कराना चाहा, परंतु उनके न मानने पर लड़ाई हुई और अन्तमें राणा खेतसीजी संवत् १४३६ वि०में अपने श्वसुर लालसिंहजीके हाथ मारे गये। राव वरसिंहजीके पुत्र राव वैरीशल्यजी पर मांडूके पठानोंने चढ़ाई की। उस समय घोर संग्राम हुआ। राव वैरीशल्यजीने वीरगति पाई। उनका एक छोटा पुत्र श्यामसिंह मुसलमानोंके हाथ लग गया, जिसको उन्होंने मुसलमान बना लिया और उसका नाम समरकंदी रखा। वैरीशल्यजीके पुत्र राव सुभाण्डदेव (भांडाजी) बूंदीकी गद्दी पर बैठे। इनके समयमें (संवत् १५४२में) ध्यालीसा अकाल पड़ा, जिसका इनको स्वप्नमें भान हो गया था। इन्होंने दूर दूर देशोंसे भी धान संग्रह कर लिया और अकाल पड़ जाने पर उदारतासे प्रजामें बांटा और पड़ौसी राजाओंको भी उनकी याचना पर नाजकी सहायता दे कर यश प्राप्त किया। मांडूके मुसलमानोंने समरकंदीको सरदारीमें बूंदी पर चढ़ाई की और इसे अपने अधिकार कर लिया। फिर थोडे दिन पीछे धोखा दे कर राव सुभाण्डदेवको उसने निमन्त्रण दे कर बुलाया और उन्हें मार कर आप निष्कंटक राज्य करने लगा। परन्तु थोड़े ही वर्षों पीछे राव सुभाण्डदेवके बड़े पुत्र राव नारायण दासजीने उनसे मिलनेके बहाने जा कर समरकंदीको मार राज्य पर अपना अधिकार जमाया। समरकंदीका पुत्र दाऊद (शायद इसीको टाड साहबने अमरकंदी लिख दिया हो) मृगयासे लौटते हुए बूंदीके बाजारमें मारा गया। राव नारायण दासके पीछे उनके पुत्र राव सूर्यमलजी बूंदीकी गद्दी पर बैठे जो 'अजान बाहु' थे। मेवाड़के राणा रतनसिंह और राव सूयमल परस्पर एक दूसरेके हाथसे मारे गये।

राव सूर्यमलके पीछे इनके पुत्र राव सुरतांणजी बूंदीकी गद्दी पर आरूढ़ हुए। वे भैरवके उपासक थे। इनकी दुष्कर्तोंसे सब सरदार और प्रजा इनसे नाराज हो गई थी इसलिये सब सरदारोंने मेवाड़से राव सुरजनजीको (जो राव नारायणदासजीके छोटे भाई राव नरबदजीके पोते थे) बुला कर संवत् १६११ वि०में बूंदीकी गद्दी पर बिठाया। राव सुरताणसिंहजी अपने बसाये हुए गांव सुलतानपुरमें जा बसे।

राव नारायणदासजीके भाई राव नरबदजीको मोट्टूदाको जागीर मिली थी। इनकी पुत्री बाई कर्मवती (कर्मेती) मेवाड़के राणा सांगाको ब्याही थी। इस सम्बन्धसे राणाजीने राव नरबदजीके पुत्र कुंवर अर्जुनजीको ६५ हजार रुपये वार्षिककी जागीरके १२ गाँव दे कर अपने पास रख लिया था। संवत् १५८९ वि०में राव अर्जुनके चित्तोड़के किलेके एक बुर्ज पर मालवेके पठानोंसे लड़ कर मारे जाने पर वह जागीर उनके पुत्र राव सुरजनजीको मिल गई। लगभग २० वर्ष तक रावसुरजनने मेवाड़में रह कर प्राण प्रणसे स्वामी भक्तिके साथ राणाजीकी सेवा की। शायद इसी कारण कुछ लेखकोंने राव सुरजनके साथ साथ बूंदी राज्यको भी मेवाड़के आश्रित जागीरदार लिख दिया है जो विश्वास योग्य नहीं है। इस भाँतिके न्यायसे जयपुरके सवाई महाराज माधोसिंहजीके जयपुर राज्य प्राप्त होनेसे पहिले टोंक राज्यमें रहनेके कारण जयपुर राज्यको भी टोंकका आश्रित राज्य मानना पड़ेगा। राव सुरजनजीने राणाजीके साथ द्वारिका जा कर रणछोड़जीका नया मंदिर बनवाया था। बूंदीराज्यसिंहासन पर बैठनेसे पहिले वे मेवाड़के जागीरदार थे। जिस समय उनके पिता और वे मेवाड़के जागीरदार थे उस समय बूंदी राज्य स्वतन्त्र था, मेवाड़वालोंके अधीन न था। राव सुरजनजीके दादा राव नरबदजीके बड़े भाई राव नारायणदास और उनके पुत्र राव सूर्यमलजी बूंदी राज्यके स्वतन्त्र नरेश थे। संवत् १५८८ वि०में रतनसिंहने राव सूर्यमलजीको आखेटमें धोखा दे कर मारा, जिन्होंने मरते मरते भी राणाजीको उनके ५ मनुष्यों सहित मार डाला था। यह इतिहास प्रसिद्ध घटना बूंदीराज्यकी स्वतंत्रताका ज्वलंत प्रमाण है।

संवत् १६११ वि०में राव सुरजनजी अपने स्वतन्त्र पैत्रिक राज्य बूंदीके स्वतन्त्र नरेश हो गये और मेवाड़से इनका कोई सम्बन्ध न रहा। इन्होंने बूंदी राज्य प्राप्त होने पर मेवाड़से अपने दो छोटे भाइयोंको भी बुला कर बूंदी राज्यमें ही बीस बीस हजार रुपये वार्षिककी जागीर दे दी और जो बूंदी राज्यके परगने राव सुरतानसिंहजीके समयमें शत्रु लोग दवा बैठे थे उन्हें वीरतासे विजय कर बूंदी राज्यमें मिला लिया, जिससे उनकी कीर्त्ति चारों ओर फैल गई। इसी समय अर्थात् संवत् १६१५ विक्रममें शेरशाही खानदानके हाकिम हाजी खां पठानने अकबर बादशाहके डरसे घबड़ा कर रणथंभोरका किला राव सुरजनके हाथ बेच डाला। इस समय मेवाड़वालोंका रणथंभोरसे कोई संबन्ध न था। दूसरे वर्ष अकबरके सेनापति हबीब अलीने अकबरकी आज्ञासे रणथंभोर पर चढ़ाई की और देशमें उपद्रव मचाया, परन्तु राव सुरजनने उसे मार भगाया।

इस समय तक बूंदीके अधीश कभी मेवाड़वालोंके अधीन नहीं थे और न रणथंभोर पर ही मेवाड़का अधिकार था, वे सदैव स्वतन्त्र नरेश रहे थे(१) चित्तोड़ विजय करनेके पीछे संवत् १६२५ विक्रमीमें अकबरने रणथंभोर पर चढ़ाई की। तुजुके जहांगीरीमें जहांगीरने लिखा है, कि राव सुरजनके पास ६-७ हजार सवार सदैव नौकर रहते थे। इससे यह भी जाना जा सकता है, कि जब ६-७ हजार सवार राव सुरजनके पास रहते थे तो १५-२० हजार पैदल भी अवश्य ही रहते होंगे, इसके अलावा गजपति और रथपति। जहांगीरने लिखा है, कि राव सुरजनने १४ दिन तक उसके वालिद बादशाह अकबरको रणथंभोर पर परेशान किया। सुरजन चरित्रमें लिखा है, राव सुरजनने १४ बार बादशाह अकबरको परास्त किया था। संभव है, ये १४ लड़ाइयां १४ दिनमें हुई हों। १४ दिनकी लड़ाई से हतोत्साह हो कर बादशाह अकबरने राव सुरजनको नर्बदा, मथुरा और काशी मण्डलोंका लोभ दे कर संधि की और गढ़मंडला (बारीगढ़-गढकंटक) विजय करने पर चुनारका परगना और दिया।

राव सुरजनके पुत्र कुंभोजने कुंवर पदमें ही सूरत और अहमदनगरको विजयमें अच्छा नाम कमाया। राव राजा भोजने जैसा अकबर बादशाहको अपनी वीरतासे प्रसन्न किया था, वैसे ही उसने उसकी धर्मविरुद्ध आज्ञाओंको भंग करके अपनी मूंछोंकी लाली रखी थी।

इनके पुत्र सरबुलंदराय राव राजा रतनसिंहजीने बुरहानपुरके मैदानमें खुर्रमकी बड़ी सेनाको परास्त कर जहांगीरका जाता हुआ राज्य बचाया था। इनके छोटे पुत्र माधोसिंहजीको कोटाका स्वतंत्र राज्य मिला जिसमें उस समय ३६० गांव थे। सर बुलंदरायके पौत्र बूंदीके राव राजा छत्रसाल और कोटेके राव मुकुन्दसिंहजीने धोलपुर और फतिहाबाद (उज्जैनके पास) की लड़ाइयोंमें शाहजादे औरङ्गजेब और मुरादकी मिश्रित सेनाओंसे तुमुल संग्राम कर दाराशिकोहको भागनेका अवसर दे वीरगति पाई, पर जोधपुरके महाराज जसवन्तसिंहकी तरह पीठ दिखा कर अपने कुलको कलंक न लगने दिया। राव राजा छत्रसालके पुत्र राव राजाभावसिंहने औरङ्गजेबकी धर्मविरुद्ध आज्ञाओंका सदैव तिरस्कार कर मंदिरोंकी रक्षा की और जल झूलनी एकादशीके धर्मोत्सवका जुलूस अपनी भुजाओंके बल दिल्ली नगर में बड़ी धूमधामसे निकाल कर यमुना तट पर पहुंचाया और पीछे अपने स्थान पर ला कर धर्मरक्षाकी मर्यादा पालन की। इनके भ्रातृपौत्र राव राजा अनिरुद्धसिंहजीके पुत्र राव राजा बुधसिंहजीने अपनी भुजाओंके बल जाजऊके मैदानमें आजमशाहको मार कर बहादुर शाहको दिल्लीके तख्त पर बिठाया और हफ्तहजारी मनसब और महाराव राजाकी पदवी पाई। इस युद्धमें आजमका पक्ष समर्थन करने पर जयपुरके सवाई महाराज जयसिंहको घायल हो खेत छोड़ कर भागना पड़ा था जिसका उसके मनमें डाह जमा हुआ था। फर्रुखशियरके समयमें जब कि बादशाहतमें गड़बड़ी मची, तो जयपुर नरेश सवाई महाराज जयसिंहजी अपने बहनोई बूंदीके महाराव राजा बुधसिंहजीको अपने साथ जयपुर ले आये जहां उन्होंने इन्हें बड़ी प्रीतिके साथ अपने पास

(१) मालवेके बादशाह बहादुरशाहने चित्तोड़ पर चढ़ाई की। उस समय चित्तोड़के राणा विक्रमादित्य और उसके छोटे भाई उदयसिंहको बूंदीराजने आश्रय दिया था।

रख और धोखा दे कर अपनी जाजऊकी हारका बदला लेनेके लिये इनका बूंदी राज्य इन्हींके एक स्वामि द्रोही सरदार करवरके जागीरदारके पुत्र दलेलसिंहको अपनी पुत्री ब्याह कर दे दिया और उसे अपना करद राज्य बना लिया। महाराव राजा बुधसिंहजीको जब सवाई जयसिंहका प्रपंच मालूम हुआ तो ये जयपुरसे चल दिये। इनके पीछे ही जयपुरकी सेना भी चढ़ी। जयपुर और बूंदीकी सीमा पर दोनोंमें डट कर युद्ध हुआ जिसमें जयपुर राज्यके बड़े बड़े सरदार मारे गये और जब महाराव राजा बुधसिंहजीके भी जो थोड़े से मनुष्य थे, मारे गये तब ये अपनी ससुराल बेघूं (मेवाड़)-में चले गये। इनके देवलोक होनेके पीछे इनके १३ वर्षके पुत्र वीरकेशरी महाराव राजा उमेद सिंहजीने अपने अनेक वर्षोंके असीम परिश्रम, अतुल पराक्रम और अद्वितीय रणकौशलसे जयपुर जैसे बलाढ्य हाथीके पेटमेंसे अपना बूंदीका पैतिक राज्य निकाला और अपने पुरखाओंकी कीर्त्तिको उज्वल और चिरस्थाई किया। फिर अपने पुत्र कुंवर अजित् सिंहजीको राज्य दे आप तीर्थाटनको निकले और पीछे वानप्रस्थ हो बूंदीसे दो कोस पर अपने केदारनाथजीके आश्रममें तप करने लगे जहां उनके पूर्वज कोल्हनजीको दंडौती देते समय श्री केदारनाथजीने प्रकट हो कर दर्शन दे उनकी यात्रा सफल की थी।

महाराव राजा अजित्सिंहजीने बीलेटा गांवके झगड़े-में राणा अरिसीजींको मार कर अपनी वीरता प्रकट की, जिसका वैर अभी तक दोनों राज्योंमें बना हुआ है। इनके पुत्र महाराव राजा विष्णुसिंहजीने सन् १८०४ ई०-में जसवंतराव हुल्करके विरुद्ध अङ्गरेजी सेनापति कर्नल मानसून साहबको सहायता दे कर सन् १८१८ ई० (संवत् १८७५ वि०)-में बृटिश-सरकारसे संधि की।

महाराव राजा विष्णुसिंहजीके पुत्र महाराव राजा रामसिंहजीने अपने ६८ वर्षके राज्यशासनमें प्रजाका उत्तम रीतिसे पालन करनेके सिवाय बूंदीमें संस्कृत विद्याकी उन्नति कर इसे छोटी काशी बना दिया। ये महाराव राजा धर्म और न्यायकी मूर्त्ति थे। बूंदीकी प्रजा इनको राजर्षि सम्बोधन करती है और अङ्गरेजी सरकार भी इनका बहुत मान रखती थी। सन् १८५७ के गदरमें इन्होंने गवर्मेण्टको अच्छी सहायता दी थी। इनकी जोधपुरवाली महाराणी राठोड़जीसे महाराज कुमार भीमसिंहजीका और नागोदके पड़िहारजीसे कुंवर रंगनाथसिंहजीका जन्म हुआ था। इन दोनों कुमारोंके देवलोक सिधारनेके पीछे कतकूनके पड़िहारजीसे मिती आश्विन कृ० १ संवत् १९२६के दिन महाराज कुमार रघुवीर सिंहजीका और उनके पीछे कुरङ्गराज सिंहजी, कुंवर रघुराज सिंहजी और कुंवर रघुवरसिंहजीका जन्म हुआ। संवत् १९४५ वि०के चैत्र कृष्णपक्षमें महाराव राजा रामसिंहजीके देवलोक होने पर मिती चैत्र शुक्ल ११ भृगुवार संवत् १९४६ (१२ अप्रेल सन् १८८९)-को महाराव राजा रघुवीरसिंहजी १९॥ वर्षकी अवस्थामें बूंदी-राजसिंहासन पर विराजे। इन महाराव राजाजीके दश विवाह हुए थे। जिनमेंसे बड़ी महाराणी जोधपुरकी राठोड़ जी श्रीसौभाग्य कुंवरीजीके गर्भसे अगहन कृ० ५ संवत् १९४६ (१२ नवम्बर सन् १८८९ ई०)को महाराज कुमार राघवेन्द्रसिंहजीका जन्म हुआ। परन्तु दुःख है, कि फाल्गुण शुक्ल ८ रविवार संवत् १९५५ (५ मार्च सन् १८९९ ई०) को केवल ९। वर्षकी अल्प आयुमें उनका देवलोक वास होनेसे राजपरिवार और प्रजामें हाहाकार मच गया।

महाराव राजा रघुवीरसिंहजीके समयमें सन् १९११ ई०के १२ दिसम्बरको दिल्लीमें एक बड़े शाही दरबारमें इङ्गलैण्डके राजा और भारतवर्षके सम्राट् पंचमजार्जका राज्याभिषेक हुआ जिसमें भारतवर्षके समस्त राजा महाराजा, नवाब, गवर्नर, लेफ्टिनेन्ट गवर्नर, सरदार सेठ साहूकार आदि तथा दूसरे दूसरे देशोंके प्रतिनिधि भी आये थे। उसमें निमन्त्रण पा कर महाराव राजा बूंदी भी सम्मिलित हुए थे।

भारतवर्षसे विदा होते समय सम्राट्ने राजा रघुवीरसिंहको १० जनवरी १९१२ ई०के दिन जे. सी. वी. ओ. की उपाधिसे भूषित किया।

ये महाराव राजा विद्वानोंका आदर सत्कार करनेमें सदैव तत्पर रहते थे। इनके समयमें सदैव धर्मानुष्ठान और ब्राह्मण भोजन होते रहते थे। प्राचीन मर्यादाका पालन और प्रजापालनमें इतना अनुराग था, कि जब जब

अकाल पड़े तव ही तव लगानके चढ़े हुए लाखों रुपये प्रजाको छोड़ दिये और लाखों रुपयोंका नाज प्रजामें बांटा और गरीबोंका पालन किया। इन्होंने बूंदी राज्यमें गौओंके चरनेके लिये जमीन छोड़ रखी है। महाराव राजा रघुवीरसिंहजी जैसे धर्म मर्यादा और प्रजापालक थे वैसे ही वीर धीर और उत्साही थे। इस समयके नरेशोंमें महाराव राजा साहव धनुर्विद्यामें अद्वितीय थे। मिती कृष्ण १३ मंगलवार संवत् १९८४ के दिन महाराव राजा रघुवीरसिंहजीके स्वर्ग सिधारने पर इनके सहोदर लघु भ्राता महाराज रघुराजसिंहजीके पुत्र महाराज ईश्वरीसिंह जी ही एकमात्र उत्तराधिकारी थे। ये मिती श्रावण शुक्ल चंद्रवारको बूंदीराज-सिंहासन पर विराजे। ये ही वर्त्तमान राजा हैं। इन्हें १७ तोपोंकी सलामी मिलती है।

बूँदी (हिं० स्त्री०) १ एक प्रकारकी मिठाई। यह अच्छी तरह फेंटे हुए वेसनको झरनेमेंसे बूंद बूंद टपका कर और घीमें छान कर वनाई जाती है। इसके दो भेद हैं, मीठी और नमकीन। नमकीन बूंदी वनानेके लिये पहले ही वेसनको घोलते समय उसमें नमक, मिर्च आदि मिला देते हैं; पर मीठी बूंदी वनानेके लिये वेसन घोलते समय उसमें और कुछ भी मिलाया नहीं जाता। उसे घीमें छान कर शीरेमें डुवा देते हैं और तव फिर काममें लाते हैं। छोटे दानोंकी बूंदीका लड्डू भी बांधते हैं जो बूंदीका लड्डू कहलाता है। २ वर्षाके जलकी बूंद।

बू (फा० स्त्री०) १ वास, गंध, महक। २ दुर्गन्ध, वदव।

बूआ (हिं० स्त्री०) १ पिताकी वहन, फूफो। २ भारतकी वड़ी वड़ी नदियोंमें मिलनेवाली एक प्रकारकी मछली। इसका मांस रूखा होता है। ३ वड़ी वहन। ४ मुसलमान-स्त्रियोंका परस्पर आदरसूचक सम्बोधन।

बूई (हिं० पु०) दिल्लीसे सिन्ध तक तथा दक्षिण भारतमें मिलनेवाला एक प्रकारका पौधा। यह ऊमरी और खार आदिकी जातिका होता है। इसे जला कर सजीखार निकालते हैं।

बूक (हिं० पु०) माजूफलकी जातिका एक वड़ा वृक्ष। यह पूर्वी हिमालयमें ५००० से ६००० फुटकी ऊंचाई तक पाया जाता है। इसकी ऊंचाई प्रायः ७५ से १०० हाथ तक होती है। इसकी लकड़ी यदि सूखे स्थान पर रखी जाय तो वहुत दिनों तक खराव नहीं होती। यह खंभे, चौखटे और धरनें आदि वनानेके काममें आती है। दार्जिलिङ्गके आस पासके जंगलोंमें इससे वढ़ कर उपयोगी और कोई वृक्ष कदाचित ही होता है। वहां इसकी पत्तियोंसे चमड़ा भी सिझाया जाता है।

(पु०) २ चंगुल, वकोटा।

बूकना (हिं० क्रि०) १ सिल और वट्टेकी सहायतासे किसी चीजको महीन पीस कर चूर्ण करना। २ अपनेको अधिक योग्य प्रमाणित करनेके लिये गढ़ गढ़ कर वातें करना।

बूका (हिं० पु०) वह भूमि जो नदीके हटनेसे निकल आती है, गंग वरार।

बूका (सं० क्लि०) बुक्कयति शब्दायते इति बुक्क-अच् पृषोदरादित्वाद्दीर्घः। बुक्क, हृदय।

बूगा (हिं० पु०) भूसा।

बूच (अं० पु०) १ वड़ी मेख। २ कपड़े कागज या चमड़े आदिका वह टुकड़ा जो वन्दूक आदिमें गोली या वारूदको यथास्थान स्थिर रखनेके लिये उसके चारों ओर लगाया जाता है।

बूचड़ (अं० पु०) पशुओंका मांस आदि वेचनेके लिये उनकी हत्या करनेवाला, कसाई।

बूचड़खाना (हिं० पु०) वह स्थान जहां पशुओंकी हत्या होती है, कसाई वाड़ा।

बूचा (हिं० वि०) १ जिसके कान कटे हुए हों, कनकटा। २ जिसके ऐसे अंग कट गए हों अथवा न हो जिनके कारण वह कुरूप जान पड़ता हो।

बूची (हिं० पु०) वह मेड़ जिसके कान वाहर निकले हुए न हों, वल्कि जिसके कानके स्थानमें केवल छोटा-सा छेद ही हो, गुजरी।

बूज़न (फा० पु०) वन्दर।

बूजना (फा० क्रि०) धोखा देना, छिपाना।

बूझ (हिं० स्त्री०) १ वुद्धि, समझ। २ पहेली।

बूझना (हिं० क्रि०) १ समझना, जानना। २ प्रश्न करना, पूछना।

बूट (हिं० पु०) १ चनेका हरा पौधा। चनेका हरा दाना। २ वृक्ष, पेड़।

बूट (अं० पु०) एक प्रकारका अंगरेजी ढंगका जूता जिससे पैरके गट्टे तक ढंक जाते हैं।

बूटा (हिं० पु०) १ छोटा वृक्ष, पौधा। २ पश्चिमी हिमालयमें गढवालसे अफगानिस्तान तक होनेवाला एक छोटा पौधा। ३ फूलों या वृक्षों आदिके आकारके चिह्न जो कपड़ों या दीवारों पर अनेक प्रकारसे बनाए जाते हैं।

बूटी (हिं० स्त्री०) १ वनस्पती, जड़ी। २ भांग, भंग। ३ एक पौधा जिसके रेशेसे रस्सियां बनाई जाती हैं। इसे गुलबादला भी कहते हैं। ४ खेलनेके ताशके पत्तों पर बनी हुई टिक्की। ५ फूलोंके छोटे चिह्न जो कपड़ों आदि पर बनाये जाते है।

बूड़ना (हिं० क्रि०) १ निमज्जित होना, डूबना। २ निमग्न होना, लीन होना।

बूड़ा (हिं० पु०) वर्षा आदिके कारण होनेवाली जल की बाढ़।

बूढ़ (हिं० पु०) १ लाल रंग। २ वीर बहूटी।

बूढ़ा (हिं० पु०) बुड्ढा देखो।

बूत (हिं० पु०) बूता देखो।

बूता (हिं० पु०) पराक्रम, बल।

बूथड़ी (हिं० स्त्री०) आकृति, चेहरा, शकल।

बूना (हिं० पु०) चनार नामक वृक्ष। चनार देखो।

बूम (अं० पु०) १ वह लट्ठा जो नदी आदिमें नावोंको छिछले पानीसे बचाने और ठीक मार्ग दिखलानेके लिये गाड़ा जाता है। २ जहाजोंके पालके नीचेके भागमें लगा हुआ लट्ठा। यह उसे फैलाए रखनेके लिये लगाया जाता है। ३ वह रोक जो बहुतसे लट्ठों आदिको बांध कर तैयार की जाती है। यह नदीमें इसलिये लगाई जाती है जिससे बहती हुई लकड़ियां इसमें रुक जांय। ४ लट्ठों या तारों आदिसे बनाई हुई वह रोक जो बन्दरोंमें शत्रुके जहाज अंदर आनेसे रोकनेके लिये लगाई जाती है।

बूर (हिं० पु०) एक प्रकारकी घास जो पश्चिम भारतमें होती है। इसके खानेसे गौओं भैसों आदिका दूध और दूसरे पशुओंका बल बहुत बढ़ जाता है। इसमें एक प्रकारकी गंध होती है। यदि गौएं आदि इसे अधिक खायं, तो दूधमें भी वही गंध आ जाती है। यह घास दो प्रकारकी होती है, एक सफेद और दूसरी लाल। इसे सुखा कर १०-१५ वर्षों तक रख सकते हैं।

बूरा (हिं० पु०) १ कच्ची चीनी जो भूरे रंगकी होती है, शक्कर। २ साफ की हुई चीनी। ३ महीन चूर्ण, सफूफ।

बूरी (हिं० स्त्री०) एक प्रकारकी बहुत छोटी वनस्पति। यह पौधों, उनके तनों, फूलों और पत्तों आदि पर उत्पन्न हो जाती है। इससे वे पदार्थ सड़ने या नष्ट होने लगते हैं। अंगूरके लिये यह विशेष प्रकारसे घातक होती है। इसकी गणना वृक्षों आदिके रंगोंमें की गई है।

बूला (हिं० पु०) पयालका बना हुआ जूता, लतड़ी।

बृंहण (सं० त्रि०) बृहि-ल्यु। पुष्टिकारक।

बृंहणत्व (सं० क्ली०) बृंहरस्य भावः त्व। बृंहणका भाव या धर्म।

बृंहित (सं० क्ली०) बृंह-क्त। हस्तिगर्जन, चिंघाड़ मारना।

बृंहिता (सं० स्त्री०) स्कन्दमातृकाभेद। कहीं कहीं 'बृंहिला' ऐसा भी पाठ देखा जाता है।

बृटिश (हिं० वि०) ब्रिटिश देखो।

बृबदुक्थ (सं० क्ली०) पद।

बृबु (सं० पु०) १ पणिका तक्षा। २ वेदोक्त एक पणिराज।

बृबूक (सं० क्ली०) जल, पानी।

बृष (सं० पु०) वृष देखो।

बृसय (सं० पु०) १ असुर। २ त्वष्टा। "अवातिरतं बृसयस्य" (ऋक् १।९३।४) ३ एक असुर रोग। (वेद०)

बृसी (सं० स्त्री० ऋषियोंका आसन।

बृहक (सं० पु०) बृह-क्वुन। देवगन्धर्वभेद।

बृहच्चञ्चु (सं० पु०) बृहती-चञ्चुः शाकविशेषः। १ महाचञ्चुशाक। (त्रि०) २ दीर्घचञ्चुयुक्त, लम्बी चोंचवाला।

बृहच्चित्त (सं० पु०) फलपूर, विजौरा।

बृहच्छन्दस् (सं० त्रि०) बृहच्छादयुक्त।

बृहच्छरीर (सं० त्रि०) बृहदाकारविशिष्ट।

बृहच्छल्क (सं० पु०) बृहन् शल्को यस्य। चिङ्गटमत्स्य।

बृहच्छाल (सं० त्रि०) बृहत् शालयुक्त।

बृहच्छ्रवस् (सं० त्रि०) बृहत् स्रवो यस्य। महायशस्क।

बृहज्जाबालोपनिषद् (सं० स्त्री०) उपनिषद्भेद।

बृहज्जाल (सं० क्ली०) बड़ा जाल।

बृहज्जीवन्ती (सं० स्त्री०) बृहज्जीवन्तिका वृक्ष। पर्याय—पलभद्रा, प्रियङ्करी, मधुरा, जीवपुष्पा, बृहज्जीवा, यशस्करी। गुण—बहुवीर्यदायक, भूतविद्रावण, वेगपूर्वक रसनियामक।

बृहड्ढक्का (सं० स्त्री०) बृहती ढक्का। बड़ा नगारा।

बृहतिका (सं० स्त्री०) बृहती (बृहत्या आच्छादने। पा ५।४।६) इति स्वार्थे कन्। १ उत्तरीयवस्त्र, उपरना। २ बृहती, कटाई।

बृहती (सं० स्त्री०) बृहत् गौरादित्वात् ङीष्। १ क्षुद्रवार्त्ताकी, वनभंटा। पर्याय - महती, क्रान्ता, वार्त्ताकी, सिंहिका, कुली, राष्ट्रिका, स्थूलकण्टा, भण्टाकी, महोटिका, बहुपत्री, कण्टतनु, कण्टालु, कटफला, वलवृन्ताकी, सिंही, प्रसहा, रक्तपाकी, लताबृहतिका। गुण—कटु, तिक्त, उष्ण, वातज्वर, अरोचक, आम, काश, श्वास और हृद्रोगनाशक। अक्रान्ता देखो

२ विश्वावसु गन्धर्वकी वीणाका नाम। ३ उत्तरीय वस्त्र, उपरना। ४ कण्टकारी, भटकटैया। ५ सुश्रुतके अनुसार एक मर्मस्थान जो रीढ़के दोनों ओर पीठके बीचमें है। यदि इस मर्मस्थानमें चोट लगे तो बहुत अधिक रक्त जाता है और अन्तमें मृत्यु हो जाती है। ६ वाक्य। ७ एक वर्णवृत्त। इसके प्रत्येक चरणमें नौ अक्षर होते हैं

बृहतीकल्प (सं० पु०) वैद्यकमें एक प्रकारका कायाकल्प।

बृहतीपति (सं० पु०) बृहतीनां वाचां पतिः। बृहस्पति।

बृहत् (सं० त्रि०) बृह-वृद्धौ (वर्तमाने पृषद्बृहत् महज्जगत शतृवच्च। उण् २।८४) इति अति प्रत्ययेन, निपातनात् साधुः। १ महत्, बहुत बड़ा। २ पर्याप्त। ३ उच्च, ऊंचा। ४ दृढ़, बलिष्ठ। (पु०) ६ एक मरुतका नाम।

बृहत्क (सं० त्रि०) बृहत्प्रकारः (चञ्चद्बृहतोरुपसंख्यानं। पा ५।४।३) इत्यस्य वार्त्तिकोक्त्या कन्। बृहत्, बहुत भारी।

बृहत्कन्द (सं० पु०) बृहत्कन्दं यस्य। १ गृञ्जन, गाजर। २ विष्णुकन्द।

बृहत्कर्म (सं० त्रि०) बृहत्कर्म यस्य। महाकर्मयुक्त, बृहत् कार्ययुक्त।

बृहत्काय (सं० पु०) आजमीढ़वंशीय नृपभेद।

बृहत्कालशाक (सं० पु०) बृहन् महान् कालशाकः। शोथजिह्व।

बृहत्काश (सं० पु०) बृहन् काशः। खड़् गट, भटेउर नामक गन्धद्रव्य।

बृहत्कीर्त्ति (सं० त्रि०) बृहती कीर्त्तिर्यस्य। १ महाकीर्त्तियुक्त। (पु०) २ आङ्गिरसाग्निपुत्रभेद। ३ असुरभेद।

बृहत्कुक्षि (सं० त्रि०) बृहन् कुक्षिर्यस्य। तुन्दिल, तोंद।

बृहत्केतु (सं० त्रि०) बृहन्केतुर्यस्य। १ महाध्वजयुक्त, (पु०) २ राजभेद।

बृहत्क्षत्र (सं० पु०) आजमीढ़वंशीय नृपभेद।

बृहत्ताल (सं० पु०) बृहन् तालः। हिन्ताल।

बृहत्तिक्ता (सं० स्त्री०) बृहन् तिक्तो रसोऽस्याः। पाठा, सोनापाठा।

बृहत्तृण (सं० पु०) वंश, बांस।

बृहत्त्वच् (सं० पु०) बृहती त्वक् यस्य। ग्रहणाशनवृक्ष, नीमका पेड़।

बृहत्पत्र (सं० पु०) बृहत् पत्रं यस्य। १ हस्तिकन्द, हाथी कंद। २ श्वेत लोध्र, सफेद लोध्र। ३ कासमर्द।

बृहत्पत्रा (सं० स्त्री०) बृहत् पत्रं यस्याः। त्रिपर्णिका।

बृहत्पर्ण (सं० पु०) सफेद लोध्र।

बृहत्पलाश (सं० त्रि०) बृहत् पत्रयुक्त, जिसमें बड़े बड़े पत्ते हों।

बृहत्पाटलि (सं० पु०) धुस्तूर, धतूरा।

बृहत्पाद (सं० पु०) बृहन् पादो यस्य। वटवृक्ष, बटका पेड़।

बृहत्पारेवत (सं० क्ली०) बृहन् महत् पारेवतं। महापारेवत, बड़ा अमरूद।

बृहत्पाली (सं० पु०) वनजीरा।

बृहत्पीलु (सं० पु०) बृहन् पीलुः कर्मधा०। महापीलुवृक्ष, पहाड़ी अखरोट।

बृहत्पुष्प (सं० पु०) १ महाकुष्माण्ड, पेठा। (स्त्री०) २ कदली वृक्ष, केलेका वृक्ष।

बृहत्पुष्पी (सं० स्त्री०) बृहत् पुष्पं यस्याः ङीप्। १ शणरेवा। २ शणवृक्ष, सनका पेड़।

बृहत्पृष्ठ (सं० त्रि०) बृहत्सामयुक्त।

वृहत्फल (सं० क्ली०) १ कुष्माण्ड कुम्हड़ा। २ पनसफल, कटहल। ३ जम्बूफल, जामुन। ४ चचेण्डा, चिचड़ा।

वृहत्फला (सं० स्त्री०) वृहत्फलं यस्याः। १ अलावू, लौकी। २ कटुतुम्बी, तितलौकी। ३ महेन्द्रवारुणी। ४ कुष्माण्डी, कुम्हड़ा। ५ राजजम्बू, बड़ा जामुन।

वृहत्यादि (सं० पु०) सन्निपातज्वरोक्त कषाय। प्रस्तुत प्रणाली—वृहती, पुष्कर, भार्गी, कचूर, शृङ्गी, दुरालभा, वत्सकबीज और पटोल इनका समान भाग लेकर कषाय प्रस्तुत कर अर्थात् आध सेर जलमें सिद्ध करके जब आध पाव जल रहे तब उसे उतार ले। इसका सेवन करनेसे सन्निपातिक ज्वर जाता रहता है।

वृहत्संवर्त्त (सं० पु०) संवर्त्तभेद।

वृहत्साम (सं० क्ली०) वृहत् साम नित्यकं। सामभेद। गीतामें लिखा है, कि सामके मध्य वृहत्साम श्रेष्ठ है।

"वृहत्साम तथा साम्नां गायत्री छन्दसामहं ॥" (गीता)

वृहत्सुख (सं० त्रि०) प्रभूत धनी, सुख-सम्पन्न, खुशहाल।

वृहत्सेन (सं० त्रि०) १ महासेनायुक्त, जिसके बड़ी फौज हो। (पु०) २ वार्हद्रथवंशीय भावीनृपभेद। ३ मगधदेशीय नृपभेद। (स्त्री०) ४ वृहती सेना, भारी फौज।

वृहत्स्तोम (सं० क्ली०) स्तोमभेद।

वृहत्स्फिज (सं० त्रि०) वृहत् स्फिचयुक्त।

वृहदग्नि (सं० पु०) नानाविध अग्नियुत।

वृहदङ्ग (सं० पु०) वृहदङ्गं यस्य। मतङ्गज, हाथी।

वृहदनीक (सं० त्रि०) वहु सैन्ययुक्त।

वृहदम्बालिका (सं० स्त्री०) कुमारानुचर मातृभेद।

वृहदम्ल (सं० पु०) वृहत् अम्लो यस्य। कामरङ्ग।

वृहदश्व (सं० पु०) ऋषिभेद।

वृहदात्रेय (सं० पु०) वैद्यक ग्रन्थभेद।

वृहदारण्यक (सं० क्ली०) उपनिषद्भेद। इसमें ब्रह्मतत्त्व अति विस्तृतभावमें वर्णित हुआ है। शतपथब्राह्मणका आरण्यक अंश ही वृहदारण्यक कहलाता है। इसके बहुतों भाष्य और टीकाएं देखी जाती हैं।

वृहदिषु (सं० पु०) १ आजमीढ़पुत्र नृपभेद। २ हर्यश्ववंशीय नृपभेद।

वृहदुक्थ (सं० क्ली०) १ महत् उक्थ। (पु०) २ अग्निवंशीय तपस्य पुत्र अग्निभेद।

वृहदुक्ष (सं० पु०) जगत् स्राष्टकारक प्रजापति।

वृहदुत्तरतापनी (सं० स्त्री०) उपनिषद्भेद।

वृहदेला (सं० स्त्री०) वृहती एला, बड़ी इलायची।

वृहद्गर्भ (सं० पु०) राजा शिविके एक पुत्रका नाम।

वृहद्गिरि (सं० पु०) १ प्रभूत स्तुति, खूब तारीफ। २ मरुत्, एक देवगणका नाम।

वृहद्गु (सं० पु०) राजभेद, एक राजाका नाम।

वृहद्गृह (सं० पु०) देशविशेष, कारुषदेश। यह देश विन्ध्या पर्वतके पीछे मालवादेशके समीप अवस्थित है।

वृहद्गोल (सं० क्ली०) वृहद्गोलं गोलाकारफलं यस्य। शीर्णवृन्त, तरबूज।

वृहद्गौरीव्रत (सं० क्ली०) व्रतभेद।

वृहद्ग्रावन (सं० त्रि०) वृहत् प्रस्तरवत्, बड़े पत्थरके जैसा।

वृहद्दन्ती (सं० स्त्री०) एरण्डपत्रविटप दन्तीविशेष, एक प्रकारकी दन्ती जिसके पत्ते एरण्डके पत्तोंके समान होते है। इसके गुण—कटु, दीपन, गुदांकुर, अश्म, शूल, अर्श, कण्डू, कुष्ठ और विदाहनाशक। दन्ती देखो।

वृहद्दर्भ (सं० पु०) कक्षेयुवंशीय नृपभेद।

वृहद्दल (सं० पु०) वृहद् दलं यस्य। १ पट्टिकालोध्र, सफेद लोध। २ हिन्तालवृक्ष। ३ रक्तरसोन, लाल लहसुन। ४ सप्तवर्णवृक्ष। (स्त्री०) ५ लज्जालुका, छोटी लजालू।

वृहद्दली (सं० स्त्री०) लज्जावंती, लजालू।

वृहद्दिव (सं० त्रि०) ज्येष्ठ, प्रशस्यतम।

वृहद्दिवा (सं० स्त्री०) महादीप्तियुक्ता, जिसमें चमक दमक हो।

वृहद्देवता (सं० स्त्री०) वेदके ऋषि प्रतिपादक ग्रन्थभेद।

वृहद्द्युम्न (सं० पु०) नृपभेद।

वृहद्धनुस् (सं० पु०) १ आजमीढ़वंशीय नृपभेद। (त्रि०) वृहत् धनुर्यस्य। २ महाचापयुक्त।

वृहद्धर्म (सं० पु०) आजमीढ़वंशीय नृपभेद।

वृहद्धर्मपुराण (सं० स्त्री०) पुराणग्रन्थविशेष। यह एक उपपुराण है। पुराण देखो।

वृहद्धन (सं० त्रि०) वृहत् धनं यस्य। १ महाधन। (पु०) २ इक्ष्वाकुवंशीय नृपभेद।

वृहद्धल (सं० क्ली०) वृहत् हलं यस्य महालाङ्गल, बड़ा हल । पर्याय—हलि ।

वृहद्बला (सं० पु०) १ महाबला । २ सफेद लोध । ३ लज्जावन्ती, लजालू ।

वृहद्बीज (सं० पु०) वृहत् बीजं यस्य । आम्रातक, अमड़ा ।

वृहद्बृहस्पति (सं० पु०) धर्मशास्त्रभेद ।

वृहद्ब्रह्मन् (सं० पु०) आङ्गिरस ऋषिभेद ।
(भारत वनप० २३१ अ०)

वृहद्भट्टारिका (सं० स्त्री०) दुर्गाका एक नाम ।

वृहद्भण्डी (सं० स्त्री०) त्रायमाणा लता ।

वृहद्भय (सं० पु०) सावर्णि मनुके एक पुत्रका नाम ।
(मार्कण्डेयपु० ९१ अ०)

वृहद्भानु (सं० पु०) वृहन् भानुरश्मिर्यस्य । १ अग्नि । (भारत ३।२२०।८) २ चित्रक वृक्ष । ३ सत्यभामाके एक पुत्रका नाम । (भाग० १।६१।१०) ४ पृथुलाक्षके एक पुत्रका नाम । (भाग० ९।२३।११) ५ आङ्गिरस इन्द्रसावर्णि मन्वन्तरमें हरिकी एक अवस्थाका नाम । इन्द्रसावर्णि मन्वन्तरमें भगवान् हरिने वितानाके गर्भ और सत्रायणके औरससे जन्मग्रहण किया था । इनका नाम वृहद्भानु रखा गया । (भाग० ८।१३।३५)

(त्रि०) ७ वृहद्रश्मिविशिष्ट, अच्छी रौशनवाला ।

वृहद्भास (सं० पु०) १ ब्रह्मपौत्रभेद । स्त्रीयां टाप् । २ सूर्यकी कन्या, अग्नि भानुकी पत्नी ।

वृहद्रण (सं० पु०) इक्ष्वाकुवंशके भावि-नृपभेद ।
(भाग० ९।१२।९)

वृहद्रथ (सं० पु०) वृहन् रथो यस्य । १ इन्द्र । २ यज्ञपात्र । ३ सामवेदका अंश । ४ मन्त्रविशेष । ५ तिग्म-पुत्र । ६ शतधन्वपुत्र । ७ देवरात-पुत्र । ८ तिमिर राजपुत्र । ९ पृथुलाक्षके पुत्र । १० मगधराजभेद । (त्रि०) ११ प्रभूतरथ जिसके अनेक रथ हों ।

वृहद्रयि (सं० त्रि) बहु धनयुक्त, धनवान् ।

वृहद्रवस् (सं० त्रि०) महाशब्दकारी, जोरसे आवाज करनेवाला ।

वृहद्राविन् (सं० पु०) क्षुद्रोलूक, छोटा उल्लूपक्षी ।

वृहद्रि (सं० त्रि०) महाधन, धनी ।

वृहद्रूप (सं० पु०) मरुद्गणभेद ।

वृहद्रेणु (सं० त्रि०) बहु-पांशुयुक्त ।

वृहद्रोम (सं० क्ली०) रोमकसिद्धान्त-वर्णित जनपदभेद ।

वृहद्वत् (सं० पु०) वृहत वृहत्साम तदस्यास्ति स्तोततया मतुप्, मस्य व । १ वृहत्सामस्तोत्रस्तुत्य इन्द्र, वृहत्-साम स्तोत्र द्वारा स्तवनीय । २ तत्साध्य यज्ञ । स्त्रीयां ङीप् । ३ नदीभेद ।

वृहद्वयस् (सं० त्रि०) बहु शक्तिशाली, पराक्रमी । २ अधिकवयस्क, ज्यादा उमरका ।

वृहद्वर्ण (सं० पु०) स्वर्णमाक्षिक, सोनामक्खी ।

वृहद्वल्क (सं० पु०) १ पट्टिका लोध्र, सफेद लोध । २ सप्तवर्णवृक्ष ।

वृहद्वल्ली (सं० स्त्री०) कारवल्ली, करैला ।

वृहद्वसिष्ठ (सं० पु०) धर्मशास्त्रभेद ।

वृहद्वसु (सं० पु०) वेदोक्त जनभेद ।

वृहद्वात (सं० पु०) देवधान्य ।

वृहद्वादिन् (सं० त्रि०) अहङ्कारी, घमण्डी ।

वृहद्वारुणी (सं० स्त्री०) वृहती वारुणी कर्मधा० । १ महेन्द्र वारुणीलता । २ राखालक्षण ।

वृहद्वासिष्ठ (सं० क्ली०) १ इस नामके एक शास्त्र । २ धर्म-शास्त्र ।

वृहद्विष्णु (सं० पु०) धर्मशास्त्रभेद ।

वृहद्व्यास (सं० पु० धर्मशास्त्रभेद ।

वृहद्व्रत (सं० त्रि०) महाव्रत पालनकारी ।

वृहन्नखी (सं० स्त्री०) गन्धद्रव्यभेद ।

वृहन्नल (सं० पु०) वृहन्-नलः । १ महापोटगल, बड़ा नरकट । २ अर्जुनका एक नाम । ३ बाहु, बाँह ।

वृहन्नला (सं० स्त्री०) अर्जुनका उस समयका नाम जिस समय वे अज्ञातवासमें स्त्रीके वेशमें रह कर राजा विराटकी कन्याको नाच गान सिखाते थे । अर्जुन देखो ।

वृहन्नारदीयपुराण (सं० क्ली०) पुराणभेद । इसकी गिनती उपपुराणमें की गई है । पुराण देखो ।

वृहन्नारायण (सं० पु०) एक उपनिषद्का नाम जिसे याज्ञिकी उपनिषद् भी कहते हैं ।

वृहन्नारायणोपनिषद् (सं० स्त्री०) उपनिषद्भेद ।

वृहन्निम्ब (सं० पु०) महानिम्ब ।

वृहन्निर्वाणतन्त्र (सं० क्ली०) एक तन्त्र जो महानिर्वाण-तन्त्रसे भिन्न है । तन्त्र देखो ।

वृहन्नेत्र (सं० त्रि०) १ वृहत् चक्षुयुक्त, बड़ी बड़ी आंख-वाला। २ दूरवर्त्ती, दूरका।

वृहन्नौका (सं० स्त्री०) क्रीड़नभेद, चतुरङ्ग नामका खेल। चतुरङ्ग देखो।

वृहस्पति—(सं० पु०) वृहतां वाचां पतिः। (पारस्करेति। पा ६।१।१५७। इति सुट्-निपात्यते। अङ्गिराके पुत्र, देवताओंके गुरु, धर्मशास्त्र-प्रयोजक, नवग्रहोंमेंसे पञ्चम ग्रह। पर्याय—सुराचार्य, गीष्पति, धिषण, गुरु, जीव, अङ्गिरस, वाचस्पति, चित्रशिखण्डिज। (अमर) उतथ्या-नुज, गोविन्द, चारु, द्वादशरश्मि, गिरीश, दिदिव, पूर्व-फल्गुनीभव। (जटाधर) सुरगुरु, वाक्पति, वचसांपति, इज्य, वागीश, चक्षस्, दीदिवि, द्वादशकर, प्राक्फाल्गुन, गीरथ। (शब्दरत्ना०)

"एतं ते देव सवितर्यज्ञं प्राहुर्वृहस्पतये॥" (शुक्लयजु २।१२)

देवताओंके यज्ञमें वृहस्पति ब्रह्मा होते थे। ऋग्वेदमें वृहस्पति शब्दका अर्थ पुरोहित और मन्त्रपालक देखनेमें आता है।

"वृहस्पतिं यः सुभृतं विभर्त्ति" (ऋक् ४।५०।७) "वृहस्पतिं वृहतां महतां मन्त्राणां पालयितारं देवं उक्तलक्षणं पुरोहितं वा।" (सायण)

ग्रहयागतत्वमें लिखा है—वृहस्पतिग्रह ईशानकोण, पुरुष, ब्राह्मणजाति, ऋग्वेद, सत्त्वगुण, मधुर रस, धनु और मीनराशि, पुष्यनक्षत्र, वस्त्र, पुष्परागमणि और सिन्धुदेशके अधिपति हैं। इनका शरीर षड़ंगुल है। ये पद्मस्थित और चतुर्भुज हैं; चारों हाथोंमें अक्ष, वर, दण्ड और कमण्डलु धारण किये हुए हैं। इनके अधिदेवता ब्रह्मा और प्रत्यधिदेवता रुद्र हैं। ये अङ्गिरा मुनिके पुत्र, प्रातःकालमें प्रवल, शुभग्रह, देवगृहस्वामी, वृद्ध, रक्तद्रव्य-स्वामी, वातपित्तकफात्मक, वणिककर्म-कर्त्ता और अङ्गिरागोत्र हैं। (ग्रहयागतत्त्व)

दीपिकाके मतसे—वृहस्पतिकी आकृति पद्मके समान, वर्ण गौर और जाति ब्राह्मण हैं। ये पुरुष हैं, तमोगुणके अधिपति और समाधातु-विशिष्ट हैं, ऋग्वेदके अधिपति, राशिचक्रमें सप्तम, नवम और पञ्चम गृहमें पूर्णदृष्टि हैं। रवि, चन्द्र और मङ्गल मित्र, बुध और शुक्र शत्रु तथा शनि सम है। वृहस्पतिका मूल त्रिकोण धनु है। वृह-स्पतिके १ राशिसे दूसरी राशिमें जानेमें १ वर्ष और सम्पूर्ण राशियोंमें भ्रमण करनेमें १२ वर्ष समय लगता है। कर्कट राशि वृहस्पतिसे उच्च और मकरके नीचे है, जिसमें कर्कटके ५ अंक बहुत उच्च हैं और मकरके ५ अंक बहुत नीचे हैं। वृहस्पति ऊंचे पर रहनेसे शुभफल और नीचे रहनेसे अशुभफल होता है; ऊंचे और नीचेके बीचमें रहनेसे भागहार-द्वारा फलका निर्णय करना चाहिए। वृहस्पति काल पुरुषका ज्ञान और सुख है। वृहस्पतिके दीप्तांश ६ हैं; अर्थात् वृहस्पतिग्रह जब जिस राशिमें रहते हैं, तब उसी राशिके जितने अंशमें उनका किरणजात पूर्णरूपसे विक्षिप्त होता है, उसे दीप्तांश कहते हैं; किन्तु सूर्यके दीप्तांशमें सभी ग्रह अस्तमित होते हैं। वृहस्पतिकी वक्रगतिका काल एक सौ दिन है। वृहस्पति धन, पुत्र, काञ्चन और मित्रादिके देनेवाले हैं।

वृहस्पतिके दण्डमें जन्म होनेसे वह व्यक्ति अत्यन्त मेधावी, दाम्भिक, वहु पुत्रयुक्त, मिष्टभाषी और नृत्यगीत-प्रिय होता है। वृहस्पतिरिष्ट—वृहस्पति यदि मेष अथवा वृश्चिक राशिमें रह कर किसी लग्नके अष्टम स्थान-स्थित हों तथा यदि वे रवि, चन्द्र, मङ्गल और शनि द्वारा दृष्ट हों और शुक्रकी दृष्टि न रहे, तो वालककी तीन वर्षके भीतर मृत्यु होती है। वृहस्पतिके तुङ्ग पर अवस्थान करनेसे मानव मन्त्री, नरश्रेष्ठ, अतिशय वलवान्, मान-नीय, अति रागान्वित, ऐश्वर्यशाली; हस्ती, अश्व, यान और सुन्दरी रमणियों द्वारा विभूषित और वहु गोष्ठी-पोषक होता है।

मेष आदि द्वादश राशियोंमें वृहस्पति रहनेसे निम्न-लिखित-रूप फल हुआ करता है:—

मेषमें वृहस्पति होनेसे—रागादि सम्पन्न, कमठ, वक्ता, दाम्भिक, विख्यातकर्मा, तेजस्वी, वहुशत्रु और व्ययार्थ-युक्त, क्रोधी, क्रूर और दण्डनायक होता है।

वृषमें वृहस्पति पड़नेसे—पीनविशालशरीर-सम्पन्न, देव-द्विजगुरु-भक्तिमान्, दान्त, सुन्दर, भाग्यवान्, स्वदारानु-रक्त, सुन्दरगृह-युक्त, धनाढ्य, उत्तम वस्त्र और भूषण-युक्त, नयनवेत्ता, स्थिरप्रकृति, विनीत और औषधप्रयोग-कुशल होता है। मिथुनराशिमें वृहस्पति रहनेसे—मेधावी,

वाग्मी, निपुण, कार्य-कुशल, विनयी, गुरु और बान्धवोंमें मान्य और सत्‌कवि होता है। कर्कराशिमें वृहस्पति होनेसे—विद्वान्, सुरूप-देहसम्पन्न, यान्न धर्मप्रिय, सत्स्वभावयुक्त, यशस्वी, धनी, लोकसंस्कृत, विख्यात, नरपति, धार्मिक और सद्धर्मों अनुगत होता है। सिंह राशिमें वृहस्पति होनेसे—स्थिरवैरतायुक्त, घोरप्रकृति, अतिशय पराक्रमशाली, क्रोधी, शिथिलदेह-सम्पन्न, दुर्ग, पर्वत वा अरण्यवासी होता है। कन्या राशिमें वृहस्पति होनेसे—मेधावी, धर्मरत, क्रियापटु, ज्ञानवान्, दाता, विशुद्धस्वभाव, निपुण, व्यवहारवेत्ता और प्रभूत धनवान होता है। तुलाराशिमें वृहस्पति आनेसे—मेधावी, वहु मित्रसम्पन्न, विदेशभ्रमणमें रत, प्रभूत धनवान्, अधार्मिक, नट और नर्त्तक द्वारा धन संग्राहक तथा कमनीय शरीरधारी होता है। वृश्चिकमें वृहस्पति पड़नेसे—अनेक शास्त्रोंमें कुशल, साधुचरित्र, अनेक पत्नी-विशिष्ट, अल्पसन्तान-युक्त, दुष्टजन द्वारा पीड़ित, वहु परिश्रमी, दाम्भिक, धर्मनिरत और निन्दाचारी होता है। धनुराशिमें वृहस्पति होनेसे—व्रत, दीक्षा, यज्ञादिकर्ममें आचार्य, संस्थान-विहीन, सञ्चयमें अक्षम, दाता, अपने सुहृद् पक्षको प्रिय व्यवहारकारी, राजमन्त्री वा मण्डलाध्यक्ष, नाना देशनिवासी और यन्त्रकरण-मतियुक्त होता है। मकरमें वृहस्पति पड़नेसे—अल्प बलवान्, क्लेश सहिष्णु, नीचाचार-परायण, मूर्ख, निःस्व, माङ्गल्य, दया, शौच, बन्धुवत्सल और धर्मसे हीन तथा भीरु, प्रवासशील और विवादी होता है। कुम्भमें वृहस्पति होनेसे—खल, असाधुचरित्र, नीचाभिरत, नृशंस, लोभी, व्याधिग्रस्त, प्रज्ञादि गुणहीन और गुर्वाङ्गनागामी होता है। मीनराशिमें रहनेसे—वेद और अर्थशास्त्रका वेत्ता, साधु और सुहृद्‌गणोंका पूज्य, नृपतिका नेता, श्लाघ्य, धनवान्, स्थिरोद्यमविशिष्ट, सुनीतिपरायण, विख्यात और प्रशान्तचेष्टाविशिष्ट होता है। (सारावली)

वृहस्पति दूसरेके गृहमें दूसरे ग्रह द्वारा दृष्ट होनेसे भिन्न रूप फल होता है। अत्यन्त संक्षेपमें इसका कुछ वर्णन किया जाता है।

वृहस्पति मंगलके गृहमें रह कर रवि द्वारा दृष्ट होने पर—धार्मिक, अनृत, भीरु, ख्यातिपरायण, अशुचि और रोगयुक्त होता है। उस गृहमें चन्द्र द्वारा दृष्ट होनेसे—इतिहास और काव्यमें कुशल, बहुरत्न और अनेक स्त्रीयुक्त, नृपति और पण्डित होता है। मङ्गल द्वारा दृष्ट होनेसे—श्रेष्ठ राजपुरुष, धनी, कुत्सित-पत्नी और भृत्ययुक्त होता है। बुध द्वारा दृष्ट होनेसे—अनृतवादी, पापपरायण, परवित्तान्वेषणमें निपुण, मेधावी, कपटी और नीतिवित्ता होता है। शुक्र द्वारा दृष्ट होनेसे—सर्वदा गृह, शय्या, वस्त्र, गन्ध, माल्य, अलङ्कार, युवती स्त्री, विभवसम्पन्न, उत्तम मतिमान् और मीरुस्वभाव होता है। शनि द्वारा दृष्ट होनेसे—मलिनदेह, लोभी, उद्धतप्रकृति, साहसिक, प्रसिद्ध माननीय और अस्थिरमति होता है।

वृहस्पति शुक्रके गृहमें रह कर रवि द्वारा दृष्ट होने पर—मनुष्य और पशु आदिका अधिपति, धनी, पण्डित और राज-सचिव होता है। चन्द्र द्वारा दृष्ट होनेसे—अतिशय धनवान्, मधुरभाषी, जननीका प्रिय, युवतीप्रिय और उपभोग-भोगी होता है। मङ्गल द्वारा दृष्ट होनेसे—बालास्त्रीका प्रिय, प्राज्ञ, शूर, धनी, सुखी और राजपुरुष होता है। बुध द्वारा दृष्ट होनेसे—पण्डित, चतुर, विख्यात, उत्तम भाग्यमान् विभवशाली, सुशील और कमनीयमूर्त्ति होता है। शुक्र द्वारा दृष्ट होनेसे—अत्यन्त मलिनदेह, धनी, मधुरस्वभाव, श्रेष्ठ वस्त्र और शय्यासे युक्त होता है। शनि द्वारा दृष्ट होनेसे—प्राज्ञ, धनधान्यसम्पन्न, ग्राम और नगरवासियोंमें सर्वप्रधान, मलिनदेह और कुत्सित भार्या युक्त होता है।

वृहस्पति बुधके गृहमें रह कर रवि द्वारा दृष्ट होनेसे—श्रेष्ठ, ग्रामपति, पुत्र दारा और धनका अधीश्वर होता है। चन्द्र द्वारा दृष्ट होनेसे—धनवान्, मातृवत्सल, सुकृति-सम्पन्न, सुखी और व्ययहीन होता है। मङ्गलद्वारा दृष्ट होनेसे—सैकड़ों युद्धोंमें विजयी, धनी और लोकपूज्य होता है। बुध द्वारा दृष्ट होनेसे—ज्योतिःशास्त्रमें कुशल, वहु पुत्र और दारा-युक्त, सूत्रकार, अतिशय विरूप वाक्य-सम्पन्न होता है। शुक्रके देखने पर—देवप्रासादमें कार्यकारी, वेश्यासक्त और कामिनीका हृदयहारी होता है। शनि देखनेसे—ग्रामपति, सुखी और दृढ़ शरीर होता है।

चन्द्रके गृहमें रहते हुए वृहस्पतिका रवि द्वारा दृष्ट होने पर—सहोदरोंमें विख्यात, धन और दारा-विहीन

तथा अन्तिम अवस्थामें धनी होता है। चन्द्र-दृष्ट होनेसे—अतिशय द्युतिमान्, नृपति तुल्य, धन और वाहन द्वारा समृद्धिसम्पन्न, उत्तम पत्नी और पुत्र-युक्त होता है। मङ्गल दृष्ट होनेसे—वाल्यावस्थामें दाता, पंडित और शूर; बुध देखनेसे—वान्धव और मातृहेतु धनवान्, कलहान्वित, पापहीन, विश्वासी और मन्त्रणा-कुशल; शुक्र देखनेसे—अनेक स्त्री-युक्त, धनी और भाग्यवान्; शनि देखनेसे—ग्राम, सेना वा नगरका प्रधान, वाचाल, बहुविभव-सम्पन्न और वृद्धावस्थामें भोगी एवं दाता होता है।

रविके गृहमें वृहस्पति हों और रवि द्वारा दृष्ट हों, तो लोकप्रिय, विख्यात, नृपति और सुन्दरस्वभाव होता है। चन्द्र द्वारा दृष्ट होनेसे—स्त्रीके भाग्यसे धनवान्, जितेन्द्रिय और मलिनदेह; मङ्गल दृष्ट होनेसे—साधु और गुरुजनोंके समीप सत्यवादी, शूर और क्रूरप्रकृति; बुध देखनेसे—विज्ञानशास्त्रविद्, श्रेष्ठ और विख्यात; शुक्र देखनेसे—स्त्री-प्रिय, सुन्दर भाग्यसम्पन्न और राजपूजित; शनि देखनेसे—असुखी तीक्ष्णस्वभाव, देवपत्नी-सदृश पत्नीसुख-विशिष्ट और भोक्ता होता है।

वृहस्पति अपने घरमें रह कर चन्द्र द्वारा दृष्टि होनेसे—राजविरोधी, सर्वदा परितापग्रस्त, धन और आत्मबन्धुहीन; मङ्गल देखनेसे—संग्राममें पराजय, क्रूर, घातक परपीड़क और उसकी पत्नीका नाश होता है। बुधदेखनेसे—राजमन्त्री, अथवा नृपति, सुख धन और सौभाग्ययुक्त, सबोंको आनन्दकर और अतिशय रूपवान होता है। शुक्र देखनेसे—अतिशय मलिन, भीरु-स्वभाव, दीन और सुखभोग-रहित होता है।

वृहस्पति शनिके गृहमें हो और रवि द्वारा दृष्ट हो, तो पण्डित, क्षितिपालक और पराक्रमशाली होता है। चन्द्र दृष्ट होनेसे—मातापिताकी भक्तिमें तत्पर, कुलप्रधान, प्राज्ञ, दाता, धनी, सुशील और धार्मिक; मङ्गल दृष्ट होनेसे—शूर, योद्धा, गर्वित, तेजस्वी और प्रसिद्ध; बुध-दृष्ट होनेसे—कामुक, गणप्रधान, सबके साथमें मित्रता-युक्त और पण्डित; शुक्र दृष्ट होनेसे—भोज्य, अन्नपान और विभव सम्पन्न, उत्तम स्त्रीयुक्त; और शनिदृष्ट होनेसे—अशेष विद्या-विशारद, देश वा पुरका प्रधान और धनी हुआ करता है। (सारावली)

इस प्रकार गणना-पूर्वक वृहस्पतिके शुभाशुभका निर्णय किया जाता है। पूर्वोक्त फलदशा, अन्तर्दशा वा प्रत्यन्तर्दशा मध्यमें होती है। अष्टोत्तरी वा विंशोत्तरीके मतसे साधारणतः दशाकी गणना की जाती है।

अष्टोत्तरीके मतसे २० पूर्वाषाढ़ा, २१ उत्तराषाढ़ा और अभिजित् तथा २२ श्रवणा नक्षत्रमें जन्म होनेसे वृहस्पतिकी दशा होती है। इस दशाका परिमाण १९ वर्ष है। इसके प्रति नक्षत्रमें ४ वर्ष ९ मास, प्रति नक्षत्रके वादमें १ वर्ष २ मास १५ दिन, प्रति दण्डमें २८ दिन ३० दण्ड, प्रति पलमें २८ दण्ड ३० पल होता है। नक्षत्रका परिमाण ३० दण्ड होनेसे ऐसा समय होगा, कमी-वेशी होनेसे भागहार द्वारा भोग्यफलका निर्णय करना चाहिए।

मानवको इस दशाके समय राज्यप्राप्ति, धनागम, पुत्रलाभ, विविध वस्तुओंका भोग, सुख-वृद्धि, विद्यालाभ, सुख्याति और धनकी प्राप्ति होती है।

विंशोत्तरीके मतसे वृहस्पतिको दशा १६ वर्ष है। पुनर्वसु, विशाखा वा पूर्वभाद्रपद नक्षत्रमें जन्म लेनेसे वृहस्पतिकी दशा होती है।

अष्टोत्तरी और विंशोत्तरीके मतसे वृहस्पतिकी दशाकी प्रत्यन्तर्दशा इस प्रकार है :—

अष्टोत्तरीके मतसे	वर्ष,	मास	दिन,	दण्ड,	विंशोत्तरीके मतसे	वर्ष,	मास,	दिन,
वृ, वृ,	३	४	३	२०	वृ, वृ,	२	१	१८
वृ, रा,	२	१	१०	१०	वृ, श,	२	६	१२
वृ, शु,	३	८	१०	०	वृ, के,	०	११	६
वृ, र,	१	०	२०	०	वृ, शु,	२	८	०
वृ, च,	वृ	७	वृ०	०	वृ, र,	०	९	१८
वृ, म,	१	४	२६	४०	वृ, र,	१	४	०
वृ, बु,	२	११	२६	४०	वृ, म,	०	११	०
वृ, श,	१	९	३	२०	वृ, रा,	२	४	२४
	१९ वर्ष।					१६ वर्ष।		

वाहुल्य भयसे प्रत्यन्तर्दशा नहीं लिखी जा सकी।

दशा देखो।

वृहस्पतिग्रह १ वर्ष वाद एक एक राशिका भोग किया करते हैं। गोचरमें वृहस्पति रहनेसे निम्नलिखित प्रकार फल होता है—

वृहस्पति जन्मराशिस्थ होनेसे भय, द्वितीयमें होनेसे अर्थलाभ, तृतीयमें शारीरिक क्लेश, चतुर्थमें अर्थनाश, पञ्चममें शुभ, षष्ठमें अशुभ, सप्तममें राजपूजा, अष्टममें धन नाश, नवममें धनवृद्धि, दशममें प्रणय भङ्ग, एकादशमें लाभ और द्वादशमें होनेसे शारीरिक एवं मानसिक पीड़ा होती है।

गोचरमें वा जन्मकालीन वृहस्पति विरुद्ध होनेसे उस की शान्ति करना, अर्थात् जप, होम, दानादि करना विधेय है। वृहस्पतिका दान—चीनी, दारुहरिद्रा, अश्व, (अभावमें २५ 'काषयिन्' कौड़ी), पीतधान्य, पीतवस्त्र, रक्त-पुष्प, लवण और स्वर्ण ये वस्तुएं वस्त्र और दक्षिणाके साथ उत्सर्ग करके ग्रहविप्रको दान देना चाहिये। अन्य ब्राह्मण इस दानको ग्रहण करनेसे वे नरकके पात्र होंगे।

नवग्रहस्तोत्रमें कहा हुआ वृहस्पतिका स्तोत्र

"देवतानामृषीणाञ्चगुरुं कनकसन्निभम्।
बन्ध्यभूतं त्रिलोकेशं तं नमामि बृहस्पतिम्॥"

वृहस्पतिक (सं० पु०) १ वृहस्पति-भव। २ वृहस्पति-दत्त।

वृहस्पतिचक्र (सं० क्ली०) वृहस्पतेश्चक्रं। चक्रविशेष। वृहस्पतिके सञ्चारकालीन अश्विनी प्रभृति सत्ताईस नक्षत्र-युक्त नराकार चक्र। इस चक्र द्वारा वृहस्पतिके सञ्चार-में शुभ होगा वा अशुभ, यह जाना जाता है।

वृहस्पतिचार (सं० पु०) वृहस्पतेश्चारः सञ्चारः। वृह-स्पतिग्रहका सञ्चार। वृहत्संहितामें लिखा है,—वृह-स्पति जिस मास वा जिस नक्षत्रमें उदित होते हैं, उस नक्षत्रके अनुसार मासका नाम होता है। १२ मास हैं इसलिए १२ वर्ष होंगे। कृत्तिकासे ले कर दो दो नक्षत्रोंमें कार्त्तिकादि वर्ष होंगे, किन्तु उन द्वादश वर्षोंमें पञ्चम, एकादश और द्वादश वर्ष दो दो नक्षत्रोंमें होंगे। जैसे, कृत्तिका वा रोहिणी नक्षत्रोंमें वृह-स्पतिका उदय होनेसे कार्त्तिक नामक वर्ष होता है। इस वर्षमें शकटाजीवी और अग्न्याजीवी लोगोंको तथा गो-जातिको पीड़ा, व्याधि और शस्त्रका प्रकोप होता है; रक्त पीतवर्ण पुष्पोंकी वृद्धि होती है। सौम्यवर्षमें अना-वृष्टि, चूहे, टिड्डी आदि जन्तुओं द्वारा शस्यकी हानि होती है। मानवोंको व्याधि-भय, शस्त्रका प्रकोप तथा मित्रों-के साथ भी शत्रुता हो जाती है। पौष नामक वर्षमें जगतका शुभ होता है। राजा लोग आपसकी शत्रुता छोड़ देते हैं। माघ नामक वर्षमें पितृगणको पूजावृद्धि, सर्व प्राणियोंकी आरोग्यता और धान्यकी सुलभता होती है। फाल्गुन-वर्षमें कहीं शुभ और शस्यवृद्धि, स्त्रियोंका दौर्भाग्य, तस्करोंकी प्रबलता और राजाओंकी उग्रता प्रकट होती है। चैत्र-वर्षमें सामान्य वृष्टि, शस्य-वृद्धि राजाओंमें मृदुता और रूपवान् व्यक्तियोंको पीड़ा होती है। वैशाख-वर्षमें राजा प्रजा दोनोंमें धर्म-तत्परता, भय-शून्यता और आह्लाद होता है। ज्यैष्ठ संवत्सरमें राजा-गण धर्मपरायण होते हैं। कंगु और शमीजातिके सिवा सभी प्रकारके धान्य पीड़ित होते हैं। आषाढ़-वर्षमें शस्य-वृद्धि और जगह जगह अनावृष्टि और राजागण अत्यन्त व्यग्र होते हैं। श्रावण संवत्सरमें शस्य-वृद्धि और दुष्ट लोगोंको पीड़ा होती है। भाद्रपद वर्षमें कहीं सुभिक्ष और कहीं दुर्भिक्ष होता है। आश्विन संवत्सर-में अत्यन्त जल-पात, शस्य-वृद्धि और प्रजाओंमें सुख स्वाच्छन्द्य होता है।

वृहस्पति जब नक्षत्रोंके उत्तरमें विचरण करते हैं, तब सभीके लिये आरोग्यता-लाभ, सुवृष्टि और मंगल होता है। दक्षिणमें अवस्थित होनेसे उक्त फलके विप-रीत फल होता है। वृहस्पतिके एक वर्षमें दो नक्षत्रोंमें विचरण करनेसे शुभ, ढाई नक्षत्रोंमें मध्यम फल तथा इससे अधिक नक्षत्रोंमें विचरण करनेसे अशुभ फल होता है।

वृहस्पतिका वर्ण अग्निके समान होनेसे अग्निभय, पीत होनेसे व्याधि, श्याम होनेसे योद्धागम, हरा होनेसे चौर-भय, लाल होनेसे शस्त्र-भय और धूमाभ होनेसे अना-वृष्टि होती है। वृहस्पति दिनको दिखाई देनेसे बहुत ही अमङ्गल और रात्रिको दीखनेसे शुभ होता है। कृत्तिका और रोहिणी नक्षत्र वर्षकी देह हैं, पूर्वाषाढ़ा नक्षत्र उनकी नाभि हैं, अश्लेषा हृदय है और मघा नक्षत्र वर्षका कुसुम है। ये नक्षत्र शुभ होनेसे शुभ फल होता है। वृहस्पति-के रहते हुए वर्षका देह-नक्षत्र यदि पापग्रह द्वारा पीड़ित हो, तो अग्नि और वायुजनित भय होता है, नाभि नक्षत्र पीड़ित होनेसे क्षुधा-जन्य भय, पुष्पनक्षत्रके पीड़ित

होनेसे मूल और फलक्षय तथा हृदयनक्षत्र पापग्रह द्वारा पीड़ित होनेसे शस्य-नाश होता है।

शकादित्य राजाके समयसे ले कर जितने वर्ष वीते हैं, उनको दो जगह रख कर एक जगहके अङ्कको ११-से गुणा करो। उस गुणफलको फिर ४से गुणा करो। बादमें उक्त गुणफलके साथ ८५८९ जोड़ो और फिर उस योगफलको ३१५०से भाग करो। पश्चात् अन्य स्थानस्थ शक वर्षके अङ्कके साथ उस भागफलको जोड़ो। उस योगफलको ६०से भाग कर बाकीको ५से भाग करने पर जो लब्ध होगा, उस लब्धाङ्क संख्याके नारायण आदि युग और अवशिष्ट अङ्क द्वारा उस युगवर्त्ती इतने संख्यक वर्ष चल रहा है, यह मालूम हो जायगा। उक्त वर्ष संख्या जितनी होगी, उसको ९से गुणा करो। बाद फिर उसी वर्ष संख्याको १२से भाग दो। भागफलको उस नवगुणित अङ्कमें जोड़ कर ४से भाग देने पर जो लब्ध होगा, उस संख्यक नक्षत्रमें वृहस्पति विद्यमान हैं, ऐसा समझना चाहिए; परन्तु गणनाके समय २४ नक्षत्र-गणना करना चाहिये। इसमें १ लब्ध होनेसे समझना चाहिये, कि २५ नक्षत्र पूर्वभाद्रपदनक्षत्र है। २ रहनेसे २६ उत्तरभाद्रपद इत्यादि। इसी प्रकार सभी नक्षत्र जाने जा सकते हैं।

इन द्वादश युगोंके यथाक्रमसे अधिपति विष्णु, सुरेज्य, वलभि॰, अग्नि, त्वष्टा, उत्तरप्रोष्ठपद, पितृगण, विश्व, सोम, शक्र, अनिल, अश्वि और भग हैं। इन युगाधिपतियोंके नामानुसार ही युगोंके नाम हुए हैं। इन युगोंके अन्तर्वर्त्ती पांच पांच वर्षमें फिर पांच पांच संज्ञा होती है। जैसे—संवत्सर, परिवत्सर, इदावत्सर, अनुवत्सर और इद्वत्सर। इनके अधिपति क्रमशः अग्नि, सूर्य, चन्द्र, प्रजापति और महादेव हैं। इन पांच वर्षोंमें प्रथम वर्षमें सुवृष्टि, द्वितीय वर्षके प्रारम्भमें वृष्टि, तृतीय वर्षमें प्रचुर वृष्टि, चतुर्थके शेषमें वृष्टि और पञ्चम वर्षमें सामान्य वृष्टि होती है।

वृहस्पतिके सञ्चार, उदय, अस्त, महोस्त, प्रशस्त आदि द्वारा तथा प्रभादि षष्टि संवत्सर द्वारा वर्षका शुभाशुभ मालूम होता है। लेख बढ़ जानेके भयसे यहां ज्यादा नहीं लिखा जा सका। मलमासतत्त्व, ज्योतितत्त्व, वृहत्संहिता ८ अ० आदि ग्रन्थोंमें विशेष विवरण लिखा है। षष्टिसंवत्सर देखो।

वृहस्पतिदत्त (सं० पु०) पाणिनिका वार्त्तिकोक्त नामभेद।

वृहस्पतिपुरोहित (सं० पु०) वृहस्पतिः पुरोहितो यस्य। १ इन्द्र। २ देवमाल।

वृहस्पतिप्रसूत (सं० त्रि०) वृहस्पति देव कर्तृक अनुज्ञात।

वृहस्पतिमत् (सं० त्रि०) वृहस्पतियुक्त।

वृहस्पतिमिश्र (सं० पु०) रघुवंशके एक टीकाकार।

वृहस्पतिवार (सं० पु०) वारभेद, रवि प्रभृति वारोंमेंसे पञ्चम वार, यह वार शुभवार है अर्थात् इस वारमें सब प्रकारके शुभकर्म किये जा सकते हैं। इस वारमें साधारणतः क्षौरकर्म निषिद्ध है। वृहस्पतिवारमें जन्म लेनेसे जात वालक शास्त्रवेत्ता, सुन्दरवाक्यविशिष्ट, शान्तप्रकृतियुक्त, अतिशय कामी, वहुपोषणकर, स्थिरवुद्धि और कृपालु होता है। वार देखो।

वृहस्पतिसव (सं० पु०) यज्ञभेद। आश्वलायन श्रौतसूत्रमें इस यज्ञका विवरण लिखा है; क्षत्रियोंके जैसा राजसूययज्ञ है, वैसा ही ब्राह्मणोंके लिये यह वृहस्पतिसव है।

वृहस्पतिस्तोम (सं० पु०) एकाहयागभेद।

वृहस्पतिस्मृति (सं० स्त्री०) अङ्गिराके पुत्र वृहस्पति ऋषिकृत एक स्मृति।

बेंग (हिं० पु०) मेंढ़क। भेक देखो।

बेंगल (हिं० पु०) वह बीज जो खेतिहरोंको उधार दिया जाता है और जिसके बदलेमें फसल होने पर तौलमें उससे कुछ अधिक अन्न मिलता है। इसे बेग या बीट भी कहते हैं।

बेंगनकुटी (हिं० स्त्री०) अबाली नामका पक्षी। अबाली देखो।

बेंच (अं० स्त्री० १ लकड़ी, लोहे या पत्थर आदिकी बनी हुई एक प्रकारकी चौकी। यह चौड़ी कम और लंबी अधिक होती है। इस पर बराबर बराबर कई आदमी एक साथ बैठ सकते हैं। कभी कभी इसमें पीछेकी ओरसे ऐसा जोड़ भी लगा दिया जाता है जिससे बैठनेवालेकी

पीठको सहारा भी मिल सके। २ सरकारी न्यायालयके न्यायकर्त्ता।

बेंचना (हिं० क्रि०) बेचना देखो।

बेंट (हिं० स्त्री०) औजारों आदिमें लगा हुआ काठ या इसी प्रकारकी और किसी चीजका दस्ता, मूठ।

बेंड़ (हिं० पु०) १ वह मेढ़ा जो भेड़ोंके झुण्डमें बच्चे उत्पन्न करनेके लिये छूटा रहता है। २ दलालकी बोली-में नगद रुपया पैसा, सिक्का। ३ पड़ाव। (स्त्री०) ४ वह चीज जो किसी भारको नीचे गिरनेसे रोकनेके लिये उस-के नीचे लगाई जाय, चाँड़।

बेंड़ा (हिं० पु०) १ बेंवड़ा देखो। (वि०) २ आड़ा, तिरछा। ३ कठिन, मुश्किल।

बेंड़ी (हिं० स्त्री०) एक प्रकारकी टोकरी जो बांसकी बनी होती है। इसमें चार रस्सियां बंधी रहती हैं। उन रस्सियोंको सहायतासे दो आदमी मिल कर किसी गड्ढेका पानी उठा कर खेत आदि सींचते हैं। इसे डलिया और दौरी भी कहते हैं।

बेंड़ीमसकली (हिं० स्त्री०) हँसियाके आकारका लोहे-का एक औजार। इसमें काठका दस्ता लगा रहता है। इससे बरतनों पर जिला भी की जाती है।

बेंढ़ (हिं० पु०) खंभे आदिके ऊपरी पतले भागमें पहनाया हुआ किसी चीजका पतला चौकोर पत्तर या इसी प्रकार-का और कोई पदार्थ। इसका उपयोग यह जाननेके लिये होता है कि हवा किस ओर बह रही है। यह सहजमें चारों ओर घूम सकता है और हमेशा हवाके रुख पर घूमता रहता है, फरहरा।

बेंत (हिं० पु०) १ एक प्रसिद्ध लता। इसकी गिनती ताड़ या खजूर आदिकी जातिमें की गई है। विशेष विवरण वेतस् शब्दमें देखो। २ बेंतके डंठलसे बनी हुई छड़ी।

बेंदली (हिं० स्त्री०) माथे पर लगानेकी बिंदी, टिकली।

बेंदा (हिं० पु०) १ माथे पर लगानेका गोल तिलक, टीका। २ एक प्रकारका आभूषण जिसे स्त्रियां माथे पर पहनती हैं। ३ एक प्रकारकी टिकली जो माथे पर लगाई जाती है। ४ एक प्रकारका आभूषण जो टिकलीके आकारका होता और माथे पर पहना जाता है।

बेंदी (हिं० स्त्री०) १ टिकली, बिंदी। २ शून्य, सुन्ना। ३ सरोके पेड़का-सा बेलबूटा। ४ दावनीया-बेंदी नामक गहना जिसे स्त्रियां माथे पर पहनती हैं।

बेंवड़ा (हिं० पु०) बंद किवाड़के पीछे लगानेकी लकड़ी। इसे अरगल भी कहते हैं।

बेंवताना (हिं० क्रि०) सिलानेके लिये किसीसे कपड़ा नपवाना।

बे (फा० अव्य०) १ बिना, बगैर। (हिं० अव्य०) २ छोटों-के लिये एक संबोधन शब्द जो प्रायः अशिष्टता-सूचक माना जाता है।

बेअकल (फा० पु०) मूर्ख, बेवकूफ।

बेअकली (फा० स्त्री०) मूर्खता, बेवकूफी।

बेअदब (फा० वि०) जो किसीका अदब न करता हो, जो बड़ोंका आदर-सम्मान न करता हो।

बेअदबी (फा० स्त्री०) बेअदब होनेका भाव, गुस्ताखी।

बेआब (फा० वि) १ जिसमें आब या चमक न हो। २ जिसकी कोई प्रतिष्ठा न हो।

बेआवर (ब्यावर)—अजमेर जिलेका एक नगर। यह अक्षा० २६°५´ उ० तथा देशा० ७४° १६´ पू०के मध्य अव-स्थित है। जनसंख्या प्रायः २२००० है जिनमेंसे हिन्दू-की संख्या ज्यादा है। स्थानीय लोग इसे नयानगर कहते हैं। अजमेर मेवाड़ विभागके अंगरेज कमि-श्नरने १८२५ ई०में यह नगर सेमानिवासके लिये बसाया। मेवाड़की राजधानी उदयपुर और मारवाड़-की राजधानी जोधपुरके बीचमें स्थापित होनेके कारण यह स्थान थोड़े ही समयके अन्दर एक प्रधान वाणिज्य-केन्द्रमें परिणत हुआ, तथा धनजनसे पूर्ण हो इसकी आशातीत श्रीवृद्धि हुई। नगरके चारों ओर पत्थरकी प्राचीर हैं। यहांकी सड़क बहुत विस्तृत है और दोनों ही पार्श्व बड़े बड़े वृक्षोंकी छायासे सुशीतल है।

शहरमें कपासका विस्तृत कारवार है। कपासकी गांठ बांधनेके लिये दो हाइड्रालिक काटन प्रेस प्रतिष्ठित हैं। अलावा इसके लोहेकी चीज बनानेका भी एक बहुत लम्बा चौड़ा कारखाना है। इन सब लोहेके बरतनों और रंगीन कपड़ोंकी विभिन्न स्थानोंमें रफ्तनी होती है। स्थानीय अफीमकी खेती और वाणिज्य उल्लेख-योग्य है।

बेआवरू (फा० वि०) जिसकी कोई प्रतिष्ठा न हो, बेइज्जत।

बेआवी (फा० स्त्री०) निस्तेजता, मलिनता।

बेआरा (हिं० पु०) एकमें मिला हुआ जौ और चना।

बेओनी (हिं० स्त्री०) जुलाहोंका एक औजार। यह प्रायः कंघीके आकारका होता है और तानेके सूतके बीचमें रहता है।

बेइंसाफी (फा० स्त्री०) अन्याय, इंसाफका अभाव।

बेइज्जत (फा० वि०) १ अप्रतिष्ठित, जिसको कोई प्रतिष्ठा न हो। २ जिसका अपमान किया गया हो, अपमानित।

बेइज्जती (फा० स्त्री०) १ अप्रतिष्ठा। २ अपमान।

बेइलि (हिं० पु०) बेला देखो।

बेइल्म (फा० पु०) जो कोई विद्या न जानता हो, जो कुछ पढ़ा लिखा न हो।

बेईमान (फा० वि०) १ जिसका ईमान ठीक न हो, जिसे धर्मका विचार न हो। २ जो अन्याय कपट या और किसी प्रकारका अनाचार करता हो।

बेईमानी (फा० स्त्री०) बेईमान होनेका भाव।

बेउज्र (फा० वि०) जो आज्ञापालन अथवा और कोई काम करनेमें कभी किसी प्रकारकी आपत्ति न करे।

बेकदर (फा० वि०) जिसकी कोई कदर या प्रतिष्ठा न हो, बेइज्जत।

बेकदरी (फा० स्त्री०) बेकदर होनेका भाव, बेइज्जती।

बेकनाट (सं० पु०) कुसीदजीवी, सूदखोर।

बेकरा (हिं० पु०) पशुओंका खुरपका नामक रोग, खुरहा।

बेकरार (फा० वि०) व्याकुल, विकल।

बेकरारी (फा० स्त्री०) व्याकुलता, बेचैनी।

बेकल—मन्द्राज प्रदेशके दक्षिण कनाड़ा जिलान्तर्गत एक प्राचीन नगर। यह अक्षा० १२° २४' उ० तथा देशा० ७५° ३' पू०के मध्य अवस्थित है। यहां एक सुवृहत् दुर्ग सुरक्षित अवस्थामें विद्यमान है। दुर्गका पर्यवेक्षण करनेसे उसमें वर्त्तमान युरोपीय स्थापत्य-विज्ञानके अनेक निदर्शन पाये जाते हैं। समुद्रगर्भमें जो एक शैल है उसीके ऊपर यह दुर्ग स्थापित है। इक्केरी और चेराकल राजवंशके परस्पर विरोधकालमें इस दुर्गकी प्रथम प्रतिष्ठा हुई थी, ऐसा अनुमान किया जाता है। पीछे वह संस्कृत हो इस प्रकार सुदृढ़ दुर्गमें रूपान्तरित हो गया है। पाश्चात्य भौगोलिक De Barros ने इस स्थानकी समृद्धिका उल्लेख किया है। उनके विवरणमें यह नगर Cota koulam नामसे वर्णित है।

बेकली (हिं० स्त्री०) १ बेकल होनेका भाव, घबराहट। २ स्त्रियोंका एक रोग। इसमें उनका गर्भाशय अपने स्थानसे कुछ हट जाता है। इसमें रोगीको बहुत अधिक पीड़ा होती है।

बेकस (फा० वि०) १ निराश्रय, निःसहाय। २ दीन, गरीब। ३ मातृ-पितृहीन, बिना मा बापका।

बेकस—पाश्चात्य जगत्की प्राचीन जातियों द्वारा पूजित देवमूर्त्ति। प्राचीन ग्रीक लोगोंके मध्य यह देवमूर्त्ति जिउसके पुत्र देवनिसस, लाटिन जातिमें बेकस (Bacchus) और मिस्रवासियोंमें ओसिरिस नामसे प्रसिद्ध है। पाश्चात्य जगत्में बेकसके सम्बन्धमें जो किंवदन्ती प्रचलित हैं उसकी पर्यालोचना करनेसे ऐसा प्रतीत होता है मानो उस समय बहुत बेकस विद्यमान थीं। दिवोदोरस और सिसिरो इस प्रकारको अनेक बेकसोंका उल्लेख कर गये हैं पर जिस बेकसका उल्लेख यहां किया जाता है उसने काद्मसराज-तनया सिमिलीके गर्भ और जुपिटर वृहस्पतिके औरससे जन्मग्रहण किया है। मिसरीय किंवदन्तीका अनुसरण करनेसे जाना जाता है, कि युवराज बेकस एक दिन युवावस्थामें नाक्सस द्वीपमें गाढ़ी निद्रामें सो रहे थे, इसी समय कुछ नाविक आ कर उन्हें चुरा ले गये। इस पर युवक बड़े बिगड़े और उन्होंने नाविक-दलको श्राप दिया जिससे वे सबके सब मछली हो गये। इसी जगहसे बेकसकी ऐशीभक्तिका परिचय पाया जाता है। उन्होंने अपने पुण्यबल और पिताकी सम्मतिसे माता सिमिलीको नरकसे उद्धार कर स्वर्गधाम भेज दिया। इस समयसे वे साइवने नामसे मशहूर हुए। अनन्तर बेकसने पूर्वकी चढ़ाई करके वहांके अधिवासियोंको द्राक्षाकर्षण और मधु आहरणकी शिक्षा दी थी। इस कारण वे मद्यपायी जातिके देवतारूपमें पूजित हुए। बेकसके उत्सव अर्गिज,

केनिफोरिया, फालिका, वाकानलिया वा देवनिसिया नामसे पाश्चात्य जगत्में विदित हैं। दनायुस और उनकी कन्याने मिस्रसे इस पूजाका ग्रीसमें प्रचार किया। इस उत्सवमें पहले बहुतसे लोग शराब पीते थे। यहां तक कि वे आत्मविस्मृत हो बहुतसे निन्दित कर्म भी कर डालते थे। १८० ई०में बेकस-प्रवर्त्तित उत्सवकी दुर्दशा देख कर रोम-गवर्मेण्टने यह उत्सव सदाके लिये बन्द कर दिया।

बेकसपूजामें जो सब स्त्रियां पुरोहितके कार्यमें लिप्त रहती थीं, उत्सवभेद और देशभेदसे वे विभिन्न वस्त्र पहनती थीं। परिच्छदके तारतम्यानुसार वे मेनडिस, थायडिस, बेकाण्टिस, मिमलोनाइडिस, बासराइडिस आदि नामोंसे जनसाधारणमें प्रसिद्ध थीं। मिस्रवासी बेकसकी तृप्तिके लिये गृहद्वार पर शूकरबलि देते थे। अधिकांश जगह छागबलिकी ही प्रधानता देखी जाती थी। क्योंकि, छागकुल द्राक्षालताका नाश करनेमें सदा उन्मुख रहता था। प्लिनिका कहना है, कि देवताओंके मध्य इनका मस्तक मुकुटालंकृत, कामदेवकी तरह सुरम्य और कुञ्चितकेशकलापसे मस्तक समाच्छादित मानो चिर-यौवन उनके मुखचन्द्र पर सदा विराज करता है। कभी तो वे हाथमें शृङ्ग लिये विराज करते हैं। इस शृङ्गके सम्बन्धमें पाश्चात्य जगत्में किंवदन्ती है, कि बेकसने वृषके द्वारा भूमिकर्षणकी शिक्षा दी थी, उसीके निदर्शन स्वरूप उन्होंने हाथमें शृङ्ग धारण किया है। फिर कोई कोई कहते हैं, कि लाइबियर मरुक्षेत्रमें जब वे दलबल समेत पहुंचे और निदारुण तृष्णासे कातर तथा मृतप्राय हो गये थे, उस समय उनके पिता जुपिटरने भेड़ाका रूप धारण कर उन्हें जलपथका सुगम पथ बतला दिया था। उस घटनासे कृतज्ञता-स्वरूप वे शृङ्गधारी हो गये हैं। दियोदोरसने जिन तीन प्रकारकी बेकसमूर्त्तिका उल्लेख किया है, उनमेंसे (१) भारतविजयी बेकस दीर्घ श्मश्रुसमन्वित, (२) जुपिटर और प्रसर्पाइनके पुत्र शृङ्गधारी और (३) जुपिटर तथा सिमिलीके पुत्र थेबिसकी बेकस हैं। सिसिरोके मतानुसार १ प्रसर्पाइन पुत्र, २ न्यासके पुत्र, ३ केप्रियसरके पुत्र, इन्होंने भारतवर्षमें अपना प्रभुत्व फैलाया था, ४ थ्युनी और न्यासुसके पुत्र तथा ५ जुपिटर चन्द्रके पुत्र हैं।

वर्त्तमान कायरो नगरसे ३ सौ मील दक्षिण उत्तर-मिस्रके शिवा नामक वेशिशमें प्रायः १८०० ई० सन्के पहले प्रतिष्ठित जुपिटर (वृहस्पति) मन्दिरका ध्वस्त निदर्शन दृष्टिगोचर होता है।

पाश्चात्य-जगतमें बेकसके लिङ्गरूपकी नाना भावमें उपासना होती है। कभी तो वे भीरु रमणीजनोचित सुकुमार युवक, कभी मस्तक पर द्राक्षा वा आइभी-लताका किरीट और कभी हाथमें त्रिशूल लिये रहते हैं। व्याघ्र और सिंह उनका प्रियवाहन और मागपाइ नामका पक्षी उनको अतिप्रिय है। वे व्याघ्रचर्मसे समाच्छादित हो भारतविजयके लिये गये थे। फिर कभी वे तारका-मण्डित भूगोल पर उपविष्ट मूर्त्तिमें सूर्य वा ओसिरिस-के समान पूजित होते हैं। भारत-भ्रमणकारी बहुतसे ग्रीक ग्रन्थकारोंने हिन्दूजातिके उपास्य एक बेकसका उल्लेख किया है। अधिक सम्भव है कि वे भारतवर्षमें महादेवकी लिङ्गपूजाके साथ ग्रीकदेशीय बेकसके लिङ्गमयी देवतारूपकी सदृशता देख कर ऐसा निर्णय कर गये हों।

बेकहा (हिं० वि०) किसीकी आज्ञा या परामर्शको न माननेवाला।

बेकानूनी (फा० वि०) नियमविरुद्ध, जो कानून या कायदेके खिलाफ हो।

बेकाबू (फा० वि०) १ जिसका अपने ऊपर काबू न हो, विवश। २ जिस पर किसीका काबू न हो, जो किसीके वशमें न हो।

बेकाम (हिं० वि०) १ जिसे कोई काम न हो, निकम्मा। (क्रि० वि०) २ निरर्थक, व्यर्थ।

बेकायदा (फा० वि०) नियमविरुद्ध, कायदेके खिलाफ।

बेकार (फा० वि०) १ निकम्मा, निठल्ला। २ जो किसी काममें न आ सके, निरर्थक।

बेकारी (फा० स्त्री०) बेकार होनेका भाव, खाली या निरुद्यम होनेका भाव।

बेकसूर (फा० वि०) निरपराध, जिसका कोई कसूर न हो।

बेकुक—एक मुसलमान धर्मसम्प्रदाय। एक धर्मप्रचारक

मुसलमान पाखण्डो साधु ही इसका प्रवर्त्तक है। १८वीं शताब्दीके प्रथम भागमें इस व्यक्तिने दिल्ली राजधानी पहुंच कर जनसाधारणके बीच यह घोषणा कर दी, कि मैंने अभिनव कुरान पाया है। इस कुरानका भाव स्वयं ईश्वरने व्यक्त किया है, इत्यादि। बहुतसे लोग उसकी बात पर विश्वास कर तथा ग्रन्थका मर्म और मूलतत्त्व जान कर शीघ्र ही उसके शिष्य बन गये। देखते देखते इस नवीन कुरानके मतानुयायियोंका एक सम्प्रदाय संगठित हो गया। इस सम्प्रदायके गुरु या आचार्य स्थानीय मौलवीगण 'बेकुक' नामसे प्रसिद्ध हुए और उनका शिष्य-सम्प्रदाय फराबुद्द कहलाया। उक्त मुसलमान पाखंडी साधुने प्राचीन पारसी धर्मग्रन्थसे कुछ अपने मतके अनुकूल वचन उद्धृत करके स्वीय कल्पनाबलसे उक्त कुरानका सङ्कलन किया था।

बेकुरा (सं० स्त्री०) १ वाक्य। २ वाद्ययन्त्रभेद।

बेकुरि (सं० स्त्री०) वाक्य।

बेख (फा० स्त्री०) मूल, जड़।

बेखटक (हिं० वि०) १ बिना किसी प्रकारके खटकेके, बिना किसी प्रकारको रुकावट या असमंजसके। (क्रि० वि०) २ निस्सङ्कोच, बिना आगा पीछा किए।

बेखता (फा० वि०) १ निरपराध, बेकसूर। २ अमोघ, अचूक।

बेखबर (फा० वि०) १ अनजान, नावाकिफ। २ बेसुध, बेहोश।

बेखबरी (फा० स्त्री० १ अज्ञानता, बेखबर होनेका भाव। २ बेहोशी।

बेखुर (हिं० पु०) एक प्रकारका पक्षी। इसका शिकार किया जाता है। यह काश्मीर, नेपाल और बंगालमें पाया जाता है; परंतु अक्तूबरमें पहाड़ परसे उतर कर समभूमि पर आ जाता है। फल मूल ही इसका प्रधान आहार है और प्रायः नदियों या जलाशयोंके किनारे छोटे छोटे झुंडोंमें रहता है।

बेखौफ़ (फा० पु०) निर्भय, निडर।

बेग (हिं० पु०) वेग देखो।

बेग (अं० पु०) कपड़े, चमड़े या कागज आदि लचीले पदार्थोंका एक थैला। इसका मुंह ऊपरसे बंद किया जा सकता है।

बेगड़ी (हिं० पु०) १ वह जो हीरा काटता हो, हीरा-तराश। २ वह जो नगीना बनाता हो, हक्काक।

बेगती (हिं० स्त्री०) बंगालकी खाड़ीमें मिलनेवाली एक प्रकारकी मछली। यह प्रायः ४ हाथ लंबी होती है और इसका मांस स्वादिष्ट होता है।

बेगनूरी खाँ कुचिन—एक मुगल-सेनापति। इन्होंने मुगल सम्राट् अकबरशाहके अन्यतम सेनापति मुइज्जुल मुल्कके अधीन खैराबाद-युद्धमें विशेष प्रसिद्धि प्राप्त की थी। अनन्तर सम्राट्के शासनकालके ३२वें और ३३वें वर्षमें इन्होंने यथाक्रम अबुल मतलब और कादिक खाँके अधीन तारिकियोंके साथ युद्ध किया था। एक हजार सेना इनके अधीन रहती थी। १००१ हिजरीमें इनकी मृत्यु हुई।

बेगम (तु० स्त्री०) १ राज्ञी, रानी। २ ताशके पत्तोंमेंसे एक पत्ता। इस पर एक स्त्री या रानीका चित्र बना होता है। यह पत्ता केवल इक्के और बादशाहसे छोटा और बाकी सबसे बड़ा समझा जाता है।

बेगम—उच्चकुलोद्भव मुसलमान रमणियोंकी उपाधि। साधारणतः मुगल बादशाहकी पत्नियां इस उपाधिसे सम्मानित होती थीं। मुगल 'बेग' उपाधि पुंलिङ्गमें और 'बेगम' स्त्रीलिङ्गमें व्यवहृत होती हैं। पाठानोंके मध्य बीबी, निसा, खानुम, खातुम, बानु आदि उपाधियां बेगमकी तरह सम्मानसूचक समझी जाती हैं। यही कारण है कि बेगम वा बेगम साहबा कहनेसे साधारणतः बाद-शाह-पत्नी, राज्ञी, राजमहिषी, रानीका ही बोध होता है।

बेगमगञ्ज—बङ्गालके नोआखाली जिलान्तर्गत एक गण्ड-ग्राम। यहां एक थाना है। स्थानीय वाणिज्यकी कुछ कुछ उन्नति देखी जाती है।

बेगमपुर—हुगली जिलेके अन्तर्गत एक गण्डग्राम। यहां सूती कपड़ेका विस्तृत कारबार है।

बेगमपुर—बम्बईके शोलापुर जिलेके शोलापुर तालुकका एक गण्डग्राम। यह अक्षा० १७°३४´ उ० तथा देशा० ७५°३४´ पू० भीमा नदीके दहिने किनारे शोलापुर शहरसे १२ मील दक्षिण पश्चिममें अवस्थित है। जनसंख्या २३०४ है।

यहां सम्राट् औरङ्गजेवकी कुमारी कन्या वेगामीका समाधि-मन्दिर विद्यमान है। जब औरङ्गजेव दाक्षिणात्य जीतनेकी इच्छासे इस ग्रामके दूसरे किनारे मयानपुरमें छावनी डाले हुए थे, उसी समय उस कन्याकी मृत्यु हुई थी। इस कारण औरङ्गजेवने इस स्थानका अपनी कन्याके नाम पर वेगमपुर नाम रखा। यहां खादीका छोटा मोटा कारखाना है।

वेगमपुर—यशोहर जिलान्तर्गत एक समृद्धिसम्पन्न गण्ड-ग्राम। यहां बहुतसे त्रि-शीय ईसाइयोंका वास है। स्थानीय अधिकांश मनुष्य ही कपड़े बुन कर अपना गुजारा करते हैं।

वेगमसमरू—काश्मीरवासिनी एक मुसलमान रमणी। यह सामान्य नर्त्तकीसे अपने अदृष्ट गुण और बुद्धिके वलसे राजमहिषी हो गई थीं। फ्रान्स राज्यके ट्रिभस पल्लीवासी वालटर रिनहार्ड नामक एक फरासी युवक नौ सेनादलमें सूत्रकारका काम करता था। कुछ समय वाद नौसेनाके साथ वह भारतवर्ष आया। यहाँसे वह नौविभागका परित्याग कर विभिन्न स्थानोंके देशीय सामन्त राजाओंके अधीन काम करने लगे। वङ्गालके नवाव मीरकाशिमके अधीन ग्रिगरी नामक जो आर्मेणीय सेनापति था, रिनहार्ड शुभ अवसर देख कर उसके अधीन सेनाविभागमें भर्त्ती हो गया। मीर काशिमके कौशलसे पटनामें जो अङ्गरेज कैद रखे गये थे उनकी हत्या कर रिनहार्ड नवावका प्रिय हो गया था सही, पर थोड़े ही दिनोंके अन्दर अङ्गरेजोंसे नवावकी दुर्दशा और पतन अवश्यम्भावी जान कर उसने वङ्गालका परित्याग किया और भरतपुर राज-सरकारका आश्रय लिया। यहां भी वह सरदारका काम छोड़ कर नजफ खाँके अधीन सेनानायकके कार्यमें भर्त्ती हुआ। ११७८ ई०में उसकी मृत्यु हुई और आगरा नगरमें दफन किया गया।

नजफ खाँ देखो।

कोई कोई कहते हैं, कि रिनहार्डने अङ्गरेजी समाइर्स (Summers) नाम ग्रहण किया था। यही कारण है, कि इतिहासमें यह समरू नामसे प्रसिद्ध है। उसने विभिन्न राजसरकारमें तथा शेषकालमें नजफ खाँके अधीन कार्य करके प्रचुर सम्पत्ति अर्जन की थी। एक दिन वह काश्मीरकी एक युवती नर्त्तकीको देख कर उस पर मोहित हो गये और आखिर उससे विवाह कर ही लिया। वही रमणी आगे चल कर वेगम समरू नामसे मशहूर हुई।

स्वामीकी मृत्युके वाद वेगम समरू स्वामीके अर्जित सरदानहा राज्यकी अधीश्वरी हुई। १७८१ ई०में वह कैथलिक गिर्जामें खृष्ट-धर्मसे दीक्षित हुई। अनन्तर उसने १७९२ ई०में पुनः मूसो ले वाई-सिउ नामक किसी फरासी अदृष्टान्वेषीसे विवाह किया। यह व्यक्ति अपने स्वभावके दोषसे प्रजावर्गका अप्रिय हो उठा। सभी प्रजाने विद्रोही हो कर रिनहार्डके पुत्र जाफर याव खाँके नेतृत्वमें वाइसिउका काम तमाम करनेकी ठानी। सुचतुरा समरूने प्रजावर्गके मनोवादसे अपना सर्वनाश उपस्थित देख नवपरिणीत स्वामीको आत्महत्या करनेकी सलाह दी। वाइसिउके निहत होने पर जार्ज टामस नामक वेगमके एक विश्वस्त कर्मचारीने विद्रोहका दमन किया। १८०२ ई०में जाफरयावकी मृत्यु हुई। उसकी कन्याके एकमात्र पुत्र डेभिड अक्तरलोनी डाइस सोम्ब्रेको वेगम समरू अपनी मृत्युके वाद १८३६ ई०में अपनी सम्पत्तिका उत्तराधिकारी वना गई। उसने कैथलिकधर्म-मन्दिरों तथा विद्यालयोंके लिये प्रायः तीन लाख चौहत्तर हजार रुपयेका दान किया था।

वेगमसुलतान—एक मुगल-राजकुल-ललना। आगरेके इतिमाद उद्दौलाकी मसजिदके वगलमें इसका समाधिमन्दिर विद्यमान है। इस समाधिमन्दिरके गात्रसंलग्न शिलाफलकमें लिखा है, कि सम्राट् हुमायूंके समय १५३८ ई०में उनकी समाधि हुई। यह शेख कमालकी कन्या थी।

वेगमहम्मद (तोकवाई) सम्राट् अकवर शाहके एक सेनानायक।

वेगमावाद—युक्तप्रदेशके मेरठ जिलेका एक नगर। यह अक्षा० २८° ५४´ ३८´´ उ० तथा देशा० ८१° ५२´ ३५´´ पू०के मध्य मेरठ सदरसे १४ मील तथा दिल्लीसे २८ मील दूर ग्राण्डट्रङ्क रोड नामक रास्ते पर अवस्थित है। करीव डेढ़ सौ वर्ष हुए ग्वालियरकी राजमहिषी रानी वालावाईने यहां एक सुन्दर दैवमन्दिरकी प्रतिष्ठा की थी। नगरके वाहर नगरस्थापयिता नवाव जाफरअली द्वारा प्रतिष्ठित

मसजिद अभी भग्नावस्थामें पड़ी है। नगरकी श्रीवृद्धिके लिये १८५६ ई०की २०वीं विधिके अनुसार म्युनिसिपल और पुलिसकी रक्षाके लिये कुछ राजस्व वसूल होता है।

बेगमी (तु० वि०) १ बेगम-सम्बन्धी। २ उत्तम, बढ़िया। (पु०) ३ एक प्रकारका बढ़िया कपूरी पान। ४ एक प्रकारका पनीर। इसमें नमक कम डाला जाता है। ५ पंजाबमें होनेवाला एक प्रकारका बढ़िया चावल।

बेगर (हिं० क्रि० वि०) बगैर देखो।

बेगरज़ (फा० वि०) १ जिसे कोई गरज या परवा न हो। (क्रि० वि०) २ निष्प्रयोजन, व्यर्थ।

बेगरजी (फा० स्त्री०) बेगरज होनेका भाव।

बेगवती (सं० स्त्री०) एक वर्णार्द्ध वृत्त। इसके विषम पादों में ३ सगण, १ गुरु और सम पादोंमें ३ भगण तथा २ गुरु होते हैं।

बेगसर (हिं० पु०) अश्वतर, खच्चर।

बेगानगी (फा० स्त्री०) बेगाना होनेका भाव, परायापन।

बेगाना (फा० वि०) १ जो अपना न हो, गैर, पराया। २ अनजान, नावाकिफ।

बेगार (फा० स्त्री०) १ विना मजदूरोका जबरदस्ती लिया हुआ काम। २ वह काम जो चित्त लगा कर न किया जाय, वह काम जो बेमनसे किया जाय।

बेगारी (फा० स्त्री०) बेगारमें काम करनेवाला आदमी।

बेगी (पेद्दवेगी)—मन्द्राजप्रदेशके अन्तर्गत एक प्राचीन नगर। यह इल्लोर नगरसे ६ मील उत्तरमें अवस्थित है। जनसाधारणका विश्वास है कि वेङ्गीके तेलिङ्ग राजाओंने पहले यहां राजधानी बसाई थी। ६०५ ई०में चालुक्य-विजयके बादसे ही इस वंशका प्रताप खर्व होता आया। ४थी शताब्दीमें जो एक ताम्रफलक उत्कीर्ण हुआ है उसमें यह वंश शालङ्कायण-राजवंश कह कर वर्णित है।

शिलालिपिके प्रमाणसे और भी जाना जाता है, कि वेङ्गीराज्य दाक्षिणात्यका एक अति प्राचीन जनपद था। पल्लवगण यहांका शासन करते थे। काञ्चीपुरके पल्लवराजाओंके साथ इनका नजदीक संबंध था। प्रत्नतत्त्वविद् बुर्नलके मतानुसार यह राज्य २री शताब्दीमें प्रतिष्ठित हुआ। चालुक्यराजाओंसे वेङ्गीका अधःपतन होनेके बाद काञ्चीपुर ही पल्लवराजाओंकी राजधानी हो गई।

उपरिउक्त पेद्दवेगी नगर ही प्राचीन राजधानी था, यह ठीक ठीक नहीं कहा जा सकता; क्योंकि उसीके समीप छिन्नवेगी नामक एक और ग्राम है। वेगी नगरसे ५ मील दक्षिण-पूर्वमें देएडलूरु ग्राम तक पुरातन अट्टालिकाओंका विस्तीर्ण ध्वस्तस्तूप पड़ा दृष्टिगोचर होता है। वह प्रायः पेद्दवेगी और छिन्नवेगी तक विस्तृत है। यह विस्तृत ध्वंसावशेष प्राचीन वेङ्गी राजधानीकी समृद्धकीर्त्ति है। उसीसे नगरकी प्राचीन वाणिज्यवृद्धि और श्रीसौन्दर्यकी कल्पना हो सकती है। किंवदन्ती है, कि मुसलमानोंने वेगी और हेएडलूरुका ध्वंसप्राय मन्दिरादिके पत्थर ले कर इल्लोरका दुर्ग बनवाया था।

बेगुन (हिं० पु०) बैंगन देखो।

बेगुनाह (फा० वि०) १ जिसने कोई गुनाह न किया हो, जिसने कोई पाप न किया हो। २ निर्दोष, जिसने कोई अपराध न किया हो।

बेगुनी (हिं० स्त्री०) एक प्रकारकी सुराही।

बेगूसराय—विहार और उड़ीसाके मुङ्गेर जिलेका एक उत्तर-पश्चिम उपविभाग। यह अक्षा० २५° १५' से २५° ४७' उ० तथा देशा० ८५° ४७' से ८६° २७' पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ७५१ वर्गमील और जनसंख्या साढ़े छः लाखके करीब है। इसमें ७५५ ग्राम लगते हैं; तेघड़ा और बेगूसराय थाना ले कर यह उपविभाग संगठित है। एक समय यहां नीलकी अच्छी खेती होती थी। यहां फौजदारी और राजस्वकी कलक्टरी अदालत है।

२ उक्त उपविभागका सदर। यह अक्षा० २५° २६' उ० तथा देशा० ८६° ६' पू०के मध्य अवस्थित है। जनसंख्या ६३३८के लगभग है। यहां सरकारी दफ्तर और एक छोटा जेल है, जिसमें केवल २८ कैदी रखे जाते हैं।

बेघराम—एक प्राचीन नगर। अभी यह ध्वंसावस्थामें पड़ा है। यह अक्षा० ३४° ५३' उ० तथा देशा० ७९° १९' पू०के मध्य कावुल नगरसे २५ मील और जलालाबादसे २ मील पश्चिममें अवस्थित है। नगरके चारों ओर ६० फुट चौड़ी कच्ची ईंटकी प्राचीर विद्यमान है। मुद्रातत्त्वज्ञ भ्रमणकारी चार्लस मेसनने इस नगरका पर्यवेक्षण करके इसकी Alexandria ad caucasum कह कर तुलना की है नगरके ध्वंसावशेषका अनुसन्धान

करके मेसन और अपरापर प्रत्नतत्त्वविदोंने यहांसे प्रथम वर्षमें १८६५ ताम्र और कुछ रौप्य मुद्रा तथा अंगूठी, तावीज, कवच और अन्यान्य स्मृति निदर्शन पाये थे। दूसरे वर्ष १६००, तीसरे वर्ष २५०० और चौथे वर्ष १३४७४ और सबसे अन्तमें अर्थात् १८३७ ई०को उन्हें ६० हजार ग्रीक और रोमन, ग्रीक वाह्लिक, वाह्लिक, हिन्दू-मारद, हिन्दू-शक, शासनीय हिन्दू और हिन्दू मुसलमानी मुद्रा हाथ लगी थी। अध्यापक विलसनने अपने Ariana Antigua नामक ग्रन्थमें उन सब मुद्राओंसे अफगानिस्तान, मध्यएशिया और भारतका ऐतिहासिक सम्बन्ध निरूपण किया है। स्थानीय प्रवाद है, कि इस नगरमें यवनराजाओंकी राजधानी थी। कालचक्रसे यहां ऐसी भयानक महामारी फैली, कि हजारों मनुष्य उसके शिकार बन गये और आखिर यह नगर जनशून्य हो ध्वंसमें परिणत हो गया है। अभी हिन्दुओंने इसका बलराम नाम रखा है।

बेङ्गी—दाक्षिणात्यका एक प्राचीन जनपद। पहले यह करमण्डल उपकूल पर अवस्थित था। इसके पश्चिम पूर्वघाट पर्वतमाला, उत्तर गोदावरी और दक्षिणमें कृष्णा-नदी है। गोदावरी जिलेके इल्लार तालुकके वेगी वा पेङ्गवेगी ग्रामका ध्वंसावशेष ही प्राचीन बेङ्गी राजधानी की नष्टकीर्त्ति समझा जाता है। वेगी देखो।

चालुक्यराज २य पुलकेशीके भाई कुब्जविष्णुवर्द्धनने ६१७ ई०में यहां पूर्व-चालुक्यराजवंशकी प्रतिष्ठा की थी। तदनन्तर ७३३से ७४७ ई०के मध्य पलव-सेनापति उभय-चन्द्रने अश्वमेधयज्ञकारी निषाद-सरदार पृथ्वीव्याघ्रको परास्त कर उसे बेङ्गीराज्यसे मार भगाया और पूर्व-चालुक्यराज ३य विष्णुवर्द्धनने राजा नन्दिवर्माकी वश्यता स्वीकार की। इसके बाद ७६६से ८४३ ई० तक बेङ्गी-सिंहासन पर चालुक्यराज नरेन्द्र मृगराज २य विजयादित्य अधिष्ठित रहे। राष्ट्रकूटपति ३य गोविन्द इन्हें परास्त करके अपने राजाके समीप लाये। उक्त बेङ्गीराज नौकरकी तरह गोविन्दके निकट रहने लगे। पीछे उन्होंने मालखेड़ दुर्गप्राचीर बनानेमें राजा गोविन्दको खासी मदद पहुंचाई थी। ८३३ ई०में राष्ट्रकूटराज १म अमोघवर्षने पुनः बेङ्गीराज्य-को पददलित कर डाला और विङ्गवल्ली ग्राममें चालुक्य-सेना परास्त हुई। चालुक्यराज ३य विजयादित्यने गोविन्दके लिये मान्यखेटपुरीमें जो दुर्गप्राचीरकी नींव डाली थी, उसे अमोघवर्षने ८४० ई०में शेष कर डाला।

एक दूसरी शिलालिपिके प्रमाणसे मालूम होता है, कि पूर्वचालुक्यराज गुणक विजयादित्य ३य (८४४-८८८)-ने रट्ट और गङ्गराजाओंको परास्त तथा राष्ट्रकूटराज २य कृष्णको परास्त करके मालखेड़ नगरको दग्ध कर डाला। राजा २य कृष्ण यह अपमान बहुत दिन तक सहन कर न सके। उन्होंने बेङ्गीराजको लूट कर बदला चुका ही लिया। किन्तु पीछे चालुक्यराज १म भीमने निज भुजबलसे पितृराज्यका उद्धार किया।

१०१२ ई०में चोलराज राजराज देवने बेङ्गीदेशको जीत कर वहां पल्लवमहाराय नामक एक महादण्ड नायक नियुक्त किया था।

अनन्तर कल्याणके पश्चिम चालुक्य ६ठे विक्रमा-दित्यने इस नगर पर अधिकार जमाया (१०७६-११२६ ई०)। इसी समय बेङ्गीराज राजीव वा कुलोत्तुङ्ग चोड़-देवने काञ्चीपुर राज्य पर चढ़ाई कर दी। राजा विक्रमा-दित्यके भाई २य सोमेश्वरने राजेन्द्र चोड़की सहायता की। इस संवादसे विचलित हो राजा विक्रमादित्य दल-बलके साथ आगे बढ़े। युद्धमें विक्रमादित्यकी ही जीत हुई। राजीव जान ले कर भागे और सोमेश्वर बन्दी हुए।

बेङ्गीपुर—बेङ्गीनगर।

बेङ्गीराष्ट्र—दाक्षिणात्यका एक जनपद। पल्लवराजाओंकी दशनपुर-प्रशस्तिमें इसका उल्लेख है। सम्भवतः बेङ्गी-राज्य बेङ्गीराष्ट्र नामसे प्रसिद्ध था।

बेचक (हिं० पु०) विक्री करनेवाला, बेचनेवाला।

बेचना (हिं० क्रि०) विक्रय करना, मूल्य ले कर कोई पदार्थ देना।

बेचराजी—बम्बई प्रदेशके बड़ौदा राज्यके पत्तन उप-विभागके अन्तर्गत एक प्रसिद्ध देवमन्दिर और तत्संलग्न एक गण्डग्राम। यह अहमदाबाद जिलेके विरमगांव-से २५ मीलकी दूरी पर अवस्थित है। यहां प्रति वर्ष आश्विन मासमें एक मेला लगता है। जिसमें २०-२५ हजार यात्रियोंका समागम होता है।

बेचवाना (हिं० क्रि०) बिकवाना देखो।

बेचारा (फा० वि०) जिसका कोई साथी या अवलम्ब न हो, गरीब, दीन।

बेचाराम—कविकल्पलता-टीकाके प्रणेता।

बेचाराम न्यायालङ्कार—आनन्द-तरङ्गिणी और सिद्धान्ततरि नामक ग्रन्थ-टीकाके रचयिता। ग्रन्थकर्त्ताने उस ग्रन्थमें, संस्कृत काव्यरत्नाकर, चैतन्यरहस्य, भैषज्यरत्नाकर और सिद्धान्तमनोरम नामक ग्रन्थोंका उल्लेख किया है। अलावा इसके सिद्धान्तमणिमञ्जरी नामक उनका बनाया हुआ एक ज्योतिर्ग्रन्थ भी मिलता है।

बेचिराग (फा० वि०) जहां दीआ तक न जलता हो, उजड़ा हुआ।

बेचू—एक निम्नश्रेणीके कवि। इनका जन्म १७५० ई०में हुआ था। इन्होंने भक्तिरसकी कविता की है।

बेचूराम—स्मृतिरत्नावलीके रचयिता।

बेचैन (फा० वि०) जिसे किसी प्रकार चैन न पड़ता हो, बेकल।

बेचैनी (फा० स्त्री०) विकलता, घबराहट।

बेजड़ (फा० वि०) जिसकी कोई जड़ या बुनियाद न हो, जिसके मूलमें कोई तत्त्व या सार न हो।

बेजएडला—मन्द्राज प्रदेशके कृष्णा जिलेके गुण्टूर तालुकके अन्तर्गत एक प्राचीन ग्राम। यहांके गोपालस्वामीके मन्दिरके प्रवेश-द्वारमें एक प्रस्तरलिपि ग्रथित है।

बेजनोनेस—वम्बई प्रदेशके काठियावाड़ विभागके गोहेलवाड़-प्रान्तस्थ एक छोटा सामन्त राज्य। भूपरिमाण २६ वर्गमील है। यहांके सामन्त बड़ौदाके गायकवाड़को वार्षिक ३१ रुपये कर देते हैं। बेजनोनेस ग्राममें ही सरदारका वास है।

बेजबान (फा० वि०) १ जिसमें बातचीत करनेकी शक्ति न हो, मूक, गूंगा। २ जो अपनी दीनता या नम्रताके कारण किसी प्रकारका विरोध न करे, दीन।

बेजा (फा० वि०) १ जो अपने उचित स्थान पर न हो, बेठिकाने। २ अनुचित, नामुनासिब। ३ खराब, बुरा।

बेजा खाँ—सिन्धुप्रदेशके एक विख्यात दस्युसरदार। यह जातिका मुसलमान था। दस्युवृत्ति उसके जीवनका एकमात्र कार्य होने पर भी, सच पूछिये तो वह निष्ठुर नहीं था। उसकी दयाने दूसरेको उनका पक्ष अवलम्बन करनेको बाध्य किया। यहां तक कि वह परम दयावान् योद्धा समझा जाता था।

१८४४ ई०में सर चार्लस नेपियरने उसके पैतृक-राज्य पुलाजीगढ़ पर आक्रमण करना चाहा। इस उद्देशसे उन्होंने कप्तान टेटको ५०० सौ अश्वारोही और लेफ्टेनाण्ट फिटसजी राल्डको २०० उष्ट्र-आरोही सेनाके साथ पार्वत्यप्रदेश भेजा। उक्त दोनों अंगरेज सेनापतिने मरुभूमि पार कर देखा कि बेजा खाँ सुसज्जित सेनादलके साथ अंगरेजी सेनाको रोकनेके लिये बिलकुल तैयार है। अब दोनों दलमें मुठभेड़ हुई। टेट परास्त और क्षतिग्रस्त हो भागे। इस समय बेजा खाँने वहां पर जितने कूप थे उन्हें मट्टीसे भरवा दिया। किन्तु अंगरेजोंके सौभाग्यसे एक कूप छूट गया। उसी कूपके जलसे अंगरेजोंने अपनी जान बचाई।

बेजाखाँके इस जयलाभसे मुसलमान लोग चारों ओरसे बेजाके दुर्गमें इकट्ठे होने लगे और उन्होंने प्रकाश्य रूपसे घोषणा कर दी कि वे लोग अमरीशेर महम्मदको ला कर पुनः सिन्धु राज्य स्थापन करेंगे।

इधर दुमकी और जाकरानी जाति सीमान्त पर विद्रोही हो उठी। इस समय शिकारपुरके ६४ संख्यक देशीय पदातिक सेनादलमें भी विद्रोहिताका पूर्वलक्षण दिखाई देने लगा। यह देख सर चार्ल्स कार्य-हानिकी आशङ्कासे स्वयं १८४५ ई०की १८वीं जनवरीको उनका दमन करनेके उद्देशसे रवाना हुए। ब्रिगेडियर हण्टरने थोड़े ही समयके अन्दर शिकारपुरके सिपाहियोंको अच्छी तरह दण्ड दिया। कप्तान सलटरने दरिया खाँके अधीनस्थ सात सौ जाकरानी दस्युको परास्त किया। ठीक उसी समय कप्तान येकबने बेजा खाँके पुत्रके अधीनस्थ जितनी सेना थी उनका उच्छेद कर डाला।

अंगरेजोंके मित्र सरदार बुलीचाँदने इस समय पुलाजी-दुर्गमें बेजा खाँको परास्त कर विजयलक्ष्मी प्राप्त की। उपर्युपरि इस प्रकारके तीन युद्धोंमें हार खा कर बेजा खाँ क्रोधसे अधीर हो उठा और उक्त पर्वतके पश्चिम-पार्श्वकी ओर चल दिया। इधर सलटर उचक्केकी ओर डटे रहे और येकब तथा बुलचाँदने फिरसे पुलाजीदुर्ग

पर आक्रमण कर दिया। इस समय नेपियरने भी दलबल-के साथ उसे चारों ओरसे घेर लिया। अपने बचावका कोई उपाय न देख बेजा खाँने १८४५ ई०की ६वीं मार्चको अंगरेजोंके हाथ आत्मसमर्पण किया।

बेजान (फा० वि०) १ मृतक, मुरदा। २ जिसमें जीवन-शक्ति बहुत ही थोड़ी हो, जिसमें कुछ भी दम न हो। ३ निर्बल, कमजोर। ४ कुम्हलाया हुआ, मुरझाया हुआ।

बेजापुर—बम्बई प्रदेशके महीकांठा राज्यके अन्तर्गत एक प्राचीन नगर। इसका संस्कृत नाम विजयपुर है।

विशेष विवरण बीजापुरमें देखो।

बेज़ाब्ता (फा० वि०) जो जाब्तेके अनुसार न हो, कानून या नियम आदिके विरुद्ध।

बेज़ार (फा० वि०) जो किसी बातसे बहुत तंग आ गया हो, जिसका चित्त किसी बातसे बहुत दुःखी हो।

बेजू (अं० पु०) गरम देशोंमें मिलनेवाला एक प्रकारका जंगली जानवर। यह डेढ़ दो हाथ लंबा होता है। इसके शरीरका रंग भूरा और पैर छोटे होते हैं। इसकी दुम बहुत छोटी होती है और पंजे लंबे तथा दृढ़ होते हैं। उन पंजोंसे यह अपने रहनेके लिये बिल खोदता है। इसका मांस खाया जाता है और इसकी दुमके बालोंसे चित्रों आदिमें रंग भरने या दाढ़ीमें साबुन लगानेके ब्रुश बनाए जाते हैं। प्रायः शिकारी लोग इसे बिलोंसे जबरदस्ती निकाल कर कुत्तोंसे इसका शिकार कराते हैं।

बेजोड़ (फा० वि०) जिसमें जोड़ न हो, जो एक ही टुकड़े-का बना हो। २ जिसकी समता न हो सके, अद्वितीय।

बेझरा (हिं० पु०) गेहूं, जौ, मटर, चने आदि अनाजोंमेंसे कोई दो या तीन मिले हुए अन्न।

बेझिलैवीर—पञ्चपल्लीके एक सामन्तराज। ये उदैयाके श्रीराजेन्द्र चोल देवके समसामयिक थे।

बेटा (हिं० पु०) पुत्र, लड़का।

बेटौना (हिं० पु०) बेटा देखो।

बेट्टा (हिं०) मैसूर देशमें मिलनेवाला एक प्रकारका भैंसा।

बेठ (हिं० पु०) एक प्रकारकी ऊसर जमीन जिसे बीहड़ भी कहते हैं।

बेठन (हिं० पु०) वह कपड़ा जो किसी चीजके लपेटने-के काममें आवे, बंधना।

बेठिकाने (फा० वि०) १ स्थान-च्युत, जो अपने उचित स्थान पर न हो। २ व्यर्थ, निरर्थक। ३ जिसका कोई सिर पैर न हो, ऊलजलूल।

बेड (अं० पु०) १ नीचेका भाग, तल। २ छापेखानेमें लोहे-का वह तख्ता जिस पर कंपोज और शुद्ध किए हुए टाइप, छापनेसे पहले रख कर कसे जाते हैं। ३ बिस्तर, बिछौना।

बेड़ (हिं० पु०) १ वृक्षके चारों ओर लगाई हुई बाड़, मेंड़। २ नगद रुपया, सिक्का।

बेड़ना (हिं० क्रि०) नए वृक्षों आदिके चारों ओर उनकी रक्षाके लिये छोटी दीवार आदि खड़ी करना, थाला बांधना।

बेड़ा (हिं० पु०) १ बड़े बड़े लट्ठों, लकड़ियों या तख्तों आदिको एकमें बांध कर बनाया हुआ ढांचा। इस ढांचे पर बाँसका टट्टर बिछा कर बैठते और नदी आदि पार करते हैं। यह घड़ोंसे बनी हुई घन्नईसे बड़ा होता है। २ नाव। ३ बहुत-सी नावों या जहाजों आदिका समूह। (वि०) ४ जो आंखोंके समानान्तर दाहिनी ओर-से बाईं ओर अथवा बाईंसे दाहिनी ओर गया हो। ५ कठिन, मुश्किल।

बेड़िया (हिं० पु०) बाँसकी कमाचियोंकी बनी हुई एक प्रकारकी टोकरी। इसका आकार थालके आकार-सा होता है और इससे किसान लोग खेत सींचनेके लिये तालाबसे पानी निकालते हैं।

बेड़िन (हिं० स्त्री०) १ नट जातिकी स्त्री जो नाचती-गाती हो। २ नीच जातिकी कोई स्त्री जो नाचती गाती और कसब कमाती हो।

बेड़ी (हिं० स्त्री०) १ लोहेकी कड़ीकी जोड़ी या जंजीर। यह कैदियों या पशुओं आदिको इसलिये पहनाते हैं जिस-में वे स्वतन्त्रतापूर्वक घूम फिर न सकें। २ सांप काटने-का एक इलाज। इसमें काटे हुए स्थानको गरम लोहे-से दाग देते हैं। ३ बांसकी टोकरी जिसके दोनों ओर रस्सी बंधी रहती है और जिसकी सहायतासे नीचेसे पानी उठा कर खेतोंमें डाला जाता है। (स्त्री०) ४ नदी पार करनेका टट्टर आदिका बना हुआ छोटा बेड़ा। ५ छोटी नाव।

बेडौल (हिं० वि०) १ जिसका डौल या रूप अच्छा न हो, भद्दा। २ जो अपने स्थान पर उपयुक्त न जान पड़े, बेढंगा।

बेढंग (हिं० वि०) बेढंगा देखो।

बेढंगा (हिं० वि०) १ जिसका ढंग ठीक न हो, बुरे ढंग-वाला। २ कुरूप, भद्दा। ३ जो ठीक तरहसे लगाया, रखा या सजाया न गया हो।

बेढंगापन (हिं० पु०) बेढंगे होनेका भाव।

बेढ़ (हिं० पु०) १ नाश, बरबादी। २ बोया हुआ वह बीज जिसमें अंकुर निकल आया हो।

बेढ़ई (हिं० स्त्री०) वह रोटी या पूरी जिसमें दाल, पीठी आदि कोई चीज भरी हो, कचौड़ी।

बेढ़न (हिं० पु०) वह जिससे कोई चीज घेरी हुई हो।

बेढ़ना (हिं० क्रि०) १ वृक्षों या खेतों आदिको, उनकी रक्षा-के लिये चारों ओरसे टट्टी बांध कर अथवा और किसी प्रकार घेरना। २ चौपायोंको घेर कर हांक ले जाना।

बेढ़ब (हिं० वि०) १ जिसका ढब या ढंग अच्छा न हो। २ जो देखनेमें ठीक न जान पड़े, भद्दा। (क्रि० वि०) ३ अनुचित या अनुपयुक्त रूपसे, बुरी तरहसे।

बेढ़ा (हिं० पु०) १ घरके आस पास वह छोटा-सा घेरा हुआ स्थान जिसमें तरकारियां आदि बोई जाती हों। २ एक प्रकारका गहना जो हाथमें पहना जाता है।

बेढ़ाना (हिं० क्रि०) १ घेरनेका काम दूसरेसे कराना, घिरवाना। २ ओढ़ाना।

बेणीफूल (हिं० पु०) एक प्रकारका गहना जो सिर पर पहना जाता है। इसका आकार फूल-सा होता है। इसे सीसफूल भी कहते हैं।

बेतंचेरलू—मन्द्राजप्रदेशके कर्णूल जिलान्तर्गत नन्द्याल तालुकका एक गण्डग्राम। मानचित्रमें यह बैमुमचेलु नामसे लिखा गया है। यहांके आञ्जनेय मन्दिरमें १४७० शक और १५६७ ई०में उत्कीर्ण दो शिलाफलक देखे जाते हैं। वे दोनों फलक विजयनगर-राज सदाशिवके राज्यकालमें किसी राजवंशीयसे दिये गये थे। एतद्भिन्न ग्रामके अन्यान्य स्थानोंमें और भी कितनी शिलालिपियां देखी जाती हैं।

बेतकल्लुफ (हिं० वि०) १ जिसे ऊपरी शिष्टाचारका विशेष ध्यान न हो, सीधासादा व्यवहार करनेवाला। २ जो अपने हृदयकी बात साफ साफ कह दे। (क्रि० वि०) ३ बिना किसी प्रकारके तकल्लुफके। ४ निस्संकोच बेधड़क।

बेतकल्लुफी (फा० स्त्री०) सरलता, सादगी।

बेतकसीर (फा० वि०) निरपराध, बेगुनाह।

बेतङ्गा—बङ्गालके फरिदपुर जिलान्तर्गत एक ग्राम। यह अक्षा० २३° उ० तथा देशा० ८९° ५७' पू० चन्दना नदीके किनारे अवस्थित है। यहां चावल और उरदका विस्तृत कारवार है।

बेतना (हिं० क्रि०) प्रतीत होना, जान पड़ना।

बेतवाद—बम्बईके खान्देश जिलान्तर्गत सिन्दखेत तालुक-का एक शहर। यह अक्षा० २१° १३' उ० तथा देशा० ७४° ५४' पू०के मध्य विस्तृत है। जनसंख्या प्रायः ४०१४ है। शहरमें १८६४ ई०को म्युनिस्पलिटी स्था-पित हुई है। यहां एक स्कूल है।

बेतवोलू—मन्द्राज प्रदेशके कृष्णा जिलान्तर्गत एक प्राचीन नगर। यह नन्दिग्राम तालुक सदरसे १५ मील उत्तर-पश्चिममें अवस्थित है। इस नगरके निकटवर्ती शैल पर जो सुवृहत् ध्वंसावशेष पड़ा है, उसकी गठनप्रणाली की पर्यालोचना करनेसे वह बौद्धस्तूप सरीखा प्रतीत होता है। उसका व्यास प्रायः ६६ फुट है और चारों ओर भास्करशिल्प मर्मरपत्थर विमण्डित है। उसके चारों बगल प्राचीन समाधियोंके ऊपर बहुसंख्यक प्रस्तर निर्मित चक्र दृष्टिगोचर होते हैं। एक चक्रके नीचे एक घोड़ेकी कुछ हड्डियां पाई गई हैं जिन्हें देख कर अनुमान किया जाता है, कि समाधिके पहले घोड़ेको दो खण्ड करके गाड़ा गया था। क्योंकि घोड़ेके मस्तककी हड्डी दूसरी जगह रखी हुई है और उस गड्ढेके चारों कोनेमें चार बड़े बड़े पात्र रखे हुए हैं। घोड़ेकी वह हड्डी अभी आक्सफोर्ड नगरीके Ashmolean Museum गृहमें सुरक्षित है।

बेतमङ्गला—दाक्षिणात्यके महिसुरराज्यके कोलरजिलान्तर्गत एक तालुक। भूपरिमाण २६० वर्गमील है। पालर नदी इस उपविभागके मध्य हो कर बहती है। इस उपविभागके पश्चिम स्वर्णमयीभूमि और माकुंपम् ग्रामके निकट सोनेकी

खान है। इसके दक्षिण-पूर्व घाटपर्वतमाला अपूर्व शोभा दे रही है।

२ उक्त उपविभागका एक प्राचीन शहर। यह अक्षा० १३° उ० तथा देशा० ७८° २०' पू० पालर नदीके दाहिने किनारे अवस्थित है। जनसंख्या हजारसे ऊपर है। प्रवाद है, कि किसी चोलराजने इस नगरकी प्रतिष्ठा की। अभी नगरका पूर्व सौन्दर्य बिलकुल नहीं है। १८१४ ई०में वौरिंपेट नगरमें उपविभागका विचार सदर उठ कर चले जाने तथा रेलके खुलनेसे नगरका कारबार बिलकुल बंद-सा हो गया और अभी सिर्फ एक गण्डग्राममें परिणत हो गया है।

वेतमीज (फा० वि०) जिसे भद्रताका आचरण करना न आता हो, बेहूदा।

वेतरह (फा० क्रि० वि०) १ अनुचितरूपसे, बुरी तरहसे। २ असाधारणरूपसे, विलक्षण ढंगसे। (वि०) ३ बहुत अधिक, बहुत ज्यादा।

वेतरीका (फा० वि०) १ अनुचित, बेकायदा। (क्रि० वि०) २ अनुचितरूपसे, बिना ठीक तरीकेसे।

वेतवा—बुन्देलखण्डकी एक नदी। यह भूपालतालसे निकल कर यमुनामें मिलती है। वेत्रवती देखो।

वेतहाशा (फा० क्रि० वि०) १ बहुत शीघ्रतासे, अधिक तेजीसे। २ बिना सोचे समझे। ३ बहुत घबराहट।

वेताव (फा० वि०) १ दुर्बल, कमजोर। २ व्याकुल, बेचैन।

वेतावी (फा० स्त्री०) १ दुर्बलता, कमजोरी। २ व्याकुलता, बेचैनी।

वेतार (हिं० वि०) बिना तारका जिसमें तार न हो।

वे-तारका तार—विद्युत्‌की सहायतासे भेजा हुआ वह समाचार जो साधारण तारकी सहायताके बिना ही भेजा जाता हो। आजकल ऐसा कोई भी नहीं जिसने तारविहीन टेलीग्रामकी कथा न सुनी हो। टाइटानिक जहाजके जलमग्न होनेके बाद जनता इसकी उपकारिता अच्छी तरह समझ सकी है। समुद्रगर्भमें निमज्जित होनेके पहले मुहूर्त्त पर्यन्त इसके टेलिग्राफ कर्मचारीने कैसी धीरतासे तारविहीन टेलिग्राफकी सहायताके द्वारा विपद्‌वार्त्ता चारों ओर भेजी थी, यह किसीसे छिपा नहीं है। किन्तु इस तारविहीन टेलिग्राफके द्वारा किस उपायसे संवादादि भेजे जाते हैं, यह शायद बहुतोंको मालूम नहीं है। अतः इसका संक्षिप्त विवरण नीचे दिया जाता है।

विज्ञानजगत् दिन पर दिन उन्नतिके पथ पर अग्रसर होता जा रहा है। आजकल तारविहीन टेलिग्राफकी बहुत उन्नति हुई है। संवादादि सूक्ष्मरूपसे ग्रहण करनेके लिये यन्त्रमें अनेक नये नये अंश संयोजित हुए हैं। यह जनसाधारणके लिये जितना दुःसाध्य और व्ययसाध्य प्रतीत होता है, यथार्थमें उतना जटिल और व्ययसाध्य नहीं है।

आधुनिक वैज्ञानिक पण्डितोंने स्थिर किया है, कि हम लोगोंकी इस पृथ्वीके चारों ओर वायुकी अपेक्षा सूक्ष्मतर एक और आवरण है जिसका नाम है इथर; यह पृथिवी—पृथ्वी ही क्यों, सारा विश्वजगत् ही मानो इथर-समुद्रमें डूबा हुआ है। किसी कारणवश इसमें तरङ्ग उत्पन्न होनेसे वह चारों ओर फैल जाती है। प्रकाश, उत्ताप, शब्द सभी इथर-तरङ्गके द्वारा उत्पन्न हो कर हम लोगोंके निकट आते हैं। इस इथर-तरङ्गको ग्रहण करनेका यदि कोई यन्त्र रहे, तो उस यन्त्रकी सहायतासे अनायास ही वह तरङ्ग ग्रहणकी जा सकती है। यही तारविहीन टेलिग्राफकी मूल भित्ति है। एक स्थानसे ताड़ित यन्त्रके द्वारा इथरमें तरङ्ग उत्पन्न की जाती है, यह तरङ्ग चारों ओर फैलती है और जहां इस तरङ्गको ग्रहण करनेका यन्त्र है वहां पहुंचनेसे ही यह अनायास पकड़ ली जाती है। अतएव यह देखा जाता है, कि प्रत्येक स्टेशनमें दो यन्त्रका रहना आवश्यक है—एक इथर-तरङ्ग उत्पादनकारी ताड़ित यन्त्र और दूसरा इथर-तरङ्ग ग्रहणकारी यन्त्र।

जिस ताड़ित यन्त्रकी सहायतासे इथरमें तरंग उत्पन्न की जाती है, उसका नाम इनडाकसन कायेल (Induction coil) है। बेटरीके साथ संयुक्त होने पर इसके दो प्रान्तोंसे ताड़ित स्फुलिङ्ग निकला करते हैं और उन स्फुलिङ्ग द्वारा ही इथरमें तरङ्ग उत्पन्न होती है। यह स्फुलिङ्ग जितना लम्बा और मोटा होगा तरङ्ग भी उसी अनुपातसे उत्पन्न होगी। सुतरां दूर स्थानमें संवाद

भेजनेके लिये दीर्घ और स्थूल स्फुलिङ्ग उत्पादनकारी यन्त्रकी आवश्यकता है। स्फुलिङ्ग जितना ही दीर्घ होगा, इथरमें उतने ही जोरसे आघात करेगा और इथरतरंग उतनी ही अधिक दूर जायगी। फिर स्फुलिङ्ग जितना स्थूल होगा, इथरसे उतने ही अधिक परिमाणमें तरङ्ग निकलेगी। दूर स्थानमें संवाद भेजनेके लिये दोनों ही चीजोंकी जरूरत है—इथर तरङ्गका अधिक दूर जाना और तरङ्गका परिमाण भी अधिक होना। अतएव इनडाकसन कायेल खरीदनेके पहले यह देखना होगा, कि इससे दोनों उद्देश्य सिद्ध होंगे या नहीं।

पहले ही कहा जा चुका है, कि यन्त्रसे जितना ही लम्बा ताड़ित स्फुलिङ्ग निकलेगा, उतनी ही अधिक दूर तक संवादादि भेजे जायंगे। साधारणतः एक इञ्च ताड़ित् स्फुलिङ्ग द्वारा एक मील तक संवाद भेजा जा सकता है। इस अनुपातसे २० मीलके लिये २० इञ्च स्फुलिङ्गकी जरूरत हो सकती है, पर यथार्थमें उतने दीर्घ स्फुलिङ्गकी जरूरत नहीं होती। ६ इञ्च स्फुलिङ्गके द्वारा २० मील तक संवाद भेजा जा सकता है। यहां पर यह भी कह देना आवश्यक है, कि केवल स्फुलिङ्गकी दीर्घताके ऊपर दूरीका परिमाण निर्भर नहीं करता, यन्त्रके भिन्न भिन्न अंशके निर्माण-कौशलके ऊपर भी आंशिक परिमाणमें निर्भर करता है—फिर स्थानके ऊपर भी बहुत कुछ निर्भर करता है। सामनेमें बाधा पड़नेसे इथर-तरङ्ग बहुत दूर तक नहीं जा सकती। यही कारण है, कि समुद्रकी जलराशिके ऊपर जितनी दूर तक संवाद भेजा जा सकता है, पर्वतादि समाकीर्ण स्थलभूमिमें उतनी दूर तक भेजनेकी आशा कभी नहीं की जा सकती। यहां पर एक मील पर्यन्त संवाद भेजनेके उपयोगी यन्त्रादिका विषय वर्णन किया जाता है।

एक मील दूर संवाद भेजनेमें एक इञ्च ताड़ित-स्फुलिङ्ग उत्पादनकारी इनडाकसनकायेलकी जरूरत है। तारविहीन टेलिग्राफके यन्त्रोंमेंसे यह अधिकतर मूल्यवान है। इसका संग्रह कर सकनेसे अन्यान्य अंश आसानीसे संग्रह किया जा सकता है अथवा अपने हाथसे उन्हें थोड़े ही खर्चमें बना भी सकते हैं।

इनडाकसन कायेलके भिन्न भिन्न अंश इस प्रकार हैं,—इसके ठीक मध्यभागमें कुछ नरम लोहेके तार बहुत मजबूतीसे बंडलमें बंधे रहते हैं। इस लोहेके तारका यह गुण है, कि जब इसके चारों ओर ताड़ित् प्रवाहित होती है, तब इससे चुम्बकशक्ति निकलती है। फिर ताड़ितप्रवाहके बंद होते ही चुम्बकशक्ति गायब हो जाती है। ताड़ितप्रवाहको उत्पन्न करनेके लिये इस बंडलके ऊपर रेशम-मंडित तांबेके तार जड़े रहते हैं। इस तारके दोनों छोरको बैटरीके साथ संयुक्त कर देनेसे इसमें ताड़ित प्रवाहित होती है। इस तारका नाम है प्राइमरी कायेल (Primary Coil)।

इस प्राइमरी कायेलके ऊपर बहुत बारीक और लंबे रेशम-मण्डित तांबेके तार जड़े होते हैं जिसे सेकण्डरी (Secodary Coil) कहते हैं। जिससे प्राइमरी और सेकेण्डरी कायेलकी ताड़ित एक दूसरेमें न जा सके इसके लिये दोनों कायेलके मध्यभागमें ताड़ित-अपरिचालक इबोनाइटकी चुंगी दी हुई रहती है। इसी सेकेण्डरी कायेलके दोनों छोरोंसे पूर्वकथित ताड़ित-स्फुलिङ्ग निकलते हैं।

इनडाकसन कायेलमें एक जगह पीतलका स्प्रिंग और दूसरी जगह पीतलका स्तम्भ रहता है। स्प्रिंगके अग्रभागमें लोहेका एक खण्ड और स्तम्भके अग्रभागमें स्क्रू बैठाया हुआ रहता है। स्क्रू बड़ी होशियारीसे स्प्रिंगके साथ मिला होता है। इस यन्त्रमें एक अंशका नाम कनडेंसर (Condenser) है जिससे ताड़ितशक्तिकी अधिक परिमाणमें वृद्धि होती है। कुछ टीनके पत्तर (Tin Foil) और पैरेफिनयुक्त कागज इस प्रकार सजे रहते हैं जिससे प्रत्येक पत्तरके बाद ही एक एक कागज पड़े। फिर जोड़ और बेजोड़ नम्बरके पत्तर एक साथ पृथक् पृथक् संयुक्त किये रहते हैं। इस कारण जोड़ नम्बरके पत्तरके साथ बेजोड़का स्पर्श नहीं होता। कनडेन्सर साधारणतः इनडाकसन कायेलके बकसके निम्नभागमें रहता है।

उक्त अंशोंके अलावा 'की' (Key) और बैटरी भी रहती है। 'की'के ऊपर दबाव डालनेसे इसके दोनों अंश मिल जाते हैं जिससे ताड़ित बैटरीसे इनडकसन कायेलमें प्रवेश करती है।

प्राइमरी कायेलका एक तार बैटरीके एक छोरसे तथा दूसरा स्प्रिं और एक पार्श्वके कनडेन्सरके साथ मिला रहता है। स्तम्भके नीचेसे एक तार कनडेन्सरके अपर पार्श्व और 'की'-के साथ तथा एक दूसरा तार बैटरीके अन्य प्रान्तसे संयुक्त रहता है।

'कि' पर (key) दवाव डालनेसे ताड़ित बैटरीसे निकल कर स्क्रू और स्प्रिंके द्वारा पाइमरी कायेलमें प्रवेश करेगी। प्राइमरी कायेलमें ताड़ितके प्रवाहित होते ही भीतरके लौहतारमें चुम्वक गुण आ जायगा। उस समय उक्त लौहखण्ड सामनेकी ओर आकृष्ट होगा तथा स्प्रिं स्क्रू से विच्छिन्न हो जायगा। सुतरां उस समय ताड़ित-प्रवाह वन्द हो जायगा और साथ साथ लौहतारका चुम्वकत्व गुण भी जाता रहेगा। अतः स्प्रिं फिरसे पूर्वस्थान पर आ कर स्क्रू के साथ मिल जायगा। इस प्रकार धीरे धीरे द्रुतगतिसे ताड़ित-प्रवाह रुद्ध और प्रवाहित होता रहेगा। इस अवस्थामें सेकण्डरी कायेलमें प्रचण्ड वेगसे ताड़ित उत्पन्न हो कर इसके दोनों छोरोंसे निकलती रहेगी। विस्तार हो जानेके भयसे इस तार-विहीन टेलिग्राफके अन्यान्य यन्त्रोंकी कथा नहीं लिखी गई।

वेताल (सं० पु०) भूतयोनिविशेष। वेताल देखो।

बेताल (हिं० पु०) भाट, वंदी।

वेताला (सं० स्त्री०) वह वाद्य या संगीत ताल जो सहगामी नहीं है।

वेताहाजीपुर—युक्तप्रदेशके मीरट जिलेका एक गण्ड-ग्राम। यह लोशी नगरसे ३ मील पश्चिममें अवस्थित है। यहां मुसलमान साधु अवदुल्ला शाहकी दरगाह और सम्राट् औरङ्गजेव द्वारा निर्मित एक मसजिद है।

वेति—अयोध्या प्रदेशके प्रतापगढ़ जिलान्तर्गत एक नगर। अभी यह गण्ड ग्राममें परिणत हो गया है और एक सुविस्तीर्ण ह्रदके किनारे अवस्थित है। ह्रद वर्षाकालमें १० वर्गमील और ग्रीष्मऋतुमें ३ वर्गमील स्थान तक छा लेता था। अभी गङ्गाके साथ जो एक नहर काटी गई है उससे इस ह्रदका लगाव होनेके कारण अव उतना जल इसमें रहने नहीं पाता। ह्रदके उत्तरी किनारे सुन्दर सुन्दर वृक्षोंके वन हैं और अन्यान्य किनारे खेतीवारी होती है। प्रवाद है, कि अयोध्याके किसी राजाने यहां यज्ञकुण्ड खोदवाया था। आज भी उसके आस-पासका स्थान खोदनेसे यज्ञीय द्रव्य इत्यादि मिलते हैं। इस ह्रदमें वहुतसी वड़ी वड़ी मछलियां और तीरवर्ती वनभागमें अपर्याप्त वन्यकुक्कुट मिलते हैं। ह्रदके मध्यस्थित छोटे द्वीपके मध्यस्थलमें एक छोटा प्रासाद निर्मित है। पहले उस स्थानसे राजपुत्रगण पक्षी आदिका शिकार करते थे। अलावा इसके यहां दो प्राचीन हिन्दू-देवालय भी हैं।

वेतिया—१ विहार और उड़ीसाके चम्पारन जिलेका एक उत्तरीय उपविभाग। यह अक्षा० २६° ३६' से २७° ३१' उ० तथा देशा० ८३° ५०' से ८४° ४६' पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण २०१३ वर्ग मील है। इस उपविभागका दक्षिणी हिस्सा समतल है। यहां जो पर्वतमाला है वह करीव २० मील तक विस्तृत है। जनसंख्या साढ़े सात लाखके करीव है। इसमें वेतिया नामका एक शहर और १३११ ग्राम लगते हैं। इस उपविभागका अधिकांश वेतियाराजके शासनाधीन है। वेतियासे १३ मील उत्तर-पश्चिम रामनगर नामक एक गण्ड-ग्राम है जहां रामनगरके राजा रहते हैं। राजाको १६७६ ई०में दिल्लीसम्राट् औरङ्गजेव द्वारा उपाधि मिली थी। १८६० ई०में वृटिश सरकारने भी उसे स्वीकार कर लिया। त्रिवेणी नामकी जो नहर काटी गई है उससे दुर्भिक्षके समय उपविभागका भारी उपकार होता है।

२ उक्त उपविभागका सदर। यह अक्षा० २६° ४८' उ० तथा देशा० ८४° ३०' पू०के मध्य हरहा नदीके प्राचीन गर्भ पर अवस्थित है। जनसंख्या २५ हजारके करीव है जिनमेंसे हिन्दूकी संख्या ज्यादा है। १८६९ ई०में म्युनिसपलिटी स्थापित हुई थी। यहां जो रोमन कैथलिक मिसन है उसे १७४० ई०में फादर जोसेफ मेरोने स्थापित किया जो इसी शहरमें रहते हैं। कहते हैं, कि उक्त जोसेफ साहव किसी समय नेपालसे वेतियाकी ओर जा रहे थे उसी समय राजा ध्रुवसिंहसे इनका परिचय हो गया। राजाकी कन्या सख्त वीमार थी जोसेफने उन्हें विलकुल आरोग्य कर दिया था। इस प्रत्युपकारके पुरस्कारस्वरूप राजाने उन्हें वेतियामें वसा

दिया और एक सुन्दर भवन तथा १० एकड़ जमीन दी। महाराजाका प्रासाद जो इसी शहरमें है उत्कृष्ट कारुकार्यविशिष्ट है। शहरमें सरकारी दफ्तर और एक छोटा जेल है।

बेतियाराज—विहार और उड़ीसाके चम्पारन जिलान्तर्गत उक्त उपविभागका बड़ा स्टेट। इसका भूपरिमाण १८२४ वर्गमील है। १७वीं शताब्दीके मध्य भागमें प्रसिद्ध योद्धा राजा उग्रसेनसिंहने अपने बाहुबलसे विपुल सम्पत्ति उपार्जन की। वे ही इस विस्तृत राज्यके प्रकृत स्थापयिता हैं। पीछे राजा युगल किशोरसिंह राजतख्त पर बैठे। उनके समयमें सरकारी-कर बहुत पड़ जानेके कारण राजा ब्रिटिश-सरकारके विरुद्ध खड़े हो गये। आखिर राजाकी हार हुई और राज्य डाइरेक्ट मनेजमेण्टके अधीन कर दिया गया। कुछ समय बाद जब बृटिश-सरकारने बाकी कर वसूल होनेका कोई उपाय न देखा तब लाचार हो १७७१ ई०में मझाव और सिमरौन परगने राजाको तथा शेष अंश उनके भतीजेको प्रदान किये। १७९१ ई०में युगलकिशोरके पुत्र वीर किशोरके साथ उक्त दोनों परगनेका दससाला बन्दोबस्त किया गया। १८३० ई०में वीरकिशोरके उत्तरधिकारी आनन्द किशोर बृटिश सरकारसे महाराज बहादुरकी उपाधिसे भूषित हुए। १८९७ ई०से यह राज्य कोर्ट आव वार्डके अधीन है। राजा जातिके भूमिहार हैं।

बेतीकलान—अयोध्याप्रदेशके रायबरेली जिलेका एक नगर। यहां एक सुन्दर बहुत पुराना महादेवका मन्दिर है।

बेतीगेड़ी—बम्बई प्रदेशके धारवाड़ जिलेका एक नगर। यह अक्षा० १५° २६´ उ० तथा देशा० ७५° ४१´ पू० गड़गसे १ मीलकी दूरी पर अवस्थित है। गड़ग और बेतीगेड़ी एक म्युनिस्पलिटीके अधीन है। प्रति सप्ताह एक दिन हाट लगती है। हाटमें विशेषतः रुईकी लाखों रुपयेकी बिक्री होती है।

बेतुगीदेव—चालुक्य वंशीय एक राजा। सङ्गमेश्वरमें इनकी राजधानी थी।

बेतुल—मध्यप्रदेशके नरबुदा विभागका एक जिला। यह अक्षा० २१° २२´से २२° २३´ उ० तथा देशा० ७७° ११´से ७८° ३४´ पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ३८२६ वर्गमील है। इसके उत्तर और पश्चिममें होसङ्गाबाद, पूर्वमे छिन्दवाड़ा और दक्षिणमें बेरारका अमरौती जिला है। बदनूर नगर इसका विचारसदर है। मध्यप्रदेशके चीफ कमिश्नर से यह जिला शासित होता है।

यह जिला प्रायः पार्वत्य अधित्यकासे पूर्ण है और समुद्रपृष्ठसे २००० फुट ऊंचा है। इसके प्राकृतिक दृश्यकी पर्यालोचना करनेसे यह दो भागोंमें विभक्त प्रतीत होता है। इसका प्रधान नगर बेतुल जिलेके ठीक मध्यमें अवस्थित है। माछना और सापना नदीके बहनेसे जमीन खूब उर्वरा हो गई है। नदीतीर अथवा उसके आस पासका स्थान शस्य समृद्धिसे श्रीसम्पन्न हो गया है। इन दोनों नदियोंके पश्चिम भागमें आग्नेय गिरिके अग्न्युत्पातोत्थित पदार्थ द्वारा गठित बहुत ऊंचा पर्वत रहनेके कारण वहां लोगोंका वास नहीं है। उसके पश्चिमस्थ निविड़ जंगलके मध्य हो कर ताप्ती नदी बह गई है। जिलेके दक्षिण भागमें एक पर्वतशृङ्ग पर पवित्र मूलताई नगर विद्यमान है। इस मूलताईकी अधित्यका भूमिसे ताप्ती, वर्द्धा और बेलनदी निकल कर जिलेके पूर्व और पश्चिमभागमें बह गई हैं। तप· नदी जिलेके उत्तर-पूर्व कोनेमे बहती है। पूर्वकथित माछना, सापना और मोरन नदीको छोड़ कर पर्वतकी उपत्यकासे और भी कितने पहाड़ी सोत निकल कर खेतोंमें वर्ष भर जल देते रहते हैं। पश्चिमके पार्वत्य वनभागमें शाक, शीशम, अर्जुन और शाल आदि वृक्षोंका वन है। उस वनमें अधिकतर गोंड़ और कुर्कु जातिका वास है। उस स्थानका २८७ वर्गमील वनभाग गवर्मेण्टके १म श्रेणीका और ८५० वर्ग मील वन २य श्रेणीका रक्षित वनभाग कह कर निर्दिष्ट है।

अति प्राचीनकालसे बेतूल नगर खेर्ला गोंड़ राज्यका शासनकेन्द्र चला आ रहा था। फिरिस्ताके विवरणमें किसी किसी गोंड़ राजाका वर्णन छोड़ कर और कहीं भी एक धारावाहिक इतिहास नहीं मिलता। उक्त ग्रन्थसे हम लोगोंको पता लगता है, कि १५वीं शताब्दीमें खेर्लाके गोंड़राजाके साथ मालवराजका घोरतर युद्ध चला था। उस युद्धमें कभी मालवराजकी और कभी गोंड़राजकी जीत

हुई थी। अनन्तर गौलिराजाओंने प्राचीन गोंड़राजवंशको परास्त किया। किन्तु थोड़े ही समयके अन्दर उस गोंड़जातिने फिरसे नई शक्तिका सञ्चय कर अपने पूर्वराज्य पर अधिकार जमाया। जो कुछ हो, प्रायः १७०० ई०के समकालमें गोंड़सरदार राजा भकत बुलन्द वेतुल सिंहासन पर अधिष्ठित थे, ऐसा प्रमाण मिलता है। राजा गोंड़ जातिके होने पर भी इसलामधर्ममें दीक्षित हुए थे। देवगढ़ राजधानीमें रह कर राजा भकत बुलन्द सातपर्वतमालाके निम्नवर्त्ती नागपुर राज्यका शासन करते थे। उनकी मृत्युके बाद उनके एकमात्र पुत्र ही राजा हुए। पीछे १७३९ ई०में उनके स्वर्गवासी होने पर उनके दो लड़कोंमें राज्यसिंहासन ले कर विवाद खड़ा हुआ। बेरारके महाराष्ट्र सरदार रघुजी भौंसले उस विवादको निबटानेके लिये मध्यस्थ बने। परन्तु दोनोंके बीच राज्यविभाग कर देनेके बदलेमें उन्होंने वेतुल राज्यको भौंसलोंके अधिकृत राज्यमें मिला लिया। १८१८ ई०में अप्पा साहबकी पराजय और पलायनके बाद अङ्गरेजोंके युद्धके खर्च स्वरूप दाक्षिणात्यका जो अंश मिला, वर्त्तमान वेतुल जिला उसीका एक अंश है। १८२६ ई०की सन्धिके अनुसार वेतुल भूभाग स्पष्टतः वृटिश अधिकारभुक्त हो गया। १८१८ ई०में अप्पा साहबके साथ अङ्गरेजोंका जो युद्ध छिड़ा था, उसमें अङ्गरेजोंने मुलताई, वेतुल और शाहपुरमें सेनाकी छावनी डाली थी। आखिर अप्पा साहब पांचमाढ़ीसे पश्चिमकी ओर दलबल समेत भाग गये। १८६२ ई० तक वेतुलमें अङ्गरेजी सेना रखी गई थी।

इस जिलेमें २ शहर और ११६४ ग्राम लगते हैं। जनसंख्या तीन लाखके करीब है। गेहूं, धान, उड़द, तेलहन, ईख, रूई, पटसन; तमाकू तथा और दूसरे दूसरे अनाजोंकी खेती होती है। जलवायु उतना खराब नहीं है। वृष्टिपात प्रायः प्रतिदिन हुआ करता है। चैत्र मासके शेष तक यहां गरमी रहती है। खामलाशैलका अधित्यका देश अङ्गरेजोंके पक्षमें विशेष मनोरम है। उन्मादमय रोग यहांका मारात्मक है।

विद्याशिक्षामें प्रान्तके मध्य इस जिलेका स्थान बारहवां आया है। सैकड़े पीछे ४ मनुष्य पढ़े लिखे मिलते हैं। अभी कुल मिला कर १ मिडिल इङ्गलिश स्कूल, ३ वर्नाक्युलर मिडिल स्कूल और ६० प्राइमरी स्कूल हैं। स्कूलके अलावा ३ चिकित्सालय हैं।

२ उक्त जिलेकी एक तहसील। यह अक्षा० २१ २२ से २२ २२ उ० तथा देशा० ७७ ११से ७८ ३ पू०के मध्य अवस्थित है। जनसंख्या प्रायः १७०९६४ है। इसमें बदनूर और वेतुल नामक २ शहर और ७७७ ग्राम लगते हैं।

३ उक्त तहसीलका एक प्रधान शहर। यह अक्षा० २१ ५२ उ० तथा देशा० ७७ ५६ पू० बदनूर शहरसे तीन मील दूर पड़ता है। जनसंख्या ५ हजारके करीब है। बदनूर नगरमें जिलेका सदर उठ जानेके पहिले इसी शहरमें अङ्गरेजोंका आवास था। यहांका प्राचीन दुर्ग और अङ्गरेजोंका समाधि-उद्यान देखने लायक है। यहांके अधिवासी मट्टीके अच्छे अच्छे बरतन बनाते हैं जो भिन्न भिन्न स्थानोंमें बिक्रीके लिये भेजे जाते हैं। शहरमें १ वर्नाक्युलर मिडिल स्कूल और १ बालिका-स्कूल है।

वेतुलपिउदङ्गड़ी—मन्द्राजप्रदेशके मालवार जिलान्तर्गत एक नगर। यह अक्षा० १० ५३ उ० तथा देशा० ७५ ५८ १५ पू०के मध्य तिरूके रेल-स्टेशनसे २ मील पूर्वमें अवस्थित है। यहां वेतुलनाद राजवंशका एक प्रसाद था। १७८४ ई०में टीपू सुलतानने इसे तहस नहस कर डाला। अभी ध्वंसावशेषके उपकरण ले कर यहांकी जजी और कलक्टरी अदालत बनाई गई है।

वेत्तुर—मन्द्राज-प्रदेशके मालवा जिलान्तर्गत वल्लुवनाड़ तालुकका एक प्राचीन गण्डग्राम।

वेत्तवलुम—मन्द्राज-प्रदेशके दक्षिण अर्काट जिलान्तर्गत कल्लकुर्चो तालुककी एक जमींदारी।

वेत्तादपुर—दाक्षिणात्यके महिसुर-राज्यके अन्तर्गत एक पर्वत। यह अक्षा० १२ २७ उ० तथा देशा ७६ ७ पू० समुद्रपृष्ठसे ४३५० फुट ऊंचा है। पर्वत कोणाकार है। इसकी चोटी पर सुप्रसिद्ध मल्लिकार्जुन महादेवका मन्दिर अवस्थित है। पर्वतके पादमूलमें वेत्तादपुर नगर है जहां सङ्केति ब्राह्मण अधिक संख्यामें रहते हैं। १०वीं शताब्दीमें येङ्गल राय नामक एक जैन राजाने लिङ्गायत

धर्ममतका अनुसरण कर इस देवमन्दिरका संस्कार कराया था। टीपू सुलतानके अभ्युदय तक यह स्थान देशीय सामन्तोंके अधीन रहा।

वेत्तु—दक्षिण-भारतस्थ जैनदेवस्थान विशेष। यहां न कोई मन्दिर है और न तीर्थङ्करोंकी कोई प्रतिमूर्त्ति ही है। यहां एक प्राचीर वेष्टित विस्तृत प्रङ्गण है जहां गोमती या गोमत राजाकी मूर्त्ति प्रतिष्ठित है। वहांके लोग उस मूर्त्तिकी पूजा करते हैं।

वेतुर—महिसुर राज्यके देवनगर तालुकके अन्तर्गत एक गण्डग्राम। यह अक्षा० १४° ३०´ उ० तथा देशा० ७६° ७´ पू०के मध्य देवनगर शहरसे २ मील उत्तर अवस्थित है। जनसंख्या १२१० है। किवदन्ती है, कि १३वीं शताब्दीमें यह स्थान देवगिरिके यादवराजाओंकी अन्यतम राजधानी थी।

वेत्वा—मध्यभारत एजेन्सीके बुन्देलखण्डके अन्तर्गत एक नदी। इसका प्राचीन नाम वेत्रवती है। वेत्रवती देखो।

वेतौर (अ० क्रि० वि०) १ बुरी तरहसे, बेढंगेपनसे। (वि०) २ जिसका तौर तरीका ठीक न हो, बेढंगा।

वेद (सं० पु०) वेद देखो।

वेदक (हिं० पु०) हिन्दू।

वेदखल (फा० वि०) अधिकारच्युत, जिसका दखल, कब्जा या अधिकार न हो। इसका व्यवहार सिर्फ स्थावर संपत्तिके लिये ही होता है।

वेदखली (फा० स्त्री०) अधिकारमें न रहनेका भाव, दखल या कब्जेका हटाया जाना अथवा न होना।

वेदनरोग (हिं० पु०) पशुओंका एक प्रकारका छूतवाला भीषण ज्वर। इसमें रोगी पशु बहुत सुस्त हो कर कांपने लगता है, उसका सारा शरीर गरम और लाल हो जाता है, भूख बिलकुल नहीं और प्यास बहुत अधिक लगती है। इसमें पाखानेके साथ आंव भी निकलती है।

वेदम (फा० वि०) १ मृतक मुरदा। २ जो काम देने योग्य न रह गया हो, जर्जर। ३ जिसकी जीवनी-शक्ति बहुत घट गई हो, अधमरा।

वेदमंजनू (फा० पु०) एक प्रकारका वृक्ष। इसकी शाखाएं बहुत झुकी हुई रहती हैं। इसी कारण यह बहुत मुरझाया और ठिठुरा हुआ जान पड़ता है। इसकी छाल और फलों आदिका व्यवहार औषधमें होता है।

वेदमल (हिं० पु०) लकड़ीकी वह तख्ती जिस पर तेल लगा कर सिकलीगर लोग अपना मस्किला नामक यन्त्र रगड़ कर चमकाते हैं।

वेदमाल (हिं० पु०) वेदमल देखो।

वेदमुश्क (फा० पु०) पश्चिम भारत और विशेषतः पंजाबमें अधिकतासे होनेवाला एक प्रकारका वृक्ष। इसमें एक प्रकारके बहुत ही कोमल और सुगन्धित फूल लगते हैं। इन फूलोंके अर्कका व्यवहार औषधके रूपमें होता है। यह अर्क बहुत ही ठंढा और चित्तको प्रसन्न करनेवाला माना जाता है।

वेदरी (हिं० वि०) विदरी देखो।

वेदर्द (फा० वि०) कठोर हृदय, निर्दय।

वेदर्दी (फा० स्त्री०) निर्दयता, बेरहमी।

वेदलैला (फा० पु०) एक प्रकारका पौधा। इसमें सुन्दर फूल लगते हैं।

वेदाग (फा० वि०) १ निर्दोष, शुद्ध। २ निरपराध, बेकसूर। ३ जिसमें कोई दाग या धब्बा न हो, साफ।

वेदाना (हिं० पु०) १ एक प्रकारका उत्कृष्ट काबुली अनार। इसकी छाल बहुत पतली होती है। २ एक प्रकारका मीठा छोटा शहतूत। ३ एक प्रकारकी छोटे दानेकी मीठी बुंदिया। इसमें बहुत रस रहता है। ४ दारुहल्दी, चित्रा। ५ बिहीदाना नामक फलका बीज। इसे पानीमें भिगोनेसे लुआब निकलता है। लोग प्रायः इसका शरबत बना कर पीते हैं। यह ठंढा और बलकारक माना जाता है। (वि०) ६ मूर्ख, बेवकूफ।

वेदाम (हिं० पु०) १ बादाम देखो। (क्रि० वि०) २ विना दामका, जिसका कुछ मूल्य न दिया गया हो।

वेदाम—मन्द्राजप्रदेशके गञ्जाम जिलान्तर्गत एक छोटा सामन्त राज्य। वेदाम-ग्राम दो वर्गमील विस्तृत है।

वेदार (विदार)—हैदराबाद राज्यके गुलबर्गा विभागका एक जिला। यह अक्षा० १७° ३०´ से १८° ५१´ उ० तथा देशा० ७६° ३०´ से ७७° ५१´ पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ४१६८ वर्गमील है जिनमेंसे २१२० वर्गमील जागीर है। इसके उत्तरमें नान्देर जिला, पूर्व और दक्षिणमें नवाब सर खुरशीदजाहका पैगाह

राज्य तथा पश्चिममें भीर जिला और ओसमानावाद है। यहांकी प्रधान नदीका नाम मञ्जरा है।

प्राचीन विदर्भ राज्यसे इसका वेदार नाम पड़ा है। विदर्भराज नलके वाद इस स्थानकी समृद्धि वा विशेष इतिहासका परिचय नहीं मिलता। दाक्षिणात्यके हिन्दूराजाओंके समय यह स्थान उन्नतिकी चरम सीमा तक पहुंच गया था। १३२१ ई०में मुहम्मद विन-तुगलकने इस पर अधिकार जमाया। पीछे यह १३४७ ई०में वाह्मनी-वंशके प्रथम राजा वह्मान शाह गांगूके हाथ लगा। वह्मनीराजके अधःपतन पर यह जिला विदारके वरिदशाही-के अधीन हुआ। उन्होंने १४९२से १६०९ ई० तक शासन किया। अनन्तर यह वीजापुरके आदिलशाही-राज्यमें मिला लिया गया। १६२४ ई०में अहमदनगरके निजाम-शाही मन्त्री मालिक अम्वरने इसे लूटा। पीछे वीजापुरके राजाने इसका उद्धार किया। उन्होंने १६५८ ई० तक यहांका अच्छी तरह शासन किया। अनन्तर औरङ्ग-जेवने इस पर दखल जमाया। १८वीं शताब्दीमें यह जिला हैदरावादराज्यमें शामिल कर लिया गया।

इस जिलेमें ७ शहर और १४५७ ग्राम लगते हैं। जनसंख्या प्रायः ७६६१२९ है। यहांके अधिवासी वेदार वा वेदारो कहलाते हैं। ये लोग साहसी तथा शिकार और दस्युवृत्तिमें विलक्षण पटु हैं। जिस पिंडारीदलने एक समय भारतवर्षको कँपा डाला था उसमें विदारी जातिकी ही संख्या अधिक थी। महिसुर राज्यमें तथा रमणमल्ल पर्वत पर ऐसे विदारियोंका वास है। पांच तालुकको ले कर यह जिला संगठित हुआ है, यथा विदार, कारामूंगो, निलङ्ग, उद्गोर और वरवाल राजुरा। विद्याशिक्षामें यह जिला वहुत गिरा हुआ है। सैकड़े पीछे २ मनुष्य पढ़े लिखे मिलते हैं। अभी कुल मिला कर ३० प्राइमरी स्कूल, २ मिडिल स्कूल और १ हाई स्कूल है। स्कूलके अलावा चार चिकित्सालय हैं जिनमेंसे एक युनानी है। विदार दुर्ग चारों ओर प्राचीर और खाईसे घिरा है। यहांकी जुम्मा और सोलह गुम्बजवाली मसजिद देखने लायक है। शहरके वाहर वरिदशाही परिवारके समाधिमन्दिर हैं। आवहवा यहांकी वहुत स्वास्थ्य-प्रद है।

२ उक्त जिलेका एक तालुक। इसका भूपरिमाण ४८७ वर्गमील और जनसंख्या लाखसे ऊपर है। इसमें विदार और कोहिर नामके २ शहर और १७७ ग्राम लगते हैं जिनमेंसे ८७ ग्राम जागीर हैं। राजस्व डेढ़ लाखसे ज्यादा है।

३ उक्त तालुकका एक शहर। यह अक्षा० १७ ५५ उ० तथा देशा० ७७ ३२ पू० समुद्रपृष्ठसे २३३० फुटकी ऊँचाई पर अवस्थित है। जनसंख्या दश हजारसे ऊपर है। १६वीं शताब्दीके मध्यकालमें यह वाह्मनी-राजवंशकी राजधानीरूपमें गिना जाता था। उस समय इसकी श्रीवृद्धि भी यथेष्ट थी। जो प्रकाण्ड प्राचीर और वुर्ज आदि एक समय चारों ओर वनाये गये थे, वे अभी ध्वंसावस्थामें पड़े हुए हैं।

मुगलसम्राट् वावरशाहके भारत-आक्रमणकालमें वेदारराज्य पार्श्ववर्त्ती राजाओंके करतलगत रहा। १५७२ ई०में निजामशाही राजाओंने इस प्रदेशमें अपना शासन फैलाया। १७५१ ई०में पेशवा वाजीराव और सलावत-जङ्गके साथ इस नगरमें सन्धि हुई थी।

एक समय यहां एक प्रकारका वढ़िया वरतन और विभिन्न धातव पात्रादि वनते थे जो यूरोपीय वाणिज्य-पण्यमें 'वेदार-वेअर' (Beder Ware) नामसे प्रसिद्ध हैं। वाह्मनीराजके मंत्री महम्मद गावनने यहां एक कालेज वनवाया था जो अभी भग्नावस्थामें पड़ा है। यहांकी जुम्मा और 'सोलह खंभा' मसजिद देखने लायक है।

वेधड़क (हिं० क्रि० वि०) १ निःसंकोच, विना किसी प्रकारके संकोचके। २ विना किसी प्रकारके भय वा आशंकाके, निडर हो कर। ३ विना किसी प्रकारकी रोक टोकके, वेरुकावट। ४ विना कुछ सोचे समझे, विना आगा पीछा किये। (वि०) निर्द्वन्द्व, जिसे किसी प्रकारका संकोच या खटका न हो। ६ निर्भय, निडर।

वेधना (हिं० क्रि०) किसी नुकीली चीजकी सहायता-से छेद करना, छेदना। २ शरीरमें क्षत करना, घाव करना।

वेधर्म (हिं० वि०) जिसे अपने धर्मका ध्यान न हो, धर्मसे गिरा हुआ।

वेनंग (हिं० पु०) जयंतिया पहाड़ीमें मिलनेवाला छोटी

जातिका पहाड़ी बांस। यह प्रायः लताके समान होता है। इसकी टहनियोंसे लोग छप्परोंकी लकड़ियाँ आदि बाँधते हैं।

बेन (हिं० पु०) १ बंशी, मुरली। २ सँपेरोंके बजानेकी तूमड़ी, महुवर। ३ बाँस। ४ एक प्रकारका वृक्ष।

बेन (अं० पु०) १ जहाजके मस्तूल पर लगानेकी एक प्रकारकी झंडी। इसके फहरानेसे यह पता चलता है, कि हवा किस रुखकी है। २ वायु, हवा।

बेनजीर (फा० वि०) जिसकी कोई समता न कर सके, अनुपम।

बेनट (हिं० स्त्री०) लोहेकी वह छोटी किर्च जो सैनिकोंकी बंदूकके अगले सिरे पर लगी रहती है, संगीन।

बेनसेढ़ (अं० पु०) जहाजके काममें आनेवाला एक प्रकारका बड़ा थैला। यह टाट आदिका बना हुआ नलके आकारका होता है। इसकी सहायतासे जहाजके नीचेके भागोंमें ऊपरकी ताजी हवा पहुंचाई जाती है।

बेना (हिं० पु०) १ एक प्रकारका छोटा पंखा जो बांसका बना होता है। २ उशीर, खस। ३ बंश, बांस। ४ माथे पर बेंदीके बीचमें पहननेका एक प्रकारका गहना।

बेनागा (हिं० क्रि० वि०) नित्य, लगातार।

बेनिमून (फा० वि०) अद्वितीय, अनुपम।

बेनी (हिं० स्त्री०) १ स्त्रियोंकी चोटी। २ भादोंके अन्त या कुंवारके आरम्भमें होनेवाला एक प्रकारका धान। ३ गङ्गा, सरस्वती और यमुनाका संगम, त्रिवेणी। ४ किवाड़ीकी वह छोटी लकड़ी जो उसके किसी पल्लेमें लगी रहती है। यह दूसरे पल्लेको खुलनेसे रोकती है।

बेनी—१ एक भाषा-कवि। ये असनी जिला फतेहपुरके निवासी थे। इन्होंने संवत् १६९०में जन्मग्रहण किया था। इनकी कविता बहुत ही सरस, सरल, मधुर और ललित है। स्फुटकवित्त तथा इनका रचा नायिका भेदका एक अत्युत्तम ग्रन्थ पाया जाता है।

२ रायबरेली जिलेके निवासी एक कवि। इनका जन्म सं० १८४४में हुआ था। ये लखनऊके नवाबके दीवान महाराज टिकैतरायके यहां रहते थे। सम्वत् १८९२में ये परलोक सिधारे।

बेनीपान (हिं० पु०) बेंदी देखो।

बेनीप्रवीण—लखनऊके रहनेवाले एक भाषा कवि। ये जातिके कान्यकुब्ज वाजपेयी ब्राह्मण थे। इनका जन्म सम्वत् १८७६में हुआ था। इनकी कविता बहुत ही अच्छी होती थी। इनका बनाया नायिका विषयक ग्रन्थ देखने योग्य है।

बेनीसिंह—एक ग्रन्थ-रचयिता। इनका जन्म सम्वत् १८७९में हुआ था। ये हिन्दी साहित्यके अच्छे मर्मज्ञ थे। ये कविजनोंकी खूब खातिर करते थे। इनका देहान्त १९४१ संवत्में हुआ।

बेनु (हिं० पु०) १ वेणु देखो। २ बंशी, मुरली। ३ बंश, बांस।

बेनुली (हिं० स्त्री०) जांते या चक्कीमें वह छोटी-सी लकड़ी जो किल्लेके ऊपर रखी जाती है और जिसके दोनों सिरों पर जोती रहती है।

बेनौटी (हिं० वि०) १ कपासके फूलकी तरह हलके पीले रंगका, कपासी। (पु०) २ एक प्रकारका रंग जो कपासके फूलके रङ्गका-सा हलका पीला होता है, कपासी।

बेपरद (फा० वि०) १ अनावृत, जिसके ऊपर कोई परदा न हो। २ नग्न, नंगा।

बेपरवा (फा० वि०) १ जिसे कोई परवा न हो, बेफिक्र। २ जो किसीके हानि-लाभका विचार न करे और केवल अपने इच्छानुसार काम करे, मनमौजी। ३ उदार।

बेपरवाही (फा० स्त्री०) १ बेपरवाह होनेका भाव बेफिकरी। २ अपने मनके अनुसार काम करना।

बेपर्द (हिं० वि०) बेपरद देखो।

बेपार (हिं० पु०) हिमालयकी तराईमें ६०००से ११००० फुटकी ऊंचाई तक अधिकतासे मिलनेवाला एक प्रकारका बहुत ऊंचा वृक्ष। इसकी लकड़ी यदि सीड़से बची रहे, तो बहुत दिनों तक ज्योंकी त्यों रहती है और प्रायः इमारतमें काम आती है। इस लकड़ीका कोयला बहुत तेज होता है और लोहा गलानेके लिये बहुत अच्छा समझा जाता है। इसकी छालमें जंगलोंसे झोपड़ियाँ भी छाई जाती हैं।

बेपारी (हिं० पु०) व्यापारी देखो।

बेपीर (फा० वि०) १ जिसके हृदयमें किसीके दुःखके

लिये सहानुभूति न हो, दूसरोंके कष्टको कुछ न समझने-वाला। २ निर्दय, बेरहम।

बेपेंदी (हिं० वि०) जिसमें पेंदा न हो, जो पेंदा न होनेके कारण इधर उधर लुढ़कता हो।

बेफायदा (फा० वि०) १ जिससे कोई फायदा न हो, व्यर्थका। (क्रि० वि०) २ नाहक।

बेफिक्र (फा० वि०) निश्चिन्त, बेपरवा।

बेफिक्री (फा० स्त्री०) निश्चिंतता, बेफिक्र होनेका भाव।

बेबस (हिं० वि०) १ जिसका कुछ वश न चले, लाचार। २ पराधीन, परवश।

बेबसी (हिं० स्त्री०) विवशता, मजबूरी। २ पराधीनता, परवशता।

बेबाक (फा० वि०) जो अदा कर दिया गया हो, चुकता किया हुआ।

बेबुनियाद (फा० वि०) निर्मूल, बेजड़।

बेब्याहा (फा० वि०) अविवाहित, कुंआरा।

बेभाव (फा० क्रि० वि०) जिसका कोई हिसाब या गिनती न हो, बेहद।

बेम (हिं० स्त्री०) जुलाहोंकी कंघी।

बेमन (फा० क्रि० वि०) १ विना मन लगाए, विना दत्त-चित्त हुए। (वि०) २ जिसका मन न लगता हो।

बेमरम्मत (फा० वि०) जिसकी मरम्मत होनेको हो, पर न हुई।

बेमरम्मती (फा० स्त्री०) बेमरम्मत होनेका भाव।

बेमारी (हिं० स्त्री०) बीमारी देखो।

बेमालूम (फा० क्रि० वि०) १ विना किसीको पता लगे। (वि०) २ जो मालूम न पड़ता हो, जिसका पता न लगता हो।

बेमिलावट (फा० वि०) शुद्ध, खालिस।

बेमुनासिब (फा० वि०) अनुचित, जो मुनासिब न हो।

बेमुरव्वत (फा० वि०) जिसमें शील या संकोचका अभाव हो, तोता-चश्म।

बेमुरव्वती (फा० स्त्री०) बेमुरव्वत होनेका भाव।

बेमौका (फा० वि०) १ जो अपने उपयुक्त अवसर पर न हो। (पु०) २ अवसरका अभाव, मौकेका न होना।

बेयरा (हिं० पु०) बेरा देखो।

बेर (हिं० पु०) १ प्रायः सारे भारतमें मिलनेवाला मझोले आकारका एक प्रसिद्ध कंटीला वृक्ष। इसके छोटे बड़े कई भेद होते हैं। विशेष विवरण बदर शब्दमें देखो। २ बेरका फल। (स्त्री०) ३ वार, दफा। ४ विलम्ब, देर।

बेरजरी (हिं० स्त्री०) जंगली बेर, झड़बेरी।

बेरजा (हिं० पु०) बिरोजा देखो।

बेरवा (हिं० पु०) सोने या चांदीका कड़ा जो कलाईमें पहना जाता है।

बेरस (फा० वि०) १ रसरहित, विना रसका। २ जिसमें आनन्द न हो, बेमजा। ३ जिसमें अच्छा स्वाद न हो, बुरे स्वादवाला।

बेरहम (फा० वि०) निर्दय, निठुर।

बेरहमी (फा० स्त्री०) निर्दयता, निष्ठुरता।

बेरा (हिं० पु०) १ समय, वक्त। २ प्रातःकाल, तड़का। ३ एकमें मिला हुआ जौ और चना।

बेरा (अं० पु०) वह चपरासी, विशेषतः साहब लोगोंका वह चपरासी जिसका काम चिट्ठी-पत्री या समाचार आदि पहुंचाना और ले आना आदि होता है।

बेरादरी (हिं० पु०) बिरादरी देखो।

बेराम (हिं० वि०) बीमार देखो।

बेरामी (हिं० स्त्री०) बीमारी देखो।

बेरार (बरार)—मध्यभारतके अन्तर्गत एक स्वतन्त्र प्रदेश। यह पहले बरार राज्यके नामसे प्रसिद्ध था। हैदराबादके नवाब निजामने जबसे इसका कर्तृत्व अङ्गरेजोंके हाथ सौंपा, तबसे यह हैदराबाद असाइएड डिष्ट्रिक्ट नामसे प्रसिद्ध हुआ। हैदराबादके रेजिडेण्ट बेरारके चीफ कमि-श्नर-पद पर रह कर यहांका शासन-कार्य चलाते थे। तभीसे बरारराज्य आकोला, बुलदाना, वासिम, अमरा-वती, इलिचपुर और वुन इन छः जिलोंमें बंट गया है। इसकी उत्तर और पूर्व सीमामें मध्यप्रदेश, दक्षिणमें निजामराज्य और पश्चिममें बम्बई प्रेसिडेन्सी है। भूपरि-माण १७७१० वर्गमील है। यह अक्षा० १९° ३५' से २१° ४७' उ० तथा देशा० ७५° ५९' से ७९° ११' पू०के मध्य अवस्थित है।

समग्र बरार-राज्य पूर्वपश्चिममें विस्तृत एक

सुदीर्घ उपत्यका-भूमि है। इसके उत्तरभागमें सातपुरा पर्वतमाला और दक्षिणमें अजन्ता शैलश्रेणी है। स्थानीय लोग सातपुरा निकटस्थ उपत्यकाको वरार-पयानघाट तथा अजन्ता शैल और तदन्तर्गत अधित्यका देशको वरार-वालाघाट कहते हैं। इन दो भागोंके मध्यमें उत्तरांश हो अपेक्षाकृत उर्वर और शस्यशाली है। यहां ताप्तीकी शाखा पूर्णा आदि कई एक पार्वत्य नाले सातपुरा और अजन्ता पहाड़से उतर कर मूलनदीमें आ मिले हैं। यहां पर वर्षा नियमितरूपसे और यथेष्ट होती है। इन सब कारणोंसे यहां कभी भी पानीकी कमी नहीं होती और न सूखा ही पड़ता है। शरदृऋतुमें शस्यपूर्ण क्षेत्रोंकी शोभा वड़ी ही आनन्ददायक होती है। अधिकांश स्थानमें खेती-वारी होती है। परिश्रमी कृषकगण वड़े उद्यम और उत्साहके साथ हल जोतते और वीज वोते हैं। कुनवी, भील आदि पार्वत्य जातियां ही यहां किसानोंका काम करती हैं।

भूपरिमाणकी तुलनामें वेरारप्रदेश आयोनियन द्वीपको छोड़ कर ग्रीस राज्यके समान है, परन्तु जन-संख्या उससे प्रायः दुगुनी है। इसकी पूर्वपश्चिममें विस्तृति करीव १५० मील और साधारण प्रस्थ करीव १४४ मील है। यहां सव समेत ५७१० ग्राम हैं। ताप्ती, पूर्णा, वर्द्धा और पेनगङ्गा वा प्राणहिता ये यहांकी नदियां हैं; परन्तु उनमेंसे वर्द्धा हो कर वेरार उपत्यकाका अधिकांश जल निकल जाया करता है। वुलदाना जिलेका लोणार नामक लवण जलयुक्त ह्रदके चारों ओर पहाड़ है, मानो गोलाकारमें ह्रदको वेष्टित कर रखा हो। उस पर्वत पर नाना तरहके वृक्ष शोभित हैं। ह्रदका जलभाग ३४५ एकड़ है, परन्तु तीरभूमिकी परिधि ५॥ मीलसे कम नहीं है।

१८८३ ई०के मार्च महीनेकी जरीपके अनुसार यहांका वनभाग ४३४४ वर्गमील है। उसमें ११०६ वर्गमील राजरक्षित, २८३ वर्गमील जिला द्वारा रक्षित-तथा २६५५ वर्ग-मील अरक्षित अवस्थामें पड़ा है। इनमें गाविलगढ़ पहाड़का वन ही उत्कृष्ट है। यहांसे वरारके अधिवासियोंको नित्य-व्यवहार्य और गृह-निर्माणोपयोगी काष्ठ और वांस पर्याप्तरूपसे मिलते हैं। दक्षिण-वरारके गांगाना उपत्यकाके मेलघाट नामक पार्वत्यप्रदेशमें सेंगुन काठ और जलानेकी लकड़ी तथा घास वहुतायतसे मिलती है। अमरावतीके उत्तर-देशवासी तथा पूर्णा नदीके उत्तर तीरस्थ ग्रामवासी उस लकड़ी और घासको काममें लाते हैं।

वरारराज्यके पूर्वांशमें तथा वहांके करञ्ज पर्वत पर वहुतायतसे खनिज लोहा पाया जाता है। दुर्भाग्यका विषय है कि देशीय लोग उस लोहेको गला कर किसी काममें नहीं लाते और न किसी धातुर्विद् वैज्ञानिक द्वारा उसकी परीक्षा ही कराते हैं। वुन जिलेके वर्द्धा उपत्यका देशमें उत्तर-दक्षिणको विस्तृत एक कोयलेकी खान (Coal field) पाई गई है। अनुमानसे वह उत्तरमें वर्धासे दक्षिणमें पेनगङ्गा तक विस्तृत है। १८७५ ई०में उस खानको खोद कर परीक्षा भी की गई थी, कई स्थानोंसे कोयला भी निकाला गया था; परन्तु वहां विक्रीको सुविधा न होनेसे वह कार्य स्थगित रखा गया। नागपुरसे भुसावल और वम्बई जानेके लिये जो रेल गई है, उससे यहांके कपास आदिके व्यवसायको विशेष उन्नति हुई है। भारतके अन्यान्य स्थानोंकी रुईसे यहांकी रुई अच्छी होती है और यहां कपासकी पैदावार भी वहुत है।

यहांकी आवहवा निहायत वुरी नहीं है। दाक्षिणात्यमें सर्वत्र ही जैसी गरमी और जाड़ा पड़ता है, यहाँ भी वैसा ही समझना चाहिए। परन्तु पयानघाट उपत्यकामें गरमी विशेष पड़ा करती है। मार्च महीनेके अन्तसे ही यहां गरमी शुरू होती है, अप्रेल तक वह किसी तरह सहनीय रहती है, परन्तु मई और जूनमें तो वह विलकुल असह्य हो जाती है। उसके वाद वर्षा शुरू हो जानेसे आवहवामें कुछ शीतलता आती है, रात्रिको यह स्थान स्वभावतः शीतल है। चारों ओर पहाड़ और उपत्यका सूर्यके तापसे विशेष उत्तप्त होने पर भी कालेरंगकी मिट्टी होनेके कारण गरमी ज्यादा देर नहीं ठहरती। वर्षाके समय चारों ओर खूव ठण्डक रहती है। अजन्ता पहाड़के ऊपरवाले वालाघाट पार्वत्य देशमें समतल क्षेत्रकी अपेक्षा वहुत कम उत्ताप है। सर्वोच्च गविलगढ़ पर्वतके तापका प्रभाव मध्यम है, इस पर्वत पर ३७७७ फुट ऊँचे स्थानमें

चिकलदा नामक स्वास्थ्य-निवास है जो इलिचपुरसे २० माईल दूर है।

वरार राज्यका इतिहास अधिक प्राचीन नहीं है। नर्मदातट तक समग्र दाक्षिणात्य जब जिस प्रकारसे जिस राजाकी अधीनतामें शासित हुआ है, यह वरारराज्य भी उसी प्रकार उनमेंसे किसी एक राजाके अधीन रहा है। परन्तु इसके प्राचीनतम इतिहासका पता लगाना कठिन है। शिलालेखसे मालूम होता है, कि इस प्रदेशमें अनेक सामन्तराज थे, पर वे किस किस राजाके अधीन थे, इसका कोई विशेष प्रमाण नहीं मिलता।

ऐतिहासिक तत्त्वालोचना करनेसे मालूम होता है, कि ईसाकी ११वीं और १२वीं शताब्दीमें यहां कल्याणके चालुक्य राजगण राज्य करते थे। ईसाकी १३वीं शताब्दीमें इस देशमें देवगिरि (दौलतावाद)-के यादववंशीय राजाओंका प्रभाव विस्तृत हुआ था, ऐसा अनुमान होता है। क्योंकि उक्त शताब्दीके शेषभागमें पठान राजा अलाउद्दीनने देवगिरिके हिन्दू नरपति रामदेवको परास्त करके मार डाला था। रामदेव एक प्रसिद्ध और प्रवल प्रतापी राजा थे। उस समय इस देशमें यादव-वंशीय विशेष क्षमताशाली थे, यह वात शिलालेख और इतिहाससे स्पष्ट है।

कल्याणके चालुक्यराज और देवगिरिके यादव नर-पतियों द्वारा यहां लगातार राज्य किये जाने पर भी यह हम प्राचीन देवकीर्त्तिके ध्वंसावशेषादिसे अनुमान कर सकते हैं, कि वरार प्रदेशके दक्षिण-पूर्वस्थ जिले वरंगुल-के प्राचीन हिन्दूराजवंशके अधीन थे।

स्थानीय किंवदन्ती इस प्रकार है कि, इलिचपुर राज-धानीके स्वाधीन राजा यहांके अधिपति थे। उस वंशमें इल नामके एक राजा थे। उन्हींके नामानुसार इलिचपुर नामकरण हुआ है। यह राजवंश दाक्षिणात्यमें मुसल-मान-प्रभावके पहले वरारका शासनकर्ता था। स्थानीय स्थापत्यकीर्त्तिकी आलोचनासे मालूम होता है, कि वे जैनधर्मावलम्बी थे। परन्तु अभी तक उक्त ध्वस्तकीर्त्ति-की अच्छी तरह खोज नहीं की गई है, इसलिए इसका निश्चित इतिहास अभी कुछ नहीं कहा जा सकता।

१२९४ ई०में दिल्लीश्वर फिरोज खिलजीके भतीजे और जमाई अलाउद्दीन पहले पहल दाक्षिणात्य विजय करने आये थे। उन्होंने देवगढ़में यादवराज रामदेवको युद्धमें परास्त और कैद किया था। कोई कोई कहते हैं कि रामदेव मार दिये गये थे, और किसी किसी का कहना है, अलाउद्दीनने वहुत-सा धन ले कर छोड़ दिया था। परन्तु उन्होंने इलचपुर राज्य उन्हें नहीं दिया था अथवा धनके साथ साथ राज्य भी ले लिया था।

अलाउद्दीनने दिल्ली लौट कर अपने चचा या श्वशुर-को मार डाला और स्वयं दिल्लीके सिंहासन पर बैठे। उनके राजत्वकालमें उत्तर-भारतसे मुसलमान सेना-दलोंने दाक्षिणात्यमें जा कर लगातार कई वार यहांके राज्योंको तहस नहस कर दिया था। अलाउद्दीनकी मृत्युके वाद देवगिरिके अधीनस्थ दाक्षिणात्य प्रदेशने पुनः स्वाधीनता प्राप्त की, पर वह स्वाधीनता अधिक दिन तक न रही। १३१८-१९ ई०में मुवारक खिलजीने हिन्दू-विद्रोहका दमन किया। उन्होंने मुसलमानोंका कठोर शासन देखानेके लिए देवगिरिके अन्तिम हिन्दूराजाके शरीरकी चमड़ी उधड़वा डाली थी। उस समयसे १८०६ ई० तक वरार राज्य मुसलमानोंके अधिकारमें रहा। सन् १८०६ में भारतके राज-प्रतिनिधि लार्ड कर्जनने राज-नैतिक कारणसे निजामको कह सुन कर वरार निजाम-राजासे पृथक् करा लिया। तभीसे यह हैदरावाद-एसा-इण्डडिष्ट्रिक्ट स्वतन्त्ररूपसे "वरारप्रदेश" कहलाया।

मुसलमान शासनकर्त्ताओंकी अधीनतामें भी वरार स्वतन्त्र नामसे ही परिचित रहा; हां शासकोंके सामर्थ्या-नुसार उसकी सीमाकी कमी वेशी अवश्य होती रही थी। १३५० ई०में दिल्लीके मुसलमान सम्राट् महम्मद तुगलककी मृत्युके वाद वरार राज्य दिल्लीके तुगलकवंश-की अधीनतासे पृथक् हुआ और उसके वाद लगभग २५० वर्ष तक यहांके मुसलमान शासनकर्त्ताओंने दिल्ली-श्वरकी अधीनताकी अपेक्षा कर स्वाधीन राजाकी तरह यहांका शासन किया। उसके वाद, करीव १३० वर्ष तक यह दाक्षिणात्यके व्राह्मनी राजवंशके अधीन रहा। अला-उद्दीन हुसेनशाहने अपने राज्यको ४ प्रदेशोंमें विभक्त किया था, जिसमें माहुर और वरारके कुछ अंशको ले कर एक प्रदेश गठित हुआ था।

१५२६ ई०में उक्त ब्राह्मनीवंशका अधःपतन होने पर, दाक्षिणात्य वास्तवमें पांच मुसलमान राजवंशोंके अधीन शासित हुआ था। उस समय इमादशाही राजा वरार-राज्यके अधिपति थे। इलिचपुरमें उनकी राजधानी थी। प्रवाद है, कि इस राजवंशके अधिष्ठाता एक कनाड़ी हिन्दू थे जो युद्धमें वन्दी हो कर वरारके शासनकर्त्ता खाँ जहानके समक्ष लाये गये थे। खां जहानने उनकी वुद्धि और शक्तिका परिचय पा कर उन्हें राजकीय उच्च पद पर नियुक्त किया। धीरे धीरे वह इमाद-उल्-मुल्ककी उपाधिके साथ सेनानायकके पद पर नियुक्त रहा। इमादशाह पीछे वरारके स्वाधीन राजा हुए थे इमादके वंशधर उनके समान शक्तिशाली और सौभाग्यवान् न थे। इन लोगोंको राज्य-रक्षामें असमर्थ जान १५७२-ई०में वीजापुर और अहमदनगरके राजाओंने मिल कर वरार पर आक्रमण किया और वरारराज्य अहमदनगरके करतलगत हुआ। परन्तु अहमदनगरके राजा उसका अधिक दिन तक उपभोग न कर सके। १५७६ ई०में उन्होंने अपनी रक्षाके लिए वरारप्रदेश मुगल सम्राट् अकवरशाहको सौंप दिया। १५६६ ई०में दाक्षिणात्यके उपलब्ध राज्योंका वन्दोवस्त करनेके लिये सम्राट् स्वयं वुरहनपुर पहुंचे। उन्होंने अपने पुत्र कुमार दानिपलको वरार और अन्यान्य प्रदेशके प्रतिनिधि नियुक्त कर उस प्रदेशके शासनकी व्यवस्था की। "आईन इ-अकवरी"में वरार सूबेका राजस्व और परिमाणादि लिखा हुआ है।

१६०५ ई०में सम्राट् अकवरशाहकी मृत्यु होने पर मुगल-राजसरकारमें राज्यव्यवस्थाकी वड़ी गड़वड़ी हुई। मुगलदरवारके उत्तर-भारतमें शृङ्खला स्थापनके लिए व्यस्त रहनेसे दक्षिण-भारतके नवाधिकृत प्रदेशोंके शासनमें वह विशेष ध्यान न दे सका। इसी समय वरारको अरक्षित देख कर दौलतावादके स्वाधीनता-प्रयासी निजामशाही राजा मालिक अम्वरने वरारके कुछ अंश पर अधिकार कर लिया। १६२८ ई०में उनके मृत्यु-समय तक वरार निजामशाही वंशके अधीन रहा। उसके वाद १६३०ई०में मुगलोंने उसे जीत कर वहां दिल्लीश्वरको शासन-शक्ति स्थापित की। मुगल सम्राट् शाहजहांने अपने दाक्षिणात्य-राज्यको दो भागोंमें विभक्त कर दोनोंको पृथक् पृथक् शासनकर्त्ताओंके अधीन छोड़ दिया. उस समय वरार, पयानघाट, जालना और खानदेश एक ही विभागमें था। परन्तु यह व्यवस्था विशेष लाभप्रद न होनेसे फिर उक्त दोनों विभाग एक ही में मिला दिये गये और एक ही शासक द्वारा उसका शासन किया गया। १६१२ ई०में यहां पहले पहल कर लगाये जानेकी व्यवस्था हुई थी। वादमें शाहजहांके समय उसका वहुत कुछ संस्कार हुआ था। १६३७-३१ ई०में फसली सन् चलाया गया था।

इसके वाद १६५० ई० तक वरारका प्रादेशिक स्वतन्त्र कोई इतिहास नहीं मिलता। उस समय दक्षिण भारतमें मुगल, मराठा और मुसलमान राजाओंमें परस्पर नाना स्थानोंमें युद्ध चल रहा था। १६५०से १७१७ ई० तक मुगल वादशाह औरङ्गजेव दाक्षिणात्यके युद्धमें लिप्त थे उस समयका वरारका इतिहास औरङ्गजेवके दाक्षिणात्य-विजयसे संश्लिष्ट है। १७०७ ई०में औरङ्गजेवकी मृत्यु हुई। उसके वाद वरार प्रदेश मराठा और मुगल-सेनाओंके लूट-मार और अग्निदहनादि अत्याचारका केन्द्रस्थल रहा। इसी समयसे वास्तवमें इस देशकी प्रजासे महाराष्ट्रगण सरदेशमुखी और चौथ वसूल करने लगे थे। १७१७ ई०में सम्राट् फर्रुखशियरके सैयदवंशीय मन्त्रिगण भी कर देनेके लिए वाध्य हुए थे। १७२०ई०में दाक्षिणात्यके मुगल-प्रतिनिधि चीन फिलिच खाँने निजाम-उल-मुल्क नाम धारण कर स्वाधीनताके लिये प्रयास किया। इस पर दो सैयद मन्त्रियोंने उनके विरुद्ध सेना भेजी। परन्तु उस सेनाको उन्होंने युद्धमें परास्त कर दिया और इस प्रकार वे अपना प्रभुत्व विस्तार करनेमें समर्थवान् हुए। इस समय वरारके सूवेदार उनके साथ मिल गये थे। १७२१ई०में वुरहनपुरमें प्रथम युद्ध और उसके वाद ही वालापुरमें दूसरा युद्ध हुआ। उसके उपरान्त १७२४ ई० में वुलदाना जिलेके सखरखेलदा नामक स्थानमें तीसरा वा अन्तिम युद्ध हुआ। तवसे सखरखेलदा "फते-खेलदा" के नामसे प्रसिद्ध हुआ है। इस युद्धके वादसे वरार प्रदेश १८वीं शताब्दी तक नाममात्रके लिये हैदरावाद-राजवंशके अधीन रहा।

ईसाकी १७वीं शताब्दीके शेषभागसे ही वरारराज्यको

पूर्वसमृद्धिका ह्रास होता रहा। १५६७ ई०में फरासीसी भ्रमणकारी M. de Thevenotने इस देशका परिदर्शन करके लिखा है, कि मुगल-साम्राज्यमें यह स्थान धन-धान्य और जलादिसे परिपूर्ण था। उसके बाद, स्थानीय कर संग्राहकोंके विद्रोहसे यह स्थान शस्यशून्य और जलहीन हो गया। फिर राजाओंके युद्ध विग्रहसे यह स्थान श्रीभ्रष्ट हो गया। इसी समयमें महाराष्ट्रोंने दुर्बल और अरक्षित बरार राज्यको लूट कर नष्ट कर दिया। उनकी दस्युताके भयसे स्थानीय वाणिज्य-का लोप हुआ और इसीलिए लोग देश छोड़ कर चले गये। मुगल-सम्राट्ने जब यहां एक जागीरदार नियुक्त कर राजस्व संग्रहकी व्यवस्था की तब उधर महाराष्ट्रोंने भी कर वसूलीके लिए स्वतन्त्र जागीरदार नियुक्त किये और प्रजाको उत्पीड़न करने लगे। प्रजाओंने इस प्रकारसे दोनों पक्षको कर देनेके कष्टसे दुःखित हो कर जमीन छोड़ दी। निरन्तर लूट-मार और दूसरोंका सर्वनाश होते देख प्रजाओंका हृदय भी कलुषित हो गया और वे भी स्थायी बन्दोवस्तके पक्षपाती न रहे।

१८०४ ई०में हैद्राबादकी सन्धिकी शर्तमें वर्धानदीके पूर्ववर्त्ती जिलोंको ले कर समग्र बरार राज्य (कुछ अंश नागपुरका भोंसले वंश और पेशवाओंके अधीन रहा) निजामके अधिकारमें चला गया। गाविलगढ़ नरनाला दुर्ग नागपुरके महाराष्ट्र सरदारोंके अधिकारमें था। १८-२२ ई०में फिर एक सन्धि हुई, जिसमें बरारकी सीमा निर्दिष्ट हो कर वर्धाके पश्चिमस्थ समग्र प्रदेश निजामके अधिकारमें चला गया और नागपुरके राजाको उक्त नदी-के पूर्वस्थित प्रदेश नाममात्रको मिला। १७९५ ई०में पेशवाने जिन जिलोंको अपने राज्यमें रखा था तथा १८०३ ई०तक नागपुरके राजाने जिन स्थानों पर कब्जा किया था, वह सब निजामको वापस दिया गया।

उपर्युक्त कारणसे अनेक राजाओंको सेनाओंकी संख्या घटा देनी पड़ी। उन सैनिकोंने अन्य कोई अर्थोपार्जनका उपाय न देख डकैती करना शुरू कर दिया। इन डकैतों-के अत्याचारोंसे राज्यकी रक्षा करनेके लिए निजामको बहुत कष्ट सहने पड़े थे और अर्थ-व्यय भी प्रचुर हुआ था। इस अयथा अर्थव्ययके कारण निजामराज्यको ऋण-ग्रस्त होना पड़ा और अंग्रेज-गवर्नमेण्ट १८०० ई०की सन्धिके अनुसार राज-कोषसे सेनाको वेतन देती रही। इस तरह उत्तरोत्तर विप्लवोंके कारण निजामके अधिकृत देश नष्टप्राय होने पर अंग्रेज लोग शान्तिके लिए अग्र-सर हुए और १८४९ ई०में उन्होंने अप्पासाहबको कैद कर उनके अधीनस्थ सेना-दलको भगा दिया।

निजाम अंग्रेजोंके साहायतार्थ 'हैद्राबाद कण्टिञ्जेण्ट' नामक सेनादलका पोषण कर रहे थे, स्वयं जब उस-के व्ययभार वहन करनेमें असमर्थ हो गये, तब उन्होंने अंग्रेजोंको सौंप दिया। अब तक अंग्रेज-गवर्नमेण्ट उस ऋणके चुकता होनेका कोई मार्ग नहीं निकाल सकी थी। इस कारण तथा ऊपर कहे गये युद्ध-विग्रहसे हैद्राबाद राज्य दिवालिया हो गया। इसलिए उपाया-न्तर न देख १८५३ ई०में अंग्रेजोंके साथ निजामकी एक सन्धि हुई, जिसमें अंग्रेजोंको उनका ऋण चुकाने और कण्टिञ्जेण्ट-सेनादलके पोषणके लिए निजामसे ५० लाखकी आमदके कई जिले प्राप्त हुए। ये जिले तभीसे (धाराशिव और रायचूर दोआबको छोड़ कर) "हैद्राबाद एसाइण्ड डिष्ट्रिक्ट" नामसे अंग्रेजोंके अधीन परिचालित हुए हैं। उस सेनादलका मूलांश एलचपुरमें तथा आकोला और अमरावतीमें कुछ पदातिक मात्र रखे गये।

उस सन्धिमें यह भी तय हुआ कि, अंग्रेज-गवर्न-मेण्ट निजामको सालकी साल हिसाब देगी और राजस्वका जो कुछ बचेगा वह भी निजामको मिलेगा। निजामको अब युद्धके समय अंग्रेजोंके लिए सेना नहीं भेजनी होगी। वह सेनादल भी निजामके सेना-विभागके अधीन न रहा, सिर्फ उन्हींके कार्यके लिए अंग्रेजोंके अधीन सेनादलके रूपमें रखा गया।

बादमें १८५३ ई०की सन्धिके अनुसार वार्षिक हिसाब दाखिल करना असुविधाजनक मालूम हुआ। उस १८०२ ई०की सन्धिकी शर्तमें ५) सैकड़ा शुल्क अदा करने-की जो बात थी, उसको ले कर दोनोंमें और भी विवाद होने लगा। तब अंग्रेजोंने इस विपत्तिसे छुटकारा पानेके अभिप्रायसे तथा १८५७ ई०के गदरके समय निजामके द्वाराकी गई सहायताके उपलक्षमें उन्हें पुर

स्कार देनेके लिए १८६० ई०के दिसम्बर मासमें और एक सन्धि की, जिसमें अङ्गरेजोंने निजामसे प्राप्य और भी ५० लाख रुपयेका दावा छोड़ दिया। सूरपुरके विद्रोही राजाका राज्य छीन कर निजामको अर्पण किया तथा धाराशिव और रामचूर दोआव उन्हें लौटा दिया। निजामको अंग्रेजोंसे सम्पत्ति तो मिली पर उन्हें भी उसके बदले गोदावरी नदीके वामकूलमें अवस्थित कई जिले और नदीमें वाणिज्यके लिए जो शुल्क वसूल होता था, वह छोड़ देना पड़ा।

इस प्रकारसे अङ्गरेजोंने बदलेमें जो निजामसे वरार और अन्यान्य जिलोंमें सम्पत्ति प्राप्त की थी, उसकी आमदनी १२ लाखकी थी। अंग्रेज गवर्मेण्ट उस रुपयेसे १८५३ ई०की सन्धिके अनुसार कार्य करेगी। निजाम सरकारको उसे आयव्ययका हिसाव नहीं देना होगा। उक्त एसाइण्ड डिष्ट्रिकृमें सेनाओंके वेतनके लिये निजाम द्वारा दी गई जो जागिरें थीं तथा निजामके अपने व्ययके लिये जो सम्पत्तियां थीं उन्हें अपने शासनाधीन करनेके अभिप्रायसे अङ्गरेज-सरकार अन्य स्थानोंमें सम्पत्ति दे कर उसका बदला कर सकती है।

१८६१ ई०में इस परिवर्त्तनके सिवा १८५३ ई०से बरारका और कुछ राजनैतिक परिवर्त्तन नहीं हुआ। १८५७ ई०में सिपाही-विद्रोहके समय भी यहां विप्लवके विशेष लक्षण नहीं दिखाई दिये थे। १८५८ ई०में तांतिया तोपी अपने दलबल सहित सातपुरा शैल तक आ पहुंचा था सही, परन्तु उसे वरारकी उपत्यकामें कोई प्रदेश हाथ नहीं लगा।

अंग्रेजी शासनमें वरारकी उन्नतिके सिवा अवनति नहीं हुई है। जो वरार किसी समय महाराष्ट्र और मुगलोंके अत्याचारोंसे जनशून्य हो गया था, वही वरार-अंग्रेजोंके शान्तिमय शासनसे जनपूर्ण हो गया। बङ्गालके भूतपूर्व गवर्नर (छोटे लाट) सर रिचर्ड टेम्पल्ने इस स्थानके राजकीय विवरणमें वरारकी तत्कालीन समृद्धिका वर्णन किया है। अमेरिकाके युद्धके समस्त यहांका रूईका व्यवसाय बहुत बढ़ा चढ़ा था। यहां तक कि उस समय रुपये देने पर भी आदमी नहीं मिलते थे। लोग मुंह-मांगे दाम ले कर काम पर लगते थे; ग्रेट इण्डियन पेनिन्सुला और निजामस् स्टेट रेलवे स्थापित होनेके बाद यहांके वाणिज्यकी यथेष्ट उन्नति हुई है।

शहरमें ४१ शहर और ५७१० ग्राम लगते हैं। जनसंख्या २८ लाखके करीब है जिनमें हिन्दुओंको संख्या लगभग २४॥ लाख, मुसलमान २ लाखके करीब तथा गोंड़, कुर्कु आदि असभ्य जातियोंकी संख्या १ लाख ७० हजार होगी। जैन, सिख, पारसी और ईसाई भी हैं, जिनकी संख्या अपेक्षाकृत कम है। अधिकांश लोग कृषिजीवी हैं। यहां ज्वार, वाजरा, गेहूं, चना, धान, तिल, सन, तम्बाकू, ईख, कपास, मसीना, तैलकर वीज, गांजा, अफीम और पोस्त आदिकी खेती होती है। यहांके अधिवासी शारीरिक परिश्रमसे अनेक वस्तुएं उत्पन्न करते हैं और उनके विनिमयमें वे अन्य देशकी वस्तुओंकी आमद करते हैं। वे भी किसी चीजको अच्छी तरह पूरा नहीं कर पाते हैं, और न यहां ऐसे कल-कारखाने आदि हैं, जिनसे वे अपने काममें आने योग्य वस्त्रादि बना सकें। कितने ही लोग सूतके मोटे कपड़े, गलीचे और प्रार्जामा बनाते तो हैं, पर उनका आदर नहीं है। रेशमी कपड़े बुननेका थोड़ा-बहुत कारोबार होता है। कहीं कहीं वस्त्र बुननेका व्यवसाय भी चलता है। बुलदानाके निकटवर्त्ती देवलघाटमें इस्पातसे अस्त्रादि बनानेका सामान्य कारोवार होता है। नागपुरसे महीन वस्त्र तथा अन्यान्य आवश्यकीय चीजें बम्बईसे लाई जाती हैं।

अमरावती, आकोला, आकोट, अञ्जनगांव, वालापुर, वासिम, देवलगांव, इलिचपुर, हिवारखेद, जलगांव, करिञ्जा खामगांव, करसगांव, मलकापुर, परतवाड़ा, पाथुर, सेन्दुरजना, सेगांव और जेउटमाल नगर वरार प्रदेशको समृद्धिके परिचायक हैं। अमरावती, आकोला, खामगांव, सेगांव और वासिममें म्युनिसिपलिटी है।

भारतके राज-प्रतिनिधि लार्ड कर्जनके राजनैतिक कौशलसे १९०६-७ ई०में वरार प्रदेश निजाम-सरकारके अधिकारसे च्युत होनेसे पहले, यह प्रदेश एक चीफ कमिश्नरके द्वारा शासित होता था। उनके अधीन १ जुडिसियल कमिश्नर तथा १ राजस्व-विभागीय कमिश्नर, ६ डेपुटी कमिश्नर, १७ असिस्टेण्ट कमिश्नर और

६ इन्सपेक्टर जनरल आफ पुलिस, जेल और रेजिष्ट्रे शन, ६ डिष्ट्रिक्ट सुपरिण्टेण्डेण्ट आफ पुलिस, २ आसिष्टेण्ट सुपरिण्टेण्डन्ट आफ पुलिस, १ सेनिटरी कमिश्नर (ये इन्सपेक्टर जनरल आफ डिस्पेन्सरी और भक्सिनेसन पर पर भी कार्य करते थे), ६ सिविल सर्जन, १ डिरेक्टर आफ पब्लिक इन्सट्रकसन, १ कञ्जरभेटर आफ फारेष्ट और असिस्टेन्ट कन्जरभेटर थे। १८८३ ई०में यहां ६७ मजिष्ट्रेट कार्य करते थे। उन सबको दीवानी और राजस्व वसूली सम्बन्धी मुकद्दमोंका विचार करनेका अधिकार था। वर्तमानमें अभी डिपुटी कमिश्नर दीवानी और फौजदारी मामले पर विचार करते हैं। एक एक तालुक एक एक तहसीलदारके अधीन हैं जिनका काम राजस्व वसूल करना है। ऐसे तहसीलदारोंकी संख्या वीस है। डिस्ट्रिक्ट जेल सिविल सरजनके अधीन है। विद्याशिक्षामें यह जिला आस पासके जिलोंसे बहुत बढ़ा चढ़ा है। जिलेमें कुल मिला कर ४७ अस्पताल हैं।

बेरिआ (हिं० स्त्री०) समय, वला।

बेरिज (हिं० स्त्री०) किसी जिलेकी कुल जमा।

बेरियां (हिं० स्त्री०) समय, काल।

बेरी (हिं० स्त्री०) १ हिमालयमें होनेवाली एक प्रकारकी लता। इसके रेशोंसे रस्सियां और मछली फंसानेके जाल बनते हैं। इसे 'मुरकूल' भी कहते हैं। २ एकमें मिली हुई सरसों और तीसी। ३ बेर देखो। ४ उतना अनाज जितना एक बार चक्कीमें डाला जाता है, अनाजकी मुट्ठी जो चक्कीमें डाली जाती है।

बेरीछत (हिं० पु०) एक शब्द जो महावत लोग हाथीको किसी कामसे मना करनेके लिये कहते हैं।

बेरुआ (हिं० पु०) बांसका वह टुकड़ा जो नाव खींचनेकी गूनमें आगेकी ओर बंधा रहता है और जिसे कंधे पर रख कर मल्लाह खींचते हुए चलते हैं।

बेरुई (हिं० स्त्री०) वेश्या, रंडी।

बेरुकी (हिं० स्त्री०) एक रोग। इसमें बैलोंकी जीभ पर काले काले छाले हो जाते हैं और उसे बहुत कष्ट देते हैं।

बेरुख (फा० वि०) १ जो समय पड़ने पर रुख (मुंह) फेर ले, बेमुरव्वत। २ क्रुध, नाराज।

बेरुखी (फा० स्त्री०) अवसर पड़ने पर मुंह फेर लेना, बेमुरव्वती।

बेरूप (हिं० वि०) कुरूप, बदशक्ल।

बेरोक (फा० क्रि० वि०) निर्विघ्न, बेखटके।

बे-रोकटोक (फा० वि०) निर्विघ्नपूर्वक; विना अड़चनके।

बेरोजगार (फा० वि०) जिसके हाथमें कोई रोजगार न हो, जिसके पास करनेको कोई काम धंधा न हो।

बेरोजगारी (फा० स्त्री०) बेरोजगार होनेका भाव।

बेरौनक (फा० वि०) जिस पर रौनक न हो, उदास।

बेरौनकी (फा० स्त्री०) बेरौनक होनेका भाव।

बेर्रा (हिं० पु०) मिले हुए जौ और चनेका आटा। २ कोईका फल।

बेर्रोवरार (हिं० पु०) अन्नकी उगाही।

बेलंद (फा० वि०) १ ऊंचा। २ जो बुरी तरह परास्त या विफल मनोरथ हुआ हो।

बेल (हिं० पु०) १ मझोले आकारका एक प्रसिद्ध कँटीला वृक्ष। विशेष विवरण बिल्व शब्दमें देखो। (स्त्री०) २ वनस्पति शास्त्रके अनुसार वे छोटे कोमल पौधे जिनमें कांड या मोटे तने नहीं होते और जो अपने बल पर ऊपरकी ओर उठ कर नहीं बढ़ सकते। वल्ली देखो। ३ सन्तान, वंश। ४ नाव खेनेका डाँड़, बल्ली। ५ कपड़े या दीवार आदि पर एक पंक्तिमें दूर तक बनी हुई फूल पत्तियाँ आदि जो देखनेमें बेलके समान जान पड़ती हों। ६ विवाह आदिमें कुछ विशिष्ट अवसरों पर संबंधियों और विरादरीवालोंकी ओरसे हज्जामों, गानेवालियों और इसी प्रकारके और नेगियोंको मिलनेवाला थोड़ा थोड़ा धन। ७ रेशमी या मखमली फीते आदि पर जरदोजी आदिसे बनी हुई इसी प्रकारकी फूल-पत्तियाँ जो प्रायः पहननेके कपड़ों पर टांकी जाती हैं। ८ घोड़ोंका एक रोग। इसमें उनका पैर नीचेसे ऊपर तक सूज जाता है, गुमनाम।

बेल (फा० पु०) १ एक प्रकारकी कुदाली। इससे मजदूर जमीन खोदते हैं। २ एक प्रकारका लंबा खुरपा। ३ सड़क आदि बनानेके लिये चूने आदिसे जमीन पर डाली हुई लकीर जो केवल चिह्नके रूपमें अथवा सीमा निर्धारित करनेके लिये होती है।

बेल (अं० पु०) कपड़े या कागज आदिकी वह बड़ी

गठरी जो एक स्थानसे दूसरे स्थान पर भेजनेके लिये बनाई जाती है, गांठ।

बेलक (हिं० पु०) फरसा, फावड़ा।

बेलकी (हिं० पु०) चरवाहा।

बेलखजी (हिं० पु०) पूर्वी हिमालयमें मिलनेवाला एक प्रकारका बहुत ऊंचा वृक्ष। यह चार सौ फुटकी ऊंचाई तक होता है। इसके हीरकी लकड़ी लाल और बहुत मजबूत होती है। इससे चायके संदूक, इमारती और आरायशी सामान तैयार किये जाते हैं। वृक्षको काटनेके बाद इसकी जड़ें जल्दी फूट आती हैं।

बेलगगरा (हिं० स्त्री०) एक प्रकारकी मछली।

बेलगांव (बेलगाम)—बम्बई प्रसिडेन्सीके दक्षिण-विभागका एक जिला। यह अक्षा० १५° २२´से १६° ५८´ उ० तथा देशा० ७४° २´ से ७५° २५´ पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ४६४६ वर्ग-माइल है। इसकी उत्तर-सीमामें मिरज और जाट राज्य, उत्तर पूर्वमें कलादगी जिला, पूर्वमें जामखण्डी और मुधोल राज्य, दक्षिण और दक्षिण-पूर्वमें धारवार, उत्तर-कणाडा और कोल्हापुर राज्य, दक्षिण-पश्चिममें गोआ राज्य तथा पश्चिममें सावन्तवाड़ी और कोल्हापुर राज्य है। उत्तर पूर्वसे दक्षिण-पश्चिमकोणमें यह १२० माइल विस्तृत है और प्रस्थमें ५से ८० माइल तक है।

यह जिला गण्डशैलमालासे विभूषित हो कर स्थान स्थान पर उपत्यका, अधित्यका और अत्युच्च शृङ्गावलीसे परिशोभित है। एक तरफ जैसी समतल प्रान्तर पर नदियोंकी अपूर्व शान्तिमयी शोभा है, दूसरी तरफ वैसा ही अत्युन्नत पर्वतोंकी शिखाओं पर दुर्भेद्य गिरिदुर्गोंका घोर गम्भीर दृश्य है। यह शैलश्रेणी पश्चिमघाट वा सह्याद्रिशैलकी अन्यतम शाखा है। इस जिलेका पश्चिम और दक्षिणांशका पार्वत्य प्रदेश अपेक्षाकृत उन्नत है और वह पूर्वकी तरफ क्रमशः नीचा होता हुआ कलादगि जिला तक गया है। दक्षिणमें सह्याद्रिपर्वतकी सशिखर शाखा-प्रशाखाएं इतस्ततः विस्तृत होने पर भी बीच बीचमें निविड़ वनमाला और जनहीन समतल भूमि देखी जाती है। इस दक्षिण-भागमें बड़ी बड़ी नदियोंके किनारे आम, जामुन, कटहर, इमली आदि वृक्ष फलभारसे अवनत हो उस निजनतामें भी स्थानीय सौन्दर्य की वृद्धि कर रहे हैं। बेलगामका उत्तर और पूर्व अंश शस्यपूर्ण श्यामल प्रान्तरमय है और उसके बीच बीचमें छोटी किसनोंकी बस्तियां हैं।

इसके उत्तरमें कृष्णा, मध्य भागमें घाटप्रभा और दक्षिणमें मालप्रभा नदी सह्याद्रि पर्वतसे निकल कर पूर्वकी ओर धीरमन्थर गतिसे बहती हुई बङ्गोपसागरमें जा मिली हैं। इन नदियोंके पश्चिमांशका जल मीठा है, किंतु पूर्वांशका जल समुद्रस्रोतमें मिल जानेसे कुछ खरा हो गया है।

इस पार्वतीय प्रदेशमें जगह जगह लोहा, अभ्रक, लालपत्थर, दानादार और स्फटिकप्रस्तर आदि पाये जाते हैं। जङ्गलोंमें साल, सफेद साल, हर्रा, हर्रे और कटहल आदिके पेड़ तथा जानवरोंमें नाना प्रकारके हरिण, जंगली सूअर, बाघ, चीता और तरह तरहके पक्षी देखनेमें आते हैं।

यहांका इतिहास महाराष्ट्र-इतिहाससे सम्बन्ध रखता है, इसलिए स्वतंत्र रूपसे पृथक् कुछ नहीं लिखा गया। १८१८ ई०में पूनाकी सन्धिके अनुसार पेशवाने अंग्रेजोंको धारवाड़ विभागके साथ यह जिला भी दिया था। तभीसे यह धारवाड़ जिलेमें शामिल समझा जाता था और अंग्रेजों द्वारा इसका शासन होता था। पीछे शासनकार्यकी सुविधाके लिए १८३६ ई०में उक्त विभागके दक्षिणांशमें धारवाड़ और उत्तरांशमें बेलगांव नामसे दो स्वतन्त्र जिले कर दिये गये। १८४४-४६ ई०में पहले पहल तथा १८८१-८२ ई०में यहां दूसरी बार बन्दोबस्त हुआ था। इस जिलेमें बेलगाम और उससे लगा हुआ सेनानिवास (छावनी), गोकक, अथनी, निपानी, सौन्दत्ती और यमकणमर्दी प्रधान नगर है। यहांके अधिवासी साधारणतः लिङ्गायत शैव हैं। इसके सिवा अन्यान्य धर्मावलम्बी भी हैं। कैकारी नामक दस्युजाति यहां प्रसिद्ध है।

यह जिला अथनी, बेलगाम, चीकी, चिकोडी, गोकाक, पारसगढ़ और सम्पगांव नामक कई उपविभागोंमें विभक्त है। पारसगढ़ उपविभागके पर्वत पर यल्लमा देवीका प्रसिद्ध तीर्थ है। यहां पर प्रति वर्ष कार्त्तिक और

चैत मासमें देवीके उद्देशसे पूजा होती और तीन दिन तक मेला लगता है। उस समय यहां करीब ४० हजार तीर्थयात्रियोंका समागम होता है। कार्त्तिकमें मूल मन्दिरसे कुछ दूरी पर एक छोटेसे पीठमें जा कर मारण-क्रियाबोधक पूजादि होती है। इसके बाद आई हुई स्त्रियां यल्लमा देवीके पति-वियोग-जनित दुःखमें समवेदना प्रकट करनेके लिए रोनेके स्वरमें भीषण चीत्कार करती हैं। बीस-तीस हजार स्त्रियोंका एक साथ मिल कर चीत्कार करना कैसा भीषण होता होगा, इसका सहज ही अनुमान किया जा सकता है। फिर वे स्त्रियां देवीके वैधव्यकी समवेदनामें अपने हाथोंकी चूड़ियां और कड़े आदि गहने तोड़ या खोल डालती हैं।

२ बम्बई प्रेसिडेन्सीके बेलगाम जिलेका एक उपविभाग। यह अक्षा० १५° ४१´ से १६° ३´ उ० तथा देशा० ७४° २´ से ७४° ४३´ पू०के मध्य अवस्थित है। इसका भूपरिमाण ६४४ वर्ग-माइल है। इसमें बेलगाँव नामक १ शहर और २०१ ग्राम लगते हैं। जनसंख्या डेढ़ लाखके करीब है।

इस उपविभागमें निम्नलिखित गिरिदुर्ग विद्यमान हैं:—१ बेलगामदुर्ग। २ महीपतगढ़दुर्ग—यह बेलगामसे ६ माइल पश्चिमोत्तरमें खुन्दी नामक स्थानमें अवस्थित है। ३ कलानिधिगढ़—जो बेलगामसे १७ माइल पश्चिममें कलिघडे नामक स्थानमें है। ४ गन्धर्वगढ़ बेलगांवसे १६ माइल पश्चिमोत्तरमें कोगाज नामक स्थानमें अवस्थित। ५ पारगढ़—यह बेलगामसे ३२ माइल पश्चिम-दक्षिणमें पारगढ़ पहाड़के शिखर पर। ७ त्र्यंबगढ़—जो बेलगामसे २२ माइल पश्चिममें अवस्थित है। यहां बेलनाथका मन्दिर है।

३ उक्त जिलेका प्रधान नगर। यह समुद्रपृष्ठसे २५०० फुटकी ऊँचाई पर बेलरीनाला नामक मार्कण्डी नदीके एक शाखास्रोतके ऊपर स्थापित है। मार्कण्डी और घाटप्रभाने परस्पर सम्मिलित हो कर कृष्णानदीके कलेवरको पुष्ट किया है। यह शहर अक्षा० १५° ५१´ उ० तथा देशा० ७४° ३१´ पू०के मध्य अवस्थित है। जनसंख्या ३५ हजारसे ऊपर है। इसके पूर्वमें दुर्ग तथा पश्चिमांशमें सेनानिवास है। आकृति असमवृत्त है। यहां बांसकी पैदाइश बहुत है। इस लिए कनाड़ी भाषामें इसका नाम वेनुग्राम था, और उसीसे वेणु, वेलु या बेलगाम हो गया है। यहांका गिरिदुर्ग छोटा होने पर भी सुरक्षित है। आयतन लम्बाईमें १००० गज और चौड़ाईमें ७०० गज है। १८१४ ई०में पेशवाके अधःपतन पर अङ्गरेजी-सेनाने दुर्ग पर अधिकार कर लिया। २१ दिन अवरोधके बाद दुर्गस्थ सैनिकोंने अंग्रेजोंके हाथ आत्मसमर्पण किया था।

किम्वदन्ती है, कि १५१९ ई०में यह दुर्ग बना था। इसके भीतर आसद खांकी दरगाह या मसजिद सफा और दो जैन मन्दिर हैं, जो क्रमशः १२वीं और १३वीं सदीमें बने हैं। दरगाहके प्रवेशद्वारमें १५३० ई०का एक शिलालेख है।

अंग्रेजोंके अधिकारमें आनेके बादसे बेलगांव नगरकी नाना विषयोंमें श्रीवृद्धि हुई है। वाणिज्यके प्रभावसे नगर धन और जनसे परिपूर्ण है। सेना-निवास स्थापित होनेके साथ ही यहां देशीय बालकोंके शिक्षार्थ स्कूल आदिकी व्यवस्था हो गई है। विनगुरला बन्दर यहांका प्रधान वाणिज्य-केन्द्र है। उसी स्थानसे यहांकी चीज-वस्तु रवाना होती है और बाहरसे आती है। यह सूती कपड़े बुननेका व्यवसाय होता है। शहरमें कुल मिला कर ३०० करघे, ६ म्युनिसिपल प्राइमरी स्कूल और २ हाई स्कूल हैं। अलावा इसके यूरोपियन और यूरेशियन लड़कोंके लिये भी दो स्कूल हैं।

बेलगिरी (हिं० स्त्री०) बेलके फलका गूदा।

बेलचक (हिं० पु०) बेलचा देखो।

बेलचा (फा० पु०) १ एक प्रकारकी छोटी कुदाल। इससे माली लोग बागकी क्यारियां आदि बनाते हैं। २ कोई छोटी कुदाल। ३ एक प्रकारकी लंबी खुरपी।

बेलजियम—यूरोपखण्डके अन्तर्गत एक छोटा राज्य। अन्तस्थ 'ब'में देखो।

बेलज्जत (फा० वि०) १ स्वादु-रहित, जिसमें किसी प्रकारका स्वाद न हो। २ जिसमें कोई सुख न मिले।

बेलड़ी (हिं० स्त्री०) छोटी बेल या लता।

बेलदार—विहार और पश्चिम-बङ्गालमें रहनेवाली एक निम्नश्रेणीकी जाति। ये लोग 'बेल' (कुदालीकी तरहका एक औजार)-से मिट्टी आदि खोदते हैं; इसलिए इनका नाम 'बेलदार' पड़ा है। रानीगञ्ज और बराकरको

कोयलेका खानमें ये काम करते हैं । पश्चिम-बङ्गालमें ये वाउड़ी वा कोड़ा जातिके समान समझे जाते हैं।

इस जातिकी उत्पत्तिका कोई इतिहास नहीं मिलता। विन्द और नुनिया लोगोंके साथ इसका बहुत कुछ सामञ्जस्य है। आङ्गोपाङ्गके गठनको देखनेसे यह जाति द्राविड़ीय वंशोद्भव और आदिम जातिकी शाखा मालूम पड़ती है। किसी किसीका मत है कि, जङ्गलोंमें शिकार करनेवाली विन्द जाति ही आदि है, उसीसे वेलदार और नुलिया जातिकी उत्पत्ति है। पीछे ये स्वतन्त्र वृत्ति अवलम्बन-पूर्वक कुछ अंशोंमें सभ्य हो गये हैं।

नुलिया और विन्द देखो।

विहारवासी वेलदारोंमें चौहान और कथौसिया या कथावा नामका दो वंश वा थाक तथा काश्यप गोत्र प्रचलित हैं। इनमें बाल-विवाह प्रचलित है। परन्तु बहुत जगह प्रौढ़-विवाह भी देखनेमें आता है। 'ममेरा' और 'चचेरा' प्रथाके अनुसार वे विवाह करते हैं। विवाह के नियम अन्य निम्नश्रेणीकी जातियोंके सदृश ही है। पहली स्त्रीके वन्ध्या होने पर पुरुष दूसरा विवाह कर सकता है। सगाईके अनुसार विधवाका विवाह भी होता है। पंचोंके विचारसे विवाह-बन्धन छूट सकता है और फिर वह स्त्री अपना दूसरा विवाह कर सकती है।

मैथिल ब्राह्मण इनका पौरोहित्य करते हैं। श्राद्ध और अन्त्येष्टिक्रियादि धर्म-कर्म निम्न श्रेणीके हिन्दुओंको भांति होते हैं। माघ मासकी तिलसंक्रान्तिमें लोड़ाकी पूजा करते हैं। इनमें बहुतसे तो खेतीवारी करते हैं, और कुछ मजदूरी ले कर दूसरोंका काम करते हैं। पूर्व-बङ्गालमें हिन्दुओंके अलावा मुसलमान वेलदार भी हैं। वे साधारणतः गांवका कूड़ा करकट ले कर बाहर फेंकते हैं, तथा मरे हुए पशुओंको ढो कर यथास्थान पहुंचाते और जङ्गल काटते हैं तथा हिन्दू और मुसलमानोंके विवाहमें मशालचीका काम करते हैं। यही उनकी आजीविका है।

उत्तर-पश्चिम-भारत और दाक्षिणात्यमें भी वेलदार पाये जाते हैं। इनके कोई निर्दिष्ट वासस्थान वा गृहादि नहीं होते, साधारणतः ये तम्बुओंमें ही रहते हैं। जब जहां इन्हें काम मिलता है, तब वहांके लिए ये चल देते हैं। कहीं कहीं ये पत्थर भी काटते हैं तथा कूआं और तालाब खोदनेका भी काम करते हैं। पूनाके वेलदार हिन्दी और मराठी भाषा बोलते हैं। इनकी पगड़ी लगभग १६० हाथ लम्बे कपड़ेकी बंधी होती है। ये मड्डी आई वा शीतला माताकी पूजा करते तथा उन्हें मृत्युकी अधिष्ठात्री समझते हैं। इसके सिवा माता, आइ, देवी, भवानी आदि विभिन्न शक्ति-मूर्त्तियोंकी उपासना भी करते हैं। देवी-पूजामें बकरा चढ़ाते हैं।

रुपये कमा लेनेके बाद ये विवाह करते हैं। मरे बालकोंको मिट्टीमें गाड़ देते और तीसरे दिन उस पर पानी और चावल द्वारा पिण्ड देते हैं।

हिन्दू राजाओंके यहां भी वेलदार सेना रहा करती थी। राजा सीतारामकी वेलदार-सेना मिट्टी काटती थी और आवश्यक होने पर युद्धमें भी काम आती थी। उस समय यह सेना निम्न श्रेणीके हिन्दू और जंगलियोंमेंसे संगृहीत होती थी।

उत्तर-पश्चिमके वेलदारोंमें वाछल, चौहान और खरोतवंश विद्यमान हैं। पहलेकी दो शाखाएं राजपूत जातिके अनुकरणसे गृहीत हैं। खर नामक तृणविशेष द्वारा चटाई बनानेके कारण तीसरी शाखाका नाम खरोत पड़ा है। इसके अलावा वरेलीमें माहुल और ओरा, गोरखपुरमें देशी, खारेविन्द और सरवरिया; वस्ती जिलेमें खारेविन्द और मासखावा आदि थोक देखे जाते हैं। वर्त्तमानमें ससभ्य हिन्दुओंके सहवासमें रह कर ये वछगोती, वछल, वहेलिया, विन्दवार, चौहान, दीक्षित, गहरवाड़, गौड़, गौतम, घोषी, कुरमी, लुनिया, ओरा, राजपूत, ठाकुर आदि वंशगत नामसे तथा अगरवाला, अग्रवंशी, अयोध्यावासी, भदौरिया, दिल्लीवाल, गङ्गापारी, गोरखपुरी, कनौजिया, काशीवाल, सरवरिया (सरयूतीरवासी) और उत्तराह आदि स्थानीय नामोंके अनुकरणसे विभक्त होनेकी कोशिशमें लगे हुए हैं। इस जातिका वंश-आख्यान कुछ भी नहीं हैं। हां, परिचय देते समय कहते हैं, कि पहले ये राजपूत थे, किसी राजा द्वारा बल-पूर्वक मल्लाहके काममें नियुक्त किये जानेके कारण समाजमें वे इस प्रकार निगृहीत हुए हैं। इनमें सगाईके प्रथानुसार विधवाका विवाह होता है। पतिके द्वारा त्यागी

गई स्त्री उपपात रख सकती है। ये पांच पीरोंका पूजा करते हैं। शिवरात्रिको महादेवको पूजा और उपवास भी करते हैं।

उड़ियाके वेलदार सिर्फ तालाव खोदनेका काम करते हैं। इनमें एक जमादार रहता है जिसके अधीन कई नायक रहते हैं और उन नायकोंके अधीन बहुतसे वेलदार दल बांध कर काम करते हैं। इनके रहनेका कहीं निश्चित ठिकाना नहीं है। जब जहां काम पड़ता है, उसी जिलेमें जा कर बस जाते हैं।

वेलदार (फा० पु०) वह मजदूर जो फावड़ा चलाने या जमीन खोदनेका काम करता हो।

वेलदारी (फा० स्त्री०) वेलदारका काम, फावड़ा चलानेका काम।

वेलन (हिं० पु०) १ लकड़ी, पत्थर या लोहे आदिका बना हुआ गोल भारी, और डंडके आकारका खण्ड। यह अपने अक्ष पर घूमता है और इसे लुढ़का कर किसी चीजको पीसते, किसी स्थानको समतल करते अथवा कंकड़ पत्थर आदि कूट कर सड़कें बनाते हैं, रोलर। २ कोल्हूका जाठ। ३ करघेमेंका पौसार। ४ किसी यंत्र आदिमें लगा हुआ रोलरके आकारका कोई बड़ा पुरजा जो घुमा कर दवाने आदिके काममें आता है। ५ कोई गोल और लंबा लुढ़कनेवाला पदार्थ। ६ रूई धुनकनेकी मुठिया या हत्था। ७ वेलना देखो। ८ एक प्रकारका जड़हन धान। ९ एकमें मिलाई हुई वे दो नावें जिनकी सहायतासे डूबी हुई नाव पानीमेंसे निकाली जाती है।

वेलनदार (हिं० वि०) वेलनवाला, जिसमें वेलन लगा हो।

वेलना (हिं० पु०) काठका बना हुआ एक प्रकारका लंबा दस्ता। यह वीचमें मोटा और दोनों ओर कुछ पतला होता है। यह प्रायः रोटी, पूरी, कचौरी आदिकी लोईको चकले पर रख कर वेलनेके काम आता है। यह कभी कभी पीतल आदिका भी बनता है।

वेलना (हिं० क्रि०) १ रोटी, पूरी, कचौरी आदिको चकले पर रख कर वेलनकी सहायतासे दवाते हुए बढ़ा कर बड़ा और पतला करना। २ चौपट करना, नष्ट करना। ३ विनोदके लिये पानीके छींटे उड़ाना।

वेलपत्ती (हिं० पु०) वेलपत्र देखो।

वेलपत्र (हिं० पु०) वेलके वृक्षकी पत्तियां जो हर एक सींकमें तीन तीन होती हैं और जो शिवजी पर चढ़ाई जाती हैं। बिल्व वृक्ष देखो।

वेलपाता (हिं० पु०) वेलपत्र देखो।

वेलवागुरा (हिं० पु०) हिरनोंको पकड़नेका जाल।

वेलवूटेदार (हिं० वि०) जिसमें वेलवूटे वने हों, वेल-वूटों वाला।

वेलहरा (हिं० पु०) एक प्रकारको लंबोतरी पिटारी जिसमें लगे हुए पान रखे जाते हैं। यह वाँस या धातुओं आदिकी वनी होती है।

वेलहरी (हिं० पु०) साँची पान।

वेलहाजी (हिं० स्त्री०) लकड़ीका वह ठप्पा जिससे धोती आदिके किनारों पर लहरियेदार वेल छापी जाती है।

वेलहाशिया (हिं० पु०) वेलहाजी देखो।

वेला (हिं० पु०) १ चमेली आदिकी जातिका एक प्रकारका छोटा पौधा। इसमें सफेद रंगके सुगन्धित फूल लगते हैं। इस फूलके तीन भेद हैं—मोतिया, मोगरा और मदनवान। पहला मोतीके समान गोल होता है, दूसरा उससे बड़ा और प्रायः सुपारीके बराबर होता है और तीसरेकी कली प्रायः इञ्च भर लंबी होती है। २ एक प्रकारका गहना जो वेलेके फूलके आकारका होता है। ३ त्रिपुरा, मल्लिका। ४ लहर। ५ कटोरा। ६ चमड़ेकी बनी हुई एक प्रकारकी छोटी कुल्हिया। इसमें एक लंबी लकड़ी लगी रहती है जिससे तेल नापा या दूसरे वरतनमें भरा जाता है। ७ समुद्रका किनारा। ८ समय।

वेलाग (हिं० वि०) १ साफ, खरा। २ जिसमें किसी प्रकारकी लगावट या संबंध न हो।

वेलाडोना (अं० पु०) मकोयका सत्त्। यह प्रायः अंगरेजी औषधोंमें खाने या पीड़ित स्थान पर लगानेके काममें आता है।

वेलावल (हिं० पु०) विलावल देखो।

वेलि (हिं० स्त्री०) बेल देखो।

वेलिया (हिं० स्त्री०) छोटी कटोरी।

वेलौस (हिं० वि०) १ सच्चा, खरा। २ वेमुरव्वत।

वेलुरि—मन्द्राजका एक जिला। वेल्लरि देखो।

वेल्लूर (वेलूर वा रायपल्लुर)—मन्द्राजप्रदेशके अन्तर्गत

उत्तर आर्कट जिलेके वेल्लूर तालुकके अधीन एक प्रसिद्ध शहर। यह अक्षा० १२° ५८' से १३° १६' उ० तथा देशा० ७५° ४४' से ७६° ७' पू०में, पालर नदीके किनारे मन्द्राजसे ८० माइल तथा आर्कटसे १५ माइल पश्चिममें अवस्थित है। यहां सेनानिवास, सब कलेक्टरकी कचहरी, अदालत, सेनाविभागीय कार्यालय, जेल, [illegible], असपताल, डाकखाना, तार घर और गवर्नमेण्टके नानाविभागीय कार्यालय तथा म्युनिसिपालिटी और मन्द्राज रेलवेका एक स्टेशन है। इस कारण यह शहर बहुत ही घना बसा है। जनसंख्या लगभग ५० हजार है। यहांका दुर्ग बहुत ही प्राचीन है। प्रवाद है, कि भद्राचल-वासी किसी व्यक्तिने १२७४-से १२८३के भीतर उक्त दुर्ग निर्माण कर विजय नगर-के राजवंशको अर्पण किया था। ईसाकी १७वीं शताब्दी के मध्य भागमें बीजापुरके सुलतानने उक्त दुर्ग पर आक्रमण किया था। १७७६ ई०में महाराष्ट्र नायक तुकाजीरावने ४॥ मास तक अवरोध करनेके बाद वेल्लूर अधिकार किया था। १७०८ ई०में दिल्लीसे दाऊद खाँने आ कर महाराष्ट्रोंको भगा दिया। उस समय कर्णाटकके अन्दर वेल्लूर दुर्ग ही सर्वापेक्षा दुर्भेद्य समझा जाता था। पीछे दोस्त-अलीने अपने जमाईको यह दुर्ग दे दिया। उनके पुत्र मुर्त्तिजा-अलीने १७४१ ई०में यहां सबदर अलीकी हत्या की। मुर्त्तिजाअली अपने अधिनायक आर्कटके नवाबके आदेशको अमान्य कर स्वाधीन भावसे यहांका राज्य करते रहे। उस समय अंग्रेजगण आर्कटके नवाबके मित्र थे। वे १७५६ ई०में मुर्त्तजा पर शासन करनेके लिये वेल्लूर आये; पर अकृतकार्य हो वापस लौटनेके लिये उन्हें बाध्य होना पड़ा। १७६० ई०में अंग्रेजोंने पुनः वेल्लूर दुर्ग पर चढ़ाई की, इस बार भी उन्हें लौट जाना पड़ा। कुछ भी हो, कई वर्ष बाद अंग्रेजोंने वेल्लूर अधिकार कर लिया। १७६८ ई०में हैदरअलीने वेल्लूर दुर्ग अवरोध करनेका आयोजन किया। अन्तमें १७८० ई०में बहुसंख्यक सैन्य-सामन्त ले कर वे उक्त दुर्गको घेर बैठे। लगभग दो वर्ष तक घेरा कायम रहा था, जिससे दुर्गस्थ अंग्रेजोंके नाकों दम आ चुकी थी। यहां तक, कि अंग्रेजी सेना आत्म-समर्पण करनेकी तयारी कर चुकी था, परन्तु इतनेमें हैदरअलीकी मृत्यु हो गई और मन्द्राजसे अंग्रेजी फौज भी आ धमकी, इससे उस बार अंग्रेजोंकी रक्षा हो गई। १६९१ ई०में लार्ड कार्नवालिसने इस दुर्गको केन्द्र बना कर रङ्गपुरका युद्ध छेड़ा। १७९९ ई०में श्रीरङ्गपत्तनके पतनके बाद टीपू सुलतानके परिवारके लोग इसी वेल्लूर दुर्गमें आवद्ध थे। १८०६ ई०में यहां जो सिपाही-विद्रोह हुआ था, उसमें टीपू सुलतानके परिवारका हाथ था, ऐसा बहुतोंका विश्वास है। इस विद्रोहमें समस्त अंग्रेज-राजपुरुषों और यूरोपीयोंने विद्रोहियोंके हाथ प्राण-विसर्जन किये थे। कर्नल जिलेसपीकी चेष्टा-से शीघ्र ही विद्रोही लोग शान्त हुए और टीपूका परिवारवर्ग कलकत्तेको स्थानान्तरित किये गये।

उक्त दुर्गके सिवा यहां एक बहुत ही उमदा विष्णु-मन्दिर है। इस मन्दिरका कारुकार्य और शिल्पनैपुण्य देख कर विमुग्ध होना पड़ता है। मन्दिरके अलिन्दमें अश्वारोही मूर्त्तिमें जैसा भास्कर्य देखा जाता है, उसकी तुलना अन्यत्र देखनेमें नहीं आती। इस मन्दिरके सिवा यहांके चांद साहबकी मसजिद भी देखनेकी चीज है।

यह शहर गरम होने पर भी स्वास्थ्यकर है। यहाँ सुगन्धि-पुष्पोंकी कृषि यथेष्ट होती है। यहांसे प्रति दिन फूलांकी सैकड़ों टोकरियां रेलके जरिये मन्द्राजको रवाने होती हैं।

वेवकूफ (फा० वि०) मूर्ख, नासमझ।

वेवकूफी (फा० स्त्री०) मूर्खता नासमझी।

वेवक्त (फा० क्रि० वि०) अनुपयुक्त समय पर, कुसमयमें।

वेवतन (फा० वि०) १ विना घर द्वारका, जिसके रहने आदिका कोई ठिकाना न हो। २ परदेसी।

वेवफा (फा० वि०) १ जो मित्रता आदिका निर्वाह न करे। २ दुःशील, वेमुरव्वत। ३ कृतघ्न, किये हुए उपकारको न माननेवाला।

वेवर (हिं० पु०) एक प्रकारकी घास। इसकी रस्सी खाट बुननेके काममें आती है।

वेवरेवाजी (हिं० स्त्री०) चालाकी, चालबाजी।

वेवरेवार (हिं० वि०) तफसीलवार, विवरण-सहित।

वेवस्था (हिं० स्त्री०) व्यवस्था देखो।

बेवहार (हिं० पु०) व्यवहार देखो।
बेवा (फा० स्त्री०) विधवा, राँड़।
बेवाई (हिं० स्त्री०) बिवाई देखो।
बेश (हिं० पु०) वेश देखो।
बेशऊर (फा० वि०) नासमझ, फूहड़, मूर्ख।
बेशऊरी (फा० स्त्री०) मूर्खता, नासमझी।
बेशक (फा० क्रि० वि०) निःसंदेह, जरूर।
बेशकीमत (फा० वि०) बहुमूल्य, मूल्यवान।
बेशकीमती (फा० वि०) बेशकीमत देखो।
बेशरम (फा० वि०) निर्लज्ज, बेहया।
बेशरमी (फा० स्त्री०) निर्लज्जता, बेहयाई।
बेशी (फा० स्त्री०) १ अधिकता, ज्यादती। २ लाभ, मुनाफा। ३ साधारणसे अधिक कार्य करनेकी मजदूरी।
बेशुमार (फा० वि०) अगणित, असंख्य।
बेश्म (हिं० पु०) गृह, घर।
बेसन (हिं० पु०) चनेका आटा, रेहन।
बेसनी (हिं० वि०) १ बेसनका बना हुआ। (स्त्री०) २ बेसनकी बनी हुई पूरी। ३ वह कचौरी जिसमें बेसन भरा हो।
बेसबब (फा० क्रि० वि०) अकारण, विना किसी सबब या कारणके।
बेसबरा (फा० वि०) जो संतोष न रख सके, अधीर।
बेसबरी (फा० स्त्री०) अधैर्य, असन्तोष।
बेसमझ (फा० वि०) मूर्ख, नासमझ।
बेसमझी (हिं० स्त्री०) मूर्खता, नासमझी।
बेसरा (फा० वि०) आश्रयहीन, जिसे ठहरनेका कोई स्थान न हो।
बेसरोसामान (फा० वि०) जिसके पास कुछ भी सामग्री न हो, दरिद्र।
बेसवा (हिं० स्त्री०) वेश्या, रण्डी।
बेसवार (हिं० पु०) वह सड़ाया हुआ मसाला जिससे शराब चुआई जाती है।
बेसाहना (हिं० क्रि०) १ खरीदना, मोल लेना। २ जान बूझ कर अपने पीछे लगाना।
बेसाहा (हिं० पु०) सामग्री, सौदा।
बेसिन—बसई देखो।
बेसिलसिले (हिं० क्रि०) अव्यवस्थित रूपसे, विना किसी क्रम आदिके।
बेसी (फा० क्रि० वि०) अधिक, ज्यादा।
बेसुध (हिं० वि०) अचेत, बेहोश। २ बेखबर, बदहवास।
बेसुधी (हिं० स्त्री०) अचेतनता, बेखबरी।
बेसुर (हिं० वि०) संगीत आदिकी दृष्टिसे जिसका स्वर ठीक न हो, बेमेल स्वरवाला।
बेसुरा (हिं० वि०) १ जो अपने ठिकाने या मौके पर न हो, बेमौका। २ जो नियमित स्वरमें न हो।
बेस्वाद (हिं० वि०) १ स्वादरहित, जिसमें कोई अच्छा स्वाद न हो। २ जिसका स्वाद खराब हो, बदजायका।
बेहंगम (हिं० वि०) १ जो देखनेमें भद्दा हो, बेढंगा। बेढब, विकट।
बेहंगमपन (हिं० पु०) १ भद्दापन, बेढंगापन। २ विकटता, भयंकरता।
बेहँसना (हिं० क्रि०) ठठा कर हँसना, जोरसे हंसना।
बेहड़ (हिं० वि०) बीहड़ देखो।
बेहतर (फा० वि०) अपेक्षाकृत अच्छा, किसीसे बढ़ कर।
बेहतर (फा० अव्य०) प्रार्थना या आदेशके उत्तरमें स्वीकृतिसूचक शब्द।
बेहतरी (फा० स्त्री०) अच्छापन, भलाई।
बेहद (फा० वि०) १ जिसकी कोई सीमा न हो, असीम, अपार। २ बहुत अधिक।
बेहन (हिं० पु०) १ अनाज आदिका बीज जो खेतमें बोआ जाता है, बीआ। (वि०) २ पीला, जर्द।
बेहना (हिं० पु०) १ जुलाहोंकी एक जाति जो प्रायः धुननेका काम करती है। २ रुई धुननेवाला, धुनिया।
बेहया (फा० वि०) जिसे हया या लज्जा आदि बिलकुल न हो, निर्लज्ज।
बेहयाई (फा० स्त्री०) बेशर्मी, निर्लज्जता।
बेहर (हिं० वि०) १ स्थावर, अचर। २ पृथक्, अलग। (पु०) ३ वापी, बावली।

बेहरना (हिं० क्रि०) किसी चीजका फटना या तड़क जाना, दरार पड़ना ।

बेहरा (हिं० पु०) १ एक प्रकारकी घास जिसे चौपाए बहुत पसन्द करते हैं । २ मूंजकी बनी हुई गोल वा चिपटी पिटारी । इसमें नाकमें पहननेकी नथ रखी जाती है । (वि०) ३ पृथक्, जुदा ।

बेहरी (हिं० स्त्री०) १ किसी विशेष कार्यके लिये बहुतसे लोगोंसे चंदेके रूपमें मांग कर एकत्र किया हुआ धन । २ इस प्रकार चंदा उगाहनेकी क्रिया । ३ वह किस्त जो असामी शिकमीदारको देता है ।

बेहला (हिं० पु०) सारंगीके आकारका एक प्रकारका अङ्गरेजी बाजा ।

बेहाल (फा० वि०) व्याकुल, बेचैन ।

बेहाली (फा० स्त्री०) बेहाल होनेका भाव, बेचैनी ।

बेहिसाब (फा० क्रि० वि०) बहुत अधिक, बहुत ज्यादा ।

बेहुनरा (हिं० वि०) १ जिसे कोई हुनर न आता हो, मूर्ख । २ वह भालू या बंदर जो तमाशा करना न जानता हो ।

बेहुरमत (फा० वि०) जिसकी कोई प्रतिष्ठा न हो, बेइज्जत ।

बेहूदगी (फा० स्त्री०) असभ्यता, अशिष्टता ।

बेहूदा (फा० वि०) १ जिसे तमीज न हो, जो शिष्टता या सभ्यता न जानता हो । २ जो शिष्टता या सभ्यता के विरुद्ध हो, अशिष्टतापूर्ण ।

बेहूदापन (फा० पु०) बेहूदा होनेका भाव, बेहूदगी ।

बेहैफ (फा० वि०) चिन्तारहित, बेफिक्र ।

बेहोश (फा० वि०) अचेत, बेसुध ।

बेहोशी (फा० स्त्री०) मूर्च्छा, अचेतनता ।

बैंक (अं० पु०) वह स्थान या संस्था जहां लोग ब्याज पानेकी इच्छासे रुपया जमा करते हों और ऋण भी लेते हों, रुपयेके लेन देनकी बड़ी कोठी ।

बैंगन (हिं० पु०) एक वार्षिक पौधा जिसके फलकी तरकारी बनाई जाती है । वार्ताकु देखो । २ एक प्रकारका चावल जो कनारा और बम्बई प्रान्तमें होता है ।

बैंगनी (हिं० वि०) बैंगनके रंगका, बैंजनी ।

बैंजनी (हिं० वि०) जो ललाई लिये नीले रंगका हो, बैंगनी ।

बैंड (अं० पु०) १ झुंड । २ बजानेवालोंका झुंड जिसमें सब लोग मिल कर एक साथ बाजा बजाते हैं ।

बै (हिं० स्त्री०) १ बैसर, कंघी । २ वय देखो ।

बै (अ० स्त्री०) बिक्री, बेचना ।

बैकुंठ (हिं० पु०) बैकुण्ठ देखो ।

बैखरी (हिं० स्त्री०) बैखरी देखो ।

बैखानस (हिं० वि०) वैखानस देखो ।

बैग (अं० पु०) १ थैला, झोला । २ टाटका एक प्रकारका थैला । इसमें यात्री अपना असबाब भर कर हाथमें लटका कर साथ ले जाते हैं ।

बैगन (हिं० पु०) बैंगन देखो ।

बैगना (हिं० पु०) एक प्रकारका पकवान । यह बैंगन आदिके टुकड़ोंके बेसनमें लपेट कर और तेलमें तल कर बनाया जाता है ।

बैगनी (हिं० स्त्री०) बैंगनी देखो ।

बैजंती (हिं० स्त्री०) १ फूलके एक पौधेका नाम । इसके काण्डके सिरे पर लाल या पीले फल लगते हैं । वैजयन्ती देखो । २ विष्णुकी माला ।

बैज (अं० पु०) १ चिह्न । २ चपरास ।

बैजई (हिं० पु०) एक प्रकारका हलका नीला रंग । इस रंगकी रंगाई लखनऊमें होती है यह रंग कौवेके अण्डेके रंगसे मिलता जुलता है, इस कारण इस रंगको लोग बैजई कहते हैं ।

बैजनाथ (हिं० पु०) वैद्यनाथ देखो ।

बैजयंती (सं० स्त्री०) वैजयन्ती देखो ।

बैजला (हिं० पु०) १ उर्दका एक भेद । २ कबड्डीका खेल ।

बैजवाप (सं० पु०) बीजवापका अपत्य ।

बैजवापीय (सं० त्रि०) बैजवापि सम्बन्धीय ।

बैजा (अ० पु०) १ अण्डा । २ एक प्रकारका फोड़ा । इसके भीतर पानी होता है ।

बैजाबाई—महाराष्ट्र-सरदार महाराज दौलतरावसिन्दको महिषी । ये महाराष्ट्र-मन्त्री श्रीजीराव घाटगका कन्या थी । १८वीं शताब्दीके शेषभागमें इनका जन्म हुआ था । हिन्दूराव इनके भाई थे ।

बचपनसे ही बैजाकी प्रकृति दाम्भिकता पूर्ण थी । वह

एक वार जो हुकुम दे देती थी उसको तामील न करनेसे वह बहुत रंज होती थी। पिताके आदरसे लालित पालित और निज प्रवृत्तिवशसे परिचालित हो उनका चरित्र धीरे धीरे पुरुषोचित बुद्धि और विक्रमसे पूर्ण हो गया था। स्वामीके ऐश्वर्य और वीरत्वने उनके हृदयमें राजशक्तिका प्रभुत्व प्रभाव सम्पूर्णरूपसे अंकित कर दिया था।

१८२७ ई०मे स्वामीका मृत्यु होने पर उन्होंने राज्य भार अपने हाथ लिया। कुछ दिन पीछे जनकजी नाम के अपने स्वामीके किसी आत्मीयको उन्होंने गोद ले राज्यसिंहासनका भावी उत्तराधिकारी स्थिर किया था। जनकजीके नावालिग होनेके कारण वे ही राजकार्यकी पर्यालोचना करती थीं। किन्तु नावालिगके ऊपर कठोर व्यवहार और अत्याचार करनेसे भी वे कभी बाज नहीं आती थीं। इस प्रकार उपर्युपरि माताके प्रपीड़नको जनकजी सहन न कर सके। उन्होंने इन सब अत्याचारोंसे छुटकारा पानेके लिये वृटिश-सरकारका शरण ली। अतः सरकारने १८३३ ई०मे जनकजीको सिन्द्राजको गद्दी पर बैठाया। इससे बैजावाईका प्रभुत्व बिलकुल जाता रहा। हीन भावसे राजप्रासादमें रहना अच्छा नहीं समझा, सो वह राजप्रासादका परित्याग कर आगरा आ रहने लगीं। वहां कुछ दिन रह कर वह फर्रुखाबादको चली गई। आखिर दाक्षिणात्यमें जा उनकी जागीर थी वहां उन्होंने अपना शेष जीवन बिताया था।

बैजि (सं० त्रि०) बीज सम्बन्धी।

बैजिक (सं० क्लि०) १ शिग्रुतैल। २ हेतु। ३ आत्मा। ४ सद्याऽङ्कुर, हालकी उगी हुई कोंपल।

बैजीय (सं० त्रि०) बीजसम्बन्धीय।

बैजेय (सं० पु०) बीजभव, बीयाके उत्पन्न।

बैटरी (अं० स्त्री०) १ चीना या शीशे आदिका पात्र। इसमें रासायनिक पदार्थोंके योगसे रासायनिक प्रक्रिया द्वारा बिजली पैदा करके काममें लाई जाती है। २ तोपखाना।

बैटा (हिं० स्त्री०) रूई ओटनेकी चर्खी, ओटनी।

बैठ (हिं० पु०) राजकीय कर वा उसकी दर।

बैठक (हिं० स्त्री०) १ बैठनेका स्थान। २ आसन, पीढ़। ३ बैठनेका ढंग वा टेव। ४ संग, मेल। ५ एक प्रकारकी कसरत। इसमें बार बार उठना होना और बैठना पड़ता है। ६ पायदान, आधार। ७ अधिवेशन, सभासदोंका एकत्र होना। ८ बैठनेका व्यापार, बैठाई। ९ बैठनेकी क्रिया। १० कांच या धातु आदिका दीयट जिसके सिरे पर बत्ती जलती या मोमबत्ती खोंसी जाती है।

बैठका (हिं० पु०) वह चौपाल या दालान आदि जहां जा कर लोग उससे मिलते या उसके पास बैठ कर बातचीत करते हों।

बैठकी (हिं० स्त्री०) १ बार बार बैठने और उठनेकी कसरत, बैठक। २ आसन, आधार।

बैठन (हिं० स्त्री०) १ बैठनेकी क्रिया। २ बैठनेका भाव। ३ बैठनेका ढंग। ४ बैठक, आसन।

बैठना (हिं० क्रि०) १ किसी जगह पर इस प्रकार टिकना कि कमर और शरीरका आधा निचला भाग उस जगह पर लगा रहे, आसन जमाना। २ तौलमें ठहरना या उतरना पड़ना। ३ चलना न रहना, बिगड़ना। ४ कूआं या डबरा हुआ न रहना, धंसना। ५ अभ्यस्त होना, ठीक होना। ६ किसी स्थान या अवकाशमें ठीक रूपसे जमना। ७ जल आदिके स्थिर होने पर उसमें घुली वस्तुका नीचेके आधारमें जा लगना। ८ पानी या हवामें किसी भारी चीजका दाब आदि पा कर नीचे आना या धंसना। ९ एक स्थान पर स्थिर हो कर रहना, अड़ना। १० अस्त होना। ११ खर्च होना, लागत लगाना। १२ भावकसा पकानेमें गीला हो जाना। १३ किसी वस्तुका निर्दिष्ट स्थान पर पहुंचना। १४ घोड़े आदि पर सवार होना। १५ पौधेका जमीनमें गड़ जाना, लगना। १६ किसी पद पर स्थित होना, जमना। १७ सधना, अंटना। १८ किसी स्त्रीका किसी पुरुषके यहां स्त्रीके समान रहना, घरमें पड़ना। १९ पक्षियोंका अंडे सेना। २० दाग करना, जोड़ खाना। २१ बेकाम रहना, निरुद्योग रहना। २२ गुड़का बह जाना या पिघल जाना।

बैठनी (हिं० स्त्री०) करघेमें वह स्थान जहां जुलाहे कपड़ा बुनते समय बैठते हैं।

बैठवाई (हिं० स्त्री०) बैठानेकी मजदूरी।

बैठवाना (हिं० क्रि०) १ बैठानेका काम दूसरेसे कराना। २ पेड़ पौधे लगवाना, रोपाना।

बैठा (हिं० पु०) चमचा या बड़ी करछी।

बैठाना (हिं० क्रि०) १ स्थित करना, आसीन करना। २ नियत स्थान पर ठीक ठीक ठहराना। ३ प्रतिष्ठित करना, नियत करना। ४ प्रतिष्ठित करना, पद पर स्थापित करना। ५ चलता न रहने देना, बिगाड़ना। ६ नीचे-की ओर ले जाना, धंसाना। ७ अभ्यस्त करना, मांजना। ८ पानी आदिमें घुली वस्तुको तलमें ले जा कर जमाना। ९ दबा कर बराबर करना, पचकाना या धंसाना। १० क्षिप्त वस्तुको निर्दिष्ट स्थान पर डालना, लक्ष्य पर जमाना। ११ घोड़े आदि पर सवार कराना। १२ पौधेको लगाना, जमाना। १३ काम धंधेके योग्य न रखना, बेकाम कर देना। १४ किसी स्त्रीको पत्नीके रूपमें रख लेना।

बैठालना (हिं० क्रि०) बैठाना देखो।

बैढना (हिं० क्रि०) बंद करना, बेढना।

बैडाल (हिं० वि०) बिल्लीसम्बन्धी।

बैडालव्रत (हिं० पु०) बिल्लीके समान अपने घातमें रहना और ऊपरसे बहुत सीधा सादा बना रहना। बैडालव्रत देखो।

बैडालव्रती (हिं० वि०) बिल्लीके समान ऊपरसे सीधा सादा, पर समय पर घात करनेवाला, कपटी।

बैण (सं० पु०) बांसका काम करनेवाला।

बैत (अ० स्त्री० पद्य, श्लोक।

बैतरनी (हिं० स्त्री०) १ बैतरणी देखो। २ अगहनमें होने-वाला एक प्रकारका धान। इसका चावल वर्षों रहता है।

बैताल (सं० पु०) बेताल देखो।

बैतालिक (हिं० वि०) बैतालिक देखो।

बैद (हिं० पु०) चिकित्साशास्त्रका जाननेवाला पुरुष। वैद्य देखो।

बैदई (हिं० स्त्री० वैद्यकी विद्या या व्यवसाय।

बैदल (सं० क्ली०) १ भिक्षुकका मृण्मयादि पात्र। (पु०) विदलो दालि तस्मात् जातः विदल-अण्। २ पिष्टकभेद, दालकी पीठी।

बैदूर्य (सं० पु०) वैदूर्य देखो।

बैदेही (सं० स्त्री०) वैदेही देखो।

बैनतेय (सं० पु०) वैनतेय देखो।

बैना (हिं० पु०) वह मिठाई आदि जो विवाहादि उत्सवोंके उपलक्षमें इष्टमित्रोंके यहां भेजी जाती है।

बैन्दवाय (सं० पु०) बैन्दवि सम्बन्धीय।

बैन्दवि (सं० पु०) बिन्दुभव।

बैपारी (हिं० पु०) व्यापार करनेवाला, रोजगारी।

बैयन (हिं० पु०) काष्ठयन्त्रविशेष, लकड़ीका एक औजार। यह बाना बैठानेके काममें आता है।

बैरंग (अं० वि०) वह चिट्ठी या पारसल जिसका मह-सूल भेजनेवालेकी ओरसे न दिया गया हो, पानेवालेसे वसूल किया जाय।

बैर (हिं० पु०) १ शत्रुता, अदावत। २ दुर्भाव, द्रोह। ३ हलमें लगा हुआ चोंगा। यह चिलमके आकारका होता है और इसमें भरा हुआ बीज हल चलनेमें बराबर कूंड़में पड़ता जाता है। ४ बेरका फल और पेड़।

बैरख (हिं० पु०) ध्वजा, पताका।

बैरा (हिं० पु०) १ हलमें लगा हुआ एक प्रकारका चोंगा। यह चिलमके आकारका होता है और बोते समय बीज डाला जाता है। २ सेवक, चाकर। ३ ईंटके टुकड़े, रोड़े आदि जो मेहराब बनाते समय उसमें चुनी हुई ईंटोंको जमी रखनेके लिये खाली स्थानमें भर देते हैं।

बैराखी (हिं० स्त्री०) भुजा पर पहननेका एक गहना। इसमें लंबोतरे गोल बड़े बड़े दाने होते हैं और धागेमें गूंथ कर पहने जाते हैं।

बैराग (सं० पु०) वैराग्य देखो।

बैरागी (हिं० पु०) वैष्णव मतके साधुओंका एक भेद।

बैराग्य (हिं० पु०) वैराग्य।

बैराना (हिं० क्रि०) वायुके प्रकोपसे बिगड़ना।

बैरी (हिं० वि०) १ बैर रखनेवाला, दुश्मन।

बैल (हिं० पु० १ एक चौपाया। इसकी मादाको गाय कहते हैं। वृष देखो। २ मूर्ख मनुष्य, जड़ बुद्धिका आदमी।

बैलर (अं० पु०) पीपेके आकारका लोहेका बड़ा देग जो भापसे चलनेवाली कलोंमें होता है। इसमें पानी भर कर खौलाते और भाप उठाते हैं जिसके जोरसे कल-के पुरजे चलते हैं।

वैलून (अं० पु०) १ गुब्बारा। २ बड़ा गुब्बारा जिसके सहारे पहले लोग ऊपर हवामें उड़ा करते थे। इस गुब्बारे द्वारा आकाशमार्गसे उड़ कर अनायासही वहां के विभिन्न वायुस्तरों और खगोलस्थ नक्षत्रोंका परिदर्शन तथा भूमण्डलस्थ बहुदूरवर्ती देशोंको देखा जा सकता है।

यह साधारणतः कागज, मोटे रेशमी वस्त्र वा गटापार्चा नामक रबर-संयुक्त वस्त्र द्वारा बनाया जाता है। इसकी आकृति पलाण्डु वा तदाकार कन्द-विशेषके सदृश है। इस प्रकारकी एक बड़ी थैलीको रस्सीके जालमें रख कर उसमें भाप भरी जाती है। भापसे भरपूर होने पर थैली फूल जाती है और वाफ्के स्वाभाविक नियमानुसार वह ऊपरको उड़ती है। उस थैली पर चढ़े हुए जालकी तमाम रस्सियोंको इकट्ठी बांध कर उसमें नाव बांध दी जाती है, उस नावमें कभी एक और कभी कई आदमी बैठ कर वायुमण्डलमें उड़ते हैं। किस वैज्ञानिक कारण से वैलून ऊपरको चढ़ता है, उसका विवरण नीचे दिया जाता है।

उष्ण वायु साधारण वायुकी अपेक्षा हलकी होती है, इस कारण वैलून उष्ण वायुसे परिपूर्ण होने पर वह ऊपर को चढ़ाता है। दिवाली पर लड़के लोग कागजके वैलून बनाते और उसमें धूंआ भर कर आकाशमें उड़ाते हैं। बड़े बड़े व्योमयान भी इसी प्रणालीसे उष्ण वायु द्वारा ऊपर चढ़ाये जाते हैं। अब्जनक वाष्प और आर्द्र भौमिक आदि जो वायवीय पदार्थ वायुराशिसे हलके हैं, उनके द्वारा भी वैलून उड़ाया जा सकता है। उदजन वाष्प द्वारा छोटे छोटे रबरके वैलून और बड़े बड़े वैलून भी उड़ाये जा सकते हैं, किन्तु उनमें विशेष व्यय होता है। अब तो खर्चकी किफायतीके कारण वैलूनके लिए कोल गैस (कोयलेसे उत्पन्न गैस, जिससे बड़े बड़े शहरोंमें बत्ती जला करती है) काममें लाया जाता है। कोयलेकी वाफ वायुराशिसे हलकी होती है, इसलिए किसी भी वैलूनमें उसे भर दो, वैलून आपसे आप ऊपरको चढ़ता रहेगा। यदि उसके नीचे हलकी नाव लटका दी जाय, तो लोग उसमें बैठ कर अनायास ही आसमानकी शैर कर सकते हैं। निम्नस्थ वायुसे उपरिस्थ वायु क्रमशः हलकी होती गई है, इसलिए वह वैलून तब तक ऊपरको चढ़ता ही रहेगा, जब तक कि उसमें भरी हुई वायुके समान हलकी वायुराशि उसे न मिल जाय। जब समान वजनकी वायु उसे मिल जायगी, तब उसकी ऊद्ध्व गति रुक जायगी। फिर ऊपरकी हवा जिस ओर बहेगी, वैलून भी उसी तरफ उड़ने लगेगा। वैलूनकी हवा थोड़ी निकाल देनेसे वह नीचेको उतरेगा और उसके नीचे बंधी हुई नावमेंसे कोई भारी चीज नीचे फेंक देनेसे कुछ ऊपर चढ़ सकता है। इस प्रकार उसके आरोहीके इच्छानुसार थोड़ा बहुत चढ़ उत्तर तो सकते हैं, परन्तु वे इच्छानुसार एक देशसे दूसरे देशको नहीं जा सकते। वायुका प्रभाव उन्हें जिस ओर चाहे ले जा सकता है, उसमें आरोहीका कोई वश नहीं चलता।

पानीमें जिस प्रकार कोई चीज़ समायतनसम्पन्न स्थानान्तरित जलके भारके समान बल पर बहती रहती है, उसी प्रकार वायुमें भी कोई भी वस्तु अपने समायतन स्थानान्तरित वायुके भारके समान बल पर उड़ती रहती है। जिस प्रकार, जिन चीजोंका आपेक्षिक गुरुत्व जलके आपेक्षिक गुरुत्वसे अधिक है, उन चीजोंको पानीमें छोड़ देनेसे नीचे चली जाती है, जिनका आपेक्षिक गुरुत्व जलके आपेक्षिक गुरुत्वसे कम है, वे चीजें पानीमें बहने लगती हैं और जिनका आपेक्षिक गुरुत्व जलके आपेक्षिक गुरुत्व के समान है, उन चीजोंको पानीमें जहां रखा जायगा, वहीं पर वे स्थिर रहेंगी, उसी प्रकार जिन वस्तुओंका आपेक्षिक गुरुत्व वायुके आपेक्षिक गुरुत्वसे अधिक है, वे वस्तुएं वायुराशिके नीचे गिर जाती है; जिनका आपेक्षिक गुरुत्व वायुके अपेक्षिक गुरुत्वसे कम है, वे वायु-राशिके ऊपर उड़ने लगती हैं और जिनका आपेक्षिक गुरुत्व जिस स्थानकी वायुके आपेक्षिक गुरुत्वके समान है, वे वस्तुएं उसी स्थानकी वायुमें स्थिर रहेंगी। जलके समुद्भासकता गुणके कारण जैसे जहाज आदि एक स्थानसे दूसरे स्थानमें पहुंच जाते हैं, उसी प्रकार वायु-राशिके समुद्भासकता गुणके सहारे व्योमयान भी आका-शमार्गसे एक स्थानसे दूसरे स्थानमें पहुंच जाता है।

पूर्वकालमें इस देशमें व्योमयान बहुतायतसे व्यवहृत होते थे। प्राचीन आर्यगण पुष्पक आदि रथोंमें चढ़ कर आकाश

मार्गसे यथेच्छा गमन करते थे। पुराणादिमें इस विषय-के काफो प्रमाण पाये जाते हैं। परन्तु जिस विद्याके प्रभावसे वे व्योमयान-रूप रथको इच्छानुसार चलाते थे, वह विद्या अब लुप्त हो गई है। पश्चिम युरोपखण्ड-वासी शिल्पविज्ञान विशारद विद्वानोंने इस व्योमयानको इच्छानुसार इधर उधर चलानेके लिए वहुत प्रयत्न किये, परन्तु आज तक वे सफल मनोरथ न हो सके।

१८०४ ई०में विओ और गे-लूसक नामक दो विद्वान् ऊपरको वायुका शैत्य और उष्णता आदि गुणागुण तथा अन्यान्य विषयोंकी परीक्षा करनेके लिए नाना प्रकारके यन्त्र, पक्षी, पतङ्ग आदि प्राणियोंको साथ ले कर, १३वीं अगस्तको सुवह १० बजे फरासीसी राज्यको राजधानी पैरिस नगरीसे व्योमयानमें चढ़े थे। वे मेघराज्यको भेद कर करीव ८७०० हाथ ऊपर पहुंचे और विविध विषयोंको परीक्षा करते हुए ३॥ घण्टे तक आकाश-मार्गमें भ्रमण कर पैरिससे करीव २२ माईलको दूरी पर मेरिमिल ग्राममें उतरे। ऊपरकी वायु पृथिवी-की निकटवर्ती वायुकी अपेक्षा शीतल है, यह वात पूर्व प्रमाणानुसार निश्चित होने पर भो अव प्रत्यक्ष अनुभूत हुई।

इसके वाद, अन्यान्य विद्वानोंके अनुरोध करने पर गे-लूसाक उसी वर्ष १५ सितम्वरको एक वार अकेले ही ऊपर चढ़े थे। उस वार वे १५३६० हाथ अर्थात् लगभग दो कोस ऊंचे पहुंचे थे और वहांकी वायुके सम्वन्धमें उन्होंने शैत्य, उष्णत्व, लघुत्व, गुरुत्व आदि अनेक विषयोंकी परीक्षा की थी। उनका कहना है, कि वहांकी वायु इतनी शीतल है, कि उससे हाथ-पैर अवश हो जाते हैं और साथ ही इतनो हलकी है, कि श्वास लेनेमें भी कष्ट मालूम होता है। यहां तक, कि उस परिशुष्क वायुके सेवनसे उनका गला नीरस और खाद्यद्रव्य गलेसे उतारनेमें अनुपयोगी हो गया था। वे १४३०७ और १४५२७ हाथ ऊंचेसे दो वोतल वायु भर लाये थे। उनकी परीक्षा करने पर मालूम हुआ, कि पृथिवीकी निकटवर्ती वायुमें जो जो पदार्थ जिस जिस परिमाणसे मिश्रित हैं, उतने ऊपरकी वायुमें भी वे पदार्थ उसी परिमाणसे मिले हुए हैं।

उस समय ग्रान नामक एक और व्यक्ति भी वैलून पर चढ़ कर ऊपर गये थे। उन्होंने १८३६ ई० तक २२६ वार व्योमयान द्वारा आकाशमार्गमें परिभ्रमण किया था। अन्तिम वर्ष नवम्वर मासमें जव वे वैलून पर चढ़े थे, उस समय उनके साथ हालण्ड और इस्कमेसन् साहव भी थे। ज्यादा ऊंचाई पर पहुंचनेकी इच्छासे वे एक पक्षके लिए खाने पोने और अन्य व्यवहार्य वस्तुएं साथ ले कर ७ नवम्वरको दिनके १०॥ वजे लण्डन नगरसे वैलून पर सवार हुए। पूर्व-दक्षिणकी तरफ गमन करते हुए उन्होंने अनेक ग्राम और नगरोंकी शोभा देखो। ४ घण्टे ४८ मिनटके वाद वे इङ्गलैण्ड-भूमिको छोड़ कर समुद्रके ऊपर पहुंचे। सायंकाल वीत जाने पर समुद्र पार कर वे फरासीसी राज्यमें आये। उस अन्धकारमय रात्रिमें स्वर्गलोग-निवासियोंकी तरह कितने राज्य, राजधानी, नगर नदी, ग्रामादिका निरोक्षण करते हुए शून्य मार्गसे समस्त रात्रि भ्रमण करते रहे। रात्रि समाप्त होने पर उन्होंने एक वार कुछ ऊपर जा कर सूर्योदय और उस सम्वन्धी आश्चर्यजनक शोभाका निरीक्षण किया और फिर नीचे उतर कर वे अन्धकारमें आवृत हो गये। तात्पर्य यह, कि उस दिन उन्होंने सूर्यको तीन वार उदित और दो अस्त वार होते हुए देखा था। इस यात्रामें वे लगभग २२० कोस शून्यमार्गमें भ्रमण करनेके वाद, दूसरे दिन सुवहको जर्मनी के अन्तःपाती नासो विलवर्ग नामक स्थानमें उतरे थे।

१७८३ ई०में मोण्ट-गलफियरके युद्धके लिए पहले-पहल वैलून पर चढ़नेकी व्यवस्था की गई थी। १७८९ ई०में फरासीसी राज्यमें राज्यविप्लव सम्वन्धी जो घोर युद्ध हुआ था, उसमें साधारणतन्त्री-दलने व्योमयानमें चढ़ कर ऊपरसे विपक्षियोंकी गति-विधिका पर्यवेक्षण किया था। इस राज-विप्लवके कारण १७९४ ई०में फिलउरस नामक स्थानमें अष्ट्रियाकी सेनाके साथ फरासीसी सैनाध्यक्ष जोर्डन साहवका युद्ध हुआ था। उसमें कर्नल कुतेल साहव एक सामरिक कर्मचारीको साथ ले कर व्योमयान द्वारा ऊपर चढ़े थे, और इशारेसे जोर्डन साहवको सव वातें वतलाते जाते थे, जिसके अनुसार चल कर जोर्डन साहवने युद्धमें विजय पाई थी उक्त सामरिक कर्मचारीके साथ कर्नल कुतेल एक

एक दिनमें दो दो वार रह ८६६ हाथ ऊपर चढ़े थे। विपक्षियोंने उन्हें देख कर तोपसे नष्ट करनेका प्रयत्न किया. था। इसके वाद कुतेल साहव १७६६ ई०में माइनोके युद्धमें भी इस असमसाहसिक कार्यमें नियुक्त हुए थे। उसके वाद एवेनब्रिटग्नि वन, फ्राङ्कफोर्ट, उर्ज वर्ग और लिजके अवरोधमें भी सामरिक विभागके आदेशसे वैलून द्वारा विपक्षकी गति विधिके निरीक्षणका कार्य चला था। १८१५ ई०में आन्तोआर्प अवरोधके समय तथा १८५६ ई०में सोलफेरिनो रणक्षेत्रमें वैलूनमें चढ़ कर उपाय निर्द्धारणकी चेष्टा की गई थी। १८६१ ई०में अमेरिकाके अन्तर्विप्लवके युद्धमें (Civil Wars) वैलूनकी सहायतासे रिचमण्ड और अन्यान्य स्थानोंके अनेक गोपनीय संवाद प्राप्त हुए थे।

१८७० ई०में फरासीसियोंके साथ प्रुसियोंका जो तुमुल युद्ध हुआ था, उसमें वहुतायतसे व्योमयानोंका व्यवहार हुआ था। शत्रु-पक्षीय सेनादलोंकी अवस्था और उद्योगका पर्यवेक्षण, अवरुद्ध नगरोंसे संवाद-प्रेरण और इतस्ततः गमनागमन तथा विपक्षीय वैलूनयात्रियोंको आक्रमण करनेके लिये अनेक वार व्योमयान व्यवहृत हुए थे। यहां तक कि, उस समय वैलूनोंमे परस्पर युद्ध भी हुआ था।

इस प्रकार विभिन्न समयोंमें युद्धके समय वैलूनका व्यवहार होने पर भी, वास्तव १८८२-८४ ई०में यह सामरिक विभागका एक आवश्यकीय उपकरण समझा गया। १८८४ ८५ ई०में फरासीसियोंने टोंकिंग युद्धमें तथा व्रिटिश गवर्नमेण्टने वेचुआनालाण्डके युद्धमें वैलूनकी विशेष उपयोगिताका अनुभव किया था। १८९९-१९०२ ई०में दक्षिण-अफ्रिकाके वूयर युद्धमें भी वैलून व्यवहृत हुआ था।

नौका आदिकी तरह वैलूनको भी इच्छानुसार चारों तरफ चलानेकी चेष्टा होने लगो और फलस्वरूप १८६६ ई०के जुलाई मासमें उत्तर-अमेरिकाके अन्तःपाती सनफ्रनसिस्को नगरमें उस नियमकी सुचारुरूपमें परीक्षा हुई। आदर्श-स्वरूप एक वाष्पीय विमान वनाया गया। वह विमान वाष्पीय पोतादिकी तरह वाष्पकी शक्तिसे और कर द्वारा विभिन्न दिशाओंमें परिचालित होता था। वैज्ञानिक आलोचनासे वैलूनके स्थानमें वही aereonaut और aeroplane नामक यन्त्रमें रूपान्तरित हुआ है।

'यारोप्लेन' वा हवाई जहाज देखो।

वङ्गालमें लगभग ५५ वर्ष पहिले रावर्टसन और काइट नामक दो अङ्गरेज व्योमयान पर चढ़ कर आकाशमें उडे थे। परन्तु यूरोपमें एक व्यक्तिने इस विषयमें ऐसी पटुता दिखलाई कि जिसे देख कर लोग दंग हो गये थे। इसके वाद स्पेन्सर नामक एक अङ्गरेजने वैलूनमें चढ़ कर भ्रमण करनेके वाद "पाराचुट" नामक छतरीकी सहायतासे जमीन पर उतरनेका कौशल दिखा कर लोगोंको और भी चमत्कृत कर दिया। उनके साथ वैज्ञानिकतत्त्वाविष्कारके अभिप्रायसे Mr. J. Choudhry आदि कई भारतीय विज्ञानविद्व भी वैलून पर चढ़े थे। प्रसिद्ध व्यायाम-शिक्षक रामचन्द्र चट्टोपाध्याय अपनी शिक्षासे "पाराचुट"-की सहायतासे कलकत्तेमें उतरे थे।

वैल्व (सं० त्रि०) विल्वजात, वेलका।

वैल्वक (सं० त्रि०) विल्व अहीरणादित्वात् वुञ्। विल्वकोय।

वैल्वकि (सं० पु०) विल्वकका अपत्य।

वैल्वज (सं० त्रि०) विल्वज देशजात।

वैल्वजक (सं० त्रि०) वैल्वजोंके द्वारा अधिवासित।

वैल्ववन (सं० त्रि०) विल्ववनवासी जाति।

वैल्ववनक (सं० त्रि०) वैल्ववनदिनके द्वारा अधिवासित।

वैल्वामय—पाणिनिके एक वार्त्तिककार।

वैल्वायन (सं० पु०) वैल्वका गोत्रापत्य।

वैपानस (सं० पु०) वैखानस देखो।

वैस (हिं० स्त्री०) १ आयु, उम्र। २ यौवन, जवानी। ३ कन्नौजसे ले कर अन्तर्वेद तक मिलनेवाली क्षत्रियोंकी एक प्रसिद्ध शाखा। इस शाखाका पहले थानेश्वरके निकटवर्ती स्थानोंमें वास था। पीछे विक्रम संवत् ६६३ के लगभग इस शाखाके प्रसिद्ध सम्राट् हर्षवर्द्धनने पूर्वके प्रदेशोंको जीता और कन्नौजमें अपनी राजधानी वसाई।

विशेष विवरण अन्तस्थ 'व'में देखो।

वैसर (हिं० स्त्री०) जुलाहोंका एक यन्त्र। इससे करवेमें कपड़ा बुनते समय वानेको वैठाते हैं।

वैसवारा (हिं० पु०) अवधका पश्चिमी प्रान्त।

वैसवारा देखो।

वैसाख (हिं० पु०) वैशाख देखो।

वैशाखी (हिं० पु०) एक प्रकारको लाठी। इसके सिरेको कंधेके नीचे वगलमें रख कर लंगड़े लोग टेकते हुए चलते हैं। इसके सिरे पर जो अर्द्धचन्द्राकार आड़ी लकड़ी लगी होती है, वही वगलमें रहती है।

वैहानरि (सं० पु०) वहोनरका अपत्य।

वोंक (हिं० पु०) लोहेका एक तिकोना कीला। यह कीवाड़के पल्लेमें नीचेकी चूलकी जगह लगाया जाता है।

वोंगना हिं० पु०) पीतलका एक वरतन। इसकी वाढ़ ऊँची और सीधी ऊपरको उठी हुई होती है।

वोंआई (हिं० स्त्री०) १ वोनेका काम। २ वोनेकी मजदूरी।

वोक (हिं० पु०) वकरा।

वोकड़ी (सं० स्त्री०) १ वस्तान्त्री। २ धान्यविशेष।

वोकरा (हिं० पु०) वकरा देखो।

वोकरी (हिं० स्त्री०) वकरी देखो।

वोकला (हिं० पु०) वकला देखो।

वोकाण (हिं० पु० , पश्चिम दिशाका एक पर्वत।

वोखार (हिं० पु०) वुखार देखो।

वोगुमा (हिं० पु०) घोड़ोंकी एक वीमारी इससे उनके पेटमें ऐसी पीड़ा होती है, कि वे वेचैन हो जाते हैं।

वोज (हिं० पु०) घोड़ोंका एक भेद।

वोजा (फा० स्त्री०) चावल-प्रस्तुत मद्य, चावलकी शराव।

वोझ (हिं० पु०) १ ऐसा पिण्ड जिसे गुरुत्वके कारण उठानेमें कठिनता हो, भार। २ कोई ऐसा कठिन काम जिसके पूरे होनेकी चिन्ता वरावर वनी रहे, मुश्किल काम। ३ कठिन लगनेवाली वात पूरी करनेकी चिंता, खटका या असमंजस। ४ गुरुत्व, भारीपन। ५ उतना ढेर जितना वैल, घोड़े, गाड़ी आदि पर लद सके। ६ किसी कार्यको करनेमें होनेवाला श्रम, कष्ट या व्यय। ७ घास, लकड़ी आदिका उतना ढेर जितना एक वैल लाद कर ले सके। ८ वह व्यक्ति या वस्तु जिसके संवन्धमें कोई ऐसी वात करनी हो जो कठिन जान पड़े।

वोझना (हिं० क्रि०) किसी नाव या गाड़ी पर माल रखना।

वोझल (हिं० वि०) भारी, वजनदार।

वोझा (हिं० पु०) १ वोझ देखो। २ एक प्रकारकी सङ्कीर्ण कोठरी जिसका आकार संदूक सा होता है। इस प्रकार-को कोठरीमें रावके वोरे इसलिये नीचे ऊपर रखे जाते हैं जिसमें शीरा या जूसी निकल जाय।

वोझाई (हिं० स्त्री०) १ वोझने या लादनेका काम। २ वोझनेकी मजदूरी।

वोट (अं० स्त्री०) १ नाव, नौका। २ अग्निवोट, स्टीमर।

वोटा (हिं० पु०) १ लकड़ीका काटा हुआ मोटा टुकड़ा जो लम्वाईमें हाथ दो हाथके लगभग हो, वड़ा न हो। २ काटा हुआ टुकड़ा।

वोटी (हिं० स्त्री०) मांसका छोटा टुकड़ा।

वोड़ (हिं० स्त्री०) एक प्रकारका आभूषण जो सिर पर पहना जाता है।

वोड़री (हिं० स्त्री०) नाभी, तोंदी।

वोड़ल (हिं० स्त्री०) एक पक्षी जिसे जेदर भी कहते हैं। इसकी चोंच पर एक सींग-सा होता है। यह एक प्रकार-का पहाड़ी महोख है।

वोड़ा (हिं० पु०) १ अजगर, वड़ा सांप। २ एक प्रकार-की पतली लम्वी फली जिसकी तरकारी होती है, लोविया।

वोड़ी (हिं० स्त्री०) १ दमड़ी। २ अति अल्प धन।

वोत (हिं० पु०) घोड़ोंकी जाति।

वोतक (हिं० पु०) पानकी पहले वर्षकी खेती।

वोतल (अं० स्त्री०) कांचका एक लम्वी गरदनका गहरा वरतन जिसमें द्रव पदार्थ रखा जाता है।

वोतलिया (हिं० वि०) वोतलके रंगका, कालापन लिये हरा।

वोता (हिं० पु०) ऊंटका वच्चा जिस पर अभी सवारी न होती है।

वोदकी (हिं० स्त्री) कुसुम या वर्रेकी एक जाति। इसमें कांटे नहीं होते। इसके फूल रंगाईके काममें आते हैं।

वोदर (हिं० स्त्री०) १ लचीली छड़ी। (पु०) २ ताल या जलाशयके किनारे सिंचाईका पानी चढ़ानेके लिये वना हुआ स्थान जिसके कुछ नीचे दो आदमी इधर उधर खड़े हो कर टोकरे आदिसे उलीच कर पानी ऊपर गिराते रहते हैं।

वोदा (हिं० वि०) १ जिसको बुद्धि तीव्र न हो, मूर्ख। २ जो तत्पर बुद्धिका न हो। ३ सुस्त, मट्ठर। ४ जो दृढ़ या न हो, फुसफुस।

वोदापन (हिं० पु०) १ बुद्धिकी अतत्परता, अक्लका तेज न होना। २ मूर्खता, नासमझी।

वोध (सं० पु०) १ भ्रम वा अज्ञानका अभाव, ज्ञान। २ संतोष, धीरज।

वोधक (सं० पु०) १ ज्ञापक, ज्ञान करानेवाला। २ शृङ्गार रसके हावोंमेंसे एक हाव। इसमें किसी संकेत वा क्रिया द्वारा एक दूसरेको अपना मनोगत भाव जताता है। (त्रि०) ३ वोधजनक, ज्ञान करानेवाला।

वोधकर (सं० पु०) करोतीति करः कृ-ट, वोधस्य प्रवोधस्य करः। निशान्तमें वोधकारक, जो किसीको सवेरे जगाया करे। इसका पर्याय वैतालिक है।

वोधगम्य (सं० त्रि०) समझमें आने योग्य।

वोधगया (बुद्धगया)—गया जिलेके अन्तर्गत सुप्रसिद्ध और सुप्राचीन हिन्दू-तीर्थ, गयाधामके*समीप एक गण्डग्राम। वहुत दिनोंसे यह स्थान वौद्धोंका एक प्रधानतम तीर्थक्षेत्र† गिना जाता है। ईसा जन्मके पहले ही यहांका माहात्म्य चारों ओर फैल गया था। वौद्धसम्राट् अशोकके वनाये हुए स्तूप और महावोधि मन्दिरका ध्वंसावशेषसमूह इसका प्रधान साक्ष्य है। यहां संसारके अद्वितीय पुरुष शाक्यसिंहने (वुद्धदेव—जो हिन्दूशास्त्रादमें भी अवतार माने गए हैं) वोधिवृक्षके नीचे समाधिस्थ हो कर सिद्धिलाभ किया था। वह पीपलका वृक्ष आज भी मौजूद है।

इस सुप्राचीन ग्रामके उत्तरमें हरिहरपुर, पश्चिममें मस्तिपुर, घोण्डोवा, मुलुया और तुरी नामक ग्राम; दक्षिणमें रामपुर तथा पूर्वमें लीलाजन* नदी है। यह अक्षा० २४° ४१' ४५" उ० और देशा० ८५° २' ४" पू० के मध्य गया नगरसे कलकत्ते जानेके रास्तेसे ३॥ कोस और शेरघाटीके नये रास्तेसे लगभग ३॥ कोसकी दूरी पर वसा है। वुद्धगयाके पार्श्वदेशमें ताराडि†नामक ग्राम है। राजकीय राजस्व-तालिकामें उक्त दोनों ग्राम स्वतन्त्र नामसे लिखे गये हैं। यहां तथा इसके पार्श्ववर्त्ती कोलुरा आदि पल्लीमें भी छोटे वड़े वहुतसे स्तूपोंका अस्तित्व देखनेमें आता है।

अधिकांश स्तूप वोधगयाके पूर्वांशमें अवस्थित हैं। ग्रामके मध्यस्थित सुवृहत् स्तूप लगभग १५०० × १५०० फुट जमीन घेरे हुए हैं। वोधगया और ताराडीग्रामके वीचमें जो रास्ता मिला है, वही इस स्तूपको दो भागोंमें वांटता है। इसका दक्षिणांश उत्तरांशका एक तिहाई हिस्सा है। इस दक्षिणखण्डके ऊपर ही भारतका अपूर्व कीर्त्तिस्तम्भ वोधगयाका महावोधि मन्दिर स्थापित है। उत्तरांशका परिमाण १५१० × १००० फुट‡ है। १९वीं शताब्दीके प्रारम्भमें वुकानन्द हैमिल्टन यह प्रदेश देखने आये थे। उस समय उन्होंने इस अंशको 'राजस्थान' (राजप्रासाद) नामसे उल्लेख किया है और अभी तक यह स्थान 'गढ़' नामसे प्रसिद्ध है¶।

* गया शब्दमें विस्तृत विवरण देखो।

† कपिलवस्तु—वुद्धका जन्मस्थान, वोधगया—वुद्धका साधनाश्रम, वाराणसी—उनके धर्मका प्रचारक्षेत्र और कुशी जहां उन्होंने निर्वाणलाभ किया था। समयानुसार मनुष्यके मानसक्षेत्रसे कपिलवस्तु और कुशीके माहात्म्यका लोप हो गया है; किंतु वुद्धगया और वाराणसीका अलौकिक माहात्म्य अव भी हिन्दूमात्रका पूजनीय है। पवित्र काशीधामकी वौद्ध-तीर्थक्षेत्रोंमें गिनती होने पर भी यहां विश्वेश्वर अन्नपूर्णादिकी मूर्त्ति प्रतिष्ठित रहनेके कारण यहांकी हिन्दूप्रधानता ज्योंकी त्यों वनी है। काशी देखो।

* इसका संस्कृत नाम नैरञ्जना है। वुद्धगयाके आध कोस दक्षिण मोरा पहाड़के समीप यह नदी मुहानेके साथ मिल कर फल्गु नामसे प्रवाहित होती है।

† यहां तारादेवीका प्राचीन मन्दिर अवस्थित है, इसलिए यह ग्राम ताराडि कहलाता है।

‡ Arch. Sur. Rept vol. 1. p. 11.

¶ चारों ओर खाई और दीवार देख कर इस स्थानको गढ़ कहनेमें कोई अत्युक्ति नहीं। विशेष आलोचना करनेसे जान पड़ता है, कि वौद्ध-प्राधान्यके समय यहां एक सङ्घाराम था। कालक्रमसे वही दुर्गाकारमें परिणत हुआ है। वही सुप्राचीन सङ्घाराम महावोधि-सङ्घाराम नामसे प्रसिद्ध था। यह सुवृहत् स्तूप समतल क्षेत्रसे लगभग १० से १५ फुट ऊँचा है

बोधगयामें प्रसिद्ध महाबोधि-मन्दिरके अलावा लीलाजन नदीके बाएं किनारे पर अवस्थित उद्यानके मध्य एक सुवृहत् मठ है। यह अट्टालिका चौमंजिली और चारों ओर ईंटोंकी दीवारसे घिरी हुई है। इसके दक्षिणमें 'बारह-द्वारी' नामक अट्टालिका और उत्तरमें बहुतसे गृहादि देखनेमें आते हैं। उक्त मठके पश्चिम प्राकारके बहिर्भागस्थित स्तूपके ऊपर चार मन्दिरयुक्त एक अट्टालिका शोभित है। इन चार मन्दिरोंमें एकमें जगन्नाथ, दूसरेमें गङ्गाबाई-प्रतिष्ठित राममूर्त्ति और शेष दोमें शिवमूर्त्ति स्थापित हैं। उक्त मठके दक्षिण-पश्चिम कोणस्थित प्राचीरके बाहर साधुओंका समाधिस्थान है और प्रत्येक समाधिके ऊपर स्तूप या लिङ्गमूर्त्ति स्थापित हैं। केवल महन्तोंकी समाधिके ऊपर सुदृश्य क्षुद्राकार मन्दिरादि बने हुए हैं।

मठाधिकारी महन्तगण ही उक्त दोनों ग्रामके अधिकारी हैं। गवर्मेण्टको राजस्व दे देनेके बाद वहांकी बचत और उक्त बोधिवृक्षके नीचे हिन्दू या बौद्ध तीर्थयात्रियोंका दिया हुआ उपहार मिला कर इसकी वार्षिक आय लगभग ८० हजार रुपयेकी होगी। इन आमदनीसे उन्हें प्रतिदिन सैकड़ों संन्यासीके भोजन और एक अतिथि-शाला तथा विद्यालयका खर्च निभाना पड़ता है।

सुननेमें आता है, कि १८वीं शताब्दीके प्रारम्भमें यहां एक मठ स्थापित हुआ था। महन्तोंकी वंशतालिकासे जाना जाता है, कि उस समय घमण्डीनाथगिरि नामक एक शैव-संन्यासी वहां आ कर बस गए और अपने साम्प्रदायिक संन्यासियोंके रहनेके लिये उन्होंने एक मठ स्थापित किया। उनकी मृत्युके बाद उनके शिष्य चैतन्यगिरि मठाध्यक्ष हुए। उस समय बुद्धगयाका महाबोधि-मन्दिर जङ्गलसे भरा हुआ था*। देवमूर्त्तिकी परिचर्या तथा पूजाके लिये एक पुरोहित भी उस वन्य-प्रदेशमें नहीं थे और न कोई यात्री ही देवपूजाकी इच्छासे वहां जाते थे। मुसलमान-प्रभावसे उत्सन्नप्राय इस वनभूमिमें जो एक साधु धीरे धीरे अपना साधु-उद्देश्य साधते थे, उस समय किसीका भी उस ओर लक्ष्य न था।

चैतन्यके प्रियतम शिष्य महाज्ञानी महादेव अपनी विद्याके प्रभावसे निकटवर्त्ती स्थानोंमें परिचित थे। महाबोधि-मन्दिरके सामने एकान्तमें बैठ कर वे महादेवीकी साधना करते थे। देवीकी कृपासे वे इस क्षुद्र मठको एक सुदीर्घ सङ्घाराममें परिणत कर गए हैं। प्रवाद है, कि सम्राट् शाहआलमके आदेशानुसार वे इस बुद्ध-मन्दिरके एकमात्र स्वत्वाधिकारी तथा प्रधान महन्तके जैसे गिने जाते थे। उनके प्रधान शिष्य लालगिरि दया-परवश हो यहां अतिथिशाला स्थापित कर गए हैं। लालगिरिके शिष्य राघव, राघवके शिष्य रैनहित, उनके शिष्य शिवगिरि और शिवगिरिके शिष्य हेमन्तगिरिने मठाधिकारी हो कर यथानियम अपने अपने कर्त्तव्यका पालन किया था।*

यहांके महन्तगण आजीवन ब्रह्मचर्यका अवलम्बन करते हैं। शिष्योंमेंसे जो समधिक ज्ञानवान् और विद्याशाली होते, उन्हें ही प्रधान महन्तका पद मिलता था। किन्तु अभी ऐसा नियम देखनेमें नहीं आता। शिष्योंमें जो सबसे छोटे तथा जिनके साथ मठाध्यक्षका अनेक सौसादृश्य है, वही बालक महन्तपदके अधिकारी होते हैं। मालपूआ, मोहनभोग और भङ्ग उनका प्रधान खाद्य है। वर्त्तमान महन्त सुपण्डित और शास्त्रदर्शी हैं।

बुद्धगयाका प्राचीनत्व।

बुद्धावतार-प्रसङ्गमें यह स्थान तीर्थसमूहके मध्य गिना जाता है। शुद्धोदनके पुत्र शाक्यसिंह राजसिंहासनका परित्याग कर इस निर्जन प्रदेशमें एक अश्वत्थवृक्षके नीचे बैठ ध्यानमग्न हुए थे। उन्होंने अपने योगप्रभावसे सम्यक्सम्बोधि प्राप्त की थी, इसलिए यह स्थान 'महाबोधि'¶ और उक्त अश्वत्थवृक्ष जनसाधारणमें 'बोधि-

* डा० बुकानन हेमिल्टन जब बुद्धगया आये थे, तब उन्होंने वहांके महन्तसे सुना था, कि चैतन्यके समय यह स्थान जंगलमय था और यहां एक भी बौद्ध देखनेमें नहीं आते थे।

* गया कलक्टरी आफिसके कागजातसे जाना जाता है, कि गुलाबगिरि नामक एक महन्तने गवर्मेण्टसे मस्तिपुर ताराडी नामक स्थान कायमी बन्दोवस्तत लिया। कोई कोई इस गुलाबगिरिको ही शिवगिरिका नामान्तर बतलाते हैं।

¶ राजा अमरदेवकी अप्रामाणिक शिलालिपिमें बुद्धगया नाम

द्रुम' नामसे प्रसिद्ध है*। ललितविस्तर पढ़नेसे जाना जाता है, कि सम्राट् अशोक (प्रियदर्शी)के बुद्धदेवका स्मृतिचिह्नसमूह संस्थापन करनेमें यत्नवान् होने पर उपगुप्तने उन्हें शाक्यसिंहका समाधिस्थान निरूपण कर दिया। अशोकने भी इस महाबोधिमन्दिर-स्थापनके लिये एक लाख स्वर्णमुद्रा प्रदान की। उरुविल्वा (वर्त्तमान उरेल) ग्रामके सीमान्त पर यह महामन्दिर स्थापित हुआ था। शाक्यसिंह वानप्रस्थाश्रमका अवलम्बन कर इस उरुविल्वाके अन्य वनप्रदेशमें रहते थे। ललितविस्तरमें इसका सविशेष विवरण मिलता है। नैरञ्जना नदीके किनारे यह प्राचीन ग्राम उस समय गुल्मलतादिसे परिपूर्ण था।* शाक्यमुनि जिस समय जगत्के शोकको दूर करनेकी इच्छासे प्रगाढ़ चिन्तामें मग्न थे, उस समय दुष्टबुद्धि ग्राम्य-बालकगण उनके पवित्र गात्र पर धूलिवर्षण करते थे।†

बोधिसत्त्व गयाशीर्ष पर्वत पर आ कर घूमते घूमते उरुविल्वा ग्राम पहुंचे। वे इस स्थानकी रमणीयता पर मुग्ध हो गये और मुक्ति-साधनका प्रकृतस्थान जान कर वहां रहने लगे।¶ नन्दिक नामक एक सेनापति उस समय इस ग्राम पर आधिपत्य करते थे। उनकी धर्मपरायणा कन्या सुजाता प्रतिदिन शाक्यसिंहको पायसान्न दिया करती थी।

यह स्थान बुद्धदेवका प्रीतिकर रमणीय और बालजनपरिशोभित होने पर भी कालक्रमसे यह पवित्र तीर्थ नष्टप्राय हो गया था। राजपुत्र शाक्यसिंह यहां आ कर उरुविल्व-काश्यपके आश्रममें पधारे+। सिंहलदेशीय

उल्लिखित होने पर भी यह प्राचीन नहीं जान पड़ता। कारण किसी भी प्राचीन बौद्ध या हिन्दूग्रन्थमें बुद्धगयाका नाम नहीं है। प्राचीन शिलालिपि और चीन-परिव्राजकोंके भ्रमणवृत्तान्तमें यह स्थान 'महाबोधि' नामसे प्रसिद्ध है। आईन-इ-अकबरी पढ़नेसे जाना जाता है, कि हिन्दूका पवित्र तीर्थ गयाक्षेत्र उस समय ब्रह्मगया नामसे विख्यात था। बौद्धधर्मका लोप और ब्राह्मण्यधर्मकी पुनः प्रतिष्ठा होनेसे हिन्दुओंने (बुद्धका अवतारत्व स्वीकार कर) ध्वंसप्राय इस बौद्धतीर्थका पङ्कोद्धार कर धीरे धीरे उसे जनसमाजमें प्रचार किया और ब्रह्मगयासे इसका भेद निरूपणार्थ बुद्धगया नाम रख दिया। महाबोधि मंदिर और बोधिवृक्ष उरेल ग्रामके उत्तर ही अवस्थित है। किंतु गयाधामसे दक्षिणाभिमुख इसकी दूरी प्रायः छः मील है।

७वीं शताब्दीमें चीनपरिव्राजक यूएनचुअङ्गने महाबोधि-विहार और महाबोधि-सङ्घाराम शब्दसे मंदिर तथा-मठकी स्वतंत्रता निरूपण की है। उक्त शताब्दीमें अपरापर चीन परिव्राजकगण भी यही नाम लिख गये हैं। (Ind. Ant. X, 190-92) राजा धर्मपालके ८५० ई०में, राजा अशोकवल्लके ११५७ ई०में और १३०२से १३३१ ई०में उत्कीर्ण शिलाफलकसमूहमें शाक्यमुनिका बुद्धत्वप्राप्तिस्थान 'महाबोधि' नामसे ही उल्लिखित हुआ है। बुद्धदेव अश्वत्थवृक्षके नीचे बैठ बोधिमार्ग पर चढ़े थे इसीलिये यह वृक्ष बोधि वा महाबोधि नामसे विख्यात है।

* ईस्वी सन् १५०के पहले उत्कीर्ण भर्हुत शिलाफलकमें भी यह वृक्ष 'बोधि' नामसे उल्लिखित है। यूएनचुअङ्गसे ही महाबोधि, बोधिद्रुम और बोधिमण्ड तथा राजा धर्मपालकी शिलालिपिमें 'महाबोधि-निवासिनी' ऐसा प्रयोग देखनेमें आता है।

* "रमणीयान्यरण्यानि वनगुल्माश्च वीरुधः।
प्राचीन उरुविल्वायां यत्र नैरञ्जना नदी॥"
(ललितविस्तर)

† "ये ग्रामदारकाश्च गोपालाः काष्ठहारतृणहाराः।
पांशु पिशाचकमिति मन्यन्ते पांशुना च म्रक्षन्ति॥"
(ललितविस्तर)

¶ "इति हि भिक्षवो बोधिसत्त्वो यथाभिप्रेतं गयायां विहृत्य गयाशीर्षपर्वते जंघाविहारमनुचंक्रम्यमाणो येनोरुविल्वासेनापतिकग्रामकस्तदनुसृतस्तदनुप्राप्तोऽभूत्। तत्राद्राक्षीन्नदी नैरञ्जनामच्छोदकां सूपतीर्थ्यां प्रासादिकश्च द्रुमगुल्मैरलंकृतां समंतश्च गोचरग्रामाम्। तत्र खल्वपि बोधिसत्त्वस्य मनोऽतीव प्रसन्नमभूत्॥ समो बतायं भूमिप्रदेशो रमणीयः प्रतिसंलयनानुरूपः पर्याप्तमिदं प्रहाणार्थिककुलपुत्रस्याहञ्च प्रहाणार्थं यन्नहमिहैव तिष्ठेयम्॥"
(ललितविस्तर)

+ Manual of Buddhism, p. 189. तीनों भाई काश्यपके मध्य ये उरुविल्वामें वास करनेके कारण उरुविल्व कहलाये। बुद्धदेवके आगमनके समय ये अग्निके उपासक थे। इनके और दो भाइयोंकी गया और सरित् आख्या थी। सुजाताकी एक सखीका नाम भी उलुविल्लिका था।

बौद्धधर्मके इतिहासमें उरुविल्वाका ही प्रसङ्ग मिलता है। महावंश पढ़नेसे जाना जाता है कि, "बुद्धघोष सिंहलसे भारतमें आ कर वा (बोधि)-वृक्षकी पूजा करनेकी इच्छासे मगधके अन्तर्गत उरुवेलय ग्राममें उपस्थित हुए।" शाक्यसिंहके यहां पर तपस्या करनेके पहले यह स्थान उरुविल्वा नामसे प्रसिद्ध था, इसमें सन्देह नहीं। क्योंकि, शाक्यके बुद्धत्व पानेके पूर्व इस स्थानका "बोधगया" नाम होना नितान्त असम्भव है। सुजाताके पिता सेनापति नन्दिक कोकटराजके अधीन काम करते थे। गयानगरी उस समय मगधराज्यकी राजधानी थी। ८वीं और ९वीं शताब्दीमें हिन्दूप्राधान्य स्थापित होनेके बाद उरुविल्वाके अशोकप्रतिष्ठित बौधमन्दिरादिसे गयाक्षेत्रको स्वातन्त्र्यरक्षाके लिए हिन्दूगण इस स्थानको 'बोधगया' नाम कल्पित करते हैं।* कारण, गयालीगण गयाधाममें प्रतिष्ठा लाभ कर गयाको कीर्त्ति और तीर्थसमूहकी रक्षा करनेमें यत्नवान् थे। उरुविल्वा (बुद्धगया)की पूर्वतन अशोककीर्त्तियां क्रमशः ध्वंसप्राय हो रही थीं।† हिन्दूगण प्रतिहिंसापरवश हो कर उरुविल्वाकी प्राचीन बौद्धकीर्त्तिकी उपेक्षा करते थे, ऐसा प्रतीत नहीं होता है। उन्होंने यह स्थान जंगलमें परिणत देख इसका परित्याग किया। कालक्रमसे अङ्गरेजोंकी अनुकम्पा और ब्रह्मराजके अर्थसाहाय्यसे यह लुप्तप्राय महाबोधिमन्दिर नवकलेवरमें शोभित हो जनसाधारणके दृष्टिपथ पर आरूढ़ हुआ है। बुद्धगयाके इस महाबोधिमन्दिरका जीर्णसंस्कार होनेके समय कहीं कहीं थोड़ा परिवर्त्तन भी हुआ है।

यथार्थमें किस समय यह स्थान जङ्गलसे परिपूर्ण हुआ था, यह स्थिर करना मुश्किल है। ४थी शताब्दीमें बौद्ध-प्रभावके अवसान अथवा ब्राह्मण्यधर्मसेवी गयालियोंके अभ्युत्थानके समय महाबोधि-मन्दिर जो अनादृत हुआ था, उसमें सन्देह नहीं। हिन्दुओंने जब बौद्धतीर्थको विलोप करना चाहा, तब भिन्नदेशीय बौद्ध-धर्मावलम्बियोंने यत्नपूर्वक यहांकी पूर्वतन बौद्धस्मृतिकी रक्षा की। इस पवित्र मन्दिरके वृक्षलतादि समाच्छादित ध्वंसराशिमें परिणत होने पर भी बौद्धगण समयानुसार इस पुण्यतीर्थमें आ कर यथासम्भव संस्कार करते थे उसका यथेष्ट ऐतिहासिक प्रमाण शिलालिपिसे मिलता है।

४थी शताब्दीके अन्तमें सम्राट् अशोक द्वारा प्रतिष्ठित वज्रासन और पुरातन मन्दिर तथा उक्त वज्रासनके सामने गाड़ी हुई रौप्यमुद्रादिके मध्य शकराज हुविष्क (१४० ई०)की मुद्रा प्राप्त होनेसे इस स्थानके प्राचीनत्वका परिचय मिलता है। इसके बाद चीनपरिव्राजक फाहियान भी उरुविल्वाके महाबोधिमन्दिरका उल्लेख

* पहले ही लिखा जा चुका है, कि अमरदेवकी १०वीं शताब्दीकी उत्कीर्ण शिलालिपिमें बुद्धगया नामका उल्लेख है। Asiatic Researches Vol I p. 284

† ललितविस्तरमें लिखा है, कि शाक्यसिंह राजगृहसे गयानगर पधारे। वहां मनुष्योंकी भलाईके लिये उन्होंने चित्तसंयम कर निविष्ट मनसे ध्यान करनेका सकल्प किया। उरुविल्वा-वनमें बुद्धके सम्बोधिलाभ करनेके बाद गयानगरीमें उनके निर्वाणधर्मप्रचारका मुख्यक्षेत्र हुआ था। किंतु दुःखका विषय है, कि ५वीं शताब्दीके प्रारम्भ (४०४ ई० सन्)में जब चीन-परिव्राजक यूएनचुअङ्ग यहां आये थे, उस समय इस स्थानका बौद्धप्रभाव एकबारगी तिरोहित हो गया था और सारी नगरी जनशून्य भग्नावशेषसे पूर्ण थी। ७वीं शताब्दीमें यूएनचुअङ्गके परिदर्शनकालमें यहां हिंदूप्रभाव स्थापित हो रहा था, सुतरां गयालीगण गयातीर्थ पर अधिकार कर उनकी रक्षामें लगे थे। बहुतोंका मत है, कि महाबोधि तीर्थ लुप्त होनेसे हिंदूगण गयाधाममें उन्हीं बोधिकीर्त्तियोंको ला कर उनकी रक्षा करते हैं। बुद्धगयाके अनेक प्रस्तर और शिलालिपि यहांके मंदिरादिमें लाई पर भी गयाके प्राचीनत्वका लोप नहीं हुआ है। यहांका पिण्डदान प्रभृतिकी महात्म्य-कथा रामायण महाभारतादिमें वर्णित है। वायुपुराणांतर्गत गयामाहात्म्यमें गयासुरका जो अद्भुत उपख्यान है उसकी समालोचना करनेसे वह रूपकके जैसा प्रतीत होता है। देवासुरका विरोध स्वभावसिद्ध है। असुरोंकी 'श्रेष्ठ वैष्णवता' बौद्धोंकी अहिंसाका परिचय देती हैं। गयासुरके निश्चलतासम्पादनसे देवताओंकी कापुरुचेष्टा और धर्मप्राण हिंदू द्वारा निरीह बौद्धोंके प्रत्याख्यानके सिवा और क्या कहा जाय। गया शब्दमें विस्तृत विवरण देखो।

कर गए हैं। यूएनचुअङ्गके वर्णनसे पता चलता है, कि ४थी शताब्दीके मध्यभागमें इस मन्दिरका कुछ अंश संस्कृत हुआ* और मन्दिरकी प्राङ्गनभूमि तथा बोधितरुतलस्थ वज्रासन फल्गु नदीकी वालुराशिसे परिपूर्ण हो गया।* सुतरां इसके वादसे ही इस तीर्थमें मनुष्योंको आगमनाकांक्षा कम हो गई, इसमें सन्देह नहीं।

७वीं शताब्दीके प्रारम्भमें बौद्धधर्मके प्रधान शत्रु राजा शशाङ्कने यह बोधिद्रुम काट डाला, किन्तु अभ्यन्तरस्थ बुद्धमूर्त्तिकी उनके मन्त्री पूर्णवर्माके सुकौशलसे रक्षा हुई थी। यह मूर्त्ति भी कालक्रमसे नष्ट हो गई है।

इस बोधिवृक्षको पूर्वास्थामें लानेको लिए ६२० ई०में राजा पूर्णवर्माने उसके चारों ओर २४ फुट ऊंची एक दीवार बनवा दी।†

चीन-परिव्राजक यूएनचुअङ्गके वाद ६३८ ई०में यूअन-चनने भारतमें आ कर चार वर्ष तक महाबोधिमें वास किया। वे फिर ६६५ ई०को महाबोधिमें वज्रासन देखने आये।¶ ६४० ई०में ह लुन महाबोधिमें वज्रासनका दर्शन करनेके लिए आये थे।+

७वीं शताब्दीमें बौद्धराज हर्षवर्द्धनके समय जब बौद्धप्राधान्य स्थापित हुआ, तब चीनदेशीय बौद्ध-परिव्राजकोंने भारतके साथ धर्मसम्बन्ध विस्तार किया था। ८वीं और ९वीं शताब्दीमें ब्राह्मण-धर्मकी प्रतिष्ठा होने पर बौद्धधर्म हीनप्रभ हुआ। सुतरां चीनवासी बौद्धोंका भारतमें आना एकवारगी बन्द-सा हो गया। १०वीं शताब्दीमें मगधके पालवंशीय बौद्धराजाओंका अधिकार होनेसे पुनः दोनों देशोंमें धर्म-प्रचारसम्बन्ध विस्तृत हुआ। राजा महिपालके राजत्वकालमें (१०००-१०४० ई०में) जो सब चीनपरिव्राजक महाबोधिके दर्शन करने आये थे, वे अपने अपने भ्रमणकी जो स्मृति चिह्न रख गए हैं, वर्त्तमान अनुसन्धानमें वे सब आविष्कृत हो कर प्राचीन इतिहासमें नूतन ज्योतिःप्रदान करते हैं।*

११वीं शताब्दीके प्रारम्भमें धर्मराज गुरु नामक एक व्यक्तिको ब्रह्मराजने महाबोधिमन्दिर बनवानेके लिए भेजा। उक्त कर्मचारी १०३५ ई०में स्वर्णरञ्जित ताम्रछत्र दान कर गए हैं। एक और दूसरी शिलालिपिसे जाना जाता है, कि १०७१ ई०में उक्त मन्दिरका निर्माण-कार्य समाप्त न होनेके कारण उसी वर्ष एक और कर्मचारी भेजा गया। वे ७ वर्ष १० मास यहां पर रह कर १०७६ ई०में निर्माणकार्य समाप्त कर स्वदेश लौटे थे।

अनन्तर १२वीं शताब्दीके शेष भाग (अर्थात् ११९८ ई०को मुसलमान आक्रमणके पहिले)में सपादलक्षपति अशोकवल्लने इसके किसी किसी अंशका पुनर्निर्माण किया।†

१३वीं और १४वीं शताब्दीमें गया आदि स्थान मुसलमानोंके हाथ आये। मेवाड़के राजेतिहाससे पता लगता है, कि राजपूतवीरोंने विधर्मियोंके हाथसे पवित्र गयाधामकी रक्षाके लिए प्राणपणसे युद्ध किया था। भट्टकवियोंकी आख्यायिकामें बुद्धगयाका कोई प्रसङ्ग नहीं रहने पर भी सहजमें अनुमान किया जा सकता है, कि मुसलमान विजयके परवर्त्ती छः वर्ष तक विधर्मियोंके अत्याचारसे पीड़ित हो कर यहांके अधिवासिगण महाबोधिमन्दिर छोड़ भागे और जलवायुका प्रभाव न सह सकनेके कारण उक्त प्राचीन कीर्त्तियां क्रमशः ध्वंसावशेषमें परिणत हो गईं।

बुद्धगयामें जो सब भास्करशिल्प पाये गए हैं, उनकी आलोचना करनेसे भारतीय शिल्पेतिहासका एक अपूर्व परिच्छेद बढ़ जाता है। अशोकका महाबोधिमन्दिर और प्रस्तरप्राचीर एक अलौकिक कीर्त्ति है। उक्त मन्दिर और उसका तोरणद्वार, प्राचीन महाबोधिसङ्घाराम, चंक्रमणचैत्य, बोधिद्रुम, प्राङ्गणमध्यस्थ स्तूप तथा

* बहुतोंकी धारणा है, कि ब्रह्मराज थदोमेङ्ग कर्तृक यह निर्माणकार्य सम्पादित हुआ है।

† *Julien's* Hwen Thsang Vol, 11 p, 401

¶ इसके द्वारा अनुमान होता है, कि इन्होंने सम्भवतः इस समय बोधिवृक्षके मूलस्थ पुरातन बज्रासनको दूसरी जगह स्थापित किया होगा। १८८१ ई०में यह सिंहासन देवलके मध्य पोस्ताके भग्नावशेषमें पाया गया है।

+ Indian Antiquary Vol, X. p, 209

* चीन पुरोहित युन-सु १०२१ ई०में बुद्धकी माहात्म्य प्रकाशक कीर्त्तनगाथा प्रस्तरमें अङ्कित कर गए हैं। Royal Asiatic Society's Journal 1881, Vol. X11I. p. 557

† Indian Antiquary, *X*, 341-346.

बिहार प्रभृति खण्डकीर्त्तियां प्रत्नतत्त्वानुसन्धित्सुओं-को नूतन आलोक प्रदान करती हैं।

१८७६ ई०में ब्रह्मराजने तीन कर्मचारियोंको बोधि-मन्दिरका संस्कार करनेके लिए भारतवर्ष भेजा। १८७७ ई०को कर्मक्षेत्रमें पहुंच कर जब वे उक्त कार्यसाधनमें असमर्थ ठहरे, तब बङ्गालके छोटे लाट (Sir Asely Eden)ने पहले बेगलर साहब (M, J, D, Beglar)को तत्त्वावधारक नियुक्त कर भेजा। इससे तृप्त न हो कर उन्होंने पुनः राजा राजेन्द्रलाल मित्रसे कार्यपरिदर्शन करनेके लिये प्रार्थना की। उन दोनोंके उद्योग और ब्रह्म-वासियोंके यत्नसे बोधगयाका संस्कार साधित हुआ। यहां तक कि, इस महाबोधिमन्दिरने उच्च चूड़ावलम्बी हो कर पुनः बौद्धस्मृतिको जगा दिया। किन्तु अब भी यहांकी कितनीही सम्पत्ति कलकत्तेके जादूघरमें संर-क्षित हैं।

वायुपुराणीय गयामाहात्म्यमें बोधगया भी एक हिन्दू-तीर्थके जैसा गिना जाता है। यहांका बोधिवृक्षका दर्शन तथा उसके नीचे पिण्डदान अत्यन्तपुण्यजनक है।

बोधघनाचार्य (सं० पु०) एक उपाध्याय। ये बोधानन्द-घन और अहोवलशास्त्री नामसे प्रसिद्ध थे।

बोधज्ञ (सं० पु०) बोधं अभिप्रायं जानातीति ज्ञा-क। अभि-प्रायवेत्ता, श्रीकृष्ण।

बोधन (सं० क्ली०) बुध-णिच्-ल्युट्। १ गन्धदीप, गंध-दीप देना। २ वेदन, ज्ञापन, जताना। ३ विज्ञापन, इस्त-हार। ४ उद्दीपन, अग्नि या दीपक आदिको प्रज्वलित करना। ५ ज्ञान। ६ चैतन्य-सम्पादन। यथा—दुर्गादेवीका बोधन। आश्विन मासमें अकालमें रामचन्द्रने रावण वधके लिए भगवती दुर्गाका बोधन किया था। शास्त्रमें बोधनकी व्यवस्थादिके विषयमें इस प्रकार लिखा है,—

"इषे मास्यसिते पक्षे कन्याराशिगते रवौ।
"नवम्यां बोधयेद्देवीं क्रीड़ाकौतुकमङ्गलैः।"

अत्र कृष्णादित्वादिपे इत्यपि गौणाश्विनपरं।' (तिथितत्त्व)

रविके कन्याराशिमें पहुंचने पर, अर्थात् आश्विन मास-में कृष्णपक्षकी नवमी तिथिमें देवीका यथाविधान बोधन करना चाहिए। इस स्थानमें 'आश्विन' पदसे मतलब गौणाश्विन-से है। नवमी आदि कल्पस्थलमें प्रातःकालमें कल्पारम्भ हो कर सायंकालमें बिल्वतरुमूलमें देवीका बोधन किया जाता है। कृष्णा-नवमीसे ले कर शुक्ला-दशमी अर्थात् विजयादशमी तक प्रति दिन देवीकी पूजा करनी चाहिये। नवमी बोधन आश्विन मासमें ही कहा गया है। अन्यत्र इस प्रकार लिखा है।

"आर्द्रायं बोधयेद्देवीं मूलेनैव प्रवेशयेत्।
तिथिनक्षत्रयोर्योगे द्वयोरेवानुपालनम्।
योगाभावे तिथिर्ग्राह्या देव्याः पूजनकर्म्मणि।
कृष्णनवम्यामार्द्रायोगो विधौ मन्त्रे च श्रूयते॥"

लिङ्गपुराणके मतसे—

कन्यायां कृष्णपक्षे तु पूजयितत्वाद्रभे दिवा।
नवम्यां बोधयेद्देवी महाविभव विस्तरैः॥" (तिथितत्त्व)

आर्द्रा नक्षत्रमें देवीका बोधन करना चाहिए। इससे मालूम होता है, कि आर्द्रानक्षत्र-युक्त नवमी तिथि ही बोधनके लिए प्रशस्त दिन है। परन्तु प्रति वर्ष गौणाश्विन कृष्णानवमीमें आर्द्रायोग सम्भवपर नहीं, अर्थात् किसी वर्ष पड़ा और किसीमें न पड़ा, ऐसी दशामें 'आर्द्रायां बोधयेत्' किस प्रकार सम्भव हो सकता है। इसकी मीमांसा शास्त्रोंमें इस प्रकार है, कि नवमीके दिन ही बोधन होगा; हां, यदि उस नवमीमें आर्द्रा नक्षत्रका योग हुआ तो बहुत ही उत्तम है। अन्यथा आर्द्रा नक्षत्रके विना बोधन हो नहीं हो सकता, ऐसा नहीं है।

'अकालमें बोधन करना चाहिए' यहां अकाल शब्दका अर्थ देवताओंकी रात्रि है। कारण, उत्तरायण देवताओंके दिन हैं और दक्षिणायण उनकी रात्रि। देवताओंकी रात्रि-में कोई भी कार्य करना प्रशस्त नहीं। इसलिए "अकाले ब्रह्मणा बोधः" इस प्रकार कहा गया है। रात्रि निद्राका समय है, इसलिए बोधन करके पूजा की जाती है।

"अथैतद्दक्षिणायनं देवानां रात्रिरिति एवञ्च।
रात्रावेव महामाया ब्रह्मणा बोधिता पुरा।
तथैव च नराः कुर्युः प्रतिसंवत्सरं नृपः॥"

नवमी तिथि यदि उभय दिनमें पूर्वाह्नमें ही प्राप्त हो और दूसरे दिन नक्षत्र-लाभ अर्थात् आर्द्रा नक्षत्र हो, तो दूसरे दिन ही बोधन होगा। युग्मादर होनेसे पहले दिन नहीं होगा और दोनों ही दिन यदि पूर्वाह्न-लाभमें और नक्षत्रका योग न हो, तो पूर्व दिनमें बोधन होगा। कारण,

ऐसे स्थलमें केवल तिथिमें ही बोधन होगा और तिथि कृत्य होनेसे युग्मादर ही ग्रहणीय है।

"उभयदिने पूर्वाह्णे नवमीलाभे परत्रार्द्रालाभे परत्र बोधनं नतु युग्मात् पूर्वत्र। युग्मबाधकपूर्वाह्णस्य बाधकनक्षत्रानुरोधात् दिवा नक्षत्रालाभे तु पूर्वाह्ण एव नवम्यां उभयत्र पूर्वाह्णलाभे पूर्व दिन एव युग्मात्। अत्र केवलनवम्यां बोधनविधिर्नक्षत्रस्यापि गुणफलत्वाच्च।" तिथितत्त्व)

केवल नवमीमें ही बोधन प्रशस्त है। यदि नवमीके दिन बोधन न हुआ, तो शुक्ल चान्द्राश्विनकी षष्ठीतिथिको सायंकालमें बोधन करके दूसरे दिन सप्तमीको पूजा करना चाहिये। षष्ठीमें बोधन असामर्थ्य प्रयुक्त ही कहा गया है। अब कुल प्रथानुसार षष्ठी वा नवमीके दिन बोधन हुआ करता है।

षष्ठीके दिन बोधनस्थलमें यदि पूर्व दिन सायंकालमें षष्ठी प्राप्त हो और दूसरे दिन यदि सायंकालमें प्राप्त न हो तो पूर्व दिन सायंकालमें देवीका बोधन और दूसरे दिन आमन्त्रण अधिवास होगा। यदि वे दोनों दिन ही सायंकालमें षष्ठी लाभ हो, तो दूसरे दिन ही बोधन होगा।

'यदा तु पूर्वदिने सायं षष्ठीलाभः परदिने सायं विना षष्ठीलाभः तदा पूर्वेद्युर्बोधनं परदिने सायमामन्त्रणं, यदा तूभयदिने सायं षष्ठ्यलाभस्तदा परेऽहनि पूर्वाह्णे षष्ठ्यां बोधनं, बोधयेद्बिल्वशाखायां षष्ठ्यां देवीं दलेषु च।

षष्ठ्यां बोधनंतु नक्षत्रानुपदेशाच्च तदादरः॥" (तिथितत्त्व)

बोधनमें सङ्कल्पके स्थानमें विशेष फलकामी होनेसे बोधन इस पदका उल्लेख होगा। देवीके बोधनका मन्त्र—

"इषे मास्यसिते पक्षे नवम्यां चार्द्रयोगतः।
श्रीवृक्षे बोधयामि त्वां यावत् पूजां करोम्यहं॥
ऐं रावणस्य वधार्थाय रामास्यानुग्रहाय च।
अकाले ब्रह्मणा बोधा देव्यास्त्वयि कृतः पुरा॥"
(पूजापद्धति)

कालिकापुराणमें लिखा है, कि अष्टादशभुजाका बोधन तथा षष्ठीमें दशभुजाका बोधन करना सङ्गत नहीं है। दशभुजा ही बोधन षष्ठी और नवमी दोनों तिथियोंमें हुआ करता है। यह शास्त्र और लोकाचारमें प्रसिद्ध है। शरत्कालमें दशभुजा दुर्गादेवीका बोधन कहा गया है, इसीलिए उनका नाम 'सारदा' पड़ा है। अतएव सारदा दशभुजा दुर्गाका षष्ठी और नवमी तिथिमें बोधन करना चाहिए।

बोधनी (सं० स्त्री०) बुध भावे ल्युट्, ङीप्। १ बोध, ज्ञान। २ पीपलका पेड़। ३ प्रबोधनी एकादशी, कार्त्तिक मासकी शुक्ला एकादशी। इस दिन भगवान् विष्णु सो कर उठते हैं, इसीसे इसका बोधनी नाम पड़ा है। यह अति पुण्य दिन है। इसमें स्नान दानादि करनेसे अनन्त फल लाभ होता है।

"शयनी बोधनी मध्ये या कृष्णैकादशी भवेत्।
सैवोपोष्या गृहस्थेन नान्या कृष्णा कदाचन॥" (तिथितत्त्व)

बोधनीय (सं० त्रि०) बुध् कर्मणि अनीयर्। बोध्य, समझमें आने लायक।

बोधपृथ्वीधर (सं० पु०) एक वैदान्तिक।

बोधयितृ (सं० त्रि०) बुध-णिच् तृच्। १ जो ज्ञानमार्ग सुझा देते हैं, गुरु। २ वैतालिक, जो स्तुतिपाठ द्वारा सबेरे जगाया करता है।

बोधयिष्णु (सं० त्रि०) जो नींद तोड़नेमें इच्छुक हो।

बोधरायाचार्य (सं० पु०) माध्व सम्प्रदायके प्रधान गुरु। ये सत्यवीरतीर्थ नामसे प्रसिद्ध थे।

बोधवासर (सं० पु०) बोधस्य भगवतो मायानिद्राया प्रबोधस्य वासरः। भगवान्‌विष्णुका प्रबोध दिन। उत्थानैकादशी, इस दिन भगवान्‌विष्णु सो कर उठते हैं। हरिभक्तिविलासमें लिखा है, कि यदि वैष्णव यावज्जीवन कैसा भी पुण्यकर्म क्यों न करे, पर वह यदि बोधवासर अर्थात् उत्थान एकादशी न करे, तो उसके किये हुए सभी पुण्य निष्फल होते हैं।

"जन्मप्रभृति यत् पुण्यं नरेणोपार्जितं भुवि।
वृथा भवति तत् सर्वं न कृत्वा बोधवासरम्।
(हरिभक्तिविलास)

बोधात्मा (सं० पु०) जैनमतानुसार ज्ञान और प्रज्ञायुक्त आत्मा।

बोधान (सं० पु०) बुध्यते इति बुध-आनच्। १ गोष्पति, बृहस्पति। २ विष्णु।

बोधानन्दघन (सं० पु०) आचार्यभेद।

बोधायन—ब्रह्मसूत्रवृत्तिके प्रणेता। रामानुजने अपने श्रीभाष्यमें इनका नामोल्लेख किया है। ये भगवद्गीता और दश उपनिषद्‌की टीका लिख गये हैं।

बोधारण्ययति (सं० पु०) तत्त्वकौमुदीव्याख्यानके प्रणेता, भारती यतिके गुरु।

बोधि (सं० पु०) बुध-(सर्वधातुभ्य इन्। उण् ४।११७) इति इन्। १ समाधिभेद। २ पिप्पलवृक्ष, पीपलका पेड़। ३ बोध, ज्ञान। (त्रि०) ४ ज्ञाता।

बोधित (सं० त्रि० बुध-णिच्-क्त। ज्ञापित, जताया हुआ।

बोधितरु (सं० पु०) बोधिरेव तरुः। १ अश्वत्थवृक्ष, पीपलका पेड़। २ गयामें स्थित पीपलका वह पेड़ जिसके नीचे बुद्ध भगवानने संबोधि (बुद्धत्व) प्राप्त की थी। बौद्धोंके धर्मग्रन्थोंके अनुसार इस वृक्षका कल्पान्तमें भी नाश नहीं होता और इसीके नीचे बुद्धगण सदा संबोधि प्राप्त करते हैं।

बोधितव्य (सं० त्रि०) बुध-णिच्-तव्य। ज्ञापितव्य।

बोधिद (सं० पु०) अर्हत्‌भेद।

बोधिद्रुम (सं० पु०) बोधिरेव द्रुमः। बोधितरु देखो।

बोधिधर्म (सं० पु०) बौद्धधर्माचार्य। इनका पूर्वनाम बोधिधन है।

बोधिन् (सं० त्रि०) ज्ञात, प्रबुद्ध।

बोधिभद्र (सं० पु०) एक बौद्धाचार्य।

बोधिमण्ड (सं० पु०) बोधिद्रुमके नीचे जिस वज्रासन पर बैठ कर शाक्यमुनिने ज्ञानलाभ किया था, पृथ्वीसे उत्थित उसी आसनका नाम।

बोधिमण्डल (सं० क्ली०) वह आसन जिस पर बैठ कर शाक्यसिंहने संबोधि प्राप्त की थी।

बोधिसङ्घाराम—बौद्ध संघारामभेद। बोधगया देखो।

बोधिसत्त्व (सं० क्ली०) बोधि बोधवत् सत्त्वं। बुद्धविशेष, वह जो बुद्धत्व प्राप्त करनेका अधिकारी हो, पर बुद्ध न हो। बोधिसत्त्वकी तीन अवस्थाएं होती हैं जिन्हें पार करने पर बुद्धत्वकी प्राप्ति होती है।

बोधिसिद्धि—सहस्राख्य नामक वेदान्तग्रन्थके रचयिता।

बोधेन्द्र—आत्मबोधटीका भावप्रकाशिका, नामरसायन, नामरसोदय और हरिहरभेदधिक्कार प्रभृति संस्कृत ग्रन्थके प्रणेता।

बोधेय (सं० पु०) धर्मसंप्रदाय विशेष।

बोध्य (सं० त्रि०) बुध-ण्यत्। बोधयोग्य, बोधनीय।

बोना (हिं० क्रि०) १ किसी दाने या फलके बीजको इसलिये मट्टीमें डालना जिसमें उसमेंसे अंकुर फूटे और पौधा उत्पन्न हो। २ बिखराना, इधर उधर डालना।

बोवा (हिं० पु०) १ स्तन, थन। २ गट्ठर, गठरी। ३ घरका साज समान, अंगड़ खंगड़।

बोब्बो (हिं० स्त्री०) दाक्षिणात्यमें पश्चिमी घाटकी पहाड़ियोंमें होनेवाला एक प्रकारका सदाबहार पेड़। यह पुन्नाग या सुलताना चंपाकी जातिका होता है।

बोर (हिं० पु०) १ डुबानेकी क्रिया। २ गुंबजके आकारका एक प्रकारका गहना। यह सिर पर पहना जाता है और इसमें मीनाकारीका काम होता है। रत्नादि भी इसमें जड़े हुए होते हैं। ३ चाँदी या सोनेका बना हुआ गोल और कंगूरेदार घुंघरू। यह आभूषणोंमें गूथा जाता है।

बोरका (हिं० पु०) १ दवात। २ मिट्टीकी दवात। इसमें लड़के खड़िया घोल कर रखते हैं।

बोरना (हिं० क्रि०) १ जल या किसी और द्रव्य पदार्थमें निमग्न कर देना, डुबाना। २ कलंकित करना, बदनाम कर देना। ३ युक्त या आवेष्टित करना। ४ डुबा कर भिगोना। ५ घुले रंगमें डुबा कर रंगना।

बोरसी (हिं० स्त्री०) मट्टीका बरतन जिसमें आग रख कर जलाते हैं, अंगीठी।

बोरा (हिं० पु०) १ टाटका बना हुआ थैला। इसमें अनाज आदि रखते हैं। २ चाँदी या सोनेका बना छोटा घुंघरू।

बोरिका (हिं० पु०) मट्टीका एक प्रकारका बरतन। इसमें लड़के लिखनेके लिये खड़िया घोल कर रखते हैं।

बोरिया (हिं० स्त्री०) छोटा थैला। (फा० पु०) २ बिस्तरा, चटाई।

बोरी (हिं० स्त्री०) टाटकी छोटी थैली, छोटा बोरा।

बोरो (हिं० पु०) एक प्रकारका धान। साधारणतः धान तीन प्रकारका होता है, आउस, आमन, बोरो। यह धान नदीके किनारेकी सीड़में बोया जाता है और बहुत मोटा होता है।

बोरोबांस (हिं० पु०) पूर्वी बङ्गालमें होनेवाला एक प्रकारका बांस।

बोर्ड (अं० पु०) १ किसी स्थायी कार्यके लिये बनी हुई समिति। २ कागजकी मोटी दफ्ती। ३ मालके मामलोंके फैसले या प्रबंधके लिये बनी हुई समिति या कमेटी।

बोर्डिंग हाउस (अं० पु०) वह घर जो विद्यार्थियोंके रहनेके लिये बना हो, छात्रावास।

बोलंगीबांस (हिं० पु०) उड़ीसा और चट्टग्रामकी ओर होनेवाला एक प्रकारका बांस। यह घरोंमें लगता है और टोकर बनानेके काममें आता है।

बोल (हिं० पु०) १ वचन, वाणी। २ व्यंग्य, लगती हुई बात। ३ कथन वा प्रतिज्ञा। ४ बाजोंका बंधा हुआ शब्द। ५ प्रतिज्ञा, वादा। ६ संख्या, अदद। ७ गीतका टुकड़ा, अंतरा। ८ एक प्रकारका सुगंधित गोंद। इसका स्वाद कड़ुआ होता है। यह गूगलकी जातिके एक पेड़से निकलता है।

बोलचाल (हिं० स्त्री०) १ कथोपकथन, बातचीत। २ मेल मिलाप, परस्पर सद्भाव। ३ चलती भाषा, रोजमर्रा। ४ हस्तक्षेप, छेड़छाड़।

बोलता (हिं० पु०) १ ज्ञान कराने और बोलनेवाला तत्त्व, आत्मा। २ अर्थयुक्त शब्द बोलनेवाला प्राणी, मनुष्य। ३ हुक्का। ४ जीवनतत्त्व, प्राण। (वि०) ५ वाक्पटु, वाचाल।

बोलती (हिं० स्त्री०) वाक्, वाणी।

बोलना (हिं० क्रि०) १ मुंहसे शब्द निकालना। २ किसी वस्तुका शब्द उत्पन्न करना। ३ कुछ कहना, कथन करना।

बोलवाना (हिं० क्रि०) १ उच्चारण कराना। २ बुलवाना देखो।

बोलवाला (अ० पु०) एक बहुत ऊंचा सदाबहार पेड़। इसकी लकड़ी बहुत मजबूत और भीतर ललाई लिये बहुत अच्छी होती है।

बोलसर (हिं० पु०) मौलसिरी।

बोलांस (हिं० पु०) वह अंश या भाग जो किसीका कह दिया गया हो।

बोलाना (हिं० वि०) बुलाना देखो।

बोलावा (हिं० पु०) निमन्त्रण, आह्वान।

बोली (हिं० स्त्री०) १ वाणी, मुंहसे निकली हुई आवाज। २ अर्थयुक्त शब्द या वाक्य, वचन। ३ नीलाम करनेवाले और लेनेवालेका जोरसे दामका कहना। ४ वह शब्द जिसका व्यवहार किसी प्रदेशके निवासी अपने भाव या विचार प्रकट करनेके लिये संकेत रूपसे करते हैं, भाषा। ५ अर्थयुक्त शब्द या वाक्य।

बोलीदार (हिं० पु०) वह आसामी जिसे जोतनेके लिये खेत यों ही जबानी कह कर दिया जाय, कोई लिखा-पढ़ी न हो।

बोल्लाह (हिं० पु०) घोड़ोंकी एक जाति।

बोवना (हिं० क्रि०) बोना देखो।

बोवाई (हिं० स्त्री०) बोआई देखो।

बोवाना (हिं० क्रि०) बोनेका काम दूसरेसे कराना।

बोह (हिं० स्त्री०) डुबकी, गोता।

बोहनी (हिं० स्त्री०) १ किसी सौदेकी पहली बिक्री। २ किसी दिनकी पहली बिक्री। जब तक बोहनी नहीं हुई रहती, तब तक दूकानदार किसीको उधार सौदा नहीं देते। उनका विश्वास है कि पहली बिक्री यदि अच्छी होगी, तो दिन भर अच्छी होगी। इस पहली बिक्रीका शकुन किसी समय सब देशोंमें माना जाता था।

बोहारना (हिं० क्रि०) बुहारना देखो।

बोहारी (हिं० स्त्री०) झाड़ू।

बोहिया (हिं० स्त्री०) चीनमें होनेवाली एक प्रकारकी चाय। इसकी पत्तियां छोटी और काली होती हैं।

बौंड (हिं० स्त्री०) १ टहनी जो दूर तक डोरीके रूपमें गई हो। २ लता, बेल।

बौंडना (हिं० क्रि०) लताकी तरह बढ़ना, टहनी फेंकना।

बौंडर (हिं० पु०) घूम घूम कर चलनेवाली वायुका झोंका, बगूला।

बौंड़ी (हिं० स्त्री०) १ पौधों या लताओंके वे कच्चे फल जो साररहित होते हैं। २ फली, छीमी।

बौआना (हिं० क्रि०) १ स्वप्नावस्थाका प्रलाप, सपनेमें कुछ कहना।

बौखल (हिं० वि०) पागल, सनकी।

बौखलाना (हिं० क्रि०) कुछ कुछ पागल हो जाना, सनक जाना।

बौखा (हिं० स्त्री०) हवाका तेज झोंका जो वेगमें आंधीसे कम हो।

बौछाड़ (हिं० स्त्री०) १ वायुके झोंकेसे तिरछी आती हुई बूंदोंका समूह, झटास। २ लगातार बात पर बात जो किसीसे कही जाय। ३ वर्षाको बूंदोंके समान किसी वस्तुका बहुत अधिक संख्यामें कहीं आ कर पड़ना। ४ बहुत-सा देते जाना या सामने रखते जाना। ५ व्यंग्य-पूर्ण वाक्य जो किसीको लक्ष्य करके कहा जाय, ताना।

बौछार (हिं० स्त्री०) बौछाड़ देखो।

बौड़हा (हिं० वि०) पागल, बावला।

बौता (हिं० पु०) समुद्रमें तैरता हुआ निशान, तिरौंदा।

बौद्ध (सं० क्ली०) बुद्धेन प्रणीतं बुद्ध-अण्। १ बुद्धकृत निरीश्वर शास्त्र। मत्स्यपुराणमें लिखा है, कि वृहस्पति इस शास्त्रके प्रवर्त्तक थे। (मत्स्यपु० २४ अ०) २ बुद्ध-मतावलम्बी धर्मसम्प्रदाय। बुद्धशास्त्रं वेत्ति अधीते वा अण्। (त्रि०) ३ बुद्धशास्त्राध्यायी। ४ बुद्धशास्त्र-वेत्ता। पर्याय—भिन्नक, क्षपण, अहोक, वैनासिक।

बौद्धधर्म—भगवान बुद्ध द्वारा प्रवर्त्तित धर्म। भगवान शाक्यबुद्धके भक्त जिस धर्मके अनुसार चलते हैं, वही बौद्धधर्म है।

बौद्धधर्मकी उत्पत्ति।

भारतवर्षमें बौद्धधर्मका आविर्भाव कबसे हुआ, उसका ठीक ठीक पता लगाना कठिन है। पर हां, इतना स्थिर हो चुका है, कि उपनिषद्‌युगके अवसानके साथ ही साथ बौद्धधर्मका आविर्भाव हुआ। कारण, बौद्धधर्मके त्रिपिटक और सूत्रकी पर्यालोचना करनेसे साफ साफ मालूम होता है, कि उस समय उपनिषत् या वेदान्तमत उन्नतिकी चरम-सीमा पर था। योगसाधना वेदान्तका अङ्ग नहीं होने पर भी यथार्थमें वैदान्तिकोंने उसकी पूर्णाङ्गता सम्पादन करनेमें विरुद्धमत प्रकाश नहीं किया है। योगसूत्रकार पतञ्जलिके समयमें योगधर्मकी जितनी उन्नति तथा पुष्टि हुई थी, बुद्धदेवके आविर्भावकालमें उतना जनसमाजमें प्रचार न रहने पर भी योगचर्य्या जो भिक्षु या संन्यासिसमाजमें विशेष आदृत और अनुष्ठित थीं, यह प्राचीन बौद्धग्रन्थादिकी आलोचना करनेसे स्पष्टतः प्रतीत होता है। बुद्ध-प्रवर्त्तित कर्मवाद और आत्माका देहा-न्तरवाद उस समय जनसाधारणमें प्रचारित था, इसमें सन्देह नहीं। बौद्धगण यद्यपि आत्माका अस्तित्व स्वीकार नहीं करते, किन्तु वे कर्मफलको अपने धर्मतत्त्व-का सार मानते हैं। जीव या आत्माका यह धर्म बौद्ध-मनोविज्ञानका सम्पूर्ण विरोधी होने पर भी उस समय-के वेदान्त और योगतत्त्वके प्रचारविषयके निदर्शन स्वरूप-में बौद्धोंको धर्मनीतिमें स्थान मिला था।

बौद्धधर्मके आविर्भावके समय शिक्षित और चिन्ता-शील भारतवासीकी पारलौकिक मुक्तिचिन्ता गभीर दुश्चिन्ता (बौद्धमतसे सम्वेग) में परिणत हुई। तब वे किस आदर्शका लक्ष्य कर धर्म और नीतिके पथ पर अग्र-सर हुए थे, उसकी आलोचना करनेसे जान पड़ता है, कि उस समय सभी कष्टमय जीवनकी यन्त्रणा, वार्द्धक्य तथा मृत्युकी आशङ्कासे डर गए थे। वारम्वार जन्म-परिग्रहके भयने उनकी इस पीड़ादायक चिन्ताको और भी भयानक बना दिया था। सभी सम्प्रदायके मनुष्य उस समय जीवनको अत्यन्त गुरुभार समझते और इसी को ही मानवजीवनके एकमात्र अविमिश्र दुःखका कारण मानते थे। इसीलिए सभी पुनर्जन्म या 'संसारयन्त्रणा' से मुक्तिलाभ करनेमें व्यतिव्यस्त थे। सबोंका यह दृढ़ विश्वास था, कि पुनर्जन्मनिवारणके विभिन्न उपाय हैं और उनका अनुष्ठान करनेसे ही मुक्तिलाभका पथ प्रशस्त होता है। अज्ञान या अविद्याकी पराजय और श्रेष्ठतम सत्य (सम्बोधि) का लाभ करना ही इस पथाश्रयका एकमात्र उपाय है। वैदान्तिकोंका कहना है, कि परमा-त्मा और जीवात्माके एकान्त भावमें एक साथ संश्रयका नाम सत्य या तत्त्वज्ञान है। सांख्य-वादी कहते हैं, कि आत्मा अनन्त तथा विशुद्ध है और भूत या तत्त्वसे सम्पूर्ण विच्छिन्न है। आत्मा देहावच्छिन्न रहने पर भी कदापि पवित्रता नष्ट नहीं करती। बौद्धगण आत्मा या परमात्मारूप किसी पदार्थका अस्तित्व स्वीकार नहीं करते।

आर्यसत्य।

सम्बोधि लाभके बाद महात्मा शाक्यबुद्धने आर्य-सत्य और प्रतीत्य-समुत्पादका प्रचार किया। बुद्धदेव शब्द देखो। यही दो उनके प्रचारित धर्मकी मूलभित्ति है; यथा—दुःख, समुदय, निरोध तथा प्रतिपद् या मार्ग ये ही चार सत्य आर्यसत्य हैं। दुःख है, यह बात कोई

अस्वीकार नहीं कर सकते। दुःख रहना हो उसका कारण (समुदय) है। इस दुःखका निरोध करनेके लिए अवश्य ही कोई पथ या उपाय (मार्ग) है।

प्रतीत्यसमुत्पाद।

प्रतीत्यसमुत्पाद वारह प्रकारका है; इसका दूसरा नाम 'द्वादशनिदान' भी है। इस द्वादश-निदानका उद्देश्य है दुःखका यथार्थ कारण निर्णय करना। आयुर्वेदके साथ निदानका जो सम्बन्ध है, आर्यसत्यके साथ द्वादश-निदानका भी वही सम्बन्ध है। द्वादशनिदानके नाम ये हैं;—अविद्या, संस्कार, विज्ञान, नामरूप, षडायतन, स्पर्श, वेदना, तृष्णा, उपादान, भव, जाति, जरामरण, शोक, परिवेदना, दुःख, दौर्मनस्य, उपायास इत्यादि।

बुद्धदेव शब्द देखो।

मनुष्य पहले अविद्याच्छन्न अर्थात् अज्ञान निद्राभिभूत रहते हैं। थोड़ी चेतना लाभ करनेसे ही वे कितने ही संस्कारके वशीभूत हो जाते हैं—उस समय भी उनके पूर्णचेतना नहीं होती। संस्कारके वाद विज्ञान या चेतना होती है। चेतना होनेसे द्रव्यका नाम और रूपका ज्ञान होता है। नामरूपकी उपलब्धिके वाद षड़ायतन अर्थात् षड़िन्द्रियकी क्रिया आरम्भ होती है जिससे वाहरी वस्तुके साथ संस्पर्श होता है। संस्पर्शसे वेदना या अनुभूति और अनुभूतिसे तृष्णा अर्थात् सुखप्राप्ति तथा दुःखपरिहारकी इच्छा होती है। तृष्णासे कार्यकी चेष्टा या उपादान उत्पन्न होता है। चेष्टाका आरम्भ होनेसे एक अवस्थाकी उत्पत्ति होती है जो अच्छी या बुरी भी हो सकती है; इस अवस्थाका नाम है भव। इसके वाद ही जाति या नवजीवनकी उत्पत्ति होती है। जिसकी उत्पत्ति होती है, उसका विनाश अवश्यम्भावी है; सुतरां जीवनमें शोक, दुःख जरामरण प्रभृतिका अवश्य ही भोग करना होगा। जिससे इस जरामरण दुःखादिसे निस्तार मिले, उस पथका आविष्कार करना ही बुद्धधर्मका मुख्य उद्देश्य है। यहां भी योगशास्त्रके साथ उक्त मतका उतना विरोध नहीं है। अविद्या ही सभी अमङ्गलका निदान है। इसका विनाश करना दोनोंका ही उद्देश्य है। किन्तु इसमें एक कठिन समस्या है। योगशास्त्रकार दार्शनिक शाश्वतवादी—वे अमृतत्व और अपरिवर्त्तनशीलताके आकांक्षी हैं। जो क्षणस्थायी तथा परिवर्त्तनशील हैं, वही अमङ्गल है और इसका परिहार करना ही जीवोंका प्रधान कर्त्तव्य है। किन्तु बौद्धधर्म आत्माके अस्तित्वका स्वीकार नहीं करते। आत्माके सम्बन्धमें तीन मत प्रवल हैं:—

(१) शाश्वतवाद—आत्मा इहलोक तथा परलोक दोनों लोकमें वर्त्तमान रहती है।

(२) उच्छेदवाद—आत्मा केवल इसलोकमें ही वर्तमान रहती है।

(३) बौद्धमत—आत्मा इहलोक अथवा परलोकमें प्रकृतिरूपसे वर्त्तमान नहीं रहती।

हिन्दूधर्म और बौद्धधर्मके कर्मवादमें भी प्रभेद है। हिन्दूगण आत्माके अमरत्व पर विश्वास करते हैं और इनका कर्मवाद इसी विश्वासके ऊपर संस्थापित है। आत्माके अमरत्व पर अविश्वासी बौद्धोंने ऐसा न मान कर कर्मवादको कांटछांट कर अपने मतानुसार कर लिया है। बौद्धधर्ममें कर्मका इस प्रकार वर्णन किया है,—"मनुष्यको मृत्यु होनेसे उसके भिन्न भिन्न खण्ड भी उसीके साथ विनष्ट होते हैं। किन्तु उसके कर्म द्वारा विनष्ट खण्डकी जगहमें नये खण्ड उपस्थित होते हैं तथा इन्हीं सब खण्डोंके द्वारा गठित अन्य एक जीव परलोकमें जन्मग्रहण करता है। यद्यपि यह जीव भिन्न खण्ड द्वारा गठित है, किन्तु कर्म एक रहनेके कारण यह जीव और मृत मनुष्य दोनों ही एक है। सुतरां संसारमें जीव यद्यपि असंख्य जन्ममृत्युके अधीन है, तो भी एक कर्मसूत्र द्वारा ह उसका एकत्व स्थिर रहता है।"

ऐसी नीति ज्ञान या युक्ति वहिर्भूत-सी प्रतीत होने पर भी कुछ विरोध होता जाता नहीं है। कारण, बौद्धधर्म मानवज्ञानके अतीत और सदा सत्यके ऊपर प्रतिष्ठित है ऐसा बौद्धगण विश्वास करते हैं।

"सर्वम् अनित्यम्" सभी अनित्य क्षणस्थायी हैं—यह बौद्धधर्मका एक मूलसूत्र है। इस मूलसूत्र पर वहुतेरे आक्षेप करते हैं,—"यदि सभी अनित्य या क्षणस्थायी हैं, तो कर्म किस प्रकार जन्मजन्मान्तरमें स्थायी होगा?" इसके उत्तरमें कहा जा सकता है, कि समस्त पार्थिव अनित्य हैं। जिस कर्म द्वारा मानवजीवन

जन्मजन्मान्तरमें ग्रथित है, वह आदर्शसूत्र पार्थिव अनित्य वस्तुके मध्य नहीं गिना जाता।

एक और भी कठिन समस्या है। बौद्धधर्म ग्रन्थमें बहुत-सी पौराणिक गल्प पायी जाती हैं।

इन सब विषयोंकी आलोचना करनेसे यही मालूम होता है, कि परवर्त्ती बौद्धशास्त्रग्रंथमें जिस धर्मकी कथा पाई जाती है, महात्मा बुद्धका प्रचारित मूलधर्म उससे पृथक् है। किसी किसी पण्डितका कहना है, कि महात्मा शाक्यबुद्धने कर्मवादका प्रचार नहीं किया और न अतिरञ्जित-उपन्यास, रूपक गल्प या आख्यायिका ही उनके ज्ञानगर्भ तथा तत्त्वज्ञानपूर्ण उपदेशको कलङ्कित कर सकती है। उनके निर्वाणप्राप्तिके बाद जितने धर्म-ग्रंथ सङ्कलित हुए हैं, उतने ही वे नानारूप आवर्जना तथा जंजालजालसे पूर्ण हैं।

अवान्तर विषयके सम्बन्धमें जो कुछ हो, बौद्धधर्म-को मूलनीतिका कोई विशेष परिवर्त्तन नहीं हुआ है। दार्शनिकसंज्ञा प्रदान करनेसे बौद्धधर्मको निरीश्वर मायावाद कहा जा सकता है। पाश्चात्य दार्शनिक बार्कली-का मायावाद भी इसी प्रकारका है। बाह्यजगत्‌की एक सत्ता है, इस भ्रान्त संस्कारके वशीभूत हो कर मनुष्य नाना प्रकारके भ्रममें पतित होते हैं। मनुष्य अपनी अनुभूतिके सिवा और कुछ अनुभव नहीं कर सकते, वे स्वयं ही अपनी अनुभूतिके कारण हैं। संसारके समस्त ज्ञात और ज्ञेयपदार्थ कर्त्ताके ज्ञानानुसार हैं। वे सभी 'अहं' अर्थात् 'मैं'-के फलस्वरूप हैं ; 'मैं' के लिये 'मेरे' द्वारा 'मुक'-में ही वर्त्तमान है। बार्कलीके मतसे ईश्वरवाद है, किन्तु बौद्धमतसे नहीं ; सिर्फ इतना ही प्रभेद है।

सत्त्वाका विभिन्न उपादान।

प्रत्येक जीवके दो विभिन्न उपादान हैं, नाम और रूप। नाम द्वारा मानसिक गुण और रूप द्वारा बाह्य-गुण प्रकाशित होते हैं। वेदना, संज्ञा, संस्कार तथा विज्ञान ये चार गुण 'नाम' द्वारा और मृत्तिका, वारि, अग्नि तथा मरुत् ये चार महाभूत तथा इनसे उत्पन्न सभी पदार्थ 'रूप' द्वारा प्रकाशित होते हैं।

उपर्युक्त सभी गुण या स्कन्धको समष्टि अथवा जन्म और पुनर्जन्मके कारणका नाम है कर्म। अतः ऐसा कहा जाता है, कि नाम और पुनर्जन्मकी धारा-वाहिक समष्टिका नाम संसार है। कर्मका आरम्भ नहीं, किन्तु अन्त हो सकता है। इस अवस्थाप्राप्तिके आठ पथ निर्दिष्ट हुए हैं।

मुक्तिपथ।

निर्वाणकामी जीवको चार अवस्थाका अतिक्रम करना पड़ता है। जो क्रमागत इन चार अवस्थाको प्राप्त हुए हैं, वे यथाक्रम श्रोतः आपन्न, सकृदागामी, अनागामी और अर्हत कहलाते हैं। इनका साधारण नाम श्रावक या सेवक है। प्रत्येक अवस्था फिर दो भागमें बंटी है ; जैसे मार्ग और फल।

मुक्तिकामीकी चार अवस्था।

(१) जिनने प्रथम अवस्था प्राप्त की है उनका नाम है श्रोतःआपन्न। इन्होंने संयोजन (मानवप्रवृत्ति) के प्रथम तीन बन्धनका अतिक्रम किया है, इन्हें अपाय या किसी विपद्‌का भय नहीं।

(२) जो फिरसे मनुष्ययोनिमें जन्म लेते हैं, वे सकृदागामी हैं। वे केवल सन्देहादि प्रथम तीन बन्धन-से मुक्ति नहीं पाते ; इसके सिवा उन्होंने राग (अनुराग, स्नेह, ममता), द्वेष और मोह इन तीन शत्रुओंको वशी-भूत किया है।

(३) जो अनागामी पांच बन्धनसे मुक्त हुए हैं। कामलोकमें उनका पुनर्जन्म न हो कर ब्रह्मलोकमें ही जन्म होगा।

(४) अर्हत्—जो समुदय अपवित्रता दूर कर समस्त क्लेशोंकी उपेक्षा करनेमें समर्थ हैं, किसी प्रकारके प्रलो-भनसे भी जो नीतिपथसे विच्युत नहीं होते, जिनके समस्त कर्त्तव्यकर्म सम्पन्न और सभी बन्धन छिन्न हुए हैं, वे ही अर्हत् हैं। वे चार प्रकारकी उच्चप्रकृति लाभ करते हैं—उनका फिर पुनर्जन्म नहीं होता।

निर्वाण।

जो उक्त चार अवस्थाका क्रमागत अतिक्रम कर मुक्ति पथके पथिक हैं, वे ही प्रकृत आर्य हैं। आर्यके जीवन-का मुख्य उद्देश्य है निर्वाणलाभ। निर्वाणके विषयमें बहुत कुछ कहना है, यहां पर संक्षेपमें दो एक बातें दी जाती हैं।

निर्वाण दो प्रकारका है—अर्हत् इस संसारमें रह कर जो निर्वाणलाभ करते हैं, वह वैदान्तिकोंका जीवन्मुक्ति कहा जा सकता है। यही प्रथम निर्वाण है। इसका दूसरा बौद्धनाम उपाधिशेष है। अन्य निर्वाणका नाम है परिनिर्वाण। मृत्युके बाद बुद्धगण इसी निर्वाणके अधिकारी होते हैं। इस निर्वाणलाभसे चिरकालके लिये सभी प्रकारकी पार्थिव यन्त्रणाका अवसान होता है। यह विशुद्ध आनन्दकी अवस्था तथा अनन्तकालस्थायी है।

इस परिनिर्वाण-प्राप्तिके बाद अनुभवक्षमता वर्त्तमान रहती है या नहीं, यही एक आलोच्य विषय है। बौद्धधर्मका मूलसूत्र ले कर विचार करनेमें निर्वाणप्राप्तिके बाद अनुभवक्षमताका रहना सम्भवपर प्रतीत नहीं होता, किन्तु इस विषयमें बौद्धोंके मनमें भी विषम सन्देह जान पड़ता है। कारण, उन्होंने जब बुद्धसे सुना, कि वे पूर्व जन्मकी सभी घटनाएं कह सकते हैं, तब उनके मनमें यह संस्कार हो सकता था, कि निर्वाणप्राप्तिके बाद भी स्मृति और अनुभव रहनेकी सम्भावना है। जो कुछ हो, इस सम्बन्धमें आलोचना करना महात्मा बुद्धका ही निषेध है।

धर्म-साधना।

निर्वाणप्राप्तिकी चेष्टा करनेमें बहुत ध्यानधारणाका प्रयोजन है। इस उच्च अवस्थाका आयोजन करनेमें जिस सोपानकी आवश्यकता है, उसका नाम भावना, (अर्थात् चर्चा या अनुशीलन) है। इसके चार स्तर हैं—मैत्री, करुणा, मुदिता (सन्तोष) और उपेक्षा। योगियोंकी साधनावस्थाके साथ इसका सादृश्य है। इसका दूसरा साधारण नाम ब्रह्मविहार है।

समयानुसार और भी एक भावनाका उल्लेख देखनेमें आता है। उसका नाम 'अशुभ' भावना अर्थात् शरीरमें जो सब घृणित भाव हैं, उनकी उपलब्धि है। यहां भावनाका अर्थ चर्चा नहीं; किन्तु उपलब्धि है। यह अशुभ दश प्रकारका है। पालिग्रन्थमें इस दश अशुभ भावनाके नाम ये हैं—१ उद्धुमातक, २ विनीलक, ३ विपुवक, ४ विच्छिद्दक, ५ विक्खायितक, ६ हतविक्खित्तक, ७ लोहितक, ८ पुढ़वक, ९ अट्ठिक। रक्त, मांस, अस्थि, कृमि प्रभृति द्वारा देहका जो अवस्थान्तर होता है, यह इस अशुभ द्वारा ही सूचित हुआ करता है।

उक्त दश प्रकारके अशुभ तथा चार प्रकारके ब्रह्मविहार ४० 'कम्मत्थान' या धर्म-कार्यके अङ्गविशेष विसुद्धिमग्गमें वर्णित है। ललितविस्तरमें ये सब १०८ धर्मालोकमुखके अन्तर्निविष्ट हैं। अशुभभावनामें एक प्रकारकी गूढ़ साधना भी है जिसका नाम कसिण अथवा कृत्स्नायतन है। इस साधनाके समय जिन दश वस्तुओंके प्रति मनःसंयोग कर भावना करनी होती है, उसके नाम ये हैं; यथा—मृत्, वारि, अग्नि, वायु, नील, पीत, लोहित, श्वेत, आलोक और शून्य या व्योम भावना।

उक्त चालीस प्रकारके मध्य दश प्रकारकी अनुस्मृतिका उल्लेख देखनेमें आता है। यथा—बुद्ध, धर्म, सङ्घ, देवता, नीति त्याग, मृत्यु, देह, आनापानस्मृति (निश्वास प्रश्वासकी नियमाकता) तथा शान्ति या निर्वाण।

आनापानस्मृति द्वारा निश्वास प्रश्वासके प्रति मन निविष्ट कर कितने ही निर्दिष्ट विषयकी चिन्ता करनी होती है; यह अति उच्च अङ्गकी समाधि है।

कमत्थानके मध्य 'आरुप्प' नामक चार विशेष हैं, ये भी ब्रह्मलोकानुगत हैं। इन चारोंके नाम हैं 'आकाशानाञ्चायतन (आकाशानन्त्यायतन) 'विञ्ञाणाञ्चायतन' (विज्ञानान्त्यायतन), 'आकिञ्चञ्ञायतन' (आकिञ्चन्यायतन) और 'नेवसञ्ञानासञ्ञायतन' (नैवसंज्ञा-नासंज्ञायतन)। जो ध्यान और समाधि द्वारा ये सब लोकविषयलाभ करनेमें समर्थ हैं उन्होंने ही धर्मकी अत्यन्त उच्च अवस्था प्राप्त की है। इससे भी एक उच्चतर अवस्था है जिसका नाम है संज्ञावेदितनिरोध। इस अवस्थामें साधकको विमोक्ष लाभ होता है।

यद्यपि कम्मत्थानके मध्य चार प्रकारके ध्यानका विशेष उल्लेख नहीं है, किन्तु स्वरूप मिला कर देखनेसे मालूम होगा, कि चार प्रकार ध्यानकी अवस्था साधनाके चार अङ्गविशेषरूपमें वर्णित है। यहां पर यह कह देना आवश्यक है, कि बौद्धधर्मप्रचलनसे बहुत पहले ही ध्यानकी प्रथा प्रचलित थी। किसी किसीके मतसे

ध्यानकी अवस्था पांच प्रकारकी वतलाई गई है। उन्होंने द्वितीय अवस्थाको दो भागोंमें वांटा है।

ध्यानका विषय कहनेमें समाधिका विषय भी कहना होता है। समाधिके नाना प्रकारके भेद देखनेमें आते हैं। बौद्धशास्त्रमें तीन प्रकारकी समाधिके नाम ये हैं—सवितर्क सविचार, अवितर्क विचारमात्र और अवितर्क अविचार। अन्य तीन प्रकारकी समाधिका नाम शून्यता, अनिमित्त (कारणहीन) और अप्पाणिहित (अप्रणिहित) या विशेष उद्देश्यविहीन है।

समाधिके दो सोपान हैं। निकृष्ट समाधिका नाम उपचारसमाधि और उत्कृष्ट समाधिका नाम अप्पना (अर्पणा) समाधि है। महायानमतावलम्वी बौद्धगण और भी अनेक प्रकारकी समाधि वतलाते हैं। प्रज्ञापारमिताग्रन्थमें १०८ प्रकारकी समाधिका उल्लेख मिलता है।

पूर्वकथित चालीस प्रकारके कम्मत्थानके अलावा और भी दो एकका उल्लेख देखा जाता है। आहारपटिक्कुलासञ्ञा (अर्थात् आहारप्रतिकूलसंज्ञा या आहार्य द्रव्यमें अपवित्रतावोध), चतुर्धातुवत्थान अर्थात् चार महाभूतका निर्णयकरण इत्यादि।

भूसंस्थान और जीवश्रेणीभेद।

बौद्धशास्त्रके मतसे विश्वब्रह्माण्डमें वहुसंख्यक चक्रवाल हैं। प्रत्येक चक्रवालमें विभिन्न पृथ्वी, सूर्य, चन्द्र, स्वर्ग और नरक हैं। हम लोगोंको पृथ्वीके केन्द्रस्थलमें मेरु अथवा सुमेरुपर्वत प्रतिष्ठित है। जिसके चारों ओर प्रधान प्रधान कुलाचल पर्वत और इन सव पर्वतोंका अतिक्रम कर चार महाद्वीप अवस्थित है। उत्तरमें उत्तरकुरु, मेरु पर्वतके दक्षिणमें जम्बूद्वीप (भारतवर्ष), पश्चिममें अपर-गोदान और पूर्वमें पूर्वविदेह वर्त्तमान है।

प्रत्येक गोलकमें तीन लोक या धातु है। सवसे निम्न कामलोक, उसके ऊपर रूपलोक और सर्व्वोपरि अरूपलोक है।

सवसे निम्न लोकमें छः प्रकारके देवताका वास है—१ चारों ओर पाल, २ तेंतीस देवता, ३ यमगण, ४ तुषितगण, ५ निर्माणरतिगण ६ परिनिर्मित और वशवर्त्तिगण। इनके सिवा मनुष्य, असुर, प्रेत और जीवलोक तथा नरक मिला कर कुल ग्यारह कामलोक हैं।*

रूपब्रह्मलोक सोलह भागोंमें विभक्त है। जिनने कामको जीत कर देवत्व लाभ किया है, वे अपने अधिकारानुसार इस लोकमें वास कर सकते हैं। इन लोकोंमेंसे १ला निम्नलोक ब्रह्मपारिसद्य, २रा ब्रह्मपुरोहित, ३रा महाब्रह्म, ४था परित्ताभ, ५वां अप्रमाणाभ, ६ठा आभास्वर, ७वां परीत्तशुभ, ८वां अप्रमाणशुभ, ९वां शुभकृत्स्न, १० वां बृहत्फल, ११वां असत्त्व, १२वां अवृह, १३वां अतपस, १४वाँ सुदर्श, १५वां सुदर्शन और १६वां सर्वोच्च लोक अकनिष्ठ है। प्रथम ध्यानके पहले, दूसरे और तोसरे स्तरमें जो पारदर्शी हैं वे प्रथमसे तृतोय लोकके अधिकारी होते हैं। द्वितीय ध्यानके अधिकारी चतुर्थसे षष्ठ लोकके वासोपयोगी हैं। तृतीय ध्यानके अधिकारी सातवेंसे नवें लोकमें, चतुर्थ ध्यानके अधिकारी दशवेंसे ग्यारहवेंमें और अनागामिगण वारहवेंसे सोलहवें लोकमें वास करनेके उपयुक्त हैं। रूपब्रह्मलोकके वाद अरूपब्रह्मलोक है। इसका पुनः भिन्न भिन्न स्तर निर्णीत हुआ है।

जीवोंके रहनेके लिए कुल इकतीस स्थान निर्दिष्ट हैं। सवसे निम्न स्थानका नाम नरक या निरय है। आठ प्रधान नरकका उल्लेख है, यथा—सञ्जीव, कालसूत्र, संघात, रौरव, महारौरव, तपन, प्रतापन और अवीचि। उक्त आठ नरकके सिवा और भी अनेक छोटे छोटे नरक देखनेमें आते हैं।

नरकके ऊपर इतरप्राणियोंका स्थान है। इसके ऊपर प्रेतलोक और उसके भी ऊपर असुर लोक है। असुरोंमें राहु सर्वप्रधान है। नरक और इससे ऊपर उक्त तीन लोक अपायलोक कहलाता है। यही भोगका स्थान है।

इकतीस स्थानके अलावा और भी एक लोक है जहां प्राणिगण अपने कर्मफलानुसार उच्च और नीचगति पा कर रहते हैं। जिसने अति उच्चपद पाया, उसकी भी घोर अधोगति हो सकती है। केवल बुद्ध, प्रत्येकबुद्ध और अर्हतोंकी अधोगति नहीं होती।

* ललितविस्तर, अंगुत्तरनिकाय और व्युत्पत्ति देखो।

निम्नलिखित रूपसे श्रेणीविभाग किया गया है,—(१) बुद्ध, (२) प्रत्येकबुद्ध, (३) अर्हत्, (४) देव, (५) ब्रह्म, (६) गन्धर्व, (७) गरुड़, (८) नाग, (९) यक्ष, (१०) कुम्भाण्ड, (११) असुर, (१२) राक्षस, (१३) प्रेत, (१४) नरकवासी।

उक्त श्रेणीविभागके मध्य केवल प्रथमोक्त तीन ही आलोच्य विषय हैं।

अर्हत्।

निर्वाणप्राप्तिके पूर्व चार सोपानका उल्लेख किया गया है। सर्वोच्च सोपान पर अर्हत्गण अवस्थित हैं। सामान्य मनुष्यकी अपेक्षा इनकी मानसिक शक्ति कहीं श्रेष्ठ है। ये अर्थ, धर्म, निरुक्ति और प्रतिभान यही चार प्रकारकी प्रतिसम्भिदासे सम्पन्न हैं। इसके सिवा इनके पांच प्रकारकी अभिज्ञा है। अभिज्ञा द्वारा वे अमानुषिक और आश्चर्यजनक कार्य करनेमें, पूर्व जन्मकी कथा स्मरण रखने, पृथिवीके सभी शब्द सुनने तथा उनके अर्थ समझने, पृथिवीकी समस्त घटनाएं देखने और जीवोंकी मृत्यु तथा पुनर्जन्म किस प्रकार होता है, उसे समझनेमें समर्थ हैं। इनके और एक प्रकारकी अभिज्ञा है जिसके द्वारा सभी नीच प्रवृत्ति समूल विनष्ट हो जाती हैं। अर्हत्गण इन्हीं आठ प्रकारकी विद्यासे विशिष्ट हैं। इनका सर्वप्रधान गुण प्रज्ञा है। इस प्रज्ञाके बलसे ही वे भवसमुद्र पार हो जाते और इसीलिए वे प्रज्ञाविमुक्त कहलाते हैं। अर्हतोंके निम्नश्रेणीस्थ अनागामी प्रभृति इस अवस्थाको लाभ नहीं कर सकते।

जो आर्य संज्ञा पानेके अधिकारी हैं, उनमेंसे अर्हत्गण ही सर्वश्रेष्ठ हैं। बहुत जगह आर्य, अर्हत् तथा श्रावक ये तीन शब्द एक ही अर्थमें व्यवहृत देखे जाते हैं।

परवर्त्तिकालमें महायान सम्प्रदायिगण प्रत्येक शब्दसे पूर्वतन बौद्धोंको समझाते और उनके विरुद्धवादी हीनयान सम्प्रदायके प्रति भी उसी शब्दका प्रयोग करते थे।

महायानगण समस्त बौद्धसन्तानको यान या सम्प्रदायमें विभक्त करते हैं—(१) श्रावकयान, (२) प्रत्येकबुद्धयान और (३) बोधिसत्त्वयान। सद्धर्मपुण्डरीक ग्रन्थमें इन्हीं तीन यानका उल्लेख है। इस ग्रन्थके मतसे स्थविर अर्थात् पूर्वमतावलम्बिगण श्रावक, निर्जनमें चिन्तापरायण दार्शनिकगण प्रत्येकबुद्ध और सिद्ध, गुरु तथा धर्मप्रचारकगण बोधिसत्त्व कहलाते हैं।

यद्यपि बौद्ध-धर्मावलम्बियोंमें श्रेणाविभाग तथा मतविरोध होता है, तौ भी अन्तमें सबोंकी चरम गति एक है। इसलिए तथागतने कहा है, "मैं सभी जीवोंको निर्वाणके पथ पर ले जाऊंगा। समस्त जीव मेरी ही सन्तान हैं।"

प्राचीन प्रत्येकबुद्धयान और महायान बौद्धोंका कहना है, कि अर्हत्की अपेक्षा प्रत्येकबुद्ध कहीं श्रेष्ठ हैं। प्रत्येकबुद्ध भी बुद्धकी तरह अपनी क्षमता द्वारा निर्वाणप्राप्तिके उपयोगी ज्ञानलाभ करनेमें समर्थ हैं; किन्तु धर्मप्रचार करना उनका कर्त्तव्य नहीं है। वे समस्त विषयके दर्शन नहीं कर सकते और सभी विषय बुद्धके निम्न आसनके अधिकारी हैं। प्राकृतिक नियमके बलसे बुद्ध और प्रत्येकबुद्ध एक समय वास नहीं कर सकते।

बुद्ध।

बुद्ध कौन हैं, इसे जाननेमें उनके बाह्य और आभ्यन्तरिक सभी लक्षणोंकी आलोचना करना आवश्यक है। बाह्यलक्षणके मध्य प्रथम उल्लेखयोग्य ३२ महापुरुषलक्षण हैं; बाद ८० प्रकारके अनुव्यञ्जन। इनके अलावा २१६ माङ्गल्य लक्षणको कथा वर्णित है। बुद्धके प्रत्येक पैरमें १०८ करके ये लक्षण या चिह्न वर्त्तमान रहते हैं। बुद्धगण अपने देवचक्षु द्वारा प्रतिदिन छः बार पृथ्वीको देखते हैं। कोई कोई कहते हैं, कि गौतम बुद्धके १२ हाथ थे और फिर कोई उनके १८ हाथ बतलाते हैं। सिंहल प्रदेशके आदम-शैलशृङ्ग पर उनका जो श्रीपदचिह्न देखा जाता है, वह ५ फूटसे अधिक लम्बा और १२॥ फूट चौड़ा है।

बुद्धकी मानसिक गुणावली तीन भागोंमें विभक्त है—(१) दश बल, (२) अठारह आवेणिकधर्म और (३) चार वैशारद्य। दश बल रहनेके कारण बुद्धका दूसरा नाम दशबल भी है। उपयुक्त या अनुपयुक्तताका ज्ञान, कर्मका अवश्यम्भाविफल, उद्देश्यलाभका प्रकृतपथ, विभिन्न भूतका ज्ञान प्रभृति दश बलका उल्लेख है। भूत

भविष्यत् और वर्त्तमान सभी घटना देखनेकी क्षमता प्रभृति अठारह आवेणिक धर्म हैं। निम्नलिखित चार वैशारद्यकी कथा देखी जाती है, यथा—(१) तथागतका सर्वदर्शन क्षमतालाभ, (२) पापहीनता, (३) निर्वाणप्राप्तकी अन्तरायोंका ज्ञानलाभ और (४) प्रकृत मुक्तिपथ दिखानेकी क्षमता।

बुद्धके अन्य नाम—जिन, सुगत, तथागत, अर्हत्, शास्ता, भागवत, दशवल, लोकविद्, सर्वज्ञ, निर्भय, निरवद्य, पुरुषदम्यसारथि, षड्भिज्ञ, अनुज्ञ, नरोत्तम, देवातिदेव, त्रिकालज्ञ, त्रिप्रातिहार्यसम्पन्न, इत्यादि। ये सब नाम सभी समयके बुद्धोंके प्रति प्रयोज्य हैं। वर्त्तमान समयके बुद्धके और भी कितने विशेष नाम हैं,—शाक्यसिंह, शाक्यमुनि, शाक्य, शाक्यपुङ्गव, सिद्धार्थ, सर्वार्थसिद्ध, शौद्धोदनि, आदित्यवन्धु, सूर्यवंश, आङ्गिरस और गौतम इत्यादि।

प्राचीन बौद्ध-शास्त्रग्रन्थके मतानुसार वर्त्तमान युगके बुद्धके पूर्व और भी २४ बुद्ध हो गये हैं जिनके नाम ये हैं,—दीपंकर, कौण्डिन्य, मङ्गल, सुमना, रैवत, शोभित, अनोमदर्शी, पद्म, नारद, पद्मोत्तर, सुमेध, सुजात, प्रियदर्शी, अर्थदर्शी, धर्मदर्शी, सिद्धार्थ, पुष्य, विपश्यि, शिखी, विश्वभू, क्रकुच्छन्द, कोणागमन और काश्यप।

भूतकालमें जैसे बुद्ध थे, भविष्यत्‌में भी वैसे ही बुद्ध अवतीर्ण होंगे। उनका नाम मैत्रेय होगा और अजित उनकी उपाधि होगी। वर्त्तमानमें ये तुषितस्वर्गमें बोधिसत्त्वरूपमें वास करते हैं।

समस्त तथागत ही प्रायः समतुल्य हैं, पर सामान्य विषयमें परस्परमें थोड़ा प्रभेद देखा जाता है। शारीरिक आकृति और आयुपरिमाणमें कुछ विशेषता है। किसीने क्षत्रियवंशमें और किसीने ब्राह्मणकुलमें जन्मग्रहण किया है। सभी बुद्धोंने एक ही प्रकारकी नीतिका प्रचार किया था। कालक्रमसे जब प्रचारित सत्य अन्तर्हित हो गया तब एक बुद्धने जन्मग्रहण कर अपनी क्षमताके बलसे विना किसी गुरुकी सहायताके ही पूर्व प्रचारित नीति और सत्यका पुनः आविष्कार किया।

महायन-सम्प्रदायगण और भी एक प्रकारके बुद्ध बतलाते हैं जो ध्यानीबुद्धके नामसे प्रसिद्ध हैं। इनके नाम हैं—वैरोचन, अक्षोभ्य, रत्नसम्भव, अमिताभ और अमोघसिद्धि। इनके फिर पञ्चशक्ति या पञ्चतारा महायोगिनी हैं।

पाश्चात्य पण्डितोंके मतसे शाक्यमुनि ही एकमात्र ऐतिहासिक बुद्ध हैं। इनके पहले जिनके नामका उल्लेख मिलता है, वह कल्पित है।

हम लोग बुद्धके वाह्यलक्षण और आभ्यन्तरीण गुणावलीकी समालोचना कर बुद्ध कैसे व्यक्ति थे इसकी जो मीमांसा करना चाहते हैं, उसे बुद्ध स्वयं ही इस प्रश्नका उत्तर दे गए हैं। बुद्धको एक वृक्षके नीचे बैठा हुआ देख कर एक ब्राह्मणने पूछा, "क्या आप देवता हैं?" बुद्धने उत्तर दिया, "नहीं।" "क्या आप गन्धर्व हैं?" उत्तर मिला 'नहीं।' ब्राह्मण बोले "क्या आप यक्ष हैं?" बुद्धने कहा, 'नहीं।' ब्राह्मणने फिर पूछा "क्या आप मनुष्य हैं?" बुद्ध बोले, "मैं मनुष्य भी नहीं हूं।" इस पर ब्राह्मणने बड़े ही आश्चर्यान्वित हो पूछा "तब आप कौन हैं?" बुद्धने उत्तर दिया, "हे ब्राह्मण! मैं बुद्ध हूं।" अतएव देखा जाता है, कि बुद्ध मनुष्यकी आकृति धारण करके भी प्रकृति और गुणमें मनुष्य नहीं थे। वे बुद्ध थे—किन्तु मनुष्य, देवता, यक्ष या गन्धर्व नहीं थे। अनेक अवस्थाका अतिक्रम करनेसे बुद्धत्व प्राप्त होता है।

बोधिसत्त्व।

जो बुद्ध होनेके अधिकारी हैं, वे बोधिसत्त्व कहलाते हैं। बोधिसत्त्व शब्दका साधारण अर्थ 'बुद्धिमान जीव' है। जिनके बोधि है; वही बोधिसत्त्व हैं। किन्तु यह 'बोधि' सम्यक् सम्बोधिमें परिणत नहीं होती। वह अवस्था प्राप्त करनेसे बुद्ध हो जाता है।

बोधिसत्त्वकी तीन अवस्था है—अभिनीहार (अर्थात् बुद्धत्वप्राप्तिकी उच्च आकांक्षा), व्याकरण (तथागत कर्त्तृक भविष्यद्वाणी कि ये बुद्ध होंगे) और हलाहल (बुद्धत्व प्राप्त होनेसे पुनः जन्म न होगा, इसके लिये आनन्दध्वनि। यही उसका शेष जन्म है, पुनः जन्मग्रहणरूप क्लेश भोगना नहीं पड़ेगा) कोई कोई बोधिसत्त्वके जीवन-कार्यको चार भागोंमें बांटते हैं, यथा—मानस (अभिप्राय), प्रणिधान (दृढ़-संकल्प), वाक्प्रणिधान (वाक्य द्वारा संकल्पका प्रकाश) और विवरण (अभिव्यक्ति)।

बुद्धकी तरह बोधिसत्त्वके भी अनेक नाम हैं। उनमेंसे

महासत्त्व नाम ही अकसर व्यवहृत होता है। बौद्धधर्म-ग्रंथमें बहुतसे बोधिसत्त्वके विवरण पाये जाते हैं जिनमें-से मैत्रेय, लोकेश्वर या अवलोकितेश्वर और मञ्जुश्री समधिक विख्यात हैं।

जो भविष्यत्‌में बुद्ध होंगे, उन्हें बहुजन्म अतिक्रम करने होंगे। पूर्वमें जो सब बुद्ध हुए, वे अपनी बुद्धत्व-प्राप्तिके विषयको भविष्यद्वाणी कर गए हैं। उनके जन्म-जन्मान्तरके कार्य और गुणका सैकड़ों प्रशंसा जातक तथा अवदान नामक बौद्धग्रन्थमें वर्णित हैं। वर्त्तमान भद्रकल्पके बुद्ध शाक्यमुनिके पूर्वजन्मके सम्बन्धमें वैसे ही असंख्य इतिहास तथा गल्प लिखित और प्रचलित हैं। पालि चरियापिटक और आर्यशूर-रचित जातकमाला देखो।

बोधिसत्त्वमें अनेक नैतिक तथा मानसिक गुणोंका रहना आवश्यक है। सर्वोको अपेक्षा प्रधान गुण है जीवोंके प्रति दया।

पालिधर्मग्रंथमें दशपारमिता या महागुणका उल्लेख देखनेमें आता है। यथा—दान, शोल, नेक्खम्म या (निष्कर्म या संसार-त्याग), पञ्ञा (प्रज्ञा), विरिय (वीर्य), खन्ति (क्षान्ति), सच्च (सत्यवादिता), अधिट्ठान (दृढ़सङ्कल्प), मेत्ती (मैत्री या ममता), उपेक्खा (उपेक्षा)।

इन सब आध्यात्मिक गुणके अलावा बोधिसत्त्वमें उच्च मानसिक गुणोंका रहना भी परमावश्यक है। इन गुणोंका नाम है बोधिपक्षधर्म और इनकी सैंतीस हैं। ये सब गुण केवल बोधिसत्त्वके लिये प्रयोजनीय नहीं हैं; अर्हतोंमें भी इनका रहना आवश्यक है। ये गुण सात भागोंमें विभक्त हैं। यथा—

(१) देह, अनुभूति, उपस्थित चिन्ता और धर्म-सम्बन्धमें चार प्रकारका 'स्मृत्युपस्थान' अर्थात् स्मृति या चिन्ताशीलता।

(२) चार प्रकारके सम्मप्पधान (सम्यक् प्रहाण) अर्थात् प्रयोग या सत्‌चेष्टा।

(३) चार प्रकारका इद्धिपाद (ऋद्धिपाद) या अलौकिक क्षमता।

(४) पञ्च इन्द्रिय।

(५) पञ्च वाक् (मानसिक शक्ति)।

(६) सात प्रकारकी बोधि, बोध्यङ्ग या सम्बोध्यङ्ग, स्मृति, अनुसन्धित्सा, उद्यम, प्रीति, शम, मनःसंयम, समाधि, उपेक्षा।

(७) अष्टाङ्गिक मार्ग या आठ प्रकारका पथ।

उपर्युक्त गुण और धर्मके सिवा बोधिसत्त्वके अन्यान्य गुणका उल्लेख भी जगह जगह पर देखनेमें आता है।

उत्तर-भारतीय प्राचीन बौद्ध-सम्प्रदायके महावस्तु नामक ग्रंथमें बोधिसत्त्वकी १० प्रकारकी भूमि या अवस्था वर्णित है। यथा—प्रमुदिता, विमला, प्रभाकरी, अर्चिष्मती, सुदुर्जया, अभिमुखी, दूरङ्गमा, अचला, मधुमती और धर्ममेधा।

बोधिसत्त्वमें जैसे असंख्य गुणोंका रहना आवश्यक है, वैसे ही उनके अधिकार भी असंख्य हैं।

शाक्यमुनिके बुद्ध होनेके पहले जिन सब बोधिसत्त्वोंने जन्मग्रहण किया था, वे उन्हींके अवतार माने जाते हैं। किसी किसी सम्प्रदायका विश्वास है, कि बुद्धत्वप्राप्तिके बाद भी उन्होंने अवतार लिया है। ये लोग अशोकके पुत्र कुणालको भी एक अवतारमें गिनते हैं।

बौद्धधर्मनीति।

ब्राह्मण्यधर्मकी नीति वेद, स्मृति, पुराण, साधुओंके आचरण और व्यक्तिगत विवेकके ऊपर संस्थापित है, किन्तु बौद्धधर्मनीति केवल बुद्धके उपदेश तथा उनके प्रदर्शित पथको अनुगत है। लेकिन बुद्धने जो एक ही धर्मनीतिको प्रतिष्ठा की थी, ऐसा भी नहीं कह सकते। कारण, उन्होंने स्वयं ही अनेक समय प्राचीन ऋषियोंकी धर्मनीतिकी यथेष्ट सुख्याति की है। उन्होंने यह भी कहा है, कि प्राचीन ब्राह्मणगण अपने उच्च धर्म और नीतिके लिए संसारमें प्रसिद्ध थे।

बौद्धगण अपने धर्मग्रन्थमें ब्राह्मण्य हिन्दूधर्मकी कथा स्वीकार तो नहीं करते, पर वास्तवमें उन्होंने अनेक धर्मनीति, साधु और सत् आचारका व्यवहार हिन्दूधर्म-शास्त्रसे ग्रहण किया है।

बुद्धने उपदेश दिया है, कि प्रत्येक धार्मिक गृहपति आर्य श्रावकको पञ्चबलि प्रदान करनी चाहिए। परिवार, अतिथि, पितृगण, भूस्वामी और देवताओंको यह पञ्च-

बलि या उपहार देना उचित है।* यह उपदेश निःसंदेह स्मृतिसे ग्रहण किया गया है।

बौद्धधर्ममें आत्माका अस्तित्व स्वीकार नहीं करने पर भी महात्मा बुद्धने अनेक समय आत्मा या विवेकका उल्लेख किया है। इससे जान पड़ता है, कि अज्ञातसारमें हिंदूधर्मसे बौद्धधनीतिका कुछ अंश लिया गया है। और भी, मालूम होता है, कि अहिंसा, पितामाताका भरणपोषण तथा भिक्षादान आदि नीति भी प्राचीन धर्म-सूत्रसे गृहीत हुई हैं।

बौद्धधर्म ग्रन्थमें जहां कहीं धर्मनीतिके सम्बन्धमें उपदेश दिया गया है, प्रायः वहीं पर पद्यछन्दका व्यवहार हुआ है। समस्त अंश पद्यमें लिखित नहीं होने पर भी कुछ अंश जो पद्यमें लिखे गए हैं, वे सर्वत्र ही देखनेमें आते हैं। ये सब उपदेश बहुत जगह बौद्धधर्मके मूलसूत्रसे विभिन्न तथा कहीं कहीं विरुद्धमतप्रकाशक हैं। यह देखनेसे प्रतीत होता है, कि केवल बौद्ध-भिक्षुओंके कर्त्तव्य और अकर्त्तव्यके निर्द्धारणके सिवा और कोई भी धर्मनीति पहले वर्त्तमान न थी। धर्मविस्तारके साथ ही साथ वह भी लिपिबद्ध हुई है।

बौद्ध-धर्मनीतिकी प्रकृत धारणा करनेमें कई एक बातें याद रखनी होंगी। (१) भिक्षु और गृही दोनों श्रेणीके लिए ही नीतिका उपदेश दिया गया है। अर्हत्-गण कुछ परिमाणमें साधारण नीतिके अतीत हैं। मुनिके किसी प्रकारको आसक्ति न रहनी चाहिए और न प्रीति अथवा अप्रीतिजनक कोई कार्य करना ही उचित है। जो पुत्रकन्याका परित्याग कर सकते हैं, वे ज्ञानी कहलाते हैं। भिक्षुधर्म ग्रहणके लिए जो अपनी स्त्रीको छोड़ सकते और जो किसी भी प्रकारसे स्त्री पुत्रका तत्त्वावधारण नहीं करते हैं उन्हें ही संसारमें अत्यन्त सत्कार्य करनेकी प्रशंसा और समादर मिलता है। फिर अन्यान्य स्थानोंमें ऐसा भी देखा जाता है, कि स्त्री ही सर्वोत्कृष्ट बन्धु है और वही पृथिवीका सर्वश्रेष्ठ धन कहलाती है। बौद्धधर्म ग्रन्थमें ऐसा ही वैषम्य अक्सर देखा जाता है।

उत्तर और दक्षिण प्रदेशीय बौद्धोंके मध्य धर्मनीति विषयमें कोई विशेष वैषम्य नहीं दिखाई पड़ता। हां, उत्तराञ्चलके बौद्धोंमें सत् और सुनीति अधिकतर रूपसे कार्यमें परिणत हुई सी जान पड़ती है। यही कारण है, कि इनका धर्ममत दक्षिणाञ्चल बौद्धोंकी अपेक्षा समधिक विस्तृत हुआ है।

चाहे भारतवर्षमें हो अथवा अन्य देशमें, सभी जगह नीति दो भागोंमें विभक्त हो सकती है, -१ला जिन सब नियमोंका उल्लङ्घन करनेसे शास्तिको व्यवस्था निर्दिष्ट है और २रा जिस अनुशासनका पालन करनेसे प्रशंसा, आदर अथवा पुरस्कार मिलता है। प्रथम श्रेणीके नियमोंका अवश्य ही प्रतिपालन करना चाहिए; क्योंकि ऐसा नहीं होनेसे समाजबंधन शिथिल हो जायगा। इनका नाम यम है और द्वितीय श्रेणीके अनुशासनका नाम नियम। नियम सभी समय सबोंके अवश्य प्रतिपाल्य नहीं हैं, तब जो उनका पालन कर सकते हैं, वे जन-समाजमें महत् तथा आदर्श समझे जाते हैं।

बौद्धधर्मनीतिके मध्य दश शिक्षावाद भी इसी प्रकारके हैं, भिक्षुसम्प्रदायको अवश्य ही इनका प्रतिपालन करना चाहिए। जो गृही हैं उनके लिए प्रथम पांच ही प्रतिपाल्य हैं। इस दश शिक्षावाद द्वारा निम्न लिखित कार्य निषिद्ध हुए हैं,—

(१) जीवनाश, (२) चौर्य, (३) व्यभिचार, (४) मिथ्यावादिता, (५) मद्यपान, (६) अनियमित समयमें आहार, (७) सांसारिक आमोद प्रमोदमें योगदान, (८) अलङ्कार अथवा विलासद्रव्यका व्यवहार, (९) वृहत् अथवा साजसज्जापूर्ण पालङ्कका व्यवहार और (१०) अर्थ ग्रहण।

प्रथम पांच सबोंके लिए प्रयोज्य हैं; किन्तु इसमें भी कुछ विशेषता है। ब्रह्मचर्य या इन्द्रिय-संयम अर्थात् संन्यासी और संन्यासिनीके लिए सब प्रकारसे स्त्रीपुरुषसंसर्गका परिहार और गृहीके लिए पर पुरुष या परस्त्री-गमन निषिद्ध है, इत्यादि।

जो संसारका परित्याग कर श्रमण सम्प्रदायभुक्त हुए हैं, उनके लिए उक्त शिक्षावादके सिवा और अनेक कठोर नियम विधिबद्ध हैं। इनके नैतिक जीवन तीन

* अङ्गुत्तरनिकाय २य भाग ६८ पृ०।

भागोंमें विभक्त हो सकते हैं जिनमेंसे प्रथम दो भाग प्रायः उपर्युक्त दशशिक्षावादके समान हैं। किंतु तृतीय अवस्था इससे कहीं उच्चतर है। इस अवस्थामें पशु-वलि, भविष्यवाणी या ज्योतिषशास्त्रमें विश्वास प्रभृति निषिद्ध है। ब्राह्मण्यधर्मके चौथे आश्रममें यति या मुक्त ब्राह्मणोंकी जो अवस्था है, श्रमणोंकी तीसरी अवस्था वैसी ही है।

बौद्धधर्ममें प्रशंसाका विषय यह है, कि कुसंस्कार और घृणित धर्ममत इसमें स्थान न हों पा सकता।

बौद्धगण विरुद्ध धर्मवादियोंके साथ कदापि तर्क-वितर्क नहीं करते और अकारण ही उन्हें किसी प्रकार असन्तुष्ट करना नहीं चाहते हैं। बुद्ध स्वयं भी जनसाधारण के मतका सम्मान करते थे। यदि किसो शिष्यका अपराध उनके निकट विचार्य्य-विषय होता था, तो वे इस प्रकार विचार कर देते थे, कि जनसाधारणमेंसे कोई भी उनके प्रति असन्तुष्ट नहीं हो सकता था। वे कोई ऐसा उप-देश या आदेश नहीं देते थे, जो अत्यन्त कठोर सा प्रतीत हो। जब देवदत्तने बुद्धदेवसे अनुरोध किया था, कि श्रमणगण कदापि मत्स्य या मांसाहार न कर सकें, ऐसा नियम किया जाय, तब देवदत्तके इस अनुरोध पर उन्होंने ध्यान नहीं दिया था। (१)

ऐसी गल्प प्रचलित है, कि एक जैनने बुद्धदेवका शिष्यत्व ग्रहण किया। बुद्धने उसे उपदेश दिया था, 'सुनो! निर्ग्रन्थों (जैनाचार्य)ने बहुत दिन तक तुम्हारे घरमें आश्रय लिया है, अतएव जब वे तुम्हारे पास आवें तब उनको भिक्षाप्रदान करना तुम्हारा कर्त्तव्य है।' इससे जाना जाता है, कि अन्य धर्मावलम्बियोंके प्रति बुद्धदेवकी हिंसा या द्वेष न था। किन्तु जो धर्मके वहाने अक्रिया या कुक्रिया करते थे वे कदापि बुद्धदेवके श्रद्धास्पद न हो सके। उस समय आजीवक नामक एक सम्प्रदाय था जिसकी अनेक कुक्रियायोंकी कथा सुनी जाती है। एक दिन एक आदमीने बुद्धदेवसे पूछा, 'क्या कोई आजीवक मृत्युके बाद स्वर्ग जा सकता है?' इस पर उन्होंने उत्तर दिया,—मुझे ६१ कल्पकी कथा याद है, इसके मध्य केवल एक ही आजीवकको स्वर्गमें देखा है जो 'कर्मवादिन्' और 'किरियवाद' (क्रियावाद) समझता था।

बौद्धधर्मको व्यवहारिक नीतिका विशेषत्व निर्देश करना दुरूह है। इसके दो कारण हैं। प्रथमतः बौद्ध-धर्म नीतिके आदर्श और भारतवर्षके अन्यान्य धर्मके आदर्शमें कोई विशेष पार्थक्य दिखलाई नहीं पड़ता। द्वितीयतः विभिन्न बौद्धसम्प्रदायका भिन्न भिन्न मत है। बौद्धधर्म प्रधानतः भिक्षु या संन्यासीका धर्म है। क्रमशः इसने जब गृहस्थाश्रममें प्रवेश किया, तब स्थान, काल और पात्रविशेषमें अनेक नियमादि काट छाँट कर वे गृहस्थके व्यवहारोपयोगी कर लिये गए हैं।

दक्षिण और उत्तरदेशीय बौद्धसम्प्रदायकी जैसी मत-विभिन्नता देखी जाती है, वैसा ही महायान और हीनयान इन दो सम्प्रदायमे भीमतविरोध है। महायानोंके धर्म-ग्रन्थमें अहिंसा और दयाको जितना श्रेष्ठत्व दिया गया है, दूसरे सम्प्रदायके ग्रन्थमें उतना नहीं देखा जाता। इसीलिए ये दोनों ही बौद्धधर्मके विशेषत्व-से जान पड़ते हैं।

महायानबौद्धोंका आदर्श उच्च होने पर भी, उनमें एक बड़ा दोष था। वे अपनी दया और उदारता जनसाधा-रणमें विशेषरूपसे प्रकाशित कर अन्य सम्प्रदायोंमें इन सब गुणोंकी त्रुटि दिखलाते हुए सर्वदा उन पर तीव्र आक्रमण करते थे। यहां तक, कि स्वधर्मावलम्बी हीन-यान सम्प्रदायके प्रति भी उनका व्यवहार उतना उदार नहीं था।

यथार्थमें बौद्धोंने भारतके अन्यान्य धर्मसम्प्रदायकी अपेक्षा अनेक उदारता दिखलाई है, इसमें सन्देह नहीं। बौद्धधर्मका प्रचार करनेमें वे बौद्धसमाजके मनुष्योंको हिन्दूसमाजकी नाईं सङ्कीर्ण गण्डीके मध्य रखनेमें प्रयासी नहीं होते। इसीलिए बौद्धधर्म संसारमें एक सार्वजनीन धर्मके जैसा प्रसिद्ध हुआ है।

(१) महावग्ग ६।३१।१४, मज्झिमनिका (१।३६८) प्रभृति प्राचीन बौद्धधर्मशास्त्रमें अदृष्ट, अश्रुत या असन्दिग्ध ऐसे मत्स्य और मांस ग्रहणकी व्यवस्था है। महावग्गमें मनुष्य, हस्ती, अश्व, कुक्कुर, सर्प, सिंह, व्याघ्र, शूकर और तरक्षुका मांस खाना निषिद्ध बतलाया है।

भारतीय संन्यासधर्म ।

अनेक देशोंमें देखा जाता है, कि समयानुसार मनुष्य चारों ओर सांसारिक और सामाजिक भोगविलासकी बहुतायतसे विरक्त हो अथवा अपने मायाजीवनमें जिस प्रियतमा आशाको ले कर जोवन धारण करते थे, उससे निराश हो कर जब सांसारिक सुखकी असारता और अनित्यता समझ सकते हैं, तब वे इस कपटतापूर्ण सांसारिक सुखका परित्याग कर प्रकृत तथा पवित्र सुखान्वेषणके लिए निर्जन प्रदेशमें अवस्थान पूर्वक धर्म और ईश्वरचिन्तारूप पवित्र कार्यमें जीवन विताते हैं। भारतवर्षके प्राकृतिक सौन्दर्य, प्राचीन आर्यऋषियोंके अतीत जीवन, भारतवासीकी चिन्ताशीलता और अत्यधिक परिमाणमें धर्मानुराग प्रभृतिके कारणसे इस संन्यास-धर्मग्रहणको पिपासा भारतवर्षमें ही बहुत देखी जाती है।

अति प्राचीनकालसे भारतवर्षमें जिन चार आश्रमोंकी प्रथा प्रचलित है, उन्हींमें संन्यासधर्मका वीज निहित है। ब्रह्मचर्यकी प्रथम अवस्थामें जब गुरुगृहमें रहना पड़ता था, उस समय संन्यासधर्मकी समस्त कठोरताका प्रतिपालन करना होता था। इन्हीं सब प्रथाओंको वौद्धभिक्षुओंने ग्रहण किया है।

ब्रह्मचारीकी इच्छा होने पर आजीवन शिष्य भावसे गुरुगृहमें रहना पड़ता था। ऐसे ब्रह्मचारी और वौद्धभिक्षुके मध्य कोई पृथकृता नहीं देखी जाती। यति, मुक्त, संन्यासी और परिव्राजक इत्यादि नामसे भी ये परिचित हैं।

यद्यपि वौद्धधर्मके आविर्भावका ठीक समय निर्देश करना दुश्वार है, किन्तु सम्राट अशोकके समयमें जो वौद्धसङ्घ प्रतिष्ठित और बहुत-से धर्मग्रन्थ लिपिवद्ध हुए थे, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं। इसका प्रमाण अशोकके अनुशासनसे ही मिलता है। इससे जाना जाता है, कि अशोकके राजत्वके बहुत पहलेसे ही वौद्धधर्मने प्रधान्य लाभ किया था। वौद्धधर्मग्रन्थमें निर्ग्रन्थ और आजीवक सम्प्रदायका वारम्वार उल्लेख देखा जाता है और उनके साथ वौद्धोंका विरोधविषय भी उसमें वर्णित है। इससे मालूम होता है, कि उक्त तीनों सम्प्रदाय ही उस समय वर्तमान थे। इन्हीं सब सम्प्रदायके दृष्टान्तका अनुसरण कर वौद्धने सप्ताहमें एक दिन धर्मकार्यके लिए निर्दिष्ट किया था। बुद्धदेवने बहुत कम नीति या विधि बनाई थी। अनेक समय वे प्रचलित साधारण मतके व्यवहारमें जो अदूषणीय समझते, उसे ही ग्रहण करते थे। वे नियम या विधानकी सृष्टि करनेके लिए विशेष उत्सुकता नहीं दिखलाते थे तथा नियमरक्षामें सर्वदा लगे रहते थे।

प्रातिमोक्ष।

सङ्घके जिन सब विधान द्वारा मण्डलीका शासन या शास्तिविधान होता था, उसका नाम "पातिमोक्ख" (प्रातिमोक्ष) था। पालि ग्रन्थमें जिस पातिमोक्खका विधान है, वही सर्व प्राचीन है और वही वौद्ध भिक्षुओंकी दण्डविधि है। सभी वौद्धसम्प्रदायका विधान ऐसा ही है। पर उसकी संख्यामें कमी या वेशी अवश्य देखी जाती है। पालिग्रन्थके मतसे संन्यासियोंके प्रातिमोक्षकी संख्या २२७, चीनदेशमें प्रकाशित धर्मगुप्त सम्प्रदायमें २५०, तिब्वतमें २५३ और महाव्युत्पत्तिमें २५६ हैं।

बुद्धदेवका आदेश था, कि प्रति मास दो बार अर्थात् प्रत्येक पक्षमें एक बार उस नियमावलीको पढ़ना चाहिए। चार भिक्षुक जिस जगह इकट्ठे होते थे, वहीं इसकी आवृत्ति होती थी। प्रत्येक विधानकी आवृत्ति समाप्त होने पर पाठक पूछते थे, क्या किसी भिक्षुने इसका उल्लङ्घन किया है? उल्लङ्घन करने पर उन्हें खुले रूपमें सभामें कहना पड़ता था।

प्रातिमोक्षके सिवा भिक्षुओंके प्रतिपाल्य और भी कितने नियम हैं, जिनके नाम धूताङ्ग या धूतगुण हैं। दक्षिण प्रदेशीय वौद्धोंके ग्रन्थमें इसकी संख्या १३ और उत्तर प्रदेशीय वौद्धके मतमें १२ है। नीचे संक्षिप्त विवरण दिया जाता है।

(१) पांशुकुलिक—अर्थात् छिन्न वस्त्र खण्ड द्वारा वसन वनाना चाहिए। सभी भिक्षु इस नियमका प्रतिपालन नहीं करते, केवल आरण्यक भिक्षु ही इसका विशेष भावसे पालन करते हैं।

(२) तेचिवरिक (त्रैचीवरिक) प्रत्येक भिक्षुको तीनसे अधिक परिधेय नहीं रहने चाहिये।

(३) पैण्डपातिक—दरवाजे दरवाजे भिक्षा द्वारा खाद्य संग्रह करना उचित है।

(४) 'सावदानचारिया' (सावदान-चर्या) एक द्वारसे दूसरे द्वार पर नियमानुसार भिक्षा मांगनी चाहिए।

(५) एकासनिक (ऐकासनिक)—एक आसन पर बैठ कर आहार करना चाहिए।

(६) पत्तपिण्डिक (पात्रपिण्डक) एक पात्रसे आहार, (उत्तर प्रदेशीय बौद्धोंमें यह नियम चालू नहीं है।)

(७) 'खलुपच्छाभत्तिक'—आहार्य द्रव्य असङ्गत मालूम होनेसे उसे न खाना।

(८) आरण्यक—वनमें वास करना।

(९) रुक्खमूलिक' (वृक्षमूलिक)—वृक्षके नीचे वास करना।

(१०) 'अब्भोवासिक' (अभ्योवकासिक) अनाच्छादित स्थानमें रहना।

(११) 'सोसानिक' (श्माशानिक) श्मशानमें अथवा उसके समीप वास करना।

(१२) 'यथासन्थतिक' (याथासंस्तारिक)—जहां रात हो जाय, वहीं डेरा करना।

(१३) 'नेसज्जिक' (नैशय्यक)—निद्राकालमें भी शयन न कर बैठे रहना।

उक्त नियम सबोंके लिये प्रयोजनीय नहीं है, तब इनका पालन करना अच्छा ही है। आठवेंसे ले कर ग्यारहवें तक संन्यासियोंके लिये प्रयोज्य नहीं है। ग्यारवेंसे तेरहवें तक उनके लिए बिलकुल निषिद्ध है। गृहीके लिये केवल ५वां और छठा प्रतिपाल्य है।

प्रव्रज्या, उपसम्पदा।

जब कोई पुरुष अथवा रमणी संसारके भोगसुखका परित्याग कर भिक्षुजीवन बितानेके अभिलाषी या अभिलाषिणी होती थीं, तब उन्हें भिक्षु सम्प्रदायमें ले लिया जाता था। इसमें जाति या मर्यादाकी विशेषता न थी। केवल दस्यु, तस्कर, क्रीतदास, युद्धव्यवसायी और रोगग्रस्त या महापापी व्यक्ति नहीं लिए जाते थे। सङ्घमें प्रवेश करनेका नाम प्रव्रज्या और भिक्षुक या श्रमण धर्ममें दीक्षित होनेका नाम उपसम्पदा है। प्रव्रज्या-ग्रहणमें जिस प्रकार दस्युतस्करादि अयोग्य गिने जाते हैं, उसी प्रकार कुकर्मान्वित मनुष्योंको दीक्षा नहीं दी जाती थी। रमणियोंके दीक्षाग्रहणमें चौवीस अन्तराय थे।

प्रव्रज्या और दीक्षा या उपसम्पदाकी पृथकता ले कर बौद्धग्रन्थोंने अनेक समय बड़ा ही गोलमाल किया है। तब एक प्रकारसे यही समझ लेना यथेष्ट होगा, कि संन्यासधर्मग्रहणके लिए गृहत्यागका नाम प्रव्रज्या और उस धर्ममें दीक्षित होनेका नाम उपसम्पदा है। बौद्धधर्मग्रन्थ पढ़नेसे जाना जाता है, कि बुद्धदेवने पहले साठ शिष्योंको भिक्षुपदमें वरण किया। इन्होंने थोड़े समयमें ही ब्रह्मचर्यधर्मका उत्कर्ष दिखाया था। जब बुद्धशिष्य धर्मप्रचारसे लौट आये, तब उनके साथ बहुतसे मनुष्योंने आ कर बुद्धदेवसे प्रव्रज्या और उपसम्पदाकी दीक्षा मांगी। उसी समयसे उन्होंने ऐसी अनुमति दी, कि भिक्षुगण भी दीक्षा प्रदान कर सकते हैं और उसी समयसे मस्तक तथा श्मश्रु-मुण्डन और काषायवस्त्र पहननेका नियम प्रवर्त्तित हुआ।

उस समय दीक्षाग्रहणकारियोंके तीन आश्रय लेने पड़ते थे—बुद्ध, धर्म और सङ्घ—"बुद्धं शरणं गच्छामि धर्मं शरणं गच्छामि सङ्घं शरणं गच्छामि।" (१)

प्रव्रज्याग्रहण और भिक्षुसम्प्रदायमें प्रवेश एक ही समय हो सकता था। जिसके अनेक दृष्टान्त हैं। (२) बौद्ध बालक जब सात वर्षके होते थे, तब वे पितामाताकी अनुमति ले ब्रह्मचर्यका अवलम्बन कर वे भिक्षुधर्मग्रहणकी अपेक्षा करते थे। जब तक बीस वर्षकी उम्र न हो जाती थी, तब तक कोई भी प्रव्रज्या ग्रहणका अधिकारी नहीं होता था, सुतरां श्रमणोंको १२ वर्ष तक ब्रह्मचर्य सीखना पड़ता था। इस समय वे दश प्रकार शिक्षापाठका अभ्यास करते थे।

अन्य धर्मावलम्बी कोई यदि संन्यासग्रहणकी इच्छा करते थे, तो उन्हें भी यथारीति नियमका पालन करना और परीक्षाके लिए उन्हें कुछ दिन तक ठहरा पड़ता

(१) महावग्ग नामक पालि ग्रन्थमें यह 'त्रिशरणागमन' कहलाता है। भोट देशीय व्युत्पत्तिग्रन्थमें त्रिशरणका ऐसा अर्थ किया गया है—'बुद्धं द्विपदानामग्र्यं धर्मं विरागनामग्र्यं संघं गणानाम ग्रं"

(२) दीपवंश १२।६२।

था। इस समयका नाम है परिवास। चूड़ाधारी अग्नि-उपासक जटिल तथा शाक्यवंशके सिवा और किसीको भी (परिवास मित्र) उपसम्पदा लाभ करनेमें नहीं देखा जाता।

भिक्षुपदप्रार्थी व्यक्तिको दश अथवा समयानुसार पांच भिक्षुओंके समक्ष एक परीक्षा देनी पड़ती थी। इस परीक्षाके पहले पदप्रार्थीको कमण्डलु और काषाय वस्त्रग्रहण तथा एक उपाध्याय या गुरु चुन लेना पड़ता था। भिक्षुओंके मध्य एक मनुष्य सभापतिरूपमें दीक्षाप्रार्थीकी परीक्षा लेते थे। यदि वे सन्तुष्ट होते तब वे वहांके समवेत भिक्षुओंको उपस्थित व्यक्तिकी प्रार्थना तथा उसकी उपयुक्तता सुना देते थे। उन्हें दो बार अपना नाम प्रकाश करना पड़ता था। भिक्षुगण जब उसे उपयुक्त समझते थे, तब वे मौन द्वारा अपनी सम्मति देते थे। बाद सभापति महाशय भिक्षुपदप्रार्थीको भिक्षुमण्डलमें ग्रहण कर उसे आजीवन केवल चार प्रकारके आवश्यकीय द्रव्यका भोग और चार प्रकारके पापका परिहार करनेके लिये उपदेश देते थे। चार प्रकार आवश्यकीय द्रव्यके अलावा अन्यान्य द्रव्य एकबारगी निषिद्ध न था, पर वह आवश्यकीय गिना जाता था।

रमणियोंमेंसे जो संन्यासधर्म ग्रहण करती थीं, उन्हें भी पुरुषकी नाईं सभी नियमोंका पालन करना पड़ता था। (चुल्लवग्ग १०।१७)

उपसम्पदा या दीक्षाप्रणालीके सम्बन्धमें उत्तर और दक्षिण-प्रदेशीय बौद्धोंमें सामान्य कुछ कुछ मतभेद रहने पर भी मूल विषयमें कोई पृथकता नहीं देखी जाती। (१)

परिधेय।

भिक्षुओंका परिधेय तीन भागमें विभक्त था,—अन्तरवासक, उत्तरासङ्ग और संघाति। अन्तरवासक कमरसे ले कर पैर तक लटका रहता और कमरमें कायबन्धन या पेटीसे बंधा रहता था। इसका दूसरा नाम है, निवासन। उत्तरासङ्ग उत्तरीयका काम करता था, यह वक्ष और स्कन्धदेशके आवरणके लिये व्यवहृत होता था। संघातिका प्रकृत व्यवहार क्या था, इसका निश्चित निर्द्धारण करना कठिन है। भिन्न भिन्न खण्डोंमें मिला कर परिधेय प्रस्तुत किया जाता था। मगधके शस्यक्षेत्रका अनुकरण ही इसका उद्देश्य कहा जाता था।

भिक्षुओंको वस्त्र देना गृहीके लिए पुण्यकर्म है। प्रत्येक वर्ष वर्षाके अन्तमें परिधेय वितरण करनेका नियम है। इस वितरणकार्यका नाम "कठिन" है। इसके अनेक प्रकारके नियम और प्रणाली हैं। शरीरका आच्छादन करनेके लिए किसी वस्त्रका व्यवहार करना भिक्षुओंकी विलासिता समझी जाती थी। बौद्धग्रन्थमें विलास द्रव्यका व्यवहार निषिद्ध है। काष्ठपादुका (खड़ाऊं) और चट्टीजूतेके व्यवहारमें उतना निषेध नहीं है; छाताका व्यवहार विशेष कारणके सिवा अनावश्यकीय है, पर पंखेके व्यवहारकी अनुमति है।

(महावग्ग २-४ और चुल्लवग्ग ५।२२।२३)

उक्त प्रकारके परिच्छदके अलावा निम्नलिखित द्रव्य भी भिक्षुओंके नित्य व्यवहारमें गिने जाते हैं—एक भिक्षापात्र, कमरबन्ध, एक सूई (जान पड़ता है, कि फटे कपड़े सीनेके लिए), क्षौरकार्यके लिए एक क्षुर (अस्तूरा) और एक जलपात्र।

उत्तराञ्चलमें भिक्षुगण एक लाठीका व्यवहार करते थे जिसका नाम खक्खर था। दक्षिणाञ्चलमें यह 'कत्तर' कहलाता था।

जपकी माला बौद्धोंके मध्य अब सभी जगह प्रचलित देखी जाती है; किंतु मालूम होता है, कि इसका व्यवहार बहुत थोड़े दिनसे आरम्भ हुआ है। जपमालाकी व्यवहारप्रथाकी भारतवर्षमें उत्पत्ति हुई है या नहीं इसमें भी घोर सन्देह है।

वर्षावास।

भिक्षुओंके वर्षाकालमें किसी एक स्थानमें वास करनेकी विधि थी। उस समय भ्रमण करना निषिद्ध था। आषाढ़ी पूर्णिमासे ले कर कार्त्तिकीपूर्णिमा तक वे घरमें रहा करते तथा कोई कोई एक महीनेके बाद किसी पर्णशालामें आश्रय लेते थे। उत्तर प्रदेशीय भिक्षुगण श्रावणके प्रथम दिनसे ले कर कार्त्तिकके प्रथम दिन तक गृहवास करते थे।

(१) Waddell's Buddhism of Tibet p. 178, 145, Hodgson's Nepal, p. 139, 145 देखो।

भिक्षु सम्प्रदायकी सृष्टिके पहले ऐसे वासस्थानकी व्यवस्था प्रवर्त्तित थी या नहीं, इसका निर्द्धारण करना दुरूह है। बहुत-से भिक्षुओंको एक साथ रहना चाहिए ऐसा कोई नियम न था। वर्त्तमान सिंहलवासी भिक्षु-गण वर्षाकालमें अपना मठ परित्याग कर समयोपयोगी स्थानमें रहते हैं, किन्तु बुद्धघोषका विवरण बिलकुल स्वतन्त्र था। इस विवरणमें देखा जाता है, कि भिक्षुओं-का कर्त्तव्य यह है,—विहारका तत्त्वावधारण, अपने आहार तथा पानीयका संस्थान, विग्रहादि मूर्त्तिकी सेवा और अन्यान्य यथाविहित अनुष्ठान। भिक्षुओंको प्रति-दिन उच्च स्वरसे दो या तीन बार कहना पड़ता था; मैं केवल तीन महीनेके लिए इस विहारमें वास करनेको आया हूं।'

इस व्यवहारका प्रकृत उद्देश्य यही था, कि वर्षाकाल-में जिससे भिक्षुगण भ्रमण न करें, इसीलिए उस समय उनके गृहवासका नियम निर्दिष्ट हुआ था। भिक्षुओंका वासगृह निर्दिष्ट होनेके सम्बन्धमें ऐसा प्रवाद है,—पहले उनके कोई निर्दिष्ट वासस्थान न था। वन, पर्वतगुहा, वृक्षमूल, श्मशान या ऐसे ही किसी स्थानमें वे रहते थे। राजगृहके एक समृद्धिशाली वणिक्‌ने उनके लिए वास-स्थान बनानेकी इच्छासे बुद्धदेवकी अनुमति मांगी। इस पर उन्होंने भिक्षुओंको विहार आदि पांच प्रकारके वास-स्थानमें रहनेकी अनुमति दी और उक्त वणिक्‌ने भी उनके वासके लिए एक दिनमें ६० वासगृह बनवाए।

विहार।

'विहार' अर्थसे केवल बौद्धमठ ही नहीं वरन् मन्दिर' भी समझा जाता है। यूएनचुअङ्गका कहना है, कि सिंहल-में भिक्षुओंके वासस्थानका नाम 'पर्णशाला' और जहां देव देवी आदिकी पूजा होती है उसका नाम 'विहार है। भिक्षुओंके वासस्थानका दूसरा नाम है "सङ्घा-राम"। प्रत्येक बौद्धमठके मध्य विहार था; यथा—नालन्दा और सारनाथका विहार।

मध्ययुगमें भारतवर्ष और सिंहलके संघारामका प्रकृत विवरण चीन देशीय बौद्ध परिव्राजकोंके लिखे ग्रन्थमें ही मिलते हैं। इससे पता लगता है, कि जो मठमें रहते, वे 'आवासिक' कहलाते थे। राजा तथा धनी मनुष्योंकी दानशीलताके कारण श्रमणोंको मठके व्ययकी चिन्ता नहीं करनी पड़ती थी।

भिक्षुओंका कर्त्तव्य।

भिक्षुओंके नित्य नैमित्तिक कर्त्तव्य है—पुण्यकार्यका अनुष्ठान, धर्मसूत्रपाठ और ध्यानधारणा, किसी मठमें आगन्तुक (अन्य स्थानके अपरिचित भिक्षु) के आगमन-से मठवासी उनकी सम्वर्द्धना करते थे। वे उनके वस्त्रादि ढोते, पैर धोनेके लिए जल और शरीर मर्दनके लिए तेल ला देते तथा नियमित समयमें जो नियमित आहार रहता था; उसे प्रदान करते थे। आग-न्तुकके कुछ देर विश्राम करने पर वे उनसे पूछते थे, 'आपने कबसे भिक्षुव्रत ग्रहण किया है।' प्रश्नका उत्तर मिलने पर उनके लिए निद्रा और वासका स्थान निर्दिष्ट होता था तथा उनकी मर्यादाके अनुसार जो सब परिचर्याएं विहित थीं, उसी प्रकार उनकी सेवा की जाती थी। गमिक (गमनोद्यत), पिण्डकारिक (भिक्षाकार्यमें नियुक्त) और आरण्यक (अरण्यवासी) भिक्षुओंके लिए विभिन्न प्रणालीकी अभ्यर्थना तथा परिचर्या विधिवद्ध है। (चुल्लवग्ग)

मठकी कार्यप्रणाली।

मठकी कार्यप्रणाली नियमित करनेके लिए उपयुक्त भिक्षुगण संघद्वारा नियुक्त होते थे। खाद्यविभाग, वासस्थाननिर्देश, भण्डाररक्षा, वस्त्रादिरक्षा, परिच्छद प्रदान, वर्षाकालके लिए स्वतन्त्र भावसे परिच्छद रक्षा, मठके उद्यानका तत्त्वावधारण, पीनेके जलकी व्यवस्था आदि नाना प्रकारके कार्य अनेक मनुष्योंके ऊपर सौंपा हुआ था। सब विषयोंका सुनियम विधिवद्ध था; सुतरां किसी प्रकारके गोलमाल होनेकी सम्भावना न थी। किसी किसी सङ्घमें मनुष्य नियुक्त नहीं रहते थे। जब आवश्यकता पड़ती थी; तभी भिक्षुओंके ऊपर साम-यिक कार्यभार सौंपा जाता था। दृष्टान्तकी जगहमें 'नवकर्मिक' पदका उल्लेख किया जा सकता है। यदि कोई व्यक्ति भिक्षुओंके लिए घर बनवानेमें प्रस्तुत हो कार्यकी देखरेखके लिए एक उपयुक्त भिक्षु चाहते थे, तो एकको उस कार्य पर रख दिया जाता था।

प्राचीन कालमें स्नान और उसका छोटा बड़ा ले कर

भिक्षुओंकी पदमर्यादामें कोई विशेषता न थी। तव ऐसा भी नहीं कह सकते, कि कोई श्रेणीविभाग न था। कार्यके भेदसे श्रेणीभेद होता था। जो उम्रमें वड़े थे, वे 'स्थविर' और जो छोटे थे वे 'दहर' कहलाते थे। इसके अलावा उपाध्याय (शिक्षादाता), साद्धं विहारी (सदस्य), आचार्य (अध्यापक) और अन्तेवासी (शिक्षार्थी) इन कई एक श्रेणीमें भिक्षुगण विभक्त थे। सिंहलमें भी ऐसा ही श्रेणीविभाग था; किन्तु वहांके महानायक पद पर अधिष्ठित हो कर एक भिक्षु सभी कार्योंकी देखभाल करते थे। महायानोंमें ऐसी प्रथा न थी।

भिक्षुओंका खाद्य।

घी, मक्खन, तेल, मधु, चीनी, मछली, मांस, दूध और दही आदि खाद्य भिक्षुओंके लिए निषिद्ध था। किन्तु कोई पीड़ाग्रस्त होनेसे आवश्यकतानुसार इनमेंसे किसी द्रव्यका व्यवहार कर सकते थे। फिर कहीं ऐसा भी देखा जाता था, कि तीन प्रकारमें पवित्र होने पर मत्स्य और मांस भी खा सकते हैं। तीन प्रकार ये हैं—अदृष्ट, अश्रुत और असन्दिग्ध। इस निषेधकी कोई कार्यकारिता न थी। कहते हैं, कि बुद्धने स्वयं ही शूकरका मांस खाया था। वास्तवमें वात यह है, कि वौद्धगण इन सव विषयोंमें ब्राह्मणका पथानुसरण करते थे। मत्स्य मांसके व्यवहारमें ब्राह्मणके लिए जितना निषेध है, भिक्षुओंके लिए भी उतना ही है। उस समय देशमें जो व्यवस्था प्रचलित थी, वौद्धोंने अपने समाजमें भी उसीका प्रवर्त्तन किया था।

वौद्धभिक्षुगण (पुरुष या रमणी) ब्रह्मचारियोंकी तरह अपना आहारीय द्रव्य भिक्षा द्वारा ही संग्रह करते थे; किन्तु प्रभेद यह था, कि ब्रह्मचारी भिक्षा मांगते थे, पर भिक्षुओंमें मांगनेकी रीति न थी। यदि कोई अपनी इच्छासे कुछ दे देता ले वही वे ले लेते थे।

रोग होने पर औषधव्यवहार करनेकी विधि थी। उस समय घी, मक्खन, तेल, मधु और शकर औषधके रूपमें व्यवहार कर सकते थे। नानारूप औषध प्रस्तुत करनेकी विधि और विविध प्रकारके अस्त्रका विवरण वौद्धग्रन्थमें मिलता है। इससे जान पड़ता है, कि प्रभूत उन्नति हुई थी। (महावग्ग)

प्रातिमोक्ष या दंडविधि।

प्रातिमोक्ष प्रधानतः आठ भागमें विभक्त था। प्रत्येक अंशकी थोड़ी विधि नीचे दी जाती है,—

१म। कठिन अपराध करने पर अपराधी सङ्घसे निकाल वहार कर दिया जाता था, सभी वौद्धग्रन्थका इस सम्बन्धमें एक मत था। अपराधका विवरण (१) कामरिपुके वशीभूत हो कर इन्द्रिय निग्रहका प्रतिज्ञाभङ्ग, (२) चौर्य (३) प्राणनाश और (४) अलौकिक क्षमताका कौशल दिखलाना।

२य। तेरह प्रकारका अपराध। इसकी शास्ति थी किसी किसी निर्दिष्ट समयके लिए सङ्घसे वहिष्करण।

३य। इस विभागके सम्बन्धमें दो विधान है।

४र्थ। इसमें तिरसठ अपराधोंका उल्लेख है और नाना ग्रन्थमें नानारूपसे सन्निवेशित हैं। दण्डग्रहण द्वारा प्रायश्चित्त।

५म। इस श्रेणीमें ९२ अनुशासनकी कथाएं हैं। इन सव अपराधियोंकी शास्ति प्रायश्चित्त है। चीन देशीय धर्मग्रन्थ और व्युत्पत्ति नामक ग्रन्थमें केवल ९०का ही उल्लेख देखा जाता है।

६ष्ठ। चार प्रकारके अपराध—अपने मुखसे अपराध स्वीकार करने पर ही उसका प्रतीकार होता है।

७म। शिक्षाकार्य—नाना विषयकी नियमावली, उद्देश्य, सभ्यता और सदाचारकी शिक्षा। पालिग्रन्थमें इनकी संख्या ७५, चीन देशीय ग्रन्थमें १०० और व्युत्पत्तिमें १०६ है।

८म। आईन-विषयक सात नीति।

स्त्री-भिक्षुके लिए भी उक्त विधि प्रवर्त्तित हैं, तव श्रेणीविभागमें कुछ परिवर्त्तन मालूम पड़ता है। किसी समाजमें नियम प्रवर्त्तन करनेसे सङ्घारामका शासन विधान करना आवश्यक है। वौद्धसङ्घमें भी शास्तिका विधान है; यद्यपि वह कठिन नहीं, तो भी यथेष्ट है। सर्वप्रधान शास्ति सङ्घसे वहिष्करण है; इससे निम्नस्तरकी शास्ति है कुछ समयके लिए निर्वासन। एक और प्रकारकी शास्तिका नाम निःसारण है। निर्वासन और निःसारणमें पृथकता जानना कठिन है। निर्वासन

परिवाद और निःसारण प्रभृति दुण्डके बाद जब भिक्षुओंको पुनः सङ्घमें लिया जाता था, तब भिक्षुगण एकत्र हो कर निर्द्धारण करते थे, कि अपराधीको शास्ति हुई है या नहीं। इस समय २० या इससे अधिक भिक्षुओंका समावेश होना आवश्यक था। ब्रह्मदण्ड नामक एक प्रकारकी अद्भुत शास्तिका उल्लेख देखनेमें आता है। परिनिर्वाण प्राप्तिके कुछ दिन पहले बुद्धदेवने चण्ड नामक एक व्यक्तिको यह शास्ति प्रदान करनेके लिए अपने प्रिय शिष्य आनन्दको आदेश दिया था। आनन्द उस समय जानते नहीं थे, कि ब्रह्मदण्ड किसे कहते हैं। पूछने पर बुद्धदेवने कहा था, "चण्डकी जो खुशी हो सो बोले, किन्तु भिक्षुओंमेंसे न तो कोई उसके साथ बातचीत करे और न कोई उसे उपदेश दे या कुछ पूछे।" इसी शास्तिसे चण्डके भारी अनुताप हुआ था और इसीसे यह शास्ति प्रचलित हुई।

अपराध स्वीकार करना अन्यतम शास्ति है। पहले नियम था, कि जब भिक्षुगण प्रति पक्षमें एकत्र होते थे, तब यह स्वीकारोक्ति करनी पड़ती थी। किन्तु उसमें विलम्ब होता था और कार्यमें हानि पहुंचती थी; इसलिए अन्त में यह नियम हुआ, कि वयोज्येष्ठ किसी भिक्षुके समीप स्वीकार्य्य अपराधकी स्वीकारोक्ति करनी होगी।

उपास्य।

पहले ही कहा जा चुका है, कि दीक्षाकालमें तीनकी शरण लेनी पड़ती थी। बौद्धोंके वही प्रधान उपास्य त्रिरत्न या तीन रत्नत्रय है,—बुद्ध, धर्म और सङ्घ।

इसके अलावा और भी अनेक पदार्थ हैं, जो बौद्धोंके निकट सम्मान तथा अर्चनके विषय हैं,—साधुमहात्माओं की पवित्र स्मृतिका परिचायक कोई द्रव्य और उनके स्मरणार्थ प्रतिष्ठित स्मृतिस्तम्भादि। इस समुदायका साधारण नाम है धातु। धातु तीन भागमें विभक्त है,—शारीरिक, उद्देशिक और पारिभोगिक। शारीरिक-धातु शरीर सम्बन्धीय है; उद्देशिक- स्मरण उद्देश्यसे जो संस्थापित है; पारिभोगिक—जो सब द्रव्य बुद्धदेवके व्यवहारमें लगे हैं।

तपुष और भल्लिक नामक दो वणिकोंने जब बुद्धदेवका शिष्यत्व ग्रहण किया, तब उन्होंने कृपापरवश हो उनके स्मरणार्थ केशगुच्छ दिया था। यही सबोंके लिए प्राचीनतम पवित्रस्मृति है। कोई कोई कहते हैं, कि उन दोनों वणिकोंने नख और केशके सिवा उनके पात्र और तीन परिच्छद भी पाये थे।

सिंहलमें भी ऐसो ही केशस्मृतिका विषय प्रचलित है। कन्नौज, अयोध्या, मथुरा आदि आर्यावर्त्तके अनेक स्थानोंमें बुद्धदेवको केश और नखरूप पवित्र स्मृति संरक्षित है और वहां स्तूप बनाया गया है। कन्नौजके इस स्तूप और पवित्र स्मृतिके सम्बन्धमें बौद्धसमाजमें अनेक अलौकिक कथाएं प्रचलित थीं। सत्कारके बाद शरीरका जो अंश बच जाता है, वही सर्वप्रधान शारीरिक स्मृति है। बुद्धदेवकी मृत्युके बाद उनके शरीर की अवशेष-स्मृति ले कर राजगृह, वैशाली, कपिलवस्तु, अल्लकल्प, रामग्राम, वेहाद्वीप, पावा और कुशीनगर इन आठ स्थानोंमें आठ स्तूप बनाए गए। उक्त आठ स्तूप के सिवा बुद्धदेवके स्मरणार्थ द्रोण और मौर्यवंशियोंने भी दो मूर्त्तिकी प्रतिष्ठा की थी। प्रवाद है, कि बुद्धदेवका एक दांत स्वर्गमें, एक गान्धारमें, एक कलिङ्गमें और एक नागलोकमें पूजित होता है।

काबुल नदीके दक्षिण नगर नामक स्थानमें जितने पवित्र स्मृति-चिह्न विद्यमान हैं, उतने कहीं नहीं हैं। हिड्डनगरीमें बुद्धदेवके मस्तककी हड्डी और चक्षुगोलक स्वरूप पवित्र स्मृतिरक्षाके लिए तीन विहार प्रतिष्ठित हैं।

सिंहल आदि दक्षिणदेशोंमें भी पवित्र स्मृतिका अभाव नहीं है। सिंहलमें दन्तस्मृति सुप्रसिद्ध है। इसके सिवा वहांके बौद्धोंका विश्वास है, कि जिन अर्थात् बुद्धदेवके स्कंधकी हड्डी भी वहां क्षत है। थेर सरभू इसको श्मशानमें ले जा कर सिंहलमें रखा है। रुयनावेली नामक स्थानमें बुद्धदेवकी अस्थि संरक्षित है, यह भी प्रसिद्ध कथा है।

पूर्व पूर्व युगके बुद्धोंको कोई शरीरावशेषस्मृति किसी भी स्थानमें रक्षित है, ऐसा सुना नहीं जाता। किंतु यह सुननेमें आता है, कि श्रावस्ती नामक स्थानके एक स्तूपमें काश्यप बुद्धकी समस्त अस्थि संरक्षित है। परवर्त्ती साधु और भिक्षुकी अनेक स्मृति बहुतसे स्थानमें रक्षित है, इसका पता लगा है।

चीनपरिव्राजक फाहियानने वैशालीके समीप आनन्दके आधे शरीरके ऊपर एक स्तूप बना हुआ देखा था। उनका अपरार्द्ध शरीर मगधमें पवित्र स्मृतिकी रक्षा करता है। मथुरानगरमें सारिपुत्र, मौदगल्यायन, पूर्ण-मैत्रायणीपुत्र, उपाली, आनन्द और राहुलको स्मृतिरक्षाके लिये स्तूप निर्वाचित हुए थे। यहां उपगुप्तके नख पवित्र स्मृतिरूपमें संरक्षित हैं और मञ्जुश्री तथा अन्यान्य बोधिसत्त्वके स्मृतिसंरक्षणके लिये भी एक स्तूपकी बात सुनी जाती है।

बुद्ध और साधुगण जिन सब द्रव्योंका व्यवहार करते थे, वे बौद्धसमाजमें अत्यन्त भक्तिके साथ पूजित होते हैं। किस समयसे इस भक्ति और पूजाका आरम्भ हुआ इसका निर्देश करना कठिन है; किन्तु यह निश्चित है, कि मध्ययुगके बहुत पहलेसे ही उत्तर और दक्षिणभारतमें इस पूजाका आरम्भ हुआ था।

फाहियान जब तीर्थभ्रमणमें बाहर निकले थे, तब उन्होंने नगरके समीप चन्दनकाष्ठकी बनी हुई बुद्धदेवकी यष्टि देखी थी जिसकी लम्बाई लगभग १६ या १७ फुट होगी। इस स्थानके समीप ही उन्होंने एक मन्दिरमें बुद्धकी संघाति देखी थी। यूएनचुअङ्गने वहीं पर सङ्घाति और काषाय दोनों ही देखे थे।

तीर्थपर्याटक फाहियानने बुद्धदेवका भिक्षापात्र पेशावरमें देखा था। बुद्धदेवका पवित्र स्मृतिरक्षक वह भिक्षापात्र सर्वसाधारण द्वारा पूजित होता था। दो शताब्दीके बाद यह पारस्याधिपतिके अधिकारमें था। प्रवाद है, कि भिक्षापात्र पहले वैशालीमें था। फाहियानका कहना है, कि उन्होंने ऐसी भविष्यद्वाणी सुनी थी कि भिक्षापात्र परवर्त्ती समयमें यथाक्रम तुर्किस्तान, खोतान, कराचर, चीन सिंहल और भारतवर्षमें भ्रमण कर अन्तमें तुषित देवताओंके स्वर्गमें जायगा।

सिंहल-धर्मग्रन्थमें अनेक परिभोगस्मृतिचिह्नके विवरण देखे जाते हैं। बुद्ध ककुसन्ध (ककुच्छन्द)-के पानपात्र, कोनागमनके कमरबन्द और काश्यप तथा गौतमबुद्धके स्नानवस्त्रकी कथाका सविस्तार उल्लेख है।

दाक्षिणात्यके कोङ्कणपुरमें ७वीं शताब्दीमें एक विहार था। इसमें सिद्धार्थके बाल्यकालका मस्तकावरण संरक्षित था। भक्तगण इसे सप्ताहमें एक ही दिन (विश्राम दिनमें) देख सकते और उसकी पूजा करते थे। जिस चीनपरिव्राजकने यह संवाद दिया है, उनका कहना है, कि बामियान नामक स्थानमें स्थविर मानवासिकका लौहपात्र और परिच्छद रक्षित था जो मणिनिर्मित होनेके कारण लाल रंगका था। प्रवाद है, कि जब तक बौद्ध-धर्म और बौद्धनीति पृथिवी पर वर्त्तमान रहेगी, तब तक यह परिच्छद भी रहेगा।

और भी एक प्रकारकी स्मृतिकथाका उल्लेख मिलता है—इसे छाया स्मृति कहते हैं। अनेक स्थल पर गुहा-विशेषमें बुद्धदेव या बोधिसत्त्व छाया रख गए हैं जो भक्तोंको दिखाई जाती थी। कौशाम्बी, गया और नगर इन तीन स्थानोंकी कथा ही विशेष प्रसिद्ध है। कौशाम्बीकी गुहा रहने पर भी यूएनचुअङ्ग वहां छाया न देख सके; किन्तु वे गयाधाममें छायादर्शनसे कृतार्थ हुए थे। पूर्ववर्त्ती परिव्राजक फाहियानका कहना है, कि बुद्धकी यह छाया लगभग तीन फुट लम्बी थी और उस समय यह खूब साफ सुथरा दिखलाई पड़ती थी। नगरकी निकटवर्त्ती गुहामें बुद्धकी छाया समधिक प्रसिद्ध थी। इसी गुहामें नाग गोपाल रहते थे और बुद्धदेव महा-निर्वाण-प्राप्तिके कुछ पहले इसमें अपनी छाया रख गए हैं। गुहाके प्रवेश-द्वार पर दो चौकोण प्रस्तर थे जिनके ऊपर तथागतका पदचिह्न देखा जाता था।

चैत्य, विहार।

बौद्धप्रभावके समय भारतवर्षने जिस स्थपति और भास्कर विद्याका परिचय दिया है, आज भी वह पृथ्वीके पुरातत्त्वविदोंकी आलोचनाका विषय है तथा और भी बहुत दिन रहेगा। आज तक जितने स्तूप, मन्दिर मूर्त्ति, स्मृतिस्तम्भ या चैत्यादि आविष्कृत हुए हैं; उनके आमूल विवरणका उल्लेख करना असम्भव है। हां, जो विशिष्ट-रूपसे धर्मादि कार्यके साथ संसृष्ट है, उसका स्थूल विवरण नीचे दिया जाता है।

धर्ममन्दिर या मठका साधारण नाम है चैत्य। चैत्य कहनेसे सिर्फ ईंट या पत्थरका बना मन्दिर ही नहीं समझा जाता वरन् पवित्र वृक्ष, स्मृतिपरिचायक प्रस्तर, पवित्र स्थान या खोदित लिपि आदि भी समझी जाती

हैं। सुतरां पवित्र धर्मगृहमात्र ही चैत्य हैं; किन्तु चैत्य होनेसे ही वह कोई घर या मन्दिर नहीं होगा।

ऐसे पवित्र मन्दिरोंके मध्य विहार और स्तूप ही प्रधान है। मठ अथवा जीवित बुद्धोंके वासस्थान या मूर्त्तिसमन्वित मन्दिरको साधारणतः विहार कह सकते हैं। नेपालमें चैत्य और विहारका पार्थक्य है उसमें कुछ विशेषता नहीं देखी जाती। इनमेंसे जहां आदि-बुद्ध या ध्यानीबुद्धकी मूर्त्ति है, वह चैत्य और जहां शाक्यदेव अन्यान्य सात मानुषी बुद्ध अथवा साधुओंकी मूर्त्ति है, वह विहार कहलाता है। नेपाली चैत्यका विस्तृत विवरण पढ़नेसे मालूम होता है, कि चैत्य स्तूप-के सिवा और कुछ भी नहीं है। स्तूपका पालिनाम थुप है। बहुतेरे स्तूपका अर्थ धातुगर्भ या गर्भ लगाते हैं। यथार्थमें स्तूपके एक अंशको गर्भ कहते हैं अर्थात् जहां पवित्रस्मृति संरक्षित होती है वही गर्भ है। प्रसिद्ध व्यक्तियोंकी समाधिके ऊपर स्मृति-संरक्षणके लिए स्तूप बनाया जाता था, ऐसा बहुतोंका कहना है तथा यह सम्भवपर भी मालूम होता है। स्तूपकी भित्ति चौकोन और गोलाकार दोनों ही हो सकती है। इसके ऊपर एक गुम्बज और गुम्बजके ऊपर विपरीतभावमें संस्थापित एक पीरामिड या चूड़ा भी बनी होती थी। पीरामिड एक क्षुद्र 'गल' द्वारा संलग्न रहता था। सबसे ऊपर एक या दो छत्र और छत्रके ऊपर पताका तथा पुष्पमाला इत्यादि परिशोभित होती थी।

कार्लिके गुहामन्दिरमें जो स्तूप देखा जाता है, वह उपर्युक्त प्रकारसे बना है। इसके ऊपर अब भी काष्ठ-निर्मित छत्रका चिह्न देखा जाता है।

सिंहल और नेपालके प्राचीन चैत्योंका आकार ऐसा ही है। सिंहलमें किसी किसी स्तूपके ऊपर खर्वाकृति गुम्बज देखनेमें आता है; किन्तु साधारण आकृति जल-बुद्बुद-सी है और उसके ऊपर यथाक्रम तीन छत्र संस्था-पित हैं।

छत्रकी संख्या अथवा पीरामिडके विभिन्न स्तर ब्रह्माण्डके विभागनिर्देशक हैं। उत्तर और दक्षिण प्रदेशीय बौद्धगण बहुत-से स्तूपोंके मध्य मेरुपर्वतकी प्रतिकृति देखते हैं।

चीनदेशके परिव्राजक जिस समय भारतवर्ष आये थे, उस समय देशके नाना स्थानोंमें स्तूप और चैत्य थे। अब उनमेंसे बहुतोंका अस्तित्व भी नहीं है; किंतु कहीं कहीं भग्नावशेष नजर आता है।

यूएनचुअङ्ग जब तीर्थपर्यटनमें भारतवर्ष पधारे, उस समय उन्होंने बहुत-से विहार और सङ्घाराम भग्नावस्था-में देखे थे जो उनके लिखे विवरणसे ही मालूम होता है। किन्तु इसके दो शताब्दी पहलेके विवरणसे जान पड़ता है, कि वे सब अभग्नावस्थामें ही थे। पेशावरका सुवृहत् स्तूप ४०० हाथसे भी अधिक ऊँचा था। यूएन-चुअङ्गने जिस समय इसे देखा था, उसके पहले भी यह तीन बार अग्निदाहसे नष्ट हो गया था। यह स्तूप महा-राज कनिष्कके समयका बना हुआ था। जान पड़ता है, कि मानिकियालका स्तूप भी उसी समय बना था। प्रवाद है, कि पुष्कलावतीमें दो स्तूप अशोकके समयमें निर्मित हुए थे। ब्रह्मा और इन्द्र देवताने बहुमूल्य प्रस्तर-से विनिर्मित दो स्तूप संस्थापित किये थे; ऐसा जो प्रवाद है, उसमें कदापि ऐतिहासिकगण विश्वास नहीं करेंगे। उपर्युक्त स्तूपसमूहका भग्नावशेष यूएनचुअङ्गने देखा था।

अशोकावदानमें लिखा है, कि सम्राट् अशोकने भारत-वर्षमें कुल ८४००० धर्मराजिका या स्तूप और विहार बनवाये। बुद्धदेवके निर्वाणप्राप्तिके बाद जो आठ स्तूप निर्मित हुए, उनमेंसे सातका द्वार अशोक द्वारा उद्घाटन हुआ है। सिर्फ रामग्राम स्तूपका द्वार वे नहीं खोल सके थे।

वाराणसीके निकट सारनाथका विहार और स्मृति-प्रासाद ७वीं शताब्दीमें भी अविकृत अवस्थामें था; किन्तु अभी वह भग्नावशेषमें परिणत हुआ है। यहांका एक मन्दिर अब जैनोंके अधिकारमें है।

केवल साधु और धार्मिकोंके स्मरणके लिए स्तूप नहीं बनाये जाते थे; मथुरामें सारिपुत्र, मौद्गल्यायन और आनन्दके उद्देश्यसे ऐसे स्तूप उत्सर्ग किये गए थे। अभिधर्म, विनय और सूत्रग्रन्थके उद्देश्यसे भी स्तूप बन-वानेका विवरण मिला है।

कपिलवस्तुमें भी बहुत-से स्मृतिपरिचायक स्तूप और

विहारकी कथा सुनी जाती है; किन्तु उनका नामनिशान तक भी नहीं है। मध्ययुगमें मगधमें भी स्तूपकी कमी न थी।

सिंहलके सबसे प्रसिद्ध और प्राचीन स्तूपका नाम महाथूप था। दुट्ठगामनिके समयमें बुद्धदेवके पदचिह्नके ऊपर यह स्तूप बनाया गया था। यह अनुरोधपुरके उत्तर संस्थापित और तीन सौ हाथ ऊँचा था। इसके समीप ही अभयगिरिका प्रसिद्ध सङ्घाराम वर्त्तमान था। इसके अलावा अन्यान्य स्तूप, विहार और प्रासाद इत्यादिकी संख्या सिंहलमें उतनी कम न थी।

प्राचीन बौद्धधर्मग्रन्थमें बुद्धदेवकी मूर्त्तिपूजाका विवरण नहीं देखा जाता। उनके पदचिह्न, आसन, वेदी या चक्र आदिके निकट ही मनुष्य बुद्धदेवकी उपस्थितिकी कल्पना कर उनकी पूजा तथा भक्ति करते थे, सिर्फ ऐसा ही विवरण मिलता है। बहुतोंका विश्वास है, कि अशोकके राजत्वके बादसे मूर्त्तिपूजाकी प्रथा प्रचलित हुई है। इस सम्बन्धमें कोई ऐतिहासिक तथ्य तो नहीं मिलता, पर नाना प्रकारके प्रवाद और उपन्यास अवश्य प्रचलित हैं। सब अर्चानाओंकी यथायथ आलोचना और अनुसन्धान कर ऐतिहासिक तथ्य निर्णय करना इस प्रबन्धमें असम्भव है। यूरोपीय पुरातत्त्वविदोंका सिद्धान्त है, कि ईसाजन्मके एक सौ वर्ष पहले या उसके बाद मूर्त्तिपूजाकी प्रथा प्रचलित हुई है। किंतु अलेकसन्दरके समय प्राक-लिखित कहानीसे भी जाना जाता है, कि इससे पहले भी मूर्त्तिपूजा प्रचलित थी। जो कुछ हो, सम्राट् कनिष्कके समयसे ही यह प्रथा समस्त भारतवर्षमें प्रसिद्ध थी। धर्मपिपासु चीनपरिव्राजकोंने अपने भ्रमण-वृत्तान्तमें सैकड़ों बार बुद्धदेवकी मूर्त्तिका उल्लेख किया है। फाहियानने ५वीं शताब्दीमें साङ्काश्य नामक स्थानमें बुद्धदेवकी दश हाथ लम्बी खड़ी मूर्त्ति देखी थी और यूएनचुअङ्ग भी ७वीं शताब्दीमें उक्त मूर्त्ति देख गए थे। इन्होंने पेशावरमें बारह हाथ लम्बी श्वेत-प्रस्तरकी बनी बुद्धमूर्त्तिका दर्शन और पूजन किया था। यह मूर्त्ति कनिष्कस्तूपके समीप ही थी और रातको इस स्तूपके चारों ओर घूमती थी।

निर्वाणप्राप्तिके समय बुद्धदेवकी उपविष्ट प्रतिमूर्त्तिका उल्लेख अनेक बार देखनेमें आता है। बामियान नामक स्थानमें वैसी ही एक मूर्त्तिकी कथा सुननेमें आती है जो लगभग १०० फीट ऊँची थी। यूएनचुअङ्गका कहना है, कि उन्होंने कुशीनगरके शालवनमें निर्वाणप्राप्तिकी अवस्थापरिचायक एक और बुद्धमूर्त्ति देखी थी।

बुद्धदेवकी चित्रित प्रतिकृतिकी संख्या भी मध्ययुगमें एकदम कम न थी। यूएनचुअङ्गने पेशावरमें एक प्रतिकृति देखी थी जिसके शिल्पचातुर्य और सौन्दर्य पर वे चकित हो गए थे। इसके समीप ही उन्होंने बुद्धदेवकी दो मूर्त्ति देखी थी जिनमेंसे एक छः फीट और दूसरी चार फीट लम्बी थी।

बौद्ध भक्तगण केवल शाक्यमुनिकी ही श्रद्धा भक्तिमें नहीं लगे रहते, वरन् पूर्व बुद्धोंकी मूर्त्ति भी पूजते थे। अनेक स्थानोंमें शाक्यबुद्धमूर्त्तिके साथ तीन या छः गत-बुद्धकी मूर्त्ति देखी जाती है। भविष्यद्बुद्ध मैत्रेयके प्रति उनकी और भी ज्यादा भक्ति थी। ये अभी बोधिसत्त्व अवस्थामें वर्त्तमान हैं। इनकी अनेक मूर्त्ति नजर आती हैं। सबसे प्रसिद्ध मूर्त्ति उद्यानकी राजधानीके निकट उपत्यकामें थी जो ६० हाथ ऊँची और सुनहले काठकी बनी थी। बौद्धग्रन्थसे पता चलता है, कि बोधिसत्त्व अब लों पृथिवी पर अवतीर्ण नहीं हुए हैं। सुतरां जिस शिल्पीने यह मूर्त्ति बनाई थी, वह अर्हत् मध्यान्तिकके अनुग्रहसे तुषित स्वर्ग गया था और वह बोधिसत्त्वका शारीरिक परिमाण और वर्ण इत्यादि देख कर पृथिवी पर आया और वैसी ही मूर्त्ति बनाई।

उत्तर प्रदेशीय बौद्धगण केवल बोधिसत्त्व-मैत्रेयकी मूर्त्तिपूजा कर परितृप्त न हो सके। वे अवलोकितेश्वर और मञ्जुश्री बोधिसत्त्वका भी मूर्त्तिपूजन करते थे। फाहियानका कहना है, कि उन्होंने मथुराके महायान सम्प्रदायको प्रज्ञापारमिता, मञ्जुश्री और अवलोकितेश्वरकी पूजा करते देखा था। इसके दो शताब्दी बाद यूएनचुअङ्गने परिभ्रमणकालमें अवलोकितेश्वरकी असंख्य मूर्त्ति देखी थी। कपिश, उद्यान, काश्मीर, कन्नौज, गया और महाराष्ट्रके कपोतसङ्घाराममें इस बोधिसत्त्वके मूर्त्ति-पूजनकी कथा उनके लिखे विवरणसे मिलती है। किन्तु चीन परिव्राजकोंने कहीं पर अवलोकितेश्वरके बहुमुखकी

कथाका उल्लेख नहीं किया है। मालूम होता है, कि अन्तमें उनका नाम समन्तमुख हुआ है और नामकी सार्थकताके लिए बहुतसे मुख पीछे संलग्न हुए हैं।

मथुरामें मञ्जुश्रीका खूब सम्मान था। वहां एक स्तूपमें उनका स्मृतिचिह्न परिरक्षित था, किन्तु किसी मूर्त्तिका विवरण नहीं मिलता। अभी मञ्जुश्री चतुर्भुजके रूपमें देखे जाते हैं। किन्तु यवद्वीपमें १२६५ ई०को आदित्य वर्माने जब उनकी मूर्त्तिप्रतिष्ठा की, उस समय उनके दो हाथसे अधिक नहीं थे।

ध्यानीबुद्धोंकी मूर्त्ति प्रचलित होनेके समयसे उत्तर प्रदेशमें बौद्धगण उनको पूजा करते आये हैं। मूर्त्ति और चित्रित प्रतिकृति द्वारा ध्यानीबुद्धगण, उनकी शक्ति या तारागण और सन्तान मानवसमाजमें प्रचारित तथा अर्चित होती हैं। नेपाल, तिब्बत और मङ्गोलियामें उक्त बुद्ध बोधिसत्त्व तथा शक्तियोंकी अर्चना अधिक परिमाणमें देखी जाती है। इन बुद्धोंका मुख और अवयव बुद्धाकृतिकी तरहका है, आसन तो पद्मासन है; किन्तु वाहनमें कुछ पार्थक्य है,—वैरोचनका वाहनसिंह, अक्षोभ्यका हस्ती, रत्नसम्भवका अश्व, अमिताभका हंस और अमोघसिद्धिका वाहन गरुड़ है। उक्त पांच मनुष्य विभिन्न पांच प्रकारकी मुद्रा द्वारा परिचित हैं। चित्रित करनेके समय इन्हें विभिन्न रंगोंसे चित्रित करते हैं। जिस बुद्धकी जो तारा या शक्ति और जो बोधिसत्त्व है, वे उसी वर्णमें चित्रित होते हैं। तारा तथा बोधिसत्त्वोंकी खड़ी और बैठी दोनों अवस्थाकी मूर्त्ति देखी जाती है।

बोधिद्रुम।

पवित्र बोधिवृक्षको परिभोग चैत्य कहते हैं; किन्तु यथार्थमें इसे उद्देशक कहना चाहिए। अति प्राचीन कालसे ही बौद्धगण इस पवित्र वृक्षकी पूजा तथा भक्ति करते आये हैं। जिस समय मूर्त्तिपूजा भी आरम्भ नहीं हुई थी, उसी समयसे बोधिवृक्ष पूजा जाता है।

छः विगत बुद्धके बोधिवृक्षका चित्र हम लोग देख सकते हैं जिनके नाम ये हैं—विपस्सि, कश्यप, कोणगमन, ककुसन्ध, वेससभू और शाक्यमुनि। शाक्यमुनिका बोधिवृक्ष तथा उसके नीचे बोधिखण्ड (जिस आसन पर उन्होंने सिद्धि लाभ की थी) बहुत-से स्थानोंमें चित्रित देखा जाता है। इस वृक्षके ऊपर दो छत्र और शाखा प्रशाखामें पताका चित्रित है। सबसे ऊपर दो कोनेमें दो अप्सराएं हाथमें फूलकी माला लिए खड़ी हैं। उनके नीचे दो पुरुषमूर्त्ति भी देखी जाती हैं, किन्तु इनके पैर पृथिवीसे नहीं छूते। वृक्षका स्कन्ध बहुतसे स्तम्भ द्वारा परिवेष्टित है, पादमें एक आसन और आसनके सामने घुटना टेक दो मनुष्यमूर्त्ति हाथ जोड़ी खड़ी हैं। इनमेंसे एकके पीछे एक रमणीकी मूर्त्ति और दूसरेके पीछे नागराज विराजमान हैं। बोधिमण्ड या आसन समचतुष्कोण प्रस्तरवेदिका है। एक चित्रमें चार गत बुद्धके चार आसन चित्रित हैं।

गयाधामके बोधिवृक्षके नीचे जिस आसन पर बैठ कर शाक्यमुनिने सिद्धिलाभ किया था, जिस आसन पर समस्त विगत बुद्धोंने बुद्धत्व प्राप्त किया है, भविष्यत्के बुद्धगण भी वहीं बुद्धत्व लाभ करेंगे, ऐसा यूएनचुअङ्गका मत है। उनके समयमें यह आसन चारों ओर दीवारसे घिरा था।

सम्प्रति जो बोधिवृक्ष देखा जाता है, उसका पाददेश लगभग ३० फीट ऊँचा और चारों ओर सोपानावली है। बौद्धोंका विश्वास है, कि बोधिमण्ड या नरसिंहासन पृथिवीके ठीक बीचमें अवस्थित है। प्रवाद है, कि अशोककी कन्या इस बोधिवृक्षका दक्षिण ओरकी शाखा सिंहल ले गई थी और महामेघवाहनने इसे रोपा था। उससे अत्यन्त आश्चर्यजनक आठ शाखाएं निकलीं और सिंहलके विभिन्न स्थानमें लगाई गईं। उक्त आठ शाखासे पुनः बत्तीस प्रशाखाएं हुईं। महाबोधिवंश नामक ग्रन्थमें इस बोधिवृक्षका इतिहास सविस्तार वर्णित है।

बुद्धका पदचिह्न।

महाबोधिवृक्षके जितने प्रकारके चित्र देखे जाते हैं, पदचिह्नके उतने नहीं देखे जाते। सबोंका विश्वास है, कि तथागत जो सब पदचिह्न रख गए हैं, उनमेंसे सुमनापर्वतके ऊपर स्थित 'श्रीपद' ही सबोंकी अपेक्षा प्रसिद्ध है। प्रवाद है, कि जिन जब सिंहल आये थे, तब उन्होंने अनुराधपुरके दक्षिण एक पैर और १५ योजनकी दूरी पर एक पर्वतके ऊपर दूसरा पैर रखा था। इस "श्रीपाद" को नाना धर्मावलम्बी मनुष्य नानारूप

समझते हैं। शैवोंका विश्वास है, कि यह महादेवका पदचिह्न है, मुसलमान लोग इसे आदमका पदचिह्न वतलाते हैं और वौद्धोंका कहना है, कि यह बुद्धका पदचिह्न है। इसकी लम्बाई पांच फोटसे ज्यादा और चौड़ाई २॥ फीट है।

विगत चार बुद्धोंके जो पदचिह्न मृगदाव या सारनाथमें दिखाये जाते थे, वे उक्त पदचिह्नकी अपेक्षा और भी बड़े थे। यूएनचुअङ्गका कहना है, कि यह पांच सौ फीट लम्बा और ७ फीट गहरा था। उक्त चीनपरिव्राजकने पाटलिपुत्रमें बुद्धदेवका जो पदचिह्न देखा था, वह उससे वहुत छोटा है। यह एक फूट आठ इञ्च लम्बा और छः इञ्च चौड़ा है।

अन्यान्य वहुत-से स्थानोंमें भी पदचिह्नप्रदर्शनकी कथा प्रचलित है। उद्यानमें सुवात नदीके उत्तरी किनारे एक वड़े प्रस्तरखण्ड पर एक पदचिह्न था जो दर्शकके मनोभावानुसार छोटा और वड़ा दिखलाई पड़ता था।

नेपाली वौद्धगण पादचिह्नको 'पादुका' कहते हैं। वे लोग बुद्धके पदचिह्नको वृक्षकी-सी और मञ्जुश्रीको चन्द्र की-सी आकृति द्वारा चित्रित करते हैं।

पादचिह्नपूजाकी प्रथा कहांसे चली है, इसका यथार्थ्य आज तक निरूपित नहीं हुआ है। मालूम होता है, कि हिन्दुओंके अनुष्ठित विष्णुकी पादचिह्नपूजासे ही इस प्रथाकी उत्पत्ति होनेकी विशेष सम्भावना है।

बौद्धतीर्थ।

गयाधाममें जिस प्रकार पवित्रस्थानकी संख्या अधिक है, वाराणसीमें भी उससे नितान्त कम नहीं है। शाक्यमुनिने बुद्धत्वलाभके पहले वोधिसत्त्व अवस्थामें वाराणासीके जिस स्थान पर भविष्यद् बुद्धत्वलाभकी भविष्यद्वाणी सुनी थी, वह स्थान मनुष्योंको दिखलाया जाता है। भविष्यद्कालके बुद्ध जो अभी वोधिसत्त्व अवस्थामें वर्त्तमान हैं, इस मैत्रेयने भी इसी वाराणसी क्षेत्रमें शाक्यमुनिके समीप अपनी (मैत्रेयकी) भविष्यद्बुद्धत्वप्राप्तिकी कथा सुनी थी।

वौद्धधर्मग्रन्थमें उल्लिखित प्रसिद्ध चार तीर्थक्षेत्रके सिवा और भी अनेकानेक तीर्थोंका उल्लेख है। सिंहलद्वीपमें एक स्थान ऐसा दिखाया जाता है, जहां एक वृक्षके नीचे बुद्धदेव वैठे थे। इसी प्रकार नानास्थानमें अनेक तीर्थप्रवाद है। धर्मग्रन्थमें जिस तीर्थका उल्लेख नहीं है, प्रवादवाक्यने उसे तीर्थमें परिणत किया है।

धर्मचक्र।

धर्मचक्रकी उत्पत्ति कहांसे हुई, इसका निर्णय करना सहज नहीं है। विष्णुचक्रसे यह धर्मचक्र आया है, या नहीं इसका भी क्या ठीक है? धर्मचक्रकी प्रतिमूर्त्ति निम्नलिखितरूपसे प्रदर्शित हुई है। एक मन्दिरमें एक छत्रके नीचे यह धर्मचक्र सुन्दर वस्त्रमें सुसज्जित रखा हुआ है। दोनों वगलमें दो पुरुषमूर्त्ति खड़ी हैं। नीचे चार घोड़ेके रथ पर एक राजा वैठे हैं। खोदित लिपिपाठसे जाना जाता है, कि इस राजाका नाम था प्रसेनजित्। वे कौशलके अधिपति थे।

अन्य एक फलक पर चक्रकी जो प्रतिकृति देखी जाती है, उसमें वह एक अति उच्च स्तम्भके ऊपर संस्थापित है।

साञ्चि, गया और श्रावस्तीमें ऐसे ही ढंगके धर्मचक्रकी प्रतिकृति पाई गई हैं।

पर्वदिन।

धर्मचर्चाके लिए निर्दिष्ट दिनका नाम 'उपोसथ' है। प्रत्येक पक्षकी अष्टमी, चतुर्दशी, पूर्णिमा और अमावस्याका दिन पर्वमें गिना जाता था। जान पड़ता है, कि वौद्धोंने इस प्रथाका अनुकरण अन्यान्य धर्म-सम्प्रदायसे किया है। मालूम होता है, कि जनसाधारणके मतके प्रति लक्ष्य और सम्मान रख कर तथागत ऐसा विधान किया करते थे।

साप्ताहिक उपोसथका क्या गृही और क्या भिक्षु दोनों सम्प्रदाय ही पालन करते थे। प्रतिमासमें चार दिनके मध्य दो दिन भिक्षुगण प्रातिमोक्षकी आवृत्ति करते थे। यदि श्रमणोंमें किसीके साथ किसीका विरोध होता, तो उस विरोधभञ्जन और पुनः मैत्री संस्थापनके दिनको भी वे पवित्र दिन समझते थे। इसका पालि नाम है 'सामग्गी उपोसथ।'

सिंहल, ब्रह्मदेश और नेपालमें प्रतिमास धर्मचर्चाके लिए ये चार दिन निर्दिष्ट हैं; यथा—अमावस्या, पूर्णिमा और प्रतिपक्षकी अष्टमी तिथि। तिव्वतमें चतुर्दशी, अमावास्या

पूर्णिमा तथा प्रतिपक्षकी चतुर्दशी यही चार दिन धर्मचर्चाके लिए अवधारित हैं। धर्मसूत्रकी जो विधि है, वह विभिन्न प्रदेशोंमें विभिन्न अर्थमें गृहीत होनेके कारण ऐसा पार्थक्य मालूम पड़ता है। सिंहलमें निर्दिष्ट विश्रामदिनके साथ मनुके विधानका सामञ्जस्य है। आपस्तम्बके विधानानुसार अमावस्याके समय दो दिन विश्राम देनेकी विधि है।

उपोसथ विश्रामका दिन है। इस दिन वाणिज्य या अन्य कोई काम करना मना है, यहां तक, कि विद्यालय अथवा विचालयका कार्य भी बन्द रहता है। मछली पकड़ने या शिकार खेलने तककी मनाही है। प्राचीन कालसे इस दिन उपवासकी प्रथा प्रचलित है। गृहस्थोंको इस दिन परिष्कृत वस्त्र पहनना और शुद्ध चित्तसे रहना चाहिए। उक्त आठ प्रकारके उपदेशोंका प्रतिपालन करना उनके लिए पुण्यकार्य है।

प्रत्येक विश्रामदिनमें धर्मप्रचार और उपदेश प्रदान करना साधारण रीति है। धर्मग्रन्थसे कुछ पढ़नेका भी नियम है। पहले भिक्षुगण इस कामके अधिकारी थे। फिलहाल सिंहलके हरएक घरमें जा कर अन्यान्य व्यक्ति भी देशीय भाषामें धर्मग्रन्थका पाठ करते हैं।

वर्षाकाल ही धर्मप्रचारका प्रशस्त समय है। बौद्धधर्मके प्रवर्त्तन समयसे ही यह प्रथा चली आती है। प्राचीन कालमें भारतवर्षमें धर्मकार्यके लिए एक वर्ष तीन भागमें बँटा था। प्रत्येक फाल्गुनी, आषाढ़ी और कार्त्तिकी पूर्णिमामें बलि प्रभृति द्वारा चातुर्मास्य आरम्भ होता था। बौद्धोंने यही प्रथा कायम रखी है, पर पशुबलि आदि प्रचलित नहीं है।

वर्षाकालका निर्जनवास आषाढ़ मासकी पूर्णिमा या इसके एक महीने बादसे शुरू होता है। सिंहल प्रदेशमें तीन महीने तक निर्जनवास करना पड़ता है। जिस दिन इस निर्जनवासका शेष होता है, उसका नाम प्रवारणा है। इस दिन पांच या इससे अधिक श्रमण इकट्ठे हो कर सङ्घके विधानावलीकी आवृत्ति करते हैं।

महीनेकी चतुर्दशी और पूर्णिमामें यह पारायण उत्सव सम्पन्न होता था। इन दो दिनोंमें श्रमणोंको उपहार देना और भोजन करना पड़ता था तथा उन लोगोंकी एक मिसल या रथयात्रा होती थी। सिंहल और ब्रह्ममें अब भी यही प्रथा प्रचलित है।

बाद इसके बौद्धभक्तगण श्रमण अर्थात् भिक्षुओंको वस्त्रदान करते थे। कमसे कम पांच भिक्षु मिल कर निर्द्धारित करते थे, कि किन किन भाइयोंको वस्त्रकी आवश्यकता है। यह निश्चित हो जाने पर भिक्षु और गृहीगण एकत्र हो भिक्षुओंका परिधेय परिच्छद प्रस्तुत और उसे पीतवर्णसे रंगा देते थे। चौबीस घण्टेके भीतर यह सब काम सम्पन्न होता था।

सिंहलके बौद्धगण वसन्तकालके प्रारम्भमें एक उत्सव करते हैं। मारके विनाश करनेके उपलक्षमें यह उत्सव मनाया जाता है। श्यामदेश में इस उत्सवका नाम संक्रान अर्थात् संक्रान्ति है। इसका विवरण पढ़नेसे साफ साफ मालूम होता है, कि यह हिन्दुओंके वसन्तोत्सवका अनुकरणमात्र है।

वैशाखी पूर्णिमामें एक बौद्ध-उत्सव होता है जिसका नाम है वैशाखी-पूजा। इस दिन बुद्धदेवने जन्मग्रहण किया था और इसी तिथिको उन्हें बुद्धत्व तथा निर्वाण लाभ हुआ था। यह उत्सव श्यामदेशमें ही समधिक प्रचलित है। पहले सिंहलमें भी इसका विशेष प्रचलन था। इसी उत्सवका स्मृतिस्वरूप आज भी बङ्गालके नाना स्थान तथा मयूरभञ्जमें वैशाखी पूर्णिमाको धर्मका गाजन या उड़ापर्व होता है।

बौद्धधर्मका जिस समय विशेष प्रभाव था, उस समय प्रति पांच वर्षके अन्तमें एक पाञ्चवार्षिक उत्सव मनाया जाता था। इसका दूसरा नाम था 'महामोक्षपरिषद्'। इस समय भिक्षुओंको तथा सङ्घमें भी प्रचुर उपहार दान किये जाते थे। कन्नोजके प्रसिद्ध सम्राट् हर्ष शिलादित्य नियमितरूपसे यह उत्सव खूब धूमधामसे मनाते थे।

सङ्गीति या महाधर्मसभा।

दो प्रधान घटनाएं ठीक एक सौ वर्षके अन्तर पर घटी थीं। यथा—दो सङ्गीति या धर्मसम्मिलन। सभी बौद्धधर्मग्रन्थमें इस सङ्गीतिका विवरण मिलता है। इन सब विभिन्न विवरणमें कहीं कहीं पर कुछ कुछ विशेषता मालूम पड़ती है, किन्तु वह अत्यन्त सामान्यके और धर्त्तव्यके मध्य नहीं है।

१म संगीति।

प्रथम सङ्गीतिके सम्बन्धमें पालि ग्रन्थमें जो विवरण दिया गया है, वह इस प्रकार है :—बुद्धदेवकी मृत्युके बाद सुभद्द (सुभद्र) नामक एक भिक्षुने अपने सहयोगियोंको यह मन्त्रणा दी, "तुम लोग बुद्धकी मृत्यु पर दुःख विलाप न करो। वृद्ध श्रमण मरे नहीं हैं, वरन् हम लोगोंने छुटकारा पाया है। वे हमेशा 'यह करना उचित है और यह नहीं, ऐसा कह कर हम लोगोंको तंग करते थे। अब हम लोग स्वाधीन हो गए—जो इच्छा होगी वही करेंगे।"

यह बात सुन कर भिक्षुगण बड़े ही दुःखित हुए और इस उत्पातसे बचनेके लिए बुद्धके प्रिय शिष्य महात्मा काश्यपने प्रस्ताव किया, कि बुद्धदेवके उपदेशकी आवृत्तिके लिये सभी भिक्षुओंको एकत्र होना आवश्यक है। काश्यपके इस प्रस्तावका सबोंने अनुमोदन कर उन्हींसे पांच सौ अर्हत् चुननेका अनुरोध किया। बाद यह स्थिर हुआ, कि राजगृहमें इस सम्मिलनका अधिवेशन हो। राजगृहके समीप 'वेभार' (वैभार) पर्वतकी 'सत्तपन्नी' (सप्तपर्णी) गुहामें सात महोनेके परिश्रमसे उपालिकी सहायतासे "विनय' और आनन्दकी सहायतासे "धर्म" नामक बौद्धधर्मशास्त्र निश्चित हुआ।

कोई कोई पाश्चात्य पण्डित कहते हैं, कि इसमें कोई ऐतिहासिक सत्यता नहीं है—यह कल्पनाप्रसूत उपकथा मात्र है*। महापरिनिर्वाणसूत्रमें सुभद्रके उपरिउक्त व्यवहारका उल्लेख तो है पर उससे सङ्गीतिका आह्वान हो सकता है, ऐसा कोई भी कारण होनेकी सम्भावना नहीं देखी जाती।

महावस्तु ग्रन्थमें लिखा है, कि काश्यपके सङ्गीति-आह्वानका कारण कुछ और था। बुद्धदेवको मृत्युके बाद बौद्धगण उनके उपदेशका प्रतिपालन नहीं करते थे और इसो निन्दाके भयसे उन्होंने सभी अर्हतोंको एकत्र किया था। इस ग्रन्थसे पता चलता है, कि वैभार पर्वतके उत्तर सप्तपर्ण गुहामें यह अधिवेशन हुआ था।

जो कुछ हो, जो सब विवरण मिलते हैं, प्रत्येकमें देखा जाता है, राजगृहमें ही विनय और धर्म ये दो पिटक पुनः संशोधित हुए थे। किसी किसीका कहना है, कि 'अभिधर्मकी भी पुनरावृत्ति हुई थी। उपालि और आनन्दका कार्य भी सभी स्वीकारते हैं। काश्यप कर्तृक धूतवाद-व्याख्याकी बात भी कोई कहते हैं।

यथार्थमें बुद्धदेवकी मृत्युके बाद उनके शिष्यगण कर्त्तव्याकर्त्तव्यके निर्द्धारणके लिए राजगृहमें समवेत हुए थे, यह ऐतिहासिक सत्य है। किन्तु वहां त्रिपिटक, विनय या सूत्रकी आलोचना या संशोधनके सम्बन्धमें किस प्रकार निर्द्धारित हुआ था, यह ठीक करना कठिन है। त्रिपिटक, विनय और सूत्र देखो।

२य सङ्गीति।

समस्त बौद्ध विवरणसे मालूम होता है, कि वैशाली नामक स्थानमें द्वितीय सङ्गीतिका अधिवेशन हुआ था। ये सब विवरण ऐतिहासिक-से प्रतीत होते हैं; किन्तु इनकी तारीख और अन्यान्य छोटे छोटे विवरणके सम्बन्धमें मतपार्थक्य है।

इस सङ्गीतिके सम्बन्धमें पालिग्रन्थमें ऐसा विवरण मिलता है,—बुद्धदेवकी निर्माणप्राप्तिके एक सौ वर्ष बाद वैशालीके वृजि भिक्षुओंने निर्द्धारण किया, कि स्वर्ण रौप्यादिका उपहारग्रहण, मध्याह्न भोजन, दुग्धपान प्रभृति दश कर्म वैध है। बाद काकण्डकके पुत्र स्थविरयशा वहां आये और वृजि भिक्षुओंके ऐसे व्यवहारको देख उनका तीव्र प्रतिवाद किया। भिक्षुओंने उनकी एक भी न सुनी और उलटे उन्हें नाना प्रकारसे अपदस्थ करनेकी चेष्टा करने लगे। इस पर उन्होंने वृजि भिक्षुओंमेंसे एकको प्रतिनिधि मान कर वैशाली नगरके बौद्धगुणियोंके सामने सारा हाल कह सुनाया। उन्होंने सारी रामकहानी सुन और यशाकी युक्तिका सारतत्त्व समझ कर उन्हींको प्रकृत श्रमण चुन लिया तथा भिक्षुओंके कार्यको निन्दनीय बतलाया। भिक्षुओंके प्रतिनिधि यह खबर पा कर भी शान्त न हुए, वरन् वृजि भिक्षुओंने यशाको सङ्घसे निकाल बाहर किया। उसी समय यशाने कौशाम्बी जा कर पश्चिमाञ्चलमें अवन्ती नगर और दक्षिणाञ्चलमें समस्त भिक्षुओंके पास दूत भेज कर सबोंको सम्मिलित होनेके लिए कहा। इन्होंने स्वयं अहोगङ्गशैलनिवासी सम्भूत-साणवासी नामक महा-

* Oldenberg, Intro Mahavagga, p. XXVII.

पुरुषके निकट जा कर सारा हाल कह सुनाया। इधर जिन सब अर्हतोंको संवाद मिला, वे सब भी वहां पहुंचे। कुछ समय तक तर्क वितर्कके बाद यह निश्चय हुआ, कि सोरेय्यवासी रेवतकी इस विषयमें सम्मति लेना आवश्यक है। रेवत, आगमन, धर्म, विनय प्रभृति सभी शास्त्रमें पारदर्शी थे। इधर रेवत योगबलसे स्थविरोंके इस अभिप्रायको जान कर इस विरोधसे दूर रहनेकी इच्छासे अपना स्थान छोड़ साङ्काश्य नामक स्थानको चल दिये। भिक्षुगण जब उनकी खोजमें वहां पहुंचे, तब उन्होंने देखा कि वे वहांसे कन्नोज गए हुए हैं। अनेक चेष्टा करनेके बाद सहजाति नामक स्थानमें वे उनसे मिले। उल्लिखित दशकर्म नीतिसंगत हैं या नहीं ऐसा पूछने पर उन्होंने उत्तर दिया, "यह अवैध है।" इस पर यशाने उनसे अनुरोध किया, कि इस दुर्नीतिका सर्वसाधारणमें प्रचार होनेके पहले ही इसका निवारण करना उचित है।

इधर वृज्जि भिक्षुगण रेवतको हस्तगत करनेके लिए सहजाति गए। उनके शिष्य-उत्तरको उत्कोच और रेवत-को नाना प्रकारके उपहार द्वारा वशीभूत करनेकी बहुत चेष्टा करने पर भी भिक्षुगण कृतकार्य न हो सके।

मीमांसाके लिये जब सभी इकट्ठे हुए, तब रेवतने प्रस्ताव किया, कि जहांसे यह प्रश्न उठा है, वहीं पर इसकी मीमांसा करना उचित है। सबोंने इस प्रस्तावका अनुमोदन किया और भिक्षुगण वैशालीमें इकट्ठे हुए। उस समय उक्त नगरीमें एक प्रसिद्ध बूढ़े स्थविर रहते थे जिनका नाम था 'सब्बकामिन्' (सर्वकामी)। इन्होंने १२० वर्षके पूर्व उपसम्पदा प्राप्त की थी। रेवत और सम्भूतने जब उनसे यह बात कही तब वे भी उनके प्रस्तावमें सह-मत हुए।

जब महासभाका अधिवेशन हुआ, तब कई कारणोंसे प्रश्नकी मीमांसा हल न हुई। बादमें रेवतने प्रस्ताव किया, कि आठ श्रमणोंके ऊपर इस प्रश्नकी मीमांसाका भार सौंपा जाय और उन आठोंमेंसे चार पूर्वदेशीय और चार पश्चिमदेशीय हों। तदनुसार पूर्वदेशसे सर्वकामी, साढ़ह, खुज्जसोभित और वासभगामिक तथा पश्चिमसे रेवत सम्भूत, यशा और सुमन ये ही आठ मनुष्य निर्वाचित हुये। वालिकाराम नामक निर्जन स्थानमें उन लोगोंकी इस समितिकी बैठक हुई।

इस समितिकी कर्मप्रणाली निम्नलिखित रूपसे सम्पन्न हुई थी। रेवत प्रश्न पूछते और सर्वकामी प्रति प्रश्नका शास्त्रसङ्गत उत्तर देते थे। जिस दशविध-कार्यको ले कर प्रश्न उठा था, उनके प्रति प्रश्नमें ही वृजि भिक्षुओं-के विरुद्ध मीमांसा हुई। दशकर्म ही अवैध कह कर स्थिर हुआ।

किसी किसी ग्रन्थमें ऐसा भी देखा जाता है, कि इस विचार पर सन्तुष्ट न हो कर अनेक भिक्षुओंने एक और सभा की जिसका नाम महासङ्गीति था। किन्तु कहां इस सङ्गीतिका अधिवेशन हुआ अथवा कौन इसके नेता थे, इसका प्रकृत विवरण मिलना असम्भव है।

वैशालीकी उक्त सङ्गीतिके सम्बन्धमें और भी अनेक प्रकारके विवरण देखे जाते हैं। किस समय इसकी बैठक हुई इसका पता लगाना टेढ़ी खीर है। आधुनिक पण्डितगण अनेक गवेषणा तथा आलोचना करके भी इसका प्रकृत तथ्य निर्द्धारण न कर सके। एक जगह देखा जाता है, कि बुद्धदेवने भविष्यद्वाणी कही थी,—"मेरे परिनिर्वाणके चार मास बाद सङ्घका प्रथम और ११८ वर्षके बाद बौद्धधर्म प्रचारके लिए द्वितीय सम्मि-लन होगा। उस समय धर्माशोक नामक एक महा धार्मिक तथा प्रतापशाली नरपति जम्बूद्वीपमें राज्य करेंगे।'

किसी किसी विवरणसे पता चलता है, कि स्थविर यशाने जिस समय यह आन्दोलन किया था, उस समय कालाशोक नामक एक व्यक्ति राजा थे। वे कालाशोक थे या धर्माशोक यह ले कर अनेक वादानुवाद हो गया है, किन्तु स्थिर मीमांसा कुछ भी न हुई।

वैशालीकी सङ्गीतिके सम्बन्धमें जो सब विवरण या मतामत हैं, उन सबोंकी पर्यालोचना करनेसे यही समझा जाता है:—वैशालीमें सङ्घका एक सम्मिलन हुआ जिसमें 'विनय'के विषयमें आलोचना हुई थी। महासङ्गीति या महासङ्घिकसे बहुत पहले यह सम्मिलन हुआ था और इसके साथ महासङ्घिकोंका कोई संश्रव न था। बहुतों-के मतसे बुद्धदेवकी निर्वाण-प्राप्तिके एक सौ दश वर्ष बाद इस सङ्गीतिका अधिवेशन हुआ।

पाटलिपुत्रमें ३य सङ्गीति।

पाटलिपुत्रकी सङ्गीतिमें सब श्रेणीके बौद्धभिक्षुओंका

सम्मिलन नहीं था। इस सिम्मलनमें केवल विभज्यवादी श्रमण इकट्ठे हुए थे। महासङ्गीतिके बाद यह सम्मिलन हुआ था, पर महासङ्घिकोंने इसमें योगदान नहीं किया। कहते हैं, सम्राट् अशोकके अभिषेकके अठारह दिन बाद इस सङ्गीतिका अधिवेशन हुआ। इस सभाके विवरण-वर्पके सम्बन्धमें भी अनेक प्रकारकी कल्पित गल्प और उपकथा वर्णित है।

वैशाली-सङ्घमें उपस्थित वौद्ध-स्थविरोंको मालूम था, "१०८ वर्षके बाद एक बौद्ध श्रमणका आविर्भाव होगा। वे ब्रह्मलोकसे अवतीर्ण हो कर ब्राह्मणवंशमें जन्मग्रहण करेंगे। इनका नाम 'तिस्स मोग्गलिपुत्त, (तिष्य मौद्गली-पुत्र) होगा। ये 'सिग्गव' और 'चन्दवज्जि' नामक दो भिक्षुसे दीक्षालाभ और तीर्थिक नीतिका विनाश कर सत्यधर्म संस्थापन करेंगे। धार्मिक अशोक नृपति जिस समय पाटलिपुत्रमें राज्य करेंगे, उसी समय ये अवतीर्ण होंगे।"

द्वितीय सङ्गीतिके सात सौ स्थविरकी निर्वाण-प्राप्तिके बाद तिष्यका जन्म हुआ। ये पहले ब्राह्मण्यधर्म और विज्ञानमें शिक्षित हुए और अन्तमें इन्होंने सिग्गवसे दीक्षा ली।

बुद्धदेवकी निर्वाणप्राप्तिके २३६ वर्ष बाद (ईस्वी सन् ३०७के पहले) अशोकाराम विहारमें साठ हजार भिक्षु रहते थे। ये विभिन्न सम्प्रदायके होने पर भी सभी कापाय वस्त्र पहनते थे। इन्होंने बुद्धप्रचारित नीतिकी बड़ी ही दुर्गति की थी। उसी समय मोग्गलिपुत्तने एक सङ्गीति बैठाई जिसमें एक महन्त भिक्षु आये थे। दुर्नीति और अपधर्मका विनाश कर इन्होंने सत्यधर्मका पुनरुद्धार और अभिधर्मकी धर्मनीतिका प्रचार किया। कहते हैं, कि इन्हीं मोग्गलिपुत्तसे महेन्द्रने पञ्च निकाय, अभिधर्म-का सप्तग्रन्थ तथा सम्पूर्ण विनयपिटक पढ़ा और सिंहलमें धर्मप्रचार कर प्रसिद्धि लाभ की थी।

अन्य एक विवरणसे जाना जाता है, कि एक हजार नहीं, वरन् ६० हजार भिक्षु इस सङ्गीतिमें उपस्थित हुए थे।

इस सङ्गीतिका प्रधान उद्देश्य है, महाविहारके विभज्यवादियोंके मतको प्रकृत बौद्धधर्म कह कर प्रचार करना और इसकी प्रधानता संस्थापित करना।

विभज्यवाद 'थेरवाद' (स्थविरवाद) और आचार्यवाद तथा इससे निकली हुई शाखासे बिलकुल विभिन्न है। कालक्रमसे मूल स्थविरवादसे दो शाखाएं निकलीं, 'मही-शासक' और 'वज्जिपुत्तक' (वृज्जिपुत्रक)। यह शेष-शाखा फिर चार भागोंमें बंटो हैं, यथा—धर्मोत्तरिक, भद्रयानिक, षण्णगरिक और सम्मितीय। महीशासककी दो शाखा थीं, यथा—सर्वास्तिवादी और धर्मगुप्तिक। अन्यान्य छोटी छोटी शाखाप्रशाखाका उल्लेख करना निष्प्रयोजन है।

बौद्धग्रन्थादिमें जो सब प्रमाण मिलते हैं, उनमें विभज्य-वादको ही एकमात्र सत्यधर्म अथवा अन्यान्य सम्प्र-दायसे सर्वश्रेष्ठ समझनेका कोई प्रकृष्ट कारण नहीं मिलता। यह ले कर अवश्य उस समय नाना प्रकार-का वादानुवाद चलता था और इसीलिए विभज्य-वादियोंने अपना प्राधान्य स्थापित करनेके लिए तीन उपाय ठीक कर रखे थे,—(१) उनके धर्मग्रन्थसमूह मागधी-भाषामें लिखा है। (२) तिस्स मोग्गलिपुत्तका ब्रह्म-लोकमें जन्म और वहांसे अवतरणका प्रवाद तथा भविष्य-द्वाणी। (३) उनका धर्मग्रन्थ 'परिवार' पाटलिपुत्रकी सङ्गीतिमें पुनरावृत्त हुआ था, ऐसी घोषणा।

सभी विषयोंकी आलोचना करनेसे ऐसी धारणा होती है, कि पाटलिपुत्रकी सङ्गीति सम्प्रदायविशेषका सम्मिलन थी। महासङ्घिकोंने इसमें योगदान नहीं दिया था। उस समय स्थविरवादी सभी एकमत थे या उनमें छोटे सम्प्रदाय थे, यह प्रमाण करना असम्भव है। सिंहलके विभज्यवादी बौद्धगण सङ्गीतिके विवरणको अन्य प्रकारसे रञ्जित कर जनसाधारणकी अश्रद्धा हटाने अथवा सङ्गीतिकी बातमें मनुष्य विश्वास न करें इसलिए उत्तरदेशीय बौद्धगण उसकी चेष्टामें लगे थे। यही कारण है, कि परवर्त्ती बौद्धग्रन्थमें तिस्स मोग्गलिपुत्तका नाम अकसर देखा जाता है।

जो कुछ हो, पाटलिपुत्रके बौद्धसङ्घमें सम्राट् अशोक सद्धर्मानुवर्त्ती किये गये थे इसमें सन्देह नहीं। इस सङ्गीतिके बाद जो बुद्धभाषित शास्त्रसमूह लिपिबद्ध और भारतके नाना स्थानोंमें प्रचारित होनेकी व्यवस्था हुई, जयपुरके अन्तर्गत भावरा नामक स्थानसे आवि-

प्रकृत सम्राट् अशोककी गिरिलिपिसे उसका स्पष्ट प्रमाण मिलता है। उक्त गिरिलिपिमें विनयपिटकका सारांश 'विनयसमुत्कर्ष' नामक प्रतिमोक्ष, सूत्रपिटकके अंगुत्तर निकायके अन्तर्गत आरण्यक 'अनागत् भय' सूत्र, विनय पिटकके महावग्गके अन्तर्गत 'उपतिष्यप्रश्न' वा 'शारिपुत्रप्रश्न' सूत्रपिटकके सुत्तनिपातके अन्तर्गत 'मुनिगाथा' नामक १२श सूत्र, मज्झिमनिकायके अन्तर्गत 'लाघुलोवादमें मृषावाद' या अम्वलट्ठिका राहुलोवाद नामक ६१ सूत्र इत्यादि प्राचीन बौद्धग्रन्थावलीका स्पष्ट उल्लेख है। प्रियदर्शी शब्द देखो।

अशोकके शासनकालमें बौद्धधर्मका प्रचार।

पहले ही कहा जा चुका है, कि अशोकके राजत्वकालमें पाटलिपुत्रमें सङ्गीतिका अधिवेशन हुआ था; यह विश्वसनीय है। अशोकविन्दुसारके पुत्र और चन्द्रगुप्तके पौत्र थे। सम्भवतः ३१६ ईस्वीसन्के पहले अशोकका राज्याभिषेक हुआ था। प्रियदर्शी देखो।

अशोकके समयके जो सब अनुशासनादि मिलते हैं, उनमें देखा जाता है, कि बौद्धधर्ममें दीक्षित हो कर यद्यपि उन्होंने इस धर्मप्रचारके लिए यथासाध्य चेष्टा की थी और बहुत-सा धन भी खर्च किया था, तो भी आजीवक, निर्ग्रन्थ प्रभृति सम्प्रदायको उन्होंने नहीं सताया। किन्तु बौद्धोंने उक्त सम्प्रदायके मनुष्योंको सब समय कृष्णवर्णमें चित्रित करनेमें एक भी कसर उठा न रखी। अशोकके उनके प्रति अत्याचार नहीं करनेके कारण बौद्धगण कभी कभी उनसे अप्रसन्न रहते थे।

उन्होंने बौद्धधर्मका अवलम्बन कर जिन सब अनुशाशनका प्रचार किया था, उनसे जाना जाता है, कि वे युवावस्थामें बौद्धधर्मके लिये यथेष्ट अर्थव्यय कर अपनेको एक भिक्षु बतला गए हैं। उनके राजत्वकालमें बौद्धधर्म भारतवर्षमें उन्नतिकी चरम सीमा पर था। जब वृद्धावस्थामें वे मन्त्रियों और राजकुमारोंके परामर्शानुसार चलनेमें वाध्य हुए, उसी समयसे बौद्धधर्म प्रचारके लिए खर्चकी कमी हो गई, ऐसा बौद्धधर्म ग्रन्थ पढ़नेसे मालूम होता है। अधिक क्या, अशोकके समय यथार्थमें "अहिंसा परमोधर्मः" रूप मूलमन्त्र केवल भारतवर्षमें ही नहीं, देश देशान्तरमें भी प्रचारित हुआ था। इसके पहले सैकड़ों यज्ञशालामें हजारों पशुवध होता था। अशोकने पशुवध रोकनेके लिए ऐसा अनुशासन प्रचार किया था :—

"देवताओंके प्रियराजा प्रियदर्शीका कहना है, कि अभिषेकके २६ वर्ष बाद निम्नलिखित जीवोंका वध निवारित हुआ—

शुक, शारिका, अलुन, चक्रवाक, हंस, नान्दीमुख, गिलाट् जतुका, अम्बाकपीलिका, दुन्दी, अलठिका, मत्स्य, वेदवेयक, गङ्गापुलक, संकुद्रमत्स्य, ककटशल्यक, पन्नसस्, सृमर, षण्डक, ओकापिण्ड, पलसत, श्वेतकपोत, ग्राम्यकपोत और अन्य सभी चतुष्पद (जीव), जिसका भोग नहीं लगता और न खाया ही जाता है; अजका (छागी) एड़का (भेड़ी), शूकरी, गर्भिणी या दुग्धवती तथा उनके छः मासके छोटे बच्चे भी अवध्य हैं। अनिष्टार्थ या हिंसार्थ वनमें आग न लगानी चाहिए और न जीव द्वारा दूसरे जीवका पालन ही करना चाहिए। तीन चतुर्मास्यमें, पौष पूर्णिमा, चतुर्दशी, अमावस्या तथा प्रतिपद्में और प्रति उपवासके दिन मत्स्य अवध्य है—इस समय बेचना भी मना है। अष्टमी, चतुर्दशी तथा पूर्णिमामें तिष्य और पुनर्वसु नक्षत्रयुक्त दिनमें, तीव्र चातुर्मास्य और पर्वदिनमें वृष, अज, मेष, शूकर तथा अन्यान्य जीवको खस्सी न करना चाहिए। तिष्य और पुनर्वसु नक्षत्रमें, चतुर्मास्य-पूर्णिमा तथा पक्षमें अश्व या गो लाञ्छित करना उचित नहीं।"

(५म स्तम्भलिपिका अनुवाद)

बुद्धदेवके जीवनकालमें मध्यदेश और प्राच्य या पूर्व भारतमें बौद्धधर्म जो प्रचारित हुआ था, उसका पता बौद्धधर्म ग्रन्थसे मिलता है। अशोकके बौद्धधर्ममें दीक्षित होनेके पहले तक अन्य किसी स्थानमें धर्मप्रचारकी कोई विशेष चेष्टा नहीं होती थी। अशोकके समयसे ही बौद्धधर्मका प्रभाव नाना स्थानोंमें फैल गया, यह सर्ववादिसम्मत है। किन्तु प्रचारकी प्रणाली ले कर अनेक प्रकारका मतभेद देखा जाता है।

अशोकके राजत्वकालमें बौद्धधर्मप्रचारका प्रधान केन्द्र सिंहल ही था। पहले ही लिखा जा चुका है, कि निर्वाणप्राप्तिके पूर्व बुद्धदेवकी भविष्यद्वाणी थी, कि २३६

वर्ष बाद महेन्द्र नामक एक व्यक्ति सिंहलमें बौद्धधर्मका आलोक प्रज्वलित करेंगे। जिस वर्ष पाटलिपुत्रमें अधिवेशन हुआ था, उसी वर्ष महेन्द्रने सिंहलमें धर्म-प्रचारका भार ग्रहण किया और चार श्रमणोंको साथ ले वे चल दिये। पहले उन्होंने विदिशगिरि जा कर अपनी माताको दीक्षित किया। प्रवाद है, कि उसी स्थान पर स्वर्गसे देवराज इन्द्र उनकी मुलाकातमें आये थे और सिंहलमें कुसंस्काराच्छन्न मनुष्योंके निकट बौद्धधर्मका सत्यालोक प्रकाश करनेका उन्हें आदेश दिया। महेन्द्र अपने साथियोंके साथ शून्य मार्गसे सिंहलकी ओर चले और मिस्सक नामक पर्वतके ऊपर उतरे। वहां सिंहलके राजा देवानाम्प्रिय शिकार करते थे। कालक्रमसे राजाके साथ उनको भेंट हो गई और उन्होंने राजाको 'हस्तिपदसुत्त' होनेके लिये उपदेश दिया। राजा वहीं पर ४० हजार अनुचरोंके साथ बौद्धधर्ममें दीक्षित हुए। बाद वे राजधानी गए और वहां राजकुमार, राजपुत्री तथा सभासदोंने भी उनका धर्मोपदेश सुन कर वही धर्म ग्रहण किया। धीरे धीरे मनुष्योंकी संख्या इतनी बढ़ गई, कि नगरके बाहर नन्दन उद्यानमें धर्मोपदेश प्रदान करनेका स्थान निर्दिष्ट हुआ। यहां भी बहुतसे सिंहलवासियोंने बौद्धधर्मका आश्रय लिया। राजाने मेघवन नामक उद्यानमें कपड़ेका घर बनावा कर प्रचारकोंके रहनेका स्थान निर्दिष्ट कर दिया। दूसरे दिन राजाने वहां जा कर जब देखा, कि श्रमणगण उनके निर्दिष्ट आवासस्थलमें अत्यन्त आराम तथा सन्तोषके साथ रहते हैं, तब उन्होंने यह मेघवन उद्यान सङ्घके नामसे उत्सर्ग किया। यही मेघवन अन्तमें तिस्सराम या महाविहारमें परिणत हुआ।

महाविहारके श्रमणोंने सिंहलमें बौद्धधर्मप्रचारके सम्बन्धमें यद्यपि अनेक अलौकिक तथा महेन्द्रकी क्षमता प्रभृतिका खूब बढ़ा चढ़ा कर वर्णन किया है, तो भी इसे एकबारगी अमूलक नहीं कह सकते। क्योंकि, उत्तराञ्चलके बौद्धगण भी स्वीकार करते हैं, कि महेन्द्र द्वारा ही पहले पहल सिंहलमें बौद्धधर्मका प्रचार हुआ। प्रभेद इतना ही देखा जाता है, कि महाविहारके भिक्षुओंने महेन्द्रको अशोकका पुत्र कहा था, किन्तु उत्तरप्रदेशीयगण उन्हें अशोकके भाई बतलाते हैं।

दोनों प्रदेशके बौद्धोंने धर्मप्रचार-सम्बन्धमें मध्यान्तिक नामक एक साधुको खूब प्रशंसा की है। सिंहलवासियोंका कहना है, कि मध्यान्तिकसे महेन्द्रने उपसम्पदा प्राप्त की थी और मध्यान्तिकने गान्धार प्रदेशमें एक क्रुद्ध तथा भयावह नागराजका दमन कर बहुत-से मनुष्योंको उसके दासत्वसे मुक्त किया था। केवल नागलोक ही नहीं, उन्होंने नरलोकमें भी बहुतोंको बौद्धधर्मका आभास दिया था। उत्तरप्रदेशीय बौद्धोंके विवरणसे मालूम होता है, कि मध्यान्तिक आनन्दके शिष्य थे। उन्होंने काश्मीरमें हुलुण्ड नामक नागको शासन कर उसे बौद्धधर्ममें दीक्षित किया। काश्मीरमें उनके द्वारा बौद्धधर्मका इतना अधिक प्रचार हुआ, कि थोड़े दिनोंमें ही वहां नागगण कर्तृक पांच सौ मठ प्रतिष्ठित हुए।

मज्झिम नामक एक दूसरे स्थविरने हिमालयके यक्षोंको बौद्धधर्ममें दीक्षित किया था, ऐसा भी वर्णन मिलता है।

महादेव नामक एक और विख्यात धर्मप्रचारकका विवरण देखा जाता है। उन्हींसे महेन्द्रने [illegible] ग्रहण की थी। इन्होंने महीन्तल प्रदेशमें जा कर बहुतोंको बंधनमुक्त किया था। उत्तरदेशीय बौद्धधर्मग्रन्थमें भी इनका नाम मिलता है; किन्तु इन सब ग्रन्थोंमें वे सन्देहवादीके जैसे वर्णित हुए हैं। इनके कूटतर्क द्वारा बौद्धोंमें अनेक प्रकारके मतभेद तथा वादविसंवाद हुए थे। हिन्दू-देवता महादेवकी वर्णनाके साथ इस महादेवका अनेक सादृश्य देखा जाता है। काश्मीरमें इनका बड़ा ही प्रभाव था और इनसे बौद्ध-धर्मप्रचारमें बहुत ही विघ्नबाधाएं हुई थीं। किसी किसी बौद्ध-पण्डितका कहना है, कि शैवेराव भी काश्मीरमें बौद्ध-धर्मप्रचारके प्रतिबन्धक हुए थे और वही दूसरे भावमें महादेवके मत्थे मढ़ा गया है।

सिंहलदेशीय विवरणमें और भी अनेक धर्मप्रचारकके नाम मिलते हैं,—रक्षित, महारक्षित, धर्मरक्षित और महाधर्मरक्षित। इनके नामोंमें नितान्त सौसादृश्य रहने पर भी इनमेंसे कोई भी छोड़ देने लायक नहीं हैं। शोन और उत्तर नामक और भी दो मनुष्योंके नाम मिलते हैं। वे स्वर्णभूमि नामक स्थानमें गये और वहांसे पिशाचोंको भगा कर बहुतोंको मुक्तिपथ पर लाये। यथार्थमें ये

दोनों व्यक्ति शोनोत्तर या उत्तर नामके एक ही व्यक्ति थे, यह निर्णय करना दुरूह है।

अशोकसे ले कर कनिष्क तक बौद्धप्रभाव।

अशोककी मृत्युके बादसे कनिष्कके सिंहासनारोहण पर्यन्त तीन शताब्दी तक बौद्धधर्मका प्रभाव उत्तरोत्तर बढ़ता ही गया। यद्यपि शुङ्गवंशीय राजाओंने बौद्धधर्मके प्रति उतना सुदृष्टिपात नहीं किया, तो भी बौद्धधर्मका प्रभाव उत्तरमें हिमालयको भेद कर चीनदेश तक फैला हुआ था और दक्षिणमें सिंहल देशमें इसने जो प्रभाव विस्तृत किया था, वह आज भी वर्त्तमान है।

मौर्यवंशीय शेष राजा पुष्यमित्रके द्वारा राज्यच्युत हुए थे। पुष्यमित्र ब्राह्मण्यधर्मके विश्वासी थे। इन्होंने बौद्धधर्मके प्रति कितना अत्याचार किया था, उसका ऐतिहासिक तथ्य संग्रह करना सहज नहीं है। तब इस विषयमें अनेक किंवदन्ती प्रचलित है :—एक विवरणमें देखा जाता है, कि इन्होंने मध्यदेशसे ले कर जलंधर तक बहुत-से बौद्धसंघाराम जला दिये और अनेक मठधारी शिक्षित बौद्ध-भिक्षुओंको मार डाला। फिर भी एक दूसरे विवरणमें लिखा है, कि इन्होंने देशसे बौद्धधर्म हटानेकी इच्छासे पाटलिपुत्रका कुक्कुटाराम ध्वंस कर डाला तथा शाकल प्रदेशके निकटवर्त्ती भिक्षुओंका विनाश किया। तीसरे विवरणसे पता चलता है, कि नागार्जुनके समयसे ले कर असङ्गके समय तक बौद्धोंके प्रति तीन बार घोरतर अत्याचार किया गया था।

२री शताब्दीमें मध्यदेशमें बौद्धधर्मकी कैसी भी अवस्था क्यों न हो, उत्तर-पश्चिम भारतवर्षमें यवन-राजाओंके अधिकारमें बौद्धधर्मका प्रबल प्रभाव उस समय भी वर्त्तमान था। उनमें मिलिन्द (Menander) नामक नरपति बौद्ध धर्मानुरक्त थे। ऐसा विवरण भी मिलता है, कि ये स्थविर नागसेन द्वारा बौद्धधर्ममें दीक्षित हुए थे।

नागसेनके सम्बन्धमें विशेष विवरण नहीं मिलता। तिब्बत देशीय एक ग्रन्थमें देखा जाता है, कि सोलह महापुरुषोंमेंसे एक पुरुष काश्यपकी मृत्युके बाद धर्मप्रचारमें निकले। एक और तिब्बतीय पुस्तकसे पता चलता है, कि नागसेन और मनोरथ इन दोनोंमें मतभेद हो गया था। इन सब ग्रन्थोंमें जो समय निर्देश किया गया है, वह विश्वासयोग्य नहीं है और न उसके ऊपर निर्भर करना ही निरापद है।

साहित्यिक प्रमाण छोड़ कर यदि केवल प्राचीन सङ्घाराम, विहार, अनुशासन प्रभृतिके ऊपर निर्भर किया जाय, तो निःसन्देह प्रमाणित होगा, कि खृष्ट पूर्व ३०० और १०० ई०के बीच बौद्धधर्मने विशेष विख्याति पाई थी। इस मूल धर्मसे अनेक प्रकारके सम्प्रदायोंकी भी सृष्टि हुई थी। कनिष्कके राजत्वके पूर्व काल तक अठारह प्रकारके विभिन्न सम्प्रदायका विवरण मिलता है। मालूम होता है, कि २री शताब्दीमें ही महायान सम्प्रदायकी पुष्टि, उन्नत भाव तथा चिन्ताने बौद्धसमाजमें प्रवेश किया था।

सिंहलमें बौद्धधर्मका प्रभाव एक-सा बना रहा। देवानाम्प्रिय राजाने चालीस वर्ष तक राज्य किया, बाद उनके भाई सिंहासन पर अधिरूढ़ हुए। देवानाम्प्रियके ८६ या १०६ वर्ष बाद अभयदुट्ठगामनीका राज्य आरम्भ हुआ। ये बौद्धधर्मके बड़े ही अनुरागी थे। इन्होंने बहुत से स्तूप, विहार और लौहप्रासाद बनवाये थे। कहते हैं, कि महाविहार इन्हींका बनाया हुआ था। फिर किसी किसीका कहना है, कि तिस्सके समयमें महाविहारकी प्रतिष्ठा हुई थी। महास्तूपके पाददेशमें बुद्ध, धर्म, सङ्घ और धर्मप्रचारक महादेव, उत्तर तथा धर्मरक्षितकी प्रतिमूर्त्ति संस्थापित है।

जान पड़ता है, कि अभयवट्टगामनीके राजत्वकालमें अभयगिरि सङ्घारामकी स्थापना हुई थी। उसी समय सिंहलमें त्रिपिटक और अत्थकथा (बौद्धधर्मनीति) लिखी गई थी।

इसके बाद और भी अनेक राजाओंने बौद्धसङ्घके महदुपदेशका साधन किया था जिनमेंसे वसभ (ऋषभ)-का नाम ही श्रेष्ठ था। इन्होंने बहुत-से स्तूप बनवाये थे। इसके अलावा एक विहार और एक उपासनागृह, अनेक भग्नारामका संस्कार किया तथा ४४ बार वैशाखोत्सव मनाया था। और भी अन्यान्य प्रकारके सत्कार्य द्वारा ये यशस्वी हुए थे।

कनिष्क।

कनिष्कका राज्य भारतवर्षके इतिहासमें बड़ा ही प्रसिद्ध है। इन्हीं शकविजेतासे शकसंवत्सरकी गणना शुरू हुई है। खोतन, काशगार, गान्धार, सिन्धु, उत्तर-पश्चिम भारत, काश्मीर, मध्यदेश, यहां तक कि पूर्व भारतका अधिकांश इनके राज्यभुक्त हुआ था। ये भी अशोकके जैसे महाप्रतापशाली राजा थे और इन्होंने वौद्धधर्मकी खूब उन्नति की थी।

प्रवाद है, कि ये पहले बौद्धधर्मके अविश्वासी थे। धार्मिकप्रवर सुदर्शनने इन्हें बौद्धधर्ममें दीक्षित किया था। किस समय इन्होंने यह धर्म ग्रहण किया, इसका निर्णय करना मुश्किल है। तब उनके समयमें (१०० ई०में) जो संघका अधिवेशन हुआ था, वह निश्चित है। कोई कोई कहते हैं, कि जलन्धरके निकट कुवनके विहारमें यह सङ्गीति हुई थी। फिर किसी किसीका कहना है, कि काश्मीरके अन्तर्गत कुंतलवनके विहारमें इसका अधिवेशन हुआ था।

इस तृतीय महासङ्गीतिके कार्यविवरणमें नाना प्रकारके मतभेद हैं, यहां सबोंका उल्लेख करना असम्भव है। तिब्बतदेशीय एक ग्रन्थमें देखा जाता है, कि एक सौ वर्षसे भी अधिक समयसे बौद्धोंके मध्य जो मतभेद चला आता था, उसकी मीमांसा करानेके लिए कनिष्कने यह सङ्गीति बैठाई थी। कुल मिला कर अठारह संप्रदाय इस सभामें उपस्थित थे तथा सभी धर्मके मूलसूत्रकी रक्षामें लगे थे। इस सभामें संपूर्ण विनय और सूत्र तथा अभिधर्मके अलिखित अंश लिपिबद्ध हुए थे। उसी समय महायान सम्प्रदायका बहुत कुछ धर्ममत लिया गया था; किन्तु प्राचीन वौद्ध-श्रावकोंने उसमें कोई आपत्ति नहीं की।

एक दूसरे तिब्बतीय ग्रन्थमें देखा जाता है, कि धर्मग्रंथसमूहको लिपिवद्ध करनेके लिए पार्श्वके दलभुक्त पांच सौ अर्हत तथा वसुमित्रके दलभुक्त पांच सौ बोधिसत्त्व यहां इकट्ठे हुए थे।

यूएनचुअङ्गका कहना है, कि राजा कनिष्कने ही मतभेद और विरोध मिटानेके लिए यह सङ्गीति या सभा बैठाई। इसमें पार्श्वकी भी अनुमति ली गई थी। अर्हतोंके सम्मिलनके लिए राजाने एक विहार बनवाया जहां ५०० भिक्षु इकट्ठे हुए थे। इस महाधर्मसभामें उत्तरमें तिब्बत, सिक्किम, भूटान, नेपाल, लादक, चीन, मङ्गोलिया, तातार, यहां तक कि जापानसे और दक्षिणमें सिंहल, ब्रह्म, श्याम आदि स्थानोंसे बौद्धप्रतिनिधि आये थे। सिंहलके महावंशसे जाना जाता है, कि अलसद (अलेकसद्रिया)-से यहां तीन हजार भिक्षुओंका आगमन हुआ था। वसुमित्रके कर्त्तृत्वाधीनमें इस सभाका कार्य सम्पन्न हुआ था। यहां सूत्रपिटकका लक्षश्लोक-समन्वित एक भाष्य, उतना ही श्लोकसमन्वित विनय-विभास (विनयका भाष्य) और अभिधर्मका विभास (अभिधर्मका भाष्य) रचा गया था।

यद्यपि इस तृतीय सङ्गीतिके सम्बन्धमें अनेक विषय अंधकारमें पड़े हुए हैं; किंतु एक विषयका स्पष्ट प्रमाण मिलता है। सिंहलसे प्रतिनिधिके आने पर भी इस सङ्गीतिमें सम्भवतः उन्होंने योगदान नहीं दिया। भारतवर्षीय वौद्धोंके सभी संप्रदायके प्रतिनिधि इसमें उपस्थित हुए थे और इस सङ्गीति द्वारा जो छोटे छोटे मतविरोधकी मीमांसा हुई थी, उसे ही परम लाभ कहना चाहिये।

महायान-सम्प्रदाय।

पहले ही कहा जा चुका है, कि महायान सम्प्रदायके भाव और चिन्ताने बहुत पहलेसे ही बौद्ध-समाजमें प्रवेश किया था। किस समय इस संप्रदायका प्रथम आविर्भाव हुआ, इसका ठीक ठीक पता लगाना असम्भव है। बहुतोंका अनुमान है, कि बुद्धनिर्वाणके एक सौ वर्ष बाद वैशालीकी महासङ्घिक-सभासे ही महायानमतका सूत्रपात और स्थविर अश्वघोष द्वारा १ली शताब्दीमें उक्त मत जनसाधारणमें प्रचारित हुआ। आदि वौद्धशास्त्र पालिभाषामें लिखा था,—सम्राट् कनिष्कके आश्रयमें महायानके अभ्युदयके साथ संस्कृत भाषामें बौद्धशास्त्र रचित और प्रचारित हुए। शकराजा प्रधानतः सौर थे; कनिष्कके बौद्धदीक्षा ग्रहण करने पर महायान-मतमें सौरप्रभाव संक्रामित हुआ। महायानके प्रधान उपास्य अमिताभको बहुतेरे सूर्यदेवताका प्रतिरूप मानते हैं। बौद्धग्रन्थमें लिखा है, कि बोधिसत्त्व नागार्जुनने

तृतीय संगीतिके समय जन्मग्रहण किया। ये ही माध्यमिक सम्प्रदायके प्रवर्त्तक थे और इन्होंके द्वारा पूर्व-प्रवर्त्तित महायान संप्रदायकी यथेष्ट उन्नति हुई। ये राहुलभद्र नामक एक ब्राह्मणके शिष्य थे जो महायान संप्रदाय भुक्त थे। इस ब्राह्मणने श्रीकृष्ण और गणेशसे अनेक विषयों में शिक्षा पाई थी। इससे जान पड़ता है, कि महायान सम्प्रदायका धर्ममत बहुत कुछ भगवद्गीतासे लिया गया था। बहुतोंका विश्वास है, कि शैवधर्मके निकट भी महायान अनेक विषयोंमें ऋणी हैं।

किसीका कहना है, कि नागार्जुन ६० वर्ष तक जीवित थे और इसके बाद सुखावती स्वर्गको गए। कोई कोई कहते हैं, कि वे एक सौ वर्ष तक जीवित थे, फिर कोई उन्हें पांच सौ वर्षसे अधिककी परमायु प्रदान करनेमें भी कुण्ठित नहीं होते। राजतरङ्गिणी नामक ऐतिहासिक ग्रन्थमें लिखा है, कि नागार्जुन तुरुष्क राजाओंके बाद आविर्भूत हुए थे। इस विवरणके ऊपर निर्भर कर यह सिद्धान्त करना भ्रमात्मक नहीं होगा, कि नागार्जुन २री शताब्दीके मध्यभाग वा शेषभागमें जीवित थे। देव नामक एक सिंहलवासी स्थविरके साथ नागार्जुनका घोरतर वाक्‌युद्ध हुआ था, ऐसा वर्णन मिलता है। ये देव अल्पवयस्क थे और तीसरी शताब्दीमें भी जीवित थे। इससे भी समझा जाता है, कि नागार्जुन २री शताब्दीके शेष भागमें विद्यमान थे।

यह नवीन धर्मसम्प्रदाय बहुतसे धर्मग्रन्थोंको लिपिबद्ध कर अपनी कार्यतत्परताका परिचय दे गया है। अनेक स्थल पर त्रिपिटकसे मूलसत्य ले कर आवश्यकतानुसार परिवर्त्तित तथा परिवर्द्धित हुआ है। हीनयान-महायानोंको बौद्धधर्मका शत्रु बतलाते थे सही, पर वैसा नहीं देखा जाता है। किन्तु यह अस्वीकार भी नहीं कर सकते, कि मूलधर्मका सत्य ही महायानोंने ग्रहण किया है और टीकाटिप्पनी द्वारा उसका दूसरा अर्थ लगाया है।

मूल बौद्धधर्म कठोर नियमाधीन कुछ भिक्षुसङ्घके सीमाबद्ध था अर्थात् आदि बौद्धधर्म मतसे केवल भिक्षुगण ही मोक्षलाभमें समर्थ थे। किन्तु महायानसम्प्रदायने निखिल जगत्‌में मुक्तिविधान किया था। यदि सभी महायानका आश्रय लें तो अनायास, और बहुत जल्द बोधिसत्त्व हो संसारसागर पार कर निर्वाणपथके पथिक हो सकते हैं। इस विशाल और उदार नीतिसे ही यह संप्रदाय 'महायान' नामसे प्रसिद्ध हुआ था। फिर सङ्कीर्ण-बुद्धि तथा बहुत थोड़े मनुष्योंके मतानुवर्त्ती होनेके कारण आदिबौद्धधर्मानुगामियोंको महायानगण ही अवज्ञाके साथ 'हीनयान' कहते थे। यथार्थमें वे ही प्रत्येकबुद्धयान या श्रावकयान कहलाते थे।

महायानोंके मतसे कर्मशून्य अर्हतोंकी अपेक्षा दया तथा सहानुभूतिपूर्ण बोधिसत्त्वगण श्रेष्ठ हैं, इसीलिए हीनयानगण उनकी निन्दा करते हैं। महायानगण शून्यवादके पक्षपाती हैं। इन्हीं महायानोंसे भारतवर्षमें शून्यवाद अर्थात् 'सर्वं शून्यं' यह मत विशेष भावसे प्रचलित हुआ था।

महायानधर्मके प्रचारका प्रधान कारण यह था कि इन्होंने भक्तिको श्रेष्ठ आसन दिया है और ध्यानधारणा तथा साधना आदिको धर्मका अङ्ग बतलाया है। इसके साथ साथ जीवोंके प्रति दया और सहानुभूति प्रकाश करना इनका प्रधान कर्त्तव्य होनेके कारण भारतवर्षमें लाखों नरनारियोंने इस धर्मका आश्रय लिया था।

प्राधान्य लाभके लिए महायानोंको हीनयान-सम्प्रदायके साथ बहुत दिन लड़ना पड़ा था।

यह पहले ही कहा गया है, कि सिंहलवासी बौद्धोंने जलन्धरकी सङ्गीतिमें योगदान नहीं किया था, यहां तक कि उनके ग्रन्थमें कनिष्कका नाम तक भी नहीं पाया जाता। इससे प्रतीत होता है, कि १ली शताब्दीमें इन दोनों सम्प्रदायमें सम्पूर्ण पार्थक्य था।

२०९ या २१७ ई०में सिंहलपति तिष्यके समय वेतुल्योंकाका एक घोरतर विवाद उपस्थित हुआ जिसका प्रधान उद्देश्य यह था—बुद्ध मनुष्य नहीं हैं, वे तुषित स्वर्गमें रहते हैं, उनके द्वारा धर्मोपदेश नहीं हुआ है। उनके प्रेरित तथा आदिष्ट आनन्दसे ही धर्मोपदेश किया गया है। यही मत ले कर संघर्ष उपस्थित हुआ। यह मत वेतुल्लवाद या वितण्डावाद नामसे प्रसिद्ध है। परंतु तिष्यराजके यत्नसे यह गोलमाल रुक गया। इस समय थेरदेव नामक एक प्रसिद्ध बौद्धाचार्यका आविर्भाव हुआ था।

३री शताब्दीके मध्यभागमें अभयमेघवर्णके राजत्वकालमें महाविहार तथा अभयगिरिके भिक्षुओंके साथ मतविरोध उपस्थित हुआ और उसी समय सागलिक सम्प्रदायकी उत्पत्ति हुई। महासेनके राजत्वकालमें महाविहारके बौद्धोंके प्रति बड़ा ही अत्याचार हुआ। कहते हैं, कि शत्रुओंकी प्ररोचनासे महाविहार विध्वस्त हो गया और अभयगिरिके बौद्धोंकी खूब उन्नति हुई। पीछे यह महाविहार फिरसे निर्मित हुआ।

प्रवाद है, कि महासेनके पुत्र मेघवर्णके राजत्वकालमें (३०६ ई०में) प्रसिद्ध बुद्धदन्त सिंहल लाया गया था। महासेनके समय फाहियान सिंहल आये थे। उनका कहना है, कि उस समय महाविहारमें ३००० और अभयगिरिमें ५००० श्रमण रहते थे तथा अभयगिरि महाविहारको अपेक्षा समधिक समृद्धिशाली था। महानामने ४१०-४३२ ई० तक राज्य किया। उसी समय भारतवर्षसे बुद्धघोष सिंहल-भ्रमणके लिये गये और विशुद्धिमार्ग नामक प्रकाण्ड ग्रन्थकी रचना की। सिंहलवासी उन्हें स्वयं मैत्रीय कह कर सम्मान करते थे।

और भी अनेक राजाओंने सिंहलमें बौद्धधर्मकी उन्नतिके लिए भिन्न भिन्न रूपमें सहायता पहुंचाई थी।

चार दार्शनिक शाखा

चीनपरिव्राजक यूएनचुअङ्ग जिस समय भारतवर्षमें रहते थे, उस समय बौद्धसमाजमें चार प्रधान दार्शनिक संप्रदाय थे :—वैभाषिक, २ सौत्रान्तिक, ३ योगाचार और ४ माध्यमिक। प्रथम दो हीनयान तथा शेषोक्त दो महायान सम्प्रदायभुक्त थे। यूएनचुअङ्गका कहना है, कि सिंहलके महाविहारवासी हीनयान और अभयगिरिके भिक्षुगण महायान संप्रदायी थे।

वैभाषिक।

वैभाषिकगण पृथ्वीका अस्तित्व स्वीकार करते हैं। वे कहते हैं, कि बाह्य जगत्‌के सभी द्रव्योंका ज्ञान उपलब्ध करनेकी क्षमता मनुष्यमात्रको है। ये सूत्रका प्राधान्य अस्वीकार कर "अभिधर्मको" ही प्रामाण्य ग्रन्थ मानते हैं। इनके मतानुसार शाक्यमुनि एक साधारण मनुष्य थे। तब विना दूसरेकी सहायताके वे जो ज्ञान प्राप्त कर सके थे, वही उनका देवत्व था।

सौत्रान्तिक।

सौत्रान्तिकोंका कहना है, कि बाहरी सभी पदार्थ प्रकृत नहीं, छायामात्र है, सुतरां उनका ज्ञान प्रत्यक्ष नहीं हो कर परोक्ष है। ये केवल सूत्रका ही विश्वास करते हैं। इनके मतमें बुद्ध दशबल, चार वैशारद्य, तीन स्मृत्युपस्थानसमन्वित तथा सब भूतोंके प्रति दयावान् थे। इनके दो काय हैं, १ला धर्मकाय और २रा भोगकाय। कुमारलब्ध इस मतके प्रवर्त्तक थे।

योगाचार।

योगाचार श्रेणीके बौद्धदार्शनिकगण विज्ञानके अलावा और किसीका अस्तित्व स्वीकार नहीं करते। इसीलिए इनका अन्य नाम विज्ञानवादी है।

माध्यमिक।

माध्यमिकोंका कहना है, विश्वसंसार इन्द्रजालके सदृश है। सत्य दो प्रकारका है, परामर्श और संवृत्ति (वेदान्तका पारमार्थिक और व्यवहारिक)। इनके मतानुसार सभी स्वप्नवत् हैं,—न सत्ता है, न विनाश है, जन्म, मृत्यु या निर्वाण कुछ भी नहीं हैं। वास्तवमें ये लोग मायावादी होने पर भी 'माया'का व्यवहार नहीं करते; वरन् सांख्यमतके 'प्रधान' और प्रकृति'के बदलेमें 'प्रज्ञा' और 'उपाय' शब्दका व्यवहार करते हैं।

सर्वदर्शनसंग्रहकारोंने माध्यमिक, योगाचार, सौत्रान्तिक तथा वैभाषिक इन चार मतोंका संक्षिप्त परिचय तथा समाचलोना इस प्रकार की है :—

'उक्त चारों मतमें माध्यमिकके मतानुसार—"कुछ भी नहीं है—सभी शून्य है" ऐसा दृष्टान्त दिखलाया गया है। किन्तु जो सब वस्तु स्वप्नावस्थामें दिखाई पड़ती हैं, जाग्रदवस्थामें वह फिर देखनेमें नहीं आतीं और जो वस्तु जाग्रदवस्थामें दिखलाई पड़ती है, स्वप्नावस्थामें फिर वह कुछ भी देखी नहीं जाती और सुषुप्ति दशामें कोई भी वस्तु नहीं दीखती है। सुतरां इससे यह साबित होता है, कि वस्तुतः कोई भी वस्तु सत्य नहीं हैं; सत्य होनेसे अवश्य ही वह सभी समय देखी जाती।

योगाचारके मतसे बाह्यवस्तु मात्र ही मिथ्या हैं, केवल क्षणिक विज्ञान रूप आत्मा ही सत्य है। यह

विज्ञान दो प्रकारका है, प्रवृत्ति विज्ञान और आलय विज्ञान। जाग्रत् तथा सुप्त अवस्थामें जो ज्ञान होता है, उसे प्रवृत्ति विज्ञान और सुषुप्तिदशामें जो ज्ञान होता है, उसे आलय-विज्ञान कहते हैं। यह ज्ञान केवल आत्माका ही अवलम्बन किये रहता है।

सौत्रान्तिकगण बाह्यवस्तुको सत्य तथा अनुमान-सिद्ध मानते हैं। वैभाषिकोंके मतसे बाह्य वस्तु प्रत्यक्ष सिद्ध हैं। एकमात्र भगवान् बुद्धके बौद्धधर्मके उपदेष्टा होने पर भी शिष्योंमें मतभेद होना असम्भव नहीं। इसका दृष्टान्त उन्होंने इस प्रकार दिया है। यदि कोई व्यक्ति कहे, कि 'सूर्य डूब गये' तो यह वाक्य सुन कर लम्पट व्यक्ति परदारहरण तथा तस्कर परधनापहरणका समय उपस्थित हुआ, ऐसा समझेगा। किन्तु साधु सन्ध्या-वन्दनादि भगवत् उपासनाका समय आ गया, ऐसा समझेंगे। अतएव एक व्यक्तिके वक्ता होने पर भी श्रोतागण अपने अभिप्रायानुसार एक वाक्यका पृथक् पृथक् तात्पर्य ग्रहण करते हैं।

उनके मतानुसार वाक्, पाणि, पाद, गुह्य और लिङ्ग ये पांच कर्मेन्द्रिय तथा नासिका, जिह्वा, चक्षु, त्वक् और श्रोत्र ये पांच ज्ञानेन्द्रिय हैं; तथा मन और बुद्धि उभयेन्द्रिय हैं। इन्हीं बारह इन्द्रियोंका आयतन (आवासस्थान) होनेके कारण शरीर द्वादशायतन कहलाता है। सभी बौद्धमतानुसार धनोपार्जन द्वारा इस द्वादशायतन शरीरकी सम्यक् शुश्रूषारूप पूजा करना प्रधान कर्म है। इनके मतसे देवता सुगत और जगत् क्षणभंगुर है; प्रत्यक्ष तथा अनुमान ये दो प्रमाण हैं। दुःख, आयतन, समुदय और मार्ग ये चार तत्त्व; विज्ञानस्कन्ध, संज्ञास्कन्ध, वेदनास्कन्ध, संस्कारस्कन्ध तथा रूपस्कन्ध ये पांच स्कन्ध दुःखतत्त्व; पांच इन्द्रिय तथा रूप, रस, गन्ध, स्पर्श और शब्द ये पांच विषय एवं मन और धर्मायतन अर्थात् बुद्धि ये बारह आयतनतत्त्व हैं। मनुष्योंके अंतःकरणमें स्वभावतः जो रागद्वेषादि उत्पन्न होता है, उसे समुदय तत्त्व कहते हैं।

इस मतसे सभी संस्कार क्षणमात्र स्थायी हैं, ऐसी जो स्थिर वासना है उसका नाम मार्गतत्त्व है। मार्गतत्त्व ही मोक्ष कहलाता है। चर्मासन, कमण्डलु, मुण्डन, चीर, पूर्वाह्न भोजन, समूहावस्थान और रक्ताम्बर ये सब यति धर्मके अङ्ग हैं।

उक्त बौद्धसंप्रदायके मतसे सभी वस्तु क्षणिक अर्थात् प्रथम क्षणमें उत्पन्न और द्वितीयमें विनष्ट होती हैं। आत्मा भी क्षणिक और ज्ञानस्वरूप है; क्षणिक ज्ञानातिरिक्त स्थिरतर आत्मा नहीं है। (सर्वदर्शनसं०)

नागार्जुन माध्यमिक मतके प्रवर्त्तक थे। इसी प्रकार उनके समसामयिक कुमारलब्ध सौत्रान्तिक मत-प्रवर्त्तक समझे जाते हैं। इस समय आर्यदेव तथा अश्वघोष नामक और भी दो प्रसिद्ध स्थविरके नाम मिलते हैं। महायान-सम्प्रदाय अश्वघोषको स्व सम्प्रदाय-भुक्त मानते हैं। नागार्जुन और आर्यदेवके समसामयिक अथच वयःकनिष्ठ नागाह्वय उपाधि तथागतभद्र नामक एक प्रसिद्ध आचार्यका उल्लेख है। ये नालन्दाविहारके प्रधान आचार्य थे। बहुतेरे नागाह्वय और नागार्जुनका एक ही व्यक्ति मानते हैं।

प्रधान प्रधान बौद्धाचार्य।

वैभाषिकोंके मध्य धर्मत्रात, घोषक, बुद्धदेव, वसुमित्र आदि भदन्तगण प्रसिद्ध थे। धर्मत्रात आर्यदेवके शिष्य तथा महाविभाषा और उदानवर्गके प्रणेता थे। वसुमित्र कनिष्क-राजपुत्रके राजत्वकालमें विद्यमान थे। ५वीं शताब्दीमें दो प्रसिद्ध दार्शनिक पण्डितोंका आविर्भाव हुआ था जिनमेंसे एकका नाम आर्य असङ्ग और दूसरेका वसुबन्धु था। ये दोनों ही गान्धारवासी थे। असङ्ग योगाचारमतावलम्बी थे। ये पहले महीशासक और पीछे महायानसम्प्रदायभुक्त हुए। बहुत दिनों तक इन्होंने अयोध्याके निकट एक सङ्घाराममें वास किया। पीछे ये राजगृहमें रहने लगे और वहीं उनकी समाधि हुई। इन्होंने योगसम्बन्धमें एक प्रसिद्ध पुस्तक रची है।

वसुबन्धु असङ्गके छोटे भाई और नालन्दाविहारके अध्यापक थे। नेपालमें इनकी मृत्यु हुई। इनका प्रधान ग्रंथ अभिधर्मकोष है। इसके अलावा इन्होंने महायान ग्रन्थकी टीका भी लिखी है।

उक्त दोनों व्यक्तिके अलावा और भी कितने प्रसिद्ध तथा असाधारण पण्डितोंका विवरण मिलता है जिनमेंसे कोई महायान और कोई हीनयान सम्प्रदायभुक्त थे। इनके

नाम ये हैं:—दिङ्नाथ, गुणप्रभ, स्थिरमति, सङ्घदास, बुद्धदास, धर्मपाल, शीलभद्र, जयसेन, चन्द्रगोमिन्, चन्द्रकीर्त्ति, गुणमति, वसुमित्र (२य), यशोमित्र, भव्य, बुद्धपालित और रविगुप्त।

किसी किसीका मत है, कि इनमेंसे धर्मकीर्त्ति सबसे अन्तमें विद्यमान थे। फिर कोई कहते है, कि धर्मकीर्त्ति कुमारिल भट्टके समसामयिक थे, किन्तु यूएनचुअङ्गने इनका नाम नहीं बतलाया है।

महायानोंके प्राधान्यके साथ इस सम्प्रदायके मध्य किसी किसीने तान्त्रिक गुह्यधर्मका अवलम्बन और प्रकाश किया। भोटदेशीय लामागण नागार्जुनको ही गुह्यमतका प्रवर्त्तक मानते हैं। ६ठी शताब्दीमें ये गुह्यमतावलम्बीगण 'मन्त्रयान' नामसे प्रसिद्ध हुए। उस समय चीन और जापान तक बौद्धतान्त्रिकका अभ्युदय हुआ था। ७वीं शताब्दीमें भोटदेश (तिब्बत)-में 'मंत्रयान' मत प्रचलित हुआ। १०वीं शताब्दीमें यही मंत्रयान नाना विभत्समूर्त्तिमें 'कालचक्र' नामसे सारे भोटमें फैल गया जो नेपालमें 'वज्रयान' नामसे आज भी प्रचलित है।

उत्तर भारतमें बौद्धधर्म।

प्रवाद है, कि शङ्कराचार्य और कुमारिलभट्ट दोनोंने मिल कर बौद्धधर्मको भारतवर्षसे निर्वासित किया। किंतु यह कहां तक सत्य है, मालूम नहीं। शङ्कराचार्यके बाद भी बौद्धधर्म भारतवर्षमें प्रचलित था, इसका यथेष्ट प्रमाण मिलता है। शङ्करके समय हिंदुधर्मका अभ्युदय होने पर भी पराक्रान्त राजत्ववर्ग बौद्ध और हिंदूधर्मको कुछ समय तक एक-सा देखते थे।

७वीं शताब्दीमें राजा हर्षवद्धनने बौद्धधर्मकी खूब उन्नति की। उनका दूसरा नाम शिलादित्य था। वे यद्यपि महायान सम्प्रदायभुक्त थे, तथापि सभी बौद्धसम्प्रदायको समभावमें देखते थे। वे बौद्धाचार्य मैत्रायणीय दिवाकर मित्रकी विशेष भक्ति करते थे; उनकी बहन राज्यश्री बौद्ध भिक्षुणी हुई थीं। उन्हींके समय चीनपरिव्राजक यूएनचुअङ्ग भारतवर्षमें आये थे। वे लिख गए हैं, कि सम्राट् हर्षवद्धनके राजछत्रमें नाना सम्प्रदायके हिंदू और बौद्धगण सुखशांतिसे रहते थे। उस समय हीनयान और महायान इन दो सम्प्रदायी बौद्धोंके मध्य ही दलबंदी थी। कर्णसुवर्णराज शशाङ्क बौद्धदलनमें विशेष तत्पर थे, किंतु ऐसा दृष्टान्त बहुत विरल है।

उस समय काश्मीरमें भी बौद्धधर्मका प्रभाव ज्योंका त्यों बना था। किंतु यहां कायस्थवंशीय राजा दुर्लभवर्द्धनके राज्यकालमें शैव प्रभाव धीरे धीरे बर्द्धित होनेका प्रमाण मिलता है। वे स्वयं शैव हो कर भी बौद्धधर्मके प्रति विराग नहीं दिखलाते थे।

पहले ही कहा जा चुका है, कि ७५० ई०से बौद्धधर्मकी अवनति आरम्भ हुई, किंतु पश्चिम भारतवर्षमें इसके पहले ही मुसलमान कर्त्तृक सिन्धुविजय द्वारा (७१२ ई०में) अवनतिका सूत्रपात हुआ था।

सिंहलमें भिक्षुओंके मध्य जो साम्प्रदायिक विरोध चलता था, वह अग्रबोधिके राजत्वकालमें बहुत कुछ शांत हो गया था। क्योंकि, उस समय तामिलगण बौद्धोंके प्रति अत्याचार करते थे, जिससे इनके मध्य एकताका बन्धन दृढ़तर हो गया। राजा सङ्घबोधि पराक्रम बाहु (१म) के (११५३—११८४ ई०में) राजत्वकालमें सभी सम्प्रदायके मध्य एकतावर्धनके लिए विशेष चेष्टा होती थी और ११६५ ई०में अनुराधपुरकी सङ्गीतिमें वह कार्यमें परिणत हुई।

१३वीं शताब्दीके आरम्भमें कलिङ्गसे माघ-नामक एक राजाने पुनः बौद्धदेवके प्रति अत्याचार करना शुरू कर दिया। लगभग १२५० ई०में विजयबाहुने राजा हो कर इस अत्याचारको रोका और बौद्धधर्मको सजीव बनाया। उनके पुत्र पराक्रमबाहु (२य) अत्यन्त धर्मानुरागी तथा शिक्षाप्रेमी थे। संस्कृत भाषाके वे अगाध पण्डित थे तथा बहुतसे पण्डित उनकी सभामें स्थान पाते थे।

सिंहलमें बौद्धधर्म आज तक भी वैसा ही बना है। अङ्गरेज, मुसलमान तथा हिन्दू-धर्मका आक्रमण सह्य करके भी वह एकबारगी तिरोहित नहीं हुआ। सिंहलमें उच्चश्रेणीके सभी मनुष्य बौद्धधर्मविश्वासी थे। किन्तु वर्त्तमान सिंहली बौद्धधर्म हिन्दूधर्मकी छाया तथा उसके प्रभावसे जड़ित है।

भारतमें बौद्धधर्मके प्रभावका लोप।

तान्त्रिकताका प्राधान्य जब आरम्भ हुआ उसी समयसे बौद्धधर्मकी अवनति होने लगी। इसके लिए केवल हिंदू ही दायी नहीं थे। बौद्धगण भी अन्तमें इस तान्त्रिकतामें आस्था स्थापन कर नाना प्रकारके अलौकिक क्रियाकलाप और सिद्धिलाभकी आशासे इसकी चर्चा करते थे। असङ्गका तिरोभाव और धर्मकीर्त्तिके अविर्भावके समय बौद्धतान्त्रिकताकी परिपुष्टि साधित हुई। भोटदेशी लामा तारानाथने लिखा है, कि धर्मकीर्त्तिके बाद ही अनुत्तर-योग प्रबल हो उठा था।

गौड़के पालराजगण बौधधर्मावलम्बी थे, इसके प्रमाणका अभाव नहीं है। इन पालराजाओंकी सभामें बहुतसे सिद्धवज्राचार्यने नाना अलौकिक कार्य दिखा दिखा कर जनसाधारणको विमुग्ध किया था। वही समय वज्रयानका परिणति-काल है। उसी समय गुरु कर्त्तृक कानमें तान्त्रिक वीजमन्त्र देनेकी व्यवस्था हुई।

पालवंशने ७७५—११६१ ई० तक राज्य किया। उस समय विक्रमशिलाका मठ तान्त्रिकशास्त्र-चर्चाका एक प्रधान स्थान था।

पालराजवंशके बाद सेनराजगण प्रबल हुए। ये लोग यद्यपि हिन्दूधर्मावलम्बी थे तथापि वल्लालसेनने स्वयं तान्त्रिकधर्म ग्रहण कर बौद्धोंके प्रति अत्याचार नहीं किया। १२०० ई०में अर्थात् मुसलमान विजयके बाद मगधसे बौद्धधर्म बिलकुल तिरोभाव हो गया। उद्दण्डपुर और विक्रमशिलाका मठ भूमिसात् हुआ। भिक्षुओंमेंसे कुछ तो मारे गए और कुछ भागे। उन्होंने उड़ीसा, नेपाल, ब्रह्म, कम्बोज आदि देशोंमें जा कर आश्रय लिया। उनमेंसे बौद्धाचार्य शाक्यश्री पहले उड़ीसा, बाद तिब्बतमें, रत्नरक्षित नेपालमें, बुद्धमित्र तथा उनके अनुसङ्गिगण दक्षिणभारतमें, सङ्गम श्रीज्ञान पार्षदके साथ ब्रह्म और कम्बोज प्रभृति स्थानोंमें चले गए। किंतु जिस जिस स्थानमें उक्त महात्माओंने पदार्पण किया था, वहां बौद्धधर्मका क्षीण दीपालोक बहुत दिनों तक जलता रहा था। अब भी दक्षिण वङ्ग, उड़ीसा तथा दक्षिण भारतके स्थान स्थानमें बौद्धप्रभावकी क्षीण स्मृति विद्यमान है। १८वीं शताब्दी तक भोटदेशीय तीर्थयात्री त्रिपुरा और उड़ीसाके पार्वत्य प्रदेशोंमें बौद्धधर्मके निदर्शन देख गए हैं। आज भी उनकी स्मृति मयूरभञ्जके पार्वत्य प्रदेशमें मौजूद है।

काश्मीरमें लगभग १४वीं शताब्दीके मध्यभाग तक बौद्धप्रभाव विद्यमान था। १३४० ई०में मुसलमानोंके आधिपत्यलाभ करने पर लादकको छोड़ कर और दूसरे स्थानसे बौद्धधर्म तिरोहित हो गया।

वङ्गदेशमें १६वीं शताब्दी तक भी बौद्धधर्मका आलोक प्रज्वलित था। १५वीं शताब्दीको वङ्गालके एक राजाने गयाके बोधिवृक्षके पादपीठका जीर्ण संस्कार किया था। उड़ीसाके राजा मुकुन्ददेव हरिचन्दन यद्यपि हिन्दू थे, तो भी उनके राजत्वकालमें बौद्धप्रभाव पुनः सजीव हो उठा। बादमें मुसलमानोंने आ कर उस चिरागको बुझा दिया।

जो सब आचार्य नेपाल गए थे उनके पार्षद वहां वज्रयानके प्रवर्त्तक हुए। इस संप्रदायके मध्य वज्राचार्यने सर्वप्रधानगुरुका आसन ग्रहण किया था। आज भी नेपालमें 'वज्रयान'की प्रबलता है। यह संप्रदाय घोरतर तान्त्रिक तथा पञ्चमकारका उपासक है। नेपालकी तरह तिब्बतमें भी वज्रयान या कालचक्रयानकी प्रधानता देखी जाती है। नेपाल, तिब्बत, चीन, जापान, ब्रह्म, श्याम, लामा आदि शब्द देखो।

वङ्गाल और विहार आदि देशोंसे भाग कर बौद्धोंने नेपालमें आश्रय लिया। वहां उनके प्रति किसी प्रकारका अत्याचार न हुआ। अब भी नेपालमें बहुतसे बौद्ध वास करते हैं। किंतु धर्मके प्रति अनुराग, संसारवितृष्णा, मुक्तिकी ऐकान्तिक वासना आदि जो बौद्धधर्मके आकर्षणके विषय थे उनमेंसे कुछ भी इस समय वर्त्तमान नहीं है।

आज भी नेपालमें नाममात्र बौद्धभिक्षु देखे जाते हैं। यथार्थमें वज्राचार्य या गृहीतान्त्रिक गुरुका आधिपत्य ही प्रबल है। एक समय जहां मुक्तिकामी हो कर सभी तन्त्र तथा धारणी समूहको श्रवण करते थे, अभी वही अर्थकरी व्यवसायमें परिणत हुआ है।

वर्तमानकालमें नेपालके बौद्धदार्शनिक समाजमें स्वाभाविक, ऐश्वरिक, कार्मिक तथा यात्निक ये चार

प्रकारके मत प्रचलित हैं। ये ही कई एक सम्प्रदाय नाममात्रके लिए त्रिरत्नको मानते हैं, किन्तु उनके निकट इसका अर्थ अन्यरूप है। वे बुद्धका अर्थ मन, धर्मका भूत और सङ्घका अर्थ दोनोंके साथ जड़ जगत्का सम्पर्क, ऐसा लगाते हैं। स्वाभाविकगण चार्वाक हैं, ऐश्वरिक नैयायिक और मीमांसक तथा कार्मिक और यात्निक गण दैव तथा पुरुषकारवादी हैं। यद्यपि बहु पूर्वकालसे ये सब मत प्रचलित हैं किन्तु त्रिरत्नके साथ सम्बन्ध और सङ्घकी अभूतपूर्व व्याख्याको आलोचना करनेसे ये सब मत अभी नेपालमें प्रचलित हैं, उसमें सन्देह नहीं।

बौद्धधर्मकी शेष स्मृति तथा प्रच्छन्न बौद्ध सम्प्रदाय।

जिस बौद्धधर्मने ढाई हजार वर्ष तक पूर्व भारतमें प्राधान्य लाभ किया था, आबालवृद्धवनिता जिस धर्ममें हजारों वर्ष अभ्यस्त थीं, वही बौद्धधर्म पूर्व भारतसे एकबारगी तिरोहित होगा, ऐसा कदापि सम्भव नहीं।

महामहोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्री महाशयने प्रमाण किया है, कि वङ्गदेशमें धर्मपण्डितोंके मध्य अब भी प्रच्छन्न बौद्धधर्म विद्यमान है। डोम तथा शीतलापंडितोंने भूतपूर्व बौद्धप्रभावकी क्षीण स्मृति बना रखी है।
धर्मठाकुर शब्द देखो।

महायान और इस सम्प्रदायसे उद्भूत मन्त्रयान तथा वज्रयानोंके नाना बुद्ध, बोधिसत्त्व तथा नाना शक्तिमूर्ति और उनको पूजाका प्रचार करने पर भी अनेक कुसंस्कार और आवर्जनासे विशुद्ध बुद्धमत्त अन्धकारावृत्त था सही, पर महायानगण बिलकुल लक्ष्यभ्रष्ट नहीं हुए थे। उनका लक्ष्य उसी महाशून्यवादको ओर था। बौद्धगण अपने धर्मको 'धर्म' या 'सद्धर्म' तथा अपनेको 'सद्धर्मी' बतलाते थे।

क्या हीनयान क्या महायान दोनों संप्रदायमें त्रिरत्नका यथेष्ट सम्मान था। परवर्त्ती महायानोंसे त्रिरत्न ही मूर्त्तिपरिग्रहमें उपासित हुए। धर्म स्त्रीमूर्त्ति बन कर बुद्धदेवके वाम पार्श्वमें और सङ्घ पुरुषमूर्तिमें परिणत हो कर बुद्धके दक्षिण पार्श्वमें अधिष्ठित तथा पूजित होने लगे। त्रिरत्नका ऐसा परिवर्त्तन-चित्र गयाके महाबोधिसे आविष्कृत प्राचीन भास्कर शिल्पसे पाया गया है।* जिस धर्मके लिए बुद्धदेवने अतुल राजैश्वर्यका परित्याग और कठोर साधना कर सिद्धि प्राप्त की थी। धीरे धीरे उसी धर्मने बौद्धसाधारणके प्रधान उपास्य तथा बुद्ध और शक्तिके मध्य सर्वप्रधान आसन पाया। जो शून्यवाद बौद्धधर्मका प्रधान लक्ष्य था, वही महाशून्य धर्म देवताके नामान्तरसे गण्य हुआ और इसी निराकार महाशून्यसे सभी बुद्ध, देवदेवी तथा सर्वजगत्की उत्पत्ति कल्पित हुई।

हिंदू तथा मुसलमानप्रभावसे महायान बौद्धप्रभाव विलुप्त होने पर भी जनसाधारणके हृदयमें उक्त धर्म देवता जिस आसनको बिछाये बैठे थे, कि उन्हें सहजमें कोई भी वहांसे विच्युत नहीं कर सका था। जो धर्म देवताको भूतपूर्व बौद्धधर्मावशेष बतला कर नहीं छोड़ सके, गौड़वङ्गके ब्राह्मणप्रधान समाजमें वे ही हीन जातिमें परिणत हुए। उनके वंशधरगण आज भी धर्म ठाकुरके सेवक या पूजक हैं। मालूम होता है, कि महायान-प्रभावकी शेषावस्थामें धर्मकी नारीमूर्त्ति बनाने पर भी वङ्गके धर्मपूजकोंसे दो एक स्थलके सिवा सभी जगह वह मूर्त्ति आदृत थी। वास्तवमें उनके कोई रूप न था, पर कहीं कहीं ध्यानी बुद्धमूर्त्ति धर्मराजरूपमें पूजित होती हैं। किंतु अनेक स्थानोंमें जो धर्मठाकुरका ध्यान पाया गया है उसे पढ़नेसे ही शून्यमूर्त्तिका परिचय पाया जायगा।

"यस्यान्तो नादि मध्यो न च करचरणौ नास्तिकायो निर्णादं
नाकारो नैव रूपं न च भयमरणौ नास्ति जन्मानि यस्य।
योगीन्द्रैर्ज्ञानगम्यं सकलदलगतं सर्वलोकैकनाथं
भक्तानां कामपूरं सुरनरवरदं चिन्तयेत् शून्यमूर्त्तिं।"

यह शून्यमूर्त्ति किस प्रकार हुई, उसका विवरण सर्वदर्शनसंग्रह-बौद्धदर्शन-प्रस्तावमें इस प्रकार देखा जाता है:—

"अस्ति नास्ति तदुभयानुभयचतुष्कोटिविनिर्मुक्तं शून्यरूपं।"

वास्तवमें बौद्धोंका सर्वोच्चदर्शन ही शून्यवाद है। प्रज्ञापारमिता आदि प्रसिद्ध बौद्धग्रंथोंमें शून्यता और महाशून्यताकी विशेष आलोचना हुई है। किसी भी हिंदूशास्त्रने ऐसे शून्यवादका समर्थन नहीं किया है तथा परवर्त्ती हिन्दूदार्शनिक शून्यवादका खण्डन करनेमें यत्नवान् हुए हैं। महायानोंके इस शून्यवादकी आलोचना करनेका कारण यह है कि यद्यपि महायान सम्प्रदाय अभी अङ्ग वङ्ग

*Cunningham's Mahabodhi p. 55, plate XVI.

कलिङ्गसे एकवारगी अन्तर्हित हो गया है तथा ब्राह्मण-प्राधान्यनिर्देशक किसी हिंदूशास्त्रमें शून्यवाद स्वीकृत नहीं हुआ है, तो भी आज तक वङ्गउत्कलवासीके इतर जन-साधारणके मध्य शून्यवादका प्रभाव विलुप्त नहीं हो सका है; केवल शून्यपुराण ही नहीं, वरन् वहुत धर्ममङ्गल तथा डोम हाड़ी प्रभृति नीच जातिके धर्मविश्वासमें वही शून्य-वाद स्पष्टरूपसे वर्त्तमान है। वङ्गके उक्त साम्प्रदायिक मङ्गलग्रंथ या नीच जातिका ही विश्वास नहीं है, वरन् मयूर-भञ्जके दुर्भेद्य जङ्गलावृत प्रदेशसे आविष्कृत सिद्धांत-उडुम्बर, अमरपटल, अनाकार-संहिता प्रभृति उत्कल ग्रंथ से भी महायान धर्मकी विगत स्मृति पाई गई है।

सिद्धांत-उडुम्बरके प्रारम्भमें ही यह श्लोक देखा जाता है:—

"अनाकाररूपं शून्यं शून्यं मध्ये निरञ्जनः।
निराकारमङ्गज्योतिः संज्योतिः भगवानयम् ॥"

धर्मपूजाप्रवर्त्तक रमाई पण्डितके शून्यपुराणमें भी यही श्लोक है,—

"शून्यरूपं निराकारं सहस्रविघ्नविनाशनम्।
सर्वपरः परोदेवः तस्मात्त्वं वरदो भव ॥"

सुतरां देखा जाता है, कि दोनों ग्रंथकारोंका लक्ष्य शून्यवाद है तथा उद्देश्य भी एक है।

नेपाली बौद्धोंके स्वयंभूपुराणके प्रारंभमें भी ऐसा ही श्लोक है,—

"नमो बुद्धाय धर्माय सङ्घरूपाय वै नमः।
स्वयम्भुवे वियच्छान्तभानवे धर्मधातवे ॥ (१)
अस्ति नास्ति स्वरूपाय ज्ञानरूपस्वरूपिणे।
शून्यरूपस्वरूपाय नानारूपाय वै नमः ॥ (३)"

रमाई पण्डितकी पद्धतिमें भी देखा जाता है, कि उस महाशून्यमूर्त्ति "ललित अवतार"-रूप धर्मसे आद्या-शक्ति पार्वतीका जन्म है और बाद उस पार्वतीसे ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वरकी उत्पत्ति हुई है।

धर्मपूजाकी पद्धतिमें "धां धीं धं धर्माय नमः" इस प्रकार शून्यमूर्त्ति धर्मराजका बीज निर्दिष्ट है। मयूरभं सिद्धांतउडुम्बर ग्रंथमें 'ओं ह्लीं शून्यब्रह्मणे नमः' इस शून्य-रूप निरञ्जनका बीज देखा जाता है। किसी हिन्दूशास्त्र-में ब्रह्मको शून्य नहीं बतलाया है, अतएव महायान बौद्धोंके इस बीजमंत्रको विशुद्ध कहना बाहुल्य है।

पहले ही कहा जा चुका है, कि महायानोंने त्रिरत्नमेंसे एक (सङ्घ)-को पुरुषमूर्त्ति माना था जो अब भी बोध-गयामें विद्यमान है। गौड़वङ्गके धर्मोपासकोंके साधा-रणतः इस मूर्त्तिका ग्रहण नहीं करने पर भी धर्ममङ्गल-समूहके नायक प्रसिद्ध धर्मभक्त लाउसेनकी राजधानी मैनागढ़के समीप जो धर्मस्तव पाया गया है, उसमें बुद्धगयाकी सङ्घमूर्त्तिका स्तव इस प्रकार है,—

"श्वेतवस्त्रं श्वेतमाल्यं श्वेतयज्ञोपवीतकम्।
श्वेतासनं श्वेतरूपं निरञ्जनं नमोऽस्तु ते ॥"

उक्त आदर्श रख मयूरभञ्जके सिद्धांत-उडुम्बर ग्रंथमें धर्म और सङ्घको एकत्र लक्ष्य करके प्रसिद्ध विष्णुका ध्यान कल्पित हुआ है। यथा—

ओं शुक्लाम्बरधरं देवं शशिवर्णं चतुर्भुजम्।
प्रसन्नं वदनं ध्यायेत् सर्वविघ्नोपशान्तये ॥"

जहां पर उक्त ध्यान है, उससे पहले ऐसी धर्म-गायत्री देखी जाती है,—

"ओं सिद्धदेवः सिद्धः धर्मो वरपयमस्य धीमहि।
भर्गदेवो धीयो यान सिद्धधर्म प्रचोदयात् ॥"

(सिद्धान्त-उडुम्बर १२ अ०)

सिद्धान्त-उडुम्बरमें अज्ञातपूर्व कई एक आख्या-यिकाएं मिलती हैं जो पौराणिक-सी प्रतीत होती हैं। किंतु आश्चर्यका विषय है, कि क्या बौद्ध क्या हिन्दू किसी पौराणिक ग्रन्थमें ऐसी आख्यायिकाका समर्थन नहीं मिला। इससे जान पड़ता है, कि सिद्धान्त-उडुम्बरकी रचनाके समय अर्थात् दो वर्षसे भी पहले बावरी समाज में जैसा प्रवाद प्रचलित था अथवा प्रवादसमर्थक यदि कोई ग्रन्थ रहता तो उसीके अनुसार उडुम्बरकार बावरी जातिका परिचय दे जाते। निराकारके दक्षिण ऊरुसे विप्र और मुखसे विश्वामित्रका जन्म हुआ था तथा उन्हींसे बावरी जातिकी उत्पत्ति है। इस निराकारणके दाहिने अङ्गसे पद्मालया नामक एक देवीने जन्म लिया। इसके गर्भ और विश्वामित्रके औरससे अनन्तकाण्डी नामक बावरीकी उत्पत्ति हुई जो दुली बावरी कहलाये। दुलिबावरी तथा उनके वंशधरगण ब्राह्मणोंके साथ

वेदपाठ करते थे। उस समय ब्राह्मण ज्येष्ठ और वावरी कनिष्ठ कहलाते थे। वायोकाण्डि, परमानन्द भाई और राधो शासमल ये तीनों पद्मालयके वंशधर थे। ये ही तीन दुली वावरी थे। विश्वामित्रकी दूसरी स्त्रीका नाम था चित्रोवंशी। इनके गर्भसे कुशसर्वा, विधुकुश और ऊर्वकुश उत्पन्न हुए। विश्वामित्रको तीसरी स्त्री गन्धकेशीसे प्रयशा, उद्यम और साधुधर्म नामक तिन पुत्र हुए जो वाघुति (वागदी) नामसे परिचित थे। उनकी चौथी भार्या वायुरेखासे जयसर्वा, विजयसर्वा और वीर्यकेतु नामक तीन पुत्र जन्मे जो शवर कहलाये। उक्त दुलि वावरी, वाघुती और शवरसे पुनः १२ जाति या शाखा हुई यथा—दुलिवावरी, काहाल, भजय काहाल, गुरु काहारि, पेरी, वावरी, शवर, सुअङ्ग, यादु, भादु, गुरु और नूधन।

सिद्धान्त-उडु म्वरका विवरण दूसरे किसी ग्रन्थमें नहीं मिलता। किंतु विश्वामित्रसे शवर जातिको उत्पत्ति हुई है, यह बात ऋगवेदके ऐतरेय ब्राह्मणमें भी मिलती है। यथा—"त एतेऽन्ध्राः पुण्ड्राः शवराः पुलिन्दा मूतिवा इत्युदन्त्या वहवो भवन्ति। विश्वामित्राः दस्युनां भूयिष्ठाः।" (७।३।६)

सिद्धांत-उडु म्वकारने उक्त परिचयके मध्य एक विशेष बात लिखी है।

पद्मालयाके तीन पुत्रोंमेंसे ज्येष्ठ पुत्रके साथ विष्णुकी बातचीत हुई थी। विष्णुने शङ्खासुरको मार कर उन्हें सङ्ख दिया था। इस प्रकार पद्मालयाके वंशधरने पांच सङ्खोंसे सम्भाषण किया था।

यहां पर सङ्ख शब्दका अर्थ है बौद्धसङ्घ। शून्यपुराणमें भी इसी प्रकार 'सङ्घ'-की जगह 'सङ्ख' शब्द व्यवहृत हुआ है। बौद्धधर्मानभिज्ञ जनसाधारणके निकट 'सङ्घ' सङ्खमें परिणत हुआ है। सङ्खके शत्रुओंको मार कर बुद्धदेवके लिए ही ज्येष्ठ दुलिवावरी सङ्घाधिप हुए थे। इसी प्रकार उनके तथा छोटे दो भाइयोंके वंशधरने बौद्धसङ्घमें प्रवेश किया था। किंतु बाकी ६ शाखाने बौद्धधर्म ग्रहण नहीं किया, इसीलिए वे अस्पृश्य समझते जाने लगे।

सिद्धान्त उडु म्वरकारने स्पष्ट लिखा है, "दुलि वावरी अटन्ति, ब्राह्मण सङ्गे वेद पडुथांति। ब्राह्मण ज्येष्ठ वावरी कनिष्ठ। ए पडुथिले राजा प्रतापरुद्रङ्कठारु गोप्य करि रखि अच्छंति।"

उद्धृत प्रमाणसे साफ साफ मालूम होता है, कि वावरी जातिने राजा प्रताप रुद्रके समय तक बौद्धाचारका पालन किया था और वह ब्राह्मणोंके समान गिनी जाती थी। राजा प्रताप रुद्रके समयसे इस जातिका अधःपतन हुआ। राजा प्रतापरुद्र महाप्रभु चैतन्यदेवके समसामयिक थे। उस समय उड़ीसा तथा दाक्षिणात्यके अनेक स्थानोंमें जो बौद्धसमाज विद्यमान था, वह महाप्रभु चैतन्यदेवके भ्रमणवृत्तान्तके लेखक गोविन्ददासके विवरण और उनके चरिताख्यायक चूड़ामणिदासके चैतन्यमङ्गलसे ही जाना जाता है। चैतन्यप्रवर्त्तित वैष्णव धर्ममें श्रेष्ठ बौद्धधर्म का सार और निम्न श्रेणीके वैष्णव या सहजियाके मध्य हीन बौद्ध-धर्म जो एक साथ मिला हुआ है, उसका भी यथेष्ट प्रमाण पाया गया है। युगल-भजन प्रभृति सहजियाका प्रधान अङ्ग जो विलुप्त बौद्ध धर्मके जञ्जालसे लिया गया है, वह नेपालसे आविष्कृत कानुभट्टका 'चर्याचर्य विनिश्चय'¶ नामक बौद्धग्रन्थ पढ़नेसे मालूम होता है। ष्टर्लि साहव उत्कलाधिपति प्रतापरुद्रकी सभामें पहले बौद्धोंका समादर और अन्तमें बुद्धनिग्रहके इतिहासका वर्णन कर गए हैं *।

सिद्धान्त-उडुम्बर और उक्त उत्कलके इतिहासको एक साथ आलोचना करनेसे समझा जाता है, कि वावरी जातीय बौद्धाचार्यगण हो राजनिग्रहसे छिपे रूपमें रहने लगे; साथ साथ उन्होंने बुद्ध तथा बौद्धशक्तियोंका नाम भी छिपा रखा। विष्णुने ही बुद्धका अवतार लिया था, ऐसा विश्वास कर वे बुद्धकी जगह विष्णुका पूजन करने लगे। हिन्दू देवदेवियोंको उपास्य मान कर भी वे अपने प्रधान लक्ष्यसे विचलित नहीं हुए—उन्होंने शून्यवादके मूलधर्मको ही सर्वप्रधान समझ रखा। ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश्वर भी उनके सामने तुच्छ गिने जाने लगे।

¶ महामहोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्रीने इस ग्रन्थका आविष्कार किया है जो हजारों वर्ष पहलेका बंगलाभाषामें लिखा है। ग्रन्थ नितान्त अश्लील है।

* Sterling's Orissa, (Ed of 1904), p. 80-81

धर्मभक्त धर्मपण्डित तथा डोमपण्डितगण जिस प्रकार हिन्दूसमाजमें अस्पृश्य हैं, राजनिग्रहसे हिन्दूसमाजके द्वारा वावरी जाति भी उसी प्रकार अस्पृश्य हुई। सिद्धान्त-उडुम्वरकारका कहना है—"कलियुगे न छूइव। वावरी छूले सकल पातक क्षय हव वोलि विष्णुमाया करि गोप्य करि रखि अच्छंति।"

सिद्धांत-उडुम्वरसे जाना जाता है, कि वावरी जातिमें प्राचीन महायान-सम्प्रदायकी तरह महाशून्यता या शून्यब्रह्मको ही जगत्‌का मूल वतला कर घोषणा की गई है, अर्थात् उनके प्रच्छन्न वौद्धमतके मध्य महायोंनका विशुद्ध शून्यवादका आभास मिलता है।

राजा प्रतापरुद्रके समय १६वीं शताब्दीमें वौद्धधर्म उत्कलमें प्रवल हो गया था। किंतु राजनिग्रहसे वौद्धप्रभावका अवसान होने पर भी वौद्धसम्प्रदाय एकवारगी विलुप्त हो गया। सम्भवतः राजनिग्रहके डरसे वौद्धोंने उड़ीसाके गढ़जात-दुर्गम पार्वत्य प्रदेशमें आश्रय लिया था।

उत्कलके स्वाधीन राजा मुकुन्द देव थे। एक समय उत्तरमें त्रिवेणी और दक्षिणमें गञ्जाम तक इनके अधिकारमें था। वे भी कुछ कुछ वौद्धानुरागी थे और उनके अधिकारमें वहुतसे वौद्धगण रहते थे, तिव्वतभाषामें सुम्पो थाम्पोरचित 'पग्सम जोनजम' ग्रन्थसे उसका पता चलता है।

१७वीं शताब्दीमें जो वौद्धधर्मका क्षीणालोक अनेक स्थानोंमें प्रज्वलित था उसका कुछ कुछ प्रमाण मिलता है। तिव्वतीय वौद्धधर्मके इतिहासलेखक Dr. Waddel ने भोटभाषामें रचित वुद्धगुप्त तथागतनाथका भ्रमणवृत्तांत प्रकाशित किया है। उक्त महात्मा १६०८ ई०में भारतवर्ष आये थे। उनके भ्रमण-वृत्तांतसे जाना जाता है कि १७ वीं शताब्दीमें भी त्रिपुराके देवीकोट, हरिभञ्ज, फुक्‌राढ़ और पालगढ़में वहुत-से वौद्धयति तथा वौद्धग्रंथ विद्यमान थे।

हरिभञ्जका अवस्थान-निर्णय।

वुद्धगुप्त-तथागतनाथ पार्वत्यत्रिपुराराज्यको देख कर हरिभञ्ज नामक स्थानमें पधारे। इस स्थानको मयूरभञ्ज भी कहते हैं। १७वीं शताब्दीमें अर्थात् वुद्धगुप्तके समय हरिहरभञ्ज प्रतिष्ठित हरिहरपुरमें मयूरभञ्जकी राजधानी थी। हरिपुरमें एक समय जो वौद्धसंस्रव था, यहांके ध्वंसावशेषसे आविष्कृत जांगुलीतारासे उसका आभास मिलता है। वुद्धगुप्तने इस अञ्चलमें हरिभञ्ज चैत्यका दर्शन किया था। यहां उन्होंने हितगर्भकन्या नामक एक वौद्ध-उपासिकासे तथा एक प्रधान धर्मपण्डितकी जीवनीसे अनेक गुह्यतत्त्वका पता लगाया था।

फुक्‌राढ़का संस्थान।

फुक्‌राढ़ या फुग्‌राढ़—तिव्वतीय भाषामें 'फुग'का अर्थ है सिद्धगुहा। सिद्धगुहावेष्टित राढ़ प्रदेश ही फुगराढ़ है। वर्त्तमान वंगाल प्रदेशका पश्चिमदक्षिणांश जिस प्रकार "राढ़" कहलाता है उसी प्रकार मयूरभञ्जका पार्वत्य प्रदेश भी अधिवासियोंके निकट 'राढ़' नामसे परिचित है। केवल स्थानीय अधिवासिगण ही नहीं, वरन् उत्कलवासी भी मयूरभञ्जको राढ़ कहते हैं। इसी प्रकार हरिभञ्जके निकटवर्त्ती सिद्धगुहावेष्टित (फुक) राढ़को मयूरभञ्जका पार्वत्य-प्रदेश कह सकते हैं।

पालगढ़का संस्थान।

उड़ीसाके गढ़जातसमूहके अन्यतम वर्त्तमान पाललहरा राज्य ही भोट भ्रमणकारीका पालगढ़ है। सुनते हैं, कि इस समय यहां वौद्धपालराजाओंके वंशधरगण राज्य करते थे और वौद्धकीर्त्तिका भी अभाव नहीं था।

१७वी शताब्दीमें जहां वौद्ध-उपासिका हितगर्भकन्या रहती थी, धर्मपण्डितकी जीवनी और उनके प्रवर्त्तित गुह्यतत्त्वका जहां सभी आदरपूर्वक अध्ययन करते थे, जहां अनेक यति तथा अनेकानेक वौद्धग्रन्थका अभाव नहीं था, वह हरिभञ्जचैत्य कहां है?

मयूरभञ्जकी राजधानी वारिपदासे आठ कोसकी दूरी पर अवस्थित वर्त्तमान वड़साई ग्रामके वोधिपोखरके समीप क्षुद्र चैत्यमूर्त्ति निकली है। उसके निकट प्राचीन हरिभञ्ज चैत्यका जो अवस्थान था, वही उक्त स्थानके जैसा प्रतीत होता है।

नेपालके नाना स्थानोंके चैत्यकी अवस्था देख कर जान पड़ता है, कि जहां कोई एक वृहत् चैत्य है वहीं उसका आदर्शस्वरूप एक या एकसे अधिक छोटा चैत्य देखा जाता है। नेपालमें मध्ययुगके या वर्त्तमान चैत्यमें आदि-

बुद्ध, पञ्चध्यानी; त्रिरत्न या बुद्ध धर्म और सङ्घमूर्त्ति तथा चैत्य पार्श्वमें हारीतीकी मूर्त्ति विद्यमान है।

वड़साई ग्राममें भी ऐसा छोटा चैत्य देखनेमें आता है। यह चैत्य अभी 'चन्द्रसेना' नामसे स्थानीय हिन्दुओं के निकट परिचित है। ऐसे चैत्यको हम लोग वृहत् चैत्यका आदर्श मानते हैं।

नेपालके प्रत्येक छोटे वड़े आदर्श-चैत्यके चारों ओर या कुलुङ्गीमें अक्षोभ्य, रत्नसम्भव अमिताभ, अमोघसिद्धि ये चार 'ध्यानी' बुद्ध नजर आते हैं।

वड़साईग्रामके उक्त आदर्शचैत्यके चारों ओर वैसी ही चार मूर्त्ति हैं। उनका अक्षोभ्यादि चार ध्यानी बुद्धके जैसा रूप नहीं होने पर भी उक्त चार बुद्धके वाहन तथा उनके चार पुत्र बोधिसत्त्वकी मूर्ति हैं, जैसे—अक्षोभ्यकी जगह उनका वाहन हस्ती और उसके ऊपर दण्डायमान वज्रपाणि बोधिसत्त्व, रत्नसम्भवकी जगह उनका वाहन अश्व और उसके ऊपर रत्नपाणिबोधिसत्त्व-दण्डायमान हैं। इसी प्रकार अमिताभकी जगह उनका वाहन मयूरपक्षी और उसके ऊपर पद्मपाणिबोधिसत्त्व तथा अमोघसिद्ध-की जगह उनका वाहन गरुड़ और उसके ऊपर विश्वपाणि-की मूर्त्ति हैं। ऊर्ध्व मध्य भागमें वैरोचनकी जगह एक मुखाकृति है।

उक्त चैत्यपार्श्वमें त्रिरत्नकी दूसरी चतुर्भुजा धर्म-मूर्त्ति विराजमान हैं। नेपालके बहुतसे चैत्योंमें ऐसी ही धर्ममूर्त्ति देखी जाती है *।

वड़साई ग्राममें उक्त चतुर्भुजा धर्ममूर्त्तिकी मूर्त्ति वर्त्तमान है। पहले ही लिखा जा चुका है, कि नेपालके प्रत्येक बौद्धचैत्य या मन्दिरपार्श्वमें शीतला या हारीती-की मूर्त्ति देखी जाती है। नेपालीबौद्धोंके वृहत् स्वयम्भू-पुराणमें भी इसी प्रकार वर्णित हुआ है:—

"ततश्च हारीतीं देवीं पञ्चपुत्रशतैर्वृताम्।
श्रीस्वयम्भूपश्चिमाग्रे दक्षिणास्यं संस्थापितम्॥
ये च या वा मनुष्याश्च पञ्चोपचारकैरपि।
मद्यधारादिभिः पूज्यैः मांसैर्वलिभिर्मीनकैः॥
लेह्यैः पेयैः खानैः पानैः भक्तपिण्डाभ्यां पूजितम्।
तस्याः पुण्यप्रसादाच्च न जातु ईत्युपद्रवान्॥
अन्त्रजा अन्यजा लोकाः शैवापि बौद्धसेवकाः।
हारीत्यामपि यक्षिण्यां सदा मुदा प्रपूजितम्॥"
(७म अ०)

इससे यह स्थिर होता है, कि जहां चैत्य हैं वहीं त्रिरत्न और ध्यानीबुद्धशोभित आदर्श चैत्य है, तथा उसीके समीप हारीतके अधिष्ठानकी सम्भावना है। वड़-साई ग्रामके एक स्थानमें उक्त तीन मूर्त्तिसे क्या यह स्पष्ट जान नहीं पड़ता, कि एक समय वहां एक वृहत् चैत्य था? यहांके अधिवासियोंका कहना है, कि वड़साई ग्रामके पार्श्ववर्त्ती बोधिपुष्करणीके समीप पूर्वोक्त तीन मूर्त्ति विद्यमान थीं। थोड़े दिन हुए; कि वहांसे ला कर वे सब मूर्त्तियां ग्राममें रखी गई हैं। बोधि-पुष्करणीके चारों ओर अभी विस्तीर्ण कृषिक्षेत्र हैं। एक समय इसके निकट ही जो बौद्धचैत्य था और उसीसे इसका नाम ऐसा पड़ा है, उसमें सन्देह नहीं। उस प्राचीन बौद्धचैत्यका अभी कोई चिह्न नहीं मिलता। लगभग एक सौ वर्ष पहले जो सामान्य स्मृतिपरिचायक चिह्न था, कृषकोंके हलचालनसे वह भी स्थानान्तरित हो गया है—सिर्फ बीच बीचमें वड़े वड़े कटे हुए पत्थर क्षीण-स्मृतिका परिचय देते हैं।

हरिपुरसे ३ कोसकी दूरी पर उक्त बोधिपुष्करणी है और इसीके पार्श्वस्थ वड़साई ग्रामके सिवा हरिपुरके निकट-वर्त्ती और किसी जगह ऐसा बौद्धचैत्यनिदर्शन नहीं मिलता है। इसी लिए वड़साईके निकटस्थ बुद्धगुप्त-वर्णित हरिभञ्जचैत्यका अवस्थान स्वीकार किया जाता है। तथागतनाथने यहां बहुतसे गुह्यशास्त्र तथा धर्म-पण्डितकी जीवनी सुना थी। यथार्थमें इसी वड़साई ग्रामसे प्रच्छन्न बौद्धमतसमर्थक सिद्धान्तडम्बर, अनाकारसंहिता, अमरपटल प्रभृति अपूर्व ग्रंथ आविष्कृत हुए हैं। मालूम नहीं, कि इस अञ्चलमें विशेष अनुसंधान करनेसे वैसी कितनी ही चीजें मिल सकती है। धर्मपूजाप्रवर्त्तक रमाईपण्डितके शून्य पुराणका और यहांके सिद्धांत डम्बरका मूलसूत्र या लक्ष्य एक है यह पहिले ही लिखा जा चुका है।

वड़साईके उक्त धर्म, चैत्य और हरीतीपूजामें आज भी ब्राह्मणको अधिकार नहीं है—अति निम्नश्रेणीकी देहरी-

* Oldfields Nepal, p. 214.

जाति आ कर पूजा करती है। पहले बाथुरीगण पूजा करते थे और अब भी वे समयानुसार करते हैं। जिस दिन बौद्ध-जगत्‌में सभी जगह बुद्धदेवका जन्मोत्सव मनाया जाता है, आज भी उस स्मरणीय वैशाखी पूर्णिमाके दिन उक्त बड़साई ग्राममें चंद्रसेना नामक बौद्ध चैत्यका पूजन तथा महोत्सव होता है। जनसाधारणका विश्वास है कि बहुत दिनोंसे यहां वैशाखीपूर्णिमाका महोत्सव चला आता है जो "उड़ापर्व" कहलाता है। इस उत्सवमें २०-२५ हजार मनुष्य इकट्ठे होते हैं जिसमें बावरोंकी संख्या कम नहीं रहती। ऐसा उत्सव मयूरभञ्जमें और कहीं भी नहीं होता। कभी कभी उक्त क्षुद्रचैत्यकी पूजाके उपलक्ष्में जनता असाधारण भयभक्ति दिखलाती है। यहां तक कि, ब्राह्मण भी आ कर उसके सामने सिर झुकाते हैं। नेपालमें अब भी ऐसे मूर्त्तिविशिष्ट चैत्यका सब जगह महासमादर और पूजा प्रचलित है।

अभी वैशाखी पूर्णिमाके 'उड़ापर्व'के सिवा और दूसरे किसी दिन उक्त क्षुद्र चैत्यकी पूजा नहीं होती, किन्तु हारीतीदेवीकी पूजा सब समय हुआ करती है। कारण, बहुत दिनोंसे बौद्ध तथा हिंदूजनसाधारण हारीती या शीतलाका पूजन करते आये हैं। आश्चर्यकी बात है, कि अभी वह मूर्त्ति जनसाधारणमें 'कालिका' नामसे परिचित है। इसलिए थोड़े दिन हुए ब्राह्मण भी इस देवीकी पूजा करने लग गए हैं। किन्तु साधारणतः वे नीच देहुरीसे ही पूजी जाती हैं और निम्नश्रेणीके देहुरीगण बहुत दिनोंसे यहांकी देवसम्पत्तिका भोग करते आये हैं।

जो कुछ हो, ढाई सौ वर्ष पहले जिस स्थानमें बौद्ध उपासक तथा उपासिकाका अभाव नहीं था. तिब्बतादि बहुत दूर देशोंसे बौद्ध आचार्यगण जहांके प्रसिद्ध चैत्य और नाना गुह्यशास्त्रोंके दर्शन करने आते थे, अभी वहांके उक्त सामान्य निदर्शनके सिवा और कुछ भी नहीं देखा जाता। स्थानीय प्राचीन मनुष्योंसे सुना जाता है, कि बावरी जातिकी चेष्टासे ही इन सब द्रव्योंकी रक्षा हुई है।

बाथुरी और बावरी।

उक्त बाथुरी जाति मयूरभञ्ज और निकटवर्त्ती अन्य गढ़जातके सिवा कहीं दूसरी जगह नहीं मिलती। सिद्धान्त-उडुम्बरमें ६ प्रकारकी ब्राह्मणजातिके मध्य "बावरी" नामक जिस एक (वर्त्तमान अस्पृश्य) ब्राह्मण-जातिकी कथा लिखी है, वही छिपे रूपसे मयूरभञ्जके पार्वत्य प्रदेशमें 'बाथरी' नामसे प्रसिद्ध है। बावरीजाति अनार्य नहीं थी—इसकी गिनती सुसभ्यजातियोंमें होती थी। इनमेंसे बहुतोंने राज्यशासन भी किया है तथा अनेक देवकीर्त्तिकी स्थापना कर सुसभ्यसमाजका परिचय भी दिया है जिसका मयूरभञ्जमें काफी प्रमाण मिलता है। मयूरभञ्जके दुर्गम सिमली पहाड़के ऊपर स्थापत्यशिल्पका विशाल निदर्शन 'अठारह देव' नामक जो प्राचीन प्रस्तर-मन्दिर और प्रस्तर-अट्टालिकादि हैं, वही विशाल कीर्त्ति बाथुरीजातिकी पूर्व समृद्धिका परिचय देती है। कुछ दिन पहले जो इस जातिके मध्य राजा, राजमन्त्री, सामन्त प्रभृति विद्यमान थे, अब भी उनकी क्षीणस्मृति वर्त्तमान है। बाथुरिया आज भी अपनेको आर्यजाति और ब्राह्मणके समकक्ष बतलाते हैं। ये ब्राह्मणकी तरह यज्ञसूत्र-धारण तथा उन्हींके जैसा दशाह अशौचका पालन करते हैं। बाद अशौचके नापित आ कर क्षौर कर देता है। ग्यारहवें दिनमें ही श्राद्ध समाप्त होता है। ब्राह्मणपुरोहित ही पौरोहित्य करते हैं। एकादशाको ही ब्राह्मण भोजन तथा स्वजाति भोज होता है। वर्त्तमानः समयमें इस जातिके सर्वप्रधान व्यक्ति 'महापात्र' कहलाते हैं। मयूरभञ्जके खूंटा करकचिया नामक स्थानमें महापात्रोंका वासस्थान है। प्रत्येक बाथुरी गृहस्थको पुत्रकन्याके विवाहके समय महापात्रको मर्यादास्वरूप एक वस्त्र, १० सुपारी और १०० पान देने होते हैं। किसी भी उत्सवके समय महापात्रको अनुमति लेनी पड़ती है। मयूरभञ्जके महापात्र वंश अपनेको ज्येष्ठ और केवनझर, दशपुर प्रभृति महापात्र-वंशको कनिष्ठकी सन्तान बतलाते हैं।

अभाग्यवश इस जातिकी अवस्था अभी अत्यन्त हीन होने पर भी जातीय सम्मान तथा वंशमर्यादाकी ओर उनका विशेष लक्ष्य है। कोई भी बाथुरी ब्राह्मणादि किसी दूसरी जातिका अन्न कदापि नहीं खाते, यदि कोई दूसरी जातिका अन्न ग्रहण या भिन्न जातीय रमणीके साथ यौन सम्बन्ध करे तो वे अति शीघ्र समाज और

जातिच्युत होते हैं। आश्चर्यका विषय है, कि ये किसी दूसरी जातिको छूनेमें घृणा बोध करते हैं। ये धर्मराज, जगन्नाथ और किञ्चकेश्वरी या छोटी खिचिङ्केश्वरीको पूजते हैं। इनका कहना है, कि निरञ्जनको बाहुसे ही इनके बीजपुरुषकी उत्पत्ति हुई है, इसीलिए इनका बाहुरी या बाथुरी नाम पड़ा है।

बाहुरी शब्दसे जो 'बावरी' या 'बाथुरी हुआ है, उसमें सन्देह करनेका कोई भी कारण नहीं। वर्त्तमान बाथुरी जातिका यज्ञसूत्र, अशौच, श्राद्ध, आभिजात्यमर्यादा तथा आचार व्यवहार देख कर यही सिद्धान्त-उड्डम्बर-वर्णित महायान बौद्धसम्प्रदाय-भुक्त बावरी जाति-सी प्रतीत होती है।

यथार्थमें यह जाति अत्यन्त छिपे रूपसे मनमें रहती है। पहले ही कहा गया है, कि बाथुरीगण दूसरी जातिको छूनेमें घृणा करते हैं। ब्राह्मणप्रभावान्वित हिन्दूराजाके अधिकारमें वास और अवस्था-वैगुण्यके कारण बहुतोंके पूर्वाचारका परित्याग करने पर भी ये लोग अब भी पूर्व धर्ममत तथा विश्वास एकबारगी छोड़ नहीं सके हैं और धर्मराज जगन्नाथको महायान बौद्धभावमें पूजते हैं। खिचिङ्गमें जो प्रकाण्ड बुद्धमूर्त्ति निकली है छोटी खिचिङ्केश्वरीको मूर्त्ति बौद्ध तान्त्रिक समाजमें सिताराबी नामक शक्तिमूर्त्ति कहलाती थी। इस मूर्त्तिके गात्रमें अभी भी "ये धर्म हेतु प्रभवा" इत्यादि बौद्धसूत्र उत्कीर्ण हैं। बाथुरीगण "धर्म मा" नामक और एक देवीकी पूजा करते हैं। यह द्विभुज रमणीमूर्त्ति खिचिङ्गमें अधिष्ठित है, अवस्थानुसार बाथुरीमहिलाएं हीनश्रेणीकी रमणियोंकी तरह समूचे हाथमें कांसे या पीतलका अलङ्कार पहनती हैं। उक्त देवी भी उसी तरह हीनजाति वेशभूषासे भूषित होने पर भी निरत्न अन्यतम धर्ममूर्त्तिसी प्रतीत होती है। कहीं कहीं पर बाथुरीगण "शून्य ब्रह्म"की भी पूजा करते हैं। सिद्धांत-उड्डम्बरसे 'ओं शून्यब्रह्मणे नमः' ऐसा बीज मन्त्र पहले ही उद्धृत किया गया है। अशिक्षित हीनावस्थापन्न कोई कोई बाथुरी इस ब्रह्मको 'बड़म्' या 'बरम्' बतलाते हैं। कोल सन्थालोंके मध्य एक बड़ामकी उपासना प्रचलित है। क्या ही आश्चर्यकी बात है, कि बड़म और बड़ामका नामसादृश्य देख कर बहुतेरे बाथुरीजातिको हीन अनार्यजातिमें गिनती करते हैं। सिद्धान्त-उड्डम्बरमें लिखा है, कि "बावरी दिअई अन्नपिण्ड" अर्थात् ब्राह्मणकी तरह बाबरी भी अन्नपिण्ड देते हैं वर्त्तमान बाथुरीजातिमें भी महापात्र प्रभृति प्रधानोंके श्राद्धमें अन्नपिण्ड देनेकी व्यवस्था है। इससे भी यह जाति जो एक समय बौद्धप्रभावकालमें ब्राह्मणोंके ऊपर प्रभुत्व जमानेको अग्रसर हुई थी, उसका कुछ आभास झलकता है। जो कुछ हो, महाराज प्रतापरुद्रके समयसे राजनिग्रहसे यह जाति जो पार्वत्य-प्रदेशमें आश्रय लेनेको बाध्य हुई थी और बौद्धप्रभावके विलोपके साथ साथ वङ्गप्रदेशमें डोमपण्डितकी तरह अति हीन तथा अस्पृश्य हो गई है, इसमें सन्देह नहीं। मयूरभञ्ज और निकटवर्त्ती पार्वत्य गहनकाननवासी अपरिचित जातिका हो प्रच्छन्न बौद्ध कहते हैं। इस जातिके दो एकके मुखसे गोरखनाथ, मणिकानाथ और मार्कण्डेयका नाम सुना जाता है। बड़साईग्रामसे आविष्कृत अमरपुटलमे मीननाथका ही नाम मणिकानाथ है। शून्यपुराण तथा नाना धर्ममङ्गलमें दूसरे किसी ऋषिका विशेष परिचय नहीं रहने पर भी मार्कण्डेय, गोरक्ष, मीननाथ आदिका नाम मिलता है। यहांकी अनाकार-संहितामें मार्कण्डेयकी तपस्या और अमरपटलमें मीनगोरक्ष संवाद वर्णित है। बौद्धसमाजमें गोरक्षनाथ एक प्रधान बौद्धाचार्यके जैसे सम्मानित थे *। मीननाथका तो बड़ा ही सम्मान होता था। वे अब भी नेपालके अधिष्ठातृदेवता मच्छेन्द्रनाथ नामसे बौद्धसमाजमें विशेष पूजित हैं तथा नेपाली-बौद्धगण इस मच्छेन्द्रनाथको ही 'पद्मपाणि' बोधिसत्त्वका अवतार मानते हैं†।

जो कुछ हो, उक्त प्रमाण और अनेक कारणोंसे

---

* It is stated in Pagasm Jon-zan (by Sumpo khanpo, a renowned Buddhist Teacher of Tebbet) 'About (13th Century AD.) this time foolish yogis, who were followers of Biddhist Yogi Goraksha became Civaite Samnyasis" (Journal of the Asiatic society of Bengal, 1898-Pt, 1. *P*, 25)

† Dr. Oldfield's Nepal, vol. II, *P*, 264.

वाशुरियोंको प्रच्छन्न तथा जीवन्त वौद्ध माननेमें कोई आपत्ति न रही।

वौध (सं० पु०) वुधस्यापत्यं पुमान् वुध-अण्। वुधके पुत्र, पुरूरवस।

वौधभारती—संख्यवाचस्पति व्याख्याके प्रणेता।

वौधायन (सं० पु०) १ आङ्गिरस भिन्न वोधऋषिकी सन्तति। २ एक ऋषि। इन्होंने श्रौतसूत्र, गृह्यसूत्र और धर्मसूत्रकी रचना की।

वौधि (सं० पु०) वोध-घञ्। आङ्गिरस भिन्न वोधका गोत्रापत्य।

वौध्य (सं० पु०) वोध-घञ्। आङ्गिरस गोत्रापत्य। महाभारत-शान्तिपर्वमें वौध्यगीता अर्थात् वौध्यका जो उपदेश है, उसका स्थूल तात्पर्य इस प्रकार है:—एक दिन ययातिने वौध्यसे पूछा था, 'आपने किसके उपदेशसे शान्तिलाभ किया है?' वौधने उत्तर दिया, 'मैंने पिंगला वेश्या, क्रौञ्च, सर्प, भ्रमर, शरनिर्माता और कुमारी इन छः जनोंके उपदेशसे शान्ति पाई है। आशा सबसे बलवती है। आशाका विनाश कर सकनेसे ही परम सुख प्राप्त होता है। पिंगलो आशाका परित्याग कर सुखसे सोई थी। निरामिष व्यक्तियोंने क्रौञ्चको आमिष ग्रहण करते देख उसे मार डाला था, यह देख कर किसी एक क्रौञ्चने आमिषका परित्याग कर परमसुख प्राप्त किया था। स्वयं घर बना कर रहना सुखका हेतु नहीं है। सांप दूसरेके बनाये हुए घरमें सुखसे सोता है। तपस्विगण भिक्षावृत्तिका अवलम्बन कर भृङ्गकी तरह पर्यटन करते हुए आनन्दपूर्वक जीविका-निर्वाह करते हैं। एक शर बनानेवाला शर बनानेमें ऐसा मशगूल था, कि उसके सामने राजाके खड़े होने पर भी वह बिलकुल अनजान रहा, किसी प्रकार उनका स्वागत न कर सका। एक दिन एक कुमारी प्रच्छन्नभावसे कुछ अतिथियोंको भोजन करानेकी कामनासे ऊखलमें धान कूट रही थी। चोट देनेसे उसके हाथमेंकी चूड़ियां झन झन शब्द करने लगीं। उसने समझा, कि बहुतोंके एक जगह रहनेसे ही कलह पैदा होता है सो उसने सब चूड़ियाँ फोड़ डालीं केवल एक रहने दी। अतएव अकेला विचरण करनेसे किसीके भी साथ विवाद होनेकी सम्भावना नहीं, यही वौध्यके उपदेशका स्थूल- तात्पर्य है।

(भारत-शान्तिप० १७८ अ०)

वोधो देशभेदोऽभिजनोऽस्य शान्तिकादित्वात् ञ्य। (त्रि०) २ पित्रादिक्रमसे उस देशके अधिवासी।

वौना (हिं० पु०) बहुत छोटे डीलका मनुष्य, अत्यंत ठिंगना या नाटा मनुष्य।

वौभुक्ष (सं० त्रि०) १ दरिद्र। २ अनाहारावसन्न-दर्शन व्यक्ति। ३ कृश। ४ क्षुधित।

वौर (हिं० पु०) आमकी मंजरी, मौर।

वौरई (हिं० स्त्री०) पागलपन, सनक।

वौरना (हिं० क्रि०) आमके पेड़में मंजरी निकलना, आमका फूलना।

वौरहा (हिं० वि०) विक्षिप्त, पागल।

वौरा (हिं० वि०) १ विक्षिप्त, पागल। २ गूंगा। ३ अज्ञान, भोला।

वौराना (हिं० क्रि०) १ विक्षिप्त हो जाना, सनक जाना। २ उन्मत्त हो जाना, विवेक या वुद्धिसे रहित हो जाना।

वौरी (हिं० स्त्री०) वावली स्त्री। वौरा देखो।

वौलड़ा (हिं० पु०) एक प्रकारका गहना जो सिर पर पहना जाता है। इसका आकार सिकड़ी-सा होता है।

व्यंग (हिं० पु०) अन्तस्थ 'व' में देखो।

व्यंजन (हिं० पु०) व्यञ्जन देखो।

व्यक्ति (सं० पु०) व्यक्ति देखो।

व्यजन (सं० पु०) व्यजन देखो।

व्यथा (सं० स्त्री०) व्यथा देखो।

व्यथित (हिं० वि०) व्यथित देखो।

व्यलीक (सं० वि०) व्यलीक देखो।

व्यवसाय (सं० पु०) व्यवसाय देखो।

व्यवस्था (सं० स्त्री०) व्यवस्था देखो।

व्यवहरिया (हिं० पु०) व्यवहार या लेनदेन करनेवाला, महाजन।

व्यवहार (हिं० पु०) १ रुपयेका लेन देन। २ रुपयेके लेन देनका संबंध। ३ इष्टमित्रका सम्बन्ध। ४ व्यवहार देखो।

व्यवहारी (हिं० पु०) १ कार्यकर्त्ता, मामला करनेवाला।

२ लेन देन करनेवाला। ३ जिसके साथ लेन देन हो। ४ जिसके साथ प्रेमका व्यवहार हो।

ब्यसन (सं० पु०) व्यसन देखो।

ब्यसनी (सं० वि०) व्यसनी देखो।

ब्याज़ (हिं० पु०) १ वृद्धि, सूद। २ व्याज देखो।

ब्याध (हिं० पु०) व्याध देखो।

ब्याधा (सं० स्त्री०) व्याधि देखो।

ब्याधि (सं० स्त्री०) व्याधि देखो।

ब्याना (हिं० क्रि०) उत्पन्न करना, पैदा करना।

ब्यापार (सं० पु०) व्यापार देखो।

ब्यारी (हिं० स्त्री०) १ रातका भोजन, ब्यालू। २ वह भोजन जो रातके लिये हो।

ब्याल (सं० पु०) व्याल देखो।

ब्याली (हिं० स्त्री०) १ सर्पिणी, नागिन। २ सर्पोंको धारण करने वाला।

ब्यालू (हिं० पु०) ब्यारी, रातका भोजन।

ब्याह (हिं० पु०) विवाह। विवाह देखो।

ब्याहता (हिं० वि०) १ जिसके साथ विवाह हुआ हो। (पु०) २ पति।

ब्याहना (हिं० क्रि०) किसीका किसीके साथ विवाह-संबंध कर देना।

ब्यूंगा (हिं० पु०) चमारका एक यन्त्र जो लकड़ीका बना होता है। इससे वे चमड़ेको रगड़ा दे कर सुलझाते हैं। इसका आकार राँपीके आकार सा होता है, पर अगला भाग अधिक चौड़ा होता है।

ब्योंचना (हिं० क्रि०) १ किसी अंगका एकबारगी इधर उधर मुड़ जाना जिससे पीड़ा हो। २ हाथ, पैर उंगली गरदन आदि धड़से अतिरिक्त किसी अंगके एकबारगी झोंकेके साथ मुड़ जानेसे नसोंका स्थानसे हट जाना।

ब्योंत (हिं० पु०) १ विवरण, माजरा। २ युक्ति, उपाय। ३ उपक्रम, आयोजन। ४ साधारण-प्रणाली, तरीका। ५ प्रबंध, इंतजाम। ६ संयोग, अवसर। ७ पहनावा बनानेके लिये कपड़ेकी काट छांट, तराश। ८ प्राप्त सामग्रीसे कार्यके साधनकी व्यवस्था, काम पूरा उतारनेका हिसाब किताब। ९ साधन या सामग्री आदिकी सीमा।

ब्योंतना (हिं० क्रि०) १ मारना, काटना। २ कोई पहनावा-बनानेके लिये कपड़ेको मांप कर काटना छांटना, नापसे करना।

ब्योंताना (हिं० क्रि०) दरजीसे नापके अनुसार कपड़ा कटाना।

ब्योपार (हिं० पु०) व्यापार देखो।

ब्योपारी (हिं० पु०) व्यापारी देखो।

ब्योरना (हिं० क्रि०) १ सूत या तागेके रूपकी उलझी हुई वस्तुओंके तार तार अलग करना। २ गुथे या उलझे हुए बालोंको अलग अलग करना।

ब्योरा (हिं० पु०) १ विवरण, तफसील। २ किसी विषयका अंग प्रत्यंग, किसी एक विषयके भीतरकी सारी बात। ३ वृत्तान्त, समाचार।

ब्योसाय (हिं० पु०) व्यवसाय देखो।

ब्योहर (हिं० पु०) रुपया ऋण देना, लेन देनका व्यापार।

ब्योहरा (हिं० पु०) सूद पर रुपया देनेवाला, हुंडी चलानेवाला।

ब्योहरिया (हिं० पु०) महाजनी करनेवाला।

ब्योहार (हिं० पु०) व्यवहार देखो।

ब्यौहर (हिं० पु०) ब्योहर देखो।

ब्यौहरिया (हिं० पु०) ब्योहरिया देखो।

ब्यौहार (हिं० पु०) ब्योहार देखो

ब्रज (सं० पु०) ब्रज देखो।

ब्रजवादनी (हिं० पु०) एक प्रकारका आम। इसका पेड़ लताके रूपका होता है। इसका दूसरा नाम राजवल्ली भी है।

ब्रध्न (सं० पु०) बन्ध-बन्धने (बन्धे ब्रधिबुधीच उण् । ३।५) इति न क् ब्रधादेशश्च। १ सूर्य। २ वृक्षमूल। ३ अर्क, आकका पौधा। ४ शिव। ५ दिन। ६ अश्व, घोड़ा। ७ चौदहवें मनु चैत्यके पुत्रका नाम। ८ रोग विशेष। इसका लक्षण—

"यस्य वायुः प्रकुपितः शोकशूलकरश्चरन् ।
वङ्क्षणात् वृषणौ याति ब्रध्नस्तयोपजायते ॥"

(चरक १८ अ०)

ब्रह्म (सं० क्ली०) बृंहति वर्द्धते निरतिशयमहत्त्वलक्षण-वृद्धिमान् भवतीति बृहि वृद्धौ (बृहेनोच्च। उण् ४।१४५) मनिन् नकारस्याकारः रत्वञ्च। १ वेद। "तस्मादेतद् ब्रह्म-नामरूपमन्नञ्च जायते।" (श्रुति) २ तपस्या, तप। ३ सत्य। ४ तत्त्व, यथार्थ। (अमर) ५ सर्वगुणातीत विशुद्ध तुरीय चित्स्वरूप, चैतन्यस्वरूप ब्रह्म, ज्ञानमय परमात्मा। वेदान्तमें लिखा है—

"अज्ञानादिसकलजड़समूहोऽवस्तु, ब्रह्मैव नित्यं वस्तु, तदन्यदखिलमनित्यं" अर्थात् ब्रह्म ही एकमात्र नित्य वस्तु है। ब्रह्मके अतिरिक्त अज्ञानादि समस्त जड़ समूह अवस्तु और अनित्य हैं। श्रुतिमें पाया जाता है, कि "यतो वा इमानि भूतानि जातानि येन जातानि जीवन्ति यत् प्रयन्ति अभिसम्विशन्ति।" (श्रुति)

जिससे इस भूत-समूहकी उत्पत्ति हो कर स्थिति हुई है और जिसमें यह लीन होता है, वही ब्रह्म है। वेदान्त दर्शनमें ब्रह्म-जिज्ञासाके स्थलमें 'अथातो ब्रह्मजिज्ञासा' इस सूत्रके बाद 'जन्माद्यस्य यतः' इस सूत्रमें ब्रह्मका लक्षण वर्णित हुआ है। यहां अति संक्षेपसे वेदान्त-प्रतिपादित ब्रह्मका विषय लिखा जाता है।

"सदेव सोम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयम्।" (श्रुति) इस जगत् सृष्टिके पहले केवल 'सत्' मात्र था, नाम और रूप कुछ भी न था। समस्त एकमात्र और अद्वितीय था।

"एतदात्म्यमिदं सर्वं तत् सत्यं स आत्मा तत्त्वमसि श्वेतकेतो।" (श्रुति) यह समस्त जगत् एतदात्मक अर्थात् सद्वस्तु ही इन सबकी आत्मा है; वह सद्वस्तु एकमात्र सत्य है और वही आत्मा वा ब्रह्म है। हे श्वेत-केतो! तुम्हीं वह ब्रह्म हो। वह सद्वस्तु ही सत्य है। इससे प्रमाणित होता है कि कार्य अर्थात् जगत् सत्य नहीं है, असत्य अर्थात् मिथ्या है। तुम वही हो, ऐसा कहनेसे, जीवात्मा और परमात्मा एक, भिन्न नहीं। वही एक ब्रह्म है। 'एकमेवाद्वितीयम्'—'एकं' 'एव' 'अद्वितीयं' इन तीन पदोंके द्वारा सद्वस्तुमें अर्थात् ब्रह्ममें भेदत्रय निवारित हुए हैं। अनात्मा अर्थात् जगत्में तीन तीन प्रकारका भेद देखा जाता है। जैसे—स्वगतभेद, सजातीयभेद, और विजातीयभेद। अवयवके साथ अवयवीका भेद स्वगतभेद है, अर्थात् पत्र, पुष्प और फलादिके साथ वृक्षका जो भेद है, उसे स्वगत भेद कहते हैं। एक वृक्षसे दूसरे वृक्षमें भेद अवश्य ही है, इसी भेदका नाम सजातीयभेद है। कारण, इस भेदके प्रतियोगी और अनुयोगी दोनों ही वृक्षजातीय हैं। शिला आदिकी अपेक्षा वृक्षमें जो भेद है, वह विजातीय भेद है। अनात्मवस्तुकी तरह आत्मवस्तुमें अर्थात् ब्रह्ममें भेद-त्रयकी आशङ्का हो सकती है। इस आशङ्काकी निवृत्तिके लिए 'एक मेवाद्वितीयम्' यह रूप निरूपित हुआ है। 'एकं' पदके द्वारा स्वगत भेद, 'एवं' से सजातीय भेद और 'अद्वितीय' पद द्वारा विजातीय भेद निवारित होता है। जो एक अर्थात् निरंश वा निरवयव है, उसमें स्वगत भेद हो नहीं सकता। क्योंकि, अंश वा अवयव द्वारा ही स्वगतभेद हुआ करता है। सद्वस्तुके अवयव नहीं हैं। कारण, जो सावयव है, अवश्य उसकी उत्पत्ति होगी। अवयवोंके परस्पर संयोग वा सन्निवेशके पूर्वमें साव-यव वस्तुका अस्तित्व नहीं रह सकता। अवयव संयोग-के बाद सावयव वस्तुकी उत्पत्ति होती है, यह कहना ही पड़ेगा। सुतरां सावयव वस्तुकी उत्पत्ति है। जिसकी उत्पत्ति है, वह जगत्का आदि कारण नहीं हो सकता। क्योंकि उसकी उत्पत्ति भी कारणान्तरकी अपेक्षा रखती है। इस अवस्थामें सिद्ध होता है, कि आदि कारण वा सद्वस्तुके अवयव नहीं हैं। जिसके अवयव नहीं हैं, उसके स्वगतभेद नहीं हो सकते। नाम और रूप सद्वस्तुके अवयव-रूपमें कल्पित नहीं हो सकते हैं। नामके अर्थमें घटादिकी संज्ञा और रूपके अर्थमें उनका आकार समझा जा सकता है। नाम और रूपके उद्भवका नाम सृष्टि है सृष्टिके पूर्व नाम और रूपका उद्भव नहीं होता। अतएव नाम और रूपकी अंश रूपमें कल्पना कर उनके द्वारा भी सद्वस्तुके स्वगत भेदका सम र्थन किया जा सकता है। अब सिद्धान्त हुआ, कि ब्रह्ममें स्वगत भेद नहीं है. और न रह सकता है। सद्वस्तु अर्थात् ब्रह्मका स्वजातीय भेद भी असम्भव है। क्योंकि सद्वस्तुकी सजातीय वस्तु सत् स्वरूप होगी; और 'सत्' पदार्थ एकमात्र है। कारण 'सत्' सत्' इस प्रकारकी एक आकारसे प्रतीयमान वस्तु एक ही होगी, नाना नहीं हो

सकतो। दो सत्पदार्थ मानने पर उनमें परस्पर वैलक्षण्य भी मानना पड़ेगा। सत् पदार्थमें स्वाभाविक वैलक्षण्य रहना असम्भव है। अतएव अन्य सत् कल्पनाका कोई प्रमाण नहीं। सत् पदार्थ एकमात्र होनेसे, सुतरां अन्य पदार्थ न होनेसे, सत् पदार्थमें सजातीय भेदका होना नितान्त असम्भव है। घट-सत्ता, पट सत्ता इत्यादि रूपसे सद्वस्तुमें सजातीय भेदकी प्रतीति होती है सही, किन्तु घटाकाश, मठाकाश इत्यादिकी तरह वह भेद भी औपाधिक है, स्वाभाविक नहीं। नाम और रूप-स्वरूप उपाधिभेदसे सत् पदार्थके भेद भी सृष्टिके उत्तरकालमें हो सकते हैं पूर्वकालमें नहीं। क्योंकि सृष्टिके पूर्व कालमें नाम और रूपका उद्भव ही नहीं हुआ। अतएव ब्रह्ममें सजातीयभेद नहीं है। स्वगत भेद और सजातीय भेदकी तरह सत्पदार्थमें विजातीय भेद भी नहीं बतलाया जा सकता। कारण, जो सत्का विजातीय है वह सत् नहीं है, असत् है। जो असत् है उसका अस्तित्व नहीं है और जिसका अस्तित्व ही नहीं है, वह भेदका प्रतियोगी नहीं हो सकता। जो विद्यमान है, वह अपर वस्तुसे भिन्न है; और अपर वस्तु भी उससे भिन्न हो सकती है। जिसका अस्तित्व नहीं है, वह कुछ भी नहीं हो सकता। अतएव सत्पदार्थमें विजातीय भेद भी अजातपुत्रके नामकरणके समान अलीक है। एक, एव, अद्वितीय, इन तीन पदोंके ब्रह्ममें स्वगतभेद, सजातीय भेद और विजातीय भेद नहीं है, यही कहा गया है।

सृष्टिके पहले अद्वैततत्त्व अर्थात् 'एक ब्रह्म' इसे कोई भी अस्वीकार नहीं कर सकता। जो वस्तुतः अद्वैत है, वह कभी भी द्वैत नहीं हो सकता। वस्तुका अन्यथाभाव असम्भव है। आलोक कभी अन्धकार नहीं हो सकता और न अन्धकार ही कभी आलोक होता है। वास्तवमें भेद और अभेद दोनों परस्पर विरोधी होनेसे दोनों सत्य नहीं हो सकते। सूक्ष्म दृष्टिसे विचार करनेसे मालूम होता है, कि अभेद सत्य है, भेद मिथ्या है। अभेद शब्दका अर्थ एकत्व है और भेदका अर्थ नानात्व।

एकत्वव्यवहार निरपेक्ष है, और नानात्व व्यवहार दूसरेकी अपेक्षा रखता है। पूर्व-सिद्ध एकत्व उत्तरकालमें व्यवह्रियमान नानात्व द्वारा बाधित नहीं हो सकता। वरन् पूर्वसिद्ध एकत्व द्वारा पर-भावी नानात्व ही बाधित हो सकता है। निरपेक्ष होनेसे एकत्व प्रबल है, और सापेक्ष होनेसे नानात्व दुर्बल है। विरोधके स्थल पर प्रबल दुर्बलको बाधित करता है, एकत्व प्रभेद नानात्व अर्थात भेदका उपजीव्य है। प्रतियोगिज्ञानके विना भेदका ज्ञान नहीं हो सकता। आश्रयके विना कोई ठहर नहीं सकता। इसलिए भी भेद अभेदकी अपेक्षा दुर्बल है। अतएव अभेद सत्य है और भेद मिथ्या। ब्रह्म एक और अद्वितीय है। उपनिषद्में यह विषय विस्तृतरूपसे उपदिष्ट हुआ है। द्वैत उपदिष्ट न होने पर भी उपनिषद्में किसी किसी जगह द्वैतका आभास पाया जाता है। द्वैत और अद्वैत, इन दोनोंमें एक ही सत्य है, दूसरा काल्पनिक है, यह अवश्य ही स्वीकार करना पड़ेगा। क्योंकि वस्तु एकरूप होगी, दो रूप नहीं हो सकती। द्वैतको पारमार्थिक और अद्वैतको काल्पनिक कहनेसे एक विज्ञानसे सर्वविज्ञान-प्रतिज्ञा भङ्ग होती है; उपादान मात्रके लिए ही सत्यताका अवधारण असङ्गत होता है, और ब्रह्मात्मका सिद्धिवत् निर्देश अनुपपन्न होता है। सुतरां अद्वैत वा अभेद काल्पनिक है, पारमार्थिक, द्वैत वा भेद मिथ्या वा व्यवहारिक है, यही सिद्धान्त श्रुतिसङ्गत है।

"यत्र हि द्वैतमिव भवति तदितर इतरं पश्यति" (श्रुति) जिस समय द्वैत सदृश होता है, उस समय एक दूसरेको देख सकते हैं। श्रुतिमें "द्वैतमिव' है इस "इव" शब्दके प्रयोगसे द्वैतका मिथ्यात्व प्रज्ञापित होता है।

"मन्दान्धकारे रज्जुः सर्प इव भवति।" (श्रुति)

मन्द अन्धकारमें रज्जु सर्पकी भांति दीखती है। ऐसे स्थलमें 'सर्प-इव' कहनेसे सर्पका मिथ्यात्व जैसे बतलाया गया है, उसी तरह समझना चाहिये।

"मृत्योः स मृत्युमाप्नोति य इह नाने पश्यति।" (श्रुति)

जो इस ब्रह्मको नाना रूपमें दर्शन करता है, वही मृत्यु द्वारा विनाशको प्राप्त होता है। इस जगह

भी 'नानेच' इई शब्दके प्रयोग द्वारा नानात्व वास्तविक नहीं हैं, नानात्व मिथ्या है, यही कहा गया है। "एकं सत्यं वहुधा कल्पयन्ति।" (श्रुति) एक ब्रह्मकी अनेक रूपमें कल्पना होती है। लेख बढ़ जानेके भयसे प्रमाण नहीं दिये गये। छान्दोग्य और वृहदारण्यक उपनिषद् तथा वेदान्तदर्शन देखनेसे इसके वहुत प्रमाण मिल सकते हैं।

अद्वैतमतानुसार सृष्टि वस्तुतः सत्य नहीं है, काल्पनिक मात्र है। कल्पना द्वारा पारमार्थिक अद्वैतकी कोई भी क्षति नहीं हो सकती। जिसकी आंखें तिलमिला गई हैं वा रोगयुक्त हैं, वह यदि एक चन्द्रमाको कई चन्द्रमाकी भांति देखे, तो उसके देखनेसे चन्द्रमा अनेक नहीं हो सकते। कारण, चन्द्रका अनेकत्व वास्तविक नहीं हैं, वह उसकी आंखोंमें विकार होनेसे, निजी कल्पना है। कल्पित रूप वस्तुका स्पर्श नहीं करता, वस्तुके साथ कल्पित रूपका कोई सम्बन्ध नहीं। इसी तरह अविद्याके दोषसे हमारे विचित्र वस्तुओंका दर्शन करने पर भी उसके द्वारा प्रकृत रूपमें ब्रह्म जगदाकार नहीं हो सकते।

किसी किसी श्रुतिमें ब्रह्मके परिणामवादका आभास देखनेमें आता है। परन्तु अविद्या-कल्पित नाम-रूपात्मक रूपभेदसे ब्रह्म परिणाम व्यवहारके गोचर होने पर भी, द्वैत मिथ्यात्व और अद्वैत सत्यत्व बोधक श्रुतियोंके मतानुसार विवर्त्तवादकी पारमार्थिकता सिद्ध होती है। किन्तु परिणाम प्रतिपादनके विषयमें श्रुतिका तात्पर्य नहीं है। कारण, उस प्रकारका ब्रह्मात्मभाव ज्ञानमोक्षका साधन है। सहजबोध्य परिणाम प्रक्रियाके अनुसार सृष्टि है इसलिए श्रुतिमें 'नेति' 'नेति' अर्थात् यह ब्रह्म नहीं है, यह ब्रह्म नहीं है, इस प्रकारसे प्रपञ्चका निषेधका निष्प्रपञ्च ब्रह्मात्म भावका ही उपदेश दिया गया है।

एक ब्रह्म बहुरूपमें कल्पित होते हैं। यह पहले ही कहा जा चुका है, 'जन्माद्यस्य' यतो वा इमानि भूतानि जातानि' कि ब्रह्मसे ही इस जगत्की सृष्टि हुई है।

"आत्मा वा इदमग्रेऽभूत् स ऐक्षत प्रजा इति।
सङ्कल्पेनासृजल्लोकान् स एतानिति वह्वृचाः॥
खवाय्वग्निजलोर्व्योषध्यन्नदेहाः क्रमादमी।
सम्भूता ब्रह्मणस्तस्मादेतस्मादात्मनोऽखिलाः॥
बहुस्यामहमेवातः प्रजायेयेति कामतः।
तपस्तप्त्वाऽसृजत् सर्वं जगदित्याह तैत्तिरिः॥
इदमग्रे सदेवासीत् बहुत्वाय तदैक्षत।
तेजोऽवन्नाण्डजादीनि ससर्जेति च सामगाः॥"

(पंचदशी द्वैत वि० ३६)

इस अनन्त ब्रह्माण्डकी सृष्टिके पहले केवल एकमात्र ब्रह्म ही विद्यमान थे, उस समय और कुछ भी विद्यमान न था। उस अद्वितीय ब्रह्मके मनमें सङ्कल्प हुआ, कि "मैं जगत्की सृष्टि करूंगा"। उनके इस सङ्कल्प मात्रसे ही चराचर जगत्की सृष्टि हो गई। तैत्तिरीय श्रुतिके देखनेसे मालूम होता है कि, ब्रह्मके सङ्कल्प मात्रसे ही आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथिवी और औषधि आदि सभी वस्तु यथाक्रम उत्पन्न हुई। उसी ब्रह्मने—"मैं बहु हो कर जगत्में परिव्याप्त होऊंगा" ऐसा सङ्कल्प किया, और इसी सङ्कल्परूप तपोबलसे उन्होंने अनन्त ब्रह्माकी सृष्टि की है।

छान्दोग्य उपनिषद्में भी कहा गया है कि, इस अपरिसीम ब्रह्माण्ड सृष्टिके पहले और कुछ भी नहीं था। केवल एकमात्र सत्स्वरूप ब्रह्म ही विद्यमान था। उन्होंने सङ्कल्प किया कि, नानाकारसे जगत् उत्पन्न होवें, उसी समय ब्रह्मके उस सङ्कल्पके बलसे यह जगत् उत्पन्न हो गया।

इन श्रुति प्रमाणोंके द्वारा सिद्ध होता है कि, ब्रह्म ही एकमात्र जगत्कारण हैं। उन्हींसे सृष्टि स्थिति और लय होता है। अखण्डचेतन, अरूप, अस्पर्श, अशब्द और अद्वय ब्रह्मको पार्श्वचर शक्ति अज्ञान है। अज्ञानके प्रादुर्भावसे अन्तःकरणादिकी उत्पत्ति होती है, अनन्तर वे परिच्छिन्न जीव हैं, फिर उसीके तिरोभावमें अपरिच्छिन्न और निरञ्जन हैं। यह अज्ञान ऐशीशक्ति, जगद्योनि, अज्ञानशक्ति, माया, सृष्टिशक्ति, मूलप्रकृति आदिके नामसे परिभाषित हुआ है। क्या अन्तः प्रपञ्च और क्या वाह्यप्रपञ्च, सभी अज्ञानका विलास हैं; इसीलिए वह भ्रान्तिका विजृम्भण कहलाता है।

"अस्ति भाति प्रियं रूपं नाम चेत्यर्थपञ्चकम्।
आद्यत्रयं ब्रह्मरूपं जगद्रूपं ततो द्वयम्॥" (वेदान्तद० शाङ्कर)

शक्तिरूपी ब्रह्माश्रित अज्ञानने ब्रह्ममें वा ब्रह्मको

जगत् दिखाया है। इसलिए जगत् और ब्रह्म अब विमिश्रित वा एकावभासमें भासित हैं। यही कारण है कि अब प्रत्येक दृश्य ही पञ्चरूपी हो रहा है। (१) 'अस्ति' है; ( ) 'भाति' भासता है, (३) 'प्रिय' प्यारा लगता है, (४) 'रूप यह एक प्रकारका है, (५) 'नाम' यह अमुक वस्तु है। इन पंचरूपोंमें प्रथमोक्त भिन्न रूप तीन ब्रह्म है, अवशिष्ट दो रूप जगत् अर्थात् अज्ञान विकार हैं। अज्ञान-विकार वा जगत् परमार्थतः सत्य नहीं है, इसीलिए कहा गया है कि, जगत् मिथ्या है, एकमात्र ब्रह्म ही सत्य है। श्रवण, मनन और निदिध्यासनादि द्वारा अज्ञान तिरोहित होता है।

स्वरूप और तटस्थ, इन दो लक्षणों द्वारा श्रुतिने ब्रह्म-निरूपण किया है। ब्रह्म जगत्कारण है, यह तटस्थ लक्षण हैं, ब्रह्म सच्चिदानन्द, अखण्ड, एकरस और अद्वय है, स्वरूप ही इसका लक्षण है। ब्रह्म जगत्-कारण होने पर भी सांख्यकी प्रकृति और वैशेषिकके परमाणुकी तरह परिणामी और आरम्भिक नहीं हैं। वे स्वयं ही अपनी मायासे आकाशादिके रूपमें विवर्त्तित हुए हैं। सुतरां अभिन्न निमित्तोपादान विवर्त्तका कारण है। अभिन्न निमित्तोपपदका दृष्टान्त मकड़ी है। मकड़ी सृज्यमान सूतके प्रति स्वचैतन्य प्राधान्यसे निमित्तकारण है, और स्वशरीर-प्राधान्यसे उपादान कारण है। मकड़ी जो सूत बनाती है उसका उपादान वह कहीं अन्यसे नहीं लाती, वह उसके शरीरमें ही है।

जगत् ब्रह्मका विकार नहीं है, विवर्त्त है। सचमुच ही जो वस्तु एक प्रकारसे अन्य प्रकारमें रूपान्तरित हो जाती है वह विकार और मिथ्या है अन्यथा प्रतीत होनेसे उसे विवर्त्त समझना चाहिए। दुग्ध दधि हो जाता है, यह विकार है। रज्जुमें सर्पकी प्रतीति होती है। वह भी विवर्त्त है। जगत् ब्रह्मका विकार नहीं है। किंतु विवर्त्त है। सुतरां यह दृश्य-जगत् इन्द्रजाल सदृश्य तात्त्विकसत्ताशून्य है, अर्थात् मिथ्या है।

ब्रह्म विना व्यापारके स्वेच्छासे जगत्की सृष्टि करते हैं। उनकी इस प्रकारकी इच्छा शक्तिका ही नाम माया है। गुणवती माया एक होने पर भी गुणके प्रभेदसे ही जीव और ब्रह्ममें इस प्रकारका विभाग प्रचलित है। उत्कृष्ट सत्त्वके प्राबल्यसे माया है और मलिन सत्त्वके प्राबल्यसे अविद्या, मायाके उपहित ब्रह्म और अविद्याके उपहित जीव है। जीव केवल उपहित नहीं, किन्तु अविद्याके वश्य भी है। माया एक है, इसलिए ब्रह्म भी एक हैं। मालिन्यके अल्पाधिक्यके अनुसार अविद्या बहुत है। तदनुसार जीव भी नाना है, जैसे—सुर, असुर, पशु, पक्षी मनुष्य आदि। मायाकी मायामें ज्ञानशक्तिका चरमोत्कर्ष है, इसलिए उसके उपहित ब्रह्म भी सर्वज्ञ हैं स्वतन्त्र और सर्व-नियन्ता हैं। जीव ज्ञानशक्तिकी अल्पताके कारण वैसा नहीं है। जैसे, एक ही आकाश, घट-रूप उपाधिमें घटाकाश, उसके त्यागने पर महाकाश है, वैसे हो ब्रह्म भी मनुज आदि उपाधिमें जीव और उसके त्याग करने पर ब्रह्म हैं।

शास्त्र, युक्ति और अनुभव, इन तीनों प्रकारके अनुसन्धानसे मालूम होता है कि, अस्तित्व और प्रकाश जिसके अधीन है, वह अपनेमें ही कल्पित है। जैसे, तरङ्ग बुद्बुद आदि जलके अधीन होनेसे जलमें ही कल्पित हैं अर्थात् उनकी सत्ता जलसत्ताके अतिरिक्त नहीं है, उसी तरह इस दृश्य ब्रह्माण्डका अस्तित्व और प्रकाश सच्चिदानन्द ब्रह्मसत्ताके अधीन है। इससे स्थिर किया जाता है, कि सच्चिदानन्द ब्रह्म हैं, चैतन्यमें कल्पित जीव इस ब्रह्म कल्पित भावका साक्षात्कार करनेमें असमर्थ है। जैसे, दर्पण की कालिमा दर्पणके स्वच्छ स्वभावको प्रच्छन्न कर देती है, उसी तरह अपने अनिर्वाचनीय अनादि अज्ञानने भी स्व-स्वरूपको प्रच्छन्न कर दिया है। इसीसे अज्ञ जीव द्वैत प्रपञ्चके मिथ्यात्वसे ज्ञात नहीं है। श्रवणादि द्वारा अज्ञान मालिन्य परिमार्जित होने पर फिर वे समझ सकते हैं, कि मैं पूर्ण हूं, अनवच्छिन्न और सत्य हूं। अन्य समस्त मेरेमें और मेरे कल्पित हैं। मैं ही ब्रह्म हूं।

सृष्टिके पहले यह समस्त सत् अर्थात् ब्रह्म था, और कुछ भी न था, यह सब ही ब्रह्म है। अद्वय ब्रह्म ही आदितत्त्व है। इन सब श्रुतियोंके द्वारा सुव्यक्तरूपसे अद्वय ब्रह्मतत्त्वका उपदेश किये जानेसे और उनके प्रतिपादनार्थ तत्त्वमसि आदि महावाक्यका उपदेश करनेसे स्पष्टतया समझमें आता है कि 'त्वं ब्रह्म' तुम ही ब्रह्म हो।

वैदान्तिक आचार्योंके साधारणतः अद्वैतवादी होने पर भी, उनमें भी प्रकारान्तरसे द्वैतवादका नितान्त असद्भाव नहीं हैं, वैष्णव आचार्यगण प्रायः सभी विशिष्टाद्वैतवादी हैं। ब्रह्म सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान और निखिल कल्याणगुणके आश्रय हैं। जीवात्मा सभी ब्रह्मके अंश हैं, परस्पर भिन्न और ब्रह्मके दास हैं। जगत् ब्रह्मका शक्ति विकाश और परिणाम है: सुतरां सत्य है। सर्वज्ञत्वादि गुणविशिष्ट ब्रह्म हैं, मत्यत्वादि गुणविशिष्ट जगत् है, और अल्पज्ञ एवं धर्माधर्मादि गुण-विशिष्ट जीवात्मा अभिन्न है अर्थात् जीवात्मा जगत् ब्रह्मसे भिन्न हो कर भी भिन्न नहीं है। जीव और ब्रह्मका स्वरूप अभिन्न नहीं है, किन्तु आदित्यके प्रभाव की भांति जीव ब्रह्मसे भिन्न नहीं है, परन्तु ब्रह्म जीवसे अधिक है। जैसे प्रभासे आदित्य अधिक है, उसी प्रकार जीवसे ब्रह्म अधिक है। ब्रह्म सर्वशक्तिमान् और समस्त कल्याणगुणका आकर है, धर्माधर्मादिशून्य जीव उससे विपरीत है।

ब्रह्मभेदाभेद, द्वैताद्वैत और अनेकान्तवाद विशिष्टाद्वैतवादका नामान्तर मात्र है। ब्रह्म एक भी है, अनेक भी हैं। वृक्ष जैसे अनेक शाखायुक्त होते हैं ब्रह्म भी वैसे ही अनेक शक्तियुक्त नाना हैं। अद्वैतवादियोंके मतसे यह मत भ्रमात्मक है। कारण, दो वस्तु एक समयमें परस्पर भिन्न और अभिन्न नहीं हो सकतीं। क्योंकि भेद और अभेद परस्पर विरोधी हैं। अभेदका अर्थ है भेदका अभाव। भेद और भेदका अभावका एक समयमें एक वस्तुमें रहना असम्भव है। कार्य और कारण यदि अभिन्न हो, तो जगत् ब्रह्मसे अभिन्न हो सकता है। परन्तु कार्य और कारणके अभिन्न होनेसे जैसे मृत्तिकारूपमें घटशरावादिका और सुवर्णरूपमें कुण्डलमुकुटादिका एकत्व कहा जाता है, उसी प्रकार घटशरावादि और कुण्डलादिका एकत्व क्या नहीं होगा? अर्थात् घटशरावादि और कुण्डलमुकुटादि रूपमें जैसे नानात्व कहा जाता है, उसी प्रकार उसी रूपमें ही एकत्व भी क्यों कहा जाता है? कारण, मृत्तिका और घटशरावादि तथा सुवर्ण और कुण्डलमुकुटादिके अभिन्न होनेसे मृत्तिका सुवर्णादिका धर्म एकत्व घटशरावादि और कुण्डलमुकुटादिका धर्म नानात्व मृत्सुवर्णादिमें अवश्य ही है। क्योंकि कार्य और कारण जब एक वस्तु है तब एकत्व और नानात्व धर्म भी अवश्य ही कार्य और कारणगत होंगे।

किसी किसी आचार्यने इस दोषके परिहारके लिये अन्यान्य सिद्धान्त किया है। उनका कहना है, कि भेद और अभेद अवस्थाभेदसे होता है अर्थात् अवस्था भेदसे एकत्व और नानात्व दोनों ही सत्य हैं। संसारावस्थामें नानात्व और मोक्षावस्थामें एकत्व है। अर्थात् संसारावस्थामें जीव और ब्रह्म भिन्न हैं, और लौकिक तथा शास्त्रीय व्यवहारमें सत्य है। मोक्षावस्थामें जीव और ब्रह्म अभिन्न है तथा सभी लौकिक और शास्त्रीय समस्त व्यवहार निवृत्त होते हैं, यह सिद्धान्त भी सङ्गत नहीं है। कारण 'तत्त्वमसि' 'अहं ब्रह्मास्मि' इत्यादि श्रुति-बोधित जीवके ब्रह्मभाव अवस्थाविशेषमें नियमित नहीं है। क्योंकि ब्रह्मात्म भाव-बोधक श्रुतिमें अवस्थाविशेषका उल्लेख नहीं है। जीवका असंसारिब्रह्माभेद सनातन अर्थात् सर्वदा विद्यमान है, यही श्रुति द्वारा जाना जाता है। श्रुतिमें कहा गया है, कि वह सिद्ध सदृश है। श्रुतिवाक्यकी अवस्थाविशेषमें अभिप्रायकी कल्पना निष्प्रमाण है। 'तत्त्वमसि' इस श्रुति-बोधित जीवका ब्रह्मभाव किसी प्रकारके प्रयत्न या चेष्टा साध्यरूपमें निर्दिष्ट नहीं हुआ है। 'असि' इस पदसे स्वतःसिद्ध अर्थका मात्र प्रज्ञापन किया गया है।

अतएव जो लोग कहते हैं कि, जीवका ब्रह्मभाव-ज्ञान और कर्मसमुच्चयसे साध्य है, उनका सिद्धांत सङ्गत नहीं है और विवेच्य यह है कि एकत्व और नानात्व निवर्त्तित नहीं हो सकता। कारण, यथार्थज्ञान अयथार्थ ज्ञानका और उसके कार्यका निवर्त्तक हो सकता है। यथार्थ वा सत्य वस्तुका निवर्त्तक नहीं हो सकता। रज्जुज्ञान परिकल्पित सर्पका निवर्त्तक होता है, परन्तु सुवर्णज्ञान कुण्डलादिका निवर्त्तक नहीं होता। एकत्वज्ञान द्वारा नानात्व निवर्त्तित नहीं होने पर मोक्षावस्थामें भी बन्धनावस्थाके समान नानात्व रहेगा। सुतरां मुक्ति ही नहीं हो सकती।

शैवाचार्यगण विशिष्टाशिवाद्वैतवादी हैं। उनके मतसे

चित् और अचित् अर्थात् जीव और जड़-रूप प्रपञ्च-विशिष्ट आत्मा शिव अद्वितीय हैं, वे ही ब्रह्म हैं। यह शिवरूप ब्रह्म ही कारण और कार्य है। इनका नाम विशिष्ट शिवाद्वैत है। चिदचित् सभी प्रपञ्च शिव नामक ब्रह्मका शरीर है। वे जीवकी तरह शरीरी होने पर भी उसकी तरह दुःखके भोक्ता नहीं हैं। अनिष्ट भोगके प्रति शरीर-सम्बन्ध कारण नहीं हैं अर्थात् शरीरी होने पर भी अपने अज्ञान अनुवर्त्तना-जनित अनिष्टका भोग नहीं करते। जीव ईश्वर परवश है। ईश्वरकी आज्ञाका अनुवर्तन न करनेसे उन्हें अनिष्ट भोगना पड़ता है। ईश्वर स्वाधीन हैं, इसलिए उनके अनिष्ट-भोग नहीं है। शरीर और शरीरीकी भांति—गुण और गुणीकी तरह विशिष्टाद्वैतवाद शैवाचार्योंका अनुमत है। मृत्तिका और घटकी भांति कार्य-कारणरूपमें तथा गुण और गुणीकी तरह विशेषण-विशेष्यरूपमें विना-भावरहित्य ही प्रपञ्च और ब्रह्मके अनन्यत्व है। जैसे उपादान-कारणके विना कर्मका भाव अर्थात् सत्ता नहीं रहती, मृत्तिकाके विना घट नहीं होता, सुवर्णके विना कुण्डल नहीं रहता, गुणके विना गुण नहीं रहता, उसी तरह ब्रह्मके विना प्रपञ्च-शक्ति नहीं रह सकती। उष्णताके विना जैसे अग्निके जाननेका कोई उपाय नहीं, उसी तरह शक्तिके विना ब्रह्मको भी नहीं जाना जा सकता। जिसके विना जिसका ज्ञान नहीं होता, वही उसका विशिष्ट है। गुणके विना गुणीको नहीं जाना जा सकता इसलिए गुणी गुणविशिष्ट है। प्रपञ्चशक्तिके विना ब्रह्मको नहीं जाना जा सकता, इसीलिए ब्रह्म प्रपञ्चशक्तिविशिष्ट हैं। यही उनका स्वभाव है। देवता और योगिगण जिस भांति कारणान्तरकी अपेक्षा न रखते हुए ही अचिन्त्यशक्तिके प्रभावसे नानारूप सृष्टि कर डालते हैं, ब्रह्म भी उसी तरह अचिन्त्यशक्तिके प्रभावसे नानारूपमें परिणत होते हैं। नानारूपमें परिणत होने पर भी उनका एकत्व नष्ट नहीं होता।

अचिन्त्य, अनन्त और विचित्र शक्ति ब्रह्ममें ही विद्यमान हैं। ब्रह्मके असाध्य कुछ भी नहीं है, और न कुछ असम्भव है। अतएव यह सम्भव है, यह असम्भव है, इस प्रकारकी कल्पना ब्रह्मके लिए हो ही नहीं सकती। लौकिक प्रमाण-द्वारा जिन वस्तुओंका बोध होता है, ब्रह्म उन सभीसे विजातीय हैं। वे केवलमात्र शास्त्रगम्य हैं शास्त्रमें वे जिस प्रकारसे उपदिष्ट हुए हैं, वे उसीरूप हैं। इस विषयमें सन्देह नहीं हो सकता। लौकिक दृष्टान्त के अनुसार उनके विषयमें विरोध-आशङ्का करना उचित नहीं है। कारण, वे लोकातीत वा अलौकिक हैं।

ब्रह्ममें मायाशक्ति अचिन्त्य, अनन्त और विचित्र शक्ति-युक्त है। तादृश शक्ति-युक्त मायाशक्ति-विशिष्ट परमेश्वर अपनी शक्तिके अंश द्वारा प्रपञ्चाकारमें परिणत हैं, और स्वतः वा स्वयं प्रपञ्चातीत हैं।

ब्रह्म प्रपञ्चाकारमें परिणत होते हैं, इस विषयमें जिज्ञास्य हो सकता है कि कृत्स्न अर्थात् समस्त ब्रह्म ही प्रपञ्चाकारमें परिणत होता है, या ब्रह्मका एक देश वा एकांश। इसके उत्तरमें यदि कहा जाय कि, कृत्स्न ब्रह्म जगदाकारमें अर्थात् कार्याकारमें परिणत होते हैं, तो मूलोच्छेद हुआ जाता है। ब्रह्मके द्रष्टव्यत्व उपदेश तथा उसके उपायरूपमें श्रवणमननादि वा शमदमादि भी अनावश्यक हैं। ब्रह्म यदि मृदादिकी भांति सावयव होते, तो उनका एकदेश कार्याकारमें परिणत वा एकदेश यथावत् अवस्थित है, ऐसी कल्पनाकी जा सकती थी और द्रष्टव्यत्वादिका उपदेश भी सार्थक होता। क्योंकि कार्याकारमें परिणत ब्रह्मांश अयत्नदृष्ट होने पर भी अपरिणत ब्रह्मांश अयत्न-दृष्ट नहीं है। परन्तु ब्रह्मके अवयव नहीं माने जा सकते, कारण ब्रह्म निरवय है यह बात श्रुतिसिद्ध है। ब्रह्मके अवयव स्वीकार करनेसे श्रुतिका विरोध होता है। इसके उत्तरमें शैवाचार्योंका कहना कि ब्रह्म शास्त्रैकसमधिगम्य है, प्रमाणान्तरगम्य नहीं। शास्त्रमें ब्रह्मका कार्याकार परिणाम, निरवयवत्व और कार्यके विना ब्रह्मका अवस्थान ये सभी विषय श्रुत हुए हैं। सुतरां उक्त आपत्ति की हो नहीं जा सकती।

भगवान् शङ्कराचार्यने इन सब मतोंमें दोष दिखा कर कहा है, कि ब्रह्मका परिणामवाद किसी प्रकार भी सङ्गत नहीं हो सकता। कारण कार्याकारमें परिणाम और अपरिणत ब्रह्मका अवस्थान ये दोनों बातें परस्पर विरुद्ध हैं। एक समयमें एक वस्तुके परिणाम और अपरिणाम-दोनों नहीं हो सकते। इसी प्रकार सावयवत्व

और निरवयवत्व परस्पर विरुद्ध हैं। एक वस्तु एक समयमें सावयव और निरवयव हो यह कभी भी सम्भव नहीं हो सकता। श्रुति भी असम्भव और विरुद्ध अर्थ प्रतिपादन करनेमें असमर्थ हैं। योग्यता शाब्द-बोधका अन्यतम कारण है। अतएव शब्द अयोग्य अर्थ प्रतिपादन करनेमें अक्षम है।

"ग्रावाणः प्लवन्ते वनस्पतयः सत्रमासत" अर्थात् पत्थर पानीमें बहता है। वृक्षोंने यज्ञ किया था, इत्यादि असम्भावित अर्थ-बोधक अर्थवादवाक्यके यथाश्रुत अर्थमें जैसे तात्पर्य नहीं है, अर्थान्तरमें तात्पर्य है, उसी प्रकार परिणाम-बोधक वाक्यके भी अर्थ-विशेषमें तात्पर्य करना पड़ेगा। ब्रह्म एकांशमें परिणत और अंशान्तरमें परिणत हैं, यह कल्पना भी युक्ति-सिद्ध नहीं है। इसमें प्रश्न हो सकता है कि, कार्यकारमें परिणत ब्रह्मांश ब्रह्मसे भिन्न है या अभिन्न। यदि भिन्न है, तो ब्रह्मके कार्या-कारमें परिणत नहीं हुआ। क्योंकि कार्याकारमें परि-णत ब्रह्मांश ब्रह्म नहीं है, ब्रह्मसे भिन्न है। एकके परिणाममें दूसरेका परिणाम नहीं कहा जा सकता। मृत्तिकाके परिणाममें सुवर्णका परिणाम नहीं होता। पक्षान्तरमें कार्याकारमें परिणत ब्रह्मांश यदि ब्रह्मसे भिन्न न हो, अर्थात् अभिन्न-हो तो मूलोच्छेदकी आपत्ति उपस्थित होती है। परिणत अंशका ब्रह्म एक ब्रह्मसे अभिन्न होने पर परिणत और ब्रह्म एक वस्तु कह-लाती है। सुतरां सम्पूर्ण ब्रह्मके परिणामको अस्वीकार नहीं किया जा सकता। यदि कहा जाय कि परिणत ब्रह्मांश ब्रह्मसे भिन्नाभिन अर्थात् भिन्न और अभिन्न दोनों है। परिणत ब्रह्मका कारणरूपमें ब्रह्मसे अभिन्न हैं और कार्यरूपमें ब्रह्मसे भिन्न हैं। दृष्टान्तमें कहा जा सकता है कि कुण्डलमुकुटादि सुवर्णरूपमें भिन्न हैं और कुण्डलमुकुटादिरूपमें भिन्न भेद और अभेद परस्पर विरुद्ध पदार्थ हैं, ये दोनों एक समयमें एक वस्तुमें रह ही नहीं सकते। कार्याकारमें परिणत अंश या तो ब्रह्मसे भिन्न होगा या अभिन्न होगा। भिन्न भी हो और अभिन्न भी, यह हो नहीं सकता। और भी विवेच्य विषय यह है कि ब्रह्म स्वभावतः अमृत हैं, वे परिणाम-क्रमसे मर्त्यता प्राप्त करेंगे, यह हो ही नहीं सकता। पक्षान्तरमें मर्त्य जीव है, अमृत ब्रह्म हैं, यह भी नहीं हो सकता। किसी प्रकार भी स्वभावसे अन्यथा नहीं हो सकता। जो लोग कहते हैं कि शास्त्रानुसार कर्म और ज्ञान इन दोनोंके द्वारा मर्त्य जीवको अमृतत्त्व प्राप्त होगा उनका यह मत भी असङ्गत है। क्योंकि, स्वभावतः अमृत ब्रह्मके भी यदि मर्त्यता हो, तो मर्त्य जीवका कर्मज्ञानसमुच्चयसाध्य अमृतभाव अर्थात् मोक्षावस्था स्थायी होगी, यह दुराशा मात्र है। भगवान् शङ्कराचार्यने यह सब देख कर ब्रह्म-विवर्तवाद पक्ष ही स्थिर किया। इनके मतसे ब्रह्म शुद्ध वा निर्विशेष हैं। प्रपञ्च सत्य नहीं, रज्जु-सर्पादि की तरह मिथ्या है। इसलिए ब्रह्ममें कोई विशेष या धर्म नहीं है, वे निर्विशेष ब्रह्म अद्वितीय हैं। प्रपञ्च जब मिथ्या है, ब्रह्मके अतिरिक्त वस्तु जब सत्य नहीं है, तब ब्रह्म अद्वितीय हैं, यह अनायास ही बोध-गम्य है। जीव ब्रह्मसे भिन्न नहीं है, यह बात एक सामान्य श्लोकमें कही गई है:—

"श्लोकार्द्धेन प्रवक्ष्यामि यदुक्तं ग्रन्थ कोटिभिः।
ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव केवलम्॥"

कोटि कोटि ग्रन्थोंमें जो कहा गया है, मैं श्लोकार्द्ध द्वारा वही कहूंगा। वह यही है, ब्रह्म सत्य है, जगत् मिथ्या है, जीव ही ब्रह्म है। शङ्कराचार्यका यही अभि-मत है। सभी अद्वैतवादियोंने एक वाक्यसे श्रुतिको ही अद्वैतवादका मूल प्रमाण माना है। श्रुतिके तात्पर्य-की पर्यालोचनासे जो निश्चित होगा, वह अवनतमस्तक-से स्वीकार करनेके लिए सभी वाध्य हैं।

श्वेतकेतुको ब्रह्मोपदेशकके स्थानमें दी हुई छान्दोग्य उपनिषद्की एक आख्यायिकाका संक्षिप्त तात्पर्य यहां प्रदर्शित किया जाता है। आरुणिने श्वेतकेतु नामक अपने पुत्रको कहा, 'हे श्वेतकेतो, गुरुकुलमें जा कर ब्रह्मचर्यका आचरण करो। क्योंकि, हमारे कुलमें कोई व्यक्ति बिना अध्ययन किये ब्रह्मबन्धु नहीं होता।' द्वादशवर्षीय बालक श्वेतकेतु पिताके उपदेशानुसार गुरुकुलमें जा अध्ययन समाप्त कर चौवीस वर्षकी अवस्थामें अपने घर लौटे और वे अपनेको एक असामान्य विद्वान् समझने लगे। यही कारण था कि, वे किसीसे बातचीत भी नहीं

करते थे। पुत्रकी ऐसी अवस्था और अभिमानके प्रति लक्ष्य करके आरुणिने कहा, 'श्वेतकेतो! तुम अनुचानगामी हो अर्थात् अपनेको बड़े विद्वान् समझते हो और किसीके साथ बातचीत भी नहीं करते। अच्छा बतलाओ तो सही, तुमने गुरुके समक्ष ऐसा कोई प्रश्न किया था कि जिसका उत्तर यथावत् मिलने पर अश्रुत विषय श्रुत, अमत विषय मत और अज्ञात विषय विज्ञात हो सकता हो?' श्वेतकेतुने यह असम्भव समझ कर कहा—'हे भगवन्! यह किस प्रकार सम्भव हो सकता है?' आरुणि बोले—हे प्रियदर्शन! जैसे एक मृत्पिण्ड विज्ञात होने पर भी समस्त मृण्मय अर्थात् मृत्‌विकार विज्ञात होता है, एक नखनिकृन्तन (नहरनी) विज्ञात होने पर कार्ष्णायस अर्थात् कृष्णलौहका विकार विज्ञात होता है, क्योंकि मृत्तिका, लौह और कृष्णायस यही सत्य है, विकार केवल वाक्य-द्वारा ही आरब्ध होता है, अर्थात् मृत्तिकादि संस्थानविशेषके अनुसार घटपटादि नाम होते हैं, परन्तु वास्तवमें मृत्तिकादिके अतिरिक्त विकार नहीं है, उसी प्रकार एक विज्ञानमें सर्वविज्ञान सम्भवपर हो सकते हैं। उपादान मात्र ही सत्य है, विकार मिथ्या है। इस कारण जगत्‌का उपादान जान लेनेसे सब कुछ जाना जा सकता है।' इस पर श्वेतकेतुने कहा—"हे भगवन्! आप ही मुझे उपदेश दीजिए।" श्वेतकेतुके प्रार्थना करने पर आरुणिने उन्हें जगत्‌कारणका उपदेश दिया। इस जगह एक विज्ञानमें सर्व विज्ञान की प्रतिज्ञा कर उसके उपादानके लिए जगत्‌कारणका उपदेश दिया गया। विकार वस्तुगत्या सत्य होने पर कभी भी एक विज्ञानमें सर्व विज्ञान नहीं हो सकता कि उपादान विज्ञान होने पर भी उपादेय अर्थात् उसका विकार अविज्ञान रह सकता है। अतएव प्रतिपन्न होता है, उपादानके सिवा विकारका वास्तविक अस्तित्व नहीं है। उदाहरणार्थ—"मृत्तिकेत्येव सत्यं, लोहमित्येव सत्यं, कृष्णायसमित्येव सत्यं" (श्रुति) अर्थात् मृत्तिका ही सत्य है, लौह ही सत्य है, कृष्णलौह ही सत्य है। इस प्रकारसे उपादानकी सत्यता अवधारण करनेसे विकारकी असत्यता स्पष्ट ही प्रतीत होती है। जो

असत्य है, वह मिथ्या है, यह कहना बाहुल्यमात्र है। उपदेश देते समय आरुणिने पुनः पुनः कहा था।

"एतदात्म्यमिदं सर्वं तत् सत्यं स आत्मा तत्त्वमसि श्वेतकेतो!"
सदेव सौम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयम्॥"

वही सत् वस्तु एकमात्र सत्य है, वे ही ब्रह्म हैं और वे तुम ही हो। तुम ही समस्त, एकमात्र और अद्वितीय हो। इस श्रुतिके तात्पर्यका वर्णन पहले ही किया जा चुका है।

जीवात्मा और परमात्मा वा ब्रह्मका ऐक्य ही वेदान्तशास्त्रमें प्रतिपादित हुआ है। साधारणतः जीवात्मा ब्रह्मसे भिन्न रूपमें प्रतीयमान होने पर भी वेदान्तशास्त्र समझा देते हैं कि जीवात्मा वास्तविक ब्रह्मके अतिरिक्त नहीं है, ब्रह्मस्वरूप है। वेदान्तादि दर्शनशास्त्रका प्रयोजन मुक्ति है। अज्ञान वा अविद्याकी निवृत्ति और स्वस्वरूपमें आनन्द-प्राप्तिको मुक्ति कहते हैं। यह मुक्ति जीव और ब्रह्मके ऐक्य साक्षात्कार साध्य है। अर्थात् जीव और ब्रह्मका ऐक्य साक्षात्कार होनेसे ही मुक्ति है। आपत्ति हो सकती है, कि संसारदशामें भी स्व-स्वरूप आनन्दका अन्यथाभाव नहीं है। क्योंकि वस्तुस्वरूपमें अन्यथाभाव असम्भव है। अतएव स्व-स्वरूप आनन्द नित्यप्राप्त होनेसे उसकी प्राप्ति नहीं हो सकती। अप्राप्त वस्तुकी प्राप्ति हो सकती है, जो नित्यप्राप्त है, उसकी फिर प्राप्ति क्या होगी। स्व-स्वरूप आनन्दकी प्राप्ति न कर सकने पर जीव ब्रह्मका ऐक्य साक्षात्कार और उसका साधन भी नहीं हो सकता। इसके उत्तरमें वक्तव्य यह है, कि नित्यप्राप्त वस्तु भी मिथ्याज्ञान वा भ्रमवशतः अप्राप्त मालूम होती है। यह भ्रम दूर होने पर वह प्राप्त रूपमें प्रतीयमान होती है। कण्ठगत स्वर्णहार नित्यप्राप्त होने पर भी विस्मरणके कारण अप्राप्त और तद्‌गतमें वही फिर प्राप्त प्रतीत होता है। उसी प्रकार आनन्द ब्रह्मका स्वरूप होने पर भी संसारदशामें अविद्या दोषसे वह सम्यक् प्रतिभात नहीं होता, इसलिए अप्राप्ति मालूम होता है। विद्याके द्वारा अविद्यासे निवृत्त होनेसे वही सम्यक्‌रूपमें प्रतिभात होता है, इसलिए वह प्राप्त हुआ, ऐसा विवेचित होता है।

संसारावस्थामें अविद्या-दोषसे ब्रह्मका आनन्दरूपत्व

विशेषरूपसे प्रतीयमान नहीं होता; किन्तु सामान्यरूपसे प्रतीयमान होता है। जैसे, किसी घरमें कुछ बालकोंके वेदाध्ययन करते रहनेसे बगलके घरमें बैठे हुए उसके पिताको सामान्यरूपसे मालूम होता है, कि उनका पुत्र भी वेदाध्ययन कर रहा है, परन्तु उस पुत्रके वेदाध्ययनकी ध्वनि विशेषरूपसे नहीं मालूम पड़ती, उसी प्रकार ब्रह्मका आनन्दरूपत्व संसारदशामें सामान्यरूपसे प्रतिभात होने पर भी विशेषरूपसे प्रतिभात नहीं होता। विशेषरूपसे प्रतिभात न होने पर भी किसी अवस्थामें भी ब्रह्मके आनन्दरूपत्वमें अन्यथा नहीं होता, ब्रह्म चैतन्य स्वरूप है। ब्रह्मचैतन्यके प्रभावसे जड़-समूह प्रकाशित होता है। जड़समूह स्वप्रकाश नहीं है। इसलिए जड़वर्ग ब्रह्म नहीं है। ब्रह्म चेतन और नित्य हैं। ब्रह्मके शरीरादिकी और उनके सम्बन्धकी उत्पत्ति और विनाश होने पर भी ब्रह्मकी उत्पत्ति और विनाश नहीं है। इसलिए ब्रह्म नित्य है, जो नित्य है वह असत्य नहीं हो सकता। अतएव ब्रह्म सत्य स्वरूप हैं।

"विज्ञानमानन्दं ब्रह्म, सत्यं ज्ञान मनन्तं ब्रह्म।" (श्रुति)

जीव और ब्रह्म एक होने पर भी अनादि अविद्या वा अज्ञानवश जीवात्माका संसार वा बन्धन होता है। अज्ञानकी आवरण और विक्षेप नामक दो शक्तियां हैं। कभी कभी रज्जुमें सर्पका भ्रम होता है, रज्जुका ज्ञान होने पर सर्पका भ्रम नहीं होता। रज्जुका अज्ञान सर्प-भ्रमका कारण है। रज्जुका अज्ञान आवरण-शक्तिके द्वारा रज्जु-स्वरूप पर आवरण डालता है, पीछे विक्षेप शक्तिके द्वारा रज्जुमें सर्पका उद्भावन कराता है। ब्रह्म, और ब्रह्म विषयक अज्ञान भी आवरणशक्ति द्वारा ब्रह्म वा ब्रह्मस्वरूप पर आवरण डाल कर विक्षेपशक्तिसे ब्रह्ममें कर्तृत्व भोक्तृत्वादि धर्मका तथा आकाशादि प्रपञ्चका उद्भावन करता है। आकाशमें बादल होने पर सूर्य-मण्डल दृष्टिगोचर नहीं होता, परन्तु यह सत्य नहीं है। कारण थोड़ा-सा बादल बहुयोजन विस्तृत सूर्यमण्डलको ढक नहीं सकता। मेघने देखनेवालेकी आंखों पर पर्दा डाल दिया है, इसीसे उसमें आदित्यमण्डलके आवरणका भ्रम होता है। इसी प्रकार परिच्छिन्न अज्ञान अपरिच्छिन्न असंसारी ब्रह्मको वस्तुगत्या आवृत नहीं कर सकता। परन्तु वह अवलोकयिता वा बोद्धाकी बुद्धिको आवृत अवश्य करता है। इसीसे ब्रह्म आवरण-युक्त मालूम पड़ते हैं। ब्रह्मका स्वरूप आवृत होनेसे प्रकृत ब्रह्मबोध नहीं हो सकता। ऐसी दशामें अवलोकयिता वा बोद्धा दिक्शून्य हो कर अब्रह्ममें ब्रह्म और अब्रह्मके धर्मको धर्म समझता है। इस प्रकारका बोध अध्यास कहलाता है। मैं मनुष्य हो कर अब्रह्ममें ब्रह्माध्यासका उदाहरण हूं। क्योंकि स्थूलत्वादि देहका धर्म ब्रह्ममें अध्यस्त हुआ है। यह मेरा है, इत्यादि ममकारका नाम संसर्गाध्यास है। यह अध्यास परम्परा अनादि है। उसमें भी पूर्व पूर्वका अध्यास वा तज्जनित संस्कार बादके अध्यासमें कारण है। ब्रह्म स्वभावतः अच्छेद्य, अभेद्य और अदाह्य है। कोई भी ब्रह्मका इष्ट वा अनिष्ट नहीं कर सकता। कारण, वास्तवमें ब्रह्मका इष्ट वा अनिष्ट कुछ है ही नहीं। इसलिए जो ब्रह्मतत्त्वज्ञ हैं उनके रागद्वेष होना असम्भव है। देह और इन्द्रियों आदिका इष्ट और अनिष्ट हो सकता है, अध्यासवशतः देहादिका इष्ट अनिष्ट ही आत्मका इष्ट अनिष्ट समझा जाता है। सुतरां उस इष्ट और अनिष्टके विषयमें रागद्वेष-वशतः प्रवृत्तिका आविर्भाव है, और प्रवृत्ति होनेसे आचरित कर्मका फल भोगना पड़ता है। कर्म-फलका भोग सुखदुःखकी उपलब्धिके सिवा और कुछ भी नहीं है। इसलिए सुखदुःखकी उपलब्धिके लिये अर्थात् कर्मफल भोगनेके लिए जन्म-परिग्रह करना पड़ता है। मोहान्ध मनुष्य भोगके लिए कर्म करता है और कर्म करनेके लिए भोग करता है। जिस जातीय द्रव्यके उपयोगसे सुखानुभव होता है, उस जातीय द्रव्यके सम्पादनकी प्रवृत्ति स्वाभाविक और प्रत्यक्ष-सिद्ध है। अध्यास इस अनर्थ-परम्पराका निदान है। अध्यास भी अविद्याका कार्य होनेसे अविद्यामें शामिल है। जब विद्याके द्वारा अविद्याका नाश हो जाता है, तब ब्रह्मका स्वरूप अवगत होता है। इससे फिर "सोऽहं ब्रह्म" यह ज्ञान दृढ़भूत होता है।

अब समझा जा सकता है, कि ब्रह्म वास्तवमें असङ्ग हैं, जलमें पद्मपत्रकी तरह निर्लिप्त हैं और सुखदुःखसे रहित होने पर भी अविद्यावशतः ब्रह्मके संसार, पुण्य

पापका लोप और दुःखका भोग होता है। अतएव अविद्या ही सम्पूर्ण अनर्थोंका मूल है। विद्याके द्वारा सर्वानर्थमूल अविद्याका नाश करना बुद्धिमानका कर्त्तव्य है। किन्तु जिज्ञास्य यह है कि आलोकमें अन्धकारकी तरह स्वप्रकाश ब्रह्ममें अविद्या कैसे रह सकती है ? द्वितीयतः ब्रह्म इच्छा-पूर्वक अपने लिए अनर्थकर मिथ्याज्ञानका अवलम्बन करेंगे, यह भी नितान्त असम्भव है। कोई भी बुद्धिमान् व्यक्ति इच्छा-पूर्वक अपने लिए अनिष्टकर विषय ग्रहण नहीं कर सकता। इसके उत्तरमें यह कहना कि दोनों ही सम्भव हैं।

स्वप्रकाशक ब्रह्ममें अविद्या कैसे रह सकती है, अविद्या किसकी है ? इस विषयमें वैदान्तिक आचार्योंने विस्तृत आलोचना की है। संक्षेपमें उसका यत्किञ्चित आभास मात्र प्रदर्शित किया जाता है।

"स्वप्रकाशे कुतोऽविद्या तां विना कथमावृतिः।
इत्यादि तर्कजालानि स्वानुभूतिर्ग्रसत्यसौ॥
स्वानुभूतावविश्वासे तर्कस्याप्यनवस्थितेः।
कथं वा तार्किकम्मन्यस्तत्त्वनिश्चयमाप्नुयात्॥
बुद्ध्यारोहाय तर्कश्चेदपेक्ष्येत तथा सति।
स्वानुभूत्यनुसारेण तर्क्यतां मा कुतर्क्यताम्॥"

इसका तात्पर्य यह है कि, स्वप्रकाश ब्रह्ममें अविद्या किस प्रकार रह सकती है ? अविद्या नहीं मानें तो फिर ब्रह्मके स्वरूपमें आवरण किस प्रकार हो सकता है ? स्वानुभव तर्कजालको निराकृत करता है, अपने अनुभवसे ही यह सब अकिञ्चित्करत्व प्रतिपन्न होता है। क्योंकि, मैं अज्ञ हूं, मैं अपनेको नहीं जानता, इस प्रकारका अनुभव प्रत्यक्षसिद्ध है। स्वानुभव पर विश्वास न करनेसे जो अपनेको तार्किक समझते हैं, वे कैसे तत्त्वका निश्चय करेंगे ? कारण, तर्क तो अवस्थित नहीं होता। देखा जाता है, कि एक तार्किक जिस तर्कका न्यास करते हैं, अन्य तार्किक उसे तर्काभास सिद्ध कर देते हैं। उसका तर्क भी अन्य तार्किक द्वारा तर्काभासमें परिणत किया जाता है। इसलिए केवल तर्कके द्वारा तत्त्वका निश्चय नहीं किया जा सकता। अनुभूत विषय बुद्ध्यारूढ़ होनेके लिए अर्थात् जो अनुभव है उसे भलीभांति समझनेके लिए वा उसमें दृढ़ विश्वास जमानेके लिए तर्ककी आवश्यकता हो सकती है, परन्तु तो भी अपने अनुभवके अनुसार तर्क करना उचित है, कुतर्क करना उचित नहीं। फलतः जब सभी अपने अज्ञानका अनुभव कर रहे हैं, तब अज्ञान किसके हैं ? यह प्रश्न उठ नहीं सकता। स्वप्रकाश ब्रह्ममें अज्ञान कैसे सम्भव हो सकता है, यह प्रश्न हो सकता है, पर इसका मूल्य नहीं। क्योंकि स्वप्रकाश ब्रह्ममें अज्ञान जब साक्षात् अनुभूत होता है, तब अज्ञानके अस्तित्वमें सन्देह करनेकी गुंजाइश नहीं। अतएव अज्ञान-सत्ताका कारण निर्णीत न होने पर भी कुछ हानिलाभ नहीं हो सकता। तादृश अनुभव होता है इस कारण वैदान्तिक आचार्योंने कहा है, कि नित्य स्व-प्रकाश चैतन्य अज्ञानका विरोधी नहीं है। क्योंकि नित्य स्वप्रकाश चैतन्यमें ज्ञान का अनुभव हो रहा है, इस कारण नित्य स्वप्रकाश चैतन्यको अज्ञानका विरोधी नहीं कहा जा सकता। कारण, विरोध भी अविरोधके अनुभवानुसार निर्णीत होता है। विवेक वा विचार-जनित यथार्थ ज्ञान होने पर वह अज्ञान-विशिष्ट होता है, इसलिए विवेकजनित ज्ञान अज्ञानका विरोधी है।

रज्जु-गोचर अज्ञान रज्जुस्वरूपको आवृत कर उसमें सर्पका उद्भावन करता है। रज्जु-तत्त्वका साक्षात्कार होनेसे रज्जु-गोचर अज्ञान और उसका कार्य सर्प वाधित होता है। रज्जु-तत्त्वके साक्षात्कारके पहले रज्जु-गोचर अज्ञान और उसका कार्य सर्प वाधित तो नहीं मालूम पड़ता, किन्तु वास्तवमें उस समयमें भी वह वाधित रहता है। उस समय भी रज्जु सर्पका वास्तविक अस्तित्व नहीं है। इसी प्रकार ब्रह्मतत्त्व साक्षात्कारके वाद अज्ञान और उसका कार्य वाधित होता है। ब्रह्मतत्त्व साक्षातकारके पहले अज्ञान और उसका कार्य वाधित प्रतीयमान न होने पर भी उस समय वह वाधित ही रहता है। इसलिए श्रुतकी आज्ञा है, कि ब्रह्म नित्यमुक्त है। उसका वन्धन वास्तविक नहीं है। सुतरां मुक्तिलाभ भी वास्तविक नहीं है। अतएव शास्त्र-दृष्टिसे अविद्या तुच्छ है, अर्थात् आकाश-कुसुमके

समान अलीक है। परंतु युक्ति-दृष्टिसे अनिर्वाच्या अविद्या नहीं है, ऐसा नहीं कहा जा सकता, क्योंकि वह सर्वत्र ही स्पष्ट प्रतीयमान है। अविद्या है, ऐसा भी नहीं कह सकते; क्योंकि वह नित्य-बाधित है, उसका वास्तविक अस्तित्व नहीं रह सकता। लोक-दृष्टि-अविद्या और उसका कार्य दोनों ही वास्तविक हैं। कारण सभी उसका अनुभव करते हैं। सभी दार्शनिकोंने यह स्वीकार किया है, कि ब्रह्म देहादिके अतिरिक्त है। उसका संसार मिथ्याज्ञानमूलक है। तत्त्वज्ञान द्वारा मिथ्याज्ञान दूर होने पर ब्रह्मको मोक्ष प्राप्त होता है। (वेदान्तद०)

कुसुमाञ्जलिवृत्तिमें ब्रह्मका लक्षण इस प्रकार लिखा है :—

"सत्यमानन्दमद्वयममृतमेकरूपं वाङ्मनसोऽगोचरं सर्वगं सर्वातीतं चिदेकरसं देशकालापरिच्छिन्नमपादमपि शीघ्रगमपाणि च सर्वग्रहमचक्षुरपि सर्वं द्रष्टृ अश्रोत्रमपि सर्वश्रोतृ अचिन्त्यमपि सर्वज्ञं सर्वनियन्तृ सर्वशक्ति सर्वेषां सृष्टिस्थितिलयकर्तृ किमपि वस्तु ब्रह्मेति वेदा वदन्ति।"

सत्यस्वरूप, आनन्दमय, मनके अगोचर, सर्वग, सर्वातीत, चिदेकरस, देश और काल द्वारा अपरिच्छिन्न अपाद होने पर भी शीघ्रगामी, अपाणि होने पर भी सर्वग्राहक, अचक्षु हो कर भी सबोंका द्रष्टा, अकर्ण हो कर भी सर्वश्रोता, अचिन्त्य होने पर भी सर्वज्ञ, सबका नियन्ता, सर्वशक्तिमान् और समस्त सृष्टिके स्थिति एवं लयकर्त्ता, ऐसी जो कोई एक अनिर्वचनीय वस्तु है, वही ब्रह्म है। वेदने ही ब्रह्मका ऐसा लक्षण निर्दिष्ट किया है।

"शुद्धबुद्धस्वभाव इत्यौपनिषदाः उपनिषद्के मतसे शुद्ध बुद्ध स्वभाव ही ब्रह्म है। "आदिविद्वान् सिद्ध इति कापिलाः" कापिल लोगोंने आदि विद्वान् और सिद्ध पुरुषको ही ब्रह्म कहा है। पातञ्जलमें ब्रह्मका लक्षण इस प्रकार कहा गया है:—"क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टो निर्माणकायमधिष्ठाय सम्प्रदायप्रद्योतकोऽनुग्राहकश्चेति पातञ्जलाः।" क्लेश, कर्मविपाक और आशय द्वारा अपरामृष्ट और निर्माणकाय अवलम्बन करके जो सम्प्रदाय-प्रद्योतक और अनुग्राहक हो, वही ब्रह्म है।

"लोकवेदविरुद्धैरपि निर्लेपः स्वतन्त्रश्चेति महापाशुपताः।" लोक और वेदके विरुद्ध होने पर भी ब्रह्म स्वतन्त्र और निर्लेप ही हैं। यही महापाशुपतोंका मत है। "शिव इति शैवाः।" शैवोंके मतसे शिव ही ब्रह्म हैं। "पुरुषोत्तम इति वैष्णवाः।" वैष्णवोंके मतानुसार पुरुषोत्तम विष्णु ही ब्रह्म हैं। "पितामह इति पौराणिकाः" पौराणिकोंके मतसे पितामह ही ब्रह्म हैं। "यज्ञपुरुष इति याज्ञिकाः" याज्ञिकोंके अनुसार यज्ञ-पुरुष ही ब्रह्म हैं। "सर्वज्ञ इति सौगताः" सौगतोंके मतसे सर्वज्ञ ही ब्रह्म हैं। "निरावरण इति दिगम्बराः।" दिगम्बरगण निरावरणको ब्रह्म कहते हैं। "उपास्यत्वेन देशित इति मीमांसकाः।" मीमांसकोंका मत है, कि उपास्य-रूपमें जो निर्दिष्ट किये गये हैं, वे ही ब्रह्म हैं। "लोकव्यवहारसिद्ध इति चार्वाकाः।" चार्वाकोंका कहना है, कि लोक-व्यवहारमें जो सिद्ध हैं, वही ब्रह्म हैं। "यावदुक्तोपपन्न इति नैयायिकाः" नैयायिक मतसे जो युक्ति द्वारा उत्पन्न होता है वही ब्रह्म है। "विश्वकर्मेति शिल्पिनः।" शिल्पियोंका कहना है कि विश्वकर्मा ही ब्रह्म हैं।

कुसुमाञ्जलिवृत्तिमें विभिन्नवादियोंके मत उल्लिखित प्रकारसे प्रदर्शित किये गये हैं। पञ्चदशीमें महावाक्यविवेकके प्रकरणमें ब्रह्मका लक्षण लिखा है, जो इस प्रकार है :—

"येनेक्षते शृणोतीदं जिघ्रति व्याकरोति च।
स्वाद्वस्वादु विजानाति तत्प्रज्ञानमुदीरितम्॥
चतुर्मुखेन्द्रदेवेषु मनुष्याश्वगवादिषु।
चैतन्यमेकं ब्रह्मातः प्रज्ञानं ब्रह्म मय्यपि॥
परिपूर्णः परात्मास्मिन् देहे विद्याधिकारिणि।
बुद्धेः साक्षितया स्थित्वा स्फुरन्नहमितीर्यते॥
स्वतः पूर्णः परात्मात्र ब्रह्मशब्देन वर्णितः।
अस्मीत्यैक्यपरामर्शस्तेन ब्रह्म भवाम्यहम्॥
एकमेवाद्वितीयं सत् नामरूपविवर्जितम्।
सृष्टेः पुराधुनाप्यस्य तादृक्त्वं तदितीर्यते॥
श्रोतुर्देहेन्द्रियातीतं वस्त्वत्र त्वंपदेरितम्।
एकता ग्राह्यतेऽसीति तदैक्यमनुभूयताम्॥
स्वप्रकाशापरोक्षत्वमयमित्युक्तितो मतम्।

अहङ्कारादिदेहान्तात् प्रत्यगात्मेति गीयते ॥
दृश्यमानस्य सर्वस्य जगतस्तत्त्वमीर्यते ।
ब्रह्मशब्देन तद्ब्रह्म स्वप्रकाशात्मरूपकम् ॥"
(पञ्चदशीका महावाक्यवि० १-८)

जिस नित्य चैतन्यकी सहायतासे चक्षु द्वारा रूपादि दृश्य पदार्थ दृष्टिगत होते हैं, जिसके द्वारा वाक्यादि का श्रवण होता है, जिसकी सहायतासे गन्धका आघ्राण किया जाता है, जिसके साहाय्यसे कण्ठनाली आदि वागिन्द्रिय द्वारा वाक्य उच्चारित होते हैं, और जिससे स्वादु और अस्वादु आदि रसका परिज्ञान होता है, वह ज्योतिर्मय जीवचैतन्य ही प्रज्ञान है, और प्रज्ञान ही ब्रह्म हैं। इसलिए श्रुतिमें 'प्रज्ञान' ब्रह्म' ऐसा कहा गया है। सच्चिदानन्दमय सर्वव्यापी एक ब्रह्म ही ब्रह्मा और इन्द्र आदि देववृन्दमें; मनुष्य और गो, अश्व आदि जन्तुवर्गमें, तथा अन्यान्य सृष्ट-पदार्थोंमें अन्तर्यामी-रूपमें अवस्थान कर रहे हैं। इसलिए मुझमें भी वे अवस्थित हैं। अतएव दोनों चैतन्य एक ही हैं, अर्थात् जीवचैतन्य और ब्रह्मचैतन्य अभिन्न हैं। इसीलिए श्रुतिमें 'अहं ब्रह्मास्मि' इस प्रकार कहा गया है। पूर्ण ज्ञानस्वरूप ब्रह्म अपनी मायाशक्तिके वशीभूत हो कर मायामय संसारमें शमदमादि साधन-द्वारा ब्रह्मतत्त्व-साधनके उपाय-स्वरूप पञ्चभौतिक देहमें अवस्थानपूर्वक अन्तःकरणके साक्षिरूपमें प्रकट होते हैं। उन्हें देशकालादि द्वारा परिच्छिन्न नहीं किया जा सकता। वही पूर्णज्ञान-स्वरूप परमात्मा ही अहं शब्द-वाच्य हैं। यह 'अहं' ही ब्रह्म है। जो स्वतःसिद्ध सर्वव्यापी हैं पूर्व ब्रह्मरूपी परमात्मा हैं, वे ही ब्रह्म शब्दके प्रतिपाद्य हैं; अर्थात् 'ब्रह्म' शब्दके उच्चारण करनेसे ही उस सर्वव्यापी परब्रह्मका बोध होता है, और 'अस्मि' शब्दसे 'अहं' शब्द प्रतिपाद्यचैतन्य और ब्रह्मचैतन्य इन दोनोंका ऐक्य प्रतिपादित होता है। यदि 'अहं' शब्दवाच्य जीवचैतन्य और ब्रह्मचैतन्य इन दोनोंका ऐक्य प्रतिपादित हो गया तो जीवन्मुक्त पुरुष जो कहते हैं, कि 'मैं ही ब्रह्म हूं उसमें कोई दोष नहीं होता और वैसा व्यवहार भी होता है। इस प्रत्यक्षीभूत नामरूप-स्वरूप देदीप्यमान जगत्‌की उत्पत्तिके पहले केवलमात्र नामरूप विवर्जित अद्वितीय सच्चिदानन्द-स्वरूप सर्वव्यापी परब्रह्म विद्यमान थे और अब भी वे उसी रूपमें विराजमान हैं। इसीलिए उपनिषद्‌में 'तत्त्वमसि' रूपमें उनका उपदेश किया गया है। जो इस परिदृश्यमान जगत्‌के मूलाधार और एकमात्र कारण-स्वरूप हैं, वे सच्चिदानन्द परात्पर ब्रह्मचैतन्य ही ब्रह्मपदके प्रतिपाद्य हैं। वे स्वप्रकाश-स्वरूप हैं, अर्थात् वे स्वयं प्रकाशित न होने पर कोई भी उनका प्रकाश नहीं कर सकता। वे स्वयं ही प्रकाश-स्वरूप हैं। ब्रह्मोपनिषद्‌में लिखा है,—ब्रह्मके अवस्थानके चार स्थान हैं; नाभि, हृदय, कण्ठ और मूर्द्धा *।

इन चारों स्थानोंमें ब्रह्म प्रकट होते हैं। जागरित, स्वप्न, सुषुप्त और तुरीय ये ही ब्रह्मके चार पद हैं। जागरितमें ब्रह्मा, स्वप्नमें विष्णु, सुषुप्तमें रुद्र और तुरीयमें परमाक्षर हैं। उक्त चार प्रकारकी अवस्थाओं सहित ब्रह्म ही आदित्य हैं, विष्णु, ईश्वर और वे ही प्राण, जीव और ब्रह्मा हैं। इन जाग्रत आदि अवस्थाओंमें ब्रह्म प्रकाशरूपमें अवस्थान करते हैं।

ब्रह्मके मन नहीं है, न कर्ण हैं, न हाथ हैं और न पैर ही है। वे इन्द्रियादिसे रहित होते हुए भी स्वप्रकाश-स्वरूप हैं। उनके सामने लोक भी लोक नहीं है, देवता भी देवता नहीं हैं, वेद भी वेद नहीं हैं। यज्ञ, पिता, माता, पुत्रवधु, चण्डाल, अन्त्यजाति आदि कोई कुछ भी नहीं है। ब्रह्मके समीप सभी समान हैं। ब्रह्मके समक्ष कोई भी अपना प्रभाव नहीं दिखला सकता केवल ब्रह्म ही सर्वदा प्रकाशित रहते हैं।

"स्वयममनस्कमश्रोत्रमपाणिपादं ज्योतिर्वर्जितं न तत्र लोका न लोकाः, देवा न देवाः, वेदा न वेदाः, यज्ञा न यज्ञाः, माता न माता, पिता न पिता, स्नुषा न स्नुषा, चाण्डालो न चाण्डालः, पौल्कसो न पौल्कसः, श्रमणो न श्रमणः, पशवो न पशवः, तापसो न तापसः इत्येकमेव परं ब्रह्म विभाति ।" (ब्रह्मोपनि० १८)

* "अथास्य पुरुषस्य चत्वारि स्थानानि भवन्ति, नाभि हृदयं कण्ठं मूर्द्धेति ।" "तत्र चतुष्पादं ब्रह्म विभाति ।" जागरितं स्वप्नं सुषुप्तं तुरीयमिति । जागरिते ब्रह्मा, स्वप्ने विष्णुः सुषुप्ते रुद्रः तुरीये परमक्षरं, स आदित्यश्च विष्णुश्चेश्वरश्च स पुरुषः स प्राणः सजीवः सोऽग्निः सेश्वरश्च जाग्रत् तेषां मध्ये यत्परं ब्रह्म विभाति ।" (ब्रह्मोपनि० १५-१७)

हृदयाकाशमें ही ब्रह्म प्रकाशित होते हैं। वे चिन्मय, आकाश-वत् स्वच्छ है। ब्रह्म सर्वत्र विद्यमान हैं। यह जगत् ब्रह्ममें प्रतिष्ठित हैं। ब्रह्म-विज्ञान होनेसे सभी कुछ जाना जा सकता है।

"यल्लाभान्नापरो लाभः यत्सुखान्नापरं सुखम्।
यज्ज्ञानान्नापरं ज्ञानं तद्ब्रह्मेत्यवधारयेत्॥
यद् दृष्ट्वा नापरं दृश्यं यद्भूत्वा न पुनर्भवः।
यज्ज्ञात्वा नापरं ज्ञेयं तद्ब्रह्मेत्यवधारयेत्॥
तिर्यगूर्द्ध्वमधःपूर्णं सच्चिदानन्दमद्वयम्।
अनन्तं नित्यमेकं यत्तद् ब्रह्मेत्यवधारयेत्॥"

(आत्मबोध)

जिस लाभसे अधिक लाभ और नहीं है, जो सुख श्रेष्ठ सुख है, जिस ज्ञानसे अधिक ज्ञान और नहीं है, वही ब्रह्म है। जिसके देखनेसे और कोई भी दृश्य देखने-को बाकी नहीं रहता, जिसके होनेसे फिर जन्म नहीं होता, जिसके जाननेसे फिर कुछ भी जानना बाकी नहीं रहता, वही ब्रह्म हैं। जो पूर्ण हैं, सच्चिदानन्द हैं, अद्वय हैं नित्य और एक हैं, वे ही ब्रह्म हैं।

ब्रह्म सगुण और निर्गुणके भेदसे दो प्रकारके हैं। सच्चिदानन्दस्वरूप ब्रह्म ही निर्गुण हैं, जगत्-सृष्टि आदि करनेवाले ब्रह्म सगुण हैं।

"ब्रह्मैकं मूर्त्तिभेदैस्तु गुणभेदेन सम्मतम्।
तद् ब्रह्म द्विविधं वस्तु सगुणं निर्गुणं शिवं॥
मायाश्रितो यः सगुणो मायातीतश्च निर्गुणः।
स्वेच्छामयश्च भगवानिच्छया विकरोति च॥" इत्यादि।

(ब्रह्मवैवर्त्तपु० जन्मखं० ४२ अ०)

एक ब्रह्म गुण भेदसे दो प्रकार हैं, सगुण और निर्गुण मायाश्रित ब्रह्म सगुण और मायातीत ब्रह्म निर्गुण है। स्वेच्छामय भगवान् इच्छाशक्ति द्वारा इन सबोंकी सृष्टि करते हैं।

विष्णुपुराणमें ब्रह्म सम्बन्धमें इस प्रकार लिखा है—जो परात्पर और श्रेष्ठ हैं, आत्मसंस्थित और रूपवर्णादि-रहित हैं, क्षय और विनाश-परिणाम है, वृद्धि और जन्म-वर्जित हैं, जो सर्वत्र विद्यमान हैं, अक्षय और अव्यय हैं, वे ही ब्रह्म हैं। उनके चार रूप हैं, व्यक्त (महदादि), अव्यक्त (माया), पुरुष और काल। इनमें प्रथमरूप पुरुष, द्वितीय और तृतीय रूप व्यक्त और अव्यक्त, तथा चतुर्थ रूप काल है। विभागानुसार प्रधानादि-रूप सृष्टि स्थिति और प्रलयके उद्भव और प्रकाशके हेतु हैं।

प्रलयकालमें दिन, रात्रि, आकाश, भूमि, अन्धकार, आलोक आदि कुछ भी न था। उस समय केवल प्रधान और पुरुष मात्र थे। पश्चात् सृष्टिके समय ब्रह्म इच्छा-नुसार परिणामी और अपरिणामी प्रकृति और पुरुषमें प्रविष्ट हो कर उन्हें क्षोभित अर्थात् सृष्टि करनेमें उन्मुख करते हैं। परन्तु उनकी कोई क्रियावत्ता नहीं है। जैसे गन्धके निकटवर्ती होते ही मनमें चाञ्चल्य उत्पन्न होता है, उसी प्रकार ब्रह्मका यह क्षोभ भी है। पीछे पुनः काल-प्रभावसे प्रलय होता है। (विष्णुपु० ११२ अ०)

"ब्रह्मैवेदं जगत्सर्वं ब्रह्मणोऽन्यत् न विद्यते।
ब्रह्मान्यत् भाति चेन्मिथ्या यथा मरु मरीचिका॥"

(आत्मबोध)

यह समस्त जगत् ही ब्रह्म हैं, ब्रह्मके सिवा और सब मरु मरीचिकाकी तरह मिथ्या है। भागवतके एक श्लोकमें ही ब्रह्मके सम्पूर्ण लक्षण लिखे हैं।

"जन्माद्यस्य यतोऽन्वयादितरतश्चार्थेष्वभिज्ञः स्वराट्।
तेने ब्रह्म हृदा य आदिकवये मुह्यन्ति यत्सूरयः॥
तेजोवारिमृदां यथा विनिमयो यत्र त्रिसर्गो मृषा।
धाम्ना स्वेन सदा निरस्तकुहकं सत्यं परं धीमहि॥"

(भागवत १।१।१)

जिनसे इस परिदृश्यमान जगत्में जन्म, स्थिति और लय हो रहा है, जिनके सृष्ट वस्तुमात्रमें ही सद्रूपमें विद्य-मान रहनेसे ही उनकी सत्ता है, और आकाश-कुसुम आदि अवस्तुओंसे जिनका कोई सम्बन्ध न होनेसे ही उनकी असत्ता मानी जाती है, जो सर्वज्ञ-रूपमें स्वयं ही विराजमान हैं, जिनमें पण्डितगण भी विमोहित होते हैं ऐसे वेदोंको जिन्होंने आदिकवि ब्रह्माके हृदयमें मन द्वारा प्रकाशित किया था; और तेज, जल एवं कांच इन तीनोंके परस्पर व्यतिक्रमसे अर्थात् तेजमें जलका ज्ञान कांच आदिमें जलकी बुद्धि इत्यादि भ्रम अधिष्ठानकी सत्यतासे जैसे सत्य मालूम होते हैं, उसी प्रकार जिनकी सत्यताके हेतु सत्व, रजः और तम इन गुणत्रयकी सृष्टि

वास्तविक असत्य होने पर भी सत्यरूपमें प्रतिभासित होते हैं। अथवा तेजमें जलका भ्रम इत्यादि जैसे वस्तुतः मिथ्या है, उसी प्रकार जिनके अतिरिक्त सत्व, रज और तमः इन तीनों गुणोंकी सृष्टि अलीक है तथा अपने तेज के प्रभावसे जिनमें किसी प्रकार उपाधि-सम्बन्ध नहीं है, उस सत्य-स्वरूप परब्रह्मको नमस्कार है। 'ब्रह्म' सम्बन्धी अन्यान्य विवरण "वेदांत दर्शन" शब्दमें देखो।

ब्रह्मवैवर्त पुराणमें सगुण ब्रह्मके नौ प्रकार रूपका उल्लेख है,—

"योगिनो यं वेदन्त्येवं ज्योतीरूपं सनातनम्।
ज्योतिरभ्यंतरे नित्य-रूपं भक्ता वदन्ति यम्॥
वेदा वदन्ति सत्यं यं नित्यमाद्यं विचक्षणाः।
यं वदंति सुराः सर्वे परं स्वेच्छामयं प्रभुम्।
सिद्धेंद्रा मुनयः सर्वे सर्वरूपं वदंति यम्॥
यमनिर्वचनीयञ्च योगीन्द्रः शङ्करो वदेत्॥
स्वयं धाता च प्रवदेत् कारणानाञ्च कारणं।
शेषो वदेदनन्तं यं नवधारूपमीश्वरम्॥

(ब्रह्मवै०पु० श्रीकृष्णजन्मखंड, १२८ अ०)

(१) ज्योतीरूप सनातन, (२) अभ्यन्तरज्योति नित्यरूप, (३) सत्यस्वरूप, (४) नित्य और आदिपुरुष, (५) स्वेच्छामय प्रभु, (६) सर्वरूप, (७) अनिर्वचनीय, (८) कारणका कारण और (९) अनन्त। उल्लिखित नौ प्रकारसे ब्रह्मका नाम निर्देश हुआ करता है।

गरुड़ पुराणके ४४वें अध्यायमें सगुण और निर्गुण ब्रह्मका ध्यान लिखा हुआ है; बाहुल्यके भयसे यहां विस्तृत नहीं लिखा जा सका।

(पु०) ५ सृष्टिकर्त्ता देवता-विशेष "बृंहति प्रजायः।" जिन्होंने प्रजाकी सृष्टि की है, वे ही ब्रह्मा हैं। पर्याय— आत्मभू, सुरज्येष्ठ, परमेष्ठी, पितामह, हिरण्यगर्भ, लोकेश, स्वयंभु, चतुरानन, धाता, अब्जयोनि, द्रुहिण, विरिञ्चि, कमलासन, स्रष्टा, प्रजापति, वेधस्, विधाता, विश्वसृज्, विधि, (अमर) नाभिजन्म, अण्डज पूर्वनिधन कमलोद्भव, सदानन्द रजोमूर्त्ति, सत्यक, हंसवाहन, (किसी किसी अमरकोषमें ये पर्याय भी देखनेमें आते हैं) द्रुघण, विरिञ्चि, स्वयम्भू, पद्मयोनि, पद्मासन, विश्वसृज्, विधि, (भरत) देवदेव, पद्मगर्भ, गुणसागर, वेदगर्भ, बहुरेतस्, स्वभू, सन्ध्याराम, सुधावर्ण, कृपाद्वैत, खसर्पण, लोकनाथ, महावीर्य, सरोजी मञ्जुप्राण, नाभिजन्मन्, बहुरूप, जटाधर, सनत्शतधृति, कञ्जज, प्रभु, चिन्तामणि, पद्मपाणि, पुराणग, अष्टकर्ण, हंसरथ, सर्वकर्त्ता, चतुर्मुख (शब्दरत्न) क, (एकाक्षरकोष) आ, शतपत्रनिवास, स्वायम्भुव मनु पिता, (कविकल्प०) म, (प्रयावव्याख्या)

ब्रह्माकी उत्पत्तिका विवरण प्रायः सभी पुराणोंमें आलोचित हुआ है। अत्यन्त संक्षेपमें यहां थोड़ा-सा विवेचन किया जाता है। मनुस्मृतिमें लिखा है— जब कि यह परिदृश्यमान् जगत् एकमात्र अन्धकारावृत और अप्रत्यक्ष था, तब अव्यक्त स्वयम्भू ब्रह्मने अपने शरीरसे विविध प्रजा-सृष्टिकी इच्छा कर सबसे पहले ध्यानयोगसे जलकी सृष्टि की। पश्चात् उस जलमें बीज डाला, और उस बीजसे एक अण्ड उत्पन्न हुआ। उस अण्डसे स्वयं ब्रह्माने पितामहके रूपमें जन्मग्रहण किया। नर अर्थात् परमात्मासे उत्पन्न होनेसे जलका नाम नारा है, ब्रह्मरूपमें अवस्थित परमात्माका सर्वप्रथम अयन वा आश्रय होनेसे ब्रह्माको नारायण कहते हैं; तथा आदिकारण, अव्यक्त और नित्य पुरुषसे उत्पन्न होनेसे उन्हें ब्रह्मा कहा गया है। ब्रह्माने उस अण्डमें ब्राह्मानके संवत्सर काल वास करके अन्तमें उसे दो भागोंमें विभक्त कर दिया। उसके अर्द्धखंडमें स्वर्गादि लोक और अधोखण्डमें पृथिव्यादि, तथा मध्य भागमें आकाश, अष्ट दिशाएं और समुद्र निर्माण किया। पीछे ब्रह्माने इस जगत् और विविध प्रजाकी सृष्टि की।* सृष्टि देखो।

---

* सोऽभिध्याय शरीरात् स्वात्सिसृक्षुर्विविधाः प्रजाः।
अपएव ससर्जादौ तासु बीजमवासृजत्॥
तदंडमभवद्धैमं सहस्रांशुसमप्रभम्।
तस्मिन् यज्ञे स्वयं ब्रह्मा सर्वलोकपितामहः॥
आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः।
ता यदस्यायनं पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः॥
यत्तत् कारणमव्यक्तं नित्यं सदसदात्मकम्।
तद्विसृष्टः स पुरुषो लोके ब्रह्मेति कीर्त्यते॥

कालिकापुराणमें लिखा है—पूर्वमें जब कि सृष्टि नहीं थी, तब सब-कुछ सुप्तको भांति तमोगुणके दुर्भेद्य आवरणसे आवृत, अलक्ष्य और अपरिज्ञात था। उस समय दिन रात, पृथिवी, ज्योति, आकाश, वायु और जल आदि कुछ भी नहीं थे, उस समय केवलमात्र सूक्ष्म, नित्य, अतीन्द्रिय, अव्यक्त, अद्वय, ज्ञानमय एक परम ब्रह्म ही थे और सर्वगत, सनातन, प्रकृति पुरुष तथा अखण्ड काल विद्यमान था। वे ही परम ब्रह्म ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर इस प्रकार तीन रूपमें विभक्त हुए हैं।

परमब्रह्मने सृष्टि करनेके अभिप्रायसे पहले प्रकृतिको विक्षोभित किया। प्रकृतिके विक्षुब्ध होने पर महत्तत्त्वसे त्रिविध अहङ्कार और अहङ्कारसे पञ्च तन्मात्रकी उत्पत्ति हुई। पश्चात् शब्दतन्मात्रसे मूर्त्तिहीन अनन्त आकाश और रसतन्मात्रसे जलकी सृष्टि कर ब्रह्माने अपने मायाबलसे उस जलराशिको धारण किया। उसके बाद उन्होंने गुणत्रय-स्वरूपमें अवस्थित प्रकृतिको सृष्टिके लिए विक्षोभित किया। फिर प्रकृतिने उस कारण-जलमें त्रिगुणमय जगद्बीज स्थापित किया। वही बीज क्रमशः वृद्धिको प्राप्त होता हुआ सुविशाल सुवर्णमय अण्डाकारमें परिणत हुआ और इस तरह जलराशि भी उसीमें लीन हो गई। स्वयं ब्रह्माने ब्रह्मस्वरूपमें उस अण्डमें एक दैववर्ष वास करके उसका भेदन किया। अनन्तर उसमें जरायु-रूप सुमेरु और अन्यान्य पर्वतोंके अभ्यन्तरस्थ जलराशिसे सप्तसमुद्र तथा त्रिगुणमयी पृथिवी उत्पन्न हुई। फिर ब्रह्माने प्रकृतिके इच्छानुसार अपने शरीरको तीन भागोंमें विभक्त किया। उसी अखण्ड शरीरका ऊर्द्ध्वभाग चतुर्मुख, चतुर्भुज, कमल-केशरसन्निभ आरक्तवर्ण विरिञ्चिशरीरमें परिणत हुआ। उनके मध्यभागमें विष्णु और अधोभागमें शिवरूप हैं, अर्थात् एकाधारमें ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वररूप त्रिशक्ति का उदय हुआ। ब्रह्माके ऊपर सृष्टि-शक्ति निहित होनेसे वे ही स्रष्टा हुए। कालिकापुराण अ० १२।१४ देखो।

श्रीमद्भागवतमें लिखा है,—

> "जगृहे पौरुषं रूपं भगवान् महदादिभिः।
> सम्भूतं षोड़शकलमादौ लोकसिसृक्षया॥
> यस्याम्भसि शयानस्य योगनिद्रां वितन्वतः।
> नाभिह्रदाम्बुजादासीद्ब्रह्मा विश्वसृजाम्पतिः॥" इत्यादि।
> (भाग० १।३।१-२)

भगवान् विष्णुने सृष्टि करनेकी मनशासे प्रथमतः महत्तत्त्व, अहङ्कारतत्त्व और पञ्चतन्मात्र द्वारा षोड़श-कला-युक्त पौरुषरूप अर्थात् ग्यारह इन्द्रिय और पञ्चमहाभूत इन सोलह अंशोंसे विशिष्ट विराट् मूर्त्ति धारण की थी। पहले योगनिद्रा विस्तार-पूर्वक एकार्णवमें शयन करने पर उनके नाभि-स्वरूप ह्रदस्थ अम्बुजसे विश्वसृङ्गणके पति ब्रह्मा उत्पन्न हुए। उन्हींको उस विराट् मूर्त्तिके अवयव-संस्थानों द्वारा भूलोकादि समस्त कल्पित हुए हैं।

> "सत्त्वं रजस्तमइति प्रकृतेर्गुणास्तै-
> र्युक्तः परः पुरुष एक इहास्य धत्ते।
> स्थित्यादये हरिविरिञ्चिहरेतिसंज्ञाः।
> श्रेयांसि तत्र खलु सत्त्वतनोर्नृणां स्युः॥"
> (भाग० १।२।२३)

एक परम पुरुषने ही प्रकृतिके सत्त्व, रज और तम इन तीन गुणोंसे युक्त होकर विश्व संसारकी सृष्टि, स्थिति और लयके लिए ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वररूपमें विभिन्न संज्ञा पाई हैं। वे ब्रह्माके रूपमें जगत्की सृष्टि, विष्णुरूपमें पालन और रुद्रके रूपमें संहार करते हैं।

ब्रह्मा, विष्णु और महेश ये तीनों ही परब्रह्मके अंश हैं। तीनों एक हैं। प्रभेद केवल इतना ही है कि, जो सृष्टि करते हैं, वे ही ब्रह्माके नामसे पुकारे जाते हैं।

> "भृगुं पुलस्त्यं पुलहं क्रतुमङ्गिरसन्तथा।
> मरीचिं दक्षमत्रिञ्च वशिष्ठञ्चैव मानसम्।
> नव ब्राह्मणा इत्येते पुराणे निश्चयं गताः॥"
> (मार्कण्डेयपु०)

> तस्मिन्नण्डे स भगवानुषित्वा परिवत्सरम्।
> स्वयमेवात्मनो ध्यानात्तदण्डमकरोद्द्विधा॥
> ताभ्यां सशकलाभ्याञ्च दिवं भूमिञ्च निर्म्ममे।
> मध्ये व्योम दिशश्चाष्टावपां स्थानञ्च शाश्वतम्॥"
> (मनु० १।८-१३)

भृगु, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, अङ्गिरा, मरीचि दक्ष, अत्रि और वशिष्ठ ये नौ ब्रह्माके मानस पुत्र हैं। ये भी ब्रह्मा कहलाते हैं।

मत्स्यपुराणके तृतीय अध्यायमें ब्रह्माके चतुर्मुख होनेका कारण इस प्रकार लिखा है,—ब्रह्माके शरीरसे एक कन्या उत्पन्न हुई। ब्रह्मा उस कन्याको देख कर कामसे पीड़ित हुए। पश्चात् वे उस कन्याकी ओर सतृष्ण दृष्टिसे देखते रहे और 'अति आश्चर्य रूप है' 'अति आश्चर्य रूप है' वार वार ऐसा कहने लगे. वह कन्या ब्रह्मके भावको ताड़ गई और उनके चारों तरफ प्रदक्षिणा देने लगी। इस तरह चारों ओरसे कन्या दृष्टिगोचर हो, इसलिए ब्रह्माके चारों ओर चार मुख हो गये। (मत्स्यपु० ३अ०)

सृष्टिके प्रारम्भमें ब्रह्माके दश मानसपुत्र उत्पन्न हुए; पहले मरीचि, फिर अत्रि, अङ्गिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु प्रचेता, वशिष्ठ, भृगु और नारद।

ब्रह्माके शरीरसे दश प्रजापतियोंकी उत्पत्ति हुई। दक्षिण अंगुष्ठसे दक्षप्रजापति, स्तनान्तसे धर्म, हृदयसे कुसुमायुध, भ्रूमध्यसे क्रोध, अधरसे लोभ, बुद्धिसे मोह, अहंकारसे मद, कण्ठसे प्रमोद और लोचनसे मृत्युका उद्भव हुआ था। दश प्रजापतियोंका विषय उन उन शब्दोंमें तथा प्रजापति शब्दमें देखो।

महाभारतमें शान्तिपर्वके १८२वें अध्यायमें ब्रह्माकी उत्पत्तिका विवरण लिखा है। लेख बढ़ जानेके भयसे यहां अधिक नहीं लिखे गये।

कल्पके प्रारम्भमें ब्रह्मा सृष्ट होते हैं और कल्पके क्षयमें उनका ध्वंस होता है। ब्रह्माकी पूजा आदिके विषयमें कालिकापुराणमें इस प्रकार लिखा है। ब्रह्माका मन्त्रोद्धार,—

"पतृतीयश्च वह्निश्च शेषस्वरसमन्वितः।
चन्द्रविन्दुसमायुक्तो ब्रह्ममन्त्रः प्रकीर्त्तितः॥" (कालिकापु०)

पवर्गके तृतीयवर्ण 'व' के नीचे रकार जोड़नेसे 'व्र' और इसमें औकार तथा चन्द्रविन्दु लगानेसे ब्रह्माका मन्त्र "व्रौँ" होता है। यही ब्रह्माका वीजमन्त्र है। इस मन्त्रके द्वारा ब्रह्माकी पूजा करनेसे अभिलषित वस्तुकी प्राप्ति होती है।

ब्रह्माका ध्यान इस प्रकार है—

"ब्रह्मा कमंडलुधरश्चतुर्वक्त्रश्चतुर्भुजः।
कदाचिद्रक्तकमले हंसारूढ़ः कदाचन॥
वर्णेन रक्तगौराङ्गः प्रांशुस्तुङ्गाङ्ग उन्नतः।
कमंडलुर्वामकरे स्रुवो हस्ते तु दक्षिणे॥
दक्षिणाधस्तथा माला वामाधश्च तथा स्रुवः।
आज्यस्थाली वामपार्श्वे वेदाः सर्वेऽग्रतः स्थिताः॥
सावित्रीवामपार्श्वस्था दक्षिणस्था सरस्वती।
सर्वे च ऋषयो ह्यग्रे कुर्यादेभिश्च चिन्तनम्॥"

(कालिकापु० ८२)

इस मंत्रसे ब्रह्माका ध्यान करना चाहिए। "पद्मासनाय विद्महे हंसारूढ़ाय धीमहि तन्नो ब्रह्मन् प्रचोदयात्" यह ब्रह्माकी गायत्री है। नेत्र-रञ्जनके अतिरिक्त सभी उपचार ब्रह्माको दिये जा सकते हैं। रक्तवर्ण कौषेय वस्त्र ब्रह्माको परम प्रीतिकर है। आज्य, खीर और तिलयुक्त घृत ये तीन ब्रह्माके प्रधान भोज्य पदार्थ हैं। ब्रह्माके पार्श्वमें विष्णु और शिवकी पूजा करनी चाहिए। ब्रह्माके करस्थित स्रुवादि, सरस्वती, सावित्री, हंस और पद्म इनकी भी पूजा करना विधेय है। इनका अर्घ दुग्ध द्वारा और प्रणाम दण्डवत् हो कर करना चाहिए।

(कालिकापु० ८२ अ०)

गृहदाहादि होनेसे ब्रह्माकी पूजा की जाती है।

६ ऋत्विक-भेद, एक प्रकारके ऋत्विक। होम करते समय ब्रह्माकी स्थापना करनी चाहिए। वेद-विद् ब्राह्मणके अभावमें कुशपत्र द्वारा ब्रह्मा बना कर उसमें स्थापना की जाती है।

"ऊर्द्ध्वकेशो भवेत् ब्रह्मा अधः केशस्तु विष्टरः।"

(उद्वाहतत्त्व)

कुशमय ब्रह्माको यथानियम बना कर उसका अग्रभाग ऊंचा कर देना चाहिए। जिनके अग्रभाग समान हों, ऐसे ५० कुशपत्रोंसे ब्रह्माका निर्माण करना उचित है। अग्निसे पूर्वकी ओर प्रागग्र कुशा विछा कर उसके ऊपर ब्रह्माका स्थापन किया जाता है। भवदेवमें इसकी प्रणाली विस्तृतरूपसे लिखी है।

७ विष्कुम्भ आदि सत्ताईस योगोंमेंसे पचीसवां योग। इस योगमें सभी प्रकारके शुभ कर्मादि किये जा

सकते हैं। इस योगमें यदि बालकका जन्म हो, तो वह नाना शास्त्रोंमें पण्डित, धर्मज्ञ, चारुकीर्त्ति, शमदमगुणान्वित और कार्यकुशल होता है।

"नानाशास्त्राभ्याससम्नीतकालो, वर्याचारैः संयुतश्चारुकीर्त्तितः।
शान्तो दान्तो जायते चारुकर्मा सुतौ यस्य ब्रह्मयोग प्रयोगः।"
(कोष्ठीप्रदीप)

ब्रह्मकन्यका (सं० स्त्री०) ब्रह्मणः कन्याका सुता। १ सरस्वती। २ भारंगी नामकी बूटी जो दवाके काममें आती है, ब्राह्मी बूटि।

ब्रह्मकर (सं० पु०) वह धन जो ब्राह्मण या गुरु पुरोहितको दिया जाय।

ब्रह्मकर्म (सं० क्ली०) ब्रह्म विहितं कर्म। १ वेदविहित कर्म। २ ईश्वरार्पित कर्मफल। ३ ब्राह्मणका कर्म।

ब्रह्मकर्मप्रकाशक (सं० पु०) गोपालका नामान्तर, श्रीकृष्ण।

ब्रह्मकर्मसमाधि (सं० पु०) ब्रह्मण्येव कर्मात्मके समाधिश्चित्तै आग्रं यस्य वा ब्रह्मणि कर्मणां समाधिः। सब कर्मों के कर्त्ता यज्ञजातका ब्रह्मरूपमें चिन्तन।

"ब्रह्मार्पणं ब्रह्महविर्ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणा हुतम्।
ब्रह्मैव तेन गन्तव्यं ब्रह्म कर्म समाधिना॥" (गीता ४।२४)

जिनके ज्ञानका विकाश होता है, वे ब्रह्म व्यतीत और कुछ भी नहीं देखने पाते। उनके निकट यह जगत् एक ब्रह्ममय समझा जाता है। जिस प्रक्रिया द्वारा होम करना होता है, उसे वे देख नहीं सकते, केवल वे ब्रह्मसत्ताका ही अनुभव करते हैं। ब्रह्म और आत्माके एकत्वदर्शी योगिगण ब्रह्माग्निमें ही आपको आहुति देते हैं, अर्थात् परब्रह्ममें समाधि करके जीवात्माका लय करते हैं।

ब्रह्मकला (सं० स्त्री०) दाक्षायणी। ये मानवमात्रके हृदयमें विद्यमान हैं, इस कारण उनका यह नाम पड़ा है।

ब्रह्मकल्प (सं० त्रि०) १ ब्रह्मसदृश। २ ब्रह्मका स्थितिकाल, उतना समय जितनेमें एक ब्रह्मा रहते हैं।

ब्रह्मकाण्ड (सं० पु०) वेदका एक भाग। इसमें ब्रह्मकी मीमांसा की गई है और यह कर्मकाण्डसे भिन्न है।

ब्रह्मकाय (सं० पु०) देवताविशेष।

ब्रह्मकायिक (सं० त्रि०) ब्रह्मकाय नामक देव सम्बन्धीय।

ब्रह्मकार (सं० त्रि०) अन्नकर्त्ता।

ब्रह्मकाष्ठ (सं० क्ली०) तूलकाष्ठ, शहतूत।

ब्रह्मकिल्विष (सं० क्ली०) वह पाप जो ब्राह्मणके विरुद्ध कारीको लगता है।

ब्रह्मकुण्ड (सं० क्ली०) ब्रह्मणा निर्मितं कुण्डं सरोवरम्। ब्रह्मकर्तृक निर्मित कामरूपस्थ सरोवर। कालिका पुराणमें लिखा है, कि पाण्डुनाथके उत्तर ब्रह्मकुण्ड नामका एक सरोवर है। वह सरोवर ब्रह्माने स्वर्गवासियोंके स्नानके लिये बनाया है। इसकी लम्बाई सौ व्याम और चौड़ाई उसका आधा है। यह सर्वपापहर, पवित्र और देवलोकसे आगत है। इस सरोवरमें निम्नोक्त मन्त्रका पाठ करके स्नान करना होता है—

"कमण्डलुसमुद्भूत ब्रह्मकुण्डामृतस्रव।
हर मे सर्व पापानि पुण्यं स्वर्गञ्च साधय॥"

इस मन्त्रसे स्नान कर ब्रह्मकूट पर्वत पर चढ़ने और उमापतिकी पूजा करनेसे मुक्तिलाभ होता है।
(कालिकापु० ८१ अ०)

ब्रह्मकुशा (सं० स्त्री०) अजमोदा।

ब्रह्मकूट (सं० पु०) ब्रह्मा कूटे शिखरे यस्य। पर्वतविशेष।

"ब्रह्मकूटं जले स्नात्वा पूजयित्वा उमापतिं।
ब्रह्मकूटं समारुह्य मुक्तिमेवाप्नुयान्नरः॥"
(कालिकापु० ८१ अ०)

ब्रह्मकूर्च (सं० क्ली०) ब्रह्मणो ब्राह्मणत्वस्य कूर्चमिव। १ व्रतविशेष। रजस्वलाके स्पर्श या इसी प्रकारकी और अशुद्धि दूर करनेके लिये यह व्रत किया जाता है। इसमें एक दिन निराहार रह कर दूसरे दिन पञ्चगव्य पिया जाता है।

'अहोरात्रोषिता भूत्वा पौर्णमास्यां विशेषतः।
पञ्चगव्यं पिवेत् प्रातर्ब्रह्मकूर्चविधिः स्मृतः॥'
(प्रायश्चित्ततत्त्व)

ब्रह्मपुराणमें लिखा है,—चतुर्दशी, अमावस्या या पूर्णिमा तिथिमें पञ्चगव्य या हविष्यान्न भोजन करनेसे यह व्रत होता है। पौर्णमासीमें यह व्रत करनेसे समस्त पाप दूर होते हैं। जो प्रति मास दो बार करके यह व्रत करते हैं, वे उत्तम गति प्राप्त करते हैं। इसे पञ्चगव्य पानरूपव्रत भी कहते हैं। २ कुशोदक सहित पञ्चगव्य।

"पञ्चगव्येन देवेशं यः स्नापयति भक्तितः ।
ब्रह्मकूर्चविधानेन विष्णुलोके महीयते ॥"
"ब्रह्मकूर्च विधानेन कुशोदकयुक्तेन ।" (देवप्रतिष्ठातत्त्व)

ब्रह्मकृत (सं० त्रि०) ब्रह्म तपःकरोतीति कृ-क्विप् । १ तापस, तपस्याकारी । २ स्तोत्रकारी, जो कायमनोवाक्यसे पूजा और भजना करते हैं । (पु० ३ विष्णु । ४ शिव । ५ इन्द्र ।

ब्रह्मकृत (सं० त्रि०) ब्रह्मणा कृतः । ब्रह्मा द्वारा किया हुआ ।

ब्रह्मकृति (सं० स्त्री०) क्रियमाण ब्रह्मस्तोत्र ।

ब्रह्मकोश (सं० पु०) ब्रह्माका रत्नभण्डार, ब्रह्मतत्त्वाश्रित पवित्र शब्द वा ग्रन्थ ।

ब्रह्मकोशी (सं० स्त्री०) ब्रह्मणः कोशीव । अजमोदा ।

ब्रह्मक्षत्र—१ ब्राह्मण और क्षत्रियसे उत्पन्न एक जाति । २ ब्रह्मतेजा क्षत्रिय ।

"ब्रह्मक्षत्रस्य यो योनिर्वंशो राजर्षिसत्कृतः ।"
(वि०पु० ४।२१।४)

श्रीधरस्वामीने तट्टीकामें इस क्षत्रिय जातिके सम्बन्धमें इस प्रकार व्यवस्था की है,—"ब्रह्मणः ब्राह्मणस्य क्षत्रस्य क्षत्रियस्य च योनिः कारणं क्षत्रियैरेव कैश्चित्तपाविशेषात् ब्राह्मण्यं लब्धमिति ।" दाक्षिणात्यमें ये ब्रह्मक्षत्रगण आज भी कायस्थोंके आचार व्यवहारका पालन करते और कायस्थ कहलाते हैं । कुलीन देखो ।

३ ब्रह्मज्ञान और क्षत्रवीर्यशाली । प्रजापति दक्ष ब्रह्मतेज और क्षत्रिय वीर्यसे पूर्ण हो ब्रह्माधिष्ठित प्रदेश तपस्याके लिये गये थे ।

"दक्षो दत्त्वाऽथ ताः कन्याः ब्रह्मक्षत्रं प्रपद्य च ।
ब्रह्मणाऽध्युषितं पुण्यं समाहितमना मुनिः ॥"
(हरिवंश ११२)

ब्रह्मक्षेत्र (सं० क्ली०) १ ब्रह्माका अधिष्ठानस्थान मानवदेह ।

"ब्रह्मणा स्तोत्रसंसिद्धा जनित्रे प्रथमे पदे ।
ब्राह्मणाऽध्युषितवाञ्च ब्रह्मक्षेत्रमिहोच्यते ॥"
(हरिवंश)

२ वेदमन्त्रपारग ब्राह्मण-अधिवासित पुण्यस्थान ।

ब्रह्मगति (सं० स्त्री०) मुक्ति, नजात ।

ब्रह्मगन्ध (सं० पु०) ब्रह्मका विकाश वा ज्ञानरूप सौगन्ध ।

ब्रह्मगया—गयातीर्थ । गया देखो ।

ब्रह्मगर्भ (सं० पु०) १ एक स्मृतिशास्त्रके प्रणेता । (स्त्री०) ब्रह्मेव गर्भो यस्याः । २ आदित्यभक्ता, हुरहुर । ३ अजगन्धा, अजमोदा ।

ब्रह्मगवी (सं० स्त्री०) ब्राह्मणकी अधिकृत गाभी ।

ब्रह्मगांठ (हिं० स्त्री०) जनेऊकी गांठ ।

ब्रह्मगायत्री (सं० स्त्री०) गायत्री मंत्रविशेष ।

ब्रह्मगार्ग्य (सं० पु०) ऋषिभेद ।

ब्रह्मगिरि (सं० पु०) ब्रह्मणा गिरिः पर्वतः । ब्रह्मशैल । यह पर्वत नीलकूट नामक कामाख्यानिलयके पूर्वमें अवस्थित है ।

ब्रह्मगिरि—मन्द्राज प्रेसिडेन्सीके मलवार जिलान्तर्गत एक गिरिश्रेणी । समुद्रपृष्ठसे इसकी ऊंचाई प्रायः ४५०० फुट है । दावसीवेत्ता नामक इसका सर्वोच्च शिखर ५२७६ फुट ऊंचा है । यह अक्षा० ११° ५६' उ० तथा देशा० ७६° २' पू०के मध्य अवस्थित है । इसके चारों तरफ जंगल है ।

ब्रह्मगीता (सं० स्त्री०) ब्रह्मणः गीता ६-तत् । १ महाभारतके अनुशासन पर्वमें ब्रह्मकर्तृक कथित अनुशासन रूप गाथा । (भारत अनुशासनप० ३५ अ०) २ शिवपुराणके अन्तर्गत ज्ञानखण्डके ६से ९ अध्याय पर्यन्त, वह विभाग जिसमें वेदान्त और योगशास्त्रकी अवतारणा हुई है ।

ब्रह्मगीतिका (सं० स्त्री०) ब्रह्माकी स्तुति वा गीत ।

ब्रह्मगुप्त (सं० पु०) १ विद्याधर-भीम पत्नीके गर्भ और ब्रह्माके औरससे उत्पन्न एक पुत्रका नाम । २ एक ज्योतिर्विद् । इनका जन्म ५९८ ई०में हुआ था । इनका बनाया हुआ ब्रह्मसिद्धान्त आज भी मिलता है । ३ भक्त सम्प्रदायके एक गुरु ।

ब्रह्मगुप्तीय (सं० पु०) ब्रह्मगुप्तवंशोद्भव राजपुत्र ।

ब्रह्मगोल (सं० पु०) भूमण्डल, पृथ्वी ।

ब्रह्मगौरव (सं० क्ली०) ब्रह्ममहिमसूचक अस्त्रादि ।

ब्रह्मग्रन्थि (सं० पु०) यज्ञोपवीत या जनेऊकी मुख्य गांठ ।

ब्रह्मग्रह (सं० पु०) ब्रह्मराक्षस ।

ब्रह्मग्राहिन् (सं० त्रि०) पवित्र परम पदार्थ वा ब्रह्मार्थलाभके उपयुक्त।

ब्रह्मघातक (सं० पु०) ब्राह्मणं विप्रं हन्ति हन-ण्वुल्। १ ब्रह्महत्याकारक। (त्रि०) २ व्यासोक्त परिभाषिक पापभेदयुक्त। द्वादशी तिथिमें पोईका साग खानेसे ब्रह्मघातक होता है, अर्थात् उसके समान पापभागी होता है।

ब्रह्मघातिन् (सं० त्रि०) ब्रह्म-हन्-णिनि। ब्राह्मणहत्याकारी, ब्राह्मणकी हत्या करनेवाला।

ब्रह्मघातिनी (सं० स्त्री०) १ ब्राह्मणको मारनेवाली। २ रजस्वला होनेके दूसरे दिन स्त्रीकी संज्ञा।

ब्रह्मघोष (सं० पु०) १ वेदध्वनि। २ वेदपाठ।

ब्रह्मघ्न (सं० त्रि०) ब्रह्माणं ब्राह्मणं हन्ति हन-क। १ ब्रह्महत्याकारक, ब्राह्मणकी हत्या करनेवाला। (स्त्री०) २ ब्रह्मघातिनी; ब्राह्मणको मारनेवाली। ३ गृहकन्या, घीकुवांर।

ब्रह्मचक्र (सं० क्ली० ब्रह्मनिर्मितं चक्रं। कार्यकारणात्मक संसाररूप चक्र। जीवगण इस संसारचक्रसे सर्वदा पीसे जाते हैं, इसीसे इसको ब्रह्मचक्र कहते हैं।

ब्रह्मचर्य (सं० क्ली०) ब्रह्मणे वेदार्थं चर्यं आचरणीयं। १ आश्रम-विशेष, एक आश्रम। ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास ये ही चार आश्रम हैं। आश्रम धर्मोंमें ब्रह्मचर्याश्रम ही श्रेष्ठ है। २ अष्टाङ्गमैथुन निवृत्ति, मैथुनसे बचनेकी साधना।

"स्मरणं कीर्त्तनं केलिः प्रेक्षणं गुह्यभाषणम्।
संकल्पोऽध्यवसायश्च क्रियानिर्वृत्तिरेव च।
एतन्मैथुनमष्टाङ्गं प्रवदन्ति मनीषिणः॥"
(भारविटीका मल्लि० १०)

स्मरण, कीर्त्तन, केलि, प्रेक्षण, गुह्यभाषण, संकल्प, अध्यवसाय और क्रियानिवृत्ति ये आठ प्रकार मैथुन हैं। यह अष्टाङ्ग निवृत्ति ही ब्रह्मचर्य है। यह स्त्री और पुरुष दोनोंके लिए ही साधरणतः जानने योग्य है।

"मृते भर्त्तरि साध्वी स्त्री ब्रह्मचर्ये व्यस्थिता।
स्वर्गं गच्छत्यपुत्रापि यथा ते ब्रह्मचारिणः॥" (मनु ५।१३०)
ब्रह्मचर्ये व्यवस्थिता अकृतपुरुषान्तरामैथुना' (कुल्लुक)

३ यमभेद। पातञ्जलदर्शनमें लिखा है—अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रहका नाम यम है। पहले अहिंसा, उसके बाद सत्य इत्यादि रूपसे ब्रह्मचर्यकी प्रतिष्ठा होती है। पातञ्जल भाष्यमें लिखा है,—"ब्रह्मचर्यमुपस्थनियमः, वीर्यधारणं वा।" पातञ्जलदर्शनके भाष्यकारका मत इस प्रकार है:—यम नामक योगाङ्गका साधन करना हो तो पहले अहिंसानुष्ठान, उसके बाद सत्य और अचौर्य, पश्चात् ब्रह्मचर्यका अनुष्ठान करना चाहिए। ब्रह्मचर्य शब्दका मूल अर्थ शुक्र-धारण है। शरीरमें यदि शुक्र धातु प्रतिष्ठित हो, विकृत, स्खलित वा विचलित न हुआ हो, अटल और अचल हो, तो समस्त बुद्धि-इन्द्रिय और मनकी शक्तिवृद्धि होती है। चित्तकी प्रकाश-शक्ति बढ़ जाती है, राग-द्वेषादि अन्तर्हित और कामक्रोधादि क्षीण हो जाते हैं। अतएव शरीरस्थित शुक्रधातुको अविकृत, अस्खलित और अविचलित रखनेके लिए काम-भावसे स्त्रियोंके अङ्ग प्रत्यङ्गादिके दर्शन और स्पर्शनका परित्याग कर देना चाहिए। क्रीड़ा, हास्य और परिहास, उनके रूप लावण्यकी चिन्ता आदि भी वर्जनीय है। आलिङ्गन और रेतःसेक निषिद्ध है। कुछ दिन इस प्रकार नियमाचारी रहनेसे ब्रह्मचर्य दृढ़ होता है। उस समग्र आत्मामें और एक प्रकारकी अद्भुत शक्ति (जिसका नाम ब्रह्मतेज है)-का प्रादुर्भाव होता है। तब उसकी मुखज्योतिः अपूर्व और मानसिक तेज अप्रतिहत हो जाता है।

"ब्रह्मचर्य प्रतिष्ठायां वीर्यलाभः" (पात०सू० ३८३)

ब्रह्मचर्यकी प्रतिष्ठा अर्थात् वीर्य-निरोध करनेसे सुसिद्ध होने पर वीर्य अर्थात् निरतिशय सामर्थ्य उत्पन्न होता है। वीय वा चरम धातुका कणामात्र भी यदि विकृत वा विचलित न हो, भ्रमसे भी यदि कामोदय न हो, स्वप्नमें भी यदि चित्त-चाञ्चल्य न घटे, तो चित्तमें ऐसी एक अद्भुत शक्तिका सञ्चार होता है, जिसके द्वारा चित्त सर्वत्र अव्याहत वा विनिविष्ट रहनेके योग्य बन जाता है। फिर उसे जो भी उपदेश दिया जायगा, वह सफल होगा। (पातञ्जलद०)

कलिमें ब्रह्मचर्य और वानप्रस्थ निषिद्ध है।

"ब्रह्मचर्याश्रमो नास्ति वानप्रस्थोऽपि न प्रिये।
गार्हस्थो भैक्षुकश्चैव आश्रमौ द्वौ कलौ युगे॥"
(महानिर्वाणतन्त्र)

४ जैनमतानुसार पांच व्रतोंमेंसे एक व्रत। इसके दो भेद हैं—(१) एकदेश ब्रह्मचर्याणुव्रत और (२) सर्वदेश ब्रह्मचयमहाव्रत। इस व्रतकी स्थिरताके लिए जैनागममें पांच पांच भावनाएं कही गई हैं।

इस व्रतकी रक्षार्थ स्त्रियोंमें प्रीति उत्पन्न करनेवाली कथाओंके सुननेका त्याग, उनके मनोहर अङ्गोंको अनुरागसे देखनेका त्याग, पूव समयमें भोगे हुए स्त्री-सम्भोगके स्मरण करनेका त्याग, कामोद्दीपक, पुष्टिकर और इन्द्रियोंको उत्तेजित करनेवाले रसोंका त्याग और शरीरको वहु शृङ्गारादिसे मोहक बनानेका त्याग; ये पांच ब्रह्मचर्यव्रतकी भावनाएं हैं। गृहस्थ-गण एकदेश ब्रह्मचर्यव्रतका पालन करते हैं, अर्थात् आचार-सहित गृहस्थ स्वदारमें सन्तोष रहते हैं और आचार-रहित श्रावक मैथुनादिका परित्याग करते हैं। सर्वदेश अर्थात् पूर्ण ब्रह्मचर्य मुनिगण पालन करते हैं, जो महाव्रतमें गणनीय है। जैनागममें इस व्रतको दूषित करनेवाले पांच अतीचार भी माने गये हैं। यथा—

"परविवाहकरणोत्वरिकापरिगृहीतापरिगृहीतागमनानङ्गक्रीड़ा-कामतीव्राभिनिवेशाः ॥" (मोक्षशास्त्र ७।२८)

दूसरेके पुत्र-पुत्रियोंका विवाह कराना, दूसरेकी व्याही व्यभिचारिणी स्त्रीके यहां आना जाना वा वचना-लाप करना, वेश्यादि व्यभिचारिणी स्त्रियोंके साथ लेन-देन आदि व्यवहार रखना, कामसेवनके अङ्गोंको छोड़ कर अन्य अनङ्गों द्वारा काम क्रीड़ा करना और अपनी स्त्रीमें कामसेवनकी अत्यन्तवासना रखना; ये पांच ब्रह्मचर्याणुव्रतके अतीचार हैं। गृहस्थ ब्रह्मचारियोंको इससे वचते रहना चाहिए। महाव्रती मुनियोंका अखण्ड ब्रह्मचर्य होता है; वहां तो केवल आत्मामें लीन होना ही ब्रह्मचर्य है।

ब्रह्मचर्यप्रतिमा—जैनमतानुसार श्रावक अर्थात् जैनगृहस्थों-की एकादश श्रेणियोंमेंसे सप्तम श्रेणी। इस प्रतिमाको पालन करनेवाले ब्रह्मचारी, सप्तमप्रतिमाधारी वा वर्णी कहलाते हैं।

ब्रह्मचर्यमहाव्रत—जैनमतानुसार मुनिगण द्वारा पालनीय त्रयोदश प्रकार सम्यक् चरित्रमेंसे एक चरित्र और पंच विध महाव्रतोंमेंसे एक व्रत।

'जैनधर्म' शब्दमें मुनिधर्म देखो।

ब्रह्मचर्यवत् (सं० त्रि०) ब्रह्मचर्यं विद्यतेऽस्य मतुप् मस्य व। ब्रह्मचर्ययुक्त, ब्रह्मचारी।

ब्रह्मचर्याणुव्रत—जैनमतानुसार पांच अनुव्रतोंमेंसे चतुर्थ अणुव्रत। ब्रह्मचर्य देखो।

ब्रह्मचारणी (सं० स्त्री०) ब्रह्मणा वेदेन चारयति आचर-तीति ब्रह्म-चर-स्वार्थे-णिच्, कर्त्तरि-ल्यु ङीप्। मार्गी।

ब्रह्मचारी (सं० पु०) ब्रह्म-ज्ञानं तपो वा आचरतीति अर्जयत्यवश्यं ब्रह्म-चर-आवश्यके-णिनि। १ प्रथमाश्रमी, ब्रह्मचर्याश्रमी, उपनयनके वाद नियम-पूर्वक साङ्गवेदा-ध्ययनके लिए गुरुगृहमें अवस्थान करनेवाला ब्रह्मचारी। मनुसंहितामें ब्रह्मचर्याश्रम और ब्रह्मचारीके कर्त्तव्य इस प्रकार लिखे हैं—उपनयनके उपरान्त ही ब्रह्मचर्याश्रम विधेय है। उपनयन होते ही द्विजोंके प्रति त्रैविद्यादि अथवा मधु-मांस-वर्जनादि व्रतोंका आदेश और विधि-पूर्वक वेदग्रहणका भार अर्पित होता है। उपनयनके समय जिस ब्रह्मचारीके प्रति जो चर्म, जो सूत्र, जो मेखला, जो दण्ड और जो वसन विहित हैं, चान्द्राय-णादि व्रतके समय भी वे ही विधेय हैं। गुरुकुलमें वास करते समय ब्रह्मचारीको इन्द्रिय-संयमपूर्वक अपने अदृष्टकी वृद्धिके लिए निम्नलिखित नियमोंका पालन करना चाहिए। प्रतिदिन स्नान करके शुद्धतासे देव, ऋषि और पितृ-तर्पण, देवपूजा तथा सायं और प्रातः-कालमें सम्पूर्ण समिध द्वारा होम करना उचित है। ब्रह्मचारीके लिए मधु और मांस भोजन, गन्धद्रव्य सेवन, माल्यादि धारण, गुड़ प्रभृति रस ग्रहण और स्त्री-सम्भो-गादि निषिद्ध है। जो पदार्थ स्वभावतः मधुर किंतु कारण पा कर अम्ल हो जाते हैं, अर्थात् दधि इत्यादिका सेवन, प्राणियोंकी हिंसा, तैल द्वारा आपादमस्तक अभ्य-ञ्जन, कज्जलादि द्वारा चक्षु-रञ्जन, पादुका वा छत्र धारण, लोगोंके साथ वृथा कलह, देश-वार्त्तादिका अन्वेषण, मिथ्या भाषण, कुत्सित अभिप्रायसे स्त्रियोंके प्रति कटाक्ष वा उनका आलिङ्गन और दूसरेके प्रति अनिष्टाचरण इत्यादिसे ब्रह्मचारी निवृत्त रहा करते हैं। सर्वत्र एकाकी शयन करना चाहिए और कदापि हस्तव्यापारादि द्वारा रेतःपात न करना चाहिए। कामवश रेतःपात करनेसे आत्मव्रत विलकुल ही नष्ट हो जाता है और तो क्या,

यदि अकामतः ब्रह्मचारीका स्वप्नमें भी रेतःस्खलन हो जाय; तो उन्हें स्नानके बाद सूर्यकी अर्चना करनी चाहिए और 'पुनर्मां एतु इन्द्रियं' अर्थात् मेरा वीर्य पुनः लौट आवे, इत्यादि वेदमन्त्रका तीन बार जप करना कर्त्तव्य है। आचार्यको जिन वस्तुओंकी आवश्यकता हो, उन वस्तुओंका आहरण और प्रति दिन भिक्षान्न-संग्रह करना चाहिये। जो गृहस्थ वेदानुष्ठान-युक्त हैं, सन्तुष्टचित्तसे जो अपनी अपनी वृत्तिसे कालयापन करते हैं, ब्रह्मचारीको प्रतिदिन शुचितासे उन्हींके घरसे भिक्षा संग्रह करना चाहिए। गुरुके वंशमें, अपने ज्ञातिकुलमें अथवा मातुलादि बन्धु-कुलमें भिक्षा करना ब्रह्मचारीके लिए उचित नहीं है—हां, यदि भिक्षोचित गृहस्थ न मिले, तो पूर्व पूर्व कुल छोड़ कर बादके मातुलादि-कुलसे भिक्षा आरम्भ करना चाहिए। और पूर्वोक्त भिक्षोचित सभोंका यदि अभाव हो, तो संयतेन्द्रिय और भिक्षावाक्यवर्जन अर्थात् मौनी हो कर ग्राम भिक्षा अर्थात् चातुर्वर्णके निकट भिक्षा करनी चाहिए; परन्तु अभिशप्त और महापातकादि-ग्रस्त व्यक्तिके यहां कभी भी भिक्षा ग्रहण न करना चाहिए। ब्रह्मचारीको चाहिये, कि दूरसे समिधकाष्ठ आहरण करके अनावृत स्थानमें रखें और निरलस हो कर सायं एवं प्रातःकालमें समिधकाष्ठ द्वारा प्रज्वलित अग्निमें होम करें। ब्रह्मचारी यदि अनातुर अवस्थामें निरन्तर सप्तरात्रि भिक्षाचरण तथा सायं और प्रातःकालमें समिधकाष्ठ द्वारा होम न करें, तो उनको अवकीर्णी प्रायश्चित्त लेना पड़ता है। प्रतिदिन भिक्षाचरण करना ब्रह्मचारीका कर्त्तव्य है, किन्तु भिक्षान्न एक ही गृहस्थके यहांसे संग्रह करना उचित नहीं। भिक्षान्न द्वारा उपलब्ध ब्रह्मचारीकी उपजीविकाको ऋषियोंने उपवाससम पुण्यजनक बतलाया है।

ब्रह्मचारी देवोद्देशसे अनुष्ठित ब्राह्मणभोजनमें निमंत्रित हो कर इच्छानुसार मधुमांसादि वर्जित व्रतवत् अन्न और पितादिके उद्देशसे श्राद्धमें अभ्यर्थित हो कर आरण्यनीवारादि ऋषिवत् अन्न ग्रहण कर सकते हैं। इस प्रकारके भोजनसे ब्रह्मचारीको एकान्न सेवनका दोष वा भिक्षाव्रतमें हानि नहीं होती। मन्वादि ऋषियोंने ब्राह्मण और ब्रह्मचारीके प्रति इस प्रकार श्राद्धस्थलमें एकान्न भोजनका विधान किया है। क्षत्रिय और वैश्य ब्रह्मचारियोंके लिए भिक्षाचरण विहित हुआ है, परन्तु एकान्न सेवनकी विधि उनके लिए नहीं है। ब्रह्मचारी गुरु द्वारा आदिष्ट हों वा न हों उन्हें प्रति दिन वेदाध्ययन और गुरुके हितानुष्ठानमें यत्नवान् होना ही पड़ेगा। प्रति दिन शरीर, वाक्य, बुद्धि और मनको संयत करके कृताञ्जलि पुटसे वे गुरुके मुखकी ओर दृष्टि रख कर खड़े होंगे। ब्रह्मचारी सर्वदा गुरुके समक्ष उनसे हीनान्नभोजन और हीन वस्त्र परिधान करेंगे। गुरुसे पहले उठना और गुरुके पश्चात् शयन करना भी उनके कर्त्तव्यमें शामिल है। पड़े या बैठे हुए, भोजन करते हुए अथवा दूरसे खड़े हुए या दूसरी तरफ मुंह किये गुरुकी आज्ञा ग्रहण करना वा उनसे सम्भाषण करना उचित नहीं। गुरुके समक्ष शिष्यका आसन और शय्या सर्वदा अनुन्नत होना चाहिए। गुरुके पीछे भी, उपाध्याय-आचार्यादि पूजनीय वाक्य-विहीन गुरुनाम उच्चारण नहीं करना चाहिए। उपहास-बुद्धिसे भी गुरुके गमन और कथनादिका अनुकरण करना उचित नहीं है। ब्रह्मचारी किसी स्थानमें भी गुरुके साथ एकत्र न बैठें और गुरुकी सवर्णा स्त्रीकी गुरुकी तरह पूजा करें तथा असवर्णा स्त्रीका प्रत्युत्थान और अभिवादन द्वारा सम्मान करें। परन्तु वे गुरुपत्नीको तैलमर्दन, गात्रमर्दन; केश-संस्कार वा स्नानादि नहीं करा सकते। युवा ब्रह्मचारी तरुणी गुरुपत्नीको कभी भी पाद-ग्रहण द्वारा अभिवादन नहीं कर सकते। इस लोकमें मनुष्योंको दूषित करना ही स्त्रियोंका स्वभाव है। इस कारण पण्डित अर्थात् विवेकी पुरुषोंको स्त्रियोंसे सावधान रहना चाहिए। इन्द्रियां अतिशय बलवान हैं, इसलिए विद्वान् अविद्वान् सभीके लिए सावधानता आवश्यक है।

ब्रह्मचारीको सूर्योदय वा सूर्यास्तके समय कदापि सोते न रहना चाहिए। क्योंकि, यह उनके लिए सन्ध्योपासनाका समय है। ज्ञान-कृत हो वा अज्ञान-कृत, उन्हें उक्त समयमें सोते रहनेके कारण सारा दिन उपवास-प्रायश्चित्त करना चाहिए। यदि वे प्रायश्चित्त न करें, तो उन्हें महापातकका दोष लगेगा।

ब्रह्मचारीको इन सब नियमोंका पालन कर जीवनका चतुर्थ भाग गुरु-गृहमें बिताना चाहिए। ब्रह्मचर्याश्रम-के बाद उन्हें गुरु-गृहसे लौट कर दार-परिग्रह यानी विवाह करके गृही बनना चाहिए। (मनु० २ अ०)

सामान्य ब्रह्मचर्य द्विज मात्रको ही धारण करना चाहिए, अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य इन तीनों जातियोंको ही ब्रह्मचर्य अवलम्बन करना चाहिए। ब्रह्म-चारी अवस्थामें विशेष पीड़ादिके सिवा एक स्थानाहृत अन्न भोजन नहीं करना चाहिए। क्षत्रिय और वैश्य ब्रह्मचारीको श्राद्ध-भोजनमें अधिकार नहीं है। ब्रह्मचारी-को ही मधु, मांस, अञ्जन, गुरुके सिवा अन्य व्यक्तिका उच्छिष्ट भोजन, निष्ठुर वाक्य प्रयोग, स्त्री-संभोग, जीव-हिंसा, उदयास्त समयमें सूर्यदर्शन, अश्लील अर्थात् मिथ्यावाक्य वा जुगुप्सित वाक्य तथा परिवाद अर्थात् सत्य हो वा असत्य दूसरेका दोषोल्लेखन आदि त्याग देना चाहिए। ब्रह्मचारीको एक एक वेदके अध्ययनमें बारह वर्ष ब्रह्मचर्य पालन करना चाहिए; इसमें असमर्थ होनेसे पांच पांच वर्ष तो ब्रह्मचर्य धारण करना ही चाहिए।

नैष्ठिक ब्रह्मचारीको आचार्यके समक्ष, आचार्यके अभावमें उनके पुत्रके समीप, उनके अभावमें आचार्य-पत्नीके समक्ष और उनकी अनुपस्थितिमें अग्निहोत्रीय अग्निके समक्ष यावज्जीवन वास करना चाहिए। जिते-न्द्रिय ब्रह्मचारी उक्त विधिके अवलम्बन-पूर्वक क्रमसे देहत्याग करें, तो उन्हें मुक्ति प्राप्त होती है। इस संसार-में फिर उन्हें जठर-यन्त्रणा नहीं भोगनी पड़ती।

(याज्ञवल्क्यस० १ अ०)

ब्रह्मचर्य दो प्रकारका है—एक उपकुर्वाण और दूसरा नैष्ठिक। जो विधि-पूर्वक वेद अध्ययन करनेके बाद गृहस्थाश्रम अवलम्बन करते हैं, उन्हें उपकुर्वाण और जो मरणान्त पर्यन्त ब्रह्मचर्यसे रहते हैं; उन्हें नैष्ठिक ब्रह्मचारी कहते हैं। (कूर्मपु० २ अ०)

विष्णुपुराणमें लिखा है,—उपनयनके बाद ब्रह्मचर्य अवलम्बन पूर्वक गुरुगृहमें वेदाध्यन करना चाहिए।

"बालः कृतोपनयनो वेदाहरणतत्परः।
गुरुगेहे वसेद्भूप! ब्रह्मचारी समाहितः॥"

(विष्णुपु० ३।९।१)

२ गन्धर्व विशेष, एक गन्धर्व।

ब्रह्मचारिणी (सं० स्त्री०) ब्रह्मणि वेदे चरतीति ब्रह्म-चर णिनि, स्त्रियां ङीप्। १ दुर्गा, पार्वती। २ ब्रह्मचर्य धारिणी स्त्री। ३ वारुणी वृक्ष। ४ ब्राह्मीशाक। ५ सरस्वती। ६ ब्रह्मयष्टिका, वरङ्गी।

ब्रह्मचोदन (सं० त्रि०) यज्ञके प्रति ब्राह्मणोंका प्रेरक।

ब्रह्मज (सं० पु०) ब्रह्मणो जायते जन-ड। १ हिरण्यगर्भ। हिरण्यगर्भ सृष्टिके पहले ब्रह्मसे सृष्ट हुए। ब्रह्मने अपने शरीरसे विविध प्रजा-सृष्टिकी इच्छा करके पहले जलकी सृष्टि की। पीछे उसमें बीज डाला गया जिससे एक अण्ड निकला। उस अण्डसे सर्वलोकपितामह ब्रह्माकी उत्पत्ति हुई। अतएव ब्रह्मा ब्रह्मज हैं। २ ब्रह्मजात-मात्र, पञ्चभूतादि, जड़ जगत् प्रभृति।

"यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते" (श्रुति)

जिससे इन भूतोंकी सृष्टि हुई, वही ब्रह्मज है। ब्रह्म ही इस जगतके मूल हैं, उन्हींसे इस जगत्की सृष्टि, स्थित और लय हुआ करता है।

ब्रह्मजटा (सं० स्त्री०) ब्रह्मणो जटेव संहता। दमनक वृक्ष, दौनेका पौधा।

ब्रह्मजन्म (सं० क्ली०) ब्रह्मग्रहणार्थं जन्म। उपनयन संस्कार, उपनयन देनेसे ही ब्रह्मजन्म होता है।

"उत्पादकब्रह्मदात्रोर्गरीयान् ब्रह्मदः पिता।
ब्रह्मजन्म हि विप्रस्य प्रेत्य चेह च शाश्वतम्॥"

(मनु २।१४६)

ब्रह्मजाया (सं० स्त्री०) १ ब्राह्मणपत्नी। २ जुहु। ये ऋग्वेद-के १०।१०९ सूक्तके ऋषि थे।

ब्रह्मजार (सं० पु०) १ ब्राह्मणीका उपपति। २ इन्द्र।

ब्रह्मजिज्ञासा (सं० स्त्री०) ब्रह्मणः जिज्ञासा। १ ब्रह्मावगति-फलक विचार। २ शारीरक सूत्र। वेदान्त देखो।

ब्रह्मजीवी (सं० पु०) श्रौत आदि कर्म करा कर जीविका चलानेवाला।

ब्रह्मजुष्ट (सं० स्त्री०) ब्रह्मणः जुष्टः। स्तव वा मन्त्रसे प्रीत।

ब्रह्मजूत (सं० त्रि०) स्तोत्र द्वारा आकृष्ट।

ब्रह्मज्ञ (सं० पु०) ब्रह्म जानातीति ब्रह्म-ज्ञाक। १ श्रीगोपाल। २ विष्णु। ३ कार्त्तिकेय। (त्रि०) ४ ब्रह्मवेत्ता, ब्रह्मको जाननेवाला।

ब्रह्मज्ञान (सं० क्लो०) ब्रह्मणि ब्रह्मविषये यज्ज्ञानं। १ ब्रह्मविषयक ज्ञान, तत्त्वमसि आदि वाक्य जन्य प्रतिफलित-वृत्तारूढ़ ज्ञान। (वेदान्तलघुचन्द्रिका) २ मिथ्यावासना विरह-विशिष्ट आत्मभिन्न भिन्नज्ञान। (मुक्तिवाद) ३ क्लेशकर्मविपाकाशयनिवर्त्तक हिरण्यगर्भ विषयक ज्ञान। ४ प्रकृति-पुरुषके विवेक विषयक ज्ञान। (सांख्यद०) ५ आत्मज्ञान, स्वानुभूति, अपने आत्माका यथार्थ अनुभव, केवलज्ञान। (जैनदर्शन)

ब्रह्मज्ञानका विषय वेदान्तमें इस प्रकार है,—अपने ब्रह्मभावका अपरोक्षज्ञानमें आरूढ़ होना ही ब्रह्मज्ञान है। जैसे मरु-मरीचिकामें जलको भ्रान्ति है, वैसे ही ब्रह्ममें दृश्य-भ्रान्ति है। सुतरां दृश्य-प्रपञ्च मिथ्या है, ब्रह्म ही सत्य है। पहले इस ज्ञानको अर्जन और दृढ़ करना चाहिए। अनन्तर 'मैं ही यह ज्ञान हूं और उसका आधार यह देह है, इन्द्रिय और मन सभी कुछ भ्रान्ति-विशेषका विलास है और कुछ नहीं", सुतरां "मैं ज्ञान हूं और मैं ज्ञानका आधार हूं।" यह सब ब्रह्ममें रज्जु-सर्पको तरह मिथ्या है, ऐसा ज्ञान जब अविचल हो जाता है, तब अपने आप 'अहं' अर्थात् 'मैं' जो ज्ञान है, वह इन्द्रिय और मन सबको त्याग कर ब्रह्ममें जा कर अवगाह किया करता है। 'अहं' ज्ञान ब्रह्मावगाही होनेसे ही ब्रह्मज्ञान होता है। इसको तत्त्वज्ञान वा आत्मज्ञान भी कहा जा सकता है।

एक ही चैतन्य हममें और अन्यान्य जीवोंमें विराजमान है। वही एक अखण्ड चैतन्य ही ब्रह्म है और वही अनादि अनन्त ब्रह्मचैतन्य उपाधिभेदसे अर्थात् आधार (देहादि)-भेदसे विभिन्नभाव-प्राप्तके सदृश हो जाता है। वस्तुतः वह अभिन्नके अतिरिक्त विभिन्न नहीं है। उपाधिके दूर होते ही एक है, अन्यथा बहुत। स्वर्ग, मर्त्य, पाताल, यह लोकत्रय ब्रह्मचैतन्यमें अवभासित है अथवा मायिकरूपमें दीख पड़ता है। क्योंकि, जिस प्रकार एकाद्वय महान् व्यापिचैतन्यमें स्वाश्रित अज्ञानके प्रभावसे विश्वरूप इन्द्रजाल प्रकट होता है, उसी प्रकार विश्व मिथ्या है। केवल प्रकाशक चैतन्य ही सत्य है और तो क्या, सत्य चैतन्यमें जो जो भासमान हैं, वे भी असत्य हैं। ये सब चैतन्याश्रित अज्ञानके विलासके सिवा और कुछ नहीं है। ऐसी प्रतीति सुदृढ़ होना चाहिए, और प्रतीतिके सुदृढ़ वा अविचलित होते ही जीव अपने ब्रह्मत्वका साक्षात्कार कर कृतार्थ हो सकता है। शक्तिमान् गुरु जिस समय विवेकी और मुमुक्षु शिष्यको 'तत्त्वमसि' 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' इत्यादि महावाक्योंका उपदेश करते हैं, उस समय उनके द्वारा उक्त वाक्यकी सामर्थ्यसे पूर्वोक्त प्रकार प्रतीति अर्थात् विश्वका मिथ्यात्व और अपनेमें ब्रह्मत्वबोध उपस्थित होता है। अनन्तर वही ज्ञान साधनके बलसे अपरोक्ष-पथमें प्रविष्ट हो कर जीवको कृतार्थ कर देता है।

श्रवणादिके बाद दो प्रकारसे वाक्य बोध होते देखा जाता है, एक परोक्षरूपसे और दूसरे अपरोक्षरूपसे। वाक्प्रकाश्य वस्तु श्रोताके समक्षमें (प्रत्यक्ष मार्गमें) होनेसे तद्बोधक वाक्य तद्वस्तु विषयमें अपरोक्ष ज्ञान उत्पन्न करता है और असमक्षमें होनेसे परोक्षज्ञान करता है।

'तत्त्वमसि' आदि महावाक्य ही शिष्योंकी मनुष्य-भ्रान्तिको दूर कर ब्रह्मका साक्षात्कार करते रहते हैं। कारण, ब्रह्म ही स्वाश्रित अनादि अनिर्वाच्य अज्ञानसे 'मैं अमुक हूं' इस सद्वय भाव वा परिच्छेद-भ्रान्तिप्राप्त और जीव हो कर मौजूद हैं। सुतरां अद्वय ब्रह्मबोधक तत्त्वमसि आदि महावाक्य ही अपनी उस स्वात्मभ्रान्तिको दूर कर ब्रह्मस्वरूपका साक्षात्कार करानेमें समर्थ है। उपदेशात्मक तत्त्वमसि आदि महावाक्य जिज्ञासु शिष्यके मनमें ब्रह्माकारावृत्ति उदित करती है। उसके द्वारा क्रमसे उसकी 'मैं अमुक हूं' यह भ्रान्तिवृत्ति विदूरित वा निवृत्त होती है; उस समय उसके वह चिरसिद्ध अद्वय भाव अर्थात् ब्रह्मभाव स्थिर होता है। यह अद्वय ब्रह्मभाव ही ब्रह्मज्ञान है।

यद्यपि आलोक और अन्धकारकी तरह ज्ञान और अज्ञान अर्थात् चैतन्य और अचैतन्य परस्पर विरोधी पदार्थ हैं, तथापि उनके अभिभाव्य-अभिभावकभाव अप्रत्याख्येय हैं। इसका तात्पर्य यह है, कि विरोधी पदार्थका सहावस्थान नहीं होता। जैसे आलोक और अन्धकार एक साथ नहीं रह सकते, वैसे ही ज्ञान और अज्ञान कभी भी एक साथ नहीं रह सकते। यह देखते

हुए ब्रह्ममें अज्ञानका आवेश मानना अन्याय है। कारण, ज्ञान और अज्ञान एकत्र रह ही नहीं सकते, यह नियम है।

निपुण हो कर अनुसन्धान करनेसे मालूम होता है कि चेतनकी पार्श्वचर शक्ति अज्ञान है और उसकी सत्ता चैतन्य-सत्ताके अधीन है। ये दोनों परस्पर प्रतियोगी हो कर भी परस्परके स्वरूपके बोधक हैं। अन्धकारकी सत्ता न रहनेसे किसकी सामर्थ्य है, कि आलोकको सिद्ध कर सके? जड़ न रहनेसे और अज्ञानका अभाव होनेसे कौन चेतन और ज्ञानकी सत्ता पर विश्वास ला सकता है? वस्तुतः प्रत्येक आलोक और प्रत्येक चेतनके अधीन अन्धकार और अज्ञानका अवस्था न देखा जाता है। कौनसे चेतनका अज्ञानसे संस्रव नहीं है? सम्पूर्ण चेतन जीवोंमें अज्ञानका संस्रव देख कर निश्चय किया जा सकता है, कि अज्ञान चेतनकी पार्श्वचर शक्ति है। छाया जैसे आलोककी पार्श्वचर है, वैसे ही अज्ञान भी ज्ञानका पार्श्वचर है। ये दोनों ही शक्तियां कोई एक अनिर्वाच्य सम्बन्धसे कभी दूरमें कभी निकटमें, कभी प्रकाश्यरूपमें और कभी अप्रकटरूपमें आलोक और ज्ञानके साथ देखो वा सुनी जाती हैं। सुविधा यह है, कि परस्पर विरुद्ध स्वभावान्वित हैं, साक्षात् सम्बन्धमें देखी नहीं जा सकती। जैसे अन्धकारके समय आलोकका नाश हो जाता है, उसी प्रकार अज्ञानके समय ज्ञानका और ज्ञानके समय अज्ञानका तिरोभाव हो जाता है। ज्ञान होते ही अज्ञान भाग जायगा, यह स्थिर होनेसे ही हम अज्ञानके निवारणार्थ प्रयत्न करते हैं। अज्ञानसे ही संसार है, संसार और कुछ भी नहीं है। अखण्ड चेतन अद्वय ब्रह्मकी पार्श्वचर शक्ति अज्ञान है, उसके प्रादुर्भावमें अन्तःकरणादिकी उत्पत्ति है, अनन्तर वे अन्तःकरणादि परिच्छिन्न जीव हैं, और उसीके तिरोभावसे अपरिच्छिन्न और निरञ्जन होते हैं। क्या अन्तःप्रपञ्च और क्या बाह्यप्रपञ्च, सभी कुछ अज्ञानका विलास है, इसीलिए इन सबको भ्रान्तिका विजृम्भण कहा गया है।

"अस्ति भाति प्रियं रूपं नाम चेत्यर्थपञ्चकम्।
आद्यत्रयं ब्रह्मरूपं जगद्रूपं ततो द्वयम्॥"

शक्तिरूपी ब्रह्माश्रित अज्ञानने ब्रह्म वा ब्रह्मका जगत् देखा है। इसीलिए जगत् और ब्रह्म अब विमिश्रित वा एक मालूम पड़ता है। यही कारण है, कि प्रत्येक द्रव्य ही पञ्चरूपी दिखाई देता है। जैसे, १ अस्ति—है, २ भाति—भासता वा प्रकाशित होता है, ३ प्रिय—अच्छा लगता है, ४ रूप—यह इस प्रकार है, ५ नाम—यह अमुक वस्तु है। इस प्रकार पञ्चरूपमें प्रथमोक्त तीन प्रकार ब्रह्म और अवशिष्ट दो प्रकार जगत् अर्थात् अज्ञान-विकार है। अज्ञान-विकार वा जगत् परमार्थतः सत्य नहीं है, इसलिए कहा जाता है, कि जगत् मिथ्या और ब्रह्म सत्य है।

अज्ञानके समय अर्थात् संसार-दशामें 'अहं' मैं, यह वृत्ति अस्थिर वा अनिश्चतरूपसे उदित रहती है। संसार-कालका अहंज्ञान एकाकार नहीं है इसीलिए वह अप्रमा अर्थात् मिथ्या है। विचारना चाहिए, कि अज्ञान कालका अहं कभी मन, कभी इन्द्रिय और कभी शरीरका आधार बना कर अवस्थान करता है। पूर्ण चैतन्यकी ओर अग्रसर नहीं होता। सुतरां संसारकालका अहंज्ञान अस्थिरता-युक्त और सन्धिग्धकी तरह अप्रमा अर्थात् मिथ्या है। जननीके समान हिताभिलाषिणी श्रुति तत्त्वमसि आदि महावाक्यके उपदेश द्वारा उस अप्रमा वा भ्रान्तिको दूर करनेमें प्रवृत्त है। श्रवण करनेमें असफल होनेसे मनन करना चाहिए और मननमें भी सफलता न होनेसे निदिध्यासन अवलम्बन करना उचित है।

श्रवण, मनन और निदिध्यासनमें अधिकार-प्राप्ति और बुद्धिकी दुर्बलता निवारणके लिए पहले चित्तपरिकर्मकारक उपसना आवश्यक है। शम, दम, उपरति, श्रद्धा, समाधान आदि वेदोक्त अनुष्ठानमें रत रहनेसे चित्त निर्मल होता है। तभी श्रवणादि कार्यमें अधिकार उत्पन्न होता है। मनन निदिध्यासनके प्रभावसे प्रतिवन्धक अभाव प्राप्त होता है। प्रतिवन्धक अभाव-प्राप्त होते ही श्रवणका फल ब्रह्मज्ञान ('अहं ब्रह्म' इत्याकार अनुभाव) अपनेसे ही उपन्न हो जाता है। इस प्रकार ब्रह्मज्ञान होते ही मुक्ति वा मोक्ष प्राप्त होता है। अज्ञानान्धजीव मायामें मोहित हो कर सर्वदा सुखके लिये दुःख भोग रहा है। जीवके अज्ञानको नष्ट करनेके

लिए ब्रह्मज्ञानकी बहुत बड़ी आवश्यकता है और उसकी प्राप्तिके लिए तत्त्वमसि वाक्य श्रवण, मनन और निदिध्यासन नितान्त आवश्यक कर्त्तव्य है।

"वेदान्तसांख्यसिद्धान्तब्रह्मज्ञानं वदाम्यहम्।
अहं ब्रह्म परं ज्योतिर्विष्णुरित्येव चिन्तयेत्॥
सूर्ये ह्व्योम्नि अग्नौ च ज्योतिरेकं त्रिधा स्थितम्॥" इत्यादि
(गरुड़पु० २४० अ०)

गरुड़पुराणमें पूर्वोक्त वाक्यका ही समर्थन किया गया है, इसलिए बाहुल्यके भयसे उसका उल्लेख नहीं किया जा सका। विशेष विवरणके लिए ब्रह्म और वेदान्त शब्द देखना चाहिए।

ब्रह्मज्ञानी (सं० त्रि०) ब्रह्मज्ञानं विद्यतेऽस्य, ब्रह्म-ज्ञान-इनि। ब्रह्मज्ञान-विशिष्ट, परमार्थ तत्त्वका बोध रखनेवाला।

ब्रह्मज्य (सं० त्रि०) ब्राह्मणके ऊपर अत्याचार करनेवाला।

ब्रह्मज्येय (सं० क्ली०) ब्राह्मणनिग्रह, ब्राह्मणके ऊपर दौरात्म्य।

ब्रह्मज्येष्ठ (सं० पु०) १ ब्रह्माके ज्येष्ठ सहोदर। (त्रि०) २ ब्रह्मप्रधान।

ब्रह्मज्योतिस् (सं० क्ली०) १ शिव। २ ब्रह्म वा देवता की ज्योति। (त्रि०) ३ ब्रह्मतेज, ब्रह्मद्युतिः।

ब्रह्मणस्पति (सं० पु०) ब्रह्मणः पतिः अलुक्समासः। १ ब्राह्मण जाति स्वामी। २ मन्त्रस्वामी।

ब्रह्मण्य (सं० पु०) ब्राह्मणे हितः ब्रह्मन् (खलयवमाषतिलवृष-ब्रह्मणश्च। ५।१।७) इति यत् (येचाभाव कर्मणोः। पा ६।४।१६८) इत्यण् प्रकृत्या। १ विष्णु। २ ब्रह्मदारुवृक्ष। ३ मुञ्जतृण। ४ तूलवृक्ष। ५ शनैश्चर। ६ कार्त्तिकेय। ७ दुर्गा। ८ स्तोत्र। (त्रि०) ९ ब्रह्मविषयमें साधु। १० ब्रह्मसम्बन्धी।

ब्रह्मण्यदेव (सं० पु०) ब्रह्मण्ये देवः। श्रीकृष्ण।

ब्रह्मण्यता (सं० स्त्रि०) ब्रह्मणस्य भावः तल् टाप्। ब्राह्मणका धर्म वा भाव।

ब्रह्मण्यतीर्थ (सं० पु०) आचार्यभेद।

ब्रह्मता (सं० स्त्री०) ब्रह्मणो भावः तल् टाप्। ब्रह्मत्व।

ब्रह्मताल (सं० पु०) १ चतुर्मुखताल। यह दश तालात्मक है। इसमें मात्राएं ७ हैं, क च ट त प इन पञ्चाक्षरोंके उच्चारणकाल मात्रा है। प्रथमलघुमात्रा, तदर्द्ध द्रुत मात्रा, उसमें ४ लघु और ६ द्रुत हैं। ।०।०० ।००० ऐसी मात्राएं हैं।

"चतुर्मुखाभिधे ताले लगयानन्तरं प्लुतः।" (सङ्गीतदामो०)

वाद्यका ताल-विशेष, बाजेका एक ताल। यह चौदह पदका ताल है। इसमें दश ताल और चार खाली पड़ते हैं। जैसे—

+	०	१	१
धा गना	त्रेकटता	त्रेकटता	थुन्ना
०	०	।	।
थुन् थुन्	तेटेकटे	केटे	तेटे
१	०	१	१
केटे तेटे	खिटिता	खिटि	ता खिटि
१	१	+	
तेरे कटे	तेरे केटे	गेदे घनि ।धा	

ब्रह्मतीर्थ (सं० क्ली०) ब्रह्मणस्तीर्थं। १ पुष्करमूल। २ रैवाके तट पर एक प्राचीन तीर्थ। इस तीर्थमें स्नान करनेसे अन्य वर्णको ब्रह्मण्य लाभ और ब्राह्मणको परमागति प्राप्त होती है। (भारत ३।८३।१०५)

ब्रह्मतेजस् (सं० क्ली०) १ ब्रह्मशक्ति। (त्रि०) ब्रह्मणस्तेज इव तेजो यस्य। २ ब्रह्मकी तरह तेजःशाली।

ब्रह्मत्व (सं० क्ली०) ब्रह्मणो भावः (ब्रह्मणस्त्वः। पा ५।१।१३६) इति त्व। १ शुद्धका भाव। २ ब्राह्मणत्व। ३ ब्रह्मा नामक ऋत्विक् होनेका भाव या धर्म।

ब्रह्मत्वच् (सं० पु०) १ सप्तपर्णवृक्ष। २ ब्राह्मणयष्टिका, भारंगी।

ब्रह्मद (सं० पु०) ब्रह्मवेदं ददाति,दा-क। वेददाता आचार्य। उपनयनके बाद गुरु शिष्यको वेदप्रदान करते हैं। ब्रह्मदाता गुरु जन्मदाता पिताकी अपेक्षा माननीय हैं।

"उत्पादक ब्रह्मदात्रोर्गरीयान् ब्रह्मदः पिता।
ब्रह्मजन्म हि विप्रस्य प्रेत्य चेह च शाश्वतम्॥" (मनु २।१४६)

ब्रह्मदण्ड (सं० पु०) ब्रह्मणो ब्राह्मणस्य दण्डः सिद्ध यष्टिः। १ ब्राह्मणयष्टिका, भारंगी। २ वशिष्ठकी सिद्धयष्टि।

"धिगबलं क्षत्रियबलं ब्रह्मतेजो बलं बलम्।
एकेन ब्रह्मदण्डेन बहवो नाशिता मम॥"

३ ब्राह्मणका शापरूप दण्ड, ब्रह्मशाप। ४ विप्रकी यष्टि। ५ केतुभेद।

ब्रह्मदण्डी (सं० स्त्री०) ब्रह्मणे ब्रह्मोपासनार्थं दण्डी क्षुद्रो दण्डः। जङ्गलोंमें मिलनेवाली एक जड़ी। इसकी पत्तियों और फलों पर कांटे होते हैं। वैद्यकमें इसे गरम और कड़वी तथा कफ और वातनाशक माना गया है।

ब्रह्मदत्त (सं० पु०) १ इक्ष्वाकुवंशीय राजविशेष। इसका पर्याय ब्रह्मसूनु है। २ स्वनामख्यात नीपपुत्र। (त्रि०) ३ ब्रह्मकर्तृक दत्त, जो ब्रह्मसे दिया गया हो। ४ ब्राह्मणको जो दिया गया हो। (पु०) ५ शुकदेवकी कन्या कृत्वीसमाख्याके गर्भसे उत्पन्न अणुहके एक पुत्रका नाम। हरिवंशके ११ वें अध्यायमें इसका उत्पत्ति-विवरण लिखा है।

ब्रह्मदर्भा (सं० स्त्री०) ब्रह्मणे हितो दर्भो यस्याः। यमानिका, अजवाइन।

ब्रह्मदातृ (सं० पु०) ब्रह्म-दा-तृच्। वेददाता आचार्य। ब्रह्मद देखो।

ब्रह्मदान (सं० क्ली०) ब्रह्मणः वेदस्य दानं। वेददान, वेदाध्यापन। सभी दानोंमें वेददान उत्कृष्ट है।

ब्रह्मदारु (सं० क्ली०) ब्रह्मणो ब्राह्मणस्य हितकरो दारुः। १ स्वनामख्यात अश्वत्थाकार वृक्षविशेष, शहतूत। पर्याय—नूद, पूप, क्रमुक, ब्रह्मण्य, तूल, पलाशिक, तल, पूग, यूप।

ब्रह्मदाय (सं० पु०) वेदका वह भाग जिसमें ब्रह्माका निरूपण हो।

ब्रह्मदेया (सं० स्त्री०) ब्रह्मणे देया। ब्रह्मविधिके अनुसार देया कन्या, ब्रह्मविवाहमें दी जानेवाली कन्या।

ब्रह्मदेश—भारतवर्षके पूर्वदिग्वर्त्ती प्रायद्वीप*के अन्तर्गत वर्त्तमान अंगरेजाधिकृत एक राज्य। भू-परिमाण २३७००० वर्गमील है जिनमेंसे १६६००० ब्रिटिश-राज्यके अधीन और ६८००० वर्गमील स्वतन्त्र राज्य है।

जब ब्रह्मवासियोंका उत्पात असह्य हो गया तब अंगरेजोंने ब्रह्मदस्युके आक्रमणसे भारतसीमान्तकी रक्षाके लिए १८२४ और १८५२ ई०में दो युद्ध किये जिनमें उन्हें ब्रह्मराज्यका कुछ अंश युद्धव्ययकी क्षतिपूर्त्तिमें मिला। वही इतिहासमें अंगरेजाधिकृत ब्रह्म (British Burma) नामसे लिखा है। शासनकार्यकी सुविधाके लिए अंगरेजोंने उस प्रदेशको चार विभाग और वीस जिलेमें बांट दिया। यान्दावू-सन्धिके बाद आराकान और तेनासरीम विभाग भी भारतसाम्राज्यके अन्तगत हुआ। उसी समयसे अड़तीस वर्ष तक उक्त स्थानका शासनभार वङ्गालके छोटे लाटके ऊपर सौंपा गया। १८५३ ई०में पेगु और मार्त्तवान अंगरेजोंके अधिकारमें आया। १८६२ ई०में अंगरेजोंने उक्त चार प्रदेश एक साथ मिला दिये और सर अर्थर फेरी (Sir Arthur Phayre, The first Chief-commissioner)-को वहांका स्वतन्त्र शासनकर्त्ता बनाया।

वङ्गसीमा पर आक्रमण करनेका समुचित दण्डस्वरूप दक्षिण ब्रह्म (Lower Burma)-का कुछ अंश अंगरेजोंके हाथ सौंप कर सम्राट् आलौमपयाके वंशधर उत्तरब्रह्म (Upper Burma)-की ओर चले गए और आवा नगरमें राजधानी बसा कर राजकार्य चलाने लगे। स्वाधीनचेता ब्रह्मराजके उद्धत स्वभावको रोकने और उनके अनुचरवर्ग द्वारा अंगरेजीप्रजा जो सताई जाती थी उसे निवारण करनेके लिये भारतराजप्रतिनिधि लार्ड डफरिनने १७८५ ई०के शेष भागमें मन्दालयकी ओर एक दल सेना भेजी। इस सेनादलने वहां जा कर राजसिंहासन छीन लिया और ब्रह्मराजको नजरबन्द कर भारतवर्ष भेज दिया। बड़े लाटने पहले मन्त्रिसभा (Central Council of Burmese Ministers) द्वारा वहांके राजकार्यकी देखभाल करनेका विचार किया था, किंतु दुष्ट मन्त्रिदलके बुरे व्यवहार और जालराजपुत्रोंके सिंहासन पर अधिकार जमानेकी चेष्टाके हेतु युद्धविग्रहसे उकता कर उन्होंने १८८६ ई०में सारा ब्रह्मसाम्राज्य अंगरेज-शासनाधीन कर लिया। पहले प्रधान कमिश्नर द्वारा ही राजकार्य परिचालित होता था। अन्तमें सारे ब्रह्मके प्रधान शासनकर्त्ता-स्वरूप एक लेफटेनेण्ट गवर्नर नियुक्त हुए हैं।

स्वाधीन ब्रह्मराज्य जब अंगरेजोंके अधिकारमें आया

---

* यूरोपीय भौगोलिकोंने इसे Eastern peninsula या India beyond the Ganges नामसे उल्लेख किया है।

तब उसकी सीमा परिवर्त्तित हुई। पहले ब्रह्मराज्यकी जो सीमा थी, अंगरेज सरकार अब भी उसी विस्तीर्ण साम्राज्यका शासन करती है। यह अक्षा० ९° ५९′ से २७° २०′ उ० तथा देशा० ९२° ११′ से १०१° ९′ पू०के मध्य अवस्थित है।

अंगरेजोंके हाथमें आनेके बाद ब्रह्मराज्यमें किसी किसी देशी शिल्पकी अवनतिके साथ साथ नाना विषयकी उन्नति भी हुई है। यद्यपि यह राज्य स्वाधीन था, तो भी यहांकी प्रजा सुखस्वच्छन्दसे एक दिन भी न बिताती थी। चोरी करना, दूसरेका धन छीन लेना, घर जला देना, जीवोंको मारना आदि अनेक प्रकारके बुरे काम यहांके अधिवासियोंका अङ्गभूषण था। किन्तु अंगरेजी शासनमें सभी प्रकारके अत्याचार जाते रहे।

यह देश पथरीला होनेके कारण यहां सालवीन नदीकी अववाहिका प्रदेशमें धान, चना, मकई, गेहूं, कलाई, तम्बाकू, रूई, सरसों और नील आदिकी अच्छी खेती होती है। इसके अलावा ब्रह्मवासीका अत्यन्त प्रिय-चायका पौधा (Elaeodendron persicum) और अमरूद, केला, पपीता, इमली, नीबू, नारङ्गी आदि नाना-जातिके फलवृक्ष भी यहां पाये जाते हैं। उत्तर ब्रह्ममें इरावती नदीकी केङ्ग-इेङ्ग, मितङ्गे और शैले आदि शाखाएं बहती हैं। नाम-कथे नामक नदी मणिपुर और लुसाई गिरिमालाके बीच हो कर बहती हुई केङ्गइेङ्ग नदीमें मिल गई है। इसके सिवा बहुत-सी नदियां इरावती सालवीन और थालवीन नदीका कलेवर बढ़ाती हुई भारतमहासागरमें गिरती हैं।

यहांके जङ्गलमें बहुत-से शाल और सेगुनके पेड़ हैं तथा बढ़िया लाह और खरका गोंद भी पाया जाता है। ये सब द्रव्य वाणिज्यके लिए उत्तर और दक्षिण ब्रह्मसे रङ्गुण बन्दरमें ला कर नाना स्थानोंमें भेजे जाते हैं।

यह राज्य खनिज पदार्थका आकर है। यहां सोना, चांदी, तांबा, टीन, सीसा, रसाञ्जन, विसमाथ, पत्थर, कोयला, शिलातैल (*Petrolium*), गन्धक, सोड़ा, नमक, लोहा, मर्मर पत्थर आदि पाये जाते हैं। इसके अलावा मन्दालयके ३५ कोस उत्तर पूर्वमें बढ़िया और बेशकीमती नील तथा चुन्नी पत्थर पृथिवीमें गड़ा हुआ मिलता है। इस विस्तीर्ण भूभागसे निकाली हुई प्रस्तरराशि राजकोषमें ही रखी जाती हैं। यहांका चूना पत्थर सब देशोंमें प्रसिद्ध है।

नाफ् नदीके मुहानेसे ले कर नेग्रीस अन्तरीप तक आराकान विभाग विस्तृत है। इसके उत्तर और पूर्व-सीमास्थित आराकानयोम, पर्वतमालाके अयङ्ग गिरि-सङ्कट हो कर इरावतीकी उपत्यकाभूमिमें जा सकते हैं। समुद्रोपकूलमें कई एक छोटे छोटे द्वीप हैं, उनमेंसे चेवूदा और रामरी ही प्रधान हैं। ये सब उपजाऊ हैं। नाफ नदीके सिवा यहां मयु, कुलदन, तलक और अयङ्ग आदि कई एक नदियां हैं। कुलदन या आराकान नदीके दक्षिण कूल पर आकायाब नगर बसा हुआ है। किन्तु पेगु और इरावती विभाग ही विशेष शस्यशाली है। यहां इरावती, हेङ्ग या रंगून, पेगु और सित्तोङ्ग आदि नदियां बहती हैं। यही कारण है, कि उनके अववाहिका-देश बहुत उपजाऊ हैं। लगभग १०४० मील पार कर इरावती नदी बङ्गोपसागरमें मिलती है। इस नदीमें ६०० मील तक नाव आ जा सकती है।

समुद्रोपकूल-स्थित तेनासरीम विभाग अक्षा० १०°से १८° उत्तरके मध्य बसा है। यहांकी प्रधान नदी है सालवीन। यह नदी कहांसे निकली है, इसका आज तक भी पता नहीं लगा है, किन्तु यूनान प्रदेशके समीप ही इसका स्रोत अनुभव किया जाता है। इस विभागकी पूर्वसीमामें जो पर्वतमाला दिखाई पड़ती है, वह पौङ्ग-लौङ्ग पर्वतशाखा है। इसी पर्वतमालासे ब्रह्म और श्यामराज्य पृथक् होता है।

राज्यमें प्रधानतः तीन गिरिश्रेणी देखी जाती हैं। इसका सर्वपश्चिम आराकानयोमा-पर्वत आसाम प्रदेशकी नागागिरिमालासे उठ कर नेग्रिस अन्तरीपमें आ मिला है। इसकी अन्तिम शाखा पर 'ख्मदेन' नामक पागोदा (मन्दिर) अवस्थित है और बीचमें पेगुयोमा गिरिमाला है। इरावती और सित्तौङ्ग उपत्यकाभूमिके मध्य अवस्थित रहनेसे यह उक्त दोनों नदीके अववाहिका प्रदेशको विभक्त करती है। यह पर्वतमाला उत्तर ब्रह्मकी थेमेथिन् गिरिश्रेणीके सानुदेशसे ले कर दक्षिणकी ओर इरावतीके डेल्टा तक फैल गई है। यहां एक पर्वत

शिखर पर ब्रह्मवासीका विख्यात बौद्धतीर्थ शैव्रदगोन मन्दिर अवस्थित है। पौङ्गलौङ्ग नामक गिरिमाला सित्तौङ्ग और सालवीन उपत्यकाके बीच विस्तृत है। तौङ्ग-गु प्रदेशके सन्निकट इसका एक शिखर ६ हजार फीटसे भी अधिक ऊंचा है।

यहां कई छोटे छोटे ह्रद भी नजर आते हैं, उनमेंसे रंगूनके निकटवर्त्ती कन्दवग्, हानजादा जिलेका 'तू' नामक ह्रद और वेसिन जिलेके दो ह्रद उल्लेखयोग्य हैं। पेगु और सित्तौङ्ग तथा रंगून और इरावतीको मिलानेवाली दो खाई वाणिज्य तथा कृषिकार्यकी विशेष उपकारी है।

एशिया महादेशके दक्षिण भागमें तीन प्रायद्वीप समुद्रमें घुस गये हैं। अरव और भारतवर्षके साथ प्राचीन जगत्‌को ऐतिहासिक घटनावली जैसी मिलती जुलती है, इस ब्रह्मदेशका वैसा कोई ऐतिहासिक वैभव नहीं है। विद्योन्नति, धर्म या वाणिज्य-विस्तारका कोई प्रसङ्ग ही नहीं देखा जाता है। महाभारतके सभापर्वमें 'शर्मक' और 'वर्मक' नामक दो देशोंका उल्लेख है। कोई कोई इन्हीं दोनोंको यथाक्रम श्याम और ब्रह्मदेश वतलाते हैं। महाभारतके समय यह स्थान किरात और भगदत्तके अधिकारभुक्त था। भारतवर्षमें आर्यहिन्दुओंका उपनिवेश स्थापित होनेके वाद जो वाणिज्य प्रभाव पूर्वमें चीन और पश्चिममें इजिप्ट आदि स्थानोंमें फैला हुआ था, वह ब्रह्मराज्य तक नहीं जा सका, यह कौन कह सकता है? केवल टलेमीके भूगोलवृत्तान्तसे इस स्थानका *Aurea chersonesus* अर्थात् सुवर्णभूमि नाम पाया जाता है।

पूर्वोक्त दोनों प्रायद्वीपकी तरह अव भी धीरे धीरे धर्मप्रभाव विस्तृत हुआ था, किन्तु वड़े दुःखकी वात है, कि उस धर्मस्रोतमें पड़ कर भी अधिवासीगण आनन्द लाभ न कर सके। अहिंसाकी महिमा प्राप्त न कर सकनेके कारण उन्होंने प्रतिहिंसाके विषसे जर्जरित हो कर अपनी वासभूमि रणक्षेत्रमें परिणत की थी। परस्परकी उन्नतिसे ईर्षान्वित हो कर उन्होंने पार्श्ववर्त्ती राज्य खाकमें मिला दिया।

अङ्गरेजोंने पहले ब्रह्मदेशका जो अंश अपने अधिकारमें किया था, उसमें आराकान, थस्तुन, मार्त्तावान और पेगु ये ही चार राज्य थे। इन्हीं चार राज्योंके इतिहाससे जाना जाता है, कि यहांके राजा अपनेको भारतीय हिन्दूवंशोद्भव वतलाते थे। उनका धर्म और शास्त्रग्रंथ भारतवर्षसे हो लाया गया था, इसमें सन्देह नहीं। एक समय जो यहां भारतीय संस्रव हुआ था, उसका प्रमाण टलेमी-लिखित ईरावती नदीके डेल्टा वंशवर्त्ती स्थानसमूहकी भौगोलिक तालिकासे मिलता है। किसी तरहका प्राचीन इतिहास न मिलने पर भी रंगून और रामन्नदेशसे इधर उधर पड़ी हुई जो सव वहुप्राचीन कीर्त्तिसमूह आविष्कृत हुई हैं*, उनसे भी भारतीय हिन्दूका ब्रह्मदेश जाना सूचित होता है।

आराकानके ब्रह्मराजका इतिहास पढ़नेसे जाना जाता है, कि गौतमवुद्धसे वहुत पहले एक वाराणसी-राजपुत्रने आराकान आ कर वर्त्तमान सान्दावयके निकट रामावती नगरमें राजधानी वसाई थी। वे प्रति वर्ष वाराणसीराजको कर देते थे। इसी प्रकार कुछ दिन वीत जाने पर वाराणसी-राज शेक्यवती (जिन्होंने दूसरे जन्ममें गौतमवुद्धरूपमें जन्म लिया था) अपने चतुर्थ पुत्र कन्मिनके ऊपर ब्रह्मराज्यका शासन-भार सौंप गए। उक्त राजपुत्रने ब्रह्म, श्याम और मलयवासियोंके ऊपर अपना आधिपत्य जमाया था। उनके राज्यकी उत्तर सीमा मणिपुरसे ले कर चीन तक फैली हुई थी†। कन्मिन अपने राज्यमें वहुत-सी असभ्य जातियोंको वसा गए थे। इस गल्पकी कोई सत्यता न रहने पर भी इसके द्वारा ब्रह्ममें भारतीय संस्रव और वौद्धधर्मके प्रवेशलाभके

---

* Dr. Forchhammer और Major R.C. Temple इन दोनों महोदयके अनुसन्धानसे ब्रह्मदेशके प्रत्नतत्त्वका नूतनद्वार उद्घाटित हुआ है।

† ब्रह्मके प्राचीन ऐतिहासिकगण यहां वड़े भारी भ्रममें पड़े थे। शाक्यवंशमें गौतम वुद्धका जन्म और उनका दूसरा नाम शाक्यसिंह होनेके कारण उन्होंने शाक्य (शेक्यवती)-के वुद्धजन्मत्वकी कल्पना की है। वे फिर गौतमीपुत्र शाक्यका वुद्धत्वलाभके कारण नामांतर स्वीकार करते हैं।

सिवा और किसी विषयकी सूचना नहीं मिलती¶ ।

आराकानके प्रचलित प्रवादके ऊपर निर्भर करनेसे पता लगता है, कि किसी एक समयमें भारतीय हिंदू और बौद्धगण इस देशमें आये थे। फिर पूर्वाञ्चलसे भी ब्रह्मोंने यहां आ कर उपनिवेश स्थापित किया था। उक्त औपनिवेशिक-दलके कोई भी आदिम अधिवासियोंके विरुद्धाचारी न हुए। इसके बाद बौद्धधर्मके प्रचारार्थ शाक्यवंशीय एक राजा यहां आ कर राज्य करते थे। इन्हींके वंशधर २६वें राजाके समयमें (१४६ ई०में) यहां बौद्धधर्मका पूर्णरूपसे प्रचार हुआ था।

उस समय और उसके परवर्त्ती कालमें ब्रह्मके विभिन्न प्रदेश कम्बोजके राजाओंके अधिकारमें थे, उनमेंसे कोई शैव, कोई वैष्णव और कोई वैश्य थे। कम्बोज देखो।

६वीं शताब्दीके प्रारम्भमें मुसलमान-वणिक् आराकान उपकूलमें आये। इसी वर्ष आराकानराज वङ्गविजय करने गये और चट्टग्राममें उन्होंने एक कीर्त्तिस्तम्भ स्थापित किया। १०वीं शताब्दीमें प्रोमराजने आराकान पर चढ़ाई की; उस समय वहांकी राजधानी म्रोहौङ्ग नगरमें स्थापित हुई थी। उसके बाद पांच सौ वर्ष तक यहां पर ब्रह्म, शान, तैलङ्ग और प्यूस आदि विभिन्न जातिने चढ़ाई की।

बोधगयामें प्राप्त १२वीं शताब्दीकी शिलालिपिसे जाना जाता है, कि पगानराजने वङ्गाल पर आक्रमण किया। दिनाजपुरके राजमहलमें जो प्राचीन शिलालिपि है, उसमें यहांके कम्बोजराज द्वारा शिवमन्दिर-प्रतिष्ठाकी कथा लिखी है। सम्भवतः वे ही पगानराज होंगे। ११३३ से ११५३ ई० तक वङ्ग, पेगु, पगान और श्याम आदि प्रदेशके राजाओंने आराकानराज गव लयकी अधीनता स्वीकार की थी। गवलयके कीर्त्तिस्तम्भ महती-मन्दिरको १८२५ ई०में अङ्गरेजीसेनाने तहस नहस कर दिया। इसके एक सौ वर्ष बाद शान और तैलङ्ग जातिके उपर्युपरि आक्रमणसे यह स्थान विध्वस्तप्राय हो गया। अन्तमें १२६४ ई०को राजा मिन्तिने विपक्षियोंको भगा कर अपने राज्यका उद्धार किया और पगान तथा पेगु राज्य जीत कर उसकी सीमा बढ़ा दी*। बाद उनके वंशधरोंने लगभग १४०४ ई० तक राज्य किया। उसी वर्ष राजा मिनसव मूनके अत्याचारसे तंग आ कर सब प्रजा बिगड़ गई जिससे वे राज्य छोड़ कर भाग गये। और वङ्गालके मुसलमान राजाओंकी शरणमें पहुंचे। कुछ दिन बाद वे मुसलमानोंकी सहायतासे पुनः अपने राज्य पर प्रतिष्ठित हुए। उसी समयसे आराकानी मुद्रा पर विकृत पारसी और नागरी अक्षरमें नामाङ्कि लिखे रहते थे।¶

विद्रोही प्रजादलने आवाराजकी शरण ली। आवाराजने वहां १४३० ई० तक राज्यशासन किया। उसके बाद आराकानराज्यमें उल्लेखयोग्य कोई घटना न घटी। १६वीं शताब्दीके आरम्भमें पूर्वकी ओरसे ब्रह्मवासी और समुद्रपथसे पुर्त्तगीज जलदस्युने आराकान पर आक्रमण किया। पुर्त्तगीजोंके उपद्रवसे म्रोहौङ्ग (प्राचीन आराकान) नगरकी रक्षा करनेके लिए १५३१ ई०में १८ फोट ऊंची पत्थरकी दीवार बनाई गई थी। १५७१ ई०में उसके चारों ओर खाई खोदी गई। उसी समयसे आराकानी विशेष उद्योगी हो रहते थे। १५६०से १५७० ई०के बीच उन्होंने चट्टग्राम जीत कर वहीं पर शासन करना शुरू कर दिया और आराकान-राजपुत्र उस समय वहांके राजा हुए। धीरे धीरे मुगलसाम्राज्यके प्रतिद्वन्द्वी होनेकी इच्छासे उन्होंने पुर्त्तगीज दस्युदलको अपने राज्यमें बुलाया और समुद्रोपकूलमें उनका वासस्थान नियुक्त कर दिया। चट्टग्राम ही उनकी दस्युताका प्रधान केन्द्रस्थल था। यहां उन्होंने मुगलरणतरीकी दोनों ओर खड़े रह कर रणनिपुणताका परिचय दिया था और बारंबार जयलाभसे उत्फुल्ल हो कर आश्रयदाता आराकान-राजकी अधीनता तोड़ दी। १६०५ ई०में उद्धतस्वभाव पुर्त्तगीजोंको

¶ तालपत्रमें लिखित ब्रह्मराजेतिहासमें कन्भियन् राजवंशका जो राजत्वकाल लिखा है वह सम्पूर्ण अविश्वासजनक है।

* उस समय आराकानवासीने दक्षिण-पूर्व वङ्गालकी ओर अग्रसर हो कर सोनारगांवके वङ्गीय राजासे राजकर वसूल किया था।

¶ आराकानमें प्रचलित राजचिह्नाङ्कित १२वीं शताब्दीकी प्राचीन मुद्रा पाई गई है।

चट्टग्राममें पृथक्‌रूपसे शासनविस्तार करते हुए देख कर आराकानपति क्रुद्ध हुए और १६०६ ई०में उनको वहांसे भगा दिया। विशेष विवरण पुर्त्तगीज शब्दमें देखो।

१५वीं शताब्दीके प्रारम्भसे १८वींके शेषभाग तक इस देशके इतिहासमें केवल युद्धके सिवा और किसी विशेष घटनाका उल्लेख नहीं देखा जाता। इसके अन्तर्गत खण्डराज्य पर्वतवेष्टित होने पर भी ब्रह्म और तैलङ्गके अधिवासियोंने यथाक्रम यहांका राजासन अधिकार किया था। १६वीं शताब्दीके अन्तमें आवा और पेगु राजाओंके बीच घोरतर संग्राम हुआ। इधर आराकानपतिने वङ्गाधिपतिको हीनवल देख कर मेघना नदी तकका स्थान अपने दखलमें कर लिया। तौङ्ग-गुके शासन कर्त्ताकी सहायतासे उनके पुत्रने भी पेगुराजके विरुद्धाचारी हो कर उक्त प्रदेश अधिकारमें रखनेकी इच्छासे अपने पुर्त्तगीज कर्मचारी निकोटी (Philip de Britoy Nicote) के ऊपर भार सौंप दिया। निकोटीने इस प्रकार पदोन्नतिसे उद्दृप्त हो राजानुग्रह उच्छेद कर लगभग १३ वर्ष तक अपने बाहुबलसे वहांका राज्यशासन किया। अन्तमें आवापतिने १६१३ ई०में उनको रणक्षेत्रमें मार कर इस प्रदेश पर पुनः अधिकार जमाया।*

१८वीं शताब्दीके मध्यभागमें राजा आलौङ्गपया (अलोम्प्रा)-के अभ्युदयकालमें ब्रह्मराज्य एकच्छत्र हुआ था। उसी समय आराकानराज्य अन्तर्विप्लवसे विदलित होने पर १७०४ ई०में राजपुत्र वोदव पयाने उसे आवा-साम्राज्यमें मिला लिया। इसी युद्धसे यथार्थमें वङ्गसीमान्तमें ब्रह्मवासियोंका पदार्पण हुआ। अङ्गरेजराजने उनके अनधिकार प्रवेशसे उत्त्यक्त हो कर १८२४ ई०में युद्धघोषणा कर दी बाद १८२६ ई०में यान्दाबुकी सन्धिके अनुसार अङ्गरेजोंको आराकान और तेनासेरोम प्रदेश क्षतिपूरण-स्वरूप मिला।

थातुन, पेगु और मार्त्तावन आदि जनपद तैलङ्ग (मून) * के अधिकारमें थे। ब्रह्मवासिगण तैलङ्ग राज्यको रामन्न वा रमनिया कहते थे। खृष्टजन्मके बहुत पहले भारतीय औपनिवेसिकोंके द्वारा थातुन नगर स्थापित हुआ †। वहांका ध्वंसावशेष अब भी प्राचीनत्वका परिचय देता है। यह नगर समुद्रसे पांच कोस दूर नदीके किनारे बसा हुआ है। नदीके मुंह पर पङ्क जम जानेसे यहांके वाणिज्यका ह्रास हो गया और नगर श्रीहीन हो कर ध्वंसमें परिणत हुआ। यहांका प्रकृत इतिहास नहीं मिलने पर भी बौद्ध-इतिहाससे पता लगता है, कि ईस्वी सन् ३०० वर्ष पहले महाबोधिसङ्घके समय थातुन नगर (सुवर्णभूमि)-में दो धर्मप्रचारक भेजे गये थे। ४०३ ई०में सिंहलसे बुद्धघोष यहां बौद्धग्रन्थादि लाये थे। ११वीं शताब्दी तक यह नगर विशेष समृद्धिसम्पन्न था। इसके बाद पगान-सम्राट् अनव्रतने इसे ध्वंस कर दिया। राजेतिहाससे जाना जाता है, कि यहां ५९ राजाओंने प्रायः १६८३ वर्ष तक राज्य किया था।

प्रवाद है, कि थातुनसे भारतवासी ५७३ ई०में पेगु नगर आ कर रहने लगे। उन्होंने ही पेगुमें राजधानी स्थापित की। इसके तीन वर्ष बाद मार्त्तावन नगर बसाया गया। रामन्न देशवासी उस समय उन्नतिकी चरम सीमा पर चढ़े हुए थे और रामन्नका आयतन वेसिन तक फैल गया था। मार्त्तावन राजवंशके १७वें राजा तिष्यने दूसरा धर्म ग्रहण किया। उसी समयसे देशीय राजवंशका लोप हुआ। अनव्रतविजय (लगभग १०५० ई०)-के बाद पेगु समृद्धिशाली हो उठा।

मार्त्तावानके समीप तकम्वुननिवासी मगदू नामक एक व्यक्तिने विद्रोही दलमें मिल कर पेगु और मार्त्तावान नगर जीता। उनके विरुद्ध पगानसे प्रेरित मुसलमान सेनाको हरा कर उन्होंने धीरे धीरे सारा तैलङ्गराज्य

* भ्रमणकारी वर्णियरने लिखा है, कि १७वीं शताब्दीमें यह स्थान असंयतहृदय यूरोपियनोंके द्वारा पूर्ण हुआ था। निकोटीके बाद शिवाष्टियन गञ्जालिसने शनद्वीपमें पुर्त्तगीज-प्रभाव फैलाया था।

* ये ब्रह्मजातिकी एक विशिष्ट शाखा हैं। इनकी बोली बहुत कुछ कम्बोज और आसामी भाषासे मिलती जुलती है।

† दक्षिण-भारतके करमण्डल उपकूलसे भारतवासी ब्रह्मदेश गए। कम्बोज आदि राज्यके साथ भारतीय संस्रव पुराणादिसे जाना जाता है।

अपने अधीन कर लिया। पहले श्यामराजके अधीन काम करनेके कारण इस प्रकार उन्नत अवस्थामें भी वे कभी प्रभुभक्ति दिखलानेमें कुण्ठित न होते और अपने पूर्व-स्वामीको श्रद्धाभक्तिके साथ कुछ राजकर भी देते थे। इधर श्यामराजने भी उन्हें खिलअत दी थी। १२६६ ई०में २२ वर्ष राज्यशासन कर वे इस लोकसे चल वसे।

१३२१ ई०में टावय और तेनसिरीम प्रदेश पेगुराज्यके अन्तर्भुक्त हुआ ; इसीलिए श्यामराजके साथ घोरतर युद्ध छिड़ा। दोनोंमें बड़ी भारी द्वेषता चली। १३४८ ई०में राजा विन्यऊके राजत्वकालमें राज्यके मध्य विशेष विप्लव संघटित हुआ था। एक ओर चेङ्गमई-शान जातिका उपद्रव और दूसरी ओर गृहविवादसे पीड़ित हो कर वे तंग तंग आ गये और मार्त्तावानसे पेगु नगर राज-पाट उठा ले आये। शानजातिको परितृप्त करके भी उन्हें गृह-विवादसे परित्राण न मिला। अनन्तर वे अपने पुत्र विन्यन्व द्वारा राजसिंहासनसे च्युत हुए। राजासन पर वैठ विन्यन्वने राजादिरित् नाम धारण कर प्रभूत प्रति-पत्तिके साथ राज्यशासन किया। शत्रुके हाथसे राज्य-की रक्षा करना ही उनके जीवनका प्रधान उद्देश्य था। प्रायः ३५ वर्ष तक वे आवाराजके साथ युद्धमें लगे रहे। अन्तमें १४०४ ई०में उन्होंने दलवलके साथ आवाराज्य जा कर वहांके राजाको हरा दिया। उनकी मृत्युके वाद लगभग एक सौ वर्ष तक पेगुराज्यने वर्त्तमान राजवंशके शासनप्रभावसे शान्तभाव धारण किया और प्रजावर्गने धीरप्रकृतिसे कृषिकार्यमें लिप्त रह कर अपना देश शस्य-पूर्ण वना दिया।

१५२६ ई०में उक्त वंशके अन्तिम राजा तकयुतने पितृ-सिंहासन प्राप्त किया। उनके कोई सन्तान न थी। आवाराज्यमें शानसरदारवंशका विस्तार देख कर पितृ-शत्रु होने पर भी वे तौङ्ग-गुराजवंशको हो प्राचीन ब्रह्म-राजवंशके प्रतिनिधिस्वरूप स्वीकार करते थे, तदनुसार १५३० ई०में तविनश्वेतिको राज्य मिला। वे उपर्युपरि चार वर्ष पेगु आक्रमणमें विफल मनोरथ होते गये। अन्तमें १५३५ ई०में उन्होंने पेगुराजधानी अपनाई और उनके साले वुरिननौङ्गने सात मास अवरोधके वाद मार्त्तावान नगर जीत लिया। उस समयसे तैलङ्गोंके मध्य एक नूतन राजवंशकी प्रतिष्ठा हुई।

इनके राजत्वकालमें पुर्त्तगीज नाविकगण ब्रह्मदेश आये। उनके लिखे हुए विवरणसे ही उस समयका पेगुराज्यका इतिहास मिलता है। पेगुके नये राजाने आवा और श्यामराजके साथ युद्ध करनेकी इच्छासे पुर्त्तगीजसेना संग्रह की थी। पीछे वैदेशिकोंके साथ मित्रता करनेसे उन्हें विपरीत फल मिला और उसीसे उनकी राज्यलक्ष्मी विदा हो गई। उनकी मृत्युके वाद उनके साले वुरिन नौङ्ग* १५५० ई०में पेगुसिंहासन पर अधिरूढ़ हुए, इस पर प्रजावर्गके मध्य विद्रोहवह्नि भभक उठी। वाद उन्होंने अपने वाहुवलसे उद्धत प्रजावर्गको शासित कर प्रोम, आवा, शानराज्य और पश्चिममें आसाम सीमा तक अधिकार जमाया और १५६३ ई०में श्यामराज्य जीत कर अपने राज्यमें मिला लिया। इसके छः वर्ष वाद (१५६६ ई०में) श्यामराज्यमें पुनः प्रजा-विद्रोह उपस्थित हुआ। इस पर उन्होंने दलवलके साथ वहां जा कर उसका दमन किया। १५८१ ई०में उनके मरने पर युवराज नन्दवुरिन राजसिंहासन पर वैठे। उन्होंने दुष्ट श्यामवासियोंका दमन करनेके लिये चार वार युद्धकी तैयारी की, किन्तु अकृतकार्य होनेसे क्रमशः उनका राजकोष शून्य हो गया और साथ ही साथ महा-मारि, दुर्भिक्ष तथा गृहविवाद उपस्थित हुआ। राजाके अत्याचार और निष्ठुर व्यवहारसे उत्पीडित हो कर करद सामन्तोंने भी उन्हें परित्याग किया। अन्तमें इनके मामा तौङ्ग-गु-राजने आराकानपतिके साथ मिल कर १५९६ ई०में उन्हें सिंहासन परसे उतार दिया और ब्रह्मराज्यको कठोर अत्याचारसे वचाया।

राजशक्तिकी अवनति देख कर श्यामवासिगण पुनः जग उठे। वे लोग दल वांध वांध कर पेगुराज्यको तहस नहस करने लगे। इस प्रकार जनशून्य और श्रीभ्रष्ट जन-पदमें राज्य करनेमें आक्रमणकारियोंने कोई आस्था न दिखलाई। तविनश्वेतिका वह समृद्धिशाली राज्य उसी समयसे निकोटीके शासनाधीन हुआ। १६१३ ई०में आवापतिने अपनेको समर्थ समझ कर पुर्त्तगीजोंको हराया और उनके अधिकृत स्थानोंको अपने राज्यमें

* पुर्त्तगीज इतिहासमें इनका Braginaco नाम लिखा है।

मिला लिया। लगभग एक सौ वर्षके बाद प्राचीन रामन्नदेश पुनः ब्रह्मवासियोंके शासनाधीन हुआ।†

१७३५ ई०में विजित तैलङ्गगण विजेता आवापतिके विरुद्ध खड़े हुए। उन लोगोंने केवल पेगूसे ही उन्हें मार भगाया था सो नहीं। लगभग बीस वर्ष तक उन्होंने सारे ब्रह्मसाम्राज्यमें अपना दखल भी जमाया था। बाद अलौङ्गपयाने अपने बाहुबलसे सारी ब्रह्मभूमि जीत ली और युद्धसमाप्तिके बाद शान्तिलाभ करने पर वे रंगूनमें राजधानी बना अक्षय कीर्त्तिकी स्थापना कर गए *। किंतु ब्रह्मवासियोंने कभी भी शांतहृदयसे तैलङ्गराजके प्रभावका समादर नहीं किया। १७८३ ई०में पुनः विद्रोहानल धधक उठा। युवराज बोदव-पयाने बड़ी दृढ़ताके साथ इस विद्रोहका दमन किया।

बौद्धधर्मका प्रभाव फैलानेके लिए ब्रह्मगण स्वभावतः पालि भाषाके अनुरागी हुए; इसीलिए उनकी भाषामें बहुत-से पालिशब्दका अपभ्रंश देखनेमें आता है—यहां तक, कि शिलालिपि आदिमें भी इस देशके विभिन्न स्थानोंके नये नाम लिखे हुए हैं†। पाश्चात्य भौगोलिक टलेमीने जो प्रदेश Chryse Regio नामसे उल्लेख किया है, ब्रह्मराज दरबारके कागजादिमें वही सोणपरांत (स्वर्णापरांत) नामसे लिखा है। 'महाराज वेङ्ग' नामक राजेतिहासमें यहांके राजवंशकी जो तालिका दी गई है, वह बहुत प्राचीन और भारतीय बौद्धराजसंस्रव-घटित है *।

† रामन्न प्रदेशके मौलमेन (रामपुर) नगरके निकट आतरान नदीके किनारे फर्म्मगुहा, गायङ्ग नदीके किनारे दन्मथ गुहा, सालवीन नदीके किनारे पागात गुहा, कोगुन खाड़ीके किनारे कोगुनगुहा और दोन्यानी नदीके किनारे बिनजी गुहामंदिर आदिमें बहुत-सी बौद्धमूर्त्तियों और बौद्धप्रभावके निदर्शन पाये गये हैं। इसके अलावा अनेकों भग्न अट्टालिकाओंमें श्याम और काम्बोजके अधिकारचिह्न देखनेमें आते हैं। Indian Antiquary, Vol. xxii, p. 327-366.

* पो-ऊ-दौङ्ग पर्वतके गुहामन्दिरसे प्राप्त सम्राट् अलौङ्गपयाके द्वितीय पुत्र राजा सिनव्यूइनकी १७७४ ई०में उत्कीर्ण शिलालिपिसे जाना जाता है, कि उन्होंने निम्नलिखित १५ सामन्त-राज्यों पर आधिपत्य फैलाया था।

राज्य।	अन्तर्भुक्त जिला।
१ सुनापरान्त	कले, तेन्यिन, यो, तिलिन और सग्नजिला।
२ शिरिक्षेत्तर (श्रीक्षेत्रम्)	उदेतरित् और पानदौङ्ग।
३ रामन्न	कुथेन, यौङ्ग म्या, मुत्तमा और पेंगु।
४ अयुत्तय (अयोध्या)	द्वारावती, योदया और कमानपैक
५ हलिपञ्च	जिम्मे, लबोन और अनान्।
६ लबरट्ट	चन्दपुरि, सानपापाथेत् और मैङ्गलोन
७ खेमवार	कैंगतोन और कैंगकर्कांग।
८ ज्योतिनगर	कैंगयोन मैंगसे।
९ महीशक	मोगोक और कैतप्यिन।
१० सेन् (चीनरट्ट)	भामो, कौंगसिन।
११ आड़वी	मोगौंग और मोनहिन।
१२ मणिपुर	कथे और न्येथिन।
१३ जयवर्द्धन	जयवती और केतुमती।
१४ ताम्रद्वीप	पगान, म्यिनजैंग, पिन्या और आवा।
१५ कम्बोज	मोने, न्योंगवे, थिवो और मोमेक।

रतनपुरमें उनकी राजधानी थी। किसी किसीके मतसे रत्नपुरका वर्त्तमान नाम आवा है और कोई मन्दालय (रतनापयय) बतलाते हैं। जो कुछ हो, आवानगरके सिवा रत्नपुर राज्यके निकटवर्त्ती मान्दालय, अमरापुर आदि कोई भी नगर ब्रह्मके इतिहासमें वैसी प्रतिष्ठा नहीं पा सका है।

† राजा सिनव्यूइन-स्थापित शिलाफलकके अलावा भामोनगर-ब्रह्मपुरी, रतनसिंह—येदनाथेंगा=भ्वेवा, शेवदगोन—दिगुम्पछेटी, रंगून—तिगुस्प (तिकुम्भ) नगरका भी इसी प्रकार नामान्तर दिखलाई पड़ता है। पगोदामें बुद्धके जो सब स्मृतिचिह्न हैं, वे दगोन (तकुन) शब्दमें हैं। वे संस्कृत धातुगर्भ और सिंहली भाषाके दागोब शब्दके अपभ्रंशसे जान पड़ते हैं।

* ब्रह्ममें जो बुद्धागमन हुआ था, वह अनुमानमात्र है। यथार्थमें किस समय बौद्धपरिव्राजकगण वहां गए थे, उसकी भी कोई स्थिरता नहीं है। यहांका प्राचीनतम इतिहासांश विश्वासयोग्य नहीं होने पर भी भारतसीमांतवर्त्ती चीनाधिकृत राज्योंके मध्ययुगकी घटनासे बहुत कुछ मिलता जुलता है। किंतु दुःखका विषय है, कि हिंदू इतिहासमें उसका कोई भी उल्लेख नहीं है।

११ वींसे १३वीं शताब्दी तक ब्रह्मसाम्राज्य उन्नतिकी चरम सीमा पर पहुंच गया था। उस समय पगाननगरकी वर्त्तमान ध्वंसावशिष्ट कीर्त्तियां शोभायमान थीं। कुवलय खाँके राजत्वकालमें चीन (मङ्गोलिया) सैन्यके आक्रमणसे उक्त नगर तथा वहांके राजवंश कालमुखमें पतित हुए। इसके बाद ब्रह्मसाम्राज्यका ह्रास होने लगा और शानवंशने मध्यब्रह्ममें अधिकार जमाया। १५वीं शताब्दीके प्रारम्भमें तौङ्ग-गु (पेगुसे उत्तरपूर्व अवस्थित) प्रदेशके राजाने अपने बाहुबलसे पेगु, आवा और आराकान राज्य जीत कर शासन फैलाया। १६वीं शताब्दीके भ्रमणकारियोंसे उनका पूरा विवरण मिलता है।

पेगुकी राजशक्तिका ह्रास होने पर आवानगरमें नूतन राजवंशकी प्रतिष्ठा हुई। पेगुराज्य जीत कर आवाराज-वंशधरोंने १७वीं और १८वीं शताब्दीके मध्यकाल तक राज्यशासन किया। बाद तैलङ्गोंने विद्रोही हो कर आवापतिको कैद कर लिया। राजधानी दखल करनेके बाद धीरे धीरे सारा ब्रह्मराज्य अपने शासनाधीन कर लिये। मौत्शोवो (श्वेवो) ग्रामके अधिपति आलोम्प्रा (अलौङ्गपया)-ने तैलङ्गोंसे अपने राज्यका उद्धार करनेकी इच्छासे दलबल इकट्ठा कर १७५३ ई०में राजधानी जीत ली। १७५४ ई०में पेगुवासियोंने पुनः आवानगर पर चढ़ाई करनेके लिए जंगीजहाज ले कर राजधानीकी ओर चल दिये, किन्तु वे आलोम्प्राके युद्धमें पराजित, विध्वस्त तथा विताड़ित हुए। इधर उद्धत ब्रह्मवासियोंने प्रोम, दोनव्य, आदि नगरसे तैलङ्गोंको मार भगाया। उक्त वर्षमें ही पेगुराजने फिरसे प्रोम अवरोध किया, अलौङ्गपयाने दलबलके साथ वहां जा कर उनका सामना किया। इस प्रकार बारम्बार ब्रह्मवासियोंसे पराजित हो कर वे लोग उत्तरब्रह्म छोड़ दक्षिणकी ओर चले गए और समुद्रके किनारे तथा नदीके मुहानेके पार्श्ववर्त्ती वाणिज्यस्थानसमूह पर अधिकार जमाया।

१७५५ ई०में पेगुराजके भाईने फिरसे ब्रह्मराजके विरुद्ध युद्ध-यात्रा की। किन्तु वे शत्रुके हाथसे पराजित हो कर दलबलके साथ सिरियम दुर्गमें आश्रय लेनेको बाध्य हुए। उस समय सम्राट् अलौङ्गपया श्यामवासीके आक्रमण और प्रजाविद्रोहसे अपने देशकी रक्षा करनेमें लगे थे; अतः वे पेगुवासियोंका पीछा न कर सके। कुछ दिन तक सुस्थिर-चित्तसे उक्त दुर्गमें वास करने पर भी, उनकी सुखनिद्रा बहुत जल्द टूट गई। सम्राट् अलौङ्गपयाने श्यामयुद्धमें विजय प्राप्त कर लौटनेके समय सिरियम दुर्ग घेर लिया; अपनी रक्षाका कोई उपाय न देख पेगुवासियोंने डरके मारे शत्रुको दुर्ग छोड़ दिया। इस युद्धमें फरासीने पेगुकी और अंगरेज-नाविकोंने ब्रह्मको सहायता पहुंचाई थी। डूप्ले द्वारा भेजे हुए फरासी जंगीजहाज नदीपथमें आने पर ब्रह्मराज-सैन्योंने उन्हें लूट लिया। उसी समय एक जहाज नाविकके साथ नदीमें डूब गया था।

दूसरेकी सहायतासे वञ्चित और नदीतीरवर्त्ती स्थान ब्रह्मराजके अधिकृत होने पर पेगुवासियोंने सहज हीमें वश्यता स्वीकार की। १७५७ ई०में सम्राट् अलौङ्गपयाने छलपूर्वक नगरद्वार खोलवाया और उसे अपने अधिकारमें कर लिया। बाद उन्मत्त सेनादल नगरमें लूटपाट मचाने लगे।

दूसरे वर्ष अधीनताकी बेड़ीसे छुटकारा पानेके लिए पेगुवासी व्यर्थ चेष्टा करने लगे। उस समय विजय करने पर उन्होंने श्यामराजके विरुद्ध युद्धयात्रा की और मार्गुई तथा तेनासरिमको अपने अधिकारमें कर लिया। श्यामराजधानी पर चढ़ाई करनेके समय वे पीड़ित हो गए और उसी हालतमें स्वदेश लौटते समय रास्ते हीमें १७६० ई०को ५० वर्षकी उम्रमें उन्होंने मानवलीला संवरण की। वे लगभग आठ वर्ष राज्य करके ही उतने बड़े साम्राज्य स्थापनमें समर्थ हुए थे। मृत्युके एक वर्ष पहले वे अंगरेजोंको पेगुके सहायक समझ कर उनके विरुद्धाचारी बने थे। इस भित्तिशून्य भ्रममें पड़ कर उन्होंने नेग्रिसनन्दरके अंगरेजोंकी हत्या की थी।

उनकी मृत्युके बाद उनके बड़े लड़के नौङ्गदवींग्यि राजा हुए। इनके छोटे भाई हसिन-फयू-इन कुछ सेनाके साथ इनके राजत्वकालमें विद्रोही हो कर राज्यमें उत्पात मचाने लगे। तीन वर्ष राज्य कर वे कराल कालके गालमें फँस गए। नाबालिग भतीजेको सिंहासन पर

न विठा कर हसिनफ्यू इनने स्वयं राजदण्ड धारण किया। राजपद पर अधिष्ठित हो कर उन्होंने अपने पिताके दिखलाये हुए पथका अनुसरण करके १७६६ ई०में राजधानीके निकटवर्त्ती देश पर अधिकार जमाया। यहां तक, कि श्याम और मणिपुर राज्य भी उनके दखलमें आ गया। इस प्रकार ब्रह्मसेना जब धीरे धीरे देश जीतने लगी, तब यूनानप्रदेशसे प्रायः ५० हजार चीन सैन्यने ब्रह्मराज्य पर आक्रमण किया। शुकौशली ब्रह्मराजके चातुरी जालमें फंस कर उन्होंने हार मानी। उतनी बड़ी सेनामेंसे एक भी स्वदेश न लौट सकी, सिर्फ ढाई हजार सेना ब्रह्मवासीका दासत्व करनेके लिए वन्दीरूपमें राजधानी लाई गई। चीनब्रह्म-युद्धमें मौका पा कर १७७१ ई०में श्यामराजने अधीनता-तोड़ देनेकी इच्छासे ब्रह्मराजके विरुद्ध अस्त्रधारण किया। उनका दमन करनेके लिए ब्रह्मसेना दक्षिणकी ओर चल चली। रंगून नगरके समीप पेगु और ब्रह्मसैन्यमें मुठ-भेड़ हुई। पेगुसेनादलने बड़ी निष्ठुरतासे ब्रह्मसैन्यका विनाश किया। १७७४ ई०में राजा हसिन-फ्यू-इन स्वयं इस दस्युदलके किये हुए अपराधका समुचित दण्ड देनेके लिए अग्रसर हुए। पहली लड़ाईमें ही उन्होंने पेगुवासीसे मार्त्तवान प्रदेश और दुर्ग छीन लिया। दूसरे वर्ष वे दलवलके साथ इरावती पार कर रंगून पहुंचे और अपने उद्दीप्त क्रोधको शान्ति करने के लिए बूढ़े पेगुराजको मंत्रीके साथ यमपुर भेज दिया। १७७६ ई०में वे स्वयं अठारह वर्षके पुत्र सिंगु-मिङ्गके हाथ एक विस्तीर्ण साम्राज्य सौंप कर इस लोकसे चल बसे। नररक्तपिपासु यह वालक अपनी यथेच्छाचारिताके दोषसे राज्यच्युत हुए। १७८१ ई०में उनके चाचा भोद्रौफ्र (मेन्तरगि)-ने उन्हें मार कर राज-सिंहासन अपनाया और १७८३ ई०में आराकान प्रदेश ब्रह्मराज्यमें मिला लिया। उसी वर्ष वे नये अमरापुर नगरमें राजधानी उठा ले गए।

पूर्वोक्त श्यामविद्रोहके वाद ब्रह्मगण फिर भी श्याम राज्य प्राप्त न कर सके; किंतु मार्गुई उपकूलवर्त्ती कुछ स्थान उनके अधिकारमें था। १७८५ ई०में ब्रह्मसेनाने अङ्गीजहाज ले कर जलपथसे जाङ्क-सिलोन पर चढ़ाई कर दी; युद्धमें पराजित और विशेषरूपसे क्षतिग्रस्त होने पर भी ब्रह्मवासी निरुद्यम न हुए। ब्रह्मराजने १७८६ ई०में दलवलके साथ आ कर श्याम-राज्य पर धावा मारा। इस युद्धमें पहले अपमानका पूरा वदला तो नहीं मिला, पर १७६३ ई०को संधिके अनुसार ब्रह्मराजको श्यामराजसे क्षतिपूरणस्वरूप तेना-सरीम प्रदेश और मार्गुई तथा टाभय वन्दरगाह मिला।

१७६५ ई०में तीन डकैत ब्रह्मराज्यसे अङ्गरेजाधिकृत चट्टग्रामप्रदेशमें भाग गए जिनको पकड़नेके लिए लगभग पांच हजार ब्रह्मसेना भारत सीमान्त पर आ धमकी। अङ्गरेजोंने उनके साथ किसी प्रकार विवाद न कर उक्त तीनोंको लौटा दिया और ब्रह्मराजके साथ मित्रता कर ली।

अनन्तर राज्यपिपासु अङ्गरेजों और ब्रह्माके साथ घोरतर संग्राम छिड़ा। अङ्गरेज लोग जिस प्रकार वंगालके पूर्वदेश जीतनेकी इच्छासे धीरे धीरे कदम बढ़ा रहे थे, उसी प्रकार ब्रह्मसेना भी पश्चिमकी ओर आसाम मणिपुर जीत कर श्रीहट्टसीमा तक पहुंच गई थी। वहां अङ्गरेजरक्षित कछार राज्यसीमामें उनकी गति रोक दी गई। ब्रह्मगण अङ्गरेजोंके वलकी परीक्षा करनेके लिए सीमान्त प्रदेशमें रह कर उत्पात मचाने लगे। गुप्तभावसे अंगरेजोंके सेनादल पर आक्रमण, अङ्गरेजीप्रजाको हरण करके पलायन, चट्टग्राममें वलपूर्वक पदार्पण और अन्तमें १८२३ ई०में नाफनदीके मुहाने पर स्थितअङ्गरेजाधिकृत शाहपुरी द्वीपका लुण्ठन तथा अङ्गरेजहत्यारूप सैकड़ों अत्याचारसे वे लोग तृप्त न हुए—उनका नृशंस पिपासा-स्रोत दिन पर दिन वढ़ता ही गया। इस कठोर अत्या-चारसे छुटकारा पानेके लिए अङ्गरेजोंने वारम्वार प्रार्थना की; किंतु उन्होंने एक भी न सुनी। आखिरकार १८२४ ई०में अङ्गरेजगवर्मेण्टने ब्रह्मराजके विरुद्ध युद्ध ठान दिया।

अङ्गरेजोंने एक वड़ी सेना इकट्ठी की। सेनापति ग्राण्ट और कैम्पवेल (Commodore Grant and Sir Archibald Campbell)-ने युद्धके अधिनायक हो कर दलवल-के साथ रंगूनशहरसे थोड़ी दूर पर लङ्गर डाला। अङ्ग-रेजोंका गोला देख कर ब्रह्मवासी डरके मारे नगर

छोड़ कर भाग चले, इस प्रकार जहां ही अङ्गरेजी-सेना घुसती, वहीं जनशून्य तथा खाद्यादिविहीन स्थान उनके हाथ लगते। जुलाईसे अगस्त तक कई एक छोटी छोटी लड़ाइयां तो हुईं, पर आवा और थरावतीराजकी सेना भागने पर हो गई थी। इरके मारे छिपी हुई ब्रह्मसेनाके साथ किसी विशेष युद्धकी आशंका न देख कैम्पवेलने ब्रह्माधिकृत टाभय और मार्गुई प्रदेश तथा सारा नेनासेरिम उपकूल पर दखल जमाया। उसी वर्षके अक्टूबर महीनेमें उन्होंने पेगुनदीके मुहाने पर स्थित पुर्त्तगीजोंका प्राचीन सिरियम दुर्ग तथा कोठी और मार्त्तावान प्रदेश अधिकार कर ब्रह्मराज्यमें अङ्गरेज-प्रभाव विस्तार किया।

सेनासमूहको ऐसी भीति और रणविमुखता देख कर आवाराजने प्रसिद्ध वृद्ध सेनापति महावन्दुलाको अधिनायक बनाया। बुन्दलाने दलबलके साथ आ कर अङ्गरेजसेनादलको तो घेर लिया था, पर इस वृद्धावस्थामें उनका अस्त्रधारण करना वृथा हुआ। अङ्गरेजीसेनाके सामने ठहरनेमें असमर्थ जान कर ब्रह्मसेना तितर बितर हो गई। बुन्दलाने विशेष रणनिपुणताके साथ अपनी सेना एकत्र करनेकी चेष्टा की, किंतु वन्दूकके भयसे ब्रह्मगण रणस्थलमें क्षण भर भी न ठहर सके। वे प्राण ले कर भागे। यह घटना १५वीं दिसम्बरको घटी थी।

ब्रह्मपराजयसे उत्साहित हो कर कैम्पवेल साहब प्रोमनगरकी ओर बढ़े। १८२५ ई०के फरवरी महीनेमें उन्होंने सेनाको दलमें बांट कर स्थल और जलपथसे दोनव्यूनगर पर चढ़ाई कर दी। यहां उक्त वृद्ध ब्रह्मसेनापति वन्दुला अङ्गरेजोंकी गोलीके शिकार बने। अङ्गरेजोंने प्रोमनगरमें वर्षाकाल विताया। शरत्कालमें एक महीनेके लिए युद्ध बन्द रहा। इधर भारतवर्षमें रह कर अङ्गरेजोंने आसामसे ब्रह्मवासियोंको भगा दिया और आराकान प्रदेश जीत कर सेनापति मोरीसन (General Morrison)ने ब्रह्मराज्यमें अङ्गरेज-प्रभाव फैलाया।

अक्टूबर महीनेमें ब्रह्मसैन्यने पुनः युद्धकी तैयारी कर प्रोमनगरके अङ्गरेजों पर तीन ओरसे चढ़ाई कर दी; किन्तु अङ्गरेज-सेनापतिने विशेष दक्षतासे उसे बचाया। अन्तमें ब्रह्मराज अङ्गरेजोंके साथ सन्धि करनेमें बाध्य हुए। सन्धिपत्र पर दस्तखत करने पर भी ब्रह्मराजकी अन्तर्निहित क्रोधाग्नि न बुझी। फिर कई एक छोटे छोटे युद्धके बाद १८२६ ई०की ६वीं फरवरीको यान्दाबुकी सन्धि हुई। बाद दोनोंमें मेल हो गया।

राजा फगि-द्वी (नौङ्ग-दौगि) अङ्गरेजोंके साथ सन्धि कर ब्रह्मराज पर शासन करने लगे। कौनबौङ्गमेन नामक उनके एक भाईने १८३७ ई०में बलपूर्वक सिंहासन पर अधिकार जमाया और अङ्गरेजोंका विश्वास न कर वे ब्रह्मसैन्यकी सहायतासे उनके घोर विरोधी हुए। उक्त वर्षके अङ्गरेज-प्रतिनिधि मेजर बार्नि (Major Burney) और १८४० ई०में सेनापति मैकलिवड आवानगरसे लौट आये। धीरे धीरे ब्रह्मराज्यमें अङ्गरेजोंके प्रति अत्याचार होने लगा। अपने पोतनाश, नाविकोंकी लांछना, सेनाविनाश और राजकर्मचारियोंकी अवमाननासे अङ्गरेज गवर्मेण्ट तंग तंग आ गई। १८४६ ई०में राजा पगानमेङ्ग पितृसिंहासन पर बैठे। वे ऊपरसे तो मित्रका-सा भाव दिखाते, पर भीतरसे अङ्गरेजके घोर शत्रु थे। पिताके किये अत्याचारका प्रतिकार करनेमें उनके अस्वीकार करने पर अङ्गरेजोंने ब्रह्मपतिके विरुद्ध युद्ध-घोषणा कर दी जिसमें पेगुप्रदेश उनके हाथ लगा। उसी वर्षकी २०वीं दिसम्बरको लार्ड डलहौसीके आदेशानुसार वह भारतवर्षमें मिला लिया गया।

इधर राजसरकारमें घोर विप्लव उपस्थित हुआ। ब्रह्मराज पगानमेङ्ग अपने निष्ठुर अत्याचारके कारण राज्यच्युत हुए और उनके भाई मेङ्गदूनराजने अपनी रक्षाके लिये उन्हें १८५३ ई०में बन्दी कर सिंहासन पर अधिकार जमाया। उक्त राजा मेङ्गदूनमेङ्गके अंगरेजोंके प्रति दाम्भिकता दिखलाने पर भी भारत गवर्मेण्टके साथ उनका कोई विलक्षण भाव नहीं देखा जाता। १८५५ ई०में उन्होंने लार्ड डलहौसीसे मित्रता-भाव रखनेके लिये दूत भेजा; तदनुसार भारतप्रतिनिधिने भी पेगुके शासनकर्त्ता अर्थर फेरीको उनके निकट भेजा। उनके साथ सेनापति यूल (Colonel Yule) और भूतत्त्वविद् बलडहम भी गए थे। १८६२ ई०में ब्रह्मराजने अंगरेजोंको वाणिज्य करनेका अधिकार दिया। ब्रह्मदेशकी नदियोंमें वाणिज्यपोत चलानेके लिये १८६७ ई०में उन्हें आदेशपत्र और भामो आदि प्रधान शहरोंमें

वाणिज्यपरिदर्शनके एक एक कर्मचारीनियोगकी व्यवस्था भी मिली। दूसरे वर्ष मान्दालयमें अधिष्ठित अंगरेज-प्रतिनिधि स्लाडेन (Major Sladen) साहबके तत्त्वावधानमें कप्तान विलियम आदि कई एक अंगरेज-वाणिज्य देखनेके लिये ब्रह्मदेश गये। राजप्रदत्त 'येनान-शक्या' नामक जहाज पर चढ़ कर वे लोग पान्थ नगरकी ओर चले; किंतु यूनानप्रदेशोंमें मुसलमानोंके विद्रोही होनेसे उनका रास्ता रुक गया। डा० जान एण्डरशनने उस समय ब्रह्मके उद्भिद्‌तत्त्वका संग्रह किया था। १८६६ ई०में स्ट्रोभर साहब भामोनगरके प्रतिनिधि नियुक्त हुए। उनके समयमें इरावती हो कर फ्लोटिला कम्पनीने मनुष्योंके आने जानेकी सुविधाके लिए एक जहाज चलाया। ब्रह्मराजने भी अपने देशमें वाणिज्यकी उन्नति देख कर दस्युके हाथसे वणिकोंकी रक्षा करनेके लिये कच्येन पर्वतके विपदसंकुल स्थानमें सैन्यावास स्थापित किया।

१८७५ ई०को चीनराज्यके साङ्घाई प्रदेशमें जानेकी इच्छासे डा० एण्डरशन आदि मार्गारि साहबके साथ ब्रह्मराज्य हो कर चले। चीनसीमान्त पर पहुंचते ही मानवैङ्कके निकट मि० मार्गारि चीनदस्युके हाथसे मारे गए और साथ साथ उस यात्राका मुख्य उद्देश्य जाता रहा।

१८७८ ई०में राजा मेनदूनकी मृत्यु होने पर उनके पुत्र थिवोंने जनताकी अनुमतिसे राजसिंहासन अपनाया। राजासन पर बैठते ही उन्होंने १८७६ ई०में अपने आत्मीयवर्गको मार डाला। इस पर अंगरेज-प्रतिनिधिने उनकी निन्दा की; क्योंकि उनकी ऐसी निष्ठुर प्रकृति भविष्यत्‌में अंगरेजोंके लिये भी विपज्जनक हो सकती थी। भूतपूर्व राजचरित एकबारगी दोषमुक्त नहीं होने पर भी, उनके राजत्वकालमें वैसा नृशंसहत्याकाण्ड कभी नहीं हुआ था। वे धर्म भीरु और दयालु थे। बौद्धधर्ममें उनकी प्रगाढ़ भक्ति थी और कभी भी वे धर्मयाजककी बातके विरुद्ध काम नहीं करते थे। उन्होंने अपने धर्म-मतानुयायी कई एक नये पथ चलाये। अंगरेजोंके साथ उनकी मैत्री थी। अन्यदेशीय राजाओंके साथ बन्धुत्व-स्थापन तथा राज्यके उन्नतिकल्पमें उनका विशेष ध्यान था।

थिवोंके राजकीय हत्याकाण्डके कुछ बाद ही अंगरेजप्रतिनिधि शाव (R, B, Shaw C, I, E,) साहबकी मन्दालय नगरमें मृत्यु हुई। अनन्तर बार्व साहब (Mr, St, Barbe) नियुक्त हुए; किन्तु ज्यादा दिन वे राज-दरबारमें न रह सके—वे दलबलके साथ आवानगरसे भाग आये। अत्याचारी राजाके प्रभावसे उत्तेजित हो कर ब्रह्मगण अंगरेजोंके विद्वेषी हो उठे। १८८० ई०में राजपुत्र नौङ्ग्यक सीमान्त प्रदेशमें राजविद्रोही हुए, किन्तु हीनबल होनेके कारण वे ज्यादा देर तक राज-सैन्यके सामने न ठहर सके। अन्तमें उन्होंने अंगरेजोंकी शरण ली। उनकी देखरेखमें वे कुछ दिन तक कलकत्तेमें रहे। १८८२ ई०में ब्रह्मराजने अंगरेजोंके साथ गोलमाल मिटानेको इच्छासे सिमला पहाड़ पर भारत-प्रतिनिधिके पास दूत भेजा, किन्तु इसका कोई फल न निकला। १८८६ ई०में लार्ड डफरिनके आदेशानुसार अंगरेजोसेनाने ब्रह्मको जीत कर भारतके अंतर्भुक्त कर लिया और ब्रह्मराज थिवो बन्दीभावमें भारतवर्ष लाये गये। उस समय एक स्वतन्त्र अंगरेज शासनकर्त्ताके हाथ ब्रह्मराज्यका शासनभार सौंपा गया।

ब्रह्मका राजतन्त्र यथेच्छाचारिताके दोषसे दोषी था। राजा अपने इच्छानुसार व्यक्तिविशेषको कठोर यंत्रणा, कारावास अथवा मृत्यु तकका दण्डादेश करते थे। उनके मंत्रियोंका कार्य स्वतंत्र था। ब्रह्मकी मंत्रिसभा दो भागोंमें बंटी थी—एक दल राजप्रासाद-के परिदर्शनमें लगा रहता और दूसरा शासनविभागके कर्त्तव्याकर्त्तव्य निरूपणमें नियोजित था। हुत्‌दव नामक महासभासे ही सारे ब्रह्मसाम्राज्यका शासनादेश प्रचारित होता था। इस सभाके अधीन राजनियम-संस्कार और संगठन, मंत्रिसभा तथा महाधर्माधिकरण अधिष्ठित था। राजा नाममात्रको इसके सभापति होते थे; उनके अभावमें युवराज अथवा दूसरे कोई राजपुरुष सभापतिके आसन पर बैठते थे; किंतु यथार्थ-में प्रधान मंत्री ही सभापतिका काम करता था।

हुत्‌ सभाके कर्मचारियोंकी चौदह श्रेणी थी। उनका काम परस्पर विभिन्न था—

१ वूङ्गि या मिङ्गि—इसमें चार प्रधान मंत्री (Secre-

tary of State) रहते थे। परस्परका कार्यविभाग स्वतंत्र होने पर भी यथार्थमें सभी आवश्यकतानुसार एक दूसरेका काम कर देते थे।

राजस्व, राजस्व तथा आयव्यय-सम्बन्धीय जितने कार्य थे, सबोंको देखरेख उन्हींके हाथ था। दीवानी और फौजदारीके गुरुतर विचारका भार उन्हींके ऊपर था। ये लोग युद्धविग्रहके समय सेनावाहिनीपरिचालनका आदेश देते थे। यहां तक, कि आवश्यकता पड़ने पर उन्हें युद्धक्षेत्रमें जा कर सेनापतिका काम भी करना पड़ता था। (२) मिनजुगियन—अश्वारोही सेनापति और (३) अथि-व न—राजपरिवारको छोड़ कर जनसाधारणके परिदर्शक। ह्लूतसभामें इन लोगोंका कोई काम नहीं रहने पर भी इनकी गिनती दूसरी श्रेणीके सभ्योंमें होती थी। (४) वूनदौक—प्रधान मंत्रीका सहायक (Under-Secretary of State)। ये भी चार थे। समयानुसार भिन्न भिन्न प्रदेशके शासनकर्त्ता भी इस पद पर नियुक्त होते थे। (५) नाखनदव—ये चार मनुष्य राजवाक्यावली अपनी अपनी पुस्तकमें लिख कर सभामें पेश करते और पुनः सभाके अनुमोदित प्रस्तावको लिख कर राजाको सुनाते थे। (६) सय्यदवगि—राजलिपिकार या सहायक सम्पादक। यथार्थमें ये ही लोग राज्यका अधिकांश काम करते थे। वाद चार आमेन्द्व्यय—ये राज सम्बन्धीय नथियोंकी रक्षा और राजादेशानुसार लिपिकार्यमें नियुक्त रहते थे। (७) अथोंगसययोंके ऊपर राजप्रासाद या राजकर्मचारियोंके कर्मस्थान-निर्माणका भार सौंपा हुआ था। (८) अह्नदव्यय और अवयौक—प्रथम व्यक्ति ह्लूतसभाके अनुमोदित आदेशादि लिखते और तदनुमति अनुसार यथास्थान भेज देते थे। द्वितीय व्यक्ति विभिन्न स्थानसे आये हुए पत्रको पढ़ कर उन्हें मन्त्रि सभामें पेश करते थे। (९) थौदवगण—राजपत्रग्राहक। ये लोग सिर्फ राजाके नामसे आये हुए पत्रकी देखभाल करते थे, अन्य राजकीय पत्रसे इन्हें कोई सम्पर्क न था। ये राजादेशानुसार वर्षमें 'कदववे' उत्सव मनाते थे। उस समय सामन्त तथा अमात्यगण दरबारमें आ कर राजोचित सम्मान दिखाते थे। राजा भी उन्हें स्नेह, दया, क्षमा और अभयदान दे विदा करते थे। (१०) सेसेसाङ्गसयय—तोशाखानाके दीवान, राजप्रदत्त उपढ़ौकन आदिकी तालिका बनाना, उनकी देखरेख करना और दरबारमें उपढ़ौकन दाताका नाम पढ़ना ही उनका काम था। यौङ्ग औगुन दरबार या उत्सवादिके कर्मकर्त्ता। वाद नेचा और थिससदव्ययोंका काम। ये उत्सव सभामें आये हुए मनुष्यको बैठाते थे।

पहले ही कहा जा चुका है, कि ह्लूतसभाके सदस्यके सिवा और भी एक मंत्रिसभा राजप्रासादकी देखभालमें नियुक्त होती थी। इनमेंसे अत्विनवुन सर्वप्रथम था। ये ह्लूत सभाकी राजवार्त्ता भेजते तथा वहांकी बातें राजाके सामने कहते थे। तत्परवर्त्ती खण्डवज्निन उनके सहायक थे। इस अन्तःपुरसभाका नाम वेःद्के था। ब्रह्ममें ह्लूत और 'वेःद्के' नामक सभाके अलावा और धनागाररक्षाके लिए 'श्वयके' नामकी और एक सभा थी जिसमें राजाके बहुमूल्य द्रव्यादि रहते थे।

उस समय ब्रह्मदेशके विभाग प्रदेश, जिला, नगर और ग्रामादिमें विभक्त थे। प्रदेशमें एक म्योवून (शासनकर्त्ता) नियुक्त रहते थे। ये ही प्रजाके हर्त्ताकर्त्ता थे, किन्तु इनके आदेशके विरुद्ध प्रत्येक मनुष्यको ही महासभामें आपत्ति करनेका अधिकारी था। हरएक उपविभाग तथा ग्राममें एक निम्नतम कर्मचारी राजकार्य चलाता था।

ब्रह्मवासियोंमेंसे अधिकांश बौद्ध हैं; इनमें कोई साम्प्रदायिक विभेद नहीं देखा जाता। प्रत्येक श्रेणीके मध्य एक मठ या धर्मालय है। पतिव्रता, मिताचार और सत्यकी रक्षा करना ही इनका प्रधान धर्म है। धर्मगत या जातिगत कोई विभाग नहीं रहने पर भी यहां धर्ममन्दिरादिके अधिष्ठाता या धनवान् राजपुरुषोंके साथ साधारण मनुष्यका थोड़ा पार्थक्य देखा जाता है। बौद्धपुरोहित पुंगिगण सब जगह पूजा पाठ करते हैं।

बुद्धके सिवा यहां 'नाट' (उपदेवताविशेष)-की उपासनाका प्रभाव देखा जाता है। यहांके अधिवासियोंका विश्वास है, कि यही उपदेवता स्वर्ग और मर्त्यके सभी पदार्थोंके ऊपर प्रच्छन्न भावसे आधिपत्य करते हैं। बौद्धधर्मका प्रचार करनेके लिए ब्रह्मवासियोंके उस धर्ममें

दीक्षित होने पर भी उनकी पूर्वानुष्ठित भूतोपासनाका प्रभाव ज्योंका त्यों बना रहा। अब भी करेन, चीन आदि पार्वतीय जातिमें नाटपूजाका बहुत प्रचार देखा जाता है। सम्प्रति करेनगण अपनेको बौद्ध बतलाते हैं।

बौद्धधर्मावलम्बी ब्रह्मोंके मध्य बाल-विवाह प्रचलित नहीं है। कन्या सब प्रकारसे मातापिताके अधीन रहती है। यदि कोई युवक रूप पर मुग्ध हो कर किसी युवतीके साथ विवाह करना चाहे; तो पहले उसे उस कन्याके पिताकी अनुमति लेनी पड़ती है और सुपात्र देख कर पिता भी उस युवकको अपनी कन्याके साथ प्रीतिसाहचर्य (Courtship) करनेका आदेश देते हैं। इस पारस्परिक प्रेमके समय दोनोंमें विशेष कटाक्ष चलता है। कन्याकी माता ही साधारणतः विवाहकी घटक हो कर उसके अभिमतानुसार उपयुक्त पात्र चुनती और कायमनो वाक्यसे उक्त दम्पतिके मध्य सुप्रणय संस्थापन करनेकी चेष्टा करती है। पिताकी अनुमति होने पर भी विवाहमें कन्याकी सम्मति आवश्यक है, नहीं तो विवाहमें अकसर गोलमाल होता है।

बौद्धधर्ममें बहुविवाह निषिद्ध नहीं होने पर भी, ब्रह्मवासी साधारणतः एक स्त्रीको छोड़ कर दूसरी ग्रहण नहीं करते। धनवान् वणिक् और राजकीय कर्मचारियोंका एकसे अधिक पत्नी ग्रहण करना समाजमें विशेष निन्दनीय है। दूसरी पत्नी ग्रहण करनेसे पहलीको स्वतन्त्र स्थान देना होता है—सपत्नीको ले कर वे एक साथ नहीं रहते। दम्पतिकी इच्छा होनेसे गांवके बड़े बूढ़े के आदेशानुसार विवाहबन्धन दूर सकता है। किन्तु जब विशेष गोलमाल रहता अथवा स्वामी या पत्नी कोई भी वैसा करनेमें राजी नहीं होती तब राजधर्माधिकरणका विचार लेना पड़ता है। इस प्रकार स्वामी या स्त्री परस्पर अलग होने पर भी धनाधिकारसे वञ्चित नहीं होती। कहीं कहीं पर परित्यक्ता रमणी या पुरुष सारी सम्पत्तिका अधिकारी हो जाता है।

ब्रह्ममें जहां रमणियां वाणिज्य व्यवसायलब्ध जीविका द्वारा आनन्दसे दिन बिताती हैं, वहां विवाह-जीवन अत्यन्त सुखकर होता है। करेन चीन आदि पार्वत्य जातिकी विवाह-प्रथा स्वतन्त्र है। किन्तु जिन सब करेनोंने ब्रह्मराजके शासनमें आ कर उनके आचार व्यवहारका अभ्यास तथा अनुकरण किया है, उनकी रीतिनीति प्रायः ब्रह्मोंको जैसी है। किन्तु पार्वतीय करेनका आचार विचार पूर्वका-सा बना है।

करेनमें बहुविवाह प्रचलित नहीं है। किन्तु जो ब्रह्म-संसर्गसे बौद्धधर्मावलम्बी हुए हैं, उनमें शायद ही एकसे अधिक विवाह देखा जाता है। व्यभिचार दोषसे दूषित होने पर पत्नीका त्याग करना पड़ता है—सतीत्वरक्षा ही इस जातिकी रमणीका प्रधान कर्त्तव्य है। चीनके मध्य बहुविवाह चलता है। सारे ब्रह्मसाम्राज्यमें सैकड़ों मठ नजर आते हैं जिनकी देखभाल पुङ्गिगण करते हैं। धर्मचर्याके सिवा इनका और दूसरा काम नहीं है। ये धर्माध्यक्षगण अपने अपने मठ (क्यौङ्ग)-में रह कर ग्रामीण बालकोंको शिक्षा देते हैं। शिक्षाकाल तक बौद्धबालकोंको मठमें ही रहना पड़ता है। वहां ग्रन्थादि पढ़ना और लिखना तथा शाक्यबुद्धप्रवर्त्तित धर्ममतका अनुशीलन करना ही उनका प्रधान कर्त्तव्य है। पिताकी दरिद्रताके कारण बालकगण यथाविहित हरिद्रा वस्त्रपरिधान और संस्कारादिसे सम्पन्न तो नहीं हो सकते, पर सभी शिक्षार्थी हो कर कौङ्गथा (मठबालक) नामको सार्थक बनाते हैं। बालकोंके मठमें जाना सख्त मुमानियत है। शहर और बड़े बड़े गांवके विद्यालयमें बालक तथा बालिका एक साथ शिक्षा पाती हैं।

उपर्युक्त जातिविभागके अलावा ब्रह्मराज्यमें ब्रह्म, तैलङ्ग (मोन), थौङ्गथा, म्रो, क्वमि, शान आदि कई एक जाति और उन लोगोंके सहयोगसे उत्पन्न मिश्रजाति भी देखनेमें आती हैं। आराकान प्रदेशमें औपनिवेशिक हिन्दू और ब्रह्म जातिका वास है*। इसके सिवा पार्वत्य प्रदेशमें सक, चव, कुन, शन्दू, यवेन, यव आदि कई एक जातियां पाई जाती हैं जिनकी भाषामें बहुत कुछ विभिन्नता भी है।

* अर्थर फेरीने लिखा है, कि जिस प्रकार मध्य एशियासे आर्य हिंदू भारतवर्ष आये, उसी प्रकार एक दूसरे जनस्रोतने हिमालयके पूर्व ओर पार कर तागौंग प्रदेशमें राज्य स्थापित किया और धीरे धीरे वहांसे पश्चिममें आराकान और दक्षिणमें प्रोम तथा तौंगगुन नगरमें राज्य फैलाया।

ब्रह्मके अधिवासी साधारणतः कठोर परिश्रमी और शिल्प निपुण होते हैं। नौका और गृहादिका निर्माण तथा शिल्पनैपुण्यपूर्ण धर्ममठादि उनके अत्युत्कृष्ट निदर्शन हैं। शिल्पकार्यसे ब्रह्मोंके कोमल स्वभावका परिचय मिलता है सही, किंतु अत्यन्त सामान्य कारणसे ही वे क्रुद्ध हो जाते हैं। मनुष्य-जीवनके प्रति उन्हें तनिक भी दया नहीं है। छोटी-छोटी-सी वातके लिए भी वे नरहत्या कर डालते हैं—यहां तक कि किसी दिन व्यञ्जनादि खराव होनेसे वे अपनी प्रियतमा स्त्रीका प्राणनाश करनेमें भी कुण्ठित नहीं होते। दस्युवृत्ति तथा अत्याचार-व्यभिचार इनके जीवनका एक पौरुष जनक कार्य है।

यहांकी स्त्रियां परदानशीन नहीं होतीं—वे स्वच्छन्दसे इधर उधर घूम सकती हैं। वाजारसे द्रव्य आदि खरीदना, घरका कामकाज करना, पण्यद्रव्य वेचना और रेशमी कपड़ा वुनना इनका प्रधान कर्म है। विवाहसे पहले वालिकागण वाजारमें फलमूलादि वेच कर जो लाभ उठाती हैं। उसीसे वे अपना वस्त्रालङ्कार वनवाती हैं।

ब्रह्मदेशमें जो सम्वत् प्रचलित है, वह ६३९ ई०के अप्रिल (वैशाख)-से आरम्भ हुआ है। २९ या ३० दिनका चान्द्रमास रूप वारह महीनेका वर्ष होता है। प्रति मासके शुक्ल या कृष्ण पक्षसे मासगणना होती है। दिन-रात आठ पहरमें अर्थात् दिन और रात प्रति तीन घण्टेके अन्तर विभक्त है। उस समय एक एक वार घण्टेकी आवाज होती है।

पहले ही लिखा जा चुका है, कि ब्रह्मकी भाषामें अनेक पालि और अपभ्रंश संस्कृत शब्दका प्रयोग है*। ब्रह्मभाषाका प्रत्येक अक्षर ही भारतीय वर्णमालासे लिया गया है। इनके काव्यविभागकी जव तक विशेष आलोचना न की जाय, तव तक उसे समझना असम्भव है¶।

ब्रह्मराज्यस्थित सभी मठमें तालपत्र और वांससे वनाए हुए कागज पर लिखी हुई पोथी नजर आती है। यतुन, पेगु, प्रोम आदिका विवरण उन उन शब्दमें देखो।

पेगुका शिवमडु पागोदा ब्रह्मका एक प्रधान और विख्यात मन्दिर है। रङ्गून नगरके समीप शिलपयागोल मन्दिर भी वहुत सुन्दर है। पर्वतके शिखर पर अवस्थित होनेसे यह स्थान दूर देशवासीकी भी दृष्टि आकर्षण करता है और इसकी स्वर्णचूड़ा सूर्यकी किरणोंमें विभासित हो कर चारों ओर प्रकाश फैलाती है। मन्दिर-वाटिका और चतुर्दिक्स्थ सौधमाला देवकीर्त्तिकी अपूर्व शोभा वढ़ाती है। नगरसे मन्दिरमें आनेका जो रास्ता है, उसके स्थान स्थान पर गौतम बुद्धकी प्रतिमूर्त्ति परिशोभित है। अमरावतीका राजप्रासाद भी शिल्पनैपुण्यमें कम नहीं है।

ब्रह्मवासिगण उत्सवमें वड़े ही पक्षपाती हैं। प्रायः प्रति सप्ताहमें एक महोत्सव हुआ करता है। धनी मनुष्यके दाह कार्य, पुत्रोंके राहान (अर्हत् पुरोहित) दीक्षामें ये लोग वहुत खर्च करते हैं। ८से १२ वर्ष तक वालक मठप्रवेशके अधिकारी हैं।

ब्रह्मदैत्य (सं० पु०) ब्रह्मा ब्राह्मणरूपी दैत्यः। प्रेतयोनि प्राप्त ब्रह्मण, वह ब्राह्मण जो मर कर प्रेतयोनि पाता है।

ब्रह्मदोष (सं० पु०) ब्रह्म-हत्या, ब्राह्मणको मारनेका दोष।

ब्रह्मदोषी (सं० त्रि०) वह जिसे ब्रह्महत्या लगी है।

ब्रह्मद्रव (सं० पु०) गङ्गा जल।

ब्रह्मद्रुम (सं० पु०) पलास, टेसू।

ब्रह्मद्रोही (सं० त्रि०) ब्राह्मणोंसे वैर रखनेवाला।

ब्रह्मद्वार (सं० क्ली०) ब्रह्मप्राप्तिकर पन्थ, खोपड़ीके वीच माना हुआ वह छेद जिससे योगियोंके प्राण निकलते हैं।

ब्रह्मद्विप (सं० त्रि०) ब्रह्मणे वेदाय विप्राय च द्वेष्टि द्विप्

---

* संस्कृत शब्दका ब्रह्मभाषामें परिवर्त्तन अमृत (अम्रैक), अभिषेक (भिषिक), चक्र (चक), द्रव्य (द्रप), कल्प (कप) ऋषि (रसि) आदि है।

¶ १७९५ ई०की २१वीं फरवरीको साइम साहव (Micheal Symes) प्रभृति कलकत्ता छोड़ ब्रह्मदेशमें अंगरेजोंके दूत वन कर पहुँचे। यहां पेगुके शासनकर्त्ताने उनकी खूब खातिर की। उक्त वर्षके अप्रिल मासमें वात्सरिक उत्सवके समय वे अभ्यर्थित हो कर नृत्यगीतादि देखने लगे। उस समय रामायणके राम-रावणका युद्ध करना और हनुमानका इन्द्रगिरिमें औषध लाना यही अभिनय हुआ था।

क्विप्। वेद और ब्राह्मणद्वेषक, जो वेद और ब्राह्मणकी हिंसा करता हो।

ब्रह्मधर (सं० क्ली०) ब्रह्मज्ञानसम्पन्न।

ब्रह्मधातु (सं० पु०) १ ब्रह्मरूप धातु। २ रुद्र।

ब्रह्मण—ब्रह्म देखो।

ब्रह्मनाभ (सं० पु०) ब्रह्म नाभौ यस्य। विष्णु।

ब्रह्मनाल (सं० क्ली०) ब्रह्मणो ब्रह्मलोकप्राप्तं नालमिव। काशीधामके मणिकर्णिका समीपस्थ तीर्थविशेष।

"पितामहेश्वरं लिंगं ब्रह्मनालोपरिस्थितम्।
पूजयित्वा नरो भक्त्या ब्रह्मलोकमवाप्नुयात्॥"
(काशीख० ६१ अ०)

ब्रह्मनालके ऊपर महेश्वर लिङ्ग स्थापित हैं। इस लिङ्गकी पूजा करनेसे ब्रह्मलोककी प्राप्ति होती है। इस तीर्थमें शुभाशुभ जो कर्म किया जाता है, वह अक्षय होता है। काशीखण्डके ६१वें अध्यायमें विशेष विवरण लिखा है, विस्तार हो जानेके भयसे यहां कुछ नहीं दिया गया।

ब्रह्मनिर्वाण (सं० क्ली०) ब्रह्मणि परब्रह्मे निर्वाणं लयः। ब्रह्ममें निवृत्त, परब्रह्ममें लय प्राप्त होना ही ब्रह्मनिर्वाण है। अज्ञानके बिलकुल दूर होनेसे ही ब्रह्मनिर्वाण होता है।

"एषा ब्राह्मी स्थितिः पार्थ! नैनां प्राप्य विमुह्यति।
स्थित्वास्यामन्तकालेऽपि ब्रह्मनिर्वाणमृच्छति॥"
(गीता २।७२)

जो समस्त वासनाओंका निःशेषरूपसे परित्याग कर आखिर जीवनके ऊपर भी निस्पृह हो अहं ममेत्वभावको विसर्जन करते हुए विचरण करते हैं, उन्हींकी निर्वाणमुक्ति होती है। इस अवस्थाको ब्रह्मसंस्थान कहते हैं। यह ब्रह्मसंस्था वा ब्राह्मीस्थिति प्राप्त होनेसे ही जीव पुनर्वार मुग्ध नहीं हो सकता। जीवनकी शेष दशामें भी यदि जीव ऐसी ब्रह्मनिष्ठामें रत रहे, तो भी वह ब्रह्ममें ही विलीन हो जाता है। इसीका नाम ब्रह्मनिर्वाण है।

ब्रह्मनिष्ठ (सं० पु०) १ पारिशपिप्पल, पारीस पीपल। (वि०) २ ब्राह्मणभक्त। ३ ब्रह्मज्ञानसम्पन्न।

ब्रह्मनीड़ (सं० क्ली०) ब्रह्मका अवस्थित-स्थान।

ब्रह्मनुत्त (सं० त्रि०) मन्त्रबलसे अपसारित।

ब्रह्मपति (सं० पु०) १ वृहस्पति। २ ब्रह्मणस्पति।

ब्रह्मपत्र (सं० क्ली०) ब्रह्मणस्तदाख्यया प्रसिद्धस्य वृक्षस्य पत्रं। पलाश पत्र, पलासका पत्ता।

ब्रह्मपत्नी (सं० स्त्री०) वाराही नामक महाकन्द शाक।

ब्रह्मपथ (सं० क्ली०) ब्रह्म प्राप्तिकर पन्थ।

ब्रह्मपद (सं० पु०) १ ब्रह्मका ज्ञान। (क्ली०) २ ब्रह्मत्व। ३ ब्राह्मणत्व।

ब्रह्मपन्नग (सं० पु०) मरुद्भेद।

ब्रह्मपर्णी (सं० स्त्री०) ब्रह्मेव विस्तीर्णानि आमूलं स्थितानि पर्णानि यस्याः। पृश्निपर्णी, पिठवन नामकी लता।

ब्रह्मपर्वत (सं० क्ली०) पर्वतभेद।

ब्रह्मपलाश (सं० पु०) अथर्ववेदकी एक शाखा।

ब्रह्मपवित्र (सं० पु०) ब्रह्मणि वेदोक्तकर्मणि पवित्रः। कुश।

ब्रह्मपादप (सं० पु०) ब्रह्म तदाख्यया प्रसिद्धः पादपः। पलाश वृक्ष।

ब्रह्मपार्षद्य (सं० पु०) वृक्ष विशेष, ब्रह्मपर्णी। २ बौद्धके मतसे ब्रह्माका परिचारक वर्ग।

ब्रह्मपाश (सं० पु०) ब्रह्मप्रदत्त अस्त्रविशेष, ब्रह्माका दिया हुआ पाश नामक अस्त्र। पाश या फंदेका प्रयोग प्राचीन कालमें युद्धमें होता था।

ब्रह्मपिशाच (सं० पु०) ब्रह्मराक्षस।

ब्रह्मपुत्त—अन्तस्थ 'व'में देखो।

ब्रह्मपुत्री (सं० स्त्री०) ब्रह्मणः पुत्री कन्या। १ सरस्वती नदी। २ सरस्वती। ३ वाराहीकन्द।

ब्रह्मपुर (सं० क्ली०) ब्रह्मणः पुरः। १ ब्रह्मके अनुभवका स्थान, हृदय। २ ब्रह्मलोक। ३ ईशानकोणमें स्थित एक देश।

ब्रह्मपुराण (सं० क्ली०) वेदव्यास-प्रणीत महापुराणभेद। पुराणोंमें इसका नाम पहले आनेसे कुछ लोग इसे आदि पुराण भी कहते हैं। विशेष विवरण पुराण शब्दमें देखो।

ब्रह्मपुरी—१ मध्यप्रदेशके चन्दा जिलान्तर्गत एक तहसील। भू-परिमाण ३३२१ वर्गमील है।

२ उक्त जिलेका एक नगर और ब्रह्मपुरि तहसीलका शहर। यह एक पर्वतके ऊपर स्थापित है। इसके सर्वोच्च स्थान पर एक प्राचीन दुर्ग अवस्थित था। अभी

यहां विचारालय, विद्यालय और पुलिसावास बनाया गया है। यहां बढ़िया सूतीके कपड़े तथा पीतल और तांबेके बरतन तैयार होते हैं।

ब्रह्मपुरी (सं० स्त्री०) ब्रह्मणः पुरी। १ विधाताका नाम। २ काशीधाम।

ब्रह्मपुरुष (सं० पु०) ब्रह्मणः पुरुष इव। ब्रह्मपावक द्वारपालरूप चक्षु, वाक्, मन और प्राणादि पञ्च ब्रह्मपुरुष। ये सब स्वर्गलोकके द्वारपाल स्वरूप हैं।

ब्रह्मपुरोगव (सं० त्रि०) पुरोगत ब्रह्म।

ब्रह्मपुरोहित (सं० पु०) ब्रह्म बृहस्पतिः पुरोहितो यस्य। देवताओंके पुरोहित बृहस्पति।

ब्रह्मपूत (सं० त्रि०) ब्रह्मणा पूतः। ब्रह्म द्वारा पवित्र। तपस्यादि द्वारा पूतदेह। (अथर्व १३।११३६)

ब्रह्मप्रसूत (सं० त्रि०) ब्रह्मणा प्रसूतः। १ ब्रह्मजात जगत्। ब्रह्मसे इस जगत्की उत्पत्ति हुई है। (क्ली०) २ ब्राह्मणारब्ध कर्म।

ब्रह्मप्रिय (सं० त्रि०) ब्रह्मध्याननिरत, जो सदा ब्रह्मचिन्तामें निमग्न रहते हों।

ब्रह्मप्री (सं० त्रि०) ब्रह्मणा प्रीणाति प्री-क्विप्। १ सोमलक्षण अन्न द्वारा प्रीत। २ स्तोत्रप्रिय।

ब्रह्मफांस (हिं० स्त्री०) ब्रह्मपाश देखो।

ब्रह्मबन्धु (सं० पु०) ब्रह्मणो बन्धुरिव। १ अधिक्षेप। २ निर्देश। ३ निन्दित ब्राह्मण, वह ब्राह्मण जो अपने कर्ममें हीन हो। ४ विप्रतुल्य भट्टादि।

ब्रह्मवध्या (सं० स्त्री०) वध-भावे-क्यप्, टाप्, ब्रह्मणः वध्या। ब्रह्महत्या, ब्राह्मणवध।

ब्रह्मबल (सं० पु०) वह तेज या शक्ति जो ब्राह्मणको तप आदि द्वारा प्राप्त हो।

ब्रह्मबलि (सं० पु०) अथर्ववेदके मन्त्रविवर्त्तक गुरुभेद।

ब्रह्मबिन्दु (सं० पु०) ब्रह्मणि वेदाध्ययनकाले बिन्दुः। १ वेदाध्ययनकालमें मुखनिःसृत लाला, वह राल जो वेद पढ़ते समय मुखसे टपकती है। यह राल दोषावह नहीं समझी जाती।

ब्रह्मबीज (सं० क्ली०) ब्रह्मसंज्ञक बीजमन्त्र। १ ओम्। २ वृक्षविशेष।

ब्रह्मबेध्या (सं० स्त्री०) नदीभेद।

ब्रह्मब्रुवाण (सं० पु०) आत्मानं ब्रह्माणं ब्रूते ब्रू-शानच्। वह जो अपनेको ब्राह्मण बतलाता हो। कर्णने अपनेको ब्राह्मण बतला कर परशुरामसे अस्त्र-शास्त्र सीखा था। (भारत ५।६१ अ०) २ ब्राह्मणब्रु, अपकृष्ट ब्राह्मण।

ब्रह्मभद्रा (सं० स्त्री०) ब्रह्मणि भद्रा ७-तत्। विप्रहितार्थ त्रायमाणौषधीभेद।

ब्रह्मभवन (सं० क्ली०) ब्रह्माका वासस्थान। ब्रह्मलोक।

ब्रह्मभाग (सं० पु०) ब्रह्मणो भागः। ब्रह्मरूप ऋत्विकके हरणीय यज्ञद्रव्यका भागभेद।

ब्रह्मभाव (सं० पु०) ब्रह्मणो भावः। १ ब्राह्म। २ ब्रह्मका स्वरूप।

ब्रह्मभावन (सं० त्रि०) ब्रह्म भावयति उपदिशति ब्रह्म-भू-णिच् ण्वुल्। ब्रह्मोपदेशक।

ब्रह्मभिद् (सं० त्रि०) ब्रह्मभेदक, जो एक ब्रह्मके विविधभेदकी कल्पना करता हो।

ब्रह्मभुवन (सं० क्ली०) ब्रह्मलोक।

ब्रह्मभूति (सं० स्त्री०) ब्रह्मणो भूतिरङ्गसम्पदिव भूतिर्यस्याः। १ सन्ध्या। (त्रि०) २ ब्रह्मजातमात्र।

ब्रह्मभूमिजा (सं० स्त्री०) ब्रह्मभूमेर्जायते या, ब्रह्म-भूमि-जन क्वियां टाप्। सिंहली।

ब्रह्मभूय (सं० क्ली०) ब्रह्मणो भावः। १ ब्रह्मत्व। २ मोक्ष। ३ ब्रह्मभाव।

ब्रह्मभूयस् (सं० क्ली०) १ ब्रह्ममें लीनभाव। २ ब्रह्मध्यानमें एकाग्रता।

ब्रह्मभूयत्व (सं० क्ली०) १ ब्रह्म भिन्न रूपमें अवस्थान। २ ब्रह्मलीनता। ३ ब्राह्मणत्व।

ब्रह्मभोज (सं० पु०) ब्राह्मणोंको खिलानेका कर्म, ब्राह्मणभोजन।

ब्रह्ममंगलदेवता (सं० स्त्री०) लक्ष्मीका नामान्तर।

ब्रह्ममठ (सं० पु०) ब्राह्मणका विद्यामन्दिर। २ राजतरङ्गिनीवर्णित काश्मीरका एक विद्यामन्दिर।

ब्रह्ममण्डूकी (सं० स्त्री०) १ मञ्जिष्ठा, मंजीठ। २ मण्डूकपर्णी। ३ भारङ्गी।

ब्रह्ममति (सं० पु०) बौद्धोंमें एक प्रकारके उपदेवता।

ब्रह्ममय (सं० त्रि०) ब्रह्मात्मक ब्रह्मन्-मयट्। १ ब्रह्मात्मक, ब्रह्मस्वरूप। २ ब्रह्मास्त्र।

ब्रह्ममह (सं० पु०) ब्रह्मणः महः। ब्राह्मणके उद्देशसे उत्सव।

ब्रह्ममाण्डूकी (सं० स्त्री०) ब्राह्मीशाक। ब्रह्ममण्डूकी देखो।

ब्रह्ममित्र (सं० पु०) ब्रह्ममित्रमस्य। मुनिभेद।

ब्रह्ममीमांसा (सं० स्त्री०) ब्रह्मणः मीमांसा ६-तत्। ब्रह्मज्ञानार्थं वेदान्त वाक्यविचारात्मक व्यास-प्रणीत ग्रन्थभेद। विशेष विवरण 'वेदान्तदर्शन' शब्दमें देखो।

ब्रह्ममुहूर्त (सं० पु०) सूर्योदयके ३-४ घड़ी पहलेका समय।

ब्रह्ममूर्द्धभृत् (सं० पु०) ब्रह्मणो मूर्द्धभृत् शिरोमणिरिव। शिव।

ब्रह्ममेखल (सं० पु०) ब्रह्मणां ब्राह्मणानां मेखला पुंवद्भावः। मुञ्जतृण, मूंज।

ब्रह्ममेध्या (सं० स्त्री०) नदीभेद।

ब्रह्मयज्ञ (सं० पु०) ब्रह्मणो ब्रह्मणे वा यज्ञः। विधि पूर्वक वेदाभ्यसन, शिष्योंका वेदाध्यापन। यह पञ्चयज्ञके अन्तर्गत है। प्रतिदिन ब्रह्मरूप वेदाध्ययन करना ब्राह्मण मात्रका अवश्य कर्त्तव्य है।

ब्रह्मयशस् (सं० क्ली०) ब्रह्माकी यशोराशि।

ब्रह्मयशस (सं० क्ली०) ब्रह्माका यशोगायकसाममन्त्रविशेष।

ब्रह्मयशस्विन् (सं० त्रि०) अत्यधिक पवित्रताशाली।

ब्रह्मयष्टि (सं० स्त्री०) ब्रह्मणो यष्टि-रिव। १ भार्गी, भारंगी। २ वृक्षविशेष। ब्रह्मयष्टिके फलको जलमें पीस कर उसका लेप देनेसे रक्तदोष जाता रहता है। ३ ब्राह्मणके हस्तस्थित दण्ड।

ब्रह्मयाग (सं० पु०) ब्रह्मणोयागढ़ः। ब्रह्मयज्ञ।

ब्रह्मयज्ञ देखो।

ब्रह्मयातु (सं० पु०) यातुभेद।

ब्रह्मयामल (सं० क्ली०) तन्त्रशास्त्रविशेष।

ब्रह्मयुग (सं० क्ली०) ब्रह्म विप्रस्तदुपलक्षितं युगं। हिरण्यगर्भका विप्रसृष्टि प्रधान कालभेद।

ब्रह्मयुज् (सं० त्रि०) ब्रह्म-युज्-क्विप्। मन्त्र द्वारा युक्त।

ब्रह्मयोग (सं० पु०) ब्रह्मणस्तत्साक्षात्कारस्य योगः समाधिः। ब्रह्मसाक्षात्कारसाधन समाधिभेद। प्रजापति ब्रह्मा ही ब्रह्ममय यज्ञ हैं, वे ही प्रकृत सांख्ययोग और विज्ञान हैं। वे ही चार्वाकोंका स्वभाव तथा सांख्योंकी प्रकृति और पुरुष हैं, वे ही स्रष्टा और संहर्त्ता हैं। वे ही कालरूपी साक्षात् ईश्वर हैं। फिर वे ही कालक्षय, ज्ञेय और विज्ञान हैं अर्थात् जो जिस भावमें ग्रहण करते हैं वे ही उनके तत्स्वरूप हैं। यही ब्रह्मयोग है। इस ब्रह्मयोगका ज्ञान हो जानेसे सभी अज्ञान तिरोहित होता है। (हरिवं० २१० अ०)

२ विष्कुम्भादि पञ्चविंश योगके अन्तर्गत योगभेद। ३ १८ मात्राओंका एक ताल। इसमें १२ आघात और ६ खाली होते हैं।

ब्रह्मयोनि (सं० पु०) ब्रह्मणो योनिरुत्पत्तिरत्र। १ ब्रह्मगिरि। २ ब्रह्मप्राप्तिकारण ब्रह्मध्यान। ३ सर्वोका उत्पत्ति कारण—ब्रह्म। ४ तीर्थविशेष। (त्रि०) ५ जिसका उत्पत्तिकारण ब्रह्म हो।

ब्रह्मयोनि (सं० स्त्री०) ब्रह्मा योनिरुत्पत्तिकारणं यस्याः, स्त्रियां पक्षे ङीप्। कुरुक्षेत्रस्थ सरस्वतीतीरवर्त्ती पृथूदकके निकट अवस्थित तीर्थविशेष। यहां पर ब्रह्मा चार वर्णोंकी सृष्टि करते हैं। इस तीर्थमें स्नान करनेसे मुक्ति लाभ होती है। (वामनपु० ३८ अ०)

ब्रह्मरक्षस (सं० क्ली०) अपदेवताविशेष।

ब्रह्मरथ (सं० पु०) १ ब्राह्मणका शकट वा यानविशेष। २ ब्रह्माका वाहन, हंस।

ब्रह्मरत्न (सं० क्ली०) ब्रह्माको प्रदत्त धनरत्न।

ब्रह्मरन्ध्र (सं० क्ली०) ब्रह्मणः परमात्मनः अधिष्ठानाय रन्ध्रं आकाशः, वा ब्रह्मणे ब्रह्मप्राप्तये रन्ध्रं। उत्तमाङ्ग, ब्रह्मतालु, मस्तकके मध्य वह गुप्त छेद जिससे हो कर प्राण निकलनेसे ब्रह्मलोककी प्राप्ति होती है। कहते हैं, कि योगियोंके प्राण इसी रन्ध्रसे निकलते हैं।

ब्रह्मरस (सं० पु०) ब्रह्मज्ञानरूप उत्कृष्ट सुधा।

ब्रह्मराक्षस (सं० पु०) आदौ ब्रह्म ब्राह्मणः पश्चाद्राक्षसः कुकर्मभिः राक्षसयोनिं गतः। १ भूतविशेष, वह ब्राह्मण जो मर कर भूत हुआ हो।

"संयोगं पतितैर्गत्वा परस्यैव च योषिताम्।
अपहृत्यच विप्रस्वं भवति ब्रह्मराक्षसः॥" (मनु० १२।६०)

जो पतितके साथ संसर्ग, परस्त्री गमन और ब्राह्मणका

का धन अपहरण करता है, वही ब्रह्मराक्षस होता है। रामायणमें लिखा है, कि ब्रह्मराक्षस यज्ञके विघ्नोत्पादक होते हैं। (रामा० १।११ अ०)

२ महादेवका गणविशेष। पारिभाषिक प्रयोगमें मूर्ख, स्त्री, कच्छप, वाजी और वधिर इन पांचोंको ब्रह्मराक्षस कहते हैं।

"मूर्खः स्त्री कच्छप श्चैव वाजी वधिर एवच।
गृहीतार्थं न मुञ्चन्ति पञ्चैते ब्रह्मराक्षसाः॥"
(व्यवहारप्र०)

ब्रह्मराज (सं० पु०) १ राजपुत्रभेद। २ ब्रह्मदेशका अधिपति।

ब्रह्मरात (सं० क्ली०) ब्रह्म तज्ज्ञानं रातं यस्मै। १ शुकदेव। २ याज्ञवल्क्य मुनि। इन्होंने जनकसे ब्रह्म विद्या सीखी थी। वृहदारण्य-उपनिषद्में यह उपाख्यान वर्णित है।

ब्रह्मरात्र (सं० पु०) रात्रेरयं रात्रः,[ब्रह्मणो रात्रः। ब्रह्म-मुहूर्त्त, रात्रिका शेष चार दण्ड। इस समय सबोंको विछावन परसे उठना चाहिये।

"ब्रह्मरात्र उपावृत्ते [वासुदेवानु मोदिताः।
अनिच्छन्त्यो ययुर्गोप्यः स्वगृहान् भगवत्प्रियाः॥"
(भागवत १०।३३।४१)

ब्रह्मरात्रि (सं० पु०) १ याज्ञवल्क्य मुनि। ये ब्रह्मज्ञान देते हैं, इसीसे इनका ब्रह्मरात्रि नाम पड़ा है। हेमचन्द्र-टीकामें इनकी व्युत्पत्ति इस प्रकार लिखी है। ब्रह्मज्ञानं राति ददाति यः, ब्रह्मशब्दात् राधातोर्नाम्नीति त्रिप्रत्ययनिष्पन्नोऽयम् (हेमटीका) (स्त्री०) २ ब्रह्माकी रात्रि। मनुमें इस ब्रह्मरात्रिका परिमाण इस प्रकार बतलाया है—अठारह निमिष अर्थात् चक्षुके पलककी एक काष्ठा, तीस काष्ठाकी एक कला, तीस कलाका एक मुहूर्त्त और तीस मुहूर्त्तकी एक दिन रात होती है। मनुष्योंके लिये दिवाभागमें जागरण और रात्रिकालमें निद्रा बतलाई गई है। मनुष्यका एक मास पितृलोकका एक दिनरात होता है। उनमेंसे कृष्णपक्ष उनका दिन और शुक्लपक्ष रात होता है। कृष्णपक्ष काम करनेका और शुक्लपक्ष सोनेका समय है। मनुष्यका एक वर्ष देवताओंकी एक दिन रात माना गया है। फिर उनके भी इस प्रकार विभाग हैं,—उत्तरायण देवताओंका दिन और दक्षिणायन उनकी रात्रि है। दैवपरिमाण चार हजार वर्षका सत्ययुग होता है। इस युगके चार सौ वर्ष सन्ध्या और चार सौ वर्ष सन्ध्यांश है। तीन हजार वर्षमें त्रेतायुग कल्पित हुआ है। उसकी संध्या और संध्यांशका परिमाण तीन सौ वर्ष है। द्वापर युग दो हजार वर्ष और कलियुग हजार वर्ष इनकी संध्या है और सन्ध्यांश एक एक सौ वर्ष कम है। मनुष्योंकी जो चार युगोंकी संख्या निरूपित हुई, उसके बारह हजार वर्षका देवताओंका एक युग होता है। इस प्रकार दैवपरिमाण सहस्रयुगका एक दिन और उतने ही समयकी उनकी एक रात होती है। (मनु १ अ०)

ब्रह्मराशि (सं० पु०) १ पवित्र ज्ञानराशि। २ पवित्र ग्रन्थसमूह। ३ परशुरामका नामान्तर। ४ वृहस्पति कर्त्तृक आक्रान्त श्रवणा नक्षत्र।

ब्रह्मरीति (सं० स्त्री०) ब्रह्मवर्णा रीतिः। १ पित्तलभेद, एक प्रकारका पीतल। २ ब्रह्मा वा ब्राह्मणकी रीति।

ब्रह्मरूपक (सं० पु०) एक प्रकारका छन्द। इसके प्रत्येक चरणमें गुरुलघुके क्रमसे १६ अक्षर होते हैं। इसे चञ्चला और चित्र भी कहते हैं।

ब्रह्मरूपिणी (सं० स्त्री०) १ वंदा, बांदा। २ ब्रह्मस्व-रूपा।

ब्रह्मरेखा (सं० स्त्री०) भाग्य वा अभाग्यका लेख। इसके विषयमें कहा जाता है, कि ब्रह्मा किसी जीवके गर्भमें आते ही उसके मस्तक पर लिख देते हैं।

ब्रह्मर्षि (सं० पु०) ब्रह्मा ब्राह्मणः ऋषिः वा ब्रह्मा वेदं परब्रह्म वा ऋषति वेत्ति। वशिष्ठादि मुनिगण।

ब्रह्मर्षिदेश (सं० पु०) ब्रह्मर्षीणां देशः वासयोग्यस्थानं। कुरुक्षेत्रादि चार देश, वह भूभाग जिसके अन्तर्गत कुरु-क्षेत्र, मत्स्य, पाञ्चाल और शूरसेनक देश थे। इन ब्रह्मर्षि-देशसम्भूत ब्राह्मणोंसे पृथ्वीके सभी लोगोंको सदाचार सीखना चाहिये।

ब्रह्मलिखित (सं० पु०) ब्रह्मलेख, मानवकी अदृष्टलिपि।

ब्रह्मलोक (सं० पु०) ब्रह्मणो लोकः भुवनं। ब्रह्माधिष्ठान भुवन, सत्यलोक। ब्रह्मा इस लोकमें अवस्थान करते हैं।

"सत्यस्तु सप्तमो लोकः ह्यपुनर्भववासिनाम्।
ब्रह्मलोकः समाख्यातो ह्यप्रतीघातलक्षणः॥"
(देवीपुराण

विष्णुपुराणके मतानुसार तपोलोकसे छः गुणा ऊपर सत्यलोक है। इसीको ब्रह्मलोक कहते हैं।

"षड़्गुणेन तपोलोकात् सत्यलोके विराजते।
अपुनर्मारका यत्र ब्रह्मलोकोहि स स्मृतः॥"

(विष्णुपु० २।३ अ०)

ब्रह्मैव लोकः। २ तुरीय ब्रह्मस्वरूप।

वेदान्त दर्शनमें लिखा है, कि जो नाड़ीरश्मिसम्बन्ध घटित अर्चिरादि पर्वविशिष्ट देवयानपथसे ब्रह्मलोकको गमन करते हैं, वे सब उपासकगण चन्द्रलोकगत उपासकोंकी तरह भोगक्षयके बाद पुनः इस लोकमें जन्म नहीं लेते। इस पृथ्वीसे तृतीय स्वर्गमें ब्रह्मलोक है। वहां 'अर' और 'न्य' नामक समुद्रतुल्य सुधाह्रद, अन्नमय और मदकर सरोवर तथा अमृतवर्षी अश्वत्थ है। यह स्थान तत्त्वज्ञानी ब्रह्मोपासकको छोड़ कर दूसरेके लिये अगम्य है। यह लोक अजेय ब्रह्मपुरी है। यहां प्रभु ब्रह्माके विनिर्मित हिरण्यमय गृह है। उपासना द्वारा ब्रह्मलोक प्राप्त होनेसे फिर वहांसे लौटना नहीं पड़ता। उपासक ब्रह्मलोकमें जा कर अमर होते हैं अर्थात् मुक्तिलाभ करते हैं।

वेदान्त और ब्रह्म शब्द देखो।

ब्रह्मवक्तृ (सं० पु०) १ परब्रह्मरूप सत्यधर्मका प्रचारक। २ वेदधर्मके प्रवर्त्तक आचार्य।

ब्रह्मवत् (सं० त्रि०) ब्रह्मवा ब्रह्मज्ञान सम्पन्न। वेदसम्बन्धीय।

ब्रह्मवद (सं० पु०) सम्प्रदायविशेष।

ब्रह्मवद्य (सं० क्ली०) ब्रह्म वेदस्तस्य वदनं (वद-सुपि-क्यप् च। पा ३।१।१०६) इति भावे यत्। ब्रह्माका वाक्य।

ब्रह्मवधा (सं० त्रि०) ब्रह्मणा वेदेन उच्यते या ब्रह्मवद्य-टाप्। कथा।

ब्रह्मवध (सं० पु०) ब्राह्मणहत्या।

ब्रह्मवध्या (सं० पु०) ब्रह्महत्या, ब्राह्मण-वध।

ब्रह्मवध्याकृत (सं० क्ली०) ब्राह्मण हत्याजनित पाप।

ब्रह्मवनि (सं० त्रि०) ब्राह्मणानुरक्त।

ब्रह्मवर्चस (सं० क्ली०) ब्रह्मणो वेदस्य तपसो वा वर्चस्तेजः। १ वह शक्ति जो ब्राह्मण तप और स्वाध्याय द्वारा प्राप्त करे। २ ब्रह्मतेज। मनुमें लिखा है, कि ऋषिगण दीर्घ काल तक सन्ध्याका अनुष्ठान करते हैं; इस कारण वे दीर्घ-आयु, प्रज्ञा, यश, कीर्त्ति और ब्रह्मतेज प्राप्त करते हैं।

ब्रह्मवर्चस्विन् (सं० पु०) ब्रह्मणो वर्चः समासान्तविधेरनित्यत्वात् न अच्समासान्तः ततोऽस्त्यर्थे विनि। ब्रह्मतेजोयुक्त, ब्रह्मतेजवाला।

ब्रह्मवर्त्त (सं० पु०) ब्रह्मणां ब्राह्मणानां वर्त्तः वर्त्तनं यस्मिन्। ब्रह्मवर्त्तदेश।

ब्रह्मवर्द्धन (सं० क्ली०) ब्रह्मणस्तपसो वर्द्धनं यस्मात्। ताम्र, ताँबा।

ब्रह्मवल (सं० पु०) सम्प्रदायविशेष।

ब्रह्मवल्ली (सं० स्त्री०) लताविशेष।

ब्रह्मवाटीय (सं० पु०) मुनिभेद।

ब्रह्मवाद (सं० पु०) ब्रह्मणो वेदस्य वादो वदनं पठनमिति यावत्। १ वेदपाठ, वेदका पढ़ना पढ़ाना। २ वह सिद्धान्त जिसमें शुद्ध चैतन्य मात्रकी सत्ता स्वीकार की जाय, अनात्मकी सत्ता न मानी जाय।

ब्रह्मवादिन् (सं० पु०) ब्रह्मवादः वेदपाठोऽस्यास्तीति ब्रह्मवाद णिनि। वेदवक्ता, वेदपाठक। पर्याय—वेदान्ती।

ब्रह्मवादिनी (सं० स्त्री०) ब्रह्मवादिन्-ङीप्। गायत्री।

ब्रह्मवाद्य (सं० क्ली०) ब्रह्मज्ञान विषयमें प्रतियोगिता।

ब्रह्मवालुक (सं० क्ली०) तीर्थभेद।

ब्रह्मवास (सं० पु०) ब्रह्मणो वासः। ब्रह्मलोक।

ब्रह्मवाहस (सं० त्रि०) ब्रह्मणा मन्त्ररूपवेदेन ऊह्यते वह-कर्मणि बाहु असिच् णिच्च। मन्त्र द्वारा प्राप्यमान।

ब्रह्मवित्त्व (सं० क्ली०) ब्रह्मविदो भावः त्व। ब्रह्मविद्का भाव या धर्म।

ब्रह्मविद् (सं० पु०) ब्रह्मस्वरूपतया वेत्ति आत्मानं विद्-क्विप्। १ ब्रह्मात्मैक्यवेत्ता। २ विष्णु। ३ शिव। (त्रि०) ४ वेदार्थज्ञाता, वेदका अर्थ जाननेवाला।

ब्रह्मविद्या (सं० स्त्री०) ब्रह्मणो ब्रह्मविषयिणी या विद्या। १ ब्रह्मज्ञान। २ दुर्गा। ३ उपनिषद्वेद, वह विद्या जिसके द्वारा कोई व्यक्ति ब्रह्मको जान सके।

ब्रह्मविद्यातीर्थ (सं० पु०) एक ग्रन्थकार।

ब्रह्मविद्विष् (सं० त्रि०) वेद वा ब्राह्मणकी हिंसा, द्वेष वा घृणाकारी।

ब्रह्मविवर्द्धन (सं० पु०) ब्रह्मणो विवर्द्धनः ६-तत्। १ तपोवर्द्धक। २ विष्णु। (क्ली०) ३ तप आदिका विशेषरूपसे वर्द्धन।

ब्रह्मवृक्ष (सं॰ पु॰) तदाख्यया प्रसिद्धो वृक्षः वा ब्रह्मणो वेदकर्मार्थं यो वृक्षः। १ पलाश वृक्ष। २ उडुम्बर, गूलरका पेड़।

ब्रह्मवृत्ति (सं॰ स्त्री॰) ब्रह्मणो ब्राह्मणस्य वृत्तिर्जीवनोपायः। १ ब्राह्मणका जीवनोपाय, ब्राह्मणकी जीविका। २ ब्रह्माकार अन्तःकरणावृत्ति।

ब्रह्मवृद्ध (सं॰ त्रि॰) जप तप द्वारा वर्द्धितशक्ति वा तत्सम्पन्न।

ब्रह्मवृन्द (सं॰ क्ली॰) ब्राह्मण-सभा।

ब्रह्मवृन्दा (सं॰ स्त्री॰) ब्रह्मप्रतिष्ठित नगरभेद।

ब्रह्मवेद (सं॰ पु॰) ब्रह्मणो वेदः ज्ञानं ६-तत्। ब्रह्मज्ञान। २ ब्रह्मप्रतिपादक वेदभाग। ३ वेदान्त।

ब्रह्मवेदमय (सं॰ त्रि॰) ब्रह्मवेदयुक्त।

ब्रह्मवेदी (सं॰ स्त्री॰) ब्रह्मणो वेदिरिव। १ देशविशेष। २ ब्रह्माके बैठनेका आसन।

ब्रह्मवेदिन् (सं॰ त्रि॰) ब्रह्म-विद्-णिन्। ब्रह्मविद्, ब्रह्मतत्त्वज्ञ।

ब्रह्मवैवर्त्त (सं॰ क्ली॰) विवृतिरेव वैवर्त्तं स्वार्थे अण्, ब्रह्मणो वैवर्त्तं विशेषेण विवृतिर्यत्र। १ वह प्रतीति मात्र जो ब्रह्मके कारण हो। २ ब्रह्मके कारण प्रतीत होनेवाला जगत्, ब्रह्मका विवर्त्त जगत्। विवर्त्त और विकारका लक्षण इस प्रकार है।

> "सतत्त्वतोऽन्यथाप्रथा विकार इत्युदाहृतः।
> अतत्त्वतोऽन्यथाप्रथा विवर्त्त इत्युदाहृतः॥"
> (वेदान्तद॰)

एक प्रकारकी वस्तु अन्य प्रकारकी होनेसे विकार और अन्यथा प्रतीत होनेसे विवर्त्त होता है। दूधसे दही होना विकार और रज्जुका सर्पाकारमें प्रतीत होना विवर्त्त है। जगत् ब्रह्मका विकार नहीं है, किन्तु विवर्त्त है। इसीको ब्रह्मवैवर्त्त कहते हैं। ३ अठारह पुराणोंमेंसे एक पुराण जो कृष्ण-भक्ति सम्बन्धी है। इसमें ब्रह्माका अच्छी तरह विवरण किया गया है, इसीसे इसका नाम ब्रह्मवैवर्त्त पड़ा है। विस्तृत विवरण पुराण शब्दमें देखो।

ब्रह्मव्रत (सं॰ क्ली॰) व्रतविशेष। यह व्रत-सौ वर्ष तक करना होता है। जो यह व्रत करते हैं उन्हें ब्रह्मलोककी प्राप्ति होती है।

ब्रह्मशल्य (सं॰ पु॰) ब्रह्मेव सूक्ष्मं शल्यं अग्रभागो यस्य, अति सूक्ष्माग्रत्वात् तथात्वं। सोमवल्क, बबूलका पेड़।

ब्रह्मशाला (सं॰ स्त्री॰) १ तीर्थभेद। २ वेद पढ़नेका घर।

ब्रह्मशासन (सं॰ क्ली॰) ब्रह्मणः शासनं निर्णयो उपदेशो वा यस्मिन्। १ ब्रह्मविचार गृह। इसका पर्याय धर्मकीलक है। २ ब्रह्माकी आज्ञा वा उन सब कार्योंमें ब्रह्म कर्त्तृक नियोजन। ३ वेद या स्मृतिकी आज्ञा। आज्ञालङ्घनकारी ब्रह्मद्वेषीको नरक होता है। ४ विधाताका अनुशासन वा कर्त्तव्यरूप उपदेश। ५ वेद। ६ नवद्वीपके पूर्व-दक्षिणकोणमें गङ्गाके दूसरे किनारे अवस्थित एक ग्राम। ७ वह ग्राम या भूमि जो राजाकी ओरसे ब्राह्मणको दी गई हो।

ब्रह्मशिर (सं॰ क्ली॰) अस्त्रभेद। इसका उल्लेख रामायण और महाभारत दोनोंमें है। इस अस्त्रका चलाना अगस्त्यसे सीख कर द्रोणाचार्यने अर्जुन और अश्वत्थामाको सिखाया था। (भारत सौप्तिकप॰ १२ अ॰)

ब्रह्मशुम्भित (सं॰ त्रि॰) अभिषवसाधन मन्त्र द्वारा अलंकृत।

ब्रह्मश्री (सं॰ त्रि॰) साममेद।

ब्रह्मसंशित (सं॰ त्रि॰) ब्रह्मणा संशितः ३ तत्। मन्त्र द्वारा तीक्ष्णीकृत।

ब्रह्मसंसद (सं॰ स्त्री॰) ब्रह्मलोक वा ब्रह्मसदन।

ब्रह्मसंस्थ (सं॰ त्रि॰) १ ब्रह्ममें सम्पूर्णभावसे स्थित। २ ब्रह्मज्ञानमय।

ब्रह्मसंहिता (सं॰ स्त्री॰) वैष्णवाचारसिद्धान्त अध्यायशतात्मक ग्रन्थभेद, भगवत्सिद्धान्त संग्रहग्रन्थविशेष।

ब्रह्मसती (सं॰ स्त्री॰) सरस्वती नदी।

ब्रह्मसत्र (सं॰ क्ली॰) ब्रह्म वेदस्तत्पाठरूपं सत्रं। ब्रह्मयज्ञ, विधिपूर्वक वेदपाठ।

ब्रह्मसत्रिन् (सं॰ त्रि॰) ब्रह्मसत्र-अस्त्यर्थे इनि। ब्रह्मयज्ञकारक।

ब्रह्मसदन (सं॰ क्ली॰) सादत्यस्मिन् सद-आधारे ल्युट्, ब्रह्मणः सदनं ६-तत्।, यज्ञमें ब्रह्मा नामक ऋत्विक्का

आसन जो वारुणी काष्ठका और कुशसे ढका हुआ होता था। (कात्या० श्रौत० २।१।२) २ हिरण्यगर्भ-सदन। ३ तीर्थभेद।

ब्रह्मसदस् (सं० क्ली०) ब्रह्माका आलय।

ब्रह्मसभा (सं० स्त्री०) ब्रह्माकी समिति।

ब्रह्मसमाज (सं० पु०) एक नया संप्रदाय जिसके प्रवर्त्तक बंगालके राजा राममोहनराय थे। ब्राह्मसमाज देखो।

ब्रह्मसंभव (सं० पु०) द्विपृष्ठ नामक जैनविशेष।

ब्रह्मसर (सं० क्ली०) तीर्थभेद। इस तीर्थमें जा कर एक रात वास करनेसे ब्रह्मलोककी प्राप्ति होती है। ब्रह्माने स्वयं इस सरोवरमें एक श्रेष्ठ यूप उच्छ्रित किया था। इस यूपका प्रदक्षिण करनेसे वाजपेय-यज्ञका फललाभ होता है। (भारत ३।८४।७६)

ब्रह्मसर्प (सं० पु०) ब्रह्मबृहान् सर्पः। सर्पविशेष। पर्याय—हलाहल, अश्वलाला।

ब्रह्मसव (सं० पु०) ब्रह्मयज्ञ।

ब्रह्मसागर (सं० पु०) तीर्थभेद।

ब्रह्मसामन् (सं० क्ली०) सामभेद।

ब्रह्मसायुज्य (सं० क्ली०) युनक्तीति युजः (इगुपधेति। पा ३।१।१३५) क। ततः (तेन सहेति। पा २।२।२८) इति बहुव्रीहिः। ब्रह्मका भाव। पर्याय—ब्रह्मभूय, ब्रह्मत्व, ब्रह्मसायुज्य।

ब्रह्मसार्ष्टिता (सं० स्त्री०) ब्रह्मणः सार्ष्टिता समानगतिता। ब्रह्मतुल्य गतित्व।

ब्रह्मसावर्णि (सं० पु०) ब्रह्मपुत्रो सावर्णिः। दशम मनुभेद। भागवतके अनुसार इनके मन्वन्तरमें विष्वक्सेन अवतार और इन्द्र, शम्भु, सुवासन विरुद्ध इत्यादि देवता होंगे। (भागव० ८।१३ अ०)

ब्रह्मसिद्धान्त (सं० पु०) पैतामह ज्योतिषसिद्धांतभेद।

ब्रह्मसुत (सं० पु०) ब्रह्मणः सुतः। १ केतुभेद। २ मरीचि प्रभृति ब्रह्माके पुत्र।

ब्रह्मसुता (सं० स्त्री०) सरस्वती।

ब्रह्मसुवर्चला (सं० स्त्री०) १ तन्नामक औषधिविशेष। २ आदित्यभक्ता, हुरहुज या हुरहुर नामका पौधा। पहले तपस्वी लोग इसका कड़ुवा रस पीते थे। ३ ब्राह्मीशाक।

ब्रह्मसू (सं० पु०) चतुर्व्यूहात्मक विष्णुकी एक मूर्त्ति, अनिरुद्ध अवतार। पर्याय—उषापति, प्रद्युम्न, कामदेव। कल्पांतरमें ब्रह्मा अनिरुद्धसे उत्पन्न हुए थे। (ब्रह्मपुराण)

ब्रह्मसूत्र (सं० क्ली०) ब्रह्मणि वेदग्रहणकाले उपनयनसमये धृतं यत् सूत्रं। १ यज्ञसूत्र, जनेऊ। पर्याय—पवित्र, यज्ञोपवीत, द्विजायनी, उपवीत, सावित्र, सावित्रीसूत्र। २ व्यासका शारीरिक सूत्र जिसमें ब्रह्मका प्रतिपादक है और जो वेदांतदर्शनका आधार है।

ब्रह्मसूत्रिन् (सं० त्रि०) ब्रह्मसूत्र-अस्त्यर्थे इनि। ब्रह्मसूत्रधारी, यज्ञसूत्री।

ब्रह्मसूनु (सं० पु०) ब्रह्मणः सूनुः पुत्रः। १ इक्ष्वाकुवंशोद्भव राजविशेष। पर्याय—ब्रह्मदत्त। २ ब्रह्मपुत्र।

ब्रह्मसृज् (सं० पु०) १ ब्रह्माको उत्पन्न करनेवाला। २ शिवका एक नाम।

ब्रह्मस्तम्ब (सं० पु०) ब्रह्माके आश्रयस्वरूप जगद्ब्रह्माण्ड।

ब्रह्मस्तेय (सं० पु०) ब्रह्मणः स्तेयः ६-तत्। गुरुकी विना अनुमतिके अन्यको पढ़ाया हुआ पाठ सुन कर अध्ययन करना। (मनु २।११६)

ब्रह्मस्थल (सं० क्ली०) नगरभेद।

ब्रह्मस्थान (सं० क्ली०) ब्रह्मणः स्थानं ६-तत्। तीर्थभेद।

ब्रह्मस्व (सं० क्ली०) ब्रह्मणो ब्राह्मणस्य स्वं धनं। ब्राह्मणसम्बन्धि धन। ब्राह्मणका धन नहीं चुराना चाहिये, चुरानेसे उसे भारी पाप होता है तथा जब तक सूर्य चन्द्रमा रहेंगे, तब तक वह नरकमें वास करता है। (ब्रह्मवैवर्त्त प्रकृतिख० ४६ अ०)

ब्रह्मस्वरूप (सं० पु०) १ ब्रह्म। २ जगत्प्रकृतिका प्रतिरूप। स्त्रीलिङ्गमें ब्रह्मस्वरूपा और ब्रह्मस्वरूपिणी पद होता है। ३ मूल-प्रकृतिरूपा भगवती।

ब्रह्महत्या (सं० स्त्री०) ब्रह्मणो हननं (हनस्त ८।३।१०८) इति भावे क्यप्, तकारोऽन्तादेशश्च स्त्रीत्वं लोकात्। ब्राह्मणवध। यह एक महापातक है।

"ब्रह्महत्या सुरापानं स्तेयं गुर्वङ्गनागमः।
महान्ति पातकान्येव संसर्गश्चापि तैः सह॥" (मनु)

ब्रह्महत्या, सुरापान, स्तेय, गुरुपत्नी-गमन और इनका संसर्ग भी महापातक है।

ब्रह्महत्याधिष्ठात्री देवताका स्वरूप ब्रह्मवैवर्त्त-पुराणमें इस प्रकार वर्णित है,—

"रक्तवस्त्रपरीधाना वृद्धास्त्रीवेशधारिणी।
सप्ततालप्रमाणा सा शुष्ककण्ठौष्ठतालुका॥
ईशाप्रमाणदशना महाभीतञ्च कातरम्।
धावन्तं परिधावन्ती वलिष्ठा हतचेतनम्॥
खड्गहस्तो हताश तं दयाहीना च मूर्च्छितम्॥
इंद्रो दृष्ट्वा च तां घोरां स्मारं स्मारं गुरोःपदम्।
विवेश मानसखरो मृणालसूक्ष्मसूत्रतः॥"

(ब्रह्मवैवर्त्तपु० श्रीकृष्ण-जन्मख० ४७ अ०)

ब्रह्महत्याजनित महापातककी निवृत्तिके लिये प्राय-श्चित्त करना विधेय है। इस प्रायश्चित्तका विषय प्रायश्चित्त-विवेकमें विस्तृत भावसे वर्णित है। ब्राह्मण यदि विना जाने ब्राह्मणवध करे, तो उसे पापशान्तिके लिये बारह वर्ष व्रतानुष्ठान करना चाहिये। प्रायश्चित्त विवेकमें लिखा है—

"ब्रह्महा द्वादशाब्दानि कुटीं कृत्वा वने वसेत्।
भैक्ष्यायात्मविशुद्ध्यर्थं कृत्वा शवशिरोध्वजम्॥
भिक्षाशी विचरेद्ग्रामं वन्यैर्यदि न जीवति॥"

(मनु ११।७३)

यदि इस द्वादश वार्षिक व्रतका अनुष्ठान करनेमें असमर्थ हो, तो १८० धेनुदान करना चाहिये और यदि वह भी न कर सके, तो चूर्णीदान करना आवश्यक है। इसमें ५४० कार्षापण उत्सर्ग और १०० कार्षापण दक्षिणा देनी होती है। अनन्तर प्रायश्चित्तके विधानानुसार प्रायश्चित्त करना होगा। शास्त्रविहित इस प्रकार प्राय-श्चित्तानुष्ठान करनेसे ब्रह्महत्यापातक जाता रहता है।

ब्राह्मण यदि ज्ञानपूर्वक ब्रह्महत्या करे, तो उसे द्विगुण द्वादशवार्षिक व्रतका अनुष्ठान करना होगा। यदि उतना न कर सके, तो ३६० धेनुदान, उसके अभावमें १०८० कार्षापण उत्सर्ग और २०० कार्षापण दक्षिणा अवश्य दे। अनन्तर वे प्रायश्चित्तके विधानानुसार प्रायश्चित्त करे। क्षत्रिय यदि अज्ञानतः ब्राह्मणहत्या करे, तो उसके लिये ब्राह्मण कर्त्तृक वधके प्रायश्चित्तसे दूना प्रायश्चित्त विधेय है। इच्छापूर्वक ब्रह्महत्या करनेसे उसे पूर्वोक्त प्रायश्चित्तसे दूना करना होगा।

वैश्य अकामतः यदि ब्रह्महत्या करे, तो उसे छत्तीस वर्ष व्रत करना होगा। यदि उसमें अशक्त हो, तो ५४० धेनुदान और उसके भी अभावमें १६२० कार्षापण दान और ४०० कार्षापण दक्षिणा अवश्य दे। इच्छापूर्वक करनेसे उसको ७२ वर्ष व्रतानुष्ठान करना होगा। इसमें असमर्थ होनेसे १०८० धेनुदान और उसके अभाव-में ३२४० कार्षापण दान और ४०० कार्षापण दक्षिणा दे। शूद्र यदि अज्ञानतः ब्रह्महत्या करे, तो उसे ४८ वर्ष व्रत करना होगा। असमर्थके लिये ७२० धेनुदान और उसके अभावमें २१६० कार्षापण उत्सर्ग तथा ४०० कार्षा-पण दक्षिणा देना विधेय है। ज्ञानपूर्वक करनेसे इसके दूने प्रायश्चित्तका अनुष्ठान आवश्यक है।

(प्रायश्चित्त-विवेक)

ब्रह्मवैवर्त्त पुराणमें आतिदेशिक ब्रह्महत्याका विषय इस प्रकार लिखा है:—

श्रीकृष्ण, शिव, गणेश और सूर्य आदि देवताओंकी पूजामें जो भेद समझता है, उसे ब्रह्महत्याका पाप लगता है। गुरु, इष्टदेवता, जन्मदाता, पिता और माता आदि गुरुजनके प्रतिभेद समझनेसे भी ब्रह्महत्याका पाप होता है। जो हरिके पादोदकके साथ अन्य देवताके पादोदककी तुलना करते और विष्णु, विष्णूपासक तथा सर्वशक्तिस्वरूपा प्रकृतिकी निन्दा करते हैं उन्हें भी ब्रह्महत्याका पाप लगता है। भारतवर्षमें अम्बुवाची दिनमें भूखनन, जलमें शौचादित्याग, गुरु, माता, पिता, साध्वी स्त्री और अनाथाका पालन पोषण नहीं करनेसे ब्रह्महत्यापातक होता है।

ब्रह्मवैवर्त्तपुराणके प्रकृतिखण्ड-३०वें अध्यायमें इसका विस्तृत विवरण लिखा है। विस्तार हो जाने-के भयसे यहां कुलका उल्लेख नहीं किया गया।

ब्रह्महन् (सं० पु०) ब्रह्माणं ब्राह्मणं हतवान् ब्रह्म-हन (ब्रह्मभ्रूणवृत्रेषु क्विप्। पा ३।२।८७) इति क्विप्। ब्रह्मघ्न, ब्राह्मणकी हत्या करनेवाला। ब्रह्महत्या देखो।

ब्रह्महत्यादि महापातककारी अनेकों वर्ष नरकका भोग करके पीछे कुत्ते, सूअर, गदहे, ऊंट, बकरे, भेड़े,

मृग, पक्षी, चण्डाल और पुक्कश आदि योनियोंमें जन्म लेते हैं।

"श्वशूकरखरोष्ट्राणां गोऽजाविमृगपक्षिणाम।
चण्डालपुक्कशानाञ्च ब्रह्महा योनिमृच्छति॥"

(मनु १२।५५)

ब्रह्महविस् (सं० क्ली०) ब्रह्मैव हविरर्प्यमाणमाज्यं। अर्प्यमाण हविः।

"ब्रह्मार्पणं ब्रह्महविर्ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणा हुतम्।
"ब्रह्मैव तेन गन्तव्यं ब्रह्मकर्म समाधिना॥" (गीता ४।२४)

ब्रह्महुत (सं० क्ली०) ब्रह्मणि ब्राह्मणे हुतं दत्तं ब्रह्मपदमत्र उपलक्षणं तेन नृमात्रे बोध्यं। पञ्चमहायज्ञके अन्तर्गत अतिथिपूजनरूप यज्ञविशेष।

ब्रह्महृदय (सं० पु०) नक्षत्रभेद, प्रथमवर्गके १६ नक्षत्रोंमें-से एक नक्षत्र जिसे अङ्गरेजीमें कैपेला (Capella) कहते हैं।

ब्रह्मह्रद (सं० पु०) ह्रदविशेष।

ब्रह्मा (सं० पु०) ब्रह्म देखो।

ब्रह्माक्षर (सं० क्ली०) प्रणव, ओङ्कार।

ब्रह्माक्षरमय (सं० लि०) ब्रह्माक्षर-मयट्। मंत्र।

ब्रह्माग्रभू (सं० पु०) ब्रह्मणोऽग्रे सम्मुखे भवतीति भू-क्विप्, यज्ञार्थं ब्रह्मणो देहाज्जातत्वात् तथात्वं। घोटक, घोड़ा।

ब्रह्माञ्जलि (सं० पु०) ब्रह्मणे वेदपाठार्थं कृतो योऽञ्जलिः। १ सामवेद पाठके समय स्वरविभागार्थ जो अञ्जलि की जाती है, उसका नाम ब्रह्माञ्जलि है। २ वेद-पाठार्थ गुरुके निकट कर्त्तव्य विनयाञ्जलि।

ब्रह्माणी (सं० स्त्री०) ब्रह्माणमणति कीर्त्तयतीति अण-शब्दे कर्मण्यण् ङीप्, वा ब्रह्माणमानयति जीवयतीति अन् प्राणने ण्यन्तादस्मात् कर्मणि अणि कृते (णेरनिटि। पा ६।४।५१) इति णिलोपः; ततो ङीप्, पूर्वपदादिति णत्वञ्च। ब्रह्माकी पत्नी। ब्रह्माके आधे शरीरसे इनकी उत्पत्ति हुई है। इनका नामान्तर सावित्री, सरस्वती और गायत्री है। २ दुर्गा। ३ रेणुका नामक गन्धद्रव्य। ४ एक छोटी नदी जो कटकके जिलेमें वैतरणी नदीसे निकली है।

ब्रह्माण्ड (सं० क्ली०) ब्रह्मणो जगत्स्रष्टुरण्डम्। १ चतु-र्दशभुवन, चौदहों भुवनोंका समूह, गोलक। ब्रह्मणा विश्वसृजा कृतमण्डम्। २ भुवनकोष, विश्वगोलक। मनुमें लिखा है, कि स्वयंभू भगवान्‌ने प्रजासृष्टिकी इच्छासे पहले जलकी सृष्टि की और उसमें बीज फेंका। बीज पड़ते ही सूर्यके समान प्रकाशवाला स्वर्णाभ अंड या गोल उत्पन्न हुआ। पितामह ब्रह्माका इसी अंड या ज्योतिर्गोलकमें जन्म हुआ। उसमें अपने एक संवत्सर तक निवास करके उन्होंने ध्यनबलसे उसके आधे आध दो खण्ड किये। ऊर्द्धखण्डमें स्वर्ग आदि लोकोंकी और अधोखण्डमें पृथ्वी आदिकी रचना की तथा मध्यभागमें आकाश अष्टदिक और समुद्र आदि स्थापित किये। विश्वगोलक इसीलिये ब्रह्माण्ड कहा जाता है।

(मनुसंहिता १ अध्याय)

विष्णुपुराणमें लिखा है, कि भगवान् ब्रह्माने एक अण्ड या गोल उत्पादन किया। वह प्राकृत अण्ड भूतों-की सहायतासे धीरे धीरे बढ़ता गया। अव्यक्तरूप जगत्पति विष्णु व्यक्तरूपी हो ब्रह्मस्वरूपमें उस अण्डमें व्यवस्थित हुए। सुमेरु इसका उल्व अर्थात् गर्भवेष्टन चर्म, अन्यान्य महीधर जरायु और समुद्र गर्भोदक हुआ। पीछे उस अण्डसे पर्वत सहित समस्त द्वीप, समुद्र और सदेवासुर मनुष्य आदि उत्पन्न हुए। ब्रह्मके अण्डसे उत्पन्न होनेके कारण इसका ब्रह्माण्ड नाम पड़ा।

(विष्णुपु० १।२ अ०)

ब्रह्मवैवर्त्तपुराणमें श्रीकृष्णजन्मखण्डके ८४वें अध्याय-में ब्रह्माण्डकी उत्पत्तिका विवरण लिपिबद्ध है। विस्तार हो जानेके भयसे यहां पर कुछ नहीं लिखा गया। सूर्यसिद्धान्त और सिद्धान्त-शिरोमणि आदि ग्रन्थोंमें भी ब्रह्माण्डकी उत्पत्ति-कथाका वर्णन किया गया है। विस्तृत विवरण खगोल, पृथिवी और भूगोल शब्दमें देखो।

२ महादान विशेष। पुण्यदिनमें तुलापुरुष दानके विधानानुसारसे यह दान विधेय है। सुवर्ण द्वारा ब्रह्माण्ड प्रस्तुत करके उसमें अष्टदिग्गज, षड्वेदाङ्ग, अष्टलोकपाल, ब्रह्मादि देवगण, उमा, लक्ष्मी, वसु, आदित्य और मरुत् आदि अङ्कित करे। वह सुवर्ण-

निर्मित ब्रह्माण्ड सौ उंगलीका होना चाहिये। उसके पूर्वमें अनन्तशय्या, पूर्वदक्षिणमें प्रद्युम्न, दक्षिणमें प्रकृति और सङ्कर्षण, पश्चिममें चारों वेद और अनिरुद्ध तथा उत्तरमें अग्नि और वासुदेवकी मूर्त्ति अङ्कित रहेंगी। पीछे यथाविधान पूजा और होमादि करके सुवर्ण-ब्रह्माण्डका तीन वार प्रदक्षिण करना होगा। प्रदक्षिण करनेका मन्त्र इस प्रकार है,—

"नमोऽस्तु विश्वेश्वर विश्वधाम जगत्पवित्रे भगवन्नमस्ते।
सप्तर्षिलोकामरभूतलेश गर्भेण सार्द्धं वितरामि रक्षाम् ॥
ये दुःखितास्ते सुखिनो भवन्तु प्रयान्तु पापानि चराचराणाम्।
त्वद्दानशस्त्राहतपातकानां ब्रह्माण्डदोषाः प्रलयं व्रजन्तु ॥"

(मत्स्यपुराण २५० अ०)

यह ब्रह्माण्ड दान करनेसे सभी पाप जाते रहते हैं। उक्त महापुराणके २५०वें अध्यायमें इसका विस्तृत विवरण लिखा है। वराहपुराणमें भी इस दानका विधान देखनेमें आता है। कार्त्तिक मासकी शुक्लाद्वादशी वा पूर्णिमाके दिन सुवर्णनिर्मित ब्रह्माण्ड दान करनेसे पृथिवी-स्थित सभी वस्तुके दानमें जो पुण्य है, वही पुण्य प्राप्त होता है।

"ब्रह्माण्डोदरवर्त्तीनि यानि भूतानि पार्थिव।
तानि दत्तानि तेन स्युः समासात् कथितं तव ॥"

(वराहपु०)

३ खोपड़ी, कपाल। ४ कृष्ण पिण्डास भेद।

ब्रह्माण्डपुराण (सं० पु०) अठारह महापुराणके अन्तर्गत एक पुराण। यह पुराण पूर्व और उत्तर भागमें तथा प्रक्रिया, अनुषङ्ग, उपोद्घात और उपसंहार नामक चार पादोंमें विभक्त है। इसकी श्लोक संख्या १२ हजार है। ५वीं शताब्दीमें यह महापुराण यवद्वीपमें लाया गया था और वहां कविभाषामें इसका अनुवाद हुआ था। विस्तृत विवरण पुराण और बालिद्वीप शब्दमें देखो।

ब्रह्मात्मभू (सं० पु०) ब्रह्मण आत्मनः शरीरात् भवतीति ब्रह्मात्मन्-भू-क्विप्। अश्व, घोड़ा। वृहदारण्यक उपनिषद्में लिखा है, कि घोड़ा ब्रह्माके शरीरसे उत्पन्न हुआ है। शङ्कराचार्यने भाष्यमें उसका अर्थ इस प्रकार किया है, 'अश्व नामक प्रजापति ब्रह्माके शरीरसे उत्पन्न हुए।'

ब्रह्मादनी (सं० स्त्री०) हंसपदी, रक्त लज्जालु।

ब्रह्मादिजाता (सं० स्त्री०) ब्रह्मण आदिजाता सम्भूता। गोदावरी।

ब्रह्मादित्य—विवाहपटल और प्रश्नज्ञान वा प्रश्नब्रह्मार्क नामक ग्रन्थके प्रणेता, मोक्षेश्वरके पुत्र। इनका दूसरा नाम ब्रह्मार्क भी था।

ब्रह्मानन्द (सं० पु०) ब्रह्मस्वरूप आनन्द, ब्रह्मज्ञानसे उत्पन्न आत्मतृप्ति। यह आनन्द सब आनन्दसे श्रेष्ठ है। ब्रह्मज्ञानलाभ होने पर जो आनन्द होता है, उसीका नाम ब्रह्मानन्द है।

ब्रह्मानन्द—१ मेरुशास्त्रीके शिष्य। इन्होंने षट्चक्र दीपिका, शाक्तानन्दतरङ्गिणी, भावार्थदीपिका आनन्दलहरीटीका, त्रिपुरार्च्चनरहस्य और ज्योत्स्ना (हठ प्रदीपिका) नामक ग्रन्थ बनाये हैं। २ शिवलालामृतके प्रणेता।

ब्रह्मानन्दगिरि—श्रीमद्भागवत्-गीता-टीकाके प्रणेता।

ब्रह्मानन्दभारती—१ भागवत पुराणैकदशस्कन्धसारके प्रणेता। २ रामानन्द और गोपालानन्दके शिष्य। इन्होंने शङ्कराचार्य कृत वाक्यसुधा और विष्णुसहस्र नाम भाष्यकी टीका लिखी है।

ब्रह्मानन्दयोगी—वैदिक सिद्धान्तके प्रणेता।

ब्रह्मानन्दसरस्वती—१ आनन्ददीपनी कर्पूरस्तोत्रटीकाके प्रणेता। २ चिन्मयी परिभाषेन्दुशेखर टीकाके रचयिता। ३ ईशावास्योपनिषत्श्लोकार्थ, ईशावास्योपनिषद्रहस्य, माण्डुक्योपनिषद्भाष्य और वेदान्तसूत्रमुक्तावली प्रभृति ग्रन्थके प्रणेता। ४ पुरुषार्थप्रबोध प्रणयनकर्त्ता। ५ नारायणतीर्थ, परमानन्द सरस्वती और विश्वेश्वरके शिष्य। इन्होंने अद्वैतचन्द्रिका वा लघुचन्द्रिका नामक मधुसूदनकृत अद्वैतसिद्धिकी एक टिप्पनी और अद्वैतसिद्धान्तविद्योतन, सिद्धान्तविन्दुन्याय रत्नावली, गौड़ ब्रह्मानन्दीय और ब्रह्मानन्दीय नामक ग्रन्थ बनाये हैं। ये जनसाधारणमें गौड़ ब्रह्मानन्द नामसे परिचित थे।

ब्रह्मानन्दी—संन्यासपद्धतिके प्रणेता।

ब्रह्मापेत (सं० पु०) ब्रह्माणं ब्रह्मतेजःस्वरूपं सूर्यमुपेत उपगतः, ततः पृषोदरादित्वात् साधुः। सूर्यमण्डलसमीपवासी राक्षसभेद। माघके महीनेमें सूर्यमण्डलमें त्वष्टा, यमदग्नि, कम्बल, तिलोत्तमा, ब्रह्मापेत, ऋतजित्

और धृतराष्ट्र ये सात राक्षस वास करते हैं।
(विष्णुपु० २।१०।१५)

ब्रह्माभ्यास (सं० पु०) ब्रह्मणः वेदस्य अभ्यासः। वेदाभ्यास।

ब्रह्मायण (सं० त्रि०) १ ब्रह्मका आश्रय स्थान। २ नारायणका नामान्तर।

ब्रह्मायतन (सं० क्ली०) ब्रह्मणः आयतनं। १ ब्रह्मणका गृह। २ ब्रह्ममन्दिर।

"ब्रह्मायतने विप्रान् विनिहन्याद्दामिनो गोष्ठे।
(बृहत्स० ३३।२२)

ब्राह्मणके घर पर उल्कापात होनेसे विप्रगणका विनाश होता है।

ब्रह्मारण्य (सं० क्ली०) ब्रह्मणः वेदस्य अरण्यमिव। वेदपाठ भूमि।

ब्रह्मार्पण (सं० क्ली०) ब्रह्मे चार्पणं। १ सर्वकर्माद्यात्मकरूपमें ब्रह्मचिन्तन।

"ब्रह्मार्पणं ब्रह्महविर्ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणाहुतम्॥"
(गीता ४।२४)

२ परमात्मा ब्रह्ममें सर्वकर्म फलका त्याग। कूर्मपुराणमें लिखा है—

ब्रह्मासे जो कुछ दिया जाता है, वह फिर ब्रह्मको ही अर्पित होता है। हम लोग किसी कार्यके कर्त्ता नहीं हैं, ब्रह्म ही सबोंके कर्त्ता हैं। इस प्रकार सभी कर्मोंके अर्पणका नाम ब्रह्मार्पण है। (कूर्मपु० ४ अ०)

ब्रह्मावर्त्त (सं० पु०) ब्रह्मणां ब्रह्मनिष्ठब्राह्मणानामावर्त्त इव, बहुलब्राह्मणाश्रयत्वादस्य तथात्वं। १ देशविशेष। सरस्वती और दृषद्वती इन दो नदियोंके बीच जो प्रदेश पड़ता है, उसीका नाम ब्रह्मावर्त्त है। यह देश देवनिर्मित होनेके कारण पवित्र माना गया है। इस देशमें ब्राह्मणादि वर्णोंका जो आचार है, वही सदाचार कहलाता है।

इस देशका आचार ही सबोंके शिक्षणीय है। अलावा इसके कुरुक्षेत्र, मत्स्य, कान्यकुब्ज और मथुरा ये सब ब्रह्मर्षिदेश हैं। ब्रह्मर्षिदेश देखो।

२ ब्रह्मावर्त्तमें अवस्थित एक तीर्थका नाम।
(भारत ३।८४।४०)

ब्रह्मासन (सं० क्ली०) ब्रह्मणे ब्रह्मप्राप्तये आसनं। ध्यानासन, योगासन। जिस आसन पर बैठ कर ब्रह्मध्यान किया जाता है, वह पद्म और स्वस्तिकादि आसन है। २ रुद्रयामलोक्त देवपूजाङ्ग आसन भेद।

"ब्रह्मासनं तदा वक्ष्ये यत्कृत्वा ब्रह्मयो भवेत्।
एक पादमूरौ दत्त्वा तिष्ठेद्दण्डाकृतिर्भवेत्॥"
(रुद्रयामल)

ऊरुमें एक पाद दे कर दण्डाकृति अवस्थान करनेसे ब्रह्मासन होता है। इस प्रकार आसन करके तपस्या करनेसे ब्रह्मत्वलाभ होता है।

ब्रह्मास्त्र (सं० क्ली०) ब्रह्मस्वरूपमन्त्रं। ब्रह्मस्वरूप अस्त्रविशेष। यह सब अस्त्रोंसे श्रेष्ठ है। मन्त्रपूत करके इसका प्रयोग करना होता है।

"तदा रामेण क्रुद्धेन ब्रह्मास्त्रं प्रति रावणे।
नारायणविघातार्थं चिन्तितं चेतुराननम्॥" (देवीपु०)

२ एक रसौषध जो सन्निपातमें दिया जाता है। यह रस पारे, गंधक, सोंगिया और काली मिर्चके योगसे बनता है।

ब्रह्मास्य (सं० क्ली०) ब्रह्मा वा ब्राह्मणका मुख।

ब्रह्माहुत (सं० त्रि०) कृताहुति, जिसे आहुति दी गई हो।

ब्रह्माहुति (सं० स्त्री०) ब्रह्मे वाहुतिः। ब्रह्मयज्ञ, वेदाध्ययन।

ब्रह्मिन् (सं० पु०) ब्रह्म वेदस्तपो वाऽस्त्यस्य शेषतया ब्रीह्यादित्वादिनि, टिलोपः। १ वेद और तपस्याके शेषीभूत परमेश्वर। ब्रह्म वेदो वैधतयाऽस्त्यस्य इनि। २ वेद और तदर्थाभिज्ञ।

ब्रह्मिष्ठ (सं० त्रि०) अतिशयेन ब्रह्मी इष्ठन्, टिलोपः। अतिशय ब्रह्मज्ञ, ब्रह्मज्ञानसम्पन्न।

ब्रह्मिष्ठा (सं० स्त्री०) ब्रह्मिष्ठ-टाप्। दुर्गा।

ब्राह्मी (सं० स्त्री०) मेधाजनकत्वात् ब्रह्मणे हिता ब्रह्म-अन् बाहुलकात् न वृद्धिः। स्वनामख्यात शाकविशेष, ब्राह्मीशाक। इसका गुण—सारक, शीतवीर्य, तिक्त, कषाय, मधुररस, लघु, मेधाजनक, शीतल, मधुरविपाक, आयुस्कर, रसायन, स्वर और स्मृतिशक्ति-वर्द्धक, कुष्ठ, पाण्डु, मेह, रक्तदोष, कास, विष, शोथ और ज्वरनाशक।
(भावप्र०) ब्राह्मी शब्द देखो।

२ पङ्कगडकमत्स्य, एक प्रकारकी मछली जो विशेषतः पंकमें ही रहती है। ३ कञ्जिका भारंगी।

ब्रह्मीघृत (सं० क्ली०) ब्रह्मीजातं घृतं। घृतौषधि विशेष। इसका दूसरा नाम सारस्वतीघृत है। प्रस्तुत प्रणाली—मूल और पत्र सहित ब्राह्मीशाकको जलमें धो कर ऊखलमें कूटे; बादमें उसका रस निचोड़ ले, अनन्तर वह रस १६ सेर, गव्य घृत ४ सेर, कल्कार्थ हरिद्रा, मालतीपुष्प, कुट, निसोथ, हरीतकी, प्रत्येकका रस एक पल और पीपल, विडङ्ग, सैन्धव, चीनी, वच, प्रत्येक दो तोला इनका यथाविधान धीमी आंचमें पाक करना होगा। यह घृत पान करनेसे स्वरविकृति दूर होती है। जो कोकिलके जैसा अपना कण्ठस्वर बनाना चाहे उन्हें इस घृतका अवश्य सेवन करना चाहिये। ७ दिन तक इस घृतका सेवन करनेसे किन्नरकी तरह कण्ठस्वर और एक मास सेवन करनेसे श्रुतिधर होता है। इस घृतके सेवन करनेसे कुष्ट, अर्श, प्रमेह और काशरोग प्रशमित एवं बल, वर्ण और अग्निकी वृद्धि होती है। (भैषज्य रत्नावली स्वरभेदाधिकार)

ब्रह्मीयस् (सं० त्रि०) अतिशयेन ब्रह्मी ब्रह्म ईयसुन्, टिलोः। ब्रह्मिष्ट, ब्रह्मज्ञानसम्पन्न।

ब्रह्मेन्द्रसरस्वती—१ वेदान्तपरिभाषाके प्रणेता। २ एक ग्रन्थकार। कवीन्द्रकृत कवीन्द्रचन्द्रोदयमें इनका उल्लेख है।

ब्रह्मेन्द्रस्वामी—एक ग्रन्थकार। कवीन्द्र-चंद्रोदयमें इनका परिचय देखनेमें आता है।

ब्रह्मेशय (सं० त्रि०) ब्रह्मणि तपसि शेते शी-अच्, पृषोदरादित्वात् साधुः। १ कार्त्तिकेय। २ विष्णु।

ब्रह्मेश्वर—गणपतिरत्नप्रदीपके प्रणेता।

ब्रह्मेश्वरतीर्थ (सं० क्ली०) तीर्थविशेष।

ब्रह्मोज्झ (सं० पु०) ब्रह्म वेदमुज्झति उज्झ त्यागे अण्। वेदत्यागी। मनुने वेदत्यागीको अनुपातकी बतलाया है।

ब्रह्मोडुम्बर (सं० क्ली०) तीर्थभेद।

ब्रह्मोत (सं० त्रि०) ब्रह्मणि-आ-सम्यक्-प्रकारेण उतं ग्रथितम्। ब्रह्ममें ग्रथित।

ब्रह्मोत्तर (सं० त्रि०) ब्रह्मा ब्राह्मणः उत्तरः प्रधानं यस्य। ब्राह्मण स्वामिक भूम्यादि, वह भूमि जो ब्राह्मणको दान की जाय। ब्रह्मोत्तर भूमिका कर नहीं लगता।

ब्रह्मोदतीर्थ (सं० क्ली०) तीर्थविशेष।

ब्रह्मोद्भव (सं० पु०) शिव।

ब्रह्मोद्य (सं० क्ली०) ब्रह्मो वेदस्य वदनं ब्रह्म वद-क्यप्। १ ब्रह्मवाक्य, वेदवाक्य। २ ब्राह्मणका वाक्य। ३ ब्रह्मकथन।

ब्रह्मोद्या (सं० स्त्री०) ब्रह्म-वद्-क्यप्-टाप्। ब्रह्मकी कथा।

ब्रह्मोपनिषद् (सं० पु०) उपनिषद्विशेष।

ब्रह्मोपनेतृ (सं० पु०) ब्रह्माणं ब्राह्मणं उपनयते इति, ब्रह्म-उप-नी-तृच्। १ पलाशवृक्ष। २ ब्राह्मणका उपनयन करानेवाला।

ब्रह्मौदन (सं० क्ली०) ब्रह्मणे देयमोदनं। वह अन्न जो यज्ञमें ऋत्विकोंको दिया जाता है।

"ब्रह्मौदनं विश्वजितः पचामि शृण्वन्तु मे॥"
(अथ० ४।३५।७)

ब्राहुई (ब्रा-रो-ई)—बलुचिस्तानका पार्वत्यदेशवासी जातिविशेष। खिलातके खाँको ही वे लोग राजा मानते हैं। इनकी भाषा ब्राहुई है जो पारसी, पेन्थू वा बलूची भाषासे स्वतन्त्र है।* झलावर और सरावर प्रदेशमें बहुसंख्यक

* प्रत्नतत्त्वविद् मेशनके मतसे यह जाति पश्चिम-एशिया-खण्डसे बलुचिस्तानके पहाड़ी प्रदेशमें आ कर बस गई। डाः काल्डवेल इन लोगोंका द्राविड़वंशीय और भूमध्यसागरके उपकूलसे आना बतला कर लिपिबद्ध कर गये हैं। उनका यह भी अनुमान है, कि आर्य शक आदिकी तरह द्राविड़ लोग उत्तरपश्चिम पथसे भारतवर्ष आये थे। ब्राहुईगणका कहना है, कि उनके पूर्वपुरुष हाल्व और आलिपो नामक स्थानसे इस देशमें आये हैं। पटिञ्जर साहबने उनकी भाषामें प्राचीन हिन्दू शब्दमालाका प्रयोग पाया है। उनकी धारणा है, कि ब्राहुईगण शक, तुराणी या तामिल शाखाके अन्तर्भुक्त होंगे। अलेकसन्दरके अनुगामी शक (Sakae) सेनागण परोपमिसस पर्वत और आर्लहदके मध्यवर्त्ती स्थानसे भारतवर्ष आये थे। सिन्धुप्रदेशसे वे लोग फिर मूलागिरिसङ्कट पार कर वर्त्तमान वास भूमिमें बस गये। अभी उस आर्लहदके निकटवर्त्ती स्थानमें झलावरके ब्राहुई लोगोंकी तरह एक अनुरूप जातिका वास देखा जाता है।

ब्राहुई रहते हैं। साधारणतः इनके ७४ थाक हैं। प्रत्येक थाकके ऊपर एक एक सरदार आधिपत्य करते हैं। ये लोग कहीं भी एक जगह स्थिर होकर नहीं रहते। तोमन नामक पशमनिर्मित तम्बू ही इनका वासगृह और शयन तथा भोजनोपयोगी पात्रादि ही इनका असवाव है। ये सबके सब हानवेली सम्प्रदायभुक्त सुन्नी मुसलमान हैं। इनका विश्वास है, कि स्वयं महम्मदने विशेष अनुग्रहपूर्वक इनके धर्मका पर्यवेक्षण करनेके लिये ४० साधुओंको भेज दिया था। वलुचिस्तानके उत्तरदिग्‌वर्त्ती चिहल-तौ नामक पर्वत पर उक्त ४० जनोंकी समाधि हैं। उक्त ४०-के अलावा उनके मध्य पीर, मुल्ला या फकीर आदि दूसरे साधु-मुसलमान नहीं हैं। सैकड़ों हिन्दू और भिन्न भिन्न सम्प्रदायी मुसलमानगण इस पवित्र पर्वतके दर्शन करने आते हैं।

पठान और वलूची जातिसे इनके शारीरिक गठनमें वहुत फर्क पड़ता है। कच्छ गण्डवके प्रखर सूर्यकर और पार्वतीय शीत तथा हिमका सहन करके ये लोग स्वभावतः वलशाली हो गये हैं। ये लोग कर्मदक्ष कृषिकार्य्य-निरत, सहिष्णु, सत्साहसी, उद्यमशील, शिकारी और योद्धा हैं। अर्थगृध्नु होने पर भी ये विश्वासी, विवादशून्य और हिंसावृत्तिहीन हैं।

शीत अथवा ग्रीष्म ऋतुमें इनका पहनावा एक ही तरहका रहता है। तलवार, ढाल और वन्दूक इनका प्रधान युद्धास्त्र है। आजकल वृटिश-सरकारके वम्बई-सेनादलमें वहुत-सी ब्राहुई सेना काम करती हैं।

खिलातके खाँ स्वयं ब्राहुई वंशके और कुम्मराणी शाखाके प्रतिष्ठाता कुम्मरके वंशधर हैं। इस शाखाके तीन थाक हैं। अहादजई, खानी और कुम्मराणी। कुम्मराणी थाकके लोग शेष दो थाकोंकी कन्या लेते हैं। खिलातपात ब्राहुई जातिके प्रतिनिधिरूपमें राजनैतिक-सम्बन्धकी रक्षा करते हैं।

ब्राह्म (सं० क्ली०) ब्रह्मण इदं, ब्रह्मन् (तस्येदं। पा ४।३।१२०) इत्यण् (नस्तद्धिते। पा ६।४।१४४) इति टिलोपः। १ ब्रह्मतीर्थ। यह तीर्थ वृद्धांगुष्ठके मूलमें अवस्थित है। आचमन करते समय ब्राह्मणको इस तीर्थ पर जल रख कर आचमन करना चाहिये। हाथके दक्षिण और अंगुष्ठके उत्तर जो रेखा है, वही ब्राह्मतीर्थ है। उसी रेखा पर जल ले कर आचमन करना होता है।

२ ब्रह्मपुराण। ३ ब्रह्मदेवताके अस्त्रादि। (पु०) ब्रह्मणोऽपत्यं पुमान् इति अन्। ४ नारद। ब्रह्मण इवायमिति अन्। ५ विवाहविशेष, ब्राह्मविवाह। महर्षि मनुने ब्राह्म, प्राजापत्य, दैव आदि ८ प्रकारके विवाहोंका उल्लेख किया है।

कन्याको वस्त्रालङ्कारादि द्वारा आच्छादन करके विद्या और सदाचारसम्पन्न वरको यथाविधि अर्चनापूर्वक जो कन्या-सम्प्रदान किया जाता है, उसीको ब्राह्मण-विवाह कहते हैं। विस्तृत विवरण विवाह शब्दमें देखो।

६ मुहूर्त्तविशेष, ब्राह्ममुहूर्त्त, रात्रिके शेष चार दण्ड। ७ मनुक्त राजाओंका धर्म विशेष, राजाओंका एक धर्म जिसके अनुसार उन्हें गुरुकुलसे लौटे हुए ब्राह्मणोंको पूजा करनी चाहिये। ८ नक्षत्र। ९ ब्रह्मसम्बन्धी दिन। १० सम्प्रदायविशेष। ब्राह्मसमाज देखो। (त्रि०) ११ ब्रह्म-सम्बन्धीय।

ब्राह्मक (सं० त्रि०) ब्रह्मणा कृतं कुलादित्वात् वुञ्। विप्रकृत, ब्राह्मणका किया हुआ।

ब्राह्मकृतेय (सं० पु०) ब्रह्मकृतका गोत्रापत्य।

ब्राह्मगुप्त (सं० पु०) १ आयुधजाति वर्गभेद। स वर्गोयेषां त्रिगर्त्तादित्वात् छ। २ ब्राह्मगुप्तीय-आयुधजाति-वर्गभेदयुक्त।

ब्राह्मण (सं० पु०) ब्रह्मणो विप्रस्य प्रजापतेर्वा अपत्यं, ब्रह्म वेदस्तमधीते वा ब्रह्मण-अण्। (ब्राह्मोऽजातौ। पा ६।४।१७१) इति न, टिलोपः। विप्र जातिभेद, ब्राह्मणत्वजाति, ब्राह्मण जाति। पर्याय—द्विजाति, अग्रजन्मा, भूदेव, वाड़व, विप्र। (अमर) द्विज, सूत्रकण्ठ, ज्येष्ठ-वर्ण, अग्रजातक, द्विजन्मा, वक्त्रज, मैत्र, वेदवास, नय, गुरु। (शब्दरत्नाकर) ब्रह्मा, षट्कर्मा, द्विजोत्तम। (राजनि०) ब्राह्मण समस्त वर्णोंमें श्रेष्ठ होते हैं। प्लक्षद्वीपमें इनको संज्ञा हंस हैं। शाल्मलद्वीपमें श्रुतिधर, कुशद्वीपमें कुशल, क्रौञ्चद्वीपमें गुरु, शाकद्वीपमें ऋतव्रत कहलाते हैं। पुष्करद्वीपमें सभी एक वर्ण हैं (भाग०) "ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत्" (श्रुति)

ब्रह्माके मुखसे ब्राह्मण उत्पन्न हुए थे। मनुसंहितामें

लिखा है—परमेश्वरने पृथिवीके मनुष्योंकी वृद्धिके लिये मुख, बाहु, ऊरु और पादसे क्रमशः ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रवर्णकी सृष्टि की। ब्राह्मणकी सृष्टि कर उनके लिए अध्यापन, अध्ययन, यजन, याजन, दान और प्रतिग्रह इन छः कर्मोंका निर्देश किया। इसीलिए ब्राह्मणका एक नाम षट्कर्मा भी है।

"अध्यापनमध्ययनं यजनं याजनं तथा।
दानं प्रतिग्रहश्चैव ब्राह्मणानामकल्पयत्॥"

(मनु० १।८८)

ब्रह्माके मुखसे ब्राह्मणने जन्म लिया है; ब्राह्मण सबसे पहले उत्पन्न हुए हैं, और वेद धारण करते हैं इस कारण धर्मानुशासनमें ब्राह्मण ही सृष्ट पदार्थोंके प्रभु हैं। देवलोक और पितृलोको हव्यकव्य प्राप्त होंगे और उससे समस्त जगत्‌की रक्षा होगी, इसलिए ब्रह्माने तपस्या करके पहले अपने मुखसे ब्राह्मणकी सृष्टि की। स्वर्गवासी देवगण जिनके मुखसे हवनीय द्रव्य सामग्री सदा भोजन करते हैं, पितृगण श्राद्धादिमें प्रदत्त अन्नादि जिनके मुखसे ग्रहण करते हैं, ऐसे ब्राह्मणोंसे श्रेष्ठ और कौन हो सकता है? सृष्ट पदार्थोंमें जिनके प्राण हैं वे श्रेष्ठ हैं, बुद्धिजीवियोंमें मनुष्य श्रेष्ठ हैं, और मनुष्योंमें ब्राह्मण ही सर्वश्रेष्ठ है। ब्राह्मणोंमें जो विद्वान् हैं वे श्रेष्ठ हैं और उनमें भी अनुष्ठानकारी श्रेष्ठ हैं तथा उनसे भी श्रेष्ठ हैं ब्रह्मज्ञ ब्राह्मण।

विप्रकी जो शरीरोत्पत्ति है, वह धर्मको शाश्वत मूर्त्तिमान अवस्था है। धर्मार्थ उपनीत हो कर विप्र ब्रह्मत्व प्राप्त करते हैं। जब ब्राह्मण जन्मग्रहण करते हैं, तब वे पृथिवीमें सर्वोपरि प्रतिष्ठित तथा धर्मोंकी रक्षार्थ सर्वजीवके ईश्वरत्वमें व्रती होते हैं। त्रैलोक्यान्तवर्त्ती समस्त धन ही विप्रका निजस्व है। सर्व वर्णोंमें श्रेष्ठ और उत्कृष्ट स्थान-जात होनेसे विप्र ही सम्पूर्ण सम्पत्ति प्रतिग्रहके योग्यपात्र हैं। विप्र जो भोजन करता है, परिधान वा दान करता है, वह परकीय होने पर भी उसका निजस्व है। कारण विप्रके ही अनुग्रहसे अन्यान्य लोक भोजनपानादि द्वारा जीवित रहते हैं।

विप्रको सर्वदा आचारानुष्ठानमें यत्नवान् रहना चाहिए। आचारभ्रष्ट होनेसे वेदके फलभोगी नहीं हो सकते। विप्र आचार युक्त हो कर यदि वैदिक अनुष्ठान करे तो वेदफलका सम्पूर्ण भागी हो सकता है।

(मनु १अ०)

महाभारतमें लिखा है—ब्राह्मणी, क्षत्रिया और वैश्याके गर्भमें ब्राह्मण द्वारा जो पुत्र उत्पन्न होता है, वह पुत्र भी ब्राह्मण होता है।

"ब्राह्मण्यां ब्राह्मणाज्जातो ब्राह्मणः स्यान्न संशयः।
क्षत्रियायां तथैव स्याद् वैश्यायामपि चैव हि॥"

(भारत० अनु० प० ४७।२७)

ब्राह्मणीके गर्भसे ब्राह्मण द्वारा जो पुत्र उत्पन्न होता है, वही ब्राह्मण सर्वापेक्षा श्रेष्ठ है।

महाभारत शान्तिपर्वमें विप्रके लक्षण इस प्रकार लिखे हैं,—जो जातकर्मादि संस्कार द्वारा संस्कृत है, परम पवित्र और वेदाध्ययनमें अनुरक्त हो कर प्रतिदिन सन्ध्यावन्दना, स्नान, जप, होम, देवपूजा और अतिथिसत्काररूप षट्कर्मका अनुष्ठान करते हैं तथा शौचाचारपरायण, नित्य ब्रह्मनिष्ठ, गुरुप्रिय और सर्वदा सत्यनिरत रहते हैं वे ही ब्राह्मण हैं। ब्राह्मण केवल सत्त्वगुण प्रधान होते हैं। (भारत शान्तिप० १६० अ०)

विप्रकी जीविका आदिके विषयमें भगवान् मनुने कहा है, कि विप्रको जीवितकालके प्रथम चतुर्थभागमें गुरुके निकट रह कर तथा द्वितीयभागमें कृतदार हो कर अपने गृहमें अवस्थान करना चाहिए। ब्राह्मणको ऐसी आजीविका न करनी चाहिए, जिसमें किसी जीवको किसी प्रकार अनिष्ट हो, वा थोड़ी भी पीड़ा हो। आपत्कालमें भी ऐसी हेय वृत्ति ब्राह्मणके लिए विधेय नहीं है। संसारयात्रा किसी प्रकार चली चले, और शरीरको किसी प्रकारका क्लेश न पहुंचे, ऐसा लक्ष्य रख करके ही ब्राह्मणको धनसञ्चय करना चाहिए। ब्राह्मणको ऋत, अमृत, मृत, प्रमृत वा सत्यानृत द्वारा आजीविका निर्वाह करनी चाहिए; किन्तु श्ववृत्ति (नौकरी) कदापि नहीं करनी चाहिए। ऋत आदिका अर्थ इस प्रकार है—भूमिमें गिरे हुए धान्यादिके कणोंको संग्रह करना शिलवृत्ति है, इसके द्वारा जीविका निर्वाह करनेका नाम ऋत है। अयाचितरूपसे जो कुछ भी उपस्थित हो, उसे अमृतवृत्ति कहते हैं। भिक्षा-जीवनका नाम मृत-वृत्ति है और वाणिज्य द्वारा जीविका निर्वाह करना सत्यानृत वृत्ति है।

इन वृत्तियों द्वारा जीविकानिर्वाह करनेवाला ब्राह्मण चार श्रेणियोंमें विभक्त है; जैसे कुशूल-धान्यक, कुम्भी-धान्यक, त्र्यहैहिक और अश्वस्तनिक। जो ब्राह्मण तीन वर्ष तक अनायास ही निर्वाह कर सकता है, उसको कुशूलधान्यक कहते हैं। इस प्रकारके ब्राह्मण सोमपान करनेके योग्य हैं। जो एक वर्षके लिए धान्यादिका संग्रह कर रखते हैं, ऐसे ब्राह्मण कुम्भीधान्यक कहलाते हैं। किसी किसीके मतसे ६ मासके लिये भी धान्यका संग्रह रखनेवालेको कुम्भीधान्यक कहते हैं। तीन दिन लायक धान्यका संग्रह रखें, ऐसे ब्राह्मण त्र्यहैहिक कहाते हैं। जो कलके लिए भी कुछ संग्रह नहीं करते, नित्य संग्रह करते और निर्वाह करते हैं, ऐसे ब्राह्मण अश्वस्तनिक हैं। अश्वस्तनिक विप्र ही सबसे श्रेष्ठ हैं। उनके बाद त्र्यहैहिक और कुम्भीधान्यक हैं। कुशूल धान्यक ब्राह्मणोंमें निकृष्ट हैं।

इन सभी प्रकारके ब्राह्मणोंमेंसे कोई ऋतामृतादि षट्‌कर्मशील हैं, कोई त्रिकर्मशाली हैं, कोई द्विकर्मवान् हैं और कोई अध्यापना मात्र द्वारा ही निर्वाह करते हैं।

शिलोञ्छवृत्ति-परायण विप्र धन-साध्य पुण्य कर्ममें अक्षम हों तो वे केवल मात्र अग्निहोत्रपरायण होंगे, और पर्व तथा अयनान्तमें जो यज्ञ किये जाते हैं (अर्थात् दर्श-पौर्णमासादि यज्ञ) करेंगे। जो दम्भादिसे रहित और सरल हो, जिस आजीविकाके लिए कुछ भी शठता वा वञ्चना न करनी पड़ती हो, जो अति विशुद्ध अर्थात् पाप-रहित हो, ऐसी आजीविका ब्राह्मणको यजन-याजनादि द्वारा सम्पन्न करना योग्य है। सुखार्थी ब्राह्मण मात्र सन्तोष अवलम्बन-पूर्वक धन-चेष्टादिसे विरत रहें। कारण, सन्तोष ही सुखका मूल है और असन्तोष दुःखका कारण।

गृहस्थ ब्राह्मणोंको उपर्युक्त वृत्तियोंमेंसे कोई भी एक वृत्ति-अवलम्बन कर निम्नोक्त नियमोंका पालन करना चाहिए। ब्राह्मणोंको उचित है, कि यावज्जीवन निरलस रह कर अपने अपने आश्रमानुसार वेदोक्त और स्मार्त्त कर्तव्यकर्मोंका सम्पादन करें। जिन विषयोंमें इन्द्रियोंकी शीघ्र आशक्ति होती है, ऐसे कर्म वा शास्त्रविरुद्ध अयाज्ययाजनादि तथा धन रहने पर वा उसके अभावमें किसी स्थानसे धन-सञ्चयकी चेष्टा करना ब्राह्मणके लिए निषिद्ध है। इच्छापूर्वक किसी इन्द्रिय-विषयमें आसक्त न हो; इन्द्रिय किसी विषयमें आसक्त हों, तो उनको भी निवृत्त करना चाहिये। कोई भी ऐसा उपार्जन न करें जो वेदाभ्यासके विरुद्ध हो। किसी भी प्रकारसे परिवारका प्रतिपालन कर, प्रतिदिन स्वाध्याय कार्य साङ्ग कर लेने मात्रसे ही ब्राह्मणका जीवन सफल है। जैसी उम्र हो, जैसा कर्म हो, जितना धन हो, जैसा वेदाध्ययन और जैसी वंशकी मर्यादा हो, उसीके अनुसार वेश, भूषा, वाक्य और बुद्धि रखना ही विधेय है। ब्राह्मणको चाहिए, कि वह ऋषियज्ञ अर्थात् वेदाध्ययन, देवयज्ञ तथा होम, भूतयज्ञ, (भूतबलि) मनुष्ययज्ञ (अतिथिसत्कार) और पितृयज्ञ (श्राद्ध) इन पांच यज्ञोंका सर्वदा अनुष्ठान करे। शक्ति हो तो इन पंचानुष्ठानोंका कदापि परित्याग न करे। उदित होमकारीको ब्राह्मण दिन और रात्रिके प्रारम्भमें तथा अनुदित होमकारीको दिन और रात्रिके अन्तमें सर्वदा अग्निहोत्रयज्ञ करना चाहिए। कृष्णपक्ष समाप्त होने पर दर्श नामक यज्ञ तथा पूर्णिमाको पौर्णमास यज्ञ, नूतन शस्य उत्पन्न होने पर अग्रहायण याग; ऋतु पूर्ण होने पर चातुर्मास याग और अयनके प्रारम्भमें पशुयाग करना उचित है।

वेद-विरुद्ध मार्गावलम्बी, वर्णान्तरवृत्तिजीवी, बिलाड़व्रती, वेदविरुद्धतार्किक और बकव्रती ब्राह्मणोंकी वाक्य द्वारा अर्चना नहीं करनी चाहिये। अन्नदानके लिये निषेध नहीं है। स्नातक ब्राह्मणको मुण्डन न कराना चाहिए, किन्तु केश, नख और श्मश्रु कर्त्तन कर सकते हैं। इन्हें सर्वदा क्लेशसहिष्णु और शुक्लवास परिधान करना चाहिए। भिक्षादिके समय वेणु निर्मित यष्टि और शौच प्रस्रावादिके लिए जल-पूर्ण कमण्डलु साथ रखें। सूर्योदय और सूर्यास्तके समय सूर्य-दर्शन करना निषिद्ध है। राहु-ग्रस्त और जल प्रतिबिम्बित सूर्यका दर्शन भी विधेय नहीं। वत्सबन्धनकी रज्जुका उलङ्घन; वारिवर्षणके समय द्रुत गमन और जलमें अपना प्रतिबिम्ब दर्शन ये कार्य भी निषिद्ध कहे गये हैं। एक वस्त्र पहन कर भोजन करना, विवस्त्र हो कर स्नान करना तथा मार्गमें, भस्मके ऊपर, गोचारण स्थानमें, फाल द्वारा

कर्षित भूमिमें, जलमें, श्मशानस्थ चिता और देव-मन्दिरमें, मृत्तिकाके स्तूप और गर्त्तमें मलमूत्रका त्यागना सर्वथा विधेय नहीं है।

ब्राह्मण मुँहसे फूंक कर आग न जलावें। सन्ध्या-कालमें भोजन, भ्रमण और शयन निषिद्ध है। रेखादि द्वारा भूमि खनन करना और पहनी हुई माला स्वयं खोलना निषिद्ध है। जिस ग्राममें अधिक संख्यक अधार्मिकोंका वास हो, जो स्थान शूद्रवशवर्त्ती हो और जहां वेद-वहिर्भूत पाषण्डोंका अधिकार हो, ऐसे स्थानमें ब्राह्मणोंको न रहना चाहिए। जिन पदार्थोंका स्नेहमय सारभाग निकाल लिया गया हो, वे पदार्थ भी ब्राह्मणको न खाना चाहिए। जिसमें दृष्ट और अदृष्ट किसी प्रकारका भी फल नहीं है, ऐसी वृथा चेष्टा भी करना उचित नहीं। ब्राह्मण अञ्जलि द्वारा जल न पीयें, न ऊरुके ऊपर रख कर भोजन करें, और न विना प्रयोजन किसी विषयमें कौतूहल ही करें। अशास्त्रीय नृत्य-गीत अथवा वादित्र-वादन न करें। वाहुके भीतर या ऊपर हथेली रख कर आस्फोटन ध्वनि, दन्तघर्षण और गर्दभादिकी तरह चीत्कार करना भी ब्राह्मणके लिए निषिद्ध है। कांसेके पात्रमें पैर धोने, फूटे वरतनमें भोजन करनेसे मनोभाव अप्रशस्त होते हैं, इसलिए ऐसा न करना चाहिए। दूसरेके व्यवहार्य चर्मपादुका, वस्त्र, उपवीत, अलङ्कार, माला और कमण्डलु आदि व्यवहारमें लाना उचित नहीं। स्वयं अपने नख और लोम छेदन न करना चाहिए।

ब्राह्मणको चाहिए कि ब्राह्ममुहूर्तमें अर्थात् रात्रिके शेष प्रहरमें जागरित होकर धर्म और अर्थको तथा कैसे कायक्लेशसे वह प्राप्त होंगे, इसकी चिन्ता करें। वेदतत्त्वार्थ परब्रह्म-निरूपण करके शय्यासे उठें। उसके वाद आवश्यक मल-मूत्र त्याग कर शुचि हो कर समाहित मनसे प्रातःस्नान, सन्ध्या और गायत्री जप करें। इससे दीर्घायु, प्रज्ञा, यश, कीर्त्ति और ब्रह्मतेज प्राप्त होता है। इत्यादि।

विशेष जाननेके लिए मनुसंहिता ४र्थ अध्याय और आह्निक तत्त्व देखो।

ब्राह्मणके लिए प्रतिदिन यथानियम सन्ध्यावन्दनादि करना अवश्य कर्त्तव्य है। यदि कोई ब्राह्मण मोहमें आ कर सन्ध्यावन्दनादि न करें तो, देव और पितृगण उसके द्वारा की हुई पूजा और श्राद्धादि ग्रहण नहीं करते। ऐसे ब्राह्मण शूद्रके समान दैव और पैत्रकार्यमें वर्जनीय हैं।

"न गृह्णन्ति सुरास्तेषां पितरः पिण्डतर्पणम्।
स्वेच्छया च द्विजातेश्च त्रिसन्ध्यारहितस्य च॥"
"नोपतिष्ठति यः पूर्वां नोपास्ते यस्तु पश्चिमां।
स शूद्रवद्वहिःकार्यः सर्वस्माद्विजकर्मणः॥"
(ब्रह्मवैवर्त्तपु० प्रकृतिख० २१ अ०)

वेदान्तसारमें लिखा है—सन्ध्यावन्दनादि नित्यकर्म है, नहीं करनेसे प्रत्यवाय होता है। इसके अनुष्ठानसे दैनन्दिन पाप क्षय होते हैं। "नित्यानि, अकरणे प्रत्यवाय साधनानि सन्ध्यावन्दनादीनि" (वेदांतसार)

ब्राह्मणके प्रतिदिन संध्या करनेका फल—

"यावज्जीवनपर्यन्तं यस्त्रिसन्ध्यं करोति यः।
स च सूर्यसमो विप्रस्तेजसा तपसा सदा॥
तत्पादपद्मरजसा सद्यः पूता वसुंधरा।
जीवन्मुक्तः स तेजस्वी संध्यापूतो हि यो द्विजः॥
तीर्थानि च पवित्राणि तस्य संस्पर्शमात्रतः।
ततः पापाणि यान्त्येव वैनतेयादिवोरगाः॥"
(ब्रह्मवैवर्त्तपु० प्रकृतिख० २१ अ०)

जो ब्राह्मण यावज्जीवन त्रिसन्ध्याका अनुष्ठान करते हैं, वे सूर्यके समान तेजस्वी होते हैं। उनके पाद-पद्म पराग द्वारा पृथिवी पवित्र होती है, उनके संस्पर्शसे तीर्थ-समुदाय भी पवित्र होता और पाप समूह धुल जाता है।

ब्राह्मणके लिए निन्दित कर्म ये हैं—विष्णुमन्त्रका परित्याग, त्रिसन्ध्या-वर्जन, एकादशी न करना, विष्णु-नैवेद्य-भोजन, शूद्रान्न-भोजन, शूद्र शवदाहन, शूद्र-याजन, कन्या-विक्रय, हरिनाम-विक्रय और विद्या-विक्रय आदि कर्म ब्राह्मणके लिए निन्दनीय हैं। इनके सिवा धावक, वृष-वाहक, वृषलीपति, असिजीवी, मसीजीवी, अवीरान्न-भोजी, ऋतुस्नातान्न-भोजी, भगजीवी, वार्द्धुषिक, सूर्यो-दयमें द्विभोजी, मत्स्यभोजी और शालग्राम शिलापूजादि रहित ब्राह्मण निन्दित हैं। (ब्रह्मवै०पु० प्र०खं० २१)

"यदि शूद्रां व्रजेद्विप्रो वृषलीपतिरेव सः।
स भ्रष्टो विप्रजातेश्च चाण्डालात् सोऽधमः स्मृतः॥"
(ब्रह्मवै०पु० प्र०खं० २७)

यदि ब्राह्मण शूद्राओंके साथ गमन करे, तो वह वृषलीपति कहलायगा। इस श्रेणीके ब्राह्मणोंके श्राद्धका पिण्ड विष्ठा-सदृश और तर्पण मूत्र तुल्य है, तथा उसका कोटि जन्मार्जित तपस्याका फल नष्ट होता है।

ब्राह्मणके लिए प्रतिग्रह-निषेध—कुरुक्षेत्र, वाराणसी, वदरी, गङ्गासागरसङ्गम, पुष्कर, भास्करक्षेत्र, प्रभास, रासमण्डल, हरिद्वार, केदार, सोमतीर्थ, वदरपाचन, सरस्वती नदीतीर, वृन्दावन, गोदावरी, कौशिकी, त्रिवेणी और नारायणक्षेत्र आदि तीर्थोंमें ब्राह्मणको प्रतिग्रह न करना चाहिए।

परिभाषिक महापातकी ब्राह्मण—

"शूद्रसप्तोद्रिक्तयाजी ग्रामयाजीति कीर्त्तितः।
देवोपजीवजीवी च देवलश्च प्रकीर्त्तितः॥
शूद्रपाकोपजीवी यः सूपकारः प्रकीर्त्तितः।
सन्ध्यापूजाविहीनश्च प्रमत्तः पतितः स्मृतः॥
एते महापातकिनः कुम्भीपाकं प्रयान्ति ते।"

(ब्रह्मवैवर्त्तपु० प्रकृतिखं० २७ अ०)

सात शूद्रोंके अधिक यजनकारीका नाम ग्रामयाजी है। ये ग्रामयाजी ब्राह्मण, देवोपजीवी देवल, शूद्रका पाचक ब्राह्मण और सन्ध्यावन्दनादि-विहीन प्रमत्त ब्राह्मण महापातकी हैं। इस श्रेणीके ब्राह्मण कुम्भीपाक नरकमें जाते हैं।

ब्राह्मण प्रसन्न-चित्तसे जो भी आशीर्वाद देते हैं, वह पूर्णस्वस्त्ययन है।

"आशिषं कर्त्तुमर्हन्ति प्रसन्नमनसा शिशुम्।
पूर्णस्वस्त्ययनं स्वाग्रो विप्राशीर्वचनं ध्रुवम्॥"

(ब्रह्मवैवर्त्तपु० श्रीकृष्णजन्म खं० १३ अ०)

ब्राह्मण अपने कर्म द्वारा अपाङ्क्तेय वा पङ्क्तिपावन होते हैं। अपाङ्क्तेय ब्राह्मण, जैसे—कितव, भ्रूणहा, यक्ष्मी, पशुपालक, वार्द्धुषिक, गायक, सर्वविक्रयी, अगारदारी, गरद, कुण्डाशी, सोमविक्रयी, सामुद्रिक, राजदूत, तैलिक, कूटकारक, पिताके साथ विवादकारी, अभिशस्त, स्तेन, शिल्पोपजीवी, पर्वकार, सूची, मित्रद्रोही, पारदारिक, परिवित्ति, दुश्चर्मा, गुरुतल्पग, कुशीलव, देवलक और नक्षत्रजीवी आदि ब्राह्मण अपाङ्क्तेय हैं; अर्थात् इनके साथ बैठ कर भोजन न करना चाहिए।

'पङ्क्ति पावन' शब्द देखो।

ब्राह्मण क्षत्रियादि त्रिवर्णके द्वारा प्रणम्य हैं। पुष्पहस्त, पयोहस्त, देवहस्त, तैलाभ्यङ्गित-विग्रह, देवगृहस्थित, और देव पूजाके समय, इन अवस्थाओंमें ब्राह्मणको प्रणाम नहीं करना चाहिए।

"पुष्पहस्तं पयोहस्तं देवहस्तञ्च भूसुरं।
न नमेत् ब्राह्मणं प्रातस्तैलाभ्यङ्गितविग्रहम्॥" इत्यादि।

(पद्मपु० क्रियायोग सा० २ अ०)

आततायी ब्राह्मणको वध करनेमें कुछ भी दोष नहीं है। (ब्रह्मवैवर्त्त पु० गणपति खं० २५ अ०)

यहां तक तो विभिन्न शास्त्रोंसे ब्राह्मणके आचार व्यवहार और अनुष्ठेय व्रतकर्मादिका विषय लिखा गया। अब अन्यान्य विषय लिखे जाते हैं। ब्रह्मके मानस-कल्पमें मानवादि सृष्ट होनेके बाद, उनमें जाति-विभाग सङ्गठित हुआ। भारतवर्षके सिवा अन्याय देशके अधिवासी गण एक जातिमें शामिल हैं और विभिन्न सम्प्रदायोंमें विभक्त हैं। परन्तु इस हिन्दू-प्रधान भारतभूमिमें ब्राह्मणादि चार जातियोंका विभाग है। मध्य एशियासे जो आर्य औपनिवेशिक पहले भारतकी तरफ आये थे, उनमें इस प्रकारका वर्ण-विभाग था या नहीं, इसका कोई प्रकृष्ट प्रमाण उपलब्ध नहीं है। हम ऋग्वेदके पुरुषसूक्तमें (१०।९०।११-१२) देखते हैं, कि पुरुष विभक्त होने पर उनके मुखसे ब्राह्मण हुए थे। इसके अतिरिक्त वाजसनेय संहिता (१४।२८-३९), अथर्ववेद (१५।१०।१-३ और १९।६।६), तैत्तिरीय संहिता (७।१।१।४-६), तैत्तिरीय ब्राह्मण (१।२।६।७ और ३।१२।९।३) और शतपथ-ब्राह्मणके (२।१।४।१२) सूत्रमें ब्राह्मणादिकी उत्पत्तिका उल्लेख है। वेदके सिवा मनुसंहिता कूर्मपुराण और भागवत पुराणमें भी पुरुषसूक्तके अनुसार चार जातियोंकी उत्पत्तिका विवरण लिखा है। ब्रह्माण्डपुराणमें (पूर्वभाग ८।१५५-१६०) "सर्वभूते ब्रह्म विद्यमान" इस प्रकार चिन्तावृत्ति-धारी प्रजागण स्वयम्भू ब्रह्मा द्वारा ब्राह्मण-रूपमें निर्दिष्ट हुए थे। विष्णु, मत्स्य और मार्कण्डेय पुराणमें भी ठीक ऐसा ही वर्णन पाया जाता है। हरिवंशमें शुद्ध सत्त्वगुणसे, महाभारत आदिपर्वमें मनुसे और शान्तिपर्वमें कृष्णके मुखसे, तथा श्रीमद्भागवतमें (३।६,२९-२७) विराट् पुरुषके मुखसे ब्राह्मणकी

उत्पत्ति हुई है, ऐसा उल्लेख मिलता है। मुखसे उत्पत्ति होनेके कारण ब्राह्मण सर्व वर्णोंमें प्रथम और गुरु हुए हैं।

पुराणके प्रसङ्गसे और भी ज्ञात होता है, कि पहले क्षत्रिय और वैश्यगण ब्राह्मणत्व प्राप्त करते थे और वे 'क्षत्रोपेत-ब्राह्मण' कहलाते थे * वेदादि ग्रन्थोंमें ब्राह्मणके यज्ञादिमें पौरहित्य करनेका उल्लेख पाया जाता है।

(ऋक् १०।१०८।५ और ऐतरेय ब्रा० ७म पञ्चिका)

ब्राह्मण द्वारा ब्राणीसे उत्पन्न सन्तान ब्राह्मण होगी। ब्राह्मण यदि अनुलोम-क्रमसे हीन वर्णको स्त्रीके साथ गमन करके उससे सन्तान उत्पन्न करे, तो वह सन्तान माताके हीनजातित्वके कारण उसी जातिकी होगी। उत्कृष्ट जाति ब्राह्मण द्वारा शूद्रकन्यासे उत्पन्न सन्तान निकृष्ट होने पर भी सप्तम जन्ममें वह उत्कृष्ट जातित्व अर्थात् ब्राह्मणत्व प्राप्त करेगी। याज्ञवल्क्यमें लिखा है, सवर्णमें अनिन्द्य विवाहसे जो पुत्र उत्पन्न होता है, वह उसी जातिका समझा जायगा। जातिके उत्कर्षसे पञ्चम वा सप्तम जन्ममें ब्राह्मण्यलाभ है, किंतु जीविकाके व्यतिक्रमसे पूर्ववत् अधर (प्रतिलोमज) होता है। † महाभारतके अनुशासनपर्व (अ० १४३)-में लिखा है, कि ब्राह्मणधर्म अवलम्बनसे जीविकानिर्वाहकारी ब्राह्मणत्वको प्राप्त होता है। वनपर्व (२११।१२-१३) में ऐसा देखनेमें आता है कि शूद्रयोनिसे उत्पन्न होने पर भी कोई व्यक्ति यदि सद्‌गुणोंकी सेवा करे तो उसे वैश्यत्व और क्षत्रियत्व प्राप्त होता है और तो क्या, एकमात्र सारल्य गुणमें अभिनिविष्ट होनेसे उसके लिए ब्राह्मणत्व भी लभ्य हो सकता है।¶

* हरिवंश ११ और ३२ अ०, विष्णुपुराण ४।८।१, ४।१-३ अ० और ४।१९।२१, भागवत ९।२।२३, ९।२०।२७ और ९।२१। २१ तथा ब्रह्माण्ड, लिङ्ग और मत्स्यादि पुराणमें भी इस प्रकारका उल्लेख पाया जाता है। विस्तृत विवरण "पुरु" शब्दमें देखना चाहिये।

† मिताक्षरामें विज्ञानेश्वरने इसकी विशद व्याख्या की है।

¶ यहां महाभारत-कारने चातुर्वर्ण्य समाजकी आदिम अवस्थाकी अवतारणा की है। हम देखते हैं कि चातुर्वर्ण्य-समाजकी उस शैशवावस्थामें शूद्र कवष ब्राह्मण और वेद-मन्त्र-प्रकाशक ऋषि कहलाते थे। (ऐतरेय ब्रा० २।३।१)

चातुर्वर्ण्यसमाज गठित होनेके साथ ही साथ व्रात्य और सङ्करोंकी उत्पत्ति हुई। उपनयनादि संस्कार-वर्जित द्विजातियां व्रात्य और जिसके भिन्न जातीय माता पिता हैं वे मिश्र वा शङ्करवर्ण कहलाये।

यह पहले ही कहा जा चुका है, कि सबसे पहले मंत्रकृत् वा वेदस्तोता ऋषिगण ही ब्राह्म वा ब्राह्मण कहलाये थे। किसी ब्राह्मणका परिचय जानना हो, तो पहले उसका वेद, गोत्र और प्रवर जानना आवश्यक है। जिस ऋषिके वंशमें जिसका जन्म है, वही पूर्वपुरुष परिचायक ऋषि ही उसका गोत्र है। ऋक्संहितामें जो ऋषि हैं, बौधायनादिके श्रौत ग्रंथमें उन ऋषियोंके नामसे ही गोत्रनिरूपित हुए हैं। बौधायन, आश्वलायन, कात्यायन, आपस्तम्ब, सत्याषाढ़, भरद्वाज और लौगाक्षि आदि रचित श्रौत ग्रन्थोंमें प्रायः सात सौ विभिन्न गोत्रोंके नाम पाये जाते हैं। भारतवर्षीय ब्राह्मणोंमें वर्त्तमानमें प्रायः दो सौ गोत्र प्रचलित हैं। प्राचीन शिलालेखोंमें अनेक लुप्त गोत्रोंके प्रमाण पाये जाते हैं। 'गोत्र' और 'प्रवर' शब्द देखो।

बहुत प्राचीनकालमें वेदमंत्र द्रष्टा ब्राह्मणगण भारतमें पधारे थे। परवर्त्ती समयमें भी शाकद्वीपसे भारतमें अनेक ब्राह्मणका आगमन हुआ। विभिन्न स्थानोंके ब्राह्मणों-का विवरण इन्हीं शब्दोंमें देखना चाहिए।

महाराज आदिशूरके यज्ञमें पश्चिमकी तरफसे पांच ब्राह्मण बुलाये गये थे। राजा बल्लालसेनने बङ्गालके ब्राह्मणोंमें कौलिन्य मर्यादा स्थापित की। घटक देवीवरने मेल बन्धनद्वारा शिथिलप्राय कौलिन्यको पुनः दृढ़ बनाया। भारतवर्षमें नाना श्रेणीके ब्राह्मणोंका वास है।

देवल, नम्बुरि, वैदिक आदि शब्द देखो।

(क्ली०) २ मन्त्रेतर वेद-भाग, वेदका एक हिस्सा। "तत्र ब्राह्मणस्य लक्षणं नास्ति कुतः? वेद-भागानामियत्तानवधारणेन ब्राह्मणभागेष्वन्यभागेषु च लक्षणस्याव्याप्त्य-तिव्याप्तोः शोधयितुमशक्यत्वात्, पूर्वोक्त-मन्त्रभाग एकः, भागान्तराणि न कानिचित् पूर्वैरुदाहृत्य संगृहीतानि।

"हेतुर्निर्वचनं निंदा प्रशंसा संशयो विधिः।
परक्रिया पुराकल्पो व्यवधारणकल्पना॥"

(ऋग्वेद भाष्योपाद्घात प्र०)

वेदके ब्राह्मणभागका लक्षण स्थिर करना बहुत ही कठिन है, कारण वेदभागकी इयत्ताका कोई अवधारण न होनेसे ब्राह्मणभागके अन्यभागके लक्षणमें अव्याप्ति और अतिव्याप्ति दोष होता है। इसलिए इसका कोई निर्दिष्ट लक्षण न करना ही श्रेय है। परन्तु इतना कहा जा सकता है, कि मन्त्रभाग एक है और ब्राह्मणभागमें हेतु, निर्वचन, निन्दा, प्रशंसा, संशय, विधि, परक्रिया, पुरा कल्प और व्यवधारण-कल्पना आदि कहे गये हैं। वेद मन्त्र और ब्राह्मण इन दो भागोंमें विभक्त हैं। वेदका मन्त्रातिरिक्त भाग ही ब्राह्मणभाग है। ३ विष्णु। (भारत १३।१४६।८४) ४ शिव। (भारत १३।१४६।८४) ५ अग्निका नामान्तर, अग्निका एक नाम। (शतपथब्रा० १।४।२।२) ६ नक्षत्रभेद, एक नक्षत्र।

ब्राह्मणक (सं० पु०) ब्राह्मण कुत्सितार्थे-कन्। १ कुत्सित ब्राह्मण, निन्दित ब्राह्मण। ब्राह्मणेन जातिमात्रेण कायति कै क। २ ब्राह्मणकृत्यरहित ब्राह्मणजाति। संज्ञायां कन्। ३ आयुधजीवि ब्राह्मणप्रधान देश।

ब्राह्मणकल्प (सं० पु०) १ वेदके ब्राह्मण और कल्पभाग (त्रि०) २ ब्राह्मण सदृश।

ब्राह्मणकीय (सं० त्रि०) ब्राह्मणक-छ (पा ४।२।१०४) ब्राह्मणकसम्बन्धीय।

ब्राह्मणकाम्या (सं० स्त्री०) ब्राह्मणस्य काम्या ६-तत्। १ विप्रेच्छा। २ ब्राह्मण विषय।

ब्राह्मणघ्न (सं० त्रि०) ब्राह्मणं हन्ति हन-क। ब्राह्मण-घातक।

ब्राह्मणचक्षुस् (सं० क्ली०) ब्राह्मणस्य सर्वार्थप्रकाशकत्वात् चक्षुरिव। श्रुति और स्मृति ही ब्राह्मणके चक्षु हैं।

"श्रुतिस्मृती च विप्राणां चक्षुषी देवनिर्मिते।
काणस्तत्रैकया हीनो द्वाभ्यामन्धः प्रकीर्त्तितः॥" (हारीत)

ब्राह्मणचण्डाल (सं० पु०) ब्राह्मणश्चाण्डाल इव। शास्त्र-निषिद्ध कर्मकारी अपकृष्ट ब्राह्मण।

ब्राह्मणजात (सं० क्ली०) १ ब्राह्मणवंश सम्भूत। २ विप्र जाति।

ब्राह्मणजातीय (सं० त्रि०) ब्राह्मण सम्बन्धीय।

ब्राह्मणजीविका (सं० स्त्री०) पौरहित्यरूप यजनयाजनादि तथा अध्यापनादिरूप उपजीविका।

ब्राह्मणता (सं० स्त्री०) ब्राह्मणस्य भावः तल् टाप्। १ ब्राह्मणका धर्म, ब्राह्मणका कर्त्तव्य कर्म। २ ब्राह्मण-रूपत्व।

ब्राह्मणत्रा (सं० अव्य०) ब्राह्मणाय देयं त्राच्। ब्राह्मण-को देने लायक।

ब्राह्मणत्व (सं० क्ली०) ब्राह्मणस्य भावः त्वल्। ब्राह्मण-का भाव वा धर्म, ब्राह्मण-पन।

ब्राह्मणदारिका (सं० स्त्री०) ब्राह्मण-कन्या।

ब्राह्मणद्वेषिन् (सं० त्रि०) ब्राह्मणका हिंसाकारी, ब्राह्मणकी हिंसा करनेवाला।

ब्राह्मणपथ (सं० पु०) वेदके ब्राह्मणविशेष।

ब्राह्मणपाल (सं० पु०) राजपुत्रभेद।

ब्राह्मणप्रिय (सं० त्रि०) ब्राह्मणः प्रियो यस्य। १ विष्णु। ब्राह्मणस्य प्रियः। २ विप्रहित।

ब्राह्मणब्रुव (सं० पु०) ब्राह्मणवंशोत्पन्नतया वेदोक्त-कर्माकुर्वन्नपि आत्मानं ब्राह्मणं ब्रवीतीति ब्राह्मण ब्रू-क, बाहुलकात् न वच्यादेशः। ब्राह्मण जातिमात्रोपजीवी, वेदविहित कर्मादिहीन ब्राह्मण। जो सब ब्राह्मण संस्कृत अर्थात् उपनयनादि संस्कारयुक्त हो कर नित्य और नैमित्तिक कर्म अथवा अध्ययन और अध्यापनादि किसी भी कर्मका अनुष्ठान नहीं करते, उन्हें ब्राह्मणब्रुव कहते हैं। जो ब्राह्मण हो कर ब्राह्मणके किसी भी कर्त्तव्यका पालन नहीं करते और अपनेको ब्राह्मण होनेका दावा करते हैं वे ही ब्राह्मणब्रुव हैं।

"सममब्राह्मणे दानं द्विगुणं ब्राह्मणब्रुवे।
अधीते शतसाहस्रमनन्तं वेदपारगे॥" (मनु ७।८५)

भगवान् मनुने लिखा है, कि अब्राह्मणको दान करनेसे उसका तुल्यरूप फल, ब्राह्मणब्रुवको दान करनेसे उसका दूना, अधीत ब्राह्मणको दान करनेसे लाख गुना और वेदपारग ब्राह्मणको दान करनेसे अनन्त गुणफल प्राप्त होता है।

ब्राह्मणभोजन (सं० क्ली०) ब्राह्मणानां भोजनम्। ब्राह्मण-को खिलाना। किसी दैव वा पैत्र कर्मका अनुष्ठान करनेसे उसके अङ्गस्वरूप ब्राह्मणभोजन कराना अवश्य

कर्त्तव्य है। मनुमें ब्राह्मणभोजनका विषय इस प्रकार लिखा है,—

पञ्चयज्ञके अन्तर्गत पितृयज्ञमें पितरोंको संतुष्ट करनेके लिये एक भी ब्राह्मणभोजन कराना उचित है। बलिवैश्व में ब्राह्मणभोजनकी आवश्यकता नहीं होती।

दैवकार्य में दो और पितृकार्यमें तीन ब्राह्मण अथवा दैवपक्षमें एक और पितादि पक्षमें भी एक ब्राह्मणभोजन कराना होता है। समर्थ होने पर भी इससे अधिक ब्राह्मणभोजन करानेका नियम नहीं है, क्योंकि अधिक ब्राह्मण होनेसे उनकी सेवा, देश, काल, शुद्धाशुद्ध और पात्रापात्रके विचार आदि सम्बन्धमें किसी नियमका सम्यक्‌रूपसे प्रतिपालन नहीं होता। इसी कारण बहुत ब्राह्मणोंको खिलाना निषिद्ध है। ब्राह्मण दैव और पितृकार्यमें एक एक वेदविद् ब्राह्मणको खिलाना चाहिये। वेदसे अनभिज्ञ यदि सैकड़ों ब्राह्मणको खिलाया भी क्यों न जाय, तो भी कोई फल नहीं। वेदपारग ब्राह्मणके सम्बन्धमें विशेष अनुसन्धान करना आवश्यक है, अर्थात् उनके पिता, पितामहादि, पूर्वपुरुषका भी कैसा आभिजात्यादि गुण था, उसका निरूपण करे। वंशपरम्परा-शुद्ध, वेदपारग ब्राह्मण-भोजन ही प्रशस्त है। वेदसे अनभिज्ञ जहां दश लाख ब्राह्मण भोजन करते हैं, उस श्राद्धमें यदि वेदविद् एक भी ब्राह्मणभोजन करे, तो दश लाख ब्राह्मणभोजन करानेका फल होता है। अज्ञ ब्राह्मण श्राद्धमें जितने ग्रास भोजन करते हैं, परलोकमें उन्हें उतने ही लौहपिण्ड खाने पड़ते हैं।

ब्राह्मणोंके मध्य कोई आत्मज्ञाननिष्ठ, कोई तपस्यापरायण, कोई तपस्या और अध्ययन उभयनिष्ठ और कोई कर्मनिष्ठ हैं। इन चार प्रकारके ब्राह्मणोंमें आत्मज्ञाननिष्ठ ब्राह्मणको ही श्राद्धमें खिलाना चाहिये। किन्तु दैवकर्ममें उक्त चारों ही प्रकारके ब्राह्मण-भोजन प्रशस्त है। जिनके पिता मूर्ख हैं अथवा जो स्वयं वेदपारग हैं या जो स्वयं मूर्ख और पिता वेदपारग हैं इन दोनोंमेंसे जिनके पिता वेदपारग हैं, उन्हें भोजन करानेसे अधिक फल प्राप्त होता है। वेदपारग ऋग्वेदी ब्राह्मण, समस्त शाखाध्यायी यजुर्वेदी ब्राह्मण अथवा सामवेदी ब्राह्मण, इन तीन वेदी ब्राह्मणोंमेंसे किसीको भोजन करा सकते हैं। श्राद्धमें ऐसे ब्राह्मणका अभाव हो तो कल्पविधानसे कार्य सम्पन्न करे।

अनुकल्पविध—मातामह, मातुल, भागिनेय, श्वशुर, गुरु, दौहित्र, जामाता, मातृष्वसृ, पितृष्वसृ, पुत्रादि, बंधु, पुरोहित और शिष्य इन्हें भोजन कराना चाहिये। केवल श्राद्धकर्ममें ही ऐसे ब्राह्मणका विचार किया जा सकता है। अन्य दैवक्रियामें उनका गुणागुण नहीं देखा जाता। किंतु निम्नोक्त निन्दित-ब्राह्मणको, चाहे दैव कार्य हो या पैत्र किसी भी कार्यमें भोजन नहीं कराना चाहिये। जो सब ब्राह्मण चोरी करते हैं, जो क्लीव, नास्तिक, वेदाध्ययनशून्य, ब्रह्मचारी चर्मरोगग्रस्त, द्युत क्रीड़ापरायण, बहुयागी, चिकित्साव्यवसायी, प्रतिमा-पारचालक, देवल, वाणिज्योपजीवी, कुनखी, श्यावदन्त अर्थात् कृष्णवर्ण दन्तविशिष्ट, गुरुके प्रतिकूलाचरणकारी, श्रौत तथा स्मार्त्त अग्निपरित्यागकारी कुशीदजीवी, पशुपालक इत्यादि तथा और भी जो निन्दित ब्राह्मण हैं उन्हें खिलानेसे ब्राह्मणभोजनका फल नहीं होता, वरं पाप ही होता है। (मनुसंहिता ३ अध्याय)

आजकल उक्त गुणयुक्त ब्राह्मण नहीं मिलते, इसी कारण कुशमय ब्राह्मण बना कर श्राद्धादि निष्पन्न किया जाता है।

ब्राह्मणयज्ञ (सं० पु०) ब्राह्मणमात्रकर्त्तृको यज्ञः मध्यपद लोप कर्मधा०। विप्रमात्रकर्त्तव्य सौत्रामणीय यज्ञ। "ब्राह्मणयज्ञः सौत्रामण्यृद्धिकामस्य" (कात्या० श्रौ० १९।१।१)

ब्राह्मणयष्टिका (सं० स्त्री०) ब्राह्मणस्य यष्टिरिव; ततः स्वार्थे संज्ञायां वा कन् अतः इत्वं। वृक्षविशेष, भारंगी। पर्याय—फञ्जिका, ब्राह्मणी, पद्मा, भार्गी, अङ्गारवल्ली, बालेयशाक, बर्बर, वर्द्धक, ब्रह्मयष्टि, फञ्जीका, यष्टी, ब्रह्मयष्टिका, दुर्वारा, अङ्गारवल्लरी, वालेय, ब्राह्मिका, भृगुभवा, पथ्या, खरशाक, इञ्जीका। गुण—रुक्ष, कटु, तिक्त, रुचिकर, उष्ण, पाचन, लघु, दीपन, गुल्म, रक्त, शोथ, कास, कफ, श्वास, पीनसरोग, ज्वर और वायुनाशक। (भावप्र०) २ विप्रदण्ड।

ब्राह्मणयष्टी (सं० स्त्री०) ब्राह्मणस्य यष्टीव। भार्गी।

ब्राह्मणलक्षण (सं० क्ली०) ब्राह्मणस्य लक्षणम्। विप्रका असाधारण धर्मभेद।

योग, तपस्या, दम, दान, सत्य, शौच, दया, शास्त्र-ज्ञान और आस्तिक्य ये सब ब्राह्मणके लक्षण हैं।

ब्राह्मणवध (सं॰ पु॰) ब्राह्मणस्य वधः। ब्राह्मणहत्या।

ब्राह्मणवत् (सं॰ त्रि॰) १ ब्राह्मणतुल्य। २ ब्राह्मणयुक्त। ३ वेदके ब्राह्मणनिर्दिष्ट विधिके अनुरूप।

ब्राह्मणवर्चस् (सं॰ क्ली॰) ब्रह्मणस्य वचः ततोऽचसमासान्तः। ब्राह्मणका तेज। ब्रह्मवर्च्चस् देखो।

ब्राह्मणशस्त्र (सं॰ क्ली॰) ब्राह्मणस्य शस्त्रमिव तत्-कार्यकारित्वात्। अभिचारादि मन्त्रोच्चारणात्मक विप्र-वाक्य। ब्राह्मण जिस मंत्रका उच्चारण करके अभिचारादि कार्य सम्पन्न करते हैं वह वाक्य शस्त्रकी तरह कार्य करता है, इसीसे इसका ब्राह्मणशस्त्र नाम पड़ा।

ब्राह्मणसम (सं॰ पु॰) ब्राह्मणस्य समः। क्रियारहित विप्र, वह ब्राह्मण जो ब्राह्मण-कर्त्तव्यकर्म नहीं करता है। ब्रह्म-बीजसे जन्म ले कर मंत्र और संस्कारादि वर्जित होनेसे उसको ब्राह्मणसम कहते हैं।

ब्राह्मणसात् (सं॰ अव्य॰) ब्राह्मणाधीनं करोति ब्राह्मण-साति। जो ब्राह्मणके अधीन हो।

ब्राह्मणस्पत्य (सं॰ पु॰) वृहस्पतिका काय।

ब्राह्मणहित (सं॰ त्रि॰) ब्राह्मणस्य हितः। ब्राह्मणका हितकारी। पर्याय—ब्राह्मण्य।

ब्राह्मणाच्छंसिन् (सं॰ पु॰) ब्राह्मणे मंत्रेतरवेदभागे विहितानि शास्त्राणि उपचारात् ब्राह्मणानि तानि शंसति द्वितीयार्थे पञ्चम्युपसंख्यानं इति अलुक्। सोमयज्ञमें ब्रह्मरूप ऋत्विक्का सहकारी ऋत्विक्भेद।

ब्राह्मणाच्छंसीय (सं॰ त्रि॰) ब्राह्मणाच्छंसिनो भावः 'होत्राभ्यश्छ', इति च्छ। ब्राह्मणाच्छंसीका भाव या कर्म। (सांख्या॰ ब्रा॰ ३०।६)

ब्राह्मणाच्छंसी (सं॰ त्रि॰) ब्राह्मणाच्छंसिसम्बन्धीय।

ब्राह्मणादि (सं॰ पु॰) भाव और कर्ममें ष्यञ् प्रत्यय निमित्त पाणिन्युक्त शब्दगण। यथा—ब्राह्मण, वाड़व, माणव, चोर, धूर्त्त, आराधय, अपराधय, उपराधय, एक-भाव, द्विभाव, त्रिभाव, अन्यभाव, अक्षेत्रज्ञ, संवादिन्, संवेशिन्, संभाषिन्, वहुभाषिन्, शीर्षघातिन्, विघातिन्, समस्थ, विषमस्थ, परमस्थ, मध्यमस्थ, अनीश्वर, कुशल, चपल, निपुण, पिशुन, कुतूहल, क्षेत्रज्ञ, मिश्र, बालिश, अलस, दुःपुरुष, कापुरुष, राजन्, गणपति, अधिपति, गडुल दायाद, विशस्ति, विषम, विपात, निपात। (पाणिनि)

ब्राह्मणायन (सं॰ पु॰) ब्राह्मणस्यापत्यं नड़ादिभ्यः, फक्। (पा ४।१।९९) ब्राह्मणका गोत्रापत्य, शुद्धवंशजात विप्र।

ब्राह्मणिक (सं॰ त्रि॰) ब्राह्मस्य मंत्रेतरवेदभागस्य व्याख्यानो ग्रन्थः ठक्। मंत्रेतर वेदभाग व्याख्यान ग्रंथ।

ब्राह्मणी (सं॰ स्त्री॰) ब्राह्मण स्त्रियां ङीष्। १ ब्राह्मण-पत्नी। मनुमें ब्राह्मणीगमनका विषय इस प्रकार लिखा है—

शूद्र यदि अरक्षिता ब्राह्मणी-गमन करे, तो उसका लिङ्गच्छेद और सर्वस्वहरण तथा भर्त्रादि कर्त्तृक रक्षिता ब्राह्मणगमन पर उसका वध और सर्वस्व-हरण दण्ड विधेय है। वैश्य यदि रक्षिता ब्राह्मणी-गमन करे, तो उसे एक वर्ष कारावरोध दण्ड दे और उसकी सारी सम्पत्ति छीन ले। क्षत्रिय यदि ऐसा करे, तो उसे सहस्र पणदण्ड तथा गर्दभमूत्र द्वारा उसका मस्तक मुड़वा दे। वैश्य वा क्षत्रिय यदि अरक्षिता ब्राह्मणी-गमन करे, तो वैश्यको ५०० सौ पण और क्षत्रिय-को १०० पण दण्ड होना चाहिये। वैश्य वा क्षत्रियके गुणवती रक्षिता-ब्राह्मणीका गमन करनेसे उसे शूद्रवत् दण्ड और ब्राह्मणके वलपूर्वक रक्षिता ब्राह्मणी गमन करनेसे सहस्र पण दण्ड तथा सकामा ब्राह्मणीगमन करनेसे ५०० सौ पण दण्ड होना चाहिए। (मनु ८ अ॰)

"कुलटा विप्रपत्नीनां गमने सुरविप्रयोः।
ब्रह्महत्यापोड़शांशं पातकं तु भवेत् ध्रुवम्॥"
(ब्रह्मवैवर्त्तपु॰ प्रकृति ख॰ ४५ अ॰)

कुलटा ब्राह्मणी-गमन करने पर भी ब्रह्महत्याके १६ भागोंका एक भाग पाप लगता है।

२ बुद्धि। महाभारतमें 'बुद्धि'-को परिभाषिक ब्राह्मणी-रूपमें बतलाया गया है। (भारत १४।३४।११-१२)

३ तीर्थविशेष। इस तीर्थमें स्नानदानादि करनेसे पद्मवर्ण यान द्वारा ब्रह्मलोककी गति होती है। (भारत ३।८४।५४)

ब्राह्मणीत्व (सं॰ क्ली॰) ब्राह्मणी भावे त्व। ब्राह्मणीका भाव या धर्म।

ब्राह्मण्य (सं० क्ली०) ब्राह्मणानां समूहः ब्राह्मण (ब्राह्मणमानवबाड़वाद्यत्। पा ४।२।४२) इति यत्। ब्राह्मण समूह। २ ब्राह्मणका धर्म, विप्रत्व।

ब्राह्मण यदि शूद्रासे पुत्रोत्पादन करे, तो उसके ब्राह्मण धर्मकी हानि होती है। (पु०) ३ शनिग्रह।

ब्राह्मदन्त (सं० पु०) १ ब्रह्माका हस्तस्थित दण्ड। ब्रह्मास्त्रभेद।

ब्राह्मदत्तायन (सं० पु०) ब्रह्मदत्त नड़ादित्वात् फक् (पा ४।१।९९) ब्रह्मदत्तका अपत्य।

ब्राह्मप्राजापत्य (सं० त्रि०) ब्रह्मप्रजापति-सम्बन्धीय।

ब्राह्ममुहूर्त्त (सं० पु०) ब्राह्मो ब्रह्मदेवताको मुहूर्त्तः। अरुणोदयकालके प्रथम दो दण्ड, सूर्योदय।

ब्राह्मराति (सं० पु०) याज्ञवल्क्यका गोत्रापत्य।

ब्राह्म-समाज—हिन्दूशास्त्र-सम्मत धर्मसम्प्रदाय-विशेष, हिंदू शास्त्रानुमोदित एक धर्म-समाज। एकमात्र परब्रह्मकी उपासना ही इस सम्प्रदायका मुख्य उद्देश्य है। "एकमेवाद्वितीयम्" के सिवा यह समाज अन्य देवताओंका वास्तविक अस्तित्व नहीं मानता। साथ ही ये लोग संस्कारके वशीभूत हो कर 'सर्वत्र' ही ब्रह्म विद्यमान हैं, इस तत्त्ववाक्यकी दुहाई दे कर काली, दुर्गा आदि देवी-देवताओंके प्रति भक्ति-प्रदर्शन करनेमें भी कुण्ठित नहीं होते। एक ब्रह्मके सिवा जगत्में और द्वितीय मूल शक्ति नहीं, यह शुद्ध अद्वैतवादियोंका मत है। महात्मा राममोहनराय द्वारा प्रतिष्ठित ब्राह्ममत उसीका अनुरूप है *। "ॐ तत् सत्" इनका मूल मन्त्र है।

ब्राह्मसमाजका उत्पत्ति-प्रकरण उसके प्रतिष्ठाता राजा राममोहनरायकी जीवनीके साथ इतना उलझा हुआ है, कि उनकी जीवनीकी आलोचना विना किये उसका प्रकृत निरूपण करना बहुत ही कठिन हो जाता है। अतएव इस धर्म-समाजकी स्थापनाके प्रसङ्गमें उसके प्रवर्त्तककी कुछ जीवनी भी लिखी जाती है।

बङ्गालके अन्तर्गत हुगली जिलेके दक्षिण-विभागमें खानाकुल ग्रामसे सटा हुआ राधानगर नामक एक ग्राम है; इसी ग्राममें राजा राममोहन रायका जन्म हुआ था। इनके जन्म-संवत्के विषयमें मतभेद है। कोई कहते हैं, कि १७७४ ई०में इनका जन्म हुआ था और कोई कहते हैं, कि १७७२ में हुआ था। राममोहनराय शाण्डिल्य-गोत्रीय वन्द्योपाध्यायवंशीय सुरई-मेलके राढ़ीय कुलीन ब्राह्मण थे। उनके पूर्वपुरुष मुसलमान नवाव-सरकारमें प्रतिपत्तिशाली थे; इसीसे उनको 'राय' उपाधि थी। राममोहन अंग्रेजोंके प्रथम अधिकारके समय कलेक्टरोंके दीवान-पद पर प्रतिष्ठित हुए थे। तबसे लोग उन्हें दीवान राममोहन राय कहते थे। आखिरमें दिल्लीके पेन्सन-प्राप्त सम्राट्ने 'राजा'की उपाधि दे कर उन्हें अपनी पेन्सनकी वृद्धि करानेके लिए इंग्लैण्ड भेजा जिससे अन्तमें ये राजा राममोहनराय कहलाये।

राममोहनका पितृकुल पौराणिकमतके वैष्णवका उपासक और मातृकुल तान्त्रिकमतानुसार शक्तिका उपासक था। उक्त दोनों कुलोंको स्वधर्ममतमें निष्ठावत्ताकी विशेष ख्याति थी। राममोहन प्रारम्भिक अवस्थामें पितृकुलके वैष्णवधर्ममें परम भक्तिमान् थे। कहा जाता है, कि वे प्रतिदिन श्रीमद्भागवतका एक अध्याय पाठ विना किये जल तक ग्रहण न करते थे; इसके अतिरिक्त उनकी २२ पुरश्चरण-क्रियाकी बात भी सुनी जाती है।

राममोहन अपने ग्राममें बंगला और फारसी सीखनेके बाद अरबीकी शिक्षा पानेके लिए पटना भेजे गये। पीछे संस्कृत सीखनेको काशी भी पहुंचे। आप

* महात्मा राममोहन राय जिस ब्राह्ममतका प्रचार कर गये हैं, वह सम्पूर्णरूपसे शास्त्रानुमोदित है या नहीं हम इस बातकी मीमांसा नहीं करना चाहते। उन्होंने वेदान्त और उपनिषदादिसे जो धर्ममतकी व्याख्या की है, उसका अधिकारित्व जनसाधारणके लिए कितना सम्भवपर है उसी सम्बन्धमें वेदान्तसारमें लिखा है कि—"अधिकारी तु विधिवदधीतवेदवेदाङ्गत्वेनापाततोऽधिगताखिल वेदार्थोऽस्मिन् जन्मनिजन्मान्तरेवाकाम्य निषिद्धवर्जनपुरःसरं नित्यनैमित्तिक प्रायश्चित्तोपासनानुष्ठानेन निर्गतनिखिलकल्मषतया नितान्तनिर्मलस्वान्तः साधनचतुष्टयसम्पन्नः प्रमाता।" यह कुछ भी हो, पर इसमें सन्देह नहीं, कि उनकी पवित्र मतव्यक्ति कालप्रवल्यसे दुष्ट भावापन्न हो गई है। अभी किसी किसी ब्राह्ममें बहुत-से ईसाई हाव भाव मिश्रित देखे जाते हैं।

सामान्य ज्ञान-लाभसे परितृप्त नहीं हुए ; इन सभी भाषाओंमें आपने उच्चतम वैज्ञानिक और दार्शनिक ग्रन्थों का अध्ययन किया था। जब वे पन्द्रह वर्षके हुए, तब तीनों भाषाओंमें व्युत्पन्न और शास्त्रार्थके मर्मके जानकार हो गये। आपका वह ज्ञान हृदय कुटीरमें संकीर्णतासे न रह सका, और न विचार भी पल्लवग्राहितामात्र था ; यही कारण है, कि अभीसे आपके ब्रह्म-विचार में आपको प्रश्न हुआ, कि ब्रह्म एक है तो हम बहुतसे देवताओंकी आराधना और परिच्छिन्न मूर्त्तियोंकी पूजा क्यों करते हैं? आपका यह प्राणस्पर्शी विचार उत्तरोत्तर प्रवल होने लगा। इस विषयमें आपका अपने पिताके साथ भी तर्क वितर्क हुआ था। परन्तु पुत्रके इस प्रकारके व्यवहारसे पिता क्रुद्ध हो गये। पिताका कोप देख पुत्र भी विमर्षभावापन्न हो गये। परन्तु फिर भी आप सहजमें निरस्त न हुए। अधिकतर ज्ञान उपार्जनके लिए आप देशभ्रमणको निकले। इस यात्रामें राममोहन तिव्वत तक जा कर बौद्धलामाओंके धर्मतत्त्वको जाननेकी कोशिश की थी। ३।४ वर्ष बाद आप घर लौटे। परंतु धर्मका सारतत्त्व-निर्णय आपके जीवनका प्रधान कार्य्य हो गया था। इसलिए आप घरमें न रह कर फिर काशी चल दिये। वहां वेदांतादिशास्त्रकी प्रगाढ़ आलोचनासे जो ब्रह्मतत्त्व आपको ज्ञान हुआ, उसके साथ प्रचलित धर्मोंमें बहुत अन्तर देख कर आप उस ब्रह्मतत्त्वकी उद्दीपनाके लिए प्रस्तुत होने लगे। उस समय आपकी अवस्था केवल २५ वर्षकी थी।

इसके बाद आपने अंग्रेजी पढ़ना प्रारम्भ किया। विशेष उद्यमके साथ नूतन भाषा-शिक्षामें प्रवृत्त होने पर भी आपका मन ब्रह्मतत्वके निर्णयमें फंसा रहनेके कारण, अंग्रेजी सीखनेमें अधिक विलम्ब होने लगा।

१८०३ ई०में राममोहनके पिता रामकान्त रायको मृत्यु हुई। उस समय आप अर्थ-सङ्गतिके लिए अंगरेज-सरकारमें कार्य्य करनेको तैयार हुए। १८०४से १८१४ ई० तक आपने सरकारी कार्य्य किया। अन्तमें कितने ही वर्ष तक आप कलेक्टरोंके दीवान रहे।

उस समयका दीवानी-पदका कार्य कैसा था, हम लोगोंकी समझमें नहीं आता। स्वभावतः आप परिश्रमी थे और अपनी तीक्ष्ण बुद्धिसे जटिल विषयोंकी जल्दी ही मीमांसा कर डालते थे। इससे उन्हें सरकारी कार्य करनेके बाद भी अन्य कार्य करनेके लिए काफी अवकाश रहता था। उस समयमें आप धर्मकी आलोचना किया करते थे। अब उनकी तत्त्वानुसन्धित्साके साथ अर्थशक्तिका योग हुआ समझना चाहिए। इससे भारतके नाना सम्प्रदायके लोगोंके साथ समागम और शास्त्रचर्चाके अनेक सुयोग आपको मिले। इस समयमें अपने निगूढ़ शास्त्रार्थ भी लिपिबद्ध किये थे।

'तुहफत् उल् मुवाहिद्दीन' नामक आपका रचा हुआ एक ग्रन्थ है, जिसकी भूमिका अरबी भाषामें और अन्यान्य अंश फारसी भाषामें लिखा गया है। इस ग्रन्थसे राममोहन रायका परिचय मिलता है। ग्रन्थका मर्म यह है कि—कोई पथिक कहता है, कि मैंने समस्त पृथिवीमें भ्रमण किया, पर कहीं भी धर्म-सम्प्रदायोंका सम्मिलन नहीं देखा ; किन्तु प्रणिधान पूर्वक देखनेसे ज्ञान होगा, कि सभी धर्मोंमें एक ईश्वरकी बात है। केवल धर्म-याजकोंने ही भेद-वर्द्धन किया है। इस ग्रन्थके शेषमें कहा गया है कि—लोक-हितके लिए प्रयत्न करो, यही यथेष्ट है। उत्तर देते हुए आपने समस्त शास्त्रीय विचारसे परोपकारको ही कोटि ग्रन्थोंका सारवाक्य बतलाया है। इसे उनके तिव्वत आदि दूरदेश पर्यटनका और बौद्ध-संसर्गका फल ही समझना चाहिए। यह ग्रन्थ पहले लिखे जाने पर भी सम्भवतः उस समयमें ही मुद्रित हुआ था। परन्तु साधारण श्रेणीके लोगोंमें इस ग्रन्थका अधिक प्रचार वा विचार नहीं हुआ।

प्रच्छन्नभावसे ज्ञानान्वेषणमें व्यापृत रह कर राममोहन राय अपने जीवनमें बड़ी तृप्ति अनुभव करते थे। इस अपरिसीम ज्ञानानन्दमें उनकी अर्थ-तृष्णा क्रमशः निवृत्तिकी ओर दौड़ने लगी। आप दीवान होते हुए भी स्वयं आधे कलेक्टर थे। कलेक्टर डिगबी साहब आपको महात्मा समझते थे और बड़ा आदर करते थे। यह मान-मर्यादा भी अब आपको अच्छी न लगने लगी। संन्यासीकी तरह तिब्बत गये थे ; उधरसे लौटते समय

आपकी नस-नसमें संन्यासधर्मकी महत्ता घुस चुकी थी। गार्हस्थिक उन्नतिके लिए आपने जो जो कार्य किये थे, सब आपको हेय मालूम होने लगे। ४० वर्षकी अवस्थामें आप चतुर्थाश्रमको लक्ष्य बना कर, दीवानी-पद छोड़, धर्मोन्नतिके लिए कलकत्ता पधारे। उस समय आपकी त्यागबुद्धि ऐसी बलवती थी, कि अंग्रेज-सरकारके सादर आह्वानके प्रति भी आपने बड़ी निर्भीकतासे उदासीनताका परिचय दिया। तत्कालीन भारत-राज-प्रतिनिधि (गवर्नर जनरल बहादुर)-के एक गुरुतर कार्य सम्पादनके लिए आपसे प्रार्थना करने पर भी, आपने गीतोक्त दैवसम्पत्साधनामें सर्वान्तःकरण लगा दिया और उस पर कुछ भी ख्याल न किया।

राममोहन रायने कलकत्ता और समस्त बंगालकी अवस्था देख कर सर्वसाधारणके हितके लिए क्या क्या किया था, यह बात उनकी कार्यावलीसे स्पष्ट मालूम हो जाती है।

इस विस्तीर्ण भारतभूमिमें अब सूर्य, चन्द्र वा अग्नि-प्रभासम्पन्न हिन्दू राजन्यवर्गका आधिपत्य नहीं है। अब ब्राह्म और क्षात्र-शक्तिके संयोग-वियोगका विचार निष्प्रयोजन है। शास्त्रानुसार राजा ही युग-परिचायक हैं, अतएव मुसलमानोंके अधिकारसे भारतमें नूतन युगका आविर्भाव समझना चाहिए। फिलहाल अंग्रेजोंका अधिकार है। इस नवतर युगके पहलेसे ही दूरवर्ती देशोंके संवर्द्धित ज्ञान, विज्ञान और सभ्यताका प्रकाश धीरे धीरे भारतक्षेत्रमें होने लगा था। सम्प्रति समग्र पृथिवीकी ज्ञानोन्नति और सभ्यताका प्रवाह विद्युत्वेगसे इस प्राचीन क्षेत्रमें आ पहुंचा है।

सृष्टि, स्थिति और प्रलयकी अतीतदेशीया ब्रह्मवाणी भारत की अक्षय और चिरन्तन सम्पत्ति है। राममोहन राय अपनी पूर्वपुरुष-परम्परासे युगयुगान्तर प्रवाहिता उसी अमूल्य सम्पत्तिको प्राप्त कर उसीकी मृतसंजीवनी शक्तिके प्रभावसे सर्वश्रेयो विधायिनी "ॐ तत्सत्" आदि ब्रह्मवाणी उच्चारण-पूर्वक, उसी पूंजीसे मनुष्यके सार्वभौमिक कल्याण-साधनके लिए खड़े हुए।

कलकत्तामें अंग्रेजी राज्यकी राजधानी प्रतिष्ठित होनेके साथ साथ ही वङ्गालमें एक नवीनतर युगका उपक्रम हो रहा था, कि इसी समय राममोहन रायने जन्मग्रहण किया। जिस समय प्रधान विचारपति सर विलियम जोन्सने एशियादेशके और प्रधानतः भारतवर्षके ज्ञानरत्नोंके अनुसन्धानार्थ "एशियाटिक सोसाइटी" स्थापित की थी, उस समय राममोहन राय ज्ञानरत्न संग्रहके लिए अकेले भारतके नाना प्रान्तोंमें भ्रमण कर रहे थे। पीछे उन्होंने भी यूरोपीय विद्वानोंकी तरह अनेक भाषाओंमें अभिज्ञ हो कर उक्त कार्यमें प्राधान्य प्राप्त किया था। १८१४ ई०में आप कलकत्ता आये। उस वर्ष कलकत्तामें ईसामसीके विशपका आसन प्रतिष्ठित हुआ था। इससे पहले कलकत्ता 'टाउन' (Town) मात्र था, अब 'सिटी' (City) हो गया है। ईसाई मिशनरियां सिर्फ कर्तव्य-निष्ठासे इस देशमें आ कर धर्मप्रचार करते थे। फिर राजशक्तिकी सहायतासे वे भारतमें ईसाई-धर्मके प्रचारमें प्रयत्नशील हुए। ऐसे कठिन समयमें वेदान्त ग्रन्थ हाथमें ले कर राममोहन राय उदित हुए।

राममोहन रायने कलकत्ता आ कर प्रथमतः अपने देशीय लोगोंके धर्ममतमें विशोधन करनेकी चेष्टा की। उसके लिए उन्होंने सबसे पहले वेदान्तसूत्रके सुविस्तृत शङ्कर भाष्यका मर्मार्थ बंगलामें लिखा और उसे छपा कर प्रकाशित एवं प्रचारित किया। इसके साथ ही वेदान्त-शास्त्रके सारमर्मका संकलन करके एक छोटी पुस्तिका भी प्रचारित हुई थी। पीछे और भी कई एक उपनिषदोंका इसी प्रकारसे वङ्गानुवाद करके उनका प्रचार किया गया। इसके बाद ही, उन्होंने अंग्रेजी भाषामें उक्त ग्रन्थोंका अनुवाद प्रकाशित कराया। उक्त ग्रन्थोंकी कई-एक भूमिकाओंमें महात्मा राममोहनरायने अपना अभिप्राय व्यक्त किया है। उसमें उन्होंने अपने मनके भावको स्पष्टरूपसे व्यक्त करनेमें वाक्य विन्यासमें किसी प्रकारकी त्रुटि नहीं रखी है। नीचे उनके कुछ वाक्य उद्धृत किये जाते हैं, जिससे उनका संक्षिप्त अभिप्राय मालूम हो सकता है।

वेदान्तसूत्रके अर्थ-व्याख्याके प्रारम्भमें आपने नान्दी वाक्यमें कहा है कि—"वेदमें पुनः पुनः प्रतिज्ञा करते हैं, कि सम्पूर्ण वेदमें ब्रह्मको कहा गया है और ब्रह्म ही वेदके प्रतिपाद्य हैं।"

इस ग्रन्थकी भूमिकामें आपने लिखा है—"इस अकिञ्चनने वेदान्तशास्त्रका अर्थ भाषामें एक प्रकारसे यथासाध्य प्रकट किया है। इसकी दृष्टिसे जानियेगा, कि हमारे शास्त्रानुसार अति पूर्व-परम्परासे और बुद्धिकी विवेचनासे जगत्के स्रष्टा, पाता और संहर्त्ता इत्यादि विशेषणों द्वारा व्यक्त केवल ईश्वर ही उपास्य हुए हैं। अथवा स र्वेन्द्रिय-विषय-क्षमतापन्न होनेसे ब्रह्ममय और इस रूपमें वे ही ब्रह्म साधनीय हुए हैं।"

इन ग्रन्थोंके प्रकाशित होने पर ब्राह्मणोंने नाना प्रकार-से आपत्ति की थी। उसके उत्तरमें राममोहन रायने अपना यह सिद्धान्त प्रकट किया कि "जब ज्ञानके विना मोक्ष नहीं होगा, तब सबके लिए ज्ञानकी साधना आवश्यक है। इसमें वर्ण, आश्रम, वेदाध्ययनादिका विधि-निषेध घटा कर लोगोंको परमार्थसे भ्रष्ट करना अनुचित है। यतिको जिस प्रकार ब्रह्मविद्यामें अधिकार है, उसी प्रकार उत्तम गृहस्थको भी अधिकार है, कि वह ब्रह्मज्ञान अर्जन करे। साधारणतः ज्ञान-साधनके समय प्रणव उपनिषदादिके श्रवण-मनन द्वारा आत्मामें एकनिष्ठा होनेका अनुष्ठान और इन्द्रिय-निग्रहमें यत्न, इतना ही आवश्यक है। वर्ण श्रमाचार करनेसे उत्तमता है, परन्तु उसके बिना ब्रह्मज्ञान उत्पन्न नहीं होता, ऐसा नहीं है। फलतः इन्द्रिय-दमन, शमदमादिका अभ्यास, परस्परमें प्रीति और श्रवण मननादि द्वारा ब्रह्मका साक्षात्कार करना, ये ही आवश्यक कर्तव्य हैं।

इस प्रकार ब्रह्मज्ञान-साधनकी कर्तव्यताका प्रतिपादन कर राममोहन रायने 'गायत्रीका अर्थ' और 'गायत्र्या परमोपासना-विधानं' आदि पुस्तकोंका प्रचार किया, और विनयके साथ विज्ञापन किया कि "वेद मन्त्रोंके अर्थको बिना समझे उनका व्यवहार करनेसे कोई लाभ नहीं, बल्कि दोष है।" आपने और भी निर्देश किया, कि "समझनेमें अनुकूलता हो, इस आशयसे शास्त्रोंका अर्थ भाषामें अनुवादित किया है, मेरा और कुछ वक्तव्य नहीं है। शास्त्रार्थ समझ कर जो कर्तव्य हो, करें।"

स्वदेशीय लोगोंमें "एकमेवाद्वितीयं" ब्रह्मतत्त्वको वेदका मुख्य तात्पर्य प्रतिपादन कर आपने तद्विरुद्धवादी विदेशियोंको प्रबोधित करनेके लिए १८१७ ई०में अंग्रेजी भाषामें उसी मर्मकी अनेक पुस्तकें लिखीं। उन पुस्तकोंमें "सद्रूप परब्रह्मका उपदेश ही हिन्दूशास्त्रोंका मुख्य तात्पर्य है" यही पुनः पुनः कहा गया है। अंग्रेजी-में बड़े ओजस्वल वचन विन्यासमें कहा है कि इसी ब्रह्म-ज्ञानके अभावसे हमारे देशमें अनेक दुर्गतियां हो रही हैं। उसको उद्दीपनाके सिवा हमारे ऐहिक और पारत्रिक मङ्गल साधनके लिये और कोई भी उपाय नहीं है। इससे पहले आपके द्वारा प्रकाशित वेदान्तसार ग्रंथके अङ्ग-रेजी अनुवादको पढ़ कर यूरोप और अमेरिकाकी विद्वन्-मण्डली चमत्कृत हो गई थी। इन्होंने बड़ी दृढ़ताके साथ कहा था कि "हिदेन" नामसे हिन्दुओं पर कलङ्का-रोप और उसके लिये उनके प्रति अवज्ञाका व्यवहार करना नितान्त अविहित है*।

* राममोहन रायने उत्तरकालमें जिस ब्राह्मसमाजकी प्रतिष्ठा की थी, वह किस प्रकारसे गठित हुई थी, इस बातका स्पष्टीकरण करनेके लिये हम उन अनुष्ठानोंकी आलोचना करते हैं। इस प्रसङ्गमें और भी कई एक विषय द्रष्टव्य हैं,—

१। राममोहनने पौराणिक मतके विषयमें कहा है—"पुराण अल्पबुद्धियोंके बोधाधिकारके लिये रूपक बन कर ईश्वरके माहात्म्यका वर्णन करते हैं; परन्तु पुराण यह भी बार बार दर्शाते हैं कि यह सब केवल अल्पमतियोंके हितके लिये कहा गया है, जिससे पुराणमें दोषमात्र स्पर्श न कर सके।"

२। किसी ईसाई मिशनरीने कहा है कि, इस देशके मनुष्य सर्व प्रकारकी नीति और धर्मके विनाश करनेवाली अज्ञानता और जड़तासे जाग्रत हो रहे हैं। इस बातसे स्वदेशीय पण्डितोंकी अवमानना समझ राममोहन रायने उसका उत्तर दिया कि :—"मुझे खेद है कि आप इतने दिन इस देशमें रह कर भी इस देश-के लोगोंका विद्यानुशीलन और गार्हस्थ्य धर्म भी न समझ सके। इधर इन कई वर्षोंमें केवल बंगालके लोगोंने ही परमार्थ सम्बन्धी तथा स्मृति, तर्क, व्याकरण, ज्योतिष आदि विषयके सैकड़ों ग्रंथ रच कर प्रकाशित किये हैं। परन्तु मुझे आश्चर्य नहीं होता कि यह आपको अभी तक ज्ञात न हुआ हो, कारण आपने तथा प्रायः अन्यान्य सभी मिशनरियोंने इस देशके उत्तमत्त्व दर्शनके लिये एक साथ ही चक्षु खोल रखे हैं।"

३। राममोहन राय अपनेको किसी प्रकारसे धर्मसंस्कारक

उसके बाद राममोहनरायने ईसाई उपदेश-वाक्यावलीका संकलन कर (१८२० ई०में) जो अपना अभिप्राय प्रकट किया, उसमें उन्होंने ईसाइयोंके त्रित्ववादको अमूल सिद्ध कर दिखलाया। उन्होंने यह भी कहा, कि ईसामसीह एक महिमान्वित पुरुष थे, उनका उपदेश पालन करनेसे सुख-शान्ति मिल सकती है। इस ग्रन्थके प्रकाशनसे मर्माहत हो कर मिशनरियोंने आपत्ति खड़ी की और कहने लगे, कि "ईसामसीह और परमेश्वर एक ही हैं" इस तत्त्वमें तथा ईसाई प्रायश्चित्तमें विश्वास न करनेसे केवल उनका उपदेश-पालन करने मात्र कभी भी परित्राण नहीं हो सकता। इस विषयमें ईसाई मिशनरियोंसे राममोहनरायका नाना प्रकार वादानुवाद हुआ। इस कारण राममोहन रायने ईसाइयोंकी अवगतिके लिये क्रमशः तीन पुस्तकें प्रकाशित कीं*। उक्त तीनों पुस्तकोंमें आपने हिब्रू और ग्रीक भाषामें लिखित मूल बाइबिलसे कोई कोई वाक्य उद्धृत कर सिद्ध किया है, कि अङ्गरेजी अनुवादमें मूल ग्रन्थके भावको कई स्थानोंमें विकृत कर दिया गया है। इस अनुवादसे राममोहन रायने प्राचीन और नवीन विधानकी बाइबिल पर ऊहापोहके साथ खूब विचार करके सिद्ध कर दिया कि, ईश्वर एक हैं, उनमें त्रित्व नहीं है; ईसामसीहमें जो भी कुछ शक्ति और महात्म्य है, वह ईश्वर-प्रदत्त है, अतएव वे ईश्वरप्रेरित एक महापुरुष मात्र हैं, ईसामसीह सद्धर्मके उपदेशके प्रभावसे मनुष्योंके परित्राणके हेतुभूत और पथस्वरूप हुए हैं। शिष्योंके प्रति ईसामसीहका यह उपदेश है कि—"तुम लोग जा कर समस्त जातियोंके मनुष्योंको शिष्य बनाओ; पिता, पुत्र और पवित्र आत्माके नामसे उन्हें अपनाओ।" (मथि १८, १६) ईसामसीहके नामसे धर्म प्रचारका यही मूल है। राममोहन रायने इस वाक्यकी विवेचना करके दिखलाया है, कि ईसामसीहके नव-विधानिक शिष्यगण यहूदी या अन्यान्य जातियोंके साथ कहीं मिल न जांय, इसलिये उन्होंने संस्कार प्रक्रियामें ईश्वरके पुत्र बतला कर अपना नाम ग्रथित करनेकी व्यवस्था की है। परन्तु उससे भी उन्होंने "रसूल-अल्लाह" महम्मदकी तरह ईश्वरके प्रेरित धर्मवक्ताके सिवा अन्य किसी मर्यादाकी आकांक्षा नहीं रखी है।

इस आलोचनासे मिशनरियोंके संस्कारानुयायी ईसाई मतकी दीक्षामें विपर्यय उपस्थित हुआ था। राममोहन रायका उद्देश था कि, ईसाके विशुद्ध और सुनीतिपूर्ण उपदेश द्वारा लोगोंको नीतिकी शिक्षा मिल सकती है, पर दुर्भाग्यसे मिशनरियां उस मार्गको कण्टकाकीर्ण किये डालती हैं। राममोहनरायका यह आन्दोलन बिलकुल निष्फल नहीं गया। उन्होंने रेभरैण्ड आदम आदि उदारचेता कुछ व्यक्तियोंको बाइबिलका यथार्थ अर्थ समझा कर उनके द्वारा भारतीय-एकेश्वर-क्रिश्चियन-समाजकी प्रतिष्ठा कराई। उनके द्वारा प्रकाशित "बाइबिल" विचार ग्रंथ यूरोप और अमेरिकाके एकेश्वरवादी ईसाइयोंका मतपोषक हुआ था। इस विचारके पढ़नेसे उनको आन्तरिक दृढ़ता उत्पन्न हुई और उनका संगठन भी क्रमशः पुष्ट होता गया। राममोहनको इस बातका बड़ा आनन्द हुआ था, कि वे उन्हें उपनिषदोक्त ब्रह्मरसका आस्वादन करानेमें समर्थ हुए।

उपर्युक्त शुभ लक्षणोंको देख कर राममोहन रायका उत्साह दूना हो गया। यहां तक कि आपने अपने विश्वस्त मित्र आदम साहबको अपना सर्वस्व दान करनेका संकल्प कर लिया। उन्होंने आदम साहबको यहांके एकेश्वरवादी ईसाइयोंके गिर्जाका पादरी बना दिया और स्वयं बान्धवान्धवोंके साथ उस भजनालयमें जा कर

या धर्मप्रवर्त्तक इत्यादि नहीं समझते थे। उनके वेदान्तसार-ग्रंथकी शङ्करशास्त्री-कृत प्रतिवादमें उनके प्रति इस प्रकारका कलङ्कारोप करने पर उन्होंने अपने पूर्व लेखको सामने रख कर स्पष्ट किया कि "मैं पूर्वपुरुषोंके धर्मकी बात ही कह रहा हूं, मेरा निजी मंतव्य इसमें कुछ भी नहीं है।" आपने "A Defence of Hindu Theism" और "A Second Defence of the Monotheistical System of the veds" नामक दो पुस्तकोंमें उक्त शास्त्री महाशयकी पौत्तलिकता संम्बंधी प्रतिवादका खण्डन किया है।

* I, II and III Appeal to the Christian Public,

ईश्वरोपासना करते थे*। ऐसे भजनालयमें विशुद्धभावसे उपासना होती थी, ऐसा उनकी छोटी सी पुस्तिकामें प्रकट है।

राममोहन राय ईसाई धर्मके विशोधन-कार्यमें अनुरक्त हो कर उसके अनुकूल इतने अग्रसर हो गये थे, कि गिर्जा-प्रकरणमें उपासना-विधि पूर्वाभ्यस्त न होने पर भी उस समय उन्होंने ईसाइयोंके साथ तादृश उपासना करनेको अपना कर्त्तव्य समझा था। उन्होंने अपने पूर्व संस्कारके अनुसार "गायत्र्या ब्रह्मोपासनाविधानं" अर्थात् गायत्री जप और तदनुयायी ब्रह्मचिन्तन द्वारा उपासना-विधान संस्कृत भाषामें प्रकाशित किया और बादमें उसका अंग्रेजी अनुवाद भी किया। अंग्रेजी पाठकोंमेंसे जो शब्द-ब्रह्म वा सर्वत्र ब्रह्मदर्शनका तत्त्व न समझ सकते थे, उनके लिए वे उतने अंशकी व्याख्या भी लिख गये हैं।

इधर क्रमशः आदम साहबका गिर्जा लोक-शून्य होने लगा। उस समय एकेश्वरवादी ईसायोंका एक स्वतन्त्र गिर्जाका प्रचलन असंभव समझ कर तथा हिन्दू सम्प्रदायके एकेश्वरवादी भी अन्य पन्था देखने लगे, इसलिये राममोहनने अपने प्रयत्नोंकी गति बदल दी थी।

कहा जाता है, कि एक दिन एकेश्वरवादी ईसाईयोंके उपासनालयसे लौटते समय राममोहन रायके हमेशाके साथी ताराचंद चक्रवर्ती और चन्द्रशेखर देवने कहा कि "हम पराए समाजमें क्यों जाते हैं; हमारा अपना एक उपासनालय होना चाहिए।" राममोहन भी ऐसा ही चाहते थे। धीरे धीरे अपने समाजका मत विशोधन करना उनका अभिप्रेत था। वे अपने संस्कार, शिक्षा और साधनाके अनुसार ब्रह्मोपासना करेंगे, इससे बढ़ कर उनकी प्रार्थनीय वस्तु और क्या हो सकती थी? उनके बन्धुगण उद्योग करने लगे। थोड़े ही समयमें वेदविधिसम्मत एक उपासना-सभा स्थापित हो गई। अनेकोंकी स्वतः प्रवृत्त चेष्टासे जिसकी उत्पत्ति हुई, उसकी दृढ़ प्रतिष्ठा आकांक्षणीय है। वही आजकलका यह अशीतिवर्षदेशीय ब्राह्मसमाज है।

महात्मा राममोहन राय जब रंगपुरमें नाना सम्प्रदायोंके उपासकोंके साथ एकत्र हो कर धर्मानुशीलनमें रत थे, तभीसे एक नूतन धर्म-सभाका सूत्रपात हुआ था। कलकत्ता आ कर उन्होंने वास्तवमें एक आत्मीय सभाका संगठन कर डाला। इस सभामें वेदका पाठ और ईश्वरके उद्देशसे स्तुति-गीत होते थे। कुछ दिन बाद हिन्दू और ईसाई मतके बहुदेवोपासकोंके साथ वादानुवादमें तथा सहमरण-विषयका महा आन्दोलनमें प्रवृत होनेसे राममोहन राय फिर इस आत्मीय सभाकी रक्षा न कर सके। ४ वर्ष तक यथानियमसे अपना उद्देश साधन कर वह सभा टूट गई। उसके १० वर्ष बाद नवीन उद्यमसे तथा प्रशस्तर पत्तनसे वर्तमान ब्राह्मसमाजकी प्रतिष्ठा हुई।

शक सं० १७५०के, भाद्रपद मासमें (ई० सन् १८२८) यह सभा स्थापित हुई *। इस सभामें राममोहनराय साधारण व्यक्तिके समान एक उपासक मात्र गिने जाते थे। प्रति सप्ताह इस सभाका अधिवेशन होता था। सूर्यास्तके कुछ पहलेसे प्रारम्भ कर कुछ रात्रि तक इसका कार्य होता था। सभा भवनके एक पार्श्वमें दो तैलङ्ग ब्राह्मण बैठ कर वेद पाठ करते थे। सूर्यके अस्तगत होने पर उत्सवानन्द विद्यावागीश सभा-भवनमें आ कर उपनिषद्का पाठ और उसकी व्याख्या करते

---

* १७४९ शक सं०में 'बङ्गला हरकरा' नामक अङ्गरेजी संवादपत्रके कार्यालयके ऊपरके हिस्सेमें सप्ताहमें एक दिन आदम साहब ईश्वरोपदेश देते थे। राममोहन राय, उनके भानजे, पुत्र तथा अन्यान्य कुटुम्बीजन, ताराचंद्र चक्रवर्त्ती और चंद्रशेखर देव वहां उपस्थित रहते थे। (तत्त्वबोधिनी पत्रिका, वैशाख, शक सं० १७६९) इससे पहले स्थानाभावके कारण कभी कभी राममोहनरायके स्कूल वाले मकानमें भी आदम साहबका यह उपदेश हुआ करता था।

* कलकत्ताके जोड़ासांको मुहल्लेमें कमललोचन वसुके मकान पर इस सभाकी प्रथम प्रतिष्ठा हुई थी। इसके बारह वर्ष पहले इस मकानमें हिंदू कालेजका कार्य हुआ था। उत्तरकालमें (१८३० ई०) इस मकानमें डफ् साहबने जनरल एसेम्ब्लिज् इन्सटिटिउशनका कार्यारम्भ किया था। इस सामान्य मकानका परिचय इतिहासके योग्य विषय हो गया है।

थे। तदनन्तर रामचन्द्र विद्यावागीश वेदान्तदर्शनादिकी आलोचना तथा ब्राह्मसमाजके अभिप्रायानुसार धर्मतत्त्वकी व्याख्या करते थे। फिर सङ्गीत होनेके बाद सभा-विसर्जित होती थी। गोविन्द माला इस सभाके गायक और ताराचंद चक्रवर्ती इस सभाके सम्पादक (मन्त्री) थे।*

ब्राह्मसमाजमें जो सङ्गीत हुआ करता था, वह सद्यः परमार्थ भवोद्दीपक होता था। राममोहन राय और उनके मित्रगण सङ्गीतरचनामें निपुण थे। आत्मीय सभाके समय तक गीत रचा जा कर उसी सभामें वह सुनाया जाता था। अन्यान्य विषयोंकी तरह इस विषयमें भी आपत्ति की गई थी। विचारके समय राममोहन रायको सिद्ध करना पड़ा था, कि धमचर्चामें सङ्गीत होनेसे कुछ दोष नहीं है, शास्त्रमें इसकी विधि है। फिर भी विरोधियोंने आत्मीय सभा और ब्रह्म सभाकी नाना प्रकारसे निन्दा करनेमें कसर न छोड़ो थी। परन्तु जीव, ईश्वर और सृष्टि विषयक आद्यन्त चिन्तायुक्त भावगम्भीर ब्रह्मसङ्गीतके श्रवण करते रहनेसे लोगोंकी विरुद्ध मतिने पीछेसे अनुकूलता अवलम्बन की थी। तभीसे 'ब्रह्मसभाका सङ्गीत' वा 'राममोहन रायका संङ्गीत' एक भिन्न प्रकृतिमें शामिल किया जाता है और उसका अंत्र भी काफी आदर है।

एक वर्ष पांच मास इस स्थानमें ब्राह्मसमाजकी उपासना निर्वाहित होनेके बाद, शक सं० १७५१में इसके बगलमें ही नवीन भवनमें ब्राह्मसमाज लाया गया। जो कि अब भी वहीं मौजूद है † इसके दो सप्ताह पहले ता० ८ जनवरी १८३० ई०में इस समाजगृहका एक 'ट्रष्टडोड' लिखा गया था। उस दलीलमें वयोवृद्ध ५ व्यक्ति और युवा वयसके ३ व्यक्ति ट्रष्टी नियुक्त हुए थे †।

ब्राह्मसमाज स्थापनके पहले राममोहन रायने 'इउनिटेरियन क्रिश्चियनोंके बल बढ़ानेके लिए जो कर्म किये थे, उनका परिचय पहले दिया जा चुका है। किन्तु उनके ब्राह्मणत्त्वकी रक्षाके लिये देशीय और विदेशीय इउनिटेरियन लोग उनके प्रति संमदृष्टि न रख सके थे। वे क्रिश्चियन धर्ममें दक्षित न हुये थे, किन्तु सभी समय वेदको मान्य समझ कर जातिवन्धनकी तमाम क्रियाओंका अनुष्ठान करते थे। अतएव उनकी धर्म-व्यक्ति और कार्य-परम्पराको देखते हुए उन्हें क्रिश्चियन कैसे कहा जा सकता है? इस प्रकारके अनेक प्रश्न उस त्रिशुद्धसिद्धान्त क्रिश्चियन मंडलीमें उपस्थित हुआ करते थे। इसमें आदम साहब और राममोहन रायको पत्र द्वारा अनेक जवाब देने पड़े थे। १८२७ ई० तक आदम साहबको आशा रही, कि वे राममोहन रायके साथ एक साथ ईश्वरोपासना करते रहेंगे। दूसरे वर्ष ब्राह्मसमाजका कार्य चलते रहने पर बहुत ऊहापोहके बाद आदम साहबने स्थिर किया, कि इस वैदिक भावापन्न सभाके साथ उनकी एकता नहीं हो सकतो। पूर्वोक्त ट्रष्टडीडकी दलीलमें स्पष्ट लिखा था, कि इस उपासना मन्दिरमें सभी जाति, वर्ण और सम्प्रदायके मनुष्य विनम्रभावसे श्रवण-मननादि द्वारा जगत्के एकमात्र स्रष्टा पाता परमेश्वरकी उपासना कर सकेंगे; इस स्थानमें किसी धर्म-सम्प्रदायके कोई विशेष चिह्न नहीं रहेगा या किसी धर्मसम्प्रदायके प्रति किसी अंशमें विरोधाचरण न होगा। इस प्रकार सर्वभौमिक धर्म-लक्षण होनेसे भी राममोहन रायके हृदयके मित्र आदम साहब इस सभाके सम्पर्कसे अलग रहे।

वस्तुतः ब्रह्मतत्त्वविद् बिना हुए लोग सार्वभौमिक धर्म-पालनमें समर्थ नहीं हो सकते। अतएव, राममोहन

---

* शक सं० १७५२ में श्रीयुत् ताराचंद चक्रवर्त्तीके बाद श्रीयुत विश्वम्भर दास सम्पादक हुए। १७५४ शकमें राममोहन रायके ज्येष्ठ पुत्र श्रीयुत् राधाप्रसाद राय इस समाजके न्यासी (ट्रष्टी) और सम्पादक (मंत्री) हुए। पश्चात् १७५५ में श्रीयुत रामचंद्र गङ्गोपाध्यायने सम्पादकका कार्य किया।

† कलकत्तामें ५५ नं० अपर चितपुर रोडवाले मकानमें 'आदि ब्राह्मसमाज' स्थापित है।

† ट्रष्ट-दाताओंके नाम—द्वारिकानाथ ठाकुर, कालीनाथराय, प्रसन्न कुमार ठाकुर, रामचन्द्र विद्यावागीश और राममोहन राय। ट्रष्ट-गृहीता वा ट्रष्टियोंके नाम—वैकुण्ठनाथ राय, राधाप्रसाद राय और रमाथ ठाकुर।

रायका इस नव-प्रतिष्ठित सभाके कार्यमें वैदिक लक्षण यथासम्भव प्रोथित हुए थे, यह भी उनकी उपर्युक्त निरपेक्षतासे जान सकते हैं। यह एक निर्विरोध और सार्वभौमिक उपासनाका स्थान है, इस बातको राममोहन रायने अपने पहले ही व्याख्यानमें समझा दिया था इस प्रकार सभाका कार्य चलने लगा। दूसरे वर्ष उसी के नियामकरूपमें ट्रष्टडीड लिखी गई थी।

प्रथम व्याख्यानका आशय इस प्रकार है:—

"जैसे मनुष्यके पलङ्ग पर वा मकानमें वा वृक्षके ऊपर शयन करने पर परम्परासे उसके शयनका आधार पृथिवी ही है, उसी तरह किसीके वृक्ष वा नदी अथवा मूर्त्तिविशेषकी पूजा करने पर भी वह परम्परासे ईश्वरकी ही उपासना होती है। अतएव किसी भी उपासकके प्रति द्वेष वा ग्लानि करना शास्त्रतः और युक्तितः अयोग्य है। * * * * * * * परम्परा उपासनाकी अपेक्षा साक्षात् उपासना सर्वथा श्रेष्ठ है। * * * * नाम रूपादिके निर्देशसे परस्परमें मत-विरोध होता है। अतएव तटस्थ लक्षणसे अर्थात् जगत्के स्थिति-भङ्गादिके कारण-स्वरूप ईश्वरकी उपासना विहित है। * * * इन सब मतोंमें वेदवेदान्त मन्वादि स्मृति तथा समस्त शास्त्रोंकी एकवाक्यता पाई जाती है।

यह निर्विरोध सार्वभौमिक धर्म हिन्दूधर्मके साथ नितान्त सुसङ्गत है। इस बातको प्रमाणित करनेके लिए राममोहन रायने गौविन्दाचार्यकी कारिकासे प्रमाण स्वरूपमें वचन उद्धृत किये थे। इसके अतिरिक्त उन्होंने उच्चावच स्थानस्थित मनुष्यके एक भूमि-आश्रयका जो उदाहरण दिखाया है, वह भी श्रीमद्भागवतके दशम स्कन्धके ८७वें अध्यायके १२वें श्लोकको प्रतिध्वनि मात्र है।

राममोहन प्रथम वयसमें श्रीमद्भागवतका नियमित-रूपसे पाठ करते थे। उस समयके 'सत्यं परं धीमहि" इत्यादि श्लोकके पाठने उन्हें इस सत्य पर पहुंचाया था।

इस भजनालयका विशेष कोई नामकरण न हुआ था। इसकी प्रकृति देख कर जो जैसा समझे, वे उसी रूपमें इसका नामोल्लेख करने लगे। "ब्रह्मसभा" "वेदांतसभा" "Society of Uedanta, Unitarian Theophilanthropism, Hindu Theism" इत्यादि नामसे इस सभाका तथा उसके प्रचारित धर्मका परिचय होता था। "ब्राह्म-समाज" नाम पहले कहीं कहीं उल्लिखित होता था, पीछे यही नाम स्थायी रह गया।

आत्मीय सभा और ब्राह्मसमाजमें जो राममोहन रायके सहयोगी थे, उनमेंसे कितने ही व्यक्तियोंके नाम उपलब्ध हैं, *यथा*—अध्यापक हरनाथतर्कभूषण, रामचन्द्र विद्यावागीश, रघुराम शिरोमणि, अवधौत हरिहरानन्द तीर्थस्वामी, पण्डित शिवप्रसाद मिश्र, उत्सवानन्द विद्यावागीश, राजा वदनचंद राय, कालीशङ्कर घोषाल, गोपीमोहन ठाकुर, द्वारकानाथ ठाकुर, प्रसन्नकुमार ठाकुर ब्रजमोहन मजुमदार, मथुरानाथ मल्लिक, वैद्यनाथ मुखोपाध्याय, जयकृष्ण सिंह, कालीनाथ मल्लिक, वृन्दावनमित्र, गोपीनाथ मुन्शी, ताराचंद चक्रवर्त्ती, चन्द्रशेखरदेव, नन्दकिशोर वसु, राजनारायण सेन, रामनृसिंह मुखोपाध्याय, हलधरवसु, अन्नदाप्रसाद वन्धोपाध्याय, मदन मोहन मजुमदार, गोविन्द माला, कृष्णमोहनमजुमदार, नीलमणि घोष, नीलरतन हलदार, गौरमोहन सरकार, निमाईचरण मित्र, भैरवचन्द्रदत्त, रामधन दत्त और चौधरी कालनाथराय मुन्शी। इन महाशयोंको ब्राह्म-समाजकी मूलभित्ति कहा जाय, तो भी अत्युक्ति न होगी; कारण इन लोगोंने इस समाजकी उन्नतिके लिए सर्वान्तःकरणसे सहायता की थी।

इनमेंसे शेषोक्त ८ व्यक्ति साधन-सम्पन्न थे। उन्होंने उच्चभावके ब्रह्मसङ्गीतकी रचना की। राममोहन राय स्वयं भी सङ्गीत-रचना करते थे *।

* ये सङ्गीत एकत्र मुद्रित हो कर प्रचारित भी हुए थे। उसमें रचयिताके नामका आद्यक्षर अंतमें लिखा रहता था। राम-मोहन रायके निज-रचित सङ्गीतमें किसी प्रकारका संकेत नहीं रहता था। जो लोग राममोहन रायके गुणग्राही थे, वे स्वयं भी किसी न किसी असामान्य गुणसे संयुक्त थे। वे प्रायः उनके साथ एकत्र हो कर वा स्वतंत्ररूपसे ब्राह्मसमाजकी एक एक अंशमें सहायता करते थे। उनका जीवनचरित्र वा कीर्त्ति-विवरण संगृहीत नहीं है। जो कुछ भी उपलब्ध है, आवश्यकतानुसार उसका उल्लेख किया जायगा।

ब्राह्मसमाजकी प्रतिष्ठाके लिए महात्मा राममोहन राय धर्मबलसे अनुप्राणित हो कर वेद-विहित ब्रह्मोपासना-रूप धर्म-प्रचारमें प्रणोदित हुए थे। उस प्रसङ्गमें उन्हें समाज-संस्काररूप और भी एक दुष्कर कार्यमें हस्तक्षेप करना पड़ा था। वह था भारतभूमिकी चिरन्तन प्रचलित सतीदाह वा सहमरण-प्रथाका निवारण। ब्रह्मज्ञानके प्रभावसे उक्त महात्माने इस लोमहर्षणकर्म-प्रवृत्तिकी निवृत्ति को थी *। सतीदाह वा सहमरण देखो।

इधर तो यह अमङ्गल निवारित हुआ और उधर मङ्गलमूल ब्राह्मसमाजका गृह-निर्माणका कार्य समाप्त हुआ। राममोहन रायने नारीहत्याके बदले ब्रह्मचर्यके मङ्गलदीपको प्रज्वलित कर (माघ महीनेमें) ब्राह्मसमाजके स्वकीय नवीन भवनमें ब्रह्मोपासाना प्रारम्भ कर दी।

यह घटना ब्राह्मसमाजके लिए मूलतः अनुकूल हुई सही, परन्तु कार्यतः प्रतिकूल ठहरी। सतीदाहके पक्ष समर्थनकारियोंने इस आईनके खण्डनके लिए ब्राह्मसमाजके प्रतिपक्षी एक समाजकी सृष्टि कर डाली। माघ मासमें ही इस विरोधकारी धर्मसभाकी नोंव पड़ी। इसके ६ दिन बाद ही ब्रह्मसभा स्वकीय नूतन मन्दिरमें आसन जमा कर बैठी। इसी प्रकार धर्मसभाके संस्थापनार्थ एक मन्दिरके लिए भी चन्दा इकट्ठा हुआ, परन्तु वह स्थायी न हुआ। शक सं० १७५१में पौष और माघ मासमें इस घटना पर कलकत्ताके हिन्दू-समाजने भारी आन्दोलन उठाया था, यह उस समयके सामयिक साहित्यके अवलोकनसे ज्ञात होता है।

कुछ भी हो, गोतोक्त ज्ञानाग्निका प्रभाव होते हुए भी भारतभूमिमें कर्मवीजसे शाखा प्रशाखायुक्त एतादृश एक कण्टकवृक्षका उद्भव हुआ था, कि जिसका छेदन और दाहकर्म माहात्मा राममोहन राय द्वारा सम्पादित हुआ। यह भारतकी एक प्रकृष्ट ऐतिहासिक घटना है। इस कण्टक जालके अपगमसे हिन्दूविधवाओंका मनूक ब्रह्मचर्य्यका तथा शास्त्रोक्त मुक्तिलाभका मार्ग प्रशस्त हुआ है, इसमें सन्देह नहीं।

राममोहन रायके मन्त्रणारूप सूर्य्यरश्मिसे कठोर सतीदाह प्रथाका अपकलङ्क अपसारित होने पर, हिन्दू जाति अन्य सभ्य जातियोंके समक्ष मस्तक ऊंचा करनेमें समर्थ हुई थी। इस सतीदाहको रोकनेके लिए उन्हें सतीदाहप्रथाके समर्थकोंके विरुद्ध विलायत-यात्रा करनी पड़ी थी। इसके लिए धर्मप्राण राममोहन उस समय अपने द्वारा प्रतिष्ठित ब्राह्मसमाजको भी उसी अवस्थामें छोड़ स्वयं अकूल समुद्रमें कूद पड़े थे *।

---

* भारतभूमिमें जितनी बार ब्रह्मज्ञानकी उद्दोपना हुई है, उतनी ही बार स्वर्गसुख-कामना-मूलक यागयज्ञादि कर्मनिवारण उसका प्रधान लक्ष्य था। कर्मप्रसक्ति ज्ञानकी साक्षात् विरोधिनी है। ज्ञानी कहते हैं, कर्म द्वारा मुक्तिलाभकी चेष्टा, रक्त द्वारा रक्त धोना, वा पङ्क द्वारा पङ्कदूषित स्थानकी मार्जना करना, अथवा सुरा द्वारा सुरा शोधन करनेके समान है। (मनु ३।१३२, श्रीमद्भागवत १।८।५२) गीतामें ज्ञानाग्नि द्वारा सर्वकर्म भस्मसात् होनेका उल्लेख है। परन्तु उसका प्रकरण अन्य प्रकार है। गीताका उपदेश है कि, फलकी कामना छोड़ कर कर्म करो, परन्तु सहमरणप्रथाकी प्रबलतासे इस उपदेशका यत्परोनास्ति विपर्यय हुआ था। जिस प्रकार स्वर्गसुखकी कामनासे सहमरण अनुष्ठित होता था, उसी प्रकार सुखकल्पना जिस देशमें उद्भावित हुई है, उस देशमें कभी गीताका भी प्रचार हुआ था, अथवा निष्काम धर्मकी आलोचना हुई थी, यह अनुमान भी नहीं किया जा सकता। अब उसी गीतामन्त्रकी शाणित धारसे ही राममोहनरायने सहमरणरूप पापवृक्षका छेदन किया। जिस वर्ष ब्राह्मसमाज स्थापित हुआ था (१८२८), उसके दूसरे ही वर्ष १८२९ ई०के ४ दिसम्बरको इस कुप्रथाका निवारक कानून बन गया।

* सतीदाह प्रथाका रोकना राममोहन रायके लिये जितना सौभाग्यका विषय था, उतना ही वह उनके लिये दुर्भाग्यका भी कारण था। कारण, इसके लिये उनके विरुद्धमें हजारों आदमी खड़े हो गये थे, यहां तक कि उनका जीवन सङ्कटापन्न हो गया था। लोगोंको ऐसा मालूम होने लगा था कि ब्रह्मसभा साक्षात् धर्मनाशक है। इस नवीन कानूनके विरुद्ध सभा पर सभा करके सतीदाहके समर्थकोंने विलायतमें अपील की। राममोहनको भी इसके लिये लड़ना पड़ा। इस कार्यके लिये उन्हें इस परिणत अवस्थामें भी युवकोंकी तरह बल धारणपूर्वक हिन्दू जातिका सर्वथा अपरिचित अकूल समुद्रमें बहना पड़ा था, जब कि ब्राह्मसमाजको स्थापित हुए केवल दो ही वर्ष हुए थे।

राममोहनराय भारतभूमिसे जन्मभरके लिए विदा ले कर उत्तमाशा अन्तरीप वेष्टनपूर्वक छः मास समुद्रपथके कष्टको सहते हुए ८वीं अप्रेलको इंग्लैण्ड पहुंचे थे। वहां उन्हें तीन वर्ष रहना पड़ा था। आश्विन शुक्ला चतुर्थी, शक सं० १७५५ ता० २७ सेप्तेम्बर १८३३ ई०को त्रिष्टल नगरमें आपने देहत्याग किया था। मृत्यु-समयमें उनकी अवस्था ५९ या ६१ वर्षकी थी।

ब्राह्मसमाजके इतिहासमें राममोहनरायके इंग्लैण्ड-वासके विषयमें दो विषय जानने योग्य हैं। एक तो यह, कि वहांके एकेश्वरवादियोंका कहना था, कि यदि राममोहनराय तीन वर्ष रह कर वहांके विद्वानोंके साथ धर्मालोचना न करते, तो वहांकी यूनिटेरियन संप्रदाय इतनी जल्दी परिपुष्ट न होती। दूसरा विषय यह है कि, सहमरणप्रथा निवारित होने पर भी प्रवर्त्तकोंकी आहुतिके प्रभावसे उसके पुनरुज्जीवनकी सम्भावना होने लगी थी, परन्तु राममोहन रायने प्रिवी कौन्सिल तक समुत्थित हो कर १८३२ ई०को ११वीं जुलाईको इनकी "अपील नामंजूर" करा दी थी। विधवा हिन्दू रमणियोंका मनूक्त ब्रह्मचर्य-गौरव सुदूर विलायत तक विघोषित हुआ था।

राममोहन रायके सम्पूर्ण जीवनके कार्योंसे ब्राह्मसमाजका कुछ न कुछ सम्पर्क अवश्य है*। अब ब्राह्मसमाज सङ्कटोंमें गिरता पड़ता किस तरह क्रमशः वृद्धिको प्राप्त हुआ इस बातका वर्णन किया जाना चाहिए।

उपयुक्त वादविवाद और अन्यान्य प्रतिकूल घटनाओंमेंसे राममोहनरायके अवर्त्तमानमें ब्रह्मसभाकी रक्षा करना एक दुष्कर कार्य था। इससे पहले करीब ५०।६० व्यक्ति सभाकी उपासनाके समय उपस्थित होते थे। सदस्यगण बदनामी होनेके कारण क्रमशः सभाका सम्पर्क छोड़ने लगे। परन्तु राममोहन रायके चिरसहाय महा महोपाध्याय रामचन्द्र विद्यावागीशने इस सभाके प्रथम दिन जो आचार्यका आसन ग्रहण किया था, उससे वे किसी भी तरह विचलित न हुए। ब्रह्मसमाजके इतिहासमें इस महात्माका नाम और गुणावली विशेष उल्लेखनीय है।

* 'राममोहन राय' शब्दमें सम्पूर्ण विवरण लिखा गया है।

हुगली जिलेके अन्तर्गत मालापाड़ा ग्राममें रामचंद्र विद्यावागीशका जन्म हुआ था। उनके ज्येष्ठ भ्राता तांत्रिक साधक थे, नाम था हरिहरानन्द तीर्थ-स्वामी कुलावधौत।* तीर्थस्वामी राममोहन रायके तन्त्रोपदेष्टा थे। उनके अनुज रामचन्द्र विद्यावागीश राममोहन रायके कलकत्ता-वासमें प्रारम्भसे ले कर आखिर तक छायाकी तरह उनके अनुवर्ती थे। उन्होंने प्रथमतः अपने प्रतिष्ठित वेद चतुष्पाठीमें वेदान्तशास्त्रका अध्यापन किया। बादमें संस्कृत कालेजमें स्मृतिशास्त्रके अध्यापक नियुक्त हुए। इस कार्यमें नियुक्त रहने पर भी विद्यावागीश महाशय ब्राह्मसमाजके नेताओंमें एक प्रधान व्यक्ति समझे जाते थे। सर्वत्र उनका आदर था। हिंदू-कालेजके अंतर्गत बङ्गला पाठशालाके छात्रोंको भी आप नियमितरूपसे नीतिशिक्षा दिया करते थे। शक सं० १७५०से १७६५ तक पंद्रह वर्ष आप ब्राह्मसमाजके आचार्य-पद पर समारूढ़ रहे†। इस वर्ष श्रीमद्देवेंद्रनाथ प्रमुख कुछ उत्साही युवकोंके ब्राह्मसमाजके सर्वाङ्गीन उन्नतिसाधनमें व्रती होने पर उनके जीवनका कार्य समाप्त हुआ था। इसके कुछ दिन बाद ही आप पीड़ित हो कर शय्याशायी हुए। अंतमें काशीयात्रा की और मार्गमें ही १७६६ शकाब्दमें फाल्गुन मासमें आपकी मृत्यु हुई।

इसके बाद ब्राह्मसमाजका कार्य भार श्रीमद्देवेंद्रनाथ ठाकुर पर सौंपा गया। देवेन्द्रनाथ ठाकुर देखो।

१७६० शकाब्दमें, इक्कीस वर्षकी उम्रमें ही देवेंद्रनाथ ठाकुरका धर्मभाव उद्दीप्त हुआ था। एक दिन सहसा राममोहन राय द्वारा प्रचारित ईशोपनिषद् ग्रंथके एक छिन्न पत्रमें 'ईशावास्यमिदं सर्व' इस ब्रह्ममंत्रको पढ़ कर आप परम पुलकित हुये थे। यही उनकी नवीभूत सावित्रीमंत्रदीक्षा है। तभीसे, केवल त्रिसंध्यामें ही क्यों, किंतु दिन और रातको भी वेदोपनिषद्के मंत्र उनकी रसनामें विलास करते रहते थे।

* अवधौताश्रम ग्रहणके पहले इनका नाम नन्दकुमार था।

† इस समय आपने ब्राह्मसमाजमें जो व्याख्यान दिये थे, उनमेंसे १७ दिनके व्याख्यान बार बार छपे थे।

देवेंद्रनाथने शक सं० १७६१में स्वतः प्रवृत हो कर तत्त्वबोधिनी सभाका प्रारम्भ किया। दो वर्ष बाद वह भी ब्राह्मसमाजके साथ मिल गई थी। तत्त्वबोधिनी सभाकी स्थापनाके बाद नाना मतके और नाना प्रकारके पृथ्वीस्थ सभ्य-समाजके सर्व श्रेणीके मनुष्य ब्रह्मसमाजके नीचे आ कर खड़े होते थे *।

१७६५ शकाब्दमें तत्त्वबोधिनी सभा कुछ प्रधान कार्योंका अनुष्ठान कर ब्राह्मसमाजके इतिहासमें स्मरणीय बनी है। वे कार्य्य इस प्रकार हैं,—(१) तत्त्वबोधिनी-पत्रिकाका प्रकाशन, (२) तत्त्वबोधिनी पाठशालाका स्थापन, (३) व्रतरूपमें ब्राह्मधर्मकी दीक्षा ग्रहण, (४) ब्रह्म-समाजकी नियमावली अवधारण, और (५) मासिक सभा तथा सांवत्सरिक उत्सवका विधान।

नियमावली अवधारणाके प्रसङ्गमें दोनों सभाको एकत्र करनेका प्रस्ताव आलोचित हुआ। उसमें स्थिर हुआ कि, 'तत्त्वबोधिनी सभा स्वतंत्ररूपसे ज्ञान और विज्ञानके अनुशीलन द्वारा ब्रह्मधर्मका प्रचार करेगी। उसकी जो मासिक उपासना होती है वह ब्राह्मसमाजकी मासिक सभारूपमें प्रतिमासके प्रथम रविवारके प्रातःकालमें समाहित होगी।' यह भी स्थिर हुआ कि, 'इन दोनों सभाओंका पृथक् सांवत्सरिक उत्सव न हो कर जिस दिन इस नूतन मन्दिरमें ब्राह्मसमाजकी उपासना आरम्भ होती है उसी दिन (बंगला ता० ११ माघको) इसका सांवत्सरिक उत्सव होगा।

पहले ब्राह्मसमाज "ब्रह्मसभा"के नामसे प्रथित हुआ था। बादमें विद्यावागीशकृत मुद्रित-व्याख्यानके मुख-पृष्ठ पर "ब्राह्मसमाज"में गठित यह वाक्य सन्निविष्ट हुआ। तत्त्वबोधिनी पत्रिकामें पहले तथा उस समय किसी किसी पुस्तकमें "ब्राह्मसमाज" नाम व्यवहृत हुआ था। इसके कुछ ही दिन बाद "ब्राह्मसमाज" नाम स्थिरीकृत हो गया।

इस समय विशुद्धबङ्गला भाषामें ज्ञान विज्ञानसम्मत ग्रन्थ रचनामें कृतविद्य व्यक्तिगण व्यग्र थे। इसलिए तत्त्वबोधिनी सभामें "ग्रन्थसभा" और ग्रन्थसम्पादकके कार्यका बाहुल्य हुआ। साहित्य और विज्ञानके साथ धर्मशिक्षा देनेके लिए तत्त्वबोधिनी पाठशाला खोली गई थी। वहां उपनिषद् आदिकी पढ़ाई होती थी। इसके लिए कुछ उत्कृष्ट पुस्तकें तत्त्वबोधिनी पत्रिकाके सम्पादक अक्षयकुमार दत्त द्वारा रची गईं। सहज-पाठ्य बंगला भाषामें उन्नत ज्ञानकी आलोचनाके लिए तत्त्वबोधिनी पत्रिकाका सर्वत्र समादर होने लगा। इस प्रकारसे तत्त्वबोधिनी सभा और ब्राह्मसमाजने एक एक साथ ही महती प्रतिष्ठा पाई थी। साहित्य रसज्ञ, विज्ञानप्रिय, तत्त्वजिज्ञासु, विद्यानुरागीगण इस संसर्गसे परम आनन्द अनुभव करने लगे। ब्राह्मसमाजका उपासना-स्थान लोक-पूर्ण दिखलाई देने लगा।

देवेन्द्रनाथने जब देखा कि, सभा-भवनके दुमंजलमें आदमी नहीं समाते, तब उन्होंने तीसरा मंजल बनवाया, जिसमें कि एक साथ ५०० आदमी आसानीसे बैठ सकते थे। उसके बाद धर्मसाधना सम्बन्धमें कहां तक क्या हो रहा है, इस पर उनकी दृष्टि गई। पूर्व-रचित प्रतिज्ञापत्रमें स्वाक्षर करके अनेकोंने नित्य-उपासनाके लिए सङ्कल्प तो किया, पर उपासना-पद्धति तब भी निर्णीत वा निर्द्धारित न हो पाई थी। इसके सिवा धर्मका बोध, चिन्ता और अभ्यासके उपयोगी एक ग्रन्थका भी अभाव मालूम देने लगा। क्रमशः इन दोनों अभावोंकी पूर्त्ति होने लगी। राममोहन रायने एक संक्षिप्त उपासनापद्धति लिखी थी। श्रुतिपाठ, स्तोत्र और प्रार्थनादि द्वारा उसका कलेवर परिवर्द्धित किया गया। पश्चात् श्रुत और स्मृति ग्रन्थोंसे सार सङ्कलन-पूर्वक एक ब्राह्म-

---

* देवेन्द्रनाथके समयमें स्कूल और कालेजकी प्रणालीके अनुसार साहित्य, विज्ञान और इतिहासादिमें सुशिक्षित और सुपण्डित कुछ लोग ब्राह्मसमाजके पृष्ठपोषक हुए थे। उनमें अधिकांश ही हिन्दू-कालेजके उत्तीर्ण छात्र थे। हिन्दूकालेजके गवर्नर पदाधिष्ठित प्रसन्नकुमार ठाकुरने संस्कृत-कालेजके छात्रोंकी सहायतासे हिन्दू-कालेजके छात्रों द्वारा अङ्गरेजी भाषामें लिखित उच्चतर साहित्य और विज्ञानका बङ्गानुवाद पूर्वक बङ्गलामें पाठ्य-पुस्तकें तैयार कराई थीं। अध्यापक रामचन्द्र विद्यावागीश इस कृतविद्य छात्रमण्डली और नवीन ग्रंथकारोंके गुरुस्थानीय थे। उनके संस्रव और उपदेशसे इस सम्प्रदायके सुशिक्षित युवकोंने तत्त्वबोधिनी सभामें प्रविष्ट हो कर क्रमशः ब्राह्मसमाजकी पुष्टि और गौरववृद्धि की थी।

धर्मग्रंथ रचा गया। उस ग्रंथके संस्कृतमन्त्रोंका सुवोध वंगला अनुवाद और व्याख्या भी कर दी गई। भारतके प्राचीन ब्रह्मवादी ऋषिगण ब्रह्म विषयक जो महामन्त्र नित्य पाठ करते थे, इतने समय वाद वे श्रुति वाक्य सज्जनगणोंके गोचर हुआ और अर्थवोधके साथ उनका नित्य पाठ होने लगा। हृदयको तृप्तिकर और गृहीजनोंको सर्वमङ्गलकर सङ्गीतिकी रचनावली घर घरमें ध्वनित होने लगी। वंगालकी विद्वन्मण्डली प्राचीन ऋषियोंके आशीर्वाद सहित ज्ञानालोकको प्राप्त कर ऐहिक और पारत्रिक परम मङ्गलकी साधना प्रवृत हुई।

परंतु फिर भी देवेंद्रनाथको सर्वतोभावसे परितृप्ति न हुई। उन्होंने देखा, वहुतसे भाई तर्कप्रिय हैं, उनमें प्रेम नहीं है, धर्मसाधनामें समुचित निष्ठा नहीं है; सुतरां योगधर्मकी भी विशेष चर्चा नहीं हो रही है। इन सव लक्षणोंको देख कर वे निगूढ़ धर्म चिन्तामें प्रवृत्त हुए। कलकत्तामें उनका चित्त समाधान न हुआ। वे हिमालय प्रदेशको चल दिये।

दो वर्ष हिमालय-प्रस्थमें भ्रमण कर देवेंद्रनाथ घर लौटे। शक सं० १७८०में कलकत्ता लौट कर उन्होंने ब्राह्म-धर्मानुरागी और एक उत्साही युवक-दल देखा। इस युवक-दलके नेता थे श्रीमत् केशवचंद्र सेन।

श्रीयुक्त केशवचंद्र सेन द्वारा प्रचारित नवविधान-समाजका विवरण यथास्थानमें लिखा गया है। १७८१ शकाब्दसे १७८६ तक इन्होंने ब्राह्मसमाजमें रह कर उसकी जो महोन्नति की है, ब्रह्मसमाजके इतिहासमें वही उल्लेख-योग्य विषय है। नवविधान-समाज द्वारा ब्राह्म-समाजका जो उपकार हुआ है, वह भी आखिरमें दिखाया जायगा। केशवचंद्र और नवविधान देखो।

केशवचंद्रके पितामह रामकमल सेन एक लब्धप्रतिष्ठ विद्यावान् व्यक्ति थे। राममोहन रायके प्रतियोगी और प्रतिद्वंद्वी विलसन साहवके साथ उनकी गहरी मित्रता थी। राममोहनके विरुद्ध धर्म-सभा स्थापित होने पर, रामकमल सेन उस सभाके नेताओंमें प्रधान नेता समझे जाते थे। परंतु विधाताके विचित्र विधान है, उन्हीं रामकमलके पौत्रने 'क्रिश्चियन' कुसंस्कारोंसे अपनी रक्षा करते हुए राममोहन रायकी प्रतिष्ठित सभाका गौरव वढ़ानेमें कोई कसर न रखी।

प्रथमावस्थामें उन्होंने एक सुपण्डित पादरीसे विशेष निपुणताके साथ क्रिश्चियन धर्मग्रंथ पढ़ा। राममोहन राय द्वारा सङ्कलित क्रिश्चियन उपदेशको पढ़ कर वे उन्हें ईसाई धर्ममें अनुरक्त समझने लगे थे। किंतु आलोचना करते रहनेसे पीछे उनका यह भ्रम दूर हो गया। तदनन्तर ये ब्राह्म धर्मके मर्मको समझ कर प्रतिज्ञापत्रमें हस्ताक्षर करके ब्राह्मसमाजके सदस्य वने। फिर देवेंद्रनाथके साथ केशवचंद्रका सम्मिलन हुआ। थोड़े दिनोंमें यह मिलन एक अपूर्व और अतुलनीय सौहार्दरूपमें परिणत हो गया था।

देवेंद्रनाथका हृदय ईश्वर प्रेमसे गदगद् था। केशव-चंद्रका भी यही हाल था। दोनोंके सम्मिलन और सौहार्द-वर्द्धनमें यही एक कारण था। देवेंद्रनाथ अद्वैतमत्-को अच्छा न समझते थे। उन्होंने ज्ञानी भक्त रामप्रसाद-की तरह वहुप्रकारसे तत्त्व संस्थापन किया था। केशव-चंद्रने उसे ही सर्वसाधारणके लिए ग्रहणीय वना दिया। दोनोंने मिल कर एक ब्रह्म विद्यालय खोल दिया। देवेंद्रनाथ ओजस्वल सुस्वादु साधुभाषामें और केशवचन्द्र हृदय-ग्राही तेजस्कर अंग्रेजीभाषामें उस विद्यालयके सैकड़ों छात्रोंको उपदेश दिया करते थे। सिर्फ विद्यालयमें ही नहीं, वल्कि घरमें, मैदानमें, सर्वदा ज्ञान और धर्म-की चर्चा किया करते थे। इस प्रकार 'सत्यं ज्ञान-मनन्तं' परमेश्वरके प्रेम और पवित्रताको तथा मनुष्यके भ्रातृभावकी शिक्षा और व्याख्या, अलोचना और प्रचारमें केशवचन्द्र और देवेन्द्रनाथ स्वयं जैसे मस्त हो गये थे, श्रोता और सहचरवर्ग भी वैसे ही सर्वांशमें उनके सह-धर्मी वनने लगे थे। एक प्राणताके विस्तारके साथ ब्राह्मधर्मका प्रचार होने लगा। ब्राह्मधर्म प्रचारके लिए कुछ व्यक्ति धन, मान, प्राण तक विसर्जन करनेके लिए प्रतिज्ञावद्ध हो गये।

शक सं० १७८५ तक यही रफ्तार रही। देवेन्द्रनाथ इस समयको ब्राह्मसमाजका वसन्तकाल कहा करते थे। उनकी उक्ति यह थी :—"इस समयमें हृदयके प्रीति-कुसुम द्वारा हृदयेश्वरकी अर्चना कर ब्राह्ममात्र ही कृतार्थ हुए थे।"

देवेन्द्रनाथ इस सुदिनके अवसानमें "ग्रीष्मकालके प्रखर रौद्र और झञ्झावात" सहते हुए पूर्वोक्त वसन्तके मलयानिलका स्मरण करते रहते थे। हम भी ब्राह्म-समाजके इतिहासमें उस अंश तक आ पहुंचे हैं।

ब्राह्मसमाजके विषयमें इस वसन्त और ग्रीष्मकालके लक्षणकी आलोचना करना आवश्यक है। जब तक ब्राह्मसमाजके सदस्यगण एक मतसे कार्य करते रहे, तब तक मलयमारुत-प्रवाही वसन्तकाल समझना चाहिए। जबसे इनमें मतभेद हुआ और परस्पर विवाद आरम्भ होने लगा, तबसे ब्राह्मसमाजमें झञ्झावात समा-कुल ग्रीष्मकालके लक्षण दिखलाई देने लगे।

पहले ब्राह्मसमाजके सदस्योंमें किसी प्रकारका मत-भेद था ही नहीं, ऐसा नहीं कहा जा सकता। किन्तु उससे उनको व्याघात नहीं पहुंचता था। वे व्यवस्था-पूर्वक मतभेद नहीं करते थे। जिसको हम आदि-ब्राह्म-समाज कहते हैं, उसका नाम पहले ब्राह्मसमाज ही न था*। इसके बाद मेदिनीपुर, ढाका और फिर बंबई मद्राज आदि नगरोंमें जो ब्राह्मसमाज स्थापित हुए, उन्होंने सामान्य मतभेदके कारण भी अपना नाम "ब्राह्मसमाज" नहीं रखा†। किन्तु फिर भी वे समाज मूल ब्राह्मसमाजकी शाखा गिनी जाती थीं। उनमें सद्भाव अप्रतिहतरूपसे विद्यमान था। इसके बाद जो प्रयत्न हुए उससे ब्राह्मसमाजके सदस्योंने 'ब्राह्म' नामसे विशेषत्व पानेका उपक्रम किया। उनमें एक पृथक् सम्प्रदाय गठित होनेकी प्रक्रियामें विवाद शुरू हुआ था।

पहले उल्लेख किया गया है, कि रामनोहन रायके पक्षपातशून्य निष्ठावान् एकेश्वरवादी होने पर भी, यूरोप और अमेरिका वासी यूनिटेरियन क्रिश्चियन लोग उन्हें ब्राह्मणजातिके चिह्नधारण और वेदभक्तिके कारण, कुसं-स्कारवर्जित और अपने सम्प्रदायमें शामिल नहीं समझ सके थे। केशवचंद्र उन क्रिश्चियनोंके संसर्गमें और उनके अभिमत संस्कारमें संवर्द्धित हुए थे, इसलिए जातिचिह्न उनकी दृष्टिमें नितांत धर्मविरुद्ध और असङ्गत मालूम देता था। सिर्फ इतना ही नहीं; वे हिंदूसमाजकी सम्पूर्ण रीति-नीतियोंको ऐसा दूषित समझते थे, कि मानों उनका सम्पूर्ण संशोधन किये विना धर्मरक्षाका कोई उपायान्तर ही नहीं है। इसी विवेचनासे उन्होंने हिंदू-समाजके आमूल संस्कारके लिए कृतसंकल्प हो कर उस-का पुनर्गठन करना चाहा था और एकमात्र ब्राह्मसमाज-की सहायतासे वह निष्पादित हो सकता है यह विचार कर वे प्रथमतः ब्राह्मसमाजको ही कई एक नियमोंसे जक-ड़नेका उद्योग करने लगे। इसके लिए शक सं० १७८६के कार्त्तिक मासमें उन्होंने बाहरके समस्त ब्राह्मसमाजोंसे उन उन समाजके एक एक प्रतिनिधिको कलकत्ता बुलाया। अभिप्राय यह कि, उन प्रतिनिधियोंके अभि-मतसे फिलहाल ब्राह्मसमाजको सर्व-कुसंस्कार-वर्जित करना और क्रमशः समस्त देशको विशोधित करनेका उपाय निर्द्धारण करना। इससे ३।४ मास पहले केशव-

* आदि-ब्राह्मसमाजका पहले 'ब्राह्मसमाज' नाम कैसे पड़ा था, यह बात पहले कही जा चुकी है। बादमें वैषयिक व्यवहार-के लिये इस समाजका "कलकत्ता ब्राह्मसमाज" नाम अवधारित हुआ था। केशवचन्द्रके भारतवर्षीय ब्राह्मसमाजकी चेष्टासे अन्यान्य समाजकी भांति कलकत्ता-ब्राह्मसमाज भी तदन्तर्भुक्त समझी जायगी, यह आशङ्का उपस्थित होने पर इस समाजने "आदि-ब्राह्मसमाज" नाम ग्रहण कर अपने वैशिष्ट्यकी रक्षा की।

† १८६८ शकाब्दमें मेदिनीपुरमें करीब ५० सदस्योंने मिल कर "ब्राह्म-सभा" नामकी एक सभा कायम की। तदानीन्तन प्रभाकर-पत्रिकामें लिखा गया था कि, कलकत्ताकी ब्रह्मसभाकी तरह इस सभाके सभी काम रविवारकी रात्रिको सम्पादित होवे हैं।' १७७५ शकमें भवानीपुरमें 'सत्यज्ञान-सञ्चारिणी' नामसे एक ब्राह्मसमाजकी प्रतिष्ठा हुई। वह भी कलकत्ता-ब्राह्मसमाजके अनुरूप थी। १७८६ शकमें मद्रासमें 'वेदसमाज' स्थापित हुआ, उससे 'तत्त्वबोधिनी पत्रिका' नामक एक पत्रिका भी प्रकाशित हुई थी। उस समय बम्बईमें भी "प्रार्थनासमाज" नामसे ब्राह्मसमाज-की प्रतिष्ठा हो चुकी थी, जो कि अभी तक विद्यमान है। इसी तरह विद्वन्मोदिनी, तत्त्वज्ञानप्रदायिनी इत्यादि विविध नामोंसे ब्राह्मसमाजने बंगालके सर्व विभागोंमें ज्ञान और धर्मका विकाश तथा नीति और सद्भावका प्रसार किया था। वर्द्धमान, चुँचड़ा, चन्दननगर, वैद्यबाटी आदि स्थानोंमें 'ब्राह्मसमाज' नामसे ही इसका कार्य चला था।

चंद्रने (अपौत्तलिक) ब्राह्मधर्मानुसार एक वैद्यजातीय वरके साथ कायस्थजातीय एक विधवाकन्याका विवाह-कार्य सम्पन्न कराया था। इससे उनके मनोभावका कुछ अंश प्रस्फुटित हो चुका था। उनकी आंतरिक चेष्टा थी, कि समस्त ब्राह्मसमाजके सदस्यगण एकमत हो कर इसी आदर्श देशकी कुरीतियों और कुसंस्कारोंको जड़मूलसे उखाड़ कर फेंकते रहें।

कहना व्यर्थ है, कि इस प्रकार आदर्शसे कार्य करना देवेंद्रनाथके अभिप्रायसे विरुद्ध न था; इसलिए समस्त ब्राह्मसमाजके प्रतिनिधियोंका बुलाना और उनमें मतैक्य सम्पादन करना कुछ भी सुसाध्य न हुआ।

परन्तु केशवचन्द्रको विश्वास था, कि इस प्रकार किये विना ब्राह्मधर्म प्रतिपालित नहीं होता। इसलिये उन्होंने अपनी कोशिशसे स्वमतावलम्बी सदस्यों द्वारा इस प्रकारसे ब्राह्मधर्मका अनुष्ठान और ब्राह्मधर्म-प्रचार निर्वाह करनेका संकल्प कर तदनुसार प्रचार-कार्यादि पृथक् रूपसे करना शुरू कर दिया। दूसरे ही वर्ष १७८७ शताब्दमें देवेन्द्रनाथ द्वारा परिचालित आदि ब्राह्मसमाजसे सर्वथा विच्छिन्न ब्राह्मसमाज स्थापनके लिए उद्योग करने लगे।

केशवचंद्रके आदि-ब्राह्मसमाजका सम्बन्ध छोड़ कर नूतन उपासनालयके आयोजनमें व्यस्त होने पर महात्मा राजनारायण वसुने उक्त आदि-ब्राह्मसमाजका परिचालक-पद ग्रहण किया।

केशवचंद्रने अपने अभिप्रायानुकूल ब्राह्मसमाजकी स्थापनाके लिए जनसाधारणसे सहायता मांगी थी *। जाति, वर्ण और सम्प्रदाय निर्विशेषसे जिस ब्राह्मसमाज-की स्थापना हुई है वहां किसी जातिका चिह्न रहना उचित नहीं; यह संस्कार बलीयान् होने पर भारतके केशवचंद्रकी सहायतार्थ रुपये आने लगे। वे विना पूंजीके ईश्वर-सहाय हो कर घरसे निकले, परंतु सब त्र ही सफलकाम हुए। "ब्रह्मकृपाहि केवलं" इत्यादि नामाङ्कित ध्वजा उड़ाते हुए वे अतुल अर्थ सञ्चयपूर्वक कलकत्ता लौटे। उनका ब्राह्मधर्म प्रचार बाहुल्यतासे होने लगा। अनेक व्यक्ति अपने परिवारसे सम्बन्ध हटा कर उनके समाजमें प्रविष्ट हो गये। १८६९ ई०की ६ठी मार्चको "भारतवर्षीय ब्राह्मसमाज"के स्वतन्त्र उपासना मन्दिरका द्वार उन्मुक्त हुआ †।

केशवचंद्र हिन्दुओं द्वारा पोषित कुसंस्कार और उपधर्मके दुर्गको तोड़नेके लिए शुद्ध भावसे पारिवारिक और सामाजिक क्रिया निर्वाह करनेकी प्रतिज्ञाके कारण आदि ब्राह्मसमाजसे पृथक् हुए थे। उनका कार्य भी इस प्रकारसे निष्पन्न होने चला। परंतु फिर भी एक बलवत् अन्तराय रह गया। वह यह, कि नवीन ब्राह्मविवाह-पद्धति कानून नजायज सिद्ध विना किये इस स्वतंत्र सम्प्रदायको किसी तरह भी रक्षाका उपाय न देख वे भारतके बड़े लाटके शरणापन्न हुए। स्वयं गवर्नर जनरल लार्ड लारेन्स बहादुर केशवचंद्रके उपासनालयमें आया करते थे और उनको आदरकी दृष्टिसे देखते थे। केशवचंद्रने उनसे एक संशुद्ध विवाह-कानूनकी पाण्डुलिपि तयार करवाई। उस पर सर्वसाधारण जनताके आपत्ति करने पर सिर्फ ब्राह्मीके लिए 'ब्राह्म' नामसे इस कानूनको विधिबद्ध करानेकी चेष्टा की गई। पर आदि ब्राह्मसमाज और तदनुगत अन्यान्य समाजके सभ्योंने उस पर भी आपत्ति की। इससे वह भी रद्द हो गया। बादमें रजिष्टरी द्वारा सिविलविवाहका कानून विधिबद्ध हुआ। इस रजिष्टरी-कार्यके अव्यवहित पूर्वमें वा बादमें ब्रह्मोपासना और पिताके पक्षसे कन्यादानादि कार्य करने-

---

* केशवचन्द्रने भारतवर्षके समस्त ब्राह्मसमाजोंको एक सूत्रमें गूंथनेके उद्देशसे अपने द्वारा स्थापित इस समाजका नाम रखा—"भारतवर्षीय ब्राह्मसमाज। १८६६ ई०के नवेम्बर मासमें उन्होंने ब्राह्मधर्मानुरागी व्यक्तिमात्रसे प्रार्थना की कि, उनके प्रचार कार्यमें तथा विशुद्ध आदर्शभूत इस ब्राह्मसमाजे स्थापनमें सभीको अर्थ द्वारा सहायता पहुँचाना चाहिए।

† इससे मालूम होता है कि, ब्राह्मसमाज कहनेसे एक मकान और उसके भीतरके आदमी ही नहीं समझना चाहिए, बल्कि ब्राह्मसमाजका अर्थ सम्पूर्ण ब्रह्मोपासकोंके समूहसे है। उपासनाभवनको ब्रह्मका उपासना मंदिर वा ब्रह्ममंदिर कहना चाहिए। कलकत्तामें ८९ नं० मछुआबाजार ष्ट्रीटमें केशवचन्द्रका नवविधान समाज प्रतिष्ठित है।

की बाधा न रही। केशवचन्द्रने इसे भी अपना आईन समझ कर ग्रहण किया था। १८७२ ई०के १६ मार्चको यह कानून पास हुआ था। इस प्रकारसे सम्प्रदाय-बन्धनके सर्वोपकरण संग्रहीत होने पर केशवचंद्रकी आकांक्षा पूर्ण अभीष्ट सिद्ध और विपुल परिश्रम सार्थक हुआ था।

उनके द्वारा आरब्ध अपौत्तलिक अनुष्ठान तथा जाति और वर्ण निर्विशेषसे विवाह आदि कुसंस्कारवर्जित क्रियाएं अबाध रीतिसे चलने लगी। अब तक ब्राह्मधर्म तथा ब्राह्मसमाज स्वतंत्र और परिस्फुट लक्षणोंसे सर्वजनोंके हृदयङ्गम हो चुका था। एक दिन देवेंद्रनाथने 'ब्राह्म' लक्षण प्रकट करनेके निमित्त ॐकार युक्त अंगुरीयक पहननेकी व्यवस्था की थी। इस प्रकार ब्राह्म-सम्प्रदायके लोगोंका स्वतंत्र चिह्न निर्दिष्ट हुआ *।

ब्राह्मोंकी वयोवृद्धिके साथ साथ उनकी पुत्रकन्यादि सन्तानोंकी संख्या भी बढ़ने लगी। जिससे जातकर्म, नामकरण और विवाहादि ब्राह्म-अनुष्ठानोंका बाहुल्य होने लगा। विवाहकानून विधिबद्ध होनेके ६ वर्ष बाद केशवचंद्रको कन्याका विवाह-सम्बन्ध उपस्थित हुआ। इस विवाहमें केशवचंद्रको बड़ी ही विपत्तिमें पड़ना पड़ा था। उन्हें बाध्य हो कर अपनी कन्याको वरपक्षीय लोगोंके हाथ सौंप देना पड़ा। इस विवाहमें उनकी मानी हुई कोई भी आईन काम न आया। यह कोचविहार-विवाहके नामसे प्रसिद्ध (१८७८ ई०) है।

इस घटनासे केशवचंद्रके सम्प्रदायके अधिकांश व्यक्ति उनके प्रति खड्गहस्त हो गये। उन्होंने आकाश-पाताल व्यापी आन्दोलन उठा कर जिस आईनको अवश्य ही पालनीय बतलाया था, अपने लिए उस आईन पर उन्होंने कुछ भी ध्यान न दिया, धर्मबुद्धिको उन्होंने अर्थके मन्दिरमें बलि चढ़ा दिया; इस प्रकार तथा और भी कई प्रकारका निन्दावाद उनके विरुद्ध फैलने लगा। आखिरकार उनके विरुद्धवादी ब्राह्मणोंने मिल कर उनका संबंध त्याग दिया और एक नया समाज स्थापित किया जिसका नाम रखा गया—"साधारण ब्राह्मसमाज"। १८७८ ई०की १५वीं मईको यह समाज स्थापित हुआ था †।

नामकी व्यवस्थासे इनकी प्रकृति भी समझी जा सकती हैं। केशवचंद्र कोचविहार-विवाह-घटनाको विधाताका विशेष-विधान बतला कर आईन उल्लङ्घन-दोषको मिटाने लगे; उधर वे भी केशवचंद्रको भारतवर्षीय ब्राह्मसमाजके उपासना-मन्दिरके अधिकारसे च्युत करनेकी चेष्टा करने लगे। पीछे पुलिशकी सहायतासे उन्होंने अपने अधिकारकी रक्षा कर पाई थी। फिर केशवचंद्रने घोषणा की, कि 'यह मन्दिर मेरे लिए विधातोंका दान है।' इस प्रकार भारतवर्षीय ब्राह्मसमाजके अधिकारोंसे सब तरह वञ्चित हो कर उस मन्दिरके उपासकोंने यह नवीन समाज और नवीन उपासना-मन्दिर निर्माण कराया और उसमें सब प्रकारसे साधारण-तंत्र राजनीतिका अनुसरण किया गया। अतएव प्रथम ही उसका नाम "साधारण-ब्राह्म-समाज" रखा गया।

साधारण-ब्राह्मसमाजका परिचय देनेके लिए अधिक कुछ न लिखेंगे। इस समाजके सदस्यगण जब भारतवर्षीय ब्राह्मसमाजके साथ एक योगसे उपासनादि करते थे, उस समय वे जिस प्रकारसे उपासना और पारिवारिक तथा सामाजिक क्रियाकलापादिका अनुष्ठान करते थे, अब भी उन्होंने उन्हीं समस्त आचारोंको विधिवत् रक्खा। केवल व्यक्तिविशेषके एकाधिपत्यका खण्डन और साधारणतंत्रकी राजनीतिका स्थापन करनेके लिए उन्हें बहुनियमयुक्त कार्यनिर्वाहक सभा और उसकी शाखा प्रशाखाएं बढ़ानी पड़ी थीं। ये लोग अंगरेजी गिर्जाकी रीत्यानुसार वर-कन्याको उस साधारण उपासना-मंदिरमें ला कर उनका विवाहकानून सम्पन्न करने लगे। इनकी उपासनादिमें भी अनेक क्रिश्चियन भावोंका आदर देखनेमें आता है।

इधर केशवचंद्र आत्मीय जनोंकी विद्रोहितासे व्यथित हो कर केवल ईश्वर-चिंतामें निमग्न हुए। वे पूर्वापर यह देखते आ रहे थे, कि लोग युक्ति और तर्क पर अधिक निर्भर रह कर एक प्रकार नास्तिक और स्वेच्छाचारी हुए जा रहे हैं। ब्राह्मसमाजमें इस प्रकारके

* परंतु खेदका विषय है, कि यह प्रथा प्रचलित न हो सकी।

† कलकत्ता कर्नवालिस स्ट्रीटके भवनमें यह समाज-मंदिर निर्मित हुआ था।

नास्तिक्य और यथेच्छाचारको नष्ट करनेके लिये उन्होंने जो विधिनियम चलाए, ब्राह्मसमाजमें उनका प्रचार न होते देख वे "नवविधान" नामसे आत्म-मत प्रकाशित करने लगे*।

वर्त्तमान नवविधान मत पर विश्वास रखनेवाले व्यक्ति इन सार सत्योंमें सन्देह और तर्क न करें, स्थिर विश्वाससे ऐहिक और पारत्रिक कल्याणकर कार्यों का अनुष्ठान करते रहें, यही नवविधानका तात्पर्य है।

नवविधानाचार्य केशवचंद्रने सर्वधर्म-सारभूत इन तत्त्वोंको पत्तनस्वरूप कर, पूर्वापर साधकोंमें ज्ञान, भक्ति, योग और वैराग्यके समन्वयकी चेष्टा की है। ये अपने सम्प्रदायमें हिन्दुओंका होम, ईसाइयोंका जलमज्जन, सिखोंका दरबार-भजन, वैष्णवोंका सङ्कीर्त्तन और शाक्तों-की 'मा' 'मा' वाणी, यह सब कुछ सन्निविष्ट कर गये हैं। इस मतके साधक ब्राह्मगण मुसलमानधर्म-प्रतिष्ठाता महम्मदकी तरह केशवचन्द्रको नवविधानप्रवर्त्तक "आचार्य" मानते हैं। सम्प्रति ब्राह्म नामसे जो संप्रदाय गठित है, उस संप्रदायके सभी व्यक्ति उपर्युक्त विशेष विधानमें एक मत न होने र भी केशवचंद्रको अपना मूल स्वीकार करते हैं।

इस प्रकारसे इस समय "ब्राह्मसमाज" शब्दसे दो प्रकारकी अर्थसङ्गति की जाती है—(१) ब्राह्म नामधारी व्यक्तियोंका संप्रदाय और (२) ब्रह्मोपासकोंकी मण्डली। आदि ब्राह्मसमाज द्वारा ब्राह्मसमाजमें ब्रह्मोपासक मण्डलीकी अधिक वृद्धिकी चेष्टा हो रही है। उसमें ऐसे ही व्यक्ति अधिक हैं, जो व्यवस्थापूर्वक देवताओंके बहुत्वको एकत्वमें अर्थात् परब्रह्ममें समावेश करते हैं, जो वाह्यपूजाके बदले मानस पूजाका विधान करते हैं, जो श्रवणकीर्त्तनादि प्रकरण और भक्तिमार्गमें एक सर्वेश्वरके प्रति निष्ठावान् होते हैं, जो नीतिपालनको अव्यक्त ईश्वरकी श्रेष्ठ आराधना समझते हैं जो योगमार्गमें परमात्माके निर्विशेषत्वकी साधना करते हैं। ऐसे सभी व्यक्ति आदि-ब्राह्मसमाजके मतका अनुवर्त्तन करते हैं, अथवा आदि-ब्राह्मसमाजका कार्य करते हैं, ऐसा समझना चाहिए। अतएव नवविधानी और साधारणी ब्राह्मोंके साथ यह परमात्मनिष्ठ व्यक्तिवर्ग आदि-ब्राह्मसमाज अर्थात् ब्रह्मोपासकोंकी मण्डलीमें परिगणित हो सकते हैं*।

ब्राह्मसमाजके इतिहासमें एक विषय और भी द्रष्टव्य है :—

देवेन्द्रनाथके साथ केशवचंद्रके विच्छेदके समय दोनोंके भिन्न संस्कारोंने जो प्रबलता धारण की थी, उसका वर्णन हम पहले ही कर चुके हैं। देवेन्द्रनाथने देखा कि, केशवचंद्रके भाव ईसाईधर्मानुगत हैं और गति विजातीय हुई जा रही है। इससे वे जातीय भावको उद्दीपनामें प्रवृत्त हुए। इस समय स्वदेश, स्वजाति और हिंदूधर्मके नामसे उन्नतिसाधक बहुतसी सभासमिति और ग्रंथादिका प्रकाशन होने लगा। हिंदू रीतिनीतिमें जितना उत्कृष्ट और निर्दोष अंश है, उसकी रक्षाके लिए आदि ब्राह्मसमाजमें दृढ़ता उत्पन्न हुई। क्रमशः केशवचंद्रमें अस्थिमज्जागत हिंदूभाव परिस्फुरित होने लगा। उन्होंने हिंदुओंके शुद्धाचार धारण किये। बहुत बचपनसे ही वे निरामिष आहार करते थे। उनके प्रभावसे ब्राह्मोंमें मत्स्य-मांसादि आहारकी प्रसक्ति खर्व हो गई। विलायत-प्रवासी हमारे देशके युवकोंमें, स्वदेशीय रीतिनीति पालनके लिए श्रीमती महाराणी भारतेश्वरी विक्टोरिया द्वारा

* शक सं० १८०१के माघमासमें नवविधान घोषित हुआ। (१) ईश्वर हैं, (२) वे पिता हैं और हम लोग पुत्र, (३) ईश्वर पवित्र हैं, हमें पापोंका त्याग कर पवित्र होना चाहिए, (४) सम्पूर्ण धर्मोंसे सार और सत्य ग्रहण करना चाहिए, (५) विश्वासियोंमें एकताका बन्धन दृढ़ करना होगा, (६) महापुरुषगण एक एक विधान ले कर आये हैं, उन्हें मननपूर्वक समझना होगा, और (७) सर्वविधानोंकी समष्टिमें विधान पूर्ण होता है, यह मननपूर्वक जगत्‌को पूर्णब्रह्मकी सत्तामें पूर्ण देखना होगा।

* देवेन्द्रनाथने ब्राह्मधर्म ग्रंथके उपनिषदंशका तात्पर्य विशुद्ध संस्कृतभाषामें अनूदित कर अध्यापक ब्राह्मण पण्डितों और वेदोपनिषद् सेवियोंमें, ब्रह्मज्ञान उद्दीपनके लिये वितरण कराया था। राममोहनराय ब्राह्मसमाजकी प्रतिष्ठाके दिन (बंगला ता० ६ भाद्रको) सांवत्सरिक विधानसे ब्राह्मण पण्डितोंको अर्थदान देते थे।

समादृत, केशवचंद्र ही गुरुस्थानीय थे। सर्वत्र केशवचंद्रके ही ईश्वरनिष्ठा, उद्यम और श्रमशीलतादि, गुणसमूह उन गुणोंके आदर्शभूत समझे गये हैं।

आदि-ब्राह्मसमाजसे भारतवर्षीय ब्राह्मसमाजका उद्भव, उससे फिर साधारण समाजकी उत्पत्ति, इसी बीचमें ब्राह्मविवाह आईनकी आवश्यकताके विषयमें वादानुवाद, इन तीन घटनाओंके प्रसङ्गमें ब्राह्मोंमें तुमुल विवाद हो गया। अब तीन आदर्शोंसे तीनों ब्राह्मसमाज अपनी प्रशाखाओंका विस्तार कर रहे हैं। ब्राह्मोंमें अब विवादवृद्धिकी सम्भावना नहीं है। प्रत्युत विविध शुभ कर्मोपलक्षमें तीनों समाजके व्यक्ति एकत्र होते हैं। यूरोप और अमेरिकाका विशुद्ध एकेश्वरवादी समाज, इस देशका आर्यसमाज, थिओजफिष्ट सम्प्रदाय, और परमहंस-भक्तसम्प्रदाय आदि इस ६५ वर्षके पुराने ब्राह्मसमाजके अनुकरणसे गठित है। ब्राह्मगण इस समय इन समस्त उन्नत ज्ञानसम्पन्न लोगोंको प्रीतिकी दृष्टिसे देखते हैं और जहां सम्भव होता है उनके साथ सम्मिलनकी चेष्टा करते हैं। आदि-समाजके पुरातन अश्वत्थ वृक्ष-तुल्य तत्त्वबोधिनी-प्रतिष्ठाता देवेन्द्रनाथ अब श्रीमन्महर्षि कहलाते हैं और इस प्रकारसे मृत्यु होने पर भी वे अमर हैं।

"ग्रीष्मकालके प्रखर रौद्र और झञ्झावातके बाद वर्षाकाल उपस्थित होगा।" "सहिष्णु हो कर उसके लिए अपेक्षा करो।" श्रीमद् देवेन्द्रनाथके शक सं० १७८७में कहे हुए ये वाक्य अब स्मरण हो आते हैं। जिन वृक्षोंके पुष्प शोभाहीन और सौरभशून्य हो जाते हैं, वर्षाकी जलधारासे उनमें भी पुष्पोंको नूतन श्री और सौरभ प्रकट होता है। ब्राह्मगण अब ब्राह्मसमाज-वृक्षमें पुष्पस्तवकी उसी अवस्थाको देखनेकी आशा कर रहे हैं।

ब्राह्माहोरात्र (सं० पु०) ब्रह्मणोऽहोरात्रः। ब्रह्माका रात और दिन। इतना समय मनुष्यकोंके दो कल्पके बराबर है। दैवपरिमाणकालके सहस्रयुगका ब्रह्माका एक दिन और उतने ही समयकी एक रात्रि होती है।

ब्राह्मि (सं० त्रि०) ब्रह्मन्-इञ्, टिलोपः। १ ब्रह्माका अपत्य। २ ब्रह्माका अवयवभूत। "नमो रुचाय ब्राह्मये।" (शुक्लयजु० ३१।२०)

ब्राह्मिका (सं० स्त्री०) ब्राह्म एव संज्ञायां स्वार्थे वा कन् अत इत्वञ्च। ब्राह्मणयष्टिका।

ब्राह्मी (सं० स्त्री०) ब्रह्मण इयं; ब्रह्मन्-अणु टिलोपः, स्त्रियां ङीप्। १ दुर्गा। (देवीपु० ४५ अ०) २ शिवकी अष्टमातृकाके अन्तर्गत मातृकाविशेष। ३ सरस्वती। ४ सूर्यमूर्त्ति। ५ रोहिणी नक्षत्र। इस नक्षत्रके अधिष्ठात्री देवता ब्रह्मा हैं। ६ शाकभेद, औषधके काममें आनेवाली एक बूटी। यह छत्तेकी तरह जमीनमें फैलती, ऊँची नहीं होती है। इसकी पत्तियां छोटी छोटी और गोल होती हैं और एक ओर खिली-सी होती है। आयुर्वेदशास्त्रमें इसकी जड़, पत्ते और डंठल आदिके विशेष विशेष गुण लिपिबद्ध हुए हैं। यह मूत्रकारक और मृदु विरेचक है। करासिन तेलके साथ ब्राह्मीशाकका रस गांठ पर मालिश करनेसे गेठियावात जाता रहता है। यह उन्माद, अपस्मार, स्वरभङ्ग आदि रोगोंमें विशेष उपकारक है। आध तोले पत्तोंके रसके साथ २ स्क्रुपल पाचक जड़को मधुके साथ सेवन करनेसे मस्तिष्ककी उन्मादता नष्ट होती है। अलावा इसके यह विषघ्न, अग्निजनक, पाण्डुरोग, खाँसी, खुजली प्लीहा आदिको दूर करनेवाली मानी जाती है। ७ फञ्जिका, वरंगी। ८ पङ्कगड़क मत्स्य। ९ सोमनलरी। महाज्योतिष्मती। ११ वाराहीकन्द। १२ हिलमोचिका। १३ भारतवर्षकी वह प्राचीन लिपि जिससे नागरी, बंगला आदि आधुनिक लिपियाँ निकली हैं। यह लिपि उसी प्रकार बाईं ओरसे दाहिनी ओर लिखी जाती थी जैसे उससे निकली हुई आजकलकी लिपियाँ ललितविस्तरमें लिपियोंके जो नाम गिनाए गए हैं उनमें ब्रह्मलिपिका भी नाम मिला है। इस लिपिका सबसे पुराना नमूना आज भी अशोकके शिलालेखोंमें मिलता है। पाश्चात्यविद्वानोंका कहना है, कि भारतवासियोंने अक्षर लिखना विदेशियोंसे सीखा और ब्राह्मी लिपि भी उसी प्रकार प्राचीन फिनीशियन लिपिसे ली गई, जिस प्रकार अरबी, यूनानी, रोमन आदि लिपियां। परन्तु बहुतसे देशीय विद्वानोंने सप्रमाण यह सिद्ध किया है, कि ब्राह्मी लिपिका विकास भारतमें स्वतन्त्र रीतिसे हुआ। नागरी देखो।

(त्रि०) १४ ब्रह्मप्राप्तियोग्या। १५ ब्रह्मभवा।

ब्राह्मीअनुष्टुप (सं० पु०) एक वैदिक छन्द। इसमें सब मिला कर ४८ वर्ण होते हैं।

ब्राह्मीउष्णिक (सं० पु०) एक वैदिक छन्द। इसमें सब मिलाकर ४२ वर्ण होते हैं।

ब्राह्मीकन्द (सं० पु०) ब्रह्म्याः कन्द इव कन्दो यस्य। वाराहीकन्द।

ब्राह्मीकुण्ड (सं० क्ली०) स्कन्दपुराणोक्त तीर्थभेद।

ब्राह्मीगायत्री (सं० स्त्री०) ३६ वर्णवाला एक वैदिक छन्द।

ब्राह्मीजगती (सं० स्त्री०) ७२ वर्ण-वाला एक वैदिक छन्द।

ब्राह्मीत्रिष्टुप (सं० पु०) ६६ वर्ण-वाला एक प्रकारका वैदिक छन्द।

ब्राह्मीपंक्ति (सं० स्त्री०) ६० वर्ण-वाला एक वैदिक छन्द।

ब्राह्मीवृहती (सं० स्त्री०) ५४ वर्ण-वाला एक वैदिक छन्द।

ब्राह्मौदनिक (सं० लि०) ब्राह्मणोंकी पाकाग्नि।

ब्राह्म्य (सं० क्ली०) १ विस्मय। २ दृश्य। ब्राह्मण इदं-ब्राह्मन् ष्यञ्। (लि०) ३ ब्रह्मसंबन्धी।

ब्रिगेड (अं० पु०) सेनाका एक समूह।

ब्रिगेडियर जनरल (अं० पु०) एक सैनिक कर्मचारी जो एक ब्रिगेड भरका संचालक होता है।

ब्रिटिश (अं० वि०) १ उस द्वीपके सम्बन्ध रखनेवाला जिसमें इङ्गलैण्ड और स्काटलैण्ड हैं। २ इङ्गलिस्तानका, अंगरेजी।

ब्रीड़ा (हिं० स्त्री०) व्रीड़ा देखो।

ब्रिवियर (अं० पु०) एक प्रकारका छोटा टाइप। यह आठ प्वाइंटका अर्थात् पाइका ¾ होता है।

ब्रीहि (हिं० पु०) व्रीहि देखो।

ब्रुवत (सं० लि०) ब्रवीतोति ब्रू शतृ। वक्ता, बोलने-वाला।

ब्रुवाण (सं० लि०) ब्रूते इति ब्रू-शानच्। वक्ता, बोलने-वाला।

ब्रुश (अं० पु०) बालोंका बना हुआ कूंचा। इससे टोपी या जूते इत्यादि साफ किये जाते हैं।

ब्रूहम (अं० स्त्री०) एक प्रकारकी घोड़ागाड़ी। इसे ब्रूहम साहबने पहले पहल निकाला था, इसीसे ब्रूहम नाम पड़ा। इसमें एक ओर डाकृरके बैठनेका और उसके सामने दूसरी ओर केवल दवाओंका बेग रखनेका स्थान होता है।

ब्रेंवरी (हिं० स्त्री०) एक प्रकारका बढ़िया कश्मीरी तंबाकू।

ब्लाक (अं० पु०) १ ठप्पा जिस पर कोई चित्र छापा जाय। २ भूमिका कोई चौकोर टुकड़ा।

ब्लोक (सं० पु०) जल।

भ

भ—हिन्दी वर्णमालाका चौबीसवाँ और पवर्गका चौथा वर्ण। इसका उच्चारण स्थान ओष्ठ है। उच्चारण-कालमें ओष्ठके साथ जिह्वाका अग्रभाग स्पर्श होता है, इसीसे यह स्पर्शवर्ण है। इसका प्रयत्न संवार, नाद और घोष है। यह महाप्राण है और इसका अल्पप्राण 'ब' है। भकारका स्वरूप—

"भकारं शृणु चार्वङ्गि स्वयं परमकुण्डली।
महामोक्षप्रदं वर्णं तरुणादित्य संप्रभम्।
पञ्चप्राणमयं वर्णं पञ्चदेवमयं सदा॥" (कामधेनुत०)

यह वर्ण परमकुण्डली स्वरूप, महामोक्षप्रद, तरुण आदित्यसङ्काश, पञ्चप्राण और पञ्चदेवमय है। ध्यान पूर्वक इस वर्णका दश बार जप करनेसे समस्त अभीष्ट सिद्ध होते हैं। इसका ध्यान—

"तड़ितप्रभां महादेवीं नागकङ्कणशोभिताम्।
षड्भुजां वरदां भीमां रक्तपङ्कजलोचनाम्॥
रक्तवस्त्रपरीधानां रक्तपुष्पोपशोभिताम्।
चतुर्वर्गप्रदां देवीं साधकाभीष्टसिद्धिदाम्।
एवं ध्यात्वा ब्रह्मरूपां तन्मन्त्रं दशधा जपेत्॥"

इस प्रकार ध्यान करके पीछे निम्नलिखित मन्त्रसे प्रणाम करना होता है।

"त्रिशक्तिसहितं वर्णं त्रिबिंदुसहितं प्रिये।
आत्मादितत्त्वसंयुक्तं भकारं प्रणमाम्यहम्॥"
(वर्णोद्धारतंत्र)

भकारके वाचक शब्द ये सब हैं—क्लिन्ना, भ्रमर, भीम, विश्वमूर्त्ति, निशाभव, द्विरण्ड, भूषण, मूल, यज्ञसूत्र-वाचक, नक्षत्र, भ्रमणा, दीप्ति, वयः, भूमि, पयस्, नभ, नाभि, भद्र, महाबाहु, विश्वमूर्त्ति, वितापडक, प्राणात्मा, तापिनी, वज्रा, विश्वरूपो, चन्द्रिका, भीमसेन, सुधासेन, सुख, मायापुर और हर। (वर्णाभिधानतंत्र)

मातृकान्यासमें इस वर्णका नाभिमें न्यास करना होता है। काव्यके आदिमें इस वर्णका प्रयोग करनेसे भय, मरण क्लेश और दुःख होता है। (वृत्तरत्ना० टीका)

भ (सं० क्ली०) भातीति भा-दीप्तौ बाहुलकात् ड। १ नक्षत्र। २ ग्रह। ३ राशि। ४ शुक्राचार्य। ५ भ्रमर, भौंरा। ६ भूधर, पहाड़। ७ भ्रान्ति। ८ छन्द-शास्त्रानुसार एक गणका नाम। इसके आदिका वर्ण गुरु और शेष दो लघु होते हैं। काव्यके आदिमें इस वर्णका प्रयोग करनेसे यशोलाभ होता है।

"भश्चन्द्रो यश उज्ज्वलम्" (वृत्तरत्ना० टीका०)

भँकारी (हिं० स्त्री०) १ भुनगा। २ एक प्रकारका छोटा मच्छर।

भँगड़ (हिं० वि०) जो नित्य और बहुत अधिक भांग पीता हो, बहुत भँग पीनेवाला।

भंगना (हिं० क्रि०) १ तोड़ना। २ दबाना।

भंगरा (हिं० पु०) १ एक प्रकारका मोटा कपड़ा जो भांगके रेशेसे बुना जाता है। यह कपड़ा बिछाने या बोरा बनानेके काममें आता है। २ वर्षाकालमें होनेवाली एक प्रकारकी वनस्पति। यह विशेषकर ऐसी जगह, जहां पानीका सोत बहता है या कूएं आदिके किनारे उगती है। पत्तियां इसकी लंबोतरी, नुकीली, कटावदार और मोटे दलकी होती है। उनका ऊपरी भाग गहरे रंगका और नीचेका भाग हलके रंगका खुरदुरा होता है। वैद्यकमें इसका स्वाद कड़वा, चरपरा, प्रकृति रूखी, गरम तथा गुण कफनाशक, रक्तशोधक, नेत्ररोग और शिरकी पीड़ाको दूर करनेवाला लिखा है और इसे रसायन माना है। इस वनस्पतिके तीन भेद हैं,—एक पीले फूलका जिसे स्वर्णभृङ्गार, हरिवास, देवप्रिय आदि कहते हैं; दूसरा सफेद फूलका और तीसरा काले फूलका जिसे नील भृङ्गराज, महानील, सुनीलक, महाभृङ्ग, नीलपुष्प या श्यामल कहते हैं। सफेद भंगरा सब जगह और पीला भंगरा कहीं कहीं होता है। काले फूलका भंगरा जल्दी नहीं मिलता। यह अलभ्य और रसायन माना गया है। कहते हैं, कि काले फूलके भंगरेके प्रयोगसे सफेद पके बाल सदाके लिये काले हो जाते हैं। सफेद फूलवाले भँगरेके दो भेद हैं—एक हरे डंठलवाला और दूसरा काले डंठलवाला।

भंगराज (हिं० पु०) कोयलके रंग ढंग और आकारकी एक चिड़िया। विशेष विवरण भृङ्गराज शब्दमें देखो। २ वनस्पतिविशेष। भँगरान देखो।

भंगरैया (हिं० स्त्री०) भंगरा देखो।

भंगार (हिं० पु०) १ वह गड्ढा जो कूप खनते समय पहले खोदा जाता है। २ जमीनमेंका वह गड्ढा जो बरसातके दिनोंमें आपे आप हो जाता है। ३ कूड़ा करकट, घासफूस।

भंगिरा (हिं० पु०) भंगरा देखो।

भंगी (हिं० पु०) १ भङ्गशील, नष्ट होनेवाला। २ भंग करनेवाला, भंगकारी। ३ रेखाओंके झुकावसे खींचा हुआ चित्र या बेलबूटा आदि। ४ एक अस्पृश्य जाति जिसका काम मल मूत्र आदि उठाना है। विशेष विवरण भङ्गी शब्दमें देखो। (वि०) ५ भांग पीनेवाला, भँगेड़ी।

भँगेड़ी (हिं० पु०) जिसे भांग पीनेकी लत हो, बहुत अधिक भांग पीनेवाला।

भंगेरा (हिं० पु०) १ भांगकी छालका बना हुआ कपड़ा। २ भंगरा, भंगरैया।

भंगेला (हिं० पु०) एक प्रकारका कपड़ा जो भांगकी छालका बना होता है।

भंजना (हिं० क्रि०) १ विभक्त होना, टुकड़े टुकड़े होना। २ किसी वड़े सिक्के या छोटे छोटे सिक्कोंसे वदला जाना, भुनना। ३ वटा जाना। जैसे—रस्सी वा तागेका भंजना। ४ मोड़ा जाना, भांजा जाना।

भंजनी (हिं० स्त्री०) करघेका एक अंग। यह तानेको विस्तृत रखनेके लिये उसके किनारे पर लगाया जाता है। इसे वांसकी तीन चिकनी सीधी और दृढ़ लकड़ियोंसे वनाते हैं। वे लकड़ियां पास पास समानान्तर पर रहती हैं। इन्हीं तीनों लकड़ियोंके वीचकी सन्धियोंमेंसे ऊपर नीचे हो कर ताना लगाया जाता है। यह वुननेवालेके सामने किनारे पर रहता है।

भंजाना (हिं० क्रि०) १ भागों वा अंशोंमें परिणत कराना, तुड़वाना। २ वड़ा सिक्का आदि दे कर उतने ही मूल्य के छोटे सिक्के देना, भुनाना। ३ दूसरेको भाँजनेके लिये प्रेरणा करना वा नियुक्त करना। जैसे—रस्सी भंजाना, कागज भंजाना।

भंझा (हिं० पु०) वह लकड़ी जो कूएंके किनारेके खंभे वा ओटेके ऊपर आड़ी रखी जाती है और जिस पर गडारी लगा कर धुरे टिकाए जाते हैं।

भंटकटैया (हिं० पु०) भटकटैया देखो।

भंटा (हिं० पु०) वैंगन।

भंडताल (हिं० पु०) एक प्रकारका गाना और नाच। इसमें गानेवाला गाता है और शेष समाजी उसके पीछे तालियां पीटते हैं।

भंडना (हिं० क्रि०) १ हानि पहुंचाना, विगाड़ना। २ भंग करना, तोड़ना। ३ नष्ट भ्रष्ट करना, गड़वड़ करना। अपकीर्त्त फैलाना, वदनाम करना।

भंडफोड़ (हिं० पु०) १ मट्टीके वरतनोंको गिराना या तोड़ना फोड़ना। २ मट्टीके वरतनोंका टूटना फूटना। ३ भेद खोलनेका भाव, रहस्योद्घाटन।

भंड़भांड़ (हिं० पु०) एक कटीला क्षुप। इसकी पत्तियां नुकीली, लम्वी और कटोली होती हैं। जाड़ेके दिनोंमें यह उगता है। इसका फूल पोस्तके फूलके आकारका पीले या वसंती रंगका होता है। जव फूल झड़ जाते हैं तव पोस्तकी तरह लम्वी और कांटोंसे युक्त ढेंढ़ी लगती हैं जिसमें पकने पर काले रङ्गके पोस्त-से और कुछ वड़े दाने निकलते हैं। इन दानोंको पेरनेसे तेल निकलता है। इस तेलको लोग जलाते और दवाके काममें लाते हैं। इसके पौधेसे पीले रंगका दूध निकलता है जो घाव और चोट पर लगाया जाता है। इसकी जड़ भी फोड़े फुंसियों पर पीस कर लगाई जाती है। इसके नरम डंठलकी गूदीकी तरकारी भी वनाई जाती है।

भंड़रिया (हिं० पु०) एक जातिका नाम। इस जातिके लोग फलित ज्योतिष या सामुद्रिक आदिकी सहायतासे लोगोंको भविष्य वता कर अपना निर्वाह करते हैं। ये लोग शनैश्चरादि ग्रहोंका दान भी लेते हैं। कहीं कहीं इस जातिके लोग तीर्थोंमें यात्रियोंको स्नान और दर्शन आदि भी कराते हैं। इस जातिके लोग ब्राह्मणोंमें विलकुल अंतिम श्रेणीके समझे जाते हैं। २ पाखण्डी, ढोंगी। ३ धूर्त्त, मक्कार। (स्त्री०) ४ दीवारों अथवा उनकी संधियोंमें वना हुआ वह ताख या छोटी कोठी जिसके आगे छोटे छोटे दरवाजे लगे रहते हैं और जिनमें छोटी चीजें रखी जाती हैं।

भंड़सार (हिं० स्त्री०) वह गोदाम जहां सस्ता अन्न खरीद कर महंगीमें वेचनेके लिए इकट्ठा किया जाता है।

भंडा (हिं० पु०) १ पात्र, भांड़ा। २ भंडारा। ३ रहस्य, भेद। ४ वह लकड़ी या वल्ला जिसका सहारा लगा कर मोटे और भारी वल्लोंको उठाते या खसकाते हैं।

भंडाना (हिं० क्रि०) १ उपद्रव करना, उछल कूद करना। २ नष्ट करना, तोड़ना फोड़ना।

भंडार (हिं० पु०) १ कोष, खजाना। २ अन्नादि रखनेका स्थान, कोठार। ३ पाकशाला, भंडारा। ४ उदर, पेट। ५ अग्निकोण। ६ भंडारा देखो।

भंडारा (हिं० पु०) १ भंडार देखो। २ समूह, झुंड। ३ साधुओंका भोज। ४ उदर, पेट।

भंडारी (हिं० स्त्री०) १ छोटी कोठरी। २ कोश, खजाना। (पु०) ३ कोषाध्यक्ष, खजानची। ४ रसोइया, रसोईदार।

भँडेरिया (हिं० पु०) भँडरिया देखो।

भँड़ेरियापन (हिं० पु०) १ मक्कारी, ढोंग। २ चालाकी।

भँड़ौआ (हिं० पु०) १ भाँड़ोंके गानेका गीत। २ हास्य आदि रसोंकी साधारण अथवा निम्नकोटिकी कविता।

भँवूरी (हिं० स्त्री०) एक पेड़ जो बवूलकी जातिका होता है। इसे फुलाई भी कहते हैं। फुलाई देखो।

भँभरना (हिं० क्रि०) भयभीत होना, डरना।

भंभा (हिं० पु०) विल, छेद।

भंभाका (हिं० स्त्री०) अधिक अवस्थाकी स्त्रीकी योनि।

भंभाना (हिं० क्रि०) गौ आदि पशुओंका चिल्लाना, रँभाना।

भँभीरी (हिं० स्त्री०) एक पतिंगा। इसकी पूंछ लम्बी और पतली, रंग लाल और विलकुल झिल्लीके समान पारदर्शक चार पर होते हैं। इसकी आंखें टिड्डीकी आंखोंकी तरह वड़ी और ऊपर निकली रहती हैं। यह वर्षाके अंतमें दिखाई पड़ता है और प्रायः पानीके किनारे घासोंके ऊपर उड़ता है। पकड़ने पर यह अपने पैरोंको हिला कर भन भन शब्द करता है। इसका दूसरा नाम जुलाहा भी है।

भंमर (हिं० पु०) १ वड़ी मधुमक्खी, सारंग। २ वर्रँ, भिड़।

भंवना (हिं० क्रि०) १ घूमना, फिरना। २ चक्कर लगाना।

भंवर (हिं० पु०) १ भौंरा। भ्रमर देखो। २ गर्त, गड्ढा। ३ पानीके वहावमें वह स्थान जहां पानीकी लहर एक केन्द्र पर चक्राकार घूमती है। ऐसे स्थान पर यदि मनुष्य वा नाव आदि पहुंच जाय, तो उसके डूवनेकी संभावना रहती है। ४ जन्तुओंके शरीरके ऊपर वह स्थान जहांके रोएं और वाल एक केन्द्र पर घूमे हुए हों। वालोंका इस प्रकारका घुमाव स्थानभेदसे शुभ अथवा अशुभ लक्षण माना जाता है। ३ वनियोंका सौदा ले कर घूम घूम कर बेचना, फेरी। ४ रक्षक, कोतवाल या अन्य कर्मचारियोंका प्रजाकी रक्षाके लिये चक्कर लगाना, गश्त। ५ परिक्रमा। ६ भंवर देखो।

भँवरकली (हिं० स्त्री०) लोहे या पीतलकी कड़ी। यह कीलमें इस प्रकार जड़ी रहती है कि उसे जिधर चाहें उधर सहजमें घुमा सकते हैं। यह प्रायः पशुओंके गलेकी सिकड़ी या पट्टे आदिमें लगी रहती है। पशु चाहे जितने चक्कर लगावे, पर इसकी सहायतासे उसकी सिकड़ीमें वल नहीं पड़ने पाता।

भंवरगीत (हिं० पु०) भ्रमरगीत देखो।

भंवरजाल (हिं० पु०) भ्रमजाल, संसार और सांसारिक झगड़े वखेड़े।

भंवरभीख (हिं० स्त्री०) वह भीख जो भौंरेके समान घूम फिर कर मांगी जाय, तीन प्रकारकी भिक्षामेंसे दूसरी।

भंवरा (हिं० पु०) भौंरा देखो।

भंवरी (हिं० स्त्री०) १ पानीका चक्कर, भंवर। २

भंवारा (हिं० वि०) भ्रमणशील, घूमनेवाला।

भंसना (हिं० क्रि०) १ पानीके ऊपर तैरना। २ पानीमें डाला या फेंका जाना।

भंसरा (हिं० पु०) भँजनी देखो।

भंसस (सं० पु०) पायु, गुदा।

भइया (हिं० पु०) १ भाई। २ एक आदरसूचक शब्द। इसका व्यवहार प्रायः वरावरवालोंके लिये होता है।

भक (हिं० स्त्री०) सहसा अथवा रह रह कर आगके जल उठने अथवा वेगसे धूएंके निकलनेके कारण उत्पन्न होनेवाला शब्द। इसका प्रयोग प्रायः 'से' विभक्तिके साथ होता है। जैसे लंप भकसे जल उठा।

भकक्षा (सं० स्त्री०) भस्य कक्षा। नक्षत्रकक्षा।

भकरांध (हिं० स्त्री०) अनाजके सड़नेकी गंध, सड़े हुए अनाजकी गंध।

भकरांधा (हिं० वि०) सड़ा हुआ।

भकसा (हिं० वि०) जो अधिक समय तक पड़ा रहनेके कारण कसैला हो गया हो और जिसमेंसे एक विशेष प्रकारकी दुर्गंधि आती हो।

भकसाना (हिं० क्रि०) किसी खाद्य पदार्थका अधिक समय तक पड़े रहने अथवा और किसी कारणसे वदबूदार और कसैला हो जाना।

भकाऊ (हिं० पु०) वच्चोंको डरानेके लिये एक कल्पित व्यक्ति, हौवा।

भकार (सं० पु०) भ-स्वरूपेकार। भ स्वरूपवर्ण।

भकुआ (हिं० वि०) मूर्ख, मूढ़।

भकुआना (हिं० क्रि०) १ चकपका जाना, घवरा जाना। २ चकपका देना, घवरा देना। ३ मूर्ख वनना।

भकुड़ा (हिं० पु०) मोटा गज जिससे तोपमें वत्ती आदि ठूंसी जाती है।

भकुड़ाना (हिं० क्रि०) १ लोहेके गजसे तोपके मुंहका भीतरी भाग साफ करना। २ लोहेके गजसे तोपके मुंहमें बत्ती भरना।

भकुवा (हिं० वि०) भकुआ देखो।

भकूट (सं० क्ली०) भस्य कूटम्। एक प्रकारकी राशियोंका समूह जो विवाह गणनामें शुभ मानी जाती है।

"खेटारित्वं नाशयेत् सत् भकूटम्।" (मुहूर्त्तचिंता०)

भकोसना (हिं० क्रि०) १ किसी चीजको विना अच्छी तरह कुचले हुए जल्दी-जल्दी खाना, निगलना। २ खाना।

भक्कर—मध्यभारतका एक देशी राज्य। चाङ्गभक्कर देखो।

भक्कर—१ पञ्जावके मियानवाली जिलेका उपविभाग। इसमें भक्कर और ल्याह नामक दो तहसील लगती है।

२ उक्त विभागकी एक तहसील। यह अक्षा० ३१° १०´ से ३२° २२´ उ० तथा देशा० ७०° ४७´से ७२° पू०के मध्य विस्तृत है। भूपरिमाण ३१३४ वर्गमील और जनसंख्या सवा लाखसे ऊपर है। इसमें भक्कर नामक १ शहर और १६६ ग्राम लगते हैं।

३ उक्त तहसीलका प्रधान नगर और विचार-सदर। यह अक्षा० ३१° ३७´ उ० तथा देशा० ७७° ४´ पू० सिन्धके वाएं किनारे अवस्थित है। जनसंख्या साढ़े पांच हजारके करीव है। नगरका पश्चिमांश उर्वर और शस्यशाली है जो प्रतिवर्ष वाढ़से वह जाता है। पूर्वभाग तृणगुल्मादिविहीन वालुकामय मरुभूमि सदृश है। पूर्वतन अफगान राजाओंके अधिकारकालमें यहांसे आम्रादि कावुल भेजे जाते थे। ६२४ हिजरीमें सुलतान समसुद्दीनने भक्कर दुर्गमें घेरा डाला और उसे जीत लिया। भक्करपति मालिक नासिरुद्दीनने यह संवाद पाते ही जलमें डूव कर आत्मविसर्जन किया। १५वीं शताब्दीके शेषभागमें किसी वलूच सरदारका अनुगमनकारी औपनिवेशिक दल यहां आ कर वस गया। उक्त सरदारके वंशधर तभीसे यहांका शासन करते रहे। आखिर अहादशाह दुर्रानीने इस स्थानको जीत कर किसी व्यक्तिको दान कर दिया। उस व्यक्तिने राजशक्तिकी सहायतासे वलूच शासनकर्त्ताको राज्यसे निकाल कर अपनी गोटी जमाई। शहरमें एक अस्पताल और म्युनिसिपल वर्नाक्युलर मिडिल स्कूल है।

भक्तिका (सं० स्त्री०) झिल्ली, झींगुर।

भक्त (सं० क्ली०) भज्यते स्मेति भज सेवायां कर्मणि क्त। अन्न, भक्तके अपभ्रंशसे "भात" शब्द हुआ है। भावप्रकाशमें लिखा है, कि अन्न, अन्ध, कूर, ओदन, भिस्सा और दीदिवि, ये सव भक्तके पर्याय शब्द हैं। भक्त (भात) प्रस्तुत करनेकी विधि यों है:—चावलको अच्छी तरह धो कर उससे पांच गुणा खौलते हुए जलमें पाक करे और जव उत्तमरूपसे सिद्ध हो जाय, तव उसे उतार कर मांड़ फेंक दे। इसके गुण—अग्निवर्द्धक, तृप्तिजनक, रुचिकर, और हलका। विना धोये हुए चावलका भात तथा जिसका मांड अच्छो तरह नहीं निकाला गया हो वह शीतवीर्य, गुरु (भारी), अरुचिकर तथा कफवर्द्धक है। (भावप्रकाश)

वैष्णव-मतमें भात विष्णुको नैवेद्य लगा कर खाना चाहिये। यदि कोई भूल कर विना नैवेद्य लगाये भोजन करे, तो उसके लिये वह अन्न विष्ठा तुल्य हो जाता है। जो प्रतिदिन भक्तिपूर्वक विष्णुको नैवेद्य लगा कर भोजन करता है वह भगवानका दासत्व लाभ करता है।

अन्नदानके समान और दान नहीं है। अन्नदानमें सव प्रकारका पुण्य होता है। निम्नलिखित व्यक्तियोंके अन्न वर्जनीय हैं:—

राजाका अन्न, नाचनेवालेका अन्न, चुराया हुआ अन्न, कुम्हार, भड़ुआ, वेश्या तथा नपुंसकका अन्न नहीं खाना चाहिये। तेली, रजक, तस्कर, ध्वजी, गान्धर्व अर्थात् नाचनेवाले, लोहार, जुलाहा, कलाल, चित्रकार, वार्धुषिक, पतित, वर्णसंकर, छालिक, अभिशप्त, सोनार, शैलूष, व्याधित, आतुर, चिकित्सक, पुंश्चली, दाम्भिक, चोर, नास्तिक, देवतानिन्दक, मदिरा वेचनेवाला, श्वपाक, भार्याजित, अर्थात् स्त्रैण, शस्त्रजीवी, क्लीव, मत्त, उन्मत्त, भीत, रुदित, ब्रह्मद्वेषी और पापरुचि आदिका अन्न तथा श्राद्धान्न, अशौचान्न, शौण्डान्नादि भोजन नहीं करना चाहिये। मनुष्य जो दुष्कर्म करता है वह अन्नमें संक्रामित होता है; इसलिये वह अन्न जो मनुष्य खाता है वह मानो पाप भोजन करता है; अतः पापीका अन्न निषिद्ध है।

दुष्कृतं हि मनुष्यस्य सर्वमन्नेष्ववतिष्ठम्।
यो यस्यान्नेन जीवेत स तस्याश्नाति किल्बिषम्।
(कूर्मपु० उपविभाग १६ अ०)

२ धन। 'भक्तं धनं (मेधातिथि) (क्लि०) भजते स्मेति भज-सेवायां क्त। ३ तत्पर, भक्तियुक्त, पूज्यविषयक अनुराग भक्तिसे युक्त। भज-भावे क्त। ४ भजन। भक्तिके लक्षण :—

जिसको कृष्णकी कथामें विशेष अनुराग है तथा अश्रु और पुलकोद्गम होता है; मन सदा श्रीकृष्णमें निमग्न रहता है, वही भक्त हैं। जो पुत्र और स्त्री आदिको मन वचन और शरीरसे कृष्णके तुल्य मानते हैं वे ही भक्त हैं। सब जीवों पर जिसकी माया है तथा जो सारे संसारको श्रीकृष्णका स्वरूप जानते हैं वे ही महाज्ञानी और भक्त हैं।

जिनके भक्तिके उपदेशसे शरीर पुलकायमान होता है, जो कभी हंसते हैं, कभी नाचते हैं, जो सदा ही परमानन्दित हैं अथवा जो कभी आनन्दमें निमग्न, कभी गानमें अथवा जो भगवान्‌के भावमें डूबकर रोदन करते हैं, जो भगवत् प्रेममें निमग्न रहते हैं और जो सर्वज्ञ ईश्वरको जान कर सनातन विष्णुका भजन करते हैं, तथा जिनका सभी प्राणियों पर समान अनुराग है वे ही भक्त कहलाते हैं।

ब्राह्मण यदि हरिभक्त हों, तो उनका प्रभाव अतुलनीय है। हरिभक्त ब्राह्मणके चरणकमलकी धूलसे पृथ्वी पवित्र हो जाती है। उनके पदचिह्नकी गणना तीर्थोंमें होती है और उसको स्पर्श करनेसे तीर्थकृत पाप भी विनष्ट होता है। उनके आलिङ्गन, उनके साथ वार्त्तालाप, उनके जूठे भोजन, दर्शन और स्पर्श करनेसे सब पाप नाश होते हैं। सब तीर्थोंमें घूम कर स्नानादिसे जैसा पुण्य होता है, एक भगवान्‌भक्त ब्राह्मणके दर्शनसे भी उसी तरहका पुण्य लाभ होता है।

विष्णु-भक्तके शरीरमें सारे तीर्थ अवस्थान करते हैं। विष्णुभक्तकी पदरजसे पृथ्वी, तीर्थ, तथा सारा संसार पवित्र हो जाता है। जो विष्णुमन्त्रकी उपासना करते, विष्णुका उच्छिष्ट भोजन करते और विष्णुका ही जो एकमात्र ध्यान करते हैं, वे सब विष्णुभक्त विष्णुको प्राणसे भी अधिक प्रिय हैं। कलियुगमें दस हजार वर्ष तक ये विष्णुभक्त रहेंगे। अनन्तर विष्णु भक्तोंके चले जाने पर सब कोई एक वर्ण होंगे तथा पृथ्वी कलिसे ग्रस्त होगी।

विष्णुभक्तका कर्त्तव्य—विष्णुभक्त सर्वदा सब मनुष्योंके सामने विष्णुका कीर्त्तन करेंगे और अपने पास जो कुछ हो उन्हें विष्णुको चढ़ा देंगे।

भक्त विष्णुमन्त्रसे दीक्षित हो कर पवित्र होते हैं तथा उनके पूर्वज भी पवित्र हो जाते हैं। भक्त ब्रह्मणत्व, अमरत्व, इन्द्रत्व, मनुत्व, निर्वाणमुक्ति, अथवा अणिमादि ऐश्वर्य्य आदिकी कुछ भी याचना नहीं करते। केवल मात्र विष्णुके प्रति एकान्त अनुराग वा परा अनुरक्ति रहे, यही उनकी अभिलाषा है। शरीर मन वचनसे एकमात्र भगवान्‌में अनुरक्त रहना ही उनकी आकांक्षा है। ब्रह्महत्या, गुरुहत्या, गोवध, स्त्रीवध, आदिसे जिस प्रकार लोग पातकी बनता है, एकमात्र भक्तको त्यागनेसे ही उसी प्रकार पातकी हो कर रहता है। उसका इस समय और भविष्यमें मंगल नहीं होता। (मार्कण्डेयपुराण हरिश्चन्द्रोपा०) हरिभक्तिविलासमें भक्तका विशेष विवरण देखो।

भक्ति-परायण ही भक्त है। उत्तम, अधम और प्राकृत आदि भक्तके अनेक भेद हैं। अत्यन्त संक्षेप रूपमें इस विषयकी पर्य्यालोचना की जाती है। जो भजन करता है, वह भी भक्त है। गीतामें कहा गया है—

चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन।
आर्त्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ॥ (गीता)

श्रीकृष्णने अर्जुनसे कहा है—आर्त्त (पीड़ित), जिज्ञासु, अर्थ चाहनेवाला तथा ज्ञानी ये चार प्रकारके मनुष्य मेरा भजन करते हैं। गजेन्द्र आर्त्तभक्त, सनक-सनातनादि जिज्ञासु भक्त, ध्रुव आदि अर्थार्थी भक्त और शुकदेवादि ज्ञानिभक्त हैं।

भक्ति-याजनमें अधिकारीको भक्त कहा जाता है। उत्तम, मध्यम और कनिष्ठ इसके तीन भेद हैं। श्रीमद्भागवतके ११वें स्कन्धमें उक्त तीनों अधिकारियोंका उल्लेख है।

उत्तम—"सर्व्वभूतेषु यः पश्येद्भगवद्भावमात्मनः।
भूतानि भगवत्यात्मन्येष भागवतोत्तमः॥

मध्यम—ईश्वरे तदधीनेषु बालिशेषु द्विषत्सु च।
प्रेममैत्री कृपोपेक्षा यः करोति स मध्यमः॥
कनिष्ठ—अर्चायामेव हरये पूजां यः श्रद्धयेहते।
न तद्भक्तेषु चान्येषु स भक्तः प्राकृतः स्मृतः॥"

श्रीमद्भागवतके सप्तमस्कन्धमें श्रवणादि जो नौ प्रकारकी भक्तिके लक्षण कहे गये हैं उनके एक एक भक्ति-अङ्गका यत्न करनेवाला भक्त कहलाता है। नवधा भक्ति यथा—

"श्रवणं कीर्त्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनं।
अर्च्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनं॥
इति पुंसार्पिता विष्णौ भक्तिश्चेन्नवलक्षणा।
क्रियते भगवत्यद्धा तन्मन्येऽधीतमुत्तमम्॥"
(भागवत ७।५।२३-२४)

श्रवण, कीर्त्तन, स्मरण, पादसेवन, अर्च्चन, वन्दन, दास्य, सख्य और आत्म, निवेदन यही नौ भक्ति हैं।

इन नौ प्रकारकी भक्तियोंके अधिकारी भक्त यथा—

"श्रीविष्णोः श्रवणे परीक्षिदभवद्वैयासकिः कीर्त्तने,
प्रह्लादः स्मरणे तदङ्घ्रि भजने लक्ष्मीः पृथुः पूजने।
अक्रूरस्त्वभिवन्दने कपिपतिर्दास्येऽथ सख्येऽर्जुनः।
सर्वस्वात्मनिवेदने बलिरभूत् कृष्णाप्तिरेषां परं॥"
(भक्तिरसामृतसिन्धु पूर्व० २।१२९)

श्रवणभक्तिसिद्ध भक्त परीक्षित, कीर्त्तनभक्तिसिद्ध भक्त वेदव्यासनन्दन शुकदेव, स्मरणभक्तिसिद्ध भक्त प्रह्लाद, पादसेवनभक्तिसिद्ध भक्त लक्ष्मी, पूजनभक्तिसिद्ध भक्त महाराज पृथु, वन्दनभक्तिसिद्ध भक्त अक्रूर, दास्य-भक्तिसिद्ध भक्त हनुमान, सख्यभक्तिसिद्ध भक्त अर्जुन और आत्मनिवेदनभक्तिसिद्ध भक्त बलिराज।

इसके आलावा पद्मपुराणमें भी भगवत्पूजाके प्रसंगमें कतिपय भक्तोंके नाम उद्धृत देखे जाते हैं।

"मार्कण्डेयोऽम्बरीषश्च वसुर्व्यासो विभीषणः।
पुण्डरीको बलिः शम्भुः प्रह्लादो विदुरो ध्रुवः॥
दाल्भ्यः पराशरो भीष्मो नारदाद्याश्च वैष्णवैः।
सेव्या हरिं निषेव्यामी नो चेदागः परं भवेत्॥"

हरि-सेवनानन्तर, मार्कण्डेय, अम्बरीष, वसु, व्यास, विभीषण, पुंडरीक, बलि, शम्भु, प्रह्लाद, विदुर, ध्रुव, दाल्भ्य, पराशर, भीष्म तथा नारदादि-भक्तोंकी सेवा करना वैष्णवोंके लिये अवश्य कर्त्तव्य है, नहीं करनेसे घोरतर अपराध होता है। पूर्वोक्त मार्कण्डेयादि मनीषि-गण भक्त तथा प्रह्लाद भक्तराजके नामसे पुकारे जाते हैं। प्रह्लाद आदि भक्तोंमें पाण्डुनन्दन श्रेष्ठ भक्त हैं। फिर पाण्डवसे भी यादवगण श्रेष्ठ भक्त हैं।

"सदातिसन्निकृष्टत्वात् ममताधिक्यतो हरेः।
पाण्डवेभ्योऽपि यदवः केचित् श्रेष्ठतमा मताः॥"
(लघुभाग)

सर्वदा श्रीकृष्णके निकट रहनेसे ममतातिशय निबन्धन कतिपय यादव पाण्डवसे श्रेष्ठ तथा इन यादवोंके मध्य उद्धव भक्त श्रेष्ठ थे। इस उद्धवसे भी फिर व्रजदेवीगण श्रेष्ठ भक्त थीं। उन लोगोंके मध्य श्रीकृष्ण प्रिया श्रीराधिका ही सबकी अपेक्षा श्रेष्ठ भक्त थीं।

"तत्रापि सर्वगोपीनां राधिकाति वरीयसी।
सर्वाधिकेन कथिता प्रत्युरागागमादिषु॥"

इन सब गोपियोंमें श्रीराधिका ही अधिक श्रेष्ठ थीं। क्योंकि, पुराण तथा वेदादि शास्त्रोंमें उन्हींको सबोंसे श्रेष्ठ बतलाया है।

भक्तिरसामृतसिन्धु नामक वैष्णवग्रन्थमें भक्तोंके अनेक भेद कहे गये हैं। उनमेंसे शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य और मधुररसके भक्त लोग श्रेष्ठ हैं। सनकसनन्दादि शान्तरसके भक्त थे। दासभक्त चार प्रकारके हैं—अधि-कृत, आश्रित, पारिषद और अनुग। ब्रह्मा, शिव, इन्द्र इत्यादिको अधिकृत दास भक्त कहा जाता है।

आश्रित दासभक्त—शरणागत, ज्ञाननिष्ठ और सेवा-निष्ठके भेदसे तीन प्रकारका है।

कालिय-नाग तथा जरासन्धकारागारमें बद्ध नृपति-गण शरणागत दासभक्त थे।

जिन्होंने मुक्तिकी इच्छा छोड़ कर केवल भगवान्का ही आश्रय लिया है वे ज्ञाननिष्ठ भक्त हैं। शौनकादि ऋषि लोग ज्ञाननिष्ठ दासभक्त थे।

जो पहिले हीसे भजन विषयमें आसक्त हैं, वे ही सेवानिष्ठ दासभक्त हैं। चन्द्रध्वज, हरिहर, बहुलाश्व, इक्ष्वाकु, श्रुतदेव, पुण्डरीक आदि ही सेवा-निष्ठ भक्तके निदर्शन हैं। पारिषद दासभक्त—द्वारकानगरीमें उद्धव, दारुक, सात्यकि, श्रुतदेव,

शक्रजित्, नन्द, उपनन्द और भद्र आदि पार्षद दास-भक्त थे। ये मन्त्रणा तथा सारथ्यादि कार्य्योंमें नियुक्त रहते हुए भी किसी किसी समय परिचर्य्यादि कार्य्यमें प्रवृत्त रहते थे। कुरुवंशमें भीष्म, परीक्षित् और विदुर आदिको भी पार्षददासभक्त कहा जाता है। अनुग-दास भक्त—जो सर्वदा स्वामीके सेवाकार्य्यमें दत्तचित्त रहता है उसे अनुग कहते हैं। यह अनुग दो प्रकारका है—पुरस्थ और व्रजस्थ।

'सुचन्द्रो मण्डलः स्तम्बः सुतम्बाद्याः पुरानुगाः'।

सुचन्द्र, मण्डल स्तम्ब और सुतम्बादि पुरस्थ अनुग दासभक्त हैं। रक्तक, पत्रक, पत्री, मधुकण्ठ, मधुव्रत, रसाल, सुविलास, प्रेमकन्द, मरन्द, आनन्द, चन्द्रहास, पयोद, वकुल, रसद और शारद आदि व्रजस्थ अनुग दासभक्त हुए।

सख्यरस-भक्त—पुरसम्बन्धी और व्रजसम्बन्धीके भेदसे दो प्रकारका है। अर्जुन, भीम, और द्रुपद-नन्दिनी द्रौपदी और श्रीदाम आदि सख्यरसके पुर-सम्बन्धी भक्त कहे जाते हैं।

सुहृत्-सखा, सखा, प्रियसखा और प्रियनर्मसखाके भेदसे व्रजस्थ सख्यरसके भक्तगण इन चार श्रेणियोंमें विभक्त हैं। श्रीकृष्णसे कुछ उम्रमें अधिक, वात्सल्यगन्धि-युक्त, सदा शस्त्र द्वारा दुष्टोंसे श्रीकृष्णकी रक्षा करनेवाले ही श्रीकृष्णके सुहृद सखा हुए। सुभद्र, मंडलीभद्र, भद्रवर्द्धन, गोभट, यक्षेन्द्रभट, भद्राङ्ग वीरभद्र, महागुण, विजय और वलभद्र आदि भी सहृद सखा थे। जिन लोगोंकी मित्रता कुछ सेवामिश्रित है, जो कृष्णसे उम्रमें कुछ कम और श्रीकृष्णके सेवासुख-के अभिलाषी हैं वे ही सखा हैं। विशाल, वृषभ, ओजस्वी, देवप्रस्थ, वरूथप, मरन्द, कुसुमापीड़, मणिवन्ध, करन-धम, आदि सख्यरसके भक्तगण सखा नामसे विख्यात हैं।

प्रियसखा—जिनकी मित्रता शुद्ध है अर्थात् जिसमें दास्य वा वात्सल्यका गन्धमात्र भी नहीं है, इस तरहके समवयस्क मित्रोंको प्रियसखा कहते हैं। श्रीदाम, सुदाम, दाम वसुदाम, किङ्किणी, स्तोककृष्ण, अंशु, भद्रसेन, विलासी, पुण्डरीक, विटंक और कलिविंक आदि प्रिय-सखा नामसे विख्यात हैं। वे अनेक तरहके खेल और वाहु-युद्ध तथा दण्डयुद्ध आदि कौतुक द्वारा सर्वदा श्रीकृष्ण-को आनन्दित किया करते थे।

प्रियनर्म-सखा—प्रिय सखासे भी सब प्रकारसे श्रेष्ठ, अत्यन्त रहस्य कार्यमें नियुक्त तथा विशेष भावके रखने-वालेको ही प्रियनर्म-सखा कहते हैं। सुवल, अर्जुनगोप, गन्धर्व, वसन्त और उज्वल प्रभृति प्रियनर्म-सखाके नामसे विख्यात हैं।

श्रीकृष्णके गुरुवर्ग ही वत्सल-रसके भक्त थे। व्रज-रानी यशोदा, व्रजराज नन्द, रोहिनी, ब्रह्मा इन सबोंने जिन गोपियोंके पुत्रोंको हरण किया था, वे सब गोपी, देवकी, देवकीको सपत्नीगण, कुन्ती, वसुदेव और सान्दी-पनि मुनि आदि श्रीकृष्णके गुरुवर्ग थे। प्रेयसीवर्ग मधुर रसके भक्त थे। कृष्णके सभी प्रेयसीवर्गमें वृष-भानुनन्दिनी श्रीराधिका ही सर्वप्रधाना थीं।

'प्रेयसीषु हरेरासु प्रवरा वार्षभानवी'

पहले ही कहा जा चुका है, कि जो देवताओंके चरणोंमें तन मन समर्पण कर स्थिरचित्तसे उनकी आराधना-में सदा नियुक्त रहते हैं, वे ही भक्त हैं। देवतामें प्रेम अथवा भक्ति न रहनेसे भक्त नहीं हो सकता, अटल विश्वास ही भक्तका पूर्ण लक्षण है। भक्तश्रेष्ठ-नाभाजी-कृत 'भक्तमाल'-की टीकामें प्रियदासने लिखा है:—

हरि गुरु दास सों सांचो सोई भक्त सही
गही एक टेक फिरि उतरे न टेरि है।
भक्ति रसरूप को सरूप है छवियार
चारु हरि नाम लेत अश्रुवनि भरि हैं॥
वही भगवन्त सन्तप्रीतिको विचार करे
धरे दूरि ईश ताहु पाण्डौनीनों करि है।
गुरु गुरुताई की सचाई ले दिखाई जाहि
गाई श्रीपै हरिजूकी रीति रङ्ग भरि है॥

जो भक्त अविचलितचित्तसे हरिको गुरु कह कर जानते हैं वही श्रेष्ठ भक्त गिने जाते हैं। हृदयमें भक्ति-के स्वरूपका उदय होनेसे अनर्थ नाश और सर्व-स्वार्थ लाभ होता है। एकमात्र भगवान्, भक्त और गुरुके चरणध्यानके विना भक्तोंके मनमें और किसीसे भी प्रेमभाव स्थान नहीं पा सकता। जो स्वयं स्वार्थत्याग

पूर्वक आनन्द कौतुक अथवा प्रेम पूर्वक सदा राधाकृष्ण का नाम हृदयमें धारण करते हैं वे ही श्रेष्ठ हैं; नहीं तो स्वार्थज्ञानसे ही पूजन भजनादि वणिकवृत्तिमात्र है। जो हरिगुणगान और हरिरसास्वादनको ही सब विचारों और सर्वमङ्गलोंका सार जान कर प्रेममें निमग्न रहते हैं वे ही भक्त हैं अर्थात् देवतत्त्वमें प्रकृत विश्वासीको ही भक्त कहा जाता है।

पद्मपुराणमें विष्णुभक्तको दैवीसृष्टि बतलाया है। हरिपदके शरणार्थी भक्तको चाहिये, कि वे श्रीष्णकी भक्तिमें लीन हो कर उनका भजन करे। जो विष्णु-भक्ति नहीं करते उनके पूर्वपुरुष तक भी नरकगामी होते हैं। भक्तकी कामना हो वा न हो, वे तीव्र भक्तियोगसे उपाधिरहित पूर्ण पुरुष श्रीभगवान्‌की ही पूजा करे। एकमात्र अमला अथवा निष्कामा भक्ति ही श्रीभगवानको प्रीतिसाधनमें समर्थ हैं।

भक्तोंको चाहिये, कि वे भक्ति सहित वैष्णवके निकट कृष्णमंत्र ग्रहण करे, अवैष्णवके निकट मंत्रदीक्षासे हरिभक्ति नहीं बढ़ती। विष्णु-भक्ति-विहीन मनुष्यके निकट मंत्र लेनेसे हरिभक्तका हृदय भक्तिपूर्ण नहीं हो सकता। ब्राह्मण-वैष्णवसे मन्त्र लेना उचित है। शाक्त अथवा शैवसे मन्त्र लेनेसे हरिभक्तिमें विघ्न उत्पन्न हो सकता है। देवीपुराणमें लिखा है, कि विभिन्न सम्प्रदायके भक्तोंको नास्तिकका वर्जन करना चाहिए। गुरु और शिष्यके विपरीत मार्गमें चलनेसे कभी भी भक्तके हृदयमें भक्तिका आविर्भाव नहीं हो सकता तथा उसका इष्ट वस्तुका साधन निष्फल होता है। प्रकृत भक्तको अपने उपास्य देवताके प्रति अचला भक्ति रखनी चाहिये, किन्तु ऐसा कहनेका यह तात्पर्य नहीं वे भक्त देवताओंमें भेदज्ञान रखें। हरिभक्तोंमें स्वयं महादेव श्रेष्ठतम कहे गये हैं। शास्त्रमें शुकदेवगोस्वामी तथा महर्षि नारद आदिकी कथा सुनी जाती है। कृष्णके भक्त लोग चतुर्वर्ग फलकी इच्छा नहीं करते, वे निष्काम तथा माधुर्यमयी भक्ति द्वारा श्रीकृष्णका भजन कर प्रेमरसको सिद्ध करते हैं। अन्यान्य योगधर्मसे धर्मार्थकाम सिद्ध तो होता है, पर श्रीकृष्णके भजनसे एकमात्र व्रजप्रेमधामको प्राप्ति होती है। प्रकृत भक्त सिद्धिकी ओर दृष्टिपात नहीं करते, केवल प्रेमानन्दसे कृष्णसेवानन्दकी प्रार्थना करते हैं।

"सालोक्यसार्ष्टि सामीप्य सारूप्यैकत्वमप्युत।
दीयमानं न गृह्णन्ति विना मत्सेवनं जनाः॥"
(भाग० ३।२९।१३)

कृष्ण-भक्तके निकट त्रिजगत् तुच्छ है, उनका चित्त सदा आनन्दमय रहता है। भक्त ऊँच नीच जातिका भेदविचार नहीं करते। वैष्णव भक्तका स्पृष्ट अन्न-जल अथवा उनका उच्छिष्ट भोजन वा चरणोदक पान करनेमें कभी पराङ्मुख नहीं होना चाहिये। स्वयं भगवान् श्रीकृष्णने अर्जुनसे कहा था—

"ये मे भक्तजनाः पार्थ न मे भक्ताश्च ते जनाः।
मद्भक्तानाञ्च ये भक्तास्ते मे भक्ततमाः मताः॥"
(आदिपुराण)

जो हमारे भक्तके भक्त हैं वे ही श्रेष्ठ भक्त कहे जाते हैं, स्वयं ब्रह्मा भी कृष्णभक्तकी समता नहीं कर सकते। इसीलिये उन्होंने अर्जुनको श्रीमुखसे ही कहा है, कि वैष्णवकी सेवा करो, उसके परे कृष्णभक्त होनेका उपाय नहीं है। उन्होंने और भी कहा है—

"साधवो हृदयं मह्यं साधूनां हृदयन्त्वहम्।
मदन्यत् ते न जानन्ति नाहं तेभ्यो मनागपि॥"

भक्त और भगवानका शरीर दो होने पर भी उनके हृदय एक हैं। भक्त भगवानसे भिन्न और किसीका ध्यान नहीं करते और भगवान भी उसे वैसा ही समझते हैं। भक्तका हृदयकोरक भक्तिकुसुम पूर्ण है। भक्तगण विभिन्न उपायसे भगवानको पाते हैं। गोपियोंने कामसे, नन्द यशोदाने स्नेहसे, कंसने भयसे, वृन्दावनवासीने पुण्यफलसे, रावणशिशुपालादिने द्वेषसे, प्रह्लादादिने भक्तिसे और शुकदेवादिने ज्ञानसे नारायणको प्राप्त किया था।

सभी शास्त्रोंमें हरिभक्त वैष्णवोंकी महिमा और आराधनाविधि बतलाई गई है। हरिभक्तको नीचजाति समझनेसे उसे नरक होता है। पवित्रचेता गुहकको भी रामचन्द्रने आलिङ्गन किया था। वामन अवतारमें उन्होंने असुरश्रेष्ठ बलिराजका दासत्व स्वीकार किया था स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण सखारूपमें अर्जुनके सारथि

बने थे तथा उन्होंने पाण्डवपत्नी द्रौपदीकी लाज रखी थी। जिस भक्त-प्रेमसे उन्होंने वृषभानुसुता श्रीराधिकाका मानभञ्जन किया था, उसी भक्त-प्रेमसे उन्होंने पालयिता यशोमतीके बन्धन और गोपपति नन्द-के बाधावहन-क्लेशको सह्य किया था। भक्तराज अक्रूर और विदुर भक्ति-साधनासे ही उन्हें पाया था। भक्तका मनोरथ पूर्ण करनेकी कामनासे उन्होंने भक्तवर प्रह्लादकी प्रार्थना करने पर स्फटिकस्तम्भके मध्य नृसिंह-रूपमें हिरण्यकशिपुको दर्शन दिये थे।

महाभारतके राजधर्म-पर्वाध्यायमें उन्होंने बलिसे कहा है,—

"नित्यं ये प्रातरुत्थाय वैष्णवानान्तु कीर्त्तनम्।
कुर्वन्ति ते भागवताः कृष्णतुल्याः कलौ बले॥" (भारत)

प्रातःकालमें बिछावनसे उठ कर जो वैष्णवोंके नाम-कीर्त्तन करते हैं, वे ही कलिमें भागवत और कृष्णतुल्य समझे जाते हैं। पहले ही कहा जा चुका है 'मद्भक्तानाञ्च ये भक्तास्ते मे भक्ततमा मताः॥' अतएव भगवान् स्वयं स्वीकार करते हैं, 'भक्तकी महिमा अपार है, जो विष्णुभक्तके दास और वैष्णवान्नभोजी हैं, वे निःशङ्कचित्तसे यज्ञभुकोंकी गतिको पाते हैं। विष्णुभक्तकी अर्चना सर्वतोभावमें श्रेयस्कर है। जो उसका विपरीत आचरण करते हैं, वे दाम्भिक वा विष्णुवञ्चक हैं। पादोत्तरखण्डमें भागवत-पूजनकी भूरि भूरि प्रशंसा की गई है। दूसरी जगह भगवान् श्रीकृष्णने और भी भक्तपूजाकी अधिकता और अवश्य कर्त्तव्यता निर्देश की है। हरिभक्तोंके प्रिय-व्यक्ति सबोंके लिये वन्दनीय हैं।

जिसके घरमें वैष्णव भोजन करते हैं, वैष्णवसङ्गलाभ-से उसका शरीर निष्पाप हो जाता है; वहां कृतान्तरका भी अधिकार नहीं हैं। स्वयं भगवान् भक्तकी रसनामें रसास्वादन करते हैं। नारदपुराणमें भी विष्णुभक्तका माहात्म्य वर्णित है। श्रीमद् मध्वाचार्यने लिखा है,—

"भगवद्भक्तपादाब्ज पादुकाभ्यो नमोऽस्तु मे।
यत्संगमः साधनञ्च साध्यञ्चाखिलमुत्तमम्॥"

(हरिभक्ति विलास)

पद्यावलीमें भी भगवद्भक्तोंके पादत्राण अवलम्बन-की कथा लिखी है। कृष्णभक्तिके दर्शन वा स्पर्शनसे साक्षात् पुक्कश भी पवित्र हो जाता है। हरिभक्तकी पूजा करनेसे ब्रह्मरुद्रादि भी उन पर प्रसन्न रहते हैं। भगवान् भक्तिरूपमें ही लोकसमूहका विधान करते हैं। हरि-भक्तका नाम भी महत् है तथा ब्रह्मरुद्रादि पहलेसे भी उत्कृष्ट हैं। वे हरिभक्तिपरायण महात्मा सर्वधर्मके कर्त्ता बतलाये गये हैं। केशव जिन पर सन्तुष्ट रहते हैं, वह यदि चण्डाल भी क्यों न हो, ब्रह्ममय होता है। वह भक्त ब्रह्मघाती होने पर भी पवित्र है। जिनके शरीरमें तनमुद्रादि भागवत चिह्न दिखाई देते हैं, तथा जो सर्वदा हरिगुणगानमें रत हैं, वे ही कलिमें देवता समझे जाते हैं।

ऊपरमें भक्तोंके लक्षण और महिमादिका वर्णन किया गया। अब साधन परम्परासिद्ध महिमसम्पन्न भक्तों-के मध्य जो सामान्य प्रभेद लक्षित होता है, वही नीचे लिखा जाता है। जिनका अन्तःकरण अपने अभीष्टभाव में भावित है, उन्हें कृष्णभक्त कहते हैं। साधक और सिद्धके भेदसे कृष्णभक्त दो प्रकारका है।

"तद्भावभावितस्वान्ताः कृष्णभक्ता इतीरिताः।
ते साधकाश्च सिद्धाश्च द्विविधाः परिकीर्त्तिताः॥"

विल्वमङ्गलठाकुर एक साधक भक्त थे। उन्हींके समान भक्त साधकभक्त कहलाते हैं।

"विल्वमंगलतुल्या ये साधकास्ते प्रकीर्त्तिताः।"

फिर जो किसी प्रकारका क्लेश जानते ही नहीं, जिनकी कृष्णार्थ ही समस्त क्रिया है और जो निरन्तर सर्वदा प्रेमसुखास्वादनमें रत रहते हैं, वे ही सिद्ध भक्त हैं।

"अविज्ञाताखिलक्लेशाः सदा कृष्णाश्रिताक्रियाः।
सिद्धाः स्युः सन्तत-प्रेमसौख्यास्वादपरायणाः॥"

सिद्ध भक्त दो प्रकारका है—संप्राप्तसिद्ध और नित्य-सिद्ध। फिर संप्राप्तसिद्धके भी दो भेद हैं—साधन-सिद्ध और कृपासिद्ध।

साधनसिद्ध—जो भक्तिप्रभावसे क्लेशपरम्पराको कवलित करके स्वयं चरणोंमें परिणत होते हैं, जो मोक्षादिकी ओर दृक्पातमें भी घृणा बोध करते, जिनके उत्तरोत्तर वर्द्धमान प्रेमोत्सवसे अन्तःकरण स्तव-कित और आनन्दाश्रुजलसे वदनमण्डल आर्द्र और

शरीर अतिशय पुलकित होता है, उन धन्य पुरुषोंको प्रणाम करता हूं। मार्कण्डेयादि साधन द्वारा प्राप्त-सिद्ध हुए थे।

"मार्कण्डेयादयः प्रोक्ताः साधनै प्राप्तसिद्धयः ॥"

श्रीमद्भागवतके दशमस्कन्धमें कृपासिद्धका विषय इस प्रकार लिखा है :—

"नासां द्विजातिसंस्कारो न निवासो गुरावपि ।
न तपो नात्ममीमांसा न शौचं न क्रियाः शुभाः ॥
तथापि ह्युत्तमश्लोके कृष्णे योगेश्वरेश्वरे ।
भक्तिर्दृढ़ा न चास्माकं संस्कारादिमतामपि ॥"

इनका द्विजोचित संस्कार नहीं होता, ये गुरुगृहमें वास नहीं करते, तपस्या और आत्मविचार नहीं करते और न शौच तथा शुभ कर्म ही करते हैं, तथापि उत्तम श्लोक योगेश्वरेश्वर भगवान् श्रीकृष्णमें इनकी प्रगाढ़ भक्ति रहती है। हम लोग संस्कारादि रहते हुए भी वैसी भक्तिसे वञ्चित हैं। यज्ञपत्नी, बलिदैत्य और शुकदेवादि कृपासिद्ध हैं। "कृपासिद्धा यज्ञपत्नी वैरोचनि-शुकादयः" यादव और गोपगण श्रीकृष्णके नित्यप्रिय हैं। ये ही नित्यसिद्ध भक्त कहलाते हैं।

सुधीभक्तके दोनों अपराधसे सावधान रह कर श्रीकृष्णकी अर्चना करनेसे शीघ्र ही प्रेम उत्पन्न होता है। नामग्रहणसे सेवापराध दूर होता है, किन्तु नामा-पराधसे मानवको नरकभोग भिन्न अन्य गति नहीं है।

नामापराध और सेवापराध देखो।

पहले ही कहा जा चुका है, कि श्रीविष्णुके नाम-गुणादि श्रवण, कीर्त्तन, स्मरण, उनकी पादपरिचर्या और पूजा, उनकी वन्दना, उनका दास्य वा सेवकत्व, सख्य वा वन्धुज्ञान तथा आत्मनिवेदन अर्थात् देहसे शुद्धात्मापर्यन्त सभी आत्माको उन्हें निवेदन, यही नौ भक्तके प्रधान भक्तिलक्षण हैं। एतद्भिन्न गुरुपादाश्रय, दीक्षा, गुरुसेवा, सद्धर्मजिज्ञासा और शिक्षा, सन्मार्गाव-लम्बन, कृष्णप्रिय वस्तुमें भोगलालसा वर्जन, एकादशी, कार्त्तिकेय प्रभृति व्रतानुष्ठान, गो विप्र-वैष्णव सेवा, अप-राध-वर्जन, अश्वत्थसेवन, अन्य देवता वा शास्त्रमें अभेद-ज्ञान, मथुरामण्डलमें वास, श्रीमद्भागवत पाठश्रवण आदि और भी चौसठ प्रकारके भक्तिलक्षण कहे गये हैं।

विस्तृत विवरण भक्ति शब्दमें देखो।

भक्तकंस (सं० पु० क्लि०) भक्तार्थं कंसः। भक्ताहरणार्थ पात्र, कांसेका वह वरतन जिसमें भात खाया जाता है।

भक्तकर (सं० पु०) भक्तं भजनं करोतीति कृ-ट। १ एक प्रकारका सुगंधित द्रव्य जो अनेक दूसरे द्रव्योंके योगसे वनाया जाता है। (त्रि०) २ भक्तिकारक।

भक्तकार (सं० पु०) भक्तमन्नं करोतीति कृ-(कर्मण्यण्। पा ३।२।१) इत्यण्। १ पाचक, रसोइया। पर्याय—सूद, औदनिक, गुण, भक्ष्यङ्कार, सूपकार, आरालिक, वल्लव। २ भक्तकर नामक सुगंधित द्रव्य।

भक्तकृत्य (सं० क्ली०) भोज्यादिका आयोजन।

भक्तच्छन्द (सं० पु०) १ क्षुधा। २ आकांक्षा

भक्तजा (सं० स्त्री०) अमृत।

भक्तता (सं० स्त्री०) भक्तस्य भावः तल्-टाप्। भक्तत्व, भक्ति।

भक्ततूर्य (सं० क्ली०) भक्तस्य तद्भोजनकालस्य आवेदकं वा भक्ते तद्भोजनकाले वादनीयं तूर्यं। भोजनकालमें वादनीय तूर्य, प्राचीनकालका एक प्रकारका वाजा जो भोजन करते समय वजाया जाता था। इसका पर्याय नृपमान है।

भक्तत्व (सं० पु०) किसीके अङ्ग वा भाग होनेका भाव, अव्ययीभूत होना।

भक्तदास (सं० पु०) भक्तेन अन्नमात्रेण दासः। पन्द्रह प्रकारके दासोंमेंसे एक दास, वह दास जो केवल भोजन ले कर ही काम करता हो।

मनुमें ७ प्रकारके दासोंका उल्लेख है जिनमेंसे भक्त-दास दूसरा है। (मनु ८।४१५)

२ एक राजा। ये श्रीरामचन्द्रजीके परम भक्त थे और सर्वदा रामायण सुना करते थे। एक दिन सीताहरण-का वृत्तान्त जब इन्होंने सुना, तब आवेगमें आ सीताके उद्धारके लिये हाथमें तलवार लिये समुद्रमें कूद पड़े। कहते हैं, कि इसी समय स्वयं रामचन्द्रजी सीताके साथ वहां उपस्थित हुए और उन्हें समुद्रसे वाहर निकाल कर वोले, 'मैंने रावणका वध कर सीताको उद्धार किया। अव चिन्तारहित हो अपने राज्यको लौट जा।' राजा सीता सहित श्रीरामचन्द्रके दर्शन पर फूले न समाये और अपने घरको वापिस आये।

भक्तद्वेष (सं० पु०) भक्ते द्वेषः। १ अन्नमें अरुचि। २ भगवद्भक्तके प्रति द्वेष।

भक्तद्वेषिन् (सं० त्रि०) भक्त-द्विष-णिनि। भक्तद्वेषयुक्त।

भक्तनिष्ठ (सं० त्रि०) १ निष्ठावान् भक्त। २ भक्तसेवन विषयमें विशेष निष्ठायुक्त। ३ एक राजा। आदिपुराणमें उनकी साधुता और भक्त वैष्णवके प्रति भक्तिनिष्ठाका जो विवरण लिखा है वह इस प्रकार है—

एक दिन दो चोर वैष्णवका वेश धारण कर चोरीके उद्देशसे राजाके समीप पहुंचे। राजाने परम भक्तिभावसे उनका पादप्रक्षालन कराया। यहां तक, कि चरणसेवाके लिये उन्होंने रानियोंको नियुक्त रक्खा। दो पहर रातको जब सभी निद्रा देवीकी गोदमें सो रहे थे, उसी समय वैष्णववेशी प्रतारक उन चोरोंने रानीको मार कर उनके अलङ्कारादि ले लिये और वहांसे चम्पत हुए। किन्तु धर्मकी जय होती ही है, वे सब चोर रास्ता भूल गये और इधर उधर भटकने लगे। सवेरे राजभृत्यगण उन दोनोंको राजाके समीप पकड़ लाये। परम भक्तिमन्त राजा वैष्णवकी ऐसी बन्धनदशा देख चित्कार कर उठे। क्रमशः उन्होंने रानीकी हत्यावार्त्ता भी सुनी। रानीका हत्याकारक जान कर भी राजाने उन वैष्णव चोरोंको मुक्त कर देनेका हुकुम दिया और उनका पादोदक ले कर रानीके मुखमें देने कहा। भक्तके सहाय भगवान् हैं, राजाके भक्तिबलसे रानी जी उठी। अनन्तर राजाने उन दोनों वैष्णवोंको स्तवसे संतुष्ट कर विदा किया। (भक्तमाल)

४ एक महाराज। ये भी विख्यात हरिभक्त थे। एक दिन कोई भक्तप्रधान उनके समीप उपस्थित हुआ। राजाने यथाविधान उस वैष्णवश्रेष्ठ अतिथिकी अर्चना की। एक वर्ष तक राजाके साथ रह कर जब उस साधु भक्तने जानेकी इच्छा प्रकट की, तब राजाने प्राणत्याग करनेका संकल्प किया। यह देख रानीने अपने दो पुत्रोंको विष खिला कर मार डाला। राजपुत्रकी मृत्यु पर हाहाकार मच गई, सभी छाती पीट पीट कर रोने लगे। अब साधुने राजारानीको इस दशामें छोड़ जाना अच्छा नहीं समझा। इसलिये वह अन्तःपुरमें उन लोगोंको सान्त्वना देनेके लिये गया। रानीने उस भक्तसे अपने पुत्रका निधनकारण कह दिया तथा चार दिन और ठहरनेके उनसे अनुरोध किया। साधुमें राजा और रानीकी प्रीति देख कर भक्त चमत्कृत हो रहा। पीछे रानीने उस साधुके चरणामृत ले कर मृत पुत्रके ऊपर छिड़क दिया जिससे वह उठ कर खड़ा हो गया, मानो अभी सो कर उठा हो। वैष्णवके चरणामृत पर रानीका अटूट विश्वास देख साधु आश्चर्यान्वित हो गये तभीसे उन्होंने फिर कभी भी राजा रानीका साथ नहीं छोड़ा। (भक्तमाल)

भक्तपन (हिं० पु०) भक्ति।

भक्तपुलाक (सं० पु०) भक्तस्य पुलाक इव। १ मांड़, पोच। २ ग्रासाच्छादनयोग्य अन्नपिण्ड।

भक्तप्रिय—एक महाराज। वैष्णवमें उनका अक्षुण्ण प्रेम था। डोम भांड, आदि वैष्णवोंका वेश धारण कर उनके सामने नृत्यगीत करते थे। ये भी प्रेममें मत्त हो उन्हें कभी तो दण्डवत् और कभी आलिङ्गन करते थे। (भक्तमाल)

भक्तमण्ड (सं० पु० क्ली०) भक्तस्य अन्नस्य मण्डः। अन्नाग्ररस, मांड़। पर्याय—मासर, आचाम, निःस्राव।

भक्तमल्ल—नूरपुरके एक राजा। इन्होंने ९६५ हिजरीमें मानकोट अवरोधके समय अकबरशाहके शत्रु सिकन्दरसूरकी सहायता की थी। सिकन्दरकी दुर्गति देख कर ये पीछे मुगल सम्राट्की शरणमें पहुंचे। मुगलवाहिनीके साथ जब ये लाहोर नगर लड़ने गये, तब वहां वैराम खांके हाथ इनकी मृत्यु हुई।

भक्तमाल—एक प्राचीन धर्मग्रन्थ। वैष्णव कवि लालदासने इसकी बंगला-छन्दमें रचना की। भक्तोंकी जीवनी इस ग्रन्थमें मालाकारमें ग्रथित होनेके कारण इसका नाम भक्तमाल रखा गया है। ग्रन्थकारने अपनी रचनाके मध्य भक्तचरित्र और देवतत्त्वादि बहुतसे तात्त्विक विषयोंका समावेश किया है। भगवत्तत्त्व, जीवतत्त्व, मायातत्त्व, सृष्टितत्त्व, और साधनतत्त्व आदि विषय भक्तचरित्रके आनुषङ्गिक हैं। इस विविध तत्त्वकी आलोचना रहनेके कारण भक्तमालग्रन्थको साधारणतः चरित्र और

तात्विक विभागमें विभक्त किया गया है। चरित्र विभाग प्रधानतः नाभाजीकृत हिन्दीभक्तमाल और प्रियदासकृत तत्टीकासे तथा तात्त्विक विभाग उक्त दोनों ग्रन्थ और श्रीहरिभक्तिविलास, श्रीलघुभागवतामृत, भक्तिरसामृतसिन्धु, उज्वल-नीलमणि, षट्सन्दर्भ श्रीचैतन्यचरितामृत, ब्रह्मसंहिता, श्रीमद्भागवतगीता, ब्रह्म, गरुड़, ब्रह्माण्ड, पद्म, स्कन्दादिपुराण और अपरापर अनेक भक्तिशास्त्रोंसे सङ्कलित है। इसमें २७ माला वा परिच्छेद हैं। उन २७ मालाके शेषमें ग्रंथकारने स्वकृत ग्रंथका फलश्रुतिवर्णन और निज दैन्यादि ज्ञापन करके अन्तमें राधाकृष्ण विषयक एक गीतमें ग्रंथका उपसंहार किया है। इस ग्रंथमें कितने अमार्जनीय दोष रहने पर भी वे इसकी गुणराशिके मध्य छिप गये हैं।

इस वङ्गला भक्तमाल ग्रंथसे ही वङ्गालीके हृदयमें विल्वमंगल, जयदेव, तुलसीदास, रघुनाथदास, प्रवोधानन्द सरस्वतीरूप, सनातन और जीव गोस्वामी, श्रीधरस्वामी वोपदेव, शंकर, रामानुज, मीरावाई, करमेतीवाई और कवीर आदि तत्त्वरसनिमग्न महानुभवोंका ज्ञान, भक्ति और वैराग्यकी वैचित्रमयी जीवलीला जगमगा रही है।

प्रमाण प्रयोगादि द्वारा प्रतिपाद्य विषयकी दृढता संस्थापन करनेके लिये इस ग्रंथमें २५७ शास्त्रीय श्लोक उद्धृत हुए हैं। श्लोकावली छोड़ कर इसमें नाभाजीकृत हिंदी मूल और उसकी टीकासन्निविष्ट है।

भक्तराज (सं० पु०) भक्तश्रेष्ठ।

भक्तरुचि (सं० स्त्री०) १ क्षुधा। २ भोजन करनेक प्रवल इच्छा।

भक्तरोचन (सं० त्रि०) क्षुधाका उद्रेक।

भक्तवत्सल (सं० त्रि०) भक्तेषु वत्सलः ७-तत्। १ भक्त के प्रति वत्सल, भक्तों पर स्नेह करनेवाला। २ विष्णु।

भक्तविपाकवटी (सं० स्त्री०) वटिकौषधविशेष। प्रस्तुत प्रणाली—कज्जली २ भाग, स्वर्णमाक्षिक, हरिताल, मैनकी छाल, इमलीकी जड़, दन्तीमूल, मोथा, चितामूल, सोंठ, पीपल, मिर्च, हरितकी, यमानी, कृष्णजीरा, हिंगु, गुड़, सैंधव, वनयमानी, जायफल, यवक्षार प्रत्येकका चूर्ण १ भाग, इन सव द्रव्योंको अदरकके रस, सम्हालूके पत्तोंके रस, ज्योतिष्मतीके पत्तोंके रस और चितारसमें तीन दिन भावना दे कर गोली वनावे, अनुपान लवङ्गचूर्ण ४ माशा। इस औषधका सेवन करनेसे अग्निमांद्यादि अति शीघ्र प्रशमित होता है। (रसकौ०)

रसेन्द्रसारसंग्रहमें भक्तपाकवटीका उल्लेख देखनेमें आता है। इसकी प्रस्तुत प्रणाली—अभ्र, पारा, गंधक, हिंगुल, ताम्र, हरिताल, मनःशिला, वङ्ग, हरीतकी, वहेड़ा, विष, नैपाली, दन्ती, कर्कटश्रृङ्गी, सोंठ, पीपल, मिर्च, यमानी, चिता, मोथा, जीरा, कृष्णजीरा, सोहागा, इलायची, तेजपत्र, लवङ्ग, हींग, कायफल, सैन्धव प्रत्येक तीन भाग। इन सव द्रव्योंके चूर्णको अदरक, चिता, दण्डी, तुलसी, अडूस और वेलपत्र प्रत्येकके रसमें सात वार भावना दे कर तीन रत्तीकी गोली वनावे। इसका सेवन करनेसे कोष्ठवद्ध, कफ और त्रिदोषजनित मलवद्ध, मंदाग्नि, विषमज्वर और त्रिदोष जनित विषम ज्वर जाता रहता है। (रसेन्द्रसारसंग्रह अजीर्ण चि०)

भक्तशरण (हिं० पु०) वह स्थान जहां भात पका कर रखा जाता है, रसोईघर।

भक्तशाला (सं० स्त्री०) १ रन्धन या भोजनगृह। २ आवेदनकारियोंका सम्वर्द्धनागृह। ३ वह स्थान जहां भक्त लोग वैठ कर धर्मोपदेश सुनते हों।

भक्तसिक्थ (सं० पु०) भक्तस्य सिक्थः ६ तत्। भातका माँड़।

भक्ताग्र (सं० पु०) भोजनशाला।

भक्तादाय (सं० पु०) धान्यादि द्वारा संगृहीत कर।

भक्ताभिलाष (सं० पु०) भक्ते अभिलाषः ७-तत्। १ अन्नके प्रति अभिलाष। भक्तस्य अभिलाषः। २ भगवद्भक्तिकी इच्छा।

भक्ति (सं० स्त्री०) भज्यते इति भज क्तिन्। १ विभाग, भाग। २ सेवा शुश्रूषा। ३ अनेक भागोंमें विभक्त करना, वांटना। ४ अंग, अवयव। ५ खंड। ६ वह विभाग जो रेखा द्वारा किया गया हो। ७ विभाग करनेवाली रेखा। ८ पूजा, अर्चन। ९ श्रद्धा। १० रचना। ११ विश्वास। १२ अनुराग, स्नेह। १३ जैन मतानुसार वह ज्ञान जिसमें निरतिशय आनन्द हो और जो सर्वप्रिय, अनन्य, प्रयोजन विशिष्ट तथा वितृष्णाका उदय-कारक हो। १४ भंगी।

१५ गौणवृत्ति। १६ उपचार। १७ एक वृत्तका नाम। इसके प्रत्येक चरणमें तगण, यगण और अन्तमें गुरु होता है। १८ पूजाविषयमें अनुराग भक्ति। शाण्डिल्य-सूत्रमें भक्तिका लक्षण इस प्रकार लिखा है।

"अथातो भक्तिजिज्ञासा सा परानुरक्तिरीश्वरे॥" (शा० सू०)

ईश्वरमें परानुरक्तिका नाम भक्ति है। आराध्यविषय-में जो अनुराग है, वही भक्ति है। 'आराध्यविषयकरागत्व-मेव भक्तित्व" भक्तिसूत्रसे ईश्वरमें परानुरक्ति ही भक्ति है। परा शब्द द्वारा परा और गौणी यही दो प्रकारकी भक्ति समझनी चाहिए। परमेश्वर-विषयमें अन्तःकरणकी वृत्ति ही परानुराग कहलाती है और यही भक्ति है। उपासना, परमेश्वरमें परमप्रेम 'नहोष्टदेवात् परमस्ति किञ्चित्' इष्टदेवसे और कुछ भी श्रेष्ठ नहीं है, ऐसी चित्त-वृत्तिका नाम भक्ति है। यह प्रीतिके अधीन है।

"नाथ! योनिसहस्रेषु येषु येषु व्रजाम्यहम्।
तेषु तेष्वच्युता भक्तिरच्युतास्तु सदा त्वयि।
या प्रीतिरविवेकानां विषयेष्वनपायिनी।
त्वामनुस्मरतः सा मे हृदयान्मामपसर्पतु॥"

(विष्णु १।२०।१९-२०)

"धर्मार्थकामैः किं तस्य मुक्तिस्तस्य करे स्थिता।
समस्तजगतां मूले यस्य भक्तिः स्थिरा त्वयि॥"

(विष्णु १।२०।२७)

हे भगवन्! मैं जिस किसी योनिमें जन्मग्रहण क्यों न करूँ किंतु आपमें मेरी अटल भक्ति बनी रहे। अविवे-कियोंकी विषयवासनोंमें जैसी प्रीति रहती है, आपमें मेरी वैसी ही अविचलित प्रीति हो। समस्त ब्रह्माण्डके मूली-भूत कृष्णमें जिनकी प्रगाढ़ भक्ति है, उनकी मुक्ति कर-स्थित है—उन्हें धर्म-अर्थकामसे और कोई प्रयोजन नहीं।

यहां पर जिस प्रीतिपदका उल्लेख किया गया है, उसे सुखनिरत राग समझना चाहिए। कारण, यदि वह सुखनिरत न हो, तो उसमें आसक्ति हो ही नहीं सकती अर्थात् जो कुछ भी क्यों न किया जाय, उसका मूल सुख ही है, ऐसा समझना आवश्यक है अन्यथा कोई किसी काममें प्रवृत्त नहीं हो सकता। अतएव यह प्रीति सुखनिरत राग कहलाती है। पातञ्जलमें उसका लक्षण इस प्रकार कहा गया है—'सुखानुशयी रागः' (पात-२।३६) यह स्मरण तथा कीर्त्तनादि द्वारा हुआ करतो है। भक्तगण भगवान्-के नामकीर्त्तन या उनके नाम स्मरणसे सुख अनुभव करते हैं। इसीलिए वे वारम्वार ऐसा किया करते हैं। भक्तिका वेग जितना ही बढ़ता है, भक्तोंकी कीर्त्तनादिमें उतनी ही आसक्ति होती है। उस समय भक्त अनन्य-कर्मा हो भगवच्चरणमें मनःप्राण समर्पण कर उनके नामादि कीर्त्तनमें लगे रहते और तद्गतचित्त हो कर केवल उन्हींका भजन करते हैं।

'जो मच्चित तथा मद्गतप्राण हो कर आपसमें मेरे तत्त्वका वार्त्तालाप करते हुए एक दूसरेको समझा देते और इसीमें अधिकतर आनन्द लाभ करते हैं, जो मेरे प्रति अनुरक्त तथा योगयुक्त हो कर भक्ति पूर्वक मेरी (ईश्वरकी) उपासना करते हैं, मैं उन्हें बुद्धियोग अर्थात् तत्त्वज्ञान प्रदान करता हूं। इस तत्त्वज्ञान द्वारा वे मुझे पाते हैं। मैं उन भजनकारी व्यक्तियोंके प्रति अनुकम्पार्थ उनके अन्तःकरणमें रह कर तत्त्वज्ञानरूपी उज्ज्वल प्रदीप द्वारा अज्ञानान्धकारको दूर करता हूं। अतएव भक्तिका फल मुक्ति है, यह अवश्य स्वीकार करना पड़ेगा। 'तत्संस्थस्यामृतत्त्वोपदेशात्' तत्संस्था 'तस्मिन् ईश्वरे संस्था भक्तिर्यस्य' जिनकी ईश्वरमें अविचलित भक्ति है, उन्हें अमृतत्त्व अर्थात् मोक्ष लाभ होता है।

(गीता १०।९-१०)

"तेपामहं समुद्धर्त्ता मृत्युसंसारसागरात्।
भवामि न चिरात् पार्थ मय्यावेशितचेतसाम्॥" (गीता १२।७)

जिनका चित्त मुझमें ही निविष्ट रहता है, मैं उन्हें मृत्युरूप संसार सागरसे उद्धार करता हूं। तैत्तिरीय मन्त्र भागमें भी लिखा है,—

"त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्द्धनम्।
उर्वारुकमिव वन्धनामृत्योर्मुक्षीयमामृतात्॥"

'अत्र यजनं भक्तिः' इससे भी मालूम होता है, कि भक्तिका फल मुक्ति है। शाण्डिल्यसूत्रमें ज्ञान भी भक्ति-का अङ्ग वतलाया गया है। भक्तिका फल मुक्ति है, यह पहले ही कहा जा चुका है; किन्तु तत्त्वज्ञान द्वारा अज्ञान-की निवृत्ति नहीं होनेसे मुक्ति नहीं हो सकती, ऐसा सभी स्वीकार करते हैं। अनुरागविशेष ही अज्ञानका कार्य है; अन्तःकरणवृत्तिरूपा भक्तिसे किस प्रकार मुक्ति

मिल सकती है? इसकी मीमांसा इस प्रकार है :—चूंकि इस भक्ति रूप-अन्तःकरणवृत्तिमें अज्ञानका कार्य है इसलिये यह अज्ञानजड़ित है। अज्ञान रहनेसे मुक्ति असम्भव है। इससे यह साबित होता है, कि मुक्तिका प्रधान कारण भक्ति नहीं; वरन् ज्ञान है। अतएव भक्तिका गौण फल मुक्ति है, यह निश्चय है। भक्ति अविचलित होनेसे ज्ञान होता है। जब ज्ञान उत्पन्न होता है, तब अज्ञानका कार्य जो अनुरागविशेष है, 'वह भी नहीं' रहता; सुतरां मुक्तिमें और कोई बाधा नहीं होती। अतएव भक्तिका अङ्ग ज्ञान ऐसा न कह कर भक्तिको ही ज्ञानका अङ्ग कहना युक्तिसंगत है। शास्त्रमें भी लिखा है; कि 'भक्तिर्ज्ञानाय कल्पते' ईश्वरमें प्रणिधान, तपस्या और स्वाध्यायादि कार्ययोग द्वारा भक्ति उत्पन्न होती है; अनन्तर भक्ति अचल होनेसे ज्ञान उत्पन्न होता है और इसीसे मुक्ति मिलती है।

वैष्णवगण भक्तिका फल मुक्ति है, ऐसा स्वीकार नहीं करते। उनका कहना है, भक्तिका फल प्रेम है। वे मुक्तिकी प्रार्थना नहीं करते। उनके मतसे प्रेम ही परमपुरुषार्थ है। 'उपायपूर्व भगवति मनः स्थिरीकरणं भक्तिः' उपायपूर्वक भगवान्में मनःस्थिरीकरणका नाम भक्ति है। विहिता और अविहिताके भेदसे यह दो प्रकारकी है।

विना किसी कारणके ही दैव और वैदिक कर्ममें मन की जो स्वाभाविक सात्त्विक वृत्ति उत्पन्न होती है, वही विहिता भक्ति है। मिश्रा और शुद्धाके भेदसे यह भी दो प्रकारकी है :—

मिश्रा भक्ति तीन प्रकारकी है,—कर्ममिश्रा, कर्मज्ञानमिश्रा, और ज्ञानमिश्रा;। इनमेंसे कर्ममिश्रा-भक्तिके तामसी, राजसी और सात्त्विकी ये तीन भेद हैं। फिर तामसी भक्तिके हिंसार्था, दम्भार्था और मात्सर्यार्थादि भेद हैं। हिंसा, दम्भ और मात्सर्यपूर्वक जो काम करते हैं वे ही तामस भक्त हैं। विषयार्था, यशोऽर्था और ऐश्वर्यार्थाके भेदसे राजसीभक्ति तीन प्रकारकी है। जो विषय, यश और ऐश्वर्यके लिए भगवान्में भक्तिपरायण होते हैं, वे राजसिक भक्त कहलाते हैं। कर्मक्षयार्था, विष्णुप्रीत्यर्था और विधिसिद्ध्यर्था प्रभृति सात्त्विकी भक्तिके लक्षण हैं। कर्मक्षयके लिए या विष्णुकी प्रीतिके उद्देशसे अथवा शास्त्रमें भगवानकी आराधना कही गई है, इत्यादि कारणसे जो ईश्वरकी आराधना करते हैं, वे ही सात्त्विक भक्त हैं। कर्मज्ञानमिश्रा भक्ति तीन प्रकारकी है,—उत्तमा, मध्यमा और अधमा।

उत्तमा भक्ति—जो सब भूतोंमें अपना भगवद्भाव देखते हैं तथा जो अपनेमें और भगवान्में सब प्राणियोंका अवस्थान है, ऐसा समझते हैं, वे उत्तम भक्त हैं। मध्यम और अधम भक्तका विषय भक्त शब्दमें लिखा गया है।

ज्ञानमिश्रा भक्ति—मेरा गुण सुननेसे ही मुझमें जिनकी अविच्छिन्न मति हो जाती और पुरुषोत्तम विष्णुमें जिनकी अहैतुकी भक्ति होती है, जो मेरी सेवाके सिवा सालोक्यादि मुक्ति पा कर भी उसका अभिलाष नहीं करते, वे ही ज्ञानमिश्र भक्त कहलाते हैं।

अविहिता भक्तिके चार भेद हैं,—कामजा, द्वेषजा, भयजा और स्नेहजा।

गोपियां कामसे, कंस भयसे, चैद्यादि राजा द्वेषसे और वृष्णि-नरपतिगण सम्बन्ध तथा स्नेहसे भक्तिपरायण हुए थे। कर्ममिश्रा भक्ति नौ प्रकारकी है। गृहस्थगण इन्हीं नौ प्रकारकी भक्तिके अधिकारी हैं। कर्मज्ञानमिश्रा भक्तिके तीन भेद हैं और इनके अधिकारी वनवासी हैं। ज्ञानमिश्रा भक्ति एक प्रकारकी है; केवल भिक्षुगण ही इसभक्तिके अधिकारी हुआ करते हैं।

शाण्डिल्यसूत्र भाष्यमें लिखा है, कि कायमनोवाक्यसे जो कुछ भी क्यों न किया जाय, भक्त उन सबोंको भगवान्नारायणमें समर्पण करते हैं। यह भक्ति उन्नीस प्रकारकी है, यथा—१ षट्त्रिंशद् वर्ग, २ त्रिंशद्वर्ग, ३ षड्विंशतिवर्ग, ४ पञ्चविंशतिवर्ग, ५ चतुर्विंशतिवर्ग, ६ विंशतिवर्ग, ७ एकोनविंशतिवर्ग, ८ अष्टादशवर्ग, ९ पञ्चदशवर्ग, १० त्रयोदशवर्ग, ११ द्वादशवर्ग, १२ एकादशवर्ग, १३ दशवर्ग, १४ नववर्ग, १५ सप्तवर्ग, १६ षड्वर्ग, १७ पञ्चवर्ग, १८ चतुर्वर्ग, और १९ त्रिवर्ग।

उक्त उन्नीसवर्ग भक्तिका विषय भागवतमें विशेषरूपसे लिखा है, विस्तार हो जानेके भयसे वह यहां नहीं दिया गया। भागवतके दूसरे, सातवें, दशवें और

ग्यारहवें स्कन्धमें इसके अनेक उदाहरण तथा दृष्टान्त दिये गए हैं।

नारदकृत भक्ति सूत्रमें भक्तिका विषय जो आलोचित हुआ है, वह भी अति संक्षिप्तभावमें नीचे दिया जाता है। "ओं पूज्यादिष्वनुराग इति पाराशर्यः", "ओं कथादिष्विति गर्गः", "ओं आत्मरत्याविरोधेनेति शाण्डिल्यः", "ओं नारदस्तदर्पिताखिलाचारतातद्विस्मरणे परमव्याकुलतेति।"

(नारदभक्तिसूत्र १६-१९)

भगवत् पूजादिमें अनुरागका नाम ही भक्ति है, ऐसा महर्षि वेदव्यासका मत है। इन्द्रियोंको कर्म द्वारा निवृत्त करनेके लिए विधिपूर्वक पूजादिका प्रयोजन है और इस प्रकार पूजा करते करते प्रेमोदय होता है। सम्पूर्ण प्रेमावेश होनेसे बाह्य और मानस-पूजाकी निवृत्ति होती है और धीरे धीरे विशुद्ध भक्ति दिखाई पड़ने लगती है।

गर्गाचार्यके मतानुसार भगवत्कथादिमें जो अनुराग है उसीका नाम भक्ति है। भगवतगुणानुवादके श्रवण और कीर्त्तनसे ही समस्त साधनाका सार जान कर उसमें गाढ़ाभिनिवेश और श्रद्धा करने हीको भक्ति कहते हैं।

शाण्डिल्यके मतसे आत्मरतिके अविरोधविषयमें अनुरागका नाम भक्ति है। जगद्बोधका परित्याग करके एकमात्र आत्मचैतन्यमें अन्यान्य सभी अस्तित्वकी आहुति प्रदान कर पूर्णानन्दमें विभोर रहना ही आत्मरति कहलाता है। चाहे द्वैत भावसे हो अथवा अद्वैतसे आत्मरतिका अनुकूल, अनुराग वृत्तिका प्रभाव ही भक्ति नामसे अभिहित है। लौकिक और पारमार्थिक भेदसे कर्म दो प्रकारका है। मनुष्य यागयज्ञादि जिस किसी कर्मका अनुष्ठान क्यों न करें सभी ईश्वरार्थ या उनकी पूजा विवेचना करनेसे ही भक्ति साधित होती है।

"प्रातरुत्थाय सायाह्नं सायाह्नात् प्रातरन्ततः।
यत् करोमि जगन्मातः! तदेव तव पूजनम्॥"

प्रातःकालसे सन्ध्याकाल तक और सन्ध्याकालसे पुनः प्रातःकाल तक जितने लौकिक तथा पारमार्थिक कार्य करता हूं, हे जगन्मातः! वे सभी आपका पूजा मात्र है। "ओं यथा व्रजगोपिकानां" (नारद भक्तिसूत्र २१) वृन्दावनविहारिणी गोपरमणियोंने ही प्रेमभक्तिकी पराकाष्ठा दिखलाई है। वस्तुतः प्रेममें विभोर हो कर मद्यपायी मनुष्यकी तरह जो गृह, संसार, ऐश्वर्य, मान, सम्भ्रम, लोकलज्जा प्रभृति छोड़ देते हैं; वे ही परम भक्त हैं। स्वयं भगवान्‌ने उद्धवसे कहा है, 'हे उद्धव! गोपियोंने मुझमें ही अपना मन समर्पण किया है—मैं उनका प्राण हूं, मेरे लिए उन्होंने सर्वस्व त्याग किया है। जिन्होंने मेरे ही लिए सब कुछ त्यागा है, मैं उनकी रक्षा करूंगा। गोपियां मुझे प्रियसे भी प्रियतम मानती है। जब मैं उन सबोंसे अलग रहता हूं, तब मुझे स्मरण कर वे निदारुण विरहव्यथासे व्याकुल हो अपनेको भूल जाती हैं। मुझे न पा कर वे बड़े कष्टसे प्राण धारण करती हैं। वृन्दावनमें मेरे पुनरागमनका शुभसंवाद सुनते ही वे जीवित हो जाती हैं। मैं भी उन्हीं गोपियोंकी आत्मा हूं और वे मेरी प्रेमभक्तिको बढ़ाने वाली हैं।"

"ओं सा तु कर्मज्ञानयोगेभ्योऽप्यधिकतरा।"

(नारदसू० २५)

यह भक्ति कर्म, ज्ञान और योगसे भी श्रेष्ठ है। भगवद्गीतामें भी कहा गया है,—

"तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिकः।
कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुनः॥
योगिनामपि सर्वेषां मद्गतेनान्तरात्मना।
श्रद्धावान् भजते यो मां स मे युक्ततमो मतः॥" (गीता)

उक्त वाक्यसे भगवान्‌ने ज्ञान और कर्मको अपेक्षा योगकी प्रधानता दिखा कर भक्तको योगियोंके मध्य प्रधान बतलाया है। कर्मयोग और ज्ञानसाधनके समय वर्ण, आश्रम, अधिकार तथा अनधिकार आदिका विचार देखा जाता है; किन्तु भक्तिसाधनमें इनकी कुछ भी आवश्यकता नहीं। यत्न तथा चेष्टा द्वारा मुक्ति लाभ की जा सकती है, किन्तु भक्ति मुक्तिसे भी दुर्लभ है, 'ओं फलरूपत्वात्।' (नारदसू० २६) क्योंकि वह फलस्वरूप है। ज्ञानाभिमानियोंका कहना है, कि भक्ति साधन द्वारा ज्ञानस्वरूप फल प्राप्त हो जाता है। किंतु नारदके मतसे ज्ञानसाधन द्वारा भक्तिरूप फल लाभ होता है। गीतामें कहा है,—

"अहङ्कारं बलं दर्पं कामं क्रोधं परिग्रहम्।
विमुच्य निर्ममः शान्तो ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥
ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न काङ्क्षति ।
समः सर्वेषु भूतेषु मद्भक्तिं लभते पराम् ॥"

इस वाक्यमें भगवान् श्रीकृष्णने यह दिखाया है, कि ज्ञान, कर्म और योगसाधन द्वारा मनुष्य अहंकार, बल, दर्प, काम और क्रोधका परित्याग कर निर्मल, शान्त और ब्रह्मात्मज्ञान प्राप्त करते हैं। बाद परमानन्दपूर्ण हो शोक और कामनादिविहीन तथा सब प्राणियोंमें समदर्शी होनेसे उन्हें परा-भक्ति लाभ होतो है। सभी साधनाओंका लक्ष्य है भगवत्कृपा-लाभ। किन्तु भगवान्की कृपादृष्टि न होनेसे भक्तिका सञ्चार नहीं होता, इसीलिए भक्ति सभी साधनकी फलस्वरूप है। 'ओं ईश्वरस्याप्यभिमानद्वेषित्वात् दैन्य-प्रियत्वाच्च।' (नारदसू० २७) भगवान्को भी अभिमानके प्रति विद्वेष और दीनताके प्रति प्रियभाव रहता है। कर्म, ज्ञान और योग साधनके समय यदि साधकको उसका अभिमान हो जाय तो भगवान् प्रसन्न नहीं होते हैं। अभिमानी ईश्वरको प्यार नहीं कर सकते और जब तक उन्हें प्राणसे बढ़ कर प्यार न किया जाय अर्थात् अपनेको उनके चरणमें भलीभांति समर्पण न कर दे तथा 'मैं तुम्हारा और तुम मेरा' ऐसे भावमें विगलित न हो जाय, तब तक भगवत्प्रीति लाभ हो नहीं सकती।

किसी किसी पण्डितके मतसे ज्ञान ही भक्तिका साधन है।

भक्तितत्त्वकी आलोचना करनेसे यह मत समीचीन नहीं जान पड़ती; क्योंकि गृध्रगजेन्द्रादिने ज्ञानलाभ नहीं करके भी भक्तिपूर्वक भगवान्को पुकारा था और उन्हें भगवान्के दर्शन भी मिले थे। 'ओं अस्यान्याश्रयत्वमित्यन्ये' (नारद भक्तिसू० २९) कोई कोई कहते हैं, कि भक्ति और ज्ञान परस्पर एक दूसरेका आश्रय किये हुए हैं और यही बात युक्तिसंगत जान पड़ती है। क्योंकि भक्तिके उत्पन्न होनेसे ज्ञानतत्त्वकी ओर प्रवृति ही नहीं होती। 'ओं स्वयं फलरूपतेति ब्रह्मकुमाराः।' (नारदसू० ३०) सनत्कुमारादि और नारदके मतसे भक्ति स्वयं फलस्वरूप है; कारण, किसी चेष्टा या कौशल द्वारा भक्ति प्राप्त नहीं हो सकती।

"ओं तस्मात् सैव ग्राह्या मुमुक्षुभिः" (नारदसू० ३१)

मोक्षार्थी केवल भक्ति ही ग्रहण करते हैं। सूत्रकार नारदने अनेक प्रकारकी युक्ति द्वारा दिखलाया है, कि कर्म, योग और ज्ञान मुक्तिका साधन होने पर भी उसमें विपुल विघ्नकी सम्भावना है। भक्तिलाभ तथा भगवान्के दर्शन करनेका भक्ति हो निर्मल पथ है। इसीलिए वे जीवोंके प्रति दया दिखला कर भक्तिसाधनमें प्रवृत्त हुए हैं। मुक्ति भक्तिका लक्ष्यार्थफल नहीं है। किन्तु भक्ति-साधन मार्ग पर अग्रसर होनेसे यथासमय मुक्ति आपे ही उपस्थित होती है और मुक्तिलाभके बाद भी भक्तिका पथ बना रहता है। मुक्तिके लिए मुमुक्षु पुरुषको स्वतन्त्र साधन करना पड़ता है। भक्ति ही समस्त परमार्थको देनेवाली है।

"ओं तत्तद्विषय त्यागात् सङ्गत्यागाच्च" (नारदसू० ३५)

भक्ति विषय और सङ्गत्याग द्वारा साधित हुआ करती है। इन्द्रियोंके विषयान्वित होनेसे मन उसीमें मग्न हो जाता है। विषयरुचि मनको हमेशा एक विषयसे दूसरे विषयमें आसक्त करती है। इस प्रकार विषयका अथवा मनुष्यका सङ्ग मनका विह्वल कर देता है, अतः मन भी विक्षिप्त, चञ्चल तथा दुर्बल हो जाता है। सम्पूर्ण एकाग्र न होनेसे भक्ति-आवेशकी सम्भावना नहीं। भक्ति साधन करनेमें पहले वैराग्यवान् और निःसङ्ग होना आवश्यक है। जीवन-धारणके आवश्यकीय कार्यका समय छोड़ कर जब अवकाश मिले, उसी समय भगवान्का नाम जप तथा गुणगान करना चाहिए। कारण, हरिचिन्तनसे विश्राम पाने पर ही मन, रज और तमोगुणके आवेशमें आमोदित होता है अन्यथा विषयचिन्ता मनको भुलावेमें डाल देती है। सभी कार्य और सभी अवस्थामें यदि इन्द्रियोंके साथ मन भगवत् पदमें लगा रहे, तो क्रमशः भक्तिका आवेश बढ़ता है। जब तक विच्छेदरूपसे भगवत्-भजन-साधनकी समाप्य नहीं हो जाय, तब तक अवकाशप्राप्त मनुष्यको भगवत् कथा सुनना और स्वयं उसे मनुष्योंके निकट कीर्त्तन करना अच्छा है, क्योंकि ऐसा करनेसे चित्त क्रमशः भगवत्की ओर आकृष्ट होता है।

"व्यावृतोऽपि हरौ चित्तं श्रवणादौ यजेत् सदा।
ततःप्रेम यथाशक्ति व्यसनञ्च यदा भवेत् ॥"

जब तक चित्तमें भक्तिभावका उदय नहीं होता, तब तक समयानुसार हरिकथा सुननेसे धीरे धीरे उसमें आसक्ति बढ़ती है और धीरे धीरे भक्तिका बीज भी दृढ हो जाता है। महात्माओंकी कृपा या भगवान्‌की कृपाकणा-दृष्टि ही भक्तिका मुख्य साधन है। ओं महत्सङ्गस्तु दुर्लभो-ऽगम्योऽमोघश्च।" (नारदसू० ३९) महत्सङ्ग दुर्लभ, अगम्य और अमोघ है। साधुको पहचाननेमें अपना अहोभाग्य समझना चाहिए। साधुके सामने आने पर भी मनुष्य उन्हें नहीं पहचान सकते हैं। इसीलिए महत्सङ्ग दुर्लभ है। साधुकी पहचान करने पर भी उनके साधनसिद्ध-भावके मध्य प्रवेश करना मुश्किल है; अतएव महत्सङ्ग अगम्य है। किन्तु साधुसमागम कदापि व्यर्थ नहीं होता, अपने अधिकारानुरूप फल अवश्य ही मिलता है, इसी कारण महत्सङ्ग अमोघ है। ओं लभ्यतेऽपि तत्कृपयैव" (नारदसू० ४०) भगवान्‌की कृपा होनेसे ही महत् अर्थात् सज्जनका सङ्ग होता है। ओं तस्मिन् तज्जने भेदाभावात्" (नारदसू० ४१) भगवान् और भगवद्भक्तमें कुछ भी भेद नहीं। भगवान् भक्ताधीन हैं—भक्तियुक्त साधुका क्रिया-कलाप ही उनकी लीला है। भक्तोंके द्वारा ही संसारमें उनकी महिमा प्रचारित होती है। भक्त उनमें और वे भक्तोंमें विराजमान रहते हैं।

ओं तदेव साध्यतां तदेव साध्यतां" (नारदसू० ४२) उनकी साधना करो, उनकी साधना करो। नारदने भक्तिलाभका दूसरा उपाय न देख और दूसरे किसी प्रकारसे जीवकी गति नहीं होगी, ऐसा जान कर तपके प्रभावसे भक्तिको ही साधन-समुद्रका अमूल्यनिधि समझाया था और जीवों-की भलाईके लिए बारम्बार भक्ति साधन करनेका उपदेश दिया है।

किस किस कारणसे भक्तिका बीज हृदयमें अंकुरित नहीं हो सकता, इसकी आलोचना नीचे की जाती है। दूषित कर्म करनेसे प्रकृति दूषित होती हैं, अतः भक्ति-लाभेच्छुकको पहले कुसङ्गका परित्याग करना चाहिए। "ओं दुःसङ्गः सर्वथैव त्याज्यः" "ओं कामक्रोधमोहस्मृतिभ्रंश-बुद्धिनाश सर्वनाशकारणत्वात्।" (नारदसू० ४३, ४४)

कुसङ्ग ही काम, क्रोध, मोह, स्मृतिभ्रंश, बुद्धिनाश और सर्वनाशका कारण हैं। कुसङ्गीके कुपरामर्श तथा असत् आदर्शसे जीवकी इन्द्रियभोगवासना बढ़ती है और किसी कारणसे भोगेच्छातृप्तिमें बाधा पहुंचनेसे क्रोध होता है। क्रोधोदय होनेसे ही चित्त चञ्चल और सदसद्‌बुद्धि विचारहीन हो जाती है। इसीसे मोहकी उत्पत्ति होती है। मोहवशतः चित्तके तमसाच्छन्न होनेसे चित्तमें जो संस्कारावस्थ विषय हैं, वे दिखलाई नहीं पड़ते। सुतरां अपने मङ्गलसाधनका उपाय भी नहीं सूझता इस प्रकार स्मृतिभ्रंश होनेसे बुद्धि विकल हो जाती और बुद्धिवैकल्य ही मनुष्यको इहलोक तथा पर-लोकके कल्याणमार्गसे विच्युत कर देता है। पराभक्तिका फल अनिर्वचनीय प्रेम है।

ओं अनिर्वचनीयं प्रेमरूपं। ओं मूकास्वादवत्। ओं प्रकाश्यते क्वापि पात्रे। ओं गुणरहितं कामनारहितं प्रतिक्षणवर्द्धमानमवि-च्छिन्नं सूक्ष्मतरमनुभवरूपम्॥" (नारदभक्तिसू० ५१-५४)

प्रेमका स्वरूप मूकके रसास्वादनकी तरह अनिर्वच-नीय है अर्थात् गूंगा जिस प्रकार मिष्टरस आस्वादन कर आनन्दसे गद्‌गद् हो जाता और पूछने पर भी रसकी व्याख्या नहीं कर सकता है, मनुष्य उसी प्रकार प्रेमाविर्भावके समय आनन्दकी पराकाष्ठा पर पहुंच जाते हैं, किन्तु वही भाव अनुभव करके भी दूसरेको समझा देनेमें समर्थ नहीं होते। इसलिए यह अनिर्वचनीय है। यह गुणवर्जित, कामनातीत, प्रतिक्षण वर्द्धमान, अविच्छिन्न, सूक्ष्म और केवल अनुभवस्वरूप है। भक्त उसे प्राप्त कर वही देखते, वही सुनते, वही बोलते और उसीकी चिन्ता करते हैं। प्रेमिकाके सामने प्रेममय भगवान्‌का स्वरूप तथा प्रेमका स्वरूप दोनों एक ही पदार्थ हैं। जिन्होंने प्रेम लाभ किया है, उन्होंने भग-वान्‌को भी पाया है। सुतरां इसके सिवा उनकी और कुछ देखने, सुनने, बोलने या चिंता करनेकी इच्छा नहीं होती।

ओं तत्प्राप्य तदेवावलोकयति तदेव शृणोति तदेव भाषयति तदेव चिन्तयति।" (नारदसू० ५५)

ऊपर पराभक्तिका विषय आलोचित हुआ। अब गौणभक्तिका विषय वर्णन किया जाता है।

"ओं गौणी त्रिधा गुणभेदादार्त्तादि भेदाद्वा"
(नारदसू० ५६)

गुणभेद या आर्त्तादिभेदसे गौणी भक्ति तीन प्रकार-की है। इस भक्तिमें तमोगुणकी अपेक्षा राजसिकी और रजोगुणसे सात्त्विकी भक्ति श्रेष्ठ है। अर्थार्थीकी अपेक्षा जिज्ञासु और जिज्ञासुको अपेक्षा आर्त्तभक्त श्रेष्ठ है। कारण, जिज्ञासु या आर्त्तव्यक्तिकी उपासनासे विशुद्ध-भक्तिके उदय होनेकी सम्भावना रहती है।

दूसरे साधनकी अपेक्षा भक्तिसाधन सुलभ है, क्योंकि इसमें आचार, विचार, वर्ण आदि कुछ भी नहीं देखना पड़ता। भक्तिके गुणसे ही गणिकाने विद्यावती न हो कर भी उद्धार पाया था। गोपियोंने वेदाध्ययन न कर, गृध्र और गजने मनुष्य न हो कर तथा गुहकने उच्च-वर्ण न हो कर भी केवल भक्तिगुणसे ही भगवान्‌को प्राप्त किया था। भक्तिसाधनमें कायक्लेश और कात रता नहीं है—भक्तिके जैसा सुलभ साधन और देखनेमें नहीं आता। भक्तिराज्यमें वादसम्वाद कुछ भी नहीं होता। "ओं अन्यसात् सौलभ्यं भक्तौ। ओं प्रमाणान्तरस्यान पेक्षत्वात् स्वयं प्रमाणत्वात्। ओं शांतिरूपात् परमानंदरूपाच्च।

(नारदभक्तिसू० ५८-६०)

इसमें दूसरे प्रमाणका प्रयोजन नहीं, क्योंकि यह स्वयं ही प्रमाणस्वरूप है। भगवान्‌की भक्ति करनेमें जो कुछ परिश्रम और क्लेश होता है, वह किसीसे भी छिपा नहीं है; जो भक्तिके उपासक हैं वे स्वयं ही इसका अनुभव कर सकते हैं। भक्ति हुई या नहीं, वादविवाद द्वारा इसका सङ्कासमाधान नहीं किया जाता है। भक्तिसाधनमें क्लेशका होना तो दूर रहे, वरन् सभी क्लेशोंकी निवृत्ति होती है। भक्ति शान्ति तथा परमानन्दस्वरूप है। जहां वाद, विवाद, द्वन्द्व, उद्वेग, संशय, संकल्प, विकल्प और सुखदुःखादिकी तरङ्गका लेशमात्र नहीं रहता, वहीं शान्तिनिकेतन है। शांतिभवनमें ही परमानन्दका प्रकाश होता है।

"ओं त्रिसत्यस्य भक्तिरेव गरीयसी" (नारदसू० ८१)

भूत, भविष्यत् और वर्त्तमान सभी समयमें सत्य-स्वरूप भगवान्‌में भक्ति ही सर्वापेक्षा श्रेष्ठ है। भगवान्‌को प्राप्त करनेके लिए शास्त्रमें जितनी प्रकारकी साधनाएं कही गई हैं, उनमेंसे केवल भक्तिसाधना ही सर्वोंकी अपेक्षा सुगम और श्रेष्ठ है। अन्यान्य साधना कृच्छ्र-साध्य तथा बहुयत्नसुलभ और सर्वोंमें सभी मनुष्योंका अधिकार भी नहीं है। केवल दीनवेशमें भक्तिपूर्वक पुकारनेसे ही भगवान् हृदयमें उपस्थित हो जाते हैं। योगसाधनासे जो युगयुगान्तमें भी नहीं होता, वह भक्तिसाधनासे क्षण भरमें हो सकता है। योगराज्यमें जो वाङ्मनके अतीत हैं, भक्तिराज्यमें वे ही हृदयकी पति तह ग्रथित और विजड़ित हैं। इसीलिए नारदने संसारमें यह घोषणा की है कि, 'भक्तिक अपेक्षा श्रेष्ठ साधना और दूसरा नहीं है।'

यह भक्ति ग्यारह प्रकारकी है। यथा,—गुणमाहात्म्या-सक्ति, रूपासक्ति, पूजासक्ति स्मरणासक्ति, दास्या-सक्ति, सख्यासक्ति, कान्तासक्ति, वात्सल्यासक्ति, आत्मनिवेदनासक्ति, तन्मयतासक्ति और परमविरहा-सक्ति।

जो जिसको प्यार करता है, वह उसका सभी काम और सब अङ्ग अच्छा ही देखता है। किन्तु कोई कोई किसी अङ्गकी सुन्दरता या किसी भावमें विशेष आकृष्ट हो जाते हैं। इसी प्रकार भक्तगण भगवान्‌में सर्वतो-भावसे आसक्त होने पर भी कोई कोई भक्त किसी किसी भावमें विशेषरूपसे आसक्त हो रहते हैं। इसे केवल रुचिवैचित्र्यका फल समझना चाहिए। राजा परीक्षित्, नारद, हनुमान्, पृथुराज प्रभृति गुणमाहात्म्यासक्त भक्त थे। कृष्णकी बाल्यावस्थामें नन्द, उपनन्द और यशोदादि तथा युवावस्थामें व्रजनारी प्रभृति उनमें लवलीन थीं, अतएव वे सब रूपासक्त भक्त कहलाये। पृथुराजा पूजा-सक्त, प्रह्लाद स्मरणासक्त, हनूमान्, अक्रूर और विदुरादि दास्यासक्त; अर्जुन, सुग्रीव, उद्धव, कावेर, सुबल, श्रीदा-मादि सख्यासक्त; व्रजगोपिकागण कान्तासक्त, नन्द, यशोदा, कौशल्या, दशरथ, कश्यप, अदिति प्रभृति वात्स-ल्यासक्त, बलिराजा आत्मनिवेदनसक्त और कौण्डिन्य, शुकदेवादि तन्मयतासक्त भक्त थे। शुकदेव भक्तिशिक्षा-के एक प्रधानतम आचार्य थे, इसीलिए भक्तिरसप्रधान 'शुकमुखादमृतद्रवसंयुतं' श्रीमद्भागवत ग्रन्थ कहा गया है:

"भक्त्या भजनोपसंहाराद्गौण्या परायै तद्धेतुत्वात्"

(शाण्डिल्य सू० ५६)

भजन या सेवा ही गौणी भक्ति है। यही गौणी

भक्ति पराभक्तिकी भित्तिस्वरूप है। पराभक्तिकी साधना करनेमें जो नाना प्रकारके विघ्न उपस्थित हो कर साधकको भक्तिमार्गसे विच्युत कर देते हैं, गौणीभक्ति उन्हीं विघ्नराशियोंको विनष्ट कर पराभक्तिलाभका पथ प्रस्तुत करती है। यहां पर जो भक्तिपद व्यवहृत हुआ है, वह गौणी-भक्तिका प्रतिपादक है।

"रागार्थप्रकीर्त्तिसाहचर्याच्चेतरेषाम्" (शाण्डिल्यसू० ५७)

नमस्कार, नामकीर्त्तनादिका फल केवल अनुराग है। भगवान्‌की लीलाभूमिका दर्शन, भगवत् मूर्त्तिकी सेवा, अङ्गराग प्रभृति सब प्रकारकी सेवा केवल ऐकान्तिक अनुराग लाभ करनेके लिए है। गौणी-भक्ति द्वारा पवित्रता लाभ होती है। श्रद्धापूर्वक भगवत्सेवा करते करते अन्तःकरणकी वृत्तियां परिशुद्ध हो जाती हैं और चित्तशुद्ध होनेसे निर्मल भक्तिका अभ्युदय होता है। इसीलिए किसी किसी आचार्यने गौणीभक्तिकी प्रधानता स्वीकार की है।

बहुतेरे ज्ञान बड़ा है या भक्ति इस विषयको ले कर तर्क वितर्क करते हैं। शाण्डिल्य सूत्रमें इसका सिद्धान्त इस प्रकार देखनेमें आता है,—ज्ञानादि सभी साधन ही भक्तिसाधनके उपादानस्वरूप हैं। ज्ञान और भक्ति दोनों ही साधन तथा साध्यके भेदसे दो प्रकारके हैं। ज्ञान द्वारा वस्तुका जो परिचय उपलब्ध होता है, वह 'साधनज्ञान' और ज्ञान, ज्ञेय तथा ज्ञानके अतीत जो ज्ञान है, वह 'साध्यज्ञान' है, यह ज्ञानस्वरूप ही ब्रह्म है। भक्ति द्वारा शास्त्रादि पाठ और देवार्चनादिमें जो प्रवृत्ति होती है, वह साधनभक्ति या गौणी भक्ति कहलाती है तथा ज्ञानयोगादि द्वारा भगवद्दर्शनके बाद मुक्तिलाभ करने पर भगवान्‌की कृपादृष्टिसे जो प्रीतिका सञ्चार होता है, उसका नाम पराभक्ति या साध्यभक्ति है। साधन द्वारा साध्यभक्ति लाभ और साधन भक्ति द्वारा साध्य ज्ञानलाभ होता है। अवस्थाके भेदसे दोनोंके ही लाघव तथा गौरव हैं। यथार्थमें साध्यज्ञान और पराभक्तिमें कुछ भी विभेद नहीं—यह भक्ति और ज्ञान दोनों ही एक हैं।

"द्वेषा रागत्वादिति चेन्नोत्तमास्पदत्वात् संगवत्"

(शाण्डिल्य सूत्र २१)

अनुरागका नाम भक्ति है। किसी किसी ऋषिका मत है, कि अनुराग दुःखका कारण है, सुतरां इसे त्याग करना ही श्रेय है। कारण, सत्सङ्गकी तरह इसका आश्रय उत्तम है। मनुष्योंके मध्य परस्परमें अनुरागका जो सञ्चार है, उससे वियोगजन्य दुःख हुआ करता है, किन्तु ईश्वरानुरागमें इसके होनेकी सम्भावना नहीं; क्योंकि ईश्वरके न वियोग है और विच्छेद ही। कुसङ्ग करनेसे दुःख मिलनेकी सम्भावना रहती है, परन्तु सत्सङ्गमें दुःखकी कुछ भी आशङ्का नहीं है। स्त्री-पुरुषके अनुरागमें दुःखकी आशङ्का है, किन्तु उसका त्याग करना उचित नहीं। ईश्वरानुराग परम सुखकर और मनुष्यका एकान्त प्रार्थनीय है। अतएव भक्ति ही एक मात्र श्रेष्ठ है।

"नैव श्रद्धा तु साधारण्यात्" "तस्यां तत्त्वेचानवस्थानात्"

(शाण्डिल्यसू० २४,२५)

भक्ति और श्रद्धा एक नहीं हैं, क्योंकि श्रद्धाका साधारणत्व दिखलाई पड़ता है। कर्ममें श्रद्धा, उपासनामें श्रद्धा, शास्त्र वाक्यमें श्रद्धा इत्यादि प्रकारसे श्रद्धाका साधारणत्व नजर आता है। किंतु भक्ति भगवान्‌को छोड़ कर और कहीं भी नहीं रह सकती। श्रद्धा और भक्तिकी एकता सम्पादन करनेमें अनवस्थाका दोष हुआ करता है। अमुक व्यक्तिने श्रद्धापूर्वक देवपूजा की है, ऐसा कहनेसे श्रद्धा देवपूजाका एक प्रधान अङ्ग समझा जाता है। किंतु भक्ति वैसी नहीं, यह सभी साधनका एकमात्र शेष फल है। अतएव सभी साधनाओंकी अपेक्षा केवल भक्ति ही श्रेष्ठ है। गीतामें स्वयं भगवान्‌ने कहा है, कि ज्ञान और कर्मसे मेरी भक्ति ही श्रेष्ठ है।

हरिभक्तिविलासमें भक्तिका विषय इस प्रकार लिखा है—

भक्तिका सामान्य लक्षण—जो सब इन्द्रिय बाहर हैं और जिनकी सहायतासे शब्द, रूप और रस प्रभृतिका बोध होता है, सत्त्वमूर्त्ति हरिके प्रति उन सबोंका जो स्वाभाविक वृत्तिस्फुरण है वही भगवद्भक्ति है। इन्द्रियोंका यह वृत्तिस्फुरण वेदप्रतिपादित कर्मानुष्ठानके सिवा प्रादुर्भूत नहीं होता।

साधनभक्तिका लक्षण भगवद्भक्तोंके प्रति वात्सल्य, उनकी अर्चनाका अनुमोदन, दम्भरहित हो कर श्रद्धापूर्वक उनकी पूजा, उनकी लीलाएं सुननेमें

अनुरक्ति, उनके आगे नृत्यगीतादि, प्रतिदिन उनका नाम-स्मरण और उन्हींके नामसे जीवनधारण करना जो इन आठ प्रकारके भक्तियोगका अनुष्ठान करते हैं, वे नीच होने पर भी श्रेष्ठ हैं। जिनकी-देवतामें, मंत्रमें और मंत्रदाता गुरुमें उक्त आठ प्रकारकी भक्ति है, भगवान् उन्हींके-प्रति प्रसन्न होते हैं। विष्णुका नाम, लीलादि श्रवण, कीर्त्तन, स्मरण, पदसेवन, अर्चन, वन्दन, कर्मार्पण, सख्य तथा आत्मनिवेदन यह नवलक्षणान्विता भक्ति यदि भगवान्में समर्पित हो, तो भक्त कृतकृतार्थ होते हैं। हरिका शङ्खचक्र-लिखन ऊर्द्ध्वपुण्ड्र धारण, विष्णुमंत्र ग्रहण, उनकी अर्चना, जप, ध्यान, स्मरण, नामकीर्त्तन, श्रवण, वन्दन, पदसेवा, पादोदक धारण, उनका निवेदित प्रासादग्रहण, वैष्णवोंकी सेवा, द्वादशी-व्रतमें निष्ठाभाव और तुलसीरोपण भगवान् विष्णुमें ये सोलह प्रकारकी भक्तिव्यवस्था कही गई है। भगवान्-का मूर्त्तिसन्दर्शन, मथुरा, वृन्दावन आदि तीर्थक्षेत्रमें गमन, भ्रमण और अवस्थिति, धूपावशेषादिका आघ्राण; निर्माल्यग्रहण, भगवान्के आगे नृत्य, वीणावादन, कृष्ण-लीला आदिका अभिनय, भगवान्के नामश्रवणमें तत्प-रता, पद्म और तुलसीमाला धारण, एकादशी प्रभृति रात्रिमें जागरण, भगवान्के उद्देश्यसे गृहनिर्माण तथा यात्रामहोत्सव प्रभृति भी भक्तिके लक्षण कहे जाते हैं।

श्रवणादि विषयक जिन सब भक्तिके लक्षण लिखे गए हैं उनमेंसे कुछ प्रधान और कुछ अप्रधान हैं। कारण, प्रेमसाधन सम्बन्धमें पूर्वोक्त लक्षणसमूहके मध्य कितनेको तो वहिरङ्ग और कितनेको अन्तरङ्ग समझना चाहिए। जिस प्रकार सत्त्व, रज और तमोगुणके भेद-से जीवकी विभिन्नता देखी जाती है, उसी प्रकार भक्तों-की भक्तिके अनुष्ठानकी भिन्नता होती है। प्रेमभक्ति सिद्ध होनेसे धर्म, अर्थ, काम और मोक्षरूप सभी प्रकारके पुरुषार्थ सेवककी तरह काम करते हैं।

प्रेमभक्तिके लक्षणके विषयमें नारदपञ्चरात्रमें लिखा है, कि जिस काममें अपनापन भाव न रहे, जिसमें भग-वत्प्रेमरस-ममता अर्थात् भगवान् ही मेरे इस ज्ञानके परिचय हैं, उसीको भीष्म, प्रह्लाद, उद्धव और नारदादि भक्तोंने प्रेमभक्ति वतलाया है। प्रेमभक्तिका माहात्म्य भक्तिके माहात्म्यकी अपेक्षा श्रेष्ठ है।

प्रेमभक्तिका चिह्न—जब आनन्दातिशय्यनिवन्धन पुलक और प्रेमाश्रु प्रकाशित होता है, जब मनुष्य गद्-गदचित्त हो ऊर्ध्वकण्ठसे कभी आनन्दध्वनि, गीत, रोदन और नृत्य; कभी ग्रहाभिभूतकी तरह हास्य, रोदन, ध्यान और वन्दना करते अथवा कभी दीर्घनिश्वासका परित्याग कर हे हरे! हे जगत्पते! हे नारायण! यह नाम उच्चारण करते हुए लज्जारहित हो रहते हैं, तब भक्त सभी वन्धनोंसे मुक्त हो जाते हैं। भगवद्भावमें उनका अन्तःकरण और वाह्य शरीर लगा रहता है; यहां तक, कि उस समय सातिशय भक्तिनिवन्धन उस व्यक्तिका अज्ञानभाव और वासना एकवारगी निःशेषरूपसे दग्ध हो कर भक्तिपथमें गमनपूर्वक भगवान्को प्राप्त करते हैं। (हरिभक्तिविलास ११ वि०)

उत्तमा भक्तिका लक्षण—श्रीकृष्णसम्बन्धी अनुकूल अनुशीलनको भक्ति कहते हैं। यह अनुशीलन ज्ञान और कर्मादि द्वारा अनावृत तथा अन्य वस्तुके प्रति स्पृहा-शून्य होनेसे उत्तमा भक्ति कही जाती है। (भक्तिर० सि०)

इन्द्रिय द्वारा तत्परत्वरूप अर्थात् अनुकूलतारूपसे हृषीकेशकी सेवाको भक्ति कहते हैं। इस सेवनका सर्वो-पाधि-रहित अर्थात् अन्याभिलाषिता-शून्य तथा निर्मल अथवा ज्ञानकर्मादिसे अनावृत होना आवश्यक है। भक्ति-शास्त्रमें यह षड्गुणान्वितके जैसा कीर्त्तित हुआ है। यथा—

क्लेशघ्नी, शुभदा, मोक्षलघुताकृत्, सुदुर्लभा सान्द्रा-नन्दविशेषात्मा और श्रीकृष्णाकर्षणी ये सब उत्तमाभक्ति हैं। पाप, पापके वीज और अविद्याके भेदसे क्लेशघ्नी तीन प्रकारकी है। जो भक्ति अप्रारब्ध और प्रारब्ध पापरूप क्लेशसमूह नष्ट करती है, वह क्लेशघ्नी कह-लाती है।

सम्पूर्ण जगत्का प्रीतिविधान, सवोंमें अनुराग, सद्गुण और सुख इत्यादि शुभदान करनेका नाम शुभदा-भक्ति है। भक्तिसे 'सुखं वैषयिकं ब्राह्ममैश्वरञ्चेति तत्त्रिधा।' वैषयिक सुख, ब्रह्मसुख और ऐश्वरसुख लाभ होता है;

जिनके हृदयमें थोड़ी-सी भी भगवद्रति उदित हुई है, वे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चार पुरुषार्थको

तृणतुल्य समझते हैं। भक्तकी मोक्षकामना नहीं रहने पर भी भक्तिकी मोक्षलघुकारिताका लक्षण प्रकाशित होता है।

भक्ति सुदुर्लभा है। सङ्गरहित हो कर चिरकाल साधन करने पर भी अलभ्या और श्रीकृष्ण द्वारा आशु-अदेयाके भेदसे सुदुर्लभा दो प्रकारको है।

साधनसमूह द्वारा भी भक्ति लाभ नहीं होती। ज्ञानसे मुक्ति और यज्ञादि पुण्यकार्यसे भक्ति लाभ होती है; किन्तु हजारों साधन द्वारा भी हरिभक्ति मिलना बड़ी मुश्किल है। यही अलभ्या-भक्ति है।

भागवतके पाचवें स्कन्धमें श्रीकृष्ण द्वारा वर्णित अदेया भक्तिका विषय इस प्रकार लिखा है,—शुकदेवने परीक्षित्से कहा, 'हे राजन्! भगवान् मुकुन्दने आपके और यादवोंके पति, गुरु, दैव, प्रिय, कुलपति तथा कभी कभी दास हो कर दौत्यकार्य भी किया हैं। वे भजनशील व्यक्तिको मुक्ति देते थे पर भक्ति नहीं। इससे भक्तिकी सुदुर्लभता ही प्रतिपादित होती है। (भा० ५।१६।१८)

प्रह्लादने श्रीनृसिंहदेवसे कहा था—'हे जगद्गुरो! मैं आपके दर्शन पा कर विशुद्ध आनन्दसागरमें डूब गया हूं, अभी ब्रह्मानन्द सुख भी मुझे गोस्पदके समान मालूम होता है।' इसके द्वारा ब्रह्मानन्द सुखसे सान्द्रा नन्द-विशेषात्मा भक्तिसुखका प्रधानता सावित हुई।

श्रीकृष्णने उद्धवसे कहा था,—'हे उद्धव! मद्विषयिणी विशुद्ध भक्ति मुझे जैसा वशीभूत कर देती है, योग सांख्य, धर्म, वेदाध्ययन, तपस्या और दान प्रभृति वैसा वशीभूत नहीं कर सकता। यही श्रीकृष्णाकर्षणी भक्ति है।

भक्तिसे भगवान् आकृष्ट होते हैं, ऐसा उन्होंने स्वयं कहा है।

"सा भक्तिसाधनं भावः प्रेमा चेति त्रिधोदिता।"

उपर्युक्त उत्तमा साधन, भक्तिभाव और प्रेमके भेदसे तोन प्रकारकी है। "कृतिसाध्या भवेत् साध्यभावा सा साधनाभिधा।" इन्द्रिय प्रेरणा द्वारा साध्याभक्तिको साधनभक्ति कहते हैं। इस साधनभक्तिके वैधी और रागानुगा नामक दो भेद हैं।

"वैधीरागानुगा चेति सा द्विधा साधनाभिधा"

भक्तिरसामृतसिन्धुवर्णित उक्त ६४ प्रकारकी वैधी भक्ति ये हैं, यथा—

"गुरुपादाश्रयस्तस्मात् कृष्णदीक्षादिशिक्षणं।
विश्रम्भेण गुरोः सेवा साधुवर्त्मानुवर्त्तनं॥
सद्धर्मपृच्छा भोगादित्यागः कृष्णस्य हेतवे।
निवासो द्वारकादौ च गङ्गादेरपि सन्निधौ।
व्यवहारेषु सर्वेषु यावदर्थानुवर्त्तिता।
हरिवासरसम्मानो धात्र्यश्वत्थादिगौरव।
एषामत्र दशाङ्गानां भवेत् प्रारम्भरूपता।
संगत्यागो विदूरेण भगवद्विमुखैर्जनैः।
शिष्याद्यननुबन्धित्वं महारम्भाद्यनुद्यमः।
बहुग्रन्थकलाभ्यास-व्याख्यावादविवर्जनं॥
व्यवहारेऽप्यकार्पण्यं शोकाद्यवशवर्त्तिता।
अन्यदेवानवज्ञा च भूतानुद्वेगदायिता॥
सेवानामापराधानामुद्भवाभावकारिता।
कृष्णतद्भक्तविद्वेषविनिन्दाद्यसहिष्णुता॥
व्यतिरेकतयामीषां दशानां स्यादनुष्ठितिः।
अस्यास्तत्र प्रवेशाय द्वारत्वेऽप्यङ्ग विंशतेः॥
त्रयं प्रधानमेवात्र गुरुपादाश्रयादिकं।
धृतिर्वैष्णवचिह्नानां हरेर्नामाक्षरस्य च॥
निर्माल्यादेश्च तस्याग्रे ताण्डवं दण्डवन्नतिः।
अभ्युत्थानमनुव्रज्या गतिस्थाने परिक्रमाः॥
अर्च्चनं परिचर्या च गीतं सङ्कीर्त्तनं जपः।
विज्ञप्तिः स्तवपाठश्च स्वादो नैवेद्यपाद्ययोः॥
धूपमाल्यादिसौरभ्यां श्रीमूर्त्तेस्पृष्टिरीक्षणं।
आरत्रिकोत्सवादेश्च श्रवणं तत्कृपेक्षणं॥
स्मृतिर्ध्यानं तथा दास्यं सख्यमात्मनिवेदनं।
निजप्रियोपहरणं तदर्थेऽखिलचेष्टितं॥
सर्वथा शरणापत्तिस्तदीयानाञ्च सेवनं।
तदीयास्तुलसी शास्त्रमथुरावैष्णवादयः।
यथा वैभवसामग्री सद्गोष्ठीभिर्महोत्सवः॥
ऊर्जादरविशेषेण यात्रा जन्मदिनादिषु॥
श्रद्धा विशेषतः प्रीतिः श्रीमूर्त्तेरङ्घ्रिसेवने।
श्रीमद्भागवतार्थानामास्वादो रसिकैः सह।
सजातीयाशये स्निग्धे साधौ संगः स्वतः वरे।

नामसङ्कीर्त्तनं श्रीमन्मथुरामण्डले स्थितिः ॥

वैधीभक्तिविषयं कैश्चिन्मर्यादामार्ग उच्यते।"

इस वैधी भक्तिको कोई कोई मर्यादा मार्ग कहते हैं।

रागानुगाभक्ति,—व्रजवासियोंमें प्रकाश्यरूपसे विराजमान जो भक्ति हैं, उसे रागात्मिका भक्ति कहते हैं। इस रागात्मिका भक्तिकी अनुगता जो भक्ति है उसका नाम रागानुगा भक्ति है। यह रागानुगा भक्ति विवेकके निमित्त है। पहले रागात्मिका भक्तिका वर्णन किया जाता है।

"इष्टे स्वारसिकीरागः परमाविष्टता भवेत्।

तन्मयी या भवेत् भक्तिः सात्र रागात्मिकोच्यते।"

अभिलषित वस्तुकी स्वाभाविकी अविशपराकाष्ठाका नाम राग है। यही रागमयी भक्ति रागात्मिका भक्ति कहलाती है।

वह रागात्मिका भक्ति कामरूपा और सम्बन्धरूपाके भेदसे दो प्रकारकी है।

जो भक्ति सम्भोग तृष्णाको प्रेममय रूपमें परिणत करती है, उसका नाम कामरूपा भक्ति है; कारण, इस कामरूपा भक्तिमें केवल कृष्णसुखके निमित्त उद्यम देखनेमें आता है।

श्रीकृष्णमें पितृत्वादि अभिमान ही अथात् मैं कृष्णका पिता हूं, मैं उनकी माता हूं, मैं उनका भाई हूं, इत्यादि अभिमानका नाम सम्बन्धरूपा भक्ति है।

रागात्मिका भक्ति दो प्रकारकी होनेके कारण रागानुगा भक्ति भी कामानुगा और सम्बन्धानुगाके भेदसे दो प्रकारकी है।

केवल रागानुगाभक्तिनिष्ठ व्रजवासियोंकी भक्तिप्राप्तिके लिए जिनका चित्त लुब्ध होता है, उन्होंकी भक्तिको कामानुगा या सम्बन्धानुगा कहते हैं।

कामरूपा भक्तिकी अनुगामिनी जो तृष्णा है, उसका नाम कामानुगाभक्ति है। यह सम्भोगेच्छामयी और उसी भावेच्छामयीके भेदसे दो प्रकारकी है।

अपनेमें पितृत्व, मातृत्व तथा भ्रातृत्व समझनेको पण्डितोंने सम्बन्धानुगा भक्ति बतलाया है।

शुद्धसत्त्वविशेषस्वरूप प्रेमरूप सूर्यकी किरणसादृश्यशाली और भगवत्प्राप्त्यभिलाष, उनके आनुकूल्याभिलाष तथा सौहार्दाभिलाष द्वारा चित्तकी स्निग्धता सम्पादक जो भक्ति है उसका नाम भावभक्ति है।

भक्तके हृदयमें इस भावभक्तिका अंकुर उत्पन्न होनेसे—

क्षान्तिरव्यर्थकालत्वं विरक्तिमानशून्यता।

आशाबन्धः समुत्कण्ठा नामगाने सदारुचिः।

आसक्तिस्तद्‌गुणाख्याने प्रीतिस्तद्वसतिस्थले।

इत्यादयोऽनुभावाः स्युर्जातभाव अंकुरे जने॥"

प्रेमभक्ति—जिससे समीचीनरूपमें चित्त निर्मल हुआ है और जो अत्यन्त ममतापूर्ण है, उस भावको पण्डितगण प्रेम बतलाते हैं।

साधकोंको प्रेमभक्तिके प्रादुर्भावके विषयमें भक्ति रसामृतसिन्धुमें इस प्रकार लिखा है,—

"आदौ श्रद्धा ततः साधु-सङ्गोऽथ भजनक्रिया।

ततोऽनर्थनिवृत्तिः स्यात्ततो निष्ठारुचिस्ततः॥

अथासक्तिस्ततो भावस्ततः प्रेमाभ्युदञ्चति।

साधकानामयं प्रेम्णः प्रादुर्भावे भवेत्क्रमः।

विशेष विवरण प्रेम शब्दमें देखो।

ऊपरमें ईश्वरानुग परानुरक्तिको ही भक्ति कहा गया है। आराध्यदेवताके प्रति आन्तरिक अनुराग और उनकी भजनसाधनरूप सेवादिमें आन्तरिक प्रीति ही भक्तिका लक्षण है। श्रवणादि नौ प्रकारकी भक्तिके एक एक अङ्गका रसास्वादन तथा गुरुपादाश्रयादि चौसठ प्रकारके भक्त्यङ्गका पालन करना भी भक्तका एकान्त कर्त्तव्य है। इसके अलावा कृष्णार्थ अखिलचेष्टा समर्पण, सब विषयोंमें उनका कृपावलोकन, जन्म, और यात्रादिका महोत्सव-पालन, नियम, पूर्वक कार्त्तिकेय व्रतादि समापन, साधुसङ्ग, भागवत आस्वादन, मथुरामण्डलमें वास, नामसङ्कीर्त्तन, श्रद्धा और प्रीतिके साथ श्रीमूर्त्तिसेवन प्रभृतिपञ्च भक्ताङ्गकी अशेष महिमा कही गई है।

भक्तकवि नाभाजी मूर्त्तिमती भक्तिको जैसी कल्पना कर गए हैं, प्रियदासकी टीकासे उसका आभास मिलता है। उस देवीप्रतिमाके श्रीअङ्गमें श्रद्धा, दया, निष्ठा, मन, हरिसेवा, साधुसेवा, स्मरण और अनुरागादिके लक्षण दिखलाई पड़ते हैं *। इसके द्वारा केवल भक्तिका ही

* "श्रद्धा ही फुलेल ओ उबटनो श्रवण कथा
मैल अभिमान अङ्ग अङ्गनि छुटाइये।

उपाङ्ग निर्णय हुआ। उपर्युक्त आनुषङ्गिक लक्षणोंके परस्पर सन्निविष्ट नहीं होनेसे मनुष्यके हृदयमें कदापि भक्तिका सञ्चार नहीं हो सकता। भक्तके उत्पन्न होनेसे आसङ्गादिकी परिलिप्सा जाती रहती है और अज्ञानानर्थ निवृत्त होनेसे निष्ठा हेतु श्रवणादिकी रुचि होती है। क्रमशः रुचिके विकाशसे हृदयमें आसक्ति बलवती हो जाती और रतिका अंकुर निकल आता है। बाद यह रति प्रेममें परिणत हो जाती है। यह चैतन्यात्मक प्रेमालोक ही अज्ञानान्धकार दूर करनेमें समर्थ है। अज्ञानमूलक अनुरक्त सोपानश्रेणीको पार कर प्रेममार्गमें पहुंचनेसे तत्त्वज्ञान लाभ होता है। भक्ति संमिश्रणके सिवा केवल कर्म या ज्ञान द्वारा सायुज्य-लाभ नहीं हो सकता। जिसका ज्ञान भक्तियुक्त है, उसकी मुक्ति करतलगत है।

अभीष्ट और आराध्य देवताके प्रति ऐकान्तिक अनुरक्ति केवल साधुसङ्गसे प्रवल होती है। निरन्तर साधुसेवारूप जलसेचनसे नवलक्षणाक्रान्त भक्तिवृक्षकी शाखा प्रशाखा हृदयाकाशमें परिव्याप्त हो कर स्निग्धच्छाया वितरण करती है। बाद हृदयमें एक सार्वजनीन कोमलता आ उपस्थित होती है, यह ईश्वरप्रेमके सिवा और दूसरा कुछ नहीं है। यही एकमात्र भगवत्प्रेम जीवोंके पाप, ताप माया और दुःखको दूर करनेमें समर्थ है।

उपादानभूत अङ्गप्रत्यङ्गादिके अलावा भक्तिमें शान्ति, दास्य, सख्य, वात्सल्य और शृङ्गार ये पञ्चरसात्मक भाव विद्यमान हैं। इनके सिवा शास्त्रमें भक्तिका प्रभेद कल्पित हुआ है :—

भक्ति आठ प्रकारकी है—यथा १ विष्णुके नाम और कर्मादि कीर्त्तन करते करते अश्रुविसर्जन, २ श्रीहरिके चरणयुगल ही मेरे नित्यकर्म हैं ऐसा निश्चय और तदनुरूप अनुष्ठान, ३ प्रमाणपूर्वक भक्तिके साथ भगवत-कथित शास्त्रका कीर्त्तन, ४ भगवान्‌के भक्तवात्सल्य गुणकी पूजा कर उसका अनुमोदन, ५ भगवत्कथा सुननेमें प्रीति, ६ विष्णुमें भावनिवेश, ७ स्वयं विष्णुकी अर्चना और ८ विष्णु ही मेरे उपजीव्य हैं, ऐसा ज्ञान।

"भक्तिं रष्टविधा ह्येषा यस्मिन् म्लेच्छेऽपि वर्त्तते।
स विप्रेन्द्रो मुनिः श्रीमान् स यतिः स च पण्डितः॥
तस्मै देयं ततो ग्राह्यं स च पूज्यो यथा हरिः।"

(गरुड़पुराण पूर्वख० २२६।१०-११)

म्लेच्छमें भी यदि उक्त आठ प्रकारकी भक्ति वर्त्तमान रहे, तो उसकी गिनती विप्रेन्द्र, मुनि, श्रीमान्, यति और पण्डितोंमें होती है—वही व्यक्ति श्रीहरिके जैसा पूजनीय है। जिसके हृदयमें हरिभक्ति विद्यमान है, वह मुनिसे भी श्रेष्ठ है।

ऊपरमें भक्ति प्रकरणके सम्बन्धमें जो कुछ लिखा गया है, वह सब धर्मशास्त्रसम्मत है। सम्प्रदायभुक्त नहीं होनेसे मनुष्यके हृदयमें कदापि भक्तिका उद्रेक नहीं होता। साधकको गुरुपाद और सम्प्रदायका आश्रय कर दीक्षा लेनी चाहिए; अन्यथा उनकी दीक्षा निष्फल हो जाती है। पद्मपुराणमें लिखा है, कि कलिकालमें श्री, माध्वी, रुद्र और सनक नामक चार सम्प्रदायी वैष्णवोंका आविर्भाव होगा और यही चार वैष्णवसम्प्रदाय पृथिवीके पवित्रताविधायक होंगे। वैष्णवसम्प्रदायी कृष्ण-निष्ठ भक्तिवह पुण्यात्मा ही भक्तिके अधिकारी हैं। असाम्प्रदायिक तथा अवैष्णवके निकट मन्त्रगृहीताके हृदयमें भक्ति नहीं आ सकती; वरन् उससे उसका दीक्षाविपर्यय ही घट जाता है। कृष्ण निष्ठ कदापि व्यभिचारी नहीं होते हैं। भक्तिमार्गारोही भागवत-गण अपने अपने सिद्धिपथका आश्रय कर साम्पदायिक धर्ममतका प्रवर्त्तन कर गए हैं। श्रीधरस्वामीने अपनी भागवतटीकामें इस साम्प्रदायिक वैशिष्ट्यका उल्लेख किया है। सम्प्रदाय देखो।

पहले ही कहा जा चुका है, कि भक्तिका फल ज्ञान है और इससे मनुष्यको मुक्ति मिलती है। वैष्णव साधकोंने एकमात्र प्रेमको ही भक्तिका मुख्य सोपान बतलाया है। साधना और भजना द्वारा जो नहीं प्राप्त होता,

---

मनन सुनीर अह्नवाय अंगुछाय दया
नवनि वसन प्रनसों धोले लगाइये।
आभरण नाम हरि साधुसेवा कर्णफूल
मानसी सुनथ संग अंजन बनाइये।
भक्ति महरानीको शृंगार चारु बीरी
चाह रंग यो निहारि लहे लाल प्यारी पाइये।

भक्ति रहनेसे वह इष्टवस्तु अनायास मिल जाती है। तब साधनापरम्परा भक्ति सोपानारोहणकी अवलम्बिका मात्र है।

भक्तिकर (सं० त्रि०) १ भक्तियोग्य। २ भक्तिरत्युत्पादक, जिसे देख कर भक्ति उत्पन्न हो।

भक्तिच्छेद (सं० पु०) १ विष्णुभक्तके विशेष चिह्न। जैसे,—तिलक, मुद्रा आदि। २ रचना वा रेखाभङ्गविशेष, वह चित्रकारी जो रेखाओं द्वारा की जाय।

भक्तिपूर्वम् (सं० अव्य०) भक्ति वा सम्मानके साथ।

भक्तिभाज् (सं० त्रि०) भक्तिं भजते भज्-ण्वि। भक्तिके पात्र।

भक्तिमत् (सं० त्रि०) भक्तिरस्यास्तीति भक्ति-मतुप्। भक्तियुक्त।

भक्तिमहत् (सं० त्रि०) १ अशेष भक्ति-सम्पन्न। २ निष्ठावान् भक्त।

भक्तियोग (सं० पु०) भक्तेर्योगः भक्त्या यो योगः। १ भक्तिका साधन। २ सदा भगवानमें श्रद्धापूर्वक मन लगा कर उनकी उपासना करना।

गीताके १२वें अध्यायमें भक्तियोगका विषय इस प्रकार लिखा है।

"एवं सततयुक्ता ये भक्तास्त्वां पर्य्युपासते।
ये चाप्यक्षरमव्यक्तं तेषां के योग वित्तमाः॥" (गीता १२।१)

अर्जुनने भगवान्‌से पूछा था, "भगवन्! निर्गुण और सगुण ब्रह्मकी जो उपासना करते हैं उनमें कौन श्रेष्ठ है?" उत्तरमें भगवान्‌ने कहा, 'जो व्यक्ति एकाग्रचित्त और सात्त्विक-श्रद्धायुक्त हो मेरे सगुण-स्वरूपकी आराधना करते हैं, वे ही श्रेष्ठ हैं।' इसका तात्पर्य यह, कि सगुण वा साकाररूपमें जिसके चित्तका एकाग्र आवेश होता है अर्थात् जो एकमात्र 'गतिस्त्वं' ऐसा कह कर अनन्यभावमें प्रीति पूर्णचित्तसे भगवान्‌के शरणागत होते हैं, वे ही भगवत्‌का स्वरूप लाभ करते हैं। 'मैं भगवान्‌की उपासना करता हूं, निश्चय है, ये मेरा उद्धार करेंगे' इस प्रकार आस्तिक्य बुद्धिसे जिनकी सात्त्विक-श्रद्धाका उदय होता है और जो निज आराध्यरूपको सर्वेश और सर्वकल्याणविधाता जान कर उन्हींकी भक्तिपूर्णचित्तसे भजना करते हैं, वे ही श्रेष्ठ अर्थात् भक्तयोगी हैं।

जो सर्वदा सन्तुष्ट, समाहित चित्त, संयतात्मा और दृढ़निश्चय हैं तथा जिन्होंने अपनी मनोबुद्धि कृष्णमें अर्पण कर दी है, वे ही श्रेष्ठ हैं अर्थात् जो प्राप्ति वा अप्राप्तिमें, सम्पद् वा विपद्‌में सन्तुष्ट रहते हैं, जो सर्वदा भगवान्‌में निविष्टचित्त हैं, शरीर और इन्द्रियादि जिन्होंने अपने वशमें कर ली हैं, जिनका भगवानमें दृढ़विश्वास है अर्थात् विडम्बनासे जिसका चित्त भगवद्‌भावसे विचलित नहीं होता और जिन्होंने संकल्प-विकल्पका परित्याग कर अपने मन और बुद्धिको भगवान्‌में अर्पण कर दिया है, वे ही भक्त भगवान्‌के प्रिय हैं। जिसके द्वारा कोई मनुष्य सन्तप्त नहीं होता अथवा जो दूसरेसे खुद भी सन्तप्त नहीं होता तथा जिसने हर्ष, विषाद, भय और उद्वेगका परित्याग कर दिया है, वे ही भगवान्‌के प्रिय हैं। जो निरपेक्ष, शुचि, दक्ष, उदासीन, व्यथावर्जित और सर्वारम्भ-परित्यागी हैं तथा जो इष्ट लाभ करके सन्तोष वा दुःखके कारण द्वेषको प्रकाश नहीं करते, जो शोक वा अकांक्षा परिशून्य और शुभाशुभ परित्यागी हैं वे ही भक्त भगवान्‌के प्रिय हैं। जिनके लिये शत्रु और मित्र, शीत, उष्ण, मान और अपमान, सुख और दुःख सभी समान हैं वे ही भक्त भगवान्‌के प्रिय हैं।

भक्तिरस (सं० पु०) भक्तिः ईश्वरविषया रतिरेव रसः। तत्स्थायिभावक रसभेद, वह रस जिसका स्थायिभाव भक्ति है।

"विभावैरनुभावैश्च सात्त्विकैर्व्यभिचारिभिः।
स्वाद्यत्वं हृदि भक्तानामानीता श्रवणादिभिः॥
एषा कृष्णरतिः स्थायिभावो भक्तिरसो भवेत्॥"
(भक्तिरसामृतसिन्धु)

ईश्वरमें रति स्थायिभाव प्राप्त होनेसे भक्तिरसका उदय होता है। यह स्थायिभाव विभाव, अनुभाव, सात्त्विक और सञ्चारिभावके सहयोगसे भक्तिरसरूपमें परिणत होता है। उस समय भक्त एक अपूर्व भक्तिरसका स्वाद पाता है। ईश्वर और उनका भक्त आलम्बन-विभाव; ईश्वरके गुणादि और भक्तको ईश्वर-हेतु चेष्टादि उद्दीपन-विभाव; स्तम्भ, स्वेद, रोमाञ्च, स्वरभेद, कम्प, वैवर्ण्य, अश्रु, प्रलय (सुख दुःखादि बोधशून्यता) ये सब सात्त्विक-भाव; निर्वेद, विषाद, दैन्य, ग्लानि आदि

तेंतीस सञ्चारी-भाव हैं। ईश्वरमें रति पात्रके भेदसे भिन्न होती है। शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य, प्रियता इन पांच प्रकारोंमें यह प्रकाश पाती है। किसी साधकमें इसका एक एक मात्र प्रकाश पानेसे उसे केवलारति और उसके विमिश्रभावमें उपस्थित होनेको संकुलारति कहते हैं। किन्तु इनमेंसे जो प्रधानतः प्रकाश पाता है उसीके अनुसार साधकका भाव निरूपित होता है।

(भक्तिचैतन्यचन्द्रिका)

भक्तिरसामृतसिन्धुमें यों लिखा है—

विभाव, अनुभाव, सात्त्विकभाव और सञ्चारिभाव द्वारा अभिव्यक्त श्रीकृष्णविषय-स्थायिभाव, श्रवणादि द्वारा भक्तोंके हृदयमें आस्वादङ्कुरता प्राप्त हो कर भक्ति-रसरूपमें परिणत होता है।

भक्तिरसके अधिकारी—

जिसके हृदयमें प्राक्तनी और आधुनिकी सद्भक्ति-वासना विराज करती है, उसीके हृदयमें इस भक्तिरसका आस्वादन उत्पन्न होता है।

भक्तिरसका विभाव—आस्वादनके कारणोंको विभाव कहते हैं। यह विभाव आलम्बन और उद्दीपनके भेदसे दो प्रकारका है। इनमेंसे कृष्ण और कृष्णभक्तगण आलम्बन-विभाव हैं।

जो भावको प्रकाश करता है, उसे उद्दीपनविभाव कहते हैं। श्रीकृष्णका गुण, चेष्टा प्रसाधन, स्मित, अङ्ग-सौरभ, वंश, शृङ्ग, नूपुर, शङ्ख, पदाङ्क, क्षेत्र, तुलसी, भक्त और तद्वासरादि उद्दीपन विभाव हैं।

भक्तिरसका अनुभाव—चित्तगत भावके बोधकको अनुभाव कहते हैं। वह अनुभाव कैसा है, उसका विवरण निम्नश्लोकमें किया गया है।

"नृत्यं विलुठितं गीतं क्रोशनं तनुमोटनम्।
हुङ्कारो जृम्भणं श्वासभूमा लोकानपेक्षिता।
लालास्रावोऽट्टहासश्च घूर्णा हिक्कादयोऽपि च।"

सात्त्विकभाव—साक्षात् वा परम्परामें कृष्णसम्बन्धिभाव द्वारा आक्रान्त चित्तको सत्त्व कहते हैं। इस सत्त्वसे उत्पन्न भावका नाम सात्त्विकभाव है। यह सात्त्विकभाव स्निग्ध, दिग्ध और रुक्षके भेदसे तीन प्रकारका है।

जब भगवद्भावसे आक्रांत चित्त अधीर हो कर अपनेको प्राणवायुमें अर्पण कर देता है, तब प्राण दूसरी अवस्थामें जा कर देहको अत्यन्त क्षोभित कर डालता है। उस समय भक्तके शरीरमें स्तम्भादि सभी भाव उत्पन्न होते हैं।

स्तम्भादि भाव—स्तम्भ, स्वेद, रोमाञ्च, स्वरभेद, वेपथु, वैवर्ण्य, अश्रु और प्रलय ये आठ सात्त्विक भावके लक्षण हैं।

निर्वेद, विषाद, दैन्य, ग्लानि, श्रम, मद, गर्व, शङ्का, त्रास, आवेग, उन्माद, अपस्मृति, व्याधि, मोह, मृति, आलस्य, जाड्य, व्रीडा, अवहित्था, स्मृति, वितर्क, चिन्ता, मति, धृति, हर्ष, औत्सुक्य, औग्र्य, अमर्ष, असूया, चापल्य, निद्रा, सुप्ति और बोध ये तीस व्यभिचारी भाव हैं।

श्रीकृष्णविषयिणी रतिको स्थायीभाव कहते हैं। इसका विशेष विवरण भक्ति-रसामृतसिन्धु और हरिभक्ति-विलास आदि ग्रन्थोंमें लिखा है।

भक्तिरसामृतसिन्धु—श्रीरूप गोस्वामिकृत ग्रन्थविशेष। यह ग्रन्थ चार भागोंमें विभक्त है। प्रथम भागका नाम पूर्वविभाग है। इस पूर्वविभागमें चार लहरी हैं। यथा—सामान्यभक्तिलहरी, साधनभक्तिलहरी, भावभक्तिलहरी और प्रेमभक्तिलहरी।

द्वितीयका नाम दक्षिणविभाग है। इसमें पांच-लहरी हैं—विभावलहरी, अनुभावलहरी, सात्त्विक-लहरी, व्यभिचारिलहरी और स्थायिभावलहरी।

तृतीय भागका नाम पश्चिमविभाग है। इसमें शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य और मधुर यह पञ्च मुख्य भक्तिरस पांच लहरीमें वर्णित हैं।

चतुर्थ भागका नाम उत्तरविभाग है। इसमें नौ लहरी हैं। एकसे ले कर सात लहरीमें हास्यादि सप्त गौणरसका वर्णन है। अष्टम लहरीमें रसकी मैत्रवैरस्थिति और नवम लहरीमें रसाभास वर्णित है।

इस ग्रन्थकी श्लोकसंख्या मूल ३३२५, टीका ३६४४ है। इसके टीकाकार श्रीजीव गोस्वामी हैं। ग्रन्थरचनाका काल—

"रामाङ्गशक्रगणिते शाके गोकुलमधिष्ठितेनायं।
श्रीभक्तिरसामृतसिन्धुर्विटङ्कितः क्षुद्ररूपेण॥"

मैंने क्षुद्र हो कर भी राम (३) अङ्ग (६) शक (१४)

अर्थात् १४६३ शकमें गोकुलमें रह कर इस भक्तिरसामृत-सिन्धुको उत्तम रूपसे उट्टङ्कित किया।

भक्तिराग (सं० पु०) भक्तिका पूर्वानुराग।

भक्तिल (सं० पु०) भक्तं भङ्गीं लातीति ला-क। १ साधु-घोटक, उत्तम घोड़ा (त्रि०) २ भक्तिदाता।

भक्तिवाद (सं० पु०) भक्तिविषयिणी कथा।

भक्तिसूत्र (सं० क्ली०) वैष्णव सम्प्रदायका एक सूत्र-ग्रन्थ। यह ग्रंथ शाण्डिल्य मुनिके नामसे प्रख्यात है। इसमें भक्तिका वर्णन है।

भक्तोत्तरीय (सं० क्ली०) औषधविशेष। इसकी प्रस्तुत प्रणाली—अभ्र, गंधक, पीपल, पञ्चलवण, यवक्षार, सार्चि-क्षार, सोहागा, त्रिफला, हरिताल, मैनसिला, पारद, वनयमानी, यमानी, सोया, जीरा, हिंगु, मेथी, चितामूल, चइ, वच, दन्तीमूल, निसोथ, मोथा, सिलाजित, लौह, रसाञ्जन, निम्बवीज, पटोलपत्र और विड़ङ्ग प्रत्येक दो दो तोला और शोधित धतूरा १००, इन्हें चूर्ण करके भोजन करनेके बाद सेवन करे। इससे अग्निवृद्धि होती तथा श्लीपद और अन्त्रवृद्धि आदि नाना रोग प्रशमित होते हैं (भैषज्यरत्ना०)

भक्तोद्देशक (सं० पु०) बौद्ध-संघारामादिमें नियुक्त कर्मचारिविशेष। ये लोग इस बातकी जांच करते हैं, कि आज कौन क्या भोजन करेगा।

भक्तोपसाधक (सं० पु०) १ पाचक, रसोइया। २ परि-वेशक।

भक्ष (सं० पु०) भक्ष भावे कर्मणि वा घञ्। १ अशन, खानेका काम। २ भक्षणीय वस्तु, खानेका पदार्थ।

भक्षक (सं० त्रि०) भक्षयतीति भक्ष (ण्वुल्तृचौ। पा ३।१।१३३) १ खादक, खानेवाला। पर्याय—घस्मर, अद्मर।

भक्षकार (सं० पु०) भक्षं करोति कृ-अन्। भक्ष्यपिष्टकोप-जीवी, हलवाई।

भक्षटक (सं० पु०) भक्ष-अटन्, ततः संज्ञायां कन्। क्षुद्र-गोक्षरक, छोटा गोखरू।

भक्षण (सं० क्ली०) भक्ष भावे ल्युट्। किसी वस्तुको दांतो-से काट कर खाना, भोजन करना। पर्याय—स्वाद, खदन, खादन, अशन, निघस, वल्भन, अभ्यवहार, जग्धि, जक्षण, लेह, प्रत्यवसान, घसि, आहार, श्मान, अव-ध्वान, विप्वाण, भोजन, जेमन, अदन।

भक्षणीय (सं० त्रि०) भक्ष अनीयर्। १ भक्ष्य द्रव्य। २ भक्षण योग्य, खाने लायक। भक्षणीय द्रव्य किस जगह रखना चाहिये, पाकराजेश्वरमें उसका विषय इस प्रकार लिखा है। सामने भोजन पात्र, उसके मध्य भागमें अन्न, दाल तरकारी मछली मांस दाहिनी ओर, प्रलेहादि द्रव्य, पाणीय, पानक और चोष्य आदि बाईं ओर तथा इक्षु-विकार, पक्कान्न, पायस और दधि सामने रखना चाहिये। इस प्रकार भक्षणीय द्रव्य रख कर भोजन करना उचित है। (पाकराजेश्वर)

भक्षपत्रा (सं० स्त्री०) भक्षं भक्षणीयं पत्रमस्याः। नाग-वल्ली।

भक्षयितृ (सं० त्रि०) भक्षि-तृण। भक्षणकारी, खानेवाला।

भक्षयितव्य (सं० त्रि०) भक्ष-णिच् तव्य। भक्षणीय, खाद्योपयोगी।

भक्षालि (सं० पु०) भक्षाणामालिर्यत्र। १ देशभेद। ततो भवार्थे वुञ्। भक्षालिक तद्देशभव।

भक्षित (सं० त्रि०) खाया हुआ।

भक्षितृ (सं० त्रि०) भक्ष-तृच्। भक्षक, खानेवाला।

भक्षितव्य (सं० क्ली०) भक्ष-तव्य। भक्ष्य, खानेका पदार्थ।

भक्षिन् (सं० त्रि०) भक्ष-अस्त्यर्थे इनि। भक्षणकारी, खानेवाला।

भक्षिवस् (सं० त्रि०) भक्ष-क्वसु वेदे न द्वित्वं। भक्षण, खाना। वैदिक प्रयोगमें ही यह पद सिद्ध होता है, लौकिक प्रयोगमें 'विभक्षिवस्' पद होता है।

(अथर्व० ६।७३।३)

भक्ष्य (सं० त्रि०) भक्षते इति भक्ष ण्यत्। भक्षितव्य, खानेके योग्य। 'प्रतिपदि कुष्माण्डं न भक्ष्यं दशम्यां कलम्बी न भक्ष्या' (स्मृतिसर्वस्व)

सुश्रुतमें भक्ष्यद्रव्य और उसके गुणादिका उल्लेख है। रस, वीर्य और विपाकके अनुसार भक्ष्य द्रव्योंके गुणादि नीचे लिखे जाते हैं।

क्षीरजात समस्त भक्ष्यद्रव्य—बलकर, शुक्रवृद्धि-कर, मुखप्रिय, सुगन्धी, अग्निकर और पित्तनाशक। इनमेंसे घृतपक्व पिष्टकादि बलकर, मुखप्रिय, कफकर, वातपित्तनाशक, शुक्रवर्द्धक, गुरुपाक और रक्त-मांस-वर्द्धक है।

गुड़जात लक्ष्यद्रव्य—पुष्टिकर, गुरुपाक, वायुनाशक, अदाही, पित्तनाशक, शुक्र और कफवर्द्धक है। घृतादि द्वारा पक्व गोधूमचूर्णजात पिष्टक और मधुमिश्रित पिष्टक विशेषरूपसे गुरुपाक और वलवृद्धिकारक है। मोदक द्रव्य अति दुर्जर अर्थात् सहजमें जीर्ण नहीं होता। सट्टक या जीरा मिला हुआ मट्ठा—रुचि, अग्नि और स्वरका हितकर, पित्त और वायुनाशक, गुरुपाक तथा वलवृद्धिकारक। विष्यन्दन अर्थात् कच्चा गोधूम चूर्ण घृत और दुग्धके साथ प्रस्तुत खाद्य—मुखप्रिय, सुगन्धी, मधुर, स्निग्ध, कफकर, गुरुपाक, वायुनाशक, तृप्ति और वलकर। गोधूम चूर्ण द्वारा प्रस्तुत भक्ष्य-द्रव्य—वृंहण, वायु और पित्तनाशक तथा वलकर; इनमेंसे फेनक अर्थात् गुड़मिश्रित खाद्य-द्रव्य अतिशय मुखप्रिय, हितकारक और लघुपाक है। मुद्ग प्रभृति वेसवार—विष्टम्भी और वेसवार मांसके साथ होनेसे गुरुपाक और वृंहण। पालल अर्थात् तिल गुड़ादि द्वारा प्रस्तुत पिष्टक श्लेष्मजनक, शंकुलि, कफ और पित्तका प्रकोपकर, विदाही और अतिशय गुरुपाक। वैदल (पिष्टक-भेद)—लघुपाक, कषायरसविशिष्ट एवं वायुसञ्चारक; उरद संक्रान्त पिष्टक विष्टम्भी, पित्तगुणविशिष्ट, श्लेष्मनाशक, मल-वृद्धिकर, वल और शुक्रवर्द्धक तथा गुरुपाक। कुर्चिका अर्थात् दुग्ध विकारजात खाद्यद्रव्य-गुरुपाक और नातिपित्तकर। घृतपक्व खाद्यद्रव्य—हृद्य, सुगन्धी, शुक्रवर्द्धक, लघुपाक, पित्त और वायुनाशक, वलकर, वर्ण और दृष्टिका प्रसन्नताकारक। तैलपक्व खाद्यद्रव्य—विदाही, गुरुपाक, परिपाकमें कटुरसविशिष्ट, वायु और दृष्टिनाशक, पित्तकर और त्वक्‌का दोषनाशक। फल, मांस, चीनी, तिल और उरद द्वारा प्रस्तुत तैल संस्कृत भक्ष्य द्रव्य—वलकर, गुरुपाक, वृंहण, हृद्य और प्रिय। सूप भक्ष्यद्रव्य—अतिशय लघुपाक, किलाट (छेना) आदि दुग्धपाक और कफवर्द्धनकर। कुल्माष अर्थात् अल्पसिद्ध यव गोधूमादि वातकर, रूक्ष, गुरुपाक और मलका हितकर; भृष्टयव और गोधूमादिका मण्ड उदावर्त्तरोगनाशक और कास, पीनस तथा मेहप्रतिषेधक। सब प्रकारका सत्तू—वृंहण, वृष्य, तृष्णा, पित्त और कफनाशक, वलकर, भेदक और वायुनाशक। यह सत्तू तरल और पिण्डाकृति होनेसे गुरुपाक तथा कठिन होनेसे लघुपाक होता है। सत्तका अवलेह मृदुता प्रयुक्त बहुत जल्द पचता है। लाज (खील)—सर्दी और अतिसारनाशक, अग्निकर, कफनाशक, वलकर, कषाय और मधुररसविशिष्ट, लघुपाक, तृष्णा और मलनाशक। लाज या खीलका सत्तू—तृष्णा, सर्दी, दाह, घर्म, रक्तपित्त और ज्वरनाशक। पृथुक—गुरुपाक, स्निग्ध, वृंहण और कफवर्द्धनकर। दुग्धमिश्रित पृथुक—वलकर, वायुनाशक और मलभेदक। नूतन तण्डुल—अतिशय दुर्जर, मधुररसविशिष्ट और वृंहण, पुरातन तण्डुल—भग्नसन्धानकर और मेहनाशक माना जाता है। चिकित्सकको चाहिये, कि वे भक्ष्यद्रव्यका इस प्रकार गुणागुण स्थिर करके भोक्ताके इच्छानुसार भक्ष्यद्रव्य निर्देश कर दें। (सुश्रुत सूत्रस्था० ४६ अ०)

भक्ष्यकार (सं० त्रि०) भक्ष्यं भक्ष्यद्रव्यं करोतीति कृ (कर्मण्यण्। पा ३।२।१) इति अण्। पिष्टकविक्रयजीवी, हलवाई। पर्याय—आपूपिक, कान्दविक, पूपिक, पूपविक्रयी, मोदकादिविक्रयी। (शब्दरत्ना०)

भक्ष्याभक्ष्य (सं० क्ली०) भक्ष्यमभक्ष्यञ्च। खाद्याखाद्य-द्रव्य, खाद्य और अखाद्य।

ब्रह्मवैवर्त्तपुराणमें भक्ष्याभक्ष्यका इस प्रकार विवरण लिखा है,—

लौहपात्रमें पयः, गव्य, सिद्धान्न, मधु, गुड़, नारियलका जल, फल और मूल अभक्ष्य है। दग्धान्न, ताम्रसौवीर, कांस्यपात्रमें नारिकेलोदक, ताम्रपात्रमें मधु और गव्य अभक्ष्य है; किन्तु घृत भक्ष्य है। ताम्रपात्रमें पयःपान, उच्छिष्ट घृत भोजन, सलवण दुग्ध, मधुमिश्रित घृत वा तैल और गुणयुक्त आर्द्रक, पोतशेष जल, माघमासमें मूलक अभक्ष्य है। श्वेतवर्णताल, प्रतिपदमें कुष्माण्ड, द्वितीयामें वृहती, तृतीया और चतुर्थीमें मूलक, पञ्चमीमें विल्व, षष्ठीमें निम्ब, सप्तमीमें ताल, अष्टमीमें नारिकेल, नवमीमें तुम्बी, दशमीमें कलम्बी, एकादशीमें शिम्बी, द्वादशीमें पूतिका, त्रयोदशीमें वार्त्ताकु, चतुर्दशीमें माष, पूर्णिमा और अमावस्यामें मांस तथा रविवारमें आर्द्रक अभक्ष्य है। ब्राह्मणोंके लिये हविष्यान्न भक्ष्य है। भक्ष्याभक्ष्यका विषय ब्रह्मवैवर्त्तपुराण-ब्रह्मखण्डके २७वें अध्यायमें

और कृष्णजन्मखण्डके ८४वें अध्यायमें सविस्तार लिखा है, विस्तार हो जानेके भयसे यह कुछ नहीं लिखा गया।

भक्ष्यालाबु (सं० स्त्री०) भक्ष्या भक्षार्हा अलाबुः। बड़ा कद्दू।

भखना (हिं० क्रि०) १ भोजन करना, खाना। २ निगलना।

भखी (हिं० स्त्री०) दलदलोंमें होनेवाली एक प्रकारकी घास। यह छप्पर छाने और टट्टियां बनानेके काममें आती है। नैनीतालमें इस प्रकारकी घास बहुत पाई जाती है। इसके फलमें नारंगोकी सी महक होती है। पकने पर यह घास लाल रंगकी हो जाती है। इसे चौपाए बड़े चावसे खाते हैं। इसका दूसरा नाम 'खवी' भी है।

भग (सं० पु० क्ली०) भज्यतेऽनेनास्मिन् वेति एतदाश्रित्यैव कन्दर्पं सेवते इति भावः। भज सेवायां (पुंसि संज्ञायां घः प्रायेण। पा ३।३।११८) इति घः। १ स्त्री चिह्न, योनि। पर्याय—वराङ्ग उपदस्थ, स्मरमन्दिर, रतिगृह, जन्मवर्त्म, अधर, अवाच्यदेश, प्रकृति, अपथ, स्मरकूप, अप्रदेश पुष्पी, संसारमार्ग, गुह्य, स्मरागार, स्मरध्वज, रत्यङ्ग, रतिकुहर, कलत्र, अधः। (शब्दरत्नावली)

भगशब्दसे लिङ्ग और योनि दोनोंका हो बोध होता है।

भजन्त्यनेनेति भगो मेहनं, भजन्त्यस्मिन्निति भगं यानिः।
(भावप्र० मध्यख०)

रतिमञ्जरीमें विस्तीर्ण और गम्भीर इन दो प्रकारके भगोंका उल्लेख है—

"विस्तीर्णश्च गभीरश्च द्विविधं भगलक्षणम्।" (रतिम०)

कूर्मपृष्ठ, गजस्कन्ध, पद्मगन्ध अथच सुकोमल, अकोमल, और सुविस्तीर्ण ये पांच प्रकारके भग उत्तम हैं।

"कूर्मपृष्ठं गजस्कन्धं पद्मगन्धं सुकोमलम्।
अकोमलं सुविस्तीर्णं पञ्चैते च भगोत्तमाः॥" (रतिम०)

शीतल, निम्न, अत्युष्ण और गोजिह्वा सदृश भग निन्दित बतलाया गया है।

"शीतलं निम्नमत्युष्णं गोजिह्वासदृशं परम्।
इत्युक्तं कामशास्त्रेषु भगदोषचतुष्टयम्॥ (रतिम०)

भगके शुभाशुभ लक्षणादि सामुद्रिकमें इस प्रकार लिखा है—

कच्छप-पृष्ठके जैसा विस्तृत और हस्ती-स्कन्धके जैसा उन्नत भग ही स्त्रियोंके लिये मङ्गलदायक है। भगका वाम भाग उन्नत होनेसे कन्या और दक्षिण भाग उन्नत होनेसे पुत्र जन्म लेता है। जो भग दृढ़, अवयवमें विस्तृत, परिमाणमें वृहत् और उन्नत होता है, जिसका ऊपरी भाग मूषिक गात्रवत् विरल लोमयुक्त, मध्यभागमें अप्रकाशित, दोनों पार्श्वमें मिलित प्राय, गठन और वर्णमें कमलदलके सदृश, क्रमशः अधोदिक सूक्ष्म और सुन्दर तथा जो आकृतिमें पीपलके पत्तेके जैसा तिकोना होता है, वही भग मङ्गलावह और प्रशस्त है। जो भग हरिणके खुरकी तरह, अल्पायत चूल्हेके भीतरी भागके जैसा गह्वरविशिष्ट, लोमपूर्ण और जो मध्यभागमें प्रकाशित तथा अनावृतप्राय है वह भग अशुद्धदायक माना गया है। इस प्रकार योनिविशिष्ट स्त्रीका गर्भ अकसर नष्ट हुआ करता है*।

(पु०) भज्यते इति घ। २ रवि, सूर्य। ३ द्वादशादित्य भेद, बारह आदित्योंमेंसे एक। ४ ऐश्वर्यादि षट्क, छः प्रकारकी विभूतियां जिन्हें सम्यक् ऐश्वर्य, सम्यक् वीर्य, सम्यक् यश, सम्यक्श्रिव और सम्यक् ज्ञान कहते हैं। ५ भोगास्पदत्व। ६ स्थूलमण्डलाभिमानी। (रामायण ३।१२।१८) ७ इच्छा। ८ माहात्म्य। ९ यत्न। १० धर्म। ११ मोक्ष। १२ सौभाग्य। १३ कान्ति। १४ चन्द्र। १५ ज्योतिषोक्तयोमि नक्षत्रदैवत पूर्वफल्गुनीनक्षत्र। १६ धन। १७ पद। १८ गुह्यदेश, गुदा। १९ एक देवताका नाम। पुराणानुसार दक्षके यज्ञमें वीरभद्रने इनकी आँख फोड़ दी थी। (त्रि०) २० भजनीय।

---

* "शुभः कमठपृष्ठाभो गजस्कन्धोपमो भगः।
वामोन्नतश्चेत् कन्याजः पुत्रजो दक्षिणोन्नतः॥
आखुरोमा गूढमणिः सुश्लिष्टः संहतः पृथुः।
तुङ्गः कमलवर्णाभः शुभोऽश्वत्थदलाकृतिः॥
कुरङ्गखुररूपो यश्चुल्लिकोदरसन्निभः।
रोमशो विवृतास्यश्च गर्भनाशोऽतिदुर्भगः॥"
(शिवोक्त सामुद्रिक)

भगघ्न (सं० पु०) भगं तन्नेत्रं हन्ति हन् । महादेव । दक्षयज्ञमें रुद्रने भगकी आँखें फोड़ दी थीं; इसीसे इनका नाम भगघ्न पड़ा है।

"नमस्ते त्रिपुरघ्नाय भगघ्नाय नमोनमः।"

(भारत ७।२०२ अ०)

भगण (सं० पु०) भानां नक्षत्राणां गणः समूहः। १ नक्षत्रसमूह। किसी ग्रहके एक बार बारह राशि भ्रमण करनेका नाम एक भगण है अर्थात् किसी ग्रहके मेषादि बारह राशियोंका अतिक्रम करनेमें जो समय लगता है, उसीको भगण कहते हैं। सूर्यसिद्धान्तमें लिखा है, कि साठ विकलाकी एक कला, साठ कलाका एक अंश, तीस अंशकी एक राशि और बारह राशिका एक भगण होता है।

"विकलानां कलाषष्ट्या तत्षष्ट्या भाग उच्यते।

तत्त्रिंशता भवेद्राशिर्भगणो द्वादशैव ते॥" (सूर्यसि०)

इस प्रकार एक एक ग्रह सभी नक्षत्रोंमें रह कर बारह राशिका भोग करता है। नक्षत्रमें भोग होनेके कारण उसका नाम भगण पड़ा है।

"शीघ्रगस्तान्यथाल्पेन कालेन महताल्पगः।

तेषान्तु परिवर्त्तेन पौष्णान्ते भगणः स्मृतः॥" (सूर्यसि०)

ग्रहार्णवमें इस प्रकार लिखा है,—पहले देशान्तर स्थिर करके पीछे भगणका निरूपण करना आवश्यक है। सुमेरु पर्वत और लङ्काकी मध्यगत भूमिके ऊपर हो कर उत्तरदक्षिण विस्तीर्ण जो एक रेखा कल्पित हुई है, उसका नाम मध्यरेखा है। उस मध्यरेखासे अपना देश जितना योजन दूर होगा उतने योजनको दशसे गुणा करके तेरहसे भाग दो। भागफल जो निकलेगा वही पल होगा। वह पल यदि ६०से अधिक हो, तो उसे दण्डमें ला कर मध्य रेखाके पूर्वदेशमें जोड़ो और मध्यरेखाके पश्चिमदेशमें घटाओ।

विषुव दिनका अर्द्धार्द्ध १५ दण्डसे जितना अधिक होगा उसे युक्त-चरार्द्ध और जितना न्यून होगा, उसे हीन-चरार्द्ध कहते हैं। युक्त-चरार्द्ध जितना होगा, उसे विषुवसंक्रान्तिके वारादिमें योग और हीनचरार्द्धको वियोग करना होगा। ऐसा करनेसे चरार्द्ध संस्कृत विषुवध्रुव निकल आयेगा। जिस वारमें जितने दण्ड समयमें विषुवध्रुव होगा, उस समय सूर्य मेषमें जायेंगे। इस प्रकार सूर्य बारह महीनेमें एक एक करके मेषादि बारह राशियोंका भोग करते हैं। इन बारह राशियोंका भोग करनेसे एक भगण होता है।

चतुर्युगमें सूर्य, बुध और शुक्रका मध्य (ग्रहोंकी यथार्थ गतिका नाम मध्य है) तथा मङ्गल, शनि और वृहस्पतिका शीघ्र ४४२०००० भगण, चन्द्रका ५७७५३३६ भगण, चन्द्रकेन्द्रका मध्य ५७२६५१३७ भगण है। मङ्गलका मध्य २२९६८३२ भगण है। बुधका शीघ्र १७९३७०७६, वृहस्पतिका मध्य ३६४२१२ भगण, शुक्रका शीघ्र ७०२२३६४ भगण, शनिका मध्य १४६५८० भगण और राहुका मध्य २३२२४२ भगण है।

ग्रहोंके मध्य भगण और शीघ्र-भगण जो ऊपर बतलाये गये हैं, उन्हें कल्यब्दसे गुणा करके तैंतालीस लाख बीस हजारसे भाग दो, भागफल भगण होगा। भागशेषको १२ से गुणा करके उक्त भाजक द्वारा भाग देनेसे जो लब्धि होगी वह राशि और भागशेषको ३० से गुणा करके भाजक द्वारा भाग देनेसे अंश; फिर शेषको ६०से गुणा करके भाजक अङ्क द्वारा भाग देनेसे लब्धि कला होगी। पीछे इसी प्रकार प्रक्रिया द्वारा विकलादि भी निकाली जायेंगी। इस लब्धिमें भगणका त्याग करना होगा। अनन्तर राश्यादिमें अपना अपना मध्य, शीघ्र, क्षेपाङ्क जोड़नेसे जिस समय सूर्य मेषराशिमें जायेंगे, उस समयका मध्य शीघ्र होगा।

स्वीय शीघ्र क्षेपाङ्कको स्वीय शीघ्रमें जोड़नेसे स्वीय शीघ्र होगा। क्षेपाङ्क राश्यादि—रविका मध्य ११।२७।५१।४१।०, चन्द्रका मध्य ११।१।२४।३३।२९, चन्द्रकेन्द्रका मध्य ८।१।३६।३।२५, मङ्गलका मध्य ११।२८।५१।४६।३८, बुधका शीघ्र ११।२१।७।१२।५८, वृहस्पतिका मध्य ११।२६।४६।१०।५६, शुक्रका शीघ्र ११।२६।३१।२७।५४, शनिका मध्य ११।२६।५५।२८।४६, राहुका मध्य ५।२६।५३।६।३७ इस क्षेपाङ्कका योग करनेसे सूर्य जिस समय मेषराशिमें जायेंगे उस समयका मध्य होगा।

जिस वर्षके जिस दिनके जिस समयका मध्य लाना होगा, पहले उस वर्षके विषुवदिनका मध्य स्थिर कर विषुवदिनसे वह अभीष्ट दिनसंख्या जितनी होगी उसे

ग्रहोंके अपने अपने भगण द्वारा गुणा करके उस कुदिन अर्थात् चतुर्युग परिमित दिन १५७७९१७८२८ अङ्क द्वारा भाग देनेसे जो भागफल होगा, वही भगण है। पीछे ऊपर बताये गये नियमसे राश्यादि निकाल कर भगणको अलग कर दो और राश्यादिको पूर्वाङ्कमें जोड़नेसे विपुव-दिनके जितने दण्डादिमें सूर्य मेषराशिमें गये हैं, उस दिनके भी उतने दण्डादिका मध्य होगा * ।

ग्रहस्फुट और ग्रहणादि गणनामें भगण स्थिर करके गणना करनी होती है। (ग्रहार्णव) खगोल देखो।

२ छन्दःशास्त्रानुसार एक गण। इसमें आदिका एक वर्ण गुरु और अन्तके दो वर्ण लघु होते हैं।

भगत (हिं० वि०) १ सेवक, उपासक। २ साधु। ३ जो मांस आदि न खाता हो, सकटका उलटा। ४ विचार-वान्। (पु०) ५ वैष्णव या वह साधु जो तिलक लगाता और मांस आदि न खाता हो। ६ भूत प्रेत उतारने-वाला पुरुष, ओझा। ७ वेश्याके साथ तबला आदि बजानेका काम करनेवाला पुरुष, सफर-दाई। ८ राज-पूतानेकी एक जातिका नाम। इस जातिकी कन्याएं वेश्यावृत्ति और नाचने गानेका काम करती हैं। विशेष विवरण भगतिया शब्दमें देखो। ९ होलीका वह स्वांग जो भगतका किया जाता है। स्वांगमें एक आदमी सफेद बालोंकी दाढ़ी मोंछ लगाता और सिर पर तिलक, गलेमें तुलसी वा किसी और काठ-की माला पहनता है। सारे शरीरमें वह राख लगा कर हाथमें एक तुंबी और सोंटा ले लेता है। इस प्रकार अपनेको सजा कर वह स्वांगी जोगीड़ेमें नाचनेवाले लौंडेके साथ मिल जाता है और बीच बीचमें नाचता और भाँड़ोंकी तरह मसखरापन करता जाता है।

भगतिया (हिं० पु०) राजपूतानेकी एक जातिका नाम। इस जातिके लोग वैष्णव साधुओंकी संतान हैं जो अब गाने बजानेका काम करते हैं। इस जाति-की कन्याएं वेश्या-वृत्ति करके अपने कुटुम्बका भरण-पोषण करती हैं और भगतिन कहलाती हैं।

भगदत्त (सं० पु०) भगमैश्वर्यं दत्त-मस्मै इति। १ नरक-राजके ज्येष्ठ पुत्र। ये प्राग्ज्योतिषपुरके राजा थे। भगवान् श्रीकृष्णने नरकको मार कर इन्हें राजा बनाया था। राजसूययज्ञके समय अर्जुनके साथ इनका आठ दिन युद्ध हुआ था। पीछे इन्होंने युधिष्ठिरकी वश्यता स्वीकार की थी। इन्द्रके साथ इनका अच्छा सद्भाव था। महाभारत-युद्धमें ये कौरवोंकी ओर थे। युद्धस्थलमें इन्होंने विराट, भीम, अभिमन्यु, घटोत्कच और अर्जुन आदिके साथ लड़ कर वीरताकी परा-काष्ठा दिखलाई थी। द्रोणने जब कुरुसैन्यका सेना-पति होना मंजूर किया, तब एक दिन भीमके साथ इनका युद्ध आरम्भ हुआ। उस दिन कुछ समय तक युद्ध करनेके बाद भीमने अञ्जलिकाविद्याप्रभावसे अपने गज शरीरमें लीन हो गजको यन्त्रणा देना शुरू किया। इधर पाण्डव सेनाने, भीम मारे गये हैं ऐसा जान कर भगदत्तके साथ युद्ध ठान दिया। पीछे युधिष्ठिर, सात्यकि, अभिमन्यु आदिके साथ भी इनका तुमुलसंग्राम हुआ। युद्धमें सैकड़ों सेना निहत हो रही है, यह देख कर महावीर अर्जुनने युद्धमें प्रवेश किया। उस समय दुर्योधन और कर्ण दोनों ओरसे अर्जुन पर टूट पड़े। अर्जुनने थोड़े ही समयके अन्दर उन्हें परास्त कर भगदत्त पर आक्रमण किया। भग-दत्त ने अर्जुन पर जब वैष्णवास्त्र फेंका, तब श्रीकृष्ण-ने उसे अपने वक्षमें धारण कर लिया। पीछे बड़ी वीरताके साथ लड़ कर ये अर्जुनके हाथसे मारे गये। (कालिकापु० ३९ अ०, भारत सभा और द्रोणप०)

२ एक राजा। ये गौड़, औड्र, कलिङ्ग और कोशल राज्यके अधिपति थे।

भगदर (हिं० स्त्री०) अचानक बहुत-से लोगोंका किसी कारणसे एक ओर न्यस्त ध्वस्त हो कर भागना।

भगनहा (हिं० पु०) करेरुआ नामक कंटीली बेल। करेरुआ देखो।

---

* "युगे सूर्यज्ञशुक्राणां खचतुष्करदार्णवाः।
कुजार्किगुरुशीघ्राणाः भगणां पूर्वयायिनाम्॥
इन्दो रसाग्नित्रित्रीषु सप्तभूधरमार्गणाः।
चन्द्रकेन्द्रऽद्रिरामैक बाणांगाश्विनगेष्वः॥
कुजस्य दन्तनागत्तु नन्दलोचनदस्रकाः।
बुध शीघ्रऽङ्कसप्ताभ्रशैलाग्निनन्दमेषकाः॥" इत्यादि।
(ग्रहार्णव ६, ७, ८)

भगना (हिं० पु०) वहिनका लड़का, भानजा।

भगनी (हिं० स्त्री०) भगिनी देखो।

भगनेत्रघ्न (हिं० पु०) शिवका नामान्तर।

भगन्दर (सं० पु०) भगं गुह्यमुष्कस्थानं दारयतीति दृ-णिच् (पूः सर्वयोगदारि सहोः। पा ३।२।४१) इत्यत्र 'भगे च दारेरिति वक्तव्यम्' इति काशिकोक्तेः खच् (खचि ह्रस्वः। पा ६।४।९६) इति ह्रस्वः, मुमूच। अपानदेशका व्रणरोग विशेष, एक रोगका नाम।

वैद्यकशास्त्रमें इस रोगके निदान और चिकित्सादिका विषय इस प्रकार लिखा है:—

गुह्यदेशके दो अंगुल-परिमित पार्श्ववर्ती स्थानमें नारि-व्रणकी भांतिका जो क्षत उत्पन्न होता है, उसे भगन्दर कहते हैं। कुपित वातादिदोष प्रथमतः उस स्थानमें एक व्रणशोथ उत्पन्न करता है, बादमें उसके पक कर फुट जाने पर वहांसे सुर्ख रंगका फेन और पीव आदि निकलने लगती है। क्षत अधिक होनेसे वहांसे मल और मूत्रादि भी निकला करता है। गुह्यदेशमें किसी प्रकारका क्षत हो कर पक जाय, तो उसे भी भगन्दर रूपमें परिणत होते देखा गया है। सुश्रुतके पढ़नेसे मालूम होता है कि, वात, पित्त, कफ, सन्निपात और आगन्तु इन पांच कारणोंसे शतपोनक, उष्ट्रग्रीव, परिस्रावी, शम्बुकावर्त्त और उन्मार्गी ये पांच प्रकारके भगन्दररोग उत्पन्न होते हैं। भग, मलद्वार और वस्तिदेशको विदीर्ण करता है, इसलिए इसका नाम भगन्दर पड़ा है। भगद्वारमें जो व्रण होता है, वह नहीं पका तो 'पीड़का' और पक गया तो 'भगन्दर' कहलाता है। कटि और कपालमें वेदना तथा मलद्वारमें कण्डु, दाह और शोथ ये भगन्दरके पूर्वलक्षण हैं।

शतपोनक-भगन्दरके लक्षण—अपथ्य सेवनशील वायु कुपित हो कर मलद्वारके चारों तरफ एक या दो अंगुलिप्रमाण स्थानके मांस और शोणितको दूषित कर रक्तवर्णकी पीड़का उत्पन्न करता है। उसके द्वारा मलद्वारमें तोद आदि यातनाएं होती हैं। शीघ्र ही इसका प्रतीकार न किया जाय, तो यह पक जाती है। मूत्राशयके साथ संयोग रहनेसे व्रण क्लेद-युक्त तथा शतपोनककी भांति छोटे छोटे छिद्रोंसे व्रण कुछ पूर्ण हो जाता है। उस समय उन छिद्रोंसे फेनयुक्त लगातार आस्राव निकलता रहता है और चुनचुनाहट मालूम पड़ती है। पीछे मलद्वार विदीर्ण होने पर उन छिद्रोंसे वात, मूत्र, पुरीष और रेतः निर्गत होता रहता है।

उष्ट्रग्रीव-भगन्दरके लक्षण—पित्त कुपित और वायु द्वारा अधोभागमें सञ्चालित हो कर पूर्वकी भांति मलद्वारमें अवस्थित रह कर रक्तवर्ण, सूक्ष्म, उन्नत और उष्ट्रग्रीवा-सदृश पीड़का उत्पन्न होती है। उसमें उष्णता, दाह आदिकी वेदना होती और प्रतीकार न करनेसे पक जाती है। उस व्रणमें अग्नि और क्षारसे जल जानेके जैसा दाह होता है तथा उष्ण और दुर्गन्धयुक्त आस्राव निकलता रहता है। उसकी परवाह न की जाय, तो वात, मूत्र, पुरीष और रेतः भी निर्गत होने लगता है।

परिस्रावी-भगन्दरके लक्षण—श्लेष्मा कुपित और वायु द्वारा अधोभागमें सञ्चालित हो कर पूर्ववत् गुह्यदेशमें अवस्थान पूर्वक शुक्लवर्ण कण्डुयुक्त पीड़का उत्पन्न करता है। प्रतीकार न करनेसे पक जाती है। पहले व्रण कठिन और कण्डुयुक्त होता है, पीछे उससे अधिकतासे चिकना आस्राव निकलता है। ऐसी अवस्थामें लापरवाही करनेसे व्रणसे वात, मूत्र, पुरीष और रेतका निकलना प्रारम्भ हो जाता है। इसे परिस्रावी भगन्दर कह सकते हैं।

शम्बुकावर्त भगन्दर—वायु कुपित हो कर कुपित पित्त और श्लेष्माको ले कर अधोभागमें जाती है और वहां पूर्ववत् अवस्थित रह कर पादांगुष्ठ परिमित विभिन्न प्रकार लक्षणविशिष्ट पीड़का उत्पन्न करती है। उसमें तोद, दाह और कण्डु आदि पीड़ा होती है। उपयुक्त प्रतीकार नहीं करनेसे पक जाती है और व्रणसे नानावर्णका आस्राव निकलता रहता है।

उन्मार्गी भगन्दर—मांस लोलुप व्यक्ति यदि अन्नके साथ अस्थिशल्यको भी खा जाय, तो वह मलके साथ मिश्रित हो कर अपानवायु द्वारा अधोभागमें सञ्चालित होता और निकलते समय मलद्वारमें क्षत उत्पन्न करता है। आर्द्र भूमिमें जैसी कृमि होती है, उसी तरहकी कृमि क्षतस्थानमें हो जाती हैं। कृमियां मलद्वारके पार्श्व-

वहीं स्थानको खा कर विदीर्ण कर देती हैं। उन खाये हुए छेद्रोंसे क्रमशः वात, मूत्र, पुरीष और रेतः निःसृत होते हैं। इसे उन्मार्गी भगन्दर कहते हैं।

सभी प्रकारके भगन्दर अत्यन्त यन्त्रणादायक और कष्टसाध्य होते हैं। जिस भगन्दरमेंसे अधोवायु, मल, मूत्र और कृमि निकलना शुरू हो गया हो, उसमें फिर रोगीके बचनेकी कोई आशा नहीं। जो भगन्दर पहले स्तनकी भांति उन्नत हो कर उत्पन्न होता है और बादमें विदीर्ण होने पर नदीके आवर्त्तकी भांति आकार धारण करता है उसे असाध्य समझना चाहिए।

वायु निर्गमन स्थानमें जो कुछ कुछ उपद्रव और शोफ-विशिष्ट रोग उत्पन्न हो कर शीघ्र ही उपशमित हो जाते हैं, उनका नाम 'पीड़का' है। पीड़का भगन्दरसे भिन्न है। जिस पीड़कासे भगन्दर हो जाता है, वह इससे विपरीत है। जिस पीड़कासे भगन्दर होता है, वह पायुके दो अंगुली-प्रमाण स्थानमें उत्पन्न होता है। यह गूढ़मूल, वेदना और ज्वरविशिष्ट हुआ करता है। किसी सवारीमें बैठ कर जाते समय या मलत्याग करते समय पायुदेशमें कण्डु, वेदना, दाह, शोफ और कटिमें वेदना होना भगन्दरके पूर्वलक्षण हैं। सभी प्रकारके भगन्दरमें घोर दुःख होता है। उनमें भी त्रिदोष और क्षत जन्य भगन्दर असाध्य है। (सुश्रुत निदानस्था० ४ अ०)

भावप्रकाशमें इस रोगके उत्पत्तिका कारण और चिकित्साप्रकरण तथा पूर्वरूप और लक्षण इस प्रकार लिखा है—भगन्दर होनेसे पहले कटीफलकमें सूचीविद्धवत् वेदनादि तथा गुह्यमें दाह, कण्डु और वेदनादि उपस्थित हुआ करती है। गुह्यके एक पार्श्वमें दो अंगुलि परिमिति स्थान पर वेदनान्वित पीड़का हो कर फट जाने पर उसे भगन्दर कहते हैं। यह भगन्दर पांच प्रकारका होता है—वातिक, पैत्तिक, श्लैष्मिक, सान्निपातिक और शल्यज। वातजन्यको शतपोनक भगन्दर, पित्तजन्यको उष्ट्रग्रीव भगन्दर, श्लेष्मजको परिस्रावी भगन्दर, सन्निपातजको शम्बुक भगन्दर और शल्यजको उन्मर्गी भगन्दर कहते हैं। इनके लक्षण सुश्रुतोक्त भगन्दरोंके सदृश हैं। गुह्यद्वारमें कण्टकादि द्वारा वा नख द्वारा क्षत हो कर जो शोथ उत्पन्न होता है, लापरवाहीसे उसकी चिकित्सा न करानेसे क्रमशः वह बढ़ता जाता है और उसमें कृमि उत्पन्न हो जाती है। वे कृमि मांसको विदार कर छिद्रविशिष्ट अनेक व्रण उत्पन्न कर देती है जिससे उन्मार्गी भगन्दर हो जाता है।

भगन्दररोग मात्र ही अति भयङ्कर अतिकष्टदायक है। उसमें सन्निपातक और क्षतज भगन्दर सर्वप्रकारसे असाध्य है। जिस भगंदरमें मूत्र, पुरीष, शुक्र और कृमि निकलने लगे, उसे भी असाध्य समझना चाहिए।

इसकी चिकित्सा—गुह्यदेशमें पीड़का होनेसे बड़े यत्नके साथ उसकी चिकित्सा करानी चाहिए। वह पीड़का जिससे पकने न पावे, ऐसा प्रयत्न करना ठीक है तथा जिससे अधिकतासे रक्तस्राव न हो, वह भी करना आवश्यक है।

वटपत्र, इष्टक, सोंठ, गुलञ्च और पुनर्णवा पीस कर उसकी पीड़कावस्थामें गुह्य पर लेप करनेसे भगंदररोग नष्ट होता है। पीड़काकी अपक्वावस्थामें प्रथमतः अतितर्पण, पीछे क्रमशः विरेचन पर्यन्त एकादश क्रियाएं करनी चाहिए। विरेचनादि क्रियाओंका विवरण 'व्रण' शब्दमें देखो।

उस पीड़काके भिन्न वा फट जाने पर एषणी द्वारा शोधका अन्वेषण, छेदन, क्षारप्रयोग और अग्निकर्म आदि क्रियाएं करके दोषानुसार विवेचना-पूर्वक व्रणकी भांति चिकित्सा करनी चाहिए। तिल, निम्ब और यष्टिमधु, इनको समानभागमें दूधके साथ पीस कर शीतल प्रलेप देनेसे सरक्त वेदना-संयुक्त भगन्दर नष्ट होता है। आतपत्र, वटपत्र, गुलञ्च, सोंठ और सैन्धव इनको तक्रके साथ पीस कर प्रलेप करनेसे भगंदर शीघ्र ही प्रशमित होता है। निसोथ, तिल, हाथीसूंड़ा, और मजीठ इनको पीस कर घी, मधु और सैन्धवके साथ प्रलेप करनेसे भगन्दररोग जाता रहता है। खदिरकाष्ठका क्वाथ, त्रिफला, गुग्गुल वा विड़ंगका क्वाथ पीनेसे भगंदर अच्छा हो जाता है। न्यग्रोधादिगणका क्वाथ और उसके कल्कके साथ तैल वा घृत पाक करके सेवन करनेसे भी यह रोग प्रशमित होता है। तिल, लता, फिटकरी, कुड़, विषलाङ्गला, हापरमाली, सोयाँ, निसोथ और दन्ती इनका प्रलेप भी फायदेमन्द है। इस रोगके शोधन और रोपणार्थ तिल, हरितकी, लोध, निम्बपत्र, हरिद्रा, दारु

हरिद्रा, वेड़ेला, लोध्र तथा गृहधूम इनका प्रयोग भी कार्यकारी है। सीज या अकवनके गोंदके साथ दारुहरिद्राके चूर्णका पाक करके उससे वर्त्ति वना कर शोपमें प्रविष्ट करानेसे भगन्दर वा सर्वशरीरगत शोप निवारित होता है, तथा त्रिफलामें काथके साथ विड़ालास्थिको पीस कर प्रलेप देनेसे भी भगन्दर आरोग्य हो जाता है। विड़ङ्गसार, त्रिफला, छोटी इलायची और पिप्पलीचूर्ण इनको मधु और तेलके साथ चाटनेसे भगंदर शीघ्र ही प्रशमित होता है। इसके सिवा विष्यन्दन तैल, निशाद्य तैल, करवीरादि तैल और नववार्षिक गुग्गुल आदि औषध भी विशेष उपकारक हैं।

शतपोनक भगन्दरमें नाड़ीके वगलमें क्षत करके दूषित रक्तको निकाल देना चाहिए। पीछे उस क्षतके भर जाने पर नाडीव्रणकी भांति चिकित्सा करना उचित है। वहु छिद्रविशिष्ट शतपोनकरोगमें चिकित्साकी विवेचना पूर्वक अर्द्धलाङ्गलक, लाङ्गलक, सर्वतोभद्रक वा गोतीर्थक छेदन करना चाहिए। मलद्वारके दोनों ओर समान छेदन करनेको लाङ्गलक छेदन और एक तरफ ह्रस्वछेदन करनेको अर्द्ध-लाङ्गलक छेदन कहते हैं। सेवनीस्थान परित्याग-पूर्वक गुह्यद्वारको चार खण्डोंमें छेदन करना सो सर्वतोभद्रक छेद है। मल-निर्गममार्गकी तरफ न करके वगलसे छेदन करना गोतीर्थक छेद है। शतपोनकरोगमें पूयादि स्रावके सभी मुखोंको अग्निकर्म द्वारा दग्ध करना चाहिए।

उष्ट्रग्रीव भगन्दररोगमें शोपके वीचमें एपणी प्रविष्ट करके छेदन किया जाता है। पीछे उसमें क्षार प्रयोग तथा पूतिमार्ग निवारणार्थ अग्निकर्म भी हितकर है। स्रावमार्गको शास्त्रसे छेद कर क्षार वा अग्निकर्म द्वारा दग्ध करना चाहिए। शोपका अन्वेपण करके शास्त्र द्वारा छेदन करना उचित है। छेदनकेलिए खर्ज्जूरपत्रिक, अर्द्धचन्द्र, चन्द्रवग, सूचीमुख और अवाङ्मुख शास्त्रोंका प्रयोग हितकर है। छेदनके वाद अग्नि या क्षार द्वारा दग्ध करना चाहिए।

शस्त्रप्रयोग द्वारा यदि अत्यन्त वेदना उपस्थित हो तो उष्ण तैलका परिषेचन करना चाहिए। शल्यज भगन्दरमें यत्नके साथ शोपको छेदन कर अग्नि वा जम्वोष्ठ वा तप्त लोहशलाका द्वारा दग्ध करना उचित है। भगन्दर-रोगी आरोग्य होने पर भी एक वर्ष तक उसे व्यायाम, स्त्री-संसर्ग, युद्ध, अश्वादि पर आरोहण और गुरुद्रव्य-भोजन त्याग देना चाहिए।

(भावप्र० भगन्दर रोगाधि०)

सुश्रुतमें भी भगन्दररोगकी चिकित्सा प्रणाली लिखी है। इन पांच प्रकारके भगन्दरोंमें शम्बूकावर्त्त और शल्यज भगन्दर ही असाध्य हैं। अवशिष्ट तीन कष्टसाध्य हैं। भगन्दर होने पर अपक्व अवस्थामें रोगीको अतितर्पणसे ले कर विरेचन पर्यन्त एकादश प्रकार प्रतिकार करना विधेय है। पीड़का पक जाने पर स्नेहमर्दन और अवगाहन करना उचित है। स्नेह वा काथ आदि किसी प्रकार तरल पदार्थमें शरीरको डुवो देना अवगाहन कहलाता है। पश्चात् रोगीको शय्या पर लिटा कर अर्शरोगीकी भांति सूत्र वा शाटकयन्त्रसे वांध कर भगन्दर अधोमुख है या अर्द्धमुख है, भली भांति परीक्षापूर्वक एपणीसे क्षतस्थानको ऊंचा करके पूयाशय सहित छेदन कर उठा लेना चाहिए। अन्तर्मुख भगन्दर होने पर रोगीको भलीभांति वांध कर प्रवाहण अर्थात् मलद्वारमें वेग देना पड़ता है। इस प्रकारकी प्रक्रियासे भगन्दरका मुंह दीखने पर, एपणी प्रदानपूर्वक शस्त्रपात करना उचित है। अग्नि वा क्षारका प्रयोग सभी भगन्दर रोगोंमें होगा।

शतपोनक भगन्दरमें मलद्वारके वीच पहले क्षुद्र व्रणोंको छेदना चाहिए। उन घावोंके भर जानेपर फिर मलद्वारकी मूलनाडीकी चिकित्सा की जाती है। जो शिराएं परस्पर सम्बद्ध हैं उनमेंसे प्रत्येकको वाह्यदेशमें छेदन करना उचित है। जो नाडियां परस्पर संबंध नहीं है, उन्हें भी एक साथ छेद देनेसे व्रणका मुख अत्यंत वृहत् हो जाता है; इसलिए उस प्रशस्त मुखसे मलमूत्र निकला करता है, तथा वायु द्वारा आटोप और मलद्वारमें पीड़ा होने लगता है। इस प्रकारके भगन्दरमें मुख प्रशस्त करके छेदन नहीं करना चाहिए।

इस वहुछिद्र-युक्त भगन्दर रोगमें सार्द्धलाङ्गलक, लाङ्गलक, सर्वतोभद्र अथवा गोतीर्थक छेदन किया जा सकता है। रक्तादिस्रावके मार्गोंको अग्नि द्वारा जला देना

चाहिए। भीरु वा कोमलप्रकृति व्यक्तिको शतपोनक भगन्दर होने पर आरोग्य होना दुष्कर है। इस रोगमें शीघ्र ही वेदना और आस्राव-नाशक स्वेदका प्रयोग करना उचित है। कृशरा वा खीरका स्वेद अथवा लाव, तित्तिर आदि ग्राम्य और सजलदेश पशुके मांसके सहयोगसे वृक्षादनी, एरण्ड और विल्वादिगणका क्वाथ वा चूर्ण स्नेह कुम्भमें रख कर व्रणमें स्वेद दिया जाता है। तिल, एरण्ड, तीसी, उड़द, जौ, गेहूं सरसों, नमक और अम्लवर्ग, इन सबको स्थालीमें रख कर रोगीको स्वेद दे सकते हैं। स्वेद दिये जानेके बाद कुष्ठ, नमक, वच हिंगु और अजमोदा आदिको समान भागमें घृत, द्राक्षा वा अम्लरस, सुरा अथवा काञ्जीके साथ सेवन कराओ। उसके बाद व्रणमें मधुकतैल सेचन और मलद्वारमें वायुरोग-नीवारक तैलका परिषेचन करो। इस प्रकार प्रतीकार करनेसे मलमूत्र अपने मार्गसे निकलेंगे तथा अन्यान्य तीव्र उपद्रवोंकी भी शान्ति हो जायगी।

उष्ट्रग्रीव नामक भगन्दरमें एषणी द्वारा छेदन कर क्षार दे देना चाहिए। पश्चात् उसमेंसे पूति मांसको निकाल डालो और अग्निदग्ध करो। पूति मांसके निकल जाने पर तिल पीस कर घीके साथ उस पर प्रलेप दो और बांध कर घी परिषेचन करो। तीन दिन बाद खोलो; यदि व्रणमें कोई दोष दिखाई दे तो पहले उसका संशोधित होने पर यथाविधि रोपण करना उचित है।

परिस्रावी भगन्दरमें रसरक्तादि आस्रव होता रहे तो उसके मार्गको छेद कर क्षार वा अग्नि द्वारा दग्ध करो। पीछे उसमें कुछ उष्ण अणुतैलका प्रयोग कर वमनीय औषध द्वारा अल्प परिमाणमें परिषेचन करो। इस प्रकारके प्रतीकारसे व्रण कोमल तथा वेदना और आस्राव ह्रास होने पर उसके मुखशोषक अन्वेषण पूर्वक छेदन कर अग्नि द्वारा भली भांति दग्ध करो। खर्जूरपत्र, अर्द्धचंद्र, चक्र, सूचीमुख और अवाङ्मुख आदिके आकारमें भगन्दर छेदन किया जाता है। प्रयोजन होने पर पुनः क्षार द्वारा भी दग्ध कर सकते हैं। उसके बाद व्रण जब कोमल हो जाय तब उसका संशोधन करना चाहिए।

बालकको बाह्यमुख वा अन्तर्मुख किसी भी प्रकार भगंदर होने पर विरेचन, अग्नि, क्षार वा शस्त्र हितकर नहीं है। जो औषध कोमल और तीक्ष्ण हों, उनका ही प्रयोग करना उचित है। आरग्वध हरिद्रा और नीलचूर्णको मधु और घृतमें फेंट कर वर्त्तिकाके आकारमें व्रण पर प्रयोग कर शोधन करना चाहिए। इस प्रयोगसे व्रणकी नाली शीघ्र ही आरोग्य हो जाती है। आगंतुक भगंदरमें नाली होनेसे शस्त्र द्वारा छेद कर जाम्बोष्ठ शलाका दाहन-पूर्वक अग्निवर्ण करके व्रणस्थानको दग्ध करे, तथा आवश्यक होने पर कृमिनाशक और शल्य अपनयनविधिके अनुसार कार्य करे। भ्रमणशील व्यक्तिके लिए यह रोग असाध्य है। भगन्दरमें शस्त्रपात जन्य यदि वेदना हो, तो उस पर उष्ण अणुतैल परिषेचन करना चाहिए; अथवा स्थालीमें वातघ्न औषध भर कर उसके मुखको छिद्रयुक्त ढक्कनसे ढक दे, पीछे रोगीको बिठा कर और उसके मलद्वारमें घृत सेचन कर उसमें स्थालीस्थ द्रव्यका उष्ण स्वेद देना चाहिए। अथवा रोगीको लिटा कर नलके द्वारा वेदना शान्ति कर नाड़ी स्वेद भी दिया जा सकता है।

त्रिकटु, वच, हिङ्गु, लवण, श्यामा, दन्ती, त्रिवृत, तिल, कुष्ठ, शतमूली, गोलोमी, गिरिकर्णिका, कसीस, काञ्चनवृक्ष और क्षीरी वर्ग, इनसे भगन्दर-व्रण संशोधित किया जाता है। त्रिवृत्, तिल, नागदंती और मञ्जिष्ठा इनको दुग्धके साथ मिला कर मधु और सैंधव-सहित प्रयोग करनेसे भगन्दर व्रणका नाश होता है। रसाञ्जन, हरिद्रा, दारुहरिद्रा, मञ्जिष्ठा, निम्बपत्र, त्रिवृत्, गजपिप्पली और दंती इनके कल्क प्रयोगसे भगन्दरका नालीव्रण आरोग्य होता है। कुष्ठ, त्रिवृत, तिल, दंती, पिपल, सैंधव, मधु, हरिद्रा, त्रिफला और तुत्थ आदि व्रण शोधनके लिए लाभकारी है। पीपल, यष्टिमधु, लोध, कुट, इलायची, रेणुका, मजीठ, धातकी पुष्प, श्यामलता, हरिद्रा, दारुहरिद्रा, प्रियङ्गु, सर्जरस, पद्मकाष्ठ, पद्मकेशर, कलिचूर्ण, वच, लाङ्गलकी, मोम और सैंधव आदिका तैल-पाक करके प्रयोग करनेसे भगन्दररोग शीघ्र प्रशमित होता है। (सुश्रुत चिकि० ८ अ०)

भैषज्य-रत्नावलीमें भगंदररोगाधिकारमें सप्तविंशतिक

गुग्गुल, विष्यन्दन तैल, करवीराद्यतैल, निशाद्य तैल, सैन्धवाद्य तैल, नारायण रस, चित्रविभाण्डक रस, ताम्र प्रयोग तथा विविध मुष्टियोग लिखे हुए हैं। रसेन्द्र-सारसंग्रहमें इस रोगके प्रकरणमें चारिताण्डवरस और भगंदरहर रसका उल्लेख है।

प्रस्तुत प्रणालियां उन्हीं शब्दोंमें देखो।

गरुड़ पुराणमें अर्श और भगंदर रोगोपशमकी औषधि इस प्रकार कही गई है:—

"अटरूषकपत्रैश्च घृतं मृदग्निना पचेत्।
चूर्णं कृत्वा तु लेपोऽयं अर्शोरोगहरः परः॥
गुग्गुलु त्रिफलायुक्तं पीत्वा नश्येद्भगन्दरम्॥"
(ग० १८८।३-४)

भगन्दरहररस (सं० पु०) रसौषधविशेष। प्रस्तुत प्रणाली—पारा एक भाग और गन्धक दो भाग इन्हें घृतकुमारीके रसके साथ तीन दिन घोंट कर ताम्र और लौहको तुल्यरूपमें मिश्रित करे। पीछे एक वरतनमें रख कर दो पहर तक स्वेद दे। बादमें उस भस्मको कागजी नीबूके रसमें सात बार भावना दे कर पुटपाक करे। रत्ती भर गोलीका सेवन करनेसे भगंदर बहुत जल्द जाता रहता है। चिकित्सक सोच विचार कर अनुपानकी व्यवस्था दे। (रसेन्द्रसारस० भगन्दर चिकि०)

भगपुर (सं० क्ली०) मूलस्तानके अन्तर्गत एक नगर।

भगभक्त (सं० त्रि०) भगे धने भक्तः। धनरत, धनके पीछे लगा हुआ।

भगभक्षक (सं० पु०) भगं योनिस्तामुपाश्रित्य भक्षयति जीविकां निर्वाहयतीति भक्ष-ण्वुल्। नायक और नायिकाका मेलक, दोगलेका अन्न खानेवाला। इनका अन्न खानेसे चान्द्रायण करना होता है।

"यो बान्धवैः परित्यक्तः साधुभिर्ब्राह्मणैरपि।
कुण्डाशी यश्च तस्यान्नं भुक्त्वा चान्द्रायणञ्चरेत्॥"
(मार्कण्डेयपु० सदाचाराध्या०)

भगयुग (सं० पु०) बृहस्पतिके बारहयुगोंमेंसे अंतिम युग। इसके पांच वर्ष दुंदुभि, उद्गारी रक्ता, क्रोध और क्षय ५। इनमें पहलेको छोड़ कर शेष चार वर्ष उत्तरोत्तर भयानक जाने जाते हैं।

भगर (हिं० पु०) सड़ा हुआ अन्न।

भगरना (हिं० क्रि०) खत्तेमें गर्मी पा कर अनाजका सड़ने लगना।

भगल (सं० त्रि०) भगं तद्व्यापारं लाति ला-क। भग-व्यापारग्राहक।

भगल (हिं० पु०) १ कपट, ढोंग। २ हाथकी सफाई, जादू।

भगली (हिं० पु०) १ छली, ढोंगी। २ बाजीगर।

भगवती (सं० स्त्री०) भग-मतुप्, ततः स्त्रियां ङीप्। १ पूज्या। २ गौरी। ये प्रकृतिस्वरूपिणी महामाया देवी हैं।

"ज्ञानिनामपि चेतांसि देवी भगवती हि सा।
बलादाकृष्य मोहाय महामाया प्रयच्छति॥"
(मार्कपु० ८१।४२)

३ सरस्वती। ४ गङ्गा। ५ दुर्गा।

आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं सर्वं मिथ्यैव कृत्रिमम्।
दुर्गा सत्यस्वरूपा सा प्रकृतिर्भगवान् यथा॥
सिद्ध्यैश्वर्यादिकं सर्वं यस्यामस्ति युगे युगे।
सिद्ध्यादिके भगो ज्ञेयस्तेन भगवती स्मृता॥"
(ब्रह्मवैवर्त्तपु० प्रकृति० ५४ अ०)

६ दाक्षिणात्यमें प्रचलित भगवतीचिह्नाङ्कित पगोडा, स्वर्णमुद्राविशेष।

भगवतीपुर—वर्द्धमान जिलेके मनोहरशाही परगनेके अन्तर्गत एक गण्डग्राम। यह अक्षा० २३° ४२' उ० तथा देशा० ८८° ५' ३०" पू०के मध्य विस्तृत है।

भगवत् (सं० पु०) भगः षड़ैश्वर्यं अस्त्यस्य नित्य योगे मतुप्, मस्य व। १ ऐश्वर्यादियुक्त वा षड़ैश्वर्य सम्पन्न परमेश्वर। २ बुद्ध। परमेश्वर ही भगवच्छब्दवाच्य हैं। विष्णुपुराणमें लिखा है, कि विशुद्ध और सर्वकारणके कारण महाविभूतिशाली परब्रह्ममें ही भगवत् शब्द प्रयुक्त होता है। भगवत् शब्दके भ-कारके दो अर्थ हैं, पहला ये ही सर्वोके भरणकर्त्ता और सर्वोके आधार हैं; दूसरा ग-कारका अर्थ गमयिता, समस्त कर्म और ज्ञान फलका प्रापक और स्रष्टा है। समस्त ऐश्वर्य, वीर्य, यश, श्री, ज्ञान और वैराग्य इन छःका नाम भग है। परम-ब्रह्ममें ही यह भगवत् शब्द सार्थक होता है। दूसरी जगह इसका प्रयोग होनेसे निरर्थक होता है। भूतोंकी

उत्पत्ति, प्रलय, आगति, गति, विद्या और अविद्या को वे जानते हैं, इसीसे उनका भगवान् नाम पड़ा है। ज्ञान, शक्ति, वल, ऐश्वर्य, वीर्य और तेज आदि भगवत् शब्दके वाच्य हैं। ब्रह्म—शब्दादिके अगोचर हैं, उनकी पूजाके लिये ही केवल भगवत् शब्द द्वारा उनका कीर्त्तन किया जाता है। अतएव एक मात्र परमब्रह्म ही भगवत् शब्दके वाच्य हैं। सर्वदा भगवन्नाम कीर्त्तन, भगवत्सेवा आदि करना सर्वोंका अवश्य कर्त्तव्य हैं। ३ शिव। (भारत १३।१७।१२७) ४ विष्णु। ५ कार्त्तिकेय। ६ जिनेन्द्र। ७ सूर्य। ८ व्यास-देव। ९ पूजनीय गुरु पुरोहित। (त्रि०) १० ऐश्वर्ययुक्त, पूजनीय।

भगवत्—वाराणसीके दक्षिण भागमें अवस्थित एक परगना। गौतमोंके आक्रमण-कालमें यह स्थान जामियात् खाँ गहरवाड़के अधिकारमें था। जामियात् ने प्रजावर्ग की सहायतासे यहांके पटौट दुर्गकी रक्षा की थी। इस परगनेका प्राचीन नाम हनोरा है।

भगवत्—विष्णु-उपासक वनिया सम्प्रदायविशेष।

भगवत्त्व (सं० क्ली०) भगवतो भावः, त्व। भगवानका भाव या धर्म।

भगवत्दास—साधारण श्रेणीके एक ग्रन्थकर्त्ता। इन्होंने रामरसायन पिंगल और भगवत्चरित्र ग्रन्थोंकी रचना की है।

भगवत्पदी (सं० स्त्री०) गङ्गाका नामान्तर। विष्णु पदसे निकलनेके कारण गङ्गाका यह नाम पड़ा है। भागवत्में लिखा है, कि वलियज्ञमें दानग्रहणके समय भगवान्‌के वामपदाङ्गुष्ठ नखसे अण्डकटाह भिन्न हो कर जो जलधारा निकली वही जाह्नवी, भागीरथी आदि नामोंसे प्रसिद्ध है। (भाग० ५।१७।१)

भगवत्पादाचार्य—तत्त्वसार और प्रातःस्मरणस्तोत्र नामक दोनों ग्रन्थोंके प्रणेता।

भगवत्पुर—एक प्राचीन जनपद। यह परमारवंशीय महाराज वाक्पतिराजदेवके राज्यभुक्त था।

भगवत्पुराण—एक महापुराण जिसमें १८ हजार श्लोक हैं। वैष्णवोंके मतसे विष्णुभागवत और शाक्तोंके मतसे देवीभागवत ही इस नामसे प्रसिद्ध है। विस्तृत विवरण पुराण शब्दमें देखो।

भगवत्मुदित—एक भाषा-कवि। इन्होंने हितचरित्र, सेवकचरित्र और रसिक-अन्यन्य-माला वनायी थी। इनकी कविता साधारण होती थी। ये राधावल्लभी सम्प्रदायके थे।

भगवत् रसिक—वृन्दावन निवासी एक कवि। इनका जन्म सं० १६०१में हुआ था। ये माधवदासजीके पुत्र और हरिदासजीके शिष्य थे। इनकी वनाई कुण्डलियों-का कवि-समाजमें वड़ा आदर है।

भगवतीदास—एक भाषाके कवि। ये जातिके ब्राह्मण थे। इनका जन्म सम्वत् १६८८में हुआ था। इनका वनाया भाषामें 'नचिकेतोपाख्यान' है जिसकी कविता मनोरम है।

भगवदानन्द—१ गौड़पादीव्याख्याके प्रणेता। इनका दूसरा नाम आनन्दतीर्थ है। २ स्वप्रकाशरहस्यके प्रणेता।

भगवदीय (सं० पु०) विष्णुके उपासक। (भाग० ५।६।१७)

भगवद्गीता (सं० स्त्री०) भीष्मपर्वके अन्तर्गत अष्टा-दशाध्यायात्मक कर्मयोग, ज्ञानयोग और भक्तियोग सूचक ग्रंथ। इसमें उन उपदेशों और प्रश्नोत्तरोंका वर्णन है जो भगवान् कृष्णचन्द्रने अर्जुनका मोह छुड़ाने-के लिये उससे युद्धस्थलमें किये थे। यह ग्रंथ प्रस्था चतुष्टयमें चौथा है और वहुत दिनोंसे महाभारतसे पृथक् माना जाता है। विशेष विवरण गीता शब्दमें देखो।

भगवद्द्रुम (सं० पु०) महावोधिवृक्ष।

भगवद्भक्त (सं० पु०) १ भगवानका भक्त, ईश्वर भक्त। २ विष्णुभक्त। ३ दक्षिण भारतके वैष्णवोंका एक सम्प्रदाय।

भगवद्भट्ट—नूतनतरिरसतरङ्गिणीटीकाके प्रणेता।

भगवद्भावक—छान्दोग्योपनिषद्वृत्तिके रचयिता।

भगवद्विग्रह (सं० पु०) भगवानका विग्रह, भगवानकी मूर्त्ति।

भगवन्त—मुकुन्द-विलासकाव्यके प्रणेता।

भगवन्तदेव—भरेह-नगरके अधिपति। ये सेङ्गर (शृङ्गिवर) जातीय स्मृतिभास्कर ग्रन्थके रचयिता नीलकण्ठके प्रति-पालक थे। उक्त ग्रन्थकारने अपने ग्रंथमें इस सेङ्गर राज-

वंशकी तालिका प्रदान की है। राजा कर्णके पुत्र विशोक, विशोकके अष्टशक, शक्रुके राय, रायके वैराटराज, वैराटके वीढ़राज, वीढ़के नरब्रह्मदेव, नरब्रह्मके मनुष्यदेव, मनुष्यके चन्द्रपाल, चन्द्रपालके शिवगण, शिवके रोलिचन्द्र, रोलिके कर्मसेन, कर्मके रामचंद्र, रामके यशोदेव, ताराचन्द्र, यशोदेवके ताराचन्द्रके पुत्र चक्रसेन, पौत्र राजसिंह और प्रपौत्र साहिदेव थे। इन्हीं साहिदेवके पुत्र भगवंतदेव विशेष विद्योत्साही और सज्जनप्रतिपालक थे।

भगवन्तनगर—अयोध्या प्रदेशके हर्दोई जिलान्तर्गत एक नगर। प्रायः दो सौ वर्ष हुए, सम्राट् औरङ्गजेबके हिंदू-दीवान राजा भगवन्तराय अपने नाम पर यह नगर स्थापित कर गए हैं।

भगवन्तराय—भाषाके एक कवि। इन्होंने तुलसीदासकृत मानस रामायणके सातों काण्डोंका कवित्तोंमें अनुवाद किया है। इनकी रचना अद्भुत है।

भगवन्तसिंह खोचर—गाजोपुरके एक हिंदू नरपति। इन्होंने राजद्रोही हो कर कोरा पर अधिकार जमाया और वहांके शासनकर्त्ता जानीसर खाँको भगा दिया। अन्तमें वे युद्धमें मारे गए। यह खबर दिल्ली पहुंचते ही राजमंत्री कमरुद्दीन खाँने अपने बहनोईके हत्यापराधकका बदला चुकानेके लिए उनके विरुद्ध युद्ध-यात्रा की; किंतु युद्धमें हार खा कर वे लौट गए। मन्त्रिवरके आदेशसे फर्रुखाबादके नवाब महम्मद खाँने कोरा पर चढ़ाई की; किंतु वे भी विफल मनोरथ हो अपने राज्यमें लौट आये। अन्तमें दिल्लीश्वर द्वारा यह राज्य बुर्हान-उल-मुल्कके हाथ सौंपा गया। नवाब और राज्यसैन्यमें घोरतर लड़ाई छिड़ी। युद्धक्षेत्रमें विशेष वीरत्व दिखा कर भगवंत कोराके चौकीदार दुर्जन सिंहके हाथसे मारे गए।

भगन्मय (सं० त्रि०) कृष्णार्पितचित्त, जो निश्चितरूपसे भगवान्के ध्यानमें लगा हो, ईश्वरमें लवलीन रहनेवाला।

भगवान् (हिं० वि०) भगवत् देखो।

भगवान्गञ्ज—अयोध्या जिलान्तर्गत एक प्राचीन ग्राम। यहां एक अति प्राचीन भग्न इष्टकस्तूप और ध्वंसावशिष्ट मन्दिरका निदर्शन पाया जाता है। प्रत्नतत्त्वविद्गण इस स्तूपको ईस्वी सन् छठी शताब्दीके पहलेका बना हुआ द्रोणस्तूपके जैसा अनुमान करते हैं।

भगवानलाल इन्द्रजी—स्वनामख्यात एक प्रत्नतत्त्ववित्। इन्होंने अपनी विद्यापराकाष्ठाके लिए पण्डित तथा डाक्टर की उपाधि प्राप्त की थी। इनके पूर्वपुरुषगण सौराठ- (सौराष्ट्र)-के नवाब सरकारके अधीन काम कर अथवा देशीय राजन्यवर्गको सहायता पा कर विशेष प्रतिष्ठाशाली हुए थे। उक्त ब्राह्मण-वंशके प्राचीन प्रथानुसार शैशवावस्थामें ही बालक भगवान्को संस्कृतभाषा सीखनी पड़ी। इसके अलावा उन्हें विद्यालयके निर्दिष्ट पाठ्य अध्ययन करने पड़ते थे। अपनी धीशक्तिके प्रभावसे और असाधारण अध्यवसायसे वे शीघ्र ही साहित्य, काव्य, दर्शन तथा शास्त्रमूलक संस्कृत ग्रन्थादिमें पारदर्शी हुए। ज्ञानवृद्धिके साथ साथ उनकी ऐतिहासिअनुशीलनी शक्ति भी दिनों दिन बढ़ती गई। स्वदेशस्थ गिर्नर पर्वत पर छिपी हुई प्राचीनतम गौरवकीर्त्तियोंकी ऐतिहासिक श्रुतिका अवलम्बन कर वे प्रत्नतत्त्वविषयक यथेष्ट अनुसन्धानका परिचय दे गये हैं।

बाल्यकालसे ही उनके हृदयमें यह अनुसन्धित्साप्रवृत्ति प्रबल हो उठी। उस समयकी आन्तरिक श्रद्धा तथा भक्तिके कारण वे गिर्नर-पर्वत पर चढ़ कर प्रायः इधर उधर घूमनेमें ही समय बिताते थे। पर्वतके ऊपर सम्राट् अशोकको प्रशस्ति और रुद्रदाम तथा स्कन्दगुप्तकी सामयिक शिलालिपि खोदित देख कर उनके हृदयमें बड़ा ही कौतुहल उत्पन्न हुआ। प्रस्तरगात्रमें खोदी हुई उस चित्रित लेखमालाका समावेश देख कर पहले वे चमत्कृत हो गए। उसे पढ़ने पर सम्भवतः उससे कोई अलौकिक तत्त्व आविष्कृत हो सकता है, यही चिन्ता उनके सुकुमार हृदयमें निरन्तर जागरुक रही। धीरे धीरे वे प्रिन्सेप साहबकृत 'भारतीय अक्षर तालिका' संग्रह कर उसीकी सहायतासे उसे पढ़ जनसाधारणको समझा देनेमें समर्थ हुए। बालककी इस अद्भुत प्रतिभाको देख कर फार्विस साहब (Mr- Kinloch Forbes)-ने भगवान्को पण्डितकार्यमें नियुक्त करनेके लिए डा० भाऊदाजीसे विशेष अनुरोध किया। तदनुसार वे १८६१ ई०में भाऊदाजी पण्डितके अधीन रह कर प्रत्नतत्त्वानुसन्धित्साके प्रशस्तक्षेत्रमें अग्रसर हुए। डा० भाऊदाजी और पण्डित गोपालपाण्डुरङ्ग एक साथ

मिल कर जिन सब शिलालिपि तथा ताम्रशासनादिकी प्रतिलिपि पढ़ते थे, उसकी शङ्का दूर करनेके लिए भगवानलाल मूलफलकका पाठ मिलाया करते थे। इसी उद्देशसे पहले सारे वम्बई प्रान्तसे आरम्भ कर पण्डित भगवानलाल गुजरात, काठियावाड़, उज्जयिनी, विदिशा, इलाहावाद, भितरी, सारनाथ और नेपाल तक पहुंचे *। वे केवल उक्त कई प्रदेशोंमें जा कर चुपचाप बैठे रहे सो नहीं, कार्यानुसार उन्होंने पूर्व और पश्चिम राजपूताना, जयशलमीर तक सारी मरुभूमि, मध्यभारत, मालव, भूपाल, सिन्देराज्य, मध्यप्रदेश, आगरा, मथुरा, वाराणसी प्रभृति स्थान, वङ्ग, विहार और उड़ीसा तथा उत्तरभारतके यूसुफजई जिलेके शाहवाजगढ़से पूर्व नेपाल तक हिमालय प्रदेशमें परिभ्रमण कर नाना स्थानोंके शिलाफलक और मुद्रादिकी प्रतिलिपिका पाठ तथा ग्रंथ एवं मुद्रादिकी प्रतिलिपिका पाठ तथा ग्रन्थ एवं मुद्राका संग्रह किया था। इसके अलावा अपने भ्रमणकालमें प्राप्त विभिन्न जाति, धर्मसम्प्रदाय और ध्वंसप्राय सुप्राचीन कीर्त्ति समूहका आमूल वृत्तान्त वे अपनी पुस्तकमें लिख गये हैं। १८७५-७६ ई०में इन्होंने अङ्गरेजी और प्राकृतभाषामें शिक्षा प्राप्त की। अंगरेजीभाषामें विशेष अभिज्ञ नहीं होने पर भी वे वैज्ञानिक ग्रन्थादि अनायास पढ़ लेते थे।

इस प्रकार प्रत्नतत्त्वानुसन्धानमें रह कर उन्होंने शिलालिपिके पढ़नेमें विशेष दक्षता लाभ की। नेपालका काम समाप्त कर वे लौट ही रहे थे, कि उसी समय १८७४ ई०की २९ वीं मईको डा० भाऊदाजीकी मृत्यु हो जाने और उनके वंशधरोंके अर्थसाहाय्य अस्वीकार करने पर उन्हें स्वतन्त्रभाव तथा पाण्डित्यसे ऐतिहासिक तत्त्वोंकी आलोचना करनेका अवसर मिला। १८७७ ई०से 'इण्डियन ऐण्टिक्वारी' और 'वम्बई ब्रांच आव रायल एशियाटिक सोसाइटीकी पत्रिकामें' उनके लिखे प्रवन्ध प्रकाशित होने लगे। इन्होंने उक्त दोनों पत्रिकामें जो अट्ठाईस प्रबंध लिखे थे, उनमें बहुतसे मूल्यवान् ऐतिहासिक सत्य आविष्कृत हुए हैं। इसके सिवा डा० कैनिंहमकी आर्किलाजिकल सर्वे रिपोर्ट और 'वम्बई गैजेटियर' नामक पुस्तकमें भी उन्होंने कई एक महामूल्य प्रबंध प्रकाशित किये।

१८८३ ई०में इन्होंने लिडेन यूनिभरसीटीसे Doctor of *Philosophy* की उपाधि पाई। इसके कुछ दिन बाद ही वे Koninklijk Institut vor de Taal Landen *Volken* Kunde van Nederlandsch Indie और Royal Asiatic Society of Great Britain aud *I*reland नामक दो सभाके अवैतनिक सभ्य चुने गए। डा० वार्गेश, डा० काम्बेल, डा० सेनार्ट, डा० कोड्रिन, डा० वूलर और प्रोफेसर कार्ण आदि महामना यूरोपीय पण्डितोंके साथ सर्वदा पत्रव्यवहारसे प्रत्नतत्त्व संबंधीय महामतका निर्द्धारण देते थे। वंबई नगरके अपने वालकेश्वर प्रासादमें संस्कृतज्ञ यूरोपीय अतिथिके समागम पर वे बड़े ही आनन्दित होते और उन लोगोंके सन्देहपूर्ण प्रत्नतत्त्वानुसंधानफलके प्रकृत उत्तरदानसे उन्हें उपकृत तथा तुष्ट करते थे। दुःखकी बात है; कि ऐसे उद्यमशील भारतसंतानने, भारत-इतिहासकी गम्भीरा गवेषणामें नियुक्त रह कर जिस वृक्षको लगाया, उसका सुमधुर फल और उन्हें अधिक दिन तक नहीं भोगना पड़ा। १८८८ ई०की १६ मईको ४९ वर्षकी उम्रमें वे भवलीला शेष कर स्वर्गधामको चल वसे *।

आजीवन परिश्रम करके भी वे कभी सांसारिक सुखस्वच्छन्दलाभ न कर सके। उनकी आर्थिक दशा उतनी अच्छी न थी। ऐतिहासिक गवेषणामें उनका मस्तिष्क आलोड़ित होने पर भी उन्हें उदरपूर्त्तिके लिए व्यतिव्यस्त होना पड़ता था। वुलर साहव (G. Buhler)-का कहना है, कि जिस समय भगवानलालसे उनका परिचय हुआ था उस समय वे किसी देशीय वणिक्के आफिसमें काम करते अथवा उसके हिस्सेदार थे। जीवन भर उसी

---

* रुद्रदाम और स्कन्दगुप्तके शिलालिपि-प्रवन्धकी उपक्रमणिकामें Jour, Bom, Br R, A S vol *VII 113* और vol *VIII, IX, XI* भागमें इस कथाका उल्लेख मिलता है।

* मृत्युके चार महीने पहले २७वीं जनवरीको इन्होंने वुलर साहवको अपने दैन्य और शारीरिक अस्वस्थताके वारेमें एक पत्र लिख भेजा जिसमें गूनागढ़के दीवानसे कुछ मदद मांगी थी।

कार्यमें लिप्त रह कर वे अपना संसारिक खर्च जुटाते थे। स्वभावतः स्वाधीन प्रकृतिके पक्षपाती होने पर भी उन्होंने कभी भी गवर्मेण्टके अधीन काम करना स्वीकार नहीं किया। कई वार वे वार्गेश और कैम्बेल साहबके अनुरोधसे वम्बई गैजेटियर पत्रिकाके संग्रहकार्यमें लगे थे। इसके अलावा काठियावाड़ प्रभृति देशीय राजाओंकी वदान्यतासे उन्हें विशेष कष्ट भोगना नहीं पड़ा। मृत्युके पहले ही उन्होंने अपनी संगृहीत प्राचीन मुद्रादि वृटिश म्यूजियममें दे दी थी।

भगवान गोला—वङ्गालके मुर्शिदावाद जिलान्तर्गत गङ्गा नदीके किनारे एक वाणिज्य-स्थान। यह अक्षा० २४° २०´ उ० और देशा० ८८° २०´ ३८´´ पू०के मध्य कलकत्तेसे ६० कोस उत्तर अवस्थित है। नये और पुरानेके भेदसे इसी नामके दो ग्राम ढाई कोसकी दूरी पर वसे हैं। मुसलमानी अधिकारमें पुराने ग्रामका अंश मुर्शिदावादका वाणिज्यकेन्द्र था और गंगाकी वाढ़से डूव जाने पर भी अभी यहां वहुत-से मनुष्य इकट्ठे होते हैं। यहां पुलीस रहती है। दूसरे समय जव नदीकी जलगति परिवर्त्तित हो जाती है, तव मनुष्य नये नगरमें चले आते हैं। कारण, उस समय पुराने भागमें पण्यवाही नौकादि नहीं आ जा सकती।

शोभासिंहके विद्रोहका दमन करनेके लिए वादशाही सेना जव वङ्गालकी ओर वढ़ी तव विद्रोहिनेता रहीम शाहने इसी भगवान गोलाके निकट समावेश हो कर जवरदस्त खां और वादशाही सेनाके विरुद्ध घोरतर युद्ध किया था।

भगवान दास—एक निष्ठावान् वैष्णव साधु। एक समय राजाने आज्ञा घोषित कर दी, कि जो कोई वैष्णव तिलक और तुलसी माला धारण करेंगे, तीन दिन वाद उनका सिर काट लिया जायगा। इस कठिन दण्डाज्ञाको सुनते ही अनेष्ठिकोंके मनमें भय उत्पन्न हुआ और उन्होंने कण्ठी तथा तिलकका परित्याग किया। किन्तु भगवानदासने उस प्रमादकालमें मृत्युका निश्चय जान सारे शरीरमें तिलक लगा लिया। तीन दिन वाद राज-कर्मचारीगण उन्हें पकड़ कर राजाके समीप ले गये। अनन्तर राजाने उनकी विमल भक्ति-निष्ठासे संतुष्ट हो कर उनको छोड़ दिया। (भक्तमाल २५)

भगवानदास (राजा)—अम्वराधिपति राजा विहारीमल्लके पुत्र और मुगलसेनापति राजा मानसिंहके पिता। ये कच्छवाह-वंशके थे। ९६९ ई०में सम्राट् अकवरशाह जव अजमेर देखने गये, उस समय पिता और पुत्र दोनोंने मिल कर सम्राट्से आश्रय मांगा था *।

९८० ई०में सर्णलके समीप इव्राहिम-हुसेनमिर्जाके साथ युद्धके समय उन्होंने अकवरशाहकी जान वचाई थी। अनन्तर वे राणा अमरसिंहको दिल्लीमें पकड़ लाये और इसीसे उनकी यशःख्याति चारों ओर फैल गई। सम्राट्के राज्यकालके तेरहवें वर्षमें कच्छवाहगण उनका तुउल पञ्जाव ले गए, तदनुसार राजा भगवानदास भी उक्त प्रदेशके शासनकर्त्ता वनाये गए। २९वें वर्षमें भगवानकी कन्याके साथ सम्राट्-पुत्र सलीमका विवाह हुआ †। ३२वें वर्षमें ये पांच हजारी सेनानायक और जावूलीस्थानके शासनकर्त्ताके पद पर अभिषिक्त हुए। खैरावादमें रहनेके समय उनका मस्तिष्क चञ्चल हो गया और उन्होंने आत्मनाशकी इच्छासे अपने शरीरमें अस्त्राघात किया। अनन्तर आरोग्यलाभ करने पर उनके परिवारवर्गके भरणपोषणके लिए सम्राट्ने (३२वें वर्षमें) विहारमें एक जागीर प्रदान की और मानसिंह वहांके राजप्रतिनिधि वनाये गए।

९९८ हिजरीमें राजा टोडरमलकी मृत्युके वाद ही लाहोर नगरमें उनका देहान्त हुआ। प्रवाद है, कि टोडरमलकी अन्त्येष्टिक्रियाके वाद वे घर लौटते ही मूत्रकृच्छ्र रोगसे आक्रान्त हुए और इसके पांच दिन वाद ही १५८९ ई०की १५वीं नवम्वरको उन्होंने मानवलीला संवरण की।

उनकी मृत्युके समय सम्राट् कावुलमें थे। उन्होंने वहींसे वङ्ग विहारके अधिपति कुमार मानसिंहके ऊपर राजाकी उपाधि और पांच हजारी सेनानायकका पद अर्पण किया। राजा भगवानदासने जीवितकालमें लाहोर नगरकी जुम्मा-मसजिद वनवाई।

* राजा विहारीमल्लने अपनी कन्या दे कर अकवर शाहके साथ कुटुम्विता दृढ़ की। राजपूतोंमें इन्होंने ही सवसे पहले मुगलराजके अधीन नौकरी पाई थी। विहारीमल्ल देखो।

† राजपुत्र खुसरू ही इस राजपूत-वालाके एकमात्र पुत्र थे।

भगवानमित्र—वङ्गालके प्रथम तथा प्रधान कानूनगो। कांटोयाके निकटवर्त्ती खजूरडिहीके मित्रवंश तथा उत्तर-राढ़ीय कायस्थ कुलमें इनका जन्म हुआ था। भगवान्‌के बाद उनके छोटे भाई वङ्गविनोद बहुत दिनों तक कानूनगो पद पर प्रतिष्ठित रहे। विनोद उदार-प्रकृतिके मनुष्य थे, आत्मीय-स्वजनका प्रतिपालन करना उनके जीवनका महाव्रत था। उनके ही मानगुणसे मित्रवंशने 'वङ्गाधिकारी' आख्या प्राप्त की है। उनके स्वनामचिह्नित विनोदनगर और औरङ्गावाद परगना वङ्गाधिकारीवंशकी प्राचीन भूसम्पत्ति है।

भगवानसिंह—नाभावंशके एक राजा। नाभा देखो।

भगवेदन (सं० त्रि०) ऐश्वर्य ज्ञापक।

भगशास्त्र (सं० क्ली०) भगव्यापारवोधकं शास्त्रं मध्यपदलोपि कर्मधा०। कामशास्त्र।

भगस् (सं० क्ली०) भग, योनि।

भगहन् (सं० पु०) भगं ऐश्वर्यं संहारकाले हन्ति हन-क्विप्। विष्णु।

भगहारी (सं० त्रि०) शिव, महादेव।

भगाक्षिहन् (सं० त्रि०) शिव।

भगाङ्कुर (सं० पु०) भगे गुह्यस्थाने अंकुर इव। अर्शरोग, ववासीर।

भगाधान (सं० क्ली०) भगस्य आधानं। १ माहात्म्याधान। २ सौभाग्य।

भगाना (हिं० क्रि०) १ किसी दूसरेको भगानेमें प्रवृत्त करना, दौड़ाना। २ हटाना, खदेड़ना।

भगाल (सं० क्ली०) भजति सुखदुःखादिकं कर्मजन्यमनेनेति भज्यतेऽनेनेति वा भज (पीयुक्वयिभ्यां कालनिति उण् ३।७६) इति बाहुलकात् भजेरपीति उज्वलदत्तः इति कालन्, न्यङ्क्वादित्वात् कुत्वञ्च। नृ-करोटि, आदमीकी खोपड़ी।

भगालिन् (सं० पु०) भगालं नृकपालं भूषणत्वेनास्त्यस्येति इनि। १ नृकपालधारी, आदमीकी खोपड़ी धारण करनेवाला। २ शिव, महादेव।

भगास्त्र (सं० पु०) प्राचीन कालका एक अस्त्र।

भगिनी (सं० स्त्री०) भगं यत्नः पित्रादितो द्रव्यदाने विद्यतेऽस्या इति इनि, ततो ङीप्। १ सहोदरा, वहन। भगं योनिरस्या अस्तीति भग-इनि ङीप्। २ स्त्रीमात्र। मनुमें लिखा है, कि पर स्त्री अथवा जिस स्त्रीके साथ किसी प्रकारका सम्बन्ध नहीं है, उसे भवति, सुभगे वा भगिनिसे सम्बोधन करना उचित है।

"परत्नी तु या स्त्री स्यादसम्बन्धा च योनितः।
तां ब्रूयाद्भवतीत्येवं सुभगे भगिनीति च॥" (मनु २।१२९)

भगिनीपति (सं० पु०) भगिन्याः पतिः। स्वसृभर्त्ता, वहनोई। पर्याय—आवुत्त, भाव।

भगिनीय (सं० पु०) १ भगिनी सम्बन्धीय वा भगिनीजात-पुत्र। २ भागिनेय, भानजा।

भगीरथ (सं० पु०) भं ज्योतिष्क मण्डलं गीर्वाङ्मयं तत्र रथ इन्द्रियाणि रथ इव यस्य। सूर्यवंशीय नृपभेद। ये सूर्यवंशीय अंशुमानके लड़के दिलीपके पुत्र थे। कपिलके शापसे जल जानेके कारण सगरवंशीय राजाओंने गंगाको पृथ्वी पर लानेका बहुत प्रयत्न किया था, पर उनको सफलता नहीं हुई। अन्तमें भगीरथ घोर तपस्या करके गङ्गाको पृथ्वी पर लाये थे। इस प्रकार उन्होंने अपने पुरखाओंका उद्धार किया था। इसीलिये गङ्गाका एक नाम भागीरथी भी है।

(मत्स्यपु० १२ अ० रामा० १।४२, ४३, ४४ स०)

गङ्गा और भागीरथी देखो।

(त्रि०) २ भगीरथकी तपस्याके समान भारी, बहुत बड़ा। जैसे भगीरथ प्रयत्न।

भगीरथ अवस्थि—एक विख्यात टीकाकार। ये पीतमुण्डी वंशीय श्रीहर्षदेवके पुत्र और बलभद्र पण्डितके वंशधर थे। कुर्माचलाधिप जगच्चन्द्रके आश्रयमें रह कर इन्होंने अच्छी प्रतिष्ठा प्राप्त की थी। ये काव्यादर्शटीका, किरातार्जुनीयटीका, विजयादेवीमाहात्म्यटीका, नैषधीयटीका, महिम्नस्तवटीका, तत्त्वदीपिका नामक मेघदूतटीका, जगच्चन्द्रदीपिका नामक रघुवंश टीका और शिशुपालवधकी टीका लिख गये हैं।

भगीरथमिश्र—वल्लभाचार्यकृत न्याय लीलावतीकी टीकाके रचयिता।

भगीरथमेघ—एक ग्रंथकार, ये रामचन्द्रके पुत्र और जयदेवके पौत्र थे। लोग इन्हें भगीरथ ठक्कुर भी कहा करते थे। जयदेव पण्डितके निकट इन्होंने विद्या

सीखो थी। किरणावलीप्रकाश व्याख्या, द्रव्यप्रकाशिका, न्यायकुसुमाञ्जलिप्रकाश प्रकाशिका और न्यायलीलावती-प्रकाशव्याख्या नामक न्यायग्रन्थ इनके बनाये हुए मिलते हैं।

भगेड़ू (हिं० वि०) १ भागा हुआ, जो कहींसे छिप कर भागा हो। २ जो काम पड़ने पर भाग जाता हो, कायर।

भगेलू (हिं० वि०) भगेड़ू देखो।

भगेवित (सं० त्रि०) धनविषय रक्षणयुक्त।

भगेश (सं० पु०) भगस्य ईशः ६ तत्। ऐश्वर्य्यादिके ईश्वर।

भगोड़ा (हिं० वि०) १ भागा हुआ। २ भागनेवाला, कायर।

भगोल (सं० पु०) भानां नक्षत्राणां नक्षत्रसमूहेन विरचितः गोलाकारः पदार्थः। भपञ्जर, नक्षत्रचक्र।

खगोल देखो।

भगौहां (हिं० वि०) भागनेको उद्यत। २ कायर। ३ गेरुसे रंगा हुआ, भगवा।

भग्गू (हिं० वि०) जो विपत्ति देख कर भागता हो, कायर।

भग्न (सं० त्रि०) भनज-क्त, सङ्गात्, विश्लिष्टत्वात् तथात्वं। १ पराजित, जो हारा या हराया गया हो। २ चूर्णित, टूटा हुआ। (क्ली०) भज्यते आमर्द्यते विश्लिष्यते इति भञ्ज-क्त। ३ रोगविशेष। हड्डीके स्थानच्युत होने अथवा टूटनेसे शरीरमें जो व्याधि उत्पन्न होती है, उसे भग्नरोग कहते हैं। सुश्रुतमें इसके निदानादि इस प्रकार लिखे गये हैं—उच्च स्थानसे पतन, प्रहार, आक्षेपण, हिंस्रपशुके दर्शन आदि नाना कारणोंसे अस्थि और अस्थिसन्धि भग्न हो जाती है। एक सन्धिस्थलसे दूसरे सन्धिस्थलके मध्यवर्त्ती अस्थिखण्ड को काण्ड कहते हैं। इस प्रकारको दो काण्डास्थि जिस संयोगस्थल पर आवद्ध है, उसीका नाम अस्थिसन्धि है। प्रधानतः भग्नरोग दो प्रकारका है—संधिभङ्ग (Dislocation) और काण्डभङ्ग (Fratcure)। कारण भेदसे संधिभङ्ग ६ प्रकारका है,—उत्पिष्ट, विश्लिष्ट, विवर्त्तित, तिर्य्यकगत, क्षिप्त और अधोभग्न। साधारणतः इन छः प्रकारके संधिभग्नोंसे ही अङ्गका प्रसारण, आकुञ्चन, परिवर्त्तन, आक्षेपण, और इतस्ततः विक्षेप तथा कार्य्यकालमें उन सब अङ्गोंकी शक्तिहीनताका बोध, अतिशय यातना और स्पर्श करनेसे असह्य वेदना का अनुभव होता है।

संधिके उत्पिष्ट होनेसे दोनों ही पार्श्व सूज जाते हैं और साथ साथ वेदना भी होती है। विशेषतः रातको वह वेदना और भी बढ़ जाती है। संधिके विश्लिष्ट होनेसे थोड़ी सूजन और सतत वेदना तथा संधिकी विकृति होती है। संधिके विवर्त्तित होनेसे अङ्ग विकृत और दोनों पार्श्वमें तीव्र वेदना मालूम होती है। तिर्य्यक्गत होनेसे भी इसी प्रकारकी वेदनाका अनुभव होता है। संधिस्थलसे अस्थिके विक्षिप्त होनेसे शूलवत् वेदना और अधोभङ्ग होनेसे वेदना तथा संधिका विघटन होता है।

काण्डभङ्ग साधारणतः १२ प्रकारका है—१ कर्कटक, २ अश्वकर्ण, ३ चूर्णित, ४ पिच्चित, ५ अस्थिच्छलित, ६ काण्डभङ्ग, ७ मज्जानुगत, ८ अतिपातित, ९ वक्र, १० छिन्न, ११ पाटित और १२ स्फुटित। इस रोगमें अक्सर अतिशय स्वयथु, स्पन्दन, विवर्त्तन, स्पर्श करनेसे असह्य वेदना, टीपनेसे शब्दानुभव तथा अङ्गसमूह श्रस्त और नाना प्रकारकी वेदना आदि लक्षण दिखाई देते हैं। ऐसी अवस्थामें रोगी कभी भी सुखलाभ नहीं कर सकता।

१ अस्थिदण्डके दोनों ओर टूट कर मध्यस्थलमें ग्रंथिकी तरह उन्नत हो जानेसे उसको कर्कटक, २ दोनों भङ्गास्थि घोड़के कानकी तरह उन्नत हो जानेसे अश्वकर्ण, ३ अस्थिके चूरचूर हो जानेसे चूर्णित, अतिशय स्थूल और अधिक सूज जानेसे पिच्चित, दोनों पार्श्वकी छोटी हड्डियोंके उठ जानेसे अस्थितच्छल्लित, ६ प्रस्तरण करनेमें कम्पित होनेसे काण्डभङ्ग, ७ किसी अस्थिखण्डके अस्थिके मध्य प्रवेश कर मज्जाको विद्ध करनेसे उसे मज्जानुगत, ८ अस्थिके अच्छी तरह छिन्न हो जानेसे अतिपातित, ९ अस्थिके कुछ वक्र हो कर भङ्ग वा विश्लिष्ट होनेसे वक्र, १० अस्थितके भङ्ग हो कर एक पार्श्वमें कुछ लगे रहनेसे छिन्न, ११ नाना प्रकारसे विदीर्ण हो कर वेदनाविशिष्ट होनेसे पाटित और १२ शूकपूर्णके सदृश सूज आनेसे उसको स्फुटित

कहते हैं। इनमेंसे चर्णित, छिन्न, अतिपातित और मज्जानुगत कृच्छ्र साध्य हैं। कृश, वृद्ध, क्षीण और क्षयरोगी कुष्ठ और श्वास रोगियोंके सन्धिभङ्ग होनेसे वह कष्टसाध्य समझा जाता है।

जिसका कपाल विलकुल फट गया हो तथा कटि देशकी सन्धि मुक्त वा भ्रष्ट हो और जघनदेश प्रतिपिष्ट हो गया है, उसके जीवनकी कोई आशा न रखें। चिकित्सव ऐसे रोगियोंका परित्याग कर दें। जिसके कपालकी अस्थि विश्लिष्ट और ललाट चूर-चूर हो गया है, स्तन, शङ्ख, पृष्ठ और मस्तक टूट गया है तथा जिसकी अस्थि और सन्धि स्थान पहलेसे ही विकृत हो गया है, वैसे रोगीके भी जीवनकी आशा न रखें, चिकित्सकके लाख प्रयत्न करने पर भी वह आरोग्य नहीं हो सकता।

(सुश्रुत नि० १५ अ०)

इस रोगकी चिकित्साके सम्बन्धमें निम्नलिखित प्रकरणोंके प्रति विशेष लक्ष्य रखना कर्त्तव्य है।

अल्पाहारी, अमिताचारी, अथवा वायुप्रकृति व्यक्तिके भग्नरोग होनेसे अथवा भग्नरोगमें किसी प्रकारका उपद्रव होनेसे वह बड़ी मुश्किलसे आरोग्य होता है। मैथुन, सूर्यताप, व्यायाम, अथवा रूक्ष अन्नका भग्नरोगीको कदापि सेवन नहीं करना चाहिये। अभिज्ञ चिकित्सकको चाहिये कि वे भग्नरोगीको पालि धान्यका तण्डुल, मांस रस, दुग्ध, घृत, छोटे मटरका जूस तथा अन्यान्य पुष्टिकर आहार खानेको दे। मधुक, उडुम्बर, अश्वत्थ, पलास, अर्जुन, वंशसाल अथवा वटके त्वक्का भग्नस्थानमें प्रलेप दे कर उसे बांध दे। मंजिष्ठा, यष्टिमधु, अथवा रक्तचन्दन वा घृतको सौ वार धो कर पिष्ट शालितण्डुलके साथ पिला कर प्रलेप देनेसे भग्न आरोग्य होता है। हेमन्त और शिशिर कालमें प्रति ७ दिनके अन्तर पर, शरत् और वसन्त कालमें ५ दिनके अन्तर पर तथा आग्नेय ऋतुमें प्रति तीन दिनके अन्तर पर प्रलेप बदल कर फिरसे बांध देना उचित है। भग्न स्थानमें कोई दोष होनेसे वन्धनको खोल कर फिरसे बांध देना आवश्यक है। उस वन्धनके शिथिल होनेसे सन्धिस्थान स्थिर नहीं रहता। बंधन दृढ़ होनेसे वह जगह सूज जाती और वेदना होती है। पीछे वह स्थान पक जा सकता है। अतः बंधन इस प्रकार रहना चाहिये कि किसी प्रकारकी तकलीफ न मालूम पड़े। न्यग्रोधादिका शीतल क्वाथ उस बंधन-स्थान पर सींच दे। भङ्गस्थानमें वेदना मालूम होनेसे पञ्चमूलीके साथ दुग्धको पाक कर उस दुग्ध अथवा चक्रतैलका उस पर सेक दें। काल और दोषका विचार कर दोषघ्न औषधके साथ सेक और प्रलेपका शीतल अवस्थामें भङ्गके ऊपर प्रयोग करना उचित है। वराह वा शूकरके दुग्धको घृत और मधुर औषधके साथ पका कर जब वह ठंडा हो जाय, तो उसे लाक्षारसके साथ भग्नरोगीको सवेरे पीनेको दे। भङ्गस्थानमें फोड़ा होनेसे उसमें प्रतिसारणीय द्रव्यका प्रचुर परिमाणमें घृत और मधुके साथ सेक दे तथा यथाविधि भङ्गकी चिकित्सा करे। बालककी अस्थि वा सन्धिभङ्ग सहजमें आरोग्य होता है। किसी रोगीके यह भङ्गरोग यदि अल्पदोषविशिष्ट तथा शिशिर कालमें हो, तो बचपनमें एक मासमें और बुढ़ापेमें तीन मासमें सन्धि दृढ़ हो जाती है। भङ्गस्थानकी अस्थि टेढ़ी हो जानेसे उसे उन्नमित और उन्नमित होनेसे उसे अवनमित करके बंधन करे। अस्थि यदि सन्धिस्थानसे हट जाय, तो उस स्थानको अच्छी तरह खींच कर भग्न अस्थिके साथ मिला देना उचित है। सन्धिस्थानसे अस्थिके अधोगत होनेसे उसे ऊपर उन्नत करके पीछे वन्धन और लेपनादिका प्रयोग करे।

प्रत्यङ्ग भङ्गकी चिकित्सादि नीचे लिखी जाती है। नखसन्धि उत्पिष्ट हो कर रक्तके सञ्चित होनेसे आरा नामक शस्त्रद्वारा उस स्थानको मथित कर सञ्चित रक्त बाहर निकाल दे। पीछे उसमें पीसे हुए शालितण्डुलका लेप दे। उंगली टूटने वा संधिविश्लिष्ट होनेसे संधिस्थानको समभावमें स्थापित करके उसे बारीक कपड़ेसे लपेट दे और ऊपरसे घीका सेक दे। जांघ वा उसके भंग होनेसे उसे दीर्घभावमें खींच कर संधिस्थान पर पूर्वोक्त प्रकारसे वृक्षकी छाल रख दे और ऊपरसे वारीक कपड़े द्वारा बंधन कर दे। कटीके भङ्ग होनेसे कटीके ऊर्द्ध और अधोभागको खींच कर संधिभागको अपने स्थानमें संयोजित करे। सन्धिको अपने स्थानमें संयोजित करनेमें वस्तिक्रिया करनी होती है।

पार्श्वदेशकी अस्थिके भङ्ग होनेसे रोगीको खड़ा करके घीसे मालिश करे। पीछे दक्षिण वा वाम पार्श्वकी भङ्गास्थिके ऊपर प्रलेप बाँध दे। युवा व्यक्तिके दांत टूटे न हों, पर हलते हों और रक्त निकलता हो, तो उस दांतको अच्छी तरह बैठा दे और बाहरसे संधानीय द्रव्यका शीतल आलेपन प्रयोग करे। वृद्धके दांत हलनेसे वह कदापि नहीं बैठता।

अधिक कालकी संधि यदि विश्लिष्ट हो जाय, तो स्नेह-प्रयोग करके स्वेद दे तथा मृदु प्रक्रिया करे। काण्डभङ्ग हो कर यदि विपरीत भावमें संलग्न हो भर जाय तो फिरसे समभावमें संलग्न कर उसका प्रतीकार करे। व्रणके मध्य शुष्क अस्थि रहनेसे उसे निकाल कर फिरसे संयत कर दे। शरीरका ऊर्द्ध्वदेश (मस्तिष्क) टूटने पर कर्णपूरण घृतपान और नस्य उपकारक है। किसी प्रशाखाके टूटने पर अनुवासन कर्त्तव्य है।

(सुश्रुत चिकि० अ०)

भावप्रकाशमें इसकी चिकित्साका विषय इस प्रकार लिखा है—बबूलकी छालके चूर्णको मधुके साथ खानेसे तीन दिनके अन्दर टूटी हुई हड्डी जुड़ कर वज्र सदृश दृढ़ हो जाती है। इमलीके फलको पीस कर तेल और सौवीरके साथ मिला कर स्वेद देनेसे टूटी हुई हड्डी पहलेकी तरह जुड़ जाती है। पहलौठी गायके दूधको काकोल्यादिगण द्वारा पाक करे। पीछे ठंढा होने पर उसमें घृत और लाख डाल दे। सवेरे इसका पान करनेसे भङ्गरोग जाता रहता है। अस्थिसंहार, लाक्षा, गेहूं और आककी छाल, इन्हें एक साथ हो या पृथक् पृथक्, घृत वा दुग्धके साथ पान करनेसे विमुक्तसंधि और अस्थिभङ्ग जुड़ जाता है। लहसून, मधु, लाक्षा, घृत और चीनीको एक साथ पीस कर खानेसे सब प्रकारका भङ्ग आरोग्य होता है। अर्जुन और लाक्षाचूर्ण, घृत और गुग्गुलके साथ लेहन करके पीछे दुग्ध और घृत भोजन करनेसे भङ्ग संयोजित होता है। पिठवनके मूलको चूर कर मांस रसके साथ खानेसे तीन सप्ताहके अन्दर अस्थिभङ्ग जाता रहता है। अलावा इसके आभागुग्गुल, लाक्षागुग्गुल और गन्धतैल आदि औषध विशेष उपकारी हैं।

भङ्गरोगीको लवण, कटु, क्षार, अम्ल, रूक्षद्रव्य, परिश्रम, स्त्रीसङ्ग और व्यायाम आदिका परित्याग करना चाहिये। भावप्रकाशादि वैद्यक ग्रन्थोंमें इसका विस्तृत विवरण लिखा है, विस्तार होनेके भयसे यहां पर संक्षेपमें लिखा गया।

भग्नदूत (सं० पु०) रणक्षेत्रसे हार कर भागी हुई वह सेना जो राजाको पराजयका समाचार देने आती हो।

भग्नपाद (सं० क्ली०) १ फलितज्योतिषके अनुसार पुनर्वसु, उत्तराषाढ़ा, कृत्तिका, उत्तरफाल्गुनी, पूर्वभाद्रपद और विशाखा ये छः नक्षत्र। इनमेंसे किसी एकमें मनुष्यके मरनेसे द्विपाद दोष लगता है। इस दोषकी शान्ति अशौचकालके अन्दर ही करनेका विधान है। २ वह जिसके पैर टूट गये हों।

भग्नपादर्क्ष (सं० क्ली०) भग्नपादं ऋक्षं। पुनर्वस्वादि छः नक्षत्र। भग्नपाद देखो।

भग्नपृष्ठ (सं० पु०) भग्नंपृष्ठस्मिन्। १ सम्मुख। २ त्रुटित मेरुदण्ड। (त्रि०) भग्नं पृष्ठं यस्य। ३ जिसकी पीठ टूट गई हो।

भग्नप्रक्रम (सं० पु०) भग्नः प्रक्रमो यत्र। काव्यगत वाक्य दोष भेद। दोष शब्द देखो।

भग्नप्रक्रमता (सं० स्त्री०) काव्यका दोष, रचनाका क्रमभङ्ग।

भग्नसंधि (सं० पु०) भग्नः संधिरत्रास्माद् वा। संधि स्थान भङ्गरोगविशेष। भग्न रोग देखो।

भग्नसंधिक (सं० क्ली०) भग्नो विश्लिष्टः संधि संधां तोऽत्र। तर्क, मट्ठा।

भग्नांश (सं० पु०) १ मूल द्रव्यका विभाग वा खण्ड। २ गणित शास्त्रोक्त अङ्कविशेष। किसी वस्तुको दो तीन वा उससे अधिक समान भागोंमें बांटनेसे उसके एक-एक विभागको, अथवा जिस राशि द्वारा एकका अंश व्यक्त किया जाय उसे भग्नांश कहते हैं। इस प्रकार विभक्त किसी एक अवच्छिन्न राशिके समान अंशके दो भागोंमेंसे एक भागको अर्द्धक कहते हैं।

विशेष विवरण भिन्न शब्दमें देखो।

भग्नात्मा (सं० पु०) भग्नः क्रमेण हीन आत्मा देहो यस्य; कृष्ण प्रतिपदादि क्रमेणैकैककलाच्छेदेन भग्नदेहत्वादस्य तथात्वं। चन्द्रमा।

भग्नावशेष (सं० पु०) १ किसी टूटे-फूटे मकान या उजड़ी हुई वस्तीका वचा अंश, खंडहर। २ किसी टूटे हुए पदार्थके वचे हुए टुकड़े।

भग्नाश (सं० त्रि०) भग्ना आशा यस्य। जिसकी आशा भंग हो गई हो, हताश।

भग्नी (सं० स्त्री०) भगिनी पृषोदरादित्वात् साधुः। भगिनी, वहन।

भङ्कारी (सं० स्त्री०) भमित्यव्यक्तशब्दं करोतीति कृ-अन्, गौरादित्वात् ङिप्। दंश, मच्छड़।

भङ्क्तृ (सं० स्त्री०) भनज्-कर्त्तरि तृण्। भङ्गकर्त्ता, तोड़ने फोड़नेवाला।

भङ्ग (सं० पु०) भज्यते इति भञ्ज-कर्मणि घञ्। १ तरङ्ग, लहर। २ पराजय, हार। ३ खण्ड। ४ रोगविशेष। ५ भेद। ६ कौटिल्य, कुटिलता। ७ भय, डर। ८ विच्छित्ति, वाधा। ९ रोगमात्र। १० निर्गम। ११ गमन। १२ एक नागका नाम। १३ टूटनेका भाव, विनाश। १४ टेढ़े होने या झुकनेका भाव। १५ लकवा नामक रोग। इसमें रोगीके अंग टेढ़े और बेकाम हो जाते हैं।

भङ्गकार (सं० पु०) १ अविक्षित् नृपपुत्रभेद। २ सत्राजित्पुत्रभेद।

भङ्गक्षत्रिय—उत्तर और पूर्ववङ्गवासी राजवंशी और पलीया लोगोंकी एक संज्ञा।

भङ्गवास (सं० त्रि०) भङ्गेन वासः सौरभमस्याः। हरिद्रा, हलदी।

भङ्गसार्थ (सं० त्रि०) भङ्गं वक्रभावं अनार्जवत्वमित्यर्थः स्यति व्यवस्यति यत् या क्रिया इति यावत्, भङ्गसमर्थयतीति अर्थ-अच्, कौटिल्यव्यवसायक्रियार्थित्वादस्य तथात्वं। कुटिल।

भङ्गा (सं० स्त्री०) भज्यते इति भनज-(हलश्च। पा ३।३। १२१) इति वाहुलकात् घञ्, टाप्। वृक्षविशेष, भांग। पर्याय—गंजा, मातुलानी, मादिनी, विजया, जया। गुण—कफकर, तिक्त, ग्राहक, पाचक, लघु, तीक्ष्णोष्ण, पित्तवर्द्धक, मोह, मन्दवायु और अग्निवर्द्धक (भावप्रकाश पू०) सिद्धि देखो।

भङ्गाकट (सं० क्ली०) भङ्गायाः रजः भङ्गा-रजसि कटच्। भङ्गौषध।

भाङ्गन (सं० पु०) भङ्गेन अनिति इति अन्-अच्। मत्स्यविशेष, एक प्रकाकी मछली। पर्याय—दीर्घजङ्गल।

भङ्गारी (सं० स्त्री०) भङ्कारी पृषोदरादित्वात् साधुः। दंश मच्छड़।

भङ्गास्वन—एक राजा। इन्होंने पुत्रकी कामनासे इन्द्रविद्विष्ट अग्निष्टुत् यज्ञका अनुष्ठान किया। यज्ञके फलसे उनके एक सौ पुत्र हुए। किसी कारणसे इन्द्र उन पर वड़े कुपित हुए और वदला लेनेका मौका ढूंढ़ने लगे। एक दिन राजा जब शिकारको वाहर गये, तब इन्द्रने मायाजाल फैला कर उन्हें मोह लिया। जब राजा मायामोहित हो इधर उधर भ्रमण करते करते वहुत थक गये तब प्यास वुझानेकी इच्छासे एक तालावके किनारे उपस्थित हुए। तालावमें ज्यों ही उन्होंने डूब लगाया, त्यों ही वे स्त्री-रूपमें परिणत हो गये। अब वे घर लौट अपने पुत्रोंके ऊपर राज्यभार सौंप निश्चिन्त मनसे जङ्गल को चल दिये। वहां एक तपस्वीके साथ उनकी मुलाकात हुई। दोनोंके सहवाससे स्त्रीरूपी राजाके गर्भसे पुनः सौ पुत्र उत्पन्न हुए। राजाने इन पुत्रोंको औरसपुत्रोंके साथ सुखसे रहनेका हुकुम दिया। इन सब राजकुमारोंको एक साथ रहते देख इन्द्रने उनके वीच भ्रातृविरोध पैदा कर दिया। उस विरोधने ऐसा भयंकररूप धारण कियाँ, कि वे सबके सब एक दूसरेके हाथ मारे गये। यह संवाद पा कर राजा रोदन करने लगे। इस समय ब्राह्मणरूपमें पहुंच कर इन्द्रने उनसे कहा, 'तुमने अनादर करके मेरे विद्विष्ट अग्निष्टुत् यज्ञका अनुष्ठान किया था। उसीके फलसे तुम्हारे सभी पुत्र विनष्ट हुए हैं।' अब इन्द्रके चरणोंमें गिर कर राजाने उन्हें प्रसन्न किया। इंद्र वोले; 'मैं तुम्हारे दो सौ पुत्रोंमेंसे केवल एक सौको प्राणदान करूंगा, सो तुम पुरुषावस्थाके या स्त्री-अवस्थाके सौ पुत्रोंका प्राणदान चाहते हो, साफ साफ कहो।' उत्तरमें राजाने स्त्री-अवस्थाके सौ पुत्रोंके प्राणदानके लिये प्रार्थना की। इंद्रके इसका कारण पूछने पर राजाने कहा, 'स्त्रियोंको संतानस्नेह पुरुषकी अपेक्षा वहुत ज्यादा है, इसीसे मैं अङ्गनावस्थाके पुत्रोंके प्राणके लिये प्रार्थना करता हूं।' इस पर इंद्रने उनके सभी पुत्रोंको जिला दिया और वादमें राजासे पूछा, 'तुम अभी पुरुष वा स्त्री इनमेंसे किस रूपमें रहना चाहते हो?

राजाने उत्तर दिया, 'स्त्रीरूप ही मुझे पसन्द आता है। इसलिये मैं फिर पुरुष होना नहीं चाहता।' इसका कारण पूछने पर राजाने जवाब दिया, 'देवराज ! संसर्ग-कालमें स्त्री-पुरुषके मध्य स्त्रीको ही विशेष आनन्दलाभ होता है, इस कारण मैं स्त्रीभावमें ही रहना चाहता हूं। सच कहता हूं, जबसे मैंने स्त्रीत्वलाभ किया है; तबसे मैं बड़ा ही आनन्द लाभ करता आया हूं, इसीसे इस रूपके परित्याग करनेकी मेरी बिलकुल इच्छा नहीं है।' तभीसे राजा स्त्रीरूपमें ही रहने लगे। (भारत अनुशा० १२ अ०)

भङ्गि (सं० स्त्री०) भज्यते इति भनज्-इन्-न्यङ्क्वादित्वात् कुत्वं। १ विच्छेद। २ कुटिलता, टेढ़ाई। ३ विन्यास, अंदाज। ४ कल्लोल, लहर। ५ भङ्ग। ६ व्याज। ७ प्रतिकृति। ८ अवयवादिके भङ्गवत् विकृतभावके अनुकरण-रूप कार्य।

भङ्गिन् (सं० त्रि०) भङ्ग-अस्त्यर्थे इनि। भङ्गप्रवण, भङ्ग-शील, नष्ट होनेवाला।

भङ्गिभाव (सं० पु०) वक्रभाव।

भङ्गिमत् (सं० त्रि०) भङ्गिः विद्यतेऽस्य मतुप्। भङ्गि-युक्त।

भङ्गिमन् (सं० पु०) भङ्ग-बाहुलकात् स्वार्थे इमनिच्। १ भङ्गि, शोभा। (त्रि०) २ तरङ्गयुक्त।

भङ्गी (सं० स्त्री०) भङ्गि कृदिकारादिति पक्षे ङीप्। १ भङ्गि। (पु०) २ भङ्गशील, नष्ट होनेवाला। ३ भङ्ग करने-वाला, भंगकारी। ४ रेखाओंके झुकावसे खींचा हुआ चित्र या बेलबूटा आदि।

भङ्गी—(मिसल) सिखोंका एक सम्प्रदाय। पाञ्जाब-वासी जाठवंशीय छज्जासिंह इस दलके प्रतिष्ठाता हैं। इन्होंने सिख गुरु वैरागी बन्दासे 'पहाल' ग्रहण किया था। बन्दाकी मृत्युके बाद भीमसिंह, मल्लसिंह और जगत्सिंह नामक तीन आत्मीयोंने उनके निकट दीक्षा ली। परस्पर-प्रीति-सौहार्दसे और आत्मीयतामें सम्बद्ध हो कर ये तीनों दस्युवृत्ति करनेको आशासे एक दल बांधनेकी कोशिश करने लगे। धीरे धीरे मिहानसिंह, गुलाबसिंह, करूरसिंह, और गुरुबक्ससिंह, मागरसिंह, गङ्गोरा और सनवन्तसिंह आदि सरदारोंने उक्त छज्जासिंहके निकट 'पहल' ले कर सिखधर्म धारण किया। ये सभी छज्जा-सिंहको गुरुकी तरह मानते थे। इस दलके सभी भङ्ग पीनेमें मस्त रहते हैं; इसलिए इस सम्प्रदायके सिख-गण भङ्गी नामसे प्रसिद्ध हुए।

इस प्रकारसे नाना स्थानोंके सिख-सम्प्रदायिकोंके द्वारा पुष्ट हो कर भङ्गी-सरदारने रात्रिके समय दस्यु-वृत्ति करना प्रारम्भ कर दी। लूट-खसोटमें कृतकार्य होने पर एक दिन उनके हृदयमें गुरुगोविन्दके भविष्यत् वाक्यका स्मरण हो आया। धीरे धीरे उनके हृदयमें राज्य करनेकी इच्छा हुई और इसके लिए वे अपना बल बढ़ाने लगे। इसी बीचमें छज्जासिंहकी मृत्यु हो गई और भीमसिंहने उस दलका नेतृत्व ग्रहण किया। उन्हींकी अधिनायकतामें भंगी सम्प्रदायको सुश्रृङ्खलता और बलाधिक्य सम्पादित हुआ। नादिरशाहके भारत-आक्रमण के बाद, भीमसिंह अपने सहकारी मल्लसिंह और जगत्-सिंहको ले कर इस बलशाली सिखसम्प्रदायकी स्थापना कर गये।

भीमसिंहकी मृत्युके बाद उनके दत्तक पुत्र हरिसिंह इस मिसलके सरदार चुने गये। इस निर्भीक और साहसी-नेताके नीचे रह कर भङ्गीगणोंने लूट पाट कर बहुत अर्थोपार्जन किया। इन्होंने करीब २० हजार अनुचर ले कर सियालकोट, कड़ियाल और मोरोवाल नामके स्थान अधिकार किये। गिलवाली ग्राममें इन्होंने अपना प्रधान अड्डा कायम किया। चिनिओत और झंग लूटनेके बाद इन्होंने आबदाली-राज अहमदशाहके विरुद्ध युद्ध किया। १७६२ ई०में कोट ख्वाजा सैद आक्रमण करके ये लाहोरके अफगान-शासनकर्त्ता ख्वाजा ओवेदाका यथासर्वस्व हरण कर लाये।

उसके बाद हरिसिंह द्वारा परिचालित भंगियोंने सिन्धुसमतट और डेराजात प्रदेशमें लूट मचाई तथा अन्यान्य सेनाओंने रावलपिण्डी, मालवा और माँझा प्रदेश जय कर जम्मू लूटा। जम्मूराज रणजित्देव इनकी अधीनता स्वीकार करनेके लिए बाध्य हुए। यमुनाके समीप भंगी सरदार रायसिंह और भगतसिंहने रोहिला और महाराष्ट्र सेनाका सामना कर नाजिब उद्दौलाको विपर्यस्त और निहत किया। १७६३ ई०में रामगढ़िया और कनहियादलके सहयोगसे उन्होंने कसूर आक्रमण

किया था। दूसरे वर्ष वे पटियाला-राज अमरसिंहके विरुद्ध युद्ध करते समय मारे गये।

हरिसिंहके दो स्त्री थीं। पहली स्त्रीसे झण्डासिंह तथा दूसरीसे छरतसिंह, दीवानसिंह और वासुसिंह, इस तरह पांच पुत्र थे। झण्डासिंहने दलपतित्व ग्रहण कर चारों भाइयों तथा साहवसिंह, रायसिंह, भागसिंह, सुधासिंह, दोधिया और निधानसिंह आदि सरदारोंकी सहायतासे भंगि-शक्तिको शीर्ष स्थान तक पहुंचा दिया।

१७६६ ई०में झण्डासिंह बहुत सेनाके साथ मूलतान के शासनकर्त्ता सुजा खां और वहवलपुरके दाउद-पुत्रोंके साथ शतद्रु नदीके किनारे इनका जो युद्ध हुआ था, उसमें पाकपत्तन तक स्थान सिख-राज्यकी सीमा स्थिरीकृत हुई थी। वादमें कसूरके पठानोंको पराजित कर उन्होंने पुनः १७७१ ई०में मूलतान आक्रमण किया। करीब डेढ़ मास तक मुलतान-दुर्ग घेरे रहनेके वाद ये भाग आनेके लिए वाध्य हुए। उस समय अफ़गान सेनापति जहान खाँ और दाउद-पुत्रोंने विशेष रण-निपुणताका परिचय दिया था।

१७७२ ई०में झण्डासिंहने लहनासिंह आदि सिखसरदारोंके सहयोगसे पुनः मूलतान आक्रमण किया और वहांके शासनकर्ता और दाऊद पुत्रोंको पराजित कर मुलतान प्रदेश अपनेमें वांट कर दीवानसिंहको किलेदार वना दिया। मूलतानसे लौट कर इन्होंने वेलूच प्रदेश, झङ्ग, मानखेड़ा और काल वाग अधिकार किया। उसके वाद वे अमृतसर देखने गये, तो वहां भङ्गी किला * और एक वाजार वसा गये। फिर रामनगरकी तरफ अग्रसर हो कर इन्होंने छट्ठ लोगोंसे प्रसिद्ध जमजमा † नामक तोप पर कब्जा किया। जम्मूके सुकेर्चकिया सरदार चरत्सिंह और कन्हियापति जयसिंह व्रजराजदेवके पक्षमें हो कर उनके विपक्ष आचरण करनेसे वे सेना-सहित जम्मूकी तरफ अग्रसर हुए। वहां कई दिन तक घोरतर युद्ध होनेके वाद चरत्सिंह और खुद उनकी मृत्यु हो जानेसे ¶ जयसिंहने जयपताका फहराई।

झण्डासिंहकी हत्याके वाद उनके भाई गण्डासिंह दल-पति चुने गये। इन्होंने अपने दलकी विशेष अध्यवसायसे पुष्टि की। इन्हींके उद्यमसे भङ्गी दुर्गका निर्माण-कार्य सम्पादित हुआ और अमृतसरनगरी सौधमालासे विभूषित हुई।

कन्हिया सरदार जयसिंहकी विश्वासघातकतासे अपने भाईकी मृत्यु पर गण्डासिंहके हृदयकी आग जोरोंसे धधक रही थी। वे विवादके लिए छिद्रान्वेषण करने लगे। आखिर पठानकोटजागीरके सम्बन्धमें झगड़ा खड़ा हुआ। + पठान-कोट लौटाया नहीं गया, यह देख वे सेना सहित पठान-कोटकी तरफ अग्रसर हुए।

तारासिंह उनके आनेकी खवर पा कर बड़े घवराये और अपने दल-पति गुरुवक्ससिंहकी सहायतासे आत्म-रक्षाकी चेष्टा करने लगे। दीनानगरके सामने दोनों दलोंमें १० दिन तक भारी युद्ध हुआ, परन्तु सहसा गण्डासिंहकी मृत्यु हो जानेसे युद्धकी फल-निष्पत्ति न हो सकी। उनके पुत्र देशासिंह नावालिग थे, अतः भतीजे चरत्सिंहने अधिनायकता ग्रहण की। इस युद्धमें शत्रुओं के हाथसे चरत्सिंहको मृत्यु होने पर भङ्गी दल छत्रभङ्ग हो कर पठानकोट छोड़ गया।

अमृतसरमें जा कर भङ्गी-दलने वालक देशासिंहको अपना सरदार घोषित किया। वीर हरिसिंह और झण्डासिंह द्वारा परिचालित भङ्गि-सेना और सरदारगण क्रमशः वालककी अधीनताकी उपेक्षा करते हुए स्वाधीन होनेके चेष्टा करने लगे। १७७१ ई०में मूलतानके राजा

* लोन-मण्डीके पीछे अब भी उस ध्वंसावशिष्ट किलेका चिह्न पाया जाता है।

† अंग्रेज-सेनापति सर हेनरी हार्डिञ्जने १८४५ ई०में फिरोज-शहरके युद्धमें यह तोप प्राप्त की थी। लाहोरके सेन्ट्रल-म्युजियमके सामनेके दरवाजे पर अब भी वह रखी गई है।

¶ अपने ही एक सैनिकसे मृत्यु हुई थी।

+ झण्डासिंहने नन्दसिंह नामके एक मिसलदारको पठानकोट दिया था। उसकी विधवा स्त्रीने तारासिंह कन्हियाको अपनी कन्या समर्पित की थी; इसलिए शीघ्र ही वह सम्पत्ति जमाईके हाथ लगी। भङ्गीकी सम्पत्ति कन्हियाओंके हाथ लगते देख कर भंगदा सरदारने उसे लौटा देनेको कहा। इसी प्रसंगसे दोनोंमें विवाद हो गया।

मुज़फ्फर खांके विद्रोही होने पर दीवानसिंहने विशेष निपुणताके साथ उनका दमन किया था। इसी बीचमें अहमदशाहके पुत्र तैमूरशाह काबुलके सिंहासन पर बैठ कर पञ्जाबराज्य दखल करनेकी मनशासे सेना तयार करने लगे। उधर सिखोंने भी विपत्तिकी सम्भावना देख तयारियां करनी शुरू कर दीं। १७७७-७८ ई०में मुलतान प्रदेशमें अफगान और सिख सेनामें घोरतर युद्ध हुआ। अफगानीसेनापति हाजीखाँ इस युद्धमें बन्दी हुए। सिखोंने बड़ी निपुणताके साथ उन्हें तोपसे उड़ा दिया। इस प्रकार कठोर अत्याचारसे प्रपीड़ित हो कर शाह-तैमूरने पुनः दूसरे वर्ष शीतकालमें भङ्गीदलका दमन करनेके लिए जङ्गीखाँको भेजा। इस दुरानी सरदारने युसुफ-जै, दुरानी, मुगल और काजलवासियोंकी सहायतासे सिखोंको परास्त कर मुलतान पर अधिकार कर लिया और सुजाखांको वहांका शासनकर्त्ता बना दिया। अफगान-विप्लव शान्त होने पर भङ्गी सरदार देशासिंह त्रिनिओत-वासीयोंके दमनार्थ अग्रसर हुए। शुकेचकिया सरदार महासिंहके साथ किसी एक खण्ड युद्धके बाद १७८२ ई०में रणक्षेत्रमें उनकी मृत्यु हो गई।

भङ्गी-सरदार हरिसिंहके प्रसिद्ध सेनापति गुरुबक्स सिंहने कुछ समय तक अपने उपद्रवादि द्वारा भङ्गी गौरवकी रक्षा की थी। उनकी मृत्युके बाद दत्तक पुत्र लहना सिंह और उनके दौहित्र गूजरसिंहमें विरोध खड़ा हुआ। पीछे उस सम्पत्तिके समानरूपसे विभक्त हो जाने पर दोनों सरदारके झण्डासिंह और गण्डासिंहके सहयोगसे युद्ध विग्रहादि करने पर भी उन्होंने स्वतन्त्ररूपसे जो कार्यादि किये थे, भङ्गी-इतिहासमें वे भी उल्लेख-योग्य हैं।

अहमदशाह भारतसे लौटते समय लाहोरमें काबुली-मल्ल नामक एक हिन्दूको शासनकर्त्ता नियुक्त कर गये थे। लहना सिंह और गूजर सिंहने दल-सहित आक्रमण कर लाहोर लूट लिया। १७६५ ई०में गूजर सिंहने उत्तर-पञ्जाब अधिकार करनेकी चेष्टा की। लाहोरमें दो वर्ष रहनेके बाद, १७६७ ई०में अहमदशाहके आखिरी बार भारत-आक्रमणके समय, वे अफगानी-सेनाके आनेकी खबरसे डर कर लाहोर छोड़ पञ्जाबकी तरफ भागे; परन्तु अहमदशाह उक्त दोनों भङ्गी-सरदारोंके हाथ लाहोरका कर्तृत्व सौंप कर काबुल चले गये। बादमें ३० वर्ष तक इन्होंने शान्तिसे लाहोर राजधानीमें रह कर राज्य भोगा था। पीछे शाह जमानने काबुलसिंहासन पर बैठ कर भारत-साम्राज्य स्थापनके लिए, १७९३, १७९५ और १७९६ ई०में लगातार तीन बार पञ्जाब पर आक्रमण किया। पहलेके दोनों युद्धमें वे सफल न होने पर भी तीसरे युद्धमें उन्होंने लाहोर पर कब्जा कर ही लिया। १७९७ ई०में इसी जनवरीको लहनासिंह नगरकी चाबी दे कर भाग गये। शाह जमानके लौट जाने पर उसी वर्ष लहनासिंह और शोभासिंहने लाहोर अधिकार कर लिया; किन्तु थोड़े ही समय बाद उन दोनोंकी मृत्यु हो जानेसे लहनाके पुत्र चेत्सिंह और शोभाके पुत्र मोहरसिंहने शासनकर्त्ताका पद प्राप्त किया। राज्यशासनमें अक्षमता और मद्यपानादि दोषसे उनके राज्यमें विशृङ्खलता होने लगी। मौका देख प्रसिद्ध शुकेचिया सरदार रणजित्सिंहने लाहोर-आक्रमणका सङ्कल्प किया। १७९९ ई०में अन्यान्य भङ्गी-सरदारोंके षड्यंत्रसे बुलाये जाने पर उन्होंने सेना-सहित लाहोरमें प्रवेश किया; इससे चेत्सिंह और मोहरसिंह भाग गये।

उधर भंगी मिसलके दलपति देशासिंहकी मृत्युके बाद उनके नाबालिग पुत्र गुलाब सिंहने १७८२ ई०में पितृ-पद प्राप्त किया। उनकी बुद्धिवृत्ति विशेष परिस्फुट न होनेसे उनके भाई करम सिंह मिसलका सब काम-काज देखते थे। गुलाब सिंहने पहले ही कसूर पर कब्जा कर लिया था, परन्तु वे ज्यादा दिन उसका शासन न कर सके। १७९४ ई०में कसूरके पठान सरदार निजामउद्दीन खाँने उसे पुनः अपने अधिकारमें कर लिया। १७७७ ई०में रणजित् सिंहकी लाहोर-विजयसे डर कर गुलाबसिंह भंगी, जेसासिंह रामगढ़ियां और निजामउद्दीनने एक साथ मिल कर रणजित्सिंहके प्रभावको खर्वित करनेकी चेष्टा की। लाहोर और अमृतसरके बीचके भसिन नगरमें दोनों दलोंकी मुठभेड़ हुई। इस युद्धमें मिलित सरदार सेनादलको पराजय स्वीकार करनी पड़ी। वहीं पर मद्यपान-जनित कम्पप्रलाप रोगसे गुलाबसिंहकी मृत्यु हुई।

गुलाबकी मृत्युके बाद १० वर्षके पुत्र गुरुदीतसिंहने

पितृसिंहासन प्राप्त किया। परन्तु मिसल-परिचालनाका भार उनकी माता और मुसम्मात सुखान पर दिया गया। भङ्गियोंके अमृतसर-दुर्गकी अभिलाषासे रणजित्‌सिंह विवादके लिए छिद्रान्वेषण करने लगे। आखिर जमजमा तोप मांगी, और उसके न मिलने पर भङ्गी-दुर्ग पर धावा बोल दिया। भङ्गी-सेनादल ५ घण्टा तक युद्ध करनेके बाद रणमें संग डाल कर भाग गया। रानीमाता निरुपाय देख कर पुत्र गुरुदोतको ले रामगढ़ भाग गई। (१८०२ ई०)।

लाहोर विजयके बाद गूज्जरसिंहने दलबल सहित उत्तरकी ओर प्रस्थान किया। उनकी वीर-वाहिनीने विशेष उद्यमके साथ एक एक कर क्रमशः गुजरात, जम्मू, इसलामगढ़, पञ्ज और देव भताला, गरुड़, भोमवेर और मांझा प्रदेश अधिकारपूर्वक लूटे। बादमें भकरोंके प्रसिद्ध रोहतास (रोटस) दुर्गको जीत कर अपना प्रसिद्धि की। इनके मध्यमपुत्र साहवसिंहके साथ शुकेर्चिकिया चरतसिंहकी कन्या राजकौरका विवाह हुआ। ज्येष्ठपुत्र सूखासिंह पिताके साथ कलहमें मारे गये और मध्यमपुत्र अपने साले महासिंहके लिए पिता-अपमान करनेके कारण पितृस्नेहसे वञ्चित रहे। वृद्ध गूज्जरसिंह अन्तमें कनिष्ठ फतेसिंहको अपनी सम्पत्तिका उत्तराधिकारी स्थिर कर लाहोर लौट आये। वहां १९८८ ई० में उनकी मृत्यु हुई।

अब पितृ-सम्पत्तिके लिए दोनों भाइयोंमें विवाद उपस्थित होते देख, महासिंहने फतेसिंहका पक्ष लिया। इस सूत्रमें साले बहनोई दोनोंमें झगड़ा उठ खड़ा हुआ। करीब २ वर्ष इसी प्रकार मनोमालिन्यमें बीतने पर, १७९२ ई०में दोनों शत्रुओंके हृदयोद्दीप्त अग्नि प्रज्वलित हो उठी। महासिंहने दलसहित आ कर सोधरादुर्गमें साहवसिंहको घेर लिया, परन्तु दैववशात् उनकी मृत्यु होने पर भी भंगियोंकी ही विजय हुई। १७९८ ई०में जब शाह जमानने चौथी बार पञ्जाब पर आक्रमण किया, तब भी इस सिखसम्प्रदायने विशेष रणनिपुणताका परिचय दिया था।

शाह जमान्‌के भेजे हुए दुर्रानी सेनापति सहित ५ हजार सेना नष्ट कर देने और अन्यान्य साहसिकताके परिचयोंसे साहिवसिंहकी वीरत्वप्रभा किसी समय समग्र पञ्जाबप्रदेशमें विभासित हो गई थी। परन्तु धीरे धीरे घोर मदिरासक्त हो कर वे इतने निकम्मे बन गये कि उनका उद्यम, साहस, वीरत्व आदि एक साथ ही लुप्त हो गया। प्रतिद्वन्द्वी सामन्त और सरदारोंके विरोधी हो कर वे अपना ही बल घटाने लगे। रणजित्‌सिंहने मौका समझ उनकी समस्त सम्पत्ति पर आक्रमण किया और उनका सर्वस्व अपने नव-साम्राज्यमें मिला लिया। १८१० ई०में साहिवसिंहकी माता लछमीमाई-की प्रार्थना पर रणजित्‌सिंहने उनके भरणपोषणके लिए साहिवसिंहको एक लाख रुपयेकी जागीर दे दी। मुल-तान-विजयके बाद, उन्होंने उक्त महात्माकी विधवा पत्नी दयाकुमारी और रतनकुमारीके साथ चादरान्दजी-प्रथासे विवाह किया। गूज्जरसिंहके कनिष्ठ पुत्रने कपूरथलाके अहलूवलिया सरदारके अधीन कर्मग्रहण किया। उनके एकमात्र वंशधर जयमलसिंहने पितृसम्पत्तिसे वञ्चित रह कर रामगढ़में जीवन विताया। इस प्रकार पञ्जाब-केशरी रणजित्‌सिंहके अभ्युदयसे यह महाप्रभावशाली भङ्गीसम्प्रदाय छत्रभङ्ग हो कर लोपको प्राप्त हुआ।

भङ्गी—उत्तर-पश्चिम और दक्षिण-भारतवासी एक निकृष्ट जाति। झाड़ूदारीका काम ही इनका जातीय व्यवसाय है। इस जातिकी उत्पत्तिके विषयमें विशेष मतभेद है। कोई कोई मेहतर, चण्डाल वा डोमसे इस जातिकी उत्पत्ति मानते हैं। मुसलमानोंके अधिकारमें ये लोग मेहतर, हलालखोर, खाकरोब, बाहरवाला, मुसल्ली आदि नामों-से पुकारे जाते थे। पञ्जाबप्रदेशके भङ्गी लोग छुहारा नामसे प्रसिद्ध हैं। इसके अलावा लालवेगी, शेख आदि स्वतन्त्र भङ्गियोंके धर्मसम्प्रदाय वा उनके प्रवर्तकों-के नामसे पैदा हुए हैं। किसीका मत है कि, भङ्ग पीनेके कारण इनका नाम भङ्गी पड़ा है। बनारसके रहनेवाले झाड़ूदारोंका कहना है, कि 'सर्वभङ्ग' अर्थात् सम्पूर्णरूपसे हिन्दू समाजसे विच्युत, इस अर्थसे भंगी नाम पड़ा है।

बनारसके लालवेगी लोग ४र्थ पाण्डव नकुलमें ही अपने पूर्वपुरुषकी कल्पना करते हैं। इस उद्देशकी सिद्धिके लिये उन्होंने पाण्डवका महाप्रस्थान, बादमें

सीताकी खोजमें रामचन्द्रके साथ नकुलका साक्षात्कार, रामानुचर द्वारा नकुलकी पूजा, नकुलका ब्राह्मणवध और चण्डाल-ख्याति तथा चण्डालरूपी नकुलको पापमुक्तिके लिए गुरुनानकका मर्त्यंगमन आदि विविध प्रसंगोंकी अवतारणा की है। जहां पर वह चण्डाल ईश्वर-चिन्तामें रत था, वही स्थान चण्डालगढ़ (वर्तमान चुनार) नामसे प्रसिद्ध हुआ। मुसलमान लोग उन्हें गद नामसे पुकारते हैं। उनका आस्थाना गदपहाड़ मुसलमान और भंगियोंका पवित्र तीर्थस्थान है।

उस चण्डालके कालू और जीवन नामके दो पुत्र थे। कालूके वंशधर लोग डोम और चण्डाल कहलाये, तथा जीवनके वंशसे भंगियोंकी उत्पत्ति हुई। लालवेग नामक एक साधुपुरुषकी कृपासे जीवनको ७ पुत्रोंकी प्राप्ति हुई। साधुपुरुषके कृपालब्ध होनेसे उसको सन्तान परम्परा लालवेगी कहलाई। किम्वदन्ती इस प्रकार है— माकिदन-वीर आलेकसन्दरके भारतमें किसी अभावनीय कारणसे जीवनको उत्पीड़ित करने पर जीवन अपने पुत्रों सहित भागा। उसका प्रथम पुत्र ग्रीक-वीर द्वारा यवन-धर्ममें दीक्षित होने पर उसके वंशधर शेख वा मुसलमान भंगी, द्वितीयका पुत्रगण रावतभंगी, तृतीयका वंश धानुक, चतुर्थका वंश वांसफांड़, पञ्चमकी सन्तान हेला, छठेकी सन्तति हाड़ी और सातवेंका वंश लालवेगी नामसे परिचित हुआ *। इसके सिवा इनकी उत्पत्तिकी और भी अनेक किम्वदन्तियां हैं।

भंगियोंकी उत्पत्तिके विषयोंमें जो आख्यान सुननेमें आते हैं, उनसे अनुमान होता है, कि यह झाड़ूदार-वंश पहले हिन्दू था, वादमें कोई कोई मुसलमानोंके अधिकार-कालमें इसलामधर्ममें दीक्षित हुआ है। यही कारण है, कि इनके उपाख्यानोंमें हिन्दू और वौद्ध पुराणोक्त पाण्डव, वाल्मीकि, शिव, गोरक्षनाथ, मत्स्येन्द्रनाथ, शकन्दनाथ आदि नाम और मुसलमान इतिहासोक्त गजनीराज, पीराण पीर, अवदुल कादेरजिलानी, सेखसरम आदिके प्रसंग पाये जाते हैं।

* एक एक थोकके विषयमें ऐसे ही पृथक् आख्यान हैं।

इस भंगीजातिकी हिन्दूशाखामें १३५६ और मुसलमानशाखामें ४७ थोक हैं, ऐसी प्रसिद्धि पाई जाती है। उनमें वागड़ो, वाई, वाइसवार, वालकचमरिया, वड़गूजर, भदौरिया, विसेनशोव, वुन्देलिया, चमरिया, चन्देला, चौहान, छोपी, घेलफोड़, गदरिया, जादोन, यदुवंशी, जैसवार, जोगिया, कछवाह, कायस्थवंशी, किन्नर, सकरवार, टांक, ठाकुरवाई, तुर्किया, अन्तर्वेदी, विलखरिया, वनौध, वरनवार, भोजपुरी, रावत, गाजीपुरी-रावत, जमालपुरिया, जमुनापारी, जनकपुरी, जौनपुरी, कानपुरी, कनपुरिया, काठोरिया, मंगलौरी, मुलतानी, नानकपुरी, सैयदपुरी, शर्करिया, उज्जैनवाल, वदलान, धारलेग, नानकशाही, चनहिया, मिलौर, मचाल, देशवाल, गहलोत, सोद, वचनवार, भगवतिया, भोकर, चौहेला, चुनार, धकौलिया, गरौठिया, जंघारे, जग्गुवली, नौरतन, निरवानी, पानवाडी, फूलपानवार, राठी, रोलपाल, सेखावत, तरखारिया, चुतेले, कलावत, खरौतिया, कोठिया, कौशिकिया, मथुरिया, पथरवाड, चुरैली पथरग्रोटी, दङ्कमर्दन, राजौरिया, गंगाचनी, वरची, भूमियान, वसोर, डोमर, सूपभगत, औसियार, देशी डोम, वांसफोड़ और तुरैहा इत्यादि शाखाएं ही प्रधान हैं।

इनमें हिन्दू और मुसलमानका निर्णय करना कठिन है। लालवेगी और शेख-मेहतर लोग अपनेको हिन्दू वा मुसलमान वतलाने पर भी मन्दिर या मसजिदमें प्रवेश नहीं कर पाते। धर्ममतके प्रभेदके कारण इनमें भी थोड़ा वहुत मतपार्थक्य देखा जाता है। मजहवी नामके नानकशाही लालवेगी भंगी शेख-मेहतरोंके साथ बैठ कर भोजन करते हैं। ये सभी हिन्दू और मुसलमानोंका जूठा खा सकते हैं। अपनेसे भिन्न श्रेणीमें ये अपक्व द्रव्य ग्रहण करते हैं और अपनी श्रेणीमें कच्ची रसोई खानेमें कोई दोष नहीं मानते। मुसलमानी त्वक्-छेदन (सुन्नत) कराते हैं और सूअरका मांस अस्पृश्य समझते हैं। हेल-भंगी कुत्तोंको नहीं छूते। लालवेगी और शेख-मेहतर लोग अन्य हीन सम्प्रदायके लोगोंको अपनी श्रेणीमें मिला सकते हैं। ये लोग साधारणतः दूसरोंके मुर्देको नहीं जलाते, परन्तु दिल्लीके पश्चिममें रहनेवाले भंगी शवदाह और झाड़ूदारके कामसे

घृणा नहीं करते। अन्यत्र चमार लोग ही झाड़ू देते हैं और प्रायः डोम लोग ही मुर्दे जलाते हैं। मजहवी और रंगरेटा भंगी सिखधर्मको मानते हैं। पहाल लेनेके वाद ये लोग सिर पर बड़े बड़े बाल रखाते हैं। ये साधारणतः सफाईसे रहना पसन्द करते हैं। कभी भी दूसरेके मलमूत्र आदिका स्पर्श नहीं करते। ताम्रकूट सेवन सभीमें निषिद्ध है।

ये सिख-सम्प्रदायमें शामिल होने पर भी नीचत्वके कारण अन्यान्य सिख इनके साथ नहीं रहते। गुरु तेग बहादुरको ये अपना प्रधान गुरु कहते हैं। लालवेगी और हिन्दू छुहराओंमें इनके शादी-व्याह होते हैं। सैनिकवृत्तिमें ये विशेष पटुता रखते हैं। रंगरेटा लोग अपनेको मजहवियोंसे ऊंचा वतलाते हैं। दस्युवृत्तिके लिए इनकी विशेष ख्याति है।

भंगी जातिको उत्पत्ति और विस्तृतिका कोई धारावाहिक इतिहास न रहने पर, भी वर्तमानमें इनकी जातीय भित्ति अपेक्षाकृत प्रशस्ततर हो गई है। निम्नश्रेणीमें जन्म लेने पर भी इनके हृदयमें धर्मभाव प्रवल हैं। अमृतसर, सरहरपुरके मकदुम शाहकी कब्र, वांदा जिलेकी कालिकामाई, विन्ध्याचलकी विन्ध्यावासिनी और गढ़पहाड़ी आदि तीर्थोंमें इनका समागम होता है। चैत्र मासके अन्तमें ये लोग महासमारोहसे उक्त शक्ति मूर्त्तियोंकी पूजा किया करते हैं। उस दिन ये लोग वहां पुत्रपौत्रादिका चूड़ाकरणादि करते और देवीके समक्ष यथायोग्य पूजा वलि आदि चढ़ाते हैं।

वनारसके सिवालय (शिवालय) घाटमें गुरुनानकके नामसे पवित्र पंचायत-अखाड़ा है, वहां इनके सामाजिक झगड़ोंका निवटारा होता है। इनमें भी समाज-परिचालक एक चौधरी होता है और उसके नीचे और भी कई कर्मचारी होते हैं। इस प्रकारसे इनकी सभा संगठित है और उनके नीचेके कर्मचारीगण साधारण लोगोंमें सम्मानार्ह होते हैं। अंग्रेजी सेना-निवासमें काम करते रहनेके कारण, इन लोगोंने भी अपने अपने दलपति आदिके अंग्रेजी नाम रख लिये हैं। आवश्यक होने पर उन कर्मचारियोंका चुनाव हो जाता है। चौधरी वा दलपति 'ब्रिगेडियर-जमादार' और उसके नीचेके कर्मचारी 'मुन्सिफ' और 'नायव' आदि कहलाते हैं। उक्त पदोंके ग्रहण करते समय उस शाखाके तमाम लोगोंको एक भोज देनेसे पद-प्राप्तिमें फिर कोई वाधा नहीं रहती।

इस सामाजिक सभामें किसी विषयकी नालिश रुजू करनी हो तो पहले १।) सवा रुपया तलवाना देना पड़ता है। मामला संगीन होने पर सभापति और उसे श्रेणीके तमाम आदमियोंको खवर देनी पड़ती है, तथा जहां जिस समय विचार होगा उसकी भी इत्तला दी जाती है। विचार-क्षेत्रमें एक वहुत लम्बी-चौड़ी चरपाई पर, एक तरफ पहले जमादार, उसके वाद चारों कर्मचारी और फिर साधारण पुरुष बैठते हैं। *

इस भावमें साधारणतः तीन प्रकारके विचार होते हैं,—१ अर्थदण्ड, २ वल-पूर्वक भोग या खाना वसूली और ३ जातिच्युति (कुजात) करना। यदि कोई इस सभाके विचारको अग्राह्य कर अर्थदण्ड न दे, तो उसे समाजसे वहिष्कृत कर दिया जाता है। असती स्त्रियोंके लिए वड़ी भारी सजाकी व्यवस्था थी। वहुधा स्त्री-हत्याजनित पातक भोगना पड़ता था, इस कारण वह व्यवस्था अव उठा दी गई है। जातिसे वहिष्कृत व्यक्ति यदि फिर कभी

---

* वनारसके लालवेगियोंमें ८ श्रेणी हैं। १ सदर या सेना-निवासके साधारण कर्मचारी द्वारा रक्षित, २ काली-पल्टन या वङ्गाल-पदातिक सेनादलके अधीन, ३ लाल कुरती या अंग्रेजी सेनाके परिचारक, ४ तेसान या राजघाट मुगलसराय आदि रेल्वे-स्टेशनके कर्मचारी, ६ रामनगर या वारानसी सरकारके कर्मचारी, ७ कोठीवाल अर्थात् भद्र साहव आदिके घरमें काम करनेवाले और जनरली यानी अंग्रेजी सेनादलमें वनारसी शासनके समय अंग्रेजोंक अधीन काम करनेवालोंके वंशधर। एक समाजगत होने पर भी इन ८ सम्प्रदायोंमें परस्पर कुछ भिन्नता है; और इसीलिए उनमें स्वतन्त्र कर्मचारी नियोगकी व्यवस्था है। सामाजिक झगड़े मिटाने समय दलपतिके सामने उक्त कर्मचारीयोंको स्थान दिया जाता है। उसके वाद साधारण लोगोंका स्थान है। अंग्रेजी सेनामें काम करते रहनेसे इन लोगोंने अपनेमें भी उसी तरहके नाम रखे हैं। साधारण लोग सिपाही और दूत-रूपसे साधारणके निकट सूचनादि पहुंचानेवाले प्यादा कहलाते हैं।

उपयुक्त अर्थदण्ड वा भोजन दे कर समाजमें प्रवेश करना चाहता है, तो यह सभा उसे जातिमें शामिल कर सकती है।

ये अपनी अपनी श्रेणीमें विवाह करनेके लिए वाध्य हैं; परन्तु स्वगोत्र (तर)में नहीं। किन्तु यदि अन्य श्रेणीकी स्त्री पहले लालवेगी-समाजमें शामिल हो जाय, तो फिर उसके ग्रहण करनेमें कोई आपत्ति नहीं। इस प्रकारसे ये डोम, चमार आदिकी कन्या भी ग्रहण करते हैं। पहली स्त्रीकी अनुमतिके विना, अथवा उसके वांझपनेको सावित किये विना ये लोग दूसरा विवाह नहीं कर सकते। फुफेरो या मौसेरी वहन और बड़ी सालीके साथ विवाह करना निषिद्ध है। अन्यान्य थोकोंमें भी ऐसे ही कुछ नियम वने हुए हैं। परन्तु हेलाके सिवा अन्य साधारण लोग स्वश्रेणीके अतिरिक्त अन्य श्रेणीमें विवाह नहीं कर सकते। सवर्णविवाहको ये लोग 'शादी' कहते हैं। डोम, धोवी आदि निम्न श्रेणीकी कन्या यदि यथाविधि भंगी-दीक्षा ले कर विवाह करे तो उस असवर्ण-विवाहका नाम 'सगाई' होगा। वह स्त्री धर्मान्तर ग्रहण करने पर भी 'परजात' समझी जायगी, परन्तु उसकी सन्तान भंगी होगी। शेख लोग इस्लामधर्ममें दीक्षिता भद्रवंशीया स्त्रियोंका पाणिग्रहण कर सकते हैं। परन्तु वह स्त्री कुनवी, अहीर, कोइरी आदि जातिकी होने पर विवाह नहीं हो सकता।

लालवेगी-दलमें शामिल करनेकी दीक्षा-प्रणाली इस प्रकार है:—जो व्यक्ति इस धर्मान्तर ग्रहणको इच्छुक है, उसे सामर्थ्यानुसार १।ऽ सवा मनसे ले कर ऽ५ सेर तक मिठाई वनवा कर जातीय सभाके समक्ष एक चौकी पर रखनी होगा। फिर यथापूर्व कुर्सीनामा वंशावली और नानकवाणी कीर्त्तनके वाद दलपति उस व्यक्तिको चरणामृत और प्रसाद खाने देते हैं। पञ्जावके भंगियोंमें धर्मदीक्षाके समय यह मन्त्र पढ़ा जाता है:—

"यही सत्ययुगकी कुर्सी है। त्रेता, द्वापर और कलयुगमें सोनेके स्थानमें क्रमसे चांदी, तांवा और मिट्टीका उल्लेख है। इसके वाद चिउड़ा, घी, पान, लौंग, और दालचीनी आदि सुगंध द्रव्योंमेंसे लालवेगको पूजा की है।"

शेख-भंगियोंका विवाह अनेकांशमें मुसलमानोंकी शादी वा निकाहके सदृश है। हिंदूशास्त्रोंमें पहले घटक (विचधरिया) द्वारा सम्बंध और कन्या-पण स्थिर होने पर शुभ लग्न ठहराई जाती है। उस दिन भोज होता है। दूसरे दिन वरके यहां और उसके एक दिन कन्याके यहां भी एक विवाह मञ्च वनाया जाता है। ब्राह्मणों द्वारा 'साइत' (शुभदिन) सोधी जानेके वाद, वरपक्षके लोग वरको ले कर लड़कीवालेके यहां जाते हैं। उस समय लड़कीवाला उनके वैठनेके लिए स्थान दे कर एक हंडी अन्न वरके सामने रखता है। वरके मित्रों द्वारा उसका आस्वाद लिये जानेके वाद लड़कावाला उसके वाद दुआरवार-प्रथा अर्थात् दरवाजेके एक तरफ खड़े हो कर वर और कन्या परस्परको अवलोकन करते हैं। दोनोंमें चादर मात्रका व्यवधान रहता है। पश्चात् यथारीति वरण प्रारम्भ होता है और तिलकदानके वाद गँठजोड़ हो कर विवाहकार्य समाप्त होता है। वावाजो कहलानेवाला साधुचेता कोई एक भंगी अथवा वरका वहनोईको ही गँठजोड़ा करनेका अधिकार है। इसके दूसरे ही दिन सुवह वरकन्याकी विदा होती है। उस समय वरके कन्यापक्षीय गुरुजनोंको नमस्कार करने पर उसे अवस्थानुसार 'विदाई' मिला करती है। उसके वाद वहांके नाई, धोविन और दाइयोंको कुछ कुछ इनाम दिया जाता है। घर आनेके वाद ४ दिन वर और कन्याकी परस्पर भेंट नहीं होती। चौथे दिन वरपक्षीय सारी स्त्रियां इकट्ठी हो कर एक कम्वल पर दूल्हा और दुल्हिनको आमने सामने विठा कर शर्म छुड़ा देती हैं।

इनमें भी विवाह-वंधन-छेदनकी व्यवस्था है। स्वामिके ध्वजभंग, कुष्ट वा उन्मादरोगग्रस्त होने पर स्त्रीसंबंध विच्छेदकी अर्जी पेश कर सकती है। परन्तु इस विच्छेदके लिए उसे ५ या १० रुपये नगद और सामाजिकसभाको भोज देना पड़ता है। इनकी सभा ही विवाह-वंधक चुका करानेमें एकमात्र अधिकारिणी है, परंतु सव जगहके भंगियोंमें ऐसी प्रथा नहीं है। शरीरगत रोगके कारण पतिका त्यागना विहित नहीं है। स्त्रीका चरित्र दुष्ट होनेसे उसका त्याग किया जा सकता है। कभी कभी उस स्त्रीको जातिसे पृथक् कर दिया जाता है।

विधवा स्त्रीको उसका देवर ब्याह सकता है। यदि कोई विधवा स्त्री अन्य किसीके साथ विवाह करे, तो वह अपने पूर्व पतिकी सम्पत्तिकी भी अधिकारिणी होती हैं: परन्तु शेख और गाजीपुरी-रावतोंमें ऐसा नियम नहीं है अर्थात् ऐसी विधवा स्त्री अपने पूर्व पतिकी जायदादकी हकदार नही होती।

गर्भावस्थामें स्त्रियां गलेमें एक रुपया बांधे रहती हैं। उनका विश्वास है, कि इससे उपदेवताओंका उस गर्भिणी पर फिर किसी प्रकार अत्याचारका भय नहीं रहता। पांचवें या सातवें महीनेमें वे सतीपूजा करती हैं। प्रसव के समय चमारिन ही इनके यहां दाईका काम करती है। बच्चा पैदा होनेके वाद उसकी नाल काट कर उसी सोवर-वाले घरमें गाड़ दी जाती है और उस पर आग जलती रखते हैं। छठे दिन प्रसूति स्नानके वाद पवित्र हो जाती है। हेलाओंमें वारहवें दिन पवित्र होनेका नियम है। उसके वाद ब्राह्मणको बुला कर बच्चेका नाम रखते हैं और उसी समय सिर भी मुढ़ा देते हैं। वालक ५ या ६ वर्ष होने पर उसे कालिकामाई वा विन्ध्यवासिनी देवीके पास ले जाते हैं और कर्णवेद एवं चूड़ाकरणादि करनेके वाद पूजा चढ़ाते हैं। मिरजापुरके हेला लोग सूतिकागृह त्यागनेके वाद काले डोम और गङ्गामाईकी पूजा करते हैं।

इनमें शवदेहके दाह करने वा गाड़नेके कोई विशेष नियम नहीं है। कोई कोई तो मुर्देको गाड़ देते हैं और कोई मुखाग्नि वा हाथ पर जला कर उसे कब्र देते हैं। इसके वाद उस शवदेहकी तृप्तिके लिए उसकी कब्र पर खाद्यादि पदार्थ चढ़ाते हैं। अपेक्षाकृत उन्नत हिन्दू झाड़ूदार लोग निम्न श्रेणीके ब्राह्मण द्वारा मुखाग्नि मन्त्र पढ़वा कर अपने अपने शवका दाह करते हैं और अवस्थानुसार श्राद्ध भी किया करते हैं। शेख-भंगियोंके वालकगण प्रेतात्माकी तृप्तिके लिए कलमा पढ़ते और तीज तथा वरसी उत्सव मनाते हैं। लालवेगी और गाजीपुरी रावत लोग पितर-पक्षमें श्राद्ध और पिण्ड देते हैं।

दाक्षिणात्यके अहमदनगर, सतारा, वेलगाम और धारवाड़ आदि जिलोंमें भी यह भंगी जाति वसती है। इनके आचार व्यवहार और कुलप्रथा परस्परमें विभिन्न होने पर भी इनको उत्तरभारतीय भंगियोंकी श्रेणीमें शामिल किया जा सकता है। वेलगामके हलालखोर भंगी मद्य और मांससेवी हैं। अम्बा-भवानी जेलम्मा और ब्रह्मदेव इनके उपास्य देवता हैं। ये हिन्दुओंके त्योहारोंमें उपवासादि नहीं करते हैं, फिर भी त्योहार मनानेमें कोई कसर नहीं रखते। इनमें विधवा-विवाह प्रचलित है। सद्यजात वालकके ५वें दिन पांच-भाई पूजा और १२वें दिन नामकरण होता है। तीसरे दिन ये लोग मृतके कलेवरके ऊपर पिण्ड देते हैं। १० दिन में अशौच दूर होता है और उसके वाद ११वें दिन ज्ञाति कुटुम्बका भोज भी होता है। सभी तरहके ब्राह्मण इनका पौरोहित्य कर सकते हैं।

सतारा जिलेके भंगियोंके दशहरा और दिवाली ये दो त्योहार ही प्रधान हैं। ये स्थानीय हिंदूदेव-देवियोंकी पूजा किया करते हैं। वहिरोवा, देवकाई, जनाई, ज्योतिवा और नरशोभा आदि इनके कुलदेवता हैं। इन देवमूर्त्तियोंको ये अपने घरमें रख कर उनकी पूजा किया करते हैं। वाल्यविवाह, वहुविवाह और विधवा-विवाह इनमें प्रचलित है। नगरका मैला साफ करना ही इनका प्रधान कार्य है। जव सरकारी कार्यमें नियुक्त रहते हैं तव इनकी पोशाक वहुत ही मैली रहती है, परन्तु दिनका काम खतम कर शामको ये स्त्री-पुरुष मिल कर अच्छी पोशाकमे घूमा करते हैं। मांस और मादक-द्रव्य मात्र ही इनकी खास प्रीतिकी वस्तु है।

अहमदनगरके भंगी आषाढ़ और कार्त्तिककीशुक्ला एकादशी, दशहरा, दिवाली, गोकुलाष्टमी और शिवरात्रि आदि पर्वोंमें विशेष श्रद्धा रखते हैं। हुसेनी-ब्राह्मणगण हिन्दूभंगियोंके और काजीलोग शेख-भंगियोंके विवाह कार्यमें याजकता करते हैं। शवदेह गाड़नेके वाद २० या ४० दिनमें ये ज्ञाति कुटुम्ब वालोंको भोज दिया करते हैं। यहांके भंगी हिन्दू और मुसलमानोंके सभी पर्वोंका लक्ष्य रख कर चलते हैं।

धारवाड़के भंगी प्रायः सभी विषयोंमें दाक्षिणात्यके अन्य भंगियोंका अनुकरण करते हैं। दक्षिण-भारतके भंगियोंका कहना है, कि वे गुजरात और उत्तर भारतसे आ कर वसे हैं। स्थानीय कुछ आचार-व्यवहारोंका

अनुकरण करने पर भी उनके अन्य आचार व्यवहार प्रायः उत्तर पश्चिमभारतके भंगियोंके अनुरूप हैं।

भङ्गीभीर दीक्षित—सोमप्रयोग नामक ग्रन्थके प्रणेता।

भङ्गील (सं० क्ली०) ज्ञानेन्द्रियकी विकलता।

भङ्गुर (सं० त्रि०) भज्यते स्वयमेवेति भनज् (भञ्जभासमिदोघुरच्। पा ३।२।१६१) इति कर्मकर्त्तरि घुरच्, त्वित्वात् कुत्वमिति काशिका। १ स्वयं भञ्जनशील, नाशवान्। २ कुटिल, टेढ़ा। (पु०) ३ नदीका मोड़ या घुमाव।

भङ्गुरा (सं० स्त्री०) भंगुर-टाप्। १ अतिविषा, अतीस। २ प्रियंगु।

भङ्गुरता (सं० स्त्री०) भंगुरस्य भावः तल् टाप्। भंगुरका भाव।

भङ्गुरावत् (सं० त्रि०) १ पापी, राक्षसादि। २ अनवस्थितचित्तवृत्ति।

भङ्गोद—मन्द्राज प्रदेशके विशाखपत्तन जिलान्तर्गत एक भूमिभाग। यहां खोण्डजातिका वास है। पहले यहां नरवलि होती थी। विसेमकटक देखो।

भङ्ग्य (सं० क्ली०) भङ्गाया भवनं क्षेत्रमिति भङ्ग (विभापातिलमापोमाभङ्गाणुभ्यः। पा ५।२।४) इति पक्षे यत्। १ भङ्गाक्षेत्र, वह खेत जिसमें भांग होती हो। (त्रि०) भङ्गमर्हतीति भङ्ग-दंतादित्वात् यत्। २ भङ्गार्ह, टूटने लायक।

भङ्घा—अयोध्याप्रदेशके वहराइच जिलान्तर्गत एक नगर। यह राप्ती और भाकला नदीके दोआवके ऊपर अवस्थित है। इसके चारों ओर विस्तीर्ण आम्रवन है।

भचक (हिं० स्त्री०) भचक कर चलनेका भाव, लँगड़ापन।

भचकना (हिं० क्रि०) १ आश्चर्यमें निमग्न हो कर रह जाना। २ चलनेके समय पैरका इस प्रकार रुक कर या टेढ़ा पड़ना कि देखनेमें लँगड़ापन मालूम हो।

भचक्र (सं० क्ली०) भाणां राशीनां चक्रं। १ राशिचक्र। २ नक्षत्रचक्र। ३ नक्षत्रसमूह।

भज—पश्चिमघाट पर्वतमालाके अन्तर्गत एक प्राचीन स्थान। यह भोरघाटसे दो कोस दक्षिणमें अवस्थित है। यहां पर ईसा जन्मके पहलेके बने हुए एक प्राचीन चैत्य (गुहामन्दिर)-का निदर्शन पाया जाता है।

भजक (सं० त्रि०) भजतीति भज-ण्वुल्। १ भजनकारी, भजनेवाला। २ विभाजक, विभाग करनेवाला।

भजग (सं० पु०) रोमक सिद्धांत-वर्णित जनपदभेद।

भजत् (सं० त्रि०) भजति विभजतीति वा भज्-लट्-शतृ। १ भागकर्त्ता, विभाग करनेवाला। २ सेवक, भजन करनेवाला।

भजन (सं० क्ली०) भज-भावे-ल्युट्। १ भाग, खंड। २ सेवा, पूजा। वैष्णवोंका भजन साधनाका एक अङ्ग है। देवादिके उद्देशसे जो गीत और स्तव किया जाता है, उसे भजन कहते हैं। ३ वारवार किसी पूज्य या देवता आदिका नाम लेना, स्मरण।

भजनता (सं० स्त्री०) भजनस्य भावः तल्-टाप्। भजनका भाव या धर्म।

भजना (हिं० क्रि०) १ सेवा करना। २ आश्रय लेना, आश्रित होना। ३ देवता आदिका नाम रटना। ४ भागना भाग जाना। ५ प्राप्त होना, पहुंचना।

भजनानन्द—अद्वैतदर्पणके रचयिता। ये भुजाराम नामसे भी प्रसिद्ध थे।

भजनानन्द (सं० पु०) वह आनन्द जो परमेश्वरका नाम स्मरण करनेसे प्राप्त होता है, भजनसे मिलनेवाला आनन्द।

भजनानन्दी (सं० पु०) वह जो दिनरात भजन करनेमें मस्त रहता हो, भजन गा कर सदा प्रसन्न रहनेवाला।

भजनी (हिं० पु०) भजन गानेवाला।

भजनीय (सं० त्रि०) भज-अनीयर्। १ भजनयोग्य, विभाग करने लायक। २ सेवनीय, सेवा करने लायक। ३ आश्रय लेने योग्य।

भजमान (सं० त्रि०) भजते फलमनुबध्नातीति भज-ताच्छिल्यवयोवचनशक्तिषु चानश्। पा ३।२।१२९) इति आनश, शानज् वा। १ न्याय। २ न्यायागत द्रव्यादि। ३ भज-कर्त्तरि शानच्। ३ विभागकारी, भाग करनेवाला। ४ सेवक, सेवा करनेवाला। (पु०) सात्वतनृपके एक पुत्रका नाम। (भाग० ९।२४।६)

भजाना (हिं० क्रि०) १ दौड़ना, भागना। २ भगाना, दूर कर देना।

भजि (सं० पु०) भज-धातुनिर्देशे इन्। १ भजधातु। २ सात्वतनृपके एक पुत्रका नाम। (भा० ९।२४।६)

भजियाउर (हिं० स्त्री०) चावल, दही, घीआ आदि एक साथ पका कर बनाया हुआ भोजन। इस प्रकारके भोजनमें नमक भी डाला जाता है। इसे उभिया और भिजियाउर भी कहते हैं।

भजेन्य (सं० त्रि०) भज-बाहु कर्मणि-एन्य। भजनीय।

भजेरथ (सं० पु०) राजभेद।

भज्जि—पञ्जाब प्रदेशके अन्तर्गत एक छोटा पहाड़ी राज्य। यह अक्षा० ३१° ७' से ३१° १७' उ० तथा देशा० ७७° २' से ७७° २३' पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ९६ वर्गमील और जनसंख्या प्रायः १३३०९ है। यहांके सरदार राजपूत वंशीय और राणा उपाधिधारी हैं। काङ्गड़ा राजवंशके किसी वंशधरने इस स्थानको जीत कर वर्त्तमान राजवंशकी प्रतिष्ठा की है। १८०३ और १८१५ ई०में गुरखा लोगोंने इस स्थानको लूटा। पीछे अंगरेजोंने गुरखाओंको यहांसे मार भगाया और राणाको उस सम्पत्तिका भोगाधिकार प्रदान किया। इसी उपकारके लिये यहांके राणा वृटिशसरकारको वार्षिक १४४० रु० कर दिया करते हैं। वर्त्तमान सरदार राणा दुर्गा सिंह १८७५ ई०में राजगद्दी पर बैठे। आय २३००० रु०की है जिसमेंसे १४४० रु० वृटिशसरकारको करमें देने पड़ते हैं। यहां अफीम बहुतायतसे उपजती है। राणाको फांसी देनेका अधिकार नहीं है।

भज्य (सं० त्रि०) भज-यत्। विभागयोग्य। २ सेवनीय, सेवा करनेयोग्य। ३ भजनेके योग्य।

भञ्ज—एक प्राचीन राजवंश। ये लोग उड़ीसा प्रदेशमें राज्य करते थे। शिलालिपिसे इस भञ्जवंशकी जो दो तालिका पाई गई है वह इस प्रकार है।

शत्रुभञ्जदेव वा कोट्टभञ्ज
|
दिग्भञ्ज
|
रणभञ्जदेव
|
राजभञ्जदेव — नेत्रिभञ्जदेव

दूसरी शिलालिपिसे इस वंशके कुछ राजाओंकी वंशावली इस प्रकार पाई गई है—

ब्रह्मभञ्जदेव
|
दिग्भञ्जदेव
|
शिलीभञ्जदेव
|
महाराजविद्याधरभञ्जदेव

भञ्जक (सं० त्रि०) भञ्ज ण्वुल्। १ भञ्जनकर्त्ता, निरासक। २ भङ्गकारक, तोड़नेवाला।

भञ्जन (सं० क्ली०) भन्ज-ल्युट्। १ भङ्गकरण, भंग करना। २ भङ्ग, ध्वंस, नाश। ४ अर्कवृक्ष, मंदार। ५ शिरःकर्णादिका आमर्दन। ६ वायु जन्य व्रणवेदना विशेष; व्रणकी वह पीड़ा जो वायुके कारण होती है। ७ सिद्धि भांग। (त्रि०) ८ भञ्जक, तोड़नेवाला।

भञ्जनक (सं० पु०) भनक्ति आमर्दयतीति भञ्ज-ल्यु, ततः स्वार्थे-संज्ञायां वा कन्। मुखरोगविशेष। लकवा। इसमें मुंह टेढ़ा हो जाता है। मुखरोग देखो।

भञ्जनागिरि (सं० पु०) पाणिनिके किंशुलुकादिगणोक्त पर्वतभेद।

भञ्जरु (सं० पु०) भनक्तीति भञ्ज बाहुलकात् अरु। देवकुलोद्भूत तरु।

भञ्जा (सं० स्त्री०) भनक्ति भयादिकमिति भञ्ज-अच्, टाप्। अन्नपूर्णाका एक नाम।

भट (सं० पु०) भट्यते भ्रियते, वा भटतीति भट्-अच्। १ योद्धा, युद्ध करने या लड़नेवाला। २ म्लेच्छभेद। ३ वीर। ४ पामरविशेष। ५ रजनीचर। ६ वर्णसङ्कर जातिविशेष।

भटकटाई (हिं० स्त्रि०) एक छोटा और काँटेदार क्षुप। यह क्षुप बहुधा औषधके काममें आता है। इसके पत्तों पर भी काँटे होते हैं। इसमें बैंगनीरंगके फूल लगते हैं और फूलका जीरा पीला होता है। कहीं कहीं सफेद फूलकी भटकटैया मिलती है। विशेष विवरण कण्टकारी शब्दमें देखो।

भटकना (हिं० क्रि०) १ व्यर्थ इधर उधर घूमते फिरना। २ रास्ता भूल जानेके कारण इधर उधर घूमना। ३ भ्रममें पड़ना।

भटकना (हिं० क्रि०) १ गलत रास्ता बताना, ऐसा रास्ता बताना जिसमें आदमी भटके। २ धोखा देना, भ्रममें डालना।

भटतीतर (हिं० पु०) उत्तर-पश्चिम भारतमें मिलनेवाला एक प्रकारका पक्षी। यह प्रायः १ फुट लंबा होता है। इसकी मादा एक वारमें तीन अंडे देती है। लोग प्रायः इसके मांसके लिये इसका शिकार करते हैं।

भटधर्मा (हिं० वि०) वीर धर्मका पालन करनेवाला, सच्चा वहादुर।

भटनास (हिं० स्त्री०) चीन, जापान और जावामें बहुत अधिकतासे मिलनेवाली एक प्रकारकी लता। अब ब्रह्म, पूर्व वङ्गाल, आसाम तथा गोरखपुर-वस्ती आदिमें भी इसकी खेती होने लगी है। इसमें एक प्रकारकी फलियां लगती हैं और उन्हीं फलियोंके लिये इसकी खेती की जाती है। फलियोंके दानोंकी दाल भी वनाई जाती है और सत्त भी। ये फलियां बहुत पुष्ट होती हैं और पशुओंको भी खिलाई जाती है। इसके दो भेद हैं, सफेद और दूसरी काली। मैदानोंमें यह प्रायः खरीफकी फसलके साथ बोई जाती है।

भटनेर—एक प्राचीन राज्यका मुख्य नगर। यह सिंध नदीके पूर्वी तट पर स्थित था। इस नगरको तैमूरने अपनी चढ़ाईके समय लूटा था।

विशेष विवरण भाटनेर शब्दमें देखो।

भटनेरा (हिं० पु०) १ भटनेर नगरका निवासी। २ वैश्योंकी एक उपजाति।

भटवलाग्र (सं० पु०) १ वीरपुरुष, सेनापति। (क्लो०) २ सेना समूह।

भट भटमातृतीर्थ (सं० क्ली०) तीर्थभेद।

भटभेरा (हिं० पु०) १ दो वीरोंका सामना, मुकावला। २ आकस्मिक मिलन, ऐसी भेंट जो अनायास हो जाय। ३ धक्का, टक्कर।

भटा (सं० स्त्री०) भट-टाप्। इन्द्रवारुणी।

भटा (हिं० पु०) वैंगन देखो।

भटार्क (सं० पु०) वल्लभी राजवंशके प्रतिष्ठाता। ये पहले सेनापति आख्यासे भूषित थे। मैत्रक जातिको परास्त करनेके कारण उनका वंश मैत्रक कहलाया।

वलभी देखो।

भटित्र (सं० क्ली०) भटति भट्यते वेति भट-इत्र। शूलपक्व मांसादि, कवाव।

भटियारा (हिं० पु०) भठियारा देखो।

भटियारी (सं० स्त्री०) रागिणीविशेष। यह संस्कृत मतानुयायी प्राचीन रागिणी नहीं है। कहते हैं, कि विक्रमादित्यके भाई भर्तृहरिने इसका सङ्कलन किया, इसीसे यह भर्तृहारिका, भटियारी वा भाटियारी नामसे प्रसिद्ध है। यह रागिणी ललित और परजयोगसे उत्पन्न है। सा वादी, म सम्वादी है, स्वरग्राम यों है—

"ऋ ग म प ध नि सा::" (संगीतरत्ना०)

भटियाल (हिं० क्रि० वि०) धारकी ओर, धारके साथ साथ।

भटू (हिं० स्त्री०) १ स्त्रियोंके संवन्धके लिये एक आदर सूचक शब्द। २ सखी, गोइयां। ३ प्रिय व्यक्ति।

भटेरा (हिं पु०) वैश्योंकी एक जाति।

भटेश्वरी (सं० स्त्री०) राजपूतानेके आवूपर्वतस्थ शक्तिमूर्त्तिविशेष। दाभि शाखाभुक्त किसी राजपूतने उनकी आराधना करके श्रीसमृद्धि प्राप्त की। तभीसे उनके वंशधर भटेश्वरिया कहलाते हैं। आज भी द्वेला-सरोती नामक स्थान उनके अधिकार में है।

भटैया (हि० स्त्री०) भटकटैया।

भटोट (हिं० पु०) यात्रियोंके गलेमें फांसी लगानेवाला ठग।

भटोला (हिं० वि०) १ भाट संबंधी, भाटका। २ भाटके योग्य (पु०) ३ वह भूमि जो भाटको इनामके तौर पर दी गई हो।

भट्कला (सं० स्त्री०) तीर्थविशेष।

भट्ट (सं० पु०) भटतीति भट-वाहुलकात् तन्। १ जातिविशेष।

"वैश्यायां शूद्रवीर्येण पुमानेको वभूव ह।
स भट्टो वावदूकश्च सर्वेषां स्तुतिपाठकः॥"
(ब्रह्मवैवर्त्तपु० ब्रह्मख० १० अ०.)

वैश्याके गर्भ और शूद्रके औरससे इस जातिकी उत्पत्ति हुई है। ये लोग स्तुतिपाठक हैं। कोई कोई क्षत्रिय और विप्र कन्याके संयोगसे भट्टजातिकी उत्पत्ति वतलाते हैं।

२ स्वामित्व। ३ वेदाभिज्ञ। ४ पण्डित। ५ योद्धा,

सूर। ६ भाट। ७ ब्राह्मणोंकी एक उपाधि। इस के धारण करनेवाले दक्षिण भारत, मालव, आदि कई प्रान्तोंमें पाये जाते हैं। ८ महाराष्ट्र ब्राह्मणोंकी एक उपाधि। इसके धारण करनेवाले दक्षिण भारत, मालव आदि कई प्रान्तोंमें पाये जाते हैं। ६ महाराष्ट्र ब्राह्मण। १० तुतातामिध मीमांसक भेद। इसका मत मीमांसा-दर्शनमें लिखा गया है। मीमांसा देखो।

भट्ट—१ मोक्षपद मीमांसाके प्रणेता। आलङ्कारिक, अलङ्कार सर्वस्वमें उनका नामोल्लेख है। ३ संस्कृतज्ञ और वेदपारग ब्राह्मणोंकी उपाधि।

भट्ट—सुमित्राद्वीपकी मान्देलिङ्ग उपत्यकावासी जातिविशेष। इस जातिके लोग जिस भाषामें बोलते हैं, वह मलयवासी भाषासे भिन्न है। किन्तु निकटवर्त्ती स्थानोंकी भाषा इसके साथ बहुत कुछ मिलती जुलती है। लिपि द्वारा भाषाको व्यक्त करनेके लिये इन्होंने अपनी उपयोगी एक वर्णमालाकी सृष्टि की है। भारतीय द्वीपपुञ्जस्थ इस असभ्य जातिके मध्य अक्षरमालाका आविष्कार और भाषातत्त्वका उज्वल आलोक प्रसारित होने पर भी नरमांस भोजनरूप जघन्यवृत्तिने इनके हृदयको बहुत दिनोंसे कलुषित कर रखा है। ये लोग व्यभिचार और दोपहर रातको लूट पाट मचाते हैं, रणमें बन्दी, जात्यन्तरमें दार परिग्रहकारी हैं अथवा विश्वासघातकता पूर्वक अन्य ग्राम, गृह वा मनुष्यको आक्रमण और ग्रामादि दाहन प्रभृति दोष-दुष्ट व्यक्तिको ये लोग मार कर खा जाते हैं।* भूतयोनि पर इनका विश्वास नहीं है।

भट्टकेदार—वृत्तरत्नाकरके प्रणेता।

भट्टनायक—एक आलङ्कारिक। मल्लिनाथने इनका नामोल्लेख किया है।

भट्टनारायण—महाराज आदिशूर द्वारा वङ्गमें लाये गये पाँच कन्नौजी ब्राह्मणोंमेंसे एक। इनके पिताका नाम क्षितीश था। ये शाण्डिल्य गोत्रीय थे। आदिशूरके लड़के भूशूरके साथ राढ़देशमें आ कर ये सब बस गये। तभीसे उनकी सन्तान राढ़ीय संज्ञासे भूषित हुई थी। राजा क्षितिशूरने उनके वराह, वटु, राम, नान, निपो, गुञ्जि, गुण, गूढ़ विक, गुरुठ, निनो, मधु, देवा; सोम, काम और दीन नामक सोलह पुत्रोंको ६ ग्रामोंका अधिकार प्रदान किया। वे सब पुत्र वर्त्तमान १६ ब्राह्मणवंशके आदिपुरुष हैं। उक्त सोलह पृथक् पृथक् ग्राममें बस जानेके कारण उसी ग्रामके नामसे पुकारे जाने लगे। यथा,—वराह—वाडुवी, राम—गड़गड़ी, निपो—केशरकोणी, नान—कुसुमकुली, वाटु—पारिहाल, गुञ्जि—कुलभी, गुरुठ—दीर्घाङ्गी, गुण—घोषाली, विकर्त्तन—वटव्याल (वड़ाल,) गूढ़—मासचटक, निनो—वसुयाड़ी, मधु—कड़ियाल, देव—सेऊ, सोम—वोकट्टाल, दीन—कुशि (कुशारी) और काम—झिकुराड़ी।

२ वेणी-संहार नामक नाटकके प्रणेता। ३ रघुनाथ दीक्षित। उन्होंने १६८६ विक्रमशकमें 'अपेक्षित-व्याख्यानम्' नामक उत्तरराम चरितकी एक टीका लिखी है। ४ प्रयोगरत्नके प्रणेता, श्रीभट्टरामेश्वर सूरिके पुत्र। वाराणसीधाममें रह कर उन्होंने इस ग्रन्थका सम्पादन किया। ५ एक काश्मीरी पण्डित, स्तव चिन्तामणि विवृति नामक एक ग्रन्थके रचयिता। ये महामहेश्वरकी उपाधिसे भूषित थे।

भट्टप्रयाग (सं० पु०) गङ्गा और यमुनाका सङ्गमस्थान।

भट्टवलभद्र (सं० पु०) ब्रह्मसिद्धान्तके एक टीकाकार।

भट्टवीजक (सं० पु०) एक कवि। शार्ङ्गधर पद्धतिमें इनका उल्लेख है।

---

* १२६० ई०में मार्कोपोलेने और १८२० ई०में सर ष्टामफोर्ड रैफलसने अपने भ्रमणवृत्तान्तमें तथा मार्सडेन साहबने अपने सुमात्रा-इतिवृत्तमें इस बीभत्स व्यापारका उल्लेख किया है। १८६५ ई०में अमेरिकावासी भ्रमणकारी प्रोफेसर विकोमर जब सुमात्रा देखने आये थे, तब उन्हें इस भट्टजातिके नरमांस सेवनका विषय मालूम हुआ था। उन्होंने लिखा है, कि ओलन्दाजोंक मान्देलिंग उपत्यका जीतने पर जो पर्वतगुहामें छिप रहे थे, वे आज भी नरमांस खाते हैं। किन्तु जो ओलन्दाजके साथ मिल कर रहने लगे थे; उन्होंने इस निकृष्ट वृत्तिको बिलकुल छोड़ दिया है। सिपिरोकके राजाने पेदुङ्के ओलन्दाज शासनकर्त्तासे कहा था, कि उन्होंने प्रायः ४० बार नरमांस भक्षण किया है और उसका स्वाद सभी भक्षणीय द्रव्योंकी अपेक्षा उत्कृष्ट है।

भट्टभास्कर मिश्र (सं० पु०) एक टीकाकार।

भट्टमदन (सं० पु०) एक ग्रन्थकर्त्ता।

भट्टभीम—रावणार्जुनीय नामक काव्यके प्रणेता। ये वलभी-स्थान निवासी थे।

भट्टमूर्त्ति—एक तेलगू-कवि। ये राजा कृष्णरायकी सभामें विद्यमान थे। इनके बनाये हुए नरेशभूपालियम् और वसुचरित्रम् नामक दो अत्युत्कृष्ट काव्य मिलते हैं।

भट्टमल्ल (सं० पु०) एक वैयाकरणिक। इन्होंने आख्यातचन्द्रिका वा एकार्थाख्यनिघण्टु, शब्दार्थ-वृत्ति और क्रियानिघण्टु नामक कई एक व्याकरण लिखे हैं।

भट्टयशस् (सं० पु०) एक कवि।

भट्टविश्वेश्वर (सं० पु०) मिताक्षराके सुबोधिनि नामक टीकाकार, पेद्दिभट्टके पुत्र।

भट्टशिव (सं० पु०) एक दार्शनिक पण्डित। शङ्करदिग्विजयमें इनका नामोल्लेख है। इन्होंने सांख्यमतका खण्डन किया है।

भट्टशङ्कर—वैद्यविनोद नामक वैद्यकग्रन्थके सङ्कलनकर्त्ता। ये अनन्तभट्टके पुत्र थे। अम्बरपति जयसिंहके पुत्र राजा रामसिंहकी अनुमति ले कर इन्होंने उक्त ग्रन्थकी रचना की।

भट्टश्रीशङ्कर (सं० पु०) एक ज्योतिषी। बृहज्जातकमें इनका नामोल्लेख है।

भट्टसोमेश्वर—१ एक ग्रन्थकार। कमलाकरभट्टके शूद्रधर्मतत्त्वमें इनका उल्लेख है। २ कुमारिलकृत तन्त्रवार्त्तिककी टीकाके रचयिता, माधवभट्टके पुत्र। 'न्यायसुधा' उनकी उपधि थी।

भट्टस्वामिन् (सं० पु०) एक कवि। शार्ङ्गधरपद्धतिमें इनका उल्लेख है।

भट्टाचार्य (सं० पु०) भट्टः तुतातभट्टः आचार्यउदयनाचार्यःतौ तुल्यतया तन्मताभिज्ञत्वेनास्त्य स्येति अच्। १ तुतातभट्ट और उदयनाचार्यकी तरह जो पण्डित हैं, वे ही भट्टाचार्य हैं। २ तुतात भट्ट और उदयनाचार्यके मताभिज्ञ।

"नास्तिकानां निग्रहाय भट्टाचार्यो भविष्यतः॥"

(प्राचीनवाक्य)

जो ब्राह्मणतुतात भट्टकी मीमांसा और उदयनाचार्यका न्यायसंग्रह अध्ययन करके कृतविद्य हुए हैं, वे ही यह उपाधि पानेके योग्य हैं। दर्शनशास्त्रज्ञ, अध्यापक, वेदाध्यायी ब्राह्मणोंकी भी यह उपाधि है।

भट्टाचार्य—१ अशौचविंशच्छ्लोकी टीका, अशौचसंग्रह और उसकी विवृति तथा त्रिंशच्छ्लोको आदि कुछ ग्रन्थोंके प्रणेता।

२ काव्य प्रकाशके रचयिता। ३ पद्ममञ्जरी, शाण्डिल्य सूत्रदीपिका और सिद्धांत पञ्चानन नामक न्यायग्रन्थके प्रणयनकर्त्ता। ४ मुक्तावली और तट्टीकाके प्रणेता। ५ नाददीपक नामक सङ्गीतग्रन्थके रचयिता।

भट्टाचार्यचूड़ामणि (सं० पु०) न्यायसिद्धान्तमञ्जरीके रचयिता। इनका पूर्ण नाम जानकीनाथ भट्टाचार्य चूड़ामणि था।

भट्टाचार्यतर्कालङ्कार—द्रव्यभाष्यटीका नामक प्रशस्तपदाचार्यकृत वैशेषिकद्रव्यलक्षणभाष्यकी व्याख्याके प्रणेता। ये महामहोपाध्याय उपाधिसे भूपित थे।

भट्टाचार्य शतावधान (सं० पु०) राघवेन्द्रका नामान्तर।

भट्टाचार्यशिरोमणि—नैयायिक रघुनाथका नामान्तर।

भट्टार (सं० त्रि०) भरतीति क्विप्, भट् चासौ तारश्चेति कर्मधाः पृषोदरादित्वात् साधुः यद्वा भट्टं स्वामित्वं ऋच्छतीति अण्। पूज्य।

भट्टारक (सं० पु०) भट्टार संज्ञायां कन्। नाट्योक्तिमें राजा भट्टारक नामसे अभिहित होते हैं। २ तपोधन। ३ देव। ४ सूर्य (त्रि०) ५ पूज्य।

भट्टारक—गुप्तराज स्कन्दगुप्तके एक सामान्तराज। ये सेनापति भटार्क वा भट्टारक नामसे प्रसिद्ध थे। सौराष्ट्रके सामन्तपद पर अधिष्ठित रह कर ये धीरे धीरे वलभीके अधीश्वर हो गये थे। इनकी प्रचलित मुद्रा पर "महाराज्ञो महाक्षत्र परमादित्य राज्ञोसामन्त महाश्री भट्टारकस्य" ऐसा पाठ लिखा है।

२ प्रभासखण्ड वर्णित गुजरात प्रदेशके एक राजा।

(प्रभासख० २८।२।१३)

३ जैनोंके सारस्वत-गच्छके अन्तर्गत १म आचार्य धर्मभूपणका नामान्तर।

भट्टारकमुनि—सारस्वतगच्छके अन्तर्गत वर्द्धमानशिष्य २य धर्मभूपणका नामान्तर।

भट्टारकवार (सं० पु०) भट्टारकः सूर्यः तस्य वारः। रविवार।

भट्टारिका (सं० स्त्री०) १ नदीभेद। (कालिकापुराण २३।८०-११) २ अनहिलवाड़ पत्तनके अन्तर्गत एक प्राचीन स्थान।

भट्टि—पञ्जाववासी राजपूतजातिकी एक शाखा। भाटि देखो।

भट्टि—भट्टिकाव्यके प्रणेता भर्त्तृहरिका नामान्तर। ये भर्त्तृस्वामिन्, भट्टस्वामी वा स्वामिभट्ट नामसे भी जनसाधारणमें परिचित थे। वलभीराज भट्टारकपुत्र श्रीधरसेनकी सभामें ३८० सम्वत्को ये विद्यमान थे। भर्त्तृहरि देखो।

भट्टिक (सं० पु०) चित्रगुप्तके एक पुत्रका नाम।

भट्टिकदेवराज—एक हिंदूराज। ये प्रतिहारराज सिलुकसे परास्त हुए थे।

भट्टिकाव्य—भर्त्तृहरि-प्रणीत एक महाकाव्य। यह काव्य रसभावमय रामायणकी प्रसिद्ध घटनाके आधार पर लिखित होने पर भी कविने इसे व्याकरणकी विविध प्रक्रिया द्वारा सुन्दरभावसे सज्जित किया है। रचनाकालमें व्याकरणके प्रति ही कविकी सुतीक्ष्ण दृष्टि थी। व्याकरणमें स्थिर-व्युत्पत्ति लाभ करनेके पक्षमें भट्टिकाव्य विशेष उपयोगी है। ग्रंथके शेषमें कविने स्वयं एक जगह लिखा है—

"दीपतुल्यः प्रबन्धोऽयं शब्दलक्षणचक्षुषाम्।
हस्तामर्ष इवान्धानां भवेद्‌व्याकरणादृते॥"

(भट्टि २२।३३)

प्रवाद है, कि कवि भर्त्तृहरि एक राजाके यहां रह कर उन्हें प्रति दिन व्याकरण पढ़ाते थे। एक दिन राजा व्याकरण पढ़ रहे थे, कि उसी समय एक हाथी गुरु और शिष्यके मध्य हो कर चला गया जिससे उनके पाठमें बाधा पहुंची। प्रचलित नियमके अनुसार उस घटनासे ठीक एक वर्ष तक व्याकरणका पढ़ना बंद रखा गया। उस समय राजाके व्याकरणकी व्युत्पत्ति स्थिर रखनेके लिये कवि भर्त्तृहरि काव्यच्छलसे व्याकरणकी रचना कर राजाको वही व्याकरण पढ़ाने लगे। भट्टिकाव्य अध्ययन कर राजाको फिर अन्य व्याकरण पढ़नेका प्रयोजन नहीं पड़ा। यह काव्य केवल व्याकरणकी काठिन्यपूर्ण नीरसपदपरम्परा द्वारा ही रचा गया है, सो नहीं। इसमें कई जगह उस रसकदम्बकल्लोलमय कवित्वपूर्ण कोमलकान्त पदावलीकी भी अति सुन्दर अवतारणा देखी जाती है तथा इसमें सहृदयवेद्य शब्द और अर्थालङ्कारादिका भी अभाव नहीं है।

यह ग्रन्थ पढ़नेसे व्याकरणके अलावा छन्द और अलङ्कारशास्त्रमें भी विशेष व्युत्पत्ति लाभ की जाती है। संस्कृत काव्यके मध्य भट्टि भिन्न ऐसा कोई काव्य ही नहीं है जिसमें ऐसे सुन्दर भावमें और सुश्रृङ्खलाके साथ व्याकरण, छन्द तथा अलङ्कारसमुच्चयका एकत्र समावेश हो। इसके द्वितीय सर्गका शरद्वर्णन और दशमका काव्यालङ्कार बड़ा ही रमणीय है।

ग्रन्थके शेषमें ग्रन्थकर्त्ताने अपना जो परिचय दिया है वह इस प्रकार है—

"काव्यमिदं विहितं मया वलभ्यां
श्रीधरसेननरेन्द्रपालितायाम्।
कीर्त्तिरतो भवतान्नृपस्य तस्य
क्षेमकरः क्षितिपो यतः प्रजानाम्॥"

वलभीराज श्रीधरसेनके आश्रयमें रह कर उन्होंने इस काव्यकी रचना की।

भट्टिनी (सं० स्त्री०) १ नाटककी भाषामें राजाकी वह पत्नी जिसका अभिषेक न हुआ हो। २ ब्राह्मणभार्या।

भट्टिप्रोल—दाक्षिणात्यकी कृष्णा नदी तीरवर्त्ती एक प्राचीन नगर। यह बेल्लुतुर नगरसे १ कोस पश्चिममें अवस्थित है। यहांका लञ्जादिव्य नामक सुवृहत् दगुकस्तूप इसके प्राचीनत्वका निदर्शन है। वह स्तूप प्रायः १७०० वर्गगज स्थान तक फैला हुआ है।

भट्टियाना—पञ्जावप्रदेशके शीर्षा जिलान्तर्गत एक भूभाग। भट्टि (भाटी) नामक दुर्द्धर्ष राजपूतजातिके वाससे इस स्थानका भट्टियाना नाम पड़ा है। एक समय हरियाना बीकानेर और बहवलपुर आदि स्थान इसी भट्टिराज्यके अन्तर्गत थे। आज भी घाघरकी उपत्यकाके उभय पार्श्ववर्त्ती स्थानोंके ध्वंसावशिष्ट अट्टालिका और जनशून्य ग्रामादि उस प्राचीनसमृद्ध जातिके गौरवका परिचय देते हैं मुगलराज तैमूर शाहने भारतकी

चढ़ाईके समय इस प्रदेशको लूट कर बिलकुल जनहीन कर डाला था। अङ्गरेजी अधिकारमें आनेके बादसे यहां पञ्जाब और राजपूतानेके बहुतसे लोग आ कर बस गये। उस समय घघरा नदी बहवलपुरके निकट शतद्रुके साथ मिलती थी। अभी वह वीकानेरकी मरुभूमि पर बह कर सूख गई है। १८वीं शताब्दीमें यह स्थान भाटि-दस्युदलके आवासरूपमें गिना जाता था। इस समय उन लोगोंने विपदसे अपनेको बचानेके लिये कई एक ग्राम दुर्गादिसे सुदृढ़ कर लिये थे। १७९५ ई०में उन्होंने यद्यपि जार्ज टामसकी वश्यता स्वीकार कर ली थी, तो भी वे कभी भी अङ्गरेजोंके पदानत नहीं हुए। १८०३ ई०में लार्ड लेककी विजयके बाद दिल्लीप्रदेशके साथ साथ समूचा भट्टियानराज्य अङ्गरेजोंके दखलमें आ गया। किन्तु १८१० ई० तक अङ्गरेजराज उक्त प्रदेशका पूर्णाधिकार प्राप्त न कर सके थे। भट्टिसरदार बहादुर खां और जावता खाँका दमन करनेके लिये उसी साल अङ्गरेजी सेना भेजी गई। बहादुर खाँ राज्यसे भगा दिया गया और जावता खाँने अवनत मस्तकसे अङ्गरेजोंकी अधीनता स्वीकार कर ली। ७८१८ ई०में जावता खाँने चुपकेसे जब अङ्गरेजाधिकृत फतेहाबाद पर चढ़ाई की तब वृटिशसरकारने उसे राज्यच्युत करके उसके राज्य पर अपना दखल जमा लिया। १८३७ ई०में भट्टियाना एक स्वतन्त्र जिलारूपमें गिना जाने लगा। पीछे वह १८५८ ई०में पञ्जाबके अन्तर्भुक्त हो कर शीर्षा नामसे बजने लगा।

भट्टिवार—श्रीरङ्गस्तवके प्रणेता। ये वेङ्कटाचार्यके शिष्य थे।

भट्टी (हिं० स्त्री०) भट्ठी देखो।

भट्टीय (सं० त्रि०) भट्टसम्बन्धीय, आर्यभट्ट सम्बन्धीय।

भट्टबाण—एक राजा वा उनका वंश। जैन हरिवंशमें लिखा है, कि इस राजवंशने गुप्तराजाओंके पूर्व प्रायः २४० वर्ष तक भारतका शासन किया था।

(जैनहरि ६०।५६९ ८)

भट्टोजिदीक्षित—एक विख्यात पण्डित, लक्ष्मीधर सूरिके पुत्र। ये भानुजी (वीरेश्वर) दीक्षितके पिता और हरिहरके पितामह तथा कुरुक्षेत्रप्रदीपके प्रणेता कृष्णदत्तके गुरु थे। रामाश्रम शिष्य वत्सराज (१६४१ ई०में) और नीलकण्ठने आचारमयूखमें इनका उल्लेख किया है। अद्वैतकौस्तुभ, आचारप्रदीप, अशौचविंशच्छ्लोका, अशौचनिर्णय, आह्निककारिका, कालनिर्णयसंग्रह, गोत्रप्रवरनिर्णय, चतुर्विंशतिमुनिमतव्याख्या, चन्दनधारणविधि, तत्त्वकौस्तुभ, तत्त्वविवेकदीपन व्याख्या, तन्त्रसिद्धान्तदीपिका, तन्त्राधिकारनिर्णय, तर्कामृत, तिथिनिर्णय, तिथिनिर्णयसंक्षेप, तिथि-प्रदीपक, तीर्थयात्राविधि, त्रिस्थलीसेतु और त्रिस्थलीसेतुसारसंग्रह, दशश्लोकीटीका, धातुपाठ, प्रायश्चित्तविनिर्णय, प्रौढ़मनोरमा, बालमनोरमा, मासनिर्णय, लिङ्गानुशासनसूत्रवृत्ति, शब्दकौस्तुभ, श्राद्धकाण्ड, सन्ध्यामन्त्रव्याख्यान, सर्वसारसंग्रह, सिद्धान्तकौमुदी (पाणिनि व्याकरणकी वृत्ति), दानप्रयोग, भट्टोजिदीक्षितीय प्रभृति ग्रन्थ इनके बनाये हुए मिलते हैं। सिद्धान्तकौमुदी व्याकरण लिख कर इन्होंने अष्टाध्यायी पाणिनिसूत्रको प्राञ्जल और सहजबोध कर दिया है।

भट्टोत्पल—एक ज्योतिर्विद्। इन्होंने ७८८ शकमें वृहज्जातककी जगच्चन्द्रिका नामक एक विवृति लिखी है। अलावा इसके योगयात्राविवरण, लघुजातकटीका, वृहत्संहिताविवृति और बादरायण-प्रश्नटीका नामक कई एक ग्रन्थ भी इनके रचित मिलते हैं। किसी ग्रन्थमें इनका उत्पल आचार्य नाम भी लिखा हुआ देखनेमें आता है।

भट्टोद्भट्ट—एक प्रसिद्ध काश्मीरी पण्डित। राजतरङ्गिणीमें लिखा है, कि ये राजा जयापीड़के सभापण्डित थे और प्रतिदिन १ लाख दीनार पाते थे। इनका बनाया हुआ कुमार सम्भव तथा एक अलङ्कार शास्त्र मिलता है।

(राजतरंगिणी ४।४९४)

भट्टोपम (सं० पु०) एक बौद्धाचार्य।

भट्ठा (हिं० पु०) १ बड़ी भट्ठी। २ ईंट या खपड़े आदि पकानेका पजावा।

भट्ठी (हिं० स्त्री०) १ विशेष आकार और प्रकारका ईंटों आदिका बना हुआ बड़ा चूल्हा। इस पर हलवाई पकवान बनाते, लोहार लोहा गलाते, वैद्य लोग रस आदि फूंकते अथवा इसी प्रकारके और काम करते हैं। २ देशी मद्य टपकानेका कारखाना, वह स्थान जहां देशी शराब बनती हो।

भट्योरा—दाक्षिणात्यवासी मुसलमान जातिकी एक शाखा। ववर्चीका काम या दूकानदारी इनकी प्रधान उपजोविका है। ये लोग दिल्लीसे आ कर यहां निम्नश्रेणी-के हिन्दूधर्मत्यागी मुसलमानोंके मध्य विवाह शादी करके निम्नश्रेणीमें गिने जाने लगे हैं। ये लोग स्वभावतः ही अपरिष्कार हैं। इनकी सम्प्रदायी सुन्नी मुसलमान कह कर अपना परिचय देने पर भी ये कभी भी कलमा पाठ नहीं करते।

भठियाना (हिं० क्रि०) समुद्रमें भाटा आना, समुद्रके पानी का नीचे उतरना।

भठियारपन (हिं० पु०) १ भठिसारका काम। २ भठि-यारोंकी तरह लड़ना और अश्लील गालियाँ वकना।

भठियारा (हिं० पु०) सरायका प्रवन्ध करनेवाला। माटियारा देखो।

भठियाल (हिं० पु०) ज्वारका उलटा, भाटा।

भठुली (हिं० स्त्री०) ठठेरोंकी मिट्टीकी वनी हुई वह छोटी भट्ठी जिसमें किसी चीजको गड़नेसे पहले तपाते या लाल करते हैं।

भड़ंवा (हिं० पु०) आडम्बर, दिखौआ शान।

भड़ (सं० पु०) भड़ परिहासे परिभाषणे वा अच्। वर्ण-सङ्कर जातिविशेष। इसकी उत्पत्ति लेट पिता और तीवर मातासे हुई थी।

"लेटस्तीवर कन्यायां जनयामास यत्नरान्।
माल्लं मल्लं मातरञ्च मड़ं कोलञ्च कन्दरम्।
(ब्रह्मवैवर्त्तपु० ब्रह्मख० १० अ०)

भड़ (हिं० स्त्री०) १ एक प्रकारकी वहुत हलकी नाव। २ वीर, योद्धा।

भड़क (हिं० स्त्री०) १ दिखाऊ चमक दमक, चमकीला-पन। २ भड़कनेका भाव, सहम।

भड़कदार (हिं० वि०) १ जिसमें खूब चमकदमक हो, चमकीला। २ रोवदार।

भड़कना (हिं० क्रि०) १ प्रज्वलित हो उठना, तेजीसे जल उठना। २ क्रुद्ध होना। ३ वढ़ जाना, तेज होना। ४ डर कर पीछे हटना, चौंकना। इस शब्दका प्रयोग विशे-षतः घोड़े आदि पशुओंके लिये होता है।

भड़काना (हिं० क्रि०) १ प्रज्वलित करना, जलाना। २ उत्तेजित करना, उभारना। ३ किसीको इस प्रकार भ्रम में डालना, कि वह कोई काम करनेके लिये तैयार न हो। ४ चमकना। ५ वढ़ावा देना।

भड़कीला (हिं० वि०) भड़कदार, चमकीला। २ डर कर उत्तेजित होनेवाला, चौकन्ना होनेवाला।

भड़कीलापन (हिं० पु०) चमक दमक, भड़कीले होनेका भाव।

भड़भड़ (हिं० स्त्री०) १ भड़भड़ शब्द जो प्रायः एक चीज पर दूसरी चीज जोर जोरसे पटकने अथवा वड़े वड़े ढोल आदि वजानेसे उत्पन्न होता है, आघातोंका शब्द। २ व्यर्थकी और वहुत अधिक वात चीत। ३ जनसमूह, जिसमें छोटे वड़े या खोटे खरेका विचार न हो, भीड़।

भड़भड़ाना (हिं० क्रि०) १ भड़भड़ शब्द करना। २ किसी चीजमेंसे भड़भड़ शब्द उत्पन्न होना।

भड़भड़िया (हिं० वि०) वहुत अधिक और व्यर्थकी वातें करनेवाला, गप्पी।

भड़भाँड़ (हिं० पु०) एक कंटीला पौधा। घमोय देखो।

भड़भूँजा—हिन्दुओंकी एक छोटी जाति जो अन्न भूननेका काम करती है। इनके दो थोक हैं, परदेशी और मराठा। मराठा वहुत कुछ महाराष्ट्रियोंसे मिलते हैं। परदेशी उत्तर भारतसे दक्षिणापथमें आ कर जुन्नर, घेड़, सिरूर, वीजा-पुर, पुरन्धर आदि स्थानोंमें वस गये हैं।

परदेशी भड़भूजा अपनेको साधारणतः कनोजिया और काश्यपगोत्रीय वतलाते हैं। ये लोग आपसमें पुत्र कन्याका आदान-प्रदान तथा भोजनादि करते हैं। मांस मछली इनको वहुत प्रिय है। शीतलादेवोकी पूजामें छाग वली देते हैं। परिश्रमी होने पर भी ये लोग अपरिच्छन्न हैं, किन्तु देवता-ब्राह्मणमें इनको विशेष भक्ति देखो जाती है। प्रत्येक घरमें वहिरोवा, भवानी, खनदोवा, और महादेव आदिकी मूर्त्तियां रहती हैं। परदेशी-ब्राह्मण सभी कर्मोंमें उनको याजकता करते हैं। आलण्डी, कोन्दनपुर, पण्ढरपुर और तुलजापुर आदि इनके प्रधान पवित्र तीर्थ-स्थान हैं। ये शिवरात्रि, आषाढ़ी-एकादशी, गोकुलाष्टमी, अनन्तचतुर्दशी, कार्त्तिक एकादशी तथा 'प्रदोष' अर्थात् प्रतिमासके कृष्णात्रयोदशी आदि पर्व-दिनोंमें उपवास करते और सिमगा, नागपञ्चमी, दशहरा तथा दीवालीके दिन उत्सव मनाते हैं।

जातवालकके १२वें दिन प्रसूतिका अशौचान्त होता है। इस दिन सन्ध्या समय पुरोहित आ कर बालकका नामकरण करते हैं। एकसे सात वर्षके मध्य शुभ दिनमें वालकका मुण्डन होता है। युवकोंका ३० वर्षमें और युवतियोंका १२-१६ वर्षमें शुभ विवाह होता है। जब कन्या व्याहने योग्य होती है तब कन्याकर्त्ता वर-कर्त्ताके पास जा कन्याग्रहणकी प्रार्थना करते हैं। वर-कर्त्ताके स्वीकार करने पर एक दो रुपये या एक वरतनमें थोड़ी चीनी वरके हाथ दे कर कन्याकर्त्ता अपने घरको लौटते हैं। विवाहके पहले वर और कन्याके घरमें एक विवाह मण्डप वनाया जाता है। उस दिन एक कुमारी वर और कन्याके शरीरमें उवटन लगाती है। विवाहके दिन एक तालपत्रका मौर वरके सिर पर रख कर वारात वरको ले कन्याके घर जाती हैं। कहीं कहीं कन्या ही वरके घर लाई जाती है। जहां कहीं भी क्यों न हो, वर और कन्याके विवाहस्थल पर उपस्थित होनेसे उनके माथेके ऊपर रोटी और जल परछन कर स्नान कराया जाता है। इसके वाद एक लोहार वर और कन्याके दहिने और वायें हाथमें लोहेका कङ्कण दे कर सूता बांध जाता है। तदन्तर वर और कन्याको चौकी पर बिठा पुरोहित सम्प्रदान कार्य शुरू करते हैं। वाद कन्याकर्त्ता वरके दोनों पैर जलसे धो कर पूजा करता है। उठनेके समय वर और दम्पतीके सिर पर हाथ रख आशीर्वाद देता तथा दो या पांच रुपये यौतुक दे जाता है। यही इन लोगोंके कन्या-दानकी प्रथा है। विवाह हो जाने पर जाति-कुटुम्बको खिलाया जाता है। वादमें वारात विदा होती हैं, किन्तु वरका वह मौर कन्याके पित्रालयमें ही रहता है। जब तक एक और शुभ विवाह नहीं हो जाता तब तक माङ्गलिक जान कर उसे घरमें यत्नपूर्वक रखते हैं। वाद वह नदीके किनारे अथवा तालावमें फेंक दिया जाता है। साधारणतः ये लोग शवदेहको जलाते हैं। वसन्तरोगसे यदि किसीको मृत्यु होती है तो लाशको जमीनमें गाड़ते हैं। मृत-व्यक्तिके ऊपर गरम जल डाल कर नये वस्त्रसे उसकी देह ढंक देते हैं। विधवा होनेसे उजला थान, पुरुष होनेसे उजला वाफता और सधवा-रमणी होनेसे हरा कपड़ा पहना दिया जाता है। उसके वाद उस शवके ऊपर फूल और पान छिड़क कर सभी उसे प्रणाम करते तथा उसके दोनों हाथोंमें गेहूंके पिण्ड देते हैं। श्मशानमें शवको चिता पर रख कर मुखाग्निके मुख्य अधिकारी मुंहमें जल और अग्नि देते है, वादमें शवदेह जलाई जाती है। अन्त्येष्टि क्रिया समाप्त होने पर सब कोई स्नान कर घर लौटते हैं। तीन दिनके वाद उस भस्मको साफ कर दाहस्थानको गोवर और चूनेसे परिष्कार करते तथा वहां मृतकी प्रेतात्माकी तुष्टिके लिये खाद्यादि रख देते हैं। स्त्री होनेसे ९ दिनमें और पुरुषको मृत्यु होनेसे १० दिनमें अशौचान्त हो कर श्राद्धादि करते हैं।

चोजापुरके भड़भूंजे एक स्वतन्त्र श्रेणीके हैं। ये लोग अपनेमें ही कन्यापुत्रका विवाहादि करते हैं। प्रवाद है, कि स्थानीय भोई नामक जालिकगण इसलाम-धर्ममें दीक्षित हो कर इस प्रकार अवस्थान्तरको प्राप्त हुये हैं। अन्य विषयमें मुसलमानोंका अनुकरण करने पर भी हिन्दू देवीकी पूजा और पार्वणादि प्रतिपालनसे ये पराङ्मुख नहीं हैं। किन्तु विवाह या सत्कार्य होने पर काजीको वुला कर कार्य सम्पादन करते हैं। ये लोग हनफी सम्प्रदायी सुन्नी मुसलमान हैं।

हिंदू भड़भूंजोंमें कहीं कहीं वाल्य-विवाह, विधवा विवाह और बहु विवाह प्रचलित है।

भड़वा (हिं० पु०) भड़ुआ देखो।

भड़सार (हिं० स्त्री०) भोज्यपदार्थ रखनेके लिये किवाड़ीदार आला या ताक, भंड़रिया।

भड़हर (हि० स्त्री०) भंड़हर देखो।

भड़ाल (हिं० पु०) योद्धा, सुभट।

भड़िल (सं० पु०) पाणिनिके गर्गादिगणोक्त ऋषिभेद। (पा० ४।१।१०५)

भड़ियाद—वम्बई प्रदेशके अहमदावाद जिलेके धन्धुका तालुकके अन्तर्गत एक प्राचीन स्थान। यह धोलेरा नगरसे १ कोस उत्तर पश्चिममें अवस्थित है। यहांकी पीर भड़ियाद रोजा नामक विख्यात अट्टालिका मुसलमान और गुजरातवासी निम्नश्रेणीके हिन्दुओंका पवित्र तीर्थस्थान है। उस रोजाके मध्य सैयद वोखारी महमूद शाह वालिस सैयद अवदुल रहमानको कब्र है। प्रायः ६ वर्ष पहले उक्त महात्मा १५वें

वर्षमें तीर्थयात्राके उद्देश्यसे अपनी जन्मभूमि उच्छ (पञ्जावके अन्तर्गत)-का परित्याग कर इधर उधर भ्रमण को निकले। इस समय धन्धुकासे ७ कोस दक्षिण चोकि (चक्रावती) नामक स्थानमें एक राजपूत राज्य करते थे। कहते हैं, कि उक्त राजा उपवासके बाद पारणके दिनमें एक मुसलमानकी हत्या किये विना जलग्रहण नहीं करते थे। एक समय किसी बुढ़ियाका एकलौता इसी प्रकार मारा गया। शोकसे विह्वल हो उस बुढ़ियाने महमूद शाहके निकट अपना दुखड़ा रोया। साधुहृदय इस निष्ठुर संवादसे उद्वेलित हो उठा। उन्होंने मुसलमानोंको उत्ते-जित कर राजाके विरुद्ध हथियार उठाने कहा। युद्धमें राजाके निहत होने पर भी उनके पुत्रके प्रबल कोपानलसे महमूद शाहने परित्राण नहीं पाया। रणक्षेत्रमें राजपुत्रके हाथसे वे मारे गये। उनकी अन्तिम प्रार्थनाके अनुसार मुसल-मानोंने गजवनशाह नामक स्थानमें उनका दफन किया। उसी समाधिके ऊपर भड़ियादका रोजा विद्यमान है। उक्त घटनाके दो सौ वर्ष बाद काम्बेके नवावने रोजा-भवन बनवा कर उसके खर्चके लिये वार्षिक ३५०) रु०-का प्रबन्ध कर दिया। प्रतिवर्ष यहां सैकड़ों मुसलमान इकट्ठे होते हैं। दरगाहके मध्य १। मन वजनका एक लौहशृङ्खल है। कहते हैं, कि एक समय उस लौहशृङ्खलमें ऐसा प्रभाव था, कि अनपराधीकी कमरमें वह बांध देनेसे ७ कदम आगे बढ़ने पर दो खण्ड हो जाता था। जिसके अदृष्टसे वह खण्ड नहीं हो सकता था, वह व्यक्ति अप-राधी वा दोषी समझा जाता था और तदनुसार उसे सजा मिलती थी।

भड़िल (सं० पु०) भड़तीति भड़ि (सलिकल्यनिमहिभड़ि-भयहीति। उण् १।५५) इति इलच्। १ सेवक। २ शूर।

भड़िहा (हिं० पु०) तस्कर, चोर।

भड़ी (हिं० स्त्री०) वह उत्तेजना जो किसीको मूर्ख बनाने या उत्तेजित करनेके लिये दी जाय, झूठा बढ़ावा।

भड़ुआ (हिं० पु०) १ वह जो वेश्याओंकी दलाली करता हो, पुंश्चली स्त्रियोंकी दलाली करनेवाला २ वेश्याओं-के साथ तवला या सारंगी आदि बजानेवाला, सफर-दाई।

भड़ुर (हिं० पु०) ब्राह्मणोंमें बहुत निम्नश्रेणीकी एक जाति। इस जातिके लोग ग्रहादिकका दान लेते अथवा यात्रियोंको दर्शन आदि कराते हैं, भंडर।

भणन (सं० क्ली०) भण-ल्युट्। कथन।

भणित (सं० त्रि०) भण-क्त। शब्दित, ध्वनित। २ कथित, जो कहा गया हो। (स्त्री०) ३ कही हुई बात, कथा।

भणिति (सं० स्त्री०) भण्यते इति भण-क्तिन्। वाक्य।

भण्टक (सं० पु०) मारिष क्षुप, मरसा नामका साग।

भण्टा (सं० स्त्री०) १ चिञ्चोटक, चेंच साग। २ वार्त्ताकी, वैंगन।

भण्टाकी (सं० स्त्री०) भट्यते भण्यते वा भट-भृतौ भण शब्दे वा (पिनाकादयश्च। उण् ४।१५) इति निपात्यते च, गौरादित्वात् ङीप्। १ वार्त्ताकी, वैंगन। २ वृहती, वनभंटा। ३ वृन्ताक, पोईका साग।

भण्टुक (सं० पु०) भड़तीति भड़ि-उकान्। श्योनाकवृक्ष। किसी किसी पुस्तकमें 'भण्टुक' ऐसा भी पाठ देखनेमें आता है।

भण्ड (सं० पु०) भण्डते इति भड़ि प्रतारणे अच्। १ अश्लीलभाषी, वह जो गंदी बातें बकता हो। २ भाँड़। (त्रि०) ३ वृथा धर्माभिमानी, धूर्त।

भण्डक (सं० पु०) भण्ड-संज्ञायां कन्। १ खञ्जन पक्षी। २ एक कवि।

भण्डतपस्विन् (सं० त्रि०) भण्डः तपस्वी कर्मधा०। भक्त-विड़ेल, कपट-तपस्वी, विड़ाल-धार्मिक।

भण्डन (सं० क्ली०) भड़ि भावादौ ल्युट्। १ खलाकार, प्रतारणा। २ कवच। ३ युद्ध। ४ क्षति, हानि।

भण्डनादित्य—चालुक्यराज विजयादित्य कलिमर्त्यङ्कका एक सेनापति और सामन्त। ये पट्टवर्द्धिनीवंशीय-काल कम्पके वंशधर थे। शिलालिपिमें इनकी वीरत्वकाहिनी कीर्त्तित हुई है।

भण्डहासिनी (सं० स्त्री०) भण्डेन खलीकारेण ऽसति या, हस्-णिनि ङीप्। गणिका, वेश्या।

भण्डारी—बम्बई प्रेसिडेन्सीमें रहनेवाली एक जाति। मद्य बनाना और ताड़वृक्षोंसे ताड़ी संग्रह कर बेचना ही इनका प्रधान व्यवसाय है। इनमें कीते और सिंदे नामकी दो श्रेणियां हैं, उनमें परस्पर वैवाहिक सम्बन्ध

वा भोजनादि नहीं होता। साधारणतः ये साफ सुथरे और विलासी होते हैं। प्रायः सभी मद्य, ताड़ी और गांजा पीते हैं। मादकताके वशीभूत होने पर भी ये मिताचार और आतिथ्यादि गुणोंसे भूषित हैं। पुरुषवर्ग सिर घुटाते और चोटी रखते हैं। स्त्रियां और बालकगण नाना कार्यों में पुरुषोंको सहायता करते हैं। भूतपति महादेव ही इनके प्रधान उपास्यदेव हैं। देशी और खर्हाद ब्राह्मण इनके सभी कार्यों में पौरोहित्य करते हैं। हिन्दुओंकी भांति प्रायः सभी पर्वोंमें ये उपवासादि करते हैं। पण्ढरपुर, गोकर्ण और बनारस आदि तीर्थस्थानोंमें जानेके लिये इनमें विशेष उत्सुकता पाई जाती है। जन्म और विवाहकार्यमें ये ब्राह्मणके परामर्शानुसार कार्य करते हैं। अन्यान्य जातीय या सामाजिक झगड़ोंका निवटेरा इनकी जातीय सभा ही कर दिया करती है। ये मुर्दोंको जलाते भी है और गाड़ भी देते हैं।

भण्डि (सं० स्त्री०) भडि, इन्। वीचि, लहर।

भण्डिका (सं० स्त्री०) मञ्जिष्ठा, मजीठ।

भण्डिजङ्घ (सं० पु०) पाणिन्युक्त ऋषिभेद।

भण्डित (सं० पु०) भडि-क्त। ऋषिभेद, एक गोत्रकार ऋषिका नाम।

भण्डिन्—हर्षचरित-प्रणेता कवि बाणभट्टका नामान्तर।

भण्डिर (सं० पु०) भण्डिल रलयोरैक्यम्। शिरीषवृक्ष, सिरसा।

भण्डिल (सं० पु०) भण्ड्यते परिहसतीवेति भाषते इवेति वा, भडि, (सलिकल्यनिमहिभडिभण्डीति। उणा् १।५५) इति इलच्। १ शिरीषवृक्ष, सिरसका पेड़। २ दूत। ३ शिल्पी। (त्रि०) ४ शुभ, अच्छा।

भण्डी (सं० स्त्री०) भण्ड्यते इति भड़ि-इन् कृदिकारादिति पक्षे ङीप्। १ मञ्जिष्ठा, मजीठ। २ शिरीषवृक्ष, सिरसा। ३ श्वेत त्रिवृत, सफेद निशोथ।

भण्डीतकी (सं० स्त्री०) भण्डी सती तकतीति तक-अच्, गौरादित्वात् ङीप्। मञ्जिष्ठा, मजीठ।

भण्डीर (सं० पु०) भण्डि बाहुलकात् ईरन्। १ समष्ठिल क्षुप, भँड़भाँड़। २ तण्डुलीय शाक, चौलाई। ३ शिरीषवृक्ष, सिरसा। ४ वटवृक्ष।

भण्डीरलतिका (सं० स्त्री०) भण्डीर इव लतते इति लतिः अच् स्वार्थे कन्-टाप् अत इत्वं। मञ्जिष्ठा, मजीठ।

भण्डीरी (सं० स्त्री०) भण्डीर-गौरादित्वात् ङीप्। मञ्जिष्ठा, मजीठ।

भण्डील (सं० पु०) भण्डीर-रलयोरैकत्वं। मञ्जिष्ठा, मजीठ।

भण्डुक (सं० पु०) भड़ि-उक्। १ मत्स्यविशेष, भाकुर नामक मछली। गुण—मधुर, शीतल, वृष्य, श्लेष्मकर, गुरुविष्टम्भी और रक्तपित्तहर। २ श्योनाकवृक्ष।

भतरौंड़ (हिं० पु०) १ मथुरा और वृन्दावनके बीचका एक स्थान। इसके विषयमें यह प्रसिद्ध है, कि यहां श्रीकृष्णने चौबाइनोंसे भात मगवा कर खाया था। २ ऊंचा स्थान। ३ मन्दिरका शिखर।

भतवान (हिं० पु०) विवाहकी एक रीति। इसमें विवाहके एक दिन पहले कन्यापक्षके लोग भात, दाल आदि कच्ची रसोई बना कर वर और उसके साथ चार और कुंआरे लड़कोंको बुला कर भोजन कराते हैं।

भतार (हिं० पु०) पति, खाविंद।

भताला—मध्यप्रदेशके चान्दा जिलान्तर्गत एक गण्ड ग्राम। यह भाण्डक नगरसे १३ कोस उत्तर-पश्चिममें अवस्थित है। एक समय यह स्थान प्राचीन भद्रावती राज्यके अन्तर्भुक्त था। निकटवर्ती पर्वतके ऊपर सुरक्षित प्राचीन देवमन्दिर और दुर्गादि स्थानीय प्राचीन कीर्त्तिका परिचय प्रदान करते हैं। पर्वतके पादमूलस्थ सुरम्य पुष्करिणी आदिसे इस स्थानकी शोभा अनिर्वचनीय हो रही है। यहां पत्थरकी एक उत्कृष्ट खान है।

भतीजा (हिं० पु०) भाईका पुत्र, भाईका लड़का।

भतुआ (हिं० पु०) सफेद कुम्हड़ा, पेठा।

भतुला (हिं० पु०) गकरिया, बाटी।

भतोली—मुजफ्फरपुर जिलेके अन्तर्गत एक प्राचीन ग्राम। यह मुजफ्फरपुर नगरसे ६ कोसकी दूरी पर अवस्थित है। यहां 'भेवरि डी' नामक एक १०० फुट उच्च सुवृहत् स्तूप है। स्थानीय प्रवाद है, कि उस स्थान पर चेरू राजाओंका एक दुर्ग था। मुसलमान अमलदारीसे बहुत पहले यह आगसे बिलकुल बरबाद हो गया था। स्तूप खनते समय देखा गया है, कि उसका गठनकार्य और इष्टकादि प्राचीन हिंदू ढंगकी बनी हुई हैं। अलावा

इसके उस स्तूपमें और भी कितनी हिन्दू-देवमूर्त्तियां पाई गई हैं। इस स्थानके अनेक निदर्शन आज भी कलकत्ते-के जादूघरमें सुरक्षित हैं।

भत्ता (हिं० पु०) दैनिक व्यय जो किसी कर्मचारीको यात्राके समय दिया जाता है।

भथान—वम्बईप्रदेशके काठियावाड़ राज्यान्तर्गत झलावर जिलेका एक छोटा सामन्तराज्य। यह अक्षा० २२° ४१′ उ० तथा देशा० ७१° ५४′ पू०के मध्य अवस्थित है। यहां-के सरदार वृटिश-सरकारको तथा जूनागढ़के नवावको कर देते हैं।

भदई (हिं० वि०) भादों सम्वन्धी, भादोंका। (स्त्री०) २ वह फसल जो भादोंमें तैयार होती है।

भदन्त (सं० पु०) भदन्ते इति भदि कल्याणे (भन्देर्नलोपश्च। उणा् ३।१३०) इति झच् नलोपश्च। १ सौग-तादिवुद्ध, मायादेवीके पुत्र। २ सुतेज। (लि०) ३ पूजित। ४ प्रव्रजित।

भदन्त—एक ज्योतिर्विद्। वराहमिहिरने इनका नामो-ल्लेख किया है।

भदन्तगोपदत्त (सं० पु०) एक वौद्धाचार्य।

भदन्तज्ञानवर्मन—एक कवि। शार्ङ्गधरपद्धतिमें इनका उल्लेख है।

भदन्तधर्मत्रात—एक वौद्धाचार्य।

भदन्तराम—एक वौद्धाचाय।

भदन्तवमन—एक कवि। शार्ङ्गधरपद्धतिमें इनका उल्लेख है।

भदन्तश्रीलाभ—एक वौद्धाचार्य।

भदमद (हिं० वि०) वहुत मोटा। २ भद्दा।

भदयल (हिं० पु०) मेंढ़क।

भदर्वा—वम्वई प्रदेशके रेवाकान्थ राज्यके अन्तर्गत एक सामन्तराज्य। भूपरिमाण २७ वर्गमील है। यहांके सरदार राणा उपाधिधारी हैं। ये लोग गायकवाड़राजको कर देते हैं।

भदर्शा—अयोध्या प्रदेशके फैजावाद जिलान्तर्गत एक नगर जो मरहानदीके किनारे अवस्थित है। इस स्थानका प्राचीन नाम भायादर्श है। प्रवाद है, कि दशरथ तनय भरत इसी स्थान पर अपने वड़े भाई श्रीरामचंद्रजीके साथ मिले थे।

भदवरिया (हिं० वि०) भदावर प्रान्तका।

भदाक (सं० पु० क्ली०) भन्दते इति भदि (पिनाकादयश्च। उणा् ४।१५) इति आक, नलोपश्च। मङ्गल।

भदारि—पंजावप्रदेशके अन्तर्गत एक प्राचीन राजधानी। राजा चोवनाथ यहां पर राज्य करते थे। भेराके पार्श्ववर्त्ती अहमदावाद नगरके समीप उसका ध्वंसाव-शेष आज भी विद्यमान है।

भदावर—एक प्रान्त जो आज कल ग्वालियर राज्यमें है। यहांके क्षत्रियोंका एक विशिष्ट वर्ग है। यहांके वैल भी वहुत प्रसिद्ध होते हैं।

भदेरु (हिं० वि०) कुरूप, भद्दा।

भदैल (हिं० पु०) मेंढ़क।

भदैला (हिं० वि०) भादों मासमें उत्पन्न होनेवाला, भादोंका।

भदौंह (हिं० वि०) भादों मासमें होनेवाला।

भदौर—पञ्जावके पतियाला राज्यके अन्तर्गत एक नगर। यह अक्षा० ३०° २८′ उ० तथा देशा० ७५° २३′ पू० वड़-नालासे १६ मील पश्चिममें अवस्थित है। जनसंख्या साढ़े सात हजारसे ऊपर है। १७१८ ई०में पतियालाके राजा आलसिंह भाई सरदार दुन्नसिंहने इसे वसाया। यह सदर दिन-पर-दिन उन्नति कर रहा है।

भदौरा—ग्वालियर राज्यके गुणा सव-एजेन्सीके अन्तर्गत एक सामन्त राज्य। जनसंख्या ८२७५ और भूपरिमाण ५० वर्गमील है। इसमें इसी नामका एक शहर और १६ ग्राम लगते हैं। स्थानीय डकैतोंके उपद्रवादिसे देशको रक्षा करनेके कारण १८२० ई०में सिन्देराजने मानसिंह नामक किसी सरदारको यह सम्पत्ति प्रदान की। यहांके सरदार उदयपुर घरानेके सिसोदिया राजपूत हैं और 'राजा' इनकी उपाधि है। उमरीके हिम्मतसिंहके लड़के जगत् सिंहने १७२० ई०में राजसिंहासन पर अधिकार जमाया। उनकी मृत्युके वाद रणजित्सिंह गद्दी पर वैठे। ये ही वर्त्तमान सरदार हैं। राजस्व ५०००) रु०के करीव है।

२ उक्त राज्यका प्रधान नगर। यह अक्षा० २४° ४८′ उ० तथा देशा० ७७° २४′ पू०के मध्य विस्तृत है। जन-संख्या सात सौके करीव है।

भदौरिया—राजपूत-जातिकी एक शाखा। चमुला (चम्वल)

नदीके दक्षिणतीरमें आगरानगरके दक्षिण-पूर्वस्थ भदावर जिलेमें रहनेके कारण ये 'भदौरिया' कहलाये। जो भदौरिया पूर्वमें रहते हैं, वे अपनेको भिड-वंशीय कहते हैं। परन्तु अन्यान्य भदौरियाओंके अपनेको चौहान-वंशी ही बताने पर भी चौहान लोग उनके ज्ञातित्त्व स्वीकार नहीं करते। कुछ भी हो, वर्त्तमानमें उन्होंने परस्परमें विवाह-सम्बन्ध द्वारा कुटुम्बिता स्थापन कर ली है।

इनमें ६ श्रेणियां पाई जाती हैं, जैसे—अठभइया, कुलहिया, मैनू, तसेली, चन्द्रसेनिया और रावत।

इस जातिकी सामाजिक उन्नति और प्रतिष्ठाके सम्बन्धमें अनेक तरहकी किम्वदन्तियां सुननेमें आती हैं। गोपालसिंह नामक सरदार मुसलमान बादशाह महम्मद शाहके बड़े प्रिय थे, इसलिए उन्हें कई जागीरें मिली थीं। तभीसे यह सरदारवंश पार्श्ववर्त्ती राजन्यवर्गका विशेष सम्मानार्ह हो गया है।

चंद्रसेनिया, कुलहिया, अठभइया और रावतगण चौहान, कछवाह, राठौर, चन्देल, शिरनेत, पानवार, गौतम, रघुवंशी, गहरवाड़, तोमर और गहलोत-वंशीय राजपूतोंकी कन्या ग्रहण करते हैं; तथा चौहान, कछवाह और राठौर श्रेणीके उच्च राजपूतवंशमें अपनी कन्या देते हैं। तसेली राजपूत निम्नश्रेणीके राजपूतवंशमें विवाह करते हैं। 'आईन-इ-अकबरी'के पढ़नेसे मालूम होता है, कि उक्त जिलेकी हरकांटा नगरमें इनकी राजधानी थी। ये दिल्लीके निकट रह कर दस्युवृत्ति द्वारा मुगलशक्तिकी भी उपेक्षा करते हुए स्वाधीनभावसे अपने राज्यमें विचरण किया करते थे। सम्राट् अकबरशाहने इनके अत्याचारोंसे उकता कर भदौरिया सरदारको हाथीके पैरों तले दबा कर मरवा दिया था। फिर इन्होंने दिल्लीकी वश्यता स्वीकार कर ली।

परवर्त्ती भदौरिया-सरदार राजा मुकतमनने मुगल-सम्राट्के अधीन कार्य किया था और वे १ हजारी मनसबदार पदके अधिकारी हुए थे। वे हिजरी सन् ९९२में युद्धार्थ गुजरात भेजे गये थे। बादशाह जहांगीरके समयमें राजा विक्रमजित्ने मुगल-सेनाके सहकारी रूपमें युद्ध किया था। उनकी मृत्युके बाद उनके पुत्र भोज राजा हुए थे। सम्राट् शाहजहांके राजत्वकालमें भदौरिया-सरदार राजा किसनसिंहको मुगलोंके पक्षसे झाफरसिंह, खान् जहान् लोदी, निजाम-उल-मुल्क और साहू भोंसले आदिके विरुद्ध युद्ध करना पड़ा था। दौलताबादके अवरोधके समय उनकी वीरता चारों ओर व्याप्त हो गई थी। हिजरी सन् १०५३में उनको मृत्यु होनेसे उनके चचेरे भाई बदन (बुध) सिंहको राज्य मिला। सम्राट् शाहजहां (२१वें वर्षमें) एक दिन राज-दरबारमें बैठे हुए थे, कि इतनेमें वहां एक मत्त हस्ती चला आय और उसने दरबारके एक व्यक्तिको दांतोंसे घायल कर दिया। यह देख बदनसिंहने गुस्सेसे उस हाथीको मार डाला। सम्राट्ने उनके वीरत्वसे संतुष्ट हो कर उन्हें एक खिलअत दी और भदावर-राज्यका ५० हजार रु०का कर मोकूफ कर दिया। उसके बाद इन्हें डेढ़ हजारी सेनानायकका पद मिला था। शाहजहांके २५वें वर्षमें ये औरङ्गजेब और दाराशिकोहकी तरफसे कान्दाहार-युद्धमें गये थे। इसके दूसरे ही वर्ष इनकी मृत्यु हो गई। उनके पुत्र मानसिंह १ हजार पदाति और ८ सौ अश्वारोही सेनाके नायक हुए। औरङ्गजेबके राज्यमें बुन्देला-विद्रोह और युसुफजैको दमन कर ये बादशाहके बड़े प्रियपात्र बन गये थे। इनके पुत्र ओदत (रुद्र)-सिंह चित्तोरके सेनापति हुए थे।

'तवारीख-इ-हिन्द' नामक मुसलमान इतिहासमें लिखा है कि, सम्राट् महम्मदशाहके समयमें महाराष्ट्र-सेनाके भदावरमें घुस पड़ने पर सरदार अमरू (अमरत) सिंहने स-सैन्य अग्रसर हो कर उससे युद्ध किया था। युद्धमें जयी होने पर भी महाराष्ट्रोंने लूट कर उनके राज्यको तहस नहस कर दिया था।

भदौरिया (हिं० वि०) भदावर प्रान्तका, भदावर-संबंधी।

भद्गांव—बम्बई प्रदेशके खान्देश जिलेका एक नगर। यह अक्षा० २०° ४०′ उ० तथा देशा० ७५° १४′ पू० गिराना नदीके बाएं किनारे अवस्थित है। जनसंख्या ७९५६ है। १८६९ ई०में यहां म्युनिसपलिटी स्थापित हुई है। रुई, नील और तीसीका वाणिज्य जोरों चलता है। १८७२ ई०को इस नगरका अर्द्धांश बह गया था। अधिवासियोंको महती क्षति हुई थी। शहरमें सब-जजकी अदालत, अस्पताल और चार स्कूल हैं।

भद्दा (हिं० पु०) १ जिसकी बनावटमें अंग प्रत्यंगकी सापेक्षिक छोटाई बड़ाईका ध्यान न रखा गया हो। २ जो देखनेमें मनोहर न हो, बेढ़ंगा।

भद्दापन (हिं० पु०) भद्दे होनेका भाव।

भद्र (सं० क्ली०) भन्दते इति भदि कल्याणे (ऋज्रेन्द्राग्र-वज्र विप्र कुब्र चुब्र खुर भद्रोग्रेति। उण्_२।२८) इति रन् निपात्यते च। १ मङ्गल, क्षेमकुशल। २ ज्योतिषोक्त बव आदि करके सप्तम करण। ३ महादेव। ४ खञ्जरीट, खंजन पक्षी। ५ वृषभ, बैल। ६ कदम्बक, कदंब। ७ करिजातविशेष, हाथियोंकी एक जाति जो पहले विन्ध्याचलमें होती थी। ८ नवशुक्ला-वलान्तर्गत जिनभेद। ९ वामचर। १० सुमेरु। ११ स्नुही। १२ चन्दन। १३ साध्य-मौलिकोंकी पद्धतिविशेष। (पु०) १४ वसुदेवके एक पुत्रका नाम। (भाग ९।२४।४६) १५ सरोवरविशेष। १६ तृतीय उत्तममनुके अन्तरमें देवगणभेद। १७ पुराणानुसार स्वायंभुव मन्वन्तरके विष्णुसे उत्पन्न एक प्रकारके देवता जो तुषित भी कहलाते हैं। १८ पर्वतभेद। १९ कूर्मविभागस्थ मध्यदेशवासी मनुष्य। २० सुवर्ण, सोना। २१ मुस्तक, मोथा। २२ दिक्हस्तिविशेष, उत्तरदिशाके दिग्गजका नाम। २२ रामचंद्रकी सभाका वह सभासद जिसके मुंहसे सीताकी निन्दा सुन कर उन्होंने सोताको वनवास दिया था। २४ विष्णुका वह द्वारपालजो उनके दरवाजे पर दाहिनी ओर रहता है। २५ एक चोलराजका नाम। २६ वलदेवजीके एक सहोदर भाई। २७ एक प्राचीन देशका नाम। २८ विष्णुके एक पारिषदका नाम। २९ रामजीके सखाका नाम। ३० स्वरसाधनको एक प्रणाली जो इस प्रकार है:--सा रे सा, रे ग रे, ग म ग, म प म, प ध प, ध नि ध, नि सा नि, सा रे सा। सा नि सा, नि ध नि, ध प ध, प म प, म ग म, ग रे ग, रे सा रे, सा नि सा। ३१ व्रजके ८४ वनोंमेंसे एक वन। (त्रि०) ३२ सभ्य, सुशिक्षित। ३३ कल्याणकारी। ३४ श्रेष्ठ। ३५ साधु।

भद्र (हिं० पु०) सिर, दाढ़ी, मूछों आदि सबके सब बालोंका मुंडन।

भद्रक—१ वङ्गालके वालेश्वर जिलान्तर्गत एक उपविभाग। यह अक्षा० २०°४४´ से २१°१५´ उ० तथा देशा० ८६°१८´४०´´ से ८७° पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ६०६ वर्गमील है। भद्रक, वासुदेवपुर, धर्मनगर और चाँदवासी यहांके प्रधान वाणिज्यस्थान हैं।

२ उक्त विभागका सदर और प्रधान नगर। यह अक्षा० २१°३´१०´´ उ० तथा देशा० ८६°३३´२५´´ पू०के मध्य विस्तृत है। कलकत्तासे कटक जानेके रास्ते पर स्थापित होनेके कारण यह एक वाणिज्यकेन्द्रमें गिना जाता है।

भद्रक—सह्याद्रिवर्णित एक हिन्दूराजा। ये लोग अम्बादेवोके भक्त और वृद्धविष्णु मुनिके कुलजात थे।
(सह्याद्रिख० ३३।७८)

भद्रक—दाक्षिणात्यके सुङ्गवंशीय एक राजा।

भद्रक (सं० क्ली०) भद्र-संज्ञायां स्वार्थे वा कन्। १ भद्रमुस्तक, नागरमोथा। २ देवदारु। ३ वृत्तरत्नाकरोक्त छन्दोभेद। इसके प्रति चरणमें २२ अक्षर रहते हैं। इस छन्दके १, ४, ६, १२, १६, १८, २२ अक्षर गुरु, शेष लघु होते हैं। ४ एक प्राचोन देशका नाम। ५ चना, मूंग इत्यादि अन्न।

भद्रकण्ठ (सं० पु०) भद्रः कण्ठो यस्य। गोक्षुर, गोखरू।

भद्रकन्या (सं० स्त्री०) मौद्गल्यायनकी माता।

भद्रकपिल (सं० पु०) शिव, महादेव।

भद्रकर्ण (सं० पु०) भद्रस्य वृषस्य कर्णो यत्र। गोकर्णरूपतीर्थभेद।

भद्रकर्णिका (सं० स्त्री०) गोकर्णकी दाक्षायणीका एक नाम।

भद्रकर्णेश्वर (सं० पु०) भद्रकर्णस्य ईश्वरः। १ गोकर्णतीर्थस्थित शिवलिङ्गभेद। स्त्रियां ङीप्। २ तीर्थभेद।

भद्रकलिपक (सं० पु०) एक वोधिसत्त्वका नाम।

भद्रका (सं० स्त्री०) इन्द्रयव।

भद्रकाम—मणिकूट पर्वतके पूर्वदिक्स्थ तीर्थभेद।

भद्रकाय (सं० पु०) १ नाग्नजितीके गर्भसे उत्पन्न श्रीकृष्णके एक पुत्रका नाम। (त्रि०) २ मङ्गलदेहक। ३ सुन्दर आकृतियुक्त।

भद्रकार (सं० त्रि०) भद्रं करोति कृ-अन् उपपद स०। १ मङ्गलकारक। (पु०) २ एक प्राचीन देशका नाम जिसका उल्लेख महाभारतमें आया है।

भद्रकारक (सं० त्रि०) भद्रस्यकारकः। मङ्गलकारक, कल्याण करनेवाला।

भद्रकाली (सं० स्त्री०) भद्रा मङ्गलमयी चासौ काली-चेति कर्मधा० यद्वा भद्रं कल्याणं कारयतीति भद्र-कर्मण्यन्, ततो ङीप्। १ गन्धोली, कपूरकचरी। २ कात्यायनी। (मेदिनी)

"शृणु त्वं नृपशार्दूल! भद्रकाली यथा पुरा।
प्रादुर्भूता महाभागा महिषेषा सदैव तु ॥"
(कालिकापु० ५९ अ०)

कालिकापुराणके ५९वें अध्यायमें भद्रकाली देवीके आविर्भावका विषय लिखा है जो इस प्रकार है,—

भद्रकालीदेवी भगवती दुर्गाकी मूर्त्तिविशेष हैं। ये देवी षोड़शहस्तयुक्ता हैं। एक दिन महिषासुरने निद्रितावस्थामें स्वप्न देखा कि, देवी भद्रकाली उसका शिरश्छेद कर रक्तपान कर रही है। स्वप्नसे डर कर प्रातःकाल ही महिषासुरने अपने अनुचरवर्गके साथ देवीकी पूजा आरम्भ कर दी। पूजासे सन्तुष्ट हो कर देवी षोड़शभुजा भद्रकाली-रूपमें आविर्भूत हुईं। तब दैत्यराज बोले "देवि! मैंने स्वप्न देखा है कि आप मेरा शिरश्छेद कर रक्तपान कर रही हैं। सन्देह नहीं कि यह सत्य ही होगा, और मुझे भी दुःख नहीं है; कारण नियतिका लङ्घन करना असम्भव है। मैंने मन्वन्तरकाल तक श्रेष्ठ असुरराज्यका भोग किया है। शिष्यके लिए कात्यायन मुनिने मुझे शाप दिया है कि 'स्त्रीजाति तुझे मारेगी।' अतः इसमें सन्देह नहीं कि मैं आपके द्वारा मारा जाऊंगा। पहले कात्यायन मुनिके शिष्य रौद्राश्व नामक एक अतिशय साधुचरित्र ऋषि हिमालय पर्वतके निकट तपस्या कर रहे थे, मैंने कौतुकवश स्त्रीरूप धारण कर उनका तप भङ्ग कर दिया था, उनके गुरुने उसे मेरी माया समझ कर मुझे शाप दिया था। मेरा मृत्यु-समय आसन्न है; इसलिए मैं भाविमङ्गलके लिए आपसे एक वर मांगता हूं; हे देवी! आप प्रसन्न हूजिए।" देवी भद्रकालीने वर देना स्वीकार किया। महिषासुरने कहा—"मैं आपके अनुग्रहसे यज्ञभाग भोगनेकी इच्छा करता हूं और जब तक चन्द्र सूर्य रहेंगे, तब तक आपकी पादसेवा नहीं छोड़ूंगा।" उसके वाक्यसे सन्तुष्ट हो कर देवीने कहा—"पहलेसे ही समस्त यज्ञोंका भाग देवोंमें विभक्त हो चुका है, अब इनका कोई ऐसा भाग नहीं बचा है, जिसे मैं तुम्हें दे सकूं। हां, तुम्हें यह वर देती हूं, कि मेरे द्वारा निहत होने पर भी कभी भी तुम्हें मेरे चरण नहीं छोड़ने पड़ेंगे। जहां मेरी पूजा होगी, वहां तुम भी पूजा पाओगे।" तब बड़े आनन्दसे महिषासुरने कहा,—"उग्रचण्डे! भद्रकालि! दुर्गे! आप मेरी यह वासना पूर्ण करें।" इस पर देवीने कहा—"तुमने मेरे जो तीन नाम उच्चारित किये हैं, उन तीन मूर्त्तियोंके साथ मेरे पादलग्न हो कर तुम सर्वत्र पूजित होओगे। (कालिकापुराण)

भद्रकाली और दुर्गा एक ही हैं। दुर्गापूजाके विधानानुसार इनकी पूजा हुआ करती है। तन्त्रसारमें इनकी पूजाका विधान लिखा है।

३ मेदिनीपुरसे ३॥ कोसकी दूरी पर नैर्ऋतकोणमें अवस्थित एक पवित्र तीर्थ। यहां भद्रकालीकी मूर्त्ति प्रतिष्ठित है। कुर्गराज्यमें भी भद्रकालीका मन्दिर है। भद्रकालीके सम्मुख मुर्गी आदि विविध बलिदान होते हैं।

४ स्कन्दानुचर मातृभेद। ५ दक्षयज्ञके समय देवी भगवतीके क्रोधसे इनकी उत्पत्ति हुई थी। इन्होंने उत्पन्न होते ही वीरभद्रके साथ दक्षयज्ञ ध्वंस किया था। (कूर्मपु० लिङ्गपु० और भारत शान्तिप० २८४ अ०)

६ गङ्गाके पश्चिमतीर पर अवस्थित एक ग्राम। ७ गंधप्रसारिणी। (पर्यायमुक्ता०) ८ नागरमुस्ता, नागर-मोथा। (वैद्यकनि०)

भद्रकालेश्वर (सं० पु०) शिवलिङ्गभेद।

भद्रकाशी (सं० स्त्रि०) भद्राय काशते इति काश-अच्, गौरादित्वात् ङीप्। भद्रमुस्ता, नागरमोथा।

भद्रकाष्ठ (सं० क्ली०) १ देवदारुवृक्ष। २ तैल-देवदारु, मलङ्गा-देवदारु।

भद्रकाह्वया (सं० स्त्री०) भद्रमुस्ता, नागरमोथा।

भद्रकीर्त्ति—एक जैन पण्डित। ये आमराजके मित्र थे।

भद्रकुम्भ (सं० पु०) भद्रस्य भद्राय वा कुम्भः अथवा भद्रः कुम्भः। पूर्णकुम्भ।

भद्रकृत (सं० त्रि०) १ मङ्गलविधायक, कल्याण करने-वाला। (पु०) २ जैनोंके उत्सर्पिणीका चौबीसवां अर्हत् भेद।

भद्रगणित (सं० क्ली०) बाजगणितोक्त चक्रविन्यास द्वारा

निर्णीत अङ्कप्रकरणविशेष. वीजगणितके अन्तर्गत एक प्रकारका गणित जो चक्रविन्यासकी सहायतासे होता है।

भद्रगन्धिका (सं० स्त्री०) भद्रो गन्धोऽस्यास्तीति ठन-टाप्। मुस्तक, मोथा।

भद्रगिरि —दाक्षिणात्यके राजमहेन्द्रीके समीपवर्ती गोण्ड-वन प्रदेशके अन्तर्गत एक पर्वत। यहां मरकताम्बिका नामकी पार्वती-मूर्त्ति स्थापित है। विस्तृत विवरण भद्रगिरि माहात्म्य और भद्राचल शब्दमें देखो।

भद्रगुप्त—उज्जयिनी (अवन्ति)-वासी एक जैनाचार्य। इन्होंने खरतर-गच्छके १६वें वज्रको दृष्टिवाद नामक द्वादशाङ्गकी शिक्षा दी थी।

भद्रगौड़—भारतवर्षके पूर्वदिग्वर्त्ती देशभेद। मार्कण्डेय-पुराणमें यह स्थान भद्रगौर नामसे उल्लिखित हुआ है। (मार्कपु० ५८।१३)

भद्रगौर (सं० पु० पूर्व दिग्वर्त्ती देशभेद (मार्कपु० ५८ अ०)

भद्रङ्कर (सं० त्रि०) भद्रं करोतीति कृ-वाहुलकात् खच् मुमूच। मङ्गलकारक। पर्याय—क्षेमङ्कर, क्षेमकार, भद्रङ्कर, शुभङ्कर, अरिष्टताति, शिवताति, शङ्कर। (भूरिप्र०)

भद्रङ्करण (सं० क्ली०) भद्रं क्रियतेऽनेन कृ ल्युन्, ममुच्। मङ्गलसाधन।

भद्रघन (सं० पु०) १ भद्रमुस्त। २ पिपासा। ३ नागर-मोथा।

भद्रचन्दनसारिवा (सं० स्त्री०) कृष्णसारिवा।

भद्रचारु (सं० पु०) रुक्मिणी गर्भजात वासुदेवके एक पुत्रका नाम। (हरिवंश ११८ अ०)

भद्रचूड़ (सं० पु०) भद्रा चूड़ा अस्य। लङ्कास्थायीवृक्ष।

भद्रचोल—चोलराजभेद। चोलवंश देखो।

भद्रज (सं० पु०) भद्राय जायते इति जन-ड। इन्द्रयव।

भद्रजानि (सं० त्रि०) १ सर्वाङ्गसुन्दरी स्त्रीयुक्त। (पु०) २ रुद्रपुत्रगण।

भद्रतरुणी (सं० स्त्री०) भद्रा तरुणीव। कुब्जकवृक्ष, मालतीका पेड़।

भद्रता (सं० स्त्री०) भद्रस्य, भावः तल्, टाप्। भद्रत्व, साधुता।

भद्रतुङ्ग (सं० क्ली०) तीर्थभेद।

भद्रतुरग (सं० क्ली०) भद्रा तुरगा अत्र। १ जम्बूद्वीपके नववर्षके अन्तर्गत वर्षविशेष। (पु०) २ साधुअश्व, सु-लक्षण-सम्पन्न तेज चलनेवाला घोड़ा।

भद्रदन्तिका (सं० स्त्री०) भद्रा दन्तिका। दन्तिवृक्ष, भद्र-दन्ती। पर्याय—केशरुहा, भिषग्भद्रा, जयावहा, आवर्त्तकी, ज्वराङ्गी, जयाह्वा। गुण—कटु, उष्ण और रेचन तथा कृमि, शूल, कुष्ठ, आमदोष और तुन्दरोग-नाशक।

भद्रदन्त (सं० पु०) हस्ती, हाथी।

भद्रदारु (सं० पु० क्ली०) भद्रं दारु। देवदारु।

भद्रदार्वादिक (सं० पु०) भद्रदारु आदौ यस्य कप्। सुश्रु-तोक्त औषधगणविशेष। देवदारु, कुष्ठ, हरिद्रा, वरुण, मेषश्रृङ्गी, श्वेतवहेड़ा, नीलझिण्टी, गणिकारिका, दुरालभा, सल्लकी, पारुल, अर्जुनवृक्ष, पीतझिण्टी, गुलञ्च, एरण्ड, पाषाणभेदी, श्वेतआकन्द, शतमूली, पुनर्णवा साम्भरलवण गजपिप्पली, काञ्चनवृक्ष, कार्पास, वृश्चिकाली, मालिञ्च-शाक, यवकुल और कुलत्थ ये सब भद्रदार्वादिगण हैं। (सुश्रुतसूत्रस्थान ५६ अ०)

भद्रदेह (सं० पु०) पुराणानुसार श्रीकृष्णके एक पुत्रका नाम।

भद्रद्वीप (सं० पु०) पुराणानुसार कुरुवर्षके अन्तर्गत एक द्वीपका नाम।

भद्रनामन् (सं० पु०) भद्रं नाम यस्य। १ काष्ठकुट्ट पक्षी, कठफोरवा नामक पक्षी। (त्रि०) २ उत्तम नामयुक्त।

भद्रनामिका (सं० स्त्री०) भद्रं नाम यस्याः कप्, टाप् अत इत्वं। त्रायन्तीवृक्ष।

भद्रनिधि (सं० स्त्री०) भद्रा निधयो ऽत्र। १ महादान-विशेष। हेमाद्रिके दानखण्डमें इस दानका विशेष विव-रण लिखा है। २ उत्कृष्ट रत्न।

भद्रपदा (सं० स्त्री०) भद्रं पदमासां। भाद्रपदा, पूर्वभाद्रपद और उत्तरभाद्रपद नक्षत्र।

भद्रपर्णा (सं० स्त्री०) भद्राणि पर्णान्यस्याः टाप्। १ कट-म्भरावृक्ष। २ प्रसारिणी।

भद्रपर्णी (सं० स्त्री०) भद्राणि पर्णान्यस्याः. गौरादित्वात् ङीष्। १ गाम्भारी। २ प्रसारिणी।

भद्रपल्ली—सुराष्ट्रके अन्तर्गत एक प्राचीन नगर। इसका वर्त्तमान नाम वार्दोली है। कोई कोई इसका प्राचीन नाम वारड़पल्लिका वतलाते हैं।

भद्रपाणि—एक प्राचीन राजा। कश्यपमुनिके गोत्रसम्भूत और महालक्ष्मीपाद-पद्मसेवक ऋतुपर्णराजवंशावतंस रुचिरके एक पुत्रका नाम।

भद्रपाद (सं० त्रि०) भद्रपदासु जातः अण्, उत्तरपदवृद्धिः। भद्रपदानक्षत्रजात, पूर्वभाद्रपद और उत्तर-भाद्रपाद नक्षत्र-जात।

भद्रपाल (सं० पु०) बोधिसत्त्वभेद।

भद्रपीठ (सं० पु० क्ली०) भद्रार्थं पीठः। १ वह सिंहासन जिस पर राजाओं या देवताओंका अभिषेक होता है। २ आसन जिस पर बैठा जाय।

भद्रपीठ—एक हिन्दू राजा।

भद्रपुर (सं० क्ली०) प्राचीन नगरभेद। अरिष्टनेमिके पुत्र मत्स्यने इस नगरको जीता था।

(जैन हरिवंश १७।३०)

भद्रवचा (सं० स्त्री०) इन्द्रजौ।

भद्रवन (सं० पु०) मथुराके पासका एक वन।

भद्रवन्धु—एक बौद्धभिक्षु। इन्होंने अजण्टा गुहामन्दिरस्थ सौगत-गृहका निर्माणकार्य शेष किया था।

भद्रवलन (सं० पु०) भद्रं महन् वलनं बलमस्य। बलराम।

भद्रवला (सं० स्त्री०) भद्रा बला। १ लताविशेष। पर्याय—सरणा, प्रसारणी, कटम्भरा, राजबला। २ गन्धिका, माधवीलता।

भद्रवल्लभ (सं० पु०) बलराम।

भद्रबाहु (सं० पु०) १ रोहिणीके गर्भसे उत्पन्न वसुदेवके एक पुत्रका नाम। २ मगधराजभेद।

भद्रबाहुस्वामिन् (सं० पु०) एक ग्रन्थकार। चारित्रसिंहगणिकृत षड्दर्शनवृत्तिमें इनका नामोल्लेख है।

भद्रबाहुस्वामी—एक प्रसिद्ध जैन-ग्रन्थकार, छठे श्रुतकेवली। श्वेताम्बरके मतानुसार इन्होंने आवश्यकसूत्र, दशवैकालिकसूत्र, उत्तराध्ययनसूत्र, सूत्रकृताङ्गसूत्र, दशाश्रुतस्कन्धसूत्र, कल्पसूत्र, व्यवहारसूत्र, सूर्यप्रज्ञप्तिसूत्र, आचाराङ्गसूत्र, और ऋषिभाषितसूत्र नामक १० निर्युक्ति ग्रन्थ रचे थे। श्वेताम्बर जैनग्रन्थोंमें इन्हें श्रुतपारग और योगप्रधान कहा गया है। मुनिरत्नसूरिने उनकी इन दश निर्युक्तियोंकी तुलना ऋग्वेदके दशमण्डलसे ही की है। इसके सिवा इनके रचे हुए जातकाम्भोनिधि, भद्रबाहुसंहिता और नर्मदासुन्दरीकथा नामक कई ग्रन्थोंमें जैनधर्मका माहात्म्य बतलाया गया है। खरतर और तपोगच्छकी पट्टावलिमें इनका जीवन-काल दिया गया है। ये प्राचीनगोत्रसम्भूत थे। ४५ वर्ष गृहवासमें रह कर इन्होंने उपसर्गहरस्तोत्र, कल्पसूत्र, शत्रुञ्जयकल्प और १० निर्युक्ति ग्रंथ प्रणयन किये और १७ वर्ष ब्रह्मचारी रहे। उसके बाद १४ वर्ष तक योगप्रधान-रूपमें अवस्थिति कर और वि० सं० १७० में ७६ वर्षकी अवस्थामें इनका शरीरान्त हुआ। जैनधर्म देखो।

धर्मघोषकगणि-कृत ऋषिमण्डलप्रकरण नामक श्वे० जैन ग्रन्थमें लिखा है कि, दाक्षिणात्यके प्रतिष्ठान-नगरमें * भद्रबाहु और वराह नामके दो भ्राता राज्य करते थे। यशोभद्र नामक एक जैनाचार्यका धर्मोपदेश सुन कर दोनों भाइयोंने जिन-दीक्षा ले ली। भद्रबाहुके पाण्डित्य पर प्रसन्न हो कर गुरु यशोभद्रने उन्हें सूरि प्रदान किया। इसी समय भद्रबाहुने पूर्व-कथित दस निर्युक्ति और भद्रबाहवीसंहिताकी रचना की। उसके बाद यशोभद्रके स्वर्गपुरी गमन करने पर, उनके प्रधान शिष्य आर्यसम्भूति और भद्रबाहुने आचार्यपद ग्रहण कर भारतके नाना स्थानोंमें धर्मप्रचारार्थ भ्रमण किया।

राजावली-कथा नामक कनाड़ी इतिहासमें भद्रबाहुका इस प्रकार जीवनवृत्तान्त लिखा है :—भारतखण्डके पुण्ड्वर्द्धन राज्यके अन्तर्गत कोटिकपुर नगरमें पद्मरथ नामक एक राजा राजत्व करते थे। उनके राज्यकालमें राजपुरोहित सोमशर्माकी पत्नी सोमश्रीने एक सर्वसुलक्षण-सम्पन्न पुत्र प्रसव किया। पिताने शुभलक्षणोंके सन्दर्शनसे प्रीत हो कर अपने पुत्र कोष्ठीफलका निर्णय कर देखा कि, समयान्तरमें यह बालक जैनधर्म-परिरक्षक होगा। तदनुसार उन्होंने जैन-प्रथासे बालकका चौल

---

* किन्हींका मत है कि ये आनन्दपुर (बड़नगर)-निवासी और वल्लभीराज ध्रुवसेनके समसामयिक थे। Ind. Ant. vol II p. 139, और किसी किसीका यह कहना है कि वे सम्राट् चन्द्रगुप्त वा अशोकके समकालीन थे।

और उपनयन-संस्कार कराया। एक दिन वालक भद्र-वाहु अपने साथियोंके साथ क्रीड़ा कर रहे थे, कि उसी समय महामुनि गोवर्द्धनस्वामी, नन्दिमित्र और अपराजित नामक चार श्रुतिकेवली ५ सौ शिष्योंके साथ जम्बूस्वामीके समाधि-सन्दर्शनको कोटिकपुर आये। महामुनि गोवर्द्धनने वालक भद्रवाहुके शुभचिह्नोंको देख कर अनुमान किया कि यही वालक अन्तिम श्रुतिकेवली होगा। अतएव इसके लिए शिक्षाविधानकी आवश्यकता है। ऐसा विचार कर वे वालकका हाथ पकड़ कर उसे सोमशर्माके पास ले गये और वालकको शिक्षाका भार अपने ऊपर लेनेका अभिप्राय प्रकट किया। पिताको पहलेसे ही मालूम था कि पुत्र जैनधर्मका प्रचारक होगा। गोवर्द्धनस्वामीके शुभागमनसे उनके हृदयमें पूर्वस्मृति जाग उठी। उन्होंने गद्गद् कण्ठसे प्रणतिपूर्वक आचार्यवरकी आज्ञा स्वीकार की। परन्तु माता सोमश्रीने दीक्षाके पहले एक वार पुत्रदर्शनको प्रार्थना की थी। दोनोंके वाक्य और सम्मतिसे संतुष्ट हो कर गोवर्द्धनस्वामी भद्रवाहुको ले कर अक्षश्रावकके घर पहुंचे और वहां उनके अवस्थान, भोजन और अध्ययनकी व्यवस्था कर दी।

स्वामीजीके तत्त्वावधानमें रह कर भद्रवाहुने शीघ्र ही योगिनी, सङ्गिनी, प्रज्ञा और प्रज्ञप्ति नामक वेदोंके चारों अनुयोग, व्याकरण और चतुर्दश विज्ञानका अभ्यास कर लिया। ज्ञान मार्गमें जितना ही वे अग्रसर होने लगे, उतना ही उन्हें सांसारिक विषयोंसे विरक्ति वढ़ने लगी। दीक्षाग्रहणके वाद वे यथाक्रमसे ज्ञान, ध्यान, तप और संयमादिमें अभ्यस्त हो कर आचार्योंमें परिगणित हो गये। इनके आचार्यपद प्राप्त करनेके वाद गोवर्द्धन श्रुतिकेवलीका तिरोधान हुआ।

एक दिन पाटलिपुत्रके राजा चन्द्रगुप्तने कार्तिककी पूर्णिमा रात्रिको निद्राके आवेशमें १६ स्वप्न देखे *। निद्राभङ्ग होने पर उनका हृदय वहुत ही उद्वेलित हो उठा। किसी प्रकार भी उनका चित्त स्थिर नहीं हुआ। प्रातः कृत्यादि-सम्पन्न करके वे मन्त्रणागृहमें चुपचाप जा वैठे। इतनेमें प्रतिहारीने आ कर संवाद दिया कि, भद्रवाहुमुनि नाना दिग्देशोंमें परिभ्रमण करते हुए राजोद्यानमें आ पहुंचे हैं। राजा अमात्यवर्गसे परिवृत हो कर मुनिके समीप उपस्थित हुए। राजाकी अभिवन्दनासे सन्तुष्ट हो कर मुनिश्रेष्ठने उन्हें धर्मोपदेश दिया। तदन्तर राजाने अपने १६ स्वप्नोंका हाल सुनाया, जिनका फल मुनिने इस प्रकार कहा,—१ सम्यग्ज्ञान तमसाच्छन्न होगा, २ जैनधर्मकी अवनति होगी और तुम्हारे वंशधरगण सिंहासन पर वैठे हुए ही दीक्षा ग्रहण करेंगे, ३ देवतागण अव भारतवर्षमें नहीं आवेंगे, ४ जैनगण विभिन्न सम्प्रदायोंमें विभक्त हो जायंगे, ५ वर्षाके मेघ जलवर्षण न करेंगे और उसी अनावृष्टिके कारण शस्यादिकी उत्पत्ति नहीं होगी, ६ सत्यज्ञान लोपको प्राप्त होगा और कई एक क्षीणज्योतिः इतस्ततः विकीर्ण होगी, ७ आर्यखण्डमें जैनधर्मका प्रसार वहुलतासे न होगा, ८ असतको प्रतिष्ठा और सतका लोप होगा, ९ लक्ष्मी निम्नगामिनी होगी, १० राजा राजस्वके षष्ठांशसे तृप्त न हो कर अर्थलोलुप होंगे और अधिक लाभकी आशासे प्रजाकी पीड़ावृद्धि करेंगे, ११ मनुष्य यौवनवस्थामें धर्मप्राण हो कर वार्द्धक्यमें सव कुछ विसर्जन कर देंगे, १२ उच्चवंशीय राजा नीचोंके सहवाससे कलुषित होंगे, १३ नीच उच्चको नष्टभ्रष्ट कर समता प्रतिपादनका प्रयास करेंगे, १४ राजागण अयथा कर ग्रहण कर प्रजाको दुर्दशा ग्रस्त करेंगे, १५ निम्नश्रेणोके मनुष्य अन्तःसार-

* १ सूर्य अस्त हो रहे हैं, २ कल्पवृक्षकी शाखा टूट कर गिर पड़ी है, ३ स्वर्गीय रथ शून्यमें अवतीर्ण हुआ है और ऊपरको जा रहा है, ४ चन्द्रमण्डल मानो इतस्ततः भिन्न हो गया है, ५ दो काले हाथी लड़ रहे हैं, ६ ऊषालोकमें खद्योत दीप्ति दे रहे हैं, ७ एक तालाव सूखा पड़ा है, ८ आकाश धूमाच्छन्न हो गया है, ९ वानर सिंहासन पर वैठा हुआ है, १० स्वर्णपात्रमें कुक्कुर खीर खा रहे हैं, ११ वैल लड़ रहे हैं, १२ क्षत्रिय गधे पर भ्रमण कर रहे हैं, १३ वानर मरालोंको भगा रहे हैं, १४ गायके वछड़े समुद्रमें कूद रहे हैं, १५ फेरुपाल वृद्ध वैलोंको मार रहे हैं और १६ एक सर्प वाहर फनोंको फैला कर अग्रसर हो रहा है। चन्द्रगुप्त देखो।

दिगम्बर मतानुसार १४ स्वप्न देखे थे।

शून्य वाक्यालापसे ज्ञानियोंकी उपेक्षा करेंगे और १६ द्वादश वार्षिकी अनावृष्टिके कारण वसुन्धरा शस्य-शून्य हो जायगी।

इसके कुछ दिन बाद उन्होंने शिष्योंको विदा कर दिया और एकाकी भ्रमण करते हुए एक बालकका आर्त्त नाद सुना। पुकारने पर कोई उत्तर नहीं मिला, इससे समझ लिया कि अब द्वादशवार्षिकी अनावृष्टिका सूत्रपात हो गया*। राजाचन्द्रगुप्तने इस दैवप्रकोपकी शान्तिके लिए विविध अनुष्ठान किये। किंतु किसी प्रकार भी शांति न हुई; यह देख वे दीक्षा ग्रहण कर वानप्रस्थाचारी हो कर भद्रबाहुस्वामीके सहचर हो गये।

भद्रबाहुने ज्ञानदृष्टिसे देखा कि उस महामारीके समयमें विन्ध्यापर्वतसे ले कर नीलगिरि पर्यन्त समग्र भारतमें किसी प्रकार शस्यादि न होंगे। अनाहारमें लोग प्राण त्याग करेंगे और धर्म भी कलुषित होगा। तब वे अपने १२ हजार शिष्यों और अन्यान्य लोगोंके साथ दक्षिणापथको चल दिये। मार्गमें अपना मृत्यु-समय उपस्थित जान उन्होंने एक पर्वत शिखर पर चढ़ कर अन्तिम-ध्यानमें निमग्न होनेकी इच्छा प्रकट की। उस स्थानमें भी दुर्भिक्षका पूर्व प्रकोप देख कर उन्होंने प्रियशिष्य विशाख मुनिको संघ सहित चोलमण्डलमें चले जानेके लिये आदेश दिया। उनकी अनुमतिके अनुसार एकमात्र चन्द्रगुप्त ही उनके साथ रहे। उन्होंने गुरुकी मृत्युके बाद उनकी अन्त्येष्टि-क्रिया सम्पन्न कर, उनके पादपद्मकी पूजामें निरत रहे*।

भद्रभीमा (सं० स्त्री०) पुराणानुसार कश्यपकी एक कन्याका नाम जो दक्षकी कन्या क्रोधाके गर्भसे उत्पन्न हुई थी।

---

* राजावली-वर्णित चन्द्रगुप्तका स्वप्न सत्य न होने पर भी द्वादशवार्षिकी अनावृष्टिकी बात शिलालेखोंसे प्रमाणित हो जाती है। दाक्षिणात्यके श्रवणबेलगोड़ाके निकटवर्त्ती इन्द्रगिरि-शिखरस्थ प्राचीन कनाड़ी अक्षरोंमें संस्कृत भाषामें लिखित शिलालेखके पढ़नेसे मालूम होता है कि, गौतमगणधरके शिष्य भद्रबाहुस्वामीको उज्जयिनीमें ही ज्ञानयोगसे इस द्वादशवर्षव्यापी अकालका परिज्ञान हो गया था। जनसाधारणको इस भावी विपत्तिका हाल सुना कर वे अनेक मनुष्योंके साथ दाक्षिणात्यको चल दिये। नाना ग्राम और जनपदोंको अतिक्रम करते हुए वे कोटव-पर्वत पर पहुंचे और अपनी मृत्यु निकटवर्ती जान वहीं रह गये। यहां पर अन्तिम समाधिमें निमग्न होनेसे पहले उन्होंने सबको विदा कर सिर्फ एक शिष्यको अपने पास रखा। उसके बाद संन्यास व्रताचरण पूर्वक उन्होंने सत्पथ ऋषिके अभीष्ट पदको प्राप्त किया था। *Ind Ant vol III, p, 153.*

इस सुप्राचीन शिलालिपिमें लिखी हुई भद्रबाहुकी दक्षिणयात्राका समर्थन राजावलीमें भी किया गया है। विशाखका चोलमण्डलमें गमन और चन्द्रगुप्तके गुरुके साथ अवस्थानका आभास भी नितान्त अप्रासङ्गिक नहीं जाना पड़ता।

* पाटलिपुत्रके राजा ये चन्द्रगुप्त कौनसे थे? राजावली-कथा नामक कनाड़ी ग्रन्थसे इस ऐतिहासिक सत्यका अंकुर उत्पन्न होता है। यदि भद्रबाहु और चन्द्रगुप्तका आख्यान रूपक न हो, और श्रवणबेलगोड़ाके निर्जन पर्वतशिखरस्थ शिलालेखके मौलिकत्वमें सन्देह हो, तो इस विचित्र आख्यान पर विचार करनेकी आवश्यकता ही न थी। जब चन्द्रगुप्त पाटलिपुत्रके सिंहासन पर उपविष्ट थे, उस समय जैनधर्म लुप्त होनेका अवसर आ पहुंचा था इस बातको सभी स्वीकार करते हैं। सम्भवतः उसी समय जैनोंके शेषतम ६ष्ठ श्रुतकेवली भद्रबाहु स्वामीका आविर्भाव हुआ था। कारण, उसके बाद फिर कोई उस पद पर अधिष्ठित नहीं हुए। इधर देखते हैं कि चन्द्रगुप्तके बाद बौद्धधर्मका पुनर्विस्तार हुआ था। भद्रबाहुस्वामीके गुणकीर्त्तनकारी जैनग्रन्थकारगण अवश्य ही ऐसे प्रबलप्रताप नरपतिके जैनपादाश्रय ग्रहणसे गौरवान्वित हुए होंगे, इसमें सन्देह नहीं। यही कारण है, कि उन्होंने तत्सामयिक राजा चन्द्रगुप्तको भद्रबाहुके अनुचर शिष्यरूपमें ग्रहण किया है। राजा चन्द्रगुप्त ३७२ ई०में विद्यमान थे। प्रियदर्शी और चन्द्रगुप्त देखो।

इधर भद्रबाहु वीर नि० सं० १७०में ७६ वर्षकी अवस्थामें मोक्ष गये हैं। ऐतिहासिक आलोचनासे खृष्टपूर्व सन् ५२७ को वीर निर्वाण-काल स्थिर हुआ है। अतः ५२७—१७०=३५७ खृष्ट पूर्वमें, मतान्तरसे श्रुतकेवलीगण वीरनिर्वाणके बाद १६२ वर्ष तक थे, तो शेष श्रुतकेवली भद्रबाहु अवश्य ही ३६५ खृष्टपूर्वाब्द तक विद्यमान थे; इससे प्रमाणित होता है कि दोनों एक समयमें ही भारतभूमिमें विद्यमान थे।

भद्रभुज (सं० पु०) १ कल्याणविधायक भुज। (त्रि०) २ मङ्गलजनक भुजशाली। ३ प्रशस्त बाहुयुक्त।

भद्रभूषण (सं० स्त्री०) देवीमूर्त्तिभेद।

भद्रमनस् (सं० स्त्री०) १ ऐरावत हाथीकी माता। (त्रि०) २ मनस्वी, प्रशस्तचेता।

भद्रमन्द (सं० पु०) हाथियोंकी एक जाति।

भद्रमन्द्रमृग (सं० पु०) हाथियोंकी एक जाति।

भद्रमल्लिका (सं० स्त्री०) भद्रमल्लिका। १ गवाक्षी। २ मल्लिकाभेद, नवमल्लिका।

भद्रमातृ (सं० स्त्री०) स्नेहमयी माता।

भद्रमुख (सं० त्रि०) भद्रं मुखं तद्व्यापारोऽस्य। १ सुवक्ता। २ सुन्दरमुखविशिष्ट। (पु०) ३ नागभेद।

भद्रमुञ्ज (सं० पु०) भद्रो मुञ्ज इति कर्मधा०। मुञ्जशर, सरपत। पर्याय—शर, वाण, तेजन, इक्षुवेष्टन। गुण—मधुर और शिशिर, दाह और तृष्णानाशक, विसर्प, अस्र, मूत्र, वस्ति और चक्षुरोगमें हितकर, त्रिदोषनाशक तथा वृष्य।

भद्रमुस्तक (सं० पु०) भद्रो मुस्तकः। नागरमुस्तक।

भद्रमुस्ता (सं० स्त्री०) भद्रा मुस्ता, नागरमुस्तक, नागरमोथा। पर्याय—वराही, गुन्दा, ग्रंथि, भद्रकाशी, कशेरु, क्रोड़ेष्टा, कुरुविन्दाख्या, सुगंधि, ग्रन्थिला, हिमा, वल्या, राजकशेरु, कच्छोत्था, मुस्ता, अर्णोद, वारिद, अम्भोद मेघ, जीमूत, अब्द, नीरद, अभ्र, घन, गाङ्गेय। गुण—कषाय, तिक्त, शीतल, पाचन, पित्तज्वर और कफनाशक। (राजनि०) भावप्रकाशके मतसे इसका गुण—कटु, हिम, तिक्त, दीपन, पाचन, कषाय और कफ, पित्त, अस्रक, ज्वर, अरुचि तथा वमिनाशक। अनुपदेशजात भद्रमुस्ता ही सर्वोत्कृष्ट है। (भावप्र०)

भद्रमृग (सं० पु०) हाथियोंकी एक जाति।

भद्रयव (सं० पु० क्ली०) भद्रः शुभदो यवः। इन्द्रयव, इन्द्रजौ।

भद्रयान (सं० क्ली०) उत्तम यान, बढ़िया सवारी। (पु०) २ शाखाप्रवर्त्तक एक बौद्ध आचार्य।

भद्रयोग (सं० पु०) १ शुभ समय, माहेन्द्रयोग वा क्षण। २ पुराण सर्वस्वका एक अङ्ग।

भद्ररथ (सं० पु०) कक्षेयुवंशीय हर्य्यङ्ग राजाके एक पुत्रका नाम।

भद्रराम—एक ग्रन्थकार। इन्होंने राजा अनुपसिंहकी अनुमतिसे अयुत होमलक्षहोमकोटिहोम नामक एक ग्रन्थ लिखा था। जनसाधारणके निकट ये होमगोप नामसे प्रसिद्ध थे।

भद्ररुचि (सं० त्रि०) १ सत्प्रवृत्तिशाली। २ पश्चिमभारतवासी एक बौद्धभिक्षु। ये हेतुविद्या तथा महायान सम्प्रदायके अपरापर शास्त्रोंमें विशेष पारदर्शी थे। मालवराज शिलादित्यकी सभामें इन्होंने विशेष प्रतिष्ठा प्राप्त की थी।

भद्ररूपा (सं० स्त्री०), रमणीयाकृति रमणी। २ सुरूपा।

भद्ररेणु (सं० पु०) भद्रा रेणवोऽस्य। ऐरावत-हस्ती।

भद्ररोहिणी (सं० स्त्री०) भद्रार्थं रोहति रुह-णिनि-ङीप्। कटुरोहिणी।

भद्रवट (सं० पु०) १ आश्रमभेद। २ तीर्थभेद।

भद्रवत् (सं० त्रि०) भद्रमस्त्यस्मिन्निति मतुप्, मस्य च। १ कल्याणविशिष्ट, मङ्गलयुक्त। (क्ली०) २ देवदारु।

भद्रवती (सं० स्त्री०) भद्रवत् स्त्रियां ङीप्। १ भद्रपर्णी। २ कल्याणविशिष्ट। ३ नाग्नजितीके गर्भसे उत्पन्न श्रीकृष्णकी एक कन्याका नाम। ४ मधुकी माता। ५ चण्डमहासेनकी पालिता हथनी। इसका वेग असीम था। वासवदत्ता इसी हथनीकी पीठ पर सवार हो उदयनके साथ भागे थे। हथनी जब विन्ध्याटवी तक पहुंची, तब वहांका गरम जल पी कर पञ्चत्वको प्राप्त हुई। (कथासरित्सा०)

भद्रवन (सं० क्ली०) वृन्दावनस्थित श्रीकृष्णका केलिकाननविशेष। यह बारह केलिकाननोंसे एक है और नन्दघाटके अग्निकोणमें यमुनाके पूर्वीकिनारे अवस्थित है। एक समय निदाघ समयमें सखियोंके साथ कौतुहल करनेके लिये श्रीकृष्णने यहां मल्लयुद्ध किया था।

भद्रवर्म (सं० पु०) भद्रेण वृणोति आत्मानमिति शेषः-वृ-मनिन्। नवमल्लिका।

भद्रवल्लिका (सं० स्त्री०) भद्रा वल्लिका। गोपवल्ली, अनन्तमूल।

भद्रवल्ली (सं० स्त्री०) भद्रा चासौ वल्ली चेति कर्मधा०। १ मल्लिका। २ माधवीलता। ३ लताविशेष। पर्याय—शानभीरु, भूमिमण्डा, अष्टपादिका।

भद्रवसन (सं० क्ली०) उत्कृष्ट परिच्छद, बढ़िया पहनावा।

भद्रवाच् (सं० त्रि०) १ साधुवक्ता। २ साधु कथा वा प्रसङ्ग।

भद्रवाच्य (सं० क्ली०) बोलने योग्य शुभवाक्य।

भद्रवादिन् (सं० त्रि०) सुष्ठुभाषी।

भद्रविन्द (सं० पु०) श्रीकृष्णके एक पुत्रका नाम। (हरिवंश ९१८७ श्लो०)

भद्रविराट (सं० पु०) एक वर्णार्द्धसम वृत्तका नाम। इसके पहले और तीसरे चरणमें १० और दूसरे तथा चौथे चरणमें ११ अक्षर होते हैं।

भद्रविहार (सं० पु०) बौद्धसङ्घाराममेद।

भद्रशर्मन् (सं० पु०) भद्रं शर्म सुखं यस्य। पुत्राद्यानन्द-युक्त।

भद्रशाख (सं० पु०) भद्राः शाखाः सहायाः यस्य। कार्त्तिकेय।

भद्रशील (सं० त्रि०) सच्चरित, साधुशील।

भद्रशोचि (सं० त्रि०) १ कल्याणदीप्ति। (पु०) २ अग्नि।

भद्रशौनक (सं० पु०) चिकित्साशास्त्रके प्रणेता। चौड़वानन्दने इनका नामोल्लेख किया है।

भद्रश्रय (सं० क्ली०) भद्राय श्रीयते गृह्यते इति श्रि-कर्मणि-अच्। चन्दन।

भद्रश्रवस् (सं० पु०) धर्मका पुत्रभेद।

भद्रश्री (सं० पु०) भद्रा श्रीर्यस्य। चन्दनवृक्ष।

भद्रश्रुत (सं० त्रि०) मधुर शब्द-श्रोता। २ सम्यक् श्रवणकारी। (क्ली०) ३ मिष्टशब्द श्रवण। (हरिवंश २९ अ०)

भद्रश्रेण्य (सं० पु०) हरिवंशके अनुसार वाराणसीके एक प्राचीन राजा जो दिवोदाससे भी पहले हुए थे।

भद्रषष्ठी (सं० स्त्री०) दुर्गादेवी।

भद्रसरस् (सं० क्ली०) भद्रं सरः कर्मधा०। सुपार्श्व-पर्वतस्थित सरोवरमेद। २ उत्तम सरोवर।

भद्रसार (सं० पु०) राजाविन्दुसारका एक नाम।

भद्रसालवन (सं० क्ली०) भद्रसालस्य वनं ६-तत्। भद्राश्ववर्षस्थित वनमेद (भारत भीष्मप० ७ अ०)

भद्रसेन (सं० पु०) १ देवकी गर्भ-सम्भूत वसुदेवके एक पुत्रका नाम। असुरपति कंसने इसे मारा था (भाग० ९।२४।२५) २ ऋषभके एक पुत्रका नाम। ३ कुन्तिराजके एक पुत्रका नाम। ४ महिष्मतके एक पुत्रका नाम। ५ काश्मीरके एक राजा। ६ बौद्धोंके अनुसार 'मारपापीय' आदि कुमतिके दलपतिका नाम। ७ अजातशत्रुका गोत्रा-पत्य। ८ सह्याद्रि-वर्णित दो राजा।

भद्रसोमा (सं० स्त्री०) भद्रः सोम इवास्या द्रव. इति टाप्। १ गङ्गा। २ कुरुवर्षस्थ नदीविशेष।

भद्रहर्ष (सं० पु०) सह्याद्रिखण्ड वर्णित जाङ्गलिक-राजवंशीय एक राजा।

भद्रा (सं० स्त्री०) भद्र-अजादित्वात् टाप्। १ रास्ना। २ व्योमनदी, आकाशगंगा। ३ कृष्णजी। ४ द्वितीया, सप्तमी, द्वादशी तिथियोंकी संज्ञा।

"प्रतिपदेकादशी षष्ठी नन्दा ज्ञेया मनीषिभिः।
द्वितीयाद्वादशी चैव भद्रा प्रोक्ता च सप्तमी॥"

(ज्योतिः सारस०)

बुधवारके दिन भद्रातिथी होनेसे सिद्धियोग होता है। सिद्धियोग सभी कामोंमें शुभ है। ५ प्रसारिणी। ६ कट्फल। ७ अनन्ता। ८ जीवन्ती। ९ अपराजिता। १० नीली। ११ अतिबला। १२ शमी। १३ वचा। १४ दन्ती। १५ हरिद्रा। १६ श्वेतदूर्वा। १७ काश्मरी, पुष्कर-मूल। १८ चन्द्रशूर, चंसुर। १९ सारिवाविशेष। २० गाभि, गाय। २१ भद्राश्ववर्षस्थित नदीमेद। यह नदी गङ्गाकी एक शाखा है और उत्तर कुरुवर्षमें बहती है। २२ स्वरिका। २३ बुद्धिशक्तिविशेष। पर्याय—तारा, महाश्री, ओङ्कार, स्वाहा, श्री, मनोरमा, तारिणी, जया, अनन्ता, शिवा, लोकेश्वरात्मजा, स्वदूरवासिनी, वैश्या, नीलसर-स्वती, शङ्खिनी, महातारा, वसुधारा, धनन्ददा, त्रिलोचना, लोचना। २४ छायाके गर्भसे उत्पन्न सूर्यकी एक कन्या। २५ एक विद्याधरतनया। विदूषकने बड़े कष्टसे इसको पाया था। २६ केकयराजकी एक कन्या जो श्रीकृष्णजीको ब्याही थी। इनके गर्भसे संग्रामजित्, वृहत्सेन, शूर, प्रहरण, अरिजित, जय, सुभद्र, राम, आयु और सत्य

उत्पन्न हुए थे। (भाग०) २७ काक्षीवानकी एक कन्या जो व्युषिताश्वको व्याही थी। विवाहके कुछ समय वाद ही ये विधवा हुई। व्युषिताश्वने अपने शवमें आविर्भूत हो कर अपुत्रगर्भाके गर्भमें पुत्र उत्पादन किया था। (भारत आदिपर्व १।१२१ अ०) २८ सुभद्राका एक नाम। २९ विष्टिभद्रा। कृष्णपक्षकी तृतीया, दशमीके शेषार्द्ध, सप्तमी और चतुर्दशीके पूर्वार्द्ध, शुक्लपक्षकी एकादशी और चतुर्थीके शेषार्द्ध तथा अष्टमी और पूर्णिमाके पूर्वार्द्धको विष्टिभद्रा कहते हैं। कर्कट, सिंह, कुम्भ और मीनराशिमें भद्रा होनेसे पृथ्वीमें; मेष, वृष, मिथुन और वृश्चिकराशिमें होनेसे स्वर्गलोकमें तथा कन्या, धनु, तुला और मकरराशिमें होनेसे पाताललोकमें विष्टिभद्राका अवस्थान होता है। स्वर्गमें विष्टिभद्राके रहनेके समय जो कोई कार्य किया जाता है, वह अवश्य सिद्ध होता है, पातालमें रहनेके समय धनागम और मर्त्यलोकमें रहनेके समय सभी कार्य विनष्ट होते हैं। भद्राके शेष तीन दण्डका नाम पुच्छ है। इस पुच्छमें समस्त कार्योंकी सिद्धि होती है। विष्टिभद्राके समय यात्रा अथवा और कोई शुभकार्य नहीं करना चाहिये।

विष्टिभद्रा देखो।

३० पिङ्गलमें उपजाति वृत्तिका दशवाँ भेद। ३१ कामरूप प्रदेशकी एक नदीका नाम। ३२ वाधा, अड़चन।

भद्रा—१ महिसुरराज्यके अन्तर्गत एक नदी। तुङ्गानदीके साथ मिल कर यह तुङ्गभद्रा नामसे वहती है। पश्चिमघाट-पर्वतमालाके गङ्गामूलाशिखरके पाददेशको धोती हुई यह कदूर जिलेमें आई है और दक्षिणकी ओर घूम कर कुदालीके समीप तुङ्गामें मिलती है। इसके दोनों पार्श्ववर्त्तीस्थान वनमाला और पर्वतपरिशोभित है। येङ्कीपुरके निकट इस नदीके ऊपर एक पुल वनाया गया है। पुराणादिमें भी इस भद्रा नदीका उत्पत्ति-आख्यान देखनेमें आता है। वराहरूपी विष्णुके दक्षिण दन्त द्वारा भद्राकी उत्पत्ति हुई है। तुङ्गभद्रा देखो।

२ कामरूपके अन्तर्गत एक महानदी। यह अजदनदके ऊर्द्ध्वमें अवस्थित है। इस नदीमें भाद्रमासकी शुक्ला चतुर्दशीको स्नान करनेसे स्वर्गलोककी प्राप्ति होती है। (कालिकापु० ७८।३२)। ३ नदीविशेष।

भद्रा—मध्यप्रदेशके वालाघाट जिलान्तर्गत एक सामन्त राज्य। भूपरिमाण १२८ वर्गमील है। १८वीं सदीके शेष भागमें लञ्जीके सूवादारने यह भूसम्पत्ति पठानवंशीय जैनउद्दीन खाँको जमींदारी शर्त्त पर प्रदान की। वह सरदारवंश आज भी इस सम्पत्तिका भोग कर रहा है। वेला ग्राममें सरदारका आवास-भवन विद्यमान है।

भद्राकच्चाना—एक बौद्ध भिक्षु धर्माचारिणी।

भद्राकरण (सं० क्ली०) भद्र डाच्, कृ-ल्युट्। मुण्डन, सिर मुँड़ाना।

भद्राकापिलानी—बौद्धधर्मावलम्बिनी एक भिक्षु-रमणी। ये सभी मठस्थोंको धर्मोपदेश दिया करती थीं।

भद्राकुण्डलकेशा—बौद्धभिक्षुणीभेद।

भद्राङ्ग (सं० पु०) भद्रमङ्गमस्य। वलराम।

भद्राचल—१ मन्द्राज प्रदेशके गोदावरी जिलान्तर्गत एक तालुक। यह अक्षा० १७° २७' से १७° ५७' उ० तथा देशा० ८०° ५२' से ८१° ४६' पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ६११ वर्गमील और जनसंख्या ५० हजारके करीव है। इसमें भद्राचलम नामक एक शहर और ३२० ग्राम लगते हैं।

१८६० ई०में जव निजामने इस स्थानको अङ्गरेजोंके हाथ समर्पण किया, तव यह गोदावरी कलेकूरीकी एजेन्सीमें मिला लिया गया। १८७४ ई०में रेकपल्ली और रम्पाप्रदेश इसके अन्तभुक्त हुए।

२ उक्त तालुकका एक प्रधान नगर। यह अक्षा० १७° १४' उ० तथा देशा० ८१° पू०के मध्य अवस्थित है। इस नगरकी तटभूमि हो कर खरस्रोता गोदावरी नदी वहती है। निकटस्थ एक पर्वतशिखर भद्रकूर यज्ञकुण्ड नामसे प्रसिद्ध है। यहां जो रामचंद्रजीका मंदिर है, वह दाक्षिणात्य-वासियोंके निकट एक पवित्र तीर्थ समझा जाता है। प्रवाद है, कि कपिकुलको साथ ले कर भगवान् रामचन्द्र लङ्का जाते समय गोदावरी पार कर इस स्थान पर ठहरे थे। उन्हींके उस शुभागमनके स्मरणार्थ आज भी नगरवासिगण वर्षमें एक वार महामेलाका आयोजन करते हैं। ऋषि-प्रतिष्ठ नामक किसी साधुपुरुषने चार सदी पहले इस मन्दिरकी पहिले पहल

प्रतिष्ठा की। बाद व च बीचमें संस्कारादि द्वारा उसका आयतन भी बढ़ाया गया। देवताके आभरणोंमें कितने बहुमूल्य हीरकादि भी देखे जाते हैं। इस देव-मूर्त्तिके खर्चवर्चके लिये निजाम सरकारसे प्रति वर्ष १३ हजार रुपये मिलते हैं। यहां जो मेला लगता है, वह वैशाखमासमें आरम्भ होता है। रामचन्द्रजीके मंदिरको छोड़ कर यहां मरकताम्बिका नामक एक और शक्तिमूर्त्ति स्थापित है।

वे सब मंदिर स्थानीय जमींदार और निजामसैन्यके अहरहा-युद्धमें नष्ट हो गये। निजामने जब देखा कि, वे यहांका सम्पूर्ण राजस्व वसूल करनेमें बिलकुल असमर्थ हैं, तब उन्होंने १८६० ई०में इस सम्पत्तिको अङ्गरेजोंके हाथ सौंप दिया। प्रायः २०० वर्ष पहले रामदास नामक एक निजाम-कर्मचारी राजस्व-संग्रह करनेके लिये यहां भेजे गये। जो कुछ रुपये उन्होंने वसूल किये उसे राजसरकारमें न भेज कर एक मन्दिर और गोपुर निर्माणमें लगा दिया। रामदासके ऐसे व्यवहार पर निजाम सरकार बड़ी बिगड़ी और उन्हें कैद कर लिया। पीछे तीरुम लक्ष्मी नरसिंह राव नामक एक दूसरा व्यक्ति राजस्व-संग्रहमें नियुक्त हुए। उन्होंने भी निजामको थोड़ी-सी रकम भेज कर बाकी मन्दिरके संस्कार-कार्यमें खर्च कर डाला था। इस समय मन्द्राजवासी धनी वरदरामदासने मन्दिर बनानेमें उन्हें मदद पहुंचाई। वरदरामकी मृत्युके बाद उन्होंने भी अपनी प्राणरक्षाका कोई उपाय न देखा और निजामके भयसे गोदावरी नदीमें कूद प्राण त्यागा।

इस तीर्थके समीप ही पर्णशाल तीर्थ है। कहते हैं, कि राक्षसपति रावण इसी स्थानसे सीतादेवीको चुरा ले गया था। यहांके पंडा तीर्थवासियोंको सीताके पदचिह्न, उनके बैठनेके कितने प्राचीन स्थान बतलाते हैं।

भद्रात्मज (सं० पु०) भद्रः हितकर आत्मज इव रक्षाकरत्वात्। खड्ग।

भद्रानगर (सं० क्ली०) नगरभेद।

भद्रानन्द—शिवार्चनमहोदधिके प्रणेता।

भद्रानन्द (सं० पु०) एक प्रकारकी स्वर-साधना प्रणाली जो इस प्रकार है :—आरोही—सा रे ग म, रे ग म प, ग म प ध, म प ध नि, प ध नि सा : अवरोही—सा नि ध प, नि ध प म, ध प म ग, प म ग रे, म ग रे सा।

भद्रायुध (सं० पु०) राक्षसभेद।

भद्रारक (सं० पु०) पुराणानुसार अठारह क्षुद्र द्वीपोंमेंसे एक द्वीपका नाम।

भद्रापलिका (सं० स्त्री०) भद्राय अलति पर्याप्नोतीति अल-अच्, भद्रालं पत्रं यस्याः कप्, टाप् अत इत्वं। गंधाली।

भद्राली (सं० स्त्री०) भद्र-अल् अच् भद्राल गौरादित्वात् ङीष्। १ गंधाली। २ मङ्गलश्रेणी।

भद्रावकाशा (सं० स्त्री०) पुण्यसलिला नदीभेद।

भद्रावती (सं० स्त्री०) भद्रमस्या अस्तीति मतुप् मस्य वः, संज्ञायां पूर्वपदस्य दीर्घ। १ कटहलका पेड़। २ महाभारतके अनुसार एक प्राचीन नगरी। पाण्डवगण यहांसे युवनाश्वका अश्वमेधका घोड़ा चुरा ले गये थे। भद्रेश्वर देखो।

भद्राव्रत (सं० क्ली०) विघ्निव्रत।

भद्राश्रय (सं० पु०) भद्रस्य आश्रयः। चन्दन।

भद्राश्व (सं० क्ली०) भद्रा अश्वा अत्र। जम्बूद्वीपके अन्तर्गत एक वर्ष वा क्षेत्र। भागवतमें इस वर्षका विवरण इस प्रकार लिखा है,—इलावृत्तवर्षके पूर्व और पश्चिममें यथाक्रमसे माल्यवान् और गंधमादन पर्वत, उत्तरमें नीलपर्वत और दक्षिणमें निषधाचल पर्यन्त दो हजार योजन-विस्तीर्ण केतुमाल और भद्राश्ववर्षकी सीमा निर्दिष्ट हुई है। सुमेरुके चारों ओर मन्दर, मेरुमन्दर, सुपार्श्व और कुमुद नामक चार अवष्टम्भ पर्वत हैं। उन पर्वतोंका विस्तार और उच्चता अयुत योजन है। चारों पर्वतों पर आम्र, जम्बू, कदम्ब और न्यग्रोध नामक चार प्रधान वृक्ष हैं; जिनका विस्तार सौ सौ योजनका है। इनकी शाखाएं भी सौ सौ योजन विस्तृत हैं।

उक्त चारों वृक्षोंके निकट ही चार ह्रद हैं। जिनमेंसे एकमें दुग्धजल, दूसरेमें मधुजल, तीसरेमें इक्षुरसजल और चौथेमें शुद्धजल है। इन चारों ह्रदोंका जल अतिशय आश्चर्यकारी है। उपदेवतागण उसका सेवन कर

स्वाभाविक योगैश्वर्यको धारण करते हैं। इसके सिवा उक्त स्थानमें चार उत्कृष्ट उद्यान भी हैं, जिनका नाम नन्दन, चैत्ररथ, वैभ्राजक और सर्वतोभद्र है। इन उपवनोंमें प्रधान देवगण और उत्तमा रमणीगण विहार करती हैं।

मंदर-पर्वत पर देवचूत नामक एक वृक्ष है, जो ग्यारह सौ योजन ऊंचा और सर्वदा भूरि भूरि अमृततुल्य फलोंसे सुशोभित रहता है। ये फल पर्वतशृङ्गके समान स्थूल और अपने आप गिरते हैं। उन फलोंके रससे एक अरुणोदा नामक नदी उत्पन्न हुई है, जो मंदरपर्वतके शिखरसे निकल कर पूर्वकी ओर इलावृत वर्ष तक विस्तृत है। इस नदीका जल सेवन करनेसे भवानीकी अनुचरी यक्षाङ्गनाओंके अङ्ग सुगन्धित होते हैं। पवन इस सुगंधको दश योजन फैलाती है। इस प्रकार जम्बूफलोंके रससे जम्बूनदीकी उत्पत्ति हुई है। यह नदी मेरुमन्दरके शिखरसे निकल कर अयुत योजन अन्तरमें पृथिवी पर गिरी है, जिससे समग्र इलावृतवर्ष व्याप्त हो रहा है।

इस नदीके दोनों किनारेकी मिट्टी प्रवाहित जल और रससे अनुविद्ध हो कर वायु और सूर्यके संयोगसे विशेष पाकको प्राप्त हुई है, जिससे जम्बूनद नामक सुवर्ण उत्पन्न हुआ है।

सुपार्श्वपर्वतके पार्श्व देशमें महाकदम्ब नामका जो प्रकाण्ड कदम्बतरु है, उसके कोटरोंसे पांच मधु-धाराएं निकली हैं, जो उस पर्वतके शिखरदेशको निषिक्त करती हुई पश्चिममें अपनी सुगन्ध द्वारा इलावृतवर्षको आमोदित कर रही हैं। कुमुदपर्वत पर शतवर्ण नामक जो एक विस्तीर्ण वट-विटपी है, उसके स्कन्धसे अधोमुख उक्त पर्वतके अग्रभागसे दधि, दुग्ध, घृत, मधु, गुड़, अन्न तथा वसन भूषण शयन आसनादि समस्त अभिलषित वस्तुओंको देनेवाले नद निकले हैं। इसलिये यहांके लोगोंको कभी अङ्गवैकल्य, क्लान्ति, घर्म, जरा, रोग, अपमृत्यु, शीत वा उष्णजन्य वैवर्ण्य तथा अन्यान्य उपसर्ग नहीं सहने पड़ते। वे यावज्जीवन केवल सुख-सम्भोगमें ही काल व्यतीत करते हैं। (भागवत० ५।१६ अ०)

वराहपुराणके मतसे यह जम्बूद्वीपके अन्तर्गत नव वर्षोंमें एक वर्ष है। माल्यवान् पर्वतके पूर्वपार्श्वमें भद्रशालवनसे सुशोभित यह वर्ष अवस्थित है। यहांके पुरुष श्वेतवर्ण और स्त्रियां कुमुदवर्णा हैं। इस वर्षमें शैलवर्ण पर्वत, मालापर्वत, वरजस्व, त्रिपर्ण और नील नामक ५ कुलपर्वत हैं। यहां सीता, सुवाहिनी, हंसवती, कावेरी, सुरसा, शाखावती, इन्द्रनदी, अङ्गारवाहिनी, हरितोया, सोमावर्त्ता, शतह्रदा, वनमाली, वसुमती, हंसा, पर्णा, पञ्चाङ्गा, धनुष्मती, मणिवप्रा, सुब्रह्मभागा, विलासिनी, कृष्णतोया, पुण्योदा, नागवती, शिवा, शैवालिनी, मणितटा, क्षीरोदा, वरुणावती, विष्णुपदी, महानदी, हिरण्यस्कन्धवाहा, सुरावती, वामोदा आदि प्रधान नदियां हैं, तथा इनके सिवा बहुत-सी छोटी छोटी नदियां भी हैं। (वराहपु०)

२ सह्याद्रिखण्डोक्त पांच राजा। (सह्याद्रिख० ३३। ४४, ७७, ६५, १४० १५३)

भद्रासन (सं० क्ली०) भद्राय लोकहिताय आस्यते आस-आधारे ल्युट्। १ नृपासन, राजासन, अभिषेकके समय राजाको जिस आसन पर बिठा कर अभिषेक किया जाता है, उसे भद्रासन कहते हैं। वृहत्संहितामें लिखा है,—प्रशस्त लक्षण-युक्त वृषचर्म पूर्वकी ओर दे कर उस पर सिंह और वृषचर्मका आस्तरण करना चाहिए, फिर उस पर कनक, रजत और ताम्र द्वारा प्रस्तुत आसन वा क्षीर-तरुनिर्मित आसन रखना चाहिए। यह आसन तीन प्रकार परिमाणविशिष्ट होता है—एकहस्त-प्रमाण, पादाधिक एकहस्त-प्रमाण और डेढ़ हस्त-प्रमाण। इस प्रकारका आसन भद्रासन कहलाता है।

२ तन्त्रसारोक्त योगियोंका एक आसन। दोनों गुल्फोंको स्थिर कर उन्हें सीवनीके पार्श्वमें रखनेसे यह आसन बन जाता है।

३ वासगृह, वह घर जिसमें वास किया जाता है, रहनेका घर। वास्तु देखो।

भद्राह (सं० क्ली०) भद्रं अहः कर्मधा०। पुण्याह, पुण्य-दिन।

भद्रि—अयोध्याप्रदेशके प्रतापगढ़ जिलेका एक नगर। यहां एक प्राचीन दुर्गका ध्वंसावशेष देखा जाता है।

भद्रिका (सं० स्त्री०) भद्रा स्वार्थे कन् टाप्। १ भद्रा-तिथि। २ योगिनी दशान्तर्गत पञ्चमी दशा।

"मंगला, पिंगला धन्या भ्रमरी भद्रिका तथा।
उल्का सिद्धा सङ्कटा च योगिन्यष्टौ प्रकीर्त्तिताः॥"
(वृहज्जातक)

भरणी, मघा, ज्येष्ठा और उत्तरभाद्रपद नक्षत्रमें जन्म होनेसे भद्रिकाकी दशा होती है। इस दशाका भोगकाल ५ वर्ष है। इस दशाकालमें मनुष्य सुख, लाभ, यश, संतोष, धर्म, भोग, स्त्री और पुत्रसम्पन्न होता है। इन सब दशाओंकी भी फिर अन्तर्दशा और प्रत्यन्तर्दशा है। तदनुसार फल स्थिर करना होगा। (फ० ज्योति०)

३ वृत्तरत्नाकरोक्त नवाक्षर-पादक छन्दोभेद। इसका लक्षण—"भद्रिका भवति रो नरौ" (वृत्तरत्ना०) ४ गुआ।

भद्रिलपुर—एक प्राचीन नगर। (जैनहरि १८।११)

भद्रेश (सं० पु०) शिवलिङ्गभेद।

भद्रेश्वर (सं० पु०) भद्रः शुभदश्चासावीश्वरश्चेति भद्रात्मकः मङ्गलमय ईश्वरो वेति। १ कल्पग्रामस्थित शिवमूर्त्ति। इस भद्रेश्वर शिवके दर्शन करनेसे चक्रतीर्थगमनका फल प्राप्त होता है। २ महादेवको पानेके लिये पार्वती द्वारा आराधित हिमालयस्थित पार्थिव शिवलिङ्ग। (वामनपु० ४६ अ०)

३ गङ्गाके पश्चिमी किनारे गरिटाल्य ग्रामके उत्तरमें अवस्थित पाषाणमय शिवलिङ्ग और ग्राम। ४ तीर्थविशेष।

"श्रीशैले माधवी नाम भद्रा भद्रेश्वरे तथा।" (मत्स्यपु०)

यहां पर भद्रा नामक शक्तिमूर्त्ति विद्यमान है।

भद्रेश्वर—महार्थमञ्जरी टीकाके प्रणेता।

भद्रेश्वर—राजतरङ्गिणी-वर्णित एक राज-कर्मचारी। ये कायस्थ कुलोद्भव थे। राजकर्ममें नियुक्त हो कर इन्होंने जनसाधारणके ऊपर अत्याचार आरम्भ कर दिया था। (राजतर० ७।३८-४४)

भद्रेश्वर—बम्बई प्रदेशके कच्छ प्रदेशके अन्तर्गत एक प्राचीन नगर। यह भद्रावती नामसे प्रसिद्ध है। यहांकी सुप्राचीन ध्वंसावशिष्ट अट्टालिकाओंके प्रस्तरादि ले कर दूसरी जगह गृहादि बनाये गये हैं। दो ध्वस्तप्राय मसजिद और एक शिवमन्दिरका स्तम्भ तथा गुम्बज आज भी इसकी प्राचीन स्मृतिका परिचय देते हैं। निकटवर्त्ती एक कुण्डके सामने माता आशापुरीका मन्दिर विद्यमान है। बहुत पहले बौद्ध और जैनधर्मने यहां पर प्रतिष्ठालाभ किया था। यहांका जैनमन्दिर जनसाधारणके विशेष आदरकी सामिग्री है। जो सब प्राचीन निदर्शन आज भी मन्दिरादिके गात्रमें ग्रथित देखे जाते हैं, वे ११२५ ई०के परवर्त्तीकालमें जगदेव शाह नामक किसी वनियेसे रक्षित हुए थे। उक्त महाजनने भद्रेश्वर नगरको दानमें पा कर उसके मन्दिरादिका जीर्णसंस्कार किया था। उसी समय प्राचीन निदर्शन यहांसे हटा लिये गये थे।

१२वीं और १३वीं शताब्दीमें यह स्थान तीर्थक्षेत्ररूपमें गिना जाने लगा। इसी समयसे यहां तीर्थ यात्रियोंकी भारी भीड़ होने लगी, शिलालिपिसे इसका प्रमाण मिलता है। १५वीं शताब्दीके शेषभागमें मुसलमानोंने इस मन्दिरको लूटा। इस समय जैन-तीर्थङ्करोंकी अनेक मूर्त्तियां नष्ट कर डाली गईं। मुसलमानोंके इस उपद्रवके बादसे यह स्थान बिलकुल जनशून्य हो गया है। अभी इसके मन्दिर और दुर्गादिका ध्वंसावशेष वर्त्तमान मुन्द्राबन्दरका घर बनानेमें व्यवहृत होता है। स्थानीय पीर लालशोवकी दरगाहमें अरबी भाषामें लिखित एक शिलाफलक देखा जाता है। प्राचीन भद्रावतीका कुछ अंश वर्त्तमान नगरवक्षमें अवस्थित है।

भद्रेश्वर—बङ्गालके हुगली जिलान्तर्गत एक नगर। यह अक्षा० २४° १६´ उ० तथा देशा० ८७° ५१´ पू० इष्ट-इण्डियन रेलवेके नवादा ष्टेशनसे ४ मील दक्षिणमें अवस्थित है। जनसंख्या चार सौके करीब है। यहां रेशमका कारबार होता है।

भद्रेश्वर आचार्य—एक ग्रन्थकार। गणरत्नमहोदधिमें इनका नामोल्लेख है।

भद्रेश्वरसूरि—१ एक वैयाकरण, दीपक नाम व्याकरण ग्रन्थके प्रणेता। २ चन्द्रगच्छके अन्तर्गत सूरिभेद। ये अभयदेव और देवभद्रके गुरु थे। सिद्धसेनकृत प्रवचनसारोद्धार और बालचन्द्रकी विवेक मञ्जरीटीका पढ़नेसे मालूम होता है, कि ये १२ सम्वत्के शेषभागमें विद्यमान थे। ३ एक जैनसूरी। ये राजा जयसिंहके समसामयिक जैनाचार्य देवसूरिके शिष्य थे। उनकी सतीर्थ रत्नप्रभा-

सूरिकृत धर्मदासगणिकी उपदेशमालाटीकासे जाना जाता है, कि वे सम्भवतः १२३८ सम्वत्के सन्निकट वर्त्ती किसी समयमें जीवित थे।

भद्रैला (सं० स्त्री०) सद्रा एला। स्थूलैला, बड़ी इलायची।

भद्रोत्कट (सं० पु०) भद्रमुस्त, भद्रालिया मोथा।

भद्रोदनी (सं० स्त्री०) भद्रं उदनिति अनयेति, उद्-अन्-अच्, गौरादित्वात् ङीप्। १ वला। २ नागवला।

भद्रोदय (सं० क्ली०) सुश्रुतोक्त औषधभेद।

भद्रोपवास व्रत (सं० क्ली०) व्रतभेद।

भद्रुली—वम्बई प्रदेशके काठियावाड़ जिलान्तर्गत एक सामन्त राज्य। यहांके सरदार वृटिश-सरकार और जूनागढ़के नवावको कर देते हैं।

भद्वा—वम्बई प्रदेशके हल्लार जिलान्तर्गत एक छोटा राज्य। यहांके सामन्त राज जूनागढ़के नवाव तथा वृटिश सरकारको कर देते हैं। भागवा नगर यहांका प्रधान स्थान है।

भद्वाना—वम्बई प्रदेशके झलावर जिलान्तर्गत एक सामन्त राज्य।

भनक (हिं० स्त्री०) १ धीमा शब्द, ध्वनि। २ अस्पष्ट या उड़ती हुई खबर।

भनकना (हिं० क्रि०) वोलना, कहना।

भनभनाना (हिं० क्रि) भन-भन शब्द करना, गुंजारना।

भनभनाहट (हिं० स्त्री०) भनभनानेका शब्द, गुंजार।

भन्दिष्टि (सं० त्रि०) स्तुतिरूपा इष्टियुक्त।

भन्दन (सं० त्रि०) कल्याणकारी।

भन्दिल (सं० क्ली०) १ शुभ। २ कम्प। ३ दूत।

भन्दिष्ट (सं० त्रि०) अतिशय स्तोता, अत्यन्त स्तवकारी।

भन्ध्रुक (सं० पु०) भारतवर्षके अन्तर्गत जनपदविशेष।

भन्साली—कच्छप्रदेशवासी राजपूत जातिकी एक शाखा। ये लोग सोलाङ्की-वंशीय हैं, किन्तु आचार भ्रष्ट होनेके कारण ये अभी सोलाङ्कियोंके साथ नहीं मिल सकते। सभी जनेऊ पहनते हैं और अपनेको क्षत्रिय वतलाते हैं। प्रवाद है, कि ये लोग जाड़ेजादिके साथ यहां आ कर वस गये हैं, कृषि-कार्य और वाणिज्य इनका प्रधान व्यवसाय है। यहां पर ये लोग वेगू नामसे परिचित हैं।

भपञ्जर (सं० क्ली०) भानां नक्षत्राणां पञ्जरम्। नक्षत्रचक्र।

भपति (सं० पु०) भानां नक्षत्राणां पतिः। चन्द्रमा।

भप्पट (सं० पु०) एक आचार्य। इन्होंने काश्मीरमें भप्पटेश्वर नामसे शिवमूर्त्ति स्थापित की।

भवका (हिं० पु०) अर्क उतारने या शराव चुआनेका वंद मुंहका एक प्रकारका वड़ा घड़ा। इसके ऊपरी भागमें एक लंवी नली लगी रहती है। जिस चीजका अर्क उतारना होता है, वह चीज पानी आदिके साथ इसमें डाल कर आग पर चढ़ा दी जाती है और उसकी भाप वनती है। तव वह भाप उसी नलीके रास्तेसे ठंढी हो कर अर्क आदिके रूपमें पास रखे हुए दूसरे वरतनमें गिरती है।

भभक (हिं० स्त्री०) किसी वस्तुका एकाएक गरम हो कर ऊपर को उवलना, उवाल।

भभकना (हिं० क्रि०) १ उवलना। २ गरमी पा कर किसी चीज का फूटना। ३ प्रज्वलित होना, जोरसे जलना, भड़कना।

भभका (हिं० पु०) भवका देखो।

भभकी (हिं० स्त्री०) झूठी धमकी, घुड़की।

भभूका (हिं० पु०) ज्वाला, लपट।

भभूत (हिं० स्त्री०) १ वह भस्म जो शिवजी लगाया करते थे। विभूती देखो। २ शिवकी मूर्त्तिके सामने जलनेवाली अग्निकी भस्म जिसे शैव लोग मस्तक और भुजा आदि पर लगाते हैं।

भभूदर (हिं० स्त्री०) भूभल देखो।

भभ्भाड़ (हिं० स्त्री०) अव्यवस्थित जन-समुदाय, भीड़भाड़।

भमण्डल (सं० क्ली०) भानां नक्षत्राणां मण्डलं। नक्षत्रचक्र, राशिचक्र।

भम्भ (सं० पु०) भम् इत्यव्यक्त शब्देन भातीति भा-क। १ १ मक्षिका, मच्छड़। २ धूम, धूआं।

भम्भरालिका (सं० स्त्री०) भम् इत्यव्यक्त शब्दस्य भवं वाहुल्य मालाति गृह्णातीति आ-ला-क गौरादित्वात् ङीप् ततः स्वार्थे कन्-टाप्, पूर्वस्य ह्रस्वत्वं। भङ्कारी, मच्छड़

भम्भराली (सं० स्त्री०) भम्भराल गौरादित्वात् ङीप्। मक्षिकाभेद।

भम्भासार (सं० पु०) मगधराजविशेष। पर्याय—श्रेणिक।

भय (सं० क्ली०) भी (एरच्। पा ३।३।५६) इत्यत्र 'भया दीना मुपसंख्यानं नपुंसके क्तादि निवृत्यर्थम्' इति वार्त्तिकोक्त्यादि अपादाने अच्। १ भय हेतु। २ एक प्रसिद्ध मनोविकार जो किसी आनेवाली भीषण आपत्ति अथवा होनेवाली भारी आशङ्कासे उत्पन्न होता है। पर्याय—दर, त्रास, भीति, भी, साध्वस, उद्रास, साधु सम्भव, प्रतिभय, आतङ्क, आशङ्का, भिया।

परसे अनिष्ट सम्भावनाका नाम भय है। यथा—'व्याघ्राद्बिभेति' यहां पर—व्याघ्रसे भय होता है, अर्थात् व्याघ्रसे मृत्युकी आशङ्का होती है—इसी अनिष्टाशङ्काका नाम भय है। इसका लक्षण—

"रौद्रशक्त्या तु जनितं चित्तवैक्लव्यदं भयम्"
(साहित्यद० ३ प०)

रौद्ररसकी शक्तिसे भय उत्पन्न होता है। इससे चित्तमें विकलता उत्पन्न होती है।

भयके उपस्थित होने पर अभीत व्यक्तिको तरह रहना चाहिये। भय उपस्थित होनेके पहले भय करना उचित नहीं है। ३ भयानक रसका स्थायी भाव भय। ४ कुब्जक पुष्प, मालती। ५ बालकोंका वह रोग जो उनके कहीं डर जानेके कारण होता है। इस समय उसे हृदयहृत्कम्प (Palpitation) रोग और साथ साथ शारीरिक उत्तापजनित ज्वरका आविर्भाव होता है। ६ निर्ऋतिके एक पुत्रका नाम। ७ द्रोणके एक पुत्रका नाम जो उनकी अभिमति नामक स्त्रीके गर्भसे उत्पन्न हुआ था। ८ यवनराजविशेष। (त्रि०) ९ घोर, भीषण।

भयकर (सं० त्रि० करोतीति कृ-अच्, भयस्य करः। भयकारक, जिसे देख कर भय लगे।

भयकर्त्तृ (सं० त्रि०) भयस्य कर्त्ता। भयकारक, भय उत्पन्न करनेवाला।

भयकृत (सं० त्रि०) भयं करोति कृ-क्विप्। १ भयकारक, भयं कृन्तति कृत-छेदने क्विप्। २ परमेश्वर।

भयङ्कर (सं० त्रि०) भयं करोतीति भय-कृ (मेघर्त्तिभयेषु कृञः पा ३।२।४३) इति खच्, मुमच। भयजनक, जिसे देखनेसे भय लगे। पर्याय—भैरव, दारुण, भीषण, भीष्म, घोर, भीम, भयानक, प्रतिभय, भयावह। (पु०) २ डुंडुल पक्षी। ३ एक अस्त्रका नाम।

भयचक (हिं० वि०) भौचक देखो।

भयजात (सं० त्रि०) भयसे उत्पन्न।

भयडिण्डिम (सं० पु०) भयाय शत्रु भयजननाय डिण्डिमः। प्राचीनकालका एक बाजा जो लड़ाईमें बजता था।

भयत (हिं० पु०) चन्द्रमा।

भयत्रातृ (सं० त्रि०) भयस्य त्राता ऋ-तृन्। भयसे बचानेवाला।

भयद (सं० त्रि०) भय-दा-क। भयदानकारी, भय उत्पन्न करनेवाला।

भयदा (सं० स्त्री०) भूधात्री, भूम्यांवला।

भयदायिन् (सं० पु०) भय-दा-णिनि। भयदाता, डरावना।

भयदोष (सं० पु०) जैनोंके अनुसार एक प्रकारका दोष। यह दोष उस समय लगता है जब मनुष्य अपनी इच्छासे नहीं बल्कि लोकापवादके भयसे सामयिक कर्म आदि करता है।

भयद्रुत (सं० त्रि०) द्रु-कर्त्तरि-क भयेन द्रुतः। भीति द्वारा पलायित, जो डरके मारे भाग गया हो। पर्याय—कान्दिशीक।

भयनाशन (सं० त्रि०) भयं नाशयति नाशि-ल्यु। १ भयनिवारक (पु०) २ विष्णु।

भयनाशिन् (सं० त्रि०) भयं नाशयतीति भय-नश-णिच्, णिनि। १ भयनाशकारक। स्त्रियां ङीप्। २ त्रायमाणा लता।

भयप्रद (सं० त्रि०) भयं प्रददातीति दा-क। भयद, जिसे देख कर भय उत्पन्न हो।

भयब्राह्मण (सं० पु०) भयेन ब्राह्मणः सम्पद्यते। वह जो डरके मारे अपनेको ब्राह्मण बतलाता है।

भयभञ्जन—रमल-रहस्य और रमल-रहस्यसंग्रहके प्रणेता।

भयभीत (सं० त्रि०) भयेन भीतः। जिसके मनमें भय उत्पन्न हो गया हो, डरा हुआ।

भयभ्रष्ट (सं० त्रि०) भयेन भ्रष्टः। भयद्रुत, जो डरके मारे भागा हो।

भयमोचन (सं० त्रि०) भय छुड़ानेवाला, डर दूर करनेवाला।

भयवर्जिता (सं० स्त्री०) व्यवहारमें दो गांवोंके बीचको वह सीमा जिसे वादी और प्रतिवादी आपसमें मिल

कर ही मान ले और जिसका निर्णय किसी दूसरेको न करना पड़ा हो।

भयवाद (हिं० पु० एक ही गोत्र या वंशके लोग, भाई-बन्द। २ बिरादरीका आदमी, सजातीय।

भयव्यूह (सं० पु०) भये सति व्यूहः। राजाओंका व्यूहभेद। युद्धकालमें भयव्यूह रचना चाहिये, क्योंकि भय उपस्थित होने पर इस व्यूहमें आश्रय ले कर प्राण-रक्षा की जा सकती है। व्यूह देखो।

भयहरण (सं० त्रि०) भयका नाश करनेवाला, भय दूर करनेवाला।

भयहारी (हिं० वि०) डर छुड़ानेवाला, डर दूर करनेवाला।

भया (सं० स्त्री०) एक राक्षसी जो कालकी वहन और हेतिकी स्त्री थी। विद्युत्केश इसीके गर्भसे उत्पन्न हुआ था।

भयाकुल (सं० पु०) भयसे व्याकुल, डरसे घबराया हुआ।

भयातिसार (सं० पु०) अतिसारका एक भेद। इसमें केवल भयके कारण दस्त आने लगते हैं।

भयातुर (सं० त्रि०) भयातुर, डरसे घबराया हुआ।

भयानक (सं० पु०) बिभेत्यस्मादिति भी-(शीङ् भियः। उण् ३।८२) इति आनक। १ व्याघ्र, बाघ। २ राहु। ३ शृङ्गारादि आठ रसोंके अन्तर्गत छठा रस। इसमें भीषण दृश्यों (जैसे—पृथ्वीके हिलने वा फटने, समुद्रमें तूफान आने आदि)-का वर्णन होता है। इसका वर्ण श्याम, अधिष्ठाता देवता यम, आलम्बन भयङ्कर दर्शन, उद्दीपन उसके घोर कर्म और अनुभाव कंप, स्वेद, रोमाञ्च आदि माने गये हैं। जुगुप्सा, वेग, संमोह, संत्रास, ग्लानि, दीनता, शङ्का, अपस्मार, भ्रान्ति और मृत्यु आदि इस रसके व्यवभिचारिभाव हैं।

(त्रि०) २ भयङ्कर, डरावना।

भयापह (सं० पु०) भयंअपहन्तीति हन् (अन्येभ्योऽपि दृश्यन्ते पा ३।२।१०३) इति। १ राजा। (त्रि०) २ भयनाशक।

भयावह (सं० त्रि०) आवहतीति आ-वह-अच् भयस्य। आवहः। भयङ्कर, डरावना।

भयावहा (सं० स्त्री०) रात्रि, रात।

भय्य (सं० क्ली०) भी-भावे यत्, वेदे निपातनात् साधुः। भय, डर।

भय्या (हिं० पु०) भैया देखो।

भर (सं० त्रि०) भरतीति भृ-पचाद्य च्। १ अतिशय, बहुत। २ भरणकर्त्ता, भरणपोषण करनेवाला। (पु०) ३ भार, बोझ। ४ संग्राम। ५ दो सौ पलका एक परिमाण।

भर (हिं० पु०) १ भार, बोझ। २ पुष्टि, मोटाई। (वि०) ३ कुल, पूरा, तमाम।

भर—युक्तप्रदेश, अयोध्या और पश्चिम बङ्गाल-वासी निम्नश्रेणीकी एक क्षत्रिय जाति। जातितत्त्वविद्गण इस जातिको द्राविड़ीय शाखाके अन्तर्गत समझते हैं *। इस जातिके लोग साधारणतः राजभर, भरत वा भरत-पुत्र नामसे परिचित होते हैं।

इस जातिको उत्पत्तिके सम्बन्धमें नाना स्थानोंमें नाना प्रकारकी किम्वदन्तियां प्रसिद्ध हैं। सामाजिक और कौलिक आचारादिमें समुन्नत हो कर ये क्रमशः उच्चश्रेणीके हिंदू समझे जाने लगे हैं। कोई कोई कहते हैं, कि ये क्षत्रियराज भरद्वाजके वंशधर हैं। अयोध्या और युक्तप्रदेशके भरोंका कहना है, कि, उनके पूर्वपुरुष अयोध्याके पूर्वांशमें राज्य करते थे। अयोध्याके उस

---

* अनार्य आकृति-विशिष्ट इस जातिने किसी समय भारतक्षेत्रमें प्रतिष्ठा प्राप्त की थी, इसका कोई विशेष प्रमाण नहीं मिलता। पुराणादिमें भी इस भर जातिकी प्रतिष्ठाका कोई उल्लेख नहीं है। जातितत्त्वविदोंका अनुमान है कि, यह जाति टलेमी द्वारा वर्णित वरहई (Burrhai) वा प्लिनीकी उवारी (Ubarae) होगी। किन्हींने ब्रह्मपुराण-वर्णित जयध्वज वंशावतंश भारतोंको अथवा महाभारतोक्त भीमसेन द्वारा पराजित भर्गजातिको वर्तमान भरजातिका पूर्वपुरुष माना है। और कोई कोई कहते हैं, कि पार्वतीय भरत (शबर बर्बर आदि) जातिसे भरजातिका अभ्युदय स्वीकार करते हैं। शेरिंग् सा०ने लिखा है कि हिन्दूशास्त्रोंमें दस्यु और असुर शब्दसे अनार्य जातिका उल्लेख हुआ है। अनार्य द्वारा विताड़ित हो कर आर्योंका इतस्ततः गमन और उपवेशन स्थापन उनाव प्रदेशके इतिहास-वर्णित कनकसेनका पराभव और पलायन उसका समर्थन कर रहा है।

प्राचीन और प्रसिद्ध सूर्यवंशीय राजाओंका शासन प्रभाव विलुप्त होने पर यहां भरजातिका आधिपत्य विस्तृत हुआ। सूर्यवंशीय राजा कनकसेनके राजत्वकालमें इस अनार्य भरजातिने हिमालयके पार्वतीय निवाससे अवतीर्ण हो कर अयोध्यामें प्रतिष्ठा प्राप्त की। राजा कनकसेन दुर्द्धर्ष भरोंका आक्रमण सह न सके जिससे वे गुजरातकी तरफ भाग गये। उनके साथ हीनवल क्षत्रिय-सन्तानगण भी नाना स्थानोंमें फैल गये हैं। दस्युवृत्ति और लूट मार आदि इनका प्रधान कार्य है। अपनेमें किसीको धर्मचर्चा करते हुए देखते हैं, तो उसे विशेष लाञ्छित करते हैं। गाजीपुर, वस्ती, मीर्जापुर, भरोंच आदि जिलोंके दुर्गादिके ध्वंसावशेषसे प्रमाणित होता है, कि इस दुर्द्धर्ष जातिने किसी समय सुदूर विस्तृत युक्तप्रदेशमें आधिपत्य विस्तार किया था। कौशिक राजपूतों द्वारा वे गोरखपुरसे भगाये गये थे। विन्ध्याचलके निकटवर्त्ती पम्पापुरमें इनकी राजधानी थी[†]।

प्रत्नतत्त्वविद्गण केवलमात्र किम्वदन्तियों पर आस्था स्थापन कर भरजातिकी पूर्व-प्रतिपत्ति स्वीकार करनेमें सहमत नहीं हैं। साहबुद्दीन गोरीके भारता-क्रमण और कनोज-पति जयपालके अधःपतनके समय राजपूतजाति पूर्व प्रान्तमें अध्युषित हुई। उस समय भर लोग राजपूतोंसे पराजित हुए थे। ये आजमगढ़ और गाजीपुरसे सेनगरों द्वारा, मिर्जापुर और इलाहा-वादके आसपाससे गहरवारों द्वारा, गोरखपुरसे कौशिकों द्वारा, फैजावाद और अयोध्यासे वाई तथा भद्रोही और प्रयागके पश्चिमभागसे मोना, वाई, सोनक आदि जातियों द्वारा भगाये गये थे।

इस प्रकारसे भर-शक्तिके अधःपतन होनेके वाद समग्र युक्तप्रदेश राजपूतजातिकी विभिन्न श्रेणियोंके सरदारोंके शासनाधीन हो गया था। उक्त राजपूतगण 'छत्री' नामसे परिचित हुए[¶]। उपर्युक्त घटना परम्परा द्वारा किसी ऐतिहासिक सत्य पर नहीं पहुंचा जा सकता। कारण, सिवा एक किम्वदन्तीके इस विषयमें और कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं है।

इनमें भरद्वाज, कनोलिया और राजभर नामक तीन स्वतन्त्र श्रेणियां हैं। मिर्जापुरी भर मुंड़हार, राजभर और दुसाद नामक तीन श्रेणियोंमें विभक्त हैं। मुंड़हार लोग अपनेको उन लब्धप्रतिष्ठ भरराजोंके वंशधर और सूर्यवंशीय राजपूत कहा करते हैं।

ये सगोत्रमें, अथवा पितृ वा मातृ-कुलमें विवाह नहीं करते, किंतु यदि ४ या ५ पीढ़ीमें पिण्ड बाधक न हो, तो ये लोग वूआकी कन्याके साथ भी विवाह कर लेते हैं। अपने घरमें विवाह करना ही इनको विशेष अभिप्रेत है। आजमगढ़के राजभर वास्तवमें हिंदू हैं। इनके सम्पूर्ण क्रियाकलाप हिंदुओंके समान हैं। ये हिंदू भरगण 'पतित' कहलाते हैं। निम्नश्रेणीके भरोंको 'खुल्तैत' कहते हैं। पतितोंने अपने आचारादि द्वारा समाजमें उच्च स्थान प्राप्त किया है, और खुल्तैत लोग शूकर-पालन जैसे निकृष्ट व्यवसायमें जीवन विताते हैं। उक्त दोनों श्रेणियोंमें परस्पर आदान प्रदान प्रचलित रहने पर भी शूकर-व्यवसायियोंके साथ उन्नत व्यक्ति अपनी सन्तान-का विवाह-सम्बन्ध नहीं करते। शूकर-पालन भर समाज-में नीच समझा जाता है। यदि कोई अविवाहिता वालिका स्वजातीय किसी युवकके साथ अवैध प्रणयसे आसक्त हो, तो जातीय-सभा उस कन्याके पितासे जुर्माना ले कर लड़कीको जाति। ले लेती है। दस वर्षसे बड़ी कन्याका विवाह निषिद्ध है। वह कन्या समाजमें 'रजस्वला' होनेके कारण निन्दनीय है, उसके साथ कोई भी

[†] वर्त्तमान प्रत्नतत्त्वविद्गण भरजातिकी इस पूर्वतन गौरव-वार्त्ताको स्वीकार नहीं करते। पहले जो ध्वंसावशेष भरजातिके कीर्त्तिस्तम्भ समझे गये थे, अब उनमेंसे बहुतसे विभिन्न राजवंशों द्वारा आरोपित प्रमाणित हुए हैं।

[¶] कर्नेगी साहबका कहना है कि पूर्वाभिमुखी विजयी राजपूतवाहिनी नागवंशीय राजाओं द्वारा पराजित हुई थी। जो क्षत्री अब उक्त प्रदेशमें प्रवल हैं वे भरके सिवा और कोई नहीं हो सकते। भारतमें आर्योंके प्रभावके समय इनका प्रभाव घट गया था। अन्य विद्वान इनके गठन सादृश्यसे अनुमान करते हैं, कि ये द्राविड़ीय कोल अथवा शवरजातिके होंगे। विन्ध्याचलके कैमूर अधित्यकावासी अनार्यजातिके साथ इनका बहुत कुछ सादृश्य है।

सम्बन्ध करनेको राजी नहीं होता। साधारणतः ५ या ७ वर्षकी कन्या ही विवाह-योग्य समझी जाती है।

पहली स्त्रीके रहते हुए दूसरा विवाह करना निषिद्ध नहीं है। परन्तु वन्ध्यादि-कारण विना दिखाये वह विवाह ग्राह्य नहीं होता। यदि कोई स्त्री अपनी इच्छासे पतिको दूसरी स्त्रीके लिए अनुमति दे, तो फिर उसे घरका कोई काम नहीं करना पड़ता; सपत्नी ही सब करनेके लिए बाध्य है। दूसरी स्त्री वही हो सकती है, जो पहली स्त्रीकी रिश्तेमें छोटी वहन या वैसी हो कोई लगती हो। विधवाएं चाहे तो सगाईके प्रथानुसार विवाह कर सकती हैं। सामाजिक सभी विषयोंका फैसला पञ्चायत सभाके प्रतिनिधि चौधरी द्वारा होता है। स्त्री अथवा पतिके स्वाभाविक दौर्वल्य, शरीरगत रोग वा व्यभिचार आदि कारणों पर विवाह वन्धन तोड़ा जा सकता है, परन्तु उसमें भी पञ्चायत-सभाकी अनुमतिकी आवश्यकता है।

विवाहमें वरके मामा ही घटक वनते हैं। कन्याका पिता १) रु० दे कर वरका मुंह देखता और विवाह पक्का करता है। 'पानीके दिन' कन्याका पिता स्वजनोंसे परिवृत हो कर वरके घर जाता है और आंगनके चौकमें वरके सामने बैठ कर वह अपने जमाईके मस्तक पर चावल और दही लगाता है। ब्राह्मणके द्वारा शुभ दिनका निश्चय होने पर उस दिन वर और कन्याके घर विवाह-मञ्च वनता है। विवाहके पहले दम्पतिकी मङ्गलकामानके लिए अघवान देव, पांच पीर और फूलमतीदेवीकी पूजा होती है। कन्याके घर पर पहुंचते ही पुरोहित पहले गौरी और शङ्करकी पूजा करता है। उसके वाद वर और कन्याको (गांठें वंध जानेके वाद) विवाह-मञ्चस्थ मध्य-दण्डके चारों ओर पांच वार प्रदक्षिण कराया जाता है।

किसी स्त्रीके गर्भवती होने पर, घरकी मालकिन उसके सिर पर पैसा और चावल फेरती हैं तथा प्रसव अच्छी तरह हो इसके लिए फूलमतीदेवी और ग्राम्य-देवताको पूजा करती हैं। प्रसूतिके ६ठे दिन छठी वा षष्ठीपूजा और १२वें दिन अशौचान्त होता है। ५वें या ६ठे वर्ष कर्णवेध होनेके वाद वालकको समाजके समस्त नियमोंका पालन और भोज्यादिका भी विचार करना पड़ता है।

ये विसूचिका, चेचक या अविवाहित दशामें मृत्यु होने पर मुर्देको जलाते हैं, परन्तु अन्य अवस्थाओंमें गाड़ते या पानीमें वहा देते हैं। ६ महीनेके भीतर शेषोक्त प्रेतोंके उद्देशसे प्रतिकृति वना कर उनकी अन्त्येष्टि-क्रिया सम्पन्न की जाती है। इनमें मृताशौच १० दिन तक माना जाता है। अशौचके प्रधान अधिकारीको उक्त दशों दिन कुशतृण द्वारा पानी और मृतको प्रेतात्माके लिए पिण्डदान देना पड़ता है। दशवें दिन क्षौरकर्मके वाद पिण्डदान और श्राद्ध होता है। उस दिन ब्राह्मणको अपक्व द्रव्य और ज्ञाति-कुटुम्बादिको भोज दिया जाता है।

पहले ही लिखा जा चुका है कि ये प्रायः सभी कार्योंमें अघवानदेव, फूलमतीदेवी और पांच पीरको पूजा करते हैं। इसके सिवा ये कालिका और काशीदास वावाको पूजादि भी विशेष धूमधामके साथ करते हैं। फगुआ, दशहरा, दिवाली, खिचड़ी और तीज आदि इनके प्रधान पर्व हैं। ग्रामस्थ वट-वृक्षके नीचे प्रेतयोनिकी पूजामें ये लोग शूकरकी वलि चढ़ाते हैं। कोई कोई गयाजी जा कर पिण्डदान करते हैं। प्रत्येक पीपलके पेड़को नारायणकी वासभूमि समझ कर ये उसकी पूजा करते हैं और स्त्रियां पीपलके पेड़को लाज मारती हैं।

पश्चिम-वङ्गाल और छोटा-नागपुरके भर प्रधानतः कृषिजीवी होते हैं। वहुतसे पञ्चकोट (पंचेट) राज-सरकारमें कार्य करते हैं। इनमें मघवा और वङ्गाली नामके दो थोक हैं, जिनका परस्परमें विवाहादि सम्बन्ध नहीं है। लगभग सभी विषयोंमें ये हिन्दुओंका अनुकरण करना सीख गये हैं। इनमें वाल्यविवाह प्रचलित है, परन्तु अवस्थाके भेदसे वयस्था कन्याका विवाह भी ग्राह्य है। विधवा-विवाह विलकुल नहीं होता। मृतदेहका दाहकर्म और १३वें दिन श्राद्ध आदि हिन्दुओंकी पद्धतिके अनुसार होता है। पंचेट-राजसरकारमें कार्य-ग्रहण कर ये समाजमें वहुत उन्नत हो गये हैं। मानभूममें ये तम्बोली और हलवाइयोंकी श्रेणीमें गिने जाते हैं। उच्च श्रेणीके हिंदूमात्र इनके हाथका पानी पीते हैं।

भरई (हिं० पु०) भरदूल देखो।

भरक (हिं० पु०) पंजाव और वङ्गालमें अधिकतासे मिलने-

वाला एक प्रकारका पक्षी। यह अकसर दलदलोंमें ही रहता है और अकेला। कभी कभी दो तीन भी एक साथ दिखाई देते हैं। मांसके लिये इसका शिकार किया जाता है। (स्त्री०) २ भड़क देखो।

भरका (हिं० पु०) १ वह जमीन जिसकी मट्टी काली और चिकनी हो। सूखने पर वह सफेद और भुरभुरी हो जाती है। यह प्रायः जोती नहीं जाती। २ भरक देखो।

भरकी (हिं० स्त्री०) भरका देखो।

भरकूट (हिं० पु०) मस्तक, माथा।

भरके (हिं० अव्य०) एक संकेत जो पालकी ढोनेवाले कहार नाली आदिसे बच कर चलनेके लिये करते हैं।

भरचिंटो (हिं० स्त्री०) एक प्रकारको घास जो हिसार प्रान्तमें होती है। वर्षाऋतुमें यह अधिकतासे उगती है। पशु इसे बड़े चावसे खाते हैं और यह पुष्टिकारक भी है।

भरट (सं० पु०) बिभर्त्तीति भृ- (जनिदाच्युसृवृमदिशमिनमिभृभ्य इत्वन्निति। उण् ४।१०४) इति अटच्। १ कुम्भकार, कुम्हार। २ सेवक, नौकर।

भरटक (सं० पु०) संन्यासि-सम्प्रदायविशेष।

भरटिक (सं० त्रि०) भरटेन हरति भस्त्रादित्वात् ष्ठन् (पा ४।४।१६) १ भरट द्वारा हरणकारी। स्त्रियां ङीष। २ भरटिकी।

भरण (सं० क्ली०) भ्रियतेऽनेनेति भृ-करणे ल्युट्। १ वेतन, तनख्वाह। भृ-भावे-ल्युट्। २ पोषण, पालन। ३ भरणी नक्षत्र। ४ किसीके बदलेमें जो कुछ दिया जाय, भरती।

भरणी (सं० स्त्री०) भरण-गौरादित्वात् ङीष्। १ घोषकलता। २ अश्विनी आदि सत्ताईस नक्षत्रोंमेंसे द्वितीय नक्षत्र। पर्याय—यमदैवत। (हेम) इस नक्षत्रका अधिष्ठात्री देवता यम है। इसकी आकृति त्रिकोण है, और तीन कोणोंमें तीन दीप्यमान तारका हैं।

"तारकात्रयमिते त्रिकोणके मध्यगे दिविषदध्वनो यमे।
पङ्कजाक्षि गणिताः कुलीरतः सायकाक्षि भुजसंख्यकाः कलाः॥"
(कालिदास-कृत रात्रिलग्नमान)

यह नक्षत्र उग्रगण और अधोमुखगणोंके अन्तर्गत है। शतपदचक्रानुसार नामकरणके स्थानमें इस नक्षत्रमें प्रथमादि चार पदोंमें लि, लु, ले, लो इत्यादि अक्षर होंगे। इस नक्षत्रमें जन्म लेनेसे मेषराशि और शुक्रकी दशा होती है। वह व्यक्ति सर्वदा धान्यादि वस्तुके क्रयविक्रयमें नियुक्त, क्रूर-स्वभाव, दीर्घशरीर-सम्पन्न, उत्तम वीर्यवान्, विदेशवासी और वैरपक्ष-विजयी हुआ करता है। (कोष्ठीकल्प)

भरणीभू (सं० पु०) भरणी भूरुत्पत्तिस्थानं यस्य। राहुग्रह।

भरणीय (सं० त्रि०) भृ-कर्मणि अनीयर्। भरणयोग्य, पालने पोसनेके लायक।

भरण्ड (सं० पु०) बिभर्त्तीति भृ (अगुण् कुल भ कृत्यः। उण् १।१२८) १ स्वामी, मालिक। २ भूपाल, राजा। ३ वृष, बैल। ४ भू, पृथ्वी। ५ कृमि, कीड़ा।

भरण्य (सं० क्ली०) भरणे साधुः (तत्र साधुः। पा ४।४।९८) इति यत्। १ मूल्य, दाम। २ वेतन, तनख्वाह।

भरण्यभुज् (सं० त्रि०) भरण्यं वेतनं भुनक्ति इति-भुज्-क्विप्। कर्मकर, वह जो मजदूरी ले कर काम करता हो।

भरण्या (सं० स्त्री०) भरण्य अजादित्वात् टाप्। वेतन, तनख्वाह।

भरण्याह्वा (सं० स्त्री०) भरण्या आह्वा यस्याः। पर्वपुष्पी, रामदूती।

भरण्यु (सं० पु०) कण्ड्वादि गणीय भरण्य धातु बाहुलकात् उण्। १ शरण्यु, मेघ। २ मित्र। ३ अग्नि। ४ इन्द्र। ५ ईश्वर। ६ वृष, बैल।

भरत (सं० पु०) बिभर्त्ति स्वाङ्गमिति बिभर्त्ति लोकानिति वा (भृ-मृदृशियजीति। उण् ३।११०) इति अतच्। १ नाट्यशास्त्र। २ मुनिविशेष। ये अलङ्कारादि शास्त्रोंके सृष्टिकर्त्ता थे। भरतस्य शिष्यः तस्येदमित्यण्, अणो लुक्। ३ नट। ४ रामचन्द्रजीके छोटे भाई। ५ दुष्मन्तके पुत्र। ६ शबर। ७ तन्तुवायु, जुलाहा। ८ क्षेत्र, खेत। ९ भरतात्मज। दुष्मन्तराजपुत्र भरतके पर्याय—शाकुन्तलेय, दौष्मन्ति, सर्वदमन। १० वह्निपुत्रभेद। ११ भौत्यमनुके एक पुत्रका नाम। १२ आयुध-जीविसङ्घभेद। १३। ऋत्विज्।

भरत (सं० पु०) कैकयीके गर्भसे उत्पन्न राजा दशरथके पुत्र। रामायणके पढ़नेसे मालूम होता है कि

अपुत्रक राजा दशरथने वशिष्ठके परामर्शानुसार पुत्रेष्टि-यज्ञ कराया। लोमपादके पुत्र ऋष्यशृङ्ग इस यज्ञमें अध्वर्यु बने थे। यज्ञ समाप्त होने पर स्वयं अग्निदेवने वह्निकुण्डसे आविर्भूत हो कर दशरथके हाथमें खीर दी, जिसे राजाने अपनी रानियोंमें बांट दिया।

उस खीरको खा कर कौशल्या देवीने रामचन्द्रको, कैकयीने भरतको और सुमित्राने लक्ष्मण और शत्रुघ्नको प्रसव किया। भरतने मीनलग्न और पुष्यानक्षत्रमें तथा लक्ष्मण और शत्रुघ्नने कर्कलग्न और अश्लेषानक्षत्रमें जन्म ग्रहण किया। लक्ष्मणके कनिष्ठ भ्राता शत्रुघ्न भरतके अतिशय प्रिय थे। भरत अपनी ननसारमें रहते थे। कुशध्वजकी कन्या माण्डवीके साथ उनका विवाह हुआ। विवाहके वाद भरत शत्रुघ्नके साथ पुनः ननसार चले गये। रामके पितृसत्य पालनार्थ वनवास करने पर पुत्रशोकमें दशरथकी मृत्यु हो गई। उस समय भरतको ननसारमें अत्यंत दुःस्वप्न दिखाई दिये; वादमें अयोध्यासे दूत गया और वह भरतको ले आया। भरतने अयोध्या आ कर पिताके ऊर्द्ध्वदैहिकार्य सम्पन्न किये। कैकयीके आदेशसे राम निर्वासित हुए हैं, सुन कर भरतने माता कैकयीका अत्यन्त तिरस्कार किया। विमातृ-तनय होने पर भी ज्येष्ठ भ्राता रामचन्द्रके प्रति उनकी अचला भक्ति थी। उसी प्रवलभक्तिके वश ही अपने ज्येष्ठ भ्राता रामचंद्रको वापस लानेके लिए चित्रकूट पर्वत पर पहुंचे। वहां जटाधारी रामचंद्रको देख कर वे शोकसे मुह्यमान हो गये और रामचंद्रसे अयोध्या लौट चलनेके लिए उन्होंने वहुत अनुनय-विनय की। रामचंद्रने सत्यभङ्ग कर लौटना किसी प्रकार भी स्वीकार नहीं किया। तव भरतने वहांसे रामचंद्रकी पादुका ला कर ब्रह्मचारीके वेशमें नन्दीग्राममें रह कर राज्यशासन किया था। चौदह वर्ष वाद रामचंद्रके अयोध्या लौटने पर इन्होंने ज्येष्ठ भ्राता रामचंद्र को राज्य लौटा दिया।

भरतके तक्ष और पुष्कर नामके दो पुत्र थे। भरतने अपने दोनों पुत्रोंको साथ ले कर सपुत्र गन्धर्वराज शैलूषसे युद्ध कर सिन्धुनदके उत्तरस्थित गंधर्वदेश जय किया और उस प्रदेशको दो भागोंमें विभक्त कर अपने दोनों पुत्रोंको वांट दिया। पुत्रोंने तक्षशिला और पुष्करावती नामक दो नगर स्थापित किये और वहीं रहने लगे। पीछे भरतने रामचंद्रके साथ स्वर्गारोहण किया। रामचन्द्र देखो। (रामायण, विष्णुपु०, भाग०)

जैनमतानुसार भरत जैनधर्मके परमभक्त थे और जीवनके शेषभागमें उन्होंने दिगम्बरी दीक्षा ग्रहण की थी। भरत और रामचंद्रके मोक्षकालमें वहुत अन्तर है।

२ ऋषभदेवके पुत्र। भागवतमें लिखा है कि ये विष्णुभक्ति-परायण थे। राजा हो कर इन्होंने विश्वरूपात्मजा पञ्चजनाके साथ विवाह किया था। उनके गर्भसे सुमति, राष्ट्रभृत, सुदर्शन, आवरण और धूमकेतु नामक पांच पुत्र उत्पन्न हुए थे। राजाने पुत्रोंको राज्य वांट कर स्वयं तपस्या धारण की थी। एक दिन वे नदीके तट पर स्नान करनेके वाद संध्या-वन्दनादि कर रहे थे, कि इतनेमें वहां एक आसन्नप्रसवा हरिणी आ कर जलपान करने लगी। मृगीको देख कर नदी-तटवर्त्ती अरण्यस्थित सिंह गर्जन करने लगा। सिंहकी गर्जना सुन कर मृगी वहांसे भागी और भय एवं शीघ्रताके कारण फिसल कर गिर पड़ी, जिससे उसकी उसी क्षण मृत्यु हो गई और गर्भभ्रष्ट हो गया। भरत उस मृगशिशुको अपने आश्रममें ले आये और उसे पालने लगे। मायाका कैसा आश्चर्य प्रभाव है। निःसङ्ग तापस भी मृगके मोहमें क्रमशः तपको भूल गये और मृगकी चिंता करते करते मृत्युको प्राप्त हुए। दूसरे जन्ममें वे मृग हुए, किंतु भगवत् प्रसादसे जातिस्मरण हो जानेसे कालञ्जर पर्वत पर पुलहाश्रममें देहत्याग किया। जन्मान्तरमें वे आङ्गिरसगोत्र और ब्राह्मकुलमें उत्पन्न हुए थे। उस जन्ममें उनके ६ वैमात्रेय अग्रज और एक सहोदरा भगिनी थी। ये लोकसङ्गविवर्जित रहनेके अभिप्रायसे जड़वत् रहते थे। कालान्तरमें इनके मातापिताकी मृत्यु हुई। इनके साथ किसीका कैसा ही व्यवहार क्यों न हो, ये उस पर ध्यान नहीं देते थे। इनकी भौजाइयां इनका वहुत अनादर करती थीं। यहां तक कि अखाद्य तक खिला देती थीं। अंतमें उनके ज्येष्ठ भ्राताने अपनी स्त्रीके कहे अनुसार उन्हें खेत रखानेका काम सौंप दिया।

एक दिन चौरराजने पुत्रकी कामनासे नरपशुवलि देने-का संकल्प किया। वलि देनेके लिए जिस मनुष्यको लाया गया था वह भाग गया, जिससे उनके अनुचर जड़रूपी भरतको पकड़ लाये। देवी भद्रकाली इस वातसे अत्यंत कुपित हुईं और उन्होंने चौर-वंशका ध्वंस कर डाला। एक दिन सिन्धु-सौवीरोंके राजा रहुगण इक्षुवती के किनारे उपस्थित हुए। उनके शिविकावाहकोंमेंसे एक वीमार पड़ गया, इससे उन्होंने भरतको हृष्टपुष्ट देख कर उन्हें ही उस कार्यमें नियुक्त कर दिया। भरत शिविका वहनके समय, पैरोंके नीचे दव कर कहीं जीव न मर जांय इस ख्यालसे वहुत ही सावधानीसे चलने लगे आर वीच वीचमें सामने आये हुए जीवोंको हाथसे हटाने लगे। यह देख कर राजाने उनका उपहास किया। राजाके उपहास पर कुछ ध्यान न दे कर उन्होंने उन्हें तत्त्वोपदेश दिया। राजाने उनके प्रति परमभक्तिमान हो कर उन्हें छोड़ दिया। इसके वाद वे देश-पर्यटनके लिए निकले थे और कुछ दिन वाद मुक्ति प्राप्त की थी। (भाग०)

जड़भरत देखो।

३ जैनमतानुसार आदि तीर्थङ्कर ऋषभनाथ भगवान्-के पुत्र। ये छः खण्डके अधिपति चक्रवर्त्ती थे। संसार-से परम-विरक्त रहते थे। भरतचक्रवर्त्ती देखो।

४ शकुन्तलाके गर्भसे उत्पन्न दुष्मन्तके पुत्र। महा-भारतमें लिखा है कि :—चन्द्रवंशीय महाराजा दुष्मन्तने कण्वाश्रममें शकुन्तलाके साथ गन्धर्व-विवाह किया था। उस समय शकुन्तला गर्भवती हुई थीं। उस गर्भसे एक पुत्र उत्पन्न हुआ। महर्षि कण्वने इस वालकका सर्वदमन नाम रख कर शकुन्तलाके साथ उसे राजा दुष्मन्तके पास भेज दिया। शकुन्तलाने राजाके समक्ष सम्पूर्ण वृत्तान्त कह सुनाया, पर राजाको विस्मृतिवश कोई भी वात याद नहीं आई। उन्होंने पुत्रसहित शकुन्तलाको वापस कर दिया। उस समय वहां यह दैववाणी हुई, "राजन्! शकुन्तलाने जो कुछ कहा है वह सत्य है, आप हमारे कहे अनुसार इस वालकका भरणपोषण करें।" इस आकाशवाणीसे वालकका नाम भरत पड़ गया। महाराजा दुष्मन्तने फिर पत्नी और पुत्रको ग्रहण कर प्रियतम भरतको यौवराज्यसे अभिषिक्त किया। राजा भरत समस्त राजाओंको परास्त कर सार्वभौम राजा हुए। इन्होंने यमुना-तीर पर एक सौ, सरस्वती-तीर पर तीन सौ और गङ्गातीर पर चार सौ अश्वमेध यज्ञका अनुष्ठान किया। पश्चात् पुनः सहस्र अश्वमेध और सौ राजसूययज्ञ सम्पन्न कर अग्निष्टोम, अतिरात्र, उक्थ्य, विश्वजित् और हजारों वाजपेय यज्ञ सम्पन्न किये थे। उनके नामसे भारतवर्षका नामकरण हुआ था। यह भारतीकीर्ति भरतसे ही हुई है भरतका वंशधर-गण भारत नामसे प्रसिद्ध हुए थे। वे भगवान् विष्णुके अंशमें आविर्भूत हुए थे। विदर्भराजकी तीन कन्याओं-के साथ उनका विवाह हुआ था इन्होंने वृहस्पतिके तनय भरद्वाजका पालन किया था।

(भारत १।७३ अ०, विष्णुपु०, भाग०)

भरत—मेवाड़के एक राजा। मेवाड़के राजा समरसिंहके भ्राता सूर्यमल्लके पुत्र। समरसिंहकी मृत्यु होने पर उन-के पुत्र कर्ण पितृ-सिंहासन पर अभिषिक्त हुए। कर्णके सिंहासन पर वैठने पर भरत शत्रुके षड़यन्त्रमें पड़ कर चित्तोर छोड़ सिन्धुदेशको चले गये। वहां पहुंचनेके कुछ दिन वाद ही उन्हें मुसलमान राजासे आरोर नगर प्राप्त हुआ। इन्होंने पुगलको भट्टिवंशीय किसी राजकुमारी-के साथ पाणिग्रहण किया था। उसी स्त्रीके गर्भसे राहुप नामक उनके एक पुत्र हुआ था, जो ननसालमें रहता था।

इधर राजा कर्ण प्रियतम भ्राता भरके देशान्तर चले जाने और पुत्र माहुपकी अयोग्यताको विचारते हुए वड़े कष्टसे कालयापन करने लगे और थोड़े ही समय वाद उनका देहान्त हो गया।

झालोरके शणिगुरु-वंशीय सरदारने कर्णकी कन्या-का पाणिग्रहण किया था। उस कन्याके गर्भसे रणधवल नामक एक पुत्र हुआ। झालोर-पतिने जघन्य विश्वास-घातकता करके चित्तोरके प्रधान गिह्लोटोंको मार कर वहांके सिंहासन पर अपने पुत्र रणधवलको विठा दिया। कर्णके पुत्र माहुप अपने सत्त्वाधिकारकी रक्षामें सर्वथा असमर्थ थे। पिताका राज्य अन्य व्यक्तियों द्वारा अधिकृत हुआ, परन्तु फिर भी उन्होंने उसके उद्धारार्थ कुछ भी कोशिश नहीं की। वप्पाका सिंहासन चौहान कुलके हस्त-

गत हो गया, वप्पाका कीर्त्तिस्तम्भ उन्मूलितप्राय हो चुका; आश्चर्य नहीं कि कुछ दिनोंमें चित्तोरसे वप्पा रावलका नाम तक मिट जाय, यह चिन्ता एक उन्नतमना कुलपाठकाचार्य (राजभाट) के हृदयमें समुत्थित हुई। उन्होंने इस अनिष्टपातके प्रतिविधानके लिए भरतके पास जा कर उन्हें सारा वृत्तांत कह सुनाया। अपने पूर्वपुरुषोंके प्रनष्ट राज्य और गौरवके उद्धारके लिए भरत सिंधुदेशीय सेनादलके साथ मेवाड़राज्यकी तरफ अग्रसर हुए। चित्तोरेश्वरके अधीनस्थ समस्त सरदारगण इस शुभ समाचारको सुन कर वड़े आनन्दके साथ अपने उद्धारकर्त्ताकी प्रोड्डीन पताकाके नीचे आ इकट्ठे हुए। पल्ली नामके स्थानमें प्रतिद्वन्द्वी शणिगुहवंशीयोंको युद्धमें पराजित कर भरतने सिंहासन अधिकार किया।

इस घटनाके कुछ दिन वाद भरतके पुत्र राहुप चित्तोरके सिंहासन पर अधिष्ठित हुए। राज्याभिषिक्त होनेके कुछ ही दिन वाद नागौर नामक स्थानमें यवनसेनापति समसुद्दीनके साथ उनका युद्ध हुआ, जिसमें वे पराजित हो गये। राहुपके राजत्वकालमें उनके राज्यमें दो प्रधानघटनाएं हुई थीं। इससे पहले, मेवाड़के राजपूतगण गिह्लोट कहलाते थे, परन्तु अवसे वे इस नामके वदले सिसोदिया नामसे प्रसिद्ध हुए। इसके सिवा वप्पाके वंशधरोंकी उपाधि 'रावल'-के वदले "राणा" प्रचलित हुई।

राहुपने अत्यन्त दक्षताके साथ ३८ वर्ष तक अपने राज्यका शासन किया था। राहुप देखो।

भरत—एक टीकाकार। इन्होंने अपने ज्येष्ठ रामचन्द्र-कृत समरसार और समरसार-संग्रह ग्रंथकी टीकाएं लिखी हैं।

भरत (हिं० स्त्री०) मालगुजारी। इस शब्दका प्रयोग दोल्लीवासी करते हैं।

भरतआचार्य—एक सङ्गीताचार्य। इन्होंने नाट्यशास्त्र वा भरतशास्त्र और सङ्गीतनृत्यकर नामके दो ग्रंथ रचे हैं।

भरतखण्ड (सं० क्ली०) १ भारतवर्षके अन्तर्गत कुमारिकाखण्ड। २ राजा भरतके किए हुए पृथ्वीके नौ खण्डोंमेंसे एक खण्ड, भारतवर्ष, हिन्दुस्तान।

भरतगढ़—वम्बई प्रदेशके रत्नगिरी जिलेका एक गिरिदुर्ग। यह वालवलि खांड़ोके दक्षिणी किनारे अवस्थित है। इस दुर्गके शिखर पर खड़ा होनेसे मसूरका मालवन ग्राम दृष्टिगोचर होता है। गढ़के चारों ओर जो प्राकार है वह १८ फुट ऊंचा और ५ फुट मोटा है। उसके उत्तर-पूर्व और दक्षिण-पश्चिम कोणमें दो वुर्ज है। एतद्भिन्न गढ़के वहिः प्राचीरके ऊपर प्रायः १२ अर्द्ध गोलाकार वुर्ज देखनेमें आता है। यह प्राचीर भी चौड़ाईमें १२ फुट है। प्राचीरके सामनेमें एक वहुत लंवी चौड़ी खाई है।

भरतद्वादशाह (सं० पु०) भरत-कृत द्वादशाहसाध्य यज्ञभेद। कात्यायन श्रौतसूत्रमें इस यज्ञका विधान विशेष रूपसे लिखा है। इस यज्ञमें सभी प्रकारके अग्निष्टोम करने होते हैं।

"सर्वाग्निष्टोमः भरतद्वादशाहः" (कात्या० श्रौ० २४।७।१२)

भरतपक्षी—स्वनाम प्रसिद्ध पक्षि जाति विशेष (Alauda gulgula)। विज्ञानविदोंने इस जातिको (Alaudidae) श्रेणीमें शामिल किया है। साधारणतः धानके खेतोंमें इस जातिके पक्षी विचरण करते हैं। कृषकोंसे भगाये जाने पर यह जितना ही ऊंचा ऊपर उठता है उतना ही उसकी सुमधुर कलध्वनि मानवके श्रुतिगोचर होती है। यह गीतध्वनि मानव-हृदयको मोहित कर डालती है।

इङ्गलैण्डमें इस जातिके पक्षीको Sky Lark (*Alauda arvensis*), फ्रान्समें *Alouette*, इटलीमें Lodola, जर्मनीमें Feld Lerche, स्काटलैण्डमें—*Lavrock*, पश्चिम भारतमें—भरत, भरुत, वंगालमें भरुई, तैलङ्गमें वरुतपिट्ट, तामिलमें मनव-वड़ि, ब्रह्ममें त्रि-लोन और सिंहलमें गोमरिट कहते हैं। सारे भारत-साम्राज्य, सिंहल, अन्दमन और निकोवर द्वीप, हिमालय पर्वत और यूरोपमें जगह जगह इस जातिके पक्षी देखनेमें आते हैं। स्थानविशेषमें उनके शरीरका रंग भी पलट जाता है।

भारतमें सव जगह वैशाखसे आषाढ़ मासमें और ब्रह्ममें पौषसे चैत्रमासमें मादा एक वारमें प्रायः ४ वा ५ अंडे देती है। इस समय वे मट्टीके ऊपर घासके घोंसले वनाती हैं। इङ्गलैण्डके भी A. arvensis पक्षियोंके अंडे पीलापन लिये सफेद और धूसर विन्दुयुक्त होते हैं।

ये सव दल बांध कर रहना पसन्द करते हैं। यूरोपीय 'स्काई-लार्क'में जो सव गुण पाये जाते हैं, भारतके भरतपक्षीमें उन सव गुणोंका अभाव नहीं है। शीतकालमें धानके खेतोंमें ये अकसर पाये जाते हैं। ये अनाजके कन और कीड़े मकोड़े को खाना बहुत पसन्द करते हैं।

भरतपुत्रक (सं० पु०) भरतस्य नाट्यशास्त्रप्रणेतुः पुत्रकः। नाटकमें नाट्य करनेवाला पुरुष, नट।

भरतपुर—राजपुतानेके अन्तर्गत एक हिंदूराज्य। यह अक्षा० २६° ४३´ से २७° ५०´ उ० और देशा० ७६° ५३´ से ७७° ४६´ पू०के मध्य विस्तृत है। भूपरिमाण १६४२ वर्गमील है। इसके उत्तरमें अङ्गरेजाधिकृत गुरुगांव जिला, पूर्वमें मथुरा और आगरा, दक्षिणमें ढोलपुर, करौली और जयपुरराज्य तथा पश्चिममें अलवारप्रदेश है।

समुद्रपृष्ठसे इस स्थानकी ऊंचाई प्रायः ६०० फुट है सव जगह प्रायः समतल है, केवल उत्तर, दक्षिण, पूर्व और पश्चिम सीमान्तदेशमें गण्डमालाके विराजित रहनेसे देशका प्राकृतिक-सौन्दर्य देखते ही वन आता है। सारा स्थान पलिमय होने पर भी यहां वनमालाका अभाव नहीं है। वह पलिमय मट्टी कठिन और सूखी है तथा कहीं कहीं मरुभूमि-सदृश वालुकाराशिसे परिपूर्ण है। देशीय अधिवासियोंके यत्नसे ऐसे स्थानमें भी प्रचुर शस्यादि उत्पन्न होता है। वृष्टिके समय वाढ़ इतनी उमड़ आती है, कि आस पासके निम्नतम स्थान जलमग्न हो जाते हैं।

भरतपुर, फिरोजपुर, झलवार, गोपालगढ़ और पहाड़ी आदि स्थानोंके निकटवर्त्ती उत्तर-दक्षिणमें विस्तृत गिरिमालाके कई एक शृङ्ग बहुत उन्नत हैं। कालापहाड़ नामक पर्वतका आलिपुर शिखर (१३५१ फुट) भरतपुरमें सवसे ऊंचा है। अलावा इसके अलवारका छपरा १२२२ फुट, दमदमा १२१५, रसिया १०५६, मघोना ७१४ और उपेराशृङ्ग ८१७ फुट ऊंचा है। उपेरामें वंशी-पहाड़पुरका विख्यात पत्थर अवस्थित है।

यहांके पर्वतों पर गृहनिर्माणयोग्य पत्थरके अलावा अन्य कोई भी मूल्यवान् पत्थर नहीं है। मुगलवादशाहोंके आगरा, दिल्ली और फतेपुर-सिकरीके कीर्त्तिस्तम्भ तथा मथुरा, दीग और भरतपुरकी अट्टालिकादि यहांके संगृहीत प्रस्तर स्तवकसे वनाई गई हैं।

इस राज्यमें ऐसी एक भी नदी नहीं जिसमें नाव आ जा सके। वाणगङ्गा वा उत्तङ्गन, रूपरेल, गम्भीरा और काकन्द नामक नदी प्रधान हैं। जव कभी इन नदियोंमें वाढ़ आ जाती है; उस समय भी पैदल पार कर सकते हैं। वाणगङ्गानदी भरतपुरके मध्य हो कर वह गई है। इस राज्यमें ७ शहर और १२६५ ग्राम लगते हैं। जनसंख्या साढ़े छः लाखके करीव है जिनमेंसे सैकड़े पीछे ८१ हिंदू १८ मुसलमान और शेषमें अन्यान्य जातियां हैं। यहांकी भाषा व्रज है।

इतिहास पढ़नेसे मालूम होता है, कि यहां एक समय जाट लोगोंने अपना आधिपत्य फैलाया था। किन्तु यथार्थमें किस समयसे उन्होंने यहांका शासनदण्ड धारण किया था, इसका कोई विशेष उल्लेख नहीं मिलता। फिरिस्तामें लिखा है, कि गजनीपति महमूदके १०२६ ई०में गुजरातसे लौटते समय जाट-दलने उन पर चढ़ाई कर दी। १३६७ ई०में दिल्ली-आक्रमणकालमें तैमूरलङ्गने जाटदस्युगणके साथ युद्ध किया। इस युद्धमें जाट लोग दलवल समेत मारे गये। १५६६ ई०में जाट लोगोंने मुगलसम्राट् वावरको पञ्जावप्रदेशमें तंग तंग कर दिया। जाटसरदारोंके ऐसे उपद्रवसे उत्यक हो कर मुगल-सम्राट्ने कठोर शासनसे उन्हें दमन किया था। किंतु औरङ्गजेवकी मृत्युके वाद जव राज्यमें विप्लव खड़ा हुआ, तव जाट लोगोंने पुनः अपना मस्तक उठाया। इस समय जाट सरदार चूड़ामनने मुगल-सम्राट् आलमगीरके दाक्षिणात्यगामी सेनादलको लूट कर मोटी रकम इकट्ठी की। उस रकमसे वे थुन, सिनसिनिवार और भरतपुरमें दुर्ग वना कर दलवल समेत आत्मरक्षा करनेको प्रस्तुत हुए। उनकी इस प्रकारकी वीरता पर प्रसन्न हो कर जाट लोगोंने उन्हें दलपति वनाया। उनके वंशधरोंने राजाकी उपाधिसे भूषित हो भरतपुर राज्यका शासन किया था।

चूड़ामनके भाई वदनसिंहकी प्ररोचनासे जाटदलने चूड़ामनका प्रभुत्व त्याग दिया। उन लोगोंकी सहायतासे वदनसिंहने 'ठाकुर'-की उपाधि ग्रहण कर दीग नगरमें स्वतन्त्र राजपाट वसाया। १७२० ई०में सम्राट् महम्मद शाह और कुतव-उल-मुल्क सैयद् अवउल्ला खाँके युद्धमें चूड़ामन मारे गये। पीछे उनके लड़के वदनसिंह भरतपुरके सिंहासन पर बैठे।

बदनसिंहके पुत्र सूर्यमलके राजत्वकालमें भरतपुरका वीरत्व-गौरव चारों ओर फैल गया था। सूर्यमलने जयपुर राज्यकी सहायतासे दीगराज्य पर अधिकार जमाया था।

१७३० ई०से भरतपुर-दुर्गकी दुर्भेद्यता और जाट-सैनिकोंकी वीरत्व-काहिनी विघोषित होती आ रही है। १७५४ ई०में सूर्यमल्लने अकेले वजीर गाजोउद्दीन, महाराष्ट्र और जयपुरराजकी सेनावाहिनीको एकत्रित शक्तिको परास्त किया था। इस युद्धमें फिरसे जब उन्होंने अपने अधिक बलक्षयकी सम्भावना देखी, तब ७ लाख रुपये दे कर मेल कर लिया। इसके ६ वर्ष बाद उन्होंने महाराष्ट्र-सेनापति शिवदास भावके साथ मिल कर अहमद-शाह दुराणीके विरुद्ध कूच किया। किन्तु महाराष्ट्र-सेनापतिकी अवाध्यता और सेनापरिचालन शक्तिकी अकर्मण्यता देख कर वे लौट जानेको वाध्य हुए*।

इधर पानीपतकी लड़ाईमें जब सभी उलझे हुए थे, उसी समय सूर्यमल्लने आगरेको अधिकार कर लिया, किन्तु उनके भाग्यमें इस सुख-राज्यका भोग अधिक दिन न बदा था। १७६३ ई०में वे आक्रान्त और निहत हुए। उनके पांच पुत्रोंमेंसे तीनने यथाक्रम भरतपुरके सिंहासनको सुशोभित किया। ३य पुत्र नवालसिंहके राजत्वकालमें उनके भतीजे रणजित्‌सिंह बागी हो गये। रणजित्‌के मुगलसेनापति नजफ खाँसे मदद मांगने पर, नजफने आ कर आगरे पर अधिकार कर लिया। उन्हें रोहिला-विद्रोह-दमनमें जाना था, इस कारण वेशी दिन ठहर न सके। नवालसिंहने भी मौका पा कर शत्रु नजफ खाँके राज्य पर चढ़ाई कर दी। नजफको इसकी खबर लगते ही वे आगबबूला हो गये और रणजित्‌सिंहको साथ ले भरतपुर राज्य पर टूट पड़े। भरतपुर उनके हाथ लगा, साथ साथ नगद रुपये भी काफी मिले। भरतपुर-दुर्ग और ६ लाखकी सम्पत्ति रणजित्‌को मिली और बाकी सभी स्थान नजफने अपना लिये। नजफकी मृत्युके बाद सिन्दराजने इस राज्यको फतह किया। उन्होंने रणजित्‌की वयोवृद्ध माताके प्रार्थनानुसार उक्त सम्पत्ति पुनः उसे लौटा दी। अंगरेज सेनापति पोरों (General Perron)की मदद पहुंचानेके कारण अङ्गरेजराजने पारितोषिक स्वरूप उन्हें तीन परगने दान दिये।

उत्तर-भारतके मध्य एकमात्र रणजित्‌सिंह ही एक ऐसे थे जिन्होंने अङ्गरेजोंके साथ मित्रता की थी। लासवारीके युद्धमें सिन्देराजके साथ अङ्गरेजोंकी जो तलवार चली थी उसमें रणजित् अश्वारोही सेनादलने लार्ड लेकको विशेष सहायता पहुंचाई थी। अङ्गरेजराज महाराष्ट्र-युद्धके प्रारम्भ (१८०३ ई०)में कृतज्ञता स्वरूप उन्हें सात लाख रुपये राजस्वके पांच जिले दिये थे; किन्तु होलकर-राजके साथ अङ्गरेजोंका जो युद्ध हुआ था उसमें सहायताकी बात तो दूर रहे, बरन् उनसे शत्रुता ही की थी। होलकर-सेनादलके लड़ाईमें पीठ दिखाने पर अङ्गरेजी-सेनाने उनका पीछा किया। इस समय दीग-दुर्गमें रह कर उनकी सेना अङ्गरेजों पर गोला बरसाने लगी। भरतपुर-राजके ऐसे आचरणसे विरक्त हो लार्ड लेक दीगको अधिकार कर भरतपुरकी ओर बढ़े। यहां उन्होंने जाट लोगों पर लगातार चार बार आक्रमण कर दिया, किन्तु जाटसेनाका एक बाल भी बाँका न हुआ। उस दुर्द्धर्ष सेनादलके सामने ठहर कर अङ्गरेजी-सेनाको नगर प्राचीर भेदनेका साहस न हुआ। इस युद्धमें अङ्गरेजसेनापति पराजित और विशेष क्षतिग्रस्त हुए। इस समय कालूघोष नामक किसी बंगाली कायस्थने अङ्गरेजोंकी ओरसे लड़ कर विशेष वीरताका परिचय दिया था। कालुघोष देखो।

राजाकी जीत तो हुई, पर अंगरेजोंका डर उनके हृदयसे दूर नहीं हुआ था। अब दोनोंमें शान्ति-स्थापनके लिये सन्धिकी बात छिड़ी। रणजित्‌सिंहने लड़ाईके क्षतिपूरण स्वरूप अंगरेजोंके हाथ दीगदुर्गको समर्पण किया।

१८०५ ई०में रणजित्‌की मृत्यु हुई। उनके बड़े लड़के रणधीरने १८ वर्ष और पीछे मंझले बलदेवसिंहने १८ मास राज्य किया। बलदेवकी मृत्युके बाद उनके लड़के

* सौभाग्य बलसे उन्होंने लौट कर दुराणीके हाथसे रक्षा पाई थी, नहीं तो पानीपतकी लड़ाईमें महाराष्ट्र-सेनाके शिकार बन जाते।

वलवन्त सिंहासनके प्रकृत उत्तराधिकारी हुए। किन्तु रणजित्के पौत्र दुर्जनशालने १८२६ ई०में भरतपुर-दुर्गको अधिकार कर वलवन्तको कैद रखा। इस अन्याचारको रोकनेके लिये लार्ड कम्बरमियर (Lord Combermere) २५ हजार सेनाके साथ भरतपुरकी ओर दौड़ पड़े। अवरोधके समय जब उन्होंने देखा, कि दुर्गका प्राकार दुर्भेद्य है, तब नीचे सुरंग खोदनेका विचार किया। २३वीं दिसम्बरसे १७वीं जनवरी तक एक सुरंग खोदी गई। १८वीं जनवरीको उसी सुरंगसे जा कर अंगरेजों-की सेनाने दुर्गको फतह किया और दुर्जनशाल अंगरेजोंके हाथ वन्दी हुए।

अंगरेजोंके अनुग्रहसे वालक वलवन्तसिंहने पितृपद और मर्यादाको प्राप्त किया और उनकी माता राजकार्यकी परिदर्शक हुई। १८३५ ई०में वालिग हो कर उन्होंने शासनभार अपने हाथ लिया। १८ वर्ष राज्य करनेके वाद ही वे इहलोकसे चल बसे। वादमें उनके पुत्र महाराज यशोवन्त सिंह पितृसिंहासन पर अधिरूढ़ हुए। इस समय उनकी उमर सिर्फ एक वर्षकी थी। इस कारण अंगरेजोंके राजकोय कर्मचारी और ७ सामन्तराज-गठित एक सभा द्वारा राजकार्यको पर्यालोचना होने लगी। १८६६ ई०में वालिग हो कर उन्होंने कुल शासनभार अपने हाथ लिया। १८७७ ई०में उन्हें जी. सी. एस. आई-की उपाधि मिली और सलामी तोपें १७ से वढ़ा कर १६ कर दी गई। इनके राजत्वकालमें जो सव घटना घटीं वह यों हैं—१८७३-४ ई०में रेलवे लाईन खोली गई, १८७७ ई०में दुर्भिक्ष पड़ा, नमकका कारवार वंद कर दिया गया, शराव, अफीम तथा अन्य मादक वस्तुको छोड़ कर शेष पण्यद्रव्य परसे महसूल उठा दिया, अश्वारोही और पदाति सेनाकी संख्या वढ़ा दी गई। १८६३ ई०में यशोवन्त सिंह इस धराधामको छोड़ सुरधामको सिधारे। पीछे उनके वड़े लड़के रामसिंह राजतख्त पर वैठे। ये कड़े मिजाजके थे, प्रजा इनसे तंग तंग रहती थी, राज-कार्यकी ओर ध्यान भी कम था। इन सव कारणोंसे १८६५ ई०में इनका अधिकार छीन लिया गया। पीछे दीवान और पालिटिकल एजेण्ट द्वारा राजकार्य चलने लगा। १६०० ई०में रामसिंहने गुस्सेमें आ कर अपने एक नौकरको जानसे मार डाला। इस पर वृटिश-सरकारने इन्हें सिंहासन परसे हटा दिया और उनके लड़के किशेनसिंहको राजगद्दी पर विठाया। इनका जन्म १८६६ ई०में हुआ। ये ही वर्त्तमान महाराजा हैं। इनका पूरा नाम है—एच, एच महाराजा श्रीवृजेन्द्र सवाई किशेन सिंह साहव वहादुर जङ्ग। चूड़ामन जाट कर्त्तृक भरतपुर राज्यकी प्रतिष्ठा होनेके वाद यहां निम्नलिखित राजाओंने शासनदण्ड धारण किया था—

भरतपुरके राजवंश।

चूड़ामनजाट—
राजा वदनसिंह—चूड़ामनके पुत्र।
„ सूर्यमल्ल—वदनके पुत्र
„ जवाहिर सिंह } सूर्यमल्लके पुत्र।
„ राबरतन सिंह }
„ खड्गसिंह—रतनसिंहके पुत्र।
„ नवाल सिंह—सूर्यमल्लके तृतीय पुत्र और रतनके भाई।
„ रणजित् सिंह—नवालके भतीजे।
„ रणधीर—रणजित्के पुत्र।
„ वलदेव—रणधीरके भाई।
„ वलवन्त—वलदेवके पुत्र।
महाराज यशोवन्त—वलवन्तके पुत्र।
राजा रामसिंह—यशोवन्तके ज्येष्ठ पुत्र।
महाराज किशेन सिंह—रामसिंहके पुत्र।
(वर्त्तमान शासनकर्त्ता)

यह जाटराज्य चूड़ामनके पहले व्रज नामक किसी जाट सरदार द्वारा दीगके अन्तर्गत सिनसिनी ग्राममें वसाया गया था। चूड़ामनने अपने वीरोचित साहससे लूट पाट द्वारा काफी रकम इकट्ठी कर ली थी। उसी रकमसे उन्होंने एक दुर्ग वनवाया और जाटजाति तथा भरतपुर-राज्यकी रक्षा की थी।

यहांके कमान नगरमें श्रीकृष्णकी जो मूर्त्ति है वह हिन्दुओंके निकट पवित्र तीर्थमें गिनी जाती है। कुम्मार नगरके पास भी वलदेव, रोहिणी, युधिष्ठिर, आदि कई महापुरुषोंकी मूर्त्ति विद्यमान है। वयाना तहसीलसे

१ कोस दक्षिण-पश्चिममें विजयगढ़ नामक एक दुर्ग है जहां यौधेय राजवंशकी एक शिलालिपि देखनेमें आती है। रूपेरल नदीके दूसरे किनारे सिकरी नामका जो बांध है वह बहुत पुराना है। कहते हैं कि १८४० ई०में महाराज बलवन्त सिंहने उस बांधको बनवाया था। पीछे उस बांधका हाता और भी बढ़ाया गया जिसमें डेढ़ लाखसे ऊपर रुपये खर्च हुए थे।

वृटिश-शासनप्रणालीके अनुसार राजकार्य चलाया जाता है। सबसे निम्नश्रेणीकी अदालत नायब तहसीलदारकी है। ये तृतीय श्रेणीके मजिष्ट्रेट हैं और दीवानी ५० रु० तकके मामले पर विचार करते हैं। इनके ऊपर तहसीलदार हैं जिन्हें द्वितीय श्रेणीके मजिष्ट्रेटका अधिकार है। ये २००) रु० तकके दीवानी मामले पर विचार कर सकते हैं। दोनों अदालतकी अपील जिलेके नाजिम अदालतमें सुनी जाती है। इन्हें डिष्ट्रिक्ट मजिष्ट्रेटका-सा अधिकार है। इनसे भी ऊपर सिभिल और सेसन जज है। कौंसिल ही सबसे बड़ी अदालत है। इन्हें मृत्युदण्ड भी देनेका अधिकार है, पर इसमें गवर्नर-जनरलके एजेण्टकी अनुमति लेनी पड़ती है। राज्यकी कुल आय मिला कर ३१ लाख रुपयेकी है। राज्यमें सरकारी सिक्का ही चलता है। पहले यहां दो टकसाल थी एक दीगमें और दूसरी राजधानीमें, पर दोनों ही क्रमशः १८७८ और १८८३ ई०में बंद कर दी गईं। पहले यहां जो सिक्का चलता था, उसे 'हाली' कहते थे। उसका मान सरकारी दश आनेके बराबर था।

राजपूतानेके बीस राज्योंके मध्य विद्याशिक्षामें इस राज्यका स्थान ग्यारहवां पड़ता है। अभी कुल मिला कर ६६ स्कूल हैं जिनमेंसे ६६ दरबार द्वारा और ३ चर्चमिसनरी सोसाइटी द्वारा परिचालित होते हैं। उक्त स्कूलोंमेंसे हाई स्कूल, संस्कृत स्कूल और एङ्गलो वर्नाक्युलर स्कूल प्रधान हैं। चार बालिका स्कूल भी हैं। विद्याशिक्षामें ष्टेटके करीब पचास हजार रुपये वार्षिक व्यय होते हैं। स्कूलके अलावा ७ अस्पताल और १० चिकित्सालय भी हैं।

२ उक्त राज्यकी राजधानी। यह दुर्ग द्वारा सुरक्षित है और अक्षा० १७° १३´ उ० तथा देशा० ७७° ३०´ पू०के मध्य विस्तृत है। जनसंख्या प्रायः ४३६०१ है। यहां राजपूतानेकी राजकीय रेलवे लाईनके खुल जानेसे जाने आनेकी विशेष सुविधा हो गई है।

यहांका वर्त्तमान दुर्ग १७३३ ई०में राजा बदनसिंहने बनवाया था। १८०५ ई०में लार्ड लेक और १८२७ ई०में कम्बरमियरके अवरोधके लिये इस दुर्गने भारतवर्षमें विशेष प्रसिद्धि लाभ की है।

शहरमें बहुत बढ़िया चामर तैयार होता है जो दूर दूर देशोंमें भेजा जाता है। भरतपुरके प्रायः सभी अधिवासी कृष्णभक्त हैं और श्रीकृष्णको 'विहारी' नामसे पूजते हैं। निरीह स्वभाव परमवैष्णव होने पर भी जरुरत पड़ने पर शत्रुके साथ हिंसावृत्तिका आचरण करते हैं। यहांके जेलमें उत्कृष्ट कम्बल तैयार होता है। शहरमें कुल मिला कर आठ स्कूल हैं जिनमेंसे पांच दरबारके द्वारा और तीन चर्च मिशनरी सोसाइटीके द्वारा परिचालित होते हैं। दरबार हाई स्कूलमें मैट्रिक तककी शिक्षा दी जाती है और वह इलाहाबाद विश्वविद्यालयके अधीन है। स्कूलके अलावा पांच अस्पताल और एक चिकित्सालय है।

भरतपुर—मध्यप्रदेशके चाङ्गभकार राज्यका सदर। यह अक्षा० २३° ४४´ उ० तथा देशा० ८१° ४६´ पू०के मध्य बनास नदीसे २ मील उत्तर-पश्चिममें अवस्थित है। जनसंख्या ६३५ है।

भरतप्रसू (सं० स्त्री०) प्रसूते इति सू-क्विप् प्रसू, भरतस्य प्रसूः। भरतकी माता कैकयी।

भरतरी (हिं० स्त्री०) पृथ्वी।

भरतवर्ष (हिं० पु०) भारतवर्ष देखो।

भरतवीणा (सं० स्त्री०) वीणायन्त्र-विशेष, एक प्रकारकी वीणा। भरतवीणाका नाम सुन कर बहुतसे इसका यौगिक अर्थ—भरतऋषि-प्रणीत वीणा—ग्रहण कर इसे प्राचीन सङ्गीतशास्त्रानुमत अति प्राचीन यन्त्र समझ सकते हैं, परन्तु वास्तवमें यह बात नहीं है। यह वीणा अत्यन्त आधुनिक है। रुद्रवीणा और कच्छपीवीणाके मिश्रणसे इसकी उत्पत्ति हुई है। भरतवीणाका ध्वनिकोष अविकल रुद्रवीणाके समान काष्ठनिर्मित और चर्माच्छादित है तथा दन्त, कीलक, तारोंकी संख्या, स्वरबन्धन, धारण और वादनप्रणाली आदि सभी कच्छपीवीणाके सदृश हैं।

कुल मिला कर, इसमें पीतलकी बनी हुई कई पार्श्वतन्त्रिकाएं रहती हैं, जो पृथक्रूपसे बजाई न जा कर प्रधान तारोंके कम्पनसे स्वतः ध्वनित होती हैं। भरतवीणाका नायकी तार लोहेका होता है, अन्य तार धातुके न हो कर तन्तुमय होते हैं। इस वीणाकी ध्वनिकी मधुरता रबाव वा कच्छपोके समान नहीं, बल्कि अपेक्षाकृत कुछ नीरस-सी मालूम होती है। (यन्त्रकोष)

भरतमल्ल (सं० पु०) एक वैयाकरण।

भरतमल्लिक—वैद्यकुलोत्पन्न एक सुविज्ञ पण्डित। संस्कृतभाषामें इनकी विलक्षण व्युत्पत्ति थी। करीब दो शताब्दी पहले आप जीवित थे। आप कल्याणमल्लके आश्रित और वैद्यकुलतिलक हरिहरखानके वंशधर गौराङ्गमल्लिकके पुत्र थे। उपसर्गवृत्ति, एकवर्णार्थसंग्रह, कारकोल्लास, किरातार्जुणीयटीका, कुमारसम्भव टीका, घटकर्परटीका, द्रुतबोधव्याकरण और द्रुतबोधिनी नामक उसकी व्याख्या, भट्टिकाव्य टीका, अमरकोष टीका, सुलेखन नामके आपके रचे हुए कई ग्रन्थ पाये जाते हैं। वैद्यकुल-पञ्जिका भी आप ही की बनाई हुई हैं।

भरतसेन देखो।

भरतसेन—प्रसिद्ध वैद्यकवि भरतमल्लिकका नामान्तर। ये गौराङ्गसेनके पुत्र और हरिहरखानके वंश-सम्भूत थे। अपनी विद्यावत्ताके कारण इन्होंने महामहोपाध्याय और यशश्चन्द्र रायकी उपाधि पाई थी। ये राढ़ीय वैद्योंके एक प्रधान कुलीन थे। उनकी बनाई हुई वैद्यकुलपञ्जिका पढ़नेसे मालूम होता है, कि वे द्विज और वैद्योंके सेवक तथा राजपण्डित थे। उनकी उपसर्गवृत्तिके शेष-श्लोकसे पता चलता है, कि वे १७५८ शकमें विद्यमान थे।

भरतस्वामी—एक प्राचीन पण्डित, नारायणके पुत्र। ये होसलाधीश्वर रामनाथके प्रतिपालित थे। १३वीं शताब्दीके शेषभागमें श्रीरङ्गमें रह कर इन्होंने सामवेद विवरण (देवराजने इस वेद भाष्यका उल्लेख किया है) और बौधायनकल्पसूत्र-विवरण नामक दो ग्रन्थ लिखे थे। २ एक ज्योतिर्विद। आलवरुणोने इनका उल्लेख किया है।

भरता (हिं० पु०) एक प्रकारका सालन। यह बैंगन, आलू या अरुई आदिको भून कर उसमें नमक मिर्च आदि डाल कर बनाया जाता है। कभी कभी उसे घी या तेल आदिमें भी छौंकते हैं।

भरताग्रज (सं० पु०) भरतस्य अग्रजः। दाशरथि, श्रीराम।

भरतार (हिं० पु०) १ पति, खसम। २ स्वामी, मालिक।

भरताश्रम (सं० पु०) भरतस्य आश्रमः। भरतमुनिका आश्रम।

भरतिया (हिं० वि०) १ भरत अर्थात् कसकुट धातुका बना हुआ। (पु०) २ कसकुटके बर्तन या घंटे आदि ढालनेवाला, भरत धातुसे चीजें बनानेवाला।

भरती (हिं० स्त्री०) १ किसी चीजमें भरे जानेका भाव, भरा जाना। २ दाखिल या प्रविष्ट होनेका भाव, प्रवेश लेना। ३ वह नाव जिसमें माल लादा जाता हो। ४ नक्काशी, चित्रकारी या कशीदे आदिमें बीच बीचका खाली स्थान इस प्रकार भरना जिसमें उसका सौंदर्य बढ़ जाय। ५ समुद्रके पानीका चढ़ाव, ज्वार। ६ वह माल जो नावमें भरा या लादा जाय। ७ जहाज पर माल लादनेकी क्रिया। ८ नदीके पानीकी बाढ़। ९ पशुओंके चारेके काममें आनेवाली एक प्रकारकी घास। १० सांवां नामक कदन्न।

भरतेश्वरतीर्थ (सं० क्ली०) एक तीर्थका नाम।

भरतोद्धता (सं० पु०) केशवके अनुसार एक प्रकारके छन्दका नाम।

भरथ (सं० पु०) बिभर्त्तीति भृ-अच् (भृञ्श्वित्। उण् ३। ११५) इति अथ, सच चित्। लोकपाल।

भरथ (हिं० पु०) भरत देखो।

भरथरी (हिं० पु०) भर्तृहरि देखो।

भरदूल (हिं० पु०) भरतपक्षी देखो।

भरद्वाज (सं० पु०) द्वाभ्यां जायते इति जन-ड ततः पृषोदरादित्वात् द्वाजः सङ्करः, भ्रियते मरुद्भिरिति भृ-अप् भर, भरश्चासौ द्वाजश्चेति कर्मधा०। मुनिभेद, एक मुनि। इनके जन्मका विवरण भागवतमें इस प्रकार लिखा है,—एक दिन उतथ्यकी पत्नी ममताकी संसत्त्वावस्थामें बृहस्पतिने छिप कर अपनी भातृभार्याके साथ मैथुन किया। परन्तु उस समय ममताके गर्भमें एक सन्तान

थी, दूसरे गर्भके लिए वहां स्थान न था ; अतः गर्भ-स्थित बालकने वृहस्पतिको वीर्यसेक करनेके लिए निषेध किया। वृहस्पति कामान्ध हो रहे थे, गर्भस्थ बालकके निषेध करने पर उन्होंने क्रुद्ध हो कर "अन्ध हो" कह कर उसे शाप दिया और वलपूर्वक वीर्यसेक किया। वृहस्पतिके शापसे वह पुत्र अन्धा हो गया। वादमें गर्भस्थित बालकने पार्ष्णि प्रहार द्वारा वृहस्पतिके वीर्य-को योनिसे वाहर कर दिया। उसे शुक्रके वाहर गिरते ही उससे उसी क्षणमें एक पुत्र उत्पन्न हुआ।

पति व्यभिचारिणी जान कहीं परित्याग न कर दें इस भयसे उतथ्य-वनिता ममताने उस पुत्रको त्यागना चाहा, किन्तु वृहस्पतिके निषेध करने पर उनके साथ ममताका विरोध उपस्थित हुआ। तव वृहस्पतिने ममतासे कहा कि, 'यह वालक एकके क्षेत्रमें दूसरेके वीर्यसे उत्पन्न हुआ है, सुतरां यह तुम्हारे स्वामीका भी पुत्र हुआ। भर्त्तासे तुम डरो मत, तुम इसका भरण-पोषण करो' इस पर ममताने कहा, 'तुम भी इसका पोषण करो। हम दोनोंसे अन्यायरूपमें इस वालकका जन्म हुआ है, अतः मैं अकेली क्यों पोषण करूं ?' पिता और माता अर्थात् वृहस्पति और ममता एक प्रकारसे विवाद करते करते उस वालकको छोड़ कर चले गये। इस कारण वालकका नाम भरद्वाज हुआ। वृहस्पति और ममताके छोड़ कर चले जाने पर मरुद्गण उस वालकको उठा ले गये और उन्होंने उसका प्रतिपालन किया।

भरतके पुत्र सम्भावना वितथ होने पर अर्थात् पुत्र होने-की सम्भावना न रहने पर उन्होंने मरुत्स्तोम यज्ञका अनु ष्ठान किया। मरुद्गण इस यज्ञसे वहुत संतुष्ट हुए और उन्हें पुत्रदान दिया। इसलिए भरद्वाजका नाम वितथ हुआ। इनके पुत्र मनु थे।

(भाग० ६।२०, २१ अ०, विष्णुपु० ४।१६ अ०)

महाभारतमें लिखा है—किसी समय ये हिमालय पर तपस्या करने गये। इसके कुछ दिन वाद एक दिन वे गङ्गामें स्नान करने गये, उस समय घृताची अप्सरा वहांसे जा रही थी, दैवसे हवाके झकोरेसे उसके वस्त्र खुल गये। घृताचीको नग्नावस्थामें देख कर मुनिका रेतः-स्खलन हो गया। उस रेतःको द्रोणमें रखा गया, वादमें उसीसे द्रोणाचार्यका जन्म हुआ था।

द्रोणाचार्य देखो।

रैभ्यके साथ इनकी सातिशय वंधुता थी। भरद्वाज-के पुत्र यवक्रीतके द्वारा रैभ्यकी पुत्रवधूका सतीत्व नष्ट होने पर रैभ्यने उसे मार डाला। भरद्वाजने इस भीतरी वृत्तान्तोंको विना जाने ही रैभ्यको शाप दे दिया कि वह विना अपराधके ज्येष्ठ पुत्र द्वारा मारे जावें। वादमें सव हाल मालूम होने पर वे दुःखित हृदयसे अनलमें जल कर मर गये, किन्तु रैभ्यके पुत्र अर्वा वसुके तपःप्रभावसे पुनर्जीवित हुए प्रयागमें इनका आश्रम था। द्वादश द्वापर-में भरद्वाज व्यास थे। (देवीभा० १।३।२६)

भावप्रकाशमें भरद्वाजका ऐसा प्रसङ्ग पाया जाता है— दैवयोगसे एक दिन वहुसंख्यक महर्षि हिमालय पर्वत पर किसी एकान्त स्थानमें मिल कर प्राणियोंके व्याधिप्रशमनकी उपाय-चिंतामें निरत थे। परंतु कोई भी इसके लिए सद्‌युक्ति स्थिर न कर सके। तव सवने मिल कर भरद्वाज मुनिसे कहा—'भगवान्! आप ही इस विपत्तिसे उद्धार करनेमें एकमात्र समर्थ हैं। अतएव आप सुरपुरमें जा कर सहस्रलोचन इन्द्रके निकट आयु-र्वेद शास्त्र अध्ययन कर हमलोगोंको शिक्षा दीजिए, तभी हम सव आयुर्वेदका मर्म समझ सकते हैं और जगत्‌का कल्याण-साधन करनेमें समर्थवान् हो सकते हैं।

भरद्वाज ऋषियोंके प्रस्ताव पर सम्मत हो कर सुरपुर गये। वहां कुछ समय रह कर इन्द्रसे त्रिस्कंध-हेतु, लिङ्गौषध और ज्ञानात्मक अर्थात् रोगका निदान, रोगका लक्षण और औषधज्ञापक समस्त आयुर्वेदका यथाविधि अध्ययन कर मर्त्यधाममें आये और उन ऋषियोंको शिक्षा दी। उनको उस शिक्षासे ही क्रमशः आयुर्वेदका प्रचलन हुआ। (भावप्रकाश)

२ पक्षीविशेष, एक चिड़िया। पर्याय—व्याघ्रराट, भरद्वाजक। ३ गोत्रभेद, एक गोत्रका नाम। (मनु)

(त्रि०) ४ संभ्रियमाण हविर्लक्षणान्नयुक्त यजमानादि। (सायण)

५ मनोरूप सचेतन ऋषिभेद। (शतपथब्रा० ८।१।१।६) प्रजाजनोंका भरण करते थे, इसलिये भरद्वाज नाम पड़ा। (भारतअनु० प० ६३ अ०)

भरद्वाज—१ कालेयकुतूहलप्रहसनके प्रणेता। २ वास्तुतत्त्वके रचयिता। ३ वेदपादस्तोत्रके प्रणयनकर्त्ता।

भरद्वाज़क (सं० पु०) भरद्वाज-स्वार्थे-कन्। १ व्याघ्राटपक्षी। २ भरद्वाज देखो।

भरना (हिं० क्रि०) १ पूर्ण करना, खाली जगहको पूरा करनेके लिये कोई चीज डालना। २ रिक्त स्थानको पूर्ण अथवा उसकी अंशतः पूर्त्ति करना, स्थानको खाली न रहने देना। ३ उलटना, डालना। ४ ऋणका परिशोध या हानिकी पूर्त्ति करना, चुकाना। ५ पद पर नियुक्त करना, रिक्त पदकी पूर्त्ति करना। ६ तोप या बंदूक आदिमें गोली बारूद आदि डालना। ७ दो पदार्थोंके बीचके अवकाश या छिद्र आदिमें कुछ डाल कर उसे बंद करना। ८ काटना। ९ निर्वाह करना, निवाहना। १० खेतमें पानी देना। ११ गुप्त रूपसे किसीकी निंदा करना अथवा कोई बुरी बात मनमें बैठाना। १२ धातुके छड़ आदिको पीट कर अथवा और किसी प्रकार छोटा और मोटा करना। १३ किसी प्रकार व्यतीत करना, कठिनतासे बिताना। १४ सारे शरीरमें लगाना, पोतना। १५ सहना, झेलना। १६ पशुओं पर बोझ आदि लादना। (क्रि० अ०) १ किसी रिक्त पात्र आदिका कोई और पदार्थ पड़नेके कारण पूर्ण होना। २ उँडेला या डाला जाना। ३ ऋण आदिका परिशोध होना। ४ तोप या बंदूक आदिमें गोली बारूद आदिका होना। ५ मनमें क्रोध होना। ६ रिक्त स्थानकी पूर्त्ति होना, स्थानका खाली न रहना। ७ पदार्थोंके बीचके छिद्र या अवकाशका बंद होना। ८ जितना चाहिये, उतना हो जाना, कुछ भी कमी या कसर न रह जाना। ९ पशुओंका गर्भ धारण करना। १० चेचकके दोनोंका सारे शरीरमें निकल जाना। ११ धातुके छड़ आदिका पीट कर मोटा और छोटा किया जाना। १२ घाव का ठीक और बराबर होना। १३ किसी अंगका बहुत काम करनेके कारण दर्द करने लगना। १४ शरीरका हृष्ट पुष्ट होना।

भरना (हिं० पु०) १ भरनेकी क्रिया या भाव। २ रिश्वत, घूस।

भरनी (हिं० स्त्री०) १ करघेमेंकी ढरकी, नार। २ छछूंदर। ३ मोरनी। ४ गारुड़ी मन्त्र। ५ एक प्रकारकी जंगली बूटी।

भरपाई (हिं० क्रि० वि०) १ भलीभांति, पूर्णरूपसे। (स्त्री०) २ भर पानेका भाव, जो कुछ बाकी हो, वह पूरा पूरा पा जाना। ३ वह रसीद जो पूरी पूरी वसूली हो जाने पर दी जाय, कुल बाकी चुक जाने पर दी जानेवाली रसीद।

भरपुरसिंह—नाभा-राजवंशके एक राजा। ये १८५६ ई०में अपने पिताके सिंहासन पर अधिष्ठित हुए थे। सन् १८५७ ई०के सिपाही-विद्रोहके समय आपने दिल्ली, लुधियाना, जालंधर आदि स्थानोंमें अंग्रेजोंकी तरफसे युद्ध किया था। अम्बाला दरबारमें लार्ड कैनिंगने आपकी उपकारिताकी विशेष सुख्याति की थी। १८६३ ई०में भारतके वायसराय लार्ड एलगिनने इनको लेजिस्लेटिव कौन्सिलका सदस्य चुना था। उसी वर्ष ९वीं नवेम्बरको अत्यधिक परिश्रमजनित ज्वररोगसे आपकी मृत्यु हो गई। आपके कोई पुत्र न होनेसे भतीजे राजा भगवानसिंह सिंहासन पर बैठे। नाभा देखो।

भरपूर (हिं० वि०) १ जो पूरी तरहसे भरा हुआ हो, पूरा पूरा। २ परिपूर्ण, जिसमें कोई कमी न हो। (क्रि० वि०) ३ पूर्णरूपसे, अच्छी तरह पूरा करके। ४ भलीभांति। (पु०) ५ समुद्रकी तरङ्गोंका चढ़ाव, ज्वार।

भरभरना (हिं० क्रि०) १ रोआँ खड़ा होना, घबराना।

भरभूंजा (हिं० पु०) भड़भूँजा देखो।

भरम (सं० त्रि०) भृ-बाहुलकात् अमच्। भरणकर्त्ता, पालन पोसन करनेवाला।

भरम (हिं० पु०) १ भ्रान्ति, संशय। २ रहस्यभेद।

भरमना (हिं० क्रि०) १ घूमना, चलना। २ मारा मारा फिरना, भटकना। ३ धोखेमें पड़ना। (स्त्री०) ४ भूल, गलती। ५ भ्रान्ति, भ्रम।

भरमाना (हिं० क्रि०) १ भ्रममें डालना, चक्करमें डालना। २ व्यर्थ इधर उधर घुमाना, भटकाना।

भरमार (हिं० स्त्री०) अत्यन्त अधिकता, बहुत ज्यादती।

भरराना (हिं० क्रि०) १ भरर शब्दके साथ गिरना, भरराना। २ पिल पड़ना, टूट पड़ना। ३ भरर शब्दके साथ गिराना। ४ दूसरोंको पिलने अथवा टूट पड़नेमें प्रवृत्त करना।

भरल (हिं० स्त्री०) नीले रंगकी एक प्रकारकी जंगली भेंड़। यह हिमालयमें भूटानसे लद्दाख तक होती है।

भरवाई (हिं० स्त्री०) वह डलिया या टोकरी जिसमें बोझ रखा जाता है। २ भरवानेकी क्रिया या भाव। ३ भरवानेकी मजदूरी।

भरवाना (हिं० क्रि०) भरनेका काम दूसरेसे कराना, दूसरेको भरनेमें प्रवृत्त करना।

भरसक (हिं० क्रि० वि०) यथाशक्ति, जहां तक हो सके।

भरसन (हिं० स्त्री०) फटकार, डांट।

भरसाँई (हिं० पु०) भाड़ देखो।

भरस् (सं० पु०) भृ-असुन्। भरण।

भरहपाल—काष्ठाके एक अधिपति। ये टाकवंशीय थे।

भरहरना (हिं० क्रि०) भरभराना देखो।

भरहराना (हिं० क्रि०) भहराना देखो।

भरहुत—मध्यप्रदेशके नागोदराज्यके अन्तर्गत एक प्राचीन जनस्थान(१)। यह उचहरसे ३ कोस उत्तर-पूर्व तथा प्रयागसे ६० कोस दक्षिण-पूर्वमें अवस्थित है। सुत्ना रेल स्टेशनसे ४॥ कोस दक्षिण-पूर्व पड़ता है।

बहुत पहलेसे यह प्राचीन नगर निविड़ जंगलोंसे परिपूर्ण था। डा० कनिंहम आदि प्रत्नतत्त्वविदोंके अनुसन्धानके फलसे इसके भीतर छिपा हुआ ऐतिहासिक रत्न आविष्कृत हुआ है। ईसा जन्मके ४ सदी पहले यह स्थान बौद्धकीर्त्तिका केन्द्रस्थल था। यहांकी बौद्धकीर्त्ति जगत्का एक प्राचीन रत्न है। इस ध्वंसावशिष्ट कीर्त्तिस्तूपका व्यास प्रायः ६८ फुट और चारों ओरके प्राचीरका व्यास ८८ फुट है। प्रस्तरगठित बाहरवाली दीवार टूट फूट गई है और उसका कुछ अंश आस पासके ग्रामवासी उठा ले गये हैं।

इसके भीतरकी स्तम्भश्रेणी, द्वारदेश और चतुर्दिकस्थ प्राचीरका शिल्पनैपुण्य देखने योग्य है। डाकृर कनिंहम उसके द्वार परकी शिलालिपिको अक्षरमाला देख कर अनुमान करते हैं, कि सिन्धुपारस्थित वैदेशिक कारीगरोंको शुङ्गराजने मध्यभारतसे बुलाया था। उनकी वह अक्षरकीर्त्ति आज भी अक्षुण्ण रह कर पूर्वगौरवकी घोषणा करती है। बहुतोंका अनुमान है, कि इस सुवृहत् बौद्धकीर्त्तिका बहिःप्राचीर सम्राट् अशोकके राज्यकालमें बनाया गया होगा।

इस प्राचीन मन्दिरमें जो सब खोदित चित्र हैं, वे बौद्धोंके जातक ग्रन्थसे गृहीत हुए हैं *। एतद्भिन्न कुछ चित्रोंके नीचे उसको विवरणज्ञापकलिपि खोदित है। बौद्धचित्रको छोड़ कर यहां हिन्दू चित्रका भी अभाव नहीं है। अयोध्यापति रामचन्द्र, जनकराज, शीतलादेवी, यक्ष और यक्षिणी आदि मूर्त्ति तथा अन्यान्य नानाचित्र परिशोभित हैं। इन चित्रोंकी वेशभूषासे उस समयके परिच्छदपारिपाट्य उपलब्ध हो सकता है। इस ध्वंसावशेषके कुछ अंशको ले कर पास हीमें एक और भी बढ़िया आधुनिक मन्दिर बनाया गया है। उसमें भी अनेक हिन्दू-देवदेवियोंकी मूर्त्ति देखनेमें आती हैं।

भराँति (हिं० स्त्री०) भ्रान्ति देखो।

भराई (हिं० स्त्री०) १ एक प्रकारका कर जो पहले बनारसमें लगता था। इस करमेंसे आधा कर संग्रहकरनेवाले राजकर्मचारीको मिलता और आधा सरकारमें जमा होता था। २ भरनेकी क्रिया या भाव। ३ भरनेकी मजदूरी।

भराड़ी—दाक्षिणात्यवासी एक जाति। ये कुनबीजातिके वंशधर कहे जाते हैं। यत्र तत्र सड़कों पर डमरू बजा कर ये अम्बाबाई वा सप्तशृङ्गीदेवीकी महिमा गाते फिरते हैं। भिक्षा ही इनकी प्रधान उपजीविका है। इनमें दो स्वतन्त्र थोक हैं, एक गद अर्थात् शुद्ध भराड़ी और दूसरा कदू अर्थात् सङ्कर भराड़ी। इन दोनों श्रेणियोंमें परस्पर विवाहादि सम्बन्ध नहीं होता। ये साधारणतः काले और बलिष्ठ होते हैं। गाय और सूअरके मांसको छोड़ कर अन्य मांस, मत्स्य और मद्यमें इनकी विशेष प्रीति है। आकारानुरूप भोजन करनेमें समर्थ होने पर भी ये रन्धनकार्यमें विशेष निपुण होते हैं। मद्यके सिवा गांजा और तम्बाकू भी इन्हें प्रिय है।

(१) भौगोलिक टलेमीने इस स्थानको *Bardaotis* नामसे उल्लेख किया है। मानचित्रमें इसका बर्सांद नाम लिखा है।

* हंसजातक, किन्नरजातक, मृगजातक, मघादेवीयजातक, यवमझकिय जातक विषहरणीय जातक, लतुवजातक प्रभृति।

ये मराठी भाषामें बात करते हैं और साधारणतः इनकी पोशाक महाराष्ट्रीयोंकी तरह होती है। स्त्री और पुरुष दोनों ही गहने पहनते हैं। पुरुष सिर घुटा कर चोटी रखते हैं। 'गोन्धल' नाचके समय ये लोग नाना अलङ्कारोंसे सुसज्जित हो कर गाजे बाजेके साथ तुलजा-भवानी और भैरवनाथके गीत गाते हैं। नवरात्रउत्सवके समय इस नृत्यगीतके लिए प्रत्येक कृषकसे इन्हें धान्यादि-की कुछ न कुछ वार्षिक सहायता प्राप्त होती है। यह नृत्य और देवदेवीका सङ्गीत सूर्यास्तसे ले कर प्रातःकाल तक होता है। इस तरह नाच गा कर ये जो कुछ भी अर्थ उपार्जन करते हैं, उसीसे इनकी गुजर हो जाती है। भविष्यके लिए ये कभी भी अन्न इकट्ठा करके नहीं रखते। ये लोग साफ सुथरे होते हुए भी आलसी बहुत हैं।

दरिद्र होने पर भी इनकी धर्ममें मति पूर्णतः है। ये सभी हिन्दू-देवदेवियोंकी भक्ति करते हैं। प्रत्येक पूजा और पर्वादिके समय उपवास करते हैं। जेजुरि, माहुर, पण्ढरपुर, सोनारी, तुलजापुर आदि तीर्थस्थ देव-दर्शनके लिए इनमें बड़ी उत्सुकता पाई जाती है। सर्वसाधारण इन्हें नाथ-सम्प्रदायी समझते हैं। ग्रामके जोशी लोग इनके यहां पौरोहित्य करते हैं, फिर भी 'कनफटा' गुसाँई-से मन्त्र ग्रहण करते हैं। गुरुके प्रति इनकी अचला भक्ति है।

डाइन, प्रेतयोनि आदि पर इनका विश्वास है। जन्म, कर्णवेध, विवाह और मृत्यु-विषयक चार संस्कार इनमें यथारीति पाये जाते हैं। ५से ८ वर्ष तक बच्चेके कान छेद दिये जाते हैं। उस समय गुरुके सामने बालक वा बालिकाको कान छिदा कर पीतल या सींगकी बाली पहनायी जाती है।

इनमें बालविवाह, बहुविवाह और विधवा-विवाह प्रचलित है। विवाह-संस्कार लगभग अन्यान्य निकृष्ट जातियोंके समान है। सामाजिक झगड़ा उपस्थित होने पर इन लोगोंको पंचायत-सभाका आदेश मानना पड़ता है। चौगुला, पाटील और खारभरी लोग इनके नेता हैं। अन्यान्य सभी लोग उक्त नेताओंका विशेष सम्मान करते हैं।

इनमें शवदेहको थैलेमें भर कर समाधिक्षेत्रमें ले जाने-की प्रथा है। उस समय अशौचका प्रधान अधिकारी मिट्टीके बरतनमें आग रख कर आगे आगे और अन्यान्य लोग शिङ्गा बजाते हुए पीछे पीछे चलते हैं। समाधि स्थान आने पर, शवदेह पर भस्म लपेट कर उसे जमीन-में गाड़ देते हैं। गाड़नेसे पहले मृतदेह पर फूल, बिल्वपत्र और पानी भी देते हैं। अशौचाधिकारी धूप ले कर तथा और सब उसके पीछे पीछे कब्रकी प्रदक्षिणा देते हैं। शववाहिगण मृतके घर आ कर नीमके पत्ते चबानेके बाद अपने अपने घर चले जाते हैं। तीसरे दिन अशौचाधि-कारी फिर समाधिस्थानमें जाते और पूर्ववत् कब्रमें फूल आदि चढ़ा आते हैं। उसके बाद उसे शव-वाहियों-का कंधा मलना पड़ता है। इनमें प्रकृत अशौच वा पिण्डदानादिकी व्यवस्था नहीं है। तीन दिनके बाद किसी भी दिन भोज देने मात्रसे ये सब कार्यसे निवृत्त हो जाते हैं।

भरापूरा (हिं० पु०) १ सम्पन्न, जिसे किसी चीजका अभाव न हो। २ जिसमें किसी बातकी न्यूनता न हो।

भराव (हिं० पु०) १ भरनेका भाव, भरत। २ भरनेका काम। ३ कसीदा काढ़नेमें पत्तियोंके बीचके स्थानको तागोंसे भरना।

भरिणी (सं० स्त्री०) मनो बिभर्त्ति हरतीति भृ-णिनि गौरादित्वात् ङीप्, पृषोदरादित्वात् पूर्वादीर्घे साधुः। हरिद्वर्ण, पीला।

भरित (हिं० त्रि०) भरोऽस्य जातः इतच्, पृषोदरादित्वात् साधुः। १ हरिद्वर्ण, पीला। २ पुष्ट, भरा हुआ। ३ जिस का भरण या पालन-पोषण किया गया हो।

भरिमन् (सं० पु०) भृ (हृ भृ घृ नृ स्तृशृभ्य इमनिच्। उण् ४।१४७) इति भावे इमनिच्। १ भरण। २ कुटुम्ब।

भरिया (हिं० वि०) १ पूर्ण करनेवाला, भरनेवाला। २ ऋण भरनेवाला, कर्ज चुकानेवाला (पु०) ३ वह जो बरतन आदि ढालनेका काम करता हो, ढलाई करने-वाला।

भरिष (सं० स्त्री०) भरणकुशल।

भरी (हिं० स्त्री०) एक तौल जो दश माशे या एक रुपये-के बराबर होती है।

भरु (सं० पु०) भरति बिभर्त्ति जगदिति भृञ्-भरणे

(भृमृशीतृ चरितसरितनिधनिमिमस्जिभ्य उः । उणा् १।७) १ विष्णु । २ समुद्र । ३ स्वामी । ४ स्वर्ण ५ शिव ।

भरु (हिं० पु०) बोझ, वजन ।

भरुआ (हिं० पु०) १ टसर २ । भड़ुआ देखो ।

भरुक (सं० पु०) दक्षिणदेशभेद ।

भरुकच्छ (सं० पु०) प्राचीन देशभेद । यह भरोच नामसे ही प्रसिद्ध है । भरोच देखो ।

भरुका (हिं० पु०) पुरवेके आकारका चुकड़ ।

भरुज (सं० पु०) भेति शब्देन रुजतीति रुज-क । क्षुद्र श्रृगाल, छोटा गीदड़ ।

भरुटक (सं० क्ली०) भृ-बाहुलकात् उट, संज्ञायां कन् । भृष्टामिष, भूना हुआ मांस ।

भरुहाना (हिं० क्रि०) १ घमण्ड करना, अभिमान करना । २ बहकाना, धोखा देना । ३ उत्तेजित करना, बढ़ावा देना ।

भरुही (हिं० स्त्री०) १ कलम बनानेकी एक प्रकारकी कच्ची किलक । २ भरतपक्षी देखो ।

भरेंड़ (हिं० पु०) रेंड़ देखो ।

भरे (सं० अव्य०) भृ-बाहुलकात् ए । संग्राम ।

भरेङ्ग—काश्मीर राज्यके अन्तर्गत एक उपत्यका विभाग । यह अक्षा० ३३° २०´ से ३३° ३०´ उ० तथा देशा० ७५° १०´ से ७५° ३६´ पू०के मध्य अवस्थित है । यह स्थान सुरम्य गिरिकन्दर और निर्झरादिसे परिशोभित है । आचाबाद नामक विख्यात प्रस्रवणसे भरेङ्गी नदी निकली है । मोरवल नामक गिरिसङ्कट हो कर इस उपत्यकामें पहुंचते हैं ।

भरेङ्गी—काश्मीरराज्यमें प्रवाहित एक नदी । भरेङ्ग उपत्यका देशमें प्रवाहित होनेके कारण इसका भरेङ्गी नाम पड़ा है ।

भरेठ (हिं० पु०) दरवाजेके ऊपर लगी हुई वह लकड़ी जिसके ऊपर दीवार उठाई जाती है । इसे 'पटाव' भी कहते हैं ।

भरेणुज्ञा (सं० पु०) सोमका नामान्तर ।

भरेहनगरी (सं० स्त्री०) चर्मण्वती नदीके सङ्गम पर अवस्थित एक नगर । यहांके राजा भगवान्‌देवके राज्य-कालमें पण्डितवर नीलकण्ठ द्वारा श्राद्धमयूख रचा गया ।

भरैया (हिं० वि०) १ पोषक, पालन करनेवाला । २ भरनेवाला, जो भरता हो ।

भरोच—बम्बई प्रदेशका एक जिला । यह अक्षा० २१° २५´ से २२° १५´ उ० तथा देशा० ७२° ३१´ से ७३° १०´ पू०के मध्य अवस्थित है । भूपरिमाण १४६७ वर्गमील है । इसके उत्तरमें माही नदी, पूर्वमें बड़ोदा और राजपिप्पलीका सामन्तराज्य, दक्षिणमें किम नदी तथा पश्चिममें कोम्ब (खम्भात) उपसागर है ।

खम्भात उपसागरवर्त्ती स्थान पलिमय मट्टीसे गठित है । बीचमें वालुकास्तूपकी तरह इतस्ततः विक्षिप्त कितने गण्डशैल सागरोपकूलके बांध रूपमें दण्डायमान हैं । माही और किम नदीके अलावा यहां धाधर और नर्मदा नामको और दो नदी वहती हैं । किनारा अधिक ऊंचा होनेसे नदीके जल द्वारा खेतीवारीमें सुविधा नहीं होती । समतल जमीनका जल गड्ढेमें गिर कर नदीमें अथवा स्वयं : पश्चिमउपकूलवर्त्ती ढालू जमीनसे खाड़ीमें गिरता है । धाधर नदीके विस्तृत मुहानेके सिवा यहां मोटा, भूखी और बंद नामक कितनी खाड़ियां हैं ।

यहांकी मिट्टी काली होनेसे रूई बहुतायतसे उपजती है । इसके अलावा यहां आम, ताड़, इमली, बबूल आदि वृक्ष भी हैं । इस ताड़ पेड़के रससे एक प्रकारकी शराब तैयार होती है । भरोच नगरसे ६ कोस उत्तर नर्मदा नदीके किनारे एक छोटे द्वीपमें 'कवीरवट' नामका एक बड़ा वटवृक्ष है । साधुश्रेष्ठ कवीरने इस वृक्षकी डालसे दतवन किया था, ऐसा सुना जाता है *।

वर्त्तमान भरुच (*Broach*) जिलेका प्राचीन नाम

---

* यूरोप भ्रमणकारीके वर्णनसे मालूम होता है, कि १७८० ई०में इस वृक्षमें ३५० बड़े और ३ हजार छोटे छोटे तने थे । मूल तनेकी परिधि प्रायः २००० फुट थी । एक समय इस वृक्षके नीचे ७ हजार सेनाने आश्रय ग्रहण किया था । १८२६ ई०में विशप हेवर (*Bishop Heber*)-ने इस वृक्षको देख कर लिखा है, कि कुछ दिन हुए, नदीकी बाढ़से इसका कुछ अंश बह गया है । अभी भी जो मौजूद है उसके जोड़का पृथ्वी भर नहीं है । काल और वन्याके प्रभावसे इसका पूर्वगौरव जाता रहा है ।

भरुकच्छ है। पाश्चात्य भौगोलिक टलेमी तथा पेरीप्लस-ने 'वरुगज' (Barugaza) शब्दमें इस स्थानका नामोल्लेख किया है। हिन्दुओंके प्राचीनपुराणमें इन लोगोंका तथा उस देशके वासियोंका उल्लेख रहने पर भी इनका उस प्राचीनतम समयका इतिहास नहीं पाया जाता। शिलालिपि पढ़नेसे जाना जाता है, कि ४थी वा ५वीं शताब्दीमें गुर्जरवंशीय दद्दवंशधरोंने भरुकच्छमें अपना राजत्व फैलाया था *। वलभीराज ४र्थ ध्रुवसेनने ३३० शकमें भरुकच्छको विजय कर शासन विस्तार किया था।

गुर्जरराज जयभट्ट और दद्द १म पहले सामन्तराज कह कर परिचित हुये थे ¶। ४००-४१७ शकमें उत्कीर्ण २य दद्द (प्रशान्तराग)-की शिलालिपिमें एकमात्र महाराजाधिराज नाम मिलता है। वाद इसके यहां राष्ट्रकूट राजवंशका अभ्युदय हुआ। कावी नगरसे प्राप्त राजा ३य गोविन्दकी ७४९ शकमें उत्कीर्ण शिलालिपिसे जाना जाता है, कि भरोचनगरमें उन लोगोंकी राजधानी थी (१)।

१६१६ ई०में वाणिज्य-विस्तार हेतु अङ्गरेजोंने यहां एक कोठी खोली। इससे पहले यह स्थान देशीय सामन्तों और मुसलमान नवावोंके अधिकारमें था, किंतु उस समय यहां कोई उल्लेखयोग्य घटना न घटी। १७५९ ई०में सुराष्ट्र दुर्ग पर चढ़ाईके वाद, अङ्गरेजोंने पहले स्थानीय शासनकर्त्ताओंके साथ राजकीय सम्बन्ध जोडा था किंतु सुराष्ट्रमें राजकीय शासनदण्ड धारण करनेके कुछ दिन वाद राजस्वसंक्रान्त प्रश्नोत्तरमें अङ्गरेजों और भरोचपतिके वीच विरोध खड़ा हुआ। तदनुसार १७७१ ई०में सूरतके नवावके विरुद्ध अङ्गरेजी सेना भेजी गई। अङ्गरेजी सेना इस युद्धमें पराजित हो वापस आई, किंतु दूसरे वर्ष भरोच नवावके अङ्गरेजोंको स्वीकृत चार लाख रुपये देनेमें अक्षम होने पर १७७२ ई०में अङ्गरेजोंने पुनः भरोचपतिके विरुद्ध युद्धयात्रा कर दी। इस युद्धमें भरोच नगर और १६२ गांव अङ्गरेजोंके हाथ लगे तथा अङ्गरेज-सेनापति ओडारवरण मारा गया। १७८३ ई०में अंकलेश्वर, हसौंत, देहेजवाड़ और आमोद आदि प्रदेश अङ्गरेजाधीन रहे। सालवाईकी सन्धिमें अङ्गरेजोंने पूर्वार्जित राज्य महादजी सिन्धियाको और परवर्त्ती अधिकृत स्थान पेशवाके हाथ सौंपा। १९ वर्ष तक यह स्थान महाराष्ट्रोंके अन्तर्भुक्त था। १८०३ ई०में अङ्गरेजी सेनाने सिन्देराजके अधिकृत गुजरात प्रदेश पर चढ़ाई की और भरोच नगर अधिकार कर लिया। १८१८ ई०में पूनाकी सन्धिके वाद तीन और उपविभाग इसके अधीन हुए। १८२३ ई०का कोलिविद्रोह और १८५७ ई०का मुसलमान तथा पारसीगणोंका परस्पर विवाद यहांकी उल्लेखयोग्य घटना है।

विचार-विभागकी सुविधाके लिये यह जिला आमोद, भरोच, अंकलेश्वर, जम्बूसर और वग्रा नामक पांच प्रधान नगरोंके नाम पर ही उक्त पांच तहसील संगठित की गई। यहां १५ प्रधान तीर्थ हैं जिनमें ११ हिन्दूके और शेष मुसलमानके हैं। शुक्ल-तीर्थ, भारभूत और करोड़ नामके स्थानमें वड़ा मेला लगता है। इसमें कभी कभी लाखसे भी ऊपर मनुष्य समागम होते हैं।

१८२० ई०में यहां देगम, टंकारी, गन्धार, देहेज भरोच नामक पांच वन्दरगाह थे। उनमेंसे भरोच और टंकारी वन्दरमें आज भी वाणिज्य चलता है।

२ उक्त जिलेका एक उपविभाग। भू-परिमाण ३०२ वर्गमील है। यहांका नर्मदानदी तीरवर्त्ती स्थान उर्वरा है।

३ गुजरात प्रदेशके भरोच जिलेका प्रधान नगर। यह नर्मदा नदीके दक्षिण किनारे मुहानेसे १५ कोसकी दूरी पर अवस्थित है। यह अक्षा० २१° ४३´ उ० तथा देशा० ७३° २´ पू०के मध्य अवस्थित है। नर्मदा नदीके उस पारसे देखनेसे नगरकी शोभा अति मनोरम जान पड़ती है। स्थानीय प्रवाद है, कि अनहिलवाड़पति सिद्धराज जयसिंहने १२वीं शताब्दीमें नदीके किनारे प्रस्तर-प्राचीर तथा अपर तीन दिशाओंमें प्राकार और परिखादि निर्माण किये थे। मिरट्-इ-सिके

---

* Indian Antiquary, vol, V. p, 110-115

¶ कारण, शिलालिपिमें उनकी ठाकुर, समधिगत पञ्चमहाशब्द और महासामन्ताधिपति आदि उपाधि देखी जाती है। Ind, Ant, vol III, p, 633 vol vII p, 199

(१) Indian Antiquary vol, v, p, 151

न्दरि नामक मुसलमानी इतिहास पढ़नेसे मालूम होता है, कि अहमदनगरराज सुलतान वहादुरको आज्ञासे १५२६ ई०में यहांका गढ़ और परिखा आदि निर्मित हुए थे। १६६० ई०में मुगल-सम्राट औरङ्गजेवने नगर-प्राचीर नष्ट कर दिया था। इसके २५ वर्ष वाद मराठोसेनाके आक्रमणसे नगर-रक्षाके लिये उन्होंने फिर इस प्राचीरका पुनर्निर्म्माण कराया था। भूमिभागके प्राकारादि कालक्रमसे विलय हो गया है, यहां तक कि कहीं कहीं उसका चिह्न-मात्र भी नहीं है। नदीकी वाढ़से नगररक्षार्थ दक्षिणकी ओर जो प्राचीर है वह प्रायः ४० फुट ऊंचा और १ मील लम्बा है। वह प्रस्तर-प्राचीर अव भी पूर्णसंस्कारमें है। इसका कोई स्थान भंग नहीं हुआ है। इस प्राचीरमें पांच बड़े द्वार हैं। प्राचीरका उपविभाग ऐसा प्रशस्त है, कि इसके ऊपर आ जा सकते हैं। इस दीवारका मध्यस्थल ६०से ले कर ८० फुट ऊंचा है।

किंवदन्ती इस प्रकार है, कि भृगु नामक एक महामुनि यहां वास करते थे। उन्हींके नामानुसार यह स्थान भृगुपुर नामसे ख्यात है *।

१ली शताब्दीमें यह स्थान वरुगजा या वड़गज नामसे घोषित हुआ। उस समय यह नगर पश्चमी भारतमें एक प्रधान वन्दरगाह और राजधानीरूपमें परिगणित था। २री शताब्दीके वाद यहां राजपूत राजवंशका राजपाट स्थापित हुआ। ७वीं शताब्दीमें चीन-परिव्राजक यूएनचुअङ्गकी वर्णनासे ज्ञात होता है, कि यहां १० वौद्धसङ्घाराम, १० मन्दिर और ३ सौ भिक्षु रहते थे। इसके अर्द्ध शताब्दीके वाद भरोच नगरका समृद्धि-गौरव चारों तरफ फैल गया। वाणिज्यसमृद्धिके लोभमें पड़ कर मुसलमानोंने उस समय पश्चिम-भारतमें युद्धके लिये प्रस्थान किया। अनहिलवाड़के राजपूतराजाओंके राजत्वकाल (७४६—१३०० ई०)में इसका वाणिज्य-प्रभाव अक्षुण्ण था। अनहिलवाड़राजवंशका अधःपतन होनेसे भरोचराज्य विभिन्न राजाओंके हाथ लगा तथा उस विश्रृङ्खलताके समय वाणिज्यका भी ह्रास हुआ। १३९१-१५९२ ई० तक यह स्थान अहमदावादके मुसलमान राजवंशके अन्तर्भुक्त रहा। उसमेंसे १५३४-३६ ई० दो वर्ष तक सम्राट् हुमायूंका एक सेनापति यहांका शासनकर्त्ता हुआ था। उस समय १५३६ और १५४६ ई०में पुर्त्तगोजोंने दो वार इस नगरको लूटा*। १५७३ ई०में अहमदनगरके अन्तिम मुसलमानराज ३य मुजफ्फरशाहने सम्राट् अकवर शाहको भरोच सपुर्द किया। दश वर्ष वाद मुजफ्फर स्वाधीन होने पर भी मोगलराजके करायत्त हुए। १६१६ ई०में अङ्गरेज वणिकोंने तथा १६१७में ओलन्दाज-वणिकोंने यहां कोठी खोली। औरङ्गजेवके समय मुगलशक्ति हीन होती देख महाराष्ट्रोंने १६१५ और १६८६ ई०में इस स्थान पर आक्रमण किया और लूटा। दूसरी वार उनकी चढ़ाईके वाद सम्राट् औरङ्गजेवने इसके प्रकारादि पुनर्निर्माणकी आज्ञा दी। नगरके संस्कृत होनेसे उन्होंने इसका सुखावाद नाम रखा था। निजाम-उल-मुल्कने १७२६ ई०में भरोचके मुसलमान शासनकर्त्ताको नवावकी उपाधिसे भूषित किया। १७७१ ई०में विफलमनोरथ हो पुनः नव उद्यमसे अंगरेजोंने १७७२ ई०में भरोच वन्दरको दखल किया। १७८३ ई०में अंगरेजोंने सिन्देराजके हाथ इसे समर्पण कर फिर १८०३ ई०में छीन लिया।

समुद्रतीरवर्त्ती इस भरुकच्छनगरने वहुत प्राचीन कालसे वैदेशिक वाणिज्यमें विशेष उन्नति की थी। ईसा जन्मके वहुत पहलेसे पश्चिम एशियाके साथ भारतीय वाणिज्यका संस्रव था। इस भरोच नगरसे पण्यद्रव्यादिकी जहाज द्वारा पश्चिममें आदेन और लालसागर तीरवर्त्ती वन्दरोंमें तथा पूर्व-वंगाल, यवद्वीप, सुमात्रा और वहुत दूर चीन तक रफ्तनो होती थी। अभी वम्बई, सुराष्ट्र और कच्छदेशके माण्डवी वन्दर तक भरोचके जलपथका वाणिज्य फैला हुआ है। सूती कपड़े, लौह, काष्ठ, सुपारी

* यहां वहुसंख्यक भार्गव ब्राह्मणोंका वास है। वे अपनेको महर्षि भृगुके वंशधर वतलाते हैं।

* पुर्त्तगीजगण इस नगरकी समृद्धिकी कथा उल्लेख कर गये हैं। यह नगर अट्टालिकाओंसे परिशोभित तथा हस्तिदन्त द्वारा निर्मित चिकने द्रव्य और सूक्ष्मवस्त्रसमूहोंसे पूर्ण था। इस समय यहांके जुलाहे उत्कृष्ट वस्त्र वुन सकते थे।
Decadas de conto, v, p, 325

गुड़, चावल आदि यहांका प्रधान वाणिज्य द्रव्य है। यहांका 'वास्ता' नामक सूक्ष्म वस्त्र और अन्यान्य प्रकारके केलिको वस्त्रके हेतु ओलन्दाज और अङ्गरेज-वणिक् यहां कोठी खोलनेको वाध्य हुये हैं। वम्बई, सुराष्ट्र, अहमदावाद आदि स्थानोंमें कपड़े वुननेकी कल आदि स्थापित होने पर भी यहांका हाथका तांत (देशीय वस्त्र-वयनयन्त्र) आज भी अप्रतिहत है। केवलमात्र कुछ जुलाहे उन्नतिकी आशासे वम्बई गये हैं। इस प्राचीन नगरमें वहुत-सी प्राचीन हिन्दू और मुसलमान कीर्त्तियां रक्षित हैं। मुसलमानोंके आधिपत्यकालमें वहुत-से प्राचीन हिन्दू, जैन या बौद्ध मन्दिर विध्वस्त हुए तथा उसी जगह उसके प्रस्तरादि द्वारा मुसलमानकी मसजिद वनाई गई हैं।

१ जमा मसजिद, २ वावा रहन साहवकी दरगाह, ३ इद्रूस मसजिद, ४ छत्रपीरका समाधि-मन्दिर, ५ मादासा-मसजिद, ६ शेठकी हवेली, ७ भृगुस्थान वा आश्रम, ८ कवीरस्थान, ९ गङ्गानाथ महादेव, १० अम्बाजीमाता, ११ पिङ्गलेश्वर (दशाश्वमेध तीर्थ), १२ लालुभाईका वाव, १३ खेरुद्दीनका वाव, १४ ओलन्दोंका कब्रिस्तान, १५ आदीश्वर भगवान, १६ वहुचाराजी माता, १७ नारायण-स्वामी, १८ साहू धोवनकी धर्मशाला, १९ सोमनाथ, २० भृगुभास्करेश्वर, २१ भूतनाथ, २२ काशीविश्वम्भर, २३ मनसुव्रतस्वामी, २४ देवासर (जैनमन्दिर), २५ चोविवट्टो मन्दिर, २६ पार्श्वनाथमन्दिर, २७ सागरगच्छका आदीश्वर, २८ ओलन्दाजोंकी कोठी, २९ भीड़भञ्जन कूप, ३० नीलकण्ठ महादेव और ३१ सिन्दवाई माताका मन्दिर आदि देखनेकी चीज हैं। पारसियोंकी श्मशान पुरी (Tower of silence) देखनेसे अनुमान होता है, कि पारसियोंने यहां ११वीं शताब्दीके प्रारम्भमें आ कर वास किया है।

भरोष्टी—षाड़वजातीय रागविशेष। यह पूरिया, गौरी और श्यामयोगसे उत्पन्न है।

भरोसा (हिं० पु०) १ आश्रय, आसरा। २ अवलम्ब, सहारा। ३ आशा, उम्मेद। ४ दृढ़विश्वास, यकीन।

भरोसी (हिं० वि०) १ भरोसा या आसरा रखनेवाला, जो किसी वातकी आशा रखता हो। २ आश्रित, जो आश्रयमें रहता हो। ३ विश्वसनीय, जिसका भरोसा किया जाय।

भरौंट (हिं० पु०) राजपूतानेमें अधिकतासे मिलनेवाली एक प्रकारकी जङ्गली घास। पशु इसे वड़े चावसे खाते हैं। इसमें छोटे छोटे दाने या फल भी लगते हैं जिनके चारों ओर काँटे होते हैं।

भरौती (हिं० स्त्री०) वह रसीद जिसमें भरपाई की गई हो, भरपाईका कागज।

भरौना (हिं० वि०) वोझल, वजनी।

भर्ग (सं० पु०) भृज्यते कामादिरनेनेति भृज-'हलश्चेति' घञ्। १ शिव। २ वीतिहोत्रके पुत्र। ३ आदित्यान्तर्गत तेज। ४ भर्जन भाड़में भूना हुआ अन्न। ५ धृष्टकेतु वंशीय नृपभेद। ६ देशभेद।

भर्गतीर्थ (सं० क्ली०) तीर्थभेद।

भर्गभूमि (सं० पु०) नृपपुत्रभेद।

भर्गस् (सं० क्ली०) भर्जते इति भृज-भर्जने (अन्यञ्चिवृजीभृज्भ्यः कुत्वञ्च। उण् ४।२१५) इति असुन्, कवर्गश्चान्तादेशः। ज्योति, दीप्ति, चमक।

भर्गस्वत् (सं० त्रि०) दीप्तिमत्, मधुर।

भर्गादि (सं० पु०) पाणिन्युक्त शब्द गण। यथा—भर्ग, करूष, केकय, कश्मीर, साल्व, उरस्, कौरव्य।

भर्गायन (सं० पु०) एक गोत्र-प्रवर्त्तक ऋषिका नाम।

भर्ग्य (सं० पु०) भृज् (ऋहलोर्ण्यत्। पा ३।१।१२४) इति ण्यत्, चजोरिति कुत्वं। भर्ग।

भर्चु—एक कवि। शार्ङ्गधरपद्धतिमें इनका उल्लेख है।

भर्जन (सं० क्ली०) भृज्-ल्युट्। भृष्टि, भुना हुआ अन्न।

भर्णस् (सं० त्रि०) भृ-असुन्, नुगागमः। भरणकारक।

भर्त्तव्य (सं० त्रि०) भृ-तव्य। भरणीय, भरण-पोसन करने योग्य।

भर्त्ता (हिं० पु०) भर्तृ देखो।

भर्त्तार (हिं० पु०) स्वामी, खाविन्द।

भर्तृ (सं० पु०) विभर्त्ति, पुष्णाति, पालयति धारयतीति वा भृञ् धारणपोषणयोः (ण्वुल्तृचौ। पा ३।१।१३३) इति तृच्। १ अधिपति, मालिक। पर्याय—अधिप, ईश, नेता, परिवृढ़, अधिभू, पति, इन्द्र, स्वामी, नाथ, आर्य,

प्रभु, ईश्वर, विभु, ईशितृ, इन, नायक। २ स्वामी, खाविन्द। ३ विष्णु। (त्रि०) ४ धाता और पोष्टा।

भर्तृकृत्य (सं० क्ली०) स्त्रीके प्रति स्वामीका कर्त्तव्य, पत्नीकी स्वास्थ्यरक्षा और गर्भाधानादिके सम्बन्धमें पतिका कर्त्तव्याकर्त्तव्य भावप्रकाशमें इस प्रकार लिखा है—

"आयुःक्षयभयाद्भर्त्ता प्रथमे दिवसे स्त्रियम्।
द्वितीयेऽपि दिने रत्यै त्यजेदृतुमतीं तथा॥
तत्र यश्चाहितो गर्भो जायमानो न जीवति।
आहितो यस्तृतीयेऽह्नि स्वल्पायुर्विकलाङ्गकः॥
अतश्चतुर्थी षष्ठी स्यादष्टमी दशमी तथा।
द्वादशी वापि या रात्रिस्तस्यां तां विधिना भजेत्॥"

भर्तृघ्नी (सं० स्त्री०) भर्त्तारं हन्तीति हन-ढक् ङाप्। पतिघातिनी।

भर्तृत्व (सं० क्ली०) भर्तुर्भावः त्व। पतित्व, पतिका भाव या धर्म।

भर्तृदारक (सं० पु०) भर्त्ता ध्रियते इति दृङ् आदरे कर्मणि घञ् ततः स्वार्थे कन्। नाट्योक्तिमें युवराज। नाटकमें युवराजको भर्तृदारक नामसे संबोधन किया जाता है।

भर्तृप्राप्तिव्रत—स्वामिलाभके लिये स्त्रियोंका आचरणीय व्रतभेद। वराहपुराणमें लिखा है, कि वासन्तो शुक्लपक्षकी द्वादशी तिथिको यह व्रत किया जाता है।

(वराहपु० २६६ अध्याय)

भर्तृभट्ट—गुहिलवंशीय एक राजपूत राजा। ये मङ्गलके बाद चित्तोरके सिंहासन पर बैठे। उनके द्वारा प्रतिष्ठित अजयगढ़ और धरणगढ़ आज भी विद्यमान हैं। उनके १३वें पुत्र मालव और गुर्जरराज्यमें राज्यप्रतिष्ठा करके भाट्टेया तिह्लोट नामसे परिचित हुए थे।

भर्तृमती (सं० स्त्री०) भर्त्ता विद्यतेऽस्य मतुप्। स्वामियुक्ता स्त्री, सधवा स्त्री।

भर्तृमेण्ठ—एक प्राचीन कवि। श्रीकण्ठरचित शार्ङ्गधरपद्धति और सुवृत्तितिलकमें इसके रचित श्लोक उद्धृत हुए हैं।

भर्तृयज्ञ—एक प्राचीन पण्डित। इन्होंने कात्यायन-श्रौतसूत्रका एक भाष्य और श्राद्धकल्प प्रणयन किया। कात्यायन श्रौतसूत्रभाष्यके प्रणेता अनन्त और याज्ञिकदेव तथा हेमाद्रि, शूलपाणि आदिने इनका नामोल्लेख किया है।

भर्तृव्रता (सं० स्त्री०) भर्त्ता एव व्रतं यस्याः। पतिव्रता स्त्री।

भर्तृसात् (सं० अव्य) भर्तृ-साति। भर्त्ताके अधीन।

भर्तृस्नान (सं० क्ली०) १ तीर्थभेद। २ पतिस्थान।

भर्तृस्वामिन्—एक प्राचीन कवि। भट्टि देखो।

भर्तृहरि (सं० पु०) स्वनामख्यात एक वैयाकरण और कवि। आप उज्जयिनी-राज विक्रमादित्यके भ्राता थे। राजावलीमें लिखा है, गन्धर्वसेनके औरस और दासीके गर्भसे इनका जन्म हुआ था।

"अथ कालेन कियता रममाणो महीतले।
दास्यां गन्धर्वसेनस्तु पुत्रमेकमजीजनत्॥
तस्य भर्तृहरीत्येवं नाम चक्रे महामतिः।"

(राजावली ४।१-२)

बत्तीस-सिंहासनमें इनका विवरण इस प्रकार मिलता है:—विक्रमादित्यके पिताके औरस और उनकी मातृसखीके गर्भसे भर्तृहरिने जन्मग्रहण किया था। विक्रमादित्यके परामर्शसे उनके मातामहने उन्हें राजसिंहासन सौंप दिया। ये अत्यन्त स्त्रैण थे। पीछे स्त्रीकी दुश्चरित्रताको देख कर संसार-त्यागी हुए। इनके द्वारा प्रणीत हरिकारिका, वाक्यप्रदीप और शृङ्गारशतकादि ग्रन्थविशेष प्रसिद्ध हैं। बहुतसे विद्वान् इनके इस राजभ्रातृत्वको अनुमान-सापेक्ष समझते हैं। प्रवाद है, कि राजा भर्तृहरि अपनी प्रियतमा पत्नीके चरित्रमें सन्देह हो जानेसे राजपाट छोड़ कर काशी चले गये थे। वहां संन्यासव्रत ले कर उन्होंने योगधारण किया था। उसी समय उन्होंने शृङ्गारशतक, नीतिशतक और वैराग्यशतक नामक सौ सौ श्लोकोंके तीन ग्रन्थ रचे थे। इन ग्रन्थोंका अनुवाद १६७० ई०में पहले फरासी भाषामें, फिर लैटिन, जर्मन और अङ्गरेजी भाषामें हुआ। व्याकरण-शास्त्रमें भी इनकी विशेष व्युत्पत्ति थी। इनका वाक्यप्रदीप वा हरिकारिकासूत्र पाणिनिकी तरह आदर पाता है। इसके सिवा आपने महाभाष्यदीपिका और महाभाष्यत्रिपदी व्याख्या नामक दो ग्रन्थ और भी लिखे

हैं। किन्हीं किन्हींका कहना है, कि भट्टकाव्यके प्रणेता ये ही थे। प्रवाद है, कि ये अपने भाई विक्रमादित्यके जरिये मारे गये थे। विक्रमादित्य देखो।

२ रागिणीविशेष, एक रागिणीका नाम। इसे भटियारी वा भटियाला भी कहते हैं। यह रागिणी ललित और परजयोगसे उत्पन्न है। सा वादी है और न संवादी। सरगम इस प्रकार है—"ऋ ग म प ध नि सा:" (सङ्गीतरत्ना०)

भर्तृहरियोगी—साधुसम्प्रदायविशेष। विक्रमादित्यके भाई भर्तृहरिने इस सम्प्रदायको परिवर्त्तन किया। राजा भर्तृहरिने किसी योगीका शिष्यत्व ग्रहण किया था, इस कारण उनके प्रवर्त्तित सम्प्रदायिकगण भी योगी नामसे अभिहित हुए हैं। ये लोग हाथमें वाद्ययन्त्र लिये भर्तृराजके गुणकीर्त्तन किये घूमते हैं। काशीधामके रावरी तलाव नामक स्थानमें उनका प्रधान अड्डा है। ये लोग गेरू वस्त्र पहनते और शवदेहको समाधिस्थ करते हैं।

भर्तृहेम—'शृङ्गारशतक' नामक ग्रन्थके प्रणेता, भर्तृहरिका एक नाम।

भर्त्सक (सं० त्रि०) भर्त्स-ण्वुल्। भर्त्सनाकारी, तिरस्कार करनेवाला।

भर्त्सन (सं० क्ली०) भर्त्स-ल्युट्। अपकार वचन, निन्दा, शिकायत। पर्याय—कुत्सा, निन्दा, जुगुप्सा, गर्हा, गर्हण, निन्दन, कुत्सन, परिवाद, परीवाद, जुगुप्सन, आक्षेप, अवर्ण, निर्वाद, अपक्रोश। २ डांट डपट।

भर्त्सपत्रिका (सं० स्त्री०) भर्त्सं रं स्मेति भर्त्स-घञ्, भर्त्सं निन्दितं पत्रं यस्याः, कप् टाप् अतः इत्वं। महानीली।

भर्थना—१ युक्तप्रदेशके इटावा जिलान्तर्गत एक तहसील। चम्बल और कुमारी नदीके तीरवर्त्ती वन्यप्रदेश, यमुना उपत्यका और उत्तर दोआबको ले कर यह उपविभाग गठित है। भूपरिमाण ४१५ वर्गमील है।

२ उक्त उपविभागका एक प्रधान ग्राम और तहसीलका सदर। यह इटावा नगरसे ६ कोस दूर अवस्थित है। यहां इष्ट-इण्डियन रेलवेका एक स्टेशन है।

भर्थर—गुजरातवासी जातिविशेष। इस जातिके लोग घास्यादि बेच कर जीविका-निर्वाह करते हैं।

भर्दागढ़—मध्यप्रदेशके छिन्दवाड़ा जिलान्तर्गत एक भूसम्पत्ति। कोई गोंड़-सरदार यहांके जागीरदार हैं। टीकधाना वा पाँजरा ग्राममें इनका वास-भवन विद्यमान है।

भर्म—राष्ट्रकूटवंशीय एक राजा। ये वाजकोंके अधिपति थे। प्रभासमें इनकी राजधानी थी। इनके राज्यकालके १४३७ और १४४२ संवतमें उत्कीर्ण शिलालेख मिलते हैं।

भर्म (सं० क्ली०) भ्रियऽनेनेति भृ-बाहुलकात् मन्। १ स्वर्ण, सोना। २ भृति, नौकरी। ३ नाभि।

भर्मण्या (सं० स्त्री०) भर्मणि भरणे साधुरिति भर्मन्-यत्-टाप्। वेतन, तनख्वाह।

भर्मन् (सं० क्ली०) भरति भ्रियते वेति भृञ् (सर्वधातुभ्यो मनिन्। उण्, ४।१४४) इति मनिन्। १ वेतन, तनख्वाह। २ स्वर्ण, सोना। ३ धुस्तूर, धतूरा। ४ नाभि। ५ भरण, पालन पोसन।

भर्माश्व (सं० पु०) भरतवंशीय नृपभेद। (भाग० ६।२१।३४)

भर्रा (हिं० पु०) १ पक्षियोंकी उड़ान। २ एक प्रकारकी चिड़िया।

भर्राना (हिं० क्रि०) भर्र भर्र शब्द होना, आवाज भर्राना।

भर्सन (हिं० स्त्री०) १ निन्दा, अपवाद। २ फटकार, डांट डपट।

भर्सियान—सुलतानपुर-वासी राजपूत जातिकी एक शाखा। भैंसोल ग्राममें वास करनेके कारण इनका भैंसोलियान वा भर्सियान नाम पड़ा। ये मैनपुर वासी चौहानोंके वंशधर कहलाते हैं। करणसिंह नामक इस शाखाके एक सरदारने अयोध्या प्रदेशमें आ कर वाई कन्याका पाणिग्रहण किया था। उनके एक वंशधर राजसिंहने शेरशाहके राजत्वकालमें इसलाम-धर्ममें दीक्षित हो कर खान-इ-आजम भैंसोलियन नाम पाया था। आईन-इ-अकबरीमें वर्णित चौहान-इ-नौ-मुस्लिम नामके मुसलमान इसी वंशके समझे जाते हैं।

भल (सं० पु०) १ मार डालनेकी क्रिया, वध। २ दान। ३ निरूपण।

भलका (हिं० पु०) १ एक विशेष आकारका बना हुआ

सोने या चाँदीका टुकड़ा। इसे शोभाके लिये नथ पर जड़ते हैं। २ एक प्रकारका बाँस।

भलगमड़ा—बम्बईप्रदेशके काठियावाड़ विभागके झलावर जिलान्तर्गत एक छोटा सामन्तराज्य। यहांके सरदार वृटिश-सरकार और जूनागढ़के नवावको कर देते हैं।

भलगाम बुलदोई—दाक्षिण काठियावाड़ विभागके अन्तर्गत एक सामन्तराज्य। भलगाम नामक ग्राम इसका प्रधान स्थान है। यह अक्षा० २२° २७´ उ० तथा देशा० ७०° ५४´ पू०के मध्य विस्तृत है।

भलटी (हिं० स्त्री०) हँसिया नामक लोहेका औजार।

भलता (सं० स्त्री०) भातीति भा-बाहुलकात् ड; भा चासौ लता चेति कर्मधा०। राजवला।

भलन्दन—१ कान्यकुब्जदेशके एक राजा। इन्होंने योगावसानमें अयोनिसम्भवा कलावतीको प्राप्त किया था। (ब्रह्मवैवर्त्तपु० श्रीकृष्णजन्मख० १७ अ०)

२ दिष्टवंशीय नृपभेद, नाभागके पुत्र। नाभाग देखो।

मार्कण्डेयपुराणमें इनका भनन्दन नामसे वर्णन किया गया है। नाभागमें सुप्रभा नामक वैश्यकन्याके रूपलावण्यमें मुग्ध हो कर पिताको आज्ञाके विरुद्ध उसके साथ विवाह किया था, इसलिए वे पितृ-सिंहासनसे वञ्चित रहे थे। उनके पुत्र भनन्दन माताके आदेशसे गो-पालनार्थ हिमालय-शैल पर गये थे और वहां पर तपःपरायण नीप नृपतिके अनुग्रहसे विविध अस्त्रविद्याओंसे वलवान् हो कर स्वदेश लौटने पर उन्होंने पुनः पितृसिंहासन अधिकार किया था। इन्हींके औरससे प्रसिद्ध वत्सप्री राजाका जन्म हुआ था। (मार्क०पु० ११४-११६)

भलपति (हिं० पु०) भाला रखनेवाला, नेजेवरदार।

भलमनसत (हिं० स्त्री०) सज्जनता, शराफत।

भलमनसाहत (हिं० स्त्री०) भलमनसत देखो।

भलमनसी (हिं० स्त्री०) भलमनसत देखो।

भलला—बम्बई प्रदेशके झलावर जिलान्तर्गत एक छोटा राज्य। भलला ग्राम ही यहांका प्रधान स्थान है। यह अक्षा० २२° ५१´ उ० तथा देशा० ७१° ५६´ पू०के मध्य विस्तृत है।

भला (हिं० वि०) १ जो अच्छा हो, उत्तम श्रेष्ठ। २ बढ़िया, अच्छा। (पु०) ३ कल्याण, भलाई। ४ लाभ, नफा। (अव्य०) ५ अस्तु, खैर।

भलाई (हिं० स्त्री०) अच्छापन, भलापन। २ उपकार, नेकी। ३ सौभाग्य।

भलानस—ऋग्वेद-वर्णित एक प्राचीन जाति। जातितत्त्वविद् औपर्ट (Dt, Oppert) का अनुमान है, कि यह वोलनगिरिसङ्कटमें वास करनेवाली ब्राहुई जाति है। (ऋक् ७।१८।७)

भलापन (हिं० पु०) भलाई देखो।

भले (हिं० क्रि० वि०) १ भलीभांति, अच्छी तरह। (अव्य०) २ खूब, वाह।

भलोट—निम्नश्रेणीकी एक राजपूत जाति। पूर्वमें भलोट ग्राममें इस जातिकी वास-भूमि थी, इसीलिए इसका भलोट नाम पड़ा है।

भल्ल (सं० पु०) भल्लते-इति भल्ल अच्। १ भल्लूक, भालू। २ देशभेद। ३ शस्त्रभेद। हारीतमें लिखा है, कि इस शस्त्र द्वारा शरीरमें धँसा हुआ तीर निकाला जाता था। ४ वध, हत्या। ५ दान। ६ एक प्रकारका बाण। ७ प्राचीन कालकी एक जाति। ८ पुराणानुसार एक प्राचीन तीर्थ। ९ सन्निपातविशेष। १० भल्लातक वृक्ष।

भल्लक (सं० पु०) भल्ल-स्वार्थे-कन्। १ भल्लूक, भालू। २ पक्षिभेद। एक प्रकारकी चिड़िया। ३ इंगुदीवृक्ष। ४ भल्लातकवृक्ष, भिलावां। ५ सन्निपातविशेष।

भल्लकिमत्स्य (सं० पु०) मत्स्यविशेष। इसका गुण शीतल, गुरु, वलकर, मधुर और श्लेष्मवर्द्धक माना गया है।

भल्लकीय (सं० त्रि०) भल्लस्य अपत्यं छ। भल्लकका अपत्य।

भल्लट—काश्मीर-निवासी एक कवि। ये राजा शङ्करवर्माके आश्रित थे। (राजत० ५।२०३)

इनके बनाए हुए भल्लाटशतक और पद्मञ्जरी नामक दो ग्रन्थ देखनेमें आते हैं। औचित्यविचारचर्चा कविकण्ठाभरण और शार्ङ्गधरपद्धतिमें इनके रचे हुए श्लोक उद्धृत किये गये हैं।

भल्लतीर्थ—प्राचीन तीर्थभेद।

भल्लपाल (सं० पु०) भल्लं पालयति पालि-अण् उपपद स०। भल्लपालक, भल्लदेशपालक।

भल्लपुच्छी (सं० स्त्री०) भल्लस्य पुच्छमिव पुच्छं यस्याः। गवेशका नामक क्षुपभेद।

भल्लग (सं० पु०) ईशान दिशाका एक प्राचीन प्रदेश ।
भल्लवि (सं० पु०) ऋषिभेद ।
भल्लाक—राजपुत्रभेद । (वायुपु०)
भल्लाक्ष (सं० त्रि०) भल्लस्येवाक्षि यस्य अच्समासान्तः । १ मन्ददृष्टि, जिसे कम दिखाई देता हो । (पु०) २ हंसभेद ।
भल्लाट (सं० क्ली०) १ शशिध्वजराजपुर । भगवान् विष्णु कल्कि अवतार धारण कर पहले सेनाके साथ इसी नगरमें गये थे । (कल्किपु० २२ अ०) (पु०) २ दण्डसेनके पुत्र । ३ पर्वतभेद ।
भल्लात (सं० पु०) भल्लं भल्लास्त्रमिव अतति आत्मानं ज्ञापयतीति अत-अच् । भल्लातकवृक्ष, भिलावाँ ।
भल्लातक (सं० पु०) भल्ल इव अततीति अत-क्वुन वा भल्लात-स्वार्थे कन् । स्वनामख्यात वृक्षविशेष, भिलावेंका पेड़ । (Semecarpus Anacardium वा The marking nut tree) वस्त्रादिमें चिह्न देनेके लिए, विशेषतः रजकगण, इसका व्यवहार करते हैं । इसके रससे सूती कपड़े कालेरंगसे रंगे जाते हैं । शतद्रु से आसाम तक पर्वतके निम्नतट पर वा आसपास, भारतमहासागरके पूर्वद्वीपपुञ्जमें तथा उत्तर अष्ट्रेलियामें यह वृक्ष काफी तौर पर होता है ।

स्थानविशेषमें यह वृक्ष विभिन्न नामसे परिचित है । जैसे, हिन्दीमें—भेला, भिलावां, भिलरन, भ्योला, भैलतक ; वङ्गलामें—भेला, भेलतकि ; सन्थाल—शोसो ; कोल—लोसों ; उड़िया—भलिया ; गारो वव्री ; आसाम—भोलगुटी; नेपाल—भलैयो, भलै; लेपचा—कोङ्गी; मलया—चेरुणकुरु, कम्पिरा ; गोंड़—कोका, विवा; युक्तप्रदेश—भिलावां, भाल, भलियान ; पञ्जाब—भिलाव, भेला, भिलाद्दर ; मध्यप्रदेश—भिलावा, कोक, भल्लिया , वम्बई—विव, भीव, भीलम, विलम्बी ; मराठी—विब्ब, विब्बू, विभ ; गुजराती—भिलामू ; दाक्षिणात्य—भिलवन, बेलतक ; तामिल—शनकोट्टई, सेरमकोट्टै, सैङ्ग, सेयरङ्ग ; तेलगू—जिड़ि-विट्टलु, जिड़ि, नेललेडि, नल्ल-जिड़ि, चेट्टू, जीड़िचेट्टू, तुम्मद, मामिड़ि ; कनाड़ी—गेड़ु, घेरु, घेड़; ब्रह्म—च्चैवेन, खिसि ; सिंहल—किरि-वदुल्ल; फारसी—भिलाद्दुर, अरव—भिलदिन, हब्बुल-फहम, हबेल-कल्ब । संस्कृत पर्याय—अरुष्कर, भल्लात; शोथहृत, वह्निनामा, वीरतरु, व्रणकृत्; भूतनाशन, भल्लातकी, अग्निमुखी, वीरवृक्ष, निर्दहन, तपन, अनल, कृमिघ्न, शैलवीज, वातारि, स्फोटवीजक, पृथक्-वीज, धनुर्वृक्ष, वीजपादप और वह्नि । इसके गुण—कटु, तिक्त, कषाय, उष्ण, कृमि, कफ, वात, उदर, आनाह और मेहनाशक । फलगुण—कषाय, मधुर, कोष्ण, कफ, श्रम, श्वास, आनाह, विवन्ध, शूल, जठर, आध्मान और कृमिनाशक ।

इसका मज्जगुण विशेषरूपसे दाह और पित्तनाशक, तर्पण, वात और अरुचिनाशक तथा दीप्तिजनक है ।
(राजनि०)

भावप्रकाशमें लिखा है,—भल्लातक शब्द तीनों लिङ्गोंमें व्यवहृत होता है । अरुष्क, अरुष्कर, अग्निक, अग्निमुखी, भल्ली, वीरवृक्ष और शोफकृत्, ये भल्लातकके प्रसिद्ध नाम हैं । इसका पका फल मधुरकषायरस, मधुरविपाक, लघु, पाचक, स्निग्ध, तीक्ष्ण, उष्णवीर्य, छेदी, भेदक, मेधाजनक, अग्निकारक तथा कफ, वायु, व्रण, उदर, कुष्ठ अर्श, ग्रहणी, गुल्म, शोथ, आनाह, ज्वर और कृमिनाशक है । इसकी मज्जा—मधुरस, शुक्रवर्द्धक, मांसवर्द्धक, वायु और कफनाशक है । भल्लातक—कषाय, मधुरस, उष्णवीर्य, शुक्रवर्द्धक, लघु, वायु, श्लेष्मा, उदरानाह, कुष्ठ; अर्श, ग्रहणी, गुल्म, ज्वर, श्वित्र, अग्निमान्द्य, कृमि और व्रणनाशक होता है ।

इस वृक्षसे एक प्रकारका काले रंगका गोंद सा निकलता है । उससे वार्निशका काम होता है । इसका बीजकोष तिक्त और धारकगुणविशिष्ट है । उसमें जो काले रंगका गोंद-सा रहता है, उसे कपडे पर लगा कर ऊपरसे चूनेका पानी डाल देनेसे फिर वह कभी भी नहीं छूटता । इसके काले रसमें फिटकरी मिला कर उससे कपड़े रंगे जाते हैं । वालेश्वर जिलेमें ऊपरको हँड़ियामें भिलावां रख कर नोचेकी हँड़िया आग पर रखी जाती है । क्रमशः गरम होने पर ऊपरकी हंड़ियाके छेदोंसे रस टपक कर नीचेकी हंड़ियामें इकट्ठा होता रहता है । तब उस रसमें तेल और चूनेका पानी मिला कर कपड़े रंगे जाते हैं । हजारीवागमें पहले कपड़ोंको अच्छी तरह

धो कर फिटकरीके पानीमें भिगो देते हैं, पीछे उसे सुखा कर भिलावाके रंगमें डुबो देते हैं। इस तरह कपड़ेमें रंग अच्छी तरह भिद जाने पर उसे सुखा कर धो लेना पड़ता है। सरसोंके तेलमें भिलावांका चूरा मिला कर उसे चमड़े पर लगाया जाय, तो चमड़ा सड़ कर नष्ट नहीं होता। गेंड़े और भैंसेके चमड़ेको साफ करनेमें प्रधानतः भिलावांका व्यवहार होता है।

इसकी गरी और बीजकोषसे एक प्रकारका मीठा तेल पाया जाता है। वायुके संयोगसे वह काला पड़ जाता है। पोटासियम मिलानेसे वह सब्ज हो जाता है। इस फलकी गरी चरपरी होती है, पर आगमें जला कर खानेसे अच्छी लगती है। इसका गोंद अगर देहसे लग जाय, तो घाव हो जाता है। हाथ-पैरोंकी गांठोंमें इसके तेलकी मालिश करके उस पर धूआं दिया जाय तो सूजन हो जाती है। वायुरोगसे फूले हुए स्थान पर तथा डाढ़ोंमें लगानेसे फायदा होता है। परन्तु अच्छी-भली जगहमें लगा देनेसे घाव हुए विना न रहेगा। इसके प्रयोगसे चमड़ी लाल हो कर फूल जाय, तो नारियलका तेल या इमलीके पानीसे उस स्थानको धो डालना चाहिए। इससे आराम पड़ता है।

इसके पत्तोंसे पत्तलें बनती हैं, और लकड़ी सिर्फ जलानेके ही काम आती हैं।

भल्लातकगुड़ (सं० पु०) अर्शोरोगाधिकारमें एक गुड़ौषधभेद। प्रस्तुत प्रणाली—भिलावां २०००, जल ६४ शराव, शेष १६ शराव, गुड़ १२॥ शराव, छिन्नभल्लातक ५००, त्रिकला, त्रिकटु, मोथा और सैंधव प्रत्येक २ तोला। इन सब द्रव्योंका यथानियम पाक करनेसे गुड़ प्रस्तुत होता है। अर्शोरोगमें इसका सेवन करनेसे अर्शोरोग अति शीघ्र जाता रहता है। (चक्रदत्त अर्शोरोगाधि०)

भैषज्य-रत्नावलीके कुष्ठाधिकारमें एक महाभल्लातक गुड़ौषधकी व्यवस्था लिखी है। इसकी प्रस्तुत प्रणाली—नीमकी छाल, श्यामलता, अतीस, कटुकी, डूमर, त्रिफला, मोथा, पितपापड़ा, अनन्तमूल, वच, खदिरकाष्ठ, रक्तचन्दन, अकवन, सोंठ, कपूर, वरुङ्गी, अड़ूसमूलकी छाल, चिरायता, कूटज मूलकी छाल, विद्धड़क, गोपालककर्टीकी जड़, मुरगामूल, विडङ्ग, इन्द्रयव, विष, चितामूल, हस्तिकर्णपलाशकी छाल, गुलञ्च, घोड़ानीमकी छाल, पटोलपत्र, हरिद्रा, दारुहरिद्रा, पिपुल, अमलतास फलकी मज्जा, कलियालता, ओल, चीनाघास, मंजीठ, चाकुन्दुका बीज, तालमूली, प्रियंगु, कायफल, शरपुङ्ख, शिरीशकी छाल, प्रत्येक दो पल, भिलावां तीन हजार, जल ६४ सेर, शेष १६ सेर। इन दोनों काढ़ेको छान कर एक साथ मिलावे। पीछे उसमें पुराना गुड़ १२॥० सेर और एक हजार भिलावांकी मज्जा दे कर पाक करे। तदन्तर त्रिकटु, त्रिफला, मोथा, सैन्धव, यमानी, प्रत्येक १ पल, गुड़त्वक्, तेजपत्र, इलायची, नागेश्वर, प्रत्येक २ तोला और गन्धक ४ पल डाल दे। इन्हें यथाविधि पाक करके घृतभाण्डमें रख छोड़े। इसका अनुपान गुलञ्चका क्वाथ और दूध है। पथ्य उष्ण अन्न बतलाया गया है। इस औषधका सेवन करनेसे कुष्ठ, वातरक्त आदि जाते रहते हैं। (भैषज्यरत्ना० कुष्ठाधि०)

भल्लातकघृत (सं० क्ली०) घृतौषधविशेष। चक्रदत्तके चिकित्सित स्थानके ५म अध्यायमें इस घृतकी प्रस्तुत प्रणाली लिखी है। इसके सेवनसे गुल्मरोग जाता रहता है।

भैषज्यरत्नावलीमें अमृत-भल्लातक नामक घृतौषधका उल्लेख है। यह अमृतके समान उपकारक है, इसीसे इसका नाम भल्लातक रखा गया है। इसकी प्रस्तुत प्रणाली—वृक्षसे गिरा हुआ भू-पक्व भिलावां ८ सेर, इसे ईंटके चूरमें मिला कर पीछे जलमें धो ले और धूपमें सूखने दे। सूख जाने पर उन भिलावोंको दो खण्ड करके ६४ सेर जलमें पाक करे। जब १६ सेर जल रह जाय, तब उसे उतार कर ठंढा होने दे। बादमें उसे छान कर फिर आठ सेर दूधमें पाक करे। इसके बाद पादशेष रह जाने पर उसे फिर आठ सेर घीमें पाक करे। सिद्ध हो जाने पर उसे उतार ले और चार सेर चीनी डाल कर अच्छी तरह मिलावे। चिकित्सक स्वास्थ्यकी विवेचना करके यथायोग्य मात्रामें इसका व्यवहार करे। यह घृत प्रातःकालमें सेवनीय है। सेवनावस्थामें आहार विहारादि करना बिलकुल मना है। इसकी मात्रा ॥०) आनासे २ तोला निश्चित है। इसके सेवनसे कुष्ठादि नानारोगोंका ध्वंस हो कर बलवीय और बुद्धिशक्तिकी वृद्धि होती है। (भैषज्यरत्ना० कुष्ठाधिका०)

भल्लातकतैल (सं० क्ली०) सुश्रुतोक्त तैलौषधभेद। (सुश्रुत)

भल्लातकविधान (सं० क्ली०) सुश्रुतोक्त सहस्र-भल्लातक-फल सेवन-प्रकारभेद। यह अर्श प्रभृति रोगोंमें उपकारी है। सेवनविधि—पक्व-भल्लातक फलको दो तीन वा चार खंडोंमें विभक्त कर क्वाथपाकके विधानानुसार (अर्थात् भल्लातक सरस रहने पर आठ गुणा या नहीं तो सोलह गुणा जलमें सिद्ध करके पादावशेष रहते उतार ले) पाक करे। प्रति दिन सवेरे तालु, ओष्ठ और जिह्वामें घी लगा कर दोनों क्वाथके शीतल अवस्थामें सीप भर पीना चाहिये। पीछे अपराह्णकालमें दुग्ध, घृत और अन्न-सेवन विधेय है। धीरे धीरे उस औषधकी माला प्रति दिन एक एक सीप कर पांच सीप तक बढ़ावे। इसके बाद पांच पांच दिनके बाद फिर बढ़ा कर ७० सीप तक लावे। ७० सीपके बाद फिर पांच पांच सीप करके कम करता जाय। जब सिर्फ पांच सीप बच रहे, तब एक एक करके रोज घटावे। इस प्रकार सहस्र भल्लातक सेवन करनेसे कुष्ठ और अर्शरोग जाता रहेगा। बादमें शरीर अतिशय बलवान्, अरोगी और आयु सौ वर्ष तक होगी।

भल्लातक तैल प्रतिदिन एक सीप करके पान करे और इसके जीर्ण होने पर दुग्ध और घृतके साथ अन्न भोजन करना होगा, अथवा भल्लातकके बीजकी मज्जासे स्नेह बाहर करके वमन और विरेचन द्वारा देहशोधन कर ले। पीछे वायुशून्य कोठरीमें जा कर उस स्नेहको एक प्रसृति अन्नमें मिला कर सेवन करे। जीर्ण होने पर दुग्ध, घृत और अन्न भोजन विधेय है। इस नियमसे एक मास तक सेवन करके पथ्यापथ्यका तीन मास तक पालन करे। इससे रोगी रोगमुक्त हो कर बल और वर्णविशिष्ट तथा श्रवण, ग्रहण और धारणाशक्तिसम्पन्न हो सौ वर्ष तक बचता है। मासमें इसका एक बार सेवन करनेसे सौ वर्षकी तथा दश मास लगातार सेवन करनेसे हजार वर्षकी परमायु होती है (सुश्रु० तन्त्रर्शचि०)

भल्लातक सर्पिस् (सं० क्ली०) रसायन घृतविशेष। (चक्रद० चि० १ अ०)

भल्लातकास्थि (सं० क्ली०) भल्लातकस्य अस्थि। भल्लातक फलकी अस्थि।

भल्लातकाद्यतैल (सं० क्ली०) तैलौषधभेद। प्रस्तुत प्रणाली—तेल ४ सेर, भीमराजका रस १६ सेर। कल्कार्थ भल्लातककी अस्थि, अकवनका मूल, मिर्च, सैन्धव लवण, विड़ङ्ग, हरिद्रा, दारुहरिद्रा और चितामूल कुल मिला कर एक सेर। पाकका जल १६ सेर इस तेलसे वातश्लैष्मिकनाली और सब प्रकारके व्रण जाते रहते हैं। (भैषज्यरत्ना० नाड़ीव्रणाधि०)

भल्लातकी (सं० स्त्री०) भल्लातक गौरादित्वात् ङीप्। भल्लातक वृक्ष, भिलावां।

भल्लाद (सं० पु०) राजपुत्रभेद। (भाग० ६।२१।२६)

भल्लारी—प्राचीन ऋषि। ब्रह्माण्डपुराणमें इनका भल्लावि नाम देखनेमें आता है।

भल्लिका (सं० स्त्री०) भल्ल अच स्वार्थे कन् टाप् अत इत्वं भल्लातक, भिलावां।

भल्लाल—एक ग्रन्थकार। इन्होंने भल्ला-संग्रहकी रचना की। कमलाकरकृत निर्णयसिन्धुमें इनका भल्लाट नाम मिलता है।

भल्ली (सं० स्त्री०) भल्ल गौरादित्वात् ङीप्-भल्लि। भल्लातक वृक्ष।

भल्लु (सं० पु०) एक प्रकारका सन्निपात ज्वर। इसमें शरीरके अन्दर जलन और बाहर जाड़ा मालूम होता है, प्यास बहुत लगती है। सिर, गले और छातीमें बहुत दरद रहता है, बड़े कष्टसे कफ और पित्त निकलता है। सांस और हिचकी बहुत आती है तथा आंखें प्रायः बंद रहती हैं। इसे भालुक-ज्वर भी कहते हैं। (भावप्र० ज्वराधि०) ज्वररोग देखो।

भल्लुक (सं० पु०) पृषोदरादित्वात् ह्रस्वः। स्वनामख्यात चतुष्पद जन्तुविशेष, एक चौपाया जानवर, (Bear) भालू, रीछ। विज्ञानविदोंने इस जानवरको Plantigrade Mammalia कहा है। मांसाशी जीवों (Carnivora)-में परिगणित होने पर भी इनकी आकृति और प्रकृतिके विश्लेषण द्वारा उन्होंने भल्लुकोंको Ursidae श्रेणीमें शामिल किया है।

यह जानवर घने जंगलोंसे आच्छन्न पर्वतोंमें,

तुषारावृत्त हिमालय पर शीतल प्रधान रूस-साम्राज्यमें तथा सुमेरुके निकटवर्त्ती महासागर-उपकूलमें स्वच्छन्दतापूर्वक विचरण करता है, जिससे वे स्थान अपेक्षाकृत भयावह हो गये हैं। दिनके समय निविड़ वनमें छिपे रह कर रात्रिके समय ये निर्भय हो घूमा करते हैं। उस समय श्रान्त क्लान्त पथिक वा कोई छोटा मोटा जानवर सामने पड़ने पर यह आततायीकी भांति उन पर आक्रमण करता है और पैरोंके तीक्ष्ण नखोंसे उसे चीर फाड़ डालता है। इस प्रकार हिंस्र-स्वभाव होने पर भी यह पाला जा सकता है। पर्वतवासी निम्नश्रेणीके लोग भालुओंके छोटे छोटे बच्चोंको पकड़ कर उन्हें नाना प्रकारका खेल सिखाते हैं और अभ्यस्त हो जाने पर शहरोंमें ले जा कर उनका खेल दिखला कर पैसा पैदा करते हैं।

इनका वाह्य-सौंदर्य विशेष मनोहारी नहीं है। देह खर्वाकार और स्थूल है। पञ्च-नख-विशिष्ट चार पैरोंसे ये अपने शरीरको वहन करनेमें समर्थ होते हैं। पीछेकी तरफ बहुत ही छोटी पूंछ होती है। मुंह शरीरके देखे छोटा और आगेकी तरफ क्रमशः पतला होता है। मुखविवरमें ऊपरकी दाढ़में ६ कर्त्तक, २ शौवन और १२ चर्वण दन्त हैं। नीचेकी दाढ़में भी इसी प्रकार दांत होते हैं। विशेषता सिर्फ इतनी ही है कि चर्वण-दन्त दो अधिक हैं एकमात्र सुदीर्घ नखयुक्त पंजा ही इनका प्रधान अस्त्र है। उसीसे ये अपनी रक्षा करते हैं। यह नखों द्वारा एक बार भी किसीको पकड़ ले तो फिर उसका बचना मुश्किल ही है। वनमें आग दिखा कर इससे अपनी रक्षा की जा सकती है। भ्रमणकारियोंके भ्रमण-वृत्तान्त पढ़नेसे मालूम होता है, कि इस प्रकार आक्रान्त होने पर अपने पहरनेके कपड़े जला कर कितनोंहीने अपनी रक्षा की है। इसके सिवा बलवान् व्यक्तिके लिए और भी एक उपाय है; वह यह कि, दो लकड़ियां पासमें रहनी चाहिए और जब भालू अपने ऊपर आक्रमण करे तब बायें हाथकी लकड़ीको बीचमें पकड़ कर उसके आगे कर दे, भालू उस लकड़ीके दोनों किनारे पकड़ लेगा और ऐसा पकड़ेगा कि उसकी गरदन काट देने पर भी वह उसे नहीं छोड़ेगा। मौतके नजदीक पहुंचने पर भी यह जानवर अपनी जिदको नहीं छोड़ता।

रामायणमें श्रीरामचन्द्रके साहाय्यकारियोंमें बानरोंके सिवा जाम्बवान् नामक एक भल्लुकराजका भी उल्लेख है। भागवतके १०वें स्कन्ध, ५६वें अध्यायके स्यमन्तकोपाख्यानमें श्रीकृष्ण द्वारा ऋक्षराज जाम्बवानके पराभवका प्रकरण आया है। अरिष्टटल्-कृत जीवतत्त्व-(Nat, Hist, VIII, 5)-में लिखा है कि, भालू करीब करीब सभी चीज खाते हैं। मांससे उनकी विशेष रुचि नहीं है। शरीरकी कमनीयताके कारण ये सहज ही वृक्षों पर चढ़ सकते हैं। वृक्षोंके फल, उड़द, मधुचक्र आदि इनके उपादेय खाद्य हैं। कर्कटक, पिपीलिका आदि देखते ही वे उसे चट कर जाते हैं। इसके सिवा कभी कभी हरिण, शूकर, गाय आदि मार कर ये अपना पेट भरते हैं। इन्हें यदि मीठे फल या सकरकन्द जैसे कन्द मिल जाय तो ये मांसको छोड़ कर उन्हें ही पहले खाते हैं। अत्यन्त अभाव वा क्षुधाक्लिष्ट हुए विना ये उदरपूर्त्तिके लिये जीव-हत्या नहीं करते। इनकी घ्राण-शक्ति इतनी तीक्ष्ण है कि गन्ध मिलने ही ये उस पेड़की खोज करके उस परके मधुचक्रको उतार कर खा जाते हैं। इनके नख पेड़ों पर चढ़ने और गड्ढे खोदनेके लिए जैसे उपयोगी हैं वैसे जीवदेह-विदारणमें नहीं।

विभिन्न देशोंमें भल्लुकजाति विभिन्न नामोंसे परिचित है। यथा—इङ्गलैण्डमें—Bear, चीनमें—हिउङ्ग, इथिओपिया—दोब, अरब—दुब, फ्रान्स—Ours, जर्मनी—Arktos. Bar, इटली—Orso, लैटिन—Ursus, सुइडेन—Bjorn, संस्कृत—ऋक्ष, काश्मीर—हरपूत, लादक—ड्रिनमोर, बंगला—भाल्लूक, भूटान—थोम, लेपचा—सोन महाराष्ट्र—असवैल, तेलगू—इलेगू, गुड़लगू, कनाड़ी—कड्डी, करड़ी, गोंड़—खेरिद, कोल—भन्न, पारस्य—दोब, स्पेन—Oso, तामिल—कड़ड़ी।

धूसरवर्णका भालू, Brown Bear वा Ursus Arct s पृथिवी पर सर्वत्र देखनेमें आता है। कामस्कारकाके लोग भालूको एक उपभोग पदार्थ समझते हैं। सांसारिक सुखको आवश्यकीय अधिकांश सामिग्रियां उन्हें भालूसे ही प्राप्त होती हैं। वे ओढ़नेके कपड़े, कोट, दस्ताना, टोपी, गुलबन्द, पाजामा आदि समस्त पोशाक भालूके लोम-

वहुल चमड़े से ही बनाया करते हैं। वर्फ पर भ्रमण करते समय पैर फिसल जानेके डरसे ये जूतेसे लगा कर सिर तक ढक जाय ऐसी एक पोशाक पहनते हैं, वह भी इसी भालूके चमड़े से बनती है। भालूका कोमल मांस-पिण्ड और चरवी उनका उपादेय खाद्य है। इसके सिवा इसके पेटकी नाड़ियों से वे एक प्रकारका मुंहदान बनाते हैं, जो वसन्तकी प्रखर सूर्यरश्मि और शीतके प्रभावसे मुख और चक्षु की रक्षा करता है और वह होता भी इतना साफ है कि उसके भीतरसे अनायास ही सब चीजें नजर आती हैं। कहीं कहीं कांचकी जगह भी उसका व्यवहार किया जाता है। लापलैण्ड-वासी इस ईश्वरका कुत्ता जान कर इसकी विशेष भक्ति करते हैं। नौरवेके लोगोंका विश्वास है कि एक भालूमें १० मनुष्यों का बल और १२ मनुष्योंको बुद्धि है। इसीलिए वे भूल कर भी उनके लिए "गौज्भा' (Guouzhja भल्लुक संज्ञावाचक) शब्दक व्यवहार नहीं करते। उन्हें डर है, कि कहीं वे इस प्रकार किये गये अपमानका बदला न ले बैठे। डरसे समझो, चाहे भक्तिसे, भल्लुकको देखते ही Moedda vigra अर्थात् रोमाच्छादित वृद्ध मनुष्य कह कर उनका सम्मान करते हैं।

पहले ही कहा जा चुका है, कि निर्जनता-प्रिय यह भल्लुक-जाति सन्तान-प्रसवके समय वृक्ष-कोटर अथवा पर्वतकन्दराओंमें आश्रय लेती है। परन्तु जब वे स्वभाव निर्दिष्ट निवासके सन्धानमें अक्षम होते हैं, तब अपने तीखे नाखूनों से जमीन खोद कर अथवा डाली आदिसे कुटीर बना लेते हैं। ज्येष्ठ मासके दारुण ग्रीष्ममें भल्लु-कियों के गर्भ रहता है। उस समय वे आनन्दसे विहार करतीं और आहारादिसे शरीरको पुष्टि करती हुई शीतागममें अपने अपने निर्दिष्ट स्थानों में पड़ी रहती हैं। वहां बच्चे देनेके बाद भल्लुकी और भल्लुक निश्चेष्ट और निद्रित रह कर अनाहारमें ही दिन विताते हैं। प्रसवा-वस्थामें इनके बच्चे कुत्तेके पिल्ले जैसे दीखते हैं। भल्लुककी आयु ३१से ४७ वर्ष तक होती है। स्थूलाकार होने पर भी ये तैरनेमें तेज होते हैं।

भल्लुकको शिक्षा देने पर वह अपने प्रभुके सिखाये हुए विषयोंको सहजमें अभ्यास कर सकता है। इसकी बोधशक्ति इतनी तीक्ष्ण होती है कि, एक बार कोई बात उसे सिखाई जाय तो फिर वह उसे कभी नहीं भूलता। परन्तु जब दुर्बुद्धिता-वश अवाध्य हो जाता है, तब लाठी मारने पर भी वह सीधा नहीं होता। भल्लुकोंकी क्रीड़ा अतीव कौतुहलोद्दीपक होती है। कठोर परिश्रमके बाद भल्लुककी क्रीड़ा देखनेसे चित्त प्रसन्न हो जाता है। इसका नाच और अन्यान्य शिक्षित विषयोंका अनुकरण तथा प्रतिक्षणमें ज्वर, कम्पन आदि बड़ा ही हास्यकर है। सिर्फ भारतमें ही नहीं, बल्कि विलायतमें भालूके नाच आदिका आदर है। महारानी एलिजावेथके समयमें इंग्लैण्डमें भल्लुक-क्रीड़ाका समादर था। उस समय इस खेलको देखनेके लिए लार्ड. आर्ले आदि बड़े आदमी भी भालू पाला करते थे। विश्रामके समय वे क्रीड़ा-स्थलमें जा कर आमोद उपभोग करते थे।*

प्राचीन रोमनोंमें भी भल्लुकका आदर था। वे दुष्ट व्यक्तियोंको बन्य भल्लुकोंके साथ लड़ाया करते थे। ऐसा कठोर दण्ड संभवतः उस समय और किसी सभ्य जाति-के अन्दर न था। वह आदमी यदि भल्लुकको मार कर सुस्थ या क्षतविक्षत हो कर लौट आवे, तो उसे फांसीकी सजा माफ कर दी जाती थी।†

यूरोपमें धूसरवर्णके भल्लुक (Ursus niger Europaeus)-के सिवा पिरिनिज और अष्टुरियस पर्वत पर विचरण करनेवाले पीले और सफेद रंगके भालू U. Arctos से भिन्न जातिके मालूम होते हैं। अमे-रिकाके भल्लुक (U. Americanus) उक्त दोनों श्रेणियोंसे क्षुद्राकार हैं। अमेरिका महादेशके करीब करीब सभी पर्वतों और जंगलोंमें यह पाया जाता है। अमे-रिका-वासी इण्डियन लोग भल्लुकों पर विशेष भक्ति रखते हैं। वे भालुओंको बूढ़ीमैया (पितामही) कहते हैं।¶ चिलिके समीपवर्त्ती आन्दीज पर्वतमालामें

---

* Ency. cyclo. Nat. Hist, vol I, p. 403

† मार्शलने ओजस्वी भाषामें इस वीभत्स घटनाका चित्र अङ्कित किया है। लौरिओलस नामक एक दोषी व्यक्तिको भीषण-दर्शन एक भल्लुकके सामने छोड़ दिया गया था।

¶ हेनरी साहबने एक भालूको गोलीसे मारा था। वे जिस मकानमें रहते थे उसकी मालकिन एक इण्डियन स्त्री थी।

U, Ornatus वा the Supectacled Bear-ओंके शरीरके लोम अपेक्षाकृत कम हैं और आंखोंके चारों ओर एक ऐसी रेखा है जो देखनेमें चश्मा जैसी मालूम होती है।

पहले ही कहा जा चुका है कि स्थानभेदसे भालुओंके आकार प्रकारमें भी पार्थक्य पाया जाता है। जलवायुके गुणसे अथवा स्थानके माहात्म्यसे कहीं तो ये शूकर-सदृश कहीं गीदड़ जैसे, कहीं गैंडा जैसे और कहीं गरिलाके सदृश देखे जाते हैं। यहां सदृशका मतलब इतना ही है, कि उनके शरीरकी गठनप्रणाली वैसी है, न कि वे हूबहू वैसे ही हैं। परन्तु सभी प्रकारके भालुओंके लोम जरूर हैं। हां, किसीके कम और किसीके ज्यादा अवश्य होते हैं। नीचे कुछ विभिन्न श्रेणीके भल्लुकोंके नाम दिये जाते हैं।

अमेरिकादेशका U, Ferox वा Grisly Bear नामका भालू चूहे-जैसी आकृतिवाला होता है। इसके सामनेके पैर पीछेके पैरोंसे ३ इंच बड़े होते हैं। साइबेरियाके भालू (*U.* Collaris) और भूटानके भालू (*U.* Thibetanus) अनेकांशमें गण्डाराकृति-विशिष्ट हैं। इनके शरीर पर अर्द्धचन्द्राकृति श्वेतवर्ण रोमावली होती है। कश्मीरी हरपुत (*U.* Isabellinus) और मलयदेशीय सूर्याक्षि भल्लुक (*U*, Malayanus) मधु और शाकमूलादिके विशेष प्रेमी होते हैं। सिरिया देशके भल्लुकों (*U*, Syriacus)का वर्ण श्वेत या धूसर-मिश्रित श्वेताकार होता है। इनके मुख और पीठकी आकृति कुछ कुछ शूकर जैसी होती है। भारतीय कृष्णवर्णके भल्लुक (U, Labiatus)के लोम बहुत होते हैं। इनके गलेमें और छाती पर अंग्रेजी V अक्षर जैसी सफेद लोमकी तह होती है। ये निरीह और आलस्य-प्रिय होते हैं। फलमूल और पिपीलिका कर्कटादि इनका प्रधान खाद्य है। बोर्णिओ द्वीपके भल्लुक (U, Euryspilus) देखनेमें प्रायः गरिला जैसे होते हैं। इनकी छाती पर सन्तरहकी तरह पीले रंगकी छाप होती है। सुमेरु वा पृथिवीके उत्तरकेन्द्रमें जो श्वेतवर्ण भालू देखनेमें आते हैं, उनकी भीषण मूर्त्ति सम्पूर्ण भल्लुक-जातियोंकी अपेक्षा भयावह है। इनका मुंह गौदुमा जैसा पर सारी देह स्थूल होता है। जनमानवहीन हिमप्रधान प्रदेशमें वास होनेसे प्रकृतिकी गम्भीरमयी मूर्त्ति सहचररूपमें उनकी आकृति भी भीषणतर हो गई है। उस तुहिनराशि समाच्छन्न प्रदेशमें वृक्षलतादिके अभावके कारण ये स्थलज और जलज जीव तथा पक्षी और उनके अण्डे खानेके लिए बाध्य हुए हैं। वर्फसे ढके हुए स्थानमें जैसे ये अपने शिकारके पीछे दौड़ सकते हैं, वैसे ही क्षिप्रताके साथ ये समुद्रमें डूब कर सिन्धुघोटक आदिका शिकार करते हैं। समुद्रमें मत्स्यादि देख कर ये धीरे धीरे पानीमें उतरते हैं और अपने स्वभावजात सन्तरण-कौशलसे डूब डूब कर लक्ष्य जीवके पास जा कर उसे पकड़ लेते हैं। पीछे उसे वर्फके स्तूपके ऊपर रख देते हैं। भूखे होने पर वे उसी समय उसे चट कर जाते हैं, परन्तु पेट भरा रहने पर उसे फिरके लिए रख छोड़ते हैं। गलित मांस भी इन्हें बुरा नहीं लगता। समुद्रमें बहती हुई तिमि आदि मछलियोंकी सड़ी हुई देह इनका प्रधान खाद्य है।

जाड़के दिनोंमें इनके बच्चे होते हैं। शीतके प्रारम्भमें ही गर्भिणी भल्लुकी अपने लिए कोई नीचा स्थान ढूंढ़ लेती हैं। पीछे जब घोरतर तुषार गिरने लगता है, तब वे वहीं जा कर पड़ी रहती हैं। धीरे धीरे तुषारसे जब वह स्थान ढक जाता है, तब वह अपने तीखे नाखूनोंसे उसे खोद कर गुफा-सी बना लेती है और उसीमें सोती रहती है। वसन्तकी सूर्य-किरणका सञ्चार विना हुए वह उसमेंसे निकलती ही नहीं उस समय उसके दो बच्चे पैदा होते हैं। जो भल्लुकियां गर्भवती नहीं होतीं, वे नर भल्लुकोंकी तरह इधर उधर घूमा फिरा करती हैं।

उस वृद्धाने उस मरे हुए भालूके लिये उसका मस्तक पकड़ कर बहुत शोक और दुःख प्रकाश किया था और वह बारम्बार "Grand Mother" कह कर रोयी थी। अन्तमें उसने उस मरे हुए भालूको घर ले जा कर उसके मस्तकको मञ्च पर स्थापन करके उसकी पूजा की और दूसरे दिन साधारण कुटुम्बियोंको उस भल्लुकके प्रेतकी मङ्गलकामनार्थ भोजन कराया।

Eng, Cyclo, Nat, Hist, vol I, 405

नेपालके समीपवर्ती हिमवत् प्रदेशमें एक प्रकारका विड़ालमुखी भल्लुक (Ailurus fulgens) देखनेमें आता है। उनके शरीरका रंग गेरू मिट्टीकी तरह लाल होता है और मुख तथा कर्णकुहर सफेद लोमोंसे ढके होते हैं। कानोंका बाहरी हिस्सा तथा नीचेसे ले कर पूंछ तकका भाग काला होता है। मुंखसे ले कर समस्त देह भागकी लम्बाई २२ इञ्च और पूंछ करीब १६ इञ्चकी होती है।

यह सुन्दर पशु नेपालमें "ओआ" कहलाता है। इसका खाना भालुओंके सदृश ही है, सिर्फ जलपान और मूत्रत्याग विड़ालके समान है। परन्तु इसका गुर्राना भालुओं जैसा ही है। दुग्ध-मिश्रित अन्न इनको बहुत ही अच्छा लगता है। वसन्त ऋतुमें गर्भिणी भल्लुकी दो बच्चे जनती है।

भल्लुकशोर—चतुष्पद प्राणिविशेष (Arctonyx colla-) पूर्वबङ्ग, आसाम, श्रीहट्ट, आराकान और नेपालकी तराईमें ये बहुतायतसे पाये जाते हैं। इनका मस्तक, गला और वक्षस्थल पीलापन लिये सफेद और पश्चाद्भाग कृष्णाभ धूसर होता है। एक वयःप्राप्त पशु प्रायः २५ इञ्च लम्बा होता है।

दिनको ये गाढ़ी नींदसे सोते और रातको शिकारकी खोजमें बाहर निकलते हैं। स्थूलदेहके कारण इनकी चाल धीमी है। जरूरत पड़ने पर ये भालूकी तरह पिछले पैर पर बल दे कर खड़े रहते है। फलमूल और मांसादि इनका प्रधान भोजन है।

भल्लूक (सं० पु०) भल्लते इति भल्ल (उलुकादयश्च। उण् ४।४१) इति ऊक प्रत्ययेन साधुः। १ जन्तुविशेष, भालू। पर्याय—ऋक्ष, भल्ल, सशल्य, दुर्घोष, भल्लुक, घृष्टदृष्टि, द्राघिष्ठ, चिरायु, दुश्चर, दीर्घदर्शी भालुक, भालूक, अच्छ, भाल्लुक। (शब्दरत्ना०) २ कोषस्थ प्राणिविशेष, सुश्रुतके अनुसार शंखकी तरहका कोशमें रहनेवाला एक प्रकारका जीव। ३ एक प्रकारका श्योनाक। ४ कुक्कुर, कुत्ता।

भवँ (हिं० स्त्री०) भौंह देखो।

भवँर (हिं० पु०) भँवर देखो।

भवँरकली (हिं० स्त्री०) भँवरकली देखो।

भवँरी (हिं० स्त्री०) भँवरी देखो।

भवंत (हिं० त्रि०) भवत्‌का बहुवचन, आप लोगोंका, आपका।

भवँलिया (हिं० स्त्री०) एक प्रकारकी नाव। यह बजरेकी तरहकी पर उससे कुछ छोटी होती है। इसमें भी बजरेकी तरह ऊपर छत पटी होती है। इसे भौलिया भी कहते हैं।

भव (सं० पु०) भूयते इति भू-भावे अप्। १ जन्म, उत्पत्ति। भवत्यस्मात् भू अपादाने अप्। २ शिव। महादेवकी जल-मूर्त्तिका नाम भव है। 'भवाय जलमूर्त्तये नमः' (पार्थिव शिवपूजाप्र०) शतपथ ब्राह्मणमें इसकी नामनिरुक्ति यों लिखी है,—"तमब्रवीद् भवोऽसीति तद्यदस्य तन्नामाकरोत् पर्जन्यस्तद्रूपमभवत् पर्जन्यो वै भवः" (शत० ब्रा० ६।१।३।१५) भवति प्रभवत्यनेनेति भू-अप्। ३ क्षेम, कुशल। भवति उत्पद्यतेऽस्मिन्निति भू-आधारे अप्। ४ संसार। ५ सत्ता। ६ प्राप्ति। ७ कारण, हेतु। ८ फलभेद। ९ मेघ, बादल। १० कामदेव। ११ संसारका दुःख, जन्म मरणका दुःख।

भव (हिं० पु०) १ भय, डर। (वि०) २ कल्याणकारक, शुभ। ३ उत्पन्न, जन्मा हुआ।

भवक (सं० त्रि०) भवतादिति भू-वुन्। १ उत्पन्न, जन्मा हुआ। २ आशीर्वाचक।

भवकल्प (सं० पु०) कल्पभेद।

भवकान्तार (सं० क्ली०) भवाटवी, संसाररूप अरण्य।

भवकेतु (सं० पु०) केतुभेद। बृहत्संहिताके अनुसार एक पुच्छल तारा। यह कभी कभी पूर्वमें दिखाई देता है और इसकी पूंछ शेरकी पूंछकी भांति दक्षिणवर्त्त होती है। कहते हैं, कि जितने मुहूर्त्त तक यह दिखाई देता है, उतने महीने तक भीषण अकाल या महामारी आदि होती है।

भवक्षिति (सं० स्त्री०) भवस्य जन्मनः क्षितिः। जन्मभूमि।

भवगुप्त—चन्द्रवंशीय एक राजा। ये त्रिकलिङ्गके अधिपति थे।

भवघस्मर (सं० पु०) भवस्य वनस्य घस्मरः ध्वंसकारक। दावानल।

भवचक्र--बौद्धमतानुसार जीवात्माका जन्मान्तर परिग्रह-रूप चक्र-विशेष। जगत्में जीवोंकी विभिन्नरूपमें उत्पत्ति और निवृत्ति देख कर बौद्धोंने जीवात्माके रूपान्तरग्रहण और क्रम-विकाशको ही जीवजन्मके उत्कर्षापकर्षका बोधक मान कर उसे एक चक्र * रूपमें निर्दिष्ट किया है। जीव किस प्रकार मूषिक-जन्मसे शूकर और शूकरसे गो महिष आदि क्रमसे दुर्लभ मनुष्य-जन्मसे बुद्धत्व प्राप्त करते हैं, उसीका इसमें वर्णन किया जाता है। तिब्बत-देशके लासा नगरस्थ 'दुगे-लुग्‌स्-प' नामक बौद्धसम्प्रदायमें, सिक्किमके 'तषि-डिङ्ग' सङ्घारममें तथा अजन्ताके गुहा-मन्दिरमें उक्त भवचक्रको प्रतिकृति पायी जाती है। उनमें परस्पर सामान्य प्रभेद होने पर भी, अर्थानुगति प्रायः एक-सी ही है।
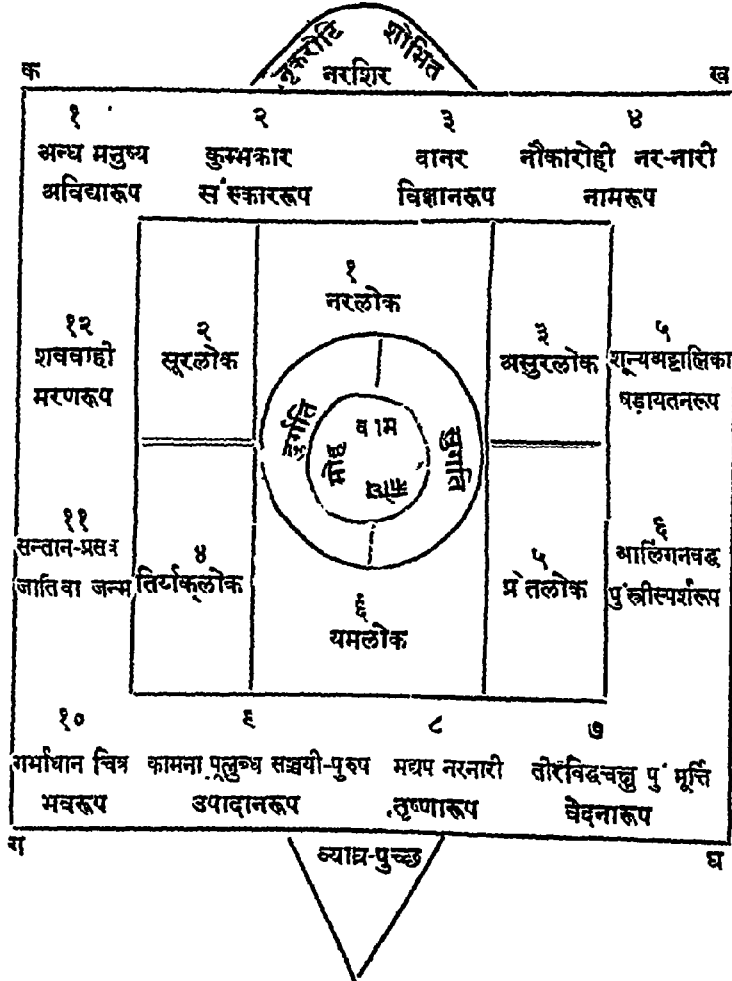
महायान-मतावलम्बियोंका कहना है, कि अहमिका वा आत्मवाद पिशाच सदृश है। यह सर्वदा ही मानवके अहित-साधनमें रत रहता है, इसलिए मानवमात्रको चाहिए कि वह इस अमङ्गलकर प्रेतरूपी पिचाशको

* बौद्धधर्ममें 'चक्र' शब्दसे सोपान, स्तर वा क्रम अर्थ निकाला गया है। उनके 'धर्मचक्र' और 'संसारचक्र'-से ऐसा ही अर्थ गृहीत हुआ है। इस भवधाममें जीवात्मा किस प्रकार परिभ्रामित होता है, भवचक्रमें उसीका प्रदर्शन कराया गया है। संसार-लीलामें प्रवृत्त जीवात्मा किस प्रकार कर्मफलसे एक देहसे दूसरी देहमें गमन वा ग्रहण करता है। (Transmigratory Existence) इस बातको जनसाधारणको ज्ञात करानेके लिए इस भवचक्रकी कल्पना की गई है।

छोड़ कर साधु पथका अवलम्बन करे। निर्वाणमोक्षाभिलाषी मानवको उचित है कि वह सत्कर्ममें निरत हो कर ईश्वरोपासनामें कालातिपात करे, कभी भी भ्रमसे 'अहं' भाव न धारण करे। एकमात्र कर्मफलसे ही मनुष्यकी सुगति और दुर्गति हुआ करती है। साधुचेता और दानधर्ममें निरत व्यक्ति सन्मार्गावलम्बनके कारण श्रेष्ठलोकको प्राप्त होते हैं और दुष्क्रियाशील अधार्मिक व्यक्तिमात्रको नीच लोकमें नीच गति प्राप्त होती है।

उक्त भवचक्रके चित्रमें जीवात्माके कर्मजन्य विविध योनि परिभ्रमणका फल जिस प्रकार निर्णीत हुआ है, उसका यथासम्भव विवरण नीचे दिया जाता है:—

यह चित्र एक चतुष्कोण दृश्यपट है। उसके ऊपरके 'क' 'ख' कोण एक व्याघ्रचर्मधारी पुरुषके दक्षिण और वाम हस्तमें तथा नीचेके 'ग' 'घ' कोण उसके दोनों पैरोंके गुल्फास्थि पर संरक्षित हैं। उस व्यक्तिकी शिरस्थित जटामें नृकरोटि विलम्बित है; जैसे वह वीभत्स मृत्युका ही परिचायक हो। उसके द्वारा परिधृत व्याघ्रचर्म संन्यास, दान, धर्म और ध्यान योगका आश्रय प्रकट कर रहा है। चित्रपटके मध्यमें छह लोक हैं और बहिर्भागमें मानवजन्मके द्वादश निदान प्रकल्पित हुए हैं। इसके '१'म चित्रमें मनुष्य जन्मका सुख-शान्ति प्रकटित हुई है, और '६'ठे चित्रमें यमलोकका वीभत्स चित्र अङ्कित है। '२'य चित्रमें ब्रह्मादि परलोक, '३'य चित्रमें अशान्तिकर असुरलोक, '४'र्थ चित्रमें पशुपक्षी आदि तिर्यक्लोक और '५'म चित्रमें प्रेतलोक विद्यमान हैं।

अजन्तामें खुदे हुए भवचक्रकी व्याख्या स्वतन्त्र है। उसकी प्रतिकृति चक्केकी भांति है। चक्रके केन्द्रस्थल वा नाभिदेशमें कपोत सर्प और शूकरकी मूर्त्ति—राग, द्वेष और मोहकी प्रतिकृति स्वरूप अङ्कित है। इन तीनोंको केन्द्र बना कर संसारचक्र घूम रहा है। उसके नीचे १२ घरोंमें बारह मूर्त्तियां हैं, जो मानव-जीवनके इतिहासको प्रकट करती हैं। १म घरमें एक अन्धा उष्ट्र चल रहा है। उष्ट्र अविद्याका प्रतिरूप है, चालक स्वयं कर्म है। जन्मके प्रारम्भमें मनुष्य पूर्वजन्मके कर्मों द्वारा चालित हो कर अन्धे ऊंटकी तरह अविद्याके नशेमें घूमा करता है और नूतन जन्मकी ओर धावित होता है। २य घरमें कुम्भकाररूपी कर्म संस्काररूप पात्र वा मट्टीमें मनुष्यके अन्तः शरीररूप घरका निर्माण कर रहा है। ३य घरमें वानरमूर्त्ति अपूर्ण मनुष्यके विज्ञानका अस्तित्व समझा रहा है। ४र्थ घरमें वैद्य है, रोगीकी नाड़ी देख रहा है, अर्थात् स्पन्दनशील मनुष्यत्व वा 'नामरूप' मानो वाह्यजगत्‌के साथ स्पर्शलाभके लिए व्याकुल हो रहा है। ५वें घरमें मुखकोषके भीतरसे दो चक्षु टपक रहे हैं—अर्थात् 'षडायतन'-रूप इन्द्रियोंमेंसे मनुष्यत्व वाह्यजगतको देख रहा है या चाहता है।

इस अवस्थामें भ्रूणावस्थासे मुक्त मनुष्यके साथ वाह्यजगतकी क्रिया यथारीति विकसित होती है। ६ठे घरमें आलिङ्गनबद्ध दम्पती मनुष्यके साथ जगतका—अन्तर्जगतके साथ वाह्यजगतका स्पर्श सूचित करती है। इस स्पर्शके फलसे वेदना वा दुःखादिकी अनुभूति प्रारम्भ होती है। ७म चित्रमें एकके द्वारा निक्षिप्त तीर दूसरेके चक्षु में प्रविष्ट हो कर अनुभूतिका परिचय दे रहा है। ८म चित्रमें सुरापानमें रत मनुष्यमूर्त्ति तृष्णा वा वासनाका विकास कर रही है। मनुष्य अब संसारमें लीन हो गया; संसारके वृक्षसे आग्रह और आसक्तिके साथ फलसंग्रह करनेमें मस्त है। ९म चित्रमें फलाकर्षी मनुष्य उपादान वा संसारशक्तिकी प्रतिमूर्त्ति है। १०वें स्थानमें नवोढ़ा वधूकी मूर्त्ति 'भव' है, अर्थात् संसारमें वह गृहस्थ रूपमें मनुष्यका अस्तित्वका परिचायक है, मनुष्य अब गृहस्थीमें पूरी तरह फंस चुका समझिए। उसके बाद ११वें चित्रमें नवप्रसूत शिशु सहित जननी मूर्त्ति है। सन्तानका जन्म 'जाति' अर्थका बोधक है, जन्मके बाद मनुष्यके और कोई कार्य नहीं है। उपसंहारमें जरामरण है। १२वें घरमें बांसकी डोलीमें शयान शवमूर्त्ति है।

भवचक्र-अङ्कित चित्रमें बारह निदानोंका परस्पर सम्बन्ध दिखाया गया है। हिन्दू-शास्त्रोंमें मनुष्यकी १० अवस्थाओंका उल्लेख है। बौद्धगण मनुष्यकी द्वादश दशा स्वीकार करते हैं। प्रतीत्यसमुत्पाद उन द्वादश दशाओंका धारावाहिक चित्र है। तिब्बतमें प्रसिद्ध है कि,—माध्यमिक सम्प्रदायके प्रतिष्ठाता नागार्जुनने इस चित्रका उद्भावन किया था।

मनुष्य यदि बोधिसत्त्व द्वारा प्रवर्त्तित पंथका अनु-

सरण करके काम-क्रोधादि रिपुओंको विसर्जन-पूर्वक सन्मार्गाचारी हो अर्थात् व्याघ्रचर्म परिधान कर ध्यानयोग और दानधर्म अवलम्बन करे, तो उसे अपने उस साधु-कर्मके फलस्वरूप सुमति प्राप्त हो सकती है और यदि वह लोभक्रोधादिके वशीभूत हो कर कुक्रियाका आश्रय ले, तो उसकी अधोगति होती है। कर्मके बलसे इंद्रिय-विजयी अहंवाद-परिशून्य जीवात्मा निर्वाणमुक्ति प्राप्त करनेमें समर्थ होता है। जो व्यक्ति मोह और मात्सर्य-से मोहित हो कर संसारयात्रा निर्वाह करता है उसकी, पूर्वजन्मकृत पुण्यभोग समान होने पर, वर्तमान जन्मके पापभोगके कारण निकृष्ट लोकमें गति होती है। मानव-की यह सुगति और दुर्गति उसके इच्छाधीन कर्मफल पर निर्भर है।

साधन सिद्ध व्यक्तिके लिये निर्वाण-लाभ जैसा आयास-साध्य है, व्यसनासक्त व्यक्तिका कामलोकमें निम-ज्जन भी उसी प्रकार अवहेलासापेक्ष है। बौद्धशास्त्रमें मानवके शोकदुःखके उपादानभूत १२ निदानोंका उल्लेख है। उक्त चित्रमें १ से ले कर १२वें स्थान तक उन्हींका चित्र अङ्कित किया गया है। शाक्यबुद्धने मनुष्यजन्ममें साधना द्वारा बुद्धत्व प्राप्त किया था। बौद्धशास्त्रोंमें उनका भी जीवयोनि-भ्रमणका उल्लेख है। भवचक्रमें परि-भ्रमण कर अपनी सुकृतिके बलसे उन्होंने निर्वाण मुक्ति-रूप उन्नतिके सोपान पर आरोहण किया था। बुद्ध देखो।

बुद्ध जीवकी दुर्गति देख कर दयापरवश हुए थे। उन्होंने चित्र-वर्णित षड्विध अवस्थामें ही जीवोंके मङ्गल-के लिए शिक्षा दी थी।

भवचाप (सं० पु०) शिवजीके धनुषका नाम, पिनाक।

भवच्छेद (सं० पु०) १ संसार-बन्धनसे उन्मोचन। २ जगत्का ध्वंस। ३ ग्रामभेद।

भवत् (सं० त्रि०) भाति विद्यते इति भा-डवतु। १ मान्य, पूज्य। २ युष्मद्, तुम। ३ वर्तमानार्थ, उत्पद्यमान। (पु०) ४ विष्णु। ५ भूमि, जमीन।

भवतव्यता (हिं० स्त्री०) भवितव्यता देखो।

भवती (सं० स्त्री०) भवत्-ङीप्। १ विषाक्त वाणभेद, एक प्रकारका जहरीला वाण।

भवत्रात (सं० पु०) १ धर्मोपदेशक, गुरु। २ संसारकी यन्त्रणासे बचानेवाला।

भवदत्त—एक ग्रन्थकार। इन्होंने नैषधीय-टीका और तत्त्व-कौमुदी नामक शिशुपाल-वधकी टीका लिखी है। ये देव-दत्तके पुत्र, नारायणके पौत्र और दिवाकरके प्रपौत्र थे।

भवदा (सं० स्त्री०) कार्त्तिकेयकी अनुचरी एक मातृका-का नाम।

भवदारु (सं० पु० क्ली०) भवप्रियं दारु, देवदारुवृक्ष, देव-दार।

भवदीय (सं० त्रि०) भवत्-छस (भवतष्ठक्छसौ। पा ४।२।११५) आपका, तुम्हारा।

भवदेव—पाण्डव वंशीय एक राजा, उदयनके पुत्र। ये रणकेशरी और चित्तदुर्ग उपाधिसे भूषित थे।

भवदेव—कई एक संस्कृत ग्रन्थकार। १ अपराजितापृच्छा नामक वास्तुशास्त्रके प्रणेता। २ एक धर्मशास्त्र प्रणेता। मदन पारिजातमें इनका मत उद्धृत किया गया है। ३ कर्मा-नुष्ठानपद्धतिके रचयिता। ४ कारकवाद-टिप्पन, तर्कप्रकाश टिप्पन और पञ्चलक्षणी टिप्पन नामक ग्रन्थोंके प्रणेता। ५ तन्त्रवार्त्तिक-टीकाके कर्ता। ६ निर्णय मृत-रचयिता। ७ ब्रह्मसूत्रटीकाकार। ८ मदालसाख्यायिकाके कर्त्ता। ९ व्यवहार-तिलकके रचयिता। १० सन्निपातचन्द्रिका नामक वैद्यक-ग्रन्थके प्रणेता। ११ सांख्यकारिका वृत्तिके रचयिता।

भवदेव न्यायलङ्कार—स्मृतिचन्द्रके कर्त्ता। ये हरिहर भट्टा-चार्यके पुत्र थे।

भवदेव पण्डितकवि—वैशेषिक रत्नमालाके प्रणेता।

भवदेवभट्ट—१ सम्बन्धविवेकके रचयिता। २ दानधर्म प्रक्रियाके कर्त्ता। ३ पातञ्जलसूत्रके भाष्यकार। ये मिथिला-वासी पण्डित कृष्णदेव मिश्रके पुत्र थे। महामहोपाध्याय इनकी उपाधि थी। ४ प्रायश्चित्त प्रकरण वा निरूपण-प्रणेता एक स्मार्त्त। ये बंगालके रहनेवाले थे। इनका स्मृतिग्रन्थ मिथिलावासियोंके विशेष आदरकी चीज है। उड़िष्याके अन्तर्गत भुवनेश्वरके अनन्तवासुदेवके मन्दिर-में उत्कीर्ण कुलप्रशस्तिसे इनका वंश-परिचय इस प्रकार मिलता है।

'सावर्णगोत्र-सम्भूत ब्राह्मणोंको (राजासे) शत-

शासन ग्राम प्राप्त हुआ था। उनमें राढ़देशका सिद्धल ग्राम सर्व प्रथम है। जिन्होंने सिद्धल ग्राम प्राप्त किया था, उनके उच्चवंशमें महादेव, भवदेव और अट्टहास नामके तीन महात्माओंका जन्म हुआ। भवदेवने विद्या और बुद्धिमें गण्यमान्य हो कर गौड़ाधिपसे हस्तिनी ग्राम प्राप्त किया था। उन भवदेवके रथाङ्ग आदि आठ पुत्र उत्पन्न हुए। रथाङ्गके पुत्र अत्यङ्ग और उनके पुत्र आदिदेव थे। आदिदेव वङ्गाधिपतिके विश्राम-सचिव, महामन्त्री, महापाल और सन्धिविग्रहिक थे। इनके पुत्र गोवर्द्धनने वन्द्यघटी-कुलोद्भवा एक धर्मिष्ठाका पाणिग्रहण किया था। उन्हींके गर्भसे भवदेव भट्टका जन्म हुआ था। इन भवदेवकी मन्त्रणाके प्रभावसे राजा हरिवर्मदेव और उनके पुत्रने वहुत दिनों तक राज्यभोग किया था। बौद्धशास्त्रका मथन कर इन्होंने पाषण्ड और वैतण्डिकोंके मतका खण्डन किया था। सिद्धान्त, तन्त्र और गणितशास्त्रमें इनकी विशेष व्युत्पत्ति थी। पूर्वोक्त धर्मशास्त्रके निवन्धोंका उद्धार करनेके सिवा इन्होंने नवीन होराशास्त्र, भट्टोक्त मीमांसानीति और न्यायशास्त्रकी रचना की थी। आयुर्वेदादि शास्त्रोंमें भी इनका अपूर्व पाण्डित्य था। इनका अपर नाम 'वालवलभीभुजङ्ग' था। राढ़ देशके नाना स्थानोंमें जलाभावको दूर करनेके लिए आपने जलाशय प्रतिष्ठित किये थे। उक्त अनन्त वासुदेवका मन्दिर इन्हीं महात्माकी कीर्त्ति है और उस मन्दिरके पार्श्वस्थित सरोवर भी उन्हींके प्रयत्नसे वना था।

इन भवदेवभट्ट वालवलभीभुजङ्गकी पद्धतिके अनुसार अब भी राढ़ देशके ब्राह्मसमाजमें संस्कारादि सम्पन्न होते हैं *। इन्होंने छन्दोगपद्धतिकी भी रचना की थी।

* भवदेवकी यह कुलप्रशस्ति ईशाकी १०वीं या ११वीं शताब्दीमें उत्कीर्ण हुई थी। इससे मालूम होता है कि उनके वृद्धातिवृद्ध पितामह १म भवदेव अवश्य ही ८वीं या ९वीं शताब्दीके थे, इसलिये सिद्धल ग्रामका प्राप्त करना और पञ्च ब्राह्मणोंका गौड़में आना उससे पहले संघटित हुआ था, इसमें कोई सन्देह नहीं रह जाता।

"वङ्गेर जातीय इतिहास" नामक वंगला ग्रन्थके ब्राह्मणकाण्डमें कुलप्रशस्तिका पाठ दिया गया है।

भवदेवमिश्र—१ बृहच्छन्दरत्नटीकाके प्रणेता। २ सुबोधिनी नामक रघुवंशटीकाके रचयिता। ३ विख्यात पण्डित कृष्णदेवके पुत्र इन्होंने १६७६ ई०में पट्टनमें रह कर पातञ्जलीयाभिनवभाष्य आदि ग्रन्थ लिखे हैं।

भवदेव (सं० पु०) स्मृतिकौस्तुभवर्णित एक पण्डित।

भवधरण (सं० पु०) संसारको धारण करनेवाला, परमेश्वर।

भवन (सं० क्ली०) भवत्यस्मिन्निति, भू-अधिकरणे-ल्युट्। १ गृह, घर। २ प्रासाद, महल। भू-भावे ल्युट्। ३ तर्कशास्त्रमें भाव। ४ जन्म। ५ सत्ता। ६ छप्पयका एक भेद।

भवन (हिं० पु०) १ जगत्, संसार। २ कोल्हूके चारों ओरका वह चक्कर जिसमें बैल घूमते हैं।

भवनद (सं० पु०) भवसागर, संसारसमुद्र।

भवनन्द (सं० पु०) एक प्राचीन अभिनेता।

भवनन्दिन (सं० पु०) भवका पुत्र।

भवनपति (सं० पु०) भवनस्य पतिः ६ तत्। १ गृहस्वामी, घरका मालिक। २ राश्यधीश, राशिचक्रके किसी घरका स्वामी। ३ जैनियोंके दस देवताओंका एक वर्ग। इनके नाम ये हैं—असुर कुमार, नागकुमार, तड़ित्कुमार, सुवर्णकुमार, वह्निकुमार, अनिलकुमार, स्तनितकुमार, उदधिकुमार, द्वीपकुमार और दिक्कुमार।

भवनाग—अश्वलायनसूत्रभाष्य या प्रयोग भाष्यके प्रणेता। २ भारशिव जातिके एक अधिपति।

भवनाथ—खण्डनखण्डखाद्य-टीकाके रचयिता।

भवनाथमिश्र—१ अनर्घराघवटीकाके प्रणेता। २ मीमांसानयविवेक रचयिता। ३ भावप्रकाशके रचयिता भावमिश्रका एक नाम।

भवनाधीश (सं० पु०) भवनस्य अधीशः। भवनपति, गृहस्वामी, घरका मालिक।

भवनाशिनी (सं० स्त्री०) भवं संसारं जन्मादिकं वा नाशयति उत्सादयति नाशयितुं शीलमस्येति वा नश-णिच्-णिनि। सरयूनदी। इस नदीमें स्नान करनेसे फिरसे जन्म नहीं लेना पड़ता, इसीसे इसको भवनाशिनी कहते हैं। (पुराण)

भवनी (हिं० स्त्री०) गृहिणी, भार्या, स्त्री।

भवनीय (सं० त्रि०) भवितुमर्ह मिति भू-अनीयर्। भवितव्य, भव्य।

भवन्त (सं० पु०) भवत्यत्रेति भू-(तॄ-भू-वहिवसीति। उण् ३।१२८) इति झच्, स च षिद्भवति। वर्त्तमान काल। उपनयनके बाद ब्राह्मण भिक्षा करनेके समय, ब्राह्मणको भवत्-पूर्व, क्षत्रियको भवन्मध्य और वैश्यको भवदन्त सम्बोधन करके भिक्षा करे।

"भवत पूर्वं चरेद्भैक्षमुपनीतो द्विजोत्तमः।
भवन्मध्यं तु राजान्यो वैश्यस्तु भवदुत्तरम्॥"

(मनु २।४९)

भवन्ति (सं० पु०) भू (भुवो भिच्। उण् ३।५०) इति झच्। वर्त्तमानकाल।

भवन्नाथ (सं० पु०) विष्णु।

भवन्मन्यु (सं० पु०) राजपुत्रभेद।

भवपाली (सं० स्त्री०) तान्त्रिकोंके अनुसार भुवनेश्वरीदेवी जो संसारको रक्षा करनेवाली शक्ति मानी जाती है।

भवपीठ—शिवलिङ्गाधिष्ठित पीठभेद। (शिवपुराण)

भवप्रत्यय (सं० स्त्री०) समाधिकी एक अवस्था जो प्रकृति लयोंको प्राप्त होती है।

भवबन्धन (सं० पु०) सांसारिक दुःख और कष्ट, संसारकी झंझट।

भवभञ्जन (सं० पु०) १ परमेश्वर। २ संसारका नाश करनेवाला, काल।

भवभट्ट—एक ग्रन्थकार। इन्होंने तत्त्वकौमुदी नामक शिशुपालवधकी टीका और सुबोधिनी नामक रघुवंशकी टीका लिखो है।

भवभय (सं० पु०) संसारमें बार बार जन्म लेने और मरनेका भय।

भवभामिनी (सं० स्त्री०) पार्वती, भवानी।

भवभावन (सं० पु०) विष्णु।

भवभूत (सं० क्ली०) भवरूप, अवितथस्वरूप परमेश्वर।

भवभूति (सं० पु०) भवेन शिवेन भूतिरैश्वर्यादिकं यस्य भव एव भूतिर्यस्येति वा, शिवोपासनयैवास्य विद्या उत्पत्ते स्तथा त्वं। मालतीमाधवादि नाटकोंके कर्त्ता, एक कवि। पर्याय—भूगर्भ। (जटाधर)

प्रसिद्ध महाकवि भवभूतिने मालतीमाधवके अतिरिक्त, उत्तररामचरित और वीरचरित नामक और भी दो नाटक रच कर नाट्यजगतमें प्रसिद्धि प्राप्त की है। इनके रचे ग्रन्थोंके पढ़नेसे नाट्यकारके अत्यद्भुत रचनाकौशलका परिचय मिलता है। कविने नाटकाङ्कमें अभिनव दृश्योंकी अवतारणा कर अपनी नाट्यशक्ति और बुद्धिवृत्तिके तीक्ष्ण प्रस्फुरणको साधारणके गोचरीभूत किया है। नाटककी भाव-गभीरता और अभिनय-निपुणताका अनुधावन करनेसे अन्तःकरणमें युगपत् विस्मय और अपूर्वत्व समुदित होता है। उत्तरचरितमें शम्बुकको मारनेकी इच्छासे रामचन्द्र जो जनस्थानमें लाये गये हैं, उसमें कविने ऐसे कौशलसे काम लिया है कि वे सब तरफसे अपनेको बचा ले गये हैं। पूर्वस्मृतितोंके सन्दर्शनसे कहीं उनके हृदयमें अवश्यम्भावी परिताप और वेदना उपस्थित न हो तथा उसके कारण भविष्यमें कोई दुर्घटना न हो जाय, इस आशङ्कासे कविने अपूर्व कौशलसे रामचन्द्रके चित्तमें शान्ति-विधानके लिए छायारूपी सीताको ला कर नाट्यशक्तिकी पराकाष्ठा दिखा दी है। उक्त ग्रन्थके प्रथमाङ्कमें उन्होंने रामचरित्र अभिनयकी अवतारणा कर नाट्यशक्ति और बुद्धिका अपूर्वविकास प्रकट किया है। नाट्याभिनयकी ऐसी अलौकिक आलोकरश्मि भवभूति ही अपनी प्रखर-कुशली बुद्धिके प्रभावसे सर्व प्रथम प्राचीन संस्कृत-जगत्में प्रदीपित कर गये हैं*।

ग्रन्थकारके जीवनेतिहासकी कोई विशिष्ट घटना लिपिबद्ध नहीं हुई है। इस कारण उनके बाल्यजीवन और वार्द्धक्यकी कोई अपूर्व आख्यायिका नहीं मिलती। वीरचरित और मालती-माधवकी प्रस्तावनामें कविने सूत्रधारके मुखसे इस प्रकार आत्मपरिचय ज्ञापन किया है,—दक्षिणापथके विदर्भदेशके अन्तःपति पद्मपुर नगरमें कविका जन्म हुआ था। उस नगरमें यजुर्वेदकी तैत्तरीय शाखाके अध्यायी, काश्यपगोत्र-सम्भूत, धर्मानुष्ठानरत,

* उक्त उत्तर रामचरितके अनुवादक पण्डितवर विल्सन् साहब ने लिखा है, कि यूरोपीय कवि Shakespear, Beanmont और Fletcher आदि नाटकोंमें नाटककी अवतारणा कर तो गये हैं, पर वे भारतीय महाकवि भवभूतिके परवर्त्ती हैं।

पंक्तिपावन, पञ्चाग्निक और सोमयज्ञकारी ब्रह्मवादी, ब्राह्मणोंका वास था। उनके वंशमें वाजपेययज्ञके सम्पादनकारी पूज्य महाकवि गोपाल भट्टका जन्म हुआ। उन्हीं गोपालके पौत्र और पवित्रकीर्त्ति नीलकण्ठके पुत्र-रूपमें भवभूतिने जन्मग्रहण किया।*

आपके पितृपुरुषगण वेदविद्यामें सुपण्डित थे। वंशगत विद्यानुशीलन तथा अपनी असाधारण प्रतिभा और अध्यवसायसे ये संस्कृत-रचनामें पारदर्शिता प्राप्त करनेके कारण अनन्य-साधारण श्रीकण्ठ उपाधिसे समलङ्कृत हुए थे। आपकी माताका नाम जातुकर्णी था†। बाल्यकालमें आप सर्वशास्त्रज्ञ ज्ञाननिधि नामक एक उपाध्यायके निकट अध्ययन करते थे। ×

विदर्भदेशमें ¶ जन्मग्रहण करनेके बाद भवभूतिने अपना बाल्यजीवन कहां और किस प्रकार विताया इसका कोई विशेष विवरण नहीं मिलता। मालतीमाधवके प्रकारणको पढ़ कर हम इतना तो जान सकते हैं, कि उनके समयमें कुण्डिनपुरमें विदर्भकी राजधानी थी।+ जिस पद्मपुरमें कविका जन्म हुआ था, वह स्थान अब जनशून्य घोर अरण्य हो गया है।

ऐतिहासिकोंने भवभूतिके आविर्भाव-कालके निर्णयार्थ गम्भीर गवेषणा-पूर्वक जो प्रमाण संगृहीत किये हैं, उससे मालूम होता है, कि भवभूति ८म शताब्दीमें हुए हैं। अयोध्यापति रामचन्द्रके चरिताख्यानको ले कर जितने भी नाटक रचे गये हैं, उनमें कविका उत्तर-चरित और वीरचरित सर्वापेक्षा प्राचीन है, इसमें सन्देह नहीं।× कालिदास और भवभूतिके काव्योंकी परस्पर तुलना करनेसे कालिदासको ही श्रेष्ठ मानना पड़ता है। कालिदासकी कविता सरल और स्वाभाविक है, भवभूतिका काव्य दीर्घ-समासके कारण जटिल हो गया है, परन्तु उनकी स्वभाववर्णना प्रकृतिकी विशेष अनुकारिणी है।

कविकी रचनाशक्ति और वर्णनाशक्ति युगपत् विस्मयोद्दीपक है। इस प्रकारका भाषाधिपत्य अन्य किसी भी कविके काव्यमें नहीं देखा जाता। आपकी लेखनीसे निकला हुआ दुरूहपद-समन्वित दीर्घसमास-विन्यास मेघमन्द्रके समान स्निग्ध, गम्भीर और चित्तग्राही है। मालतीके प्रणयसे निराश हो कर माधव आत्मविसर्जनके लिए श्मशान-घाटमें उपस्थित हुए हैं। कविने विभीषिका पूर्ण उस श्मशानका जो चित्र अङ्कित किया है, उसे हम उदाहरणार्थ यहां उद्धृत करते हैं :—

"गुञ्जत्कुञ्जकुटीरकौशिकघटा
घुत्कारसंवलित क्रन्दत् फेरव
चण्डतात्कृतिभृतप्राग्भारभीमैस्तटैः।
अन्तःशीर्ण-करङ्क-कर्परपयः संरोध कूलङ्कष।
स्रोतोनिर्गमघोरघर्घरवा पारे श्मशानं सरित्।"

निशीथ समयमें भीषण श्मशान भूमिमें आनेवाले मनुष्यके हृदयमें स्वभावतः ही भीतिभाव उत्पन्न हुआ करता है। उस पर भी नैशान्धकार-विजड़ित उस चित्ताग्निकी क्षीणदीप्त प्रभामें गाढ़ अन्धकारमय श्मशानपुरीका दृश्य

---

* "अस्ति दक्षिणापथे पद्मपुरं नाम नगरम्। तत्र केचित्तैत्तिरीयिणः काश्यपाश्चरणगुरवः पंक्तिपावना पञ्चाग्नयो धृतव्रताः सोमपीथिनः उडम्बरा ब्रह्मवादिनः प्रतिवसन्ति। तदामुष्यायणस्य तत्र भवतो वाजपेययाजिनो महाकवेः पञ्चसुगृहीतनाम्नो भट्टगोपालस्य पौत्रः पवित्रकीर्त्तेर्नीलकण्ठस्यात्मसम्भवः श्रीकण्ठपद-लाञ्छनो भवभूतिर्नामजातूकर्णीपुत्रः कविर्मित्रधेयमस्माकमित्यत्र भवन्तो विदांकुर्वन्तु।"

† भवभूतिकी माता जातुकर्णगोत्रसम्भूता थीं। जातुकर्णगोत्रसम्भवत्वात् भवभूतिजननी जातुकर्णी इत्यभ्यधायि।'
(उत्तरच० टीका)

× "श्रेष्ठः परमहंसानां महर्षीणामिवाङ्गिराः।
यथार्थनामा भगवान् यस्य ज्ञाननिधिर्गुरुः।" (वीरच०)

¶ वर्त्तमान बरार प्रदेश।

+ अब विदार नामसे प्रसिद्ध है।

× अध्यापक विलसन, आनन्दराम बड़ुया आदि मनीषियोंने नाना युक्तियोंसे यह बात प्रमाणित कर दी है। बालरामायण और प्रचण्डपाण्डव नाटकके प्रणेता राजशेखरने रामचरित्र-रचकोंका इस प्रकार पौर्वापर्य लिखा है :—

"बभूव वल्मीकिभवः कविःपुरा
ततः प्रपेदे भुवि भर्त्तृमेण्ठताम्।
स्थितः पुनर्यो भवभूतिरेखया
स वर्त्तते सम्प्रति राजशेखरः॥" (प्रचण्डपाण्डव)

और विभीषिकामय हो गया है। भूतसङ्घ-प्रसूत भय, क्षीणालोक प्रकटित पिशाचोंकी अमानुषिक आकृति, वेगसे चलनेवाली वायुका सांय-सांय शब्द, शवोंके कङ्काल, प्रतिहतप्रवाहा शैवलिनीका घोर घर्घर नाद, उल्लुओंका उदासकारी रव और शृगालोंके दीर्घ शब्द इन सबोंने उस भीषम श्मशान प्रदेशको और भी भयावह कर दिया है।* उक्त श्लोकके दीर्घ समास तथा संवलित, धुत्कार, चण्ड, तात्कृत, भूत, प्राग्भार, भीम, घोर घर्घर और श्मशान आदि पद भीति-सञ्चारके प्रधान सहायक हो गये हैं।

भवभूतिके काव्यमें दीर्घसमासका प्रयोग देख कर कोई कोई प्रत्नतत्त्वविद् उन्हें बाणभट्ट, दण्डी आदिके समयुगवर्त्ती समझते हैं†। राजतरङ्गिणीके पढ़नेसे मालूम होता है, कि कवि भवभूति कान्यकुब्जराज यशोवर्माकी सभामें विद्यमान थे¶। वाक्पतिराज-कृत गौड़वध नामक ग्रंथमें भवभूति-समुद्रसे काव्यामृत मन्थनकी कथाका उल्लेख है।

शार्ङ्गधरपद्धति, प्रचण्डपाण्डव, बालरामायण, भोज

* ऐतिहासिक एल्फिन्स्टोनने इनकी श्मशान-वर्णनाको सर्वश्रेष्ठ समझा है :—

"Among the most impressive descriptions is one where his hero repairs at midnight to a field of tombs, scarcely lighted by the flames of the funeral pyres and evokes the demons of the place whose appearance filling the air with shrill cries and unearthly forms is painted in dark and powerful colours, while the solitude, the moaning of the wind, the hoarse sound of the brook, the wailing owl and the longdrawn howling of the jackals which succeed on the sudden disappearance of the spirits, almost surpass in effect, the presence of their supernatural terrors.

† बाणभट्ट, मयूर आदि संवत्‌की पंचम शताब्दीके शेष भागमें विद्यमान थे।

¶ "कविर्वाक्पतिराज श्रीभवभूत्यादि सेवितः।
जितो ययौ यशोवर्मा तद्‌गुणास्तुति बन्दिताम ॥"
(राजतर० ४।१४४)

राजा यशोवर्मा संवत्‌की छठी शताब्दीके शेषभागमें कान्यकुब्ज सिंहासन पर अधिष्ठित हुए थे। भवभूति इनके राजत्वकालमें विद्यमान थे, इस बातका प्रमाण हमें काशिकावृत्तिके शेषांशके रचयिता वामन-प्रणीत ध्वन्यालोक लोचनसे मिल सकता है। वामनने उक्त ग्रंथमें उत्तरचरितके श्लोक उद्धृत किये हैं। आलोचना करनेसे मालूम होता है, कि वामन ७वीं शताब्दीके शेषभागमें वा ८वीं सदीके प्रारम्भमें जीवित थे।

इन्दौरसे प्राप्त मालतीमाधवकी हस्तलिखित प्रतिके अङ्कोंके अन्तमें 'इतिकुमारिलशिष्यकृते', 'इति कुमारिलस्वामीप्रसादप्राप्त-वाग्वैभव श्रीमदुम्वेकाचार्यविरचिते' और 'इति भवभूतिविरचिते' इत्यादि पाठ रहनेसे कोई कोई विद्वान भवभूतिको कुमारिलका शिष्य समझते हैं। यह बात नितान्त अयौक्तिक नहीं जान पड़ती। कुमारिल-कृत सांख्यकारिका-भाष्य ५५७—५८३ ई०-के मध्य चीनी भाषामें अनुवादित हुआ था। भवभूतिके नाटकमें जो बौद्धविरोध है, उससे प्रतिपन्न होता है कि वे कुमारिलके मतानुलत हुए थे।

मालतीमाधवकी भूमिकामें डा० भण्डारकरने लिखा है, कि "पण्डितसमाजमें प्रवाद है, कि भवभूति कालिदासके समसामयिक थे।" यह प्रवाद इस प्रकार है,—भवभूतिने उत्तररामचरितकी रचना करके कालिदाससे उसके विषयमें उनका अभिमत पूछा था। कालिदासने उस समय चतुरङ्गक्रीड़ामें रत होनेसे, ग्रंथको उच्चस्वरसे पढ़नेके लिये कहा। आद्योपान्त श्रवण कर कालिदासने सन्तोषके साथ कहा कि ग्रंथ उत्तम है, परन्तु—

"किमपि किमपि मन्दं मन्दमासत्ति योगा-
दविरलितकपोलं जल्पतोरक्रमेण।
अशिथिलपरिरम्भव्यापृतैकैकदोष्णो-
रविदितगतयामा रात्रिरेवं व्यरंसीत् ॥" (उत्तर १)

"इस श्लोकके ४र्थ चरणमें एक शब्दमें एक अनुस्वार अधिक हो गया है।" उनके उपदेशानुसार भवभूतिने वहां "रात्रिरेव व्यरंसीत्" पाठ बना लिया। पर इस जरा-सी बात पर, जोकि असलमें प्रवाद है, भवभूतिको कालिदासका समसामयिक नहीं कहा जा सकता।

प्रबन्ध, प्रौढ़मनोरमा, सरस्वतीकण्ठाभरण और साहित्य-दर्पण आदि ग्रन्थोंमें भवभूतिका उल्लेख है, परन्तु उससे कविके काल-निर्णयमें विशेष सहायता नहीं मिलती।

भवभूति-कृत मालतीमाधवप्रकरणको अभिनिवेश-पूर्वक पढ़नेसे तत्सामयिक बौद्ध और तान्त्रिक समाजकी आभ्यन्तरीण अवस्थाका आभास पाया जाता है। कुमारिल आदि उस बौद्धमत-प्लावित भारतमें ब्राह्मण्य धर्म और वैदिक क्रियाकलापादिके स्थापनमें जैसे बद्धपरिकर हुए थे, कवि भवभूतिने अपने नाट्यकाव्यमें परोक्षभावसे उसी मतका पोषण किया है। परिव्राजिका कामन्दकीके कार्यकलापका अवलोकन करनेसे, उस समयकी बौद्ध-समाजकी भग्नावस्थाका परिचय मिलता है। मालती-माधवको विवाहसूत्रमें आबद्ध करना और मालतीका सौभाग्यवृद्धिके लिए कृष्णचतुर्दशीमें शिवपूजनार्थ पुष्प-चयन देख कर अनुमान होता है, कि उस समय हिन्दू-धर्म पुनरभ्युदित हुआ था। वस्तुतः उस समयके बौद्ध गण शिवाराधना करें या बुद्धमार्गका अनुसरण करें, कुछ स्थिर न कर सके थे। उस समय बौद्ध और हिंदू सम्प्रदायमें परस्पर वैरभाव नहीं था। ब्राह्मणमन्त्री भूरिवसु और देवरातने बौद्ध-कन्या कामन्दकी और सौदा-मिनी आदिके साथ एक ही गुरुकी पाठशालामें अध्ययन किया था। द्वितीय अङ्कके "गीतश्चायमर्थोऽङ्गिरसा" इत्यादि वाक्यमें बौद्धोंके हिंदूसंहिताका अध्ययन सूचित हुआ है।

भवभूतिके समसामयिक तान्त्रिक-समाजकी अवस्था अतीव शोचनीय थी। सौदामिनी, कपालकुण्डला और अघोरघण्टके चरित्रमें सम्पूर्णतः इसका प्रति-भास है। सौदामिनीचरित्रमें बौद्धोंके स्वधर्मत्याग-पूर्वक अघोरी शैव वा तान्त्रिक उपासनाका आभास पाया जाता है। पहले सौदामिनी बौद्धधर्मावलम्बिनी थीं, पश्चात् उन्होंने अघोरघण्टकी शिष्या हो कर गुरुचर्या, तपस्या, तन्त्र, मन्त्र, योग, अभियोग आदिके अनुष्ठान द्वारा सिद्धिलाभ किया। उनके तांत्रिकधर्म ग्रहण करने पर बौद्धोंने विशेष विद्वेषभाव नहीं प्रकट किया था।

पञ्चमाङ्कमें चामुण्डाके समक्ष बलिदानकी व्यवस्था देख कर अनुमान किया जा सकता है, कि उस समय दाक्षिणात्यमें नर-बलि प्रचलित थी। अघोरघण्ट और कपालकुण्डला इस पिशाच प्रकृतिके चरम निदर्शन हैं।

कविके वीरचरित और उत्तरचरितके पढ़नेसे वैदिक समाजके विशिष्ट लक्षणोंका परिज्ञान हो जाता है। लव और कुशका जातकर्म, चूड़ाकरण, उपनयन और वेदाध्ययन, रामचन्द्रका दीक्षा-ग्रहण, गोदान मङ्गल और विवाहादि संस्कार तथा भाण्डायनादिका ब्रह्मचर्य, अतिथिसत्कार और उसकी प्रयोज-नीयता आदि वैदिक आचार विशदरूपसे विवृत हुआ है। भवभूति द्वारा अङ्कित प्राचीन समाज-चित्र-का धर्मशास्त्रकारोंने भी अनुमोदन किया है। किस प्रकार उनका पालन किया जाता है, ग्रन्थकारने दोनों ही राम-चरित्रोंमें इस बातका आभास दिया है। इसके सिवा वेद, उपनिषद्, धर्मसंहिता, पुराण, रामायण, महाभारत आदिसे मत उद्धृत कर उन्होंने वैदिक-समाजका आदर्श गठन किया है। बौद्ध और तान्त्रिक धर्मसे प्रतिनिवृत्त हो कर जनसाधारण जिससे वैदिक आचार व्यवहारका अनुवर्त्तन कर सके, यह गूढ़ उद्देश तीनों ही नाटकोंमें विमिश्रित है। कवि द्वारा वर्णित वैदिक-समाजकी परि-त्रता, महत्ता तथा तान्त्रिक क्रियाकलापकी भीषण नीति-भ्रष्टता और हिंसाप्रवणताका अनुधावन करनेसे मालूम होता है कि, वे सनातन आर्यधर्मके विशेष पक्षपाती थे।

काव्य, अलङ्कार और व्याकरण-शास्त्रकी भांति वेदा-न्तादि दर्शनशास्त्रोंमें भी आपकी विलक्षण व्युत्पत्ति थी।* उत्तररामचरितको जरा ध्यानसे पढ़ा जाय तो मालूम हो सकता है कि भवभूति शङ्कराचार्यके पूर्व प्रादु-र्भूत हुए थे†। भवभूतिका विद्याप्रभाव चारों ओर

* "विद्याकल्पेन मरुता मेघानां भूयसामपि।
ब्रह्मणीव विवर्त्तानां क्वापि विप्रलयः कृतः॥"

(उत्तरच० ६)

इसमें विवर्त्तवादका कुछ कुछ आभास दिया गया है।

† उक्त ग्रन्थके ४र्थ अङ्कके "अन्धतमिस्राह्यसुर्या नाम ते लोकाः तेभ्यः प्रतिविधीयन्ते ये आत्मघातिन इत्येवं ऋषयो मन्यन्ते" इस वाक्यको देख कर अनुमान होता है कि, ग्रंथकारने वाजसनेय-संहितोपनिषदके निम्नलिखित श्लोकोंका आश्रय ग्रहण किया था—

व्याप्त होने पर वे क्रमसे उज्जयिनी राजाके सभापण्डित नियुक्त हुए थे। यहीं पर कविके जीवनका अधिकांश समय व्यतीत हुआ था। आपके उक्त तीनों ही नाटक उज्जयिनीके अधिष्ठातृदेव कालप्रिय नाथके समक्ष अभिनीत हुए थे *।

"असूर्या नाम ते लोका अन्धेन तमसावृताः।
तांस्ते प्रेत्याभिगच्छन्ति ये के चात्मनो जनाः॥"
(वाजसनेय उ०)

केवलमात्र उक्त श्लोकके शब्दार्थ पर लक्ष्य कर भवभूतिने उसे अपने ग्रन्थमें समाविष्ट किया है। महर्षि शङ्कराचार्यने अपने वाजसनेयोपनिषद्-भाष्यमें इसकी विवृति दी है जो इस प्रकार है— "अथ इदानीं अविद्वन्निन्दार्थोऽयं मन्त्र आरभ्यते। असूर्याः परमात्मभावमद्वयमपेक्ष्य देवादयोऽपि असुरास्तेषां च असूर्याः। नामशब्देऽनर्थको निपातः। ते लोकाः कर्मफलानि लोक्यन्तेदृश्यभुज्यन्ते इति जन्मानि। अन्धेन अदर्शनात्मकेन अज्ञानेन तमसा आवृता-च्छादितास्तान्स्थावरान्तान् प्रेत्य त्यक्त्वा इमं देहं अभिगच्छन्ति यथाकर्म यथाश्रुतम्। ये के चात्महनः। आत्मनं घ्नन्तीति आत्मघ्नः। के ते ये अविद्वांसः। कथं ते आत्मानं नित्यं हिंसन्ति। अविद्यादोषेण विद्यमानस्य आत्मनस्तिरस्करणात्। विद्यमानस्य आत्मनो यत् कार्यं फलं अजरामरत्वादिसंवेदनादिलक्षणं तत् तस्यैव तिरोभूतं भवतीति प्राकृता अविद्वांसो जना आत्महन उच्यते। तेन हि आत्महननदोषेण संसरन्ति ते।" (शाङ्करभाष्य ३)

भवभूति और शंकरकी व्याख्यामें वैषम्य देख कर कोई अनुमान करते हैं कि उत्तरचरितकी रचनाके समय उक्त उपनिषद्का शांकरभाष्य नहीं था। शंकरकी अभिनव एवं मनोरम व्याख्या मिलने पर भवभूति कभी भी उक्त उपनिषद्-वाक्यके आक्षरिक अर्थको ग्रहण नहीं करते। भवभूति शंकराचार्यके पूर्ववर्त्ती थे, इस बातको बहुतसे विद्वान् स्वीकार करते हैं। वर्तमान अनुसन्धानसे प्रमाणित होता है कि शंकराचार्य ईसाकी ८ठी शताब्दीके निकटवर्त्ती किसी समयमें विद्यमान थे। इसलिए उनका शंकराचार्यके परवर्त्तित्वका मानना किसी प्रकार असमीचीन नहीं मालूम होता।

* भवभूति द्वारा प्रकटित कालप्रियनाथ कौन-सी देवमूर्त्ति हैं और वह कहां प्रतिष्ठित थीं, इसका विशेष विवरण कुछ नहीं मिलता। स्वर्गीय ईश्वरचन्द्र विद्यासागरने जगद्धरके मतानुसरण कर उन्हें पद्मनगरस्थ देवमूर्त्ति विशेष बतलाया है। परन्तु बालरामायण, कथासरित्सागर, रघुवंश (६।३४) और मेघदूत (१।३५) आदि ग्रंथोंमें उज्जयिनी नगरीमें प्रतिष्ठित शिवमूर्त्तिका ही महाकालनाथ, महाकाल-निकेतन, महाकालवपु आदि नामसे उल्लेख किया गया है। भवभूति जिस समय उज्जयिनी-राजसभाके पण्डित थे, तब सम्भवतः वे उज्जयिनीके अधिष्ठातृदेवका कालप्रियनाथ नामसे सम्बोधन करते होंगे। उज्जयिनी नगरीकी शिप्रा नदीके पूर्वतीरस्थ पिशाच-मुक्तेश्वर घाटके पूर्व-दक्षिणांशमें महाकालका बड़ा भारी मन्दिर अब भी विद्यमान है।

भवमय (सं० त्रि०) भव-स्वरूपे मयट्। भव-स्वरूप।

भवमोचन (सं० त्रि०) संसारके बंधनोंसे छुड़ानेवाला, भगवान्।

भवरुत् (सं० स्त्री०) भवे जन्मादिप्रदे संसारे रोदिति अनेनेति भवे जन्मान्ते रोदित्यनेनेति वा रुद-क्विप्। प्रेत-पटह, एक प्रकारका बाजा जो मृतककी अन्त्येष्टि क्रियाके समय बजाया जाता है।

भवर्ग (सं० पु०) नक्षत्रवर्ग।

भववामा (सं० स्त्री०) शिवजीकी स्त्री, पार्वती।

भवविलास (सं० पु०) १ माया। २ संसारके सुख जो ज्ञानके अन्धकारसे उदित होते हैं।

भवशर्मन्—मिथिलावासी एक पण्डित। इन्होंने मिथिलाराज नृसिंहके मन्त्री रामदत्तके आदेशसे षोड़श महादान पद्धति प्रणयन की।

भवशूल (सं० पु०) सांसारिक दुःख और क्लेश।

भवसम्भव (सं० त्रि०) सांसारिक, संसारमें होनेवाला।

भवसार—गुजरातवासी निकृष्ट जातिविशेष। वस्त्रादि रंगाना इनका जातीय व्यवसाय है।

भवस्वामी—१ कल्पविवरणके प्रणेता। २ बौधायन श्रौतसूत्रके भाष्य, अग्निष्टोमप्रयोग, बौधायनचातुर्मास्यसूत्रभाष्य और बौधायनदर्शपूर्णमास प्रभृति ग्रन्थोंके प्रणेता। केशवकृत प्रयोगसारमें इनका मत उद्धृत हुआ है।

भवसृक् (सं० पु०) १ विश्व ब्रह्माण्डके सृष्टिकर्त्ता, ब्रह्मा। २ विष्णु।

भवाँ (हिं० स्त्री०) भंवर, भौरी।

भवाँना (हिं० क्रि०) घुमाना, फिराना।

भवा (सं० स्त्री०) पार्वती, दुर्गा।

भवाचल (सं० पु०) भवस्य महादेवस्य अचलः। मन्दर पर्वतके पूर्ववर्त्ती शैलभेद।

भवात्मजा (सं० स्त्री०) भवस्य शिवस्य आत्मजेति। मनसादेवी।

भवादृक्ष (सं० त्रि०) भवानिव दृश्यते यः इति व्युत्पत्त्या भवच्छब्दपूर्वक दृश् धातोः कर्मणि क्रमेण सक् क्विप् टक् प्रत्ययेन निष्पन्नः। युष्मत् सदृश, आपके जैसा।

भवादृश (सं० त्रि०) भवादृक्ष देखो।

भवानन्द—१ एक प्राचीन कवि। पद्यावलीमें इनकी रचना उद्धृत हुई है। २ एक वैदान्तिक। इन्होंने कल्कलता नामक वेदान्तग्रन्थ संकलन किया। ३ सदर्पकन्दर्पकाव्यके प्रणेता।

भवानन्द तर्कवागीश—नवद्वीपवासी एक पण्डित। इन्होंने रघुनाथ शिरोमणिकृत आख्यातवादको एक टिप्पनी लिखी है।

भवानन्दपुर—वङ्गालके दिनाजपुर जिलान्तर्गत एक गण्ड ग्राम। यह कुलिकनदीके पश्चिमी किनारे पाव भरकी दूरी पर अवस्थित है। यहां एक आम्र-काननके मध्य पीर नेकमर्दको समाधि है। प्रति वर्ष वैशाखमासमें उक्त पीरके उद्देश्यसे मेला लगता है।

भवानन्द मजूमदार—कृष्णनगर-राजवंशके प्रतिष्ठाता। भट्टनारायणसे अधस्तन विंशतितम पुरुष रामचन्द्र समादारके ज्येष्ठपुत्र। इन्होंने वाल्यकालमें ही संस्कृतविद्यामें विशेष पारदर्शिता प्राप्त की थी। १४ वर्षकी उम्रमें एक मुसलमान फौजदारको हुगलीका मार्ग दिखा देनेके कारण फौजदार इन पर बहुत खुश हुए और इनकी सरलता और साहसको देख कर वे इन्हें सप्तग्राममें ले गये। यहां इन्होंने पारसी भाषा और राजकार्यकी शिक्षा पाई। उक्त हुगलीके फौजदारके प्रयत्नसे वंगालके नवावने इन्हें कानूनगोका पद दे कर सम्राट्‌के यहांसे सनद और मजूमदार उपाधि दिला दी। प्रतापादित्य-विजयके समय इन्होंने सैन्य-सहित मानसिंहको लगातार सात दिन तक होनेवाली आंधीमें भोजनादि दे कर उनकी रक्षा की थी। प्रतापादित्यको पराजित कर दिल्ली जाते समय मानसिंह भवानन्दको अपने साथ लेते गये। वहां उन्होंने जहांगीर वादशाहसे अनुरोध कर भवानन्दको महतपुर, नदीया, मरूपदह, लेपा, सुलतानपुर, कासिमपुर, वयसा, मसुण्डा आदि १४ परगनोंका फरमान दिलाया था। (हिजरी १०१५, ई० १६०६)

सम्राट्‌से फरमान पाते समय इन्हें नौवत, डङ्का, वड़ो, निशानें आदि मिली थीं। स्वदेश लौट कर आपने मटियारीमें राज-भवन वनवाया और वहीं वे राजकार्य करते रहे। आपके कार्यसे परितुष्ट हो कर सम्राट्‌ने सात वर्ष वाद पुनः इन्हें उखड़ा आदि कई परगने दिये (१६१३ ई०)। श्रीकृष्ण, गोपाल और गोविन्द नामक आपके तीन पुत्र थे। गुण-ज्येष्ठ मध्यमपुत्र गोपाल पितृ-राज्यके अधिकारी हुए थे। (क्षितीशवंशावलि)

पञ्चदश भाग सम्पूर्ण